दी इंडियन लॉ रिपोर्ट्स

इलाहाबाद संस्करण

*****

सत्यमेव जयते

इलाहाबाद हाई कोर्ट के सभी प्रकाशन योग्य निर्णय

२०२३ – भाग १

(जनवरी)

पृष्ठ १ से १११३

उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन प्रकाशित

इंडियन लॉ रिपोर्टर अनुभाग, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित।

इंडियन लॉ रिपोर्टिंग काउंसिल

इलाहाबाद संस्करण

****

अध्यक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री अरुण भंसाली

******

परिषद

माननीय न्यायमूर्ति श्री सौमित्र दयाल सिंह

माननीय न्यायमूर्ति श्री जयंत बनर्जी

माननीय न्यायमूर्ति श्री नलिन कुमार श्रीवास्तव

****

संपादक मंडल

वरिष्ठ विधि संपादक

१. श्री विनय सरन, वरिष्ठ अधिवक्ता

२. श्री समीर शर्मा, वरिष्ठ अधिवक्ता

कनिष्ठ विधि संपादक

१. श्री अनूप बर्णवाल, अधिवक्ता

२. सुश्री प्रिया अग्रवाल, अधिवक्ता

३. श्री आशुतोष मणि त्रिपाठी, अधिवक्ता

४. सुश्री नूर सबा बेगम, अधिवक्ता

५. श्री सरोज गिरी, अधिवक्ता

६. सुश्री मनीषा चतुर्वेदी, अधिवक्ता

७. श्री अरविन्द कुमार गोस्वामी, अधिवक्ता

८. श्री विनीत दूबे, अधिवक्ता

९. श्री प्रशान्त मिश्रा, अधिवक्ता

१०. श्री अबू बख्त, अधिवक्ता

****

माननीय न्यायमूर्तिगण

मुख्य न्यायमूर्ति माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री राजेश बिंदल	
न्यायमूर्ति	
१. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रीतिंकर दिवाकर	३३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अब्दुल मोईन
२. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज मिश्रा	३४. माननीय न्यायमूर्ति श्री दिनेश कुमार सिंह
३. माननीय न्यायमूर्ति श्री रमेश सिन्हा (वरिष्ठ न्यायमूर्ति लखनऊ)	३५. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव मिश्रा
४. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल	३६. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार सिंह
५. माननीय न्यायमूर्ति श्री देवेन्द्र कुमार उपाध्याय	३७. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय भनोट
६. माननीय न्यायमूर्ति श्री सूर्य प्रकाश केसरवानी	३८. माननीय न्यायमूर्ति श्री नीरज तिवारी
७. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज कुमार गुप्ता	३९. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश पाडिया
८. माननीय न्यायमूर्ति श्री अंजनी कुमार मिश्रा	४०. माननीय न्यायमूर्ति श्री आलोक माथुर
९. माननीय न्यायमूर्ति डा0 कौशल जयेन्द्र ठाकर	४१. माननीय न्यायमूर्ति श्री पंकज भाटिया
१०. माननीय न्यायमूर्ति श्री महेश चन्द्र त्रिपाठी	४२. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ लवानिया
११.. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुनीत कुमार	४३. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक वर्मा
१२. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार बिरला	४४. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार सिंह
१३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अत्तउ रहमान मसूदी	४५. माननीय न्यायमूर्ति श्री पीयूष अग्रवाल
१४. माननीय न्यायमूर्ति श्री अश्वनी कुमार मिश्रा	४६. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्याम समशेरी
१५. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजन रॉय	४७. माननीय न्यायमूर्ति श्री जसप्रीत सिंह
१६. माननीय न्यायमूर्ति श्री अरविन्द कुमार मिश्रा - प्रथम	४८. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव सिंह
१७. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ वर्मा	४९. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान
१८. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चन्द्रा	५०. माननीय न्यायमूर्ति श्री करूणेश सिंह पवार
१९. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक चौधरी	५१. माननीय न्यायमूर्ति डा0 योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
२०. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौमित्र दयाल सिंह	५२. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष माथुर
२१. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव जोशी	५३. माननीय न्यायमूर्ति श्री रोहित रंजन अग्रवाल
२२. माननीय न्यायमूर्ति श्री राहुल चतुर्वेदी	५४. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेन्द्र कुमार- चतुर्थ
२३. माननीय न्यायमूर्ति श्री सलिल कुमार राय	५५. माननीय न्यायमूर्ति श्री मो0 फैज़ आलम खान
२४. माननीय न्यायमूर्ति श्री जंयत बनर्जी	५६. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुरेश कुमार गुप्ता
२५. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेश सिंह चौहान	५७. माननीय न्यायमूर्ति श्री नरेन्द्र कुमार जोहरी
२६. माननीय न्यायमूर्ति श्री इरशाद अली	५८. माननीय न्यायमूर्ति श्री राज बीर सिंह
२७. माननीय न्यायमूर्ति श्री सरल श्रीवास्तव	५९. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजीत सिंह
२८. माननीय न्यायमूर्ति श्री जे0 जे0 मुनीर	६०. माननीय न्यायमूर्ति श्री विपिन चन्द्र दीक्षित
२९. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव गुप्ता	६१. माननीय न्यायमूर्ति श्री शेखर कुमार यादव
३०. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ	६२. माननीय न्यायमूर्ति श्री दीपक वर्मा
३१. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजीत कुमार	६३. माननीय न्यायमूर्ति डा0 गौतम चौधरी
३२. माननीय न्यायमूर्ति श्री रजनीश कुमार	६४. माननीय न्यायमूर्ति श्री शमीम अहमद

६५. माननीय न्यायमूर्ति श्री दिनेश पाठक
६६. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष कुमार
६७. माननीय न्यायमूर्ति श्री समित गोपाल
६८. माननीय न्यायमूर्ति श्री सजंय कुमार पचौरी
६९. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष चन्द्र शर्मा
७०. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सरोज यादव
७१. माननीय न्यायमूर्ति श्री मोहम्मद असलम
७२. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी (ठाकुर)
७३. माननीय न्यायमूर्ति श्री सैय़द आफताब हुसैन रिज़वी
७४. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय कुमार श्रीवास्तव - प्रथम
७५. माननीय न्यायमूर्ति श्री चन्द्र कुमार राय
७६. माननीय न्यायमूर्ति श्री कृष्ण पहल
७७. माननीय न्यायमूर्ति श्री समीर जैन
७८. माननीय न्यायमूर्ति श्री आशुतोष श्रीवास्तव
७९. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष विद्यार्थी
८०. माननीय न्यायमूर्ति श्री बृज राज सिंह
८१. माननीय न्यायमूर्ति श्री श्री प्रकाश सिंह
८२. माननीय न्यायमूर्ति श्री विकास बुधवार
८३. माननीय न्यायमूर्ति श्री ओम प्रकाश त्रिपाठी
८४. माननीय न्यायमूर्ति श्री विक्रम डी चौहान
८५. माननीय न्यायमूर्ति श्री उमेश चन्द्र शर्मा
८६. माननीय न्यायमूर्ति श्री सैय्यद वाइज़ मियां
८७. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्रीवास्तव
८८. माननीय न्यायमूर्ति श्री ओम प्रकाश शुक्ला
८९. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती रेनू अग्रवाल
९०. माननीय न्यायमूर्ति श्री मो0अज़हर हुसैन इदरीसी
९१. माननीय न्यायमूर्ति श्री राम मनोहर नारायण मिश्रा
९२. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा
९३. माननीय न्यायमूर्ति श्री मंयक कुमार जैन
९४. माननीय न्यायमूर्ति श्री शिव शंकर प्रसाद
९५. माननीय न्यायमूर्ति श्री गजेन्द्र कुमार
९६. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुरेन्द्र सिंह - प्रथम
९७. माननीय न्यायमूर्ति श्री नलिन कुमार श्रीवास्तव

अंबुज पराग दुबे और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 256

अजयराज @ राजा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ**- 1098

अजीत सिंह आरक्षी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 738

अनिल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ**- 697

अनिल साहा बनाम यूपी राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 245

अनूप कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 973

अबाद अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 129

अमिताभ दीक्षित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ**- 457

अरविंद केजरीवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 382

अल्लादीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 180

असलम और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ**- 799

आदिल खान बनाम कुलपति, ए.एम.यू., अलीगढ एवं अन्य **पृष्ठ**- 141

आसिफ खलीका बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 175

इस्लाम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 828

ईश्वर बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 56

ईश्वर शरण @ ईश्वर शरण दास बनाम भरत कुमार एवं अन्य **पृष्ठ**- 1073

उ.प्र. राज्य एवं अन्य बनाम सी/एम, सेठ जयपुरिया स्कूल, लखनऊ **पृष्ठ**- 96

उ.प्र. राज्य और अन्य बनाम रोहित भट्ट और अन्य **पृष्ठ**- 333

उ.प्र. राज्य बनाम कृष्णदेव @ झाला एवं अन्य **पृष्ठ**- 73

उत्तर प्रदेश अधीनस्थ सेवाएँ चयन आयोग लखनऊ बनाम पूनम द्विवेदी **पृष्ठ**- 336

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम पूरन सिंह और अन्य **पृष्ठ**- 65

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हफीजुल्लाह **पृष्ठ**- 609

उमा शंकर मिश्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 903

उरेहा बनाम भरोसे और अन्य **पृष्ठ**- 858

एचडीएफसी स्टैंडर्ड लाइफ इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम स्थायी लोक अदालत मुरादाबाद और अन्य **पृष्ठ**- 319

एम.जे.एस. कंस्ट्रक्शन एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य **पृष्ठ**- 6

कमल नयन सिंह एवं अन्य बनाम यूपी राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 1023

कुमारी संध्या सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ**- 723

कुलपति, चंद्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय और एक अन्य बनाम डॉ. लल्लू सिंह और अन्य **पृष्ठ**- 351

कुवरजीत सिंह बनाम भारत संघ एवं अन्य **पृष्ठ**- 109

कृष्ण कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 532

केशेरी नंदन अग्रवाल बनाम श्रीमति इंदू बाजपेई **पृष्ठ**- 1063

कैलाश बनाम उत्तर प्रदेश सरकार **पृष्ठ**- 408

कौशलेश मिश्र और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 61

खलीफा राम चौहान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य **पृष्ठ**- 400

खुशबू सक्सैना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 883

गय्यूर हसन और अन्य उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 263

गिरीश कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 52

गुड्डा @ राजमन @ राज कुमार @ झल्ला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ**- 911

गुलाम रशुल.बनाम राज्य **पृष्ठ**- 732

गौरव शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 602

चंदन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ**- 506

चौधरी छत्रपाल यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 562

जगदीश सिंह और अन्य बनाम इलाहाबाद में राजस्व बोर्ड उत्तर प्रदेश एवं अन्य **पृष्ठ**- 430

जमशेद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ**- 729

टाटा ए.आई.जी. जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड परेल मुंबई बनाम अमर कौर और अन्य **पृष्ठ**- 646

डॉ. अंजू चौधरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 5 अन्य **पृष्ठ**- 345

डॉ. प्रियंका गर्ग बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 100

डॉ. राकेश कुमार बाजपेयी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा अपर मुख्य सचिव, आयुष विभाग, उ.प्र. सरकार, सिविल सचिवालय- लखनऊ एवं अन्य **पृष्ठ**- 395

डॉ. सुरेंद्र प्रताप यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 110

डॉ. सैयद फरीद हैदर रिजवी @ डॉ. एस.एफ.एच रिजवी बनाम सी.बी.आई **पृष्ठ**- 543

दि मैनेजिंग डायरेक्टर, प्रादेशिक को-ऑपरेटिप डेयरी फेडरेशन लिमिटेड एवं अन्य बनाम वीरेंद्र कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य **पृष्ठ**- 355

दिगंबर सिंह व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ**- 693

दिनेश सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 1003

दीप नारायण प्रसाद बनाम राजस्व बोर्ड, यू.पी. & अन्य **पृष्ठ**- 426

दीपक जायसवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ**- 767

दीपक शर्मा बनाम यूपी राज्य **पृष्ठ**- 776

देवेंद कुमार @देवेंद्र कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 18

देवेन्द्र पाल सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 1011

देवेश वर्मा बनाम क्राइस्ट चर्च कॉलेज एवं अन्य **पृष्ठ**- 932

धामपुर शुगर मिल्स लिमिटेड और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य **पृष्ठ**- 164

नरसिंह रावत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 402

नारायण कुमार अग्रवाल व अन्य बनाम राजस्व बोर्ड, इलाहाबाद और अन्य **पृष्ठ**- 112

नौमान अली बनाम मजहर हसन एवं अन्य **पृष्ठ**- 1069

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती हरदेई और अन्य **पृष्ठ**- 812

परशुराम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 78

पीर मोहम्मद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 701

प्रेम नारायण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और उत्तर प्रदेश **पृष्ठ**- 368

प्रेम सिंह बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 598

प्रोफेसर विनीता सिंह बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 688

फ्लिपकार्ट इंटरनेट प्रा. लि. बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 11

बाबू राम एवं अन्य बनाम यूपी राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 330

बाल कुमार पटेल @ राज कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य **पृष्ठ**- 548

बासू यादव बनाम भारत संघ और अन्य **पृष्ठ**- 211

बी.एस.एन.एल. और अन्य बनाम केंद्र सरकार. औद्योगिक न्यायाधिकरण सह श्रम न्यायालय, लखनऊ एवं अन्य **पृष्ठ**- 205

बीरेंद्र सिंह और अन्य बनाम इलाहाबाद में राजस्व बोर्ड उत्तर प्रदेश एवं अन्य **पृष्ठ**- 437

बृजेश सौरभ मिश्रा @ बृजेश मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 1052

बेरोजगार औद्योगिक कल्याण समिति एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 280

भवानी प्रसाद साहू एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 957

भारत संघ एवं अन्य बनाम केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण लखनऊ एवं अन्य **पृष्ठ**- 863

भारत संघ और अन्य बनाम रामधनी प्रसाद **पृष्ठ**- 852

भोला बनाम यूपी राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 230

मदन पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 537

मिन्नी @ मीना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ**- 716

मुराली बनाम ए.डी.एम., वित्त और राजस्व और अन्य **पृष्ठ**- 183

मुसीबत @ राहत अली बनाम यूपी राज्य एवं अन्य. **पृष्ठ**- 1051

मेल्विन सलदान्हा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य . **पृष्ठ**- 26

मेसर्स जय प्रकाश ठेकेदार बनाम आयुक्त, वाणिज्यिक कर एवं अन्य **पृष्ठ**- 1041

मेसर्स श्री गोरखनाथ फूड (पी) लिमिटेड बनाम आयुक्त, वाणिज्यिक कर, उ.प्र., लखनऊ **पृष्ठ**- 1046

मो. असलम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ**- 612

मो. आरिफ खान बनाम भारत संघ और अन्य **पृष्ठ**- 980

मोसाहेब अली बनाम प्रत्यर्थीः-महाप्रबंधक यू.पी.एस.आर.टी.सी. लखनउ व अन्य **पृष्ठ**- 651

मोहम्मद हारून बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 372

यू.पी.एस.आर.टी.सी. पंजीकरण कार्यालय, मेरठ बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, मेरठ और अन्य **पृष्ठ**- 133

यू.पी.एस.आर.टी.सी. बनाम श्रीमती निर्मला कनौजिया @ निर्मला देवी एवं अन्य **पृष्ठ**- 657

रफीक अहमद बनाम जलील अहमद एवं अन्य **पृष्ठ**- 945

रमेश कुमार सिंह बनाम वीरेंद्र सिंह और अन्य **पृष्ठ**- 1093

रमेश चंद्र यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा विशेष सचिव, और अन्य **पृष्ठ**- 236

रमेश चंद्र वर्मा बनाम कलेक्टर बाराबंकी एवं अन्य **पृष्ठ**- 126

रमेश चन्द्र यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य **पृष्ठ**- 278

रवि प्रकाश एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 103

राकेश कुमार पांडे @ ददद्दू पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ**- 475

राज मंगल गोंड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 123

राज.कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य **पृष्ठ**- 366

राजपाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 249

राजेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 341

राजेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 363

राजेश कुमार यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 405

राणा प्रताप सिंह चौहान बनाम यूपी राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**-270

राधे श्याम बनाम नगीना देवी एवं अन्य **पृष्ठ**- 1079

राम प्रकाश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 705

राम प्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 158

राम रूप और अन्य बनाम आयुक्त, आजमगढ़ मंडल, आजमगढ़ एवं अन्य पृष्ठ- 240

राम वृक्ष यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 782

राम शंकर व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 442

राम सनेही एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 618

राम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 921

रामप्यारी @ बुधरानी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ- 361

ललित कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 986

लालजी यादव बनाम भारत संघ और अन्य पृष्ठ- 217

विजय गुप्ता बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 1034

विनय कुमार यादव बनाम भारत संघ अन्य पृष्ठ- 892

विनय राय बनाम यूपी राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 1043

विमल कुमार मौर्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 572

वीरेश सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 626

वैभव पाण्डेय बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य पृष्ठ- 663

शिप्रा होटल्स लिमिटेड एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य पृष्ठ- 188

श्री कृष्णप्रसाद तिवारी और अन्य बनाम प्रमोद कुमार यादव और अन्य पृष्ठ- 644

श्री गांधी आश्रम खादी भंडार, जैतपुर जिला महोबा कैंप ऑफिस &एएमपी; एएनआर बनाम विजय कुमार शर्मा और अन्य पृष्ठ- 88

श्रीमती अंजू अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 4 अन्य पृष्ठ- 326

श्रीमती अंजू राजपाल एवं अन्य बनाम यूपी राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 582

श्रीमती अनिता सिन्हा एवं अन्य बनाम श्रीप्रकाश दीक्षित एवं अन्य पृष्ठ- 807

श्रीमती अर्चना पालीवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 951

श्रीमती उर्मिला देवी बनाम राजेंद्र पाल तायल एवं अन्य पृष्ठ- 640

श्रीमती कल्पना गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ- 746

श्रीमती किरण बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 397

श्रीमती कृष्णा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 2 अन्य पृष्ठ- 177

श्रीमती गीता राकेश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 485

श्रीमती जुगलेश कुमारी एवं अन्य बनाम इफ्को टोकियो जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड,आगरा पृष्ठ- 93

श्रीमती मनोरमा बनाम राजस्व बोर्ड / सी. सी. ए. राजस्व का और स्टाम्प इलाहाबाद एवं अन्य पृष्ठ- 434

श्रीमती मीना देवी बनाम बाबू राम व अन्य पृष्ठ- 1108

श्रीमती रत्नी देवी एवं अन्य बनाम श्रीमती आशा हंस पृष्ठ- 1083

श्रीमती राम रत्ती एवं अन्य बनाम गोरख प्रसाद दुबे पृष्ठ- 629

श्रीमती शकुंतला सोनी बनाम देवेंद्र कुमार रावत पृष्ठ- 1066

श्रीमती शाजिया एवं अन्य बनाम मुनाज़िर अली एवं अन्य पृष्ठ- 818

श्रीमती साजिदा बनाम एस.डी.एम., कैराना, शामली एवं अन्य पृष्ठ- 315

श्रीमती सैदन बनाम राजस्व बोर्ड, इलाहाबाद और अन्य पृष्ठ- 589

संजय कुमार बनाम संतोष कुमार श्रीवास्तव पृष्ठ- 1102

संत लाल यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 967

सन्नी @ नीतीश @ नीतीश अग्रहरि और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 1057

सिद्दीक कप्पन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ**- 605

सी/एम आजाद कोऑपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड और 7 अन्य उत्तर प्रदेश राज्य और 5 अन्य **पृष्ठ**- 120

सुभाष चंद बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 274

सुमित अग्रवाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 1054

सुरेंद्र कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ**- 794

सुरेंद्रे कुमार चतुर्वेदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 20

सुशील कुमार दुबे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 266

सोतैम और अन्य बनाम अपर कमिश्नर (न्यायिक) द्वितीय, वाराणसी मंडल, वाराणसी और अन्य **पृष्ठ**- 223

सोनू और अन्य बनाम यूपी राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 221

स्टार पेपर मिल्स लिमिटेड, सहारनपुर बनाम श्रीमती अनीसा बेगम और अन्य **पृष्ठ**- 1088

हरबर चमार बनाम बी. ओ. आर. और अन्य **पृष्ठ**- 593

हार्दिक ट्रेडिंग बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 117

क्षेत्रीय प्रबन्धक के माध्यम से उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम श्रीमती मेघकौर व अन्य **पृष्ठ**- 633

ज्ञान प्रकाश सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 869

अनुवादित

(2023) 1 ILRA 7
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 06.01.2023

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल

मध्यस्थता और सुलह आवेदन अंतर्गत धारा 11(4) संख्या 109/2021

एम.जे.एस. कंस्ट्रक्शन एवं अन्य ...आवेदक
बनाम
भारत संघ एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता आवेदक:
श्री भरत किशोर श्रीवास्तव, श्री विमल धर्म यादव

अधिवक्ता प्रतिवादी:
श्री प्रशांत माथुर, श्री प्रभाकर त्रिपाठी, ए.एस.जी.आई.

ए. सिविल विधि - मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 - धारा 11(4), (6),(8) और (12) - मध्यस्थ की नियुक्ति - अनुबंध की सामान्य शर्तों के खंड 25(ii) में मध्यस्थ की नियुक्ति का प्रावधान स्पष्ट रूप से अधिनियम की धारा 12(5) के अनुरूप है- चूंकि कथित प्राधिकारी अधिनियम की सातवीं अनुसूची की श्रेणी-1 के अंतर्गत आते हैं और इस प्रकार मध्यस्थ के रूप में नियुक्त होने के लिए अयोग्य हैं, इसलिए वे पक्षों के मध्य विवाद के समाधान के लिए मध्यस्थ को नामित करने के लिए भी अयोग्य हैं – अनुबंध की सामान्य शर्तों के खंड 25 के उप-खंड (ii) के न्यायालय के सुविचारित दृश्य में जिस हद तक मध्यस्थ की नियुक्ति का प्रावधान है, वह लुप्त होने योग्य है- पक्षों के मध्य विवाद के समाधान के लिए मध्यस्थ को उच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त किया जाना आवश्यक है– सेवानिवृत्त उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री अरुण टंडन को उनकी सहमति से मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया गया था - पक्षों के मध्य विवाद के समाधान के लिए वाद मध्यस्थ को भेजा गया। (पैरा 25 से 29)

आवेदन निस्तारित। (ई-6)

(माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल, द्वारा प्रदत्त)

आदेश

1. मध्यस्थता और सुलह आवेदन अधिनियम, 1996 (इसके बाद "अधिनियम" के रूप में संदर्भित) की धारा 11(6) के तहत दायर वर्तमान आवेदन में की गई प्रार्थना पार्टियों के बीच विवाद के समाधान के लिए मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए है।

2. आवेदक के विद्वान वकील द्वारा उठाए गए तर्क यह हैं कि निविदा में भाग लेने पर, आवेदक फर्म को कैंट जनरल अस्पताल, कानपुर में 30 बिस्तरों वाले अस्पताल के निर्माण के लिए 18 अगस्त 2015 को कार्य आदेश संख्या 15 जारी किया गया था। आवेदक-फर्म के अनुसार, जब काम पूरा होने के बाद भुगतान के लिए ₹3,17,98,239.70 का अंतिम बिल पेश किया गया, तो ₹53,60,466.51/- की राशि का भुगतान नहीं किया गया। हालाँकि, आवेदक काफी समय तक प्रत्यर्थियों से शेष भुगतान जारी करने का अनुरोध करता रहा हालांकि, काफी समय तक भुगतान के बावजूद भुगतान नहीं किया गया। जबकि आवेदक-फर्म द्वारा बार-बार अनुरोध किए जाने पर भी भुगतान नही हुआ, आवेदक ने पार्टियों के बीच विवाद के समाधान के लिए मध्यस्थ की नियुक्ति की मांग करते हुए सेंट्रल पी.डब्ल्यू.डी वर्क्स, 2014 के लिए अनुबंध की सामान्य शर्तों के खंड 25 में निहित मध्यस्थता खंड का आह्वान किया, इस उद्देश्य के लिए 9 जुलाई, 2021 को नोटिस जारी किया गया था। हालाँकि, प्रत्यर्थियों ने 8 अक्टूबर, 2021 के पत्र के माध्यम से यह कहते हुए मध्यस्थ की नियुक्ति से इनकार कर दिया कि मध्यस्थ की नियुक्ति की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि 26 दिसंबर, 2014 के अनुबंध समझौते के खंड- 16 में विवाद को मध्यस्थता के दायरे से बाहर रखा गया है और इस पर निर्णय लिया जाएगा जो बोर्ड द्वारा जो निर्णायक और ठेकेदार पर बाध्यकारी होगा।

3. उन्होंने आगे कहा कि समझौते के खंड 16 पर भरोसा करते हुए मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए आवेदक के अनुरोध को अस्वीकार करना पूरी तरह से अवैध है क्योंकि समझौते के खंड -16 के संदर्भ में, प्रतिवादी द्वारा लिया गया निर्णय अंतिम है और इस प्रकार कोई उपाय नहीं है। आवेदक के पास कोई बचाव नहीं बचा है। ऐसी कोई भी शर्त अनुबंध अधिनियम की धारा 28 का उल्लंघन होगी, क्योंकि आवेदक को उसकी शिकायत के समाधान के लिए उत्तरदायी नहीं बनाया जा सकता है।

4. दूसरी ओर, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ताने कहा कि आवेदक को देय पूरी राशि का भुगतान पहले ही किया जा चुका है, इसलिए कोई विवाद लंबित नहीं है जिसके लिए मध्यस्थ नियुक्त करने की आवश्यकता है।

5. उन्होंने आगे कहा कि आवेदक द्वारा कथित रूप से निष्पादित अतिरिक्त कार्य के लिए कोई मंजूरी नहीं दी गई थी, इसलिए कोई भुगतान नहीं किया जा सका। 26 दिसंबर, 2014 के समझौते के खंड -16 के आवेदन के

संबंध में, उन्होंने प्रस्तुत किया कि अनुबंध की सामान्य शर्तों में से 25 में प्रावधान है कि यह अनुबंध में अन्यथा प्रदान किए गए मामलों को छोड़कर लागू होगा। मौजूदा मामले में, 26 दिसंबर 2014 के समझौते के खंड-16 में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि इस मुद्दे पर बोर्ड/सीईओ द्वारा लिया गया निर्णय अंतिम होगा और इस प्रकार कोई मध्यस्थ नियुक्त नहीं किया जा सकता है।

6. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना और रिकार्ड का अवलोकन किया।

7. अनुबंध की सामान्य शर्तों का खंड 25 एक मध्यस्थता खंड का प्रावधान करता है। इसे इस प्रकार पढ़ा जाता है:

खण्ड 25

सिवाय इस अनुबंध के अन्यथा प्रावधान किया गया है, यहां पहले उल्लेखित विशिष्टताओं, डिज़ाइन, रेखाचित्रों और निर्देशों के अर्थ और काम में उपयोग की जाने वाली कारीगरी या सामग्री की गुणवत्ता या किसी अन्य प्रश्न से संबंधित सभी प्रश्न और विवाद, दावा, अधिकार, मामला या चीज़ जो भी किसी भी तरह से अनुबंध, डिज़ाइन, ड्राइंग, विनिर्देशों, अनुमान, निर्देश, आदेश या इन शर्तों से संबंधित है या अन्यथा कार्यों को निष्पादित करने में विफलता के संबंध में है, चाहे वह इसके दौरान उत्पन्न हो कार्य की प्रगति या उसके रद्द होने, समाप्ति, पूर्ण होने या परित्याग के बाद आगे बताए अनुसार निस्तारित किया जाएगा:

(i) यदि ठेकेदार उससे मांगे गए किसी काम को अनुबंध की आवश्यकताओं से बाहर मानता है, या उससे संबंधित या उससे उत्पन्न किसी भी मामले पर प्रभारी अभियंता द्वारा लिखित रूप में दिए गए किसी भी चित्र, रिकॉर्ड या निर्णय पर विवाद करता है। अनुबंध या कार्य को अस्वीकार्य होने पर, वह तुरंत 15 दिनों के भीतर लिखित निर्देश या निर्णय के लिए अधीक्षण अभियंता से अनुरोध करेगा। इसके बाद, अधीक्षण अभियंता ठेकेदार के पत्र की प्राप्ति से एक महीने की अवधि के भीतर अपना लिखित निर्देश या निर्णय देगा।

यदि अधीक्षण अभियंता उपरोक्त अवधि के भीतर अपने निर्देश या निर्णय लिखित रूप में देने में विफल रहता है या यदि ठेकेदार अधीक्षण अभियंता के निर्देशों या निर्णय से असंतुष्ट है, तो ठेकेदार अधीक्षण अभियंता के निर्णय की प्राप्ति के 15 दिनों के भीतर अपील कर सकता है। मुख्य अभियंता यदि ठेकेदार चाहे तो उसे सुनवाई का अवसर देगा और अपनी अपील के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करेगा। मुख्य अभियंता ठेकेदार की अपील प्राप्त होने के 30 दिनों के भीतर अपना निर्णय देंगे।

यदि ठेकेदार मुख्य अभियंता के निर्णय से असंतुष्ट है, तो ठेकेदार मुख्य अभियंता के निर्णय की प्राप्ति से 30 दिनों के भीतर, प्रत्येक के संबंध में दावा की गई राशि के साथ विवादों की सूची के साथ विवाद निवारण समिति (डीआरसी) के समक्ष अपील कर सकता है। इस तरह के विवाद और मुख्य अभियंता द्वारा उनके विवादों को खारिज करने का हवाला दिया जा रहा है। विवाद निवारण समिति (डीआरसी) ठेकेदार की अपील की प्राप्ति से 90 दिनों की अवधि के भीतर अपना निर्णय देगी। विवाद निवारण समिति (डीआरसी) का गठन अनुसूची 'एफ' में दर्शाए अनुसार होगा।

यदि विवाद निवारण समिति (डीआरसी) उपरोक्त अवधि के भीतर अपना निर्णय देने में विफल रहती है या कोई भी पक्ष विवाद निवारण समिति (डीआरसी) के निर्णय से असंतुष्ट है, तो कोई भी पक्ष विवाद निवारण समिति (डीआरसी) के निर्णय की प्राप्ति से 30 दिनों की अवधि के भीतर मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए मुख्य अभियंता को नोटिस दे सकता है। परिशिष्ट XV के अनुसार निर्धारित प्रोफार्मा, ऐसा न करने पर उक्त निर्णय अंतिम बाध्यकारी और निर्णायक होगा और मध्यस्थ द्वारा निर्णय के लिए संदर्भित नहीं किया जाएगा।

(ii) उपरोक्त उप पैरा (i) के संदर्भ में जहां निर्णय अंतिम, बाध्यकारी और निर्णायक हो गया है, उसे छोड़कर, विवादों या मतभेदों को मुख्य अभियंता, सीपीडब्ल्यूडी द्वारा नियुक्त एकमात्र मध्यस्थ द्वारा मध्यस्थता के माध्यम से निर्णय के लिए भेजा जाएगा। कार्य या यदि कोई मुख्य अभियंता नहीं है, तो सीपीडब्ल्यूडी के संबंधित क्षेत्र के अतिरिक्त महानिदेशक या यदि कोई अतिरिक्त महानिदेशक नहीं है, तो कार्य महानिदेशक, सीपीडब्ल्यूडी। यदि इस प्रकार नियुक्त मध्यस्थ कार्य करने में असमर्थ या अनिच्छुक है या किसी भी कारण से अपनी नियुक्ति से इस्तीफा दे देता है या अपना कार्यालय खाली कर देता है, तो उपरोक्त तरीके से एक अन्य एकमात्र मध्यस्थ नियुक्त किया जाएगा। ऐसा व्यक्ति उस चरण से संदर्भ के साथ आगे बढ़ने का हकदार होगा जिस पर इसे उसके पूर्ववर्ती द्वारा छोड़ा गया था।

इस अनुबंध की एक शर्त यह है कि मध्यस्थता का आह्वान करने वाला पक्ष मध्यस्थ की नियुक्ति के नोटिस के साथ-साथ ऐसे प्रत्येक विवाद के संबंध में दावा की गई राशि के साथ विवादों की एक सूची देगा और अपील के मुख्य अभियंता द्वारा अस्वीकृति का संदर्भ देगा।

इस अनुबंध की एक शर्त यह भी है कि मुख्य अभियंता सीपीडब्ल्यूडी या अतिरिक्त महानिदेशक या महानिदेशक, सीपीडब्ल्यूडी द्वारा नियुक्त व्यक्ति के अलावा कोई भी व्यक्ति, जैसा कि ऊपर कहा गया है, मध्यस्थ के रूप में कार्य नहीं करना चाहिए और यदि किसी कारण से यह संभव नहीं है, तो। मामले को मध्यस्थता के लिए बिल्कुल भी नहीं भेजा जाएगा।

इस अनुबंध की एक शर्त यह भी है कि यदि ठेकेदार प्रभारी अभियंता से अंतिम बिल तैयार होने की सूचना प्राप्त होने के 120 दिनों के भीतर लिखित रूप में किसी भी दावे के संबंध में मध्यस्थ की नियुक्ति की कोई मांग नहीं करता है। भुगतान, ठेकेदार के दावे को माफ कर दिया गया और पूरी तरह से वर्जित माना जाएगा और सरकार को इन दावों के संबंध में अनुबंध के तहत सभी देनदारियों से मुक्त कर दिया जाएगा।

मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) के प्रावधानों या उसके किसी भी वैधानिक संशोधन या पुनः अधिनियमन के अनुसार आयोजित की जाएगी और उसके तहत बनाए गए नियम और उस समय लागू होने वाले नियम इस धारा के अंतर्गत मध्यस्थता कार्यवाही पर लागू होंगे।

इस अनुबंध की एक शर्त यह भी है कि मध्यस्थ केवल उन्हीं विवादों पर निर्णय देगा जो नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा उसे संदर्भित किए गए हैं और उसे संदर्भित प्रत्येक विवाद और दावे के खिलाफ और उन सभी मामलों में अलग-अलग अधिनिर्णय देगा जहां दावों की कुल राशि किसी भी पार्टी के लिए 1,00,000 रुपये से अधिक है./-, मध्यस्थ को अधिनिर्णय के लिए कारण बताना होगा।

यह भी अनुबन्ध के तहत है कि यदि मध्यस्थ को कोई भी राशी का भुगतान किया गया है तो यह दोनो पक्षकारों द्वारा बराबर बराबर भुगतान किया जायेगा।

यह भी अनुबंध की एक शर्त है कि मध्यस्थ को उस तिथि पर संदर्भ में प्रवेश किया हुआ माना जाएगा जब वह दोनों पक्षों को नोटिस जारी करके अपने दावों का विवरण और दावों का प्रति विवरण प्रस्तुत करने के लिए बुलाता है। मध्यस्थता का स्थान ऐसा स्थान होगा जो मध्यस्थ द्वारा अपने विवेक से तय किया जा सके। मध्यस्थ की फीस, यदि कोई हो, निर्णय दिए जाने और प्रकाशित होने से पहले भुगतान करने की आवश्यकता होने पर, प्रत्येक पक्ष द्वारा आधा-आधा भुगतान किया जाएगा। संदर्भ और पुरस्कार की लागत (मध्यस्थ की फीस, यदि कोई हो, सहित) मध्यस्थ के विवेक पर होगी, जो किसी को निर्देश दे सकता है कि किसके द्वारा और किस तरीके से, ऐसी लागत या उसके किसी हिस्से का भुगतान किया जाएगा और भुगतान की जाने वाली लागत की राशि तय या व्यवस्थित करें।"

8. तथ्य यह है कि उपरोक्त खंड विचाराधीन अनुबंध पर लागू होता है, यह विवाद का विषय नहीं था क्योंकि यह आवेदक द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति की मांग को लेकर जारी किए गए नोटिस के जवाब में प्रतिवादी ने न तो उस खंड का जिक्र किया और न ही आवेदन पर दायर जवाबी हलफनामे में भी इसका खंडन किया। मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए आवेदक की प्रार्थना को अस्वीकार करने का एकमात्र आधार 26 दिसंबर 2014 के समझौते का खंड 16 था, जिसके संदर्भ में विनिर्देश और सामग्री की गुणवत्ता के लिए, बोर्ड/सीईओ का निर्णय अंतिम होगा। इसे इस प्रकार पढ़ा जाता है:

“16. यदि और जब भी इसके बाद विनिर्देश के अर्थ और कार्य की सामग्री की गुणवत्ता या ठेकेदार से संबंधित किसी अन्य मामले से संबंधित कोई विवाद उत्पन्न होता है, तो बोर्ड/सीईओ का निर्णय निर्णायक होगा, और, ठेकेदार पर बाध्यकारी होगा।

9. भारत संचार निगम लिमिटेड और अन्य बनाम मोटोरोला इंडिया प्रा. लिमिटेड (2009) 2 एससीसी 337 में मध्यस्थ की नियुक्ति करने वाले केरल उच्च न्यायालय के फैसले को बीएसएनएल द्वारा अपील में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी। उच्च न्यायालय द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति को बरकरार रखते हुए, बीएसएनएल द्वारा दायर अपील को खारिज कर दिया गया।

10. उपरोक्त मामले में, भारतीय मोबाइल संचार प्रणाली की आपूर्ति, स्थापना और कमीशनिंग के टर्न की समाधान के संबंध में पार्टियों के बीच अनुबंध निष्पादित किया गया था। अनुबंध के खंड 16.2 में यह प्रावधान है कि यदि डिलीवरी का विलंबित हिस्सा सिस्टम के प्रभावी उपयोगकर्ता को महत्वपूर्ण रूप से बाधित करता है, तो खरीद आदेश के संबंधित पैकेज के कुल मूल्य पर हर्जाना लगाया जाएगा। इसमें आगे प्रावधान किया गया है कि क्रेता द्वारा मूल्यांकन और लगाए गए परिसमापन क्षति की मात्रा अंतिम होगी और आपूर्तिकर्ता द्वारा चुनौती नहीं दी जाएगी। उक्त खंड 16.2 इस प्रकार है:

"16.2. यदि निविदाकर्ता निर्धारित अवधि के भीतर टर्न की आधार पर सामान और सेवाएं देने में विफल रहता है, तो क्रेता देरी के प्रत्येक सप्ताह या उसके हिस्से के लिए सामान और सेवाओं की विलंबित मात्रा के मूल्य का 0.5% वसूलने का हकदार होगा। 10 सप्ताह तक की अवधि के लिए और उसके बाद अगले 10 सप्ताह की देरी के लिए प्रत्येक सप्ताह या उसके भाग के लिए वस्तुओं और सेवाओं की विलंबित मात्रा के मूल्य के 0.7% की दर से। आपूर्ति, स्थापना और कमीशनिंग के टर्नकी समाधान के वर्तमान मामले में, जहां सेवाओं की डिलीवरी और प्रावधान का विलंबित हिस्सा सिस्टम के प्रभावी उपयोगकर्ता को महत्वपूर्ण रूप से बाधित करता है, संबंधित पैकेज के कुल मूल्य पर ऊपर बताए अनुसार निर्धारित हर्जाना लगाया जाएगा। क्रय आदेश का क्रेता द्वारा मूल्यांकन और लगाए गए परिसमाप्त क्षति की मात्रा अंतिम होगी और आपूर्तिकर्ता द्वारा चुनौती योग्य नहीं होगी।

11. समझौते में मध्यस्थता खंड में प्रावधान है कि समझौते के तहत या उसके संबंध में उत्पन्न होने वाले किसी भी प्रश्न,

विवाद या मतभेद (उन मामलों को छोड़कर, जिनका निर्णय इस समझौते के तहत विशेष रूप से प्रदान किया गया है) को एकमात्र मध्यस्थ के पास भेजा जाएगा। . उक्त खंड 20.1 को यहां पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"20.1 इस समझौते के तहत या उसके संबंध में उत्पन्न होने वाले किसी भी प्रश्न, विवाद या मतभेद की स्थिति में (उन मामलों को छोड़कर, जिनका निर्णय इस समझौते के तहत विशेष रूप से प्रदान किया गया है), उसे एकमात्र मध्यस्थता के लिए भेजा जाएगा। सीजीएम, केरल टेलीकॉम सर्कल, बीएसएनएल या यदि उसका पदनाम बदल दिया गया है या उसका कार्यालय समाप्त कर दिया गया है, तो ऐसे मामलों में उस समय के लिए अधिकारी को एकमात्र मध्यस्थता सौंपी जाएगी (चाहे उसके अपने कर्तव्यों के अतिरिक्त या अन्यथा)। सीजीएम, केरल टेलीकॉम सर्कल, बीएसएनएल या किसी भी पदनाम से ऐसे अधिकारी को बुलाया जा सकता है (इसके बाद उक्त अधिकारी के रूप में संदर्भित) के कार्य, और यदि सीजीएम केरल टेलीकॉम सर्कल या उक्त अधिकारी इस तरह कार्य करने में असमर्थ या अनिच्छुक है, फिर सीजीएम, केरल टेलीकॉम सर्कल या उक्त अधिकारी द्वारा नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति की एकमात्र मध्यस्थता। मध्यस्थ नियुक्त करने का समझौता मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 के अनुसार होगा।

ऐसी किसी भी नियुक्ति पर इस आधार पर कोई आपत्ति नहीं होगी कि मध्यस्थ एक सरकारी कर्मचारी है या उसे उस मामले से निपटना है जिससे समझौता संबंधित है या एक सरकारी कर्मचारी के रूप में अपने कर्तव्यों के दौरान उसने अपने विचार व्यक्त किए हैं विवादग्रस्त सभी या किसी भी मामले पर मध्यस्थ का निर्णय अंतिम होगा और समझौते के दोनों पक्षों पर बाध्यकारी होगा। ऐसे मध्यस्थ, जिसके पास मामला मूल रूप से भेजा गया है, के स्थानांतरित होने या उसका कार्यालय खाली होने या किसी भी कारण से कार्य करने में असमर्थ होने की स्थिति में, सीजीएम, केरल टेलीकॉम सर्कल, बीएसएनएल या उक्त अधिकारी किसी अन्य व्यक्ति को कार्य करने के लिए नियुक्त करेगा। समझौते की शर्तों के अनुसार एक मध्यस्थ और इस प्रकार नियुक्त व्यक्ति उस चरण से आगे बढ़ने का हकदार होगा जिस पर उसके पूर्ववर्तियों ने इसे छोड़ दिया था..."

12. सुप्रीम कोर्ट ने माना कि परिसमाप्त क्षति की मात्रा निर्धारित करने से संबंधित खंड अंतिम है और न्यायिक जांच के योग्य नहीं है, यह स्पष्ट रूप से भारतीय अनुबंध अधिनियम, 1872 (इसके बाद इसे "अनुबंध अधिनियम" के रूप में संदर्भित किया गया है) की धारा 28 के तहत कानूनी कार्यवाही में बाधा डालता है। " तदनुसार, न्यायालय ने इस धारा को कानून की नजर में खराब माना। प्रासंगिक पैरा-17 नीचे दिया गया है:

"38. खंड 16.2 के तहत प्रावधान कि परिसमाप्त क्षति की मात्रा का निर्धारण अंतिम होगा और आपूर्तिकर्ता मोटोरोला द्वारा इसे चुनौती नहीं दी जा सकती है, यह स्पष्ट रूप से भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 28 के तहत कानूनी कार्यवाही में बाधा डालता है। इसलिए इस आशय के प्रावधान को ख़राब माना जाना चाहिए।"

13. आई सी आ े एम एम टेली लिमिटेड बनाम पंजाब राज्य जल आपूर्ति सीवरेज बोर्ड और अन्य (2019) 4 एससीसी 401पंजाब राज्य जल आपूर्ति और सीवरेज बोर्ड, भटिंडा ने टर्न की आधार पर विभिन्न शहरों के लिए जल आपूर्ति, सीवरेज योजना आदि के विस्तार और संवर्द्धन के लिए निविदा आमंत्रित करने के लिए नोटिस जारी किया। अपीलकर्ता कंपनी को निविदा प्रदान की गई और पार्टियों के बीच एक औपचारिक अनुबंध निष्पादित किया गया। अनुबंध का खंड -25 (viii) इस प्रकार निर्धारित किया गया है:

"viii. यह इस अनुबंध की एक आवश्यक शर्त होगी कि तुच्छ दावों से बचने के लिए मध्यस्थता का आह्वान करने वाली पार्टी प्रत्येक दावे के तहत दावा की गई राशि बताते हुए तथ्यों और गणनाओं के आधार पर विवाद को निर्दिष्ट करेगी और दस प्रतिशत के लिए "डिपोजिट-एट-कॉल" प्रस्तुत करेगी। दावा की गई राशि का, मध्यस्थ के नाम पर उसके आधिकारिक पदनाम द्वारा एक शेड्यूल बैंक पर, जो पुरस्कार की घोषणा तक राशि जमा रखेगा। किसी अधिनिर्णय के आयोजन में दावेदार के पक्ष में, दावा की गई राशि के संबंध में दी गई राशि के अनुपात में जमा राशि उसे वापस कर दी जाएगी और शेष राशि, यदि कोई हो, जब्त कर ली जाएगी और दूसरे पक्ष को भुगतान कर दी जाएगी।

14. उच्चतम न्यायालय ने उपरोक्त शर्त को मनमाना मानते हुए रद्द करते हुए निम्नानुसार कहा:

"24. इसके अलावा, यह भी स्थापित कानून है कि मध्यस्थता एक महत्वपूर्ण वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया है जिसे अदालतों में मामलों की उच्च लंबितता और मुकदमेबाजी की लागत के कारण प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। जमा करने के संबंध में कोई भी आवश्यकता निश्चित रूप से इस प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करेगी। इसके अलावा, यह कल्पना करना आसान है कि अक्सर एक बड़े दावे का 10% जमा अदालती शुल्क से भी अधिक होगा जो सिविल कोर्ट में मुकदमा दायर करने के लिए लिया जा सकता है।

X X X X

27. किसी मध्यस्थता पक्ष को 10% की पूर्व-जमा द्वारा इस वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया को लागू करने से रोकना मध्यस्थता को हतोत्साहित करेगा, न्यायालय प्रणाली

को अवरुद्ध करने के उद्देश्य के विपरीत, और मध्यस्थता प्रक्रिया को अप्रभावी और महंगी बना देगा।

15. भारत संचार निगम लिमिटेड (उपरोक्त) में, समझौते में एक खंड, जिसके संदर्भ में लगाया गया परिसमाप्त नुकसान अंतिम होना था और आपूर्तिकर्ता द्वारा चुनौती नहीं दी जानी थी, को अनुबंध अधिनियम की धारा 28 का उल्लंघन माना गया था। यह भी माना गया कि यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के तहत निर्धारित धारणाओं को भी हरा देगा, जिसमें यह माना गया है कि एक पक्ष अपने मामले का न्यायाधीश नहीं हो सकता ('नेमो ज्यूडेक्स इन कॉसा सुआ')। बोर्ड या सीईओ द्वारा एकतरफा लिया गया कोई भी निर्णय उसी श्रेणी में आएगा। वैकल्पिक विवाद समाधान तंत्र को बढ़ावा देने के बजाय, प्रतिवादी-बोर्ड अपने मामले का न्यायाधीश बन गया।

16. आई.सी.आ े.एम.एम टेली लिमिटेड का मामला (उपरोक्त), यहां तक कि समझौते में एक खंड भी प्रदान करता है कि मध्यस्थता खंड को लागू करने से पहले, दस प्रतिशत की पूर्व-जमा की आवश्यकता होती है, को मनमाना माना गया था।

17. ऊपर उल्लिखित कारणों से, मेरी राय में, कुछ मुद्दों पर बोर्ड/सीईओ के निर्णय को अंतिम मानने का प्रावधान करने वाले समझौते का खंड-16 स्पष्ट रूप से अनुबंध अधिनियम की धारा 28 का उल्लंघन है। यदि उस खंड को पार्टियों के बीच निष्पादित समझौते से हटा दिया जाता है, तो अनुबंध की सामान्य शर्तों का खंड -25 सामने आता है।

18. अनुबंध की सामान्य शर्तों के खंड 25 में विवाद के समाधान के लिए एक विस्तृत प्रक्रिया प्रदान की गई है। प्रारंभ में अधीक्षण अभियंता से अनुरोध किया जाना है। निर्णय देने में असफल रहने पर मुख्य अभियंता के समक्ष अपील दायर की जा सकती है जिसके बाद मामले पर विवाद निवारण समिति द्वारा विचार किया जा सकता है। विवाद निवारण समिति के आदेश से असंतुष्ट कोई भी पक्ष मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए मुख्य अभियंता को नोटिस दे सकता है। मामले को मुख्य अभियंता द्वारा नियुक्त किए जाने वाले एकमात्र मध्यस्थ के पास भेजा जाना आवश्यक है।

19. हालाँकि, मौजूदा मामले में, आवेदक ने 9 जुलाई, 2021 के नोटिस में, मध्यस्थता खंड का आह्वान करते हुए, प्रतिवादी-विभाग में उपरोक्त अधिकारियों और विवाद निवारण समिति की अनुपस्थिति को स्पष्ट रूप से बताया है। प्रतिवादी द्वारा इस तथ्य का खंडन नहीं किए जाने पर, मेरे विचार में, आवेदक ने पार्टियों के बीच विवाद के समाधान के लिए सीधे मध्यस्थ की नियुक्ति की मांग करते हुए मध्यस्थता खंड को सही ढंग से लागू किया है।

20. अब मैं मुख्य अभियंता द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति के संबंध में पहलू पर आता हूं, जैसा कि खंड 25 के तहत या प्रतिवादी के किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा प्रदान किया गया है। सुप्रीम कोर्ट मेंपर्किन्स ईस्टमैन आर्किटेक्ट्स डीपीसी और अन्य बनाम एचएससीसी (इंडिया) लिमिटेड एआईआर 2020 एससी 59, इस मुद्दे पर विचार करते हुए कि क्या कोई अयोग्य व्यक्ति मध्यस्थ को नामित कर सकता है, निम्नलिखित उद्धृत किया गया है कि टीआरएफ लिमिटेड बनाम एनर्जो इंजीनियरिंग प्रोजेक्ट्स लिमिटेड(2017) 8 एससीसी 377:

"हमारे विश्लेषण से, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए बाध्य हैं कि एक बार मध्यस्थ कानून के संचालन से अयोग्य हो गया है, तो वह किसी अन्य को मध्यस्थ के रूप में नामित नहीं कर सकता है। अधिनियम की धारा 12(5) में निहित नुस्खे के अनुसार मध्यस्थ अयोग्य हो जाता है।"

21. इस मुद्दे पर उपरोक्त प्राधिकारी का उल्लेख करना और उस पर भरोसा करनाटीआरएफ लिमिटेड'मामला (सुप्रा)न्यायालय मेंपर्किन्स ईस्टमैन आर्किटेक्ट्स का मामला (सुप्रा)आयोजित:

""लेकिन, हमारे विचार में यह टीआरएफ लिमिटेड (2017) 8 एससीसी 377 के मामले से तार्किक कटौती होनी चाहिए। निर्णय के पैराग्राफ 50 से पता चलता है कि यह न्यायालय इस मुद्दे से चिंतित था, "क्या प्रबंध निदेशक, कानून द्वारा अयोग्य होने के बाद, क्या वह अभी भी एक मध्यस्थ को नामित करने के लिए पात्र है" उसमें उल्लिखित अपात्रता, कानून के संचालन के परिणामस्वरूप थी, जिसमें विवाद में या उसके परिणाम या निर्णय में रुचि रखने वाला व्यक्ति न केवल इसके लिए अयोग्य होना चाहिए मध्यस्थ के रूप में कार्य करें, लेकिन किसी अन्य को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त करने के लिए पात्र नहीं होना चाहिए और ऐसे व्यक्ति को मध्यस्थ नियुक्त करने की शक्ति होने के कारण विवाद समाधान के लिए कोई रास्ता तय करने में कोई भूमिका नहीं मिलनी चाहिए। पैराग्राफ में अगले वाक्य, आगे दिखाते हैं कि ऐसे मामले जहां दोनों पक्ष अपनी पसंद के संबंधित मध्यस्थों को नामित कर सकते थे, पूरी तरह से एक अलग स्थिति पाई गई। कारण स्पष्ट है कि अपनी पसंद के मध्यस्थ को नामित करने से एक पक्ष को जो भी लाभ होगा, वह दूसरे पक्ष के साथ समान शक्ति द्वारा संतुलित हो जाएगा। लेकिन, ऐसे मामले में जहां केवल एक पक्ष को एकमात्र मध्यस्थ नियुक्त करने का अधिकार है, उसकी पसंद में विवाद समाधान के लिए पाठ्यक्रम निर्धारित करने या चार्ट बनाने में हमेशा विशिष्टता का तत्व होगा। स्वाभाविक रूप से, जिस व्यक्ति को विवाद के परिणाम या निर्णय में रुचि है, उसके पास एकमात्र मध्यस्थ नियुक्त करने की शक्ति नहीं होनी चाहिए। (प्रभाव वर्धित)

22. मौजूदा मामले में कानून की उपरोक्त व्याख्या के अनुप्रयोग की जांच करने के लिए, अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधान से गुजरना उचित होगा।

23. अधिनियम की धारा 12(5) नीचे उद्धृत की गई है:

"12.(5)"12.(5) इसके विपरीत किसी भी पूर्व समझौते के बावजूद, कोई भी व्यक्ति जिसका संबंध, पार्टियों या वकील या विवाद की विषय-वस्तु के साथ, सातवीं अनुसूची में निर्दिष्ट श्रेणियों में से किसी एक के अंतर्गत आता है, नियुक्त होने के लिए अयोग्य होगा एक मध्यस्थ के रूप में: बशर्ते कि पक्ष, उनके बीच उत्पन्न होने वाले विवादों के बाद, लिखित रूप में एक स्पष्ट समझौते द्वारा इस उप-धारा की प्रयोज्यता को छोड़ सकते हैं।

24. अधिनियम की सातवीं अनुसूची नीचे उद्धृत की गई है:

"मध्यस्थ का पार्टियों या अधिवक्ताके साथ संबंध

1. मध्यस्थ एक कर्मचारी, सलाहकार, सलाहकार है या किसी पार्टी के साथ उसका कोई अन्य अतीत या वर्तमान व्यावसायिक संबंध है।

X X X X

5. मध्यस्थ एक प्रबंधक, निदेशक या प्रबंधन का हिस्सा होता है, या किसी एक पक्ष के सहयोगी में समान नियंत्रण प्रभाव रखता है, यदि सहयोगी सीधे मध्यस्थता में विवाद के मामलों में शामिल होता है।

X X X X

12. मध्यस्थ एक प्रबंधक, निदेशक या प्रबंधन का हिस्सा होता है, या किसी एक पक्ष में समान नियंत्रण प्रभाव रखता है।

25. वर्तमान मामले में, अनुबंध की सामान्य शर्तों के खंड 25(ii) में कार्य के प्रभारी मध्यस्थ मुख्य अभियंता, सीपीडब्ल्यूडी की नियुक्ति का प्रावधान है या यदि कोई मुख्य अभियंता नहीं है, तो संबंधित के अतिरिक्त महानिदेशक की नियुक्ति की जाएगी। सीपीडब्ल्यूडी का क्षेत्र या यदि कोई अतिरिक्त महानिदेशक नहीं है, तो कार्य महानिदेशक स्पष्ट रूप से अधिनियम की धारा 12(5) के अंतर्गत आता है, क्योंकि मेरा स्पष्ट मानना है कि उपरोक्त प्राधिकारी, श्रेणी-1 के अंतर्गत आते हैं। अधिनियम की सातवीं अनुसूची और इस प्रकार मध्यस्थ के रूप में नियुक्त होने के लिए अयोग्य होने के कारण, वे पार्टियों के बीच विवाद के समाधान के लिए मध्यस्थ को नामित करने के लिए भी अयोग्य हैं।

26. इसलिए, मेरे विचार में, अनुबंध की सामान्य शर्तों के खंड 25 के उप-खंड (ii), जिस हद तक यह मुख्य अभियंता, या अतिरिक्त महानिदेशक या महानिदेशक द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति का प्रावधान करता है, उसे छोड़ दिया जा सकता है। यदि उपरोक्त प्रावधान, उपरोक्त सीमा तक, अनुबंध की सामान्य शर्तों से बाहर कर दिया जाता है, तो मेरे विचार में, पार्टियों के बीच विवाद के समाधान के लिए मध्यस्थ को इस न्यायालय द्वारा नियुक्त किया जाना चाहिए।

27. तदनुसार, यह न्यायालय माननीय श्री न्यायमूर्ति अरुण टंडन, इस न्यायालय के एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त करता है, जो कि माननीय न्यायमूर्ति की सहमति के अधीन है। उन्हें एक अनुरोध पत्र भेजकर अधिनियम की धारा 12(1) के साथ पठित धारा 11(8) में निहित प्रावधान. न्यायमूर्ति का पता 3, पत्रिका मार्ग, सिविल लाइन्स, इलाहाबाद, मोबाइल नंबर 9415214462 और ई-मेल "tandonarun30@gmail.com" है।

28. पक्षों के बीच विवाद के समाधान के लिए मामले को मध्यस्थ के पास भेजा जाता है। मध्यस्थ को अधिनियम से जुड़ी अनुसूची के अनुसार शुल्क का भुगतान किया जाएगा।

29. वर्तमान आवेदन का निस्तारण किया जाता है।

30. यदि मध्यस्थ मुकर जाता है, तो मामले को अगले आदेश के लिए न्यायालय के समक्ष ही सूचीबद्ध किया जाएगा।

(2023) 1 ILRA 14
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल साइड
दिनांक: इलाहाबाद 17.10.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार
माननीय न्यायमूर्ति सैयद वाइज मियां

आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 3487/2019

फ्लिपकार्ट इंटरनेट प्रा. लि. ...याचिकाकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:
श्री कार्तिकिय सरन, सुश्री सुचिता मेहरोत्रा, श्री अनुराग खन्ना (वरिष्ठ अधिवक्ता)
प्रत्यर्थीगण के लिए अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता, श्री समर्थ सिन्हा

ए. आपराधिक कानून - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 406, 420, 467, 468, 471,474 और 474-A-एफआईआर को रद्द करना-चौथा प्रत्यर्थी/एक अभ्यासरत अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के खिलाफ आपराधिक शिकायत दर्ज कराई कंपनी-चौथे प्रत्यर्थी ने कंपनी से एक लैपटॉप खरीदा जो उस विनिर्देश के अनुसार नहीं था जिसके लिए आदेश दिया गया था-याचिकाकर्ता का कहना है कि यह केवल खरीदारों और विक्रेताओं को उनकी वेबसाइटों के माध्यम से पहुंच प्रदान करता है-याचिकाकर्ता कंपनी को किसी देयता से भी से छूट दी गई है आईटी अधिनियम, 2000 की धारा 79 के तहत, मध्यस्थ के निदेशकों या अधिकारियों के खिलाफ कभी भी कोई उल्लंघन नहीं बनता है या नहीं बनाया जा सकता है - याचिकाकर्ता कंपनी एक मध्यस्थ है जो केवल विक्रेताओं/खरीदारों तक पहुंच प्रदान करती है, न ही चुनौती के अधीन है और न ही इसलिए- विवादित है , आक्षेपित प्राथमिकी और परिणामी पुलिस रिपोर्ट को पृथक कर दिया जाता है और रद्द कर दिया जाता है। (पैरा 1 से 39)

रिट याचिका स्वीकृत की जाती है। (ई-6)

<u>**उद्धृत मामलों की सूची**</u>**:**

1. अवनीश बजाज बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) (2004) एससीसी ऑनलाइन डेल 1160.

2. हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य। (2006) 6 एससीसी 736

3. कर्नाटक राज्य बनाम एल. मुनिस्वामी और अन्य। (1977) 2 एससीसी 699

4. आनंद कुमार मोहट्टा और अन्य बनाम राज्य(राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली),गृह एवम् अन्य विभाग(2019) 11 एससीसी 706.

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार द्वारा पारित)

1. श्री अनुराग खन्ना, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री कार्तिकेय सरन और सुश्री सुचिता मेहरोत्रा द्वारा सहायता से, याचिकाकर्ता के लिए उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्तागण और श्रीमती मंजू ठाकुर, राज्य के लिए विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. वर्तमान रिट याचिका द्वारा, याचिकाकर्ता 26 जनवरी 2019 को दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने की मांग कर रहा है, जो मुकदमा अपराध संख्या 0208 अंतर्गत धारा 406, 420, 467, 468, 471, 474 और 474-ए भा0दं0सं0, थाना कवि नगर, जिला गाजियाबाद के रूप में दर्ज है।

3. याचिकाकर्ता कंपनी अधिनियम, 1956 के तहत निगमित कंपनी है, जिसका पंजीकृत कार्यालय बेंगलुरु में है (इसके बाद "कंपनी" के रूप में संदर्भित)।

4. चौथे प्रत्यर्थी, जो गाजियाबाद में एक अभ्यासरत अधिवक्ता होने का दावा करता है, ने धारा 156 (3) दंड प्रक्रिया संहिता,1973, के तहत एक प्रार्थना पत्र दायर किया, जिस पर विद्वान मजिस्ट्रेट ने 14 जनवरी 2019 के आदेश के माध्यम से संबंधित पुलिस स्टेशन को प्रार्थना पत्र के संदर्भ में मामला दर्ज करने और इसकी जांच करने का निर्देश दिया, जिसमें, यह आरोप लगाया गया है कि शिकायतकर्ता नियमित रूप से याचिकाकर्ता-कंपनी की वेबसाइट पर विक्रेताओं से उत्पाद खरीदता है कंपनी द्वारा प्रदान किए गए गुणवत्ता युक्त सामान। चौथे प्रत्यर्थी ने 12 अक्टूबर 2018 को एचपी 15 एपीयू, डुअल कोर, ए-6 (4जीबी/आई टीबी एचडीडी/विंडोज 10 होम) 15" बीडब्ल्यू मॉडल के लैपटॉप की खरीद के लिए ऑर्डर दिया, तदनुसार, उत्पाद के लिए ऑनलाइन भुगतान के माध्यम से 17,990 रुपये का भुगतान किया। उक्त खरीद के लिए उत्पन्न बुकिंग आईडी ओडी 113621553490664000 है।

5. चौथे प्रत्यर्थी की शिकायत यह है कि 22 अक्टूबर 2018 को वितरित लैपटॉप में ब्रांड 'इंटेल' के बजाय 'ए.एम.डी' का प्रोसेसर था, इस प्रकार, चौथे प्रत्यर्थी के अनुसार, उत्पाद का वितरण उन विनिर्देशों के अनुसार नहीं थी जिनके लिए ऑर्डर दिया गया था। व्यथित होकर शिकायतकर्ता-चौथे प्रत्यर्थी ने उत्पाद की कथित विसंगति के संबंध में याचिकाकर्ता-कंपनी के साथ शिकायत दर्ज कराई।

6. कंपनी द्वारा अपनी विवाद निवारण नीति के अनुसार विक्रेता यानी टेक कनेक्ट रिटेल प्राइवेट लिमिटेड के साथ शिकायत को उठाया गया था, लेकिन विक्रेता ने उत्पाद के विचार को बदलने या वापस करने से इनकार कर दिया, यह कहते हुए कि उत्पाद चौथे प्रत्यर्थी द्वारा खरीदे गए विनिर्देशों के अनुसार भेजा गया था।

7. इसके बाद, चौथे प्रत्यर्थी ने याचिकाकर्ता-कंपनी के खिलाफ सीधे वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, गाजियाबाद के द्वारा आपराधिक शिकायत दर्ज कराई। ऐसा प्रतीत होता है कि शिकायत पर कुछ भी नहीं किया गया था, तदनुसार, चौथे प्रत्यर्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3), के तहत मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद के समक्ष प्रार्थना पत्र संख्या 6474/2018 का प्रार्थना पत्र संख्या 6474 दायर किया। उक्त शिकायत पर मजिस्ट्रेट ने प्रार्थना पत्र के संदर्भ

अनुवादित

में 14 जनवरी 2019 को एक आदेश पारित किया, जिसमें संबंधित पुलिस स्टेशन को प्रार्थना पत्र में प्रकट किए गए अपराध के लिए मामला दर्ज करने का निर्देश दिया गया।

8. आक्षेपित एफआईआर में चौथे प्रत्यर्थी ने दोहराया कि वह कंपनी की वेबसाइट का लंबे समय से उपयोगकर्ता है और उसने मार्केट प्लेस विक्रेता (याचिकाकर्ता-कंपनी) से एचपी लैपटॉप की खरीद के लिए डाउन पेमेंट पर ऑर्डर दिया था। यह आरोप लगाया गया है कि चौथे प्रत्यर्थी द्वारा प्राप्त उत्पाद उस विनिर्देश के अनुसार नहीं था जिसके लिए आदेश दिया गया था। इस मामले को याचिकाकर्ता-कंपनी के साथ एक शिकायत द्वारा उठाया गया था, लेकिन, विक्रेता ने उत्पाद को बदलने और यह कहते हुए विचार वापस करने से इनकार कर दिया कि उत्पाद उन विनिर्देशों के अनुसार है जिनके लिए आदेश दिया गया था। यह भी आरोप लगाया गया है कि चौथे प्रत्यर्थी को दिए गए उत्पाद में ब्रांड 'एएमडी' प्रोसेसर था, जबकि ब्रांड 'इंटेल' के लिए विक्रेता द्वारा खरीद की तारीख को कंपनी की वेबसाइट पर प्रदर्शित उत्पाद के विनिर्देश के अनुसार ऑर्डर दिया गया था।

9. याचिकाकर्ता-कंपनी ने आक्षेपित एफआईआर को चुनौती दी है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर इसे रद्द करने की मांग की गई है कि याचिकाकर्ता-कंपनी एक ई-कॉमर्स मार्केटप्लेस/प्लेटफॉर्म है जो अपनी वेबसाइट www.flipkart.com के माध्यम से खरीदारों और विक्रेताओं तक पहुंच प्रदान करता है। खरीददार और विक्रेता मिलते हैं और खरीद और बिक्री लेनदेन निष्पादित करने के लिए बातचीत करते हैं, जो खरीदार/विक्रेता की उपयोग की शर्तों (फ्लिपकार्ट उपयोग की शर्तों) में निर्धारित नियमों और शर्तों के अधीन है। उपयोग की शर्तों की प्रासंगिक शर्तों, अन्य बातों के साथ, शामिल हैं:

ए. याचिकाकर्ता-कंपनी की वेबसाइट एक ऐसा मंच है जिसका उपयोग उपयोगकर्ता, यानी खरीददार और/या, विक्रेता, अपने लेनदेन के लिए एक दूसरे से मिलने और बातचीत करने के लिए करते हैं। इस प्रकार, कंपनी केवल अपने उपयोगकर्ताओं के लेनदेन के लिए एक मंच प्रदान करती है और याचिकाकर्ता-कंपनी अपने उपयोगकर्ताओं के बीच ऐसे किसी भी लेनदेन के लिए या नियंत्रण में एक पार्टी नहीं है।

बी. सभी वाणिज्यिक/संविदात्मक शर्तें (कीमत, शिपिंग लागत, भुगतान विधियों, भुगतान की शर्तें, तारीख, अवधि और वितरण का तरीका, उत्पादों और सेवाओं से संबंधित वारंटी और उत्पादों और सेवाओं से संबंधित बिक्री के बाद की सेवाओं सहित, अकेले खरीदारों और विक्रेताओं के बीच की पेशकश और सहमति व्यक्त की जाती है, जैसे, याचिकाकर्ता-कंपनी का कोई नियंत्रण नहीं है या वह निर्धारित या सलाह नहीं देती है या किसी भी तरह से इस तरह की पेशकश या स्वीकृति में खुद को शामिल करती है खरीदारों और विक्रेताओं के बीच वाणिज्यिक/संविदात्मक शर्तें।

सी. वेबसाइट पर सभी छूट और प्रस्ताव विक्रेताओं/ब्रांडों द्वारा प्रदान किए जाते हैं न कि याचिकाकर्ता-कंपनी द्वारा।

डी. याचिकाकर्ता-कंपनी वेबसाइट पर बेचे जाने या खरीदने के लिए प्रस्तावित उत्पादों या सेवाओं (जैसे गुणवत्ता, मूल्य, बिक्री योग्यता) की बारीकियों के बारे में कोई प्रतिनिधित्व या वारंटी नहीं देती है, जैसे, याचिकाकर्ता-कंपनी स्पष्ट रूप से या यहां तक कि निहित रूप से वेबसाइट पर किसी भी उत्पाद या सेवाओं की बिक्री या खरीद का समर्थन या समर्थन नहीं करती है।

ई. वेबसाइट केवल एक मंच है जिसका उपयोग उपयोगकर्ताओं द्वारा उत्पादों या सेवाओं को खरीदने और बेचने के लिए एक बड़े आधार तक पहुंचने के लिए किया जा सकता है और याचिकाकर्ता-कंपनी केवल संचार के लिए एक मंच प्रदान कर रही है; किसी भी उत्पाद या सेवाओं की बिक्री के लिए वास्तविक अनुबंध विक्रेता और ऐसे उत्पाद के खरीदार के बीच सख्ती से होता है।

एफ. याचिकाकर्ता की वेबसाइट पर उत्पाद विवरण, कीमतें, चित्र, मूलपाठ, ग्राफिक्स, प्रयोक्ता इंटरफेस, दृश्य इंटरफेस, फोटोग्राफ, ट्रेडमार्क, लोगो, ध्वनि, संगीत और कलाकृति सहित बिक्री के लिए पेश किए गए उत्पाद और संबंधित सामग्री तीसरे पक्ष के उपयोगकर्ता द्वारा उत्पन्न सामग्री है और याचिकाकर्ता-कंपनी का ऐसे तीसरे पक्ष के उपयोगकर्ता द्वारा उत्पन्न सामग्री पर कोई नियंत्रण नहीं है। इसलिए, याचिकाकर्ता-कंपनी की वेबसाइट एक तटस्थ ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म के रूप में काम करती है जो खरीदारों और विक्रेताओं के लिए अपना व्यवसाय संचालित करने के लिए केवल एक माध्यम के रूप में कार्य करती है।

10. इस पृष्ठभूमि में, याचिकाकर्ता-कंपनी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि कार्यक्षमता के संदर्भ में, याचिकाकर्ता-कंपनी एक 'मध्यस्थ' है जैसा कि सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 20004 की धारा 2 (1) (डब्ल्यू) के तहत परिभाषित किया गया है जो एक ऑनलाइन मंच प्रदान करता है। प्लेटफॉर्म पर खरीदारों और विक्रेताओं के बीच लेनदेन पूरी तरह से स्वतंत्र हैं। याचिकाकर्ता-कंपनी के खिलाफ कोई आपराधिक अपराध नहीं बनता है, चौथा प्रत्यर्थी एक जागरूक नागरिक होने के नाते मार्केटप्लेस मॉडल से पूरी तरह अवगत था और स्वेच्छा से खरीददार के उपयोग की शर्तों पर हस्ताक्षर किए थे; चौथे प्रत्यर्थी ने पूर्व-दृष्टया विरोधाभासी कथन किए हैं कि लैपटॉप याचिकाकर्ता-कंपनी से खरीदा गया था और याचिकाकर्ता-कंपनी ने मार्केटप्लेस विक्रेता के साथ एक आपराधिक साजिश रची थी। आगे यह प्रस्तुत किया गया है

कि आक्षेपित एफआईआर में 'साजिश', 'धोखाधड़ी' और 'जालसाजी' जैसी अभिव्यक्तियों को नियोजित किया गया है, लेकिन इसके अवयवों को आक्षेपित एफआईआर में नहीं बताया गया है या विस्तृत नहीं दिया गया गया है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता-कंपनी से धन निकालने और उसकी सद्भावना, प्रतिष्ठा और ग्राहक आधार को नुकसान पहुंचाने के लिए एफआईआर दर्ज की गई है। कंपनी आईटी अधिनियम, 2000 की धारा 79 के तहत सुरक्षा का दावा करती है। इस पृष्ठभूमि में, यह प्रस्तुत किया गया है कि एफआईआर को रद्द कर दिया जाए।

11. विशिष्ट प्रश्न पर विद्वान राज्य अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि राज्य रिट याचिका के लिए जवाबी हलफनामा दायर करने का इरादा नहीं रखता है। उनके निर्देशों के अनुसार दंड प्रक्रिया संहिता, की धारा 173 (2) के तहत जांच अधिकारी द्वारा पुलिस रिपोर्ट (क्लोजर) दायर की गई है, इसलिए, यह प्रस्तुत किया गया है कि राज्य को प्रस्तुत करने के लिए कुछ भी शेष नहीं है।

12. चौथे प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने पेशी में होने के बावजूद रिट याचिका में दिए गए कथनों के लिए जवाबी हलफनामा दायर नहीं किया है।

13. याचिकाकर्ता-कंपनी आईटी अधिनियम, 2000 के प्रावधानों द्वारा शासित है, याचिकाकर्ता-कंपनी एक 'मध्यस्थ' है और भूमिका एक सुविधाकर्ता या एक माध्यम की है। यह एक ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म है जहां विक्रेता और खरीददार बातचीत कर सकते हैं और विक्रेता द्वारा पेश किए गए उत्पादों और वस्तुओं का चयन और खरीद कर सकते हैं। तथ्यानुसार, परस्पर पक्षकार,इस विवाद में नहीं हैं कि याचिकाकर्ता-कंपनी एक ई-कॉमर्स मध्यस्थ है जहां मंच अपने मार्केटप्लेस प्लेटफॉर्म पर बेचे जा रहे सामानों का शीर्षक नहीं लेता है। मध्यस्थ आईटी अधिनियम, 2000 के तहत सूचना या बिक्री के आदान-प्रदान की एकमात्र सुविधा के रूप में एक अलग पायदान पर खड़ा है। मध्यस्थ विक्रेता द्वारा प्लेटफॉर्म पर बिक्री के लिए रखे गए सामान के लिए उत्तरदायी नहीं हैं। ऐसे ई-कॉमर्स नेटवर्कों को सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 और उसके अंतर्गत बनाए गए नियमों या विनियमों के तहत किसी तीसरे पक्ष से संबंधित देयता से छूट दी गई है। आक्षेपित एफआईआर के अनुसार, कथित अपराध की तारीख 22 अक्टूबर 2018 है, यानी उस तारीख को जब चौथे प्रत्यर्थी द्वारा खरीदा गया दोषपूर्ण लैपटॉप प्राप्त हुआ था।

14. "मध्यस्थ" को आयकर अधिनियम, 2000 की धारा 2 (1) (डब्ल्यू) के तहत परिभाषित किया गया है, जो निम्नानुसार है:

2(1)(डब्ल्यू) - मध्यस्थ, किसी विशेष इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड के संबंध में, किसी भी व्यक्ति से अर्थ है जो किसी अन्य व्यक्ति की ओर से उस रिकॉर्ड को प्राप्त, संग्रहीत या प्रसारित करता है या उस रिकॉर्ड के संबंध में कोई सेवा प्रदान करता है और इसमें दूरसंचार सेवा प्रदाता, नेटवर्क सेवा प्रदाता, इंटरनेट सेवा प्रदाता, वेब-होस्टिंग सेवा प्रदाता, खोज इंजन, ऑनलाइन भुगतान साइट, ऑनलाइन-नीलामी साइटें शामिल हैं, ऑनलाइन-मार्केट स्थान और साइबर कैफे।

15. दूसरे शब्दों में, मध्यस्थ का दायित्व उचित सावधानी बरतना है और उन दिशानिर्देशों का पालन करना है जो इस संबंध में सरकार द्वारा निर्धारित किए जा सकते हैं। इसलिए, सूचना प्रौद्योगिकी (मध्यवर्ती दिशानिर्देश) नियम, 20115 का संदर्भ देना होगा। आईटी दिशानिर्देश आईटी अधिनियम, 2000 की धारा 87 के तहत अधिनियमित किए गए थे, और 2011 में लागू हुए थे। मध्यस्थ द्वारा पालन की जाने वाली उचित सावधानी नियम 3 (1) के तहत प्रदान की गई है, जो अन्य बातों के साथ-साथ निम्नानुसार वर्णित है:

3. मध्यस्थ द्वारा सम्यक तत्परता का पालन किया जाना -- मध्यस्थ अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते समय निम्नलिखित सम्यक तत्परता का पालन करेगा, अर्थात:-

(1) मध्यस्थ किसी भी व्यक्ति द्वारा मध्यस्थ के कंप्यूटर संसाधन के उपयोग या उपयोग के लिए नियमों और विनियमों, गोपनीयता नीति और उपयोगकर्ता समझौते को प्रकाशित करेगा।

(2) xxx xxx xxx

(डी). किसी भी पेटेंट, ट्रेडमार्क, कॉपीराइट या अन्य मालिकाना अधिकारों का उल्लंघन करता है;

(ई). से (i) xxx xxx (3) मध्यस्थ जानबूझकर किसी भी जानकारी को होस्ट या प्रकाशित नहीं करेगा या संचरण शुरू नहीं करेगा, संचरण के रिसीवर का चयन करेगा, और उप-नियम (2) में निर्दिष्ट संचरण में निहित जानकारी का चयन या संशोधन करेगा:

बशर्ते कि एक मध्यस्थ द्वारा निम्नलिखित कार्रवाई उप-नियम में निर्दिष्ट किसी भी ऐसी जानकारी को रखने, प्रकाशित करने, संपादित करने या संग्रहीत करने के लिए नहीं होगी: (2) -

ए. xxx xxx

बी. अधिनियम के उपबंधों के अनुसार किसी आदेश या निदेश के अनुसरण में मध्यस्थ द्वारा प्राधिकृत व्यक्ति की वास्तविक जानकारी में ऐसी सूचना, डेटा या संचार लिंक आने के पश्चात् किसी मध्यस्थ द्वारा किसी सूचना, डेटा या संचार लिंक तक पहुंच को समाप्त करना;

(4) मध्यस्थ, जिस पर कंप्यूटर सिस्टम की जानकारी संग्रहीत या होस्ट या प्रकाशित की जाती है, स्वयं द्वारा ज्ञान प्राप्त करने पर या किसी प्रभावित व्यक्ति द्वारा लिखित रूप

में या इलेक्ट्रॉनिक हस्ताक्षर के साथ हस्ताक्षरित ईमेल के माध्यम से वास्तविक ज्ञान में लाया गया है, जैसा कि उप-नियम (2) में उल्लिखित है, छत्तीस घंटे के भीतर और जहां लागू हो, कार्य करेगा, ऐसी जानकारी के उपयोगकर्ता या स्वामी के साथ काम करें ताकि ऐसी जानकारी को अक्षम किया जा सके जो उप-नियम (2) के उल्लंघन में है। इसके अलावा, मध्यस्थ जांच उद्देश्यों के लिए कम से कम नब्बे दिनों के लिए ऐसी जानकारी और संबंधित रिकॉर्ड संरक्षित करेगा;

(5) मध्यस्थ अपने उपयोगकर्ताओं को सूचित करेगा कि मध्यस्थ कंप्यूटर संसाधन के उपयोग या उपयोग के लिए नियमों और विनियमों, उपयोगकर्ता समझौते और गोपनीयता नीति के अनुपालन के मामले में, मध्यस्थ को मध्यस्थ के कंप्यूटर संसाधन के लिए उपयोगकर्ताओं की पहुंच या उपयोग रोशनी को तुरंत समाप्त करने और गैर-अनुपालन जानकारी को हटाने का अधिकार है।

(6) से (11) xxx xxx xxx॥

16. आईटी दिशानिर्देश नियम, 2011 को सूचना प्रौद्योगिकी (मध्यवर्ती दिशानिर्देश और डिजिटल मीडिया आचार संहिता) नियम, 2021 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है। बाद के दिशानिर्देश वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होते हैं, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपराध 22 अक्टूबर 2018 को किया गया है, यानी दोषपूर्ण उत्पाद की खरीद की तारीख पर किया गया है।

17. मध्यस्थ दिशानिर्देशों, नियमों, विनियमों, गोपनीयता नीति और उपयोगकर्ता/खरीदार समझौते को प्रकाशित करने के लिए बाध्य है। हालांकि, इन दिशा-निर्देशों/नियमों का पालन न करने को आईटी अधिनियम, 2000 के तहत अपराध घोषित नहीं किया गया है। आईटी अधिनियम, 2000 के अध्याय-XI। में अपराधों, शास्तियों और प्रक्रियाओं का प्रावधान है।

18. वर्तमान मामला आपराधिक दायित्व से संबंधित है और याचिकाकर्ता-कंपनी धारा 79 के तहत संरक्षण का दावा करती है, इसके अलावा, याचिकाकर्ता-कंपनी की ओर से यह प्रस्तुत किया जाता है कि अपराध की सामग्री, अंकित मूल्य पर आरोपों को लेते हुए, जैसा कि आक्षेपित प्राथमिकी में आरोप लगाया गया है, नहीं बनाया गया है।

19. आईटी अधिनियम, 2000 की धारा 79, जैसा कि यह पहले था, सूचना प्रौद्योगिकी (संशोधन अधिनियम 2008) द्वारा संशोधित किया गया, यह 27 अक्टूबर 2009 को लागू हुआ। दिए गए तथ्यों में संशोधित धारा 79 लागू होगी न कि वे प्रावधान जो संशोधन की तारीख से पहले थे। धारा 79 जैसा कि यह संशोधन के बाद से स्थापित है, इस प्रकार है:

"79 कुछ मामलों में मध्यस्थ के दायित्व से छूट:

(1) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में किसी बात के होते हुए भी, किन्तु उपधारा (2) और (3) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, कोई मध्यस्थ उसके द्वारा होस्ट की गई किसी तृतीय पक्ष सूचना, डेटा या संचार संपर्क के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

(2) उपधारा (1) के उपबंध लागू होंगे यदि-

(ए)मध्यस्थ का कार्य एक संचार प्रणाली तक पहुंच प्रदान करने तक सीमित है, जिस पर तीसरे पक्ष द्वारा उपलब्ध कराई गई जानकारी प्रेषित या अस्थायी रूप से संग्रहीत की जाती है; अथवा

(बी)मध्यस्थ नहीं करता है-

(i) पारेषण आरंभ करना,

(ii)संचरण के ग्रहणकर्ता का चयन करें, और

(iii) पारेषण में निहित जानकारी का चयन या संशोधन

(सी) मध्यस्थ इस अधिनियम के तहत अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते समय उचित परिश्रम का पालन करता है और ऐसे अन्य दिशानिर्देशों का भी पालन करता है जैसा कि केंद्र सरकार इस संबंध में निर्धारित कर सकती है (आईटीएए 2008 के माध्यम से डाला गया)

(3) उपधारा (1) के उपबंध लागू नहीं होंगे यदि-

(ए) मध्यस्थ ने गैरकानूनी अधिनियम (आईटीएए 2008) के कमीशन में धमकी या वादे या अन्यथा साजिश रची है या उकसाया या सहायता प्राप्त की है या प्रेरित किया है

(बी) वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने पर, या उपयुक्त सरकार या उसकी एजेंसी द्वारा अधिसूचित किए जाने पर कि मध्यस्थ द्वारा नियंत्रित कंप्यूटर संसाधन में रहने वाली या उससे जुड़ी किसी भी जानकारी, डेटा या संचार लिंक का उपयोग गैरकानूनी कार्य करने के लिए किया जा रहा है, मध्यस्थ किसी भी तरह से साक्ष्य को दूषित किए बिना उस संसाधन पर उस सामग्री तक पहुंच को शीघ्रता से हटाने या अक्षम करने में विफल रहता है।

स्पष्टीकरण- इस धारा के प्रयोजन के लिए, अभिव्यक्ति "तृतीय पक्ष सूचना" से ऐसी कोई सूचना अभिप्रेत है जिसका संबंध मध्यस्थ की हैसियत से किसी मध्यस्थ द्वारा उसकी हैसियत से किया गया है।

20. तदनुसार धारा 79 एक सुरक्षित बंदरगाह की भांति प्रावधान है। इंटरनेट मध्यस्थ इंटरनेट पर तीसरे पक्ष द्वारा उत्पन्न सामग्री, उत्पादों और सेवाओं को होस्ट, प्रसार और अनुक्रमित करने की सुविधा प्रदान करते हैं जिसमें ई-कॉमर्स मध्यस्थ शामिल होते हैं जहां प्लेटफॉर्म बेचे जा रहे सामान का शीर्षक नहीं लेते हैं। ऐसे मध्यस्थों के उदाहरणों में अमेज़ॅन इंडिया, मिंत्रा, एजियो आदि शामिल हैं।

21. आयकर अधिनियम, 2000 का अधिभावी प्रभाव है। आईटी अधिनियम, 2000 की धारा 81 निकाली गई है:

"81. अधिभावी प्रभाव रखने वाला अधिनियम: इस अधिनियम के उपबंध तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी असंगत बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे"।

22. मध्यस्थ एक अलग पायदान पर खड़े होते हैं जो सूचना या बिक्री के आदान-प्रदान के केवल सूत्रधार होते हैं। संशोधन से पहले धारा 79 के तहत छूट का प्रावधान मौजूद नहीं था, इसलिए, एक मध्यस्थ किसी भी तीसरे पक्ष की जानकारी या उसके द्वारा उपलब्ध कराए गए डेटा के लिए उत्तरदायी होगा। 2008 के संशोधन ने आईटी अधिनियम, 2000 में अध्याय XII पेश किया। यह संशोधन कथित तौर पर **अवनीश बजाज बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली**) में दिए गए दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले की पृष्ठभूमि में था। संशोधन के बाद, मध्यस्थ किसी भी अधिनियम के तहत उत्तरदायी नहीं है यदि वह आईटी अधिनियम, 2000 की धारा 79 में विस्तृत कुछ आवश्यकताओं को पूरा करता है।

23. याचिकाकर्ता-कंपनी ई-कॉमर्स के भंडारण आधारित मॉडल का पालन नहीं करती है, जहां वस्तुओं और सेवाओं की सूची ई-कॉमर्स इकाई के स्वामित्व में है और सीधे उपभोक्ताओं को बेची जाती है। याचिकाकर्ता-कंपनी का दावा है, यह आईटी अधिनियम, 2000 की धारा 2 (1) (डब्ल्यू) के अर्थ के भीतर खरीददार और विक्रेता के बीच मध्यस्थ है और दोनों पक्षों के बीच लेनदेन को नियंत्रित नहीं करता है। यह केवल विक्रेताओं को खरीददारों / ग्राहकों के साथ बातचीत करने की अनुमति देने के लिए एक तटस्थ मंच के रूप में कार्य करता है, बिना किसी सामान पर स्वामित्व का प्रयोग किए या किसी भी सामान के निर्माण या व्यवहार में लिप्त हुए। याचिकाकर्ता-कंपनी का दावा है, यह केवल विक्रेता/खरीददार की ओर से जानकारी प्राप्त करता है और संग्रहीत करता है और एक सुविधाकर्ता/मध्यस्थ के रूप में कार्य करता है।

24. प्रश्न यह है कि क्या आईटी अधिनियम, 2000 की धारा 2(1)(डब्ल्यू) के तहत परिभाषित एक मध्यस्थ कंपनी के उपयोग की शर्तों के संदर्भ में मध्यस्थ द्वारा प्रदान की गई सुविधाओं का उपयोग करने वाले किसी पक्ष या विक्रेता/विक्रेता द्वारा किसी भी कार्रवाई या निष्क्रियता के लिए उत्तरदायी होगा।

25. यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता-कंपनी ने वर्ल्ड वाइड वेब पर एक बाज़ार की स्थापना की है, जिसे इंटरनेट के रूप में अधिक लोकप्रिय रूप से जाना जाता है, जिससे विक्रेता कंपनी के मंच पर किसी भी उत्पाद को अपलोड, बेचने या यहां तक कि 'बिक्री की पेशकश' करने में सक्षम हो जाता है। इस प्रयोजन के लिए, एक विक्रेता को कंपनी के साथ एक खाता बनाना होगा और कंपनी के खरीदारों / विक्रेता के उपयोग की शर्तों, नीतियों, विक्रेता समझौते से अनुबंधात्मक रूप से सहमत होना होगा, जिसमें कंपनी के बाज़ार पर उत्पादों को बेचने के बुनियादी नियम और शर्तें शामिल हैं, जिनसे प्रत्येक विक्रेता / खरीदार को सहमत होना होगा।

26. कंपनी के मध्यस्थ होने पर विवाद नहीं किया जा सकता है, यह आईटी अधिनियम, 2000 की धारा 2 (1) (डब्ल्यू) के तहत 'मध्यस्थ' के अर्थ और परिभाषा के साथ आता है, जैसा कि सूचना प्रौद्योगिकी (संशोधन) अधिनियम, 2008 द्वारा संशोधित किया गया है। कंपनी धारा 81 के साथ पठित धारा 79 आईटी अधिनियम, 2000 के संदर्भ में देयता से छूट की हकदार होगी, यदि इसकी आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है।

27. कंपनी स्वीकार्य रूप से विक्रेता नहीं है, यह कंपनी के साथ पंजीकृत विक्रेता है जो अपने मंच पर उत्पादों और सेवाओं के विक्रेता हैं, यह विक्रेता हैं जो क्रेता/ग्राहक के लिए पूरी तरह से जिम्मेदार हैं।

28. उपयोग की शर्तों के अनुसार विक्रेता समझौता, लेनदेन से संबंधित नियमों और शर्तों का विवरण देता है, जिसे रिकॉर्ड पर लाया गया है। (फ्लिपकार्ट उपयोग की शर्तें)

29. यह उम्मीद नहीं की जा सकती है कि ऑनलाइन मार्केटप्लेस का प्रदाता या प्रारम्भकर्ता अपनी वेबसाइट/मार्केटप्लेस पर बेचे जाने वाले सभी उत्पादों से अवगत है। केवल यह आवश्यक है कि ऐसे प्रदाता या सक्षमकर्ता एक मध्यस्थ के रूप में अपनी भूमिका और दायित्व का निर्वहन करने के लिए लागू कानूनों के तहत अपनी जिम्मेदारियों और दायित्वों के बारे में सभी विक्रेताओं को सूचित करने के लिए एक मजबूत प्रणाली स्थापित करें। यदि माल या सेवा के विक्रेता द्वारा इसका उल्लंघन किया जाता है, तो ऐसे विक्रेता के खिलाफ कार्रवाई की जा सकती है, लेकिन मध्यस्थ के खिलाफ नहीं।

30. जिस तरीके से दस्तावेजों (खरीदार/विक्रेता उपयोग की शर्तें) को निष्पादित किया गया है, उसकी सामग्री, साथ ही उसमें बताए गए पक्षों का दायित्व याचिकाकर्ता-कंपनी द्वारा प्रयोग किए गए उचित परिश्रम को स्थापित करता है, जो आईटी अधिनियम, 2000 की धारा 79 (2) (सी) के अनुपालन और अनुपालन के अनुसार है, जिसे सूचना प्रौद्योगिकी (मध्यस्थ दिशानिर्देश) नियमों के संयोजन में पढ़ा जाता है, (ख) भारतीय रिजर्व बैंक ने वर्ष 2011 से 2011 के दौरान यह सुनिश्चित करने के लिए कि इसकी वेबसाइट पर पंजीकरण कराने वाले विक्रेता/विक्रेता लागू

कानूनों के अनुसार और अनुपालन में स्वयं आचरण करते हैं।

31. उपभोक्ता संरक्षण (ई-कॉमर्स) नियम, 2020, मार्केटप्लेस ई-कॉमर्स वेबसाइटों और इन्वेंट्री ई-कॉमर्स वेबसाइटों के बीच अंतर करता है। इस तरह याचिकाकर्ता-कंपनी एक मार्केटप्लेस ई-कॉमर्स वेबसाइट के अर्थ के भीतर आएगी, जिससे कंपनी को उपरोक्त छूट तब तक दी जाएगी जब तक कि याचिकाकर्ता-कंपनी द्वारा धारा 79 के तहत आवश्यकताओं का पालन किया जाता है।

32. वर्तमान मामले में, जैसा कि ऊपर बताया गया है, याचिकाकर्ता-कंपनी ने धारा 79 की उप-धाराओं (2) और (3) के साथ-साथ सूचना प्रौद्योगिकी (मध्यस्थ दिशानिर्देश) नियम, 2011 की आवश्यकताओं का अनुपालन किया है।

33. हमारी सुविचारित राय में कंपनी ने सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 की धारा 79 (2) (सी) के तहत 'उचित परिश्रम' का प्रयोग किया है, जिसे सूचना प्रौद्योगिकी (मध्यवर्ती दिशानिर्देश) नियम, 2011 के संयोजन में पढ़ा गया है।

34. याचिकाकर्ता-कंपनी को आईटी अधिनियम, 2000 की धारा 79 के तहत किसी भी दायित्व से छूट दी गई है, मध्यस्थ के निदेशकों या अधिकारियों के खिलाफ कभी भी कोई उल्लंघन नहीं किया जा सकता है, क्योंकि यह केवल विकृत होगा, और उनके खिलाफ शुरू की गई ऐसी कार्यवाही अन्यायपूर्ण और कानून में खराब होगी।

35. आईटी अधिनियम, 2000 की धारा 79 (3) (बी) के तहत मध्यस्थ का एकमात्र दायित्व, अदालत के आदेश या किसी उपयुक्त सरकारी प्राधिकरण द्वारा नोटिस प्राप्त होने पर तीसरे पक्ष की सामग्री को हटाना है और अन्यथा नहीं। शिकायतकर्ता द्वारा दायर शिकायत के अनुसार इंगित करता है कि याचिकाकर्ता-कंपनी ने शिकायतकर्ता की शिकायत विक्रेता के साथ उठाई।

36. आयकर अधिनियम, 2000 की धारा 79 के संदर्भ में, जहां तक सुरक्षित बंदरगाह प्रावधानों की उपलब्धता का संबंध है, निष्क्रिय और सक्रिय मध्यस्थों के बीच कोई अंतर नहीं दिखाई देता है। कोई मध्यस्थ उसके द्वारा उपलब्ध या पोस्ट किए गए किसी तृतीय-पक्ष (विक्रेता) सूचना, डेटा या संचार लिंक के लिए उत्तरदायी नहीं है, जब तक कि वह आईटी अधिनियम, 2000 की धारा 79(2) या (3) का अनुपालन करता है। धारा 79(1) के तहत दायित्व से छूट तब लागू होती है जब मध्यस्थ धारा 79(2)(ए) या धारा 79(2)(बी), और धारा 79(2)(सी) में निर्धारित मानदंडों को पूरा करते हैं। जहां मध्यस्थ केवल पहुंच प्रदान करता है, उसे धारा 79 (2) (ए) का पालन करना पड़ता है, जबकि ऐसे उदाहरणों में जहां वह पहुंच के अलावा सेवाएं प्रदान करता है, उसे धारा 79 (2) (बी) का पालन करना पड़ता है। याचिकाकर्ता-कंपनी का मामला यह है कि वे बिचौलियों के रूप में अर्हता प्राप्त करने के लिए इन शर्तों को पूरा करते हैं। तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता-कंपनी एक मध्यस्थ है जो केवल विक्रेताओं/खरीदारों तक पहुंच प्रदान करती है, चुनौती के अधीन नहीं है और न ही विवादित है। भा0दं0सं0 की धारा 406, 467, 468, 471, 474 और 474-ए के तहत अपराध की सामग्री, अब तक, याचिकाकर्ता-कंपनी से संबंधित है, अंकित मूल्य पर आक्षेपित एफआईआर में लगाए गए आरोपों को नहीं लिया गया है।

37. **हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल एवम अन्य,** में माननीय उच्चतम न्यायालय ने उन मामलों की श्रेणियां निर्धारित की हैं जिनमें अंतनहित शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। फैसले का पैरा 102 इस प्रकार है: -

"102. अध्याय XIV के तहत संहिता के विभिन्न प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या और अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति के प्रयोग से संबंधित निर्णयों की एक श्रृंखला में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में या संहिता की धारा 482 के तहत निहित शक्तियां, जिन्हें हमने ऊपर निकाला और पुनः प्रस्तुत किया है, हम उदाहरण के रूप में मामलों की निम्नलिखित श्रेणियां देते हैं जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग या तो किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है, हालांकि कोई भी सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त रूप से चैनलीकृत और अनम्य दिशानिर्देश या कठोर सूत्र निर्धारित करना और असंख्य प्रकार के मामलों की एक विस्तृत सूची देना संभव नहीं हो सकता है जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया गया हो और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया गया हो, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है या अभियुक्त के खिलाफ मामला नहीं बनता है।

(2) ....

(3) ....

(4) ....

(5) ....

(6) जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) के किसी भी प्रावधान में संस्था पर एक स्पष्ट कानूनी प्रतिबंध लगाया गया है और कार्यवाही को जारी रखना और/या जहां संहिता या संबंधित अधिनियम में एक विशिष्ट प्रावधान है, पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करना।

(7) जहां एक आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावना के साथ भाग लिया जाता है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से अभियुक्त पर प्रतिशोध लेने के लिए एक गुप्त उद्देश्य के साथ और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे अपमानित करने की दृष्टि से शुरू की जाती है।

38. इससे पहले **कर्नाटक राज्य बनाम एल मुनीस्वामी और अन्य** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया: -

"7. ..... इस संपूर्ण शक्ति के प्रयोग में, उच्च न्यायालय एक कार्यवाही को रद्द करने का हकदार है यदि यह निष्कर्ष निकलता है कि कार्यवाही को जारी रखने की अनुमति देना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा या न्याय के अंत के लिए आवश्यक है कि कार्यवाही को रद्द कर दिया जाना चाहिए। सिविल और आपराधिक दोनों मामलों में उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों की बचत, एक हितकारी सार्वजनिक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए डिज़ाइन की गई है, जो यह है कि अदालत की कार्यवाही को उत्पीड़न या उत्पीड़न के हथियार में पतित होने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। एक आपराधिक मामले में, एक कमजोर अभियोजन के पीछे छिपी वस्तु, सामग्री की प्रकृति जिस पर अभियोजन की संरचना टिकी हुई है और इसी तरह न्याय के हित में कार्यवाही को रद्द करने में उच्च न्यायालय को सही ठहराया जाएगा....."
(आनंद कुमार मोहट्टा और अन्य बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली), गृह विभाग और अन्य मामले में सिद्धांत दोहराया गया।

39. ऊपर दिए गए कानून और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका सफल होने योग्य है। तदनुसार, रिट याचिका को स्वीकृति दी जाती है। आक्षेपित एफआईआर और परिणामी पुलिस रिपोर्ट को अपास्त किया जाता है।

(2023) 1 ILRA 23
मूल न्यायाधिकार
सिविल पक्ष
दिनांकः इलाहाबाद 06.12.2022
समक्ष
माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार
माननीय न्यायमूर्ति सैयद वाइज मियां

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 14672/2020

देवेंद कुमार @देवेंद्र कुमार ...याचिकाकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता:
श्री पवन कुमार मिश्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी:
ए.जी.ए.

ए. आपराधिक कानून – भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 226-उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमन – नियम 231 – अपराधिक इतिहास को निरस्त करना- याचिकाकर्ता ने स्पष्ट रूप से तर्क दी कि उसे एक वाद में मुक्त कर दिया गया है और दूसरे वाद में भी आरोपमुक्त कर दिया गया है-याचिकाकर्ता की अपराधिक इतिहास को जारी रखना पुलिस विनियम 231 के अनुसार, राज्य द्वारा उचित नहीं ठहराया गया है क्योंकि याचिकाकर्ता किसी भी दोहराव वाली आपराधिक गतिविधि में संलिप्त नहीं हुआ है - वर्ष 2007 के पश्चात कोई अन्य वाद दर्ज नहीं किया गया है - याचिकाकर्ता की अपराधिक इतिहास की समीक्षा नहीं करने का दृष्टिकोण यह कहकर कि याचिकाकर्ता 'आपराधिक मस्तिष्क का' है, स्पष्ट रूप से राज्य प्रतिवादी की मनमानी को दर्शाता है-इसलिए, अपराधिक इतिहास निरस्त किया जाता है। (पैरा 1 से 9)

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. संजय कर्णवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य. (2010) 70 एसीसी 507

2. गुरु बक्श सिंह बख्शी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1994) कानून(ऑल) 185

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,
और
माननीय न्यायमूर्ति सैयद वाइज मियां, द्वारा प्रदत्त.)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री रत्नेंदु कुमार सिंह को सुना गया।

याचिकाकर्ता का दावा है कि वह मोदी पोन लिमिटेड हापुर रोड, मोदी नगर, गाजियाबाद में एस्टेट मैनेजर के रूप में काम करता है; वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से वह हिस्ट्रीशीट 31ए, दिनांकित् 20.8.2007, पुलिस स्टेशन-मोदी नगर, जिला-गाजियाबाद को रद्द करने की मांग की गयी है।।

याचिकाकर्ता ने स्पष्ट रूप से दलील दी है कि मुक़दमा अपराध संख्या 527/2007 अन्तर्गत् धारा-147, 323, 342, 452, 448, 427 और 511 भा० दं० सं० पुलिस स्टेशन-मोदी नगर, जिला-गाजियाबाद के तहत उसे संबंधित अदालत से निर्णय एवं आदेश दिनांकित 04.09.2009 द्वारा बरी कर दिया गया है। आदेश की प्रमाणित प्रति रिकार्ड पर रखी है। मुकदमा अपराध संख्या 126/1986 अन्तर्गत धारा-147, 148, 323, 324 और 307 भारतीय दण्ड संहिता, थाना-भोजपुर, जिला-गाजियाबाद में याचिकाकर्ता को जांच के बाद आरोपमुक्त कर दिया गया और उसके खिलाफ पुलिस रिपोर्ट भी दर्ज नहीं की गई थी।

इस पृष्ठभूमि में, यह प्रस्तुत किया गया है कि हिस्ट्रीशीट 31ए जो कि दिनाक 20.08.2007 को खोली गयी, की यूपी पुलिस विनियमावली के विनियम 231 के प्रावधानों के मद्देनजर समीक्षा नहीं की गई है, जो कि इस प्रकार है:

"231. वर्ग 'क' के हिस्ट्री शीट के अधीन व्यक्ति जब तक कि यह तारांकित न किये गये हों, कम से कम से कम दो निरन्तर वर्षों के लिए, जिनमें उनका कोई भाग जेल में व्यतीत न हुआ हो, निगरानी के अधीन रखे जावेंगे। जब वर्ग 'क' वर्ग हिस्ट्री शीट के अधीन व्यक्ति जिनके नाम तारांकित न किए गये हों, यदि निरन्तर दो वर्षों तक किसी संज्ञेय अपराध के लिये दोषसिद्ध न ठहराया गया हो, और जेल में न रहे हों या उस पर किसी अपराध के करने का संदेह न हो या संदेहित परिस्थितियों में अपने आपको अनुपस्थित न रखा हो, तो उनकी निगरानी बन्द कर दी जावेगी, जब तक कि थाने की निरीक्षक पुस्तक में, अभिलिखित किए गए विशेष कारणें से अधीक्षक विनिश्चय न करे कि वह जारी रखा जावे।

जब वर्ग 'क' हिस्ट्री शीट का व्यक्ति तारांकित किया गया हो, तो वह कम से कम ऐसे दो निरन्तर वर्षों जिसमें वह जेल में न रहा हो, या संज्ञेय अपराध का संदेहित न हो या उसके विरुद्ध अभिलिखित किसी संदिग्ध रूप से अनुपस्थित न रहा हो, के लिये तारांकित रहेगा। इस अवधि की समाप्ति पर, यदि उसके सुधर जानें का विश्वास हो, तो उसका तारांकित किया जाना बन्द कर दिया जावेगा, परन्तु कम से कम अतिरिक्त दो वर्षों के लिये निगरानी के अध्याधीन रहेगा, जिसकी समाप्ति पर उसकी निगरानी बन्द कर दी जावेगी, यदि इस अवधि के दौरान उसके विरुद्ध कोई शिकायत अभिलिखित न की गई हो।

किसी अतारांकित पूर्व दोषसिद्ध और विशेषतया पूर्व दोषसिद्ध डकैत की हिस्ट्री शीट बन्द करने में बहुत सावधानी का प्रयोग करना चाहिये"

उपरोक्त से, यह स्पष्ट है कि जिस व्यक्ति की वर्ग 'क' की हिस्ट्रीशीट खोली गई है उसके संबंध में निगरानी दो निरंतर वर्षों तक जारी रखी जानी चाहिए, बशर्ते कि वह उक्त दो वर्षों में से किसी भी समय जेल में न रहा हो। ऊपर से यह भी स्पष्ट है कि दो वर्ष से अधिक की हिस्ट्रीशीट किसी विशेष आदेश के बिना जारी नहीं रह सकती है या जब तक कि वह किसी संज्ञेय अपराध में दोषी पाया गया हो और जेल में रहा हो या किसी अपराध के लिए संदिग्ध रहा हो । लगातार दो वर्षों के दौरान अपने को संदिग्ध परिस्थितियो में अनुपस्थित रखा हो।

राज्य की ओर से दायर प्रति शपथपत्र में रिट याचिका में किये गए दावों से इनकार नहीं किया गया है। जवाबी हलफनामे के पैरा 7 में कहा गया है कि चूंकि याचिकाकर्ता एक आपराधिक मानसिकता वाला व्यक्ति है, वह फिर से आपराधिक गतिविधियो में शामिल हो सकता है, इसलिए हिस्ट्रीशीट की समीक्षा नहीं की गई है। प्रति शपथपत्र के पैरा 7 का प्रासंगिक भाग नीचे दिया गया है:

"आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता आपराधिक मस्तिष्क दिमाग का व्यक्ति है और वह फिर से आपराधिक गतिविधियों में संलिप्त हो सकता है। उत्तर के तहत पैराग्राफ में किए गए सभी विपरीत कथन गलत हैं और अस्वीकार किए जाते हैं। याचिकाकर्ता की डीसीआरसी और सीसीटीएनएस रिपोर्ट की फोटोकॉपी इसके साथ दाखिल की जा रही है और इस हलफनामे में अनुबंध संख्या सीए 1 के रूप में चिह्नित की गई है।"

इसके अलावा याचिकाकर्ता का मामला यह भी है कि हिस्ट्रीशीट की निरंतरता की समीक्षा के लिए याचिकाकर्ता से संबंधित रिकॉर्ड सक्षम प्राधिकारी के समक्ष नहीं रखा गया था।

इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिए गए निर्णयों में संजय कर्णवाल बनाम यूपी राज्य और अन्य, [2010 (70) एसीसी 507] और गुरु बक्स सिंह बख्शी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (लाज) (इलाहबाद) का 1994 1 85, के मद्देनजर हम मानते हैं कि पुलिस विनियमों के विनियम 231 के मद्देनजर वर्ग – क के याचिकाकर्ता की हिस्ट्री-शीट जारी रखना, राज्य द्वारा उचित नहीं है क्योंकि इसके बाद याचिकाकर्ता किसी भी पुनरावर्ती आपराधिक गतिविधि में शामिल नहीं हुआ है। 2007 के बाद याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई अन्य मामला दर्ज या रिपोर्ट नहीं किया गया है।

यह कहकर कि याचिकाकर्ता 'आपराधिक प्रवृति का' है, याचिकाकर्ता की हिस्ट्रीशीट की समीक्षा न करने का दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से राज्य के उत्तरदाताओं की मनमानी को दर्शाता है। उन्होंने वैधानिक विनियमों से मुंह फेर लिया है।

मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका को स्वीकार किया जाता है और पुलिस स्टेशन-मोदीनगर, जिला-गाजियाबाद में खोली गई

हिस्ट्रीशीट संख्या 31ए, दिनांकित् 20.8.2007 को रद्द किया जाता है।
राज्य का दृष्टिकोण आकस्मिक रहा है। इसके अलावा, वर्ष 2007 से याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई आपराधिक मामला लंबित नहीं होने पर भी हिस्ट्रीशीट की समीक्षा न करना और यूपी पुलिस विनियम के आदेश का पालन न करना, गाजियाबाद के पुलिस अधीक्षक की ओर से कर्तव्य में उपेक्षा है। दूसरे प्रतिवादी पर 20,000/- रुपये का जुर्माना लगाया जाता है। जिसे कि आदेश की तारीख से आठ सप्ताह के भीतर उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति, इलाहाबाद में जमा करना होगा।
ज्ञानी अपर शासकीय अधिवक्ता को आदेश को संप्रेषित कराना और अनुपालन सुनिश्चित कराना होगा।

(2023) 1 ILRA 25
पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: लखनऊ 30.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मो. असलम

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-359 वर्ष 2008

सुरेंद्रे कुमार चतुर्वेदी ... पुनरीक्षणकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ... प्रतिपक्षी

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता:
राम कुशाल तिवारी, इंद्र मणि पांडे, रवींद्र शुक्ला

प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता, ए.पी. मिश्रा

A. आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 397/401 - भ०द०वि०, 1860 - धारा 147, 148, और 302/149 - बरी करने पर चुनौती- प्राथमिकी में देरी - अ०सा०-1/सूचनाकर्ता ने केवल चार अभियुक्तों और दो अज्ञात व्यक्तियों का नाम लिया है, जबकि दो अज्ञात व्यक्तियों सूचनाकर्ता के परिचित थे - अ०सा०-2 ने कहा कि उसका घर घटनास्थल से दूर है और वह 100 साल से अधिक उम्र की महिला है, वह मुश्किल से 2 -3 कदम चलती है और नक्शा नज़री में उसका घर नहीं दिखाया गया है - अ०सा०-1 और अ०सा०-2 दोनों ने घटना नहीं देखी है, घटना के स्थान पर उनकी उपस्थिति संदिग्ध है - इसलिए, चश्मदीद गवाही के आधार पर कोई दोषसिद्धि दर्ज नहीं की जा सकती है - वर्तमान मामले में बरी होने के खिलाफ पुनरीक्षण दायर किया गया - पुनरीक्षण अदालत धारा 401(3) द०प्र०स० के मद्देनजर बरी होने को सजा में नहीं बदल सकती है - निचली अदालत का फैसला सबूतों की सही समझ पर आधारित है। (पैरा 1 से 27)

B. यह कानून के स्थापित सिद्धांतों है कि यदि संभव के दो विचार, एक अभियोजन पक्ष के पक्ष में और दूसरा अभियुक्त के पक्ष में, तो अभियुक्त के पक्ष में दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। अदालत का सर्वोपरि विचार यह सुनिश्चित करना है कि न्याय की हत्या को रोका जाए। न्याय की हत्या जो दोषी के बरी होने से उत्पन्न हो सकती है, एक निर्दोष की सजा से कम नहीं है। (पैरा 19, 20)

संशोधन खारिज कर दिया गया। (ई-6)

<u>**उद्धृत मामलों की सूची**</u>:

1. श्याम देव पांडे बनाम बिहार राज्य (1971) ए.आई.आर. एस.सी. 1606

2. मूल चंद बनाम जगदीश सिंह और अन्य (1993) सप्प (2) एस.सी.सी. 714

(माननीय न्यायमूर्ति मो. असलम द्वारा प्रदत्त)

1. श्री संजय श्रीवास्तव, राज्य-प्रतिपक्षी संख्या-1 के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता, श्री ए.पी मिश्रा, अभियुक्त-प्रतिपक्षी संख्या-2 से 6 के अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया। सूचनाकर्ता-पुनरीक्षणकर्ता के लिए कोई मौजूद नहीं है।

2. प्रस्तुत पुनरीक्षण को सूचनादाता-पुनरीक्षण सुरेन्द्र कुमार चतुर्वेदी ने धारा 401 द०प्र०स० सपठित धारा 397 के तहत सत्र विचारण संख्या-218 वर्ष 1996 (राज्य बनाम त्रिवेणी सिंह एवं अन्य) में विद्वान सत्र न्यायाधीश, सुल्तानपुर द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 26.5.2008 के विरुद्ध धारा 147,148, 302/149 भ०द०वि०, थाना-जामो, जिला: सुल्तानपुर के तहत दायर की है, जिसके द्वारा अभियुक्त-प्रतिपक्षी संख्या-3 से 6 को धारा 147, 302/149 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के आरोपों से बरी कर दिया गया था और साथ ही अभियुक्त-प्रतिपक्षी संख्या-2 को भ०द०वि० की धारा 148, 302/149 के तहत दंडनीय अपराध के आरोपों से बरी कर दिया गया था।

3. इस पुनरीक्षण के निस्तारण के लिए आवश्यक संक्षिप्त तथ्य यह है कि सूचनाकर्ता-पुनरीक्षणकर्ता सुरेन्द्र कुमार चतुर्वेदी पुत्र प्रयाग प्रसाद, निवासी ग्राम शुद्ध गणेश चौबे ने थाना-जामो, जिला: सुल्तानपुर में दिनांक 18.03.1994 को

14:30 बजे पुलिस अधीक्षक, सुल्तानपुर को संबोधित आवेदन के आधार पर दिनांक 18.3.1994 को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई। जिसमें आरोप लगाया गया है कि उसका भाई शशि भाल चतुर्वेदी (मृतक) और विद्याशंकर शुक्ल (परिक्षण नहीं की गई) 17-3-1994 को सायं लगभग 07.00 बजे उसकी नानी से मिलने गए थे। वे रात लगभग 10:00 बजे वहां से अपने घर वापस आ रहे थे और रास्ते में अपनी नानी के घर से लगभग 20 कदम की दूरी पर आरोपी त्रिवेणी सिंह लाठी और बल्लम से लैस, राम सहाय, वीरेंद्र सिंह और दो अन्य अज्ञात व्यक्तियों को देखकर वह उन्हें पहचान सकता है, लाठी से लैस होकर घात लगाए बैठे थे। सहकारी समिति के चुनाव के कारण उनकी उनसे दुश्मनी है। उन्होंने उसके भाई पर घातक हथियार से हमला किया और उस पर लाठी और कुदाल से हमला किया। उसके भाई की हालत बेहद नाजुक हो गई थी। अपने भाई की जान बचाने के लिए उसने घटना की जानकारी थाने को भेजी और उसे सीधे मुसाफिरखाना स्थित अस्पताल में भर्ती कराया। उसके भाई की हालत अभी भी बहुत खराब थी और उसे सुल्तानपुर के सदर अस्पताल रेफर कर दिया गया था। वह जीवन से संघर्ष कर रहा था और अभी तक होश में नहीं आया था। सूचनाकर्ता-संशोधनकर्ता ने घटनास्थल पर शोर गुल मचाया, तभी विद्याशंकर शुक्ल व अन्य ग्रामीण वहां पहुंचे और घटना को देखा। आरोपी व्यक्ति यह सोचकर भाग गए कि उसका भाई मर गया है।

4. चिक रिपोर्ट प्रदर्श क-9 को हेड कांस्टेबल भानु प्रताप सिंह (अ०सा०-6) ने 18.3.1994 को लिखी थी। कांस्टेबल वीरेन्द्र बहादुर ने दिनांक 18.3.1994 को सायं 147, 148, 323, 324, 308 भ०द०वि० के अंतर्गत थाना-जामो, जिला: सुल्तानपुर में जी.डी. रिपोर्ट क्रमांक-24 (प्रदर्श क-11) में प्रविष्टि करके मुकदमा अपराध क्रमांक शून्य/1994 दर्ज किया। घायल शशि भाल की डॉ. आर.पी पांडे (अ०सा०-4) द्वारा 18.3.1994 को 02:30 बजे (रात) मुसाफिरखाना में चिकित्सा जांच की गई। घायल शशि बहल की चिकित्सा जांच के समय उसकी आयु 49 वर्ष पाई गई तथा उसके शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गई थीं:-

"1. खोपड़ी के बाईं ओर 6 सेमी x 0.5 सेमी x हड्डी गहरी, बाएं कान से 7 सेमी ऊपर। खोपड़ी ए / पी, प्रदर्श क-रे की सलाह दी

2. चीरा हुआ घाव 6 सेमी x 1 सेमी x हड्डी माथे के सामने बाईं ओर बाईं भौं के ऊपर। खोपड़ी के प्रदर्श क-रे की सलाह दी।

3. ख़ून रिसता कटा घाव घाव 4 सेमी x 0.5 सेमी x माथे पर गहरी हड्डी, दाहिनी आंख से 3 सेमी ऊपर।

4. भौं के ऊपर माथे पर 1 सेमी x 0.5 सेमी x हड्डी गहरी घाव।

5. ख़ून रिसता कटा घाव घाव 3 सेमी x 0.5 सेमी x हड्डी गहरी, दाहिनी आंख से 2 सेमी ऊपर।

6. ख़ून रिसता कटा घाव घाव 1 सेमी x 0.5 सेमी x मांसपेशी दाहिने होंठ पर गहरी।

7. संलयन हाथ के पीछे की तरफ 7 सेमी x 2 सेमी।

8. बाएं हाथ के पीछे की तरफ 7 सेमी x 5 सेमी दर्दनाक सूजन।

9. छाती के दाईं ओर 1 सेमी x 0.5 सेमी x हड्डी गहरी घाव।

10. ख़ून रिसता कटा घाव घाव बाएं पैर पर 1.5 सेमी x 0.5 सेमी x हड्डी गहरी।

11. दाहिने पैर के सामने 2 सेमी x 1 सेमी का संलयन हुआ।

12. ख़ून रिसता कटा घाव घाव 1 सेमी x 0.3 सेमी त्वचा दाहिने कान पर गहरी।

डॉ. आर.पी पांडे (अ०सा०-4) ने चोट संख्या-1 से 5 और 8 के लिए प्रदर्श क-रे की सलाह दी। उन्होंने कहा कि चोट संख्या-1 और 2 धारदार हथियार से और बाकी धारदार वस्तु से हुई थी। मेडिकल जांच के समय चोटें ताजा पाई गईं। घायल अर्धचेतन अवस्था में था और उल्टी कर रहा था। उन्होंने घायलों को जिला अस्पताल रेफर कर दिया। उन्होंने अपनी हैंडराइटिंग में चोट रिपोर्ट प्रदर्श क-4 तैयार की।

5. मामले की जांच एस.आई. आर.एन मिश्रा को सौंपी गई थी। दिनांक 20.3.1994 को के.जी.एम.सी. से सायं 07:20 बजे थाना-जामो में शशि भाल चतुर्वेदी की मृत्यु के संबंध में ज्ञापन प्राप्त हुआ था, जिसे जी.डी. रिपोर्ट क्रमांक-4 में सायं 07:20 बजे दर्ज किया गया था। जी.डी. रिपोर्ट क्रमांक-4 की प्रति और मृतक की मृत्यु का ज्ञापन प्राप्त करने पर, वह मुर्दाघर के.जी.एम.सी., लखनऊ के लिए रवाना हुए। शव परिक्षण ड्यूटी पर तैनात चौकी के.जी.एम.सी. के कांस्टेबल कुंवर नरेश सिंह ने उनसे शवगृह में मुलाकात की। श्रवण कुमार पाठक, सुरेंद्र कुमार चतुर्वेदी, गया प्रसाद चतुर्वेदी, हनुमान दत्त और भगवान दत्ता त्रिपाठी को गवाह के रूप में नियुक्त किया गया था। पंचनामा के गवाहों ने कहा कि मृतक की मृत्यु पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप उपचार के दौरान हुई थी, जो जो उसको घटनास्थल पर लगी थी। उन्होंने यह भी राय दी है कि मृत्यु के वास्तविक कारण का पता लगाने के लिए शव परिक्षण की आवश्यकता है। उन्होंने पंचनामा रिपोर्ट प्रदर्श क-5, सी.एम.ओ. प्रदर्श क-6, फोटो लाश प्रदर्श क-7 को पत्र तैयार किया, शव को सील कर चालान लाश प्रदर्श क-8 तैयार किया और शव को शव परिक्षण के लिए कांस्टेबल कुंवर नरेश सिंह को सौंप दिया। मृतक शशि भाल चतुर्वेदी के शव का शव परिक्षण डॉ. एल. एस. सान्याल (अ०सा०-3) द्वारा दिनांक

20.3.1994 को किया गया। शव परिक्षण के समय मृतक की उम्र 26 साल पाई गई। इलाज के दौरान 19.3.1994 को 03:10 बजे के.जी.एम.सी. में उनकी मृत्यु हो गई। मृतक औसत कद और शरीर का व्यक्ति था। शरीर के ऊपरी हिस्से पर कठोर मोर्टिस मौजूद नहीं था, जबकि शरीर के निचले हिस्से पर भी यही पाया गया था। शव परिक्षण के समय मृतक के शरीर पर निम्नलिखित मृत्यु पूर्व चोटें पाई गईं: -

"1. खोपड़ी के बाईं ओर 5 टांके के साथ सिले हुए घाव।

2. खोपड़ी के मध्य में 3 टांके के साथ लंबाई में 5 सेमी सिले घाव।

3. खोपड़ी के दाहिने हिस्से पर 2 टांके के साथ सिले घाव।

4. बाएं कान से 8 सेमी ऊपर खोपड़ी के बाईं ओर 3 टांके के साथ 4 सेमी लंबा घाव।

5. चेहरे और खोपड़ी के दाईं ओर 8 सेमी x 4.5 सेमी का संलयन करें।

6. दाहिने हाथ के पीछे 7 सेमी x 1.5 सेमी का संलयन होता है।

7. पेट के निचले हिस्से पर 16 सेमी x 6 सेमी क्षेत्र में घिसना हुआ संलयन।

8. बाएं पैर के सामने के हिस्से पर 6 सेमी x 3 सेमी क्षेत्र में एब्रेडेड संलयन।

9. दाहिने पैर के सामने के हिस्से पर 8 सेमी x 4 सेमी क्षेत्र में एब्रेडेड संलयन।

आंतरिक जांच में खोपड़ी में फ्रैक्चर पाया गया। मस्तिष्क की झिल्ली फटी हुई पाई गई। पेट में 90 मिलीलीटर तरल पदार्थ पाया गया। छोटी आंत में गैस और मल पदार्थ पाए गए। डॉक्टर का कहना है कि मृतक की मौत सिर में चोट लगने से हुई है। उन्होंने आगे कहा है कि मृत्यु पूर्व सिर की चोटें प्रकृति के सामान्य क्रम में मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त थीं। उन्होंने शव परिक्षण रिपोर्ट अपनी लिखावट में तैयार की।

6. विवेचनाधिकारी एस.आई. रवीन्द्र नाथ मिश्रा (अ०सा०-9) ने मामला दर्ज करने वाली पंचनामा और जी.डी. की नकल की और जी.डी. के बयान दर्ज किए और 20.3.1994 को घटनास्थल का निरीक्षण किया। उसने घटनास्थल से सादी मिट्टी और खून से सनी मिट्टी, खून से सनी बेड-शीट, दुपट्टा, मृतक के चमड़े के स्लीपर की एक जोड़ी को कब्जे में ले लिया है और इसका मेमो प्रदर्श क-13 & 14 तैयार किया है और इसे अलग से सील कर दिया है। उन्होंने नक्शा नज़री प्रदर्श क-15 भी तैयार किया। दिनांक 22.3.1994 को उन्होंने अभियुक्त राम सहाय वीरेन्द्र बहादुर को गिरफ्तार कर उनके बयान दर्ज कर धारा 304 भ०द०वि० में जी.डी. रिपोर्ट संख्या-12 प्रदर्श क-16 के तहत संशोधन किया। इसके बाद, जांच को 23.3.1994 को एस.आई. विजयानंद (अ०सा०-7) को स्थानांतरित कर दिया गया, जिन्होंने गवाह विद्या शंकर शुक्ल का बयान दर्ज किया है। 31.3.1994 को, उन्होंने गवाहों के बयान दर्ज किए और केस डायरी में शव परिक्षण रिपोर्ट की नकल की। इसी दिन उन्होंने गवाहों शिव प्रसाद और इशरत के बयान भी दर्ज किए हैं। 30.4.1994 को उन्होंने अभियुक्त त्रिवेणी सिंह का बयान दर्ज किया और 30.4.1994 प्रदर्श क-10 को आरोप पत्र भेज दिया। इसके बाद सूचनाकर्ता के आवेदन पर जांच सी.बी.आई. को अंतरित कर दी गई। आरोप पत्र प्रदर्श क-10 को थानाध्यक्ष द्वारा रद्द कर दिया गया था और जांच फिर से जांच के लिए सी.बी.सी.आई.डी. को सौंप दी गई थी। निरीक्षक शमशेर सिंह सी.बी.सी.आई.डी. को दिनांक 25.8.1994 को जांच का जिम्मा सौंपा गया, जिन्होंने केस डायरी में सूचनाकर्ता-पुनरीक्षणकर्ता सुरेन्द्र कुमार चतुर्वेदी के आवेदन एवं गुरुदेव कुमार द्विवेदी तहरीर की नकल की। 2.3.1995 को उन्होंने ए.एस.आई रवींद्र नाथ मिश्रा का बयान दर्ज किया। 13.3.1995 को उन्होंने सूचनाकर्ता-पुनरीक्षणकर्ता सुरेंद्र कुमार चतुर्वेदी, डॉ. आर.पी पांडे और अन्य गवाहों के बयान दर्ज किए। उन्होंने श्रीमती लखपति देवी और अन्य गवाहों के बयान और आरोपी विशम्भर प्रसाद मिश्रा, राम अभिलाष सिंह, त्रिवेणी सिंह, राम सहाय और वीरेंद्र सिंह के बयान भी दर्ज किए हैं और पंचनामा के गवाहों के बयान भी दर्ज किए हैं। 15.3.1995 को उन्होंने चिक रिपोर्ट के लेखक का बयान दर्ज किया है। दिनांक 26-4-1995 को उन्होंने गवाह विद्याशंकर शुक्ल का बयान दर्ज किया है और भारतीय दंड संहिता की धारा 302 में संशोधन करके आरोप-पत्र प्रदर्श क-12 प्रस्तुत किया है।

7. धारा 207 द०प्र०स०के प्रावधान का पालन करने के बाद अपराध का संज्ञान लिया गया और मामला सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया। धारा 147, 148, 302/149 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए आरोपी संख्या-2 त्रिवेणी सिंह, पक्ष संख्या-3 राम सहाय, पक्ष संख्या-4 वीरेंद्र सिंह, पक्ष संख्या-5 राम अभिलाष और पक्ष संख्या-6 विशम्भर प्रसाद के खिलाफ आरोप तय किए गए, अभियुक्तों को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उन्होंने इन्कार किया और विचारण चाहा।

8. अपने मामले को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने सूचनाकर्ता-पुनरीक्षणकर्ता सुरेंद्र कुमार चतुर्वेदी को अ०सा०-1 के रूप में, श्रीमती लखपति को अ०सा०-2 के रूप में चश्मदीद गवाह के रूप में पेश किया है। अ०सा०-1 ने लिखित शिकायत प्रदर्श क-1 को साबित कर दिया है। अभियोजन पक्ष ने मृतक प्रदर्श क-3 की शव परिक्षण रिपोर्ट को साबित करने के लिए अ०सा०-3 के रूप में डॉ. एल. एस. सान्याल से भी पूछताछ की है, मृतक प्रदर्श क-4

की चोट रिपोर्ट को साबित करने के लिए अ०सा०-4 के रूप में डॉ. आरपी पांडेय, पंचायतनामा प्रदर्श क-5 साबित करने के लिए एस.आई. नामवर सिंह को अ०सा०-5, सी.एम.ओ को पत्र प्रदर्श क-6, फोटो लाश प्रदर्श क-7, चालान लाश प्रदर्श क-8, और शव परिक्षण साबित करने के लिए शव को कांस्टेबल कुंवर नरेश सिंह को सौंप दिया। कांस्टेबल भानु प्रताप सिंह को अ०सा०-6 के रूप में परीक्षित किया गया, ताकि चिक रिपोर्ट प्रदर्श क-9 और जी.डी. अभियोजन पक्ष ने जांच में उठाए गए कदमों को साबित करने के लिए विवेचनाधिकारी/उप निरीक्षक विजयानंद सिंह से अ०सा०-7 के रूप में भी परीक्षित किए गया और अभियुक्त के खिलाफ आरोप पत्र प्रदर्श क-10 दायर किया है। बाद में आरोप-पत्र प्रदर्श क-10 निरस्त करने के बाद सूचनाकर्ता के आवेदन पर सी.बी.सी.आई.डी. के द्वारा जांच की गई, अभियोजन पक्ष ने जांच में उठाए गए कदमों/आरोपों को साबित करने के लिए इंस्पेक्टर शमशेर सिंह (सी.बी.सी.आई.डी.) से भी पूछताछ की है और जांच के बाद उसने आरोप पत्र प्रदर्श क-15 के साथ-साथ घटनास्थल से एकत्र की गई सादी मिट्टी और रक्तरंजित मिट्टी को साबित करने के लिए प्रस्तुत किया है और अलग-अलग कंटेनरों में सील कर दिया है और इस संबंध में ज्ञापन प्रदर्श क-13 और प्रदर्श क-14 तैयार किया है। उन्होंने भ०द०वि० की जांच की धारा में भी संशोधन किया है।

9. अभियुक्तों के बयान धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए थे, जिसमें उन्होंने घटना में अपनी भागीदारी से इनकार किया है और कहा है कि उन्हें मामले में झूठा फंसाया गया है। बचाव में, आरोपी-प्रतिपक्षियों ने राम लखन शुक्ला को ब०सा०-1, राम प्यारे पांडे को ब०सा०-2 और छोटे लाल को ब०सा०-3 के रूप में पूछताछ की है और सबूतों को बंद कर दिया है।

10. विद्वान निचली अदालत ने पक्षकारों के अधिवक्ता को सुनने और सूचनाकर्ता सुरेंद्र कुमार चतुर्वेदी (अ०सा०-1) के साक्ष्य का मूल्यांकन करने के बाद कहा कि सूचनाकर्ता-संशोधनकर्ता ने अपनी लिखित शिकायत में केवल चार आरोपी व्यक्तियों और दो अज्ञात व्यक्तियों का नाम लिया है, जिन्हें वह, अगर वे उसके सामने आते हैं, तो पहचान सकता है। घटना के चार महीने बाद, 25.7.1994 को, सी.बी.सी.आई.डी. द्वारा मामले की जांच के लिए सूचनाकर्ता की ओर से एक आवेदन स्थानांतरित किया गया और बाद में जांच को सी.बी.सी.आई.डी. को स्थानांतरित कर दिया गया। उन्होंने अपनी लिखित शिकायत में आरोपी विशंभर प्रसाद मिश्रा और राम अभिलाष सिंह का नाम नहीं लिया है। यहां तक कि सी.बी.आई. द्वारा जांच के लिए दायर आवेदन में भी उन्होंने आरोपी विशंभर प्रसाद मिश्रा और राम अभिलाष सिंह का नाम नहीं लिया है। गवाह अ०सा०-2 ने गवाही दी है कि आरोपी विशंभर प्रसाद मिश्रा और राम अभिलाष सिंह बचपन से उसे जानते थे क्योंकि वे उसके गांव के निवासी हैं। सूचनाकर्ता सुरेंद्र कुमार चतुर्वेदी (अ०सा०-1) ने विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में आरोपी विशंभर प्रसाद मिश्रा और राम अभिलाष सिंह के नाम का खुलासा नहीं किया है। सबूतों का मूल्यांकन करने पर, निचली अदालत ने माना है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट उचित विचार-विमर्श के बाद दर्ज की गई थी और जांच के दौरान आरोपी विशंभर प्रसाद मिश्रा और राम अभिलाष सिंह का नाम जानबूझकर उन्हें झूठा फंसाने के लिए जोड़ा गया था। निचली अदालत ने यह भी माना है कि कथित स्वतंत्र चश्मदीद गवाह विद्या शंकर को अभियोजन पक्ष द्वारा पेश नहीं किया गया। इस मामले में अ०सा०-1 सुरेंद्र कुमार चतुर्वेदी और अ०सा०-2 श्रीमती लखपति कथित चश्मदीद गवाह हैं। प्रत्यक्षदर्शी विद्या शंकर, जिसका नाम प्राथमिकी में उल्लिखित है, को अभियोजन पक्ष ने निचली अदालत में मुकदमे के दौरान पेश नहीं किया। यह भी माना गया है कि अ०सा०-1 सुरेंद्र कुमार चतुर्वेदी ने अपनी जिरह में स्वीकार किया है कि आरोपी विशम्भर प्रसाद मिश्रा और राम अभिलाष सिंह आरोपी त्रिवेणी सिंह के भाई हैं और प्राथमिकी दर्ज करने से पहले से ही उसके परिचित थे। यह आगे माना गया है कि अ०सा०-1 ने स्वीकार किया है कि घटना फुलेसरा के दरवाजे पर हुई है और सूचनाकर्ता की नानी का घर नक्शा नज़री में नहीं दिखाया गया है। अ०सा०-2 श्रीमती लखपति ने अपने बयान में कहा है कि न्यायालय में परीक्षा के समय उनकी उम्र लगभग सौ साल थी। उसने यह भी स्वीकार किया है कि घटना के दिन वह बीमार थी और तेज बुखार से पीड़ित थी। उसने आगे स्वीकार किया है कि वह 2-3 कदम से आगे नहीं देख सकती थी। घटना रात 10.00 बजे हुई थी; उसका घर घटनास्थल से दूर था और वह मुश्किल से 2 या 3 कदम चल पाती है। विद्वान निचली अदालत ने यह भी माना है कि कथित चश्मदीद गवाहों अ०सा०-1 सुरेंद्र कुमार चतुर्वेदी और अ०सा०-2 श्रीमती लखपति की गवाही विश्वास प्रेरित नहीं करती है और उनकी चश्मदीद गवाही के आधार पर कोई दोषसिद्धि दर्ज नहीं की जा सकती है और अभियुक्त-प्रतिपक्षी संख्या-2 से 6 को आरोपों से बरी कर दिया है। इससे व्यथित होकर सूचनाकर्ता-पुनरीक्षणकर्ता ने इस संशोधन दायर की है।

11. संशोधन ज्ञापन में सूचनाकर्ता-पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने कहा है कि विद्वान निचली अदालत द्वारा दर्ज किया गया बरी करने का आक्षेपित निर्णय तथ्य और कानून के खिलाफ है। आगे यह कहा गया है कि विद्वान निचली अदालत ने आक्षेपित निर्णय में सूचनाकर्ता-पुनरीक्षणकर्ता अ०सा०-1 और उसकी नानी अ०सा०-2 के बयान पर गलत तरीके से अविश्वास किया है और आरोपी-प्रतिपक्षी संख्या-2 से 6 को अवैध रूप से बरी कर दिया है। यह आगे कहा

गया है कि चार आरोपी व्यक्तियों को पहली सूचना रिपोर्ट में नामित किया गया था और दो आरोपियों का नाम नहीं था। आगे कहा गया है कि जांच के दौरान आरोपी का नाम भी सामने आया, जिसका नाम नहीं है। आगे कहा गया है कि सूचनाकर्ता-पुनरीक्षणकर्ता अ०सा०-1 सुरेंद्र कुमार चतुर्वेदी और उनकी नानी अ०सा०-2 श्रीमती लखपति घटना के चश्मदीद गवाह थे और प्रथम सूचना रिपोर्ट और शव परिक्षण रिपोर्ट द्वारा इसकी पुष्टि की जाती है। यह आगे कहा गया है कि नीचे की विद्वान अदालत ने सही ढंग से रिकॉर्ड पर उपलब्ध सबूतों का मूल्यांकन नहीं किया है और नीचे के विद्वान न्यायालय द्वारा दर्ज बरी करने का निर्णय विकृत और अवैध है और इसे रद्द किया जा सकता है। आगे कहा गया है कि अभियुक्त-प्रतिपक्षी संख्या-2 से 6 के खिलाफ आरोप उचित संदेह से परे साबित होते हैं और निचली अदालत द्वारा दर्ज बरी होने का निर्णय पलट दिए जाने योग्य है, और अभियुक्त-प्रतिपक्षी संख्या-2 से 6 भ०द०वि० की धारा 147, 148, 302/149 के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया जा सकता है और आजीवन कारावास और जुर्माना भी भुगतने की सजा सुनाई जा सकती है।

12. अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने निचली अदालत के फैसले का समर्थन किया है और प्रस्तुत किया है कि सभी अभियुक्त-प्रतिपक्षी संख्या-2 से 6 सूचनाकर्ता-पुनरीक्षणकर्ता को जानते थे, लेकिन उन्होंने केवल चार अभियुक्तों और दो अज्ञात व्यक्तियों का नाम लिया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया है कि उपरोक्त तथ्य यह स्थापित करता है कि सूचनादाता-पुनरीक्षणकर्ता ने घटना नहीं देखी है और घटनास्थल पर उसकी उपस्थिति संदिग्ध है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया है कि अ०सा०-2 श्रीमती लखपति सूचनाकर्ता-पुनरीक्षणकर्ता की नानी हैं और उनके घर को नक्शा नज़री में नहीं दिखाया गया है। उसने अपने बयान में कहा है कि अदालत के समक्ष परीक्षा के समय उसकी उम्र लगभग सौ साल थी। उसने यह भी स्वीकार किया है कि घटना के दिन वह बीमार थी और तेज बुखार से पीड़ित थी। उसने आगे स्वीकार किया है कि वह 2-3 क़दम से आगे कुछ भी नहीं देख सकती थी। घटना रात 10:00 बजे हुई है और उसका घर घटनास्थल से दूर है और वह मुश्किल से 2-3 कदम चल पाती है। इसलिए, विद्वान निचली अदालत ने सही माना है कि उसने इस घटना को नहीं देखा है और सही क्या कि आरोपी-प्रतिपक्षी संख्या-2 से 6 को आरोपों से बरी कर दिया है।

13. मैंने पुनरीक्षण में सूचनाकर्ता-पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों के साथ-साथ राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा उठाए गए विवाद पर विचारशील मनन किया है और रिकॉर्ड का अध्ययन किया है। अब सवाल यह उठता है कि क्या पुनरीक्षणकर्ता की अनुपस्थिति में पुनरीक्षण को सुना और तय किया जा सकता है। पुनरीक्षण की सुनवाई की प्रक्रिया धारा 401 द०प्र०स० में उल्लिखित अपवाद के साथ अपील की सुनवाई के अनुरूप है, धारा 401 द०प्र०स० इस प्रकार है: -

"धारा 401- (1) किसी कार्यवाही के मामले में, जिसका रिकॉर्ड तलब किया गया है या जो अन्यथा उसके ज्ञान में आता है, उच्च न्यायालय, अपने विवेक से, धारा 386, 389, 390 और 391 द्वारा अपील न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों में से किसी का प्रयोग कर सकता है या धारा 307 द्वारा सत्र न्यायालय पर और, जब पुनरीक्षण न्यायालय की सुनवाई करने वाले न्यायाधीशों की राय समान रूप से भिन्न होती है, तो मामले का निपटारा धारा 392 द्वारा प्रदान किए गए तरीके से किया जाएगा।

(2) इस धारा के अधीन कोई आदेश अभियुक्त या अन्य व्यक्ति के पूर्वाग्रह के अनुसार तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि उसे अपने बचाव में व्यक्तिगत रूप से या अधिवक्ता द्वारा सुनवाई का अवसर न मिला हो।

(3) इस धारा की कोई बात किसी उच्च न्यायालय को दोषमुक्ति के निष्कर्ष को दोषसिद्धि में बदलने के लिए प्राधिकृत करने वाली नहीं समझी जाएगी।

(4) जहां इस संहिता के अधीन कोई अपील निहित है और कोई अपील नहीं की गई है वहां पुनरीक्षण के माध्यम से किसी कार्यवाही पर उस पक्षकार के कहने पर विचार नहीं किया जाएगा जो अपील कर सकता था।

(5) जहां इस संहिता के अधीन अपील निहित है परन्तु पुनरीक्षण के लिए आवेदन किसी व्यक्ति द्वारा उच्च न्यायालय को किया गया है और उच्च न्यायालय को ये अनुमान हो जाता है कि ऐसा आवेदन इस त्रुटिपूर्ण विश्वास के अधीन किया गया था कि उसके लिए कोई अपील नहीं है और ऐसा करना न्याय के हित में आवश्यक है, उच्च न्यायालय पुनरीक्षण के लिए आवेदन को अपील की याचिका के रूप में मान सकता है और उसी से, तदनुसार निपट सकता है।

14. धारा 401 द०प्र०स० के अवलोकन से, यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय धारा 386, 389, 390 और 391, द्वारा अपील न्यायालय या सत्र न्यायालय को धारा 307 द्वारा प्रदत्त किसी भी शक्ति का प्रयोग कर सकता है। उपधारा (2) में आगे यह उपबंध किया गया है कि इस धारा के अधीन अभियुक्त या अन्य व्यक्ति के प्रति पूर्वाग्रह के अनुरूप कोई आदेश तब तक नहीं दिया जाएगा जब तक कि उसे व्यक्तिगत रूप से या अपने बचाव में अधिवक्ता द्वारा सुनवाई का अवसर न मिला हो।

15. धारा 401 द०प्र०स० की उपधारा (2) ने पुनरीक्षण न्यायालय को यह कर्तव्य सौंपा कि यदि अभियुक्त या अन्य

व्यक्ति के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रस्त पुनरीक्षण में आदेश दिया जाता है तो वह प्रतिपक्षी की सुनवाई करे। इस प्रकार, जहां आक्षेपित आदेश को रद्द किया जा सकता है और वो प्रतिपक्षी के लिए पूर्वाग्रही है, प्रतिपक्षी को सुना जाना चाहिए।

16. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 386 अपील की सुनवाई में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया प्रदान करती है और अपीलीय न्यायालय को शक्ति भी प्रदान करती है। यह धारा 401 द०प्र०स० के मद्देनजर पुनरीक्षण में भी, अपवाद के साथ लागू होता है कि यदि पुनरीक्षण में किया जाने वाला आदेश अभियुक्त या अन्य व्यक्ति (प्रतिपक्षी) के लिए पूर्वाग्रहपूर्ण है, तो प्रतिपक्षी को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए। धारा 386 (ई) के साथ संलग्न परंतुक में प्रावधान है कि सजा तब तक नहीं बढ़ाई जाएगी जब तक कि अभियुक्त को इस तरह की वृद्धि के खिलाफ कारण बताने का अवसर नहीं दिया जाता है। इसलिए, धारा 386 द०प्र०स० के प्रावधान के अवलोकन से, यह अनिवार्य है कि अभियुक्त को पुनरीक्षण में आदेश दिया जाए तो अभियुक्त को सुना जाना चाहिए।

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने "श्याम देव पांडे बनाम बिहार राज्य, ए.आई.आर. 1971 एस.सी. 1606" के मामले में माना है कि यदि अदालत ने अपील को सरसरी तौर पर खारिज नहीं करने का फैसला किया है, तो उसे धारा 385 में उल्लिखित कदम उठाना चाहिए और योग्यता के आधार पर पक्षों को सुनने के लिए आगे बढ़ना चाहिए। इस स्तर पर भी अपील को खारिज करने की शक्ति है, अगर यह माना जाता है कि हस्तक्षेप करने के लिए कोई पर्याप्त आधार नहीं है, लेकिन इस तरह के विचार अपील की योग्यता पर आधारित होना चाहिए। रिकॉर्ड अदालत के समक्ष होने के बाद और अपील सुनवाई के लिए सूचीबद्ध है [धारा 385 (2)], चाहे अपीलकर्ता नोटिस के जवाब में उपस्थित हों या नहीं, अपीलीय अदालत केवल विचारण न्यायालय के तर्क और निष्कर्ष के बाद अपील का निपटान करती है, जैसा कि इस उद्देश्य के लिए मामले के रिकॉर्ड के आलोक में परीक्षण पर अपने फैसले में दर्ज किया गया है, अपीलीय अदालत को चाहिए- (ए) ऐसे रिकॉर्ड का अवलोकन करें: (ख) अपीलकर्ता या उसके प्लीडर को, यदि वह उपस्थित हो, सुनें और (ग) लोक अभियोजक क, यदि वह उपस्थित हो, सुनें। यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि अपील की सुनवाई में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया का पालन कुछ अपवादों के साथ पुनरीक्षण की सुनवाई में किया जाएगा। अतः पुनरीक्षण की अनुपस्थिति में भी गुण-दोष के आधार पर पुनरीक्षण सुना जा सकता है।

18. धारा 401 द०प्र०स० की उपधारा (3) इस प्रकार है: -

"इस धारा में कुछ भी उच्च न्यायालय को बरी करने के निष्कर्ष को दोषसिद्धि में बदलने के लिए अधिकृत करने के लिए नहीं समझा जाएगा।

19. बरी करने के खिलाफ अपील के मामले में भी 1993 में रिपोर्ट किए गए "मूल चंद बनाम जगदीश सिंह और अन्य" के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 18 में कहा है कि सुप्रीम कोर्ट केस 714 ने पैराग्राफ 18 में अवधारित किया है, जो इस प्रकार है: -

".... उच्च न्यायालय द्वारा बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील में विचार किया जाना था कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा दृष्टिकोण गलत है या उच्च न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण अनुचित है। यदि वह साक्ष्य ऐसी प्रकृति का है कि दो विचार संभव हैं और एक दृष्टिकोण अभियुक्त के पक्ष में है और उच्च न्यायालय उन्हें बरी करने में हस्तक्षेप करता है, तो सुप्रीम कोर्ट बरी करने के आदेश में हस्तक्षेप करने में धीमा (अनिच्छुक?) होगा। यदि केवल उच्च न्यायालय ने सबूतों का मूल्यांकन करने में गंभीर त्रुटि की है और कानूनी सिद्धांत की अनदेखी करके गलत समझा है और ग़लत निष्कर्ष पर पहुंचा है, तो निर्णय को अनुच्छेद 136 के तहत अदालत द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता के लिए विकृत और अवैध माना जा सकता है।

20. बरी करने के खिलाफ अपील में भी यदि विचारण न्यायालय का निर्णय विकृत नहीं है और सबूतों के गलत अर्थ पर आधारित नहीं है और दो विचार संभव हैं, एक आरोपी के पक्ष में, बरी करने वाला आदेश अपील में हस्तक्षेप करना जरूरी नहीं है। वर्तमान मामले में, बरी करने के खिलाफ पुनरीक्षण दायर की गई है और पुनरीक्षण अदालत धारा 401 द०प्र०स० की उपधारा (3) के मद्देनजर बरी होने को दोषसिद्धि में नहीं बदल सकती है। नीचे दिए गए न्यायालय का निर्णय साक्ष्य के सही मूल्यांकन पर आधारित है और इसे विकृत नहीं कहा जा सकता है, इसलिए, मामला पूर्व-परीक्षण के चरण में रिमांड पर लेने के लिए उचित नहीं है। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और निचली अदालत द्वारा बताए गए कारणों को ध्यान में रखते हुए, प्रस्तुत पुनरीक्षण खारिज किए जाने योग्य है।

21. इस मामले में, परिस्थितियों में विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज बरी किए जाने वाले आदेश के खिलाफ राज्य द्वारा अपील नहीं की गई है। ये पुनरीक्षण सूचनाकर्ता सुरेंद्र कुमार चतुर्वेदी द्वारा बरी किए जाने के आदेश के खिलाफ दायर की गई है।

22. इस मामले में अ०सा०-1 के रूप में पुनरीक्षणकर्ता सुरेंद्र कुमार चतुर्वेदी ने गवाही दी कि उनके भाई शशि भाल चतुर्वेदी और विद्याशंकर शुक्ल 17.3.1994 को

लगभग 07:00 बजे अपनी नानी को देखने गए थे और जब वे रात में लगभग 10:00 बजे अपने घर वापस आ रहे थे और अपनी नानी के घर से लगभग 20 कदम की दूरी पर पहुंचे, लाठी और बल्लम से लैस आरोपी त्रिवेणी सिंह, राम सहाय, वीरेंद्र सिंह और दो अन्य अज्ञात व्यक्ति, जिन्हें देखकर वह उन्हें पहचान सकता है, लाठी से लैस होकर घात लगाकर बैठे थे। उन्होंने आगे गवाही दी है कि सहकारी के चुनाव के कारण उनकी उनसे दुश्मनी है। उसने यह भी बयान दिया है कि उन्होंने उसके भाई पर घातक हथियार से हमला किया और उस पर लाठी और कुदाल से हमला किया। उसके भाई की हालत बेहद नाजुक हो गई थी। अपने भाई की जान बचाने के लिए उसने घटना की जानकारी थाने को भेजी और उसे सीधे मुसाफिरखाना स्थित अस्पताल में भर्ती कराया। इसके बाद उसने बयान दिया कि उसके भाई की हालत अभी भी बहुत खराब थी और उसे सुल्तानपुर के सदर अस्पताल में रेफर कर दिया गया, जहां वह अपने जीवन के लिए संघर्ष कर रहा था और अभी तक होश में नहीं आया था। उसने यह भी बयान दिया है कि जब उसने शोर मचाया, तो विद्याशंकर शुक्ल और अन्य ग्रामीण मौके पर पहुंचे और घटना को देखा, तो आरोपी व्यक्ति यह सोचकर भाग गए कि उसका भाई मर गया है। बाद में उनके भाई शशि भाल ने दम तोड़ दिया।

23. अपनी जिरह में, सूचनाकर्ता-पुनरीक्षणकर्ता सुरेंद्र कुमार चतुर्वेदी (अ०सा०-1) ने स्वीकार किया है कि उन्होंने लिखित शिकायत में केवल चार आरोपियों और दो अज्ञात व्यक्तियों का नाम लिया है, जिन्हें वह उनके सामने आने पर पहचान सकते हैं। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि घटना के चार महीने बाद, 25.7.1994 को, सी.बी.आई. द्वारा मामले की जांच के लिए उनकी ओर से एक आवेदन किया गया था और बाद में जांच को सी.बी.सी.आई.डी. को स्थानांतरित कर दिया गया था। उन्होंने अपनी लिखित शिकायत में आरोपी विशंभर प्रसाद मिश्रा और राम अभिलाष सिंह का नाम नहीं लिया है। यहां तक कि सी.बी.सी.आई.डी द्वारा जांच के लिए आवेदन में भी उन्होंने आरोपी विशंभर प्रसाद मिश्रा और राम अभिलाष सिंह का नाम नहीं लिया है। अ०सा०-1 के सूचनाकर्ता सुरेंद्र कुमार चतुर्वेदी ने विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में आरोपी विशंभर प्रसाद मिश्रा और राम अभिलाष सिंह के नाम का खुलासा नहीं किया है

24. अ०सा०-2 श्रीमती लखपति ने गवाही दी है कि आरोपी विशंभर प्रसाद मिश्रा और राम अभिलाष सिंह बचपन से उनके परिचित थे क्योंकि वे उनके गांव के निवासी हैं।

25. सबूतों के मूल्यांकन पर, निचली अदालत ने माना है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट उचित विचार-विमर्श के बाद दर्ज की गई थी और जांच के दौरान आरोपी विशंभर प्रसाद मिश्रा और राम अभिलाष सिंह का नाम जानबूझकर उन्हें झूठा फंसाने के लिए जोड़ा गया था। इस मामले में, स्वतंत्र चश्मदीद गवाह विद्या शंकर ने प्रथम सूचना रिपोर्ट में उल्लेख किया, अभियोजन पक्ष द्वारा पेश नहीं किया गया, जिसने अभियोजन पक्ष के मामले पर संदेह व्यक्त किया। इस मामले में अ०सा०-1 सुरेंद्र कुमार चतुर्वेदी और अ०सा०-2 श्रीमती लखपति कथित चश्मदीद गवाह हैं। अ०सा०-1 ने अपनी जिरह में स्वीकार किया है कि आरोपी विशंभर प्रसाद मिश्रा और राम अभिलाष सिंह आरोपी त्रिवेणी सिंह के भाई हैं और प्राथमिकी दर्ज करने से पहले से ही उसके परिचित थे। नक्शा नज़री में सूचनाकर्ता-पुनरीक्षणकर्ता की नानी का घर नहीं दिखाया गया है। अ०सा०-2 श्रीमती लखपति ने अपने बयान में कहा है कि अदालत के समक्ष परीक्षा के समय उसकी उम्र लगभग सौ साल थी। उसने यह भी स्वीकार किया है कि घटना के दिन वह बीमार थी क्योंकि वह तेज बुखार से पीड़ित थी। उसने आगे स्वीकार किया है कि वह 2-3 क़दम से आगे नहीं देख सकती थी। घटना रात 10:00 बजे हुई है और उसका घर घटनास्थल से दूर है और वह मुश्किल से 2-3 कदम चल पाती है। इसलिए, प्रत्यक्षदर्शी अ०सा०-1 सुरेंद्र कुमार चतुर्वेदी का बयान विश्वास को प्रेरित नहीं करता है और ऐसी गुणवत्ता का नहीं है जिस पर कार्रवाई की जा सके।

26. अ०सा०-2 श्रीमती लखपति के साक्ष्य के मूल्यांकन से यह साबित होता है कि वह केवल 2-3 क़दम की दूरी से ही कुछ देख सकती है और घटना के स्थान पर उसकी उपस्थिति स्थापित नहीं होती है। उसकी गवाही विश्वास को प्रेरित नहीं करती है और अ०सा०-1 और अ०सा०-2 की चश्मदीद गवाही के आधार पर कोई दोषसिद्धि दर्ज नहीं की जा सकती है और विद्वान निचली अदालत ने अभियुक्त-प्रतिपक्षी संख्या-2 से 6 को धारा 147, 148, 302 के तहत दंडनीय अपराध के आरोपों से बरी कर दिया है।

27. ऐसी परिस्थितियों में, प्रस्तुत पुनरीक्षण में योग्यता का अभाव है और तदनुसार, इसे खारिज किया जाता है।

(2023) 1 ILRA 35
पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: लखनऊ 06.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति ब्रिज राज सिंह

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 604/2019

मेल्विन सलदान्हा और अन्य ... पुनरीक्षणकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य. ...विपक्षी गण

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता:
अनुराग शुक्ला

अधिवक्ता विपक्षी गण:
शासकीय अधिवक्ता, देविका सिंह, हरीश पांडे, राजेंद्र कुमार द्विवेदी, सर्वजीत दुबे, सुयश बाजपेयी

ए. आपराधिक कानून – दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 397/401 - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 305 और 306-वर्तमान वाद में, जांच एजेंसी पुनरीक्षणकर्ता की ओर से आशय स्थापित करने में विफल रही जिसके कारण मृतक द्वारा आत्महत्या कारित किया गया- मृतक को केवल पुनरीक्षणकर्ता द्वारा सड़क दुर्घटना में लिप्त के लिए डांटा गया था - वास्तव में मृतक को पुनरीक्षणकर्ता द्वारा आघात या थप्पड़ नहीं मारा गया था - कोई प्रत्यक्षदर्शी नहीं था कि मृतक को पुनरीक्षणकर्ता द्वारा आघात पहुंचाया गया था - प्रतिशोध के प्रस्ताव के साथ एफआईआर दर्ज की गई है - विचारणीय अदालत ने सामग्री पर चर्चा नहीं की गई है और कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया गया है, न्यायालय का प्रासंगिक भाग अकारण रहा है और कोई कारण नहीं बताया गया है - निर्णय यांत्रिक तरीके से लिया गया है - इस प्रकार, वाद को एक निर्देश के साथ विचारणीय न्यायालय के पास नवीन निर्णय पारित करने के लिए प्रेषित किया जाता है। (पैरा 1 से 89)

बी. दुष्प्रेरण के अपराध को साबित करने के लिए, जैसा कि आईपीसी की धारा 107 के तहत निर्दिष्ट है, दोषी का निर्धारण करने के लिए किसी विशेष अपराध को करने की मनःस्थिति प्रदर्शन होनी चाहिए। आपराधिक मनःस्थिति को साबित करने के लिए, यह स्थापित करने या दिखाने के लिए अभिलेख पर कुछ होना चाहिए कि अपीलकर्ता का मस्तिस्क दोषी था और उसने उस मानसिक स्थिति को आगे बढ़ाते हुए मृतक को आत्महत्या के लिए उकसाया। (पैरा 51)

पुनरीक्षण स्वीकृत। (ई-6)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. जियो वर्गीस बनाम राजस्थान राज्य (2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 873

2. कर्नाटक राज्य लोकायुक्त बनाम एम.आर (2019) 7 एससीसी 515

3. सुनील कुमार सेन बनाम मध्य प्रदेश राज्य, याचिका संख्या 11763/2018 (एमपी एचसी)

4. पी.राजमोहन बनाम राज्य, (2018) 0 सुप्रीम (पागल) 3697

5. राज शेखर पालीवाल बनाम छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य (2020) एससीसी ऑनलाइन छः 37,

6. गुरचरण सिंह बनाम पंजाब राज्य (2020) 10 एससीसी 200

7. संजू उर्फ संजय सिंह सेंगर बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2002) 5 एससीसी 371, पृष्ठ 13

8. रूप किशोर मदन बनाम सेंट (2001) सीआरआई एलजे 1219

9. डॉ. जे.पी. भार्गव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (धारा 482 के तहत आवेदन संख्या 6195/2016)

11. कर्नाटक लोकायुक्त बनाम एमआर हिरेमठ (2019) 7 एससीसी 515

12. अजय सिंह बनाम छत्तीसगढ़ राज्य एवं अन्य (2017) 3 एससीसी 330

13. पी.विजयन बनाम केरल राज्य एवं अन्य (2010) 2 एससीसी 398

14. भारत संघ बनाम प्रफुल्ल कुमार सामल और अन्य (1979)3 एससीसी 4

15. सरन्या बनाम भारती और अन्य (2021) 8 एससीसी 583

16. के.काला बनाम सचिव. एडु. विभाग (2022) लाइव लॉ (मैड) 452

17. एम.ई. शिवलिंगमूर्ति बनाम सी.बी.आई बेंगलुरु(2020) 2 एससीसी 768

18. बिहार राज्य बनाम रमेश सिंह (2018) एआईआर 1977

19. भारत संघ बनाम प्रफुल्ल कुमार सामल और अन्य (1979) एआईआर 366

20. स्त्री अत्याचार विरोधी परिषद बनाम दिलीप नाथूमल चोरडिया एवं अन्य (1989) एससीसी 1 715

21. महेंद्र प्रसाद तिवारी बनाम अमित कुमार तिवारी एवं अन्य 2022 का सीआरएलए नंबर 1216

22. राजस्थान राज्य बनाम अशोक कुमार कश्यप, 2021 का सीआरएलए नंबर 407

23. मोहन राम बनाम राजस्थान राज्य और अन्य, सीआरएलआर संख्या 229/2022

24. राकेश कुमार पांडे एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, सीआरएलआर नंबर 1116/2019

(माननीय न्यायमूर्ति ब्रिज राज सिंह द्वारा प्रदत्त)

1. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुराग शुक्ला द्वारा सहाय्यित विद्वान् वरिष्ठ अधिवक्ता श्री डी. डी. चोपड़ा, विरोधी पक्षकार संख्या- 2 के विद्वान् अधिवक्ता श्री सर्वजीत दुबे, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना एवं अभिलेख का परिशीलन किया।

2. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 सहपठित धारा 401 के अंतर्गत यह आपराधिक पुनरीक्षण, पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा सत्र विचारण संख्या34/ 2019, राज्य बनाम फादर मेल्विन सल्दान्हा एवं एक अन्य वाद में अपर सत्र न्यायाधीश- प्रथम, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 14.3.2019 को अपास्त करने एवं विचारण न्यायालय से अभिलेख तलब करने के पश्चात पुनरीक्षणकर्ताओं को उनके विरूद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 305 के अंतर्गत लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त करने की भी प्रार्थना की गई है।

वाद के संक्षिप्त तथ्य : -

3. संक्षेप में वाद के तथ्य इस प्रकार हैं कि मुकदमा अपराध संख्या1121/ 2016, पुलिस थाना- मड़ियांव, जिला- लखनऊ में भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 4.12.2016 को अभिलिखित की गई थी, जिसे बाद में दिनांक 21.3.2017 को भारतीय दंड संहिता की धारा 305 के अंतर्गत आरोप में परिवर्तित कर दिया गया।

4. प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार मृतक ललित यादव, जो विरोधी पक्षकार संख्या- 2 का पुत्र था, कैथेड्रल सीनियर सेकेण्डरी स्कूल, हज़रतगंज, लखनऊ का नियमित छात्र था। मृतक के पिता द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह कथन किया गया है कि उसका पुत्र नियमित रूप से विद्यालय जाता था, किंतु वह माता-पिता से पुनरीक्षणकर्ता संख्या-1 (फादर मेल्विन सल्दान्हा) एवं पुनरीक्षणकर्ता संख्या-2 जेम्स जॉन (पी.टी. अध्यापक जेम्स जॉन) द्वारा प्रताड़ित किये जाने के संबंध में नियमित शिकायत किया करता था। दिनांक 03.12.2016को वादी का पुत्र ललित यादव विद्यालय गया जहाँ वह पुनरीक्षणकर्ता संख्या 1 एवं 2 द्वारा पीटा गया एवं उसे विद्यालय से निष्कासित करने की धमकी दी गई। प्रातः 7:58 बजे वादी के मोबाइल फ़ोन पर पुनरीक्षणकर्ता संख्या 2 द्वारा यह कहते हुए कॉल किया गया कि वह अपने पुत्र को विद्यालय से ले जाए, जिस पर उसने अपनी पत्नी से संपर्क किया एवं पुत्र को विद्यालय से लाने के लिये कहा। जब वादी की पत्नी विद्यालय पहुँची, तो उसे ज्ञात हुआ कि उसके आने की प्रतीक्षा किये बिना ही, पुनरीक्षणकर्ता संख्या-2, पी.टी. अध्यापक ने उसके पुत्र ललित यादव को घर छोड़ दिया था। बच्चों द्वारा उसकी पत्नी को बताया गया कि प्रार्थना सभा के उपरान्त मृतक को पुनरीक्षणकर्ता संख्या-1 एवं 2 द्वारा पीटा गया, मानसिक रूप से प्रताड़ित किया गया एवं विद्यालय से निष्कासित करने की धमकी दी गई। जब वादी की पत्नी घर वापस आ आ रही थी, उसे पुनरीक्षणकर्ता संख्या-2, पी.टी. अध्यापक द्वारा बताया गया कि उसके पुत्र को उसने उसके घर पर छोड़ दिया है। उसकी पत्नी घर पहुँची एवं देखा कि उसके पुत्र ने अलमारी में रखी लाइसेंसी रिवाल्वर से आत्महत्या कर ली है। पड़ोसियों की सहायता से वह अपने पुत्र को ट्रॉमा-सेण्टर ले कर आई, किन्तु चिकित्सा के दौरान उसकी मृत्यु हो गई। पुनरीक्षणकर्ताओं ने उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट को चुनौती दी जिसे इस न्यायालय द्वारा आदेश दिनांक 20.2.2018 द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि अन्वेषण पूर्ण हो चुका था एवं आरोप पत्र प्रस्तुत किया जाने वाला था।

5. पुनः पुनरीक्षणकर्ताओं ने अन्वेषण की शुचिता को चुनौती देते हुए रिट याचिका संख्या 17509 (M/B) 2018 प्रस्तुत की एवं स्वतंत्र, निष्पक्ष, सत्य एवं तार्किक अन्वेषण हेतु प्रार्थना की, एवं यह प्रार्थना भी की कि वाद किसी अन्य अन्वेषण एजेंसी जो सौंप दिया जाए, जिस निमित्त दिनांक 20.4.2018 को नोटिस जारी किये गए।

6. दिनांक 14.3.2018 को भारतीय दंड संहिता की धारा 305 के अंतर्गत आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया। इसे धारा 482 के अंतर्गत प्रार्थनापत्र प्रस्तुत कर चुनौती दी गई जो कि धारा 482/ 378/ 407 के अंतर्गत वाद संख्या 2653/ 2018 था, एवं जिसे धारा 482 के अंतर्गत प्रार्थनापत्र संख्या 2653/ 2018 (मेल्विन सल्दान्हा एवं एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य) के रूप में

पुनः संख्या प्रदान की गई, एवं जिसे दिनांक 22.5.2018 को निस्तारित किया गया, एवं पुनरीक्षणकर्ताओं को उन्मोचन के उद्देश्य से प्रार्थनापत्र प्रस्तुत करने की स्वतन्त्रता दी गई।

7. पुनरीक्षणकर्ताओं ने माननीय उच्चत्तम न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) 5071/ 2018 (मेल्विन सल्दान्हा एवं एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) प्रस्तुत की, जिसमें उच्चत्तम न्यायालय ने आदेश दिनांक 19.8.2018 द्वारा नोटिस जारी किये एवं निदेश दिया कि पुनरीक्षणकर्ताओं की गिरफ्तारी नहीं की जायेगी।

8. इस मध्य पुनरीक्षणकर्ताओं ने विद्वान् जिला एवं सत्र न्यायाधीश, लखनऊ के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अंतर्गत उन्मोचन हेतु प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया। विद्वान् जिला एवं सत्र न्यायाधीश, लखनऊ ने पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा उन्मोचन हेतु प्रस्तुत प्रार्थनापत्र, दिनांक 14.3.2019 को खारिज कर दिया। वर्तमान पुनरीक्षण में आदेश दिनांकित 14.3.2019 को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है।

9. इस मध्य पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा उच्च न्यायालय के विरुद्ध प्रस्तुत विशेष अनुमति याचिका संख्या 5071/ 2018 को आदेश दिनांकित 28.4.2022 द्वारा निस्तारित कर दिया गया। उच्चतम न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिया एवं टिप्पणी की कि पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष उन्मोचन हेतु प्रस्तुत प्रार्थनापत्र अस्वीकृत कर दिया गया था, जिसे वर्तमान पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है। उच्चतम न्यायालय ने अंततः टिप्पणी की कि विशेष अनुमति याचिका में पारित अंतरिम आदेश दिनांक 6.1.2020 लागू होगा एवं अगले छह मास तक जारी रहेगा, एवं उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश अंतिम होगा। यह निदेश भी जारी किया गया कि पक्षकारगण द्वारा प्रस्तुत तर्क विधि अनुरूप निर्णीत होने हेतु शेष छोड़ दिए गए हैं।

पुनरीक्षणकर्ताओं के तर्क : -

पुनरीक्षणकर्ताओं ने इस न्यायालय के समक्ष निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये हैं : -

10. पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वानाधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया है विरोधी पक्षकार संख्या 2, जो मृतक स्व. ललित यादव का पिता है, द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अंतर्गत वाद संख्या 1121/ 2016 की प्रथम सूचना रिपोर्ट (अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा धारा 305 में परिवर्तित) के आधार पर अन्वेषण एजेंसी, पुलिस ने दंड प्रकिर्या संहिता की धारा 173 के अंतर्गत अपर सत्र न्यायाधीश - प्रथम, लखनऊ के समक्ष अन्वेषण पूर्ण होने पर आरोपपत्र प्रस्तुत किया।

11. माननीय उच्च न्यायालय द्वारा धारा 482/ 378/ 407 के अंतर्गत वाद संख्या 2653/ 2018 में आदेश दिनांक 22.05.2018 के माध्यम से प्रदान की गई स्वतन्त्रता के अनुसरण में, वर्तमान पुनरीक्षणकर्ताओं ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अंतर्गत उन्मोचन हेतु, अपर सत्र न्यायाधीश-1 के समक्ष प्रार्थनापत्र संख्या 34/ 2019, राज्य बनाम फादर मेल्विन सलदान्हा एवं एक अन्य प्रस्तुत किया जो अपर सत्र न्यायाधीश-1, लखनऊ द्वारा आदेश दिनांक 14.03.2019 द्वारा खारिज कर दिया गया।

12. यह कि पुनरीक्षणकर्ताओं ने अपर सत्र न्यायाधीश-1, लखनऊ द्वारा उपरोक्त आदेश दिनांक 14.03.2019, जिसके द्वारा वर्तमान पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत उन्मोचन प्रार्थनापत्र ख़ारिज कर दिया था, के विरुद्ध वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण प्रस्तुत किया था।

13. यह कि यह कि अन्वेषण एजेंसी (अभियोजन) के वाद का आधार यह है कि पुनरीक्षणकर्तागण फादर मेल्विन सलदान्हा एवं जेम्स जॉन ललित यादव द्वारा आत्महत्या किये जाने हेतु उत्तरदायी हैं क्यों कि उन्होंने अंशुल गुप्ता के साथ ललित यादव को क्रूरता से पीटने के उपरान्त ललित यादव को अपमानित किया था क्यों कि मृतक ललित यादव द्वारा मोटरोसाइकिल चलाते समय एक मार्ग दुर्घटना कारित की गई थी जिस पर अंशुल गुप्ता पीछे बैठा हुआ था।

14. सुविधा हेतु भारतीय दंड संहिता की धारा 305 प्रस्तुत की जा रही है : -

305. शिशु या उन्मत्त व्यक्ति की आत्महत्या का दुष्प्रेरण- यदि कोई अठारह वर्ष से कम आयु का व्यक्ति, कोई उन्मत्त व्यक्ति, कोई विपर्यस्त चित्त व्यक्ति, कोई जड़ व्यक्ति या कोई व्यक्ति, जो मत्तता की अवस्था में है, आत्महत्या कर ले तो जो कोई ऐसी आत्महत्या के किये जाने का दुष्प्रेरण करेगा, वह मृत्यु, या [आजीवन कारावास] या कारावास से जिसकी अवधि दस वर्ष से अधिक की न हो सकेगी, दण्डित किया जाएगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।

उपरोक्त के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि आत्महत्या हेतु उत्प्रेरित करने वाले व्यक्ति को भारतीय दंड संहिता की धारा 305 के अनुसार अभियोजित एवं दण्डित किया जाएगा, जिसका तात्पर्य यह है कि कोई भी व्यक्ति, जो 18 वर्ष से कम आयु के किसी व्यक्ति को आत्महत्या हेतु उत्प्रेरित करता है, आत्महत्या कारित किये जाने

उत्तरदाई माना जाएगा एवं तदनुसार दण्डित किया जाएगा। आरोप एवं अभियोजन हेतु अनिवार्य शर्त ऐसे व्यक्ति द्वारा आत्महत्या हेतु उत्प्रेरण है।

15. भारतीय दंड संहिता की धारा 107 में उत्प्रेरण से सम्बंधित प्रावधान है जो निम्नवत हैं : -

107. किसी बात का दुष्प्रेरण- वह व्यक्ति किसी बात के किये जाने का दुष्प्रेरण करता है, जो -

पहला- उस बात को करने के लिये किसी को उकसाता है; अथवा

दूसरा- उस बात को करने के लिये किसी षड्यंत्र में एक या अधिक अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के साथ सम्मिलित होता है, यदि उस षड्यंत्र के अनुसरण में, और उस बात को करने के उद्देश्य से, को कार्य या अवैध लोप घटित हो जाए; अथवा

तीसरा- उस बात के किये जाने में किसी कार्य या अवैध लोप द्वारा साशय सहायता करता है।

स्पष्टीकरण 1 - जो कोई व्यक्ति जानबूझ कर दुर्व्यपदेशन द्वारा, या तात्विक तथ्य, जिसे प्रकट करने के लिये वह आबद्ध है, जानबूझ कर छिपाने द्वारा, स्वेच्छया किसी बात का किया जाना कारित या उपाप्त करता है, उपाप्त करने का प्रयत्न करता है, वह उस बात का किया जाना उकसाता है, यह कहा जाता है।

16. उपरोक्त दो धाराओं के सामूहिक अध्ययन से यह स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति को धारा 305 के अंतर्गत अभियोजित करने हेतु धारा 107 के अंतर्गत उत्प्रेरण अनिवार्य है, एवं धारा 107 अंतर्गत उपबंधित अनिवार्य घटकों की अनुपस्थिति में अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 305 के अंतर्गत आरोपित नहीं किया जा सकता। अतः अन्वेषण एजेंसी का यह दायित्व है वह अन्वेषण करे एवं यह स्थापित करे कि वे व्यक्ति, जिनके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 305 के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है, आतमहत्या करने वाले व्यक्ति द्वारा आत्महत्या किये जाने हेतु उत्तरदायी हैं।

17. तीन अनिवार्य शर्तें, जिनमें से प्रत्येक किसी व्यक्ति द्वारा आत्महत्या किये जाने के क्रम में पूर्ण होनी चाहिये :-

i. आत्महत्या हेतु उकसाना

ii. व्यक्ति को आत्महत्या के लिए उत्प्रेरित करने का षड्यंत्र

iii. जानबूझकर किसी कार्य या चूक द्वारा आत्महत्या में सहायता करना

18. यदि धारा 305 के अंतर्गत अभियोजित किये जाने वाले किसी व्यक्ति के विरुद्ध उपरोक्त शर्तों में से कोई भी उपस्थित पाई जाती है, तो ऐसे व्यक्ति को आत्महत्या के उत्प्रेरण हेतु उत्तरदायी धारित किया जाएगा। इसके विपरीत, उपरोक्त 3 शर्तों में से किसी के अभाव में, किसी व्यक्ति को धारा 305 के तहत अपराध करने के लिए उत्तरदायी धारित नहीं किया जा सकता है।

19. अपराध कारित करना, षड्यंत्र करना अथवा सहायता करना, तीनों ही स्थितियों में, आत्महत्या के दुष्प्रेरण हेतु दोषसिद्ध करने के लिये के लिए आरोपी की प्रत्यक्ष और सक्रिय सहभागिता अनिवार्य है।भारतीय दंड संहिता में में 'उकसाना' शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है। अभियुक्त की ओर से सक्रिय उकसावा होना चाहिए और घटना के सन्निकट होना चाहिए। कई मामलों में यह धारित किया गया है कि 'उकसावे' के गठन हेतु , किसी व्यक्ति द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को उकसाने हेतु , उसे दूसरे व्यक्ति को भड़काना, उकसाना, आग्रह करना अथवा उकसाने या अग्रिम कृत्य हेतु अन्य व्यक्ति को प्रोत्साहित करना आवश्यक है। बिना किसी आपराधिक मनःस्थिति के के मृतक को अपना जीवन समाप्त करने का सुझाव देने का मात्र कथन आत्महत्या के लिए उकसाने की परिधि में सम्मिलित नहीं होगा। आपराधिक मनःस्थिति उकसाने का एक आवश्यक घटक है और आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरण अथवा उकसाना तभी माना जाएगा जब ऐसा दुष्प्रेरण जानबूझकर किया जाना पाया गया हो।

20. उच्चतम न्यायालय ने **जिओ वर्गीस बनाम राजस्थान राज्य, 2021 SCC Online SC 873**, वाद में, जहाँ कक्षा 9 के एक छात्र ने आत्महत्या कर ली थी एवं आत्महत्या से पूर्व लिखे गए एक नोट में यह आरोप लगाया था कि उसके पी टी अध्यापक ने उसे प्रताड़ित किया था एवं सबके सामने उसे अपमानित किया था। न्यायालय ने धारा 306 के अंतर्गत दोषसिद्धि हेतु दो घटकों को महत्त्व दिया, जिनमें प्रथम यह था कि उकसावे का कृत्य प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष होना चाहिये। किसी अन्य द्वारा प्रताड़ना का आरोप मात्र ही पर्याप्त न होगा। द्वितीय यह कियुक्तियुक्तता होनी चाहिये। यदि मृतक अतिसंवेदनशील था एवं यदि अभियक्त पर लगाए गए आरोप, समान परिस्थितियों में किसी अन्य व्यक्ति को आत्महत्या हेतु उकसाने के लिये अन्यथा पर्याप्त नहीं है, तब अभियुक्त को आत्महत्या हेतु दुष्प्रेरित करने का अपराधी मानना न्यायोचित न होगा। अतः उच्चतम न्यायलय ने किसी विशिष्ट आरोप की अनुपस्थिति एवं अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के अभाव में प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द कर दिया क्योंकि धारा 306 के अंतर्गत दुष्प्रेरण सिद्ध करने हेतु अनिवार्य घटक उपलब्ध नहीं थें।

21. संजू उर्फ संजय सिंह सेंगर बनाम मध्य प्रदेश राज्य 2002 एआईआर एससी 1998, के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने व्यक्ति को दोषमुक्त कर दिया है और भा०द०सं० की धारा 306 के अन्तर्गत प्रस्तुत आरोप पत्र को

रद्द कर दिया है, जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि अभियोजन पक्ष के बयान मात्र से भा०द०सं० की धारा 306 के अन्तर्गत आरोप लगाने का उद्देश्य पूरा नहीं होगा। आपराधिक कार्यवाही को गति में लाने हेतु आपराधिक मनःस्थिति की उपस्थिति महत्वपूर्ण और अपरिहार्य घटक है। यह एक सामान्य जानकारी है कि विवाद या हाथापाई के दौरान बोले गए कुछ शब्दों को अनुचित आशय से बोला गया नहीं माना जा सकता है।

22. दिल्ली उच्च न्यायालय ने रूप किशोर मदन बनाम राज्य मामले में भा०द०सं० की धारा 306 के अन्तर्गत दायर प्रथम सूचना रिपोर्ट को यह उल्लेख करते हुए रद्द कर दिया है कि सुसाइड नोट में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि मृतक ने अभियुक्तगण के कारण आत्महत्या की, लेकिन अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं है जो प्रदर्शित करे कि दुष्प्रेरण के घटक उपलब्ध थें, अतः यह नहीं कहा जा सकता है कि भा०द०सं० की धारा 306 के अन्तर्गत अपराध कारित किया गया। दुष्प्रेरण प्रत्यक्ष नहीं होने पर इसका निर्धारण वाद की परिस्थितियों से करना पड़ता है।

23. वर्तमान वाद में, यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि अन्वेषण एजेंसी पुनरीक्षणकर्ताओं की ओर से आपराधिक मनःस्थिति स्थापित करने में विफल रही है, जिसके कारण मृतक ललित यादव ने आत्महत्या की।

24. वर्तमान मामले में मृतक को मात्र बाइक चलाते समय सड़क दुर्घटना में सम्मिलित होने पर पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा डाँटा गया था, वह भी बिना हेलमेट और वैध ड्राइविंग लाइसेंस के, जो कि कैथेड्रल सीनियर सेकेंडरी विद्यालय की आचार संहिता के विरुद्ध था, जहाँ पुनरीक्षणकर्ता प्रधानाचार्य एवं पी.टी. अध्यापक के रुप में तैनात हैं। विद्यालय परिसर के अंदर और बाहर छात्रों का उचित अनुशासन सुनिश्चित करना पुनरीक्षणकर्ताओं का कर्तव्य है।

25. कैथेड्रल सीनियर सेकेंडरी विद्यालय की आचार संहिता में यह प्रावधान है कि जो छात्र कदाचार करते हैं और नियम तोड़ते हैं, उन्हें कक्षा/विद्यालय से निलंबित कर दिया जाएगा और उन्हें विद्यालय से निष्कासित किया जा सकता है।

26. उपरोक्त तथ्य अंशुल गुप्ता के बयान से भी स्पष्ट है, जो मृतक की बाइक पर उस समय पीछे बैठा हुआ था, जब मृतक दुर्घटना का शिकार हुआ और उस घटना का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी था। दरअसल, अंशुल गुप्ता ने दं०प्र०सं० की धारा 161 के अन्तर्गत अभिलिखित किए गए अपने बयान में स्पष्ट रूप से कहा था कि उस दिन प्रधानाचार्य अर्थात पुनरीक्षणकर्ता मेल्विन सलदाहना ने उसे थप्पड़ मारा था, जब कि पुनरीक्षणकर्ता ने दुर्घटना के कारणों और उसके बाद की घटनाओं को समझाने की कोशिश की और यह भी कि ललित यादव को पुनरीक्षणकर्ता द्वारा न तो पीटा गया और न ही थप्पड़ मारा गया।

27. अंशुल गुप्ता के बयान को पढ़ने से यह भी स्पष्ट है कि मृतक अपने पिता से डरता था और यह मानकर चल रहा था कि जब उसके पिता को पता चलेगा कि उसे विद्यालय से निलंबित कर दिया गया है तो उसे डाँट पड़ेगी। अंशुल गुप्ता के बयान से यह स्पष्ट होता है कि मृतक को यह भी डर था कि उपरोक्त घटना के कारण उसे विद्यालय से निष्कासित किया जा सकता है या परीक्षा देने से प्रतिबन्धित किया जा सकता है, जिससे यह संकेत मिलता है कि मृतक अतिसंवेदनशील था।

28. वर्तमान मामले में प्रथम सूचना रिपोर्ट वादी द्वारा दर्ज की गई है, जो मृतक का पिता है और उत्तर प्रदेश पुलिस में उप-निरीक्षक के पद पर कार्यरत है, तथा पुनरीक्षणकर्ताओं के विरुद्ध जाँच को प्रभावित करने की स्थिति में है। विचारण न्यायालय ने उन्मोचन प्रार्थनापत्र पर विचार करते समय इस विशेष तथ्य को पूर्णतः उपेक्षित कर दिया है।

29. वर्तमान मामले में ऐसा कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है जो इस तथ्य की पुष्टि करता हो कि मृतक को पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा निर्दयता से पीटा गया था। प्रथम सूचना रिपोर्ट के साथ-साथ मृतक के पिता अमर नाथ यादव के दं०प्र०सं० की धारा 161 के अन्तर्गत दिए गए बयान पर एक साथ विचार करने से पता चलता है कि प्रतिशोध की भावना से प्राथमिकी दर्ज की गई है।

30. यह कि मृतक के प्रति पुनरीक्षणकर्ता के कठोर व्यवहार के बारे में एक काल्पनिक शिकायत बनाने का असफल प्रयास किया गया है, यद्यपि एक भी शिकायत कभी नहीं की गई, यहाँ तक कि व्यक्तिगत संपर्क भी नहीं किया गया और न ही अधिकारियों को इसके सम्बन्ध में कोई पत्र प्रेषित किया गया। अतः, कथित आरोप और कुछ नहीं अपितु पुनरीक्षणकर्ताओं के विरुद्ध मृतक के पिता के प्रतिशोधपूर्ण व्यवहार को उजागर करते हैं।

31. सबूत का भार सदैव अभियोजन पक्ष पर होता है और यह कभी नहीं बदलता। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ विभिन्न उच्च न्यायालयों के निर्णयों के मर्म के दृष्टिगत यदि वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष का कथन भले ही अल्पावधि हेतु स्वीकार कर लिया गया हो (यद्यपि स्वीकार नहीं किया गया) मृतक को आत्महत्या हेतु दुष्प्रेरित करने से संबंधित अपराध के मानसिक इरादे के किसी भी घटक का संकेत नहीं देता है। न ही ऐसा करने के पीछे

पुनरीक्षणकर्ताओं का कोई सक्रिय या निष्क्रिय उद्देश्य है क्योंकि वे प्रधानाचार्य और शिक्षक हैं और प्रत्येक शिक्षक अपने शिष्य को सफलता के शिखर पर देखना चाहता है।

32. दं०प्र०सं० की धारा 227 में प्रावधान है कि न्यायालय को संतुष्ट होना चाहिए कि अभियुक्त के विरुद्ध लगाया गया आरोप तुच्छ नहीं है और उसके विरुद्ध कार्यवाही हेतु कुछ सामग्री है। धारा 227 वैधानिक रूप से विचारण न्यायाधीश को विशेष रूप से अधोउल्लिखित चार अनिवार्य आवश्यकताओं का अनुपालन करने के उपरान्त सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय मामलों में अभियुक्त को उन्मोचित करने हेतु बाध्य करती है;
(1) वाद के अभिलेख और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार;
(2) उस संबंध में अभियुक्त और अभियोजन पक्ष के तर्क सुनना ;
(3) इस बात पर विचार करना कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने का कोई आधार नहीं है;
(4) आरोपमुक्ति के कारणों को अभिलिखित करना
सुविधा हेतु दं०प्र०सं० की धारा 227 अधोउद्धृत है:

***227. उन्मोचन**-यदि मामले के अभिलेख और उसके साथ दी गई दस्तावेजों पर विचार कर लेने पर, और इस निमित्त अभियुक्त और अभियोजन के निवेदन की सुनवाई कर लेने के पश्चात् न्यायाधीश यह समझता है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने हेतु पर्याप्त आधार नहीं है तो वह अभियुक्त को उन्मोचित कर देगा और ऐसा करने के अपने कारणों को लेखबद्ध करेगा ।*

33. यह कि इस क्षेत्राधिकार (उन्मोचन प्रार्थनापत्र) के प्रयोग को नियंत्रित करने वाले मापदंडों को सर्वोच्च न्यायालय के कई निर्णयों में अभिव्यक्त किया गया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **(कर्नाटक राज्य लोकायुक्त बनाम एम.आर. हिरेमथ, 2019 (7) एससीसी 515)** वाद में टिप्पणी की है कि उन्मोचन प्रार्थनापत्र पर विचार करने के चरण में, न्यायालय को इस धारणा पर कार्यवाही करनी चाहिए कि अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर ली गयी सामग्री सत्य होनी चाहिए और न्यायालय को यह निर्धारित करने हेतु सामग्री का मूल्यांकन करना चाहिए कि क्या सामग्री से प्रत्यक्षतः प्रकट होने वाले तथ्य अपराध का गठन करने हेतु आवश्यक घटकों के अस्तित्व को दर्शाते हैं।

34. स्वतंत्र, निष्पक्ष और पारदर्शी न्याय अपरिहार्य है और यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत गारंटीकृत प्रत्येक नागरिक का मौलिक अधिकार है। यह बिंदु भली-भाँति निर्धारित है कि स्वतंत्र और निष्पक्ष जाँच स्वतंत्र विचारण का अभिन्न अंग है। यहाँ वर्तमान मामले में अन्वेषण अधिकारी रत्ती भर भी साक्ष्य एकत्र करने या प्रदर्शित करने में सक्षम नहीं है, जो प्रथम दृष्टया यह भी दर्शा सके कि अपराध कारित करने में किसी भी पुनरीक्षणकर्ता का कोई बौद्धिक आशय था।

पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने विभिन्न निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया है जो निम्नवत हैं:-

35. **सुनील कुमार सेन बनाम मध्य प्रदेश राज्य,** रिट याचिका संख्या 11763/2018 (**MP HC**) में माननीय उच्च न्यायालय मध्य प्रदेश, जबलपुर ने धारित किया है कि:

"10. याचिका में वर्णित कथन से, ऐसा प्रतीत होता है कि मृतक, विद्यालय का समय समाप्त होने से पहले विद्यालय छोड़ रहा था और इस कृत्य का पता चलने पर कथित तौर पर उसे प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा थप्पड़ मारा गया और प्रतिवादी संख्या 4 ने उसे चेतावनी दी। यद्यपि, यह मानना कि उपरोक्त आरोपों के आधार पर भा०द०सं० की धारा 306 के अन्तर्गत अपराध हेतु प्रतिवादी संख्या 4 के विरुद्ध जाँच होनी चाहिए, अनावश्यक है। ऐसी जाँच से प्रतिवादी संख्या 4 को गिरफ्तार कर लिया जाएगा एवं शिक्षा प्रदान करने में सम्मिलित सभी लोगों को यह संदेश जाएगा कि यदि छात्रों को चेतावनी दी गई और दंडित किया गया तो व्यक्तिगत असुविधा और विधिक कार्यवाही का सामना करना पड़ सकता है।
11. इस प्रकार, आरोपों की प्रकृति को देखते हुए, जहाँ बाद में एक सुधार हुआ है कि मृतक को प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा एक वैन में विद्यालय वापस ले जाया गया था, जहाँ उसे पुनः पीटा गया था, जिसकी प्रामाणिकता और विश्वसनीयता संदिग्ध है क्योंकि प्रथम शिकायत उसी याचिकाकर्ता द्वारा पुलिस प्राधिकारी को दी गई थी, यह तथ्य इसकी अनुपस्थिति से स्पष्ट है। अतः, इस न्यायालय की राय है कि प्रतिवादी संख्या 4, जो कि सरकारी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय का प्रधानाचार्य है, पर कार्यवाही की तलवार लटकाना और उसे पुलिस अन्वेषण से खतरे में डालना न्याय का मखौल होगा। यहाँ याचिकाकर्ता द्वारा लगाया गया आरोप, भा०द०सं० की धारा 306 के अन्तर्गत किसी संज्ञेय अपराध का घटित होना प्रकट नहीं करता है। इन परिस्थितियों में, याचिका खारिज की जाती है।"

36. माननीय उच्च न्यायालय मद्रास ने **पी. राजमोहन बनाम राज्य एवं अन्य Cri. O.P.(MD) No.19293/2014** में आदेश दिनांक 28.09.2018 के अन्तर्गत भा०द०सं० की धारा 306 से संबंधित इसी प्रकार के मुद्दे से निपटते हुए धारित किया है कि:

"13. "दुष्प्रेरण" शब्द उकसाने या कुछ कठोर या अनुचित कार्रवाई करने या उकसाने या भड़काने का संकेत देता है। अतः, आपराधिक मनःस्थिति की उपस्थिति,

दुष्प्रेरण का आवश्यक सहवर्ती है। यह सामान्य जानकारी है कि जो शब्द बोले गए हैं अथवा झगड़े या आवेश में कहे गए शब्दों को आपराधिक मनःस्थिति के कारण नहीं माना जा सकता। द्वितीय यह कि कहा जाता है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा मृतका को अपशब्द कहे गए थे, जब उन्हें पता चला था कि मृतका ने आंगनवाड़ी शिक्षिका के झोले से पैसे चुराए हैं। पैसे भी उसके पास से बरामद किए गए। तृतीय, मृतका ने विद्यालय में दोपहर का भोजन किया और दोपहर के भोजन के बाद की कक्षाओं में भाग लिया और विद्यालय खत्म होने के बाद ही वह विद्यालय से निकली और घर पहुंँचने के बाद ही उसने आत्महत्या कर ली। ये सभी कारक स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि यह याचिकाकर्ताओं द्वारा दिए गए कथनों का प्रत्यक्ष परिणाम नहीं हो सकता है।

14. ....

15. इस मामले में ध्यातव्य एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता सरकारी विद्यालय के शिक्षक होने के नाते संस्थान के हित में छात्र द्वारा की गई किसी भी गलती को सुधारते हैं ताकि अच्छी आदतें विकसित की जा सकें और पैसे चोरी करने जैसी बुरी आदतों से छुटकारा मिल सके। वास्तव में, मृतका (लड़की) के पिता को बुलाया गया था और यह कहा गया है कि उन्होंने अपनी पुत्री के आचरण हेतु माफीनामा दिया और यह वचन भी दिया कि दोबारा ऐसा नहीं होगा। मामले को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि याचिकाकर्ताओं का कृत्य आत्महत्या हेतु दुष्प्रेरण की श्रेणी में आएगा।

16. शशि प्रभा देवी बनाम असम राज्य [2006-Cri.LJ-1762] के मामले में, आरोप यह है कि आरोपी, एक विद्यालय की प्रध्यापिका ने दसवीं कक्षा में छात्रों के रजिस्टर से मृतक का नाम गलत तरीके से काट दिया, जिसने मृतक को आत्महत्या अपराध कारित करने हेतु दुष्प्रेरित किया और गुजरात उच्च न्यायालय ने धारित किया है कि ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जो यह दर्शाता हो कि आरोपी ने किसी भी समय आत्महत्या हेतु कार्रवाई हेतु सुझाव दिया या संकेत दिया और जब आरोपी किसी भी गलत आदेश को सही करने का हकदार था, जैसा कि वास्तव में मृतक ने नौवीं कक्षा की परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की, आरोपी के विरुद्ध आत्महत्या हेतु उकसावे या दुष्प्रेरण का कोई मामला नहीं बना।

17. नेट्टई दत्ता बनाम राज्य [2005-2-एससीसी-659] मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय के आदेश को बरकरार रखते हुए भा०द०सं० की धारा 306 के अन्तर्गत प्रस्तुत आरोप पत्र को इस आधार पर रद्द कर दिया कि धारा 306 के अन्तर्गत अपराध तभी स्थापित हो सकेगा जब अपराध कारित करने हेतु दुष्प्रेरण हो।

18. सोंती रामकृष्ण बनाम सोंती शांति श्री और एक अन्य [2009-1- एससीसी-554], के वाद में प्रतिपादित किए गए एक हालिया निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया है कि यद्यपि सामान्यतः आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत प्रारंभिक हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए, तथापि तथ्यों पर शिकायत को रद्द करना उचित और आवश्यक था। यह भी धारित किया गया है कि बिना किसी आशय के क्रोध या भावना के आवेश में कहे गए शब्दों को दुष्प्रेरण नहीं कहा जा सकता है।

12. वर्तमान वाद में उद्धृत निर्णयों की श्रृंखला में, भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्देशित उपरोक्त सुस्थापित सिद्धांतों को लागू करके याचिकाकर्ता द्वारा कहे गए शब्दों को दुष्प्रेरित करने वाला नहीं कहा जा सकता। उक्त परिस्थितियों में, निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता ने किसी भी प्रकार से मृतक को आत्महत्या हेतु दुष्प्रेरित किया था या वह मृत लड़के द्वारा आत्महत्या कारित करने हेतु जिम्मेदार था।

13. अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों की समग्रता और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के दृष्टिगत, इस न्यायालय का मानना है कि याचिकाकर्ता को मृत लड़के द्वारा की गई आत्महत्या हेतु जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है क्योंकि मृत लड़के को आत्महत्या हेतु याचिकाकर्ता की ओर से कोई दुष्प्रेरण या उकसाहट नहीं था।

37. **राज शेखर पालीवाल बनाम छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य, 2020 एससीसी ऑनलाइन सीएचएच 37** के मामले में भा०द०सं० की धारा 306 से संबंधित इसी तरह के मुद्दे का विचारण करते हुए माननीय छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर ने धारित किया है कि: -

"14. दं०प्र०सं० की धारा 161 के अन्तर्गत साक्षियों के बयान पर गौर करने पर यह पाया गया कि ऐसे अवसर और कारण थे जिसके लिए आवेदकों द्वारा मृतका की आलोचना की जाती थी। ऐसा नहीं प्रतीत होता है कि आवेदकों ने किसी भी झूठे बहाने की कार्रवाई की थी, उनके कार्य करने या प्रतिक्रिया करने या मृतका की ओर से किसी गतिविधि या विफलता के संबंध में कारण थे, जिसका उल्लेख साक्षीगण- करमबीर शास्त्री और सुकांति शास्त्री के बयानों में किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मृतका बहुत गंभीर थी। वह काफी संवेदनशील थी और ऐसे मौकों पर, जब आवेदकों द्वारा उसकी आलोचना की जाती थी, वह परेशान हो जाती थी। मृतका द्वारा आत्महत्या करने से पूर्व की समस्त परिस्थितियों के दृष्टिगत, यह कहा जा सकता है कि आवेदकों ने तब कार्रवाई की जब उन्होंने मृतका की ओर से कुछ गलती पाई। विद्यालय के प्रधानाचार्य और शिक्षक होने के नाते, आवेदकों को अपने छात्रों को अनुशासन में रखने का अधिकार है। शिक्षा प्रदान करना एक गंभीर कार्य है और प्रधानाचार्य और शिक्षक किसी भी छात्र द्वारा की गई गलतियों या चूक को नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं। और उन्हें स्पष्ट होना होगा

और सख्ती दिखानी होगी ताकि छात्र अनुशासन में रहने और प्रधानाचार्य और शिक्षक की आज्ञा का पालन करने का ध्यान रखें। मेरा मानना है कि जो करना आवश्यक था उसके अतिरिक्त आवेदकों ने कुछ भी नहीं किया है।

15.................

16................

17...............................

18. इस विशेष मामले में, इस आवेदकों ने तब कार्रवाई की जब उनके पास ऐसा करने के कारण थे। इन घटनाओं के कारण मृतका परेशान रहती थी, ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह ज्ञात हो कि आवेदकों का आशय था कि मृतका जाकर आत्महत्या कर लेगी, अतः, यह नहीं कहा जा सकता है कि उनकी ओर से कोई आपराधिक मनःस्थिति थी, न ही ऐसा कहा जा सकता है कि आवेदकों ने ऐसी कोई परिस्थिति निर्मित की थी जिससे मृतका बाहर नहीं आ सकी और वह आत्महत्या करने को बाध्य हो गयी थी।

19. इसके अतिरिक्त, इस मामले में जो अन्य बातें साक्ष्य में मौजूद हैं यह हैं कि सुसाइड नोट पर तारीख 10.02.2018 लिखी है और मृतका द्वारा 20.02.2018 को आत्महत्या की गई है। आवेदकों के विरुद्ध कथित कृत्य पूर्व की तारीखों के हैं और उल्लिखित अंतिम तारीख 16.01.2018 है, जो घटना की तारीख से लगभग एक महीने पूर्व की है। अत: आवेदकों एवं मृतका के बीच घटित सभी घटनाओं को आत्महत्या की घटना से जोड़ने में कठिनाई प्रतीत होती है। अतः, मेरा मानना है कि इस मामले में, आरोप यद्यपि आवेदकों के विरुद्ध हैं, लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह ज्ञात हो कि इन आवेदकों ने मृतका को आत्महत्या हेतु किसी भी प्रकार का दुष्प्रेरण किया है। अतः, इन आवेदकों के विरुद्ध भा०द०सं० की धारा 34 सपठित धारा 306 के अन्तर्गत आरोप का निर्धारण त्रुटिपूर्ण है जो अपास्त किये जाने योग्य है। अतः, पुनरीक्षण याचिका स्वीकृत की जाती है और आवेदक के विरुद्ध आरोप निर्धारित करने के प्रश्नगत आदेश को अपास्त किया जाता है। आवेदकों को आरोपमुक्त किया जाता है।"

38. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **गुरुचरण सिंह बनाम पंजाब राज्य (आपराधिक अपील संख्या 40/2011)** के मामले में आदेश दिनांकित 01.10.2020 के द्वारा भा०द०सं० की धारा 306 से संबंधित बिंदु का निस्तारण करते समय यह धारित किया है कि:

13. भा०द०सं० की धारा 107 "दुष्प्रेरण" को परिभाषित करती है और इस मामले में, धारा के निम्नलिखित भाग पर विचार किया जाएगा: -

"107. किसी बात का दुष्प्रेरण - एक व्यक्ति किसी बात के किये जाने का दुष्प्रेरण करता है, जो-

*पहला- उस बात को करने के लिए किसी व्यक्ति को उकसाता है; अथवा **** **** **** **** तीसरा - उस बात के किये जाने में किसी कार्य या अवैध लोप द्वारा साशय सहायता करता है।"*

14. ऊपर उद्धृत परिभाषा यह स्पष्ट करती है कि जब भी कोई व्यक्ति किसी कार्य या अवैध लोप हेतु उकसाता है या साशय सहायता करता है, तो यह कहा जा सकता है कि उस व्यक्ति ने उस बात के किये जाने करने हेतु उकसाया है।

15. जैसा कि सभी अपराधों में होता है, आपराधिक मनःस्थिति स्थापित की जानी चाहिए। दुष्प्रेरण के अपराध को सिद्ध करने हेतु, जैसा कि भा०द०सं० की धारा 107 के अन्तर्गत निर्दिष्ट है, किसी विशेष अपराध को करने हेतु मनःस्थिति दिखाई देनी चाहिए, ताकि दोषी का निर्धारण किया जा सके। आपराधिक मनःस्थिति को सिद्ध करने हेतु, यह स्थापित करने या दिखाने हेतु अभिलेख पर कुछ होना चाहिए कि अपीलकर्ता की आपराधिक मानसिकता थी और उसने उस आपराधिक मानसिकता के अनुक्रम में मृतका को आत्महत्या हेतु उकसाया। आपराधिक मनःस्थिति के घटक को स्पष्ट रूप से वर्तमान नहीं माना जा सकता है, लेकिन इसे दृश्यमान और विशिष्ट होना चाहिए। यद्यपि, वर्तमान मामले में जो हुआ वह यह है कि विचारण न्यायालय और साथ ही उच्च न्यायालय, दोनों ने कभी भी इस तथ्य की जाँच नहीं की कि क्या अपीलकर्ता की आपराधिक मनःस्थिति थी, जिसे उसने कारित किया है। विचारण न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता को इस सिद्धांत पर दोषी ठहराए जाने पर कि दो छोटे बच्चों वाली महिला ने संभवतः वैवाहिक घर में उत्पीड़न का सामना करने के कारण आत्महत्या की होगी, इस मामले में साक्ष्य से ऐसा कदापि प्रकट नहीं होता। अभियोजन साक्षीगण के साक्ष्य से यह नहीं पता चलता कि अपीलकर्ता की वजह से पत्नी अप्रसन्न थी और उसे उसके कारण ऐसा कदम उठाने हेतु मजबूर होना पड़ा।

16. एसएस छीना बनाम विजय कुमार महाजन1 मामले में भा०द०सं० की धारा 306 के अन्तर्गत अपराध हेतु आवश्यक सामग्री पर विचार किया गया था जहाँ दुष्प्रेरण की अवधारणा को समझाते हुए न्यायमूर्ति दलवीर भंडारी ने इस प्रकार लिखा: -

25. दुष्प्रेरण में किसी व्यक्ति को उकसाने या जानबूझकर किसी काम को करने में किसी व्यक्ति की सहायता करने की मानसिक प्रक्रिया सम्मिलित है। आत्महत्या हेतु उकसाने या सहायता करने हेतु आरोपी की ओर से सकारात्मक कार्य के बिना,दोषसिद्धि नहीं की जा सकती है। विधायिका की मंशा और इस न्यायालय द्वारा निर्णीत किये गए वादों के निर्णयाधारों से यह स्पष्ट है कि भा०द०सं० की धारा 306 के अन्तर्गत किसी व्यक्ति को दोषी ठहराने हेतु अपराध करने की स्पष्ट मंशा होनी चाहिए। इस हेतु एक सक्रिय कार्य या प्रत्यक्ष कार्य की भी आवश्यकता है जिसके कारण मृतक को कोई विकल्प न देख कर आत्महत्या करनी पड़ी और उस कार्य का उद्देश्य

मृतक को ऐसी स्थिति में धकेलना रहा होगा कि उसने आत्महत्या कर ली।''

17. अमलेंदु पाल उर्फ झंटू बनाम पश्चिम बंगाल राज्य2 में आत्महत्या हेतु दुष्प्रेरण के एक वाद का निर्णय करते समय, न्यायमूर्ति डॉ. एम.के. शर्मा ने खण्डपीठ हेतु भा०द०सं० की धारा 306 के मापदंडों को निम्नलिखित शब्दों में समझाया:

"12. इस प्रकार, इस न्यायालय का निरंतर यह मत रहा है कि किसी आरोपी को भा०द०सं० की धारा 306 के अन्तर्गत अपराध हेतु दोषी ठहराने से पहले, न्यायालय को मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की अत्यन्त सतर्कता से जाँच करनी चाहिए और यह पता लगाने हेतु उसके समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों का भी आकलन करना चाहिए कि क्या पीड़िता के साथ हुई क्रूरता और उत्पीड़न के कारण पीड़िता के पास अपना जीवन समाप्त करने के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं बचा था। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि आत्महत्या हेतु कथित दुष्प्रेरण के मामलों में आत्महत्या हेतु उकसाने के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कृत्य के साक्ष्य होने चाहिए।"

39. **डॉ. जे.पी. भार्गव एवं एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (आवेदन अन्तर्गत धारा 482 संख्याः 6195/ 2016)** के वाद में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ खंडपीठ ने दिनांक 06.07.2022 के आदेश के अन्तर्गत, भा०द०सं० की धारा 306 के अन्तर्गत आत्महत्या हेतु दुष्प्रेरण से निपटते हुए यह धारित किया है कि:

"18. दुष्प्रेरण में किसी व्यक्ति को उकसाने या जानबूझकर किसी व्यक्ति को किसी बात हेतु ऐसा करने में सहायता करने की मानसिक प्रक्रिया शामिल होती है आत्महत्या हेतु उकसाने या सहायता करने हेतु आरोपी की ओर से कोई सकारात्मक कृत्य होना चाहिए। यदि अभियुक्त की ओर से आत्महत्या हेतु उकसाने या सहायता करने हेतु कोई सकारात्मक कार्य नहीं किया गया है, तो धारा 306 के अन्तर्गत अपराध गठित नहीं हो सकता है। भा०द०सं० की धारा 306 के अन्तर्गत किसी व्यक्ति को दोषी ठहराने हेतु अपराध करने की स्पष्ट आपराधिक मनःस्थिति होनी चाहिए। कोई सक्रिय कृत्य या प्रत्यक्ष कृत्य होना चाहिए, जिसके कारण मृतक ने आत्महत्या की। प्रत्यक्ष कृत्य इस प्रकार का होना चाहिए कि मृतक के पास अपने जीवन को समाप्त करने के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प न हो। उस कृत्य का उद्देश्य मृतक को ऐसी स्थिति में धकेलना रहा होगा कि वह आत्महत्या कर ले। सुसाइड नोट में मात्र यह आरोप लगाया गया है कि मृतक का बार-बार स्थानांतरण किया जा रहा था और आवेदकों द्वारा उसे परेशान किया जा रहा था। रिश्वत माँगने हेतु मृतक ने कभी भी किसी अधिकारी से कोई शिकायत नहीं की और इस पर विश्वास भी नहीं किया जा सका। तथ्यों से पता चलता है कि अनेक अनुस्मारक के बावजूद मृतक स्वयं कार्यभार नहीं सौंप रहा था और वह अपने स्थानांतरण के स्थान पर कार्यभार ग्रहण नहीं कर रहा था। मृतक स्वयं कर्तव्य के प्रति लापरवाही का दोषी था। आधिकारिक कार्य करने हेतु, मृतक को आत्महत्या हेतु प्रेरित करने के आशय के बिना, आवेदकों के विरुद्ध भा०द०सं० की धारा 306 के अन्तर्गत अपराध को आकर्षित नहीं किया जा सकता है। सुसाइड-नोट को पढ़ने से पता चलता है कि आवेदकों की ओर से मृतक को आत्महत्या हेतु दुष्प्रेरण का कोई मामला नहीं था।

19...............

20...............

21...............

22...............

23. उपरोक्त चर्चाओं से, यह स्पष्ट है कि मृतक को आवेदकों द्वारा उत्पीड़न का सामना करना पड़ा क्योंकि उसे प्रशासनिक आधार पर लगातार स्थानांतरित किया गया था। आवेदकों द्वारा आत्महत्या हेतु दुष्प्रेरित करने या उकसाने के किसी भी आपराधिक कारण का सुझाव देने हेतु अभिलेख पर कुछ भी नहीं है। सुसाइड नोट, जैसा कि ऊपर निकाला गया है, से दूर-दूर तक यह संकेत नहीं मिलता है कि आरोपी-आवेदकों द्वारा मृतक को आत्महत्या हेतु सहायता करने, दुष्प्रेरित करने या उकसाने का कोई आशय था। मृतक का स्थानांतरण करना, उसे कार्यभार सौंपने हेतु कहना और अर्जित अवकाश स्वीकृत न करना, स्वयं आत्महत्या हेतु दुष्प्रेरित करने का अपराध नहीं बनेगा। सीबीआई द्वारा ऐसा कोई साक्ष्य एकत्र नहीं किया गया है जिससे यह ज्ञात हो कि आवेदकों का आशय इस प्रकार के कृत्य से मृतक को आत्महत्या हेतु दुष्प्रेरित करने का था। इस न्यायालय का मानना है कि अन्वेषण के दौरान एकत्र की गई सामग्री में आत्महत्या हेतु उकसाने के सभी तत्व पूर्णरुपेण अनुपस्थित हैं और अतः, यह नहीं कहा जा सकता है कि आरोपी-आवेदकों ने भा०द०सं० की धारा 306 के अन्तर्गत कोई अपराध किया है। घटना के समय आवेदकों की ओर से कोई अपमानजनक कार्रवाई नहीं की गई है, जिसके कारण मृतक को आत्महत्या करने हेतु बाध्य होना पड़ा हो। आरोपी-आवेदकों के हाथों मृतक द्वारा उत्पीड़न का अनुभव भा०द०सं० की धारा 306 के अन्तर्गत अपराध को लागू करने का आधार नहीं हो सकता है क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता है कि आरोपी-आवेदकों ने कोई सक्रिय भूमिका निभाकर या उकसाने का कार्य करके या आत्महत्या हेतु कुछ निश्चित कृत्य कर" आत्महत्या हेतु दुष्प्रेरित किया है।

40. **कंचन कुमार बनाम बिहार राज्य, आपराधिक अपील संख्या 1562/2022** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने दिनांक 14.09.2022 के आदेश के अन्तर्गत यह धारित किया है कि:

"13. दं०प्र०सं० की धारा 227 के अन्तर्गत एक आवेदन पर निर्णय लेने हेतु आवश्यक जाँच का सीमान्त मामले की व्यापक संभावनाओं और अभिलेख पर सामग्री के कुल प्रभाव पर विचार करना है, जिसमें मामले में प्रकट होने वाले किसी भी अद्दढ़ता की जाँच भी शामिल है। प्रफुल्ल कुमार सामल (उपरोक्त) में, यह देखा गया था कि:

(1) न्यायाधीश के पास संहिता की धारा 227 के अन्तर्गत आरोप निर्धारित करने के प्रश्न पर विचार करते समय आरोपी के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला बनता है अथवा नहीं, यह पता लगाने के सीमित उद्देश्य हेतु साक्ष्यों को छाँटने और मूल्यांकन की असंदिग्ध शक्ति है।

(2) जहाँ न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री अभियुक्त के विरुद्ध गंभीर संशय को प्रकट करती है, जिसे ठीक से स्पष्ट नहीं किया गया है, तो न्यायालय आरोप निर्धारित करने और विचारण हेतु कार्यवाही में पूर्णतः न्यायसंगत होगा।

(3) प्रथम दृष्टया मामले को निर्धारित करने का परीक्षण स्वाभाविक रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा और सार्वभौमिक अनुप्रयोग का नियम बनाना मुश्किल है। यद्यपि, कुल मिलाकर यदि दो दृष्टिकोण समान रूप से संभव हैं और न्यायाधीश इस बात से संतुष्ट है कि समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्य कुछ संदेह पैदा करते हैं, परन्तु आरोपी के विरुद्ध गंभीर संदेह नहीं है, तो वह आरोपी को दोषमुक्त करने के अपने अधिकार में पूर्णरुपेण सक्षम होगा।

(4) संहिता की धारा 227 के अन्तर्गत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय न्यायाधीश, जो वर्तमान संहिता के अन्तर्गत एक वरिष्ठ और अनुभवी न्यायालय है, मात्र एक डाकघर या अभियोजन के मुखपत्र के रूप में कार्य नहीं कर सकता है, अपितु उसे इसकी व्यापक संभावनाओं पर मामला न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों और दस्तावेजों का कुल प्रभाव, मामले में प्रकट होने वाली कोई बुनियादी अद्दढ़ताओं इत्यादि पर विचार करना होगा। यद्यपि इसका अर्थ यह नहीं है कि मामले के पक्ष और विपक्ष में न्यायाधीश को घूम-घूम कर पूछताछ करनी चाहिए और साक्ष्यों को ऐसे तौलें जैसे कि वह कोई विचारण कर रहे हों।"

"10. इस प्रकार, ऊपर उल्लिखित निर्णय विधियों पर विचार करने पर, निम्नलिखित सिद्धांत परिलक्षित होते हैं:

(बल दिया गया)

14. साजन कुमार बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो के मामले में, न्यायालय ने अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत प्रत्येक दस्तावेज़ को उसके प्रत्यक्ष मूल्य पर स्वीकार करने के प्रति आगाह किया, और कहा कि न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्यों की जाँच करना महत्वपूर्ण है। निम्नवत धारित किया गया:

i. आरोप तय करते समय, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के संभावित मूल्य पर ध्यान नहीं दिया जा सकता है, लेकिन आरोप तय करने से पहले न्यायालय को अभिलेख पर रखी गई सामग्री पर अपना न्यायिक विवेक प्रयोग करना चाहिए और इस तथ्य से संतुष्ट होना चाहिए कि अपराध कारित किया जाना सम्भव था।

ii. धारा 227 और 228 के स्तर पर, न्यायालय को यह ज्ञात करने हेतु अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री और दस्तावेजों का मूल्यांकन इस दृष्टिकोण के साथ करना आवश्यक है कि क्या प्रत्यक्ष मूल्य पर उसके समक्ष प्रस्तुत होने वाले तथ्य कथित अपराध का गठन करने वाली सभी सामग्रियों के अस्तित्व का प्रकटीकरण करते हैं। इस सीमित उद्देश्य के लिए, की जाँच की जानी चाहिये क्योंकि प्रारंभिक चरण में भी यह उम्मीद नहीं की जा सकती है कि अभियोजन पक्ष द्वारा कही गई सभी बातों को ईश्वरीय सत्य के रूप में स्वीकार कर लिया जाए, भले ही वह सामान्य बोध या वाद की व्यापक संभावनाओं के विपरीत हो..."

"21. संहिता की धारा 227 और 228 की सीमा से सम्बन्धित निर्णय विधियों पर विचार करने पर निम्नलिखित सिद्धांत परिलक्षित होते हैं:

(बल दिया गया)

15. दीपकभाई जगदीशचंद्र पटेल बनाम गुजरात राज्य वाद में दं०प्र०सं० की धारा 227 के अंतर्गत उन्मोचन के सिद्धांतों को सारांशित करते हुए, इस न्यायालय ने निम्नवत वर्णित किया है:

"23 इस न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के अनुसार आरोप तय करने के चरण में न्यायालय से यह अपेक्षा की जाती है कि वह मात्र एक डाकघर के रूप में कार्य न करे। न्यायालय को वास्तव में अपने समक्ष प्रस्तुत सामग्री की जांच करनी चाहिए। जाँच की जाने वाली सामग्री ऐसी होनी चाहिए जो अभियोजन पक्ष द्वारा विश्वास व्यक्त करते हुए प्रस्तुत की गयी हो। जाँच इस अर्थ में सावधानीपूर्वक नहीं होनी चाहिए कि न्यायालय पूर्ण सुनवाई के बाद प्रस्तुत किये गये समग्र साक्ष्य एवं तर्क सुनने वाले विचारण न्यायाधीश की भूमिका निभाता है, और प्रश्न यह नहीं है कि क्या अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त की दोषसिद्धि के लिए सशक्त वाद प्रस्तुत किया है। मात्र इतना आवश्यक है कि न्यायालय को उपलब्ध सामग्री से संतुष्ट होना चाहिए कि अभियुक्त पर वाद चलाने का मामला बनता है। एक प्रबल संदेह पर्याप्ति है। हालाँकि, एक प्रबल संदेह कुछ सार पर आधारित होना

चाहिए। सामग्री ऐसी होनी चाहिए जिसे विचारण के चरण में साक्ष्य के रूप में ग्रहण किया जा सके। प्रबल संदेह की शुद्ध वस्तुपरक संतुष्टि न्यायाधीश की इस नैतिक धारणा पर आधारित नहीं हो सकती है कि यह एक ऐसा वाद है जहाँ यह संभावना हो कि अभियुक्त ने अपराध कारित किया है। प्रबल संदेह ऐसी सामग्री पर आधारित होना चाहिए जो न्यायालय के समक्ष प्रथमदृष्टया दृष्टिकोण स्थापित करने हेतु पर्याप्त हो कि अभियुक्त ने अपराध कारित किया है।"

(बल दिया गया)

16................

17................

18. हमारे द्वारा प्राप्त निष्कर्ष हमारे समक्ष उपलब्ध सामग्रियों पर आधारित हैं, जो वाद के अभिलेख के अंश हैं। यह वही अभिलेख है जो दं०प्र०सं० की धारा 227 के अंतर्गत आवेदन करते समय विशेष न्यायाधीश (सतर्कता) के पास उपलब्ध था। इसके बावजूद विशेष न्यायाधीश (सतर्कता) ने उन्मोचन प्रार्थना पत्र को इस सामान्य आधार पर खारिज कर दिया कि उन्मोचन के चरण में अतिगामी जाँच की अनुमति नहीं है। हमने जो किया है वह कोई अतिगामी जाँच नहीं है, अपितु उन्मोचन हेतु एक आवेदन के उचित निर्णय के लिए एक सरल और आवश्यक जाँच है। विशेष न्यायाधीश (सतर्कता) इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए इसी प्रकार की जाँच करने के लिए बाध्य थे कि अपीलकर्ता पर विचारण हेतु प्रथम दृष्टया मामला बनता है। दुर्भाग्य से, उच्च न्यायालय ने वही त्रुटि की जो विशेष न्यायाधीश (सतर्कता) ने की थी।"

41. यह कि इस क्षेत्राधिकार (उन्मोचन प्रार्थनापत्र) के प्रयोग को नियंत्रित करने वाले मापदंडों को सर्वोच्च न्यायालय के कई निर्णयों में अभिव्यक्ति मिली है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **कर्नाटक राज्य लोकायुक्त बनाम. एम.आर. हिरेमथ, 2019 (7) SCC 515**, के वाद में धारित किया है कि उन्मोचन हेतु प्रार्थनापत्र पर विचार करने की स्थिति में, न्यायालय को इस धारणा पर कार्यवाही करनी चाहिए कि प्रावधान द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री सत्य होनी चाहिए और न्यायालय को यह निर्धारित करने के लिए सामग्री का मूल्यांकन करना चाहिए कि क्या प्रत्यक्ष मूल्य पर ग्रहण की गई सामग्री से दर्शित तथ्य अपराध का गठन करने के लिए आवश्यक घटकों के अस्तित्व का प्रकटीकरण करते हैं।

42. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **आपराधिक अपील संख्या 32-33/ 201, अजय सिंह बनाम छत्तीसगढ़ राज्य** वाद में **आदेश दिनांक 06.01.2017** द्वारा धारित किया है कि:

"9. दं०प्र०सं० का अध्याय XVIII सत्र न्यायालय के समक्ष सुनवाई का उपबंध करता है। धारा 227 विचारण न्यायाधीश को अभियुक्त और अभियोजन पक्ष के तर्कों के सुनने के बाद और इस बात से संतुष्ट होने पर कि अभियुक्त के विरुद्ध आगे कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार नहीं है, अभियुक्त को उन्मोचित करने का अधिकार देता है। धारा के मुख्य शब्द हैं "अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है"। उक्त प्रावधान की व्याख्या करते हुए, पी विजयन बनाम केरल राज्य एवं अन्य के मामले में न्यायालय ने धारित किया है कि न्यायाधीश मात्र अभियोजन पक्ष के आदेश पर आरोप तय करने वाला डाकघर नहीं है, अपितु यह निर्धारित करने के लिए वह वाद के तथ्यों पर अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करेगा कि अभियोजन पक्ष द्वारा विचारण के लिए मामला बनाया गया है या नहीं। इस तथ्य का आंकलन करने में, यह आवश्यक नहीं है कि न्यायालय को मामले के पक्ष और विपक्ष में या साक्ष्यों और संभावनाओं को मूल्यांकित और संतुलित करना पड़े, जो वाद प्रारम्भ होने के बाद वास्तव में न्यायालय का कार्य है। धारा 227 के चरण में, न्यायाधीश को मात्र साक्ष्यों को जाँचना होता है ताकि यह पता लगाया जा सके कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं। दूसरे शब्दों में, आधार की पर्याप्तता पुलिस द्वारा दर्ज किए गए साक्ष्यों या न्यायालय के समक्ष पेश किए गए दस्तावेजों की प्रकृति को अपने दायरे में ले लेगी जो पूर्व दृष्टया खुलासा करते हैं कि अभियुक्त के विरुद्ध संदिग्ध परिस्थितियां हैं ताकि उसके विरुद्ध आरोप तय किया जा सके।"

43. पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुराग शुक्ला ने **हरीश दहिया @ हरीश एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य, 2019 18 SCC 69; आपराधिक अपील संख्या 472/ 2021 (संजय कुमार राय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य; प्रशांत कुमार डे बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य, (2002) 9 SCC 630** वाद में और **धारा 482 के अंतर्गत प्रार्थनापत्र संख्या 16386/ 2021 (श्रीमती शीला देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य)** वाद में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय दिनांक 16.3.2022 पर विश्वास व्यक्त किया है।

44. पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि उन्मोचन आवेदन पर निर्णय लेते समय, विचारण न्यायालय ने अपना विवेक नहीं प्रयुक्त किया है और दुष्प्रेरण के प्रश्न पर विचार नहीं किया है क्योंकि वर्तमान मामले में पुनरीक्षणकर्ताओं ने कोई अपराध नहीं

कारित किया है और किसी भी मामले में तथा किसी प्रकार से उन्होंने मृतक को आत्महत्या के लिए उकसाया या दुष्प्रेरित नहीं किया है। घटना के बाद, एक प्रधानाचार्य और शिक्षक के रूप में उन्होंने ललित यादव को उसके घर भेजने के लिए आवश्यक कदम उठाए थे, लेकिन उसने आत्महत्या कर ली, जिसके लिए वे किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं थे।

45. प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री सर्वजीत दुबे ने तर्क प्रस्तुत किया कि इस न्यायालय के पास पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार में सीमित अधिकार है और एक बार पुनरीक्षणकर्ताओं के विरुद्ध सारवान साक्ष्य एकत्र हो जाने के बाद, न्यायालय लघु-विचारण नहीं कर सकता है तथा पक्ष और विपक्ष पर गौर नहीं कर सकता इसलिए पुनरीक्षण खारिज किए जाने योग्य है।

46. पुनरीक्षणकर्ताओं के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री डी.डी. चोपड़ा द्वारा तर्क प्रस्तुत किया गया है कि धारा 227 दं०प्र०सं० के अंतर्गत उन्मोचन प्रार्थनापत्र उच्चतम न्यायालय के कई निर्णयों सहित न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था, लेकिन निर्णय लेते समय विचारण न्यायालय ने उच्चतम न्यायालय के विभिन्न दृष्टिकोणों और निर्णयों पर विचार नहीं किया तथा आदेश यांत्रिक रीति से पारित कर दिया है। यह तर्क दिया गया है कि आक्षेपित आदेश, न्यायालय द्वारा आरोप पत्र के तथ्यों, पुनरीक्षणकर्ताओं के तर्कों और विरोधी पक्षकारों के तर्कों पर ध्यान देने को दर्शाता है, लेकिन आक्षेपित आदेश पारित करते समय, विचारण न्यायालय ने सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के आलोक में वाद के तथ्यों पर चर्चा नहीं की है।

47. पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने जियो वर्गीस (उपरोक्त) के मामले के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है। उक्त निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने प्रतिपादित किया है कि यदि किसी छात्र को अनुशासनहीनता के कारण शिक्षक द्वारा डांटा जाता है और छात्र भावनात्मक स्थिति में आत्महत्या कर लेता है, तो शिक्षक को आरोप के दुष्प्रेरण हेतु जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर-31, 32 और 33 को निम्नवत प्रस्तुत किया गया है: -

"30. इस प्रकार, अपीलकर्ता ने मृतक लड़के को नियमित रूप से कक्षा से अनुपस्थित पाया, पहले तो उसे डांटा लेकिन इसकी पुनरावृत्ति करने पर उन्होंने इस तथ्य को प्रधानाचार्य के संज्ञान में प्रस्तुत किया, जिन्होंने माता-पिता को दूरभाष द्वारा स्कूल बुलाया। प्रथम सूचना रिपोर्ट या वादी के बयान में प्रत्यक्ष कृत्य के लिए अपीलकर्ता को न तो जिम्मेदार ठहराया गया है और न ही कथित सुसाइड नोट में इस संबंध में कुछ भी कथन किया गया है। कथित सुसाइड नोट में अपीलकर्ता के संबंध में जहां तक मात्र यही अभिलिखित है, कि "मेरे स्कूल के जियो (पीटीआई) को धन्यवाद"। इस प्रकार, यहां तक कि सुसाइड नोट में भी अपीलकर्ता की ओर से उसे उस अपराध से जोड़ने के लिए किसी कृत्य या दुष्प्रेरण का आरोप नहीं लगाया गया है जिसके लिए उस पर आरोप लगाया जा रहा है।

31. यदि, किसी छात्र को अनुशासनहीनता के कार्य के लिए शिक्षक द्वारा बस डांटा जाता है और अनुशासनहीनता के निरंतर कृत्य को संस्थान के प्राचार्य के ध्यान में लाया जाता है, जिन्होंने छात्र के माता-पिता को स्कूल के अनुशासन और बच्चे को सुधारने के उद्देश्य से सूचित किया है; कोई भी छात्र, जो अतिभावुक अथवा संवेदनशील है, आत्महत्या कर लेता है, तो क्या उक्त शिक्षक को इसके लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, और क्या धारा 306 भा०दं०सं० के अंतर्गत आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरण के अपराध के लिए आरोप लगाया जा सकता है और क्या उस पर वाद चलाया जा सकता है।

31. उक्त प्रश्न पर हमारा उत्तर है - 'नहीं'।"

48. पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर द्वारा 20.6.2018 को निर्णीत **रिट याचिका संख्या 11763/ 2018** के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है। उक्त निर्णय का प्रस्तर-8 नीचे उद्धृत किया गया है:-

"8. इस याचिका में कहीं भी, प्रत्यक्ष रूप से या आवश्यक निहितार्थ से, यह आरोप नहीं लगाया गया है कि प्रतिवादी संख्या 4 ने कभी भी मृतक को आत्महत्या करने के लिए कहा था। यह भी आरोप नहीं लगाया गया है कि प्रतिवादी संख्या 4 को ऐसा ज्ञान था कि उसके कृत्य से पूरी संभावना है कि यह मृतक को आत्महत्या के लिए मजबूर कर देगा। यह आरोप कि प्रतिवादी संख्या 4 ने मृतक को थप्पड़ मारा, यदि सत्य हो तो भी मात्र भा०दं०सं० की धारा 323 का अपराध बनता है, जो एक गैर-संज्ञेय अपराध है जहाँ संज्ञान मात्र दं०प्र०सं० की धारा 200 के अंतर्गत प्रस्तुत परिवाद के आधार पर ही लिया जा सकता है।"

49. पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने मद्रास उच्च न्यायालय, मदुरै पीठ, के **पी. राजमोहन बनाम राज्य, 2018 0 सुप्रीम (मद्रास) 3697** के निर्णय पर भी विश्वास व्यक्त किया है और उक्त निर्णय के प्रस्तर-15 में

स्पष्ट रूप से कहा गया है कि मृतक लड़की के पिता को शिक्षक द्वारा बुलाया गया था और उन्हें अपनी बेटी के आचरण के लिए माफी मांगने के लिए कहा गया था; इस प्रकार, मृतक लड़की के दुष्प्रेरण हेतु शिक्षक को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। सुविधा के लिए, उक्त निर्णय का प्रस्तर-15 यहां निम्नवत है:-

"15. इस मामले में ध्यान देने योग्य एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता सरकारी स्कूल के शिक्षक होने के नाते संस्थान के हित में छात्र द्वारा की गई किसी भी त्रुटि को सुधारते है, ताकि अच्छी आदतें विकसित की जा सकें और पैसे चोरी करने जैसी बुरी आदतों से छुटकारा मिल सके। वास्तव में, मृत लड़की के पिता को बुलाया गया था और कहा गया है कि उन्होंने अपनी बेटी के आचरण के लिए माफी का पत्र दिया था और यह भी वादा किया था कि ऐसा दोबारा नहीं होगा। ऐसे याचिकाकर्ताओं के कृत्य को आत्महत्या हेतु दुष्प्रेरण की श्रेणी में नही कहा जा सकता।"

50. इसी प्रकार, **राज शेखर पालीवाल और एक अन्य बनाम छत्तीसगढ़ राज्य और एक अन्य, 2020 SCC Online Chh 37** के मामले में छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय के निर्णय पर पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने विश्वास व्यक्त किया है, जिसमें यह धारित किया गया है कि मृत छात्रा संवेदनशील थी और उसने आत्महत्या कर ली। उक्त निर्णय का प्रासंगिक प्रस्तर-14 सुविधा हेतु निम्नवत उद्धृत किया गया है:-

"14. दं०प्र०सं० की धारा 161 के अंतर्गत साक्षियों के बयान पर विचार करने पर यह पाया गया कि ऐसे अवसर और कारण थे जिनके लिए आवेदकों द्वारा मृतका को दण्डित किया गया था। ऐसा नहीं प्रतीत होता है कि आवेदकों ने किसी भी झूठे बहाने पर कार्रवाई की थी, उनके कार्य करने या प्रतिक्रिया करने के कारण मृतका की ओर से किसी गतिविधि तथा विफलता के संबंध में थे, जिसका उल्लेख साक्षियों- करमबीर शास्त्री और सुकांति शास्त्री के बयानों में किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मृतका काफी संवेदनशील थी और ऐसे मौकों पर जब आवेदकों द्वारा उसकी आलोचना की जाती थी तो वह परेशान हो जाती थी। मृतका द्वारा आत्महत्या करने से पहले की सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि आवेदकों ने तब कार्रवाई की जब उन्हें कुछ ऐसा लगा कि मृतका की ओर से त्रुटि की गयी। स्कूल के प्रधानाचार्य और शिक्षक होने के नाते, आवेदकों को अपने छात्रों को अनुशासन में रखने का अधिकार है। शिक्षा प्रदान करना एक गंभीर कार्य है तथा प्रधानाचार्य और शिक्षक किसी भी छात्र द्वारा की गई गलतियों या चूक को नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं और उन्हें स्पष्ट होना होगा और सख्ती बरतनी होती है ताकि छात्र अनुशासन में रहें और प्रधानाचार्य और शिक्षक की आज्ञा का पालन करने का ध्यान रखें। मेरा मत है कि आवेदकों ने उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं किया है जो किया जाना आवश्यक था।"

51. पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने **गुरचरण सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2020) 10 SCC 200**, वाद के निर्णय और उसके प्रस्तर-15 पर विश्वास व्यक्त किया है, जिसमें उच्चतम न्यायालय ने आपराधिक मनःस्थिति पर विचार किया है और पाया है कि पति की ओर से लगातार अपराध या उत्पीड़न के संबंध में कोई साक्ष्य नहीं है। इसलिए, दुष्प्रेरण के लिए भा०दं०सं० की धारा 107 की आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती है। सुविधा हेतु उक्त निर्णय का प्रस्तर-15 नीचे उद्धृत किया गया है:-

"15. जैसा कि सभी अपराधों में होता है, आपराधिक मनःस्थिति स्थापित की जानी चाहिए। दुष्प्रेरण के अपराध को सिद्ध करने के लिए, जैसा कि भा०दं०सं० की धारा 107 के अंतर्गत निर्दिष्ट है, किसी विशेष अपराध को करने हेतु मन की स्थिति दिखाई देनी चाहिए, ताकि दोषिता का निर्धारण किया जा सके। आपराधिक मनःस्थिति को सिद्ध करने के लिए, यह स्थापित करने या दर्शित करने हेतु अभिलेख पर कुछ तत्व होना चाहिए कि यहाँ अपीलकर्ता अपराधिक मनःस्थिति मे था और उसने उस मनःस्थिति की पूर्ति हेतु मृतक को आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरित किया। मनःस्थिति के घटक को अस्पष्ट नहीं अपितु स्पष्ट और सहजदृश्य होना चाहिए। हालाँकि, वर्तमान मामले में यह ज्ञात होता है कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों ने कभी भी उस अपराध हेतु अपीलकर्ता की मनःस्थिति की जाँच नहीं की जिसे उसके द्वारा कारित करना कहा गया है। विचारण न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता को इस सिद्धांत पर दोषी ठहराया जाना कि दो छोटे बच्चों वाली महिला ने संभवतः वैवाहिक घर में उत्पीड़न का सामना करने के कारण आत्महत्या की होगी, वाद के साक्ष्यों से पूर्णतः पुष्ट नही होता है। अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य से यह नहीं ज्ञात होता है कि अपीलकर्ता की वजह से पत्नी अप्रसन्न थी और उसे उसके कारण ऐसा कदम उठाने के लिए बाध्य होना पड़ा।"

52. पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने **संजू उर्फ संजय सिंह सेंगर बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2002) 5 SCC 371,** के वाद में निर्णय के **प्रस्तर-13** पर विश्वास व्यक्त किया है, जो निम्नवत उद्धृत किया गया है:-
"सुसाइड नोट के सहज पठन से स्पष्ट है कि मृतक काफी तनाव में था और उदास था। एक संभावित कारण यह हो सकता है कि मृतक के पास कोई कार्य अथवा व्यवसाय

नहीं था और साथ ही वह शराब भी पीता था, जैसा कि पत्नी श्रीमती नीलम सेंगर के बयान से ज्ञात होता है। वह एक निराश व्यक्ति था। सुसाइड नोट को पढ़ने से स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि इस प्रकार का नोट लिखना स्वस्थ दिमाग और समझ वाले व्यक्ति का कार्य नहीं है। मृतक की पत्नी श्रीमती नीलम सेंगर ने दं०प्र०सं० की धारा 161 के अंतर्गत अन्वेषण अधिकारी के समक्ष बयान दिया। उसने कहा कि मृतक सदैव शराब पीता था और कोई कार्य नहीं करता था। उसने यह भी कहा कि 26 जुलाई 1998 को उसका पति नशे की हालत में उनके पास आया था और उसको तथा परिवार के अन्य सदस्यों को गाली दे रहा था। यदि अभियोजन कथानक पर विश्वास किया जाए तो ज्ञात होगा कि मृतक और अपीलकर्ता के बीच विवाद 25 जुलाई, 1998 को हुआ था और यदि मृतक 26 जुलाई, 1998 को फिर से घर वापस आया, तो यह नहीं कहा जा सकता कि मृतक द्वारा की गई आत्महत्या 25 जुलाई, 1998 को हुए विवाद का प्रत्यक्ष परिणाम थी। उपरोक्त परिस्थितियों के दृष्टिगत, स्वतंत्र रूप से हमारा स्पष्ट मत है कि भा०दं०सं० की धारा 306 के अंतर्गत अपराध के वर्तमान मामले में 'दुष्प्रेरण' के तत्व पूर्णतः अनुपस्थित हैं। पत्नी के बयान में कहा गया है कि मृतक हमेशा नशे की स्थिति में रहता था। यह सामान्य धारणा है कि अत्यधिक शराब पीने से व्यक्ति व्यभिचारिता की ओर अग्रसर होता है। इसलिए, यह स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि मृतक अपने स्वयं के आचरण का पीड़ित था जिसका कोई सम्बन्ध 25 जुलाई, 1998 को हुए विवाद से नहीं था जिसमे अपीलकर्ता द्वारा अपमानजनक भाषा का इस्तेमाल किया गया था। अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री की समग्रता और वाद के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, यह अकाट्य निष्कर्ष प्राप्त होता है कि मृतक ही उसकी मौत के लिए जिम्मेदार है और कोई नहीं।''

53. पुनः उन्होंने **रूप किशोर मदान बनाम राज्य, 2001 CriLJ 1219,** के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय पर भी विश्वास व्यक्त किया, जिसका प्रस्तर-17 निम्नवत है:-

"17. **हीरा लाल जैन बनाम राज्य, 2000 III AD (Crl.) DHC 121** के मामले में उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में इस विष यकी विधि पर विस्तृत चर्चा की गई है। भा०दं०सं० की धारा 107 के प्रथम' खंड 'पढ़ने पर यह धारित किया गया कि यह स्पष्ट है कि जो व्यक्ति दूसरे को कोई काम करने के लिए उकसाता है, वह उसे वह काम करने के लिए दुष्प्रेरित करता है। ऐसा कहा जाता है कि एक व्यक्ति दूसरे को उकसाता है, जब वह किसी दूसरे को अपराध करने के लिए उद्दीप्त करता है या अन्यथा प्रोत्साहित करता है। वर्तमान मामले में, तथाकथित सुसाइड नोट को पढ़ने से दूर-दूर तक यह संकेत नहीं मिलता है कि याचिकाकर्ता ने मृतक को आत्महत्या के लिए उकसाया था। यह दिखाने के लिए अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं है कि दुष्प्रेरण के अपराध के घटक संतुष्ट हुए थे और इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि भा०द०सं० की धारा 306 के अंतर्गत अपराध कारित किया गया है। **तपोसी चक्रवर्ती बनाम राज्य, 2000 III AD (Cr.) DHC 233** में इस न्यायालय ने धारा 304 भा०दं०सं० के अंतर्गत कारित अपराध हेतु अनिवार्य घटकों पर विस्तृत विचार किया है।"

54. पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने अन्य संबंधित मामलों के साथ, **डॉ. जे.पी. भार्गव और अन्य बनाम यूपी राज्य (धारा 482 के अंतर्गत प्रार्थनापत्र संख्या 6195/2016)**, मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ पीठ के निर्णय दिनांक 6.7.2022 के प्रस्तर-18 एवं 23 पर विश्वास व्यक्त किया है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि दुष्प्रेरण में एक मानसिक प्रक्रिया सम्मिलित है जिसमें किसी व्यक्ति को उकसाना या जानबूझकर किसी कार्य को करने में सहायता करना सम्मिलित होता है। अपराध करने की स्पष्ट अपराधिक मनःस्थिति होनी चाहिए और यह पाया गया है कि जाँच के दौरान एकत्र की गई सामग्री में आत्महत्या के लिए उकसाने के सभी तत्व पूरी प्रकार से अनुपस्थित हैं और इस प्रकार, भा०दं०सं० की धारा 306 के अंतर्गत कोई अपराध गठित नहीं होता है।

55. पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने **कंचन कुमार बनाम बिहार राज्य, 2022 लाइव लॉ (SC) 763** के मामले के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया, जिसमें उच्चतम न्यायालय ने यह विधि प्रतिपादित की है कि उन्मोचन के चरण में अतिगामी जाँच की अनुमति नहीं है। ध्यान देने योग्य बात है कि उन्मोचन हेतु प्रार्थना पत्र के उचित निर्णय के लिए एक सरल और आवश्यक जांच अपेक्षित है। उक्त निर्णय का सम्बन्धित प्रस्तर-18 नीचे उद्धृत किया गया है:-

18. हमारे द्वारा प्राप्त निष्कर्ष हमारे समक्ष उपलब्ध सामग्रियों पर आधारित हैं, जो वाद के अभिलेख के अंश हैं। यह वही अभिलेख है जो दं०प्र०सं० की धारा 227 के अंतर्गत आवेदन करते समय विशेष न्यायाधीश (सतर्कता) के पास उपलब्ध था। इसके बावजूद विशेष न्यायाधीश (सतर्कता) ने उन्मोचन प्रार्थना पत्र को इस सामान्य आधार पर खारिज कर दिया कि उन्मोचन के चरण में अतिगामी जाँच की अनुमति नहीं है। हमने जो किया है वह कोई अतिगामी जाँच नहीं है, अपितु उन्मोचन हेतु एक आवेदन के उचित निर्णय के लिए एक सरल और आवश्यक जाँच है। विशेष न्यायाधीश (सतर्कता) इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए इसी प्रकार की जाँच करने के लिए बाध्य थे कि

अपीलकर्ता पर विचारण हेतु प्रथम दृष्टया मामला बनता है। दुर्भाग्य से, उच्च न्यायालय ने वही त्रुटि की जो विशेष न्यायाधीश (सतर्कता) ने की थी।"

56. इसी प्रकार, पुनरीक्षण वादियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उन्मोचन के बिंदु पर **कर्नाटक लोकायुक्त, पुलिस स्टेशन, बेंगलुरु बनाम एम.आर. हिरेमठ, (2019) 7 SCC 515** वाद में उच्चतम न्यायालय का एक और निर्णय उद्धृत किया है, जिसमें यह आदेश दिया गया है कि उन्मोचन कार्यवाही में निर्णय लेते समय, न्यायालय को इस धारणा पर अवश्य कार्यवाही करनी चाहिये कि अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत की गई सामग्री सत्य है और सामग्री का मूल्यांकन यह निर्धारित करने के लिए करें कि क्या सामग्री से प्रकट तथ्य, उसके प्रत्यक्ष मूल्य पर पर अपराध कारित करने हेतु अनिवार्य घटकों के अस्तित्व का खुलासा करते हैं। उक्त निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर-24 और 25 निम्नवत उद्धृत हैं: -

"24. उच्च न्यायालय ने वर्तमान मामले में उपरोक्त सभी बिंदुओं पर त्रुटि की है। उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने में त्रुटि की है कि जब धारा 65बी के अंतर्गत प्रमाण पत्र की अनुपस्थिति में आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था, तब अभियोजन विफल होने योग्य था और उस स्तर पर कार्यवाही को रद्द करना अपेक्षित था। उच्च न्यायालय ने निःसंदेह अन्य सामग्री पर ध्यान नहीं दिया, जिस पर अभियोजन पक्ष ने विश्वास कर रहा था। अंततः प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने से पूर्व इस प्रकार की कोई जाँच प्रारम्भ नहीं हुई। अन्वेषण अधिकारी ने प्रारंभिक जाँच की थी। यह ललिता कुमारी के निर्णय के संगत था।

25. उच्च न्यायालय को इस तथ्य का संज्ञान होना चाहिए था कि विचारण न्यायालय दं०प्र०सं० की धारा 239 के प्रावधानों के अंतर्गत उन्मोचन के लिए प्रार्थना पत्र पर विचार कर रहा था। इस क्षेत्राधिकार के प्रयोग को नियंत्रित करने वाले मापदंडों को इस न्यायालय के कई निर्णयों में अभिव्यक्ति मिली है। यह विधि का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि उन्मोचन हेतु प्रार्थना पत्र पर विचार करने के चरण में न्यायालय को इस धारणा पर कार्यवाही करनी चाहिये कि अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत की गई सामग्री सत्य है और यह निर्धारित करने के लिए सामग्री का मूल्यांकन करना चाहिए कि सामग्री से प्रकट तथ्य प्रत्यक्ष मूल्य पर अपराध कारित करने हेतु अनिवार्य घट्कों के अस्तित्व का खुलासा करते है या नहीं। **तमिलनाडु राज्य बनाम एन सुरेश राजन, (2014) 11 SCC 709** में इस विषय पर पूर्व निर्णयों को उद्धृत करते हुए इस न्यायालय ने धारित किया: (SCC pp 721-22, para 29)

"29...इस स्तर पर, सामग्रियों के संभावित मूल्य की जाँच की जानी चाहिए और न्यायालय से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वह मामले की गहनता में जाए और यह माने कि सामग्री से दोषसिद्धि नहीं होगी। हमारे मत में, यहाँ ध्यान देने की आवश्यकता है कि क्या यह मानने का कोई आधार है कि अपराध कारित किया गया है न कि यह कि क्या अभियुक्त को दोषी ठहराने का कोई आधार प्रस्तुत किया गया है। इसे भिन्न तरीके से कहें तो, अगर न्यायालय अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर यह पाता है कि अभियुक्त ने अपराध किया होगा, तो न्यायालय आरोप विनिश्चित कर सकता है। हालांकि दोषसिद्धि के लिए, न्यायालय को इस निष्कर्ष पर पहुंचना होगा कि अभियुक्त ने अपराध कारित किया है। विधि इस स्तर पर लघु सुनवाई की अनुमति नहीं देती है।"

57. इसी प्रकार, अपने तर्कों का समर्थन हेतु, पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने **अजय सिंह और अन्य आदि बनाम. छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य, (2017) 3 SCC 330,** निर्णय विधि के प्रस्तर-9 पर विश्वास व्यक्त किया है, जो निम्नवत है:-

"9. दं०प्र०सं० का अध्याय XVIII सत्र न्यायालय के समक्ष सुनवाई का उपबंध करता है। धारा 227 विचारण न्यायाधीश को अभियुक्त और अभियोजन पक्ष के तर्कों के सुनने के बाद और इस बात से संतुष्ट होने पर कि अभियुक्त के विरुद्ध आगे कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार नहीं है, अभियुक्त को उन्मोचित करने का अधिकार देता है। धारा के मुख्य शब्द हैं "अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है"। उक्त प्रावधान की व्याख्या करते हुए, पी विजयन बनाम केरल राज्य एवं अन्य के मामले में न्यायालय ने धारित किया है कि न्यायाधीश मात्र अभियोजन पक्ष के आदेश पर आरोप तय करने वाला डाकघर नहीं है, अपितु यह निर्धारित करने के लिए वह वाद के तथ्यों पर अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करेगा कि अभियोजन पक्ष द्वारा विचारण के लिए मामला बनाया गया है या नहीं। इस तथ्य का आंकलन करने में, यह आवश्यक नहीं है कि न्यायालय को मामले के पक्ष और विपक्ष में या साक्ष्यों और संभावनाओं को मूल्यांकित और संतुलित करना पड़े, जो वाद प्रारम्भ होने के बाद वास्तव में न्यायालय का कार्य है। धारा 227 के चरण में, न्यायाधीश को मात्र साक्ष्यों को जाँचना होता है ताकि यह पता लगाया जा सके कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं। दूसरे शब्दों में, आधार की पर्याप्तता पुलिस द्वारा दर्ज किए गए साक्ष्यों या न्यायालय के समक्ष पेश किए गए दस्तावेजों की प्रकृति को अपने दायरे में ले लेगी जो पूर्व दृष्टया खुलासा करते हैं कि अभियुक्त के विरुद्ध संदिग्ध परिस्थितियां हैं ताकि उसके विरुद्ध आरोप तय किया जा सके।"

58. पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्कों को प्रस्तुत करने हेतु भी विभिन्न निर्णयों का उल्लेख किया है कि दं०प्र०सं० की धारा 227 के अंतर्गत आरोप विनिश्चित करने के प्रश्न पर विचार करते समय, न्यायाधीश को यह पता लगाने के सीमित उद्देश्य हेतु, साक्ष्यों की जांच और अधित्यजन के कारण कोई संदेह है कि क्या प्रथम द्दष्टया अभियुक्त के विरुद्ध मामला बनाया गया है, या क्या न्यायालय के समक्ष रखी गई सामग्री अभियुक्त के विरुद्ध गंभीर संदेह का प्रकटीकरण करती है जिसकी समुचित व्याख्या नहीं की गई है।

उन्होंने **भारत संघ बनाम प्रफुल्ल कुमार सामल एवं एक अन्य, (1979) 3 SCC 4; सरन्या बनाम भारती एवं एक अन्य, (2921) 8 SCC 583; के. काला बनाम सचिव, शैक्षिक विभाग, 2022 लाइवलॉ (मद्रास) 452; एम.ई.शिवलिंगमूर्ति बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो, बेंगलुरु, (2020) 2 SCC 768** के वाद में भी निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है।

59. पुनः उन्होंने विभिन्न निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया है एवं तर्क प्रस्तुत किया है कि यह न्यायालय अपने अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करके, न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने हेतु प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोक सकता है। संशोधनकर्ताओं के उन्मोचन प्रार्थना पत्र का निर्णय दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 226, 227 एवं 228 के अनिवार्य वैधानिक प्रावधानों के अनुपालन सहित किया जाना चाहिए। उन्होंने हरीश दहिया (उपरोक्त) एवं संजय कुमार राय (उपरोक्त), प्रशांत कुमार डे (उपरोक्त) एवं श्रीमती शिला देवी (उपरोक्त) के निर्णयों का उल्लेख किया जो अभिलेख पर प्रत्युत्तर शपथ पत्र दिनांक 16.11.2022 को प्रस्तुत करने हेतु आवेदन सहित संलग्न किया गया है।

विरोधी पक्षकार संख्या-2 (वादी) के विद्वान अधिवक्ता का तर्क

60. जब पुनरीक्षणकर्तागण को प्र.सू.रि दर्ज करने के बारे में ज्ञात हुआ, तो उन्होंने रिट याचिका संख्या 5269 (एम/बी)/2018 प्रस्तुत कर उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिसे अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा दिए गए इस बयान के आधार पर दिनांक 20.2.2018 को खारिज कर दिया गया था कि जाँच पूरी हो चुकी है। तत्पश्चात पुनरीक्षणकर्तागण को पता चला कि जाँच अभी भी चल रही थी। उन्होंने निष्पक्ष जाँच के अपने मौलिक अधिकार का उपयोग करते हुए रिट याचिका संख्या 1150 (एम/बी)/ 2018 एक अन्य को प्राथमिकता दी जिस पर अन्वेषण अधकारी को नोटिस जारी किया गया था।

61. यह कि पुनरीक्षणकर्तागण ने इस असंगत आधार पर आरोप पत्र को रद्द करने की भी प्रार्थना की कि विरोधी पक्ष सं-2, जो मृतक का पिता है, ने पुलिस अन्वेषण में हेरफेर किया एवं अपने प्रभाव का उपयोग करते हुए अन्वेषण को अपराध शाखा में स्थानांतरित करा लिया क्योंकि विरोधी पक्षकार सं-2 पुलिस विभाग में कार्यरत है एवं एस.पी. लखीमपुर खीरी के कार्यालय में तैनात है, जिससे यह पता चलता है कि अन्वेषण विरोधी पक्षकार सं-2 के प्रभाव में किया गया था।

62. घटना के दिनांक 3.12.2016 को अर्थात जब मृतक विद्यालय गया था तब पुनरीक्षणकर्तागण द्वारा उसके साथ निर्दयतापूर्वक एवं अनुचित रीति से शारीरिक प्रताड़ना की गई तथा मात्र एक दुर्घटना हेतु विद्यालय से निकाल देने की धमकी भी दी गई, जिसके परिणामस्वरूप न तो कोई चोट आई और न ही किसी भी शिकायत को प्रत्यक्षदर्शी साक्षीगण द्वारा सत्यापित किया गया था, फिर भी पुनरीक्षणकर्तागण ने इसे इतना गंभीर बना दिया कि मृत बच्चे के प्रति उनके दुर्व्यवहार को उचित ठहराया जा सके। तत्पश्चात यह जानने के बावजूद कि बच्चे की माँ उसे लेने आ रही है, बच्चे को जबरन पुनरीक्षणकर्ता सं-2 सहित उसके घर भेज दिया गया। इसके अतिरिक्त, बच्चे की माँ ने पुनरीक्षणकर्ता सं-2 से घर लौटने तक बच्चे के साथ रहने का अनुरोध किया। इसके बावजूद, पुनरीक्षणकर्ता सं-2 ने उसे अकेला छोड़ दिया एवं वापस चला गया। जब ललित की माँ घर लौटी तो देखा कि उसने अपने पिता की लाइसेंसी रिवॉल्वर से स्वयं को गोली मारकर अपने जीवन को समाप्त कर लिया था।

63. यह तथ्य कि पुनरीक्षणकर्तागण ने अनुशासनात्मक कार्रवाई के नाम पर मृतक को परेशान किया है, उनके कठोर आचरण एवं जल्दबाजी में उठाए गए कदमों से पूर्ण रुप से स्पष्ट हो गया है एवं यह उनके कार्यों का परिणाम था जो अंततः बच्चे की आत्महत्या के रूप में परिणत हुआ। एक दुर्घटना के आधार पर चतुराई से साजिश रची गई ताकि एक मासूम बच्चे को आत्महत्या हेतु उकसाया जाए एवं ऐसा कार्य बिना असफल हुए ऐसा किया जा सके। इसके अतिरिक्त मृतक ललित यादव के सहपाठियों द्वारा विधिवत दायर आरोप पत्र में दिए गए बयानों को दोहराना उचित है कि पुनरीक्षणकर्तागण का हमेशा बच्चों के प्रति असंवेदनशील रवैया रहा है। वे छात्रों को प्रायः एवं अनावश्यक रूप से डांटते थे। यह निर्विवाद है कि किसी बच्चे को नियंत्रित करने हेतु, शिक्षक, माता-पिता या किसी बड़े द्वारा डांटना जरूरी है, क्योंकि ऐसी डांट बच्चे हेतु कठोर शब्द होने के बजाय, वे सख्त नैतिक निर्देश हैं जो मनोवैज्ञानिक रूप से बच्चे के मन-मस्तिष्क पर बेहतर छाप छोड़ती हैं एवं बच्चे को आज्ञाकारी एवं ईमानदार होने हेतु प्रोत्साहित करती है। परंतु यदि ऐसी फटकार किसी बच्चे के आत्म-सम्मान को कम करने, उसे डराने के उद्देश्य से की जाती है ताकि वह ताड़ना देने वाले के विरुद्ध न हो जाए, तब वही फटकार बच्चे को मानसिक रूप से पंगु बना

सकती है, जिससे उसकी तर्कसंगतता प्रभावित हो सकती है।

64. ललित की आत्महत्या की दुर्भाग्यपूर्ण घटना के पश्चात, उक्त विद्यालय के लगभग 100-150 छात्रों ने ललित हेतु न्याय एवं पुनरीक्षणकर्ता सं-2 के विरुद्ध कठोर कार्रवाई की मांग करते हुए पुनरीक्षणकर्तागण के विरुद्ध विरोध प्रदर्शन किया। हालाँकि पुनरीक्षणकर्ता सं-1 द्वारा तैनात बाउंसरों एवं पुलिस द्वारा छात्रों का दमन किया गया। इस प्रकार के उपाय यह संकेत देते हैं एवं इसे निर्विवाद बनाते हैं कि पुनरीक्षणकर्ता निर्मम एवं निर्दयी थ, एवं यह वह आचरण था जिसने ऐसी मानसिक स्थिति पैदा की जो उस दिन एक मासूम बच्चे को आत्महत्या हेतु उकसाने के लिये पर्याप्त थी।

65. पुनरीक्षणकर्तागण के अधिवक्ता ने जियो वर्गीज़ बनाम राजस्थान राज्य (उपरोक्त प्रस्तर-4.11 में) वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है जहां अपीलकर्ता जियो वर्गीस सेंट जेवियर्स विद्यालय, नेवता, जयपुर में पीटी शिक्षक थे। वह विद्यालय के छात्रों द्वारा समग्र अनुशासन बनाए रखने हेतु अनुशासन समिति के सदस्य भी थे। संस्था के कक्षा 9वीं के एक छात्र ने दुर्भाग्यवश दिनांक 26.2.2018 को प्रातः लगभग 04.00 बजे आत्महत्या कर ली। मृतक छात्र की माँ ने आत्महत्या के लगभग 7 दिन पश्चात संबंधित पुलिस थाने में भा.द.सं की धारा 306 के अंतर्गत दिनांक 02.05.2018 को प्र.सू.रि दर्ज कराई, जिसमें आरोप लगाया गया कि अपीलकर्ता द्वारा दिए गए मानसिक उत्पीड़न के कारण उसके पुत्र ने आत्महत्या कर ली। माननीय न्यायालय ने उपरोक्त निर्णय में अपीलकर्ता को दोषमुक्त कर दिया। पुनरीक्षणकर्तागण के अधिवक्ता ने दोनों वादों में साम्य स्थापित करने का प्रयास किया है, यद्यपि दोनों वादों में महत्वपूर्ण असमानताएं हैं। उद्धृत वाद में प्रतिवादी आदतन विद्यालय के नियमों एवं आचार संहिता के प्रति अवज्ञाकारी था, प्रायः कक्षाओं से अनुपस्थित रहता था एवं अपीलकर्ता द्वारा दी गई चेतावनियों की अवहेलना करता था। इस वाद में विरोधी पक्षकार सं- 2 के पुत्र ने कभी भी विद्यालय द्वारा निर्धारित आचार संहिता के प्रति अवज्ञा या अनादर का कोई उदाहरण नहीं दिखाया था। वह शांत तथा आज्ञाकारी आचरण का बालक था, जैसा कि पुनरीक्षणकर्ता सं-1 ने स्वयं पुष्टि की थी। उद्धृत वाद में बालक को दी गई फटकार मौखिक थी एवं गलत कार्यों के विरुद्ध नैतिक प्रकृति की थी, जबकि इस वाद में बालक ललित यादव को विद्यालय के परिसर के बाहर हुई एक दुर्घटना हेतु शारीरिक दंड एवं मानसिक आघात दिया गया था तथा जिस हेतु किसी भी प्रकार की कोई औपचारिक शिकायत कभी किसी ने नहीं की। उद्धृत वाद में, जब आत्महत्या की दुर्भाग्यपूर्ण घटना हुई, तब बालक अपने माता-पिता सहित घर पर था। पुनरीक्षणकर्ता सं-2 ने ललित की माँ द्वारा उसके साथ रहने के अनुरोध को पूर्ण रुप से नजरअंदाज करते हुए ललित यादव को अकेला छोड़ दिया था। उद्धृत वाद में विद्यालय प्रशासन ने माता-पिता को प्रधानाचार्या से मिलने की सूचना दी थी जिससे डरकर बच्चे ने आत्महत्या कर ली। वर्तमान वाद में, पुनरीक्षणकर्तागण ने ललित की माँ को विद्यालय में बुलाने के बावजूद उनसे मिलने से इनकार कर दिया था। तत्पश्चात पुनरीक्षणकर्ता सं-2 के बुलाने एवं पुनः अवगत कराने से पूर्व ललित यादव ने स्वयं ही अपने पिता को दुर्घटना की जानकारी दे दी थी। अतः जियो वर्गीस बनाम राजस्थान राज्य का वाद किसी भी प्रकार वर्तमान वाद के समानांतर नहीं है।

66. जियो वर्गीस बनाम राजस्थान राज्य के वाद के अतिरिक्त, पुनरीक्षणकर्तागण के अधिवक्ता ने वर्तमान वाद से तुलना करते हुए वादों की एक पूरी श्रृंखला को संदर्भित किया है। यद्यपि कुछ उल्लेखनीय असमानताएँ हैं जो मौजूदा वाद हेतु कोई पूर्वनिर्णय स्थापित नहीं करती।

i. उदाहरण हेतु, **सुनील कुमार सेन बनाम मध्य प्रदेश राज्य** वाद में मृतक ने विद्यालय समय से पूर्व परिसर से बाहर निकलकर विद्यालय के नियम का उल्लंघन किया था जिस हेतु उसे उचित रूप से चेतावनी दी गई थी।

ii) **एन अंजलि देवी बनाम पुलिस अधीक्षक** के वाद में, मृतक को आंगनवाड़ी शिक्षिका ने डांटा था, जिसने मृतक के बैग से चोरी हुए पैसे का पता लगाने के पश्चात गुस्से में कहा था "जाओ मर जाओ" ; यहाँ माननीय न्यायालय ने इस बात पर प्रकाश डाला है कि गुस्से में बोले गए शब्द आत्महत्या हेतु उकसाने की श्रेणी में नहीं आते हैं। इसके अतिरिक्त, मृतक को उसके आचरण हेतु डांटा गया था जो अनैतिक था। यद्यपि वर्तमान वाद में मृतक ललित यादव को लगाई गई फटकार एक छोटी सी दुर्घटना के आलोक में अनावश्यक थी, जिस हेतु विशेष रूप से पुनरीक्षणकर्तागण को चेतावनी देने का कोई अधिकार नहीं था क्योंकि दुर्घटना न तो परिसर में हुई और न ही इसकी किसी ने औपचारिक रूप से सूचना दी।

iii) **शशि प्रभा देवी बनाम असम राज्य** के वाद में, अभियुक्त पर आरोप था कि उसने दसवीं कक्षा के छात्र रजिस्टर से मृतक का नाम अनुचित रुप से काट दिया था जिसके कारण मृतक ने आत्महत्या कर ली। यद्यपि मृतक के विरुद्ध कार्रवाई उचित थी क्योंकि उसने नौवीं कक्षा की परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की थी इसलिए आत्महत्या हेतु उकसाने का कोई वाद स्थापित नहीं किया जा सका।

iv) **पी.राजामोहन बनाम मद्रास राज्य** के वाद में, मृतक को गणित की टेस्टबुक नहीं लाने हेतु कक्षा के बाहर खड़े रहने एवं बाद में उस संबंध में प्रधानाध्यापक से मिलने हेतु

कहा गया था। मृतक के साथ शारीरिक उत्पीड़न या मानसिक पीड़ा का कोई साक्ष्य नहीं था, जिसकी पुनः पुष्टि की जानी चाहिए, जो कि वर्तमान वाद में पूर्णतः स्पष्ट है।

v) गुरुचरण सिंह बनाम पंजाब राज्य के वाद में यह ध्यातव्य है कि सर्वोच्च न्यायालय ने दृढ़ता से उल्लेख किया है कि "अभियोग योग्य कृत्यों या चूक की निकटता, निरंतरता, दोषीता एवं जटिलता, उकसावे के सहवर्ती सूचकांक हैं", एवं सभी प्रमुख तत्व इस वाद में स्पष्ट रूप से मौजूद हैं। बालक न तो अति संवेदनशील था कि इतना परेशान हो जाए कि अचानक आत्महत्या कर ले एवं न ही किसी अतीत के संकट से जूझ रहा था जो उसे इतना बड़ा कदम उठाने हेतु मजबूर कर सकता था। दुर्भाग्यपूर्ण घटना के दिन, बालक लगातार किसी पुनरीक्षणकर्तागण की हिरासत में था, जिन्होंने पूर्व विद्यालय परिसर में उसके साथ दुर्व्यवहार किया एवं तत्पश्चात उसे वापस घर ले गए एवं उसे भविष्य में होने वाली क्षति के बारे में पर्याप्त रूप से चिंतित छोड़ दिया। इस प्रकार पुनरीक्षणकर्तागण की निकटता, संबंध, दायित्व एवं भागीदारी को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

67. यह कि आपराधिक मनःस्थिति का अनिवार्य घटक, जिसके अनुपस्थित होने का तर्क पुनरीक्षणकर्तागण के अधिवक्ता देते हैं, समुचित रुप से उपस्थित है एवं मृतक ललित यादव के प्रति पुनरीक्षणकर्तागण के दुर्व्यवहार से स्पष्ट है। विद्यालय के बाहर उक्त दुर्घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों ने पुनरीक्षणकर्ता सं-2 द्वारा सड़क पर ही मृतक ललित यादव एवं उसके मित्र अंशुल गुप्ता के साथ दुर्व्यवहार किये जाने की पुष्टि की है। इसके अतिरिक्त आगे की कार्रवाई तय करने हेतु उक्त मामले को अनुशासनात्मक समिति के समक्ष प्रस्तुत करने के स्थान पर पुनरीक्षणकर्तागण ने मृतक एवं उसके मित्र को अपनी इच्छा से दंडित करने का निर्णय किया। छात्रों को पर्याप्त प्रताड़ना देने के पश्चात अंशुल को एक प्रयोगशाला सहायक के साथ घर वापस भेज दिया गया, जबकि मृतक लालित यादव को पुनरीक्षणकर्ता सं-2 द्वारा घर ले जाया गया, जिसने पुनरीक्षणकर्ता सं-1 के निर्देशानुसार ललित की माँ को सूचित करने अथवा ललित की माँ के उसके लौटने तक उसके साथ रहने के अनुरोध पर विचार करने हेतु प्रतीक्षा नहीं की। अतः यह स्पष्ट है कि पुनरीक्षणकर्तागण ने सक्रिय रूप से ''अनुशासनात्मक कार्रवाइयों'' एवं ''भविष्य में क्षति'' के माध्यम से मृतक के कैरियर को नष्ट करने की बात उसके मन में भर दी तथा उसे आत्महत्या करने हेतु उकसाया। पुनरीक्षणकर्तागण का यह तर्क कि बालक ने अपने पिता के भय के कारण आत्महत्या की, पूर्णतः निराधार है एवं मात्र दोष मढ़ने का प्रयास है, क्योंकि यदि ऐसा होता तो मृतक ने उक्त दुर्घटना के संबंध में सर्वप्रथम अपने पिता को सूचित नहीं किया होता।

68. दं.प्र.सं की धारा 227 के अंतर्गत उन्मोचन हेतु पुनरीक्षणकर्तागण का तर्क उनकी ओर से दुष्प्रेरण के प्रबल साक्ष्य की उपस्थिति के दृष्टिगत पूर्णतः अप्रासंगिक है।

69. पुनरीक्षणकर्तागण के विरुद्ध पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध हैं जिन पर विद्वान न्यायालय द्वारा विधिवत विचार किया गया है एवं इस प्रकार पुनरीक्षणकर्तागण का विचारण किया जा सकता है।

70. प्रारंभ से ही, पुनरीक्षणकर्तागण ने चतुराई से तथ्यों को छुपाया है एवं अपने लाभ हेतु विधि की स्थापित प्रक्रिया का दुरुपयोग किया है। पुनरीक्षणकर्तागण द्वारा कार्यवाही से बचने के प्रयास के रूप में वाद को दुर्भावनापूर्ण रूप से लंबा खींचा गया है, एवं आदेश दिनांकित 22.05.2018, जिसमें स्पष्ट रूप से निर्णय होने पर दो सप्ताह की अवधि में उन्मोचन प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करने का उल्लेख है, का अनुपालन करने के स्थान पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दिनांक 19.06.2018 को गिरफ्तारी पर एकपक्षीय रोक लगाने एवं बाद में दिनांक 06.01.2020 को विचारण पर रोक लगाने की प्रार्थना की गई। वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण भी वाद को टालने की संभावना सहित ही प्रस्तुत किया गया था।

71. पुनरीक्षणकर्तागण द्वारा दुर्घटना के प्रति स्वेच्छया कार्रवाई को ध्यान में रखते हुए अर्थात मृतक लालित यादव को अनुचित रूप से डांटना और शारीरिक रूप से प्रताड़ित करना तथा विद्यालय से निष्कासित करने के अतिरिक्त मानसिक दबाव देना एवं बालक की माँ को विद्यालय बुलाने से लेकर माँ को पहले से सूचित किए बिना पुनरीक्षणकर्तागण सं-2 सहित घर भेजने तक की अकस्मात कार्यों की श्रृंखला एवं तत्पश्चात बिना किसी उचित कारण के उसे अकेला छोड़ देना, यद्यपि वाद के आरंभ से पुनरीक्षणकर्तागण द्वारा अपनाई गई रणनीति का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है, ताकि विपरीत पक्ष को न्याय से वंचित करने हेतु इसे 6 वर्षों तक लंबा खींचा जा सके, पुनरीक्षणकर्तागण के दुर्भावनापूर्ण आशय को स्पष्ट रूप से दर्शाता है, जिससे सख्ती से निपटा जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, इस स्तर पर पुनरीक्षणकर्तागण के विरुद्ध जो आरोप निर्धारित किए गए हैं, वे बिना विलम्ब के निष्पक्ष विचारण की अपेक्षा करते हैं क्योंकि उनके विरुद्ध कार्यवाही हेतु प्रथमदृष्टया पर्याप्त साक्ष्य हैं एवं किसी भी प्रकृति के हस्तक्षेप, जो कार्यवाही को और स्थगित करे, पर विचार नहीं किया जाना चाहिए।

72. **बिहार राज्य बनाम रमेश सिंह(1977 AIR 2018)** वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने द०प्र०सं० की धारा 227 एवं 228 की सीमा की व्याख्या करते हुए कहा:
"दोनों प्रावधानों को एक साथ पढ़ने पर यह स्पष्ट होगा कि विचारण के प्रारंभ एवं प्रारंभिक चरण में अभियोजक द्वारा

प्रस्तुत साक्ष्य की सत्यता तथा प्रभाव का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन नहीं किया जाना चाहिए और न ही अभियुक्त के संभावित बचाव पर कोई बल दिया जाना चाहिए। वाद के उस चरण में न्यायाधीश हेतु यह अनिवार्य नहीं है कि वह किसी भी ऐसे विवरण पर विचार एवं संवेदनशील मूल्यांकन करे कि सिद्ध होने पर, क्या तथ्य अभियुक्त की निर्दोषता से असंगत होंगे या नहीं। परीक्षण एवं निर्णय का मानक जिसे अभियुक्त के अपराध या अन्यथा के संबंध में निष्कर्ष अभिलिखित करने से पूर्व अंतिम रूप से लागू किया जाना है, संहिता की धारा 227 अथवा धारा 228 के अंतर्गत वाद का निर्णय करने के चरण में पूर्णतः लागू नहीं किया जाना है। उस स्तर पर न्यायालय को यह नहीं देखना है कि अभियुक्त को दोषी ठहराने हेतु पर्याप्त आधार है अथवा वाद के निर्णय में उसकी दोषसिद्धि निश्चित है। अभियुक्त के विरुद्ध प्रबल संशय, यदि वाद संशय के क्षेत्र में बना रहता है, विचारण के निष्कर्ष पर उसकी दोषसिद्धि का स्थान नहीं ले सकता। परंतु प्रारंभिक चरण में यदि कोई प्रबल संशय है जो न्यायालय को यह सोचने पर मजबूर करता है कि यह इस उपधारणा का आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है तो न्यायालय हेतु यह कहना संभव नहीं है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने हेतु पर्याप्त आधार नहीं है।"

73. द०प्र०सं० की धारा 227 के अनिवार्य सिद्धांतों को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **भारत संघ बनाम प्रफुल्ल कुमार सामल एवं एक अन्य, 1979 AIR 366**, वाद में विधिवत सारगर्भित किया गया था:

(1) न्यायाधीश के पास संहिता की धारा 227 के अन्तर्गत आरोप निर्धारित करने के प्रश्न पर विचार करते समय आरोपी के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला बनता है अथवा नहीं, यह पता लगाने के सीमित उद्देश्य हेतु साक्ष्यों को छाँटने और मूल्यांकन की असंदिग्ध शक्ति है।

(2) जहाँ न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री अभियुक्त के विरुद्ध गंभीर संशय को प्रकट करती है, जिसे ठीक से स्पष्ट नहीं किया गया है, तो न्यायालय आरोप निर्धारित करने और विचारण हेतु कार्यवाही में पूर्णतः न्यायसंगत होगा।

(3) प्रथम दृष्टया मामले को निर्धारित करने का परीक्षण स्वाभाविक रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा और सार्वभौमिक अनुप्रयोग का नियम बनाना मुश्किल है। यद्यपि, कुल मिलाकर यदि दो दृष्टिकोण समान रूप से संभव हैं और न्यायाधीश इस बात से संतुष्ट है कि समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्य कुछ संदेह पैदा करते हैं, परन्तु आरोपी के विरुद्ध गंभीर संदेह नहीं है, तो वह आरोपी को दोषमुक्त करने के अपने अधिकार में पूर्णरुपेण सक्षम होगा।

74. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **स्त्री अत्याचार विरोधी परिषद बनाम दिलीप नाथूमल चोरडिया एवं एक अन्य, 1989 SCC (1) 715**, के वाद में द०प्र०सं० की धारा 227 के अंतर्गत जाँच की परिधि पर विस्तारपूर्वक चर्चा की है, जिसके अनुसार:-

"धारा 227 में ही किसी अभियुक्त को उन्मोचन करने के उद्देश्य से जाँच की परिधि के बारे में उचित दिशानिर्देश सम्मिलित हैं। इसमें प्रावधान है कि "न्यायाधीश तब आरोपमुक्त कर देगा जब वह मानता है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार नहीं है।" 'आधार' संदर्भ में दोषसिद्धि का आधार नहीं है, अपितु अभियुक्त के विचारण का आधार है। अभियुक्त का अपराध अथवा निर्दोषिता आरोप विरचित करते समय नहीं अपितु विचारण में निर्धारित की जाएगी। अतः न्यायालय को सामग्री के मूल्यांकन करने में विस्तृत जाँच करने एवं विभिन्न पक्षों की गहनता में भी जाने की आवश्यकता नहीं है। न्यायालय को मात्र इस तथ्य पर विचार करना है कि अभिलेख पर साक्ष्य सामग्री, यदि सामान्यतः स्वीकार की जाती है तो क्या अभियुक्त को अपराध से उचित रूप से युक्त किया जा सकेगा। अधिक जाँच की आवश्यकता नहीं है।"

75. उपरोक्त वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी टिप्पणी की है :

"हम सत्र न्यायालय द्वारा निर्धारित किए गए आरोप के विरुद्ध उच्च न्यायालय के हस्तक्षेप के संबंध में कुछ जोड़ना चाहते हैं। धारा 227 जो किसी अभियुक्त को उन्मोचित करने की शक्ति प्रदान करती है, किसी निर्दोष व्यक्ति को विचारण अथवा अभियोजन की कठिन प्रक्रिया के उत्पीड़न से बचाने हेतु बनाई गई थी। उस उद्देश्य को कैसे प्राप्त किया जाए, यह धारा में ही स्पष्ट है। यह शक्ति सत्र न्यायाधीश को सौंपी गई है जो आपराधिक मुकदमों में अपने ज्ञान एवं अनुभव को प्रयोग में लाता है।इसके अतिरिक्त उसे अभियुक्तों के अधिवक्ता एवं लोक अभियोजक की सहायता भी मिलती है। अभियुक्त के विरुद्ध कोई भी आरोप निधारित करने अथवा उसे आरोप मुक्त करने से पूर्व दोनों पक्षों को सुनना आवश्यक है। यदि सत्र न्यायाधीश पक्षकारों को सुनने के पश्चात आरोप निर्धारित करता है एवं उसके समर्थन में आदेश भी देता है तो विधि को अपना कार्य करने देना चाहिए। उच्च न्यायालय का स्व-नियंत्रण नियम तब तक होना चाहिए जब तक कि कोई अन्याय स्पष्टतः प्रतीत नहीं होता। किसी भी वाद पर राय उस व्यक्ति के आधार पर भिन्न हो सकती है जो इसे देखता है। किसी विशेष मामले पर उतनी ही राय हो सकती हैं जितने न्यायालय हैं, परंतु उच्च न्यायालय द्वारा विचारण पर प्रतिबंध लगाने का यह कोई आधार नहीं है। उच्च न्यायालय हेतु बेहतर होगा कि वह विचारण में कार्यवाही हेतु अनुमति दे।"

76. दूसरी ओर, प्रतिवादी सं-2 के विद्वान अधिवक्ता श्री सर्वजीत दुबे ने **महेंद्र प्रसाद तिवारी बनाम अमित कुमार तिवारी एवं एक अन्य, आपराधिक अपील संख्या 1216/2022** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है। द०प्र०सं० की धारा 482 अथवा धारा 397 के अंतर्गत पुनरीक्षण के प्रार्थनापत्र में उन्मोचन हेतु प्रार्थना पत्र पर आदेश पारित करते समय साक्ष्य की सत्यता एवं पर्याप्तता पर विचार नहीं किया जा सकता है एवं इस न्यायालय को इस सिद्धांत को लागू करना चाहिए कि यदि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत संपूर्ण साक्ष्य पर विश्वास किया जाए तो क्या यह अपराध को गठित करेगा अथवा नहीं। उक्त निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर 21, 22, 24, 25 और 26 अधोउद्धृत है: -

"21. यह सुस्थापित विधि है कि यद्यपि विचारण न्यायालय द्वारा निर्धारित किए गए आरोपों को रद्द करने हेतु द०प्र०सं० की धारा 482 के अंतर्गत किसी याचिका अथवा द०प्र०सं० की धारा 397 के अंतर्गत किसी पुनरीक्षण प्रार्थना पत्र पर विचार करने हेतु उच्च न्यायालय स्वतंत्र है, तथापि साक्ष्य की सत्यता अथवा पर्याप्तता के मूल्यांकन द्वारा यह नहीं किया जा सकता है। आरोप को रद्द करने की प्रार्थना करने वाले वाद में, उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया जाने वाला सिद्धांत यह होना चाहिए कि यदि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए संपूर्ण साक्ष्य पर विश्वास किया जाए, तो अपराध गठित होगा या नहीं?आरोप निर्धारित करते समय प्रस्तुत सामग्री की सत्यता, पर्याप्तता एवं स्वीकार्यता मात्र विचारण के चरण में ही की जा सकती है। इसे अत्यधिक संक्षेप में कहें तो आरोप के चरण में न्यायालय को सामग्री की जांच मात्र इस तथ्य से संतुष्ट होने हेतु करनी है कि प्रथमदृष्टया आरोपी व्यक्ति के विरुद्ध कथित अपराध करने का मामला बनता है। यह भी पूर्णतः सुस्थापित है कि जब अभियुक्त द्वारा द०प्र०सं० की धारा 482 के अंतर्गत याचिका प्रस्तुत की जाती है अथवा उसके विरुद्ध लगाए गए आरोप को अपास्त करने की मांग करते हुए द०प्र०सं० की धारा 397 सहपठित धारा 401 के अंतर्गत पुनरीक्षण याचिका दायर की जाती है, तब न्यायालय को आदेश में तब तक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक कि यह मानने हेतु महत्वपूर्ण कारण न हों कि न्यायहित में एवं न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग से बचने हेतु अभियुक्त के विरुद्ध निर्धारित किये गए आरोप अपास्त किये जाने योग्य हैं। ऐसा आदेश मात्र असाधारण वादों एवं दुर्लभ अवसरों पर ही पारित किया जा सकता है। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि एक बार जब विचारण न्यायालय ने किसी अभियुक्त के विरुद्ध आरोप निर्धारित कर दिया है तो विचारण में किसी उच्चतर न्यायालय के अनावश्यक हस्तक्षेप के बिना कार्यवाही की जानी चाहिए एवं अभियोजन पक्ष की ओर से संपूर्ण साक्ष्य अभिलेख पर प्रस्तुत किये जाने चाहिए। संपूर्ण अभियोजन साक्ष्य अभिलेख पर आने से पूर्व किसी अभियुक्त द्वारा आरोप को अपास्त करने के किसी भी प्रयास पर अपवादस्वरूप वादों के अतिरिक्त विचार नहीं किया जाना चाहिए। [संदर्भित दिल्ली राज्य बनाम ज्ञान देवी, (2000) 8 SCC 239]

22. द०प्र०सं० की धारा 397 के अंतर्गत हस्तक्षेप एवं क्षेत्राधिकार के प्रयोग की परिधि की इस न्यायालय द्वारा बार-बार व्याख्या की गई है। इसके अतिरिक्त, द०प्र०सं० की धारा 397 के अंतर्गत उस स्तर पर, जब आरोप निर्धारित हो चुका हो, हस्तक्षेप की परिधि भी सुस्थापित है। आरोप निर्धारित करने के चरण में, न्यायालय का संबंध आरोप के सबूत से नहीं है, अपितु उसे सामग्री पर ध्यान केंद्रित करना है एवं यह राय निर्मित करनी है कि क्या इस बात का प्रबल संशय है कि अभियुक्त ने अपराध कारित किया है, जिसका यदि विचारण किया जाए, तो उसका अपराध सिद्ध किया जा सकता है। आरोप का निर्धारण करना कोई ऐसा चरण नहीं है जिसमें अपराध का अंतिम परीक्षण किया जाना है। इस प्रकार, आरोप निर्धारित करने के चरण में यह धारित करना कि न्यायालय को यह राय बनानी चाहिए कि अभियुक्त निश्चित रूप से अपराध कारित करने का दोषी है, ऐसा कुछ धारित करना होगा जो न तो अनुमति योग्य है एवं न ही आपराधिक प्रक्रिया संहिता की योजना के अनुरूप है।

24. अमित कपूर एवं रमेश चंदर, (2012) 9 एससीसी 460 में इस न्यायालय के निर्णय का संदर्भ लेना उपयोगी है, जहाँ धारा 397 द०प्र०सं० की परिधि पर संक्षेप में विचार किया गया है एवं प्रतिपादित किया गया है। प्रस्तर 12 एवं 13 क्रमशः इस प्रकार है:

"12. संहिता की धारा 397 न्यायालय को किसी वाद में की गई किसी भी कार्यवाही या आदेश की वैधता एवं नियमितता के बारे में स्वयं को संतुष्ट करने के उद्देश्य से विचारण न्यायालय के अभिलेख को मंगाने एवं उसकी जाँच करने की शक्ति प्रदान करती है। इस प्रावधान का उद्देश्य किसी प्रत्यक्ष दोष या क्षेत्राधिकार या विधि की त्रुटि को ठीक करने हेतु है। कोई सुस्थापित त्रुटि होनी चाहिए एवं न्यायालय हेतु आदेशों की जाँच करना उचित नहीं हो सकता है, जिसके सम्बन्ध में प्रत्यक्षतः यह प्रतीत होता है कि उस पर सावधानीपूर्वक विचार किया गया है एवं वह विधि के अनुरूप प्रतीत होता है। यदि कोई इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों पर ध्यान दे तो यह प्रकट होगा कि पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार को वहाँ लागू किया जा सकता है, जहाँ चुनौती दिए गए निर्णय अत्यन्त त्रुटिपूर्ण हैं, विधि के प्रावधानों का कोई अनुपालन नहीं है, अभिलिखित किया गया निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है, भौतिक साक्ष्यों को उपेक्षित कर दिया गया है या न्यायिक विवेक का प्रयोग स्वेच्छया या अनुचित रीति से किया गया है। ये व्यापक श्रेणियां नहीं हैं, अपितु मात्र प्रतीकात्मक हैं। प्रत्येक वाद को उसके गुणों के आधार पर निर्णीत करना होगा।

"13. एक अन्य सर्वमान्य मानदंड यह है कि उच्चतर न्यायालय का पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार अत्यंत सीमित है एवं इसका नियमित रीति से प्रयोग नहीं किया जा सकता है। अंतर्निहित प्रतिबंधों में से एक यह है कि यह अंतरिम या अंतर्वर्ती आदेश के विरुद्ध नहीं होना चाहिए। न्यायालय को यह ध्यान में रखना होगा कि पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग से ही प्रथमदृष्टया अन्याय नहीं होना चाहिए। जहाँ न्यायालय इस प्रश्न का निस्तारण कर रहा है कि क्या किसी वाद में आरोप ठीक से एवं विधि के अनुसार निर्धारित किया गया है, तो न्यायालय इसके पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में हस्तक्षेप करने से तब तक विमुख रहेगा जब तक वाद तात्विक रूप से उपरोक्त श्रेणियों के अंतर्गत न आता हो। यहाँ तक कि द०प्र०सं० के अंतर्गत कार्यवाही में आरोप निर्धारित करना एक बहुत आगे का चरण है।''

25. न्यायालय ने प्रस्तर 27 में अपना निष्कर्ष अभिलिखित किया है एवं धारा 397 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार के प्रयोग हेतु, विशेष रूप से धारा 228 दं०प्र०सं० के अंतर्गत निर्धारित किये गये आरोप को अपास्त करने के संदर्भ में, विचार किए जाने वाले सिद्धांतों को प्रतिपादित किया है। प्रस्तर 27, 27(1), (2), (3), (9), (13) क्रमशः निम्नवत उद्धृत हैं:

"27. इन दो प्रावधानों के अंतर्गत क्षेत्राधिकार की सीमा अर्थात संहिता की धारा 397 एवं धारा 482, एवं क्षेत्राधिकार भेद की महीन सीमा रेखा पर चर्चा करने के बाद, अब हमारे लिए उन सिद्धांतों को सूचीबद्ध करना उचित होगा जिनके संदर्भ में न्यायालयों को ऐसे क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना चाहिये। हालाँकि, ऐसे सिद्धांतों को सटीकता के साथ बताना न केवल मुश्किल है बल्कि स्वाभाविक रूप से असंभव है। इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण करने पर, क्षेत्राधिकार के समुचित प्रयोग हेतु हम कुछ सिद्धांतों का निष्कर्षण कर सके हैं, विशेष रूप से, संहिता की धारा 397 अथवा धारा 482 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए आरोप को रद्द करने के संबंध में अथवा एक साथ, जैसा भी मामला हो:

27.1. हालाँकि संहिता की धारा 482 के अंतर्गत न्यायालय की शक्तियों की कोई सीमा नहीं है, किंतु जितनी अधिक शक्तियाँ होंगी, इन शक्तियों को लागू करने में उतनी ही अधिक सावधानी बरतनी होगी। आपराधिक कार्यवाही, विशेष रूप से संहिता की धारा 228 के संदर्भ में तय किए गए आरोप को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग अत्यंत संयम और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए और वह भी दुर्लभतम मामलों में।

27.2. न्यायालय को यह परीक्षण करना चाहिए कि मामले के अभिलेख एवं उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों द्वारा लगाए गए निर्विवाद आरोप प्रथमदृष्टया अपराध स्थापित करते हैं या नहीं। यदि आरोप इतने बेतुके एवं स्वाभाविक रूप से असंभव हैं कि कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी ऐसे निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता, है एवं जहाँ आपराधिक अपराध के मूल घटक उपस्थित नहीं हैं, तब न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है।

27.3. उच्च न्यायालय को अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। आरोप विरचित करने या आरोप रद्द करने के चरण में यह विचार करने हेतु साक्ष्य की सूक्ष्म जाँच की आवश्यकता नहीं है कि वाद का उपसंहार दोषसिद्धि के रूप में होगा अथवा नहीं।

X X X 27.9. एक अन्य अति महत्वपूर्ण सावधानी जो न्यायालयों को बरतनी है, वह यह है कि वह यह निर्धारित करने के लिए अभिलेख पर उपस्थित तथ्यों, साक्ष्यों एवं सामग्रियों की जाँच नहीं कर सकती है कि क्या पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है जिसके आधार पर वाद का उपसंहार दोषसिद्धि के रूप में होगा; न्यायालय मुख्य रूप से समग्र रूप से लगाए गए आरोपों से चिंतित है कि क्या वे अपराध का गठन करेंगे और यदि हाँ, तो क्या यह न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है जिससे अन्याय होगा।

X X X 27.13. किसी आरोप को रद्द करना निरंतर अभियोजन के नियम का एक अपवाद है। जहाँ अपराध मोटे तौर पर प्रदर्शित हो रहा है, न्यायालय को उस प्रारंभिक चरण में इसे रद्द करने के बजाय अभियोजन जारी रखने की अनुमति देने के लिए अधिक इच्छुक होना चाहिए। न्यायालय से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वह दस्तावेजों या अभिलेखों की स्वीकार्यता एवं विश्वसनीयता तय करने की दृष्टि से अभिलेखों को निर्देशित करेगा, लेकिन प्रथम दृष्टया यह राय बनती है...।"

26. चित्रेश कुमार चोपड़ा बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली सरकार) के वाद में इस न्यायालय ने (2009) 16 एससीसी 605, प्रस्तर 25 में निम्नानुसार टिप्पणी की : -

"25. यह प्रचलित विधि है कि आरोप विरचित करने के चरण में, न्यायालय को अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री एवं दस्तावेजों का मूल्यांकन करने की आवश्यकता होती है ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या उनसे प्रत्यक्षतः उभरने वाले तथ्य कथित अपराध या अपराधों को गठित करने वाले समस्त घटकों की उपस्थिति को प्रकट करते हैं? इस सीमित उद्देश्य हेतु, न्यायालय साक्ष्यों की जाँच कर सकती है क्योंकि प्रारंभिक चरण में भी यह उम्मीद नहीं की जा सकती है कि अभियोजन पक्ष द्वारा कही गई सभी बातों को ईश्वरीय सत्य के रूप में स्वीकार कर लिया जाए। इस स्तर पर न्यायालय को सामग्री पर मात्र यह पता लगाने के

उद्देश्य से विचार करना होगा कि क्या इस "उपधारणा" हेतु आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है, न कि इस निष्कर्ष पर पहुँचने के उद्देश्य से कि इससे दोषसिद्धि होने की संभावना नहीं है। (संदर्भ: निरंजन सिंह करम सिंह पंजाबी एवं अन्य बनाम जीतेन्द्र भीमराज बिज्जा एवं अन्य, (1990) 4 एससीसी 76)।"

77. प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने राजस्थान राज्य बनाम अशोक कुमार कश्यप, आपराधिक अपील संख्या 407/ 2021 के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है। उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया है कि साक्ष्य की प्रमाणन क्षमता को न्यायालय द्वारा उपेक्षित नहीं किया जा सकता है एवं एक बार, सामग्री एकत्र हो जाने के पश्चात, यह उपधारणा की जानी चाहिये कि अपराध हुआ है एवं न्यायालय दं.प्र.सं. की धारा 227 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए विचारण न्यायालय नहीं बन सकता है। उक्त निर्णय के प्रस्तर 9.1, 9.2 एवं 11 निम्नवत उद्धृत किए गए हैं: -

"9.1 पी. विजयन (उपरोक्त) के वाद में, इस न्यायालय के पास दं.प्र.सं. की धारा 227 पर विचार करने का अवसर था। आरोप तय करने एवं/या उन्मोचन प्रार्थनापत्र पर विचार करने के समय क्या विचार करना आवश्यक है, उक्त निर्णय में विस्तृत रूप से विचार किया गया। यह देखा गया एवं माना गया कि धारा 227 के चरण में, न्यायाधीश को मात्र यह पता लगाने के लिए साक्ष्यों की जाँच करनी है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार है या नहीं। दूसरे शब्दों में, आधार की पर्याप्तता के अंतर्गत पुलिस द्वारा दर्ज किए गए साक्ष्य या न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों की प्रकृति को समाहित करती है, जो प्रत्यक्षतः यह प्रकट करते हैं कि अभियुक्त के विरुद्ध संदिग्ध परिस्थितियां हैं ताकि उसके विरुद्ध आरोप विरचित किया जा सके। यदि न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि आगे कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार है, तो वह दं.प्र.सं. की धारा 228 के अंतर्गत आरोप तय करेगा; यदि नहीं, तो वह अभियुक्त को उन्मोचित कर देगा। पुनः यह टिप्पणी की गई है कि न्यायालय द्वारा यह निर्धारित करने हेतु कि क्या अभियोजन पक्ष द्वारा विचारण हेतु वाद बनाया गया है, वाद के तथ्यों पर न्यायिक विवेक का प्रयोग करते समय, वाद के तथ्यों पर ध्यान दें, न्यायालय हेतु वाद के पक्ष एवं विपक्ष का परीक्षण करना या साक्ष्यों का मूल्यांकन करना आवश्यक नहीं है, जो विचारण प्रारंभ होने के पश्चात वास्तव में न्यायालय का कार्य है।

9.2 एम.आर. हिरेमथ (उपरोक्त) के वाद में इस न्यायालय के हालिया निर्णय में, न्यायमूर्ति डी.वाई. चंद्रचूड़ ने पीठ के लिए बोलते हुए प्रस्तर 25 में निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"25. उच्च न्यायालय को इस तथ्य का संज्ञान होना चाहिए था कि विचारण न्यायालय दं.प्र.सं. की धारा 239 के प्रावधानों के अंतर्गत उन्मोचन के लिए एक आवेदन पर विचार कर रही थी। इस क्षेत्राधिकार के प्रयोग को नियंत्रित करने वाले मापदंडों को इस न्यायालय के कई निर्णयों में अभिव्यक्ति मिली है। यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि उन्मोचन प्रार्थनापत्र पर विचार करने के चरण में न्यायालय को इस धारणा पर आगे बढ़ना चाहिए कि अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर लाई गई सामग्री सत्य है एवं यह निर्धारित करने हेतु सामग्री का मूल्यांकन करना चाहिए कि क्या सामग्री से उभरने वाले तथ्य, अपने प्रत्यक्ष मूल्य पर, अपराध का गठन करने हेतु आवश्यक घटकों के अस्तित्व का प्रकटीकरण करते हैं। तमिलनाडु राज्य बनाम एन. सुरेश राजन [तमिल नाडू राज्य बनाम एन.सुरेश राजन, (2014) 11 एससीसी 709, इस विषय पर पूर्व के निर्णयों का उल्लेख करते हुए इस न्यायालय ने कहा: (SCC pp. 721-22, प्रस्तर 29)

"29. ... इस स्तर पर, सामग्रियों की प्रमाणक क्षमता पर गौर किया जाना चाहिए एवं न्यायालय से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वह मामले की गहराई में जाए एवं यह धारित करे कि सामग्री से दोषसिद्धि नहीं होगी। हमारी राय में, इस तथ्य पर विचार करने की आवश्यकता है कि क्या यह मानने का कोई आधार है कि अपराध किया गया है, न कि इस तथ्य पर कि क्या अभियुक्त को दोषी ठहराने का कोई आधार प्रस्तुत किया गया है। इसे अलग प्रकार से कहें तो, यदि न्यायालय को अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्रियों की प्रमाणक क्षमता के आधार पर लगता है कि अभियुक्त ने अपराध किया होगा, तो यह आरोप विरचित कर सकती है; हालांकि दोषसिद्धि हेतु, न्यायालय को इस निष्कर्ष पर पहुंचना होगा कि अभियुक्त ने अपराध किया है। विधि इस स्तर पर लघु विचारण की अनुमति नहीं देता है।"

"11. अभियुक्त को उन्मोचित करते समय उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए कारण एवं उच्च न्यायालय द्वारा मूल्यांकित आधारों पर विचार करने के बाद हमारी राय है कि उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन किया है एवं दं.प्र.सं. की धारा 227/239 की सीमा से परे कार्रवाई की है। अभियुक्त को उन्मोचित करते समय, उच्च न्यायालय ने मामले के गुण-दोषों का अध्ययन किया एवं विचार किया कि क्या अभिलेख पर उपस्थित सामग्री के आधार पर अभियुक्त के दोषसिद्ध होने की संभावना है या नहीं। उपरोक्त हेतु, उच्च न्यायालय ने वादी एवं अभियुक्त के मध्य हुए वार्तालाप की लिखित प्रतिलिपि पर विस्तार से विचार किया जो इस स्तर

पर उन्मोचन प्रार्थनापत्र एवं/या आरोप विरचित करने पर विचार करने हेतु कदापि अनुमन्य नहीं है। जैसा कि विद्वान विशेष न्यायाधीश द्वारा यह टिप्पणी की गई है एवं धारित किया गया है कि आरोप विरचित करने के चरण में मात्र यह देखा जाना चाहिये कि प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं एवं अभियुक्त के बचाव पर विचार नहीं किया जाना चाहिए। वादी एवं अभियुक्त के मध्य हुए वार्तालाप की लिखित प्रतिलिपि सहित अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करने के पश्चात विद्वान विशेष न्यायाधीश ने पाया कि पीसी अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत कथित अपराध का प्रथमदृष्टया वाद है एवं उक्त अपराध हेतु अभियुक्त के विरुद्ध आरोप विरचित किया। उच्च न्यायालय ने वार्तालाप की लिखित प्रतिलिपि पर विस्तार से विचार करने की कवायद को नकारने एवं इस बात पर विचार करने में महत्वपूर्ण त्रुटि की कि क्या अभिलेख पर उपस्थित सामग्री के आधार पर अभियुक्त को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जा सकता है या नहीं। जैसा कि ऊपर देखा गया है, उच्च न्यायालय को इस बात पर विचार करना था कि क्या प्रथम दृष्टया मामला बनाया गया है एवं क्या अभियुक्त पर आगे मुकदमा चलाने की आवश्यकता है? आरोप विरचित करने एवं/या उन्मोचन प्रार्थनापत्र पर विचार करने के चरण में, लघु विचारण की अनुमति नहीं है। इस स्तर पर यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 के अनुसार, एक प्रयास भी अपराध है। इसलिए उच्च न्यायालय ने उन्मोचन प्रार्थनापत्र के चरण में एक लघु विचारण करके त्रुटि की है एवं/या अतिलंघन किया है।"

78. उन्होंने **मोहन राम बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य, आपराधिक पुनरीक्षण याचिका संख्या 229/2022** के वाद में राजस्थान उच्च न्यायालय के दिनांक 1.4.2022 के निर्णय पर भी विश्वास व्यक्त किया है। आरोप विरचित करने का बिंदु निर्णय के प्रस्तर 11.8 में उल्लिखित है, जिसका प्रासंगिक भाग नीचे उद्धृत किया गया है: -

"11.8 .... उपर्युक्त सिद्धांत स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करते हैं कि अंतर्निहित एवं पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का सावधानी से प्रयोग किया जाना चाहिए। यदि प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने के संबंध में संहिता की धारा 482 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार तथ्यों एवं सावधानी द्वारा सीमित है, जैसा कि देखा गया है, उस स्थिति में, विशेष रूप से आरोप विरचित करने के दौरान, पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार और भी अधिक सीमित होना चाहिए। आरोप विरचन संहिता की धारा 228 के संदर्भ में विचारण न्यायालय द्वारा अधिकार क्षेत्र का एक प्रयोग है, जब तक कि अभियुक्त संहिता की धारा 227 के अंतर्गत उन्मोचित न कर दिया गया हो। इन दोनों प्रावधानों के अंतर्गत, 'वाद के अभिलेख' एवं उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करने एवं पक्षों को सुनने के पश्चात, न्यायालय या तो अभियुक्त को उन्मोचित कर सकती है या जहाँ यह न्यायालय को प्रतीत हो एवं उसकी राय में यह मानने का आधार हो कि अभियुक्त ने अपराध किया है, वह आरोप विरचित करेगी। एक बार जब धारा (27-32) [सीआरएलआर-229/2022] के तथ्य एवं सामग्रियां उपलब्ध हैं, तो न्यायालय को अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने एवं तदनुसार आरोप विरचित करने का आधार है, जैसा कि यह उपधारणा विधिक उपधारणा नहीं है। किसी अपराध के घटकों के अस्तित्व एवं उस अपराध हेतु उत्तरदायी तथ्यों के संबंध में न्यायालय की संतुष्टि ऐसे क्षेत्राधिकार के प्रयोग हेतु अनिवार्य है। यह प्रथमदृष्टया वाद से भी कमज़ोर हो सकता है। संहिता की धारा 227 एवं 228 की भाषा के मध्य एक महीन अंतर है। धारा 227 न्यायालय की निश्चित राय एवं निर्णय की अभिव्यक्ति है जबकि धारा 228 संभावित है। इस प्रकार, यह कहना कि आरोप विरचित करने के चरण में, न्यायालय को यह राय बनानी चाहिए कि अभियुक्त निश्चित रूप से अपराध करने का दोषी है, एक ऐसा दृष्टिकोण है जो संहिता की धारा 228 के संदर्भ में अस्वीकार्य है। यह भी देखा जा सकता है कि उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग किया जाने वाला पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार एक प्रकार से अंतिम है एवं ऐसे मामलों में कोई अंतर-न्यायालयी उपचार उपलब्ध नहीं है। निश्चय ही यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत इस न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अधीन हो सकता है। सामान्यतया पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग विधि के प्रश्न पर किया जाना चाहिए। हालाँकि, जब तथ्यात्मक अधिमूल्यन सम्मिलित होता है, तो इसे उन वादों की श्रेणी में स्थान मिलना चाहिए जिनके परिणामस्वरूप प्रतिकूल निष्कर्ष निकलता है। मूलतः, शक्ति का प्रयोग आवश्यक है ताकि न्याय हो सके एवं न्यायालय द्वारा शक्ति का दुरुपयोग न हो। मात्र इसकी आशंका या संदेह ऐसे मामलों में हस्तक्षेप हेतु पर्याप्त आधार नहीं होगा।"

अपने तर्क का समर्थन करने हेतु, प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने **वर्ष 2019 के आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1116, राकेश कुमार पांडे एवं अन्य बनाम उ.प्र.राज्य एवं अन्य**,में इलाहाबाद उच्च न्यायालय, लखनऊ पीठ के दिनांक 15.2.2022 के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है। उक्त निर्णय में संजय कुमार राय (उपरोक्त) एवं अशोक कुमार कश्यप (उपरोक्त) के मामलों का निस्तारण किया गया है जिनकी चर्चा इस निर्णय के पूर्ववर्ती प्रस्तरों में पहले ही की जा चुकी है।

विचारार्थ तथ्य एवं साक्ष्य:-

79. प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के पश्चात अन्वेषण अधिकारी ने दं.प्र.सं. की धारा 161 के अंतर्गत साक्षीगण के

बयान दर्ज किए हैं। अन्वेषण अधिकारी द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 161 के अंतर्गत पुनरीक्षणकर्ता संख्या 1 का बयान दर्ज किया गया था एवं उसने अन्वेषण अधिकारी के सामने कहा था कि उसने पीटी शिक्षक, पुनरीक्षणकर्ता संख्या 2 को माता-पिता को घटना की सूचना देने का निर्देश दिया था एवं उसने उसे अपने माता-पिता को बुलाने के लिए भी कहा था ताकि मृतक ललित यादव को उसके माता-पिता को सौंपा जा सके। पीटी शिक्षक ने उन्हें घटी घटना की जानकारी दी। प्रधानाचार्य पुनरीक्षणकर्ता संख्या 1 ने कहा था कि उन्होंने मृतक ललित यादव पर कोई शारीरिक हमला नहीं किया था। मृतक ललित यादव के मित्र को उसने थप्पड़ मारा था क्योंकि जब उसे कार्यालय के अंदर आने के लिए कहा गया तो वह उग्र हो गया। दं.प्र.सं. की धारा 161 के अंतर्गत पुनरीक्षणकर्ता संख्या 1 द्वारा पुनः कहा गया था कि अंशुल एवं ललित यादव की मोटरसाइकिल रिक्शा से टकरा गई थी एवं लोग ललित की पिटाई कर रहे थे; इसलिए, उसे स्कूल में बुलाया गया था। प्रार्थना सभा समाप्त होने के बाद उन्होंने माता-पिता को इसकी जानकारी दी। उन्होंने अंशुल गुप्ता से कुछ सवाल पूछे,जो उत्तेजित स्थिति में बात कर रहा था, इसलिए उन्होंने उन्हें थप्पड़ मार दिया। साथ ही उसने उन दोनों यानी अंशुल गुप्ता एवं ललित यादव से कहा कि वह उन के माता-पिता को बुलाएगा। उन्होंने पीटी शिक्षक जेम्स जॉन को ललित यादव एवं शिक्षक लुइस जेम्स के साथ अंशुल गुप्ता को उनके घर भेजने का निर्देश दिया। उन्होंने पुनः कहा कि वे अपने माता-पिता को सूचित करेंगे कि उन्हें निलंबित कर दिया जाएगा। उन्हें सोमवार तक के लिए निलंबित कर दिया गया।

80. इसी प्रकार, पुनरीक्षणकर्ता संख्या 2 जेम्स जॉन ने भी दं.प्र.सं. की धारा 161 के अंतर्गत अपना बयान दर्ज कराया एवं उन्होंने स्वीकार किया कि ललित यादव को उनके घर छोड़ दिया गया था एवं ललित यादव के माता-पिता को घटना के बारे में सूचित किया गया था। उन्होंने तथ्यों के बारे में बताया कि कैसे अंशुल गुप्ता एवं ललित यादव द्वारा चलाई जा रही मोटरसाइकिल रिक्शा से टकरा गई थी एवं वह भी घटनास्थल पर आए थे एवं उन्हें स्कूल के अंदर ले गए थे।

81. मृतक ललित यादव के पिता अमर नाथ यादव का बयान धारा 161 दं.प्र.सं. के अंतर्गत दर्ज किया गया। उन्होंने कहा कि उनका बेटा ललित यादव कैथेड्रल स्कूल, हजरतगंज, लखनऊ में कक्षा-12-ए में पढ़ता था। वह दिनांक 3.12.2016 को सुबह लगभग 7.45 बजे स्कूल गया था। उसे सुबह 7.58 बजे पीटी शिक्षक का फोन आया। पुनरीक्षणकर्ता संख्या 2 ने उसे बताया कि उसके बेटे की मोटरसाइकिल रिक्शा से टकरा गई थी, जिसके कारण रिक्शा का पहिया क्षतिग्रस्त हो गया। पीटी शिक्षक ने उससे कहा कि वह अपने बेटे को फादर(प्रिंसिपल) के सामने पेश करेगा। उन्होंने पीटी शिक्षक से कहा कि वह लखीमपुर खीरी में तैनात हैं, इसलिए वह आने में असमर्थ हैं एवं उन्हें परेशान न करने को कहा। उनके बेटे ललित यादव ने उन्हें बताया कि उनकी मोटरसाइकिल रिक्शा से टकरा गई थी एवं उन्होंने रिक्शा चालक को 150/- रुपये दिए। इसी बीच पीटी शिक्षक पुनरीक्षणकर्ता संख्या 2 ने उसका फोन छीन लिया एवं वह आगे बात नहीं कर सका। उसने अपनी पत्नी को मोबाइल फोन पर सूचित किया एवं अपने बेटे को घर लाने के लिए कहा। उनकी पत्नी ने उनसे अपने चचेरे भाई को वाहन के साथ भेजने को कहा ताकि ललित यादव को घर लाया जा सके। पत्नी स्कूल चली गई एवं उसे बताया गया कि उसके बेटे की मोटरसाइकिल एवं मोबाइल स्कूल में जमा कर दिया गया था निष्कासन के बाद, उसके बेटे को पीटी शिक्षक, पुनरीक्षणकर्ता संख्या 2 के साथ घर भेज दिया गया था। उसकी पत्नी स्कूल से घर लौट रही थी एवं इसी बीच उसे पीटी शिक्षक ने बताया कि उसके बेटे को वह (पीटी शिक्षक) उसके घर लाया है उसकी पत्नी ने उनसे कहा कि वह अपने बेटे को अकेला न छोड़ें लेकिन पीटी शिक्षक उसके बेटे को छोड़ने के बाद वापस स्कूल आ गए। उसकी पत्नी घर पहुंची एवं पीटी शिक्षक से फोन पर संपर्क किया कि उसका बेटा कहाँ है एवं उन्होंने उसे बताया कि वह उसे पहले ही गेट पर छोड़ चुके हैं। उसकी पत्नी ने दरवाजा खटखटाया लेकिन किसी ने उत्तर नहीं दिया। चचेरा भाई अजय यादव किसी तरह बालकनी के रास्ते घर के अंदर आया एवं जब उसकी पत्नी बेटे के ऊपर वाले कमरे में गई तो देखा कि उसने लाइसेंसी रिवाल्वर से आत्महत्या कर ली है। मृतक बेटे को ट्रॉमा सेंटर लाया गया जहाँ इलाज के दौरान उसकी मृत्यु हो गई। मृतक के पिता द्वारा यह भी कहा गया है कि पीटी शिक्षक एवं पुनरीक्षणकर्ता संख्या 1 एवं 2 के पिता ने उसे मानसिक एवं शारीरिक रूप से पीटा एवं परेशान किया था एवं उसे निष्कासित करने की धमकी दी थी, इसलिए उसके पुत्र ने आत्महत्या कर ली।

82. श्रीमती शिवदेवी, जो मृतक की माँ एवं अमर नाथ यादव की पत्नी है, से भी पुलिस ने पूछताछ की एवं दं.प्र.सं. की धारा 161 के अंतर्गत उनका बयान दर्ज किया गया। उन्होंने लगभग वही तथ्य बताये जो उनके पति अमर नाथ यादव ने बताये थे। उन्होंने कहा कि जब ललित यादव की मोटरसाइकिल रिक्शा से टकरा गई थी तो उनके पुत्र को स्कूल के फादर एवं पीटी शिक्षक ने बुलाया था एवं उससे कहा था कि जब तक उसके माता-पिता स्कूल नहीं आ जाएं, तब तक वह स्कूल न छोड़े। उसे सूचित किया गया कि उसे अपने पुत्र को स्कूल से ले जाना चाहिए एवं वह स्कूल पहुँची लेकिन उसे बताया गया कि उसके पुत्र को पीटी शिक्षक उसके घर ले गया है एवं उसे निष्कासित कर दिया गया है। स्कूल के फादर, पुनरीक्षणकर्ता संख्या 1 के

पिता ने उनसे मिलने से इनकार कर दिया; इसलिए, वह अपने घर वापस लौट आई एवं जब वह घर आ रही थी, तो पीटी शिक्षक पुनरीक्षणकर्ता संख्या 2 ने उसे सूचित किया कि वह उसके पुत्र को उसके घर लाया था। उसने उससे अपने पुत्र को न छोड़ने के लिए कहा। जब वह घर पहुँची तो घर में ताला लगा हुआ था एवं किसी तरह उसके पति का चचेरा भाई अजय यादव खिड़की के रास्ते घर के अंदर गया एवं गेट खुला तो उसने देखा कि उसके पुत्र ने लाइसेंसी रिवाल्वर से गोली मार ली है। उसके पुत्र की सांसें चल रही थीं, इसलिए पड़ोसियों की मदद से उसे ट्रॉमा सेंटर लाया गया, लेकिन इलाज के दौरान आखिरकार उसके पुत्र ने दम तोड़ दिया।

83. मृतक ललित यादव के मित्र अंशुल गुप्ता, जो घटना के समय स्कूल में मृतक के साथ उपस्थित था, से भी पुलिस ने पूछताछ की। उसने अन्वेषण अधिकारी के समक्ष बताया कि दिनांक 2.1.2016 को उसे मृतक ललित यादव ने रात में फोन किया एवं कहा कि कल चाय पियेंगे। अगले दिन वे स्कूल की पार्किंग के सामने मिले। मृतक ललित यादव ने उसे अपना वाहन स्कूल के अंदर खड़ा करने के लिए कहा एवं उसे अपनी मोटरसाइकिल के साथ आने के लिए कहा एवं उसने चाय पीने की इच्छा जताई। चाय पीने के बाद वे वापस स्कूल आ रहे थे। विलंब होने के कारण वे प्रार्थना सभा में शामिल नहीं हो सके एवं वे गेट के बाहर खड़े रहे। गेट की ओर आते समय उनकी मोटरसाइकिल रिक्शे से टकरा गई, जिससे रिक्शे में बैठी एक वृद्ध महिला नीचे गिर गई। घटना स्थल पर पहले से ही खड़े कई माता-पिता/अभिभावक एवं राहगीर आ गए एवं उन्होंने ललित एवं अंशुल गुप्ता को डांटा था। किसी ने उसे थप्पड़ मार दिया। इसी बीच पीटी शिक्षक पुनरीक्षणकर्ता संख्या 2 घटना स्थल पर आये। उसने घटना के बारे में पूछा जो उसने बताया। रिक्शेवाले को 150रूपये दिये गये। पीटी शिक्षक उन्हें स्कूल के अंदर ले आये एवं प्रार्थना ख़त्म हो चुकी थी। इस बीच, मृतक ललित यादव ने अपना सेल फोन निकाला एवं अपने पिता को पूरी घटना बताई, लेकिन पीटी शिक्षक, पुनरीक्षणकर्ता संख्या 2 ने फोन छीन लिया एवं इसे बंद कर दिया एवं इसे फादर को सौंप दिया। पीटी शिक्षक ने फादर को स्कूल के बाहर हुई सारी बातें बताईं। फादर ने उनसे स्कूल के बाहर भीड़ को नियंत्रित करने के लिए कहा एवं उन्हें स्कूल ले जाया गया। फादर ने कहा कि उन्हें निलंबित कर दिया जाएगा एवं उनके माता-पिता को सूचित कर दिया जाएगा। उन्होंने फादर के सामने खेद भी व्यक्त किया। फादर ने अंशुल गुप्ता को थप्पड़ मार दिया था। फिर फादर के सामने अंशुल गुप्ता ने कहा कि यह इतनी बड़ी घटना नहीं है; इसलिए, उन्हें माफ़ कर दिया जाना चाहिए। फिर फादर ने अंशुल गुप्ता को थप्पड़ मार दिया। उन्होंने आगे कहा कि ललित यादव काफी परेशान था एवं कह रहा था कि उसका करियर समाप्त हो गया है। उसे परीक्षा में सम्मिलित नहीं होने दिया जाएगा एवं उसके माता-पिता निश्चित रूप से उसे डांटेंगे। ललित यादव के ऐसे बयान पर अंशुल गुप्ता ने उनसे कहा कि सब ठीक हो जाएग। ललित यादव को पीटी शिक्षक ने उसके घर भेज दिया।

न्यायालय के निष्कर्ष

84. प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि आरोप निर्धारित करने के चरण में, न्यायालय को मात्र इस दृष्टिकोण से साक्ष्य पर विचार करना होगा कि क्या इस उपधारणा हेतु कोई आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है। न्यायालय को इस उद्देश्य से अभिलेख पर उपस्थित सामग्री एवं दस्तावेज़ों का मूल्यांकन करना होगा कि उनके अवलोकन से कथित अपराध अथवा अपराधों को गठित करने वाले समस्त घटकों का प्रकटीकरण होता है अथवा नहीं। यदि न्यायालय यह पाती है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश पर न्यायिक विवेक का प्रयोग नहीं किया गया है अथवा तथ्य एवं विधि के बिंदु निर्णीत नहीं किये गए है, तब न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397/401 के अंतर्गत हस्तक्षेप करने की शक्ति प्राप्त है। न्यायालय को प्रक्रिया का दुरूपयोग रोकने एवं न्याय सुनिश्चित करने हेतु इस शक्ति का प्रयोग करना आवश्यक है। जहाँ तक दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397/401 के अंतर्गत प्रक्रिया का दुरूपयोग रोकने एवं न्याय सुनिश्चित करने हेतु न्यायालय की शक्ति का प्रश्न है, प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता के तर्क में कोई बल नहीं है। मुझे विचारण न्यायालय के आदेश की वैधता का परीक्षण करना है। यदि यह पाया जाता है कि मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के मानकों के अनुरूप नहीं है, तब निश्चय ही न्याय सुनिश्चित करने हेतु यह न्यायालय सम्बंधित न्यायालय को निर्णय लेने अथवा आदेश अपास्त करने का निदेश दे सकती है।

85. प्रश्नगत आदेश को भारतीय दंड संहिता की धारा 107 एवं धारा 305 की योजना के साथ-साथ दंड प्रक्रिया सहिता की धारा 227 की प्रयोज्यता के सामंजस्य के अंतर्गत अवलोकित एवं निर्णीत किया जाना है। विचारण न्यायालय ने दंड प्रक्रिया सहिता की धारा 161 के अंतर्गत मृतक के माता एवं पिता का बयान अभिलिखित करने के पश्चात मृतक के साथी अंशुल गुप्ता का बयान अभिलिखित किया। उच्चतम न्यायालय के कई निर्णयों का उल्लेख किया गया किंतु निर्णय की कोई चर्चा नहीं की गई। प्रश्नगत आदेश के अंतिम भाग में, न्यायालय ने यह कारण देते हुए निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि पुनरीक्षणकर्ताओं ने मृतक छात्र के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही नहीं की है, एवं चूँकि सक्षम प्राधिकारी द्वारा छात्र के विरुद्ध कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही नहीं की गई है, मृतक द्वारा की गई आत्महत्या यह दर्शाती है कि पुनरीक्षणकर्तागण

आत्महत्या हेतु दुष्प्रेरण के दोषी हैं। न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 107 एवं धारा 305 तथा दंड प्रक्रिया सहिता की धारा 227 की आवश्यकताओं के सन्दर्भ में वाद के तथ्यों का परीक्षण नहीं किया है। न्यायालय को यह परीक्षण करना होता है कि क्या पुनरीक्षणकर्तागण के विरुद्ध एकत्र की गई समस्त सामग्री अपराध को प्रकट करती है। न्यायालय ने सामग्री पर चर्चा नहीं की है, न ही कोई निष्कर्ष अभिलिखित किया है। यद्यपि पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा संदर्भित विभिन्न निर्णयों का उल्लेख तो किया गया है किन्तु उनसे प्रतिपादित विधि एवं उन वादों की प्रयोज्यता अथवा अप्रयोज्यता पर न तो विचार किया गया है न ही निर्णीत किया गया। जब न्यायालय ने वाद के तथ्यों का उल्लेख किया है, तो उसे निर्णय करते समय अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य की चर्चा करती होती है एवं यह विनिश्चित करने हेतु अपने मस्तिष्क का प्रयोग करना होता है कि क्या साक्ष्य एवं सामग्री से पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा अपराध किया जाना प्रकट होता है। किन्तु मैं पाता हूँ कि ऐसी कोई प्रक्रिया न्यायालय द्वारा नहीं अपनाई गई है। न्यायालय द्वारा घोषित निर्णय का प्रभावी भाग कारणहीन एवं युक्तिहीन है। निर्णयों के निर्णयाधारों का उल्लेख भी नहीं किया गया है एवं निर्णय यांत्रिक रीति से लिया गया है।

86. न्यायालय को यह देखना है कि वर्तमान वाद में किस प्रकार भारतीय दंड संहिता की धारा 305 के अंतर्गत आत्महत्या के दुष्प्रेरण का अपराध गठित होता है, एवं किस प्रकार अपराध कारित होने के लिये उकसावा देने के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष साक्ष्य उपलब्ध हैं; क्या अभियुक्त ने मृतक को आत्महत्या करने के लिये उकसाया है, एवं क्या अभियुक्तगण मामले में किसी प्रकार सम्मिलित थें जिस कारण मृतक ने आत्महत्या कर ली। न्यायालय को इस बात का परीक्षण करना है कि यदि मृतक द्वारा कोई अनुशासनहीनता की गई थी तो क्या प्रधानाचार्य एवं पी. टी. अध्यापक होने के कारण पुनरीक्षणकर्ताओं का यह कर्तव्य था कि वे विद्यालय में अनुशासन बनाये रखने हेतु कोई आवश्यक कार्रवाई करते।

87. उपरोक्त चर्चा, वाद के तथ्यात्मक पक्ष एवं उच्चतम न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के दृष्टिगत, मेरा यह मत है कि मामले में पुनर्विचार की आवश्यकता है।

88. तदनुसार यह वाद विचारण न्यायालय को तीन मास की अवधि में ऊपर की गई टिप्पणियों एवं विधि के आलोक में नवीन निर्णय लेने हेतु निदेश सहित प्रतिप्रेषित किया जाता है। विचारण न्यायालय ऊपर की गई टिप्पणियों से प्रभावित हुए बिना, अपने मस्तिष्क का प्रयोग करते हुए विधि अनुरूप निर्णय लेगी।

89. पुनरीक्षण स्वीकृत किया जाता है। अपर सत्र न्यायाधीश - प्रथम, लखनऊ द्वारा सत्र विचारण संख्या 34/2019 (राज्य बनाम फादर मेल्विन सलदान्हा एवं एक अन्य) में जारी किया दिनांक 14.3.2019 का आदेश अपास्त किया जाता है।

(2023) 1 ILRA 69
पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: लखनऊ 25.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूत श्रीमती ज्योत्सना शर्मा

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-1399 वर्ष 2022

गिरीश कुमार ...पुनरीक्षणकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिपक्षी

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता:
सुशील कुमार, मुकुल यादव

प्रतिपक्षियों के लिए अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

A. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397/401 - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 363, 366 & 376 - पाकसो अधिनियम - घटना के समय किशोरी की उम्र की वैधता लगभग 16 वर्ष और 3 महीने की पाई गई थी - वह अपने जीजा द्वारा किए गए बलात्कार के कारण गर्भवती हो गई और वह अपने पति के साथ जाने के लिए तैयार नहीं थी; बाल कल्याण समिति ने उसे राजकीय बालगृह में हिरासत में रखने का आक्षेपित आदेश पारित किया - उसकी संस्थागत हिरासत परिवार से बेहतर लगती है; अभिरक्षा- अधिनियम, 2015 सी.डब्ल्यू.सी. को बच्चे के सर्वोत्तम हित के सिद्धांतों पर विशाल शक्तियां प्रदान करता है, जो बच्चे को जन्म देती है, जो आश्रय गृह में रह रही है - वह देखभाल करने के लिए एक शिशु के साथ एक मां है और उसे परिवार के समर्थन की आवश्यकता हो सकती है - इसलिए, मामले को नए सिरे से तय करने के लिए अपीलीय अदालत में वापस भेजा जाता है। (पैरा 1 से 17)

ख) जब कोई आदेश इस न्यायालय के समक्ष चुनौती के अधीन प्रकृति का पारित किया जाता है, तो अपील बाल न्यायालय द्वारा विचार योग्य होगी, न कि जिलाधिकारी द्वारा; जिलाधिकारी को केवल पालक देखभाल और देखभाल के

बाद प्रायोजन (आर्थिक संरक्षण) से संबंधित समिति के निर्णयों के खिलाफ अपील सुनने का अधिकार है। विचाराधीन आदेश इस श्रेणी में नहीं आता है। अपीलीय अदालत यह मानने में गलत थी कि अपील उसके सामने पोषणीय नहीं थी। (पैरा 11)

पुनरीक्षण का निपटान किया जाता है। (ई-6)

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा द्वारा प्रदत्त)

1. श्री मुकुल यादव, पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता और राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. यह पुनरीक्षण बाल कल्याण समिति, कासगंज द्वारा पारित आदेश दिनांक 11.01.2022 को चुनौती देते हुए, विशेष न्यायाधीश (पोक्सो अधिनियम) द्वारा आपराधिक अपील संख्या-7 वर्ष 2022 में पारित आदेश दिनांक 26.10.2022 को चुनौती देते हुए, धारा- 363, 366, 376 भ०द०वि० के तहत अपराध संख्या-140 वर्ष 2022 थाना- सुन्नगढ़, जिला- कासगंज से उत्पन्न मामले में दायर किया गया है।

3. इस पुनरीक्षण को उत्पन्न करने वाले प्रासंगिक तथ्य नीचे दिए गए हैं: -

पीड़िता के पिता ने अपनी बेटी के अपहरण का आरोप लगाते हुए प्राथमिकी दर्ज कराई थी; पीड़िता को बरामद कर लिया गया और उसे बाल कल्याण समिति के समक्ष पेश करने का निर्देश दिया गया; बाल कल्याण समिति ने दिनांक 11.01.2022 को एक साथ चार आवेदनों को खारिज करते हुए एक आदेश पारित किया, एक पीड़िता की मां की ओर से और दूसरा पीड़िता की विवाहित बहन अर्थात् इस्लांती की ओर से और दो आवेदन खुद पीड़िता द्वारा पेश किए गए। बाल कल्याण समिति के समक्ष रखे गए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से संकेत मिलता है कि पीड़िता अपनी सगी बहन इस्लंती के पति जीजा ओम पाल के बच्चे के साथ गर्भवती हो गई। यह ध्यान दिया जा सकता है कि आवेदकों में से एक ओम पाल की पत्नी इस्लंती थी। लड़की की शादी उसके माता-पिता द्वारा घनश्याम से की गई थी; वह अपने पति के साथ नहीं रहती थी; इसके बजाय वह अपनी जीजा और अपनी सगी बहन के साथ गई, जहाँ वह गर्भवती हुई; बाल कल्याण समिति ने पाया कि पीड़िता की ओर से दो आवेदन आए थे, एक में उसके माता-पिता के साथ जाने की इच्छा व्यक्त की गई थी और दूसरे में उसकी बहन और जीजा के साथ जाने की इच्छा व्यक्त की गई थी। सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, बाल कल्याण समिति ने उसे दिनांक 11.01.2022 के आदेश द्वारा राजकीय बालगृह स्वरूपनगर, कानपुर में हिरासत में रखना उचित समझा।

4. उपरोक्त आदेश के खिलाफ उसके पिता द्वारा दायर की गई अपील को, अन्य बातों के साथ-साथ इस धारणा पर कि कानूनी अपील केवल जिलाधिकारी के समक्ष दायर की जा सकती थी और बच्चों की अदालत के पास अपील सुनने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था, खारिज कर दिया गया था।

5. किशोरी न्याय अधिनियम, 2015 की धारा-101 इस प्रकार है: –

"(1) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, इस अधिनियम के अधीन समिति या बोर्ड द्वारा किए गए आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, ऐसे आदेश की तारीख से तीस दिन के भीतर, पालक देखरेख और आयोजन पश्चात देखरेख से संबंधित समिति के विनिश्चयों को छोड़कर, जिसके लिए अपील जिलाधिकारी के पास होगी, "बालक न्यायालय" में अपील कर सकेगा।

6. कानून के इस प्रावधान से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि बाल कल्याण समिति द्वारा केवल देखभाल के बाद पालक देखभाल और प्रायोजन (आर्थिक संरक्षण) से संबंधित निर्णयों के संबंध में जिलाधिकारी को अपील की जाएगी। बाल कल्याण समिति द्वारा पारित अन्य आदेशों के संबंध में अपील आदेश की तारीख से 30 दिनों के भीतर 'बाल न्यायालय' में होगी। इस प्रावधान का विश्लेषण करने से पहले, बाल कल्याण समिति द्वारा पारित आदेश का अवलोकन करना उचित होगा ताकि यह तय किया जा सके कि क्या यह आदेश उस श्रेणी में आता है जहां अपील बाल न्यायालय में हो सकती है या उस श्रेणी में जहां अपील जिलाधिकारी के पास होगी।

7. निम्नलिखित तथ्य विवादित नहीं हैं कि पीड़ित लड़की को न्यायिक मजिस्ट्रेट, कासगंज द्वारा केस अपराध संख्या-140 वर्ष 2021 में एक मामले से उत्पन्न मामले में पारित एक आदेश के अनुसरण में धारा- 363, 366, 376 भ०द०वि०, थाना- सुन्नगढ़, जिला- कासगंज के तहत बाल कल्याण समिति के समक्ष पेश किया गया था।

8. आक्षेपित आदेश के अवलोकन से, ऐसा लगता है कि पीड़िता को बाल कल्याण समिति द्वारा परामर्श के लिए रखा गया था और उसने एक बयान दिया था कि जुलाई, 2021 में उसके पिता द्वारा उसकी इच्छा के विरुद्ध एक घनश्याम से उसकी शादी की गई थी; वह उसे पसंद नहीं करती थी इसलिए, वह अपने माता-पिता के घर लौट आई; इस बीच उसने अपने जीजा ओम पाल के साथ अवैध संबंध विकसित किए और उसके साथ पंजाब में एक स्थान पर

भाग गई जहाँ वह 15 दिनों तक उसके साथ रही और अपनी बहन को भी बुलाया और तीनों शांति से एक साथ रहते थे; वह अपने जीजा के बच्चे के साथ गर्भवती हो गई और अब वह केवल उसके साथ रहना चाहती थी; बाल कल्याण समिति ने उल्लेख किया कि उसकी प्राकृतिक मां मीरा देवी ने पीड़िता को रिहा करने के लिए और अपनी हिरासत में देने के लिया एक आवेदन दिया, जिसमें उसने आरोप लगाया कि उसके (पीड़ित) जीजा ने उसे बहला-फुसलाकर उससे दूर कर दिया, जबकि उसके पास पहले से ही उसकी बड़ी बहन से चार बच्चे थे और पीड़िता नाबालिग है, उसके कृत्य के परिणामों को समझने में सक्षम नहीं है; बाल कल्याण समिति ने यह भी नोट किया कि उसकी सगी बहन, ओम पाल की पत्नी इस्लांती ने भी उसे अपनी कस्टडी से छोड़ने के लिए एक आवेदन दायर किया। अपने आवेदन में, इस्लांती ने अपने ही पिता के खिलाफ कुछ आरोप लगाते हुए कहा कि उसके पिता ने बदले में कुछ पैसे मिलने के बाद पीड़िता की शादी एक व्यक्ति से कर दी; पीड़िता ने उसके घर में शरण ली और पंजाब में अपनी मर्जी और इच्छा से उनके साथ रह रही थी और उसके पिता द्वारा एक झूठी प्राथमिकी दर्ज कराई गई थी; उसमें यह भी आरोप लगाया गया था कि वह नाबालिग नहीं थी और वह अपनी बहन और जीजा के साथ ही जाना चाहती थी। बाल कल्याण समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि पीड़िता लगभग 16 साल और 3 महीने की नाबालिग है। वह अपने जीजा द्वारा किए गए बलात्कार के कारण गर्भवती हो गई और वह अपने पति घनश्याम के साथ जाने के लिए तैयार नहीं थी। इन परिस्थितियों में, उसे राजकीय बालगृह में हिरासत में रखने का आक्षेपित आदेश पारित किया गया था।

9. यह पुनरीक्षण पीड़िता के पिता की ओर से इस आधार पर दायर किया गया है कि क्योंकि वह नाबालिग है, इसलिए उसे उसके माता-पिता/पुनरीक्षणकर्ता की हिरासत में छोड़ दिया जाना चाहिए।

10. मैंने इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुतियों के आलोक में रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री का अध्ययन किया। किशोरी न्याय अधिनियम की योजना के अनुसार, बाल कल्याण समिति, किसी भी अन्य कानून के बावजूद, किशोरी न्याय अधिनियम, 2015 की धारा-29 के तहत 'देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चों' से संबंधित सभी कार्यवाही से विशेष रूप से निपटने की शक्ति रखती है। समिति के कार्यों और जिम्मेदारियों में बच्चे की भावी योजना का संज्ञान लेना और प्राप्त करना, बच्चे की सुरक्षा और कल्याण से संबंधित सभी मुद्दों पर जांच करना और साथ ही देखभाल, संरक्षण, उचित पुनर्वास सुनिश्चित करना और सबसे महत्वपूर्ण रूप से देखभाल और संरक्षण के जरूरतमंद बच्चों की बहाली (किशोरी न्याय अधिनियम की धारा-30, किशोरी न्याय अधिनियम, 2015 की धारा-37) समिति को एक जांच के माध्यम से संतुष्ट होने के बाद, बाल कल्याण अधिकारी द्वारा प्रस्तुत सामाजिक जांच रिपोर्ट पर विचार करने और बच्चे की इच्छाओं को ध्यान में रखते हुए, यदि बच्चा पर्याप्त रूप से परिपक्व हो जाता है, तो विचार करने और निम्नलिखित आदेशों में से एक या अधिक आदेश पारित करने का अधिकार देता है, अर्थात्: -

(ए) घोषणा कि एक बच्चे को देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता है;
(ख) बालक कल्याण अधिकारी या अभिहित सामाजिक कार्यकर्ता के पर्यवेक्षण सहित या उसके बिना बालक को माता-पिता या अभिभावक या कुटुम्ब को लौटाना;
(ग) ऐसे बालकों को रखने के लिए संस्था की क्षमता को ध्यान में रखते हुए, या तो इस निष्कर्ष पर पहुंचने के पश्चात् कि बालक के परिवार का पता नहीं लगाया जा सकता है या यदि उसका पता लगाया जाता है, या ये कि दीर्घावधि या अस्थायी देखभाल के लिए, दत्तक ग्रहण के प्रयोजन के लिए बालक गृह या उपयुक्त सुविधा केन्द्र या विशेषीकृत दत्तक ग्रहण अभिकरण में बालक का स्थान, परिवार में बच्चे की बहाली बच्चे के सर्वोत्तम हित में नहीं है;
(घ) दीर्घकालिक या अस्थायी देखभाल के लिए उचित व्यक्ति के साथ बच्चे को रखना;
(ङ) धारा 44 के अधीन पालक देखभाल आदेश;
(च) धारा 45 के अधीन प्रायोजन (आर्थिक संरक्षण) आदेश;
(छ) ....;
(ज) ....

10. किशोरी न्याय अधिनियम, 2015 के उपरोक्त प्रावधानों के अवलोकन पर, यह प्रदर्शित किया गया है कि बाल कल्याण समिति को एक बच्चे के सर्वोत्तम हित के सिद्धांतों पर विशाल शक्तियां दी गई हैं, एक प्रक्रिया जो किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की पूरी योजना के माध्यम से जाता है। किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा-3 द्वारा यह विशेष रूप से प्रदान किया गया है कि अधिनियम के प्रावधानों को लागू करते समय केंद्र सरकार, राज्य सरकारें, बोर्ड और अन्य एजेंसियां, जैसा भी मामला हो, मौलिक सिद्धांतों द्वारा निर्देशित होंगी जिनमें सर्वोत्तम हित के सिद्धांत, पारिवारिक जिम्मेदारियों के सिद्धांत, सुरक्षा के सिद्धांत, प्रत्यावर्तन और बहाली के सिद्धांत और कई अन्य शामिल हैं।

11. पूर्वोक्त के रूप में कानून के प्रावधानों को यहां जुड़वां उद्देश्य के साथ पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है। सबसे पहले, जब इस न्यायालय के समक्ष चुनौती के तहत प्रकृति का आदेश पारित किया जाता है, तो अपील बाल न्यायालय द्वारा विचार योग्य होगी, न कि जिलाधिकारी द्वारा; जिलाधिकारी को केवल पालक देखभाल और देखभाल के

बाद प्रायोजन (आर्थिक संरक्षण) से संबंधित समिति के निर्णयों के खिलाफ अपील सुनने का अधिकार है। विचाराधीन प्रकरण इस श्रेणी में नहीं आता है। इस प्रकार अपीलीय अदालत यह मानने में गलत थी कि अपील उसके समक्ष पोषणीय नहीं थी। इसलिए, आक्षेपित आदेश को रद्द किया जा सकता है। दूसरे, यह ध्यान दिया जा सकता है कि जब देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चे को किसी आश्रय गृह में रखा जाता है, तो यह अस्थायी प्रकृति का एक उपाय है; बाल कल्याण समिति को निर्णय लेने के लिए पूरी तरह से अधिकार प्राप्त है कि कब उसे कस्टडी में लेना आवश्यक नहीं पाया जाता है। यह ध्यान दिया जा सकता है कि कानूनी रूप से देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चे को, भले ही वह बालिग हो गया हो, अगर यह पाया जाता है कि उसे तुरंत रिहा करना उसके सर्वोत्तम हित में नहीं होगा, आगे की अवधि के लिए कस्टडी में लिया जा सकता है।

12. इस न्यायालय के संज्ञान में यह लाया गया है कि इस बीच, पुनरीक्षणकर्ता ने एक बच्चे को जन्म दिया है, जो आश्रय गृह में उसके साथ रह रहा है।

13. कानूनी रूप से बाल कल्याण समिति को नए विकास के मद्देनजर उसकी हिरासत/रिहाई के संबंध में एक नया निर्णय लेने का पूरा अधिकार है कि अब वह एक शिशु के साथ एक माँ है और उसे परिवार के समर्थन की आवश्यकता हो सकती है। चूंकि इस मामले को नए सिरे से तय करने के लिए अपीलीय अदालत में भेजा जा रहा है, इसलिए अपीलीय अदालत द्वारा उसकी निरंतर हिरासत या रिहाई के बारे में कोई निर्णय लेने से पहले, उसके और उसके बच्चे की सुरक्षा, कल्याण, संरक्षण और पुनर्वास के संबंध में अत्यधिक सावधानी बरती जाएगी। ऐसे मामलों में बाल कल्याण समिति की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है और उसे किशोर न्याय अधिनियम, 2015 के उद्देश्य और उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उपाय करने की जिम्मेदारी सौंपी गई है। इसलिए, अपीलीय अदालत अपील पर फैसला करने से पहले अपने विवेक से बाल कल्याण समिति से एक विस्तृत रिपोर्ट मांग सकती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अदालत को इस मामले में अजीबोगरीब तथ्यों और परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा है। यह अहम रूप से ध्यान दिया जा सकता है कि किशोरी न्याय अधिनियम, 2015 की धारा-101 के तहत अपीलीय अदालत के रूप में कार्य करते हुए न्यायालय पक्षों के कानूनी अधिकारों से इतना चिंतित नहीं है। इसके बजाय सभी हित-लाभ का अनुमान लगाने और तौलने के बाद बच्चे के सर्वोत्तम हित में निर्णय लिया जाना है। उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, मामले को नए सिरे से सुनवाई करने और दोनों पक्षों को सुनने के बाद आदेश पारित करने के लिए अपीलीय अदालत में भेजा जाता है।

15. आक्षेपित आदेश दिनांक 26.10.2022 को रद्द किया जाता है और मामले को वापस भेज जाता है। संबंधित न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि वह इस न्यायालय की टिप्पणियों के आलोक में मामले पर नए सिरे से फैसला करे।

16. मामले से अलग होने से पहले, सामान्य महत्व के एक कानूनी बिंदु को इंगित करने की आवश्यकता है। किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015 की धारा- 2(20) निमनवत परिभाषित करती है:- "बाल न्यायालय" से बाल अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005 के अधीन स्थापित न्यायालय या यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम, 2012 के अंतर्गत स्थापित, जहां कहीं भी विद्यमान है, विशेष न्यायालय अभिप्रेत है और जहां ऐसे न्यायालय नामोदिष्ट नहीं किए गए हैं, वहां सत्र न्यायालय को अधिनियम के अधीन अपराधों का विचारण करने का क्षेत्राधिकार है।

17. यह स्पष्ट है कि जहां कहीं भी यौन अपराधों से बच्चों के संरक्षण अधिनियम, 2012 के तहत एक विशेष अदालत अस्तित्व में है, ऐसी अदालत किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015 के प्रावधानों के तहत "बाल न्यायालय" के रूप में कार्य करेगी। इसका मतलब यह नहीं निकाला जा सकता है कि किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015 के तहत अधिकार क्षेत्र विशेष पॉक्सो अदालत में आता है। सीधे शब्दों में कहने के लिए, जब भी "कानून के उल्लंघन में बच्चे" या "देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चे" से संबंधित कोई मामला किसी सक्षम न्यायालय द्वारा लिया जाता है या निर्णय दिया जाता है तो उस अदालत को बाल न्यायालय के रूप में संदर्भित किया जाएगा। मेरी यह टिप्पणी है कि विशेष पॉक्सो न्यायालयों के न्यायाधीश 'देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चे' या 'कानून का उल्लंघन करने वाले बच्चे' के संबंध में अपीलीय अदालत के रूप में कार्य करते हुए खुद को गलत तरीके से विशेष न्यायाधीश, पॉक्सो न्यायालय या यहां तक कि अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के रूप में संदर्भित करते हैं। इसका उचित पदनाम "बच्चों का न्यायालय" है। इस त्रुटि को इंगित करना आवश्यक है जो लगभग पूरे उत्तर प्रदेश राज्य में संबंधित न्यायालयों द्वारा की जा रही है।

18. रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह इस निर्णय को उत्तर प्रदेश राज्य के सभी जिला न्यायाधीशों को प्रसारित करे।

(2023) 1 ILRA 73
पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 19.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिज़वी

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या- 1793/2018

ईश्वर ...पुनरीक्षणयाची
बनाम
उ.प्र. राज्य और अन्य ...प्रतिपक्षी

पुनरीक्षण याची के लिए अधिवक्ता:
श्री मदन सिंह, श्री अभिनव त्रिपाठी

प्रतिपक्ष के अधिवक्ता:
जी.ए., श्री रौनक चतुवेर्दी

ए. आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 397/401-भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 323/34, 304/34,504 और 506 - सीआरपीसी की धारा 319 के तहत समन आदेश को चुनौती - पुनरीक्षण याची नामित किया गया था एफआईआर में घटना में उसकी संलिप्तता दर्शाई गई - जांच के दौरान पुनरीक्षणयाची को बहानेबाजी की दलील के आधार पर बरी कर दिया गया, जिसकी पुष्टि गवाहों के दर्ज किए गए बयान से हुई - लेकिन घायल/शिकायतकर्ता का बयान सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दर्ज किया गया और उसके मुख्य परीक्षण में घायल के बयान ने फिर से एफआईआर के आरोपों की पुष्टि की - यह स्थापित कानून है कि घायल गवाह की गवाही अधिक मूल्यवान है और इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है - शीर्ष अदालत ने माना कि धारा 319 सीआरपीसी के तहत यह शक्ति है जिसे मुख्य रूप से परीक्षा के पूरा होने के चरण में प्रयोग किया जा सकता है और अदालत को तब तक इंतजार करने की ज़रूरत नहीं है जब तक कि उक्त साक्ष्य का परीक्षण जिरह पर नहीं किया जाता है, यह अदालत की संतुष्टि है जिसे अदालत द्वारा दर्ज किए गए कारणों से एकत्र किया जा सकता है। कुछ अन्य व्यक्तियों की मिलीभगत के संबंध में अपराध में मुकदमे का सामना नहीं करना पड़ा - निचली अदालत ने पुनरीक्षणयाची की मिलीभगत के बारे में अपनी संतुष्टि को सही ढंग से दर्ज किया और इसलिए, उसे बुलाया - इसलिए, लागू आदेश में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है। (पैरा 1 से) 9)

बी. शीर्ष अदालत ने इस सवाल पर विचार करते हुए कहा कि "सीआरपीसी की धारा 319 के तहत शक्ति का इस्तेमाल करने के लिए संतुष्टि की कितनी डिग्री आवश्यक है।" यह माना गया कि यद्यपि केवल प्रथम दृष्टया मामला अदालत के समक्ष पेश किए गए सबूतों से स्थापित किया जाना है, जरूरी नहीं कि जिरह के आधार पर परीक्षण किया जाए, इसके लिए उसकी मिलीभगत की संभावना से कहीं अधिक मजबूत सबूत की आवश्यकता होती है। जो परीक्षण लागू किया जाना है वह वह है जो प्रथम दृष्टया मामले से अधिक है जैसा कि आरोप तय करते समय किया गया था, लेकिन इस हद तक संतुष्टि की कमी है कि सबूत का अगर खंडन नहीं किया जाता है, तो दोषसिद्धि हो जाएगी। ऐसी संतुष्टि के अभाव में, अदालत को सीआरपीसी की धारा 319 (पैरा 6) के तहत शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए।

पुनरीक्षण खारिज किया जाता है। (ई-6)

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिज़वी द्वारा सुनाया गया)

1. पुनरीक्षण-याची के लिए विद्वान अधिवक्ता, प्रतिपक्षी सं. 2 के लिए विद्वान अधिवक्ता तथा साथ-साथ राज्य के लिए विद्वान एजीए को सुना।

2. यह आपराधिक पुनरीक्षण एस.टी. सं. 192 सन् 2017 (राज्य बनाम नंद लाल और अन्य) अन्तर्गत मुकदमा अपराध सं. 446 सन् 2016, अन्तर्गत धारा 323/34, 304/34, 504, 506 भा.दं.सं. , थाना धामपुर, जिला बिजनोर, के मामले में अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय सं. 6, बिजनौर द्वारा पारित आदेश दिनांकित 8.03.2018 को अपास्त कराने के लिए दायर किया गया है।

3. संक्षेप में तथ्य यह है कि दिनांक 08.07.2016 को प्रार्थी ईश्वर, नन्द लाल, केशव एवं घनश्याम को नामित करते हुए एक एफआईआर -अपराध सं. 446 सन् 2016 दर्ज करायी गयी थी। प्राथमिकी में आरोप है कि दिनांक 08.07.2016 को सुबह 10:30-11:00 बजे आवेदक- ईश्वर, नंद लाल, घनश्याम और केशव ने विवादित भूमि पर निर्माण शुरू कर दिया। शिकायतकर्ता और उसके पति और बेटी तन्नु ने उन्हें ऐसा करने से रोका, तो चारों आरोपियों ने शिकायतकर्ता के साथ मारपीट की, उसे जमीन पर गिरा दिया और ईंटों से हमला किया। उसके पति के पेट में चोटें आईं और वह बेहोश हो गया। शिकायतकर्ता और उसकी

बेटी ने उसे बचाने की कोशिश की तो आरोपियों ने उनके साथ मारपीट की। वे गाली-गलौज करते हुए और जान से मारने की धमकी देते हुए वहां से चले गए। शिकायतकर्ता अपने पति को अस्पताल ले गई जहां उसका इलाज चल रहा है। शुरुआत में मामला भा.दं.सं. की धारा 323, 504, 506 के तहत दर्ज किया गया था। घायल की मृत्यु हो जाने के कारण धारा 304 भा.दं.सं. जोड़ी गई। विवेचना के बाद केवल तीन अभियुक्तों नंदलाल, घनश्याम व केशव के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया गया। विवेचना अधिकारी ने दूसरे नामजद आरोपी ईश्वर को दोषमुक्त कर दिया। दौरान विचारण, पी.डब्ल्यू.-1 सविता देवी (शिकायतकर्ता/घायल) के मुख्य परीक्षण के बाद, शिकायतकर्ता/अभियोजन धारा 319 सी.आर.पी.सी. के तहत एक आवेदन दिया गया जिसमें आरोप लगाया गया था कि आरोपी ईश्वर एफआईआर में नामजद है और शिकायतकर्ता सविता ने सी.आर.पी.सी. की धारा 161 के तहत अपने बयान में उसकी शेष आरोपियों के समान ही भूमिका बताई है। सविता का मुख्य परीक्षण अदालत में दर्ज किया गया है, वह घायल गवाहों में से एक है। आरोपी ईश्वर की मिलीभगत अन्य सह-आरोपी व्यक्तियों की तरह है, इसलिए आरोपी ईश्वर को भी विचारण हेतु सी.आर.पी.सी. की धारा 319 के तहत तलब किया जाए। विद्वान निचली अदालत ने दिनांक 08.03.2018 के आक्षेपित आदेश द्वारा उपरोक्त आवेदन को स्वीकार कर लिया है और पुनरीक्षण-याची आरोपी ईश्वर को भा.दं.सं. की धारा 304/34, 323/34, 504 और 506 के तहत अपराध के लिए मुकदमे का सामना करने के लिए तलब किया है।

4. पुनरीक्षण-याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने पुनरीक्षण-याची को केवल सी.आर.पी.सी. की धारा 161 के तहत दर्ज किए गए बयान साथ ही शिकायतकर्ता के मुख्य परीक्षण के आधार पर तलब किया है। मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार किए बिना, सी.आर.पी.सी. की धारा 161 के तहत बयान पर भरोसा किया गया है। इसलिए सम्मन आदेश रिकॉर्ड की दृष्टि से अवैध और मनमाना है और कानून की नजर में पोषणीय नहीं है। पुनरीक्षण-याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा कहा गया है कि सभी आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ सामान्य आरोप लगाए गए हैं। विवेचना के दौरान किसी भी आरोपी व्यक्ति के खिलाफ कोई विशेष आरोप नहीं लगाया गया है। विवेचना अधिकारी ने इस आशय के साक्ष्य जुटाए हैं कि घटना के दिन पुनरीक्षण-याची के मोबाइल नंबर की लोकेशन घटना स्थल के आसपास नहीं थी। पुनरीक्षण-याची के पास दो मोबाइल नंबर हैं जिनका नंबर 8273535308 और 9568363773 है और इन मोबाइल नंबरों की लोकेशन मुरादाबाद में दिखाई गई है। कॉल डिटेल रिकॉर्ड की विवेचना के बाद पता चला कि वह घटनास्थल पर मौजूद नहीं था। विवेचना अधिकारी ने सी.आर.पी.सी. की धारा 161 के तहत मुनेश कुमार (कोचिंग सेंटर के प्रिंसिपल) जहां पुनरीक्षण-याची पढ़ रहा था और अन्य स्वतंत्र गवाहों मोनू कुमार, मंजुल कुमार, रंजीत सिंह, मुनेंद्र सिंह, कृष्ण कुमार, जितेंद्र आदि का बयान दर्ज किया है और उन्होंने कहा है कि दिनांक 08.07.2016 को पुनरीक्षण-याची सुबह 9:30 बजे से दोपहर 12 बजे तक कोचिंग संस्थान में उपस्थित था। विवेचना के क्रम में इस आशय के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं कि घटना के दिन पुनरीक्षण-याची मौके पर मौजूद नहीं था और तदनुसार विवेचना अधिकारी ने उसका नाम हटा दिया। आगे यह तर्क दिया गया है कि धारा 319 सी.आर.पी.सी. के तहत शक्ति का केवल तभी संयमित ढंग से प्रयोग किया जाना चाहिए जब मजबूत और ठोस सबूत मौजूद हों। जो कसौटी लागू की जानी चाहिए वह आरोप विरचित करते समय के प्रथम दृष्टया मामले से अधिक है, बल्कि इस हद तक संतुष्टि कि यदि सबूत का खंडन नहीं किया जाता है, तो दोषसिद्धि हो सकती है, होना चाहिए। ऐसी संतुष्टि के अभाव में, अदालत को सी.आर.पी.सी. की धारा 319 के तहत शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए। विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि पी.डब्ल्यू.-1 ने अपने बयान में अवैध रूप से और गलत तरीके से पुनरीक्षण-याची के साथ-साथ पूरे परिवार का नाम दिया। विद्वान विचारण न्यायालय ने बिना किसी सबूत और कारण के और बिना संतुष्टि दर्ज किए अवैध रूप से पुनरीक्षण-याची को तलब किया है। यह आदेश कानून की नजर में पोषणीय नहीं है। यह भी तर्क दिया गया है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने मामले के कानूनी पहलू पर विचार किए बिना और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार किए बिना, पुनरीक्षण-याची को मुकदमे का सामना करने के लिए अवैध रूप से बुलाया है। विद्वान अधिवक्ता ने शीर्ष अदालत की संवैधानिक पीठ द्वारा **हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य एआईआर 2014 सर्वोच्च न्यायालय 1400 एससी**, के मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया । प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए गए हैं :

"98.सी.आर.पी.सी. की धारा 319 के तहत शक्ति एक विवेकाधीन एवं असाधारण शक्ति है। इसका प्रयोग संयमित ढंग से और केवल उन्हीं मामलों में किया जाना चाहिए जहां मामले की परिस्थितियां इसकी मांग करती हैं। इसका प्रयोग इसलिए नहीं किया जाना चाहिए कि मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश की राय है कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस अपराध को करने का दोषी हो सकता है। केवल तभी जब किसी व्यक्ति के खिलाफ अदालत के समक्ष पेश किए गए सबूतों से मजबूत और ठोस सबूत मिलते हैं, तो ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए, न कि आकस्मिक और लापरवाह तरीके से।

99. इस प्रकार, हमारा मानना है कि यद्यपि केवल प्रथम दृष्टया मामला अदालत के समक्ष पेश किए गए सबूतों से स्थापित किया जाना चाहिए, जरूरी नहीं कि जिरह के आधार पर परीक्षण किया जाए, इसके लिए उसकी संलिप्तता की संभावना से कहीं अधिक मजबूत सबूत की आवश्यकता होती है। जो कसौटी लागू की जानी चाहिए वह ये है कि इसे आरोप विरचित करने के समय के प्रथम दृष्टया मामले से कहीं अधिक होना चाहिए, लेकिन इस हद तक संतुष्टि से कम कि सबूत का यदि खंडन नहीं किया जाता है, तो दोषसिद्धि हो जाएगी। ऐसी संतुष्टि के अभाव में, अदालत को सी.आर.पी.सी. की धारा 319 के तहत शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए। धारा 319 सी.आर.पी.सी. में, इस उपबंध का उद्देश्य है कि यदि साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति ने, जो अभियुक्त नहीं है, कोई अपराध किया है, वह इस शब्द से स्पष्ट है "जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर अभियुक्त के साथ मुकदमा चलाया जा सकता है।" इस्तेमाल किए गए शब्द यह नहीं हैं कि 'जिनके लिए ऐसे व्यक्ति को दोषी ठहराया जा सके'। इसलिए, सी.आर.पी.सी. की धारा 319 के तहत कार्रवाई करते समय न्यायालय के पास अभियुक्त के अपराध के बारे में कोई राय बनाने की कोई गुंजाइश नहीं है।"

विद्वान अधिवक्ता ने बृजेंद्र सिंह और अन्य बनाम राजस्थान राज्य (2017) 7 एससीसी 706 के केस लॉ पर भी अवलंब लिया है। प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए गए हैं :

"14. जब हम उपरोक्त सिद्धांतों का प्रयोग इस मामले के तथ्यों पर उनके अनुप्रयोग के साथ करते हैं, तो हमें यह आभास होता है कि विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ताओं के खिलाफ सम्मन आदेश पारित करने में लापरवाही से काम किया। अपीलकर्ताओं का नाम एफआईआर में था। पुलिस द्वारा विवेचना की गई। विवेचना के दौरान एकत्र की गई सामग्री के आधार पर, जिसका उल्लेख हमने ऊपर किया है, विवेचनाधिकारी ने पाया कि ये अपीलकर्ता उस समय जयपुर शहर में थे जब घटना 175 किमी की दूरी पर कनौर में हुई थी। शिकायतकर्ता और अन्य जिन्होंने घटना के स्थान पर अपीलकर्ताओं की कथित उपस्थिति के संबंध में एफआईआर का समर्थन किया था, उन्होंने भी उसी प्रभाव के लिए सी.आर.पी.सी. की धारा 161 के तहत बयान दिए थे। इसके बावजूद, पुलिस विवेचना से पता चला कि घटना स्थल पर अपीलकर्ताओं की उपस्थिति के बारे में इन व्यक्तियों के बयान संदिग्ध थे और विवेचना के दौरान एकत्र किए गए दस्तावेजी और अन्य सबूतों के मद्देनजर विश्वासोत्पादक नहीं थे, जो एक और कहानी दर्शाते थे और दृढ़तापूर्वक दिखाते थे कि अपीलकर्ताओं की अन्यत्र रहने की दलील सही थी।

15. यह रिकॉर्ड विचारण न्यायालय के समक्ष था। इसके बावजूद, विचारण न्यायालय ने शिकायतकर्ता और कुछ अन्य व्यक्तियों के मुख्य परीक्षण में दिए गए बयानों पर गौर किया, लेकिन उनके तथाकथित मौखिक/चक्षुदर्शी संस्करण का समर्थन करने के लिए कोई अन्य सामग्री नहीं थी। इस प्रकार, मुकदमे के दौरान दर्ज किए गए "सबूत" उन बयानों से ज्यादा कुछ नहीं थे जो मामले की विवेचना के समय सी.आर.पी.सी. की धारा 161 के तहत पहले से ही दर्ज थे। इसमें कोई संदेह नहीं है, कि विचारण न्यायालय मुख्य परीक्षण में अपने समक्ष दर्ज किए गए ऐसे बयानों के आधार पर भी अपनी शक्ति का प्रयोग करने में सक्षम होगा। हालाँकि, वर्तमान जैसे मामले में जहां विवेचना के दौरान विवेचनाधिकारी द्वारा बहुत सारे सबूत एकत्र किए गए थे, जो अन्यथा सुझाव देते थे, विचारण न्यायालय का कम से कम यह कर्तव्य था कि वह प्रथम दृष्टया राय बनाते समय उस पर गौर करे और यह देखे कि क्या उनकी (यानि अपीलकर्ताओं की) संलिप्तता की संभावना से भी अधिक मजबूत सबूत रिकॉर्ड पर आ गए हैं। इस प्रकृति की कोई संतुष्टि नहीं है। भले ही हम यह मान लें कि विचारण न्यायालय को उस समय इसकी जानकारी नहीं दी गई थी जब उसने आदेश पारित किया था (क्योंकि अपीलकर्ता उस समय घटनास्थल पर नहीं थे), इससे भी अधिक परेशान करने वाली बात यह है कि तब भी जब यह सामग्री विशेष रूप से रिकॉर्ड पर थी और अपीलकर्ताओं द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका में उच्च न्यायालय के ध्यान में इसे लाया गया, लेकिन उच्च न्यायालय ने भी उक्त सामग्री को नजरअंदाज कर दिया। विचारण न्यायालय के आदेश में निहित चर्चा को दोबारा प्रस्तुत करने और उससे सहमति व्यक्त करने के अलावा और कुछ नहीं किया गया है। ऐसे आदेश न्यायिक परीक्षण में टिक नहीं सकते।"

उपरोक्त आधार पर, विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि आक्षेपित आदेश मनमाना और अवैध है और अपास्त किये जाने योग्य है।

5. विद्वान एजीए और प्रतिपक्षी सं. 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि विवेचना अधिकारी ने आरोपियों के साथ मिलकर गलत तरीके से पुनरीक्षण याची को दोषमुक्त कर दिया है, जबकि वर्तमान मामले के घायलों ने विशेष रूप से पुनरीक्षण याची को उन आरोपियों में से एक के रूप में नामजद किया था जो न केवल उसके पति की मृत्यु कारित करने में शामिल था बल्कि उसे भी चोटें पहुंचायी। विवेचना अधिकारी ने दो मोबाइल नंबर 8273535308 और 9568363773 का हवाला दिया है। मोबाइल नंबर 8273535308 की लोकेशन मुरादाबाद में दिखाई गई है, हालांकि इस नंबर के उपयोगकर्ता की सत्यापन रिपोर्ट के अनुसार विवेचना अधिकारी को बताया गया कि यह नंबर पुनरीक्षण-याची के चाचा केशव कुमार के नाम पर पंजीकृत है। इस प्रकार, तथाकथित मोबाइल

डिटेल रिकॉर्ड भी यह स्थापित नहीं करता है कि पुनरीक्षण याची किसी अलग स्थान पर था क्योंकि जिस मोबाइल नंबर के आधार पर विवेचना अधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं, वह मोबाइल नंबर पुनरीक्षण-याची का नहीं केशव कुमार का है। पूरी केस डायरी में कोई कॉल डिटेल रिकॉर्ड नहीं है और विवेचना अधिकारी द्वारा केवल दो मोबाइल नंबरों के संबंध में एक संक्षिप्त संदर्भ दिया गया है। आगे यह तर्क दिया गया है कि सी.आर.पी.सी. की धारा 161 के तहत दर्ज किए गए बयान से लेकर एफआईआर साथ ही विचारण न्यायालय के समक्ष शपथ पर दर्ज किए गए घायल गवाह के बयान से तक से पुनरीक्षण याची की संलिप्तता लगातार स्थापित होती है। पुनरीक्षण-याची ने अपनी कथित अनुपस्थिति की दलील को प्रमाणित करने के लिए कोई दस्तावेज़ दाखिल नहीं किया है। इसके अलावा यह एक स्थापित कानून है कि अनुपस्थिति की दलील पर विचारण के स्तर पर विचार किया जा सकता है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि पुनरीक्षण-याची ने अपराध कारित करने में समान रूप से भाग लिया है, समय और घटना के स्थान पर पुनरीक्षण-याची की उपस्थिति विचारण के दौरान घायल गवाह के बयान से स्पष्ट रूप से स्थापित होती है। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि पी.डब्ल्यू.-1 घायल गवाह होने के कारण, उसकी गवाही उच्च स्तर पर है और इसे हल्के में नहीं लिया जा सकता और नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। आरोपी को सी.आर.पी.सी. की धारा 319 के तहत तलब करने के लिए, गवाह का मुख्य परीक्षण पर्याप्त है और गवाह के घायल होने के कारण उसकी गवाही को खारिज नहीं किया जा सकता है। विद्वान विचारण न्यायालय ने सबूतों पर विचार करते हुए, रिकॉर्ड पर पुनरीक्षण-याची को सी.आर.पी.सी. की धारा 319 के तहत सही ढंग से तलब किया है और इस प्रकार आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है। पुनरीक्षण-याची के विरुद्ध प्रथमदृष्टया इससे भी अधिक साक्ष्य उपलब्ध हैं। पुनरीक्षण मेरिट रहित है और यह खारिज किये जाने योग्य है। विद्वान अधिवक्ता ने **मंजीत सिंह बनाम हरियाणा राज्य और अन्य 2021 एससीसी ऑन लाइन एससी 632** के मामले के केस लॉ का अवलंब लिया। प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए गए हैं:

"35. उपरोक्त निर्णयों में निर्धारित कानून को मामले के तथ्यों पर लागू करते हुए हमारी राय है कि निचली अदालत के साथ-साथ उच्च न्यायालय ने सी.आर.पी.सी. की धारा 319 के तहत आवेदन को खारिज करने में और सी.आर.पी.सी. की धारा 319 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए विचारण का सामना करने के लिए निजी प्रत्यर्थीगण को बुलाने से इनकार करके सारवान गलती की है। यह ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि एफआईआर सं. 477 में सभी निजी प्रत्यर्थीगण जिन्हें अतिरिक्त आरोपी के रूप में आरोपित किया गया, उन्हें विशिष्ट भूमिका के साथ विशेष रूप से नामजद किया गया था। इसमें विशेष रूप से उल्लेख किया गया है कि जब वे वापस लौट रहे थे, तो महेंद्रा एक्सयूवी नंबर नं. एचआर-40ए-4352 सड़क पर खड़ा था जो सरताज सिंह और सुखपाल का था। तेजपाल, परब सरन सिंह, प्रीत सम्राट और सरताज खड़े थे। परब शरण के हाथ में लाठी थी, तेजपाल के हाथ में गंडासी थी, सुखपाल के हाथ में डंडा था, सरताज के हाथ में रिवॉल्वर थी और प्रीत सिंह जीप में बैठा था। एफआईआर में यह विशेष रूप से उल्लेख किया गया है कि उपरोक्त सभी व्यक्तियों ने समान इरादे से महेंद्रा एक्सयूवी एचआर-40ए-4352 को इस तरह से पार्क किया कि पूरी सड़क अवरुद्ध हो गई और वे हथियारों से लैस थे। उपरोक्त विशिष्ट आरोपों के बावजूद, जब आरोप-पत्र/अंतिम रिपोर्ट दाखिल की गई तो केवल दो व्यक्तियों के खिलाफ आरोप-पत्र दायर किया गया और मौजूदा निजी प्रत्यर्थीगण को, हालांकि एफआईआर में नामित किया गया था, कॉलम नंबर 2 में डाल दिया गया/रखा गया। मौजूदा निजी प्रत्यर्थीगण का पक्ष है कि चार अलग-अलग डीएसपी ने मामले की विवेचना की और उसके बाद जब उनके खिलाफ कोई सबूत नहीं मिला तो मौजूदा निजी प्रत्यर्थीगण को कॉलम नंबर 2 में डाल दिया गया और इसलिए मौजूदा अपीलकर्ता के मुख्य परीक्षण पर विचार/विश्वास करने के बजाय इसे अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। बृजेंद्र सिंह (उपरोक्त) के मामले पर भारी अवलंब लिया गया है। हालाँकि कोई भी डीएसपी और/या उनकी रिपोर्ट, यदि कोई हो, आरोप-पत्र का हिस्सा नहीं है। किसी भी डीएसपी को गवाह के रूप में नहीं दिखाया गया है। कोई भी डीएसपी विवेचना अधिकारी नहीं है। यहाँ तक कि अंतिम रिपोर्ट/चार्ज-शीट पर समग्र रूप से विचार करने पर भी अभियुक्तों, निजी प्रत्यर्थीगण, जिन्हें कॉलम सं. 2 में रखा गया है, के विशिष्ट आरोपों पर कोई विचार नहीं किया गया है। आरोप पत्र/अंतिम रिपोर्ट की पूरी विवेचना सरताज सिंह के विरुद्ध ही है।

36. जहाँ तक निजी प्रत्यर्थीगण का संबंध है, केवल यही कहा गया है कि "वर्तमान मामले की विवेचना के दौरान, श्री बलजिंदर सिंह, एचपीएस, डी.एसपी असंध और श्री कुशलपाल, एचपीएस, डीएसपी इंद्री ने तेजपाल सिंह, सुखपाल सिंह, पुत्रगण गुरदेव सिंह, परब शरण सिंह और प्रीत सम्राट सिंह पुत्रगण मोहन सरूप सिंह जाति जाट सिख निवासी बंदराला को निर्दोष पाया और तदनुसार मामले में भा.दं.सं. की धारा 148, 149 और 341 को हटा दिया गया और उन्हें कॉलम नंबर 2 में रखा गया। जबकि आरोपी सरताज के खिलाफ न्यायालय में चालान पेश किया जा चुका है।'

37. अब इसके बाद जब मुख्य परीक्षण में मौजूदा अपीलकर्ता - पीड़ित - घायल चश्मदीद ने विशेष रूप से निजी प्रत्यर्थीगण का नाम लिया और उनकी विशिष्ट भूमिका बताई, तो विद्वान विचारण न्यायालय के साथ-साथ

उच्च न्यायालय को भी निजी प्रत्यर्थीगण को विचारण का सामना करने के लिए तलब करना चाहिए था। इस स्तर पर यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि जहां तक अपीलकर्ता का सवाल है, वह एक घायल चश्मदीद गवाह है। जैसा कि इस न्यायालय ने म.प्र. राज्य बनाम मानसिंह (2003) 10 एससीसी 414 (पैरा 9); अब्दुल सईद बनाम म.प्र. राज्य (2010) 10 एससीसी 259; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नरेश (2011) 4 एससीसी 324, के मामलों में धारित किया था एक घायल चश्मदीद गवाह के साक्ष्य का अधिक साक्ष्यिक मूल्य होता है और जब तक बाध्यकारी कारण मौजूद न हों, उनके बयानों को हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए। जैसा कि धारा 319 सी.आर.पी.सी. के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय यहां ऊपर देखा गया है। अदालत को जिरह तक इंतजार नहीं करना चाहिए और अगर कोई मामला बनता है तो गवाह के मुख्य परीक्षण के आधार पर किसी व्यक्ति को सी.आर.पी.सी. की धारा 319 के तहत विचारण का सामना करने के लिए बुलाया जा सकता है।

38. अब जहां तक उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण आवेदन को खारिज करते समय दिए गए तर्क और सी.आर.पी.सी. की धारा 319 के तहत आवेदन को खारिज करने वाले विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश की पुष्टि का सवाल है, उच्च न्यायालय ने स्वयं धारित किया कि पी.डब्ल्यू.-1 मंजीत सिंह घायल गवाह है और इसलिए उसकी उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसे मृतक के साथ आग्नेयास्त्र की चोटें आई हैं। हालाँकि, इसके बाद उच्च न्यायालय ने कहा कि मंजीत सिंह के कथन से अतिरेक निहितार्थ निकलता है और कहा कि किसी भी प्रतिवादी को किसी भी चोट के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया गया है, सिवाय इसके कि वे हथियारों से लैस थे और संबंधित चोटों के लिए केवल सरताज सिंह को जिम्मेदार ठहराया गया है, यहां तक कि तर्क के लिए भी यदि सरताज सिंह के साथ कोई मौजूद था, तो यह नहीं कहा जा सकता है उनका कोई साझा इरादा था या मन मिला हुआ था या उन्हें पता था कि सरताज फायरिंग करेगा। उपरोक्त तर्क बिल्कुल भी पोषणीय नहीं हैं। सी.आर.पी.सी. की धारा 319 के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के चरण में, न्यायालय को मामले के आरोपों की मेरिट पर विचार करने और/या जाने की आवश्यकता नहीं है। उच्च न्यायालय ने इस तथ्य को नजरअंदाज कर दिया है कि सभी आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ शुरू से ही धारा 302, 307, 341, 148 एवं 149 भा.दं.सं. के तहत अपराध के आरोप थे। उच्च न्यायालय इस तथ्य को समझने में विफल रहा है कि भा.दं.सं. की धारा 149 के तहत अपराध को आकर्षित करने के लिए केवल गैरकानूनी सभा का हिस्सा बनना ही पर्याप्त है और व्यक्तिगत भूमिका और/या प्रत्यक्ष कार्य महत्वहीन है। इसलिए, उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया यह तर्क कि प्रतिवादियों में से किसी को भी कोई चोट नहीं लगी है, सिवाय इसके कि वे हथियारों से लैस थे और इसलिए, उन्हें आरोपी के रूप में नहीं जोड़ा जा सकता है, यह पोषणीय नहीं है। सी.आर.पी.सी. की धारा 319 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय विद्वान विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय क्षेत्राधिकार और/या शक्तियों का प्रयोग करने में विफल रहे हैं।''

उन्होंने **राजेश और अन्य बनाम हरियाणा राज्य, (2019) 6 एससीसी 368** के मामले का भी अवलंब लिया, जिसमें सूचनादाता ने अपने बेटे और एक अन्य की हत्या के प्रयास के लिए 10 लोगों को नामित किया एवं सभी आरोपियों के खिलाफ विशिष्ट आरोप लगाए। विवेचना अधिकारी ने सी.आर.पी.सी. की धारा 173 (2) के तहत केवल चार आरोपियों के खिलाफ अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, छह आरोपियों (अपीलकर्ताओं) के खिलाफ कोई चालान दायर नहीं किया गया। चार आरोपियों के खिलाफ ही मुकदमा चला। मुकदमे के दौरान, पी.डब्ल्यू.-1 (शिकायतकर्ता) और पी.डब्ल्यू.-2 (घायल गवाह) ने विशेष रूप से कहा कि आरोपी अपीलकर्ताओं और उनके द्वारा निभाई गई भूमिका बताई। उनके विरुद्ध सी.आर.पी.सी. की धारा 319 के तहत कार्यवाही हेतु प्रार्थना पत्र विचारण न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया। उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण को खारिज कर दिया। शीर्ष अदालत ने माना कि मौजूदा अपीलकर्ताओं को एफआईआर में भी नामजद किया गया था। अदालत के समक्ष गवाही में, पी.डब्लू. 1 और 2 में विशेष रूप से अपीलकर्ताओं के खिलाफ गवाही दी और उनकी विशिष्ट भूमिकाओं के बारे में बताया गया। इसके आधार पर, जिन व्यक्तियों के खिलाफ कोई आरोप पत्र दायर नहीं किया गया है, उन्हें विचारण का सामना करने के लिए बुलाया जा सकता है। निचली अदालतों द्वारा सी.आर.पी.सी. की धारा 319 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए अपीलकर्ताओं को विचारण का सामना करने के लिए बुलाने में कोई त्रुटि नहीं की गई है।

6. यह निर्विवाद है कि पुनरीक्षण-याची को घटना में उसकी संलिप्तता दर्शाते हुए एफआईआर में नामित किया गया था, घटना में एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई है जबकि दूसरे (शिकायतकर्ता) को चोटें आई हैं। विवेचना अधिकारी ने विवेचना के दौरान पुनरीक्षण-याची को सबूतों के आधार पर दोषमुक्त कर दिया है कि प्रासंगिक समय पर उसकी उपस्थिति घटना स्थल पर स्थापित नहीं होती है क्योंकि वह अपने कोचिंग संस्थान में मुरादाबाद में मौजूद था। विवेचना अधिकारी ने कोचिंग संस्थान के प्रबंधक और कुछ अन्य गवाहों का बयान दर्ज किया है। यह तथ्य निर्विवाद है कि मोबाइल नंबर 8273535308, जिसका स्थान मुरादाबाद में दिखाया गया है, केशव कुमार के नाम पर पंजीकृत है और आगे कि पूरी केस डायरी में कोई सीडीआर नहीं है और

विवेचना अधिकारी द्वारा दो मोबाइल नंबर का केवल पासिंग रेफरेंस दिया गया है। इस मामले की प्राथमिकी शिकायतकर्ता ने दर्ज करायी है, जिसे घटना में चोटें भी आयी हैं, जिसमें पुनरीक्षण-याची को नामजद करते हुए घटना में शामिल होने की भूमिका बतायी गयी है। सी.आर.पी.सी. की धारा 161 के तहत दर्ज किए गए अपने बयान में, उसने एफआईआर के आरोपों को दोहराया है, लेकिन विवेचना अधिकारी ने विवेचना के दौरान एकत्र की गई सामग्री के आधार पर जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, पुनरीक्षण-याची को बरी कर दिया है। विचारण के दौरान, शिकायतकर्ता से पी.डब्ल्यू.-1 के रूप में पूछताछ की गई। उसकी मुख्य परीक्षा दर्ज की गई, जिसमें उसने घटना में पुनरीक्षण-याची की संलिप्तता दर्शाते हुए एफआईआर के आरोपों की फिर से पुष्टि की है। यह स्थापित कानून है कि घायल गवाह की गवाही अधिक मूल्यवान है और इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। हरदीप सिंह (उपरोक्त),के मामले में शीर्ष न्यायालय ने माना कि सी.आर.पी.सी. की धारा 319 के तहत शक्ति मुख्य रूप से परीक्षा के पूरा होने के चरण में प्रयोग की जा सकती है और अदालत को तब तक इंतजार करने की ज़रूरत नहीं है जब तक कि उक्त साक्ष्य का परीक्षण जिरह पर नहीं किया जाता है, यह अदालत की संतुष्टि है जिसे अपराध में विचारण का सामना नहीं कर रहे किसी अन्य व्यक्ति (व्यक्तियों) की संलिप्तता के संबंध में अदालत द्वारा दर्ज किए गए कारणों से एकत्र किया जा सकता है। स*र्वोच्च न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार करते हुए कि "सी.आर.पी.सी. की धारा 319 के तहत शक्ति लागू करने के लिए आवश्यक संतुष्टि की मात्रा क्या है।" इसका उत्तर दिया है "हमारा मानना है कि यद्यपि केवल प्रथम दृष्टया मामला ही स्थापित किया जाना चाहिए, अदालत के समक्ष पेश किए गए सबूतों का जरूरी नहीं कि जिरह की कसौटी पर परीक्षण किया जाए, उसकी संलिप्तता के लिए मात्र संभाव्यता से कहीं अधिक मजबूत साक्ष्य की आवश्यकता होती है। जो परीक्षण लागू किया जाना है वह ऐसा है जो प्रथम दृष्टया से अधिक है जैसा कि आरोप तय करते समय किया गया था, लेकिन संतुष्टि कम थी इस हद तक कि यदि सबूतों का खंडन नहीं किया गया तो दोष सिद्ध हो जाएगा। ऐसी संतुष्टि के अभाव में, न्यायालय को धारा 319 सी.आर.पी.सी. के तहत शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए। धारा 319 सी.आर.पी.सी. में ऐसा उपबंध करने का प्रयोजन है कि यदि साक्ष्य से किसी व्यक्ति की संलिप्तता का पता चले , जो अभियुक्त नहीं है,ने कोई अपराध किया है, इन शब्दों से स्पष्ट है "जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर आरोपी के साथ मुकदमा चलाया जा सकता है।" प्रयुक्त शब्द ये नहीं है कि जिसके लिए व्यक्ति को दोषी ठहराया जा सके।" इसलिए, सी.आर.पी.सी. की धारा 319 के तहत कार्रवाई करने वाले न्यायालय के लिए अभियुक्त के अपराध के बारे में कोई राय बनाने की गुंजाइश नहीं है।"*

7. इसलिए तथ्यों के वर्तमान सेट पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित परीक्षण को लागू करने से, यह स्पष्ट है कि घायल गवाह की गवाही के रूप में आरोपी की संलिप्तता की संभावना के अलावा मजबूत सबूत हैं और यह परीक्षण पास करता है,जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित किया गया है, जो प्रथम दृष्टया मामले से कहीं अधिक है जैसा कि आरोप तय करते समय प्रयोग किया गया था, लेकिन इस हद तक संतुष्टि की कमी है कि अगर सबूतों का खंडन नहीं किया गया तो दोषसिद्धि हो सकती है। इसके अलावा, जिस सामग्री के आधार पर विवेचना अधिकारी द्वारा पुनरीक्षण-याची को दोषमुक्त किया गया था, वह प्रकृति में निर्णायक नहीं है और यह तथ्य इस मामले को **बिजेंद्र सिंह बनाम राजस्थान राज्य (2017) 7 एससीसी 706** के मामले के कानून से अलग करता है, जिस पर पुनरीक्षण-याची के विद्वान अधिवक्ता ने भरोसा किया है। प्रतिपक्षी सं. 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत केस कानून पूरी तरह से उनके तर्कों का समर्थन करता है और तथ्यों के वर्तमान सेट में लागू होता है।

8. आक्षेपित आदेश में, विद्वान विचारण न्यायालय ने रिकॉर्ड पर सभी तथ्यों और सामग्रियों को बताया है और इन सभी सामग्रियों का गंभीर रूप से विश्लेषण किया है। विद्वान निचली अदालत ने पुनरीक्षण-याची की संलिप्तता के बारे में अपनी संतुष्टि दर्ज की है और इसलिए, उसे तलब किया है। आदेश विस्तृत एवं तर्कपूर्ण है जो उचित एवं सही है। आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है और इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

9. तदनुसार, पुनरीक्षण याचिका मेरिट रहित है और इसे **खारिज** किया जाता है।

(2023) 1 ILRA 81
पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 05.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिज़वी,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 2194/2015

कौशलेश मिश्र और अन्य ...पुनरीक्षणकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...विपक्षीगण

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता:
श्री मोहम्मद मुस्तफा खान, सुश्री अफशान शफौत, श्री ब्यास कुमार प्रसाद

अधिवक्ता विपक्षीगण:
जी.ए., श्री संतोष कुमार पांडे, श्री सौरभ त्रिपाठी

ए. आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 –धारा 245(2)-अस्वीकृति-मुक्ति आवेदन-आवेदन शिकायत के आरोपों का मूल्यांकन किए बिना मजिस्ट्रेट द्वारा निरस्त कर दिया गया और धारा 202 सीआरपीसी के तहत प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट पर विचार किया गया-मजिस्ट्रेट आरोपमुक्त करने के आधारों पर अपने मस्तिष्क प्रयोग में विफल रहे और इस संबंध में उठाए गए प्रासंगिक विवाद पर विचार नहीं किया - इस प्रकार, मजिस्ट्रेट इस धारणा पर अग्रसित हुए कि उनके पास अभिलेख पर सामग्री का मूल्यांकन करने की कोई शक्ति नहीं है और उस स्तर पर आरोपमुक्त करने की प्रार्थना पर विचार नहीं किया जा सकता है - यह विधिक प्रावधान का उल्लंघन है जिसके तहत अभियुक्तों के विरुद्ध आरोपों के निराधार होने या यह मानने का आधार होने के संबंध में मजिस्ट्रेट द्वारा निष्कर्ष की आवश्यकता है कि अभियुक्तों ने अपराध कारित किया है-इसलिए, वाद को दोषमुक्ति आवेदन पर नवीन आदेश पारित करने के लिए विचारणीय न्यायालय को प्रेषित किया जाता है। (पैरा 1 से 10)

बी. धारा 245(2) सी.आर.पी.सी. प्रावधान है कि मजिस्ट्रेट को वाद के किसी भी पिछले चरण में यानी सीआरपीसी की धारा 244 के तहत साक्ष्य से पूर्व आरोपी को आरोपमुक्त करने का अधिकार है, यदि वह आरोप को आधारहीन मानता है। (पैरा 6)
पुनरीक्षण स्वीकृत। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

मनोज महाबीर प्रसाद खेतान बनाम राम गोपाल पोद्दार एवं अन्य, सीआरएलए संख्या 1973 /2010 (एसएलपी (सीआरएल) संख्या 2274/2008)

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिज़वी द्वारा प्रदत्त)

1. पुनरीक्षण याचियों के विद्वान अधिवक्ता श्री व्यास कुमार प्रसाद एवं राज्य के विद्वान ए.जी.ए. को सुना। हालांकि विपक्षी पक्ष सं.-2 की ओर से कोई पेश नहीं हुआ।

2. यह आपराधिक पुनरीक्षण 2013 की आपराधिक शिकायत मामला सं.-277 (रिपुसूदन मिश्रा बनाम कौशलेश मिश्रा और अन्य) में धारा 506 और 427 के तहत विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सिद्धार्थनगर द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 18.04.2015 को रद्द करने की प्रार्थना को साथ दायर किया गया है जो पुलिस थाना-सिद्धार्थनगर, जिला सिद्धार्थनगर, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सिद्धार्थनगर की न्यायालय में लम्बित है।

3. संक्षेप में, मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि विरोधी पक्ष सं.-2 ने सी.आर.पी.सी. की धारा 156(3) के तहत एक आवेदन दायर किया था जिसमें पुनरीक्षणकर्ता एवं उपनिरीक्षक संतराज यादव, कॉन्सटेबल रउफ खाँन एवं पाँच अज्ञात कॉन्सटेबलों के विरूद्ध आरोप लगाया गया कि विरोधी पक्ष क्रमांक 2 के पिता ने 30.09.1951 को पूर्व जमींदार को रू. 20 नज़राना अदा कर ग्राम रेहरा के पूर्व क्रमांक 362, वर्तमान क्रमांक 00.3.10 क्षेत्र प्राप्त किया। आवेदक ने उसी के ऊपर नींव व चहारदीवारी का निर्माण करवाया। दिनांक 20.09.2012 को सायं लगभग 5:00 बजे कौशलेश मिश्रा ने खुद को पत्रकार बताकर अपने चाचा के जाली हस्ताक्षर के साथ तहसील नौगढ़ एक आवेदन किया। इस आवेदन पर आरोपी व्यक्ति जे.सी.बी. मशीन के साथ मौके पर आए और नींव और चहारदीवारी को तोड़ दिया जिससे रू. 24000/- का नुकसान हुआ। घटना को सह ग्रामवासी बेचू, व्यास मुनि, अरूण कुमार मिश्रा व अन्य ने देखा। विद्वान मजिस्ट्रेट ने इस आवेदन को परिवाद माना। इसके बाद परिवादी ने खुद को धारा 200 सीआरपीसी के तहत तथा दो साक्षियों बेचू और अरूण कुमार को दं.प्र.सं. की धारा 202 के तहत परीक्षित कराया। शिकायतकर्ता ने अपने बयान में कहा कि गुरू चरण, नायब तहसीलदार, रूद्रमणि, कनिष्ठ अभियंता व संतराज यादव, उप-निरीक्षक व छह पुलिसकर्मी नवाब अली की जे.सी.बी. मशीन लेकर मौके पर पहुँचे और उन्होंने ने नींव व चहारदीवारी को तोड़ दिया। गवाहों ने भी उपरोक्त तथ्यों को दोहराया। विद्वान मजिस्ट्रेट ने दिनांक 0.1.05.2014 द्वारा केवल एक अभियुक्त कौशलेश मिश्रा को आई.पी.सी. की धारा 506 के तहत अपराध के लिए समन किया। उपरोक्त आदेश से क्षुब्ध होकर विरोधी पक्ष सं.-2 ने आपराधिक पुनरीक्षण सं.-96 सन् 2014 दायर की और सत्र न्यायाधीश सिद्धार्थनगर, ने दिनांक 24.07.2014 के आदेश द्वारा पुनरीक्षण की अनुमति दी और दिनांक 01.05.2014 को को आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया और निचली अदालत को निर्देश दिया कि कि शिकायतकर्ता को मौखिक सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद निर्णय के निकाय में की गई टिप्पणियों के आलोक में नया आदेश पारित करें। तत्पश्चात पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश अनुपालन में मजिस्ट्रेट ने दिनांक 02.12.2014 को नया आदेश पारित किया और भा.दं.सं. की धारा 427 और धारा 506 के तहत

दण्ड़नीय अपराध के लिए पुनरीक्षणवादियों को समन किया।

पुनरीक्षणवादियों- अभियुक्तों द्वारा एक आवेदन, जिस पर दाण्ड़िक विविध आवेदन सं. 500 सन् 2015 (दं.प्र.सं. की धारा 482 के अन्तर्गत) अंकित है, दायर किया गया और उपरोक्त आवेदन में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.01.2015 के अनुसार, पुनरीक्षणवादियों ने दं.प्र.सं. की धारा 245(2) के तहत इस आधार पर आरोपमुक्ति के लिए आवेदन दायर किया था कि पुनरीक्षणवादी निर्दोष है और उन्हें दुश्मनी और उत्पीड़न के कारण झूठा फँसाया गया है, शिकायत दर्ज करने का कोई औचित्य या सुबूत नहीं है, शिकायत के आरोप स्पष्ट रूप से स्थापित करते हैं कि विवाद की प्रकृति राजस्व और दीवानी है और परिवाद दर्ज कराने हेतु कोई आधार नहीं है।

लल्लन प्रसाद मिश्रा, जो कि प्रकरण में पक्षकार नहीं हैं, की दिनांक 07.05.2012 की शिकायत का संज्ञान लेते हुए संभागीय मजिस्ट्रेट ने दिनांक 12.09.2012 के पत्र द्वारा परिवादी के अवैध अतिक्रमण को हटाने का आदेश पारित किया जिसे ग्राम सभा की बंजर भूमि पर बाउंड्री वॉल बनाकर उक्त आदेश का अनुपालन किया गया। पुलिस के क्षेत्राधिकारी (सी.ओ.) के समक्ष, सभी सरकारी कर्मचारियों द्वारा, अपने पदीय जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हुए, अवैध निर्माण को हटाया। शेष आवेदकों का इससे कोई सरोकार नहीं है, शिकायतकर्ता जान-बूझकर तथ्यों को छुपा रहा है और बिना उप संभागीय मजिस्ट्रेट, नौगढ़ को अपील किया कि जमीन कि लल्लन प्रसाद मिश्रा ने पुनरीक्षणवादियों के विरूद्ध भा.दं.सं. की धारा 156 (3) के तहत आवेदन किया है। इस परिवाद में कोई आरोप नहीं है जो भा.दं.सं. की धारा 506 के तहत अपराध माना जाए, इसके बावजूद इस न्यायालय ने कौशलेश मिश्रा को आकस्मिक तरीके से आकस्मिक तरीके से भा.दं.सं. की धारा 506 के अन्तर्गत समन किया जबकि शेष अभियुक्तों को समन नहीं किया गया क्योंकि उनके खिलाफ कोई साक्ष्य नहीं मिला। शिकायतकर्ता ने आपराधिक पुनरीक्षण सं. 96 सन् 2014 दर्ज की जिसमें उन्होंने खुद आरोप लगाया है कि कौशलेश मिश्रा को केवल अनुमानों के आधार पर न्यायालय द्वारा समन किया गया है, पुनरीक्षण न्यायालय ने केवल इस आधार पर पुनरीक्षण की अनुमति दी है कि एक ही साक्ष्य के आधार पर केवल एक अभियुक्त को समन किया गया है जबकि अन्य को समन नहीं किया गया है और विद्वान मजिस्ट्रेट ने कोई विश्लेषण भी नहीं किया है। यह भी आरोप लगाया गया है कि पुनरीक्षणवादी 1994 के मूल वाद सं. 387 में पक्षकार नहीं हैं, इसलिए यह आवेदकों पर बाध्यकारी नहीं है, यह मूल वाद शिकायतकर्ता द्वारा अपने सगे भाई जनार्दन की मिलीभगत से ग्राम सभा की बंजर भूमि हड़पने के लिए दायर किया है। उन्होंने एक समझौता किया और ग्राम सभा उस मुकदमें में एक पार्टी नहीं है। आवेदक के आगे के आधार यह हैं कि बिना कोई नया और अतिरिक्त सबूत लिए पुनरीक्षणवादियों को तलब किया गया है। शिकायतकर्ता ने खुद पुनरीक्षण ज्ञापन के पैरा-2में आरोप लगाया है कि भा.दं.सं. की धारा 506के तहत कोई अपराध नहीं किया गया है और पुनरीक्षणवादियों को कोई सक्रिय भूमिका नहीं सौंपी गई। दं.प्र.सं. के अंतर्गत धारा 200 के तहत बयान से ही यह स्थापित हो जाता है कि शिकायतकर्ता घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है, गवाह बेचू और अरूण कुमार ने भा.दं.सं. की धारा 426 और 506 के अंतर्गत अपराध का कोई आरोप पुनरीक्षणवादियों पर नहीं लगाया है। उन्होंने यह भी बयान नहीं दिया है कि वे घटना के चश्मदीद गवाह हैं और कोई कारण नहीं बताया है कि उन्होंने आवेदक संख्या 4, 5 और 6 की पहचान कैसे की। हर्जाना वसूल करने और शिकायतकर्ता को आराजी संख्या 56 एम से बेदखल करने का आदेश दिनांक 15.04.2014 को तहसीलदार नौगढ़ द्वारा 2012 के वाद संख्या 102 (ग्राम सभा बनाम रिपुसूदन) में यूपी जमींदारी उ्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 122बी और निमय 115-सी के तहत पारित किया गया है। शिकायतकरता ने पुनरीक्षण सं. 7/15 वर्ष 2014 जिलाधिकारी, सिद्धार्थनगर की न्यायालय में दायर किया जो कि दिनांक 15.04.2014 के आदेश के विरूद्ध था जिसे 06.12.2014 को खारिज कर दिया गया। शिकायतकर्ता ने गलत नियत से ग्राम सभा की बंजर भूमि को हड़पने के लिए वास्तविक तथ्यों को छुपाने के लिए न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया है। पुनरीक्षणवादियों के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है और वह माननीय उच्च न्यायालय के आदेश दाण्डिक विविध आवेदन (सी.आर.पी.सी. की धारा 482 के अन्तर्गत) सं ंख्या 500 वर्ष 2015 दिनांक 17.01.2015 के आलोक में, सी.आर.पी.सी. की धारा 245 (2) के अन्तर्गत आरोप-मुक्त होने के अधिकारी हैं। विद्वान मजिस्ट्रेट ने दिनांक 18.04.2015 के आक्षेपित आदेश द्वारा दोनों पक्षों को सुनने के बाद उन्मोचन प्रार्थना पत्र को खारिज कर दिया।

4. पुनरीक्षणवादियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि पुनरीक्षणवादी सं. 1 - 3 और विरोधी पक्षकार सं. 2 एक ही गांव में रहते हैं और उनके बीच सिविल विवाद चल रहा है। विरोधी पक्षकार सं.-2 ने पुनरीक्षण वादियों को हमेशा आपराधिक मामले में झूठा फँसाने की धमकी दी। विरोधी पक्ष क्रमांक-2 ने ग्राम सभा की भूमि पर कब्जा कर गाटा सं. ५६ एम पर निर्माण करा रहा था, उसके विरूद्ध उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनिमय के नियम 115-ग के तहत कार्यवाही की गयी, लेकिन उसने ग्राम सभा की भूमि पर निर्माण कराना

जारी रखा। इसलिए उप- संभागीय मजिस्ट्रेट ने दिनांक 12.09.2012 को पुनरीक्षणकर्ता सं.-4 को अवैध निर्माण हटाने का निर्देश दिया है। इस आदेश के अनुपालन में, सम्बंधित प्राधिकारियों के द्वारा अवैध निर्माणों को हटा दिया है। विरोधी पक्ष संख्या-2 ग्राम सभा की भूमि पर अवैध कब्जा करना चाहता था। आवेदक संख्या-4 और 5 सरकारी कर्मचारी है और वे अपने आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में कार्य कर रहे थे लेकिन द.प्र.सं. धारा 197 के तहत मंजूरी प्राप्त किये बिना उनके खिलाफ आपराधिक कार्यवाही शुरू की गई है। अग्रेतर पुनरीक्षणवादी क्रमांक 6, जे.सी.बी. मशीन का स्वामी है तथा पुनरीक्षणवादी क्रमांक 1-3 एवं 6 की कोई भूमिका नहीं दी गयी है। इस बात का भी परिवाद किया गया कि मजिस्ट्रेट के आदेश के अधीन द.प्र.सं. की धारा 202 के अधीन पुलिस द्वारा मामले की विवेचना की गई थी। पुलिस रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि विरोधी पक्ष सं.-2 ने दुर्भावना के कारण शिकायत दर्ज की है। अंत में, यह भी तर्क दिया गया है कि पुनरीक्षणवादियों के विरूद्ध कोई अपराध नहीं बनता है। उन्होंने कोई अपराध नहीं किया है, और दीवानी विवाद के कारण उन्हें झूठा फँसाया गया है। विद्वान मजिस्ट्रेट ने मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार किए बिना आदेश दिनांक 18.04.2015 द्वारा उन्मोचन आवेदन को खारिज कर दिया है जो कि विधि में खराब व अवैध है और इस तरह से रद्द किये जाने योग्य है। विद्वान मजिस्ट्रेट ने विधि द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं करने में घोर अवैधता की है। पुनरीक्षणवादियों के विरूद्ध दायर आपराधिक मामले में दुर्भावना पूर्ण इरादे से काम लिया गया है और कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से व्यक्तिगत दुश्मनी के कारण प्रतिशोध लेने के उद्देश्य से शुरू की जाती है।

मनोज महाबीर प्रसाद खेतान बनाम राम गोपाल पोद्दार और अन्य में दाण्डिक अपील सं. 1973 सन् 2010 (विशेष अनुमति याचिका सी.आर.एल. सं. 2274 सन् 2008 से उद्भूत) में दिए माननीय शीर्ष न्यायालय के निर्णय 8 अक्टूबर 2010 को विनिश्चित का आश्रय लिया गया है। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया है कि यदि आपराधिक कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण इरादे से शुरू की जाती है, तो यह रद्द करने योग्य है क्योंकि ऐसी कार्यवाही विधि और न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

5. विद्वान ए.जी.ए. ने प्रार्थना का विरोध कियाऔर निवेदन किया कि इस स्तर पर केवल प्रथम दृष्टया इष्टतम मामला देखा जाना है और अभिलेख पर पर्याप्त सामाग्री है, जो पुनरीक्षणवादियों के विरूद्ध धारा 427 और 506 के तहत प्रथम दृष्टया अपराध को स्थापित करती है। धारा 245 (2) दं.प्र.सं. के तहत आरोपी को आरोप मुक्त करने के पर्याप्त आधार नहीं है। विद्वान मजिस्ट्रेट ने उचित ही आवेदन को खारिज कर दिया है और आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है।

6. दण्ड़ प्रक्रिया संहिता की धारा 245 निम्नलिखित व्यवस्था करती है-

"245-अभियुक्त को कब छोड़ा जाएगा।

(2) इस खण्ड़ में किसी बात के होते हुए भी एक मजिस्ट्रेट को मामले के किसी पिछले चरण में अभियुक्त को उन्मोचित करने से रोकने के लिए समझा जाएगा, यदि ऐसे मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किये जाने वाले कारण के लिए, वह आरोप को निराधार मानता है।

पूर्वोक्त प्रावधान मजिस्ट्रेट को मामले के किसी भी पिछले चरण में यानी दं.प्र.सं. की धारा 244 के तहत साक्ष्य से पहले अभियुक्त को आरोप मुक्त करने का अधिकार देता है, अगर वह आरोप को निराधार मानता है।

7. अभिलेख पर मौजूद सामाग्री से पता चलता है कि एक शिकायत इस आरोप के साथ की गई थी कि विरोधी पक्ष सं.-2 ने गाटा सं.-56 एम पर अतिक्रमण किया है, जो कि ग्राम सभा की बंजर भूमि है। उ. प्र. जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के प्रावधानों के तहत कार्यवाही प्रारंभ किया गया। राजस्व निरीक्षक ने स्थल का निरीक्षण किया और शिकायत को सत्य पाया यानी कि परिवादी ने ग्राम सभा के जमीन पर चहारदीवारी बनायी है। राजस्व निरीक्षक के रिपोर्ट के आधार पर संभागीय उप-मजिस्ट्रेट ने 12.09.2012 को अवैध अतिक्रमण हटाने का निर्देश दिया। उक्त आदेश के अनुपालन में , गुरूचरण, नायब तहसीलदार नौगढ़ ने स्थानीय पुलिस के माध्यम से अतिक्रमण हटवाया। अतः यह सिद्ध होता है कि विरोधी पक्ष सं.-2 के द्वारा किया गया अवैध अतिक्रमण सम्यक् विधि प्रक्रिया में लोक सेवकों द्वारा अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में हटा दिया गया है। पुनरीक्षणवादी संख्या-2 और 3 की पूरे मामले में कोई भूमिका नहीं है, लोक प्राधिकारियों द्वारा अवैध अतिक्रमण हटाने में पुनरीक्षणवादी संख्या-6 की जोसीबी मशीन का उपयोग किया गया है, प्रत्यर्थी संख्या-1 ने केवल विरोधी पक्ष संख्या-2 के द्वारा किया गया अवैध अतिक्रमण के संबंध में ही शिकायत की है, इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के तहत आवेदन घटना के रंगीन प्रकरण के साथ दायर किया गया था। इससे यह भी प्रकट होता है कि आवेदन को शिकायत मानकर विद्वान मजिस्ट्रेट ने धारा 202 (2) दं.प्र.सं. के तहत स्थानीय पुलिस द्वारा जांच का निर्देश दिया गया है। जांच रिपोर्ट, आपराधिक पुनरीक्षण के समर्थन में दायर शपथपत्र के अनुलग्नक संख्या-6 और 7 है। इससे यह भी पुष्टि होती है कि वास्तविक घटना यह है कि विरोधी पक्ष सं.-2 का अवैध अतिक्रमण लोक प्राधिकारियों द्वारा अपने पदीय

कर्तव्य के निर्वहन में हटाया गया और कोई अपराध कारित नहीं हुआ है।

8. विद्वान मजिस्ट्रेट ने यह अवलोकन करते हुए उन्मोचित कर दिया कि जिन आधारों पर प्रार्थनापत्र दाखिल किया गया है व सभी तथ्यात्मक हैं , अभियुक्त की उपस्थिति के बाद, शिकायतकर्ता को साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान किया जाएगा और अभियुक्त को बचाव का अवसर मिलेगा। यह भी देखा गया है कि शिकायत कथित तथ्य का समर्थन दं.प्र.सं. की धारा 200 और 202 के तहत बयानों द्वारा किया गया है और उसी के आधार पर समन आदेश पारित किया गया है।

9. उपरोक्त से यह प्रतीत होता है कि विद्वान मजिस्ट्रेट इस धारणा आगे बढ़े कि उसके पास अभिलेख पर उपलब्ध सामाग्री का मूल्यांकन करने की कोई शक्ति नहीं है और इस स्तर पर उन्मोचन की प्रार्थना पर विचार नहीं किया जा सकता है। यह उस विधिक प्रावधान के उल्लंघन में है जिसे अभियुक्त पर लगे आरोपों के संबंध में मजिस्ट्रेट द्वारा किसी जाँच को निराधार होने या अभियुक्त ने अपराध कारित किया इसका अनुमान लगाने का आधार आवश्यक है। अभिलेख पर उपलब्ध संपूर्ण सामाग्री पर विचार करने पर इस निष्कर्ष को दर्ज किया जाना था।

मजिस्ट्रेट शिकायत में दर्ज आरोपों का मूल्यांकन और दं. प्र. सं. की धारा 200 के तहत पेश की गई पुलिस रिपोर्ट पर विचार करने में विफल रहे। विद्वान मजिस्ट्रेट ने उन्मोचन और इस संबंध में उठाये गये विवाद के आधारों पर विचार नहीं किया है। विद्वान मजिस्ट्रेट ने उन्मोचित आवेदन में ली गई दलीलों पर विचार किया होगा और उसे एक आख्यापक और सकारण आदेश द्वारा संबोधित किया होगा। उन्मोचन प्रार्थना-पत्र का निपटारा करते समय विद्वान मजिस्ट्रेट ने प्रासंगिक विवाद पर विचार नहीं किया और उसे सरसरी तौर पर खारिज कर दिया। अतः उन्मोचन प्रार्थनापत्र पर एक नया आदेश पारित करने की आवश्यकता है।

10. तदनुसार पुनरीक्षण की अनुमति दी जाती है। आक्षेपित आदेश दिनांकित 18.04.2015 को अपास्त किया जाता है। विद्वान मजिस्ट्रेट को निर्देशित किया जाता है कि वे पक्षकारों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के उपरान्त, विधि के अनुसार उन्मोचन प्रार्थनापत्र पर एक नया आदेश पारित करें।

(2023) 1 ILRA 85

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला
माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी

शासकीय अपील सं. 22/1984

उत्तर प्रदेश राज्य ... अपीलकर्ता

बनाम

पूरन सिंह और अन्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता :-

एजीए, सतीश त्रिवेदी

प्रतिवादी के अधिवक्ता :-

प्रशांत व्यास, संतोष कुमार तिवारी

ए. आपराधिक कानून-आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 378 - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 302, 307 और 34-चुनौती-दोषमुक्ति – आरोपियों और मृतक के पिता के मध्य भूमि विवाद -दिनदहाड़े घटित हुई घटना -एफआईआर त्वरित थी - एफआईआर में तीन चश्मदीद गवाहों के नाम का उल्लेख किया गया था लेकिन उन्हें विचारणीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया -उनके प्रस्तुत नहीं होने पर प्रस्तुत स्पष्टीकरण संतोषजनक नहीं - एकमात्र जीवित आरोपी से कोई बरामदगी नहीं हुई और उसकी गोली से किसी को कोई चोट नहीं आई - पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट से पता चला कि केवल एक बंदूक की चोट थी, राइफल से लगी चोटें झूठी हैं - दो आरोपी जो राइफल और बंदूक ले गए थे, मृत है-कपड़ा जिसमें बरामद बंदूक पैक की गई थी फटा हुआ था-पीडब्लू-12 ने इस तथ्य को स्वीकार किया कि उसने कपड़ा बदल दिया है और बरामद बंदूक को पुनः सील कर दिया है-अभियोजन का वाद विरोधाभास पूर्ण है और अभियोजन के हिस्से में चूक है-इसलिए बंदूक और कारतूस की बरामदगी जीवित अभियुक्त की ओर से वाद संदिग्ध है- इसलिए, किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। (पैरा 1 से 33)

अपील निरस्त (ई-6)

<u>उद्धत वादों की सूची:</u>

1. बन्नारेड्डी एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य (2018) 5 एससीसी 790

2. जयम्मा बनाम कर्नाटक राज्य (2021) 6 एससीसी 213

3. वीरेन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2022) 3 एडीजे 354 डीबी

4. राजेश प्रसाद बनाम बिहार राज्य और अन्य (2022) 3 एससीसी 471

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला और माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी द्वारा प्रदत्त)

1. उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से विद्वान एजीए श्री कैलाश प्रकाश पाठक के साथ-साथ एकमात्र जीवित आरोपी/प्रतिवादी संख्या 4 मान सिंह की ओर से पेश हुए अधिवक्ता श्री संतोष कुमार तिवारी को सुना।

2. वर्तमान मामले में चार आरोपी प्रतिवादियों में से, अर्थात् (i) पूरन सिंह (ii) कश्मीर सिंह. (iii) जसवंत सिंह और (iv) मान सिंह, तीन आरोपी व्यक्ति (i) पूरन सिंह, (ii) कश्मीर सिंह और (iii) जसवंत सिंह की मृत्यु हो गई और उक्त आरोपी व्यक्तियों की अपील पहले ही खारिज कर दी गई है। अब एकमात्र आरोपी मान सिंह जीवित है। इसलिए, हम केवल आरोपी मान सिंह के संबंध में गुण-दोष के आधार पर मामले की सुनवाई कर रहे हैं।

3. वर्तमान शासकीय अपील मुकदमा अपराध संख्या 197/1982 अंतर्गत धारा 302/34 और 307/34 आईपीसी, पुलिस स्टेशन बहेड़ी, जिला बरेली से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या 610/1982 (राज्य बनाम पूरन सिंह और अन्य) में पारित अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश, बरेली के निर्णय और आदेश दिनांक 07.09.1983 के विरुद्ध दायर की गई है, जिसके द्वारा विद्वान परीक्षण न्यायालय ने अभियुक्त व्यक्तियों को दोषमुक्त कर दिया था।

एफआईआर के अनुसार कहानी

4. अभियोजन पक्ष की कहानी, संक्षेप में, यह है कि दयाल सिंह शिकायतकर्ता, जो ग्राम पंडरा, थाना-बलेड़ी, बरेली के निवासी हैं, ने स्टेशन हाउस ऑफिसर, थाना बहेड़ी, जिला बरेली के समक्ष एक लिखित रिपोर्ट दी है, जिसमें कहा गया है कि उनका मृतक पूरन सिंह और अन्य के साथ कुछ भूमि विवाद था। घटना से एक सप्ताह पहले एक पंचायत बुलाई गई थी और उस पंचायत ने जमीन के संबंध में विवाद का फैसला किया था लेकिन आरोपी पूरन सिंह ने पंचायत के निर्णय को स्वीकार नहीं किया था। इसके बाद पूरन सिंह ने शिकायतकर्ता को धमकी दी थी कि वह किसी भी तरह से विवाद में पड़ी जमीन को फिर से हासिल कर लेगा। इसी आधार पर पूरन सिंह दयाल सिंह के खिलाफ दुर्भावना रखते थे। इसी कारण से 22.06.1982 को सुबह 8.00 बजे आरोपी पूरन सिंह राइफल से लैस होकर कश्मीर सिंह डी. बी. बी. एल. बंदूक से लैस लोकर, आरोपी जसवंत सिंह और मान सिंह दोनों अपनी एस. बी. बी. एल. बंदूकों से लैस होकर पी.डब्ल्यू. 2- दयाल सिंह के घर की ओर आए और गालियां देने लगे। आरोपियों को अपनी ओर आते देख दयाल सिंह अपने बेटे रणधीर सिंह (मृतक) और अपने बहनोई बलविंद्र सिंह (घायल) के साथ शोर मचाते हुए जुगेंद्र सिंह के घर की ओर भागे। रणधीर सिंह और बलविंद्र सिंह छत पर चढ़ गए और दयाल सिंह ग्राउंड फ्लोर पर ही रहे। उक्त व्यक्ति के शोर मचाने पर जुगेंद्र सिंह, दलीप सिंह और निशान सिंह घटना स्थल पर पहुंचे। आरोपी पूरन सिंह ने शिकायतकर्ता के बेटे रणधीर सिंह (मृतक) को मारने के इरादे से रणधीर सिंह पर अपनी राइफल से गोली चलाई, जो उसके बाएं पैर पर लगी, जिससे वह घायल हो गया। आरोपी कश्मीर सिंह ने भी अपनी डी. बी. बी. एल. बंदूक से गोली चलाई, जिससे बलबिंद्रा सिंह घायल हो गए। आरोपी जसवंत सिंह और मान सिंह ने भी अपनी-अपनी बंदूक से फायरिंग की है। गवाहों द्वारा चुनौती दिए जाने पर आरोपी पूर्वी तरफ भाग गए। इसके बाद शिकायतकर्ता दयाल सिंह छत पर गए जहां उनका बेटा रणधीर सिंह गोली लगने से घायल पड़ा था। शिकायतकर्ता ने उसके पैर को कपड़े से लपेटा और उसे नीचे उतारा। इसके बाद दयाल सिंह लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-1 के साथ पुलिस स्टेशन गए, जिसे दयाल सिंह के बोलने पर जसबीर सिंह ने लिखा था। शिकायतकर्ता ने बलविंद्र सिंह को घर पर छोड़ दिया। उन्होंने पुलिस स्टेशन में लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-1 प्रस्तुत की थी और उस लिखित रिपोर्ट के आधार पर, एक चिक रिपोर्ट प्रदर्श क-10 तैयार की गई थी। उस रिपोर्ट के आधार पर आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आईपीसी की धारा 307 के तहत मामला दर्ज किया गया था। शिकायतकर्ता घायल रणधीर सिंह को ट्रॉली में बिठाकर बुडिया फार्म ले गया। घायल बलविंद्र सिंह शिकायतकर्ता दयाल सिंह के साथ नहीं थे। बुडिया फार्म में घायल रणधीर सिंह (मृतक) को बाला विशंभर नाथ की कार में रखा गया और इस तरह उसे पुलिस स्टेशन बहेड़ी ले जाया गया। देर रात एक बजकर 10 मिनट पर पुलिस थाने में रिपोर्ट दर्ज कराई गई। घटना स्थल से पुलिस स्टेशन की दूरी 9 मील है। रणधीर सिंह की शुरुआत में बहेड़ी में डॉक्टर द्वारा जांच की गई थी और उसके बाद डॉक्टर ने सलाह दी है कि उनकी चोटें गंभीर है इसलिए उन्हें जिला अस्पताल, बरेली में स्थानांतरित किया जाना चाहिए। बहेड़ी के डॉक्टर की सलाह पर रणधीर सिंह को इलाज के लिए बरेली के जिला अस्पताल लाया गया, जहां उसी दिन उनकी मौत हो गई। उनके शव का पोस्टमार्टम 22.06.1982 को शाम 4.30 बजे जिला

अस्पताल, बरेली के डॉ. बलबीर सिंह दद्वारा किया गया था। बाद में आईपीसी की धारा 307 के तहत मामले को जीडी एंट्री प्रदर्श क- 10 के माध्यम से 302 आईपीसी में बदल दिया गया था।

5. इस मामले की जांच शुरू में पीडब्ल्यू 7- इंद्रजीत सिंह, सब इंस्पेक्टर को सौंपी गई थी, जिन्होंने चिक प्रदर्श क- 10 को साबित किया है। उन्होंने आगे कहा कि जैसे ही पुलिस स्टेशन में मामला दर्ज किया गया, उन्होंने मामले की जांच शुरू कर दी और पुलिस स्टेशन में मृतक रणधीर सिंह का बयान दर्ज करने की कोशिश की, जो कार में लेटा था, लेकिन रणधीर सिंह ने अपना बयान नहीं दिया क्योंकि वह गंभीर और उदास मानसिक स्थिति में था। इसके तुरंत बाद उन्हें मेडिकल जांच के लिए बहेड़ी अस्पताल भेजा गया। इसके बाद पीडब्ल्यू-4 ने रणधीर सिंह और निशान सिंह के पिता दयाल सिंह का बयान दर्ज किया और घटनास्थल पर गए जहां उन्होंने बलविंद्र सिंह, जुगेंद्र सिंह और दलीप सिंह के बयान दर्ज किए। उन्होंने घटना स्थल का निरीक्षण किया और साइट प्लान तैयार किया। उन्होंने टूटी हुई हड्डियों और सादे मिट्टी के टुकड़े के साथ खून से सनी मिट्टी एकत्र की और उन्हें अलग-अलग कंटेनरों में रखा। ये प्रदर्श-3 और प्रदर्श-4 हैं। इस आशय का एक फर्द प्रदर्श क 13 तैयार किया गया। उसने रास्ता से दो खाली कारतूस एकत्र किए हैं और उन दोनों को सील के तहत रखा गया था और उसके द्वारा एक फर्द प्रदर्श क-13 तैयार किया गया था। इन कारतूसों को बैलिस्टिक जांच के लिए भेजा गया था। इसके बाद उन्होंने अन्य गवाहों के बयान दर्ज किए। उन्होंने हथियारों की बरामदगी के लिए आरोपियों की तलाशी भी ली, लेकिन उनके पास से कोई हथियार बरामद नहीं हुआ। आरोपी कश्मीर सिंह, जसबीर सिंह, पूरन सिंह के घर के संबंध में फर्द तलाशी पीडब्ल्यू-7 द्वारा तैयार की गई थी। ये फर्द प्रदर्श क 15 व 16, क- 17 हैं। 23.06.1982 को, पीडब्ल्यू -7 को बलबिंद्रा सिंह और रणधीर सिंह (मृतक) की चोट की रिपोर्ट मिली। उन्हें रणधीर सिंह के शव की जांच रिपोर्ट और पोस्टमार्टम रिपोर्ट और जीडी की प्रति मिली है। इसके बाद मामले को आईपीसी की धारा 302 में बदल दिया गया। पीडब्ल्यू. 7 सब इंस्पेक्टर इंद्रजीत सिंह ने 23.06.1982 तक मामले की जांच की, इसके बाद 26.06.1982 से इस मामले की जांच स्टेशन हाउस ऑफिसर श्री पाल सिंह, पीडब्ल्यू 8 को सौंप दी गई।

6. जांच के दौरान आरोपी कश्मीर सिंह को स्टेशन हाउस ऑफिसर वीआर गोयल और पीडब्ल्यू.13-कांस्टेबल जिया लाल द्वारा गिरफ्तार किया गया। आरोपी कश्मीर सिंह को थाना किच्छा, नैनीताल लाया गया, जहां कांस्टेबल हरि नंदन, पीडब्ल्यू. 12 द्वारा जीडी एंट्री नंबर 13 बनाई गई। 21.04.1983 को बरामद बंदूक और कारतूस पुलिस स्टेशन किच्छा से पुलिस स्टेशन बहेड़ी, जिला बरेली में कांस्टेबल प्रेम पाल शर्मा, पीडब्ल्यू. 14 द्वारा लाए गए थे, जहां कांस्टेबल आशिक हुसैन, पीडब्ल्यू 11 द्वारा जीडी में प्रवेश किया गया था। कांस्टेबल शराफत अली पीडब्ल्यू.10 03.04.1983 को जी. बी. बी. एल. बंदूक और कारतूस बैलिस्टिक विशेषज्ञ लखनऊ के पास ले गए और 06.04.1983 को इसे प्रस्तुत किया।

7. मामले की जांच पूरी करने के बाद, जांच अधिकारी श्री पाल सिंह, पीडब्ल्यू. 8 ने 26.06.1982 को आरोपी पूरन सिंह, कश्मीर सिंह जसबीर सिंह और मान सिंह के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया। जांच के बाद उन्हें विचारण न्यायालय के समक्ष सुपुर्द किया गया। 8. मुकदमे में आरोपी व्यक्तियों ने खुद को निर्दोष बताया और दुश्मनी के कारण उन्हें गलत तरीके से फंसाया जाना बताया ।

9. अभियोजन मामले के समर्थन में पीडब्ल्यू बलकार सिंह, पीडब्ल्यू2-दयाल सिंह (प्रथम) सूचनादाता), पीडब्ल्यू-3-बलविंद्र सिंह (घायल), पीडब्ल्यू4- राम चंदर (सब इंस्पेक्टर), पीडब्ल्यू5-डॉ. बलबीर सिंह, पीडब्ल्यू-6-डॉ. जानकी प्रसाद गंगवार, पीडब्ल्यू-7 इंद्रजीत सिंह (जांच अधिकारी). पीडब्ल्यू-8-श्री पाल सिंह (स्टेशन हाउस ऑफिसर) पीडब्ल्यू- 9 - हरपाल सिंह (कांस्टेबल), पीडब्ल्यू- 10 शराफत अली (कांस्टेबल). पीडब्ल्यू-11-आशिक हुसैन (हेड मोहर्रिर), पीडब्ल्यू-12 हरी नंदन मुरारी (कांस्टेबल), पीडब्ल्यू-13 जिया लाल (कांस्टेबल) पीडब्ल्यू 14 प्रेम पाल (कांस्टेबल) को निचली अदालत के समक्ष पेश और परीक्षित किया गया।

10. पीडब्ल्यू-1- बलकार सिंह ने कहा है कि रणधीर सिंह की लगभग 9 महीने पहले हमारे गांव में हत्या कर दी गई थी। उन्होंने कहा कि उनके गांव में एक पंचायत हुई थी जिसमें कई लोग मौजूद थे। वह भी वहां मौजूद थे। वह पंचायत पूरन सिंह और दयाल सिंह के बीच भूमि विवाद को निपटाने के लिए आयोजित की गई थी। पूरन सिंह वर्तमान मामले में आरोपी है और दयाल सिंह मृतक रणधीर सिंह का पिता है। उन्होंने आगे कहा कि पूरन सिंह गांव की आबादी में जमीन लेना चाहता था और पंचायत ने उसके पक्ष में फैसला सुनाया। उक्त जमीन के बदले पूरन सिंह की कुछ जमीन गांव के बाहर थी, उसे अपनी जमीन के पास आबादी में जमीन मिल गई। उस समय दोनों पक्ष पंचायत के फैसले से सहमत हो गए थे, बाद में उन्होंने लड़ाई लड़ी क्योंकि पंचायत के फैसले को पूरन सिंह ने स्वीकार नहीं किया था। जिरह में उसने बताया कि वह इस पंचायत का पंच नहीं था। यह पंचायत आम है, इसलिए वह भी वहां मौजूद थे। एक अन्य स्थान पर उन्होंने कहा कि जो लोग वहां आ रहे थे, उन्होंने उन्हें बताया कि गांव में एक पंचायत हुई थी, इसलिए, वह भी वहां गए थे। उस पंचायत में कुल 15-16 लोग थे। उसे पूरन सिंह की जमीन दिखाई नहीं दी, जिसके एवज में उसे पंचायत द्वारा आबादी में जमीन मित्र

गई, उसे भी नहीं पता था कि उसे कितनी जमीन दी गई है। आरोपी व्यक्तियों द्वारा उसे कोई जमीन नहीं दी गई थी। उनके साथ गुरबख्श सिंह को भी जमीन अपने आप मिल गई। बेचने का एग्रीमेंट भी हो गया। बेचने के लिए हुए उस समझौते में पूरन सिंह पुत्र ईश्वर सिंह गवाह थे। उक्त पूरन सिंह पुत्र ईश्वर सिंह आरोपी पूरन सिंह का साला था। यह कहना गलत है कि इस जमीन को पाने के लिए, उन्हें आरोपी व्यक्तियों के साथ बातचीत करनी पड़ी क्योंकि हाकिम सिंह को अधिक जमीन मिली और उन्हें कम मिली। यह कहना भी गलत है कि वह इस पंचायत में मौजूद नहीं थे और इस वजह से उन्हें झूठी गवाही दी गई। उसने एक ट्रैक्टर खरीदा था और आरोपी पूरन सिंह गारंटर था। एक किस्त उस पर बकाया थी, जिसका भुगतान उसे करना है और यह कहना गलत है कि पूरन सिंह उससे यह किस्त मांग रहा था. इसलिए, वह झूठी गवाही देता है।

11. पीडब्ल्यू-2-दयाल सिंह (मृतक के पिता) - सूचनादाता ने शपथ पर कहा है कि वह आरोपी पूरन सिंह, कश्मीर सिंह, जसवंत सिंह और मान सिंह को जानता है। पूरन सिंह के साथ हमारा जमीन विवाद था। उनकी कुछ जमीन गांव में थी और कुछ जमीन गांव के बाहर थी। रणधीर सिंह की मौत से एक सप्ताह पहले, उनके भूमि विवाद को निपटाने के लिए एक पंचायत आयोजित की गई थी। दो बिस्वा जमीन, जो हमारे पास गांव में अधिक थी, पंचायत ने पूरन सिंह को उसकी जमीन जो गांव के बाहर थी, उसे कम करके देने का फैसला किया। पूरन सिंह को गांव में करीब ढाई बिस्वा कम जमीन दी गई और उसे गांव के बाहर ढाई बिस्वा से ज्यादा जमीन दी गई। इसके बाद उन्होंने कहा कि पूरन सिंह को गांवों में दो बिस्वा जमीन अधिक दी गई थी और उन्हें गांव के बाहर दो बिस्वा कम जमीन दी गई थी। पूरन सिंह ने पंचायत के निर्णय को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने आगे कहा कि कश्मीर सिंह और जसवंत सिंह आरोपी पूरन सिंह के भाई हैं और मान सिंह पूरन सिंह का बेटा है। वे सभी अदालत में मौजूद हैं। पंचायत के फैसले के बाद पूरन सिंह कहने लगे और हम और जमीन लेंगे। उन्होंने आगे कहा कि 22.06.1982 को सुबह 8.00 बजे सभी चार आरोपी व्यक्ति, अर्थात् जसवंत सिंह, कश्मीर सिंह, मान सिंह और पूरन सिंह हथियारों से लैस होकर गालियां देते हुए उनके घर की ओर आए। पूरन सिंह राइफल से लैस था, आरोपी कश्मीर सिंह जी. बी. बी.एल. बंदूक से लैस था, आरोपी जसवंत सिंह और मान सिंह दोनों अपनी एस. बी. बी. एल. बंदूकों से लैस थे आरोपी को अपनी ओर आता देख वह शोर मचाने के बाद जुगेंद्र सिंह के घर की ओर भागा। उस समय उनके साथ रणधीर सिंह और बलविंद्र सिंह भी थे। रणधीर सिंह (मृतक) उनका बेटा है। बलविंद्र सिंह उनके बहनोई हैं। उक्त व्यक्ति के शोर मचाने पर जुगेंद्र सिंह, दलीप सिंह और निशान सिंह घटना स्थल पर पहुंचे। रणधीर सिंह और बलविंद्र सिंह जगेंद्र सिंह की छत पर चढ़ गए। दयाल सिंह, जगेंद्र सिंह के घर के बाहर, जहां रोटी बनाने की जगह है, वह दीवार के सहारे झुके खड़े थे। आरोपी पूरन सिंह ने रणधीर सिंह (मृतक) पर अपनी राइफल से गोली चलाई। आरोपी कश्मीर सिंह ने अपनी डी. बी. बी. एल. बंदूक से बलविंद्र सिंह पर भी गोली चलाई। आरोपी जसवंत सिंह और मान सिंह ने भी अपनी-अपनी बंदूक से फायरिंग की है। आरोपी पूरन सिंह ने कई बार फायरिंग की। जुगेंद्र सिंह, निशान सिंह और दलीप सिंह द्वारा चुनौती देने पर आरोपी फरार हो गए। इसके बाद शिकायतकर्ता दयाल सिंह छत पर चला गया, उसका बेटा रणधीर सिंह बंदूक की गोली से घायल पड़ा था। शिकायतकर्ता ने उसके पैर के घाव को कपड़े से लपेटा और उसे नीचे उतारा। इसके बाद वह लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-1 के साथ पुलिस स्टेशन गए, जिसे दयाल सिंह के बोलने पर जसबीर सिंह ने लिखा था। शिकायतकर्ता ने बलविंद्र सिंह को घर पर छोड़ दिया था। इसके बाद शिकायतकर्ता घायल रणधीर सिंह को कार में लेकर पुलिस थाना बहेड़ी गया। शिकायतकर्ता ने पुलिस स्टेशन में लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत की उस लिखित रिपोर्ट के आधार पर एक चिक रिपोर्ट प्रदर्श क- 10 तैयार की गई। इसके बाद पुलिस निरीक्षक ने उन्हें रणधीर सिंह को कार में बहेड़ी अस्पताल ले जाने की सलाह दी और उनके साथ एक कांस्टेबल को भेजा, अस्पताल पहुंचने के बाद डॉक्टर ने एक टीका लगाया और उन्हें सलाह दी कि उनकी चोटें गंभीर हैं इसलिए उन्हें जिला अस्पताल, बरेली में स्थानांतरित किया जाना चाहिए। डॉक्टर की सलाह पर रणधीर को इलाज के लिए जिला अस्पताल, बरेली लाया गया, जहां उसी दिन उसकी मौत हो गई। पीडब्ल्यू. 2 ने अपनी जिरह में कहा है कि विवाद केवल इतना था कि गांव के बाहर स्थित दो बिस्वा जमीन, जो कम थी, पूरन सिंह उसे आबादी में लेना चाहता था ।

12. पीडब्ल्यू-3- बलविंद्र सिंह ने शपथ लेकर बताया है कि करीब 9 महीने पहले सुबह 8.00 बजे वह अपने घर के बाहर खड़े थे। दयाल सिंह और रणधीर सिंह (मृतक) भी वहां थे। उन्होंने देखा कि सभी चार आरोपी व्यक्ति, जसवंत सिंह, कश्मीर सिंह, मान सिंह और पूरन सिंह हथियारों से लैस होकर गालियां देते हुए उनके घर की ओर आए और कहा कि उन्हें मत छोड़ो, उन्हें मार डालो। पूरन सिंह राइफल से लैस था, आरोपी कश्मीर सिंह जी. बी. बी.एल. बंदूक से लैस था, आरोपी जसवंत सिंह और मान सिंह दोनों अपनी एस. बी. बी. एल. बंदूकों से लैस थे। उन्हें देखते ही वे शोर मचाने के बाद जुगेंद्र सिंह के घर की ओर भागे। शोर मचाने पर जुगेंद्र सिंह और निशान सिंह मौके पर पहुंचे। वह और रणधीर सिंह जुगेंद्र सिंह की छत पर चढ़ गए। दयाल सिंह नीचे रह गए। आरोपी पूरन सिंह ने रणधीर सिंह (मृतक) पर अपनी राइफल से गोली चलाई, जो उसके पैर में लगी। गोली लगने के बाद रणधीर सिंह गिर पड़े। इसके

बाद आरोपी कश्मीर सिंह ने भी अपनी डी. बी. बी.एल. बंदूक से उस पर गोली चलाई, वह भी जमीन पर गिर गया। आरोपी जसवंत सिंह और मान सिंह ने भी अपनी-अपनी बंदूक से फायरिंग की है। आरोपी पूरन सिंह ने कई बार फायरिंग की। इसके बाद जुगेंद्र सिंह, निशान सिंह, दयाल सिंह और दलीप सिंह छत पर गए, जहां उनका बेटा रणधीर सिंह गोली लगने से घायल पड़ा था। उन्होंने उसके पैर के घाव को कपड़े से लपेटा और उसे नीचे उतारा। इसके बाद जसबीर सिंह द्वारा एक रिपोर्ट लिखी गई और फिर वे रणधीर सिंह को ट्रैक्टर ट्रॉली में ले गए। इसके बाद रणधीर सिंह की मृत्यु हो गई। उनकी चोटों की भी मेडिकल जांच कराई गई। उन्होंने आगे कहा कि उसी दिन, पुलिस इंस्पेक्टर उनके गांव में आए। पुलिस निरीक्षक के सामने उन्होंने कहा कि उनकी चोटें प्रकृति में मामूली थी, इसलिए वह रणधीर सिंह के साथ जाने के लिए तैयार नहीं थे। रणधीर सिंह को गंभीर चोटें आई हैं।

13. पीडब्ल्यू-4-सब इंस्पेक्टर राम चंदर जो औपचारिक गवाह हैं, ने शपथ पर कहा है कि 22.06.1982 को उन्हें पुलिस स्टेशन - बहेड़ी में सब इंस्पेक्टर के रूप में तैनात किया गया था। अस्पताल से सुबह करीब 11.30 बजे एक मेमो प्रदर्श-ए आया, जिसमें बताया गया है कि रणधीर सिंह पुत्र दयाल सिंह की अस्पताल में मौत हो गई। वह करीब 14:30 बजे अस्पताल पहुंचे और रणधीर के शव का निरीक्षण किया। शव को सील कर दिया गया और आवश्यक दस्तावेजों को कांस्टेबल हरपाल सिंह और शंकर प्रसाद को सौंप दिया गया। पंचायतनामा तैयार किया गया।

14. पीडब्ल्यू-5-डॉ. बलबीर सिंह, जिला अस्पताल, बरेली, जिन्होंने शव का पोस्टमार्टम किया हैं, ने कहा है कि वह 23.06.1982 को जिला अस्पताल, बरेली में चिकित्सा अधिकारी के रूप में तैनात थे। उन्होंने शाम 4.30 बजे मृतक रणधीर सिंह के शव का पोस्टमार्टम किया था। 23.06.1982 को कांस्टेबल हर पात्र और कांस्टेबल शंकर प्रसाद द्वारा उनके सामने शव प्रस्तुत किया गया था। उस समय शव सील था। मृतक की उम्र करीब 16 साल थी और करीब एक दिन पहले उसकी मौत हुई थी। 22.06.1982 को मृतक को दोपहर लगभग 1.20 बजे जिला अस्पताल, बरेली लाया गया। उन्होंने आगे कहा कि शरीर के ऊपरी और निचले हिस्से में राईगर मोर्टिस मौजूद था। उनकी जांच के अनुसार, मृतक के शरीर पर निम्नलिखित मृत्यु पूर्वं चोटें मौजूद थी.

(i) बंदूक की गोली के प्रवेश का घाव 7 सेमी x 6 सेमी तक बाएं पैर के पिछले हिस्से में, बाएं घुटने के जोड़ से 2 सेमी नीचे, बीच में उल्टे और फटे किनारे के साथ कोई कालापन और टैटू मौजूद नहीं है। दोनों हड्डियां कई टुकड़ों में टूट गई। बड़ा नस फटी हुई।

(ii) बंदूक की गोली के निकलने का आरपार घाव 12 सेमी x 11 सेमी, बाएं पैर के सामने की चोट संख्या 1 को बीच में 1 सेमी से जोड़ता है। घुटने के जोड़ के नीचे का अंतर उभरा हुआ।

15. पीडब्ल्यू-6 डॉ. जानकी प्रदाद गंगवार, जिन्हें 22.06.1982 को संयुक्त अस्पताल, बहेड़ी के अधीक्षक के रूप में तैनात किया गया था। उन्होंने रात 10:43 बजे मृतक रणधीर सिंह की जांच की है। मृतक को कांस्टेबल सूरज पाल सिंह अपने सामने लेकर आए थे। रणधीर सिंह के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गई -

(क) गोली का प्रवेश घाव बाएं पैर पर 9 सेमी x 6.5 सेमी पिछली तरफ आरपार बाएं घुटने के जोड़ के मार्जिन से 2 सेमी नीचे किनारे फटे और मुड़े हुए, कोई टैटू नहीं, कोई खरोंच नहीं लेटे हुए ऊतकों के नीचे कोई चोट नहीं।

(ख) गोली का निकास घाव बाएं पैर के बाहर की ओर बाएं घुटने के जोड़ से 2 सेमी नीचे आरपार किनारे उभरे और फटे हुए, कोई टैटू नहीं था, कोई निशान नहीं था, लेटे हुए नरम ऊलक-कोई चोट (नीचे) नहीं और हड्डियां टूटी हुई थीं।

(ग) चोट संख्या 1 से 2 सेमी नीचे 1.5 सेमी x 25 सेमी x त्वचा गहरा फटा घाव है। चोट नंबर 1 गंभीर है जो फायर आर्म से बंदूक की गोली के कारण होती है। नतीजतन, शॉट्स नंबर 2 का निवास कुंद वस्तु के कारण होता है और सरल होता है। सभी चोटों की अवधि ताजा है।

16. पीडब्ल्यू. 7- सब इंस्पेक्टर इंद्रजीत सिंह ने कहा है कि वर्तमान मामला बहेड़ी पुलिस स्टेशन में उनकी उपस्थिति में दर्ज किया गया था। उन्होंने आगे कहा है कि जैसे ही पुलिस स्टेशन में मामला दर्ज किया गया, उन्होंने मामले की जांच शुरू कर दी और पुलिस स्टेशन में मृतक रणधीर सिंह का बयान दर्ज करने की कोशिश की, जो कार में लेटा था, लेकिन रणधीर सिंह ने अपना बयान नहीं दिया क्योंकि उसकी हालत ठीक नहीं थी। उसे तुरंत मेडिकल जांच के लिए बहेड़ी अस्पताल भेजा गया। इसके बाद पीडब्ल्यू-7 ने रणधीर सिंह के पिता दयाल सिंह और निशान सिंह के बयान दर्ज किए और घटनास्थल पर गए जहां उन्होंने बलविंद्र सिंह, जुगेंद्र सिंह और दलीप सिंह के बयान दर्ज किए। उन्होंने घटना स्थल का निरीक्षण किया और साइट प्लान तैयार किया। उन्होंने टूटी हुई हड्डियों और सादे मिट्टी के टुकड़े के साथ खून से सनी मिट्टी एकत्र की और उन्हें अलग-अलग कंटेनरों में रखा। ये प्रदर्श-3 और प्रदर्श-4 हैं। इस आशय का एक फर्द प्रदर्श क 13 तैयार किया। उसने रास्ता से दो खाली कारतूस एकत्र किए हैं और उन दोनों को सील के तहत रखा गया था और एक फर्द प्रदर्श क- 13 तैयार किया गया। इन कारतूसों को बैलिस्टिक जांच के लिए भेजा गया था। इसके बाद उन्होंने अन्य गवाहों के

बयान दर्ज किए हैं। उन्होंने हथियारों की बरामदगी के लिए आरोपियों की तलाशी भी ली, लेकिन उनके पास से कोई हथियार बरामद नहीं हुआ। आरोपी कश्मीर सिंह, जसबीर सिंह, पूरन सिंह के घर के संबंध मैं फर्द तलासी पीडब्ल्यू-7 द्वारा तैयार की गई थी। ये फर्द प्रदर्श क- 15. क 16 और क 17 हैं। 23.06.1982 को, पीडब्ल्यू -7 को बलविंद्र सिंह और रणधीर सिंह (मृतक) की चोट की रिपोर्ट मिली। उन्हें रणधीर सिंह के शव की जांच रिपोर्ट और पोस्टमार्टम रिपोर्ट और जीडी की प्रति मिली है, जिसमें मामले में संशोधन किया गया था। यह संशोधित रिपोर्ट चरण सिंह ने तैयार की थी। यह प्रदर्श क 18 है। इसके बाद इस मामले की जांच थाना बहेड़ी के प्रभारी श्री एसआर शुक्ला ने की। दिनांक 26-06-1982 को आरोपी जसवंत सिंह, पूरन सिंह और मान सिंह ने न्यायिक मजिस्ट्रेट, बहेड़ी की अदालत में आत्मसमर्पण कर दिया।

17. पीडब्ल्यू-8- श्रीपाल सिंह, थाना प्रभारी ने बताया है कि वह 07.07.1982 को थाना बहेड़ी मैं प्रभारी निरीक्षक के रूप में तैनात थे। इस मामले की जांच उन्होंने दिनांक 07.07.1982 को एस.आई. श्री एस. आर. शुक्ला से ली थी। उन्होंने दयाल सिंह, गुरु चरण सिंह बरजा सिंह, ईश्वर सिंह और बलकार सिंह के अतिरिक्त बयान दर्ज किए हैं। उन्होंने जांच पूरी करने के बाद आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप पत्र प्रदर्श क 19 प्रस्तुत किया है।

18. पीडब्ल्यू. 9- कांस्टेबल हर पाल सिंह ने शपथ पर कहा है कि उन्हें आवश्यक दस्तावेजों के

साथ रणधीर सिंह का सीलबंद शव मिला।

19. पीडब्ल्यू-10-कांस्टेबल शराफत अली ने कहा है कि उन्होंने एक सीलबंद बंडल लिया था जिसमें बंदूक और कारतूस रखे गए थे और उन्होंने उन्हें मालखाना पुलिस स्टेशन, बहेड़ी को सौंप दिया है।

20. पीडब्ल्यू-11-लेड मोहर्रिर आशिक हुसेन ने बताया है कि कॉन्स्टेबल प्रेम पात्र की ओर से थाने में एक बंदूक मिली थी। इस बंदूक को कारतूस के बंडल के साथ लखनऊ में रासायनिक जांच के लिए भेजा गया था।

21. पीडब्लू. 12- कांस्टेबल हरिनंदन मुरारी ने कहा है कि वह 23.06.1982 को दोपहर लगभग 2.55 बजे थाना किच्छा में हेड मोहर्रिर के पद पर तैनात थे, स्टेशन हाउस ऑफिसर श्री वीआर गोयल, सब इंस्पेक्टर जगदीश पाल और कांस्टेबल नंबर 345 रघुनाथ सिंह और अन्य आरोपी कश्मीर सिंह को एक बंदूक और 5 जिंदा कारतूस के साथ पुलिस स्टेशन ले आए। थाना बहेड़ी के मालखाने में बंदूक और कारतूस जमा कराए गए थे। उन्हें सीलबंद रखा गया था। ये प्रदर्श 9 से 14 हैं, इस आशय की प्रविष्टि जीडी संख्या 23 में की गई थी, इसकी प्रति प्रदर्श क- 26 है। उन्होंने आगे कहा है कि उन्होंने उपरोक्त लेखों को फिर से सील कर दिया था और उसके बाद कांस्टेबल प्रेमपाल को सौंप दिया था। इस आशय की प्रविष्टि जीडी संख्या 24 में की गई थी. इसकी प्रति प्रदर्श क-27 है।

22. पी.डब्ल्यू. 13 जिया बाल ने बताया है कि वह जून, 1982 के महीने में पुलिस स्टेशन किच्छा में कांस्टेबल के रूप में तैनात थे। उन्होंने कहा है कि वह थाना प्रभारी श्री वीआर गोयल और अन्य पुलिस कर्मियों के साथ गश्त में व्यस्त थे और उन्हें विश्वसनीय मुखबिर द्वारा सूचित किया गया था कि आरोपी कश्मीर सिंह किच्छा की तरफ से आ रहा है और थाना-बलेड़ी की ओर जा रहा है। यह सूचना मिलने पर पुलिस पार्टी ने मोर्चा संभाला और उसे गिरफ्तार कर लिया और तलाशी ली। आरोपी कश्मीर सिंह के कब्जे से एक डी. बी. बी. एल. बंदूक, प्रदर्श क- 9 और 5 जिंदा कारतूस, प्रदर्श क- 10 बरामद किए गए। उन्हें मौके पर ही सील कर दिया गया और इन बरामदगी के संबंध में श्री वीआर गोयल द्वारा एक फर्द तैयार किया गया। बरामद सामान और आरोपी कश्मीर सिंह को पुलिस स्टेशन किच्छा लाया गया।

23. पीडब्ल्यू. 14 प्रेम पात्र शर्मा ने अपना हलफनामा दायर किया है जो रिकॉर्ड में है।

24. बचाव पक्ष के मामले के समर्थन में डीडब्ल्यू 1 ईश्वर सिंह और डीडब्ल्यू 2-जग्गा सिंह को पेश किया गया और उनका परीक्षण किया गया।

25. डीडब्ल्यू- 1- ईश्वर सिंह ने कहा है कि मृतक रणधीर सिंह की हत्या की तारीख से दो महीने पहले गांव पंडरा में पंचायत हुई थी। यह पंचायत जंगाली गांव की जमीन को लेकर हुई थी। वह उस पंचायत में पंच था। उस पंचायत में गुरुचरण सिंह, अमर सिंह और बाजा सिंह भी मौजूद थे। उस पंचायत में पूरन सिंह एक पक्ष था और दयाल सिंह दूसरी पार्टी थी। गांव में स्थित किसी भी जमीन के बिंदु पर कोई लड़ाई नहीं थी। पंचायत ने तदनुसार निर्णय लिया। पंचायत के नियम और शर्तों को लिखित में थे। उन्होंने कागज पर अपने अंगूठे का निशान भी बनाया। उन्होंने प्रदर्श ख-1 साबित किया है।

26. डीडब्ल्यू-2- जग्गा सिंह ने कहा है कि लगभग एक साल पहले जुगेंद्र सिंह का मेहमान जुगेंद्र सिंह के घर की छत पर इकट्ठा हुआ और उन्होंने अपना भोजन किया और उसके बाद उन्होंने अपनी बंदूकों से कुछ गोली चलाई। इस गवाह ने कहा कि उसकी भैंस एक गोली की चपेट में आ गई थी और बलविंद्र सिंह और रणधीर सिंह भी उन गोली से घायल हो गए थे। इस गवाह के अनुसार, गोली उन व्यक्तियों के कारण लगी थी जो जुगेंद्र सिंह के घर पर इकट्ठा हुए थे।

27. बरी करने का फैसला इस आधार पर पारित किया गया है कि आरोपी व्यक्तियों, अर्थात् पूरन सिंह, कश्मीर सिंह, जसवंत सिंह और मान सिंह के लिए रणधीर सिंह की हत्या करने का कोई मकसद नहीं था। पीडब्ल्यू 2 दयाल सिंह और पीडब्ल्यू-3- बलविंदर सिंह की गवाही विश्वास पैदा नहीं करती है क्योंकि मौके पर उनकी उपस्थिति संदिग्ध प्रतीत होती है और उनकी गवाही चिकित्सा साक्ष्य के साथ विरोधाभासी थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट के लेखक जसवीर सिंह और घटना के अन्य चश्मदीद गवाहों जुगेंद्र सिंह, दलीप सिंह और निशान सिंह से मुकदमे में पूछताछ नहीं की गई। दिनांक 23.06.1982 को आरोपी कश्मीर सिंह के कब्जे से बरामद डी. बी. बी.एल. बंदूक को 24.01.1983 को थाना - किच्छा नैनीताल से पुलिस थाना बहेड़ी, जिला बरेली और पुलिस स्टेशन बहेड़ी से 03.04.1983 को बैलिस्टिक विशेषज्ञ के पास भेजा गया था।

28. आक्षेपित निर्णय को चुनौती देते हुए, श्री कैलाश प्रकाश पाठक, विद्वान एजीए ने प्रस्तुत किया कि यहां आरोपी व्यक्तियों को दोषी ठहराने के लिए ठोस सबूत थे। उन्होंने कहा कि यह दिन दहाड़े की घटना है और इस घटना में एक युवा लड़के की जान चली गई और एक युवा लड़का गोली लगने से घायल हो गया। प्रथम सूचना रिपोर्ट त्वरित थी। उन्होंने आगे कहा कि गवाहों की उपस्थिति संदिग्ध नहीं है, पीडब्ल्यू 2 दयाल सिंह और पीडब्ल्यू 3- बलविंदर सिंह अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करते हैं और उनकी गवाही त्वरित प्रथम सूचना रिपोर्ट और चिकित्सा साक्ष्य से पुष्ट होती है। उन्होंने आगे कहा कि निचली अदालत ने ये निर्धारित करने में गलती कर दी है कि रणधीर सिंह की हत्या करने के लिए आरोपी व्यक्तियों का कोई मकसद नहीं था क्योंकि मकसद स्पष्ट है कि आरोपी और मृतक के पिता के बीच भूमि विवाद था। उन्होंने आगे कहा कि पीडब्ल्यू - 3 - बलविंदर सिंह को घटना के दौरान चोटें आई और उनकी उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता है। सत्र न्यायाधीश ने यह मानने में भी गलती की कि चश्मदीद गवाह दयाल सिंह और बलविंदर सिंह के साक्ष्य चिकित्सा साक्ष्य के साथ विरोधाभासी थे और घटना किसी अन्य तरीके से हुई थी। एजीए ने आगे कहा कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने कश्मीर सिंह, आरोपी के कब्जे से डी. बी. बी. एल. बंदूक की बरामदगी के सबूतों पर भरोसा नहीं करके गलती की, घटना को अंजाम देने में बंदूक का इस्तेमाल किया गया था। आरोपी के हाथ में हथियारों, घटना के स्थान और हमले के तरीके के बारे में कोई विरोधाभास नहीं था और झूठे निहितार्थ के लिए कोई मकसद नहीं है, इसलिए ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित बरी करने का निर्णय प्रकृति में विकृत है और इसे निरस्त कर देना चाहिए।

29. एकमात्र जीवित आरोपी प्रतिवादी मान सिंह की ओर से पेश हुए अधिवक्ता श्री संतोष कुमार तिवारी ने कहा कि मान सिंह के पास से किसी भी हथियार की बरामदगी नहीं हुई थी और इस बात का कोई आरोप नहीं था कि उसकी गोली से किसी को कोई चोट या नुकसान हुआ था, इसलिए मान सिंह की भागीदारी उचित संदेह से परे साबित नहीं हुई थी। उन्होंने आगे कहा कि रणधीर सिंह की हत्या करने के लिए आरोपी व्यक्तियों, अर्थात् पूरन सिंह, कश्मीर सिंह, जसवंत सिंह और मान सिंह का कोई मकसद नहीं था। उन्होंने आगे कहा कि पीडब्ल्यू -1 बलकार सिंह की धारा 161 सीआरपीसी के तहत बयान लंबे अंतराल के बाद दर्ज किया गया था. इसलिए, उनकी गवाही विश्वसनीय नहीं थी। उन्होंने आगे कहा कि पीडब्ल्यू 2 दयाल सिंह और पीडब्ल्यू - 3- बलविंदर सिंह की गवाही विश्वास पैदा नहीं करती है क्योंकि मौके पर उनकी उपस्थिति संदिग्ध प्रतीत होती है और उनकी गवाही चिकित्सा साक्ष्य के साथ विरोधाभासी थी। उन्होंने आगे कहा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट के लेखक जसवीर सिंह और घटना के अन्य चश्मदीद गवाहों, जुगेंद्र सिंह, दलीप सिंह और निशान सिंह से मुकदमे में पूछताछ नहीं की गई थी। उन्होंने आगे कहा कि मौखिक और चिकित्सा साक्ष्य विरोधाभासी हैं। उन्होंने आगे कहा कि 23.06.1982 को आरोपी कश्मीर सिंह के कब्जे से बरामद डी. बी. बी. एल. बंदूक को 24.01.1983 को पुलिस स्टेशन किच्छा नैनीताल से पुलिस स्टेशन बहेड़ी, जिला बरेली और पुलिस स्टेशन बहेड़ी से बैलिस्टिक विशेषज्ञ को 03.04.1983 को भेजा गया था, इसलिए कश्मीर सिंह से बंदूक और कारतूस की बरामदगी संदिग्ध है।

30. हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता की प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

31. आगे की कार्यवाही से पहले बरी किए जाने के खिलाफ अपील पर कानून का संज्ञान लेना उचित होगा।

32. **बन्नारेड्डी और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य के मामले में, (2018) 5 एससीसी 790, पैराग्राफ 10** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बरी किए जाने के खिलाफ अपील में हस्तक्षेप करते हुए उच्च न्यायालय की शक्ति और अधिकार क्षेत्र पर विचार किया है और पैराग्राफ 26 में यह माना है कि "उच्च न्यायालय को सबूतों की पूरी तरह से सराहना नहीं करनी चाहिए थी, खासकर जब ट्रायल कोर्ट के निष्कर्षों में कोई गंभीर खामी नहीं थी। ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित बरी करने के आदेश को रद्द करने के पीछे कोई औचित्य नहीं है, खासकर जब अभियोजन पक्ष का मामला कई विरोधाभासों और दुर्बलताओं से ग्रस्त है।

33. **जयम्मा बनाम कर्नाटक राज्य, 2021 (6) एससीसी 213** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील में

उच्च न्यायालय द्वारा जांच की शक्ति के प्रयोग की सीमाओं की व्याख्या की है।

34. **वीरेंद्र सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य, 2022 (3) एडीजे 354 डीबी** में इस न्यायालय के हाल के निर्णय में, वर्तमान मुद्दे के कानून पर विचार किया गया है।

35. **राजेश प्रसाद बनाम बिहार राज्य और एक अन्य (2022) 3 एससीसी 471** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसी तरह के दृष्टिकोण को दोहराया गया है।

36. हमने प्रतिद्वंद्वी तर्कों और सबूतों पर विस्तार से विचार किया है।

37. रिकॉर्ड के अवलोकन से, हम पाते हैं कि तीन चश्मदीद गवाहों के नामों का उल्लेख प्रथम सूचना रिपोर्ट में किया गया था, लेकिन उन्हें ट्रायल कोर्ट के समक्ष पेश नहीं किया गया, हालांकि वे निकटता से संबंधित हैं और उनके पेश न करने का स्पष्टीकरण संतोषजनक नहीं है। केवल एक प्रवेश और निकास घाव था और हथियार की बरामदगी कश्मीर सिंह के पास से हुई थी. हालांकि ट्रायल कोर्ट द्वारा इस पर अविश्वास किया गया था, और बैलेस्टिक रिपोर्ट के अनुसार खाली कारतूस केवल कश्मीर सिंह से बरामद बंदूक से दागा गया था, इसलिए, एकमात्र जीवित आरोपी मान सिंह की भागीदारी संदेह से परे साबित नहीं हुई है। जैसा कि पहले ही देखा गया है कि मान सिंह के पास से बन्दूक की कोई बरामदगी नहीं हुई थी। ऐसा कोई आरोप नहीं था कि उनकी गोली से किसी को कोई चोट पहुंची या यहां तक कि किसी संपत्ति को नुकसान भी हुआ। हमने पाया कि पीडब्ल्यू 1 बलकार सिंह ने अपराध के पीछे की मंशा बताई है और कहा था कि जिस पंचायत में पूरन सिंह और दयाल सिंह के बीच भूमि विवाद सुलझाया गया था, वहां वह भी मौजूद था, हालांकि उसे ऐसी पंचायत के लिए नहीं बुलाया गया था। मृतक के पिता पीडब्ल्यू- 2-दयाल सिंह, जो सूचनादाता हैं, ने अपराध के मक्सद और तरीके के बारे में बताया है। वह रणधीर सिंह को कार से अस्पताल ले गए थे और बलविंद्र सिंह घर में मौजूद थे। पीडब्ल्यू-3-बलविंद्र सिंह ने घटना का तरीका भी बताया है। दोनों गवाहों ने कहा है कि मान सिंह के पास एसबीबीएल गन थी और उसने अपनी बंदूक से गोली भी चलाई थी, हालांकि, जैसा कि पहले ही दर्ज किया गया है, एकमात्र जीवित आरोपी मान सिंह से कोई बरामदगी नहीं की गई थी और उसकी गोली से किसी को कोई चोट नहीं आई थी। पीडब्ल्यू-4 औपचारिक गवाह है। डॉ. बलबीर सिंह ने पोस्टमार्टम किया था और प्रमाणित किया था कि केवल एक बंदूक की गोली का प्रवेश घाव 7 सेमी x 6 सेमी और एक गन शॉट निकास घाव 12 सेमी x 11 सेमी का था। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि केवल एक बंदूक की गोली का घाव था, जिसका अर्थ है कि मृतक को केवल एक बन्दूक की चोट लगी थी, जबकि अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, आरोपी पूरन सिंह राइफल से लैस, आरोपी कश्मीर सिंह डी. बी. बी. एल. बंदूक से लैस, आरोपी जसवंत सिंह और मान सिंह दोनों अपनी एस. बी. बी. एल. बंदूकों से लैस थे। पोस्टमार्टम रिपोर्ट से साफ पता चलता हैं कि चोट -12 बोर की बंदूक से लगी थी, न कि राइफल से। इसलिए, अभियोजन पक्ष की यह कहानी कि राइफल से लगी चोटें झूठी हैं. ट्रायल कोर्ट द्वारा सही ठहराया गया है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार डीबीबीएल बंदूक 23.06.1982 को आरोपी कश्मीर सिंह के कब्जे से बरामद की गई थी। बरामद बंदूक और कारतूस 24.01.1983 को कांस्टेबल प्रेम पात्र शर्मा द्वारा पुलिस स्टेशन किच्चा से पुलिस स्टेशन बहेड़ी, जिला बरेली बाए गए थे और इस तरह की चूक के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं था। तत्पश्चात् इसे बहेड़ी पुलिस स्टेशन से दिनांक 03.04.1983 को बैलेस्टिक विशेषज्ञ, लखनऊ को भेजा गया। यह जांच एजेंसी की ओर से एक स्पष्ट कमी है, हालांकि यह अपने आप में बरी होने का आधार नहीं हो सकता है, हालांकि, इस तथ्य के साथ कि पीडब्ल्यू-12 ने अपनी जांच में स्वीकार किया है कि जिस कपड़े में बरामद बंदूक पैक की गई थी, वह फटा हुआ था, इसलिए, उन्होंने इसे बदल दिया है और उपरोक्त लेखों को फिर से सील कर दिया है और उसके बाद कांस्टेबल प्रेम पात्र को सौंप दिया है। इससे बरामद हथियार को अपराध से जोड़ने वाली अभियोजन की कहानी में संदेह पैदा होता है। इसलिए, अभियोजन पक्ष का मामला अभियोजन पक्ष की ओर से विरोधाभासों और खामियों से भरा है। साइट प्लान तैयार करने के साथ-साथ प्रथम सूचना रिपोर्ट में उल्लिखित चश्मदीद गवाहों को पेश न करने के लिए दिए गए स्पष्टीकरण में जांच एजेंसियों की ओर से चूक हुई हैं। यह स्पष्टीकरण कि प्रत्यक्षदर्शी निशान सिंह घटना के तुरंत बाद वहां से चला गया था और पंजाब चला गया था और उसके ठिकाने का पता नहीं है, बिल्कुल भी विश्वसनीय नहीं है। पीडब्ल्यू -2-दयाल सिंह और निशान सिंह निकट से संबंधित हैं और प्रथम डिग्री संबंध हैं, इसलिए, उनके प्रस्तुत करने की विफलता का संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं है। एक अन्य प्रत्यक्षदर्शी जोगेंद्र सिंह ने कहा कि वह गंभीर रूप से बीमार पड़ गए थे, हालांकि, इस तरह की गंभीर बीमारी के संबंध में कोई चिकित्सा दस्तावेज पेश नहीं किया गया था, जिससे पता चलता हो कि वह गवाह के कठघरे में पेश होने की स्थिति में नहीं थे।

38. परिस्थितियों की समग्रता में, हम पाते हैं कि अभियोजन पक्ष संदेह से परे अपनी कहानी साबित करने में विफल रहा है।

39. यह स्थापित कानून है कि ट्रायल कोर्ट द्वारा बरी किए जाने के बाद अभियुक्त के पक्ष में बेगुनाही की दुगनी

प्रकल्पना है, जिसे हमारी राय में वर्तमान मामले में अनदेखा नहीं किया जा सकता है।

40. तदनुसार, वर्तमान शासकीय अपील खारिज की जाती है।

(2023) 1 ILRA 96
अपीलीय क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांकः इलाहाबाद 23.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर
माननीय न्यायमूर्ति अजय त्यागी

गवर्नमेंट अपील संख्या 2099/1984

उ.प्र. राज्य ...अपीलकर्ता
बनाम
कृष्णदेव @ झाला एवं अन्य ...प्रत्यर्थी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
ए.जी.ए.

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता:
श्री एच.एन. सिंह, श्री एन.एन. सिंह, श्री सत्य प्रकाश शुक्ल, श्री उदय प्रकाश देव पांडे, श्री वी.बी. सिंह

क. आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 378 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - को चुनौती - बरी करना - गलत निहितार्थ - जीवित अभियुक्तों की उपस्थिति संदिग्ध पाई गई है - पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट के मुताबिक, बम और लाठी का कोई घाव नहीं है लेकिन बंदूक की गोली के छर्रों के कई घाव मिले हैं- ट्रायल कोर्ट ने सबूतों का सही मूल्यांकन किया – यह अच्छी तरह तय है कि बरी करने के निर्णय और आदेश के खिलाफ दायर अपील की सुनवाई करने वाली अपीलीय अदालत ट्रायल कोर्ट की बरी करने की सजा को खारिज नहीं करेगी या अन्यथा परेशान नहीं करेगी यदि अपीलीय अदालत को ऐसा करने के लिए पर्याप्त और बाध्यकारी कारण नहीं मिलते हैं। (पैरा 1 से 28)

ख. कानून का यह स्थापित सिद्धांत है कि यदि दो दृष्टिकोण संभव हों, एक अभियोजन के पक्ष में और दूसरा अभियुक्त के पक्ष में, तो अभियुक्त के पक्ष में दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। न्यायालय का सर्वोपरि विचार यह सुनिश्चित करना है कि न्याय का हानि होने से रोका जाए। दोषियों को बरी करने से होने वाली न्याय की हानि किसी निर्दोष को दोषी ठहराए जाने से कम नहीं है। (पैरा 19)

अपील खारिज की जाती है।(ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. एम.एस. नारायण मेनन उर्फ मणि बनाम केरल राज्य और अन्य (2006) 6 एससीसी 39
2. चन्द्रप्पा बनाम कर्नाटक राज्य (2007) 4 एससीसी 415
3. गोवा राज्य बनाम संजय ठाकरान और अन्य (2007) 3 एससीसी 75
4. उ.प्र. राज्य बनाम राम वीर सिंह एवं अन्य (2007) एआईआर एससीडब्ल्यू 5553 गिरजा प्रसाद (मृत) द्वारा उनके विधिक प्रतिनिधि बनाम एमपी राज्य (2007) एआईआर एससीडब्ल्यू 5589
5. लूना राम बनाम भूपत सिंह एवं अन्य (2009) एससीसी 749
6. मुक्किया और अन्य बनाम राज्य, टी.एन के इंस्पेक्टर द्वारा प्रतिनिधि (2013) एआईआर एससी 321
7. कर्नाटक राज्य बनाम हेमारेड्डी (1981) एआईआर एससी 1417
8. शिवशरणप्पा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य (2013) 7 जेटी एससी 66
9. पंजाब राज्य बनाम मदन मोहन लाल वर्मा (2013) 14 एससीसी 153
10. जयस्वामी बनाम कर्नाटक राज्य (2018) 7 एससीसी 219
11. शैलेन्द्र राजदेव पासवान बनाम गुजरात राज्य (2020) 14 एससी 750
12. सैमसुल हक बनाम असम राज्य (2019) 18 एससीसी 161

(माननीय न्यायमूर्ति अजय त्यागी द्वारा सुनाया गया)

1. राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री पतंजलि शुक्ला और प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता श्री सत्य प्रकाश शुक्ला को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

2. राज्य के आदेश पर दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (एतस्मिनपश्चात 'सी.आर.पी.सी.' के रूप में संदर्भित) की धारा 378 के तहत यह अपील, सत्र न्यायाधीश, मिर्ज़ापुर द्वारा पारित दिनांक 28.4.1984 के निर्णय और आदेश के खिलाफ दायर की गई है, जिसमें सत्र परीक्षण संख्या 66/1983 में भारतीय दंड संहिता, 1860 (एतस्मिनपश्चात 'आईपीसी' के रूप में संदर्भित) की धारा 302 सपठित

धारा 149 के तहत उन आरोपियों-प्रतिवादियों को बरी कर दिया गया है, जिन पर अपराध करने का मुकदमा चलाया गया है।

3. अभिलेख से प्राप्त संक्षिप्त तथ्य यह है कि मृतक के भाई रमाकांत (पीडब्लू-1) की गवाही यह है कि उसका भाई नागेश्वर चौबे सेमरिया से चरकोनावा आ रहा था और सड़क पुलिया के पास पहुंचा था, कृष्णदेव सड़क के उत्तरी किनारे पर अन्य आरोपियों के साथ घात लगाकर बैठे आरोपी उर्फ झाला ने नागेश्वर चौबे पर गोली चला दी, जो उनके (नागेश्वर चौबे) पैर में लगी। उस समय नागेश्वर चौबे के साथ रामाकांत, विश्वनाथ, बग्गर, राम सुभग, राम प्रसाद और अलगुदेव उर्फ राज नारायण भी थे, जिनके हाथ में लाठी थी। वे पश्चिम की ओर भागने लगे और सड़क पुलिया को पार करने के बाद रूक गये। चूंकि नागेश्वर चौबे के पैर में गोली लगी थी, इसलिए वह तेज दौड़ नहीं सके। आरोपी कृष्णा देव, कैलाश देव, हरिश्चंद्र देव और बच्चन को अपनी बंदूकों से गोलियां चलाते हुए नागेश्वर चौबे का पीछा करते देखा गया। अन्य आरोपी भी नागेश्वर चौबे का पीछा कर रहे थे, जो चोट लगने से पुलिया से करीब 80 कदम की दूरी पर पश्चिम की ओर गिर गये। इसके बाद, आरोपी दुखरन ने उस पर धारदार हथियार गंडासी से वार किया और आरोपी बुधिराम ने अपने झोला से एक हैंड बम निकाला और उन लोगों की ओर फेंक दिया, जो आगे बढ़ गए थे और खुद को जंगल में छिप गये थे। बम फटने से तेज आवाज और धुआं निकला। इसके बाद आरोपी बुधिराम ने मृतक की राइफल ले ली और उसके बाद सभी आरोपी जंगल में भाग गए। रामकांत और अन्य लोग उस स्थान पर आए जहां नागेश्वर खून से लथपथ पड़ा था। यह पाया गया कि उसके शरीर पर लगी चोटों के परिणामस्वरूप उसकी जान चली गई थी। नागेश्वर चौबे की जिंदगी खत्म करने की वजह लंबे समय से चली आ रही दुश्मनी बताई जा रही है।

4. एफ.आई.आर. पर जांच को गति दी गई। विवेचनाधिकारी ने जांच की, घटनास्थल का दौरा किया और नक्शा नजरी तैयार किया। विवेचनाधिकारी ने घटनास्थल से खून से सना हुआ सामान और सादी मिट्टी एकत्र किया और जिंदा और खाली कारतूस भी बरामद किया गया। सर्च मेमो तैयार किये गये। मृतक के शव को पोस्टमॉर्टम के लिए भेजा गया जहां डॉक्टर द्वारा पोस्टमॉर्टम किया गया और पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट तैयार की गई।

5. जाँच पूर्ण होने के पश्चात अनुसंधान पदाधिकारी द्वारा आरोप पत्र समर्पित किया गया। मामला विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय होने के कारण सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया था। विद्वान ट्रायल कोर्ट ने आईपीसी की धारा 302, 148, 149 और 379 के तहत आरोप तय किए। आरोपी व्यक्तियों ने आरोपों से इनकार किया और मुकदमा चलाने का दावा किया।

6. अभियोजन पक्ष ने मौखिक गवाहों और क्षेत्रीय दस्तावेजी साक्ष्यों की जांच की। अभियोजन साक्ष्य के बाद, आरोपी व्यक्तियों के बयान सीआरपीसी की धारा 313 के तहत दर्ज किए गए, आरोपियों ने अपने बचाव में एक गवाह की जांच की।

7. विद्वान एजीए ने प्रस्तुत किया है कि नीचे दिए गए विद्वान न्यायाधीश ने सबूतों को गलत तरीके से पढ़ा है और निर्णय अनुमानों और अनुमानों पर आधारित है। विद्वान एजीए द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि आईपीसी की धारा 149 के साथ पढ़ी गई धारा 302 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट अपराध किया गया था और निचली अदालत का निर्णय गलत है।

8. इससे पहले कि हम गवाही और निचली अदालत के फैसले पर आगे बढ़ें, उन आपराधिक अपीलों में हस्तक्षेप करने की रूपरेखा पर चर्चा करने की आवश्यकता होगी जहां आरोपी को गैर दोषी ठहराया गया है।

9. ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित बरी किए जाने के आदेश के खिलाफ इस न्यायालय द्वारा अपील की सुनवाई को नियंत्रित और विनियमित करने वाले सिद्धांतों को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णयों की श्रृंखला में बहुत संक्षेप में समझाया गया है। **"एम.एस. नारायण मेनन @ मणि बनाम केरल राज्य और अन्य", (2006) 6 एस.सी.सी. 39** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील में उच्च न्यायालय की शक्तियों के बारे में बताया है। निर्णय के पैरा 54 में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार कहा है:

"54. किसी भी घटना में उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति के खिलाफ अपील मानकर एक अपील पर विचार किया, यह वास्तव में पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग था। यहां तक कि बरी करने के फैसले के खिलाफ अपीलीय शक्ति का प्रयोग करते समय, उच्च न्यायालय को कानून के सुस्थापित सिद्धांतों को ध्यान में रखना चाहिए था कि जहां दो दृष्टिकोण संभव हैं, अपीलीय अदालत को निचली अदालत द्वारा दर्ज किए गए बरी करने के फैसले में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।"

10. इसके अलावा, **"चंद्रप्पा बनाम कर्नाटक राज्य", (2007) 4 एससीसी 415** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किए;

"42. उपरोक्त निर्णयों से, हमारे विचार में, दोषमुक्ति के आदेश के खिलाफ अपील पर विचार करने के दौरान अपीलीय न्यायालय की शक्तियों के संबंध में निम्नलिखित सामान्य सिद्धांत सामने आते हैं:

[1] एक अपीलीय न्यायालय के पास उन साक्ष्यों की समीक्षा, पुनर्मूल्यांकन और पुनर्विचार करने की पूरी शक्ति है, जिन पर बरी करने का आदेश आधारित है।

2] आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 इस तरह की शक्ति के प्रयोग पर कोई सीमा, प्रतिबंध या शर्त नहीं लगाती है और अपीलीय अदालत तथ्य और कानून दोनों के सवालों पर अपने निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले सबूतों पर विचार कर सकती है।

[3] विभिन्न अभिव्यक्तियाँ, जैसे, "पर्याप्त और ठोस कारण", "अच्छे और पर्याप्त आधार", "बहुत मजबूत परिस्थितियाँ", "विकृत निष्कर्ष", "स्पष्ट त्रुटियाँ", आदि का उद्देश्य बरी किए जाने के विरुद्ध अपील में अपीलीय न्यायालय की व्यापक शक्तियों पर पर्दा डालने का इरादा नहीं है। साक्ष्यों की समीक्षा करने और अपने स्वयं के निष्कर्ष पर आने की अदालत की शक्ति को कम करने की तुलना में अपीलीय अदालत की बरी करने में हस्तक्षेप करने की अनिच्छा पर जोर देने के लिए इस तरह की वाक्यांशविज्ञान "भाषा के उत्कर्ष" की प्रकृति में अधिक हैं।

[4] हालाँकि, एक अपीलीय न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए कि बरी होने की स्थिति में अभियुक्त के पक्ष में दोहरी धारणा होती है। सबसे पहले, निर्दोषता की धारणा उसे आपराधिक न्यायशास्त्र के मूल सिद्धांत के तहत उपलब्ध है कि प्रत्येक व्यक्ति को तब तक निर्दोष माना जाएगा जब तक कि वह सक्षम न्यायालय द्वारा दोषी साबित न हो जाए। दूसरे, आरोपी ने अपनी रिहाई सुनिश्चित कर ली है, उसकी बेगुनाही की धारणा को ट्रायल कोर्ट द्वारा और भी मजबूत, पुनः पुष्टि और मजबूत किया गया है।

[5] यदि रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य के आधार पर दो उचित निष्कर्ष संभव हैं, तो अपीलीय अदालत को ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज किए गए दोषमुक्ति के निष्कर्ष से छेड़छाड़ नहीं करना चाहिए।"

11. इस प्रकार, यह एक स्थापित सिद्धांत है कि अपीलीय शक्तियों का प्रयोग करते समय, भले ही रिकॉर्ड पर साक्ष्य के आधार पर दो उचित विचार/निष्कर्ष संभव हों, पर अपीलीय अदालत को ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज किए गए दोषमुक्ति के निष्कर्ष को परेशान नहीं करना चाहिए।

12. यहां तक कि **"गोवा राज्य बनाम संजय ठाकरान और एएनआर", (2007) 3 एससीसी 75** के मामले में भी सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसे मामलों में उच्च न्यायालय की शक्तियों को दोहराया है। उक्त निर्णय के पैरा 16 में, न्यायालय ने निम्नानुसार कहा है:

"16. उपरोक्त निर्णयों से, यह स्पष्ट है कि बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील में शक्तियों का प्रयोग करते समय अपील की अदालत आमतौर पर बरी करने के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करेगी जब तक कि निचली अदालत का दृष्टिकोण किसी स्पष्ट अवैधता से ग्रस्त न हो और जिस निष्कर्ष पर पहुंचा गया वह किसी भी उचित व्यक्ति द्वारा नहीं निकाला जाएगा और इसलिए, निर्णय को दोषपूर्ण माना जाएगा। केवल इसलिए कि दो दृष्टिकोण संभव हैं, अपील की अदालत वह दृष्टिकोण नहीं अपनाएगी जो निचली अदालत द्वारा दिए गए फैसले को उलट देगा। हालाँकि, अपीलीय न्यायालय के पास साक्ष्य की समीक्षा करने की शक्ति है यदि उसका मानना है कि निचली अदालत द्वारा निकाला गया निष्कर्ष विकृत है और न्यायालय ने कानून की स्पष्ट त्रुटि की है और रिकॉर्ड पर भौतिक साक्ष्य को नजरअंदाज कर दिया है। ऐसी परिस्थितियों में, अपीलीय न्यायालय पर यह कर्तव्य बनता है रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री के आधार पर उचित निर्णय पर पहुंचने के लिए सबूतों का दोबारा मूल्यांकन करना ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या कोई आरोपी उस अपराध को करने से जुड़ा हुआ है जिसके लिए उस पर आरोप लगाया गया है।"

13. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसी तरह का सिद्धांत **"उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम वीर सिंह और अन्य", 2007 एआईआर एससीडब्ल्यू 5553** और "**गिरजा प्रसाद (मृत) द्वारा उनके विधिक प्रतिनिधि बनाम एमपी राज्य", 2007 एआईआर एससीडब्ल्यू 5589** के मामलों में निर्धारित किया गया है। इस प्रकार, शक्तियां, जिनका प्रयोग यह न्यायालय बरी करने के आदेश के विरुद्ध कर सकता है, अच्छी तरह से तय हैं।

14. "**लूना राम बनाम भूपत सिंह और अन्य", (2009) एससीसी 749** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 10 और 11 में निम्नानुसार अवधारित किया है:

"10. उच्च न्यायालय ने नोट किया है कि अभियोजन पक्ष की बात स्पष्ट रूप से विश्वसनीय नहीं थी। कुछ तथाकथित चश्मदीदों ने कहा कि मृतक की मृत्यु इसलिए हुई क्योंकि उसका टखना एक आरोपी द्वारा मरोड़ दिया गया था। अन्य ने कहा कि उसका गला घोंट दिया गया था। अभियोजन पक्ष का मामला था कि घायल गवाहों को बस से बाहर फेंक दिया गया था। पोस्टमॉर्टम करने वाले और गवाहों की जांच करने वाले डॉक्टर ने स्पष्ट रूप से कहा था कि यह संभव नहीं है कि कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति को चलती हालत में बस से बाहर फेंक दे।

11. बरी किए जाने के फैसले के खिलाफ अपील के मापदंडों को ध्यान में रखते हुए, हम इस अपील में हस्तक्षेप करने के इच्छुक नहीं हैं। उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण को विकृत नहीं कहा जा सकता और यह साक्ष्य पर एक संभावित दृष्टिकोण है।"

15. यहां तक कि **"मुक्कियाह और अन्य बनाम स्टेट, रिप्रेजेंटेड बाय इंस्पेक्टर ऑफ पुलिस, तमिलनाडु", एआईआर 2013 एससी 321** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के हालिया फैसले में, सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 4 में निम्नानुसार अवधारित किया है:

"4. इसमें कोई विवाद नहीं है कि ट्रायल कोर्ट ने अभियोजन और बचाव पक्ष के मौखिक और दस्तावेजी सबूतों की सराहना करते हुए आरोपियों को उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों से बरी कर दिया। राज्य की अपील पर, उच्च न्यायालय ने, आक्षेपित आदेश द्वारा, उक्त निर्णय को उलट दिया और आरोपी को आईपीसी की धारा 34 सपठित धारा 302 के तहत दोषी ठहराया गया और आजीवन सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई। चूंकि अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने इस बात पर बहुत जोर दिया कि उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति के आदेश को उलटने में अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन किया है, इस प्रकार हम दोषमुक्ति के आदेश के खिलाफ दायर अपील में उच्च न्यायालय के दायरे और शक्ति का विश्लेषण करते हैं। निर्णयों की एक श्रृंखला में इस न्यायालय ने बार-बार यह निर्धारित किया है कि प्रथम अपीलीय अदालत के रूप में, उच्च न्यायालय, बरी किए जाने के खिलाफ अपील पर विचार करते समय भी हकदार था, और साथ ही बाध्य भी था, कि वह संपूर्ण साक्ष्यों की जांच करे और यदि आवश्यकता हो तो फिर से उनकी समीक्षा करे, हालाँकि, हस्तक्षेप करते समय केवल अदालत को रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों के आधार पर अपराध का पूर्ण आश्वासन मिलना चाहिए, न कि केवल इसलिए कि उच्च न्यायालय केवल एक और संभावित या भिन्न दृष्टिकोण अपना सकता है। उपरोक्त को छोड़कर, जहां अपील पर विचार की सीमा और गहराई का मामला संबंधित है, किसी अपील पर विचार करने में दृष्टिकोण में कोई भेद या अंतर की कल्पना नहीं की जाती है, केवल इसलिए कि एक दोषसिद्धि के खिलाफ था या दूसरा बरी होने के खिलाफ था। [देखें राजस्थान राज्य बनाम सोहन लाल और अन्य, (2004) 5 एससीसी 573]"

16. यह भी एक स्थापित कानूनी स्थिति है कि दोषमुक्ति की अपील में, अपीलीय न्यायालय को निर्णय को फिर से लिखने या नए तर्क देने की आवश्यकता नहीं है, जब निचली अदालत द्वारा बताए गए कारण उचित और सही पाए जाते हैं। ऐसा सिद्धांत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **"कर्नाटक राज्य बनाम हेमरेड्डी", एआईआर 1981, एससी 1417** के मामले में निर्धारित किया गया है, जिसमें इसे इस प्रकार अवधारित किया गया है:

"... इस न्यायालय ने गिरिजा नंदिनी देवी बनाम बिगेंद्र नंदिनी चौधरी (1967) 1 एससीआर 93:(एआईआर 1967 एससी 1124) में देखा है कि साक्ष्य पर अपीलीय न्यायालय का कर्तव्य नहीं है कि वह साक्ष्य के विवरण को दोहराए या ट्रायल कोर्ट द्वारा दिए गए कारणों को दोहराए, न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों के साथ सामान्य सहमति की अभिव्यक्ति, जिसका निर्णय अपील के अधीन है, आमतौर पर पर्याप्त होगा।"

17. हाल के एक फैसले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **"शिवशरणप्पा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य", जेटी 2013 (7) एससी 66** में निम्नानुसार अवधारित किया है:

"उस अपीलीय न्यायालय को संपूर्ण साक्ष्यों का पुनः मूल्यांकन करने का अधिकार है, हालांकि, कुछ अन्य सिद्धांतों का भी पालन किया जाना है और यह ध्यान में रखना होगा कि बरी करने से निर्दोष होने की दोहरी धारणा बन जाती है।"

18. इसके अलावा, **"पंजाब राज्य बनाम मदन मोहन लाल वर्मा", (2013) 14 एससीसी 153** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

" इस मुद्दे पर कानून अच्छी तरह से तय है कि 1988 के अधिनियम के तहत अपराध गठित करने के लिए अवैध परितोषण की मांग अनिवार्य है। जब मामले में ठोस सबूत विश्वसनीय नहीं होते हैं, तो केवल दोषपूर्ण धन की बरामदगी ही आरोपी को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त नहीं है, जब तक कि रिश्वत के भुगतान को साबित करने या यह दिखाने के लिए सबूत न हो कि पैसा स्वेच्छा से रिश्वत के रूप में लिया गया था। अवैध परितोषण के रूप में राशि की मांग और स्वीकृति के संबंध में किसी भी सबूत के अभाव में, अभियुक्त द्वारा राशि की प्राप्ति मात्र अपराध स्थापित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। इसलिए, उचित संभावना के साथ यह स्थापित करने के लिए प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य सबूतों को रिकॉर्ड पर लाकर, 1988 अधिनियम की धारा 20 के तहत उठाए गए वैधानिक अनुमान को विस्थापित करने का भार अभियुक्त पर है, कि पैसा उसके द्वारा 1988 के अधिनियम की धारा 7 में उल्लिखित मकसद या इनाम के अलावा किसी अन्य रूप में स्वीकार किया गया था। अधिनियम की धारा 20 के प्रावधानों को लागू करते समय, अदालत को अभियुक्त द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण, यदि कोई हो, पर केवल संभाव्यता की प्रबलता की कसौटी पर विचार करना आवश्यक है, न कि सभी युक्तियुक्त संदेह से परे सबूत की कसौटी पर। हालाँकि, इससे पहले कि अभियुक्त को यह बताने के लिए बुलाया जाए कि उसके पास विचाराधीन राशि कैसे पाई गई, अभियोजन पक्ष द्वारा मूलभूत तथ्य स्थापित किए जाने चाहिए। शिकायतकर्ता एक इच्छुक और पक्षपातपूर्ण गवाह है जो जाल में फंसने की सफलता से चिंतित है और उसके साक्ष्य का परीक्षण उसी तरह किया जाना चाहिए जैसे किसी अन्य इच्छुक गवाह का। किसी उचित मामले में, अदालत आरोपी व्यक्ति को समझाने से पहले स्वतंत्र पुष्टि की तलाश कर सकती है।"

19. सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में **जयस्वामी बनाम कर्नाटक राज्य, (2018) 7 एससीसी 219** में, ऐसे मामले में साक्ष्यों का पुनः मूल्यांकन करने में अपीलीय अदालत की शक्तियों को निर्धारित करने के लिए सिद्धांत निर्धारित किए हैं, जहां राज्य ने बरी होने के खिलाफ अपील को प्राथमिकता दी है, जो इस प्रकार है:

"10. यह अब तक सुस्थापित हो चुका है कि बरी करने के निर्णय और आदेश के खिलाफ दायर अपील की सुनवाई करने वाली अपीलीय अदालत ट्रायल कोर्ट के बरी करने के फैसले को खारिज नहीं करेगी या अन्यथा छेड़छाड़ नहीं करेगी यदि अपीलीय अदालत को ऐसा करने के लिए पर्याप्त और बाध्यकारी कारण नहीं मिलते हैं। यदि तथ्यों के संबंध में ट्रायल कोर्ट का निष्कर्ष स्पष्ट रूप से गलत हो; यदि ट्रायल कोर्ट का निर्णय कानून के गलत दृष्टिकोण पर आधारित था; यदि ट्रायल कोर्ट के फैसले के परिणामस्वरूप न्याय की गंभीर हानि होने की संभावना हो; यदि साक्ष्य पर विचार करने में ट्रायल कोर्ट का संपूर्ण दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से अवैध था; यदि ट्रायल कोर्ट का निर्णय स्पष्ट रूप से अन्यायपूर्ण और अनुचित था; और यदि ट्रायल कोर्ट ने साक्ष्यों को नजरअंदाज कर दिया है या भौतिक साक्ष्यों को गलत तरीके से पढ़ा है या मृत्युपूर्व घोषणा/बैलिस्टिक विशेषज्ञ की रिपोर्ट आदि जैसे महत्वपूर्ण दस्तावेजों को नजरअंदाज कर दिया है, तो इसे पर्याप्त और बाध्यकारी कारणों के रूप में माना जा सकता है और प्रथम अपीलीय अदालत बरी करने के आदेश में हस्तक्षेप कर सकती है। हालांकि, यदि अभियुक्त को बरी करते समय ट्रायल कोर्ट द्वारा लिया गया दृष्टिकोण मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत संभावित विचारों में से एक है, तो अपीलीय अदालत आम तौर पर बरी करने के आदेश में, विशेष रूप से उपरोक्त कारकों की अनुपस्थिति में हस्तक्षेप नहीं करेगी। ....रामानंद यादव बनाम प्रभु नाथ झा और अन्य, (2003) 12 एससीसी 606 के मामले में इस न्यायालय की टिप्पणियों पर ध्यान देना प्रासंगिक है, जो इस प्रकार है:

"21. अपीलीय अदालत पर उन साक्ष्यों की समीक्षा करने पर कोई प्रतिबंध नहीं है जिन पर बरी करने का आदेश आधारित है। आम तौर पर, बरी करने के आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा क्योंकि बरी होने से आरोपी की बेगुनाही की धारणा और भी मजबूत हो जाती है। आपराधिक मामलों में न्याय प्रशासन के जाल में जो सुनहरा धागा चलता है, वह यही है यदि मामले में पेश किए गए सबूतों पर दो दृष्टिकोण संभव हैं, एक अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करता है और दूसरा उसकी बेगुनाही की ओर इशारा करता है, तो वह दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए जो अभियुक्त के अनुकूल हो। न्यायालय का सर्वोपरि विचार यह सुनिश्चित करना है कि न्याय की हानि होने से रोका जाए। दोषियों को बरी करने से होने वाली न्याय की

हानि किसी निर्दोष को दोषी ठहराए जाने से कम नहीं है। ऐसे मामले में जहां स्वीकार्य साक्ष्य को नजरअंदाज कर दिया जाता है, अपीलीय अदालत पर यह कर्तव्य बनता है कि वह उस मामले में साक्ष्य की पुः मूल्यांकन करे, जहां आरोपी को बरी कर दिया गया है, यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य से कि क्या किसी आरोपी ने कोई अपराध किया है या नहीं।"

20. सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में **शैलेन्द्र राजदेव पासवान बनाम गुजरात राज्य, (2020) 14 एससी 750** में अवधारित किया है कि अपीलीय अदालत ट्रायल कोर्ट के बरी करने के आदेश को उलट रही है, इसे अभियुक्तों के पक्ष में निर्दोषता की धारणा को उचित महत्व और विचार देना चाहिए, और इस सिद्धांत को कि इस तरह की धारणा को ट्रायल कोर्ट द्वारा सुदृढ़, पुन: पुष्टि और मजबूत किया जाना चाहिए और **सैमसुल हक बनाम असम राज्य, (2019) 18 एससीसी 161** मामले में अवधारित किया गया कि बरी करने का निर्णय, जहां दो दृष्टिकोण संभव हैं, को रद्द नहीं किया जाना चाहिए, भले ही अपीलीय अदालत द्वारा गठित दृष्टिकोण अधिक संभावित हो, बरी करने में हस्तक्षेप इसे केवल तभी उचित ठहराया जा सकता है जब यह विकृत दृष्टिकोण पर आधारित हो।

21. वर्तमान में, विद्वान ए.जी.ए. द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि कुल मिलाकर, आठ आरोपी व्यक्ति थे। इस मामले में और अब उनमें से छह आरोपियों की मौत हो चुकी है। इसलिए, अब यह अपील केवल दो जीवित अभियुक्तों, अर्थात् बुधिराम और कमला लोहार के संबंध में बची है। इसलिए, हम केवल आरोपी-बुद्धिराम और कमला लोहार के मामले को लेकर चिंतित हैं।

22. विद्वान एजीए द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 10.10.1982 को दोपहर 12:00 बजे सभी आठ अभियुक्त मौके पर आये और नागेश्वर चौबे की हत्या कर दी। आरोपी घातक हथियारों से लैस थे। आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि जीवित बचे आरोपी बुधिराम ने अपने बैग से बम निकाला और घटना के समय मृतक की ओर फेंक दिया, जिससे बहुत शोर और धुआं पैदा हो गया, जिसके बाद आरोपी बुधिराम ने मृतक की राइफल उठाई और भाग गया। एक अन्य जीवित आरोपी- कमला लोहार लाठी से लैस था और उसने भी मृतक पर हमला किया।

23. विद्वान एजीए द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि दोनों जीवित अभियुक्तों ने अपराध कारित करने में सक्रिय भूमिका निभाई लेकिन विद्वान ट्रायल कोर्ट ने सही परिप्रेक्ष्य में साक्ष्य का मूल्यांकन नहीं किया और मुख्य रूप से यह अवधारित किया कि घटना के समय सह अभियुक्त कृष्णदेव उर्फ झाला अपने एक अन्य मामले की तैयारी के लिए जिला शासकीय अधिवक्ता के कक्ष में बैठा था। ट्रायल कोर्ट के समक्ष जिला शासकीय अधिवक्ता से पूछताछ की गई और अन्यत्र बचने की उपरोक्त दलील के आधार पर, सभी आरोपी व्यक्तियों को ट्रायल कोर्ट द्वारा दोषी ठहराया गया। जबकि एलिबी की दलील केवल सह-अभियुक्त कृष्णदेव उर्फ झाला के संबंध में ली गई थी, इसलिए, आक्षेपित निर्णय में अंतर्निहित त्रुटि है, इसलिए अपील अनुमति दिये जाने योग्य है।

24. आरोपी बुधिराम और कमला लोहार के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि मृत्यु पूर्व चोटों और पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट में बम और लाठी की कोई चोट नहीं है। इससे पता चलता है कि बुधिराम और कमला लोहार घटना के समय मौजूद नहीं थे और उन्हें गांव की पार्टी और दुश्मनी के आधार पर इस मामले में झूठा फंसाया गया था।

25. यह वर्ष 1982 की घटना है। पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट को देखने से पता चलता है कि बंदूक की गोली के छर्रों के कारण हुए कई घाव मृत्यु पूर्व चोटें हैं। इसलिए, मुख्य रूप से बंदूक की गोली के घाव हैं और ऐसी कोई चोट नहीं है जो बम फेंकने या लाठी डंडा से हुई हो।

26. इसलिए, जीवित आरोपी व्यक्तियों की उपस्थिति को विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा संदिग्ध पाया गया है और यह कानून के स्थापित सिद्धांत हैं यदि दो दृष्टिकोण संभव हों, एक अभियोजन के पक्ष में और दूसरा अभियुक्त के पक्ष में, तो अभियुक्त के पक्ष में दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए।

27. घटना का स्थान, गवाहों की गवाही और अंतिम विश्लेषण हमें विद्वान न्यायाधीश द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टिकोण अपनाने की अनुमति नहीं देगा।

28. इसलिए, मामले को ध्यान में रखते हुए और सर्वोच्च न्यायालय के फैसले की रूपरेखा पर, हम विद्वान सत्र न्यायाधीश से सहमत हैं। अपील गुण दोष रहित होने के कारण खारिज की जाती है। रिकॉर्ड और कार्यवाही अधीनस्थ न्यायालय को वापस भेजी जाए। जमानत और जमानत बन्धपत्र रद्द किये जाते हैं।

(2023) 1 ILRA 103
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: लखनऊ 23.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन

मामले अन्तर्गत अनुच्छेद 227 संख्या 31424/2021

परशुराम ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता:
अमरेंद्र नाथ त्रिपाठी, आलोक कुमार, राजकुमार विश्वकर्मा

प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ता:
सी.एस.सी., अनुराग कुमार सिंह, राकेश कुमार चौधरी, संजय कुमार यादव

A. सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 243-O & 227-उ0प्र0 पंचायत अधिनियम, 1947-धारा 12-C-उ0प्र0 पंचायत राज (चुनाव विवादों का निस्तारण) नियम, 1994-नियम 3 (1) - चुनाव याचिका-मतों की पुनर्गणना के लिए आदेश-याचिकाकर्ता एक निर्वाचित ग्राम प्रधान है-प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा निर्देशित मतों की पुनर्गणना के लिए आदेश-एक बार चुनाव याचिका पर अंतिम रूप से निर्णय लिया गया है, परिणामस्वरूप विहित प्राधिकारी 'समाप्ताधिकार' बन गया - विहित प्राधिकारी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश अनुच्छेद 243-ओ और 1947 के अधिनियम की धारा 12-सी के अनुरूप नहीं होगा-इस तरह निर्धारित प्राधिकारी चुनाव याचिका के निस्तारण के बाद कोई आदेश पारित नहीं कर सकता है - नए सिरे से आदेश पारित करने के लिए निर्धारित प्राधिकारी को मामला वापस भेजा गया – आक्षेपित आदेश रद्द किया गया। (पैरा 1 से 42)

रिट याचिका का निस्तारण किया जाता है। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. श्रीमती राम कांति बनाम डीएम और अन्य। (1995) एडब्ल्यूसी 1465

2. शंभू सिंह बनाम एसटी. ई.सी, उ0प्र0 और अन्य। (2000) 4 एडब्ल्यूसी 2777

3. एन.पी. पोन्नुस्वामी बनाम आर.ओ., नमक्कल निर्वाचन क्षेत्र (1952) एआईआर एससी 64

4. कृष्णमूर्ति बनाम शिवकुमार और अन्य। (2015) एआईआर वॉल्यूम 3 एससीसी 467

5. मो. मुस्तफा बनाम उ0प्र0 ज़िलाधिकारी (2007) एससीसी ऑनलाइन एएलएल 1564

6. अबरार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2004) 5 एडब्ल्यूसी 4088

7. हरि विष्णु कामथ बनाम सैयद अहमद इशाक और अन्य। (1955) एससी 233

8. पी.सी. बसप्पा बनाम टी.नागप्पा-एआईआर 1954 एससी 440,

9. संदीप कुमार बाफना बनाम महाराष्ट्र (2014) 16 एससीसी 623

10. पंजाब लैंड डेवलपमेंट एंड रिक्लेमेशन कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम लेबर कोर्ट (1990) 3 एससीसी 682.

11. वरयाम सिंह और अन्य बनाम अमरनाथ और अन्य (1954) एआईआर एससी 215

12. शालिनी श्याम शेट्टी बनाम राजेंद्र शंकर पाटिल (2010) 8 एससीसी 329

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री अमरेंद्र नाथ त्रिपाठी के होल्डिंग ब्रीफ श्री अनस शेरवानी, प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 की ओर से उपस्थित होने वाले स्थायी अधिवक्ता श्री विक्रम सोनी, प्रत्यर्थी संख्या 3, 4, 5 और 9 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री अनुराग कुमार सिंह के होल्डिंग ब्रीफ श्री मनिंदर सिंह, विद्वान अधिवक्ता श्री आयुष चौधरी से सहायता प्राप्त प्रत्यर्थी संख्या 6 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री राकेश चौधरी तथा प्रत्यर्थी संख्या 7 व 8 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री संजय कुमार यादव को सुना।

2. निम्नलिखित राहतों के लिए प्रार्थना करते हुए वर्तमान याचिका दायर की गई है:-

(i) प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा वाद संख्या 01473/2021 (कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या T202110640501473) दिनांकित 21.12.2021 (अनुलग्नक संख्या 1) में पारित आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए, जिसके तहत प्रत्यर्थी संख्या 2 ने वोटों की फिर से गिनती का निर्देश दिया और आगे चुनाव याचिका को खारिज करने की प्रार्थना की।

(ii) प्रत्यर्थीगण को निर्देश जारी करने के लिए कि वे याचिकाकर्ता के कामकाज में हस्तक्षेप न करें क्योंकि वैधता ग्राम पंचायत मुरहाडीह, ब्लॉक-सिधौली, जिला-सीतापुर के निर्वाचित ग्राम प्रधान के रूप में है।

3. याचिकाकर्ता द्वारा निर्धारित मामला यह है कि राज्य सरकार ने वर्ष 2020-2021 में पंचायत चुनावों को अधिसूचित किया था। जहां तक वर्तमान मामले का सवाल है, ग्राम प्रधान, ग्राम पंचायत मुरहाडीह, ब्लॉक सिधौली, जिला सीतापुर के पद पर चुनाव के लिए अधिसूचना जारी की गई थी।

4. यह तर्क दिया गया है कि चुनाव में याचिकाकर्ता को सफल घोषित किया गया था और 30.5.2021 को एक निर्वाचित उम्मीदवार घोषित किया गया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 6 अर्थात् राज किशोर ने याचिकाकर्ता के चुनाव को चुनौती देते हुए उ0प्र0 पंचायत अधिनियम, 1947 (इसके बाद "अधिनियम, 1947" के रूप में संदर्भित) की धारा 12-सी के तहत उ0प्र0 पंचायत अधिनियम, 1947 (इसके बाद "अधिनियम, 1947" के रूप में संदर्भित) की धारा 12-सी के तहत 2021 के वाद संख्या 01473 को प्रभावित करते हुए एक चुनाव याचिका दायर की। यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता को चुनाव याचिका में प्रत्यर्थी संख्या 1 के रूप में पेश किया गया था। याचिकाकर्ता ने लिखित बयान दायर किया और रिकॉर्ड पर सामग्री पर विचार करने के बाद, निर्धारित प्राधिकारी ने आक्षेपित आदेश दिनांक 21.12.2021 के तहत, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 है, याचिका की अनुमति दी और मतों की फिर से गिनती का निर्देश दिया। असंतुष्ट होकर वर्तमान याचिका दायर की गई है।

5. याचिकाकर्ता द्वारा याचिका में दिए गए आदेश को चुनौती देने के लिए विभिन्न आधार उठाए गए हैं। हालांकि, पक्षकारों के सभी विद्वान अधिवक्तागण को सुनने पर जो विधिक प्रश्न उठा, वह पक्षकारों की सहमति से पहले तय किया जा रहा है।

6. इस याचिका में जो विधिक प्रश्न उठा है, वह यह है कि क्या विहित प्राधिकारी ने चुनाव याचिका पर अंतिम निर्णय लेते समय मतों की पुन: गणना का निर्देश देने में विधि में गलती की है कि क्या विहित प्राधिकारी चुनाव याचिका पर अंतिम रूप से निर्णय लेने के बाद मतों की पुन: गणना के परिणाम प्राप्त होने पर कोई और आदेश पारित कर सकता है और परिणामस्वरूप निर्धारित प्राधिकारी 'समाप्ताधिकार' बन गया है?

7. स्वीकृत तथ्यों से, यह उभरता है कि याचिकाकर्ता को ग्राम प्रधान के रूप में निर्वाचित घोषित किए जाने के बाद, प्रत्यर्थी संख्या 6 द्वारा अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी के तहत एक चुनाव याचिका दायर की गई थी, जिसके परिणामस्वरूप दिनांक 21.12.2021 का आक्षेपित आदेश दिया गया है जिसके द्वारा याचिका की अनुमति दी गई है और मतों की फिर से गिनती का निर्देश दिया गया है।

8. अधिनियम, 1947 पंचायत राज से संबंधित एक पूर्ण अधिनियम है। अधिनियम, 1947 की धारा 12-C चुनावों पर सवाल उठाने की प्रक्रिया से संबंधित है।

सुविधा के लिए, अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जाता है: -

"12-ग. निर्वाचनों पर प्रश्न के लिए प्रार्थना पत्र-- *(1) प्रधान के रूप में एक व्यक्ति का निर्वाचन [***] या ग्राम पंचायत के सदस्य के रूप में किसी व्यक्ति का निर्वाचन जिसके अंतर्गत धारा 43 के अधीन न्याय पंचायत के पंच के रूप में नियुक्त व्यक्ति का निर्वाचन भी है, प्रश्नगत नहीं किया जाएगा, सिवाय ऐसे प्राधिकारी को ऐसे समय के भीतर और ऐसी रीति से प्रस्तुत किए गए प्रार्थना पत्र द्वारा जिसके आधार पर विहित किया जाए-*

(ए) चुनाव इस कारण से स्वतंत्र चुनाव नहीं रहा है कि चुनाव में रिश्वत या अनुचित प्रभाव का भ्रष्ट अभ्यास बड़े पैमाने पर प्रबल हुआ है, या

(बी) कि निर्वाचन का परिणाम भौतिक रूप से प्रभावित हुआ है-

i- किसी भी नामांकन की अनुचित स्वीकृति या अस्वीकृति द्वारा या;

ii- इस अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों के प्रावधानों का पालन करने में घोर विफलता से।

(2) निम्नलिखित को इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए रिश्वतखोरी या अनुचित प्रभाव के भ्रष्ट आचरण समझा जाएगा।

(ए) रिश्वत, अर्थात्, किसी उम्मीदवार द्वारा या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किसी भी व्यक्ति की किसी भी संतुष्टि के उम्मीदवार की मिलीभगत के साथ कोई उपहार, प्रस्ताव या वादा करना, जो भी, उद्देश्य के साथ, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से-

(ए) किसी व्यक्ति को किसी भी चुनाव में उम्मीदवार के रूप में खड़े होने या न खड़े होने या वापस लेने के लिए; या

(बी) निर्वाचक किसी निर्वाचन में मत देगा या मतदान करने से परहेज करेगा; या एक इनाम के रूप में -

i- एक व्यक्ति जो इस प्रकार खड़ा हुआ या खड़ा नहीं हुआ या अपनी उम्मीदवारी वापस ले ली; नहीं तो

II- मतदान करने या मतदान से परहेज करने के लिए निर्वाचक।

(बी) किसी निर्वाचन अधिकार के स्वतंत्र प्रयोग से अभ्यर्थी की मिलीभगत से अभ्यर्थी या किसी अन्य व्यक्ति की ओर

से कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हस्तक्षेप या रोकटोक करने का प्रयास;

परन्तु इस खंड के उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना कोई ऐसा व्यक्ति, जो उसमें निर्दिष्ट है, जो-

(i) किसी अभ्यर्थी या किसी निर्वाचक या किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसमें कोई अभ्यर्थी या निर्वाचक हित रखता है, सामाजिक बहिष्कार और किसी जाति या समुदाय से बहिष्कृत होने या निष्कासन सहित किसी भी प्रकार की क्षति पहुंचाने की धमकी देता है; या

(ii) किसी अभ्यर्थी या निर्वाचक को यह विश्वास करने के लिए प्रवृत्त करता है या प्रवृत्त करने का प्रयत्न करता है कि वह या कोई व्यक्ति, जिसमें उसका हित है, दैवीय नाराजगी या आध्यात्मिक निंदा का पात्र बन जाएगा या उसे दैवीय नाराजगी या आध्यात्मिक निंदा का पात्र बना दिया जाएगा, यह समझा जाएगा कि वह इस खंड के अर्थों के भीतर ऐसे अभ्यर्थी या निर्वाचक के निर्वाचन अधिकार के स्वतंत्र प्रयोग में हस्तक्षेप करता है।

(3) उपधारा (1) के अधीन यह प्रार्थना पत्र निर्वचन में किसी अभ्यर्थी या किसी निर्वाचक द्वारा प्रस्तुत किया जा सकेगा और उसमें ऐसे विशिष्टियाँ अन्तवष्ट होंगे जो विहित की जाएँ।

स्पष्टीकरण - कोई भी व्यक्ति जिसने चुनाव में नामांकन पत्र दाखिल किया, चाहे ऐसा नामांकन पत्र स्वीकार किया गया हो या अस्वीकार कर दिया गया था, चुनाव में उम्मीदवार समझा जाएगा।

(4) वह प्राधिकारी, जिसे उपधारा (1) के अधीन प्रार्थना पत्र किया जाता है, निम्नलिखित के विषय में करेगा-

i- प्रार्थना पत्र की सुनवाई और ऐसी सुनवाई में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया;

ii- चुनाव को रद्द करना, या चुनाव को शून्य घोषित करना या आवेदक को विधिवत निर्वाचित घोषित करना या कोई अन्य राहत जो याचिकाकर्ता को दी जा सकती है,

ऐसी शक्तियां और अधिकार हैं जो निर्धारित किए जा सकते हैं।

(5) उपधारा (4) के अधीन विहित की जाने वाली शक्तियों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, नियम उपधारा (1) के अधीन किसी प्रार्थना पत्र की संक्षिप्त सुनवाई और निस्तारण का उपबंध कर सकेंगे।

[(6) उपधारा (1) के अधीन किसी प्रार्थना पत्र पर विहित प्राधिकारी के आदेश से व्यथित कोई पक्षकार, आदेश की तारीख से तीस दिन के भीतर, निम्नलिखित आधारों पर किसी एक या अधिक पर ऐसे आदेश के पुनरीक्षण के लिए जिला न्यायाधीश को प्रार्थना पत्र कर सकेगा, अर्थात-

(ए) विहित प्राधिकारी ने ऐसी अधिकारिता का प्रयोग किया है जो उसमें विधि द्वारा निहित नहीं है;

(बी) विहित प्राधिकारी इस प्रकार निहित अधिकारिता का प्रयोग करने में असफल रहा है;

(सी) विहित प्राधिकारी ने अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए गैर-विधिक रूप से या वास्तविक अनियमितता से कार्य किया है।

(7) जिला न्यायाधीश पुनरीक्षण के लिए प्रार्थना पत्र का निस्तारण स्वयं कर सकेगा या उसे अपने प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन किसी अपर जिला न्यायाधीश, सिविल न्यायाधीश या अपर सिविल न्यायाधीश को निस्तारण के लिए समनुदेशित कर सकेगा और उसे ऐसे किसी अधिकारी से वापस ले सकेगा या ऐसे किसी अन्य अधिकारी को अंतरित कर सकेगा।

(8) उपधारा (7) में उल्लिखित पुनरीक्षण प्राधिकारी ऐसी प्रक्रिया का अनुसरण करेगा जो विहित की जाए और विहित प्राधिकारी के आदेश की पुष्टि, परिवर्तन या निरसन कर सकेगा या मामले को विहित प्राधिकारी को पुनःसुनवाई के लिए भेज सकेगा और उसका विनिश्चय लंबित रहने तक ऐसे अंतरिम आदेश पारित कर सकेगा जो उसे न्यायसंगत और सुविधाजनक प्रतीत हों।

(9) इस धारा के अधीन पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा पारित किसी आदेश के अधीन रहते हुए विहित प्राधिकारी का विनिश्चय और इस धारा के अधीन पारित पुनरीक्षण प्राधिकारी का प्रत्येक विनिश्चय अंतिम होगा।

9. अधिनियम, 1947 की धारा 12-ग के पूर्वोक्त उपबंध के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि ग्राम प्रधान के रूप में निर्वाचित व्यक्ति के निर्वाचन पर प्रश्न उठाने के लिए प्रार्थना पत्र (जैसा कि यह वर्तमान मामले से संबंधित है) **ऐसे प्राधिकारी को ऐसे समय के भीतर और ऐसी रीति के भीतर प्रस्तुत किए गए प्रार्थना पत्र के बिना प्रश्नगत नहीं किया जाएगा, जैसा कि विहित किया गया है।** जिन आधारों पर निर्वाचित प्रधान के चुनाव को चुनौती दी जा सकती है, उन्हें अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी में भी निर्धारित किया गया है। चुनाव याचिका में दी जा सकने वाली राहत को अधिनियम 1947 की धारा 12-सी (4) में निर्धारित किया गया है, जिसके अवलोकन से संकेत मिलता है कि जिस प्राधिकारी को उप-धारा (1) के तहत प्रार्थना पत्र किया जाता है, वह प्रार्थना पत्र की सुनवाई के मामले में और ऐसी सुनवाई में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया में, **चुनाव को रद्द करना, या चुनाव को शून्य घोषित करना या आवेदक को विधिवत निर्वाचित घोषित करना या कोई अन्य राहत जो याचिकाकर्ता को दी जा सकती है।**

इस प्रकार, अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी की उप-धारा (4) (ii) के अवलोकन से यह उभरता है कि निर्धारित प्राधिकारी किसी भी चुनाव याचिका में जो राहत दे सकता है, वह या तो चुनाव को रद्द कर सकता है या चुनाव को शून्य घोषित कर सकता है या आवेदक को विधिवत निर्वाचित घोषित कर सकता है या याचिकाकर्ता को कोई अन्य राहत दी जा सकती है।

10. जब अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी की उप-धारा (4) (ii) को अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी की उप-धारा (1) के अनुरूप पढ़ा जाता है, तो यह स्पष्ट रूप से उभरता है कि यह केवल अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी के तहत दायर प्रार्थना पत्र के माध्यम से है, कि एक व्यक्ति का चुनाव प्रधान के रूप में (जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है), निर्धारित प्राधिकारी द्वारा और किसी अन्य तरीके से रद्द नहीं किया जा सकता है।

11. यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि उत्तर प्रदेश पंचायत राज (निर्वाचन विवादों का निस्तारण) नियम, 1994 (इसके बाद "नियम 1994" के रूप में संदर्भित) के नियम 3 के उप-नियम (1) के अनुसार उप-विभागीय अधिकारी जिसके अधिकार क्षेत्र में संबंधित ग्राम पंचायत निहित है, वह प्राधिकारी है जिसके समक्ष अधिनियम की धारा 12-सी की उप-धारा (1) के तहत एक प्रार्थना पत्र, 1947 प्रस्तुत किया जाना है।

12. दिनांक 21.12.2021 के आक्षेपित आदेश के अवलोकन से संकेत मिलता है कि निर्धारित प्राधिकारी ने आदेश पारित करते समय याचिकाकर्ता के चुनाव को रद्द नहीं किया है या चुनाव को शून्य घोषित नहीं किया है या प्रत्यर्थी संख्या 6 को विधिवत निर्वाचित घोषित नहीं किया है, बल्कि मतों की फिर से गिनती का निर्देश दिया है और चुनाव याचिका को अनुमति दी गई है।

13. यदि तर्क के लिए विहित प्राधिकारी द्वारा निदेशित मतों की पुनः गणना को एक ऐसा आदेश कहा जा सकता है जिसे अधिनियम, 1947 की धारा 12-ग की उपधारा (4) (ii) के उपबंधों के अधीन विहित प्राधिकारी द्वारा विधिमान्य रूप से पारित किया जा सकता है, तब भी, यह विचार करते हुए कि निर्वाचन याचिका को स्वयं अनुमति दी गई थी और मतों की पुनः गणना का पूर्वोक्त आदेश पारित किया गया है, तो आगे कुछ नहीं चुनाव याचिका में निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष जीवित रहता है और यहां तक कि अगर वोटों की पुन: गिनती के बाद एक ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है जिसमें या तो याचिकाकर्ता या आवेदक जिसने चुनाव याचिका दायर की थी, यानी प्रत्यर्थी संख्या 6 को अधिक वोट मिलते हैं, तो यह देखते हुए कि चुनाव याचिका पर फैसला किया गया है, यह याचिकाकर्ता के चुनाव को रद्द करने या घोषित करने के लिए पुनर्गणना अधिकारी के अधिकार क्षेत्र या शक्ति के भीतर नहीं होगा प्रत्यर्थी संख्या 6 यहां निर्वाचित के रूप में, अधिनियम, 1947 के तहत शक्तियां केवल निर्धारित प्राधिकारी को प्रदान की गई हैं और किसी और को नहीं।

14. इस संबंध में भारत के संविधान के अनुच्छेद 243-ओ का उल्लेख करना उपयुक्त होगा जो निम्नानुसार है: -

"243-ओ. चुनावी मामले में न्यायालयों द्वारा हस्तक्षेप करने के लिए बार- *इस संविधान में कुछ भी होते हुए, -*
(ए) निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन या ऐसे निर्वाचन क्षेत्रों को स्थानों के आबंटन से संबंधित किसी विधि की, जो अनुच्छेद 243-के के अधीन बनाई गई है या किए जाने के लिए तात्पर्यित है, किसी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं की जाएगी;
(बी) किसी पंचायत के लिए कोई निर्वाचन प्रश्नगत नहीं किया जाएगा, ***सिवाय*** *ऐसे प्राधिकारी को प्रस्तुत की गई निर्वाचन याचिका द्वारा और ऐसी रीति से, जो किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा या उसके अधीन उपबंधित है।*

15. संविधान के अनुच्छेद 243-ओ के अवलोकन से यह उभरता है कि उक्त संवैधानिक उपबंध स्पष्ट रूप से उपबंध करता है कि संविधान में किसी बात के होते हुए भी, किसी पंचायत के लिए कोई निर्वाचन ऐसे प्राधिकारी को प्रस्तुत की गई निर्वाचन याचिका के सिवाय प्रश्नगत नहीं किया जाएगा और ऐसी रीति से, जो राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा या उसके अधीन उपबंधित है।

16. जब उपरोक्त संवैधानिक प्रावधान को आक्षेपित कार्रवाई के संदर्भ में देखा जाता है, तो यह सामने आता है कि प्रत्यर्थी संख्या 6 ने याचिकाकर्ता के चुनाव को रद्द करने के लिए चुनाव याचिका दायर की थी। विहित प्राधिकारी ने अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी की उपधारा (4) (ii) के संदर्भ में उसे प्रदत्त शक्तियों के संदर्भ में आदेश पारित करने के बजाय, चुनाव याचिका को अनुमति देने के बाद, मतों की पुन: गणना के लिए आदेश पारित किया है। एक बार जब चुनाव याचिका पर निर्णय हो जाने के बाद निर्धारित प्राधिकारी 'समाप्ताधिकार' बन जाता है और भले ही मतों की पुन: गणना के बाद याचिकाकर्ता या प्रत्यर्थी संख्या 6 को कम या ज्यादा वोट मिलते हैं, तो यह अर्थहीन होगा क्योंकि जिस प्राधिकरण ने वोटों की फिर से गिनती की है, वह याचिकाकर्ता के चुनाव को रद्द करने या प्रत्यर्थी संख्या 6 को निर्वाचित घोषित करने के लिए शक्तिहीन होगा, यह देखते हुए कि उक्त शक्ति कर सकती है केवल एक चुनाव याचिका में एक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश से बाहर निकलना चाहिए, जिसके पास अब चुनाव याचिका नहीं है, उसी की अनुमति दी गई है और इस प्रकार "समाप्ताधिकार" बन गया है।

17. जब दिनांक 21.12.2021 के आदेश के संदर्भ में निर्धारित प्राधिकारी की आक्षेपित कार्रवाई को अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी के साथ पठित भारत के संविधान के अनुच्छेद 243-ओ के संदर्भ में देखा जाता है, तो यह स्पष्ट है कि निर्धारित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश संविधान के

प्रावधानों के साथ-साथ अधिनियम, 1947 के प्रावधानों के अनुरूप नहीं होगा।

18. **1995 एडब्ल्यूसी 1465** में प्रतिवेदित **श्रीमती राम कांति बनाम जिलाधिकारी एवं अन्य** के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ के फैसले को पुन: प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा, जिसमें यह निम्नवत अभिनिर्धारित किया गया हैः-

"उपरोक्त प्रावधानों से यह स्पष्ट है कि राज्य निर्वचन आयुक्त, जिला मजिस्ट्रेट और निर्वाचन अधिकारी को पर्यवेक्षण, नियंत्रण और चुनाव कराने का अधिकार है। ***चुनाव समाप्त होने के बाद, वे मामले पर सभी अधिकार क्षेत्र खो देते हैं और यह केवल चुनाव न्यायाधिकरण है, जो चुनाव से उत्पन्न या उससे संबंधित विवाद से निपटने के लिए सक्षम है।*** *चुनाव शब्द का अर्थ और चुनाव प्रक्रिया कब समाप्त होती है, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समय-समय पर आरपी अधिनियम के तहत मामलों का फैसला करते समय विचार किया गया है, जिसका प्रमुख मामला एनपी पुन्नुस्वामी बनाम रिटर्निंग ऑफिसर एआईआर 1952 एससी 64 है, जिसमें चुनाव को व्यापक अर्थ दिया गया था ताकि एक उम्मीदवार को निर्वाचित घोषित करने में समाप्त होने वाली पूरी प्रक्रिया को दर्शाया जा सके। इस प्रकार, इसमें विधानमंडल में एक उम्मीदवार को वापस करने के लिए पूरी प्रक्रिया शामिल है। मोहिन्दर सिंह गिल बनाम मुख्य चुनाव आयुक्त एआईआर 1978 एससी 851 में भी यही नियम दोहराया गया था, जिसमें यह निर्धारित किया गया था कि चुनाव प्रारंभिक अधिसूचना से शुरू होता है और उम्मीदवार की वापसी की घोषणा में समाप्त होता है। इस प्रकार, चुनाव प्रक्रिया वापस लौटे उम्मीदवारों की अंतिम घोषणा पर समाप्त हो जाती है। चूंकि अधिनियम और नियमों के तहत चुनाव कराने की पद्धति और प्रक्रिया आरपी अधिनियम में निहित पैटर्न और प्रक्रिया के समान है, इसलिए चुनाव की वही परिभाषा अधिनियम और नियमों के तहत अभिनिर्धारित चुनाव पर लागू की जानी है।* ***चुनाव प्रक्रिया समाप्त होने के बाद, राज्य चुनाव आयुक्त, जिला मजिस्ट्रेट और चुनाव अधिकारी अपने सभी अधिकार क्षेत्र खो देते हैं और एकमात्र प्राधिकार, जो चुनाव के बारे में किसी भी शिकायत से निपट सकता है और फैसला कर सकता है, वह चुनाव न्यायाधिकरण है।***
(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्द्धित)

19. इसी प्रकार, **2000 (4) एडब्ल्यूसी 2777** में प्रतिवेदित **शंभू सिंह बनाम राज्य निर्वाचन आयोग, उत्तर प्रदेश और अन्य** के मामले में इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने में निम्नानुसार निर्णय दिया है: -

"..... हमारे विचार में, क़ानून की उचित व्याख्या पर, चुनाव प्रक्रिया समाप्त होने के बाद, राज्य चुनाव आयुक्त, जिला मजिस्ट्रेट और चुनाव अधिकारी के पास कोई अधिकार क्षेत्र नहीं रह जाता है और एकमात्र प्राधिकरण जो चुनाव के बारे में किसी भी शिकायत से निपट सकता है और फैसला कर सकता है, वह चुनाव न्यायाधिकरण है।

20. **एन.पी. पोन्नुस्वामी बनाम रिटर्निंग ऑफिसर, नमक्कल निर्वाचन क्षेत्र; एआईआर 1952 एससी 64 और कृष्णमूर्ति बनाम शिवकुमार और अन्य; (एआईआर 2015 वॉल्यूम-3 एससीसी 467)** के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने भी इसी प्रकार अभिनिर्धारित किए हैं।

21. नतीजतन, जब निर्धारित प्राधिकारी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को **एनपी पोन्नुस्वामी (पूर्वोक्त) और कृष्णमूर्ति (पूर्वोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के प्रकाश में देखा जाता है, तो इस न्यायालय की खण्ड पीठ के फैसले और **श्रीमती राम कांति (पूर्वोक्त)** के मामले में और साथ ही **शंभू सिंह (पूर्वोक्त)** के मामले में इस न्यायालय के फैसले के आलोक में, यह स्पष्ट रूप से उभरता है कि आक्षेपित आदेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 247-ओ (बी) के साथ पठित अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी के तहत निर्धारित शक्ति और कठोरता को खड़ा नहीं करता है।

22. इस स्तर पर, संबंधित पक्षों की ओर से उपस्थित सभी विद्वान अधिवक्तागण का तर्क है कि दिनांक 21.12.2021 के आदेश को अंतिम आदेश नहीं माना जा सकता है, बल्कि यह केवल मतों की पुनर्गणना के उद्देश्य से एक वादकालीन आदेश होगा और परिणामस्वरूप, मतों की पुनर्गणना के बाद आक्षेपित आदेश के संदर्भ में होता है, यह निर्धारित प्राधिकारी है जो चुनाव याचिका को अंततः प्रत्यर्थी संख्या 6 के पक्ष में सफल होने या वोटों के परिणाम के आधार पर खारिज करने की घोषणा करेगा। इस संबंध में, **मोहम्मद मुस्तफा बनाम उ0प्र0 जिलाधिकारी-2007 एससीसी ऑनलाइन एएलएल 1564** के मामले में इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ के निर्णय पर भरोसा किया गया।

23. पूर्वोक्त निर्णय पर भरोसा करते हुए तर्क यह है कि एक रिट याचिका से उत्पन्न होने वाले संदर्भ पर, इस न्यायालय की खण्ड पीठ ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है: -

"22. हमने अबरार के मामले (पूर्वोक्त) में एक विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए तर्क की सावधानीपूर्वक जांच की है, जिसमें विद्वान एकल न्यायाधीश ने कहा था कि

पुनर्गणना के लिए एक प्रार्थना पत्र का निस्तारण अंतिम आदेश होगा क्योंकि यह अंततः पुनर्गणना के लिए प्रार्थना पत्र का निस्तारण करता है। जैसा कि हमारे द्वारा ऊपर बताया गया है, पुनर्गणना के लिए एक मात्र आदेश अंततः चुनाव लड़ने वाले दलों की स्थिति को बदल नहीं देता है और यह किसी भी तरह से, अंततः निर्वाचित उम्मीदवार की स्थिति का निर्धारण नहीं करता है। अंतिम रूप चुनाव प्रार्थना पत्र के निस्तारण के बाद ही आता है क्योंकि चुनाव को रद्द करने या चुनाव प्रार्थना पत्र को खारिज करने की राहत अंतिम चरण में आती है, न कि केवल पुनर्गणना के प्रार्थना पत्र के निस्तारण या इस उद्देश्य के लिए तैयार किए गए मुद्दे पर निर्णय लेने पर पुनर्गणना का आदेश देने से।

23. रिट याचिका में आक्षेपित आदेश को चुनाव प्रार्थना पत्र का निस्तारण करने के लिए नहीं माना जा सकता है क्योंकि चुनाव ट्रिब्यूनल ने तीन मुद्दों को निम्नलिखित बनाया है: -

(1) क्या ग्राम हंडिया के प्रधान पद पर चुनाव में मतगणना विधि सम्मत हुई थी?

(2) क्या निर्वचन प्रार्थना पत्र में आवेदक के अभिकर्ताओं को मतगणना के स्थान से बलपूर्वक हटा दिया गया था और निर्वचन आवेदक के पक्ष में डाले गए मतों को वापस लौटे अभ्यर्थी (वर्तमान याचिकाकर्ता) के मतों के साथ मिला दिया गया था और किस आधार पर विरोधी दल क्रमांक 1 (वर्तमान याचिकाकर्ता) को निर्वाचित घोषित किया गया था? और

(3) क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, मतों की पुनर्गणना अनुमेय है और चुनाव विधि के अनुसार अभिनिर्धारित किया गया था?

24. आक्षेपित आदेश से यह स्पष्ट है कि केवल पुनर्गणना का आदेश पारित किया गया है। हालांकि, मतपत्रों की फिर से गिनती के बाद अन्य मुद्दों पर फैसला किया जाना बाकी है कि क्या चुनाव विधि के अनुसार अभिनिर्धारित किया गया था और क्या चुनाव लड़ने वाले प्रत्यर्थी के पक्ष में डाले गए वोटों को वापस आए उम्मीदवार के वोटों के साथ मिला दिया गया है और जिसके आधार पर याचिकाकर्ता को निर्वाचित घोषित किया गया है। आगे यह तय किया जाना है कि चुनाव प्रार्थना पत्र को अनुमति दी जाए या खारिज कर दिया जाए। इसलिए, कल्पना के किसी भी खिंचाव से, यह नहीं माना जा सकता है कि मतों की पुनर्गणना के क्रम ने अंततः चुनाव प्रार्थना पत्र का निस्तारण कर दिया है।

25. इसलिए, हम अत्यंत सम्मान के साथ, उपरोक्त कारणों से अबरार के मामले (पूर्वोक्त) में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा लिए गए दृष्टिकोण को प्रसारित करने में सक्षम नहीं हैं और इसलिए, हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि उक्त निर्णय अधिनियम की धारा 12-सी (6) के तहत संशोधन की अनुरक्षणीयता के सवाल पर विधि को सही ढंग से निर्धारित नहीं करता है। पुनर्मतगणना के लिए निर्धारित प्राधिकारी। हम याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए मामलों को निर्धारित विधि को आगे मंजूरी देते हैं। हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा संदर्भित प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार देते हैं: -

(I) अधिनियम की धारा 12-ग(6) के अधीन पुनरीक्षण केवल धारा 12-ग(1) के अधीन अधिमानी निर्वाचन प्रार्थना पत्र का विनिश्चय करने वाले विहित प्राधिकारी द्वारा पारित अंतिम आदेश के विरुद्ध होगा और विहित प्राधिकारी द्वारा मतों की पुनर्गणना के किसी वादकालीन आदेश या आदेश के विरुद्ध नहीं होगा।

(II) अबरार बनाम भारत संघ के मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्णय। (ख) माननीय उच्चतम न्यायालय (2004) 5 आंगनवाड़ी केन्द्र 4088 (2004 सभी एलजे 2384) में विधि को सही ढंग से नहीं रखा गया है और इसलिए पुनरीक्षण याचिका की विचारणीयता के प्रश्न की सीमा तक, जैसा कि ऊपर दर्शाया गया है, इसे खारिज कर दिया गया है।

(III) उपरोक्त के स्वाभाविक परिणाम के रूप में, हम यह भी मानते हैं कि उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी के तहत एक चुनाव प्रार्थना पत्र में कार्यवाही करते समय निर्धारित प्राधिकारी द्वारा पारित पुनर्गणना के आदेश के खिलाफ एक रिट याचिका सुनवाई योग्य होगी।

24. पूर्वोक्त निर्णय के अवलोकन से यह उभरता है कि खण्ड पीठ, एक संदर्भ पर, **अबरार बनाम उ0प्र0 राज्य- (2004) 5 एडबल्यूसी 4088** के मामले में इस न्यायालय के एकल न्यायाधीश के दृष्टिकोण से सहमत नहीं थी, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि एक चुनाव याचिका के रूप में अंतिम रूप से निर्णय लिया गया था क्योंकि ऐसा पुनरीक्षण अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी की उप-धारा (6) के तहत होगा। खण्ड पीठ ने **अबरार (पूर्वोक्त)** के मामले में फैसले पर विचार करने के बाद यह विचार किया था कि पुनर्गणना के लिए केवल एक आदेश अंततः चुनाव लड़ने वाले दलों की स्थिति को नहीं बदलता है और यह किसी भी तरह से अंतिम रूप से निर्वाचित उम्मीदवार की स्थिति का निर्धारण नहीं करता है क्योंकि अंतिम रूप केवल चुनाव प्रार्थना पत्र के निस्तारण के बाद ही आएगा क्योंकि चुनाव को रद्द करने या चुनाव प्रार्थना पत्र को खारिज करने की राहत के रूप में चुनाव प्रार्थना पत्र का निस्तारण किया जाएगा यह अंतिम चरण में आता है न कि इस उद्देश्य के लिए तैयार किए गए मुद्दे पर निर्णय लेने पर पुनर्गणना के प्रार्थना पत्र के निस्तारण या पुनर्गणना का आदेश देने से।

25. हालांकि, इस मामले में जो विधिक मुद्दा उठता है, वह यह है कि जब निर्धारित प्राधिकारी ने अंततः 21.12.2021 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से चुनाव याचिका की **अनुमति** दी है और फिर से मतगणना के लिए निर्देश दिया है, तो चुनाव याचिका के निस्तारण के बाद, चुनाव

न्यायाधिकरण 'समाप्ताधिकार' बन जाएगा और चुनाव न्यायाधिकरण द्वारा इस संबंध में कोई बाद का आदेश पारित नहीं किया जा सकता है।

26. **हरि विष्णु कामथ बनाम सैयद अहमद इशाक और अन्य- एआईआर 1955 एससी 233** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की सात न्यायाधीशों की संविधान पीठ द्वारा मामले के इस पहलू पर विचार किया गया है जिसमें संविधान पीठ ने निम्नानुसार निर्णय दिया है: -

"19. मामले के सार को देखते हुए, जब एक बार, यह माना जाता है कि संविधान का इरादा उच्च न्यायालय को उचित रिट और निर्देशों के मुद्दे से न्यायाधिकरणों के निर्णयों की निगरानी करने की शक्ति प्रदान करना था, तो उस शक्ति के प्रयोग को रूप और प्रक्रिया के तकनीकी विचारों से पराजित नहीं किया जा सकता है। ***पी.सी. बसप्पा बनाम टी. नागप्पा -एआईआर 1954 एससी 440*** *में, इस न्यायालय ने कहा:*

"हमारे संविधान में व्यक्त प्रावधानों के मद्देनजर, हमें अब अंग्रेजी विधि में इन रिटों के प्रारंभिक इतिहास या प्रक्रियात्मक तकनीकी को देखने की आवश्यकता नहीं है, और न ही अंग्रेजी न्यायाधीशों द्वारा विशेष मामलों में व्यक्त किए गए किसी भी अंतर या राय के परिवर्तन से उत्पीड़ित महसूस करें। हम सभी उपयुक्त मामलों में और उचित तरीके से 'उत्प्रेषण' की प्रकृति में एक आदेश बना सकते हैं या एक रिट जारी कर सकते हैं, जब तक कि हम व्यापक और मौलिक सिद्धांतों को बनाए रखते हैं जो अंग्रेजी विधि में इस तरह के रिट देने के मामले में क्षेत्राधिकार के प्रयोग को विनियमित करते हैं "
यह इन सिद्धांतों के अनुरूप होगा कि उच्च न्यायालयों के पास अनुच्छेद 226 के तहत चुनाव न्यायाधिकरणों के निर्णयों को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण रिट जारी करने की शक्ति है, ***इसके बावजूद कि वे निर्णय सुनाने के बाद समाप्ताधिकार बन जाते हैं।***
(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्द्धित)

27. पूर्वोक्त निर्णय के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि चुनाव न्यायाधिकरण द्वारा अपना निर्णय सुनाए जाने के बाद, यह 'समाप्ताधिकार' बन जाता है।

28. इसके अलावा, संविधान पीठ ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत उच्च न्यायालय की शक्तियों के संबंध में विधि भी निर्धारित किया है। सुविधा के लिए, संविधान पीठ की प्रासंगिक टिप्पणियों को नीचे पुन: प्रस्तुत किया जाता है: -

"हमारी यह भी राय है कि चुनाव न्यायाधिकरण संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालयों की देखरेख के अधीन हैं, और यह अधीक्षण न्यायिक और प्रशासनिक दोनों है। *यह इस न्यायालय द्वारा वरयाम सिंह और अन्य बनाम अमरनाथ एवं अन्य(2) के मामले में यह टिप्पणी की थी कि इस संबंध में अनुच्छेद 227 भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 224 से आगे चला गया जिसके तहत अधीक्षण विशुद्ध रूप से प्रशासनिक था और इसने भारत सरकार अधिनियम, 1915 की धारा 107 के अधीन स्थिति को बहाल किया।* ***यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि जबकि अनुच्छेद 226 के तहत एक उत्प्रेषण में उच्च न्यायालय केवल न्यायाधिकरण के निर्णय को रद्द कर सकता है, वह अनुच्छेद 227 के तहत ऐसा कर सकता है, और इस मामले में आगे निर्देश भी जारी कर सकता है। तदनुसार, हमें यह मानना चाहिए कि उत्प्रेषण रिट और अन्य राहत के लिए अपीलकर्ता का प्रार्थना पत्र संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत बनाए रखने योग्य था।***
(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्द्धित)

29. पूर्वोक्त के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि संविधान पीठ ने अभिनिर्धारित किया है कि अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय न केवल न्यायाधिकरण के फैसले को रद्द कर सकता है, बल्कि अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय भी ऐसा कर सकता है और मामले में आगे निर्देश भी जारी कर सकता है।

30. तदनुसार, जब खंडपीठ ने **मो. मुस्तफा (पूर्वोक्त)** को **हरि विष्णु कामथ (पूर्वोक्त)** के मामले में संविधान पीठ के फैसले के आलोक में देखा जाता है, यह उभरता है कि इस न्यायालय की खण्ड पीठ ने उपरोक्त संविधान पीठ के फैसले पर विचार नहीं किया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि चुनाव ट्रिब्यूनल अपना निर्णय सुनाने के बाद 'समाप्ताधिकार' बन जाता है और परिणामस्वरूप यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए न केवल रद्द कर सकता है ट्रिब्यूनल का निर्णय लेकिन मामले में आगे के निर्देश भी जारी कर सकता है।

31. इस स्तर पर, इस मुद्दे से निपटना भी प्रासंगिक होगा कि क्या इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा **मोहम्मद मुस्तफा (पूर्वोक्त**) के मामले में निर्धारित विधि एक बाध्यकारी मिसाल होगी जब खण्ड पीठ ने **हरि विष्णु कामथ (पूर्वोक्त**) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर विचार नहीं किया है।

32. इस संबंध में, इस न्यायालय को **संदीप कुमार बाफना बनाम महाराष्ट्र राज्य - (2014) 16 एससीसी 623** के

मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले से आगे देखने की आवश्यकता नहीं हो सकती है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है: -

"19. इस बात पर अधिक जोर नहीं दिया जा सकता है कि एक मिसाल द्वारा मांग की गई अनुशासन या पर इंकुरियम नियम के प्रार्थना पत्र पर निर्णय की अयोग्यता या कमी का बहुत महत्व है, क्योंकि इसके बिना, विधि की निश्चितता, फैसलों की निरंतरता और न्यायालयों की सौहार्द एक महंगी दुर्घटना बन जाएगी। ***एक निर्णय या फैसला एक संविधि, नियम या विनियमन में किसी भी प्रावधान के लिए हो सकता है, जिसे न्यायालय के ध्यान में नहीं लाया गया था। एक निर्णय या निर्णय पर इंकुरियम भी हो सकता है यदि सह-समान या बड़ी बेंच के पहले से घोषित निर्णय के साथ इसके अनुपात को समेटना संभव नहीं है; या यदि उच्च न्यायालय का निर्णय इस न्यायालय के विचारों के अनुरूप नहीं है।*** *यह तुरंत स्पष्ट किया जाना चाहिए कि पर इंकुरियम नियम अनुपात निर्णय पर सख्ती से और सही ढंग से लागू होता है और आज्ञाकारी डिक्टा के लिए नहीं। उच्च न्यायालयों में अक्सर यह पाया जाता है कि सर्वोच्च न्यायालय के दो या दो से अधिक परस्पर असंगत निर्णयों को बार में उद्धृत किया जाता है। हमें लगता है कि अलंघनीय सहारा जल्द से जल्द दृष्टिकोण को लागू करना है क्योंकि सफल लोग पर इंकुरियम की श्रेणी में आएंगे। (न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्द्धित)*

33. इसी तरह, **पंजाब भूमि विकास और सुधार निगम लिमिटेड बनाम श्रम न्यायालय - (1990) 3 एससीसी 682** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है: -

"40. अब हम संविधान पीठ के निर्णयों का कथित रूप से पालन नहीं करने के कारण पर इंकुरियम के प्रश्न से निपटते हैं। लैटिन अभिव्यक्ति पर इंकुरियम का अर्थ है अनजाने के माध्यम से। ***एक निर्णय को आम तौर पर पर इंकुरियम दिया जा सकता है जब इस न्यायालय ने अपने स्वयं के पिछले निर्णय की अज्ञानता में काम किया है या जब उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के निर्णय की अज्ञानता में काम किया है।*** *इस पर संदेह नहीं किया जा सकता है कि अनुच्छेद 141, विधि के नियम के रूप में, उन उदाहरणों के सिद्धांत का प्रतीक है जिन पर हमारी न्यायिक प्रणाली आधारित है। बंगाल इम्युनिटी कंपनी लिमिटेड बनाम बिहार राज्य, [1955] 2 एससीआर 603 में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अनुच्छेद 141 के शब्द, "भारत के क्षेत्र के भीतर सभी अदालतों पर बाध्यकारी", हालांकि सर्वोच्च न्यायालय को शामिल करने के लिए पर्याप्त व्यापक हैं, इसमें स्वयं सर्वोच्च न्यायालय शामिल नहीं है, और यह अपने स्वयं के निर्णयों से बाध्य नहीं है, लेकिन उपयुक्त मामलों में उन पर पुनर्विचार करने के लिए स्वतंत्र है। विधि और न्याय के समुचित विकास के लिए यह आवश्यक है। हो सकता है कि इन्हीं कारणों से हाउस ऑफ लॉर्ड्स में निर्णय दिए जाने से पहले री-डॉसन सेटलमेंट लॉयड्स बैंक लिमिटेड बनाम डॉसन और अन्य, [1966] 1 डब्ल्यूएलआर 1234 में 26 जुलाई, 1966 को लॉर्ड गार्डिनर, एलसी ने अपनी और लॉर्ड्स ऑफ अपील इन ऑर्डिनरी की ओर से निम्नलिखित बयान दिया:*

"उनके लॉर्डशिप मिसाल के उपयोग को एक अनिवार्य आधार के रूप में मानते हैं, जिस पर यह तय करना है कि विधि क्या है और व्यक्तिगत मामलों में इसका प्रार्थना पत्र क्या है। यह कम से कम कुछ हद तक निश्चितता प्रदान करता है जिस पर व्यक्ति अपने मामलों के संचालन में भरोसा कर सकते हैं, साथ ही विधिक नियमों के व्यवस्थित विकास के लिए एक आधार भी प्रदान कर सकते हैं। फिर भी उनके लॉर्डशिप यह मानते हैं कि मिसाल का बहुत कठोर पालन किसी विशेष मामले में अन्याय का कारण बन सकता है और विधि के उचित विकास को भी अनुचित रूप से प्रतिबंधित कर सकता है। इसलिए, वे अपने वर्तमान व्यवहार को संशोधित करने का प्रस्ताव करते हैं और इस सभा के पूर्व निर्णयों को सामान्य रूप से बाध्यकारी मानते हुए, पिछले निर्णय से हटने का प्रस्ताव करते हैं जब ऐसा करना सही प्रतीत होता है।

इस संबंध में वे पूर्वव्यापी रूप से परेशान करने के खतरे को ध्यान में रखेंगे जिस आधार पर अनुबंध, संपत्ति के निस्तारण और राजकोषीय व्यवस्था में प्रवेश किया गया है और आपराधिक विधि के रूप में निश्चितता की विशेष आवश्यकता भी है।

34. **संदीप कुमार बाफना (पूर्वोक्त) और पंजाब लैंड डेवलपमेंट एंड रिक्लेमेशन कॉरपोरेशन लिमिटेड (पूर्वोक्त)** के मामले में पूर्वोक्त निर्णयों से, यह उभरता है कि सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि एक मिसाल द्वारा मांग की गई अनुशासन या पर इंकुरियम नियम के प्रार्थना पत्र पर निर्णय की अयोग्यता या कमी बहुत महत्वपूर्ण है, चूंकि इसके बिना, विधि की निश्चितता, निर्णयों की निरंतरता और न्यायालयों की सौहार्द एक महंगी दुर्घटना बन जाएगी। कोई निर्णय या निर्णय किसी संविधि, नियम या विनियम में कोई भी प्रावधान हो सकता है **जिसे न्यायालय के ध्यान में नहीं लाया गया था या एक निर्णय या निर्णय भी हो सकता है यदि उच्च न्यायालय का निर्णय शीर्ष न्यायालय के विचार के अनुरूप नहीं है।**

35. तदनुसार, पूर्वोक्त निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, **मोहम्मद मुस्तफा (पूर्वोक्त)** के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ के फैसले को ध्यान में रखते हुए हरि विष्णु कामथ (पूर्वोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के फैसले द्वारा निर्धारित विधि के खिलाफ

चलेगा, खण्ड पीठ ने इस बात पर विचार नहीं किया कि चुनाव याचिका पर अंतिम रूप से फैसला करने के बाद चुनाव न्यायाधिकरण समाप्ताधिकार बन जाता है और इस प्रकार यह संविधान पीठ का निर्णय है जिसका इस न्यायालय द्वारा पालन किया जाना होगा।

36. जैसा कि पहले ही ऊपर बताया गया है, **हरि विष्णु कामथ (पूर्वोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि चुनाव न्यायाधिकरण द्वारा अंततः अपना निर्णय सुनाए जाने के बाद, यह 'समाप्ताधिकार' बन जाता है, जिसका अर्थ है कि उसके पास अपना आदेश सुनाने के बाद चुनाव याचिका में कोई आदेश पारित करने की कोई शक्ति नहीं होगी। वर्तमान मामले में, विहित प्राधिकारी की अध्यक्षता वाले निर्वाचन अधिकरण ने यह किया है कि उसने अंतत चुनाव याचिका को अनुमति दे दी है और पुनर्मतगणना का निदेश दिया है। यदि मतों की पुनर्गणना का परिणाम किसी भी तरह से हो, तो भी निर्वाचन अधिकरण अपने निर्णय की घोषणा/याचिका को अनुमति देने के बाद 'समाप्ताधिकार' बन गया है, यह आगे कोई आदेश पारित करने में सक्षम नहीं होगा। इस प्रकार, विधि के स्थापित प्रस्ताव को ध्यान में रखते हुए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 243-ओ में स्पष्ट रूप से यह उपबंध किया गया है कि केवल निर्वाचन याचिका के माध्यम से ही पंचायत के निर्वाचन पर प्रश्नचिन्ह लगाया जा सकता है और निर्वाचन याचिका पर अंतिम रूप से निर्णय हो जाने के बाद विहित प्राधिकारी/निर्वाचन अधिकरण इस प्रकार कार्यपालक प्राधिकारी बन गया है और इस मामले में आगे कोई आदेश पारित नहीं कर सकता है। इस प्रकार, आक्षेपित आदेश को सभी मामलों में अंतिम आदेश के रूप में माना जाना चाहिए और तदनुसार यह स्पष्ट है कि निर्धारित प्राधिकारी ने एक स्पष्ट रूप से विकृत आदेश पारित किया है और उसमें निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में विफल रहा है यानी किसी भी तरह से चुनाव याचिका पर निर्णय लेने के लिए।

37. पूर्वोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान याचिका में जो विधिक प्रश्न उत्पन्न हुआ है, उसका उत्तर नीचे दिया गया है: -
विहित प्राधिकारी किसी चुनाव याचिका पर अंतिम रूप से निर्णय लेने पर कार्याधिकारी बन जाता है और उसके बाद कोई आदेश पारित नहीं कर सकता है, भले ही चुनाव याचिका पर अंतिम रूप से मतों की पुन: गणना करने का निर्णय लिया गया हो।

38. अब विधिक प्रश्न का उत्तर दिया गया है, अगला प्रश्न यह होगा कि क्या यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप कर सकता है?

39. हालांकि यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता के पास अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी की उप-धारा (6) के तहत विद्वान जिला न्यायाधीश के समक्ष आक्षेपित आदेश के खिलाफ एक संशोधन दायर करने का एक उपाय है और इस तरह उसे एक पुनरीक्षण दाखिल करने के लिए आरोपित किया जाना चाहिए, लेकिन यह देखते हुए कि याचिका पर लगभग एक साल पहले विचार किया गया था और एक अंतरिम आदेश पहले ही पारित किया जा चुका था और तथ्य यह है कि विधि इस संबंध में यह तय नहीं किया गया था कि क्या आक्षेपित आदेश को अंतिम आदेश माना जाएगा या अंतरिम आदेश, परिणामस्वरूप यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत निहित अपनी शक्तियों का प्रयोग कर रहा है।

40. भले ही भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत इस न्यायालय की शक्तियों को **हरि विष्णु कामथ (पूर्वोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इंगित किया गया है, फिर भी यह इंगित करना भी उपयुक्त होगा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **एआईआर 1954 एससी 215** में प्रतिवेदित **वरयाम सिंह और अन्य बनाम अमरनाथ और अन्य** के मामले में क्या रिपोर्ट किया है, जैसा कि **(2010) 8 एससीसी 329** में प्रतिवेदित **शालिनी श्या**म **शेट्टी बनाम राजेंद्र शंकर पाटिल** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दोहराया गया है, जो सुविधा के लिए नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -
"(ई) वरयाम सिंह (पूर्वोक्त) के अनुपात के अनुसार, बाद के मामलों में अनुसरण किया जाता है, उच्च न्यायालय अपने अधीक्षण के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए केवल न्यायाधिकरणों और न्यायालयों को अपने अधीन रखने के लिए हस्तक्षेप कर सकता है, 'उनके अधिकार की सीमा के भीतर'।
(एफ) यह सुनिश्चित करने के लिए कि ऐसे अधिकरणों और न्यायालयों द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करके और उनमें निहित अधिकारिता का प्रयोग करने से इनकार न करके विधि का पालन किया जाता है।
(जी) (ई) और (एफ) में इंगित स्थितियों के अतिरिक्त, उच्च न्यायालय अपनी अधीक्षण की शक्ति के प्रयोग में तब हस्तक्षेप कर सकता है जब अधिकरणों और उसके अधीनस्थ न्यायालयों के आदेशों में स्पष्ट विकृति हो या जहां न्याय की घोर और प्रकट विफलता रही हो या प्राकृतिक न्याय के मूल सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया हो।
(एच) अधीक्षण की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय केवल विधि या तथ्य की त्रुटियों को ठीक करने के लिए हस्तक्षेप नहीं कर सकता है या केवल इसलिए कि अधिकरणों या उसके अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा लिए गए दृष्टिकोण के अलावा एक अन्य दृष्टिकोण एक संभावित दृष्टिकोण है। दूसरे शब्दों में, अधिकार क्षेत्र का बहुत संयम से प्रयोग किया जाना चाहिए।

41. तदनुसार, भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि दिनांक 21.12.2021 का आक्षेपित आदेश अधिनियम, 1947 के प्रावधानों के विपरीत है और निर्धारित प्राधिकारी अधिनियम, 1947 के प्रावधानों के तहत चुनाव न्यायाधिकरण पर निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में विफल रहा है, नतीजतन, दिनांक 21.12.2021 के आदेश को अपास्त किया जाता है। यह मामला अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी की उप-धारा (4) (ii) के तहत शक्तियों को ध्यान में रखते हुए विधि के अनुसार एक नया आदेश पारित करने के लिए निर्धारित प्राधिकारी को भेजा जाता है। विधि के अनुसार सभी संबंधित पक्षों को सुनने के बाद इस संबंध में एक नया आदेश जल्द से जल्द पारित किया जाए।

42. याचिका का निस्तारण किया जाता है।

(2023) 1 ILRA 116
पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 09.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे.मुनीर

एससीसी रिवीजन नंबर. 181 वर्ष 2022

श्री गांधी आश्रम खादी भंडार, जैतपुर जिला महोबा कैंप ऑफिस &एएमपी; एएनआर ... पुनरीक्षणकर्ता
बनाम
विजय कुमार शर्मा और अन्य ... प्रत्यर्थी

पुनरीक्षणकर्ताओं के वकील:
श्री शैलेंद्र

प्रत्यर्थी के वकील:
श्री गुलरेज खान

A. नागरिक कानून- प्रान्तीय लघु कारण न्यायालय अधिनियम, 1887-धारा 15(2), 15(3) – नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 21, आदेश XV, नियम 5-बेदखली-आर्थिक अधिकारिता के विरुद्ध आपत्ति-वादी-प्रतिवादियों द्वारा न्यायाधीश, लघु कारण न्यायालय के समक्ष वाद संस्थित किया गया था, जिसकी आर्थिक अधिकारिता 25000/- रुपये तक है, हालांकि वाद का मूल्य 57060 रुपये था- प्रतिवादियों का आवेदन जिसमें न्यायालय के आर्थिक क्षेत्राधिकार पर आपत्ति जताई गई थी, अस्वीकृत कर दिया गया था-उत्तर प्रदेश नागरिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2015 द्वारा लाए गए 1887 के अधिनियम में संशोधन के बाद, बेदखली के मुकदमे सहित एक छोटे कारण के मुकदमे की सुनवाई के लिए लघु कारण न्यायालय के आर्थिक अधिकार क्षेत्र को 25000 रुपये से बढ़ाकर 1,00,000 रुपये कर दिया गया है-वास्तव में, किरायेदार ने मुकदमे को सभी चरणों के माध्यम से आगे बढ़ने की अनुमति दी है और एक स्तर पर आर्थिक क्षेत्राधिकार की कमी के बारे में आपत्ति ली है जब, रिमांड के बाद, मुकदमा पूरा हो गया है और सुपुर्दगी की निहाई पर पहले ही निर्णय हो चुका है। (पैरा 1 से 18)

पुनरीक्षण खारिज कर दिया गया है। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. ओम प्रकाश अग्रवाल सिन्स डिसिस्ड थ्रू लीगल लर्स और अन्य बनाम विशन दयाल राजपूत और अन्य। (2019) 14 एससीसी 526

2. भारत संचार निगम लिमिटेड और अन्य बनाम मोटोरोला इंडिया प्राइवेट एलटीडी (2009) 2 एससीसी 337,

3. आईसीओएमएम टेली लिमिटेड बनाम पंजाब राज्य जल आपूर्ति सीवरेज बोर्ड और अन्य (2019) 4 एससीसी 401

4. पार्किन्स ईस्टमैन आर्किटेक्ट्स डीपीसी और अन्य बनाम एचएससीसी (इंडिया) लिमिटेड एआईआर 2020 एससी 59

5. टीआरएफ लिमिटेड बनाम एनर्गो इंजीनियरिंग प्रोजेक्ट्स लिमिटेड (2017) 8 एससीसी 377

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

1. प्रांतीय लघु कारण न्यायालय अधिनियम, 1887 (संक्षेप में, '1887 का अधिनियम') की धारा 25 के तहत यह संशोधन, अतिरिक्त जिला न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (एससी/एसटी अधिनियम), बांदा दिनांक 17.11.2022 के एक आदेश के खिलाफ निर्देशित है, जो एससीसी सूट नंबर 2 ऑफ 2008 में बनाया गया था, जिसमें प्रतिवादियों के आवेदन को खारिज कर दिया गया था, जिसमें अदालत के आर्थिक अधिकार क्षेत्र पर आपत्ति जताई गई थी।

2. अनावश्यक विवरणों से दूर, इस पुनरीक्षण को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि 2008 का एससीसी सूट नंबर 2 वादी-

अनुवादित

प्रतिवादियों द्वारा जिला न्यायाधीश, बांदा के समक्ष न्यायाधीश, लघु कारण न्यायालय के रूप में संस्थापित था। ऐसा इसलिए किया गया था, क्योंकि वाद की संस्थापना के समय, न्यायाधीश, लघु कारण न्यायालय, अर्थात् उत्तर प्रदेश राज्य में नागरिक न्यायाधीश (वरिष्ठ मंडल) के साथ एक छोटे से कारण के मुकदमे की सुनवाई करने का आर्थिक अधिकार क्षेत्र 25,000/- रुपये के मूल्यांकन तक था। यहां सूट की कीमत 57,060/- रुपये थी।

3. इसलिए, यह मुकदमा जिला न्यायाधीश के समक्ष दायर किया गया और अतिरिक्त जिला न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (एससी/एसटी अधिनियम), बांदा द्वारा इसकी सुनवाई की गई, जिन्होंने अपने निर्णय और डिक्री दिनांक 25.07.2016 के माध्यम से इसकी डिक्री की। उक्त डिक्री के खिलाफ एक पुनरीक्षण किरायेदार-पुनरीक्षणकर्ताओ द्वारा इस न्यायालय में किया गया था, जो 2019 का एससीसी पुनरीक्षण संख्या 50 है। इस न्यायालय ने दिनांक 13.09.2022 के निर्णय और आदेश के तहत डिक्री को रद्द कर दिया और मुकदमे को नए सिरे से सुनवाई के लिए भेज दिया, सिवाय मुद्दे संख्या 4 के, जिस पर निष्कर्ष को बरकरार रखा गया था। यह मुद्दा सीपीसी के आदेश XV नियम 5 के तहत किरायेदार के बचाव से संबंधित था।

4. रिमांड के बाद, किरायेदार-पुनरीक्षणकर्ताओ ने विचारण न्यायाधीश के समक्ष दिनांक 17.11.2022 के एक आवेदन के माध्यम से आपत्ति उठाई कि 07.12.2015 से यूपी नागरिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2015 के माध्यम से न्यायाधीश, लघु कारण न्यायालय के आर्थिक अधिकार क्षेत्र में बदलाव के कारण, यह न्यायाधीश, लघु कारण न्यायालय था, जो मुकदमे की सुनवाई करने के लिए सक्षम था, न कि अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, लघु कारण न्यायालय के आर्थिक अधिकार क्षेत्र से परे एक मुकदमे के मामले में उन शक्तियों का प्रयोग करना। इस आवेदन को विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने दिनांक 17.11.2022 के आदेश के तहत मुकदमे की सुनवाई करते हुए खारिज कर दिया है।

5. व्यथित होकर, इस पुनरीक्षण को किरायेदार-पुनरीक्षणकर्ताओ द्वारा अधिमानित किया गया है।

6. श्री शैलेंद्र, पुनरीक्षणकर्ताओ के विद्वान वकील और श्री गुलरेज खान, वादी-प्रतिवादी नंबर 1 के विद्वान वकील को सुना।

7. पुनरीक्षणकर्ताओ के विद्वान वकील द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि एक बार उत्तर प्रदेश नागरिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2015 के आधार पर आर्थिक क्षेत्राधिकार को बदल दिया गया था, रिमांड के आदेश के परिणामस्वरूप अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के समक्ष मुकदमे के लिए जो मुकदमा था, उसने विद्वान न्यायाधीश को सक्षम क्षेत्राधिकार के न्यायालय में प्रस्तुति के लिए वाद की वापसी का निर्देश देने के लिए बाध्य किया। अपने आर्थिक अधिकार क्षेत्र पर सवाल उठाने वाले आवेदन को खारिज करके, विचारण न्यायाधीश ने अधिकार क्षेत्र कल्पित किया है जो उसमें निहित नहीं है। इसलिए, आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से अवैध है। यह बताया गया है कि जब मुकदमा शुरू किया गया था, तो उसके मूल्यांकन के अनुसार, जो कि 57,060/- रुपये है, यह निश्चित रूप से न्यायाधीश, लघु कारण न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से परे था। लेकिन, रिमांड के बाद, 07.12.2015 से प्रभावी उत्तर प्रदेश नागरिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2015 के पर्यवेक्षण संशोधनों के मद्देनजर, यह मुकदमा अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा संज्ञेय नहीं है, बल्कि न्यायाधीश, लघु कारण न्यायालय द्वारा संज्ञेय है। अत अपर जिला न्यायाधीश के समक्ष विचारण क्षेत्राधिकार के बिना है।

8. पुनरीक्षणकर्ताओ के विद्वान वकील ने **ओम प्रकाश अग्रवाल सिन्स डिसिस्ड़ थ्रू लीगल रिप्रेजेंटेटिव और अन्य बनाम विशन दयाल राजपूत और अन्य, (2019) 14 एससीसी 526।** में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा किया है । पुनरीक्षणकर्ताओ के विद्वान वकील ने न्यायालय का ध्यान ओम प्रकाश अग्रवाल (सुप्रा) में होल्डिंग की ओर आकर्षित किया है, जिसमें लिखा है:

"54. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, उप-धारा (2) के परंतुक में यह प्रावधान है कि आंकड़ा 5000 रुपये को 25,000 रुपये माना जाएगा। उत्तर प्रदेश नागरिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2015 के अनुसार, 25,000 रुपये का आंकड़ा 1 लाख रुपये से बदल दिया गया था। परंतुक और उत्तर प्रदेश नागरिक कानून (संशोधन अधिनियम), 2015 के साथ पठित उप-धारा (2) को पढ़ने का स्पष्ट अर्थ है कि 1 लाख रुपये से अधिक के मूल्यांकन वाले छोटे कारण सूट छोटे कारणों के न्यायालय द्वारा संज्ञेय होंगे। जब एक छोटा कारण मुकदमा जो 1 लाख रुपये से अधिक मूल्य का नहीं है, तो स्पष्ट रूप से, कोई अन्य अदालत संज्ञान नहीं ले सकती है। अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, जिन्हें विचाराधीन छोटे कारण के वाद को स्थानांतरित कर दिया गया था क्योंकि इसका मूल्यांकन 25,000 रुपये से अधिक था, उत्तर प्रदेश नागरिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2015 के बाद 7-12-2015 से मुकदमे का संज्ञान लेने के लिए सक्षम नहीं था, जब प्रश्न में मुकदमा लघु कारण न्यायालय यानी सिविल जज,सीनियर डिवीजन की अदालत

द्वारा संज्ञेय हो गया था। उपरोक्त सीमा तक, शोभित निगम [शोभित निगम बनाम बटुलन, 2016 एससीसी ऑनलाइन ऑल 2605: (2016) 119 एएलआर 826] मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले को मंजूरी दी जानी है और पंकज होटल [पंकज होटल बनाम बाल मुकुंद, 2017 एससीसी ऑनलाइन सभी 2855: (2018) 1 सभी एलजे 17] में एकल न्यायाधीश के फैसले को 7-12- 2015 के बाद भी मंजूरी दी जानी है, अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के पास विचाराधीन मुकदमे का फैसला करने का अधिकार क्षेत्र था, जिसे मंजूरी नहीं दी जा सकती है।

9. वादी-प्रतिवादी के विद्वान वकील ने सुनवाई के लिए इस पुनरीक्षण को स्वीकार करने के प्रस्ताव का विरोध किया है। उन्होंने आग्रह किया कि **ओम प्रकाश अग्रवाल** में सिद्धांत, अन्यथा अच्छी तरह से सुलझा हुआ है, यह है कि आर्थिक क्षेत्राधिकार के रूप में आपत्ति को जल्द से जल्द लिया जाना चाहिए, न कि मुकदमे के बाद। वह प्रस्तुत करता है कि इस मामले में, मुकदमा समाप्त हो गया है और निर्णय दिया जाना है। इसलिए, इस स्तर पर किरायेदार द्वारा आर्थिक क्षेत्राधिकार का मुद्दा नहीं उठाया जा सकता है, जो किसी भी मामले में उसने बेदखली के मुकदमे में फैसले में देरी करने के लिए दुर्भावनापूर्ण रूप से उठाया है।

10. इस न्यायालय ने सभी पक्षों के लिए विद्वान वकील द्वारा दी गई प्रस्तुतियों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और प्रस्ताव के समर्थन में रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

11. पहले उदाहरण में, पट्टे के निर्धारण के बाद पट्टेदार द्वारा बेदखली के लिए मुकदमों की कोशिश करने का अधिकार न्यायाधीश, लघु कारण न्यायालय को उत्तर प्रदेश नागरिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 1972 (1972 का उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 37) द्वारा राष्ट्रपति की सहमति से राज्य विधानमंडल द्वारा अधिनियमित किया गया था। ऐसा इसलिए था, क्योंकि केंद्रीय क़ानून के तहत, लघु कारण न्यायालय को 1887 के अधिनियम की दूसरी अनुसूची के खंड (4) के आधार पर अचल संपत्ति के कब्जे के लिए या ऐसी संपत्ति में हित की वसूली के लिए एक मुकदमे पर विचार करने का अधिकार क्षेत्र प्राप्त नहीं है।

12. पट्टे के निर्धारण के बाद बेदखली के लिए मुकदमों में आम तौर पर शीर्षक के प्रश्न शामिल नहीं होते हैं और इसलिए, इन वादों को एक सारांश प्रक्रिया का पालन करते हुए न्यायालय को सौंपने के लिए राज्य संशोधन लाया गया था। लेकिन, न्यायाधीश, लघु कारण न्यायालय को क्षेत्राधिकार प्रदान करते समय, 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 37 के तहत पेश की गई आर्थिक अधिकारिता 5000/- रुपये के मूल्य तक सीमित थी। 1991 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 17 द्वारा, 15.01.1991 से प्रवर्तित, केंद्रीय अधिनियम की धारा 15 (2) और (3) में संशोधन करते हुए न्यायाधीश, लघु कारण न्यायालय की आर्थिक अधिकारिता को 5000/- रुपये से बढ़ाकर 25,000/- रुपये कर दिया गया था।

13. उत्तर प्रदेश नागरिक विधि (संशोधन) अधिनियम, 1972 ने बंगाल, आगरा और असम नागरिक न्यायालय अधिनियम, 1887 की धारा 25 में भी संशोधन किया, जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य में लागू है, जहां धारा 25 की उपधारा (2) के आधार पर, राज्य सरकार को सरकारी राजपत्र में अधिसूचना द्वारा किसी भी जिला न्यायाधीश या अपर जिला न्यायाधीश को अधिनियम के तहत छोटे कारण न्यायालय के न्यायाधीश के अधिकार क्षेत्र को प्रदान करने का अधिकार दिया गया था मुकदमों के परीक्षण के लिए 1887 का, उनके मूल्य की परवाह किए बिना। बंगाल, आगरा और असम सिविल न्यायालय अधिनियम, 1887 की धारा 25 की उप-धारा (3) के तहत, जैसा कि 1972 के यूपी अधिनियम संख्या 37 द्वारा संशोधित किया गया था, राज्य सरकार को धारा 25 की उपधारा (2) के तहत अपनी शक्तियों को आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा उच्च न्यायालय को सौंपने का अधिकार दिया गया था। इसलिए, संक्षेप में, उच्च न्यायालय द्वारा जारी अधिसूचनाओं द्वारा, सीमित आर्थिक क्षेत्राधिकार से परे और असीमित मूल्य के छोटे कारण के वादों की सुनवाई करने की शक्ति राज्य में अतिरिक्त जिला न्यायाधीशों सहित जिला न्यायाधीशों को प्रदान की गई थी।

14. इसमें कोई संदेह नहीं है कि उत्तर प्रदेश नागरिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2015 द्वारा लाए गए 1887 के अधिनियम में संशोधन के बाद, न्यायाधीश, लघु कारण न्यायालय के आर्थिक अधिकार क्षेत्र को बेदखली के लिए एक सूट सहित एक छोटे कारण के मुकदमे की सुनवाई करने के लिए 25,000 रुपये से बढ़ाकर 1,00,000 रुपये कर दिया गया है। यह 1887 के अधिनियम की धारा 15 की उपधारा (2) के परंतुक में किए गए संशोधन से प्रभावित हुआ है। वर्ष 2008 में 57,060/- रुपए के मूल्यांकन के साथ जिस समय यह वाद संस्थित किया गया था, वह न्यायाधीश, लघु कारण न्यायालय के वित्तीय क्षेत्राधिकार से बाहर था और इसलिए लघु कारण न्यायालय के वित्तीय क्षेत्राधिकार से परे एक वाद में न्यायाधीश, लघु कारण न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग करते हुए जिला न्यायाधीश के समक्ष संस्थित किया गया था। उस समय वित्तीय क्षेत्राधिकार के संबंध में कोई आपत्ति उठाने का भी कोई अवसर नहीं था। हालांकि, वाद में निर्णय 25.07.2016 को अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा दिया गया था और न्यायाधीश, लघु कारण न्यायालय के आर्थिक अधिकार क्षेत्र में उठाया गया था, जिसे उत्तर प्रदेश नागरिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2015 द्वारा 07.12.2015 से लाया

गया था। यह निश्चित रूप से पुनरीक्षणकर्ताओं का मामला नहीं है कि निर्णय 07.12.2015 से पहले सुरक्षित रखा गया था और यह 25.07.2016 को दिया गया था, जिसमें पर्यवेक्षण संशोधन के आधार पर आर्थिक क्षेत्राधिकार पर आपत्ति उठाने का कोई अवसर नहीं था।

15. किरायेदार- पुनरीक्षणकर्ताओं ने अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा इस न्यायालय के समक्ष पारित डिक्री को एससीसी संशोधन संख्या 50 वर्ष 2019 के तहत चुनौती दी। उक्त पुनरीक्षण में निर्णय का एक अवलोकन, जिसकी अनुमति दी गई थी, अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा पारित डिक्री को रद्द करते हुए, यह नहीं दर्शाता है कि इस न्यायालय के समक्ष संशोधन में यह आग्रह किया गया था कि अतिरिक्त जिला न्यायाधीश अब मुकदमे की सुनवाई करने के लिए सक्षम नहीं था, क्योंकि ट्रायल जज के फैसले से पहले आए संशोधन के आधार पर इसे उनके आर्थिक अधिकार क्षेत्र से हटा दिया गया था। रिमांड के बाद भी, यह आक्षेपित आदेश के पढ़ने से प्रतीत नहीं होता है कि किरायेदार ने जल्द से जल्द अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के आर्थिक अधिकार क्षेत्र के बारे में अपनी आपत्तियां उठाई हैं या कम से कम जोर दिया हैं। आक्षेपित आदेश से पता चलता है कि रिमांड के बाद, पूरा मुकदमा चल चुका है और केवल निर्णय दिया जाना बाकी है। यह इस स्तर पर है कि पुनरीक्षणकर्ताओं ने अपने आवेदन दिनांक 17.11.2022 को अग्रसारित है, जिसे ट्रायल जज ने खारिज कर दिया है। क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार या आर्थिक क्षेत्राधिकार की कमी के रूप में आपत्ति जल्द से जल्द ली जानी चाहिए, अन्यथा इसे माफ कर दिया गया माना जाएगा। यह नागरिक प्रक्रिया संहिता की धारा 21 के प्रावधानों का स्पष्ट अभिप्राय है, जो पढ़ता है:

"21. **अधिकारिता पर आपत्तियां-** (1) किसी अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा वाद के स्थान के बारे में कोई आपत्ति तब तक अनुज्ञात नहीं की जाएगी जब तक कि ऐसी आपत्ति प्रथम दृष्टया न्यायालय में यथाशीघ्र संभव अवसर पर न ली गई हो और उन सभी मामलों में जहां ऐसे समझौते पर या उससे पहले मुद्दों का निपटारा कर दिया गया हो, और जब तक कि न्याय की परिणामी विफलता न हुई हो।

(2) अपने अधिकार क्षेत्र की आर्थिक सीमाओं के संदर्भ में एक न्यायालय की क्षमता के बारे में कोई आपत्ति किसी भी अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा अनुमति नहीं दी जाएगी जब तक कि इस तरह की आपत्ति को जल्द से जल्द संभव अवसर पर पहली बार के न्यायालय में नहीं लिया गया था, और, सभी मामलों में जहां मुद्दों का निपटारा किया जाता है, इस तरह के निपटान पर या उससे पहले, और जब तक कि न्याय की विफलता नहीं हुई है।

(3) अपने अधिकार क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं के संदर्भ में निष्पादन न्यायालय की क्षमता के बारे में कोई आपत्ति किसी भी अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा अनुमति नहीं दी जाएगी जब तक कि इस तरह की आपत्ति जल्द से जल्द संभव अवसर पर निष्पादन न्यायालय में नहीं ली गई थी, और जब तक कि न्याय की विफलता नहीं हुई है। (न्यायालय द्वारा जोर)

16. यह सवाल वह था जो सीधे **ओम प्रकाश अग्रवाल** में सुप्रीम कोर्ट के अपने लॉर्डशिप पर विचार करने के लिए आया, जहां यह देखा गया था:

"57. नागरिक प्रक्रिया संहिता की धारा 21 में निहित नीति यह है कि जब किसी न्यायालय द्वारा गुण-दोष के आधार पर मामले का विचारण किया गया हो और निर्णय दिया गया हो, तो इसे विशुद्ध रूप से तकनीकी आधार पर उलट नहीं दिया जाना चाहिए, जब तक कि इसके परिणामस्वरूप न्याय की विफलता न हुई हो। धारा 21 के समान प्रावधान सूट मूल्यांकन अधिनियम, 1887 की धारा 11 और नागरिकप्रक्रिया संहिता की धारा 99 में भी निहित हैं। इस न्यायालय को किरण सिंह बनाम चमन पासवान [किरण सिंह बनाम चमन पासवान, एआईआर 1954 एससी 340] में नागरिक प्रक्रिया संहिता की धारा 21, नागरिक प्रक्रिया संहिता और सूट मूल्यांकन अधिनियम, 1887 की धारा 11 के पीछे के सिद्धांत पर विचार करने का अवसर मिला। निर्णय के पैरा 7 में निम्नलिखित निर्धारित किया गया था: (एआईआर पृष्ठ 342)

"7. ... नागरिक प्रक्रिया संहिता की धारा 21 और 99 और सूट मूल्यांकन अधिनियम की धारा 11 में अंतर्निहित नीति समान है, अर्थात्, जब किसी मामले को अदालत द्वारा गुण-दोष और दिए गए निर्णय के आधार पर विचारित किया गया हो, तो इसे विशुद्ध रूप से तकनीकी आधार पर उलट नहीं दिया जाना चाहिए, जब तक कि इसके परिणामस्वरूप न्याय की विफलता न हुई हो, और विधायिका की नीति क्षेत्रीय और आर्थिक दोनों तरह के अधिकार क्षेत्र पर आपत्तियों को तकनीकी मानने की रही है और अपीलीय अदालत द्वारा विचार करने के लिए खुला नहीं है, जब तक कि योग्यता पर कोई पूर्वाग्रह न हो। इसलिए, अपीलकर्ताओं का तर्क है कि जिला अदालत, मुंगेर के डिक्री और फैसले को शून्य माना जाना चाहिए, सूट मूल्यांकन अधिनियम की धारा 11 के तहत कायम नहीं रह सकता है।

61. हर्षद चिमन लाल मोदी बनाम डीएलएफ यूनिवर्सल लिमिटेड [हर्षद चिमन लाल मोदी बनाम डीएलएफ यूनिवर्सल लिमिटेड, (2005) 7 एससीसी 791] में, इस

न्यायालय ने फिर से धारा 21 और नागरिक प्रक्रिया संहिता के अन्य प्रावधानों पर विचार किया था। पैरा 30 में, निम्नलिखित निर्धारित किया गया है: (एससीसी पीपी 803-04)

"30. ... एक अदालत के अधिकार क्षेत्र को कई श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। महत्वपूर्ण श्रेणियां हैं (i) क्षेत्रीय या स्थानीय क्षेत्राधिकार; (ii) आर्थिक क्षेत्राधिकार; और (iii) विषय-वस्तु पर अधिकार क्षेत्र। जहां तक प्रादेशिक और आथक क्षेत्राधिकार का संबंध है, ऐसे क्षेत्राधिकार पर आपत्ति यथाशीघ्र और किसी भी मामले में मुद्दों के निपटारे के समय या उससे पहले की जानी चाहिए। कानून इस बिंदु पर अच्छी तरह से स्थापित है कि यदि इस तरह की आपत्ति जल्द से जल्द नहीं ली जाती है, तो इसे बाद के चरण में लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। विषय-वस्तु के रूप में क्षेत्राधिकार, हालांकि, पूरी तरह से अलग है और एक अलग पायदान पर खड़ा है। जहां किसी न्यायालय के पास कानून, चार्टर या आयोग द्वारा लगाई गई किसी भी सीमा के कारण वाद के विषय पर कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, वह कारण या मामले को नहीं उठा सकता है। बिना किसी अधिकार क्षेत्र वाली अदालत द्वारा पारित आदेश अमान्य है।

63. अब, इस मामले के तथ्यों पर वापस लौटते हुए अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के दिनांक 22-10-2016 के फैसले से यह स्पष्ट है कि मामले का फैसला करने के लिए अतिरिक्त जिला न्यायाधीश की क्षमता पर कोई आपत्ति किसी भी पक्ष द्वारा नहीं ली गई थी। अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के आर्थिक क्षेत्राधिकार पर कोई आपत्ति नहीं होने के कारण, नागरिक प्रक्रिया संहिता की धारा 21 लागू होती है। धारा 21 की उपधारा (2) में प्रावधान है कि अधिकारिता की आर्थिक सीमाओं के संदर्भ में न्यायालय की सक्षमता के बारे में कोई आपत्ति किसी अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा तब तक नहीं दी जाएगी जब तक कि उसमें उल्लिखित शर्तें पूरी न हो जाएं। अदालत की क्षमता के संबंध में प्रतिवादी किरायेदार द्वारा कोई आपत्ति नहीं उठाई गई है। उपधारा (2) पुनरीक्षक को न्यायालय की सक्षमता के संबंध में कोई आपत्ति उठाने से रोकती है और इसके अतिरिक्त पुनरीक्षण न्यायालय को वाद का निर्णय करने के लिए अपर जिला न्यायाधीश के न्यायालय की सक्षमता के संबंध में ऐसी आपत्ति की अनुमति नहीं देनी चाहिए थी। प्रतिवादी किरायेदार ने अदालत की क्षमता के बारे में कोई आपत्ति नहीं उठाई और योग्यता के आधार पर अपने पक्ष में निर्णय प्राप्त करने का मौका लिया, उसे पलटने और यह तर्क देने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि अतिरिक्त जिला न्यायाधीश की अदालत के पास छोटे कारण के मुकदमे की कोशिश करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था और निर्णय अधिकार क्षेत्र और शून्यता के बिना है। धारा 21 को असफल पक्षकार, जिसने न्यायालय की सक्षमता के संबंध में कोई आपत्ति नहीं उठाई और मामले की गुण-दोष के आधार पर सुनवाई की अनुमति दी, द्वारा ऐसी किसी भी आपत्ति को विफल करने के लिए अधिनियमित किया गया है। इसके अलावा, अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा छोटे कारण के मुकदमे का फैसला करने में, किरायेदार ने यह साबित नहीं किया है कि न्याय की विफलता हुई है।

64. उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21 का विज्ञापन नहीं किया है। शोभित निगम [शोभित निगम बनाम बटुलान, 2016 एससीसी ऑनलाइन ऑल 2605: (2016) 119 एएलआर 826] के फैसले में भी, धारा 21 के प्रभाव पर न तो विचार किया गया और न ही उठाया गया। धारा 21 में एक विधायी नीति है जिसका एक उद्देश्य औरलक्ष्य है। इसका उद्देश्य तकनीकी आपत्तियों के आधार पर गुणावगुण के आधार पर मामलों के पुन विचारण से बचना भी है।

65. उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश का एक और निर्णय है जिसका उल्लेख प्रतिवादी के विद्वान वकील द्वारा किया गया है अर्थात 2016 का एससीसी संशोधन संख्या 305, तेजुमल बनाम मो. सरफराज [तेजूमल बनाम मो. सरफ़राज़, 2016 एससीसी ऑनलाइन ऑल2606: (2017) 121 एएलआर 392]। उपरोक्त मामले में, विद्वान एकल न्यायाधीश ने अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय दिनांक 12-8-2016 के खिलाफ धारा 25 के तहत पुनरीक्षण की अनुमति इस आधार पर दी थी कि अतिरिक्त जिला न्यायाधीश का निर्णय अधिकार क्षेत्र के बिना था। निर्णय के पैरा 7 से 9 में, उच्च न्यायालय ने आर.एस.डी.वी. फाइनेंस कंपनी (पी) लिमिटेड बनाम श्री वल्लभ ग्लास वर्क्स लिमिटेड [आर.एस.डी.वी. फाइनेंस कंपनी (पी) लिमिटेड बनाम श्री वल्लभ ग्लास वर्क्स लिमिटेड, (1993) 2 एससीसी 130] में इस न्यायालय के निर्णय पर ध्यान दिया था, जिसमें यह माना गया था कि नागरिक प्रक्रिया संहिता की धारा 21 (1) के मद्देनजर, मुकदमा करने के स्थान के बारे में आपत्ति संबंधित पक्ष द्वारा पहली बार की अदालत में जल्द से जल्द संभव अवसर पर ली जानी चाहिए और इस आशय की आपत्ति अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा अनुमति नहीं दी जाएगी, लेकिन किरण सिंह बनाम चमन पासवान [किरण सिंह बनाम चमन पासवान एआईआर 1954 एससी 340], के मामले में निर्णय दिया है कि अधिकारिता की त्रुटि, चाहे वह आथक हो या प्रादेशिक या विषय-वस्तु की, को ठीक नहीं किया जा सकता है और कार्यवाही के किसी भी चरण में स्थापित किया जा सकता है।

69. इस प्रकार हम मानते हैं कि जब अतिरिक्त जिला न्यायाधीश की अदालत इस आधार पर प्रश्नगत छोटे कारणों के मुकदमे का फैसला करने के लिए सक्षम नहीं थी कि आर्थिक क्षेत्राधिकार 7-12-2015 से छोटे कारणों के न्यायालय यानी सिविल जज, सीनियर डिवीजन में निहित है, तो सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21 के प्रावधानों के मद्देनजर उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के

प्रयोग में अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के फैसले में कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया था।

17. कानून की उपरोक्त स्थिति यह स्पष्ट करती है कि 'आर्थिक क्षेत्राधिकार' और 'क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार' 'विषय वस्तु से संबंधित क्षेत्राधिकार' या अधिकार क्षेत्र की अंतर्निहित कमी से अलग हैं। पहले दो को जल्द से जल्द उठाया जाना चाहिए; अन्यथा, इन्हें माफ कर दिया जाना चाहिए। जैसा कि ओम प्रकाश अग्रवाल मामले में सुप्रीम कोर्ट ने टिप्पणी की थी कि विधायी नीति तकनीकी आपत्ति के आधार पर योग्यता के आधार पर समाप्त मुकदमे को विफल करने की नहीं है, जैसे कि आर्थिक या क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार। यहां ठीक यही मामला है, जहां किरायेदार ने मुकदमे को सभी चरणों के माध्यम से आगे बढ़ने की अनुमति दी है और एक स्तर पर आर्थिक अधिकार क्षेत्र की कमी के बारे में आपत्ति ली है, जब रिमांड के बाद, मुकदमा समाप्त हो गया है और निर्णय पहले से ही डिलीवरी की निहाई पर है।

18. इस न्यायालय की सुविचारित राय में, इस संशोधन में कोई योग्यता नहीं है। यह **विफल रहता** है और **खारिज किया जाता** है।

(2023) 1 ILRA 122
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांकः इलाहाबाद 03.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

सिविल विविध स्थानांतरण आवेदन संख्या 68/2022
स्थानांतरण आवेदन (सिविल) संख्या 278/2016
स्थानांतरण आवेदन (सिविल) संख्या 394/2022
स्थानांतरण आवेदन (सिविल) संख्या 466/2022
स्थानांतरण आवेदन (सिविल) संख्या 505/2022
स्थानांतरण आवेदन (सिविल) संख्या 778/2022
और
स्थानांतरण आवेदन (सिविल) संख्या 809/2022

श्रीमती जुगलेश कुमारी एवं अन्य ...आवेदक
बनाम
इफ्को टोकियो जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड,आगरा .... प्रत्यार्थियों

आवेदकों के लिए अधिवक्ता:
श्री प्रशांत शुक्ला
प्रत्यार्थियों के लिए अधिवक्ता:

ए. सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 24(1)(ख) और 24 स्थानांतरण आवेदन-पोषणीयता- कुछ प्रश्न उच्च न्यायपीठ द्वारा विचार के लिए भेजे गए- (1) क्या मोटर वाहन अधिनियम, 1988 के तहत गठित न्यायाधिकरण संहिता की धारा 24(1)(ख) के तहत स्थानांतरण की शक्ति के प्रयोग के लिए उच्च न्यायालय के अधीनस्थ एक न्यायालय है?(2) क्या कमल यादव मामले में पूर्ण पीठ द्वारा निर्धारित सिद्धांत के विस्तार से मोटर वाहन अधिनियम, 1988 के तहत गठित एक न्यायाधिकरण संहिता की धारा 24(1)(ख) के प्रयोजन के लिए उच्च न्यायालय के अधीनस्थ एक न्यायालय है? (3) क्या शंकर लाल जयसवाल के मामले में एकल न्यायाधीश का निर्णय सही ढंग से कानून बनाता है कि मोटर वाहन अधिनियम, 1988 के तहत गठित एक न्यायाधिकरण संहिता की धारा 24 के अर्थ में उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय नहीं है? उच्च न्यायपीठ के फैसले तक दावा न्यायाधिकरण के समक्ष लंबित याचिकाओं में आगे की कार्यवाही पर अंतरिम रोक रहेगी। (पैरा 1 से 8) (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. शंकर लाल जयसवाल बनाम आशा देवी एवं अन्य। (2018) एससीसी ऑनलाइन सभी 2545: (2019) 132 एएलआर 809

2. कमला यादव बनाम श्रीमती सुषमा देवी एवं अन्य (2004) 22 एलसीडी 40

3. श्रीमती अफसरी बेगम बनाम ओरिएंटल फायर एंड जनरल आईएनएस कंपनी एवं अन्य (1979) एससीसी ऑनलाइन सभी 191: 1979 एडब्ल्यूसी 438

4. कमला यादव बनाम श्रीमती सुषमा देवी अन्य 2004 (22) एलसीडी 40

(माननीय न्यायाधीश जे.जे. मुनीर द्वारा दिया गया)

1. सिविल प्रक्रिया संहिता, 19081 की धारा 24 के तहत इन आवेदनों की पोषणीयता का प्रश्न ***शंकर लाल जयसवाल बनाम आशा देवी और अन्य*** में विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले के मद्देनजर उठा है।

2. ***शंकर लाल जयसवाल*** (पूर्वोक्त) मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश ने माना है कि मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण के समक्ष लंबित दावा याचिका को स्थानांतरित करने के लिए संहिता की धारा 24 के तहत एक आवेदन इस न्यायालय में नहीं आएगा। उक्त निर्णय में

यह माना गया है कि मोटर वाहन अधिनियम, 19883 के तहत गठित न्यायाधिकरण, संहिता की धारा **24(1)(ख)** के अर्थ के तहत, उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय नहीं है। अधिनियम के तहत गठित एक मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण से दूसरे में दावा याचिका स्थानांतरित करने के लिए कोई स्थानांतरण आवेदन इस न्यायालय में नहीं आएगा। **शंकर लाल जयसवाल** के बारे में जो कुछ कहा गया, उसे विस्तार से उद्धृत करना लाभदायक होगा, जो इस प्रकार है:

3. मोटर दुर्घटना दावा याचिका मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण के समक्ष दायर की जाती है, जिसका गठन राज्य सरकार द्वारा मोटर वाहन अधिनियम, 1988 (इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 165 में निहित प्रावधानों के अनुसार किया जाता है। यह धारा राज्य सरकार को अधिसूचना द्वारा गठन करने का अधिकार देती है, अधिसूचना में निर्दिष्ट क्षेत्र के लिए एक या अधिक मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, मोटर वाहन के उपयोग से उत्पन्न होने वाले व्यक्तियों की मृत्यु या शारीरिक चोट या किसी तीसरे पक्ष की किसी संपत्ति को नुकसान से संबंधित दुर्घटनाओं के संबंध में मुआवजे के दावों का फैसला करने के लिए , इसलिए उत्पन्न हो रहा है या दोनों।

4. यह धारा दावा न्यायाधिकरण के सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए किसी व्यक्ति की योग्यता भी प्रदान करती है।

5. धारा 165 की उपधारा 4 में कहा गया है कि जहां एक क्षेत्र के लिए दो या दो से अधिक दावा न्यायाधिकरण गठित किए जाते हैं, राज्य सरकार, एक विशेष या सामान्य आदेश द्वारा, उनके बीच व्यवसाय के वितरण को विनियमित कर सकती है।

6. अधिनियम की धारा 166(2) के अनुसार, एक दावेदार दावा न्यायाधिकरण के समक्ष दावा याचिका दायर कर सकता है।

(I) उस क्षेत्र पर अधिकार क्षेत्र होना जिसमें दुर्घटना हुई हो या

(II) दावा न्यायाधिकरण जिसकी स्थानीय सीमा के भीतर दावेदार रहता है या व्यवसाय करता है

(III) उस स्थानीय सीमा के भीतर जिसके अधिकार क्षेत्र में प्रत्यर्थि रहता है।

7. धारा 169 धारा 165 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए अधिसूचना द्वारा राज्य सरकार द्वारा गठित दावा न्यायाधिकरणों की प्रक्रिया और शक्तियां प्रदान करती है।

8. इसमें प्रावधान है कि दावा न्यायाधिकरण इस उद्देश्य के लिए बनाए गए नियमों के अधीन ऐसी सारांश प्रक्रिया का पालन कर सकता है, जो उचित हो। धारा 169 की उप-धारा 2 में प्रावधान है कि दावा न्यायाधिकरण के पास शपथ पर साक्ष्य लेने, गवाहों की उपस्थिति को लागू करने और दस्तावेजों और भौतिक वस्तुओं की खोज और उत्पादन के लिए मजबूर करने के उद्देश्य से सिविल न्यायालय की सभी शक्तियां होंगी।

9. इसे दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 195 और अध्याय 26 के प्रयोजनों के लिए एक सिविल न्यायालय भी माना जाता है।

10. धारा 175 विशेष रूप से उस क्षेत्र के लिए सिविल न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र पर रोक लगाती है जहां धारा 165 के तहत राज्य सरकार द्वारा दावा न्यायाधिकरण का गठन किया गया है।

11. धारा 176 राज्य सरकार को नियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है। इसमें यह भी प्रावधान है कि सिविल न्यायालय की शक्तियों के संबंध में नियम बनाए जा सकते हैं, जिनका प्रयोग दावा न्यायाधिकरण द्वारा किया जा सकता है।

12. उपरोक्त नियम बनाने की शक्ति का प्रयोग करते हुए, उ.प्र. मोटर वाहन नियमावली, 1998 बनाई गई है। इसका नियम 221 इस प्रकार है:--

*"221. **कुछ मामलों में लागू होने वाली सिविल प्रक्रिया संहिता।** - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की पहली अनुसूची के निम्नलिखित प्रावधान, जहां तक संभव हो, दावा न्यायाधिकरण के समक्ष कार्यवाही पर लागू होंगे, अर्थात् नियम 9 से 13 और आदेश V के 15 से 30; आदेश XIII के नियम 3 से 10, आदेश XVII के नियम 2 से 21; और आदेश XXIII के नियम 1 से 3;*

13. ऊपर देखे गए प्रावधानों को संयुक्त रूप से पढ़ने से यह पता चलता है कि मोटर वाहन अधिनियम अपने आप में एक पूर्ण संहिता है। नियम 221 को पढ़ने से यह भी स्पष्ट है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 24 मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण के समक्ष मामलों पर लागू नहीं होती है।

14. धारा 24, सिविल प्रक्रिया संहिता, जो इन स्थानांतरण आवेदनों में लागू की गई है, उच्च न्यायालय या जिला न्यायाधीश को उनके अधीनस्थ किसी भी न्यायालय में लंबित किसी मुकदमे, अपील या कार्यवाही को स्थानांतरित करने और वापस लेने की सामान्य शक्ति प्रदान करती है।

15. धारा **24(1)(ख)** में आने वाले शब्द "इसके अधीन" शब्द, मेरी सुविचारित राय में, मौजूदा विवाद का निर्णय करने के लिए महत्वपूर्ण हैं।

16.

17. चूँकि मोटर वाहन अधिनियम के प्रावधानों के तहत राज्य सरकार की एक अधिसूचना द्वारा दावा न्यायाधिकरण बनाया जाता है, यह नहीं कहा जा सकता है कि ऐसा न्यायाधिकरण धारा 24 सिविल प्रक्रिया संहिता में आने वाले शब्द के अर्थ के भीतर उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय है, इस तथ्य के बावजूद कि दावा न्यायाधिकरण का एक पुरस्कार धारा 173 के तहत उच्च न्यायालय में अपील करने योग्य है।

2. अकेले बैठे-बैठे मेरे सामने ये मामला आया है. अपने बारे में बोलते हुए, मैं **शंकर लाल जयसवाल** मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश के तर्क और निष्कर्ष दोनों से अधिक सहमत नहीं हो सकता था। लेकिन, एक कठिनाई उत्पन्न हो गई है क्योंकि, इस न्यायालय के पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में, यही प्रश्न **कमला यादव बनाम श्रीमती सुषमा देवी और अन्य4** में पूर्ण पीठ के समक्ष उठा था। जहां पूर्ण पीठ के पास अपने आधिपत्य पर विचार के लिए निम्नलिखित प्रश्न थे: क्या मोटर वाहन अधिनियम के तहत गठित दावा न्यायाधिकरण सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अर्थ के तहत एक अधीनस्थ सिविल न्यायालय है? क्या सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 3 के प्रावधान को ध्यान में रखते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रयोजनों के लिए केवल धारा 3 में संदर्भित न्यायालय ही उच्च न्यायालय और जिला न्यायालय, जैसा भी मामला हो, के अधीनस्थ सिविल न्यायालय हैं और कोई अन्य यानी प्राधिकरण और मोटर वाहन अधिनियम के तहत गठित न्यायाधिकरण संहिता की धारा 115 के प्रयोजन के लिए "उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय" अभिव्यक्ति के ढांचे के भीतर नहीं आते हैं? क्या मुसामंत अफसरी बेगम बनाम ओरिएंटल फायर एंड जनरल इंश्योरेंस कंपनी (1979 एएलजे पृष्ठ 1168) में डिवीजन बेंच द्वारा व्यक्त विचार इस आशय का है कि मोटर वाहन अधिनियम के तहत गठित दावा न्यायाधिकरण उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय है और इसके आदेश संहिता की धारा 115 के तहत उच्च न्यायालय के पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के लिए उत्तरदायी हैं, जो नागरिक प्रक्रिया संहिता की धारा 3 के साथ-साथ मोटर वाहन अधिनियम के प्रावधानों के साथ पढ़ी गई धारा 115 के प्रावधानों के अक्षरशः और भावना के अनुरूप है और विशेष रूप से धारा 110-ग(2) मोटर वाहन अधिनियम, यदि नहीं, तो क्या वर्तमान संशोधन इस न्यायालय में कायम रखने योग्य है? यदि नहीं, तो क्या यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उस पर विचार करने, सुनवाई करने और उसका निपटान करने के लिए स्वतंत्र है?

3. इन प्रश्नों का उत्तर पूर्ण पीठ द्वारा इस प्रकार दिया गया:

4.

प्रश्न संख्या 1 पर हमारा उत्तर सकारात्मक है, कि संशोधन मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण के आदेश के विरुद्ध है। प्रश्न संख्या 2 पर हमारा उत्तर यह है कि धारा 3 सिविल प्रक्रिया संहिता में उल्लिखित न्यायालय एकमात्र सिविल न्यायालय नहीं हैं, धारा 115 सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रयोजनों के लिए अन्य न्यायालय और न्यायाधिकरण भी उच्च न्यायालय के अधीनस्थ सिविल न्यायालय हो सकते हैं। प्रश्न संख्या 3 पर हमारा उत्तर मुसमात अफसरी बेगम बनाम ओरिएंटल फायर एंड जनरल एश्योरेंस कंपनी 1979 एएलजे 1168, के मामले में दिया गया निर्णय है सही निर्णय लिया गया है और अनुमोदित किया गया है। इसलिए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 को लागू करने का सवाल ही नहीं उठता।

4. यदि 1988 अधिनियम के तहत गठित मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण संहिता की धारा 115 के प्रयोजन के लिए इस न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय है, मुझे कोई कारण नहीं दिखता कि यह संहिता की धारा **24(1)(ख)** के प्रयोजन के लिए अधीनस्थ क्यों नहीं होगा। **शंकर लाल जयसवाल** मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश का ध्यान **कमला यादव** मामले में पूर्ण पीठ के आयोजन की ओर आकर्षित नहीं हुआ और इस संबंध में कोई तर्क दिया गया प्रतीत नहीं होता है। विद्वान एकल न्यायाधीश की राय अपने तर्कों पर कितनी भी ठोस क्यों न हो, **कमला यादव** मामले में बाध्यकारी मिसाल से बाहर आना मुश्किल है। जो प्रश्न संख्या 2 के उत्तर में मानता है कि संहिता की धारा 3 में उल्लिखित न्यायालय न केवल सिविल न्यायालय हैं, बल्कि संहिता की धारा 115 के प्रयोजन के लिए न्यायाधिकरण उच्च न्यायालय के अधीनस्थ सिविल न्यायालय भी हो सकते हैं। पूर्ण पीठ ने **श्रीमती अफसरी बेगम बनाम ओरिएंटल फायर एंड जनरल इंश्योरेंस कंपनी और अन्य5** में पिछली डिवीजन बेंच के गठन को भी मंजूरी दे दी। जहां डिवीजन बेंच ने विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा संदर्भित प्रश्न का उत्तर इस आशय से दिया कि मोटर वाहन अधिनियम, 1939 के तहत गठित दावा न्यायाधिकरण एक सिविल न्यायालय है जो संहिता की धारा 115 के तहत इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के लिए उत्तरदायी है। **अफसरी बेगम** (पूर्वोक्त) में यह आयोजित किया गया था:

5. धारा 110- घ दावा न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए पुरस्कारों के खिलाफ उच्च न्यायालय को अपीलीय क्षेत्राधिकार प्रदान करती है, बशर्ते अपील में विवाद की राशि 2,000/- रुपये से कम न हो। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विधायिका ने दावा न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए निर्णयों के विरुद्ध उच्च न्यायालय को अपीलीय क्षेत्राधिकार प्रदान किया है। इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि दावा न्यायाधिकरण, कानून की नजर में, नागरिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाला न्यायालय है। यदि अधिकरण एक सिविल न्यायालय है तो यह नहीं कहा जा सकता कि वह उच्च न्यायालय के अधीनस्थ एक सिविल न्यायालय था।

6. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह कहा गया है कि उच्च न्यायालय के पास पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार उसके अपीलीय क्षेत्राधिकार का एक हिस्सा है (देखें शंकर राम चंद्र अभयंकर बनाम कृष्णाजी दत्तात्रेय बापट [(1969) 2 एससीसी 74: ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 1.] उस मामले में, यह देखा गया: "सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 क्षेत्राधिकार की सीमाओं को सीमित करती है लेकिन जिस क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जा रहा है वह एक वरिष्ठ न्यायालय के रूप में उच्च न्यायालय के सामान्य अपीलीय क्षेत्राधिकार का एक हिस्सा है। यह क़ानून द्वारा प्रदत्त शक्ति

का प्रयोग करने के तरीकों में से केवल एक है, मूल रूप से और मौलिक रूप से यह उच्च न्यायालय का अपीलीय क्षेत्राधिकार है जिसे व्यापक और बड़े अर्थों में लागू और प्रयोग किया जा रहा है।"

7. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि दावा न्यायाधिकरण एक सिविल न्यायालय होने के नाते सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के तहत उच्च न्यायालय के पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के लिए उत्तरदायी था क्योंकि यह उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय था।

8. इसलिए, हम हमारे द्वारा संदर्भित प्रश्न का उत्तर यह मानते हुए देते हैं कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के तहत दावा न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश के खिलाफ एक संशोधन कायम रखा जा सकता है। ऐसा न्यायाधिकरण सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अर्थ के अंतर्गत उच्च न्यायालय के अधीनस्थ एक न्यायालय है।

5. अकेले बैठकर, मेरे लिए शंकर लाल जयसवाल के विद्वान एकल न्यायाधीश के विपरीत विचार करना उचित नहीं होगा। पूर्ण पीठ ने संहिता की धारा 115 के तहत इस न्यायालय के क्षेत्राधिकार के प्रयोग के संबंध में अधिनियम के तहत गठित न्यायाधिकरणों के संबंध में संहिता की धारा **24(1)(ख)** के तहत स्थानांतरण की शक्ति के संबंध में जो सिद्धांत निर्धारित किया है, उसका विस्तार किया गया है।

6. तदनुसार, निम्नलिखित प्रश्न एक उच्च न्यायपीठद्वारा विचार के लिए भेजे जाते हैं:

(1). क्या मोटर वाहन अधिनियम, 1988 के तहत गठित न्यायाधिकरण सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा **24(1)(ख)** के तहत स्थानांतरण की शक्ति के प्रयोग के लिए उच्च न्यायालय का अधीनस्थ न्यायालय है?

(2). क्या यह कमला यादव बनाम श्रीमती सुषमा देवी मामले में पूर्ण पीठ द्वारा निर्धारित सिद्धांत के विस्तार द्वारा है और अन्य, 2004 (22) एलसीडी 40 मोटर वाहन अधिनियम, 1988 के तहत गठित एक न्यायाधिकरण, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा **24(1)(ख)** के प्रयोजन के लिए उच्च न्यायालय के अधीनस्थ एक न्यायालय है?

(3). क्या शंकर लाल जयसवाल बनाम आशा देवी एवं अन्य में विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्णय, (2018) एससीसी ऑनलाइन सभी 2545: (2019) 132 एएलआर 809 एक न्यायाधिकरण को सही ढंग से रखने में कानून निर्धारित करता है मोटर वाहन अधिनियम, 1988 के तहत गठित न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 24 के अर्थ में उच्च न्यायालय के अधीनस्थ नहीं है?

7. उच्च न्यायपीठ के निर्णय तक, इन आवेदनों की विषय वस्तु दावा न्यायाधिकरण के समक्ष लंबित याचिकाओं में आगे की कार्यवाही पर अंतरिम रोक रहेगी।

8. रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह कागजात को उच्च न्यायपीठ के समक्ष रखे जाने के लिए आधिपत्य मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखे।

(2023) 1 ILRA 127
मूल न्यायाधिकार
सिविल पक्ष
दिनांकः लखनऊ 22.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा,
माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी,

विशेष अपील त्रुटि संख्या 5/2023

उ.प्र. राज्य एवं अन्य ......अपीलकर्ता
बनाम
सी/एम, सेठ जयपुरिया स्कूल, लखनऊ .. प्रत्यार्थि

अपीलकर्ताओं के लिए अधिवक्ता :
मुख्य स्थायी अधिवक्ता

प्रत्यार्थि के लिए अधिवक्ता :
सोम कार्तिक शुक्ला, अशोक कुमार सिंह

ए. प्रक्रियात्मक कानून - विशेष अपील - विलंब - क्षमा - उदार दृष्टिकोण अपनाने का सिद्धांत – प्रयोज्यता - माना गया, जब तक देरी को माफ करने के लिए न्यायालय की शक्तियों को प्रतिबंधित करने वाला कोई विशिष्ट वैधानिक प्रावधान नहीं है, तब तक न्यायालय को देरी के लिए दिखाए गए कारण की पर्याप्तता की जांच करते समय उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और सरकार के मामले में सबूत के सख्त मानक अपनाने से, जो अपने अधिकारियों के कार्यों पर निर्भर है, जिनका अक्सर इसके लेनदेन में कोई व्यक्तिगत हित नहीं होता है, न्याय की गंभीर विफलता का कारण बन सकता है और इसलिए, ऐसे मामलों में राज्य के लिए कुछ निश्चित अक्षांश की अनुमति है। (पैरा 17)

विशेष अपील दाखिल करने में हुआ विलंब माफ किया गया। (ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड एवं अन्य बनाम सुब्रत बोरा चौलेक एवं अन्य, 2010 14 एससीसी 419

ईशा भट्टाचार्जी बनाम एमजी कमेटी ऑफ रघुनाथपुर नफ़र, 2013 12 एससीसी 649

नेशनल स्पॉट एक्सचेंज लिमिटेड बनाम अनिल कोहली, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 716

मध्य प्रदेश राज्य बनाम भेरूलाल, 2020 10 एससीसी 654

उ.प्र. राज्य बनाम सभा नारायण, 2022 9 एससीसी 266

भारत संघ बनाम विष्णु अरोमा पाउचिंग (पी) लिमिटेड; 2022 9 एससीसी 263

नेशनल स्पॉट एक्सचेंज लिमिटेड बनाम अनिल कोहली, डुनार फूड्स लिमिटेड के लिए रेजोल्यूशन प्रोफेशनल; 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 716

मध्य प्रदेश राज्य बनाम भेरूलाल; (2020) 10 एससीसी 654

उ.प्र. राज्य बनाम सभा नारायण; (2022) 9 एससीसी 266

भारत संघ बनाम विष्णु अरोमा पाउचिंग (पी) लिमिटेड; (2022) 9 एससीसी 263

अंतियूर नगर पंचायत बनाम जी. अरुमुगम; (2015) 3 एससीसी 569

इंडियन ऑयल कॉरपोरेशन लिमिटेड वीएसएस उबरटा बोराह चौलेक; (2010) 14 एससीसी 419

ईशा भट्टाचार्जी बनाम रघुनाथपुर नफ़र अकादमी; (2013) 12 एससीसी 649

(माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा और
माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी, द्वारा दिया गया,)

सिविल प्रकीर्ण आवेदन संख्या 1/2023
(विलंब माफी के लिए आवेदन)

राज्य-अपीलकर्ता के लिए अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री अमिताभ कुमार राय और श्री प्रशांत चंद्रा, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता को श्री अंशुमान सिंह, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता, की सहायता से सुना गया।

प्रस्तुत आवेदन के माध्यम से, अपीलकर्ता-उत्तर प्रदेश राज्य विशेष अपील दायर करने में 65 दिनों की देरी के लिए माफी मांग रहा है।

विलंब क्षमा के लिए दायर आवेदन के समर्थन में दायर शपथ पत्र में, यह कहा गया है कि रिट सी संख्या 522/2022 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.09.2022 के माध्यम से, अपीलकर्ताओं को दो महीने की अवधि के भीतर प्रत्यार्थि द्वारा मांगे गए प्रवेश के लिए अनापत्ति प्रमाण पत्र देने का निर्देश दिया गया था। रिट-सी संख्या 522/2022 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 27.09.2022 की एक प्रति प्रत्यार्थि /स्कूल के प्रबंधक द्वारा अपने प्रतिनिधित्व दिनांक 12.10.2022 के साथ दी गई थी। 05.11.2022 को नामित क्षेत्रीय समिति की बैठक हुई और विचार-विमर्श के बाद 27.09.2022 के फैसले और आदेश को चुनौती देते हुए एक विशेष अपील दायर करने का निर्णय लिया गया। दिनांक 05.11.2022 को ही राज्य सरकार के साथ-साथ राज्य सरकार के मुख्य स्थायी अधिवक्ता को अपनी कानूनी राय देने के लिए एक पत्र भेजा गया था। मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने पत्र दिनांक 18.11.2022 के माध्यम से अपनी राय दी, जो 23.11.2022 को संयुक्त शिक्षा निदेशक, के कार्यालय में प्राप्त हुआ। संयुक्त निदेशक ने उसी तिथि को पत्र राज्य सरकार को भेजकर विशेष अपील दायर करने की अनुमति मांगी।

हलफनामे में आगे कहा गया है कि 08.11.2022 को राज्य सरकार ने निदेशक शिक्षा (माध्यमिक) उ.प्र., से आधार के संबंध में विवरण मांगा और निर्णय और आदेश दिनांक 27.09.2022 को चुनौती देने का आधार। संयुक्त शिक्षा निदेशक, ने उपरोक्त पत्र का उत्तर अगले दिन, यानि 9.12.2022 को दिया। 21.12.2022 को राज्य सरकार ने विशेष अपील दायर करने की अनुमति दी और विशेष अपील की तैयारी के लिए मुख्य स्थायी अधिवक्ता को एक पत्र भेजा गया। 23.12.2022 को, विशेष अपील की तैयारी के लिए राज्य सरकार के एक फ़ाइल अधिवक्ता को आवंटित की गई थी और उसके बाद इसे 02.01.2023, यानी अगले कार्य दिवस पर दायर किया गया था।

प्रत्यर्थियों ने विलंब माफी के आवेदन के जवाब में जवाबी हलफनामा दायर किया है। प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री प्रशांत चंद्रा ने प्रति शपथ पत्र के पैराग्राफ संख्या 8 और 9 में की गई दलीलों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। जिसमें यह कहा गया है कि विशेष अपील दायर करना पर्याप्त न्याय के उद्देश्य को आगे नहीं बढ़ाना है बल्कि संयुक्त शिक्षा निदेशक, की व्यक्तिगत शिकायत को हवा देना है; परिसीमा कानून का पालन सभी को करना है और राज्य सरकार किसी भी विशेषाधिकार का दावा नहीं कर सकती क्योंकि वह कानून से ऊपर नहीं है।

राज्य-अपीलकर्ता ने इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य बनाम सुब्रत बोरा चौलेक और अन्य, 2010 14 एससीसी 419, ईशा भट्टाचार्जी बनाम एमजी कमेटी ऑफ रघुनाथपुर नफ़र, 2013 12 एससीसी 649 के मामलों में निर्णयों पर भरोसा किया है।

विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री प्रशांत चंद्रा ने नेशनल स्पॉट एक्सचेंज लिमिटेड बनाम अनिल कोहली, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 716 मध्य प्रदेश राज्य बनाम भेरूलाल, 2020 10 एससीसी 654, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सभा नारायण, 2022 9 एससीसी 266 और यूनियन ऑफ इंडिया बनाम विष्णु अरोमा पाउचिंग (पी) लिमिटेड, 2022 9 एससीसी 263 के मामले में दिए गए निर्णयों पर भरोसा जताया है।

अपीलकर्ता ने अपील दायर करने में देरी की माफी के लिए दायर आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे में दिए गए तथ्यों का विस्तृत विवरण देते हुए एक प्रत्युत्तर हलफनामा दायर किया है और संबंधित दस्तावेजों की प्रतियां प्रत्युत्तर हलफनामे में संलग्न की गई हैं।

हमने मामले के तथ्यों, परिस्थितियों, किए गए निवेदनों और पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है।

नेशनल स्पॉट एक्सचेंज लिमिटेड बनाम अनिल कोहली, डुनार फूड्स रेजोल्यूशन प्रोफेशनल लिमिटेड के लिए 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 716 दिवाला और दिवालियापन संहिता के तहत दायर एक अपील में देरी की माफी के लिए एक आवेदन की अस्वीकृति से उत्पन्न हुआ मामला था और संहिता की धारा 61(2) अपील दायर करने के लिए 30 दिनों की सीमा प्रदान करती है और अपीलीय न्यायाधिकरण को पर्याप्त कारण होने पर 30 दिनों की अवधि में केवल 15 दिनों की देरी को माफ करने की शक्ति दी गई है। 15 दिनों की अवधि से अधिक, 30 दिनों की अवधि से अधिक, अपीलीय न्यायाधिकरण के पास देरी को माफ करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। मामले का निर्णय इस तथ्यात्मक और कानूनी पृष्ठभूमि में किया गया था, जबकि प्रस्तुत मामले में, विशेष अपील दायर करने में देरी को माफ करने की इस न्यायालय की शक्ति पर कोई सीमा नहीं है।

मध्य प्रदेश राज्य बनाम भेरूलाल, (2020) 10 एससीसी 654 में, विशेष अनुमति याचिका 663 दिनों की देरी से दायर की गई थी और देरी का कारण केवल "दस्तावेजों की अनुपलब्धता के कारण" बताया गया था। और दस्तावेजों को व्यवस्थित करने की प्रक्रिया" और यह भी कहा गया कि "नौकरशाही प्रक्रिया काम करती है, यह अनजाने में देरी होती है"। उपरोक्त पृष्ठभूमि में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 25,000/- रुपये का जुर्माना लगाया और इसे जिम्मेदार अधिकारियों से वसूलने का आदेश दिया।

उ.प्र. राज्य बनाम सभा नारायण, (2022) 9 एससीसी 266 में, विशेष अनुमति याचिका 502 दिनों की देरी से दायर की गई थी और न्यायालय ने पाया कि याचिकाकर्ता ने देरी की माफी के लिए किसी ठोस या प्रशंसनीय आधार के बिना, लापरवाही से काम किया है। सुप्रीम कोर्ट ने यहां तक कहा कि "वास्तव में, याचिकाकर्ता की सुस्ती और अक्षमता के अलावा, ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे रिकॉर्ड पर रखा गया हो। " फिर भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 25,000/- रुपये का जुर्माना लगाकर देरी को माफ कर दिया।

भारत संघ बनाम विष्णु अरोमा पाउचिंग (पी) लिमिटेड, (2022) 9 एससीसी 263 में भी, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि "देरी को माफ करने का कोई कारण नहीं है।" माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया कि " इतने सारे कंप्यूटरीकरण के बावजूद राजस्व विभाग की ओर से इस प्रकार की सुस्ती अब स्वीकार्य नहीं है। फिर भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 25,000/- रुपये का जुर्माना लगाकर देरी को माफ कर दिया।

अंतियूर नगर पंचायत बनाम जी. अरुमुगम, (2015) 3 एससीसी 569 में, उच्च न्यायालय ने अपील दायर करने में 1373 दिनों की देरी को माफ कर दिया था और इस आदेश को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी। माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया:- "हम इस बात से संतुष्ट हैं कि देरी केवल जानबूझकर की गई चूक के कारण हुई संबंधित समय पर पंचायत के कार्यकारी अधिकारी। इस प्रक्रिया में और कौन शामिल हैं, यह बिल्कुल स्पष्ट नहीं है।

जैसा कि इस न्यायालय ने नागालैंड राज्य बनाम लिपोक एओ (2005) 3 एससीसी 752 में कहा था, देरी की माफी के लिए आवेदन पर विचार करते समय न्यायालय को हमेशा न्यायोन्मुख दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। यदि न्यायालय आश्वस्त है कि सरकारी अधिकारियों या लोक सेवकों की ओर से देरी करके न्याय को विफल करने का प्रयास किया गया है, व्यापक जनहित को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय को ऐसी स्थितियों में उदार रुख अपनाना चाहिए, देरी को माफ करना चाहिए, चाहे देरी कितनी भी बड़ी क्यों न हो, और मामले का फैसला गुण-दोष के आधार पर करना चाहिए।"

इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम सुब्रत बोरा चौलेक, (2010) 14 एससीसी 419 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि: -

"10. यह स्पष्ट है कि यद्यपि सीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 में न्यायालय की संतुष्टि के लिए देरी की व्याख्या की परिकल्पना की गई है, और राज्य और नागरिक के बीच कोई अंतर नहीं करता है, फिर भी सरकार के मामले में सबूत के सख्त मानक को अपनाना, जो अपने अधिकारियों के कार्यों पर निर्भर है, जिनका अक्सर इसके लेनदेन में कोई व्यक्तिगत हित नहीं होता है, जिससे न्याय की गंभीर हानि हो सकती है और इसलिए, ऐसे मामलों में कुछ निश्चित अक्षांश की अनुमति है।"

ईशा भट्टाचार्जी बनाम रघुनाथपुर नफ़र अकादमी, (2013) 12 एससीसी 649 में, इस विषय पर विभिन्न पूर्व घोषणाओं

पर विचार करने के बाद, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित व्यापक सिद्धांतों को खारिज कर दिया: -

"21.1. (i) देरी की माफी के लिए एक आवेदन से निपटते समय एक उदार, व्यावहारिक, न्याय-उन्मुख, गैर-पांडित्यपूर्ण दृष्टिकोण होना चाहिए, क्योंकि न्यायालयों से अन्याय को वैध बनाने की अपेक्षा नहीं की जाती है, बल्कि वे अन्याय को दूर करने के लिए बाध्य हैं।

21.2. (ii) "पर्याप्त कारण" शब्दों को उनकी उचित भावना, दर्शन में समझा जाना चाहिए और उद्देश्य इस तथ्य पर ध्यान देना है कि ये शब्द मूल रूप से लोचदार हैं और तथ्य-स्थिति प्राप्त करने के लिए उचित परिप्रेक्ष्य में लागू किए जाने चाहिए।

21.3. (iii) पर्याप्त न्याय सर्वोपरि और निर्णायक होने के कारण तकनीकी विचारों पर अनुचित और अनावश्यक जोर नहीं दिया जाना चाहिए।

21.4. (iv) जानबूझकर देरी के कारण के बारे में कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता है, लेकिन अधिवक्ता या वादी की ओर से घोर लापरवाही पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

21.5. (v) देरी की माफी मांगने वाले पक्ष के लिए प्रामाणिकता का अभाव एक महत्वपूर्ण और प्रासंगिक तथ्य है।

21.6. (vi) यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि सख्त सबूत के पालन से सार्वजनिक न्याय प्रभावित नहीं होना चाहिए और सार्वजनिक उपद्रव का कारण बनते हैं क्योंकि न्यायालयों को सतर्क रहने की आवश्यकता होती है ताकि अंतिम स्थिति में न्याय की कोई वास्तविक विफलता न हो।

21.7. (vii) उदारवादी दृष्टिकोण की अवधारणा को तर्कसंगतता की अवधारणा को समाहित करना होगा और इसे पूरी तरह से उन्मुक्त मुक्त खेल की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

21.8. (viii) अत्यधिक देरी और छोटी अवधि या कुछ दिनों की देरी के बीच एक अंतर है, क्योंकि पूर्वाग्रह का पूर्व सिद्धांत आकर्षित होता है जबकि बाद वाले के लिए यह आकर्षित नहीं हो सकता है।

इसके अलावा, पहला सख्त दृष्टिकोण की मांग करता है जबकि दूसरा उदार चित्रण की मांग करता है।

21.9. (ix) किसी पार्टी की निष्क्रियता या लापरवाही से संबंधित उसका आचरण, व्यवहार और रवैया ध्यान में रखे जाने वाले प्रासंगिक कारक हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि मूल सिद्धांत यह है कि न्यायालयों को दोनों पक्षों के संबंध में न्याय के संतुलन के पैमाने पर तौलना आवश्यक है और उक्त सिद्धांत को उदार दृष्टिकोण के नाम पर पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता है।

21.10. (x) यदि दिया गया स्पष्टीकरण मनगढ़ंत है या आवेदन में दिए गए आधार काल्पनिक हैं, तो न्यायालयों को सतर्क रहना चाहिए कि दूसरे पक्ष को अनावश्यक रूप से ऐसे मुकदमे का सामना करने के लिए उजागर न किया जाए।

21.11. (xi) यह ध्यान में रखना होगा कि कोई भी धोखाधड़ी, गलत बयानी या प्रक्षेप से बच नहीं पाता है सीमा के कानून की तकनीकीताओं का सहारा लेना।

21.12. (xii) तथ्यों के संपूर्ण पहलू की सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए और दृष्टिकोण न्यायिक विवेक के प्रतिमान पर आधारित होना चाहिए जो कि पर आधारित है वस्तुनिष्ठ तर्क और व्यक्तिगत धारणा पर नहीं।

21.13. (xiii) राज्य या सार्वजनिक निकाय या सामूहिक उद्देश्य का प्रतिनिधित्व करने वाली इकाई को कुछ स्वीकार्य छूट दी जानी चाहिए।

22. उपरोक्त सिद्धांतों में हम वर्तमान परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए कुछ और दिशानिर्देश जोड़ सकते हैं। वे हैं:

22.1. (क) देरी की माफी के लिए एक आवेदन सावधानीपूर्वक चिंता के साथ तैयार किया जाना चाहिए और अव्यवस्थित तरीके से इस धारणा को बढ़ावा नहीं दे रहा है कि न्यायालयों को इस सिद्धांत के आधार पर देरी को माफ करने की आवश्यकता है कि योग्यता के आधार पर मामले का निर्णय न्याय वितरण प्रणाली के लिए महत्वपूर्ण है।

22.2. (ख) देरी की माफी के लिए एक आवेदन को व्यक्तिगत दर्शन के आधार पर नियमित तरीके से नहीं निपटाया जाना चाहिए जो मूल रूप से व्यक्तिपरक है।

22.3. (ग) यद्यपि न्यायिक विवेक की अवधारणा के संबंध में कोई सटीक सूत्र निर्धारित नहीं किया जा सकता है, फिर भी स्थिरता प्राप्त करने के लिए एक सचेत प्रयास किया गया है और न्यायिक प्रणाली की कॉलेजियमिटी बनाई जानी चाहिए क्योंकि यही अंतिम संस्थागत आदर्श वाक्य है।

22.4. (घ) देरी को गैर-गंभीर मामला मानने की बढ़ती प्रवृत्ति

और, इसलिए, लापरवाही की प्रवृत्ति को लापरवाही से प्रदर्शित किया जा सकता है, निश्चित रूप से, कानूनी मापदंडों के भीतर इस पर अंकुश लगाने की आवश्यकता है।"

(जोर दिया गया)

माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों के अवलोकन से, देरी माफ़ करने को नियंत्रित करने वाला सिद्धांत यह है कि जब तक देरी माफ़ करने के लिए न्यायालय की शक्तियों को प्रतिबंधित करने वाला कोई

विशिष्ट वैधानिक प्रावधान नहीं है, न्यायालय को देरी के लिए दिखाए गए कारण की पर्याप्तता की जांच करते समय उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और सरकार के मामले में सबूत के सख्त मानक अपनाने चाहिए। जो अपने अधिकारियों के कार्यों पर निर्भर है, जिनका अक्सर इसके लेन-देन में कोई व्यक्तिगत हित नहीं होता है, जिससे न्याय में गंभीर गड़बड़ी हो सकती है और इसलिए, ऐसे मामलों में राज्य को कुछ हद तक छूट की अनुमति है।

ऊपर चर्चा किए गए बिंदु पर प्रासंगिक कानून के आलोक में वर्तमान मामले के तथ्यों की जांच करने पर, ऐसा प्रतीत होता है कि विशेष अपील दायर करने में 65 दिनों की देरी हुई है, जिसे "असाधारण देरी" नहीं कहा जा सकता है। देरी की अर्जी के समर्थन में दाखिल हलफनामे के समर्थन में दाखिल किए गए हलफनामे में बताए गए तथ्य जो इस आदेश के पैरा 3 और 4 में निकाले गए हैं, विशेष अपील दायर करने में देरी को माफ करने के लिए पर्याप्त कारण बनाते हैं।

उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, विशेष अपील दायर करने में हुई देरी को माफ किया जाता है और कार्यालय को विशेष अपील के लिए एक नियमित नंबर आवंटित करने का निर्देश दिया जाता है।

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि रिट सी संख्या 522/2022 में पारित आदेश दिनांक 27.09.2020 की अवज्ञा के लिए एक अवमानना याचिका दायर की गई है, जो विशेष अपील में चुनौती के अधीन है।

चूंकि न्याय के हितों को सुरक्षित करने के लिए इस विशेष अपील में आदेश की वैधता की जांच की जा रही है यह प्रदान किया जाता है कि रिट सी संख्या 522/2022 में पारित आदेश दिनांक 27.09.2020 से उत्पन्न अवमानना मामले की आगे की कार्यवाही अपील की लम्बित तक रुकी रहेगी।

कार्यालय को नियमित संख्या आवंटित करने हेतु निर्देशित किया जाता है।

अपील को अंतिम निस्तारण हेतु दिनांक 22.02.2023 को सूचीबद्ध करें।

(2023) 1 ILRA 132
मूल न्यायाधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: लखनऊ 19.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

रिट ए संख्या 23384/2020

डॉ. प्रियंका गर्ग ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता:
गौरव मेहरोत्रा, अभिनीत जयसवाल

अधिवक्ता प्रतिवादी:
सी.एस.सी.

ए. सेवा कानून – त्यागपत्र का अधिकार – याचिकाकर्ता, एक सहायक प्राध्यापक, ने माता होने के कारण बाल देखभाल अवकाश और चिकित्सा अवकाश का दावा किया - इसे न तो मंजूरी दी गई थी और न ही वेतन का भुगतान किया गया था - याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत त्यागपत्र सार्वजनिक हित के आधार पर निरस्त कर दिया गया था - अनुशासनात्मक कार्यवाही भी प्रारंभ हुई थी – वैधता चुनौती दी गई - आयोजित, याचिकाकर्ता को दिनांक 24.02.2020 को त्यागपत्र देने का अधिकार था और उसका त्यागपत्र स्वीकार किया जाना था क्योंकि उस तिथि तक न तो उसके विरुद्ध कोई विभागीय जांच प्रारंभ की गई थी और न ही प्रतिवादियों के समक्ष त्यागपत्र स्वीकार न करने का कोई अन्य कारण उपलब्ध था – उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी को निर्देश दिया कि वह याचिकाकर्ता की सेवा को दिनांक 24.02.2020 तक माने। (पैरा 9 और 13)

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. रिट ए संख्या 4813/2021; डा. सोनल सच्चादेव अरोरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य निर्णित दिनांक 08.03.2022।

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव मेहरोत्रा और श्री अभिनीत जयसवाल तथा राज्य की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया ।

2. भगीरथ प्रयत्नो के उपरान्त भी एक कामकाजी महिला को इस युग में भी कैसे प्रताड़ित किया जा सकता है, वर्तमान वाद के तथ्य इसका ज्वलन्त उदाहरण हैं। याचिकाकर्ता, जो योग्यता से एक डॉक्टर है, ने लोक सेवा आयोग, उ.प्र. द्वारा चयनित होने के बाद नियुक्ति पत्र दिनांक 01.09.2010 के क्रम में लाला लाजपत राय

मेमोरियल मेडिकल कॉलेज, मेरठ में व्याख्याता के रूप में नियुक्ति ग्रहण की और कालान्तर में उन्हें दिनांक19.09.2018 को एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर पदोन्नत किया गया। याचिकाकर्ता को मेरठ मेडिकल कॉलेज से सहारनपुर मेडिकल कॉलेज में स्थानांतरित कर दिया गया। यद्यपि याचिकाकर्ता ने उक्त स्थानांतरण आदेश को चुनौती दी, तथापि वह सफल नहीं हो सकी। इस बीच, राज्य सरकार ने कार्यालय ज्ञापन दिनांक 19.07.2019 के माध्यम से एक व्यवस्था की, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को कुछ अन्य डॉक्टरों के साथ याचिकाकर्ता के विगत नियुक्ति स्थान अर्थात मेरठ मेडिकल कॉलेज के साथ-साथ सहारनपुर मेडिकल कॉलेज में भी अपनी सेवाएं प्रदान करने का निदेश दिया गया।

3. याचिकाकर्ता ने कई आवेदनों के माध्यम से सेवाएं प्रदान करने में अपनी कठिनाई व्यक्त की और अपनी पुत्री, जो ब्रोन्कियल अस्थमा की गम्भीर रोगी है, जिसे बार-बार अस्थमा के दौरे आते है- जिसके लिए टॉन्सिल्लेक्टरी एवं इम्यून थेरेपी के साथ-साथ निरंतर देखभाल और ध्यान की आवश्यकता होती है, की चिकित्सा समस्या के कारण बाल्य देखभाल अवकाश की प्रार्थना की ।

4. याचिकाकर्ता ने आगे तर्क दिया कि न तो उसका अवकाश स्वीकृत किया गया और न ही उसे वेतन का भुगतान किया गया । याचिकाकर्ता ने आगे कहा कि दिनांक 01.01.2020 और 08.01.2020 को उसने प्रतिवादी संख्या 1 के समक्ष अभ्यावेदन प्रस्तुत किया था, जिसमें बताया गया था कि उसके द्वारा बाल्य देखभाल अवकाश और चिकित्सा अवकाश प्रार्थना सहित पाँच आवेदन प्रस्तुत किए गए थे, हालांकि उनमें से किसी पर भी विचार नहीं किया गया। यह भी अवगत कराया गया कि याचिकाकर्ता को जुलाई 2019 से सितंबर 2019 और जनवरी 2020 से 24.02.2020 की अवधि के लिए वेतन का भुगतान भी नहीं किया गया है । याचिकाकर्ता ने दिनांक 01.01.2020 और 08.01.2020 के अभ्यावेदन के माध्यम से प्रतिवादी संख्या 1 से उसके प्रमाणिक और वास्तविक दावे पर विचार करने का अनुरोध किया अन्यथा उसके पास सेवा से त्यागपत्र देने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं बचेगा ।

5. पुनः यह कहा गया कि जब प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा उपरोक्त अभ्यावेदन पर कोई कार्रवाई नहीं की गई, तो याचिकाकर्ता ने अंततः 24.02.2020 को अपना त्यागपत्र दे दिया। चौंकाने वाला तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता द्वारा दिये गए त्यागपत्र को प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा दिनांक 23.05.2020 तक न तो स्वीकार किया गया और न ही अस्वीकार किया गया, जब तक कि उसके त्यागपत्र को स्वीकार करने की 3 महीने की नोटिस अवधि समाप्त नहीं हो गई ।

6. याचिकाकर्ता द्वारा अपना त्यागपत्र देने के दिनांक से 7 माह से अधिक समय बीत जाने के बाद प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा आक्षेपित आदेश दिनांक 25.09.2020 जारी किया गया था, जिसके द्वारा उसके विरुद्ध ड्यूटी से अनुपस्थित रहने के सम्बन्ध में जाँच प्रारम्भ कर दी गयी थी। इसके अतिरिक्त प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा जारी एक अन्य आक्षेपित आदेश 26.09.2020 के माध्यम से, याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए त्यागपत्र को सार्वजनिक हित का हवाला देते हुए खारिज कर दिया गया था ।

7. दिनांक 25.09.2020 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्रारम्भ की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही पर रोक लगाने हेतु जब वर्तमान मामले को दिनांक 02.12.2020 को प्रस्तुत किया गया, तो इस न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया: -

"याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव मेहरोत्रा और राज्य की ओर से अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री पी.के. सिंह को सुना गया ।

अनुलग्नक संख्या 8 का अवलोकन किया गया, जो अन्य बातों के साथ-साथ, याचिकाकर्ता द्वारा अवकाश हेत एक आवेदन है जिसे न तो स्वीकार किया गया और न ही ऐसे किसी आदेश की सूचना देकर इसे खारिज किया गया । उन्होंने उक्त पत्र में उल्लिखित कारणों और अपने बच्चे के स्वास्थ्य आदि से संबंधित अन्य कारणों से दिनांक 24.02.2020 को त्यागपत्र दे दिया । यथाकथित, वह स्थायी रूप से मेरठ छोड़कर सहारनपुर में काम करने में असमर्थ थीं, जहां वह वर्ष 2017 से कार्यरत थी। त्यागपत्र हेतु नोटिस की अवधि दिनांक 24.05.2020 को समाप्त हो गई, इस दौरान उन्हें कोई निर्णय संसूचित नहीं किया गया। ऐसा कहा जाता है कि जुलाई 2020 में महानिदेशक, चिकित्सा शिक्षा और प्रशिक्षण, उ. प्र. लखनऊ ने याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए त्यागपत्र दिनांक 24.02.2020 की सूचना प्रमुख सचिव को दी, जिन्होंने उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक त्यागपत्र नियमावली, 2000 के नियम 4 एवं 5 के अनुसार याचिकाकर्ता के त्यागपत्र को स्वीकार नहीं किए जाने के बावजूद उस पर निर्णय लेने के स्थान पर याचिकाकर्ता के विरुद्ध दिनांक 21.03.2020 से अनुपस्थिति रहने के कारण दिनांक 25.09.2020 को उनके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारम्भ कर दी।

यह सत्य है कि नियमों के अनुसार त्यागपत्र स्वीकार किए जाने पर ही प्रभावी होता है, अन्यथा नहीं और नियम 5 (iii) त्यागपत्र के ऐसे प्रस्ताव को अस्वीकार करने का आधार प्रदान करता है, यदि आवेदक के विरुद्ध कोई जाँच विचाराधीन या लंबित है और यदि सामान्य तौर पर

याचिकाकर्ता अपने द्वारा बताए गए कारणों से काम करने में असमर्थ थी, तो उन्हे कार्य से विरत रहने के बजाय अवकाश ले लेना चाहिए था, किन्तु वाद के सभी तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत, किंचित ही यह ऐसा मामला हो जहाँ ऐसी कार्यवाही जैसा कि यहाँ आक्षेपित है की जानी चाहिए थी। 25.09.2020 को अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारम्भ होने के उपरान्त उनके त्यागपत्र के अनुरोध को अगली तारीख यानी 26.09.2020 को अस्वीकृत कर दिया गया है ।

विरोधी पक्षों को वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर विवादित कार्रवाई को उचित ठहराने अवसर प्रदान किया जाए और उन्हे यह भी बताना चाहिए कि इतना मामूली मामला इस तरह की कार्रवाई में क्यों परिणित होना चाहिए। याचिकाकर्ता को दिनांक 21.03.2020 से प्रभावी अवैतनिक अवकाश स्वीकार कर और उन्हें त्यागपत्र देने की अनुमति दे कर मामले को शांत क्यों नहीं किया जाना चाहिए था ?

विपक्षीगणों द्वारा 10 दिवस की अवधि में शपथ पत्र अवश्य दाखिल किया जाये ।

उन्हे दिनांक 21.03.2020 से नियमानुसार अवकाश हेतु आवेदन करने की अनुमति है, यद्यपि यह अवैतनिक अवकाश होगा। प्रकरण पुनः दिनांक 15.12.2020 को नवीन वाद की भाँति सूचीबद्ध किया जाए ।

सूचीबद्ध होने की अगली तारीख तक याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही स्थगित रहेगी।

इस आदेश की एक प्रति सामान्य शुल्क के भुगतान पर 48 घंटे की अवधि में पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को प्रदान की जाए।"

8. इस न्यायालय द्वारा पारित उपरोक्त आदेश दिनांक 02.12.2020 के माध्यम से विपक्षीगण को अपनी आक्षेपित कार्यवाही को उचित ठहराने का अवसर दिया गया । वैकल्पिक रूप से, इस न्यायालय ने विपक्षीगण को अपने आदेशों पर पुनर्विचार करने का संकेत देते हुए कहा था कि ऐसे मामूली मामले को याचिकाकर्ता को दिनांक 21.03.2020 से प्रभावी अवैतनिक अवकाश और उन्हें त्यागपत्र देने की अनुमति दे कर करके शांत कर दिया जाना चाहिए था । यद्यपि प्रतिशपथ पत्र में इस तथ्य का कोई उल्लेख नहीं है कि विपक्षीगण द्वारा प्रश्नगत आदेशों पर पुनर्विचार किया गया है, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा अपेक्षित था।

9. वाद के तथ्य स्पष्ट रूप से यह इंगित करते हैं कि याचिकाकर्ता, एक माँ को देखभाल की ज़रूरत वाले बच्चे के साथ-साथ राज्य सरकार के अधीन अपनी सेवा, दोनों को संभालने में कठिनाई का सामना करना पड़ रहा था। प्रस्तुत परिस्थितियों में, प्रारम्भ में उसने अवकाश हेतु आवेदन किया था, जो उसे सेवा नियमों के अंतर्गत दी जा सकती थी, और जब उसे यह लगा कि यह संभव नहीं है, उसने 24.02.2020 को त्यागपत्र भी दे दिया । त्यागपत्र को लगभग सात महीने तक लंबित रखा गया और दिनांक 25.09.2020 और 26.09.2020 को आक्षेपित आदेश पारित किए गए । किसी भी कामकाजी महिला, विशेष रूप से एक माँ को जहाँ तक संभव हो, सुविधा प्रदान करना आवश्यक है। बुरे से बुरा यह हो सकता था कि विभाग के लिए याचिकाकर्ता को अवैतनिक अवकाश सहित कोई और अवकाश प्रदान करना संभव नहीं था । प्रस्तुत परिस्थितियों में याचिकाकर्ता का त्यागपत्र स्वीकार करना पर्याप्त रहा होता । यह न्यायालय यह समझने में विफल है कि याचिकाकर्ता को दिनांक 24.02.2020 से अर्थात त्यागपत्र के दिनांक से सेवा में रखकर उत्तरदाताओं ने क्या उद्देश्य प्राप्त किया है? उक्त अवधि में, वे याचिकाकर्ता के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त नहीं कर सके, इसलिए कॉलेज का काम प्रभावित होता रहा और प्रमुखतः जनता को कोई लाभ नहीं हुआ। उनके त्यागपत्र को स्वीकार करके पूरे मामले का सर्वोत्तम समाधान निकाला जा सकता था । याचिकाकर्ता को दिनांक 24.02.2020 को त्यागपत्र देने का अधिकार था और उसका त्यागपत्र स्वीकार किया जाना चाहिए था क्योंकि उस तारीख तक न तो उसके विरुद्ध कोई विभागीय जांच प्रारम्भ की गई थी और न ही त्यागपत्र अस्वीकार करने के लिए उत्तरदाताओं के पास कोई अन्य कारण उपलब्ध था । यहाँ तक कि उसके तत्काल वरिष्ठ प्रशासनिक प्राधिकारी, अर्थात कॉलेज के प्राचार्य, ने भी उसका त्यागपत्र स्वीकार करने की अनुशंसा की थी ।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने रिट-ए संख्या 4813/ 2021 डॉ. सोनल सचदेव अरोड़ा बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 08.03.2022 पर विश्वास व्यक्त किया है ।

11. विद्वान स्थायी अधिवक्ता भी याचिकाकर्ता का त्यागपत्र स्वीकार न करने का कोई कारण नहीं बता सके।

12. इस न्यायालय ने पाया कि याचिकाकर्ता का मामला पूर्णरूपेण डॉ. सोनल सचदेवा (उपरोक्त) के निर्णय से आच्छादित होता है । प्रस्तुत तथ्यों और परिस्थितियों में याचिकाकर्ता के साथ विपक्षीगण द्वारा मनमाना व्यवहार किया गया है । विपक्षीगण याचिकाकर्ता का त्यागपत्र

स्वीकार करने हेतु बाध्य थें और याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई जाँच करने की कोई आवश्यकता नहीं थी ।

13. उपरोक्त के दृष्टिगत, आक्षेपित आदेश दिनांक 25.09.2020 और 26.09.2020 को रद्द किया जाता है । उत्तरदाताओं को यह मानना होगा कि याचिकाकर्ता ने 24.02.2020 से अपने पद से त्यागपत्र दे दिया है और उसे 24.02.2020 तक सेवा में मानते हुए वह लाभ दिया जाएगा जिसकी वह अधिकारिणी है । उक्त कार्यवाही त्वरित रुप से सम्पादित की जाएगी व जिसकी अवधि इस आदेश की एक प्रति प्रतिवादी संख्या 2, निदेशक, चिकित्सा शिक्षा एवं प्रशिक्षण, 6वीं मंजिल, जवाहर भवन, लखनऊ के समक्ष प्रस्तुत किये जाने की तारीख से दो माह से अधिक न होगी।

14. उपरोक्त सहित रिट याचिका स्वीकार की जाती है ।

(2023) 1 ILRA 135
मूल न्यायाधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: लखनऊ 12.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

रिट ए संख्या 23866/2019
संलग्न
रिट ए नंबर 24438/2019
एवम्
रिट ए नंबर 24805/2019
एवम्
रिट ए संख्या 28/2023

रवि प्रकाश एवं अन्य ...याचिकाकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता:
लालताप्रसाद मिश्रा, प्रफुल्ल तिवारी

अधिवक्ता प्रतिवादी:
सी.एस.सी., गौरव मेहरोत्रा, उत्सव मिश्रा

A. सेवा कानून –उ.प्र. होम गार्ड विभाग अधीनस्थ सेवा नियम, 1982– नियम 15 – प्लाटून कमांडर और ब्लॉक ऑर्गेनाइजर के पद–चयन– विज्ञापन के खंड 2(2) में शारीरिक दक्षता परीक्षण का प्रावधान है – वैधता को चुनौती दी गई – इस माननीय न्यायालय के आदेश के बावजूद याचिकाकर्ता शारीरिक दक्षता परीक्षण में सम्मिलित नहीं हुआ – प्रभाव – आयोजित– चयन प्रक्रिया में भाग लेने के पश्चात, याचिकाकर्ताओं के लिए इसे चुनौती देने की स्वतंत्रता नहीं है, वह भी, बाद के चरण में – रमेश चंद्र शाह वाद का अनुसरण किया गया– आयोजित, एक बार यह पाया गया कि शारीरिक दक्षता परीक्षण आवश्यक है और याचिकाकर्ता इसमें उपस्थित नहीं हुए हैं, उनका दावा निरस्त किया जाने योग्य है। (पैरा 13 और 22)

रिट याचिका निरस्त। (ई-1)

<u>उद्‌धृत वाद सूची:</u>

1. रामजीत सिंह कर्दम और अन्य बनाम संजीव कुमार और अन्य; (2020) 20 एससीसी 209
2. के. मंजुश्री बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य; (2008) 3 एससीसी 512
3. रमेश चंद्र शाह एवं अन्य बनाम अनिल जोशी और अन्य; (2013) 11 एससीसी 309
4. धनंजय मलिक एवं अन्य बनाम उत्तराँचल राज्य और अन्य; (2008) 4 एससीसी 171
5. सिविल अपील संख्या 1924/2010; शंकर मंडल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य निर्णित दिनांक 15.2.2022
6. रिट ए संख्या 2460/2022; श्रीमती विजय लक्ष्मी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य निर्णित दिनांक 29.4.2022

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता डॉ. एल.पी. मिश्रा व उनके सहायक श्री नवीन शुक्ला के साथ-साथ श्री बीरेंद्र प्रताप सिंह और श्री मनीष मिश्रा, विद्वान राज्य स्थायी अधिवक्ता श्री प्रफुल्ल यादव और आयोग के विद्वान अधिवक्ता श्री उत्सव मिश्रा को सुना।

2. याचिकाकर्ताओं ने प्लाटून कमांडर, होम गार्ड के पद हेतु 9.9.2019 से 11.9.2019 के बीच और लखनऊ में ब्लॉक ऑर्गेनाइज़र, होम गार्ड के पद हेतु 12.9.2019 और 13.9.2019 को आयोजित होने वाली शारीरिक दक्षता परीक्षा में शामिल होने हेतु आदेश दिनांक 8.7.2019 द्वारा निर्धारित शारीरिक दक्षता परीक्षा को चुनौती दी है। उनका दावा है कि उनसे इस तरह की शारीरिक दक्षता परीक्षा नहीं ली जा सकती। वैकल्पिक रूप से, याचिकाकर्ताओं ने विज्ञापन संख्या 02-परीक्षा/2016 के खंड 12(2), जहाँ तक यह होम गार्ड विभाग में प्लाटून कमांडर और ब्लॉक ऑर्गेनाइज़र के पद पर चयन हेतु शारीरिक दक्षता परीक्षा

आयोजित करने का प्रावधान करता है, को रद्द करने हेतु उत्प्रेषण-लेख द्वारा अनुतोष की मांग की है।

3. वाद के तथ्य इस प्रकार हैं कि वर्ष 2016 में संयुक्त अधीनस्थ सेवा चयन हेतु विज्ञापन संख्या 02-परीक्षा/2016 जारी किया गया था, जिसके द्वारा बड़ी संख्या में विभिन्न विभागों की रिक्तियां विज्ञापित की गयी थीं। उक्त विज्ञापन के अधीन होम गार्ड विभाग के प्लाटून कमांडर और ब्लॉक ऑर्गेनाइजर के पद हेतु भी रिक्ति विज्ञापित की गई थी। उक्त पद हेतु, चयन प्रक्रिया में लिखित और साक्षात्कार परीक्षा और तदोपरान्त, शारीरिक दक्षता परीक्षा के साथ-साथ शारीरिक माप भी सम्मिलित थी। विज्ञापन में शारीरिक माप विहित की गई थी।

4. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि उपरोक्त पदों पर नियुक्तियां उत्तर प्रदेश होम गार्ड्स विभाग अधीनस्थ सेवा नियमावली, 1982 (संक्षेप में '1982 की नियमावली') सहपठित उत्तर प्रदेश अधीनस्थ सेवा चयन आयोग अधिनियम, 2014 (संक्षेप में '2014 का अधिनियम') और इसके विनियम के अधीन की जानी है।

5. उक्त चयन को चुनौती देते हुए, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि 1982 के नियम शारीरिक दक्षता परीक्षा का प्रावधान नहीं करते हैं और उक्त नियम मात्र शारीरिक माप का प्रावधान करते हैं। पुनः यह कहा गया है कि विज्ञापन जारी होने के बाद चयन प्रक्रिया के मध्य में शारीरिक दक्षता परीक्षा का प्रावधान नहीं किया जा सकता था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि अन्यथा भी, शारीरिक दक्षता परीक्षा, जैसा कि प्रश्नगत आदेश द्वारा विहित किया गया है, अत्यन्त कठोर है। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने पुलिस उप-निरीक्षक और पुलिस आरक्षी के पद हेतु आयोजित शारीरिक दक्षता परीक्षा से तुलना करने का प्रयास किया है और कहा है कि होम गार्ड हेतु आयोजित शारीरिक दक्षता परीक्षा पुलिस उप-निरीक्षक और पुलिस आरक्षी की तुलना में कहीं अधिक कठोर है। इस प्रकार, शर्तें मनमाने ढंग से कठोर हैं।

6. पुनः याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि शारीरिक दक्षता परीक्षा में निर्धारित अंक प्रतिस्पर्धी प्रकृति के हैं क्योंकि वे बेहतर दक्षता हेतु आरोही क्रम में अंक प्रदान करते हैं। पुनः विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि चयन प्रक्रिया के दौरान ऐसी अंकन प्रणाली लागू नहीं की जा सकती है और इसे विज्ञापन के समय विहित किया जाना चाहिये था। पुनः यह भी कहा गया है कि उत्तरवर्ती चरण में,शारीरिक दक्षता परीक्षा उत्तीर्ण करने हेतु प्रतिस्पर्धी अंक नहीं बल्कि मात्र एक मानदंड का प्रावधान किया जा सकता है। उक्त उद्देश्य हेतु, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने **रामजीत सिंह कर्दम और अन्य बनाम संजीव कुमार और अन्य (2020) 20 एससीसी 209;** और **के. मंजुश्री बनाम आंध्र प्रदेश राज्य अन्य (2008) 3 एससीसी 512** के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है।

7. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के तर्क का विरोध करते हुए, आयोग के विद्वान अधिवक्ता श्री उत्सव मिश्रा और विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री प्रफुल्ल यादव ने कहा कि उक्त विज्ञापन के खंड 12(2) का मात्र अवलोकन यह दर्शाता है कि शारीरिक दक्षता परीक्षा के साथ शारीरिक मापन भी विज्ञापन में विहित था। उनका कथन है कि उक्त तथ्य याचिकाकर्ताओं द्वारा दावाकृत वैकल्पिक अनुतोष से भी स्पष्ट है, जिसमें वे विज्ञापन के खंड 12(2) को रद्द करने की मांग कर रहे हैं, जहाँ तक यह शारीरिक दक्षता परीक्षा आयोजित करने का प्रावधान करता है। पुनः उन्होंने कहा कि चूँकि विज्ञापन वर्ष 2016 का है, जिसके अधीन याचिकाकर्ताओं ने विधिवत भाग लिया था; अतः तीन वर्ष की अवधि के पश्चात, वे विज्ञापन की शर्त को चुनौती नहीं दे सकते। उक्त उद्देश्यों हेतु प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया है:

(i) रमेश चंद्र शाह और अन्य बनाम अनिल जोशी और अन्य (2013) 11 एससीसी 309;

(ii) धनंजय मलिक और अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य और अन्य (2008) 4 एससीसी 171;

(iii) शंकर मंडल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य सिविल अपील संख्या 1924/2010, निर्णय तिथि 15.2.2022 और

(iv) श्रीमती विजय लक्ष्मी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य रिट-ए संख्या 2460/2022, निर्णय तिथि 29.4.2022

8. प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता नियमावली 1982 के नियम 15 पर विश्वास व्यक्त करते हैं और दावा करते हैं कि यह प्रतिस्पर्धी प्रकृति की शारीरिक दक्षता परीक्षा का प्रावधान करता है और यह भी उपबन्ध करता है कि कमांडेंट जनरल, होम गार्ड्स द्वारा शारीरिक दक्षता परीक्षा के मानदंड समय-समय पर निर्धारित किए जा सकते हैं। प्रतिवादीगण के अधिवक्ता का कहना है कि नियमावली 1982 का, सहपठित वर्ष 2014 के अधिनियम और उसके विनियमों के साथ, कड़ाई से पालन किया जाता है और चयन प्रक्रिया में कोई अवैधता नहीं बरती गई है।

9. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की सहायता से वाद के अभिलेखों और उनके द्वारा सन्दर्भित निर्णयों का परिशीलन किया।

10. विज्ञापन संख्या 02-परीक्षा/2016 के खंड 12(1) में प्रावधान है कि चयन लिखित परीक्षा और साक्षात्कार के आधार पर किया जाएगा और परीक्षा की पद्धति, पाठ्यक्रम और दिनांक को प्रासंगिक समय पर सूचित किया जाएगा। खण्ड 12(2) में प्रावधान है कि प्लाटून कमांडर एवं ब्लॉक ऑर्गेनाइजर के पद हेतु खण्ड 12(1) में प्रदत्त चयन प्रक्रिया के साथ-साथ शारीरिक दक्षता परीक्षा को भी सम्मिलित किया जायेगा तथा शारीरिक दक्षता परीक्षा के साथ-साथ

विज्ञापन में विहित अपेक्षित आवश्यक शारीरिक माप भी आयोजित किया जाएगा।

11. उक्त विज्ञापन के खंड 12(1) और 12(2) यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं:

12(1)– चयन का आधार– लिखित परीक्षा तथा साक्षात्कार है। प्रश्नगत पदों पर चयन हेतु उत्तर प्रदेश समूह 'ग' के पदों के लिए सीधी भर्ती (रीति और प्रक्रिया) नियमावली, 2015 अधिसूचना दिनाँक 11 मई, 2015 में विहित प्रावधानों के अंतर्गत सीधी भर्ती की प्रक्रिया, पाठ्यक्रम, लिखित परीक्षा/साक्षात्कार के अंक वही होंगे, जो राज्य सरकार के अनुमोदन से आयोग द्वारा निर्धारित किए जायेंगे। तदनुसार लिखित परीक्षा हेतु परीक्षा योजना तथा पाठ्यक्रम एवं परीक्षा तिथि के संबंध में यथा समय सूचित किया जाएगा।
(2)– वैतनिक प्लाटून कमांडर कम रिपोर्ट अधिकारी (पदक्रम संख्या–4), वैतनिक प्लाटून कमांडर (पदक्रम संख्या–5) तथा ब्लाक आर्गेनाइजर (पदक्रम संख्या–6) के पदों पर चयन हेतु बिन्दु–12(1) में उल्लिखित चयन प्रक्रिया के साथ–साथ शारीरिक दक्षता परीक्षा भी सम्मिलित है, अभ्यर्थियों की अर्हता के अंतर्गत शारीरिक माप भी नियमानुसार हैः–

अभ्यर्थी
ऊँचाई
सीना बिना फुलाये
सीना फुलाये जाने पर
पुरूष अन्य
167.7 से0मी0
76.8 से0मी0
83.8 से0मी0
पुरूष पर्वतीय
162.60 से0मी0
76.5 से0मी0
81.5 से0मी0
पुरूष अनुसूचित जाति
160.0 से0मी0
76.5 से0मी0
78.8 से0मी0
महिला अन्य
152.0 से0मी0
–
–
महिला पर्वतीय एवं अनुसूचित जनजाति
147.0 से0मी0
–
–

12. इस प्रकार, विज्ञापन में ही यह प्रावधान था कि शारीरिक दक्षता परीक्षा होगी। उक्त अपेक्षा पूर्णतः याचिकाकर्ताओं के संज्ञान में थी और यह मांगे गये वैकल्पिक अनुतोष से भी परिलक्षित होता है, जिसमें विज्ञापन के खंड 12(2) को रद्द करने की मांग की गई है।

13. याचिकाकर्ताओं ने वर्ष 2016 में उक्त पदों हेतु आवेदन किया था। यदि उन्हें प्रतीत होता था कि कोई भी शर्त अवैध है, तो उसे वर्ष 2016 में ही चुनौती दी जानी चाहिये थी। चयन प्रक्रिया में भाग लेने के बाद, इसे चुनौती देने का अवसर उत्तरवर्ती चरण में याचिकाकर्ताओं हेतु उपलब्ध नहीं है। **रमेश चंद्र शाह (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस सम्बन्ध में विधि सुस्थापित किया है, जिसमें प्रस्तर 17, 18 और 24 में सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि:

"17. जो लोग फिजियोथेरेपिस्ट के पद हेतु प्रतिस्पर्धा करने के इच्छुक थे, जो कि उत्तराखंड राज्य में समूह 'ग' पद है, विज्ञापन पढ़ने के बाद इस तथ्य से अवगत हो गए होंगे कि कार्यालय ज्ञापन दिनांक 3-8-2010 के आधार पर, बोर्ड को भर्ती एजेंसी के रूप में नामित किया गया है और चयन सामान्य नियमों के प्रावधानों के अनुसार किया जाएगा। वे यह जानते हुए लिखित परीक्षा में उपस्थित हुए कि उन्हें विज्ञापन के प्रस्तर 11 में उल्लिखित परीक्षा उत्तीर्ण करनी होगी। यदि उन्होंने परीक्षा उत्तीर्ण कर ली होती, तो व्यक्तिगत प्रतिवादीगण ने चयन प्रक्रिया या बोर्ड द्वारा अपनाई गई पद्धति पर कोई आपत्ति नहीं जताई होती। उन्होंने शिकायत तभी की जब उन्हें पता चला कि उनका नाम सफल उम्मीदवारों की सूची में नहीं है। दूसरे शब्दों में, उन्होंने नवंबर 2011 में जारी विज्ञापन के आधार पर बोर्ड द्वारा आयोजित करायी गई परीक्षा में चयनित होने के लिए अवसर आजमाया। व्यक्तिगत प्रतिवादीगण का यह आचरण स्पष्ट रूप से उन्हें संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अनुतोष प्राप्त करने से वंचित करता है। इसे अन्य शब्दों में कहें तो लिखित परीक्षा में उपस्थित होने और सफल घोषित होने का अवसर आजमाने के कारण व्यक्तिगत प्रतिवादीगण को विज्ञापन और चयन की प्रक्रिया को चुनौती देने के अपने अधिकार से वंचित माना जाएगा।

18. यह स्थापित विधि है कि कोई व्यक्ति जो सचेत रूप से चयन की प्रक्रिया में भाग लेता है, उसके बाद, पीछे मुड़कर चयन की विधि और उसके परिणाम पर प्रश्न नहीं उठा सकता है।

....

24. उपर्युक्त निर्णयों में दिए गए प्रतिपादनों के दृष्टिगत, यह माना जाना चाहिये कि चयन प्रक्रिया में पूर्ण ज्ञान के साथ भाग लेने से कि भर्ती सामान्य नियमों के अधीन की जा रही थी, प्रतिवादीगण चयन हेतु बोर्ड द्वारा अपनाई गई पद्धति या विज्ञापन पर प्रश्न करने के अपने अधिकार वंचित हो गए थे और उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश और खण्डपीठ ने प्रतिवादीगण द्वारा की गई शिकायत पर विचार करके गंभीर त्रुटि की।"

14. अतः वर्तमान रिट याचिकाएं उस सीमा तक पोषणीय नहीं हैं जहाँ तक वे शारीरिक दक्षता परीक्षा विहित करने वाले विज्ञापन के खंड 12(2) को चुनौती देती हैं। शारीरिक दक्षता परीक्षा भी नियमावली 1982 के नियम 15 में विहित है। नियम 15(2) के नोट में प्रावधान है कि प्रतियोगी परीक्षा का पाठ्यक्रम और प्रक्रिया वैसी ही होगी जैसी कमांडेंट जनरल, होम गार्ड्स द्वारा विहित की गई है। नियम 15(3) में प्रावधान है कि चयन समिति अभ्यर्थियों की लिखित एवं शारीरिक दक्षता परीक्षा लेगी और उसमें प्राप्त अंकों के आधार पर उचित संख्या में अभ्यर्थियों को साक्षात्कार हेतु बुलायेगी। साक्षात्कार में अभ्यर्थी द्वारा प्राप्त अंक अभ्यर्थियों के लिखित एवं शारीरिक प्रतियोगी परीक्षा में प्राप्त अंकों में जोड़े जायेंगे।

15. इस प्रकार, नियमावली 1982 के नियम स्वयं यह प्रावधान करते हैं कि लिखित के साथ-साथ शारीरिक प्रतियोगी परीक्षा भी होगी और साक्षात्कार भी होगा। चयन का परिणाम उक्त तीन परीक्षाओं में प्राप्त संयुक्त अंकों के आधार पर घोषित किया जाएगा। अत: शारीरिक दक्षता परीक्षा आयोजित करने में कोई अवैधता नहीं पायी जाती है। शारीरिक दक्षता परीक्षा के मानदंड विहित किए जाने हैं और चयन समिति के अध्यक्ष द्वारा विधिवत विहित किए गए हैं और इस प्रकार, इसमें कोई अवैधता नहीं है। जहाँ तक शारीरिक दक्षता परीक्षा में विहित मापदण्डों की बात है तो वह इस प्रकार है:

पुरूष अभ्यर्थियों के लिये :–

1– क्रिकेट गेंद फेंकना
कम से कम 55 मीटर
2– लम्बी कूद
कम से कम 13 फीट
3– बीम (चिनींग अप)
कम से कम 05 बार
4– दौड़ (1500 मीटर)
अधिकतम 06 मिनट में

उपरोक्त शारीरिक दक्षता परीक्षाओं में अभ्यर्थियों को निम्नानुसार अंक प्रदान किये जायेगें :–

(1) क्रिकेट गेंद फेंकना अधिकतम 10 अंक
55 मीटर
5 अंक
60 मीटर
6 अंक
65 मीटर
7 अंक
70 मीटर
8 अंक
75 मीटर
9 अंक
80 मीटर
10 अंक
(2) लम्बी कूद अधिकतम 10 अंक

13 फीट
5 अंक
14 फीट
6 अंक
15 फीट
7 अंक
16 फीट
8 अंक
17 फीट
9 अंक
18 फीट एवं उससे अधिक
10 अंक
(3) बीम (विनिंग अपर) अधिकतम 10 अंक
5 बार
5 अंक
6 बार
6 अंक
7 बार
7 अंक
8 बार
8 अंक
9 बार
9 अंक
10 बार
10 अंक
(4) दौड– 1500 मीटर अधिकतम 10 अंक

5 मिनट तक
10 अंक
5 मिनट 01 सेकेण्ड से

5 मिनट 15 सेकेण्ड तक
9 अंक
5 मिनट 16 सेकेण्ड से

5 मिनट 30 सेकेण्ड तक
7 अंक
5 मिनट 31 सेकेण्ड से

अनुवादित

5 मिनट 45 सेकेण्ड तक
6 अंक
5 मिनट 45 सेकेण्ड से

6 मिनट तक
5 अंक

महिला अभ्यर्थियों के लिये :–
महिला अभ्यर्थियों की शारीरिक दक्षता परीक्षाओं में निम्नानुसार अंक प्रदान किये जायेगें :–
1– लम्बी कूद कम से कम 9 फीट
2– क्रिकेट गेंद फेंकना कम से कम 25 मीटर
3– स्किपिंग (रस्सी कूदना) कम से कम 55 बार
4– दौड़ 800 मीटर अधिकतम 4 मिनट 30 सेकेण्ड

(1) लम्बी कूद अधिकतम 10 अंक
9 फीट पर
5 अंक
10 फीट पर
6 अंक
11 फीट पर
7 अंक
12 फीट पर
8 अंक
13 फीट पर
9 अंक
14 फीट पर
10 अंक
(2) क्रिकेट गेंद फेंकना–अधिकतम 10 अंक

25 मीटर
5 अंक
27 मीटर
6 अंक
29 मीटर
7 अंक
31 मीटर
8 अंक
33 मीटर
9 अंक
35 मीटर
10 अंक
(3) स्किपिंग (रस्सी कूदना)–अधितम 10 अंक
55 बार एक मिनट में
5 अंक
60 बार एक मिनट में
6 अंक
65 बार एक मिनट में
7 अंक
70 बार एक मिनट में
8 अंक
75 बार एक मिनट में
9 अंक
80 बार एक मिनट में
10 अंक
(4) दौड– 800 मीटर अधिकतम 10 अंक

3 मिनट 30 सेकेण्ड तक तक
10 अंक
3 मिनट 31 सेकेण्ड से

3 मिनट 45 सेकेण्ड तक
9 अंक
3 मिनट 46 सेकेण्ड से

4 मिनट तक
7 अंक
4 मिनट 1 सेकेण्ड से

4 मिनट 15 सेकेण्ड तक
6 अंक
4 मिनट 16 सेकेण्ड से

4 मिनट 30 सेकेण्ड तक
5 अंक

16. उक्त मानदंडों पर बेहतर दक्षता हेतु, जैसे यदि एक क्रिकेट गेंद को 55 मीटर तक फेंका जाता है, तो एक उम्मीदवार को 5 अंक दिए जाते हैं और यदि इसे 60 मीटर तक फेंका जाता है, तो एक उम्मीदवार को 6 अंक दिए जाते हैं, इसलिए प्रत्येक पाँच मीटर पर, एक उम्मीदवार को एक अतिरिक्त अंक मिलता है। इसी प्रकार, लंबी कूद, बीम (चिनिंग अप), दौड़ आदि में बेहतर दक्षता उम्मीदवार को दक्षता मानदंड के अनुसार अतिरिक्त अंक प्राप्त करने का अधिकार देती है।

17. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का यह कहना है कि शारीरिक दक्षता परीक्षा हेतु ऐसे प्रतिस्पर्धी दक्षता अंक प्रदान नहीं किए जा सकते थे, नियमावली

अनुवादित

1982 के विरुद्ध है क्योंकि उक्त नियमावली के नियम 15 में ही यह प्रावधान है कि एक प्रतियोगी शारीरिक परीक्षा होगी। नियम 15 इस प्रकार है:

15– (1) सीधी भर्ती के प्रयोजनार्थ चयन समितियों का गठन किया जायेगा जिसमें निम्नलिखित होगें :–
(क) प्लाटून कमाण्डर और ब्लाक आर्गनाइजर के पद के लिये :–
(एक) डिप्टी कमाण्डेण्ट जनरल होमगार्डस।
(दो) ज्येष्ठ स्टाफ अधिकारी, होमगार्ड्स।
(तीन) कमाण्डेण्ट, केन्द्रीय प्रशिक्षण संस्थान, होमगार्ड्स।
(ख) हवलदार इन्स्ट्रक्टर के पद के लिये :–
(एक) डिप्टी कमाण्डेण्ट जनरल होमगार्डस।
(दो) कमाण्डेण्ट, केन्द्रीय प्रशिक्षण संस्थान, होमगार्ड्स।
(तीन) एक डिविजनल कमान्डेण्ट होमगार्डस (जिसे कमाण्डेण्ट जनरल द्वारा नाम निर्दिष्ट किया जायेगा।)

(2) चयन समिति आवेदन पत्रों की संवीक्षा करेगी और पात्र अभ्यर्थियों में प्रतियोगिता परीक्षा में उपस्थित होने की अपेक्षा करेगी।
टिप्पणी :– प्रतियोगिता परीक्षा का पाठ्यक्रम और उसकी प्रक्रिया ऐसी होगी जैसी कमाण्डेण्ट जनरल, होमगार्ड्स द्वारा समय ≤ पर विहित की जाय।
(3) चयन समिति, अभ्यर्थियों द्वारा लिखित और शारीरिक परीक्षा में प्राप्त अंको की सारणीबद्ध किये जाने के पश्चात् नियम 6 के अनुसार अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन–जातियों और अन्य श्रेणियों के अभ्यर्थियों का सम्यक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, उतने अभ्यर्थियों को साक्षात्कार के लिये बुलायेगी जितने परीक्षाओं के परिणाम के आधार पर इस सम्बन्ध में समिति द्वारा निर्धारित स्तर तक पहुंच सके हों। साक्षात्कार में प्रत्येक अभ्यर्थी को दिये गये अंक परीक्षाओं में उसको प्राप्त अंको में जोड़ दिये जायेगें।
(4) चयन समिति अभ्यर्थियों की, योग्यता क्रम में, जैसा कि परीक्षाओं और साक्षात्कार में उनको प्राप्त अंको के कुल योग से प्रकट हो, एक सूची तैयार करेगी। यदि दो या अधिक अभ्यर्थी बराबर–बराबर अंक प्राप्त करें तो लिखित परीक्षा में अधिक अंक पाने वाले का नाम ऊपर रखा जायेगा। सूची में नामों की संख्या रिक्तियों की संख्या में अधिक (किन्तु 25 प्रतिशत से ज्यादा अधिक नहीं) होगी।

18. उप-निरीक्षक और आरक्षी की शारीरिक दक्षता परीक्षा के साथ इसकी तुलना करने पर, उप-निरीक्षक और आरक्षी के नियमों में प्रावधान है कि उप-निरीक्षक पद हेतु उम्मीदवार को 28 मिनट में 4.8 किलोमीटर दौड़ना आवश्यक है और आरक्षी पद हेतु उम्मीदवार को 16 मिनट में 2.4 किलोमीटर दौड़ना आवश्यक है।

19. प्लाटून कमांडर और ब्लॉक ऑर्गेनाइजर पद हेतु उम्मीदवार को 5 मिनट में मात्र 1500 मीटर दौड़ना आवश्यक है। शारीरिक दक्षता परीक्षा हेतु प्रदान किया गया समय उप-निरीक्षक या आरक्षी की तुलना में कठोर नहीं है, बल्कि इसके विपरीत अत्यन्त शिथिल है क्योंकि उन्हें क्रमशः उप-निरीक्षक और आरक्षी के 4.8 किलोमीटर और 2.4 किलोमीटर की तुलना में मात्र 1.5 किलोमीटर दौड़ने की आवश्यकता होती है। महिलाओं हेतु अन्य आवश्यकताएं जैसे लंबी कूद, क्रिकेट गेंद फेंकना, बीम (चिनिंग अप) या कूदना और दौड़ना भी कठोर नहीं हैं, लेकिन किसी भी शारीरिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति और चयनित उम्मीदवार द्वारा किए जाने वाले कार्य की प्रकृति को देखते हुए हेतु उचित हैं।

20. इस वाद का एक अन्य पक्ष भी है। इस न्यायालय ने अंतरिम उपाय के रूप में, दिनांक 6.9.2019 के आदेश द्वारा यह प्रावधान किया कि याचिकाकर्ता इन रिट याचिकाओं में अपने अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, सितंबर, 2019 के महीने में होने वाली शारीरिक दक्षता परीक्षा में उपस्थित हो सकते हैं।

21. उपरोक्त आदेश के बावजूद याचिकाकर्ता शारीरिक दक्षता परीक्षा हेतु उपस्थित नहीं हुए, अपितु उन्होंने आवेदन प्रस्तुत किया कि फिलहाल वे शारीरिक दक्षता परीक्षा में सम्मिलित होने की स्थिति में नहीं हैं., प्रतिवादीगण ने दो बार उक्त परीक्षा स्थगित कर दी, किन्तु प्रत्येक बार, कोविड के आधार पर और अन्य आधारों पर, याचिकाकर्ताओं ने उक्त परीक्षा में शामिल होने से इनकार कर दिया।

22. इस न्यायालय ने न तो याचिकाकर्ताओं को शारीरिक दक्षता परीक्षा में उपस्थित होने हेतु समय बढ़ाने हेतु आवेदन करने की अनुमति दी और न ही प्रतिवादीगण को उक्त परीक्षा का समय बढ़ाने की अनुमति दी। न्यायालय ने मात्र यह निर्देश दिया कि याचिकाकर्ता सितंबर, 2019 में आयोजित होने वाली शारीरिक दक्षता परीक्षा में उपस्थित हो सकते हैं। याचिकाकर्ताओं ने उपस्थित न होने का विकल्प चुना। यह अपने आप में इस न्यायालय हेतु याचिकाकर्ताओं को अनुतोष अस्वीकृत करने हेतु पर्याप्त है क्योंकि वे शारीरिक दक्षता परीक्षा में शामिल नहीं हुए थे, जो रिट याचिका के निर्णय के अधीन थी। एक बार जब यह पाया जाता है कि शारीरिक दक्षता परीक्षा आवश्यक है और याचिकाकर्ता उसमें उपस्थित नहीं हुए हैं, तो उनका दावा खारिज होने योग्य है।

23. वाद के उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, इस न्यायालय को याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों में कोई बल नहीं दिखता।

24. रिट याचिकाओं में कोई बल नहीं है और इन्हें खारिज किया जाता है।

(2023) 1 ILRA 142
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: लखनऊ 18.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

रिट ए संख्या 28636/2019

कुवरजीत सिंह **...याचिकाकर्ता**
बनाम
भारत संघ एवं अन्य **...प्रतिवादी**

अधिवक्ता याचिकाकर्ता:
सतीश चतुर्वेदी, डी.एन. चतुर्वेदी, शांतनु गुप्ता

अधिवक्ता प्रतिवादी:
सुनीति चौहान, बीके शुक्ला, बृजेश कुमार शुक्ला, केके पांडेय, केके पांडेय, महेंद्र कुमार मिश्रा

ए. सेवा कानून – रेलवे सुरक्षा बल नियम, 1987 – नियम 219.4 – सजा - वरिष्ठ प्राधिकारी द्वारा दूसरी बार जांच प्रारंभ की गई - वैधता को चुनौती दी गई – आदेश एक वर्ष की वैधानिक अवधि से परे पारित किया गया – अनुमति – आयोजित, वरिष्ठ प्राधिकारी अपने स्तर पर जांच नहीं कर सकते लेकिन केवल अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश पर ही गौर किया जा सकता है – नियम 219.4 के खंड-बी को इतनी विस्तृत रूप से नहीं पढ़ा जा सकता है कि वरिष्ठ प्राधिकारी को पूर्व जांच और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश की पूरी तरह से अनदेखी करते हुए नए सिरे से जांच करने की अनुमति दी जा सके – इसके अलावा, दोनों आदेश एक वर्ष की अवधि के पश्चात पारित किए गए हैं, जिन्हें उक्त नियम के पहले परंतुक द्वारा वर्जित होने के कारण पारित नहीं किया जा सकता है। (पैरा 9)

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-1)

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और भारत संघ के विद्वान अधिवक्ता श्री महेंद्र कुमार मिश्रा को सुना गया।

याचिकाकर्ता द्वारा आदेश/आरोप पत्र दिनांकित 24.09.2019 को इस न्यायालय में चुनौती दी गई है।

मामले के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को दिनांक 25.06.2018 को आरोप पत्र दिया गया था और उसी के आधार पर जाँच की गई तथा वरिष्ठ कमांडेंट, रेलवे सुरक्षा विशेष बल, लखनऊ द्वारा दण्ड आदेश दिनांक 2.8.2018 को पारित किया गया। याचिकाकर्ता ने उक्त आदेश के विरूद्ध अपील की थी, परंतु उसने इसे वापस ले लिया था। इसके बावजूद वरिष्ठ प्राधिकारी; अर्थात् मुख्य सुरक्षा आयुक्त, रेलवे सुरक्षा बल, द्वारा प्रश्नगत आदेश दिनांक 24.09.2019 को पारित कर दिया गया है। इसके अवलोकन मात्र से दर्शित होता है कि यह पहले के आरोपपत्र की पुनरावृत्ति है जिसके प्रति याचिकाकर्ता से उत्तर देने की अपेक्षा की गई है। इसमें कहीं भी यह नहीं बताया गया है कि इसके द्वारा अनुशासनिक प्राधिकारी के आदेश को पुष्ट, उपांतरित या अपास्त किया जाना अभिप्रेत है अथवा दण्ड को वर्धित, कम या किसी अन्य रीति से उपांतरित करना है अथवा अन्यथा भी क्या कोई अन्य आदेश पारित किया जाना प्रस्तावित है। रेल संरक्षण बल नियमावली 1987 का नियम 219.4 इस प्रकार है:-

"**नियम 219.4** कोई प्राधिकारी जो मूल आदेश करने वाले प्राधिकारी से उच्चतर है स्वप्रेरणा से या अन्यथा किसी जाँच के अभिलेख मंगा सकेगा और इन नियमों के अधीन किए गए किसी आदेश को पुनरीक्षित कर सकेगा, और

(क) उस आदेश को पुष्ट, उपान्तरित या अपास्त कर सकेगा या

(ख) उस आदेश द्वारा अधिरोपित दण्ड को पुष्ट, वर्धित या कम कर सकेगा या उसे अपास्त कर सकेगा या जहां कोई दण्ड अधिरोपित न किया गया हो वहाँ दण्ड अधिरोपित कर सकेगा; या

(ग) आदेश करने वाले प्राधिकारी को या किसी अन्य प्राधिकारी को ऐसी और जाँच करने के लिए, जो वह मामले को परिस्थितियों में उचित समझे, निदेश देते हुए ऐसे प्राधिकारी को मामला प्रेषित कर सकेगा; या

(घ) ऐसे अन्य आदेश पारित कर सकेगा जो वह ठीक समझे;

परन्तु इस उपनियम के अधीन कोई भी कार्यवाही उपर्युक्त आदेश की तारीख से एक वर्ष समाप्त होने के पश्चात आरंभ नहीं की जायगी;

परन्तु यह और कि पुनरीक्षण के लिए कोई भी कार्यवाही-

(1) अपील करने के लिए धारा 9 की उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट अवधि की समाप्ति के पश्चात; या
(2) जहां कोई अपील की गई है वहां अकील के निपटाने के पश्चात,

ही प्रारंभ की जाएगी, अन्य नहीं:

परन्तु यह और कि ऐसे किसी मामले में, जहाँ दण्ड में और वृद्धि करने की प्रस्तावना है, व्यथित सदस्य को या तो मौखिक रूप से या लिखित में यह हेतुक दर्शित करने के लिए कि उसके दण्ड में वृद्धि क्यों न की जाएं, अवसर दिया जायगा।''

यह नियम उच्चतर प्राधिकारी को, आदेश को पुष्ट करने, अपास्त करने या दण्ड को वर्धित, कम करने या यहाँ तक कि जहाँ कोई दण्ड नहीं दिया गया है, वहाँ दण्ड देने या मामले को शिथिल करने या ऐसा अन्य आदेश पारित करने की शक्ति देता है, जैसा वह उचित समझे। इसमें आगे यह भी उपबंधित है कि ऐसी कार्रवाई दण्ड आदेश के दिनांक से केवल एक वर्ष की अवधि के भीतर की जा सकती है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि उक्त नियम 219.4 उच्चतर प्राधिकारी को आरोप पत्र जारी करने और उसके पश्चात अपने स्तर पर जाँच आरंभ करने का अधिकार नहीं देता है।

नियम 219.4 के खण्ड-ख को नियम 219.4 के नियम क से ग द्वारा प्रदत्त शक्ति के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए, यह केवल उपरोक्त नियमों के समर्थन में हो सकता है और उच्चतर प्राधिकारी की शक्ति को इस सीमा तक वर्धित नहीं कर सकता है कि वह अपने स्तर से जाँच करने की कार्यवाही कर सके, जो उक्त नियमों के किसी भी सिद्धांत के तहत स्वीकार्य नहीं है। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि चूंकि प्रारंभिक दण्ड आदेश दिनांक 2.8.2018 को पारित किया गया था तथा दिनांक 24.9.2019 को एक वर्ष की समाप्ति के पश्चात, इस समय प्रस्तावित आदेश/आरोपपत्र उसी आधार पर पारित किया गया है, इसलिए यह अपास्त किए जाने योग्य है।

प्रतिवादीगणों के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि उक्त नियमों के नियम खंड-ख के अधीन आदेश पारित किया जा सकता है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि कारण बताओ नोटिस एक वर्ष की अवधि के भीतर दिया गया था और इसलिए प्रश्नगत आदेश को पारित किया जा सकता है।

मैं याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों में बल पाता हूँ।

उच्चतर प्राधिकारी अपने स्वयं के स्तर पर जाँच नहीं कर सकता है, बल्कि केवल अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश की जांच कर सकता है। नियम 219.4 के खंड-ख को इतने विस्तृत रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है कि उच्चतर प्राधिकारी को, पहले से की गई जाँच और अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश की पूर्ण रूप से अनदेखी करते हुए, नए सिरे से जाँच करने की अनुमति दी जा सके। अन्यथा भी, दोनों आदेशों को, जो एक वर्ष की अवधि से परे पारित किए गए हैं, पारित नहीं किया जा सकता है, जैसा कि उक्त नियम के प्रथम परंतुक द्वारा वर्जित किया गया है।

इस प्रकार, प्रश्नगत आदेश दिनांकित 24.09.2019 मान्य नहीं रह सकता एवं एतद्द्वारा इसे अपास्त किया जाता है।

रिट याचिका स्वीकृत की जाती है।

(2023) 1 ILRA 144
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: लखनऊ 27.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

रिट ए संख्या 30915/2021

डॉ. सुरेंद्र प्रताप यादव ...याचिकाकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता:
अमरेंद्र नाथ त्रिपाठी

अधिवक्ता प्रतिवादी:
सी.एस.सी.

ए. सेवा कानून – भारतीय संविधान –अनुच्छेद 14 - बुद्धिगम्य भिन्नता - सेवानिवृत्ति आयु – होम्योपैथी का अभ्यास करने वाले डॉक्टरों और एलोपैथी का अभ्यास करने वाले डॉक्टरों के मध्य उनकी सेवानिवृत्ति की आयु के संबंध में भेदभाव किया गया– अनुमति – आयोजित, केवल इसलिए कि डॉक्टर उपचार के विभिन्न तरीकों का उपयोग कर रहे हैं, यह बुद्धिगम्य

भिन्नता नहीं होगा – वर्गीकरण को अनुचित और भेदभावपूर्ण और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के साथ असंगत माना गया। (पैरा 8)
रिट याचिका स्वीकृत। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. उत्तरी दिल्ली नगर निगम बनामडॉ. राम नरेश शर्मा एवं अन्य; 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 540

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता एवं राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

वर्तमान रिट याचिका याचिकाकर्ता द्वारा प्रतिवादी संख्या-2 निदेशक, होम्योपैथी विभाग, उ.प्र., 8वां तल, इंदिरा भवन, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.12.2021 को चुनौती देते हुए दायर की गई है। उक्त आदेश के अनुसार याचिकाकर्ता को दिनांक 31.12.2021 को 60 वर्ष की आयु में सेवानिवृत्त किया गया है।

वाद के तथ्य इस प्रकार हैं कि याचिकाकर्ता एक होम्योपैथिक चिकित्सक है जो राज्य सरकार की सेवा में कार्यरत है। अधिसूचना दिनांक 31.05.2017 द्वारा उ0प्र0 राज्य में प्रान्तीय चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवा के चिकित्सा अधिकारियों की आयु 60 वर्ष से बढ़ाकर 62 वर्ष कर दी गई। प्रांतीय चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवा के अंतर्गत कार्यरत चिकित्सक एलोपैथी चिकित्सक हैं। होम्योपैथी के चिकित्सकों की सेवाएँ होम्योपैथिक चिकित्सा सेवा संवर्ग की हैं और दिनांक 31.05.2017 की अधिसूचना का लाभ उन्हें नहीं दिया गया है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने उत्तरी दिल्ली नगर निगम बनाम डॉ. राम नरेश शर्मा और अन्य, (2021 एस सी सी ऑनलाइन एस सी 540) वाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है जिसके प्रस्तर-23 और 24 में वर्णित है: -

"23.अपीलकर्ताओं का सामान्य तर्क यह है कि विभिन्न श्रेणियों में आयुष डॉक्टरों और सीएचएस के अन्तर्गत चिकित्सकों का वर्गीकरण उचित और विधिसम्मत है। यद्दपि हम इससे सहमत नहीं है और न्यायाधिकरण तथा दिल्ली उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष से सहमत हैं कि वर्गीकरण भेदभावपूर्ण एवं अयुक्तियुक्त है क्योंकि दोनों ही श्रेणियों के डॉक्टर अपने रोगियों के चिकित्सा और उपचार का ही कार्य कर रहे हैं। अंतर मात्र इतना है कि आयुष डॉक्टर आयुर्वेद, यूनानी आदि जैसी स्वदेशी चिकित्सा पध्दतियों का उपयोग कर रहे हैं और सीएचएस डॉक्टर अपने रोगियों की उपचार हेतु एलोपैथी का उपयोग कर रहे हैं। हमारी प्रज्ञानुसार, प्रचलित योजना के अन्तर्गत उपचार पध्दति, स्वयमेव एक स्पष्ट अंतर की रचना नही करती। अत: इस प्रकार का अयुक्तियुक्त वर्गीकरण और उस पर आधारित भेदभाव निश्चित रूप से संविधान के अनुच्छेद 14 की भावना से असंगत होगा। आयुष मंत्रालय का दिनांक 24.11.2017 का आदेश, जिसमें सेवानिवृत्ति की आयु 65 वर्ष तक बढ़ा दी गई है, भी इस दृष्टिकोण का समर्थन करता है। यह विस्तार स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय की दिनांक 31.05.2016 की अधिसूचना के अनुरूप है।

24. आयुष और सीएचएस दोनों के अन्तर्गत डॉक्टर मरीजों को सेवा प्रदान करते हैं और इस सारपक्ष के दृष्टिगत उनमें अंतर स्थापित करने का कोई भी आधार नहीं है। इसलिए इन दो श्रेणियों के डॉक्टरों को सेवानिवृत्ति की विस्तारित आयु का लाभ देने के लिए भिन्न-भिन्न तिथियां निश्चित करने का कोई तर्कसंगत औचित्य नहीं दिखता है। अत:, वर्तमान अपीलों में सभी संबंधित प्रतिवादी-चिकित्सक गणों पर आयुष मंत्रालय का आदेश(एफ. नं. डी. 14019/4/2016-ई-1 (आयुष)) दिनांक 24.11.2017, 31.05.2016 से भूतलक्षी प्रभाव से लागू किया जाना चाहिए। समस्त परिणाम इसी निष्कर्ष से प्रभावी होंगे।"

वहीं दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता का कहना है कि उपरोक्त निर्णय का लाभ याचिकाकर्ता को नहीं दिया जा सकता क्योंकि उक्त मामले में भारत सरकार ने एलोपैथिक डॉक्टरों के साथ आयुष डॉक्टरों को सेवानिवृत्ति की आयु में वृद्धि का लाभ देने के लिए एक अलग आदेश जारी किया था।

मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है और उनकी सहायता से इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किये गए अभिलेखों और निर्णयों का भी अवलोकन किया है।

डॉ. राम नरेश शर्मा (उपरोक्त) के वाद में, भारत संघ ने दिल्ली में कार्यरत एलोपैथिक डॉक्टरों की सेवानिवृत्ति की आयु 60 वर्ष से बढ़ाकर 65 वर्ष कर दी। हालाँकि उक्त लाभ आयुष डॉक्टरों को नहीं दिया गया था। अत: केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के समक्ष एक दावा याचिका दायर की गई थी, जिसे 24.08.2017 के आदेश के अन्तर्गत स्वीकृत करते हुए यह कहा गया था कि आयुष डॉक्टर भी(एलोपैथिक डॉक्टरों की भाँति ही) 65 वर्ष की आयु में सेवानिवृत्त होने के अधिकारी हैं। उक्त आदेश के विरुद्ध, उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की गई थी जिसे न्यायाधिकरण के आदेश की पुष्टि करते हुए दिनांक 15.11.2018 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। मामला सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया

गया। रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, केंद्र सरकार ने (एलोपैथिक डॉक्टरों के साथ-साथ आयुष डॉक्टरों की भी)सेवानिवृत्ति की आयु 65 वर्ष करने की अधिसूचना जारी करदी।

तथ्य चाहे जो भी हों, सर्वोच्च न्यायालय ने केंद्र सरकार द्वारा आयुष और सीएचएस में एलोपैथिक डॉक्टरों के बीच बनाए गए वर्गीकरण पर विचार किया और माना कि यह भेदभावपूर्ण औरअयुक्ति युक्त है, क्योंकि दोनों ही श्रेणियों के डॉक्टर अपने मरीजों की चिकित्सा एवं उपचार का एक समान कार्य कर रहे हैं। मात्र यह तथ्य कि वे उपचार के विभिन्न तरीकों का उपयोग कर रहे हैं, एक स्पष्ट अंतर के रूप में स्थापित नहीं होगा। इस प्रकार वर्गीकरण अनुचित, भेदभावपूर्ण और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के प्रावधान के असंगत है। वर्तमान वाद की भी यही परिस्थितियाँ हैं। प्रांतीय चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवाओं के अन्तर्गत एलोपैथिक डॉक्टरों को 62 वर्ष की आयु में सेवानिवृत्ति का लाभ दिया जाता है, जबकि याचिकाकर्ता जो होम्योपैथिक चिकित्सा सेवा संवर्ग से संबंधित है और होम्योपैथी के माध्यम से अपने रोगियों की चिकित्सा करता है, उसे 62 वर्ष की सेवानिवृत्ति की आयु का लाभ नहीं दिया जाता है। यह वर्गीकरण भी भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 द्वारा प्रभावित है जैसा कि डॉ. राम नरेश शर्मा (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया था।

उपरोक्त के दृष्टिगत, दिनांक 17.12.2021 का आक्षेपित आदेश निरस्त किया जाता है।

याचिकाकर्ता को 62 वर्ष की आयु तक सेवा में बने रहने की अनुमति है एवं उसे विधि के अनुरुप सेवा के समस्त आनुषंगिक लाभ प्रदान किए जाएंगे।

उपरोक्त के साथ रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

(2023) 1 ILRA 146
मूल क्षेत्राधिकार
नागरिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 06.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय

रिट बी संख्या 359/2022

नारायण कुमार अग्रवाल व अन्य ... याचिकाकर्ता

बनाम

राजस्व बोर्ड, इलाहाबाद और अन्य ... प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:
श्री मनीष कुमार निगम

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री दीपक कुमार जायसवाल, श्री संजय मौर्य

क. नागरिक कानून - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार नियम, 1952 - नियम 285 ई - अचल संपत्ति की बिक्री - खरीद राशि की पूरी राशि का भुगतान क्रेता द्वारा बिक्री की तारीख से पंद्रहवें दिन या उससे पहले किया जाएगा और चूक के मामले में जमा राशि सरकार को जब्त कर ली जाएगी और संपत्ति को फिर से बेच दिया जाएगा और चूककर्ता खरीदार संपत्ति के सभी दावों को जब्त कर लेगा, या राशि के किसी भी हिस्से के लिए जिसके लिए इसे बाद में बेचा जा सकता है - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार नियम के नियम 285-ङ के अधीन अंतवष्ट उपबंध अनिवार्य- वर्तमान मामले में नीलामी 8.10.1975 को हुई थी और प्रतिवादी द्वारा 1/4 (4,000 / -) राशि 8.10.1975 को जमा की गई थी, लेकिन शेष 3/4 राशि 7.11.1975 को जमा की गई थी यानी नीलामी की तारीख से 15 दिनों की अवधि के बाद - प्रतिवादी के पक्ष में 7.6.1995 को बिक्री प्रमाण पत्र जारी किया गया था - याचिकाकर्ताओं द्वारा 8-7-2-1977 को उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार नियमावली के नियम 285 के तहत आपत्ति दर्ज की गई थी जिसे आयुक्त ने परिसीमा के आधार पर खारिज कर दिया था और पुनरीक्षण को राजस्व बोर्ड द्वारा भी खारिज कर दिया गया था- अभिनिर्धारित - चूंकि, नीलामी की तारीख से 15 दिनों की अवधि के बाद 3/4 राशि जमा की गई है, इसलिए उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार नियमों के नियम 285 ई के तहत निहित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, नीलामी/बिक्री को शून्य और शून्य माना जाएगा और संपत्ति को फिर से बेच दिया जाएगा। (अनुच्छेद 8, 9, 10,11)

ख. नागरिक कानून - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार नियम, 1952, नियम 285 आई, - 30 दिनों के भीतर बिक्री को अलग करने के लिए आवेदन - देरी - परिसीमा अधिनियम, 1963, धारा 5 - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार नियमावली के नियम 285 आई के तहत आपत्ति दर्ज करने में सीमा - परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के प्रावधान उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार के नियम 285 आई के तहत कार्यवाही पर लागू होंगे (पैरा 12)

ग. भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - वैकल्पिक उपाय - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार नियम, 1952, नियम 285 ङ - यदि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार नियमावली के नियम 285ङ का उल्लंघन होता है तो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत प्रत्यक्ष रिट याचिका भी सुनवाई योग्य है (पैरा 13)

अनुमति। (ई-5)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. मणिलाल मोहनलाल शाह और अन्य बनाम सरदार सैयद अहमद सैयद महमूद और अन्य एआईआर 1954 एससी 349

2. महमूद अहमद खान (मृत) कानूनी प्रतिनिधियों बनाम रणबीर सिंह और अन्य के माध्यम से 1955 एडब्ल्यूसी 896

3. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम मेसर्स स्वदेशी पॉलीटेक्स लिमिटेड एवं अन्य 2009 (107) आरडी 22,

4. मूलचंद बनाम कलेक्टर, जालौन व अन्य एआईआर 1982 सभी 141

5. बाबू राम बनाम राजस्व बोर्ड, उ.प्र., लखनऊ एवं अन्य 1989 सभी एलजे 1238

6. कुंवर मोहन स्वरूप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 1965 सभी एलजे 277

7. श्रीमती शांति देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 1997 आरडी 583

8. पृथ्वी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 1998 (1) एडब्ल्यूसी 471

9. सावित्री सिंह बनाम राजस्व बोर्ड, उ.प्र., लखनऊ व अन्य 2008 (104) आरडी 728,

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री मनीष कुमार निगम, प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता और प्रतिवादी संख्या 4 और 5 के अधिवक्ता श्री दीपक कुमार जायसवाल और श्री संजय मौर्य को सुना गया।

2. प्रकरण के संक्षिप्त तथ्य यह है कि फर्म मेसर्स सुदर्शन ऑयल मिल्स नसीराबाद, पादरी बाजार, जिला-गोरखपुर पर वर्ष 1963-1964 से 1969-1970 तक 7764.57 रुपये + ब्याज की कुछ बिक्री बकाया थी, याचिकाकर्ताओं के पिता मनोहर लाल उपरोक्त फर्म में भागीदार थे। उपरोक्त फर्म के बिक्री कर की वसूली की कार्यवाही शुरू की गई और कलेक्टर द्वारा 22.7.1975 को याचिकाकर्ताओं के पिता के दो मंजिला घर को कुर्क करने का आदेश जारी किया गया। इसके बाद कलेक्टर द्वारा उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन नियमों के नियम 282 के अन्तर्गत 7.10.1975 को तय करते हुए याचिकाकर्ताओं के पिता के घर की नीलामी के लिए दिनांक 2.9.1975 को एक बिक्री उद्घोषणा जारी की गई थी। चूँकि 7.10.1975 को अवकाश था, इसलिये 7.10.1975 को नीलामी नहीं हो सकी, नीलामी आयोजित करने के लिए कोई नई उद्घोषणा जारी किए बिना 8.10.1975 को एक नीलामी आयोजित की गई थी। नीलामी में छह व्यक्तियों ने भाग लिया और छह व्यक्तियों में से, श्री दुर्गा प्रसाद ने 13,000/- रुपये की बोली लगाकर सबसे अधिक बोली लगाई, एक कन्हैया लाल पुत्र मेवा लाल जयप्रश्र (प्रतिवादी संख्या 5) ने 8.10.1975 को ही उस घर को खरीदने के लिए एक आवेदन दायर किया था, जिसे 8.10.1975 को 16,000/- रुपये की राशि में नीलाम करने का आरोप लगाया गया था। दुर्गा प्रसाद, जो सबसे अधिक बोली लगाने वाले थे, ने प्रतिवादी संख्या 5 के आवेदन पर "अनापत्ति प्रमाण पत्र" दिया है। याचिकाकर्ता जो नीलामी के समय नाबालिग थे और याचिकाकर्ता के पिता बिस्तर पर थे, उन्होंने कलेक्टर, गोरखपुर के समक्ष एक आवेदन दिया, कुर्की/नीलामी पर उनकी आपत्ति। 8.10.1975 को होने वाली कथित नीलामी के लिए आवेदन/आपत्ति के संबंध में दिनांक 17.10.1975 की एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। नीलामी राशि का 1/4 भाग अर्थात रु. 4,000/- प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा 8.10.1975 को जमा किया गया तथा शेष 3/4 राशि अर्थात रु. 12,000/- प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा 15 दिनों के भीतर अर्थात दिनांक 23.10.1975 या पहले जमा नहीं किया गया। उप समाहर्ता (संग्रह) विक्रय कर, गोरखपुर ने दिनांक 27.10.1975 को प्रतिवादी संख्या 5 को नोटिस जारी किया कि उसने 12,000/- रुपये जमा नहीं किये हैं, अत: दिनांक 28.10.1975 तक जमा करने का समय दिया गया, उपरोक्त प्रार्थना पत्र दिनांक 27.10. 1975 प्रतिवादी संख्या 5 को 27.10.1975 को प्राप्त हुआ। प्रतिवादी संख्या 5 ने शेष 3/4 राशि जमा नहीं की बल्कि 28.10.1975 को एक आवेदन प्रस्तुत किया जिस पर डिप्टी कलेक्टर ने 1.11.1975 को एक आदेश पारित किया जिसमें उल्लेख किया गया कि शेष राशि नीलामी की तिथि से पंद्रह दिनों के भीतर जमा की जानी है और प्रकरण में इसे जमा नहीं किया गया तो पहले जमा किया गया पैसा जब्त कर लिया जाएगा। 7.11.1975 को, प्रतिवादी संख्या 5 ने 12,000/- रुपये जमा करने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिस पर डिप्टी कलेक्टर ने उसे अपने जोखिम पर जमा करने की अनुमति दी। 22.10.1975 को, याचिकाकर्ताओं के पिता मनोहर लाल ने एक आवेदन दायर कर कलेक्टर से नीलामी बिक्री की पुष्टि न करने का

अनुरोध किया। याचिकाकर्ताओं को डिप्टी कलेक्टर (संग्रह) बिक्री कर, गोरखपुर द्वारा जारी दिनांक 1.11.1975/6.11.1975 का एक पत्र दिया गया था जिसमें यह उल्लेख किया गया था कि याचिकाकर्ताओं द्वारा 9.10.1975 को दिए गए आवेदन और याचिकाकर्ताओं के पिता- मनोहर लाल द्वारा दिए गए आवेदन के अनुसरण में, जिला मजिस्ट्रेट ने दिनांक 30.10.1975 के आदेश के अन्तर्गत विधि के अनुसार बिक्री कर बकाया की वसूली के लिए एक आदेश पारित किया। याचिकाकर्ताओं के पिता- मनोहर लाल को पंजीकृत डाक के माध्यम से दिनांक 15.1.1977 को एक पत्र प्राप्त हुआ कि अपर कलेक्टर ने आदेश दिनांक 22.12.1975 के माध्यम से निर्देश दिया है कि बिक्री प्रमाण पत्र प्रतिवादी संख्या 5 के पक्ष में जारी किया जाए। इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं के पिता ने 7.2.1977 को आयुक्त, गोरखपुर मंडल, गोरखपुर के समक्ष आपत्ति, साथ ही 8.10.1975 को हुई कथित नीलामी को चुनौती देने वाली आपत्ति दाखिल करने में हुई देरी को क्षमा करने की प्रार्थना उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन नियम के 285 आई के अन्तर्गत एक याचिका दायर की। उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन नियमों के नियम 285 आई के अन्तर्गत याचिकाकर्ताओं के पिता की आपत्ति पर राज्य सरकार द्वारा 30.5.1977 को आपत्तियां दायर की गईं। आयुक्त, गोरखपुर मंडल, गोराखुर ने अपने आदेश दिनांक 15.6.1981 द्वारा याचिकाकर्ता के पिता द्वारा उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन नियमों के नियम 285 आई के अन्तर्गत दायर आपत्तियों को इस आधार पर खारिज कर दिया कि आवेदन 30 दिनों की निर्धारित अवधि के बाद दायर किया गया है। दिनांक 15.6.1981 के आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ताओं द्वारा राजस्व बोर्ड, इलाहाबाद के समक्ष एक पुनरीक्षण दायर किया गया था, जिसे दिनांक 4.7.1981 के आदेश द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि पुनरीक्षण राजस्व बोर्ड, लखनऊ के समक्ष होगा। राजस्व परिषद, इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 4.7.1981 के विरुद्ध याचिकाकर्ताओं के पिता ने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या 8330/1981 दायर की, जिसमें इस आशय का अंतरिम आदेश पारित किया गया कि दूसरे पक्ष के पक्ष में की गई बिक्री प्रभावी नहीं होगी, बशर्ते याचिकाकर्ता पूरी राशि जमा कर दें। इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश दिनांक 6.7.1981 के अनुपालन में, याचिकाकर्ताओं ने पूरी राशि जमा कर दी। रिट याचिका संख्या 8330/1981 पर अंततः सुनवाई हुई और दिनांक 7.2.1994 के आदेश के अन्तर्गत, रिट याचिका की अनुमति दी गई, आदेश दिनांक 4.7.1981 को रद्द कर दिया गया और नए सिरे से पुनरीक्षण पर निर्णय लेने के लिए प्रकरण को राजस्व बोर्ड के समक्ष वापस भेज दिया गया। इस बीच प्रतिवादी संख्या 5 के पक्ष में उप जिलाधिकारी (संग्रह)/अपर जिला मजिस्ट्रेट, सदर, गोरखपुर द्वारा दिनांक 7.6.1995 को विक्रय प्रमाणपत्र जारी कर दिया गया। इस न्यायालय द्वारा पारित रिमांड आदेश के बाद, पुनरीक्षण पर नए सिरे से सुनवाई की गई है। राजस्व बोर्ड और दिनांक 11.10.2021 के आदेश के अन्तर्गत पुनरीक्षण को खारिज कर दिया गया था, इसलिए यह रिट याचिका है। इस न्यायालय ने रिट याचिका पर विचार करते हुए दिनांक 27.5.2022 को अंतरिम आदेश पारित किया है, जो इस प्रकार है:

"याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री मनीष कुमार निगम और राज्य प्रतिवादीगण की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री देवेश विक्रम को सुना गया।

वर्तमान याचिका प्रतिवादी संख्या 2, आयुक्त, गोरखपुर मंडल, गोरखपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 15.6.1981 को चुनौती देने की मांग करते हुए दायर की गई है, जिसके अन्तर्गत नियम 285 आई के अन्तर्गत याचिकाकर्ताओं के हित में पूर्ववर्तियों द्वारा आवेदन दायर किया गया था। - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार नियम, 1952 को खारिज कर दिया गया था और बाद के आदेश दिनांक 11.10.2021 को सदस्य, राजस्व बोर्ड, यूपी, इलाहाबाद द्वारा पारित किया गया, जिसमें याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर पुनरीक्षण को खारिज कर दिया गया।

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता का तर्क यह है कि नीलामी बिक्री 7.10.1975/8.10.1975 को आयोजित की गई थी और बोली राशि का 25% उसी दिन जमा किया गया था, खरीद धन की शेष राशि अनिवार्य रूप से आवश्यक थी नियम 285-आई के अनुसार बिक्री की तिथि से 15 दिन या उससे पहले जमा किया जाना चाहिए और, अदम पैरवी की स्थिति में, बिक्री को शून्य माना जाएगा। इस प्रकार यह प्रस्तुत किया गया है कि भले ही नियम 285-आई के अन्तर्गत आवेदन को इस उद्देश्य के लिए निर्धारित समय अवधि से परे माना जाता, लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया है कि बोर्ड के समक्ष पुनरीक्षण के लंबित रहने के दौरान बिक्री की पुष्टि पर रोक लगाने वाला एक अंतरिम आदेश लागू था।

प्रथम दृष्टया प्रकरण पर विचार की आवश्यकता है.

प्रतिवादी संख्या 4, 5 और 6 को नोटिस जारी करें जो 16.8.2022 तक वापस किया जा सके।

प्रतिवादीगण को प्रत्युत्तर शपथपत्र दायर करने के लिए चार सप्ताह का समय दिया जाता है। इसके बाद याचिकाकर्ताओं के पास प्रत्युत्तर शपथपत्र दाखिल करने के लिए दो सप्ताह का समय होगा।

16.8.2022 को सूची।

लिस्टिंग की अगली तिथि तक, संपत्ति के कब्जे के संबंध में यथास्थिति, जो नीलामी बिक्री का विषय है, बनाए रखी जाएगी।

3. आदेश दिनांक 27.5.2022 के अनुसरण में, प्रतिवादी संख्या 4 और 5 ने अंतरिम आदेश को रद्द करने के लिए एक आवेदन के साथ अपना प्रति शपथपत्र दायर किया है, याचिकाकर्ताओं ने प्रतिवादी संख्या 4 और 5 द्वारा दायर प्रति शपथपत्र पर अपना प्रत्युत्तर शपथपत्र भी दाखिल किया है।

4. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि प्रतिवादी संख्या 5 ने 8.10.1975 को 4,000/- रुपये जमा किए थे, दिनांक 17.10.1975/18.10.1975 के आदेश के अन्तर्गत बिक्री प्रमाण पत्र जारी करने के लिए नीलामी की पुष्टि की गई थी, लेकिन शेष 3/4 राशि 7.11.1975 को प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा 12,000/- रुपये जमा किए गए थे जो पूरी तरह से दर्शाता है कि नीलामी क्रेता द्वारा नीलामी राशि जमा करने से पहले नीलामी की पुष्टि की गई थी। उन्होंने आगे कहा कि नीलामी की तिथि 8.10.1975 थी, इस प्रकार, 3/4वीं राशि पंद्रह दिनों के भीतर अर्थात् 23.10.1975 को या उससे पहले जमा की जानी थी, जैसा कि उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन नियम 285 ई के अन्तर्गत निर्धारित है, संपूर्ण नीलामी कार्यवाही को अमान्य माना जाएगा। याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर नियमों को परिसीमा के आधार पर खारिज कर दिया गया है, हालांकि इस न्यायालय की खण्ड पीठ के निर्णय को ध्यान में रखते हुए, परिसीमा अधिनियम की धारा 5 उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम और भूमि सुधार के नियम भी 285 आई के अन्तर्गत आपत्ति पर लागू होगी। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर पुनरीक्षण को भी याचिकाकर्ताओं के प्रकरण पर योग्यता के आधार पर विचार किए बिना राजस्व बोर्ड द्वारा मनमाने ढंग से खारिज कर दिया गया था। उन्होंने आगे कहा कि पूरी नीलामी कार्यवाही उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन नियम, 1952 के नियम 285 ई और 285 के उल्लंघन में शुरू की गई थी। उन्होंने आगे कहा कि कथित बिक्री अमान्य है और इसे पूरी तरह से अनदेखा किया जाना चाहिए।

5. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय के निम्नलिखित निर्णय पर विश्वास किया:

(i) एआईआर 1954 एससी 349, मणिलाल मोहनलाल शाह और अन्य बनाम सरदार सैयद अहमद सैयद महमद और अन्य।

(ii) 1955 एडब्ल्यूसी 896, महमूद अहमद खान (मृत) एल आरएस बनाम रणबीर सिंह और अन्य के माध्यम से

(iii) 2009 (107) आर.डी. 22, उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम. मैसर्स स्वदेशी पॉलीटेक्स लिमिटेड और अन्य।

(iv) एआईआर 1982 सभी 141 मूलचंद बनाम कलेक्टर, जालौन एवं अन्य।

(v) 1989 सभी एलजे 1238, बाबू राम बनाम राजस्व परिषद, उ.प्र., लखनऊ एवं अन्य

(vi) 1965 ऑल एलजे 277, कुँवर मोहन स्वरूप बनाम यूपी राज्य & अन्य

(vii) 1997 आर.डी. 583, श्रीमती शांति देवी बनाम. यूपी राज्य और दूसरे

(viii) 1998 (1) एडब्ल्यूसी 471, पृथ्वीपत बनाम यूपी राज्य और दूसरे

(ix) 2008 (104) आर.डी. 728, सावित्री सिंह बनाम राजस्व परिषद, उ.प्र., लखनऊ एवं अन्य।

6. दूसरी ओर, प्रतिवादी संख्या 4 और 5 के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन नियमों के नियम 285 आई के अन्तर्गत आपत्ति को उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन नियमों के नियम 285 आई के अन्तर्गत निधारित सीमा द्वारा रोक दिया गया था, जैसा कि ऐसे में, आयुक्त के न्यायालय द्वारा आपत्ति को उचित रूप से खारिज कर दिया गया था और राजस्व बोर्ड द्वारा भी इसे उचित रूप से बरकरार रखा गया था। उन्होंने आगे कहा कि बोली की 3/4 राशि जमा कर दी गई है, हालांकि पंद्रह दिनों के बाद लेकिन डिप्टी कलेक्टर (कलेक्शन) के साथ-साथ टैक्स कलेक्टर सेल्स टैक्स गोरखपुर दिनांक 7.11.1975 की अनुमति के अन्तर्गत, जमा होना वैध जमा माना जाएगा। उन्होंने आगे कहा कि नीलामी क्रेता/प्रतिवादी संख्या 5 को 7.6.1995 को बिक्री प्रमाण पत्र जारी किया गया है, इसलिए इस प्रकरण में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन नियमों के नियम 285 के के अन्तर्गत निहित प्रावधानों पर विश्वास किया, जो कहता है कि यदि नियम 285-आई के अन्तर्गत कोई आवेदन अनुमत समय के भीतर नहीं किया जाता है, तो सभी दावे अनियमितता या प्रकाशन में गलती के आधार पर होंगे। विक्रय का संचालन वर्जित होगा। उन्होंने 2010 की रिट-बी संख्या 1003602, श्रीमती परविंदर कौर बनाम राजस्व बोर्ड, यूपी, लखनऊ और अन्य में 27.1.2002 को पारित इस न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया, जिसमें यह माना गया है कि सीमा अधिनियम की धारा 5 उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन नियमों के नियम 285 आई के अन्तर्गत दायर आपत्तियों के संबंध में लागू नहीं होगा। उन्होंने अंततः कहा कि याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर रिट याचिका में कोई योग्यता नहीं है और इसे खारिज कर दिया जाना चाहिए।

7. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क पर विचार किया है और अभिलेख का अवलोकन किया है।

8. इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि नीलामी कथित तौर पर 8.10.1975 को हुई थी और प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा 1/4वाँ (4,000/- रुपये) राशि 8.10.1975 को जमा की गई थी लेकिन शेष 3/4वाँ राशि 7.11.1975 को जमा की गई थी अर्थात, नीलामी की तिथि से 15 दिन की अवधि के बाद। याचिकाकर्ताओं द्वारा उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन नियमों के नियम 285 आई के अन्तर्गत आपत्ति 7.2.1977 को दायर की गई थी, जिसे आयुक्त ने दिनांक 15.6.1981 के आदेश के अन्तर्गत सीमा के आधार पर खारिज कर दिया था और याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर पुनरीक्षण को भी बोर्ड द्वारा खारिज कर दिया गया था। आक्षेपित आदेश दिनांक 11.10.2021 द्वारा राजस्व के प्रकरण में प्रतिवादी संख्या 5 के पक्ष में 7.6.1995 को बिक्री प्रमाणपत्र जारी किया गया था।

9. चूंकि, नीलामी की तिथि से 15 दिनों की अवधि के बाद 3/4 राशि जमा की गई है, इसलिए, उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन नियम 285 ई के अन्तर्गत निहित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, नीलामी/बिक्री को शून्य माना जाएगा और शून्य संपत्ति फिर से बेची जाएगी। उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन नियम 285 ई इस प्रकार है:

"285-ई. क्रय राशि की पूरी राशि क्रेता द्वारा जिला कोषागार या किसी उप-कोषागार में बिक्री की तिथि से पंद्रहवें दिन या उससे पहले भुगतान की जाएगी और अदम पैरवी के वाद में, बिक्री के खर्चों की अदायगी के बाद जमा की जाएगी, सरकार द्वारा जब्त कर लिया जाएगा और संपत्ति को फिर से बेच दिया जाएगा और अदम पैरवी खरीदार संपत्ति के सभी दावों, या उस राशि के किसी भी हिस्से को जब्त कर लेगा जिसके लिए इसे बाद में बेचा जा सकता है।

10. उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन नियमों के नियम 285-ई के अन्तर्गत निहित अनिवार्य प्रावधान के साथ-साथ मणिलाल मोहनलाल शाह (सुप्रा), कुंवर मोहन स्वरूप (सुप्रा), मूलचंद (सुप्रा), बाबू राम (सुप्रा) महमूद अहमद खान (सुप्रा) और उत्तर प्रदेश राज्य (सुप्रा) में निर्धारित विधि के अनुपात पर विचार करते हुए जैसा कि याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने उद्धृत किया है, नीलामी बिक्री को विधि की दृष्टि में बरकरार नहीं रखा जा सकता है।

11. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत प्रकरण विधि वर्तमान प्रकरण में पूरी तरह से लागू होता है क्योंकि प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा शेष 3/4 राशि जमा करने में 15 दिन से अधिक का समय लगता है और जमा का तथ्य दोनों पक्षों द्वारा स्वीकार किया जाता है, इसलिए, इसके अलावा कोई विकल्प नहीं है कि यह माना जाए कि की गई नीलामी अमान्य है और संपत्ति को पुनः बेचा जाना चाहिए।

12. जहां तक उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन नियमों के नियम 285 आई के अन्तर्गत आपत्ति दर्ज करने की सीमा का प्रश्न है, पृथ्वीपत (सुप्रा) के प्रकरण में इस न्यायालय की खण्ड पीठ ने माना है कि उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन के नियम 285 आई के अन्तर्गत कार्यवाही की जाएगी। नियम न्यायिक कार्यवाही हैं, जब तक कि सीमा अधिनियम की धारा 5 उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन नियमों की धारा 285 आई के अन्तर्गत कार्यवाही पर लागू नहीं होगी, लेकिन इस न्यायालय ने परविंदर कौर (सुप्रा) प्रकरण का निर्णय करते समय खण्ड पीठ पर विचार नहीं किया है। पृथ्वीपत (सुप्रा) में इस न्यायालय के, इस प्रकार, पृथ्वीपत (सुप्रा) में दिए गए इस न्यायालय की खण्ड पीठ के निर्णय को ध्यान में रखते हुए, यह माना जाएगा कि सीमा अधिनियम की धारा 5 का प्रावधान नियम 285 आई के अन्तर्गत कार्यवाही पर लागू होगा, उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन नियमों के लेकिन आपत्ति/पुनरीक्षण पर नए सिरे से निर्णय लेने के लिए प्रकरण को अवर न्यायालयों के समक्ष भेजने के स्थान पर, यह मानना उचित होगा कि नीलामी की कार्यवाही शून्य और नगण्य है क्योंकि उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन के नियम 285 ई का स्पष्ट उल्लंघन है।

13. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिया गया वैकल्पिक तर्क यह है कि भले ही यह पाया जाए कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन नियम 285 आई के अन्तर्गत कार्यवाही पर लागू नहीं है, कुँवर मोहन स्वरूप (सुप्रा) के प्रकरण में न्यायालय ने माना है कि अगर उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन नियम 285 ई का उल्लंघन होता है तो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत सीधी रिट याचिका भी सुनवाई योग्य है, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई तर्क में दम है और उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन नियम 285 ई के अन्तर्गत निहित अनिवार्य प्रावधान के उल्लंघन के कारण विवादित नीलामी कार्यवाही विधि की दृष्टि में कायम नहीं रह सकती है।

14. वाद के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुपात को ध्यान में रखते हुए, राजस्व बोर्ड द्वारा पारित आदेश दिनांक 11.10.2021 और आदेश दिनांक 15.6.1981 पारित किया गया, आयुक्त द्वारा खारिज किये जाने योग्य हैं और एतद्द्वारा अलग किये जाते हैं। 8.10.1975 को आयोजित बिक्री कार्यवाही/नीलामी

और 17.10.1975 को इसकी पुष्टि को अमान्य माना जाता है। प्रतिवादीगण को विधि के अनुसार विवादित संपत्ति को फिर से बेचने का निर्देश दिया जाता है। 8.10.1975 को हुई बिक्री और उसके बाद की कार्यवाही से प्रतिवादी संख्या 5 को कोई अधिकार नहीं मिलेगा।

12. रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

13. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 1 ILRA 152

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल साइड

दिनांक: लखनऊ 20.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अताऊ रहमान मसूदी,
माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ल

रिट सी नंबर 30/2022

हार्दिक ट्रेडिंग ... याचिकाकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य .. प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के वकील:
अखिलेश कुमार कालरा, अविनाश चंद्र, नरेंद्र शंकर शुक्ला, पूजा सिंह

प्रतिवादियों के लिए वकील:
सी.एस.सी., नीरव चित्रवंशी, पुनीत चंद्र, रानी सिंह, समन्वय धर द्विवेदी

भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - रिट याचिका - रखरखाव - लोकस - कानून और अनुबंध से उत्पन्न होने वाले सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा सार्वजनिक कर्तव्य करने के अनिवार्य आदेश के विशेषाधिकार उपाय की प्रकृति अलग है - किसी अनुबंध के पालन की बाध्यता के तहत राज्य को बाध्य करने के लिए, सबसे पहले राज्य को स्पष्ट रूप से एक पक्ष होना चाहिए और दूसरे, तथ्यों के विवादित प्रश्नों के निर्धारण की स्थिति नहीं होनी चाहिए - वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता, एक फर्म, को यूपी राज्य कर्मचारी कल्याण निगम (प्रतिवादी संख्या 3) द्वारा काम सौंपा गया था - न तो यूपी राज्य और न ही मिशन निदेशक, राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन को अनुबंध के बारे में जानकारी थी - याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका, जो सिर्फ विपरीत पक्ष संख्या 3 का उपठेकेदार/एजेंट है, जिसमें राज्यों को उसके द्वारा किए गए काम के लिए राशि का भुगतान करने का निर्देश देने की प्रार्थना की गई है- - याचिकाकर्ता को भुगतान करने के दायित्व को पूरा करने के लिए विपरीत पक्ष संख्या 3 ने राज्य/केंद्र के खिलाफ कोई कार्यवाही शुरू नहीं करने का फैसला किया - माना - विपरीत पक्ष संख्या 3 के कार्य को निष्पादित करने के उद्देश्य से याचिकाकर्ता एक चयनात्मक विकल्प से अधिक नहीं था और वह भी बिना किसी निविदा प्रक्रिया का पालन किए - वास्तविक अनुबंध विपरीत पक्ष संख्या 3 के कहने पर लागू करने योग्य रहता है, जिसने राज्य के खिलाफ निष्क्रिय रहने का विकल्प चुना है - रिट याचिका खारिज कर दी गई (पैरा 14,15)

बर्खास्त (ई-5)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. जोशी टेक्नोलॉजीज इंटरनेशनल इंक बनाम यू.ओ.आई और अन्य (2015) 7 सुप्रीम कोर्ट मामले 728

2. बायो टेक सिस्टम बनाम सेंट ऑफ यूपी एवं अन्य 2021(1) एडब्ल्यूसी 92

3. लल्लू जी राजीव चंद्रा एंड संस बनाम मेलाधिकारी प्रयागराज, मेला प्राधिकरण एवं अन्य 2019(2) एडब्ल्यूसी 1750

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला, द्वारा दिया गया)

1. यह उप-ठेकेदार या विरोधी पक्ष संख्या 3 के एजेंट द्वारा स्थापित एक रिट याचिका है जिसमें निम्नानुसार राहत की प्रार्थना की गई है:-

"(i) परमादेश की प्रकृति में एक उचित रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें उत्तरदाताओं को याचिकाकर्ता को उसके द्वारा किए गए कार्य के लिए स्वीकृत राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया जाए, जिसे प्रतिवादी ने अपने विभिन्न पत्राचारों में, विशेष रूप से रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 22 और 23 में स्वीकार किया है।

(ii) परमादेश की प्रकृति में एक उचित रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें उत्तरदाताओं को ढाई साल की अवधि के लिए उक्त राशि पर 18% ब्याज का भुगतान करने का निर्देश दिया जाए।''

2. मामले के संक्षेप में बताए गए तथ्य यह हैं कि तंबाकू की खपत को कम करने के लिए केंद्र सरकार ने वर्ष 2019 में डीओ पत्र दिनांक 03.05.2019 में उल्लिखित उचित कदम उठाकर ''विश्व तंबाकू निषेध दिवस'' पर ''तंबाकू निषेध दिवस'' मनाने की एक योजना शुरू की। योजना के तहत तंबाकू निषेध आंदोलन का अभियान केंद्र सरकार के दिनांक 03.05.2019 के पत्र के मार्गदर्शन के अनुसार प्रत्येक राज्य/केंद्र शासित प्रदेश द्वारा लागू किया जाना था, जिसे तत्काल संदर्भ के लिए नीचे दिया गया है:

"आदरणीय महोदया/सर,

जैसा कि आप जानते हैं कि हर साल 31 मई को विश्व तंबाकू निषेध दिवस (डब्ल्यूएनटीडी) के रूप में मनाया जाता है, जिसमें तंबाकू के उपयोग से जुड़े स्वास्थ्य और अन्य जोखिमों पर प्रकाश डाला जाता है और तंबाकू की खपत को कम करने के लिए प्रभावी नीतियों की वकालत की जाती है। इस वर्ष 'विश्व तंबाकू निषेध दिवस 2019' की थीम "तंबाकू और फेफड़ों का स्वास्थ्य" है। विश्व तंबाकू निषेध दिवस 2019 इस बात पर ध्यान केंद्रित करेगा कि तंबाकू के संपर्क में आने से दुनिया भर में लोगों के फेफड़ों के स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है, जिसमें फेफड़े का कैंसर, पुरानी सांस की बीमारी, मातृ धूम्रपान या सेकेंड हैंड धुएं के संपर्क में आना, अस्थमा, निमोनिया और ब्रोंकाइटिस की शुरुआत और तीव्रता शामिल है और छोटे बच्चों में लगातार निचले श्वसन संक्रमण और तपेदिक। WNTD के लिए विकसित पोस्टर की एक सॉफ्ट कॉपी भी आपको आगे प्रसार के लिए थोड़ी देर में भेजी जाएगी।

2. तम्बाकू धूम्रपान और सेकेंड हैंड धूम्रपान के जोखिम से उत्पन्न जोखिमों के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए, विशेष रूप से फेफड़ों के स्वास्थ्य के लिए तम्बाकू धूम्रपान के विशेष खतरों पर जागरूकता और तम्बाकू धूम्रपान और तपेदिक से होने वाली मौतों के बीच संबंध पर उभरते सबूतों के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए, राज्य/केंद्र शासित प्रदेश से अनुरोध है कि वे इस वर्ष विश्व तंबाकू निषेध दिवस मनाएं। कम से कम 15 दिनों के लिए तंबाकू नियंत्रण कानूनों को लागू करने का अभियान और सभी सरकारी भवनों को तंबाकू मुक्त परिसर/भवन के रूप में घोषित करना; रोड शो, नुक्कड़ नाटक आदि जैसी जागरूकता गतिविधियाँ; एनसीडी क्लीनिकों में स्वास्थ्य कर्मचारियों का प्रशिक्षण और एनसीडी क्लीनिकों में तंबाकू समाप्ति सेवाएं शुरू करना; एनसीडी क्लीनिकों के साथ तंबाकू समाप्ति सेवाओं का एकीकरण, कुछ सुझाई गई गतिविधियां हैं जिन्हें इस दौरान किया जा सकता है। 3. मैं तंबाकू नियंत्रण के प्रति हमारी मजबूत प्रतिबद्धता को दुनिया के सामने पेश करने के लिए आपके हस्तक्षेप और समर्थन का अनुरोध करता हूं।

हार्दिक सम्मान के साथ"

3. उपरोक्त पत्र के आलोक में उ0प्र0 शासन द्वारा दिनांक 09.05.2019 को चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग के तत्वावधान (अध्यक्षता) में एक बैठक आयोजित की गयी तथा निर्णय लिया गया कि सूचना, संचार एवं शिक्षा का कार्य '' उ.प्र. राज्य कर्मचारी कल्याण निगम द्वारा 'तम्बाकू निषेध दिवस' मनाया जाएगा, जो स्वास्थ्य विभाग को प्रत्येक जिले के स्तर पर ब्रोशर, पोस्टर, बैनर, पैम्फलेट, सामुदायिक जागरूकता और पत्रक आदि प्रदान करेगा। मुद्रित सामग्री उपलब्ध कराने के लिए निगम यानी विपरीत पक्ष संख्या 3 को 09.05.2019 को आयोजित बैठक में चुना गया बताया गया है, जिसमें याचिकाकर्ता एक पक्ष नहीं था। मौजूदा चुनाव प्रक्रिया के कारण समय की कमी को देखते हुए, समझा जाता है कि निगम के पास ई-निविदा प्राप्त करने का एक तंत्र है, इसलिए राज्य द्वारा किसी भी निविदा प्रक्रिया का पालन किए बिना संबंधित जिलों में मुद्रित सामग्री प्रदान करने के लिए चुना गया था। इसी पृष्ठभूमि में उ.प्र. राज्य कर्मचारी निगम ने वर्ष 2019 में केंद्र सरकार द्वारा शुरू की गई ''तंबाकू निषेध दिवस'' परियोजना के कार्यान्वयन में कदम रखा। निर्विवाद रूप से यूपी राज्य कर्मचारी निगम भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ के तहत राज्य का एक साधन है और यह स्थिति (2005)1 एससीसी 149 (वीरेंद्र कुमार श्रीवास्तव बनाम यूपी राज्य कर्मचारी कल्याण निगम और अन्य) में दिए गए फैसले में अच्छी तरह से तय की गई है। हालाँकि, याचिकाकर्ता कार्यालय ज्ञापन दिनांक 8.10.2015 में निर्धारित नियमों और शर्तों के तहत यूपी राज्य कर्मचारी निगम के साथ पंजीकृत एक फर्म मात्र है। इसी प्रकार अन्य फर्में भी समान शर्तों पर निगम के साथ पंजीकृत हैं।

4. याचिकाकर्ता को यूपी राज्य कर्मचारी कल्याण निगम द्वारा काम सौंपा गया था और यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कोई दस्तावेज नहीं है कि यूपी राज्य या मिशन निदेशक, राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन को कार्य आदेशों के माध्यम से याचिकाकर्ता को दिए गए अनुबंध के बारे में किसी भी तरह से जानकारी थी। याचिकाकर्ता का यह भी मामला नहीं है कि याचिकाकर्ता को कार्य आदेश जारी करने से पहले विपरीत पक्ष संख्या 3 ने अनुबंध को पूरा करने के लिए अपनी नियुक्ति के संबंध में राज्य की पूर्व मंजूरी प्राप्त की थी। रिट याचिका में दिए गए कथन यह भी नहीं दिखाते हैं कि याचिकाकर्ता को कार्य आदेश जारी करने से पहले विपक्षी पार्टी नंबर 3 ने कोई निविदा प्रक्रिया अपनाई है और अनुबंध देने के लिए कोई प्रतिस्पर्धी अभ्यास किया है। एकमात्र आधार जिस पर दावा टिका है वह एक साधारण कथन है कि याचिकाकर्ता को विपक्षी पार्टी नंबर 3 द्वारा कार्य आदेश जारी किए गए थे, जिसके कार्यान्वयन पर राज्य सरकार और निदेशक राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन यूपी सहित अन्य सभी विपक्षी पार्टियों द्वारा केंद्र

सरकार का प्रतिनिधि होने के नाते सम्मान किया जाना चाहिए। .

5. पक्षों को सुना गया। याचिकाकर्ता ने यह तर्क दोहराया कि एक बार उसे कार्य आदेश जारी कर दिए गए और उसे सफलतापूर्वक पूरा कर लिया गया है, इसलिए, ऐसा कोई कारण नहीं है कि देय भुगतान विपक्षी पक्षों द्वारा जारी नहीं किया जा सकता है।

6. दायित्व पर विवाद करते समय विरोधी पक्ष संख्या 3 ने इस बिंदु पर जोर दिया है कि याचिकाकर्ता का विपरीत पक्ष संख्या 3 के साथ पंजीकरण इस शर्त के अधीन है कि जब तक राज्य द्वारा निधि जारी नहीं की जाती, तब तक भुगतान जारी करना जैसा कि याचिकाकर्ता ने दावा किया है का कोई सवाल ही नहीं है। दिनांक 8.10.2015 के कार्यालय ज्ञापन के खंड 7 में पंजीकरण की शर्तों को विशेष रूप से संदर्भित किया गया है और इसे निम्नानुसार पढ़ा जाता है: -

"सामग्रियों की आपूर्ति किये जाने वाले विभाग से निगम को भुगतान प्राप्त होने के पश्चात संबंधित आपूर्तिकर्ता फर्म/ ट्रेडर्स के पक्ष में नियमानुसार भुगतान किया जायेगा।"

7. यह न्यायालय यह नोट कर सकता है कि याचिकाकर्ता ने विपरीत पक्ष संख्या 3 के साथ पंजीकरण के अलावा ऐसी कोई सामग्री या दस्तावेज नहीं रखा है जिसके अनुसार संविदात्मक दायित्व अर्थात विपरीत पक्ष संख्या 3 का वैध अधिकार बनाया गया हो। किसी व्यक्ति को चयनात्मक रूप से चुनने और वैध प्रक्रिया के माध्यम से चुनने के बीच अंतर है। विपक्षी संख्या 3 के कार्य को निष्पादित करने के उद्देश्य से याचिकाकर्ता एक चयनात्मक विकल्प से अधिक कुछ नहीं था, वह भी बिना किसी निविदा प्रक्रिया का पालन किए, इसलिए, याचिकाकर्ता को जारी किया गया कार्य आदेश एक वैध अनुबंध है या नहीं, यह अपने आप में बहुत संदिग्ध है । याचिकाकर्ता और विरोधी पक्ष संख्या 3 के बीच संबंध को मास्टर और एजेंट के रूप में वर्गीकृत करना कानूनी रूप से गलत नहीं होगा और यह अकेले याचिकाकर्ता को राज्य के खिलाफ मुकदमा करने में सक्षम नहीं करेगा, भले ही सेवाओं का उपयोग किया गया हो। यह टिप्पणी इसलिए की गई है क्योंकि याचिकाकर्ता और विरोधी पक्ष संख्या 3 को किसी भी परियोजना के प्रदर्शन के लिए बाध्य करने वाला कोई लिखित दस्तावेज नहीं है।

8. दिलचस्प बात यह है कि विरोधी पक्ष संख्या 3 याचिकाकर्ता के पक्ष में कार्य आदेश जारी करने पर विवाद नहीं करता है, लेकिन जो विवादित है वह भुगतान जारी करने को लेकर है। दायित्व का बचाव करने के लिए, विरोधी पक्ष संख्या 3 ने उपरोक्त पुनरुत्पादित पंजीकरण ज्ञापन दिनांक 8.10.2015 के खंड -7 पर बहुत अधिक भरोसा किया है। हालांकि, याचिकाकर्ता को भुगतान करने के दायित्व को पूरा करने के लिए विपरीत पक्ष संख्या 3 ने राज्य/केंद्र के खिलाफ किसी भी तरह की कार्यवाही शुरू करने का विकल्प नहीं चुना है। 9.5.2019 को आयोजित बैठक में भागीदार नहीं होने के कारण याचिकाकर्ता ऐसा कोई सहारा नहीं ले सकता जब तक कि उसे दिया गया कार्य निविदा की वैध प्रक्रिया पर आधारित न हो। यदि कोई अनुबंध था भी, तो वह याचिकाकर्ता और विरोधी पक्ष संख्या 3 के बीच ही सीमित था, जिसका कोई खुलासा नहीं किया गया है। व्यवसाय लाभ के लिए है, इसलिए पार्टियों के बीच खुलासे साफ-सुथरे होने चाहिए। इन्हीं परिस्थितियों में मामला हमारे सामने आया है. सवाल यह उठता है कि क्या याचिकाकर्ता, जिसे विपरीत पक्ष संख्या 3 ने अपने विवेक से काम के निष्पादन के लिए नियुक्त किया था, को राज्य (विपक्षी पक्ष संख्या 1 और 2 और 5) साथ ही निदेशक राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन उ.प्र. यानी विपरीत पार्टी नंबर 4 के खिलाफ धन जारी करने के लिए प्रार्थना करने का अधिकार है।

9. न्यायालय ने सभी विपरीत पक्षों को जवाबी हलफनामा और साथ ही लिखित दलीलें दाखिल करने के लिए बुलाया। जवाबी हलफनामे में ली गई दलीलों के आलोक में दो विशिष्ट तर्क राज्य के विद्वान वकील के साथ-साथ विपरीत पक्ष संख्या 4 द्वारा दिए गए हैं। सबसे पहले, इस मामले में तथ्यों के विवादित प्रश्नों का निर्धारण शामिल है, इसलिए, पार्टियों के बीच मामला रिट क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं है। दिए गए तर्क को इस प्रकार बताए गए केस कानून की ताकत के आधार पर प्रमाणित किया गया है:-

1. (2015) 7 सुप्रीम कोर्ट मामले 728; जोशी टेक्नोलॉजीज इंटरनेशनल इंक बनाम भारत संघ और अन्य 2. 2021(1) एडब्ल्यूसी 92; बायोटेक सिस्टम बनाम यूपी राज्य और अन्य

3. 2019(2) ए डब्ल्यू सी 1750; लल्लू जी राजीव चंद्रा एंड संस बनाम मेलाधिकारी प्रयागराज, मेला प्राधिकरण एवं अन्य

10. दोनों उत्तरदाताओं यानी राज्य और निदेशक राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन, यूपी द्वारा दिया गया दूसरा निवेदन इस आशय का है कि याचिकाकर्ता और विपरीत पक्ष संख्या 3 के बीच हुए अनुबंध के बारे में इन दोनों पक्षों में से किसी को भी जानकारी नहीं है। राज्य (विपक्षी पक्ष संख्या 1, 2 और 5) द्वारा दायर लिखित प्रस्तुतियों के पैरा 9 में दिया गया विशिष्ट तर्क इस प्रकार है:-

"9. वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता द्वारा मांगे गए दावे पर जोरदार विवाद हुआ है, और याचिकाकर्ता यह

प्रदर्शित करने के लिए कोई भी सामग्री रिकॉर्ड पर रखने में सक्षम नहीं है कि वह किसी भी समझौते में एक पक्ष था जिसके संदर्भ में वह उत्तरदाताओं के खिलाफ कोई भी दावा करने का हकदार होगा।"

11. हमारे सामने जो मुद्दा है वह मूलतः पहले तर्क पर निर्भर नहीं है बल्कि यह दूसरा तर्क है जिस पर विवाद को शांत करने के लिए विचार करने की आवश्यकता है।

12. दिए गए तर्क की सराहना करने के लिए, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि विरोधी पक्ष संख्या 3 द्वारा बिलों की प्राप्ति के लिए हर मांग उठाने पर, राज्य को विपरीत पक्ष संख्या 3 को राशि जारी करने के उद्देश्य से फर्म के नाम और उसके बैंक खाते का खुलासा करने की आवश्यकता थी। उपरोक्त सीमा तक प्रकटीकरण, हमारे विनम्र विचार में, याचिकाकर्ता के विपरीत पक्ष संख्या 3 को दिए गए कार्य अनुबंध में एक पक्ष होने के लिए राज्य के संबंध को योग्य नहीं बनाता है। इसलिए, राज्य और निदेशक राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के खिलाफ विशेष अधिकारों की खोज में वर्तमान याचिका की स्थापना पूरी तरह से गलत है और पार्टियों के गलत जुड़ाव से ग्रस्त है। रिट याचिका में विपरीत पक्ष संख्या 3 को शामिल करना याचिकाकर्ता की ओर से छद्म या मिलीभगतपूर्ण कार्यवाही शुरू करने के प्रयास के अलावा कुछ नहीं है। विरोधी पक्ष संख्या 3 ने याचिकाकर्ताओं को एक एजेंट के रूप में शामिल किया हो सकता है, लेकिन ऐसा कोई भी सौदा याचिकाकर्ता को राज्य सरकार या केंद्र सरकार के खिलाफ कानूनी कार्यवाही करने का अधिकार नहीं देगा, जब तक कि अनुबंध या क्षतिपूर्ति के प्रदर्शन की बाध्यता की पेशकश नहीं की जाती है, यदि कोई भी, कमी को पूरा करने के लिए प्रत्यक्ष था। फर्म या उसके खाते के नाम के संबंध में विपरीत पक्ष संख्या 3 द्वारा किए गए खुलासे केवल अपने हित के लिए निगम और राज्य के बीच अपने स्वतंत्र संबंधों को सुव्यवस्थित करने के लिए थे और मामले की परिस्थितियों में त्रिपक्षीय समझौता कभी नहीं हुआ था स्पष्ट रूप से या निहितार्थ से, केवल फर्म के नाम और उसके बैंक खाते की स्वीकृति राज्य को सीधे और विशेष रूप से याचिकाकर्ता के प्रति वित्तीय दायित्वों के प्रदर्शन के लिए बाध्य नहीं करेगी।

13. ऐसी स्थिति में जहां सार्वजनिक कर्तव्य का प्रदर्शन इसके कार्यान्वयन के लिए दो पक्षों के बीच जुड़ा हुआ है, अनुबंध की गोपनीयता के अभाव में तीसरे पक्ष का प्रवेश कानून के तहत मान्यता प्राप्त नहीं है, जिसका दायरा अपरिभाषित रहता है। पार्टियों के आचरण के आलोक में कोई भी व्याख्या, वह भी सार्वजनिक धन के उपभोग के लिए, एक खतरनाक बहाना होगा। यही कारण है कि [1861] ईडब्ल्यूएचसी जे57(क्यूबी) में रिपोर्ट किए गए ट्वीडल बनाम एटकिंसन के मामले में अनुबंध की निजता के नियम को कठोरता से प्रतिपादित किया गया था।

14. कानून और अनुबंध से उत्पन्न होने वाले सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा सार्वजनिक कर्तव्य निभाने के अनिवार्य आदेश के विशेषाधिकार उपाय की प्रकृति अलग-अलग होती है। किसी अनुबंध के पालन की बाध्यता के तहत राज्य को बाध्य करने के लिए, सबसे पहले राज्य को स्पष्ट रूप से एक पक्ष होना चाहिए और दूसरे, तथ्यों के विवादित प्रश्नों के निर्धारण की स्थिति नहीं होनी चाहिए। हालाँकि, वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता ने विपरीत पक्ष संख्या 3 का एजेंट बने रहने के अलावा कोई बेहतर पद ग्रहण नहीं किया है। याचिकाकर्ता का स्थान और पहचान किसी भी दावे के लिए विरोधी पक्ष संख्या 3 के साथ विलय कर दी गई है। विरोधी पक्ष संख्या 3 ने इस न्यायालय के समक्ष कोई दावा नहीं किया है, इसलिए, याचिकाकर्ता के स्वतंत्र रूप से दावा करने के रास्ते में आने वाली कानूनी बाधाओं के अलावा लोकस के रास्ते में आने वाली अन्य कानूनी बाधाएं इस न्यायालय को हस्तक्षेप करने में सक्षम नहीं बनाती हैं इसका कारण यह है कि वास्तविक अनुबंध विपरीत पक्ष संख्या 3 के कहने पर लागू करने योग्य रहता है जिसने राज्य के विरुद्ध निष्क्रिय रहना चुना है।

15. ऊपर बताई गई परिस्थितियों में, हम आश्वस्त नहीं हैं कि यहां मांगी गई राहत के लिए रिट याचिका पर विचार किया जा सकता है और यह विपरीत पक्ष संख्या 3 के लिए अपना दावा पेश करने के लिए खुला है जैसा कि कानून के तहत स्वीकार्य हो सकता है। तदनुसार रिट याचिका लागत के संबंध में कोई आदेश दिए बिना खारिज की जाती है।

(2023) 1 ILRA 157

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल साइड

दिनांक: लखनऊ 16.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा
माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह

रिट - सी संख्या - 3298/2022

सी/एम आजाद कोऑपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड और 7 अन्य ...याचिकाकर्ता

उत्तर प्रदेश राज्य और 5 अन्य ...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:-
प्रभाकर अवस्थी, धीरेश कुमार

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता:-
सीएससी, लाल चंद्र साहू, नरेंद्र कुमार गिरि, निरंकार सिंह, सुनील कुमार मिश्रा

ए. सिविल कानून – उ.प्र. सहकारी समिति अधिनियम, 1965 - धारा 29 (4-बी), 35 एवं 38 – उ.प्र. सहकारी समिति नियम, 1968 – नियम 437 और 438 – रजिस्ट्रार द्वारा नियुक्त अंतरिम समिति की अवधि - छह माह –धारा 29 (4-डी) के अंतर्गत, उप-धारा 29 (4-बी) के अंतर्गत नियुक्त अंतरिम समिति का अस्तित्व चुनाव के बाद प्रबंधन समिति की नियुक्ति या पुनर्गठन की तारीख से छह महीने की समाप्ति, जो भी पूर्व हो, समाप्त हो जाएगा– पुनर्गठन– अंतरिम प्रबंधन समिति के किसी भी सदस्य के परिवर्तन मात्र का यह अर्थ नहीं होगा कि प्रबंधन समिति का कार्यकाल उस तिथि से प्रारंभ होगा (पैरा 11, 12)

बी. सिविल कानून – उ.प्र. सहकारी समिति अधिनियम, 1965 – उ.प्र. सहकारी सोसायटी नियम, 1968 - सचिव का निष्कासन– रजिस्ट्रार द्वारा नियुक्त अंतरिम समिति द्वारा कार्यकाल की समाप्ति के पश्चात– प्रभाव– सोसायटी के सी/एम का चुनाव दिनांक 15.10.2016 को हुआ, 5 साल की अवधि के लिए, कार्यकाल दिनांक 14.10.2021 को समाप्त होना था – हालांकि, कार्यकाल समाप्त होने से पूर्व, दिनांक 17.6.2021 को, अतिरिक्त आवास आयुक्त ने निर्वाचित सी/एम को हटा दिया और चार सदस्यीय अंतरिम समिति नियुक्त की - दिनांक 13.8.2021 को, ए.सी.एम. -II को स्थानांतरित कर दिया गया और उनके स्थान पर ए.सी.एम. को प्रतिस्थापित किया गया – दिनांक 2.1.2022 को, अंतरिम सी/एम के अध्यक्ष के आदेश के तहत, ए.सी.एम. I ने, दिनांक 20.12.2021 के प्रस्ताव के आधार पर, सचिव को निस्काषित कर दिया – आयोजित - दिनांक 17.6.2021 को गठित अंतरिम प्रबंधन समिति का कार्यकाल उसकी नियुक्ति की तिथि से छह माह की समाप्ति दिनांक 17.12.2021 को समाप्त हो गया - उस तिथि को जब एसीएम II को एसीएम द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था , अंतरिम प्रबंधन समिति का कोई नया पुनर्गठन नहीं हुआ था, बल्कि यह केवल एक बदलाव था जो अंतरिम प्रबंधन समिति को कार्यात्मक बनाने के लिए लाया गया था – इसलिए अंतरिम समिति द्वारा दिनांक 20.12.2021 और दिनांक 1.1.2022 का प्रस्ताव पारित किया गया। इसके कार्यकाल की समाप्ति, अधिकार क्षेत्र के बिना थी और सचिव के निष्कासन आदेश दिनांक 2.1.2022 को किसी अधिकार क्षेत्र के बिना पारित किया गया था – दिनांक 20.12.2021 और 1.1.2022 का प्रस्ताव और दिनांक 2.1.2022 के आदेश को निरस्त कर दिया गया और अपास्त कर दिया गया – न्यायालय द्वारा विधिनुसार तत्काल चुनाव आयोजित करने का निर्देश दिया गया। (12, 13, 15)

स्वीकृत। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा और
माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता सी/एम आज़ाद कोऑपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड (इसके पश्चात "सोसायटी" के रूप में संदर्भित) यूपी सहकारी सोसायटी अधिनियम, 1965 (इसके पश्चात "अधिनियम" के रूप में संदर्भित) के अंतर्गत एक विधिवत पंजीकृत सहकारी समिति है।

सोसायटी की प्रबंधन समिति का अंतिम स्वीकृत चुनाव इसके उपनियमों के अनुसार पांच साल की अवधि के लिए 15.10.2016 को हुआ था। अतः कार्यकाल 14.10.2021 को समाप्त होना था। ऐसा प्रतीत होता है कि 17.6.2021 को, अतिरिक्त आवास आयुक्त ने अधिनियम की धारा 35 सपठित धारा 38 के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए माना कि प्रबंधन समिति के सभी सदस्यों ने कार्यकाल जारी रखने के अपने अधिकारों को खो दिया है एवं इसलिए, निर्वाचित प्रबंधन समिति को हटा दिया। अधिनियम की धारा 29 (4-बी) और यूपी सहकारी समिति नियमावली, 1968 (इसके बाद "नियम" के रूप में संदर्भित) के नियम 438 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उन्होंने राज्य के विभिन्न अधिकारियों को शामिल करते हुए एक चार सदस्यीय अंतरिम समिति नियुक्त की।

प्रस्ताव दिनांक 20.12.2021 (प्रस्ताव संख्या 2) के आधार पर, 2.1.2022 को सोसायटी की अंतरिम प्रबंधन समिति के अध्यक्ष श्री प्रदीप कुमार रमन, एसीएम-1, बरेली द्वारा पारित आदेश के अनुसार, सचिव श्रीमती पुष्पा सिंह, याचिकाकर्ता संख्या 2 को हटा दिया गया। साथ ही, इसी आदेश के द्वारा श्री प्रेमपाल सिंह, पुत्र श्री महेंद्र पाल सिंह (गन्ना पर्यवेक्षक, गोदाम प्रभारी), गन्ना विकास परिषद, चांदपुर को सोसायटी का सचिव नियुक्त किया गया। इससे व्यथित होकर, याचिकाकर्ताओं ने वर्तमान रिट याचिका दायर की है।

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री एचआर मिश्रा, जिनका श्री केएम मिश्रा द्वारा सहयोग किया गया, ने प्रस्तुत किया कि अधिनियम की धारा 38 के तहत पारित आदेश दिनांक 17.6.2021, नियमावली के नियम 437 और 438 सपठित अधिनियम की धारा 35 का उल्लंघन था।

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अंतिम स्वीकृत चुनाव दिनांक 15.10.2016 से पांच साल बीतने के बाद, प्रबंधन समिति का कार्यकाल 14.10.2021 को समाप्त हो गया। इस बीच, उनका कहना है कि जब आदेश दिनांक 17.6.2021 पारित किया गया था तो उसे, सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना और अधिनियम की धारा 38 के प्रावधानों का पालन किए बिना, पारित किया गया था।

तत्पश्चात, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि जब 17.6.2021 को सोसायटी की अंतरिम प्रबंधन समिति की नियुक्ति की गई थी, तो उसके बाद, नियुक्ति की तारीख से छह महीने बीतने के बाद उसका कार्यकाल समाप्त हो गया और इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि प्रस्ताव दिनांक 20.12.2021 के आधार पर जो आदेश दिनांक 2.1.2022 को पारित किया गया था, वह धारा 29 (4-डी) के प्रावधानों के विरुद्ध था क्योंकि अंतरिम प्रबंधन समिति जो 17.6.2021 को गठित हुई थी, अपना कार्यकाल 17.12.2021 तक अर्थात अंतरिम प्रबंधन समिति के गठन की तारीख से छह महीने समाप्त होने के बाद, पूरा कर चुकी थी। चूंकि याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने अधिनियम की धारा 29 (4-डी) का आश्रय लिया, इसलिए इसे यहां निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"29(4-डी): उप-धारा (4-बी) के तहत नियुक्त अंतरिम समिति का अस्तित्व, अपनी नियुक्ति की तारीख से छह महीने की समाप्ति या चुनाव के बाद प्रबंधन समिति के पुनर्गठन, जो भी पहले हो, के बाद समाप्त हो जाएगा।"

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि धारा 29 (4-डी) के अवलोकन से पता चलता है कि अंतरिम प्रबंधन समिति अपनी नियुक्ति की तारीख से छह महीने की समाप्ति के बाद अस्तित्वहीन हो गई थी और इसलिए, आदेश दिनांक 2.1.2022 के पारित होने से पहले, जो प्रस्ताव 20.12.2021 को पारित हुआ था, वह भी क्षेत्राधिकार में नहीं था।

विपक्षी संख्या 6 के विद्वान अधिवक्ता श्री निरंकार सिंह ने एक प्रति शपथ पत्र दाखिल किया और याचिकाकर्ताओं के रिट याचिका दायर करने के अधिकार पर प्रश्न किया। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि यदि प्रस्ताव दिनांकित 20.12.2021 पर प्रश्न चिन्ह है तो याचिकाकर्ताओं के पास अधिनियम की धारा 128 के अंतर्गत रजिस्ट्रार के पास जाने का वैकल्पिक उपाय था एवं धारा 128 के अंतर्गत रजिस्ट्रार के पास सहकारी समिति के किसी प्रस्ताव को रद्द करने की शक्ति थी।

विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ताओं के पदाधिकारियों को 17.6.2021 को उचित नोटिस के बाद हटाया गया था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि 17.6.2021 से पहले के महीने में, काफी समय तक, सोसायटी की प्रबंध समिति कोई बैठक नहीं बुला पाई थी और पदाधिकारी विभिन्न गबनों में गले तक डूबे हुए थे। उनका कहना है कि समिति के कामकाज के संबंध में 5.11.2020, 6.2.2021 और 9.4.2021 को वीडियोग्राफी और फोटोग्राफी भी की गई थी और इसलिए, उनका कहना है कि जब प्रबंधन समिति के सदस्य जानबूझकर अनुपस्थित रहते थे तब अधिनियम की धारा 38 के तहत शक्तियों का सहारा लेते हुए आदेश दिनांक 17.6.2021 पारित किया गया था।

याचिकाकर्ता के इस तर्क के संबंध में कि अंतरिम प्रबंधन समिति, जिसे 17.6.2021 को नियुक्त किया गया था, अपना कार्यकाल पूरा कर चुकी थी, निजी प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि 13.8.2021 को, एसीएम -II को स्थानांतरित कर दिया गया था और एसीएम को, इसलिए, उनके स्थान पर प्रतिस्थापित किया गया था और इसलिए, यह एक पुनर्गठित प्रबंधन समिति थी और इसलिए, छह महीने इसके पुनर्गठन की तारीख से गिने जाएंगे। इसलिए, उनका कहना है कि दिनांक 20.12.2021 का प्रस्ताव और उसके बाद दिनांक 1.1.2022 का प्रस्ताव ऐसी प्रबंधन समिति द्वारा पारित किया गया था, जिसके पास उन प्रस्तावों को पारित करने का पूरा अधिकार था। उनका यह भी कहना है कि दिनांक 2.2.2022 का आदेश जो अंतरिम प्रबंधन समिति के अध्यक्ष द्वारा दिनांक 20.12.2021 के प्रस्ताव के आधार पर पारित किया गया था, बिल्कुल सही था और किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं थी। उन्होंने फिर भी कहा कि पदाधिकारियों, विशेष रूप से सचिव को हटाने के लिए भी, याचिकाकर्ता के पास अधिनियम की धारा 98 के तहत अपील दायर करने का एक प्रभावी वैकल्पिक उपाय था।

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता; निजी प्रतिवादियों के अधिवक्ता श्री निरंकार सिंह; चुनाव आयोग के लिए श्री नरेंद्र कुमार गिरि और अपर आवास आयुक्त/अपर निबंधक, उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद (सहकारिता विभाग) के लिए श्री सुनील कुमार मिश्रा, को सुनने के बाद, न्यायालय का मानना है कि इस स्तर पर जब प्रबंधन समिति का कार्यकाल 14.10.2021 को समाप्त हो गया, इस तथ्य पर निर्णय लेने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा कि दिनांक 17.6.2021 का आदेश विधि अनुरूप पारित किया गया था अथवा नहीं। कोर्ट का मानना है कि आदेश दिनांक 17.6.2021 पारित होने के बाद भी 16.12.2021 को छह माह की अवधि समाप्त हो चुकी थी। निश्चित रूप से अधिनियम की धारा 29(4), 29(4-ए), 29(4-बी) और 29(4-सी) के प्रावधानों के अनुसार, प्रबंधन समिति के कार्यकाल की समाप्ति के बाद चुनाव होना चाहिए था। यद्यपि, यदि सोसायटी के प्रबंधन के लिए रजिस्ट्रार द्वारा एक अंतरिम प्रबंधन समिति नियुक्त की गई थी, तो अंतरिम प्रबंधन समिति का कार्यकाल भी ऐसी

नियुक्ति की तारीख से छह महीने की समाप्ति के बाद, समाप्त होना था। इसलिए, न्यायालय का मानना है कि प्रस्ताव दिनांक 20.12.2021 और 1.1.2022 अधिकार क्षेत्र में नहीं थे। न्यायालय का यह भी मानना है कि जो आदेश 2.1.2022 को पारित किया गया था वह बिल्कुल अधिकार क्षेत्र में नहीं था क्योंकि प्रस्ताव दिनांक 20.12.2021 जिसके आधार पर दिनांक 2.1.2022 का आदेश पारित किया गया था, स्वयं एक ऐसा प्रस्ताव था जो पारित नहीं किया जा सकता था। त्वरित संदर्भ के लिए, हम यहां अधिनियम की धारा 29(4) से 29(4-डी) को निम्नानुसार प्रस्तुत कर रहे हैं:-

"29(4) यह, यथास्थिति, सहकारी समिति के सचिव या प्रबंध निदेशक का कर्तव्य होगा कि वह प्रबंधन समिति के कार्यकाल की समाप्ति से चार महीने पहले चुनाव आयोग को चुनाव कराने के लिए एक मांगपत्र भेजे और ऐसी सभी जानकारी जो चुनाव आयोग द्वारा आवश्यक हो, उसके द्वारा निर्धारित अवधि के भीतर प्रदान करे।

(4-ए) किसी भी कारण से, चाहे जो भी हो, यदि प्रबंधन समिति के सदस्य, समिति के कार्यकाल की समाप्ति से पहले निर्वाचित नहीं होते हैं या निर्वाचित नहीं हो सके तो प्रबंधन समिति, इस अधिनियम के किसी भी अन्य प्रावधान या उसके तहत बनाए गए नियमों या सोसायटी के उपनियमों, के विपरीत किसी भी चीज के बावजूद, अपने कार्यकाल की समाप्ति के बाद अस्तित्व में नहीं रहेगी।

(4-बी) उप-धारा (4-ए) के तहत प्रबंधन समिति का अस्तित्व समाप्त होने के बाद इस अधिनियम के प्रावधानों, नियमों और सोसाइटी के उपनियमों के अनुसार, सहकारी समिति के प्रबंधन के लिए रजिस्ट्रार द्वारा जल्द से जल्द एक अंतरिम प्रबंधन समिति नियुक्त की जाएगी। रजिस्ट्रार के पास अंतरिम प्रबंधन समिति के सदस्यों को बदलने या उसके स्थान पर एक नई अंतरिम प्रबंधन समिति नियुक्त करने की शक्ति होगी।

(4-सी) उप-धारा (4-बी) के तहत नियुक्त अंतरिम प्रबंधन समिति समय-समय पर रजिस्ट्रार द्वारा दिए गए निर्देशों के अधीन, इस अधिनियम के तहत प्रबंधन समिति की शक्तियों का प्रयोग और उसके कार्यों को संपादित करेगी।

(4-डी) उप-धारा (4-बी) के तहत नियुक्त अंतरिम समिति अपनी नियुक्ति की तारीख से छह महीने की समाप्ति या उसके चुनाव के बाद प्रबंधन समिति के पुनर्गठन, जो भी पहले हो, के बाद अस्तित्व में नहीं रहेगी।

ऊपर उद्धृत किए गए उपरोक्त प्रावधानों से कहीं भी यह अर्थ नही निकाला जा सकता है कि अंतरिम प्रबंधन समिति के किसी सदस्य के बदलने पर, प्रबंधन समिति का कार्यकाल उस तिथि से शुरू होगा। ऐसी परिस्थितियों में, निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट हो जाते हैं:

I. अंतरिम प्रबंधन समिति जिसका गठन 17.6.2021 को हुआ था, का कार्यकाल 17.12.2021 को समाप्त हो गया।

II. जिस तारीख को एसीएम II को एसीएम द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था, उस दिन अंतरिम प्रबंधन समिति का कोई नया पुनर्गठन नहीं हुआ था, बल्कि यह केवल एक बदलाव था जो अंतरिम प्रबंधन समिति को कार्यशील बनाने के लिए लाया गया था।

ऐसी परिस्थितियों में, हम मानते हैं कि विपक्षी संख्या 4 द्वारा पारित दिनांक 20.12.2021 और 1.1.2022 के संकल्प, बिना किसी क्षेत्राधिकार के पारित किए गए थे। चूंकि न्यायालय यह निर्धारित करती है कि प्रस्ताव बिना किसी वैधानिक अधिकार के पारित किए गए थे, हम यह सुझाव देना उचित नहीं समझते कि याचिकाकर्ताओं को वैकल्पिक मंच से संपर्क करना चाहिए था। क्योंकि अब, हमने माना है कि प्रस्ताव बिना किसी कानूनी अधिकार के पारित किए गए थे, हम यह भी मानते हैं कि विपक्षी संख्या 6 द्वारा पारित दिनांक 2.1.2022 का आदेश बिना किसी कानूनी अधिकार के पारित किया गया था। प्रस्ताव दिनांक 20.12.2021 और 1.1.2022 और आदेश दिनांक 2.1.2022 को रद्द किया जाता है।

जिस तारीख को निर्णय सुरक्षित किया गया था, उस दिन चुनाव आयोग की ओर से बयान दिया गया था कि उस तारीख तक कोई चुनाव नहीं हुआ था।

ऐसी परिस्थितियों में, हम आगे निर्देश देते हैं कि यदि अभी तक चुनाव नहीं हुए हैं, तो उन्हें कानून के अनुसार तुरंत कराया जाए।

ऊपर बताए गए कारणों से, रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

(2023) 1 ILRA 161
मूल क्षेत्राधिकार
नागरिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 05.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा
माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह

रिट सी संख्या 23865/2022

के साथ जुड़ा हुआ है

रिट सी संख्या 23942/2022

और

रिट सी संख्या 26680/2022

और

रिट सी संख्या 25749/2022

राज मंगल गोंड ... याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ... प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
श्री कृष्ण मोहन मिश्रा, श्री स्वतंत्र प्रताप सिंह, श्री एचआर मिश्रा, वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता

भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 342(2) - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (पुनरीक्षण) अधिनियम, 2002 - गोंड जाति - जाति प्रमाण पत्र - अभिनिर्धारित - प्राधिकारी अर्थात तहसीलदार, जिसने पहले जाति प्रमाण पत्र जारी किया था, के पास इसे रद्द करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था, सिवाय इसके कि जब जाति प्रमाण पत्र धोखाधड़ी करके या किसी भी प्रासंगिक तथ्य को छिपाकर प्राप्त किया गया हो - वर्तमान मामले में तहसीलदार ने उसके द्वारा जारी जाति प्रमाण पत्र को रद्द कर दिया, यह कहते हुए कि याचिकाकर्ता गोंड जाति का नहीं था, बल्कि कहार जाति का था, लेकिन आक्षेपित आदेश में कोई निष्कर्ष नहीं था कि याचिकाकर्ता द्वारा किसी भी प्राधिकरण पर धोखाधड़ी करके पहले का प्रमाण पत्र प्राप्त किया गया था - आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया गया और खारिज कर दिया गया। (पैरा 7)

अनुमति। (ई-5)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. हिजवाना बानो बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2011 (1) एडीजे 440 (डीबी),

2. प्रवीण कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2014 (8) एडीजे 690 (डीबी),

3. राजेश कुमार गोंड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2015 (8) एडीजे 275 (डीबी),

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा द्वारा दिया गया)

उभयपक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

याचिकाकर्ता, जिसने खुद को ग्राम कसमरिया, जिला महराजगंज का स्थायी निवासी गोंड होने का दावा किया था, के पास अनुसूचित जाति होने का जाति प्रमाण पत्र था, जिस पर दिनांक 6.6.1996 अंकित था, हालाँकि, जब संसद ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 342(2) के अन्तर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (पुनरीक्षण) अधिनियम, 2002 लाया और जिला महाराजगंज में रहने वाली गोंड जाति को अनुसूचित जनजाति का माना, याचिकाकर्ता ने फिर से एक प्रमाण पत्र के लिए आवेदन किया कि याचिकाकर्ता अनुसूचित जनजाति का था। जब प्रकरण की सुनवाई कर रहे तहसीलदार ने यह माना कि याचिकाकर्ता गोंड जाति का नहीं बल्कि कहार जाति का है, तो याचिकाकर्ता ने इस प्रकरण को जिला स्तरीय जाति संवीक्षा समिति, महाराजगंज के समक्ष चुनौती दी। 04.10.2014 को जिला स्तरीय जाति संवीक्षा समिति, महाराजगंज ने साक्ष्यों की जांच के लिए प्रकरण को वापस तहसीलदार को भेज दिया और उन्हें साक्ष्यों पर पुनर्विचार करने और उसके बाद विधि के अनुसार जाति प्रमाण पत्र जारी करने का निर्देश दिया। 27.11.2014 को, तहसीलदार ने याचिकाकर्ता को एक जाति प्रमाण पत्र जारी किया जिसमें दर्शाया गया कि याचिकाकर्ता अनुसूचित जनजाति का था, याचिकाकर्ता के अनुसार जाति प्रमाण पत्र जो 27.11.2014 को जारी किया गया था, वह एक प्रमाण पत्र था, जो हाथ से जारी किया गया था और चूंकि बाद के सरकारी आदेश थे जो चाहते थे कि उम्मीदवार के पास जाति प्रमाण पत्र "ऑनलाइन" होना चाहिए, याचिकाकर्ता ने फिर से जाति प्रमाण पत्र "ऑन-लाइन" जारी करने के लिए आवेदन किया। याचिकाकर्ता ने कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ, जो अनुसूचित जनजाति के भी थे, जाति प्रमाण पत्र जारी करने के लिए ऑनलाइन आवेदन किया था। हालाँकि, आवेदनों को यांत्रिक तरीके से खारिज कर दिया गया था और इसलिए, याचिकाकर्ता ने कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ रिट-सी संख्या 15552/2020 (अनूप कुमार गोंड और 70 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 4 अन्य) के अन्तर्गत एक रिट याचिका दायर की, जिसका निस्तारण दिनांक 12.10.2020 को निम्नलिखित आदेश के साथ किया गया:-

“यह रिट याचिका, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित उपचार के लिए दायर की गई है;

"(i) परमादेश की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें प्रतिवादीगण को याचिकाकर्ताओं को अनुसूचित जनजाति प्रमाण पत्र जारी करने के लिए जनगणना-1891 को ध्यान में रखने का निर्देश दिया जाए।"

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि याचिकाकर्ताओं ने जाति प्रमाण पत्र जारी करने के लिए

संबंधित तहसीलदारों के समक्ष आवेदन दायर किए हैं लेकिन आज तक कोई आदेश पारित नहीं किया गया है।

उभयपक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया। वाद के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए और वाद की योग्यता पर कोई राय व्यक्त किए बिना, हम याचिकाकर्ताओं को जाति प्रमाण पत्र जारी करने के लिए दायर उनके आवेदनों पर उचित आदेश पारित करने के लिए प्रतिवादी-तहसीलदारों के समक्ष एक व्यापक प्रतिनिधित्व करने की स्वतंत्रता देते हैं। आज से दो सप्ताह के भीतर इस आदेश की एक प्रति के साथ रिट याचिका और उसके अनुलग्नकों की एक प्रति संलग्न करें और, यदि ऐसा कोई प्रतिनिधित्व किया जाता है, तो उक्त प्राधिकारी उस पर विचार करने और उसके अनुसार उचित आदेश पारित करने का कथित अभ्यावेदन की प्राप्ति की तिथि से 60 दिनों के भीतर विधि के साथ शीघ्रता से पूरा प्रयास करेगा।

रिट याचिका का निपटारा किया जाता है।"

तत्पश्चात, उच्च न्यायालय के आदेश के क्रम में, तहसीलदार-सदर, जिला महराजगंज द्वारा दिनांक 26.2.2021 को आक्षेपित आदेश पारित किया गया, उनका आदेश राजस्व अधिकारियों की एक निश्चित जांच रिपोर्ट पर आधारित है। चूंकि तहसीलदार के आदेश ने याचिकाकर्ता के गोंड, जो कि अनुसूचित जनजाति थी, घोषित करने के दावे को खारिज कर दिया था और उन्होंने वास्तव में उसे "कहार" माना था, याचिकाकर्ता ने तत्काल रिट याचिका दायर की है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि जब पहले ही तहसीलदार ने 27.11.2014 को इस आशय का आदेश पारित कर दिया था कि याचिकाकर्ता को अनुसूचित जनजाति का सदस्य माना जाना था और इस आशय का प्रमाण पत्र भी जारी किया गया था, तब तहसीलदार, जो याचिकाकर्ता के दावे के समर्थन में नई जांच करने का अधिकार या क्षेत्राधिकार नहीं था, जबकि याचिकाकर्ता के ऑन-लाइन जाति प्रमाण पत्र जारी करने के दावे पर विचार करते हुए, विवादित आदेश पारित नहीं कर सका। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि यदि तहसीलदार को संदेह था कि याचिकाकर्ता अनुसूचित जनजाति का है, तो प्रकरण को जिला स्तरीय जाति संवीक्षा समिति, महाराजगंज को भेजा जाना चाहिए था।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि जाति संवीक्षा समिति का गठन राज्य सरकार द्वारा दिनांक 28.02.2011 के सरकारी आदेश के अनुसार किया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने सरकारी आदेश के पैराग्राफ संख्या 3 और 4 पर विश्वास किया, जिन्हें यहां निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -

''3. इसी संदर्भ में दायर रिट याचिका संख्या- 1396/2011 (पी0आई0एल0) था :

शक्ति समिति महराजगंज व अन्य बनाम उ0प्र0 राज्य व अन्य में जाति प्रमाणपत्रों के सत्यापन के संबंध में मा0 उच्च न्यायालय के आदेश दिनांक 12.1.2011 में दिये गये संवीक्षण के परिप्रेक्ष्य में जाति प्रमाण पत्रों के सत्यापन की व्यवस्था को और अधिक पारदर्शी तथा सुगम बनाये जाने हेतु जनपद स्तर पर भी निम्नानुसार समिति गठित की जाती हैः-

1. जिलाधिकारी अध्यक्ष

2. जिलाधिकारी द्वारा नामित सदस्य

एक अपर जिलाधिकारी स्तर का अधिकारी

3. जिलाधिकारी द्वारा नामित एक उप जिलाधिकारी सदस्य

4. जिला समाज कल्याण अधिकारी सदस्य सचिव

(अनु0 जाति/अनु0 जनजाति हेतु) एवं जिला पिछड़ा वर्ग कल्याण अधिकारी

(अन्य पिछड़ा वर्ग हेतु)

उपरोक्त समिति के समक्ष यथास्थिति अभ्यर्थी के द्वारा स्वयं, उसके माता-पिता या अभिभावक द्वारा किसी शैक्षिक संस्था में प्रवेश हेतु अथवा किसी सेवा में नियुक्ति के लिए जाति प्रमाण पत्रों के सत्यापन हेतु आवेदन प्रस्तुत किया जायेगा, जिस पर समिति द्वारा सत्यापन की पुष्टि विलम्बतम 15 दिन में कर दी जायेगी।

4- इसके अतिरिक्त उक्त समिति द्वारा जाति प्रमाणपत्रों के संबंध में निम्न प्रकार के मामलों का भी निस्तारण किया जायेगा :-

1. किसी नियुक्ति के पश्चात सेवायोजन द्वारा सेवक के जाति प्रमाण पत्र के सत्यापन/पुष्टि हेतु प्रस्तुत किये गये प्रकरण।

2. किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह के संबध में जाति प्रमाण पत्रों के न बनाये जाने संबंधी शिकायतों के प्रकरण।

3. जाति प्रमाणपत्रों के फर्जी होने अथवा त्रृटिपूर्ण जाति प्रमाण पत्र बनाये जाने संबंधी प्रकरण।

4. जाति प्रमाणपत्रों के संबंध में किसी अन्य विसंगति के प्रकरण।''

इस संबंध में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने 2011(1) एडीजे 440 (डीबी), हिजवाना बानो बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2014(8) एडीजे 690 (डीबी), प्रवीण कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य और 2015(8)एडीजे 275 (डीबी), राजेश कुमार गोंड बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में दिए गए निर्णयों पर भी विश्वास किया।

हालाँकि, रिट याचिका के विरोध में विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि तहसीलदार जाति प्रमाण पत्र जारी करने वाला प्राधिकारी था और यदि याचिकाकर्ता तहसीलदार द्वारा लिए गए निर्णय से व्यथित था तो उसे उप-विभागीय मजिस्ट्रेट के समक्ष उत्तर प्रदेश जनहित गारंटी अधिनियम, 2011 प्रावधानों के अन्तर्गत अपील दायर करनी चाहिए थी।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, श्री एच.आर. मिश्रा, श्री के.एम. मिश्रा की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता और श्री स्वतंत्र प्रताप सिंह, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुनने के बाद, न्यायालय का निश्चित रूप से यह माना है कि जब तहसीलदार ने पहले ही एक प्रमाणपत्र जारी कर चुका था और केवल एक नया प्रमाणपत्र "ऑन-लाइन" जारी कर रहा था तो वह प्रकरण के गुण-दोष में प्रवेश नहीं कर सकता। जाति प्रमाण पत्र को सत्यापित करने का अधिकार क्षेत्र और यह कि इसे मान्य किया जाना चाहिए या अमान्य किया जाना चाहिए, सरकारी आदेश दिनांक 28.02.2011 के अन्तर्गत जाति जांच समिति के पास है। प्राधिकारी अर्थात्, तहसीलदार, जिसने पहले जाति प्रमाण पत्र जारी किया था, उसे इसे रद्द करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था, सिवाय इसके कि जब जाति प्रमाण पत्र धोखाधड़ी करके या किसी प्रासंगिक तथ्य को छिपाकर प्राप्त किया गया हो। प्रत्यक्ष प्रकरण में जब तहसीलदार ने 27.11.2014 को उनके द्वारा जारी किए गए जाति प्रमाण पत्र को रद्द कर दिया था, तो लगाए गए आदेश में ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं निकला कि याचिकाकर्ता द्वारा किसी प्राधिकरण पर धोखाधड़ी करके पिछला प्रमाण पत्र प्राप्त किया गया था। परिणामस्वरूप, दिनांक 26.02.2021 का आक्षेपित आदेश, जहां तक इसका याचिकाकर्ता से संबंध है, रद्द किया जाता है और अलग किया जाता है।

इन टिप्पणियों के साथ रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

तहसीलदार तुरंत "ऑनलाइन" प्रमाणपत्र जारी करेगा। हालाँकि, यदि तहसीलदार को याचिकाकर्ता की जाति या जनजाति पर संदेह है तो वह प्रकरण को जिला स्तरीय जाति संवीक्षा समिति, महाराजगंज को भेज सकता है।

(2023) 1 ILRA 164

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 13.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर

रिट सी संख्या 1003201/2011

रमेश चंद्र वर्मा ...याचिकाकर्ता

बनाम

कलेक्टर बाराबंकी एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता:
अदनान अहमद

अधिवक्ता प्रतिवादी:
सी.एस.सी.

ए. सिविल कानून - भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 – विलेख विधिवत मुद्रांकित नहीं – सीमा, धारा 33 (5) परंतुक– अधिनियम की धारा 33 (5) के परंतुक के अनुसार, उपधारा (4) या उपधारा (5) के तहत कोई कार्रवाई अधिकारियों द्वारा विलेख के निष्पादन की तारीख से चार वर्ष की अवधि के पश्चात नहीं की जा सकता है - केवल धारा 33(5) के दूसरे प्रावधान में अपवाद (पैरा 8)

बी. सिविल कानून - भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 – पट्टा दिनांक 26.09.2002 को निष्पादित - नोटिस दिनांक 01.01.2010 को भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 47-ए सपठित धारा 33/40 के संदर्भ में जारी किया गया – याचिकाकर्ता द्वारा सीमा आपत्तियों से संबंधित आपत्तियां ली गईं – परिसीमा से संबंधित आपत्ति मुख्य रूप से इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि विचाराधीन दस्तावेज़ धारा 2(16) के तहत एक पट्टा होने के नाते अधिनियम की धारा 2(14) के तहत परिभाषित एक उपकरण के समान होगा और इसलिए धारा 2 (6) और अधिनियम की धारा 3 के संदर्भ में शुल्क के लिए प्रभार्य होगा, विशेष रूप से चूंकि अधिनियम की धारा 17 के संदर्भ में विलेख को भारत में निष्पादित किया गया था – आयोजित – हस्तांतरण के विलेख के निष्पादन की तिथि से दस साल की अवधि के बाद नोटिस जारी किया गया है और उपरोक्त प्रावधानों के अंतर्गत तहत वर्जित किया जाएगा – विपक्षी पक्ष ने ऐसा कोई आधार नहीं लिया है कि अधिनियम की धारा 33(5) के दूसरे परंतुक के संदर्भ में दिनांक 1 जनवरी 2010 को नोटिस जारी करने से पूर्व राज्य सरकार से कोई पूर्वानुमति ली गई हो - चूंकि प्रारंभिक नोटिस स्वयं अक्षम था, इसलिए किसी अन्य वाद पर निर्णय लेने की आवश्यकता नहीं है (पैरा 9, 10)

स्वीकृत। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद की सूची:</u>

सोम दत्त बिल्डर्स लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2005(23) लखनऊ सिविल डिसीजन 1030

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और प्रतिवादियों हेतु उपस्थित विद्वान राज्य अधिवक्ता को सुना।

प्रस्तुत याचिका भारतीय स्टाम्प अधिनियम 1899 की धारा 33/40 के अंतर्गत जारी नोटिस दिनांक 1 जनवरी 2010, धारा 47ए/ 33 के अंतर्गत पारित आदेश दिनांक 31 अगस्त 2010 और अधिनियम की धारा 56 के अंतर्गत अपील में पारित आदेश दिनांक 30 अप्रैल 2011 को चुनौती देते हुए दायर की गई है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि याचिकाकर्ता तीन साल की अवधि हेतु 187.50 रुपये प्रति माह के मासिक किराए पर दुकान नंबर 2 का पट्टाधारी था जिसकी पट्टादाता जिला पंचायत बाराबंकी थी। यह कथन किया गया है कि पार्टियों के मध्य पट्टा करार 26 सितंबर 2002 को निष्पादित किया गया था एवं तत्पश्चात अत्यन्त विलम्ब से 1 जनवरी 2010 को अधिनियम की धारा 33/40 सहपठित धारा 47-ए के अंतर्गत याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था कि क्यों न उसके विरुद्ध स्टाम्प शुल्क अपवंचन हेतु कार्यवाही प्रारम्भ की जाए।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि नोटिस प्राप्त होने पर, याचिकाकर्ता द्वारा उस पर विशेष रूप से यह दलील देते हुए आपत्ति दायर की गई थी कि कार्यवाही परिसीमा से बाधित थी तथा यह भी कथन किया कि यदि स्टांप शुल्क लागू भी था तब भी इसका निर्धारण केवल संपत्ति के वार्षिक किराये के मूल्य के आधार पर किया जा सकता था न कि संबंधित संपत्ति के क्षेत्रफल के आधार पर। यह भी कथन किया गया है कि उपरोक्त आपत्तियों को धारा 47-ए के अंतर्गत पारित आदेश में स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है एवं जब कि द्वितीय आपत्ति को मूल्यांकन प्राधिकारी द्वारा स्पष्ट रूप से नजरअंदाज कर दिया गया है, प्रथम बिंदु को भी याचिकाकर्ता के विरुद्ध इस आधार पर तय किया गया है कि प्रश्नगत विलेख अधिनियम की धारा 2(14) के तहत परिकल्पित विलेख होने के कारण अधिनियम की धारा 2(6) के अनुसार प्रभार्य होगा क्योंकि अधिनियम की धारा 2(16) के अनुसार यह एक पट्टा दस्तावेज है, अतः कार्यवाही प्रारम्भ करने के लिये अधिनियम में किसी भी समयावधि का संकेत नहीं दिया गया है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि प्रश्नगत आदेश अधिनियम के प्रावधानों के अशुद्ध निरूपण के आधार पर, विशेषतः अधिनियम की धारा 33(5) के प्रावधान के दृष्टिगत, पारित किए गए हैं जो विशेष रूप से यह प्रावधान करता है कि उपधारा (4) या उपधारा (5) के तहत विलेख के निष्पादन से चार वर्ष की अवधि के उपरान्त कोई भी कार्यवाही नहीं की जा सकती। यह कथन किया गया है कि एकमात्र व्यावृत्ति खंड द्वितीय परन्तुक के अंतर्गत उपलब्ध है जिसके अनुसार राज्य सरकार की पूर्व अनुमति के उपरान्त कार्यवाही चार वर्ष की अवधि के उपरान्त अनुमन्य है किन्तु उक्त कार्यवाही विलेख के निष्पादन की तिथि से आठ वर्ष की अवधि के अंतर्गत प्रारम्भ की जानी आवश्यक है। इस प्रकार यह कथन किया गया है कि प्राधिकारियों ने यह धारित करने हेतु अधिनियम की धारा 33(4) और (5) के प्रावधानों और उसके परन्तुक की पूर्ण उपेक्षा कर दी है कि कार्यवाही समय सीमा के अंतर्गत थी।

विद्वान राज्य अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों का खंडन करते हुए यह कथन किया है कि प्रश्नगत दस्तावेज़ अधिनियम की धारा 2 (16) के अंतर्गत परिभाषित एक पट्टा विलेख है; अतः यह एक ऐसा विलेख है जिस पर अधिनियम की धारा 2 (14) और (6) के अनुसार शुल्क प्रभार्य है। यह भी कहा गया है कि चूंकि पट्टा विलेख में इसके विपरीत कुछ भी नहीं है, इसलिए अधिनियम की धारा 29 (सी) के अनुसार पट्टाधारी होने के कारण याचिकाकर्ता पर स्टांप शुल्क लगाया जाना सही है।

पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों एवं पत्रावली पर उपलब्ध सामग्री पर विचारोपरांत यह एक स्वीकृत तथ्य है कि प्रश्नगत विलेख 26 सितंबर 2002 को निष्पादित एक पट्टा विलेख है जिसके आधार पर भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 47-ए सहपठित धारा 33/40 के अंतर्गत 1 जनवरी 2010 को नोटिस जारी किया गया। धारा 47-ए के अंतर्गत प्रश्नगत आदेश में संबंधित प्राधिकारी के समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा की गई आपत्तियों को भी अभिलिखित किया गया है, जिसमें परिसीमा से संबंधित आपत्ति का भी उल्लेख है। प्रश्नगत आदेश दिनाँक 31 अगस्त 2010 के माध्यम से परिसीमा से संबंधित आपत्तियों को मुख्य रूप से इस आधार पर खारिज कर दिया गया है

कि धारा 2 (16) के अंतर्गत परिभाषित एक पट्टा विलेख है। अतः यह एक ऐसा विलेख है जिस पर अधिनियम की धारा 2 (6) एवं धारा 3 के अंतर्गत शुल्क प्रभार्य होगा क्योंकि यह विलेख अधिनियम की धारा 17 के अनुसार भारत में निष्पादित किया गया था। प्रश्नगत आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि इसमें धारा 33(4) और (5) का कदापि उल्लेख नहीं किया गया है जिसकी प्रविष्टि उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा वर्ष 1980 के उ.प्र. अधिनियम संख्या 6 द्वारा संशोधन (21 नवंबर 1979 से प्रभावी) की गयी है। उपरोक्त प्रावधान निम्नवत हैं : -

“33(4) जब अदा किये गए स्टाम्प शुल्क में कमी किसी विलेख की नकल से ज्ञात हो, तो कलेक्टर स्वयमेव, या किसी न्यायालय, या स्टाम्प आयुक्त, या अपर स्टाम्प आयुक्त, या स्टाम्प उप-आयुक्त या सहायक स्टाम्प आयुक्त या राजस्व परिषद द्वारा इस कार्य के लिए अधिकृत अधिकारी के सन्दर्भ पर, विलेख पर अदा किये गए स्टाम्प शुल्क की पर्याप्तता के बारे में अपनी संतुष्टि करने के प्रयोजन से, मूल विलेख को तलब कर सकता है और उसके समक्ष प्रस्तुत किया गया ऐसा विलेख उसके कार्य के सम्पादन में उसके समक्ष प्रस्तुत हुआ, या आया हुआ, माना जायेगा।

(5) कलेक्टर द्वारा निर्धारित अवधि के अंदर विलेख प्रस्तुत न किये जाने की दशा में, वह, विलेख की नक़ल पर धारा 40 के अधीन दण्ड सहित स्टाम्प शुल्क (यदि हो) की अदायगी का निर्देश दे सकता है।

परन्तु विलेख ने निष्पादन की तारीख से चार वर्ष की अवधि के बाद उप-धारा (4) और उप-धारा (5) के अधीन कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी।

परन्तु यह और कि राज्य सरकार की पूर्व अनुमति से उप-धारा (4) और उप-धारा (5) के अधीन कोई कार्यवाही लिखत के निष्पादन की तारीख से चार वर्ष की अवधि के पश्चात, किन्तु आठ वर्ष की अवधि के पूर्व की जा सकती है।"

उपरोक्त प्रावधानों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि धारा 33(5) के परंतुक के अनुसार विलेख के निष्पादन से चार वर्ष की अवधि के उपरान्त उपधारा (4) या उपधारा (5) के अंतर्गत कोई भी कार्यवाही नहीं की जा सकती। धारा 33(5) के द्वितीय परन्तुक के अंतर्गत एकमात्र व्यावृत्ति खंड उपलब्ध है किन्तु विशेषतः तब जब कि प्रतिवादी पक्ष का यह बिन्दु नहीं है कि राज्य सरकार की कोई पूर्व अनुमति ली गई है। अतः यह स्पष्ट है कि वाद अधिनियम की धारा 33(5) के प्रथम परन्तुक के अंतर्गत ही विचारित किया जाएगा।

वर्तमान मामले में यह तथ्य पक्षकारों द्वारा स्वीकृत एवं ध्यान देने योग्य है कि पट्टा विलेख दिनांक 26 सितंबर 2002 का है जबकि भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 33/40 सहपठित धारा 47 -ए के अंतर्गत नोटिस 31 जनवरी 2010 को जारी किया गया है। स्पष्ट रूप से नोटिस अंतरण विलेख के निष्पादन की तिथि से चार वर्ष की अवधि के उपरान्त जारी किया गया है और उपरोक्त प्रावधानों के अंतर्गत वर्जित होगा।

प्रतिपक्ष ने प्रतिशपथपत्र में ऐसा कोई आधार प्रस्तुत नहीं किया है कि दिनांक 1 जनवरी 2010 को नोटिस जारी करने के पूर्व अधिनियम की धारा 33(5) के द्वितीय परन्तुक के अनुरूप राज्य सरकार से कोई पूर्वानुमति ली गई हो।

इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने सोम दत्त बिल्डर्स लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2005(23) , लखनऊ सिविल डिसीजन 1030 में उपरोक्त प्रावधानों का विशेषतः उल्लेख किया एवं समान बिंदु पर निर्णय भी दिया है।

उपरोक्त के दृष्टिगत चूंकि यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 33(5) के प्रावधान के संदर्भ में प्रारंभिक नोटिस ही अक्षम थी इसलिए किसी अन्य बिंदु का निर्णयन आवश्यक नहीं है।

परिणामस्वरूप, उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत, अधिनियम की धारा 47 -ए सहपठित धारा 33/40 के अंतर्गत दिनांक 1 जनवरी 2010 के नोटिस के माध्यम से प्रारंभ की गई कार्यवाही अक्षम होने के कारण, नोटिस दिनांक 1 जनवरी 2010, धारा 47ए के अंतर्गत पारित आदेश दिनांक 31 अगस्त 2010 एवं अधिनियम की धारा 56 के तहत पारित आदेश दिनांक 30 अप्रैल 2011 को अपास्त किया जाता है।

परिणामतः याचिका स्वीकार की जाती है। पक्षकार अपना अपना वादव्यय स्वयं वहन करें।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा कथन किया गया है कि प्रश्नगत आदेशों के अनुसरण में एक तिहाई राशि पहले ही संबंधित प्राधिकारी के समक्ष जमा कर दी गई है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि याचिका स्वीकार की जा रही है, याचिकाकर्ता को जमा की गई राशि की वापसी की मांग करने की स्वतंत्रता दी जाती है। यदि ऐसा कोई आवेदन किया जाता है तो संबंधित प्राधिकारी को, इस आदेश की एक प्रति आवेदन के साथ संबंधित प्राधिकारी

के समक्ष प्रस्तुत करने की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर, जमा की गई अतिरिक्त राशि वापस करने का निर्देश दिया जाता है।

(2023) 1 ILRA 167
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल साइड
दिनांक: लखनऊ 10.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोईन,

रिट सी नंबर 130/2023

अबाद अली ... याचिकाकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के वकील:
मो. दानिश, मो. मंसूर, सैयद अब्दुल कासिम जैदी

प्रतिवादियों के लिए वकील:
सी.एस.सी., ज्ञानेन्द्र मिश्रा

(ए) सिविल कानून - उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 - धारा 12-सी - चुनावों पर सवाल उठाने के लिए आवेदन - पुनर्गणना का आदेश मतपत्र की गोपनीयता को छूता है, इसे हल्के में या पाठ्यक्रम के रूप में नहीं बनाया जाना चाहिए - दो व्यापक दिशानिर्देश स्पष्ट हैं - पुनर्मतगणना का आदेश देना या मतपत्रों के निरीक्षण की अनुमति देना अदालत के लिए तभी उचित होगा, जब (i) सभी भौतिक तथ्य, जिन पर मतगणना में अनियमितता या अवैधता के आरोप स्थापित होते हैं, चुनाव याचिका में पर्याप्त रूप से प्रस्तुत किए गए हों , और (ii) याचिका पर विचार करने वाला न्यायालय/न्यायाधिकरण प्रथम दृष्टया संतुष्ट है कि विवाद का निर्णय करने के लिए ऐसा आदेश देना अनिवार्य रूप से आवश्यक है। (पैरा-18)

ग्राम प्रधान पद के लिए चुनाव - याचिकाकर्ता को ग्राम प्रधान के रूप में चुना गया - धारा 12-सी के तहत चुनाव याचिका - आधार - आवेदक पुनर्मतगणना का हकदार - चुनाव याचिका में दिए गए कथनों के आधार पर - वैध/अमान्य/रद्द वोटों में अंतर - ओवरराइटिंग और मतगणना शीट पर कटिंग - मतगणना प्रक्रिया की निष्पक्षता पर गहरा संदेह - चुनाव न्यायाधिकरण का निर्देश - तहसीलदार और खंड विकास अधिकारी को वोटों की दोबारा गिनती करने के लिए - आदेश पारित करने के लिए चुनाव न्यायाधिकरण को रिकॉर्ड जमा करना। **(पैरा-3,7)**

माना गया:-उक्त कटिंग/ओवरराइटिंग पर प्रतिहस्ताक्षर किए बिना कटिंग/ओवरराइटिंग हो रही है। मतों की पुनर्गणना के निर्देश देने वाले आदेश में कोई दुर्बलता या अवैधता नहीं है। **(पैरा-19)**

याचिका खारिज। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. खिलारी बनाम चतुर्थ ए.डी.जे., सोनभद्र एवं अन्य, एआईआर 1991 एएलएलडी 186

2. रवीन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2008) 105 आरडी 88

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोईन, द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील, राज्य-प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी वकील डॉ. उदयवीर सिंह और प्रतिवादी क्रमांक 5 की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री ज्ञानेंद्र मिश्रा को सुना गया।

2. निम्नलिखित मुख्य राहतों के लिए प्रार्थना करते हुए त्वरित याचिका दायर की गई है:-

"(i) 2021 के केस नंबर T20214680607476 (निजाम हैदर बनाम अबाद अली और अन्य) में सब डिविजनल मजिस्ट्रेट/विहित प्राधिकारी जिला-सुल्तानपुर द्वारा पारित दिनांक 30.12.2022 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए सर्टिओरी की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।, जैसा कि इस रिट याचिका के अनुबंध संख्या 01 में निहित है।

(ii) 2021 के केस नंबर T20214680607476 (निजाम हैदर बनाम अबाद अली और अन्य) में निष्पक्ष, पारदर्शी और निष्पक्ष तरीके से सख्ती से कानून के अनुसार आगे बढ़ने के लिए सब डिविजनल मजिस्ट्रेट / निर्धारित प्राधिकारी जिला सुल्तानपुर को आदेश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।"

3. याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत मामला यह है कि ग्राम प्रधान पद के लिए चुनाव हुआ था। चुनाव के बाद याचिकाकर्ता को ग्राम प्रधान के रूप में निर्वाचित घोषित किया गया। प्रतिवादी क्रमांक 5 ने याचिकाकर्ता के चुनाव से व्यथित होकर उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 (इसके बाद "अधिनियम, 1947" के रूप में संदर्भित) की धारा 12-सी के तहत एक चुनाव याचिका दायर की। उक्त मामला

वर्ष 2021 के केस संख्या 7476 के रूप में दर्ज किया गया था; निज़ाम हैदर बनाम आबाद अली। विद्वान चुनाव न्यायाधिकरण ने विभिन्न मुद्दों को तैयार किया, जिनमें से मुद्दा नंबर 2 यह था कि क्या आवेदक चुनाव याचिका में दिए गए कथनों को ध्यान में रखते हुए पुनर्मतगणना का हकदार है। उक्त मुद्दे का निर्णय दिनांक 30.12.2022 के आदेश के तहत किया गया है, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 में है, जिसमें तहसीलदार और खंड विकास अधिकारी को 16.01.2023 को वोटों की पुनर्गणना करने का निर्देश दिया गया है। वीडियोग्राफी कराने का भी निर्देश दिया गया है. पुनर्मतगणना के समय आवेदक और याचिकाकर्ता दोनों में से प्रत्येक के एक प्रतिनिधि को भी उपस्थित रहना आवश्यक है। संबंधित प्राधिकारी को पुलिस उपस्थिति में पुनर्मतगणना को सक्षम करने के लिए डाले गए वोटों को उपलब्ध कराने की आवश्यकता है। पुनर्गणना अधिकारी को चुनाव न्यायाधिकरण को पुनर्मतगणना के परिणाम उपलब्ध कराने का निर्देश दिया गया है और मुद्दे संख्या 1, 3 और 11 पर निर्णय लेने के उद्देश्य से मामले को 17.01.2023 को सूचीबद्ध किया गया है।

4. उक्त आदेश को चुनौती देते समय याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने निम्नलिखित आधार अपनाये:-

(a) यह केवल चुनाव न्यायाधिकरण है जो वोटों की गिनती कर सकता है और तहसीलदार और खंड विकास अधिकारी को शक्तियों का प्रतिनिधिमंडल दिया गया है जो वैध रूप से नहीं किया जा सकता था। इस संबंध में, एआईआर 1991 एएलएलडी 186 में रिपोर्ट किए गए खिलारी बनाम चतुर्थ अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, सोनभद्र और अन्य के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया गया है।

(b) उपरोक्त अधिकारी अवैध/वैध मतों की वैधता का निर्णय नहीं कर सकते हैं, जो कि वाद संख्या 2 का निर्णय करते समय किया जाना माना गया है।

(c) पुनर्मतगणना चुनाव याचिका दायर करने से पहले ही हो चुकी थी, इसलिए विद्वान चुनाव न्यायाधिकरण द्वारा पुनर्मतगणना का निर्देश नहीं दिया जा सकता।

(d) पुनर्मतगणना का निर्देश देते समय, चुनाव न्यायाधिकरण ने स्पष्ट रूप से कानूनी गलती की है, क्योंकि उसे फॉर्म 46 से संबंधित आरोपों के संबंध में रिटर्निंग अधिकारी और सहायक रिटर्निंग अधिकारी के साक्ष्य मांगने चाहिए थे।

किसी अन्य आधार का आग्रह नहीं किया गया है।

5. दूसरी ओर, विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी वकील डॉ. उदयवीर सिंह और प्रतिवादी संख्या 5 के विद्वान वकील श्री ज्ञानेंद्र सिंह का तर्क है कि चुनाव न्यायाधिकरण द्वारा मुद्दा संख्या 2 पर निर्णय लेते समय पारित आदेश केवल वोटों की पुनर्गणना का निर्देश देता है। उनका तर्क है कि इस तथ्य के बावजूद कि मुद्दा संख्या 2 का निर्णय आवेदक/प्रतिवादी संख्या 5 के पक्ष में किया गया है, जिसमें मुद्दा यह था कि क्या आवेदक पुनर्गणना का हकदार है और उक्त मुद्दे पर निर्णय लेते समय यह संकेत दिया गया है कि अवैध और वैध वोट और पुनर्मतगणना पर्चियों के भाग संख्या 1 और 2 और परिशिष्ट को देखा जाना है, फिर भी अंतिम आदेश केवल वोटों की पुनर्गणना के निर्देश के लिए है और इस प्रकार यह चुनाव न्यायाधिकरण के लिए हमेशा खुला रहता है कि उसके सामने पुनर्गणना का परिणाम आने के बाद वह मामले में अंतिम आदेश पारित करे। इस प्रकार यह तर्क दिया गया है कि तत्काल याचिका केवल याचिकाकर्ता/निर्वाचित ग्राम प्रधान की ओर से इस आशंका के आधार पर दायर की गई है कि जब अंतिम पुनर्गणना की जाएगी तो चुनाव के दौरान सही तथ्य सामने आ सकते हैं कि निर्वाचित ग्राम प्रधान को कम वोट मिले हैं और इसलिए याचिका केवल चुनाव याचिका के अंतिम नतीजे से बचने और देरी करने के लिए दायर की गई है।

6. प्रतिस्पर्धी पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान वकील को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

7. अभिलेखों के अवलोकन से यह पता चलता है कि याचिकाकर्ता को निर्वाचित ग्राम प्रधान घोषित किए जाने के बाद, प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी के तहत एक चुनाव याचिका दायर की गई है, जिसमें विभिन्न आधारों पर याचिकाकर्ता के चुनाव को चुनौती दी गई है। विद्वान चुनाव न्यायाधिकरण ने विभिन्न मुद्दों को तैयार किया, जिनमें से मुद्दा नंबर 2 यह था कि क्या आवेदक चुनाव याचिका में दिए गए कथनों को ध्यान में रखते हुए पुनर्मतगणना का हकदार है। विद्वान चुनाव न्यायाधिकरण ने मुद्दे संख्या 2 पर विस्तृत चर्चा की है और उनका मानना है कि बूथ संख्या 43 से संबंधित परिणाम प्रपत्र संख्या 46 में ओवरराइटिंग और कटिंग की गई है, जिस पर कटिंग/ओवरराइटिंग पर भी प्रतिहस्ताक्षर नहीं किया गया है वैध/अमान्य/रद्द वोटों में अंतर होने के अलावा और **(2008) 105 आरडी 88** में रिपोर्ट किए गए **रवींद्र सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य** मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है। यह विचार करने के लिए कि जहां अनुचित स्वीकृति या वोटों की अनुचित अस्वीकृति के कारण या गिनती में स्पष्ट गलतियां हैं, जिससे चुनाव परिणाम प्रभावित हुआ है या जहां गिनती शीट पर ओवरराइटिंग और कटिंग है तो यह मतगणना प्रक्रिया की निष्पक्षता पर गहरा संदेह पैदा करता है। इसके बाद, विद्वान चुनाव न्यायाधिकरण ने एक आदेश पारित किया है जिसमें तहसीलदार और खंड विकास अधिकारी को वोटों की दोबारा गिनती करने और दिनांक 30.12.2022 के आदेश के माध्यम से परिणाम प्रस्तुत करने की आवश्यकता है।

8. उपरोक्त आदेश दिनांक 30.12.2022 को विभिन्न आधारों पर चुनौती दी गई है जैसा कि ऊपर बताया गया है

और अब न्यायालय उक्त आधारों से निपटने के लिए आगे बढ़ रहा है।

9. आक्षेपित आदेश को चुनौती देने के पहले और दूसरे आधारों पर एक साथ विचार किया जा रहा है। उक्त आधार यह है कि)aयह केवल चुनाव न्यायाधिकरण है जो वोटों (की गिनती कर सकता है और तहसीलदार और खंड विकास अधिकारी को शक्तियों का प्रत्यायोजन किया गया है जो वैध रूप से नहीं किया जा सकता था और)b (वैध वोटों की वैधता तय नहीं कर /उपरोक्त अधिकारी अवैध सकते हैं, जैसा कि मुद्दा संख्या तय करते समय करने का 2 निर्देश दिया गया ह

10. इस संबंध में, **खिलारी (सुप्रा)** के मामले में इस न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा किया गया है कि यह केवल चुनाव न्यायाधिकरण है जो वोटों की गिनती कर सकता है, न कि तहसीलदार और खंड विकास अधिकारी।

11. **खिलारी (सुप्रा)** के मामले में फैसले को पढ़ने से पता चलता है कि **खिलारी (सुप्रा)** के मामले में इस न्यायालय के समक्ष दिया गया आदेश यह था कि चुनाव न्यायाधिकरण ने **पुनर्गणना और परिणाम की घोषणा** की शक्ति तहसीलदार को सौंपी थी। और यह उन परिस्थितियों में है कि खिलारी सु)प्राके मामले में इस न्यायालय ने माना है (कि चूंकि चुनाव न्यायाधिकरण अर्ध न्यायिक क्षमता में कार्य कर रहा था, इसलिए उसे प्रत्यायोजित करने की कोई शक्ति नहीं थी।

12. वर्तमान मामले में तथ्य पूरी तरह से अलग हैं क्योंकि के आक्षेपित आदेश के माध्यम से 30.12.2022 तहसीलदार और खंड विकास अधिकारी को वोटों की गिनती करने का निर्देश दिया गया है और फिर को उस पर आदेश पारित करने के लिए 17.01.2023 विद्वान चुनाव न्यायाधिकरण को उसके रिकॉर्ड जमा करें। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने परिणाम घोषित करने की शक्ति नहीं सौंपी है जैसा कि **खिलारी (सुप्रा)** के मामले में था। नतीजतन, उक्त आधार तर्कसंगत नहीं पाए गए और खारिज कर दिए गए।

13. आक्षेपित आदेश को चुनौती देने का आधार)cयह है (कि पुनर्मतगणना चुनाव याचिका दायर करने से पहले ही हो चुकी थी, इसलिए विद्वान चुनाव न्यायाधिकरण द्वारा पुनर्मतगणना करने का निर्देश नहीं दिया जा सकता है।

14. इतना कहना पर्याप्त है कि भले ही चुनाव याचिका दायर करने से पहले पुनर्मतगणना हुई हो, फिर भी अब यह निर्वाचित ग्राम प्रधान का चुनाव है जिसे चुनाव याचिका के माध्यम से चुनौती दी गई है। यह देखने के उद्देश्य से कि याचिकाकर्ता का चुनाव वैध था या नहीं, वोटों की दोबारा गिनती का आदेश देना चुनाव न्यायाधिकरण के अधिकार में है। मुद्दे क्रमांक पर निर्णय करते समय विद्वान चुनाव 2 न्यायाधिकरण का मानना था कि कुछ अवैध मतों पर भी विचार किया गया है। इस प्रकार, भले ही चुनाव याचिका दायर करने से पहले पुनर्मतगणना हुई हो, फिर भी पुनर्गणना के निर्देश देने से विद्वान चुनाव न्यायाधिकरण को कोई फर्क नहीं पड़ेगा क्योंकि चुनाव याचिका पर निर्णय लेते समय ऐसा करना उसके अधिकार क्षेत्र में है और इस प्रकार वोटों की पुनर्गणना की आवश्यकता है, उक्त आधार को तर्कसंगत नहीं पाया गया और खारिज कर दिया गया।

15. आक्षेपित आदेश को चुनौती देने का आधार)dयह है (कि पुनर्मतगणना का निर्देश देते समय, चुनाव न्यायाधिकरण ने स्पष्ट रूप से कानून में गलती की है, क्योंकि उसे रिटर्निंग ऑफिसर और सहायक रिटर्निंग ऑफिसर के सबूतों को फॉर्म के संबंध में आरोपों के 46 रूप में मांगना चाहिए था। यह कहना पर्याप्त है कि एक बार विद्वान चुनाव न्यायाधिकरण ने, उसके समक्ष प्रस्तुत किए गए अभिलेखों के अवलोकन के बाद, जैसा कि आधार पर विचार करते समय विस्तार से उल्लेख किया गया (2) था, यह विचार किया था कि विभिन्न रूपों में कटिंग और ओवरराइटिंग है जो कि प्रतिहस्ताक्षरित नहीं किया गया, यह विद्वान चुनाव न्यायाधिकरण की शक्ति के अंतर्गत था कि संतुष्ट होने पर वह पुनर्मतगणना का आदेश दे, जैसा कि इस मामले में किया गया है। परिणामस्वरूप, उक्त आधार खारिज किया जाता है।

16. अन्यथा भी, वोटों की पुनर्गणना से संबंधित मुद्दा संख्या पर चर्चा करते समय विद्वान चुनाव न्यायाधिकरण 2 द्वारा पारित आदेश का अवलोकन यह दर्शाता है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने उन आधारों पर विचार किया है जो उसके सामने उठाए गए थे और सामग्री काभी अवलोकन किया है और इससे पहले की सामग्री के अवलोकन के बाद और यह पाए जाने पर कि कटिंगओवरराइटिंग पर / प्रतिहस्ताक्षर नहीं किया गया है, विद्वान चुनाव न्यायाधिकरण ने पुनर्मतगणना का निर्देश दिया है।

17. मामले के इस पहलू पर इस न्यायालय द्वारा **रवींद्र सिंह सुप्र)**ा(के मामले में पहले ही विचार किया जा चुका है। सुविधा के लिए, **रवीन्द्र सिंह (सुप्रा)** के मामले में की गई प्रासंगिक टिप्पणियाँ नीचे दी गई हैं- :

वोटों की पुनर्गणना के संबंध में कानून काफी अच्छी .4" तरह से तय है। बेली राम भलाइक बनाम जय बिहारी लाल 1974/0257/एससी/कच्ची मनुमें सुप्रीम कोर्ट ने चेतावनी दी थी कि चूंकि पुनर्मतगणना का आदेश मतपत्र की गोपनीयता को छूता है, इसलिए इसे हल्के में या बिना सोचे समझे नहीं बनाया जाना चाहिए। यद्यपि सार्वभौमिक अनुप्रयोग का कोई पुख्ता नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है या निर्धारित किया गया है, फिर भी, इस न्यायालय के निर्णयों के आधार पर, दो व्यापक दिशानिर्देश समझ में आते हैं; कि पुनर्मतगणना का आदेश देना या मतपत्रों के निरीक्षण की अनुमति देना न्यायालय के लिए तभी उचित होगा जब)i) सभी भौतिक तथ्य जिन पर अनियमितता, या मतगणना में अवैधता के आरोप स्थापित होते हैं, चुनाव याचिका में पर्याप्त रूप से प्रस्तुत किए गए हों, और)ii) याचिका पर सुनवाई करने वाला

न्यायालयन्यायाधिकरण प्रथम दृष्टया संतुष्ट है कि विवाद / का निर्णय करने और पक्षों के बीच पूर्ण और प्रभावी न्याय करने के लिए ऐसा आदेश देना अनिवार्य रूप से आवश्यक है। सुरेश प्रसाद यादव बनाम जय प्रकाश मिश्रा MANU/SC/1974/0279, चंदा सिंह बनाम चौधरी शिव राम 1974MANU/SC/0260, मनफूल सिंह बनाम सुरिंदर सिंह MANU/SC/में 1974/0259, समान सिद्धांतों को बरकरार रखा गया था। इन सिद्धांतों को भाभी बनाम शेओ गोविंद ANU/SC/ :1975/0281AIR1975SCमें इस 2117 :प्रकार दोहराया गया था

(1)मतपत्र की गोपनीयता को बनाए रखना महत्वपूर्ण है जो कि अतिशयोक्तिपूर्ण है और इसे तुच्छ, अस्पष्ट और अनिश्चित आरोपों पर उल्लंघन करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए:

निरीक्षण की अनुमति देने से पहले (2), निर्वाचित उम्मीदवार के खिलाफ लगाए गए आरोपों को भौतिक तथ्यों के पर्याप्त बयानों द्वारा समर्थित किया जाना चाहिए;

पुनर्मतगणना के लिए लगाए गए आरोपों की सत्यता के (3) संबंध में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई सामग्री पर न्यायालय को प्रथम दृष्टया संतुष्ट होना चाहिए;

न्यायालय को इस निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए कि (4) निरीक्षण के लिए प्रार्थना स्वीकार करने के लिए पक्षों के बीच पूर्ण न्याय करना आवश्यक और अनिवार्य है;

कि न्यायालय को प्रदत्त विवेक का प्रयोग इस तरह से (5) नहीं किया जाना चाहिए कि आवेदक को चुनाव को शून्य घोषित करने के लिए सामग्री प्राप्त करने की दृष्टि से पूछताछ में शामिल होने में सक्षम बनाया जा सके और

दिए गए मामले के विशेष तथ्यों पर नमूना निरीक्षण का (6) आदेश पुनर्मतगणना के लिए लगाए गए आरोपों की सच्चाई के संबंध में न्यायालय की प्रथम दृष्टया संतुष्टि को और अधिक आश्वासन देने के लिए दिया जा सकता है, न कि सामग्री निकालने के उद्देश्य से।

.5एस गुरुचरण सिंह तोहरा .रघुबीर सिंह गिल बनाम एस . MANU/SC/में इसे निम्नानुसार आयोजित 1980/0290 :किया गया था

सच है, सिर्फ पूछने पर दोबारा गिनती का आदेश नहीं दिया जा सकता। मतपत्रों के निरीक्षण के बाद पुनर्गणना के लिए याचिका का आदेश नहीं दिया जा सकता है, इसमें उन भौतिक तथ्यों पर पर्याप्त विवरण होना चाहिए जिन पर याचिकाकर्ता अपने मामले के समर्थन में भरोसा करता है और दूसरी बात, ट्रिब्यूनल को प्रथमतः संतुष्ट होना चाहिए कि विवाद का निर्णय करने और पक्षों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए मतपत्रों का निरीक्षण आवश्यक है। इस संबंध में प्रदत्त विवेक का प्रयोग इस तरह से नहीं किया जाना चाहिए कि आवेदक चुनाव को शून्य घोषित करने के लिए सामग्री तलाशने के उद्देश्य से लगातार पूछताछ में शामिल हो सके।

.6एम गोपालकृष्णन बनाम थचाडी प्रभाकरन .आर. MANU/SC/मे 1995/0991ं, यह माना गया कि वोटों की दोबारा गिनती के लिए पराजित उम्मीदवार की मांग पर यह ध्यान में रखते हुए विचार किया जाना चाहिए कि लोकतंत्र में मतपत्र की गोपनीयता पवित्र है, और इसलिए, जब तक चुनाव याचिकाकर्ता न केवल भौतिक तथ्यों की दलील देने और उनका खुलासा करने में सक्षम नहीं होता है, बल्कि विश्वसनीय चरित्र के साक्ष्य के माध्यम से इसे प्रमाणित भी करता है कि पुनर्गणना के लिए प्रथम दृष्टया मामला मौजूद था, तब तक किसी भी न्यायाधिकरण या न्यायालय को अप्रत्यक्ष गिनती उचित नहीं होगी। .

.7वाडिवेलु बनाम सुंदरम मनु 2000/0634/एससी/में इसी सिद्धांत को नीचे दिए गए पैराग्राफ में जोर देकर 16 :दोहराया गया था

उपरोक्त मामलों के विश्लेषण के परिणाम से पता चलेगा कि इस न्यायालय ने लगातार यह विचार किया है कि वोटों की पुनर्गणना का आदेश बहुत कम ही दिया जा सकता है और चुनाव याचिका में दलीलों में विशिष्ट आरोप पर कि गिनती के दौरान अवैधता अनियमितता की गई थी। पुनर्मतगणना की मांग करने वाले याचिकाकर्ता को आरोप लगाना चाहिए और साबित करना चाहिए कि अवैध वोटों की अनुचित स्वीकृति या वैध वोटों की अनुचित अस्वीकृति थी। यदि न्यायालय उपरोक्त आरोप की सत्यता से संतुष्ट है, तो वह पुनर्गणना का आदेश दे सकता है। चुनाव की लोकतांत्रिक प्रक्रिया में मतपत्र की गोपनीयता को हमेशा पवित्र माना गया है और गिनती में अवैधता या अनियमितता के सिर्फ आरोपों से इसे हल्के से परेशान नहीं किया जा सकता है। लेकिन अगर यह साबित हो जाता है कि चुनाव की शुचिता धूमिल हो गई है और इसने चुनाव के परिणाम को भौतिक रूप से प्रभावित किया है, जिससे पराजित उम्मीदवार गंभीर रूप से पूर्वाग्रहग्रस्त है, तो अदालत ऐसी परिस्थितियों में पार्टियों के बीच न्याय करने के लिए वोटों की पुनर्गणना का सहारा ले सकती है।

.8वीफ्रांसिस .जे.अच्युतानंदन बनाम पी .एस. 2001/0061/एससी/मनुमामले में, सुप्रीम कोर्ट इस हद तक गया कि एक बार पुनर्मतगणना का वैध आदेश दिया जाता है और पुनर्गणना से सामने आए आंकड़े चुनावी विवाद पर निर्णय लेने के लिए उपयोग के लिए उपलब्ध होते हैं, पुनर्गणना से सामने आए तथ्यों पर चुनाव याचिकाकर्ता द्वारा प्रार्थना का समर्थन करने और पुनर्गणना के आदेश को बनाए रखने के लिए भरोसा नहीं किया जा सकता है, यदि वास्तविक पुनर्गणना से पहले रिकॉर्ड पर उपलब्ध दलीलें और सामग्री निरीक्षण और पुनर्गणना के लिए प्रार्थना को उचित नहीं ठहराती हैं।

.9इस मामले में विहित प्राधिकारी ने पाया है कि चुनावों को प्रभावित करने वाली वोटों की गिनती में अनियमितताओं के संबंध में भौतिक विवरणों के साथ पर्याप्त दलीलें दी गई थीं। उन्होंने उस दलील को खारिज कर दिया है जिसमें चुनाव

याचिकाकर्ता की ओर से कहा गया था कि चुनाव याचिकाकर्ता को चार वोटों के अंतर से निर्वाचित घोषित किये जाने के बाद चुनाव दस्तावेजों में हेराफेरी की गयी।बूथ संख्या 71 वैध और 464 की जगह 532 पर 167 अवैध वोट, कुल वोट बताए गए 535, जबकि मतगणना शीट में बूथ .वोट ही दर्ज थे 532संख्या 169, और 170 के मुकाबले कुल वोटों की संख्या गिनती शीट में नहीं 171 पर दो वोट 169 बूथ संख्या .लिखी थी; बूथ संख्या 4 में 170 को ओवर राइटिंग द्वारा हेराफेरी 2 में 171 तथा बूथ संख्या मतों के स्थान पर 2221 कर कम कर दिया गया तथा मत नहीं द 5 मत अर्थात् 2216र्शाये गये तथा बूथ संख्या मत बढ़ा दिये गये। चुनाव याचिकाकर्ता को 3 पर 167 तोड़ की गई। जब उन्होंने -हराने के लिए ये जोड़ पुनर्मतगणना का अनुरोध किया तो अनुरोध अस्वीकार कर दिया गया।"

.18**रवीन्द्र सिंह (सुप्रा)** के मामले में इस न्यायालय के फैसले को पढ़ने से यह पता चलता है कि इस न्यायालय ने विद्वान चुनाव न्यायाधिकरण के एक आदेश को जब्त कर लिया था, जिसने वोटों की पुनर्गणना का निर्देश दिया था और इसके सामने पूरे रिकॉर्ड तलब किए थे। विद्वान चुनाव न्यायाधिकरण द्वारा पारित उक्त आदेश पर विचार करने के बाद, इस न्यायालय का विचार था कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगाह किया है कि चूंकि पुनर्मतगणना का आदेश मतपत्र की गोपनीयता को छूता है, इसे हल्के में या पाठ्यक्रम के रूप में नहीं बनाया जाना चाहिए, फिर भी सार्वभौमिक अनुप्रयोग का कोई पुख्ता नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है। हालाँकि, दो व्यापक दिशानिर्देश स्पष्ट हैं; कि पुनर्मतगणना का आदेश देना या मतपत्रों के निरीक्षण की अनुमति देना न्यायालय के लिए तभी उचित होगा जब)i) सभी भौतिक तथ्य जिन पर अनियमितता, या मतगणना में अवैधता के आरोप स्थापित होते हैं, चुनाव याचिका में पर्याप्त रूप से प्रस्तुत किए गए हों, और)ii) याचिका पर विचार करने वाला न्यायालयन्यायाधिकरण / प्रथम दृष्टया संतुष्ट है कि विवाद का निर्णय करने के लिए ऐसा आदेश देना अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

.19जैसा कि ऊपर बताया गया है, विद्वान चुनाव न्यायाधिकरण ने मुद्दे संख्या पर विचार 2 करते समय उक्त कटिंगओवरराइटिंग को प्रतिहस्ताक्षरित किए बिना / ओवरराइटिंग के एक विशिष्ट निष्कर्ष पर पहुंचा है। /कटिंग इस प्रकार, **रवींद्र सिंह (सुप्रा)** के मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून का सिद्धांत पूरी तरह से लागू होगा। जब आक्षेपित आदेश को मुद्दे क्रमांक पर दिए गए 2 निष्कर्ष के संदर्भ में देखा जाता है, जैसे कि **रवींद्र सिंह (सुप्रा)** के मामले में इस न्यायालय का निर्णय, तो इस न्यायालय को निर्देश देने वाले आदेश में वोटों की पुनर्गणना और इस संबंध में याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए आधारों के लिए कोई दुर्बलता या अवैधता नहीं मिलती है। तदनुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है।

(2023) 1 ILRA 174

मूल क्षेत्राधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव

रिट-सी संख्या 1610/2018

यू.पी.एस.आर.टी.सी. पंजीकरण कार्यालय, मेरठ
... याचिकाकर्ता

बनाम

पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, मेरठ और अन्य
... प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
श्री सुनील कुमार मिश्रा, श्री विकास सहाय

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री ओम प्रकाश सक्सेना, व्यक्तिगत रूप से, श्री वरद नाथ

(क) श्रम कानून - औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 - धारा 11- क - कामगारों के कार्यमुक्ति या बर्खास्तगी के मामले में उचित राहत देने के लिए श्रम न्यायालयों, अधिकरणों और राष्ट्रीय न्यायाधिकरणों की शक्तियां- गलत तरीके से सेवा समाप्त करने के मामले में - बकाया वेतन के साथ सेवा की निरंतरता के साथ बहाली एक सामान्य नियम है - आमतौर पर, वापस वेतन की मांग करने वाले कर्मचारी को या तो वकालत करने या कम से कम न्यायनिर्णयन प्राधिकारी के समक्ष या पहली बार के न्यायालय में एक बयान देने की आवश्यकता होती है कि वह लाभप्रद रूप से नियोजित नहीं था या पट्टेदार मजदूरी पर नियोजित नहीं था। (पैरा - 40)

प्रतिवादी संख्या 2 को बस कंडक्टर के रूप में नियुक्त किया गया - उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम ('यूपीएसआरटीसी') में - कर्तव्य- बस में औचक निरीक्षण - टिकटों के वितरण में अपनाई गई भ्रष्ट हरकतें - रिपोर्ट-

भ्रष्ट प्रथाओं का खुलासा - जिससे यूपीएसआरटीसी को नुकसान और चेकिंग दस्ते के साथ दुर्व्यवहार और बाधा - सेवाओं से समाप्ति - विभागीय अपील – अस्वीकृति– औद्योगिक विवाद – श्रम न्यायालय - प्रतिवादी के खिलाफ पुरस्कार - रिट याचिका – वापस श्रम न्यायालय भेजा गया – धनराशि देना– प्रकाशित–

पूर्ण वापस मजदूरी - लाभप्रद रूप से नियोजित नहीं - इसलिए याचिका। **(पैरा - 3 से 13)**

अभिनिर्धारित: - प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा रिकॉर्ड पर स्थापित किया गया कि वह अपनी समाप्ति के बाद लाभप्रद रूप से नियोजित नहीं था। श्रम न्यायालय ने पूरा वेतन वापस दिया है। श्रम न्यायालय के पुरस्कार की पुष्टि की। (**अनुच्छेद - 44,46)**

याचिका खारिज। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय बनाम पृथ्वी सिंह, (2018) 4 एससीसी 483

2. मदुरंतकम सहकारी चीनी मिल्स लिमिटेड बनाम एस विश्वनाथन, (2005) 3 एससीसी 193 का प्रबंधन

3. एचएम लिमिटेड बनाम तपन कुमार भट्टाचार्य और अन्य, (2002) 6 एससीसी 41

4. भुवनेश कुमार द्विवेदी बनाम मेसर्स एच.आई.एल., 2014 (142) एफएलआर 20 (एससी)

5. कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय बनाम पृथ्वी सिंह, (2018) 4 एससीसी 483

6. दीपाली गुंडू सुरवासे बनाम केजेएएम, 2013 (139) एफएलआर 541 (एससी)

(माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव द्वारा दिया गया)

1. अपीलकर्ता के विद्वान वकील श्री विकास सहाय और प्रतिवादी क्रमांक 2 श्री ओम प्रकाश सक्सेना को व्यक्तिगत रूप से सुना।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने दिनांक 29.08.2017 के आक्षेपित निर्णय (सरकारी आदेश संख्या 715 दिनांक 29.08.2017 द्वारा अधिसूचित) को चुनौती दी है, जो पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, यूपी मेरठ द्वारा 2002 के न्यायनिर्णयन मामले संख्या 173 में पारित किया गया था। .

3. प्रतिवादी संख्या 2 ओम प्रकाश सक्सेना को यूपी राज्य सड़क परिवहन निगम (इसके बाद इसे 'यूपीएसआरटीसी' कहा जाएगा) में बस कंडक्टर के रूप में नियुक्त किया गया था। प्रतिवादी क्रमांक 2 25.08.1995 को मेरठ-सरधना रूट पर बस क्रमांक यूएचएन-2741 पर ड्यूटी पर था। ऐसा प्रतीत होता है कि जब बस रास्ते में थी, तो श्री रमेश चंद्र, यातायात अधीक्षक की अध्यक्षता में मेरठ के क्षेत्रीय जांच दल द्वारा बस का औचक निरीक्षण किया गया, जिसमें पाया गया कि प्रतिवादी नंबर 2 द्वारा टिकट वितरण में कुछ भ्रष्ट आचरण अपनाए गए थे। उन्होंने भ्रष्ट आचरण का खुलासा करते हुए क्षेत्रीय प्रबंधक, क्षेत्रीय अधिकारी मेरठ को रिपोर्ट सौंपी जिसमे प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा किए भ्रष्टाचार जिससे यूपीएसआरटीसी को नुकसान हुआ और प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा चेकिंग दस्ते के साथ दुर्व्यवहार और बाधा उत्पन्न करने का जिक्र किया गया।

4. क्षेत्रीय प्रबंधक, मेरठ, जो अनुशासनात्मक प्राधिकारी है, ने पत्र संख्या 833, दिनांक **14.02.1996** द्वारा दिनांक 28.08.1995 को दी गई रिपोर्ट के आधार पर प्रतिवादी संख्या 2 को आरोप पत्र जारी किया। बाद में, दिनांक **14.02.1996** के आरोप पत्र में पत्र संख्या 2248 दिनांक 09.05.1996 द्वारा कुछ सुधार किए गए, जिससे लिपिकीय गलती को दूर करने के लिए वेबिल(यात्री की सूची) पर हस्ताक्षर से इनकार को आरोप पत्र में शामिल किया गया, जिसे प्रतिवादी संख्या 2 पर तामील किया गया था और 13.05.1996 को उन्हें विधिवत प्राप्त हुआ।

5. दिनांक **14.02.1996** के आरोप पत्र में सात आरोप हैं। प्रतिवादी संख्या के विरुद्ध आरोप 2 को यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

"1-दिनांक 25.08.1995 को बस संख्या यू०एच०एन०-2701 में मेरठ से सरधना मार्ग पर ड्यूटी करते हुये किराया लेने के उपरान्त 8 यात्रियों के कम दूरी के टिकट बनाना और इन टिकटों को वितरित न कर अपनी जेब में रखना।

2- टिकट संख्या 3920788 की मूल प्रति में मेरठ से नानू, यात्री प्रति में मेरठ सरधना को छः यात्रियों को दर्शाकर जालसाजी करना। इसी प्रकार टिकट संख्या 3970796 द्वितीय प्रति, कोरी रखकर यात्रियों को दो यात्री के सामूहिक टिकट देना और विभाग एवं यात्रियो को धोखा देना।

3-मार्गपत्र में सातवी पंक्ति में रु० 12/- को रु० 10/- दर्शाकर रु०2/- हड़प करना। उपरोक्त प्रकरण से विभाग को हानि पहुंचाना तथा गम्भीर भ्रष्टाचार में लिप्त रहना ।

4- निरीक्षण अधिकारियों को अपना कैश न चैक करने देना तथा अभद्रता का व्यवहार व घोर अनुशासनहीनता करना।

5- निगम व्यवसाय में कपट एवं बेईमानी करना।

6- अपना कार्य निष्ठापूर्वक सम्पादित न करना।

7-उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम कर्मचारी सेवा नियमावली (अधिकारियों से भिन्न) 1981 की धारा- 61 में वर्णित आचरण के प्रति कार्य करने तथा धारा 62 के अनुच्छेद 1,5,9,20 एवं 21 में वर्णित अवचार में लिप्त रहना।

6. प्रतिवादी नंबर 2 ने अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों से इनकार करते हुए दिनांक **14.02.1996** के आरोप पत्र के जवाब में **24.02.1996** को स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने प्रतिवादी नंबर 2 द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण पर विचार किया और पाया कि आरोपों में सच्चाई का पता लगाने के लिए जांच की जाएगी। तदनुसार, उन्होंने दिनांक **07.03.1996** के आदेश द्वारा श्री ओ.पी. कर्णवाल को जांच अधिकारी के रूप में नामित किया। श्री ओ.पी. कर्णवाल ने जांच की, लेकिन उन्होंने जांच पूरी नहीं की। इसके बाद, श्री मनोज कुमार, सहायक क्षेत्रीय प्रबंधक, मेरठ को जांच अधिकारी नियुक्त किया गया। रिकॉर्ड के अनुसार, श्री मनोज कुमार द्वारा जांच संभालने से पहले श्री ओ.पी. कर्णवाल द्वारा महत्वपूर्ण जांच की गई थी। जांच अधिकारी ने जांच करने के बाद पाया कि प्रतिवादी नंबर 2 के खिलाफ आरोप साबित हुए और जांच रिपोर्ट दिनांक **10.08.1998** को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को सौंप दी गई।

7. इसके बाद, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने जांच रिपोर्ट संलग्न करते हुए प्रतिवादी संख्या 2 को पत्र संख्या 3250 दिनांक **01.12.1998** द्वारा कारण बताओ नोटिस जारी किया और प्रतिवादी संख्या 2 को जांच रिपोर्ट के खिलाफ अपनी आपत्ति, यदि कोई हो, प्रस्तुत करने के लिए कहा

8. प्रतिवादी संख्या 2 ने उक्त कारण बताओ नोटिस के जवाब में **11.01.1999** को एक विस्तृत उत्तर प्रस्तुत किया जिसमें उसने स्पष्ट रूप से कहा कि उसे जांच अधिकारी द्वारा सुनवाई का उचित अवसर नहीं दिया गया था। उपरोक्त दलील के अलावा, उन्होंने अपने जवाब में जांच अधिकारी द्वारा की गई जांच में कई खामियां बताईं।

9. अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने प्रतिवादी संख्या 2 के विरुद्ध आरोप सिद्ध पाया। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने **11.06.1999** को प्रतिवादी संख्या 2 की सेवा समाप्त करते हुए सजा का आदेश पारित किया।

10. इसके बाद, प्रतिवादी नंबर 2 ने अपीलीय प्राधिकारी/मंडल महाप्रबंधक, यूपीएसआरटीसी, मेरठ के समक्ष **25.06.1999** को एक विभागीय अपील दायर की, जिन्होंने **04.07.2000** के आदेश के तहत अपील को खारिज कर दिया।

11. अपील की अस्वीकृति के बाद, प्रतिवादी संख्या 2 ने एक औद्योगिक विवाद उठाया, जिसे श्रम न्यायालय में भेजा गया और 2002 का मामला संख्या 173 दर्ज किया गया। श्रम न्यायालय ने दिनांक **12.08.2010** के आदेश द्वारा प्रतिवादी संख्या 2 के खिलाफ एक अधिनिर्णय पारित किया, जिसे प्रतिवादी संख्या 2 ने रिट-सी संख्या 24345 ऑफ़ 2011 (ओम प्रकाश सक्सेना बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, मेरठ और अन्य) दायर करके इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी।

12. इस न्यायालय ने दिनांक **09.02.2016** के फैसले और आदेश द्वारा उक्त रिट याचिका को स्वीकार कर लिया और दिनांक **12.08.2010** के विवादित फैसले को रद्द कर दिया और मामले को रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों के आधार पर नए सिरे से विचार करने के लिए श्रम न्यायालय को भेज दिया। दिनांक **09.02.2016** के फैसले का प्रासंगिक उद्धरण यहां नीचे दिया गया है:

"अधीनिर्णय के अवलोकन से पता चलता है कि मेरठ से सरधना की यात्रा करने वाले 8 यात्रियों के संबंध में जिन्हें नानू से सरधना की छोटी यात्रा के लिए टिकट जारी किए गए थे के विषय में जो निष्कर्ष है वह PW1 के बयान पर विचार किए बिना है जिसमें PW1 ने स्पष्ट बताया है कि उपरोक्त 8 यात्रियों में से 6 ने मेरठ से नानू तक की टिकट मांगी थी और फिर नानू से सरधना तक की यात्रा बढ़ाने का अनुरोध किया था, जबकि एक यात्री ने शांतिनगर से नानू और फिर नानू से सरधना और अन्य एक यात्री ने केवल नानू से सरधना तक की टिकट मांगी थी। उन्हें इसी हिसाब से मेरठ से नानू, शांतिनगर से नानू और फिर नानू से सरधना तक के टिकट जारी किए गए। इनमें से किसी ने भी बिना टिकट बस में किसी भी दूरी की यात्रा नहीं की।

कहने की जरूरत नहीं है कि बस कंडक्टर को यात्रियों को मांग के अनुसार टिकट जारी करना होता है और यात्रा के दो हिस्सों में टिकट जारी करने पर कोई रोक नहीं है, खासकर जब यात्री शुरू में छोटी यात्रा और फिर विस्तारित यात्रा के लिए टिकट की मांग करते हैं।

श्रम न्यायालय ने मामले के उपरोक्त पहलू पर विचार नहीं किया है और यह पता लगाने में विफल रहा है कि क्या इन

यात्रियों को मेरठ से नानू और फिर नानू से सरधना की यात्रा के दो हिस्सों में अलग-अलग टिकट जारी किए गए थे, जैसा कि याचिकाकर्ता ने तर्क दिया था। यह केवल इस तथ्य से पता चलता है कि उन्हें यह जानने की परवाह किए बिना नानू से सरधना तक टिकट जारी किए गए थे कि क्या रिकॉर्ड में उन्हें मेरठ से नानू या शांतिनगर से नानू तक टिकट जारी करने का पता चला है, इस स्थिति में उनके पास पूरे टिकट होंगे। मेरठ से सरधना तक का सफर.

12/- रुपये की प्रविष्टि के संबंध में जिसे 10/- रुपये में बदल दिया गया था, याचिकाकर्ता का स्पष्टीकरण और बयान यह था कि 5 यात्रियों को शांतिनगर से दबटवा तक यात्रा करते हुए दिखाया गया था और उनसे कुल 2/- रुपये का शुल्क लिया गया था, कुल मिलाकर 10/- रूपये और इसका उल्लेख मार्ग पत्र के कॉलम 1 और 2 की 7वीं पंक्ति में किया गया था, जबकि एक अन्य यात्री को लाइन 8 कॉलम 1 और 2 में शांतिनगर से दबटवा तक यात्रा करते हुए दिखाया गया था, इस प्रकार शांतिनगर से दबतवा यात्रा करने वाले कुल यात्री थे 6 और 10/- रुपये प्लस 2/- रुपये की वसूली दिखाई गई। 12 रुपए से 10 रुपए की एंट्री में कोई हेरफेर नहीं किया गया, जिससे रोडवेज को कोई नुकसान हो। याचिकाकर्ता का यह बयान किसी भी सबूत से खंडित नहीं था, लेकिन श्रम न्यायालय इस पर विचार करने में विफल रहा और केवल इस पर निष्कर्ष लौटाया।

पूछताछ के रिकॉर्ड के आधार पर यह अच्छी तरह से स्थापित है कि भौतिक साक्ष्य पर विचार किए बिना दर्ज किया गया कोई भी निष्कर्ष विकृत के अलावा और कुछ नहीं है। श्रम न्यायालय के समक्ष दर्ज किया गया याचिकाकर्ता का बयान उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों के लिए एक महत्वपूर्ण सबूत था।

उक्त बयान पर विचार न करना या याचिकाकर्ता द्वारा उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों के संबंध में दिए गए स्पष्टीकरण से पूरा अधिनिर्णय रद्द हो जाता है। तदनुसार, दिनांक **12.08.2010** के विवादित फैसले को रद्द कर दिया गया है और श्रम न्यायालय को विशेष रूप से मामले के उपरोक्त दो पहलुओं के संबंध में रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों के आलोक में मामले पर नए सिरे से विचार करने का निर्देश दिया गया है। उपरोक्तानुसार रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

13. मामले को वापस भेजे जाने के बाद, श्रम न्यायालय ने दिनांक **29.08.2017** को एक अधिनिर्णय पारित किया, जो **11.10.2017** को प्रकाशित हुआ, जिसे वर्तमान रिट याचिका में यूपीएसआरटीसी द्वारा चुनौती दी गई है।

14. फैसले को चुनौती देते हुए याचिकाकर्ता श्री विकास सहाय के विद्वान वकील ने तीन दलीलें पेश कीं; श्रम न्यायालय का यह निष्कर्ष कि सजा का आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन करते हुए पारित किया गया है, विकृत और गलत है, क्योंकि रिकॉर्ड से यह स्पष्ट है कि जांच में प्रतिवादी नंबर 2 को सुनवाई का पर्याप्त अवसर दिया गया था। जांच के दौरान अधिकारी, और इस प्रकार, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के गैर-अनुपालन के आधार पर जांच को दोषपूर्ण मानने वाले श्रम न्यायालय का निष्कर्ष कानून में टिकाऊ नहीं है। दूसरे, उनका कहना है कि यूपीएसआरटीसी ने लिखित बयान के पैरा-16 में स्पष्ट रूप से कहा है कि श्रम न्यायालय ने याचिकाकर्ता को आगे सबूत पेश करने की अनुमति नहीं दी है जो यह स्थापित करता है कि प्रतिवादी नंबर 2 के खिलाफ आरोप सत्य और उचित हैं। यह प्रस्तुत किया गया है कि यह कानून में तय है कि यदि जांच में कुछ कमियां हैं, तो नियोक्ता श्रम न्यायालय के समक्ष ठोस सबूत पेश करके प्रदर्शित कर सकता है कि प्रतिवादी नंबर 2 के खिलाफ आरोप साबित हो गए हैं। उक्त तर्क के समर्थन में, उन्होंने (**2018) 4** एससीसी **483** कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय बनाम पृथ्वी सिंह में रिपोर्ट किए गए शीर्ष न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया है।

15. तीसरा, उन्होंने कहा कि श्रम न्यायालय का दायित्व है कि वह पूरा वेतन देने से पहले कारण दर्ज करे, जबकि वर्तमान मामले में प्रतिवादी संख्या 2 ने यह प्रदर्शित नहीं किया है कि वह लाभकारी रोजगार में नहीं था, इस प्रकार, श्रम न्यायालय ने पूरा वेतन देने में गलती की है। इस तर्क के समर्थन में उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय के दो निर्णयों (**2005) 3** एससीसी **193** मदुरंतकम सहकारी चीनी मिल्स लिमिटेड प्रबंधन बनाम एस विश्वनाथन और (**2002) 6** एससीसी **41** हिंदुस्तान मोटर्स लिमिटेड बनाम तपन कुमार भट्टाचार्य एवं अन्य पर भरोसा जताया है।

16. इसके विपरीत, प्रतिवादी संख्या 2, जो व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए, ने प्रस्तुत किया कि श्रम न्यायालय द्वारा विस्तृत निष्कर्ष दिया गया है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का पालन न करने के कारण जांच दोषपूर्ण है। उनका कहना है कि श्रम न्यायालय ने एक स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज किया है कि जांच अधिकारी के बदलने के बाद, याचिकाकर्ता ने विभागीय गवाहों और याचिकाकर्ता के पक्ष से जिरह की मांग की, जांच अधिकारी द्वारा कई तारीखें तय की गईं, विभागीय गवाह उपस्थित नहीं हुए और जांच अधिकारी ने जांच आगे बढ़ा दी थी। यह प्रस्तुत किया गया है कि मामले के तथ्यों में, यह जांच अधिकारी पर निर्भर था कि वह विभागीय गवाहों की उपस्थिति सुनिश्चित करे ताकि वह उनसे जिरह कर सके और जिरह में प्रतिवादी क्रमांक 2 के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की सत्यता सामने आ सके। यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी नंबर 2 को विभागीय

गवाहों से जिरह करने के लिए उचित अवसर के अभाव में, जांच अधिकारी ने विभागीय गवाहों पर भरोसा करके अवैध रूप से कार्य किया है कि उनके खिलाफ आरोप साबित हुए हैं। उनका कहना है कि याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्रम न्यायालय के निष्कर्षों में किसी भी प्रकार की विकृति को रिकॉर्ड के माध्यम से प्रदर्शित नहीं कर सके।

17. उनका कहना है कि श्रम न्यायालय ने सहायक यातायात निरीक्षक श्री सुभाष चंद्रा के बयान पर एक स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज किया है, जिससे पता चलता है कि उनके द्वारा दिया गया बयान अनुमान और अनुमान पर आधारित है और रिकॉर्ड पर किसी भी सामग्री और विद्वान वकील द्वारा समर्थित है। याचिकाकर्ता रिकॉर्ड से यह भी प्रदर्शित नहीं कर सका कि श्रम न्यायालय का उक्त निष्कर्ष विकृत है।

18. उन्होंने आगे कहा कि जिन यात्रियों पर उचित टिकट के बिना यात्रा करने का आरोप लगाया गया था, उनमें से किसी को भी प्रतिवादी नंबर 2 के खिलाफ आरोप साबित करने के लिए पेश नहीं किया गया और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, जांच ख़राब हो गई है। यह तर्क दिया गया है कि चूंकि याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्रम न्यायालय के निष्कर्ष में कोई विकृति नहीं बता सके, इसलिए श्रम न्यायालय का निष्कर्ष तथ्यात्मक निष्कर्ष होने के कारण इस न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपनी शक्ति के प्रयोग में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

19. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील की दूसरी दलील के संबंध में, उनका कहना है कि अदालत के समक्ष एक गलत बयान दिया गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा श्रम न्यायालय के समक्ष उन दस्तावेजों को पेश करने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया गया है जो प्रतिवादी नंबर 2 के खिलाफ आरोपों को साबित करते हैं। उनका कहना है कि याचिकाकर्ता द्वारा श्रम न्यायालय के समक्ष न तो कोई आवेदन और न ही कोई दस्तावेज पेश किया गया था जो प्रतिवादी नंबर 2 के खिलाफ आरोप साबित कर सके। इस प्रकार, उनका कहना है कि रिकॉर्ड पर किसी भी सामग्री के अभाव में यह आधार टिकाऊ नहीं है।

20. पिछले वेतन के संबंध में याचिकाकर्ता के विद्वान वकील की दलील के संबंध में, उन्होंने कहा कि उनके लिखित बयान के पैरा -22 में, यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि उनके सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद उन्हें कोई रोजगार नहीं मिल सका और वह आज तक बेरोजगार है। उनका कहना है कि याचिकाकर्ता की आपत्ति दिनांक 22.10.2022 के जवाब के पैरा-7 में उनके द्वारा उपरोक्त तथ्य को फिर से दोहराया गया है। उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने श्रम न्यायालय के समक्ष शपथ पर अपने बयान में कहा है कि उनके सर्वोत्तम प्रयास के बावजूद उन्हें कोई रोजगार नहीं मिला और उनकी बर्खास्तगी की तारीख से आज तक उन्हें कहीं भी नियोजित नहीं किया गया है।

21. उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी नंबर 2 के विशिष्ट मामले के जवाब में कहा कि उसे समाप्ति की तारीख से आज तक लाभकारी रूप से नियोजित नहीं किया गया है, यह प्रदर्शित करने के लिए कोई सबूत नहीं दिया कि उसे समाप्ति के बाद लाभकारी रूप से नियोजित किया गया है। उनका कहना है कि यह कानून में तय है कि एक बार एक कर्मचारी ने अपने लिखित बयान के साथ-साथ श्रम न्यायालय के समक्ष अपने बयान में स्पष्ट रूप से कहा है कि उसे बर्खास्तगी की तारीख से अधिनिर्णय की तारीख तक नियोजित नहीं किया गया है, तो जिम्मेदारी उसकी है नियोक्ता पर यह प्रदर्शित करने का दायित्व है कि उसे लाभप्रद रूप से नियोजित किया गया था और एक बार जब नियोक्ता द्वारा इस तरह की जिम्मेदारी का निर्वहन किया जाता है, तो यह दिखाने का बोझ कर्मचारी पर स्थानांतरित हो जाएगा कि उसे लाभकारी रूप से नियोजित नहीं किया गया है।

22. उन्होंने आगे कहा कि विभागीय गवाहों ने श्रम न्यायालय के समक्ष अपने बयानों में यह नहीं कहा है कि प्रतिवादी संख्या 2 को समाप्ति के बाद लाभप्रद रूप से नियोजित किया गया है। इस प्रकार, उनका कहना है कि भले ही श्रम न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालने में कोई कारण नहीं दिया है कि वह पूर्ण बकाया वेतन का हकदार है, यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए मामले के इस पहलू पर विचार कर सकता है। रिकॉर्ड पर पर्याप्त सामग्री थी जो यह स्थापित करती है कि बर्खास्तगी के बाद उसे लाभकारी रूप से नियोजित नहीं किया गया है। इस तर्क के समर्थन में उन्होंने भुवनेश कुमार द्विवेदी बनाम एम/एस. हिंडाल्को इंडस्ट्रीज लिमिटेड**, 2014 (142)** एफएलआर **20 (**एससी**)** मामले में शीर्ष अदालत के फैसले पर भरोसा जताया है। तदनुसार, यह तर्क दिया गया है कि रिट याचिका में योग्यता का अभाव है और बर्खास्त किये जाने योग्य है।

23. मैंने याचिकाकर्ता, प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान वकील को व्यक्तिगत रूप से सुना है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

24. रिकार्ड से जो तथ्य सामने आए हैं, उनसे यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी संख्या 2 के विरुद्ध सात आरोप लगाए गए थे,

जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। प्रतिवादी संख्या 2 ने अपने ऊपर लगे आरोपों से इनकार किया। परिणामस्वरूप, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने दिनांक 07.03.1996 के आदेश द्वारा श्री ओ.पी. कर्णवाल को जांच अधिकारी नियुक्त किया, जिन्होंने जांच की और विभागीय गवाहों की गवाही दर्ज की। हालाँकि, बाद में, वह जाँच से हट गए और श्री मनोज कुमार को नया जाँच अधिकारी नामित किया गया।

25. नये जांच अधिकारी के नामांकन के बाद, याचिकाकर्ता ने विभागीय गवाहों से आगे की जिरह के लिए उनके समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया। याचिकाकर्ता के आवेदन पर जांच अधिकारी ने विभाग के गवाहों से जिरह के लिए 19.12.1996, 19.02.1997, 15.05.1997 और 24.10.1997 तारीखें तय कीं। प्रतिवादी क्रमांक 2 सभी तिथियों पर उपस्थित रहे, परन्तु विभागीय गवाह जाँच अधिकारी के समक्ष उपस्थित नहीं हुए। जांच अधिकारी ने अंतिम तिथि 10.08.1998 तय की, जिसमें प्रतिवादी संख्या 2 और याचिकाकर्ता के रिपोर्ट प्रस्तुत करने वाले अधिकारियों को तलब किया गया, लेकिन सम्मन(गवाही के लिए बुलाने) के बावजूद संबंधित अधिकारी उपस्थित नहीं हुए। इसके बाद, प्रतिवादी नंबर 2 ने जांच अधिकारी के समक्ष अपना बयान दिया और अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों से इनकार किया और बकाया वेतन के साथ अपनी बहाली का अनुरोध किया।

26. श्रम न्यायालय ने उपरोक्त तथ्यों पर विस्तार से विचार किया और माना कि प्रतिवादी संख्या 2 ने विभागीय गवाहों से जिरह की मांग की थी, इसलिए, यह जांच अधिकारी पर निर्भर था कि वह प्रतिवादी संख्या 2 को जिरह करने में सक्षम बनाने के लिए विभागीय गवाहों की उपस्थिति सुनिश्चित करे। उनका परीक्षण करें, ताकि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का अनुपालन हो सके।

27 श्रम न्यायालय ने पाया कि चूंकि जांच अधिकारी ने विभागीय गवाहों की उपस्थिति सुनिश्चित नहीं की और प्रतिवादी संख्या 2 को जिरह करने के अवसर से वंचित कर दिया गया है उनकी जाँच करें, इसलिए, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन था और इस आधार पर जाँच ख़राब हो गई थी। श्रम न्यायालय ने आगे कहा कि सहायक यातायात निरीक्षक श्री सुभाष चंद्र ने अपनी जिरह में निम्नलिखित बयान दिया:-

"नानू पर जो यात्री उतरा होगा उससे यात्री टिकट लेकर सरधना वाले यात्री को दे दिया गया होगा।
यही दशा संख्या 88 के यात्री की भी रही होगी।"

28. इसी प्रकार, श्री विनोद कुमार, सहायक यातायात निरीक्षक ने श्रम न्यायालय के समक्ष निम्नलिखित बयान दिया, जिसमें लिखा है: -

"आरोपी ने प्रश्न किया कि यदि टिकट संख्या 788 और 797 यात्रियों के पास पाये गये थे तो उनके टिकट धारी नानू में ही क्यों नहीं उतर गये थे? उत्तर में श्री शर्मा ने बताया कि वह यात्री मेरठ से सरधना के थे उनकी सन्तुष्टि के लिये आरोपी ने उन्हें अपने हस्तलेख में सामुहिक टिकट संख्या 788 दे रखा था जो आरोपी द्वारा पूर्व में बना हुआ टिकट था, आरोपी ने नानू में उतरने वाले किसी यात्री को सम्भवतः या तो टिकट नहीं दिया होगा अथवा यात्री द्वारा फेंका गया टिकट आरोपी ने उठाकर दूसरे यात्रियों को तसल्ली हेतु उन्हें दे दिया होगा।"

29. उपरोक्त बयानों पर विचार करने के बाद, श्रम न्यायालय ने माना कि जांच टीम के बयानों से पता चलता है कि बयान अनुमान पर दिए गए हैं और उक्त बयान के समर्थन में रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं थी। श्रम न्यायालय ने आगे कहा कि जांच टीम ने उन यात्रियों में से किसी का नाम और पता दर्ज नहीं किया जिनके पास अधूरे टिकट होने की बात कही गई थी, जबकि जांच टीम ने जांच के दौरान यात्रियों से जो बयान लिया था, उसे संबंधित अधिकारी को सौंप दिया गया था। जिन्होंने जांच रिपोर्ट सौंपी। नतीजतन, श्रम न्यायालय ने माना कि यात्रियों और उनके पते के किसी भी विवरण के अभाव में और जांच अधिकारी द्वारा ऐसे यात्रियों के बयान पर भरोसा करना भी जांच कार्यवाही को रद्द कर देता है क्योंकि उन्हें सत्यापित करने के लिए जांच अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया था। क्या उन्होंने मौके पर जांच करने वाले दस्ते को कोई बयान दिया था।

30. ऊपर वर्णित तथ्यों से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि श्रम न्यायालय ने रिकॉर्ड पर उपलब्ध तथ्यों और साक्ष्यों के आधार पर विस्तृत और ठोस कारण दिए हैं, जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जांच प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का पालन न करने के कारण दोषपूर्ण थी।

31. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने यद्यपि यह प्रस्तुत करने का पुरजोर प्रयास किया कि श्रम न्यायालय का निष्कर्ष विकृत और गलत है, लेकिन रिकॉर्ड से यह प्रदर्शित नहीं कर सका कि उक्त निष्कर्ष विकृत या गलत है या कानून के किसी भी प्रावधान के खिलाफ है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, चूंकि श्रम न्यायालय द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के उल्लंघन के संबंध में दिया गया निष्कर्ष एक तथ्यात्मक निष्कर्ष है, इसलिए यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति के प्रयोग में उसमें हस्तक्षेप करने के लिए इच्छुक नहीं है।

32. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा प्रस्तुत दूसरे तर्क के संबंध में, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील से अनुरोध किया गया कि वह श्रम न्यायालय के समक्ष विभाग द्वारा दायर आवेदन को प्रस्तुत करें, ताकि रिकॉर्ड पर वे दस्तावेज प्रस्तुत किए जा सकें, जो प्रतिवादी संख्या 2 के विरुद्ध आरोप को साबित कर सकें। जवाब में, उन्होंने कहा कि श्रम न्यायालय के समक्ष ऐसा कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया गया था और उक्त बयान लिखित बयान के पैरा -16 में दिए गए कथनों के आधार पर दिया गया है।

33. उन्होंने कहा कि यूपीएसआरटीसी के अधिकारी द्वारा उन्हें कोई दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराया गया है, जिसे यूपीएसआरटीसी श्रम न्यायालय के समक्ष दाखिल करना चाहता है, जिससे यह सिद्ध हो सके कि प्रतिवादी संख्या 2 के विरुद्ध आरोप सिद्ध हो गया है, न ही वह यूपीएसआरटी द्वारा श्रम न्यायालय के समक्ष दाखिल किए गए रिकॉर्ड से कोई दस्तावेज प्रस्तुत कर सके, जिससे यह सिद्ध हो सके कि प्रतिवादी संख्या 2 के विरुद्ध लगाए गए आरोप सही थे। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील का दूसरा तर्क गलत है और खारिज करने योग्य है और इसे खारिज कर दिया गया है। इस अदालत का मानना है कि **(2018) 4** एससीसी **483** कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय बनाम पृथ्वी सिंह के मामले में शीर्ष अदालत का फैसला तथ्यों के आधार पर अलग है और याचिकाकर्ता की सहायता में नहीं आता है।

34. जहां तक पिछले वेतन के बारे में याचिकाकर्ता के विद्वान वकील के तीसरे निवेदन का संबंध है, यह न्यायालय यह नोट कर सकता है कि श्रम न्यायालय ने पूर्ण बकाया वेतन देते समय कोई कारण नहीं बताया है, लेकिन वर्तमान मामले के तथ्यों में, यह अदालत इस मामले को रिमांड पर लेने की इच्छुक नहीं है क्योंकि एक गरीब कर्मचारी ने अपने उचित दावे का विरोध करने में अपने जीवन के स्वर्णिम वर्ष बिता दिए हैं। वह इस न्यायालय के समक्ष एक बार सफल हुए और मामले को रिमांड पर लिया गया, उसके बाद, वर्ष 2017 में वह फिर से श्रम न्यायालय के समक्ष सफल हुए और तब से 5 साल से अधिक समय बीत चुका है, और उन्हें अभी तक अधिनिर्णय का फल नहीं मिला है।

35. यह उल्लेख करना उचित है कि लिखित बयान के पैरा-2 में प्रतिवादी संख्या 2 ने स्पष्ट रूप से कहा है कि उनके सर्वोत्तम प्रयास के बावजूद, उन्हें कोई रोजगार नहीं मिल सका, और उनकी समाप्ति की तारीख से आज तक वह बिना रोजगार के हैं। पेपर बुक के पृष्ठ 92 पर प्रदर्शित दिनांक 10.09.2022 की आपत्ति का पैरा-22 नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

"22. यह कि संबंधित श्रमिक अपनी सेवा से पृथक होने की तिथि से आजतक बेरोजगार है और संबंधित श्रमिक ने अपनी बेरोजगारी को समाप्त करने के लिए काफी प्रयास किए, किन्तु उसे कोई नौकरी नहीं मिली।"

36. उन्होंने यूपीएसआरटीसी की आपत्ति पर दिनांक 22.10.2002 को अपने उत्तर में पैरा-9 (पेपर बुक के पृष्ठ 106) में फिर से स्पष्ट रूप से कहा है कि उनकी बर्खास्तगी के बाद उन्हें लाभकारी रूप से नियोजित नहीं किया गया है। पैरा-9 यहां-नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

"यह कि धारा 16,17,18 का कथन भी गैरकानूनी एवं आधारहीन होने के कारण स्वीकार नहीं है क्योंकि सेवायोजकों ने जांच करके व संबंधित श्रमिक के विरुद्ध आरोपों को सिद्ध करके पूर्ण अवसर ले लिया है और पुनः आरोप सिद्ध करने का अवसर लिया जाना न तो न्यायोचित है और न ही माननीय श्रम न्यायालय को ऐसा कोई क्षेत्राधिकार ही प्राप्त है। संबंधित श्रमिक सेवा समाप्ति की तिथि से आज तक बेरोजगार है और किसी भी लाभप्रद नियोजन में नहीं है तथा संबंधित श्रमिक अपनी सेवा समाप्ति तिथि से पूर्ण वेतन व अन्य देय लाभों को पाने का पूर्ण रूप से अधिकारी है।"

37. प्रतिवादी संख्या 2 ने श्रम न्यायालय के समक्ष अपने बयान में शपथ पर स्पष्ट रूप से कहा है कि सेवा से समाप्ति के बाद उसे कोई लाभकारी रोजगार नहीं दिया गया है। पूरक जवाबी हलफनामे के पृष्ठ 30 से प्रतिवादी संख्या 2 के बयान का प्रासंगिक उद्धरण यहां नीचे दिया गया है:

"--- मैं सेवा समाप्ति की तिथि से आज तक बेरोजगार हूँ। मैने नौकरी की काफी कोशिश की लेकिन नौकरी कही नही मिली।"

38. यद्यपि यूपीएसआरटीसी के दिनांक **18.10.2002** के लिखित बयान में, पैरा-17 में यह कहा गया है कि प्रतिवादी संख्या 2 को लाभप्रद रूप से नियोजित किया गया है, लेकिन यूपीएसआरटीसी द्वारा यह साबित करने के लिए कोई सबूत दाखिल नहीं किया गया कि प्रतिवादी संख्या 2

को सेवा समाप्ति के बाद लाभप्रद रूप से नियोजित किया गया था। यह स्थापित कानून है कि एक बार इसकी वकालत की जा चुकी है और कर्मचारी द्वारा कहा गया है कि उसकी समाप्ति के बाद उसे लाभप्रद रूप से नियोजित नहीं किया गया है, यह साबित करने का दायित्व विभाग पर है कि कर्मचारी को समाप्ति के बाद लाभप्रद रूप से नियोजित किया गया है, और उसके बाद ही नियोक्ता पर यह साबित करने का भार आएगा कि वह लाभकारी रोजगार में नहीं था।

39. इस संदर्भ में, निम्नानुसार आयोजित, दीपाली गुंडू सुरवासे बनाम क्रांति जूनियन अध्यापक महाविद्यालय, **2013 (139)** एफएलआर **541 (**एससी) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का उल्लेख करना उपयुक्त होगा:

"33. उपर्युक्त निर्णयों से जो प्रस्ताव निकाले जा सकते हैं वे हैं:

i) गलत तरीके से सेवा समाप्ति के मामलों में, सेवा की निरंतरता और बकाया वेतन के साथ बहाली सामान्य नियम है।

ii) उपरोक्त नियम इस शर्त के अधीन है कि पिछले वेतन के मुद्दे पर निर्णय लेते समय, न्यायनिर्णयन प्राधिकारी या न्यायालय कर्मचारी/कामगार की सेवा की अवधि, कदाचार की प्रकृति, यदि कोई हो,कर्मचारी/कामगार, नियोक्ता की वित्तीय स्थिति और इसी तरह के अन्य कारक को ध्यान में रख सकता है।

iii) आम तौर पर, एक कर्मचारी या कामगार जिसकी सेवाएं समाप्त कर दी गई हैं और जो अपना वेतन वापस पाने का इच्छुक है, उसे निर्णय लेने वाले प्राधिकारी या प्रथम दृष्टया न्यायालय के समक्ष या तो दलील देनी होगी या कम से कम एक बयान देना होगा कि वह लाभकारी रूप से नियोजित नहीं था या कम वेतन पर नियोजित किया गया था। यदि नियोक्ता पूर्ण बकाया वेतन के भुगतान से बचना चाहता है, तो उसे यह साबित करने के लिए दलील देनी होगी और ठोस सबूत भी पेश करने होंगे कि कर्मचारी/कामगार लाभकारी रूप से कार्यरत था और उसे सेवा समाप्ति से पहले के बराबर वेतन मिल रहा था। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह स्थापित कानून है कि किसी विशेष तथ्य के अस्तित्व को साबित करने का भार उस व्यक्ति पर होता है जो इसके अस्तित्व के बारे में सकारात्मक अनुमान लगाता है। किसी नकारात्मक तथ्य को साबित करने की तुलना में सकारात्मक तथ्य को साबित करना हमेशा आसान होता है। इसलिए, एक बार जब कर्मचारी यह दिखाता है कि वह नियोजित नहीं था, तो नियोक्ता पर जिम्मेदारी आती है कि वह विशेष रूप से दलील दे और साबित करे कि कर्मचारी लाभप्रद रूप से नियोजित था और उसे समान या काफी हद तक समान परिलब्धियां मिल रही थीं।

iv) ऐसे मामले जिनमें श्रम न्यायालय/औद्योगिक न्यायाधिकरण औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 11-ए के तहत शक्ति का प्रयोग करता है और पाता है कि भले ही कर्मचारी/कामगार के खिलाफ की गई जांच प्राकृतिक न्याय के नियमों और/या प्रमाणित स्थायी आदेशों, यदि कोई हो, के अनुरूप है, लेकिन यह पाता है कि सजा साबित किए गए कदाचार के अनुपात में असंगत थी, तो उसके पास पूरा पिछला वेतन न देने का विवेकाधिकार होगा। हालाँकि, यदि श्रम न्यायालय/औद्योगिक न्यायाधिकरण को पता चलता है कि कर्मचारी या कामगार किसी भी कदाचार का दोषी नहीं है या नियोक्ता ने गलत आरोप लगाया है, तो पूरा पिछला वेतन देने का पर्याप्त औचित्य होगा।

v) ऐसे मामले जिनमें सक्षम न्यायालय या न्यायाधिकरण यह पाता है कि नियोक्ता ने वैधानिक प्रावधानों और/या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन किया है या कर्मचारी या कामगार को प्रताड़ित करने का दोषी है, तो संबंधित न्यायालय या न्यायाधिकरण को पूर्ण बकाया वेतन के भुगतान का निर्देश देने का पूर्ण अधिकार होगा। ऐसे मामलों में, वरिष्ठ न्यायालयों को संविधान के अनुच्छेद 226 या 136 के तहत शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए और श्रम न्यायालय आदि द्वारा पारित पुरस्कार में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, केवल इसलिए कि कर्मचारी/कामगार के पूर्ण बकाया वेतन पाने के अधिकार या नियोक्ता के भुगतान के दायित्व पर एक अलग राय बनने की संभावना है। न्यायालयों को हमेशा यह ध्यान में रखना चाहिए कि सेवा की गलत/अवैध समाप्ति के मामलों में, गलत करने वाला नियोक्ता होता है और पीड़ित कर्मचारी/कामगार होता है, तथा नियोक्ता को कर्मचारी/कर्मचारी को पूर्ण बकाया वेतन के रूप में भुगतान करने के भार से मुक्त करके उसके गलत कार्यों के लिए प्रीमियम देने का कोई औचित्य नहीं है।

vi) कई मामलों में, वरिष्ठ न्यायालयों ने इस आधार पर प्राथमिक न्यायनिर्णयन प्राधिकारी के फैसले में हस्तक्षेप किया कि मुकदमेबाजी को अंतिम रूप देने में काफी समय लग गया है, इस बात को नजरअंदाज करते हुए कि अधिकांश मामलों में पक्ष ऐसी देरी के लिए जिम्मेदार नहीं हैं। मामलों के निपटारे में देरी का प्रमुख कारण बुनियादी ढांचे और जनशक्ति की कमी है। इसके लिए वादकारियों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता या दंडित नहीं किया जा सकता। यह किसी कर्मचारी या कामगार के साथ घोर अन्याय होगा यदि उसे केवल इसलिए पिछला वेतन देने से इनकार कर दिया जाए क्योंकि उसकी सेवा समाप्ति और

बहाली के आदेश को अंतिम रूप दिए जाने के बीच लंबा अंतराल है। न्यायालयों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि इनमें से अधिकांश मामलों में, नियोक्ता कर्मचारी या कामगार की तुलना में लाभप्रद स्थिति में है। वह सर्वश्रेष्ठ कानूनी मदद का लाभ उठा सकता है जिससे पीड़ित यानि कर्मचारी/कामगार की पीड़ा को और बढ़ाएगा जो कि थोड़ी भी प्रसिद्धि वाले किसी वकील का खर्च भी वहन नहीं कर सकता। इसलिए, ऐसे मामलों में हिंदुस्तान टिन वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम हिंदुस्तान टिन वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड के कर्मचारी (सुप्रा) मामले में सुझाए गए पाठ्यक्रम को अपनाना समझदारी होगी।

40. उपरोक्त निर्णय से यह स्पष्ट है कि कानून में यह तय है कि गलत तरीके से सेवा समाप्त करने की स्थिति में, बकाया वेतन के साथ सेवा की निरंतरता के साथ बहाली एक सामान्य नियम है। उक्त मामले में शीर्ष अदालत ने आगे कहा है कि आम तौर पर, बकाया वेतन की मांग करने वाले कर्मचारी को या तो न्यायनिर्णयन प्राधिकारी के समक्ष या प्रथम दृष्टया अदालत में दलील देनी होगी या कम से कम एक बयान देना होगा कि वह लाभकारी रूप से नियोजित नहीं था या पट्टेदार के वेतन पर नियोजित था। यदि नियोक्ता पूर्ण बकाया वेतन के भुगतान से बचना चाहता है, तो उसे दलील देनी होगी और यह साबित करने के लिए ठोस साक्ष्य भी पेश करना होगा कि कामगार समाप्ति की अवधि के दौरान लाभप्रद रूप से नियोजित था और वह उस मजदूरी के बराबर मजदूरी प्राप्त कर रहा था जो वह सेवा की समाप्ति से पहले ले रहा था।

41. वर्तमान मामले में, जैसा कि ऊपर बताया गया है कि प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा एक विशिष्ट मामला स्थापित किया गया है कि उसे कहीं भी लाभकारी रूप से नियोजित नहीं किया गया था, हालांकि इस तथ्य को यूपीएसआरटीसी द्वारा आपत्ति में नकार दिया गया है, इसके पहले कोई भी गवाह नहीं था श्रम न्यायालय ने श्रम न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी संख्या 2 के इस कथन को अस्वीकार कर दिया है कि वह लाभकारी रूप से नियोजित नहीं था और कोई वेतन नहीं ले रहा था जो उसे बर्खास्तगी से पहले मिल रहा था। यूपीएसआरटीसी ने यह प्रदर्शित करने के लिए कोई सबूत पेश नहीं किया कि प्रतिवादी नंबर 2 को लाभकारी रूप से नियोजित किया गया था और उसे वही वेतन मिल रहा था जो उसे बर्खास्तगी से पहले मिल रहा था।

42. कानून में यह तय है कि न्यायालय को पर्याप्त न्याय करने का प्रयास करना चाहिए। इस न्यायालय को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत पर्याप्त न्याय करने की पर्याप्त शक्ति प्राप्त है, और ऐसा करते समय, यह अधीनस्थ न्यायालय के निष्कर्ष के समर्थन में कारण को पूरक कर सकता है यदि उसे लगता है कि रिकॉर्ड पर पर्याप्त सामग्री है जो अधीनस्थ न्यायालय या न्यायाधिकरण के निष्कर्ष को उचित ठहराती है, हालांकि अधीनस्थ न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा उक्त निष्कर्ष के समर्थन में कोई कारण नहीं दिया गया है।

43. वर्तमान मामले में चूंकि रिकॉर्ड पर पर्याप्त सामग्री थी, जिससे यह साबित हुआ कि प्रतिवादी संख्या 2 को उसकी सेवा समाप्ति के बाद कोई लाभकारी रोजगार नहीं मिला था, इसलिए यह न्यायालय इस तकनीकी आधार पर मामले को श्रम न्यायालय के समक्ष पुनः भेजने के लिए इच्छुक नहीं है कि पिछला वेतन देने से पहले श्रम न्यायालय द्वारा कोई कारण नहीं बताया गया था।

44. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय पाता है कि चूंकि प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा रिकॉर्ड पर यह स्थापित किया गया है कि उसकी सेवा समाप्ति के बाद उसे कोई लाभकारी रोजगार नहीं मिला था, इसलिए श्रम न्यायालय ने सही रूप से पूर्ण पिछला वेतन दिया है।

45. इस प्रकार, मदुरंतकम सहकारी चीनी मिल्स लिमिटेड (सुप्रा) और हिंदुस्तान मोटर्स लिमिटेड (सुप्रा) के प्रबंधन के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय, जिस पर याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने इस बिंदु पर भरोसा किया है कि चूंकि न्यायाधिकरण ने पिछला वेतन देने के समय कोई कारण नहीं दिया है, इसलिए पुरस्कार अमान्य है, वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है क्योंकि उन मामलों में ऐसा लगता है कि रिकॉर्ड पर ऐसी सामग्री थी जिससे यह स्थापित हुआ कि कर्मचारी समाप्ति के बाद लाभकारी रूप से कार्यरत थे।

46. इस प्रकार, ऊपर दिए गए कारणों से, याचिका में योग्यता नहीं है। तदनुसार, श्रम न्यायालय ने जिस अधिनिर्णय की पुष्टि की है उसे खारिज कर दिया गया है। लागत के रूप में कोई आदेश नहीं किया जाएगा।

(2023) 1 ILRA 184
मूल न्यायाधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक:इलाहाबाद 17.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सलिल कुमार राय

रिट-सी संख्या 3297/2020

आदिल खान **...याचिकाकर्ता**

बनाम

कुलपति, ए.एम.यू., अलीगढ एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता:
श्री प्रभाकर द्विवेदी, श्री जीतेन्द्र कुमार, श्री मोहम्मद जुबैर, नासिर आदिल, श्री प्रशांत राय, श्री राकेश पांडे, वरिष्ठ अधिवक्ता

अधिवक्ता प्रतिवादी:
श्री शशांक शेखर सिंघा

(ए) सिविल कानून -अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अधिनियम, 1921 - धारा 13(6) - अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय (संशोधन) अधिनियम, 1981 - धारा 36 (बी), अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय के छात्र आचरण और अनुशासन नियम, 1985 - भाग VII नियम 9 - छात्र को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान किए बिना नियम 7(x) से 7(xiv) के तहत कोई जुर्माना नहीं लगाया जाएगा - भारतीय दंड संहिता, 1860 – धारा 147, 148, 149, 307, 427 , 323 और 504 - कोई भी निर्णय, चाहे वह प्रशासनिक हो या अर्ध-न्यायिक, जो किसी भी व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है और अपील योग्य है, उसे स्पष्ट और स्पष्ट कारणों से समर्थित किया जाना चाहिए जो कि मस्तिस्क के उचित उपयोग को प्रदर्शित करता है और प्रासंगिक आधारों पर और अनावश्यक विचारों की उपेक्षा करके निर्णय-निर्माता द्वारा विवेक का प्रयोग किया गया है । (पैरा-40)

याचिकाकर्ता को पांच शैक्षणिक सत्रों की अवधि के लिए विश्वविद्यालय से निष्कासित कर दिया गया - अनुशासनहीनता और कदाचार के कृत्यों में लिप्त – 2020 से लंबित याचिका - सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना आदेश पारित किया गया – अनुशासनात्मक समिति के निष्कर्षों और प्रस्ताव के विरुद्ध प्रतिनिधित्व करने का कोई अवसर नहीं प्रदान किया - आदेश में अनुशासनात्मक समिति के निष्कर्षों और सिफारिशों को स्वीकार करने के लिए कोई कारण अभिलिखित नहीं है। (पैरा-41,44)

आयोजित:-अनुशासन समिति की रिपोर्ट को कुलपति की मंजूरी और इसकी प्रस्तावित सजा प्राकृतिक न्याय और नियम, 1985 का उल्लंघन थी। कुलपति और कार्यकारी परिषद द्वारा पारित आदेश और प्रस्ताव को निरस्त कर दिया गया, याचिकाकर्ता को कक्षाओं में उपस्थित और परीक्षाओं में भाग लेने की अनुमति प्रदान की गई। (पैरा-40,43,45)

याचिका स्वीकृत। (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. सैयद एहतेशामुल हक बनाम ए.एम.यू., अलीगढ एवं अन्य, 2009 (5) एडीजे 444
2. अजय सिंह बनाम भारत संघ एवं अन्य, रिट सी संख्या 32955/2019
3. सेंट बी.ओ.पी. और अन्य बनाम एस.के. शर्मा, 1996 (3) एससीसी 364
4. भारत संघ और अन्य बनाम अशोक कुमार एवं अन्य, 2005 (8) एससीसी 760
5. के.डी. शर्मा बनाम एस.ए.आई.एल., 2008 (12) एससीसी 48
6. वी.सी. गुरु घासी दास विश्वविद्यालय बनाम क्रेग मैकलॉड, 2012 (11) एससीसी 27
7. अध्यक्ष, एल.आई.सी. बनाम ए मासिलामणि, 2013 (6) एससीसी 530
8. लखनऊ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक और अन्य बनाम राजेंद्र सिंह, 2013 (12) एससीसी 372
9. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सुधीर कुमार सिंह एवं अन्य (2020) एससीसी ऑनलाइन एससी 84
10. भारत संघ और अन्य बनाम अमर सिंह, 2007 (12) एससीसी 621
11. हरियाणा वित्तीय निगम एवं अन्य बनाम कैलाश चंद्र आहूजा, 2008 (9) एससीसी 31
12. पंचायत निरीक्षक एवं जिला कलेक्टर, सेलम बनाम एस. अरिचंद्रन एवं अन्य अध्यक्ष
13. जे एंड के सेंट बोर्ड ऑफ एजुकेशन बनाम फ़ैयाज़ अहमद मलिक और अन्य, 2000 (3) एससीसी 59
14. बी.सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ, 1995 (6) एससीसी 749
15. कुमाऊं मंडल विकास निगम लिमिटेड बनाम गिरजाशंकर पंत एवं अन्य, 2001 (1) एससीसी 182
16. एल.सी.ए.आई. बनाम एलके. रत्ना एवं अन्य, 1986 (4) एससीसी 537
17. एम.डी., ईसीआईएल, हैदराबाद एवं अन्य बनाम बी करुणाकर एवं अन्य, 1993 (4) एससीसी 727
18. मैसर्स. त्रावणकोर रेयॉन लिमिटेड बनाम भारत संघ, 1969 (3) एससीसी 868
19. मेसर्स महाबीर प्रसाद संतोष कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 1970 (1) एससीसी 764
20. सीमेंस इंजीनियरिंग एंड मैन्युफैक्चरिंग कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम भारत संघ एवं अन्य, 1976 (2) एससीसी 981
21. क्रांति एसोसिएट्स प्रा. लिमिटेड और अन्य. बनाम मसूद अहमद खान एवं अन्य, 2010 (9) एससीसी 496
22. ओरिक्स फिशरीज प्रा. लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य 2010 (13) एससीसी 427

(माननीय न्यायमूर्ति सलिल कुमार राय द्वारा प्रदत्त)

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय (बाद में 'विश्वविद्यालय' के रूप में संदर्भित) के बी.ए.एल.एल.बी. के छात्र ने इस अदालत का दरवाजा खटखटाया है और अनुरोध किया है कि विश्वविद्यालय द्वारा उसके साथ उचित व्यवहार नहीं किया गया है, जबकि उसे पांच शैक्षणिक सत्रों की अवधि के लिए विश्वविद्यालय के रोल से निष्कासित करने का आदेश पारित किया गया है। आरोप है कि वह एएमयू छात्र आचरण और अनुशासन नियम, 1985 (इसके बाद 'नियम, 1985' के रूप में संदर्भित) में परिभाषित अनुशासनहीनता और कदाचार के कृत्यों में शामिल थे। याचिकाकर्ता ने अनुशासनात्मक कार्यवाही में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन होने का दलील दिया है।

मामले के तथ्य यह हैं कि विश्वविद्यालय परिसर में एक राजनीतिक नेता को आमंत्रित करने के मुद्दे पर छात्रों के दो समूहों के बीच मतभेद थे, जिसके परिणामस्वरूप 12.02.2019 को परिसर में विश्वविद्यालय में शैक्षणिक माहौल को बाधित करने वाली हिंसक गतिविधियाँ हुईं। याचिकाकर्ता पर हिंसा में शामिल होने का आरोप है। दिनांक 13.2.2019 के आदेश से, विश्वविद्यालय के प्रॉक्टर ने याचिकाकर्ता और फरहान जुबैरी सहित तीन अन्य छात्रों को निलंबित कर दिया। दिनांक 13.2.2019 के आदेश में कहा गया है कि मनीष कुमार नामक व्यक्ति ने प्रॉक्टर को शिकायत दर्ज कराई थी कि विश्वविद्यालय के दो छात्रों ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया और शारीरिक हमला किया और परिसर में अराजकता के लिए याचिकाकर्ता और फरहान जुबैरी को दोषी ठहराया। आदेश दिनांक 13.2.2019 से याचिकाकर्ता को विश्वविद्यालय परिसर में प्रवेश करने से रोक दिया गया। दिनांक 14.2.2019 को घटना दिनांक 12.2.2019 के संबंध में दो प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करायी गयीं। एफ.आई.आर. 2019 का नंबर 61 विश्वविद्यालय के एक कर्मचारी अजीम अख्तर के कहने पर भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 323 और 504 के तहत दर्ज किया गया था, जिसमें आरोप लगाया गया था कि एफआईआर में नामित आरोपी कुछ अज्ञात व्यक्तियों और राजनीतिक नेताओं के साथ मिलकर विश्वविद्यालय के प्रशासनिक भवन में अशांति पैदा की थी। दूसरी प्रथम सूचना रिपोर्ट को एफ.आई.आर. 2019 का नंबर 62 के रूप में क्रमांकित किया गया जिसे किसी डॉ. निशित शर्मा के कहने पर भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 149, 307 और 427 के तहत दर्ज किया गया था, जिसमें आरोप लगाया गया था कि 12.2.2019 को एफआईआर में नामित आरोपियों को गिरफ्तार कर लिया गया था। कुछ अज्ञात व्यक्तियों के साथ मिलकर सूचक और विश्वविद्यालय के छात्रों के साथ मारपीट की थी और सूचक के वाहन पर गोलीबारी भी की थी और अन्य वाहनों में आग लगा दी थी। याचिकाकर्ता को किसी भी एफ.आई.आर. में आरोपी के रूप में नामित नहीं किया गया था। एफ.आई.आर. संख्या 2019 का नंबर 62 में दिनांक 13.7.2019 को आरोप पत्र दाखिल किया गया है।। याचिकाकर्ता को आरोप पत्र में आरोपी के रूप में नहीं दिखाया गया है, हालांकि फरहान जुबैरी को उपरोक्त आरोप पत्र में आरोपी के रूप में नोट किया गया है।

28.2.2019 को, विश्वविद्यालय के एक कर्मचारी मजहर सिद्दीकी ने भारतीय दंड संहिता की धारा 307 और 504 के तहत एफ.आई.आर. 2019 की संख्या 0089 के रूप में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई जिसमे याचिकाकर्ता और एक नबील के खिलाफ आरोप लगाया गया कि 28.2.2019 को याचिकाकर्ता सह-अभियुक्तों के साथ सूचक के कार्यालय में आया और सह-अभियुक्त ने देशी पिस्तौल से सूचक पर गोली चला दी। एफआइआर में यह आरोप लगाया गया है. याचिकाकर्ता ने सूचक के साथ दुर्व्यवहार किया और सह-अभियुक्त नबील को सूचक पर गोली चलाने के लिए उकसाया। एफ.आई.आर. में आगे कहा गया है। नबील अहमद को सूचक ने पकड़ लिया था लेकिन याचिकाकर्ता आग्नेयास्त्र के साथ मौके से भागने में सफल रहा। उक्त मामले में याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया जा चुका है। उक्त आपराधिक मामले की सुनवाई संबंधित न्यायालय में लंबित है। याचिकाकर्ता की ओर से कहा गया है कि जो आरोप पत्र एफ.आई.आर. संख्या 0089/2019 के रूप में दाखिल किया गया है जिसे सीआरपीसी की धारा 482 के तहत इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है। धारा 482 सीआरपीसी के तहत इस न्यायालय के समक्ष लंबित याचिकाएं वर्तमान रिट याचिका के लिए प्रासंगिक नहीं हैं और इसलिए, उक्त मामले का विवरण वर्तमान निर्णय में नहीं बताया जा रहा है।

प्रोकटोरियाल बोर्ड द्वारा जांच प्रतिवेदन दिनांक 5.3.2019 प्रस्तुत किया गया जिसमें विश्वविद्यालय के प्रॉक्टोरियल बोर्ड ने कहा कि, 12.2.2019 को याचिकाकर्ता ने विश्वविद्यालय के सुरक्षा कर्मियों और प्रॉक्टोरियल टीम के सदस्यों के साथ-साथ जिला अधिकारियों के साथ मारपीट और दुर्व्यवहार किया था और प्रशासनिक ब्लॉक में छात्रों को भी उकसाया था। दिनांक 5.3.2019 की रिपोर्ट में अन्य छात्रों, इमरान खान, अब्दुल माबूद, मनीष कुमार, पवन जादौन, अमन शर्मा, अजय सिंह और फरहान जुबैरी को भी 12.2.2019 की घटनाओं के लिए जिम्मेदार ठहराया गया है। इसके बाद, याचिकाकर्ता और ऊपर उल्लिखित अन्य छात्रों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई और मामले को आगे की जांच के लिए अनुशासनात्मक समिति को भेजा गया।

अनुशासनात्मक समिति ने याचिकाकर्ता को आरोप पत्र दिया। आरोप नंबर 1 यह था कि याचिकाकर्ता ने फरहान जुबैरी के साथ मिलकर अजय सिंह, मनीष कुमार, पवन जादोन, अमन शर्मा और अन्य छात्रों के साथ मारपीट की थी और विश्वविद्यालय के प्रशासनिक भवन में अराजकता पैदा की थी, जिससे स्थिति हिंसक हो गई थी, जिससे विश्वविद्यालय में शैक्षणिक माहौल बाधित हुआ था।। याचिकाकर्ता के खिलाफ दूसरा आरोप यह था कि वह निलंबन और कैंपस प्रतिबंध के बावजूद 28.2.2019 को कंप्यूटर साइंस बिल्डिंग विभाग में गया था और आपराधिक गतिविधियों में शामिल था जिसके लिए उसके खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 307 और 504 के तहत एफ.आई.आर. संख्या 2019 का 0089 दर्ज किया गया था।

याचिकाकर्ता ने अपना जवाब दिनांक 20.3.2019 प्रस्तुत किया जिसमें उसने 12.2.2019 और 28.2.2019 की घटनाओं में अपनी संलिप्तता के आरोप से इनकार किया। अपने जवाब में, याचिकाकर्ता ने 12.2.2019 को प्रशासनिक भवन में अपनी उपस्थिति के बारे में बताते हुए कहा कि वह सूचना के अधिकार अधिनियम के तहत दायर अपने आवेदन के बारे में पूछताछ करने के लिए वहां गया था। अपने जवाब में, याचिकाकर्ता ने कहा कि विश्वविद्यालय के एक ठेकेदार खिल्लन शेरवानी के इशारे पर उसके और उसके परिवार के खिलाफ एक साजिश रची गई थी, जिसके खिलाफ याचिकाकर्ता के पिता और विश्वविद्यालय कैंपस में रहने वाले अन्य शिक्षकों द्वारा शिकायत की गई थी। अपने जवाब में, याचिकाकर्ता ने उस शिकायत की प्रति की मांग की जिस पर उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी और उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों के समर्थन में वीडियो फुटेज और अन्य सबूत भी दिए गए थे।

विश्वविद्यालय द्वारा दायर दस्तावेजों से पता चलता है कि अपनी बीमारी के कारण, याचिकाकर्ता अनुशासनात्मक समिति के सामने उपस्थित नहीं हुआ, जिसने अपनी सिफारिशें प्रस्तुत कीं जिसमें प्रस्ताव दिया गया कि मनीष कुमार, अमन शर्मा, पवन जादोन, अब्दुल माबूद, इरशाद खान, बसीम हिलाल और फरहान जुबैरी पर 2,000/- रुपये जुर्माना लगाया जाए और भविष्य में अधिक सावधान रहने के लिए सख्त चेतावनी जारी की जाए और अजय सिंह के साथ-साथ याचिकाकर्ता को पांच शैक्षणिक सत्रों के लिए विश्वविद्यालय के रोल से निष्कासित कर दिया जाए। हालाँकि, कुलपति ने याचिकाकर्ता के मामले को आगे की जांच के लिए अनुशासन समिति को वापस भेज दिया क्योंकि अनुशासन समिति द्वारा याचिकाकर्ता को सुने बिना ही प्रारंभिक सिफारिशें की गई थीं।

याचिकाकर्ता बाद में अनुशासन समिति के सामने पेश हुआ और अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों से इनकार करते हुए अपनी मौखिक दलीलें दीं। अनुशासन समिति के विवरण से पता चलता है कि याचिकाकर्ता ने फरहान जुबैरी के साथ नरम व्यवहार करने का अनुरोध किया। अनुशासन समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए कहा कि याचिकाकर्ता 12.2.2019 की घटना में सक्रिय रूप से शामिल था। अनुशासनात्मक समिति ने अपनी रिपोर्ट में आगे दर्ज किया कि याचिकाकर्ता ने 13.2.2019 के आदेश की अवहेलना की, जिसने उसे विश्वविद्यालय परिसर में प्रवेश करने से रोक दिया था और 28.2.2019 को हुई घटना में भी शामिल था। उपरोक्त निष्कर्षों पर, अनुशासनात्मक समिति का विचार है कि याचिकाकर्ता के अत्यंत हिंसक और विचलित व्यवहार को और अधिक क्षमा करने से विश्वविद्यालय के अन्य छात्रों और कर्मचारियों के जीवन और स्वतंत्रता को गंभीर खतरा होगा अतः उन्होंने अपने निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए प्रस्ताव दिया कि याचिकाकर्ता को सत्र 2018-19 से शुरू होने वाले पांच शैक्षणिक सत्रों की अवधि के लिए विश्वविद्यालय के रोल से निष्कासित कर दिया जाए और उपरोक्त अवधि के लिए विश्वविद्यालय में आगे की पढ़ाई या प्रवेश या पुनः प्रवेश से वंचित कर दिया जाए और साथ ही विश्वविद्यालय को भी चूंकि इसके द्वारा संचालित संस्थानों को याचिकाकर्ता के लिए उस अवधि के लिए बाध्यता से बाहर रखा जाएगा जब तक वह विश्वविद्यालय से निष्कासित रहेगा।

अनुशासन समिति के प्रस्ताव को कुलपति ने अपने आदेश दिनांक 2.9.2019 द्वारा अनुमोदित किया था। विश्वविद्यालय द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों से पता चलता है कि कुलपति ने अनुशासन समिति द्वारा प्रस्तुत प्रस्तावों पर केवल अपनी मंजूरी दर्ज की थी। कुलपति द्वारा अनुमोदन के बाद विश्वविद्यालय के प्रॉक्टर द्वारा दिनांक 4.9.2019 को एक आदेश जारी किया गया जिसमें याचिकाकर्ता को उस पर लगाए गए दंड के बारे में सूचित किया गया।

याचिकाकर्ता ने प्रॉक्टर के समक्ष दिनांक 15.9.2019 को एक आवेदन दायर किया, जिसमें कुछ दस्तावेज विशेष रूप से दिनांक 5.3.2019 की जांच रिपोर्ट, दिनांक 12.2.2019 और 28.2.2019 की घटनाओं के संबंध में प्रॉक्टर को की गई शिकायतों की प्रति, वीडियो रिकॉर्डिंग और सीसीटीवी फुटेज तथा12.2.2019 की घटना की और अनुशासन समिति द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट की एक प्रति भी मांगी गई । याचिका में कहा गया है कि दिनांक 2.9.2019 और 4.9.2019 के आदेशों के खिलाफ अपील दायर करने के लिए उपरोक्त दस्तावेजों की आवश्यकता थी, लेकिन याचिकाकर्ता को ये दस्तावेज न तो दिए गए और न ही दिखाए गए।

याचिकाकर्ता द्वारा कार्यकारी परिषद के समक्ष दायर अपील में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की धारा 36(बी) के तहत (संशोधन) अधिनियम, 1981 के अंतर्गत 2.9.2019 और 4.9.2019 के आदेशों को चुनौती दी गई थी। अपनी अपील में याचिकाकर्ता ने गुहार लगाई कि उसे अपना बचाव करने में सक्षम बनाने के लिए आवश्यक दस्तावेज उसे नहीं दिए गए और उसे 12.2.2019 एवं 28.2.2019 की घटनाओं में गलत शामिल ठहराया गया। उसके अपील में याचिकाकर्ता ने कार्यकारी परिषद के समक्ष दोबारा अपील की और अनुरोध किया कि उनके साथ भी अन्य लोगों की तरह ही व्यवहार किया जाए और छात्र, उदाहरण के लिए, फरहान जुबैरी, जिसका मतलब है कि मामले में, याचिकाकर्ता को अनुशासनहीनता के किसी भी कार्य में शामिल पाया गया हो सकता है उसी तरह नरम व्यवहार किया जाए जैसा अन्य छात्रों के साथ किया गया था।

कार्यकारी परिषद ने अपने संकल्प दिनांक 14.10.2019 के माध्यम से याचिकाकर्ता की अपील को खारिज कर दिया। दिनांक 14.10.2019 का संकल्प याचिकाकर्ता को विश्वविद्यालय के प्रॉक्टर द्वारा अपने पत्र दिनांक 31.12.2019 के माध्यम से सूचित किया गया था। वर्तमान रिट याचिका में दिनांक 4.9.2019 और 31.12.2019 के आदेशों को चुनौती दी गई है।

आगे बढ़ने से पहले यह नोट करना प्रासंगिक होगा कि याचिका दिनांक 2.9.2019 कुलपति एवं द्वारा पारित कार्यकारी परिषद् द्वारा संकल्प दिनांक 14.10.2019 पारित आदेश को रद्द करने की कोई प्रार्थना नहीं की गयी है। हालाँकि, यह देखते हुए कि आदेश दिनांक 2.9.2019 विश्वविद्यालय द्वारा दायर किया गया है और वर्तमान के रिकॉर्ड का हिस्सा है और कार्यकारी परिषद द्वारा पारित संकल्प दिनांक 14.10.2019 के प्रस्ताव दिनांक 31.12.2019 के आदेश मे शब्दशः शामिल किया गया है। प्राक्टर और संचार के पारित आदेश दिनांक 4.09.2019 और 31.12.2019 ही याचिककर्ता को 2.09.2019 के द्वारा ही संकल्प कि सूचना है जिसमे न्यायालय द्वारा गुण- दोष के आधार पर संकल्प 14.10.2019 को दोनों पक्षों के अधिवक्तावों को सुना।

याचिकाकर्ता के वकील द्वारा तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता द्वारा विश्वविद्यालय को बार-बार आवेदन और अभ्यावेदन दिए जाने के बावजूद, प्रारंभिक जांच की रिपोर्ट, जिन शिकायतों पर याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई शुरू की गई थी और घटना की वीडियो फुटेज भी उपलब्ध नहीं कराई गई थी क्योंकि अनुशासनात्मक कार्यवाही के दौरान विश्वविद्यालय के किसी भी छात्र या अधिकारी या किसी अन्य व्यक्ति का बयान और 12.2.2019 की घटनाओं में याचिकाकर्ता की भागीदारी दिखाने वाला कोई अन्य सबूत याचिकाकर्ता को नहीं दिया गया था। यह तर्क दिया गया कि अनुशासनात्मक समिति ने अपनी रिपोर्ट में याचिकाकर्ता के खिलाफ गवाही देने वाले किसी भी गवाह के बयान का उल्लेख नहीं किया है, बल्कि केवल सीसीटीवी फुटेज का उल्लेख किया है जो 12.2.2019 को घटना स्थल पर याचिकाकर्ता की उपस्थिति को दर्शाता है और 12.2.2019 को हुई किसी भी हिंसक गतिविधि में याचिकाकर्ता की भागीदारी नहीं दिखती है। यह तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में या 12.2.2019 की घटनाओं के संबंध में पुलिस द्वारा दायर आरोप पत्र में आरोपी के रूप में नहीं था, लेकिन कई छात्रों के साथ विश्वविद्यालय द्वारा नरम व्यवहार किया गया और उन्हें हल्की सज़ा दी गई, उनके नाम 12.2.2019 की दो एफ.आई.आर. में दर्ज थे और जिनके नाम उपरोक्त मामलों में दायर आरोप पत्रों में भी आरोपी के रूप में नामित किया गया है। यह तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ निर्णय लेते समय उपरोक्त तथ्य पर अनुशासन समिति या कुलपति और कार्यकारी परिषद द्वारा विचार नहीं किया गया था। आगे तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता 28.2.2019 की घटनाओं में शामिल नहीं था और उक्त आरोप को याचिकाकर्ता के खिलाफ केवल इस आधार पर साबित माना गया है कि दिनांक 28.2.2019 की घटना के संबंध में याचिकाकर्ता पर दर्ज आपराधिक मामले में आरोप पत्र दिया गया था। यह तर्क दिया गया कि दिनांक 28.2.2019 की घटना के संबंध में निष्कर्ष सूचक का बयान लिए बिना और याचिकाकर्ता को सूचक से जिरह करने का कोई अवसर दिए बिना दर्ज किया गया है। यह तर्क दिया गया कि अनुशासनात्मक समिति की राय कि याचिकाकर्ता एक आदतन अपराधी है, अनुशासनात्मक समिति के निष्कर्षों पर आधारित है कि याचिकाकर्ता 12.2.2019 की घटनाओं में शामिल था, जो ऊपर बताए गए कारणों से कानून के विपरीत है। आगे यह तर्क दिया गया कि नियम, 1985 के भाग VII नियम 9 के तहत, याचिकाकर्ता अनुशासनात्मक समिति की रिपोर्ट और सिफारिशों को कुलपति द्वारा अनुमोदित किए जाने से पहले कुलपति द्वारा सुनवाई के अवसर का हकदार था, लेकिन आदेश दिनांकित था 2.9.2019 को कुलपति द्वारा याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना पारित कर दिया गया। यह तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता को अनुशासन समिति की रिपोर्ट प्रदान नहीं की गई और अनुशासन समिति की रिपोर्ट के खिलाफ कुलपति को कोई प्रतिनिधित्व करने का कोई अवसर नहीं दिया गया। आगे तर्क दिया गया कि कुलपति का आदेश दिमाग का पूरी तरह से गैर-आवेदन को दर्शाता है क्योंकि यह आदेश अनुशासन समिति के प्रस्तावों को मंजूरी देने का कोई कारण नहीं बताता है। आगे तर्क दिया गया कि इस तथ्य के आलोक में 12.2.2019 की घटनाओं में शामिल होने के दोषी पाए गए अन्य छात्रों को हल्की सजा दी गई थी जबकि याचिकाकर्ता

को पांच शैक्षणिक सत्रों के लिए विश्वविद्यालय से निष्कासित कर दिया गया और सजा देकर गलत व्यवहार किया गया। याचिकाकर्ता को डी गई सजा उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों से असंगत है। आगे यह तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील को खारिज करते हुए कार्यकारी परिषद द्वारा पारित दिनांक 14.10.2019 का प्रस्ताव भी कार्यकारी परिषद के सदस्यों द्वारा दिमाग का पूरी तरह से गैर-आवेदन दिखाता है। आगे तर्क दिया गया कि कुलपति ने कार्यकारी परिषद की बैठक में भाग लिया था और इसलिए, याचिकाकर्ता की अपील को खारिज करने का कार्यकारी परिषद का निर्णय पूर्वाग्रह के कारण गलत है। यह तर्क दिया गया कि उपरोक्त कारणों से, याचिकाकर्ता के खिलाफ आयोजित संपूर्ण अनुशासनात्मक कार्यवाही में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया और कुलपति द्वारा पारित आदेश के साथ-साथ कार्यकारी परिषद के प्रस्ताव को सिद्धांतों का पालन किए बिना पारित किया गया है जो रद्द किये जाने योग्य हैं। अपने तर्कों के समर्थन में, याचिकाकर्ता के वकील ने **सैयद एहतेशामुल हक बनाम अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ और अन्य 2009 (5) एडीजे 444** मामले और **रिट-सी संख्या 32955 (अजय सिंह बनाम भारत संघ और अन्य)** में पारित निर्णय आदेश दिनांक 2.12.2019 को दिए गए इस न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया है।

याचिकाकर्ता के वकील की दलीलों का खंडन करते हुए प्रतिवादी विश्वविद्यालय के वकील ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता को अनुशासनात्मक समिति द्वारा सुनवाई का पर्याप्त अवसर दिया गया था। प्रस्ताव देने से पहले यह तर्क दिया गया था कि याचिकाकर्ता को दी गई सजा के संबंध में अनुशासनात्मक समिति ने याचिकाकर्ता के जवाब और रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों पर विचार किया था। तर्क दिया गया कि 12.2.2019 की घटनाओं में याचिकाकर्ता की संलिप्तता सीसीटीवी फुटेज से साबित हुई है। यह भी तर्क दिया गया कि 28.2.2019 की घटनाएँ स्वयं दर्शाती हैं कि याचिकाकर्ता ने 13.2.2019 के आदेश का उल्लंघन किया था जिसमें उसे विश्वविद्यालय परिसर में प्रवेश न करने के लिए कहा गया था और यह घटना याचिकाकर्ता की अनुशासनहीन प्रकृति को दर्शाती है। यह तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता के साथ कुलपति द्वारा उचित व्यवहार किया गया था जो इस तथ्य से स्पष्ट होगा कि याचिकाकर्ता को एक और अवसर देने के लिए अनुशासन समिति की प्रारंभिक सिफारिशें कुलपति द्वारा अनुशासन समिति को वापस भेज दी गई थीं। खुद का बचाव करने के लिए यह तर्क दिया गया कि विवादित आदेश पारित करने से पहले प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पर्याप्त अनुपालन किया गया था और यदि प्रक्रिया में प्राकृतिक न्याय के किसी भी पहलू का पालन नहीं किया गया है तो याचिकाकर्ता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है। यह तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता का मामला अन्य छात्रों से अलग है क्योंकि याचिकाकर्ता बार-बार अपराधी था और इसी कारण से, याचिकाकर्ता को दी गई सजा अनुपातहीन या अनुचित नहीं है जिससे इस न्यायालय को हस्तक्षेप करना पड़े। आगे यह तर्क दिया गया कि वर्तमान याचिका अनुशासनात्मक कार्यवाही और विश्वविद्यालय के आंतरिक मामलों के प्रशासन से संबंधित है और इसलिए, अदालत वर्तमान कार्यवाही में हस्तक्षेप नहीं कर सकती है, विशेष रूप से इस तथ्य के प्रकाश में कि याचिकाकर्ता आपराधिक गतिविधियों में शामिल था। वैकल्पिक रूप से, यह तर्क दिया गया कि यदि अदालत प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के कारण कुलपति और कार्यकारी परिषद द्वारा पारित आदेशों को कानून की दृष्टि से खराब मानती है, तो यह उचित होगा कि मामले को कानून के अनुसार उचित निर्णय के लिए, जैसा भी मामला हो, कुलपति या कार्यकारी परिषद को वापस भेज दिया जाए, लेकिन याचिकाकर्ता को विश्वविद्यालय में एक छात्र के रूप में बहाल नहीं किया जा सकता है। यह तर्क दिया गया कि उपरोक्त सभी कारणों से, रिट याचिका में गुण-दोष नहीं होने के कारण यह खारिज किये जाने योग्य है। अपने तर्कों के समर्थन में, प्रतिवादी के वकील ने ***स्टेट बैंक ऑफ पटियाला और अन्य बनाम एस.के. शर्मा 1996 (3) एससीसी 364; भारत संघ एवं अन्य बनाम अशोक कुमार एवं अन्य। 2005 (8) एससीसी 760; के.डी. शर्मा बनाम सेल 2008 (12) एससीसी 481; वी.सी. गुरु घासी दास विश्वविद्यालय बनाम क्रेग मैकलॉड 2012 (11) एससीसी 275; अध्यक्ष, एलआईसी बनाम ए. मासिलामणि 2013 (6) एससीसी 530; लखनऊ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक एवं अन्य। बनाम राजेंद्र सिंह 2013 (12) एससीसी 372; यूपी राज्य बनाम सुधीर कुमार सिंह एवं अन्य। (2020) एससीसी ऑनलाइन एससी 847; भारत संघ एवं अन्य। अमर सिंह 2007 (12) एससीसी 621; हरियाणा वित्तीय निगम एवं अन्य। बनाम कैलाश चंद्र आहूजा 2008 (9) एससीसी 31 और द इंस्पेक्टर ऑफ पंचायत्स एंड डिस्ट्रिक्ट कलेक्टर, सेलम बनाम एस. अरिचंद्रन और अन्य*** में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 23.9.2022 में रिपोर्ट किए गए निर्णयों पर भरोसा किया है।

आगे बढ़ने से पहले, यह ध्यान रखना उचित होगा कि अपने जवाबी हलफनामे में, विश्वविद्यालय ने प्रारंभिक आपत्ति जताई थी कि कार्यकारी परिषद के फैसले के खिलाफ, याचिकाकर्ता के पास अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 13(6), 1921 तहत वैधानिक उपाय है।विश्वविद्यालय के विजिटर के समक्ष लेकिन बहस के दौरान, प्रतिवादी - विश्वविद्यालय के वकील ने इस तथ्य के प्रकाश में उक्त आपत्तियों पर जोर नहीं दिया कि मामले में पार्टियों के बीच पहले ही हलफनामों का आदान-प्रदान हो

चुका था और मामला 2020 से ही न्यायालय के समक्ष लंबित था।

मैंने पक्षों के वकीलों की प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर विचार किया है।

वी.सी. गुरु घासी दास विश्वविद्यालय (उपरोक्त) में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि अनुकूल शैक्षणिक माहौल के लिए विश्वविद्यालय में अनुशासन बनाए रखना महत्वपूर्ण है और शैक्षणिक समुदाय के बड़े हित एक छात्र के व्यक्तिगत हितों से अधिक केंद्रीय हैं और अदालतों को इस पर ध्यान देना चाहिए और अनुशासन के मामलों में या किसी विश्वविद्यालय के आंतरिक मामलों के प्रशासन में हस्तक्षेप करने में सबसे अधिक अनिच्छुक होने चाहिए। हालाँकि, सुप्रीम कोर्ट ने **चेयरमैन, जेएंडके स्टेट बोर्ड ऑफ एजुकेशन बनाम फेयाज़ अहमद मलिक और अन्य 2000 (3) एससीसी 59** के मामले में यह देखने के बाद कि परिसर में अनुशासन से संबंधित मामलों में, कर्तव्य मुख्य रूप से संस्थानों के प्रभारी अधिकारियों में निहित है और अदालत को संबंधित अधिकारियों के स्थान पर अपने स्वयं के विचारों को प्रतिस्थापित नहीं करना चाहिए, यह माना गया कि अदालतें नियमों, विनियमों या अधिसूचनाओं के प्रावधानों के अनुपालन में किसी भी त्रुटि को ठीक करने और उम्मीदवारों पर होने वाले किसी भी स्पष्ट अन्याय को दूर करने के लिए हस्तक्षेप करने की शक्ति है। इससे पहले सुप्रीम कोर्ट ने **बी.सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ 1995 (6) एससीसी 749** में कहा है कि अदालतें इस सवाल से चिंतित हैं कि क्या किसी लोक सेवक के खिलाफ कदाचार के आरोपों की जांच प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार की गई थी और क्या संबंधित व्यक्ति ने उचित व्यवहार मिला। सुप्रीम कोर्ट ने माना कि अदालतें हस्तक्षेप करेंगी जहां जांच प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विपरीत तरीके से की गई थी या वैधानिक नियमों के उल्लंघन में आयोजित की गई थी या जहां अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पहुंचा गया निष्कर्ष बिना किसी सबूत के आधार पर था। सुप्रीम कोर्ट ने आगे कहा कि अनुशासनात्मक मामलों में अनुशासनात्मक प्राधिकारी ही तथ्यों का एकमात्र न्यायाधीश होता है पर अपीलीय प्राधिकारी के पास साक्ष्य या सज़ा की प्रकृति की फिर से सराहना करने की सह-व्यापक शक्ति थी। पैराग्राफ नं. सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों वाले निर्णय के 12 और 13 को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"12. न्यायिक समीक्षा किसी निर्णय के खिलाफ अपील नहीं है, बल्कि निर्णय लेने के तरीके की समीक्षा है। ***न्यायिक समीक्षा की शक्ति यह सुनिश्चित करने के लिए है कि व्यक्ति को उचित उपचार मिले, न कि यह सुनिश्चित करने के लिए कि प्राधिकारी जिस निष्कर्ष पर पहुंचता है न्यायालय की दृष्टि में आवश्यक रूप से सही है। जब किसी लोक सेवक द्वारा कदाचार के आरोप पर जांच की जाती है, तो न्यायालय/न्यायाधिकरण यह निर्धारित करने के लिए चिंतित होता है कि क्या जांच एक सक्षम अधिकारी द्वारा की गई थी या क्या प्राकृतिक न्याय के नियमों का अनुपालन किया गया है।*** *चाहे निष्कर्ष या निष्कर्ष कुछ सबूतों पर आधारित हों, जांच करने की शक्ति सौंपे गए प्राधिकारी के पास तथ्य या निष्कर्ष पर पहुंचने का अधिकार क्षेत्र, शक्ति और अधिकार है, लेकिन वह निष्कर्ष न तो कुछ सबूतों पर आधारित होना चाहिए साक्ष्य अधिनियम और न ही उसमें परिभाषित तथ्य या सबूत के सबूत, अनुशासनात्मक कार्यवाही पर लागू होते हैं जब प्राधिकारी स्वीकार करता है कि साक्ष्य और निष्कर्ष को उससे समर्थन प्राप्त होता है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी यह मानने का हकदार है कि अपराधी अधिकारी आरोप का दोषी है। न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति में न्यायालय/न्यायाधिकरण साक्ष्यों की पुनः सराहना करने और साक्ष्यों पर अपने स्वयं के स्वतंत्र निष्कर्षों पर पहुंचने के लिए अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य नहीं करता है।* ***न्यायालय / न्यायाधिकरण हस्तक्षेप कर सकता है जहां प्राधिकारी ने प्राकृतिक न्याय के नियमों के साथ असंगत तरीके से या जांच के तरीके को निर्धारित करने वाले वैधानिक नियमों का उल्लंघन करते हुए या जहां अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पहुंचाए गए निष्कर्ष या निष्कर्ष पर आधारित है, दोषी अधिकारी के खिलाफ कार्यवाही की। बिना किसी सबूत के*** *यदि निष्कर्ष या निष्कर्ष ऐसा है जिस पर कोई भी उचित व्यक्ति कभी नहीं पहुंच सका है, तो न्यायालय/न्यायाधिकरण निष्कर्ष या निष्कर्ष में हस्तक्षेप कर सकता है, और राहत को इस प्रकार ढाल सकता है कि इसे प्रत्येक मामले के तथ्यों के अनुरूप बनाया जा सके।*

13. ***अनुशासनात्मक प्राधिकारी तथ्यों का एकमात्र न्यायाधीश है। जहां अपील प्रस्तुत की जाती है, अपीलीय प्राधिकारी के पास साक्ष्य या सजा की प्रकृति की फिर से सराहना करने की व्यापक शक्ति होती है।*** *अनुशासनात्मक जांच में, कानूनी सबूतों का सख्त प्रमाण और उस सबूत पर निष्कर्ष प्रासंगिक नहीं होते हैं। साक्ष्य की पर्याप्तता या साक्ष्य की विश्वसनीयता को न्यायालय/न्यायाधिकरण के समक्ष प्रचारित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। भारत संघ बनाम एच.सी. में गोयल, इस न्यायालय ने पृष्ठ 728 पर माना कि यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा सबूतों पर विचार करने पर निष्कर्ष विकृत है या प्रथम दृष्टया पेटेंट त्रुटि से ग्रस्त है या रिकार्ड या बिना किसी सबूत के आधार पर, उत्प्रेषण रिट जारी किया जा सकता है।"(बल दिया गया)*

बी.सी. चतुर्वेदी (उपरोक्त) में सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणियाँ सिविल सेवकों के खिलाफ अनुशासनात्मक जांच से संबंधित एक मामले में किए गए थे, लेकिन अनुशासनात्मक कार्यवाही में हस्तक्षेप करने के लिए अदालत की शक्तियों, अनुशासनात्मक जांच में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करने की आवश्यकता और अनुशासनात्मक निकायों के निष्कर्षों के बारे में टिप्पणियां की गईं जो कुछ सबूतों द्वारा समर्थित होना चाहिए जो शैक्षणिक संस्थानों में अनुशासनात्मक कार्यवाही सहित सभी अनुशासनात्मक कार्यवाही पर लागू होता है, खासकर जहां छात्र के खिलाफ आरोप गंभीर और सख्त और अत्यधिक सजा दी जाती है क्योंकि आरोप और दंड छात्र के कैरियर के अवसरों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकते हैं। ***कुमाऊं मंडल विकास निगम लिमिटेड बनाम गिरजा शंकर पंत एवं अन्य 2001 (1) एससीसी 182*** में सुप्रीम कोर्ट ने पैराग्राफ 20 में कहा कि यह कानून की मूलभूत आवश्यकता है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का अनुपालन किया जाए और वास्तव में यह इस देश का प्रशासनिक न्यायशास्त्र एक अभिन्न अंग बन गया है।। इस स्तर पर, ***इंस्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड अकाउंटेंट्स ऑफ इंडिया बनाम एल.के. रत्ना एवं अन्य 1986 (4) एससीसी 537*** मामले में सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणियों का उल्लेख करना उपयुक्त होगा। इस बात पर विचार करते हुए बनाया गया था कि क्या कदाचार के आरोपी इंस्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड अकाउंटेंट्स के एक सदस्य को अनुशासन समिति, जो परिषद की एक स्थायी समिति थी, के निष्कर्षों के खिलाफ संस्थान की परिषद द्वारा सुनवाई का अधिकार था। फैसले के पैराग्राफ 14 में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि 'यह मामले का सार, आरोपों का चरित्र, सदस्य के खिलाफ एक निष्कर्ष के दूरगामी परिणाम, शासी निकाय में जिम्मेदारी का निहित होना, ये सब है और संबंधित विचार निर्णय के प्रश्न में कि क्या कानून सुनवाई को समाहित करता है।

याचिकाकर्ता पर लगे आरोप गंभीर हैं. उसे दी गई सज़ा गंभीर है और इसके दूरगामी परिणाम होंगे. सजा न केवल याचिकाकर्ता को उसके शैक्षिक अवसरों से वंचित करती है और उसके करियर पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है, बल्कि उसके भविष्य के करियर में बाधा भी डालती है। याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोपों की प्रकृति, उसे दी गई सख्त और चरम सजा और ऊपर उल्लिखित सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणियों ने अदालत को विश्वविद्यालय की इस दलील को खारिज करने के लिए प्रेरित किया कि अदालत को न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति का प्रयोग करने से इनकार कर देना चाहिए क्योंकि यह मामला विश्वविद्यालय के अनुशासन और आंतरिक मामलों के प्रशासन से संबंधित है। याचिकाकर्ता को दी गई सज़ा के लिए अनुच्छेद 226 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, इस न्यायालय द्वारा एक परीक्षा की आवश्यकता होती है कि क्या याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप तरीके से की गई थी और क्या पारित किए गए आदेश कुलपति और कार्यकारी परिषद प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों और प्रशासनिक कानून के सामान्य नियमों का अनुपालन करते हैं।

इस स्तर पर, विश्वविद्यालय में अनुशासन से संबंधित वैधानिक प्रावधानों और अनुशासनहीनता के मामलों में छात्रों के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए विश्वविद्यालय के विभिन्न अधिकारियों/अधिकारियों की शक्तियों को पुन: प्रस्तुत करना उचित होगा। विश्वविद्यालय के परिनियमों का परिनियम 35 विश्वविद्यालय के छात्रों के बीच अनुशासन बनाए रखने से संबंधित है। क़ानून 35 के प्रासंगिक भाग नीचे पुन: प्रस्तुत किए गए हैं: -

35. विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों में अनुशासन बनाये रखना -

(1) छात्रों के संबंध में अनुशासन और अनुशासनात्मक कार्रवाई से संबंधित सभी शक्तियां उपाध्यक्ष में निहित होंगी-

कुलाधिपति.

(2) कुलपति अपनी सभी या कोई भी शक्तियां, जो वह उचित समझे, प्रॉक्टर और ऐसे अन्य अधिकारियों को सौंप सकता है जिन्हें वह इस संबंध में निर्दिष्ट कर सकता है।

(3) ***अनुशासन बनाए रखने से संबंधित अपनी शक्तियों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना और अनुशासन बनाए रखने के हित में ऐसी कार्रवाई करना जो उसे उचित लगे, कुलपति अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, आदेश द्वारा, कर सकता है।*** *निर्देश दें कि किसी भी छात्र या छात्रा को एक निर्दिष्ट अवधि के लिए निष्कासित कर दिया जाए, या निष्कासित कर दिया जाए, या एक निश्चित अवधि के लिए विश्वविद्यालय के किसी कॉलेज, विभाग या संस्थान में किसी पाठ्यक्रम या पाठ्यक्रम में प्रवेश न दिया जाए, या जुर्माने से दंडित किया जाए। आदेश में निर्दिष्ट की जाने वाली राशि, या एक या अधिक वर्षों के लिए विश्वविद्यालय या कॉलेज या विभागीय परीक्षा या परीक्षा देने से रोक दिया जाएगा, या संबंधित छात्र या उन छात्रों के परीक्षा या परीक्षाओं के परिणाम जिसमें वह उपस्थित हुआ है उसे रद्द किया जाए ।*

(4) से (6) xxx

विश्वविद्यालय के छात्र अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के छात्र आचरण और अनुशासन नियमों 1985 (6.10.1985 को आयोजित बैठक में अकादमिक परिषद द्वारा अनुमोदित) द्वारा शासित होते हैं,

भाग ---- I

सामान्य

(1) से (3) xxx

भाग -- II

अनुशासनहीनता और कदाचार

4. अनुशासनहीनता और कदाचार के कार्य

परिसर के अंदर या बाहर किसी छात्र द्वारा किया गया कोई भी कदाचार विश्वविद्यालय के अनुशासन का उल्लंघन होगा। पूर्वगामी प्रावधान की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, अनुशासन के उल्लंघन में शामिल होंगे:

(i) शिक्षण, छात्र परीक्षा, अनुसंधान या प्रशासनिक कार्य, पाठ्यचर्या या पाठ्येतर गतिविधि या विश्वविद्यालय के सदस्यों के आवासीय जीवन में व्यवधान, जिसमें विश्वविद्यालय के किसी भी सदस्य या उसके कर्मचारियों को ऐसा करने से रोकने का कोई भी प्रयास शामिल है जिनसे किसी भी कार्य से इस तरह का व्यवधान उत्पन्न होने की उचित संभावना है।

(ii) विश्वविद्यालय की संपत्ति या विश्वविद्यालय के सदस्यों या किसी अन्य की संपत्ति को नुकसान पहुंचाना या विश्वविद्यालय परिसर के अंदर या बाहर की संपत्ति को विरूपित करना।

(iii) विश्वविद्यालय के शिक्षकों, कार्यालयों, कर्मचारियों और छात्रों को गलत तरीके से कैद करने या विश्वविद्यालय के शिक्षकों, अधिकारियों और अन्य सदस्यों के घरों की सीमाओं के अंदर डेरा डालने या उपद्रव पैदा करने के किसी भी प्रयास में शामिल होना।

(iv) अपमानजनक और अपमानजनक नारे या डराने वाली भाषा का उपयोग या घृणा और हिंसा को उकसाना या इसे आगे बढ़ाने के लिए कोई भी कार्य करना।

(v) से (vi)...

(vii) किसी शिक्षक, अधिकारी, कर्मचारी या छात्र या किसी अन्य व्यक्ति पर हमला, या डराना, या उसके प्रति अपमानजनक व्यवहार।

(viii) से (xxvii)

(xxviii) कोई अन्य कार्य जिसे कुलपति या अनुशासन समिति द्वारा अनुशासन का उल्लंघन माना जा सकता है।

भाग-III

अनुशासनिक कार्यवाही हेतु अधिकृत अधिकारी

5. परिनियम 35(1), (2), (3) के तहत निर्दिष्ट कुलपति की शक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, निम्नलिखित व्यक्तियों को भाग IV में निर्दिष्ट दंड लगाने के माध्यम से अनुशासनात्मक कार्रवाई करने के लिए अधिकृत किया गया है ।

1. संकायों के डीन / डीन, छात्र कल्याण

2. महाविद्यालयों/संस्थानों के प्राचार्य

3. अध्ययन विभागों के अध्यक्ष

4. प्रॉक्टर

5. लाइब्रेरियन, मौलाना आज़ाद लाइब्रेरी

6. हॉल ऑफ रेजिडेंस और एन.आर.एस.सी. के प्रोवोस्ट

7. सचिव, विश्वविद्यालय खेल समिति

8. विश्वविद्यालय द्वारा नियोजित और इस उद्देश्य के लिए कुलपति द्वारा अधिकृत कोई अन्य व्यक्ति।

*6. **(i) नियम 7 में उल्लिखित कोई भी जुर्माना अध्यादेश (शैक्षणिक) अध्याय XI के तहत गठित अनुशासन समिति की सिफारिश पर कुलपति द्वारा लगाया जा सकता है।***

(ii) नियम 7 के खंड (ix), (x), (xi), (xii) और (xiii) में निर्दिष्ट दंड के अलावा अन्य दंड भी नियम 5 में सूचीबद्ध किसी भी अधिकारी द्वारा उनके संबंधित अधिकार क्षेत्र में लगाए जा सकते हैं। .

(iii) परीक्षा से संबंधित अपराधों पर दंड संबंधित निकायों द्वारा निपटाया जाएगा।

भाग-IV

7. दंड की प्रकृति:

किसी छात्र पर अनुशासनहीनता या कदाचार के कृत्य के लिए या पर्याप्त कारणों से निम्नलिखित दंड लगाए जा सकते हैं, अर्थात्:

(i) अभिभावक को लिखित चेतावनी और सूचना।

(ii) रुपये पर जुर्माना 500/- जो रु. 500 तक हो सकता है.

(iii) कक्षा/ विभाग/ कॉलेज/ छात्रावास/ मेस/ लाइब्रेरी/ या किसी अन्य सुविधा का लाभ उठाने से निलंबन।

(iv) छात्रवृत्ति, फेलोशिप या किसी भी स्रोत से किसी भी वित्तीय सहायता को निलंबित करना या रद्द करना या मंजूरी देने वाली एजेंसी को इस आशय की सिफारिश करना।

(v) विश्वविद्यालय की संपत्ति को हुए आर्थिक नुकसान की वसूली।

(vi) खेल/एनसीसी/एनएसएस और ऐसी अन्य गतिविधियों में भाग लेने से रोकना।

(vii) कक्षा/ कॉलेज/ छात्रावास/ मेस/ खेल/ क्लब और इसी तरह के अन्य निकायों में किसी भी प्रतिनिधि पद को धारण करने से अयोग्य घोषित करना।

(viii) हॉस्टल शिफ्ट और हॉल शिफ्ट।

(ix) नीचे भेजा गया।

(x) एक निर्दिष्ट अवधि के लिए विभाग/ संकाय/ छात्रावास/ मेस/ लाइब्रेरी/ क्लब से निष्कासन।

(xi) परीक्षा से वंचित करना।

(xii) प्रवासन प्रमाणपत्र जारी करना।

(xiii) एक निर्दिष्ट अवधि के लिए विश्वविद्यालय से निष्कासन।

(xiv) आगे की पढ़ाई के लिए अयोग्य घोषित करना, या आगे प्रवेश या पुनः प्रवेश पर प्रतिबंध लगाना।

8. XXX

9. नियम 7 के खंड (x), (xi), (xii), (xiii) और (xiv) में प्रदान किया गया कोई भी जुर्माना छात्र को सुनवाई का उचित अवसर दिए बिना नहीं लगाया जाएगा।

विश्वविद्यालय के क़ानून और नियम, 1985 के क़ानून 35 से संकेत मिलता है कि विश्वविद्यालय के कुलपति अनुशासनात्मक मामलों में की जाने वाली कार्रवाई पर निर्णय लेने के लिए अंतिम प्राधिकारी हैं। नियम, 1985 के नियम 6(i) को पढ़ने से पता चलता है कि किसी छात्र को एक निर्दिष्ट अवधि के लिए विश्वविद्यालय से निष्कासित करने की शक्ति केवल विश्वविद्यालय के कुलपति द्वारा अध्यादेशों के तहत गठित अनुशासनात्मक समिति की सिफारिशों पर ली जा सकती है। इसके अलावा, किसी छात्र को एक निर्दिष्ट अवधि के लिए विश्वविद्यालय से निष्कासित करने का कोई भी निर्णय संबंधित छात्र को सुनवाई का उचित अवसर दिए बिना नहीं लगाया जा सकता है।

अनुशासनात्मक समिति की अनुशंसा पर याचिकाकर्ता को पांच शैक्षणिक सत्रों के लिए विश्वविद्यालय से निष्कासित कर दिया गया है। समिति ने यह पाते हुए सिफारिशें कीं कि याचिकाकर्ता बार-बार अपराधी था, जिसका अर्थ है कि वह 12.2.2019 और 28.2.2019 की घटनाओं में भी शामिल था। अपनी प्रारंभिक सिफारिशों में, अनुशासनात्मक समिति ने सिफारिश की कि कुछ छात्रों, जिनमें फरहान जुबैरी भी शामिल हैं, जिन पर याचिकाकर्ता के साथ 12.2.2019 की घटनाओं में भाग लेने का आरोप लगाया गया था, को 2,000/- रुपये के जुर्माने से दंडित किया जाना चाहिए और भविष्य में अधिक सावधान रहने की सख्त चेतावनी दी जानी चाहिए।
अनुशासनात्मक समिति याचिकाकर्ता के लिए अत्यधिक दंड को इस आधार पर उचित ठहराती है कि याचिकाकर्ता ने विश्वविद्यालय परिसर में प्रवेश करने से रोकने वाले निषेधात्मक आदेशों का उल्लंघन किया था और बाद में 28.2.2019 की घटनाओं में भी भाग लिया था और इसलिए, वह दोहरा अपराधी था।

अनुशासनात्मक समिति के विवरण इंगित में नहीं हैं कि 12.2.2019 की घटनाओं के संबंध में किसी भी व्यक्ति द्वारा दायर शिकायतों में लगाए गए आरोपों को सत्यापित करने के लिए अनुशासनात्मक समिति द्वारा कोई सबूत लिया गया था अथवा याचिकाकर्ता 12.2.2019 को हुई हिंसा में शामिल था। अनुशासनात्मक समिति की रिपोर्ट में दिनांक 12.2.2019 को हुई हिंसक घटनाओं में याचिकाकर्ता की भागीदारी के संबंध में किसी भी गवाह के बयान का

उल्लेख नहीं है। 12.2.2019 की घटनाओं में याचिकाकर्ता की भागीदारी के संबंध में अपने निष्कर्षों का समर्थन करने के लिए अनुशासनात्मक समिति द्वारा संदर्भित सीसीटीवी फुटेज केवल यह दर्शाता है कि याचिकाकर्ता कुछ व्यक्तियों के साथ कुछ बहस में शामिल था जिसमें विश्वविद्यालय के अधिकारी या छात्रों के अन्य समूह शामिल हो सकते हैं। यह तथ्य कि याचिकाकर्ता विश्वविद्यालय के अधिकारियों के साथ बहस में शामिल था, यह निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त नहीं होगा कि याचिकाकर्ता बाद में भड़की हिंसा में भी शामिल था। यदि अनुशासनात्मक समिति किसी गवाह के बयान या याचिकाकर्ता को हिंसक घटनाओं में शामिल करने वाले किसी प्राधिकारी की रिपोर्ट पर भरोसा करती है, तो ऐसे बयानों को अपनी रिपोर्ट में संदर्भित किया जाना था और याचिकाकर्ता को दिया जाना था ताकि वह इसका खंडन कर सके। गवाह के बयान या रिपोर्ट में उल्लिखित गतिविधियों में उसकी संलिप्तता के संबंध में आरोप। याचिकाकर्ता का मामला है कि किसी भी स्तर पर उन्हें न तो शिकायत की प्रति दी गई, न ही किसी गवाह का बयान, न ही सीसीटीवी फुटेज। विश्वविद्यालय का मामला यह नहीं है कि परिस्थितियाँ ऐसी थीं कि गवाह की पहचान का खुलासा नहीं किया जा सका या याचिकाकर्ता के खिलाफ उपलब्ध रिपोर्टों की गोपनीयता बनाए रखनी पड़ी। अनुशासनात्मक समिति अपनी रिपोर्ट में केवल घटनाओं का वर्णन करती है और यांत्रिक रूप से, बिना किसी सबूत के मूल्यांकन के, याचिकाकर्ता को हिंसक गतिविधियों भाग लेने का दोषी मानती है जिससे विश्वविद्यालय का शैक्षणिक माहौल बाधित हो रहा है। दिलचस्प बात यह है कि अनुशासनात्मक समिति की रिपोर्ट में यह भी नहीं बताया गया है कि 12.2.2019 की घटना के संबंध में शिकायत दर्ज कराने वाले मनीष कुमार का बयान या एफ.आई.आर. के सूचकों का बयान भी इस बात का संकेत नहीं देता है। 2019 का नंबर 61 और एफ.आई.आर. 2019 की संख्या 62 अनुशासन समिति द्वारा दर्ज की गई थी। 12.2.2019 की घटनाओं में याचिकाकर्ता की संलिप्तता के संबंध में अनुशासनात्मक समिति के निष्कर्ष रिकॉर्ड पर किसी भी सबूत द्वारा समर्थित नहीं हैं।

इसी प्रकार, भले ही याचिकाकर्ता को 28.2.2019 की घटना पर दर्ज आपराधिक मामले में आरोप पत्र दायर किया गया है, लेकिन अनुशासनात्मक समिति ने याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई की सिफारिश इस आधार पर नहीं की है कि उस पर उपरोक्त आपराधिक मामले में आरोप पत्र दायर किया गया था बल्कि यह अनुशासनात्मक समिति द्वारा की गई एक स्वतंत्र जांच के आधार पर था। अनुशासन समिति की रिपोर्ट यह नहीं दर्शाती है कि विश्वविद्यालय के किसी कर्मचारी ने याचिकाकर्ता के खिलाफ गवाही दी थी और यदि विश्वविद्यालय के किसी कर्मचारी द्वारा कोई बयान या शिकायत की गई थी, तो उसकी एक प्रति याचिकाकर्ता को प्रदान की गई थी। दिनांक 28.2.2019 की घटना में याचिकाकर्ता की भागीदारी के संबंध में अनुशासनात्मक समिति के निष्कर्ष भी रिकॉर्ड पर किसी भी सबूत द्वारा समर्थित नहीं हैं।

अनुशासन समिति की रिपोर्ट को पढ़ने से यह आभास होता है कि समिति ने याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोपों को उसके कदाचार और अनुशासनहीनता का सबूत माना है। ऐसा प्रतीत होता है कि 12.2.2019 को विश्वविद्यालय परिसर में हुई घटनाओं की प्रकृति अनुशासन समिति के सदस्यों को याचिकाकर्ता को कड़ी सजा की सिफारिश करने के लिए मजबूर कर गई कि परिसर में हुई हिंसा में याचिकाकर्ता की भागीदारी के संबंध में अनुशासनात्मक समिति के निष्कर्ष बिना किसी कानूनी सबूत पर आधारित हैं और समिति की रिपोर्ट मन का अनुप्रयोग न करने की दुर्बलता से ग्रस्त है और दूषित है।

अनुशासनात्मक समिति की सिफारिशों को मंजूरी देते हुए कुलपति द्वारा पारित आदेश दिनांक 2.9.2019 केवल समिति द्वारा प्रस्तुत सिफारिशों के अनुमोदन को दर्ज करता है। माना जाता है कि याचिकाकर्ता को दिनांक 2.9.2019 के आदेश पारित करने से पहले कुलपति द्वारा सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था। पक्षों की दलीलों से यह भी स्पष्ट है कि अनुशासनात्मक समिति की रिपोर्ट याचिकाकर्ता को प्रदान नहीं की गई ताकि वह अनुशासनात्मक समिति द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों का खंडन कर सके।

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, विश्वविद्यालय के क़ानून और नियम, 1985 के तहत, विश्वविद्यालय के छात्रों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई करने का अंतिम अधिकार कुलपति में निहित है। इसके अलावा, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, एक निर्दिष्ट अवधि के लिए छात्र को विश्वविद्यालय से निष्कासित करने की कोई भी सजा केवल कुलपति द्वारा ही ली जा सकती है, हालांकि कुलपति अनुशासनात्मक समिति की सिफारिशों पर ऐसी कार्रवाई करेगा। किसी छात्र के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही तब समाप्त नहीं होती जब अनुशासनात्मक समिति अपनी सिफारिशें/रिपोर्ट कुलपति को सौंप देती है। कुलपति अनुशासन समिति की सिफारिशों से बंधे नहीं हैं और उनसे अनुशासन समिति की सिफारिशों पर निर्णय लेते समय अपने स्वतंत्र मन का अनुप्रयोग करने की अपेक्षा की जाती है। अनुशासन समिति की रिपोर्ट से कुलपति सहमत या असहमत हो सकते हैं। कुलपति अनुशासनात्मक समिति के निष्कर्षों और सिफ़ारिशों दोनों से सहमत या असहमत हो सकते हैं या वह समिति के

निष्कर्षों से सहमत हो सकता है लेकिन फिर भी छात्र को दी जाने वाली सज़ा के संबंध में उसकी सिफ़ारिशों से असहमत हो सकता है। अनुशासनात्मक कार्यवाही तभी समाप्त होती है जब कुलपति अनुशासनात्मक समिति की सिफारिशों पर एक आदेश पारित करते हैं या तो छात्र को दोषमुक्त कर देते हैं या नियम, 1985 के नियम 7 में निर्दिष्ट कोई दंड देते हैं।

नियम, 1985 के नियम 9 में प्रावधान है कि छात्र को सुनवाई का उचित अवसर दिए बिना नियम 7(x) से 7(xiv) के तहत कोई जुर्माना नहीं लगाया जाएगा। याचिकाकर्ता पर लगाई गई सजा नियम 7(xiii) के तहत है। 'सुनवाई के उचित अवसर' के लिए आवश्यक है कि जिस व्यक्ति को दंडित किया जाना प्रस्तावित है उसे उन सामग्रियों की जानकारी होनी चाहिए जिनके आधार पर सक्षम प्राधिकारी को उसके खिलाफ निर्णय लेना है। नियम, 1985 के तहत, कुलपति, तथ्यों और छात्र को दी जाने वाली सजा के अंतिम न्यायाधीश के रूप में अनुशासन समिति की रिपोर्ट पर निर्णय लेंगे। इन परिस्थितियों में, संबंधित छात्र को अनुशासनात्मक समिति के निष्कर्षों और उसके खिलाफ उसकी सिफारिशों में गिरावट को प्रदर्शित करने का अवसर मिलना चाहिए। उक्त अधिकार का लाभ छात्र द्वारा तभी उठाया जा सकता है जब अनुशासनात्मक समिति की रिपोर्ट और वे रिकॉर्ड जिन पर अनुशासनात्मक समिति अपने निष्कर्षों का समर्थन करने के लिए भरोसा करती है, संबंधित छात्र को दिए जाएं और छात्र को रिपोर्ट के खिलाफ प्रतिनिधित्व करने का अवसर दिया जाए। इस संदर्भ में पैराग्राफ संख्या में सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणियों का उल्लेख करना उचित होगा। इसके निर्णय की संख्या 26 और 27 ***प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल, हैदराबाद और अन्य बनाम बी करुणाकर और अन्य 1993 (4) एससीसी 727*** में रिपोर्ट की गई।

"26. जांच अधिकारी की रिपोर्ट प्राप्त करने के अधिकार को पहले चरण में उचित अवसर का एक अनिवार्य हिस्सा माना जाता है और प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत यह है कि जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष पहले चरण में एक महत्वपूर्ण सामग्री बनते हैं अनुशासनात्मक प्राधिकारी अपने निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए साक्ष्यों पर विचार करता है, यह पहले से कहना मुश्किल है कि रिपोर्ट में अनुशंसित दंड सहित उक्त निष्कर्ष, यदि कोई हो, अनुशासनात्मक प्राधिकारी को किस हद तक प्रभावित करेगा। अपने निष्कर्ष निकालते समय, निष्कर्षों को रिकॉर्ड पर प्रासंगिक सबूतों पर विचार किए बिना, या इसे गलत तरीके से या इसके द्वारा समर्थित नहीं किया गया हो सकता है ***यदि ऐसा निष्कर्ष अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा विचार किए जाने वाले दस्तावेजों में से एक है प्राकृतिक न्याय की आवश्यकता है कि कर्मचारी को दोषी ठहराए जाने से पहले उसे मिलने, समझाने और विवाद करने का उचित अवसर मिलना चाहिए। यह न्याय के सिद्धांतों की उपेक्षा है और कर्मचारी को किसी तीसरे पक्ष द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों पर विचार करने के उचित अवसर से वंचित करना है। कर्मचारी को इसका उत्तर देने का अवसर दिए बिना जांच अधिकारी की तरह। यद्यपि यह सत्य है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी को जांच में दर्ज साक्ष्यों के आधार पर अपने निष्कर्षों पर पहुंचना चाहिए पर यह भी उतना ही सत्य है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी साक्ष्यों के साथ-साथ जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए रिकॉर्ड पर कि साक्ष्यों के निष्कर्षों पर भी विचार करता है।*** इन परिस्थितियों में, जांच अधिकारी के निष्कर्ष अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष एक महत्वपूर्ण सामग्री का गठन करते हैं जो इसके निष्कर्षों को प्रभावित करने की संभावना रखते है। यदि जांच अधिकारी को केवल साक्ष्य रिकॉर्ड करना था और उसे अनुशासनात्मक प्राधिकारी को अग्रेषित करना था, तो इससे अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष कोई अतिरिक्त सामग्री नहीं बनेगी जिसके बारे में दोषी कर्मचारी को कोई जानकारी नहीं है। हालाँकि, जब जांच अधिकारी आगे बढ़ता है और अपने निष्कर्षों को रिकॉर्ड करता है, जैसा कि ऊपर बताया गया है, जो रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों पर आधारित हो भी सकता है और नहीं भी, या उसके विपरीत है या उससे अनभिज्ञ है, तो ऐसे निष्कर्ष एक अतिरिक्त सामग्री हैं जो कर्मचारी के लिए अज्ञात है लेकिन अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा अपने निष्कर्ष पर पहुंचते समय इस पर विचार किया जाता है। ***इसलिए, उचित अवसर के साथ-साथ प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की आवश्यकता है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी के अपने निष्कर्ष पर आने से पहले, दोषी कर्मचारी को जांच अधिकारी के निष्कर्षों का जवाब देने का अवसर मिलना चाहिए। इसके बाद अनुशासनात्मक प्राधिकारी को साक्ष्य, जांच अधिकारी की रिपोर्ट और उसके खिलाफ कर्मचारी के प्रतिनिधित्व पर विचार करना आवश्यक है।***

27. इससे यह देखा जा सकेगा कि जहां जांच अधिकारी अनुशासनात्मक प्राधिकारी से अलग है वहाँ अनुशासनात्मक कार्यवाही दो चरणों में विभाजित होती है। पहला चरण समाप्त होता है जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी साक्ष्यों के आधार पर, जांच अधिकारी की रिपोर्ट और दोषी कर्मचारी के जवाब के आधार पर अपने निष्कर्ष पर पहुँचता है। दूसरा चरण तब शुरू होता है जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी अपने निष्कर्षों के आधार पर जुर्माना लगाने का निर्णय लेता है। यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी अनुशासनात्मक कार्यवाही को समाप्त करने का निर्णय लेता है, तो दूसरे चरण तक पहुंचा

भी नहीं जाता है। ***इस प्रकार, रिपोर्ट प्राप्त करने का कर्मचारी का अधिकार जांच के पहले चरण में खुद का बचाव करने के उचित अवसर का एक हिस्सा है। यदि उसे इस अधिकार से वंचित किया जाता है, तो वह वास्तव में खुद का बचाव करने और अनुशासनात्मक कार्यवाही में अपनी बेगुनाही साबित करने के अधिकार से वंचित हो जाता है।"*** (बल दिया गया)

हालाँकि सुप्रीम कोर्ट की उपरोक्त टिप्पणियाँ सिविल सेवकों के खिलाफ विभागीय जांच से संबंधित एक मामले में की गई थीं, लेकिन यह किसी भी अनुशासनात्मक कार्यवाही में भी लागू होती हैं क्योंकि वे प्राकृतिक न्याय और 'उचित अवसर' के सिद्धांतों की रूपरेखा को परिभाषित करती हैं।

याचिका में कहा गया है कि याचिकाकर्ता को अनुशासनात्मक समिति की सिफारिशों या उसके निष्कर्षों के खिलाफ प्रतिनिधित्व करने का कोई अवसर नहीं दिया गया, समिति की रिपोर्ट याचिकाकर्ता को नहीं दी गई और याचिकाकर्ता को कोई सुनवाई का मौका नहीं दिया गया। कुलपति। यह विश्वविद्यालय का मामला नहीं है कि याचिकाकर्ता को कुलपति द्वारा व्यक्तिगत सुनवाई दी गई थी या अनुशासन समिति की सिफारिशों और निष्कर्षों के खिलाफ प्रतिनिधित्व करने का कोई अवसर दिया गया था या अनुशासन समिति की रिपोर्ट और सिफारिशें प्रदान की गई थीं। कुलपति के समक्ष याचिकाकर्ता ने याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासन समिति की सिफारिशों को मंजूरी दे दी थी।

वर्तमान मामले में, कुलपति द्वारा याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर देना भी आवश्यक था ताकि याचिकाकर्ता कुलपति को उनकी सिफारिशों को स्वीकार न करने के लिए यकीन दिलाने का प्रयास कर सके। अनुशासन समिति, कम से कम, उसके खिलाफ प्रस्तावित सजा के संबंध में, और इस पर विचार करते हुए नरम व्यवहार किया जाना चाहिए कि अन्य छात्रों पर भी अनुशासनहीनता का आरोप लगाया गया था और 12.2.2019 को हुई घटनाओं में शामिल होने के लिए विश्वविद्यालय द्वारा हल्की सजा दी गई थी। जाहिर है, दिनांक 2.9.2019 का आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों और नियमावली, 1985 के नियम 9 का उल्लंघन करते हुए पारित किया गया है।

कुलपति द्वारा अनुशासन समिति की अनुशंसाओं को मंजूरी देते हुए दिनांक 2.9.2019 के अपने आदेश में कोई कारण नहीं बताया गया है। विश्वविद्यालय के वकील द्वारा यह तर्क दिया गया कि कोई कारण बताने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि कुलपति अनुशासन समिति की सिफारिशों से सहमत थे। उक्त तर्क स्वीकार नहीं किया जा सकता। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, कुलपति ही अंतिम अनुशासनात्मक प्राधिकारी है और वह अनुशासन समिति की सिफारिशों से बाध्य नहीं है। अनुशासन समिति की सिफारिशें केवल कुलपति के लिए प्रस्ताव की प्रकृति में हैं। कुलपति, चाहे वह अनुशासन समिति के निष्कर्षों और सिफारिशों से सहमत हों या असहमत हों, उनसे यांत्रिक रूप से और बिना विवेक के उपयोग के कार्य करने की उम्मीद नहीं की जाती है। निष्पक्षता का सिद्धांत मांग करता है कि आदेश के विषय पर प्रतिकूल नागरिक परिणाम वाले प्रत्येक आदेश को निर्णय-निर्माता द्वारा दिमाग के प्रयोग का खुलासा करने वाले कारणों से समर्थित किया जाना चाहिए, चाहे ऐसा निर्णय पूरी तरह से प्रशासनिक या अर्ध-न्यायिक हो।

मैसर्स में. त्रावणकोर रेयॉन लिमिटेड बनाम भारत संघ 1969 (3) एससीसी 868, सुप्रीम कोर्ट ने माना कि यदि आदेश विचार के बिंदुओं और खारिज करने के कारणों का खुलासा नहीं करता है तो यह उन मामलों के निपटान का एक असंतोषजनक तरीका है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया कि किसी भी आदेश के समर्थन में कारणों का खुलासा आवश्यक है ताकि पीड़ित पक्ष यह प्रदर्शित कर सके कि जिन कारणों ने प्राधिकारी को उसके मामले को अस्वीकार करने के लिए राजी किया, वे गलत थे और इसके अलावा, कारणों को दर्ज करने का दायित्व कार्यकारी प्राधिकारी द्वारा संभावित मनमानी कार्रवाई के विरुद्ध एक निवारक के रूप में कार्य करता है।।फैसले के पैराग्राफ 9, 10 और 11 में सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणियाँ नीचे दी गई हैं: -

*"9. बाद के फैसले में भगत राजा बनाम भारत संघ और अन्य, इस न्यायालय की संविधान पीठ ने वास्तव में मध्य प्रदेश इंडस्ट्रीज लिमिटेड के मामले में बहुमत के फैसले को खारिज कर दिया। न्यायालय ने माना कि भारत में न्यायाधिकरणों के निर्णय संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय की पर्यवेक्षी शक्तियों और अनुच्छेद 136 के तहत इस न्यायालय की अपीलीय शक्तियों के अधीन होती हैं। **यदि कोई कारण नहीं दिया गया और संशोधन को खारिज कर दिया गया एकल शब्द 'अस्वीकृत' या 'खारिज' का उपयोग का उपयोग कर के तो उच्च न्यायालय और इस न्यायालय को एक बड़ा हानी माना जाएगा।।** उस मामले में न्यायालय ने माना कि अपील में केंद्र सरकार के आदेश ने अपना कोई कारण नहीं बताया और उस कारण से उस आदेश को रद्द कर दिया देखें, मध्य प्रदेश इंडस्ट्रीज लिमिटेड के मामले में इस न्यायालय के बहुमत के फैसले को इस न्यायालय ने भगत राजा के मामले में खारिज कर दिया है।*

10. इस न्यायालय के बाद के निर्णयों में यह माना गया कि जहां संशोधन में शक्ति का प्रयोग करने वाली केंद्र सरकार कोई कारण नहीं बताती है तो आदेश को शून्य माना जाएगा। इसके संदर्भ में मध्य प्रदेश राज्य और अन्य बनाम सेठ नरसिंहदास जानकीदास मेहता गुजरात राज्य बनाम पटेल राघव नाथ और अन्य; और प्राग दास उमर वैश्य बनाम भारत संघ और अन्य देखें।

*11. इस मामले में केंद्र सरकार के संचार में आदेश के समर्थन में कोई कारण नहीं बताया गया; अपीलकर्ता कंपनी को केवल यह सूचित किया गया है कि भारत सरकार को "अपील में आदेश के साथ" हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं दिखता है। संचार उन "बिंदुओं" का खुलासा नहीं करता है जिन पर विचार किया गया था, और उन्हें अस्वीकार करने के कारणों का खुलासा नहीं किया गया है। यह केंद्र सरकार में निहित न्यायिक शक्ति का प्रयोग करते हुए किसी मामले के निपटान का पूरी तरह से असंतोषजनक तरीका है। उ**न मामलों में जहां गैर-न्यायिक प्राधिकारी न्यायिक कार्य करता है, पर्याप्त कारण देने की आवश्यकता है जो हल की जाने वाली समस्या की उचित सराहना और मानसिक प्रक्रिया जिसके द्वारा निष्कर्ष पर पहुंचा जाता है, का खुलासा करता है, स्पष्ट है। जब न्यायिक शक्ति का प्रयोग सामान्यतः कार्यकारी या प्रशासनिक कार्य करने वाले प्राधिकारी द्वारा किया जाता है तो इस न्यायालय को इस बात से संतुष्ट होना होगा कि नीति या समीचीनता के बाहरी विचारों से प्रभावित हुए बिना, विवाद के गुणों पर उचित विचार करने के बाद निर्णय लिया गया है। न्यायालय दो आधारों पर आदेश के समर्थन में कारणों के प्रकटीकरण पर जोर देता है: एक, उच्च न्यायालय या इस न्यायालय के समक्ष कार्यवाही में व्यथित पक्ष के पास यह प्रदर्शित करने का अवसर है कि जिन कारणों ने प्राधिकारी को उसके मामले को अस्वीकार करने के लिए राजी किया, वे गलत थे। दूसरा, कारणों को दर्ज करने की बाध्यता न्यायिक शक्ति से संपन्न कार्यकारी प्राधिकारी द्वारा संभावित मनमानी कार्रवाई के खिलाफ एक निवारक के रूप में कार्य करती है।"***
(बल दिया गया)

इसके बाद, सुप्रीम कोर्ट ने ***मेसर्स महाबीर प्रसाद संतोष कुमार बनाम यूपी राज्य और अन्य 1970 (1) एससीसी 764*** में पाया कि जो आदेश प्रथम दृष्टया बिना कारण बताए पीड़ित पक्ष के अधिकारों पर गंभीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं, वे कानून के शासन को नकार देते हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी की:-

"6. रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्रियों से यह निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि राज्य सरकार को संबोधित अपील पर किसने विचार किया, और राज्य सरकार की ओर से शक्ति का प्रयोग करने वाले प्राधिकारी ने क्या विचार किया। कार्यकारी प्राधिकारी द्वारा वैधानिक अपीलों को खारिज करने की प्रथा उन आदेशों के विरुद्ध जो प्रथम दृष्टया बिना कारण बताए पीड़ित पक्ष के अधिकारों पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं, कानून के शासन की उपेक्षा है। ***इस न्यायालय के पास कई निर्णयों में इस प्रथा के खिलाफ विरोध करने का अवसर था: मध्य प्रदेश इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम भारत संघ अन्य (न्यायमूर्ति सुभा राव के अनुसार); भगत राजा बनाम भारत संघ और अन्य; मध्य प्रदेश राज्य और अन्य बनाम सेठ नरसिंहदास जानकीदास मेहता; गुजरात राज्य बनाम पटेल राघव नाथ और अन्य; पराग दास उम्र वैश्य बनाम भारत संघ और अन्य देखें। जिला मजिस्ट्रेट की शक्ति अर्ध-न्यायिक थी: राज्य सरकार की शक्ति का प्रयोग संविधान के अनुच्छेद 227 और अपीलीय शक्ति के तहत उच्च न्यायालय की पर्यवेक्षी शक्ति के अधीन था। संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत इस न्यायालय की। यदि कोई कारण नहीं बताया गया और किसी भी अपील को रिकॉर्ड किए बिना और सूचित किए बिना अपील खारिज कर दी गई तो उच्च न्यायालय और इस न्यायालय को बहुत नुकसान होगा।***

7. विवाद में रुचि रखने वाले पक्ष को कानून के साथ-साथ तथ्य के प्रश्नों पर अपना मामला प्रस्तुत करने का अवसर, उस पक्ष को सामग्री का खुलासा करने के बाद ट्रिब्यूनल के समक्ष सामग्री से तथ्यों का निर्धारण करना जिसके खिलाफ उनका उपयोग करने का इरादा है, और एक पुनर्मूल्यांकन द्वारा निर्णय यह है कि विवादग्रस्त तथ्यों की खोज पर निर्णय और पाए गए तथ्यों पर कानून का अनुप्रयोग, अर्ध-न्यायिक निर्धारण के गुण भी हैं। ***ऐसा प्रतीत नहीं होना चाहिए कि अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी को सौंपा गया प्राधिकारी उसके समक्ष समस्या पर एक निष्कर्ष पर पहुंच गया है; बल्कि यह भी प्रतीत होना चाहिए कि वह एक निष्कर्ष पर पहुंच गया है जो कानून के अनुसार और उचित है, और उस अंत को सुनिश्चित करने के लिए उसे विवाद से समाधान की ओर ले जाने वाली अंतिम मानसिक प्रक्रिया रिकॉर्ड करना होगा । किसी विवादित दावे का संतोषजनक निर्णय केवल तभी प्राप्त किया जा सकता है जब इसे प्राधिकारी को अपील करने वाले सबसे ठोस कारणों से समर्थित किया जाए। अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी द्वारा विवादित दावे पर निर्णय के समर्थन में कारणों की रिकॉर्डिंग यह सुनिश्चित करती है कि निर्णय कानून के अनुसार लिया गया है और यह सनक का परिणाम नहीं है या नीति या समीचीनता के आधार पर नहीं लिया गया है। विवाद का एक पक्ष आम तौर पर उन आधारों को जानने का हकदार है जिन पर प्राधिकारी ने उसके दावे को***

खारिज कर दिया है। यदि आदेश अपील के अधीन है, तो कारणों को रिकॉर्ड करने की आवश्यकता अधिक है, क्योंकि रिकॉर्ड किए गए कारणों के बिना अपीलीय प्राधिकारी के पास कोई सामग्री नहीं है जिसके आधार पर वह यह निर्धारित कर सके कि क्या तथ्यों का ठीक से पता लगाया गया था, संबंधित कानून सही ढंग से लागू किया गया था और निर्णय उचित था। "
(*बल दिया गया*)

सीमेंस इंजीनियरिंग एंड मैन्युफैक्चरिंग कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम द यूनियन ऑफ इंडिया एंड अन्य 1976 (2) एससीसी 981, में सुप्रीम कोर्ट ने अर्ध-न्यायिक अधिकारियों द्वारा अपने आदेश के लिए कारण न बताने की प्रवृत्ति की निंदा की और कहा कि प्रशासनिक अधिकारियों को अपने आदेशों से प्रभावित होने वाले व्यक्तियों को निष्पक्ष और उचित सुनवाई करनी चाहिए और पर्याप्त स्पष्ट जानकारी देनी चाहिए और उनके द्वारा दिए गए आदेशों के समर्थन में स्पष्ट कारण। ***सीमेंस इंजीनियरिंग (उपरोक्त)*** में रिपोर्ट किए गए फैसले के पैराग्राफ 6 में सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणियों को नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"6. इससे पहले कि हम इस अपील से अलग हों, हमें उस तरीके पर खेद व्यक्त करना चाहिए जिस तरह से सहायक कलेक्टर, कलेक्टर और भारत सरकार ने उनके समक्ष कार्यवाही का निपटारा किया। यह निर्विवाद है कि सहायक कलेक्टर के समक्ष कार्यवाही से उत्पन्न हुई विभेदक शुल्क की मांग करने वाले नोटिस अर्ध-न्यायिक कार्यवाही थे और कलेक्टर और भारत सरकार के समक्ष पुनरीक्षण की कार्यवाही भी थी, वास्तव में, उत्तरदाताओं की ओर से पेश होने वाले विद्वान वकील द्वारा इस पर कोई विवाद नहीं किया गया था। यह अब तय कानून है जहाँ
एक प्राधिकारी एक अर्ध-न्यायिक कार्य के अभ्यास में एक आदेश देता है, उसे अपने आदेश के समर्थन में अपने कारणों को दर्ज करना होगा। प्रत्येक अर्ध-न्यायिक आदेश को कारणों से समर्थित होना चाहिए। एन.एम.देसाई बनाम टेस्टील्स लिमिटेड के साथ समाप्त होने वाले इस न्यायालय के निर्णयों की एक लंबी श्रृंखला द्वारा यह निर्धारित किया गया है, लेकिन दुर्भाग्य से, सहायक कलेक्टर ने अंतर शुल्क की मांग की पुष्टि करते हुए अपने आदेश के समर्थन में कोई कारण नहीं बताया। यह सीधे तौर पर कानून की आवश्यकता की अवहेलना थी। कलेक्टर ने पुनरीक्षण में कुछ कारण तो बताए लेकिन वह संतोषजनक नहीं थे। उन्होंने अपने आदेश में अपीलकर्ताओं द्वारा 8 दिसंबर, 1961 को दिए गए उनके अभ्यावेदन में दिए गए तर्कों पर ध्यान नहीं दिया, जिन्हें 4 जून, 1965 के बाद के अभ्यावेदन में दोहराया गया था। यह सुझाव नहीं दिया गया है कि कलेक्टर को अदालत की तरह अपीलकर्ताओं की दलीलों पर चर्चा करते हुए एक विस्तृत आदेश देना चाहिए था। लेकिन कलेक्टर का आदेश थोड़ा और स्पष्ट और मुखर हो सकता था ताकि यह आश्वासन दिया जा सके कि अपीलकर्ताओं के मामले पर उनके द्वारा उचित रूप से विचार किया गया था। यदि कानून की अदालतों को प्रशासनिक अधिकारियों और न्यायाधिकरणों द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना है, जैसा कि वास्तव में, कुछ प्रकार के मामलों में, प्रशासनिक कानून के प्रसार के साथ, उन्हें प्रतिस्थापित करना पड़ सकता है, तो यह आवश्यक है कि प्रशासनिक अधिकारियों और न्यायाधिकरणों को निष्पक्ष और अपने आदेशों से प्रभावित होने वाले व्यक्तियों की उचित सुनवाई करना और उनके द्वारा दिए गए आदेशों के समर्थन में पर्याप्त स्पष्ट कारण बताना होगा । त***भी प्रशासनिक अधिकारी और अर्ध-न्यायिक कार्य करने वाले न्यायाधिकरण अपने अस्तित्व को सही ठहराने और न्यायिक प्रक्रिया में विश्वास जगाकर लोगों में विश्वसनीयता बनाए रखने में सक्षम होंगे। किसी आदेश के समर्थन में कारण बताने की आवश्यकता वाला नियम, ऑडी अल्टरम पार्टम के सिद्धांत की तरह, प्राकृतिक न्याय का एक बुनियादी सिद्धांत है जिसे हर अर्ध-न्यायिक प्रक्रिया को सूचित करना चाहिए और इस नियम को इसकी उचित भावना और महज दिखावा के रूप में देखा जाना चाहिए***। इसका अनुपालन कानून की आवश्यकता को पूरा नहीं करेगा। भारत सरकार भी पुनरीक्षण आवेदन को अस्वीकार करने के अपने आदेश के समर्थन में कोई कारण बताने में विफल रही। लेकिन हम यह मान सकते हैं कि पुनरीक्षण आवेदन को अस्वीकार करते समय उसने वही कारण अपनाया जो कलेक्टर के पास था। कलेक्टर द्वारा दिया गया कारण, जैसा कि पहले ही बताया गया है, शायद ही संतोषजनक था और इसलिए बेहतर होता अगर भारत सरकार ने पुनरीक्षण आवेदन को खारिज करते समय अपीलकर्ताओं की ओर से दिए गए तर्कों से निपटने के लिए उचित और पर्याप्त कारण बताए होते। हम आशा और विश्वास करते हैं कि भविष्य में सीमा शुल्क अधिकारी उनके सामने आने वाली कार्यवाहियों पर निर्णय लेने में अधिक सावधानी बरतेंगे और उचित रूप से तर्कसंगत आदेश पारित करेंगे, ताकि जो लोग ऐसे आदेशों से प्रभावित हों, उन्हें आश्वासन दिया जाए कि उनका मामला सही है और सीमा शुल्क अधिकारियों के हाथों उचित विचार प्राप्त हुआ और अ***धिकारियों द्वारा किए गए निर्णय की वैधता सीमा शुल्क अधिकारियों का भी श्रेष्ठ न्यायाधिकरण या न्यायालय द्वारा संतोषजनक ढंग से परीक्षण किया जा सकता है। वास्तव में, यह वांछनीय होगा कि सीमा शुल्क और उत्पाद शुल्क कानूनों के तहत उत्पन्न होने वाले मामलों में आयकर अपीलीय न्यायाधिकरण या विदेशी मुद्रा विनियमन अपीलीय बोर्ड की तरह एक स्वतंत्र अर्ध-न्यायिक न्यायाधिकरण की स्थापना की***

जाए, जो अंततः अपील और संशोधन आवेदनों का निपटान करेगा। इन कानूनों के तहत ऐसी अपीलों और पुनरीक्षण आवेदनों का निर्धारण भारत सरकार पर छोड़ने के बजाय एक स्वतंत्र अर्ध-न्यायिक न्यायाधिकरण निश्चित रूप से जनता के मन में अधिक विश्वास पैदा करेगा।"

हाल ही में, ***क्रांति एसोसिएट्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम मसूद अहमद खान और अन्य 2010 (9) एससीसी 496*** में कारण बताने की आवश्यकता पर पिछले न्यायिक उदाहरणों का जिक्र करने के बाद, यह देखा गया कि यदि निर्णय किसी को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है तो प्रशासनिक निर्णयों में भी कारण दर्ज किए जाने चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले के अनुच्छेद 47 में कानून का सारांश दिया जिसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

"47. उपरोक्त चर्चा का सारांश देते हुए, यह न्यायालय मानता है:

(ए) ***भारत में न्यायिक प्रवृत्ति हमेशा कारणों को दर्ज करने की रही है, यहां तक कि प्रशासनिक निर्णयों में भी, यदि ऐसे निर्णय किसी पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।***

(बी) एक अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी को अपने निष्कर्षों के समर्थन में कारण दर्ज करने होंगे।

(सी) ***कारणों को दर्ज करने पर जोर देने का मतलब न्याय के व्यापक सिद्धांत की पूर्ति करना है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए, बल्कि ऐसा प्रतीत भी होना चाहिए कि न्याय किया गया है।***

(डी) ***कारणों की रिकॉर्डिंग न्यायिक और अर्ध-न्यायिक या यहां तक कि प्रशासनिक शक्ति के किसी भी संभावित मनमाने प्रयोग पर एक वैध प्रतिबंध के रूप में भी काम करती है।***

(ई) **कारण आश्वस्त करते हैं कि निर्णय-निर्माता द्वारा प्रासंगिक आधारों पर और अनावश्यक विचारों की उपेक्षा करके विवेक का प्रयोग किया गया है।**

(एफ) न्यायिक, अर्ध-न्यायिक और यहां तक कि प्रशासनिक निकायों द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करने के कारण निर्णय लेने की प्रक्रिया में कारण वस्तुतः अपरिहार्य घटक बन गए हैं।

(छ) **कारण श्रेष्ठ न्यायालयों द्वारा न्यायिक समीक्षा की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाते हैं।**

(ज) सभी देशों में चल रही न्यायिक प्रवृत्ति कानून के शासन और संवैधानिक शासन के प्रासंगिक तथ्यों के आधार पर तर्कसंगत निर्णय के पक्ष में प्रतिबद्ध है। यह वस्तुतः न्यायिक निर्णय लेने का मूलभूत आधार है जो इस सिद्धांत को उचित ठहराता है कि तर्क न्याय की आत्मा है।

(झ) इन दिनों न्यायिक या यहां तक कि अर्ध-न्यायिक राय उतनी ही भिन्न हो सकती है जितनी उन्हें देने वाले न्यायाधीश और प्राधिकारी। ये सभी निर्णय एक सामान्य उद्देश्य की पूर्ति करते हैं, जो तर्क द्वारा प्रदर्शित करना है कि प्रासंगिक कारकों पर निष्पक्ष रूप से विचार किया गया है। न्याय वितरण प्रणाली में वादियों का विश्वास बनाए रखने के लिए यह महत्वपूर्ण है।

(ट) तर्क पर जोर देना न्यायिक जवाबदेही और पारदर्शिता दोनों के लिए एक आवश्यकता है।

(ठ) यदि कोई न्यायाधीश या अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी अपनी निर्णय लेने की प्रक्रिया के बारे में पर्याप्त स्पष्ट नहीं है तो यह जानना असंभव है कि निर्णय लेने वाला व्यक्ति मिसाल के सिद्धांत या वृद्धिवाद के सिद्धांतों के प्रति वफादार है या नहीं।

(ड) **निर्णयों के समर्थन में कारण ठोस, स्पष्ट और संक्षिप्त होने चाहिए। कारणों का दिखावा या "रबर-स्टैम्प कारण" को वैध निर्णय लेने की प्रक्रिया के साथ नहीं जोड़ा जाना चाहिए।**

(ढ) इसमें संदेह नहीं किया जा सकता है कि पारदर्शिता न्यायिक शक्तियों के दुरुपयोग पर रोक लगाने की अनिवार्य शर्त है। निर्णय लेने में पारदर्शिता न केवल न्यायाधीशों और निर्णय निर्माताओं को त्रुटियों की संभावना कम बनाती है बल्कि उन्हें व्यापक जांच के अधीन भी बनाती है। (न्यायिक स्पष्टवादिता के बचाव में डेविड शापिरो देखें)।

(त) ***चूंकि कारणों को दर्ज करने की आवश्यकता निर्णय लेने में निष्पक्षता के व्यापक सिद्धांत से उत्पन्न होती है, इसलिए उक्त आवश्यकता अब वस्तुतः मानवाधिकारों का एक घटक है और इसे स्ट्रासबर्ग न्यायशास्त्र का हिस्सा माना जाता है।*** रुइज़ टोरिजा बनाम स्पेन ईएचआरआर, 562 पैरा 29 और अन्या बनाम ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय देखें, जिसमें न्यायालय ने यूरोपीय मानवाधिकार सम्मेलन के अनुच्छेद 6 का उल्लेख किया है, जिसके लिए आवश्यक है, "न्यायिक निर्णयों के लिए पर्याप्त और युक्तियुक्त कारण दिए जाने चाहिए"।

(थ) सभी सामान्य कानून क्षेत्राधिकारों में निर्णय भविष्य के लिए मिसाल कायम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए, कानून के विकास के लिए, निर्णय के लिए कारण बताने की आवश्यकता सारगर्भित है और वस्तुतः "उचित प्रक्रिया" का एक हिस्सा है।(बल दिया गया)

कुलपति का आदेश कार्यकारी परिषद के समक्ष अपील के अधीन था और इसलिए, अनुशासन समिति के सिफारिश को अपने आदेश में मंजूरी देने के लिए कारण बताना कुलपति का कर्तव्य था। सुप्रीम कोर्ट द्वारा ओरिक्स ***फिशरीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य 2010 (13) एससीसी 427 के पैराग्राफ 37*** में यह निम्नानुसार देखा गया: -

"37. इसलिए, तीसरे प्रतिवादी का पूर्वाग्रह जो कारण बताओ नोटिस में छिपा हुआ था, पंजीकरण प्रमाणपत्र को रद्द करने के आदेश में पेटेंट बन गया। रद्दीकरण आदेश कारण बताओ नोटिस को उद्धृत करता है और एक गैर-बोलने वाला है और है कानून की नज़र में वस्तुतः कोई आदेश नहीं है। ***चूंकि वही आदेश अपील योग्य है, इसलिए तीसरे प्रतिवादी पर पर्याप्त कारण बताने का दायित्व है।"***

ऊपर उल्लिखित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों को पढ़ने से पता चलता है कि कोई भी निर्णय, चाहे वह प्रशासनिक हो या अर्ध-न्यायिक, जो किसी भी व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है और अपील योग्य है, उसे विवेक के उचित प्रयोग का खुलासा करते हुए स्पष्ट कारणों से समर्थित किया जाना चाहिए और उस विवेक का उपयोग किया जाना चाहिए जो निर्णय-निर्माता द्वारा प्रासंगिक आधारों पर और अनावश्यक विचारों की उपेक्षा करके प्रयोग किया जाता है। कुलपति का आदेश स्पष्ट रूप से उपरोक्त परीक्षणों में विफल रहता है। अनुशासनात्मक समिति की रिपोर्ट पर अनुमोदन की टिप्पणी मात्र से अनुशासनात्मक समिति के निष्कर्षों या याचिकाकर्ता पर लगाए जाने वाले दंड के संबंध में उसके प्रस्ताव पर कुलपति द्वारा विवेक के प्रयोग से किसी भी प्रयोग का खुलासा नहीं होता है।

दिनांक 2.9.2019 का आदेश याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना और याचिकाकर्ता को अनुशासनात्मक समिति के निष्कर्षों और प्रस्ताव के खिलाफ प्रतिनिधित्व करने का कोई अवसर दिए बिना पारित किया गया है। आदेश में अनुशासन समिति के निष्कर्षों और सिफारिशों को स्वीकार करने के कारणों को दर्ज नहीं किया गया है। जाहिर है, दिनांक 2.9.2019 का आदेश प्राकृतिक न्याय की आवश्यकताओं का अनुपालन किए बिना पारित किया गया है। यह आदेश नियमावली 1985 के नियम 9 का भी उल्लंघन है।

यहां तक कि कार्यकारी परिषद ने अपने दिनांक 14.10.2019 के निर्णय में अनुशासनात्मक समिति की सिफारिशों और रिपोर्ट को केवल स्वचालिक रूप से पुन: प्रस्तुत किया है। कुलपति के आदेश के खिलाफ याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील को कार्यकारी परिषद ने बिना कोई कारण बताए खारिज कर दिया है। याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील को खारिज करते हुए विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा पारित प्रस्ताव भी विवेक का पूरी तरह से गैर-प्रयोग को दर्शाता है।

यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ कुलपति के आदेश और कार्यकारी परिषद के संकल्प के साथ समाप्त होने वाली संपूर्ण अनुशासनात्मक कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है और नियम, 1985 के विपरीत भी है। उक्त कारणों से, याचिकाकर्ता के खिलाफ कुलपति और कार्यकारी परिषद के आदेशों सहित संपूर्ण अनुशासनात्मक कार्यवाही रद्द की जानी चाहिए।

यह सच है, जैसा कि विश्वविद्यालय के वकील ने तर्क दिया, कि ऐसे मामलों में जहां विभागीय जांच या अनुशासनात्मक कार्यवाही में पारित आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के लिए रद्द कर दिए जाते हैं, अदालतों द्वारा आम तौर पर अपनाया जाने वाला रास्ता मामले को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करने के बाद नए आदेश पारित करने के लिए संबंधित प्राधिकारी को वापस भेजना है। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता को शैक्षणिक सत्र 2018-19 से शुरू होने वाले पांच शैक्षणिक सत्रों की अवधि के लिए विश्वविद्यालय से निष्कासित कर दिया गया है। याचिका 2020 से इस न्यायालय के समक्ष लंबित थी। याचिकाकर्ता पहले ही उन आदेशों के कारण चार साल से अधिक समय तक निष्कासन में रह चुका है, जो कि, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किए बिना पारित किया गया है। इन परिस्थितियों में, मामले को विश्वविद्यालय प्राधिकारियों को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार नए सिरे से जांच करने या कुलपति को याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर देने के बाद एक तर्कसंगत आदेश पारित करने के लिए वापस भेजना न्यायसंगत नहीं होगा।

उपरोक्त के मद्देनजर, कुलपति द्वारा पारित आदेश दिनांक 2.9.2019 और कार्यकारी परिषद द्वारा पारित संकल्प दिनांक 14.10.2019 को रद्द किया जाता है। नतीजतन, आदेश दिनांक 2.9.2019 और संकल्प 14.10.2019 के याचिकाकर्ता को दिनांक 4.9.2019 और 31.12.2019 की सूचनाएं भी रद्द कर दी जाती हैं।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ और उसके अधिकारी याचिकाकर्ता को विश्वविद्यालय में अपनी

कक्षाओं में भाग लेने और परीक्षाओं में बैठने की अनुमति देंगे। याचिकाकर्ता को B.A.LL.B पांच वर्षीय पाठ्यक्रम की परीक्षाओं में बैठने की अनुमति दी जाएगी। अगर B.A.LL.B को पूरा करने के लिए विश्वविद्यालय के प्रासंगिक नियमों द्वारा निर्धारित अवधि याचिकाकर्ता को नियमित परीक्षाओं में उपस्थित होने का अवसर मिलने से पहले पांच साल का पाठ्यक्रम समाप्त हो रहा है तो विश्वविद्यालय उन सेमेस्टर के लिए विशेष परीक्षाएं आयोजित करेगा जिनमें याचिकाकर्ता निलंबन के तहत या विश्वविद्यालय से निष्कासन के कारण उपस्थित नहीं हो सका।

उपरोक्त निर्देशों के साथ, रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है।

इस आदेश को रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा 48 घंटे के भीतर कुलपति, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ को सूचित किया जाए।

(2023) 1 ILRA 206
मूल न्यायाधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक:इलाहाबाद 19.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चन्द्र शर्मा,

रिट-सी संख्या 7078/2004

राम प्रताप सिंह ...याचिकाकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता:
श्री सी.एच. सिंह गौतम, श्री सी.एस. गौतम

अधिवक्ता प्रतिवादी:
सी.एस.सी., एस.सी.

(ए) सिविल कानून - शस्त्र अधिनियम, 1959 - धारा 17 लाइसेंस में बदलाव, निलंबन और निरसन, धारा 18– अपील, भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 148, 149, 323, 342, 504, 506, - यदि घटना में हथियार/बंदूक का उपयोग नहीं किया गया है – हथियार लाइसेंस निरस्त करने का कोई सवाल ही नहीं उठता – केवल मामले के लंबित रहने से हथियार लाइसेंस रद्द करने का आधार नहीं बनता है। (पैरा 4,22)

जिला मजिस्ट्रेट (लाइसेंसिंग प्राधिकारी) द्वारा पारित आदेश – निरस्त करना - अपीलीय प्राधिकारी/आयुक्त द्वारा पुष्टि किए गए याचिकाकर्ता (आर्म लाइसेंस धारक) के शस्त्र लाइसेंस को निरस्त करना - याचिकाकर्ता के विरुद्ध केवल एक आपराधिक वाद - याचिकाकर्ता के पास पूर्व आपराधिक इतिहास की कथित घटना के समय न तो हथियार था और न ही उसने हथियार का उपयोग किया था। (पैरा-1,4,22)

आयोजित:-अपराध आम तौर पर लाइसेंसी हथियारों द्वारा नहीं किए जाते हैं, लेकिन आम तौर पर अपराध बिना लाइसेंस वाले देश-निर्मित आग्नेयास्त्रों के उपयोग से कारित किए जाते हैं, इसलिए, केवल एक वाद की लंबितता और आशंका के आधार पर, हथियार लाइसेंस निरस्त नहीं किया जा सकता है। दोनों विवादित आदेश विधिनुसार स्पष्ट त्रुटि से ग्रस्त हैं और निरस्त किये जाने योग्य हैं। (पैरा 22,24)

याचिका स्वीकृत। (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची</u>:

1. राम प्रसाद बनाम कमिश्नर एवं अन्य, 2020 सुप्रीम (ऑल) 104
2. मसीउद्दीन बनाम कमिश्नर, आल्ड. डिवीजन, एल्ड. एवं अन्य, 1972 एएलजे 573
3. हबीब बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2002 (44) एसीसी 783
4. सतीश सिंह बनाम डी.एम., सुल्तानपुर, 2009 (4) एडीजे (एलबी)
5. चन्द्रबली तिवारी बनाम कमिश्नर फैजाबाद, 2014 (32) एलसीडी 1696
6. इन्द्रजीत सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2019 की रिट-सी संख्या 4947
7. पुलिस उप महानिरीक्षक एवं अन्य बनाम एस समुथिराम, (2013) 1 एससीसी 598
8. छंगा प्रसाद साहू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 1984 एडब्ल्यूसी 145 (एफबी)।
9. इलम सिंह बनाम कमिश्नर, मेरठ मंडल एवं अन्य, 1987 एएल) 416
10. जागेश्वर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य. ,2009 (67) एसीसी 157
11. सूर्य नारायण मिश्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2015 (7) एडीजे 510
12. रघुवीर सिंह बनाम आयुक्त एवं अन्य, 2020 एससीसी ऑनलाइन सभी 192

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

अनुवादित

1. यह रिट याचिका याचिकाकर्ता-शस्त्र लाइसेंस धारक द्वारा जिला मजिस्ट्रेट, गाज़ीपुर/लाइसेंसिंग प्राधिकारी द्वारा पारित शस्त्र लाइसेंस रद्दीकरण आदेश दिनांक 17.02.1999 को रद्द करने के लिए दायर की गई है और रद्दीकरण आदेश की पुष्टि करते हुए अपीलीय प्राधिकारी/आयुक्त, वाराणसी क्षेत्र, वाराणसी द्वारा दिनांक 06.01.2004 को आदेश पारित।

2. मामले के तथ्य संक्षेप में यह हैं कि याची ग्राम जमुआंव, डाकघर बड़सरा, थाना करंडा, जिला गाजीपुर का निवासी है। वह अपने इलाके का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति है और उसके पास लाइसेंस नंबर 303/ पी/ 11 (एसबीबीएल नंबर 15868) के रूप में एसबीबीएल का शस्त्र लाइसेंस भी है। नक्सली संगठन भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (माले) के सक्रिय सदस्य मिठाई लाल, उक्त संगठन के ब्लॉक प्रभारी ने 24.02.1997 को याचिकाकर्ता सहित छह अन्य व्यक्तियों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज कराई। वह उक्त संगठन के अन्य सक्रिय सदस्यों की मदद से राज्य सरकार की कुछ संपत्ति हड़पने के लिए संबंधित क्षेत्र में अपने संगठन का प्रभाव और दबदबा फैलाना चाहता था। परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता के गांव के ग्रामीणों ने राजस्व अधिकारियों के साथ-साथ पुलिस अधिकारियों के समक्ष भी एक आवेदन दिया और जब वह अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुआ, तो उसने अप्रिय आधार पर कथित एफआईआर दर्ज कराई, हालांकि, कथित एफआईआर में याचिकाकर्ता की कोई विशिष्ट भूमिका नहीं थी।एफआईआर केस क्राइम नंबर 26/ 1997 में धारा 147, 148, 149, 323, 342, 504, 506 आईपीसी के तहत दर्ज की गई थी, जिसमें थानाध्यक्ष , करंडा ने याचिकाकर्ता के लाइसेंस को रद्द करने के लिए प्रतिवादी संख्या 3 को दिनांक 28.10.1997 को रिपोर्ट सौंपी थी। दिनांक 28.10.1997 को रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद, प्रतिवादी संख्या 3 ने याचिकाकर्ता को 05.11.1997 को कारण बताओ नोटिस (अनुलग्नक संख्या 2) जारी किया और उसे 02.12.1997 को उसके सामने पेश होने और यह बताने का निर्देश दिया कि उसका लाइसेंस क्यों रद्द नहीं किया जा सकता है। याचिकाकर्ता प्रतिवादी नंबर 3 के सामने पेश हुआ और 20.04.1998 को अपना जवाब प्रस्तुत किया जिसमें उल्लेख किया गया कि उसका न तो आपराधिक इतिहास है और न ही उसने ऐसा कोई अपराध किया है जैसा कि आरोप लगाया गया है और केवल राजनीतिक दबाव पर, झूठी और कष्टप्रद आधार पर एफआईआर दर्ज की गई है। जवाब में यह भी उल्लेख किया गया कि उनके गांव के किसी भी व्यक्ति ने कथित घटना के संबंध में कोई प्राथमिकी दर्ज नहीं कराई है और गांव में ऐसा कोई अपराध नहीं हुआ है, लेकिन बाद में उक्त क्षेत्र के प्रतिष्ठित व्यक्तियों पर दबाव बढ़ गया उक्त प्राथमिकी नक्सली संगठन के सक्रिय सदस्य ने दर्ज करायी थी. हालाँकि, अपने न्यायिक दिमाग का उपयोग किए बिना और उक्त एफआईआर और पुलिस रिपोर्ट के आधार पर, प्रतिवादी नंबर 3 ने दिनांक 17.02.1999 के आदेश (रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 3) के तहत याचिकाकर्ता को जारी हथियार लाइसेंस रद्द कर दिया।

3. दिनांक 17.02.1999 के आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने 15.03.1999 को प्रतिवादी संख्या 2 के समक्ष शस्त्र अधिनियम की धारा 18 के तहत अपील दायर की और दिनांक 17.02.1999 के आदेश को रद्द करने की प्रार्थना की। मामले की सुनवाई के बाद, प्रतिवादी नंबर 2, आयुक्त, वाराणसी क्षेत्र, वाराणसी ने निर्णय और आदेश दिनांक 06.01.2004 (अनुलग्नक संख्या 5) द्वारा अपील को खारिज कर दिया।

4. जैसा कि एफआईआर में आरोप लगाया गया है, विवाद यह है कि कई लोगों ने सूचक को लात-घूंसों से पीटा और उसे जलाने की भी कोशिश की, लेकिन आज तक सूचक द्वारा न तो कोई चोट रिपोर्ट और न ही कोई मेडिकल जांच रिपोर्ट पेश की गई। इसके अलावा एफआईआर में याचिकाकर्ता को मुखबिर को लाठी-डंडा और लात-पैर से पीटने की भूमिका सौंपी गई है, लेकिन हथियारों के इस्तेमाल का कोई जिक्र नहीं है। सूचक उसी गांव का निवासी नहीं है और घटना स्थल पर याचिकाकर्ता की उपस्थिति के बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं है और न ही उस गांव के किसी व्यक्ति ने याचिकाकर्ता के खिलाफ एफआईआर/शिकायत दर्ज कराई और न ही पुलिस या मजिस्ट्रेट के सामने कोई बयान दिया है। याचिकाकर्ता का गांव नक्सल प्रभावित क्षेत्र में आता है और आए दिन असामाजिक तत्वों के साथ-साथ नक्सली संगठन के सदस्य ग्रामीणों पर हमला करने और धमकी देने की कोशिश करते हैं और कई ग्रामीणों को नक्सली संगठन के धमकी भरे पत्र भी मिले हैं. फिर भी प्रतिवादियों ने प्रासंगिक तथ्यों पर विचार किए बिना याचिकाकर्ता का शस्त्र लाइसेंस रद्द कर दिया। कथित घटना के समय याचिकाकर्ता के पास न तो हथियार थे और न ही उसका इस्तेमाल किया गया था तथा माननीय सर्वोच्च न्यायालय एवं इस न्यायालय के कई निर्णयों में यह स्थापित कानून है कि यदि घटना में हथियार/बंदूक का उपयोग नहीं किया गया है, तो हथियार लाइसेंस रद्द करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

5. उपरोक्त आधार पर, यह तर्क दिया गया है कि दोनों विवादित आदेश पूरी तरह से अवैध, दुर्भावनापूर्ण और कानून की नजर में टिकने योग्य नहीं हैं, और उन्हें रद्द किया जाना चाहिए।

6. प्रतिवादियों की ओर से कोई जवाबी हलफनामा दाखिल नहीं किया गया है. हालाँकि, याचिकाकर्ता द्वारा एक अनुपूरक हलफनामा दायर किया गया है जिसका नंबर 139886/2006 है जिसमें केस नंबर 959/1997 (राज्य बनाम शिव सिंह और अन्य) की प्रमाणित प्रति संलग्न है जिसमें उन्होंने याचिका की सामग्री को दोहराया है।

उपरोक्त आदेश-पत्र के अवलोकन से पता चला कि दाखिल करने की तिथि तक केवल एक गवाह से पूछताछ की गई है।

7. शस्त्र अधिनियम की धारा 17 इस प्रकार है:

"17. लाइसेंस में परिवर्तन, निलंबन और निरसन.-

(1) लाइसेंसिंग प्राधिकारी उन शर्तों को अलग-अलग कर सकता है जिनके अधीन लाइसेंस प्रदान किया गया है, सिवाय उन शर्तों के जो निर्धारित की गई हैं और उस प्रयोजन के लिए लाइसेंस-धारक को लिखित नोटिस द्वारा नोटिस में निर्दिष्ट समय के भीतर लाइसेंस सौंपने की आवश्यकता हो सकती है।

(2) लाइसेंसिंग प्राधिकारी, लाइसेंस धारक के आवेदन पर, लाइसेंस की शर्तों में बदलाव भी कर सकता है, सिवाय उन शर्तों के जो निर्धारित की गई हैं।

(3) लाइसेंसिंग प्राधिकारी लिखित आदेश द्वारा किसी लाइसेंस को ऐसी अवधि के लिए निलंबित कर सकता है जो वह उचित समझे या लाइसेंस रद्द कर सकता है-

(ए) यदि लाइसेंसिंग प्राधिकारी संतुष्ट है कि लाइसेंस धारक को इस अधिनियम या उस समय लागू किसी अन्य कानून द्वारा किसी भी हथियार या गोला-बारूद को प्राप्त करने, अपने कब्जे में रखने या ले जाने से प्रतिबंधित किया गया है, या वह अस्वस्थ मन, या किसी भी कारण से इस अधिनियम के तहत लाइसेंस के लिए अयोग्य है; या

(बी) यदि लाइसेंसिंग प्राधिकारी सार्वजनिक शांति की सुरक्षा के लिए या सार्वजनिक सुरक्षा के लिए लाइसेंस को निलंबित या रद्द करना आवश्यक समझता है; या

(सी) यदि लाइसेंस भौतिक जानकारी को छिपाकर या लाइसेंस धारक या उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा इसके लिए आवेदन करते समय प्रदान की गई गलत जानकारी के आधार पर प्राप्त किया गया था; या

(डी) यदि लाइसेंस की किसी भी शर्त का उल्लंघन किया गया है; या

(ई) यदि लाइसेंस धारक उप-धारा (1) के तहत लाइसेंस सौंपने की आवश्यकता वाले नोटिस का पालन करने में विफल रहा है।

(4) लाइसेंसिंग प्राधिकारी उसके धारक के आवेदन पर लाइसेंस रद्द भी कर सकता है।

(5) जहां लाइसेंसिंग प्राधिकारी उप-धारा (1) के तहत लाइसेंस को अलग करने का आदेश देता है या उप-धारा (3) के तहत लाइसेंस को निलंबित या रद्द करने का आदेश देता है, वह लिखित रूप में इसके कारणों को रिकॉर्ड करेगा और लाइसेंस धारक के मांगने पर उसका एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करें, जब तक कि किसी भी मामले में लाइसेंसिंग प्राधिकारी की राय न हो कि ऐसा विवरण प्रस्तुत करना सार्वजनिक हित में नहीं होगा।

(6) वह प्राधिकारी जिसके अधीनस्थ लाइसेंसिंग प्राधिकारी है, लिखित आदेश द्वारा किसी भी आधार पर लाइसेंस को निलंबित या रद्द कर सकता है, जिस पर लाइसेंसिंग प्राधिकारी द्वारा इसे निलंबित या रद्द किया जा सकता है; और इस धारा के पूर्ववर्ती प्रावधान, जहां तक संभव हो, ऐसे प्राधिकारी द्वारा लाइसेंस के निलंबन या निरस्तीकरण के संबंध में लागू होंगे।

(7) इस अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत किसी भी अपराध के लिए लाइसेंस धारक को दोषी ठहराने वाली अदालत लाइसेंस को निलंबित या रद्द भी कर सकती है: बशर्ते कि यदि अपील या अन्यथा दोषसिद्धि को रद्द कर दिया जाता है, तो निलंबन या निरस्तीकरण शून्य हो जाएगा।

(8) उपधारा (7) के तहत निलंबन या निरस्तीकरण का आदेश अपीलीय अदालत या उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण की अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय भी किया जा सकता है।

(9) केंद्र सरकार, आधिकारिक राजपत्र में आदेश द्वारा, पूरे भारत या उसके किसी भी हिस्से में इस अधिनियम के तहत दिए गए सभी या किसी भी लाइसेंस को निलंबित या रद्द करने या किसी लाइसेंसिंग प्राधिकारी को निलंबित या रद्द करने का निर्देश दे सकती है।

(10) इस धारा के तहत किसी लाइसेंस के निलंबन या निरस्तीकरण पर उसके धारक को बिना किसी देरी के उस प्राधिकारी को लाइसेंस सौंप देना होगा जिसके द्वारा उसे निलंबित या निरस्त किया गया है या ऐसे अन्य प्राधिकारी को, जो निलंबन या निरसन के आदेश में इस संबंध में निर्दिष्ट किया जा सकता है।"

8. मामले को अभिलेख न्यायालयों द्वारा इस बिंदु पर तय किए गए मामलों के मद्देनजर देखना उचित होगा। इसलिए सही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कुछ प्रासंगिक मामलों को संदर्भित और चर्चा की जाती है।

9. **राम प्रसाद बनाम कमिश्नर एवं अन्य, 2020 0 सुप्रीम (सभी) 104 में**, जिला मजिस्ट्रेट ने याचिकाकर्ता के खिलाफ आपराधिक मामलों की लंबितता के आधार पर हथियार लाइसेंस रद्द कर दिया। याचिकाकर्ता को बाद में आपराधिक मामलों से बरी कर दिया गया। बरी करने के आदेश में याचिकाकर्ता के आग्नेयास्त्र का उपयोग नहीं दिखाया गया था। यह माना गया कि बरी होने के बाद रद्द करने के आदेश का आधार ही गायब हो गया और आक्षेपित आदेशों में केवल यह आशंका व्यक्त की गई कि याचिकाकर्ता आग्नेयास्त्र का दुरुपयोग करेगा और इससे समाज के कमजोर वर्ग के लोगों को खतरा होगा, शस्त्र लाइसेंस रद्द नहीं किया जा सकेगा।

10. **राम प्रसाद** (सुप्रा) में, आग्नेयास्त्रों के लाइसेंस रखने और उसके निलंबन और निरस्तीकरण के संबंध में निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किए गए हैं;

(i) शस्त्र अधिनियम, 1959 में निहित प्रावधानों के अनुसार अधिकारियों द्वारा दिए गए आग्नेयास्त्र लाइसेंस रखने का अधिकार एक व्यक्ति का एक मूल्यवान अधिकार है।
(ii) लाइसेंसिंग प्राधिकारी के पास हथियार के लाइसेंस को निलंबित या रद्द करने की शक्ति केवल तभी होती है जब शस्त्र अधिनियम की धारा 17 की उपधारा (3) के उप-खंड (ए) से (ई) में उल्लिखित कोई भी शर्त मौजूद हो।
(iii) अधिनियम की धारा 17 के प्रावधानों को मनमाने तरीके से हल्के ढंग से लागू नहीं किया जा सकता है।
(iv) यदि सार्वजनिक शांति की सुरक्षा के लिए या सार्वजनिक सुरक्षा के लिए लाइसेंस को निलंबित या रद्द करना आवश्यक है तो लाइसेंसिंग प्राधिकारी को खुद को संतुष्ट करना होगा।
(v) लाइसेंसिंग प्राधिकारी की ऐसी संतुष्टि आदेश में व्यक्त की जानी चाहिए और प्रासंगिक सामग्री पर आधारित होनी चाहिए।
(vi) सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा का मतलब कानून और व्यवस्था की सामान्य गड़बड़ी नहीं है। सार्वजनिक सुरक्षा का मतलब बड़े पैमाने पर जनता की सुरक्षा है, न कि केवल कुछ व्यक्तियों की।
(vii) किसी आपराधिक मामले में शामिल होने या उसके लंबित रहने मात्र से सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा प्रभावित नहीं होती है। प्रत्येक मामले में लाइसेंसिंग प्राधिकारी को यह निष्कर्ष दर्ज करना होगा कि कैसे और किन परिस्थितियों में हथियार लाइसेंस का कब्ज़ा सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा के लिए हानिकारक है।
(viii) केवल आग्नेयास्त्र के दुरुपयोग की आशंका या कि लाइसेंसधारी कमजोर वर्ग के व्यक्तियों को धमकी देगा, शस्त्र लाइसेंस रद्द नहीं किया जा सकता है। ऐसी कोई सकारात्मक घटना होनी चाहिए जिसमें लाइसेंसधारी ने भाग लिया हो या अपने हथियार का इस्तेमाल किया हो, जिससे सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा का उल्लंघन हुआ हो।
(ix) लाइसेंसधारी के आपराधिक मामले से बरी होने के बाद शस्त्र लाइसेंस रद्द करने का आधार ही ख़त्म हो जाता है।

11. उपरोक्त सिद्धांतों के आलोक में आक्षेपित आदेश परीक्षण पर खरा नहीं उतरता है।

12. **मसीउद्दीन बनाम कमिश्नर, इलाहाबाद डिवीजन, इलाहाबाद और अन्य, 1972 एएलजे 573** में, यह माना गया है कि "लाइसेंस दिए जाने के बाद, लाइसेंस रखने और बंदूक रखने का अधिकार एक स्वतंत्र देश में एक मूल्यवान व्यक्तिगत अधिकार है"। इसके अलावा यह माना जाता है कि "किसी लाइसेंस को अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर रद्द किया जा सकता है कि सार्वजनिक शांति की सुरक्षा के लिए या सार्वजनिक सुरक्षा के लिए ऐसा करना आवश्यक है। केवल लाइसेंसधारी और किसी अन्य व्यक्ति के बीच शत्रुता का अस्तित्व सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा के साथ आवश्यक संबंध स्थापित नहीं करेगा।

13. **हबीब बनाम यूपी राज्य और अन्य, 2002 (44) एसीसी 783** में, यह माना गया है कि "केवल एक आपराधिक मामले में शामिल होने से किसी भी तरह से सार्वजनिक सुरक्षा या सार्वजनिक हित प्रभावित नहीं हो सकता है और आग्नेयास्त्र का लाइसेंस रद्द करने या निरस्त करने का आदेश उचित नहीं था।"

14. **सतीश सिंह बनाम जिला मजिस्ट्रेट, सुल्तानपुर 2009 (4) एडीजे (एलबी)** मामले में, यह माना गया है कि "हथियार रखने का अधिकार वैधानिक अधिकार है, लेकिन जीने और स्वतंत्रता का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकार है। इसके परिणामस्वरूप, अपने परिवार को उपद्रवियों से बचाने के लिए अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए आग्नेयास्त्र रखना नागरिकों का अधिकार है। अक्सर यह कहा जाता है कि सभ्य समाज में सामान्यतः सभ्य व्यक्तियों को ही अपनी सुरक्षा के लिए शस्त्र लाइसेंस की आवश्यकता होती है, अपराधियों को नहीं। निःसंदेह, यदि सरकार को लगता है कि हथियार लाइसेंस का दुरुपयोग किसी अप्रत्यक्ष उद्देश्य या आपराधिक गतिविधियों के लिए किया जा रहा है, तो ऐसे कदाचार को रोकने के लिए उचित उपाय अपनाए जा सकते हैं। लेकिन बिना सोचे समझे और शस्त्र अधिनियम की धारा 17 की भावना को ध्यान में रखते हुए, शस्त्र लाइसेंस को यांत्रिक तरीके से नियमित तरीके से निलंबित नहीं किया जाना चाहिए।

15. **चंद्रबली तिवारी बनाम कमिश्नर, फैजाबाद, 2014 (32) एलसीडी 1696** में, यह माना गया है कि "केवल आपराधिक मामले का लंबित होना आग्नेयास्त्र लाइसेंस को रद्द करने का कोई आधार नहीं है। यह भी माना गया है कि चूंकि उस मामले में ऐसा कोई आरोप नहीं था कि लाइसेंसी बंदूक को कभी भी लाइसेंसधारक द्वारा बाहर ले जाया गया था और अधिनियम में इस्तेमाल किया गया था, याचिकाकर्ता के आग्नेयास्त्र लाइसेंस को रद्द करने का आदेश रद्द कर दिया गया था।

16. हालाँकि, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेशों का समर्थन करने का प्रयास किया है और **इंद्रजीत सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य रिट-सी संख्या 4947 सन 2019** , 22.10.2021 को निर्णीत, में पारित इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें **पुलिस उप महानिरीक्षक और अन्य बनाम एस समुथिराम, (2013) 1 एससीसी 598** के मामले में दिए गए फैसले पर भरोसा करते हुए, यह माना गया है कि "अभिव्यक्ति 'सम्मानजनक दोषमुक्ति', 'दोषमुक्ति', 'पूरी तरह दोषमुक्ति' आपराधिक प्रक्रिया संहिता या दंड संहिता के लिए अज्ञात हैं, जो न्यायिक घोषणाओं द्वारा गढ़े गए हैं। यह स्पष्ट रूप से

परिभाषित करना कठिन है कि 'सम्मानपूर्वक बरी किए जाने' की अभिव्यक्ति का क्या अर्थ है। जब अभियोजन पक्ष के सबूतों पर पूरी तरह विचार करने के बाद आरोपी को बरी कर दिया जाता है और अभियोजन पक्ष आरोपी के खिलाफ लगाए गए आरोपों को साबित करने में बुरी तरह विफल रहा है, तो संभवतः यह कहा जा सकता है कि आरोपी को सम्मानपूर्वक बरी कर दिया गया है।

17. **छंगा प्रसाद साहू बनाम यूपी राज्य और अन्य, 1984 एडब्ल्यूसी 145 (एफबी)** में, शस्त्र अधिनियम की धारा 17(3) के प्रावधानों पर ध्यान देने के बाद पूर्ण पीठ ने पैराग्राफ -5 और 9 में निम्नानुसार निर्णय लिया:

"5. उपर्युक्त प्रावधानों का अवलोकन यह दर्शाता है लाइसेंसिंग प्राधिकारी को हथियार लाइसेंस को निलंबित या रद्द करने की शक्ति केवल तभी दी गई है जब अधिनियम की धारा 17 की उपधारा (3) के उप-खंड (ए) से (ई) में उल्लिखित कोई भी शर्त मौजूद हो। धारा 17 की उपधारा (5) लाइसेंसिंग प्राधिकारी के लिए यह अनिवार्य बनाती है कि वह हथियार लाइसेंस को रद्द/निलंबित करने का आदेश पारित करते समय, इसके कारणों को लिखित रूप में दर्ज करे और मांगे जाने पर, लाइसेंस धारक को इसका संक्षिप्त विवरण तब तक दें जब तक वह यह न समझे कि ऐसा करना सार्वजनिक हित में नहीं होगा।"

"9....यह सच है कि किसी हथियार लाइसेंस को रद्द/निलंबित करने के लिए, लाइसेंसिंग प्राधिकारी को इस निष्कर्ष पर पहुंचना आवश्यक है कि धारा 17 के आधार (ए) से (ई) में उल्लिखित लाइसेंस के निरस्तीकरण/निलंबन को उचित ठहराने वाले तथ्य मौजूद हैं"

18. **इलम सिंह बनाम कमिश्नर, मेरठ डिवीजन और अन्य, 1987 एएलजे 416** में इस न्यायालय ने कहा कि धारा 17(3) (बी) के तहत लाइसेंसिंग प्राधिकारी सार्वजनिक शांति या जनता की सुरक्षा के लिए आवश्यक होने पर लाइसेंस को निलंबित या रद्द कर सकता है। इस मामले में लाइसेंसधारी के खिलाफ कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई थी जिसमें यह दर्शाया गया हो कि उसने उस घटना में बंदूक का इस्तेमाल किया था जिससे सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा का उल्लंघन हुआ था। यह माना गया कि कुछ सकारात्मक घटना होनी चाहिए जिसमें याचिकाकर्ता ने भाग लिया और अपनी बंदूक का इस्तेमाल किया जिससे सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा का उल्लंघन हुआ और सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा की सुरक्षा के विरुद्ध लाइसेंसधारक द्वारा बंदूक का उपयोग न करने की स्थिति में बंदूक का लाइसेंस निलंबित या रद्द नहीं किया जा सकता है। **इलम सिंह** (सुप्रा) में फैसले के प्रासंगिक पैराग्राफ -4 और 5 को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

"4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद मेरा विचार है कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क को बिना तथ्य के नहीं कहा जा सकता है। शस्त्र अधिनियम की धारा 17(3)(बी) यह अधिनियमित करती है कि लाइसेंसिंग प्राधिकारी लिखित आदेश द्वारा किसी लाइसेंस को निलंबित कर सकता है या सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा के लिए आवश्यक होने पर उसे रद्द कर सकता है। जब किसी व्यक्ति को एक बार लाइसेंस मिल जाता है और वह बंदूक खरीद लेता है, तो यह उसकी संपत्ति में से एक बन जाती है। वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता के आदेश पर सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा के उल्लंघन की कोई घटना इंगित नहीं की गई है। यहां तक कि याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई रिपोर्ट भी दर्ज नहीं की गई, जिससे यह पता चले कि उसने इस घटना में अपनी बंदूक का इस्तेमाल किया, जिससे सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा भंग हुई। भले ही कुछ रिपोर्ट दर्ज कराई गई हों लेकिन लाइसेंस रद्द करने के लिए यह पर्याप्त कारण नहीं कहा जा सकता।

5. कोई सकारात्मक घटना होनी चाहिए जिसमें याचिकाकर्ता ने भाग लिया और अपनी बंदूक का इस्तेमाल किया जिससे सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा भंग हुई। सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा की सुरक्षा के खिलाफ याचिकाकर्ता द्वारा बंदूक का उपयोग न करने की स्थिति में याचिकाकर्ता की बंदूक का लाइसेंस न तो निलंबित किया जा सकता था और न ही रद्द किया जा सकता था। लाइसेंसिंग प्राधिकारी के साथ-साथ आयुक्त ने शस्त्र अधिनियम की धारा 17 (3) (बी) के प्रावधानों की घोर अवहेलना करते हुए याचिकाकर्ता द्वारा रखी गई बंदूक का लाइसेंस रद्द करने में रिकॉर्ड पर त्रुटियां कीं। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए विवादित आदेश कायम नहीं रखा जा सकता और यह रद्द किये जाने योग्य है।"

19. **जागेश्वर बनाम यूपी राज्य और अन्य 2009 (67) एसीसी 157** में इस अदालत ने माना कि स्थापित कानून के मद्देनजर शस्त्र अधिनियम के तहत लाइसेंस को केवल आपराधिक मामले या आपराधिक मुकदमे में शामिल होने के आधार पर निलंबित नहीं किया जा सकता है या केवल लाइसेंसधारी द्वारा आग्नेयास्त्र के दुरुपयोग की आशंका के आधार पर।

20. **सूर्य नारायण मिश्रा बनाम यूपी राज्य और अन्य, 2015 (7) एडीजे 510** में, इस न्यायालय द्वारा बाद के निर्णयों पर भरोसा करते हुए इसी तरह का दृष्टिकोण लिया गया है। निर्णय का पैरा-14 पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"14. राज कुमार वर्मा बनाम स्टेट ऑफ यूपी 2013 (80) एसीसी 231 के मामले में इस अदालत ने पैरा नंबर 3 में निम्नानुसार कहा: -

"कारण बताओ नोटिस जारी करने, निलंबन और अंततः लाइसेंस रद्द करने का आधार यह है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ एक आपराधिक मामला दर्ज किया गया था। जिला मजिस्ट्रेट ने यह भी माना है कि याचिकाकर्ता को जमानत पर रिहा कर दिया गया है। उन्होंने यह भी कहा है कि यदि लाइसेंस बरकरार रहता है, तो याचिकाकर्ता सार्वजनिक

शांति और शांति को भंग कर सकता है। कमिश्नर ने भी यही निष्कर्ष दिया है, इस तथ्य से बेपरवाह कि यह न्यायालय देश के कानून को दोहरा रहा है, लेकिन प्रशासनिक अधिकारियों के बहरे कान देश के कानून के आगे झुकने को तैयार नहीं हैं। स्थापित कानून यह है कि किसी आपराधिक मामले में शामिल होने मात्र से यह पता नहीं चलता कि ऐसे आपराधिक मामले में शामिल होना सार्वजनिक शांति के लिए हानिकारक होगा और शांति के लिए सशस्त्र लाइसेंस रद्द करने का आधार नहीं बनेगा। राम सुचि बनाम आयुक्त, देवीपाटन मंडल की रिपोर्ट 2004 (22) एलसीडी 1643 में, यह माना गया कि इस कानून पर बलराम सिंह बनाम यूपी 2006 (24) एलसीडी 1359 के मामले में भरोसा किया गया था। बिना तथ्य के मात्र आशंका मात्र एक राय है जिसके खड़े होने के लिए कोई पैर नहीं हैं। एक लोक सेवक के रूप में कार्य करते समय व्यक्तिगत सनक को प्रतिबिंबित करने की अनुमति नहीं है।"

21. **रघुवीर सिंह बनाम आयुक्त और अन्य, 2020 एससीसी ऑनलाइन सभी 192** में शस्त्र लाइसेंस रद्द करने के संबंध में कानून के निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किए गए हैं:

"(i) शस्त्र अधिनियम, 1959 में निहित प्रावधानों के अनुसार तत्कालीन अधिकारियों द्वारा दिए गए आग्नेयास्त्र लाइसेंस रखने का अधिकार एक व्यक्ति का एक मूल्यवान अधिकार है।

(ii) लाइसेंसिंग प्राधिकारी के पास हथियार के लाइसेंस को निलंबित या रद्द करने की शक्ति केवल तभी होती है जब शस्त्र अधिनियम की धारा 17 की उपधारा (3) के उप-खंड (ए) से (ई) में उल्लिखित कोई भी शर्त मौजूद हो।

(iii) अधिनियम की धारा 17 के प्रावधानों को मनमाने तरीके से हल्के ढंग से लागू नहीं किया जा सकता है।

(iv) यदि सार्वजनिक शांति की सुरक्षा के लिए या सार्वजनिक सुरक्षा के लिए लाइसेंस को निलंबित या रद्द करना आवश्यक है तो लाइसेंसिंग प्राधिकारी को खुद को संतुष्ट करना होगा।

(v) लाइसेंसिंग प्राधिकारी की ऐसी संतुष्टि आदेश में व्यक्त की जानी चाहिए और प्रासंगिक सामग्री पर आधारित होनी चाहिए।

(vi) सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा का मतलब कानून और व्यवस्था की सामान्य गड़बड़ी नहीं है। सार्वजनिक सुरक्षा का मतलब बड़े पैमाने पर जनता की सुरक्षा है, न कि केवल कुछ व्यक्तियों की।

(vii) किसी आपराधिक मामले में शामिल होने या उसके लंबित रहने मात्र से सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा प्रभावित नहीं होती है। प्रत्येक मामले में लाइसेंसिंग प्राधिकारी को यह निष्कर्ष दर्ज करना होगा कि कैसे और किन परिस्थितियों में हथियार लाइसेंस का कब्ज़ा सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा के लिए हानिकारक है।

(viii) केवल आग्नेयास्त्र के दुरुपयोग की आशंका या कि लाइसेंसधारी कमजोर वर्ग के व्यक्तियों को धमकी देगा, शस्त्र लाइसेंस रद्द नहीं किया जा सकता है। ऐसी कोई सकारात्मक घटना होनी चाहिए जिसमें लाइसेंसधारी ने भाग लिया हो या अपने हथियार का इस्तेमाल किया हो, जिससे सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा का उल्लंघन हुआ हो।

(ix) लाइसेंसधारी को आपराधिक मामले से बरी करने के बाद, हथियार लाइसेंस रद्द करने का आधार ही गायब हो जाता है।

22. इस मामले में याचिकाकर्ता के खिलाफ केवल एक आपराधिक मामला है जिसमें यह कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है कि याचिकाकर्ता ने कथित अपराध के लिए हथियार का इस्तेमाल किया है। इस बात का कोई जवाब नहीं है कि याचिकाकर्ता का गांव और इलाका नक्सल प्रभावित क्षेत्र में नहीं आता है. यदि याचिकाकर्ता नक्सल प्रभावित क्षेत्र में रह रहा है तो निश्चित रूप से उसे लाइसेंस प्राप्त हथियार की आवश्यकता होगी। उत्तरदाताओं ने इस बात का कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है कि याचिकाकर्ता का पूर्व आपराधिक इतिहास रहा है और वह आपराधिक प्रकृति का व्यक्ति है। उपर्युक्त न्यायिक उदाहरणों में यह व्यवस्था दी गई है कि किसी मामले के लंबित रहने मात्र से शस्त्र लाइसेंस रद्द करने का आधार नहीं बनता है। प्राय: देखा जाता है कि अपराध आम तौर पर लाइसेंसी हथियारों से नहीं किये जाते हैं, बल्कि आम तौर पर बिना लाइसेंस वाले देश-निर्मित आग्नेयास्त्रों के इस्तेमाल से अपराध किये जाते हैं, इसलिए केवल एक मामले के लंबित होने और आशंका के आधार पर हथियार का लाइसेंस रद्द नहीं किया जा सकता है।

23. इस मामले में पहले 10.11.2006 को याचिकाकर्ता के लाइसेंस नंबर 303P11SBBL गन नंबर 15868 को रद्द करने के संबंध में आदेश दिनांक 17.02.1999 और आयुक्त के आदेश दिनांक 06.01.2004 के संचालन पर रोक लगा दी गई थी और यह भी निर्देश दिया गया कि रिट याचिका का निपटारा होने तक याचिकाकर्ता का लाइसेंस उसे बहाल कर दिया जाएगा। मूल आदेश इस प्रकार है:-

"इस न्यायालय द्वारा विद्वान स्थायी अधिवक्ता को जवाबी हलफनामा दायर करने के आदेश के बावजूद, कोई जवाबी हलफनामा दायर नहीं किया गया है।

स्वीकार करते हैं।

इस न्यायालय के अगले आदेश तक, याचिकाकर्ता के लाइसेंस संख्या 303P11SBBL गन संख्या 15868 के लाइसेंस को रद्द करने के मामले में जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित संचालन आदेश दिनांक 17.2.1999 और आयुक्त, वाराणसी क्षेत्र, वाराणसी द्वारा पारित आदेश दिनांक 6.1.2004 पर रोक रहेगी और यह भी निर्देशित किया

जाता है कि रिट याचिका का निपटारा होने तक याचिकाकर्ता का लाइसेंस उसे बहाल कर दिया जाएगा।"

24. इस न्यायालय के उपरोक्त आदेश से यह निष्कर्ष निकलता है कि याचिकाकर्ता का शस्त्र लाइसेंस अभी भी जीवित है और जारी है। इसलिए, लाइसेंस के पुनरुद्धार के अनुदान के लिए एक नया आवेदन दायर करने के लिए आदेश पारित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस न्यायालय का मानना है कि दोनों विवादित आदेश कानून की नजर में स्पष्ट त्रुटि से ग्रस्त हैं और रद्द किये जाने योग्य हैं।

<u>आदेश</u>

25. याचिका स्वीकार की जाती है। जिला मजिस्ट्रेट, गाज़ीपुर/लाइसेंसिंग प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.02.1999 और अपीलीय प्राधिकारी/आयुक्त, वाराणसी क्षेत्र, वाराणसी का आदेश दिनांक 06.01.2004 को रद्द किया जाता है।

26. यदि शस्त्र लाइसेंस चालू है तो उसे जारी रखा जायेगा तथा मौजूदा कानून के अनुसार समय-समय पर नवीनीकरण कराया जायेगा। यदि इसे बंद कर दिया गया है और नवीनीकृत नहीं किया गया है, तो उस स्थिति में याचिकाकर्ता जिला मजिस्ट्रेट, गाजीपुर के समक्ष एक आवेदन दाखिल करेगा जो इस फैसले में की गई टिप्पणियों के अनुसार याचिकाकर्ता के आवेदन पर निर्णय करेगें।

(2023) 1 ILRA 214
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक:इलाहाबाद 06.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चन्द्र शर्मा,

रिट – सी संख्या - 9616/2022

धामपुर शुगर मिल्स लिमिटेड और एक अन्य ... याची
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य ... प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के वकील:
राहुल अग्रवाल

प्रतिवादी के वकील:
सी.एस.सी., ए.एस.जी.आई., अदित्य कुमार सिंह, आयुष गर्ग, के.के. राव, राकेश पांडे (वरिष्ठ अधिवक्ता), रवींद्र सिंह

(ए) सिविल कानून – गन्ना (नियंत्रण) आदेश, 1966 - आदेश 6-ए - 15 किलोमीटर के दायरे में दो चीनी मिलों की स्थापना पर प्रतिबंध, आदेश 6-बी – औद्योगिक उद्यमी ज्ञापन दाखिल करने के लिए आवश्यकताएँ - आदेश 6-सी - वाणिज्यिक उत्पादन कब शुरू करना है आदि की समय सीमा – उ.प्र. गन्ना (आपूर्ति और खरीद का विनियमन) अधिनियम, 1953 - धारा 2 (ए), 2 (आई), 2 (एन) - "आरक्षित क्षेत्र" - "निर्धारित क्षेत्र" "पेराई सीजन" 'बंधन नीति' 'आरक्षण आदेश' - "आहरण प्रतिशत" "क्रशिंग क्षमता" - "आर्थिक कारण", भारत की रक्षा नियम, 1962 - नियम 125-बी - आरक्षित क्षेत्र और एक निर्दिष्ट क्षेत्र की घोषणा – यू.पी. गन्ना (आपूर्ति और खरीद का विनियमन) नियम, 1954 - नियम 22

(बी) किसी विशेष चीनी कारखाने को आवंटित आरक्षित क्षेत्र और निर्दिष्ट क्षेत्र – विचाराधीन पहलू - (i) निकासी क्षमता; (ii) कुचलने की क्षमता; (iii) चीनी कारखाने का पिछला प्रदर्शन। (पैरा-39)

निरस्त करना - 'अनापत्ति प्रमाण पत्र' देना और "औद्योगिक उद्यमी ज्ञापन" जारी करना - आधार - प्रस्तावित चीनी मिल और मौजूदा चीनी मिलों के मध्य की दूरी – योजना का उल्लंघन – याचिकाकर्ता को आवंटित भूमि – 46705 हेक्टेयर – क्विंटल, 401.20 लाख आवंटित गन्ना – वास्तविक रूप से कुचला हुआ केवल 231.63 लाख क्विंटल - मौजूदा कारखानों (याचिकाकर्ताओं) को बहुत अधिक गन्ने की फसल आवंटित की गई - आवंटित गन्ने में से केवल एक निश्चित हिस्सा वास्तव में याचिकाकर्ताओं द्वारा खरीदा गया था - गन्ना आयुक्त ने चीनी कारखाने की क्षमता को ध्यान में रखा था - तदनुसार आरक्षित क्षेत्र और आवंटित क्षेत्र आवंटित किया - याचिकाकर्ता यह सोचना कि नई चीनी मिल लगने पर गन्ने की उपलब्धता नहीं होगी, केवल एक आशंका है। **(पैरा - 1, 38, 41, 45,)**

आयोजित:- नई चीनी फैक्ट्री स्थापित करने के सरकार के नीतिगत निर्णय में न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि प्रत्येक फैक्ट्री का अपना आरक्षित क्षेत्र और कच्चा माल होगा। **(पैरा-48,49)**

याचिका खारिज। (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. ओजस इंडस्ट्रीज प्रा. लिमिटेड बनाम अवध शुगर मिल्स लिमिटेड, (2007) 4 एससीसी 723
2. एफ.आर.ओ.ए. और अन्य बनाम भारत संघ, (2003) 4 एससीसी 289

3. बाल्को कर्मचारी संघ बनाम भारत संघ (यू.ओ.आई.) एवं अन्य, (2002) 2 एससीसी 333
4. पी.टी.आर. एक्सपोर्ट्स (मद्रास) प्रा. लिमिटेड एवं अन्य बनाम भारत संघ (यूओआई) एवं अन्य, (1996) 5 एससीसी 268
5. प्राग आइस एंड ऑयल मिल्स एवं अन्य बनाम भारत संघ (यू.ओ.आई.), (1978) 3 एससीसी 459
6. आर.के. गर्ग एवं अन्य बनाम भारत संघ (यू.ओ.आई.) एवं अन्य (1981) 4 एससीसी 675
7. धामपुर शुगर (काशीपुर) लिमिटेड बनाम उत्तरांचल राज्य एवं अन्य, (2007) 8 एससीसी 418
8. उगर शुगर वर्क्स लिमिटेड बनाम दिल्ली प्रशासन एवं अन्य, (2001) 3 एससीसी 635
9. श्री सीतार्म शुगर कंपनी लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, (1990) 3 एससीसी 223
10. टी.एन. शिक्षा विभाग मंत्रिस्तरीय एवं सामान्य अधीनस्थ सेवाएं एसो. बनाम तमिलनाडु राज्य (1980) 3 एससीसी 97
11. लेकर एयरवेज लिमिटेड बनाम विभाग व्यापार (1977) 2 डब्लूएलआर 234
12. एपीएम टर्मिनल्स बीवी बनाम भारत संघ, (2011) 6 एससीसी 756
13. धामपुर शुगर (काशीपुर) लिमिटेड बनाम उत्तरांचल राज्य एवं अन्य, (2007) 8 एससीसी 418
14. सुनील कुमार शर्मा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2018) 9 एडीजे 806 (डीबी)
15. शिवशक्ति शुगर्स लिमिटेड बनाम श्री रेणुका शुगर लिमिटेड, (2017) 7 एससीसी 729

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा
और
माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह द्वारा प्रदत्त)

यह रिट याचिका उत्प्रेषण की रिट जारी करने के लिए दायर की गई है, जिसमें 'अनापत्ति प्रमाण पत्र"[1] दिनांक 14.9.2021 जो गन्ना आयुक्त द्वारा प्रतिवादी संख्या 4 को जारी किया गया है को रद्द करने की बात की गई है और "औद्योगिक उद्यमी ज्ञापन"[2] जिसे प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा 12.10.2021 को दायर किया गया है और उसी तारीख को उद्योग और आंतरिक व्यापार संवर्धन विभाग द्वारा स्वीकार किया गया है। को भी रद्द करने की बात है।

ऐसा प्रतीत होता है कि चीनी कारखाने की स्थापना के लिए जब प्रतिवादी संख्या 4- मेसर्स बिंदल पेपर लिमिटेड ने 7.9.2021 को एनओसी मांगी थी, तो प्रतिवादी नंबर 4 के मामले पर विचार करने के बाद, गन्ना आयुक्त, उत्तर प्रदेश सरकार लखनऊ ने 14.9.2021 को एनओसी जारी की थी और एनओसी में विस्तार से बताया था कि प्रस्तावित चीनी कारखाने से भारतीय सर्वेक्षण विभाग, देहरादून के अनुसार, निकटतम चीनी मिलें इस प्रकार थी:-

(1) वेव इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड, गांव मलेशिया धनौरा, जिला अमरोहा (24.6 कि.मी.)

(i) दीवान शुगर मिल्स लिमिटेड, जिला मुरादाबाद (31.3 किमी)

(ii) धामपुर शुगर मिल्स लिमिटेड, यूनिट धामपुर, जिला बिजनौर (21.1 किमी)

(iv) पी.बी.एस. फूड्स प्राइवेट लिमिटेड, चंदनपुर, जिला बिजनौर (17.5 किमी)

(v) अपर गंगा शुगर एंड इंडस्ट्रीज लिमिटेड, सियोहारा, जिला बिजनौर (16.9 कि.मी.)

इसके बाद, आयुक्त ने कहा था कि मेसर्स बिंदल पेपर्स लिमिटेड को आईईएम जारी करने के लिए मैसर्स बिंदल पेपर्स लिमिटेड को एनओसी जारी की जा रही थी।

याचिकाकर्ता नंबर 1 जो धामपुर शुगर मिल्स लिमिटेड है, भारतीय सर्वेक्षण विभाग, देहरादून की सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार प्रस्तावित चीनी मिल से 21.1 किलोमीटर दूर था और याचिकाकर्ता नंबर 2- अवध शुगर एंड एनर्जी लिमिटेड जिसे एनओसी में अपर गंगा शुगर एंड इंडस्ट्रीज लिमिटेड, सियोहारा, जिला बिजनौर के रूप में उल्लिखित किया गया है, प्रतिवादी नंबर 4 की प्रस्तावित चीनी मिल से 16.9 किलोमीटर दूर था। चीनी कारखानों की स्थापना केंद्र और राज्य सरकार दोनों द्वारा विनियमित की जाती है। भारत सरकार ने भारत के राजपत्र (असाधारण) 1966 में प्रकाशित अपनी अधिसूचना द्वारा गन्ना (नियंत्रण) आदेश, 1966[3] और आदेश 6-ए के अनुसार, पंद्रह किलोमीटर के दायरे में दो चीनी कारखानों की स्थापना का प्रतिबंध था।

सुविधा के लिए, 1966 के आदेश के आदेश 6-ए को यहां निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

6-क. 15 किलोमीटर के दायरे में दो चीनी कारखानों की स्थापना पर प्रतिबंध खंड 6 में निहित किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य या दो या अधिक राज्यों में किसी मौजूदा चीनी कारखाने या किसी अन्य नए चीनी कारखाने

---

1 1 इसके बाद इसे इस रूप में संदर्भित किया जाता है एनओसी

2 2 'इसके बाद इसे इस रूप में संदर्भित किया जाता है आईईएम

3 3इसके बाद इसे इस रूप में संदर्भित किया जाता है 1966 का आदेश

के 15 किलोमीटर के दायरे में कोई नया चीनी कारखाना स्थापित नहीं किया जाएगा:
परन्तु राज्य सरकार केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन से जहां वह लोकहित में आवश्यक और समीचीन समझे अपने-अपने राज्यों के विभिन्न क्षेत्रों के लिए 15 किमी से अधिक या 15 किमी से कम की अन्य न्यूनतम दूरी अधिसूचित कर सकेगी।

स्पष्टीकरण 1- एक मौजूदा चीनी कारखाने का अर्थ परिचालन में एक चीनी कारखाना होगा और इसमें एक चीनी कारखाना भी शामिल होगा जिसने चीनी कारखाना स्थापित करने के लिए स्पष्टीकरण 4 में निर्दिष्ट सभी प्रभावी कदम उठाए हैं, लेकिन एक चीनी कारखाने को शामिल नहीं किया है जिसने पिछले पांच चीनी सत्रों से अपना पेराई संचालन नहीं किया है।

स्पष्टीकरण 2. एक नए चीनी कारखाने का अर्थ एक चीनी कारखाना होगा, जो मौजूदा चीनी कारखाना नहीं है, लेकिन केंद्र सरकार में औद्योगिक नीति और संवर्धन विभाग, वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय द्वारा निर्धारित औद्योगिक उद्यमी ज्ञापन दायर किया है और मुख्य निदेशक (चीनी) को एक करोड़ रुपये की प्रदर्शन गारंटी प्रस्तुत की है। खाद्य और सार्वजनिक वितरण विभाग, उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्रालय खंड 6-ग में विनिदष्ट निर्धारित समय या विस्तारित समय के भीतर औदयोगिक उद्यमी जापन के कार्यान्वयन के लिए।

स्पष्टीकरण 3. न्यूनतम दूरी का निर्धारण भारतीय सर्वेक्षण द्वारा मापे गए अनुसार किया जाएगा।

स्पष्टीकरण 4 प्रभावी कदमों का अर्थ होगा चीनी कारखाने की स्थापना के लिए औद्योगिक उद्यमी जापन को कार्यान्वित करने के लिए संबंधित व्यक्ति द्वारा उठाए गए निम्नलिखित कदम।
(a) कारखाने के नाम पर आवश्यक भूमि की खरीद;
(b) कारखाने के लिए संयंत्र और मशीनरी की खरीद के लिए फर्म ऑर्डर का प्लेसमेंट और आवश्यक अग्रिम का भुगतान या आपूर्तिकर्ताओं के साथ अपरिवर्तनीय साख पत्र खोलना;
(c) सिविल कार्य की शुरुआत और कारखाने के लिए भवन का निर्माण,
(d) बैंकों या वित्तीय संस्थानों से अपेक्षित सावधि ऋणों की मंजूरी,
(e) इस संबंध में केन्द्र सरकार द्वारा अधिसूचना के द्वारा निर्धारित कोई अन्य कदम।

1966 के आदेश के आदेश 6-बी के अनुसार, जब किसी चीनी कारखाने की नई इकाई स्थापित की जानी थी, तो उसे गन्ना आयुक्त या निदेशक (चीनी) या संबंधित राज्य सरकार के निर्दिष्ट प्राधिकारी से एनओसी प्राप्त करना था, जिसमें विशेष रूप से यह उल्लेख किया गया था कि प्रस्तावित कारखाने और आसन्न चीनी कारखाने के बीच की दूरी किसी भी तरह से केन्द्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम दूरी से कम नहीं थी। संबंधित गन्ना आयुक्त द्वारा एनओसी दिए जाने के बाद नए कारखाने को इस तरह का प्रमाण पत्र जारी होने के एक महीने के भीतर अपना आईईएम केंद्र सरकार को देना था। जब भी आईईएम प्रस्तुत किया गया था, औद्योगिक कंपनी जो नया कारखाना खोलना था, को प्रमुख को निदेशक (चीनी). उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्रालय, नई दिल्ली और सार्वजनिक वितरण आईईएम दाखिल करने के 30 दिनों के भीतर जो आईईएम के कार्यान्वयन के लिए एक गारंटी होनी थी। 1 करोड़ रुपये की निष्पादन गारंटी प्रस्तुत करनी थी दूरी के संबंध में एनओसी प्राप्त करने की आवश्यकता और आईईएम जमा करने की आवश्यकता और प्रदर्शन गारंटी जमा करने की आवश्यकता 1966 के आदेश के आदेश 6-बी में विहित की गई है।

सुविधा के लिए, 1966 के आदेश के आदेश 6-बी को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

6-ख. औद्योगिक उद्यमी ज्ञापन दाखिल करने के लिए आवश्यकताएं (1) केन्द्रीय सरकार के पास औद्योगिक उद्यमी ज्ञापन दाखिल करने से पहले, संबंधित व्यक्ति संबंधित राज्य सरकार के गन्ना आयुक्त या निदेशक (चीनी) या विनिर्दिष्ट प्राधिकारी से यह प्रमाण पत्र प्राप्त करेगा कि जिस स्थल पर वह चीनी कारखाना स्थापित करने का प्रस्ताव करता है और निकटवर्ती मौजूदा चीनी कारखानों और नए चीनी कारखानों के बीच की दूरी केन्द्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम दूरी से कम नहीं है, जैसा भी मामला हो, और संबंधित व्यक्ति ऐसे प्रमाण पत्र जारी करने के एक महीने के भीतर केंद्र सरकार के साथ औद्योगिक उद्यमी जापन दायर करेगा और ऐसा नहीं करने पर प्रमाण पत्र की वैधता समाप्त हो जाएगी।
(2) औद्योगिक उद्यमी ज्ञापन दाखिल करने के बाद, संबंधित व्यक्ति मुख्य निदेशक (चीनी), खादय और सार्वजनिक वितरण विभाग, उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्रालय को एक करोड़ रुपये की निष्पादन गारंटी निर्धारित समय के भीतर या खंड 6-सी में निर्दिष्ट विस्तारित समय के भीतर औद्योगिक उद्यमी ज्ञापन के कार्यान्वयन के लिए गारंटी के रूप में औद्योगिक उद्यमी ज्ञापन दाखिल करने के तीस दिनों के भीतर प्रस्तुत करेगा। जहां तक इस आदेश के प्रावधानों का

संबंध है, औद्योगिक उद्यमी ज्ञापन की मान्यता रद्द कर दी जाएगी।

इसके बाद 1966 के आदेश के आदेश 6-सी के तहत समय सीमा प्रदान की गई है कि वाणिज्यिक उत्पादन कब तक शुरू होना था इत्यादि ।

इस मामले में जब प्रतिवादी संख्या 4 को 1966 के आदेश के आदेश 6-बी के प्रावधानों के अनुसार एनओसी मिल गया था और उसने अपना आईईएम भी प्रस्तुत किया था जिसे केंद्र सरकार द्वारा स्वीकार किया गया था, याचिकाकर्ताओं को आशंका थी कि नए कारखाने के खुलने से उनके कारखानों में गन्ने की कमी हो जाएगी। उन्होंने दिनांक 4.2.2022 को मुख्य निदेशक (चीनी) भारत सरकार, उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्रालय, कृषि भवन, नई दिल्ली के समक्ष प्रतिवादी संख्या 4 के पक्ष में एनओसी प्रदान करने और आईईएम की पावती के खिलाफ संयुक्त रूप से आपत्ति / अभ्यावेदन दायर किया।

यह याचिकाकर्ताओं का मामला है कि मंत्रालय उपभोक्ता मामलों ने गन्ना आयुक्त, उत्तर प्रदेश राज्य को सूचित किया कि गन्ना आयुक्त को याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन 24.2.2022 पर अपनी टिप्पणी प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। हालांकि, गन्ना आयुक्त ने जब किसानों के अभ्यावेदन पर कोई कार्रवाई नहीं की। तब याचिकाकर्ताओं द्वारा यह रिट याचिका दायर की गई थी।

याचिकाकर्ताओं के वकील ने 14.9.2021 को एनओसी देने और उसके बाद 12.10.2021 को आईईएम जारी करने को अनिवार्य रूप से इस आधार पर चुनौती दी है कि एनओसी और आईईएम जारी करने से पहले, प्रतिवादियों ने विशेष रूप से गन्ना आयुक्त ने इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया कि एक बार जब नया चीनी कारखाना स्थापित किया जाएगा, तो क्या याचिकाकर्ताओं को चीनी कारखाना चलाने के लिए पर्याप्त गन्ना उपलब्ध होगा?

याचिकाकर्ताओं के वकील ने तर्क दिया है कि जब कोई चीनी कारखाना होता है, तो उसे गन्ने की आपूर्ति की जानी चाहिए ताकि कारखाने को कच्चे माल की कमी न हो जो गन्ना है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि राज्य ने विभिन्न चीनी कारखानों को गन्ने की आपूर्ति को विनियमित किया है और इस उद्देश्य के लिए विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि "पेराई सत्र शुरू होने से पहले "आरक्षित क्षेत्र और "निर्दिष्ट क्षेत्र" घोषित किया जाता है। विद्वान वकील ने सूचित किया कि पेराई सत्र की धारा 2 (आई) **उ.प्र. गन्ना (आपूर्ति और खरीद का विनियमन) अधिनियम, 1953**[4] में दी गई परिभाषा के अनुसार एक पेराई सत्र शुरू होता है। हर साल 1 अक्टूबर को और अगले साल 15 जुलाई को समाप्त होता है। याचिकाकर्ताओं के वकील ने प्रस्तुत किया कि उत्तर प्रदेश अधिनियम 1953 की धारा 2 (एन) के अनुसार, 'आरक्षित क्षेत्र का मतलब भारत के रक्षा नियम, 1962 के नियम 125-बी के तहत गन्ना क्षेत्रों के आरक्षण के आदेश के तहत एक कारखाने के लिए आरक्षित क्षेत्र होगा और जब ऐसा कोई आदेश लागू नहीं है, उत्तर प्रदेश अधिनियम 1953 की धारा 15 के तहत किए गए आदेश में निर्दिष्ट क्षेत्र और 'निर्दिष्ट क्षेत्र का अर्थ है, यूपी अधिनियम 1953 की धारा 2 (ए) के परिभाषा खंड के अनुसार, यूपी अधिनियम 1953 की धारा 15 के तहत एक कारखाने को सौंपा गया क्षेत्र ।

याचिकाकर्ताओं के वकील ने प्रस्तुत किया कि उत्तर प्रदेश अधिनियम 1953 की धारा 15 के अनुसार, गन्ना आयुक्त, कारखाने और गन्ना उत्पादकों की सहकारी समिति से परामर्श करने के बाद, एक या अधिक पेराई सत्रों के दौरान धारा 16 के प्रावधानों के अनुसार किसी कारखाने को गन्ने की आपूर्ति के प्रयोजनों के लिए किसी भी क्षेत्र को आरक्षित करेंगे। उचित समझ के लिए, 1953 अधिनियम की धारा 15 को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है-

15. आरक्षित क्षेत्र और सौंपे गए क्षेत्र की घोषणा:- (1) धारा 16 की उपधारा (2) के खंड (घ) के अधीन किए गए किसी आदेश के प्रति पूर्वाग्रह के बिना, गन्ना आयुक्त कारखाना और गन्ना उत्पादकों की सहकारी समिति से परामर्श करने के बाद विहित रीति से

(a) किसी भी क्षेत्र को आरक्षित करें (इसके बाद आरक्षित क्षेत्र कहा जाता है) और

(b) किसी भी क्षेत्र को निर्दिष्ट करें (इसके बाद एक निर्दिष्ट क्षेत्र कहा जाता है)। धारा 16 के प्रावधानों के अनुसार एक या अधिक पेराई सत्रों के दौरान किसी कारखाने को गन्ने की आपूर्ति के प्रयोजनों के लिए, जैसा कि निर्दिष्ट किया जा सकता है और इसी तरह किसी भी समय ऐसे आदेश को रद्द कर सकता है या इस तरह आरक्षित या सौंपे गए क्षेत्र की सीमाओं को बदल सकता है।

(2) जहां किसी क्षेत्र को कारखाने के लिए आरक्षित क्षेत्र के रूप में घोषित किया गया है. ऐसे कारखाने का कब्जाधारक, यदि गन्ना आयुक्त द्वारा निर्देशित किया जाता है, तो उस क्षेत्र में उगाए गए सभी गन्ने खरीदेगा, जिसे कारखाने को बिक्री के लिए पेश किया जाता है।

(3) जहां किसी क्षेत्र को कारखाने के लिए निर्दिष्ट क्षेत्र के रूप में घोषित किया गया है, ऐसे कारखाने का कब्जाधारी उस क्षेत्र में उगाए गए गन्ने की ऐसी मात्रा खरीदेगा और कारखाने को

4 4इसके बाद इसे इस रूप में संदर्भित किया जाता है◌ै ◌ै◌ै◌ै◌ै◌ै यू.पी. अधिनियम 1953

बिक्री के लिए पेश करेगा जैसा कि गन्ना आयुक्त द्वारा निर्धारित किया जा सकता है।

(4) गन्ना आयुक्त द्वारा उप-धारा (1) के तहत पारित किया गए आदेश के खिलाफ राज्य सरकार को अपील की जायेगी।

याचिकाकर्ताओं के वकील ने आगे कहा कि 'आरक्षित क्षेत्र और निर्दिष्ट क्षेत्र घोषित करने से पहले, राज्य एक बॉन्डिंग पॉलिसी के माध्यम से, जो एक दस्तावेज था जिसके द्वारा गन्ना आयुक्त (खरीद) यह आकलन करेगा कि गन्ना किस क्षेत्र में गन्ना उगाया जा रहा था, किन किसानों को किस गन्ना सहकारी समिति को आपूर्ति करनी थी और कौन से सभी गन्ना सहकारी समितियों को एक विशेष कारखाने को गन्ने की आपूर्ति करनी थी। वकील ने कहा कि 'बॉन्डिंग पॉलिसी के अनुसार, आरक्षित क्षेत्र घोषित किया गया था। इस मामले में याचिकाकर्ताओं के वकील ने प्रस्तुत किया, जब वर्ष 2020-21 के लिए आरक्षण आदेश जारी किया गया था, तो याचिकाकर्ता नंबर 1 के कारखाने के आसपास के क्षेत्र को देखने के बाद, यह पता लगाया गया था कि 47464 हेक्टेयर भूमि जिसके द्वारा 414.76 लाख क्विंटल गन्ना उपलब्ध होगा याचिकाकर्ता नंबर 1 के लिए आरक्षित किया जाएगा और इस क्षेत्र में आरक्षित क्षेत्र और निर्दिष्ट क्षेत्र शामिल होगा। याचिकाकर्ता संख्या 2 के लिए, यह घोषित किया गया था कि 42958 हेक्टेयर इसके लिए आरक्षित होगा और इसमें आरक्षित क्षेत्र और निर्दिष्ट क्षेत्र शामिल होगा और इससे याचिकाकर्ता नंबर 2 को 366.45 लाख क्विंटल गन्ना मिलेगा। याचिकाकर्ताओं के वकील ने अदालत को आगे सूचित किया कि जिस समय गन्ना आयुक्त द्वारा बॉन्डिंग नीति जारी की जाती है. ड्रॉल प्रतिशत कुल गन्ने का निर्धारण भी कर दिया गया था। उन्होंने बताया कि ड्रॉल प्रतिशत गन्ने का प्रतिशत है जो आरक्षण के बावजूद कारखाने में पहुंच रहा है। याचिकाकर्ताओं के वकील के अनुसार, वर्ष 2020-21 के लिए याचिकाकर्ता संख्या 1 का ड्रॉल प्रतिशत 61.77% और याचिकाकर्ता नंबर 2 के लिए यह 53.76% था।

याचिकाकर्ताओं के वकील ने आगे बताया कि हर कारखाने में एक फैक्ट्री की "पेराई क्षमता" थी और उन्होंने सूचित किया कि याचिकाकर्ता नंबर 1 प्रति दिन 14000 टन की सीमा तक गन्ना पेराई कर सकता था और इसी तरह याचिकाकर्ता नंबर 2 के लिए यह प्रति दिन 13000 टन था। याचिकाकर्ताओं के वकील ने अदालत को यह भी सूचित किया कि जब उत्तर प्रदेश अधिनियम 1953 की धारा 15 के तहत आरक्षण आदेश जारी किया गया था, तो आरक्षित और सौंपे गए क्षेत्र में गन्ने को ध्यान में रखा गया था जो कारखाने तक पहुंचेगा और क्या यह पेराई क्षमता के लिए पर्याप्त होगा। यह देखना अधिकारियों का कर्तव्य था कि आहरण क्षमता के अनुसार कारखाने में पेराई क्षमता हो। इसलिए, विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि जब भी गन्ना आयुक्त द्वारा एनओसी प्रदान की जाती है। दूरी और जब भी आईईएम जारी किया जाता है तो मानदंड जैसा कि नियम 22 3000 गन्ना (प्रदाय एवं क्रय विनियमन) नियमावली, 1954[5] में दिया गया है। इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए। फिर भी, उन्होंने प्रस्तुत किया है कि एनओसी देने से पहले, आयुक्त को पड़ोसी कारखानों को व्यक्तिगत सुनवाई देनी थी। इसके अलावा, उन्होंने तर्क दिया है कि आईईएम और एनओसी जारी करने से पहले एक सक्रिय अभ्यास किया जाना चाहिए था, जिसमें यह देखा जा सकता था कि इस तथ्य के संबंध में वास्तविक मस्तिष्क का प्रयोग करना था कि पड़ोसी मौजूदा चीनी कारखानों के लिए पर्याप्त गन्ना उपलब्ध होगा। याचिकाकर्ताओं के वकील ने आगे कहा कि यदि ड्रॉल क्षमता उतनी ही कम थी जितनी बॉन्डिंग नीतियों आदि में ध्यान दिया गया था, तो भले ही याचिकाकर्ता नंबर 1 को **414.76** लाख क्विंटल गन्ना **7464** हेक्टेयर भूमि से और याचिकाकती संख्या 2 को 366.45 लाख क्विंटल गन्ने **42958** हेक्टेयर भूमि से आवंटन किया गया था, गन्ना जो वास्तव में याचिकाकर्ताओं तक पहुंचना था, सुनिश्चित गन्ने से बहुत कम हो सकता है।

याचिकाकर्ता के वकील ने प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा दायर जवाबी हलफनामे के जवाब में दायर प्रत्युत्तर हलफनामे में पृष्ठ 38 पर दिया है कि वर्ष 2019-20, 2020-21 और 2021-22 में याचिकाकर्ता संख्या 1 और 2 के लिए कितना क्षेत्र आरक्षित था। तालिका के प्रासंगिक भाग को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

वर्ष 2019-20

क्रम सं.	फैक्टरी का नाम	गन्ना क्षेत्र (हेक्टेयर में)	आवंटित उत्पादन (लाख कुन्तल)	क्रशिंग (लाख कुन्तल)	ड्रॉल %
1.	धामपुर	46705	401.20	231.63	57.73
2.	सिहोरा	40034	336.24	214.50	63.79

वर्ष 2020-21

क्रम सं.	फैक्टरी का नाम	गन्ना क्षेत्र (हेक्टेयर में)	आवंटित उत्पादन (लाख कुन्तल)	क्रशिंग (लाख कुन्तल)	ड्रॉल %
1.	धामपुर	46786	386.76	238.92	61.77
2.	सिहोरा	48139	406.00	218.25	53.76

वर्ष 2021-22

5 5इसके बाद इसे इस रूप में संदर्भित किया जाता है **1954 के नियम**

क्रम सं.	फैक्टरी का नाम	गन्ना क्षेत्र (हेक्टेयर में)	आवंटित उत्पादन 3 (लाख कुन्तल)	क्रशिंग (लाख कुन्तल)	ड्रॉल %
1.	धामपुर	47464	414.76	244.29	58.90
2.	सिहोरा	31878	366.45	216.96	59.21

याचिकाकर्ताओं के वकील ने तर्क दिया है कि सभी तीन पेराई सत्रों में भले ही आवंटित गन्ना बहुत अधिक हुआ करता था, लेकिन याचिकाकर्ताओं के कारखाने में पहुंचने वाला वास्तविक गन्ना बहुत कम था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि वर्ष 2019-20 में याचिकाकर्ता नंबर 1 के लिए हालांकि 401.20 लाख क्विंटल गन्ना आरक्षित किया गया था, लेकिन वास्तव में केवल 231.63 लाख क्विंटल गन्ने की पेराई की गई थी। इसी प्रकार वर्ष 2020-21 में याचिकाकर्ता क्रमांक 1 को 386.76 लाख क्विंटल का आवंटन किया गया था, लेकिन वह केवल 238.92 लाख क्विंटल पेराई कर सका और वर्ष 2021- 22 में हालांकि 414.76 लाख क्विंटल गन्ने का आवंटन किया गया था, लेकिन वह केवल 244.29 लाख क्विंटल ही पेराई कर सका। याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया कि इसी तरह याचिकाकर्ता नंबर 2 के लिए भले ही आवंटित गन्ना बहुत अधिक था, लेकिन कारखाने में आने वाला वास्तविक गन्ना कम मात्रा का था, यानी यह कहना कि याचिकाकर्ताओं ने उन्हें आवंटित मात्रा से कम मात्रा में गन्ने की पेराई की थी। याचिकाकर्ताओं के वकील ने प्रस्तुत किया कि यह इस तथ्य के कारण हुआ कि याचिकाकर्ताओं को आवंटित गन्ने की 100% मात्रा में से, कुल गन्ने का लगभग 20% सामान्य रूप से किसानों द्वारा कोल्हू या गुड़ इकाइयों को बेचा गया था, इसका 5% उनके द्वारा मवेशियों के चारे के लिए रखा गया था और 10-15% अगली फसलों के लिए बीज के रूप में उपयोग करने के लिए रखा गया था।

याचिकाकर्ताओं के वकील ने आगे कहा कि यदि प्रतिवादी नंबर 4 की दैनिक पेराई क्षमता 10000 टन थी और यदि 180 दिनों के लिए गन्ने की पेराई की जाती है, तो उसे न्यूनतम 180 लाख क्विंटल गन्ने की आवश्यकता होगी और यदि नए कारखाने के लिए ड्रॉल प्रतिशत देखा जाना चाहिए, तो उसे कम से कम 180 लाख क्विंटल गन्ने की आवश्यकता होगी। तब इसके लिए जो आवंटन किया जाना होगा वह 360 लाख क्विंटल तक पहुंच जाएगा और इसलिए, 87525 प्रति हेक्टेयर की औसत उपज वाले क्षेत्र के लिए प्रस्तावित चीनी मित्र की आवश्यकता को पूरा करने के लिए 41140 हेक्टेयर क्षेत्र की आवश्यकता होगी। वकील ने कहा कि गन्ना उगाने के लिए 41140 हेक्टेयर का अतिरिक्त क्षेत्र बिजनौर जिले या अमरोहा जिले या आसपास के किसी अन्य जिले में उपलब्ध नहीं है क्योंकि जहां तक गन्ना उगाने का संबंध है, आसपास के जिलों में क्षेत्र संतृप्ति के बिंदु पर पहुंच गए हैं। याचिकाकर्ताओं के वकील ने प्रस्तुत किया कि यदि 41140 हेक्टेयर खेती योग्य भूमि प्रतिवादी संख्या 4 के लिए आरक्षित की जाती है तो इससे मौजूदा चीनी मित्रों से गन्ने का डायवर्जन होगा और उनकी गन्ना आपूर्ति कम हो जाएगी। वास्तव में याचिकाकर्ताओं के वकील ने तर्क दिया कि यदि गन्ना उत्पादक क्षेत्रों को प्रतिवादी संख्या 4 के आरक्षित क्षेत्र में मोड़ दिया जाता है तो इससे याचिकाकर्ताओं के लिए आरक्षित क्षेत्र कम हो जाएगा। याचिकाकर्ताओं के वकील ने प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी संख्या 4 के लिए प्रस्तावित भूमि का आवंटन पहले मेसर्स लक्ष्मी शुगर मिल के लिए एक चीनी मित्र की स्थापना के लिए था, जिसे एक वाद में चुनौती दी गई थी और जब कोई निषेधाज्ञा नहीं दी गई थी, तो आदेश से प्रथम अपील संख्या 1077 वर्ष 2010 उच्च न्यायालय में दायर की गई थी। उस मामले में जब उच्च न्यायालय द्वारा निषेधाज्ञा दी गई थी, तो मामला सुप्रीम कोर्ट पहुंच गया जहां यह सिविल अपील संख्या 3281 वर्ष 2011 के रूप में लंबित था। सुप्रीम कोर्ट के आदेश में यह निर्देश दिया गया था कि मेसर्स लक्ष्मी शुगर मिल द्वारा किए गए निर्माण सुप्रीम कोर्ट में अपील के परिणाम के अधीन होंगे। याचिकाकर्ताओं के वकील ने तर्क दिया कि प्रतिवादी नंबर 4 द्वारा उसी स्थान पर अपनी चीनी मिल स्थापित करने के प्रयास और कुछ नहीं बल्कि सुप्रीम कोर्ट के आदेशों को दरकिनार करने का एक संदिग्ध तरीका था। फिर भी, याचिकाकर्ताओं के वकील ने तर्क दिया कि प्रतिवादी नंबर 4 को जारी किया गया आईईएम बिना किसी सोच-विचार के और सिर्फ इस तथ्य के आधार पर था कि एनओसी 14.9.2021 को जारी किया गया था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी संख्या 4 और याचिकाकर्ता के प्रयोजनों के लिए क्षेत्र में गन्ने की उपलब्धता का कोई मूल्यांकन नहीं किया गया था। याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील ने ओजस इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम अवध शुगर मिल्स लिमिटेड[6] में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर बहुत भरोसा किया है। और विशेष रूप से निर्णय के पैराग्राफ 30 पर भरोसा किया, जिसे यहां निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

> "गन्ना (नियंत्रण) (संशोधन) आदेश, 2006 गन्ना (नियंत्रण) आदेश, 1966 के खंड 6 में खंड 6-ए से 6-ई जोड़ता है। यह "दूरी की अवधारणा को बरकरार रखता है। "दूरी" की इस अवधारणा को आर्थिक कारणों से बनाए रखा जाना चाहिए। यह अवधारणा मांग और आपूर्ति पर आधारित है। इस अवधारणा को बनाए रखा जाना चाहिए क्योंकि गन्ना नामक संसाधन सीमित है। गन्ना एक असीमित संसाधन नहीं है "दूरी का अर्थ है चीनी मिल को किसान द्वारा आपूर्ति की जाने

---

6 6(2007) 4 एससीसी 723

वाली गन्ने की उपलब्ध मात्रा । दूसरी ओर, 1 करोड़ रुपये के लिए बैंक गारंटी दाखिल करना केवल प्रमाणिकता के प्रमाण के रूप में है। एक उद्यमी जो वास्तव में चीनी मिल स्थापित करने में रुचि रखता है, उसे 1 करोड़ रुपये की बैंक गारंटी देकर अपनी नेकनीयती साबित करनी होगी। इसके अलावा, बैंक गारंटी देना भी एक सबूत है कि व्यापारी के पास चीनी मिल (कारखाना) स्थापित करने की वित्तीय क्षमता है। इसलिए, बैंक गारंटी देने का दूरी प्रमाण पत्र से कोई लेना-देना नहीं है।
(जोर दिया गया)

राज्य प्रतिवादियों की ओर से पेश वकील श्री एके गोयल की सहायता से अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री मनीष गोयल ने प्रस्तुत किया कि इस क्षेत्र में पर्याप्त गन्ना उपलब्ध है और इसलिए, यदि एक नई चीनी मित्र स्थापित की जाती है तो इसमें कोई नुकसान नहीं है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि जब याचिकाकर्ता उस गन्ने की पेराई नहीं कर सकते थे जो उन्हें आरक्षित/सौंपे गए क्षेत्रों से उपलब्ध कराया जाना था, तो वे एक नए कारखाने की स्थापना के खिलाफ शिकायत नहीं कर सकते थे। उन्होंने आगे कहा कि इस तथ्य के बावजूद कि याचिकाकर्ताओं के लिए लगातार तीन वर्षों तक गन्ना क्षेत्रों में वृद्धि हुई थी, लेकिन दोनों याचिकाकर्ताओं के लिए ड्रॉल प्रतिशत कम हो गया था। वास्तव में वह कहते हैं कि हर साल पेराई क्षमता भी कम हो गई थी।

अतिरिक्त महाधिवक्ता ने आगे कहा कि हमेशा की तरह उस क्षेत्र में वृद्धि हुई थी जहां गन्ना उगाया जा रहा था. यह सामान्य रूप से जनता के हित में था कि अधिक चीनी कारखानों की स्थापना की जाए। उन्होंने अदालत का ध्यान आकर्षित किया "उत्तर प्रदेश गन्ना आपूर्ति और खरीद आदेश, 1954" विशेष रूप से, उन्होंने अदालत का ध्यान फॉर्म-सी की ओर आकर्षित किया जो गन्ना उत्पादकों की सहकारी समिति और कारखाने के कब्जेदार के बीच एक समझौता था और प्रस्तुत किया कि कारखाने के कब्जेदार ने केवल उस हद तक एक समझौता किया कि कारखाना क्रश कर सकता था। निश्चित रूप से, कारखाना ऐसा कोई समझौता नहीं करेगा जिसके द्वारा गन्ना अतिरिक्त होगा। इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि "आहरण क्षमता" की अवधारणा अस्तित्व में लाई गई। थी क्योंकि एक विशेष चीनी कारखाने द्वारा उपयोग किया जा रहा गन्ना केवल इसकी पेराई क्षमता तक सीमित था ।

अतिरिक्त महाधिवक्ता ने आगे कहा कि याचिकाकर्ताओं ने कहीं भी ऐसा कोई मामला नहीं दिया है कि उनकी गन्ना पेराई क्षमता उस गन्ने से अधिक थी जो उन्हें उपलब्ध कराया जा रहा था। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि यदि अधिक कारखानों की स्थापना की जाएगी, तो गन्ना जो याचिकाकर्ताओं के आरक्षित क्षेत्रों में उपलब्ध था और जो उनकी कम आहरण क्षमता के कारण उनके द्वारा उपयोग नहीं किया जा रहा था, उसे सार्वजनिक हित में नए कारखानों में भेजा जा सकता है। उन्होंने आगे कहा कि भले ही आहरण क्षमता नहीं देखी गई थी और केवल आरक्षण आदेश देखा गया था, तब भी मौजूदा और साथ ही नए कारखानों के लिए गन्ने की आपूर्ति के लिए पर्याप्त भूमि उपलब्ध थी।

याचिकाकर्ताओं की आपति पर विचार न करने का जवाब देते हुए अतिरिक्त महाधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ताओं और नए कारखाने को गन्ने की उपलब्धता के संबंध में संबंधित अधिकारियों द्वारा पर्याप्त विचार किया गया था। उन्होंने तर्क दिया कि सरकार ने अतिरिक्त गन्ने के आंकड़ों को ध्यान में रखा था जो पिछले कई वर्षों में उपलब्ध था और जिसका उपयोग मौजूदा कारखानों द्वारा नहीं किया जा सकता था और उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि सरकार ने बढ़ते गन्ना उत्पादन की नियमित प्रवृत्ति को ध्यान में रखा था।

अतिरिक्त महाधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यदि 1954 के नियमों के तहत याचिकाकर्ताओं द्वारा हस्ताक्षरित सभी फॉर्म "सी को देखा जाता है, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि 1953 अधिनियम की धारा 15 के तहत जारी आरक्षण आदेशों में उन्हें दो याचिकाकर्ताओं द्वारा वास्तव में खपत की तुलना में बहुत अधिक गन्ना आवंटित किया जा रहा था। इस उद्देश्य के लिए उन्होंने विभिन्न फॉर्म "सी" की ओर इशारा किया जो 29.11.2022 को याचिकाकर्ताओं द्वारा पूरक प्रत्युत्तर हलफनामे के साथ दायर किए गए हैं।

अतिरिक्त महाधिवक्ता ने विशेष रूप से प्रस्तुत किया कि सिविल अपील संख्या 3281 वर्ष 2022 में पारित सुप्रीम कोर्ट का आदेश याचिकाकर्ताओं के लिए कोई मदद नहीं थी क्योंकि यह अब मामले में लागू नहीं था। उन्होंने कहा कि प्रतिवादी नंबर 4 ने अपनी मित्र स्थापित करने के लिए लगभग 400 बीघा जमीन का अधिग्रहण किया था। उन्होंने आगे कहा कि मेसर्स लक्ष्मी शुगर मिल प्राइवेट लिमिटेड नामक पहले कारखाने को जारी किए गए आईईएम को दिनांक 1.10.2021 के संसूचना के माध्यम से रद्द कर दिया गया था और प्रतिवादी नंबर 4 को 12.10.2021 को आईईएम प्रदान किया गया था और इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रतिवादी नंबर 4 किसी भी तरह से वह हासिल करने की कोशिश कर रहा था जो मेसर्स लक्ष्मी शुगर मिल्स प्राइवेट लिमिटेड को नहीं दिया गया था।

अतिरिक्त महाधिवक्ता ने तर्क दिया कि एक बार जब यह पाया जाता है कि राज्य सरकार और भारत सरकार द्वारा संविधियों द्वारा गारंटीकृत अधिकारों के भीतर एक विशेष नीतिगत निर्णय लेने के लिए पर्याप्त सामग्री थी, तो उच्च न्यायालय न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्तियों के तहत इस तरह के नीतिगत निर्णय की शुद्धता की जांच नहीं कर सकता है ताकि बेहतर विकल्प का पता लगाया जा

सके। इस संबंध में उन्होंने उच्चतम न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया:-

1. फेडरेशन ऑफ रेलवे ऑफिसर्स एसोसिएशन और अन्य बनाम भारत संघ[7]
2. बाल्को कर्मचारी संघ बनाम भारत संघ (यूओआई) और अन्य।"[8]
3. पी.टी.आर. एक्सपोर्टर्ट्स (मद्रास) प्राइवेट लिमिटेड एंड अदर बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (यूओआई) और अन्य[9]
4. प्राग आइस एंड ऑयल मिल्स एंड अन्य बनाम भारत संघ (यूओआई)"[10]
5. आर. के. गर्ग और अन्य बनाम भारत संघ (यूओआई) और अन्य "[11]
6. धामपुर शुगर (काशीपुर) लिमिटेड बनाम उत्तरांचल राज्य और अन्य[12]
7. उगर शुगर वर्क्स लिमिटेड बनाम दिल्ली प्रशासन और अन्य".[13]
8. श्री सीताराम शुगर कंपनी लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य "[14]

विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता ने विशेष रूप से सुप्रीम कोर्ट के फैसले उगर शुगर वर्क्स लिमिटेड (सुप्रा) के पैराग्राफ 18, 19 और 20 पर भरोसा किया है। इसलिए, इसे निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

18. इस प्रकार चुनौती दिल्ली में शराब के व्यापार को विनियमित करने वाली कार्यकारी नीति के लिए है। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि न्यायालय, न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए, आमतौर पर कार्यपालिका के नीतिगत निर्णयों में हस्तक्षेप नहीं करते हैं जब तक कि नीति को दुर्भावनापूर्ण, अनुचितता, मनमानी या अनुचितता आदि के आधार पर गलत नहीं ठहराया जा सकता है। वास्तव में, मनमानी तर्कहीनता, विकृति और दुर्भावना नीति को असंवैधानिक बना देगी। हालांकि, यदि नीति को इनमें से किसी भी आधार पर गलत नहीं ठहराया जा सकता है, केवल यह तथ्य कि यह एक पार्टी के व्यावसायिक हितों को नकसान पहुंचाएगा नीति को अमान्य करने को सही नहीं ठहराता है। कर और आर्थिक विनियमन के मामलों में, कार्यपालिका के निर्णय के लिए न्यायिक सम्मान नहीं तो न्यायिक संयम के अच्छे कारण हैं। न्यायालयों से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वे इस बारे में अपनी राय व्यक्त करें कि किसी विशेष समय पर या किसी विशेष स्थिति में ऐसी कोई नीति अपनाई जानी चाहिए थी या नहीं इसे राज्य के विवेक पर छोड़ देना बेहतर है।

19. टी. एन. शिक्षा विभाग मंत्रिस्तरीय और सामान्य अधीनस्थ सेवा संगठन बनाम **तमिलनाडु राज्य (1980) 3 एससीसी 97** किसी नीति का विश्लेषण करने और दोष देने के लिए क्षेत्राधिकार की सीमाओं को देखते हुए इस न्यायालय ने कहा कि:

"अदालत केवल भिन्नता या विरोधाभास के आधार पर जीओ या नीति को रद्द नहीं कर सकती है। जीवन कभी-कभी विरोधाभास होता है और यहां तक कि स्थिरता भी हमेशा एक गुण नहीं होती है। महत्वपूर्ण यह जानना है कि क्या दुर्भावना खराब करती है या तर्कहीन और बाहरी कारक गलत हैं।

20. लॉर्ड जस्टिस लॉटन की निम्नलिखित टिप्पणियों को याद करना भी समझदारी होगी लेकर एयरवेज लिमिटेड बनाम व्यापार विभाग, **(1977) 2 डब्ल्यू एस आर 234** कार्यपालिका के नीतिगत निर्णयों से संबंधित मामलों में न्यायिक समीक्षा के मापदंडों पर विचार करते समय:

"यूनाइटेड किंगडम में विमानन नीति संसद द्वारा निर्धारित कानूनी ढांचे के भीतर मंत्रियों द्वारा निर्धारित की जाती है। न्यायाधीशों का न तो नीति-निर्माण से और न ही नीति से कोई लेना-देना होता है। उनका कार्य यह तय करना है कि क्या किसी मंत्री ने कानून या सामान्य कानून दद्वारा दी गई शक्तियों के भीतर काम किया है। यदि किसी न्यायालय द्वारा कानून की उचित प्रक्रिया के बाद उसे अपनी शक्तियों से बाहर काम करने की घोषणा की जाती है, तो उसे तब तक वह करना बंद कर देना चाहिए जब तक कि संसद उसे वह शक्तियां नहीं दे देती जो वह चाहता है। इस तरह के मामले में में खुद को रेफरी मानता हूं। जब गेंद खेल से बाहर हो जाती है तो में अपनी न्यायिक सीटी बजा सकता हूं, लेकिन जब खेल फिर से शुरू होगा तो मुझे न तो इसमें भाग लेना चाहिए और न ही

खिलाड़ियों को बताना चाहिए कि कैसे खेलना
है।
(जोर दिया गया)

उन्होंने सुप्रीम कोर्ट के फैसले फेडरेशन ऑफ रेलवे ऑफिसर्स एसोसिएशन (सुप्रा) के पैराग्राफ 12 पर भी भरोसा किया और इसे यहां निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत भी किया जा रहा है:-

12. इस प्रकार के प्रश्न की जांच करते समय, जहां सरकार द्वारा एक नीति तैयार की जाती है, उसकी न्यायिक समीक्षा सीमित होती है। जब नीति जिसके अनुसार या जिस उददेश्य के लिए विवेकाधिकार का प्रयोग किया जाना है, वह कानून में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है, तो इसे अप्रतिबंधित विवेक नहीं कहा जा सकता है। नीति को प्रभावित करने वाले मामलों और तकनीकी विशेषज्ञता की आवश्यकता पर न्यायालय उन लोगों के निर्णय के लिए मामले को छोड़ देगा जो मुद्दों को संबोधित करने के लिए योग्य हैं। जब तक कि नीति या कार्रवाई संविधान और कानूनों के साथ असंगत न हो या मनमानी या तर्कहीन या शक्ति का दुरुपयोग हो, अदालत ऐसे मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगी।

अतिरिक्त महाधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि ओजस इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड (सुप्रा) के मामले में निर्णय से याचिकाकर्ताओं को मदद नहीं मिलेगी क्योंकि यह एक ऐसा मामला था जहां दो चीनी मित्रों को 7.2 किलोमीटर की दूरी के भीतर स्थापित करने का प्रस्ताव था और उन्होंने प्रस्तुत किया कि जब सुप्रीम कोर्ट ने देखा कि दूरी एक आर्थिक अवधारणा होनी चाहिए तो उन्होंने प्रस्तुत किया कि सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि जब राज्य चाहता था कि एक इकाई को दूसरी इकाई द्वारा 15 किलोमीटर से अलग किया जाए तो यह "आर्थिक कारणों से था। इसलिए, विदवान अतिरिक्त महाधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ताओं द्वारा मामले में उदधृत निर्णय ओजस इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड (सुप्रा) किसी भी तरह से याचिकाकर्ताओं की मदद नहीं करेगा। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि कोई भी एकाधिकारवादी दृष्टिकोण, जैसा कि याचिकाकर्ताओं द्वारा वांछित है, को संवैधानिक न्यायालय द्वारा पवित्रता नहीं दी जा सकती है।

इस संबंध में उच्चतम न्यायालय के निर्णयों एपीएम टर्मिनल बीवी बनाम भारत संघ;[15] धामपुर शुगर (काशीपुर) लिमिटेड बनाम उत्तरांचल राज्य और अन्य।[16] और सुनील कुमार शर्मा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[17] पर भरोसा किया गया है. अपर महाधिवक्ता ने धामपुर शुगर (काशीपुर) लिमिटेड (सुप्रा) मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए स्पष्ट रूप से कहा कि एक नीतिगत मामले में जहां सरकार एक नीति लेकर आई थी, न्यायालय केवल इस आधार पर इसे रद्द नहीं कर सकता था कि पहले कारखानों की संख्या कम थी और अब अधिक कारखाने होंगे और इसलिए, कारखानों को आपूर्ति किए जाने वाले गन्ने को प्रतिबंधित किया जाएगा। उन्होंने कहा कि जब भी सरकार कोई नीतिगत निर्णय लेती है, तो वह मामले के हर पहलू पर गौर करती है। अतिरिक्त महाधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यदि प्रतिवादी संख्या 4 कार्यात्मक हो जाता है और जब आरक्षित क्षेत्रों को विभिन्न कारखानों को आवंटित किया जाना है, तो गन्ने की उपलब्धता के अनुसार 1953 अधिनियम की धारा 15 के तहत आरक्षण आदेश तैयार किए जाएंगे, ड्राल क्षमता और क्रशिंग क्षमता। यहां फिर से, अतिरिक्त महाधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यदि याचिकाकर्ता किसी भी तरह से संतुष्ट नहीं हैं, तो भविष्य की तारीख में आरक्षण आदेश के साथ, तो वे हमेशा वैधानिक अपील दायर कर सकते हैं।

सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा करते हुए अतिरिक्त महाधिवक्ता ने धामपुर
चीनी
(काशीपुर) लिमिटेड (सुप्रा) के आधार पर प्रस्तुत किया कि सुप्रीम कोर्ट के समक्ष याचिकाकर्ता नंबर 1 अपनी काशीपुर इकाई के संबंध में उस मामले में अपीलकर्ता था। उस मामले में आरएबी की एक इकाई स्थापित की जा रही थी और याचिकाकर्ता ने उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दायर करके विरोध किया था कि कुछ दिन पहले ही सरकार आरएबी इकाई को लाइसेंस देने के लिए अनिच्छुक थी और इसलिए वह बाद की तारीख में लाइसेंस नहीं दे सकती थी। उच्च न्यायालय ने उसमें याचिकाकर्ता की रिट याचिका को खारिज कर दिया था और सुप्रीम कोर्ट ने भी इस निश्चित टिप्पणी के साथ अपील को खारिज कर दिया था कि सार्वजनिक नीति के मामलों में हल्के ढंग से हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। अतिरिक्त महाधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि मामला भी उसी आधार पर वर्चुअल रूप से दायर किया गया था। याचिकाकर्ताओं को केवल यह आशंका थी कि याचिकाकर्ताओं को गन्ने की आपूर्ति में कमी होगी। रिट याचिका दायर करते समय इस पर विचार नहीं किया गया था, विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं, कि आशंका के आधार पर कोई रिट नहीं होती है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि आशंका के आधार पर बिल्कुल कोई रिट पोषणीय नहीं है।

अतिरिक्त महाधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि तत्काल रिट याचिका दायर करना प्रतिस्पर्धा को बाधित करने के परोक्ष उद्देश्य से था। उन्होंने कहा कि 1954 के नियमों के नियम 22 में यह सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त प्रावधान थे कि आरक्षण उचित तरीके से किया जाए।

अनुवादित

उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि एक नई इकाई की स्थापना व्यापक सार्वजनिक हित और गन्ना उत्पादकों के हित में होगी। इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि संविधान का एक समग्र दृष्टिकोण लिया जाना चाहिए। इस संबंध में उन्होंने सुप्रीम कोर्ट के फैसले शिवशक्ति शुगर्स लिमिटेड बनाम श्री रेणुका शुगर लिमिटेड[18] पर भारी भरोसा किया।

अंत में, अतिरिक्त महाधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जब एक चीनी कारखाने की सीमित पेराई क्षमता थी और आहरण प्रतिशत भी आवंटित गन्ने के टन भार से कम था, तो एकमात्र निष्कर्ष यह था कि किसान अपनी गन्ना उपज को खांडसारी इकाइयों में भेज रहे थे जो कोल्हू द्वारा चलाए जा रहे थे। अतिरिक्त महाधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि न केवल अधिक बर्बादी हुई थी, बल्कि लाभ मार्जिन भी न्यूनतम था। इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि यदि एक नया कारखाना आता है तो किसानों को भी नए कारखाने से लाभ होगा क्योंकि वे निश्चित रूप से चीनी कारखानों को अपना गन्ना बेचकर अधिक पैसा प्राप्त करेंगे।

प्रतिवादी संख्या 3, 5 और 6 की ओर से पेश हुए वकील श्री आदित्य कुमार सिंह ने भी इसी तर्ज पर वर्चुअल तरीके से दलीलें दी।

श्री राकेश पांडे, वरिष्ठ अधिवक्ता की सहायता वकील केके राव द्वारा की गई जो प्रतिवादी नंबर 4 की ओर से प्रस्तुत किए कि याचिकाकर्ताओं का तर्क कि एनओसी को व्यापक दृष्टिकोण लेने के बाद जारी किया जाना चाहिए, बिल्कुल गलत था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि अधिनियम के खंड 6-ए से 6-बी के प्रावधानों के तहत 1966 के आदेश के अनुसार एनओसी जारी किया गया था और उन्होंने केवल यह निर्धारित किया था कि एनओसी दूरी के आधार पर दी जाएगी जो एक कारखाने और दूसरे कारखाने से 15 किलोमीटर से कम नहीं होनी चाहिए। वरिष्ठ अधिवक्ता ने कहा कि यदि याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया कि गन्ने की उपलब्धता पर भी ध्यान दिया जाना था, तो उन्हें 1966 के आदेश के आदेश 6-ए और 6-बी की वैधता को चुनौती देनी चाहिए थी, जो उन्होंने इस रिट याचिका में नहीं किया है। उन्होंने कहा कि एनओसी जारी करते समय किसी अन्य पैरामीटर पर ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए। प्रतिवादी संख्या 4 के वकील ने आगे कहा कि आरक्षण क्षेत्र जो 1953 अधिनियम की धारा 15 के तहत गन्ना आयुक्त का अधिकार क्षेत्र था, जिसे 1954 के नियमों के नियम 22 के साथ पढ़ा जाता था, निश्चित रूप से एक आरक्षित क्षेत्र प्रदान करने के लिए पूरा करता था और यदि कोई कारखाना था, तो वह प्रस्तुत करता है, आरक्षित क्षेत्र को इसकी ड्रॉल क्षमता और पेराई क्षमता के अनुसार होना चाहिए। इसलिए, विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि रिट याचिका पूर्ण आशंका के आधार पर दायर की गई थी और आशंका के आधार पर कोई रिट जारी नहीं की जा सकती है। वकील ने कहा कि आरक्षित क्षेत्र में कोई कमी होने से पहले ही रिट याचिका दायर की जा चुकी थी। इससे पता चला कि रिट याचिका समय से पहले दायर की गई थी।

प्रतिवादी संख्या 4 के विद्वान वकील ने आगे प्रस्तुत किया कि जहां तक आयुक्त, गन्ना और चीनी विभाग दवारा दिनांक 12.9.2022 को एनओसी देने पर विचार करने की प्रक्रिया का संबंध है (12.9.2022 की नीति को याचिकाकर्ता द्वारा 9.11.2022 को दायर पूरक हलफनामे के साथ संलग्न किया गया था), जब एनओसी दी गई थी और आईईएम को केंद्र सरकार द्वारा स्वीकार किया गया था. तब यह माना गया था कि सभी कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिए था।

याचिकाकर्ताओं के वकील श्री राहुल अग्रवाल की सहायता से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शशि नंदन की बात सुनने के बाद प्रतिवादी नंबर 1 और 2 के वकील श्री एके गोयल की सहायता से अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री मनीष गोयल, प्रतिवादी संख्या 4 की ओर से पेश हुए वकील श्री केके राव की सहायता से वरिष्ठ अधिवक्ता राकेश पांडे और प्रतिवादी संख्या 3, 5 और 6 की ओर से पेश हुए विद्वान वकील श्री आदित्य कुमार सिंह का मानना है कि इस रिट याचिका में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और इसलिए, इसे खारिज किया जाना चाहिए।

याचिकाकर्ताओं ने प्रतिवादी संख्या 2- गन्ना आयुक्त द्वारा प्रतिवादी संख्या 4- मेसर्स बिंदल पेपर लिमिटेड को जारी किए गए दिनांक 14.9.2021 के एनओसी और भारत सरकार के वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय के उद्योग और आंतरिक व्यापार संवर्धन विभाग द्वारा 12.10.2021 को जारी पावती संख्या आईईएम/ए / एसीके/595/2021 को चुनौती दी है।

पहला आधार जो याचिकाकर्ताओं ने लिया है वह यह है कि एनओसी प्रदान करना और आईईएम जारी करना केवल प्रस्तावित चीनी मिल और मौजूदा चीनी मिलों के बीच की दूरी के आधार पर किया गया था और याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि यह योजना का उल्लंघन करता है जैसा कि यूपी अधिनियम 1953 और 1954 के नियमों में प्रदान किया गया है। याचिकाकर्ताओं के वकील ने कहा था कि प्रस्तावित मिल और मौजूदा चीनी मिल के बीच दूरी का कारक केवल कई कारकों में से एक था, जिसे अधिनियम और बनाए गए नियमों के अनुसार माना जाना था। उन्होंने कहा था कि जब गन्ने की खरीद और चीनी के निर्माण को उत्तर प्रदेश अधिनियम 1953 और 1954 के नियमों द्वारा विनियमित किया गया था, तब उत्तर प्रदेश अधिनियम 1953 की धारा 15 के अनुसार और 1954 के नियमों के नियम 22 के अनुसार, गन्ना आयुक्त के पास शक्ति थी। प्रत्येक चीनी मिल के लिए आरक्षित क्षेत्र और निर्दिष्ट क्षेत्र का निर्धारण करें जहां से चीनी मिल को अपने पेराई सत्र के लिए गन्ना खरीदना आवश्यक था। याचिकाकर्ताओं के वकील ने कहा था कि पिछले वर्षों में

चीनी कारखाने को आरक्षित और सौंपे गए क्षेत्रों से आपूर्ति किए गए गन्ने की मात्रा और कारखाने द्वारा पेराई किए जाने वाले गन्ने की मात्रा अधिनियम 1954 के नियम 22 के तहत मुख्य मानदंड थे। इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया था कि 1966 के नियंत्रण आदेश, विशेष रूप से खंड 6-ए से 6-ई के अनुसार, प्राधिकरण को यह देखना था कि जब भी कोई चीनी कारखाना स्थापित किया जाना है तो गन्ने की उपलब्धता पर ध्यान दिया जाना चाहिए (2007) 4 एससीसी 723 में रिपोर्ट किए गए सुप्रीम कोर्ट के फैसले का हवाला देते हुए, याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील ने तर्क दिया था कि केवल दूरी ही वह मानदंड नहीं था जिसके आधार पर एनओसी जारी किया जाना चाहिए था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि जब एनओसी जारी किया जाना था, तो पहले से मौजूद चीनी मिलों के लिए गन्ने की उपलब्धता पर प्रभाव की जांच उनकी पेराई क्षमता के संदर्भ में की जानी थी, गन्ने का कुल कृषि योग्य क्षेत्र जो आरक्षित क्षेत्र में था और नियत क्षेत्र और आहरण प्रतिशत पर निश्चित रूप से विचार किया जाना था।

हालांकि, सुनी गई दलीलों से अदालत का विचार है कि 1966 के नियंत्रण आदेश के खंड 6-ए के तहत गन्ना आयुक्त को केवल इस तथ्य पर गौर करना था कि क्या एक नए कारखाने के प्रस्तावित स्थल और पहले से मौजूद कारखानों से 15 किलोमीटर की दूरी थी। यदि गन्ना आयुक्त पर यह सांविधिक दायित्व होता तो वह उस सांविधिक दायित्व से परे नहीं जा सकते थे। न्यायालय ने उत्तर प्रदेश अधिनियम 1953 की धारा 15 और 1954 के नियमों के नियम 22 की भी जांच की है और यह पाया है कि यदि कोई कारखाना स्थापित किया गया था तो यह देखना अधिकारियों का परम कर्तव्य था कि उसे प्रत्येक चीनी कारखाने के लिए एक आरक्षित क्षेत्र और एक निर्दिष्ट क्षेत्र संलग्न करना था। न्यायालय का यह भी विचार है कि जब भी किसी नए कारखाने को स्वयं स्थापित करने की अनुमति दी जाती है, तो प्राधिकारियों का यह दायित्व था कि वे यह सुनिश्चित करें कि नई चीनी फैक्ट्री और पहले से मौजूद चीनी कारखानों को एक विशेष पेराई वर्ष में पेराई के प्रयोजनों के लिए पर्याप्त गन्ना मिले। इसके अलावा न्यायालय ने पाया कि जब आरक्षित क्षेत्र और निर्दिष्ट क्षेत्र को किसी विशेष चीनी कारखाने को आवंटित किया जाता है तो अन्य पहलुओं के बीच निम्नलिखित को ध्यान में रखा जाता है :-

(1) ड्रॉल क्षमता

(II) क्रशिंग क्षमता और

(III) चीनी कारखाने का पिछला प्रदर्शन।

इसके अलावा जब आरक्षित क्षेत्र और निर्दिष्ट क्षेत्र को किसी विशेष चीनी कारखाने को आवंटित किया जाता है तो गन्ना आयुक्त निश्चित रूप से यह सुनिश्चित करते हैं कि आवंटित क्षेत्र और गन्ना किसी विशेष चीनी कारखाने के लिए आवश्यकता से अधिक है। इसके अलावा न्यायालय ने पाया कि जब पेराई वर्ष शुरू होता है, तो चीनी कारखाना गन्ना उत्पादकों के साथ एक समझौता करता है। उत्तर प्रदेश गन्ना प्रदाय एवं क्रय आदेश, 1954 के अंतर्गत प्रपत्र ग में सहकारी समिति प्रदत्त है। यह सब एक अपरिहार्य निष्कर्ष की ओर जाता है कि जब एक चीनी कारखाना, इस तथ्य के बावजूद कि उसे आरक्षित क्षेत्र या निर्दिष्ट क्षेत्र के रूप में बहुत अधिक भूमि मिली है, गन्ना उत्पादकों के साथ फॉर्म-सी में एक समझौता करता है। गन्ने की आपूर्ति के लिए सहकारी समिति को यह ध्यान में रखना चाहिए कि यह एक विशेष पेराई वर्ष में पेराई करने में सक्षम होगा। यह निश्चित रूप से ड्रॉल प्रतिशत को ध्यान में रखता है।

रिकॉर्ड से हम पाते हैं कि याचिकाकर्ता नंबर 1 को वर्ष 2019-20 में 46705 हेक्टेयर भूमि आवंटित की गई थी और उसे 401.20 लाख क्विंटल गन्ना आवंटित किया गया था, लेकिन उसने वास्तव में केवल 231.63 लाख क्विंटल गन्ने की पेराई की। इसके अलावा हम पाते हैं कि वर्ष 2019-20 में याचिकाकर्ता नंबर 2 को 336.24 लाख क्विंटल की सीमा तक गन्ने की फसल के साथ 40034 हेक्टेयर भूमि आवंटित की गई थी, लेकिन उसने वास्तव में केवल 214.50 लाख क्विंटल की पेराई की थी। वर्ष 2020-21 और वर्ष 2021-22 में भी यही स्थिति थी।

अतः, उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि जब सरकार ने अपनी अनापत्ति व्यक्त की थी और आईईएम को भी स्वीकार किया था, तो उसने गन्ने की उपलब्धता को ध्यान में रखा था साथ-साथ मौजूदा कारखानों और कारखाने जिन्हें स्थापित करने का प्रस्ताव था यानी प्रतिवादी नंबर 4 सहित।

चीनी उद्योग एक नियंत्रित उद्योग है। गन्ने के उत्पादन, वितरण, मूल्यों के साथ-साथ तैयार उत्पाद जो चीनी है, के उत्पादन और विपणन पर भी सरकार का नियंत्रण है। जब भी कोई नया कारखाना पहले से मौजूद कारखानों के साथ स्थापित होता है, तो यह सुनिश्चित करना राज्य का उत्तरदायित्व है कि गन्ना, जो कारखानों के लिए कच्चा माल हैं पुराना और नया सभी कारखानों को उपलब्ध कराया जाए।

याचिकाकर्ताओं के वकील द्वारा तर्क दिया गया दूसरा पहलू यह था कि क्या एक नई चीनी मित्र की स्थापना आरक्षित क्षेत्र / निर्दिष्ट क्षेत्र में मौजूदा चीनी मिल को गन्ने की उपलब्धता को प्रभावित करेगी।

हमने जो विभिन्न तर्क सुने हैं, उनसे हम निश्चित रूप से यह विचार रखते हैं कि तर्क गलत था। जब कभी कोई आरक्षण आदेश या असाइनमेंट आदेश होता है, तो यह इस बात को ध्यान में रखते हुए किया जाता है कि उस क्षेत्र में कितना गन्ना उगाया जाएगा और किसी विशेष चीनी कारखाने के लिए वास्तव में कितने गन्ने की आवश्यकता थी। इस मामले में, हम निश्चित रूप से पाते हैं कि मौजूदा कारखानों यानी याचिकाकर्ताओं को बहुत अधिक गन्ने की फसल आवंटित की गई थी, लेकिन उस आवंटित गन्ने में से केवल एक निश्चित हिस्सा वास्तव में याचिकाकर्ताओं द्वारा

खरीदा गया था। इसका निश्चित रूप से मतलब है कि गन्ना आयुक्त ने चीनी कारखाने की क्षमता को ध्यान में रखा था और तदनुसार वह आरक्षित क्षेत्र और निर्दिष्ट क्षेत्र आवंटित करता है। याचिकाकर्ताओं के लिए यह सोचना कि एक नया चीनी कारखाना स्थापित होने पर गन्ने की उपलब्धता नहीं होगी, केवल एक आशंका है जिसके आधार पर न्यायालय मामले का निर्णय नहीं ले सकता है।

इसलिए न्यायालय का विचार है कि जब भी सरकार कोई नया कारखाना स्थापित करने का प्रस्ताव करती है, तो वह हमेशा गन्ने की उपलब्धता को ध्यान में रखती है। प्रत्येक पेराई सत्र से पहले आरक्षित क्षेत्र और निर्दिष्ट क्षेत्र को प्रत्येक कारखाने को आवंटित किया जाएगा और प्रत्येक कारखाने को उत्तर प्रदेश गन्ना आपूर्ति और खरीद आदेश, 1954 के तहत फॉर्म सी में गन्ना उत्पादक सहकारी समिति के साथ एक समझौता किया जाएगा।

इसके अलावा, न्यायालय ने पाया कि यदि आरक्षण आदेश से कोई विशेष कारखाना किसी भी तरह से असंतुष्ट है, तो वह हमेशा वैधानिक अपील दायर कर सकता है। इसलिए, न्यायालय का निश्चित रूप से यह विचार है कि जब नया/ प्रस्तावित चीनी कारखाना अस्तित्व में लाया जा रहा था, तो राज्य प्राधिकरणों, जिनके पास सभी आंकड़े थे, ने गन्ने की उपलब्धता और सभी मौजूदा कारखानों पर एक नए कारखाने के प्रभाव पर विचार किया। इसके अलावा न्यायालय ने पाया कि उसी स्थान पर एक नए चीनी कारखाने की स्थापना, जो सुप्रीम कोर्ट के समक्ष सिविल अपील संख्या 3281 वर्ष 2011 में विवाद का विषय है, किसी भी तरह से सुप्रीम कोर्ट और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों का उल्लंघन नहीं करेगा। अदालत ने यह भी पाया कि वास्तव में प्रतिवादी नंबर 4 ने अपनी मिल स्थापित करने के लिए 400 बीघा जमीन का अधिग्रहण किया था और आईईएम जो पहले के कारखाने यानी मेसर्स लक्ष्मी शुगर मिल को जारी किया गया था. उसे आदेश / संचार दिनोंक 1.10.2021 के माध्यम से रद्द कर दिया गया था और उसके बाद ही प्रतिवादी नंबर 4 को 12.10.2021 को आईईएम प्रदान किया गया था।

इसके अलावा, न्यायालय का विचार है कि प्रतिवादी संख्या 4 को एक नया कारखाना स्थापित करने की अनुमति देना सरकार की शक्तियों के दायरे में था और हम इस मामले में हस्तक्षेप करने से बचेंगे।

हमारा यह भी विचार है कि निश्चित रूप से एक नए कारखाने की स्थापना किसी भी तरह से याचिकाकर्ताओं के व्यावसायिक हितों सहित मौजूदा चीनी कारखानों के व्यावसायिक हितों को नुकसान नहीं पहुंचाएगी। इसलिए, जब याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया कि एक नए कारखाने की स्थापना के लिए सरकार द्वारा सहमति देते समय आर्थिक कारणों को ध्यान में रखा जाना चाहिए, तो तर्क भ्रामक था।

आर्थिक कारण एक नए चीनी कारखाने की स्थापना पर विचार किया गया। पहले से मौजूद प्रत्येक कारखाने और नए कारखाने को अपना आरक्षित / सौंपा गया क्षेत्र मिलेगा और प्रत्येक कारखाने को पेराई के लिए गन्ने के रूप में अपना कच्चा मात्र मिलेगा। इसलिए सरकार द्वारा एक नए चीनी कारखाने की स्थापना के लिए लिया गया नीतिगत निर्णय, किसी भी तरह से इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की मांग नहीं करता है। जैसे ही ताजा चीनी कारखाना शुरू होगा निश्चित रूप से नए कारखाने के साथ-साथ मौजूदा चीनी कारखानों को गन्ने की बिक्री का प्रतिशत बढ़ेगा और इस प्रकार अधिक गन्ना चीनी कारखानों में जाएगा। इस तरह स्थानीय किसानों को भी अधिक गन्ना उत्पादन करने और चीनी कारखानों को अपनी उपज बेचने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। इससे गन्ना उत्पादकों के लिए क्षेत्र में अधिक समृद्धि आएगी।

ऊपर बताए गए कारणों से, रिट याचिका खारिज कर दी गई है।

(2023) 1 ILRA 230
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 11.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी,
माननीय न्यायमूर्ति जयंत बनर्जी

रिट-सी संख्या 16263/2022

आसिफ खलीका **...याचिकाकर्ता**
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिवादी**

अधिवक्ता याचिकाकर्ता :
श्री जहांगीर हैदर

अधिवक्ता प्रतिवादी:
सी.एस.सी.

भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 – भौतिक तथ्यों को छिपाना – याचिकाकर्ता ने दावा किया कि उसने न तो किसी से कोई ऋण नहीं लिया, न ही अपनी संपत्ति गिरवी रखी और न ही किसी के लिए गारंटर के रूप में प्रस्तुत हुआ, फिर भी, अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (वित्त और राजस्व) द्वारा वित्तीय संपत्तियों के प्रतिभूतिकरण और

पुनर्निर्माण और सुरक्षा हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 की धारा 14 के तहत उनकी मशीनरी जब्त कर ली गई – याचिकाकर्ता ने दावा किया कि ऋण उसकी पत्नी ने लिया था और जब्त की गई मशीनरी आदि मेसर्स अम्ब्रेला कॉर्पोरेशन की है - आयोजित – याचिकाकर्ता ने रिट याचिका में न तो यह कहा कि प्रश्न में मशीनरी मेसर्स अम्ब्रेला कॉर्पोरेशन की है और न ही उसने यह प्रदर्शित किया है कि मेसर्स ज़ेब डिज़ाइनर्स की मालिक उनकी पत्नी हैं और न ही उन्होंने कथित मेसर्स अम्ब्रेला कॉर्पोरेशन के किसी भी जीएसटी पंजीकरण का खुलासा किया है और न ही सीजीएसटी/यूपीजीएसटी अधिनियम के तहत या फैक्ट्रीज़ अधिनियम के तहत मेसर्स अम्ब्रेला कॉर्पोरेशन के पंजीकरण का संकेत देने वाला कोई दस्तावेज दाखिल किया है और न ही कोई सबूत दिया है। याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका में महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाते हुए उसकी जब्त की गई मशीनरी के बारे में दायर किया गया है - रिट याचिका झूठे दावे करते हुए दायर की गई है और भौतिक तथ्यों को छिपाया गया है - रिट याचिका एक लाख रुपये की अनुकरणीय लागत के साथ निरस्त की जाती है। (3, 10, 11)

निरस्त (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम बी.राजेंद्र सिंह एवं अन्य, जेटी 2000(3) एससी.151

2. एस.पी. चेंगलवरया नायडू (मृत) द्वारा वारिसन बनाम एवं अन्य द्वारा जगन्नाथ (मृत), द्वारा वारिसन 1994 एससी 853

(माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी,

एवं

माननीय न्यायमूर्ति जयंत बनर्जी द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री जहांगीर हैदर और प्रत्यर्थियों के विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री अमित मनोहर को सुना गया।

यह रिट याचिका निम्नलिखित अनुतोषों के लिए प्रार्थना करते हुए दायर की गई है:-

"i. परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 2 को एस-115 हर्ष कंपाउंड, साइट-2, लोनी रोड, औद्योगिक क्षेत्र मोहन नगर , जिला गाजियाबाद, स्थित याचिकाकर्ता की फैक्ट्री जब्त की गई मशीन का कब्जा याचिकाकर्ता के पक्ष में बहाल करने का निर्देश दिया जाए ताकि वह अपनी फैक्ट्री को सुचारू रूप से चला सके।"

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता ने न तो मेसर्स हीरो फिनकॉर्प लिमिटेड से कोई ऋण लिया और न ही अपनी संपत्ति गिरवी रखी और न ही किसी के लिए गारंटर के रूप में खड़ा हुआ, फिर भी उसकी मशीनरी एस-115, हर्ष कंपाउंड साइट-2, औद्योगिक क्षेत्र, मोहन नगर, जिला गाजियाबाद को प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा जब्त कर लिया गया है जो लोनी रोड पर स्थित है और वित्तीय संपत्तियों के प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण और सुरक्षा हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 की धारा 14 के तहत एक आदेश दिनांक 28.12.2021 को अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (वित्त और राजस्व), गाजियाबाद द्वारा 2021 के मामले संख्या 7749 (हीरो फिनकॉर्प लिमिटेड बनाम मैसर्स ज़ेब डिज़ाइनर्स और अन्य) में पारित किया गया है जो पूरी तरह से कानून के अधिकार के बिना, मनमाना और अवैध है और इसलिए, इसे रद्द किया जाना चाहिए।

पूछताछ करने पर याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने बताया कि ऋण उसकी पत्नी शबीह आसिफ (एस. आसिफ) ने लिया था, जो मेसर्स ज़ेब डिज़ाइनर्स की मालिक है और उसकी फैक्ट्री का स्थान 33/312, साइट-2 , लोनी रोड, औद्योगिक क्षेत्र, मोहन नगर, गाजियाबाद है। उन्होंने आगे कहा कि जब्त की गई मशीनरी आदि मेसर्स अम्ब्रेला कॉरपोरेशन की है, जो याचिकाकर्ता की स्वामित्व वाली कंपनी है, न कि उसकी पत्नी या मेसर्स ज़ेब डिज़ाइनर्स की।

हमने रिट याचिका का अध्ययन किया है और हमने पाया है कि याचिकाकर्ता ने रिट याचिका में यह नहीं कहा है कि प्रश्नागत मशीनरी मेसर्स अम्ब्रेला कॉरपोरेशन का है और न ही उसने यह खुलासा किया है कि मेसर्स ज़ेब डिज़ाइनर्स की मालिक उसकी पत्नी है और न ही उसने कथित मेसर्स अम्ब्रेला कॉरपोरेशन के किसी जीएसटी पंजीकरण का खुलासा किया है और न ही मेसर्स अम्ब्रेला कॉरपोरेशन सीजीएसटी/यूपीजीएसटी अधिनियम या फैक्ट्री अधिनियम के तहत के पंजीकरण का संकेत देने वाला कोई दस्तावेज दाखिल किया है और न ही उसकी जब्त की गई मशीनरी का कोई सबूत दाखिल किया गया है।

रिट याचिका में, यह इंगित करने के लिए कोई कागजात दायर नहीं किया गया है कि वास्तव में मेसर्स अम्ब्रेला कॉर्पोरेशन के नाम और शैली में एक सम्पत्तिक स्वामित्व

सम्बद्ध मौजूद है। इसके विपरीत, रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 11 के अवलोकन पर हमने पाया कि याचिकाकर्ता ने कहा है कि उसने दिनांक 28.4.2022 और 2.5.2022 को अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (वित्त और राजस्व), गाजियाबाद को अभ्यावेदन दिया है और उसकी प्रतिलिपि अनुलग्नक संख्या 1 और 2 के रूप में दायर की गई है। रिट याचिका के अनुलग्नक-2 के अवलोकन से पता चलता है कि इसे आसिफ जैदी ने ई-मेल के माध्यम से भेजा था और अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (वित्त एवं राजस्व) दिनांक 10.1.2023 के व्यक्तिगत हलफनामे के पृष्ठ 84 पर प्रदर्शित गारंटी विलेख के साथ संलग्न अनुसूची-1 के अनुसार भेजा गया था, जो याचिकाकर्ता का पुत्र है और उसका पूरा नाम अशर आसिफ जैदी है और याचिकाकर्ता का पूरा नाम आसिफ के. जैदी है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने कहा कि याचिकाकर्ता का पूरा नाम आसिफ खालिक जैदी है। याचिकाकर्ता ने रिट याचिका में इन सभी भौतिक तथ्यों को बहुत आसानी से छुपाया है।

इस प्रकार, गलत बयानबाजी करते हुए और महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाते हुए रिट याचिका दायर की गई है।

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड वी.बी.राजेंद्र सिंह और अन्य के मामले में, जे.टी. 2000(3) एस.सी.151, धोखाधड़ी के तथ्य पर विचार करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 3 में निम्नानुसार व्यवस्था दी:

"धोखाधड़ी और न्याय कभी एक साथ नहीं रहते"। (फ्रांस एट जूस ननक्काम कोहैबिटेंट) एक प्राचीन कहावत है जिसने इन सदियों में कभी भी अपनी प्रकृति नहीं खोया है। लॉर्ड डेनिंग ने बिना किसी लाग-लपेट के कहा कि "न्यायालय के किसी भी निर्णय, किसी मंत्री के आदेश को टिके रहने की अनुमति नहीं दी जा सकती है यदि वह धोखाधड़ी से प्राप्त किया गया हो, क्योंकि धोखाधड़ी सब कुछ खोल देती है" (लाजर एस्टेट लिमिटेड वी. ब्यासली 1956(1))क्यूबी 702). (न्यायालय द्वारा बल दिया गया)।"

एल.आर.एस द्वारा एस.पी. चेंगलवरया नायडू (मृत) बनाम एल.आर.एस द्वारा जगन्नाथ (मृत), के मामले में एवं अन्य एआईआर 1994 एससी 853 में माननीय उच्चतम न्यायालय ने पैरा 7 में निम्नानुसार व्यवस्था दी:-

"7. हमारे विचार में, उच्च न्यायालय पेटेंट त्रुटि में पड़ गया। उच्च न्यायालय के समक्ष संक्षिप्त प्रश्न यह था कि क्या इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, जगन्नाथ ने अदालत में धोखाधड़ी करके प्रारंभिक डिक्री प्राप्त की। उच्च न्यायालय से, हालाँकि, गलतियाँ हुईं और टिप्पणियाँ कीं जो पूरी तरह से विकृत हैं। हम उच्च न्यायालय से सहमत नहीं हैं कि "वादी पर कोई कानूनी कर्तव्य नहीं है कि वह एक सच्चे मामले के साथ अदालत में आए और उसे सच्चे सबूतों से साबित करे"। "मुकदमे की अंतिमता" के सिद्धांत को इतनी बेतुकी सीमा तक नहीं दबाया जा सकता है कि यह बेईमान वादियों के हाथों में धोखाधड़ी का इंजन बन जाए। कानून की अदालतें पक्षों के बीच न्याय प्रदान करने के लिए हैं। जो भी व्यक्ति दरबार में आता है, उसे निरपराध होकर आना चाहिए। हम यह कहने के लिए बाध्य हैं कि अधिकांशतः न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया जा रहा है। संपत्ति-हथियाने वाले, कर-चोरी करने वाले, बैंक-ऋण-धोखा देने वाले और जीवन के सभी क्षेत्रों के अन्य बेईमान व्यक्ति अदालत-प्रक्रिया को अवैध लाभ को अनिश्चित काल तक बनाए रखने के लिए एक सुविधाजनक लीवर पाते हैं। हमें यह कहने में कोई झिझक नहीं है कि जिस व्यक्ति का मामला झूठ पर आधारित हो, उसे अदालत में जाने का कोई अधिकार नहीं है। मुकदमे के किसी भी चरण में उसे सरसरी तौर पर बाहर किया जा सकता है।"

हमने पाया कि याचिकाकर्ता ने भौतिक तथ्यों को दबाकर और छिपाकर इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है। इसलिए, रिट याचिका अनुकरणीय जुर्माने के साथ खारिज किए जाने योग्य है।

उपरोक्त सभी कारणों से, रिट याचिका जुर्मानाराशी के साथ खारिज की जाती है। एक लाख रुपये जो याचिकाकर्ता को आज से दो सप्ताह के भीतर उच्च न्यायालय कानूनी सेवा समिति के पास जमा करना होगा। इस आदेश की एक प्रति विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा एक सप्ताह के भीतर अतितिक्त जिला मजिस्ट्रेट (वित्त एवं राजस्व), गाजियाबाद को भेजी जाएगी जो इस आदेश का अनुपालन सुनिश्चित करेंगे।

चूंकि, फाइनेंसर यानी मेसर्स हीरो फिनकॉर्प लिमिटेड को वर्तमान रिट याचिका में पार्टी नहीं बनाया गया है, इसलिए, हम अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (वित्त और राजस्व), गाजियाबाद को इस आदेश के बारे में उपरोक्त मेसर्स हीरो फिनकॉर्प लिमिटेड को सूचित करने का निर्देश देते हैं।

(2023) 1 ILRA 232
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल साइड
दिनांक: इलाहाबाद 09.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता
माननीय न्यायमूर्ति जयन्त बनर्जी

रिट सी संख्या 17717 वर्ष 2022

श्रीमती कृष्णा ...याचिकाकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और 2 अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता पक्ष के अधिवक्ता:
जटाशंकर पांडे भाशीष राय, ओमप्रकाश राय, प्रभात कुमार श्रीवास्तव, प्रखर श्रीवास्तव, राजेश कुमार श्रीवास्तव।

प्रतिवादी पक्ष के अधिवक्ताः
मुख्य स्थायी अधिवक्ता, भजति उपाध्या, अरविंद श्रीवास्तव, प्रभात कुमार श्रीवास्तव, राजेश कुमार श्रीवास्तव।

(ए) सिविल कानून – केवल बेचने का समझौता से संपत्ति में कोई स्वामित्व प्रदान नहीं करता है – विवरणिका के खंड यू-3 – यदि किसी 'अप्रत्याशित घटना' या प्राधिकरण के नियंत्रण से परे ऐसी परिस्थितियों के कारण प्राधिकरण आवंटित भूखंड का आवंटन या कब्जा करने में असमर्थ है - संपूर्ण पंजीकरण राशि या आवंटन के चरण के आधार पर जमा राशि 4% प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज के साथ वापस कर दी जाएगी यदि भुगतान में ऐसी तिथि से एक वर्ष से अधिक की देरी की जाती है। (पैरा-4,11)

याचिकाकर्ता को आवंटित भूखंड – प्राधिकरण द्वारा अधिग्रहीत भूमि सम्मिलित है - भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही के अंतर्गत – अधिग्रहण रिट याचिका में न्यायालय के समक्ष चुनौती का विषय है – निरस्त– वाद को उच्चतम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया– स्वीकृत– याचिकाकर्ता को आवंटित भूखंड के कब्जे का हस्तांतरण – प्राधिकरण के नियंत्रण से परे – उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिग्रहण निरस्त कर दी गई है – प्राधिकरण को लंबित वाद के तथ्य की जानकारी थी – उन्होंने आवंटियों को उक्त तथ्य से अवगत नहीं कराया - उन्हें अंधेरे में रखा और पैसे लौटाने के बजाय किश्तें स्वीकार करते रहे। **(पैरा-2,3,6)**

आयोजित: -याचिकाकर्ता जिसे जानबूझकर उसके निवेश पर केवल प्राधिकरण के कारण मिलने वाले भुगतान से वंचित किया गया था, वह जमा की तिथि से अधिग्रहण की तारीख तक 4% प्रति वर्ष की दर से ब्याज का हकदार है, जिसे उच्चतम न्यायालय द्वारा निरस्त कर दिया गया था और वास्तविक भुगतान की तिथि तक की अवधि के लिए 12% प्रति वर्ष आरोपित किया। (पैरा -12)

लागत सहित याचिका स्वीकृत। (ई-7)

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता और
माननीय न्यायमूर्ति जयन्त बनर्जी द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विज्ञान व्यधिबक्ता श्री थी.पी. राय प्रतिवादी संख्या के विज्ञान स्थायी अधिवक्ता और प्रतिबादी संख्या 2 और 3 की ओर से विज्ञान अधिबक्ता सुश्री अंजली उपाध्या को सुना।

याचिकाकर्ता ग्रेटर नोएडा औद्योगिक विकास प्राधिकरण (संक्षेप में "प्राधिकरण") द्वारा आवंटन पत्र दिनांक 7.1.2011 के अनुसार भू खण्ड संख्या 19 ब्लॉक-सी, सेक्टर ज़ेटा-2, क्षेत्रफल 120 वर्ग मीटर का आवंटी है। आवंटन 90 वर्षों के लिए पट्टा भूमि आधार पर था। आवंटन पत्र में विशेष रूप से उल्लेख किया गया है कि आवंटन पत्र जारी होने की तारीख से दो साल के भीतर आवंटियों को कब्जा प्रदान किए जाने की संभावना है। आवंटी को सूचना मिलने पर पट्टा विलेख निष्पादित करने की औपचारिकताएं पूरी करनी थीं। यदि आवंटी समय पर कानूनी दस्तावेज निष्पादित करने में विफल रहता है, तो आवंटन रद्द करने और जमा धनराशि जब्त करने की कार्रवाई की जाएगी। विवरणिका के अनुसार, प्लॉट के कुल प्रीमियम का 30% (पहले से भुगतान की गई पंजीकरण राशि को समायोजित करने के बाद) याचिकाकर्ता द्वारा चुने गए योजना डी-2 के तहत आवंटन की तारीख से 45 दिनों के भीतर देय होगा और शेष 70% दस बराबर भागों में देय होगा। अर्ध वार्षिक किस्तों की गणना आवंटन की तारीख से 46वें दिन से 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ की जाती है। आवंटियों को आवंटन आत्मसमर्पण करने का विकल्प दिया गया था। भूखंड आवंटन के ड्रा के बाद लेकिन आवंटन की तारीख से 30 दिनों के भीतर आत्मसमर्पण करने की स्थिति में, पंजीकरण राशि का 10% जब्त कर लिया जाएगा और जमा की गई शेष राशि बिना ब्याज के वापस कर दी जाएगी। भुगतान योजना डी-2 के तहत आवंटन के 45 दिनों के भीतर आत्मसमर्पण करने की स्थिति में, पंजीकरण राशि का 50% जब्त कर लिया जाएगा और शेष राशि बिना किसी ब्याज के वापस कर दी जाएगी। यदि भुगतान योजना डी-2 के तहत 45 दिनों के बाद लेकिन आवंटन की तारीख से छह महीने से पहले आवंटन आत्मसमर्पण किया जाता है, तो प्लॉट के कुल प्रीमियम का 10% जब्त कर लिया जाएगा और शेष राशि बिना किसी ब्याज के वापस कर दी जाएगी। आवंटन की तिथि से छह माह के बाद सरेंडर करने की स्थिति में जमा की गई पूरी धनराशि जब्त कर ली जाएगी। यदि आवंटी निर्धारित समय के भीतर देय राशि जमा करने में विफल रहता है, तो आवंटन रद्द कर दिया जाएगा और ऐसे मामले में, रद्दीकरण की तारीख तक जमा की गई धनराशि जब्त कर ली जाएगी।

याचिकाकर्ता ने समय-समय पर पंजीकरण राशि और किश्तें (कुल: 19,80,071 रुपये) जमा किया। हालाँकि, आवंटन पत्र के संदर्भ में याचिकाकर्ता से पूरी राशि वसूल करने के बावजूद प्राधिकरण पट्टा विलेख निष्पादित करने और याचिकाकर्ता को आवंटित भूखंड पर कब्ज़ा देने में विफल रहा। 21.8.2019 को, प्रतिवादी-प्राधिकरण ने पहली बार याचिकाकर्ता को सूचित किया कि प्राधिकरण ने योजना को रद्द करने का निर्णय लिया है और रिफंड विवरणिका के खंड यू-3 3 के संदर्भ में किया जाएगा और याचिकाकर्ता को केवल 4% प्रति वर्ष ब्याज का भुगतान किया जाएगा। इसके बाद भी, जब पैसा वापस नहीं किया गया, तो याचिकाकर्ता ने परमादेश रिट जारी करने के लिए तत्काल याचिका दायर की, जिसमें प्रतिवादी प्राधिकरण को 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ पूरी राशि तुरंत वापस करने का निर्देश दिया गया।

खंड यू-3 के तहत यह प्रावधान किया गया था कि यदि किसी 'अप्रत्याशित घटना' या प्राधिकरण के नियंत्रण से परे ऐसी परिस्थितियों के कारण, प्राधिकरण आवंटित भूखंड का आवंटन या कब्जा, संपूर्ण पंजीकरण धन या जमा राशि के आधार पर करने में असमर्थ है, आवंटन के चरण में ऐसी तिथि से एक वर्ष से अधिक की देरी होने पर प्रति वर्ष 4% की दर से साधारण ब्याज के साथ रिफंड किया जाएगा।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि खंड यू-3 वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं है क्योंकि आवंटित भूमि के संबंध में भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही 15.4.2011 को समाप्त हो गई थी जब सर्वोच्च न्यायालय ने सिविल अपील संख्या 3261 / 2011 की अनुमति दी थी और अधिग्रहण कार्यवाही को रद्द कर दिया। उसके बाद याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई धनराशि को अपने पास रखना बिना किसी औचित्य के था । सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णय सुनाए जाने के तुरंत बाद राशि वापस करना प्राधिकरण के नियंत्रण से बाहर नहीं था। हालाँकि, इसने आवंटियों को अंधेरे में रखा और 31.5.2019 को ही योजना रद्द कर दी, और 21.8.2019 को पैसे वापस करने की पेशकश की, और फिर वास्तव में पैसे भी वापस नहीं किए, जिससे याचिकाकर्ता को इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाने के लिए मजबूर होना पड़ा।

यह ग्रेटर नोएडा प्राधिकरण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता सुश्री अंजलि उपाध्या की ओर से विवादित नहीं है कि जिस भूमि को याचिकाकर्ता को आवंटित किया गया था, उसमें भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही के तहत प्राधिकरण द्वारा अधिग्रहित भूमि शामिल थी और और अधिग्रहण 2008 के रिट याचिका संख्या 64127 (राधे श्याम बनाम उ0प्र0 राज्य और अन्य) में इस न्यायालय के समक्ष चुनौती का विषय था। इसे इस अदालत ने 15.12.2008 को खारिज कर दिया। इसके बाद, इस मामले को सर्वोच्च न्यायालय में विशेष अवकाश याचिका (सी) सं0 601 वर्ष 2009 (2011 की सिविल अपील संख्या 3261) जिसे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णय और आदेश दिनांक 15.4.2011 द्वारा अनुमति दी गई थी। इस प्रकार, उस तारीख को जब आवंटन किया गया था, अधिग्रहण की कार्यवाही के लिए चुनौती सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष लंबित थी। बहुत से ड्रॉ दिनाक 30.12.2010 को आयोजित किया गया था । विवरणिका ने संकेत नहीं दिया कि ग्रेटर नोएडा प्राधिकरण ने संभावित खरीदारों को सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उक्त मुकदमेबाजी की लंबन के बारे में सूचित किया था।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, सिविल अपील को 15.4.2011 को अनुमति दी गई थी। यह सच है कि याचिकाकर्ता को आवंटित भूखंड के कब्जे की डिलीवरी प्राधिकरण के नियंत्रण से परे थी क्योंकि अधिग्रहण को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समाप्त कर दिया गया था। बहरहाल, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, प्राधिकरण को लंबित मुकदमेबाजी के तथ्य के बारे में पता था, लेकिन अधिग्रहण के बाद भी इसने उक्त तथ्य के आवंटियों को अवगत नहीं कराया था। इसने उन्हें अंधेरे में रखा और पैसे वापस करने के बजाय, यह किस्तों को स्वीकार करता रहा, जैसे कि इसने याचिकाकर्ता से प्रति वर्ष @ 12% ब्याज के साथ आधे वार्षिक किस्तों में दिनाक 2.1.2017 तक के पैसे को स्वीकार कर लिया। यह प्रतिवादी प्राधिकरण और अन्यायपूर्ण संवर्धन के हिस्से पर एक स्पष्ट धोखाधड़ी है। यह केवल तब था जब याचिकाकर्ता ने विवाद को उठाया था कि उसे पैसे की वापसी के बारे में सूचित किया गया था, बिना ब्याज के, खडं सं U-3के पीछे आश्रय ले रहा था, जो हमारे विचार की राय में, उस तारीख से परे नहीं होगा जिस पर सर्वोच्च न्यायालय ने अधिग्रहण की कार्यवाही के लिए चुनौती का फैसला किया और उसी को छोड़ दिया। यह नोएडा प्राधिकरण के नियंत्रण में अच्छी तरह से था कि उसने आवंटियों को धन वापस कर दिया था। वास्तव में उस अवधि से परे धन की प्रतिधारण विश्वास के उल्लंघन और उसके अधिकारियों द्वारा जानबूझकर किया जाने वाला कार्य है।

यह उल्लेखनीय है कि योजना के तहत यदि आवंटियों में प्रीमियम के भुगतान के लिए आवंटन का विरोध करता है (याचिकाकर्ता द्वारा प्लान -2- चुना गया), तो उसे प्रति वर्ष @ 12 ब्याज का भुगतान करना पड़ा। तीन महीने से परे किस्त के भुगतान में डिफ़ॉल्ट के मामले में, देय ब्याज प्रति वर्ष 15% था। यदि किसी भी कारण से, आवंटी पट्टे को प्राप्त करने में असमर्थ है और आवंटन का आत्मसमर्पण चाहता है, तो वह गंभीर परिणामों से दुखी है, जिसमें उस तिथि तक जमा की गई पूरी राशि का जब्त

करना शामिल है। दूसरी ओर, प्राधिकरण उस दर पर भी ब्याज का भुगतान करने के लिए तैयार नहीं है, जो उसने अपने दायित्वों और कर्तव्यों को करने में घोर लापरवाही की थी। प्राधिकरण ने वर्ष 2019 में इस योजना को रद्द करने का दावा किया है जो स्पष्ट रूप से यह दिखाने के लिए किया जाता है कि यह उस मामले पर सो रहा था जो आवंटियों की दुर्दशा के साथ असंबद्ध था।

यह ध्यान रखने के लिए कि रिट याचिका की सूचना के बाद 7.6.2022 को प्राधिकरण पर ध्यान दिया गया था, इसने याचिकाकर्ता को दिनांकित 21.6.2022 को एक संचार भेजा, जिसमें उसे सूचित किया गया था कि प्राधिकरण के लिए भी याचिकाकर्ता को मूलधन वापस करना संभव नहीं होगा। । इसमें कहा गया है कि याचिकाकर्ता का कथन कि भूमि उसके द्वारा किसी को भी नहीं बेचा गया था, सही नहीं है। उसने दिनांक 3.5.2013 को हस्तक्षेप करने वाला (गौरव चंदेला) के पक्ष में बेचने के लिए एक समझौते को अंजाम दिया था। उनका वाद सिविल कोर्ट (2021 के केस नंबर 952) में लंबित है। इसके अलावा, उसने सुशील कुमार के पक्ष में एक पावर ऑफ अटॉर्नी को अंजाम दिया था, जिन्होंने इस अदालत में एक रिट दायर किया था। नतीजतन, जब तक कि मामले तय नहीं किए जाते हैं, तब तक याचिकाकर्ता को पैसे वापस नहीं किए जाएंगे।

यहाँ बेचने का समझौता बिना कब्जे के है। इसके आधार पर, हस्तक्षेप करने वाले ने 2021 के मूल वाद संख्या 952 को याचिकाकर्ता और ग्रेटर नोएडा के खिलाफ स्थायी निषेधाज्ञा के लिए स्थापित किया था, जो प्रतिवादियों को शर्तों के उल्लंघन में कार्य करने से रोकता था, जो कि दिनांकित 3.5.2013 को समझौते में निर्धारित शर्तों के उल्लंघन में और नुकसान के अनुदान के लिए @ रुपये 50,000/- प्रति माह था । उक्त वाद को लंबित माना जाता है। कोई अंतरिम निषेधाज्ञा या प्रवास उक्त वाद में काम नहीं कर रहा है ताकि प्राधिकरण को भूमि के खिलाफ जमा धन को वापस करने से रोका जा सके।

प्रत्युत्तर हलफनामे के पैरा 5 में, याचिकाकर्ता ने आरोप लगाया है कि उसने बेचने के लिए समझौते को रद्द कर दिया था। इसके अलावा, बेचने के लिए केवल समझौता संपत्ति में कोई शीर्षक प्रदान नहीं करता है। जो वाद दायर किया गया था वह स्थायी निषेधाज्ञा और नुकसान के लिए था और विशिष्ट प्रदर्शन के लिए नहीं। इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद पी -2 के अनुसार, कोई भी स्थानांतरण प्राधिकरण की अनुमति के बिना स्वीकार्य नहीं है और वह भी, जब पट्टा विलेख के निष्पादन के बाद स्थानांतरण किया गया था। तात्कालिक मामले में, किसी भी पट्टे के काम को कभी भी निष्पादित नहीं किया गया था, इसलिए अन्यथा, प्राधिकरण इस तरह के किसी भी लेनदेन का नोटिस नहीं ले सकता था। इसलिए, प्राधिकरण द्वारा लिया गया निर्णय यह है कि यह याचिकाकर्ता को पैसा नहीं लौटाएगा जब तक कि हस्तक्षेपकर्ता द्वारा दायर वाद लंबित नहीं रहता है, यह भी कानून में कानून में स्थायी नही है। यह वाद में तय किए जाने के लिए उनके बीच के अंतर विवाद को छोड़ देना चाहिए था।

मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के संबंध में, हमारा यह मत है की याचिकाकर्ता जिसे जानबूझकर उसके निवेश पर रिटर्न से वंचित कर दिया गया था, वह पूरी तरह से प्राधिकरण के लिए जिम्मेदार है। जमा की तारीख तक की तारीख अधिग्रहण की तारीख सर्वोच्च न्यालय द्वारा अलग रखी गई थी जो वास्तविक भुगतान की तारीख तक 15.4.2011 और @ 12% प्रति वर्ष की अवधि के लिए है।

हम यह भी ध्यान देते हैं कि न केवल याचिकाकर्ता को प्रतिवादी प्राधिकरण द्वारा उत्पीड़न के लिए रखा गया है, बल्कि मुकदमेबाजी के खर्चों को भी उठाना पड़ा है, जिसके लिए उसे मुआवजा दिया जाना चाहिए।

परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता को ग्रेटर नोएडा प्राधिकरण द्वारा रू 50,000/- रुपये की लागत के साथ दो सप्ताह के भीतर भुगतान किया जाना चाहिए।

अंततः, हम स्पष्ट करते हैं कि हमें यह नहीं समझा जाना चाहिए कि हस्तक्षेपकर्ता द्वारा दायर वाद में शामिल किसी भी मुद्दे पर राय व्यक्त की गई है। इसमें सभी दलीलों और सामग्री को स्वतंत्र छोड़ा जाता है, जो यहां किए गए किसी भी अवलोकन से प्रभावित हुए बिना तय किये जाने हैं।

(2023) 1 ILRA 236
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल साइड
दिनांक: इलाहाबाद 29.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

रिट सी संख्या 21993 वर्ष 2022

अल्लादीन ...याची

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य .. प्रत्यर्थी

याची के अधिवक्ता:

हरि प्रकाश मिश्र, धर्मेंद्र कुमार श्रीवास्तव

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता:
सी.एस.सी., इशिर श्रीपत, कृष्ण कांत सिंह, मिथिलेश कुमार मिश्रा, सौरभ पटेल

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव द्वारा प्रदत्त)

1. दोनों रिट याचिकाएं समान तथ्यों पर आधारित हैं एवं विधि के सामान्य प्रश्न उठाती हैं, तदनुसार पक्षों की सहमति से, याचिकाओं को एक साथ सुनवाई के लिए लिया जा रहा है।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता श्री धर्मेंद्र कुमार श्रीवास्तव, राज्य प्रत्यर्थियों के विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री अभिषेक शुक्ला, निजी प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता श्री इशिर श्रीपत एवं ग्राम सभा के विद्वान अधिवक्ता श्री के.के. सिंह के वादधारक श्री पवन कुमार सिंह, विद्वान अधिवक्ता को सुना।

3. रिट सी सं. 21993 वर्ष 2018 को उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 38(1) के अंतर्गत वाद संख्या आरएसटी/03294 वर्ष 2018 (कंप्यूटर केस संख्या टी201818750103294, अल्लादीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में उप खंड अधिकारी, कासगंज द्वारा पारित आदेश दिनांकित 7-6-2019 एवं उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 210 के अंतर्गत अपर आयुक्त (न्यायिक) अलीगढ़ द्वारा वाद संख्या 00051/2020 (कंप्यूटर वाद संख्या सी 202018000000051, अल्लादीन बनाम ग्राम पंचायत एवं अन्य) में पारित आदेश दिनांक 24.2.2022 को भी चुनौती देते हुए दाखिल किया गया है।

4. रिट सी सं. 22082 वर्ष 2022 को उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 38(1) के अंतर्गत वाद संख्या आरएसटी/03292 वर्ष 2018 (कंप्यूटर केस नंबर टी201818750103292, अल्लादीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में उप खंड अधिकारी, कासगंज द्वारा पारित आदेश दिनांकित 7-6-2019 एवं उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 210 के अंतर्गत अपर आयुक्त (न्यायिक) अलीगढ़ द्वारा वाद संख्या 00052/2020 (कम्प्यूटर वाद संख्या सी 202018000000052, अल्लादीन बनाम ग्राम पंचायत व अन्य) में पारित आदेश दिनांक 24.2.2022 को भी चुनौती देते हुए दाखिल किया गया है।

5. पिछले अवसर पर राज्य प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित अधिवक्ता एवं निजी प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित अधिवक्ता द्वारा रिट याचिका की पोषणीयता के संबंध में एक आपत्ति उठाई गई थी, जिसमें इंगित किया गया था कि याचिका धारा 32/38 उ. प्र. राजस्व संहिता, 2006 के अंतर्गत संक्षिप्त कार्यवाहियों से उत्पन्न हुई है।

6. याचीगण के अधिवक्ता ने एक सीमा तक तर्क प्रस्तुत करने के बाद इस स्थापित विधिक स्थिति को काफी हद तक स्वीकार कर लिया है कि राजस्व अभिलेखों के संशोधन से संबंधित संक्षिप्त कार्यवाही स्वत्व के किसी भी प्रश्न का विनिर्णय नहीं करती है एवं ऐसी कार्यवाही में पारित आदेश किसी व्यक्ति द्वारा नियमित वाद में अपने अधिकारों को विनिर्णित करा लेने में किसी भी तरह से अवरोध नहीं करते हैं एवं यही कारण है कि न्यायालयों द्वारा लगातार यह विचार व्यक्त किया गया है कि ऐसी संक्षिप्त कार्यवाही से उत्पन्न होने वाली रिट याचिकाओं पर भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए विचार नहीं किया जाना चाहिए।

7. उपरोक्त विधिक प्रस्थापना के संबंध में, पक्षों के अधिवक्ता सहमत हैं, एवं उन्होंने **श्रीमती कलावती बनाम राजस्व परिषद एवं 6 अन्य**[19] में इस न्यायालय के नवीनतम निर्णय पर निर्भर किया है।
8. संक्षिप्त कार्यवाही में पारित आदेशों के विरुद्ध रिट याचिका की सुनवाई का प्रश्न पहले भी इस न्यायालय के समक्ष आया है एवं यह निरंतर अवधारित किया गया है कि सामान्यत: उच्च न्यायालय अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार के प्रयोग में ऐसी रिट याचिकाओं पर विचार नहीं करेगा जो इस तरह की कार्यवाहियों से उत्पन्न होती हैं।

9. स्थापित विधिक स्थिति यह है कि राजस्व अभिलेखों में कोई प्रविष्टि उस व्यक्ति को स्वामित्व प्रदान नहीं करती है जिसका नाम अधिकारों के अभिलेख में दर्ज होता है एवं ऐसी प्रविष्टियां केवल 'राजकोषीय उद्देश्यों' के लिए होती हैं एवं इसके आधार पर कोई स्वामित्व प्रदान नहीं किया जाता है, एवं इसके अलावा, किसी संपत्ति के स्वामित्व का प्रश्न केवल ऐसे मामलों में क्षेत्राधिकार रखने वाले सक्षम न्यायालय द्वारा ही तय किया जा सकता है, जिसे **हरीश चंद्र बनाम भारत संघ एवं अन्य**[20]**, महेश कुमार जुनेजा एवं एक अन्य बनाम अपर आयुक्त न्यायिक मुरादाबाद मंडल एवं अन्य**[21], एवं **श्रीमती कलावती बनाम राजस्व परिषद एवं 6 अन्य (सुप्रा)** के मामले में इस न्यायालय के नवीनतम निर्णयों में दोहराया गया है। ।

---

19 2022 (4) एडीजे 578

20 2019 (5) एडीजे 212 (डीबी)

21 2020 (146) आरडी 545

10. नामांतरण कार्यवाही से उत्पन्न आदेशों में हस्तक्षेप करने की न्यायालयों की अनिच्छा मुख्य रूप से इस कारण से होती कि प्रश्नगत विंदु अधिकार अभिलेख के संशोधन के संबंध में होता है जो मुख्य रूप से राजस्व उद्देश्यों के लिए तैयार किया जाता है एवं उसमें केवल कब्जे के लिए एक प्रविष्टि का संदर्भ होता है एवं सामान्यतः उस व्यक्ति को विचाराधीन संपत्ति का कोई स्वामित्व प्रदान नहीं करता जिसके पक्ष में यह किया गया है।

11. उपरोक्त उपधारणा कि नामांतरण के आदेशों के आधार पर की गई राजस्व प्रविष्टियाँ आम तौर पर उस व्यक्ति को, जिसके पक्ष में वे की जाती हैं, प्रश्नगत संपत्ति में कोई भी स्वत्व प्रदान नहीं करती हैं, धारा 39 के अंतर्गत निहित स्पष्ट प्रावधान से पुष्ट होती है। संहिता में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि राजस्व अभिलेखों के नामांतरण से संबंधित प्रावधानों के अंतर्गत पारित आदेश किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध घोषणात्मक वाद के माध्यम से भूमि पर अपना अधिकार स्थापित करने में बाधा के रूप में कार्य नहीं करेंगे।

12. संहिता की धारा 39, जैसी की ऊपर संदर्भित है, नीचे दी जा रही है:-

"39. राजस्व अधिकारियों के कुछ आदेश किसी वाद को निषिद्ध नहीं करेंगे: धारा 33 के अंतर्गत राजस्व निरीक्षक द्वारा, या धारा 35 की उप-धारा (1) के अंतर्गत किसी तहसीलदार द्वारा या धारा 38 उप-धारा (3) के अंतर्गत किसी उप-खंड अधिकारी द्वारा या धारा 35 की उप-धारा (2) या धारा 38 की उप-धारा (4) के अंतर्गत किसी आयुक्त द्वारा पारित कोई आदेश धारा 144 के अंतर्गत वाद के माध्यम से किसी भी व्यक्ति को किसी भूमि पर अपना अधिकार स्थापित करने से निषेधित नहीं करेगा।"

13. उपरोक्त धारा स्पष्ट रूप से प्रावधान करती है कि किसी भी व्यक्ति को धारा 144 के अंतर्गत घोषणात्मक वाद के माध्यम से भूमि पर अपना अधिकार स्थापित करने से नहीं रोका जाएगा, इस तथ्य के बावजूद कि कोई आदेश पारित किया गया है: (i) धारा 33 के अंतर्गत एक राजस्व निरीक्षक द्वारा (उत्तराधिकार के मामले में नामांतरण), या (ii) धारा 35 की उप-धारा (1) के अंतर्गत एक तहसीलदार द्वारा (स्थानांतरण या उत्तराधिकार के मामले में नामांतरण), या (iii) धारा 38 की उप-धारा (3) के अंतर्गत एक उप-खंड अधिकारी द्वारा (त्रुटि या लोप का संशोधन), या (iv) धारा 38 की उपधारा (4) के अंतर्गत एक आयुक्त द्वारा (त्रुटि या लोप का संशोधन)।

14. धारा 39, जो स्पष्ट रूप से प्रदान करती है कि राजस्व प्रविष्टियों के नामांतरण एवं संशोधन के मामलों में राजस्व अधिकारियों द्वारा पारित आदेश घोषणात्मक वाद दायर करने से नहीं रोकेंगे, एक सारभूत प्रावधान है, एवं उ.प्र. भू-राजस्व, अधिनियम, 1901 की धारा 40-क (अब निरस्त) के अंतर्गत निहित समान प्रावधान से मेल खाता है।

15. इस धारा की भाषा इस बात पर जोर देती है कि यह राजस्व प्रविष्टियों के नामांतरण एवं त्रुटियों या लोप के संशोधन से संबंधित मामलों में राजस्व अधिकारियों द्वारा पारित सभी आदेशों पर लागू होता है एवं यह स्पष्ट शब्दों में प्रावधान करता है कि ऐसा आदेश किसी भी व्यक्ति को धारा 144 के अंतर्गत घोषणात्मक वाद के माध्यम से भूमि पर अपना अधिकार स्थापित करने से नहीं रोकेगा।

16. इस धारा का उद्देश्य किसी व्यक्ति को राजस्व प्रविष्टियों के संशोधन के संबंध में नामांतरण कार्यवाही में पारित आदेशों के बावजूद स्वत्व के प्रश्नों पर अपने अधिकारों की घोषणा करने में सक्षम बनाना है, स्वत्व के प्रश्नों पर उद्घोषणा प्राप्त करने की माँग करते हुए घोषणात्मक वाद दायर करने का उपचार हमेशा खुला रहता है। इसलिए एक प्रभावी वैधानिक वैकल्पिक उपचार का अस्तित्व भी अनुच्छेद 226 के अंतर्गत विवेकाधीन क्षेत्राधिकार के प्रयोग में रिट याचिका पर विचार न करने का एक कारण होगा।

17. इसे सावधानी के एक शब्द के रूप में जोड़ा जा सकता है कि वैधानिक उपचारों की समाप्ति का नियम नीति, सुविधा एवं विवेक का नियम है एवं वैकल्पिक उपचार का अस्तित्व उच्च न्यायालय को अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपनी शक्तियों से वंचित नहीं करेगा जिसका प्रयोग उचित मामलों में किया जा सकता है।

18. ऐसे मामलों में अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से न्यायालय का इन्कार **श्रीमती कलावती (पूर्वोक्त)** के मामले में निर्धारित अपवादों के अधीन होगा, जो निम्नवत हैं:-

(i) आदेश या कार्यवाहियाँ पूरी तरह से क्षेत्राधिकार विहीन हैं;

(ii) पक्षों के अधिकारों एवं स्वामित्व का निर्णय पहले ही किसी सक्षम न्यायालय द्वारा किया जा चुका है, एवं इन कार्यवाहियों में इसमें बदलाव किया गया है;

(iii) प्रतिद्वंद्वी दावों के गुण-दोषों को स्पर्ष करते हुए, पात्रता से संबंधित प्रश्नों पर विचार करने के बाद आदेश पारित किया गया है;

(iv) ऐसे अधिकार उत्पन्न किए गए हैं जो किसी विधि के प्रावधानों के विरुद्ध हैं, या प्रविष्टि स्वयं कुछ वैधानिक प्रावधानों के आधार पर एक स्वत्व प्रदान करती है;

(v) आदेश कपट या तथ्यों के दुर्व्यपदेशन या फर्जी दस्तावेजों के आधार पर प्राप्त किया गया है;

(vi) आदेश किसी प्रकट क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि से ग्रस्त है अर्थात ऐसे मामलों में जहां अधिकार क्षेत्र का अभाव, क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण या क्षेत्राधिकार का दुरुपयोग हो;

(vii) प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है।

19. याचियों के अधिवक्ता ने उचित रूप से अभिकथन किया है कि वैधानिक उपायों की समाप्ति के नियम के संबंध में पूर्वोक्त अपवाद, किसी भी रिट याचिका के तथ्यों में आकर्षित नहीं होंगे। विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि वह याचिकाओं पर बल नहीं देना चाहते हैं एवं याची उचित मंच के समक्ष कार्यवाही शुरू करके अपने अधिकारों की घोषणा की मांग करेंगे।

20. राज्य प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता एवं निजी प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता को कोई आपत्ति नहीं है।

21. इस प्रकार की गई प्रार्थना के आधार पर रिट याचिकाओं को निस्तारित किया जाता है।

(2023) 1 ILRA 240
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल साइड
दिनांक: इलाहाबाद 19.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

रिट सी संख्या- 22149 सन् 2000

मुराली **...याचिकाकर्ता**

ए.डी.एम., वित्त और राजस्व और अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:
एम. आर. गुप्ता

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता:
सी. एस. सी., अनुज कुमार

(ए) भूमि कानून - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार नियम, 1952 - नियम 115-ए/प्रपत्र 49-ए, 115-सी - सूचना – उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 9, 49, 117 , 198, 122-बी - भूमि प्रबंधन समिति और कलेक्टर की शक्तियां – यदि ग्राम सभा की किसी भी संपत्ति को नुकसान पहुंचाया जाता है या दुरुपयोग किया जाता है, तो भूमि प्रबंधन समिति और कलेक्टर कार्रवाई करने के लिए बाध्य हैं - राज्य की भूमि पर प्रतिकूल अधिग्रहण के माध्यम से कोई अधिकार नहीं मिलता है – लंबे अंतराल का अधिग्रहण किसी भी व्यक्ति को राज्य या ग्राम पंचायत की भूमि पर कोई अधिकार नहीं देता है – किसी भी व्यक्ति को बहिष्कृत करने के संबंध में कोई सीमा नहीं है क्योंकि ऐसा व्यक्ति यह दलील नहीं दे सकता है कि वह लंबे समय से अधिग्रहण में है क्योंकि ग्राम पंचायत की भूमि पर उसका कब्जा अवैध है - अनधिकृत कब्जेदार को बहिष्कृत करने के लिए कोई सीमा नहीं। (पैरा 11,22,23)

वाद संपत्ति ग्राम पंचायत की भूमि से संबंधित है – चकबंदी कार्यवाही के दौरान कोई आपत्ति नहीं – याचिकाकर्ता को कोई आवंटन नहीं – याचिकाकर्ता एक अनाधिकृत कब्जाधारी है – जो ग्राम पंचायत की संपत्ति को नुकसान पहुंचाने, दुरुपयोग करने, अवैध रूप से बनाए रखने और कब्जा करने के लिए जिम्मेदार है – याचिकाकर्ता को नुकसान, दुरुपयोग और गलत कब्जे के लिए मुआवजे का भुगतान करने के लिए बेदखल किया जा सकता है – वाद संपत्ति पर राज्य द्वारा भू-राजस्व संशोधन के देय के रूप में उससे वसूली की जानी चाहिए - आयोजित– ज़मींदारी उन्मूलन से पूर्व से कब्ज़ा स्थापित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं - याचिकाकर्ता को निस्काषित करने का आदेश। **(पैरा-19)**

आयोजित: -जमींदारी उन्मूलन से पूर्व याचिकाकर्ता के पास अधिग्रहण नहीं था, लेकिन बाद में उसने ग्राम पंचायत की बंजर भूमि पर चकबंदी की कार्यवाही के बाद भूमि पर कब्ज़ा कर लिया, जिसके परिणामस्वरूप रैंक अतिचारी और भूमि के दुरुपयोग और अनधिकृत रूप से कब्ज़ा करने के लिए हर्जाना देने की जिम्मेदारी थी। पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश की पुष्टि की गई। **(पैरा-28)**

याचिका निरस्त। (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. चोब सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2000 आरडी 233
2. सूरज बाली बनाम गांव सभा, 1982 एडब्ल्यूसी (आर) 149
3. श्रीपति बनाम गांव सभा, 1994 (23) एएलआर (आर)18
4. उत्तम सिंह बनाम बी.ओ.आर., 1980 एडब्ल्यूसी 600
5. सुखदेव बनाम कलेक्टर, बांदा 2007 (102) आरडी 83 (एचसी)

7. भगवान बनाम गाँव सभा, बिजनौर, 2006(100) आरडी 620
8. गंगा सरन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1992 आरडी 382 (सप्लीमेंट)

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा प्रदत्त)

1. यह रिट याचिका अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (वित्त और राजस्व), गाजीपुर द्वारा जारी आदेश दिनांकित 25.04.2000 को रद्द करने के लिए दाखिल की गई है, जिसमें संशोधन स्वीकार किया गया था और निचली अदालत के जारी आदेश दिनांकित 11.07.1991 को रद्द किया गया था और यह निर्धारित किया गया था कि गाटा संख्या 13/4 ख क्षेत्रफल 0-6-0 हेक्टेयर ग्राम पंचायत की जमीन है, जिससे याचिककर्ता को निष्कासित किया गया था और 720 रुपये का नुकसान और 5 रुपये का कार्यवाही शुल्क लगाया गया था।

2. अदालत ने पहले ही याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री एम.आर. गुप्ता और प्रतिवादी संख्या 1 के लिए विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री जितेंद्र नारायण राय को सुना है।

3. याचिकाकर्ता ने आधार लिया है और तथ्यों का उल्लेख किया है कि प्लॉट संख्या 13/4 क्षेत्रफल 0-6-9 के संबंध में याचिकाकर्ता को उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 और भूमि सुधार नियमों के नियम 115-ए/फॉर्म 49-ए के तहत सहायक कलेक्टर-प्रथम श्रेणी, ग़ाज़ीपुर द्वारा एक नोटिस (अनुलग्नक-1) जारी किया गया था। याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950[22] की धारा 122-बी और उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार नियमावली, 1952[23] के नियम 115-सी के तहत आपत्ति (अनुलग्नक-2) दाखिल की, जिसमें कहा गया कि विवादित भूखंड पर याचिकाकर्ता के घर में जमींदारी काल से ही नाद, खूंटा और चारण के पेड़ मौजूद हैं। साक्ष्य दिनांक 06.04.1991 (अनुलग्नक-3) में लेखपाल ने स्वीकार किया कि मकान 50 वर्ष पुराना है तथा पेड़ 40-45 वर्ष पुराने हैं तथा नाद, खूंटा तथा चारण भी हैं जो विवादित भूमि में थे। तहसीलदार, सदर ने अपने आदेश दिनांक 11.07.1991 (अनुलग्नक-4) द्वारा मामले को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि उन्होंने निरीक्षण भी किया है और उनका घर 50 वर्ष से अधिक पुराना है और याचिकाकर्ता के नाद, खूंटा, चारण और पेड़ वहां हैं और वह 50 साल से भी ज्यादा समय से रह रहे हैं ।

4. प्रतिवादी संख्या 1 ने विकृत निर्धारण दिया और संशोधन को 25.04.2000 के आदेश के माध्यम से स्वीकार किया (अनुलग्नक-5)। इंटेखाब, खतौनी (अनुलग्नक-6) के अनुसार, याचिकाकर्ता एक लघु किसान हैं, जिनके पास केवल 0.680 हेक्टेयर का भूमि क्षेत्र है। यदि 25.04.2000 का विवादित आदेश रद्द नहीं किया गया है, तो याचिकाकर्ता को अप्रत्याशित हानि और चोट पहुंचेगी। इसलिए, याचिका को मंजूरी दी जाए और विवादित आदेश को रद्द किया जाए और **परमादेश रिट** द्वारा उत्तरदाता को निर्धारित किया जाए कि याचिकाकर्ता को संपत्ति से बेदखल न किया जाए।

5. याचिका में संदर्भित सभी प्रपत्रों को याचिकाकर्ता ने संलग्न किया है। प्रतिवादी द्वारा कोई जवाबी हलफनामा नहीं दायर किया गया है। याचिकाकर्ता यादव जाति के हैं। उन्होंने केवल एक खतौनी का अंश संलग्न किया है, जिससे प्रकट होता है कि क्षेत्रफल 0.680 हेक्टेयर याचिकाकर्ता के नाम पर दर्ज है, लेकिन कोई अन्य कागज जैसे प्रश्न-उत्तर नहीं दायर किया गया है जिससे स्थापित हो कि प्रासंगिक भूमि का अतिरिक्त क्षेत्रफल याचिकाकर्ता का नहीं है । यदि याचिकाकर्ता लघु किसान है और वह प्राथमिकता की श्रेणी में आते हैं, तो किसी भी भूमि जो गाँव पंचायत की सार्वजनिक की उपयोगिता में नहीं है, उसे आवंटित किया जा सकता है, लेकिन याचिकाकर्ता के पक्ष में न तो विवादित संपत्ति के पट्टा आवंटन का प्रस्ताव किया गया है और न ही कानून के अनुसार उसके पक्ष में कोई पट्टा निष्पादित किया गया है ।

6. पक्षों द्वारा स्वीकृत है कि मामले की संपत्ति खसरा नंबर 13/4 ग्राम पंचायत बंजर जमीन है। याचिकाकर्ता के अनुसार वहाँ पर नाद, खूंटा, चारण, झोपड़ी, पेड़, घर और खलिहान 50 वर्षों से अधिक है और याचिकाकर्ता वहां 50 से अधिक वर्षों से निवास कर रहे हैं, लेकिन लेखपाल ने यह दर्शाया है कि याचिकाकर्ता ने चंकबंदी के बाद अवैध रूप से भूमि पर कब्जा किया है। याचिकाकर्ता के अनुसार ये सब उनके पिता, विशम्भर, के समय से हैं।

7. न तो याचिकाकर्ता ने न ही प्रतिवादी ने खतौनी और खसरा का अंश दायर किया है, लेकिन विवादित आदेश और याचिकाकर्ता की स्वीकृति के आधार पर, यह स्थापित तथ्य है कि मामले में संपत्ति ग्राम पंचायत की बंजर जमीन है ।

8. जिरह में लेखपाल ने स्वीकार किया है कि चंकबंदी से पहले विवादित भूमि आबादी भूमि नहीं थी परन्तु बंजर भूमि थी हो सकती थी । वर्तमान में भी इसे बंजर भूमि के रूप में दर्ज किया गया है, जिसमें लगभग 8 व्यक्तियों ने ग्राम पंचायत की अनधिकृत रूप से भूमि का कब्जा किया है, जिसके खिलाफ रिपोर्टें दर्ज की गई हैं।

9. लेखपाल के अनुसार मुरली के पिता का नाम तुफानी है न कि विशुनी । उन्होंने आगे बताया कि विवादित संपत्ति पर याचिकाकर्ता ने नाद, चारण, खूंटा, झोपड़ी और घर का निर्माण किया है। घर के सामने पेड़ भी हैं । याचिकाकर्ता द्वारा इस भूमि का उपयोग आबादी भूमि के रूप में किया

22 अधिनियम, 1950
23 नियमावली, 1952

जा रहा है। याचिकाकर्ता का करीब 5-6 साल पहले से कब्जा है। तहसीलदार ने लेखपाल के बयान का भी हवाला दिया है, जिसमें लेखपाल ने बताया है कि खसरा नंबर 13 का कुल क्षेत्रफल 5-11-13 है, जिसमें से 6 डिसमिल क्षेत्र पर प्रतिवादी द्वारा अधिग्रहण किया गया है । चकबंदी से पहले खसरा नंबर 13 आबादी भूमि नहीं थी। विवादित संपत्ति बंजर भूमि के रूप में दर्ज है । दिनांक 11.07.1991 के आदेश में तहसीलदार ने निष्कर्ष निकाला कि विवादित संपत्ति में लगभग 50 वर्ष पुराने मकान हैं अन्य बाते भी है इसलिए धारा 49-ए के तहत नोटिस वापस ले लिया गया था । राज्य ने पुनरीक्षण अर्थात अधिनियम 1950 की धारा 122-बी(4ए) अंतर्गत धारा 1991 के पुनरीक्षण संख्या-9 प्राथमिकता दी थी, जिसका निर्णय 25.08.2000 को अपर कलेक्टर/एडीएम, गाज़ीपुर द्वारा निर्णीत किया गया था, जिसमें राज्य ने आदेश की निंदा की थी। और कहा कि तहसीलदार ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का सही विश्लेषण नहीं किया है।

10. अभिलेखों से यह सिद्ध होता है कि वाद में संपत्ति ग्राम पंचायत की संपत्ति है और तहसीलदार ने अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर आदेश पारित किया है। पुनरीक्षण अदालत ने पाया कि मुकदमे में संपत्ति यानी खसरा संख्या 13/4 क्षेत्र डिसमिल बंजर गांव सभा की भूमि है जिस पर याचिकाकर्ता ने मकान आदि बनाए थे। याचिकाकर्ता ने कहा है कि मकान आदि जमींदारी उन्मूलन से पहले के हैं। खूंटा, चारण, खलिहान और झोपड़ी भी जमींदारी उन्मूलन के पहले से हैं। पुनरीक्षण न्यायालय ने लेखपाल के इस कथन पर प्रकाश डाला कि वाद में संपत्ति चकबंदी के पहले से आबादी भूमि नहीं थी, बल्कि बंजर भूमि थी जिस पर चकबंदी के बाद प्रतिवादी ने कब्जा कर लिया है । पुनरीक्षण अदालत ने यह भी पाया कि याचिकाकर्ता ने जमींदारी उन्मूलन से पहले अपना कब्ज़ा साबित करने के लिए कोई सबूत पेश नहीं किया है और मुकदमे के प्रयोजनों के लिए मौखिक साक्ष्य पर्याप्त नहीं है । पुनरीक्षण अदालत ने निष्कर्ष निकाला कि निचली अदालत का आदेश गलत है और पुनरीक्षण की अनुमति दी और याचिकाकर्ता को बेदखल करने का आदेश पारित किया और 720/- रुपये हर्जाना और 5/- रुपये निष्पादन शुल्क लगाया। पुनरीक्षण अदालत ने यह भी निर्देश दिया कि आदेश का अनुपालन करने के बाद फाइल को आगे भेज दिया जाए।

11. रिकार्ड पर उपलब्ध कागजातों के अवलोकन से यह स्पष्ट रूप से स्थापित हो गया है कि मुकदमे में संपत्ति ग्राम पंचायत बंजर भूमि है और याचिकाकर्ता यादव जाति का है जो अन्य पिछड़ा वर्ग से संबंधित है। यदि ग्राम सभा की किसी भी संपत्ति को नुकसान पहुंचाया जाता है या दुरुपयोग किया जाता है, तो भूमि प्रबंधन समिति और कलेक्टर कार्रवाई करने के लिए बाध्य हैं । इस संबंध में अधिनियम, 1950 की धारा 122-बी के तहत नियम और कानून बनाए गए हैं। चूंकि मामला उस समय का है जब अधिनियम, 1950 लागू था, इसलिए उपरोक्त अधिनियम के प्रावधानों पर विचार किया जाता है और संदर्भित किया जाता है । अधिनियम, 1950 की धारा 122-बी इस प्रकार है:-

*"**122-बी. भूमि प्रबंधन समिति और कलेक्टर की शक्तियां.**-(1) जहां इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत गांव सभा या स्थानीय प्राधिकरण में निहित किसी भी संपत्ति को नुकसान पहुंचा है या दुरुपयोग किया गया है या जहां कोई गांव सभा या स्थानीय प्राधिकरण है इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत किसी भी भूमि पर कब्जा लेने या बनाए रखने का हकदार है और ऐसी भूमि पर इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार अन्यथा कब्जा कर लिया गया है, भूमि प्रबंधन समिति या स्थानीय प्राधिकारी, जैसा भी मामला हो, निर्धारित तरीके से संबंधित सहायक कलेक्टर को सूचित करेगा ।*

(2) जहां उप-धारा (1) के तहत या अन्यथा प्राप्त जानकारी से, सहायक कलेक्टर संतुष्ट है कि उप-धारा (1) में निर्दिष्ट किसी भी संपत्ति को नुकसान पहुंचा है या दुरुपयोग किया गया है या किसी व्यक्ति ने किसी भी भूमि पर कब्जा कर लिया है, उस उप-धारा में निर्दिष्ट, इस अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन में, वह संबंधित व्यक्ति को कारण बताने के लिए नोटिस जारी करेगा कि इस तरह के नोटिस में उल्लिखित क्षति, दुरुपयोग या गलत कब्जे के लिए मुआवजा उससे क्यों नहीं वसूला जाए या, मामला यह हो सकता है कि उसे ऐसी भूमि से बेदखल क्यों नहीं किया जाना चाहिए। (3) यदि वह व्यक्ति जिसे उप-धारा (2) के तहत नोटिस जारी किया गया है, नोटिस में निर्दिष्ट समय के भीतर या ऐसे बढ़ाए गए समय के भीतर कारण बताने में विफल रहता है ऐसे व्यक्ति पर ऐसे नोटिस की तामील की तारीख़ से तीस दिन से अधिक का समय नहीं होगा, जैसा कि सहायक कलेक्टर इस संबंध में अनुमति दे सकता है, या यदि दिखाया गया कारण अपर्याप्त पाया जाता है, तो सहायक कलेक्टर निर्देश दे सकता है कि ऐसे व्यक्ति को बेदखल किया जा सकता है कोई भी उस उद्देश्य के लिए भूमि का उपयोग कर सकता है, या ऐसे बल का प्रयोग करवा सकता है जो आवश्यक हो और यह निर्देश दे सकता है कि क्षति, दुरुपयोग या गलत कब्जे के लिए मुआवजे की राशि ऐसे व्यक्ति से भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल की जाए।

(4) यदि सहायक कलेक्टर की राय है कि कारण बताने वाला व्यक्ति उप-धारा (2) के तहत नोटिस में निर्दिष्ट क्षति या दुरुपयोग या गलत कब्जे का दोषी नहीं है, तो वह नोटिस को खारिज कर देगा।

(4-ए) उप-धारा (3) या उप-धारा (4) के तहत सहायक कलेक्टर के आदेश से व्यथित कोई भी व्यक्ति, ऐसे आदेश की तारीख से तीस दिनों के भीतर, कलेक्टर के समक्ष इस आधार पर पुनरीक्षण दायर कर सकता है जो कि धारा 333 के खंड (ए) से (ई) में उल्लिखित है।

(4-बी) इस धारा के तहत की गई किसी भी कार्रवाई में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया ऐसी होगी जो निर्धारित की जा सकती है।

(4-सी) धारा 333 या धारा 333-ए में किसी बात के होते हुए भी, लेकिन इस धारा के प्रावधानों के अधीन-

(i) इस धारा के तहत सहायक कलेक्टर का प्रत्येक आदेश, उपधारा (4-ए) और (4-डी) के प्रावधानों के अधीन, अंतिम होगा,

(ii) इस धारा के तहत कलेक्टर का प्रत्येक आदेश, उपधारा (4-डी) के प्रावधानों के अधीन, अंतिम होगा।

(4-डी) इस धारा के तहत किसी संपत्ति के संबंध में सहायक कलेक्टर या कलेक्टर के आदेश से व्यथित कोई भी व्यक्ति ऐसी संपत्ति पर उसके द्वारा दावा किए गए अधिकार को स्थापित करने के लिए सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय में मुकदमा दायर कर सकता है।

(4-ई) उपधारा (4-डी) में निर्दिष्ट कोई भी मुकदमा सहायक कलेक्टर के आदेश के खिलाफ नहीं होगा यदि उपधारा (4-ए) के तहत कलेक्टर को पुनरीक्षण दिया जाता है।

स्पष्टीकरण.- इस धारा के प्रयोजनों के लिए, अभिव्यक्ति ''कलेक्टर'' का अर्थ यूपी के प्रावधानों के तहत ''कलेक्टर'' के रूप में नियुक्त अधिकारी है। भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 और इसमें एक अतिरिक्त कलेक्टर भी शामिल है।

(4-एफ) पूर्वगामी उप-धाराओं में किसी भी बात के बावजूद, जहां अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित कोई भी खेतिहर मजदूर धारा 117 के तहत गांव सभा में निहित किसी भी भूमि पर कब्जा कर रहा है (धारा 132 में उल्लिखित भूमि नहीं) 13 मई, 2007 से पहले इस पर कब्जा किया गया था और इस तरह से कब्जा की गई भूमि, यदि कोई हो, भूमिधर, सिरदार या आसामी के रूप में उक्त तिथि से पहले उसके पास मौजूद भूमि के साथ 1.26 हेक्टेयर (3.125 एकड़) से अधिक नहीं है, तो इसके तहत कोई कार्रवाई नहीं होगी। ऐसे श्रमिक के विरुद्ध भूमि प्रबंधन समिति अथवा कलेक्टर द्वारा धारा 195 के अंतर्गत भूमिधर के रूप में प्रवेश किया जाएगा तथा उसे उस भूमि के अहस्तांतरणीय अधिकार के साथ भूमिधर के रूप में स्वीकार किया जाएगा तथा उसे अपनी भूमि की घोषणा के लिए वाद संस्थित करना आवश्यक नहीं होगा।

स्पष्टीकरण.-अभिव्यक्ति "कृषि मजदूर" का वही अर्थ होगा जो धारा 198 में दिया गया है।

5. नियमावली 115-सी से 115-एच उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार नियमावली, 1952 सदैव उ.प्र. जमीनदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम , 1950 जो की उ.प्र. भूमि कानून (द्वितीय संशोधन) अधिनियम 1961 के अंतर्गत बनी हुई मानी जाएगी । मानो यह धारा सभी भौतिक तिथियों पर लागू रही है और तदनुसार परिवर्तन या निरस्त या संशोधित होने इस अधिनियम के प्रावधानों के साथ तक लागू रहेगी। ।"

12. धारा 122-बी(1) के अनुसार, अगर किसी संपत्ति ग्राम पंचायत के अधीन है उसमें हानि या अनुचित अपव्यय होता है, तो ग्राम पंचायत को संपत्ति का कब्जा लेने या रखने का अधिकार होता है। यदि भूमि को 1950 के अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार नहीं रखा जाता है, तो भूमि प्रबंधन समिति या स्थानीय प्राधिकारी को निर्धारित तरीके में संबंधित सहायक कलेक्टर को सूचित करना चाहिए। धारा 122-बी(2) के अनुसार, यदि सहायक कलेक्टर को संतुष्टि होती है कि ग्राम पंचायत की संपत्ति को हानि पहुंची है या अनुचित अपव्यय हुआ है या कोई व्यक्ति 1950 के अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए किसी भूमि के कब्जे में है, तो उसे चित्रित कारण स्पष्ट करने के लिए उस व्यक्ति को नोटिस जारी करना चाहिए कि उस से क्षति, अपव्यय या अनुचित कब्जे के लिए मुआवजा क्यों नहीं मांगा जाना चाहिए और क्यों उसे उस भूमि से नहीं निकाल दिया जाना चाहिए। धारा 122-बी(3) के अनुसार, यदि व्याख्या पर्याप्त नहीं मानी जाती है, तो सहायक कलेक्टर को उस व्यक्ति को भूमि से निकालने और उसे क्षति, अपव्यय या अनुचित कब्जे के लिए मुआवजा के रूप में जमीन के राजस्व के खाते में जमा करने के रूप में निर्देशित किया जा सकता है । धारा 122-बी(4) के अनुसार, यदि सहायक कलेक्टर को लगता है कि व्यक्ति नुकसान या अपव्यय या अनुचित कब्जे के कारण दोषी नहीं है, तो वह नोटिस को निरस्त कर देगा ।

13. इस मामले में सहायक कलेक्टर ने संतुष्ट होकर नोटिस को निरस्त कर दिया है, क्योंकि उन्हें यह जानकरी मिली थी कि प्रार्थी पिछले लगभग 50 वर्षों से संबंधित संपत्ति पर कब्जे में था ।

14. धारा 122-बी(4ए) के अनुसार सहायक कलेक्टर के आदेश से व्यथित कोई भी व्यक्ति 30 दिनों के भीतर अधिनियम, 1950 की धारा 333 के खंड (ए) से (सी) में उल्लिखित आधार पर कलेक्टर के समक्ष पुनरीक्षण प्रस्तुत कर सकता है। धारा 122-बी(4सी) के अनुसार सहायक कलेक्टर का प्रत्येक आदेश उप-धारा (4ए) और (4डी) के प्रावधानों के अधीन अंतिम होगा, जिसका अर्थ है कि

अनुवादित

सहायक कलेक्टर का आदेश पुनरीक्षण के निर्णय के अधीन होगा। न्यायालय या उप-धारा (4डी) के अधीन और इसके अलावा कलेक्टर का प्रत्येक आदेश उप-धारा (4डी) के प्रावधानों के अधीन अंतिम होगा। धारा 122-बी(4डी) के अनुसार, इस धारा के तहत किसी भी संपत्ति के संबंध में सहायक कलेक्टर या कलेक्टर के आदेश से व्यथित कोई भी व्यक्ति अपने द्वारा दावा किए गए अधिकार को स्थापित करने के लिए सक्षम क्षेत्राधिकार वाली अदालत में ऐसी संपत्ति में मुकदमा दायर कर सकता है। लेकिन उप-धारा (4ई) एक शर्त लगाती है कि उप-धारा (4डी) में संदर्भित ऐसा कोई भी मुकदमा सहायक कलेक्टर के आदेश के खिलाफ नहीं होगा, यदि उप-धारा (4ए) के तहत कलेक्टर को पुनरीक्षण दिया जाता है।

15. इस मामले में राज्य ने उप-धारा (4ए) के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग किया है और कलेक्टर के समक्ष संशोधन को प्राथमिकता दी है, जिसे 25.04.2000 को अनुमति दी गई है, हालांकि याचिकाकर्ता द्वारा कोई संशोधन नहीं किया गया है। इस प्रकार, ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता द्वारा मुकदमा दायर करने का अधिकार अभी भी मौजूद है।

16. उपधारा (4 एफ) उन व्यक्तियों को बेदखली से राहत प्रदान करती है जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के कृषि मजदूर हैं। यदि वे धारा 117 के तहत गांव सभा में निहित किसी भी भूमि पर कब्जा कर रहे हैं (धारा 132 में उल्लिखित भूमि नहीं) तो 13 मई, 2007 से पहले उस पर कब्जा कर लिया है और इस तरह से कब्जा की गई भूमि के साथ-साथ उसके पास मौजूद भूमि, यदि कोई हो, पर कब्जा कर लिया है। उक्त तिथि से पहले से यदि भूमिधर, सिरदार या आसामी 1.26 हेक्टेयर (3.125 एकड़) से अधिक नहीं है तो ऐसे मजदूर के खिलाफ भूमि प्रबंधन समिति या कलेक्टर द्वारा कोई कार्रवाई (इस धारा के तहत) नहीं की जाएगी और उसे गैर के साथ भूमिधर के रूप में स्वीकार किया जाएगा। धारा-195 के तहत उस भूमि का हस्तांतरणीय अधिकार और उस भूमि में गैर-हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर के रूप में अपने अधिकारों की घोषणा के लिए मुकदमा दायर करना उसके लिए आवश्यक नहीं होगा।

17. चूंकि दोनों पक्षों ने स्वीकार किया है कि याचिकाकर्ता जाति से यादव होने के कारण अन्य पिछड़ा वर्ग का सदस्य है, वह अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का नहीं है, इसलिए, उपधारा (4एफ) का संरक्षण उसे उपलब्ध नहीं है।

18. पक्षकारों के समक्ष यह भी स्वीकार किया गया कि संबंधित गांव चकबंदी अभियान के अधीन रहा है और अधिनियम, 1950 की धारा 117 के तहत चकबंदी के बाद अधिकारों के नए रिकॉर्ड तैयार किए गए हैं जिसमें मुकदमे में संपत्ति को गांव सभा बंजर भूमि के रूप में छोड़ दिया गया है जो ग्राम पंचायत की संपत्ति है। यदि याचिकाकर्ता का घर और अन्य चीजें वहां होतीं, तो निश्चित रूप से चकबंदी कार्रवाई के दौरान आकार पत्र 2-क की तैयारी के समय चकबंदी अधिकारियों द्वारा इस पर ध्यान दिया जाता, जिससे चकबंदी होती। अधिकारियों ने इस भूमि को गाँव सभा के प्रयोजनों के लिए गाँव सभा की भूमि के रूप में छोड़ दिया, जिसे अधिनियम, 1950 की धारा 198 में उल्लिखित कानून के अनुसार पात्र व्यक्तियों को आवंटित किया जा सकता है। याचिकाकर्ता ने आवंटन के लिए न तो कोई प्रतिनिधित्व किया है और न ही कोई आवेदन दिया है। न तो भूमि उन्हें दी गई और न ही भूमि प्रबंधन समिति ने याचिकाकर्ता को वाद में भूमि आवंटित करने का प्रस्ताव दिया है और न ही सक्षम प्राधिकारी द्वारा ऐसा कोई आदेश पारित किया गया है। यदि याचिकाकर्ता जमींदारी उन्मूलन से पहले मुकदमे में संपत्ति का उपयोग और कब्जा कर रहा था, तो चकबंदी अधिकारियों के समक्ष आपत्ति दर्ज करना उसका कर्तव्य था कि मुकदमे में संपत्ति अधिनियम, 1950 की धारा 9 के तहत उसके पास निहित है और है खुला नहीं है और समेकन के लिए उपलब्ध है। यदि ऐसी कोई आपत्ति या आवेदन प्रस्तुत नहीं किया गया है या यदि ऐसी आपत्ति या आवेदन प्रस्तुत किया गया है लेकिन चकबंदी अधिकारियों द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है, तो यूपी चकबंदी अधिनियम, 1953 की धारा 49 के मद्देनजर दोबारा आपत्ति उठाने पर रोक होगी। इस मामले में मामले की संपत्ति ग्राम पंचायत की ज़मीन का हिस्सा है जिसके खिलाफ प्रार्थी ने सम्मिलन प्रक्रिया के दौरान कोई आपत्ति नहीं उठाई थी। मामले की संपत्ति को प्रार्थी को वितरित नहीं किया गया है, इसलिए निष्कर्ष निकाला गया है कि प्रार्थी अनधिकृत कब्ज़ा करने वाला है और ग्राम पंचायत की संपत्ति को क्षति पहुंचाने, ग़ैरकानूनी रूप से धारण करने और कब्ज़े में रहने के लिए जिम्मेदार है, इसलिए प्रार्थी को खाली कराने के लिए उत्तरदायी है और उसे नुकसान, अनधिकृत कब्ज़े के लिए मुआवजा भी चुकाना होगा, जो उससे भूमि राजस्व के अंश के रूप में प्राप्त किया जा सकता है।

20. **चोब सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[24], सूरज बाली बनाम ग्राम सभा[25] एवं श्रीपति बनाम ग्राम सभा[26]** में यह मानना है कि गाँव सभा की भूमि पर अवैध निर्माण, पेड़ लगाना और

आसपास की भूमि में चकरोड के एक हिस्से को शामिल करना, गाँव सभा की संपत्ति को नुकसान पहुंचाने या उसका दुरुपयोग करने के उदाहरण हैं।

---

24 2000 आरडी 233

25 1982 एडब्लूसी (आर)149

26 1994 (23) एएलआर (आऱ)18

21. **उत्तम सिंह बनाम राजस्व बोर्ड**[27] में यह माना गया कि कि राजस्व बोर्ड निर्माण को ध्वस्त करने का निर्देश देने में सक्षम है।

22. यह स्थापित कानून है कि राज्य की भूमि पर प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से कोई अधिकार अर्जित नहीं होता है। लंबे समय से कब्जा किसी भी व्यक्ति को राज्य या ग्राम पंचायत की भूमि पर कोई अधिकार नहीं देता है और किसी भी व्यक्ति को बेदखल करने के संबंध में कोई सीमा नहीं है क्योंकि ऐसा व्यक्ति यह दलील नहीं दे सकता है कि वह लंबे समय से कब्जे में है क्योंकि उसका कब्जा ग्राम पंचायत की जमीन पर अवैध है।

23. **सुखदेव बनाम कलेक्टर, बांदा**[28] में यह माना गया कि अनाधिकृत कब्जेदार को बेदखल करने की कोई सीमा नहीं है।

24. इस याचिका में याचिकाकर्ता ने यह दलील भी दी है कि जमींदारी उन्मूलन के पहले से ही उसका कब्जा है, लेकिन इस बारे में पुनरीक्षण न्यायालय ने लेखपाल के साक्ष्य के आधार पर निष्कर्ष दिया था कि लगभग आठ लोगों ने विवादित खसरा जमीन पर अवैध कब्जा कर रखा है और उन्हें नोटिस जारी किए गए हैं। पुनरीक्षण न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला है कि याचिकाकर्ता ने चकबंदी कार्यवाही समाप्त होने के बाद भूमि पर कब्जा कर लिया है।

25**. दल सिंह बनाम अतिरिक्त कलेक्टर, मेरठ**[29] में निर्धारित किया गया है कि अनधिकृत कब्ज़ाधारी के संबंध में एक तथ्य का निर्णय है और इसे उच्च न्यायालय द्वारा रद्द नहीं किया जाता है। इस मामले में दिए गए सिद्धांत प्रार्थी के खिलाफ हैं।

26. हालांकि विवादित संपत्ति आबादी भूमि नहीं है लेकिन बांजर भूमि के रूप में दर्ज की गई है, परंतु **भगवान बनाम गांव सभा, बिजनौर**[30] में निर्णय दिया गया है कि इस धारा के तहत प्रक्रिया प्रारंभ की जा सकती है, यदि विवादित भूमि आबादी भूमि है।

27. यह पहले ही निष्कर्ष किया गया है कि प्रार्थी अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का नहीं है, इसलिए उप-धारा (4एफ) का लाभ उन्हें नहीं मिलता है। **गंगा सरन बनाम उत्तर**

प्रदेश राज्य में निर्णय दिया गया है कि पिछड़ा वर्ग के सदस्य को उप-धारा (4एफ) का लाभ उपलब्ध नहीं होता है।

28. उपरोक्त चर्चा के आधार पर इस न्यायालय का मानना है कि याचिकाकर्ता का जमींदारी उन्मूलन से पहले से मुकदमे में संपत्ति पर कोई कब्जा या स्वामित्व नहीं था। बाद में ग्राम

पंचायत की बंजर भूमि पर चकबंदी कार्यवाही समाप्त होने के बाद उसने भूमि पर कब्जा कर लिया था, जिसका वह किसी भी तरह से हकदार नहीं था। वह एक अतिचारी है और वह ग्राम पंचायत की भूमि के दुरुपयोग और अनाधिकृत रूप से कब्जा करने के लिए हर्जाना देने के लिए जिम्मेदार है, इसलिए पुनरीक्षण न्यायालय का आदेश बरकरार रखा जाता है। याचिका में गुण-दोष का आभाव है और इसे जुर्माने के साथ खारिज किया जा सकता है ।

<u>आदेश</u>

29. याचिका खारिज की जाती है और पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश दिनांकित 25.04.2000 के आदेश की पुष्टि की जाती है। प्रतिवादी पुनरीक्षण न्यायालय और इस न्यायालय के आदेश का भी पालन करने के लिए आगे बढ़ सकते हैं।

30. इस आदेश की एक प्रति आवश्यक अनुपालन हेतु जिलाधिकारी, ग़ाज़ीपुर को भेजी जाये।

(2023) 1 ILRA 247
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल वाद
दिनांक: इलाहाबाद 25.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीता अग्रवाल
माननीय न्यायमूर्ति विपिन चन्द्र दीक्षित

रिट सी संख्या - 22594/2022

अन्य रिट सी मामलों से सम्बद्घ

शिप्रा होटल्स लिमिटेड एवं अन्य ...याचिकाकर्ता
बनाम
भारत संघ एवं अन्य ...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ताओं के लिए अधिवक्ता:
श्री कोमल मेहरोत्रा, श्री आदित्य शर्मा, श्री मोहम्मद खालिद, श्री अमित सक्सेना, श्री अनुराग खन्ना (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रत्यर्थीओं के लिए अधिवक्ता:
सी.एस.सी., श्री राघव द्विवेदी, श्री वीरेंद्र कुमार शुक्ला, श्री नवीन सिन्हा (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री अपूर्व हजेला

(ए) सरफेसी कानून - वित्तीय संपत्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण और प्रतिभूति ब्याज का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 - धारा 13(2), 13(4) -सुरक्षा हित का प्रवर्तन, धारा 14 - मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट सुरक्षित संपत्ति पर कब्जा करने में सुरक्षित लेनदार की

---

27 1980 एडब्लूसी 600

28 2007 (102)आरडी 83 (एचसी)

29 2006(101)आरडी (एच)7 एचसी

30 2006 (100)आरड़ी 620

अनुवादित

सहायता करने के लिए - "शासकीय अधिनियम" - सुरक्षा हित (प्रवर्तन) नियम, 2002 - नियम 8 - अचल सुरक्षित संपत्ति की बिक्री - सिद्धांत नैसर्गिक न्याय अनुच्छेद 14 का अभिन्न अंग है। (पैरा-43)

सरफेसी अधिनियम 2002 की धारा 14 के तहत पारित आदेश की वैधता - चुनौती के तहत - आधार - याचिकाकर्ताओं (उधारकर्ताओं) को कोई नोटिस या सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया - मुद्दा - क्या उधारकर्ता धारा 14 के तहत कार्यवाही में नोटिस और सुनवाई के अवसर का हकदार है सरफेसी अधिनियम, 2022। **(पैरा - 2,22)**

(बी) प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत - प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन धारा 13(3ए) के चरण में है, यानी इससे पहले कि सुरक्षित ऋणदाता अधिनियम की धारा 13(4) के तहत उधारकर्ता के खिलाफ महत्वपूर्ण उपाय शुरू करने के लिए आगे बढ़े - एक बार उधारकर्ता को सुरक्षित ऋणदाता के बकाया का भुगतान करने के लिए कहने के बाद महत्वपूर्ण उपाय शुरू करने से पहले चरण में अवसर दिया जाता है - धारा 13(4) या धारा 14 के चरण में कोई और अवसर नहीं दिया जाना है।(पैरा) - 46)

अवधारित किया गया:- सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 14 में कहा गया है कि इस अधिनियम के तहत कार्य करने वाले सीएमएम/डीएम को निर्णय या आदेश पारित करने के चरण में उधारकर्ता को नोटिस देने की आवश्यकता नहीं है। इसके बजाय, मजिस्ट्रेट को ऐसे कदमों या बल प्रयोग द्वारा ऋण लेने वाले को जबरन बेदखल करने के लिए कोई भी कदम उठाने से पहले उस पर कार्रवाई करनी चाहिए। ऐसी जबरन कार्रवाई के लिए निर्धारित तिथि पहले ही भेजी जानी चाहिए ताकि उधारकर्ता अपना सामान हटा सके या वैकल्पिक व्यवस्था कर सके। हालाँकि, इस अधिनियम के तहत पारित आदेशों को खारिज कर दिया गया। **(पैरा - 52,53)**

याचिकाएं खारिज। (ई-7)

उद्धृत मामलों की सूची

1. शिप्रा होटल्स लिमिटेड एवं अन्य बनाम यूपी राज्य एवं अन्य, रिट-सी संख्या 22594/2022

2. धर्मपाल सत्यपाल लिमिटेड बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क उपायुक्त, गौहाटी और अन्य, (2015) 8 एससीसी 519

3. ए.के. क्रेपक एवं अन्य बनाम यू.ओ.आई. और अन्य, 1969 (2) एससीसी 262

4. प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल, हैदराबाद बनाम बी. करुणाकर, 1993 (4) एससीसी 727 (पैरा 20)

5. कुमकुम टेंटीवाल बनाम यू.पी. राज्य एवं अन्य. , (2019) 2 एआईआई एल जे 332

6. हर्ष गोवर्धन सौदागर बनाम इंटरनेशनल एेसेट रिकान्सट्रक्सन , (2014) 6 SCC 1

7. मेसर्स कौशांबी पेपर मिल्स प्रा. लिमिटेड एवं अन्य। बनाम ए.डी.एम. और 2 अन्य, रिट-सी संख्या 12699/2020

8. श्रीमती शकीला बेगम बनाम यू.पी.राज्य और अन्य. ,रिट-सी संख्या 16399/2021

9. ज़ैनुल आब्दीन बनाम बी.ओ.बी. और 3 अन्य, रिट-सी संख्या 12624/2020

10. सीए. मनीषा मेहता एवं अन्य बनाम निदेशक मंडल एवं अन्य, एआईआर 2022 बॉम्बे 178

11. स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक बनाम वी. नोबल कुमा आर एंड अन्य, (2013) 9 एससीसी 620

12. मैसर्स ट्रेड वेल, एक प्रोपराइटरशिप फर्म, मुंबई और अन्य बनाम इंडियन बैंक और अन्य, 2007 एससीसी ऑनलाइन बम 1232

13. अनुराधा सिंह एवं अन्य। बनाम सी.एम.एम. कानपुर नगर एवं अन्य, 2018 (5) एडीजे 712 (डीबी)

14. शकुंतला देवी जन कल्याण समिति सचिव एवं अन्य बनाम यू.पी. राज्य और अन्य. , 2020 (139) एएलआर 466

15. मार्डिया केमिकल्स लिमिटेड आदि बनाम यू.ओ.आई. और अन्य. आदि, (2004) 4 एससीसी 311

16. कन्हैयालाल लालचंद सचदेव एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, (2011) 2 एससीसी 782

17. एनकेजीएसबी सहकारी बैंक लिमिटेड बनाम सुबीर चक्रवर्ती और अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 239

18. मैसर्स आर.डी. जैन एंड कंपनी बनाम कैपिटल फर्स्ट लिमिटेड और अन्य, सिविल अपील नं. 175/2022

19. फीनिक्स एआरसी प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, रिट याचिका संख्या 9794/2021

20. सी. ब्राइट बनाम जिला कलेक्टर एवं अन्य, (2021) 2 एससीसी 392

21. फीनिक्स एआरसी प्रा. लिमिटेड बनाम विश्व भारती विद्या मंदिर एवं अन्य., (2022) 5 एससीसी 345

22. ट्रांसकोर बनाम यू.ओ.आई.और अन्य, (2008) 1 एससीसी 125

23. यूपी राज्य और अन्य बनाम सिंथेटिक्स एंड केमिकल्स लिमिटेड और अन्य, (1991) 4 एससीसी 139

24. हैदर कंसल्टिंग (यूके) लिमिटेड बनाम गवर्नर, उड़ीसा राज्य द्वारा चीफ इंजीनियर, (2015) 2 एससीसी 189

25. फ़्यूरस्ट डे लॉसन लिमिटेड बनाम जिंदल एक्सपोर्ट्स लिमिटेड, 2001 (6) एससीसी 356

26. ए. आर. अंतुले बनाम आर. एस. नायक और अन्य, (1988) 2 एससीसी 602

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल
एवं
माननीय न्यायमूर्ति विपीन चन्द्र दीक्षित द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अमित सक्सैना के सहायक श्री कोमल मेहरोत्रा, राज्य-प्रत्यर्थियों के लिए अपर महाधिवक्ता श्री मनीष गोयल की सहायक विद्वान स्थाई अधिवक्ता श्री अपूर्व हजेला, प्रत्यर्थी संख्या 3 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनुराग खन्ना के सहायक अधिवक्ता वीरेंद्र कुमार शुक्ला और प्रत्यर्थी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री राघव द्विवेदी के सहायक विद्वान अधिवक्ता श्री नवीन सिन्हा एवं प्रत्यर्थी बैंक की ओर से विद्वान अधिवक्ता सुश्री रेखा सिंह के होल्डिंग ब्रीफ श्री संजय कुमार गुप्ता को सुना, रिट-सी संख्या 27814/2022 में याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री उत्कर्ष सिंह ने सरफेसी अधिनियम' 2002 की धारा 14 के तहत सीएमएम/डीएम द्वारा निर्णय के चरण में सुनवाई का अवसर प्रदान करने के मुद्दे पर श्री अमित सक्सेना विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के तर्कों को अपनाया है। अन्य संबंधित रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ताआोंं ने भी याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताआोंं के तर्कों को अपनाया है।

2. सभी संबंधित रिट याचिकाओं में उठाया गया सामान्य विवाद वित्तीय संपत्तियों के प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण और प्रतिभूति ब्याज प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (इसके बाद "सरफेसी अधिनियम, 2002" के रूप में संदर्भित) की धारा 14 के तहत पारित आदेश की वैधता के बारे में है। प्राधिकृत अधिकारी अर्थात् अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (वित्त एवं राजस्व), गाजियाबाद, मेरठ कमिश्नरी और अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (वित्त एवं राजस्व), वाराणसी द्वारा, इस आधार पर कि यहां याचिकाकर्ताओं को कोई नोटिस या सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया है। उधारकर्ता कौन हैं और इस प्रकार, लागू आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन से ग्रस्त हैं। इसलिए, उन्हें एक साथ सुना गया है और इस सामान्य निर्णय द्वारा निर्णय लिया जा रहा है।

3. रिट-सी संख्या 22594/2022 (शिप्रा होटल्स लिमिटेड और अन्य बनाम यूपी राज्य और 3 अन्य) में, अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (एफ एंड आर), गाजियाबाद के क्षेत्राधिकार के संबंध में भी एक मुद्दा रखा गया है। सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 14 की उपधारा (1) के तीसरे प्रावधान में निर्धारित 60 दिनों की अवधि से परे ऐसा आदेश पारित करने के लिए उठाया गया।

4. इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं की मुख्य प्रार्थना यह है कि इस न्यायालय द्वारा यह घोषणा की जाए कि प्राकृतिक न्याय को अनिवार्य आवश्यकता के रूप में सरफेसी अधिनियम की धारा 14 में पढ़ा जाना चाहिए।

5. प्रमुख रिट याचिका में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री कोमल मेहरोत्रा की सहायता से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अमित सक्सेना द्वारा यह तर्क दिया गया है कि यह कानून का प्रसिद्ध सिद्धांत है कि यदि कोई क़ानून प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुपालन को बाहर नहीं करता है। स्पष्ट रूप से या आवश्यक रूप से निहितार्थ से, प्राकृतिक न्याय के अनुपालन को क़ानून में पढ़ा जाना चाहिए। किसी निर्णय में प्रक्रियात्मक निष्पक्षता लाने के लिए ऑडी अल्ट्रम पैल्ट्रम सहित प्राकृतिक न्याय के मूलभूत सिद्धांतों पर न्यायालयों द्वारा जोर दिया गया है और इसके उल्लंघन के कारण ऐसे निर्णयों को रद्द कर दिया गया है।

यह तर्क दिया जाता है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की प्रयोज्यता किसी वैधानिक प्रावधान पर निर्भर नहीं है। इस तथ्य की परवाह किए बिना कि ऐसा कोई वैधानिक प्रावधान है या नहीं, सिद्धांत को अनिवार्य रूप से लागू किया जाना चाहिए।

धर्मपाल सत्यपाल लिमिटेड बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क, गौहाटी के डिप्टी कमिश्नर और अन्य में शीर्ष न्यायालय के फैसले पर भरोसा रखा गया है एवं इस बात पर जोर दिया कि जहां कोई क़ानून संपत्तियों या अन्य अधिकारों के साथ हस्तक्षेप को अधिकृत करता है और सुनवाई के सवाल पर चुप है, तो अदालतें प्राकृतिक न्याय के सरल सिद्धांतों पर आधारित सार्वभौमिक अनुप्रयोग के नियम को लागू करेंगी। *[संदर्भ डी स्मिथ {प्रशासनिक कार्रवाई की न्यायिक समीक्षा (1980), पृष्ठ 161 पर}]*

यह तर्क दिया जाता है कि *वेड[प्रशासनिक कानून (1977), पृष्ठ 395 पर]* में प्रशासनिक कानून का मूल सिद्धांत इस बात पर जोर देता है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत निहित अनिवार्य आवश्यकताओं के रूप में कार्य करते हैं, जिनका पालन न करना शक्ति के प्रयोग को अमान्य कर देता है।

ए.के. क्रेपक और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य में, यह माना गया कि प्राकृतिक न्याय के नियम उन क्षेत्रों में लागू होते हैं जो किसी भी कानून के अंतर्गत नहीं आते हैं। वे देश के कानून का स्थान नहीं लेते बल्कि उसे पूरक बनाते हैं। वे मूर्त नियम नहीं हैं और उनका उद्देश्य न्याय सुरक्षित करना या अन्याय को रोकना है।

प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल, हैदराबाद बनाम बी. करुणाकर मामले में यह कहा गया था कि प्राकृतिक न्याय के विषय को प्रशासनिक कार्यवाहियों पर भी लागू किया जाना चाहिए, खासकर तब जब प्रशासनिक जांच को अर्ध-न्यायिक जांच से अलग करने वाली रेखा खींचना आसान नहीं है। किसी प्रशासनिक जांच में एक अन्यायपूर्ण निर्णय का अर्ध-न्यायिक जांच के निर्णय की तुलना में अधिक दूरगामी प्रभाव हो सकता है।

6. उक्त सिद्धांतों के आधार पर, याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताआोंं द्वारा यह जोरदार तर्क दिया गया कि धारा 14 की उपधारा (3) के आधार पर, मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट (सीएमएम)जिला मजिस्ट्रेट (डीएम)/प्राधिकृत अधिकारी के आदेश को अंतिम रूप दिया गया है। सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 14 के तहत आदेश को चुनौती देने के लिए कोई अन्य मंच प्रदान नहीं किया गया है और एकमात्र उपाय रिट कोर्ट का दरवाजा खटखटाना है।

7. यह तर्क दिया गया है कि चूंकि कब्जा लेने के लिए धारा 14 के तहत सीएमएम/डीएम का आदेश उधारकर्ता को सिविल परिणामों के साथ भुगतना होगा, इसलिए प्राकृतिक न्याय का अनुपालन किए बिना ऐसा कोई आदेश नहीं दिया जा सकता है। आगे यह तर्क दिया गया है कि धारा 14 की उप-धारा (1) के पहले प्रावधान के अनुसार, सुरक्षित ऋणदाता द्वारा उप-धारा (1) के तहत दिए गए आवेदन के साथ सुरक्षित के अधिकृत अधिकारी द्वारा विधिवत पुष्टि किया गया एक शपथपत्र संलग्न करना होगा। लेनदार को उक्त प्रावधान के खंड (i) से (ix) के अनुसार घोषणा की आवश्यकता होती है। मतलब, अधिनियम, 2002 की धारा 14(1) के तहत एक आवेदन को बनाए रखने के लिए, सुरक्षित ऋणदाता/बैंक को धारा 14 के तहत कार्रवाई शुरू करने के लिए एक मामला बनाना आवश्यक है। सुरक्षित ऋणदाता द्वारा शपथपत्र में किया गया तथ्यात्मक खुलासा आवेदन के साथ संलग्न आवेदन प्राधिकृत अधिकारी अर्थात सीएमएम/डीएम द्वारा इस बात पर संतुष्टि दर्ज करने के लिए स्वविवेक का आधार होगा कि अधिनियम, 2002 की धारा 14 के तहत कार्यवाही की जानी है या नहीं। सुरक्षित ऋणदाता के शपथपत्र में दिए गए तथ्यात्मक बयानों का खंडन उधारकर्ता द्वारा तभी किया जा सकता है, जब उसे नोटिस और अवसर प्रदान किया गया हो। यह तर्क दिया गया है कि सुरक्षित ऋणदाता के अधिकृत अधिकारी द्वारा दिए गए बयान की सत्यता को सत्यापित करने के लिए, उधारकर्ता को सुनवाई का अवसर देना आवश्यक है। शपथपत्र की सामग्री पर सीएमएम/डीएम द्वारा दर्ज की जाने वाली संतुष्टि हालांकि व्यक्तिपरक है, लेकिन उक्त प्राधिकरण को प्रदान की गई जानकारी सही होनी चाहिए ताकि सुरक्षित संपत्ति से उधारकर्ता को बेदखल करने के लिए आवश्यक उपाय शुरू किया जा सके।

यह तर्क दिया जाता है कि जहां भी प्रशासनिक/अर्ध-न्यायिक अधिकारियों द्वारा किसी क़ानून के तहत आवश्यक कदम उठाए जाते हैं तो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किया जाना चाहिए।

कुमकुम टेंटीवाल बनाम यूपी राज्य में इस न्यायालय की खण्ड पीठ के फैसले पर भरोसा किया गया है और अन्य को यह प्रस्तुत करना होगा कि जब वह बल के उपयोग से कब्ज़ा लेने के लिए आवेदन दायर करता है तो सुरक्षित ऋणदाता के शपथपत्र पर सीएमएम/डीएम द्वारा कोई एकपक्षीय संतुष्टि दर्ज नहीं की जा सकती है। इसमें खण्ड पीठ ने माना है कि यह आवश्यक है कि धारा 14 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय भी प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किया जाए जिसमें सुनवाई का अधिकार भी शामिल है। इसने इस तथ्य पर ध्यान दिया है कि धारा 14 की उप-धारा (2) जिला मजिस्ट्रेट को "ऐसे कदम उठाने या उठाने के लिए और ऐसे बल का उपयोग करने या करवाने के लिए अधिकृत करती है, जो उनकी राय में आवश्यक हो।" उसमें यह माना गया है कि उक्त शक्ति का अर्थ यह है कि जिला मजिस्ट्रेट कब्ज़ा लेने के लिए आवश्यक उपायों का उपयोग कर सकता है, कब्ज़ा करने वाले का विरोध करने या बल के उपयोग पर आपत्ति करने का अधिकार या शपथपत्र में किसी भी कमी को इंगित करने का अधिकार सुरक्षित लेनदार द्वारा दायर किया गया मामला केवल तभी प्रयोग किया जा सकता है जब एक नोटिस दिया जाता है और ऐसे व्यक्ति को सुनवाई का अवसर दिया जाता है, जो कब्जे में हो सकता है। सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 17 के तहत आवेदन दायर करने के उपाय की दलील पर रिट याचिका की विचारणीयता के संबंध में आपत्ति को यह कहते हुए खारिज कर दिया गया है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि धारा 14 के तहत पारित आदेश के खिलाफ अपील की जा सकती है। सरफेसी अधिनियम या धारा 14 के तहत सुनवाई की आवश्यकता को जिला मजिस्ट्रेट द्वारा समाप्त किया जा सकता है। उसमें यह माना गया कि अधिनियम की योजना से, यह अंतर्निहित है कि अधिनियम की धारा 14 के तहत कार्रवाई शुरू करने से पहले धारा 13(2) और 13(4) की प्रक्रिया का अनिवार्य रूप से पालन किया जाना है। अधिनियम की धारा 14 के तहत कार्रवाई शुरू होने पर

उधारकर्ता कभी-कभी यह दलील दे सकता है कि उसे सुनवाई का कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया जैसा कि अधिनियम की धारा 13 (2) के तहत परिकल्पित है, जो उसे 60 दिनों के भीतर बकाया भुगतान करने का अधिकार देता है और इसलिए, धारा 14 के तहत कार्रवाई अवैध और गलत धारणा वाली है। इस दृष्टिकोण से भी, उधारकर्ता या गारंटर को नोटिस या सुनवाई का अवसर आवश्यक है, हालांकि यह अधिनियम की धारा 14 के तहत कार्रवाई शुरू करने से पहले कई बार एक औपचारिकता के रूप में हो सकता है।

8. यह तर्क दिया गया है कि उक्त सिद्धांत *कुमकुम टेंटीवाल (उपरोक्त)* में खण्ड पीठ द्वारा हर्ष गोवर्धन सोंडागर बनाम इंटरनेशनल एसेट्स रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड में शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए निर्धारित किया गया था। उक्त मामले में अनुच्छेद "28" में, धारा 14 के दायरे का विश्लेषण करते समय, यह स्पष्ट रूप से देखा गया कि जब कोई आवेदन दायर किया जाता है, तो मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट को दावा करने वाले व्यक्तियों को नोटिस और सुनवाई का अवसर देना होगा। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप, पट्टेदार के साथ-साथ सुरक्षित ऋणदाता भी बनें और फिर निर्णय लें। यदि सीएमएम/डीएम इस बात से संतुष्ट है कि बंधक से पहले एक वैध पट्टा बनाया गया है या संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 65ए की आवश्यकताओं के अनुसार बंधक के बाद एक वैध पट्टा बनाया गया है और पट्टा निर्धारित नहीं किया गया है संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 111 के प्रावधानों के अनुसार, वह सुरक्षित ऋणदाता को सुरक्षित संपत्ति का कब्जा देने का आदेश पारित नहीं कर सकता है।

खण्ड पीठ ने आगे कहा कि सुप्रीम कोर्ट ने सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के तहत पारित किसी भी कार्रवाई/आदेश के खिलाफ पीड़ित पक्ष के लिए उपलब्ध उपायों पर विचार करते हुए माना है कि सरफेसी अधिनियम, 2002 निर्णय को अंतिम रूप देता है। मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट और इस निर्णय को किसी भी अदालत या किसी प्राधिकरण के समक्ष चुनौती नहीं दी जा सकती है और इस प्रकार, पीड़ित पक्ष के पास संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत उच्च न्यायालय के समक्ष उक्त निर्णय को चुनौती देने का उपाय है। भारत जहां उच्च न्यायालय कानून के स्थापित सिद्धांतों के अनुसार, जैसा भी मामला हो, सीएमएम/डीएम के निर्णय की जांच कर सकता है।

9. यह तर्क दिया गया कि उक्त निर्णय पर भरोसा करते हुए, इस न्यायालय की विभिन्न खण्ड पीठों ने समय-समय पर उधारकर्ताओं द्वारा दायर रिट याचिकाओं का निपटारा किया है, जिसमें उन्हें अवसर देने के निर्देश के साथ मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट / जिला मजिस्ट्रेट से संपर्क करने का आरोप लगाया गया है। *मेसर्स कौशांबी पेपर मिल्स प्राइवेट लिमिटेड में निर्णय लिमिटेड और2 अन्य बनाम अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट और 2 अन्य* दिनांक 31.8.2020 और *श्रीमती शकीला बेगम बनाम यूपी राज्य और 4 अन्य* दिनांक 9.8.2021 को हमारे सामने रखा गया है। *ज़ैनुल आब्दीन बनाम बैंक ऑफ बड़ौदा और 3 अन्य में* इस न्यायालय की एक खण्ड पीठ द्वारा पारित 4.11.2020 का एक निर्णय और आदेश हमारे सामने यह इंगित करने के लिए रखा गया है कि कुमकुम टेंटीवाल (उपरोक्त) में खण्ड पीठ के फैसले की शुद्धता पर संदेह है। उधारकर्ता को नोटिस और सुनवाई का अवसर प्रदान करने के लिए, प्रश्न को पूर्ण पीठ द्वारा पुनर्विचार के लिए भेजा गया है।

इस प्रकार, यह तर्क दिया जाता है कि आज की तारीख में, कुमकुम टेंटीवाल (उपरोक्त) में निर्णय कायम है और इसे वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू किया जाना है।

10. इसके विरोध में, श्री मनीष गोयल ने राज्य के प्रत्यर्थीओं के लिए अतिरिक्त महाधिवक्ता, श्री नवीन सिन्हा और श्री अनुराग खन्ना ने निजी प्रत्यर्थीओं के लिए उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ताआें से कहा, कि शुरुआत में, निर्णय और आदेश दिनांक 31.8.2020 रिट- इस न्यायालय द्वारा पारित रिट सी संख्या 12699/2022 को विशेष अनुमति अपील (सी) संख्या 3687/2021 में शीर्ष अदालत के समक्ष चुनौती दी गई है, जिसमें 19.7.2021 को पारित एक अंतरिम आदेश के माध्यम से उक्त निर्णय के संचालन पर रोक लगा दी गई है।

कुमकुम टेंटीवाल (उपरोक्त) में खण्ड पीठ द्वारा निर्धारित कानून के संबंध में, प्रत्यर्थीओं के लिए उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि उक्त निर्णय सरफ़ेसी अधिनियम, 2002 धारा 14 के तहत कार्यवाही से संबंधित कानूनी प्रावधानों की गलत अवलोकन पर आधारित है।

तर्क यह है कि इस न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा निकाले गए निष्कर्ष पर पहुंचने में अधिनियम की योजना और हर्ष गोवर्धन सोंडागर (उपरोक्त) में शीर्ष न्यायालय के फैसले की गलत सराहना की गई है। क्षेत्र से संबंधित सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों और सरफेसी अधिनियम, 2002 के वैधानिक प्रावधानों को निष्कर्ष पर पहुंचने के दौरान नजरअंदाज कर दिया गया है और इसलिए उक्त निर्णय का पालन नहीं किया जा सकता है।

11. प्रत्यर्थीओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस बात पर जोर दिया है कि मामले को निर्णय की शुद्धता पर संदेह करते हुए एक अन्य खण्ड पीठ द्वारा किए गए संदर्भ

को ध्यान में रखते हुए लंबित रखने के बजाय याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता की दलीलों से निपटने के लिए गुण-दोष के आधार पर सुना जाए। *कुमकुम टेंटीवाल (उपरोक्त)* में चूंकि संदर्भ का लंबित रहना इस न्यायालय को कानून के प्रश्न से प्रतिवाद करने से नहीं रोकता है।

12. अपने तर्कों का समर्थन करने के लिए, श्री मनीष गोयल ने सीखा कि अतिरिक्त महाधिवक्ता हमें सरफेसी अधिनियम, 2002 की योजना, सुरक्षा हित के प्रवर्तन और ऋण कानूनों की वसूली और प्रकीर्ण प्रावधान (संशोधन) विधेयक, 2016 में ले गए हैं, जिसके तहत संशोधन किया गया है। वित्तीय परिसंपत्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण और प्रतिभूति हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 को उक्त अधिनियम लाने के उद्देश्यों और कारणों का विवरण देने के लिए लाया गया है। हमारे समक्ष यह रखा गया है कि 2016 के उपरोक्त विधेयक संख्या 144 के उद्देश्यों और कारणों का विवरण दर्ज करता है कि सरफेसी अधिनियम, 2002 और बैंकों और वित्तीय संस्थानों के कारण ऋणों की वसूली अधिनियम, 1993 को ऋणों की शीघ्र वसूली के लिए अधिनियमित किया गया था। हालाँकि बैंकों और वित्तीय संस्थानों के कारण ऋणों की वसूली बैंक और वित्तीय संस्थान अधिनियम, 1993 में वसूली आवेदनों के निपटान के लिए 180 दिनों की अवधि का प्रावधान था, लेकिन विभिन्न स्थगनों और लंबी सुनवाई के कारण मामले कई वर्षों तक लंबित थे। वसूली आवेदनों के शीघ्र निपटान की सुविधा के लिए, उक्त अधिनियमों में संशोधन करने का निर्णय लिया गया था। सरफेसी अधिनियम, 2002 में संशोधन बदलते क्रेडिट परिदृश्य के अनुरूप और व्यापार करने में आसानी बढ़ाने के लिए प्रस्तावित किए गए थे, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ "सुरक्षित संपत्तियों पर कब्जा करने के लिए विशिष्ट समयसीमा" शामिल है। 30 दिनों की समयावधि जिसके भीतर सीएमएम/डीएम को सुरक्षित लेनदार द्वारा दायर आवेदनों का निपटान करना आवश्यक है, अधिनियम संख्या 44/2016 द्वारा 1.4.2016 से शामिल किया गया है। 1.9.2016. सरफेसी अधिनियम की धारा 14 की उपधारा (1) में तीसरा प्रावधान भी जोड़ा गया है, जिससे सीएमएम/डीएम को 30 दिनों की अवधि के भीतर सुरक्षित ऋणदाता के आवेदन के निपटान में देरी के लिए लिखित रूप में तर्क देना अनिवार्य हो जाएगा। धारा 14 के तहत आदेश पारित करने के लिए दूसरे प्रावधान में निर्धारित किया गया है।

फिर यह तर्क दिया जाता है कि सरफेसी अधिनियम, 2002 की पूरी योजना को इस बात की जांच करने के लिए देखा जाना चाहिए कि विधायिका द्वारा धारा 14 को कैसे और कहाँ रखा गया है और यह देखने के लिए कि क्या कोई शिकायत निवारण योजना की गई है जो कि की गई कठोर कार्रवाई को चुनौती दे सकती है। कब्ज़ा सुरक्षित करने के लिए यह प्रस्तुत किया गया है कि सरफेसी अधिनियम, 2002 की योजना के तहत अध्याय III "सुरक्षा हित के प्रवर्तन" के लिए है जिसमें धारा 17, उधारकर्ता सहित एक पीड़ित व्यक्ति द्वारा डीआरटी के समक्ष आवेदन के लिए उपाय शामिल है। इसी अध्याय में धारा 18, धारा 17 के तहत ट्रिब्यूनल के आदेश से व्यथित व्यक्ति द्वारा अपीलीय न्यायाधिकरण में अपील का प्रावधान करती है। अधिनियम, 2002 की धारा 19 अध्याय III में निहित है जो उधारकर्ता को सुरक्षित संपत्ति से बेदखली के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करती है। सुरक्षित लेनदार द्वारा, अधिनियम, 2002 के प्रावधानों और उसके तहत बनाए गए नियमों को छोड़कर यह उधारकर्ता या किसी अन्य पीड़ित व्यक्ति को ऐसा मुआवजा और लागत प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करता है, जैसा कि धारा 17 के तहत ट्रिब्यूनल के समक्ष कार्यवाही में या धारा 18 के तहत अपील में निर्धारित किया जा सकता है, यदि सुरक्षित ऋणदाता द्वारा सुरक्षित संपत्ति का कब्जा है। अधिनियम के प्रावधानों और उसके तहत बनाए गए नियमों के अनुसार नहीं है और ऐसी सुरक्षित संपत्तियों को वापस करने के लिए सुरक्षित लेनदारों को निर्देश देने की भी मांग की है।

13. अपर महाधिवक्ता श्री मनीष गोयल द्वारा यह तर्क दिया गया कि धारा 13(2) उधारकर्ता को अपनी पूरी देनदारियों का निर्वहन करने के लिए 60 दिनों का समय प्रदान करती है और यदि वह नोटिस या नोटिस में दिए गए विवरण से व्यथित है तो धारा 13 की उप-धारा (2) के तहत, वह धारा 13 की उप-धारा (3ए) के प्रावधानों को लागू करके अभ्यावेदन दे सकता है या आपत्ति उठा सकता है। यदि उधारकर्ता द्वारा ऐसी आपत्ति/अभ्यावेदन दायर किया जाता है, तो सुरक्षित ऋणदाता पर उस पर विचार करना और अपना निर्णय सूचित करना अनिवार्य हो जाता है। ऋणदाता को इस पर विचार करना होगा और अपने निर्णय, अभ्यावेदन/आपत्ति को स्वीकार न करने के कारणों के बारे में सूचित करना होगा। उक्त अभ्यावेदन/आपत्ति पर निर्णय को न्यायसंगत नहीं बनाया गया है, अर्थात इसे अधिनियम, 2002 की धारा 17 का सहारा लेकर चुनौती नहीं दी जा सकती है क्योंकि उधारकर्ता को अगले चरण में जारी नोटिस को चुनौती देने का अधिकार है, अर्थात धारा 13 की उपधारा (4), जिसके तहत सुरक्षित ऋणदाता अपने सुरक्षित ऋणों की वसूली के लिए उसमें दिए गए उपायों का सहारा ले सकता है, यदि उधारकर्ता धारा 13की उपधारा (2) में निर्दिष्ट अवधि के भीतर अपनी देनदारी का निर्वहन करने में विफल रहता है। यह हमारे सामने रखा गया है कि ट्रिब्यूनल के समक्ष अध्याय III के तहत 17 के तहत आवेदन इस स्तर पर बनाए रखने योग्य है, इसका मतलब है कि यदि धारा 13 की उप-धारा (3 ए) के तहत

उधारकर्ता का प्रतिनिधित्व/आपत्ति है/हैं स्वीकार नहीं किया जाता है और सुरक्षित ऋणदाता धारा 13 की उप-धारा (4) के तहत नोटिस जारी करके अपने ऋण को सुरक्षित करने के लिए कोई भी उपाय करता है, तो उधारकर्ता को सुरक्षित ऋणदाता की कार्रवाई को चुनौती देने का अधिकार है। तर्क यह है कि शिकायत निवारण फोरम कार्यवाही के हर चरण में प्रदान किया जाता है, जब धारा 13 की उप-धारा (2) के तहत उधारकर्ता को बकाया राशि का भुगतान करने के लिए नोटिस जारी किया जाता है और आगे जब सुरक्षित ऋणदाता धारा 13 की उपधारा (4) के तहत नोटिस जारी करके अपने सुरक्षित ऋण की वसूली के लिए कठोर उपाय करने का निर्णय लेता है।

सुरक्षित ऋणों की वसूली के लिए धारा 13 की उपधारा (4) में दिए गए उपायों में से एक उधारकर्ता की सुरक्षित संपत्ति पर कब्जा करना है, जिसमें सुरक्षित संपत्ति की प्राप्ति के लिए पट्टे, असाइनमेंट या बिक्री के माध्यम से हस्तांतरण का अधिकार भी शामिल है। धारा 14 का चरण केवल वहीं पहुँचता है जहाँ किसी सुरक्षित परिसंपत्ति का कब्ज़ा सुरक्षित ऋणदाता द्वारा लिया जाना आवश्यक होता है या यदि किसी सुरक्षित परिसंपत्ति को अधिनियम के प्रावधानों के तहत सुरक्षित ऋणदाता द्वारा बेचा या हस्तांतरित किया जाना आवश्यक होता है। ऐसी किसी भी सुरक्षित संपत्ति पर कब्ज़ा या नियंत्रण लेने का उद्देश्य, यानी सुरक्षित संपत्ति का भौतिक कब्ज़ा या नियंत्रण लेना। तर्क यह है कि धारा 14 सुरक्षित ऋणदाता को उसके सुरक्षित ऋण की वसूली के लिए धारा 13 की उप-धारा (4) में प्रदान किए गए उपायों का विस्तार है। धारा 14 के तहत सीएमएम/डीएम/प्राधिकृत अधिकारी प्रशासनिक प्राधिकारी होने के नाते सुरक्षित ऋणदाता को सुरक्षित संपत्ति का भौतिक कब्ज़ा लेने में मदद करने के लिए सुरक्षित ऋणदाता का एक बढ़ा हुआ हाथ है। धारा 14 की उपधारा (1) के खंड (ए) और (बी) यह स्पष्ट करते हैं कि प्राधिकृत अधिकारी/सीएमएम/डीएम को अपने अधिकार क्षेत्र का उपयोग करते हुए ऐसी संपत्ति पर कब्ज़ा करना होगा और इसे सुरक्षित ऋणदाता को अग्रेषित करना होगा। अधिनियम, 2002 की धारा 14 के तहत लिया गया उपाय हालांकि प्रकृति में प्रतिकूल है, लेकिन सुरक्षित संपत्ति पर कब्जा करने के लिए सुरक्षित ऋणदाता द्वारा दिए गए आवेदन पर उधारकर्ता द्वारा प्रतिस्पर्धा का कोई अवसर नहीं है क्योंकि प्राधिकृत अधिकारी/सीएमएम/डीएम द्वारा कोई न्यायिक कार्यवाही नहीं की जानी है।

14. धारा 14 के तहत आवेदन के साथ संलग्न शपथपत्र में सुरक्षित ऋणदाता के अधिकृत अधिकारी द्वारा घोषणा के संबंध में, यह तर्क दिया जाता है कि शपथपत्र में प्रदान की गई जानकारी प्राधिकृत अधिकारी/सीएमएम/डीएम को अपनी संतुष्टि दर्ज करने की सुविधा प्रदान करने के लिए आवश्यक है। सुरक्षित संपत्ति के भौतिक कब्जे की वसूली का चरण पहुंच गया है और सुरक्षित ऋणदाता धारा 14 के तहत सहारा लेकर कब्जा लेने का हकदार है। अधिकृत अधिकारी/सीएमएम/डीएम द्वारा शपथपत्र की सामग्री के लिए "संतुष्टि" दर्ज की जानी है। "अधिनियम, 2002 की धारा 14 की उप-धारा (1) के दूसरे प्रावधान के अनुसार सुरक्षित संपत्ति पर कब्जा करने के लिए एक उपयुक्त आदेश पारित करने से पहले एक व्यक्तिपरक संतुष्टि है। धारा 14 के तहत आदेश पारित करने में प्राधिकृत अधिकारी/सीएमएम/डीएम का कार्य केवल एक शासकीय कार्य है और चूंकि उक्त अधिनियम में कोई न्यायिक प्रक्रिया शामिल नहीं है, इसलिए सुनवाई का अवसर प्रदान करने के लिए प्राकृतिक न्याय के प्रशासनिक कानून के सिद्धांतों को निहित अनिवार्य आवश्यकता के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है।

15. *सीए मनीषा मेहता और अन्य बनाम निदेशक मंडल और अन्य में* बॉम्बे हाई कोर्ट के फैसले पर भरोसा रखा गया है। यह दावा करने के लिए कि धारा 14 धारा 13(4) से स्वतंत्र नहीं हो सकती है जैसा कि *स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक बनाम वी. नोबल कुमार और अन्य* में शीर्ष न्यायालय द्वारा समझाया गया है।

वी. नोबल कुमार (उपरोक्त) में यह माना गया था कि चूंकि धारा 13(4) के तहत सुरक्षित लेनदार द्वारा कब्ज़ा लेने पर उधारकर्ता को सुनवाई का कोई अधिकार नहीं है, इसलिए किसी उधारकर्ता द्वारा किसी सुनवाई की मांग नहीं की जा सकती है जब कब्जे का विरोध करने की उसकी कार्रवाई से कब्जा प्राप्त किया जा रहा हो सुरक्षित ऋणदाता के अधिकृत अधिकारी द्वारा या स्वयं कब्जा देने से इनकार करने पर, वह ऐसे अधिकारी को धारा 14 के तहत प्राधिकृत अधिकारियों की सहायता लेने के लिए मजबूर करता है। ट्रिब्यूनल से संपर्क करने का अधिकार धारा 17 के अनुसार उधारकर्ता को प्रदान किया जाता है। कब्जे के बाद, चाहे वह अधिनियम, 2002 की धारा 13(4) के तहत प्रतीकात्मक कब्जा हो या धारा 14 के तहत भौतिक कब्जा हो। सरफेसी अधिनियम 2002 की योजना, इस प्रकार, प्राकृतिक न्याय के अनुपालन की किसी भी आवश्यकता को स्वीकार नहीं करती है। उधारकर्ता को नोटिस पर, जबकि धारा 14 के तहत एक आवेदन विचाराधीन है। अधिनियम के तहत प्रभावी तंत्र मौजूद होने के मद्देनजर, उधारकर्ता मध्यस्थ स्तर पर सुनवाई का अधिकार नहीं मांग सकता है।

मे *सर्स ट्रेड वेल, एक प्रोपराइटरशिप फर्म, मुंबई और अन्य बनाम इंडियन बैंक और अन्य* में बॉम्बे हाई कोर्ट के फैसले पर भी भरोसा किया गया है, अनुराधा सिंह और अन्य बनाम मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट कानपुर नगर और अन्य

में इस कोर्ट की खण्ड पीठ के फैसले पर भी भरोसा किया गया है, *शकुंतला देवी जन कल्याण समिति सचिव और अन्य बनाम यूपी राज्य* में इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश का एक निर्णय और *मार्डिया केमिकल्स लिमिटेड आदि आदि बनाम यू.ओ.आई.और अन्य आदि* मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय; *कन्हैयालाल लालचंद सचदेव और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य; एनकेजीएसबी सहकारी बैंक लिमिटेड बनाम सुबीर चक्रवर्ती और अन्य और मेसर्स आरडी जैन एंड कंपनी बनाम कैपिटल फर्स्ट लिमिटेड और अन्य* में 27 जुलाई, 2022 का निर्णय और आदेश और *फीनिक्स एआरसी प्राइवेट में बॉम्बे हाई कोर्ट का निर्णय भी लिमिटेड और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य* मामलो को उपरोक्त प्रस्तुतियों का समर्थन करने के लिए प्रस्तुत किया गया है।

16. "एडवांस्ड लॉ लेक्सिकॉन" में "मिनिस्ट्रियल एक्ट" का अर्थ हमारे सामने इस बात पर जोर देने के लिए रखा गया है कि एक मिनिस्ट्रियल एक्ट करते समय, एक सरकारी अधिकारी कानून द्वारा निर्देशित होता है और उसके पास अपना निर्णय लेने या विवेक का प्रयोग करने की कोई शक्ति नहीं होती है।

17. संक्षेप में, अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री मनीष गोयल द्वारा तर्क दिया गया है कि सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 14 के तहत कार्यवाही के चरण में, कोई स्वतंत्र विचार नहीं है और प्राधिकृत अधिकारी/सीएमएम/डीएम को कार्य करना होगा अपने स्वयं के स्वतंत्र दिमाग के उपयोग के बिना, केवल सुरक्षित लेनदार/बैंक द्वारा प्रदान की गई जानकारी पर, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करने की आवश्यकता को उक्त प्रावधान में नहीं पढ़ा जा सकता है। इसके अलावा, धारा 14 के चरण से पहले भी सुरक्षित ऋणदाता द्वारा शुरू की गई कार्रवाई को चुनौती देने के लिए उधारकर्ता के लिए प्रभावी उपाय उपलब्ध है, अधिनियम यानी सरफेसी अधिनियम, 2002 के उद्देश्य को देखते हुए उधारकर्ता को अधिनियम की योजना के तहत एक और अवसर नहीं दिया जा सकता है।

18. प्रत्यर्थी संख्या 4 के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नवीन सिन्हा ने विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री मनीष गोयल के तर्कों को अपनाया है।

उपरोक्त तर्कों के अलावा, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 14 के तहत पारित आदेश केवल एक शासकीय अधिनियम है। किसी भी अंक या मुद्दे के लिए कोई न्यायिक प्रक्रिया शामिल नहीं है और, इस प्रकार, प्राधिकृत अधिकारी/सीएमएम/डीएम द्वारा स्वतंत्र रूप से विचार करने का कोई सवाल ही नहीं है। अधिनियम, 2002 की धारा 13(4) और धारा 14 के तहत प्रतीकात्मक और भौतिक कब्जे के बीच कोई विरोधाभास नहीं है। सुरक्षा हित (प्रवर्तन) नियम, 2002 (संक्षेप में "नियम, 2002" के रूप में) के नियम 8 में प्रावधान है बाहरी दरवाजे पर या संपत्ति के ऐसे विशिष्ट स्थान पर कब्जे की सूचना चिपकाना, जिससे प्राधिकृत अधिकारी कब्जा लेता है या लेने का कारण बनता है। नियम 8 के उप-नियम (1) के अनुसार कब्ज़ा नोटिस चिपकाने और उप-नियम (2) के अनुसार दो दैनिक समाचार पत्रों में प्रकाशन और उप-नियम (2 ए) के अनुसार इलेक्ट्रॉनिक मोड के माध्यम से सेवा प्रदान करने के साथ, सुरक्षित परिसंपत्ति का कब्ज़ा सुरक्षित ऋणदाता के पक्ष में स्थानांतरित कर दिया गया। इस प्रकार, सुरक्षित संपत्ति का वास्तविक भौतिक कब्ज़ा लेने का सवाल बना रहता है, यदि नोटिस प्राप्त होने के बावजूद उधारकर्ता अपना कब्ज़ा नहीं छोड़ता है।

19. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का आगे का तर्क अधिनियम के तहत प्रदान की गई 60 दिनों की समय सीमा से परे, धारा 14 के तहत आदेश पारित करने में देरी के बारे में है।

यह तर्क दिया जाता है कि प्राधिकृत अधिकारी/सीएमएम/डीएम के पास 60 दिनों की अवधि से अधिक आदेश पारित करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, जैसा कि धारा 14 के तीसरे प्रावधान में अनिवार्य है। प्रावधान में कहा गया है कि संबंधित अधिकारी को मामले में लिखित रूप में कारण दर्ज करना होगा, यह दूसरे परंतुक में निर्धारित आवेदन की तारीख से 30 दिनों की अवधि के भीतर आदेश पारित करने में विफल रहता है तो मौजूदा मामले में पारित आदेश 60 दिनों की अवधि से परे है और इसलिए क्षेत्राधिकार के दायरे से बाहर है।

20. इसके विरोध में, खंडन में, प्रतिवादी के विद्वान वरिष्ठ वकील द्वारा यह दावा करने के लिए सी. ब्राइट बनाम जिला कलेक्टर और अन्य में शीर्ष न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया गया है कि जिला मजिस्ट्रेट कार्यात्मक नहीं बनता है,यदि वह समय सीमा के भीतर कब्जा लेने में असमर्थ है, जो लेनदारों में विश्वास पैदा करने के लिए निर्धारित है कि जिला मजिस्ट्रेट कब्जा देने का प्रयास करेगा और साथ ही अनुपालन के लिए गंभीर प्रयास करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट पर कर्तव्य लगाएगा कि 30 दिनों के भीतर कब्ज़ा देने के क़ानून के आदेश के साथ और 60 दिनों के भीतर कारण दर्ज करने होंगे।

यह तर्क दिया गया कि शीर्ष अदालत ने यह माना था कि यदि जिला मजिस्ट्रेट कब्जा सौंपने में असमर्थ है तो अधिनियम की धारा 14 के तहत उपाय निरर्थक नहीं है। जिला मजिस्ट्रेट को अभी भी जल्द से जल्द कब्ज़ा दिलाने की सुविधा प्रदान करने का कर्तव्य सौंपा जाएगा।

21. 2022 की रिट-सी संख्या 22594 में प्रतिवादी संख्या 3 की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनुराग खन्ना ने श्री मनीष गोयल के तर्कों को अपनाते हुए अधिनियम की योजना पर अतिरिक्त महाधिवक्ता ने स्थिरता के संबंध में इस आधार पर आपत्ति जताई कि सरफेसी अधिनियम, 2002 के तहत प्रस्तावित कार्रवाई/कार्रवाई के खिलाफ एक निजी वित्तीय संस्थान के खिलाफ रिट याचिका दायर नहीं की जा सकती।

फीनिक्स एआरसी प्राइवेट लिमिटेड बनाम विश्व भारती विद्या मंदिर और अन्य के मामले में शीर्ष अदालत के फैसले पर भरोसा रखा गया है।

22. पार्टियों के विद्वान अधिवक्ताआेंं को सुनने और रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद, पार्टियों के विद्वान अधिवक्ताआेंं द्वारा की गई दलीलों के आलोक में, हमारी जांच के लिए मुख्य मुद्दा यह उठता है कि "क्या कोई उधारकर्ता नोटिस और अवसर का हकदार है" सरफेसी अधिनियम, 2022 की धारा 14 के तहत कार्यवाही में सुनवाई होगी।

23. इस न्यायालय को कुमकुम टेंटीवाल (उपरोक्त) में खण्ड पीठ के फैसले के आधार पर याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता की दलीलों का जवाब देने की भी आवश्यकता है, जिसने उधारकर्ता के पक्ष में जवाब दिया है और इस मुद्दे को कुमकुम टेंटीवाल (उपरोक्त) की सत्यता पर संदेह करते हुए एक अन्य खण्ड पीठ द्वारा पूर्ण पीठ को संदर्भित किया गया है। ।

24. उपरोक्त मुद्दों का उत्तर देने के लिए, हमें सरफेसी अधिनियम, 2002 की विधायी योजना से गुजरना आवश्यक है। सरफेसी अधिनियम '2002 को बैंकों और वित्तीय संस्थानों को प्रतिभूतियों पर कब्ज़ा करने की शक्तियों का प्रयोग करके वसूली सुरक्षित करने में सक्षम बनाने के लिए अधिनियमित किया गया है। उन्हें बेचें और न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना, वसूली या पुनर्निर्माण के उपाय अपनाकर गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों को कम करें। धारा 34 किसी भी मामले के संबंध में किसी भी मुकदमे या कार्यवाही पर विचार करने के लिए सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र पर रोक लगाती है, जिसे अधिनियम के तहत गठित ट्रिब्यूनल निर्धारित करने के लिए सशक्त है।

25. सरफेसी अधिनियम, 2002 की वैधता को सर्वोच्च न्यायालय ने मार्डिया केमिकल्स लिमिटेड (उपरोक्त) में बरकरार रखा है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एक प्रश्न तैयार किया गया था कि क्या अधिनियम की धारा 13 और 17 में निहित प्रावधान किसी उधारकर्ता द्वारा वसूली के खिलाफ उठाए गए आपत्ति/विवाद पर विचार करने और विशेष रूप से बार के मद्देनजर निर्णय लेने के लिए पर्याप्त और अधिनियम की धारा 34 के तहत सिविल न्यायालय से संपर्क करने के लिए प्रभावी तंत्र प्रदान करते हैं।

उक्त प्रश्न का उत्तर देते समय, अधिनियम के तहत अपनी शिकायतों को व्यक्त करने के लिए उधारकर्ता के पास उपलब्ध मंचों या उपायों पर विचार किया गया है और इसमें यह नोट किया गया है: -

(i) (i) धारा 13 की उपधारा (2) के तहत उधारकर्ता को नोटिस देने का उद्देश्य यह है कि उधारकर्ता द्वारा कारण बताते हुए एक उत्तर प्रस्तुत किया जा सके, 60 दिनों के भीतर नोटिस का अनुपालन न करने की स्थिति में उप-धारा (4) और धारा 13 के तहत उपाय क्यों किए जा सकते हैं या नहीं किए जा सकते हैं।

(ii) लेनदार को ऐसे नोटिस के जवाब में उठाई गई आपत्ति पर अपना दिमाग लगाना चाहिए और नोटिस के जवाब में उठाई गई ऐसी आपत्तियों पर विचार करने के लिए एक आंतरिक तंत्र विकसित करना होगा।

(iii) धारा 13 की उपधारा (4) के तहत कठोर कदम उठाने के लिए आगे बढ़ने से पहले उधारकर्ता द्वारा उठाई गई आपत्ति पर सार्थक विचार करना अनिवार्य है।

(iv) बैंक और वित्तीय संस्थान को धारा 13 की उपधारा (4) के तहत उपाय करने से पहले उधारकर्ता को दिए गए नोटिस के जवाब में उठाए गए आपत्तियों या बिंदुओं को स्वीकार नहीं करने के कारणों के बारे में सूचित करना आवश्यक है।

(v) कारणों का संचार उधारकर्ता के ज्ञान के उद्देश्य से है क्योंकि उसे यह जानने का अधिकार है कि उसकी आपत्तियों को सुरक्षित ऋणदाता द्वारा स्वीकार क्यों नहीं किया गया है अधिनियम की धारा 13(4) के तहत न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना सुरक्षित संपत्ति जो कब्ज़ा/प्रबंधन/व्यवसाय लेने के कठोर कदम शुरू करने का इरादा रखता है।

(vi) अधिनियम के ढांचे के भीतर उधारकर्ता के लिए उपलब्ध अगला सुरक्षा अधिनियम की धारा 17 के तहत ऋण वसूली न्यायाधिकरण से संपर्क करना है। ऐसा अधिकार अधिनियम की धारा 13 की उपधारा (4) के तहत उपाय किए जाने के बाद ही प्राप्त होता है।

यह तर्क कि उधारकर्ता धारा 13 की उप-धारा (2) के तहत नोटिस जारी करने से पहले सुने जाने का हकदार है, ऐसा न करने पर प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों से इनकार किया जाता है, यह कहते हुए खारिज कर दिया गया कि नोटिस जारी करना लेनदार द्वारा देनदार पर प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत लागू नहीं होते तो देनदार को यह बताने के लिए हमेशा खुला रहता है कि उसे क्या

चुकाना है। इस स्तर पर ऋणदाता से किसी सुनवाई की मांग नहीं की जा सकती। लेकिन सुरक्षित ऋणदाता को यह ध्यान में रखना चाहिए कि अधिनियम की धारा 13(2) के तहत नोटिस पर उधारकर्ता के जवाब पर ध्यान देने पर विचार किया गया है, कड़े उपायों से पहले, वसूली की प्रक्रिया शुरू की जाती है। आपत्ति स्वीकार न करने के कारण, हालांकि, संक्षिप्त हो सकते हैं, यदि उत्तर में उठाए गए हैं, तो उधारकर्ता को सूचित किया जाना चाहिए। धारा 17 की उपधारा (2) के अनुसार प्रारंभिक कार्यवाही में मांग का 75% पूर्व-जमा करने की आवश्यकता को भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के दायरे से बाहर माना गया है, इस अवलोकन के साथ कि प्रारंभिक कार्यवाही में उक्त आवश्यकता यह अनुचित और दमनकारी लगता है और इसे विवाद का निर्णय शुरू होने से पहले पहली बार में ही उचित स्थिति नहीं कहा जा सकता है।

26. *ट्रांसकोर बनाम भारत संघ और अन्य* मामले में, इस सवाल पर विचार किया गया था कि क्या सरफेसी अधिनियम (उसमें एनपीए अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 13(4) के संदर्भ में उधारकर्ता की सुरक्षित संपत्तियों पर कब्जा करने का सहारा लिया गया है तो वह अचल संपत्ति पर वास्तविक कब्ज़ा लेने की शक्ति है?

इसका उत्तर देते हुए, यह माना गया कि अधिनियम के तहत प्रतीकात्मक और भौतिक कब्जे के बीच कोई विरोधाभास नहीं है। एनपीए अधिनियम की धारा 13(4) इस आधार पर आगे बढ़ती है कि उधारकर्ता, जो देनदारी के अधीन है, धारा 13(2) के तहत निर्धारित अवधि के भीतर अपनी देनदारी का निर्वहन करने में विफल रहा है, जो सुरक्षित लेनदार को किसी एक का सहारा लेने में सक्षम बनाता है। सुरक्षित परिसंपत्ति की प्राप्ति के लिए पट्टे, असाइनमेंट या बिक्री के माध्यम से हस्तांतरण का अधिकार सहित सुरक्षित परिसंपत्तियों पर कब्ज़ा करना जैसे और भी उपाय कब्जा लेने की व्यवस्था एनपीए अधिनियम के तहत बनाए गए 2002 नियमों के नियम 8 के तहत प्रदान की गई है। एनपीए अधिनियम की धारा 14 जिला मजिस्ट्रेट के माध्यम से सुरक्षित संपत्ति पर कब्जा करने का प्रावधान करती है। धारा 17(3) में कहा गया है कि यदि डीआरटी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की जांच करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि सुरक्षित ऋणदाता द्वारा लिया गया धारा 13 की उपधारा (4) में उल्लिखित कोई भी उपाय इसके अनुरूप नहीं है। अधिनियम के प्रावधानों और उसके तहत नियमों के तहत, यह आदेश द्वारा घोषित कर सकता है कि किसी एक या अधिक उपायों के लिए लिया गया सहारा अमान्य है और परिणामस्वरूप, उधारकर्ता को कब्ज़ा बहाल कर सकता है और उधारकर्ता के व्यवसाय का प्रबंधन भी बहाल कर सकता है। इसलिए, धारा 17(3) के साथ पढ़ी गई धारा 13(4) की योजना से पता चलता है कि यदि उधारकर्ता को बेदखल कर दिया गया है, अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार नहीं, तो डीआरटी *पूर्व यथास्थिति बहाल करके वापस लाने का हकदार है।*

इसमें यह देखा गया कि इस तथ्य के लिए कि एनपीए अधिनियम गैर-न्यायिक प्रक्रिया द्वारा कब्जे की वसूली का प्रावधान करता है, यह कहना गलत होगा कि उधारकर्ता के अधिकारों को बिना निर्णय के पराजित किया जाएगा।

27. *स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक (उपरोक्त)* में, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा सुरक्षित संपत्ति पर कब्जा करने और उसे सुरक्षित ऋणदाता को सौंपने के लिए सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के तहत कार्यवाही में पारित आदेश की वैधता को चुनौती दी गई थी।

यह तर्क दिया गया कि धारा 14 के तहत मजिस्ट्रेट के अधिकार का उपयोग करने से पहले एक सुरक्षित ऋणदाता को सुरक्षित संपत्ति पर कब्ज़ा करने का प्रयास करना चाहिए। केवल जब लेनदार को ऐसे प्रयास के प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है तो लेनदार अधिनियम की धारा 14 के तहत प्रक्रिया का सहारा ले सकता है। आगे यह आग्रह किया गया कि अधिनियम की धारा 17 केवल अधिनियम की धारा 13(4) के तहत लेनदार द्वारा उठाए गए उपाय के खिलाफ उपाय प्रदान करती है और उक्त उपाय अधिनियम की धारा 14 के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा की गई कार्रवाई के खिलाफ उपलब्ध नहीं है। इसलिए, धारा 13(4) के तहत प्रक्रिया का सहारा लिए बिना सुरक्षित ऋणदाता को धारा 14 को लागू करने की अनुमति देने से सुरक्षित संपत्ति के मालिक को अपनी शिकायतों के निपटारे के लिए धारा 17 के तहत आवेदन दाखिल करने का अवसर नहीं मिलेगा। यह भी तर्क दिया गया कि अधिनियम की धारा 14 के तहत शक्ति का प्रयोग करने वाले मजिस्ट्रेट को भी सुरक्षा हित (प्रवर्तन) नियम 2002 के नियम 8 के तहत अपेक्षित प्रक्रिया का पालन करना आवश्यक है, हालांकि नियम स्पष्ट रूप से ऐसा नहीं कहता है। उस स्थिति में, नियम 8 की आवश्यकता का अनुपालन करने में विफलता, मजिस्ट्रेट के आदेश को रद्द कर देगी।

उपरोक्त तर्कों को खारिज करते हुए, *मेसर्स ट्रेड वेल, एक प्रोपराइटरशिप फर्म, मुंबई और अन्य बनाम इंडियन बैंक* (उपरोक्त) में बॉम्बे हाई कोर्ट के फैसले को पैरा ''22' में निम्नानुसार नोट किया गया था: -

"22. हालाँकि, ट्रेड वेल बनाम इंडियन बैंक में बॉम्बे हाई कोर्ट ने कहा:

"2... एनपीए अधिनियम की धारा 14 के तहत कार्य करने वाले सीएमएम/डीएम को उधारकर्ता या तीसरे पक्ष को नोटिस देने की आवश्यकता नहीं है।

3. उसे केवल बैंक या वित्तीय संस्थान से यह सत्यापित करना होगा कि एनपीए अधिनियम की धारा 13(2) के तहत नोटिस दिया गया है या नहीं और सुरक्षित संपत्ति उसके अधिकार क्षेत्र में आती है या नहीं। इस स्तर पर किसी भी प्रकार का कोई निर्णय नहीं है।

4. उपरोक्त शर्तें पूरी न होने पर ही सीएमएम/डीएम एनपीए अधिनियम की धारा 14 के तहत यह दर्ज करके आदेश पारित करने से इनकार कर सकता है कि उपरोक्त शर्तें पूरी नहीं हुई हैं। यदि ये दो शर्तें पूरी हो जाती हैं, तो वह धारा 14 के तहत आदेश पारित करने से इनकार नहीं कर सकता।"

पैरा ''24'' में, शीर्ष न्यायालय ने 2013 के अधिनियम संख्या 1 द्वारा धारा 14 में लाए गए संशोधन पर ध्यान दिया है। जो 15.1.2013 से प्रभावी है, उस धारा की उपधारा (1) में पहला परंतुक सम्मिलित करने के लिए, सुरक्षित ऋणदाता के अधिकृत अधिकारी के शपथ पत्र की आवश्यकता, पैरा ''24'' से पैरा ''24.7'' को यहां नीचे प्रस्तुत किया गया है: -

"24. परंतुक के नौ उप खंडों का विश्लेषण, जो सुरक्षित ऋणदाता द्वारा दायर शपथपत्र में प्रस्तुत की जाने वाली आवश्यक जानकारी से संबंधित है, वास्तव में इंगित करता है कि:

24.1. (i) एक ऋण लेनदेन था जिसके तहत एक उधारकर्ता ब्याज के साथ ऋण राशि चुकाने के लिए उत्तरदायी है,

24.2. (ii) उधारकर्ता की सुरक्षित संपत्ति में एक सुरक्षा हित बनाया गया है,

24.3. (iii) कि उधारकर्ता ने पुनर्भुगतान में चूक की है,

24.4. (iv) कि धारा 13(2) के तहत विचार किया गया एक नोटिस वास्तव में जारी किया गया था,

24.5. (v) ऐसे नोटिस के बावजूद, उधारकर्ता ने पुनर्भुगतान नहीं किया।

24.6. (vi) उधारकर्ता की आपत्तियों पर वास्तव में विचार किया गया और खारिज कर दिया गया,

24.7. (vii) ऐसी अस्वीकृति के कारणों के बारे में उधारकर्ता को सूचित कर दिया गया था।"

इसका निष्कर्ष पैरा ''25'', ''27'' में निम्नानुसार है:-

"25. धारा 14 (1) के दूसरे प्रावधान के तहत मजिस्ट्रेट की संतुष्टि के लिए जरूरी है कि मजिस्ट्रेट ऐसे शपथपत्र में किए गए दावों की तथ्यात्मक शुद्धता की जांच करे, लेकिन लेन-देन की कानूनी बारीकियों की नहीं। यह रिकॉर्डिंग के बाद ही होता है अपनी संतुष्टि के आधार पर मजिस्ट्रेट सुरक्षित संपत्ति पर कब्जा लेने के संबंध में उचित आदेश पारित कर सकता है।

27. धारा 17 के तहत "अपील" धारा 13(4) के तहत किए गए किसी भी उपाय के खिलाफ उधारकर्ता के लिए उपलब्ध है। सुरक्षित संपत्ति पर कब्ज़ा करना केवल उन उपायों में से एक है जो सुरक्षित ऋणदाता द्वारा उठाया जा सकता है। सुरक्षित संपत्ति की प्रकृति और सुरक्षा समझौते के नियमों और शर्तों के आधार पर, धारा 13(4) के तहत सुरक्षित संपत्ति का कब्ज़ा लेने के अलावा अन्य उपाय संभव हैं। संपत्ति को पट्टे या बिक्री आदि द्वारा अलग करना और सुरक्षित संपत्ति का प्रबंधन करने के लिए एक व्यक्ति को नियुक्त करना उन संभावित उपायों में से कुछ हैं। दूसरी ओर, धारा 14 मजिस्ट्रेट को केवल संपत्ति पर कब्जा करने और संबंधित दस्तावेजों के साथ उधारकर्ता (सुरक्षित लेनदार) को संपत्ति अग्रेषित करने के लिए अधिकृत करती है। इसलिए, सुरक्षित संपत्ति का कब्ज़ा सुरक्षित ऋणदाता को सौंपने के बाद उधारकर्ता हमेशा धारा 17 के तहत "अपील" करने का हकदार है। धारा 13(4)(ए) घोषित करती है कि सुरक्षित ऋणदाता सुरक्षित संपत्तियों पर कब्जा कर सकता है। यह निर्दिष्ट नहीं करता है कि ऐसा कब्ज़ा सीधे सुरक्षित ऋणदाता द्वारा प्राप्त किया जाना है या धारा 14 के तहत प्रक्रिया का सहारा लेकर प्राप्त किया जाना है। हमारी राय है कि सुरक्षित ऋणदाता किसी भी तरीके से कब्जा प्राप्त करता है या तो धारा 14 के तहत विचारित प्रक्रिया के माध्यम से या ऐसी प्रक्रिया का सहारा लिए बिना किसी सुरक्षित संपत्ति का कब्ज़ा प्राप्त करना हमेशा एक उपाय होता है जिसके विरुद्ध धारा 17 के तहत उपचार उपलब्ध होता है।"

उसमें यह नोट किया गया था कि सुरक्षित ऋणदाता के लिए सुरक्षित संपत्ति पर कब्ज़ा करने के तीन तरीके होंगे। (i) पहली विधि वह होगी जहां सुरक्षित ऋणदाता नियम 8(1) के तहत अपेक्षित नोटिस देता है और जहां उसे किसी प्रतिरोध का सामना नहीं करना पड़ता है। उस स्थिति में, अधिकृत अधिकारी नियम 8(2) के तहत निर्धारित कदम उठाएगा और उसके बाद सुरक्षित ऋणदाता द्वारा दावा की गई राशि की वसूली के लिए सुरक्षित परिसंपत्ति की बिक्री करेगा। (ii) दूसरी स्थिति तब उत्पन्न होगी जब नियम 8(1) के तहत नोटिस दिए जाने के बाद सुरक्षित ऋणदाता को उधारकर्ता के प्रतिरोध का

सामना करना पड़ेगा। उस स्थिति में, वह अधिनियम की धारा 14 के तहत प्रदान किए गए तंत्र का सहारा लेगा जैसे मजिस्ट्रेट के पास आवेदन करना। मजिस्ट्रेट आवेदन की जांच करेगा और फिर संतुष्ट होने पर, संपत्ति और दस्तावेजों को कब्जे में लेने के लिए धारा14(1)(ए) के तहत अपने अधीनस्थ एक अधिकारी को नियुक्त करेगा। (iii) तीसरी स्थिति वह होगी जहां सुरक्षित ऋणदाता अधिनियम की धारा 14 के तहत सीधे संबंधित मजिस्ट्रेट से संपर्क करेगा। इसके बाद, मजिस्ट्रेट धारा 14 में दिए गए आवेदन की जांच करेगा, और फिर संतुष्ट होने पर, एक अधीनस्थ अधिकारी को संपत्ति और दस्तावेजों पर कब्जा करने और उन्हें सुरक्षित ऋणदाता को अग्रेषित करने के लिए अधिकृत करेगा। [निर्णय के पैराग्राफ ''36.1' से ''36.3'' का संदर्भ लें]।

पैरा ''37' में, *मार्डिया केमिकल्स लिमिटेड (उपरोक्त)* में निर्धारित कानून को निम्नानुसार बताया गया है: -

"37. इस संबंध में, मर्डिया केमिकल्स (उपरोक्त) में फैसले का उल्लेख करना महत्वपूर्ण है जिसमें न्यायालय सरफेसी अधिनियम की वैधता और वैधता से चिंतित था। न्यायालय ने धारा 17(2) को छोड़कर अधिनियम को वैध माना। निर्णय के पैरा 59, 62 और 76 में न्यायालय ने कहा कि अधिनियम की धारा 17 के तहत उपचार अनिवार्य रूप से एक सिविल न्यायालय में मुकदमा दायर करने जैसा था, हालांकि इसे अपील भी कहा जाता था अंतिम रूप से यह नोट करना प्रासंगिक है इस न्यायालय के फैसले के पैराग्राफ 80 में उप-पैरा (2) में निष्कर्ष इस प्रकार हैं: -

"80.(2). जैसा कि पहले ही चर्चा की जा चुकी है, धारा 13 की उप-धारा (4) के तहत किए गए उपायों पर और संपत्ति की बिक्री/नीलामी की तारीख से पहले उधारकर्ता के लिए ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष अधिनियम की धारा 17 के तहत अपील (याचिका) दायर करना खुला होगा।

इसलिए प्रत्यर्थी की यह शिकायत कि उसके पास कोई उपाय नहीं बचेगा, गलत है। जैसा कि मर्डिया केमिकल्स (उपरोक्त) में तीन न्यायाधीशों की पीठ ने कहा, उधारकर्ता धारा 13 (4) के तहत उपाय किए जाने के बाद और बिक्री/नीलामी की तारीख से पहले किसी भी समय धारा 17 के तहत अपील दायर करने के लिए खुला होगा। यही बात तब लागू होगी जब सुरक्षित ऋणदाता धारा 14 का सहारा लेता है और मजिस्ट्रेट द्वारा नियुक्त अधिकारी की मदद से संपत्ति पर कब्ज़ा कर लेता है।

28. इस प्रकार, यह माना गया कि उधारकर्ता उपचार के प्रति उदासीन नहीं है, क्योंकि उधारकर्ता धारा 13(4) के तहत उपाय किए जाने के बाद किसी भी समय धारा 17 के तहत 'आवेदन' दाखिल करने के लिए संपत्ति की बिक्री/नीलामी से पहले खुला होगा। यही बात तब भी लागू होगी जब सुरक्षित ऋणदाता धारा 14 का सहारा लेता है और मजिस्ट्रेट द्वारा नियुक्त अधिकारी की मदद से संपत्ति पर कब्जा कर लेता है।

29. विधायी योजना की बात करें तो, "सुरक्षा हित का प्रवर्तन" शीर्षक के तहत अध्याय ।।। में अधिनियम, 2002 की धारा 13 से 19 के तहत प्रावधान शामिल हैं। अधिनियम सुरक्षित ऋणदाता के पक्ष में बनाए गए सुरक्षित ऋणदाता के प्रवर्तन के लिए उठाए जाने वाले कदमों का न्यायालय या न्यायाधिकरण के हस्तक्षेप के बिना प्रावधान करता है। कड़े कदम उठाने से पहले, सुरक्षित ऋणदाता उधारकर्ता को नोटिस देने के लिए बाध्य है, उसकी आपत्ति पर विचार करने और उत्तर में उठाए जाने पर उसे स्वीकार न करने के कारण बताने के लिए बाध्य है। धारा 13 और धारा 14 की उपधारा (4) यह बताती है कि सुरक्षित ऋण की वसूली सुनिश्चित करने के लिए सुरक्षित संपत्ति पर कब्ज़ा करने के लिए कितने कड़े उपाय किए जाएंगे। धारा 17 और 18 दोनों चरणों धारा 13 की उपधारा (4) और धारा 14 कब्जे के बाद के चरण में सुरक्षित ऋणदाता की कार्रवाई के खिलाफ उधारकर्ता को उपाय प्रदान करती हैं। हालाँकि, धारा 14 के तहत की गई कार्रवाई को चुनौती देने के समय, धारा 13 की उपधारा (4) के तहत नोटिस को चुनौती देना आवश्यक है और आगे धारा 14 के तहत कार्रवाई को चुनौती, यानी सुरक्षित संपत्ति पर भौतिक कब्ज़ा लेने का कार्य ट्रिब्यूनल द्वारा उधारकर्ता को बेदखल करने के बाद ही कायम रखा जा सकता है। हालाँकि, धारा 19, ऋण वसूली न्यायाधिकरण या अपीलीय न्यायाधिकरण दोनों को ट्रिब्यूनल को सशक्त बनाकर उसकी संपत्ति/सुरक्षित संपत्ति से बेदखल करने के किसी भी अवैध कार्य के मामले में उधारकर्ता के हितों की रक्षा करती है, ताकि ऐसी सुरक्षित संपत्ति का कब्जा बहाल किया जा सके। यह माना गया है कि सुरक्षित लेनदार का कब्ज़ा अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों के अनुसार नहीं है। उधारकर्ता या कोई अन्य पीड़ित व्यक्ति सुरक्षित लेनदार की ऐसी अवैध कार्रवाई के लिए ऐसे मुआवजे और लागत के भुगतान का भी हकदार है, जैसा कि ट्रिब्यूनल द्वारा निर्धारित किया गया है।

30. सरफेसी अधिनियम 2002 की योजना को ध्यान में रखते हुए, जैसा कि *मार्डिया केमिकल्स लिमिटेड उपरोक्त), ट्रांसकोर (उपरोक्त)* और *स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक बनाम वी.नोबल कुमार (उपरोक्त)* के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समझाया गया है, यह है ज्ञात हो कि सरफेसी अधिनियम का उद्देश्य न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना सुरक्षित ऋणों की त्वरित वसूली की सुविधा प्रदान

करना है। अधिनियम संख्या 14/2016 के द्वारा धारा 14 में संशोधन लाने वाले विधेयक के उद्देश्यों और कारणों का विवरण, सुरक्षित संपत्ति पर कब्ज़ा करने के लिए विशिष्ट समय सीमा प्रदान करता है, जो शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत की सहायता में है कि जो उपाय किए गए हैं धारा 13(4) और 14 के चरण में सुरक्षित ऋणदाता न्यायिक/अर्ध न्यायिक हस्तक्षेप के बिना है, जब तक कि अपेक्षित नोटिस देने और आपत्तियों/अभ्यावेदन का जवाब देने के बाद सुरक्षित ऋणदाता द्वारा सुरक्षित परिसंपत्ति का कब्ज़ा नहीं ले लिया जाता है। यदि कोई हो, तो अधिनियम की धारा 13(3ए) के तहत उधारकर्ता द्वारा प्रार्थना की गई है। उप-धारा (1) के स्पष्टीकरण में यह भी स्पष्ट किया गया है कि उधारकर्ता के प्रतिनिधित्व पर कोई भी निर्णय उसे अधिनियम की धारा 17 के तहत आवेदन दायर करने का अधिकार नहीं देगा। सुरक्षित ऋणदाता को धारा 13(4) के चरण में उधारकर्ता को कोई नोटिस या अवसर देने की आवश्यकता नहीं है, जब वह अपने सुरक्षित ऋणों की वसूली के लिए उप-धारा (4) में दिए गए एक या अधिक उपायों का सहारा लेता है। सरफेसी अधिनियम की धारा 14 उधारकर्ता के प्रतिरोध पर, उधारकर्ता की सुरक्षित संपत्ति पर कब्ज़ा करने के लिए सुरक्षित लेनदार द्वारा उठाए गए उपायों का विस्तार है। यह कानूनी भ्रांति होगी, यदि यह कहा जाए कि यद्यपि सुरक्षित ऋणदाता अधिनियम की धारा 13(4) के चरण में उधारकर्ता को सुनने के लिए उत्तरदायी नहीं है, लेकिन यदि उधारकर्ता द्वारा भौतिक कब्जा प्राप्त करने में प्रतिरोध किया जाता है सुरक्षित संपत्ति, सुरक्षित ऋणदाता यदि सहायता/सहायता मांगने के लिए मजिस्ट्रेट के पास जाता है, तो उधारकर्ता जो सुरक्षित ऋणदाता के प्राधिकृत अधिकारी द्वारा कब्जा किए जाने का विरोध कर रहा है या स्वयं कब्जा नहीं सौंपता है, वह सुनवाई के अवसर का हकदार होगा। उधारकर्ता को धारा 13 की उप-धारा (4) में संदर्भित सुरक्षित ऋणदाता द्वारा उठाए गए किसी भी उपाय को चुनौती देने के लिए धारा 17 के संदर्भ में ट्रिब्यूनल से संपर्क करने का अधिकार है, जिसमें अधिनियम की धारा 14 के तहत जिला मजिस्ट्रेट/मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट की सहायता के लिये उपाय भी शामिल हैं। ट्रिब्यूनल से संपर्क करने का अधिकार उधारकर्ता को कब्जे के बाद ही प्रदान किया जाता है।

जैसा कि *ट्रांसकोर* के मामले (उपरोक्त) में शीर्ष अदालत ने कहा था, धारा 13 की उप-धारा (4) के तहत लिए गए प्रतीकात्मक कब्जे और सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के तहत जिला मजिस्ट्रेट/मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट की सहायता से बलपूर्वक लिए गए भौतिक कब्जे के बीच कोई विरोधाभास नहीं है।

31. जहां तक सुरक्षित लेनदार द्वारा उठाए गए कदमों/उपायों को चुनौती देने का उधारकर्ता का अधिकार है, *मेसर्स आर.डी. जैन एंड कंपनी* (उपरोक्त) के मामले में शीर्ष अदालत ने सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के प्रावधानों से निपटते हुए यह देखा है सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के तहत मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट की शक्तियां पूरी तरह से निष्पादन प्रकृति की हैं और इसमें अर्ध-न्यायिक कार्य या दिमाग के प्रयोग का कोई तत्व नहीं है और वह देरी बर्दाश्त नहीं कर सकते हैं। समय सार का मूलतत्व है। सीएमएम/डीएम पर लगाया गया वैधानिक दायित्व सुरक्षित लेनदार से सरफेसी अधिनियम की धारा 14(1) के तहत लिखित आवेदन प्राप्त होने के बाद तुरंत कार्रवाई करना है। सीएमएम/डीएम से अपेक्षा की जाती है कि वे सरफेसी अधिनियम की धारा 14(1) के प्रावधान में उल्लिखित सुरक्षित ऋणदाता द्वारा सभी औपचारिकताओं के अनुपालन के सत्यापन के बाद और उस संबंध में संतुष्ट होने के बाद, कब्जा लेने के लिए एक आदेश पारित करेंगे। सुरक्षित संपत्ति और उससे संबंधित दस्तावेज़ और उन्हें यथाशीघ्र सुरक्षित ऋणदाता को अग्रेषित करना।

32. *एनकेजीएसबी कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड* (उपरोक्त) के मामले में भी शीर्ष अदालत ने यही दृष्टिकोण अपनाया है, जिस पर मेसर्स आर.डी. जैन एंड कंपनी (उपरोक्त) के फैसले पर भरोसा किया गया है।

उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैरा "39" निम्नानुसार अवधारित किया गया है:-

"39. जहां तक सुरक्षित परिसंपत्तियों पर कब्ज़ा करने की प्रक्रिया का संबंध है, इसे 2002 अधिनियम की धारा 14 के साथ पढ़ी गई धारा 13 से समझा जा सकता है। धारा 13(4) सुरक्षित ऋणदाता को निर्दिष्ट में से एक या अधिक का सहारा लेने की अनुमति देती है उपाय; और धारा 14 के संदर्भ में बिक्री की पूर्व पुष्टि के चरण में भी सुरक्षित ऋणदाता को ऐसा करने में सक्षम बनाने के लिए, सीएमएम/डीएम के पास सुरक्षित ऋणदाता के उद्देश्य के लिये दिए गए लिखित आवेदन पर आदेश पारित करने के बाद भी अधिकार है, एक बार आदेश पारित हो जाने के बाद, सीएमएम/डीएम पर डाला गया वैधानिक दायित्व उस सीमा तक समाप्त हो जाता है। अगला कदम सुरक्षित संपत्तियों और उससे संबंधित दस्तावेजों को कब्जे में लेना है।"'

33. *कन्हैयालाल लालचंद सचदेव (उपरोक्त)* में, शीर्ष अदालत ने इस सवाल का जवाब देते हुए कहा कि क्या डीआरटी के पास धारा 13(4) के बाद की घटनाओं पर विचार करने और निर्णय लेने का अधिकार क्षेत्र होगा या क्या अधिनियम की धारा 17 के संदर्भ में इसका दायरा

होगा अधिनियम की धारा 13(4) के तहत विचार किए गए चरण तक ही सीमित है, यह माना गया है कि: -

"22. हम इस बिंदु पर कानून की उपरोक्त व्याख्या के साथ सम्मानपूर्वक सहमत हैं। यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 14 के तहत एक कार्रवाई धारा 13 (4) के चरण के बाद की गई कार्रवाई का गठन करती है, और इस प्रकार, अधिनियम स्वयं उधारकर्ता या अधिनियम की धारा 13(4) के तहत कार्रवाई से प्रभावित किसी भी व्यक्ति के लिए डीआरटी के समक्ष अपील का प्रावधान करके एक प्रभावी उपाय पर विचार करता है।"

34. मेसर्स ट्रेड वेल, एक प्रोपराइटरशिप फर्म, मुंबई (उपरोक्त) के मामले में बॉम्बे हाई कोर्ट को इस मुद्दे का सामना करना पड़ा है कि क्या मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट, जैसा भी मामला हो, को नोटिस देने की आवश्यकता है। उधारकर्ता या कोई भी व्यक्ति जिसके पास सुरक्षित संपत्ति हो और उसकी बात सुनें।

ट्रांसकोर के मामले (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को ध्यान में रखते हुए, यह माना गया कि प्रतिद्वंद्वी दावों का निर्णय उस स्तर पर अनुपस्थित है, प्रतिद्वंद्वी दावों से निपटने और गुणों के संबंध में तर्कसंगत निर्णय देने का कोई सवाल ही नहीं है। किसी भी घटना में, यदि किसी पक्ष को उस आदेश की सामग्री के संबंध में कोई शिकायत है, तो उसका उपाय धारा 13(4) के तहत उपाय किए जाने के बाद डीआरटी के समक्ष धारा 17 के तहत आवेदन में उन्हें आवाज देना होगा। एनपीए अधिनियम की धारा 14 के तहत आदेश पारित करते समय सीएमएम/डीएम को केवल दो पहलुओं पर विचार करना होगा। (i) उसे यह पता लगाना होगा कि क्या सुरक्षित संपत्ति उसके क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र में आती है और; (ii) सरफेसी अधिनियम की धारा 13(2) के तहत नोटिस दिया गया है या नहीं। उस स्तर पर किसी भी प्रकार के निर्णय पर विचार नहीं किया जाता है।

35. सीए मनीषा मेहता (उपरोक्त) में बॉम्बे हाई कोर्ट ने भी यही दृष्टिकोण अपनाया है। जिसमें यह नोट किया गया था कि: -

"8. प्रासंगिक रूप से, सरफेसी अधिनियम की धारा 14 को दो बार संशोधित किया गया था, एक बार 2013 में और फिर 2016 में। यदि विधायिका का इरादा जिला मजिस्ट्रेट/मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट के समक्ष एक उधारकर्ता को सुनवाई का अवसर देना था, जैसा कि मामला यह हो सकता है कि ऐसा करना स्वतंत्र था, सलाह दी गई कि विधायिका ने ऐसा नहीं किया, क्योंकि, यह सरफेसी अधिनियम की योजना और विशेष रूप से इसकी धारा 13 के विरुद्ध होगा, यह सरफेसी की योजना में निहित है अधिनियम कि प्राकृतिक न्याय, केवल एक सीमित सीमा तक ही उपलब्ध है और जो स्पष्ट रूप से प्रदान किया गया है उससे परे नहीं। श्री नेदुम्पारा द्वारा दिए गए तर्क में बहुत कम योग्यता प्रतीत होती है और हमारा मानना है कि धारा 14 की भाषा बहुत स्पष्ट है और जब कोई आवेदन विचाराधीन हो तो उधारकर्ता को नोटिस देकर प्राकृतिक न्याय का अनुपालन करने की किसी भी आवश्यकता को स्वीकार नहीं करता है।"

36. *अनुराधा सिंह (उपरोक्त)* में इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने इस मुद्दे को निम्नलिखित तरीके से निपटाया है: -

"9. ......xxxxxxxxx...हम अधिनियम की धारा 14 के तहत आदेश पारित करने के चरण में उधारकर्ता को अवसर प्रदान करने के लिए कोई वैधानिक प्रावधान नहीं मिला और न ही इस न्यायालय का कोई निर्णय मिला। या शीर्ष न्यायालय को बताया गया है कि यह हमें अधिनियम की धारा 14 के वैधानिक प्रावधानों में प्रशासनिक कानून के ऐसे सिद्धांतों को पढ़ने में सक्षम कर सकता है, परिणामस्वरूप उक्त तर्क में दम नहीं है।"

37. शकुंतला देवी जन कल्याण समिति द्वारा सचिव (उपरोक्त) के माध्यम से में इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने *अनुराधा सिंह* (उपरोक्त) के साथ-साथ *कुमकुम टेंटीवाल* (उपरोक्त) में खण्ड पीठ के फैसलों को नोट किया है और मार्डिया केमिकल्स लिमिटेड (उपरोक्त) और स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक बनाम वी. नोबल कुमार (उपरोक्त) में शीर्ष अदालत के फैसलों को ध्यान में रखा है। जिसमें यह अवधारित किया गया है कि: -

"34. इस न्यायालय की तीन खण्ड पीठों द्वारा दिए गए निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, जैसा कि ऊपर बताया गया है, और मार्डिया केमिकल्स लिमिटेड (उपरोक्त) के मामले में सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, यह राय है कि कुछ भी नहीं किया जा सकता है। अधिनियम की धारा 14 की भाषा में पढ़ा जाए, जो संसद द्वारा विशेष रूप से प्रदान नहीं किया गया है।

मार्डिया केमिकल्स लिमिटेड (उपरोक्त) में फैसला सुनाए जाने के बाद, अधिनियम में संशोधन किया गया और ट्रिब्यूनल से संपर्क करने के लिए 75% की पूर्व जमा राशि के प्रावधानों को हटा दिया गया।

35. चूँकि क़ानून में ही अधिनियम की धारा 14 के तहत किसी कार्रवाई में सुनवाई का अवसर देने का कोई प्रावधान नहीं है, इसलिए यह न्यायालय रिट याचिकाकर्ता को सुनवाई का ऐसा अवसर प्रदान नहीं कर सकता है। कानून में यह स्थापित स्थिति है कि न्यायालय को मौजूदा कानून के आधार पर मामलों का फैसला करना

चाहिए और कानून कैसा होना चाहिए, इसके आधार पर इसकी घोषणा करनी चाहिए।''

38. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, अधिनियम 2002 की विधायी योजना में, धारा 14 को अध्याय III में इस प्रकार रखा गया है कि किसी भी सुरक्षित स्थान पर कब्जा या नियंत्रण लेने के उद्देश्य से सीएमएम/डीएम द्वारा की जाने वाली कार्यवाही संपत्ति, अधिनियम की धारा 13(4) के तहत सुरक्षित ऋणदाता द्वारा अपने सुरक्षित ऋण की वसूली के लिए किए गए उपायों को आगे बढ़ाने के लिए निष्पादन कार्यवाही की प्रकृति में है। सक्षम प्रावधान धारा 13(4) है जिसके तहत सुरक्षित ऋणदाता को उधारकर्ता की सुरक्षित संपत्ति पर कब्जा करने की शक्ति प्रदान की गई है, जिसमें सुरक्षित संपत्ति की प्राप्ति के लिए पट्टे, असाइनमेंट या बिक्री के माध्यम से हस्तांतरण का अधिकार भी शामिल है। यदि किसी अचल संपत्ति, जो कि सुरक्षित संपत्ति है, धारा 13(4) के तहत उपाय शुरू करने पर उधारकर्ता द्वारा स्वयं सुरक्षित ऋणदाता को वास्तविक भौतिक कब्ज़ा नहीं सौंपा गया है, या सुरक्षित ऋणदाता के प्राधिकृत अधिकारी को उधारकर्ता से प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है जब वह नियम 8(2) के तहत निर्धारित कदम उठाने के लिए आगे बढ़ता है। नोटिस के बाद कब्जा लेने के लिए, बैंक (जो सुरक्षित ऋणदाता है) सीएमएम/डीएम को लिखित रूप में अनुरोध कर सकता है, जिसके अधिकार क्षेत्र में सुरक्षित संपत्ति स्थित है, ताकि वह उस पर कब्जा कर सके और ऐसी संपत्ति सुरक्षित ऋणदाता को अग्रेषित कर सके। उधारकर्ता के पास कब्जे के बाद ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 14 के तहत पारित आदेश सहित सुरक्षित लेनदार द्वारा उठाए गए उपायों को चुनौती देने का एक उपाय है। चूंकि इस स्तर पर न्यायिक या अर्ध-न्यायिक कार्यवाही की प्रकृति की कोई जांच नहीं की जानी है, और जैसा कि शीर्ष न्यायालय ने कहा है कि अधिनियम की धारा 14 के तहत सीएमएम/डीएम के समक्ष कार्यवाही प्रकृति में शासकीय है, हम मानते हैं कि इस स्तर पर उधारकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर दिए जाने की आवश्यकता नहीं है।

39. अब हमें याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा भरोसा किए गए कुमकुम टेंटीवाल (उपरोक्त) में इस न्यायालय की खण्ड पीठ के फैसले को पढ़ने की आवश्यकता है, जिसमें एक विपरीत दृष्टिकोण लिया गया है।

40. इस सवाल से निपटते समय कि क्या उधारकर्ता धारा 14 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किसी भी आदेश से पहले सुनवाई के अधिकार का हकदार है, बेंच ने देखा है कि सुरक्षित लेनदार धारा 14 में अपेक्षित शपथपत्र दायर करने के लिए बाध्य है। सुरक्षित लेनदार द्वारा दायर किए गए उक्त शपथपत्र पर, सीएमएम/डीएम को सुरक्षित संपत्ति पर कब्जा करने के उद्देश्य से एक उपयुक्त आदेश पारित करने के लिए शपथपत्र की सामग्री के बारे में खुद को संतुष्ट करना है। इस प्रकार, यह देखा गया कि उक्त प्रावधान को स्पष्ट रूप से पढ़ने से, यह समझ से बाहर है कि जिला मजिस्ट्रेट सुरक्षित ऋणदाता द्वारा दायर शपथपत्र में किए गए कथनों एवं बल प्रयोग द्वारा कब्ज़ा लेने का अनुरोध करने वाले आवेदन के संबंध में एकपक्षीय संतुष्टि कैसे दर्ज कर सकता है। धारा 14 की उपधारा (2) को ध्यान में रखते हुए, यह देखा गया कि उक्त प्रावधान जिला मजिस्ट्रेट को ऐसे कदम उठाने या ऐसे बल का उपयोग करने के लिए अधिकृत करता है जो उनकी राय में आवश्यक हो। उक्त शक्ति का अर्थ यह है कि जिला मजिस्ट्रेट कब्ज़ा लेने के लिए आवश्यक उपाय का उपयोग कर सकता है। कब्जाधारी का अधिकार, चाहे वह उधारकर्ता हो या अन्यथा, बल प्रयोग का विरोध करने या आपत्ति जताने या सुरक्षित ऋणदाता द्वारा दायर किए गए शपथपत्र में किसी भी कमी को इंगित करने का अधिकार, केवल तभी प्रयोग किया जा सकता है जहां व्यक्ति को नोटिस दिया गया हो। जिसे बेदखल करने की मांग की गई है और ऐसे व्यक्ति को सुनवाई का अवसर दिया गया है, जिसके कब्जे में सम्पत्ति हो सकती है।

41. उपरोक्त तर्कों के साथ, यह माना गया कि यह आवश्यक है कि धारा 14 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय भी प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का पालन किया जाए, जिसमें सुनवाई का अधिकार भी शामिल है। धारा 14 के तहत कार्यवाही शुरू करने से पहले, यह आवश्यक है कि धारा 13(2) और 13(4) की प्रक्रिया का पालन किया जाए और उधारकर्ता कभी-कभी यह दलील दे सकता है कि उसे धारा 13(2) के तहत 60 दिनों के भीतर बकाया का भुगतान करने के लिए सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था। इसलिए धारा 14 के तहत कार्रवाई अवैध है। इस प्रकार, जैसा भी मामला हो, उधारकर्ता या गारंटर को नोटिस या सुनवाई का अवसर भी आवश्यक है।

कुमकुम टेंटीवाल (उपरोक्त) में खण्ड पीठ ने *हर्ष गोवर्धन सोंडागर (उपरोक्त)* में शीर्ष अदालत के फैसले का भी उल्लेख किया है, जो धारा 14 के तहत कार्यवाही में सुनवाई के लिए सुरक्षित संपत्ति के पट्टेदार के अधिकार से संबंधित था। सरफेसी अधिनियम और उसमें दी गई टिप्पणियों पर ध्यान दिया गया है कि किसी अन्य प्राधिकरण या न्यायालय की शक्ति को छोड़कर किसी प्राधिकरण के निर्णय को अंतिम रूप देने वाले वैधानिक प्रावधान, ऐसे निर्णय की जांच करने के लिए उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के लिए बाधा नहीं होंगे। संविधान द्वारा प्रदत्त क्षेत्राधिकार का प्रयोग करें क्योंकि कोई

वैधानिक प्रावधान संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति को छीन नहीं सकता है। इस प्रकार, *कुमकुम टेंटीवाल (उपरोक्त)* में यह देखा गया कि शीर्ष न्यायालय ने धारा 14 के प्रावधानों का विश्लेषण करते हुए यह माना है कि सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के तहत पारित आदेश के खिलाफ केवल भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत ही उपलब्ध है। ।

42. प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के पालन के संबंध में, यह देखा गया कि शीर्ष न्यायालय ने निर्णयों की श्रृंखला में यह माना है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत अंतर्निहित हैं और इन्हें हर कानून में पढ़ा जाना चाहिए, भले ही इसके लिए विशेष रूप से प्रावधान न किया गया हो। क़ानून में पूर्व सुनवाई का प्रावधान नहीं हो सकता है। लेकिन ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की प्रयोज्यता किसी वैधानिक प्रावधान पर निर्भर नहीं है। इस तथ्य की परवाह किए बिना कि कोई वैधानिक प्रावधान है या नहीं, सिद्धांत को अनिवार्य रूप से लागू किया जाना चाहिए।

43. सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों पर ध्यान देते हुए, यह पाया गया कि यह अच्छी तरह से स्थापित है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत अनुच्छेद 14 का अभिन्न अंग हैं। किसी भी पक्ष के लिए प्रतिकूल कोई भी निर्णय अवसर दिए बिना या आपूर्ति किए बिना नहीं लिया जाना चाहिए। वह सामग्री जो निर्णय का आधार है। इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला गया कि मात्र अवलोकन पर धारा 14 सुनवाई का कोई अवसर प्रदान नहीं करती है। हालाँकि, धारा 14 के तहत पारित आदेश कब्ज़ा लेने के लिए एक आवश्यक उपाय है, अधिकारी सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के तहत आदेश पारित करते समय प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करने के लिए बाध्य है।

कुमकुम टेंटीवाल (उपरोक्त) में आगे यह उल्लेख किया गया था कि *धर्मपाल सत्यपाल लिमिटेड (उपरोक्त)* के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि शक्ति का प्रयोग करने वाला प्राधिकरण इस आशय का आधार भी नहीं ले सकता है कि आदेश पारित करने से पहले प्रभावित पक्षों की सुनवाई करने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा।

44. पीठ का संचालन करने वाले माननीय न्यायाधीशों के प्रति उचित सम्मान के साथ, हम पाते हैं कि *कुमकुम टेंटीवाल (उपरोक्त)* में निर्णय सरफेसी अधिनियम, 2002 की योजना की अनदेखी है, अधिनियम के अध्याय ।।। का निर्माण जो "सुरक्षा हित का प्रवर्तन" प्रदान करता है। इसने ह*र्ष गोवर्धन सोंदागर (उपरोक्त)* मामले में शीर्ष अदालत के फैसले को गलत तरीके से पढ़ा है, जिसमें कहा गया है कि सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के तहत पारित आदेश के खिलाफ केवल भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत ही सहारा उपलब्ध है।

45. सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 17 के तहत उधारकर्ता को वैधानिक उपाय की उपलब्धता, धारा 14 के तहत आदेश के खिलाफ अध्याय ।।। में निहित है, विवादित नहीं किया जा सकता है। *कुमकुम टेंटीवाल (उपरोक्त)* के मामले में खण्ड पीठ ने स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक बनाम वी. नोबल कुमार और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून पर विचार नहीं किया कि धारा 14 एवं धारा 13(4) से स्वतंत्र नहीं हो सकती है और यदि कोई उधारकर्ता है जब सुरक्षित ऋणदाता धारा 13(4) के तहत कब्जा कर लेता है तो उसे सुनवाई का कोई अधिकार नहीं है, जब वह सुरक्षित ऋणदाता के अधिकृत अधिकारी द्वारा कब्जे का विरोध करने में सफल हो जाता है या अपने स्वयं के कब्जे पर आत्मसमर्पण नहीं करता है तो उसके द्वारा किसी सुनवाई की मांग नहीं की जा सकती है और इस प्रकार, सुरक्षित ऋणदाता को धारा 14 के तहत सीएमएम/डीएम की सहायता लेने के लिए मजबूर करता है। धारा 17 के संदर्भ में ट्रिब्यूनल से संपर्क करने का उधारकर्ता का अधिकार, कब्जे के बाद के अधिकार के रूप में, *स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक बनाम वी. नोबल कुमार और अन्य (उपरोक्त)* के मामले में मान्यता प्राप्त है। विधायी योजना के अनुसार पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया गया है।

46. जैसा कि ऊपर बताया गया है, अधिनियम की योजना के तहत, यह अंतर्निहित है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन धारा 13(3ए) के स्तर पर है, यानी इससे पहले कि सुरक्षित ऋणदाता अधिनियम की धारा 13(4) के तहत उधारकर्ता के खिलाफ आवश्यक उपाय शुरू करने के लिए आगे बढ़े। एक बार जब उधारकर्ता को सुरक्षित ऋणदाता के बकाया का भुगतान करने के लिए कहने के बाद आवश्यक के उपाय शुरू करने से पहले चरण में अवसर दिया जाता है, तो धारा 13(4) या धारा 14 के चरण में कोई और अवसर नहीं दिया जाता है।

जहां तक धारा 14 की उप-धारा (1) के प्रावधान के मद्देनजर सुरक्षित ऋणदाता द्वारा दिए गए आवेदन के साथ दिए गए शपथपत्र में दावे पर आपत्ति करने के लिए उधारकर्ता को दिए जाने वाले अवसर के संबंध में, हम इस पर विचार कर सकते हैं कि जानकारी के तहत आवश्यक जानकारी दी गई है। अधिनियम, 2002 की धारा 14 के तहत आदेश पारित करने वाले अधिकारी को प्रसारण के लिए उक्त प्रावधान की आवश्यकता है, ताकि वह अपनी संतुष्टि दर्ज कर सके कि सुरक्षित ऋणदाता ने बलपूर्वक भौतिक कब्ज़ा या भौतिक कब्ज़ा सौंपने में उधारकर्ता की ओर से निष्क्रियता मांगने का अनुरोध करने से पहले आवश्यक कदम उठाए हैं और

इनकार कर दिया गया था। दर्ज की गई संतुष्टि व्यक्तिपरक है और किसी वस्तुनिष्ठ मानदंड पर आधारित नहीं है। उप-धारा (1) के अनुसार, सीएमएम/डीएम द्वारा न्यायिक या अर्ध-न्यायिक कार्यवाही की प्रकृति की कोई जांच करने की आवश्यकता नहीं है, जो धारा 14 के (ए) और (बी) के तहत सुरक्षित संपत्ति पर कब्जा करने और ऐसी संपत्ति को सुरक्षित ऋणदाता को अग्रेषित करने के लिए अधिकृत है। ।

इस स्तर पर, अधिनियम की धारा 14 की उप-धारा (1) के दूसरे प्रावधान के अनुसार, पैरा ''25 में मजिस्ट्रेट द्वारा जांच के दायरे के बारे में वी. नोबल कुमार (उपरोक्त) के मामले में शीर्ष अदालत की टिप्पणियां ' ऊपर उल्लिखित बातें दोहराई गई हैं।

47. धारा 14 की उप-धारा (2) के तहत सुरक्षित संपत्ति पर भौतिक कब्ज़ा लेने के लिए बल का उपयोग करने में सीएमएम/डीएम के आदेश से जुड़ी अंतिम अंतिमता का सुरक्षित द्वारा उठाए गए उपायों को चुनौती देने के उधारकर्ता के अधिकार पर कोई असर नहीं पड़ता है।लेनदार सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 13(4) के तहत कार्यवाही प्रारंभ करके अपने सुरक्षित ऋण की वसूली के लिए सुरक्षित संपत्ति पर कब्जा करने के लिए कर सकता है।

सरफेसी अधिनियम, 2002 का उद्देश्य और उद्देश्य सुरक्षित लेनदार को न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना, प्रतिभूतियों पर कब्ज़ा करने, उन्हें बेचने और वसूली या पुनर्निर्माण के उपायों को अपनाकर गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों को कम करने की शक्तियों का प्रयोग करके वसूली सुरक्षित करने में सक्षम बनाना है। कुमकुम टेंटीवाल (उपरोक्त) में खण्ड पीठ द्वारा विचार नहीं किया गया है। 2016 के अधिनियम संख्या 16 द्वारा धारा 14 में लाए गए आगे के संशोधनों पर सुरक्षित संपत्ति पर कब्ज़ा करने के लिए विशिष्ट समयसीमा प्रदान की गई है, इस पर ध्यान नहीं दिया गया है।

मार्डिया केमिकल्स लिमिटेड (उपरोक्त) में अधिनियम की धारा 17 के तहत ऋण वसूली न्यायाधिकरण से संपर्क करने के लिए सरफेसी अधिनियम के ढांचे के भीतर उधारकर्ता के लिए उपलब्ध सुरक्षा उपायों के बारे में निर्णय को नजरअंदाज कर दिया गया है। *कुमकुम टेंटीवाल (उपरोक्त)* में खण्ड पीठ की टिप्पणियां कि अधिनियम की योजना के भीतर सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के तहत आदेश के खिलाफ कोई अन्य उपाय उपलब्ध नहीं है, "सुरक्षा हित के प्रवर्तन" के लिए अध्याय III के तहत वैधानिक योजना की अनदेखी है। ". उक्त अध्याय के तहत यह निहित है कि यदि किसी पक्ष को धारा 14 के तहत आदेश की सामग्री के संबंध में कोई शिकायत है, तो उसका उपाय ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष धारा 17 के तहत आवेदन में उन्हें आवाज देना होगा।

48. उपरोक्त नोट करने के बाद, हमें इस पर विचार करने की आवश्यकता है कि क्या *कुमकुम टेंटीवाल (उपरोक्त)* में खण्ड पीठ का फैसला एक बाध्यकारी मिसाल के रूप में काम करेगा और एकरूपता और स्थिरता बनाए रखने के लिए इसका पालन किया जाना चाहिए, जो न्यायिक अनुशासन और विपरीत राय के मामले में बड़ी बेंच का संदर्भ देना होगा का मूल है।

यह यूपी राज्य और अन्य बनाम सिंथेटिक्स एंड केमिकल्स लिमिटेड और अन्य में यह आवधारित किया जाता है कि कोई निर्णय उसके निष्कर्ष के कारण नहीं बल्कि उसके अनुपात और उसमें निर्धारित सिद्धांतों के संबंध में बाध्यकारी है। बिना सोचे समझे की गई या बिना किसी कारण के की गई किसी भी घोषणा या निष्कर्ष को एक मिसाल के रूप में बाध्यकारी सामान्य प्रकृति के कानून या प्राधिकार की घोषणा नहीं माना जा सकता है। असहमति या फैसले को खारिज करने में संयम स्थिरता और एकरूपता के लिए है लेकिन उचित सीमा से परे कठोरता कानून के विकास के लिए हानिकारक है।

हैदर कंसल्टिंग (यूके) लिमिटेड बनाम गवर्नर, उड़ीसा राज्य के मुख्य अभियंता के माध्यम से यह कहा गया था कि समान तथ्यों और कानून पर न्यायालय का पूर्व निर्णय अदालत को बाद के मामले में कानून के समान बिंदुओं पर बाध्य करता है। हालाँकि, असाधारण परिस्थितियों में, जहाँ स्पष्ट असावधानी या निरीक्षण के कारण, एक निर्णय एक सादे वैधानिक प्रावधान या अनिवार्य प्राधिकारी को तर्क और परिणाम के विपरीत चलने में विफल रहता है, प्रति इंक्यूरियम का सिद्धांत लागू हो सकता है। [उसमें फ़्यूर्स्ट डे लॉसन लिमिटेड बनाम जिंदल एक्सपोर्ट्स लिमिटेड के फैसले का भी संदर्भ दिया गया था]।

49. लैटिन अभिव्यक्ति "प्रति इंक्यूरियम" का शाब्दिक अर्थ है ''असावधानी के माध्यम से''। यह कहा जा सकता है कि किसी निर्णय को प्रति इन्क्युरियम तब दिया जाता है जब रिकॉर्ड कोर्ट ने किसी दिए गए विषय वस्तु पर घोषित प्रासंगिक कानून की अनदेखी करते हुए कार्य किया हो।

जैसा कि यूपी राज्य और अन्य बनाम सिंथेटिक्स एंड केमिकल्स लिमिटेड (उपरोक्त) में अवधारित किया गया :-

"40. इनक्यूरिया' का शाब्दिक अर्थ है 'लापरवाही'। व्यवहार में पर इनक्यूरियम का अर्थ प्रति इग्नोरेटियम प्रतीत होता है।' अंग्रेजी न्यायालयों ने इस

सिद्धांत को घूरने के निर्णय के नियम को शिथिल करने के लिए विकसित किया है, यदि इसे 'किसी क़ानून या अन्य बाध्यकारी प्राधिकरण की अनदेखी' में प्रस्तुत किया जाता है, तो 'कानून में उद्धरण' से बचा जाता है और इसे अनदेखा कर दिया जाता है।

ए.आर. अंतुले बनाम आर.एस. नायक और अन्य मामले में पैराग्राफ ''42'' के अवलोकन का संदर्भ इस प्रकार दिया जा सकता है:-

"42. .....xxxxxx... "पर इन्क्यूरियम" वे निर्णय हैं जो कुछ असंगत वैधानिक प्रावधान या संबंधित न्यायालय पर बाध्यकारी कुछ प्राधिकारी की अज्ञानता या विस्मृति में दिए गए हैं, ताकि ऐसे मामलों में निर्णय का कुछ हिस्सा या जिस तर्क पर यह आधारित है, उसमें कुछ कदम स्पष्ट रूप से गलत पाए गए हैं। सन्दर्भः मोरेले बनाम अधिवक्ताि ंग, [1955] 1 सभी ई.आर. 708, ...xxxxxxx... "

50. उपरोक्त चर्चा के लिए, *कुमकुम टेंटिवाल (उपरोक्त)* में खण्ड पीठ का फैसला पर इन्क्यूरियम के अनुसार रखा गया है।

इसलिए, *ज़ैनुल आब्दीन (उपरोक्त)* में उक्त निर्णय की शुद्धता पर संदेह करते हुए एक अन्य खण्ड पीठ द्वारा बड़ी बेंच को किया गया संदर्भ हमें किसी भी तरह से नहीं रोकता है।

51. पुनरावृत्ति के द्वारा, इस समय यह ध्यान दिया जा सकता है कि *मेसर्स आर.डी. जैन एंड कंपनी (उपरोक्त)* में 27 जुलाई, 2022 के एक हालिया फैसले में, शीर्ष अदालत ने माना है कि की सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के तहत प्रमुख मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट की शक्तियां पूरी तरह से निष्पादनात्मक प्रकृति का है, जिसमें अर्ध-न्यायिक कार्यों का कोई तत्व नहीं है और सीएमएम/डीएम द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति एक शासकीय अधिनियम है। "शासकीय अधिनियम" के शब्दकोश अर्थ के अनुसार, "शासकीय अधिनियम" के तहत प्राधिकारी को अपने निर्णय का प्रयोग करने की कोई स्वतंत्रता नहीं है। सीएमएम/डीएम द्वारा धारा 14 के तहत जांच केवल दो पहलुओं तक ही सीमित है; (i) क्या सुरक्षित संपत्ति उसके क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र में आती है, और (ii) क्या अधिनियम, 2002 की धारा 13(2) के तहत नोटिस दिया गया है या नहीं। उस स्तर पर किसी भी प्रकार के निर्णय पर विचार नहीं किया जाता है। लेन-देन की कानूनी बारीकियों की जांच मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 14 की उप-धारा (1) के पहले प्रावधान के अनुसार दायर किए गए शपथपत्र में किए गए दावे की तथ्यात्मक शुद्धता की जांच करने के लिए नहीं की जानी चाहिए ताकि सुरक्षित संपत्ति का कब्ज़ा लेने के लिए उचित आदेश पारित होने के लिए उनकी संतुष्टि दर्ज की जा सके।

52. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, यह माना जाता है कि सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 14 के तहत कार्य करने वाले सीएमएम/डीएम को निर्णय लेने या आदेश पारित करने के चरण में उधारकर्ता को नोटिस देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि कोई सुनवाई नहीं हो सकती है इस स्तर पर उधारकर्ता द्वारा मांग की गई। हालाँकि, यह स्पष्ट किया जाता है कि ऐसे कदम या बल के प्रयोग से जबरन बेदखल करने के लिए कोई भी कदम उठाने से पहले, जो मजिस्ट्रेट की राय में आवश्यक हो, ऐसे मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को उधारकर्ता पर विधिवत तामील किया जाना चाहिए, और उस तिथि में ऐसी जबरन कार्रवाई के लिए तय की गई राशि की विधिवत सूचना ऐसे उधारकर्ता को पहले से दी जाएगी, जिससे उसे अपना सामान हटाने या अधिवक्ताि‍पिक व्यवस्था करने के लिए पर्याप्त समय मिल सके।

53. अंत में, धारा 14 के तहत आदेश पारित करने में 60 दिनों से अधिक की देरी के घातक होने के बारे में याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उठाए गए सहायक मुद्दे के लिए, सी. ब्राइट बनाम डिस्ट्रिक्ट कलेक्टर और अन्य (उपरोक्त) में शीर्ष न्यायालय के फैसले पर ध्यान देना पर्याप्त है। जिसमें यह माना जाता है कि यदि जिला मजिस्ट्रेट समय सीमा के भीतर कब्जा लेने में असमर्थ है, तो वह कार्यात्मक अधिकारी नहीं बन जाता है। यदि जिला मजिस्ट्रेट उसमें प्रदान की गई समय-सीमा का पालन नहीं कर सका, तो अधिनियम की धारा 14 के तहत उपाय निरर्थक नहीं है।

इसलिए, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन की दलील पर सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 14 के तहत पारित सक्षम प्राधिकारियों द्वारा दिए गए आदेशों को चुनौती खारिज की जा सकती है।

तदनुसार, सभी संबंधित रिट याचिकाएं गुण-दोष रहित होने के कारण खारिज की जाती हैं।

(2023) 1 ILRA 270
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: लखनऊ 05.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन

रिट-सी संख्या 23459/2018

बी.एस.एन.एल. और अन्य ...याचिकाकर्ता
बनाम
केंद्र सरकार. औद्योगिक न्यायाधिकरण सह श्रम न्यायालय, लखनऊ एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता :
राजीव कुमार सिन्हा

अधिवक्ता प्रतिवादी:
विकास मिश्रा, अनुप्रिया श्रीवास्तव, जयप्रसाद यादव, कौशलेंद्र यादव, वीरेंद्र कुमार दुबे

(ए) सिविल कानून - औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 - धारा 25एफ - श्रमिकों की छंटनी से पूर्व की शर्तें, धारा 25बी - 'निरंतर सेवा', धारा 25बी(2) - यदि कोई श्रमिक, पूर्ववर्ती 12 वास्तविक माह की अवधि के दौरान तिथि जिसके संबंध में गणना दी गई है - वास्तव में नियोक्ता के अधीन 240 दिनों तक काम किया है तो उसे एक वर्ष की अवधि के लिए निरंतर सेवा में माना जाएगा –कम काम करने की स्थिति में बहाली का आदेश और पिछला वेतन नहीं दिया जाएगा न्याय के उद्देश्य को पूरा करने के लिए स्वचालित रूप से काम करने वाले को मौद्रिक मुआवजा दिया जाना चाहिए। (पैरा-23,27)

श्रमिक की सेवा की समाप्ति दिनांक 01.09.2001 को हुई - दिसंबर 1999 से दिसंबर 2000 तक ट्रिब्यूनल द्वारा कार्य पर विचार किया गया (10.09.2018 को संशोधित किया गया) - श्रमिक की निरंतर सेवा की गणना के लिए 31.08.2001 तक की सेवाओं पर ट्रिब्यूनल द्वारा विचार नहीं किया गया। (**पैरा-28)**

आयोजित:- एक बार कर्मचारी की 31.08.2001 तक की कथित निरंतर सेवा पर ट्रिब्यूनल द्वारा विचार नहीं किया गया है, जिसके परिणामस्वरूप यह नहीं कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ताओं ने अधिनियम 1947 के प्रावधानों का उल्लंघन किया है। आपेक्षित आदेश निरस्त किया जाता है। नवीन आदेश पारित करने के लिए वाद ट्रिब्यूनल को भेजा गया। (**पैरा -28,29)**

याचिका स्वीकृत। (ई-7)

उद्धृत वाद सूची:

1. डी.डी.ओ. और अन्य बनाम सतीश कांतिलाल अमरेलिया (2018) 12 एससीसी 298
2. नगर निगम, फ़रीदाबाद बनाम सिरी निवास (2004) 8 एससीसी 195
3. उत्तराखंड राज्य एवं अन्य बनाम राज कुमार (2019) 14 एससीसी 353
4. बी.एस.एन.एल. बनाम भुरुमल, (2014) 7 एससीसी 177

(**माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोईन, द्वारा प्रदत्त)**

1. याचिकाकर्ताओं हेतु विद्वान अधिवक्ता को सुना गया और प्रतिवादी संख्या 2 हेतु श्री ओ. पी. श्रीवास्तव, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता व उनके सहायक विद्वान अधिवक्ता श्री कौशलेंद्र यादव को सुना गया।

2. वर्तमान याचिका 03.04.2018 को प्रकाशित दिनांक 16.05.2017 के निर्णय और अधिनिर्णय को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसकी एक प्रति याचिका का संलग्नक 1 है। उक्त आदेश के अनुसार केंद्रीय सरकार औद्योगिक अधिकरण एवं श्रम न्यायालय लखनऊ (एतस्मिन पश्चात विद्वान अधिकरण के रूप में संदर्भित) ने औद्योगिक विवाद संख्या 25/2003 में कर्मकार श्री मंजीत सिंह/ प्रतिवादी संख्या 2 (एतस्मिन पश्चात कर्मकार के रूप में संदर्भित) की मौखिक सेवा समाप्ति आदेश को 01.09.2001 से अवैध और अनुचित धारित किया है और उसे 50% बकाया वेतन के साथ 01.09.2001 से बहाल करने का निर्देश दिया गया है।

3. याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत वाद यह है कि कर्मकार द्वारा विद्वान अधिकरण के समक्ष एक दावा याचिका दायर की गई थी, जिसकी एक प्रति याचिका में संलग्नक 2 है, जिसमें तर्क दिया गया है कि उसके 10.12.1998 से जनवरी 2000 तक निरन्तर और उसके बाद फरवरी 2000 से मई 2000 तक और जून 2000 से अगस्त 2001 तक निरन्तर कार्य करने के उपरान्त भी उसकी सेवा 01.09.2001 को समाप्त कर दी गईं। अपने दावे के समर्थन में कर्मकार ने उपरोक्त अवधि में किये गए कार्य को सिद्ध करने हेतु, लॉगबुक, गेट पास के रूप में कार्य-निर्वहन और वाहन चालन प्रदर्शित करने वाले दस्तावेज सहित विभिन्न दस्तावेज प्रस्तुत किए।

4. याचिकाकर्ताओं द्वारा इस दावे का विभिन्न आधारों पर विरोध किया गया, जिसमें यह आधार भी सम्मिलित था कि कर्मकार बी.एस.एन.एल. का कर्मचारी नहीं था, अपितु एक ठेकेदार के माध्यम से कार्य हेतु नियोजित था और उसकी कार्यप्रणाली भी विवादित थी।

5. प्रश्नगत अधिनिर्णय के माध्यम से विद्वान अधिकरण का विचार था कि चूँकि कर्मकार ने दिसंबर 1999 से नवंबर 2000 तक और जून 2000 से दिसंबर 2000 तक कार्य

किया है एवं उसने लॉगबुक के अनुसार क्रमशः 280 दिवस और 270 दिवस कार्य किया है, कर्मकार द्वारा किए गए कार्य की पुष्टि अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्षियों द्वारा की गई है और प्रबंधन दस्तावेजों की सत्यता या प्रामाणिकता को विशेष रूप से नकारने का साहस नहीं जुटा सका और परिणामस्वरूप कर्मकार की मौखिक समाप्ति को अवैध और अनुचित ठहराते हुए 01.09.2001 से 50% बकाया वेतन सहित कर्मकार की बहाली हेतु निर्देश दिया गया।

6. व्यथित होकर वर्तमान याचिका दायर की गई है।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने मुख्य रूप से तीन आधारों पर तर्क प्रस्तुत किया है : -

(क) कि विद्वान अधिकरण ने अपने अधिनिर्णय के प्रस्तर 21 में संकेत दिया है कि कर्मकार ने दिसंबर 1999 से नवंबर 2000 और जून 2000 से दिसंबर 2000 तक कार्य किया है और कुल कार्य 280 दिवस और 270 दिवस का दर्शाया गया है, किन्तु किसी भी रुप में उपरोक्त अवधि के कार्य-दिवस दो प्रकार के अर्थात क्रमशः 280 दिवस और 270 दिवस नहीं हो सकते हैं,

(ख) विद्वान अधिकरण ने उन कारणों को बताए बिना कर्मकार की बहाली का निर्देश दिया है जो विद्वान अधिकरण को बहाल करने के निर्देश देने हेतु प्रचलित हैं, क्योंकि यह स्थापित विधि है कि एक ऐसे कर्मकार, की बहाली जिसने मात्र अल्प समयावधि हेतु कार्य किया है, की बहाली हेतु स्वचालित रूप से निर्देशित नहीं किया जा सकता है, और

(ग) औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (एतस्मिन पश्चात अधिनियम 1947 के रूप में संदर्भित) की धारा 25 एफ के अनुसार, कर्मकारों की छँटनी की पूर्व शर्त यह है कि किसी भी उद्योग में कार्यरत किसी भी कर्मकार, जो एक नियोक्ता के अधीन कम से कम एक वर्ष से निरन्तर सेवा में हो, की छँटनी नहीं की जायेगी, जबकि 'निरंतर सेवा' शब्द का अर्थ कर्मकार की कथित सेवा समाप्ति तक की सेवा होगी, इस वाद में 01.09.2001 का अर्थ है कि 31.08.2001 तक निरन्तर कार्य करने पर विद्वान अधिकरण द्वारा विचार किया जाना था किन्तु विद्वान अधिकरण ने मात्र दिसंबर 1999 से दिसंबर 2000 तक कार्य करने पर विचार किया है और इस प्रकार 31.08.2001 तक की निरंतर सेवा पर प्रश्नगत अधिनिर्णय पारित करते समय विद्वान अधिकरण द्वारा विचार भी नहीं किया गया है।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इसे विस्तार से बताते हुए तर्क दिया कि जहाँ तक आधार (ए) का संबंध है, विद्वान अधिकरण ने स्वत: संज्ञान लेते हुए दिनांक 10.09.2018 के आदेश के अधीन अधिनिर्णय में सुधार किया था, जिसे कर्मकार द्वारा दायर प्रति शपथपत्र अनुलग्नक सीए 1 के रूप में अभिलेख में प्रस्तुत किया गया है एवं जिसमें कहा गया है कि कर्मकार की अवधि को अब संशोधित रुप में दिसंबर 1999 से नवंबर 2000 और जून 2000 से दिसंबर 2000 तक कार्य करने के रूप में पढ़ा जाना चाहिए, जो क्रमशः 280 दिवसों और 270 दिवसों के दो पृथक कार्य-दिवस अवधियों के अभिलेखन को भी सही ढंग से प्रस्तुत नहीं करेगा, और इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उक्त कार्य दिवसों की संख्या विद्वान अधिकरण द्वारा त्रुटिपूर्वक दर्ज की गई है, जो स्पष्टतः विद्वान अधिकरण द्वारा मस्तिष्क की अप्रयोज्यता को दर्शाता है।

9. जहाँ तक आधार (बी) का संबंध है, यह तर्क देने हेतु जिला विकास अधिकारी और एक अन्य बनाम सतीश कांतिलाल अमरेलिया (2018) 12 एससीसी 298 के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रदत्त निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया गया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है कि किसी कर्मकार द्वारा कम अवधि तक कार्य करने का परिणाम स्वत: बहाली का आदेश नहीं होगा, अपितु यदि किसी कर्मकार की छँटनी या सेवा समाप्ति अवैध पाई जाती है तो उसे सदैव धन के रूप में क्षतिपूर्ति प्रदान की जा सकती है।

10. जहाँ तक आधार (सी) का संबंध है, नगर निगम, फ़रीदाबाद बनाम सिरी निवास (2004) 8 एससीसी 195 के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रदत्त निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया है कि 'निरंतर सेवा' शब्द अधिनियम 1947 की धारा 25 बी में निहित हैं और एक कर्मकार को उस दिनांक से पूर्व, जिसके संदर्भ में वास्तव में गणना की जानी है 12 कैलेंडर मास की अवधि के दौरान अपना निरंतर कार्य प्रदर्शित करना होता है ।

11. उपरोक्त तीन आधारों पर यह तर्क दिया गया है कि विद्वान अधिकरण ने प्रश्नगत अधिनिर्णय पारित करने में स्पष्टतया विधिक त्रुटि की है और इस प्रकार प्रश्नगत अधिनिर्णय को रद्द किया जाना चाहिए।

12. दूसरी ओर, प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता श्री ओ. पी. श्रीवास्तव का तर्क है कि विद्वान अधिकरण के समक्ष कर्मकार द्वारा लॉगबुक, गेट पास के रुप में कार्य-निर्वहन और वाहन चालन प्रदर्शित

करने वाले दस्तावेजों सहित विभिन्न दस्तावेज प्रस्तुत किये गये थे, जिन्हें प्रबंधन द्वारा कभी भी अस्वीकार नहीं किया गया था। उनका तर्क है कि वाद के इस पक्ष पर विद्वान अधिकरण ने अपने अधिनिर्णय के प्रस्तर 21 में विचार किया है, जिसमें विद्वान अधिकरण ने स्पष्ट रूप से माना है कि प्रबंधन के संबंधित अधिकारी अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में बुरी तरह विफल रहे हैं और उन दस्तावेजों की सत्यता या प्रामाणिकता को विशिष्ट रुप से नकारने का साहस नहीं जुटा सके जिन पर कर्मकार द्वारा विश्वास व्यक्त किया गया ।

13. यह भी तर्क दिया गया है कि जब समस्त दस्तावेज विद्वान अधिकरण के समक्ष उपलब्ध हो गये थे और दस्तावेजों को प्रबंधन द्वारा कभी भी अस्वीकृत नहीं किया गया था, जैसा कि विद्वान अधिकरण के निर्णय के प्रस्तर 20 में विशेष रूप से अभिलिखित किया गया है, तब भले ही विद्वान अधिकरण द्वारा कर्मकार के कार्य-दिवसों की संख्या निर्धारित करने में त्रुटि हुई है, वह इस तथ्य से मुँह नहीं मोड़ सकता है कि कर्मकार ने दिसंबर 1998 से अगस्त 2001 तक कार्य किया है और इस प्रकार यह उपधारणा है कि ठीक उसकी अवैध सेवा समाप्ति के दिन अर्थात01.09.2001 तक उसने 240 दिवस कार्य किया है जो कर्मकार को सेवा में बहाल होने का अधिकार देगा।

14. जहाँ तक विद्वान अधिकरण द्वारा अपने निर्णय के प्रस्तर 21 में त्रुटिपूर्ण कार्य-अवधि का संकेत दिया गया है, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का यह तर्क है कि विद्वान अधिकरण के समक्ष, कर्मकार के दिसंबर 1998 से अगस्त 2001 तक निरंतर कार्य-अवधि को इंगित करने हेतु विभिन्न दस्तावेजों पर विश्वास व्यक्त किया गया था, और इस प्रकार यदि विद्वान अधिकरण ने कर्मकार के कार्य दिवसों को इंगित करते समय कोई त्रुटि की है तो भी इसे उसके विरुद्ध धारित नहीं किया जा सकता है।

15. अल्प-अवधि के कार्य-अवधि के कारण कोई स्वत: बहाली नहीं होने के संबंध में, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने उत्तराखंड राज्य और अन्य बनाम राज कुमार (2019) 14 एससीसी 353 वाद में शीर्ष न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है। यह तर्क देने हेतु कि शीर्ष न्यायालय ने भारत संचार निगम लिमिटेड बनाम भुरूमल (2014) 7 एससीसी 177 वाद में अपने पूर्व निर्णय पर विचार करते हुए स्पष्ट रूप से सावधान किया है कि कोई स्वचालित बहाली न होना वहाँ लागू नहीं होगा जहाँ दैनिक श्रमिक को अनुचित श्रम प्रथा के आधार पर अथवा अंत में आओ पहले जाओ (last come first go) के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए अवैध रूप से समाप्त किया गया पाया जाता है, और उससे कनिष्ठ कर्मकारों को सेवा में बनाए रखा जाता है या कुछ कनिष्ठ कर्मकारों को नियमित किया जाता है। ऐसी परिस्थितियों में, अल्प समय तक कार्य करने के उपरान्त भी कर्मकार को बहाल किया जा सकता है।

16. वर्तमान याचिका में प्रस्तुत किए गए प्रतिशपथ पत्र में निहित कथनों पर विश्वास करते हुए यह तर्क दिया गया है कि कर्मकार से कनिष्ठ विभिन्न कर्मकारों को सेवा में नियमित किया गया है और इस प्रकार विद्वान अधिकरण द्वारा कर्मकार की बहाली के निर्देश देने में कोई त्रुटि नहीं है।

17. उभयपक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का परिशीलन किया।

18. विरोधी पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों और अभिलेख के परिशीलन से यह ज्ञात होता है कि प्रतिवादी संख्या 2 कर्मकार ने विद्वान अधिकरण के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया जिसमें कहा गया कि दिनांक 01.09.2001 से अवैध रूप से उसकी सेवा समाप्त कर दी गयी है। उसने अधिनियम 1947 के प्रावधानों के लाभ का दावा किया। इसके अतिरिक्त यह प्रदर्शित करने हेतु कि वह याचिकाकर्ताओं की ओर से वाहन चला रहे था उसने विद्वान अधिकरण के समक्ष लॉगबुक, गेट पास के रूप में उनके कार्य-निर्वहन और कई अन्य दस्तावेजों सहित विभिन्न दस्तावेज प्रस्तुत किए । उसने दिनांक 10.12.1998 से कथित अवैध सेवा समाप्ति की तिथि अर्थात् 01.09.2001 तक निरंतर कार्य करने का दावा किया। याचिकाकर्ताओं ने दावे का विरोध किया और इस तथ्य से इन्कार किया कि कर्मकार निरंतर कार्य कर रहा था या कर्मकार याचिकाकर्ताओं का कर्मचारी था, अपितु उन्होंने तर्क दिया कि उसे एक ठेकेदार के माध्यम से नियोजित किया गया था।

19. विद्वान अधिकरण ने अभिलेख पर प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करने के उपरांत और यह भी विचार करते हुए कि याचिकाकर्ताओं की ओर से उक्त दस्तावेजों का कोई खंडन नहीं किया था, यह विचार व्यक्त किया कि कर्मकार ने दिसंबर 1999 से दिसंबर 2000 तक और जून 2000 से दिसंबर 2000 तक कार्य किया है। इस प्रकार उसकी कार्य-अवधि 280 दिवस और 270 दिवस बतायी गयी है और इस प्रकार वह अधिनियम 1947 के प्रावधानों के लाभ का अधिकारी होगा, क्योंकि कार्य-दिवस एक वर्ष में 240 दिवस से अधिक थे, अतः 01.09.2001 को मौखिक सेवा समाप्ति को विधिक और उचित नहीं कहा जा सकता है और इस प्रकार प्रश्नगत अधिनिर्णय के माध्यम से कर्मकार को 01.09.2001 से विगत मजदूरी के 50% सहित सेवा में पुनःस्थापित करने का निर्देश दिया गया है।

20. इस निर्णय को चुनौती देते हुए याचिकाकर्ताओं ने जो प्रथम आधार लिया है, वह यह है कि लॉगबुक और अन्य

दस्तावेजों सहित कर्मकार के कार्य-अवधि पर विचार करने के बाद विद्वान अधिकरण का मत था कि कर्मकार ने दिसंबर 1999 से नवंबर 2000 तक और जून 2000 से दिसंबर 2000 तक कार्य किया है और उसकी कार्य-अवधि 280 दिवस और 270 दिवस अर्थात240 दिवस से अधिक दर्शायी गयी है, किन्तु भले ही कार्य-अवधि, जैसा कि विद्वान अधिकरण द्वारा अभिलिखित किया गया है, दिसंबर 1999 से नवंबर 2000 और जून 2000 से दिसंबर 2000 तक की अवधि गणना करने पर अधिकतम 280 दिवस हो सकते हैं, किन्तु किसी भी रुप में यह नहीं कहा जा सकता कि कार्य करने की अन्य अवधि अर्थात् 270 दिवस नहीं होगी और इसके परिणामस्वरूप विद्वान अधिकरण की ओर से स्पष्ट रूप से मस्तिष्क का प्रयोग नहीं किया गया है।

21. उक्त आधार की जाँच करते समय न्यायालय ने पाती है कि विद्वान अधिकरण ने कर्मकार के दिसंबर 1999 से नवंबर 2000 और जून 2000 से दिसंबर 2000 तक की कार्य-अवधि को विशेष रूप से अभिलिखित किया है और कुल कार्य-अवधि 280 और 270 दिवसों के रूप में दर्शाया है। विद्वान अधिकरण ने अपने आदेश दिनांक 10.09.2018 के माध्यम से स्वतः ही निर्णय को संशोधित कर दिया है, जिसके अंतर्गत कार्य अब दिसंबर 1999 से नवंबर 2000 और जून 2000 से दिसंबर 2000 तक पढ़ा जाता है। भले ही कार्य-अवधि, जैसा कि दिनांक 10.09.2018 के आदेश के द्वारा विद्वान अधिकरण द्वारा संशोधित किया गया है प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है, पर किसी भी रुप में यह नहीं कहा जा सकता है कि इसके परिणामस्वरूप कार्य करने के पृथक अवधियां अर्थात280 दिवस और 270 दिवस होगी जैसा कि विद्वान अधिकरण द्वारा अभिलिखित किया गया है क्योंकि जून 2000 से नवंबर 2000 तक कार्य/दोहरी गणना की अवधि स्पष्ट रुप से परस्पर व्याप्त है। यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि उक्त कार्य-अवधि को विद्वान अधिकरण द्वारा उसके समक्ष प्रस्तुत दस्तावेजों के आधार पर अभिलिखित किया गया है। इस तथ्य पर विचार करते हुए कि उक्त दिनांकों के अभिलेखन में गड़बड़ी है और स्पष्ट रूप से दोहरी गणना की गई है, याचिकाकर्ता द्वारा प्रश्नगत अधिनिर्णय को चुनौती देने के प्रथम आधार से यह न्यायालय सहमत है, और न्यायालय का मत है कि विद्वान अधिकरण ने कर्मकार द्वारा कार्य करने के दिवसों की संख्या अभिलिखित करते हुए स्पष्ट रूप से मस्तिष्क का प्रयोग नहीं किया है।

22. जहाँ तक याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए द्वितीय आधार का प्रश्न है, अर्थात विद्वान अधिकरण ने बिना कारण बताए कर्मकार की बहाली का निर्देश दिया है, सतीश कांतिलाल अमरेलिया (उपरोक्त) के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया गया है। उक्त निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार धारित किया है:

"12. वाद के सम्पूर्ण अभिलेख के परिशीलन के उपरान्त और तथ्यात्मक विवाद की प्रकृति के दृष्टिगत, श्रम न्यायालय के निष्कर्षों, जिस प्रकार प्रतिवादी ने इस वाद को एक साथ दो मोर्चों पर लड़ा, प्रथम सिविल न्यायालय में, और द्वितीय श्रम न्यायालय में अपनी सेवा समाप्ति आदेश को चुनौती दी और सेवा में नियमितीकरण की माँग की, जिसके परिणामस्वरूप दो परस्पर विरोधी आदेश पारित हुए - एक प्रतिवादी के पक्ष में (श्रम न्यायालय) और दूसरा उसके विरुद्ध (सिविल न्यायालय), और अंत में, यह एक स्वीकृत तथ्य है यह कि प्रतिवादी अपने अल्प कार्यकाल में एक दैनिक वेतन भोगी था, जो बमुश्किल लगभग ढाई वर्षों का था और इस तथ्य के साथ कि उसकी कथित सेवा समाप्ति की तिथि से 25 वर्ष बीत चुके हैं, विचार करने पर हमारी सुविचारित राय है कि इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि भारत संचार निगम लिमिटेड बनाम भुरूमल [(2014) 7 एससीसी 177] के वाद में दिया गया आदेश इस वाद के तथ्यों पर उपयुक्त रूप से लागू होगा और हम इन अपीलों के निस्तारण हेतु इसे वरीयता देंगे।

13. भारत संचार निगम लिमिटेड (उपरोक्त) के वाद में इस न्यायालय ने जो कहा है उसे पुन: प्रस्तुत करना उचित है : -

"33. उपरोक्त निर्णयों को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि पूर्ण विगत वेतन के साथ बहाली देने का सामान्य सिद्धांत, जब सेवा समाप्ति अवैध पाई जाती है, सभी मामलों में यांत्रिक रूप से लागू नहीं होता है, तथापि यह एक ऐसी स्थिति हो सकती है जहाँ किसी नियमित/स्थायी कर्मकार की सेवायें अवैध रूप से और/या दुर्भावनापूर्ण तरीके से और/या उत्पीड़न, अनुचित श्रम व्यवहार आदि के कारण सेवा समाप्त की गई हो। यद्यपि, जब एक दैनिक वेतनभोगी कर्मकार की सेवा समाप्ति का मामला आता है और जहाँ प्रक्रियात्मक दोष के कारण सेवा समाप्ति अवैध पाई जाती है, अर्थात जहाँ औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 25-एफ का उल्लंघन होता है, यह न्यायालय इस विचार पर स्थिर है कि ऐसे मामलों में अवशेष वेतन के साथ बहाली स्वचालित नहीं है और इसके स्थान पर कर्मकार को मौद्रिक क्षतिपूर्ति दिया जाना चाहिए जो न्याय के उद्देश्यों को पूर्ण करेगा। इस दिशा में स्थिति परिवर्तन का औचित्य स्पष्ट है।

34. ऐसे मामलों में बहाली के अनुतोष को अस्वीकृत करने के कारण स्पष्ट हैं। यह अति सामान्य विधि है कि जब औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 25-एफ के अन्तर्गत अनिवार्यतः अपेक्षित छँटनी क्षतिपूर्ति और नोटिस वेतन का भुगतान न करने के कारण समाप्ति अवैध पाई जाती है, तो बहाली के बाद भी, प्रबन्धन उस कर्मकार को छँटनी क्षतिपूर्ति देकर उसकी सेवाएँ समाप्त करने हेतु सदैव स्वतंत्र होता है। चूँकि ऐसा कर्मकार दैनिक-वेतनभोगी के आधार पर कार्य कर रहा था और बहाल होने के बाद भी उसे नियमितीकरण की माँग करने का कोई अधिकार नहीं है [सन्दर्भः कर्नाटक राज्य बनाम उमा देवी (3)17]। इस प्रकार जब वह नियमितीकरण का दावा नहीं कर सकता है और उसे दैनिक वेतनभोगी कर्मकार के रूप में भी बने रहने का कोई अधिकार नहीं है, तो ऐसे कर्मकार को बहाल करने से कोई उद्देश्य पूर्ण नहीं होने वाला है और उसे न्यायालय द्वारा ही मौद्रिक क्षतिपूर्ति दी जा सकती है, क्योंकि बहाली के उपरान्त उसकी पुनः सेवा समाप्ति पर उसे मात्र छँटनी मुआवजे और नोटिस वेतन के रूप में मौद्रिक क्षतिपूर्ति प्राप्त होगी। इस स्थिति में बहाली का अनुतोष प्रदान करने से, वह भी लंबे अंतराल के बाद, कोई उद्देश्य पूर्ण नहीं होगा।

35. यद्यपि, हम यहाँ सावधान करना चाहेंगे कि ऐसे मामले हो सकते हैं जहाँ किसी दैनिक वेतन भोगी कर्मकार की सेवा समाप्ति इस आधार पर अवैध पाई गई हो कि इसे अनुचित श्रम प्रथा के रूप में अपनाया गया था या 'अंत में आओ पहले जाओ' के सिद्धांत का उल्लंघन किया गया था अर्थात ऐसे कर्मकार की छँटनी करते समय उससे कनिष्ठतर दैनिक वेतन भोगी कर्मचारियों को सेवा में रहने दिया गया। ऐसी स्थिति भी हो सकती है कि उससे कनिष्ठ व्यक्तियों को किसी नीति के तहत नियमित किया गया हो लेकिन संबंधित कर्मकार को हटा दिया गया हो। ऐसी परिस्थितियों में, हटाए गए कर्मकार की बहाली से तब तक इन्कार नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि बहाली के स्थान पर क्षतिपूर्ति देने का मार्ग अपनाने हेतु कोई अन्य महत्वपूर्ण कारण न हों। ऐसे मामलों में, बहाली नियम होना चाहिए और मात्र असाधारण मामलों में लिखित रुप में बताए गए कारणों से ऐसे अनुतोष से इन्कार किया जा सकता है।"

23. उपरोक्त निर्णय के अवलोकन से यह पता चलता है कि सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि जहाँ कर्मकार की कार्य-अवधि कम है (सतीश कांतिलाल अमरेला के वाद में कार्य-अवधि ढाई वर्ष थी) तो भुरूमल (उपरोक्त) के वाद में शीर्ष न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि लागू की जाएगी अर्थात् कार्य-अवधि अल्प होने की दशा में, बहाली का आदेश और विगत वेतन स्वतः प्रचालित नहीं होगा, इसके स्थान पर न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु मौद्रिक क्षतिपूर्ति प्रदान की जानी चाहिए।

24. प्रतिवादीगण के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने राजकुमार (उपरोक्त) के वाद में शीर्ष न्यायालय के निर्णय पर, जो भुरूमल (उपरोक्त) के मामले में शीर्ष न्यायालय के पूर्व निर्णय पर विचार करते हुए पारित किया गया था, पर विश्वास व्यक्त करते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया है कि चूँकि कर्मकार से कनिष्ठतर कर्मकारों को सेवा में नियमित किया गया है, इसलिए विद्वान अधिकरण द्वारा कर्मकार की बहाली के निदेश देने में कोई त्रुटि नहीं है।

25. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का उक्त तर्क प्रथमदृष्टया आकर्षक है, किन्तु न्यायालय ने पाया कि विद्वान अधिकरण ने कर्मकार की बहाली का निदेश देते समय इस बात पर विचार नहीं किया है कि कर्मकार के कथित कनिष्ठ कर्मकारगण को सेवा में नियमित किया गया है या सेवा में रहने दिया गया है अपितु विद्वान अधिकरण ने कथित सेवा समाप्ति को अवैध पाते हुए कर्मकार की स्वत: बहाली का निदेश दिया है। यहाँ तक कि यदि कर्मकार की कथित कार्य-अवधि पर विचार किया जाए, तो विद्वान अधिकरण के समक्ष उसके वाद के अनुसार उसने 10.02.1998 से अगस्त 2001 तक निरंतर कार्य किया है, जो 2 वर्ष और 8 महीने की कथित कार्य-अवधि के समान होगा और परिणामस्वरूप सतीश कांतिलाल अमरेलिया (उपरोक्त) के वाद में निर्धारित विधि इस सीमा तक पूर्णरुपेण प्रयोज्य होगी कि कर्मकार की अल्प कार्य-अवधि पर स्वत: बहाली नहीं होगी। इस प्रकार याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत इस आधार से न्यायालय सहमत भी है।

26. विद्वान अधिकरण के निर्णय को चुनौती देने हेतु याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए तृतीय आधार के संबंध में कि कर्मकार की कथित सेवा समाप्ति से पूर्व उसकी कोई निरंतर सेवा नहीं थी, यह न्यायालय अब माननीय सर्वोच्च न्यायालय के **श्री निवास (उपरोक्त) के वाद** के निर्णय पर विचार करेगी जिस पर याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास व्यक्त किया गया है। **श्री निवास (उपरोक्त) के वाद** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार धारित किया है:

"उक्त उद्देश्य हेतु अधिनियम की धारा 25-बी में निहित 'निरंतर सेवा' की परिभाषा पर ध्यान देना आवश्यक है। धारा 25-बी की उप-धारा (2) के अनुसार में यदि किसी कर्मकार ने उस तिथि से पूर्व बारह कैलेंडर मास की अवधि में, जिसके संदर्भ में गणना की जानी है, वास्तव में नियोक्ता के अधीन एक वर्ष की अवधि में 240 दिवस कार्य किया है,

तो उसे निरंतर सेवा में समझा जाएगा। इस प्रकार, उक्त प्रावधान के कारण, एक विधिक कल्पना निर्मित होती है। प्रतिवादी की छँटनी 17.5.1995 को हुई। यह गणना करने के उद्देश्य से कि उसने एक वर्ष में 240 दिवसों की अवधि हेतु कार्य किया था अथवा नहीं, अधिकरण को इस तथ्य के निष्कर्ष पर पहुँचना आवश्यक था कि उसने 5.8.1994 से 16.5.1995 के मध्य की अवधि में 240 दिवसों से अधिक की अवधि तक कार्य किया था। जैसा कि यहाँ पूर्व में देखा गया है, सबूत का भार कर्मकार पर था। अधिनिर्णय से ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि कर्मकार ने अपने इस तर्क के समर्थन में कोई साक्ष्य प्रस्तुत किया हो कि उसने औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 25-बी की अपेक्षाओं का अनुपालन किया है। अपने तर्क के समर्थन में स्वयं के परीक्षण के अतिरिक्त उसने अपीलकर्ता के कार्यालय से मस्टर रोल सहित कोई दस्तावेज पेश नहीं किया और न ही मंगाया। यह अनधिसंभाव्य है कि स्थानीय प्राधिकरण में कार्य करने वाले व्यक्ति के पास अधिकरण के समक्ष अपने दावे का समर्थन करने हेतु कोई दस्तावेजी साक्ष्य नहीं होगा। मस्टर रोल के अतिरिक्त वह अपनी नियुक्ति प्रस्ताव-पत्र के निबंधन और शर्तें और उपरोक्त अवधि के दौरान कार्य करने हेतु प्राप्त पारिश्रमिक का साक्ष्य भी प्रस्तुत कर सकता था। यहाँ तक कि उसने अपने वाद के समर्थन में किसी अन्य साक्षी से भी पूछताछ नहीं की।"

27. **सिरी निवास** (**उपरोक्त**) के निर्णय के परिशीलन से यह ज्ञात होता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने "निरंतर सेवा" शब्दों की परिभाषा पर विचार करते हुए अधिनियम 1947 की धारा 25 बी पर विचार किया है और धारित किया है कि अधिनियम 1947 की धारा 25बी की उपधारा (2) के अनुसार यदि किसी कर्मकार ने, जिस तिथि के संबंध में गणना प्रस्तुत की गई है, उससे पहले 12 वास्तविक मासों की अवधि में, नियोक्ता के अधीन 240 दिवसों तक वास्तव में कार्य किया है, तो उसे एक वर्ष की अवधि हेतु निरंतर सेवा के अधीन माना जाएगा।

28. इस वाद में कर्मकार की कथित सेवा समाप्ति 01.09.2001 को हुई, जबकि उसकी कार्य-अवधि को विद्वान अधिकरण द्वारा दिसंबर 1999 से दिसंबर 2000 तक माना गया है (जैसा कि 10.09.2018 को संशोधित किया गया है) जिसका अर्थ है कि दिनांक 31.08.2001 तक की सेवा को कर्मकार की निरंतर सेवा की गणना हेतु विद्वान अधिकरण द्वारा प्रयोग नहीं किया गया है। इस प्रकार ठीक 31.08.2001 तक कर्मकार की कथित निरंतर सेवा पर विद्वान अधिकरण द्वारा विचार नहीं किया गया है, जिसके परिणामस्वरूप यह नहीं कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ताओं ने अधिनियम 1947 के प्रावधानों का उल्लंघन किया है। इस प्रकार न्यायालय इसके पक्ष में भी है।

29. उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत रिट याचिका स्वीकृत की जाती है। दिनांक 16.05.2017 को 03.04.2018 को प्रकाशित प्रश्नगत अधिनिर्णय, जिसकी एक प्रति याचिका में संलग्नक 1 के रुप में है, को अपास्त किया जाता है। गुण-दोष के आधार पर नया आदेश पारित करने हेतु वाद विद्वान अधिकरण को प्रतिप्रेषित किया जाता है। चूँकि वाद अधिक समय से लंबित है, इसलिए संबंधित समस्त पक्षों को सुनने के उपरान्त इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से छह माह की अवधि में आदेश पारित किया जाए।

(2023) 1 ILRA 277
मूल क्षेत्राधिकार
नागरिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 16.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा
माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह

रिट-सी संख्या 29605/2022

बासू यादव **... याचिकाकर्ता**
बनाम
भारत संघ और अन्य **... प्रतिवादीगण**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
श्री रमेशचंद्र यादव, श्री राम कृष्ण मिश्रा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता, भारत के अपर महाधिवक्ता, श्री नरेंद्र सिंह

(ए) नागरिक कानून - पासपोर्ट जारी करना - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 155(1) - गैर-संज्ञेय मामलों और ऐसे मामलों की जांच के बारे में जानकारी, धारा 468 - परिसीमा की अवधि समाप्त होने के बाद संज्ञान लेने पर रोक, पासपोर्ट अधिनियम, 1967 - धारा 6 - पासपोर्ट, यात्रा दस्तावेजों से इनकार, आदि, धारा 22 - छूट देने की शक्ति।

पासपोर्ट जारी करने के लिए ऑनलाइन आवेदन पत्र - गैर-संज्ञेय मामलों की दो रिपोर्टों के आधार पर खारिज कर दिया गया – पुलिस महानिदेशक का विचार - गैर-संज्ञेय मामलों के संबंध में रिपोर्टों को पासपोर्ट जारी करने के लिए

आवेदन को अस्वीकार करने का आधार नहीं बनाया जा सकता है यदि उनकी जांच नहीं की गई है - अस्वीकृति के आदेश के खिलाफ कोई अपील प्रदान नहीं की गई - इसलिए याचिका। **(अनुच्छेद - 1, 2, 3, 14)**

अभिनिर्धारित: - यदि संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा कोई जांच का आदेश नहीं दिया गया था, तो पंजीकृत की गई किसी भी गैर-संज्ञेय रिपोर्ट को संज्ञान में नहीं लिया जा सकता है। यहां तक कि किसी आपराधिक मामले के लंबित रहने के दौरान भी दिनांक 25-8-1993 के सरकारी आदेश के अनुसार पासपोर्ट जारी/नवीकृत किया जा सकता है यदि न्यायालय इस प्रयोजन के लिए आदेश पारित करता है। निर्देश जारी किया गया। **(पैरा - 14)**

याचिका की अनुमति दी। (ई-7)

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा द्वारा दिया गया)

याचिकाकर्ता के पक्ष में पासपोर्ट जारी करने के लिए प्रतिवादी नंबर 2 को निर्देश देने वाला परमादेश रिट जारी करने के लिए तत्काल रिट याचिका दायर की गई है। एक और प्रार्थना की गई है कि प्रतिवादी नंबर 3 यानी पासपोर्ट सेवा केंद्र, वाराणसी को उस आवेदन पर उचित कार्रवाई करने का निर्देश दिया जाए जो याचिकाकर्ता ने अपना पासपोर्ट जारी करने के लिए दायर किया था।

मौजूदा मामले में, याचिकाकर्ता ने 28.6.2022 को पासपोर्ट जारी करने के लिए एक ऑनलाइन आवेदन पत्र भरा था और उसे 5.8.2022 को सुबह 11.30 बजे पासपोर्ट कार्यालय में उपस्थित होने के लिए अपॉइंटमेंट दिया गया था।जब याचिकाकर्ता 5.8.2022 को पासपोर्ट कार्यालय के समक्ष पहुंचा, तो उसे सूचित किया गया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ एक पुलिस रिपोर्ट थी जिसमें कहा गया था कि गैर-संज्ञेय मामलों एनसीआर संख्या 111/2012 और एनसीआर संख्या 114/2018 के संबंध में रिपोर्टें थीं और इसलिए, उन्हें पासपोर्ट जारी नहीं किया जा सका।

याचिकाकर्ता के वकील का कहना है कि इसके बाद याचिकाकर्ता जिला आज़मगढ़ वापस गया और 11.8.2022 को एक आवेदन दायर कर प्रार्थना की कि अदालत यानी अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की अदालत पुलिस स्टेशन निज़ामाबाद, जिला आज़मगढ़ से दो एनसीआर एनसीआर संख्या 111/2012 और एनसीआर संख्या 114/2018 के संबंध में रिपोर्ट मांग सकती है।अदालत ने उसी दिन एक आदेश पारित कर थाना प्रभारी, पुलिस स्टेशन, निज़ामाबाद को याचिकाकर्ता के आवेदन के संबंध में एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश दिया। 1.9.2022 को, स्टेशन हाउस ऑफिसर ने एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें यह उल्लेख किया गया था कि याचिकाकर्ता के खिलाफ एनसीआर नंबर 111/2012 और एनसीआर नंबर 114/2018 के रूप में दर्ज किए गए गैर-संज्ञेय मामलों की जांच के लिए अदालत का कोई आदेश नहीं था। विद्वान वकील का कहना है कि चूंकि पासपोर्ट जारी करने के लिए याचिकाकर्ता का आवेदन पहले ही खारिज कर दिया गया था और अस्वीकृति के आदेश के खिलाफ कोई अपील नहीं की गई है, इसलिए याचिकाकर्ता ने तत्काल रिट याचिका दायर की है।

जब मामले पर एक नए मामले के रूप में बहस की जा रही थी, तो याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने तर्क दिया था कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (इसके बाद इसे "सीआरपीसी" के रूप में संदर्भित किया जाएगा) के प्रावधानों के अनुसार, यदि धारा 155(1) सीआरपीसी के तहत जांच के लिए किसी मजिस्ट्रेट का कोई आदेश नहीं था तो कोई भी पुलिस अधिकारी गैर-संज्ञेय मामले की जांच नहीं कर सकता था। सुविधा के लिए, धारा 155 सीआर.पी.सी. को यहां निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"155. गैर-संज्ञेय मामलों की जानकारी और ऐसे मामलों की जांच

--(1) जब किसी असंज्ञेय अपराध की सूचना ऐसे थाने की सीमा के भीतर आयोग के किसी पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी को दी जाती है, वह सूचना के सार को ऐसे अधिकारी द्वारा रखी जाने वाली पुस्तक में ऐसे प्रारूप में दर्ज करेगा या दर्ज कराएगा जैसा राज्य सरकार इस संबंध में निर्धारित कर सकती है, और सूचना देने वाले को मजिस्ट्रेट के पास भेज देगा।

(2) कोई भी पुलिस अधिकारी किसी गैर-संज्ञेय मामले की जांच उस मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना नहीं करेगा जिसके पास ऐसे मामले की सुनवाई करने या मामले को सुनवाई के लिए सौंपने की शक्ति है।

(3) ऐसा आदेश प्राप्त करने वाला कोई भी पुलिस अधिकारी जांच के संबंध में उन्हीं शक्तियों का प्रयोग कर सकता है (बिना वारंट के गिरफ्तारी की शक्ति को छोड़कर) जो किसी पुलिस स्टेशन का प्रभारी अधिकारी किसी संज्ञेय मामले में प्रयोग कर सकता है।

(4) जहां कोई मामला दो या दो से अधिक अपराधों से संबंधित है, जिनमें से कम से कम एक संज्ञेय है, तो मामले को संज्ञेय मामला माना जाएगा, भले ही अन्य अपराध गैर-संज्ञेय हों।"

याचिकाकर्ता के वकील ने यह भी तर्क दिया था कि आम तौर पर गैर-संज्ञेय मामलों में सजा का प्रावधान एक वर्ष से सात वर्ष तक है और उन्होंने प्रस्तुत किया कि सीआरपीसी

की धारा 468 के अनुसार, यदि समय सीमा समाप्त होने के बाद मामलों का संज्ञान नहीं लिया जा सका, तो गैर-संज्ञेय मामलों की रिपोर्ट बेकार दस्तावेज हैं। चूंकि, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने सीआरपीसी की धारा 468 पर भरोसा किया है, उसे यहां निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

"468. सीमा अवधि बीत जाने के बाद संज्ञान लेने पर रोक

--(1) इस संहिता में अन्यत्र अन्यथा प्रदान किए जाने के अलावा, कोई भी न्यायालय, परिसीमा अवधि की समाप्ति के बाद, उप-धारा (2) में निर्दिष्ट श्रेणी के अपराध का संज्ञान नहीं लेगा।

(2) परिसीमा की अवधि होगी—

(अ) छह महीने, यदि अपराध केवल जुर्माने से दंडनीय है;

(ब) एक वर्ष, यदि अपराध में दंड कारावास हो लेकिन एक वर्ष से अधिक नहीं;

(स) तीन वर्ष, यदि अपराध में दंड कारावास हो और एक वर्ष से अधिक लेकिन तीन वर्ष से अधिक नहीं।

(3) इस धारा के प्रयोजनों के लिए, उन अपराधों के संबंध में परिसीमा की अवधि, जिनका एक साथ मुकदमा चलाया जा सकता है, उस अपराध के संदर्भ में निर्धारित की जाएगी जो अधिक गंभीर दंड या, जैसा भी मामला हो, सबसे गंभीर दंड से दंडनीय है।"

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने आगे कहा कि जब मजिस्ट्रेट द्वारा कोई जांच का आदेश नहीं दिया गया था, जैसा कि 1.9.2022 की स्टेशन हाउस ऑफिसर की रिपोर्ट से स्पष्ट था, तो याचिकाकर्ता को मामले की लंबितता के बारे में भी कोई जानकारी नहीं थी। इसलिए, उनका कहना है कि जब वह आवेदन पत्र भर रहे थे तो वह एनसीआर संख्या 111/2012 और एनसीआर संख्या 114/2018 के बारे में उल्लेख नहीं कर सकते थे।

जब मामले को एक ताज़ा मामले के रूप में तर्क दिया गया और न्यायालय का विचार था कि जब मजिस्ट्रेट ने किसी भी जांच का आदेश नहीं दिया है तो एनसीआर का संज्ञान नहीं लिया जा सकता है, पुलिस महानिदेशक को निर्देश भेजने का निर्देश जारी किया गया था। दिनांक 19.11.2022 और 28.11.2022 के आदेश यहां निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किए जा रहे हैं:

<u>आदेश दिनांक 19.11.2022</u>

"याचिकाकर्ता के वकील का कहना है कि पुलिस ने इस तथ्य के संबंध में 01.09.2022 को एक रिपोर्ट भेजी थी कि दो एनसीआर थे - 2012 का एनसीआर नंबर 111 और 2018 का एनसीआर नंबर 114 जहां जांच के लिए अदालत से कोई आदेश पारित नहीं किया गया था और, इसलिए, कोई जांच नहीं हुई थी।

याचिकाकर्ता के वकील का कहना है कि सीआरपीसी के अनुसार यदि एनसीआर के लिए मजिस्ट्रेट के आदेश पर कोई जांच नहीं हुई थी तो निश्चित रूप से याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई मामला लंबित नहीं था और इसलिए ऐसी रिपोर्ट नहीं भेजी जानी चाहिए थी।

उत्तर प्रदेश के पुलिस महानिदेशक इस मामले में निर्देश भेज सकते हैं। निर्देश प्राप्त करते समय वह न्यायालय को यह बता सकते हैं कि क्या ऐसी एनसीआर के संबंध में रिपोर्ट भेजना आवश्यक है, जिसमें जांच के लिए मजिस्ट्रेट द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई है।

इस मामले को 28.11.2022 को सुबह 10.00 बजे नयी सूची में रखें।"

<u>आदेश दिनांक 28.11.2022</u>

"आज दायर किए गए निर्देशों को रिकॉर्ड में रखा जाएगा।

न्यायालय ने यह निर्दिष्ट करने के लिए निर्देश मांगे थे कि क्या एनसीआर के संबंध में एक रिपोर्ट भेजना आवश्यक है जिसमें सजा की अवधि समाप्त होने पर जांच के लिए मजिस्ट्रेट द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई थी।

पुलिस महानिदेशक को निर्देश भेजना था लेकिन कुछ पुलिस अधीक्षक ने भेज दिया है. कोर्ट निर्देशों के पैराग्राफ संख्या 7 में दिए गए कथनों से भी संतुष्ट नहीं था।

इस याचिका को 30.11.2022 को सुबह 10:00 बजे नयी सूची में रखें।

अगली तारीख पर पुलिस महानिदेशक निर्देश भेज सकते हैं. वह स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट करेगा कि क्या जब पुलिस रिपोर्ट पासपोर्ट अधिकारियों द्वारा मांगी गई रिपोर्ट के प्रयोजनों के लिए दी जाती है, यदि किसी व्यक्ति के खिलाफ दायर एनसीआर एक ऐसे अपराध के लिए है जिसमें सीआरपीसी की धारा 468 के प्रावधानों के अनुसार कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है, तो क्या रिपोर्ट प्रस्तुत की जा सकती है?

यह आदेश भारत संघ के विद्वान वकील श्री नरेंद्र सिंह की उपस्थिति में पारित किया गया था।"

दिनांक 30.11.2022 को विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री मानवेन्द्र दीक्षित ने वे निर्देश प्रस्तुत किये जो उन्हें पुलिस महानिदेशक से प्राप्त हुए थे। इसे यहां निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"मुख्यालय पुलिस महानिदेशक उत्तर प्रदेश विधि प्रकोष्ठ, प्रथम तल, टावर - 2 पुलिस मुख्यालय, गोमती नगर विस्तार, लखनऊ - 226002

पत्रांकः डीजी- दस - वि०प्र० - रिट - 651 / 2022

दिनांक : नवम्बर 29, 2022

सेवा में,

मुख्य स्थायी अधिवक्ता,

मा० उच्च न्यायालय इलाहाबाद ।

विषयः सिविल रिट याचिका संख्या- 29605 / 2022 बासु यादव बनाम भारत संघ व 4 अन्य में मा० उच्च न्यायालय इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 28.11. 2022 के अनुपालन में Instruction उपलब्ध कराये जाने विषयक |

महोदय,

कृपया उपरोक्त विषयक श्री मानवेन्द्र दीक्षित, स्थायी अधिवक्त, मा० उच्च न्यायालय इलाहाबाद के पत्र दिनांकित 28.11.2022 का संदर्भ ग्रहण करें, जिसके द्वारा मा० उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांकित 19.11.2022 तथा 28.11.2022 की छायाप्रति संलग्न करते हुए मा० न्यायालय द्वारा दिये गये निर्देशों के अनुपालन में Instruction उपलब्ध कराये जाने की अपेक्षा की गयी हैं।

याची बासु यादव पुत्र जाबिर यादव के पासपोर्ट आवेदन प्रार्थना पत्र पर आजमगढ़ पुलिस द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट में प्रश्न संख्या-2 में उत्तर में NCR संख्या - 111 / 2012 धारा-323, 504, 506 भादवि तथा NCR संख्या- 114 / 2018 धारा 323, 504 भादवि अंकित करते हुए पासपोर्ट जारी न करने की संस्तुति की गयी जबकि याची के विरूद्ध पंजीकृत NCR की विवेचना नहीं की गयी थी।

पासपोर्ट के कार्यालय से प्राप्त पुलिस वेरीफिकेशन रिपार्ट में स्पष्ट रूप से यह प्रश्न पूछा गया है कि-

Is the applicant facing any criminal charges in any Court? (If 'YES', please provide specific details of criminal case)

उपरोक्त पश्न के उत्तर में याची के विरूद्ध पंजीकृत ऐसी NCR का उल्लेख करते हुये, जिनकी विवेचना नहीं की गयी है, पासपोर्ट जारी न किये जाने की संस्तुति नहीं की जा सकती है।

कृपया उपरोक्त तथ्यों से मा0 न्यायालय को अवगत कराते हये प्रकरण का निस्तारण कराने का कष्ट करें।

(देवेन्द्र सिंह चौहान)

पुलिस महानिदेशक

उत्तर प्रदेश

पुलिस महानिदेशक ने बहुत स्पष्ट रूप से कहा कि गैर-संज्ञेय मामलों की ऐसी रिपोर्टें जिनकी जांच नहीं की गई थी, याचिकाकर्ता को पासपोर्ट देने से इनकार करने का कारण नहीं हो सकती हैं। विद्वान स्थायी वकील ने प्रस्तुत किया कि पासपोर्ट जारी करने के लिए आवेदन

अनुवादित

की अस्वीकृति के कारणों को पासपोर्ट अधिनियम, 1967 (इसके बाद "पासपोर्ट अधिनियम" के रूप में संदर्भित) की धारा 6 में गिनाया गया था।

सुविधा के लिए, पासपोर्ट अधिनियम की धारा 6 को यहां निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"6. पासपोर्ट, यात्रा दस्तावेज़ आदि से इंकार करना।

-- (1) इस अधिनियम के अन्य प्रावधानों के अधीन, पासपोर्ट प्राधिकारी धारा 5 की उपधारा (2) के खंड (ब) या खंड (स) के तहत किसी भी विदेशी देश की यात्रा के लिए समर्थन करने से इंकार कर देगा। निम्नलिखित में से एक या अधिक आधार पर, और किसी अन्य आधार पर नहीं, अर्थात्.--

(ए) कि आवेदक ऐसे देश में भारत की संप्रभुता और अखंडता के लिए हानिकारक गतिविधियों में शामिल हो सकता है या संलग्न होने की संभावना है;

(ब) कि ऐसे देश में आवेदक की उपस्थिति भारत की सुरक्षा के लिए हानिकारक हो सकती है या होने की संभावना है;

(स) कि ऐसे देश में आवेदक की उपस्थिति उस या किसी अन्य देश के साथ भारत के मैत्रीपूर्ण संबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है या पड़ने की संभावना है;

(डी) कि केंद्र सरकार की राय में आवेदक की ऐसे देश में उपस्थिति सार्वजनिक हित में नहीं है।

(2) इस अधिनियम के अन्य प्रावधानों के अधीन, पासपोर्ट प्राधिकरण धारा 5 की उपधारा (2) के खंड (सी) के तहत किसी भी विदेशी देश की यात्रा के लिए पासपोर्ट या यात्रा दस्तावेज जारी करने से इनकार कर देगा किसी एक या अधिक पर निम्नलिखित आधारों पर, और किसी अन्य आधार पर नहीं, अर्थात्:--

(a) कि आवेदक भारत का नागरिक नहीं है;

(b) कि आवेदक भारत की संप्रभुता और अखंडता के लिए हानिकारक गतिविधियों में भारत के बाहर शामिल हो सकता है या शामिल होने की संभावना है;

(c) कि आवेदक का भारत से प्रस्थान भारत की सुरक्षा के लिए हानिकारक हो सकता है या होने की संभावना है;

(d) कि भारत के बाहर आवेदक की उपस्थिति किसी भी विदेशी देश के साथ भारत के मैत्रीपूर्ण संबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है या पड़ने की संभावना है;

(e) कि आवेदक को, उसके आवेदन की तारीख से ठीक पहले पांच साल की अवधि के दौरान किसी भी समय, भारत की एक अदालत द्वारा नैतिक अधमता से जुड़े किसी भी अपराध के लिए दोषी ठहराया गया हो और उसके संबंध में कम से कम दो साल के कारावास की सजा सुनाई गई हो।

(f) कि आवेदक द्वारा किए गए कथित अपराध के संबंध में कार्यवाही भारत में एक आपराधिक अदालत के समक्ष लंबित है;

(g) आवेदक की उपस्थिति के लिए वारंट या सम्मन, या गिरफ्तारी के लिए वारंट, किसी अदालत द्वारा उस समय लागू किसी भी कानून के तहत जारी किया गया है या आवेदक के भारत से प्रस्थान पर एेसे किसी न्यायालय द्वारारो क लगाने वाला कोई आदेश दिया गया है।

(h) आवेदक को स्वदेश वापस भेज दिया गया है और उसने ऐसे स्वदेश वापसी के संबंध में किए गए व्यय की प्रतिपूर्ति नहीं की है;

(i) कि केंद्र सरकार की राय में आवेदक को पासपोर्ट या यात्रा दस्तावेज जारी करना सार्वजनिक हित में नहीं होगा।"

विद्वान स्थायी वकील ने आगे कहा कि आपराधिक मामलों के लंबित होने के संबंध में, पासपोर्ट अधिनियम की धारा 6(2)(ई) और (एफ) प्रासंगिक थीं। विद्वान स्थायी वकील ने प्रस्तुत किया कि पासपोर्ट अधिनियम की धारा 6(2)(ई) के तहत पासपोर्ट जारी करने से इनकार किया जा सकता है यदि आवेदन की तारीख से ठीक पहले पांच वर्षों में, आवेदक को भारत में किसी न्यायालय द्वारा नैतिक अधमता से जुड़ा कोई भी अपराध और उसके संबंध में दोषी ठहराया गया हो और कम से कम दो साल के कारावास की सजा हुयी हो। विद्वान स्थायी वकील ने पासपोर्ट अधिनियम की धारा 6(2)(एफ) पर भरोसा करते हुए कहा कि यदि आवेदक द्वारा किए गए कथित अपराध के संबंध में कार्यवाही भारत में एक आपराधिक न्यायालय के समक्ष लंबित है, तो पासपोर्ट आवेदन भी खारिज किया जा सकता है। हालाँकि, विद्वान स्थायी वकील ने प्रस्तुत किया कि 25.8.1993 को राजपत्रित अधिसूचना के अनुसार, जो भारत सरकार, विदेश मंत्रालय द्वारा पासपोर्ट अधिनियम की धारा 22 के तहत जारी किया गया था उसमें न्यायालय के आदेश होने पर आपराधिक मामला लंबित होने पर भी कुछ परिस्थितियों में पासपोर्ट जारी किए जा सकते हैं। चूँकि, विद्वान स्थायी वकील ने न्यायालय के संज्ञान में दिनांक 25.8.1993 का सरकारी आदेश लाया था, उसे यहाँ निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"भारत सरकार विदेश मंत्रालय अधिसूचना

नई दिल्ली, 25 अगस्त 1993

जी.एस.आर. 570(ई). - पासपोर्ट अधिनियम, 1967 (1967 का 15) की धारा 22 के खंड (ए) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए और विदेश मंत्रालय में भारत सरकार की अधिसूचना संख्या जी.एस.आर.298(ई) का अधिक्रमण करते हुए, दिनांक 14 अप्रैल, 1976, केंद्र सरकार, यह मानते हुए कि ऐसा करना सार्वजनिक हित में आवश्यक है, भारत के उन नागरिकों को छूट देती है जिनके खिलाफ उनके द्वारा किए गए कथित अपराध के संबंध में कार्यवाही भारत में एक आपराधिक अदालत के समक्ष लंबित है और जो पेश करते हैं उक्त अधिनियम की धारा 6 की उप-धारा (2) के खंड (एफ) के प्रावधानों के संचालन से, उन्हें भारत से प्रस्थान करने की अनुमति देने वाले संबंधित न्यायालय के आदेश, निम्नलिखित शर्तों के अधीन, अर्थात्:-

(a) ऐसे प्रत्येक नागरिक को जारी किया जाने वाला पासपोर्ट जारी किया जाएगा--

(i) ऊपर उल्लिखित न्यायालय के आदेश में निर्दिष्ट अवधि के लिए, यदि न्यायालय एक अवधि निर्दिष्ट करता है जिसके लिए पासपोर्ट जारी किया जाना है; या

(ii) यदि ऐसे आदेश में पासपोर्ट जारी करने या विदेश यात्रा के लिए कोई अवधि निर्दिष्ट नहीं है, तो पासपोर्ट एक वर्ष की अवधि के लिए जारी किया जाएगा।

(iii) यदि ऐसा आदेश एक वर्ष से कम अवधि के लिए विदेश यात्रा की अनुमति देता है, लेकिन पासपोर्ट की वैधता अवधि निर्दिष्ट नहीं करता है, तो पासपोर्ट एक वर्ष के लिए जारी किया जाएगा;

(iv) यदि ऐसा आदेश एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए विदेश यात्रा की अनुमति देता है, और पासपोर्ट की वैधता निर्दिष्ट नहीं करता है, तो पासपोर्ट आदेश में निर्दिष्ट विदेश यात्रा की अवधि के लिए जारी किया जाएगा।

(ब) उपरोक्त (ii) और ए (iii) के तहत जारी किए गए किसी भी पासपोर्ट को एक बार में एक वर्ष के लिए नवीनीकृत किया जा सकता है, बशर्ते आवेदक ने अदालत द्वारा स्वीकृत अवधि के लिए विदेश यात्रा नहीं की हो; और बशर्ते कि, इस बीच, अदालत का आदेश रद्द या संशोधित न किया जाए;

(स) उपरोक्त (i) के संदर्भ में जारी किए गए किसी भी पासपोर्ट को पासपोर्ट की वैधता की एक और अवधि निर्दिष्ट करने या विदेश यात्रा के लिए एक अवधि निर्दिष्ट करने वाले नए अदालती आदेश के आधार पर ही नवीनीकृत किया जा सकता है;

(डी) उक्त नागरिक को पासपोर्ट जारी करने वाले प्राधिकारी को लिखित रूप में एक वचन देना होगा कि यदि संबंधित अदालत द्वारा आवश्यक हो, तो वह जारी किए गए पासपोर्ट के लागू रहने के दौरान किसी भी समय उसके समक्ष उपस्थित होगा।

[संख्या VI/401/37/79]

एल.के. पोनप्पा, संयुक्त. सचिव. (सीपीवी)"

इस संबंध में, पासपोर्ट अधिनियम की धारा 22 के प्रावधान भी प्रासंगिक हैं जो निम्नानुसार हैं: -

"22. छूट देने की शक्ति.-- जहां केंद्र सरकार की राय है कि ऐसा करना सार्वजनिक हित में आवश्यक या समीचीन है, वह आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा और ऐसी शर्तों के अधीन, यदि कोई हो, कर सकती है यह अधिसूचना में निर्दिष्ट हो सकता है,--

(a) किसी भी व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग को इस अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों के सभी या किसी प्रावधान के संचालन से छूट देना; और

(b) जितनी बार संभव हो, ऐसी किसी भी अधिसूचना को रद्द कर देगा और फिर से उसी अधिसूचना द्वारा व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग को ऐसे प्रावधानों के संचालन के अधीन कर देगा।"

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील और विद्वान स्थायी वकील को सुनने के बाद और निर्देशों का अध्ययन करने के बाद जो पुलिस महानिदेशक द्वारा भेजे गए हैं, न्यायालय का निश्चित रूप से यह विचार है कि यदि संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा कोई जांच का आदेश नहीं दिया गया तो दर्ज की गई किसी भी गैर-संज्ञेय रिपोर्ट को संज्ञान में नहीं लिया जा सकता है। हालांकि मौजूदा मामले में, क्या आपराधिक मामला लंबित होने के आधार पर पासपोर्ट देने से इनकार किया जा सकता है, यह सवाल शामिल नहीं है, हमारा विचार है कि किसी भी आपराधिक मामले के लंबित रहने के दौरान भी, यदि न्यायालय उस उद्देश्य के लिए आदेश पारित करता है, तो सरकारी आदेश दिनांक 25.8.1993 के अनुसार पासपोर्ट जारी/नवीनीकृत किया जा सकता है। वर्तमान मामले में, हमने पाया कि याचिकाकर्ता का आवेदन गैर-संज्ञेय मामलों की दो रिपोर्टों अर्थात् एनसीआर नंबर 111/2012 और एनसीआर नंबर 114/2018 के आधार पर खारिज कर दिया गया था। पुलिस महानिदेशक ने यह भी अपना विचार दिया है कि गैर-संज्ञेय मामलों के संबंध में रिपोर्ट को पासपोर्ट जारी करने के लिए आवेदन को अस्वीकार करने का आधार नहीं बनाया जा सकता है यदि उनकी जांच नहीं की गई है।

ऐसी परिस्थितियों में, हम निम्नलिखित निर्देश जारी करते हैं:-

(1) पासपोर्ट जारी करने के लिए याचिकाकर्ता के पासपोर्ट फॉर्म पर प्रतिवादी संख्या 2-क्षेत्रीय पासपोर्ट अधिकारी, क्षेत्रीय पासपोर्ट कार्यालय विपिन खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ; के समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से दो सप्ताह की अवधि के भीतर विचार किया जाएगा।

(2) चूंकि हमें पता चल रहा है कि कई मामलों में गैर-संज्ञेय मामलों की रिपोर्ट, जिनमें संबंधित मजिस्ट्रेट ने जांच के आदेश भी नहीं दिए थे, को पासपोर्ट की अस्वीकृति के लिए ध्यान में रखा जा रहा है, हम पुलिस महानिदेशक को एक निर्देश जारी करते हैं कि वह अपने अधिकारियों को निर्देश दें कि उचित दिमाग लगाने के बाद गैर-संज्ञेय मामलों में रिपोर्ट की लंबितता के संबंध में रिपोर्ट दें ;

(3) यदि न्यायालय के आदेश, जहां आपराधिक मामला लंबित है, सरकारी आदेश दिनांक 25.8.1993 के अनुसार पारित किए गए हैं, तो पासपोर्ट अधिनियम की धारा 6(2)(एफ) के तहत पासपोर्ट आवेदनों को तुरंत खारिज नहीं किया जाएगा। पुलिस महानिदेशक इस संबंध में भी अधिसूचना जारी करें. इन टिप्पणियों के साथ, तदनुसार, रिट याचिका को अनुमति दी जाती है।

(2023) 1 ILRA 284
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल साइड
दिनांक: इलाहाबाद 29.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया,

रिट-सी संख्या – 32884/2022

लालजी यादव ...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ और अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के लिए वकील:
श्री श्री राम पाण्डेय

प्रतिवादियों के लिए वकील:
ए.एस.जी.आई., श्री आनंद तिवारी, सी.एस.सी.

(क) रिट - परमादेश जारी करना - अधिकारियों को कुछ करने के लिए मजबूर करने के लिए परमादेश जारी किया जा सकता है, लेकिन यह दिखाया जाना चाहिए कि एक क़ानून है जो कानूनी कर्तव्य लगाता है और क़ानून के तहत पीड़ित पक्ष के पास कानूनी अधिकारों को लागू करने का कानूनी अधिकार है - लंबे समय तक प्रयोग न किया गया अधिकार अस्तित्वहीन हो जाता है - मात्र प्रतिनिधित्व से सीमा की अवधि नहीं बढ़ती है - पीड़ित व्यक्ति को शीघ्रता से और उचित समय के भीतर न्यायालय का दरवाजा खटखटाना पड़ता है। (पैरा - 11,16,17)

याचिकाकर्ता की भूमि अधिग्रहित - पूर्ण मुआवजा प्राप्त - भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 23 के तहत प्रदान किया गया - विवाद - रोजगार प्रदान करने के लिए - प्रतिवादी-निगम या अन्य अधिकारियों द्वारा अधिग्रहित भूमि के बदले में - विभिन्न अभ्यावेदन किए गए - अभ्यावेदन पर कोई कार्रवाई नहीं की गई - कोई क़ानून नहीं दिखाया गया

- जिसके लिए परमादेश की मांग की गई है - इसलिए वर्तमान रिट याचिका। (पैरा **- 4,7,11)**

आयोजित:- याचिकाकर्ता ने अदालत के समक्ष कोई क़ानून नहीं रखा, जिसके आधार पर उसे भूमि के बदले में रोजगार दिया जा सके, जिसे वर्ष 1985 में निगम द्वारा लिया गया था। याचिकाकर्ता को कोई राहत नहीं दी जा सकी। याचिकाकर्ता की ओर से न्यायालय का दरवाजा खटखटाने में अनावश्यक देरी की गई। **(पैरा-15,16,18)**

याचिका खारिज। (ई-7)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. दाऊ दयाल बनाम ए.डी.ए एवं अन्य। , रिट याचिका सं. 27690/ 1991

2. बुटू प्रसाद कुंभार और अन्य बनाम एस.ए.आई.एल. और अन्य , JT 1995(3) SC 428

3. बी.ई.जी.एफ.सी.एस. लिमिटेड बनाम सिपाही सिंह और अन्य, एआईआर 1977 एससी 2149

4. रवीन्द्र कुमार बनाम डीएम, आगरा, 2005 (2) एडब्ल्यूसी 1650.

5. बलजीत सिंह (मृत) एलआर के माध्यम से और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2019) 15 एससीसी 33

6. सुरजीत सिंह साहनी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, एसएलपी (सी) संख्या 3008/2022

(माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील को सुना। भारत के अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल के कार्यालय ने प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से नोटिस स्वीकार कर लिया है और विद्वान वकील श्री आनंद तिवारी ने उत्तरदाता संख्या 2 से 4 की ओर से नोटिस स्वीकार कर लिया है।

2. याचिकाकर्ता ने अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित प्रार्थनाओं के साथ वर्तमान रिट याचिका दायर की है:-

"(i) प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा जारी दिनांक 06.02.1989 के विवादित आदेश को रद्द करने के लिए सर्टिओरीरी की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करें।

(ii) याचिकाकर्ता की शिकायतों पर विचार करने के लिए प्रतिवादी संख्या 2, 3 और 4 को निर्देश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करें और न्याय को पूरा करने के लिए निर्धारित अवधि के भीतर उत्तरदाताओं के समक्ष लंबित पत्रों पर एक उचित आदेश पारित करें।"

3. रिट याचिका में संक्षेप में तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता की भूमि प्रतिवादी-इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन द्वारा वर्ष 1985 में अधिग्रहित की गई थी। इसके बाद, याचिकाकर्ता द्वारा प्रतिवादी-निगम के साथ अपनी नियुक्ति की मांग करते हुए एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था, इस आधार पर कि उसकी भूमि का अधिग्रहण कर लिया गया है, इसलिए मुआवजे के अलावा, जो भूमि के बदले भुगतान किया गया था, निगम द्वारा एक नियुक्ति भी दी जानी चाहिए। याचिकाकर्ता की नियुक्ति का दावा प्रतिवादी-निगम द्वारा खारिज कर दिया गया क्योंकि उसकी उम्र अधिक हो चुकी थी। इसके बाद 18.01.1989 को प्रतिवादी- इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन के क्षेत्रीय कार्यालय, इलाहाबाद में एक बैठक आयोजित की गई। इसके बाद 06 फरवरी, 1989 को उप महाप्रबंधक (पर्सनल), इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड नई दिल्ली द्वारा एक पत्र लिखा गया। रोजगार अधिकारी, रोजगार कार्यालय, वाराणसी, उ.प्र. उक्त पत्र में याचिकाकर्ता का नाम आइटम नंबर पर था-

1. पत्र इस प्रकार है:-

"कृपया हमारे एरिया मैनेजर, इलाहाबाद, श्री पी.एन.शुक्ला की 18/1/89 को आपके साथ इन विषयों पर हुई बैठक का संदर्भ लें:

1/ हम चाहेंगे कि आप पुष्टि करें कि श्री लालजी यादव को प्रायोजित नहीं किया गया है क्योंकि उनकी उम्र अधिक है। उनकी जन्मतिथि 20.1.60 है.

2/ यद्यपि श्री अशोक कुमार पुत्र श्री-माताभीक का नाम भूमिहारों की सूची (क्रमांक 31-32 एवं 167-168) में दो बार आया है, परन्तु अभी तक आपके द्वारा उनका नाम प्रायोजित नहीं किया गया है। आप श्री अशोक कुमार के नाम को प्रायोजित करने के लिए आवश्यक कार्रवाई कर सकते हैं।

3/ जबकि आपने श्री राम आश्रय पुत्र श्री जागर देव का नाम प्रायोजित किया है जो 8वीं पास हैं। लेकिन, आपने श्री श्यान नारायण पुत्र श्री सर्वेश, जो 8वीं पास हैं, का नाम प्रायोजित नहीं किया है। कृपया आप श्री श्याम नारायण का नाम भी प्रायोजित करें।

4/ आपने श्री राजिंदर प्रसाद पुत्र श्री त्रिभुवन का नाम प्रायोजित किया है, जबकि भूमिहारों की हमारी सूची के अनुसार, भूमि-हारे हुए व्यक्ति द्वारा प्रायोजित उम्मीदवार श्री राजेश कुमार पुत्र श्री त्रिभुवन है, न कि श्री राजिंदर कुमार। आप कृपया इसे स्पष्ट करें।

आप कृपया क्रमांक 1 से 4 में उल्लिखित मदों पर यथाशीघ्र आवश्यक कार्रवाई करें ताकि हम इस मामले पर आगे बढ़ने में सक्षम हो सकें।"

4. तर्क दिया गया है कि उक्त पत्र लिखे जाने के बाद न तो रोजगार कार्यालय अधिकारी और न ही इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड के अधिकारी द्वारा कोई कार्रवाई की गई। रिट याचिका के पैराग्राफ 12 में कहा गया है कि याचिकाकर्ता लगातार प्रतिवादी संख्या 3 और 4 से संपर्क कर रहा है और उसके बाद, उसके द्वारा विभिन्न अभ्यावेदन दिए गए लेकिन मामले में कोई कार्रवाई नहीं की गई है। चूंकि याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए अभ्यावेदन पर कोई कार्रवाई नहीं की गई है, इसलिए रिट याचिका प्रस्तुत की गई है।

5. दूसरी ओर, प्रतिवादी-निगम के विद्वान वकील श्री आनंद तिवारी द्वारा तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता की भूमि वर्ष 1985 में अधिग्रहित की गई थी लेकिन पूरी रिट याचिका में ऐसा कुछ भी नहीं कहा गया है कि निगम की ओर से याचिकाकर्ता को रोजगार देने का कोई आश्वासन दिया गया हो. आगे यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता पिछले 37 वर्षों से अधिक समय से अपने अधिकारों के बारे में सो रहा है, इसलिए मामले की योग्यता के अलावा, रिट याचिका कमियों के आधार पर खारिज की जा सकती है।

6. पक्षों के विद्वान वकील को सुना और रिकार्ड का अवलोकन किया।

7. याचिकाकर्ता की भूमि अधिग्रहित होने के बाद, उसे भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 23 के तहत पूरा मुआवजा मिला जिसका मतलब है कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 23 की उपधारा (2) के तहत ब्याज के साथ-साथ भूमि के पूर्ण बाजार मूल्य के बराबर राशि का भुगतान उसे किया गया था। प्रतिवादी-निगम या अन्य प्राधिकारियों द्वारा अर्जित भूमि के बदले में रोजगार प्रदान करने के विवाद समय-समय पर इस न्यायालय के समक्ष आते रहे हैं।

8. यह सर्वविदित है कि अधिकांश सरकारी विभागों और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में पहले से ही अधिशेष कर्मचारी हैं, और इस तरह से आगे नौकरियां नहीं दी जा सकती हैं क्योंकि इससे केवल करदाताओं पर अधिक बोझ पड़ेगा और संविधान के अनुच्छेद 16 का उल्लंघन होगा।

9. ***रिट याचिका संख्या 27690 सन् 1991, दाऊ दयाल बनाम आगरा विकास प्राधिकरण एवं अन्य*** में दिनांक 23.3.1995 को तत्कालीन माननीय न्यायमूर्ति जी.पी. माथुर, ने माना कि चूंकि भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 23 में दिए गए मुआवजे के अलावा नौकरी देने का कोई प्रावधान नहीं है, इसलिए ऐसी कोई नौकरी नहीं दी जा सकती।

10. ***बुद्गू प्रसाद कुंभार और अन्य बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड और अन्य, जेटी 1995(3) एससी 428*** के मामले में यह माना गया कि भूमि अधिग्रहण से विस्थापित परिवार के किसी सदस्य को रोजगार प्रदान करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत कोई आवश्यकता नहीं है। निदेशक, मंडी पाषाद बनाम सोहन लाल, 2003 एएलजे 540 में, इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने कहा कि जब याचिकाकर्ता को भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत मुआवजा मिला है तो वह इसके अलावा नियुक्ति का दावा नहीं कर सकता है।

11. यह भी स्थापित कानून है कि अधिकारियों को कुछ करने के लिए मजबूर करने के लिए एक परमादेश जारी किया जा सकता है, लेकिन यह दिखाया जाना चाहिए कि एक कानून है जो कानूनी कर्तव्य लगाता है और पीड़ित पक्ष के पास कानूनी अधिकारों को लागू करने के लिए कानून के तहत कानूनी अधिकार है। जहां तक वर्तमान मामले का सवाल है, याचिकाकर्ता के वकील द्वारा कोई क़ानून नहीं दिखाया गया है जिसके लिए उसने परमादेश मांगा है। इस संबंध में ***बिहार ईस्टर्न गैंगेटिक फिशरमेन को-ऑपरेटिव सोसाइटी लिमिटेड बनाम सिपाही सिंह और अन्य, एआईआर 1977 एससी 2149*** के मामले में पैराग्राफ 21 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कानून को अच्छी तरह से तय किया गया है। पैराग्राफ 21 को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है। :-

"21. अधिकारियों को कुछ करने के लिए मजबूर करने के लिए परमादेश जारी किया जा सकता है, यह दिखाया जाना चाहिए कि एक क़ानून है जो कानूनी कर्तव्य लगाता है और पीड़ित पक्ष के पास क़ानून के तहत अपने प्रदर्शन को लागू करने का कानूनी अधिकार है।"

12. जहां तक वर्तमान मामले का सवाल है, याचिकाकर्ता के वकील द्वारा ऐसा कोई वैधानिक प्रावधान नहीं रखा गया है, जिसमें उस व्यक्ति के परिवार के एक सदस्य को नौकरी देने की आवश्यकता हो, जिसकी भूमि अधिग्रहित की गई है।

13. इसी तरह का विवाद ***2005 (2) एडब्ल्यूसी 1650 में रिपोर्ट किए गए रवींद्र कुमार बनाम जिला मजिस्ट्रेट, आगरा*** के मामले में भी इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के समक्ष आया है। उपरोक्त मामले में निम्नलिखित प्रश्न पूर्ण पीठ के समक्ष रखे गए थे: -

"(1) क्या उस परिवार के एक सदस्य को रोजगार प्रदान करने वाले सरकारी आदेश/परिपत्र, जिनकी भूमि अधिग्रहीत की गई है, (कानून के तहत दिए गए मुआवजे से अधिक) वैध है या नहीं?

(2) क्या अधिग्रहणकर्ता निकाय जिनके लाभ के लिए भूमि का अधिग्रहण किया गया है, इन सरकारी आदेशों/परिपत्रों से बंधे हैं?

(3) क्या अधिग्रहणकर्ता निकाय को सरकारी आदेशों/परिपत्रों के अनुसार दावे पर विचार करने का निर्देश देने वाली रिट जारी की जा सकती है?

14. उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर पूर्णपीठ द्वारा निर्णय के पैरा 25 में दिया गया, जो इस प्रकार है:-

"(1) जिस व्यक्ति की भूमि अधिग्रहीत की गई है (कानून के तहत दिए गए मुआवजे से अधिक) उसके परिवार के एक सदस्य को रोजगार प्रदान करने वाले सरकारी आदेश/परिपत्र अमान्य हैं।

(2) अधिग्रहणकर्ता निकाय जिसके लाभ के लिए भूमि का अधिग्रहण किया गया है, ऐसे सरकारी आदेश/परिपत्र से बाध्य नहीं है।

(3) अधिग्रहणकर्ता निकाय को उपरोक्त आदेश/सरकारी परिपत्र के अनुसार दावे पर विचार करने का निर्देश देने वाली कोई रिट जारी नहीं की जा सकती।

15. ऊपर उद्धृत कानून के स्थापित प्रस्ताव के मद्देनजर, मेरी राय है कि जहां तक वर्तमान रिट याचिका का संबंध है, याचिकाकर्ता को कोई राहत नहीं दी जा सकती है।

16. जहां तक याचिकाकर्ता की ओर से इस न्यायालय से संपर्क करने में अनावश्यक देरी करने का सवाल है, ***बलजीत सिंह (मृत) के मामले में कानूनी प्रतिनिधियों और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य (2019) 15 एससीसी 33*** में रिपोर्ट किया गया, के माध्यम से माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कानून को अच्छी तरह से तय किया गया है, कि यह न्यायशास्त्र का एक मान्यता प्राप्त सिद्धांत है कि लंबे समय तक प्रयोग नहीं किया गया अधिकार अस्तित्वहीन हो जाता है। यहां तक कि जब कुछ कार्यवाहियों से संबंधित किसी क़ानून द्वारा कोई सीमा अवधि निर्धारित नहीं होती है, तो ऐसे मामलों में, अदालतों ने लापरवाही और देरी के सिद्धांत के साथ-साथ स्वीकृति के सिद्धांत को भी गढ़ा है और गैर-अनुकूल वादी जो अनुचित देरी के बाद कार्रवाई करने के लिए बिना किसी उचित स्पष्टीकरण के देर से अदालत पहुंचे - एस्टोपेल, स्वीकृति और छूट - स्वीकृति अधिनियम, 1872 धारा 115 । अनुच्छेद 7 यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"7. इस मामले को दूसरे पहलू से जांच की आवश्यकता है जैसे लापरवाही और देरी। यह न्यायशास्त्र का एक बहुत ही मान्यता प्राप्त सिद्धांत है कि लंबे समय तक प्रयोग नहीं किया गया अधिकार अस्तित्वहीन है। यहां तक कि जब कुछ कार्यवाहियों से संबंधित किसी क़ानून द्वारा कोई सीमा अवधि निर्धारित नहीं होती है, तो ऐसे मामलों में, अदालतों ने लापरवाही और देरी के सिद्धांत के साथ-साथ स्वीकृति के सिद्धांत को भी गढ़ा है और उन वादियों के लिए उपयुक्त नहीं है जो बिना किसी उचित स्पष्टीकरण के अनुचित देरी के बाद कार्रवाई करने के लिए देर से अदालत में पहुंचे। उन मामलों में, जहां सीमा की अवधि निर्धारित है जिसके भीतर कार्रवाई को अदालत के समक्ष लाया जाना है, यदि कार्रवाई उस निर्धारित अवधि के भीतर नहीं लाई जाती है, तो पीड़ित पक्ष उपाय खो देता है और परिसीमा की अवधि समाप्त होने के बाद अपने कानूनी अधिकार को लागू नहीं कर सकता है, तथापि, देरी की माफी के लिए प्रार्थना के अधीन है और यदि परिसीमा की निर्धारित अवधि समाप्त होने के बाद कार्रवाई करने के लिए उचित स्पष्टीकरण है और पर्याप्त कारण दिखाया गया है, अदालत देरी को माफ कर सकती है। इसलिए, ऐसे मामले में जहां परिसीमा की अवधि निर्धारित है और कार्रवाई को परिसीमा अवधि के भीतर नहीं लाया जाता है और बाद में देरी की माफी के लिए प्रार्थना के साथ परिसीमा अवधि के बाद कार्यवाही शुरू की जाती है, उस स्थिति में, आवेदक को पर्याप्त कारण बताना होगा और उचित स्पष्टीकरण के साथ देरी के कारण को उचित ठहराना होगा। ऐसा नहीं है कि प्रत्येक मामले में पर्याप्त कारण न बताए जाने और देरी की उचित व्याख्या न किए जाने के बावजूद अदालत देरी को माफ कर सकती है। देरी को माफ करने का मामला बनाने के लिए, आवेदक को पर्याप्त कारण/कारण बताना होगा जिसने उसे सीमा अवधि के भीतर कार्यवाही शुरू करने से रोका। अन्यथा उन पर घोर लापरवाही का आरोप लगेगा। यदि पीड़ित पक्ष बिना किसी पर्याप्त कारण के सीमा अवधि के भीतर कार्यवाही शुरू नहीं करता है, तो उसे अस्पष्ट देरी और देरी के आधार पर राहत से वंचित किया जा सकता है और यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ऐसे व्यक्ति ने अपना अधिकार छोड़ दिया है या आदेश से सहमत है। ये सिद्धांत सुदृढ़ सार्वजनिक नीति से संबंधित सिद्धांतों पर आधारित हैं कि यदि कोई व्यक्ति लंबे समय तक अपने अधिकार का प्रयोग नहीं करता है तो ऐसा अधिकार अस्तित्वहीन है।"

17. हाल ही में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***सुरजीत सिंह साहनी बनाम यूपी राज्य और अन्य के मामले में 2022 की एसएलपी (सी) संख्या 3008 में 28.02.2022*** को फैसला सुनाया कि केवल प्रतिनिधित्व सीमा की अवधि को नहीं बढ़ाता है। और पीड़ित व्यक्ति को शीघ्रता से और उचित समय के भीतर न्यायालय का दरवाजा खटखटाना होगा। पैराग्राफ 5 और 6 को यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

"5. जैसा कि इस न्यायालय ने निर्णयों की श्रृंखला में देखा है, केवल प्रतिनिधित्व सीमा की अवधि को नहीं बढ़ाता है और पीड़ित व्यक्ति को शीघ्रता से और उचित समय के भीतर न्यायालय से संपर्क करना होगा। यदि यह पाया जाता है कि रिट याचिकाकर्ता लापरवाही और देरी का दोषी है, तो उच्च न्यायालय को इसे तुरंत खारिज कर देना चाहिए और रिट याचिकाकर्ता को अभ्यावेदन दाखिल करने के लिए बाध्य करके रिट याचिका का निपटान नहीं करना चाहिए और/या प्राधिकरण को अभ्यावेदन पर निर्णय लेने का निर्देश देना, एक बार जब यह पाया जाता है कि मूल रिट याचिकाकर्ता लापरवाही और देरी का दोषी है। इस तरह के आदेश से

याचिकाकर्ता को इसके बाद यह तर्क देने का मौका नहीं मिलेगा कि बाद में अभ्यावेदन की अस्वीकृति ने कार्रवाई का एक नया कारण दिया है।
6. अन्यथा गुण-दोष के आधार पर भी, हम उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से पूरी तरह सहमत हैं। उच्च न्यायालय ने किसी भी तरह की राहत देने से इनकार कर दिया है जो अनुबंध के विशिष्ट निष्पादन के रूप में थी। भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कोई भी रिट अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए बनाए रखने योग्य और/या मनोरंजन योग्य नहीं होगी और वह भी 10 साल की अवधि के बाद, उस समय तक विशिष्ट प्रदर्शन के लिए मुकदमा भी सीमा से वर्जित हो चुका होगा।''

18. उपरोक्त के मद्देनजर, न्यायालय की राय है कि किसी भी याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष कोई क़ानून नहीं रखा है जिसके आधार पर उसे भूमि के बदले में रोजगार दिया जा सके, जो कि निगम द्वारा वर्ष 1985 में ली गई थी।

19. तदनुसार, वर्तमान रिट याचिका खारिज की जाती है।

(2023) 1 ILRA 289
मूल न्यायाधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 07.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता
माननीय न्यायमूर्ति जयन्त बनर्जी

रिट-सी संख्या 33578 वर्ष 2022

सोनू और अन्य ....याचिकाकर्ता
बनाम
यूपी राज्य एवं अन्य ....प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के लिए अधिवक्ता:
श्री ब्रिजेश चन्द्र त्रिपाठी, श्री सुनील कुमार दुबे

प्रतिवादीगण के लिए अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री वीरेंद्र सिंह चौहान

(ए) सिविल कानून - भारत का संविधान, 1949 - अनुच्छेद 243-पी - "नगरपालिका क्षेत्र", अनुच्छेद 243-क्यू - नगर पालिकाओं का संविधान, यू.पी. नगर पालिका अधिनियम, 1916 - धारा 3 - संक्रमणकालीन क्षेत्र और छोटे शहरी क्षेत्र की घोषणा आदि, धारा 3(2) - संविधान के अनुच्छेद 243-क्यू के खंड (2) के तहत अधिसूचना, धारा 4 - अधिसूचना जारी करने की प्रारंभिक प्रक्रिया - जिस क्षेत्र को शामिल करने की मांग की गई है उस क्षेत्र में नहीं रहने वाले व्यक्ति के लिए आपत्ति दर्ज कराने पर रोक नहीं।(पैरा-12)

याचिकाकर्ता नगर पालिका परिषद के नगरसेवक हैं - अधिसूचना - विभिन्न ग्राम पंचायतों को नगर परिषद में शामिल करना - मसौदा अधिसूचना के खिलाफ आपत्ति दर्ज करने का अधिकार, रिट याचिका का लंबित होना - अंतिम अधिसूचना स्थगित - याचिकाकर्ताओं को आपत्ति दर्ज करने के लिए समय दिया गया - इन परिस्थितियों में दोष ठीक हो गया है (पैरा-3,12,13)

निर्णय:- दोष को ठीक नहीं किया जा सकता क्योंकि कानून के तहत निर्णय के बाद आपत्तियों की सुनवाई पर विचार नहीं किया जाता है। आपत्तियों पर निर्णय मसौदा अधिसूचना को अंतिम रूप देने से पहले किया जाना था, न कि अंतिम अधिसूचना जारी होने के बाद। मामले की तह तक जाती है और अंतिम अधिसूचना को अवैध करार देती है। **(पैरा-14)**

याचिका स्वीकृत. (ई-7)

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता और माननीय न्यायमूर्ति जयन्त बनर्जी द्वारा सुनाया गया)

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री ब्रिजेश चंद्र त्रिपाठी, प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री प्रदीप कुमार त्रिपाठी और प्रतिवादी संख्या 3 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री वीरेंद्र सिंह चौहान को सुना गया।
पक्षकारों के अधिवक्ताओं की सहमति से, याचिका को प्रारंभिक स्तर पर, अंतिम रूप से निस्तारित किया जा रहा है।

संक्षेप में तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता संख्या 1 वार्ड संख्या 3, नगर पालिका परिषद, बागपत से निर्वाचित पार्षद है और याचिकाकर्ता संख्या 2 भी वार्ड संख्या 19, नगर पालिका परिषद, बागपत से निर्वाचित पार्षद है। उन्होंने यूपी नगर पालिका अधिनियम, 1916 की धारा 3 की उप-धारा (2) के साथ पढ़े गए संविधान के अनुच्छेद 243-क्यू के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा 21.9.2022 को जारी अधिसूचना, जो उक्त अधिसूचना की अनुसूची-1 में निर्दिष्ट क्षेत्र को नगर पालिका परिषद, बागपत के छोटे शहरी क्षेत्र में समाहित करता है और संविधान के अनुच्छेद 243-पी के खंड (डी) के तहत एक घोषणा कि अनुसूची-2 में निर्दिष्ट क्षेत्र नगर पालिका परिषद, बागपत का प्रादेशिक क्षेत्र होगा, को चुनौती दी है।

जिन तथ्यों और आधारों पर यह चुनौती दी गई है, वे हमारे आदेश दिनांक 15.11.2022 में उल्लिखित किए गए हैं, जो इस प्रकार है: -

"याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता का तर्क यह है कि यूपी नगर पालिका अधिनियम, 1916 की धारा 4 के तहत दिनांक 26.8.2022 को नगर पालिका परिषद, बागपत के छोटे शहरी क्षेत्र में कुछ क्षेत्रों को शामिल करने के लिए एक मसौदा अधिसूचना, जारी की गई थी। उसका हिंदी संस्करण "अमर उजाला" दिनांक 27.8.2022 में प्रकाशित किया गया था और इस प्रकार मसौदा अधिसूचना के खिलाफ पन्द्रह दिनों के भीतर आपत्तियां और सुझाव आमंत्रित किए गए थे। दिनांक 4.9.2022 को अखबार में एक शुद्धिपत्र प्रकाशित किया गया, जिसमें कहा गया कि अंग्रेजी में मसौदा अधिसूचना आपत्तियां/सुझाव दर्ज करने के लिए केवल सात दिनों का समय प्रदान करती है। हालांकि, त्रुटि के कारण, हिंदी संस्करण में पंद्रह दिनों का समय प्रदान किया गया। तदनुसार, हिंदी संस्करण में संशोधन की मांग की गई, ताकि इसे अंग्रेजी में जारी अधिसूचना के अनुरूप लाया जा सके।

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि स्थानीय क्षेत्र में हिंदी में मसौदा अधिसूचना जारी करना कानून की आवश्यकता है। याचिकाकर्ताओं ने उक्त अधिसूचना के आधार पर दिनांक 6.9.2022 को मसौदा अधिसूचना के खिलाफ आपत्तियां दर्ज कीं। हालाँकि, दिनांक 21.9.2022 को अंतिम अधिसूचना जारी करते समय, जाहिर तौर पर इस आधार पर कि इसे सात दिनों के बाद दायर किया गया था, उनकी आपत्तियों पर विचार नहीं किया गया। यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादीगण द्वारा जारी किया गया शुद्धिपत्र याचिकाकर्ताओं को मसौदा अधिसूचना के खिलाफ आपत्तियां दर्ज करने के उनके मूल्यवान अधिकार से वंचित करता है और इसलिए, अंतिम अधिसूचना अवैध हो जाती है।

विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री दिलीप केसरवानी ने निर्देश पर स्वीकार किया कि केवल सात दिनों के भीतर प्राप्त आपत्तियों और सुझावों पर विचार किया गया था, जिसका अर्थ है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर आपत्तियों पर विचार नहीं किया गया था।

प्रथम दृष्टया, इस संबंध में की गई कवायद वैधानिक प्रावधानों की भावना के विरुद्ध प्रतीत होती है।

हम सचिव, शहरी विकास, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ को उपरोक्त पहलू पर मामले में अपना व्यक्तिगत हलफनामा दाखिल करने के लिए तीन दिन का समय देते हैं।

दिनांक 21.11.2022 को ताज़ा सूचीबद्ध किया जाए।

विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री दिलीप केसरवानी उचित अनुपालन के लिए संबंधित प्रतिवादी को वर्तमान आदेश संप्रेषित करेंगे।

यह आदेश प्रतिवादी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री वीरेंद्र सिंह चौहान की उपस्थिति में पारित किया गया है।"

अनुपालन में, प्रतिवादी संख्या 1 ने अपना हलफनामा दायर किया है।

राज्य-प्रतिवादियों ने स्वीकार किया कि दिनांक 6.9.2022 को मसौदा अधिसूचना के खिलाफ याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर की गई आपत्तियों का इस आधार पर निर्णय नहीं लिया गया था, कि इसे सात दिनों की निर्धारित अवधि से परे दायर किया गया था।

उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम, 1916 की धारा 3 इस प्रकार है:-

*"3. **संक्रमणकालीन क्षेत्र और छोटे शहरी क्षेत्र की घोषणा आदि** (1) संविधान के अनुच्छेद 243-क्यू के खंड (2) के तहत एक अधिसूचना में राज्यपाल द्वारा निर्दिष्ट कोई भी क्षेत्र, ऐसी सीमाओं के साथ जो यथास्थिति, एक संक्रमणकालीन क्षेत्र या छोटा शहरी क्षेत्र होने के लिए निर्दिष्ट हैं।*
(2) राज्यपाल, संविधान के अनुच्छेद 243-क्यू के खंड (2) के तहत एक अधिसूचना द्वारा, उप-धारा (1) में निर्दिष्ट यथास्थिति, संक्रमणकालीन क्षेत्र या छोटे शहरी क्षेत्र में किसी भी क्षेत्र को शामिल या बाहर कर सकते हैं।
(3) उप-धारा (1) और (2) में निर्दिष्ट अधिसूचनाएं धारा 4 द्वारा अपेक्षित पिछले प्रकाशन के बाद जारी की जाने वाली अधिसूचना की शर्त के अधीन होंगी और इस धारा की किसी भी बात के बावजूद, कोई भी क्षेत्र जो छावनी या उस का हिस्सा है, एक संक्रमणकालीन क्षेत्र या एक छोटा शहरी क्षेत्र घोषित नहीं किया जाएगा या इस धारा के तहत उसमें शामिल नहीं किया जाएगा।"

अधिनियम की योजना के तहत, अधिनियम की धारा 3 के तहत एक अधिसूचना जारी करने से पहले, कानून का आदेश यह है कि राज्यपाल उसे आधिकारिक राजपत्र और जिले में सार्वजनिक नोटिस के प्रकाशन के प्रयोजनों के लिए उसके द्वारा अनुमोदित कागज में प्रकाशित करेंगे, या यदि जिले में ऐसा कोई कागज नहीं है, तो उस मंडल में, जिसमें अधिसूचना के अंतर्गत आने वाला स्थानीय क्षेत्र स्थित है और उसे जिला मजिस्ट्रेट के कार्यालय में और संबंधित स्थानीय क्षेत्र के भीतर या उसके निकट एक या

अधिक विशिष्ट स्थानों पर, एक नोटिस जिसमें कहा जाएगा कि नोटिस में बताई गई अवधि की समाप्ति पर मसौदे पर विचार किया जाएगा, के साथ, प्रस्तावित अधिसूचना का हिंदी में मसौदा, चिपकाया जाना सुनिश्चित करेंगे। कानून यह भी आदेशित करता है कि अंतिम अधिसूचना जारी करने से पहले, बताई गई अवधि के भीतर मसौदे के संबंध में किसी भी व्यक्ति से लिखित रूप में प्राप्त किसी भी आपत्ति या सुझाव पर विचार किया जाएगा।

हिंदी समाचार पत्र में मसौदा अधिसूचना का प्रकाशन, अन्य निर्धारित तरीकों के अलावा, अधिनियम की धारा 4 के तहत अनिवार्य आवश्यकताओं में से एक है।

मौजूदा मामले में, स्वीकार्य रूप से, शुरू में प्रकाशित मसौदा अधिसूचना के हिंदी संस्करण में आपत्तियां दर्ज करने के लिए पंद्रह दिन का समय दिया गया था। हिंदी संस्करण 'अमर उजाला' में दिनांक 27.8.2022 को प्रकाशित हुआ था और इस प्रकार, आपत्तियां और सुझाव दर्ज करने का समय दिनांक 11.9.2022 तक था। हालाँकि,दिनांक 4.9.2022 को, प्रतिवादीगण ने एक शुद्धिपत्र प्रकाशित किया जिसमें सूचित किया गया कि आपत्तियाँ दर्ज करने के लिए केवल सात दिनों का समय उपलब्ध होगा, जैसा कि अंग्रेजी संस्करण में प्रदान की गई अवधि है। जिस दिन शुद्धिपत्र प्रकाशित हुआ, उस दिन मसौदा अधिसूचना के अंग्रेजी संस्करण के अनुसार आपत्ति दर्ज करने के लिए निर्धारित सात दिन का समय पहले ही समाप्त हो चुका था और इस प्रकार, कोई भी व्यक्ति जिसने मसौदा अधिसूचना का हिंदी संस्करण पढ़ा था, उसे आपत्ति दर्ज करने से पूरी तरह से रोका गया था। आम जनता को आपत्तियां दर्ज करने और सुझाव देने का अधिकार प्रदान करने का एक उद्देश्य उन्हें स्वशासन के मामले में सशक्त बनाना है। आपत्ति क्षेत्र के आकार या प्रदान की जा रही या प्रदान किए जाने हेतु प्रस्तावित नगरपालिका सेवाओं के संबंध में हो सकती है और क्षेत्र की जनसंख्या, वहां की जनसंख्या का घनत्व, स्थानीय प्रशासन के लिए उत्पन्न राजस्व, गैर-कृषि गतिविधियों में रोजगार के प्रतिशत, आर्थिक महत्व या ऐसे अन्य कारक जो संविधान के अनुच्छेद 243-क्यू के खंड (2) में दिए गए हैं, के संबंध में हो सकती है। इस मामले में प्रतिवादियों ने उस अवधि को कम कर दिया है जिसके दौरान आम जनता शुरू में आपत्तियां दर्ज करने की हकदार थी। इसने याचिकाकर्ता और उसके जैसे कई लोगों को मसौदा अधिसूचना के खिलाफ आपत्तियां दर्ज करने से रोक दिया था। हमारी राय में, यह मामले की जड़ तक जाता है और अंतिम अधिसूचना को अवैध बनाता है।

विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता उस क्षेत्र के निवासी नहीं हैं जिसे छोटे शहरी क्षेत्र में शामिल किया गया है और इसलिए, उनके पास आपत्तियां दर्ज करने का कोई अधिकार नहीं था।

कानून के तहत, जिस क्षेत्र को शामिल करने की मांग की गई है, उस क्षेत्र में नहीं रहने वाले किसी व्यक्ति को आपत्ति दर्ज कराने पर कोई रोक नहीं है। निस्संदेह, याचिकाकर्ता नगर पालिका परिषद, बागपत के पार्षद हैं और विवादित अधिसूचना नगर पालिका परिषद, बागपत में विभिन्न ग्राम पंचायतों को शामिल करने के संबंध में है। ऐसे में, यह नहीं कहा जा सकता कि उनके पास मसौदा अधिसूचना के खिलाफ आपत्ति दर्ज करने का कोई अधिकार नहीं था।

विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने आगे कहा कि रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, प्रतिवादियों ने अंतिम अधिसूचना को स्थगित रखा है और याचिकाकर्ताओं को आपत्ति दर्ज करने का समय दिया है। यह आग्रह किया गया है कि इन परिस्थितियों में, दोष का उपचार हो गया है। हमारी सुविचारित राय है कि उपरोक्त अभ्यास से दोष ठीक नहीं होगा क्योंकि कानून के तहत निर्णय के बाद आपत्तियों की सुनवाई पर विचार नहीं किया जाता है। आपत्तियों पर निर्णय मसौदा अधिसूचना को अंतिम रूप देने से पहले किया जाना था, न कि अंतिम अधिसूचना जारी होने के बाद। इसके अलावा, हमने देखा है कि जिस आदेश द्वारा अंतिम अधिसूचना को स्थगित रखा गया था वह कार्यालय ज्ञापन के रूप में है और यह बिल्कुल भी स्पष्ट नहीं है कि क्या इसे आम जनता के लिए अधिसूचित किया गया था ताकि अन्य लोग जो हमारे सामने नहीं हैं लेकिन प्रस्तावित अधिसूचना के विरुद्ध आपत्ति दर्ज करने के अधिकार से वंचित हैं, उन्हें आपत्ति दर्ज करने का अवसर मिलता।

उपरोक्त सभी कारणों से, प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा जारी दिनांक 21.9.2022 की अधिसूचना को रद्द किया जाता है। रिट याचिका **स्वीकार की जाती है**।

(2023) 1 ILRA 292

मूल क्षेत्राधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

रिट-सी संख्या 37294/2006

सोतैम और अन्य ... याचिकाकर्ता

बनाम

अपर कमिश्नर (न्यायिक) द्वितीय, वाराणसी मंडल, वाराणसी और अन्य ... प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:
श्री अनंत विजय, श्री आनंद कुमार, श्री अशोक कुमार राय, श्री श्याम सुंदर मौर्य

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री प्रमोद कुमार सिन्हा

(ए) भूमि कानून - उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 - धारा 33/39 - वार्षिक रजिस्टर / वार्षिक रजिस्टर में गलतियों का सुधार - उत्तर प्रदेश जोत चकबन्दी अधिनियम, 1953 - धारा 49 - नागरिक न्यायालयों के क्षेत्राधिकार पर रोक, धारा 52 - समेकन संचालन का समापन - केवल राजस्व अभिलेखों में प्रविष्टि करने से कोई अधिकार नहीं है - राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टियां निर्णायक प्रमाण नहीं हैं और स्वामित्व का रिकॉर्ड नहीं हैं, वे केवल राजस्व एकत्र करने के उद्देश्यों के लिए हैं - सही रिकॉर्ड बनाए रखने का कर्तव्य कलेक्टर पर है। (अनुच्छेद - 8,10,12)

पक्षकारों के पूर्ववर्तियों के बीच अधिकार, स्वामित्व और हित - अंत में चकबंदी कार्यवाही के दौरान सीओ और एसओसी द्वारा निर्णय लिया गया - प्रतिवादियों के पिता के पक्ष में समाप्त हुआ - आकार पत्र 11 (भाग II) में शामिल - अपर्याप्त स्थान के कारण - संबंधित खाता में शामिल नहीं - संदेह पैदा किया - सीओ और एसओसी के आदेश अग्रेषित नहीं किए गए - सीएच फार्म संख्या 41 और 45 में और बाद में खतौनी में प्रवेश किया। (पैरा - 24)

अभिनिर्धारित: - चकबंदी के दौरान याचिकाकर्ता के पिता के पक्ष में प्रविष्टियों का कोई आधार नहीं। राजस्व अभिलेखों में याचिकाकर्ताओं के नाम गलत तरीके से दर्ज किए गए। केवल निराधार और अवैध प्रविष्टियों के आधार पर, याचिकाकर्ताओं को कोई अधिकार नहीं मिलता है। अवर न्यायालयों का आदेश सही पाया गया और इसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। (पैरा - 24)

याचिका खारिज। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. विश्व विजय भारती बनाम फखरुल हसन, एआईआर 1976 एससी 1485
2. वली मोहद। बनाम राम सूरत, एआईआर 1989 एससी 2296
3. विक्रम सिंह जेएचएस बनाम डीएम (फिन एंड रेव), (2002) 9 एससीसी 509
4. मोहम्मद अनीस बनाम अतिरिक्त आयुक्त, इलाहाबाद मंडल, 2001 आरडी 761
5. श्री राम बनाम ग्राम सभा, 1997 आर डी 549
6. कामता प्रसाद बनाम बी.ओ.आर., 1985 आर.डी.
7. नंदू बनाम राम जतन, 1987 आरडी, 274

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

2. याचिकाकर्ताओं ने 1992 जिला गाजीपुर के संशोधन संख्या 575, 515/355/482/94386 में अपर आयुक्त (न्यायिक) द्वितीय, वाराणसी - प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा पारित दिनांक 04.04.2006 के आक्षेपित आदेशों के साथ-साथ धारा 33/39 यू.पी. एलआर अधिनियम 1901 के तहत केस नंबर 36/31/157 में उप विभागीय अधिकारी, जिला-गाजीपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.04.1992 को रद्द करने के लिए वर्तमान रिट याचिका दायर की है।.

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि विवादित भूखंड संख्या 513, 515 एवं 518 हैं, जिनमें से भूखंड संख्या 513 एवं 518 याचिकाकर्ताओं के नाम 1360-फसाली सी एच फॉर्म-41 में दर्ज थे और इसके पुराने प्लॉट नंबर 544 और 533 थे। याचिकाकर्ताओं ने अनुबंध संख्या 1 के रूप में खतौनी नंबर 1369- फसली और सीएच फॉर्म 41 दिनांक 21.08.1987 का उद्धरण संलग्न किया है।

4. चकबंदी कार्यवाही के दौरान सीएच फॉर्म नंबर -45 तैयार किया गया था, जिसमें याचिकाकर्ता के पिता को सरदार के रूप में दर्ज किया गया था, जो अनुलग्नक संख्या 2 है। 15.10.1986 को प्रतिवादी संख्या 3 से 6 के पिता ने उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 33/39 के तहत एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें नए प्लॉट संख्या 515 और 518 के संबंध में याचिकाकर्ताओं के नाम को हटाने के लिए प्रार्थना की गई थी, जिसमें 1790 के सूट नंबर 499 में चकबंदी के निपटान अधिकारी द्वारा कथित रूप से पारित आदेश दिनांक 10.11.1964 के आधार पर याचिकाकर्ताओं के नाम को हटा दिया गया था।

5. याचिकाकर्ताओं ने आपत्ति जताई कि जाली आदेशों के आधार पर 26 साल बाद आवेदन स्थानांतरित किया गया था, इस पर भी आपत्ति की गई थी कि धारा 33/39 के तहत, इस तरह के आवेदन पर विचार नहीं किया जा

सकता है और आवेदन को सीएच अधिनियम की धारा 49 द्वारा रोक दिया गया था। यह भी विशेष रूप से आपत्ति की गई है कि चकबंदी के दौरान, याचिकाकर्ताओं को आवंटित विवाद भूमि के बारे में पक्षों के बीच कोई मामला आगे नहीं बढ़ाया गया था। विस्तृत जांच और निरीक्षण करने के साथ-साथ मामले की सुनवाई के बाद, संबंधित नायब तहसीलदार ने दिनांक 26.10.1991 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें प्रतिवादी नंबर 2 – एस.डी.ओ.

6. प्रतिवादी संख्या 2 ने अपने आदेश दिनांक 30.40.1992 के द्वारा दिनांक 15.10.1986 के आवेदन को स्वीकार कर लिया जिसमें विवादित भूमि से याचिकाकर्ताओं का नाम हटाने का निर्देश दिया गया था, जो अनुबंध 4 के रूप में संलग्न है।

7. याचिकाकर्ताओं ने 22.05.1992 को प्रतिवादी संख्या 1 – ऊपरी आयोग (न्यायिक-II) के समक्ष 1992 का एक संशोधन संख्या 94 - सोतीम और अन्य बनाम घर भरण और अन्य दायर किया, जिसमें प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 30.04.1992 के आदेश को चुनौती दी गई। पुनरीक्षण ज्ञापन संलग्नक संख्या 5 के रूप में संलग्न है। प्रतिवादी नंबर 1 ने अपने आदेश दिनांक 29.05.1992 के माध्यम से प्रतिवादी नंबर 2 द्वारा पारित 30.04.1992 के आक्षेपित आदेश पर रोक लगा दी, जो अनुबंध संख्या 6 है। प्रतिवादी नंबर 1 ने अपने आदेश दिनांक 04.04.2006 के माध्यम से संशोधन को खारिज कर दिया, जो अनुबंध संख्या 7 में संलग्न है। प्रतिवादी संख्या 1 और 2 ने प्रतिवादियों द्वारा की गई धोखाधड़ी के संबंध में कोई निष्कर्ष दिए बिना मनमाने तरीके से आदेश पारित किए हैं, जो कानून के निर्धारित सिद्धांत के खिलाफ है। नीचे का न्यायालय इस बात पर विचार करने में विफल रहा कि प्रतिवादियों द्वारा म्यूटेशन के लिए आवेदन को स्थानांतरित करने के लिए 26 साल की अत्यधिक देरी के बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है और राजस्व रिकॉर्ड की लंबे समय से चली आ रही प्रविष्टि पर विचार करने में विफल रहा है। प्रतिवादी नंबर 2 ने बिना किसी आधार के विकृत निष्कर्ष दर्ज किया कि जोधी की मृत्यु के बाद, उनके उत्तराधिकारी, मुरली और अन्य साजिश-विवाद पर कब्जे में हैं। पुनरीक्षण न्यायालय ने कब्जे के संबंध में कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया। दिनांक 10.11.1964 के आदेश की प्रमाणित प्रति उत्तरदाताओं द्वारा नीचे की अदालत के समक्ष कभी पेश नहीं की गई और कार्यालय की रिपोर्ट के अनुसार रिकॉर्ड रूम में यह उपलब्ध नहीं है। निचली अदालत ने नामांतरण के संबंध में नायब तहसीलदार की रिपोर्ट को अवैध रूप से खारिज कर दिया, जिसमें उन्होंने विशेष रूप से प्रस्ताव दिया है कि इतनी देरी के बाद इस तरह के आवेदन की अनुमति नहीं दी जा सकती है। याचिकाकर्ता अभी भी विवादित भूमि पर कब्जे में हैं और उनके नाम उनके पूर्वजों के समय से ही दर्ज हैं। याचिकाकर्ताओं ने रिकॉर्ड अधिकारी (राजस्व) द्वारा जारी दिनांक 08.06.1995 की प्रश्नावली दायर की, जिसमें यह उत्तर दिया गया है कि 1790 के केस नंबर / 499 की फाइल दिनांक 10.11.1964 के आदेश की तारीख रिकॉर्ड रूम को नहीं भेजी गई थी, जिसे पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया है, जिसे अनुलग्नक 8 के रूप में संलग्न किया गया है और जब रिकॉर्ड रिकॉर्ड रूम में नहीं था, राजस्व प्राधिकरण के पास 26 वर्षों के बाद राजस्व रिकॉर्ड की प्रविष्टि को परेशान करने की कोई शक्ति नहीं है। नीचे की अदालतों ने अनुमान, संयोजन और अनुमानों पर आदेश पारित किया है, जो कानून की नजर में टिकाऊ नहीं है। उपरोक्त तथ्यों के आधार पर, याचिकाकर्ताओं ने आक्षेपित आदेशों को रद्द करने की प्रार्थना की है।

8. प्रतिवादियों के विद्वान वकील ने जवाबी हलफनामा दायर किया है और याचिकाकर्ताओं द्वारा लगाए गए आरोपों से इनकार किया है और प्रस्तुत किया है कि प्रतिवादी 3 से 6 के पिता ने चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.12.1962 और प्लॉट संख्या 513 पुरानी संख्या 545 एरिया 0-6-16, प्लॉट नंबर 515 पुराना नंबर 544 एरिया 0-8-12 और प्लॉट नंबर 518 पुराना नंबर 545 एरिया 0-17- 12 के संबंध में एसओसी द्वारा पारित आदेश दिनांक 10.11.1964 के आधार पर राजस्व रिकॉर्ड में उनके नाम के म्यूटेशन के लिए दिनांक 15.10.1986 को एक आवेदन प्रस्तुत किया है। इसमें विशेष रूप से उल्लेख किया गया था कि आवेदक/याचिकाकर्ता पूर्वोक्त प्लॉट नंबरों के अनन्य कब्जे में थे, इसकी प्रति अनुबंध संख्या सीए -1 के रूप में संलग्न है। याचिकाकर्ता द्वारा दायर की गई आपत्ति दिनांक 29.10.1987 अनुमानों पर आधारित थी और इस बात का कोई विवरण नहीं था कि याचिकाकर्ता विवादित भूमि के मालिक कैसे हैं। यह स्थापित कानून है कि केवल राजस्व अभिलेखों की प्रविष्टि से कोई अधिकार नहीं मिल जाता। चकबंदी न्यायालयों ने माना कि प्रतिवादी स्वर्गीय जोधी के पिता विवादित भूमि के गैर-हस्तांतरणीय अधिकार के साथ भूमिधर थे, जबकि याचिकाकर्ताओं ने न तो अपने पक्ष में किसी न्यायालय की घोषणा की थी और न ही उन्होंने अपने दावे के समर्थन में कोई दस्तावेज प्रस्तुत किया है, इसकी एक प्रति अनुलग्नक संख्या सीए-2 के रूप में संलग्न है। नायब तहसीलदार सदर की दिनांक 26.10.1991 की रिपोर्ट निराधार है और एक फर्जी दस्तावेज है क्योंकि इसे सरसरी तौर पर तैयार किया गया है। प्रतिवादी संख्या 1 और 2 द्वारा पारित आदेश न्यायसंगत और उचित हैं और वे ठोस आधार पर आधारित हैं और कानून के अनुसार हैं। चकबंदी न्यायालयों द्वारा पारित आदेश को याचिकाकर्ताओं द्वारा सक्षम न्यायालय के समक्ष कभी चुनौती नहीं दी गई थी, इसलिए यह पक्षों के

बीच अंतिम हो गया। राजस्व रिकॉर्ड में गलत प्रविष्टियों के आधार पर सक्षम न्यायालय के निर्णयों को रद्द नहीं किया जा सकता है। प्रतिवादी विवादित भूमि के अनन्य कब्जे में हैं, खतौनी नंबर 1408 – 1413 फसली, किसान बही और सीएच की एक सच्ची फोटोकॉपी काउंटर एफिडेविट में सीए -3 के रूप में संलग्न है। रिट याचिका किसी भी योग्यता से रहित है और लागत के साथ खारिज करने योग्य है।

9. याचिकाकर्ताओं ने जवाबी हलफनामा दायर किया है, जवाबी हलफनामे के दावों को नकारते हुए रिट की वही कहानी दोहराई है और पैरावाइज जवाब दिया है और कहा है कि प्लॉट नंबर 513, 515 और 518 पुराने नंबर 544 और 545 याचिकाकर्ता के पिता स्वर्गीय जियुत बंधन पुत्र हंशराज के नाम पर सरदार के रूप में 1360 - 1371 फसली में दर्ज थे।15.10.1986 को, प्रतिवादी संख्या 3 से 6 के पिता स्वर्गीय जोधी ने यूपीएलआर अधिनियम, 1901 की धारा 33/39 के तहत एक आवेदन दायर किया और वाद संख्या 13/1962 में चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.12.1962 के आधार पर याचिकाकर्ताओं का नाम हटाकर भूखंड संख्या 513, 515 और 518 के संबंध में उनके नाम का उत्परिवर्तन करने की प्रार्थना की एवं अपील संख्या 499/1790 में बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी द्वारा आदेश दिनांक 10.11.1964 पारित किया गया। प्रतिवादी संख्या 3 से 6 के स्वर्गीय पिता जोधी ने जियुत बंधन को प्रतिवादी बनाया और उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्रों 1/1 से 1/4 बद्री, गंगा, शिव पूजन, सीता राम, मंगरू, जंग बहादुर और लाल जी को प्रतिवादी बनाया। यूपीएलआर अधिनियम की धारा 33/39 के तहत आवेदन 22 साल की देरी के बाद दायर किया गया था।ऐसा प्रतीत होता है कि चकबंदी अधिकारी और बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी के दोनों आदेश फर्जी थे क्योंकि जियुत बंधन को कभी भी कोई नोटिस या सम्मन नहीं दिया गया था और वह उपरोक्त कार्यवाही से बिल्कुल अनजान था। जोधी उपरोक्त आवेदन दायर करने का हकदार नहीं था और यह धारा 49 सीएच अधिनियम द्वारा वर्जित था।

10. रिकॉर्ड के अवलोकन से यह स्थापित हो गया है कि याचिकाकर्ताओं ने बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी के आदेश को चुनौती नहीं दी थी, इसलिए यह निर्णायक हो गया है। इस बात का ज़रा भी सबूत नहीं है कि बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी के आदेश को याचिकाकर्ताओं के पिता या याचिकाकर्ता द्वारा वरिष्ठ अदालतों में चुनौती दी गई थी। प्रश्न-उत्तर के आधार पर याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया कि बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी के निर्णय से संबंधित ऐसी कोई फाइल उपलब्ध नहीं है, लेकिन उप खंड अधिकारी गाजीपुर के आदेश से यह स्पष्ट है कि काफी समय बीत जाने के बाद संबंधित फाइल को हटा दिया गया है, इसलिए यह रिकार्ड रूम में उपलब्ध नहीं है। ऐसे में यह तर्क नहीं दिया जा सकता कि चकबंदी के दौरान ऐसी कोई फाइल नहीं थी और सीओ व बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी द्वारा ऐसे किसी मामले का फैसला नहीं किया गया था. प्रतिवादियों और याचिकाकर्ताओं के पिता ज्योधी और जीयुत बंधन ने मामला लड़ा था और बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी ने ज्योधी के पक्ष में मुकदमे में भूखंडों के बारे में एक आदेश पारित किया था, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि उत्तरदाताओं का मामला सीएच अधिनियम की धारा 49 द्वारा वर्जित है। इसके विपरीत जब जीयुत बंधन या याचिकाकर्ताओं द्वारा कोई अपील/संशोधन नहीं किया गया, तो चकबंदी के दौरान बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी के आदेश से विवाद समाप्त हो गया और जब इसे चुनौती नहीं दी गई तो यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि याचिकाकर्ताओं का मामला सीएच अधिनियम की धारा 49 द्वारा वर्जित है। सी एच फॉर्म 11 रिकॉर्ड पर उपलब्ध है, जिसमें बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी का आदेश उपलब्ध है, जो उत्तरदाताओं के पिता के अधिकार, शीर्षक और हित की पुष्टि करता है और इसके बाद याचिकाकर्ता उत्तरदाताओं के पिता और उत्तरदाताओं के शीर्षक से इनकार नहीं कर सकते हैं। यह स्थापित कानून है कि राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टियाँ निर्णायक प्रमाण नहीं हैं और स्वामित्व का रिकॉर्ड नहीं हैं, वे केवल राजस्व एकत्र करने के उद्देश्य से हैं।

"17. विश्व विजय भारती बनाम फखरुल हसन, एआईआर 1976 एससी 1485 में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि यह सच है कि राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टियों को आम तौर पर उनके अंकित मूल्य पर स्वीकार किया जाना चाहिए और अदालतों को उनकी शुद्धता की अपीलीय जांच शुरू नहीं करनी चाहिए। लेकिन शुद्धता की धारणा केवल वास्तविक प्रविष्टियों पर ही लागू हो सकती है, न कि जाली या धोखाधड़ी वाली प्रविष्टियों पर। भेद ठीक हो सकता है लेकिन यह वास्तविक है। अंतर यह है कि कोई भी व्यक्ति राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज की गई बातों की सत्यता को चुनौती नहीं दे सकता है, लेकिन यह प्रविष्टि इस बात पर हमला करने के लिए खुली है कि यह धोखाधड़ी से या गुप्त रूप से बनाई गई थी। धोखाधड़ी और जालसाजी किसी दस्तावेज़ के सभी कानूनी प्रभाव को ख़त्म कर देती है और मालिकाना हक का दावा नहीं मिल पाता है। इस फैसले का पालन वली मोहम्मद बनाम राम सूरत, एआईआर 1989 एससी 2296 में किया गया है। फिर विक्रम सिंह जूनियर हाई स्कूल बनाम जिला मजिस्ट्रेट (वित्त और राजस्व), (2002) 9 एससीसी 509 में, यह माना गया है कि राजस्व में प्रविष्टि रिकॉर्ड का कानूनी आधार होना चाहिए।"

11. इस मामले में सीएच-11 (भाग- II) में उपलब्ध बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी के आदेश के बाद, इसे संशोधित करना और भविष्य के रिकॉर्ड में अग्रेषित करना संबंधित अधिकारियों का कर्तव्य था लेकिन एक नोट है कि संबंधित खाते में जगह उपलब्ध नहीं होने के कारण यह

आदेश यहां दर्ज किया गया है। संभवत: बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी का आदेश संबंधित खाते में दर्ज न होने से गलती शुरू हुई। इसलिए, याचिकाकर्ता के पिता का नाम सीएच 41, 45 और बाद में खतौनी में जारी रहा। याचिकाकर्ता अपने पिता के पक्ष में कोई आदेश नहीं दे सके। बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी के आदेश से मुकदमे में संपत्ति के बारे में याचिकाकर्ताओं का अधिकार, स्वामित्व और हित समाप्त हो गया था और क्योंकि इसे किसी भी वरिष्ठ सक्षम अदालत में चुनौती नहीं दी गई थी, इसलिए यह अंतिम हो गया। यदि बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी के आदेश को भविष्य के रिकॉर्ड में अग्रेषित नहीं किया गया था, तो यह जीयुत बंधन या याचिकाकर्ताओं के पक्ष में कोई अधिकार, शीर्षक या हित नहीं बनाएगा और यह उत्तरदाताओं के खिलाफ कोई बाधा, रोक या स्वीकृति भी नहीं पैदा करेगा। यदि कोई प्रविष्टि फर्जी, झूठी और आधारहीन है तो कानून की नजर में उसका कोई मूल्य नहीं है, चाहे वह कितनी भी लंबी क्यों न हो।

12. याचिकाकर्ता केवल अपने पिता और खुद के पक्ष में लंबे समय से चली आ रही प्रविष्टि पर जोर दे रहे हैं, लेकिन चूंकि यह एक गलत प्रविष्टि है, इसलिए इतने लंबे समय तक इससे याचिकाकर्ताओं और उनके पिता को कोई अधिकार नहीं मिलेगा, यह सदैव अग्राह्य और प्रारंभ से ही शून्य रहेगा।

नीचे धारा 33/39 एलआर अधिनियम का वर्णन करना समीचीन होगा।

"33. वार्षिक रजिस्टर - (1) टायर कलेक्टर अधिकारों का रिकॉर्ड बनाए रखेगा, और उस उद्देश्य के लिए सालाना, या ऐसे लंबे अंतराल पर जैसा कि [राज्य सरकार] निर्धारित कर सकती है, एक संशोधित [धारा 32 में उल्लिखित रजिस्टर] तैयार करने का कारण बनता है।

इस प्रकार तैयार किया गया [रजिस्टर] वार्षिक रजिस्टर कहा जाएगा।

[(2) कलेक्टर वार्षिक रजिस्टर में दर्ज कराएगा -

(ए) धारा 35 के प्रावधानों के अनुसार सभी उत्तराधिकार और स्थानांतरण; या

(बी) अन्य परिवर्तन जो किसी भूमि के संबंध में हो सकते हैं; और धारा 39 के प्रावधानों के अनुसार सभी त्रुटियों और चूकों को भी ठीक करेगा:

बशर्ते कि खंड (बी) के तहत परिवर्तन को रिकॉर्ड करने की शक्ति में स्वामित्व के किसी भी प्रश्न से जुड़े विवाद को तय करने की शक्ति शामिल नहीं की जाएगी।]

(3) [ऐसा कोई भी परिवर्तन या लेन-देन कलेक्टर के आदेश के बिना या इसके बाद दिए गए अनुसार, तहसीलदार या कानूनगो के आदेश के बिना दर्ज नहीं किया जाएगा।]

[(4) कलेक्टर भूमिधर के रूप में दर्ज प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ या उसके बिना, असामी या सरकारी पट्टेदार को एक किसान बही (पासबुक) तैयार और प्रदान करेगा जिसमें शामिल होगा -

(ए) उन सभी होल्डिंग्स से संबंधित उपधारा (1) के तहत तैयार किए गए वार्षिक रजिस्टर से ऐसा उद्धरण, जिसमें वह इस प्रकार दर्ज है (या तो अकेले या दूसरों के साथ संयुक्त रूप से);

(बी) उन्हें स्वीकृत अनुदान का विवरण; और

(सी) ऐसे अन्य विवरण जो निर्धारित किए जा सकते हैं:

बशर्ते कि संयुक्त जोत के मामले में यह किसान बही (पासबुक) के इस उप-धारा के प्रयोजन के लिए पर्याप्त होगा, ऐसे एक या अधिक रिकॉर्ड किए गए सह-हिस्सेदारों को आपूर्ति की जाएगी जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है।

(4ए) उपधारा (4) में निर्दिष्ट किसान बही (पासबुक) ऐसे तरीके से और ऐसे शुल्क के भुगतान पर तैयार की जाएगी, जो भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूली योग्य होगी, जैसा निर्धारित किया जा सकता है।

(5) ऐसा प्रत्येक व्यक्ति, बिना किसी अतिरिक्त शुल्क के भुगतान के, अपनी किसान बही (पासबुक) में शामिल उपधारा (2) के तहत वार्षिक रजिस्टर में कोई भी संशोधन करवाने का हकदार होगा।]

(6) राज्य सरकार इस धारा के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए नियम बना सकती है, जिसमें विशेष रूप से किसान बही (पास बुक) में प्रविष्टियों के साक्ष्य प्राप्त करने और न्यायिक कार्यवाही में सबूत के तरीके को निर्धारित करने वाले नियम शामिल हैं।)], और इसके पुनरीक्षण और प्रमाणीकरण को अद्यतन करने का तरीका और इसकी डुप्लिकेट प्रतियां जारी करने के लिए, और टायर शुल्क, यदि कोई हो, उक्त उद्देश्यों में से किसी के लिए लिया जाना है।

(7) इस धारा में 'विहित' का अर्थ राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा निर्धारित है।

(8) उप-धारा (4) से (7) तक की कोई भी बात किसी ऐसे क्षेत्र के संबंध में लागू नहीं होगी जो या तो समेकन संचालन के तहत है या रिकॉर्ड संचालन के तहत है।

*39. **वार्षिक रजिस्टर में त्रुटियों का सुधार। -(1) वार्षिक रजिस्टर में किसी त्रुटि या चूक के सुधार के लिए तहसीलदार को आवेदन किया जाएगा।***

(2) उपधारा (1) के अंतर्गत आवेदन प्राप्त होने पर या वार्षिक रजिस्टर में कोई त्रुटि या चूक अन्यथा उसकी जानकारी में आने पर, तहसीलदार ऐसी जांच करेगा जो आवश्यक प्रतीत हो और फिर मामले को कलेक्टर के पास भेज देगा, जो धारा 40 के प्रावधानों के अनुसार विवाद का निर्णय करने के बाद इसका निपटान करेगा।]

[बशर्ते कि इस उप-धारा में किसी भी बात का अर्थ यह नहीं लगाया जाएगा कि कलेक्टर को स्वामित्व के किसी भी प्रश्न से जुड़े विवाद का निर्णय लेने का अधिकार है।]

(3) यूपी पंचायत राज अधिनियम, 1947 में निहित किसी भी बात के बावजूद, उप-धारा (1) और (2) के प्रावधान प्रबल होंगे।

मोहम्मद अनीस बनाम अपर आयुक्त, इलाहाबाद मंडल, 2001 आरडी 761 मामले में यह माना गया है कि जहां भी और जब भी किसी व्यक्ति ने विक्रय पत्र के आधार पर अपना नाम खतौनी में दर्ज कराया है और ऐसे विक्रय पत्र को सक्षम सिविल न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया जाता है। तब कलेक्टर या एस.डी.ओ. के पास सिविल कोर्ट द्वारा पारित फैसले के अनुसार खतौनी को सही करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है, बशर्ते कि इस तरह की डिक्री ने अधिनियम की धारा 34 के तहत कार्यवाही को रद्द करने के बजाय अंतिम रूप प्राप्त कर लिया हो।

इस मामले में बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी का आदेश अंतिम है, इसलिए अधिकारों के रिकॉर्ड के रजिस्टर को सही करना कलेक्टर का कर्तव्य था। अतः आक्षेपित आदेश उपरोक्त निर्णय के अनुरूप हैं।

श्री राम बनाम ग्राम सभा 1997 आरडी 549 में प्रधान की शिकायत पर श्री राम और दुलारे को धारा 33 सहपठित धारा 39 के तहत नोटिस जारी किए गए थे। कलेक्टर के अनुमोदन के बाद उनके नाम अभिलेखों से हटा दिए गए थे। संशोधन में, बोर्ड ने माना कि भूमि का स्वामित्व बाइबिल की कहानी के मन्ना और सलवा की तरह, समेकन कार्यवाही में स्वर्ग से नहीं आता है। संशोधनवादी यह दिखाने के लिए कोई सबूत पेश नहीं कर सके कि चकबंदी कार्यवाही के दौरान उनके स्वामित्व को विधिवत मान्यता दी गई थी। यह भी माना गया कि कार्रवाई या तो धारा 14 के तहत नियुक्त कलेक्टर द्वारा या अधिनियम की धारा 15 के तहत नियुक्त कार्यवाहक कलेक्टर द्वारा की जानी चाहिए थी। मौजूदा मामले में यह जानना मुश्किल है कि निर्णायक आदेश किसने पारित किया। हालाँकि संशोधन खारिज कर दिया गया था।

उद्धृत मामले में निर्धारित सिद्धांत को लागू करते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चकबंदी के दौरान याचिकाकर्ता के पिता जीउत बंधन के पक्ष में प्रविष्टि के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया गया था।

कामता प्रसाद बनाम राजस्व बोर्ड, 1985 आरडी 411 में यह माना गया था कि यदि चकबंदी अधिकारियों ने श्रीमती कांति देवी को कोटेदार धारक घोषित कर दिया और उक्त आदेश को राजस्व रिकॉर्ड में शामिल नहीं किया जा सका, ऐसे आदेश सीएच अधिनियम की धारा 52 (1) के तहत डिनोटिफिकेशन के बाद गैर-स्थायी नहीं हो जाते हैं। उक्त अधिनियम की धारा 49 की रोक के कारण इन आदेशों को किसी भी सिविल या राजस्व अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती। चकबन्दी कार्य समाप्त होने के बाद कलेक्टर इसे केवल इस आधार पर करने से इंकार नहीं कर सकता कि चकबन्दी अधिकारियों को स्वयं *अमलदरामद* का कार्य करना चाहिए था।

मौजूदा मामले और उद्धृत मामले के तथ्य काफी समान हैं, इसलिए उद्धृत मामले में निर्धारित सिद्धांत उत्तरदाताओं के पक्ष में लागू होते हैं।

नंदू बनाम राम जतन 1987 आरडी, 274 में, यह माना जाता है कि चकबंदी कार्यों के दौरान की गई केवल ऐसी प्रविष्टियाँ, जो कानूनी रूप से और सही ढंग से की गई हैं, शुद्धता का अनुमान लगाती हैं। जहां सीएच फॉर्म 23 में कोई स्पष्ट गलती हो गई है, उसे एलआर अधिनियम की धारा 33 और 39 के तहत कार्यवाही में सुधारा जा सकता है, क्योंकि सही रिकॉर्ड बनाए रखने का कर्तव्य कलेक्टर पर है। इस मिसाल में दिए गए सिद्धांत भी उत्तरदाताओं के मामले के समर्थन में हैं।

13. याचिकाकर्ताओं द्वारा एक और आधार लिया गया है कि जब उप खंड अधिकारी और आयुक्त द्वारा आदेश पारित किया गया था, तब लगातार दूसरी चकबंदी कार्यवाही चल रही थी, इसलिए वे याचिका पर विचार करने और आदेश पारित करने में सक्षम नहीं थे।

14. प्रतिवादी के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि एलआर अधिनियम की धारा 33/39 के तहत, यह कलेक्टर और तहसीलदार का कर्तव्य है कि वह धारा 39 के प्रावधानों के अनुसार सभी त्रुटियों और चूक को ठीक करें और अधिकारों के रिकॉर्ड का वार्षिक रजिस्टर बनाए रखना और यदि त्रुटि या चूक के सुधार के लिए कोई आवेदन दिया जाता है, तो उस पर विचार किया जाएगा और उचित आदेश पारित किया जाएगा। आक्षेपित आदेशों से यह स्पष्ट हो गया है कि निचली दोनों अदालतों ने स्वामित्व के किसी भी प्रश्न से जुड़े विवाद का फैसला नहीं किया है। उन्होंने केवल प्रथम चकबंदी कार्रवाई के दौरान पारित आदेशों के अनुसार त्रुटियों और चूक को ठीक किया है। दूसरे समेकन ऑपरेशन में स्वामित्व का कोई प्रश्न निर्णय लेने के लिए शेष नहीं रहा।

15. यह उल्लेखनीय होगा कि आक्षेपित आदेश पारित करके, निचली अदालतें चकबंदी अदालतों के क्षेत्राधिकार में हस्तक्षेप नहीं कर रही थीं, जैसा कि चकबंदी कार्यवाही की समाप्ति के बाद किया गया था।यह राजस्व अधिकारियों का कर्तव्य था कि वे त्रुटियों को दूर करें और रिकॉर्ड-ऑफ-राइट को सही करें और सही रिकॉर्ड बनाए रखें। चकबंदी कार्यवाही के दौरान पारित चकबंदी न्यायालयों के आदेशों का अनुपालन करना भी उनका कर्तव्य था। बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी के आदेश को सही जगह दर्ज क्यों नहीं किया गया, इस पर भी चर्चा की गई है। प्रारंभ में याचिकाकर्ता सीओ और बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी के समक्ष मुकदमे में पक्षकार नहीं थे, इसलिए याचिकाकर्ता कैसे कह सकते हैं कि उनके पिता को नोटिस नहीं मिला था और उन्होंने चकबंदी अदालतों में मामला

नहीं लड़ा था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह इन्कार इन्कार के लिए है और बिना किसी ठोस कारण के सरासर इन्कार है। इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता है कि उनके पिता ने उत्तरदाताओं के पिता के साथ कार्यवाही/मुकदमेबाजी में भाग नहीं लिया था, इसलिए, इस तरह के इनकार की कोई कानूनी पवित्रता नहीं है और फ़ाइल के अस्तित्व से इनकार नहीं किया जा सकता है।

16. एक समय याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि राजस्व अधिकारियों को आक्षेपित आदेश पारित करने का कोई अधिकार नहीं था, क्योंकि दूसरी बार चकबंदी कार्यवाही चल रही थी, जब आक्षेपित आदेश पारित किए गए थे। दूसरी ओर उनका कहना है कि मुकदमे में संपत्ति *चक आउट* है, यदि याचिकाकर्ताओं के आरोप के अनुसार संपत्ति *चक* आउट है, तो यह चकबंदी अदालतों के दायरे और अधिकार क्षेत्र से बाहर हो जाती है। उस मामले में भी राजस्व अधिकारियों को एलआर अधिनियम की धारा 33/39 के तहत विवादित आदेश पारित करने का अधिकार था।

17. इससे पता चलता है कि चकबंदी कार्यवाही के दौरान साक्ष्य की सुनवाई का उचित अवसर देने के बाद दोनों आदेश पारित किए गए थे, याचिकाकर्ताओं के पिता का शीर्षक सही नहीं पाया गया था और मुकदमे में संपत्ति को उत्तरदाताओं के पिता के नाम पर दर्ज करने का आदेश दिया गया था। चकबंदी न्यायालय के आदेश को किसी भी सक्षम प्राधिकारी के समक्ष चुनौती नहीं दी गयी है। आदेश को अग्रेषित नहीं किया गया और भविष्य के रिकॉर्ड में दर्ज नहीं किया गया, इसलिए, यदि राजस्व प्राधिकरण चकबंदी अदालत के आदेश के अनुसार रिकॉर्ड को सही करने के लिए उपयुक्त पाया जाता है, तो इसमें कोई रोक नहीं है।

18. उप खंड अधिकारी ने अपने आदेश में बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी के दिनांक 10.11.1964 के आदेश का हवाला दिया है। जिसे याचिकाकर्ताओं के पिता जीयुत बंधन पुत्र हंसराज के नाम को खारिज करते हुए जोधी पुत्र चरित्तर के नाम पर *आराजी* नंबर 545-सी के संबंध में *अमलदरामद* के रूप में अंकित किया गया है।

19. प्रश्न उत्तर से स्पष्ट है कि बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी द्वारा निर्णय की गई फाइल को छांट दिया गया है जिससे यह स्पष्ट है कि दोनों पक्षों के बीच जोधी के पक्ष में निर्णय हुआ है। उप खंड अधिकारी ने यह भी उल्लेख किया है कि भूमि निरीक्षक की रिपोर्ट दिनांक 26.04.1987 के अनुसार ज्योधी की मृत्यु के बाद प्रतिवादी स्वर्गीय जोधी के पुत्र मुरली आदि का कब्जा है।

20. विद्वान उप खंड अधिकारी ने एक उद्धरण 1988 एडब्ल्यूसी पृष्ठ 77 का भी उल्लेख किया है, जिसमें यह माना गया है कि चकबंदी न्यायालय द्वारा पारित आदेश के आधार पर रिकॉर्ड के सुधार के लिए सीएच अधिनियम की धारा 33/39 के तहत एक आवेदन रखा जा सकता है। इस नजीर में यह भी माना गया है कि चकबंदी न्यायालय द्वारा पारित आदेश के आधार पर अभिलेखों में सुधार के संबंध में कोई समय सीमा नहीं है।

21. इस संबंध में उत्तरदाताओं के अधिवक्ता ने 1986 आर डी पृष्ठ 206 - 209 का भी हवाला दिया है, जिसमें यह भी माना गया है कि रिकॉर्ड में सुधार के लिए कोई समय सीमा नहीं है।

22. उप खंड अधिकारी के आदेश को आयुक्त वाराणसी मण्डल, वाराणसी के न्यायालय में चुनौती दी गयी, जिसमें पुनरीक्षण में उप खंड अधिकारी के आदेश की पुष्टि की गयी। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने कुछ न्यायिक उदाहरणों का हवाला दिया और तर्क दिया कि चूंकि संशोधनकर्ता का नाम गैर-हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर के रूप में दर्ज किया गया था, इसलिए, उनके नामों को केवल नियमित मुकदमे के माध्यम से चुनौती दी जा सकती है।

23. इसके विपरीत, न्यायिक उदाहरणों और उत्तरदाताओं के तर्कों के आधार पर यह तर्क दिया गया था कि आक्षेपित आदेश सीओ दिनांक 23.12.1962 और बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी दिनांक 10.11.1964 के आदेश के आधार पर पारित किए गए हैं। इसलिए आदेश तथ्यात्मक और कानूनी रूप से सही हैं और इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है और अधिकारों के रिकॉर्ड में त्रुटियों और चूक को ठीक करना कलेक्टर और तहसीलदार का कर्तव्य था।

24. इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि पार्टियों के पूर्ववर्तियों के बीच सही शीर्षक और हित का निर्णय पहले ही समेकन कार्यवाही के दौरान सी.ओ. और एस.ओ.सी. द्वारा किया जा चुका था, जो उत्तरदाताओं के पिता जोधी के पक्ष में समाप्त हुआ और इसे आकार पत्र11 (भाग द्वितीय) में शामिल किया गया। अपर्याप्त स्थान के कारण इसे संबंधित खाते में शामिल नहीं किया गया, जिससे संदेह पैदा हुआ और सीओ और बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी के आदेशों को अग्रेषित नहीं किया गया और सीएच फार्म नंबर 41 और 45 और बाद में खतौनी में दर्ज किया गया। इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला गया कि जीयुत बंधन के पक्ष में प्रविष्टियों का कोई आधार नहीं था और उसके बाद याचिकाकर्ताओं का नाम भी राजस्व रिकॉर्ड में गलत तरीके से दर्ज किया गया था, केवल आधारहीन और अवैध प्रविष्टियों के आधार पर, याचिकाकर्ताओं को कोई अधिकार नहीं मिलता है। इस प्रकार, निचली अदालतों का आदेश सही पाया गया है और इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। इसलिए, याचिका में योग्यता नहीं है और यह **खारिज** किए जाने योग्य है।

25. तदनुसार याचिका खारिज की जाती है।

(2023) 1 ILRA 300
मूल क्षेत्राधिकार
नागरिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 20.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

रिट-सी संख्या - 48244/1999

भोला ...याचिकाकर्ता
बनाम
यूपी राज्य और अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
वी.पी मिश्रा, अजीत कुमार बर्नवाल

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता:
सी.एस.सी.,घनश्याम यादव, पी.सी. श्रीवास्तव, एस.एन. श्रीवास्तव

(ए) भूमि विधि– यू.पी. जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 122-बी (4एफ), 229-बी, 129-बी(4बी) 132 और 339(बी) – भूमि प्रबंधन समिति और कलेक्टर की शक्तियां - धारा 122-बी (4-एफ) का लाभ प्राप्त करने के लिए वाद स्थापित करना आवश्यक नहीं है - यदि व्यक्ति धारा 122-बी के लाभ का हकदार है तो उसे भूमि के अहस्तांतरणीय अधिकार के साथ भूमिधर के रूप में भर्ती किया जाएगा। (पैरा-30)

वाद संपत्ति ग्राम पंचायत की है - धारा 132 यू.पी.जेड.ए और एल.आर. के तहत सार्वजनिक उपयोगिता भूमि नहीं– याचिकाकर्ता और प्रतिवादी संख्या 5 दोनों अनुसूचित जाति के व्यक्ति हैं – विवादित भूखंड के मालिक की पत्नी (कानूनी प्रतिनिधि) की मृत्यु के पश्चात– प्रश्नगत भूमि ग्राम सभा में निहित है – याचिकाकर्ता का निरंतर अधिग्रहण है - पुनरीक्षण – पुनरीक्षण न्यायालय ने मालिकाना हक का मुकदमा दायर करने का निर्देश दिया। (**पैरा-17)**

आयोजित:-लेखपाल से लेकर एस.डी.ओ. तक की राय थी कि वाद संपत्ति याचिकाकर्ता के कब्जे में है - जो अनुसूचित जाति का सदस्य है - निस्तारण के समय, वह उपधारा 4-एफ का लाभ लेने का हकदार था - तद्नुसार उपधारा 4-एफ का लाभ उन्हें प्रदान किया गया, अत: इसमें हस्तक्षेप करने का कोई अवसर नहीं था - पुनरीक्षण न्यायालय का आदेश उचित नहीं –निरस्त– एस.डी.ओ. के आदेश की पुष्टि की गई। (**पैरा 33,35,36,38)**

याचिका स्वीकृत। (ई-7)

उद्धृत वाद सूची:-

1. राज कुमार बनाम श्री एस.बी. तिवारी, एस.डी.एम. जी.बी.एन. 2014 (2) आरएलटी (डीओसी-71) 105
2. श्रीमती रेशमा देवी बनाम आयुक्त, गोरखपुर मण्डल, गोरखपुर, 2014 (2) आरएलटी 459
3. श्रीमती रमाकांति बनाम गांव सभा, 2013 (2)आरएलटी (बीआर) 114
4. मनोरे @ मनोहर बनाम बी.ओ.आर. (यू.पी.) एवं, 2003 0 सुप्रीम कोर्ट (एस.सी.) 396

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चन्द्र शर्मा द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के स्थायी अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

प्रतिवादी संख्या. 5 की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ।

यह रिट याचिका प्रतिवादी क्रमांक 2 द्वारा पुनरीक्षण संख्या 42/156 (राम मिलन बनाम भोला एवं अन्य) में पारित आदेश दिनांक 22.09.1999 (रिट याचिका का परिशिष्ट संख्या 4) के विरुद्ध दायर की गई है, जिसके द्वारा अपर आयुक्त (प्रशासन), बस्ती मण्डल, बस्ती ने एसडीएम, बांसी द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.12.1995 एवं 05.08.1997 को पुनरीक्षण की अनुमति देते हुए निरस्त कर दिया।

याचिकाकर्ता ने रिट याचिका में कहा है कि अली रज़ा का बेटा सलावा ग्राम बटवसिया, परगना बंसी पूरब, जिला सिद्धार्थ नगर में स्थित विवादित प्लॉट नंबर 78/1 क्षेत्रफल 0.2.1 और प्लॉट नंबर 84 क्षेत्रफल 0.10.0 का मालिक था। उनकी मृत्यु के बाद उनकी पत्नी को कानूनी प्रतिनिधि के रूप में दर्ज किया गया था। वह निःसंतान मर गईं इसलिए भूमि गाँव सभा में निहित कर दी गई।
याचिकाकर्ता पिछले 15 वर्षों से प्रश्नगत भूखंड पर लगातार कब्जे में था और उसके नाम को गैर-हस्तांतरणीय अधिकार के साथ भूमिधर के रूप में प्रतिस्थापित और परिवर्तित करने के लिए 15.12.1995 को सिफारिश की

गई थी। तहसीलदार ने उनके नाम की सिफारिश की जिसे एसडीओ, बांसी ने अपने अनुमोदन दिनांक 30.12.1995 द्वारा अनुमोदित किया था जो इस रिट याचिका के साथ अनुबंध-1 के रूप में संलग्न है। याचिकाकर्ता का नाम एसडीओ के दिनांक 06.04.1996 के आदेश के तहत हस्तांतरणीय अधिकार के साथ भूमिधर के रूप में संबंधित भूखंड पर दर्ज किया गया था, जो इस रिट याचिका के साथ अनुबंध-2 के रूप में संलग्न है। इसके बाद प्रतिवादी संख्या पांच राम मिलन द्वारा एसडीओ बांसी के समक्ष आपत्ति की गयी कि जमीन पर उनका कब्जा है और याची ने धोखाधड़ी कर अपना नाम दर्ज करा लिया है. याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 5 के आवेदन के खिलाफ आपत्ति दायर की और कहा कि याचिकाकर्ता अनुसूचित जाति का सदस्य था और वह 03.06.1995 से बहुत पहले से अपना कब्जा जारी रखे हुए है और उसका नाम यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 122-बी(4)(एफ) के तहत राजस्व अधिकारियों द्वारा सत्यापन के बाद दर्ज किया गया था।

एसडीओ ने प्रतिवादी संख्या 5 के आवेदन को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि उन्होंने स्वयं घटनास्थल का निरीक्षण किया था और याचिकाकर्ता का कब्जा पाया था और अपने निर्णय और आदेश दिनांक 05.08.1997 के तहत प्रतिवादी संख्या 5 के बहाली आवेदन को खारिज कर दिया, जो अनुबंध-3 के रूप में संलग्न है।

व्यथित होकर प्रतिवादी संख्या 5 ने प्रतिवादी संख्या 2 के समक्ष पुनरीक्षण दायर किया, जिसने अनुचित रूप से दिनांक 30.12.1995 और 05.08.1997 के आदेश को अपने निर्णय और आदेश दिनांक 22.09.1999 द्वारा रद्द कर दिया, जो रिट याचिका के साथ अनुबंध-4 के रूप में संलग्न है। पुनरीक्षण न्यायालय ने यह भी निर्देश दिया कि पक्षकार स्वामित्व का निर्णय सक्षम न्यायालय से कराएंगे जो पूरी तरह से अन्यायपूर्ण और अवैध है।

पुनरीक्षण न्यायालय की यह टिप्पणी कि गाँव सभा पक्ष नहीं थी, पूरी तरह से अवैध और अन्यायपूर्ण है और रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों के विरुद्ध है क्योंकि पुनरीक्षण न्यायालय से पहले गाँव सभा प्रतिवादी संख्या 2 थी। एसडीओ ने याचिकाकर्ता के पक्ष में सही आदेश पारित किया है, जिन्होंने स्वयं मौके का निरीक्षण किया था और याचिकाकर्ता को कब्जे में पाया था।

अत: पुनरीक्षण संख्या 42/106 में पारित अपर आयुक्त (प्रशासन), बस्ती मण्डल, बस्ती के आदेश/निर्णय दिनांक 22.09.1999 को निरस्त करने हेतु उत्प्रेषण प्रकृति की रिट, आदेश अथवा निर्देश जारी करने हेतु प्रार्थना की गई है। परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना जिसमें प्रतयर्थियों को यह आदेश दिया जाए कि वे याचिकाकर्ता को विचाराधीन भूखंड से बेदखल न करें।

याचिकाकर्ता ने इस याचिका में निम्नलिखित दस्तावेज संलग्न किए हैं: -

(i) अनुलग्नक संख्या 1, एसडीओ, बांसी द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.12.1995 की छायाप्रति, शपथ आयुक्त द्वारा प्रमाणित;

(ii) संलग्नक संख्या 2, खतौनी 1405 से 1410 तक शपथ आयुक्त द्वारा प्रमाणित;

(iii) अनुलग्नक संख्या 3, एसडीओ, बांसी द्वारा पारित आदेश दिनांक 05.08.1997, शपथ आयुक्त द्वारा प्रमाणित;

(iv) अपर आयुक्त (प्रशासन), बस्ती मण्डल, बस्ती द्वारा पारित परिशिष्ट संख्या 4, आदेश दिनांक 22.09.1999, शपथ आयुक्त द्वारा प्रमाणित।

प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया है जिसमें यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता का कभी भी प्रश्नगत भूमि पर कब्जा नहीं था, लेकिन जवाब देने वाले ने सलवन की मकुमा विधवा की मृत्यु के बाद कब्जा कर लिया, प्रश्नगत भूमि 18.01.1993 को गांव सभा में निहित थी और उस समय जवाब देने वाले प्रतिवादी का कब्जा था, लेकिन याचिकाकर्ता ने तहसील अधिकारियों की मिलीभगत से अपना नाम यूपी जेडए अधिनियम की धारा 122-बी(4)(5) के तहत भूमिधर के रूप में दर्ज कर लिया। याचिकाकर्ता खेतिहर मजदूर नहीं है बल्कि सैन्य सेवा से सेवानिवृत्ति के बाद शिक्षक के रूप में कार्यरत था इसलिए उसे धारा 122-बी(4)(एफ) का लाभ नहीं मिल सकता है। एस.डी.ओ. न तो कोई मौका निरीक्षण किया और न ही पार्टियों के कब्जे की जांच की और दिनांक 05.08.1997 के आदेश द्वारा अवैध रूप से बिना किसी सबूत के याचिकाकर्ता के कब्जे वाले प्रत्यर्थी के बहाली आवेदन को खारिज कर दिया।

दिनांक 22.09.1999 का आदेश बिल्कुल न्यायसंगत है जिससे किसी के साथ कोई कठोर व्यवहार या पक्षपात नहीं हुआ। विद्वान न्यायालय ने पक्षों को सक्षम न्यायालय के

माध्यम से अपना स्वामित्व घोषित करने की सलाह देकर दिनांक 30.12.1995 के आदेश को सही ढंग से अपास्त कर दिया।

दिनांक 30.12.1995 को आदेश पारित करने से पहले गाँव सभा को नहीं सुना गया और सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया। उत्तर देने वाले प्रतिवादी ने यूपी जेडए और एलआर अधिनियम की धारा 229-बी के तहत मुकदमा दायर किया लेकिन कार्यवाही नहीं की इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 08.12.1999 के अंतरिम आदेश के कारण इस पर रोक लगा दी गई है, जिसे हटाया जाना चाहिए। आक्षेपित आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है इसलिए रिट याचिका को जुर्माने सहित खारिज किया जाए।

अनुविभागीय अधिकारी, बांसी द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.08.2002 की शपथ आयुक्त द्वारा प्रमाणित छायाप्रति संलग्न की गयी है।

याचिकाकर्ता ने प्रत्युत्तर शपथपत्र दायर कर प्रत्युत्तर शपथपत्र में दिए गए लगभग सभी दावों को खारिज कर दिया है और कहा है कि प्रतिवादी नंबर 5 को संबंधित संपत्ति से कोई सरोकार नहीं है। दिनांक 15.12.1995 की अनुशंसा के समय याचिकाकर्ता अनुसूचित जाति का सदस्य था और यूपी जेडए और एलआर अधिनियम की धारा 122-बी(4बी) के तहत आवश्यक मानदंडों को पूरा कर रहा था। याचिकाकर्ता को बाद में फरवरी, 1997 में शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया, जिसका पहले की गई सिफारिश पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। प्रतिवादी संख्या 2 ने एसडीओ की अदालत के समक्ष दिनांक 22.09.1999 को पारित आदेश पारित करते समय घोर अवैधता की है, जिसमें गाँव सभा एक पक्ष थी और उसे दिनांक 30.12.1995 को आदेश पारित करने से पहले सुनवाई का अवसर प्रदान किया गया था। दिनांक 22.09.1999 का आक्षेपित आदेश अवैध और अनुचित है और रिट याचिका की अनुमति देकर इसे रद्द किया जा सकता है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया। प्रतिवादी संख्या 5 की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ। फ़ाइल का अवलोकन किया गया।

माना जाता है कि मुकदमे में संपत्ति ग्राम पंचायत की है और यह धारा 132 यू.पी.जेड.ए और एल.आर. के तहत भूमि नहीं है। सार्वजनिक उपयोगिता भूमि के रूप में कार्य करें। यह भी स्वीकार किया गया है कि याचिकाकर्ता और प्रतिवादी नं. 5 दोनों अनुसूचित जाति से हैं. यह भी स्वीकार किया गया है कि श्रीमती मकुना पत्नी सलवन की मृत्यु के बाद प्रश्नाधीन भूमि 18.01.1993 को ग्राम सभा में निहित कर दी गई थी।

प्रतिवादी संख्या 5 के अनुसार, वह जमीन उसके कब्ज़ा में थी, जबकि याचिकाकर्ता के अनुसार श्रीमती मकुना की मृत्यु के बाद, वह वाद में उक्त संपत्ति पर कब्जे में आ गया और उसके कब्जे पर विचार करते हुए मुकदमे में संपत्ति को 15.12.1995 को अनुसूचित जाति का सदस्य बनाने की सिफारिश की गई। चूँकि वह धारा 122-बी (4-बी) के तहत आवश्यक मानदंडों को पूरा कर रहा था, इसलिए भूमि का निपटान उसके साथ कर दिया गया। तहसीलदार ने उनके नाम की सिफारिश की है और एस.डी.ओ. ने उनके नाम को 30.12.1995 को मंजूरी दे दी है, जो अनुबंध संख्या 1 से स्पष्ट है। बाद में वह संबंधित एस.डी.ओ. के आदेश दिनांक 06.04.1996 के तहत मुकदमे में संपत्ति के भूमिधर बन गए। ये तथ्य परिशिष्ट संख्या 1 एवं 2 से स्पष्ट रूप से स्थापित होते हैं।

याचिकाकर्ता के अनुसार और रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य के अनुसार जब उसका नाम दर्ज किया गया था तो प्रतिवादी नं. 5- राम मिलन सामने आये और एस.डी.ओ के समक्ष आपत्ति दर्ज करायी कि उनका कब्जा है और वे भी अनुसूचित जाति के सदस्य हैं। याची ने धोखाधड़ी करके अपना नाम दर्ज कराया है। उनके मुताबिक पंद्रह साल से ज्यादा समय से उनका कब्जा था. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद एस.डी.ओ. बंसी ने आपत्ति खारिज कर दी जबकि प्रतिवादी संख्या 5, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि मुकदमे में संपत्ति श्रीमती मकुमा की मृत्यु के बाद 18.03.1993 को पहली बार ग्राम सभा में निहित की गई थी, इसलिए प्रतिवादी संख्या 5 के लिए यह संभव नहीं था कि वह आपत्ति दाखिल करने के समय लगभग पंद्रह वर्षों तक पूर्व कब्ज़ा होना चाहिए। यह देखा गया कि जब याचिकाकर्ता का नाम राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज किया गया था, उसके बाद ही प्रतिवादी नं. 5 ने आपत्ति उठाई है, हालाँकि, प्रतिवादी नं. 5 ने तहसीलदार, अधिकारियों और अधिकारियों पर आरोप लगाया था कि वस्तुतः उसका कब्जा उसके पास था, वह लेखपाल को 5,000/- रुपये का भुगतान करने में असमर्थ था, इसलिए लेखपाल ने उसके पक्ष में कोई रिपोर्ट नहीं बनाई। इसका कोई प्रमाण नहीं है. सात व्यक्तियों के हलफनामे को छोड़कर कब्जे के संबंध में किसी भी तस्वीर या किसी अन्य दस्तावेज पर प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा भरोसा नहीं किया गया है।

प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा एक और आपत्ति ली गई थी कि याचिकाकर्ता - भोला एक पूर्व सैनिक था, वह सरकारी शिक्षक था, इसलिए धारा 122-बी (4-एफ) के तहत मुकदमे में संपत्ति का निपटान उसके साथ नहीं किया जा सकता था। इस संबंध में एस.डी.ओ. द्वारा तथ्य की जांच की गई और यह पाया गया कि मुकदमे में संपत्ति का निपटान याचिकाकर्ता के साथ वर्ष 1995 में किया गया था, जबकि याचिकाकर्ता फरवरी, 1997 के महीने में शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था, इसलिए समझौते के समय याचिकाकर्ता के पास जो जमीन है, उसमें याचिकाकर्ता सरकारी सेवा में नहीं था लेकिन वह अनुसूचित जाति का सदस्य अवश्य था। अत: यह आपत्ति भी निरर्थक है।

एक अन्य तथ्य यह भी सामने आया है कि याची की पत्नी संबंधित ब्लॉक की ब्लॉक प्रमुख थी।

इस न्यायालय के अनुसार कानून की नजर में पत्नी और पति का अस्तित्व अलग और अलग है और यदि कोई व्यक्ति कानून के तहत किसी लाभ का हकदार है तो उसे अपनी पत्नी की स्थिति के कारण लाभ से वंचित नहीं किया जा सकता है।

एसडीओ के आदेश में एक अन्य तथ्य का भी जिक्र किया गया है कि उन्होंने स्वयं मौके का दौरा किया और पाया कि ग्रामीणों की उपस्थिति में याचिकाकर्ता का कब्जा था और किसी भी ग्रामीण ने यह नहीं कहा था कि प्रतिवादी नं. 5- वाद में संपत्ति पर राम मिलन का कब्जा है।

दूसरा सवाल एस.डी.ओ. बांसी, सिद्धार्थनगर द्वारा किये गये स्थल निरीक्षण से संबंधित तथ्य सामने आने को लेकर खड़ा हुआ।

पुनरीक्षण न्यायालय ने हस्तक्षेप करते हुए राय दी कि पुनरीक्षण के निर्णय के बाद भी पक्षकारों को धारा 122-बी (4-एफ) का लाभ लेने के लिए घोषणा हेतु वाद दायर करना चाहिए। प्रतिवादी नं. 5 ने यू.पी.ज़ेड.ए और एल.आर. की धारा 339 (बी) के तहत मुकदमा कायम किया है।

हालाँकि इस न्यायालय द्वारा पारित स्थगन आदेश के कारण धारा 229-बी के तहत मामले की कार्यवाही रोक दी गई है और स्थगित है।

धारा 122-बी(4एफ) इस प्रकार है:

"**122-बी. भूमि प्रबंधन समिति एवं कलेक्टर की शक्तियाँ।**—

(4एफ). उपरोक्त उपधाराओं में किसी भी बात के बावजूद, जहां अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित कोई खेतिहर मजदूर धारा 117 के तहत गांव सभा में निहित किसी भी भूमि पर कब्जा कर रहा है (धारा 132 में उल्लिखित भूमि नहीं है) और 13 मई 2007 से पहले उस पर कब्जा कर लिया है, और इस प्रकार कब्ज़ा की गई भूमि के साथ-साथ भूमि, यदि कोई हो, तो वह उसके भुमिधर के कथित दिनांक के पहले से उसके पास थी। सिरदार या आसामी के पास 1.26 हेक्टेयर (3.125 एकड़) से अधिक भूमि नहीं होनी चाहिए है, तो ऐसे मजदूर के खिलाफ भूमि प्रबंधन समिति या कलेक्टर द्वारा इस धारा के तहत कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी, और उसे अहस्तांतरणीय के साथ भूमिधर के रूप में स्वीकार किया जाएगा। धारा 195 के तहत उस भूमि के हस्तांतरणीय अधिकार और उस भूमि में अहस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर के रूप में अपने अधिकारों की घोषणा के लिए मुकदमा दायर करना आवश्यक नहीं होगा।

स्पष्टीकरण.- अभिव्यक्ति "कृषि मजदूर" का वही अर्थ होगा जो धारा 198 में दिया गया है।"

इस संबंध में निम्नलिखित प्रासंगिक उद्धरण नीचे उल्लिखित हैं:

में**राज कुमार बनाम श्री एस.बी. तिवारी, एस.डी.एम. गौतम बुद्ध नगर, 2014 (2) आरएलटी (डीओसी-71) 105**सवाल यह था कि क्या यूपी की धारा 122- बी (4-एफ) के लाभ के लिए, जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 229-बी के तहत मुकदमा दायर करना आवश्यक है। यह माना गया कि अधिनियम, 1950 की धारा 122-बी (4-एफ) के लाभ का दावा करने के लिए धारा 229-बी के तहत मुकदमा दायर करना आवश्यक नहीं है। धारा 122 का लाभ देने के आदेश को रद्द करते हुए आक्षेपित आदेश अधिनियम के -बी (4-एफ) को अस्थिर पाया गया।

श्रीमती रेशमा देवी बनाम आयुक्त, गोरखपुर मण्डल, गोरखपुर, 2014 (2) आरएलटी 459के वाद में सवाल यह था कि क्या यूपी का लाभ पाने के लिए घोषणा पत्र दाखिल करना जरूरी है? जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 धारा 122-बी (4-एफ)। यह माना गया कि धारा 122-बी (4-एफ) का लाभ प्राप्त करने के

लिए सूट चार की घोषणा करना आवश्यक नहीं है। यदि व्यक्ति धारा 122-बी के लाभ का हकदार है तो उसे भूमि के अहस्तांतरणीय अधिकार के साथ भूमिधर के रूप में स्वीकार किया जाएगा। इस मुद्दे का निर्णय निचली अदालत द्वारा नहीं किया गया था।

में श्री मति रेशमा देवी बनाम अयुक्त गोरखपुर खण्ड, गोरखपुर 2013 (2) RLT (BR) 114 **में विचारण न्यायालय** ने तहसीलदार द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर धारा 122-बी(4एफ) का लाभ देने का आदेश पारित किया। अपील अपीलीय न्यायालय के समक्ष दायर की गई थी। अपीलीय अदालत ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द कर दिया। अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश पोषणीय नहीं है क्योंकि यह रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य के विरुद्ध है। अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को बहाल कर दिया गया।

उपधारा 4-एफ की अंतिम पंक्ति में यह भी उल्लेख किया गया है कि "उस भूमि में अहस्तांतरणीय अधिकार के साथ भूमिधर के रूप में अपने अधिकार की घोषणा के लिए मुकदमा दायर करना उसके लिए आवश्यक नहीं होगा" जाहिर है, का आदेश पुनरीक्षण न्यायालय उपधारा 4-एफ के अनुरूप नहीं है।

तथ्यों एवं परिस्थितियों में जब लेखपाल से लेकर एस.डी.ओ. तक की राय थी कि मुकदमे में संपत्ति याची के कब्जे में है, जो अनुसूचित जाति का सदस्य है और समझौते के समय वह इसका लाभ लेने का हकदार था। उपधारा 4-एफ और तदनुसार उपधारा 4-एफ का लाभ उसे प्रदान किया गया, इसलिए इसमें हस्तक्षेप करने का कोई अवसर नहीं था।

मनोरे @ मनोहर बनाम राजस्व परिषद (यू.पी.) एवं 2003 0 **सुप्रीम कोर्ट (एस.सी.)** 396 के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने भी इस पहलू पर विचार किया है,जिसमें पैरा संख्या 3, 9, 10, 11 और 12 महत्वपूर्ण हैं, जिसमें शीर्ष न्यायालय ने कहा है कि:-

> "राजस्व बोर्ड और उच्च न्यायालय के आदेशों के अनुसार, यूपी की धारा 122 बी (4 एफ) के तहत अधिकार की मान्यता की मांग करने वाले एक आवेदन की स्थिरता जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (इसके बाद 'अधिनियम' के रूप में संदर्भित) के तहत वह मुद्दा है जो बोर्ड और उच्च न्यायालय के समक्ष बड़ा है। हमारा विचार है कि अपीलकर्ता, जो एक अनुसूचित जाति का खेतिहर मजदूर है, को राहत देने से इनकार करना और उसे उपचार के बिना छोड़ दिए जाने की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में डाल देना न्याय का मखौल होगा, जबकि उसके पास भूमि के कब्जे और उपभोग को जारी रखने का वैधानिक अधिकार है। ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता के अधिकारों और उपायों के बारे में एक संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाया है, जिससे उसे अपने अधिकारों की रक्षा के लिए मुकदमेबाजी का कठिन रास्ता अपनाने के लिए छोड़ दिया गया है।
>
> इस प्रकार, धारा 122बी की उप-धारा (4एफ) न केवल उच्च न्यायालय द्वारा दी गई राय के अनुसार कब्जे की रक्षा के लिए एक ढाल प्रदान करती है, बल्कि यह उस उपधारा में निर्धारित मानदंडों को पूरा करने वाले भूमि के रहने वाले पर भूमिधर का सकारात्मक अधिकार भी प्रदान करती है। उस स्पष्ट भाषा के बावजूद जिसमें विचारणीय प्रावधान निहित है और कानून का सुधारात्मक उद्देश्य है, उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने रामदीन बनाम राजस्व बोर्ड (उपरोक्त) (तत्काल मामले में उसी विद्वान न्यायाधीश द्वारा अनुसरण किया गया)में यह दृष्टिकोण अपनाया था। कि उप-धारा (4एफ) द्वारा विचार किए गए रहने वाले के भूमिधारी अधिकार केवल तभी विकसित हो सकते हैं जब धारा 198के तहत भूमि प्रबंधन समिति द्वारा एक विशिष्ट आवंटन आदेश हो। उच्च न्यायालय के अनुसार, उप-धारा (4एफ) में निहित डीमिंग प्रावधान को विशेष रूप से भूमिधर के अधिकार के निर्माण से संबंधित अधिनियम में अन्य प्रावधानों को खत्म करने के लिए अतिरंजित नहीं किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, उच्च न्यायालय का विचार यह था कि उप-धारा (4एफ) में निहित लाभकारी प्रावधान के अंतर्गत आने वाले व्यक्ति को अभी भी धारा 198 के तहत आवंटन की प्रक्रिया से गुजरना होगा, भले ही वह बेदखली के लिए उत्तरदायी नहीं है। इस दृष्टिकोण के परिणाम के रूप में, यह माना गया कि कब्जाधारी राजस्व रिकॉर्ड में सुधार की मांग करने का हकदार नहीं है, भले ही उसका मामला उप-धारा 122बी की धारा (4एफ) के अंतर्गत आता हो। हमारा मानना है कि उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से अस्थिर है। यह एक निश्चित सामाजिक उद्देश्य से लागू किए गए मानद प्रावधान के प्रभाव की अनदेखी करने के समान है। जब एक बार डीमिंग प्रावधान धारा 195 के तहत गैर-हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर के

रूप में प्रावधान में निर्धारित अपेक्षित मानदंडों को पूरा करने वाले व्यक्ति के प्रवेश के लिए स्पष्ट रूप से प्रदान करता है, तो इसे पूर्ण प्रभाव दिया जाना चाहिए। धारा 195 में कहा गया है कि भूमि प्रबंधन समिति, उप प्रभाग के प्रभारी सहायक कलेक्टर की पूर्व मंजूरी के साथ, किसी भी खाली भूमि (भूमि के अलावा) पर गैर-हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ किसी भी व्यक्ति को भूमिधर के रूप में स्वीकार करने का अधिकार होगा (धारा 132 के अंतर्गत आने वाला के अन्यथा) गाँव सभा में निहित है। धारा 198 "धारा 195 और 197 के तहत व्यक्तियों को भूमि पर प्रवेश देने में वरीयता क्रम" निर्धारित करती है। धारा 122बी की उप-धारा (4एफ) का अंतिम भाग वैधानिक रूप से भूमि के पात्र कब्जेदार पर गैर-हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर की स्थिति प्रदान करता है जैसे कि उसे धारा 195 के तहत इस रूप में स्वीकार किया गया हो। सार और प्रभाव में डीमिंग प्रावधान घोषित करता है कि वैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त भूमिधर को अन्य प्रावधानों के साथ पढ़ी जाने वाली धारा 195 के तहत भूमिधरी अधिकारों में भर्ती व्यक्ति के समान ही अच्छा होना चाहिए। एक तरह से, उप-धारा (4एफ) विशेष रूप से उस उपधारा के सुरक्षात्मक दायरे में आने वाले व्यक्ति को समान लाभ प्रदान करके धारा 195 को पूरक बनाती है। धारा 198 के साथ पठित धारा 195 के तहत गांव सभा से संपर्क करने की आवश्यकता उपधारा (4एफ) में निहित डीमिंग प्रावधान द्वारा समाप्त हो गई है। हमें डीमिंग प्रावधान के दायरे को सीमित करने का कोई वारंट नहीं मिला।

कानूनी स्थिति होने के कारण, राजस्व रिकॉर्ड में आवश्यक परिवर्तन करने के लिए उपधारा (4एफ) के सभी प्रावधानों के भीतर आने वाले पात्र व्यक्ति द्वारा किए गए आवेदन के खिलाफ कोई रोक नहीं है। जब एक बार आवेदक का दावा स्वीकार कर लिया जाता है, तो संबंधित राजस्व अधिकारियों का यह अनिवार्य कर्तव्य है कि वे राजस्व रिकॉर्ड में आवश्यक प्रविष्टियाँ करें ताकि इसे वैधानिक आदेश बनाया जा सके। ऐसा करने का दायित्व उप-धारा (4एफ) के दायरे में आने वाले व्यक्ति में निहित वैधानिक अधिकार के कारण आवश्यक निहितार्थ से उत्पन्न होता है। अधिनियम के तहत आवेदन करने के लिए विशिष्ट प्रावधान की कमी के कारण आवेदन को रखरखाव योग्य नहीं मानकर खारिज करने का कोई आधार नहीं है। राजस्व रिकॉर्ड स्वाभाविक रूप से वैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त अधिकारों के अनुरूप होने चाहिए। इसलिए उप-विभागीय अधिकारी को आवेदन की अनुमति देने और रिकॉर्ड में सुधार का निर्देश देने का अधिकार था। राजस्व मंडल और हाईकोर्ट को उस आदेश को रद्द नहीं करना चाहिए था। तथ्य यह है कि गांव सभा की भूमि प्रबंधन समिति ने प्रत्यर्थियों के पक्ष में लीज होल्ड अधिकार बनाए थे, इसका कोई मतलब नहीं है। अपीलकर्ता के वैधानिक अधिकार के सामने ऐसा पट्टा कानून की नजर में अमान्य है और इसे नजरअंदाज किया जा सकता है।

आश्चर्य की बात है कि उ.प्र. गाँव सभा के साथ मिलकर, एस.डी.ओ. के आदेश के खिलाफ अपील दायर करने का विकल्प चुना था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह राज्य के संबंधित अधिकारियों की ओर से दिमाग का उपयोग न करने का एक स्पष्ट मामला है, जिनसे कानून के सामाजिक-आर्थिक उद्देश्य को पूरा करने की अपेक्षा की जाती है।

अपील स्वीकार की जाती है. राजस्व मंडल और हाई कोर्ट के आदेशों को खारिज किया जाता है एवं एस.डी.ओ. का आदेश बहाल किया जाता है। कोई लागत नहीं।"

उपरोक्त निर्णयों में दिए गए सिद्धांत इस मामले में पूरी तरह से सत्य हैं और इसे ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय की राय है कि पुनरीक्षण न्यायालय का निर्णय सही नहीं है।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर, इस न्यायालय का मानना है कि पुनरीक्षण न्यायालय का आदेश न्यायोचित नहीं है और रद्द किये जाने योग्य है तथा पुनरीक्षण की अनुमति दिये जाने योग्य है।

तदनुसार, यह पुनरीक्षण को अनुमति दी जाती है।

पुनरीक्षण न्यायालय का आदेश दिनांक 22.09.1999 जो इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 4 के रूप में संलग्न है, को रद्द किया जाता है और एस.डी.ओ. के दिनांक 30.12.1995 और 05.08.1997 के आदेश को बहाल किया जाता है।

आदेश की प्रमाणित प्रति एस.डी.ओ. बांसी, जनपद सिद्धार्थनगर को आवश्यक अनुपालन हेतु भेजी जाये। ।

(2023) 1 ILRA 308

मूल क्षेत्राधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

रिट - सी संख्या- 49973 वर्ष 2005

रमेश चंद्र यादव .. याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा विशेष सचिव, और अन्य ... प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
देवेन्द्र कुमार

प्रतिवादी के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता

(ए) सिविल कानून - शस्त्र अधिनियम 1961 - धारा 17 - लाइसेंस में परिवर्तन, निलंबन और निरस्तीकरण - केवल आपराधिक मामले का लंबित होना आग्नेयास्त्र लाइसेंस को निरस्त करने का कोई आधार नहीं है - केवल एक आपराधिक मामले में शामिल होने से सार्वजनिक सुरक्षा या सार्वजनिक हित प्रभावित नहीं हो सकती है - हथियार रखने का अधिकार वैधानिक अधिकार है, लेकिन जीने और स्वतंत्रता का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकार है - हथियार लाइसेंस को यांत्रिक तरीके से, बिना सोचे समझे और शस्त्र अधिनियम की धारा 17 का अक्षरशः और मूल भाव को ध्यान में रखते हुए नियमित तरीके से निलंबित नहीं किया जाना चाहिए। (पैरा 16,17,18)

शस्त्र लाइसेंस और रिवॉल्वर को सक्षम न्यायालय के समक्ष समर्पण नहीं किया गया, दोनों संपत्तियां अभी भी याचिकाकर्ता के कब्जे में हैं - परमादेश– याचिकाकर्ता को किसी के समक्ष शस्त्र लाइसेंस और रिवॉल्वर जमा करने के लिए बाध्य नहीं करने का आदेश - याचिकाकर्ता के विरुद्ध तीन वाद - कोई वाद स्थापित नहीं हुआ - याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई विचरण प्रारंभ नहीं हुआ - जिला मजिस्ट्रेट और आयुक्त द्वारा आशंका – याचिकाकर्ता आग्नेयास्त्र का दुरुपयोग करके सार्वजनिक शांति और शांति भंग कर सकते हैं –धारा 17 का आधार नहीं है - यह साबित करने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि याचिकाकर्ता किसी आपराधिक गतिविधि में सम्मिलित है। **(पैरा-3,5,15)**

आयोजित:-याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई आपराधिक वाद लंबित नहीं है जिसके आधार पर शस्त्र लाइसेंस समाप्त किया जा सकता था। जिला मजिस्ट्रेट और आयुक्त द्वारा याचिकाकर्ता के हथियार लाइसेंस को निरस्त करने के आदेश को अपास्त किया जाता है। **(पैरा-23)**

याचिका स्वीकृत। (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. राम प्रसाद बनाम कमिश्नर एवं अन्य, 2020 0 सुप्रीम (सभी) 104
2. मसीउद्दीन बनाम कमिश्नर, ऑल. डिवीजन, एल्ड. एवं अन्य, 1972, ए.एल.जे. 573
3. हबीब बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2002 (44) एसीसी 783
4. सतीश सिंह बनाम डी.एम., सुल्तानपुर, 2009 (4) एडीजे (एलबी)
5. चन्द्रबली तिवारी बनाम कमिश्नर, फैजाबाद, 2014 (32) एलसीडी 1696
6. इन्द्रजीत सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2019 की रिट सी संख्या 4947

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य-प्रतिवादियों के विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता को सुना। रिकार्ड का अवलोकन किया।

वर्तमान याचिका निम्नलिखित प्रार्थना के साथ दायर की गई है:

"(क) प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.2.2004 (संलग्नक संख्या 1) और प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित आदेश दिनांक 26.4.2005 (संलग्नक संख्या 3) को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

(ख) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें प्रतिवादियों को निर्देश दिया

जाए कि वे याचिकाकर्ता को शस्त्र लाइसेंस संख्या 1316 और रिवॉल्वर किसी के भी समक्ष जमा करने के लिए मजबूर न करें।"

याचिका और याचिका के साथ संलग्न दस्तावेजों के अनुसार, याचिकाकर्ता के खिलाफ निम्नलिखित मामले लंबित थे:

(क) मुकदमा अपराध संख्या 16 वर्ष 2000, अंतर्गत धारा 323, 307 भा.दं.सं. ,थाना सिविल लाइन्स इटावा के तहत, जिसमें जांच अधिकारी ने 14.3.2000 को अंतिम रिपोर्ट संख्या 265 वर्ष 2001 प्रस्तुत की है, जिसे विचारण न्यायालय ने 2.6.2005 को स्वीकार कर लिया।

(ख) मुकदमा अपराध संख्या 442 वर्ष 1999, अंतर्गत धारा ¾ गुंडा एक्ट, थाना-सिविल लाइन्स, इटावा जिसमें पुलिस द्वारा प्रतिवादी संख्या 2 को एक रिपोर्ट भेजी गई थी, लेकिन उसने सभी कागजात दिनांक 8.9.1999 को संबंधित थाना प्रभारी को वापस कर दिए थे, और इस संबंध में प्रश्न-उत्तर दिनांक 27.5.2005 (संलग्नक संख्या 4) जिसमें कहा गया है कि न तो मामला लंबित है और न ही चालानी रिपोर्ट प्राप्त हुई है।

(ग) मुकदमा अपराध संख्या 167 वर्ष 1999, अंतर्गत धारा 323, 504 व 506 भा.दं.सं., थाना उसराहार, जिला-इटावा - इस मामले में पुलिस ने केवल धारा 504 भा.दं.सं. के लिए आरोप पत्र प्रस्तुत किया और विचारण न्यायालय ने 27.4.2005 को अंतिम आदेश पारित किया और याचिकाकर्ता को आरोपमुक्त कर दिया। (रिट याचिका का संलग्नक संख्या 6)

याचिकाकर्ता के अनुसार शस्त्र लाइसेंस और रिवॉल्वर को सक्षम न्यायालय के समक्ष समर्पित नहीं किया गया है और दोनों संपत्तियां अभी भी याचिकाकर्ता के कब्जे में हैं। लाइसेंस दिनांक 31.12.2006 तक वैध था। प्रतिवादी व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर देने के लिए बाध्य थे और यदि उन्होंने सुनवाई का अवसर प्रदान किया होता, तो उन्होंने ऐसा आदेश पारित नहीं किया होता। याचिकाकर्ता के शत्रु व्यक्तियों की मिलीभगत से पुलिस द्वारा भेजी गई झूठी और मनगढ़ंत रिपोर्ट के आधार पर आदेश पारित किए गए हैं। इसलिए विवादित आदेश लागत सहित रद्द किये जाने योग्य हैं।

उपरोक्त आधार पर याचिकाकर्ता ने परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करने की प्रार्थना की है, जिसमें प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाए कि वे याचिकाकर्ता को किसी के भी समक्ष शस्त्र लाइसेंस संख्या 1316 और रिवॉल्वर जमा करने के लिए मजबूर न करें।

याचिका के विरुद्ध कोई जवाबी हलफनामा दायर नहीं किया गया है और न ही प्रतिवादियों द्वारा विद्वान स्थायी अधिवक्ता को मामले पर बहस करने में सक्षम बनाने के लिए निर्देश भेजे गए हैं। इसलिए रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करने के बाद यह आदेश पारित किया जा रहा है।

पत्रावली के अवलोकन से ज्ञात होता है कि मुकदमा अपराध संख्या 16 वर्ष 2000, अंतर्गत धारा 323, 307 भा.दं.सं., थाना सिविल लाइन्स, इटावा में अन्तिम रिपोर्ट संख्या 265 वर्ष 2001 को विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 2.6.2005 को स्वीकार कर लिया गया है।

मुकदमा अपराध संख्या 442 वर्ष 1999 अंतर्गत धारा ¾ गुण्डा एक्ट, थाना-सिविल लाइन्स, इटावा, प्रश्नोत्तरी दिनांक 27.5.2005 से पता चलता है कि गुण्डा एक्ट के सम्बन्ध में कोई भी चालानी रिपोर्ट जिलाधिकारी, इटावा को नहीं भेजी गयी है।

जहां तक भा.दं.सं. की धारा 323, 504 और 506 के तहत मुकदमा अपराध संख्या १६७ वर्ष 1999 का सवाल है, आरोप पत्र केवल भा.दं.सं. की धारा 504 के तहत पेश किया गया था, जिसमें से याचिकाकर्ता को बरी कर दिया गया है, जैसा कि संलग्नक संख्या 6 के अवलोकन से स्पष्ट है।

मामले को अभिलेख न्यायालयों द्वारा इस बिंदु पर तय किए गए मामलों के दृष्टिगत देखना उचित होगा। इसलिए सही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कुछ प्रासंगिक मामलों को संदर्भित किया गया है और चर्चा की गयी है।

राम प्रसाद बनाम आयुक्त एवं अन्य 2020 0 सुप्रीम (सभी) 104 में जिलाधिकारी ने याचिकाकर्ता के खिलाफ आपराधिक मामलों की लंबितता के आधार पर हथियार लाइसेंस रद्द कर दिया। याचिकाकर्ता को बाद में आपराधिक मामलों से बरी कर दिया गया। बरी करने के आदेश में याचिकाकर्ता के आग्नेयास्त्र का उपयोग नहीं दिखाया गया था। यह माना गया कि बरी होने के बाद रद्द करने के आदेश का आधार ही गायब हो गया और आक्षेपित आदेशों में केवल यह आशंका व्यक्त की गई कि याचिकाकर्ता आग्नेयास्त्र का दुरुपयोग करेगा और समाज के कमजोर वर्ग के लोगों के लिए खतरा पैदा करेगा, शस्त्र लाइसेंस रद्द नहीं किया जा सकता है।

शस्त्र अधिनियम की धारा 17 इस प्रकार है:

17. लाइसेंस में परिवर्तन, निलंबन और निरस्तीकरण--

(1) लाइसेंसिंग प्राधिकारी उन शर्तों को बदल सकता है जिनके अधीन लाइसेंस प्रदान किया गया है, सिवाय उन शर्तों के जो निर्धारित की गई हैं और उस प्रयोजन के लिए, लाइसेंस-धारक को लिखित नोटिस द्वारा नोटिस में निर्दिष्ट समय के भीतर लाइसेंस सौंपने की आवश्यकता है।

(2) लाइसेंसिंग प्राधिकारी, लाइसेंस धारक के आवेदन पर, लाइसेंस की शर्तों में बदलाव भी कर सकता है, सिवाय उन शर्तों के जो निर्धारित की गई हैं।

(3) लाइसेंसिंग प्राधिकारी लिखित आदेश द्वारा किसी लाइसेंस को ऐसी अवधि के लिए निलंबित कर सकता है जो वह उचित समझे या लाइसेंस रद्द कर सकता है।

(क) यदि लाइसेंसिंग प्राधिकारी संतुष्ट है कि लाइसेंस धारक को इस अधिनियम या उस समय लागू किसी अन्य कानून द्वारा किसी भी हथियार या गोला-बारूद को प्राप्त करने, अपने कब्जे में रखने या ले जाने से प्रतिबंधित किया गया है, या वह मन से अस्वस्थ है या किसी भी कारण से इस अधिनियम के तहत लाइसेंस के लिए अयोग्य है; या

(ख) यदि लाइसेंसिंग प्राधिकारी सार्वजनिक शांति की सुरक्षा के लिए या सार्वजनिक सुरक्षा के लिए लाइसेंस को निलंबित या रद्द करना आवश्यक समझता है; या
(ग) यदि लाइसेंस महत्वपूर्ण जानकारी को छिपाकर या लाइसेंस धारक या उसके लिए आवेदन करते समय उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रदान की गई गलत जानकारी के आधार पर प्राप्त किया गया था; या

(घ) यदि लाइसेंस की किसी भी शर्त का उल्लंघन किया गया है; या

(ङ) यदि लाइसेंस धारक उप-धारा (1) के तहत लाइसेंस सौंपने की आवश्यकता वाले नोटिस का पालन करने में विफल रहा है।

(4) लाइसेंसिंग प्राधिकारी उसके धारक के आवेदन पर लाइसेंस रद्द भी कर सकता है।

(5) जहां लाइसेंसिंग प्राधिकारी उप-धारा (1) के तहत लाइसेंस को बदलने का आदेश देता है या उप-धारा (3) के तहत लाइसेंस को निलंबित या रद्द करने का आदेश देता है, वह लिखित रूप में इसके कारणों को रिकॉर्ड करेगा और उसे मांगे जाने पर उसका संक्षिप्त विवरण धारक को प्रस्तुत करेगा, जब तक कि किसी भी मामले में लाइसेंसिंग प्राधिकारी की यह राय न हो कि ऐसा विवरण प्रदान करना सार्वजनिक हित में नहीं होगा।

(6) वह प्राधिकारी जिसके अधीनस्थ लाइसेंसिंग प्राधिकारी है, लिखित आदेश द्वारा किसी भी आधार पर, जिस पर कि लाइसेंसिंग प्राधिकारी द्वारा इसे निलंबित या रद्द किया जा सकता है, लाइसेंस को निलंबित या रद्द कर सकता है ; और इस धारा के पूर्वगामी प्रावधान, जहां तक संभव हो, ऐसे प्राधिकारी द्वारा लाइसेंस के निलंबन या निरसन के संबंध में लागू होंगे।

(7) इस अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत किसी भी अपराध के लिए लाइसेंस धारक को दोषी ठहराने वाली न्यायालय भी लाइसेंस को निलंबित या रद्द कर सकती है: बशर्ते कि यदि अपील के कारण या अन्यथा दोषसिद्धि को रद्द कर दिया जाता है, तो निलंबन या निरस्तीकरण शून्य हो जाएगा।

(8) उप-धारा (7) के तहत निलंबन या निरस्तीकरण का आदेश अपीलीय न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण की अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय भी किया जा सकता है।

(9) केंद्र सरकार, आधिकारिक राजपत्र में आदेश द्वारा, पूरे भारत या उसके किसी भी हिस्से में इस अधिनियम के तहत दिए गए सभी या किसी भी लाइसेंस को निलंबित या रद्द करने या किसी लाइसेंसिंग प्राधिकारी को निलंबित या रद्द करने का निर्देश दे सकती है।

(10) इस धारा के तहत लाइसेंस के निलंबन या निरस्तीकरण पर, उसके धारक को बिना किसी देरी के उस प्राधिकारी को लाइसेंस सौंपना होगा जिसके द्वारा इसे निलंबित या रद्द किया गया है या ऐसे अन्य प्राधिकारी को जो इस संबंध में निलंबन या निरस्तीकरण के आदेश में निर्दिष्ट किया गया हो।

मसीउद्दीन बनाम आयुक्त, इलाहाबाद मंडल, इलाहाबाद और अन्य,1972 एएलजे 573 में यह स्थापित किया गया है कि "लाइसेंस दिए जाने के बाद, लाइसेंस रखने और बंदूक रखने का अधिकार एक स्वतंत्र देश में एक मूल्यवान व्यक्तिगत अधिकार है।"

आगे यह भी माना गया है कि *"किसी लाइसेंस को अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर रद्द किया जा सकता है कि ऐसा करना सार्वजनिक शांति की सुरक्षा के लिए या सार्वजनिक सुरक्षा के लिए आवश्यक है। लाइसेंसधारी और किसी अन्य व्यक्ति के बीच शत्रुता का अस्तित्व मात्र, सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा की सुरक्षा के साथ आवश्यक संबंध स्थापित नहीं करेगा।*

इस मामले में मजिस्ट्रेट ने अपने आदेश को तीन आपराधिक मामलों पर आधारित किया है जिनका फैसला याचिकाकर्ता के पक्ष में हुआ है। सभी मामलों की प्रकृति जघन्य नहीं थी| इस बात का कोई सबूत नहीं है कि किसी भी अपराध को अंजाम देने में आग्नेयास्त्र का इस्तेमाल किया गया था। जिला मजिस्ट्रेट और आयुक्त ने केवल यह आशंका व्यक्त की है कि याचिकाकर्ता आग्नेयास्त्र का दुरुपयोग करके सार्वजनिक अमन और शांति को भंग कर सकता है। शस्त्र अधिनियम 1961 की धारा 17 के आधार मौजूद नहीं हैं। वर्ष 2005 के बाद से यह स्थापित करने के लिए कोई सामग्री नहीं रखी गई है कि याचिकाकर्ता किसी आपराधिक गतिविधि में शामिल रहा है।

हबीब बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2002 (44) एसीसी 783 में यह माना गया है कि *"केवल एक आपराधिक मामले में शामिल होने से किसी भी तरह से सार्वजनिक सुरक्षा या सार्वजनिक हित प्रभावित नहीं हो सकता है और आग्नेयास्त्र के लाइसेंस को रद्द करने या वापस करने का आदेश उचित नहीं था।*

सतीश सिंह बनाम जिलाधिकारी, सुल्तानपुर 2009(4) एडीजे (एलबी) के मामले में, यह माना गया है कि, *"हथियार रखने का अधिकार वैधानिक अधिकार है, लेकिन जीने और स्वतंत्रता का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकार है। इसके परिणामस्वरूप, अपने परिवार को उपद्रवियों से बचाने के लिए अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए आग्नेयास्त्र रखना नागरिकों का अधिकार है। अक्सर यह कहा जाता है कि सभ्य समाज में सामान्यतः सभ्य व्यक्तियों को ही अपनी सुरक्षा के लिए शस्त्र लाइसेंस की आवश्यकता होती है, अपराधियों को नहीं। निःसंदेह, यदि सरकार को लगता है कि हथियार लाइसेंस का दुरुपयोग किसी अप्रत्यक्ष उद्देश्य या आपराधिक गतिविधियों के लिए किया जा रहा है, तो ऐसे कदाचार को रोकने के लिए उचित उपाय अपनाए जा सकते हैं। लेकिन शस्त्र अधिनियम की धारा 17 के संदेश और भावना को ध्यान में रखते हुए, बिना सोचे-समझे, यांत्रिक तरीके से शस्त्र लाइसेंस को नियमित तरीके से निलंबित नहीं किया जाना चाहिए।"*

चंद्रबली तिवारी बनाम आयुक्त, फैजाबाद, 2014 (32) एलसीडी 1696 में , यह माना गया है, कि *"केवल आपराधिक मामले का लंबित होना आग्नेयास्त्र लाइसेंस को रद्द करने का कोई आधार नहीं है। यह भी माना गया है कि चूंकि उस मामले में ऐसा कोई आरोप नहीं था कि लाइसेंसी बंदूक को कभी भी लाइसेंसधारी द्वारा बाहर निकाला गया था और कृत्य में इस्तेमाल किया गया था, याचिकाकर्ता के आग्नेयास्त्र लाइसेंस को रद्द करने का आदेश रद्द कर दिया गया था।"*

राम प्रसाद (उपरोक्त) में, आग्नेयास्त्रों के लाइसेंस के कब्जे और उसके निलंबन और निरस्तीकरण के संबंध में निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किए गए हैं;

(i) शस्त्र अधिनियम, 1959 में निहित प्रावधानों के अनुसार अधिकारियों द्वारा दिए गए आग्नेयास्त्र लाइसेंस रखने का अधिकार एक व्यक्ति का एक मूल्यवान अधिकार है।

(ii) लाइसेंसिंग प्राधिकारी के पास हथियार के लाइसेंस को निलंबित या रद्द करने की शक्ति केवल तभी होती है जब शस्त्र अधिनियम की धारा 17 की उपधारा (3) के उप-खंड (ए) से (ई) में उल्लिखित कोई भी शर्त मौजूद हो।

(iii) अधिनियम की धारा 17 के प्रावधानों को मनमाने तरीके से हल्के ढंग से लागू नहीं किया जा सकता है।

(iv) लाइसेंसिंग प्राधिकारी को खुद को संतुष्ट करना होगा की क्या सार्वजनिक शांति की सुरक्षा के लिए या सार्वजनिक सुरक्षा के लिए लाइसेंस को निलंबित या रद्द करना आवश्यक है।

(v) लाइसेंसिंग प्राधिकारी की ऐसी संतुष्टि आदेश में व्यक्त की जानी चाहिए और प्रासंगिक सामग्री पर आधारित होनी चाहिए।

(vi) सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा का मतलब कानून और व्यवस्था की सामान्य गड़बड़ी नहीं है।सार्वजनिक सुरक्षा का मतलब बड़े पैमाने पर जनता की सुरक्षा है, न कि केवल कुछ व्यक्तियों की।

(vii) किसी आपराधिक मामले में शामिल होने या उसके लंबित रहने मात्र से सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा प्रभावित नहीं होती है। प्रत्येक मामले में लाइसेंसिंग प्राधिकारी को यह निष्कर्ष दर्ज करना होगा कि कैसे और किन परिस्थितियों में हथियार लाइसेंस का कब्ज़ा सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा के लिए हानिकारक है।

(viii) केवल आग्नेयास्त्र के दुरुपयोग की आशंका या यह कि लाइसेंसधारी कमजोर वर्ग के व्यक्तियों को धमकी देगा, शस्त्र लाइसेंस रद्द नहीं किया जा सकता है। ऐसी कोई वास्तविक घटना होनी चाहिए जिसमें लाइसेंसधारी ने भाग लिया हो या अपने हथियार का इस्तेमाल किया हो, जिससे सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा का उल्लंघन हुआ हो।

(ix) लाइसेंसधारी के आपराधिक मामले से बरी होने के बाद शस्त्र लाइसेंस रद्द करने का आधार ही ख़त्म हो जाता है।

उपरोक्त सिद्धांतों के प्रकाश में, आक्षेपित आदेश परीक्षण को संतुष्ट नहीं करता है।

हालाँकि, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेशों का समर्थन करने का प्रयास किया है और दिनांक 22.10.2021 को पारित **इंद्रजीत सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (रिट सी नंबर 4947 वर्ष 2019)** में पारित इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें पुलिस उप महानिरीक्षक और अन्य बनाम एस.समुथिराम, 2013(1) एससीसी 598, के मामले में दिए गए फैसले का आश्रय लेते हुए यह माना गया है कि- *"शब्दावली 'सम्मानजनक बरी', 'दोषमुक्ति', 'पूरी तरह से दोषमुक्त' आपराधिक प्रक्रिया संहिता या दंड संहिता के लिए अज्ञात हैं, जो न्यायिक घोषणाओं द्वारा गढ़ी गई हैं। यह सटीक रूप से परिभाषित करना मुश्किल है कि 'सम्मानजनक रूप से बरी' अभिव्यक्ति का क्या मतलब है। जब अभियोजन पक्ष के सबूतों पर पूरी तरह विचार करने के बाद आरोपी को बरी कर दिया जाता है और अभियोजन पक्ष आरोपी के खिलाफ लगाए गए आरोपों को साबित करने में बुरी तरह विफल रहा है, तब संभवतः यह कहा जा सकता है कि अभियुक्त को बाइज्जत बरी कर दिया गया।"*

इस मामले में, तीनों मामलों में याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई मामला नहीं बनाया गया है और एक मामले में अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई है, दूसरे मामले में, याचिकाकर्ता को आरोपमुक्त कर दिया गया है और गुंडा एक्ट के मामले में कार्यवाही बंद कर दी गई है। इसलिए, यह सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई मुकदमा शुरू भी नहीं हुआ। इसलिए, ऊपर उद्धृत दोनों न्यायिक मिसालें याचिकाकर्ता के खिलाफ लागू नहीं होती हैं।

इस प्रकार, याचिका के साथ संलग्न कागजात और यहां ऊपर की गई चर्चाओं के आधार पर, यह पता चलता है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई आपराधिक मामला लंबित नहीं है, जिसके आधार पर, शस्त्र लाइसेंस संख्या 1316 थाना सिविल लाइन्स, को समाप्त किया जा सकता था, इसलिए याचिकाकर्ता रमेश चंद्र यादव पुत्र श्री ताले सिंह, निवासी अशोक नगर, थाना सिविल लाइन्स, जिला- इटावा, का शस्त्र लाइसेंस रद्द करने वाले जिलाधिकारी, इटावा द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.2.2004 और आयुक्त, कानपुर क्षेत्र, कानपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 26.4.2005, निरस्त किये जाने योग्य हैं।

<u>आदेश</u>

रिट याचिका **स्वीकार की जाती है** और प्रतिवादी क्रमांक 2, जिलाधिकारी /लाइसेंसिंग प्राधिकारी, जिला इटावा द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.2.2004 और प्रतिवादी क्रमांक 3, आयुक्त, कानपुर क्षेत्र, कानपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 26.4.2005, एतद्द्वारा **रद्द किया जाता है**।

यदि याचिकाकर्ता के शस्त्र लाइसेंस को रद्द करने का कोई अन्य कारण मौजूद नहीं है, तो याचिकाकर्ता को पहले से दिया गया शस्त्र लाइसेंस जारी रहेगा और यदि इसे समाप्त या निरस्त कर दिया जाता है, तो इसे पुनर्जीवित/पुनः जारी किया जाएगा।

(2023) 1 ILRA 313
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल साइड
दिनांक: इलाहाबाद 20.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चन्द्र शर्मा

रिट-सी संख्या 51738/2000

राम रूप और अन्य ... याचिकाकर्ताओं
बनाम
आयुक्त, आजमगढ़ मंडल, आजमगढ़ एवं अन्य ... उत्तरदाताओं

याचिकाकर्ताओं के वकील:
श्री राज किशोर यादव, श्री एससी वर्मा

उत्तरदाताओं के वकील:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री अनुज कुमार

(A) चकबंदी कानून - कंसोलिडेशन ऑफ होल्डिंग्स एक्ट, 1953 **- धारा 4 (2), 5 (2) और 9-ए (2) - अधिसूचना, धारा 52 - चकबंदी संचालन की समाप्ति, उत्तर प्रदेश**

भू-राजस्व अधिनियम, 1901 - धारा 33 आरडब्ल्यू धारा 39 - वार्षिक रजिस्टर - वार्षिक रजिस्टर में गलतियों का सुधार, धारा 219 - पुनरीक्षण.
सीएच अधिनियम की धारा 52 के तहत विमुक्त गांव - याचिकाकर्ता ने भूखंड पर सिरदारी का अधिकार दिया- याचिकाकर्ता ने पिछले 25/26 वर्षों के लिए भूखंडों पर कब्जा - धारा 4 (2) के तहत जारी अधिसूचना - चकबंदी कार्यवाही बहाल - चकबंदी संचालन - प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टियों का परिवर्तन - नोटिस जारी किए बिना या सुनवाई का अवसर दिए बिना - आपत्ति – पुनरीक्षण- खारिज - इसलिए याचिका। (पैरा - 2 से 9)
(B) कंसोलिडेशन ऑफ होल्डिंग्स एक्ट, 1953 - चकबंदी न्यायालय के पास ग्राम समाज की धारिता के संबंध में आदेश पारित करने की कोई शक्ति नहीं है और यदि वे कोई आदेश पारित करते हैं, तो यह अमान्य होगा – चकबंदी अदालतों या प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता को सूट में जमीन सिरदार के रूप मे प्रदान नहीं की है - राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टियां गुप्त रूप से बिना किसी आधार के दर्ज की गई थीं और यह हेरफेर का परिणाम था। **(पैरा - 17)**

(C) **कंसोलिडेशन ऑफ होल्डिंग्स एक्ट, 1953 - प्रतिकूल कब्जे के आधार पर ग्राम समाज/राज्य की भूमि पर किसी को कोई अधिकार नहीं मिलता है और वह ग्राम समाज/राज्य की भूमि का स्वामी नहीं हो सकता है - जाली और मनगढ़ंत प्रविष्टि को हटाने के लिए सुनवाई के अवसर की आवश्यकता नहीं है - एक जाली और काल्पनिक प्रविष्टि कब तक याचिकाकर्ता को कोई अधिकार प्रदान नहीं करेगी**- जाली और मनगढ़ंत प्रविष्टि के आधार पे याचिकाकर्ता के कोई अधिकार, टाइटल नहीं दिया गया था - अतिक्रमण करने वाले और अनधिकृत कब्जेदार - जिसे बलपूर्वक बेदखल किया जा सकता है - नुकसान आदि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी के आधार पर याचिकाकर्ता को कोई अधिकार, शीर्षक या हित प्रदान नहीं किया गया था। **(पैरा- 18,19,21)**

(D) **कंसोलिडेशन ऑफ होल्डिंग्स एक्ट, 1953 - धोखाधड़ी से प्राप्त कोई भी न्यायिक आदेश अशक्त और शून्य है - वे कोई अधिकार प्रदान नहीं करते हैं - इस तरह की धोखाधड़ी प्रविष्टि को किसी भी समय हटाया जा सकता है** - सीएच अधिनियम की धारा 4 (1) के तहत अधिसूचना एलआर अधिनियम की धारा 33/39 के तहत राजस्व अधिकारियों द्वारा अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में कोई रोक नहीं थी क्योंकि मामला चकबंदी अदालतों के हस्तक्षेप के लिए खुला नहीं था - आक्षेपित आदेश पर प्रकट त्रुटि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है । (पैरा - 25)

अवधारित किया गया:- याचिका गुणहीन और खारिज होने योग्य है। (पैरा -26)

याचिका खारिज। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. सेंट ऑफ उत्तर प्रदेश बनाम महातम
2. जमुना बनाम सेंट ऑफ उत्तर प्रदेश, 2010 (1) आरएलटी 312
3. जगराम बनाम ब्रिजा, 2010 (1) आरएलटी 9 (बीआर) 15
4. राज सिंह बनाम सेंट ऑफ उत्तर प्रदेश, 2011 (1) आरएलटी 79
5. श्री राम बनाम गांव सभा, 1997 आरडी 549
6. चंद्रा दत्त बनाम सेंट ऑफ उत्तरप्रदेश,1992 आरडी 160
7. विक्रम सिंह जेएचएस बनाम डीएम, फर्रुखाबाद, 1992 आरजे -380
8. एस.पी. चेंगल दरिया नायडू बनाम जगन्नाथ,1993 (6) जेटी 331

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री राज किशोर यादव और प्रतिवादियों के लिए विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी वकील श्री जितेंद्र नारायण राय को सुना।
2. यह रिट याचिका प्रतिवादी संख्या 2 - अतिरिक्त कलेक्टर, भू-राजस्व, आजमगढ़ द्वारा पारित आदेश दिनांक 13.12.1995 (अनुलग्नक संख्या-1), आदेश दिनांक 05.08.1997 (अनुलग्नक संख्या-7) और प्रतिवादी संख्या 1- आयुक्त, आजमगढ़ द्वारा पारित आदेश दिनांक 31.10.2000 (अनुलग्नक संख्या-6) को रद्द करने के लिए स्थापित की गई है।
3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि, तहसील मोहम्मदाबाद गोहना, अब सदर, जिला आजमगढ़ के गांवों को वर्ष 1972 में चकबंदी अधिनियम, 1953 (इसके बाद सीएच अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 52 के तहत गैर-अधिसूचित किया गया था। प्रतिवादी संख्या 2 दिनांक 10.6.1969 के आदेश से याचिकाकर्ता को प्लॉट नंबर 2093 (नया नंबर 1216) 740 कारी और प्लॉट नंबर 226 (नया नंबर 138/5) 421 कारी पर सिरदारी अधिकार दिया गया था, जैसा कि फॉर्म सीएच -45 से स्पष्ट है और याचिकाकर्ता पिछले 25/26 वर्षों से उपरोक्त भूखंडों पर कब्जा कर रहा है। अधिनियम की धारा 4 (2) के तहत जारी अधिसूचना (5 सितंबर, 1992 को उत्तर प्रदेश राजपत्र में प्रकाशित) द्वारा, जिला आजमगढ़ में चकबंदी कार्यवाही बहाल की गई थी। चकबंदी अभियान के दौरान, प्रतिवादी

नंबर 1 ने उत्तर प्रदेश भूमि अधिनियम, 1901 (संक्षेप में 'एलआर अधिनियम') की धारा 39 के साथ पठित धारा 33 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए, याचिकाकर्ता को नोटिस जारी किए बिना या उसे सुनवाई का अवसर दिए बिना गांव में चकबंदी अधिकारियों द्वारा पारित आदेशों के आधार पर राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टियों को बदल दिया।

4. याचिकाकर्ता 31 वर्षों से अधिक समय से विवादित भूमि पर शांतिपूर्वक खेती करते हुए भूमि पर कब्जे में है, इस बारे में कोई विवाद नहीं है तथा गांव सभा द्वारा कोई दावा नहीं किया गया है और उसका नाम भी 1969 से खतौनी में दर्ज किया गया था एवं जोतवाही भी आज तक जारी किया गया था (अनुलग्नक संख्या-2)।

5. दिनांक 13.12.1995 के आदेश के खिलाफ, 1996 की एक सिविल विविध रिट याचिका संख्या 6181 दायर की गई थी और दिनांक 15.12.1996 के निर्णय के तहत, दिनांक 13.12.1995 के आदेश के संचालन पर रोक लगा दी गई थी और आगे याचिकाकर्ता को प्रतिवादी संख्या 2 (अनुबंध संख्या 3) के समक्ष 15 दिनों के भीतर आपत्ति दर्ज करने का निर्देश दिया गया था।

6. उपरोक्त आदेश के अनुसरण में, याचिकाकर्ता ने 27.02.1996 को 1996 के केस नंबर 49 में प्रतिवादी नंबर 2 के समक्ष आपत्ति दर्ज की। (अनुपत्र सं 4)। प्रतिवादी नंबर 2 ने सीएच फॉर्म 23 और फॉर्म 45 के मूल रिकॉर्ड को मूल खतौनी के साथ समन किया। यह तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता का नाम केस नंबर 704 में सीओ मंशीपुर के आदेश दिनांक 10.6.1969 द्वारा दर्ज किया गया था। चूंकि केस नंबर 704 की फाइल को हटा दिया गया था, इसलिए यह राजस्व रिकॉर्ड में उपलब्ध नहीं था और याचिकाकर्ता का नाम चकबंदी अधिकारियों द्वारा सीएच फॉर्म 23 और सीएच फॉर्म 45 में उत्परिवर्तित किया गया था तथा यह न्यायसंगत और उचित था एवं याचिकाकर्ता द्वारा कोई जालसाजी नहीं की गई थी। यह भी तर्क दिया गया कि यू.पी. सीएच अधिनियम की धारा 4 (2) के तहत अधिसूचना जारी होने के बाद, राजस्व अधिकारियों के पास प्रविष्टि तय करने या कोई सुधार करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। यू.पी.सी.एच. एक्ट की धारा 4(2) के तहत अधिसूचना के प्रकाशन के बाद, यू.पी.सी.एच. एक्ट की धारा 5 (2) के प्रावधान लागू होंगे। लेकिन तर्कों पर विचार किए बिना, 26 वर्षों के बाद, प्रतिवादी नंबर 2 ने प्रविष्टि को बदल दिया, जबकि प्रविष्टि को सारांश कार्यवाही में नहीं बदला जा सकता था और इस तरह की प्रविष्टि को केवल नियमित वाद के माध्यम से ठीक किया जा सकता है, लेकिन याचिकाकर्ता के तर्कों पर विचार किए बिना, प्रतिवादी नंबर 2 ने दिनांक 5.8.1997 (अनुलग्नक संख्या 5) के आदेश के तहत याचिकाकर्ता की आपत्ति को खारिज कर दिया।

7. दिनांक 05.08.1997 के आदेश के खिलाफ, याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी नंबर 1 के समक्ष पुनरीक्षण को प्राथमिकता दी और यह तर्क दिया गया कि दिनांक 13.12.1995 और 05.08.1997 के आदेश अधिनियम की धारा 4 (2) के तहत अधिसूचना के प्रकाशन के मद्देनजर अधिकार क्षेत्र के बिना थे और इसे प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा स्वीकार किया गया था, तब भी उसने पुनरीक्षण को खारिज कर दिया और आदेश दिनांक 31.10.2000 (अनुबंध संख्या 6) के तहत नीचे के न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश की पुष्टि की।

8. दिनांक 13.12.1995 के आक्षेपित आदेश में, याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है या नहीं दिया गया है कि वह राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टियां करने के लिए जिम्मेदार था। एक बार जब गांव को चकबंदी के लिए पुनः अधिसूचित कर दिया जाता है, तो प्रतिवादी नंबर 2 के पास कोई भी आदेश पारित करने का अधिकार क्षेत्र नहीं रह जाता है क्योंकि शक्तियां चकबंदी अदालतों/प्राधिकरणों के पास निहित हैं।

9. उपरोक्त आधार पर, यह तर्क दिया गया है कि सभी तीन आक्षेपित आदेश यानी 13.12.1995, 5.8.1997 और 31.10.2000 पूरी तरह से अवैध हैं और कानून की नजर में टिकाऊ नहीं हैं और इसलिए, वे रद्द करने के लायक हैं और याचिका की अनुमति दी जानी चाहिए।

10. प्रतिवादी की ओर से तहसीलदार द्वारा जवाबी हलफनामा दायर किया गया है जिसमें प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता के आरोपों से इनकार किया है और जवाब दिया है कि याचिकाकर्ता का नाम 10.06.1969 के कथित आदेश के अनुसरण में काल्पनिक रूप से दर्ज किया गया था और जब यह संबंधित प्राधिकारी के संज्ञान में आया, तो याचिकाकर्ता का नाम राजस्व रिकॉर्ड से हटा दिया गया क्योंकि कार्यालय में ऐसा कोई आदेश नहीं था। माना जाता है कि विचाराधीन प्लॉट गांव सभा की संपत्ति है और याचिकाकर्ता को इस पर कोई सिरधारी अधिकार नहीं है। यदि याचिकाकर्ता को कोई शिकायत थी, तो उसे चकबंदी प्राधिकरण के समक्ष यू.पी.सी.एच अधिनियम की धारा 9-ए (2) के तहत आपत्ति दर्ज करनी चाहिए थी क्योंकि विचाराधीन गांव अधिनियम की धारा 4 (2) के तहत अधिसूचित किया गया था और 5.9.1992 को राजपत्र में प्रकाशित किया गया था, लेकिन याचिकाकर्ता ने कोई आपत्ति दर्ज नहीं की क्योंकि राजस्व रिकॉर्ड में काल्पनिक प्रविष्टि के मद्देनजर उसके पास कोई अधिकार या टाइटल नहीं है। यह कागज के सुधार का मामला नहीं है और अधिनियम की धारा 4 (2) के तहत अधिसूचित किए जाने के बाद उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 33/39 के तहत आवेदन सुनवाई योग्य नहीं हैं।

11. प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 13.12.1995 द्वारा, याचिकाकर्ता का नाम राजस्व रिकॉर्ड से हटाने का आदेश दिया गया था। याचिकाकर्ता ने पूर्वोक्त आदेश के खिलाफ 1996 की सिविल विविध रिट याचिका संख्या 6181 दायर की और माननीय न्यायालय ने दिनांक

15.12.1995 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता को 15 दिनों के भीतर मुख्य राजस्व अधिकारी के समक्ष आवेदन/आपत्ति दर्ज करने का निर्देश देते हुए याचिका का निपटारा कर दिया। दिनांक 15.12.1996 के आदेश के अनुसरण में, याचिकाकर्ता को प्रतिवादी संख्या 2 के समक्ष अलग से एक आवेदन/आपत्ति दर्ज करनी चाहिए थी। संलग्नक संख्या 4 से पता चलता है कि याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 33/39 के तहत 1996 के प्रकरण संख्या 49 में आपत्ति दर्ज की है। वास्तव में याचिकाकर्ता काल्पनिक आदेश के आधार पर राजस्व रिकॉर्ड में अपना नाम दर्ज कराने में सफल रहा जो रिकॉर्ड रूम में उपलब्ध नहीं है। चूंकि याचिकाकर्ता ने पहले ही 1996 की रिट याचिका संख्या 6181 दायर की है, इसलिए यह स्पष्ट रूप से पता नहीं लगाया जा सका कि याचिकाकर्ता खुद कैसे बच गया और उसने जयंत्री द्वारा दायर 1996 की एक और रिट याचिका संख्या 5930 दायर की। याचिकाकर्ता को 1996 की सिविल विविध रिट याचिका संख्या 6180 में पारित दिनांक 15.02.1996 के आदेश का पालन करने का निर्देश दिया गया था। याचिकाकर्ता ने यूपी भू-राजस्व अधिनियम की धारा 33/39 के तहत यूपी राज्य बनाम महातम के मामले में अपर जिला मजिस्ट्रेट, आजमगढ़ द्वारा पारित आदेश दिनांक 05.08.1997 के खिलाफ यूपी भू-राजस्व अधिनियम की धारा 219 के तहत पुनरीक्षण/संदर्भ संख्या 82/261 ए/97 दायर किया। रिकॉर्ड पर उपस्थित सामग्री पर विचार करने और याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर देने के बाद, पुनरीक्षण को 31.10.2000 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया था जो कानूनी और न्यायसंगत है। निर्णीत की जाने वाली रिट याचिका में शामिल कानून का कोई सवाल ही नहीं है।

12. इसलिए, यह प्रस्तुत किया गया था कि रिट याचिका योग्यता से रहित है और तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, इसे खारिज कर दिया जा सकता है।

13. जवाबी हलफनामे में लगाए गए आरोपों से इनकार करते हुए, याचिकाकर्ता ने 07.05.2000 को प्रत्युत्तर हलफनामा दायर किया था जिसमें उसने याचिका के संस्करण को दोहराया है।

14. याचिकाकर्ता के कथनों और तर्कों के आधार पर, निम्नलिखित तीन मुख्य बिंदु सामने आते हैं, जिनके समाधान से इस याचिका का निपटारा किया जा सकता है:

(I) क्या प्रतिवादी क्रमांक 2/चकबंदी न्यायालय के दिनांक 10.06.1969 के आदेश द्वारा स्वर्गीय राम रूप को प्लॉट नं.2093 (नया नं.121) एरिया 740 कारी और प्लॉट नंबर 226 (नया नंबर 138/5) एरिया 421 कारी पर सिरदारी अधिकार दिए गए थे?

(II) क्या उपरोक्त प्रविष्टियों के आधार पर याचिकाकर्ताओं ने विचाराधीन भूखंडों पर शांतिपूर्ण कब्जा कर लिया है और क्या इस तरह की लंबे समय से चली आ रही प्रविष्टियों और कथित शांतिपूर्ण कब्जे के आधार पर याचिकाकर्ता के पक्ष में कोई अविनाशी अधिकार अर्जित हुआ है?

(III) क्या 05.09.1992 को सीएच अधिनियम की धारा 4 (2) के तहत चकबंदी कार्यवाही की पुन: अधिसूचना के बाद राजस्व अधिकारियों को अधिकारों के रिकॉर्ड से प्रविष्टियों को हटाने के लिए एलआर अधिनियम की धारा 33/39 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करने का कोई अधिकार नहीं था? और उस आधार पर आक्षेपित आदेश रद्द किए जाने योग्य हैं।

निष्कर्ष:-

15. **मुद्दा संख्या 1** - याचिकाकर्ता संबंधित अधिकारियों द्वारा पारित दिनांक 10.06.1969 के आदेश का उद्धरण या तो पिछली याचिका में या इस रिट याचिका में पेश नहीं कर सका और प्रतिवादियों के समक्ष ऐसा आदेश भी पेश नहीं कर सका। सीआरओ/प्रभारी अधिकारी, आजमगढ़ और आयुक्त का आदेश आजमगढ़ रिकॉर्ड कीपर की रिपोर्ट पर आधारित है जिससे यह पता चला था कि लाल स्याही के बजाय नीली स्याही में 14 जाली आदेश शामिल किए गए हैं और इस तरह के जाली आदेशों द्वारा ग्राम समाज (अब ग्राम पंचायत) की संपत्तियों को निजी व्यक्तियों के नाम दिए गए हैं। ऐसे जाली आदेशों द्वारा नवीन पार्टी, बंजर, तालाब, कब्रिस्तान, वृक्षारोपण के लिए आवंटित भूमि, खलियान (खलिहान), चारागाह और भीटा भूमि को याचिकाकर्ताओं और अन्य व्यक्तियों को नामित किया गया है। यह भी पाया गया कि संबंधित बंडल में ऐसे कोई आदेश उपलब्ध नहीं थे। यहां तक कि यह भी पाया गया कि जयंत्री के मामले में धारा 229-बी के तहत एक आदेश दिखाया गया है, लेकिन इसे जिल्द कंसोलिडेशन में दर्ज किया गया था, जबकि ऐसी कोई प्रक्रिया है ही नहीं।

16. यह स्पष्ट है कि चकबंदी न्यायालय के पास ग्राम समाज के आयोजन के संबंध में आदेश पारित करने की कोई शक्ति नहीं है और यदि वे कोई आदेश पारित करते हैं, तो यह शून्य और अशक्त होगा। लेकिन इन मामलों में भी चकबंदी अदालत का ऐसा कोई आदेश पारित नहीं किया गया था। यह भी पाया गया कि सीएच अधिनियम की धारा 9 के तहत एक आदेश भी तालाब की भूमि पर नीली स्याही से लिखा गया था। इनमें से क्रम संख्या 5 पर राम रूप के नाम पर 14 जाली प्रविष्टियां और विवादित भूमि का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार, राजस्व अधिकारियों ने पाया कि इन सभी 14 प्रविष्टियों को धोखाधड़ी से दर्ज किया गया था, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता और अन्य व्यक्तियों के पक्ष में कोई अधिकार, शीर्षक या हित पास नहीं होता है। याचिकाकर्ता और अन्य व्यक्ति जमींदारी के उन्मूलन के समय या उससे पहले अपने अधिकार और शीर्षक का कोई कागज नहीं दिखा सके। ऐसा अधिकार अचानक और बिना किसी आधार के उत्पन्न नहीं हो सकता। इन जमीनों को याचिकाकर्ता और अन्य व्यक्तियों को क्यों आवंटित किया जाएगा। चकबंदी अदालतें राजस्व प्राधिकारियों के

रूप में कार्य कर रही थीं। वे बिना किसी आधार के ग्राम समाज की भूमि पर सिरदारी अधिकार देने के हकदार नहीं थे। ये भूमि संबंधित व्यक्तियों को उनकी भूमि आदि के बदले में नहीं दी गई थी। उन जमीनों पर याचिकाकर्ता और अन्य व्यक्तियों के नाम दर्ज करने का कोई आधार नहीं था।

17. उपरोक्त चर्चा के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि चकबंदी अदालतों या प्रतिवादियों ने स्वर्गीय राम रूप को सिरदार के रूप में सूट में जमीन प्रदान नहीं की है। राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टियां गुप्त रूप से बिना किसी आधार के दर्ज की गईं और यह हेरफेर का परिणाम था। इस प्रकार, मुद्दा संख्या 1 नकारात्मक और याचिकाकर्ता के खिलाफ तय किया जाता है।

18. **मुद्दा संख्या 2** - उपरोक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि स्वर्गीय राम रूप का नाम बिना किसी आधार के राजस्व अभिलेखों में दर्ज किया गया। ऐसा कोई आदेश पारित नहीं किया गया था, इसलिए, याचिकाकर्ता को नकली प्रविष्टि के आधार पर कोई अधिकार नहीं मिलता है, चाहे वह कितना भी पुराना क्यों न हो। यह भी एक स्थापित सिद्धांत है कि प्रतिकूल कब्जे के आधार पर ग्राम समाज/राज्य की भूमि पर किसी को कोई अधिकार नहीं मिलता है और वह ग्राम समाज/राज्य की भूमि का मालिक नहीं हो सकता है।

19. **जमुना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में** एलआर अधिनियम की धारा 33/39 के तहत शक्ति के प्रयोग के बारे में राजस्व रिकॉर्ड में जाली और मनगढ़ंत प्रविष्टि से निपटने के बारे में सिद्धांत निर्धारित किए गए हैं। उद्धृत मामले में राजस्व अभिलेख में प्रविष्टि जाली और मनगढ़ंत पाई गई थी, इसलिए इसे कार्यवाही से निकाल दिया गया था। इस न्यायालय ने कहा कि धोखाधड़ी सब कुछ निष्फल कर देती है। ऐसी प्रविष्टियों को किसी भी स्तर पर कार्यवाही से निकाला जा सकता है। जाली और मनगढ़ंत प्रविष्टि को कार्यवाही से हटाने के लिए सुनवाई के किसी अवसर की आवश्यकता नहीं है।

20. **जगराम बनाम ब्रिजा** में राजस्व मंडल ने माना कि खतौनी में गलत प्रविष्टि के आधार पर दावा कायम नहीं किया जा सकता है। ऐसी प्रविष्टि कानून के प्रावधानों के अनुसार होनी चाहिए। यदि खतौनी में गलत प्रविष्टि की गई है, तो ऐसी प्रविष्टि के आधार पर किसी अधिकार का दावा नहीं किया जा सकता है। यदि पत्ता धारक के नाम की प्रविष्टि गलत है, तो उत्तराधिकारी के नाम की प्रविष्टि को भी गलत माना जाएगा। यदि प्रविष्टि के सुधार का आदेश पारित किया गया है, तो इसमें कोई अवैधता नहीं है।

21. उपरोक्त चर्चा और न्यायिक उदाहरणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि जाली और मनगढ़ंत प्रविष्टि के आधार पर स्वर्गीय राम रूप को कोई अधिकार, शीर्षक या हित नहीं दिया गया था। एक जाली और काल्पनिक प्रविष्टि कब तक याचिकाकर्ता को कोई अधिकार प्रदान नहीं करेगी। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि स्वर्गीय राम रूप और उनके कानूनी प्रतिनिधि मुकदमे में संपत्ति पर शांतिपूर्ण और वैध कब्जे में थे, लेकिन यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वे ग्राम पंचायत की भूमि पर अतिक्रमण और अनधिकृत कब्जेदार हैं जिन्हें बलपूर्वक बेदखल किया जा सकता है और वे नुकसान आदि का भुगतान करने के लिए भी उत्तरदायी हैं।

22. उपरोक्त चर्चा के आधार पर याचिकाकर्ता के खिलाफ मुद्दा संख्या 2 का फैसला किया जाता है।

23. **मुद्दा संख्या 3** - याचिकाकर्ता के अनुसार, 05.09.1992 को सीएच अधिनियम की धारा 4 (2) के तहत पुन: अधिसूचना के बाद, प्रतिवादी एलआर अधिनियम की धारा 33/39 के तहत शक्ति का प्रयोग करने वाले याचिकाकर्ता के पक्ष में पहले से मौजूद प्रविष्टि को हटाने के हकदार नहीं थे। मुद्दा संख्या 1 का निर्णय करते समय यह माना गया है कि राम रूप के पक्ष में ऐसा कोई आदेश पारित नहीं किया गया था क्योंकि रिकॉर्ड रूम में ऐसी कोई फाइल मौजूद नहीं थी और प्रविष्टियां भी कानून के अनुसार नहीं की गई थीं। ऐसी प्रविष्टियों का कोई आधार नहीं था। ये संपत्तियां ग्राम समाज की थीं और चकबंदी अदालतों के अधिकार क्षेत्र से बाहर थीं। हालांकि चकबंदी अदालत द्वारा ऐसा कोई आदेश पारित नहीं किया गया था, लेकिन यहां तक कि चकबंदी अदालत की शक्ति से परे था कि वह एक आदेश पारित करे और याचिकाकर्ता को ग्राम समाज की संपत्ति पर सिरदार के रूप में दर्ज करे। एलआर अधिनियम की धारा 33/39 के तहत कलेक्टर और तहसीलदार रिकॉर्ड ऑफ राइट्स रजिस्टर से त्रुटियों और चूक को दूर करने के लिए बाध्य हैं। चकबंदी की कार्यवाही समाप्त होने के बाद चकबंदी अधिकारियों द्वारा कागजात प्रस्तुत किए गए थे। इसके बाद कलेक्टर और तहसीलदार का यह कर्तव्य था कि वे कानून के अनुसार राजस्व रिकॉर्ड बनाए रखें। इसके लिए उन्हें एलआर एक्ट की धारा 33/39 के तहत अधिकार प्राप्त हैं। इसलिए उन्होंने अपने अधिकारों का प्रयोग किया।

24. राज सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मामले में यह माना गया है कि यदि प्रविष्टि शीर्षक के किसी दस्तावेज पर आधारित नहीं है या सक्षम न्यायालय द्वारा आदेश पारित नहीं किया गया है, तो उसे एलआर अधिनियम की धारा 33/39 के तहत कार्यवाही में लिपिकीय गलती मानते हुए कार्यवाही में कार्यवाही से हटा दिया जा सकता है। उद्धृत मामले में मूल पट्टा और आवंटन संकल्प मूल रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया था। इसी तरह इस मामले में, याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 10.09.1969 का आदेश प्रस्तुत नहीं किया गया है।

25. **श्री राम बनाम गाँव सभा4 और चन्द्रदत्त बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के** मामले में विचारण न्यायालयों ने भी कहा है कि यदि तर्क के लिए यह मान लिया जाता है कि आदेश चकबंदी न्यायालय द्वारा पारित किया गया होगा, तो प्रश्न उठता है कि क्या चकबंदी न्यायालय को ग्राम समाज

की भूमि डील करने का अधिकार है? उत्तर है, नहीं, क्योंकि ग्राम समाज की भूमि को जोत की परिभाषा के अंतर्गत शामिल नहीं किया गया है जबकि अभिलेख राजस्व प्राधिकारियों के अधीन थे, यह आदेश पारित किया गया था। विचारण न्यायालयों ने **विक्रम सिंह जूनियर हाई स्कूल बनाम जिला मजिस्ट्रेट, फर्रुखाबाद 6, एसपी चेंगल दरिया नायडू बनाम जगन्नाथ** जैसे कुछ न्यायिक उदाहरणों का भी उल्लेख किया है, जिसमें यह माना गया है कि धोखाधड़ी से प्राप्त कोई भी न्यायिक आदेश शून्य और अशक्त है। वे कोई अधिकार प्रदान नहीं करते हैं। इस तरह की धोखाधड़ी प्रविष्टि को किसी भी समय हटाया जा सकता है। इस प्रकार, इस न्यायालय का विचार है कि सीएच अधिनियम की धारा 4 (1) के तहत अधिसूचना एलआर अधिनियम की धारा 33/39 के तहत राजस्व अधिकारियों द्वारा अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में कोई रोक नहीं थी क्योंकि मामला चकबंदी अदालतों के हस्तक्षेप के लिए खुला नहीं था। आक्षेपित आदेश किसी भी प्रकट त्रुटि से ग्रस्त नहीं हैं। इसलिए, याचिकाकर्ता के खिलाफ मुद्दा नंबर 3 का फैसला किया जाता है।

26. पूर्वोक्त चर्चा के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि यह याचिका गुणहीन है और खारिज करने योग्य है।

आदेश

27. यह रिट याचिका जुर्माने के साथ खारिज की जाती है।

(2023) 1 ILRA 319
मूल न्यायाधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक:इलाहाबाद 28.10.2021

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति महेश चन्द्र त्रिपाठी
माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 6693 वर्ष 2021

अनिल साहा ...याचिकाकर्ता
बनाम
यूपी राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
श्री प्रशांत राय, सुश्री विशाखा पांडे, श्री राकेश पांडे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादीगण के लिए अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

ए. आपराधिक कानून - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - उ.प्र. गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 - धारा 2/3- प्राथमिकी को रद्द करना-अधिनियम 1986 के तहत मामला एकल आपराधिक पृष्ठभूमि के आधार पर दर्ज नहीं किया जा सकता है, बल्कि पूर्ववर्ती शर्त यह है कि उपरोक्त अधिनियम के तहत मामले को पंजीकृत करने की सामग्री अधिनियम की धारा 2 (सी), 2 (बी) के अनुसार पूरी की जानी चाहिए-वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता के खिलाफ अपराध उपरोक्त श्रेणी के अपराधों में है और गिरोह अपने गिरोह के नेता और सदस्यों के साथ अपराध कर रहा है जिसके लिए यह मुकदमा अपराध संख्या पंजीकृत किया गया है - मामला शीर्ष न्यायालय द्वारा मान्यता प्राप्त उन सभी श्रेणियों में नहीं आता है जो उनके रद्दीकरण को उचित ठहरा सकता है - जांच के लिए पर्याप्त आधार प्रतीत होता है - इसलिए, किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। (पैरा 1 से 14)

रिट याचिका खारिज की जाती है. (ई-6)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. संजय भाटी एवं अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य। आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 489 वर्ष 2012

2. सोमवीर बनाम यूपी राज्य और अन्य। आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 4622 वर्ष 2022

3. आर.कल्याणी बनाम जनक सी. मेहता एवं अन्य। (2009) 1 एससीसी 5164. कमलेश कुमारी एवं अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य। (2015) एयर एससीडब्ल्यू 3700

5. हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम भजन लाल और अन्य। (1992) पूरक 1 एससीसी 335

6. मेसर्स निहारिका इंफ्रा प्रा. लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य (2021) एआईआर एससी 1918

7. लीलावती देवी @ लीलावती और अन्य बनाम यूपी राज्य, एसएलपी (क्रि.) नंबर 3262 वर्ष 2021

(माननीय न्यायमूर्ति महेश चंद्र त्रिपाठी एवं माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा सुनाया गया)

1. हमने याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित श्री प्रशांत राय और सुश्री विशाखा पांडे द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ

अधिवक्ता श्री राकेश पांडे को और सभी प्रतिवादियों के लिए विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री एसए मुर्तजा द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री मनीष गोयल को सुना है।

2. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत यह याचिका अनिल साहा द्वारा, मुकदमा अपराध संख्या 0558 वर्ष 2021 अंतर्गत धारा 2 और 3 (1), उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986, थाना दादरी, जिला गौतमबुद्ध नगर के रूप में दर्ज आक्षेपित प्राथमिकी दिनांक 26.06.2021 को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी करने की प्रार्थना के साथ दायर की गई है। उपरोक्त मामले में याचिकाकर्ता को गिरफ्तार न करने की भी प्रार्थना की गई है।

3. ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता एक योग्य वास्तुकार और व्यवसायी है। उन्होंने गौतमबुद्ध नगर और नई दिल्ली में कई आवासीय परिसरों का निर्माण किया है। 'गर्वित इनोवेटिव प्रमोटर्स लिमिटेड' (संक्षेप में, कंपनी) के नाम से एक कंपनी बनाई गई थी, जिसे कंपनी अधिनियम, 1956 के तहत विधिवत पंजीकृत किया गया था। याचिकाकर्ता उक्त कंपनी के साथ निदेशक, प्रमोटर, हस्ताक्षरकर्ता, शेयरधारक के रूप में या किसी अन्य क्षमता में जुड़ा नहीं था। उक्त कंपनी ने अगस्त 2017 में "बाइकबॉट" योजना के तहत ई-बाइक/टैक्सी बाइक का व्यवसाय शुरू करने का फैसला किया और इस योजना के तहत, कोई भी 62,100/- रुपये का निवेश कर सकता था और इसके बदले में उसे 12 महीने की अवधि के लिए 4,590/- रुपये प्रति माह और निवेशित राशि की प्रतिपूर्ति/पुनर्भुगतान के लिए 5,175/- रुपये प्रति माह का मासिक लाभ प्राप्त होगा। इस प्रकार, कंपनी को 62,100/- रुपये के निवेश के बदले 9,765/- रुपये प्रति माह का भुगतान करना था। उपरोक्त राशि का भुगतान 12 महीने की अवधि के लिए मासिक किया जाना था। निवेशक को इस संबंध में कंपनी के साथ लिखित समझौता भी करना आवश्यक था। उक्त योजना के तहत 2,43,000 से अधिक व्यक्तियों ने निवेश किया। नतीजतन, कंपनी ने बाइक बॉट योजना के तहत 2,500/- करोड़ रुपये की राशि जुटाई। इस प्रकार जुटाए गए धन से 10,000/- बाइक, 129 लक्जरी कारें जैसे फॉर्च्यूनर, मर्सिडीज, जैकार आदि और मध्यम खंड की 700 कारें खरीदी गईं और कहा जाता है कि इन्हें विभिन्न शहरों में टैक्सियों के रूप में चलाया जा रहा है। कंपनी को कुछ नुकसान उठाना पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप, अफवाहें फैलाई गईं कि इसका पूरा कारोबार ध्वस्त हो गया है और कंपनी निवेशकों को उनके बीच हुए समझौते के अनुसार पैसा वापस करने की स्थिति में नहीं है। इसके बाद, अफवाहों और कुछ फर्जी और दुर्भावनापूर्ण समाचार पत्रों की रिपोर्टों के कारण, योजना के निवेशकों द्वारा जिला गौतमबुद्ध नगर में 70 से अधिक प्राथमिकी दर्ज की गईं। प्राथमिकी के आधार पर, कंपनी की संपत्ति और कंपनी और उसके निदेशकों के बैंक खाते भी जब्त कर लिए गए हैं। ऐसा भी प्रतीत होता है कि एक प्राथमिकी 19.5.2019 को मुकदमा अपराध संख्या 510 वर्ष 2019 अंतर्गत धारा 420, 409, 201, 467, 468, 471 और 120बी भारतीय दण्ड संहिता, थाना दादरी, जिला गौतमबुद्ध नगर में के रूप में दर्ज की गई थी। याचिकाकर्ता का नाम उक्त प्राथमिकी में नहीं था, लेकिन उसे इस मामले में 01.3.2021 को इस आरोप में गिरफ्तार किया गया था कि उक्त कंपनी द्वारा याचिकाकर्ता के खाते में कुछ राशि हस्तांतरित की गई थी। याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया और आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या 19568 वर्ष 2021 **(अनिल साहा बनाम यूपी राज्य**) दायर की जिसमें विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को मामले में प्रतिक्रिया दाखिल करने का निर्देश दिया गया था। इस बीच आक्षेपित प्राथमिकी दर्ज करायी गयी है।

4. इस पृष्ठभूमि में, याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता का नाम मुकदमा अपराध संख्या 510 वर्ष 2019 के रूप में दर्ज दिनांक 19.5.2019 की प्राथमिकी में नहीं है। याचिकाकर्ता न तो कंपनी का निदेशक, प्रमोटर, हस्ताक्षरकर्ता या शेयरधारक है और न ही उक्त कंपनी द्वारा शुरू की गई 'बाइक बॉट योजना' का किसी भी तरह से लाभार्थी है। हालाँकि, जांच अधिकारी ने 01.3.2021 को रिमांड के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के तहत एक आवेदन दिया था, जिसमें यह इंगित किया गया था कि याचिकाकर्ता, जो साहा इंफ्राटेक प्राइवेट लिमिटेड के निदेशक हैं, इस तथ्य के मद्देनजर एक आरोपी थे कि कंपनी और उसकी सहयोगी कंपनी प्राइमेक्स ब्रॉडकास्ट प्राइवेट लिमिटेड ने साहा इंफ्राटेक को 21,67,00,177/- रुपये की राशि हस्तांतरित की थी। याचिकाकर्ता का नाम केवल अनुमानों के आधार पर आरोपी के रूप में शामिल किया गया है। वर्ष 2018 में, उक्त कंपनी के प्रतिनिधियों ने साहा इंफ्राटेक का अधिग्रहण करने के लिए याचिकाकर्ता से संपर्क किया और इस संबंध में, दोनों कंपनियों के बीच दिनांक 19.9.2018 को एक समझौता ज्ञापन (संक्षेप में, एमओयू) पर हस्ताक्षर किए गए। इक्विटी शेयरों के अधिग्रहण के लिए, उक्त कंपनी ने मेसर्स/एबेट बिल्ड टेक प्राइवेट लिमिटेड को रुपए 19,16,00,000/- का अग्रिम भुगतान किया। उक्त कंपनी को घाटा हुआ और अंततः, उनके बीच 29.1.2019 के एमओयू पर हस्ताक्षर किए गए, जिसके तहत कंपनी ने शेयरों के अधिग्रहण के लेनदेन को पूरा करने में असमर्थता व्यक्त की और इस प्रकार, मेसर्स साहा इंफ्राटेक प्राइवेट लिमिटेड को भुगतान की गई अग्रिम राशि का उपयोग

समूह आवास परियोजनाओं में फ्लैटों की बुकिंग के लिए करने पर सहमति व्यक्त की। साहा इंफ्राटेक के पास जमा की गई अग्रिम धनराशि का उपयोग उसके चल रहे प्रोजेक्ट के निर्माण के लिए किया गया था।

5. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा कि आक्षेपित प्राथमिकी में संजय भाटी और अन्य नामित आरोपियों के खिलाफ धोखाधड़ी के आरोप लगाए गए हैं। किसी गिरोह के गठित सदस्य के रूप में याचिकाकर्ता के खिलाफ अकेले या सामूहिक रूप से हिंसा, धमकी या हिंसा दिखाने या धमकाने या जबरदस्ती करने या अन्यथा का कोई आरोप नहीं है और इस प्रकार, अधिनियम की धारा 3(1) सपठित धारा 2 के तहत याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई अपराध नहीं बनता है। हिंसा, धमकी या हिंसा का प्रदर्शन या धमकी या जबरदस्ती की अवधारणा अधिनियम की धारा 2 (बी) के तहत आवश्यक सामग्री है और याचिकाकर्ता को गिरोह या गैंगस्टर के रूप में मानने के लिए एकमात्र आरोप के आधार पर याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई अपराध नहीं बनता है। सभी प्राथमिकियों में उक्त कंपनी के प्रबंध निदेशक संजय भाटी के खिलाफ धोखाधड़ी के आरोप लगाए गए हैं। यह इंगित करने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं है कि याचिकाकर्ता को गिरोह के सदस्य के रूप में माना जा सकता है। आक्षेपित प्राथमिकी में आरोप लगाए गए हैं कि आरोपी गिरोह के संगठित सदस्यों के रूप में एक आपराधिक साजिश के तहत जालसाजी कर रहा था और निर्दोष निवेशकों और धन को ठगा था और इस तरह, यह सार्वजनिक हित में नहीं था कि वह स्वतंत्र रहे। बाइक बॉट योजना से संबंधित अधिकांश मामलों में आरोप पत्र प्रस्तुत कर दिया गया है। इसलिए सुरक्षा की मांग की गई है।

6. इसके विपरीत, विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री मनीष गोयल ने इस तर्क के साथ रिट याचिका का पुरजोर विरोध किया है कि प्रश्नगत योजना में निवेशकों द्वारा निवेश की गई बड़ी राशि उक्त कंपनी और उसकी सहयोगी कंपनियों के निदेशकों द्वारा साहा इंफ्राटेक प्रा. लिमिटेड और उसकी सहयोगी कंपनियों के खाते में केवल निवेशकों को धोखा देने के लिए जमा की गई थी। यदि उक्त कंपनी और साहा इंफ्राटेक प्राइवेट लिमिटेड के बीच संपूर्ण शेयरधारिता की बिक्री के लिए एमओयू था तो शेयरों का मूल्य समझौते में ही स्पष्ट किया जाना चाहिए। आगे यह प्रस्तुत किया गया कि उपरोक्त एमओयू दिनांक 19.9.2018 संपूर्ण शेयर-होल्डिंग के अधिग्रहण के लिए नहीं था। इस कारण से समझौता नहीं हो सका और 28.1.2019 को पक्षों के बीच आगे समझौता हुआ, जिससे भुगतान का उद्देश्य बदल गया। आगे यह भी तर्क दिया गया कि चूंकि 21 करोड़ रुपये की राशि का भुगतान साहा इंफ्राटेक प्राइवेट लिमिटेड को किया जाना बताया गया है, कंपनी केवल उपरोक्त राशि को रखने के उद्देश्य से थी और इस प्रकार, उपरोक्त एमओयू केवल कागजी कार्रवाई दिखाने के उद्देश्य से तैयार किए गए थे। पक्षों का इरादा केवल साहा इंफ्राटेक और उसकी सहयोगी कंपनियों की शेयर हिस्सेदारी हासिल करने की आड़ में निवेशकों की रकम को ठिकाने लगाने का था। इसी तरह के मामले में, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ 16.7.2021 को रिट याचिका को पहले ही खारिज कर दिया है: -

"हमारी सुविचारित राय में, हमारे विचार के लिए केवल दो बिंदु उठते हैं। एक, क्या याचिकाकर्ताओं के खिलाफ भारतीय दंड संहिता और यूपी गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 के प्रावधानों के तहत दर्ज आपराधिक मुकदमा, भारतीय दंड संहिता की धारा 5 के अनुसार प्रतिबंधित है या नहीं?

दूसरा और सहायक प्रश्न यह उठता है कि याचिकाकर्ताओं के मुकदमे की सुनवाई के लिए क्या मंच है, यदि यह माना जाता है कि उनके खिलाफ लगाए गए आरोप उसकी धारा 36 और 337 के मद्देनजर कंपनी अधिनियम, 2013 के प्रावधानों के तहत देखे जाने योग्य हैं।

पहला तर्क मान्य नहीं है क्योंकि सामान्य धारा अधिनियम के प्रावधानों के साथ पठित भारतीय दण्ड संहिता की धारा 5, यह प्रावधान करती है कि एक व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए दो बार दंडित नहीं किया जा सकता है। वास्तव में, धारा 5 यह प्रदान नहीं करती है कि किसी अपराधी पर मुकदमा चलाने के लिए किस अधिनियम, एक सामान्य अधिनियम या एक विशेष अधिनियम का उपयोग किया जाना है। किसी भी मामले में, स्वीकार्यतः याचिकाकर्ताओं पर कंपनी अधिनियम, 2013 के तहत मुकदमा नहीं चलाया जा रहा है। इस संबंध में चुनाव अभियोजक का है न कि उस व्यक्ति का जिस पर मुकदमा चलाया जा रहा है। इसे सम्राट बनाम जीवा लाल, एआईआर 1932 सभी 69 के माध्यम से भी तय किया गया है कि जहां कोई अपराध किसी विशेष अधिनियम के दायरे में आता है, वहां अपराधी पर विशेष अधिनियम के तहत मुकदमा चलाना उचित है। याचिकाकर्ताओं पर यूपी गैंगस्टर्स और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 के तहत मुकदमा चलाया जा रहा है जो निर्विवाद रूप से एक विशेष अधिनियम है। इसलिए, उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, याचिकाकर्ता उठाए गए तर्क के आधार पर किसी भी राहत के हकदार नहीं हैं।

जहां तक दूसरे प्रश्न का संबंध है, इसमें कोई संदेह नहीं है कि गैंगस्टर अधिनियम और कंपनी अधिनियम, 2013 दोनों ही इनके तहत गठित विशेष अदालतों द्वारा सुनवाई का प्रावधान करते हैं। कोई संघर्ष, यदि कोई हो, केवल गैंगस्टर अधिनियम और कंपनी

अधिनियम, 2013 के तहत एक साथ अभियोजन और विचारण की स्थिति में उत्पन्न हो सकता है। मौजूदा मामले में ऐसी स्थिति नहीं है और इसलिए वर्तमान मामले में दूसरे प्रश्न पर विचार की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उत्पन्न नहीं होता है।

उपरोक्त के अलावा, याचिकाकर्ताओं, जो एक कंपनी के निदेशक हैं, के खिलाफ विशिष्ट आरोप हैं कि उन्होंने अपने अन्य सह-अभियुक्तों के साथ मिलकर जीआईपीएल के नाम पर एक कंपनी चलाते हुए निर्दोष लोगों को करोड़ों रुपये का चूना लगाया है और निवेश की गई राशि पर ब्याज के रूप में अच्छे रिटर्न और निवेश की गई मूल राशि की वापसी का आश्वासन देने के बाद उसका दुरुपयोग किया है।

इसके अलावा, पत्रावली के अवलोकन से पता चलता है कि जांच अभी भी जारी है और इसमें शामिल सभी लोगों के बीच पूर्ण सांठगांठ स्थापित करने के लिए की जा रही है। मनी लॉन्ड्रिंग के पहलू और इसमें याचिकाकर्ता की विशिष्ट संलिप्तता की भी जांच की जा रही है। आरोपी व्यक्ति/याचिकाकर्ता न केवल कथित धोखाधड़ी की कमाई के लाभार्थी हैं, बल्कि व्यवसाय के पीछे के दिमाग भी हैं।

हमारे विचार में, आरोपों और कथित धोखाधड़ी को ध्यान में रखते हुए, इस स्तर पर विषयगत प्राथमिकी को रद्द करना अनुचित है।

तदनुसार, रिट याचिका खारिज कर दी जाती है।"

7. श्री मनीष गोयल ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता को 01.3.2021 को मुकदमा अपराध संख्या 510 वर्ष 2019 में गिरफ्तार किया गया था। नतीजतन, उसने जमानत आवेदन दायर किया और उसे इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने 07.10.2021 को निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ खारिज कर दिया है : -

"इस मामले में, जैसा कि पत्रावली से स्पष्ट है, हालांकि आवेदक का नाम प्राथमिकी में नहीं है और न ही वह जीआईपीएल और उसकी सहयोगी कंपनियों का निदेशक, शेयरधारक, हस्ताक्षरकर्ता है, लेकिन इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पक्षों के बीच किया गया एमओयू अमल में नहीं आया, योजना में निवेश की गई निवेशकों की बड़ी राशि आवेदक की कंपनी के खाते में भेज दी गई है और पक्षों के बीच किए गए समझौते के पूरा न होने पर उसे जीआईपीएल को वापस नहीं किया गया है न ही हलफनामे में दिखाए गए फ्लैट जीआईपीएल और उसकी सहयोगी कंपनियों को सौंपे गए हैं, इस प्रकार, मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए; निवेशकों, जो मुख्य रूप से सेवानिवृत्त व्यक्ति हैं, जिनके पास जीवन भर की बचत है और जिन्होंने कड़ी मेहनत की कमाई का निवेश किया है, द्वारा योजना में निवेश की गई बड़ी राशि और साथ ही आवेदक की कंपनी के खाते में किए गए लेनदेन दिखावटी लेनदेन के अलावा और कुछ नहीं थे, साथ ही यह तथ्य भी कि निवेशकों द्वारा आवेदक के खिलाफ कई प्राथमिकी दर्ज की गई हैं, न्यायालय का मानना है कि आवेदक को उपरोक्त अपराध संख्या/प्राथमिकी में केवल यहां ऊपर संदर्भित सह-अभियुक्तों के संबंध में पारित आदेश के आधार पर जमानत पर अनुमति नहीं दी जा सकती है।

आरोपी-आवेदक अनिल साहा की जमानत अर्जी खारिज की जाती है।"

8. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि ऐसा कोई प्रावधान नहीं है कि उत्तर प्रदेश गैंगस्टर्स और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 के तहत मामला एकल आपराधिक इतिहास के आधार पर दर्ज नहीं किया जा सकता है। बल्कि, पूर्ववर्ती शर्त यह है कि उपरोक्त अधिनियम के तहत मामले के पंजीकरण के लिए सामग्री, अधिनियम की धारा 2 (सी) में दी गई "गैंगस्टर" और धारा 2 (बी) के तहत दी गई "गैंग" की परिभाषा के अनुसार पूरी होनी चाहिए। जिन अपराधों के लिए यह अधिनियम प्रभावी है, वे धारा 2 (बी) (आई) में दिए गए हैं: - "भारतीय दंड संहिता (अधिनियम संख्या 45 वर्ष 1860) के अध्याय XVI या अध्याय XVII या अध्याय XVIII के तहत दंडनीय अपराध, या...(यानी ii से xv)"। इसलिए, जैसा कि रिट याचिका में इस न्यायालय की खंड पीठ द्वारा प्रतिपादित किया गया है, अधिनियम संख्या 7 वर्ष 1986 के तहत मामला दर्ज करने के आधार के रूप में एकल अपराध के बिंदु का कोई प्रभाव नहीं है, बल्कि अधिनियम की धारा 2(बी) (i) से (xv) तक, के तहत दिए गए अपराधों की शर्त , गिरोह या गैंगस्टर रूपी गिरोह के सदस्य द्वारा अर्थात अधिनियम की धारा 2 की उपधारा (सी) में परिभाषित किया गया है। इसलिए, वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता के खिलाफ अपराध उपरोक्त श्रेणी के अपराधों में है और गिरोह अपने गिरोह के नेता और सदस्यों के साथ इन अपराधों को अंजाम दे रहा है, जिसके लिए इस मुकदमा अपराध संख्या का पंजीकरण हुआ है। इसलिए, किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

9. जैसा कि खंडपीठ द्वारा **सोमवीर** के मामले में और साथ ही इस न्यायालय द्वारा कई निर्णयों में प्रतिपादित किया गया है कि एक भी मामला, यदि धारा 2 (बी) (i) से (xv) के तहत दिए गए अपराधों की श्रेणी में आता है और अधिनियम की धारा 2 (बी) के अंतर्गत परिभाषित गिरोह द्वारा अथवा धारा 2 (सी) के अंतर्गत परिभाषित गैंगस्टर द्वारा किया जा रहा है, तो उत्तर प्रदेश गैंगस्टर एवं असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 की धारा 2/3 के अंतर्गत दंडनीय अपराध के लिए मुकदमा अपराध संख्या दर्ज करने का आधार हो सकता है।

10. जहां तक प्राथमिकी को रद्द करने के संबंध में कानूनी स्थिति का सवाल है, **आर. कल्याणी बनाम जनक सी. मेहता और अन्य** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है:

" (1) उच्च न्यायालय आम तौर पर किसी आपराधिक कार्यवाही और विशेष रूप से प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने के लिए अपने अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं करेगा, जब तक कि उसमें निहित आरोप, भले ही प्रकट रूप से और उनकी संपूर्णता में सही माना गया हो, किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करता हो।

(2) उक्त उद्देश्य के लिए, न्यायालय, बहुत असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर, बचाव पक्ष द्वारा आधार लिए गए किसी भी दस्तावेज़ पर गौर नहीं करेगा।

(3) ऐसी शक्ति का प्रयोग बहुत संयमित ढंग से किया जाना चाहिए। यदि प्राथमिकी में लगाए गए आरोप किसी अपराध के घटित होने का खुलासा करते हैं, तो अदालत उससे आगे नहीं बढ़ेगी और आरोपी के पक्ष में किसी भी आपराधिक मनःस्थिति या आपराधिक कृत्य की अनुपस्थिति का आदेश पारित करेगी।

(4) यदि आरोप एक नागरिक विवाद का खुलासा करता है, तो यह अपने आप में यह मानने का आधार नहीं हो सकता है कि आपराधिक कार्यवाही जारी रखने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

11. उक्त निर्णय का पालन शीर्ष न्यायालय द्वारा कमलेश कुमारी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में भी किया गया है।

"किसी मामले में प्राथमिकी को रद्द करने को उचित ठहराने वाले आधारों की पर्याप्तता से संबंधित कानून सुस्थापित है। अदालत को मामले के अंतिम विवरण की गहन जांच शुरू करने से बचना होगा। यह तय करना भी उचित नहीं है कि मामला अंततः आरोप पत्र प्रस्तुत करने और फिर अंततः दोषसिद्धि में समाप्त होगा या नहीं। यह देखने के लिए कि प्राथमिकी की जांच की जानी चाहिए या इसे रद्द किया जाना चाहिए, अपराध का गठन करने वाले पर्याप्त तत्वों के अस्तित्व के बारे में अदालत की केवल प्रथम दृष्टया संतुष्टि आवश्यक है। कथित अपराध की जांच का दायरा कार्य का एक स्वतंत्र क्षेत्र है और दुर्लभ में दुर्लभतम मामलों को छोड़कर इसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।"

12. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने, **हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम भजन लाल एवं अन्य; मेसर्स निहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर प्रा. लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य**, साथ ही **लीलावती देवी उर्फ लीलावती और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** में उपरोक्त सिद्धांत को और दोहराया गया है।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों में तथ्य के प्रश्न के निर्धारण की मांग की गई है, जिसे या तो उचित जांच के माध्यम से पर्याप्त रूप से समझा जा सकता है या इस पर केवल विचारण न्यायालय द्वारा निर्णय लिया जा सकता है और यहां तक कि, यदि इस मामले में आरोप-पत्र प्रस्तुत किया जाता है तो कानून के बिंदुओं पर दिए गए तर्कों पर भी विचारण न्यायालय द्वारा अधिक उचित तरीके से विचार किया जा सकता है। पत्रावली के अवलोकन से इस स्तर पर प्रथम दृष्टया अपराध का पता चलता है और मामले में जांच के लिए पर्याप्त आधार प्रतीत होता है। इस न्यायालय को आरोपी-याचिकाकर्ता के खिलाफ आक्षेपित प्राथमिकी या उपरोक्त मुकदमा अपराध संख्या से उत्पन्न कार्यवाही को रद्द करने का कोई औचित्य नहीं दिखता है क्योंकि यह मामला शीर्ष अदालत द्वारा मान्यता प्राप्त उन सभी श्रेणियों में नहीं आता है, जो उन्हें रद्द करने का औचित्य साबित कर सकती हैं। इसके अलावा, इसी तरह के मामले में, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ पहले ही दिनांक 16.7.2021 को आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 489 वर्ष 2021को खारिज कर चुकी है।

14. तदनुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है।

(2023) 1 ILRA 325
मूल न्यायाधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक:इलाहाबाद 21.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,
माननीय न्यायमूर्ति सैयद वाइज मियां

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या - 10571 / 2021 एवं आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या - 11425 / 2021 साथ में आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या - 11148 / 2021

राजपाल सिंह **... याचिकाकर्ता**
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता :
अनिल कुमार बाजपेयी

प्रतिवादी के अधिवक्ता :

शासकीय अधिवक्ता, गौरव पुंडीर

ए. आपराधिक कानून - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 420 और 406-वित्तीय संपत्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण और सुरक्षा हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002-धारा 13(2), 13(4) , 14 और 17-ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम, 1993-धारा 19-एफ.आई.आर को निरस्त करना - ऋण के पुनर्भुगतान में चूक - अधिनियम, 2002 के तहत कार्यवाही में बैंक द्वारा जब्त की गई संपत्ति बैंक के अधिकारियों की लापरवाही के कारण चोरी हो गई - शिकायत शिकायतकर्ता द्वारा एक डराने वाली रणनीति है और बाद में विचार के बाद स्थापित किया गया है - वित्तीय संस्थान / बैंक के अधिकारियों को SARFAESI अधिनियम की धारा 32 के तहत अभियोजन से प्रतिरक्षा प्रदान की जाती है - यह वाद अधिनियम में परिभाषित सुरक्षित संपत्तियों से संबंधित उपचार के अभ्यास से संबंधित है, विवाद नहीं किया जा सकता है-सरफेसी अधिनियम अपने आप में एक पूर्ण संहिता है जो अधिनियम की धारा 13 को लागू करके सुरक्षित ऋणदाता द्वारा पालन की जाने वाली प्रक्रिया प्रदान करता है-इसलिए, वर्तमान वाद में आपराधिक कार्यवाही धारणीय नहीं होगी- दिशा जारी की गई-एफआईआर निरस्त की गई।(पैरा 1 से 60)

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-6)

<u>**उद्धृत वाद सूची**:</u>

1. प्रियंका श्रीवास्तव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

2. के. विरुपाक्ष और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य

3. हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,
और
माननीय न्यायमूर्ति सैयद वाइज मियां, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री अनिल कुमार बाजपेयी, राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता और प्रतिवादी संख्या 4 के लिए श्री गौरव पुंडीर को सुना।

2. रिट याचिकाओं का खेप एक ही कारण से उत्पन्न होता है और तदनुसार, पक्षकारों की सहमति पर एक साथ सुनवाई और निर्णय लिया जा रहा है।

3. रिट याचिका संख्या 10571 / 2021 के तथ्यों को सुविधा के लिए संदर्भित किया जा रहा है।

4. न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाकर्ता सहायक महाप्रबंधक, क्षेत्र महाप्रबंधक, मुख्य प्रबंधक और शाखा प्रबंधक श्रेणी के बैंक अधिकारी हैं।

5. प्रस्तुत याचिका द्वारा, याचिकाकर्ताओं ने धारा 420 और 406 भा.द.सं., पुलिस थाना फतेहपुर, जनपद सहारनपुर के अंतर्गत मुकदमा अपराध संख्या 0412/2021 के रूप में पंजीकृत दिनांक 16.10.2021 की आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने की मांग की है।

6. यूनियन बैंक ऑफ इंडिया बैंकिंग कंपनी (उपक्रम का अधिग्रहण और अंतरण) अधिनियम, 1970 (1970 का अधिनियम संख्या V) के अंतर्गत विधिवत गठित एक कॉर्पोरेट निकाय है, जिसका प्रधान कार्यालय मुंबई में है। याचिकाकर्ता सहारनपुर मुख्य शाखा, सहारनपुर में शाखा प्रबंधक के रूप में कार्यरत था।

7. मैसर्स श्यामवी स्टील्स प्राइवेट लिमिटेड, कंपनी अधिनियम, 1956 के अंतर्गत निगमित मैसर्स श्यामवी स्टील्स प्राइवेट लिमिटेड का प्रधान कार्यालय गाजियाबाद में है और पंजीकृत कार्यालय नई दिल्ली में है और यूनिट/कार्य गांव रहड़ी, पोस्ट चुटमलपुर, जनपद सहारनपुर में है। प्रथम-सूचनाकर्ता/प्रतिवादी संख्या 4 कंपनी के निदेशकों में से एक है।

8. बैंक ने 01.03.2013 को कंपनी को ऋण मंजूर किया। रु. 175.00 लाख पर निधि आधारित ऋण और रु. 400.00 लाख पर सावधि ऋण अर्थात रु. 575.00 लाख की कुल ऋण राशि कंपनी को स्वीकृत की गई थी। आनुषंगिक प्रतिभूति प्रस्तुत की गई और बैंक के समक्ष रु. 4,41,780.00 पर बंधक रखा गया।

9. कंपनी द्वारा अपने निदेशकों के माध्यम से 1.75 करोड़ रुपये के माल और ऋणों का एक बंधक समझौता निष्पादित किया गया था। कंपनी ने कच्चे माल, कार्यालय उपकरणों, फर्नीचर और जुड़नार, एयर कंडीशनर, प्रक्रिया में स्टॉक, तैयार माल, उपभोग्य सामग्रियों, संयंत्र और मशीनरी, प्राप्य, सभी वर्तमान और भविष्य के सामान, पुस्तक ऋण, कंपनी की अन्य सभी चल संपत्तियों, संयंत्र और मशीनरी, वर्तमान और भविष्य दोनों और बिलों आदि के स्टॉक को बैंक के पक्ष में गिरवी रख दिया।

10. इसके अतिरिक्त, ऋण सुविधा को सुरक्षित करने के लिए कंपनी ने मूल स्वत्वाधिकार विलेख जमा करके बैंक को देय राशि के लिए न्यायसंगत बंधक या प्राथमिक/आनुषंगिक प्रतिभूति के रूप में बैंक के पास अपनी अचल संपत्ति गिरवी रखी और बैंक के पक्ष में बंधक के सृजन की भी पुष्टि की।

11. कंपनी ने चतुर्थ प्रतिवादी के माध्यम से नकद ऋण सीमा को 2.75 करोड़ रुपये तक बढ़ाने का पुनः अनुरोध किया और उक्त अनुरोध पर बैंक ने 01.03.2014 को कंपनी को स्वीकृत/संशोधित ऋण सुविधाएं प्रदान कीं। इसके बाद, बैंक द्वारा कंपनी को कुल 5,91,28,000.00 रुपये की ऋण सुविधाएं स्वीकृत और वितरित की गईं।

12. निधि आधारित ऋण अर्थात रु. 175.00 लाख को बढ़ाकर रु. 275.00 लाख कर दिया गया तथा समीक्षा के बाद दिनांक 25.02.2014 को मीयादी ऋण को भी बढ़ाकर रु. 316.28 लाख कर दिया गया।

13. कंपनी ने बैंक से कुल रु. 575.00 लाख की विभिन्न ऋण सुविधाओं का लाभ उठाया। कंपनी के निदेशकों ने बैंक द्वारा कंपनी को दी गई क्रेडिट सुविधा को सुरक्षित करते हुए व्यक्तिगत गारंटी पत्र भी निष्पादित किया है।

14. कंपनी डिफाल्ट हो गई, परिणामस्वरूप, ऋण को 01.02.2015 को गैर-निष्पादित परिसंपत्ति के रूप में वर्गीकृत किया गया।

15. बैंक ने वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 की धारा 13(2) के अंतर्गत दिनांक 12.03.2015 को नोटिस जारी किया, जो कंपनी को विधिवत प्रदान/वितरित किया गया था, जिसके द्वारा, कंपनी को नोटिस की तिथि से 60 दिवसों की अवधि के भीतर भविष्य के ब्याज और आकस्मिक व्यय लागतों के साथ पूर्ण रूप से अपनी देयता का निर्वहन करने के लिए कहा गया था। ऐसा न करने पर बैंक सरफेसी अधिनियम की धारा 13 की उपधारा (4) के अंतर्गत कार्रवाई करेगा। बैंक ने 02.06.2015 को बन्धकदारों को कब्जा नोटिस जारी किया और वितरित किया।

16. चतुर्थ प्रतिवादी ने ऋण वसूली न्यायाधिकरण, लखनऊ के समक्ष एसए संख्या 444 / 2015 (मैसर्स श्यामवी स्टील प्राइवेट लिमिटेड और दो अन्य बनाम यूनियन बैंक ऑफ इंडिया) योजित करके उपरोक्त नोटिस को चुनौती दी।

17. ऋण वसूली न्यायाधिकरण ने उपर्युक्त आवेदन को स्वीकार कर लिया और तकनीकी आधार पर बैंक को जब्त की गई परिसंपत्तियों का कब्जा सौंपने का निर्देश दिया।

18. बैंक ने ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम, 1993 की धारा 19 के अंतर्गत देय राशि की वसूली के लिए कंपनी के निदेशकों के विरुद्ध ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष मूल आवेदन संख्या 852 / 2016 (यूनियन बैंक ऑफ इंडिया बनाम मेसर्स श्यामवी स्टील्स प्राइवेट लिमिटेड) के रूप में एक आवेदन प्रस्तुत किया।

19. उपरोक्त आवेदन में बैंक द्वारा एक स्थगन आवेदन भी प्रस्तुत किया गया था, जिसमें कलेक्टर सहारनपुर द्वारा यूपी जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 284 और 286 के अंतर्गत जारी वसूली उद्धरण दिनांक 11.11.2016 को रद्द करने की प्रार्थना की गई थी, ताकि कंपनी के विरुद्ध 2,11,55,523/- रुपये की विद्युत बकाया की वसूली की जा सके। पीठासीन अधिकारी ने बैंक के पक्ष में 09.12.2016 को अंतरिम आदेश पारित किया।

20. बैंक ने 29.07.2017 को कारखाने का कब्जा कंपनी को सौंप दिया।

21. इसके उपरांत, बैंक ने पुनः सरफेसी अधिनियम की धारा 13 (4) के अंतर्गत 05.06.2018 को एक संशोधित नोटिस जारी किया और कारखाने का कब्जा ले लिया।

22. बैंक ने थाना प्रभारी, थाना सदर, सहारनपुर के समक्ष शिकायत करते हुए आरोप लगाया कि कुछ व्यक्तियों, जो चतुर्थ प्रतिवादी के हैंडमैन हैं, ने कारखाने का ताला तोड़ा है, किन्तु पुलिस द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई।

23. बैंक को ग्राहकों से पता चला कि कंपनी पर विद्युत विभाग का कुछ बकाया है, फलस्वरूप अतिरिक्त जनपद मजिस्ट्रेट (नगर), सहारनपुर ने दिनांक 08.12.2018 को बलपूर्वक बैंक से कंपनी के परिसर को अपने कब्जे में ले लिया था।

24. इस बीच, ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष चतुर्थ प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत एसए संख्या 444 / 2015, अभियोजन के अभाव के कारण निरस्त कर दिया गया।

25. चतुर्थ प्रतिवादी ने 12.07.2019 को बैंक के समक्ष एक मुश्त समाधान हेतु एक आवेदन प्रस्तुत किया।

26. पुलिस ने दिनांक 11.09.2019 को रेडी गांव के काली मंदिर के निकट दोपहर लगभग 2.00 बजे लोहे का सामान ले जा रहे एक व्यक्ति को गिरफ्तार किया। पूछताछ करने पर उसने अपना नाम हसीन पुत्र नसीम निवासी मुस्लिम कॉलोनी, छुटमलपुर, थाना फतेहपुर, सहारनपुर बताया। उक्त व्यक्ति को रवींन्द्र पुत्र मनमोहन निवासी रेडी, थाना फतेहपुर, जनपद सहारनपुर ने पकड़ा। इसके बाद, 11.09.2019 को रवींद्र द्वारा मुकदमा अपराध संख्या 0306/2019, भा.द.सं. की धारा 379 और 411 भा.द.सं., पुलिस थाना फतेहपुर, जनपद सहारनपुर के अंतर्गत एक प्रथम सूचना रिपोर्ट भी पंजीकृत कराई गई।

27. चतुर्थ प्रतिवादी ने दिनांक 15.09.2019 के अपने पत्र में विद्युत विभाग और विद्युत विभाग से जुड़े व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप लगाए। किन्तु बाद में, चतुर्थ प्रतिवादी ने कुछ परिणाम लेते हुए, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सहारनपुर के समक्ष धारा 156 (3) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अंतर्गत एक आवेदन प्रस्तुत किया, जो 15.09.2019 के पत्र में लगाए गए अपने पहले के आरोपों से विचलित था, और याचिकाकर्ता सहित बैंक अधिकारियों के विरुद्ध चोरी के पूरे आरोप लगाए गए थे।

28. बैंक को वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा जारी दिनांक 14.07.2020 का पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें यूनियन बैंक ऑफ इंडिया के प्रबंध निदेशक/मुख्य कार्यकारी अधिकारी को कंपनी के प्रत्यावेदन के अनुसार कड़ाई से कार्य करने का निर्देश दिया गया है।

29. इसके अनुसरण में, बैंक ने चतुर्थ प्रतिवादी को 18.03.2020 को एक पत्र भेजा, जिसमें चतुर्थ प्रतिवादी द्वारा 4,46,07,745.00 रुपये पर एकमुश्त समाधान के लिए प्रस्तुत प्रस्ताव को स्वीकार किया गया।

30. हालांकि, बैंक को चतुर्थ प्रतिवादी को दिनांक 04.09.2020 और 17.12.2020 के पत्र भेजने के लिए मजबूर किया गया था, जिसमें सूचित किया गया था कि चूंकि चतुर्थ प्रतिवादी ने बैंक द्वारा प्रस्तावित एकमुश्त समाधान के नियमों और शर्तों का पालन नहीं किया था, इसलिए, बैंक ने एकमुश्त समाधान को अस्वीकार कर दिया और बकाया राशि की वसूली की मांग की।

31. चतुर्थ प्रतिवादी ने 03.02.2021 को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के अंतर्गत मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सहारनपुर के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें बैंक के अधिकारियों के विरुद्ध आपराधिक मामला दर्ज करने की प्रार्थना की गई।

32. बैंक ने आधिकारिक रूप से चतुर्थ प्रतिवादी को दिनांक 18.02.2021 के पत्र के माध्यम से सूचित किया कि एकमुश्त समाधान को अंततः निरस्त कर दिया गया है क्योंकि उसने एकमुश्त समाधान के नियमों और शर्तों का अनुपालन नहीं किया था। बैंक ने सूचित किया कि आज की तिथि में कंपनी की बकाया देय राशि 12,49,15,622.83 रुपये है, जिसमें विधिक शुल्क भी सम्मिलित हैं।

33. मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सहारनपुर ने बैंक को निर्देश दिया कि वह सरफेसी अधिनियम के अंतर्गत कंपनी का कब्जा लेने के समय तैयार की गई सूची प्रस्तुत करे, जिसके अनुपालन में चतुर्थ प्रतिवादी ने बैंक द्वारा तैयार की गई सूची को 05.06.2018 को प्रस्तुत किया।

34. चतुर्थ प्रतिवादी ने आगे बाधाएं उत्पन्न करने का प्रयास किया, तदनुसार, एक पंजीकृत किराया समझौते में कंपनी के परिसर को एक पंजीकृत किराया समझौते में प्रवेश किया, जो कि अशोक गुप्ता, पुत्र स्वर्गीय राम नाथ गुप्ता, मैसर्स राम प्रेम स्टॉकी यार्ड के मालिक, निवासी रुड़की रोड, छुटमलपुर, जनपद सहारनपुर के मालिक के पक्ष में था, जिसका कब्जा बैंक द्वारा 05.06.2018 को लिया गया था।

35. मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सहारनपुर ने धारा 156 (3) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा प्रस्तुत विविध आवेदन संख्या 245 / 2021 (संजय तोमर बनाम राजपाल सिंह और अन्य) में दिनांक 30.09.2021 को एक आदेश पारित किया, जिसमें थाना प्रभारी, थाना फतेहपुर, जनपद सहारनपुर को प्रथम सूचना रिपोर्ट पंजीकृत करने और मामले की जांच करने का निर्देश दिया गया था। अनुपालन में आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट 16.10.2021 को पंजीकृत की गई थी, जिसे याचिकाकर्ता द्वारा चुनौती दी गई है।

36. चतुर्थ प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत प्रत्युत्तर शपथपत्र में, तथ्यों पर विवाद नहीं किया जा रहा है। हालांकि, यह प्रस्तुत किया गया है कि आरोपी याचिकाकर्ताओं के प्रति धारा 409 भा.द.सं. के अंतर्गत भी प्रथम सूचना रिपोर्ट पंजीकृत की जानी चाहिए थी क्योंकि सूची के अनुसार कुछ सामग्री और लेख, बैंक के अभिरक्षा और कब्जे में रहते हुए चोरी हो गए थे। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि चतुर्थ प्रतिवादी की अनुपस्थिति में जनपद मजिस्ट्रेट और पुलिस व्यक्तिगत की सहायता से बैंक द्वारा परिसर (सुरक्षित संपत्ति) का कब्जा लिया गया था।

37. इस पृष्ठभूमि में, यह आग्रह किया जाता है कि परिसंपत्तियों की रक्षा करना बैंक अधिकारियों का बाध्य कर्तव्य था। आगे यह आग्रह किया जाता है कि बैंक

अधिकारियों ने न केवल परिसंपत्तियों की सुरक्षा और सुरक्षा के संबंध में लापरवाह थे, अपितु दुर्भावनापूर्ण आशय से कंपनी की वस्तुओं के साथ-साथ मशीनरी को हड़पने का प्रयास किया। याचिका गुणावगुण से रहित होने के कारण निरस्त की जा सकती है।

38. प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियाँ विचार के लिए आती हैं।

39. विचार के लिए एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या यह बैंक के प्रति दुर्भावनापूर्ण अभियोजन का मामला है और क्या धारा 420, 406 भा.द.सं. के अंतर्गत अपराध के तत्व आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट से बने हैं।

40. यहां याचिकाकर्ता बैंक के अधिकारी हैं, शिकायतकर्ता का दुर्भावनापूर्ण आशय इस तथ्य से परिलक्षित होता है कि चतुर्थ प्रतिवादी ने वसूली कार्यवाही का प्रतिवाद करने के लिए प्रतिशोध में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की है, और बैंक के अधिकारियों को सरफेसी अधिनियम की धारा 13 के अंतर्गत कंपनी का कब्जा नहीं लेने के लिए मजबूर किया है।

41. चतुर्थ प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस पर विवाद नहीं किया जा रहा है कि कंपनी ऋणकर्ता है और शिकायतकर्ता निदेशक है। कंपनी चूक गई और बैंक द्वारा प्रस्तावित एकमुश्त समाधान योजना को स्वीकार करने में विफल रही, परिणामस्वरूप, बैंक ने कंपनी की सुरक्षित परिसंपत्तियों का कब्जा लेने और बैंक को देय राशि की वसूली सुनिश्चित करने के लिए सरफेसी अधिनियम के अनुसार अपने वैधानिक और संविदात्मक अधिकार का प्रयोग किया। वसूली की कार्यवाही ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष लंबित है, जिसमें कंपनी और राजस्व प्राधिकारी अर्थात् कलेक्टर पक्षकार हैं। सरफेसी अधिनियम और डीआरटी अधिनियम देनदार कंपनी की शिकायत के निवारण के लिए एक पूर्ण संहिता है और साथ ही यह सदैव देनदार कंपनी के लिए किसी भी कारण से भंडारण/परिसंपत्तियों के नुकसान के लिए बैंक के प्रति प्रति-दावा करने के लिए उपलब्ध है, जिसमें चोरी भी शामिल है।

42. प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोपों में प्रमुख मूल्य है कि सरफेसी अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही में बैंक द्वारा जब्त की गई संपत्ति बैंक के अधिकारियों की लापरवाही के कारण चोरी हो गई थी, परिणामस्वरूप, धारा 156 (3) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत एक आवेदन पर आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट पंजीकृत की गई थी। आरोप इस रूप में लिया गया है, धोखाधड़ी (धारा 415 भा.द.सं.) का मामला नहीं बनता है क्योंकि किसी भी व्यक्ति का कोई धोखा नहीं है, धोखाधड़ी या बेईमानी से ऐसे व्यक्ति को किसी भी संपत्ति को देने के लिए धोखा देने के लिए प्रेरित करता है। इसके अतिरिक्त, यह धोखाधड़ी और बेईमानी से किसी भी व्यक्ति को संपत्ति के संदाय को प्रेरित करने या मूल्यवान सुरक्षा के पूरे या किसी भाग को बदलने या नष्ट करने या किसी भी चीज को नष्ट करने का मामला नहीं है जो हस्ताक्षरित या सील है, और जो मूल्यवान प्रतिभूति में परिवर्तित होने में सक्षम है।

43. आपराधिक विश्वास भंग (भा.द.सं.) में यह अधिदेश दिया गया है कि जो कोई भी, किसी भी तरीके से संपत्ति के साथ सौंपा जा रहा है, या संपत्ति पर किसी भी प्रभुत्व के साथ, बेईमानी से दुर्विनियोजन करता है या संपत्ति के अपने स्वयं के उपयोग के लिए परिवर्तित करता है, या बेईमानी से विधि के किसी निर्देश या किसी विधिक अनुबंध के उल्लंघन में उस संपत्ति का उपयोग या निस्तारण करता है, जिसे उसने ऐसे विश्वास के निर्वहन को निभाने के लिए बनाया है, "विश्वास का आपराधिक उल्लंघन" करता है।

44. विश्वास के आपराधिक उल्लंघन के अपराध का गठन करने के लिए, यह आवश्यक है कि अभियोजन पक्ष को सर्वप्रथम यह साबित करना होगा कि अभियुक्त को कुछ संपत्ति या किसी प्रभुत्व या शक्ति के साथ सौंपा गया था। यह भी स्थापित किया जाना चाहिए कि इस प्रकार सौंपी गई संपत्ति के संबंध में, अभियुक्त द्वारा स्वयं या किसी अन्य द्वारा संपत्ति या वैधानिक अनुबंध के विधि के उल्लंघन में बेईमानी, दुर्विनियोजन या बेईमानी से रूपांतरण या बेईमानी से उपयोग या निस्तारण किया गया था, जिसे करने के लिए उसने स्वेच्छा से कष्ट उठाया था। यह बचाव पक्ष से स्वचालित रूप से अनुसरण करता है कि संपत्ति में स्वामित्व या लाभकारी हित, जिसके संबंध में आपराधिक विश्वासघात का आरोप लगाया गया है, अभियुक्त के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति में होना चाहिए और बाद में इसे दुरुपयोग और उसके लाभ के लिए कुछ तरीकों के कारण रखना चाहिए।

45. इस पृष्ठभूमि में, यह स्वीकार किया गया है कि कंपनी, जिसके शिकायतकर्ता निदेशक में से एक है, ने बैंक से ऋण प्राप्त किया था, चूक होने पर बैंक विधि के अनुसार बैंक को गिरवी/बंधक की गई परिसंपत्तियों की वसूली के लिए अपने वैधानिक/संविदात्मक अधिकार के भीतर था। विधि के अनुसार सहारा लेने वाले बैंक ने जनपद कलेक्टर और पुलिस अधिकारियों के हस्तक्षेप से संपत्ति का कब्जा ले लिया था, जिसे बैंक सरफेसी अधिनियम की धारा 13/14 के अंतर्गत कार्यवाही में अधिकारी था। यह भी विवाद में नहीं है कि कंपनी के पास विद्युत बकाया शेष था, इसकी वसूली के लिए, यह आरोप लगाया जाता है कि राजस्व अधिकारियों ने संपत्ति को कब्जे में लेने का प्रयास किया, जो बैंक की अभिरक्षा में थी। बैंक ने कब्जा लेते

समय परिसंपत्तियों की एक सूची तैयार की थी, जो शिकायतकर्ता के अनुसार कथित रूप से बैंक की अभिरक्षा में चोरी होने के कारण चोरी की गई थी, इसलिए, बैंक के अधिकारी आपराधिक अभियोजन का सामना करने के लिए उत्तरदायी हैं।

46. सरफेसी अधिनियम के अंतर्गत बैंक द्वारा आरंभ की गई कार्यवाही और की गई कार्रवाई उक्त अधिनियम के अंतर्गत उच्च मंच के समक्ष स्वीकार्य है और यदि, ऋणकर्ता को आपराधिक विधि का सहारा लेने की अनुमति दी जाती है, जैसा कि लिया गया है, तो उसे यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि बैंक के वित्तीय स्वास्थ्य को प्रभावित करने की अंतर्निहित क्षमता है। चतुर्थ प्रतिवादी के आचरण से यह ध्यान देने योग्य है कि वैधानिक उपायों को चतुराई से समाप्त कर दिया गया है और बैंक के अधिकारियों के बीच भय पैदा करने के लिए अभियोजन का मार्ग अपनाया गया है जिससे उन्हें निस्तारण के लिए कंपनी के अनुरोध को स्वीकार करने के लिए मजबूर होना पड़ा है।

47. यह दोहराया जाना चाहिए कि विद्वान मजिस्ट्रेट को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन में लगाए गए आरोपों और आरोपों की प्रकृति के संबंध में सतर्क रहना चाहिए और बिना मितिष्क के उचित प्रयोग के निर्देश जारी नहीं करने चाहिए। यहां याचिकाकर्ता बैंक के अधिकारी हैं और शिकायतकर्ता चूक करने वाली कंपनी का निदेशक है। बैंक के पास प्रतिभूति हित की वसूली करने का सांविधिक अधिकार है, जिसे यदि चूककर्ता कंपनी द्वारा आपराधिक रंग दिए जाने की अनुमति दी जाती है तो यह बैंकिंग प्रणाली के लिए घातक होगा।

48. विद्वान मजिस्ट्रेट को आरोपों को पूरी तरह से घटना की तिथि पर ध्यान देना चाहिए और क्या कोई संज्ञेय मामला दूरस्थ रूप से बनाया गया है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि जब सरफेसी अधिनियम के अंतर्गत आच्छादित किए गए वित्तीय संस्थान का एक ऋणकर्ता, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र का आह्वान करता है और डीआरटी अधिनियम/सरफेसी अधिनियम के अंतर्गत अलग प्रक्रिया भी है, तो मजिस्ट्रेट द्वारा अधिक सावधानी, देखरेख और समझदारी का रवैया अपनाया जाना था।

49. शिकायत पंजीकृत करते समय शिकायतकर्ता की शैतानी प्रवृत्ति याचिकाकर्ताओं को ऋण के भुगतान से बचने और कंपनी की शर्तों के अनुसार निस्तारण के लिए बैंक पर दबाव डालने के एकमात्र आशय से परेशान करना था। जब कोई व्यक्ति किसी वित्तीय संस्थान से ऋण प्राप्त करता है, तो ऋण का भुगतान करना उसका दायित्व है, चूक की स्थिति में वित्तीय संस्थान विधि द्वारा निर्धारित वैधानिक मंच पर संविदात्मक दायित्व को लागू करने के लिए विधि के अनुसार आगे बढ़ने के लिए स्वतंत्र है।

50. प्रकरण के संबंध में बैंक द्वारा अपनी बकाया राशि को सुरक्षित करने के लिए जब्त की गई और कब्जा ले लिया गया है, इसमें से कुछ चोरी हो सकती है, जैसा कि शिकायतकर्ता द्वारा आरोप लगाया जा रहा है, इससे आपराधिक अभियोजन नहीं चलेगा क्योंकि यह हमेशा असंतुष्ट चूककर्ता कंपनी के लिए ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष मुद्दा उठाने और चोरी किए गए भंडारण के मूल्य के लिए प्रति-दावा की वकालत करने के लिए अवसर है। इस घटना में, यह पाया जाता है कि भंडारण किसी भी तरह से घाटे में है, जबकि यह बैंक के कब्जे में थी, अधिक से अधिक बैंक को कंपनी के प्रति बैंक द्वारा वसूल की जाने वाली बकाया राशि के प्रति घाटे की राशि को समायोजित करना होगा। बैंक के प्रति आपराधिक अभियोजन का सहारा लेना अनुचित है।

51. **इंडियन ओवरसीज बैंक बनाम अशोक सॉ मिल (2009) 8 एससीसी 366 में**, उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

"34. धारा 13 के प्रावधान बैंकों और वित्तीय संस्थानों जैसे सुरक्षित लेनदारों को न केवल ऋणकर्ता की सुरक्षित संपत्ति का कब्जा लेने में सक्षम बनाते हैं, अपितु धारा 13 की उपधारा (4) के खंड (ख) के दो परंतुकों में इंगित शर्तों के अधीन रहते हुए, ऋणकर्ता के व्यवसाय के प्रबंधन को भी संभालने के लिए, जिसमें सुरक्षित परिसंपत्तियों को प्राप्त करने के लिए पट्टे, समनुदेशन या बिक्री के माध्यम से हस्तांतरण का अधिकार सम्मिलित है।

35. ऐसी व्यापक शक्तियों के दुरुपयोग को रोकने के लिए और बैंकों या वित्तीय संस्थानों की ओर से किसी त्रुटि के कारण ऋणकर्ता को होने वाले पूर्वग्रह को रोकने के लिए, धारा 17 में कुछ नियंत्रण और संतुलन आरंभ किया गया है जो ऋणकर्ता सहित किसी भी व्यक्ति को सुरक्षित लेनदार द्वारा धारा 13 की उप-धारा (4) में निर्दिष्ट किसी भी रीति से पीड़ित होने पर उपाय देता है, इस मामले में क्षेत्राधिकार रखने वाले ऋण वसूली न्यायाधिकरण को उप-धारा (3) में इंगित राहत के लिए किए गए ऐसे उपायों के आवेदन की तिथि से 45 दिनों के भीतर।

36. अत विधायिका का आशय यह स्पष्ट है कि जहां बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को उनकी देनदारियों की वसूली के लिए कठोर शक्तियां प्रदान की गई हैं, वहीं इस प्रकार की किसी भी कार्रवाई को अवैध घोषित करने के लिए मामले में अवॉर्ड करने के बाद ऋण वसूली न्यायाधिकरण को

प्राधिकार देकर ऐसी शक्तियों की किसी त्रुटि अथवा गलत उपयोग को सुधारने के लिए रक्षोपाय भी प्रदान किए गए हैं ताकि ऐसी किसी कार्रवाई को अवैध घोषित किया जा सके और कब्जा बहाल किया जा सके भले ही कब्जा किसी अंतरणकर्ता को दिया गया हो।"

52. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोपों के अनुसार विवाद सरफेसी अधिनियम के अंतर्गत परिभाषित एक सुरक्षित संपत्ति से संबंधित उपाय के प्रयोग से संबंधित है, विवाद में नहीं हो सकता है। यह तथ्य कि शिकायतकर्ता कंपनी का खाता एनपीए वर्गीकृत किया गया था, भी स्वीकृत स्थिति है। एकमुश्त समाधान पर भी कार्रवाई नहीं की गई। उस संबंध में जब सुरक्षा हित को लागू करने के लिए सुरक्षित लेनदार को कोई अधिकार प्राप्त होता है, तो सरफेसी अधिनियम की धारा 13 और 14 के अंतर्गत विचारित प्रक्रिया का सहारा बैंक द्वारा लिया जाना है। यदि शिकायतकर्ता को ऋणकर्ता के रूप में सरफेसी अधिनियम की धारा 13 के प्रावधानों को लागू करने वाले सुरक्षित लेनदार द्वारा किए गए किसी भी उपाय के बारे में कोई शिकायत थी, तो उपाय सरफेसी अधिनियम की धारा 17/19 के अंतर्गत प्रदान किया जाता है, और निश्चित रूप से आपराधिक कार्यवाही का सहारा नहीं लेना चाहिए। सरफेसी अधिनियम एक पूर्ण संहिता है जो सुरक्षित लेनदार द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया और ऋणकर्ता सहित पीड़ित पक्षों के लिए उपाय भी प्रदान करती है।

53. दिए गए स्वीकृत तथ्यों में, शिकायतकर्ता द्वारा प्रस्तुत शिकायत एक डराने वाली रणनीति थी और बाद में सोचा गया था जो विधिक प्रक्रिया का दुरुपयोग है। इसके अतिरिक्त, वित्तीय संस्था/बैंक के कर्मचारियों को वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण एवं प्रतिभूति हित प्रवर्तन अधिनियम की धारा 32 के अंतर्गत अभियोजन से उन्मुक्ति प्रदान की जाती है। बैंक अधिकारियों द्वारा किया गया कार्य या कार्रवाई, जिसने सद्भावपूर्वक कार्रवाई नहीं की है, मामले का वह पहलू भी एक पहलू है जिसकी जांच निर्धारित मंच के समक्ष सरफेसी अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही में की जा सकती है। ऐसी परिस्थितियों में, वर्तमान प्रकृति के मामले में आपराधिक कार्यवाही स्थिर नहीं होगी, याचिकाकर्ताओं को जांच अधिकारी या आपराधिक न्यायालय के समक्ष कार्यवाही करने के लिए उजागर करना उचित नहीं होगा।

54. **प्रियंका श्रीवास्तव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2015 6 एससीसी 287,** में उच्चतम न्यायालय ने ने वित्तीय संस्थान के एक अधिकारी द्वारा योजित अपील को स्वीकार करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द कर दिया और धारा 156 (3) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत एक आवेदन के माध्यम से दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट के पंजीकरण को रद्द कर दिया। आरंभ के पैराग्राफ में न्यायालय ने इस प्रकार देखा:

"वर्तमान अपील एक ऐसे परिदृश्य को परिलक्षित और भित्तिचित्र बनाती है जो न केवल परेशान करने वाली है, अपितु एक हलचल उत्पन्न करने की क्षमता भी है जो एक परेशान स्थिति में विचार करने के लिए मजबूर करती है कि कैसे कुछ बेईमान, सिद्धांतहीन और कुटिल वादी न्यायालय के दरवाजे पर दस्तक देने के लिए एक बेपरवाह तरीके से सरलता से और अभिनव रूप से आकार दे सकते हैं, जैसे कि, यह एक प्रयोगशाला है जहां विविध प्रयोग हो सकते हैं और ऐसे कुशल व्यक्ति आवेदन में किए गए कठोर दावों द्वारा पीड़ा के कैनवास को चित्रित करके अपनी इच्छा और अभिलाषा से न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग कर सकते हैं, हालांकि वास्तविक आशय वैधानिक अधिकारियों को परेशान करना है, बिना किसी दूरस्थ पश्चाताप के, मुख्य रूप से व्यक्तियों के रूप में उक्त अधिकारियों पर मानसिक दबाव बनाने के लिए आविष्कारशील आकार के साथ, क्योंकि वे आपराधिक मामलों का सामना करने के लिए विधिक न्यायालयों में घसीटा जाना पसंद नहीं करेंगे, और आगे इस तरह से दबाव डालेंगे ताकि वित्तीय संस्थान जिसका वे प्रतिनिधित्व करते हैं, अंततः "एकमुश्त निपटारे" के अनुरोध को स्वीकार करने के लिए विवश हो जाएंगे, इस उम्मीद के साथ कि जिद्दी चूककर्ता जिन्होंने इससे पैसा उधार लिया था, उनके प्रति पंजीकृत मामलों को वापस ले लेंगे।"

55. न्यायालय ने आगे यह भी कहा की दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय विद्वान मजिस्ट्रेट को लगाए गए आरोपों और आरोपों की प्रकृति के संबंध में सतर्क रहना चाहिए और बिना मस्तिष्क के उचित प्रयोग के निर्देश जारी नहीं करने चाहिए। पैरा -27 में न्यायालय ने निम्नानुसार देखा:

".........लेकिन, विद्वान मजिस्ट्रेट को आरोपों को पूरी तरह से ध्यान देना चाहिए, घटना की तिथि और क्या कोई संज्ञेय मामला दूरस्थ रूप से बनाया गया है। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि जब सरफेसी अधिनियम के अंतर्गत आच्छादित वित्तीय संस्थान का कोई ऋणकर्ता, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र का आह्वान करता है और बैंकों और वित्तीय संस्थानों को ऋण की वसूली अधिनियम, 1993 के अंतर्गत एक अलग प्रक्रिया भी है, तो अधिक सावधानी, देखरेख और समझदारी का रवैया अपनाना होगा।"

56. हाल ही में, **के. विरुपाक्ष और एक अन्य बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य; 2020 4 एससीसी 440,** में

उच्चतम न्यायालय ने उप महाप्रबंधक, केनरा बैंक द्वारा योजित एक अपील में, शिकायत और उसमें पारित आदेश को रद्द कर दिया, साथ ही प्रथम सूचना रिपोर्ट भी, जहां तक अपीलकर्ताओं का संबंध है। वित्तीय संस्थान ने चूक करने वाले पक्ष के प्रति वसूली की कार्यवाही शुरू की थी, लेकिन प्रतिशोध और जवाबी कार्रवाई में, अधिकारियों को आपराधिक अभियोजन के लिए उजागर किया गया था। पैराग्राफ 16 में न्यायालय ने इस प्रकार देखा:

"हम दोहराते हैं, सरफेसी अधिनियम के अंतर्गत बैंकों द्वारा की गई कार्रवाई न तो निर्विवाद है और न ही सभी परिस्थितियों में इसे पवित्र माना जाता है, लेकिन अगर बैंक ने जिस तरह से आगे बढ़ा है, उसमें विसंगति है, तो यह हमेशा प्रदान किए गए मंच में इसे लागू करने के लिए अवसर होगा।"

57. **हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य; 1992 अनु (1) एससीसी 335** के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और/या दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत उच्च न्यायालय की शक्तियों के सीमाविस्तार पर विस्तार से विचार किया और कई न्यायिक उदाहरणों का उल्लेख किया और कहा कि उच्च न्यायालय को आरोपों के गुण-दोषों की जांच शुरू नहीं करनी चाहिए और जांच एजेंसी को अपना कार्य पूरा करने की अनुमति दिए बिना कार्यवाही को रद्द नहीं करना चाहिए। न्यायालय ने, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित मामलों की पहचान की जिनमें प्रथम सूचना रिपोर्ट/शिकायत को रद्द किया जा सकता है:

"102. (1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें प्रमुखता से लिया गया हो और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया गया हो, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है या अभियुक्त के विरुद्ध मामला नहीं बनता है।

(2) ....

(7) जहां एक आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावना के साथ भाग लिया जाता है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से अभियुक्त पर प्रतिशोध लेने के लिए एक गुप्त उद्देश्य के साथ और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे अपमानित करने की दृष्टि से शुरू की जाती है।"

58. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, बैंक के अधिकारियों के विरुद्ध यांत्रिक रूप से और बिना मस्तिष्क का प्रयोग किए प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का निर्देश देने वाले मजिस्ट्रेट के आदेश की सराहना नहीं की जा सकती है, रिट याचिकाएं सफल होने के लिए पात्र हैं और तदनुसार आदेश दिया जाता है।

59. रिट याचिकाओं को स्वीकार किया जाता है। शिकायत, उसमें पारित मजिस्ट्रेट का आदेश और साथ ही आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट, जहाँ तक, यह याचिकाकर्ताओं से संबंधित है, को रद्द कर दिया जाता है।

60. 50,000/- रुपये की लागत का आकलन किया गया है, जिसका भुगतान चतुर्थ प्रतिवादी द्वारा बैंक शाखा में, आदेश की तिथि से छह सप्ताह के भीतर किया जाना है।

(2023) 1 ILRA 334
मूल न्यायाधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक:इलाहाबाद 06.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,
माननीय न्यायमूर्ति सैयद वाइज मियां

आपराधिक विविध रिट याचिका क्रमांक -16983 सन् 2022 साथ में आपराधिक विविध रिट याचिका क्रमांक - 18326 सन् 2022

अंबुज पराग दुबे और अन्य ...याचिकाकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता :
राकेश दुबे, वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

ए. आपराधिक कानून - भारत का संविधान, 1950.- अनुच्छेद 226-आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 110,111 और 116 - सार्वजनिक संपत्ति क्षय रोकथाम अधिनियम, 1984-धारा 3/4-प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन-याचिकाकर्ता उन्हें नोटिस की सामग्री के संबंध में अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर नहीं दिया गया - आपेक्षित नोटिस सह आदेश जारी करने से पहले कारण बताओ नोटिस जारी नहीं किया गया था - सीआरपीसी की धारा 110 के तहत कार्यवाही सार्वजनिक संपत्ति क्षय रोकथाम अधिनियम,

1984 की धारा 3/4 के तहत एक वाद के आधार पर शुरू किया गया था, वह एकल वाद याचिकाकर्ताओं को आदतन अपराधी नहीं बनाएगा। (पैरा 1 से 12)

बी. चूंकि जिस व्यक्ति के विरुद्ध कार्रवाई की जानी है, उसे कारण बताना होगा, इसलिए यह स्वाभाविक है कि उसे अपने हाथों से शांति भंग होने या सार्वजनिक शांति भंग होने की आशंका के आधार पता होने चाहिए। हालाँकि यह अनुभाग 'सूचना के सार' की बात करता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि आदेश पूर्ण नहीं होना चाहिए। यह हो सकता है कि वह सूचना को भौतिक रूप से न दोहराए, लेकिन उसे इस बात की उचित सूचना अवश्य देनी चाहिए कि किस बात ने मजिस्ट्रेट को कार्रवाई करने के लिए प्रेरित किया है। (पैरा 10)

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

उद्धृत वाद सूची:

1. मोहन लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1977) सभी क्रि. 333
2. मधु लिमये बनाम एस.डी.एम. मोंग्यर (1971) एआईआर 2486

(माननीय न्यायधीश सुनीत कुमार और
माननीय न्यायधीश सैयद वाइज मियां द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री राकेश दुबे को सुना और राज्य-प्रतिवादियों की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. रिट याचिका संख्या 16983 सन् 2022 के तथ्यों को सुविधा के लिए संदर्भित किया जा रहा है।

3. इस रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ताओं ने मुक़दमा अपराध सं. -0424 सन् 2022 अंतर्गत धारा 3 (1) उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द और समाजविरोधी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986 (संक्षेप में गिरोहबन्द अधि०) थाना – भोगनीपुर, जनपद कानपुर देहात के तहत दर्ज एफआईआर को रद्द करने की मांग की गयी है। प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रभारी निरीक्षक थाना भोगनीपुर द्वारा दर्ज की गई, जिसमें दूसरे याचिकाकर्ता को गिरोह के दस अन्य सदस्यों के साथ गिरोह के नेता के रूप में दिखाया गया है, जिसमें पहले और तीसरे याचिकाकर्ता शामिल हैं। दूसरे याचिकाकर्ता/गिरोह लीडर के खिलाफ तीन मामले गिरोह-चार्ट में शामिल किए गए हैं, जबकि पहले और दूसरे याचिकाकर्ता के खिलाफ एक आधार मामला दिखाया गया है। रिट याचिका संख्या 18326 सन् 2022 में, याचिकाकर्ता गिरोह -चार्ट क्रम संख्या 6 पर है। उसके खिलाफ गिरोह -चार्ट में दो मुकदमे दर्शाए गए हैं।

4. प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह आरोप लगाया गया है कि याचिकाकर्ता, अन्य सदस्यों के साथ, एक गिरोह के रूप में काम कर रहे हैं और जाली और निर्मित दस्तावेजों के आधार पर भा०दं०सं० की धारा 302 और अन्य आर्थिक अपराधों के तहत अपराध किया है। वे समाजविरोधी कार्यवाहियों में लिप्त रहे, जिससे जनता में भय और आतंक पैदा हुआ; आरोप है कि गिरोह के दर से जनता का कोई भी सदस्य आगे आकार गिरोह के मुखिया और गिरोह के सदस्यों के खिलाफ गवाही देने को तैयार नहीं है | याचिकाकर्ताओं के खिलाफ आधार मामलों में पुलिस रिपोर्ट (आरोप-पत्र) दायर की गई है और जाँच अधिकारी द्वारा एकत्र किये इनपुट से, याचिकाकर्ताओं पर गिरोहबन्द अधिनियम के तहत मुक़दमा चलाना जनहित में अनिवार्य हो गया है ताकि उन्हें समाजविरोधी गतिविधियों को शामिल होने से या आगे संगठित अपराध करने से रोका जा सके |

5. पहले याचिकाकर्ता को एक गिरोह के सदस्य के रूप में दिखाया गया है, जो योग्य होने का दावा करता है, उसके पास बी.टेक (मैकेनिकल) की डिग्री और कानून की डिग्री है, और उसकी उम्र लगभग 27 वर्ष है। दूसरा याचिकाकर्ता गिरोह का नेता है, वह पिछले 20 वर्षों से जिला न्यायालय भोगनीपुर, जिला कानपुर देहात में प्रैक्टिस करने वाला वकील होने का दावा करता है, और तीसरा याचिकाकर्ता गिरोह का सदस्य है।

6. दूसरे याचिकाकर्ता / गिरोह लीडर के खिलाफ निम्नलिखित मामले दर्ज किए गए हैं:- मुकदमा अपराध संख्या 98 सन् 2022 अंतर्गत धारा 302, 394,504, 506, 34, 120बी भा०दं०सं०, थाना भोगनीपुर, जिला कानपुर देहात, मुकदमा अपराध संख्या- 190 सन् 2021 अंतर्गत धारा -420, 467, 468, 471, 323, 504, 506 भा०दं०सं० के तहत, थाना भोगनीपुर, जिला कानपुर देहात और मुकदमा अपराध संख्या 173 सन् 2019 अंतर्गत धारा 420, 467, 468, 471 भा०दं०सं० के तहत, थाना भोगनीपुर, जिला कानपुर देहात |

7. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि विवादित प्रथम सूचना रिपोर्ट का पंजीकरण गिरोह चार्ट में उल्लिखित आधार मामले पर आधारित है। यह आग्रह किया गया है कि आक्षेपित प्र०सू०रि० दर्ज करने से पहले, उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द और समाजविरोधी क्रियाकलाप (निवारण) नियम, 2021 (संक्षेप में गिरोहबन्द नियमों के लिए), विशेष रूप से नियम, 5, 8, 10 और 12 के अनिवार्य प्रावधानों का पालन इसकी वास्तविक भावना के अनुरूप नहीं किया गया है, इसके अलावा, यह आग्रह किया गया है कि याचिकाकर्ताओं को गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 2 (बी) के तहत परिभाषित "गिरोह" की परिभाषा में भी शामिल नहीं माना जाएगा।

8. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि मुक़दमा अपराध संख्या 98 सन् 2022 में, दूसरे याचिकाकर्ता को नामांकित नहीं किया गया है, हालांकि, जांच के दौरान पहले और दूसरे याचिकाकर्ता का नाम सामने आया। मुक़दमा अपराध संख्या 173 सन् 2019 के मामले में, आगे की जांच पर गिरोह के नेता के खिलाफ एक पूरक आरोप पत्र दायर किया गया। मुकदमा अपराध संख्या – 190 सन् 2021 में दूसरे याचिकाकर्ता को नामित किया गया है, जिसमें आरोप लगाया गया है कि आरोपी फर्जी दस्तावेज के आधार पर वादी की संपत्ति हासिल करने की कोशिश कर रहे हैं।

9. मुक़दमा अपराध संख्या 173 सन् 2019 और मुक़दमा अपराध संख्या 190 सन् 2021 में दूसरे याचिकाकर्ता ने जमानत/अग्रिम जमानत प्राप्त कर ली है। आगे यह आग्रह किया गया है कि नियम 5 के उप-नियम (3) में कहा गया है कि गिरोह चार्ट को संक्षेप में अनुमोदित नहीं किया जाएगा, बल्कि अधिकारियों की संयुक्त बैठक में उचित चर्चा के बाद अनुमोदित किया जायेगा एवं जिसका अनुपालन नहीं किया गया।

10. यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि इस मामले में जिला मजिस्ट्रेट/सक्षम प्राधिकारी ने पुलिस अधीक्षक के साथ संयुक्त बैठक में अपने न्यायिक मस्तिष्क का प्रयोग किए बिना मंजूरी दे दी; अनुमोदन एक मुद्रित प्रपत्र पर दिया गया था, जबकि नियम 17 नोडल अधिकारी द्वारा अग्रेषित और पुलिस अधीक्षक तथा साथ ही सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित मुद्रित प्रपत्र पर सिफारिशों को प्रतिबंधित करता है। आग्रह किया गया है कि यह मंजूरी गिरोहबन्द नियमावली के नियम 17 का उल्लंघन करती है।

11. रिट याचिका का विरोध करने वाले विद्वान राजकीय अधिवक्ता का कहना है कि याचिका में योग्यता नहीं है; केवल प्रक्रियागत अनियमितता के आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट रद्द नहीं की जा सकती; याचिकाकर्ताओं द्वारा इस बात पर विवाद नहीं किया जा रहा है कि मूल मामले में उन पर गिरोहबन्द अधिनियम के तहत आने वाले अपराधों के लिए आरोप पत्र दायर किया गया है; एक विशेष क़ानून के तहत दर्ज की गई विवादित प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने की गुंजाइश बहुत कम है; रिट याचिका गुणहीन होने के कारण खारिज किये जाने योग्य है।

12. प्रतिद्वंदियों की प्रस्तुतियाँ विचाराधीन हैं।

13. गिरोहबन्द अधिनियम को गैंगस्टरों और समाज विरोधी कार्यवाहियों की रोकथाम और उनसे निपटने के लिए तथा उनसे जुड़े और प्रासंगिक मामलों के लिए विशेष प्रावधान करने के लिए अधिनियमित किया गया था। गिरोहबन्द अधिनियम एक विशेष क़ानून होने के साथ-साथ एक दंडात्मक क़ानून भी है।

14. गिरोहबन्द अधिनियम उन घोषित अपराधियों को दंडित करने का प्रावधान करता है जिन्होंने जानबूझकर अपराध का जीवन चुना है। संगठित अपराध, हिंसा और तांडव के इन पेशेवर अपराधियों की गतिविधियों का समाज और उसके लोगों के स्वास्थ्य और नैतिकता पर कहीं अधिक हानिकारक प्रभाव पड़ता है। यदि ऐसे अपराधियों की गतिविधियों को अन्य सामान्य अपराधियों के समान दंड दिया जाता है, तो राज्य प्रशासन की प्रभावकारिता और दक्षता में जनता का विश्वास डगमगा जाएगा (अशोक कुमार दीक्षित बनाम यूपी राज्य, एआईआर 1987 (इलाहबाद)) 235 (इला० एचसी, एफबी) द्वारा।

15. गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 20 के अनुसार, अधिनियम के प्रावधान या उसके तहत बनाए गए किसी भी नियम का किसी अन्य अधिनियम में निहित किसी भी असंगत बात के बावजूद, अधिभावी प्रभाव होगा | राज्य सरकार ने गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 23 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए और सभी सरकारी आदेशों और अधिसूचनाओं को अधिक्रमित करते हुए, 27 दिसंबर 2021 गिरोहबन्द नियमो को विधिवत अधिसूचित किया, ताकि गैंगस्टरों की संपत्ति और उनके द्वारा अपराधो और उससे सम्बंधित कृत्यों के माध्यम से अर्जित आकस्मिक लाभों के सम्बन्ध में कुशल वसूली प्रणाली स्थापित की जा सके |

16. गोरोहबन्द नियमों का अध्याय-1 "आधारभूत मामले", "प्रपत्र" नोडल अधिकारी" और "लौकिक" को परिभाषित करता है, जो इस प्रकार है:

2.(1)......

ए..........

बी। "आधार मामले" का अर्थ है वे मामले जिनके आधार पर अधिनियम के तहत गिरोह के खिलाफ कार्रवाई करने के इरादे से गैंग-चार्ट तैयार किया गया है;

सी......

डी........

इ। "प्रपत्र" का तात्पर्य इन नियमों से संलग्न प्रपत्र से है;

एफ। "नोडल अधिकारी" का तात्पर्य प्रवृत्त पुलिस अधिनियम, 1861 (अधिनियम संख्या 5 सन् 1861) तथा उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमावली, 1861 के अधीन पुलिस उपाधीक्षक की श्रेणी से अन्यून श्रेणी के पुलिस अधिकारी से है अधिनियम के अधीन गिरोह चार्ट तैयार करने हेतु यथास्थिति जिला पुलिस प्रमुख, पुलिस उपयुक्त/ वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/ पुलिस अधीक्षक द्वारा अभिहित किया जाएगा|

जी............

एच। लौकिक में सहिक परितोषण के निमित्त कृत अविधिमान्य दु : सहाजिक कृत्य शामिल हैं

17. गैंगस्टर नियमों का अध्याय-II "गिरोहों की आपराधिक दायित्व की शर्तें" बताता है। नियम 3(1) में प्रावधान है कि गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 2 के खंड (बी) की उप-धारा (i) से(xxv) में उल्लिखित अपराध गिरोहबन्द अधिनियम के तहत तभी दंडनीय होंगे यदि वेः

(ए) के लिए प्रतिबद्ध हों लोक व्यवस्था को अस्त यास्त करना या (बी) अपने या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई अनुचित, सांसारिक, आर्थिक, भौतिक , आर्थिक या अन्य लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से या तो अकेले या सामूहिक रूप से हिंसा या हिंसा की धमकी या प्रदर्शन, या अभित्रास या प्रपीड़न करके |

18. धारा 2(बी) गिरोह को परिभाषित करती है- "गिरोह" की आवश्यकताएं हैं

(i) गिरोह का अर्थ व्यक्तियों का समूह है; (ii) ये व्यक्ति अकेले या सामूहिक रूप से कार्य कर सकते हैं; (iii) ऐसी कार्रवाई हिंसा या धमकी या हिंसा का प्रदर्शन या अभित्रास या प्रपीडन या अन्यथा से जुड़ी होनी चाहिए; (iv) ऐसी कार्रवाई सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ने या कोई अनुचित लाभ (सांसारिक, आर्थिक, भौतिक या अन्यथा अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए) प्राप्त करने के उद्देश्य से होनी चाहिए।

19. अभिव्यक्ति "सार्वजनिक व्यवस्था" का व्यापक अर्थ है और यह सरकार के आंतरिक विनियमन के परिणामस्वरूप राजनीतिक समाज के सदस्यों के बीच व्याप्त शांति की स्थिति को दर्शाता है। (रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य, एआईआर 1950 एससी 124)। इस प्रकार, सार्वजनिक व्यवस्था का अर्थ समुदाय के जीवन की एक समान गति है, जो एक निर्दिष्ट इलाके और समाज के एक बड़े हिस्से को भी अपने दायरे में लेती है। (नागेन मुर्मू बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, एआईआर 1973 एससी 844)। दूसरे शब्दों में, सार्वजनिक व्यवस्था शब्द वस्तुतः सार्वजनिक शांति, सुरक्षा और शांति का पर्याय है। सार्वजनिक व्यवस्था के उल्लंघन की घटनाओं में सार्वजनिक स्थानों पर ध्वनि एम्पलीफायरों के उपयोग को विनियमित करने, स्कूलों में जबरन प्रवेश, स्कूल भवन, सार्वजनिक संपत्ति में आग लगाना, सार्वजनिक जुआ, नकली और मिलावटी शराब, दवाओं का निर्माण और वितरण करना, पुलिस पर बम फेंकने का प्रयास आदि सभी सार्वजनिक व्यवस्था से जुड़े हैं। (बबलू मित्रा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, एआईआर 1973 एससी 197)।

20. प्रथम दृष्टया, व्यक्तिगत शत्रुता के आधार पर किसी एक व्यक्ति से संबंधित एक भी घटना सार्वजनिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न नहीं कर सकती है, और "कानून और व्यवस्था" की समस्या तक ही सीमित रह सकती है लेकिन यह हमेशा आवश्यक नहीं है। निर्धारण के लिए मूल प्रश्न यह है कि क्या घटना सार्वजनिक व्यवस्था या कानून व्यवस्था को बिगाड़ती है, इसका निर्धारण प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर संचयी प्रभाव के आधार पर किया जाना चाहिए। बल्कि यह घटना के प्रति जनता की प्रतिक्रिया और उसके परिणामस्वरूप अपराधियों द्वारा फैलाये गये आतंक और उससे उत्पन्न माहौल पर निर्भर करता है। सार्वजनिक व्यवस्था और कानून व्यवस्था के बीच अंतर को सुप्रीम कोर्ट ने जदुनंदन शा बनाम जिला मजिस्ट्रेट, धनबाद, (1983) 4 एससीसी 301 मामले में संक्षेप में समझाया था।

21. गिरोहबन्द अधिनियम के तहत सार्वजनिक व्यवस्था और कानून व्यवस्था के बीच कोई अंतर नहीं किया गया है, गिरोहबन्द अधिनियम के तहत अपराधी की स्थिति नहीं बल्कि कार्य को दंडनीय बनाया गया है। गिरोहबन्द अधिनियम के तहत अपराधों के लिए गैंगस्टरों की गतिविधियां, चूंकि वे समाज की समान गति के लिए गंभीर खतरा पैदा करते हैं, इसलिए कड़ी और अधिक निवारक सजा और तेज वृद्धि और शीघ्र गिरफ़्तारी की मांग की गई। इसके बाद गिरोहबन्द नियम यह आदेश देते हैं कि यद्यपि कोई व्यक्ति घटना स्थल पर शारीरिक रूप से मौजूद नहीं हो सकता है, फिर भी उस घटना के संबंध में गिरोहबन्द अधिनियम के प्रावधानों के तहत उसे इस आधार पर शामिल किया जा सकता है कि वह एक गैंगस्टर है। इस प्रकार, उस स्थान पर पकड़े जाने वाले व्यक्ति के किसी भी प्रत्यक्ष और सकारात्मक कार्य की कोई आवश्यकता नहीं है। यह उसकी सक्रिय संलिप्तता को साबित करने के लिए पर्याप्त है जिसका अपराध पर असर पड़ता है। (अशोक कुमार दीक्षित द्वारा (सुप्रा))।

22. गिरोह की परिभाषा में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "या अन्यथा" को संयुक्त या विच्छेदात्मक रूप से पढ़ा जा सकता है। यदि संयुक्त रूप से पढ़ा जाए, तो कानून में "या अन्यथा" शब्द, जब विशिष्टताओं की गणना के बाद एक सामान्य वाक्यांश में उपयोग किया जाता है, तो आमतौर पर एक प्रतिबंधित अर्थ में व्याख्या की जाती है, जैसे कि ऐसे अन्य मामलों का जिक्र होता है जो पहले उल्लिखित वर्गों से संबंधित हैं. "या अन्यथा" में "या" शब्द एक वियोजक है जो एक विकल्प को चिह्नित करता है जो आम तौर पर "या तो" शब्दों से मेल खाता है। सामान्य शब्दों का अंतर्संचालन "या अन्यथा" उन्हें पिछले शब्दों (हिंसा, धमकी, प्रपीडन) के समान मामलों और चीजों तक सीमित कर देता है, जो पूर्ववर्ती विशिष्ट शब्दों के बाद सामान्य शब्द "या अन्यथा" को अनावश्यक बना देगा। ये शब्द "या अन्यथा" सीमा के शब्द नहीं हैं, बल्कि विस्तार के शब्द हैं ताकि सभी संभावित अपराधों को कवर किया जा सके। इसलिए, "अन्यथा" शब्द को उप-धारा के पहले भाग में उल्लिखित हिंसा के अन्य उदाहरणों के साथ "एजुस्डेम जेनेरिस" नहीं पढ़ा जाना चाहिए।

23. इसके अलावा, जिन अपराधों को गैंग की परिभाषा में शामिल किया गया है, उनमें भारतीय दंड संहिता के अध्याय-XVII के तहत अपराध शामिल हैं, जिसमें धारा 378 के तहत चोरी का अपराध, धारा 403 के तहत अपराध और सम्बद्ध धाराएँ संपत्ति के आपराधिक दुर्विनियोग से संबंधित हैं। धारा 405 और संबद्ध धाराएं आपराधिक न्यास भंग संपत्ति का बेईमानी से दुर्विनियोग के अपराध से

संबंधित हैं। धारा 410 और संबंधित धाराएं चोरी की संपत्ति से संबंधित हैं, धारा 420 और संबंधित धाराएं धोखाधड़ी के अपराधों से संबंधित हैं जिनमें केवल किसी व्यक्ति या उसकी संपत्ति को धोखा देना, धोखाधड़ी या बेईमानी से प्रलोभन देना शामिल है। गिरोह की परिभाषा में शामिल प्रावधानों से यह स्पष्ट है कि बल या हिंसा के अस्तित्व की आवश्यकता नहीं है। इसी तरह, यूपी सार्वजनिक जुआ अधिनियम की धारा 3 के तहत अपराधों में आवश्यक रूप से बल का प्रयोग शामिल नहीं हो सकता है। इस प्रकार, शब्द "अन्यथा" को गिरोह की परिभाषा में असंबद्ध रूप से प्रयोग किया गया है और इसे "एजुस्डेम जेनेरिस" के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है, इस उप-खंड के पहले भाग में उल्लिखित हिंसा की अन्य घटनाओं के साथ (वर्नीत कुमार द्वारा (सुप्रा)).

24. गैंगस्टर नियमावली के नियम 4 में स्पष्ट किया गया है कि घटना स्थल पर व्यक्तियों का उपस्थित होना या घटना में प्रत्यक्ष रूप से शामिल होना आवश्यक नहीं है। आगे यह प्रावधान किया गया है कि उक्त गिरोह के सभी सदस्यों के साथ मिलकर कोई अपराध करना आवश्यक नहीं है। यदि उस गिरोह के किसी सदस्य ने किसी अन्य सदस्य या गिरोह के सरगना के साथ मिलकर कोई अपराध किया है जो गैंगस्टर एक्ट के दायरे में आता है, तो उन्हें एक गिरोह माना जा सकता है।

25. नियम 4 निम्न प्रकार है:

4. (1) घटना स्थल पर उपस्थित होना या घटना में प्रत्यक्ष रूप से सहभागी होना आवश्यक नहीं है; अधिनियम की धारा 2 के खंड (बी) में परिभाषित आपराधिक कृत्य को करने के लिए यदि कोई व्यक्ति इस बात की जानकारी होते हुए सम्पूर्ण गिरोह को संगठित करता है गिरोह का सरगना या उस गिरोह को सदस्य को दुष्प्रेरित करता है या उसकी सहायता करता है कि ऐसे किसी व्यक्ति को संरक्षण और आश्रय प्रदान करता है, कि प्रश्नगत व्यक्ति गिरोह का सरगना या गिरोह का सदस्य है अथवा एसी क्रिया कलाप करने के पूर्व या पश्चात् कोई आपराधिक कृत्य करने / उसमे सहायता करने/ उसे दुष्प्रेरित करने में संलिप्त था तो ऐसा व्यक्ति भी अधिनियम के उपबंधों के आधीन उत्तर दायी होगा; भले ही सम्पूर्ण गिरोह उक्त घटना कारित किये जाने के समय घटना में सहभागी न रहा हो या घटना स्थल पर उपस्थित न रहा हो|

(2) एक साथ कोई अपराध करना आवश्यक नहीं है: किसी व्यक्ति का इस अधिनियम के अधीन उसके लिए उक्त गिरोह के समस्त सदस्यों के साथ कोई अपराध करना आवश्यक नहीं है यदि उक्त गिरोह का कोई सदस्य किसी अन्य सदस्य या गिरोह के सरगना के साथ कोई ऐसा अपराध किया हो, जो अधिनियम के कार्य क्षेत्र में आता है, तो उन्हें एक गिरोह माना जा सकता है: परन्तु यह और कि ऐसे किसी भी व्यक्ति को गिरोह में सम्मिलित नहीं किया जाएगा जिसने विगत तीन वर्ष या उससे पूर्व किसी सदस्य के साथ ऐसे कुछ अपराध किए हों जो अधिनियम के दायरे में नहीं आते हों।

26. गिरोह की परिभाषा में उल्लिखित सभी असामाजिक गतिविधियाँ अपराध के रूप में शामिल नहीं हैं, लेकिन निश्चित रूप से समाज पर गंभीर प्रभाव डालने वाली गैरकानूनी गतिविधियाँ हैं, हालाँकि इन्हें अपराध नहीं कहा गया है। इस प्रकार, कानून में कभी यह आवश्यक नहीं हुआ कि अपराध अतीत में किया गया हो या गिरोहबन्द अधिनियम के तहत मुकदमा चलाने के लिए हिंसा का उपयोग शामिल हो। इसके अलावा, गिरोह की परिभाषा के अनुसार, गिरोहबन्द अधिनियम उन गतिविधियों को रोकने और दंडित करने का प्रयास करता है जिनके परिणामस्वरुप गैंगस्टरों या किसी अन्य व्यक्ति को अनुचित अस्थायी, आर्थिक, भौतिक या अन्य लाभ हो सकता है और जिसमें आवश्यक रूप से हिंसा का उपयोग शामिल हो भी सकता है और नहीं भी। (वनीत कुमार बनाम यूपी राज्य। 2009 (1) (Alld.) सीआरजे 377)।

27. गिरोहबन्द नियमावली का अध्याय-III गैंग चार्ट से संबंधित सिद्धांत बताता है। नियम-5 में कहा गया है कि पुलिस स्टेशन / स्टेशन हाउस ऑफिसर/ इंस्पेक्टर का प्रभारी गिरोह की आपराधिक गतिविधियों के विवरण का उल्लेख करते हुए एक गिरोह चार्ट (फॉर्म नंबर 1) तैयार करेगा। उक्त गिरोह के सभी व्यक्तियों के संबंध में विस्तृत गतिविधियों का उल्लेख करते हुए अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक की स्पष्ट अनुशंसा के बाद गैंग चार्ट पुलिस जिला प्रमुख को प्रस्तुत किया जाएगा। नियम 5 के उपनियम (2) में प्रावधान है कि गिरोह चार्ट के संबंध में उसमें निहित प्रावधानों का अनुपालन किया जाएगा। प्रावधान को इस प्रकार पढ़ते हैं :-

5. (1) इस अधिनियम के अधीन कार्यवाहियाँ शुरू करने के लिए, संबंधित पुलिस थाना प्रभारी / थानाध्यक्ष / निरीक्षक, गिरोह की आपराधिक गतिविधियों के विवरण का उल्लेख करते हुए एक गिरोह-चार्ट तैयार करेगा।

2) उक्त गिरोह के सभी व्यक्तियों के संबंध में विस्तृत क्रियाकलापों को उल्लेखित करते हुए अपर पुलिस अधीक्षक की स्पष्ट अनुशंसा के बाद गिरोह चार्ट जिला पुलिस प्रमुख को प्रस्तुत किया जायेगा।

(2) गिरोह-चार्ट के संबंध में निम्नलिखित प्रावधानों का अनुपालन किया जाएगा:-

ए) गिरोह-चार्ट को संक्षेप में नहीं बल्कि पुलिस आयुक्त/जिला मजिस्ट्रेट वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक की संयुक्त बैठक में सम्यक रूप से विचार विमर्श के बाद अनुमोदित किया जाएगा।

बी) किसी एक व्यक्ति का गिरोह नहीं हो सकता है, बल्कि एक ज्ञात व्यक्तियों का गिरोह और दूसरा अज्ञात व्यक्तियों

का गिरोह हो सकता है और उस प्रारूप में गिरोह-चार्ट इन नियमावली के अनुसार अनुमोदित किया जा सकता है।

सी) गिरोह-चार्ट में उन मामलों का उल्लेख नहीं होगा जिनमें विशेष न्यायालय दवारा दोष मुक्ति प्रदान की गयी हो या जिनमें अन्वेषण करने के बाद अतिम रिपोर्ट दाखिल कर दी गई हो। हालांकि, आधारभूत मामले का अन्वेषण पूरा हुए बिना गिरोह चार्ट को अनुमोदित नहीं दी जाएगी।

डी) गिरोह – चार्ट में उन मामलों का अल्लेख नहीं किया जाएगा, जिनके आधार पर इस अधिनियम के तहत एक बार पहले भी कार्यवाही की जा चुकी हो|

ई) उस गिरोह के आपराधिक क्रियाकलायो का विस्तृत विवरण देते हुये और समस्त आपराधिक मामलों का उल्लेख करते हुए प्रपत्र सख्या -4 में यथा प्रदत्त आपराधिक इतिहास की पृथक सूची गिरोह-चार्ट के साथ संलग्न की जाएगी भले ही उन मामलो में दोष सिद्धि प्रदान कर दी गयी हो या जहाँ साक्ष्य न होने पर अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी गयी हो|

उपरोक्त के साथ-साथ थाने पर रखे गये गिरोह पंजिका की प्रमाणित प्रति भी गिरोह चार्ट के साथ संलग्न की जाएगी। उपरोक्त के अलावा गिरोह चार्ट में उल्लिखित अपराध और गिरोह के सदस्यों की जानकारी अंतर्संचालीय दाण्डिक न्याय प्रणाली पोर्टल और अपराध तथा दाण्डिक नेटवर्क प्रणाली पर भी अघटन कृत की जाएगी।

28. नियम 6 में प्रावधान है कि गिरोह- चार्ट तैयार करते समय सुसंगत उपबन्ध का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाएगा, यदि गिरोह का कथित कृत्य अधिनियम की धारा 2 के खंड (बी) के दायरे में आता है, आगे उप-नियम (2) आदेश देता है कि अन्वेषणकर्ता अधिकारी इस आशय का पृष्ठांकन करता है कि आरोपी सार्वजनिक रूप से जनता में भय अभित्रास या आतंक पैदा कर रहा है तो इस संबंध में साक्ष्य एकत्र किए जाएंगे। उपरोक्त के अतिरिक्त आपराधिक इतिहास की सूची पृथक से निर्धारित प्रारूप में संलग्न की जा सकती है। (फॉर्म नंबर 4)

29. नियम 10 में कहा गया है कि आधार मामलों के रिकॉर्ड, गिरोह चार्ट के साथ होंगे और नियम 11 में कहा गया है कि सभी आरोपियों की वर्तमान स्थिति, चाहे वे जेल में हो या जमानत पर हो या फरार हो, स्पष्ट रूप उल्लेख किया जाएगा। नियम 13 में कहा गया है कि गिरोह चार्ट के नीचे सार लिखते समय उन अधिकारियों का विवरण विशेष रूप से अंकित किया जाएगा। नियम 13 निम्नानुसार है :

30.

13)गिरोह चार्ट के नीचे संक्षिप्त सार एवं गिरोह चार्ट के साथ पृथक-पृथक विशिष्टया लिखते समय उन अपराधों की विशिष्टियां विनिर्दिष्ट रूप से उल्लेखित की जाएँगी :

i) जो आर्थिक, भौतिकवादी और लौकिक या इसी तरह के लाभों के लिए प्रतिबद्ध हैं;

ii) जो सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ते हैं; या

iii) जो राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 (1980 का अधिनियम संख्या 65) के अधीन विरुद्ध का आधार है|

31. नियम 15 के उप-नियम 3 में प्रावधान है कि किसी गिरोह के सदस्य का नाम गिरोह और गिरोह-चार्ट में शामिल करने या न करने का अंतिम निर्णय पुलिस आयुक्त/जिला मजिस्ट्रेट के विवेक पर होगा।

32. नियम 16 गिरोह चार्ट को अग्रेषित करते समय किए जाने वाले तरीके और सिफारिशों का प्रावधान करता है। नियम16 इस प्रकार है :

16. गिरोह चार्ट के अग्रेषण में निम्नलिखित तरीके का पालन किया जाएगा:

1) अपर पुलिस अधीक्षक द्वारा गिरोह चार्ट का अग्रसारण अपर पुलिस अधीक्षक उक्त मामलो मे न केवल त्वरित अग्रेषण कार्यवाई करेंगे बल्कि वह गिरोह चार्ट और सभी संलग्न प्रपत्रों का समयक परिशीलन भी करेंगे और जब वह संतुष्ट हो जाएगा कि मामले को आगे बढ़ाने का न्यायसंगत और संतोषजनक आधार है, तभी वह गिरोह – चार्ट पर नीचे प्रदत्त संतुष्टि सहित पत्र पुलिस अधीक्षक/वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक को अग्रेषित करेगा।

"गिरोह-चार्ट और संलग्न साक्ष्यों का आधोपरंत परिशीलन किया । उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द और समाजविरोधी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986 के तहत कार्रवाई का आधार विद्यमान है। तदनुसार, संस्तुति सहित अग्रसारित।"

(2) गिरोह-चार्ट को जिला पुलिस प्रभारी द्वारा अग्रसारित करनाः जब गिरोहचार्ट समस्त प्रपत्रों सहित अपर पुलिस अधीक्षक की स्पष्ट संस्तुति के साथ वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक को प्राप्त हो जाए तो वह भी समस्त तथ्यों का अधोपरंत परिशीलन करेगा और जब यह जब यह पुष्टि हो जाए कि अधिनियम की समस्त अपेक्षाओं की पूर्ती कर ली गयी है और उक्त मामले की कार्यवाही किये जानेका विधिक आधार है तो उसे यह उल्लिखित करते हुए गिरोह चार्ट आयुक्त / जिला मजिस्ट्रेट को अग्रेषित करना चाहिए की; "मैंने गिरोह-चार्ट और संलग्न प्रपत्रों का सम्यक परिशीलन किया है और मैं पूरी तरह से संतुष्ट हूं कि मामले में उल्लिखित समस्त विशिष्टियां सही हैं तथा गिरोह बन्द तथा समाजविरोधी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम,1986 के तहत कार्यवाई करने का संतोषजनक आधार है। तदनुसार अनुमोदित किया जाता है|

(3) पुलिस आयुक्त/जिला मजिस्ट्रेट का संकल्पः जब गिरोह-चार्ट सभी प्रपत्रों के साथ पुलिस आयुक्त जिला मजिस्ट्रेट को भेजा दिया जाए, तो पुलिस आयुक्त जिला मजिस्ट्रेट द्वारा भी सभी तथ्यों का गहनता से अवलोकन किया जाएगा तथा जब उसका समाधान हो जाए कि मामले में कार्रवाई का आधार मौजूद है तब गिरोह चार्ट को यह उल्लिखित करते उसका अनुमोदन करेगा कि : "मैंने गिरोह-चार्ट के साथ संलग्न साक्ष्य के आलोक में गिरोह-चार्ट

व संलग्न प्रपत्रों का अधोपरंत परिशीलन किया | उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द एवं समाजविरोधी क्रियाकलाप (निवारण) के तहत कार्रवाई करने के लिए संतोषजनक आधार मौजूद हैं। गिरोह-चार्ट तदनुसार अनुमोदित किया जाता है।"

उल्लेखनीय है कि ऊपर लिखे गए शब्द मात्र उदाहरणात्मक हैं। मात्र उन्ही को शब्दशः लिखने की कोई बाध्यता नहीं है लेकिन यह आवश्यक है कि अनुमोदन का अर्थ वही होना चाहिए जैसा कि ऊपर लिखित संस्तुतियां हैं और यह अंकित अनुमोदन कि टिप्पणी से भी स्पष्ट होना चाहिए |

33. सक्षम प्राधिकारी की संतुष्टि का अर्थ केवल इतना है कि सक्षम प्राधिकारी को वास्तव में संतुष्ट होना चाहिए न कि बेईमान पूर्ण संतुष्टि, जो कि विल्कुल भी संतुष्टि नहीं होगी। गिरोहबन्द नियन दद्वारा अपेक्षित संतुष्टि सक्षम प्राधिकारी के समक्ष रखी गई सामग्री पर तथ्यात्मक रूप से संतुष्टि है। नियम के तहत संदर्भित सक्षम प्राधिकारी की संतुष्टि गिरोहबन्द के खिलाफ लगाए गये आरोपों के संबंध में नहीं है, बल्कि संतुष्टि उन आरोपों तक ही सीमित है कि आरोपी पर गिरोहबन्द अधिनियम के तहत मुकदमा चलाया जा सकता है। आरोपी के खिलाफ आरोप की प्रकृति जो भी हो, सक्षम प्राधिकारी की संतुष्टि उसके सामने रखी गई सामग्री और सामुदायिक असामाजिक गतिविधियों में शामिल आरोपी की प्रक्रिति के सम्बन्ध में होनी चाहिए | गिरोहबन्द अधिनियम केतहत अभियोजन स्वीकृत किया जाना समीचीन है |

34. संतुष्टि की अभिव्यक्ति "मस्तिष्क के प्रयोग" की तुलना में बहुत संकीर्ण है। सक्षम प्राधिकारी को अपना दिमाग नहीं लगाना है और उसको खुद को संतुष्ट करना है कि उसके सामने रखी गई सामग्री गिरोहबन्द अधिनियम के तहत आरोपी को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त होगी या नहीं। सक्षम प्राधिकारी के समक्ष रखी गई सामग्री के आधार पर संतुष्टि एक सीमित दायरे तक ही सीमित है, गिरोह-चार्ट अग्रेषित करने वाले अधिकारी इस बात से संतुष्ट हैं कि आरोपियो पर गिरोहबन्द अधिनियम के तहत मुकदमा चलाया जाना चाहिए। संतुष्टि की अभिव्यक्ति साक्ष्यों पर संतुष्टि नहीं है, बल्कि नोडल प्राधिकारी और जिला पुलिस के अभ्यावेदन के आधार पर प्रथम दृष्टया संतुष्टि है कि आरोपियों पर गिरोहबन्द अधिनियम के तहत मुकदमा चलाया जाना चाहिए।

35. नियम 17 में कहा गया है कि सक्षम प्राधिकारी गिरोह-चार्ट अग्रेषित करते समय अपने स्वतंत्र मष्तिष्क का प्रयोग करने के लिए बाध्य है और उसे पूर्व-मुद्रित रबर के मुहर पर अंकित गिरोह -चार्ट पर सक्षम प्राधिकारी द्वारा हस्ताक्षर नहीं किया जाना चाहिए।

नियम 17 इस प्रकार है :

17) (1) – गिरोह-चार्ट अग्रेषित करते समय सक्षम प्राधिकारी अपने स्वतंत्र मस्तिष्क का प्रयोग करने के लिए बाध्य होगा।

(2) पूर्व-मुद्रित रबर के मुहर पर अंकित गिरोह-चार्ट पर सक्षम प्राधिकारी द्वारा हस्ताक्षर नहीं किया जाना चाहिए; अन्यथा यह इस तथ्य के समान होगा कि सक्षम प्राधिकारी ने अपने स्वतंत्र मस्तिष्क का प्रयोग नहीं किया है।

36. नियम 18 में प्रावधान है कि गिरोह-चार्ट इन नियमो के प्रपत्र संख्या 1 में दिए गये तरीके से ही भेजा जाएगा।

37. नियम 17 और 18 को एक साथ पढ़ना होगा, गिरोह-चार्ट को निर्धारित प्रपत्र सं.1 में भेजना होगा। प्रत्येक प्राधिकारी द्वारा किए जाने वाले समर्थन को नियम 16 में भी निर्दिष्ट किया गया है। नियम स्वयं एक मुद्रित प्रपत्र को निर्धारित और अनिवार्य करता है। नियम 17 केवल इतना कहता है कि गिरोह-चार्ट को मंजूरी देते समय सक्षम प्राधिकारी को यांत्रिक रूप से पुलिस अधिकारियों की सिफारिश से प्रभावित नहीं होना चाहिए, बल्कि खुद को स्वतंत्र रूप होन से संतुष्ट होना चाहिए कि अभियोजन के लिए आधार तैयार है। इस स्तर पर संतुष्टि व्यक्तिपरक होती है और किसी साक्ष्य पर निर्भर नहीं होती है। सक्षम् प्राधिकारी को इस बात से संतुष्ट होना होगा कि गिरोह-चार्ट के साथ रखी गई सामग्री अभियोजन की मांग करती है। साक्ष्य एकत्र करने का चरण इसके बाद चलता है। न्यायिक समीक्षा का दायरा छोटा है, आरोपी गिरोह-चार्ट को चुनौती दिए बिना एफआईआर को चुनौती नहीं दे सकता। प्रस्तावित आरोपियों की असामाजिक गतिविधियां किसी गिरोह या गैंगस्टर की है या नहीं, यह जांच का विषय है।

38. नियम 22 स्पष्ट करता है और निर्दिष्ट करता है कि एकल कार्य / चूक भी अधिनियम के तहत एक अपराध सृजित होगा और एक मामले के आधार पर भी प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की जानी चाहिए। नियम 22(1) इस प्रकार है:

22(1)- अधिनियम के तहत एकल कार्य/चूक से भी अपराध सृजित होगा, और प्रथम सूचना रिपोर्ट किसी एकल मामले के आधार पर दर्ज की जा सकती हैं, यानी यह अनिवार्य नहीं है कि अधिनियम के अधीन कोई आपराध रजिस्ट्रीकृत किये जाने से पूर्व कोई अपराधिक इतिहास आभलिखित किया जाना तथा अभिकथित किया जाना आवश्यक होगा |

39. इसके अलावा, नियम 22 का उप-नियम (2) अनिवार्य रूप से एकल अपराध पर कुछ निश्चित श्रेणी के मामलों पर अभियोजन का प्रावधान करता है, जिसमें उप अधिनियम की धारा 2 का खण्ड (i) या खण्ड (बी) में उल्लिखित अपराधों में से भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 376 डी, 395, 396 या 397 शामिल हैं।

40. नियम 27 यह स्पष्ट करती है कि यदि अभियुक्त नाबालिग हैं, और उसकी उम्र 18 वर्ष से कम हैं, तो उन्हें गिरोह-चार्ट में शामिल नहीं किया जाना चाहिए, हालांकि, नियम का प्रावधान यह स्पष्ट करता है कि यदि किशोर का कृत्य नियम 22 में वर्णित अपराध की श्रेणी में है और

41. उसकी उम्र 16 वर्ष से अधिक है, तो उसके खिलाफ कार्रवाई की जा सकती है। नियम 27 इस प्रकार है:

27. यदि अभियुक्त अवयस्क है और उनकी उम्र 18 वर्ष से कम हो तो उन्हें गिरोह-चार्ट में शम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए:
परन्तु यह कि यदि किशोर का कृत्य नियम 22 में वर्णित अपराध की श्रेणी में आता है और उसकी उम्र 16 वर्ष से अधिक हो तो नियम 64 में उल्लिखित जिला स्तरीय पर्यवेक्षण समिति के विनिश्चय के अध्यधीन समिति का उल्लेख है | अधिनियम के सुसंगत प्रावधानों के तहत कार्यवाही की जा सकती है।

42. मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, गिरोह लीडर और गिरोह के सदस्यों को गिरोह-चार्ट में दिखाए गए आधार मामलों में आरोप पत्र दायर किया गया है। लेकिन केवल यह गिरोहबन्द अधिनियम के अधीन मुक्दमा चलाने का आधार नहीं है, अधिनियम ऐसे व्यक्तियों के खिलाफ समाजविरोधी गतिविधियों में शामिल होने के लिए मुकदमा चलाने का प्रावधान करता है जिन्हें गिरोहबन्द भधिनियम के तहत अपराध बनाया गया है। गिरोह का सरगना एक कार्यरत आधिवक्ता होने का दावा करता है, गिरोह का एक सदस्य काफी पढ़ा-लिखा है, लेकिन इसका मतलब यह कि वे सांसारिक लाभ नहीं है के लिए समाज विरोधी गतिविधियों में शामिल नहीं हैं। गिरोहबन्द नियम केवल अभियोजन दर्ज करने के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत बताते हैं। साक्ष्य एकत्र करने का चरण उसके बाद चलता है।

43. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता की यह दलील कि गिरोह-चार्ट को मंजूरी देने से पहले सक्षम प्राधिकारी द्वारा पुलिस अधिकारियों के साथ हुई चर्चा नहीं की गयी थी, याचिकाकर्ताओं के अभियोजन के लिए घातक नहीं होगी | अभिव्यक्ति "चर्चा" का हर मामले में सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनिवार्य रूप से पालन किया जाना चाहिए, नियम को पढ़ने से पालन नहीं होता है, हालांकि नियम "करेगा" शब्द का उपयोग करता है। गिरोहबन्द नियम कहीं भी सक्षम प्राधिकारी द्वारा "चर्चा" का पालन न करने के परिणाम को नहीं बताता है। हमारी राय में चर्चा को अनिवार्य करने वाला नियम निर्देशिका है। गिरोह-चार्ट के अनुमोदन के लिए उसके समक्ष रखी गई सामग्री को ध्यान में रखते हुए इसे सक्षम प्राधिकारी के विवेक पर छोड़ दिया गया है। किसी मामले में, सामग्री के आधार पर, सक्षम प्राधिकारी आश्वस्त है और प्रथम दृष्टया संतुष्ट है कि अभियोजन का मामला बनता है, तो वह पुलिस अधिकारियों के साथ चर्चा को दरकिनार करते हुए गिरोह-चार्ट को मंजूरी दे सकता है। लेकिन ऐसे मामले में जहां सक्षम प्राधिकारी पुलिस प्राधिकारियों द्वारा रखी गई सामग्री पर आश्वस्त नहीं है या असमंजस में है, सक्षम प्राधिकारी आवश्यक रूप से प्रथम दृष्टया खुद को संतुष्ट करने के लिए चर्चा करने का निर्णय ले सकता है कि अभियोजन चलना चाहिए या नहीं गिरोह चार्ट के अनुमोदन के बाद होने वाली एफआईआर को केवल चर्चा के अभाव में गलत या रद्द नहीं किया जा सकता है।

44. गिरोहबन्द अधिनियम का उद्देश्य गैंगस्टर की समाजविरोधी गतिविधियों पर रोक लगाना है, जरूरी नहीं कि समाजविरोधी गतिविधि हिंसक ही हो। अदालत इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं है कि लौकिक और सांसारिक लाभ के लिए, एक गैंगस्टर की कार्यप्रणाली केवल एक फोन कॉल पर या एक संदेशवाहक के माध्यम से किसी निवासी को डराने-धमकाने या संपत्ति छोड़ने या फिरौती मांगने के लिए मजबूर की जा सकती है। हिंसा का कोई प्रत्यक्ष कार्य नहीं है, बल्कि यह संगठित असामाजिक गतिविधि के समान है। याचिकाकर्ताओं की ओर से दलील दी गई है कि एक आधार मामले में शिकायतकर्ता ने आरोपी गिरोह के सदस्य के खिलाफ मामला वापस लेने के लिए अपना हलफनामा दिया है। याचिकाकर्ताओं को हलफनामा सौंपने में शिकायतकर्ता का आचरण एक स्वैच्छिक कार्य प्रतीत हो सकता है, लेकिन साथ ही यह कार्य गिरोह द्वारा मौन धमकी, धमकी या जबरदस्ती पर आधारित हो सकता है। जांच के दौरान इस पर गौर किया जाना चाहिए। याचिकाकर्ताओं को अभियोजन का सामना करना होगा।

45. तदनुसार, रिट याचिकाएं गुणहीन होने के कारण खारिज की जाती हैं।

(2023) 1 ILRA 344

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल साइड

दिनांक: इलाहाबाद 05.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,
माननीय न्यायमूर्ति सैयद वाइज मियां

आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या - 20563/2019

गय्यूर हसन और अन्य ... याचिकाकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ... प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
निपुण सिंह

प्रतिवादी के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

ए. आपराधिक कानून - भारत का संविधान, 1950.- अनुच्छेद 226-आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 110,111 और 116 - सार्वजनिक संपत्ति क्षय रोकथाम अधिनियम, 1984-धारा 3/4-प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन-याचिकाकर्ता उन्हें नोटिस की सामग्री के संबंध में अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर नहीं दिया गया - आपेक्षित नोटिस सह आदेश जारी करने से पहले कारण बताओ नोटिस जारी नहीं किया गया था - सीआरपीसी की धारा 110 के तहत कार्यवाही सार्वजनिक संपत्ति क्षय रोकथाम अधिनियम, 1984 की धारा 3/4 के तहत एक वाद के आधार पर शुरू किया गया था, वह एकल वाद याचिकाकर्ताओं को आदतन अपराधी नहीं बनाएगा। (पैरा 1 से 12)

बी. चूंकि जिस व्यक्ति के विरुद्ध कार्रवाई की जानी है, उसे कारण बताना होगा, इसलिए यह स्वाभाविक है कि उसे अपने हाथों से शांति भंग होने या सार्वजनिक शांति भंग होने की आशंका के आधार पता होने चाहिए। हालाँकि यह अनुभाग 'सूचना के सार' की बात करता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि आदेश पूर्ण नहीं होना चाहिए। यह हो सकता है कि वह सूचना को भौतिक रूप से न दोहराए, लेकिन उसे इस बात की उचित सूचना अवश्य देनी चाहिए कि किस बात ने मजिस्ट्रेट को कार्रवाई करने के लिए प्रेरित किया है। (पैरा 10)

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>**उद्धृत वाद सूची:**</u>

1. मोहन लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1977) सभी क्रि. 333
2. मधु लिमये बनाम एस.डी.एम. मोंग्यर (1971) एआईआर 2486

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार और
माननीय न्यायमूर्ति सैयद वाइज मियां द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री निपुण सिंह और राज्य के लिए विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना।

याचिकाकर्ता, वर्तमान याचिका द्वारा, तृतीय प्रतिवादी, सब डिविजनल मजिस्ट्रेट, कैराना, जिला शामली द्वारा दिनांक 01.07.2019 को जारी आक्षेपित नोटिस अंतर्गत धारा 110, आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षिप्त "संहिता") को अपास्त करने की मांग कर रहा है।

वर्तमान कार्यवाही में सहयोग न करने में राज्य-प्रतिवादी का आचरण अत्यंत गंभीर है, कि कई अवसरों के बावजूद प्रति शपथपत्र दाखिल नहीं किया गया, तदनुसार, आदेश दिनांकित 14.09.2022 द्वारा, न्यायालय राज्य-प्रतिवादी पर 10,000/-रुपये की लागत लगाने पर बाध्य हुआ। इसके बाद तृतीय प्रतिवादी की ओर से प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया है।

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील की दलील का मुख्य विषय इन दो दावों पर आधारित है, कि संहिता की धारा 110 के तहत नोटिस प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन है क्योंकि आक्षेपित नोटिस सह आदेश जारी करने से पहले कोई कारण बताओ नोटिस जारी नहीं किया गया था। इसके अलावा, संहिता की धारा 110 के तहत कार्यवाही मुकदमा अपराध संख्या 52/2019 अंतर्गत धारा 3/4 सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 के एक एकल मामले के आधार पर शुरू की गई थी। एक एकल मामला याचिकाकर्ताओं को आदतन अपराधी नहीं बना देगा।

रिट याचिका के पैराग्राफ 13 और 19 में किए गए दावे इस प्रकार हैं:

"13. सीआरपीसी की धारा 11 के अंतर्गत आक्षेपित आदेश/नोटिस प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन है और इसलिए दिनांक 01.07.2019 को दिया गया नोटिस अपास्त किए जाने योग्य है। आक्षेपित आदेश, बिना कोई दिमाग लगाए, मात्र स्टेशन हाउस ऑफिसर, थाना झिंझाना, जिला शामली की रिपोर्ट दिनांक 08.06.2019 पर आधारित है।

19. सीआरपीसी की धारा 110 केवल आदतन अपराधियों पर लागू होती है, जिसका अर्थ है अपराध कारित करने में निरंतरता, इसलिए एक अकेले मामले में सीआरपीसी की धारा 110 के तहत कोई आदेश पारित नहीं किया जा सकता है, वह आदतन अपराधी के लिए है।"

विद्वान एजीए का, निर्देश पर, कहना है कि उपरोक्त आपराधिक मामले में आरोप पत्र दाखिल कर दिया गया है। उपरोक्त पैराग्राफों का उत्तर प्रति शपथपत्र के पैराग्राफ 18 और 20 में दिया गया है, जिसमें इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि कारण बताओ नोटिस जारी करके संहिता की धारा 110 के आदेश का अनुपालन नहीं किया गया था, इसके अलावा, यह प्रस्तुत किया गया है कि एक मामले में उत्तर प्रदेश गैंगस्टर्स और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1988 (संक्षिप्त रूप से "गैंगस्टर एक्ट") के प्रावधान आकर्षित होते है। अनुच्छेद 18 और 20 इस प्रकार हैं:

"18. यह कि, रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 12, 13 और 14 की तथ्यात्मक सामग्री गलत है और इसलिए इसे अस्वीकार किया जाता है। इसके उत्तर में, यह प्रस्तुत किया

गया है कि स्थानीय पुलिस जो अपने क्षेत्रीय सीमा की गतिविधियों से अच्छी तरह परिचित हैं जिन्होंने याचिकाकर्ताओं के खिलाफ प्रतिकूल रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए कहा कि याचिकाकर्ताओं के भय के कारण कोई भी उनके खिलाफ शिकायत करने की हिम्मत नहीं करता है और इसलिए, तत्कालीन सब डिविजनल मजिस्ट्रेट ने उचित रूप से सीआरपीसी की धारा 110 के तहत नोटिस जारी किया। इसके अलावा, याचिकाकर्ताओं के आवेदन पर तत्कालीन सब डिविजनल मजिस्ट्रेट ने जांच के निर्देश दिए और राजस्व प्राधिकारी द्वारा दी गई रिपोर्ट याचिकाकर्ताओं के खिलाफ पाई गई और इसलिए, सीआरपीसी की धारा 110 के तहत नोटिस किसी भी अवैधता या कमी से ग्रस्त नहीं है।

*20. यह कि, रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 16, 17, 18, 19 और 20 की तथ्यात्मक सामग्री को स्वीकार नहीं किया गया है, इसलिए अस्वीकार किया जाता है। इसके जवाब में यह प्रस्तुत किया गया है कि इस माननीय न्यायालय और साथ ही **माननीय शीर्ष न्यायालय ने लगातार कई मामलों में कहा है कि केवल एक मुकदमा अपराध के आधार पर भी गैंगस्टर अधिनियम के प्रावधान आकर्षित होते हैं और उपरोक्त के मद्देनजर, सीआरपीसी की धारा 110 के तहत आदेश न्यायोचित और सही है।"***

संहिता की धारा 110 आदतन अपराधियों से अच्छे व्यवहार के लिए सुरक्षा अनिवार्य करती है। ऐसा प्रतीत होता है कि जहां कार्यकारी मजिस्ट्रेट को यह जानकारी मिलती है कि उसके स्थानीय अधिकार क्षेत्र में एक व्यक्ति है जो अपराध करने का आदी है, तो मजिस्ट्रेट, निर्धारित प्रावधान के अंतर्गत, ऐसे व्यक्ति से यह कारण बताने की अपेक्षा करता है कि उसे अधिकतम तीन वर्ष की ऐसी अवधि के लिए, जैसा कि मजिस्ट्रेट उचित समझे, उसके अच्छे व्यवहार के लिए, श्योरिटी के साथ बांड निष्पादित करने का आदेश क्यों नहीं दिया जाना चाहिए।

धारा 111 में यह प्रावधान है कि जब धारा 110 के तहत कार्य कर रहा मजिस्ट्रेट किसी व्यक्ति द्वारा इस धारा के तहत कारण बताए जाने की आवश्यकता समझता है, तो वह प्राप्त जानकारी का सार, निष्पादित किए जाने वाले बांड की राशि, वह अवधि जिसके लिए इसे लागू होना है, और आवश्यक जमानतदारों (यदि कोई हो) की संख्या, चरित्र और वर्ग को निर्धारित करते हुए लिखित रूप में एक आदेश पारित करेगा।

इसके बाद, संहिता अनिवार्य करती है कि धारा 116 के तहत कार्यकारी मजिस्ट्रेट सूचना की सत्यता की जांच करेगा। धारा 116 के उपखंड (3) में परिकल्पना की गई है कि यदि मजिस्ट्रेट समझता है कि शांति भंग करने या सार्वजनिक शांति में बाधा पहुंचाने या किसी अपराध के घटित होने या सार्वजनिक सुरक्षा के लिए तत्काल उपाय आवश्यक हैं, तो वह, इसके कारणों को लिखित रूप में दर्ज करते हुए, उस व्यक्ति को, जिसके संबंध में धारा 111 के तहत आदेश पारित किया गया है, निर्देशित कर सकता है कि वह जांच के निष्कर्ष तक शांति बनाए रखने या अच्छा व्यवहार बनाए रखने के लिए, जमानतदारों के साथ या बिना, एक बांड निष्पादित करे। धारा 116 का उपखण्ड (3) यहां दिया गया है:

"(3) उप-धारा (1) के तहत जांच शुरू होने के बाद, और पूरा होने से पहले, मजिस्ट्रेट, यदि वह मानता है कि शांति भंग करने या सार्वजनिक शांति में बाधा पहुंचाने या किसी अपराध के घटित होने या सार्वजनिक सुरक्षा के लिए तत्काल उपाय आवश्यक हैं, तो वह, इसके कारणों को लिखित रूप में दर्ज करते हुए, उस व्यक्ति को, जिसके संबंध में धारा 111 के तहत आदेश पारित किया गया है, निर्देशित कर सकता है कि वह जांच के निष्कर्ष तक शांति बनाए रखने या अच्छा व्यवहार बनाए रखने के लिए, जमानतदारों के साथ या बिना, एक बांड निष्पादित करे और ऐसे बांड निष्पादित होने तक या निष्पादन में चूक होने पर, जांच समाप्त होने तक उसे हिरासत में रख सकता है: बशर्ते कि-

(क) कोई भी व्यक्ति जिसके खिलाफ धारा 108, धारा 109, या धारा 110 के तहत कार्यवाही नहीं की जा रही हो, अच्छे व्यवहार को बनाए रखने के लिए बांड निष्पादित करने के लिए निर्देशित नहीं किया जाएगा;

(ख) ऐसे बांड की शर्तें, चाहे उसकी राशि के बारे में हो या ज़मानत के प्रावधान या उसकी संख्या के बारे में हो या उनके दायित्व की आर्थिक सीमा, धारा 111 के तहत आदेश में निर्दिष्ट शर्तों से अधिक कठिन नहीं होगी।"

संहिता के तहत अनिवार्य उपरोक्त प्रक्रिया का पालन करने के बाद, मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 117 के तहत सुरक्षा देने का आदेश पारित किया जा सकता है। धारा 117 इस प्रकार है:

"117. जमानत देने का आदेश: यदि, ऐसी जांच पर, यह साबित हो जाता है कि, यथास्थिति, शांति बनाए रखने या अच्छा व्यवहार बनाए रखने के लिए, आवश्यक है कि जिस व्यक्ति के संबंध में जांच की जा रही है, उसे जमानतदारों के साथ या उनके बिना एक बांड निष्पादित करना चाहिए, मजिस्ट्रेट तदनुसार आदेश पारित करेगा:
बशर्ते कि-

(क) किसी भी व्यक्ति को धारा 111 के तहत पारित आदेश में निर्दिष्ट सुरक्षा से भिन्न प्रकृति की, या उससे बड़ी राशि

की, या उससे अधिक अवधि के लिए, जमानत देने का आदेश नहीं दिया जाएगा;

(ख) प्रत्येक बांड की राशि मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तय की जाएगी और अत्यधिक नहीं होगी;

(ग) जब, जिस व्यक्ति के संबंध में जांच की गई है वह नाबालिग है, तो बांड केवल उसके जमानतदारों द्वारा निष्पादित किया जाएगा।"

संहिता के तहत विचारित और अनिवार्य प्रक्रिया के अवलोकन पर, ऐसा प्रतीत होता है कि आक्षेपित आदेश द्वारा, तृतीय प्रतिवादी ने धारा 111, 116 और 117 के तहत प्रक्रिया को दरकिनार करते हुए, सीधे नोटिस के रूप में आदेश पारित कर दिया, जिसमें याचिकाकर्ता से अच्छे व्यवहार के लिए जमानत प्रदान करने को कहा गया। दूसरे शब्दों में, तृतीय प्रतिवादी ने रिपोर्ट पर जांच किए बिना एवं/अथवा याचिकाकर्ताओं की आपत्ति पर, याचिकाकर्ताओं को जमानत देने का निर्देश दिया था। किसी लंबित जांच या याचिकाकर्ताओं की किसी आपत्ति का कोई संदर्भ नहीं है।

मोहन लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1977 ऑल क्रि सी 333 के मामले में, इस न्यायालय ने देखा: -

"ऐसे निर्णयों की एक श्रृंखला है जिसमें यह माना गया है कि संहिता की धारा 111 में निहित प्रावधान अनिवार्य हैं और उनका अनुपालन न करने से पूरी कार्यवाही प्रभावित होती है।"

मधु लिमये बनाम एसडीएम मोंग्यर, 1971 एआईआर 2486 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय के पैरा 36 में कहा:

"36. हमने धारा 107 के प्रावधानों को देखा है। वह धारा कहती है कि इसके बाद दिए गए तरीके से कार्रवाई की जानी है और यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि ऐसे मामले में, मजिस्ट्रेट के लिए एक निश्चित सीमा से अधिक प्रक्रिया से हटने का विकल्प खुला नहीं है। यह अत्यंत हितकर है क्योंकि इसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता शामिल है और कानून उचित रूप से चिंताशील है कि इस स्वतंत्रता को केवल अपनी प्रक्रिया के अनुसार ही कम किया जाना चाहिए, न कि संबंधित मजिस्ट्रेट की इच्छा के अनुसार। इसलिए, हमें प्रक्रिया में निर्मित सुरक्षा उपायों पर जोर देना चाहिए क्योंकि वहीं से सार्वजनिक व्यवस्था के हित में या आम जनता के हित में प्रतिबंधों की तर्कसंगतता पर विचार किया जाएगा। "

इसी मामले में शीर्ष अदालत ने पैरा 37 में यह गौर किया:

"37. चूंकि जिस व्यक्ति के खिलाफ कार्रवाई की जानी है, उसे कारण बताना होगा, इसलिए यह स्वाभाविक है कि उसे उसके द्वारा शांति भंग किए जाने या सार्वजनिक शांति में बाधा पहुंचाने की आशंका के आधार पता होने चाहिए। यद्यपि यह धारा 'सूचना के तत्व' की बात करती है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि आदेश पूर्ण नहीं होना चाहिए। इसमें जानकारी को दोहराने की जरूरत नहीं है, लेकिन, मजिस्ट्रेट को कार्यवाई करने हेतु किस बात ने प्रेरित किया, इसकी उचित नोटिस देनी चाहिए। यह आदेश क्षेत्राधिकार की नींव है और तत्व' शब्द का अर्थ सूचना के सर्वाधिक महत्वपूर्ण भागों का सार है।"

इस पृष्ठभूमि में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ताओं को नोटिस की सामग्री के संबंध में अपना बचाव करने का अवसर नहीं दिया गया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि तृतीय प्रतिवादी द्वारा दायर किया गया जवाबी हलफनामा बिना दिमाग लगाए और सतही दृष्टिकोण का मामला है, जो कि जवाबी हलफनामे के पैरा 20 में किए गए कथन से परिलक्षित होता है, कि एकल मुकदमा अपराध के लिए गैंगस्टर एक्ट के प्रावधान आकर्षित होते हैं। यह मामला याचिकाकर्ता पर गैंगस्टर एक्ट के तहत अभियोजन चलाने से संबंधित नहीं है। कार्यवाही सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 के तहत दर्ज मामले से उत्पन्न संहिता की धारा 110 के तहत है। तदनुसार रिट याचिका स्वीकार किए जाने योग्य है।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। तृतीय प्रतिवादी, सब डिविजनल मजिस्ट्रेट, कैराना, जिला शामली द्वारा जारी की गई आक्षेपित नोटिस दिनांक 01.07.2019 को खारिज कर अपास्त किया जाता है। मामले में अपनाए गए सतही दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए तृतीय प्रतिवादी पर 20,000/- रुपये की लागत का जुर्माना लगाया जाता है, जिसे उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति, इलाहाबाद के पास आदेश की तिथि से चार हफ्तों के भीतर जमा किया जाएगा।

विद्वान एजीए आदेश को संप्रेषित करें और अनुपालन सुनिश्चित करें।

(2023) 1 ILRA 348
मूल न्यायाधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: लखनऊ 10.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ल

रिट-ए संख्या 1223/2006 एवम अन्य संबंधित वाद

सुशील कुमार दुबे ...याचिकाकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता:
हर गोविंद सिंह परिहार

अधिवक्ता प्रतिवादी:
सी.एस.सी.

A. सेवा कानून- उ.प्र. इंटरमीडिएट शिक्षा बोर्ड अधिनियम-धारा 16 ई (11) – उत्तर प्रदेश हाई स्कूल और इंटरमीडिएट कॉलेज (शिक्षकों और कर्मचारियों को वेतन भुगतान) अधिनियम, 1971-याचिकाकर्ता शिक्षक एल.टी. ग्रेड वेतन के नियमित भुगतान का दावा करते हैं और याचिकाकर्ताओं के नियमित कामकाज में हस्तक्षेप न करने के निर्देश की प्रार्थना की है - याचिकाकर्ताओं को तदर्थ शिक्षकों के रूप में नियुक्त किया गया था, लेकिन उनके द्वारा किए गए कई अनुरोधों के बावजूद उन्हें कोई वेतन नहीं मिला - इसमें कोई संदेह नहीं है कि अत्यावश्यक की स्तिथि में प्रबंधन द्वारा एक अस्थायी रिक्ति भरी जा सकती है लेकिन याचिकाकर्ताओं को उनकी नियुक्ति को चयन समिति के पास भेजे बिना उक्त पद पर हमेशा के लिए बने रहने की अनुमति नहीं दी जा सकती - संजय सिंह में शीर्ष अदालत द्वारा पारित निर्णय और राज्य द्वारा परीक्षा आयोजित करने के लिए किए गए अनुपालन/ डीआईओएस को भेजे गए साक्षात्कार और पैनल की तैयारी के बाद भी कुछ भी तय के लिए शेष नहीं है। (पैरा 1 से 11)

रिट याचिकाओं का निस्तारण किया जाता है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. संजय सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य सिविल अपील संख्या 8300 / 2016
2. विनोद कुमार यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य रिट-ए संख्या 95/2011
3. पंजाब राज्य और अन्य बनाम देवन्स मॉडर्नड्रेवरीज लिमिटेड और अन्य (2004) 11 एससीसी 26

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ल द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता की ओर से श्रीमती मीनाक्षी सिंह परिहार द्वारा सहाय्यित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एच.जे.एस. परिहार को सुना। श्री आशीष कुमार पाठक, श्रीमती अलका वर्मा, श्री आनंद दुबे, श्री अनुपम शुक्ला, श्री आई.पी. सिंह, श्री आर.डी. शाही, श्री एस.एस. राजावत, श्री भानु बाजपेयी, श्री प्रदीप कुमार सिंह, श्री फिरोज अहमद खान, श्री चन्द्रशेखर सिंह, श्री आलोक श्रीवास्तव, श्री प्रशांत कुमार सिंह, श्री एस. चन्द्रा, श्री विनोद कुमार गुप्ता, श्री रविकांत मिश्रा, श्री अजय कुमार सिंह, श्री पी.के. सिंह, श्री पवन कुमार पांडे, श्री जी.सी. वर्मा, श्री वाई.के. मिश्रा, श्री अंशुमान सिंह, श्री आशुतोष शाही, श्री गणेश नाथ मिश्रा, श्री संजय मिश्रा, श्री रामचन्द्र गुप्ता, श्री राजेंद्र प्रताप सिंह, श्री आलोक पांडे, श्री उदय भान पांडे, श्री शशांक सिंह, श्री क्षेमेंद शुक्ला, श्री जितेंद्र कुमार पांडे, श्री विनोद कुमार श्रीवास्तव, श्री अनुपम मेहरोत्रा, श्री कृष्ण कुमार दुबे याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित हैं। विद्वान अधिवक्ता श्री बद्रीश कुमार त्रिपाठी एवं विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री वी.पी. नाग एवं श्री गोपाल कुमार श्रीवास्तव, प्रतिवादीगण हेतु उपस्थित हैं।

2. इस रिट याचिका में याचिकाकर्ताओं ने शिक्षक एल.टी. ग्रेड होने का दावा किया है और इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है और उनके द्वारा वेतन के नियमित भुगतान, उनकी नियुक्ति की तिथि से वेतन का अवशेष और इन रिट याचिकाकर्ताओं की उनके संबंधित संस्थान में सहायक अध्यापक एल.टी. ग्रेड पद पर नियमित कार्यव्यवहार में प्रतिवादीगण द्वारा हस्तक्षेप न करने की मांग की जा रही है।।

3. चूंकि इस वाद समूह में समान मुद्दा उठाया गया है, इसलिए इन्हें निपटान के लिए एक साथ लिया जा रहा है। रिट याचिकाओं के इन समूहों में विवाद को समझने के लिए, किसी भी रिट याचिका के संक्षिप्त तथ्यों को जानना उचित होगा और सीमित उद्देश्य के लिए, प्रमुख रिट याचिका *2023/2006 (सुशील कुमार दुबे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य)* के तथ्यों को विचारार्थ लिया जा रहा है। उक्त रिट याचिका में याचिकाकर्ता का दावा है कि वह सहायक अध्यापक एल.टी. ग्रेड के पद पर नियुक्ति के लिए पूर्णत: योग्य है और उसे रिक्त पद पर नियुक्त किया गया है। याचिकाकर्ता का दावा है कि उक्त रिक्ति के उत्पन्न होने के अनुपालन में पद विज्ञापित हुआ था और उसने उक्त विज्ञापन के दृष्टिगत आवेदन किया था। याचिकाकर्ता का वाद यह है कि वह इंटरमीडिएट कॉलेज, नेवाढ़िया जिला जौनपुर की प्रबंध समिति द्वारा निर्गत संकल्प दिनांक 15.07.2003 के अनुसार सहायक अध्यापक एल.टी. ग्रेड के रूप में नियुक्त था। याचिकाकर्ता का दावा है कि उसे 16.07.2003 को नियुक्ति पत्र जारी किया गया था, 18.07.2003 को उसने उक्त पद पर नियुक्ति ग्रहण की थी और उसका नाम 21.07.2003 को जिला विद्यालय निरीक्षक के कार्यालय को भेजा गया था। अपनी उक्त

नियुक्ति के दृष्टिगत, याचिकाकर्ता ने दावा किया कि हालांकि उसके द्वारा वेतन भुगतान के लिए संस्थान के प्रबंधक और प्रधानाचार्य से कई बार अनुरोध किया गया था, लेकिन वेतन जारी नहीं किया गया और जिला विद्यालय निरीक्षक, जौनपुर से पूछताछ करने पर उसे बताया गया कि उत्तर प्रदेश सरकार के माध्यमिक शिक्षा सचिव ने दिनांक 10.05.2002 को परिपत्र जारी किया था जिसमें उल्लेख किया गया था कि तदर्थ नियुक्तियों के लिए कोई अनुमोदन नहीं किया जाएगा क्योंकि प्रबंधन द्वारा तदर्थ नियुक्ति करने का कोई प्रावधान नहीं था।

4. यद्यपि, इस न्यायालय ने पाया कि याचिकाकर्ता को परिपत्र से बाध्य होना चाहिए क्योंकि यह उनकी नियुक्ति से बहुत पहले जारी किया गया था और उ०प्र० शिक्षा अधिनियम के अंतर्गत नियुक्ति से संबंधित वर्तमान विधि के अनुरूप था, तथापि याचिकाकर्ता का दावा है कि सरकार को उ०प्र० माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड (उ०प्र० अधिनियम संख्या 5/ 1982) के साथ-साथ यूपी इंटरमीडिएट शिक्षा बोर्ड अधिनियम के तहत बनाए गए नियमों या विनियमों के अंतर्गत तदर्थ नियुक्ति करने की कोई शक्ति नहीं है क्योंकि उक्त शक्ति संस्थान की प्रबंध समिति मे निहित है। अत: याचिकाकर्ता का वाद यह है कि राज्य सरकार के पास सहायता अनुदान के नाम पर प्रबंध समिति को शिक्षकों और प्रधानाध्यापकों की नियुक्ति के उसके आवश्यक कार्यों को रोकने की कोई शक्ति और अधिकार नहीं है क्योंकि उनकी नियुक्ति उ०प्र० इंटरमीडिएट शिक्षा बोर्ड अधिनियम के अध्याय ॥ के विनियमन 9 सपठित उ०प्र० इंटरमीडिएट शिक्षा बोर्ड अधिनियम की धारा 16 ई (11) के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए प्रबंधन समिति द्वारा की गई है। उनका यह भी दावा है कि चूंकि प्रश्नगत पद सहायता अनुदान के अंतर्गत है, इसलिए उनके वेतन का भुगतान करना राज्य सरकार का उत्तरदायित्व है और इसका कोई भी उल्लंघन उ०प्र० हाई स्कूल और इंटरमीडिएट कॉलेज (शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों को वेतन का भुगतान) अधिनियम, 1971 के तहत निहित प्रावधानों से शासित होगा। इस प्रकार, याचिकाकर्ता द्वारा प्रार्थना की गई है कि चूंकि वह सहायक शिक्षक एल.टी. ग्रेड के उक्त पद पर लगातार और नियमित रूप से कार्य कर रहा है, इसलिए वह वेतन और उसके अवशेष का अधिकारी है।

5. यह न्यायालय उ०प्र० इंटरमीडिएट शिक्षा बोर्ड अधिनियम, 1921 की धारा 16 ई को उद्धृत करना उचित समझता है, जो शिक्षकों और संस्थानों के प्रमुखों की अस्थायी रिक्ति को भरने की प्रक्रिया उपबंधित करता है। धारा 16 ई की उप-धारा 11 अन्य बातों के साथ-साथ निम्नानुसार प्रावधान करती है: -

"उपरोक्त उपधाराओं में किसी बात के होते हुए भी, किसी पदधारी को छह महीने से अधिक की अवधि के लिए छुट्टी देने या 1 [किसी पदधारी की मृत्यु, पदच्युति या अन्यथा] की स्थिति में होने वाली अस्थायी रिक्ति के मामले में नियुक्तियाँ शैक्षिक सत्र के लिए चयन समिति को संदर्भित किए बिना सीधी भर्ती या पदोन्नति द्वारा ऐसी रीति से और ऐसी शर्तों के अधीन की जा सकती है जो निर्धारित की जाएं।

[परंतु कि इस उप-धारा के अंतर्गत की गई कोई भी नियुक्ति, किसी भी मामले में, उस शैक्षिक सत्र के अंत से आगे जारी नहीं रहेगी जिसके दौरान ऐसी नियुक्ति की गई थी।"

6. उपरोक्त खंड इस सामान्य नियम का अपवाद है कि मात्र सभी अनुदान प्राप्त संस्थानों के लिए भर्ती या पदोन्नति केवल चयन समिति को निदेश द्वारा की जा सकती है। उक्त अधिक्रमण खंड यह स्पष्ट करता है कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि किसी शैक्षिक सत्र के दौरान मृत्यु या पदच्युति आदि जैसी आपात स्थिति में संस्थान के प्रबंधन द्वारा कोई अस्थायी रिक्ति भरी जा सकती है। हालांकि यह भी उतना ही स्पष्ट है कि ऐसा 6 माह से अधिक की अवधि के लिए नहीं किया जा सकता है और किसी भी स्थिति में कोई भी नियुक्ति उस शैक्षिक सत्र के अवसान से आगे जारी नहीं रह सकती है जिसके दौरान ऐसी नियुक्ति की गई थी। इस प्रकार, मामले के तथ्यों पर, ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता को, उसकी नियुक्ति चयन समिति को भेजे बिना, उक्त पद पर सदैव के लिए बने रहने की अनुमति नहीं दी जा सकती थी।

7. हालाँकि, इस न्यायालय ने पाया कि इस वाद समूह में उठाए गए मुद्दे से संबंधित विवाद का निर्णय माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सिविल अपील संख्या 8300/2016 (संजय सिंह और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य) में पारित निर्णय दिनांक 20.08.2020 के माध्यम से किया गया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त निर्णय में आयोग को संचालन से संबंधित निर्णय के प्रस्तर 7 से 11 में कई निर्देश दिए थे जो एक एकल परीक्षा, साक्षात्कार, टी.जी.टी. या प्रवक्ता के रूप में कार्य कर चुके व्यक्तियों को भारांक आदि से संबंधित थे। एक ऐसे मुद्दे पर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित करने वाली याचिकाओं की संख्या को देखते हुए, जिस पर शीर्ष न्यायालय पहले ही ऐसे निर्णय कर चुकी है, यह प्रासंगिक होगा कि उक्त निर्देश के प्रस्तर 7(ई) का उल्लेख किया जाए जो स्पष्ट रूप से उल्लेख करता है कि आयोग द्वारा लिया गया निर्णय अंतिम होगा। इसके संबंध में आगे किसी भावी वाद पर विचार नहीं किया जाएगा।

8. यह भी बताया गया है कि उक्त सिविल अपील संख्या 8300/2016 में एक एम.ए. सं० 818/2021 भी दायर किया गया था, जिस पर 07.12.2021 को निर्णय लिया गया था, जिसमें न्यायालय ने स्पष्ट किया था कि भारांक मात्र उन्हें प्रदान किया जाएगा जो अधिनियम की धारा 16 ई (11) के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन करते हुए तदर्थ आधार पर नियुक्त पाए गए हैं। विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने कथन किया है कि उपरोक्त *संजय सिंह* के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्देशों के अनुपालन में सहायक शिक्षक के पद पर चयन के लिए एक विज्ञापन जारी किया गया था, जिसके लिए परीक्षा/साक्षात्कार 07/08 अगस्त, 2022 को आयोजित किया गया था और प्रवक्ता के पद पर चयन के लिए इसी प्रकार का विज्ञापन जारी किया गया था, जिसके लिए परीक्षा/साक्षात्कार 17/18 अगस्त, 2021 को आयोजित किया गया था। विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने पुन: यह कथन किया कि चयन प्रक्रिया आयोजित करने के बाद, जिसमें कुल 1455 (1446 टी.जी.टी. और 9 प्रवक्ता) उम्मीदवारों ने भाग लिया था, जिन्होंने तदर्थ आधार पर कार्य करने का दावा किया था, सत्यापनोपरांत मात्र 126 तदर्थ शिक्षक कार्यरत पाए गए और अधिनियम की धारा 16 ई (11) के अनुसार नियुक्त किये गये। विद्वान अधिवक्ता द्वारा कथन किया गया कि इन सफल उम्मीदवारों को उचित भारांक प्रदान किया गया था और तदनुसार पैनल संबंधित जि०वि०नि० को भेजा गया है। इस प्रकार, उनका कहना है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश के दृष्टिगत चयन प्रक्रिया शुरू की गई, पूर्ण की गई और सफल तदर्थ शिक्षकों के नाम जिनकी सेवाओं का सत्यापन हुआ, पहले ही जि०वि०नि० को भेज दिए गए हैं और इस प्रकार वादों के वर्तमान समूह में कुछ भी करना शेष नहीं है क्योंकि रिट याचिकाकर्ताओं के पास संबंधित संस्थानों में बने रहने का कोई विधि द्वारा प्रवर्तनीय अधिकार नहीं है और न ही उन्हें सार्वजनिक सरकारी कोष से वेतन दिया जा सकता है।

9. इस न्यायालय ने पाया कि रिट याचिकाओं के वर्तमान समूह के समान ही एक रिट याचिका का निर्णय उपरोक्त ***संजय सिंह*** के मामले में माननीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के आधार पर इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा किया गया है। विद्वान समन्वय पीठ ने *रिट-ए संख्या 95/2011 (विनोद कुमार यादव बनाम उ०प्र० राज्य)* में संजय सिंह के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को व्यापक रूप से उद्धृत करते हुए निम्नवत धारित किया है: -

"याचिकाकर्ता दिनांक 11.01.2011 के अंतरिम आदेश के अनुसार विपक्षी संख्या 4-संस्थान में एलटी ग्रेड शिक्षक के रूप में कार्य कर रहा है, हालांकि, उसके अधिकार, यदि कोई हैं, अब माननीय उच्चतम न्यायालय के संजय सिंह (उपरोक्त) निर्णय के संदर्भ में प्रतिबंधित हैं।

यह पूछे जाने पर कि क्या याचिकाकर्ता 2021 के विज्ञापन संख्या 1 और 2 के अंतर्गत उक्त निर्णय के अनुसरण में बोर्ड द्वारा आयोजित चयन में उपस्थित हुआ था, विद्वान अधिवक्ता ने स्पष्ट रूप से कहा कि याचिकाकर्ता उपस्थित नहीं हुआ।

इन परिस्थितियों में याचिकाकर्ता के पक्ष में कोई भी आदेश पारित करना कठिन है।

इस स्तर पर, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि राज्य सरकार याचिकाकर्ता जैसे तदर्थ शिक्षकों को मानदेय के आधार पर समायोजित करने के लिए कुछ नीति बनाने का प्रस्ताव करती है। उनका कहना है कि यह नीति केवल उन्हीं शिक्षकों पर लागू होगी जो नीति जारी होने की तिथि पर भी कार्यरत हैं। यह पूछे जाने पर राज्य और याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने कहा कि मामला अभी भी विचाराधीन है और राज्य सरकार द्वारा अभी तक कोई नीति जारी नहीं की गई है।

इस मामले को देखते हुए ऐसा कुछ भी नहीं है कि यह न्यायालय याचिकाकर्ता के पक्ष में कुछ कर सके। यह मामला ऊपर उद्धृत संजय सिंह के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से समाप्त हो गया है, इसलिए, इस रिट याचिका का निपटारा तदनुसार किया जाता है।"

10. इस प्रकार, इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए सभी मुद्दे माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा किसी न किसी वाद में विनिश्चित कर दिये गए हैं और उठाए गए मुद्दे अब अनिर्णीत नहीं हैं। इसके अतिरिक्त, यह न्यायालय पूर्व निर्णय विधि से अनभिज्ञ नहीं रह सकता है, जो न्याय प्रशासन की नींव है और यह बार-बार धारित किया गया है कि उच्च न्यायालय का एकल न्यायाधीश आमतौर पर सामान्यत: समन्वय क्षेत्राधिकार वाले न्यायालयों, इस न्यायालय की खण्डपीठों और पूर्ण पीठों के निर्णयों को सही निर्णय के रुप में स्वीकार करने के लिए बाध्य है। पूर्व निर्णय का नियम इस कारण से बाध्यकारी है कि यह दृष्टिकोण पूर्व में अपनाया गया है। समन्वय पीठ के पूर्व निर्णय समान या समान मुद्दों पर निर्णय लेने वाली किसी भी पश्चातवर्ती समन्वय पीठ पर बाध्यकारी है। यदि पश्चातवर्ती पीठ विगत पीठ द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टिकोण अपनाना चाहती है, तो उसके लिए उचित यह है कि वाद को किसी बड़ी पीठ के पास संदर्भित किया जाए। उच्चतम न्यायालय ने ***पंजाब राज्य व अन्य बनाम डेवन्स मॉडर्न ब्रिवरीज़ लिमिटेड व अन्य, (2004) 11 एससीसी 26*** के वाद में दिए गए निर्णय में प्रस्तर 339 में इस प्रकार कहा है:-

"339- न्यायिक अनुशासन की धारणा है कि एक समन्वय पीठ पूर्व समन्वय पीठ के निर्णय का पालन करती है। यदि एक समन्वय पीठ किसी अन्य पीठ द्वारा प्रतिपादित विधिक

सिद्धांतों से सहमत नहीं है, तो वाद मात्र एक बड़ी पीठ को संदर्भित किया जा सकता है। ***प्रदीप चंद्र पारिजा बनाम प्रमोद चंद्र पटनायक, (2002) 1 एस.सी.सी. 1, का अनुसरण भारत संघ बनाम हंसोली देवी, (2002) 7 एस.सी.सी. 273 में किया गया।*** *लेकिन समन्वय पीठ द्वारा निर्धारित कानून के विपरीत या असंगत किसी भी निर्णय पर नहीं पहुंचा जा सकता है। कल्याणी स्टोर्स (उपरोक्त) और के.के. नरूला (उपरोक्त) दोनों ही वादों को संविधान पीठों द्वारा प्रतिपादित किया गया है। इसलिए, उक्त निर्णयों को किसी भी उद्देश्य के लिए वर्जित नहीं किया जा सकता है; और जब इन दोनों को सामूहिक रूप से लागू किया जाता है तो यह बहुमत द्वारा प्रस्तावित विपरीत निर्णय होता है।"*

11. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए और ***संजय सिंह*** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं प्रतिवादी-राज्य द्वारा किए गए अनुपालन, परीक्षा/साक्षात्कार का आयोजन और जि०वि०नि० को भेजे गए पैनल का गठन, को ध्यान में रखते हुए इन मामलों में निर्णय लेने के लिए कुछ भी शेष नहीं बचता है और इस प्रकार वर्तमान रिट याचिकाओं का निपटारा तदनुसार किया जाता है। यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय ने किसी भी व्यक्तिगत मामले पर अपना विचार व्यक्त नहीं किया है, जो फिर भी अपने गुण-दोषों के आधार पर निर्देशित होंगे और ***संजय सिंह*** के निर्णय के अनुसार उन्हें मिलने वाले लाभ, यदि कोई हो, के भी अधिकारी होंगे और उपरोक्तानुसार पश्चातवर्ती अनुपालन राज्य द्वारा किये जायेंगे। वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश नही दिया जाएगा। यह विधि में एकरूपता और निश्चितता सुनिश्चित करने की इच्छा है। यह अपेक्षा की जाती है कि एक समन्वय पीठ को अन्य समन्वय पीठ के निर्णय का पालन करना चाहिए और वही दृष्टिकोण अपनाना चाहिए जो पहले अपनाया गया है। समन्वय पीठ का पूर्व निर्णय समान या समान मुद्दों पर निर्णय लेने वाली किसी भी पश्चातवर्ती समन्वय पीठ पर बाध्यकारी है। यदि पश्चातवर्ती पीठ पूर्व पीठ द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टिकोण रखना चाहती है, तो उसके लिए उचित यह है कि मामले को एक बड़ी पीठ के पास संदर्भित किया जाए। शीर्ष अदालत ने ***पंजाब राज्य व अन्य बनाम डेवन्स मॉडर्न ब्रिवरीज़ लिमिटेड व अन्य, (2004) 11 एससीसी 26*** के वाद में दिए गए निर्णय के प्रस्तर 339 में धारित किया है:-

"339- न्यायिक अनुशासन की धारणा है कि एक समन्वय पीठ पूर्व समन्वय पीठ के निर्णय का पालन करती है। यदि एक समन्वय पीठ किसी अन्य पीठ द्वारा प्रतिपादित विधिक सिद्धांतों से सहमत नहीं है, तो वाद मात्र एक बड़ी पीठ को संदर्भित किया जा सकता है। ***प्रदीप चंद्र पारिजा बनाम प्रमोद चंद्र पटनायक, (2002) 1 एस.सी.सी. 1, का अनुसरण भारत संघ बनाम हंसोली देवी, (2002) 7 एस.सी.सी. 273 में किया गया।*** *लेकिन समन्वय पीठ द्वारा निर्धारित कानून के विपरीत या असंगत किसी भी निर्णय पर नहीं पहुंचा जा सकता है। कल्याणी स्टोर्स (उपरोक्त) और के.के. नरूला (उपरोक्त) दोनों ही वादों को संविधान पीठों द्वारा प्रतिपादित किया गया है। इसलिए, उक्त निर्णयों को किसी भी उद्देश्य के लिए वर्जित नहीं किया जा सकता है; और जब इन दोनों को सामूहिक रूप से लागू किया जाता है तो यह बहुमत द्वारा प्रस्तावित विपरीत निर्णय होता है।"*

12. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए और ***संजय सिंह*** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं प्रतिवादी-राज्य द्वारा किए गए अनुपालन, परीक्षा/साक्षात्कार का आयोजन और जि०वि०नि० को भेजे गए पैनल का गठन, को ध्यान में रखते हुए इन मामलों में निर्णय लेने के लिए कुछ भी शेष नहीं बचता है और इस प्रकार वर्तमान रिट याचिकाओं का निपटारा तदनुसार किया जाता है। यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय ने किसी भी व्यक्तिगत मामले पर अपना विचार व्यक्त नहीं किया है, जो फिर भी अपने गुण-दोषों के आधार पर निर्देशित होंगे और ***संजय सिंह*** के निर्णय के अनुसार उन्हें मिलने वाले लाभ, यदि कोई हो, के भी अधिकारी होंगे और उपरोक्तानुसार पश्चातवर्ती अनुपालन राज्य द्वारा किये जायेंगे। वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश नही दिया जाएगा।

(2023) 1 ILRA 353
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: लखनऊ 02.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी

रिट-ए नंबर 12434 वर्ष 2017

राणा प्रताप सिंह चौहान ...याचिकाकर्ता
बनाम
यूपी राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
पीयूष श्रीवास्तव, राजीव शुक्ला, संजीव कुमार सिंह

प्रतिवादीगण के लिए अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता

(ए) सेवा कानून - उत्तर प्रदेश पेंशन हेतु अर्हकारी सेवा तथा विधिमान्यकरण अधिनियम, 2021 - पेंशन - मूल रिक्ति पर नियुक्ति - तदर्थ सेवा की अवधि, पेंशन तय करने के लिए कितनी प्रासंगिक है - निर्णय, एक बार नियमों के अनुसार मूल रिक्ति पर नियुक्ति की जाती है, पेंशन लाभ तय करते समय तदर्थ क्षमता में प्रदान की गई सेवा पर विचार किया जाना चाहिए - तदर्थ सेवाओं पर विचार न करना बुरा है और कानून के स्थापित प्रस्ताव के विपरीत है। (पैरा 13)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. सेवा एकल संख्या 5433 वर्ष 2013 ; 21.11.2014 को निर्णित शिव शंकर वाजपेई बनाम यू.पी. राज्य

2. रिट ए संख्या 35301 वर्ष 2017 ; 06.10.2020 को निर्णित भानु प्रताप सिंह बनाम यू.पी. राज्य और अन्य

3. अपील संख्या 6798 वर्ष 2019 ; प्रेम सिंह बनाम यूपी राज्य एवं अन्य।

4. विशेष अपील संख्या 152/2021; 14.7.2021 को निर्णित यूपी राज्य द्वारा सचिव, लोक निर्माण विभाग एवं अन्य बनाम भानु प्रताप।

5. रिट ए नंबर 15529 वर्ष 2018; 15.09.2021 को निर्णित डा. राम शरण त्रिपाठी बनाम यू.पी. राज्य और अन्य।

6. रिट ए संख्या 6583 वर्ष 2022 ; 30.09.2022 को निर्णित डॉ. अनिल कुमार सिंह बनाम यू.पी. राज्य और अन्य।

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी द्वारा सुनाया गया)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य-प्रतिवादियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

वर्तमान याचिका निम्नलिखित प्रार्थना के साथ दायर की गई है:-

(i) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें विरोधी पक्षों को तदर्थ कर्मचारी के रूप में उनकी नियुक्ति की तारीख यानी 13.7.1978 से पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों की गणना करने और सेवा की अवधि की पुनर्गणना के आधार पर पेंशन देने का आदेश दिया जाए और उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा निर्धारित समयमान के साथ अब तक जमा हुए बकाया को प्रदान किया जाए।"

सबसे पहले, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने कहा कि वह टाइम स्केल देने से संबंधित अपनी अब तक की प्रार्थना पर जोर नहीं दे रहे हैं। उन्होंने आगे अनुरोध किया कि उन्हें अधिकारियों के समक्ष अपना उपाय को आगे बढ़ाने की अनुमति दी जाए, जिस पर विद्वान स्थायी अधिवक्ता को कोई आपत्ति नहीं है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि याचिकाकर्ता को शुरू में तदर्थ आधार पर सिंचाई विभाग में कनिष्ठ अभियंता के पद पर दिनांक 3.7.1978 को नियुक्त किया गया था। उनकी सेवाएँ दिनांक 1.4.1985 को नियमित कर दी गईं। सेवानिवृत्ति के बाद पेंशन तय करते समय उनकी तदर्थ सेवाओं को ध्यान में नहीं रखा गया है। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता के साथ उसी नियुक्ति पत्र दिनांक 3.7.1978 द्वारा एक शिव शंकर वाजपेयी को भी उक्त पद पर नियुक्त किया गया था और पेंशन तय करते समय उनकी सेवाओं पर भी विचार नहीं किया गया है। इसके बाद, उन्होंने सर्विस सिंगल नंबर 5433 वर्ष 2013 (शिव शंकर वाजपेई बनाम यूपी राज्य) दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिसे 21.11.2014 के आदेश के तहत अनुमति दी गई थी, जिसमें प्रतिवादियों को निर्देश दिया गया था कि वे पेंशन तय करते समय तदर्थ क्षमता पर याचिकाकर्ता की सेवाओं पर विचार करें। आदेश दिनांक 21.11.2014 के अनुपालन में, शिव शंकर वायपेयी की तदर्थ सेवाओं पर विचार किया गया और तदनुसार पेंशन निर्धारित की गई। उन्होंने आगे कहा कि राज्य सरकार ने दिनांक 21.10.2020 को एक अध्यादेश प्रकाशित किया है जिसे उत्तर प्रदेश पेंशन हेतु अर्हकारी सेवा तथा विधिमान्यकरण अध्यादेश, 2020 (इसके बाद अध्यादेश, 2020 के रूप में संदर्भित) नाम दिया गया है। उक्त अध्यादेश को उत्तर प्रदेश पेंशन हेतु अर्हकारी सेवा तथा विधिमान्यकरण अधिनियम, 2021 (इसके बाद अधिनियम, 2021 के रूप में संदर्भित) के रूप में दिनांक 5.3.2021 को अधिनियम संख्या 1 वर्ष 2021 द्वारा अधिनियमित किया गया था।उन्होंने यह भी कहा कि अध्यादेश, 2020 के साथ-साथ अधिनियम, 2021 अर्हक सेवा की परिभाषा के अधीन है, लेकिन इसमें तदर्थ सेवाओं का प्रावधान नहीं है।

अध्यादेश, 2020 के प्रकाशन के बाद, एक भानु प्रताप सिंह ने रिट-ए संख्या 35301 वर्ष 2017 (भानु प्रताप सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य) दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है, जिसे प्रेम सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य के मामले में अपील संख्या 6798 वर्ष 2019 में पारित शीर्ष न्यायालय के फैसले के आलोक में, दिनांक 6.10.2020 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता की तदर्थ सेवाओं पर विचार करने के लिए प्रतिवादी को निर्देशित

करते हुए स्वीकार किया गया। उक्त आदेश के खिलाफ, राज्य सरकार ने विशेष अपील संख्या 152/2021 (यूपी राज्य द्वारा सचिव, लोक निर्माण विभाग और 3 अन्य बनाम भानु प्रताप) दायर की और अपीलीय न्यायालय ने अध्यादेश, 2020 और अधिनियम, 2021 पर विचार करते हुए, दिनांक 14.7.2021 के आदेश द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश दिनांक 6.10.2020 की पुष्टि करते हुए प्रतिवादियों को पेंशन की गणना करते समय याचिकाकर्ता की सेवाओं को कार्य प्रभार कर्मचारी के रूप में मानने का निर्देश देते हुए, उक्त अपील को खारिज कर दिया है।

उसी आदेश के विरुद्ध राज्य सरकार ने भी एसएलपी संख्या 10381/2022 दायर की थी, जिसे आदेश दिनांक 11.7.2022 द्वारा खारिज कर दिया गया था। पुनः यह मामला डॉ. रामशरण त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में इस न्यायालय के समक्ष रिट-ए संख्या 15529 वर्ष 2018 में आया और न्यायालय ने सभी प्रावधानों और निर्णयों पर विचार करने के बाद माना, कि पेंशन के उद्देश्य के लिए अर्हक सेवाओं की गणना करते समय, तदर्थ सेवाओं को भी ध्यान में रखा जाएगा।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे कहा कि एक बार फिर यह मुद्दा रिट-ए संख्या 6583 वर्ष 2022 में डॉ. अनिल कुमार सिंह बनाम यूपी राज्य द्वारा अतिरिक्त मुख्य सचिव आयुष अनुभाग-1 सिविल सचिवालय लखनऊ और 4 अन्य के मामले में इस न्यायालय के समक्ष उठाया गया था, और इस न्यायालय ने डॉ. राम चरण त्रिपाठी (सुप्रा) के फैसले और अधिनियम, 2021 का आधार लेने के बाद याचिका को स्वीकार किया है। उन्होंने आगे कहा कि उनकी नियुक्ति मूल रिक्ति द्वारा और नियमों के अनुसार की गई थी। उन्होंने दृढ़तापूर्वक और अंतिम रूप से प्रस्तुत किया कि अध्यादेश, 2020 या अधिनियम, 2021 में अर्हक सेवा के रूप में तदर्थ सेवा का प्रावधान नहीं होने से संबंधित विवाद का निर्णय पहले ही शीर्ष न्यायालय द्वारा किया जा चुका है और इस न्यायालय द्वारा विभिन्न निर्णयों में भी इसका पालन किया जा चुका है, इसलिए, याचिकाकर्ता भी उसी राहत का हकदार है और याचिका की अनुमति दी जा सकती है।

विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने हालांकि इस दलील का विरोध किया, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा सुलझाए गए विवाद पर विवाद नहीं कर सके।

मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दी गई प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर विचार किया है और निर्णयों के साथ-साथ रिकॉर्ड का भी अवलोकन किया है। इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि पेंशन तय करते समय याचिकाकर्ता की तदर्थ सेवाओं पर विचार नहीं किया गया है। अध्यादेश, 2020 और अधिनियम, 2021 के प्रकाशन से पहले, शिव शंकर बाजपेयी (सुप्रा) के समान मामले में न्यायालय ने स्पष्ट विचार रखा है कि तदर्थ सेवाओं पर विचार किया जाएगा। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया गया है:-

"21. वर्तमान मामले के तथ्यों की जांच करने पर, जो पता चलता है वह यह है कि यह विवाद में नहीं है कि तदर्थ आधार पर प्रारंभिक नियुक्ति के बाद से, याचिकाकर्ता ने सिंचाई विभाग के स्थाई अधिष्ठान में कनिष्ठ अभियंता के पद पर एक महत्वपूर्ण पद संभाला था। इस प्रकार, मेरा मानना है कि केवल उस अवधि को छोड़कर जब याचिकाकर्ता भारत सरकार के कृषि और सिंचाई मंत्रालय के तहत दिनांक 22.07.1978 से दिनांक 31.07.1981 तक बेतवा नदी बोर्ड में प्रतिनियुक्ति पर रहा, दिनांक 26.02.1998 के आदेश के माध्यम से उनकी सेवा को नियमित करने से पहले उनके द्वारा तदर्थ क्षमता में प्रदान की गई सेवा को पेंशन की गणना के लिए अर्हक सेवा की गणना के उद्देश्य से ध्यान में रखा जाना चाहिए।

यह तथ्य भी निर्विवाद है कि राज्य सरकार ने दिनांक 21.10.2020 को अध्यादेश, 2020 प्रकाशित किया है और उसी पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने प्रेम सिंह (सुप्रा) के मामले में शीर्ष न्यायालय के फैसले के आलोक में भानु प्रताप सिंह (सुप्रा) के मामले में प्रतिवादियों को निर्देश दिया है कि पेंशन की गणना करते समय याचिकाकर्ता की सेवाओं को वर्कचार्ज कर्मचारी के रूप में माना जाए। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया गया है: -

"जहां तक जवाबी हलफनामे के उपरोक्त कथन का सवाल है, शीर्ष न्यायालय ने अपील संख्या 6798 वर्ष 2019 (प्रेम सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य) और संबंधित याचिकाओं में विवाद का निपटारा कर दिया है, जिसमें शीर्ष न्यायालय ने माना है कि वर्क–चार्ज कर्मचारी के रूप में प्रदान की गई सेवाएं पेंशन के लिए अर्हक सेवा की गणना के प्रयोजनों के लिए विचार किए जाने योग्य हैं।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, प्रतिवादियों द्वारा दी गई यह दलील कि याचिकाकर्ता द्वारा वर्कचार्ज कर्मचारी के रूप में प्रदान की गई सेवाएं पेंशन के लिए गणना योग्य नहीं हैं, गलत है और बरकरार रखने योग्य नहीं है।

इस प्रकार, ऊपर दिए गए कारणों से, रिट याचिका की अनुमति दी जाती है और प्रतिवादी नंबर 3-इंजीनियर इन चीफ, सिंचाई विभाग,लखनऊ, यूपी सरकार को परमादेश जारी किया जाता है कि आदेश की प्रति दाखिल करने की तारीख से चार महीने की अवधि के भीतर प्रेम सिंह (सुप्रा) के मामले में शीर्ष न्यायालय के फैसले के अनुसार याचिकाकर्ता को सभी पेंशन लाभ का भुगतान करें।"

इसके बाद, यूपी राज्य द्वारा सचिव, लोक निर्माण विभाग (सुप्रा) के मामले में अपीलीय न्यायालय ने अध्यादेश, 2020 और अधिनियम, 2021 के प्रावधानों पर विचार किया है और दिनांक 14.7.2021 के आदेश के माध्यम से, प्रतिवादियों को पेंशन की गणना करते समय याचिकाकर्ता की वर्क चार्ज कर्मचारी के रूप में सेवा पर विचार करने के निर्देश के साथ विद्वान एकल न्यायाधीश के दिनांक 6.10.2020 के आदेश की पुष्टि करते हुए, अपील को खारिज कर दिया है। उपरोक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं: -

"सूचित किया जाता है कि यह अध्यादेश उ.प्र. अधिनियम संख्या 1 वर्ष 2021 द्वारा दिनांक 05.03.2021 को उत्तर प्रदेश अर्हकारी सेवा पेंशन एवं विधिमान्यकरण अधिनियम, 2021 के रूप में अधिनियमित किया गया है।

2021 के अधिनियम की धारा 2 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि यूपी सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 या सिविल सेवा विनियमन के विनियम 361 और 370 में कुछ भी निहित होने के बावजूद, इसका प्रभाव पड़ेगा। हालाँकि, इसे ध्यान से पढ़ने पर पता चलता है कि "अर्हकारी सेवा" का अर्थ उस पद के लिए सरकार द्वारा निर्धारित सेवा नियमों के प्रावधानों के अनुसार अस्थायी या स्थायी पद पर नियुक्त अधिकारी द्वारा प्रदान की गई सेवाएँ है।

स्वीकार्य रूप से, याचिकाकर्ता को दिनांक 10.05.1989 को आज़मगढ़ में वर्कचार्ज कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया था। हालाँकि उनकी सेवाएँ 15.6.2011 को नियमित कर दी गईं। सेवा नियमितीकरण स्थायी पद के विरुद्ध था और ऐसा नहीं है कि उनकी प्रारंभिक नियुक्ति सेवा नियमावली के अनुरूप नहीं थी।

उपरोक्त के आलोक में, वर्कचार्ज कर्मचारी के रूप में कार्य करते हुए सेवा में बिताई गई अवधि अस्थायी आधार पर हो सकती है, नियमितीकरण के साथ आगे बढ़ने पर, पिछली सेवाओं के लाभ से इनकार नहीं किया जा सकता है।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर जब आक्षेपित आदेश का परीक्षण किया गया तो उसे गलत नहीं ठहराया जा सकता।

इसके मद्देनजर कोई रियायत नहीं बनती है।

नतीजतन, अपील विफल हो जाती है और खारिज की जाती है। कोई लागत नहीं।"

सर्वोच्च न्यायालय ने अपीलीय आदेश के विरुद्ध राज्य सरकार द्वारा दायर एसएलपी संख्या 10381/2022 को भी आदेश दिनांक 11.7.2022 के माध्यम से खारिज कर दिया है।

डॉ. राम शरण त्रिपाठी (सुप्रा) के मामले में यह मुद्दा फिर से इस न्यायालय के समक्ष आया था, और इस न्यायालय ने माना है कि पेंशन तय करते समय, तदर्थ सेवाओं पर विचार किया जाएगा। उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ नं 8 से 10 यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं;-

"8. वर्तमान मामले के तथ्यों में, परस्पर पक्षकारों की स्वीकार की गई स्थिति है,(i) याचिकाकर्ता को मूल रिक्ति पर नियुक्त किया गया था; (ii) वेतन सरकार द्वारा वहन किया गया था; (iii) याचिकाकर्ता राज्य कर्मचारी के लिए लागू सभी लाभों का हकदार था।

9. अधिनियम, 2021 के तहत परिभाषित अभिव्यक्ति "अर्हक सेवा" का अर्थ उस पद के लिए सरकार द्वारा निर्धारित सेवा नियमों के प्रावधानों के अनुसार अस्थायी या स्थायी पद पर नियुक्त अधिकारी द्वारा प्रदान की गई सेवा होगी। वर्तमान मामले में, सरकार ने यूपी राज्य में मौजूद आयुर्वेदिक और यूनानी चिकित्सा अधिकारी की बड़ी संख्या में रिक्तियों को ध्यान में रखते हुए लोक सेवा आयोग के माध्यम से नियुक्ति की लंबी प्रक्रिया को कम करने का एक सचेत निर्णय लिया, और सीधे विज्ञापन जारी करके पद के लिए पात्र उम्मीदवारों से आवेदन आमंत्रित किए और चयन समिति की सिफारिश पर उम्मीदवारों का चयन किया। माननीय राज्यपाल से अनुमोदन प्राप्त करने के बाद नियुक्ति पत्र जारी किये गये। ऐसे में यह नहीं कहा जा सकता कि नियुक्ति के लिए लागू नियमों का पालन नहीं किया गया। तदर्थ आधार पर नियुक्ति के लिए लागू किए गए नियमों का विधिवत पालन किया गया और माना गया कि याचिकाकर्ता को मूल रिक्ति पर नियुक्त किया गया, और उसके बाद, उसकी सेवा नियम, 1979 के तहत नियमित कर दी गई। इन परिस्थितियों में,यह नहीं कहा जा सकता कि याची की नियुक्ति सरकार द्वारा निर्धारित सेवा

नियमों के विरुद्ध थी। पेंशन नियमों के तहत मूल पद पर नियुक्त अस्थायी सरकारी सेवक पेंशन का हकदार है। "तदर्थ" नामकरण से याचिकाकर्ता को पेंशन के अनुरूप न होने का कोई फर्क नहीं पड़ेगा। नियुक्ति की प्रकृति ऐसे तदर्थ/अस्थायी चिकित्सा अधिकारी की नियुक्ति के लिए निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने के बाद एक मूल पद के विरुद्ध अस्थायी नियुक्ति है। न्यायालय की राय में, याचिकाकर्ता की सेवा "अर्हक सेवा" की अभिव्यक्ति के अंतर्गत आएगी क्योंकि याचिकाकर्ता को राज्य सरकार द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का पालन करके मूल पद के विरुद्ध नियुक्त किया गया था। इसमें कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता के नियुक्ति प्राधिकारी माननीय राज्यपाल हैं।

10. परिणामस्वरूप, रिट याचिका स्वीकार की जाती है। आक्षेपित आदेश दिनांक 04.01.2018 को निरस्त किया जाता है। यह माना गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा तदर्थ आधार पर प्रदान की गई सेवा "अर्हक सेवा" में गिनी जाएगी, परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता को पेंशन का हकदार माना जाता है। प्रथम प्रतिवादी को याचिकाकर्ता को उसके द्वारा प्रदान की गई तदर्थ सेवा की अवधि को जोड़कर पेंशन और सेवानिवृत्ति के बाद स्वीकार्य अन्य देय राशि की गणना करने का निर्देश दिया जाता है। याचिकाकर्ता अपनी सेवानिवृत्ति की तारीख से महीने दर महीने आधार पर पेंशन का हकदार होगा। पेंशन की बकाया राशि की, तीन महीने की अवधि के भीतर, सेवानिवृत्ति की तारीख से वास्तविक भुगतान तक 6% प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज के साथ, गणना की जाएगी और जारी की जाएगी।

वर्तमान मामले में, यह निर्विवाद है कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति मूल रिक्ति के विरुद्ध और नियमों के अनुसार की गई थी। एक बार जब नियमों का पालन करते हुए मूल रिक्ति के विरुद्ध नियुक्ति की जाती है, तो पेंशन लाभ तय करते समय तदर्थ क्षमता में प्रदान की गई सेवा पर भी विचार किया जाना चाहिए। कानून का यह प्रस्ताव इस न्यायालय के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी निर्धारित किया गया है, इसलिए, तदर्थ सेवाओं पर विचार न करना गलत है और कानून के स्थापित प्रस्ताव के विपरीत है।

तदनुसार, रिट याचिका स्वीकार की जाती है। प्रतिवादी संख्या 1 और 2 को याचिकाकर्ता की तदर्थ क्षमता में दिनांक 3.7.1978 से दिनांक 1.4.1985 तक की गई सेवाओं को ध्यान में रखते हुए याचिकाकर्ता की पेंशन को पुनः निर्धारित करने और देय तिथि से वास्तविक भुगतान की तिथि तक 6% ब्याज के साथ पेंशन की बकाया राशि का भुगतान करने के लिए परमादेश की रिट जारी की जाए।

(2023) 1 ILRA 357

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांकः इलाहाबाद 10.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

रिट-ए संख्या 16730/2022

सुभाष चंद ...याचिकाकर्ता

बनाम

उ.प्र. राज्य एवं अन्य ...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
श्री सुरेंद्र कुमार चौबे, श्री मार्जीत मिश्रा

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता:
सी.एस.सी., श्री संजीव सिंह, श्री सुमित सूरी

क. सेवा कानून - यूपी सेवा भर्ती (जन्मतिथि का निर्धारण) नियम, 1974 - सफाई नायक के पद से अनिवार्य सेवानिवृत्ति- आयु का निर्धारण - हाई स्कूल का कोई प्रमाण पत्र उपलब्ध नहीं - हाई स्कूल से नीचे का प्रमाण पत्र, कितना प्रासंगिक - चिकित्सा परीक्षण के आधार पर सेवा पुस्तिका में दर्ज आयु, क्या इसे नजरअंदाज किया जा सकता है - अवधारित किया गया कि वह सब प्रासंगिक है किसी सरकारी कर्मचारी की जन्म तिथि दर्ज करने के प्रयोजन के लिए उसका हाई स्कूल प्रमाणपत्र या समकक्ष परीक्षा का प्रमाण पत्र है और ऐसे मामले में, जहां सरकारी कर्मचारी ने ऐसी कोई परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की है, उसकी सेवा में दर्ज जन्म तिथि या आयु- सेवा में प्रवेश के समय की पुस्तक सही मानी जाएगी - सातवीं कक्षा से संबंधित स्थानांतरण प्रमाणपत्र याचिकाकर्ता की आयु निर्धारित करने के लिए बिल्कुल भी प्रासंगिक नहीं है - अब, याचिकाकर्ता की उम्र के बारे में जो प्रासंगिक है वह सेवापुस्तिका में दर्ज उसकी नियुक्ति के समय की प्रविष्टि है और कुछ नहीं। उक्त प्रविष्टि अपरिवर्तनीय है और व्यस्त निकायों की विविध शिकायतों से इसे ख़तरे में नहीं डाला जा सकता है। (पैरा 12)

रिट याचिका को अनुमति दी गई। (ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. मोहन सिंह बनाम यू.पी. राज्य विद्युत उत्पादन लिमिटेड एवं अन्य, 2012 एससीसी ऑनलाइन आल 28

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

1. पक्षकारों ने शपथपत्रों का आदान-प्रदान किया है।

2. स्वीकार की जाती है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सुरेंद्र कुमार चौबे और प्रत्यर्थी संख्या 3 और 4 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री संजीव सिंह को सुना गया। प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

4. यह रिट याचिका नगर पालिका परिषद, कैराना, जिला शामली के अध्यक्ष और कार्यकारी अधिकारी द्वारा संयुक्त रूप से पारित दिनांक 03.10.2022 के आदेश को चुनौती देती है, जिसमें याचिकाकर्ता को सफाई नायक के रूप में सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त कर दिया गया था; या कम से कम ऐसा करने का दावा कर रहे हैं।

5. याचिकाकर्ता का मामला यह है कि उसके पिता द्वारा नगर पालिका की नौकरी से इस्तीफा देने के बाद उसे सफाई कर्मी के पद पर नियुक्त किया गया था। याचिकाकर्ता को नियुक्ति पत्र दिनांक 4.12.1991 द्वारा नियुक्त किया गया था। उन्होंने अपने नियोक्ताओं की संतुष्टि के लिए लंबे समय तक काम किया है और उन पर कभी भी कोई अनुशासनात्मक कार्रवाई नहीं की गई। याचिकाकर्ता का मामला है कि नियुक्ति के समय उसे अपनी आयु और फिटनेस प्रमाण पत्र जमा करने की आवश्यकता थी। याचिकाकर्ता वर्ष 1991 में नगर पालिका के कार्यकारी अधिकारी के समक्ष उपस्थित हुआ और उस स्कूल से सातवीं कक्षा से संबंधित अपना स्थानांतरण प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया, जिसमें वह आखिरी बार शामिल हुआ था। कार्यकारी अधिकारी ने याचिकाकर्ता को उसकी उम्र के निर्धारण के लिए मुख्य चिकित्सा अधिकारी के समक्ष उपस्थित होने के लिए कहा। साल 2010 में याचिकाकर्ता की उम्र को लेकर शिकायत हुई थी और उन्हें स्पष्टीकरण दाखिल करना पड़ा था। याचिकाकर्ता ने 18.06.2010 को अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने उन तथ्यों का उल्लेख किया जो उनकी नियुक्ति के समय घटित हुए थे। याचिकाकर्ता ने एक स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया जिसमें कहा गया कि उसने कोई धोखाधड़ी नहीं की, लेकिन उसकी नियुक्ति के समय मुख्य कार्यकारी अधिकारी ने उसे उसकी उम्र का अनुमान लगाने के लिए चिकित्सा परीक्षण के लिए मुख्य चिकित्सा अधिकारी के पास जाने के लिए कहा। याचिकाकर्ता ने आगे कहा कि अगर उसकी जन्मतिथि कक्षा सातवीं से संबंधित उसके स्थानांतरण प्रमाण पत्र के अनुसार निर्धारित की जाती है तो उसे कोई आपत्ति नहीं होगी। याचिकाकर्ता का दिनांक 18.06.2010 का उत्तर रिकार्ड में है।

6. वर्ष 2010 में नगर पालिका के समक्ष आई शिकायत पर कार्रवाई करते हुए, कार्यकारी अधिकारी ने सहायक निदेशक, स्थानीय निकाय से मार्गदर्शन मांगा, जिन्होंने अपने ज्ञापन संख्या 462 दिनांक 20.09.2011 द्वारा राय दी कि उत्तर प्रदेश सेवा भर्ती (जन्मतिथि का निर्धारण) नियमावली, 1974 (संक्षेप में '1974 के नियम') के तहत, नियुक्ति के समय कर्मचारी की जो भी आयु सेवा-पुस्तिका में दर्ज की गई थी, वह अपरिवर्तनीय थी और उसे बदला नहीं जा सकता था। दर्ज जन्मतिथि पर किसी भी अभ्यावेदन या आपत्ति पर विचार नहीं किया जा सकता है। सहायक निदेशक स्थानीय निकाय के उक्त मार्गदर्शन के बाद याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्यवाही बंद कर दी गई। अब, याचिकाकर्ता के खिलाफ दीपक कुमार चंद्र नामक व्यक्ति ने संबंधित विभाग के मंत्री के पास जाकर याचिकाकर्ता की जन्मतिथि के बारे में शिकायत दोहराते हुए शिकायत की है। इस संबंध में याचिकाकर्ता को दिनांक 16.09.2022 को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था। याचिकाकर्ता ने कारण बताओ जवाब इस विशेष दावे के साथ प्रस्तुत किया कि शिकायत दुश्मनी के कारण की गई है। याचिकाकर्ता ने कभी भी अपनी जन्मतिथि नहीं छिपाई, लेकिन प्री-हाईस्कूल जन्म तिथि के आधार पर उनकी याचिका नगर पालिका द्वारा स्वीकार नहीं किया गया। यह भी बताया गया कि पहले के अवसर पर जब यही प्रश्न उठा था, तो सहायक निदेशक, स्थानीय निकाय द्वारा मुद्दे पर मार्गदर्शन के बाद, मामले को हटा दिया गया था और याचिकाकर्ता की सेवा-पुस्तिका में उसकी जन्मतिथि को ऐसी माना गया था जिसे बदला नहीं जा सकता था।

7. नगर पालिका परिषद के अध्यक्ष एवं अधिशाषी अधिकारी द्वारा संयुक्त रूप से हस्ताक्षरित आक्षेपित आदेश दिनांक 03.10.2022 द्वारा याचिकाकर्ता की जन्मतिथि, कक्षा सातवीं से उसके स्थानांतरण प्रमाण पत्र के आधार पर, उसकी सही जन्मतिथि मानी गई है, और इसके अलावा, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि याचिकाकर्ता का छोटा भाई सेवा से सेवानिवृत्त हो गया है और ऐसा माना गया कि याचिकाकर्ता ने जानबूझकर वह टी.सी. प्रस्तुत नहीं की जो उसकी नियुक्ति के समय उसके पास थी और मुख्य चिकित्सा अधिकारी से प्राप्त चिकित्सा राय के आधार पर उसकी उम्र दर्ज की गई उम्र से कम थी। यह भी दर्ज है कि याचिकाकर्ता ने सफाई नायक के पद पर पदोन्नति की मांग करते समय एक स्थानांतरण प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया था। अब, नगर पालिका ने उनकी सेवा-पुस्तिका में दर्ज 23.12.1966 के बजाय 07.01.1961 को स्वीकार करते हुए उनकी कक्षा सातवीं से संबंधित स्कूल से स्थानांतरण

प्रमाण पत्र के आधार पर उनकी जन्मतिथि स्वीकार कर ली है। उस आधार पर, नगर पालिका ने, उपर्युक्त दो प्राधिकारियों के माध्यम से कार्य करते हुए, एक आदेश पारित किया है, जिसे सेवा से "अनिवार्य सेवानिवृत्ति" के आदेश के रूप में वर्णित किया गया है, जिसमें निर्देश दिया गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा उसकी टी.सी. के अनुसार उसकी जन्मतिथि यानी 07.01.1961 से गणना की गई सेवानिवृत्ति की आयु के बाद लिया गया सारा वेतन वसूल किया जाए।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सुरेंद्र कुमार चौबे ने आक्षेपित आदेश की आलोचना की है, और अन्य बातों के अलावा, प्रस्तुत किया है कि सेवा-पुस्तिका में एक बार दर्ज की गई जन्म तिथि को बदला नहीं जा सकता है। उनका कहना है कि सेवा-पुस्तिका में जो भी जन्मतिथि दर्ज की गई है, वह न केवल कर्मचारी पर बल्कि नियोक्ता पर भी बाध्यकारी है। जिस तरह कर्मचारी बाद में अपनी सही जन्मतिथि के बारे में सबूत पेश नहीं कर सकता, उसी तरह नियोक्ता भी शिकायतों पर कार्रवाई नहीं कर सकता या कर्मचारी की जन्मतिथि के बारे में सबूत नहीं निकाल सकता और सेवा रिकॉर्ड में कर्मचारी की दर्ज जन्मतिथि को उसके नुकसान के लिए बदल नहीं सकता। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के अनुसार, सेवा रिकॉर्ड में दर्ज जन्मतिथि की अपरिवर्तनीयता के बारे में नियम, नियोक्ता और कर्मचारी दोनों के लिए कार्य करता है।

9. दूसरी ओर, नगर पालिका की ओर से उपस्थित अधिवक्ता श्री संजीव सिंह का कहना है कि यद्यपि यह घिसा-पिटा कानून है कि सेवा रिकॉर्ड में दर्ज जन्म तिथि में बदलाव नहीं किया जा सकता है, लेकिन ऐसे मामले में जहां कर्मचारी ने धोखाधड़ी की, नियोक्ता को जन्मतिथि सही करने से कोई नहीं रोकता। उनका कहना है कि याचिकाकर्ता ने स्वीकार किया है कि कक्षा सातवीं से संबंधित उसके स्कूल के स्थानांतरण प्रमाण पत्र में उसकी जन्मतिथि 07.06.1961 दर्ज है, न कि वह जो मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा की गई चिकित्सा जांच के आधार पर सेवा रिकॉर्ड में दर्ज की गई है। श्री संजीव सिंह के अनुसार, इस तरह के मामले में बिल्कुल कोई बाधा नहीं है जहां नश्चित रूप से धोखाधड़ी की गई हो और याचिकाकर्ता की ओर से अपनी जन्मतिथि में सुधार के लिए स्वीकृति भी हो।

हालाँकि, श्री संजीव सिंह स्वीकार करते हैं कि आक्षेपित आदेश को अनिवार्य सेवानिवृत्ति के रूप में वर्णित नहीं किया जाना चाहिए था। यह एक आदेश है जिसमें याचिकाकर्ता को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त घोषित किया गया है और उसे घर जाने के लिए कहा गया है।

10. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर, इस न्यायालय ने पाया कि इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि याचिकाकर्ता की जन्म तिथि कक्षा VII से संबंधित उसके स्थानांतरण प्रमाण पत्र में दर्ज की गई है, जो 07.01.1961 है। हालाँकि, याचिकाकर्ता की नियुक्ति के समय उसकी उम्र निर्धारित करने के लिए उसे मेडिकल परीक्षण के लिए मुख्य चिकित्सा अधिकारी के पास भेजा गया था। मुख्य चिकित्सा अधिकारी ने उसकी उम्र 25 वर्ष आंकते हुए निर्धारित की और उस आधार पर, याचिकाकर्ता की सेवा-पुस्तक में उसकी जन्मतिथि दिनांक 23.12.1966 दर्ज की गई है यानी वह जन्म तिथि जो याचिकाकर्ता की सेवा-पुस्तक में 15.07.1992 को दर्ज है। अब सवाल यह है कि क्या याचिकाकर्ता की कक्षा सातवीं से संबंधित स्थानांतरण प्रमाण पत्र में दर्ज उम्र को देखा जा सकता है ताकि सेवा-पुस्तक में उसकी उम्र से संबंधित पुरानी प्रविष्टि को गलत ठहराया जा सके; या इस संबंध में धोखाधड़ी पर आधारित है? नियमावली 1974 एक संक्षिप्त वैधानिक दस्तावेज हैं और इन्हें इस प्रकार पढ़ा जाता है:-

"उत्तर प्रदेश सरकार

नियुक्ति अनुभाग (4)

संविधान के अनुच्छेद 348 के खंड (3) के प्रावधानों के अनुसरण में, राज्यपाल अधिसूचना संख्या 41/2/69 नियुक्ति (4), दिनांक 28 मई, 1974 के निम्नलिखित अंग्रेजी अनुवाद के प्रकाशन का आदेश की अनुमति देते हैं;

संख्या 41/2/69-नियुक्ति (4)

28 मई 1974

संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधानों के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, राज्यपाल निम्नलिखित नियम बनाने की अनुमति देते हैं:

उत्तर प्रदेश सेवाओं में भर्ती (जन्मतिथि का निर्धारण) नियमावली, 1974

1. संक्षिप्त शीर्षक और प्रारंभ:-(1) इन नियमों को उत्तर प्रदेश सेवा भर्ती (जन्मतिथि का निर्धारण) नियमावली, 1974 कहा जा सकता है।

(2) वे तुरंत लागू होंगे।

2. सही जन्मतिथि या आयु का निर्धारण- किसी सरकारी कर्मचारी की जन्मतिथि, जो उसके हाई स्कूल या समकक्ष परीक्षा उत्तीर्ण करने के प्रमाण पत्र में दर्ज है, या जहां सरकारी कर्मचारी ने उपरोक्त कोई भी परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की है, सरकारी सेवा में प्रवेश के समय उसकी सेवा पुस्तिका में दर्ज जन्म तिथि या आयु, जैसा भी मामला हो, उसकी सेवा के संबंध में सभी उद्देश्यों के लिए, जिसमें पदोन्नति, सेवानिवृत्ति, समयपूर्व सेवानिवृत्ति या सेवानिवृत्ति लाभों के लिए पात्रता शामिल है, उसकी सही जन्मतिथि या उम्र मानी जाएगी, और किसी भी परिस्थिति में ऐसी तारीख

या उम्र के सुधार के लिए किसी भी आवेदन या अभ्यावेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

3. अधिभावी प्रभाव-संबंधित सेवा नियमों या आदेशों में किसी भी प्रतिकूल बात के बावजूद, ये नियम प्रभावी होंगे।

आदेश से,

गुलाम हुसैन,

आयुक्त एवं सचिव"

11. वर्ष 1980 में किए गए नियमों में प्रथम संशोधन द्वारा इसे निम्नानुसार प्रावधान किया गया:-

"2. सही जन्मतिथि या उम्र का निर्धारण- सरकारी सेवा में प्रवेश के समय हाई स्कूल या समकक्ष परीक्षा उत्तीर्ण करने के प्रमाण पत्र में दर्ज सरकारी कर्मचारी की जन्मतिथि या जहां किसी सरकारी कर्मचारी ने उपरोक्तानुसार ऐसी कोई परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की है या सेवा में शामिल होने के बाद ऐसी परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की है, तो सरकारी सेवा में प्रवेश के समय उसकी सेवा पुस्तिका में दर्ज जन्म तिथि या आयु, जैसा भी मामला हो, उसकी सेवा के संबंध में सभी उद्देश्यों के लिए, जिसमें पदोन्नति, सेवानिवृत्ति, समयपूर्व सेवानिवृत्ति या सेवानिवृत्ति लाभों के लिए पात्रता शामिल है, उसकी सही जन्मतिथि या उम्र मानी जाएगी और किसी भी परिस्थिति में ऐसी तारीख या उम्र में सुधार के लिए किसी भी आवेदन या अभ्यावेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।"

12. स्पष्ट है कि पहला संशोधन याचिकाकर्ता के मामले पर लागू नहीं होता है क्योंकि उसने सेवा से पहले या सेवा के दौरान कभी भी हाई स्कूल पास नहीं किया था। जब याचिकाकर्ता ने सेवा में प्रवेश किया, तो वह मैट्रिक पास नहीं था और उसने हाई स्कूल या समकक्ष परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की थी। नियमावली 1974 के नियम 2 के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक सरकारी कर्मचारी की जन्मतिथि दर्ज करने के उद्देश्य से जो कुछ भी प्रासंगिक है वह उसका हाई स्कूल प्रमाणपत्र या समकक्ष परीक्षा का प्रमाण पत्र है और ऐसे मामले में, जहां सरकारी कर्मचारी ने ऐसी कोई परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की है, जन्मतिथि या उम्र दर्ज की जाती है सेवा में प्रवेश के समय उसकी सेवा-पुस्तक में अंकित विवरण सही माना जाएगा। नियमावली 1974 के अवलोकन से पता चलता है कि हाई स्कूल ग्रेड से नीचे के शैक्षणिक संस्थानों का कोई भी प्रमाण पत्र सरकारी कर्मचारी की आयु निर्धारित करने के लिए बिल्कुल भी प्रासंगिक नहीं है। शायद इसी कारण से कि जब याचिकाकर्ता नियुक्ति के समय नियुक्ति प्राधिकारी के समक्ष उपस्थित हुआ, और जैसा कि वह कहता है, अपना स्थानांतरण प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया, तो उसे मुख्य चिकित्सा अधिकारी के समक्ष अपनी चिकित्सा परीक्षा के लिए उपस्थित होने का निर्देश दिया गया। स्पष्ट रूप से, जब हाई स्कूल या समकक्ष परीक्षा से नीचे का कोई भी स्कूल प्रमाणन कर्मचारी की आयु निर्धारित करने के लिए प्रासंगिक नहीं होता है, तो नियुक्ति प्राधिकारी ने कक्षा सातवीं से संबंधित स्थानांतरण प्रमाण पत्र पर ध्यान नहीं दिया होगा। ये ऐसी परिस्थितियाँ हैं जो दर्शाती हैं कि याचिकाकर्ता जो दावा करता है वह सही है। भले ही यह गलत था, सातवीं कक्षा से संबंधित स्थानांतरण प्रमाणपत्र याचिकाकर्ता की आयु निर्धारित करने के लिए बिल्कुल भी प्रासंगिक नहीं है। अब, याचिकाकर्ता की उम्र के बारे में जो प्रासंगिक है वह सेवा-पुस्तिका में दर्ज उसकी नियुक्ति के समय की प्रविष्टि है और कुछ नहीं। उक्त प्रविष्टि अपरिवर्तनीय है और इसे व्यस्त निकायों, या किसी की घोर दुश्मनी की विविध शिकायतों से ख़तरे में नहीं डाला जा सकता है। किसी सरकारी कर्मचारी की सेवानिवृत्ति की आयु इस वजह से लगातार अनिश्चितता के अधीन नहीं की जा सकती कि असंतुष्ट शिकायतकर्ताओं ने उसकी जन्मतिथि पर सवाल उठाया है और नियुक्ति प्राधिकारी के पास शिकायत दर्ज कराई है, जिसमें कहा गया है कि सेवा रिकॉर्ड में सरकारी कर्मचारी की दर्ज जन्मतिथि गलत है। यदि इसकी अनुमति दी गई, तो इससे सरकारी कर्मचारियों के कार्यकाल के बारे में अहितकर अनिश्चितता पैदा होगी और उनकी कार्यक्षमता पर काफी असर पड़ेगा।

13. इसके अलावा, नियमावली 1974 के नियम 3 से संकेत मिलता है कि उक्त नियम नियमावली 1974 को किसी भी अन्य सेवा नियमों या आदेशों पर अधिभावी प्रभाव देता है। इसलिए, नियम 2 जो प्रावधान करता है उसे उसका पूर्ण प्रभाव देना होगा। परिणाम यह हुआ कि याचिकाकर्ता की सेवा-पुस्तिका में दर्ज जन्मतिथि पर सवाल नहीं उठाया जा सकता। याचिकाकर्ता द्वारा इस पर सवाल नहीं उठाया जा सकता; और इसी तरह, नियोक्ताओं द्वारा भी इस पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है। इसलिए, इस न्यायालय की राय है कि दिनांक 03.10.2022 का आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से अवैध और अधिकार क्षेत्र के बिना है।

14. 14. यह न्यायालय जो विचार रखता है वह मोहन सिंह बनाम यू.पी. राज्य विद्युत उत्पादन लिमिटेड और अन्य 2012 एससीसी ऑनलाइन सभी 28 मामले में इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच की राय से समर्थित है, जहां गैर-मैट्रिक पास व्यक्ति द्वारा सेवा-पुस्तिका में दर्ज जन्मतिथि में बदलाव से संबंधित 1974 के नियमों के नियम 2 पर माननीय न्यायमूर्ति द्वारा विचार किया गया था। मोहन सिंह (उपरोक्त) में, यह अवधारित किया गया था:

"12. उपरोक्त नियम के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि यदि कोई व्यक्ति हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद सेवा में प्रवेश करता है, तो हाई स्कूल प्रमाणपत्र में दर्ज जन्म तिथि उसकी सही जन्म तिथि मानी जाएगी। हालाँकि, यदि कर्मचारी ने हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करने से पहले सेवा में प्रवेश किया है, तो सेवा पुस्तिका में दर्ज जन्म तिथि उसकी सही जन्म तिथि मानी जाएगी। उक्त नियम में यह भी प्रावधान है कि किसी भी परिस्थिति में ऐसी तारीख या

उम्र में सुधार के लिए किसी भी आवेदन या अभ्यावेदन पर विचार नहीं किया जाएगा। इस प्रकार, जन्म तिथि में सुधार के संबंध में एक कानूनी नियम बनाया गया है जिसका अर्थ है कि नियमावली 1974 के नियम 2 के तहत निर्दिष्ट किसी भी परिस्थिति में दर्ज की गई जन्म तिथि सभी उद्देश्यों के लिए, विशेष रूप से सेवानिवृत्ति की आयु निर्धारित करने के उद्देश्य से, सही मानी जाएगी। प्रावधान/कानूनी कल्पना को मानने के प्रभाव पर बार-बार विचार किया गया है। संत लाल गुप्ता बनाम मॉडर्न को-ऑपरेटिव ग्रुप हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड, (2010) 13 एससीसी 336 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"...किसी कानूनी कल्पना का निर्माण करना विधायिका का विशेष विशेषाधिकार है, जिसका अर्थ है कि किसी ऐसे तथ्य के अस्तित्व को मानने के उद्देश्य से एक अपमानजनक प्रावधान लागू करना जो वास्तव में मौजूद नहीं है...।"

13. इसके अलावा मनोरे उर्फ मनोहर बनाम राजस्व बोर्ड (यूपी), 2003 (51) एएलआर 341 (एससी) मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ लिया जा सकता है।

14. सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के साथ-साथ नियमावली 1974 के नियम 2 को ध्यान में रखते हुए, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि यदि कोई व्यक्ति हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण किये बिना ही सेवा में आ गया है, तो उसकी सेवा पुस्तिका में दर्ज जन्मतिथि सही मानी जाएगी और यदि कर्मचारी हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद सेवा में आया है, तो हाई स्कूल प्रमाणपत्र में दर्ज जन्म तिथि सही मानी जाएगी।''

15. परिणामस्वरूप, यह याचिका सफल होती है और लागत के साथ अनुमति दी जाती है। नगर पालिका परिषद, कैराना, जिला शामली के अध्यक्ष और कार्यकारी अधिकारी द्वारा संयुक्त रूप से पारित आदेश दिनांक 3.10.2022 को रद्द किया जाता है।

16. याचिकाकर्ता को तुरंत सेवा में बहाल किया जाएगा और उसकी सेवा-पुस्तिका में दर्ज जन्मतिथि के आधार पर सेवा जारी रखने की अनुमति दी जाएगी। उन्हें इस अवधि के दौरान अवैतनिक सभी बकाया वेतन का भुगतान एक माह के भीतर कर दिया जाएगा। वेतन का नियमित भुगतान तुरंत शुरू किया जाएगा।

16. इस आदेश को निबंधक (अनुपालन) द्वारा अध्यक्ष नगर पालिका परिषद, कैराना, शामली एवं अधिशाषी अधिकारी, नगर पालिका परिषद, कैराना, शामली को सूचित किया जाये।

(2023) 1 ILRA 363

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांकः इलाहाबाद 23.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आशुतोष श्रीवास्तव

रिट-ए संख्या - 18689/2022

रमेश चन्द्र यादव ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य ...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ताः
अश्वनी कुमार यादव

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता
मुख्य स्थायी अधिवक्ता, राम प्रकाश शुक्ला

ए. सेवा कानून - यू.पी. सरकारी सेवक आचरण नियमावली, 1956 -निलंबन– हेड मास्टर के रूप में कार्यरत – हिंदू देवी-देवताओं और ब्राह्मणों के संबंध में आपत्तिजनक पोस्ट करने का आरोप –निलंबन, कब उचित ठहराया जा सकता है – आयोजित, निलंबन का आदेश आम तौर पर केवल आरोप की गंभीरता पर निर्भर नहीं होना चाहिए लेकिन इस प्रश्न पर विचार करने पर निर्भर होना चाहिए कि क्या अपराधी को उसके पद से दूर रखना आवश्यक है। निलंबन का आदेश पारित करने का प्रभाव ऐसे अपराधी को उसके कार्यालय से अस्थायी रूप से दूर रखना है – ऐसे मामले भी हो सकते हैं जहां निलंबन को उसके कार्यालय के अधिकार के दुरुपयोग से बचने के लिए भी उचित ठहराया जा सकता है, जिसके दुरुपयोग के परिणामस्वरूप उनके खिलाफ आरोपों की उचित सुनवाई में बाधा उत्पन्न हो सकती है– उच्च न्यायालय, ने हालांकि जांच जारी रखने का निर्देश दिया और याचिकाकर्ता को ऐसी पोस्ट करने से रोक दिया, लेकिन याचिकाकर्ता को निलंबित रखने की कोई जरूरत नहीं पाई। (पैरा 5, 9 और 11)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-1)

(माननीय न्यायमूर्ति आशुतोष श्रीवास्तव द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अश्वनी कुमार यादव, राज्य-प्रत्यर्थी के विद्वान स्थायी अधिवक्ता तथा प्रत्यर्थी संख्या 2 से 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री राम प्रकाश शुक्ला, को सुना।

इस रिट याचिका में किया गया आक्षेप, प्रत्यर्थी संख्या 3 बेसिक शिक्षा अधिकारी, भदोही द्वारा पारित एक आदेश दिनांकित 03.11.2022 को है, जिसके अंतर्गत याचिकाकर्ता को निलंबित कर दिया गया है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि याचिकाकर्ता कंपोजिट विद्यालय भिरिउरा, ब्लॉक ज्ञानपुर, जिला भदोही में प्रभारी प्रधानाध्यापक के पद पर कार्यरत है। याचिकाकर्ता का कार्य व आचरण पूर्ण रूप से संतोषजनक रहा है और प्रभारी प्रधानाध्यापक के रूप में उनके कर्तव्यों के निर्वहन में किसी भी तरह की कोई शिकायत नहीं है। याचिकाकर्ता को उसके व्हाट्सएप नंबर पर आक्षेपित निलंबन आदेश प्राप्त हुआ है और बिना कोई कारण बताओ नोटिस या सुनवाई का अवसर दिए, उसे निलंबित कर दिया गया है। याचिकाकर्ता के विरूद्ध लगाए गए आरोप अस्पष्ट हैं। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि इस बीच याचिकाकर्ता के विरूद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांकित 04.11.2022 मुकदमा अपराध संख्या 0213/2022, अंतर्गत धारा 395ए, 505(2) भा.दं.सं., थाना-ज्ञानपुर, जिला- भदोही, दर्ज की गई है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि शिक्षक संघ का चुनाव है और एक मौखिक शिकायत पर राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता के कारण याचिकाकर्ता को आक्षेपित आदेश द्वारा निलंबित कर दिया गया है।

प्रत्यर्थी क्रमांक 2 से 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री आर.पी.शुक्ला ने अंबरीश तिवारी द्वारा जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, भदोही को संबोधित एक शिकायत/आवेदन दिनांकित 04.11.2022 की एक प्रति, व्हाट्सएप वार्तालाप की फोटोस्टेट प्रतियों के साथ दाखिल की है, जिसे अभिलेख में लिया गया है।

प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि याचिकाकर्ता को उचित रूप से निलंबित किया गया है। उसने पूर्व माध्यमिक शिक्षा संघ, भदोही के नाम और शैली का एक व्हाट्सएप ग्रुप बनाया है और वह इसका ग्रुप एडमिन हैं। याचिकाकर्ता पर हिंदू देवी-देवताओं और ब्राह्मणों के संबंध में आपत्तिजनक पोस्ट करने का आरोप है और ऐसा आचरण उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक आचरण नियमावली, 1956 के प्रावधानों का उल्लंघन है। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता के विरूद्ध संस्थान के प्रभारी प्रधानाध्यापक के रूप में अपने कर्तव्यों के निर्वहन के संबंध में कुछ सामान्य आरोप लगाए गए हैं।

आक्षेपित निलंबन आदेश दिनांकित 03.11.2022 के अवलोकन से पता चलता है कि यह अंबरीश तिवारी द्वारा दाखिल शिकायत पर आधारित है। याचिकाकर्ता के विरूद्ध एक जांच भी संस्थित की गई है और खंड शिक्षा अधिकारी, नगर क्षेत्र, भदोही और खंड शिक्षा अधिकारी, औराई को जांच अधिकारी नियुक्त किया गया है और याचिकाकर्ता को बी.आर.सी., ज्ञानपुर से संबद्ध कर दिया गया है।

प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री आर.पी. शुक्ला ने आपत्तिजनक सामग्री संलग्न करते हुए श्री अंबरीश तिवारी की शिकायत दिनांकित 04.11.2022 को अभिलेखों पर प्रस्तुत किया है। आश्चर्यजनक रूप से निलंबन आदेश दिनांतिक 03.11.2022 जो ठीक एक दिन पहले का था और ऐसा प्रतीत होता है कि बिना बुद्धि का प्रयोग करे और आपत्तिजनक सामग्री को बिना देखे, पारित कर दिया गया है। याचिकाकर्ता का मामला है कि वह शिक्षक संघ के चुनाव के कारण हुई राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता का शिकार है।

न्यायालय द्वारा शिकायत दिनांकित 04.11.2022 और प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री आर.पी. शुक्ला द्वारा अभिलेखों पर प्रस्तुत की गई संलग्न सामग्री का अवलोकन किया गया। न्यायालय का मत है कि याचिकाकर्ता द्वारा व्हाट्सएप ग्रुप पर किया गया पोस्ट, किसी असंतुष्ट व्यक्ति का भावनात्मक आक्रोश प्रतीत होता है। क्या यह कदाचार है, यह याचिकाकर्ता के विरूद्ध संस्थित जांच का विषय है। इस न्यायालय के लिए अभी उस मुद्दे से निपटना अनुचित होगा।

याचिकाकर्ता 03.11.2022 से निलंबित है। याचिकाकर्ता को दंडित करने के लिए निलंबन को एक हथियार के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। निलंबन की निरंतरता व्यापक जनहित में होना चाहिए। यदि निरंतरता, चल रही जांच के लिए खतरा हो तो ऐसे अपचारी कर्मचारी को ऐसी जांच के लंबित रहने तक बहाल करने की आवश्यकता नहीं है। न्यायालय के मत में निलंबन का आदेश आम तौर पर मात्र आरोपों की गंभीरता पर निर्भर नहीं होना चाहिए, अपितु इस प्रश्न पर विचार करने पर निर्भर होना चाहिए कि क्या अपचारी को उसके पद से दूर रखना आवश्यक है। निलंबन का आदेश पारित करने का प्रभाव ऐसे अपचारी को उसके कार्यालय से अस्थायी रूप से दूर रखना है। इसका उद्देश्य उस पर लगे आरोपों की जांच के दौरान उसे उसके प्रभाव क्षेत्र से हटाना है। हो सकता है कि उनके पास मौजूद कुछ या कई अभिलखों का अवलोकन करना पड़े। कार्यालय में उसके सहकर्मियों या अधीनस्थों या कभी-कभी उसके वरिष्ठों से भी पूछताछ करनी पड़ सकती है। ऐसे मामले भी हो सकते हैं जहां निलंबन को उसके कार्यालय के अधिकार के दुरुपयोग से बचने के लिए भी उचित ठहराया जा सकता है, जिसके दुरुपयोग के परिणामस्वरूप उसके खिलाफ आरोपों की उचित सुनवाई में बाधा उत्पन्न हो सकती है। ऐसी स्थिति का समाधान अधिकारी को निलंबित करके या कई मामलों में केवल अपचारी को घटनास्थल से दूर स्थानांतरित करके किया जा सकता है, यह विकल्प आवश्यक रूप से स्थिति की तात्कालिकता पर निर्भर करता है।

वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता को निलंबित रखने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। प्रत्यर्थीगण से अपेक्षा की जाती है कि वे मामले पर निष्पक्ष तरीके से प्रतिक्रिया दें।

जिसे कदाचार माना जा सकता है, वह उसके व्हाट्सएप ग्रुप पर पहले से ही मौजूद है। याचिकाकर्ता के लिए, अब एकत्र की गई किसी भी सामग्री में हस्तक्षेप करने की कोई सम्भावना नहीं है। व्यापक जनहित की मांग है कि याचिकाकर्ता के निलंबन को जारी नहीं रखा जाना चाहिए। यह न्यायालय निलंबन की वैधता में हस्तक्षेप नहीं कर रहा है, जिसे भविष्य में विचार करने के लिए खुला रखा गया है। यह न्यायालय इस तथ्य पर भी ध्यान नहीं दे रहा है कि ऐसी पोस्ट करना कदाचार है या नहीं। न्यायालय ने केवल यह गौर किया है कि यदि याचिकाकर्ता को बहाल करने का आदेश दिया जाता है, तो ऐसा कोई आसन्न खतरा नहीं है जो जांच की चल रही प्रक्रिया को प्रभावित करेगा। तथापि, याचिकाकर्ता को उसके खिलाफ जांच के समापन तक व्हाट्सएप ग्रुप या सोशल मीडिया के किसी भी पोर्टल पर, जांच या उसके खिलाफ शुरू की गई किसी अनुशासनात्मक कार्रवाई से संबंधित कोई भी पोस्ट करने से निरूद्ध जाता है।

तदनुसार, याचिकाकर्ता को सेवा में बहाल करने का आदेश दिया जाता है। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा पारित आक्षेपित निलंबन आदेश दिनांकित 03.11.2022 अपास्त किया जाता है। याचिकाकर्ता के विरूद्ध शुरू की गई जांच जारी रहेगी और इस न्यायालय के आदेश की प्रमाणित प्रति की प्राप्ति की तिथि से दो माह के भीतर इसे तर्कसम्मत रूप से पूर्ण किया जाएगा।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि याचिकाकर्ता चल रही जांच में सहयोग करेगा।

उपरोक्त टिप्पणी के साथ, रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है।

(2023) 1 ILRA 365
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 04.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी,
माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-चतुर्थ

रिट-ए संख्या 63110/2014 एवम अन्य संबंधित वाद

बेरोजगार औद्योगिक कल्याण समिति एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता :

श्री ए. के. मिश्रा, श्री ए. एन. त्रिपाठी, श्री आर. पी. मिश्रा, श्री अंकुश शर्मा, श्री गोविंद कुमार सक्सेना, श्री योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, श्री शशि धर शुक्ला, श्री इंद्र राज सिंह, श्री आदर्श सिंह, श्री घनश्याम ओझा, श्री सी. बी. यादव, श्री अंकुर शर्मा, श्री शशि नंदन (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी:

सी.एस.सी., ए.एस.जी.आई., श्री अशोक खरे, श्री जी.के.सिंह, श्री एच.पी.शाही, श्री राम दुलार, श्री सिद्धार्थ हाखरे, श्री अरविन्द कुमार गोस्वामी, श्री पूर्णेंदु कुमार सिंह, श्री गया प्रसाद सिंह, श्री ओ.पी.गुप्ता, श्री पंकज कुमार, श्री बाल मुकुंद, श्री संकल्प नारायण

A. भारतीय संविधान– अनुच्छेद 73 - कार्यकारी शक्ति और विधायी शक्ति -सुसंगत– केंद्र सरकार द्वारा जारी किए गए व्यापक कार्यकारी निर्देश दिनांक 15.12.2008, 30.09.2010 और 21.03.2013, कानून कितना अच्छा है - आयोजित, इसके विपरीत किसी भी चीज़ के अभाव में, संघ की कार्यकारी शक्ति विधायी शक्ति के साथ सह-व्यापक है संसद का - चूंकि प्रविष्टि-66, सूची-1 के संदर्भ में प्रश्नगत विषय पर संसद द्वारा न तो कोई विपरीत कानून है और न ही प्रश्न में कार्यकारी निर्देश का विषय संविधान द्वारा अन्य अधिकारियों या निकायों को सौंपा गया है और न ही यह किसी भी सदस्य के कानूनी अधिकार का अतिक्रमण करता है, इसलिए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 73 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए भारत सरकार द्वारा जारी कार्यकारी निर्देश दिनांक 15.12.2008, 30.09.2010 और 21.03.2013 को लागू किया जाएगा। (पैरा 27)

बी. भारत का संविधान - अनुच्छेद 73 और 309 - सातवीं अनुसूची - सूची I, प्रविष्टि 65 और 66 - सूची III, प्रविष्टि 25 - केंद्र का विधान और राज्य का विधान प्रतिकूलता - प्रभाव - केंद्र और साथ ही राज्य दोनों पर लागू। सेंट के पास शिक्षा/चिकित्सा शिक्षा विषय पर कानून बनाने की शक्ति निहित है – राज्य के पास चिकित्सा शिक्षा सहित शिक्षा को नियंत्रित करने का अधिकार है, जब तक कि इस क्षेत्र पर किसी भी केंद्रीय विधान का कब्जा नहीं है, लेकिन राज्य के संस्थानों में शिक्षा को नियंत्रित नहीं कर सकता है। उच्च शिक्षा या अनुसंधान और वैज्ञानिक और तकनीकी संस्थानों के मानकों पर अतिक्रमण करना जो विशेष रूप से संसद के क्षेत्र में है। (पैरा 28)

सी. तकनीकी शिक्षा - सभी तकनीकी संस्थानों में समान मानक और राष्ट्रीय प्रगति के लिए किस प्रकार एकरूपता आवश्यक है - एकरूपता बनाए रखना राज्य का दायित्व है – आयोजित, नियुक्ति के लिए देश

के सभी तकनीकी शिक्षण संस्थानों में समान मानक प्रदान करने का उद्देश्य औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों को एक समान मानक बनाए रखना है, जिसे राष्ट्रीय प्रगति के लिए हानिकारक किसी भी विशेष राज्य या राज्य द्वारा कम नहीं किया जा सकता है। (पैरा 30)

डी. भारतीय संविधान – उत्तर प्रदेश सरकारी औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान सेवा नियम, 2014 - नियम 9(बी), इसका प्रावधान, नियम 15(3), इसका प्रावधान, और नियम 17(3) – संवैधानिक वैधता को चुनौती दी गई – कार्यकारी आदेश के असंगत होने के आधार पर चुनौती दी गई – अनुमति– आयोजित– किसी अधिनियम की संवैधानिक वैधता को केवल दो आधारों पर चुनौती दी जा सकती है, अर्थात। (i) विधायी क्षमता की कमी; और (ii) संविधान के भाग III या किसी अन्य संवैधानिक प्रावधान में गारंटीकृत मौलिक अधिकारों में से किसी का उल्लंघन। उपरोक्त दो आधारों को छोड़कर, कोई तीसरा आधार नहीं है जिसके आधार पर सक्षम विधायिका द्वारा बनाए गए कानून को अमान्य किया जा सके - आगे कहा गया है, लागू नियम दिनांक 15.12.2008 और 30.09.2010 के कार्यकारी आदेशों के विपरीत नहीं हैं। मैदान पर कब्ज़ा करना; भारत के संविधान के किसी भी प्रावधान के अधिकार क्षेत्र से बाहर नहीं हैं - उच्च न्यायालय ने विवादित विज्ञापन को वैध और यू.पी. सेवा नियम, 2014 एवं कार्यकारी आदेश दिनांक 30.09.2010 के अनुरूप माना। (पैरा 37 और 47)

रिट याचिका निरस्त (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. उपेन्द्र नारायण सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2006 (64) एएलआर 845 (सभी)
2. पवन कुमार सागर एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, विशेष अपील संख्या 1078/2006; निर्णित दिनांक 12.10.2006
3. मदन मोहन पाठक बनाम भारत संघ और अन्य; एआईआर 1978 एससी (803)
4. प्रीति श्रीवास्तव बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य, (1999) 7 एससीसी 120
5. अन्नामाली विश्वविद्यालय बनाम सरकारी सूचना एवं पर्यटन विभाग के सचिव; (2009) 4 एससीसी 590
6. कल्याणी मथिवनन बनाम केवी केयाराज और अन्य; (2015) 6 एससीसी 363
7. तमिलनाडु राज्य और अन्य बनाम अधियामन शैक्षिक एवं अनुसंधान संस्थान एवं अन्य; (1995) 4 एससीसी 104
8. आर. चित्रलेखा एवं अन्य बनाम मैसूर राज्य और अन्य; (1964) 6 एससीआर 368: एआईआर 1964 एससी 1823-
9. अनंत मिल्स बनाम गुजरात राज्य.; एआईआर 1975 एससी 1234
10. चरणजीत लाल चौधरी बनाम भारत संघ और अन्य; एआईआर 1951 एससी 41-
11. भारत संघ बनाम एलफिंस्टन स्पिनिंग एंड वीविंग कंपनी लिमिटेड एवं अन्य; एआईआर 2001 एससी 724
12. बिहार राज्य और अन्य बनाम श्रीमती चारुसिला दासी; एआईआर 1959 एससी 1002
13. केदार नाथ सिंह बनाम बिहार राज्य; एआईआर 1962-एससी 955
14. कलकत्ता कारपोरेशन बनाम लिबरी सिनेमा; एआईआर 1965 एससी 1107
15. आनंदजी हरिदास एंड कंपनी (पी) लिमिटेड बनाम एस.पी.कस्तूरे और अन्य; एआईआर 1968 एससी 565
16. सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन एवं अन्य; एआईआर 1978 एससी 1675
17. बिहार राज्य बनाम बिहार डिस्टिलरीज, एआईआर 1997 एससी 1511
18. ज़मीर अहमद लतीफुर रहमान शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य अन्य.; जे.टी. 2010 61 (4) एससी 256
19. ग्रेटर बॉम्बे को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड बनाम यूनाइटेड यार्न टेक्स (पी) लिमिटेड और अन्य; (2007) 6 एससीसी 236
20. प्रमोटर्स एंड बिल्डर्स एसोसिएशन बनाम पुणे नगर निगम (2007) 6 एससीसी 143
21. हुकुम चंद बनाम भारत संघ .; (1972) 2 एससीसी 601
22. जनरल ऑफिसर कमांडिंग-इन-चीफ बनाम सुभाष चंद्र यादव और अन्य (1988) 2 एससीसी 351
23. अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (रेव्ह.) दिल्ली प्रशासन बनाम सिरी राम; (2000) 5 एससीसी 451
24. सुखदेव सिंह एवं अन्य बनाम भगतराम सरदार सिंह रघुवंशी एवं अन्य; (1975) 1 एससीसी 421
25. कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम वी.एस.एच. गणेश कामथ और अन्य; (1983) 2 एससीसी 402
26. कुंज बिहारी लाल बुटेल एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य (2000) 3 एससीसी 40
27. भारत संघ बनाम मैसर्स जी.एस. चाथा राइस मिल; (2021) 2 एससीसी 209
28. केरल सेंट इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड और अन्य बनाम थॉमस जोसेफ @ थॉमस एम.जे. एवं अन्य, सिविल अपील संख्या 9252-9253/2022; निर्णित दिनांक 16.12.2022

(माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के लिए श्री ए.एन. त्रिपाठी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता श्री अरविंद कुमार मिश्रा, श्री सी.बी. यादव, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री गोविंद कुमार सक्सेना और श्री शशिनंदन, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता श्री अंकुर शर्मा और अन्य विद्वान अधिवक्ताओं को सुना, श्री एस.पी. सिंह,भारत के अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल जिनकी सहायता की गई श्री बाल मुकुंद, राम दुलार, ओम प्रकाश गुप्ता, अरविंद गोस्वामी, अजय सिंह, गया प्रसाद सिंह, राज कुमारी देवी, नीरू देवी, चंद्र प्रकाश यादव, मनोज कुमार सिंह, पंकज कुमार, पूर्णेंदु कुमार सिंह,शीतला प्रसाद गौड़, सुदर्शन सिंह, रिजवान अहमद और अरविंद सिंह, भारत संघ के लिए केंद्र सरकार के स्थायी अधिवकतगण श्री अजीत सिंह, विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता जिनकी सहायता श्री सुधांशु श्रीवास्तव ने की , राज्य-प्रतिवादियों के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे,जिनकी सहायता श्री सिद्धार्थ खरे और श्री जिगर ने की ,विद्वान अधिवक्तागण नव आरोपित प्रतिवादी संख्या 8 से 13/सफल उम्मीदवार अग्रणी(प्राथमिक) रिट-ए संख्या 63110/2014 के अंतर्गत और अग्रणी(प्रथमिक) रिट - ए संख्या 63110/2014 के अंतर्गत ही नव आरोपित प्रतिवादी संख्या 4 से 7 के लिए श्री जी. के.सिंह ,वरिष्ट विद्वान अधिवक्ता जिनकी सहायता श्री अविनाश कुमार राय द्वारा की गई।

2. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं ने संयुक्त रूप से कहा है कि रिट याचिकाओं के इस समूहन में शामिल तथ्य और विवाद समान हैं। अत: उनकी सहमति से, सभी रिट याचिकाओं की कई मौकों पर एक साथ सुनवाई हुई और 2014 की रिट-ए संख्या 63110 (बेरोजगार औद्योगिक कल्याण समिति और 39 अन्य बनाम यूपी राज्य और 2 अन्य) को अग्रणी/प्राथमिक रिट याचिका माना गया है, जिसे निम्नलिखित राहत के लिए प्रार्थना करते हुए दाखिल किया गया है:

"i) उत्प्रेषण लेख की प्रकृति का एक रिट,आदेश अथवा निर्देश जारी करें अवैध विज्ञापन संख्या 02/2014 को रद्द करने हेतु जो प्रतिवादी संख्या.02 द्वारा दिनांक 07.11.2014 को जारी किया गया तथा उसके बाद की कार्यवाही को जो उत्तर प्रदेश में औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानो के लिए 2498 सरकारी अनुदेशक पद हेतु हो(रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 04)

ii) यूपी के नियम 9(बी), नियम 15(3) और उसके प्रावधान और नियम 17(3) को घोषित करते हुए एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें। सरकारी औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (अनुदेशक) सेवा नियम, 2014 (अनुलग्नक संख्या 3) को नियम 16(3) (iii) और अनुच्छेद 14 और 16 और विशेष रूप से अनुच्छेद 73 के संवैधानिक प्रावधान के साथ प्रविष्टि 65 और 66 के तहत अधिकारातीत घोषित किया जाए। संघ सूची जो संविधान की समवर्ती सूची की प्रविष्टि 25 की अवहेलना करती है और केंद्र सरकार के आदेश के विरुद्ध है जो दिनांक 24.07.1996 को एन.सी.वी.टी. की अनुशंसा स्वीकार कर जारी किया गया और माननीय एकल न्यायाधीश के दिनांक 08.08.2006 के निर्णय और विशेष अपील में डिवीजन बेंच के निर्णय दिनांक 10.12.2006 की अवमानना भी की जा रही है, जिसमें उत्तर प्रदेश राज्य पक्षकार भी था और इस रूप में राज्य सरकार पर यह बाध्यकारी है।

III) कोई अन्य उपयुक्त रिट, आदेश या निर्देश जो माननीय न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत उचित और उपयुक्त समझे;

iv) याचिकाकर्ताओं को रिट याचिका हेतु लागत खर्च भी पुरस्कृत कराएं।

3. सभी याचिकाकर्ताओं का दावा है कि उनके पास सीआईटीएस प्रमाणपत्र है जो दिनांक 24.07.1996 के सरकारी आदेश के अनुसार एक आवश्यक योग्यता है जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 73 के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए भारत संघ द्वारा जारी किया गया संविधान की सातवीं अनुसूची की प्रविष्टि 66 सूची-I के मामलों के संबंध में और जिसे राज्य सरकार द्वारा "यूपी औद्योगिक प्रशिक्षण (अनुदेशक) सेवा नियम, 1991 (इसके बाद नियम, 1991 के रूप में संदर्भित) में शामिल किया गया था" में शामिल किया गया था। दिनांक 08.08.2003 के द्वितीय संशोधन नियम द्वारा संशोधित भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए। तीसरे संशोधन नियमों द्वारा, उपरोक्त आवश्यक योग्यता को कम कर दिया गया था जिसे चुनौती दी गई थी सिविल विविध रिट याचिका संख्या 1822/2004 (उपेन्द्र नारायण सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) तथा दिनांक 08.08.2006 के निर्णय द्वारा, 2006 (64) एएलआर 845 (सभी) में रिपोर्ट किया गया, नियमावली, 1991 के नियम 8 में संशोधन किया गया। तीसरे संशोधन द्वारा सेवा नियमावली, 2003 को असंवैधानिक ठहराया गया था, जिसे 2006 की विशेष अपील संख्या 1078/2006(पवन कुमार सागर और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य) में डिवीजन बेंच के फैसले, 12.10.2006 को निर्णय द्वारा पुष्टि की गई थी। आक्षेपित नव अधिनियमित "उत्तर प्रदेश औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (अनुदेशक) सेवा नियमावली, 2014" (इसके बाद 'उत्तर प्रदेश सेवा नियमावली, 2014' के रूप में संदर्भित) द्वारा शक्तियों के प्रयोग में बनाए गए विषय पर सभी मौजूदा नियमों और आदेशों का अधिक्रमण किया जाएगा। भारत

के संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधान द्वारा प्रदत्त, सीआईटीएस की उपरोक्त आवश्यक योग्यता को फिर से कम कर दिया गया है और इसे अनुदेशकों के पद पर भर्ती के लिए केवल अधिमान्य बना दिया गया है। इन परिस्थितियों में, जैसा कि ऊपर बताया गया है, याचिकाकर्ताओं ने राहत की मांग करते हुए वर्तमान रिट याचिकाएं दाखिल की हैं।

4. याचिकाकर्ताओं ने प्रतिवादी संख्या 4 से 7 और 8 से 13 के जवाबी हलफनामों पर प्रत्युत्तर हलफनामा दाखिल नहीं करने का विकल्प चुना है। इस संबंध में याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकीलों का बयान दिनांक 01.12.2022 को पारित आदेश में दर्ज किया गया अग्रणी याचिका संख्या 63110/2014 के संदर्भ में।

याचिकाकर्तागण की ओर से प्रस्तुतियाँ:-

5. श्री ए.एन.त्रिपाठी,विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुतिकरण याचिकाकर्ताओं की ओर से:-

(i) उत्तर प्रदेश औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (अनुदेशक) सेवा नियम, 1991 (बाद में इसे "नियम, 1991" कहा जाएगा) भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार द्वारा शुरू में अधिनियमित किए गए थे। नियम, 1991 के नियम 9 (बी) में अधिमान्य योग्यता के रूप में संबंधित ट्रेडों में केंद्रीय प्रशिक्षण संस्थान (इसके बाद "सीटीआई" के रूप में संदर्भित) से सफल प्रशिक्षण प्रदान किया गया है। इसके बाद, केंद्र सरकार ने डीजीई & टी-19 (20) 95 OD दिनांक 24.07.1996 के माध्यम से एक निर्देश जारी किया जिसमें बताया गया कि भारत सरकार ने परिषद की सिफारिश को स्वीकार कर लिया है और तदनुसार, सभी राज्य सरकारों / केंद्र शासित प्रदेशों से भर्ती नियमों में संशोधन करने का अनुरोध किया है। सी.टी.आई. प्रदान करना अनुदेशक पद के लिए प्रमाण पत्र अनिवार्य योग्यता है। परिणामस्वरूप, राज्य सरकार ने भारत सरकार की अनुशंसा/निर्देश को स्वीकार कर लिया और नियमावली 1991 में द्वितीय संशोधन नियमावली दिनांक 08.08.2003 द्वारा संशोधन किया गया, जिसके तहत अनुदेशक पद पर भर्ती के लिए क्राफ्ट इंस्ट्रक्टर ट्रेनिंग सर्टिफिकेट (सीटीआई सर्टिफिकेट) को आवश्यक योग्यता बना दिया गया। हालाँकि, तीसरे संशोधन नियम 2003 द्वारा, नियम, 1991 के नियम 8 में संशोधन करके सीटीआई प्रमाणपत्र की उपरोक्त आवश्यक योग्यता को अधिमान्य बना दिया गया था।

इसलिए, संशोधनों को विभिन्न रिट याचिकाओं में चुनौती दी गई थी। प्रमुख/अग्रणी रिट याचिका रिट-ए संख्या 1822/2004(उपेंद्र नारायण सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य) थी जिसे माननीय एकल न्यायाधीश ने दिनांक 08.08.2006 के फैसले द्वारा अनुमति दी थी। नियमावली के नियम 8 में किया गया संशोधन नियम 1991 में तीसरे संशोधन सेवा नियम 2003 को विधायी शक्तियों के वितरण की संवैधानिक योजना के साथ-साथ भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन माना गया। दिनांक 13.12.2003 के विज्ञापन को भी इस निर्देश के साथ रद्द कर दिया गया कि जिन लोगों ने नए विज्ञापन की तिथि तक योग्यता प्राप्त कर ली है, उन पर भी चयन के लिए विचार किया जाएगा और वे सभी उम्मीदवार, जो प्रवेश की अंतिम तिथि को आयु सीमा के भीतर थे। विज्ञापन दिनांक 20.08.2003 के अनुसार आवेदन भी नए विज्ञापन के अनुसरण में चयन के लिए आवेदन करने के पात्र होंगे। माननीय एकल न्यायाधीश के दिनांक 08.08.2006 के उपरोक्त फैसले को विशेष अपील संख्या 1078/2006 (पवन कुमार सागर बनाम यूपी राज्य और अन्य) में डिवीजन बेंच के फैसले दिनांक 12.10.2006 द्वारा बरकरार रखा गया था। इस प्रकार, यह तय हो गया कि सीआईटीएस अनुदेशकों के पद पर भर्ती के लिए एक आवश्यक योग्यता होगी और फिर भी उत्तर प्रदेश के लागू नियम 9 (बी) और उसके प्रावधान, नियम 15 (3) और उसके प्रावधान और नियम 17 (3) द्वारा औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (अनुदेशक) सेवा नियम, 2014 (बाद में "नियम, 2014" के रूप में संदर्भित), राज्य सरकार द्वारा अधिनियमित किया गया है, जो अधिमान्य योग्यता के रूप में "सीआईटीएस प्रमाणपत्र" प्रदान करता है।

(ii) उपरोक्त के अलावा, लागू नियम, 2014, उन लोगों को भी समायोजित करता है, जिनके पास अधिमान्य योग्यता नहीं है, यह प्रावधान करके कि यदि उन्हें नियुक्त किया जाता है तो वे योग्यता प्राप्त कर सकते हैं तीन वर्ष के भीतर अन्यथा वे पहली वेतन वृद्धि के हकदार नहीं होंगे। इस प्रकार, भारत सरकार द्वारा निर्धारित आवश्यक योग्यता को पूरी तरह से समाप्त कर दिया गया है और यहां तक कि निर्धारित अधिमान्य योग्यता भी केवल दिखावा मात्र है और नियमों और संवैधानिक योजना के विपरीत, सरकारी रोजगार प्राप्त करने के लिए अक्षम और अयोग्य व्यक्तियों को नियुक्त करना मात्र है।

(iii) नियमावली, 2014 के नियम 16(3) द्वारा यह प्रावधान किया गया है सीधी भर्ती द्वारा चयन करने में, पात्र उम्मीदवारों की मेरिट सूची निम्नानुसार अंक देकर तैयार की जाएगी- (ए) हाई स्कूल परीक्षा में प्राप्त अंकों के प्रतिशत का 50% और, (बी) प्राप्त अंकों का 20% राष्ट्रीय व्यापार प्रमाणपत्र परीक्षण / राष्ट्रीय प्रशिक्षु प्रशिक्षण

परीक्षण में या डिप्लोमा और डिग्री परीक्षा में प्राप्त अंकों के प्रतिशत का 20% और (सी) सीआईटीएस और पीओटी परीक्षण में प्राप्त अंकों के प्रतिशत का 15%। इस प्रकार, चयन सूची की तैयारी के प्रयोजनों के लिए योग्यता के निर्धारण के लिए गुणवत्ता बिंदु अंक पूरी तरह से मनमाना है और यह भारत सरकार के निर्देशों के अनुरूप है और आईटीआई के निर्माण के पीछे मूल उद्देश्य है। सीआईटीएस की सबसे आवश्यक योग्यता के लिए बहुत कम अंक यानी 15% अंक प्रदान किए गए हैं जबकि शैक्षणिक योग्यता के लिए 50% अंक प्रदान किए गए हैं जिसका उम्मीदवारों की योग्यता और रोजगार के लिए उपयुक्तता से कोई लेना-देना नहीं है।

(iv) इस प्रकार, नियम, 2014 के विवादित प्रावधान हैं जो संवैधानिक योजना के साथ-साथ भारत सरकार से सम्बन्धित क्षेत्र का भी उल्लंघन है, और लागू नियम मनमाने होने के साथ-साथ भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का भी उल्लंघन हैं।

(v) ऊपर उल्लिखित इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश और डिवीजन बेंच के फैसले और मदन मोहन पाठक बनाम भारत संघ के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की माननीय संवैधानिक पीठ के फैसले पर भरोसा किया गया है। अन्य, एआईआर 1978 एससी (803) (पैरा 24, 25 और 26)।

(vi) जब वर्तमान रिट याचिकाएं दाखिल की गईं, तो इस न्यायालय द्वारा एक अंतरिम आदेश दिया गया था जिसमें कहा गया था कि "इस बीच चयन प्रक्रिया जारी रहेगी लेकिन चयन का परिणाम इस रिट याचिका के अंतिम निर्णय के अधीन होगा।" इस अंतरिम आदेश के बावजूद राज्य सरकार ने अपने विवेक से ऐसे कई अभ्यर्थियों को नियुक्ति पत्र जारी कर नियुक्ति दी है, जिनके पास बुनियादी आवश्यक योग्यता नहीं है. सशर्त रूप से नियुक्त कोई भी उम्मीदवार इन रिट याचिकाओं का विरोध करने के लिए आगे नहीं आया है।

(vii) डिग्री और डिप्लोमा धारकों का एक साथ परीक्षण नहीं किया जा सकता है। इसलिए, परिशिष्ट के साथ पठित नियम, 2014 का नियम 9 मनमाना है और इस प्रकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है।

(viii) भारत सरकार के दिनांक 26.05.2014, 27.05.2014 और 07.01.2016 के पत्र प्रासंगिक नहीं हैं वर्तमान विवाद के उद्देश्य और वे सीआईटीएस प्रमाणपत्र की आवश्यक योग्यता को कमजोर नहीं बनाते हैं। इसलिए, श्री एस.पी. सिंह, भारत के विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल और विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता द्वारा की गई सिफारिशें उत्तरदाताओं के लिए कोई मदद नहीं होगी।

6. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सी.बी. यादव द्वारा प्रस्तुतियां:-

(i) विचाराधीन नियम भारत के संविधान की 7वीं अनुसूची की प्रविष्टि 65 और 66, संघ सूची की सूची-I या समवर्ती सूची की सूची-III की प्रविष्टि 25 में प्रदान की गई विषय वस्तु के संदर्भ में हैं। इसलिए, सीआईटीएस को आवश्यक योग्यता के रूप में शामिल करने के निर्देश जारी करके, भारत संघ ने इस मामले में बढ़त हासिल कर रखा है इसलिए, आवश्यक योग्यता के रूप में सीआईटीएस प्रदान करने वाले राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियम भारत संघ के मामले वाले क्षेत्र के विपरीत हैं। इस प्रकार, राज्य सरकार द्वारा बनाए गए चुनौती वाले नियमों में विधायी क्षमता का अभाव है और वे भारत के संविधान के अनुच्छेद 246 (1)/(2) से प्रभावित हैं।

(ii) इस न्यायालय के दिनांक 10.11.2022 के आदेश में उल्लिखित प्रस्तुति संख्या (viii) को दोहराते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि ये पत्र प्रासंगिक नहीं हैं क्योंकि चुनौती के तहत नियम, यानी नियम, 2014 को 30.01.2014 को अधिसूचित किया गया था। इसलिए, उपरोक्त पत्र दिनांक 26.05.2014, 27.05.2014 और 07.01.2016 बाद में भारत सरकार द्वारा जारी किए गए जो वर्तमान विवाद के प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक नहीं हैं। उपर्युक्त सरकारी पत्र बाध्यकारी नहीं हैं। पूर्व शासनादेश दिनांक 24.07.1996 को अब 03.01.2022 को अधिसूचित नई नियमावली अर्थात उत्तर प्रदेश राजकीय औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (अनुदेशक एवं फोरमैन सेवा) नियमावली, 2021 में शामिल कर लिया गया है।

<u>प्रतिवादीगण की ओर से प्रतुतियां</u>:-

7. **भारत के विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल श्री एस.पी. सिंह** का कथन इस प्रकार है:

(i) भारत के संविधान के अनुच्छेद 73 के अनुसार, भारत संघ की कार्यकारी शक्ति, संविधान में या संसद द्वारा बनाए गए किसी भी कानून में स्पष्ट रूप से प्रदान किए गए को छोड़कर, किसी भी राज्य में उन मामलों तक विस्तारित नहीं होगी जिनके संबंध में राज्य की विधायिका को भी कानून बनाने की शक्ति है। चूंकि नियम, 2014 को राज्य सरकार द्वारा शक्तियों के विधायी प्रयोग में अधिनियमित किया गया है, इसलिए, भले ही नियम, 2014 के अनुच्छेद 73 के तहत कार्यकारी निर्देशों के बीच कोई विरोधाभास हो, फिर भी नियम, 2014 प्रभावी होंगे। जहां तक नियम,

2014 की वैधता का प्रश्न है, इसका बचाव राज्य को करना है। केंद्र सरकार के पत्र दिनांक 15.12.2008, 30.09.2010 और 21.03.2018 को राज्य-उत्तरदाताओं के जवाबी हलफनामे के साथ अनुलग्नक सीए-1, सीए-2 और सीए-3 के रूप में दायर किया गया है, इसे अधिक से अधिक संदर्भ योग्य कहा जा सकता है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 73 के तहत और राज्य केवल इसमें बाध्य होगा वैधानिक प्रावधानों के अभाव की स्थिति में,चूंकि नियम, 2014 अधिनियमित हो चुका है, इसलिए, यह क्षेत्र/दायरा कायम रहेगा और भारत सरकार के उपरोक्त तीन पत्र नियम, 2014 के संदर्भ में नहीं आएंगे।

8.विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री अजीत सिंह जिनकी सहायता श्री सुधांशु श्रीवास्तव ने की,प्रस्तुत किया कि उन्होंने श्री अशोक खरे, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता की दलीलों को ऊपर बताए अनुसार अपनाया है। उन्होंने आगे कहा कि विवादित नियमों में न तो भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के मद्देनजर राज्य सरकार की विधायी क्षमता की कमी है और न ही यह भारत के संविधान के भाग-III के तहत गारंटीकृत किसी मौलिक अधिकार का उल्लंघन करता है। इसलिए, विवादित नियम पूरी तरह से वैध हैं और नियम, 2014 के अनुरूप होने के कारण विवादित विज्ञापन भी वैध है। अधिकांश याचिकाकर्ताओं ने चयन प्रक्रिया में भाग लिया लेकिन असफल होने के बाद उन्होंने वर्तमान रिट याचिका दायर की है। इसलिए, उन्हें रिट याचिका कायम रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती। 2022 की रिट टैक्स संख्या 760 (मैसर्स के. जैन (पी) लिमिटेड बनाम भारत संघ और 4 अन्य (पैरा-24)} में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच के फैसले पर भरोसा किया गया है।

9. श्री अशोक खरे, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री सिद्धार्थ खरे और श्री जिगर खरे की सहायता से, नए पक्षकार उत्तरदाताओं/सफल उम्मीदवारों के लिए विद्वान वकील, निम्नानुसार प्रस्तुत करते हैं: -

(ए)याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील की प्रस्तुति संख्या (i) का उत्तर देते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि भारत सरकार द्वारा जारी सरकारी आदेश दिनांक 24.07.1996,रिट-ए संख्या 1822/2004, में विचार का विषय था जो 08.06.2006 को निर्णय लिया गया और विशेष अपील संख्या 1078/2006 जिसका 12.10.2006 को निर्णय लिया गया। इसलिए, भारत सरकार द्वारा जारी पूर्वोक्त सरकारी आदेश दिनांक 24.07.1996 को बाद के सरकारी आदेशों दिनांक 15.12.2008 और 13.09.2010 (प्रतिवादी संख्या 8 से 13 की ओर से दायर जवाबी हलफनामे के लिए अनुलग्नक सीए -1 और 2 द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है रिट-ए संख्या 63110/2014 के संदर्भ में)। इसलिए, न तो सरकारी आदेश दिनांक 24.07.1996 और न ही इस न्यायालय के उपरोक्त दो निर्णयों की वर्तमान मामले के तथ्यों पर कोई प्रासंगिकता है। इसके विपरीत, उपरोक्त दोनों निर्णयों का अनुपात प्रतिवादियों के मामले का समर्थन करता है। भारत सरकार द्वारा जारी उपरोक्त सरकारी आदेश दिनांक 15.12.2008 द्वारा, डी जी ई एंड टी से "उत्तीर्ण प्रिंसिपल ऑफ टीचिंग (पी ओ टी)" पाठ्यक्रम जो सी आई टी एस के समकक्ष है, को वांछनीय योग्यता बना दिया गया है न कि आवश्यक योग्यता। इसी प्रकार उपरोक्त शासनादेश दिनांक 30.09.2010 द्वारा सीआईटीएस की उपरोक्त योग्यता को वांछनीय योग्यता बना दिया गया है न कि आवश्यक योग्यता। इस प्रकार, सीआईटीएस प्रश्न में भर्ती की आवश्यक योग्यता नहीं है।

(बी) याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील की प्रस्तुति संख्या (ii) का जवाब देते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि सीआईटीएस/पीओटी भारत सरकार के उपरोक्त सरकारी आदेशों के बाद दिनांक 21.03.2013 के पत्रों के संदर्भ में एक वांछनीय योग्यता है। अनुबंध सीए-3), निदेशक प्रशिक्षण एवं रोजगार का पत्र दिनांक 21.10.2014 (अनुलग्नक सीए-5),इसलिए, इसे महत्व देने के लिए, नियम, 2014 के नियम 16(3)(ए)(iii) में प्रत्येक उम्मीदवार को सीआईटीएस पीओटी परीक्षा में प्राप्त अंक के प्रतिशत के 15% के रूप में वेटेज अंक प्रदान किया जाता है। इस प्रकार, वांछनीय योग्यता रखने के लिए, 30.01.2013 को अधिसूचित नियम, 2014 के नियम 16 के उपरोक्त उप-खंड (ए) (iii) में उपरोक्त अनुसार कुछ अंक देने का प्रावधान किया गया है, जिसके बाद विवादित विज्ञापन दिनांकित हुआ। 07.11.2014 को जारी किया गया था। इस प्रकार, विवादित विज्ञापन नियम, 2014 और केंद्र सरकार द्वारा जारी निर्देशों के अनुरूप है, जो नियम, 2014 के लागू होने और विवादित विज्ञापन दिनांक 07.11.2014 को जारी होने की तारीख पर मौजूद थे। यह सर्वविदित है कि चयन प्रक्रिया विज्ञापन की तिथि तक विद्यमान नियमों के अनुसार पूरी की जानी है। सिविल अपील संख्या 9746/2011 (हिमांचल प्रदेश राज्य बनाम राज कुमार, 20.05.2022 को निर्णय लिया गया) के निर्णय पर विश्वास किया गया है।

(सी) याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील की प्रस्तुति संख्या (iii) का जवाब देते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि अंक प्रदान करने का प्रावधान विशेष रूप से नियोक्ता के क्षेत्र में है। इसलिए, याचिकाकर्ताओं की प्रस्तुति संख्या (iii) कानून के सभी स्थापित सिद्धांतों के विपरीत है। याचिकाकर्ताओं

का तर्क इस धारणा पर आधारित है कि सरकार का आदेश दिनांक 24.07.1996 अभी भी लागू है, जबकि रिकॉर्ड पर यह तथ्य स्पष्ट है कि उक्त सरकारी आदेश का कोई महत्व नहीं है क्योंकि इसे हटा दिया गया है और वह इसके अलावा, नए नियम, 2014 भी प्रभावी हैं। उन्हीं कारणों से, प्रस्तुत संख्या (iv), (v) और (vi) भी मान्य नहीं हैं।

(डी) याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील के सबमिशन नंबर (vii) का जवाब देते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि तर्क नंबर (vii) गलत पढ़ने और गलत व्याख्या पर आधारित है। न्यूनतम तकनीकी योग्यता के रूप में मैकेनिकल इंजीनियरिंग में डिप्लोमा या डिग्री प्रदान करने पर कोई रोक नहीं है। यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं करता है।

(ई) श्री सी.बी. यादव द्वारा दिए गए तर्कों का उत्तर देते हुए जैसा कि दिनांक 09.11.2022 के आदेश में और आज के आदेश में भी उल्लेख किया गया है, यह प्रस्तुत किया गया है कि रिट याचिका के पैराग्राफ -8 में उल्लिखित पात्रता योग्यता का प्रशिक्षण मैनुअल उद्धरण और के रूप में दायर किया गया है रिट याचिका का अनुलग्नक-2 पहले के प्रशिक्षण मैनुअल का हिस्सा है, न कि क्षेत्र को संभालने वाले प्रशिक्षण मैनुअल का। उपरोक्त पैराग्राफ-8 का जवाब जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ-8 में दिया गया है और 2014 प्रशिक्षण मैनुअल के प्रासंगिक उद्धरणों को अनुलग्नक सीए-7 के रूप में दायर किया गया है, जो स्वयं खुलासा करता है कि सीआईटीएस योग्यता केवल एक वांछनीय योग्यता के रूप में निर्दिष्ट की गई है, न कि आवश्यक के रूप में। योग्यता। इस प्रकार, नियम, 2014 विवादित विज्ञापन जारी होने से पहले वर्ष 2014 में प्रकाशित प्रशिक्षण मैनुअल के अनुरूप हैं। याचिकाकर्ताओं ने इस न्यायालय के समक्ष एक बयान दिया है कि वे प्रत्युत्तर हलफनामा दाखिल नहीं करेंगे उपरोक्त प्रति शपथ पत्र के संदर्भ में इसलिए, जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ-8 में दिए गए उपरोक्त कथनों को सही माना जाएगा। इसके अलावा, दिनांक 13.02.2015 के प्रत्युत्तर हलफनामे के पैराग्राफ -5 में (राज्य-प्रतिवादियों के जवाबी हलफनामे के जवाब में), याचिकाकर्ताओं ने कहा है कि नियम 9ए(2) नियमों के परिशिष्ट के कॉलम 4 के साथ पढ़ा जाता है। 2014 नियम 2 (के) में परिभाषित एनपीसी और नियम 2 (1) में परिभाषित एनएसी को आवश्यक योग्यता के रूप में प्रदान करता है, जबकि अधिमान्य योग्यता नियम 9 बी में निर्धारित की गई है, जिसे नियम 2 (एफ) में परिभाषित सीआईटीएस के रूप में परिशिष्ट के कॉलम 5 के साथ पढ़ा गया है। नियम, 2014 के नियम 2(ई) के साथ। इस प्रकार, नियम 9बी में एक अतिरिक्त योग्यता निर्धारित की गई है जो आवश्यक योग्यता नहीं है बल्कि एक अधिमान्य योग्यता है। इसलिए, सीआईटीएस प्रमाणपत्र धारण करना केवल एक अधिमान्य योग्यता है जिसके लिए सीआईटीएस में प्राप्त अंकों का 15% गुणवत्ता बिंदु अंक प्रदान करने में जोड़ने का प्रावधान किया गया है। नियम 17(3) इस स्थिति को और स्पष्ट करता है। सीआईटीएस की अधिमानी योग्यता प्राप्त करने के लिए प्रवेश लेने के लिए एनटीसी और एनएसी आवश्यक योग्यता है। इस प्रकार दोनों की योग्यताएं अलग-अलग हैं। जबकि, पहली आवश्यक योग्यता है, बाद वाली अधिमान्य योग्यता है जैसा कि नियम, 2014 के क्रमशः नियम 9ए और 9बी में प्रदान किया गया है।

10. श्री जी.के. सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री अवनीश कुमार राय की सहायता से, प्रतिवादी क्रमांक 4 से 7 तक के लिए विद्वान अधिवक्ता,रिट-ए संख्या 63110/2014 के सन्दर्भ मे, जो कि विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे द्वारा दिए गए तर्कों को स्वीकार करते हैं।

11. श्री इंदर राज सिंह, पक्षकार के लिए विद्वान अधिवक्ता रिट-ए संख्या 63110/2014 के सन्दर्भ में में विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि वह विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे द्वारा दिए गए तर्कों को स्वीकारते हैं। इसके अतिरिक्त उनका मानना है कि भारत के संविधान का अनुच्छेद 309 भारत संघ और राज्य सरकार को अधीनस्थ कानून बनाने की शक्ति प्रदान करता है। चूंकि नियम, 2014 और भारत संघ द्वारा अधिनियमित किसी भी अधीनस्थ कानून के बीच कोई विरोधाभास नहीं है, इसलिए, नियम, 2014 प्रभावी रहेगा। आवेदक-प्रतिवादी सभी सरकारी कर्मचारी के रूप में कार्यरत हैं और उन्होंने सीआईटीएस प्रशिक्षण भी पूरा कर लिया है।

<u>याचिकाकर्ताओं के वकीलों द्वारा प्रत्युत्तर में प्रस्तुतियाँ</u>:-

12. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता **श्री ए.एन.त्रिपाठी** ने प्रस्तुत किया:-

(i) अनुसूची 7 की समवर्ती सूची की प्रविष्टि 25 सूची 1 की प्रविष्टि 63, 64, 65 और 66 के अधीन है। संघ सूची की प्रविष्टि 64 (ए) अनंतिम, व्यावसायिक या तकनीकी प्रशिक्षण प्रदान करती है। संघ सूची की प्रविष्टि 66 उच्च शिक्षा या अनुसंधान और वैज्ञानिक और तकनीकी संस्थानों के लिए मानक संस्थानों के समन्वय और निर्धारण का प्रावधान करती है। इसलिए, शिल्प अनुदेशक प्रशिक्षण

योजना संघ सूची की प्रविष्टि 65 और 66 के अंतर्गत आने वाला मामला है। अत: भारत सरकार द्वारा जारी कार्यकारी निर्देश अर्थात सरकारी आदेश दिनांक 24.07.1996 जहां तक अनुदेशक के पद पर भर्ती के लिए आवश्यक योग्यता का सवाल है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 73 के तहत राज्य सरकार पर बाध्यकारी होगा। चूँकि नियम 9बी में सीआईटीएस को आवश्यक योग्यता के रूप में शामिल नहीं किया गया है, इसलिए, नियम 9बी, नियम 15(3) और नियम 17(3) में विधायी क्षमता का अभाव है क्योंकि कानून का क्षेत्र प्रविष्टियों 65-66 के संदर्भ में है और इस पर कब्जा कर लिया गया है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 73 के तहत कार्यकारी आदेश 24.07.1996 जारी करके भारत संघ। इस प्रश्न का निपटारा पहले ही एक विद्वान एकल न्यायाधीश (पैरा-21 से 27, 31, 32 और 33) और विशेष अपील में डिवीजन बेंच (पेज 5 और 6 पर पैरा) द्वारा किया जा चुका है, जैसा कि 10.11.2022 को दी गई दलीलों में बताया गया है। इसलिए, इस न्यायालय द्वारा तय किए गए कानून के मद्देनजर, उपरोक्त सरकारी आदेश दिनांक 24.07.1996 प्रकृति में अनिवार्य है और राज्य सरकार, नियमों के अनुसार, सीआईटीएस की आवश्यक योग्यता को कम नहीं कर सकती है और इसे अधिमान्य योग्यता के रूप में नहीं बना सकती है। सीआईटीएस द्वारा आवश्यक योग्यता को कम करने के लिए आवश्यक योग्यता को कम करने वाले नियमों को लागू करने के लिए राज्य में विधायी क्षमता का अभाव है। मदन मोहन पाठक और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, एआईआर 1978 एससी 803 (पैरा 24, 25 और 26) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के फैसले पर भी भरोसा किया गया है, जिसमें यह किया गया है यह माना गया कि उच्च न्यायालय द्वारा जारी परमादेश को किसी भी विधायी अधिनियम द्वारा रद्द नहीं किया जा सकता है।

13. **श्री अंकुर शर्मा,** याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने रिट-ए संख्या 5517/2019 , 21295/2019 और 5345/2015 के संदर्भ में निम्नानुसार प्रत्युत्तर प्रस्तुत किया है:

(i) भारत सरकार का पत्र दिनांक 15.12.2008 अनुदेशक पद पर भर्ती हेतु योग्यता से संबंधित नहीं है। यह केवल "शिल्पकार प्रशिक्षण योजना के तहत ट्रेडों के लिए अनुदेशक योग्यता के मानदंड" प्रदान करता है। इसलिए, भारत सरकार के कार्यकारी आदेश दिनांक 15.12.2008 के तहत प्रदान की गई योग्यता एक विशेष योजना के संबंध में है यानी अनुदेशक (सीए-1) के प्रयोजनों के लिए शिल्पकार प्रशिक्षण योजना के तहत व्यापार के लिए। इसी प्रकार भारत सरकार का अगला पत्र (अनुलग्नक-सीए-2) "आईटीआई उन्नत सीओई में लागू किए जा रहे मल्टीस्किल्ड पाठ्यक्रमों के एडवांस मॉड्यूल" के लिए अनुदेशक योग्यता से संबंधित है। इसलिए, उक्त पत्र केवल विशेष रूप से मल्टीस्किल्ड पाठ्यक्रमों के एडवांस मॉड्यूल के लिए अनुदेशकों की योग्यता प्रदान करता है, जो आईटीआई के उन्नत उत्कृष्टता केंद्र द्वारा चलाए जाते हैं। इसलिए, यह अनुदेशकों के लिए योग्यता प्रदान नहीं करता है। इस प्रकार, यह ट्रेड कोर्स/मॉड्यूल के लिए अनुदेशकों की योग्यता प्रदान करता है, न कि नियमित पाठ्यक्रमों के लिए, जैसा कि वर्तमान रिट याचिका में शामिल है। याचिकाकर्ताओं ने चयन प्रक्रिया में भाग नहीं लिया और विज्ञापन को ही चुनौती देते हुए रिट याचिका दाखिल की है।

<u>चर्चा एवं निष्कर्ष</u>:-

14. इससे पहले कि हम विवाद पर विचार करें, नीचे दिए गए **सरकारी आदेशों और नियमों पर भरोसा करना** उपयोगी होगा: -

(ए) व्यावसायिक अनुदेशकों के पद पर भर्ती के लिए आवश्यक योग्यता प्रदान करने वाले भारत सरकार के श्रम मंत्रालय (डीजीई एवं टी), नई दिल्ली द्वारा जारी कार्यकारी निर्देश दिनांक 24.07.1996:-

श्रम मंत्रालय
(रो० एवं प्र० महानिदेशालय)
(डी.जी.ई. एंड टी)
नई दिल्ली- 110001

एनओ.डीजीईएंडटी-10(20)/95-सीडी
भारत सरकार
श्रम मंत्रालय
(डी.जी.ई. एंड टी.)
नई दिल्ली, दिनांक 24 जुलाई 1996

सेवा में,
सरकार/संघ राज्य क्षेत्र प्रशासन के सभी सचिव (शिल्पकार प्रशिक्षण योजना से संबंधित)
विषयः **व्यावसायिक अनुदेशक के पद के लिए भर्ती योग्यता बढ़ाने के लिए।**

महोदय,
मुझे आपको यह सूचित करने का निर्देश हुआ है कि व्यावसायिक अनुदेशक के पद के लिए भर्ती योग्यता बढ़ाने का प्रस्ताव 30-11-95 को आयोजित एनसीवीटी की 31वीं बैठक के दौरान एजेंडा के आइटम नंबर 14 के रूप में रखा गया था।
विचार-विमर्श के बाद परिषद ने निम्नलिखित सिफारिश की:

व्यावसायिक अनुदेशकों (विज़) की दो अलग-अलग धाराएँ रखने के प्रस्ताव पर एक वर्कशॉप गणना और विज्ञान और इंजीनियरिंग ड्राइंग सहित सिद्धांत विषयों को पढ़ाने के लिए और दूसरा अलग-अलग भर्ती योग्यता और मानदंडों वाले व्यावहारिक संचालन के लिए, जैसा प्रस्तावित (अनुलग्नक- I के अनुसार) पर सहमति हुई थी।

भारत सरकार ने सीटीएस के तहत कार्यान्वयन के लिए उपरोक्त सिफारिश को स्वीकार कर लिया है। आपसे अनुरोध है कि वी.आई. (थ्योरी और प्रैक्टिकल) के संबंध में भर्ती नियमों में 31.7.97 तक संशोधन करने के लिए आवश्यक कार्रवाई करें। वी.आई. की भर्ती संशोधित भर्ती नियमों के अनुसार की जा सकती है। 1-8-97 से आगे, जैसा कि एनसीवीटी ने अपनी उपर्युक्त बैठक के दौरान अनुमोदित किया था।

ये मानदंड आपके राज्य के निजी आईटीआई पर भी लागू होते हैं और इसलिए उनसे संशोधित योग्यता के अनुसार वी.आई. की भर्ती करने का अनुरोध किया जा सकता है। **1.8.97 के बाद संशोधित योग्यता के अनुसार वी.आई. की भर्ती नहीं करने वाले संस्थान गैर-इंजीनियरिंग ट्रेड के लिए असंबद्धता के लिए उत्तरदायी हैं, यथास्थिति बनाए रखी जाएगी।**

भवदीय
एस डी- अपठनीय
(अभीक घोष)
महानिदेशक/संयुक्त सचिव

प्रतिलिपि प्रेषितः

1. सीटीएस से संबंधित सभी राज्य निदेशक
2. डीजीई&टी के टीआरजी डी.टी.ई के क्षेत्रीय संस्थान के सभी निदेशक
3. सभी आरडीएटी
4. प्रिंसिपल, सीटीआई .... एनवीटीआई, नोएडा, ...
5. टीए.1 अनुभाग को विस के भर्ती नियमों को तदनुसार संशोधित करने के लिए आवश्यक कार्रवाई करने के अनुरोध के साथ
6. डीजीईएंडटी के टी.आर.जी. डी.टी.ई. के सभी अधिकारी, नई दिल्ली से जेडीटी स्तर तक

एसडी-अपठनीय
(वाई.पी. शर्मा)
संयुक्त निदेशक प्रशिक्षण

<u>केवल इंजीनियरिंग ट्रेडों के लिए औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में अनुदेशक (सैद्धांतिक/व्यावहारिक)</u>

क्रम संख्या	**पद का नाम**	**आईटीआई की क्षमता**	**आवश्यक योग्यता**	**पे स्केल**
1.	2.	3.	4.	5.
1.	व्यावसायिक अनुदेशक (व्यापार सिद्धांत, कार्यशाला) गणना एवं विज्ञान और इंजीनियरिंग ड्राइंग	एक वी.आई. ट्रेडों के एक ही समूह के अंतर्गत आने वाले न्यूनतम 36 प्रशिक्षुओं के लिए।	क) शैक्षणिक: 10+2 शिक्षा प्रणाली के तहत 10वीं कक्षा की परीक्षा उत्तीर्ण की। बी) तकनीकी: किसी मान्यता प्राप्त संस्थान से इंजीनियरिंग की उपयुक्त	रु० 1640-2900/-

अनुवादित

			शाखा में 3 साल का डिप्लोमा उत्तीर्ण। ग) **अनुदेशक प्रशिक्षण योजना** (एक वर्ष का पाठ्यक्रम) के तहत प्रमाणपत्र होना चाहिए **या** मॉड्यूलर पैटर्न पर शिल्प अनुदेशक प्रशिक्षण कार्य	
			क्रम के तहत न्यूनतम दो मॉड्यूल अर्थात शिक्षण पद्धति मॉड्यूल (3 महीने की अवधि) और ट्रेड टेक्नोलॉजी मॉड्यूल (छह महीने की अवधि) को सफलतापूर्वक पूरा करना चाहिए। एम/ओईआरडी के	

			तहत तकनीकी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान (टीटीटीआई) से एक वर्ष का पाठ्यक्रम उत्तीर्ण होना चाहिए।	
2.	**व्यावसायिक अनुदेशक** (व्यावहारिक)	प्रैक्टिकल आयोजित करने और अपने प्रभार के तहत मशीनों के रखरखाव की देखभाल के लिए ट्रेड में प्रति यूनिट एक अनुदेशक।	क) शैक्षणिक: 10+2 शिक्षा प्रणाली के तहत 10वीं कक्षा उत्तीर्ण। बी) तकनीकी व्यापार के लिए उस	रु० 1640-2900/-

			के पास एनटीसी/एनएसी है। ग) (i) एक वर्ष की अवधि के नियमित शिल्प अनुदेशक प्रशिक्षण योजना के तहत एक प्रमाण पत्र। या (ii) उन ट्रेडों में पीओटी मॉड्यूल उत्तीर्ण किया जिनमें अनुदेशकों	

अनुवादित

			के प्रशिक्षण की सुविधा नहीं है। प्रैक्टिकल आवश्यक।	

(बी) आईटीआई/आईटीसी में व्यावसायिक अनुदेशक पर नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता निर्धारित करने वाली राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद की सिफारिश को स्वीकार करते हुए **भारत सरकार द्वारा जारी निर्देश दिनांक 15.12.2008:-**

डीजीईएंडटी-19(8)/2008-सीडी
भारत सरकार
श्रम एवं रोजगार मंत्रालय
रोजगार एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय
श्रम शक्ति भवन
नई दिल्ली दिनांकित 15 दिसम्बर 2008.

सेवा में,

1. **व्यावसायिक प्रशिक्षण से संबंधित सभी राज्य सरकारों/केंद्र शासित प्रदेश प्रशासनों के सचिव/प्रधान सचिव**
2. **सभी राज्यों/केंद्र शासित प्रदेश प्रशासनों के व्यावसायिक प्रशिक्षण से संबंधित निदेशक।**

विषयः शिल्पकार प्रशिक्षण योजना के अंतर्गत ट्रेडों के लिए अनुदेशक योग्यता के मानदंड।

महोदय,

आपको सूचित किया जाता है कि माननीय श्रम एवं रोजगार राज्य मंत्री (आईसी) की अध्यक्षता में राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद (एनसीवीटी) की **37वीं बैठक** 23 नवंबर, 2008 को आयोजित की गई थी। अनुदेशक योग्यता के लिए मानदंड बैठक में एजेंडा आइटम नंबर 3,4 के तहत शिल्पकार प्रशिक्षण योजना के तहत व्यापार पर चर्चा की गई।

2. सीटीएस के तहत ट्रेडों के लिए आईटीआई/आईटीसी में **व्यावसायिक अनुदेशक की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता** (शैक्षिक और तकनीकी) को परिषद द्वारा अनुमोदित किया गया था।

योग्यता		**तकनीकी योग्यता के बाद ट्रेड संबंधित क्षेत्र में अनुभव**	**वांछनीय**
अकादमिक	**तकनीकी**		
दसवीं उत्तीर्ण अथवा समकक्ष	I. *इंजीनियरिंग में डिग्री/**संबंधित ट्रेड की उपयुक्त शाखा में तीन साल का डिप्लोमा **या** ii. प्रासंगिक व्यापार में राष्ट्रीय शिक्षुता प्रमाणपत्र या राष्ट्रीय व्यापार प्रमाणपत्र।	डिग्री के लिए एक वर्ष और डिप्लोमा के लिए दो वर्ष। एनएसी/एनटीसी के लिए तीन वर्ष	किसी भी DGE&T संस्थान से प्रिंसिपल ऑफ टीचिंग (POT) पाठ्यक्रम उत्तीर्ण।

***डिग्री मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से होनी चाहिए।**
****डिप्लोमा मान्यता प्राप्त बोर्ड/संस्थान से होना चाहिए।**

3. भारत सरकार ने परिषद की उपरोक्त अनुशंसा को तत्काल प्रभाव से लागू करने हेतु स्वीकार कर लिया है। तदनुसार, उपरोक्त योग्यता वाले अनुदेशकों को आईटीआई/आईटीसी में नियुक्त किया जाना चाहिए और इन संस्थानों की संबद्धता प्रदान करने के लिए इसका सख्ती से पालन किया जाएगा।

भवदीय

(आर.एल. सिंह)

प्रशिक्षण निदेशक

प्रतिलिपि प्रेषितः

1. निदेशक, एटीआई/चेन्नई, हैदराबाद, बॉम्बे, कोलकाता, कानपुर, लुधियाना सीएसटीएआरआई, कोलकाता/एटीआई(ईपीआई)हैदराबाद से देहरादून, एफटीआई बैंगलोर और जमशेदपुर और एनआईएमआई चेन्नई।
2. आरडीएटी कानपुर, मुंबई, कोलकाता, चेन्नई, फ़रीदाबाद और हैदराबाद
3. प्रिंसिपल सीटीआई चेन्नई, एमआईटीआई, हलद्वानी, कालीकट, जोधपुर, चौद्वार, एनवीटीआई, नई दिल्ली, सभी आरवीटीआई
4. डीजीई एवं (मुख्यालय) के जेडीटी स्तर तक के सभी अधिकारी

(अनीता श्रीवास्तव)
उप. प्रशिक्षण निदेशक

प्रतिलिपि सूचनार्थ प्रेषितः

1. राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) के निजी सचिव
2. सचिव (एल एंड ई) के निजी सचिव
3. महानिदेशक/संयुक्त सचिव के निजी सचिव

(सी) भारत सरकार के दिनांक 30.09.2010 के निर्देश जिसमें आईटीआई में मल्टीस्किल्ड पाठ्यक्रमों के उन्नत मॉड्यूल के लिए क्राफ्ट इंस्ट्रक्टर की योग्यता को सीओई के रूप में अपग्रेड किया गया है:-

डीजीईएंडटी-**19(20)/2010-सीडी**
भारत सरकार
श्रम एवं रोजगार मंत्रालय
रोजगार एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय

दिनांकः 30.09.2010

सेवा में,

1. व्यावसायिक प्रशिक्षण से संबंधित सभी राज्य सरकारों/केंद्र शासित प्रदेश प्रशासनों के सचिव/प्रधान सचिव
2. सभी राज्यों/केंद्र शासित प्रदेश प्रशासनों के व्यावसायिक प्रशिक्षण से संबंधित निदेशक
3. निदेशक, एटीआई हैदराबाद, एटीआई बॉम्बे, एटीआई कोलकाता, एटीआई कानपुर, एटीआई लुधियाना, प्रिंसिपल सीटीआई, चुन्नल

विषय: आइटम नंबर 3804.19: सीओई के रूप में उन्नत आईटी में लागू किए जा रहे मल्टी स्किल पाठ्यक्रमों के **उन्नत मॉड्यूल के लिए अनुदेशक योग्यता।**

महोदय/महोदया,

मुझे आपको यह सूचित करने का निर्देश हुआ है कि माननीय श्रम एवं रोजगार मंत्री की अध्यक्षता में राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद (एनसीवीटी) की **38वीं बैठक** 31 मई 2010 को आयोजित की गई थी, **जिसमें बहु कौशल पाठ्यक्रमों के उन्नत मॉड्यूल के अनुदेशक के लिए योग्यता** निर्धारित की गई थी। **आईटीआई में सीओई के रूप में** अपग्रेड किए जाने पर एजेंडा के आइटम नंबर 3804 19 के तहत चर्चा की गई थी।

सीओई के रूप में अपग्रेड किए गए आईटीआई में लागू किए गए मल्टी स्किल पाठ्यक्रमों के उन्नत मॉड्यूल के लिए अनुदेशक की निम्नलिखित योग्यता परिषद द्वारा अनुशंसित की गई थी।

आवश्यक योग्यता		अनुभव (उद्योग/प्रशिक्षण में)	**वांछनीय**
अकादमिक	तकनीकी		
10 वीं उत्तीर्ण अथवा समकक्ष	ए) **इंजीनियरिंग क्षेत्रों के लिए** I. किसी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से इंजीनियरिंग की उपयुक्त शाखा में डिग्री या समकक्ष अथवा II. मान्यता प्राप्त बोर्ड/संस्थान या समकक्ष से इंजीनियरिंग की	उपयुक्त/संबंधित मॉड्यूल में 2 वर्ष अथवा उपयुक्त/संबंधित मॉड्यूल में 5 वर्ष	क्राफ्ट इंस्ट्रक्टर प्रोग्राम का एनसीवीटी अनुमोदित प्रशिक्षण पद्धति मॉड्यूल में उत्तीर्ण

	उपयुक्त शाखा में 3 साल का डिप्लोमा।	उपयुक्त/संबंधित मॉड्यूल में 2 वर्ष	क्राफ्ट इंस्ट्रक्टर प्रोग्राम का एनसीवीटी अनुमोदित प्रशिक्षण पद्धति मॉड्यूल में उत्तीर्ण
	बी) **इंजीनियरिंग क्षेत्रों के लिए**	अथवा	
	किसी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से उपयुक्त क्षेत्र में डिग्री या समकक्ष	उपयुक्त/संबंधित मॉड्यूल में 5 वर्ष	
	II. मान्यता प्राप्त बोर्ड/संस्थान से उपयुक्त क्षेत्र में 3 साल का डिप्लोमा या समकक्ष		

***नियुक्त अनुदेशक के पास यदि क्राफ्ट इंस्ट्रक्टर प्रशिक्षण कार्यक्रम के प्रशिक्षण पद्धति मॉड्यूल का प्रमाण पत्र नहीं है, तो उसे अपनी नियुक्ति के पहले छह महीने की अवधि में प्रशिक्षण पद्धति मॉड्यूल में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।**

भारत सरकार ने मल्टीस्किल्ड पाठ्यक्रमों के उन्नत मॉड्यूल के लिए क्राफ्ट इंस्ट्रक्टर की उपरोक्त योग्यता को तत्काल प्रभाव से कार्यान्वयन के लिए स्वीकार कर लिया है। अब से, उन्नत मॉड्यूल के लिए अनुदेशकों को उपरोक्त योग्यता के अनुसार नियुक्त किया जाना चाहिए और यदि नियुक्त अनुदेशक के पास क्राफ्ट अनुदेशक प्रशिक्षण कार्यक्रम के प्रशिक्षण पद्धति मॉड्यूल का प्रमाण पत्र नहीं है, तो उसे शामिल होने के पहले छह महीने की अवधि के भीतर प्रशिक्षण पद्धति मॉड्यूल में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

भवदीय

प्रशिक्षण निदेशक

सदस्य सचिव एनसीवीटी

(डी) भारत सरकार द्वारा दिनांक 21.03.2013 को जारी निर्देश में सीआईटीएस की शर्तों को शिथिल करते हुए यह प्रावधान किया गया है कि नियुक्त अनुदेशकों को सीआईटीएस के तहत प्रशिक्षित किया जा सकता है, वे तीन साल के भीतर सीआईटीएस के तहत प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते हैं। उपरोक्त सरकारी आदेश दिनांक 21.03.2013 **नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है**:-

"25 भा0 स0/89- का0 शि0-2013

दूरभाष 237010446

फैक्स 91-11-23351878

रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशक एवं अपर सचिव

भारत सरकार

श्रम एवं रोजगार मंत्रालय

नई दिल्ली- 110001

अ. शा. स.-डीजीईटी-7/4/2013-सी0डी0 महानिदेशक रोजगार एवं प्रशिक्षण/अपर सचिव

भारत सरकार

श्रम एवं रोजगार मंत्रालय

नई दिल्ली 110001

दि0 21 मार्च, 2013

प्रिय राजीव,

कृपया अपने अ.शा. पत्र सं0 614/पी.एस.टी.वी./2013, दिनांक 15 फरवरी, 2013 का अवलोकन करने का कष्ट करें जो औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान के अनुदेशकों की अर्हताओं के पुनर्विचार के सम्बन्ध में है। **इस सम्बन्ध में सूचित करना है कि** राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद् की बैठकों में सम्यक् विचारोपरांत तथा श्रम बाजार एवं उद्योग की मांगों को ध्यान में रखते हुए **आई.टी.आई. अनुदेशकों के पद हेतु डिप्लोमा/डिग्रीधारक की अर्हता निर्धारित की गयी है।** उसमें यह भी प्रावधान किया गया है कि आई.टी.आई. अनुदेशकों के पद पर भर्ती डिप्लोमा/डिग्रीधारकों को कार्यभार ग्रहण करने की दिनांक से **तीन वर्ष की अवधि के भीतर** डीजीईटी के एडवांस्ड प्रशिक्षण संस्थाओं से **शिल्प अनुदेशक प्रशिक्षण योजना (सी.आई.टी.एस.) के अंतर्गत प्रशिक्षित किया जा सकता है** जिससे उन्हे व्यवहारिक कौशल में भी निपुणता प्राप्त हो सके। **इसलिये इसके पुनर्विचार की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।**

2. अतः मैं अनुग्रहीत हूँगा यदि **कृपया उपरोक्तानुसार सेवा नियमावली में तत्काल संशोधन कर अनुदेशकों के रिक्त पदों को भरने का कष्ट करें** और की गयी कार्यवाही से इस कार्यालय को भी अवगत करा दें।

सस्नेह,

भवनिष्ठ

-1824/पीएसटीवी-2/2013

ह०अप०
25/3
(शारदा प्रसाद)

श्री संजीव कपूर,
प्रमुख सचिव,
प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा विभाग,
उत्तर प्रदेश शासन,
लखनऊ।

<u>**एनसीवीटी का विधायी इतिहास एवं नियम**:-</u>

15. वर्ष 1991 से पहले व्यावसायिक अनुदेशकों की सेवा शर्तें सरकारी आदेशों और प्रशासनिक निर्देशों द्वारा विनियमित होती थीं। 1991 के नियमों ने इन आदेशों को प्रतिस्थापित कर दिया और अन्य बातों के साथ-साथ योग्यता और पद्धति का भी प्रावधान किया। 1991 की नियमावली का नियम 5 भर्ती के लिए उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के माध्यम से प्रतियोगी परीक्षा एवं साक्षात्कार के आधार पर प्राविधान करता है। 1994 में इन नियमों में प्रथम संशोधन द्वारा अधीनस्थ सेवा चयन आयोग के माध्यम से भर्ती का प्राविधान प्रदान करने वाले नियमों में संशोधन किया गया था, जिसे यू.पी. प्रक्रिया नियमावली 1998 के नाम से जाना जाता है समूह 'ग' पदों पर सीधी भर्ती की प्रक्रिया (जो उ.प्र. लोक सेवा आयोग के दायरे से बाहर हों),तकनीकी प्रकृति के अथवा जिसके लिए विशिष्ट योग्यताएं अभिनिर्धारित हों समूह 'सी' पदों पर सीधी भर्ती की प्रक्रिया को यू.पी प्राविधान नियम 2001 के साथ अध्ययन किया जाय।(जो यूपी लोक सेवा आयोग के दायरे से बाहर हों)।

16. **राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद (एनसीवीटी) की स्थापना केंद्र सरकार के प्रशासनिक आदेश के तहत कैबिनेट की मंजूरी के साथ की गई थी।** इसने औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में व्यावसायिक अनुदेशकों के पद के लिए आवश्यक योग्यता बढ़ाने के लिए केंद्र सरकार को सिफारिशें की। एनसीवीटी ने प्रस्तावित किया कि व्यावसायिक शिक्षण के लिए कार्यशाला, गणना, विज्ञान और इंजीनियरिंग ड्राइंग सहित सिद्धांत, शिक्षा की न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता के अलावा 10 + 2 प्रणाली और मान्यता प्राप्त संस्थानों से इंजीनियरिंग की उपयुक्त शाखा में तीन साल का डिप्लोमा होना चाहिए और **इसके अलावा शिक्षण योग्यता अर्थात् ड्राफ्ट इंस्ट्रक्टर ट्रेनिंग स्कीम (एक वर्षीय पाठ्यक्रम)** के तहत प्रमाणपत्र या मॉड्यूल पैटर्न पर ड्राफ्ट इंस्ट्रक्टर ट्रेनिंग प्रोग्राम के तहत न्यूनतम दो मॉड्यूल, शिक्षण पद्धति मॉड्यूल (तीन महीने की अवधि) (छह महीने की अवधि) सफलतापूर्वक पूरा किया होना चाहिए, या मानव संसाधन विकास मंत्रालय के तहत तकनीकी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान (टीटीटीआई) से एक वर्ष का पाठ्यक्रम उत्तीर्ण होना चाहिए।

17. **एनसीवीटी ने आगे प्रस्तावित किया कि व्यावसायिक अनुदेशक (प्रैक्टिकल)** के लिए 10+2 शिक्षा प्रणाली की शैक्षणिक योग्यता के अलावा **उम्मीदवार के पास ट्रेड के लिए एनटीसी/सीएसी की तकनीकी योग्यता होनी चाहिए; (1)** एक वर्ष की अवधि के नियमित ड्राफ्ट इंस्ट्रक्टर प्रशिक्षण योजना के तहत एक प्रमाण पत्र; या (**2**) ट्रेड में शिक्षण मॉड्यूल के सिद्धांत, जिसमें अनुदेशकों के प्रशिक्षण की सुविधा न हो, आवश्यक व्यावहारिक नियुक्ति के बाद तीन साल के भीतर प्रदान की जाए; और (**3**) अनुदेशक प्रशिक्षण प्राप्त करने से पहले या बाद में किसी उद्योग या प्रशिक्षण/शिक्षण संस्थान में न्यूनतम दो वर्ष का अनुभव।

18. **एनसीवीटी की सिफारिशों को केंद्र सरकार ने स्वीकार कर लिया और महानिदेशक/संयुक्त सचिव (डीजीई एवं आई), श्रम मंत्रालय, भारत सरकार के पत्र दिनांक 24.7.1996 द्वारा केंद्र सरकार ने सभी सरकार/संघ राज्य क्षेत्र प्रशासन (ड्राफ्ट्समैन प्रशिक्षण योजना से संबंधित) सचिवों को 31.7.1997 तक भर्ती नियमों में आवश्यक संशोधन के लिए निर्देश जारी किए।** 01.8.1997 के बाद संशोधित योग्यता के अनुसार अनुदेशकों की भर्ती नहीं करने वाले संस्थानों की मान्यता रद्द किये जाने योग्य थी। **केंद्र सरकार ने नियमों में संशोधन की अवधि बढ़ा दी है। ऐसा आखिरी विस्तार अगस्त, 2001 तक दिया गया था।**

19. **उत्तर प्रदेश सरकार ने सिफ़ारिशें स्वीकार कर लीं और नियमावली 1991 में द्वितीय संशोधन अधिसूचित दिनांक 8.8.2003 द्वारा संशोधिन किया** और संशोधित नियमों में प्रदान की गई उच्च शिक्षक प्रशिक्षण योग्यता रखने वाले उम्मीदवारों से आवेदन आमंत्रित करते हुए 20.8.2003 को रिक्तियों का विज्ञापन जारी किया। रिट याचिका संख्या 1822/2004 के याचिकाकर्ताओं ने विज्ञापन के अनुसरण में इन रिक्तियों के लिए आवेदन किया। राज्य सरकार ने 29.9.2003 को निदेशक, व्यावसायिक प्रशिक्षण द्वारा समाचार पत्रों में एक नोटिस द्वारा विज्ञापन रद्द कर दिया।

20. **फिर, राज्य सरकार ने 09.12.2003 को अधिसूचित 1991 के नियमों में तीसरे संशोधन द्वारा**

1991 के नियमों में फिर से संशोधन किया, जिसमें राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद की सिफारिशों पर केंद्र सरकार द्वारा निर्देशित बढ़ी हुई शिक्षण योग्यता को हटा दिया गया। आईटीआई में 34 ट्रेडों में मौजूद अनुदेशकों की 742 रिक्तियों के लिए आवेदन आमंत्रित करते हुए 13.12.2003 को एक नया विज्ञापन जारी किया गया था।

21. उपरोक्त **तीसरे संशोधन नियमों** की **संवैधानिक वैधता** को **उपेन्द्र नारायण सिंह** (**पूर्वोक्त**) के मामले में चुनौती दी गई थी और इसे निम्नानुसार रद्द कर दिया गया था-

"21. **इन रिट याचिकाओं में निर्धारण के लिए संक्षिप्त बिंदु यह है कि क्या एनसीवीटी की सिफारिशों पर केंद्र सरकार द्वारा जारी किए गए निर्देश अनिवार्य हैं और राज्य सरकार पर बाध्यकारी हैं, जिसके पास सेवा नियम बनाने के लिए संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधानों और उपयुक्त विधायिका के कृत्यों के तहत शक्तियां हैं** और इन सिफारिशों पर आगे कार्रवाई करने के बाद क्या राज्य सरकार बिना किसी वैध और न्यायसंगत कारण के इन योग्यताओं को मनमाने ढंग से कम करने के लिए 1991 के नियमों में फिर से संशोधन कर सकती थी। याचिकाकर्ताओं की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री एएन त्रिपाठी द्वारा उद्धृत सभी निर्णयों में, सर्वोच्च न्यायालय वैधानिक निकायों अर्थात् मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया, जो कि मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया अधिनियम, 1956 के तहत स्थापित है और नेशनल काउंसिल ऑफ टीचर्स एजुकेशन एक्ट, जो कि 1993 के अधिनियम के तहत स्थापित की गई है, द्वारा की गई सिफारिशों से निपट रहा था। अजय कुमार सिंह (पूर्वोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने एससी/एसटी आदि के लिए आरक्षण प्रदान करने वाले मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया द्वारा स्नातकोत्तर मेडिकल पाठ्यक्रमों में प्रवेश के विनियमन पर विचार किया और पाया कि मेडिकल काउंसिल अधिनियम परिषद स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में प्रवेश की योग्यता को विनियमित करने या निर्धारित करने का अधिकार नहीं देता है। हालाँकि, सूची । की प्रविष्टि 66 के आधार पर, जो सूची ।।। के प्रविष्टि 25 को ओवरराइड करती है , राज्यों को उच्च शिक्षा के मानकों को निर्धारित करने और समन्वयित करने की सभी शक्तियों से वंचित कर दिया गया है, जिसे इन पाठ्यक्रमों में प्रवेश को विनियमित करने के लिए अनिवार्य रूप से लेना चाहिए। नियम किसी भी आरक्षण का प्रावधान नहीं करते हैं और प्रत्यायोजित कानून की एक प्रजाति होने के कारण ये नियम मेडिकल शिक्षा प्रदान करने वाले सभी संस्थानों को बाध्य करते हैं।

22. डॉ. प्रीति श्रीवास्तव (पूर्वोक्त) के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि यदि विश्वविद्यालयों को उनकी डिग्री और डिप्लोमा को मान्यता देनी है तो उन्हें मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया की धारा 70(1) के तहत मानकों द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए, यह पाया गया कि मेडिकल काउंसिल के नियम वैधानिक हैं और अनिवार्य हैं। अधिनियम शिक्षा के न्यूनतम मानकों को नियंत्रित करने के लिए मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया को एक विशेषज्ञ निकाय के रूप में मानता है। यह दृष्टिकोण 2003 में हरीश वर्मा (पूर्वोक्त) के मामले में दोहराया गया था। भारत संघ बनाम शाह गोवर्धन एल. काबरा टीचर्स कॉलेज (पूर्वोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय ने राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद अधिनियम, 1993 बनाने के लिए केंद्र सरकार की विधायी क्षमता को बरकरार रखा और अभिनिर्धारित किया कि राष्ट्रीय परिषद, जो एक विशेषज्ञ निकाय है, की राय के साथ छेड़छाड़ नहीं की जानी चाहिए। मान्यता रद्द करने के उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द कर दिया गया। सेंट जॉन्स टीचर्स ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट (पूर्वोक्त) में नेशनल काउंसिल फॉर टीचर्स एजुकेशन द्वारा पाठ्यक्रमों की मान्यता के संबंध में इसी दृष्टिकोण का पालन किया गया था और नियमों को अधिनियम के दायरे से बाहर रखा गया था।

23. **राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद की स्थापना किसी क़ानून के तहत नहीं की गई है।** 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संशोधित अनुसूची 7 की सूची ।।। (समवर्ती सूची) में प्रविष्टि 25, सूची-1 की प्रविष्टि 63, 64, 65 और 66 के प्रावधान के अधीन, विश्वविद्यालयों में तकनीकी शिक्षा, चिकित्सा शिक्षा से संबंधित है; श्रमिकों का व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण। अनुसूची VII की सूची 1 की प्रविष्टि 65 और 66 पेशेवर, व्यावसायिक और शिक्षक प्रशिक्षण और उच्च शिक्षा या अनुसंधान और वैज्ञानिक और तकनीकी संस्थानों के लिए संस्थानों में मानकों के समन्वय और निर्धारण के लिए संघ एजेंसियों और संस्थानों को संदर्भित करती है। अनुच्छेद 73 केंद्र सरकार को उन मामलों में कार्यकारी शक्तियों का प्रयोग करने का अधिकार देता है जिनके संबंध में संसद के पास कानून बनाने की शक्तियां हैं।
सूची । की प्रविष्टि 65 और 66 इस प्रकार है:

"65. संघ एजेंसियाँ और संस्थाएँ-

(ए) **पेशेवर, व्यावसायिक या तकनीकी प्रशिक्षण,** जिसमें पुलिस अधिकारियों का प्रशिक्षण भी शामिल है; अथवा
(बी) विशेष अध्ययन या अनुसंधान को बढ़ावा देना; अथवा
(सी) अपराध की जांच या पता लगाने में वैज्ञानिकी या तकनीकी सहायता।

66. उच्च शिक्षा या अनुसंधान तथा वैज्ञानिक एवं **तकनीकी संस्थानों** के लिए **संस्थानों में मानकों का समन्वय एवं निर्धारण।"**

24. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे ने इस बात पर विवाद नहीं किया कि अनुसूची VII की सूची I में प्रविष्टि 66 में तकनीकी संस्थानों में मानकों के समन्वय और निर्धारण में शिक्षण और शिक्षण योग्यता के लिए मानक निर्धारित करना शामिल होगा। अनुच्छेद 246 के तहत इस विषय पर कानून बनाने और कार्यकारी आदेश जारी करने की केंद्र सरकार की शक्ति संदेह में नहीं है। हालाँकि, मुद्दा यह है कि क्या कानून के अभाव में, इस विषय पर भारत के संविधान के अनुच्छेद 73 के तहत दिया गया प्रशासनिक आदेश अभी भी राज्य सरकार पर बाध्यकारी होगा। **अनुच्छेद 73 के तहत संघ की कार्यकारी शक्ति उन मामलों तक विस्तारित है जिनके संबंध में संसद को कानून बनाने की शक्ति है।** संसद द्वारा कानून की अनुपस्थिति में, राज्य अपनी कार्यकारी शक्ति में समवर्ती सूची में शामिल मामलों से निपट सकता है। किसी विशेष विषय से संबंधित कार्यकारी शक्ति के प्रयोग के लिए विशिष्ट कानून की आवश्यकता नहीं होती है और कई क्षेत्रों में कार्यकारी कार्यकारी शक्ति का प्रयोग करके कार्य करता है। हालाँकि, शक्ति का प्रयोग संविधान के प्रावधानों के अधीन है। अनुच्छेद 309 संघ या किसी भी राज्य के मामलों के संबंध में सार्वजनिक सेवाओं और पदों पर नियुक्त व्यक्तियों की सेवा शर्तों में भर्ती को विनियमित करने का प्रावधान करता है, जब तक कि कानून द्वारा इस संबंध में प्रावधान नहीं किया जाता है। संघ के मामले में राष्ट्रपति और राज्य के मामले में राज्यपाल को नियम बनाने के लिए अधिकृत किया गया है, जो प्रकृति में विधायी हैं। अनुच्छेद 309 चयन के लिए या नियुक्ति के लिए योग्यता के नियमों के निर्धारण पर रोक नहीं लगाता है। (पांडु रंगा राव बनाम ए.पी. लोक सेवा आयोग, एआईआर 1993 एससी 268)।

25. **वर्तमान मामले में राज्यपाल द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति, जो संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधान के तहत सेवा नियम या विनियम बनाने में राज्य सरकार की सलाह पर कार्य करता है और केंद्र सरकार द्वारा जारी कार्यकारी आदेश के बीच कोई विरोधाभास नहीं है। तकनीकी शिक्षा में मानकों का समन्वय और निर्धारण, जिसमें शिक्षकों की योग्यता शामिल है, संघ के विशेष कार्यक्षेत्र में सूची I में प्रविष्टि 66 के अंतर्गत आता है। तकनीकी शिक्षा सहित शिक्षा सूची III की प्रविष्टि 25 के अंतर्गत आती है, जब तक केंद्र सरकार ने एनसीवीटी की सिफारिशों को स्वीकार करते हुए कोई निर्देश जारी नहीं किया था, औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों, जो तकनीकी संस्थान हैं, में नियुक्ति के लिए योग्यता निर्धारित करने के लिए राज्य सरकार के लिए खुला था। जिन मामलों पर संसद के पास कानून बनाने की विशेष शक्ति है, उनके संबंध में अनुच्छेद 73 के तहत जारी कार्यकारी आदेश संसद द्वारा बनाए गए कानूनों के समान ही बल रखते हैं।** अनुच्छेद 73 के खंड (1) का प्रावधान, संविधान में या संसद द्वारा बनाए गए किसी भी कानून में स्पष्ट रूप से प्रदान किए गए को छोड़कर, किसी भी राज्य में उन मामलों तक विस्तारित नहीं होगा जिनके संबंध में राज्य के विधानमंडल को भी कानून बनाने की शक्ति है।

26. सूची III की प्रविष्टि 25 और सूची I की प्रविष्टि 66 के बीच अंतर्संबंध भारत संघ बनाम शाह गोवर्धन एल. काबरा टीचर्स कॉलेज मामले में विचार का विषय था। सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

निर्माण के नियम के उपरोक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, यदि लागू क़ानून के प्रावधानों, अर्थात् राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद अधिनियम, 1993 और विशेष रूप से उसकी धारा 17(4) की जांच की जाती है, जिसे हम पहले ही निकाल चुके हैं, तो निष्कर्ष अप्रतिरोध्य है। यह क़ानून सातवीं अनुसूची की सूची I की प्रविष्टि 66 के अर्थ के भीतर उच्च शिक्षा के लिए संस्थानों में मानकों के समन्वय और निर्धारण से संबंधित है। **सूची I की दोनों प्रविष्टियाँ 65 और 66 केंद्रीय विधानमंडल को अनुसंधान के मानकों और उच्च शिक्षा के मानकों को सुरक्षित करने का अधिकार देती हैं। उद्देश्य यह है कि राष्ट्रीय प्रगति को नुकसान पहुंचाने के लिए विशेष राज्य या राज्यों के हाथों समान मानकों को कम नहीं किया जाता है और राज्य विधायिका की शक्ति का प्रयोग इस प्रकार किया जाना चाहिए कि प्रविष्टि 66 के तहत सीधे संघ की शक्ति का अतिक्रमण न हो। समन्वय करने की शक्ति** का मतलब केवल मूल्यांकन करने की शक्ति नहीं है, बल्कि इसका **मतलब ठोस कार्रवाई के लिए संबंधों में सामंजस्य स्थापित करना या सुरक्षित करना है। उच्च शिक्षा के मानकों के समन्वय के उद्देश्य से बनाया गया एक कानून अनिवार्य रूप से सातवीं अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 66 और** धारा 17 की उप-धारा (4) के तहत अपनी क्षमता का प्रयोग करते हुए केंद्रीय विधानमंडल द्वारा बनाया गया एक कानून है। यदि कोई संस्थान अधिनियम के उल्लंघन में शिक्षक शिक्षा में पाठ्यक्रम या प्रशिक्षण प्रदान करता है तो परिणाम, हालांकि धारा 17 की उपधारा (4) के तहत अंतिम परिणाम यह हो सकता है कि अयोग्य शिक्षक राज्य या केंद्र सरकार में या यूनिवर्सिटी में या

कॉलेज में रोजगार पाने का हकदार नहीं होगा। लेकिन किसी भी कल्पना से उक्त प्रावधान को रोजगार से संबंधित कानून के रूप में नहीं समझा जा सकता है जैसा कि उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में अभिनिर्धारित किया है।

हमारी सुविचारित राय में, उच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा 17 की उप-धारा (4) के प्रावधानों को पुरुषों के लिए यह समझने में घोर त्रुटि की है कि यह संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधान के अर्थ में राज्य सेवा में व्यक्तियों की भर्ती और सेवाओं की शर्तों से संबंधित एक कानून है। उच्च न्यायालय ने अधिनियम के वास्तविक प्रकृति की जांच करने की कोशिश किए बिना उप-धारा (4) के प्रावधानों की जांच करके उपरोक्त त्रुटि की, जिसे समग्र रूप से अधिनियम, उसके उद्देश्य और दायरे, प्रावधानों के प्रभाव की जांच करके किया जाना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने भी "सार और तत्व" के सिद्धांत को लागू नहीं किया है और इस प्रकार, राज्य सरकार के तहत एक कर्मचारी की सेवा की शर्तों से संबंधित प्रावधान के रूप में धारा 17 की उपधारा (4) के प्रावधानों की व्याख्या करने में त्रुटि हुई।

32. मुझे श्री ए.एन. त्रिपाठी की दलीलों में दम नजर आता है। राज्य सरकार ने केंद्र सरकार के निर्देशों पर कार्रवाई की और नियमों में संशोधन किया, जो कि उच्च शिक्षण योग्यता को कम करने और उन्हें अधिमान्य बनाने के लिए नियमों में संशोधन करने में सक्षम नहीं थी। राज्य सरकार ने अपने कानूनी दायित्वों और संवैधानिक योजना को सही ढंग से समझा। स्थिति को स्वीकार करने के बाद, राज्य सरकार ने संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन करते हुए, तीसरे संशोधन द्वारा नियमों में संशोधन करने में घोर अवैध और मनमाने ढंग से काम किया, न्यायालय इस तथ्य का न्यायिक संज्ञान लेता है कि उ०प्र० राज्य में शिक्षण मानकों में सभी शिक्षण संस्थान धीरे-धीरे गिरते जा रहे हैं। इन मानकों में सुधार करने के लिए, उच्च शिक्षण योग्यता प्रदान करने वाले राष्ट्रीय स्तर के शिक्षण संस्थान स्थापित किए गए हैं और केंद्र सरकार राज्य सरकार पर केवल ऐसे शिक्षकों को नियुक्त करने पर जोर दे रही है, जिनके पास उच्च और विशिष्ट शिक्षण योग्यता है। ऐसी उच्च शिक्षण योग्यता रखने वाले उम्मीदवारों को शिक्षण पदों पर नियुक्ति के लिए विचार किए जाने की वैध अपेक्षा है। यदि राज्य सरकार कम शिक्षण योग्यता वाले व्यक्तियों को पदों पर रहने की अनुमति देती है, तो उच्च शिक्षण योग्यता वाले उम्मीदवारों के अधिकारों का उल्लंघन होगा। यह घृणित भेदभाव को बढ़ावा देगा और कानून के समक्ष समानता के उनके संवैधानिक अधिकार का उल्लंघन करेगा।

33. उ०प्र० औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (अनुदेशक) (तीसरा संशोधन) सेवा नियमावली, 2003 द्वारा नियम 8 में संशोधन विधायी शक्तियों के वितरण की संवैधानिक योजना के साथ-साथ भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन माना जाता है। इसलिए दिनांक 13.12.2003 के विज्ञापन को चुनौती देने वाली रिट याचिकाएँ स्वीकार किए जाने योग्य हैं और परिणामस्वरूप दिनांक 13.12.2003 का विज्ञापन रद्द किया जाता है।

34. याचिका संख्या 6565(एसएस)/2001 कल्याण राय बनाम उ०प्र० राज्य एवं अन्य रिट में इस न्यायालय की लखनऊ पीठ द्वारा अपने फैसले और आदेश दिनांक 05.3.2003 में जारी निर्देश में संशोधन के अलावा, राज्य सरकार को इस निर्णय के प्रतिपादन की तारीख से चार महीने की अवधि के भीतर सभी रिक्तियों पर विज्ञापन देने, चयन करने और पूरा करने का निर्देश दिया गया है। अब चूंकि इन रिक्तियों और उन सभी रिक्तियों के लिए नए सिरे से विज्ञापन जारी करने के निर्देश जारी किए जाने हैं, जो बाद में उत्पन्न हो सकती हैं, उन उम्मीदवारों के अधिकार, जिन्होंने केंद्र सरकार द्वारा अनुशंसित और नियमों में प्रदान की गई 08.08.2003 को 1991 के नियमों में द्वितीय संशोधन के तहत ये उच्च/शिक्षण योग्यताएं प्राप्त की हैं, उनको नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। आगे निर्देशित किया गया है कि उन सभी अभ्यर्थियों पर भी चयन के लिए विचार किया जाएगा, जिन्होंने नए विज्ञापन की तिथि तक योग्यता प्राप्त कर ली है और वे सभी अभ्यर्थी, जो विज्ञापन के अनुसरण में आवेदन प्राप्त करने की अंतिम तिथि को आयु सीमा के भीतर थे, वे दिनांक 20.8.2003, नए विज्ञापन के अनुसरण में चयन के लिए आवेदन करने के लिए भी पात्र होंगे।

35. रिट याचिका संख्या 13724/2006 को छोड़कर सभी रिट याचिकाएं स्वीकार की जाती हैं। रिट याचिका संख्या 13724/2006 खारिज की जाती है। सफल याचिकाकर्ता राज्य से लागत के हकदार हैं।"

22. **उपेन्द्र नारायण सिंह** (**पूर्वोक्त**) के मामले में उपरोक्त निर्णय को **विशेष अपील संख्या 1078/2006 (पवन कुमार सागर एवं अन्य बनाम उ०प्र० राज्य एवं अन्य**) में चुनौती दी गई थी और **निर्णय दिनांक 12.10.2006** द्वारा खण्ड पीठ 7वीं अनुसूची की सूची-। की प्रविष्टि 66 और सूची-।।। की प्रविष्टि 25 पर गौर करने के बाद विद्वान एकल न्यायाधीश के उपरोक्त निर्णय को बरकरार रखा, जो निम्नानुसार है:

"सरकारी औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान में एक प्रशिक्षण अनुदेशक की अनिवार्य योग्यता वास्तव में क्या है, इसके बारे में कोई दो राय नहीं हो सकती है। इसका एक तकनीकी संस्थान के मानक से सब कुछ लेना-देना है; यही मुख्य और मार्गदर्शक कारक है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह भी एक योग्यताहै, जो सेवा प्राप्त करने के लिए आवश्यक है, लेकिन सेवा मुख्य कारक नहीं है। इसके अलावा यह प्रविष्टि 25 के बजाय प्रविष्टि 66 से अधिक संबंधित है जिसमें श्रम का व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण शामिल है। इस आशय के हमारे निष्कर्ष का कारण यह है कि प्रशिक्षण अनुदेशकों को केवल एक श्रम शक्ति के हिस्से के बजाय शिक्षा के मानक को बनाए रखने की ज़िम्मेदारी सौंपी गई लोगों के रूप में और भी अधिक देखा जाना चाहिए। यहां तक कि सूची III मामले में भी, शक्ति का केंद्रीय अभ्यास राष्ट्रपति की सहमति के रूप में अनुच्छेद 254 में निहित सिद्धांतों के समान प्रबल होगा।

इस आधार पर उ०प्र० सरकार को भारत के भीतर अकेले इस राज्य के लिए एक अलग मानक बनाने और ऐसे अनुदेशक, जिनके पास आवश्यक उन्नत प्रशिक्षण नहीं है, को रखने की अनुमति देना ठीक नहीं होगा। एक राज्य को अखिल भारतीय मामले में अपने लिए जेब काटने और अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप काम करने की अनुमति नहीं है, भले ही यह व्यावहारिक हो और कुछ शक्तिशाली वर्गों के लिए लाभकारी हो। माननीय सिंगे जज द्वारा विशेष रूप से आजकल गिरते मानकों में तकनीकी मानक बनाए रखने की आवश्यकता पर जोर दिया गया है और हम आदरपूर्वक अपनी भावनाओं को भी दोहराएंगे।

23. इसके बाद भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के परंतुक द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार द्वारा उ.प्र.सेवा नियमावली, 2014 अधिनियमित किया गया था।

24. उ.प्र. नियमावली, 2014 के नियम 3(ई), 3(एफ), 3(जी), 3(आई), 3(जे), 3(के), 3(एल), 3(एस), 3(टी), नियम 4, 7, 8, 9, 16, 17 एवं परिशिष्ट (केवल क्रम संख्या 12 तक आंशिक रूप से), नीचे पुन: प्रस्तुत किए गए हैं: -

"3(ई) 'शिल्प अनुदेशक प्रशिक्षण योजना (सीआईटीएस)' का अर्थ औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों के लिए प्रशिक्षित अनुदेशक तैयार करने के लिए राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद (एनसीवीटी) की प्रशिक्षण योजना है।

3(एफ) किसी ट्रेड के लिए **'सीआईटीएस प्रमाणपत्र'** का अर्थ सीटीटीएस के तहत **एक वर्ष के प्रशिक्षण के सफल समापन पर एनसीवीटी द्वारा प्रदान किया गया प्रमाणपत्र** या मॉड्यूलर पैटर्न के मामले में सभी निर्धारित मॉड्यूल के सफल समापन पर एनसीवीटी द्वारा प्रदान किया गया संयुक्त प्रमाणपत्र है।

3(जी) "सरकार" का तात्पर्य उत्तर प्रदेश राज्य सरकार से है,

3(आई) सेवा के सदस्य' का अर्थ है इन नियमों या इन नियमों के प्रारंभ होने से पहले लागू नियमों या आदेशों के तहत सेवा के कैडर में किसी पद पर नियुक्त व्यक्ति।

3(जे) राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद (एनसीवीटी) का अर्थ रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशक (डीजीईटी) द्वारा स्थापित परिषद है। पूरे भारत में व्यावसायिक प्रशिक्षण को विनियमित करने के लिए भारत सरकार:

3(के) किसी ट्रेड में नेशनल ट्रेड सर्टिफिकेट (एनटीसी) का मतलब उस ट्रेड में ऑल इंडिया ट्रेड टेस्ट सफलतापूर्वक पास करने पर एनसीवीटी द्वारा दिया जाने वाला सर्टिफिकेट है। उत्कृष्टता केंद्र योजना के तहत किसी भी क्षेत्र में प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले उम्मीदवार के लिए, सभी तीन मॉड्यूल, अर्थात् ब्रॉड बेस्ड बेसिक ट्रेनिंग, एडवांस्ड मॉड्यूल और स्पेशलाइज्ड मॉड्यूल के सफल समापन पर एनसीवीटी द्वारा दिए गए प्रमाण पत्र, इन नियमों के प्रयोजन के लिएएक साथ राष्ट्रीय ट्रेड प्रमाण पत्र का गठन करेंगे।

3(एल) किसी ट्रेड में नेशनल अप्रेंटिसशिप सर्टिफिकेट (एनएसी) का अर्थ है नेशनल अप्रेंटिसशिप टेस्ट में सफलतापूर्वक उत्तीर्ण होने पर एनसीवीटी द्वारा दिया जाने वाला सर्टिफिकेट।

3(एन) 'शिक्षण के सिद्धांत (पीओटी) प्रमाणपत्र' का अर्थ प्रासंगिक प्रशिक्षण के सफल समापन या सीआईटीएस के मॉड्यूलर पैटर्न के तहत प्रशिक्षण पद्धति पर मॉड्यूल के पूरा होने पर एनसीवीटी द्वारा प्रदान किया गया प्रमाणपत्र है।

3(एस) **'ट्रेड'** का अर्थ एक व्यवसाय या पेशा है जो शिल्पकार प्रशिक्षण योजना के तहत औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद या राज्य

व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद द्वारा अधिसूचित किया गया है:

3(टी) 'भर्ती का वर्ष' का अर्थ है एक कैलेंडर वर्ष के जुलाई के पहले दिन से शुरू होने वाली बारह महीने की अवधि।

भाग-III
संवर्ग

4. (1) विभिन्न ट्रेडों/विषयों के लिए अनुदेशकों के सभी पद जिनमें औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षण/निर्देश प्रदान किए जाते हैं, एक साथ सेवा संवर्ग का गठन करेंगे।

(2) सेवा में विभिन्न ट्रेडों/विषयों के लिए अनुदेशकों के पदों की संख्या ऐसी होगी जो सरकार द्वारा समय-समय पर निर्धारित की जा सकती है।

(3) सेवा में विभिन्न ट्रेड विषयों के लिए अनुदेशकों के पदों की संख्या, जब तक कि उप-नियम (2) के तहत अलग-अलग आदेश पारित नहीं हो जाते, परिशिष्ट के कॉलम 3 में दी गई होगी।
बशर्ते:-
(i) नियुक्ति प्राधिकारी किसी रिक्त पद को अधूरा छोड़ सकता है या राज्यपाल किसी रिक्त पद को स्थगित रख सकता है, जिससे कोई भी व्यक्ति मुआवजे का हकदार नहीं होगा;

(ii) राज्यपाल ऐसे अतिरिक्त स्थायी या अस्थायी पद सृजित कर सकते हैं जिन्हें वह उचित समझें।

भाग-IV
योग्यता

7. सेवा में किसी पद पर भर्ती के लिए उम्मीदवार को होना चाहिए

(ए) भारत का नागरिक; या

(बी) तिब्बती शरणार्थी जो 1 जनवरी 1962 से पहले भारत में स्थायी रूप से बसने के इरादे से भारत आया था; या
(सी) भारतीय मूल का व्यक्ति जो पाकिस्तान, बर्मा, श्रीलंका या केन्या, युगांडा और संयुक्त गणराज्य तंजानिया (पूर्व में तांगानिका और ज़ांज़ीबार) के किसी भी पूर्वी अफ्रीकन देश से भारत में स्थायी रूप से बसने के इरादे से आया हो:
बशर्ते कि उपरोक्त श्रेणी (बी) या (सी) से संबंधित उम्मीदवार वह व्यक्ति होना चाहिए जिसके पक्ष में राज्य सरकार द्वारा पात्रता का प्रमाण पत्र जारी किया गया हो;
बशर्ते कि श्रेणी (बी) से संबंधित उम्मीदवार को पुलिस उप महानिरीक्षक, खुफिया शाखा, उत्तर प्रदेश द्वारा दी गई पात्रता का प्रमाण पत्र प्राप्त करना भी आवश्यक होगा;

बशर्ते कि यदि कोई उम्मीदवार उपरोक्त श्रेणी (सी) से संबंधित है, तो एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए पात्रता का कोई प्रमाण पत्र जारी नहीं किया जाएगा और ऐसे उम्मीदवार को भारतीय नागरिकता प्राप्त करना एक वर्ष की अवधि से अधिक सेवा में बनाए रखना उसके अधीन होगा।।

नोट-एक उम्मीदवार जिसके मामले में पात्रता का प्रमाण पत्र आवश्यक है, लेकिन इसे न तो जारी किया गया है और न ही अस्वीकार किया गया है, उसे परीक्षा या साक्षात्कार में प्रवेश दिया जा सकता है और उसे अनंतिम रूप से नियुक्त भी किया जा सकता है, बशर्ते कि आवश्यक प्रमाण पत्र उसके द्वारा प्राप्त किया जाए या उसके पक्ष में जारी किया जाए।

8. सेवा में अनुदेशक के पद पर भर्ती के लिए उम्मीदवार की आयु 21 वर्ष होनी चाहिए और जिस कैलेंडर वर्ष में भर्ती के लिए रिक्तियां विज्ञापित हैं, उसके जुलाई के पहले दिन 40 वर्ष से अधिक की आयु नहीं होनी चाहिए:

बशर्ते कि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और ऐसी अन्य श्रेणियों से संबंधित उम्मीदवारों के मामले में ऊपरी आयु सीमा, जो सरकार द्वारा समय-समय पर अधिसूचित की जा सकती है, उतने वर्षों से अधिक होगी जितनी निर्दिष्ट की जा सकती है।

9. (ए) सेवा में अनुदेशक के पद पर भर्ती के लिए उम्मीदवार के पास निम्नलिखित योग्यताएं होनी चाहिए:

(1) हाई स्कूल और इंटरमीडिएट शिक्षा बोर्ड, उत्तर प्रदेश की हाई स्कूल परीक्षा या उसके समकक्ष सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त परीक्षा उत्तीर्ण होनी चाहिए;

(2) परिशिष्ट के कॉलम 4 में निर्धारित विभिन्न ट्रेडों/विषयों के लिए तकनीकी योग्यता होनी चाहिए।

(**बी**) परिशिष्ट के कॉलम 5 में विभिन्न ट्रेडों/विषयों के लिए निर्धारित प्रासंगिक ट्रेडों/विषयों में प्रशिक्षण/शिक्षण प्रदान करने के लिए अधिमान्य योग्यता होनी चाहिए।
बशर्ते कि जिन अभ्यर्थियों के पास अधिमान्यता नहीं है चयन के लिए परिशिष्ट के कॉलम 5 में विभिन्न ट्रेडों/विषयों के लिए निर्धारित योग्यता पर भी विचार किया जाएगा और यदि चयन किया जाता है, तो उन्हें नियम 17(3) के अनुसार निर्धारित अवधि में उक्त योग्यता प्राप्त करना आवश्यक होगा।

15. (1) इस नियम के उप-नियम (2) और (3) के प्रावधानों के अधीन, नियुक्ति प्राधिकारी भर्ती के वर्ष के दौरान भरी जाने वाली रिक्तियों की संख्या और रिक्तियों की संख्या भी निर्धारित करेगा क्योंकि नियम 6 के तहत अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य श्रेणियों के उम्मीदवारों के लिए आरक्षित किया जाना है। सीधी भर्ती करने के लिए नियुक्ति प्राधिकारी निम्नलिखित तरीके से रिक्तियों को अधिसूचित करेगा: -

(i) व्यापक प्रसार वाले कम से कम दो दैनिक समाचार पत्रों और रोजगार समाचार पत्र में विज्ञापन जारी करके,

(ii) निदेशालय एवं अधीनस्थ कार्यालयों के नोटिस बोर्ड पर नोटिस चिपकाकर

(iii) रोजगार कार्यालय के रिक्तियों को अधिसूचित करके, और

(iv) नियुक्ति प्राधिकारी के कार्यालय की वेबसाइट पर नोटिस प्रकाशित करके।

(2) किसी ट्रेड/विषय के लिए अनुदेशकों के पद दो शाखा के उम्मीदवारों से भरे जाएंगे, अर्थात् (i) नेशनल ट्रेड सर्टिफिकेट/नेशनल अप्रेंटिसशिप सर्टिफिकेट धारक, और (ii) परिशिष्ट के कॉलम 4 में निर्धारित अनुपात में डिप्लोमा/डिग्री धारक।

(3) **प्रत्येक ट्रेड/विषय के लिए अनुदेशक के पद की रिक्तियों की संख्या उन पदों के लिए अलग-अलग निर्धारित की जाएगी जिन्हें राष्ट्रीय ट्रेड प्रमाणपत्र/राष्ट्रीय शिक्षुता प्रमाणपत्र धारक उम्मीदवारों में से भरा जाना है और जिन्हें परिशिष्ट के कॉलम 4 में निर्धारित अनुपात में डिग्री/डिप्लोमा धारक अभ्यर्थी या उम्मीदवारों में से भरा जाना है।**

बशर्ते कि यदि किसी ट्रेड/विषय में किसी भी शाखा से अनुदेशकों की मौजूदा संख्या उस शाखा के लिए निर्धारित अनुपात से अधिक है, तो पदधारियों को प्रभावित किए बिना, भविष्य की भर्तियों में ऐसी अतिरिक्त संख्या को समायोजित करके उक्त अनुपात धीरे-धीरे हासिल किया जाएगा:

बशर्ते कि दोनों शाखाओं के लिए रिक्तियों का योग उस ट्रेड/विषय के लिए रिक्तियों की कुल संख्या से अधिक नहीं होगा।

16. (1) सीधी भर्ती एक चयन समिति द्वारा की जाएगी जिसमें शामिल हैं:-

(i) नियुक्ति प्राधिकारी

(ii) यदि अध्यक्ष अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का नहीं है, तो अध्यक्ष द्वारा नामित अनुसूचित जाति सदस्य या अनुसूचित जनजाति से संबंधित एक अधिकारी। यदि अध्यक्ष अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से है, तो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति या अन्य पिछड़ा वर्ग से संबंधित अधिकारी के अलावा किसी अन्य अधिकारी को अध्यक्ष द्वारा नामित किया जाएगा।

(iii) यदि अध्यक्ष अन्य पिछड़ा वर्ग का नहीं है तो अध्यक्ष द्वारा नामांकित अन्य पिछड़ा वर्ग का एक अधिकारी। यदि अध्यक्ष अन्य पिछड़ा वर्ग से है, तो अन्य पिछड़ा वर्ग या अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के अलावा किसी अन्य अधिकारी को अध्यक्ष द्वारा नामित किया जाएगा।

(iv) नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा विषय विशेषज्ञ के रूप में नामित दो अधिकारी

नोट - नियुक्ति प्राधिकारी, अपनी ओर से अन्य सदस्यों से वरिष्ठ किसी अधिकारी को चयन समिति के अध्यक्ष के रूप में नामित करें और वह केवल साक्षात्कार आयोजित करने के लिए एक से अधिक चयन समितियों का गठन कर सकता है।

(2) चयन हेतु विचार किये जाने हेतु आवेदन नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा नियम 15 के तहत जारी विज्ञापन में प्रकाशित प्रपत्र में आमंत्रित किये जायेंगे।

अनूदित

(3) सीधी भर्ती के लिए चयन करते समय पात्र उम्मीदवारों की मेरिट सूची निम्नलिखित तरीके से तैयार की जाएगी: -

(ए) पद के लिए निर्धारित शैक्षणिक योग्यता के लिए, प्रत्येक उम्मीदवार को निम्नलिखित तरीके से अंक दिए जाएंगे:

(i) हाई स्कूल परीक्षा में प्राप्त अंकों का **पचास प्रतिशत** प्रत्येक अभ्यर्थी को दिया जाएगा।

(ii) नेशनल ट्रेड सर्टिफिकेट टेस्ट/नेशनल अप्रेंटिसशिप सर्टिफिकेट टेस्ट में प्राप्त अंकों का **बीस प्रतिशत** प्रत्येक उम्मीदवार को दिया जाएगा।

अथवा

डिप्लोमा या डिग्री परीक्षा में प्राप्त अंकों का **बीस प्रतिशत** प्रत्येक उम्मीदवार को दिया जाएगा।

(iii) सीआईटीएस/पीओटी परीक्षण में प्राप्त अंकों का पंद्रह प्रतिशत प्रत्येक उम्मीदवार को दिया जाएगा।

(बी) (i) खंड (ए) के तहत मूल्यांकन के परिणाम प्राप्त होने और सारणीबद्ध होने के बाद, चयन समिति एक साक्षात्कार आयोजित करेगी। यदि प्राप्त आवेदन बड़ी संख्या में हों तो ऐसी स्थिति में साक्षात्कार के लिए बुलाए जाने वाले अभ्यर्थियों की संख्या रिक्तियों की संख्या से चार गुना होगी। इस प्रयोजन के लिए उम्मीदवारों की मेरिट सूची खंड (ए) के तहत उनके द्वारा प्राप्त अंकों के योग के आधार पर अलग से तैयार की जाएगी।

(ii) साक्षात्कार में सौ अंक होंगे। साक्षात्कार में प्राप्त अंकों का पंद्रह प्रतिशत प्रत्येक उम्मीदवार को दिया जाएगा

(4) उप-नियम (3) के खंड (ए) के तहत प्रत्येक उम्मीदवार द्वारा प्राप्त अंक उप-नियम (3) के खंड (बी) के तहत उसके द्वारा प्राप्त अंकों में जोड़े जाएंगे। अंतिम चयन सूची प्राप्त अंकों के योग के आधार पर तैयार की जाएगी। यदि दो या दो से अधिक अभ्यर्थी कुल मिलाकर समान अंक प्राप्त करते हैं, तो उप-नियम (3) के खंड (ए) के तहत उच्च अंक प्राप्त करने वाले अभ्यर्थी को चयन सूची में ऊपर रखा जाएगा। यदि दो या दो से अधिक अभ्यर्थी उप-नियम (3) के खंड (ए) के तहत भी समान अंक प्राप्त करते हैं, तो आयु में वरिष्ठ अभ्यर्थी को चयन सूची में उच्च स्थान पर रखा जाए।

(5) उपनियम (4) में निर्दिष्ट चयन सूची नियुक्ति प्राधिकारी को अग्रेषित की जायेगी।

भाग-VI

नियुक्ति, परिवीक्षा, पुष्टिकरण और वरिष्ठता

17. (1) इस नियम के उपनियम (3) के प्रावधानों के अधीन, नियुक्ति प्राधिकारी अभ्यर्थियों के नाम उसी क्रम में लेकर नियुक्ति करेगा जिस क्रम में वे नियम 16 के तहत तैयार की गई सूची में हैं।

(2) यदि किसी एक चयन के संबंध में एक से अधिक नियुक्ति आदेश जारी किए जाते हैं, तो एक संयुक्त आदेश भी जारी किया जाएगा, जिसमें चयन में निर्धारित वरिष्ठता के क्रम में व्यक्तियों के नामों का उल्लेख होगा।

(3) **नियुक्त व्यक्तियों को परिशिष्ट के कॉलम 5 में निर्दिष्ट सीआईटीएस/पीओटी और सीसीसी पाठ्यक्रम पूरा करना होगा और शामिल होने की तारीख से तीन साल के भीतर अपने खर्च पर अपेक्षित प्रमाणपत्र प्राप्त करना होगा** और इसके लिए उक्त अवधि हेतु उन्हें छुट्टी दी जाएगी। **यदि कोई व्यक्ति अपने नियंत्रण से परे कारणों से इसे पूरा करने में असमर्थ है, तो उसे उक्त पाठ्यक्रम को पूरा करने के लिए एक और वर्ष की अनुमति दी जाएगी।**

यदि कोई व्यक्ति सीआईटीएस/पीओटी और सीसीसी प्रमाणपत्र ऊपर उल्लिखित निर्धारित अवधि के भीतर प्राप्त करने में असमर्थ है, उसे उसकी पहली वेतन वृद्धि अनुमति नहीं दी जाएगी।

.

परिशिष्ट

[नियम 4 और 9 देखें]

विभिन्न ट्रेडों के लिए अनुदेशक के पद के लिए तकनीकी योग्यता/

विषय इस प्रकार होंगे:

क्रम सं0	**ट्रेड/विषय**	**कुल स्वीकृत पद**	**न्यूनतम तकनीकी की योग्यताएँ**	**प्रासंगिक ट्रेडों में प्रशिक्षण/शिक्षण प्रदान करने के लिए अधिमान्य योग्यता**
1	**2**	**3**	**4**	**5**
1	फिटर	287	(1) प्रत्येक	संबंधित ट्रेड में एक
2	वेल्डर (गैस व	194		

	इलेक्ट्रिक)		ट्रेड में 50% पद संबंधित ट्रेड में नेशनल ट्रेड सर्टिफिकेट (एनटीसी) या संबंधित ट्रेड में नेशनल अप्रेंटिसशिप सर्टिफिकेट (एनएसी) रखने वाले उम्मीदवारों में से भरे जाएंगे। (2) प्रत्येक ट्रेड	वर्षीय क्राफ्ट इंस्ट्रक्टर ट्रेनिंग स्कीम (सीआईटीएस) के तहत सर्टिफिकेट और एनआईईएलआईटी (पूर्व में डीओईएसीसी सोसाइटी ऑफ इंडिया) या अन्य समकक्ष मान्यता प्राप्त संस्थान से कोर्स ऑन कंप्यूटर कॉन्सेप्ट्स (सीसीसी) में प्रमाण पत्र।
3	शीट मेटल वर्कर	13		
4	टर्नर	216		
5	मशीनिस्ट	137		
6	मशीनिस्ट (ग्राइंडर)	19		
7	मैकेनिक मशीन टूल्स मेन्टेनेन्स	02		
8	फाउन्ड्रीमैन	13		
9	टूल & डाई मेकर (डाई & मोल्ड्स)	06		
10	टूल & डाई मेकर (डाई & मोल्ड्स)	07		
11	कारपेन्टर	10		

			में 50% पद तकनीकी शिक्षा बोर्ड, उत्तर प्रदेश से मैकेनिकल इंजीनियरिंग में डिप्लोमा या समकक्ष या मान्यता प्राप्त संस्थान/विश्वविद्यालय से मैकेनिकल इंजीनियरिंग में डिग्री वाले उम्मीदवारों में से	

अनुवादित

			भरे जाएंगे।	
12	प्लम्बर	38	(1) 50% पद संबंधित ट्रेड में नेशनल ट्रेड सर्टिफिकेट (एनटीसी) या संबंधित ट्रेड में नेशनल अप्रेंटिसशिप सर्टिफिकेट (एनएसी) रखने वाले उम्मीदवारों में से भरे जाएंगे। (2) 50% पद तक	शिल्प अनुदेशक प्रशिक्षण योजना (सीआईटीएस) के तहत प्रशिक्षण पद्धति/ शिक्षण मॉड्यूल (पीओटी) के सिद्धांतों का प्रमाण पत्र और एनआईईएलआईटी (पूर्व में डीओईएसीसी सोसाइटी ऑफ इंडिया) या अन्य समकक्ष से कोर्स ऑन कम्प्यूटर कॉन्सेप्ट्स (सीसीसी) में प्रमाण पत्र

			नीकी शिक्षा बोर्ड, उत्तर प्रदेश से सिविल/मैकेनिकल इंजीनियरिंग में डिप्लोमा या समकक्ष या किसी मान्यता प्राप्त संस्थान/विश्वविद्यालय से सिविल/मैकेनिकल इंजीनियरिंग में डिग्री वाले उम्मीदवारों में से	

			भरे जाएंगे।	

<u>संवैधानिक प्रावधान और विधायी क्षेत्र</u>:-

25. भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची-। की प्रविष्टि 66, संघ सूची और सूची-।।। की प्रविष्टि 25, समवर्ती सूची निम्नानुसार पढ़ी जाती है:

"65. संघ एजेंसियाँ और संस्थाएँ-
(ए) **पेशेवर, व्यावसायिक या तकनीकी प्रशिक्षण,** जिसमें पुलिस अधिकारियों का प्रशिक्षण भी शामिल है;या

66. उच्च शिक्षा या अनुसंधान तथा वैज्ञानिक एवं **तकनीकी संस्थानों के लिए संस्थानों में मानकों का समन्वय एवं निर्धारण।**

25. तकनीकी शिक्षा, चिकित्सा शिक्षा और विश्वविद्यालयों सहित शिक्षा, सूची । की प्रविष्टि 63, 64, 65 और 66 के प्रावधानों के अधीन; श्रम का व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण।"

26. उपर्युक्त प्रविष्टियों के अवलोकन से पता चलता है कि सूची-। की प्रविष्टियाँ 65 और 66 और सूची-।।। की प्रविष्टि 25 अलग-अलग क्षेत्रों में काम करती हैं। उच्च शिक्षा या अनुसंधान और वैज्ञानिक और तकनीकी संस्थानों के लिए तकनीकी संस्थानों में मानकों के समन्वय और निर्धारण के विषय पर कानून का क्षेत्र विशेष रूप से संसद को सौंपा गया है। तकनीकी शिक्षा में शिक्षकों की योग्यता शामिल है जो स्पष्ट रूप से संघ के विशेष क्षेत्र में सूची-। की प्रविष्टि 66 के अंतर्गत आती है। सूची-।।। की प्रविष्टि 25 सूची-। की प्रविष्टि 66 के प्रावधानों के अधीन है। इसलिए, जब तक केंद्र सरकार ने तकनीकी शिक्षा में मानकों के समन्वय और निर्धारण के संबंध में कोई निर्देश जारी नहीं किया है या कोई कानून नहीं बनाया है, तब तक राज्य सरकार औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में नियुक्ति के लिए योग्यता निर्धारित करने के लिए खुली रहेगी। तकनीकी संस्थान. चूंकि, तथ्यों के वर्तमान समूह में, तकनीकी शिक्षा में मानक, जिसमें औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में नियुक्ति के लिए योग्यता निर्धारित करना शामिल है, भारत संघ द्वारा दिनांक 24.07.1996, 15.12.2008 और 30.09.2010 के कार्यकारी आदेश जारी करके भारत के संविधान के अनुच्छेद 73 के आधार पर ग्रहण कर लिया गया है, इसलिये, इसमें निहित कार्यकारी शक्ति का प्रयोग करते हुए, राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों को उपरोक्त कार्यकारी आदेशों के अनुरूप होना चाहिए। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि जिन मामलों पर संसद के पास कानून बनाने की विशेष शक्ति है, उन पर अनुच्छेद 73 के तहत जारी किए गए कार्यकारी आदेश संसद द्वारा बनाए गए कानूनों के समान ही प्रभावी होते हैं।

27. भारत के संविधान के अनुच्छेद 73 में प्रावधान है कि संविधान के प्रावधानों के अधीन, भारत संघ की कार्यकारी शक्ति अन्य बातों के साथ-साथ उन मामलों तक विस्तारित होगी जिनके संबंध में संसद के पास कानून बनाने की शक्ति है। इस प्रकार, इसके विपरीत किसी भी चीज़ के अभाव में, संघ की कार्यकारी शक्ति संसद की विधायी शक्ति के साथ सह-विस्तृत है। चूंकि प्रविष्टि-66, सूची-1 के संदर्भ में प्रश्नगत विषय पर संसद द्वारा न तो कोई विपरीत कानून है और न ही प्रश्न में कार्यकारी निर्देश का विषय संविधान द्वारा अन्य अधिकारियों या निकायों को सौंपा गया है और न ही यह किसी जनता के सदस्य के कानूनी अधिकारों का अतिक्रमण करता है, इसलिए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 73 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए भारत सरकार द्वारा जारी कार्यकारी निर्देश दिनांक 15.12.2008, 30.09.2010 और 21.03.2013 को प्रभावी बनाया जाएगा।

28. **प्रीति श्रीवास्तव बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1999) 7 एससीसी 120** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय की एक संविधान पीठ ने उच्च शिक्षा को नियंत्रित या विनियमित करने के लिए सूची-।।। प्रविष्टि 25 के तहत राज्य की क्षमता पर विचार किया, जो भारत संघ द्वारा निर्धारित मानकों के अधीन है, और अभिनिर्धारित किया कि संघ और राज्यों दोनों के पास शिक्षा/चिकित्सा शिक्षा विषय पर कानून बनाने की शक्ति है, अन्य बातों के साथ-साथ, सूची-। की प्रविष्टि 66 जो उच्च शिक्षा या अनुसंधान और वैज्ञानिक और तकनीकी संस्थानों में मानकों को निर्धारित करने से संबंधित है। **इस प्रकार, राज्य को चिकित्सा शिक्षा सहित शिक्षा को नियंत्रित करने का अधिकार है, जब तक कि यह क्षेत्र किसी भी केंद्रीय कानून द्वारा कब्जा नहीं किया जाता है, लेकिन राज्य, राज्य में** उच्च शिक्षा या अनुसंधान और वैज्ञानिक और **तकनीकी संस्थानों, जो विशेष रूप से संसद के अधिकार क्षेत्र में हैं, को नियंत्रित करते हुए मानकों को लागू नहीं कर सकता है।** माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **अन्नामाली विश्वविद्यालय**

बनाम सरकारी सूचना और पर्यटन विभाग के सचिव, (2009) 4 एससीसी 590 और **कल्याणी मथिवनन बनाम केवी केयाराज और अन्य, (2015) 6 एससीसी 363 (पैरा 50 से 53)** और **तमिलनाडु राज्य और अन्य बनाम अधियामन शैक्षिक और अनुसंधान संस्थान और अन्य, (1995) 4 एससीसी 104 (पैरा-12)** के मामले में भी इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया था।

29. **आर चित्रलेखा और अन्य बनाम मैसूर राज्य और अन्य, (1964) 6 एससीआर 368: एआईआर 1964 एससी 1823 (पैरा-39)**, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की एक संविधान पीठ ने इसी तरह के सिद्धांतों को राज्यों की कार्यकारी शक्ति से संबंधित भारत के संविधान के अनुच्छेद 162 का संदर्भ में दोहराया तथा अभिनिर्धारित किया, जो निम्नानुसार है:

"फिर से, यहां हमारे पास जो है वह राज्य का कानून नहीं है, बल्कि केवल वह है जिसे कार्यकारी आदेश होने का दावा किया जाता है। यह सच है कि अनुच्छेद 162 कहता है कि राज्य की कार्यकारी शक्ति विधायिका की कानून बनाने की शक्ति के साथ सह-विस्तारित है और इस न्यायालय ने राय साहिब राम जवाया कपूर और अन्य बनाम पंजाब राज्य, (1995) 2 एससीआर 225 में अभिनिर्धारित है कि राज्य की शक्ति उन मामलों तक ही सीमित नहीं है जिन पर कानून पहले ही पारित हो चुका है। लेकिन न ही अनुच्छेद 162 न ही इस न्यायालय का निर्णय इस हद तक जाता है कि राज्य की शक्ति का प्रयोग सक्षम विधायिका द्वारा बनाए गए कानून के अपमान में किया जा सकता है। दूसरी ओर, ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायालय ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के दो विद्वान न्यायाधीशों द्वारा मोतीलाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सरकार, एआईआर 1951, इलाहाबाद 257 (एफबी) में लिए गए दृष्टिकोण को मंजूरी दे दी है **कि एक अधिनियम राज्य की कार्यकारी शक्ति के भीतर होगा यदि- यह ऐसा अधिनियम नहीं है जिसे संविधान द्वारा अन्य प्राधिकरण या निकाय को सौंपा गया है और किसी भी कानून के प्रावधानों के विपरीत नहीं है और जनता के किसी भी सदस्य के कानूनी अधिकारों का अतिक्रमण नहीं करता है।** यहां हमारे पास मैसूर विश्वविद्यालय अधिनियम है, जिसकी धारा 23 में प्रावधान है कि अकादमिक परिषद के पास विश्वविद्यालय में छात्रों के प्रवेश के लिए शर्तें निर्धारित करने की शक्ति होगी। अब चूंकि एक सक्षम विधायिका ने किसी विशेष निकाय को यह शक्ति प्रदान की है, इसलिए राज्य अपने कार्यकारी अधिनियम द्वारा उस शक्ति का अतिक्रमण नहीं कर सकता है। इस प्रकार यह एक ऐसा मामला है जहां न केवल राज्य की कार्रवाई के लिए विधायी मंजूरी का अभाव है बल्कि इस मामले के संबंध में इसकी कार्यकारी शक्ति पर एक निहित सीमा है।"

30. औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में नियुक्ति के लिए देश के सभी तकनीकी शिक्षण संस्थानों में समान मानक प्रदान करने का उद्देश्य एक समान मानक बनाए रखना है जिसे किसी विशेष राज्य या राज्यों द्वारा राष्ट्रीय प्रगति के लिए हानिकारक नहीं बनाया जा सकता है। सूची-I की प्रविष्टि-66 में प्रदान की गई समन्वय की शक्ति का अर्थ केवल मूल्यांकन करने की शक्ति नहीं है, बल्कि इसका अर्थ ठोस कार्रवाई के लिए संबंधों में सामंजस्य स्थापित करना या सुरक्षित करना भी है। इसलिए, वैज्ञानिक और तकनीकी संस्थानों में उच्च शिक्षा या अनुसंधान के लिए संस्थानों में मानकों के समन्वय और निर्धारण के उद्देश्य से बनाया गया एक कानून, अनिवार्य रूप से भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची के सूची-I, संघ सूची की प्रविष्टि 66 के तहत संघ के लिए आरक्षित क्षेत्र में एक कानून है। इसलिए, दिनांक 24.07.1996, 15.12.2008 और 30.09.2010 के कार्यकारी आदेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 73 के तहत प्रविष्टि 66 के संदर्भ में विषय पर भारत सरकार की कार्यकारी शक्तियों के अंतर्गत हैं।

<u>नियमों/कार्यकारी आदेशों के अंतर्गत आवश्यक एवं अधिमान्य योग्यता (सीआईटीएस):-</u>

31. दिनांक 24.07.1996 के कार्यकारी आदेश द्वारा प्रदान की गई व्यावसायिक अनुदेशकों की शैक्षणिक योग्यता को शामिल करते हुए 08.08.2003 को अधिसूचित द्वितीय संशोधन नियमों द्वारा संशोधित नियम, 1991, राज्य सरकार द्वारा शक्तियों के प्रयोग में अधिनियमित भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 का परंतुक सेवा नियम हैं। चूँकि, बाद में तीसरे संशोधन द्वारा उ०प्र० नियमावली, 1991 को 09.12.2003 को अधिसूचित किया गया, अनुदेशकों के पद के लिए सीआईटीएस की आवश्यक योग्यता को दिनांक 24.07.1996 के शासनादेश के विपरीत कम कर दिया गया था, इसलिए, इस न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने **उपेन्द्र नारायण सिंह** (पूर्वोक्त) के मामले में ने उ०प्र० नियमावली, 1991 में तीसरा संशोधन को अधिकारातीत के रूप में अभिनिर्धारित किया, जिसकी **पवन कुमार सागर** (पूर्वोक्त) के मामले में विशेष अपील में खण्ड पीठ द्वारा पुष्टि की गई थी। इस प्रकार, शासनादेश दिनांकित 15.12.2008 एवं 30.09.2010 जारी होने तक अनुदेशकों के पद के लिए

योग्यता शासनादेश दिनांकित 24.07.1996 द्वारा शासित की जाती थी।

32. 23 नवंबर, 2008 को माननीय श्रम और रोजगार राज्य मंत्री (आईसी) की अध्यक्षता में एनसीवीटी ने अपनी 37वीं बैठक में एजेंडा आइटम संख्या 3 और 4 के तहत शिल्पकार प्रशिक्षण योजना के तहत ट्रेडों के लिए अनुदेशक योग्यता के मानदंडों को हल और अनुमोदित किया। एनसीवीटी द्वारा अनुमोदित योग्यता, उपरोक्त कार्यकारी आदेश दिनांक 15.12.2008 के पैराग्राफ -2 में पुन: प्रस्तुत की गई है। एनसीवीटी की सिफारिश को भारत सरकार ने उपरोक्त कार्यकारी आदेश दिनांक 15.12.2008 के पैरा-3 के माध्यम से स्वीकार कर लिया था। इसके बाद, 31.05.2010 को माननीय श्रम और रोजगार राज्य मंत्री की अध्यक्षता में एनसीवीटी ने अपनी 38वीं बैठक में "आईटीआईएस उन्नत सीओई में कार्यान्वित किए जा रहे मल्टीस्किल्ड पाठ्यक्रमों के एडवांस मॉड्यूल" के अनुदेशक के लिए योग्यता की सिफारिश/अनुशंसा की, जिसे भारत सरकार के उपरोक्त कार्यकारी आदेश दिनांक 30.09.2010 में निकाले गए हैं, जिसे भारत सरकार द्वारा स्वीकार कर इसे लागू करने का निर्देश जारी किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में, डीओ पत्र संख्या 614/पीएसटीवी/2013 दिनांकित 15.02.2013 के माध्यम से, राज्य सरकार ने उपरोक्त कार्यकारी निर्देशों की समीक्षा के लिए अनुरोध किया था। **भारत सरकार ने उपरोक्त डी.ओ. पत्र दिनांक 21.03.2013 में सूचित किया** कि श्रम बाजार और उद्योग की मांगों पर उचित विचार के बाद आईटीआई अनुदेशकों के लिए योग्यता निर्धारित की गई थी। हालाँकि, इसमें प्रावधान था कि **जो अनुदेशक काम कर रहे थे, वे तीन साल के भीतर सीआईटीएस पूरा कर सकते हैं। यह निष्कर्ष निकाला गया कि उपरोक्त कार्यकारी आदेशों के अनुसार एनसीवीटी द्वारा अनुशंसित योग्यता की समीक्षा की कोई आवश्यकता नहीं है। परिणामस्वरूप, भारत सरकार ने राज्यों से राज्य नियमावली में संशोधन करने और तदनुसार रिक्तियों को भरने की अपेक्षा की है। तत्पश्चात्, राज्य सरकार ने आक्षेपित उ.प्र. सेवा नियमावली, 2014 भारत सरकार के उपरोक्त दो कार्यकारी आदेशों दिनांक 15.12.2008, 30.09.2010 और पत्र दिनांक 21.03.2013 द्वारा निर्धारित अनुदेशकों की शैक्षणिक योग्यता को शामिल करते हुए अधिनियमित किया है। इस प्रकार, आक्षेपित प्रावधान उ.प्र. सेवा नियम, 2014 भारत सरकार द्वारा दिनांक 15.12.2008 और 30.09.2010 को जारी किए गए कार्यकारी आदेशों के विरोध में नहीं हैं, जो पत्र दिनांक 21.03.2013 के साथ पढ़े गए हैं, जो वास्तव में दिनांक 24.07.1996 के कार्यकारी आदेश का स्थान ले चुके हैं।** इस प्रकार, **उपेन्द्र नारायण सिंह** (पूर्वोक्त) के मामले में माननीय एकल न्यायाधीश के फैसले, जैसा कि **पवन कुमार सागर और अन्य** (पूर्वोक्त) के मामले में खण्ड पीठ द्वारा पुष्टि की गई है कि बदली हुई परिस्थितियों में याचिकाकर्ताओं के लिए कोई मदद नहीं है।

33. उ0प्र0 सेवा नियमाववी, 2014 का **नियम 3(जे**), स्वयं "**राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद** (**एनसीवीटी**)" शब्द को परिभाषित करता है, जिसका अर्थ **पूरे भारत में व्यावसायिक प्रशिक्षण को विनियमित करने के लिए** भारत सरकार के रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशक (डीजीई एंड टी) द्वारा स्थापित परिषद है। किसी ट्रेड के लिए '**सीआईटीएस प्रमाणपत्र**' शब्द को **नियम 3(एफ**) में परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ है सीटीटीएस के तहत एक वर्ष का प्रशिक्षण सफलतापूर्वक पूरा करने पर एनसीवीटी द्वारा जारी/प्रदत्त प्रमाणपत्र या मॉड्यूलर पैटर्न के मामले में एनसीवीटी द्वारा सभी निर्धारित मॉड्यूल को सफलतापूर्वक पूरा करने पर प्रदान किया गया संयुक्त प्रमाणपत्र। "**ट्रेड**" शब्द को उ०प्र० सेवा नियमावली, 2014 के नियम **2(एस**) में परिभाषित किया गया है। **शब्द ''शिल्प अनुदेशक प्रशिक्षण योजना** (**सीआईटीएस**)'' **को नियम 3(ई) के तहत परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों के लिए प्रशिक्षित अनुदेशकों को तैयार करने के लिए राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद** (एनसीवीटी) **की प्रशिक्षण योजना है। इस प्रकार, सीआईटीएस प्रमाणपत्र औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों के लिए प्रशिक्षित अनुदेशकों को तैयार करने के लिए एनसीवीटी द्वारा दिए गए प्रशिक्षण का एक प्रमाण पत्र है, सीआईटीएस के तहत एक वर्ष का प्रशिक्षण पूरा करने पर या मॉड्यूलर पैटर्न के मामले में, सभी निर्धारित मॉड्यूल के सफल समापन पर एनसीवीटी द्वारा प्रदान किया गया संयुक्त प्रमाणपत्र है। एनसीवीटी को पूरे भारत में व्यावसायिक प्रशिक्षण को विनियमित करने के लिए भारत सरकार द्वारा बनाया गया है।**

34. नियम 9(ए) अनुदेशकों के पद पर भर्ती के लिए उम्मीदवारों की आवश्यक योग्यताओं का प्रावधान करता है। नियम 9(बी) के अनुसार, एक उम्मीदवार के पास परिशिष्ट के कॉलम-5 में विभिन्न ट्रेडों/विषयों के लिए निर्धारित प्रासंगिक ट्रेडों/विषयों में प्रशिक्षण/शिक्षण प्रदान करने के लिए अधिमान्य योग्यता होनी चाहिए। उ०प्र० नियमावली, 2014 के परिशिष्ट के कॉलम-5 का नियम 9 संबंधित ट्रेड में सीआईटीएस के एक वर्ष के प्रमाणपत्र की अधिमान्य योग्यता और क्रमांक पर ट्रेडों के लिए क्रमांक 1

से 11 पर एनआईईएलआईटी से सीसीसी प्रमाणपत्र प्रदान करता है। भारत सरकार का उपरोक्त कार्यकारी आदेश दिनांकित 15.12.2008 परिषद द्वारा अनुमोदित सीटीएस के तहत ट्रेडों के लिए आईटीआईएस/आईटीसीएस में व्यावसायिक अनुदेशकों की नियुक्ति के लिए वांछनीय योग्यता के रूप में पीओटी प्रमाणपत्र प्रदान करता है। दिनांक 30.09.2010 के कार्यकारी आदेश में सीओई के रूप में अपग्रेड किए गए आईटीआईएस में लागू मल्टीस्किल्ड पाठ्यक्रमों के एडवांस मॉड्यूल के लिए अनुदेशक के पद के लिए उम्मीदवारों की योग्यता निर्धारित की गई है, जिसमें वांछनीय योग्यता के रूप में "क्राफ्ट इंस्ट्रक्टर प्रोग्राम के एनसीवीटी अनुमोदित प्रशिक्षण पद्धति मॉड्यूल को पास करना" शामिल है। उत्तर प्रदेश सेवा नियमावली, 2014 के नियम 3(एन) में "पीओटी" शब्द को परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ प्रासंगिक प्रशिक्षण के सफल समापन पर या सीआईटीएस के मॉड्यूलर पैटर्न के तहत प्रशिक्षण पद्धति पर मॉड्यूल के पूरा होने पर एनसीवीटी द्वारा प्रदान किया गया प्रमाण पत्र है। इस प्रकार, उपरोक्त कार्यकारी आदेश दिनांक 15.12.2008 और 30.09.2010 के अनुसार सीआईटीएस प्रमाणपत्र को एक वांछनीय योग्यता बना दिया गया है, जिसे उ०प्र० सेवा नियमावली, 2014 के नियम 9 (बी) और नियम 15 (3) में शामिल किया गया है।

35. उ.प्र. सेवा नियमावली, 2014 के नियम 9 (बी) के परन्तुक में प्रावधान है कि जो अभ्यर्थी परिशिष्ट के कॉलम-5 में विभिन्न ट्रेडों/विषयों के लिए निर्धारित अधिमान्य योग्यता नहीं रखते हैं, उनके चयन पर भी विचार किया जाएगा और यदि चयनित होते हैं, तो उन्हें नियम 17(3) के अनुसार निर्धारित अवधि में उक्त योग्यता प्राप्त करनी होगी। जैसा कि भारत सरकार के पत्र दिनांकित 21.03.2013 द्वारा दोहराया गया है, नियम 9(बी) और नियम 17(3) का प्रावधान वास्तव में भारत सरकार के कार्यकारी आदेश दिनांक 30.09.2010 और कार्यकारी आदेश दिनांक 15.12.2008 के अंतिम पैराग्राफ का समावेश है, जो निम्नानुसार है:

"**........इस सम्बन्ध में सूचित करना है कि** राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद् की बैठकों में सम्यक् विचारोंपरांत तथा श्रम बाजार एवं उद्योग की मांगो को ध्यान में रखते हुए **आई.टी.आई. अनुदेशकों के पद हेतु डिप्लोमा/डिग्रीधारक की अर्हता निर्धारित की गयी है।** उसमें यह भी प्रावधान किया गया है कि आई.टी.आई. अनुदेशकों के पद पर भर्ती डिप्लोमा/डिग्रीधारकों को कार्यभार ग्रहण करने की दिनांक से **तीन वर्ष की अवधि के भीतर** डीजीईटी के एडवांस्ड प्रशिक्षण संस्थाओं से **शिल्प अनुदेशक प्रशिक्षण योजना** (सी.आई.टी.एस.) **के अंतर्गत प्रशिक्षित किया जा सकता है** जिससे उन्हे व्यवहारिक कौशल में भी निपुणता प्राप्त हो सके। **इसलिये इसके पुनर्विचार की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।**

2. अतः मैं अनुग्रहीत हूंगा यदि **कृपया उपरोक्तानुसार सेवा नियमावली में तत्काल संशोधन कर अनुदेशकों के रिक्त पदों को भरने का कष्ट करें** और की गयी कार्यावाही से इस कार्यालय को भी अवगत करा दें।"

36. यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि उपरोक्त कार्यकारी आदेश दिनांक 15.12.2008 द्वारा निर्धारित सीटीएस के तहत ट्रेडों के लिए आईटीआईएस/आईटीसीएस में व्यावसायिक अनुदेशक की नियुक्ति के लिए तकनीकी योग्यता इंजीनियरिंग में डिग्री/संबंधित ट्रेड की उपयुक्त शाखा में तीन साल का डिप्लोमा है या राष्ट्रीय शिक्षुता प्रमाणपत्र या प्रासंगिक ट्रेड में राष्ट्रीय ट्रेड प्रमाणपत्र। उत्तर प्रदेश सेवा नियमावली, 2014के नियम 3(एल) में "राष्ट्रीय शिक्षुता प्रमाणपत्र (एनएसी)" शब्दों को परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ राष्ट्रीय शिक्षुता परीक्षा सफलतापूर्वक उत्तीर्ण करने पर एनसीवीटी द्वारा प्रदान किया जाने वाला प्रमाणपत्र है।

नियम 3(के) में "राष्ट्रीय ट्रेड प्रमाणपत्र (एनटीसी)" शब्द को परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ है कि उस ट्रेड में अखिल भारतीय ट्रेड परीक्षा सफलतापूर्वक उत्तीर्ण करने पर एनसीवीटी द्वारा दिया जाने वाला प्रमाण पत्र और एक उम्मीदवार जिसने इसके उत्कृष्टता केंद्र योजना के तहत किसी भी क्षेत्र में प्रशिक्षण प्राप्त किया हो, सभी तीन मॉड्यूल, अर्थात् ब्रॉड बेस्ड बेसिक ट्रेनिंग, एडवांस्ड मॉड्यूल और स्पेशलाइज्ड मॉड्यूल के सफल समापन पर एनसीवीटी द्वारा दिए गए प्रमाणपत्र, एक साथ राष्ट्रीय ट्रेड प्रमाणपत्र का गठन करेंगे। कार्यकारी आदेश दिनांक 15.12.2008 का तीसरा कॉलम डिग्री धारक के लिए एक वर्ष, डिप्लोमा धारकों के लिए दो वर्ष और एनएसी/एनटीसी के लिए तीन वर्ष के ट्रेड में अनुभव निर्धारित करता है। इन आवश्यक योग्यता एवं अनुभव के अतिरिक्त एक वांछनीय योग्यता "पीओटी" निर्धारित की गई है। **उत्तर प्रदेश सेवा नियमावली, 2014 के नियम 17(3) के साथ पठित नियम 9(बी) के परंतुक का अवलोकन आगे यह स्पष्ट करता है कि वांछनीय योग्यता केवल वांछनीय नहीं है और यदि यह चयनित उम्मीदवार के पास नहीं है तो उसे तीन साल के भीतर और उसके नियंत्रण से परे परिस्थितियों में अपने स्वयं के खर्च पर एक वर्ष की अवधि के भीतर इसे हासिल करना होगा, ऐसा करने में विफल होने पर उसे अपनी पहली वेतन वृद्धि की अनुमति नहीं दी जाएगी। इस प्रकार, विवादित नियम ऐसे चयनित उम्मीदवार को, जिसके पास सीआईटीएस**

प्रमाणपत्र नहीं है, एक निश्चित समय सीमा के भीतर अनिवार्य रूप से सीआईटीएस पूरा करने के लिए एक निश्चित अवधि का प्रावधान है, जो वास्तव में विवादित नियमों में भारत सरकार के उपरोक्त कार्यकारी आदेशों का समावेश है।

37. इस प्रकार, वर्तमान रिट याचिकाओं में लागू नियम वास्तव में यूपी सेवा नियमावली, 2014 में दिनांक 15.12.2008 और 30.09.2010 के पत्र दिनांक 21.03.2013 के साथ पढ़े गए उपरोक्त कार्यकारी आदेशों का समावेश हैं। इसलिए, लागू नियम, कार्यक्षेत्र पर कब्जा करने वाले दिनांक 15.12.2008 और 30.09.2010 के कार्यकारी आदेशों के विरोध में नहीं हैं; भारत के संविधान के किसी भी प्रावधान के अधिकार क्षेत्र से बाहर नहीं हैं। चूँकि आक्षेपित विज्ञापन उ.प्र. सेवा नियमावली, 2014 और भारत सरकार के कार्यकारी आदेश दिनांक 15.12.2008 और 30.09.2010 के अनुरूप है, इसलिए, विवादित विज्ञापन पूरी तरह से वैध है।

38. हमें यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक लगता है कि उ०प्र० सेवा नियमावली, 2014 के अधिसूचना दिनांक 30.01.2014 के बाद भारत सरकार ने कार्यकारी आदेश दिनांक 27.05.2014 के माध्यम से एनसीवीटी की 41वीं बैठक की सिफारिश को स्वीकार कर लिया है, जिसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"डीजीएसएटी-18 703 2014-सीडी
भारत सरकार
श्रम एवं रोजगार मंत्रालय
रोजगार एवं प्रशिक्षण निदेशालय

श्रम शक्ति भवन
नई दिल्ली, दिनांक 27 मई, 2014

सेवा में,
1.व्यावसायिक प्रशिक्षण से संबंधित सभी राज्य सरकारों/संघ राज्य क्षेत्र प्रशासनों के सचिव/प्रधान सचिव
2. सभी राज्यों/केंद्रशासित प्रदेशों के प्रशासनों के व्यावसायिक प्रशिक्षण से संबंधित निदेशक

विषय: शिल्पकार प्रशिक्षण योजना के तहत व्यवसायों के लिए व्यावसायिक अनुदेशक योग्यता के मानदंड।

महोदय,

माननीय श्रम एवं रोजगार मंत्री की अध्यक्षता में राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद (एनसीवीटी) की 41वीं बैठक 30 अप्रैल, 2014 को आयोजित की गई थी, शिल्पकार प्रशिक्षण योजना के तहत ट्रेडों के लिए अनुदेशक योग्यता के मानदंडों पर बैठक में एजेंडा आइटम क्रमांक 41031 के माध्यम से चर्चा की गई थी।

2. शिल्पकार प्रशिक्षण योजना (सीटीएस) सहित विभिन्न डीजीईएंडटी योजनाओं के सभी पहलुओं की जांच करने और उनमें सुधार का सुझाव देने के लिए श्रम एवं रोजगार मंत्रालय द्वारा एक कार्य समूह का गठन किया गया था। कार्यशील ग्रुप ने सिफारिश की कि **किसी ट्रेड में प्रत्येक इकाई के लिए**, नियुक्त अनुदेशकों में से एक को राष्ट्रीय क्राफ्ट इंस्ट्रक्टर सर्टिफिकेट (सीआईटीएस) के साथ आईटीआई उत्तीर्ण पेशेवर योग्यता के साथ होना चाहिए (उन ट्रेडों के लिए जहां क्राफ्ट इंस्ट्रक्टर प्रशिक्षण योजना उपलब्ध थी) और एक के पास डिग्री/डिप्लोमा धारक के रूप में व्यावसायिक योग्यता होना चाहिए, **जिन्हें निर्धारित समय में सीआईटीएस में प्रशिक्षित किया जाएगा।** कार्य समूह की सिफारिशों को नई दिल्ली में आयोजित एनसीवीटी की 41वीं बैठक में अनुमोदन के लिए रखा गया।

3. काउंसिल ने मंजूरी दी कि किसी ट्रेड में प्रत्येक इकाई के लिए, नियुक्त अनुदेशकों में से एक को **राष्ट्रीय क्राफ्ट इंस्ट्रक्टर सर्टिफिकेट के साथ** आईटीआई पास-आउट पेशेवर योग्यता के साथ होना चाहिए (**उन ट्रेडों के लिए जहां क्राफ्ट इंस्ट्रक्टर प्रशिक्षण पाठ्यक्रम उपलब्ध थे**) और एक को पेशेवर योग्यता डिग्री/डिप्लोमा धारक के रूप में होना चाहिए, जिन्हें निम्नलिखित शैक्षणिक और तकनीकी योग्यता के अनुसार निर्धारित समय में सीआईटीएस में प्रशिक्षित किया जाएगा।

योग्यता		**तकनीकी योग्यता के बाद संबंधित ट्रेड क्षेत्र में अनुभव**
अकादमिक	**तकनीकी**	
10वीं कक्षा उत्तीर्ण या समकक्ष	* इंजीनियरिंग में चार साल की डिग्री/ इंजीनियरिंग	डिग्री के लिए एक वर्ष और डिप्लोमा के लिए दो वर्ष। एनएसी/एनटीसी के लिए तीन वर्ष।

	की उपयुक्त शाखा में तीन साल का डिप्लोमा अथवा ट्रेड में नेशनल अप्रेंटिसशिप सर्टिफिकेट, ट्रेड में नेशनल ट्रेड सर्टिफिकेट और नेशनल क्राफ्ट इंस्ट्रक्टर सर्टिफिकेट (उन ट्रेडों के लिए जहां क्राफ्ट इंस्ट्रक्टर ट्रेनिंग कोर्स के तहत कोर्ट उपलब्ध हैं)	

***यदि वे नियुक्ति के तीन साल के भीतर पहले सेमेस्टर की सीधी परीक्षा पास कर लेते हैं, तो डिग्री/डिप्लोमा धारकों को सीआईटीएस प्रशिक्षण के केवल दूसरे सेमेस्टर से गुजरना होगा, जैसा कि कार्यालय आदेश संख्या डीजीई एंड टी- 19/07/(2)/2014-सीडी दिनांक 26 मई, 2014 में उल्लिखित है।**

****जैसा कि संबंधित ट्रेडों के पाठ्यक्रम में निर्दिष्ट है।**

4. **परिषद ने यह भी सिफारिश की कि प्रत्येक अनुदेशक जो पहले ही आईटीआईएस में शामिल हो चुका है, उसे शामिल होने के तीन साल के भीतर सीआईटीएस पाठ्यक्रम पूरा करना होगा। संबद्धता एवं पदोन्नति के लिए इसे अनिवार्य शर्त बनाया जाएगा।**

5. परिषद ने आगे सिफारिश की कि अनुदेशकों के पद पर संविदा नियुक्ति एक वर्ष की अवधि के लिए होनी चाहिए, और यह भी कि इस एक वर्ष की अवधि के भीतर, अनुदेशक के इस क्षेत्र में करियर के आधार पर गुणवत्तापूर्ण प्रशिक्षण के लिए प्रतिबद्धता सुनिश्चित करने के उद्देश्य से नियमित भर्ती के माध्यम से रिक्तियों को भरा जाना चाहिए।

6. **भारत सरकार ने तत्काल प्रभाव से कार्यान्वयन हेतु परिषद की उपरोक्त अनुशंसा को स्वीकार कर लिया है। अब से, उपरोक्त पैरा 3 में दिए गए मानदंडों के अनुसार एक ट्रेड की दो इकाइयों के लिए अनुदेशकों को सरकारी और निजी आईटीआईएस में नियुक्त किया जाएगा। सरकारी और निजी आईटीआईएस में नए अनुदेशकों की नियुक्ति करते समय उपरोक्त शैक्षणिक और तकनीकी योग्यता का पालन किया जाएगा और इन संस्थानों की संबद्धता प्रदान करने के लिए इसकी सख्ती से निगरानी की जाएगी। उपरोक्त पैरा 4 एवं 5 में दिए गए मानदंडों का भी सभी संबंधितों द्वारा सख्ती से पालन किया जाएगा।**

6. यह उपरोक्त विषय पर पिछले आदेशों का स्थान लेता है।

भवदीय
(आर.एल. सिंह)

उप प्रशिक्षण महानिदेशक
सदस्य सचिव एनसीवीटी

प्रतिलिपि प्रेषितः-

1. निदेशक, एटीआई-चेन्नई/हैदराबाद/मुंबई/कोलकाता/कानपुरी लुधियाना, एटीआई(ईपीआई) हैदराबाद और देहरादून, एफटीआई बेंगलुरु और जमशेदपुर, एनआईएमआई चेन्नई, निदेशक आरडीएटी कानपुर मुंबई/कोलकाता/चेन्नई/फरीदाबाद और हैदराबाद, निदेशक-सीएसटीएआरआई, कोलकाता।
2. प्रिंसिपल सीटीआई चेन्नई, प्रिंसिपल एमआईटीआई, हलद्वानी/कालीकट/जोधपुर/चौद्वार, प्रिंसिपल-एनवीटीआई, नोएडा और सभी आरवीटीआईएस के प्रिंसिपल.
3. डीजीईएंडटी (मुख्यालय) के सभी निदेशक
4. कृपया सूचनार्थ सचिव (एल एंड ई) के पीपीएस, डीजी/जेएस के पीएस।

(एसएनएस राही)
उप. प्रशिक्षण निदेशक"

39. उपरोक्त कार्यकारी आदेश दिनांक 27.05.2014 के अवलोकन से पता चलता है कि **न तो विवादित नियम और न ही विवादित विज्ञापन इसके विरोध में है। कार्यभार ग्रहण करने वाले नियुक्त उम्मीदवारों को तीन साल के भीतर सीआईटीएस कोर्स पूरा करना होगा।**

40. एक अन्य बाद के कार्यकारी आदेश दिनांक 07.01.2016 द्वारा, भारत सरकार ने "संबंधित राज्यों द्वारा आईटीआईएस के लिए अनुदेशकों की भर्ती के लिए दिशानिर्देश और सभी अनुदेशकों के लिए सीआईटीएस अनिवार्य करने के लिए रोड मैप" जारी किया है: -

"एमएसडीई 19/03(8)/2015-सीडी
भारत सरकार
प्रशिक्षण महानिदेशालय
कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्रालय (एमएसडीई)

श्रम शक्ति भवन, रफी मार्ग
नई दिल्ली, दिनांक 7 जनवरी 2016

सेवा में,
1. शिल्पकारों/व्यावसायिक प्रशिक्षण से संबंधित सभी राज्य सरकारों/संघ राज्य क्षेत्र प्रशासनों के सचिव/प्रधान सचिव

2. सभी राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों के शिल्पकार/व्यावसायिक प्रशिक्षण से संबंधित निदेशक।

विषय:- "**आईटीआई में अनुदेशक की भर्ती**" **और** "**सभी आईटीआई अनुदेशकों के लिए शिल्प अनुदेशक प्रशिक्षण योजना** (**सीआईटीएस**) **को अनिवार्य करना**" **के लिए मानदंड।**

सर/मैडम
"आईटीआई अनुदेशकों की देखभाल की प्रगति और सीटीएस कार्यक्रम में बदलाव" पर 04 राज्यों के सचिवों को शामिल करते हुए एक कार्य समूह का गठन किया गया था। आईटीआई अनुदेशकों की कैरियर प्रगति और सीटीएस कार्यक्रम में बदलाव पर चर्चा के लिए वर्किंग की तीन बैठकें आयोजित की गईं।

अनुदेशकों की भर्ती पर कार्यशील समूह की सिफारिशों और आईटीआईएस के सभी अनुदेशकों के लिए सीआईटीएस को अनिवार्य करने पर 17.12 2015 को नई दिल्ली में आयोजित मानदंडों और पाठ्यक्रमों से संबंधित एनसीवीटी की उप समिति की बैठक में एजेंडा आइटम नंबर 9 पर चर्चा की गई थी। विस्तृत चर्चा के बाद, **उप-समिति ने संबंधित राज्य सरकारों द्वारा आईटीआई के लिए अनुदेशकों की भर्ती के लिए निम्नलिखित दिशानिर्देशों और** "**सभी अनुदेशकों के लिए सीआईटीएस अनिवार्य करने**" के रोडमैप को मंजूरी दी:

प्रथम. **आईटीआईएस के लिए अनुदेशकों की भर्ती के लिए दिशानिर्देश**:

i. प्रासंगिक तकनीकी योग्यता यानी डिग्री/डिप्लोमा या सीटीएस में अंकों के लिए 60% वेटेज तय किया गया है

ii.सीआईटीएस योग्यता में अंकों के लिए 30% वेटेज तय किया गया है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि सीआईटीएस उत्तीर्ण उम्मीदवार अनुदेशकों के रूप में नियुक्त हों।

Iii. साक्षात्कार के लिए अधिकतम 10% वेटेज

iv. अनुभव मानदंड के लिए प्रारंभिक शर्त एनसीवीटी मानदंडों के अनुसार लागू है

v. उपरोक्त मानदंड संविदात्मक रोजगार के लिए भी लागू होंगे

द्वितीय. "**सभी अनुदेशकों के लिए सीआईटीएस अनिवार्य करना**" **का रोडमैप**

i. सभी आईटीआईएस के लिए संबद्धता/पुनःसंबद्धता के लिए:

2018 तक - सीआईटीएस के साथ कम से कम 40% अनुदेशकों की उपलब्धता
2020 तक - सीआईटीएस के साथ कम से कम 60% अनुदेशकों की उपलब्धता
2022 तक-सीआईटीएस के साथ कम से कम 80% अनुदेशकों की उपलब्धता।
ii.सरकार में सीआईटीएस के बिना अनुदेशकों के लिए कोई पदोन्नति नहीं। आईटीटी.
Iii. निजी आईटीआईएस में कार्यरत अनुदेशकों के प्रशिक्षण हेतु प्रशिक्षण व्यय के आंशिक वित्त पोषण हेतु अलग योजना।

सभी राज्य सरकारों/केंद्रशासित प्रदेश प्रशासनों से अनुरोध है कि वे क्रमांक में दिए गए उपरोक्त दिशानिर्देशों का पालन करें। उपरोक्त क्रमांक I और II, तत्काल प्रभाव से।

भवदीय
(डी.मल्लिक)
उप महानिदेशक प्रशिक्षण"

41. इस प्रकार, भारत सरकार के उपरोक्त बाद के कार्यकारी आदेश दिनांक 07.01.2016 के अवलोकन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सरकारी आईटीआई में नियुक्त अनुदेशक जिन्होंने सीआईटीएस पूरा नहीं किया है, उन्हें पदोन्नति नहीं दी जाएगी। इसलिए, यदि नियुक्त उम्मीदवारों में से कोई भी सीआईटीएस पूरा नहीं करता है तो वह सरकारी आईटीआईएस में पदोन्नति के लिए अयोग्य होगा। अत: इन कार्यकारी आदेशों के परिप्रेक्ष्य में भी चयनित अभ्यर्थियों की नियुक्ति रद्द नहीं की जा सकती।

42. हमने यह भी पाया है कि अब प्रश्नगत नियम, अर्थात् यू.पी. सेवा नियमावली, 2014 को उत्तर प्रदेश राजकीय औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (अनुदेशक एवं फोरमैन सेवा) नियमावली, 2021 द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है।

<u>आक्षेपित विज्ञापन और भर्ती में हस्तक्षेप करने का कोई वैध कारण नहीं</u>:-

43. हमने यह भी पाया कि आक्षेपित विज्ञापन द्वारा, अनुदेशकों के पद के लिए 2498 रिक्तियों को भर्ती के लिए विज्ञापित किया गया था और याचिकाकर्ताओं ने भर्ती के लिए आवेदन किया था। विद्वान अपर महाधिवक्ता के अनुसार 2498 रिक्तियों के सापेक्ष लगभग 2300 अभ्यर्थियों का चयन किया जा सकता था। याचिकाकर्ताओं ने प्रत्युत्तर हलफनामा दायर न करने का चुनाव करते हुए, चयनित उम्मीदवारों, यानी प्रतिवादी संख्या 4 से 7 और प्रतिवादी संख्या 8 से 13 द्वारा दायर जवाबी हलफनामे की सामग्री को स्वीकार किया है। इस प्रकार याचिकाकर्ताओं ने स्वीकार किया है कि ऐसा हुआ है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का कोई उल्लंघन नहीं है, भर्ती में आरक्षण कानूनों का पालन किया गया है और सीधी भर्ती के लिए चयन करने में योग्य उम्मीदवारों की योग्यता सूची तैयार करने की विधि के संबंध में नियम 16 में कोई कमी नहीं है। याचिकाकर्ताओं ने प्रतिवादी संख्या 8 से 13 के जवाबी हलफनामे के पैरा 8 और 15 की सामग्री को भी स्वीकार किया है कि भारत सरकार द्वारा जारी प्रशिक्षण मैनुअल, 2014 यूपी के गठन से कुछ समय पहले औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों के लिए जारी किया गया था। नियम, 2014 सीआईटीएस को वांछनीय योग्यता के रूप में निर्धारित करता है। इसके अलावा, निर्विवाद रूप से चयनित उम्मीदवारों को नियुक्त किया गया था और वे वर्ष, 2016 में अपनी नियुक्ति के बाद से काम कर रहे हैं। इस प्रकार लागू विज्ञापन के अनुसार भर्ती और अनुदेशक के पद पर चयनित उम्मीदवारों की नियुक्तियों में हस्तक्षेप करने का कोई वैध कारण नहीं है।

<u>संवैधानिक वैधता की धारणा</u>:-

44. **अनंत मिल्स बनाम गुजरात राज्य एआईआर 1975 एससी 1234 (पैरा 20)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि:-

"20. **वैधानिक प्रावधान की संवैधानिक वैधता की एक धारणा है।** यदि कोई पक्ष किसी प्रावधान की वैधता पर इस आधार पर हमला करती है कि यह संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है, तो यह उस पक्ष पर निर्भर करता है कि वह आवश्यक दावे करे और भेदभाव को अनुच्छेद 14 का उल्लंघन दिखाने के लिए अन्तर्वस्तु प्रस्तुत करें। याचिकाकर्ताओं द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष याचिकाओं में कोई दावा नहीं किया गया था कि 1969 के अध्यादेश 6 के लागू होने से पहले का आकलन बॉम्बे रेंट एक्ट के किराया प्रतिबंध प्रावधानों को ध्यान में रखकर किया गया था। उच्च न्यायालय के समक्ष याचिका संख्या 233/1970 के पैराग्राफ 2 बी और कुछ अन्य पैराग्राफ, जिस पर श्री तारकुंडे ने हमारा ध्यान आकर्षित किया था, में

भी वह कथन शामिल नहीं है, इस तथ्यात्मक पहलू पर कोई अंतर्वस्तु परिस्थितियों में नहीं थी। या तो याचिकाकर्ताओं या निगम की ओर से प्रस्तुत किया गया। जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, उच्च न्यायालय ने केवल एक अनुमान के आधार पर मामले का फैसला किया। हमारी राय में, किसी प्रावधान की संवैधानिक वैधता के प्रश्न पर कुछ तथ्यों के कल्पित अस्तित्व के आधार पर एक धारणा बनाकर निर्णय लेना बेहद खतरनाक है। जिन तथ्यों के कथित अस्तित्व के बारे में उच्च न्यायालय ने अनुमान लगाया था वे इस प्रकार के थे कि उनके संबंध में एक निश्चित अनुमान लगाया जा सकता था और उनके अस्तित्व या गैर-अस्तित्व के समर्थन में ठोस अंतर्वस्तु पेश की जा सकती थी। अनुमानों का सहारा तब लिया जाता है जब मामला प्रत्यक्ष प्रमाण को स्वीकार नहीं करता है या जब किसी विशेष तथ्य को साबित करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करने में कुछ व्यावहारिक कठिनाई होती है। हालाँकि, जब स्थापित किया जाने वाला तथ्य इस प्रकार का हो कि उसके अस्तित्व या गैर-अस्तित्व के बारे में प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध हो, तो अनुमान का सहारा लेकर मामले का निर्णय करने के बजाय प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त करना उचित है। वैधानिक प्रावधान की संवैधानिक वैधता के बारे में एक घोषणा न केवल न्यायालय के समक्ष पक्षों को प्रभावित करती है, बल्कि अन्य सभी पक्ष भी प्रभावित हो सकते हैं, जो विवादित प्रावधान से प्रभावित हो सकते हैं। इसलिए, अदालत के समक्ष संपूर्ण तथ्यात्मक आंकड़ा और संपूर्ण अंतर्वस्तु रखे बिना किसी विवादित प्रावधान को रद्द करने में अंतर्निहित जोखिम होगा। इसलिए, हमारी राय में, उच्च न्यायालय के लिए यह आवश्यक था कि वह निष्कर्ष दर्ज करने से पहले सही तथ्यात्मक स्थिति का पता लगाए और सामने रखे कि विवादित प्रावधान अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है। यह तथ्य भी सामने आता है कि उच्च न्यायालय ने गलत धारणा पर काम किया। संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत दायर रिट याचिकाओं में हमारे सामने प्रस्तुत की गई सामग्री से पता चलता है।"

(हमारे द्वारा प्रभाव वर्द्धित)

45. **चरणजीत लाल चौधरी बनाम भारत संघ और अन्य, एआईआर 1951 एससी 41 (पैरा 10)** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित है कि ऐसी धारणा है कि विधायिका अपने लोगों की जरूरतों को समझती है और सही ढंग से उनकी सराहना करती है। **भारत संघ बनाम एलफिंस्टन स्पिनिंग एंड वीविंग कंपनी लिमिटेड और अन्य, एआईआर 2001 एससी 724 (पैरा 9),** माननीय सुप्रीम कोर्ट ने अभिनिर्धारित किया है कि ऐसी धारणा है कि विधायिका अपने अधिकार क्षेत्र से आगे नहीं बढ़ती है। **बिहार राज्य और अन्य बनाम श्रीमती चारुसिला दासी, एआईआर 1959 एससी 1002 (पैरा 14),** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कानून बनाया है कि ऐसी धारणा है कि विधायिका अपने अधिकार क्षेत्र से आगे बढ़ने का इरादा नहीं रखती है। **केदार नाथ सिंह बनाम बिहार राज्य, एआईआर 1962 एससी 955 (पैरा 26),** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि प्रावधान की व्याख्या उस तरीके से की जानी चाहिए जो इसकी संवैधानिकता को बनाए रखेगी। **कलकत्ता निगम बनाम लिबरी सिनेमा, एआईआर 1965 एससी 1107,** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कानून बनाया है कि प्रावधान को उस तरीके से पढ़ा जाना चाहिए जो इसे वैध बना देगा। इसी तरह का विचार सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने **आनंदजी हरिदास एंड कंपनी (पी) लिमिटेड बनाम एस.पी. कस्तूरे और अन्य, एआईआर 1968 एससी 565 (पैरा 32)** में व्यक्त किया है। **सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन और अन्य, एआईआर 1978 एससी 1675** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि विधायिका समुदाय के ज्ञान को व्यक्त करती है। **बिहार राज्य बनाम बिहार डिस्टिलरीज, एआईआर 1997 एससी 1511 (पैरा 18),** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि विधायिका द्वारा बनाया गया एक अधिनियम लोगों की इच्छा का प्रतिनिधित्व करता है और इसमें हल्के ढंग से हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। **ज़मीर अहमद लतीफुर रहमान शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, जे.टी. 2010 (4) एससी 256 (पैरा 34),** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि वैधता बनाए रखने के लिए कानूनी रूप से हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए। **ग्रेटर बॉम्बे को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड बनाम यूनाइटेड यार्न टेक्स (पी) लिमिटेड और अन्य, (2007) 6 एससीसी 236 (पैरा 82 से 85),** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखा:

"82. **किसी अधिनियम की संवैधानिक वैधता को केवल दो आधारों पर चुनौती दी जा सकती है,** अर्थात् (i) विधायी क्षमता की कमी; और (ii) संविधान के भाग III या किसी अन्य संवैधानिक प्रावधान में गारंटीकृत मौलिक अधिकारों में से किसी का उल्लंघन। ए.पी. राज्य और अन्य बनाम मैकडॉवेल एंड कंपनी और अन्य [(1996) 3 SCC 709] में, इस न्यायालय ने राय दी है कि उपरोक्त दो आधारों को छोड़कर, कोई तीसरा आधार नहीं है जिसके आधार पर कानून बनाया गया हो, सक्षम विधायिका द्वारा अमान्य किया जा सकता है और अमान्यकरण का आधार आवश्यक रूप से उपर्युक्त दो आधारों के चारो कोनों के भीतर आना चाहिए।

83. कानून बनाने की शक्ति राज्य विधानसभा को संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची II से प्राप्त होती है। प्रविष्टि 32

राज्य विधानमंडल को सहकारी समितियों का गठन करने की शक्ति प्रदान करती है। महाराष्ट्र राज्य और आंध्र प्रदेश राज्य दोनों ने सूची II की प्रविष्टि 32 द्वारा निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए एमसीएस अधिनियम 1960 और एपीसीएस अधिनियम, 1964 को अधिनियमित किया था। संविधान की सातवीं अनुसूची के अधिनियम की शक्ति में राज्य विधानमंडल में कानून के किसी भी प्रावधान को फिर से अधिनियमित करने या मान्य करने की शक्ति शामिल होगी, बशर्ते कि वह संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची II की प्रविष्टि में इस प्रतिबंध के साथ आती हो कि ऐसा अधिनियमन किसी निर्णय को रद्द नहीं करना चाहिए। एक सक्षम न्यायालय का आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ दायर अपील/एसएलपी/याचिका में, राज्य की विधायी क्षमता विचार के लिए शामिल है। न्यायिक प्रणाली की हमारी राजनीतिक व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका है और इसे पूरा करना एक गंभीर दायित्व है। ऐसी परिस्थितियों में, **विधायी कार्रवाई के दायरे की जांच करते समय अदालतों के लिए यह जरूरी है कि वे कानून की संवैधानिक वैधता के संबंध में धारणा से शुरुआत करने के प्रति सचेत रहें। सबूत का भार उस पदधारी के कंधों पर है जो इसे चुनौती देता है।** यह सच है कि हमारे संविधान के तहत संवैधानिक न्यायालयों का यह कर्तव्य है कि वे संसद या राज्य विधानमंडल द्वारा अधिनियमित किसी कानून को असंवैधानिक घोषित करें, जब संसद या राज्य विधानमंडल ने कोई ऐसा कानून बनाने का निर्णय लिया हो जो या तो संवैधानिक शक्ति के अभाव में अमान्य हो। इसे अधिनियमित करें या क्योंकि संवैधानिक रूपों या शर्तों का पालन नहीं किया गया है या जहां कानून संविधान के भाग III में निहित और गारंटीकृत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है।

84. **जैसा कि सीएसटी बनाम राधाकृष्णन मामले में इस न्यायालय ने किसी क़ानून की वैधता पर विचार करते समय देखा था, धारणा हमेशा संवैधानिकता के पक्ष में होती है और यह दिखाने के लिए उस पर हमला करने वाले व्यक्ति पर दायित्व होता है कि संवैधानिक सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है। किसी अधिनियम की संवैधानिकता को बनाए रखने के लिए, एक न्यायालय सामान्य ज्ञान, रिपोर्ट, प्रस्तावना, समय का इतिहास, कानून की आपत्ति और अन्य सभी तथ्यों पर विचार कर सकता है जो प्रासंगिक हैं। यह हमेशा माना जाना चाहिए कि विधायिका अपने लोगों की ज़रूरतों को समझती है और सही ढंग से उनकी सराहना करती है और भेदभाव, यदि कोई हो, पर्याप्त आधार और विचारों पर आधारित है।** यह भी अच्छी तरह से स्थापित है कि संवैधानिक अमान्यता से बचने के लिए अदालतों को उदार व्याख्या देना उचित होगा। प्राधिकरण को बहुत व्यापक और विस्तृत शक्तियां प्रदान करने वाले प्रावधान को संवैधानिक सीमाओं के भीतर शक्ति के प्रयोग के विधायी इरादे के अनुरूप माना जा सकता है। जहां कोई क़ानून मौन है या अस्पष्ट है, अदालत उस अस्पष्ट को रूपांतरित करने का प्रयास करेगी और एक ऐसे निर्माण को अपनाएगी जो संवैधानिकता की ओर झुकेगा, भले ही उस सामग्री से विचलित हुए बिना जिससे कानून बनाया गया है। इन सिद्धांतों ने कानून की वैधता को बनाए रखने के लिए आवश्यक होने पर प्रावधानों को "पढ़ने" के नियम को जन्म दिया है।

85. बिहार राज्य एवं अन्य बनाम बिहार डिस्टिलरी लिमिटेड और अन्य [(1997) 2 एससीसी 453) में, इस न्यायालय ने उस दृष्टिकोण का संकेत दिया जिसे न्यायालय को किसी कानून की वैधता/संवैधानिकता की जांच करते समय अपनाना चाहिए। स्वयं को निर्धारित सिद्धांतों की याद दिलाना उपयोगी होगा, जो पढ़ा जाता है: (एससीसी पृष्ठ 466, पैरा 17):

"किसी अधिनियम की संवैधानिकता को चुनौती की जांच करते समय अदालत का दृष्टिकोण संवैधानिकता की धारणा से शुरू करना है। न्यायालय को यथासंभव हद तक इसकी वैधता बनाए रखने का प्रयास करना चाहिए। उसे अधिनियम को तभी रद्द करना चाहिए जब वह ऐसा हो कि इसे बनाए रखना संभव नहीं है। न्यायालय को प्रारूपण में खामियाँ निकालने या दोषों की खोज करने के उद्देश्य से अधिनियम के पास नहीं जाना चाहिए, नियोजित भाषा की अशुद्धि को तो बिल्कुल भी नहीं। वास्तव में, प्रारूपण के ऐसे किसी भी दोष को प्रयास के भाग के रूप में नजरअंदाज किया जाना चाहिए। अधिनियम की वैधता/संवैधानिकता को बनाए रखें। आखिरकार, विधायिका द्वारा बनाया गया एक अधिनियम लोगों की इच्छा का प्रतिनिधित्व करता है और इसमें हल्के ढंग से हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। किसी अधिनियम को शून्य घोषित करने से पहले असंवैधानिकता को स्पष्ट रूप से और स्पष्ट रूप से स्थापित किया जाना चाहिए। वही किसी अधिनियम के इरादे और उद्देश्य या उसके दायरे और अनुप्रयोग को सुनिश्चित करते समय दृष्टिकोण अच्छा रहता है"

उसी पैरा में, इस न्यायालय ने आगे इस प्रकार टिप्पणी की:

"न्यायालय को विधायी प्रक्रिया की मौलिक प्रकृति और महत्व को पहचानना चाहिए और उसे उचित सम्मान और सम्मान देना चाहिए, जैसे विधायिका और कार्यपालिका से

न्यायपालिका के प्रति उचित सम्मान और सम्मान दिखाने की उम्मीद की जाती है। यह भी नहीं भुलाया जा सकता है कि हमारा संविधान मान्यता देता है और राज्य के तीनों अंगों के बीच समानता की अवधारणा और ऐसी योजना में निहित "नियंत्रण और संतुलन" की अवधारणा को प्रभावी बनाता है।"

(हमारे द्वारा प्रभाव वर्द्धित)

46. प्रमोटर्स एंड बिल्डर्स एसोसिएशन बनाम पुणे नगर निगम (2007) 6 एससीसी। 143 (पैरा 9) के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि विधायी कार्य करते समय, जब तक कि अनुचितता और मनमानी की ओर इशारा नहीं किया जाता है, तब तक न्यायालय हस्तक्षेप के लिए स्वतंत्र नहीं है।

<u>संवैधानिक वैधता के सिद्धांत</u>:-

47. किसी अधिनियम की संवैधानिक वैधता को केवल दो आधारों पर चुनौती दी जा सकती है, अर्थात् (i) विधायी क्षमता की कमी; और (ii) संविधान के भाग III या किसी अन्य संवैधानिक प्रावधान में गारंटीकृत मौलिक अधिकारों में से किसी का उल्लंघन। उपरोक्त दो आधारों को छोड़कर कोई तीसरा आधार नहीं है जिसके आधार पर सक्षम विधायिका द्वारा बनाये गये कानून को अमान्य किया जा सके। अमान्यकरण का आधार आवश्यक रूप से उपरोक्त दो आधारों के चारों कोनों के भीतर आना चाहिए। किसी क़ानून की वैधता पर विचार करते समय धारणा हमेशा संवैधानिकता के पक्ष में होती है और उस पर हमला करने वाले व्यक्ति पर यह दिखाने का दायित्व होता है कि संवैधानिक सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है। किसी अधिनियम की संवैधानिकता को बनाए रखने के लिए, न्यायालय सामान्य ज्ञान, रिपोर्ट, प्रस्तावना, समय का इतिहास, कानून का उद्देश्य और अन्य सभी प्रासंगिक तथ्यों पर विचार कर सकता है। यह हमेशा माना जाना चाहिए कि विधायिका अपने लोगों की ज़रूरतों को समझती है और सही ढंग से उनकी सराहना करती है और भेदभाव, यदि कोई हो, पर्याप्त आधार और विचारों पर आधारित है। संवैधानिक अमान्यता से बचने के लिए अदालतों को उदार व्याख्या देना उचित होगा। जहां कोई क़ानून मौन है या अस्पष्ट है, अदालत उस अस्पष्ट को रूपांतरित करने का प्रयास करेगी और एक ऐसे निर्माण को अपनाएगी जो संवैधानिकता की ओर झुकेगा, भले ही उस सामग्री से विचलित हुए बिना जिससे कानून बुना गया है। यदि कानून की वैधता को बनाए रखना आवश्यक हो तो ये सिद्धांत प्रावधानों को "पढ़ने" के नियम को जन्म देते हैं। किसी अधिनियम की संवैधानिकता को चुनौती की जांच करते समय, अदालत को संवैधानिकता की धारणा से शुरुआत करनी होती है और जहां तक संभव हो इसकी वैधता को बनाए रखने का प्रयास करना होता है। अदालत अधिनियम में खामियों को दूर करने या प्रारूपण में दोषों की खोज करने के उद्देश्य से नहीं आ सकती है, इसमें प्रयुक्त भाषा की अशुद्धि तो दूर की बात है। विधायिका द्वारा बनाया गया कोई अधिनियम लोगों की इच्छा का प्रतिनिधित्व करता है और उसमें हल्के ढंग से हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। यह माना जाता है कि विधायिका समुदाय के ज्ञान को व्यक्त करती है, अपने अधिकार क्षेत्र से आगे बढ़ने का इरादा नहीं रखती है और अपने लोगों की आवश्यकता को सही ढंग से समझती है।

<u>अधीनस्थ विधान की वैधता को शासित करने वाले सिद्धांत</u>:-

48. संवैधानिक वैधता निर्धारित करने के लिए उपरोक्त सिद्धांतों के अलावा, एक अधीनस्थ कानून की वैधता का परीक्षण करने के लिए एक अतिरिक्त आधार उपलब्ध है। अतिरिक्त आधार यह है कि **अधीनस्थ कानून बनाने वाले प्राधिकारी को अपनी शक्ति की सीमा के भीतर कार्य करना चाहिए और उसका उल्लंघन नहीं करना चाहिए।** अधीनस्थ कानून की वैधता के इन स्थापित सिद्धांतों के संबंध में संदर्भ **हुकुम चंद बनाम भारत संघ, (1972) 2 एससीसी 601, जनरल ऑफिसर कमांडिंग-इन-चीफ बनाम सुभाष चंद्र यादव और अन्य, (1988) 2 एससीसी 351, अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (आरईवी.) दिल्ली प्रशासन बनाम सिरी राम, (2000) 5 एससीसी 451, सुखदेव सिंह और अन्य बनाम भगतराम सरदार सिंह रघुवंशी और अन्य, (1975) 1 एससीसी 421, कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम एच. गणेश कामथ और अन्य, (1983) 2 एससीसी 402, कुंज बिहारी लाल बुटेल और अन्य बनाम एच.पी. राज्य और अन्य, (2000) 3 एससीसी 40, भारत संघ बनाम मेसर्स जी.एस. चाथा राइस मिल, (2021) 2 एससीसी 209 और 2022 की सिविल अपील संख्या 9252-9253 में निर्णय दिनांक 16.12.2022 (केरल राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य बनाम थॉमस जोसेफ @थॉमस एम.जे. और अन्य**) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों में पाया जा सकता है। तथ्यों के वर्तमान समूह में, हमने पाया है कि राज्य सरकार ने विवादित नियम बनाने में शक्ति का उल्लंघन नहीं किया है। आक्षेपित नियम भारत के संविधान के अनुच्छेद 73 के तहत जारी भारत सरकार के कार्यकारी आदेशों के अनुरूप हैं।

49. उ.प्र. सेवा नियमावली, 2016, के संबंध में कानून के स्थापित सिद्धांतों एवं ऊपर की गई चर्चा के दृष्टिगत, हम

अभिनिर्धारित करते हैं कि उत्तर प्रदेश सरकार औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (अनुदेशक) सेवा नियमावली, 2014 के आक्षेपित नियम 9(बी), 15(3) और 17(3) न तो विधायी क्षमता की कमी से ग्रस्त है और न ही यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 16 या 21 का उल्लंघन है और न ही यह किसी अमान्यता से ग्रस्त है। ये प्रावधान पूर्णतः वैध हैं। आक्षेपित विज्ञापन भी पूर्णतः वैध है।

50. हमारे समक्ष चयनित अभ्यर्थियों की ओर से यह कहा गया है कि सभी नियुक्त अनुदेशकों के पास या तो अपने चयन/नियुक्ति से पहले सीआईटीएस प्रमाण पत्र था या बाद में उत्तर प्रदेश सेवा नियमावली, 2014 और उसके बाद के कार्यकारी आदेश के तहत प्रदान की गई अवधि के दौरान सीआईटीएस पूरा कर चुके थे।

51. उपरोक्त सभी कारणों से हम अभिनिर्धारित करते हैं कि आक्षेपित विज्ञापन संख्या 2/2014 दिनांकित 07.11.2014 और आक्षेपित नियम 9(बी), 15(3) और 17(3) वैध हैं। सभी रिट याचिकाओं में गुण - दोष की कमी है और इसलिए इन्हें **खारिज** किया जाता है।

(2023) 1 ILRA 406
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 11.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

रिट-सी संख्या 294/2023

श्रीमती साजिदा ...याचिकाकर्ता
बनाम
एस.डी.एम., कैराना, शामली एवं अन्य ...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
श्री निपुण सिंह, श्री सुमित सूरी

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता:
सी.एस.सी., श्री विनीत सिंह परमार

(क) सिविल कानून - चुनाव - यू.पी. पंचायत राज अधिनियम, 1947 - धारा 12 (ग) - चुनाव पर सवाल उठाने के लिए आवेदन, धारा 12-ग (6) - संशोधन, पुनर्गणना का आदेश केवल इसके लिए और बिना किसी निर्दिष्ट के अस्पष्ट आरोप के आधार पर पारित नहीं किया जा सकता है मतगणना में विशेष अनियमितता के साथ-साथ यह चुनाव परिणाम को किस प्रकार भौतिक रूप से प्रभावित करेगा - एक नियम के रूप में दलीलों पर आधारित राहत नहीं दी जानी चाहिए। (पैरा - 16,)

चुनाव याचिका के मुख्य भाग में - किए गए अस्पष्ट दावे - वैध वोटों की अवैध अस्वीकृति के संबंध में - प्रमाणित नहीं - या तो चुनाव याचिकाकर्ता की जांच में या अन्यथा उपलब्ध रिकॉर्ड के आधार पर- पक्षकारों को साक्ष्य प्रस्तुत करके उचित अभिवचन प्रस्तुत करना होगा- विशेष अनियमितता या अवैधता से चुनाव का परिणाम भौतिक रूप से प्रभावित हुआ है। **(पैरा - 16)**

अवधारित किया गया:-उपजिलाधिकारी ने रिकॉर्ड पर पर्याप्त आधार या साक्ष्य के बिना केवल चल रही जांच के आधार पर पुनर्मतगणना के अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया। उपजिलाधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अस्पष्ट प्रस्तुतियों पर आधारित हैं और चुनाव याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत किसी भी महत्वपूर्ण सामग्री के बिना हैं। आक्षेपित आदेश अवैधता से ग्रस्त है। आदेश रद्द कर दिया गया। **(पैरा - 17, 18)**

याचिका को अनुमति दी गई। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. हरि विष्णु कामथ बनाम अहमद इशाक, एआईआर 1955 एससी 233
2. मो. मुस्तफा बनाम यू.पी. जिलाधिकारी, फूलपुर, आज़मगढ़ एवं अन्य, 2007(7) एडीजे 1 (डीबी)
3. अबरार बनाम यू.पी. राज्य और अन्य, 2004(5) एडब्ल्यूसी 4088
4. राम आधार सिंह बनाम डी.जे. और अन्य , 1985 एडब्ल्यूसी 246
5. अरिकाला नरसा रेड्डी बनाम वेंकट राम रेड्डी रेड्डीगारी और अन्य, (2014) 5 एससीसी 312
6. टी.ए. अहमद कबीर बनाम ए.ए. अज़ीज़, (2003) 5 एससीसी 650
7. सत्यनारायण दुधानी बनाम उदय कुमार सिंह एवं अन्य, 1993 सप्लिमेंट (2) एससीसी 82
8. एम.आर. गोपालकृष्णन बनाम थचाडी प्रभाकरन और अन्य, 1995 सप्लीमेंट (2) एससीसी 101
9. भाभी बनाम शिव गोविंद एवं अन्य, एआईआर 1975 एससी 2217
10. राम सेवक यादव बनाम हुसैन कामिल किदवई एवं अन्य, एआईआर 1964 एससी 1249

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा प्रदत्त)

1. इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता (ग्राम पंचायत पावटीकलां, कैराना, जिला शामली का ग्राम प्रधान) एक निर्वाचित उम्मीदवार है जबकि प्रत्यर्थी-2/ चुनाव लड़ रही याचिकाकर्ता (श्रीमती अनीता) उपविजेता उम्मीदवार है और जीत का अंतर केवल तीन वोटों का था।

2. चुनाव याचिकाकर्ता (प्रत्यर्थी-2) ने यू.पी. पंचायत राज अधिनियम, 1947 (एतस्मिनपश्चात इसे "अधिनियम, 1947" कहा जाएगा) की धारा 12-सी के तहत एक चुनाव याचिका दायर की, जिसमें दलीलों के आदान-प्रदान के बाद निम्नलिखित पांच मुद्दे तय किए गए:

"1. क्या पेटीशनर व अन्य प्रतिवादीगण ने ग्राम पावटीकलां से प्रधान पद हेतु विधि अनुसार आवेदन प्रस्तुत किया था यदि ना तो प्रभाव क्या?

2. मतगणना के दौरान वादी के एजेन्टों द्वारा क्या-2 आपत्ति उठायी गयी। क्या इन्हे प्रतिवादी सं. 15 व 16 द्वारा अस्वीकार किया गया यदि हाँ तो प्रभाव?

3. उक्त याचिका में किये गये कथनों के अनुसार मतगणना विधि व नियम के अनुसार नहीं की गयी यदि हां तो प्रभाव?

4. क्या याचिका में किये गये कथन के अनुसार पुनः मतगणना किया जाना है?

5. क्या वादी अन्य कोई अनुतोष पाने का हकदार है यदि हां तो क्या?"

3. उप-विभागीय मजिस्ट्रेट, कैराना ने दिनांक 23.12.2022 के आक्षेपित आदेश द्वारा रिकॉर्ड पर सामग्री पर विचार करने के बाद चुनाव याचिका स्वीकार कर ली और पुनर्मतगणना के निर्देश के साथ उसका निस्तारण कर दिया। याचिकाकर्ता ने अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी (6) के तहत प्रदान किए गए वैकल्पिक उपचार का लाभ उठाए बिना सीधे इस न्यायालय से संपर्क किया है।

4. रिट याचिका की विचारणीयता के संबंध में प्रत्यर्थी-2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री विनीत सिंह परमार के होल्डिंग ब्रीफ विद्वान अधिवक्ता श्री भूपेन्द्र कुमार त्रिपाठी द्वारा एक प्रारंभिक आपत्ति उठाई गई थी और उन्होंने **हरि विष्णु कामथ बनाम अहमद इशाक, एआईआर 1955 एससी 233** और प्रासंगिक पैरा 23 में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय पर अवलम्ब लिया, जिसे निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"23. इसलिए यह तय माना जा सकता है कि कानून की किसी त्रुटि को सुधारने के लिए उत्प्रेषण रिट जारी की जा सकती है। लेकिन यह आवश्यक है कि यह महज़ एक त्रुटि से कुछ अधिक हो; यह ऐसा होना चाहिए जो रिकॉर्ड के सामने प्रकट होना चाहिए। हालाँकि, इस मामले के संदर्भ में वास्तविक कठिनाई सिद्धांत के कथन में उतनी नहीं है जितनी कि किसी विशेष मामले के तथ्यों पर इसके अनुप्रयोग में है। कोई त्रुटि कब महज़ त्रुटि नहीं रह जाती है, और रिकॉर्ड के सामने स्पष्ट त्रुटि बन जाती है? दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता किसी स्पष्ट नियम का सुझाव देने में असमर्थ थे, जिसके द्वारा त्रुटियों के दो वर्गों के बीच की सीमा का सीमांकन किया जा सके।"

5. प्रारंभिक आपत्ति के जवाब में, याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनुराग खन्ना के सहायक अधिवक्ता श्री निपुण सिंह और श्री राघव देव गर्ग ने **मोहम्मद मुस्तफा बनाम यूपी जिलाधिकारी, फूलपुर, आज़मगढ़ और अन्य, 2007(7) एडीजे 1 (डीबी)** में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा पारित फैसले पर अवलम्ब लिया। और उन्होंने विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा संदर्भित प्रश्न के उत्तर का उल्लेख किया। प्रासंगिक पैरा 27 का उल्लेख इसके बाद किया गया है:

27. हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा संदर्भित प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार देते हैं: (I) अधिनियम की धारा 12-ग(6) के तहत संशोधन केवल धारा 12-ग(1) के तहत पसंदीदा चुनाव आवेदन पर निर्णय लेने वाले विहित प्राधिकारी द्वारा पारित अंतिम आदेश के विरुद्ध होगा और विहित प्राधिकारी द्वारा वोटों की पुनर्गणना के किसी भी अंतरिम आदेश या आदेश के खिलाफ नहीं है।

(II) अबरार बनाम यूपी राज्य और अन्य (2004) 5 एडब्ल्यूसी 4088 के मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्णय कानून को सही ढंग से निर्धारित नहीं करता है और, इसलिए, एक पुनरीक्षण याचिका की विचारणीयता के प्रश्न की सीमा तक खारिज कर दिया गया है, जैसा कि यहां ऊपर बताया गया है।

(III) उपरोक्त के स्वाभाविक परिणाम के रूप में, हम यह भी मानते हैं कि यूपी पंचायत राज अधिनियम, 1947 की धारा 12-ग के तहत एक चुनाव आवेदन पर कार्यवाही करते समय विहित प्राधिकारी द्वारा पारित पुनर्गणना के आदेश के खिलाफ एक रिट याचिका सुनवाई योग्य होगी।"

6. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह भी उल्लेख किया कि संदर्भ के तहत मामले के तथ्य वर्तमान मामले के समान हैं जिसमें चुनाव याचिका को अंततः वोटों की पुनर्गणना की दिशा में निस्तारित किया गया था और इस प्रकार रिट याचिका उपजिलाधिकारी कैराना द्वारा पारित पुनर्गणना के आदेश के खिलाफ विचारणीय है।

7. प्रारंभिक आपत्ति पर विचार करने के लिए, मैंने **मोहम्मद मुस्तफा (उपरोक्त) के साथ-साथ अबरार बनाम यू.पी. राज्य और अन्य, 2004 (5) एडब्ल्यूसी 4088** में डिवीजन बेंच द्वारा पारित निर्णय का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है और पाया है कि वर्तमान मामले के तथ्य समान हैं, इसलिए, प्रारंभिक आपत्ति को यह मानते हुए खारिज कर दिया गया है कि वर्तमान रिट याचिका सुनवाई योग्य है।

8. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनुराग खन्ना ने आगे कहा कि आक्षेपित आदेश प्रथम दृष्टया अवैध और मनमाना है और बिना विवेक के प्रयोग पर आधारित है। सब-डिवीजनल मजिस्ट्रेट ने वोटों की पुनर्गणना का आदेश पारित करके कानून की स्पष्ट गलती की है, विशेष रूप से तब जब चुनाव याचिकाकर्ता द्वारा शिकायत में लगाए गए आरोपों के संबंध में कोई विवरण या कोई विवरण प्रदान नहीं किया गया है। चुनाव याचिका में किया गया दावा बिल्कुल अस्पष्ट, आधारहीन, निराधार और निंदनीय था और इसमें उन भौतिक तथ्यों और विवरणों का अभाव था जो चुनाव याचिका में किसी भी राहत की मांग के लिए आवश्यक हैं। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने **राम आधार सिंह बनाम जिला न्यायाधीश और अन्य, 1985 एडब्ल्यूसी 246** में इस न्यायालय के पूर्ण पीठ के फैसले पर अवलम्ब लिया कि अधिनियम, 1947 के तहत चुनाव याचिका की सुनवाई करने वाले प्राधिकारी को मतपत्रों पर गौर करने या निरीक्षण का निर्देश देने की अनुमति दी जा सकती है, सिवाय इसके कि जब निम्नलिखित दो शर्तें सह-अस्तित्व में हों:

"(1) चुनाव को रद्द करने की याचिका में वे आधार शामिल हैं जिन पर प्रत्यर्थी के चुनाव पर सवाल उठाया जा रहा है और साथ ही उन परिस्थितियों का सारांश भी शामिल है जो ऐसे आधार पर चुनाव पर सवाल उठाए जाने को उचित ठहराते हैं; और

(2) प्राधिकारी, प्रथम दृष्टया, उसके समक्ष प्रस्तुत सामग्रियों के आधार पर संतुष्ट है कि ऐसे आधार के अस्तित्व पर विश्वास करने का आधार है और विवाद का निर्णय करने और पक्षों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए ऐसा निरीक्षण करना अनिवार्य रूप से आवश्यक है।"

9. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने **अरिकाला नरसा रेड्डी बनाम वेंकट राम रेड्डी रेड्डीगारी और अन्य (2014) 5 एससीसी 312; टी.ए. अहमद कबीर बनाम एए अज़ीज़ (2003) 5 एससीसी 650; सत्यनारायण दुधानी बनाम उदय कुमार सिंह एवं अन्य 1993 सप्प (2) एससीसी 82; और, एम.आर. गोपालकृष्णन बनाम थचाडी प्रभाकरन और अन्य, 1995 सप्लिमेंट (2) एससीसी 101** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी अवलम्ब लिया।

10. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी-2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने मुद्दे संख्या 1, 2, 3, 4 और 5 पर निष्कर्षों का उल्लेख किया है कि चुनाव याचिकाकर्ता ने गणना के समय आपत्ति उठाई थी, हालांकि, उन्हें नजरअंदाज कर दिया गया और चुनाव याचिका की सुनवाई के दौरान सरकारी प्रतिवादियों ने कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया कि चुनाव याचिकाकर्ता द्वारा की गई शिकायतों को क्यों खारिज कर दिया गया। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि निर्वाचित उम्मीदवार ने हलफनामे पर दावा किया है कि उसे पुनर्मतगणना पर कोई आपत्ति नहीं है।

11. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागणों को सुना है और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के साथ-साथ न्यायालय में उद्धृत निर्णयों का अवलोकन किया है।

12. यह सुस्थापित है कि मतपत्र की गोपनीयता बनाए रखना महत्वपूर्ण है जो पवित्र है और इसे तुच्छ, अस्पष्ट और अनिश्चित आरोपों पर उल्लंघन करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए और निरीक्षण की अनुमति देने से पहले, निर्वाचित उम्मीदवार के खिलाफ लगाए गए आरोप स्पष्ट होने चाहिए और विशिष्ट और भौतिक तथ्यों के पर्याप्त बयानों द्वारा समर्थित होना चाहिए (देखें, **भाभी बनाम शेओ गोविंद और अन्य, एआईआर 1975 एससी 2217 और राम सेवक यादव बनाम हुसैन कामिल किदवई और अन्य, एआईआर 1964 एससी 1249**)। न्यायालयों को प्रदत्त विवेक का प्रयोग इस तरह से नहीं किया जाना चाहिए कि चुनाव याचिकाकर्ता को चुनाव को शून्य घोषित करने के लिए सामग्री प्राप्त करने के लिए घूम-घूम कर पूछताछ करने में सक्षम बनाया जा सके।

13. चुनाव याचिकाकर्ता ने चुनाव याचिका में दावा किया है कि उसके पक्ष में दिए गए वोटों को वापस आए उम्मीदवार के पक्ष में दिए गए वोटों के बंडल में रखा गया और गिनती के दौरान जब चुनाव याचिकाकर्ता को पता चला कि उसके पक्ष में दिए गए वोटों की संख्या 990 है और निर्वाचित उम्मीदवार के पक्ष में 993 वोट हैं और अस्वीकृत वोटों की संख्या 157 है, उन्होंने आपत्ति जताई और पुनर्मतगणना की प्रार्थना की लेकिन चुनाव अधिकारी ने ध्यान नहीं दिया। एक और दावा किया गया है कि 157 अस्वीकृत वोटों के बंडल में कुछ वैध वोट भी शामिल थे।

14. जैसा कि ऊपर बताया गया है, उप जिलाधिकारी ने पांच मुद्दे तय किए। कार्यवाही के दौरान गवाह पेश हुए और उनसे जिरह भी की गई। उप जिलाधिकारी ने मुद्दे संख्या 2 और 3 पर विचार करते हुए चुनाव याचिकाकर्ता के कथानक को स्वीकार कर लिया है कि गिनती ठीक से नहीं की गई थी और साथ ही चुनाव अधिकारी द्वारा कोई उचित स्पष्टीकरण नहीं दिया गया था, पुनर्गणना के अनुरोध को क्यों अस्वीकार कर दिया गया था। हालाँकि, आक्षेपित आदेश में ऐसा कोई सबूत नहीं है कि यह मानने का कोई अच्छा आधार हो कि गिनती में गलती हुई है। उप जिलाधिकारी ने चुनाव याचिकाकर्ता के बेतुके बयान को स्वीकार कर लिया है जो किसी भी सामग्री या साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं था और संदर्भ के लिए आक्षेपित आदेश के प्रासंगिक भाग का उल्लेख यहां किया गया है:

"इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि याचिकाकर्ता व विपक्षी नं. 1 जो 3 वोट से निर्वाचित घोषित हुई सन्तुष्ट नहीं है तथा जवाबदावा के पैरा नं. 19 में मतगणना की समस्त प्रक्रिया नियमानुसार पूरी कराकर परिणाम घोषित किया। इस प्रकार प्रतिवादी नं. 1 का कथन स्वयं विरोधाभाषी है। एक

तरफ मतगणना नियमानुसार न किये जाने का कथन किया है तथा दूसरी तरफ मतगणना सही होना बताया इसलिये प्रतिवादी नं. 1 का कथन विरोधाभाषी व संदिग्ध है तथा विपक्षी नं. 15 जो निर्वाचन अधिकारी था उसने अपने लिखित उत्तर में मतगणना सही होना बताया तथा परिणाम सही घोषित करने का कथन किया। किसी के द्वारा पुनः मतगणना के लिए कोई प्रार्थना पत्र नहीं दिया गया। पुनः मतगणना किये जाने हेतु प्रार्थना पत्र देने का कथन अस्वीकार किया गया है। लेकिन विपक्षी नं. 15 ने अपने जवाबदावे में किये गये कथन की पुष्टि न्यायालय में उपस्थित होकर नहीं की है जबकि विपक्षी नं. 15 को साक्ष्य देने का अवसर दिया गया इसलिये विपक्षी नं. 1 के द्वारा दिये गये लिखित कथन की पुष्टि न होने के कारण कथन सही मानने का आधार पर्याप्त नहीं है। विपक्षी नं 1 ने साक्ष्य में शपथ पत्र दिया तथा यह कथन किया कि मतगणना के समय वह उपस्थित नहीं थी उसका अभिकर्ता उसका पति डी0डब्लू0 2 उपस्थित था तथा विपक्षी नं. 1 ने अपनी जिरह में यह भी कथन किया कि पुनः मतगणना किये जाने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

15. मैंने उपजिलाधिकारी के समक्ष दर्ज किए गए गवाहों के बयानों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है। याचिकाकर्ता ने स्पष्ट शब्दों में यह उल्लेख नहीं किया है कि उसने गिनती के दौरान कोई आपत्ति उठाई थी, जिसमें विशिष्ट आधार पर पुनर्मतगणना की प्रार्थना भी शामिल थी और यह कि उसका पति मतगणना केंद्र पर मौजूद नहीं था, हालांकि जिरह के बाद के भाग में उसने शिकायत का उल्लेख किया था कि उसके मतदान एजेंट ने सूचित किया था। उन्होंने कहा कि कुछ वोट गलत तरीके से अस्वीकृत कर दिए गए। इसलिए, उन वोटों की संख्या के संबंध में कोई विशिष्ट कथन नहीं है जिन्हें गलत तरीके से अवैध घोषित कर दिया गया है और जो चुनाव को प्रभावित कर सकते हैं। इस संबंध में सुप्रीम कोर्ट द्वारा एम.आर. गोपालकृष्णन (उपरोक्त) में पारित फैसले के निम्नलिखित पैराग्राफ प्रासंगिक होंगे:

"20. अब हम अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा पेश किए गए तीसरे आधार पर आते हैं कि निर्वाचित उम्मीदवार प्रत्यर्थी नंबर 1 के पक्ष में अवैध वोटों की गिनती की गई और 1375 के कुल खारिज वोटों में से, अपीलकर्ता के पक्ष में काफी बड़ी संख्या में वैध वोट अस्वीकृत कर दिए गए, जिसने चुनाव के परिणाम को प्रभावित किया। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता ने प्रत्यर्थी संख्या 1 के पक्ष में अवैध वोटों की गिनती के आरोप के संबंध में भौतिक तथ्य का संक्षिप्त बयान नहीं दिया है और न ही ऐसे अवैध वोटों का कोई विवरण दिया है, जिनके बारे में आरोप लगाया गया है कि उन्हें प्रत्यर्थी संख्या 1 के पक्ष में गिना गया है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि इसी तरह अपीलकर्ता के पक्ष में वैध वोटों की अस्वीकृति के संबंध में कोई विवरण नहीं है और न ही इस आरोप का समर्थन करने के लिए ऐसे वोटों की संख्या है कि अपीलकर्ता के पक्ष में वैध वोटों की इस तरह की अस्वीकृति ने चुनाव के परिणाम को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया। हमारी राय में अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई इन दलीलों में कोई महत्व नहीं है। वास्तव में, अपीलकर्ता ने न तो प्रत्यर्थी संख्या 1 के पक्ष में गिने गए ऐसे अवैध वोटों का विवरण और संख्या बताई है और न ही अपीलकर्ता के पक्ष में ऐसे वैध वोटों की संख्या का विवरण दिया है, जिन्हें गिनती के दौरान गलत तरीके से अस्वीकृत कर दिया गया था। इसके अलावा, मतगणना की पूरी प्रक्रिया के दौरान रिटर्निंग ऑफिसर, पर्यवेक्षक और अन्य अधिकारी भी मतगणना हॉल में मौजूद थे और पर्यवेक्षकों ने भी मतगणना हॉल का दौरा किया, लेकिन न तो अपीलकर्ता और न ही उसके किसी गणना एजेंट ने मौखिक या लिखित रूप से बताया या आपत्ति जताई कि प्रत्यर्थी संख्या 1 के पक्ष में अवैध वोट गिने गए या अपीलकर्ता के पक्ष में वैध वोट खारिज कर दिए गए। रिटर्निंग ऑफिसर, पीडब्लू 16 के साक्ष्य से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि मतगणना के दौरान किसी ने भी ऐसी कोई शिकायत नहीं की थी। इन तथ्यों और परिस्थितियों में अपीलकर्ता द्वारा लगाए गए आरोपों को स्वीकार करना मुश्किल है, जो केवल बाद में सोचा गया प्रतीत होता है और इसके समर्थन में कोई सबूत या सामग्री नहीं है।"

16. यह तय हो गया है कि पुनर्मतगणना का आदेश केवल इसके लिए और अस्पष्ट आरोप के आधार पर पारित नहीं किया जा सकता है, बिना गिनती में किसी विशेष अनियमितता को निर्दिष्ट किए और साथ ही यह चुनाव परिणाम को भौतिक रूप से कैसे प्रभावित करेगा। वर्तमान मामले में चुनाव याचिका के मुख्य भाग में वैध वोटों की अवैध अस्वीकृति के संबंध में अस्पष्ट दावे किए गए हैं जो या तो चुनाव याचिकाकर्ता की जांच में या अन्यथा उपलब्ध रिकॉर्ड के आधार पर प्रमाणित नहीं हैं। पक्षकारों को सबूत पेश करके उचित दलील देनी होगी कि अवैधता की विशेष अनियमितता से चुनाव का परिणाम भौतिक रूप से प्रभावित हुआ है। स्थापित कानूनी प्रस्ताव पर कोई विवाद नहीं है कि एक नियम के रूप में दलीलों में स्थापित राहत नहीं दी जानी चाहिए [देखें, अरिकाला नरसा रेड्डी (उपरोक्त)]।

17. वर्तमान मामले में, उपजिलाधिकारी ने रिकॉर्ड पर पर्याप्त आधार या साक्ष्य के बिना केवल चल रही पूछताछ

के आधार पर पुनर्मतगणना के अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया है। उउपजिलाधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अस्पष्ट प्रस्तुतियों पर आधारित हैं और चुनाव याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत किसी भी महत्वपूर्ण सामग्री के बिना हैं, इसलिए, आक्षेपित आदेश अवैधता से ग्रस्त है और अपास्त किए जाने योग्य है।

18. परिणामस्वरूप, रिट याचिका स्वीकार की जाती है। उप जिलाधिकारी कैराना, जिला शामली द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.12.2022 को रद्द किया जाता है।

(2023) 1 ILRA 411
मूल क्षेत्राधिकार
नागरिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 10.11.2022
समक्ष
माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया

रिट-सी संख्या 27289/2022

एचडीएफसी स्टैंडर्ड लाइफ इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड
... याचिकाकर्ता
बनाम
स्थायी लोक अदालत मुरादाबाद और अन्य
... प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
श्री आदित्य भारद्वाज

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

(क) नागरिक कानून - कंपनी अधिनियम, 1956 - बीमा अधिनियम, 1938 - धारा 3, भारतीय बीमा विनियामक और विकास प्राधिकरण (पॉलिसी धारक के हित का संरक्षण) विनियम, 2002 - खंड 8 (3), विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 - धारा 22 - लोक अदालतों की शक्तियां, धारा 22 (ग) - स्थायी लोक अदालत द्वारा प्रकरणों का संज्ञान - स्थायी लोक अदालत द्वारा विधिक सेवा प्राधिकरण पुनरीक्षण अधिनियम की धारा 22 (सी) (7) के तहत विशेष रूप से प्रदान की गई निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने के अभाव में, आदेश/अवार्ड दूषित है। (पैरा - 19)

पुरस्कार रद्द करना - स्थायी लोक अदालत द्वारा पारित आदेश - याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान किए बिना - दावेदार-प्रतिवादी द्वारा दायर याचिका की अनुमति देते समय कोई कारण नहीं दिया गया - स्थायी लोक अदालत प्रक्रिया का पालन नहीं करती है - विधिक सेवा प्राधिकरण पुनरीक्षण अधिनियम के तहत प्रदान किया गया **(पैरा -15)**

(ख) विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 - धारा 22-सी(7) और 22-सी(8) - धारा 22-C(8) धारा 22-सी (7) विफल हो गया है - धारा 22-सी (7) के तहत निपटान की प्रस्तावित शर्तें, और इससे पहले की सुलह कार्यवाही, अनिवार्य हैं - यदि स्थायी लोक अदालतों को इस कदम को सिर्फ इसलिए दरकिनार करने की अनुमति दी जाती है क्योंकि कोई पक्ष अनुपस्थित है, तो यह उनकी योग्यता के आधार पर विवादों का फैसला करने और पुरस्कार जारी करने के समान होगा जो अंतिम, बाध्यकारी होगा और नागरिक न्यायालयों के डिक्री माने जाएंगे- विधिक सेवा प्राधिकरण पुनरीक्षण अधिनियम की धारा 22-ग के अधीन सुलह कार्यवाहियां अनिवार्य प्रकृति की हैं। (पैरा -18)

अभिनिर्धारित: - स्थायी लोक अदालत कानूनी सेवा प्राधिकरण पुनरीक्षण अधिनियम के तहत प्रदान की गई प्रक्रिया का पालन नहीं करती है, इसलिए, पुरस्कार कानून की नजर में दूषित और अवैध है, इसे रद्द किया जा सकता है और रद्द किया जाता है। ***केनरा बैंक*** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के साथ-साथ कानून के तहत पूरी प्रक्रिया का पालन करने के बाद स्थायी लोक अदालत को नया आदेश पारित करने का निदेश। **(अनुच्छेद -20,22)**

याचिका की अनुमति दी। (ई-7)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. एल.आई.सी. बनाम आशा गोयल, (2001) 2 एससीसी 160

2. पीसी चाको और अन्य बनाम अध्यक्ष, भारत के एलआईसी और अन्य, (2008) 1 एससीसी 321

3. सतवंत कौर संधू बनाम एनआईए कंपनी लिमिटेड, (2009) 8 एससीसी 316

4. आरएलआई कंपनी लिमिटेड बनाम रेखाबेन नरेशभाई राठौड़, (2019) 6 एससीसी 175

5. प्रबंधक, बीएएलआई कंपनी लिमिटेड और अन्य बनाम दलबीर कौ, एआईआर 2020 एससी 5210

6. एआईजीआई कं, लिमिटेड बनाम एसपी माहेश्वरी, एआईआर 1960 एमएडी 484

7. एल.आई.सी. ऑफ इंडिया, कानपुर नगर बनाम सैयद ज़ैगम अली और अन्य, 2016 (3) ऑलएलजे 289

8. केनरा बैंक बनाम जीएस जयराम , (2022) 7 एससीसी 776

(माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता द्वारा यह रिट याचिका दायर की गई है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ दिनांक 08.12.2021 को प्रतिवादी संख्या.1 अर्थात् स्थायी लोक अदालत, मुरादाबाद, उ.प्र. द्वारा पारित पुरस्कार को रद्द करने की प्रार्थना की गई है।

2. रिट याचिका में संक्षिप्त: वर्णित तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता अर्थात् एच.डी.एफ.सी. स्टैंडर्ड लाइफ इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड कंपनी अधिनियम, 1956 के तहत पंजीकृत एक कंपनी है और बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 3 के अनुसार जीवन बीमा का व्यवसाय करती है। जीवन बीमाधारक अर्थात् स्वर्गीय रवि किरण ने वर्ष 2018 में बीमा पॉलिसी जारी करने के लिए याचिकाकर्ता-बीमा कंपनी से संपर्क किया है और बीमा पॉलिसी प्राप्त करने के लिए प्रस्ताव फॉर्म और अन्य आवश्यक दस्तावेज जमा किए हैं। उनके निर्देशों और उनके तहत किए गए घोषणा पत्र को सत्य और सभी प्रकार से सही मानते हुए याचिकाकर्ता ने पॉलिसी जारी की। पॉलिसी की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं:-

पॉलिसी संख्या	20043201
प्रस्ताव प्राप्त होने की तिथि	01.02.2018
आरसीडी की तिथि	02.02.2018
मृत्यु की तिथि	27.03.2018
पॉलिसी अवधि	1 माह 25 दिन
योजना	एचडीएफसी लाइफ प्रोग्रोथ प्लस
लाइफ एश्योर्ड	स्वर्गीय रवि करण

3. दिनांक 04.08.2018 याचिकाकर्ता को प्रतिवादी संख्या .2 से दावा सूचना फॉर्म प्राप्त हुआ, जिसमें सूचित किया गया कि जीवन बीमाधारक की मृत्यु दिनांक 27.03.2018 को हो गई है। चूंकि जीवन बीमाधारक की मृत्यु विषयगत पॉलिसी की जोखिम प्रारंभ तिथि से दो माह के भीतर हुई है, अतः याचिकाकर्ता ने भारतीय बीमा विनियामक और विकास प्राधिकरण (पॉलिसीधारक के हितों का संरक्षण) विनियम, 2002 के नियम 8 (3) के अनुसार एक वैधानिक जांच की है। जांच के दौरान यह पाया गया कि जीवन बीमाधारक ने प्रस्ताव फॉर्म में गलत आय और व्यवसाय प्रस्तुत किया है।

4. यह तर्क दिया जाता है कि जीवन बीमाधारक की कोई स्थायी नौकरी नहीं थी और वह पिछले दो महीनों से घर से फरार था और 27.03.2018 को एक अज्ञात दुर्घटना में उसकी मृत्यु हो गई। पंचनामे के अनुसार मृत्यु वाहन से गिरने और चोट लगने के कारण हुई, जिससे मृत्यु हो गई। कोई प्राथमिकी दर्ज नहीं की गई थी और केवल सामान्य डायरी संख्या जीडी नंबर 017, दिनांक 27.03.2018 को प्रतिवादी के दामाद सुनील कुमार के बयानों के आधार पर दर्ज की गई थी, साथ ही प्रतिवादी के तीन बेटे और शिकायतकर्ता पुलिस स्टेशन गए और एक बयान दिया कि बीमित व्यक्ति एक आदतन शराबी है और हमेशा नशे में रहता है और बीमित व्यक्ति ने परिवार के सदस्यों की शराब छोड़ने की सलाह को कभी नहीं माना। पोस्टमार्टम रिपोर्ट में मृत्यु का कारण रक्तस्राव और सदमा बताया गया है। तत्कालिक कारण मृत्यु पूर्व चोट के कारण सदमा बताया गया है। पोस्टमार्टम रिपोर्ट में जिक्र किया गया है कि पेट की सामग्री में शराब की गंध थी यह तर्क दिया जाता है कि जीवन बीमाधारक ने याचिकाकर्ता से महत्वपूर्ण जानकारी छिपाकर पॉलिसी ली थी। महत्वपूर्ण तथ्यों के गैर-प्रकटीकरण और प्रस्ताव फॉर्म में असत्य विवरण के कारण याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी के दावे को अस्वीकार कर दिया और रु. 56,521.55/- के फंड मूल्य को वापस कर दिया और 30.11.2018 दिनांकित पत्र द्वारा प्रतिवादी संख्या 2 को उक्त तथ्यों में से 2 को सूचित किया।

5. दावे के अस्वीकार से व्यथित होकर, प्रतिवादी संख्या 2 ने दिनांक 9.7.2019 को प्रतिवादी संख्या.1 के समक्ष शिकायत दर्ज कराई। सम्मन प्राप्त करने के बाद याचिकाकर्ता कंपनी ने मामले को स्थानीय वकील को सौंप दिया। बीमा कंपनी इस धारणा में थी कि स्थानीय वकील नियमित रूप से मामले में उपस्थित हो रहा है और उसके द्वारा लिखित तर्क दायर किए गए थे। हालांकि, विवादित आदेश प्राप्त होने पर यह पता चला कि स्थानीय वकील उक्त मामले में उपस्थित नहीं हुआ, इसलिए शिकायत का एक पक्षीय फैसला किया गया।

6. बीमा अनुबंध अत्यधिक सद्भावना पूर्ण होता है। जीवन बीमा पॉलिसी प्राप्त करने का इच्छुक प्रस्तावक इस बात का खुलासा करने के लिए बाध्य है कि क्या बीमाकर्ता प्रस्तावित जोखिम को लेना उचित समझेगा। इसी सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए प्रस्ताव फॉर्म में पहले से मौजूद बीमारियों के विशिष्ट प्रकटीकरण की आवश्यकता होती है, ताकि बीमाकर्ता को वास्तविक जोखिम के आधार पर विचारपूर्ण निर्णय लेने में सक्षम बनाया जा सके।

7. वर्तमान मामले में, जैसा कि ऊपर बताया गया है, प्रस्तावक यह तथ्य बताने में विफल रहा कि वह एक आदतन शराबी है और हमेशा नशे में रहता है और बीमित व्यक्ति ने परिवार के सदस्यों की शराब छोड़ने की सलाह को कभी नहीं माना। पोस्टमार्टम रिपोर्ट में मृत्यु का कारण रक्तस्राव और सदमा बताया गया है। तत्कालिक कारण को मृत्यु पूर्व चोट के कारण सदमा बताया गया है। पोस्टमार्टम रिपोर्ट में जिक्र किया गया है कि पेट की सामग्री में शराब की गंध थी।

8. यह उपरोक्त निर्णयों की श्रृंखला में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 3 / 13 निर्धारित सिद्धांतों के अंतर्गत परित्याग **के लिए ठोस आधार लाता है। जीवन बीमा कॉर्पोरेशन आफ इंडिया बनाम आशा गोयल (2001) 2 एससीसी 160 मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह निर्धारित किया गया था कि :-**

"12...बीमा अनुबंधों सहित जीवन बीमा अनुबंध अत्यधिक सद्भावना *"अत्यंत अच्छा विश्वास"* ***के अनुबंध होते हैं और प्रत्येक महत्वपूर्ण तथ्य का खुलासा किया जाना चाहिए, अन्यथा अनुबंध को रद्द करने का एक ठोस आधार बनता है। महत्वपूर्ण तथ्यों का खुलासा करने का कर्तव्य अनुबंध के समापन तक जारी रहता है और इसमें प्रस्ताव और उसकी स्वीकृति के बीच होने वाले जोखिम की प्रकृति में कोई भी महत्वपूर्ण परिवर्तन भी शामिल है। यदि कोई गलत बयान या महत्वपूर्ण तथ्यों को दबाया जाता है, तो पॉलिसी को प्रश्नचिन्हित किया जा सकता है। यह निर्धारण करने के लिए कि क्या कोई महत्वपूर्ण तथ्य छिपाए गए हैं, यह भी जांचना आवश्यक हो सकता है कि क्या छिपाना उस तथ्य से संबंधित है जो पॉलिसी लेने वाले व्यक्ति के विशिष्ट ज्ञान में है और इसका पता एक विवेकपूर्ण व्यक्ति द्वारा उचित जांच द्वारा नहीं लगाया जा सकता था।"***

9. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा *पी. सी. चाको और अन्य बनाम अध्यक्ष, भारतीय जीवन बीमा निगम और अन्य [(2008) 1 एससीसी 321* मामले में इसकी पुनः पुष्टि की गई है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह निर्धारित किया गया है कि यदि कोई कपटपूर्ण कार्य पाया जाता है तो प्रस्ताव को अस्वीकार किया जा सकता है। प्रासंगिक अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 17 को नीचे पुनरुत्पादित किया गया है :-

"17. प्रस्तावक को यह दिखाना होगा कि उसका इरादा सद्भावपूर्ण था। यह रिकॉर्ड को देखने से स्पष्ट होना चाहिए। इस प्रकृति के मामले में, बीमाकर्ता के लिए यह स्थापित करना आवश्यक नहीं था कि बीमित व्यक्ति द्वारा छिपाना कपटपूर्ण तरीके से किया गया था या उसे बयान देते समय यह पता होना चाहिए था कि वही गलत था या वह तथ्य छिपा दिया गया था जो प्रकट करने के लिए महत्वपूर्ण था। एक जानबूझकर गलत जवाब जिसका बीमा अनुबंध पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है, यदि पाया जाता है तो कानून में पॉलिसी अमान्य होना हो सकती है।"

10. सतवंत कौर संधू बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड [(2009) 8 एससीसी 316] के मामले में, मेडिक्लेम पॉलिसी प्राप्त करने के समय, बीमित व्यक्ति को दीर्घकालिक **मधुमेह और गुर्दे की विफलता से पीड़ित था, लेकिन पॉलिसी प्रस्ताव फॉर्म में इन बीमारियों के विवरण का खुलासा करने में विफल रहा। बीमा कंपनी द्वारा दायित्व के अस्वीकार को बरकरार रखते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि :-**

"25. संपूर्ण चर्चा का सार यह है कि बीमा अनुबंध में, कोई भी तथ्य जो विवेकपूर्ण बीमाकर्ता के मन को जोखिम को स्वीकार करने या न करने के निर्णय लेने में प्रभावित करेगा, वह "महत्वपूर्ण तथ्य" होता है। यदि प्रस्तावक को ऐसे तथ्य की जानकारी है, तो वह इसका खुलासा करने के लिए बाध्य है, खासकर प्रस्ताव फॉर्म में प्रश्नों का उत्तर देते समय।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि कोई भी गलत उत्तर बीमाकर्ता को उसकी दायित्व को अस्वीकार करने का हकदार बना देगा क्योंकि यह स्पष्ट धारणा है कि प्रस्ताव फॉर्म में मांगी गई कोई भी जानकारी बीमा अनुबंध में प्रवेश करने के उद्देश्य से महत्वपूर्ण है।"

11. हाल ही में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने *रिलायंस लाइफ इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम रेखाबेन नरेशभाई राठौड़ [(2019) 6 एससीसी 175]* मामले में, राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (एनडीआरसी) के फैसले को अलग रखा है, जिसके द्वारा एनडीआरसी ने माना था कि बीमित व्यक्ति द्वारा पॉलिसी प्रस्ताव फॉर्म के तहत आवश्यक पूर्व बीमा पॉलिसी का खुलासा करने में विफलता विवेकपूर्ण बीमाकर्ता के विचाराधीन पॉलिसी जारी करने के

निर्णय को प्रभावित नहीं करेगी और इसलिए बीमाकर्ता अपनी दायित्व को अस्वीकार करने में अयोग्य था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय, बीमा दावे के अस्वीकार को अनुमति देते हुए, निर्धारित किया है कि :-

"30. बीमाकर्ता के लिए आवेदन में आवेदक के स्वास्थ्य इतिहास और बीमा योग्यता से संबंधित अन्य मामलों के बारे में विशिष्ट प्रश्नों की एक श्रृंखला निर्धारित करना मानक अभ्यास है। प्रस्ताव फॉर्म का उद्देश्य एक संभावित ग्राहक के बारे में जानकारी एकत्र करना है, जिससे बीमाकर्ता को प्रत्येक संभावित ग्राहक के लिए जोखिम का आकलन करने और प्रीमियम तय करने के लिए आवश्यक सभी जानकारी प्राप्त करने की अनुमति मिलती है। प्रस्ताव फॉर्म प्रकटीकरण प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होते हैं और वक्तव्यों की सटीकता की गारंटी देते हैं। प्रस्ताव फॉर्म भरने में अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए। प्रस्ताव फॉर्म में आवेदक घोषणा करता है कि वह सत्य की गारंटी देता है। इस तरह लगाया गया संविदात्मक कर्तव्य ऐसा है कि प्रस्ताव फॉर्म में कथन में कोई भी छिपाव, असत्य या अशुद्धि सद्भावना के कर्तव्य के उल्लंघन के रूप में मानी जाएगी और बीमाकर्ता द्वारा पॉलिसी को रद्द करने योग्य बना देगी। पर्याप्त प्रकटीकरण की प्रणाली बीमा पॉलिसियों के खरीदारों और विक्रेताओं को एक समान बिंदु पर मिलने और सूचना विषमताओं के अंतर को कम करने में मदद करती है।"

यह पक्षकारों को अपने हितों की बेहतर सेवा करने और संविदात्मक समझौते की वास्तविक सीमा को समझने की अनुमति देता है।

31. बीमा में किसी महत्वपूर्ण गलत बयानी या छिपाव के पाए जाने के विवाद की स्थिति में बीमित व्यक्ति और बीमाकर्ता दोनों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। तथ्य यह है कि यह विवेकपूर्ण बीमाकर्ता के जोखिम को स्वीकार करने या न करने के निर्णय लेने में उसके निर्णय को प्रभावित करेगा, वह एक महत्वपूर्ण तथ्य है। जैसा कि इस न्यायालय ने सतवंत कौर (उपरोक्त) मामले में निर्धारित किया है, "यह एक स्पष्ट धारणा है कि प्रस्ताव फॉर्म में मांगी गई कोई भी जानकारी बीमा अनुबंध में प्रवेश करने के उद्देश्य से महत्वपूर्ण है"। प्रत्येक अभिवेदन या कथन जोखिम के लिए महत्वपूर्ण हो सकता है। बीमा कंपनी फिर भी परिवर्तित शर्तों पर बीमा सुरक्षा प्रदान कर सकती है।

12. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ब्रांच मैनेजर, बजाज आलियांज लाइफ इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य बनाम दलबीर कौर [(एआईआर 2020 एससी 5210)] मामले में भी यही विचार लिया गया था।

13. मद्रास उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने *ऑल इंडिया जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम एस. पी. माहेश्वरी एआईआर 1960 मद्रास 484* मामले में संयुक्त राज्य अमेरिका, इंग्लैंड और भारत में बीमा कानूनों के इतिहास को ध्यान में रखते हुए, पैरा 10 में कहा है, कि जो निम्नानुसार है:-

"(10) बीमा कानून का एक प्रमुख सिद्धांत यह है कि बीमा अनुबंध अत्यधिक सद्भाव पर आधारित होता है; वास्तव में यह वह मूलभूत आधार है जिस पर सभी बीमा अनुबंध किए जाते हैं। इस संबंध में एक बीमा अनुबंध और दूसरे के बीच कोई अंतर नहीं है। चाहे वह जीवन या अग्नि या समुद्री हो, समझ यह है कि अनुबंध में प्रचुर विश्वास *है और यद्यपि समुद्री बीमा की विशिष्ट प्रकृति में कुछ परिस्थितियाँ हो सकती हैं जिनका खुलासा किया जाना आवश्यक है, और जो अन्य बीमा अनुबंधों पर लागू नहीं होते हैं, यह सिद्धांत के अनुप्रयोग का एक उदाहरण है, सिद्धांत में भेद नहीं। इस तथ्य से ही कि अनुबंध में जोखिम शामिल होता है और यह जोखिम को एक पक्ष से दूसरे पक्ष में स्थानांतरित करने का इरादा रखता है, प्रत्येक पक्ष को लेनदेन में प्रवेश करते समय दूसरे पक्ष के निर्णय को प्रभावित करने वाली प्रत्येक परिस्थिति से बिल्कुल निर्दोष होना चाहिए।"*

14. इस न्यायालय की एकल न्यायाधीश पीठ ने *लाइफ इंश्योरेंस कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया, कानपुर नगर बनाम सैयद जैघम अली और अन्य [(2016) (3) एआईआईएलजे 289]* मामले में यह निर्णय देने की कृपा की कि अधिनियम, 1987 की धारा 22 (सी) के तहत निहित प्रावधान अनिवार्य हैं और विवाद को निपटाने के लिए पंचाट न्यायालय (पीएलए) द्वारा सुलह कार्यवाही आयोजित करना अनिवार्य था। उपरोक्त निर्णय के पैरा 27 में यह माना गया कि न्यायालय यह देखने के लिए बाध्य है कि राज्य में पंचाट न्यायालय 1987 अधिनियम के मापदंडों के भीतर कार्य नहीं कर रहे हैं, यहां तक कि उन मामलों पर भी अनियमित आदेश पारित किए जा रहे हैं जो उनके अधिकार क्षेत्र में नहीं आते हैं। पैरा 27 में उपरोक्त निर्णय में कुछ दिशानिर्देश निर्धारित किए गए थे, जो निम्नानुसार पढ़ते हैं:-

"(27) यह न्यायालय यह देखने के लिए बाध्य है कि राज्य में पंचाट न्यायालय 1987 अधिनियम के मापदंडों के भीतर कार्य नहीं कर रहे हैं, यहां तक कि उन मामलों पर भी अनियमित आदेश पारित किए जा रहे हैं जो उनके अधिकार क्षेत्र में नहीं आते हैं, अतः यह अपेक्षा की जाती है कि पंचाट न्यायालय 1987 अधिनियम के तहत शक्ति का प्रयोग करते समय निम्नलिखित बिंदुओं का पालन करेगा और निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ने से पहले प्रश्नों को तैयार करना होगा।" दिशानिर्देश संपूर्ण नहीं हैं बल्कि केवल उदाहरणात्मक हैं।

(1) क्या पंचाट न्यायालय (पीएलए) के पास विषय वस्तु पर अधिकार क्षेत्र है;

(2) पंचाट न्यायालय की प्राथमिक भूमिका पक्षकारों के समझौते में विफलता के बाद सुलह की है, पंचाट न्यायालय एक निर्णयाधिकार निकाय में बदल जाता है;

(3) पंचाट न्यायालय विवाद करने वालों को यह आभास नहीं होना॰ चाहिए कि उसकी शुरू से ही निर्णयाधिकार भूमिका है;

(4) पंचाट न्यायालय एक न्यायाधिकरण होने के नाते न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का अभाव है, इसलिए निषेधाज्ञा/अंतरिम आदेश पारित नहीं कर सकता है;

(5) पंचाट न्यायालय को सौंपी गई भूमिका "अधिकांश छोटे मामलों को सुलझाना/निपटाना है जो नियमित न्यायालयों में नहीं जाने चाहिए, उन्हें पूर्व-मुकदमेबाजी चरण में ही सुलझा लिया जाएगा";

(6) ऐसे मामले जहां दावे की प्रामाणिकता ही विवादित है, पक्षकारों ने चरम स्थिति ले ली है, वही, प्रथम दृष्टया, सुलह/निर्णय का विषय नहीं हो सकता है,

(7) क्या कोई अपराध, जो कि गैर-समझौता योग्य या समझौता योग्य प्रकृति का है, वास्तव में किया गया है, वह पंचाट न्यायालय के क्षेत्राधिकार से बाहर होगा;"

15. उपरोक्त के अलावा, स्थायी लोक अदालत, मुरादाबाद द्वारा पारित आदेश के अवलोकन से, ऐसा प्रतीत होता है कि यह आदेश याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान किए बिना पारित किया गया है। इसके अलावा, उपरोक्त आदेश के माध्यम से जाने के बाद, न्यायालय की यह दृढ़ राय है कि दावेदार-प्रतिवादी द्वारा दायर याचिका को स्वीकार करते समय कोई भी कारण नहीं दिया गया है।

16. विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (संक्षेप में "अधिनियम, 1987") की धारा 22 (सी) के तहत स्थायी लोक अदालत द्वारा विवाद को निपटाने के लिए एक पूर्ण प्रक्रिया निर्धारित की गई है और अधिनियम, 1987 की धारा 22 (सी) यह प्रावधान करती है कि सुलह कार्यवाही अनिवार्य है, उसके बाद स्थायी लोक अदालत के पास विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के तहत निर्णयाधिकार कार्य होता है। धारा 22 लोक अदालतों और स्थायी लोक अदालतों की शक्तियों को रेखांकित करती है। धारा 22 को नीचे दिया गया है:

"धारा 22. लोक अदालतों की शक्तियाँ.-

(1) इस अधिनियम के तहत कोई निर्धारण करने के प्रयोजनों के लिए, लोक अदालत या स्थायी लोक अदालत को वही शक्तियाँ प्राप्त होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (5 का 1908) के तहत दीवानी वाद चलाने के दौरान दीवानी न्यायालय में निहित हैं, निम्नलिखित मामलों के संबंध में: -

(क) किसी गवाह को तलब करना और उसकी उपस्थिति को लागू करना और उसे शपथ पर जांच करना;

(ख) किसी दस्तावेज की खोज और उत्पादन;

(ग) हलफनामों पर साक्ष्य का अभिग्रहण;

(घ) किसी भी लोक अभिलेख या दस्तावेज या ऐसे अभिलेख या दस्तावेज की प्रतिलिपि किसी भी न्यायालय या कार्यालय से मांगना; और

(ङ) ऐसे अन्य मामले जैसा कि विहित किया जा सकता है।

(2) उपधारा (1) में निहित शक्तियों की व्यापकता को अबाधित किए बिना, प्रत्येक लोक अदालत या स्थायी लोक

अदालत के पास उसके समक्ष आने वाले किसी भी विवाद के निर्धारण के लिए अपनी स्वयं की प्रक्रिया निर्दिष्ट करने के लिए अपेक्षित शक्तियाँ होंगी।

(3) लोक अदालत या स्थायी लोक अदालत के समक्ष सभी कार्यवाही भारतीय दंड संहिता (45 of 1860) की धारा 193, 219 और 228 के अर्थ के अंतर्गत न्यायिक कार्यवाही मानी जाएगी और प्रत्येक लोक अदालत को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 of 1974) की धारा 195 और अध्याय XXVI के प्रयोजनों के लिए एक दीवानी न्यायालय माना जाएगा।"

17. विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 22-C उन मामलों को निर्धारित करती है जिनमें स्थायी लोक अदालतें मामलों का संज्ञान ले सकती हैं। धारा 22-C निम्नानुसार प्रदान करती है:

"22-C. स्थायी लोक अदालत द्वारा मामलों का संज्ञान.- (1) विवाद का कोई पक्षकार, विवाद किसी न्यायालय के समक्ष लाए जाने से पहले, विवाद के निपटारे के लिए स्थायी लोक अदालत में आवेदन कर सकता है:

परन्तु यह कि स्थायी लोक अदालत का किसी ऐसे मामले के संबंध में क्षेत्राधिकार नहीं होगा जो किसी ऐसे अपराध से संबंधित हो जो किसी कानून के अधीन समझौता योग्य नहीं है:

परंतु यह भी कि स्थायी लोक अदालत का क्षेत्राधिकार उस मामले में भी नहीं होगा जहां विवादित संपत्ति का मूल्य दस लाख रुपये से अधिक हो: यह भी कि केंद्र सरकार, अधिसूचना द्वारा, केंद्रीय प्राधिकरण के परामर्श से दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट दस लाख रुपये की सीमा को बढ़ा सकती है।

(2) उपधारा (1) के तहत स्थायी लोक अदालत को आवेदन करने के बाद, उस आवेदन का कोई भी पक्षकार उसी विवाद में किसी न्यायालय के क्षेत्राधिकार का आह्वान नहीं करेगा।

(3) जहां उपधारा (1) के तहत एक स्थायी लोक अदालत को आवेदन किया जाता है, तो वह (क) आवेदन के प्रत्येक पक्षकार को उसके समक्ष एक लिखित विवरण दाखिल करने का निर्देश देगा, जिसमें आवेदन के तहत विवाद के तथ्य और प्रकृति, ऐसे विवाद में बिंदु या मुद्दे और ऐसे बिंदुओं या मुद्दों के समर्थन में या विरोध में निर्भर किए गए आधार, जैसा भी मामला हो, का उल्लेख हो, और ऐसा पक्षकार ऐसे तथ्यों और आधारों के प्रमाण में उचित समझे जाने वाले किसी भी दस्तावेज और अन्य साक्ष्य के साथ ऐसे विवरण का पूरक कर सकता है और आवेदन के प्रत्येक पक्षकार को ऐसे बयान की एक प्रति के साथ-साथ ऐसे दस्तावेज और अन्य साक्ष्य की एक प्रति, यदि कोई हो, भेजेगा;

(ख) सुलह कार्यवाही के किसी भी चरण में किसी भी पक्षकार को उसके समक्ष अतिरिक्त विवरण दाखिल करने की आवश्यकता हो सकती है;

(ग) किसी पक्षकार से प्राप्त किसी दस्तावेज या विवरण को किसी अन्य पक्षकार को उस अन्य पक्षकार को उसका उत्तर प्रस्तुत करने में सक्षम बनाने के लिए संप्रेषित करेगा।

(4) जब उपधारा (3) के तहत विवरण, अतिरिक्त विवरण और उत्तर, यदि कोई हो, स्थायी लोक अदालत की संतुष्टि के लिए दाखिल कर दिए गए हों, तो वह विवाद की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उचित समझे जाने वाले तरीके से आवेदन करने वाले पक्षों के बीच सुलह कार्यवाही करेगी।"

(5) उपधारा (4) के तहत सुलह कार्यवाही के दौरान, स्थायी लोक अदालत विवाद के सौहार्दपूर्ण समाधान तक पहुंचने के उनके प्रयास में पक्षकारों की स्वतंत्र और निष्पक्ष तरीके से सहायता करेगी।

(6) आवेदन से संबंधित विवाद के सुलह में स्थायी लोक अदालत के साथ सद्भावनापूर्वक सहयोग करना और उसके समक्ष साक्ष्य और अन्य संबंधित दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए स्थायी लोक अदालत के निर्देश का पालन करना आवेदन के प्रत्येक पक्ष का कर्तव्य होगा।

(7) जब उपरोक्त सुलह कार्यवाही में, एक स्थायी लोक अदालत की यह राय है कि ऐसी कार्यवाही में समाधान के तत्व विद्यमान हैं जो पक्षकारों को स्वीकार्य हो सकते हैं, तो वह विवाद के संभावित समाधान की शर्तों को तैयार कर सकता है और संबंधित पक्षों को उनके अवलोकन के लिए दे सकता है और यदि पक्ष विवाद के समाधान पर एक समझौते पर पहुंचते हैं, तो वे समझौता समझौते पर हस्ताक्षर करेंगे और स्थायी लोक अदालत उसके आधार पर एक पुरस्कार पारित करेगी और प्रत्येक संबंधित पक्ष को उसकी एक प्रति प्रस्तुत करेगी।

(8) जहां पक्ष उपधारा (7) के तहत किसी समझौते पर पहुंचने में विफल रहते हैं, तो

स्थायी लोक अदालत, यदि विवाद किसी अपराध से संबंधित नहीं है, तो विवाद का निर्णय करेगी।

18. मामले के उपरोक्त पहलू को ध्यान में रखते हुए, हाल ही में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कैनरा बैंक बनाम जी.एस. जयराम (2022) 7 एससीसी 776 के मामले में यह माना था कि धारा 22-सी (8) स्पष्ट रूप से कहती है कि यह केवल तभी प्रभावी होती है जब धारा 22-सी (7) के तहत एक समझौता विफल हो जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि धारा 22-सी (7) के तहत प्रस्तावित समाधान की शर्तें और उससे पहले की सुलह कार्यवाही अनिवार्य हैं। यदि स्थायी लोक अदालतों को केवल इसलिए इस कदम को दरकिनार करने की अनुमति दी जाती है क्योंकि एक पक्ष अनुपस्थित है, तो यह विवादों को उनके गुणों के आधार पर एकतरफा तय करने और ऐसे पुरस्कार जारी करने के समान होगा जो अंतिम, बाध्यकारी होंगे और दीवानी न्यायालयों के आदेश माने जाएंगे। यह निश्चित रूप से संसद का इरादा नहीं था जब उसने विधिक सेवा प्राधिकरण संशोधन अधिनियम पेश किया था। इसका मुख्य लक्ष्य अभी भी सार्वजनिक उपयोगिताओं से संबंधित विवादों का सुलह और निपटारा था, और गुणों पर निर्णय हमेशा अंतिम उपाय होता है। इस दृष्टिकोण से, यह माना गया कि विधिक सेवा प्राधिकरण संशोधन अधिनियम की धारा 22-सी के तहत सुलह कार्यवाही अनिवार्य प्रकृति की है। उपरोक्त निर्णय का पैरा 37 नीचे पुनरुत्पादित किया गया है:-

"37. धारा 22-सी (8) स्पष्ट रूप से कहती है कि यह केवल तभी प्रभावी होती है जब धारा 22-सी (7) के तहत एक समझौता विफल हो जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि धारा 22-सी (7) के तहत प्रस्तावित समाधान की शर्तें और उससे पहले की सुलह कार्यवाही अनिवार्य हैं। यदि स्थायी लोक अदालतों को केवल इसलिए इस कदम को दरकिनार करने की अनुमति दी जाती है क्योंकि एक पक्ष अनुपस्थित है, तो यह विवादों को उनके गुणों के आधार पर एकतरफा तय करने और ऐसे पुरस्कार जारी करने के समान होगा जो अंतिम, बाध्यकारी होंगे और दीवानी न्यायालयों के आदेश माने जाएंगे। यह निश्चित रूप से संसद का इरादा नहीं था जब उसने विधिक सेवा प्राधिकरण संशोधन अधिनियम पेश किया था। इसका मुख्य लक्ष्य अभी भी सार्वजनिक उपयोगिताओं से संबंधित विवादों का सुलह और निपटारा था, और गुणों पर निर्णय हमेशा अंतिम उपाय होता है। इसलिए, हम यह मानते हैं कि विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम की धारा 22-सी के तहत सुलह कार्यवाही अनिवार्य प्रकृति की है।"

19. उपरोक्त के अवलोकन से, यह न्यायालय इस मत का है कि अब यह कानून अच्छी तरह से स्थापित हो चुका है कि विधिक सेवा प्राधिकरण संशोधन अधिनियम की धारा 22(सी)(7) के तहत विशेष रूप से प्रदान की गई निर्धारित प्रक्रिया का अनुपालन न करने पर स्थायी लोक अदालत द्वारा पारित आदेश/पुरस्कार दूषित हो जाता है।

20. वर्तमान मामले में, स्थायी लोक अदालत, मुरादाबाद ने विधिक सेवा प्राधिकरण संशोधन अधिनियम के तहत प्रदान की गई उपरोक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया, इसलिए, यह पुरस्कार कानून की नजर में दूषित और अवैध है, इसे रद्द किया जाना योग्य है और इसे यहा से रद्द किया जाता है।

21. चूंकि स्थायी लोक अदालत, मुरादाबाद के समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा कोई उत्तर दाखिल नहीं किया गया है, इसलिए उसे शीघ्र ही उक्त मामले में इस आदेश की प्रति के साथ उत्तर दाखिल करने का निर्देश दिया जाता है।

22. स्थायी लोक अदालत, मुरादाबाद को विधि के तहत पूर्ण प्रक्रिया का पालन करने और साथ ही माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा *कैनरा बैंक (उपरोक्त)* के मामले में निर्धारित कानून का पालन करते हुए यथाशीघ्र और अधिमानतः याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर दाखिल करने की तिथि से चार महीने की अवधि के भीतर फ्रेश ऑर्डर पारित करने का निर्देश दिया जाता है।

23. जैसा कि ऊपर वर्णित तथ्यों के मद्देनजर, रिट याचिका स्वीकार्य होने योग्य है और इसे यहा स्वीकार किया जाता है।

24. खर्चे के संबंध में कोई आदेश नहीं।

25. रजिस्ट्रार (अनुपालन) को इस आदेश को तुरंत स्थायी लोक अदालत, मुरादाबाद को संप्रेषित करने का निर्देश दिया जाता है।

(2023) 1 ILRA 419
मूल क्षेत्राधिकार
नागरिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 24.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता,
माननीय न्यायमूर्ति जयंत बनर्जी

रिट - सी सं. – 32992/2022

श्रीमती अंजू अग्रवाल ... याची
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और 4 अन्य ... प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
विवेक मिश्रा, वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रतिवादी के अधिवक्ता:
सी.एस.सी., अरविंद प्रबोध दुबे, अतुल तेज कुलश्रेष्ठ, निपुन सिंह

(***ए) सिविल कानून - यू.पी. नगरपालिका अधिनियम, 1916-धारा 48-राष्ट्रपति को हटाना-कारण सामग्री, उनके निर्माण की नींव और वास्तविक निष्कर्षों के बीच के लिंक हैं-न केवल प्रशासनिक बल्कि न्यायिक आदेश को भी कारणों से समर्थित किया जाना चाहिए, इसमें दर्ज किया जाना चाहिए- कारण हर निष्कर्ष की धड़कन है -संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 और अधिनियम की धारा 48 (2-ए) की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए लिखित रूप में कारणों की रिकॉर्डिंग अनिवार्य है।*** **(पैरा - 10)**

नगर पालिका परिषद के अध्यक्ष पद से हटाए गए याचिकाकर्ता ने विस्तृत स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया – विशेष रूप से विवादित तथ्यों के साथ-साथ अभिलेख के आधार पर गंभीर प्रकृति के आरोपों से इनकार किया – प्रतिवादी संख्या 1 (राज्य) ने वाद की स्वतंत्र रूप से जांच नहीं की – जिला मजिस्ट्रेट की रिपोर्ट से उद्धृत किया गया – निष्कर्ष निकाला गया - आरोप साबित पाए गए – पदच्युति– मस्तिस्क का कोई स्वतंत्र प्रयोग नहीं किया गया। **(*पैरा*-11)**

आयोजित:-*आरोपित व्यक्ति के जवाब में राज्य सरकार द्वारा मांगी गई जिला मजिस्ट्रेट की रिपोर्ट अंतिम शब्द नहीं है और न ही राज्य सरकार द्वारा पूर्ण जांच करने और कारणों को दर्ज करने की वैधानिक आवश्यकता का विकल्प है। विवादित आदेश निरस्त कर दिया गया है और राज्य सरकार विधिनुसार नवीन आदेश पारित कर सकती है।* **(*पैरा*-12)**

याचिका स्वीकृत। (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. *शैला ताहिर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, रिट - सी नंबर* 21595 / 2022
2. *रवि यशवंत भोईर बनाम जिला कलेक्टर, रायगढ़ एवं अन्य,* (2012) 4 *एससीसी* 407
3. *संजीव अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य,* 2011 (6) *एडब्ल्यूसी* 5502
4. *गिरीश चंद श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य.* 2007 *आंगनवाड़ी केंद्र* (6) 6051
5. उमेश बैजल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2004) 2 यूपीएल बीईसी 1235

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता और माननीय न्यायमूर्ति जयंत बनर्जी द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता की ओर से श्री विवेक मिश्रा की सहायता से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शशि नंदन, राज्य प्रतिवादी की ओर से अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री एमसी चतुर्वेदी, हस्तक्षेपकर्ता की ओर से श्री निपुण सिंह की सहायता से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनुराग खन्ना और प्रतिवादी संख्या 5 और 6 के अधिवक्ता श्री अतुल तेज कुलश्रेष्ठ की बात सुनी गई।

याचिकाकर्ता 10.10.2022 के आदेश को चुनौती दे रही है, जिसके द्वारा उन्हें नगर पालिका परिषद, मुजफ्फर नगर के अध्यक्ष पद से हटा दिया गया है। यह आदेश प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम, 1916 की धारा 48 (इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित) के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए पारित किया गया है।

प्रारंभ में, 19.07.2022 को एक आदेश पारित किया गया था, जिसमें याचिकाकर्ता की वित्तीय शक्ति को रोक दिया गया था, अनुबंध देने में अनियमितताओं के आरोपों के संबंध में जांच लंबित थी, खातों को रद्द करना, उसके पद से जुड़े कर्तव्यों का पालन करने में विफलता और नगरपालिका की संपत्ति को नुकसान पहुंचाना। उक्त आदेश को याचिकाकर्ता द्वारा रिट-सी सं -24233 वर्ष 2022 में चुनौती दी गई थी। इस आधार पर कि दिनांक

28.03.2022 के कारण बताओ नोटिस के जवाब में उनके द्वारा 2.5.2022 और 8.7.2022 को प्रस्तुत किए गए स्पष्टीकरण पर विचार नहीं किया गया। उक्त रिट याचिका की सुनवाई के दौरान, राज्य प्रतिवादियों की ओर से एक बयान दिया गया था कि याचिकाकर्ता द्वारा 08.07.2022 को प्रस्तुत किया गया जवाब रिट याचिका में लगाए गए आदेश के पारित होने के बाद 21.07.2022 को प्राप्त हुआ था। याचिकाकर्ता की ओर से दलील दी गई कि उसकी वित्तीय शक्ति को रोकने वाले आदेश में 02.05.2022 को उसके द्वारा प्रस्तुत जवाब पर भी विचार नहीं किया गया और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री पर कोई स्वतंत्र विचार नहीं किया गया। रिट याचिका पर दिनांक 2.9.2022 के आदेश द्वारा निर्णय लिया गया था। इस आदेश को प्रतिवादी नंबर 1 को कानून के अनुसार एक नया आदेश पारित करने की स्वतंत्रता के साथ रद्द कर दिया गया था। उपरोक्त स्वतंत्रता देते हुए, यह स्पष्ट किया गया था कि प्रतिवादी नंबर 1 याचिकाकर्ता द्वारा 02.05.2022 को प्रस्तुत किए गए जवाब के साथ-साथ 08.07.2022 के जवाब पर विचार करेगा, जिसे उस समय तक प्राप्त कर लिया गया था।

23 सितंबर, 2022 को याचिकाकर्ता को एक नोटिस जारी किया गया था, जिसमें उसे प्रतिवादी नंबर 1 के समक्ष व्यक्तिगत सुनवाई के लिए 26.09.2022 को उपस्थित रहने की आवश्यकता थी। याचिकाकर्ता उस तारीख को उपस्थित हुई और एक लिखित नोट प्रस्तुत किया और अनुरोध किया कि उसके जवाब के जवाब में जिला मजिस्ट्रेट से प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा प्राप्त टिप्पणियों / रिपोर्टों की प्रतियां उसे उपलब्ध कराई जाएं ताकि वह इसका खंडन कर सके। यह उनका विशिष्ट मामला है कि उस तारीख को कोई सुनवाई नहीं हुई। याचिकाकर्ता ने विशेष रूप से यह भी आरोप लगाया है कि राज्य सरकार ने उनके द्वारा लिखित अनुरोध किए जाने के बावजूद उन्हें 19.09.2022 की जिला मजिस्ट्रेट की रिपोर्ट की प्रति प्रदान नहीं की और उन्हें अध्यक्ष, नगर पालिका परिषद, मुजफ्फर नगर के पद से हटाने का आदेश पारित किया।

याचिकाकर्ता की ओर से पेश वरिष्ठ वकील श्री शशि नंदन द्वारा की गई प्रस्तुतियां हमारे दिनांक 22.11.2022 के आदेश में दर्ज हैं, जो इस प्रकार है: –

"*याचिकाकर्ता के वकील श्री विवेक मिश्रा की सहायता से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शशि नंदन ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को नगर पालिका परिषद, मुजफ्फरनगर के अध्यक्ष पद से हटाने का निर्देश देने वाला आदेश प्रथम दृष्टया अवैध है, (ए) कोई जांच नहीं की गई है, (बी) याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण पर राज्य सरकार द्वारा कोई स्वतंत्र विचार नहीं किया गया है, और (ग) जिला मजिस्ट्रेट से 19.9.2022 को प्राप्त रिपोर्ट को याचिकाकर्ता को इसकी प्रति प्रदान किए बिना आंख बंद करके भरोसा किया गया है।*

श्री एम.सी. चतुर्वेदी, विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता को राज्य के उत्तरदाताओं से निर्देश प्राप्त हुए हैं। वह स्वीकार करते है कि याचिकाकर्ता को दिनाँक 19.09.2022 का जिला मजिस्ट्रेट का रिपोर्ट उपलब्ध नहीं कराए गए थे। वह जवाबी हलफनामे के पैरा 19 पर भरोसा करते हैं, जिसमें यह आरोप लगाया गया है कि याचिकाकर्ता ने उक्त रिपोर्ट की प्रति उसे उपलब्ध कराने का अनुरोध कभी नहीं किया। हालांकि, वह इस बात पर विवाद नहीं करते हैं कि याचिकाकर्ता को अध्यक्ष पद से हटाने में प्राथमिक विचार जिला मजिस्ट्रेट की दिनांक 19.09.2022 की रिपोर्ट है। वह इस बात पर भी विवाद नहीं कर सके कि याचिकाकर्ता को स्पष्टीकरण के लिए बुलाने और उसके बाद याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत जवाब के संदर्भ में जिला मजिस्ट्रेट से रिपोर्ट प्राप्त करने के अलावा, कोई मौखिक जांच नहीं की गई थी।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, आरोप गंभीर प्रकृति के हैं। याचिकाकर्ता ने विशेष रूप से आरोपों से इनकार किया है और प्रत्येक आरोप के लिए एक विस्तृत स्पष्टीकरण पेश किया था।

शैला ताहिर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 2 अन्य[31] में दिनांक 13.10.2022 को निर्णय लेते हुए, इस न्यायालय ने नगर पालिका परिषद के अध्यक्ष को हटाने से संबंधित समान प्रकृति के एक मामले से निपटते हुए, अधिनियम की धारा 48 के तहत होने वाली जांच के दायरे की जांच की। संविधान (74वां संशोधन) अधिनियम, 1992 द्वारा संविधान में किए गए संशोधन को ध्यान में रखते हुए और उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए **रवि यशवंत भोईर बनाम जिला कलेक्टर, रायगढ़ और अन्य**[32], और इस न्यायालय की खंडपीठ के फैसले **संजीव अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**[33], **गिरीश चंद श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[34], और **उमेश बैजल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[35] यह माना गया है कि स्थानीय स्वशासन के निर्वाचित प्रमुख को हटाने से उस व्यक्ति पर कलंक लगता है और मूल्यवान अधिकारों को छीनने का प्रभाव पड़ता है। ऐसे व्यक्ति को न केवल उसके द्वारा धारण किए गए पद

---

31 *रिट- सी नंबर* 21595 *वर्ष* 2022

32 (2012) 4 *एससीसी* 407

33 (2011) 6 *एडब्ल्यूसी* 5502

34 2007 *एडब्ल्यूसी* (6) 6051

35 (2004) 2 *यूपीएलबीईसी* 1235

से हटा दिया जाता है, बल्कि निर्वाचक मंडल भी ऐसे व्यक्ति के प्रतिनिधित्व से वंचित हो जाता है। वह एक निर्धारित अवधि के लिए चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य भी हो जाता है।

एक निर्वाचित प्रतिनिधि को हटाने के लिए आयोजित किसी भी जांच में सबूत का मानक सरकारी कर्मचारी के मामले की तुलना में बहुत अधिक है। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को पूरा करने की आवश्यकता है और बचाव करने का उचित अवसर आवश्यक है।

संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 और अधिनियम की धारा 48 (2 ए) की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए लिखित में कारणों की रिकॉर्डिंग भी अनिवार्य है। इस संबंध में की गई कुछ प्रासंगिक टिप्पणियां इस प्रकार हैं: **शैला ताहिर** (सुप्रा) को नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: –

"23. *इस मामले में, याचिकाकर्ता, जो नगर पालिका का अध्यक्ष है, उत्तर प्रदेश नगरपालिका अधिनियम,* 1916 *की धारा* 48 (4) *के मद्देनजर अध्यक्ष या सदस्य के रूप में पांच साल की अवधि के लिए अध्यक्ष या सदस्य के रूप में फिर से चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य हो जाएगा* [*धारा* 48 *की उप-धारा* (2) *के खंड* (*क*) *और खंड* (*ख*) *का उपखंड* (6) *और उपखंड* (7)]

24. *धारा* 48 *की उपधारा* (2-*क*) *में ऐसी जांच करने पर विचार किया गया है जो अध्यक्ष द्वारा दिए जाने वाले स्पष्टीकरण पर विचार करने के बाद राज्य सरकार द्वारा आवश्यक समझी जाए। हटाने का आदेश लिखित में होना चाहिए और इसमें अध्यक्ष को पद से हटाने के कारण होने चाहिए। संदर्भ की सुविधा के लिए उक्त प्रावधान नीचे उद्धृत किया गया है:* –

(2-ए) *अध्यक्ष द्वारा दिए जाने वाले किसी स्पष्टीकरण पर विचार करने और ऐसी जांच करने के बाद, जो वह आवश्यक समझे, राज्य सरकार, लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए, अध्यक्ष को उसके पद से हटा सकती है।*

26. *धारा* 48 *के तहत की जाने वाली जांच की प्रकृति और दायरा क्या है, इस अदालत ने उमेश बैजल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य* 6 *में विचार किया था। यह माना गया है कि ऐसे मामले हो सकते हैं जहां आरोप स्वीकार किए जाते हैं और किस घटना में, नियमित जांच करना और गवाहों आदि से पूछताछ करना आवश्यक नहीं होगा। ऐसे मामले हो सकते हैं जहां आरोप कुछ व्यक्तियों द्वारा की गई शिकायत पर आधारित हों। ऐसे मामलों में, यदि राज्य शिकायतकर्ता द्वारा दायर हलफनामे पर भरोसा करना चाहता है, तो उसे शिकायतकर्ता से जिरह करने के लिए अध्यक्ष को सुनवाई का अवसर देना होगा। किसी दिए गए मामले में, आरोप बहुत गंभीर प्रकृति के हो सकते हैं और जिन्हें दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य द्वारा साबित करना होगा और ऐसे मामलों में, पूर्ण जांच की आवश्यकता होगी, क्योंकि केवल स्पष्टीकरण मांगने और उस पर विचार करने से कानून की आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया जाएगा। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार हैं:* –

13. *इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि यदि किसी अध्यक्ष को इन प्रावधानों के तहत हटाया जाता है, तो इसका न केवल अध्यक्ष पर बल्कि उस निर्वाचन क्षेत्र पर भी बहुत गंभीर प्रभाव और परिणाम होगा, जिसका वह प्रतिनिधित्व करता है क्योंकि उसे सदस्यता से भी हटाया जा रहा है, इसलिए, कानून की आवश्यकता का पालन किए बिना उसे हटाने की कानून में अनुमति नहीं दी जा सकती है। जैसा कि किसी विशेष मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत आवश्यक है। अधिनियम,* 1916 *की धारा* 48 *की उपधारा* (2*क*) *में पद से हटाने की प्रक्रिया का प्रावधान है जिसमें यह प्रावधान है कि अध्यक्ष द्वारा दिए जाने वाले किसी स्पष्टीकरण पर विचार करने और ऐसी जांच करने के बाद, जो वह आवश्यक समझे, राज्य सरकार लिखित में दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए उसे हटा सकती है। यह कानून राज्य सरकार को कारण बताओ नोटिस के स्पष्टीकरण पर विचार करने के बाद ही अध्यक्ष को हटाने का आदेश पारित करने की अनुमति नहीं देता है या असीमित शक्तियां नहीं देता है। यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा कि क्या जांच की आवश्यकता है। अध्यक्ष द्वारा स्वयं स्वीकार किए जाने का मामला हो सकता है या उसके विरुद्ध मामला ऐसी प्रकृति का हो जिसके लिए वह कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं कर सकता है या किसी मामले के तथ्यों को इस तरह स्वीकार किया जाता है या स्वीकार किया जाता है कि किसी स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है, ऐसी स्थिति में, नियमित जांच करना और गवाहों की जांच करना आवश्यक नहीं होगा। ऐसा कोई मामला हो सकता है जहां राज्य अध्यक्ष के कदाचार के खिलाफ शिकायत करने वाले कुछ व्यक्तियों द्वारा दायर हलफनामों पर विचार कर रहा है, यदि राज्य उक्त हलफनामों पर विचार करना चाहता है और अपने स्पष्टीकरण में अध्यक्ष आरोपों से इनकार करता है, तो अध्यक्ष को आरोपों से जिरह करने का अवसर दिए बिना हलफनामे पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। जैसा कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश* XIX *नियम* 2 *के प्रावधानों के तहत आवश्यक है, इस कारण से कि संहिता स्वयं प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के संहिताकरण के अलावा कुछ भी नहीं है। संहिता के आदेश* XIX, *नियम* 2 *के प्रावधान अनिवार्य हो जाते हैं।*

39. *इस प्रकार, उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रत्येक मामले में, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन न करने से आदेश दूषित होगा। इसे*

प्रत्येक मामले के संदर्भ और तथ्यों-स्थिति और उसमें लागू सांविधिक नियमों की आवश्यकता के संदर्भ में समझा जाना चाहिए। तथापि, किसी दिए गए मामले में, यदि आरोप गंभीर प्रकृति के हैं और उन्हें दस्तावेजी तथा मौखिक साक्ष्य पर सिद्ध किया जाना है, तो इस कारण से पूर्ण जांच करना वांछनीय है कि केवल स्पष्टीकरण मांगने और उस पर विचार करने पर हटाने से कानून की आवश्यकता को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा जब तक कि तथ्यों को स्वीकार नहीं किया जाता है या नकारा नहीं जाता है। कोई स्ट्रेट-जैकेट फॉर्मूला निर्धारित करना संभव नहीं है कि किन मामलों में पूर्ण जांच की जानी है और किन मामलों में पदाधिकारियों को आरोपों का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने के लिए कहने पर हटाने की अनुमति है। यह किसी व्यक्तिगत मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा।

27. *संजीव अग्रवाल (सुप्रा) में, उमेश बैजल और दूसरा शमीम अहमद (डॉ) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य* 7 *में डिविजन बेंच के फैसले पर विचारोपरांत पीठ का फैसला निम्नानुसार समाप्त हुआ: –*

10. *इस प्रकार, हमारे विचार में, यह स्पष्ट है कि एक बार अध्यक्ष द्वारा आरोपों से इनकार करते हुए स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने के बाद, यह राज्य सरकार का दायित्व है कि वह हटाने का आदेश पारित करने से पहले "ऐसी जांच करे जो वह आवश्यक समझे"। "पूछताछ" शब्द जांच पर विचार करता है। इसलिए, जहां अध्यक्ष आरोपों से इनकार करते हैं और अपना स्पष्टीकरण देते हैं, राज्य सरकार को उनके स्पष्टीकरण पर विचार करना आवश्यक है। यदि राज्य सरकार अध्यक्ष द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण से संतुष्ट है, तो उस स्थिति में, कार्यवाही को समाप्त करने के परिणामी आदेश पारित करने के अलावा और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। तथापि, यदि राज्य सरकार स्पष्टीकरण से संतुष्ट नहीं है, तो उस स्थिति में राज्य सरकार को पूर्ण जांच करके मामले की जांच करनी होगी।*

28. *रवि यशवंत भोईर बनाम जिला कलेक्टर, रायगढ़ और अन्य मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने इस मुद्दे पर भी विचार किया कि क्या हटाने का आदेश पारित करते समय कारणों को दर्ज करना अनिवार्य है। सुप्रीम कोर्ट ने कृष्ण स्वामी बनाम भारत संघ* 8, *संत लाल गुप्ता बनाम मॉडर्न कॉप ग्रुप हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड के मामले में अपने पिछले फैसलों पर भरोसा किया।*

इसके बाद निम्नानुसार आयोजित करके निष्कर्ष निकाला गया: –

46. *कारण दर्ज करने पर जोर दिया जाता है कि यदि निर्णय 'स्फिंक्स के अस्पष्ट चेहरे' को प्रकट करता है, तो यह उसकी चुप्पी हो सकती है, जिससे अदालतों के लिए अपने अपीलीय कार्य को पूरा करना या निर्णय की वैधता का निर्धारण करने में न्यायिक समीक्षा की शक्ति का उपयोग करना लगभग असंभव हो जाता है। तर्क का अधिकार एक मजबूत न्यायिक प्रणाली का एक अनिवार्य हिस्सा है, कारण कम से कम अदालत के समक्ष प्राधिकरण के मस्तिष्क के प्रयोग को इंगित करने के लिए पर्याप्त हैं। एक और तर्क यह है कि प्रभावित पक्ष यह जान सकता है कि निर्णय उसके खिलाफ क्यों गया है। प्राकृतिक न्याय की एक हितकारी आवश्यकता यह है कि इस आदेश के कारणों का उल्लेख किया गया है। दूसरे शब्दों में, एक बोलने वाले व्यक्ति का अस्पष्ट चेहरा आमतौर पर न्यायिक या अर्ध-न्यायिक प्रदर्शन के साथ असंगत होता है।*

29. *उक्त निर्णय में कृष्ण स्वामी (सुप्रा) के उद्धरण पर भरोसा किया गया है, जो इस प्रकार है: –*

"*कारण सामग्री, उनके निर्माण की नींव और वास्तविक निष्कर्ष के बीच संबंध हैं। वे यह भी प्रदर्शित करेंगे कि निर्माता का मस्तिष्क कैसे सक्रिय था और उनके तर्कसंगत गठजोड़ और तथ्यों के साथ संश्लेषण और निष्कर्ष तक पहुंचे। ऐसा न हो कि यह मनमाना, अनुचित और अन्यायपूर्ण हो, अनुच्छेद* 14 *का उल्लंघन हो या अनुच्छेद* 21 *का उल्लंघन करने वाली अनुचित प्रक्रिया हो।*

30. *संत लाल गुप्त (सुप्रा) में, यह निम्नानुसार निर्धारित किया गया था: –*

"27. *यह एक स्थापित कानूनी प्रस्ताव है कि न केवल प्रशासनिक बल्कि न्यायिक आदेश को भी इसमें दर्ज कारणों द्वारा समर्थित किया जाना चाहिए। इस प्रकार, किसी मुद्दे पर निर्णय लेते समय, न्यायालय अपने निष्कर्ष के लिए कारण देने के लिए बाध्य है। यह न्यायालय का कर्तव्य और दायित्व है कि वह मामले का निपटान करते समय कारणों को दर्ज करे। न्यायिक मंच द्वारा आदेश और न्यायिक शक्ति के प्रयोग की पहचान यह है कि मंच स्वयं अपने कारणों का खुलासा करे और न्याय प्रदान करने की प्रणाली के ठोस प्रशासन के मूल सिद्धांतों में से एक के रूप में कारण बताने पर हमेशा जोर दिया गया है, ताकि यह पता चल सके कि न्यायालय के समक्ष इस मुद्दे पर उचित और सम्यक विचार किया गया था प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में भी।*

"3. *किसी निर्णय के लिए कारण बताना न्यायालयों के समक्ष किसी मामले के न्यायिक और विवेकपूर्ण निपटान की एक अनिवार्य विशेषता है, और जो किए गए कार्य के तरीके और गुणवत्ता के बारे में जानने का एकमात्र संकेत है, साथ ही यह तथ्य भी है कि संबंधित न्यायालय ने वास्तव में अपना दिमाग लगाया था।*

कारण हर निष्कर्ष की धड़कन है। यह एक आदेश में स्पष्टता का परिचय देता है और उसी के बिना, आदेश निर्जीव हो जाता है। कारण व्यक्तिपरकता को निष्पक्षता से

प्रतिस्थापित करते हैं। कारणों की अनुपस्थिति एक आदेश को असमर्थनीय / अस्थिर बना देती है, खासकर जब आदेश एक उच्च मंच के समक्ष आगे चुनौती के अधीन होता है। कारणों को दर्ज करना प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत है और प्रत्येक न्यायिक आदेश को लिखित में दर्ज किए गए कारणों द्वारा समर्थित किया जाना चाहिए। यह निर्णय लेने में पारदर्शिता और निष्पक्षता सुनिश्चित करता है। जो व्यक्ति प्रतिकूल रूप से प्रभावित है, उसे पता होना चाहिए कि उसका आवेदन क्यों खारिज कर दिया गया है।'

31. इस प्रकार सुसंगत न्यायिक राय यह है कि लिखित में कारणों की रिकॉर्डिंग न केवल प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की विशेषता है, बल्कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में पारदर्शिता और निष्पक्षता का सार भी है। इसे शक्ति के ठोस और वस्तुनिष्ठ प्रयोग की पहचान माना गया है। बिना किसी कारण के आदेश संविधान के अनुच्छेद 14 *और* 21 *का उल्लंघन करता है।"*

प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर आते हुए, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, याचिकाकर्ता ने दो बार विस्तृत स्पष्टीकरण (दिनांक 02.05.2022 और 08.07.2022) प्रस्तुत किया था। अपने स्पष्टीकरण में, उन्होंने विशेष रूप से आरोपों से इनकार किया है। आरोप गंभीर प्रकृति के हैं और विवादित तथ्यों के साथ-साथ रिकॉर्ड पर आधारित हैं। हालांकि, प्रतिवादी संख्या 1 ने दिए गए स्पष्टीकरण और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के आलोक में स्वतंत्र रूप से इन मुद्दों की जांच करने के बजाय, जिला मजिस्ट्रेट की दिनांक 19.09.2022 की रिपोर्ट (अपने आदेश के पैराग्राफ 6 में) से उद्धृत किया और उसके बाद अचानक यह निष्कर्ष निकाला गया कि आरोप साबित हुए हैं और तदनुसार, उसे हटा दिया गया है। मस्तिष्क का कोई स्वतंत्र अनुप्रयोग नहीं है।

शैला ताहिर (सुप्रा), में हमने माना है कि आरोपित व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत उत्तर के जवाब में राज्य सरकार द्वारा मांगी गई जिला मजिस्ट्रेट की रिपोर्ट केवल एक राय है जिस पर राज्य सरकार द्वारा आरोपित व्यक्ति के बचाव और साक्ष्य के साथ विचार किया जा सकता था। यह अधिनियम की धारा 48 (2-ए) के मद्देनजर अध्यक्ष को हटाने का आदेश पारित करते समय राज्य सरकार द्वारा पूर्ण जांच करने और कारणों को दर्ज करने की वैधानिक आवश्यकता का अंतिम शब्द नहीं है और न ही विकल्प है। हाल ही में दिए गए निर्णय में कानून की व्याख्या के बावजूद, राज्य सरकार ने तत्काल आदेश पारित करते समय गलतियों को बहुत लापरवाह तरीके से दोहराया है।

यहां तक कि जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ नंबर 19 में ली गई दलील कि याचिकाकर्ता ने जिला मजिस्ट्रेट की दिनांक 19.09.2022 की रिपोर्ट नहीं मांगी थी, परिणामस्वरूप, यह उसे प्रदान नहीं की गई थी, स्वीकृति के योग्य नहीं है, सबसे पहले, इस कारण से कि यह राज्य सरकार का दायित्व था कि वह याचिकाकर्ता को उक्त रिपोर्ट प्रदान करे यदि वह उसी पर भरोसा करने का इरादा रखती है। और दूसरा, क्योंकि याचिकाकर्ता ने विशेष रूप से सुनवाई के लिए निर्धारित तारीख 26.09.2022 को उनके द्वारा प्रस्तुत लिखित विवरण में उक्त रिपोर्ट की एक प्रति मांगी थी।

चूंकि राज्य सरकार ने अपने स्वतंत्र मस्तिष्क का उपयोग किए बिना, जिला मजिस्ट्रेट की रिपोर्ट दिनाँक 19.09.2022 का केवल समर्थन किया है, इसलिए आक्षेपित आदेश दिनांक 10.10.2022 को कानून में अमान्य माना जाता है।

तदनुसार, हम दिनांक 10.10.2022 के आक्षेपित आदेश को रद्द करते हैं, जिससे राज्य सरकार को कानून के अनुसार एक नया आदेश पारित करने का विकल्प खुला छोड़ दिया जाता है।

निष्कासन आदेश को रद्द किए जाने के परिणामस्वरूप, यह आगे प्रावधान किया गया है कि प्रतिवादी कानून के अनुसार नगर पालिका परिषद, मुजफ्फर नगर के अध्यक्ष के रूप में याचिकाकर्ता के कामकाज में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

रिट याचिका को ऊपर उल्लिखित सीमा तक अनुमति दी जाती है।

(2023) 1 ILRA 426

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 05.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा
माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार

रिट-ए संख्या 47/2023

बाबू राम एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

यूपी राज्य एवं अन्य ...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री शिव नाथ गोस्वामी, श्री संतोष कुमार रमाकांत उपाध्याय

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता:

सी.एस.सी., श्री शिखर आनंद

क. सेवा कानून - चयन ग्रेड वेतन - समान स्थिति वाले कर्मचारियों को चयन ग्रेड प्रदान किया गया - दिनांक 17.10.1985 के शासनादेश का लाभ दावा किया गया - प्राधिकरण से संपर्क करने में 32 साल की देरी हुई - प्रभाव – अवधारित किया गया कि यदि प्रत्यर्थियों ने याचिकाकर्ताओं के दावे पर कोई ध्यान नहीं दिया, तो उन्हें उचित आवेदन/अभ्यावेदन देकर या अदालत का दरवाजा खटखटाकर इस मुद्दे पर तुरंत चर्चा करनी चाहिए थी, लेकिन लगभग 32 वर्षों की अवधि के बाद संबंधित प्राधिकारी के पास 01.07.1982 से चयन ग्रेड की मांग करना, न्यायिक जांच में टिक नहीं सकता। (पैरा 13)

रिट याचिका खारिज।(ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. सी. जैकब बनाम डायरेक्टर ऑफ जिओलॉजी एण्ड माइनिंग एवं अन्य; (2008) 10 एससीसी 115

(माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा द्वारा प्रदत्त)

1. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत तत्काल रिट याचिका याचिकाकर्ताओं, बाबू राम, अतर सिंह, जुगलाल, साधु राम, राम सिंह, रविदत्त और फूल सिंह द्वारा राज्य लोक सेवा न्यायाधिकरण द्वारा दावा याचिका संख्या 24/2019: बाबू राम और 13 अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 25.01.2021 के साथ-साथ राज्य लोक सेवा न्यायाधिकरण द्वारा समीक्षा याचिका संख्या 15/2021 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 28.09.2022 को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिससे न्यायाधिकरण ने दावा याचिका के साथ-साथ समीक्षा याचिका भी खारिज कर दी।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री शिव नाथ गोस्वामी ने एक बीमारी पर्ची भेजी है। ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के रूप में श्री शिव नाथ गोस्वामी, अधिवक्ता के साथ-साथ श्री संतोष कुमार और रमाकांत उपाध्याय का नाम भी वाद सूची में दिखाया गया है, लेकिन न तो वे उपस्थित हैं और न ही मामले को पारित करने या स्थगित करने का कोई अनुरोध किया गया है। इन पृष्ठभूमियों में, हम विद्वान स्थायी अधिवक्ता की सहायता से मामले की सुनवाई के लिए आगे बढ़ते हैं।

3. राज्य/प्रतिवादी संख्या 1 से 4 के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री अनिल कुमार सिंह बिसेन को सुना और आक्षेपित निर्णयों के साथ-साथ रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री का अवलोकन किया।

4. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह है कि याचिकाकर्ताओं को क्रमशः 18.09.2067, 09.06.1973, 25.07.1962, 28.09.1971, 22.09.1978, 29.03.1971, 18.06.1971 को स्वास्थ्य विभाग में वैक्सीनेटर के पद पर नियुक्त किया गया था। याचिकाकर्ता संख्या 1, 2, 3, 4, 6 और 7 क्रमशः 30.09.2004, 31.07.2010, 31.01.1996, 30.09.2011 और 31.07.2012 को स्वास्थ्य निरीक्षक के पद से सेवानिवृत्त हुए थे, जबकि याचिकाकर्ता संख्या 5-राम सिंह अभी भी सेवा में बने हुए हैं।

5. याचिकाकर्ताओं के मुताबिक, उत्तर प्रदेश सरकार ने उन कर्मचारियों को चयन ग्रेड देने के संबंध में दिनांक 04.02.1983 को एक शासनादेश जारी किया था, जिन्होंने अपनी 10 वर्ष की संतोषजनक सेवाएँ पूरी कर ली हैं, लेकिन याचिकाकर्ताओं को 10 वर्ष की संतोषजनक सेवाएँ पूरी करने के बाद भी चयन ग्रेड नहीं दिया गया क्योंकि उन्हें पहले से ही उच्च वेतनमान प्राप्त था। इसके बाद, यूपी सरकार ने 17.10.1985 को एक और शासनादेश जारी किया था, जिसके द्वारा उन कर्मचारियों को चयन ग्रेड का लाभ दिया गया था, जिन्हें दिनांक 01.07.1982 से पहले उच्च वेतनमान दिया गया था परन्तु याचिकाकर्ताओं को उक्त शासनादेश दिनांक 17.10.1985 का भी लाभ नहीं दिया गया।

6. रिट याचिका में यह कहा गया है कि समान स्थिति वाले कई व्यक्तियों ने 01.07.1982 से चयन ग्रेड का दावा करते हुए ट्रिब्यूनल के समक्ष दावा याचिका दायर किया है, जिसकी अनुमति दी गई थी और उन्हें ट्रिब्यूनल द्वारा पारित निर्णय और आदेश के अनुपालन में 01.07.1982 से चयन ग्रेड प्रदान किया गया है, लेकिन याचिकाकर्ताओं को दिनांक 01.07.1982 से चयन ग्रेड नहीं दिया गया और इस तरह, उन्होंने संबंधित प्राधिकारी को 03.04.2017 को एक संयुक्त अभ्यावेदन दिया, लेकिन जब कोई ध्यान नहीं दिया गया, तो याचिकाकर्ताओं ने ट्रिब्यूनल के समक्ष दावा याचिका संख्या 1613/2018 दायर किया, जिसे निर्णय एवं आदेश दिनांक 11.09.2018 द्वारा निस्तारित करते हुए याचिकाकर्ताओं के अभ्यावेदन दिनांक 03.04.2017 को तीन माह के भीतर निर्णय लेने का निर्देश दिया गया।

7. उपरोक्त आदेश दिनांक 11.09.2018 के अनुपालन में, याचिकाकर्ताओं के दिनांक 03.04.2017 के अभ्यावेदन पर संबंधित प्राधिकारी द्वारा विचार किया गया और उसे

दिनांक 18.12.2018 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया, जिसे याचिकाकर्ताओं ने दावा याचिका संख्या 24/2019 में ट्रिब्यूनल के समक्ष चुनौती दी थी। ट्रिब्यूनल ने पक्षों को सुनने और रिकॉर्ड देखने के बाद राय दी कि याचिकाकर्ताओं ने 32 साल बाद चयन ग्रेड का दावा करते हुए अभ्यावेदन दायर किया है और 01.07.1982 से चयन ग्रेड देने का मुद्दा उठाने वाली आगे की दावा याचिका भी सीमा से वर्जित है और यह विचारणीय नहीं है, इसलिए दिनांक 25.01.2021 के निर्णय और आदेश द्वारा दावा याचिका खारिज कर दी गई। दिनांक 25.01.2021 के निर्णय और आदेश से संतुष्ट नहीं होने पर, याचिकाकर्ताओं ने न्यायाधिकरण के समक्ष समीक्षा याचिका संख्या 15/2021 दायर किया है, जिसे न्यायाधिकरण ने दिनांक 28.09.2022 के निर्णय और आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया था।

8. न्यायाधिकरण द्वारा पारित उपरोक्त आदेश दिनांक 25.01.2021 और 28.09.2022 से व्यथित होकर, याचिकाकर्ताओं द्वारा तत्काल रिट याचिका दायर की गई है।

9. सी. जैकब बनाम डायरेक्टर ऑफ जिओलॉजी एण्ड माइनिंग और अन्य: (2008) 10 एससीसी 115, मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लेते हुए विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ताओं द्वारा अपनी शिकायतों के निवारण के लिए प्रत्यर्थियों के पास बार-बार संपर्क करने से खामियों की व्याख्या नहीं की जा सकती है, क्योंकि ऐसे किसी भी आदेश को जिसे याचिकाकर्ताओं द्वारा चुनौती देने की मांग की गई थी, उसे उचित समय के भीतर चुनौती दी जानी चाहिए थी। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि सी. जैकब (उपरोक्त) मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने कर्मचारियों द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन के तौर-तरीकों पर विचार करने के बाद माना है कि बार-बार अभ्यावेदन एक पुराने दावे को पुनर्जीवित नहीं करेगा। इसलिए, ट्रिब्यूनल ने याचिकाकर्ताओं द्वारा लगाए गए आदेशों के माध्यम से दावा याचिका के साथ-साथ समीक्षा याचिका को भी खारिज कर दिया है।

10. हमने विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा दी गई दलील की जांच की है और आक्षेपित निर्णयों के साथ-साथ रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री का अवलोकन किया है।

11. याचिका में आधार यह है कि समान स्थिति वाले व्यक्तियों को दावा याचिका में पारित ट्रिब्यूनल के आदेश के अनुपालन में चयन ग्रेड प्रदान किया गया था, लेकिन याचिकाकर्ता के दावे को संबंधित प्राधिकारी ने दिनांक 18.12.2018 के आदेश के तहत खारिज कर दिया था, जिसे दावा याचिका संख्या 24/2019 दायर करके ट्रिब्यूनल के समक्ष चुनौती दी गई थी, लेकिन ट्रिब्यूनल ने मामले की गुणवत्ता पर विचार किए बिना, याचिकाकर्ताओं के दावे को इस आधार पर आक्षेपित आदेशों के माध्यम से खारिज करने में गलती की है कि याचिकाकर्ताओं ने 32 साल बाद चयन ग्रेड देने के लिए अभ्यावेदन दिया है।

12. न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय से यह पता चलता है कि न्यायाधिकरण ने पक्षों को सुनने और रिकॉर्ड का अध्ययन करने के बाद तथ्यों की विशिष्ट निष्कर्ष दर्ज किया है कि जब राज्य सरकार द्वारा उच्च वेतनमान प्राप्त करने वाले कर्मचारियों को चयन ग्रेड देने का शासनादेश दिनांक 17.10.1985 जारी किया गया, तो याचिकाकर्ताओं ने उपरोक्त आदेश दिनांक 17.10.1985 का लाभ देने के लिए कोई अभ्यावेदन प्रस्तुत नहीं किया और शांत रहे। 32 वर्षों के बाद, याचिकाकर्ता गहरी नींद से जागे और दिनांक 03.04.2017 को एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया, जिसमें उन्हें शासनादेश दिनांक 17.10.1985 के आलोक में चयन ग्रेड देने का दावा किया गया। उक्त अभ्यावेदन को संबंधित प्राधिकारी ने दिनांक 18.12.2018 को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि याचिकाकर्ता चयन ग्रेड पाने के हकदार नहीं हैं। तदनुसार, दावा याचिका के साथ-साथ समीक्षा याचिका को ट्रिब्यूनल द्वारा आक्षेपित आदेशों के माध्यम से खारिज कर दिया गया था।

13. उचित विचार करने पर, हमारा विचार है कि यदि प्रत्यर्थियों ने याचिकाकर्ताओं के दावे पर कोई ध्यान नहीं दिया, तब, उन्हें उचित आवेदन/अभ्यावेदन दाखिल करके या कानून की अदालत से संपर्क करके इस मुद्दे पर तुरंत उठाना चाहिए था, लेकिन दिनांक 01.07.1982 से चयन ग्रेड की मांग करने के लिए लगभग 32 वर्षों की अवधि के बाद संबंधित प्राधिकारी के पास जाना, न्यायिक जांच में टिक नहीं सकता। ट्रिब्यूनल ने सी. जैकब (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया है। सुविधा के लिए, सी. जैकब (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय की प्रासंगिक टिप्पणियों को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"8. हम एक ऐसे कर्मचारी का काल्पनिक मामला लेते हैं जिसे वर्ष 1980 में सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। वह बर्खास्तगी को चुनौती नहीं देता है। लेकिन लगभग दो दशक बाद, मान लीजिए वर्ष 2000 में, उसने बर्खास्तगी को चुनौती देने का फैसला किया। उसे पता है कि ऐसी किसी भी चुनौती को देरी के आधार पर (यदि आवेदन ट्रिब्यूनल के समक्ष किया गया है) या देरी और अनुचित विलंब के आधार पर (यदि उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की गई है) खारिज कर दी जाएगी। इसलिए, बर्खास्तगी को चुनौती देने के बजाय, वह एक अभ्यावेदन देकर अनुरोध करता है कि उसे सेवा में वापस लिया जाए। आम तौर पर पुराने मामलों से संबंधित ऐसे अभ्यावेदनों का जवाब देने में काफी देरी होगी। इस स्थिति का लाभ उठाते हुए, पूर्व कर्मचारी ट्रिब्यूनल/उच्च न्यायालय के समक्ष एक आवेदन/रिट याचिका दायर करता है और नियोक्ता को

उसके प्रतिनिधित्व पर विचार करने और उसका निस्तारण करने का निर्देश देने की मांग करता है। ट्रिब्यूनल/उच्च न्यायालय नियमित रूप से ऐसे आवेदनों/याचिकाओं को (कई बार दूसरे पक्ष को नोटिस दिए बिना भी) अनुमति देते हैं या गुण-दोष के आधार पर मामले की जांच किए बिना, अभ्यावेदन पर विचार करने और उसका निपटान करने के निर्देश के साथ अनुमति देते हैं।

9. अदालतें/न्यायाधिकरण इस धारणा पर आगे बढ़ते हैं कि प्रत्येक नागरिक अपने प्रतिनिधित्व के उत्तर का हकदार है। दूसरे, वे मानते हैं कि केवल अभ्यावेदन पर विचार करने और उसका निस्तारण करने के निर्देश में पक्षकारों के अधिकारों और दायित्वों पर कोई 'निर्णय' शामिल नहीं है। उन्हें 'विचार' करने की ऐसी दिशा के परिणामों का बहुत कम एहसास होता है। यदि अभ्यावेदन पर विचार किया जाता है और स्वीकार कर लिया जाता है, तो पूर्व कर्मचारी को राहत मिलती है, जो उसे 'विचार' करने के निर्देश के कारण लंबी देरी के कारण नहीं मिलती। यदि अभ्यावेदन पर विचार किया जाता है और खारिज कर दिया जाता है, तो पूर्व कर्मचारी 1982 की कार्रवाई के मूल कारण के संदर्भ में नहीं, बल्कि 2000 में दिए गए अभ्यावेदन की अस्वीकृति को कार्रवाई का कारण मानकर एक आवेदन/रिट याचिका दायर करता है। अभ्यावेदन की अस्वीकृति को निरस्त करने तथा अभ्यावेदन में दावा की गई राहत प्रदान करने हेतु प्रार्थना की गई है। ट्रिब्यूनल/उच्च न्यायालय नियमित रूप से ऐसे आवेदनों/याचिकाओं पर विचार करते हैं और प्रतिनिधित्व से पहले होने वाली भारी देरी को नजरअंदाज करते हैं, और गुण-दोष के आधार पर दावे की जांच करते हैं और राहत देते हैं। इस तरीके से, सीमा की पट्टी या खाँचे ख़त्म हो जाते हैं या नज़रअंदाज हो जाते हैं।

10. राहत के लिए सरकार को दिए गए प्रत्येक अभ्यावेदन का उत्तर गुण-दोष के आधार पर नहीं दिया जा सकता है। ऐसे मामलों से संबंधित अभ्यावेदन जो पुराने हो गए हैं या सीमा के कारण वर्जित हैं, दावे के गुण-दोष की जांच किए बिना केवल उसी आधार पर खारिज किए जा सकते हैं। विभाग से असंबद्ध अभ्यावेदन के संबंध में, उत्तर केवल यह सूचित करने के लिए हो सकता है कि मामला विभाग से संबंधित नहीं है या उपयुक्त विभाग को सूचित करने के लिए हो सकता है। अपूर्ण विवरण वाले अभ्यावेदन का उत्तर प्रासंगिक विवरण मांगकर दिया जा सकता है। ऐसे अभ्यावेदन के उत्तर, कार्रवाई का नया कारण प्रस्तुत नहीं कर सकते या पुराने या पुराने दावे को पुनर्जीवित नहीं कर सकते।"

14. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, हमारा विचार है कि न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णयों में कोई अवैधता या कमी नहीं है।

15. तदनुसार, तत्काल रिट याचिका खारिज की जाती है।

(2023) 1 ILRA 429

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल साइड

दिनांकः इलाहाबाद 29.09.2022

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायाधीश राजेश बिंदल

माननीय न्यायमूर्ति विक्रम डी. चौहान

विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या - 253/2022

उ.प्र. राज्य और अन्य .... अपीलकर्ता

बनाम

रोहित भट्ट और अन्य ... .प्रत्यार्थि

अपीलकर्ताओं के लिए अधिवक्ता:
स्थायी अधिवक्ता श्री प्रणब कुमार गांगुली

प्रत्यार्थियों के अधिवक्ता :
श्री राम तिवारी

ए. सेवा कानून - प्राथमिक शिक्षक - चयन - भर्ती परीक्षा - न्यूनतम योग्यता का होना - प्रतिवादी-उम्मीदवार ने विधिवत बीटीसी पाठ्यक्रम उत्तीर्ण किया है - बीटीसी पाठ्यक्रम के परिणाम की तैयारी में अपीलकर्ता के आदेश पर गलती हुई थी - प्रभाव - माना गया, गलती के कारण, प्रतिवादी नंबर 1-याचिकाकर्ता को अपीलकर्ताओं द्वारा असफल घोषित कर दिया गया था। गलती अपीलकर्ताओं के लिए जिम्मेदार है और ऐसी गलती के लिए प्रतिवादी नंबर 1-याचिकाकर्ता को पीड़ित नहीं किया जा सकता है - प्रतिवादी नंबर 1 की मार्कशीट के सुधार में देरी - याचिकाकर्ता अपीलकर्ताओं के आदेश पर है - प्रतिवादी नंबर 1- प्राथमिक शिक्षक भर्ती परीक्षा, 2019 के लिए याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को गलत नहीं ठहराया जा सकता है। (पैरा 16 और 17)

विशेष अपील खारिज। (ई-1)

(माननीय मुख्य न्यायाधीश राजेश बिंदल
&
माननीय न्यायमूर्ति विक्रम डी. चौहान, द्वारा दिया गया।)

वर्तमान विशेष अपील अपीलकर्ताओं द्वारा सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 5910/2020 (रोहित भट्ट बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 8 सितंबर 2020, और सिविल प्रकीर्ण समीक्षा आवेदन संख्या 158/2021 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित 30 जुलाई 2021, के फैसले और आदेश को चुनौती देने के लिए दायर की गई है।

संक्षिप्त तथ्य यह है कि प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता ने जयमूर्ति कॉलेज नगला बॉल, सिरसागंज फिरोजाबाद, में बीटीसी प्रशिक्षण पाठ्यक्रम 2015 में प्रवेश प्राप्त किया था। प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता ने प्रथम छमाही की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके बाद प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता ने बीटीसी प्रशिक्षण पाठ्यक्रम (बैच 2015) की दूसरे छमाही की लिखित परीक्षा भी उत्तीर्ण की है और उसे 31 अगस्त 2017, को प्राथमिक विद्यालय चंदारी, विकास खंड मदनपुर, फिरोजाबाद में प्रशिक्षण के लिए भेजा गया था।

प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता 4 सितंबर 2017, को उपरोक्त कॉलेज में उपस्थित हुआ और 13 अक्टूबर 2017, को अपनी प्रशिक्षण पूरी की। प्रशिक्षण का परिणाम 13 अक्टूबर 2017, को घोषित किया गया और प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता ने 97/100 अंक प्राप्त किए। प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता ने 13 अक्टूबर 2017, को जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, फिरोजाबाद के कार्यालय में उपर्युक्त परिणाम प्रस्तुत किया और उसके बाद बीटीसी पाठ्यक्रम-2015 के दूसरे छमाही का परिणाम 21 मार्च 2018, को घोषित किया गया, जिसमें प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता को प्रशिक्षण में अनुपस्थिति के कारण असफल पाया गया।

इसके बाद, प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता को पूछताछ करने पर पता चला कि दूसरे छमाही की प्रशिक्षण के अंक प्राचार्य जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, फिरोजाबाद (अपीलकर्ता संख्या 4), के पास उपलब्ध नहीं थे हालांकि इसे 13 अक्टूबर 2017, को प्रस्तुत किया गया था। 19 सितंबर, 2018 को प्रत्यार्थि संख्या 1- याचिकाकर्ता ने सचिव, परीक्षा नियामक प्राधिकारी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद (अपीलकर्ता संख्या 2) के समक्ष दूसरे छमाही के प्रशिक्षण के परिणाम की प्रतिलिपि और अन्य दस्तावेजों के साथ एक आवेदन प्रस्तुत किया। हालाँकि, प्रतिवादी नंबर 1-याचिकाकर्ता के परिणाम को प्रतिवादी अधिकारियों द्वारा ठीक नहीं किया गया था।

प्राचार्य, जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, फिरोजाबाद (अपीलकर्ता संख्या 4) ने 28 अक्टूबर 2018 को सचिव, परीक्षा नियामक प्राधिकारी, इलाहाबाद उत्तर प्रदेश, (अपीलकर्ता संख्या 2) को एक पत्र जारी किया है और सूचित किया कि बीटीसी 2015 के दूसरे छमाही की प्रशिक्षण के प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता के अंक अंकपत्र में नहीं दिखाए गए हैं और दूसरे छमाही प्रशिक्षण के संबंध में प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता के अंकों को सही करने का अनुरोध किया गया है और प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता को सही अंकपत्र जारी करें।

इस बीच, अपीलकर्ताओं ने प्राथमिक शिक्षक भर्ती परीक्षा 2019, के लिए ऑनलाइन आवेदन दायर किया। ऑनलाइन आवेदन जमा करने की अंतिम तिथि 22 दिसंबर, 2018 थी। प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता ने प्राथमिक शिक्षक भर्ती परीक्षा 2019, के लिए आवेदन किया था।

सही अंकपत्र जारी करने में अपीलकर्ताओं की ओर से निष्क्रियता थी और इस प्रकार प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 89/2019 (रोहित भट्ट बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य) दायर की। रिट याचिका संख्या 89/2019 में अंतरिम उपाय के रूप में 4 जनवरी 2019, को एक आदेश पारित किया गया, जिसमें प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता को प्राथमिक शिक्षक भर्ती परीक्षा 2019 में अस्थायी रूप से उपस्थित होने की अनुमति दी गई।

इस न्यायालय द्वारा पारित उपर्युक्त आदेश दिनांक 4 जनवरी 2019, के अनुपालन में, प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता को 6 जनवरी 2019, को प्राथमिक शिक्षक भर्ती परीक्षा 2019, की परीक्षा में शामिल होने की अनुमति दी गई। उपरोक्त परीक्षा का परिणाम 12 मई 2020, को घोषित किया गया था जिसमें प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता का परिणाम इस न्यायालय के समक्ष उपर्युक्त रिट याचिका के लंबित होने के कारण नहीं दिखाया गया है।

इन परिस्थितियों में, प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या 5910/2020 दायर की है, जिसमें प्रत्यार्थियों को प्राथमिक शिक्षक भर्ती परीक्षा 2019 की परीक्षा के संबंध में प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता के परिणाम घोषित करने का आदेश देने की मांग की गई है। और यदि प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता उपरोक्त परीक्षा में सफल होता है, तो उसे उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षकों की चयन कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति दी जा सकती है।

इस बीच, अपीलकर्ताओं ने प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता को बीटीसी पाठ्यक्रम -2015 के संबंध में सही अंकपत्र जारी कर दी है, जिसमें प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता को उत्तीर्ण दिखाया गया है।

उपर्युक्त रिट याचिका संख्या 5910/2020 के साथ-साथ रिट याचिका संख्या 89/2019 पर अंततः आक्षेपित निर्णय द्वारा आदेश दिनांक 8 सितंबर 2020, निर्णय लिया गया और इस निर्देश के साथ कि चूंकि अंकपत्र जारी कर दी गई

है और प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता परीक्षा में उपस्थित हुआ है और परिणाम भी घोषित किया गया है, इसलिए घोषित परिणाम के संदर्भ में आगे कदम उठाए जाएंगे। आगे यह निर्देश दिया गया है कि प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता के संबंध में घोषित परिणाम के अनुसार कदम उठाए जाएंगे, अधिमानतः प्रत्यार्थि अपीलकर्ता संख्या -3 के समक्ष आवेदन दाखिल करने की तारीख से चार सप्ताह की अवधि के भीतर।

अपीलकर्ताओं की ओर से प्रस्तुत किया गया है कि प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता को दूसरे छमाही के संबंध में प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में असफल घोषित किया गया था और बीटीसी प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के चौथे छमाही का परिणाम 12 दिसंबर, 2018 को घोषित किया गया था और प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता के कुल छमाही का शुद्ध परिणाम अनुत्तीर्ण हुआ था और इस प्रकार यह तर्क दिया गया है कि प्राथमिक शिक्षक भर्ती परीक्षा 2019 के संबंध में ऑनलाइन आवेदन जमा करने की अंतिम तिथि पर, प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता के पास संबंधित नियम के तहत निर्धारित न्यूनतम योग्यता नहीं थी। अपीलकर्ताओं की ओर से यह भी प्रस्तुत किया गया है कि प्रत्यार्थि ने ऑनलाइन फॉर्म जमा करते समय बीटीसी प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के परिणाम के संबंध में गलत घोषणा प्रस्तुत की है।

प्रत्यार्थि संख्या 1 की ओर से यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ताओं द्वारा प्रशिक्षण के अंक घोषित नहीं किए गए थे, इस तथ्य के बावजूद कि प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता ने दूसरे छमाही के लिए प्रशिक्षण सफलतापूर्वक पूरी कर ली थी और अंक संबंधित प्राधिकारी को विधिवत भेज दिए गए थे। यह प्रस्तुत किया गया है कि दूसरे छमाही की प्रशिक्षण में अंकों पर विचार न करने की गलती अपीलकर्ताओं के आदेश पर हुई है जिसके लिए प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है और बाद में प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता को जारी की जाने वाली ऐसी कोई भी संशोधित अंकपत्र परिणाम की तारीख से संबंधित होगी।

बीटीसी परीक्षा का परिणाम 21 मार्च 2018 को घोषित किया गया था जिसमें प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता को दूसरे छमाही की प्रशिक्षण में अनुपस्थिति के कारण असफल दिखाया गया था, इस तथ्य के बावजूद कि प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता ने सफलतापूर्वक प्रशिक्षण पूरी कर ली थी और अंक भी 13 अक्टूबर, 2017 को जमा किए गए थे। इसके बाद प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता ने बीटीसी पाठ्यक्रम में दूसरे छमाही की प्रशिक्षण के संबंध में प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता के अंक दिखाकर सही अंकपत्र जारी करने के लिए संबंधित प्राधिकारी के समक्ष आवेदन किया था। पक्षों के बीच यह विवाद नहीं है कि प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता ने बीटीसी पाठ्यक्रम उत्तीर्ण किया होगा यदि प्रशिक्षण के उपरोक्त अंक संबंधित प्राधिकारी द्वारा तैयार किए गए परिणाम में शामिल किए गए होंगे।

बीटीसी पाठ्यक्रम का परिणाम तैयार करने में गलती अपीलकर्ता के आदेश पर हुई थी। हालांकि प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता ने बीटीसी पाठ्यक्रम के दूसरे छमाही में प्रशिक्षण सफलतापूर्वक पूरी कर ली थी और उसके बाद शेष छमाही को सफलतापूर्वक पूरा कर लिया है, जब बीटीसी पाठ्यक्रम का परिणाम घोषित किया गया, तो प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता को दूसरे छमाही में प्रशिक्षण में प्राप्त अंकों पर विचार न करने के कारण केवल अनुत्तीर्ण दिखाया गया था। 28 अक्टूबर 2018 को प्राचार्य, जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, फिरोजाबाद ने परीक्षा नियामक प्राधिकारी, उत्तर प्रदेश को एक पत्र लिखा है। दूसरे छमाही में पूरी की गई प्रशिक्षण में प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता द्वारा पहले से प्राप्त अंकों को शामिल करके सही अंकपत्र जारी करने के लिए इलाहाबाद (अपीलकर्ता संख्या 2)।

अपीलकर्ताओं का मामला यह नहीं है कि किसी धोखाधड़ी या गलत बयानी के कारण, प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता ने प्राथमिक शिक्षक भर्ती परीक्षा, 2015 में पात्रता योग्यता का दावा किया है। अपीलकर्ताओं द्वारा दूसरे छमाही के प्रशिक्षण के अंकों पर विचार न करने की गलती को प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता द्वारा तुरंत जांच निकाय के ध्यान में लाया गया।

यह भी विवाद में नहीं है कि कट ऑफ तिथि के बाद प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता की अंकपत्र को अपीलकर्ताओं द्वारा सही कर दिया गया है, जिससे पहले की अंकपत्र जारी करने में गलती स्वीकार कर ली गई है। प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता ने कट ऑफ डेट से पहले बीटीसी पाठ्यक्रम विधिवत उत्तीर्ण किया था, हालांकि, गलती के कारण, प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता को अपीलकर्ताओं द्वारा असफल घोषित कर दिया गया था। गलती अपीलकर्ताओं के लिए जिम्मेदार है और ऐसी गलती के लिए प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता को पीड़ित नहीं किया जा सकता है।

अपीलकर्ताओं ने प्रस्तुत किया है कि प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता ने प्राथमिक शिक्षक भर्ती परीक्षा, 2019 के लिए आवेदन पत्र में गलत घोषणा दाखिल की थी क्योंकि कट ऑफ तिथि पर प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता के पास उपरोक्त परीक्षा में आवेदन करने के लिए निर्धारित योग्यता नहीं थी। इस संबंध में, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि कट ऑफ डेट से पहले प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता के बीटीसी पाठ्यक्रम 2015 के परिणाम में गलती/त्रुटि को प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता द्वारा अपीलकर्ताओं के ध्यान में लाया गया था। अपीलकर्ता संख्या 4 ने 28 अक्टूबर 2018 को अपने संचार द्वारा उपरोक्त गलती को स्वीकार

किया है और सही अंकपत्र जारी करने के लिए अपीलकर्ता संख्या 2 को सिफारिश की है। प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता की अंकपत्र में सुधार में देरी अपीलकर्ताओं के आदेश पर है और प्रत्यार्थि संख्या -1याचिकाकर्ता की गलती के बिना, प्राथमिक शिक्षक भर्ती परीक्षा, 2019 के लिए प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को गलत नहीं ठहराया जा सकता है। एक बार प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता ने प्रासंगिक तिथि पर बीटीसी पाठ्यक्रम विधिवत उत्तीर्ण कर लिया है। अपीलकर्ताओं को अपनी गलती का लाभ उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती और बाद में उन्होंने प्राथमिक शिक्षक भर्ती परीक्षा 2019 के लिए प्रत्यार्थि संख्या -1 याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी पर आपत्ति जताई।

परिणामस्वरूप, हमें आक्षेपित निर्णय और विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में कोई त्रुटि नहीं मिली और इस प्रकार वर्तमान विशेष अपील में योग्यता नहीं है और इसे खारिज किया जाता है।

(2023) 1 ILRA 433
अपील न्यायिक क्षेत्र
सिविल पक्ष
दिनांक: लखनऊ 09.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा
माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह,

विशेष अपील संख्या 467 /2022
एवं
विशेष अपील संख्या 464 /2022
और
विशेष अपील संख्या 465/2022
और
विशेष अपील संख्या 466/2022

उत्तर प्रदेश अधीनस्थ सेवाएँ चयन आयोग लखनऊ ...अपीलकर्ता

बनाम

पूनम द्विवेदी ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता:
श्री गौरव मेहरोत्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री आलोक मिश्रा, श्री अभय प्रताप सिंह, सी.एस.सी., प्रियंका सिंह

ए. सेवा कानून – यू.पी. लोक सेवा (आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 2020 - स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं (महिला) का पद आर्थिक कमजोर वर्ग (ईडब्ल्यूएस) खंड के तहत चयन आरक्षण दावा किया गया – आय प्रमाण पत्र विज्ञापन जारी होने की तिथि से पूर्व जारी किया गया था - प्रासंगिकता – याचिकाकर्ताओं को सामान्य श्रेणी के तहत माना गया था – वैधता को चुनौती दी गई - आयोजित– अपीलकर्ताओं की कार्रवाई ने प्रमाणपत्रों की अनदेखी की और रिट याचिकाकर्ताओं के मामले को खुली श्रेणी में माना, जिसमें उन्होंने खुली श्रेणी के लिए कट-ऑफ नहीं बनाया था, जिसे गलत नहीं ठहराया जा सकता है। (पैरा 38)

बी. प्रक्रिया कानून - अंतिम चयनित उम्मीदवार को पक्षकार नहीं बनाना - रिट याचिका में दायर प्रति शपथपत्र में आपत्ति उठाई गई – हालांकि, दोषों को ठीक करने का कोई प्रयास नहीं किया गया - प्रभाव - आयोजित, रिट याचिकाकर्ताओं ने स्वतंत्र श्रेणी के अंतिम चयनित उम्मीदवारों को पक्षकार नहीं बनाया, इसके बजाय कुछ बेतरतीब ढंग से चयनित उम्मीदवारों को पक्षकार बनाया गया है, इससे स्वतंत्र श्रेणी के अंतिम नियुक्त उम्मीदवारों को पक्षकार न बनाने का दोष ठीक नहीं होगा - रंजन कुमार पर भरोसा किया गया। (पैरा 36 और 40)

विशेष अपील की अनुमति दी गई और रिट याचिका निरस्त कर दी गई। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद की सूची:</u>

1. विशेष अनुमति याचिका संख्या 9040/2020; किमी. लक्ष्मी सरोज एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य निर्णित दिनांक 15.12.2022
2. रंजन कुमार एवं अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य; 2014 (16) एससीसी 187
3. विजय कुमार कौल और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य.; 2012 (7) एससीसी 610

(माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा,
एवं
माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह द्वारा प्रदत्त)

1. यह चार विशेष अपीलों का एक समूह है जो रिट याचिका संख्या (रिट-ए) 5392 / 2022 (पूनम द्विवेदी बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य); रिट याचिका संख्या (रिट-ए) 6974/2022 (दिव्या अवस्थी बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य); याचिका संख्या (रिट-ए) 6911/ 2022 (अर्चना सक्सेना

बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य); याचिका संख्या (रिट-ए) 5264/2022 (कोमल बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य) एवं रिट याचिका संख्या 6357/2022 (शानू तिवारी बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य) एवं साथ ही रिट याचिका संख्या 2109 /2022 (ठाकुरा देवी एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य)। में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांकित 19.10.2022 के एक ही निर्णय एवं आदेश से उत्पन्न हुआ है। चूंकि सभी चार अपीलों में तथ्य एवं विधि का बिंदु एक ही है अतः उनका निस्तारण इस निर्णय द्वारा किया जा रहा है।

2. वर्तमान अपीलों में सम्मिलित विवाद के अधिमूल्यन हेतु अपीलों से जुड़े कुछ तथ्यों पर आगे ध्यान दिया जा रहा है। सुविधा हेतु विशेष अपील संख्या 467/2022 से तथ्यों को नोट किया जा रहा है। हालांकि, जहाँ भी आवश्यक होगा, प्रतिस्पर्धी प्रतिवादीगण/ रिट याचिकाकर्ताओं से संबंधित आंकड़ों एवं तारीखों को उचित स्थान पर नोट किया जाएगा।

3. उ.प्र. अधीनस्थ सेवा चयन आयोग ने स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं (महिला) के 9212 पदों को भरने हेतु दिनांक15.12.2021 को विज्ञापन जारी किया था। आवेदन पत्र जमा करने की अंतिम तिथि 05.01.2022 थी। उक्त विज्ञापन के अनुसरण में, मुख्य लिखित परीक्षा दिनांक 08.05.2022 को आयोजित की गई थी जिसमें सभी याचिकाकर्ता उपस्थित हुए थे। परिणाम दिनांक 26.05.2022 को घोषित किया गया एवं सभी याचिकाकर्ताओं को मुख्य परीक्षाओं में सफल घोषित किया गया एवं फिर उन्हें अगले स्तर की परीक्षा में उपस्थित होना पड़ा जो दिनांक 09.06.2022 से 18.06.2022 के बीच आयोजित की गई थी एवं पात्रता दस्तावेजों के सत्यापन के पश्चात, अंतिम परिणाम दिनांक 06.08.2022 को घोषित किए गए, जहां रिट न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ताओं के नामों का उल्लेख नहीं था, एवं उपरोक्त पृष्ठभूमि में रिट याचिकाएं प्रस्तुत की गईं।

4. रिट न्यायालय के समक्ष उठाया गया मुद्दा यह था कि रिट न्यायालय के समक्ष समस्त रिट याचिकाकर्ता आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के अन्तर्गत आरक्षण के लाभ का दावा कर रहे थे।

5. न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ताओं का यह विशिष्ट वाद रहा है कि उन सभी के पास अपेक्षित आय प्रमाण पत्र है जो स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि वे आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग हेतु आरक्षण के पात्रता मानदंड के अंतर्गत थे एवं आयोग ने निरंकुश तरीके से उक्त प्रमाणपत्रों की अनदेखी की थी।

6. उपरोक्त के आलोक में रिट याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रार्थना की गई थी कि दिनांक 06.08.2022 को बनाई गई अंतिम चयन सूची को अपास्त कर दिया जाए एवं यह निदेश देने हेतु भी प्रार्थना की गई कि उक्त चयन सूची को उन याचिकाकर्ताओं के मामले पर विचार करने से पूर्व, आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के अन्तर्गत आरक्षण का लाभ दिए जाने के पात्र थे, अमल में न लाया जाए।

7. उ.प्र. अधीनस्थ सेवा चयन आयोग ने एक प्रति शपथपत्र प्रस्तुत करके रिट याचिकाकर्ताओं के दावे को रिट न्यायालय के समक्ष प्रतिवाद किया एवं यह अभिवचन प्रस्तुत कि रिट याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रमाण पत्र विज्ञापन के अनुरूप नहीं था एवं दोषपूर्ण था।

8. यह अभिवचन भी किया गया कि ई डब्लू एस प्रमाणपत्र न तो उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा जारी प्रारूप के अनुरूप था, जो दिनांक 18.02.2019 एवं 14.03.2019 के शासनादेशों के अनुक्रम में था एवं उक्त ई डब्लू एस प्रमाणपत्र प्रश्नगत वित्तीय वर्ष से संबंधित नहीं था। अतः इसे विचार किए जाने हेतु उपयुक्त नहीं पाया गया। यह भी प्रार्थना की गई कि चूँकि रिट याचिकाकर्ताओं का प्रमाणपत्र वैध नहीं पाया गया, परिणामस्वरूप, उन्हें खुली श्रेणी में माना गया एवं चूंकि वे खुली श्रेणी में कट-ऑफ के मानक को पूरा नहीं कर पाये, अतः उनके नामों को चयन सूची में स्थान प्राप्त नहीं हुआ। यह भी आग्रह किया गया कि रिट याचिकाएं आवश्यक पक्षों को सम्मिलित न किये जाने के कारण अनुपयुक्त थीं क्योंकि जिन व्यक्तियों का चयन किया गया है उन्हें पक्षकार नहीं बनाया गया था एवं याचिकाएँ उपरोक्त आधार पर दोषपूर्ण भी थीं।

9. रिट न्यायालय ने संबंधित तर्कों एवं अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर ध्यान देते हुए माना कि चूँकि उम्मीदवार एवं उसके परिवार के सदस्यों की आय का विवरण सक्षम प्राधिकारी द्वारा भरा गया था, विज्ञापन अस्पष्ट था एवं शासनादेश दिनांक 14.03.2019 के साथ विज्ञापन तथा विज्ञापन दोनों में ही में 'वित्तीय वर्ष' शब्द का उल्लेख नहीं किया गया था एवं 'पूर्व वर्ष' शब्दों का प्रयोग किया गया था, अतः पिछले वर्ष को सामन्यतः कैलेंडर वर्ष माना जाएगा एवं पाया गया कि कुछ भ्रम था। उपरोक्त पर विचार करते हुए, रिट याचिकाओं को आंशिक रूप से स्वीकृत किया गया एवं रिट न्यायालय ने संबंधित तहसीलदार को निदेश दिया कि वह रिट याचिकाकर्ताओं को उम्मीदवारों की आय का सही संकेत देते हुए नए प्रमाण पत्र जारी करें, एवं उक्त प्रमाण पत्र 2021-22 की अवधि हेतु जारी किए जाएंगे, तथा वित्तीय वर्ष 2021 से संबंधित दस्तावेज सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी किए जाएंगे। उक्त कार्य को दो सप्ताह की अवधि में इस निर्देश के साथ पूरा किया जाना आवश्यक था कि नए प्रमाणपत्र प्राप्त करने के

पश्चात उन्हें उ.प्र. अधीनस्थ सेवा चयन आयोग के समक्ष एक सप्ताह में प्रस्तुत किया जाना था। तत्पश्चात आयोग को अंतिम परिणाम को अंतिम रूप देने/ नियुक्ति पत्र जारी करने से पूर्व रिट-याचिकाकर्ताओं की मेरिट के आधार पर उनकी अभ्यर्थिता पर विचार करना अपेक्षित था। राज्य सरकार को मामले में देखने एवं ई डब्लू एस प्रमाणपत्रों की सामग्री के संबंध में आवश्यक स्पष्टीकरण जारी करने एवं सक्षम अधिकारियों को इसे भरने का निर्देश देने हेतु एक और निदेश जारी किया गया क्योंकि यह त्रुटिपूर्ण जारी किया गया है जो उम्मीदवारों को प्रभावित करता है।

10. प्रश्नगत निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर निम्नवत हैं:-
"18. उपरोक्त के दृष्टिगत, यह निदेशित किया जाता है कि संबंधित तहसीलदार, जो एक सक्षम प्राधिकारी है एवं जिसने याचिकाकर्ताओं को ई डब्लू एस प्रमाणपत्र जारी किया है, उम्मीदवार एवं उसके परिवार के सदस्यों की आय, उक्त आय को उचित रीति से दर्शाते हुए नया प्रमाण पत्र जारी करेगा। प्रमाण पत्र 2021-22 की अवधि हेतु जारी किया जाएगा एवं वित्तीय वर्ष 2020-2021 से संबंधित दस्तावेज सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी किए जाएंगे।
19. सक्षम प्राधिकारी के समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से दो सप्ताह की अवधि के भीतर उपरोक्त प्रक्रिया पूरी की जाए, एवं उपरोक्त टिप्पणियों के आलोक में नवीन प्रमाण पत्र जारी किया जाएगा एवं इसके जारी होने के एक सप्ताह की अवधि में उ.प्र. अधीनस्थ सेवा चयन आयोग के समक्षप्रस्तुत किया जाएगा। ऐसा प्रमाण पत्र प्राप्त होने पर आयोग अंतिम परिणाम को अंतिम रूप देने/ नियुक्ति पत्र जारी करने से पूर्व याचिकाकर्ताओं की योग्यता के आधार पर उनकी अभ्यार्थिता पर विचार करने हेतु कार्यवाही करेगा।
20. मामले के समापन से पूर्व इस न्यायालय का मत है कि राज्य सरकार को भी इस मामले को देखना चाहिए एवं ई डब्लू एस प्रमाणपत्र की सामग्री के संबंध में आवश्यक स्पष्टीकरण जारी करना चाहिए तथा सक्षम अधिकारियों को इसे विधिक एवं उचित रीति से भरने का निर्देश देना चाहिए क्योंकि इसके त्रुटिपूर्ण रीति से जारी होने से निर्दोष उम्मीदवारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, जो सक्षम प्राधिकारी के विवेक पर भरोसा करते हैं एवं मानते हैं कि जारी किया गया प्रमाणपत्र मान्य, दोष-रहित एवं विधि के अनुरूप है।"

11. उपरोक्त निर्णय एवं आदेश दिनांक 19.10.2022 के विरूद्ध उ.प्र. अधीनस्थ सेवा चयन आयोग ने उपरोक्त चार अपीलों द्वारा उक्त निर्णय को चुनौती दी जो इस एक ही निर्णय द्वारा निर्णीत की जा रही हैं।

12. हमने अपीलकर्ता उ.प्र. अधीनस्थ सेवा चयन आयोग के विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव मेहरोत्रा, विशेष अपील संख्या 467/2022 में प्रतिवादी संख्या-1, पूनम द्विवेदी हेतु विद्वान अधिवक्ता श्री आलोक मिश्रा; विशेष अपील संख्या 465/2022 में प्रतिवादी संख्या-1 हेतु विद्वान अधिवक्ता श्री संदीप कुमार श्रीवास्तव; विशेष अपील संख्या 464/2022 में प्रतिवादी संख्या- 1, सुश्री कोमल हेतु विद्वान अधिवक्ता श्री शोभ नाथ पांडे ; एवं विशेष अपील संख्या 466/ 2022 में प्रतिवादी संख्या- 1, श्री शानू तिवारी हेतु विद्वान अधिवक्ता श्री दुर्गा प्रसाद शुक्ला एवं राज्य-प्रतिवादीगण हेतु विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना है।

13. विशेष अपील संख्या 467/2022 में प्रतिवादी श्रीमती पूनम द्विवेदी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री आलोक मिश्रा ने प्रारंभिक आपत्ति प्रस्तुत की है जिसे अभिलेख पर ग्रहण किया गया है।

14. सभी अपीलों में अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव मेहरोत्रा ने दृढ़तापूर्वक आग्रह किया है कि दिनांकित 19.10.2022 का प्रश्नगत आदेश उन कारणों से दोषपूर्ण है, जिसमें स्वीकार किया गया है कि आवेदन आमंत्रित करने वाले विज्ञापन की तिथि 15.12.2021 थी एवं आवेदन जमा करने की अंतिम तिथि 05.01.2022 थी। विज्ञापन में स्पष्ट रूप से संकेत दिया गया है कि कोई भी संशोधन करने की अंतिम तिथि 12.01.2022 तक है। जहाँ तक वर्तमान मुद्दे का प्रश्न है, यह रिट याचिकाकर्ताओं को आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग हेतु आरक्षण का लाभ देने से संबंधित है। जारी किए गए विज्ञापन के के निबंधनों के अनुसार, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के संलग्नक संख्या 8 के रूप में संलग्न की गई थी, स्पष्ट रूप से उम्मीदवारों को आरक्षण के लाभ का दावा करने हेतु आवश्यक दस्तावेज प्रस्तुत करने की आवश्यकता थी जिसमें ई डब्लू एस प्रमाणपत्र एवं इसका प्रपत्र भी विज्ञापन के साथ संलग्न था।

15. यह भी कहा गया है कि चूँकि स्वास्थ्य कार्यकर्ता (महिला) के पद हेतु चयन वर्ष 2022 में किया जा रहा था, अतः पूर्व वर्ष हेतु आवश्यक ई डब्लू एस प्रमाण पत्र वर्ष 2021 का होना चाहिए जो दिनांक 01.04.2020 को प्रारंभ हुआ तथा दिनांक 31.03.2021 को समाप्त हुआ।

16. पुनः यह भी कहा गया है कि जहां तक सुश्री पूनम द्विवेदी के वाद का संबंध है, उनका प्रमाणपत्र दिनांक 12.01.2021 का है एवं यह आग्रह किया जाता है कि इसे प्रस्तुत किया गया है एवं यह वित्तीय वर्ष 2021 से संबंधित नहीं है। उक्त प्रमाण पत्र जारी करने की तिथि अर्थात दिनांक 12.01.2021 तक वित्तीय वर्ष 2020-21 समाप्त नहीं हुआ था। अतः उम्मीदवार एवं उसके परिवार की आय के संबंध में उचित आंकलन नहीं किया जा सकता था जो कि मात्र सकता उक्त वित्तीय वर्ष की समाप्ति के बाद ही किया जा सकता था।

अप्रमाणित

17. अपने तर्कों के समर्थन में , अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान शासनादेश दिनांक 18.02.2019 की ओर, जिसे रिट न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता द्वारा संक्षिप्त प्रति शपथ-पत्र सहित संलग्नक संख्या 9 के रूप में प्रस्तुत किया गया था, शासनादेश दिनांकित 14.03.2019 की ओर, जिसे रिट न्यायालय के समक्ष प्रति शपथ-पत्र सहित संलग्नक संख्या 10 के रूप में, तथा उ.प्र लोक सेवा (आर्थिक कमजोर वर्गों हेतु आरक्षण) अधिनियम 2020 (एतद्पश्चात वर्ष 2020 के अधिनियम के रूप में संदर्भित) के प्रावधानों की ओर, जिसे रिट न्यायालय के समक्ष प्रति शपथ-पत्र के संलग्नक संख्या 8 प्रस्तुत किया गया था, आकृष्ट किया है।

18. यह निवेदन किया गया है कि तहसीलदार द्वारा जारी किया गया प्रमाण पत्र शासनादेश दिनांक 18.02.2019 के अनुसार जारी किया गया था। उक्त शासनादेश में स्पष्ट रूप से इस संबंध में केंद्र सरकार द्वारा दिनांकित 19.01.2019 को जारी अधिसूचना का उल्लेख किया गया है, जिसमें उन मानदंडों को भी निर्दिष्ट किया गया है जो आर्थिक कमजोर वर्गों हेतु आरक्षण का लाभ चाहने वाले व्यक्ति की पात्रता निर्धारित करते हैं।

19. तर्क का मुख्य आशय यह है कि उक्त शासनादेश दिनांक 18.02.2019 के खंड-IV में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के आधार पर आरक्षण का दावा करने वाले ऐसे प्रमाण पत्र की मांग हेतु जब आवेदन किया जाता है, उस आवेदन के वर्ष से एक वर्ष पूर्व संदर्भित होगा। यहाँ तक कि पश्चातवर्ती शासनादेश दिनांकित 14.03.2019 के अनुसार भी, प्रमाण पत्र उस प्रारूप में जारी किया जाएगा जो दिनांक 14.03.2019 के उक्त शासनादेश का संलग्नक था जिसमें स्पष्ट रूप से उस वित्तीय वर्ष को इंगित करने वाला एक कॉलम था जिस हेतु यह वैध था।

20. पुनः यह कहा गया है कि वर्ष 2020 के अधिनियम की धारा 2(बी) में "नागरिकों के आर्थिक कमजोर वर्ग" शब्द को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है। वर्ष 2020 के अधिनियम की धारा 7 की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए यह बताया गया है कि प्रमाण पत्र ऐसे अधिकारी द्वारा जारी किया जाना था जो तहसीलदार पद से निचले पद का अधिकारी न हो एवं इसमें स्पष्ट संदर्भित है कि दिनांकित 18.02.2019 के शासनादेश को उपरोक्त धाराओं के अन्तर्गत जारी किया माना जाएगा।

21. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, यह आग्रह किया जाता है कि जारी किया जा रहा ई डब्लू एस प्रमाणपत्र पूर्व शासनादेश दिनांक 18.02.2019 एवं 14.03.2019 के निबंधनों के अनुरूप एवं बाद मेंवर्ष 2020 के अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात, इनमें प्रदत्त शक्तियों के अनुसरण में था। अधिनियम के अनुसार दोनों का एक विहित प्रारूप था एवं यह उल्लेख करना आवश्यक था कि उक्त प्रमाणपत्र किस वित्तीय वर्ष हेतु वैध होगा।

22. वर्तमान वाद में, पूनम द्विवेदी के वाद में, रिट याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत प्रमाण पत्र दिनांकित 12.01.2021 का था एवं रिट याचिका के साथ संलग्नक संख्या 12 के रूप में अभिलेख पर था। इसमें स्पष्ट कहा गया कि उक्त प्रमाणपत्र वित्तीय वर्ष 2020-21 हेतु है। पुनः प्रमाण पत्र में यह संकेत दिया गया है कि वित्तीय वर्ष 2020-21 हेतु पूनम द्विवेदी आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग से थीं एवं उनके परिवार की वार्षिक आय रुपये 8,00,000/- से कम थी।

23. जहाँ तक शानू तिवारी के प्रमाण पत्र का प्रश्न है, जिसकी एक प्रति उनके द्वारा प्रस्तुत रिट याचिका के साथ संलग्नक संख्या 9 के रूप में अभिलेख पर थी, उस पर 21 जनवरी, 2021 की तिथि थी एवं यह वर्ष 2019-20 हेतु वैध थी।

24. जहाँ तक अर्चना सक्सेना के ई डब्लू एस प्रमाण पत्र का प्रश्न है, यह उनकी रिट याचिका के साथ संलग्नक संख्या 11 के रूप में अभिलेख पर था, उस पर दिनांक 05.02.2021 की तिथि थी एवं यह वित्तीय वर्ष 2019-20 हेतु वैध था।

25. सुश्री कोमल का प्रमाणपत्र दिनांकित 06.01.2021, उनकी रिट याचिका के साथ संलग्नक संख्या 1 के रूप में प्रस्तुत किया गया था। यद्यपि, जहाँ तक इस प्रमाणपत्र का संबंध है, इसमें एकमात्र वर्ष 2019 का उल्लेख है।

26. श्री मेहरोत्रा द्वारा यह भी आग्रह किया गया है कि इस स्पष्ट विसंगति के अतिरिक्त, जिसका विशेष अभिकथन रिट न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत किया गया था, याचिकाकर्ताओं ने कोई प्रत्युत्तर शपथ-पत्र प्रस्तुत करने का विकल्प नहीं चुना। रिट न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ताओं ने यह भी तर्क दिया था कि रिट याचिकाकर्ताओं ने वैध रूप से चयनित उम्मीदवारों को पक्षकार नहीं बनाया था। इस प्रकार ऐसे पक्षों हेतु याचिका में पक्षकार न होना त्रुटिपूर्ण था एवं परिणामस्वरूप कोई राहत नहीं दी जा सकती थी।

27. अंत में आग्रह किया गया है कि रिट याचिका में रिट याचिकाकर्ताओं का तर्क इस सीमा तक विशिष्ट था कि जारी किया गया प्रमाण पत्र वैध थ, एवं इसलिए उन्हें आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग हेतु आरक्षण के लाभ से

अवैध रूप से वंचित कर दिया गया है। यह उनका वाद नहीं है कि तहसीलदार ने त्रुटिपूर्ण प्रमाण पत्र जारी किए अथवा रिट याचिकाकर्ताओं को बेहतर एवं वैध प्रमाण पत्र दाखिल करने से वंचित कर दिया गया, न ही तहसीलदार को एक पक्ष के रूप में शामिल किया गया था, अपितु याचिका में स्पष्ट तर्क था कि प्रमाण पत्र पूर्ण रुप से वैध थे एवं प्रतिवादी (अपीलकर्ताओं) की कार्रवाई एकपक्षीय थी।

28. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, यह आग्रह किया जाता है कि जहाँ बड़ी संख्या में चयन किए गए थे एवं प्रश्नगत आदेश के आधार पर नियुक्ति पत्र जारी किये जाने थे, वहाँ ऐसे व्यक्तियों के संबंध में भी सम्पूर्ण प्रक्रिया रोक दी गई है, जिन्होंने अपनी योग्यता के आधार पर चयन प्राप्त कर लिया है, एवं उक्त कारणों से, विवादित आदेश अपास्त किये जाने योग्य है।

29. विद्वान अधिवक्ता श्री आलोक मिश्रा, जिन्होंने श्रीमती पूनम द्विवेदी की ओर से वाद पर तर्क दिया है एवं मुख्य रूप से उनके ही तर्कों को अन्य प्रतिवादीगण (रिट याचिकाकर्ताओं) की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने भी प्रस्तुत किया है एवं कहा है कि अपीलकर्ता-आयोग को आदेश को चुनौती देने का अधिकार नहीं है। यह अभिकथन किया गया है कि नवीन प्रमाण पत्र जारी करने हेतु तहसीलदार को निर्देश जारी किया गया था एवं यह प्रमाण पत्र आयोग को सौंपने के पश्चात आयोग द्वारा इस पक्ष पर ध्यान दिया अपेक्षित था, अतः इस स्तर पर जहाँ तहसीलदार ने प्रमाण पत्र जारी नहीं किया है, अपीलकर्ताओं हेतु आदेश को चुनौती करने का चरण अभी तक नहीं आया है।

30. पुनः यह अभिकथन किया गया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने स्पष्ट ध्यान दिया है कि पक्षकार सहमत थें कि भ्रम की स्थिति थी, एवं उक्त कारण से तथा भ्रम को दूर करने हेतु आदेश पारित किया गया है जो पक्षकारों को सारवान न्याय प्रदान करता है, अतः प्रश्नगत आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

31. न्यायालय ने प्रतिपक्ष के तर्कों पर विचार किया है एवं अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया है।

32. जहाँ तक पक्षकारों के मध्य तथ्यों का प्रश्न है, शायद ही कोई विवाद हो। पक्षकारों द्वारा इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं किया गया है कि प्रमाणपत्र, जिसका संदर्भ पूर्ववर्ती प्रस्तर संख्या 22 से 25 में है, उसमें दिया गया विवरण सही नहीं है। अब उपरोक्त पृष्ठभूमि में, यदि संबंधित पक्षों के तर्कों को प्रमाण पत्र, विज्ञापन सहित अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के संदर्भ में देखा जाए तब यह स्पष्ट होगा कि उक्त विज्ञापन को जारी करने की तिथि 15.12.2021 है। इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित समस्त रिट याचिकाकर्ताओं के प्रमाण पत्र विज्ञापन जारी होने की तिथि से पूर्व जारी किए गए थे।

33. किसी भी रिट याचिकाकर्ता का वाद यह नहीं है कि उन्होंने जो प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया है वह विज्ञापन जारी होने की तारीख दिनांकित 05.12.2021 के पश्चात जारी किया गया था। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के अन्तर्गत आरक्षण का दावा करने के उद्देश्य से तहसीलदार द्वारा जारी किए जाने वाले ई डब्लू एस प्रमाणपत्र, दिनांक 18.02.2019 एवं 14.03.2019 के शासनादेशों के अन्तर्गत जारी किए जाते हैं, जो 2020 के अधिनियम में निश्चित रुप से स्पष्ट हो गए हैं।

34. यह भी विवादित नहीं है कि संबंधित रिट याचिकाकर्ताओं द्वारा इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए सभी प्रमाण पत्र 2020 के अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात जारी किए गए थे जो 31 अगस्त, 2020 को लागू हुआ। इस प्रकार जहाँ अधिनियम किसी कार्य को एक विशेष रीति से करने का एक तरीका निर्धारित करता है एवं यह अधिनियम की धारा 7 में एक संदर्भ प्रस्तुत कर दिनांक 18.02.2019 के शासनादेश को भी सुरक्षित करता है, अतः यह नहीं कहा जा सकता है कि उम्मीदवारों या अधिकारियों के मध्य भ्रम था। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि विज्ञापन में स्पष्ट रूप से प्रावधान किया गया था कि आरक्षण चाहने वाले उम्मीदवारों को अपने प्रमाण पत्र तैयार रखने होंगे जिन्हें सत्यापन के समय प्रस्तुत किया जाना था।

35. वर्तमान वाद में, यदि प्रमाणपत्रों का अवलोकन किया जाता है तब यह संकेत मिलेगा कि वे जनवरी, 2021 एवं फरवरी, 2021 माह में जारी किए गए हैं, जैसा कि इसके पश्चात उल्लिखित विवरण से स्पष्ट होगा: -

(i) पूनम द्विवेदी के वाद में, प्रमाणपत्र दिनांक12.01.2021 का है एवं वित्तीय वर्ष 2020-21 हेतु वैध है। अतः प्रमाणपत्र 2020-21 हेतु वैध नहीं हो सकते क्योंकि तब तक वर्ष समाप्त नहीं हुआ था।

(ii) अर्चना सक्सेना के वाद में, प्रमाणपत्र दिनांक 05.02.2021 एवं वित्तीय वर्ष 2019-20 हेतु वैध है, यद्यपि इसे वित्तीय वर्ष 2020-21 हेतु प्रस्तुत करना आवश्यक था, अतः यह प्रमाणपत्र वैध नहीं है।

(iii) कोमल के वाद में, प्रमाणपत्र दिनांक 06.01.2021 का है एवं वित्तीय वर्ष 2019 हेतु वैध है। यह प्रमाणपत्र भी वर्ष 2020-21 से संबंधित नहीं है, तदानुसार वैध नहीं है।

(iv) शानू तिवारी के वाद में, प्रमाणपत्र दिनांक 21.01.2021 है एवं वित्तीय वर्ष 2019-20 हेतु वैध है। यह प्रमाणपत्र भी वित्तीय वर्ष 2020-21 से संबंधित नहीं था, अत: उपरोक्त सभी प्रमाणपत्र वैध नहीं हैं।

36. अतः उक्त कारण से, हम पाते हैं कि वाद के इस पक्ष पर विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा उचित रूप से विचार नहीं किया गया है। अभिलेख पर मौजूद सामग्री के परिशीलन से हमें यह भी ज्ञात होता है कि अपीलकर्ताओं ने अपने प्रति शपथपत्र में पक्षकारों को सम्मिलित न करने के संबंध में स्पष्ट तर्क प्रस्तुत किये थें, जिन पर भी ध्यान नहीं दिया गया है। इसके अतिरिक्त, रिट याचिकाकर्ताओं ने भी उस दोष एवं अभिवचन को ठीक करने का कोई प्रयास नहीं किया जो प्रस्तुत किया गया था।

37. जहाँ तक प्रतिवादीगण-रिट याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाई गई इन आपत्तियों का प्रश्न है कि उ.प्र. अधीनस्थ सेवा चयन आयोग के पास अपील प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं है, इससे न्यायालय प्रभावित नहीं होता क्योंकि आयोग को ही परीक्षा आयोजित करनी होती है एवं अंतिम सूची तैयार करनी होती है। वर्तमान वाद में पात्रता आवेदन जमा करने की अंतिम तिथि तक मानी जाएगी। जो प्रमाणपत्र प्रस्तुत किए जाने चाहिए थे, वे वित्तीय वर्ष 2020-21 हेतु थे, जो 01 अप्रैल2020 को प्रारंभ हुआ एवं 31 मार्च, 2021 को समाप्त हुआ, अतः प्रमाणपत्र स्वयं ही विचार किए जाने हेतु वैध नहीं थे एवं अभ्यर्थिता को अस्वीकार करने में उत्तर प्रदेश अधीनस्थ सेवा चयन आयोग द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। इस पक्ष पर भी रिट न्यायालय द्वारा उचित रूप से विचार नहीं किया गया है। यह विभिन्न बात होती कि प्रमाणपत्र उपयुक्त वर्ष हेतु वैध रूप से जारी किए गए थे, परंतु प्राधिकरण के कुछ दोषों के कारण याचिकाकर्ता लाभ से वंचित हो रहे थे, परंतु यहाँ ऐसा नहीं है। यहाँ सभी वादों में, चूँकि प्रमाणपत्र विभिन्न तिथियों पर जारी किए गए थे, जैसा कि ऊपर प्रस्तर 35 में देखा गया है, अतः वैध नहीं हैं।

38. उपरोक्त के प्रकाश में, इस तथ्य पर विवाद नहीं किया जा सकता है कि प्रमाणपत्र अवैध थे एवं अपीलकर्ताओं द्वारा प्रमाणपत्रों की अनदेखी एवं रिट याचिकाकर्ताओं के मामले को खुली श्रेणी में मानना, जबकि वे खुली श्रेणी हेतु कट-ऑफ की सीमा में न आ सके, दोषपूर्ण नहीं माना जा सकता है।

39. निजी प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता ने कुमारी लक्ष्मी सरोज एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य के वाद में विशेष अनुमति याचिका संख्या 9040/2020 में दिनांक 15.12.2022 के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है। हालांकि, इसके परिशीलन से यह संकेत प्राप्त होता है कि तथ्य भिन्न थे जो वर्तमान वाद में प्रयोज्य नहीं हैं। उक्त वाद में, यह पाया गया कि अभ्यार्थियों का कोई दोष नहीं था, क्योंकि पंजीकरणप्रमाण पत्र संबंधित प्राधिकारी द्वारा समय पर प्रदान नहीं किया गया था एवं उपरोक्त परिस्थितियों में, सर्वोच्च न्यायालय ने हस्तक्षेप किया था, हालांकि, वर्तमान वाद में, पक्षकारों के तर्कों से यह स्पष्ट है कि उन्होंने प्रमाण पत्र प्रस्तुत किए थे जो उपरोक्त कारणों से वैध एवं उपयुक्त नहीं थे, अतः कुमारी लक्ष्मी सरोज (उपरोक्त) के उक्त निर्णय से रिट याचिकाकर्ताओं-निजी प्रतिवादीगण को कोई लाभ होता प्रतीत नहीं होता।

40. एक और तथ्य जिस पर ध्यान देने की आवश्यकता है वह यह है कि आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के अभ्यर्थियों हेतु 921 पद आरक्षित थे, जिसके लिये 644 अभ्यर्थियों का चयन किया गया था। शेष 277 पद 2020 के अधिनियम की धारा 3 (सी) के संदर्भ में खुली श्रेणी से भरे गए थे एवं रिट याचिकाकर्ताओं ने खुली श्रेणी के अंतिम चयनित लिये को पक्षकार नहीं बनाया था, बल्कि कुछ यादृच्छिक रूप से चयनित उम्मीदवारों को पक्षकार बनाया गया है, इससे खुली श्रेणी के अंतिम नियुक्त अभ्यर्थियों को पक्षकार न बनाने के दोष का समाधान नहीं किया जा सकता। इस न्यायालय का दृष्टिकोण **2014 (16) एससीसी 187, रंजन कुमार एवं अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य; विजय कुमार कौल एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, 2012 (7) एससीसी 610** में शीर्ष न्यायालय के निर्णय से समर्थित है।

41. उपरोक्त विस्तृत चर्चा के आलोक में, हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि रिट न्यायालय द्वारा दिनांक 19.10.2022 को पारित आदेश अपास्त किए जाने योग्य है, परिणामस्वरूप, विशेष अपील की अनुमति दी जाती है। रिट याचिकाएं खारिज की जाती हैं। उभय पक्ष वादव्यय स्वयं वहन करेंगें।

(2023) 1 ILRA 441
अपीलीय क्षेत्राधिकार
सिविल साइड
दिनांक: इलाहाबाद 30.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेश बिंदल, मुख्य न्यायाधीश
माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

विशेष अपील सं. - 579 वर्ष 2022

राजेंद्र सिंह ... प्रार्थी
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य .... उत्तरदाता

प्रार्थी के अधिवक्ता :
श्री अशोक खरे, वरिष्ठ अधिवक्ता के साथ श्री रामानुज यादव, अधिवक्ता

उत्तरदाता के अधिवक्ता :
श्री सैयद अली मुर्तजा, श्री अंकित गौड़ के साथ अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता, और राज्य के लिए स्थायी अधिवक्ता

ए. सेवा कानून–कांस्टेबल का पद – चयन – दोषमुक्ति–चयन के बाद याचिकाकर्ता के विरुद्ध आईपीसी की धारा 376 के तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की गई – वादिनी ने स्वीकार किया कि उसने अपने भाई और एस.एच.ओ. के दबाव में गलत बयान दिया – दोषमुक्त के बाद नियुक्ति का दावा किया गया – रिट याचिका इस राय के साथ निरस्त कर दी गई कि दोषमुक्ती सम्मानजनक नहीं है - वैधता को चुनौती दी गई - आयोजित, अपीलकर्ता को संदेह का लाभ देते हुए दोषमुक्त नहीं किया गया। बल्कि, अपीलकर्ता को दोषमुक्त करना अभियोजन पक्ष द्वारा अपना वाद साबित करने में विफलता के कारण था क्योंकि वादिनि ने स्वयं किसी भी घटना से इनकार किया था - अवतार सिंह वाद का संदर्भ– अपीलकर्ता की नियुक्ति और सेवा लाभों के अधिकार के संबंध में नवीन सिरे से विचार करने के निर्देश दिए गए – उच्च न्यायालय ने झूठा आपराधिक मामला दर्ज कराने के लिए पीड़िता और उसके पिता और भाई के विरुद्ध कारण बताओ नोटिस भी जारी किया। (पैरा 5, 8, 9, 11, 12 और 14)

विशेष अपील स्वीकार की गयी। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. अवतार सिंह बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2016) 8 एससीसी 471

(माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,
और
माननीय न्यायमूर्ति जे.जे.मुनीर द्वारा प्रदत्त)

<u>आदेश</u>

1. विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित 26 जुलाई, 2022 के आदेश को प्रस्तुत अंतर्-न्यायलय अपील दायर करके आक्षेपित किया गया है।

2. अपीलकर्ता इस न्यायालय के समक्ष को उस आदेश दिनांकित 21 नवंबर, 2020 को चुनौती दे रहा है जो प्रतिनिधित्व उसने पुलिस अधीक्षक, जालौन के समक्ष दायर किया था परंतु जिसको खारिज कर दिया गया था। यह एक ऐसा मामला है जिसमें अपीलकर्ता को 15 मई, 2018 की चयन सूची के माध्यम से कांस्टेबल के पद पर चुना गया था। उन्हें चिकित्सा जांच और अन्य औपचारिकताओं को पूरा करने के लिए 9 जून, 2018 को कॉल लेटर मिला। इसके संदर्भ में, अपीलकर्ता को 12 जून, 2018 को चिकित्सा परीक्षा के लिए उपस्थित होना था। अपीलकर्ता का स्वीकृत मामला यह है कि कांस्टेबल के रूप में उसके चयन के बारे में पता चलने के तुरंत बाद, गांव में उसके दुश्मन सक्रिय हो गए और 3 जुलाई, 2018 को भ०द०वि० की धारा 354 ए (1) (iv) के तहत उसके खिलाफ एक झूठी प्राथमिकी (जिसे बाद में 'प्राथमिकी' के रूप में संदर्भित किया गया है) दर्ज की गई। प्राथमिकी में आरोप यह है कि वर्तमान अपीलकर्ता, अर्थात् प्राथमिकी में नामित आरोपी ने अपने घर के अंदर अभियोक्त्रि को लुभाया और कुछ अश्लील शब्दों का इस्तेमाल किया। यहां तक कि धारा 161 द०प्र०स० के तहत अभियोक्त्रि द्वारा दर्ज किए गए बयान में भी, उसने पुलिस को की गई शिकायत में उठाए गए रुख को दोहराया, जिसके आधार पर प्राथमिकी दर्ज की गई थी। इसके बाद, धारा 164 द०प्र०स० के तहत अभियोक्त्रि का बयान दर्ज किया गया, जिसमें उसने प्राथमिकी में निहित संस्करण से सुधार किया और यह जोड़ा कि उसके साथ छेड़छाड़ की गई थी और आरोपी (अपीलकर्ता) द्वारा बल प्रयोग करके उसके साथ छेड़छाड़ की गई। उपरोक्त बयान 5 जुलाई, 2018 को दर्ज किया गया था। इसके बाद, 7 जुलाई, 2018 को पीड़िता की मेडिकल परीक्षा आयोजित की गई। उसके शरीर के किसी भी हिस्से पर कोई चोट नहीं पाई गई।

3. अपीलकर्ता को मुकदमे का सामना करना पड़ा। अदालत में अपना बयान दर्ज कराते समय, अभियोजन पक्ष ने कहा कि प्राथमिकी दर्ज करते समय पुलिस को दिए गए उसके बयान में कहा गया था या धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए उसके बयान में जो कहा गया था, वैसा कुछ भी नहीं हुआ था। उसने शिकायत दर्ज नहीं कराई थी और उसके बयान उसके भाई और पिता के दबाव में दर्ज किए गए थे। जिसके परिणामस्वरूप, आरोप साबित नहीं होने के कारण, अभियुक्त, अर्थात् वर्तमान अपीलकर्ता को विद्वान विशेष न्यायाधीश, पोक्सो अधिनियम द्वारा पारित 27 जनवरी, 2020 के निर्णय और आदेश के द्वारा बरी कर दिया गया।

4. अपीलकर्ता के बरी होने के तुरंत बाद, उन्होंने 3 फरवरी, 2020 को एक कांस्टेबल के रूप में नियुक्ति के लिए अपने मामले पर विचार करने के लिए सक्षम प्राधिकारी को एक अभ्यावेदन दिया। जैसा कि इस पर निर्णय नहीं लिया गया था, रिट याचिका संख्या 3076 वर्ष 2020 दायर की गई थी, जिसे 3 मार्च, 2020 को प्रतिवादी नंबर 4 को तीन महीने की अवधि के भीतर अपीलकर्ता द्वारा किए गए अभ्यावेदन के निर्णय के निर्देश के साथ निपटाया गया था। चूंकि इस

न्यायालय द्वारा निर्देशित समयबद्ध तरीके से अभ्यावेदन का निर्णय नहीं लिया गया था, अवमानना आवेदन (सिविल) संख्या 4159 वर्ष 2020 दायर किया गया था। 2 नवंबर, 2020 को उत्तरदाताओं को आदेश की एक प्रति की प्राप्ति की तारीख से छह सप्ताह की अवधि के भीतर प्रतिनिधित्व के निपटान के लिए एक और अवसर दिया गया था। इसके बाद, अपीलकर्ता के दावे को खारिज करते हुए 21 नवंबर, 2020 को प्रतिनिधित्व का निपटारा किया गया। यह पूर्वोक्त आदेश है जिसे विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष चुनौती दी गई थी।

5. विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस राय के साथ कि अपीलकर्ता का बरी होना सम्मानजनक नहीं था। उनके खिलाफ लगाए गए गंभीर आरोपों को ध्यान में रखते हुए, जिन्हें एक अनुशासित बल का हिस्सा बनना पड़ा, वह किसी भी रियायत के हकदार नहीं हैं और रिट याचिका को खारिज कर दिया।

6. श्री खरे, वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उठाया गया तर्क यह है कि यह एक ऐसा मामला है जिसमें शिकायतकर्ता ने प्राथमिकी के पंजीकरण के समय दिए गए बयान और धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज बयान से अपने बयान में सुधार/परिवर्तन किया है। शुरुआत में बलात्कार का कोई आरोप नहीं था और बाद में धारा 164 द०प्र०स० के तहत उसका बयान दर्ज कराते समय इसे जोड़ा गया। विचारण के दौरान, उसने स्पष्ट रूप से कहा कि पुलिस को रिपोर्ट की गई कोई भी घटना, जिसके आधार पर शुरू में प्राथमिकी दर्ज की गई थी, या धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज बयान में उसके द्वारा यह कहा गया था कि 'नहीं हुई थी'। वास्तव में, उसका बयान उसके भाई और पिता द्वारा अपने व्यक्तिगत हिसाब किताब को चुकता करने के लिए बनाए गए दबाव के कारण था, इसलिए, यह अपीलकर्ता को संदेह का लाभ देने का मामला नहीं था, बल्कि बरी करना सम्मानजनक था क्योंकि अभियोजन पक्ष आरोपों को साबित करने में विफल रहा है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा आगे बताया गया है कि प्राथमिकी दर्ज करने के समय अभियोक्त्रि को नाबालिग दिखाया गया है, जबकि साक्ष्य में यह पाया गया कि कथित घटना की तारीख को उसकी उम्र 19 वर्ष थी।

7. दूसरी ओर, राज्य के अधिवक्ता मामले के पूर्वोक्त तथ्यात्मक मैट्रिक्स पर विवाद नहीं कर सके, हालांकि, उन्होंने अभी भी विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश का समर्थन करने की कोशिश की।

8. सरकारी सेवा में नियुक्त किए जाने के अधिकार के बारे में सिद्धांत, जहां एक उम्मीदवार की पृष्ठभूमि एक आपराधिक मामले में भागीदारी का संकेत देती है, अवतार सिंह बनाम भारत संघ और अन्य, (2016) 8 एस.सी.सी 471 में सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित की गई थी। अवतार सिंह के मामले (उपरोक्त) में, निम्नलिखित सिद्धांतों की गणना की गई है:

"38. हमने विभिन्न निर्णयों पर ध्यान दिया है और जहां तक संभव हो उन्हें समझाने और समेटने की कोशिश की है। उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हम अपने निष्कर्ष को इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत करते हैं:

38.1 किसी उम्मीदवार द्वारा नियोक्ता को दी गई जानकारी, दोषसिद्धि या गिरफ्तारी, या आपराधिक मामले की लंबितता, चाहे सेवा में प्रवेश करने से पहले या बाद में सच होनी चाहिए और आवश्यक जानकारी का कोई दमन या झूठा उल्लेख नहीं होना चाहिए।

38.2 गलत जानकारी देने के लिए सेवाओं की समाप्ति या उम्मीदवारी को रद्द करने का आदेश पारित करते समय, नियोक्ता ऐसी जानकारी देते समय मामले की विशेष परिस्थितियों, यदि कोई हो, का ध्यान रख सकता है।

38.3 नियोक्ता निर्णय लेते समय कर्मचारी पर लागू सरकारी आदेशों/अनुदेशों/नियमों को ध्यान में रखेगा।

38.4 यदि किसी आपराधिक मामले में संलिप्तता का दमन या झूठी जानकारी है, जहां आवेदन/सत्यापन फॉर्म भरने से पहले ही दोषसिद्धि या बरी कर दिया गया था और इस तरह के तथ्य बाद में नियोक्ता के ज्ञान में आते हैं, तो मामले के लिए उपयुक्त निम्नलिखित में से कोई भी विकल्प/तरीका अपनाया जा सकता है:

38.4.1 यदि प्रकृति में एक तुच्छ प्रकृति, जिसमें दोषसिद्धि दर्ज की गई थी, जैसे कि कम उम्र में नारे लगाना या एक छोटे अपराध के लिए, जिसका खुलासा होने पर प्रस्तुत पद के लिए अवलंबी अयोग्य नहीं होता, तो नियोक्ता अपने विवेक से चूक को माफ करके तथ्य या झूठी जानकारी के ऐसे दमन की अनदेखी कर सकता है।

38.4.2 जहां दोषसिद्धि ऐसे मामले में दर्ज की गई है जो प्रकृति में तुच्छ नहीं है, नियोक्ता कर्मचारी की उम्मीदवारी रद्द कर सकता है या सेवाओं को समाप्त कर सकता है।

38.4.3 यदि तकनीकी आधार पर नैतिक अधमता या जघन्य/गंभीर प्रकृति के अपराध से जुड़े मामले में बरी कर दिया गया था और यह स्पष्ट बरी का मामला नहीं है, या उचित संदेह का लाभ दिया गया है, तो नियोक्ता पूर्ववृत्त के रूप में उपलब्ध सभी प्रासंगिक तथ्यों पर विचार कर सकता है, और कर्मचारी की निरंतरता के रूप में उचित निर्णय ले सकता है।

38.5 ऐसे मामले में जहां कर्मचारी ने एक निष्कर्ष निकाले गए आपराधिक मामले की सच्चाई से घोषणा की है, नियोक्ता को अभी भी पूर्ववृत्त पर विचार करने का अधिकार है, और उम्मीदवार को नियुक्त करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है।

38.6 मामले में जब तथ्य सच्चाई तुच्छ प्रकृति के एक आपराधिक मामले की लंबितता के संबंध में चरित्र सत्यापन फार्म में घोषित किया गया है, नियोक्ता, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, अपने विवेक में इस तरह के मामले के निर्णय के अधीन उम्मीदवार नियुक्त कर सकता है।

38.7 कई लंबित मामलों के संबंध में तथ्य के जानबूझकर दमन के एक मामले में, इस तरह की झूठी जानकारी अपने आप में महत्व धारण कर लेगी और एक नियोक्ता उम्मीदवारी रद्द करने या सेवाओं को समाप्त करने के लिए उचित आदेश पारित कर सकता है क्योंकि एक व्यक्ति की नियुक्ति जिसके खिलाफ कई आपराधिक मामले लंबित थे, उचित नहीं हो सकता है।

38.8 यदि आपराधिक मामला लंबित था, लेकिन फॉर्म भरने के समय उम्मीदवार को ज्ञात नहीं था, तब भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है और नियुक्ति प्राधिकारी अपराध की गंभीरता पर विचार करने के बाद निर्णय लेगा।

38.9 यदि कर्मचारी को सेवा में पक्का कर दिया जाता है तो उसे हटाने या सत्यापन फॉर्म में गलत सूचना जमा करने के आधार पर बर्खास्तगी/हटाने या बर्खास्तगी का आदेश पारित करने से पहले विभागीय जांच करना आवश्यक होगा।

38.10 दमन या झूठी सूचना का निर्धारण करने के लिए सत्यापन/सत्यापन फॉर्म विशिष्ट होना चाहिए, अस्पष्ट नहीं। केवल ऐसी सूचना जिसका विशेष रूप से उल्लेख किया जाना अपेक्षित था, प्रकट किया जाना है। यदि नियोक्ता के संज्ञान में सूचना नहीं मांगी जाती है लेकिन प्रासंगिक है तो फिटनेस के प्रश्न को संबोधित करते समय उस पर वस्तुनिष्ठ तरीके से विचार किया जा सकता है। हालांकि, ऐसे मामलों में कार्रवाई को छिपाने या गलत जानकारी प्रस्तुत करने के आधार पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है, जिसमें एक तथ्य की मांग भी नहीं की गई थी।

38.11 इससे पहले कि किसी व्यक्ति को सत्य छुपाने या 'सजेस्टिव फाल्सी' का दोषी ठहराया जाए, तथ्य का ज्ञान उसके लिए जिम्मेदार होना चाहिए।

9. पक्षों के अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, हम अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों में योग्यता पाते हैं। यह एक ऐसा मामला है जिसमें रिकॉर्ड से यह स्पष्ट है कि शिकायतकर्ता ने शुरू में प्राथमिकी दर्ज कराई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि आरोपी ने उसे अपने निवास पर ले जाते समय कुछ अश्लील शब्दों का इस्तेमाल किया, जबकि वह अपने छोटे भाई का पता लगाने के लिए बाहर थी। धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपना बयान दर्ज कराते समय उन्होंने उपरोक्त रुख को दोहराया। हालांकि, दो दिन बाद, उसने धारा 164 द०प्र०स० के तहत अपना बयान दर्ज किया, जहां अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप में सुधार किया गया था और धारा 376 द०प्र०स० के तहत आरोप सहित उसकी शील को अपमानित करने का मामला बनाया गया था। शुरुआत में, धारा 354ए(1)(4) भ०द०वि० के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई थी। हालांकि, बाद में, धारा 376 भ०द०वि० और पोक्सो अधिनियम की धारा 4 के तहत आरोप जोड़े गए। हालांकि, एक गवाह के रूप में अदालत में पेश होते हुए, उसने कहा कि 2 जुलाई, 2018 को लगभग 3 बजे, उसके साथ कोई घटना नहीं हुई, जैसा कि पुलिस को रिपोर्ट किया गया था। चूंकि धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज अभियोक्त्रि का बयान उपलब्ध नहीं था, इसलिए उसके साक्ष्य को टाल दिया गया। सुनवाई की अगली तारीख पर, उसने फिर से दोहराया कि अपीलकर्ता ने उसके साथ कुछ भी नहीं किया था और उसने परिवारों के बीच कुछ विवादों के कारण अपने भाई के दबाव में प्राथमिकी दर्ज कराई थी, क्योंकि उसके भाई ने उसे पीटा था और उसे जान से मारने की धमकी भी दी थी। उसने धारा 161 द०प्र०स० के तहत दिए गए अपने बयान से भी इनकार किया। उसके हस्ताक्षर के बारे में कहा गया कि हस्ताक्षर एक कोरे कागज पर लिए गए थे हालांकि, उसने धारा 164 द०प्र०स० के तहत बयान पर किए गए अपने फोटो और हस्ताक्षर को स्वीकार किया था, लेकिन जब अदालत में सामना किया गया, तो उसने कहा कि उपरोक्त गलत बयान भी उसके भाई और पिता के दबाव में दिया गया था। उसने यह भी कहा कि धारा 164 द०प्र०स० के तहत अपना बयान दर्ज करने से पहले, उसे पुलिस कांस्टेबल और थानाध्यक्ष द्वारा भी धमकी दी गई थी कि अगर वह उस तरीके से नहीं बताएगी जैसा वे प्रस्तावित करते हैं, तो उसे जेल में डाल दिया जाएगा। उसने यह भी कहा कि अपीलकर्ता को कांस्टेबल के पद पर चुना गया था। उन्हें 11 जुलाई, 2018 को ज्वाइन करना था। उसने अपने परिवार के सदस्यों के दबाव में प्राथमिकी दर्ज कराई ताकि वह सेवा में शामिल न हो सके। कोई भी घटना, जैसा कि प्राथमिकी में या धारा 164 द०प्र०स० के तहत बयान में उनके द्वारा बताई गई है, कभी नहीं हुई है।

10. अदालत में अपने बयान में शिकायतकर्ता द्वारा उठाए गए स्टैंड की पुष्टि चिकित्सा साक्ष्य से होती है जिसमें उसके शरीर के किसी भी हिस्से पर कोई चोट का निशान नहीं पाया गया था।

11. विद्वान विशेष न्यायाधीश (पोक्सो अधिनियम) के फैसले के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता को संदेह का लाभ देते हुए बरी नहीं किया गया था। बल्कि, अपीलकर्ता का बरी होना अभियोजन पक्ष द्वारा अपने मामले को साबित करने में विफलता के कारण था क्योंकि अभियोक्त्रि ने खुद किसी भी घटना से इनकार किया था जिसके आधार पर प्राथमिकी दर्ज की गई थी।

12. उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, हमारे विचार में, पुलिस अधीक्षक, जालौन द्वारा पारित 21 नवंबर, 2020 का आदेश, जिसमें मुकदमे में बरी होने के बाद नियुक्ति देने के लिए अपीलकर्ता के दावे को खारिज कर दिया गया था, अवैध है। उपरोक्त आदेश के साथ-साथ रिट याचिका को खारिज करने वाले विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को रद्द किया जाता है। उत्तरदाताओं को निर्देश दिया जाता है कि वे अपीलकर्ता के मामले पर, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपीलकर्ता को आदेश की एक प्रति प्राप्त होने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर बरी कर दिया गया था, नए सिरे से विचार करें। यह स्पष्ट

किया जाता है कि अपीलकर्ता शामिल होने की तारीख से सभी सेवा लाभों का हकदार होगा।

13. विशेष न्यायाधीश, पोक्सो अधिनियम द्वारा पारित निर्णय से, यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता घटना में बिल्कुल भी शामिल नहीं था, इसलिए, इसे ऐसा मामला नहीं कहा जा सकता है जिसमें अपीलकर्ता नैतिक अधमता के मामले में शामिल था।

14. हालांकि, मामले से अलग होने से पहले, हम अपीलकर्ता के खिलाफ झूठा मामला दर्ज करने के लिए प्राथमिकी संख्या 0185 वर्ष 2018, थाना-चरखारी, जिला-महोबा में अभियोक्त्रि को कारण बताओ नोटिस जारी करना उचित समझते हैं, जिस घटना से उसने अदालत में इनकार किया था, और साथ ही उसके पिता रतन सिंह और भाई संदीप को भी, जो अभियोक्त्रि के अनुसार उस पर झूठा मामला दर्ज करने के लिए दबाव डालने में सहायक थे, क्योंकि झूठे आपराधिक मामले को दर्ज करने के लिए उनके खिलाफ उचित कार्यवाही क्यों नहीं शुरू की जा सकती है।

15. पूर्वोक्त व्यक्तियों की सेवा मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, महोबा के माध्यम से प्रभावी की जाए।

16. वर्तमान विशेष अपील को ऊपर वर्णित सीमा तक अनुमति दी जाती है। हालांकि, अभियोक्त्रि, उसके पिता और भाई को जारी किए गए नोटिस पर विचार करने के लिए, अपील को 17 जनवरी, 2023 को अदालत के समक्ष सूचीबद्ध किया जाए।

(2023) 1 ILRA 445
अपीलीय क्षेत्राधिकार
सिविल साइड
दिनांक: इलाहाबाद 13.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा
माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार

विशेष अपील सं.- 607/2022

डॉ. अंजू चौधरी ...अपीलकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और 5 अन्य ... उत्तरदाता

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
कौंते सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रतिवादी के अधिवक्ता:
सी.एस.सी., अरविंद श्रीवास्तव तृतीय, गगन मेहता

ए. सेवा कानून – यूपी उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग अधिनियम, 1980 – धारा 12 (4) एवं 13 – उ0प्र0 उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग (शिक्षकों के चयन की प्रक्रिया) विनियमावली, 1983– नियम 7 - महाविद्यालयों में प्राचार्य के पद, नियुक्ति, उनका निर्धारण, मानदंड, मेरिट सूची की प्रासंगिकता - निर्धारित सिद्धांत - योग्यता क्रम में ऊपर रखे गए अभ्यर्थी को चुने गए महाविद्यालय में नियुक्त होने का पहला अधिकार उस व्यक्ति/अभ्यर्थी की तुलना में होगा जो मेरिट के क्रम में नीचे वाले उम्मीदवार की वरीयता सूची की तुलना में वरीयता के क्रम में उस कॉलेज के नीचे होने के बावजूद योग्यता के क्रम में नीचे है - लेकिन, यदि योग्यता के क्रम में ऊपर वाले व्यक्ति को कॉलेज में रखा गया है जो उसके वरीयता क्रम में ऊपर था, तो योग्यता के क्रम में नीचे वाले अन्य उम्मीदवार को आवंटित कॉलेज के लिए उसका दावा कायम नहीं रहेगा। (पैरा 23)

बी. भारत का संविधान - अनुच्छेद 226 रिट – प्रधानाचार्य के पद के लिए चयन आयोजित किया गया था – एक विशेष कॉलेज में प्लेसमेंट के लिए रिट की मांग की गई थी – सभी चयनित उम्मीदवारों को गैर-निष्कासन की मांग की गई थी – प्रभाव - आयोजित, याचिकाकर्ता उस कॉलेज में नियुक्ति की मांग कर रहा था जहां प्रतिवादी संख्या 5 को याचिकाकर्ता की तुलना में योग्यता के क्रम में कम होने के बावजूद नियुक्त किया गया था – वह किसी अन्य व्यक्ति के विरुद्ध राहत की मांग नहीं कर रही थी। ऐसी परिस्थितियों में, उसके लिए सभी चयनित उम्मीदवारों को पक्षकार बनाना आवश्यक नहीं था। (पैरा 28)

विशेष अपील स्वीकार की गयी। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. कुमारी अलका रानी गुप्ता बनाम शिक्षा निदेशक (उच्च) एवं अन्य; 2003 (2) ईएससी 944

2. डॉ. विनय कुमार बनाम निदेशक शिक्षा (उच्च) एवं अन्य; (2006) 1 यूपीएलबीईसी 334: 2006 (62) एएलआर 808

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा द्वारा प्रदत्त)

1. यह इंट्रा-कोर्ट अपील विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा रिट ए. संख्या-2125/2022 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 20.06.2022 के विरुद्ध है, जिसके द्वारा अपीलकर्ता (यानी याचिकाकर्ता) की रिट याचिका को खारिज कर दिया गया है।

2. अपीलकर्ता द्वारा रिट ए.संख्या-2125/2022, उच्च शिक्षा निदेशक, उत्तर प्रदेश, प्रयागराज (संक्षेप में निदेशक) द्वारा पारित आदेश दिनांक 20.12.2021 को रद्द करने के लिए दायर की गई थी, जिसके द्वारा उसके गोकुल दास हिंदू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद या आचार्य नरेंद्र देव नगर निगम कन्या महाविद्यालय, हर्ष नगर, कानपुर के प्रिंसिपल के रूप में उनकी नियुक्ति के लिए दिए गए उनके प्रत्यावेदन को खारिज कर दिया गया था।

3. संक्षेप में, वर्तमान अपील को जन्म देने वाले तथ्य इस प्रकार हैं। उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग, प्रयागराज (संक्षेप में आयोग) द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य के विभिन्न स्नातक और स्नातकोत्तर कॉलेजों में प्रिंसिपल के 290 पदों के लिए आवेदन आमंत्रित करते हुए जारी एक विज्ञापन के अनुसरण में, याचिकाकर्ता ने नियुक्ति के लिए आवेदन किया और चयन प्रक्रिया से गुजरने के बाद, 05.10.2021 की संशोधित मेरिट /चयन सूची में क्रम संख्या 200 पर रखा गया। उसी चयन प्रक्रिया में भाग लेने वाली डॉ. चारू मेहरोत्रा (प्रतिवादी संख्या 5) को क्रम संख्या 205 पर थी, और डॉ. सुनीता आर्या (प्रतिवादी संख्या 6), क्रम संख्या 218 पर थी, और उन्हें उन कॉलेजों में रखा गया था जो याचिकाकर्ता के वरीयता क्रम में (उस कॉलेज से) उच्च थे जहाँ उसे निदेशक द्वारा रखा गया था। याचिकाकर्ता का मामला यह है कि प्लेसमेंट के लिए कॉलेजों की अपनी वरीयता/ विकल्प सूची में, उसके चयन के पश्चात, उसने वरीयता के क्रम में कई विकल्प दिए थे। उस सूची में, गोकुल दास हिंदू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद क्रम संख्या 20 पर था, जबकि आचार्य नरेंद्र देव नगर निगम कन्या महाविद्यालय, हर्ष नगर, कानपुर वरीयता क्रम में क्रम संख्या 34 पर था। परन्तु, याचिकाकर्ता को महिला महाविद्यालय, किदवई नगर, कानपुर में रखा गया था, जो याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए वरीयता के क्रम में क्रम संख्या 41 पर था। दूसरी ओर, प्रतिवादी संख्या 5 (डॉ. चारू मेहरोत्रा), जिन्हें मेरिट सूची में क्रम संख्या 205 पर रखा गया था, और प्रतिवादी संख्या 6 (डॉ सुनीता आर्य), जिन्हें मेरिट सूची में क्रम संख्या 218 पर रखा गया था, को निदेशक द्वारा क्रमशःगोकुल दास हिंदू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद और आचार्य नरेंद्र देव नगर निगम कन्या महाविद्यालय, हर्ष नगर, कानपुर में रखा गया। याचिकाकर्ता के अनुसार, चूंकि उसे प्रतिवादी 5 और 6 की तुलना में अंतिम/संशोधित मेरिट सूची में उच्च स्थान दिया गया था, इसलिए उसे गोकुल दास हिंदू गर्ल्स कॉलेज में प्लेसमेंट के लिए प्रतिवादी संख्या 5 पर प्राथमिकता दी जानी चाहिए थी, अगर वहां नहीं है, तो आचार्य नरेंद्र देव नगर निगम कन्या महाविद्यालय में उसके प्लेसमेंट के लिए प्रतिवादी संख्या 6 के स्थान पर। लेकिन चूंकि याचिकाकर्ता को उचित स्थान नहीं दिया गया, इसलिए उसने निदेशक के समक्ष एक प्रत्यावेदन प्रस्तुत किया। जब प्रत्यावेदन पर कोई कार्यवाही नहीं हुई, तो उसने रिट ए. संख्या 17108/2021 दायर की, जिसे 09.12.2021 के आदेश द्वारा निदेशक को प्रतिवादी संख्या 5 (डॉ. चारू मेहरोत्रा) को सुनवाई का अवसर देने के बाद, कानून के अनुसार, एक तर्कसंगत आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के दावे पर फैसला करने आदेश देते हुए निस्तारित कर दिया गया। इसमें यह भी प्रावधान किया गया था कि जब तक याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन पर निर्णय नहीं लिया जाता है, तब तक याचिकाकर्ता को आवंटित कॉलेज, अर्थात् महिला महाविद्यालय, किदवई नगर, कानपुर में कार्यभार ग्रहण करने के लिए मजबूर नहीं किया जाएगा। दिनांक 09.12.2021 के आदेश के अनुसरण में, याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन पर निदेशक द्वारा रिट ए. संख्या 2125/2022 में आक्षेपित आदेश दिनांक 20.12.2021 के द्वारा निर्णय लिया गया और खारिज कर दिया गया, जिससे वर्तमान अपील उत्पन्न होती है।

4. रिट याचिका में दो प्रति-शपथपत्र दाखिल किए गए थे. एक राज्य-उत्तरदाताओं 1, 3 और 4 की ओर से दायर एक संयुक्त प्रति-शपथपत्र था; यथा, उत्तर प्रदेश राज्य; उच्च शिक्षा निदेशक, उत्तर प्रदेश, प्रयागराज और संयुक्त निदेशक, उच्च शिक्षा, उत्तर प्रदेश, प्रयागराज। दूसरा प्रतिवादी संख्या 5 (डॉ. चारू मेहरोत्रा) की ओर से दायर किया गया था। दोनों प्रति-शपथपत्र में से किसी में भी, यह विवादित नहीं था कि संशोधित मेरिट-सूची में याचिकाकर्ता को डॉ. चारू मेहरोत्रा (प्रतिवादी संख्या 5) और डॉ. सुनीता आर्य (प्रतिवादी संख्या 6) से ऊपर रखा गया था। प्रति-शपथपत्र में यह भी विवादित नहीं था कि रिट याचिकाकर्ता (यानी अपीलकर्ता) द्वारा प्रस्तुत विकल्पों (वरीयता सूची) की सूची में, गोकुल दास हिंदू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद, जिसे प्रतिवादी संख्या 5 (डॉ. चारू मेहरोत्रा) को आवंटित किया गया था, क्रम संख्या 20 पर था और दूसरा कॉलेज, अर्थात्, आचार्य नरेंद्र देव नगर निगम कन्या महाविद्यालय, हर्ष नगर, कानपुर, जिसे प्रतिवादी संख्या 6 (डॉ. सुनीता आर्य) को आवंटित किया गया है, क्रम संख्या 34 पर था, जबकि रिट याचिकाकर्ता को महिला महाविद्यालय, किदवई नगर, कानपुर आवंटित किया गया था जो उनकी वरीयता सूची में क्रम संख्या 41 पर था।

5. राज्य-प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुत प्रति-शपथपत्र में, कॉलेजों के आवंटन को यह कहते हुए उचित ठहराने की मांग की गई थी कि यह योग्यता और वरीयता क्रम के अनुसार किया गया है। प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा दायर प्रति-शपथपत्र में, यह कहा गया है कि प्रतिवादी संख्या 5 की जानकारी के अनुसार, याचिकाकर्ता ने गलत वरीयता प्रस्तुत की थी और इसलिए उसे महिला महाविद्यालय, किदवई नगर, कानपुर आवंटित किया गया है। उपरोक्त के अलावा, एक और आधार लिया गया था कि याचिकाकर्ता ने 13.01.2022 को कार्यभार ग्रहण कर लिया था, इसलिए, वह आवंटन के संबंध में शिकायत नहीं उठा सकती है।

6. प्रत्युत्तर-शपथपत्र में, रिट याचिकाकर्ता ने कहा कि यदि याचिकाकर्ता ने आवंटित कॉलेज कार्यभार ग्रहण नहीं किया होता तो उसकी उम्मीदवारी रद्द कर दी गई होती, इसलिए, याचिकाकर्ता के पास आवंटित कॉलेज में कार्यभार ग्रहण करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। इन परिस्थितियों में, कॉलेज में में कार्यभार ग्रहण करने से, यह नहीं कहा जा सकता है कि उसने आवंटन पर सवाल उठाने के अपने अधिकार को खो दिया है, विशेषतः जब उसने पहले ही इसके संबंध में विरोध दर्ज कराया था और पहले भी उसी पर सवाल उठाते हुए एक रिट याचिका दायर की थी।

7. विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को खारिज कर दिया। ख़ारिज करने के कारण निर्णय के पैराग्राफ संख्या 7, 8 और 9 में निम्नानुसार पाए जा सकते हैं: –

"प्रतिद्वंद्वी दलीलों को सुनने के बाद, इस न्यायालय ने पाया कि उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग (शिक्षकों के चयन की प्रक्रिया) विनियम, 1983 के विनियमन 7 (1) के अनुसार, आयोग विनियमन 7 (2) के अनुसार प्रिंसिपल के एक पद के लिए योग्यता के क्रम में उम्मीदवारों के तीन नामों की सिफारिश कर सकता है। विनियम 7 (3) के अनुसार, डिग्री कॉलेजों के प्रिंसिपल का पद उम्मीदवारों द्वारा दिए गए विकल्पों के संबंध में योग्यता के क्रम में पेश किया जाएगा और निचले ग्रेड में पद योग्यता के क्रम में अगले स्थान पर रहने वाले उम्मीदवारों को समान रूप से पेश किया जाएगा। वर्तमान मामले में, स्वीकृत रूप से प्रतिवादी संख्या 5 और 6 याचिकाकर्ता की तुलना में योग्यता में कम हैं और इसलिए, याचिकाकर्ता का दावा है कि प्रतिवादी संख्या 5 और 6 से से पूर्व इन दोनों विवाद के संस्थानों हेतु उसने दावा किया था ।

8. याचिकाकर्ता द्वारा 29.07.2021 को ऑनलाइन भरी गई वरीयता को रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 4 के रूप में रिकॉर्ड पर लाया गया है, जिससे पता चलता है कि उसने गोकुल दास हिंदू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद (क्रमांक 20), आचार्य नरेंद्र देव, नगर निगम महिला महाविद्यालय, कानपुर नगर (क्रमांक 34) और महिला महाविद्यालय, किदवईनगर, कानपुर नगर (क्रमांक 41) को तीसरी और अंतिम वरीयता दी थी। । प्रतिवादियों की ओर से दायर प्रति-शपथपत्र में, प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा दी गई वरीयता को रिकॉर्ड पर लाया गया है, जिसमें उसने गोकुल दास हिंदू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद (क्रमांक 20) को 8 वीं वरीयता दी है।

9. यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता की 20 वीं वरीयता गोकुल दास हिंदू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद थी, जबकि प्रतिवादी संख्या 5 ने अपने ऑफ़लाइन विकल्प में उसी को 8 वीं वरीयता दी थी। अपने ऑनलाइन विकल्प में, उसने गोकुल दास हिंदू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद को भी समान वरीयता दी है। चूंकि प्रतिवादी संख्या 6 उपस्थित नहीं हुई है और न ही प्रति-शपथपत्र दायर किया है, इसलिए इस न्यायालय द्वारा उसकी वरीयता की जांच नहीं की जा सकती है, लेकिन प्रतिवादी संख्या 5 की वरीयता से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता ने गोकुल दास हिंदू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद में 20 वीं वरीयता के माध्यम से नियुक्ति के लिए दावा किया था। प्रतिवादी संख्या 3, उच्च शिक्षा निदेशक द्वारा पारित आदेश में, यह उल्लेख किया गया है कि उम्मीदवारों का प्लेसमेंट यूपी उच्च सेवा चयन आयोग, प्रयागराज द्वारा किया जाता है। ऑनलाइन नियुक्ति उच्च शिक्षा निदेशक द्वारा की जाती है। इसके अलावा इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि याचिकाकर्ता ने गोकुल दास हिंदू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद के लिए अपनी 20 वीं वरीयता दी, और प्रतिवादी संख्या 5 ने उपरोक्त कॉलेज को 8 वीं वरीयता दी, प्रतिवादी संख्या 5 की प्राथमिकता गोकुल दास हिंदू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद के लिए याचिकाकर्ता की तुलना में अधिक थी, जिसने इसे 20 वीं वरीयता देकर उपरोक्त कॉलेज का विकल्प चुना था। भले ही याचिकाकर्ता मेरिट सूची में ऊपर थी, लेकिन चूंकि उसने प्रतिवादी संख्या 5 (8 वीं वरीयता) की वरीयता से पहले उपरोक्त कॉलेज का विकल्प नहीं चुना था, इसलिए, उपरोक्त कॉलेज को प्रतिवादी संख्या 5 को सही तरीके से आवंटित किया गया था। इसके बावजूद, याचिकाकर्ता ने 15.01.2022 को महिला महाविद्यालय किदवई नगर, कानपुर नगर में बिना किसी विरोध के अपनी जॉइनिंग प्रस्तुत की है, जैसा कि राज्य-प्रतिवादियों की ओर से दायर प्रति शपथपत्र के अनुलग्नक.सी.ए.5 से स्पष्ट है। उसे अब प्रतिवादी संख्या 4 के खिलाफ अपना दावा बनाए रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। याचिकाकर्ता की ओर से दायर प्रत्युत्तर हलफनामे में, केवल पैराग्राफ संख्या 12 में कहा गया है कि याचिकाकर्ता को महिला महाविद्यालय किदवई नगर, कानपुर नगर में शामिल होने के लिए मजबूर किया गया है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के पास कार्रवाई का कोई कारण नहीं बचा है। अन्यथा भी गोकुल दास हिंदू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद के लिए उनकी प्राथमिकता प्रतिवादी संख्या 5 से नीचे थी। "

8. हमने याचिकाकर्ता की ओर से श्री कौंते सिंह की सहायता से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे को सुना; उत्तरदाताओं 1, 3 और 4 के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता; प्रतिवादी संख्या 5 के लिए श्री अरविंद श्रीवास्तव -III; और प्रतिवादी संख्या 2 (आयोग) के लिए श्री मनोज कुमार सिंह।

9. अपीलकर्ता की ओर से पेश श्री खरे ने तर्क किया कि कॉलेजों में चयनित शिक्षकों की नियुक्ति उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग अधिनियम, 1980 (संक्षेप में 1980 अधिनियम) में प्रदान की गई प्रक्रिया के अनुसार की जानी है। 1980 अधिनियम की धारा 12 की उप-धारा (4) निम्नानुसार है: –

"किसी महाविद्यालय के शिक्षकों के पदों पर नियुक्ति के लिए व्यक्तियों के चयन की रीति ऐसी होगी, जो विनियमों द्वारा निर्धारित की जाए:

बशर्ते कि आयोग प्रतिभाशाली व्यक्तियों को आमंत्रित करने की दृष्टि से उपधारा (3) के तहत अधिसूचित रिक्तियों के लिए राज्य में व्यापक प्रचार करेगा:

बशर्ते कि उम्मीदवारों को विभिन्न कॉलेजों की रिक्तियों के लिए अपनी वरीयता के क्रम को इंगित करने की आवश्यकता होगी, जिसमें विज्ञापन दिया गया है।"

10. 1980 अधिनियम की धारा 13 में निम्नानुसार प्रावधान है:-

"[13. आयोग की सिफारिश। –

(1) आयोग, धारा 12 की उपधारा (3) के अधीन रिक्तियों की अधिसूचना के पश्चात् यथाशीघ्र अभ्यर्थियों की लिखित परीक्षा और साक्षात्कार आयोजित करेगा और निदेशक को एक सूची भेजेगा जिसमें प्रत्येक विषय में सर्वाधिक उपयुक्त पाए गए अभ्यथयों की ऐसी संख्या की सिफारिश की जाए, जो व्यवहार्य हो, उस विषय में रिक्तियों की संख्या से पच्चीस प्रतिशत अधिक। ऐसे नामों को साक्षात्कार में दिखाए गए मेरिट के क्रम में व्यवस्थित किया जाएगा, या यदि कोई परीक्षा आयोजित की जाती है तो परीक्षा और साक्षात्कार में।

(2) आयोग द्वारा भेजी गई सूची आयोग से नई सूची प्राप्त होने तक मान्य होगी।

(3) निदेशक धारा 12 की उपधारा (4) के दूसरे परंतुक के अधीन अभ्यथयों द्वारा इंगित वरीयता क्रम का निर्धारित रीति से यथोचित आदर करेगा, धारा 12 की उपधारा (2) के अधीन सूचित रिक्ति में नियुक्त किए जाने के लिए उपधारा (1) में निर्दिष्ट सूची में से किसी अभ्यर्थी के नाम की सूचना प्रबंधन को देगा।

(4) जहां उपधारा (2) में निर्दिष्ट सूची की वैधता की अवधि के दौरान मृत्यु, त्यागपत्र या अन्यथा के कारण कोई रिक्ति होती है और ऐसी रिक्ति को धारा 12 की उपधारा (3) के तहत आयोग को अधिसूचित नहीं किया गया है, निदेशक ऐसी रिक्ति में नियुक्ति के लिए ऐसी सूची में से किसी उम्मीदवार के नाम की सूचना प्रबंधन को दे सकेगा।

(5) पूर्ववर्ती 10 उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, जिसमें किसी महाविद्यालय में शिक्षक के किसी पद को समाप्त करने के लिए, ऐसे पद पर मूल रूप से नियुक्त व्यक्ति की सेवाएं समाप्त कर दी जाती हैं, राज्य सरकार उपयुक्त रिक्ति में उसकी नियुक्ति के लिए उपयुक्त आदेश दे सकेगी, चाहे वह धारा 12 की उपधारा (3) के अधीन अधिसूचित हो या किसी अन्य कॉलेज में न हो, और उसके बाद निदेशक तदनुसार प्रबंधन को सूचित करेगा।

(6) निदेशक उपधारा (3) या उप-धारा (4) या उप-धारा (5) के तहत की गई सूचना की एक प्रति संबंधित उम्मीदवार को भेजेगा।"

11. 1980 के अधिनियम की धारा 31 के अधीन आयोग, राज्य सरकार के पूर्व अनुमोदन से, विनियम बना सकेगा। उस शक्ति का प्रयोग करते हुए आयोग ने उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग (शिक्षकों के चयन की प्रक्रिया) विनियम, 1983 (संक्षेप में 1983 विनियम) बनाया है। 1983 के विनियम 7 में निम्नानुसार प्रावधान है:-

"7. नियुक्ति के लिए अनुशंसा–

(1) आयोग प्रत्येक पद के लिए योग्यता के क्रम में अधिकतम तीन उम्मीदवारों के नामों की सिफारिश कर सकेगा।

(2) प्रधानाचार्य का पद-

(क) महिला महाविद्यालयों के मामले में, महिला उम्मीदवारों की सूची में शामिल अभ्यर्थियों को आवंटित किया जाए, और

(ख) खंड (क) के अधीन पदों की पेशकश की गई महिला अभ्यर्थियों के नामों को छोड़कर अन्य महाविद्यालयों में सामान्य सूची के अभ्यर्थियों को आवंटित की जाए।

(3) उच्चतर ग्रेड में डिग्री कॉलेजों के प्राचार्य के पद अभ्यर्थियों को योग्यता के क्रम में उनके द्वारा दी गई वरीयता के आधार पर प्रदान किए जाएंगे और निम्न ग्रेड के पद इसी प्रकार योग्यता क्रम के अगले अभ्यर्थियों को प्रदान किए जाएंगे।

(4) उप-विनियमों (2)और (3) में उल्लिखित प्रक्रिया का प्रधानाचार्य के अलावा अन्य शिक्षकों के पदों के संबंध में यथोचित परिवर्तन सहित पालन किया जाएगा। "

12. 1980 अधिनियम के प्रावधानों और उनमें बनाए गए विनियमों को कैसे लागू किया जाना था, इस पर इस न्यायालय की खंडपीठ ने **कु.अलका रानी गुप्ता बनाम शिक्षा निदेशक (उच्च) और अन्य; 2003 (2) ईएससी 944** के मामले में अपने फैसले के पैराग्राफ 9 में विस्तार से चर्चा की थी, जिस निर्णय को इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा **डॉ. विनय कुमार बनाम शिक्षा निदेशक (उच्च) और अन्य: (2006) 1 यूपीएलबीईसी 334 बराबर 2006 (62) एएलआर 808** के मामले में पुष्टि की गई थी।

13. यह आग्रह किया गया है कि डॉ. विनय कुमार के मामले (उपरोक्त) में, कु. अलका रानी गुप्ता के मामले (उपरोक्त) में डिवीजन बेंच द्वारा फैसले के पैराग्राफ 9 में लिए गए दृष्टिकोण को विशेष रूप से डॉ विनय कुमार के मामले (उपरोक्त) में पूर्ण पीठ के फैसले के पैराग्राफ 42 में पुष्टि की गई है और अपने निर्णय के पैराग्राफ 36 और 37 में पूर्ण पीठ ने कहा कि निदेशक को सूचना देते समय प्रत्येक उम्मीदवार के संबंध में केवल दो बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है, अर्थात्, धारा 13 (1) के तहत निर्धारित उम्मीदवार की योग्यता की स्थिति, और उम्मीदवार द्वारा स्वयं दी गई कॉलेजों या संस्थानों की अधिमान्य सूची। पैराग्राफ 37 में, डॉ विनय कुमार के मामले (उपरोक्त) में, पूर्ण पीठ ने आगे कहा कि निदेशक को केवल इन दो

मापदंडों के आधार पर विभिन्न कॉलेजों को उम्मीदवारों को आवंटित करना होगा।

14. अलका रानी के मामले (उपरोक्त) के पैराग्राफ 9 में, इसे निम्नानुसार माना गया है: –

"*9. इस प्रकार, अधिनियम और विनियमों में उपरोक्त प्रावधानों से उभरने वाली कानूनी स्थिति इस प्रकार है:*

(1) जहां आयोग द्वारा विभिन्न संस्थाओं के लिए बड़ी संख्या में अभ्यर्थियों का चयन किया जाता है, वहां आयोग द्वारा निर्धारित योग्यता के अनुसार चयन सूची तैयार करनी होती है।

(2) उम्मीदवार जो चयन सूची के शीर्ष पर है, उसे उसकी पहली वरीयता दी जाएगी;

(3) फिर उम्मीदवार जो चयन सूची में क्रम संख्या 2 पर है, निदेशक द्वारा विचार किया जाएगा। यदि उसकी पहली पसंद पहले ही चयनित सूची में सबसे ऊपर उम्मीदवार द्वारा भरी जा चुकी है, तो इस उम्मीदवार को उसकी दूसरी पसंद दी जाएगी, अन्यथा उसे अपनी पहली पसंद मिल जाएगी।

(4) फिर हम उस उम्मीदवार पर आते हैं जो चयन सूची में तीसरे स्थान पर है। यदि चयन सूची में उससे ऊपर के उम्मीदवार को उसकी पहली वरीयता का विकल्प पहले से आवंटित नहीं किया गया है, तो उसे वह संस्थान दिया जाएगा, अन्यथा उसे अपनी दूसरी पसंद दी जाएगी, जब तक कि वह भी उसके ऊपर के उम्मीदवार को आवंटित नहीं किया गया है, ऐसी स्थिति में उसे अपनी तीसरी पसंद की संस्था आवंटित की जाएगी। इस तरह, निदेशक प्लेसमेंट करेंगे।"

15. उपरोक्त निर्णय के आधार पर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क किया कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दर्ज तर्क अलका रानी के मामले (उपरोक्त) में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा निर्धारित कानून को ध्यान में रखने में विफल रहता है, जिसे डॉ विनय कुमार के मामले (उपरोक्त) में पूर्ण पीठ द्वारा पुष्टि की गई है और इसलिए, विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय और आदेश के साथ-साथ रिट याचिका में आक्षेपित आदेश यानी याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन को अस्वीकार करने वाले निदेशक के आदेश रद्द होने योग्य है और इसलिए निदेशक को अलका रानी के मामले (उपरोक्त) में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के प्रकाश में, जिसे डॉ. विनय कुमार के मामले (उपरोक्त) में पुष्ट किया गया है, याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत प्रत्यावेदन पर नए सिरे से विचार करना चाहिए।

16. इसके विपरीत, प्रतिवादी संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क किया कि यदि आवंटन के मामले को नए सिरे से खोला जाता है, तो कई उम्मीदवारों का प्लेसमेंट प्रभावित होगा, इसलिए, उनके रिट कार्यवाही में पक्षकार होने के अभाव में, मांगी गई राहत याचिकाकर्ता को नहीं दी जा सकती है। यह भी आग्रह किया गया है कि याचिकाकर्ता आवंटित संस्थान में कार्यभार ग्रहण कर लिया है, इसलिए उसने अपने प्लेसमेंट को चुनौती देने के अपने अधिकार को खो दिया है। केवल इस कारण से, याचिकाकर्ता की रिट याचिका खारिज होने योग्य है और इसे सही तरीके से खारिज कर दिया गया है।

17. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने निदेशक द्वारा पारित आदेश को सही ठहराने की कोशिश की है और श्री अरविंद श्रीवास्तव-III द्वारा किये गए तर्कों का समर्थन किया है, जो प्रतिवादी संख्या 5 के लिए प्रस्तुत हुए थे।

18. हमने प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

19. पक्षकारों के मध्य इसका कोई विवाद नहीं है कि मेरिट के क्रम में, रिट याचिकाकर्ता (डॉ. अंजू चौधरी) को क्रम संख्या 200 पर रखा गया था; प्रतिवादी संख्या 5 (डॉ चारु मेहरोत्रा) को क्रम संख्या 205 पर रखा गया था; और प्रतिवादी संख्या 6 (डॉ सुनीता आर्य) को क्रम संख्या 218 पर रखा गया था। यह भी विवाद में नहीं है कि याचिकाकर्ता को निदेशक द्वारा आवंटित महिला महाविद्यालय, किदवई नगर, कानपुर, याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत वरीयता में क्रम संख्या 41 पर था, जबकि गोकुल दास हिंदू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद, जिसे प्रतिवादी संख्या 5 को आवंटित किया गया है, क्रम संख्या 20 पर था और आचार्य नरेंद्र देव नगर निगम कन्या महाविद्यालय, हर्ष नगर, कानपुर, जिसे प्रतिवादी संख्या 6 को आवंटित किया गया है, क्रम संख्या 34 पर था।

20. डॉ. विनय कुमार के मामले (उपरोक्त) में, पूर्ण पीठ ने 1980 अधिनियम की विधायी योजना की जांच की ताकि उसकी धारा 12 और 13 के संशोधित प्रावधानों के विधाई इरादे का पता लगाया जा सके। डॉ. विनय कुमार के मामले (उपरोक्त) में 1980 अधिनियम की धारा 13 की उप-धारा (3) में "उचित सम्मान" वाक्यांश के उपयोग पर पूर्ण पीठ ने फैसले के पैराग्राफ 23 में निम्नानुसार कहा: –

"23. ब्लैक लॉ डिक्शनरी में ऊपर उल्लिखित "उचित सम्मान" शब्द की परिभाषा और ऊपर उद्धृत शीर्ष न्यायालय की टिप्पणियों से यह स्पष्ट है कि "उचित सम्मान" का अर्थ एक कारक के संबंध में है जो वैधानिक योजना के अनुसार देय है। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि धारा 13 (3) निर्धारित तरीके से "उचित सम्मान" को संदर्भित करती है। इस प्रकार धारा 13 (3) में उपयोग किए गए "उचित सम्मान" की व्याख्या केवल याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा किए गए संबंध के रूप में नहीं की जा सकती है। यदि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा सुझाई गई व्याख्या स्वीकार कर ली जाती है, तो उम्मीदवार का प्लेसमेंट केवल एक उम्मीदवार द्वारा इंगित वरीयता पर निर्भर करेगा जो पूरी योग्यता योजना को मंजूरी देगा। उपरोक्त व्याख्या को स्वीकार नहीं किया जा सकता है जिसे एक सरल उदाहरण देकर समझाया जा सकता है। मेरिट सूची में दस उम्मीदवारों ने एक विशेष कॉलेज की

अपनी पहली वरीयता दी है। एक कॉलेज में विशेष रिक्ति के लिए उम्मीदवार के नाम की सिफारिश करने के लिए, योग्यता में उच्च उम्मीदवार की वरीयता को स्वीकार करना होगा। धारा 12 और 13 में किए गए संशोधन से यह संकेत नहीं मिलता है कि विशेष रिक्ति के लिए नामों की सिफारिश की मेरिट आधार योजना को मंजूरी दे दी गई है। योग्यता महत्वपूर्ण कारक है और उम्मीदवार की वरीयता को यथासंभव प्रभावी किया जाना चाहिए। यदि किसी विशेष कॉलेज के लिए किसी ने वरीयता नहीं दी है, तो मेरिट में नीचे के व्यक्ति को उस कॉलेज में प्लेसमेंट मिल सकता है जब उसका मौका विचार के लिए आता है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा की जाने वाली व्याख्या विधायी योजना के साथ नहीं आती है जैसा कि अधिनियम की धारा 12 और 13 के संशोधित प्रावधान और विनियमों द्वारा इंगित किया गया है। यह सच है कि विनियमन के वे प्रावधान जो धारा 12 और 13 के संशोधित प्रावधानों के साथ खड़े नहीं हो सकते हैं, उन्हें प्रभावी नहीं माना जाना चाहिए, लेकिन विनियमन के उन हिस्सों का अभी भी पालन किया जाना है जो अधिनियम के किसी भी प्रावधान के साथ संघर्ष में नहीं हैं। हमारे इस दृष्टिकोण को संशोधित प्रावधान की धारा 12 (4) के स्पष्ट प्रावधानों के साथ फिर से लागू किया गया है, जो अभी भी नियुक्ति के लिए व्यक्तियों के चयन के तरीके के लिए विनियमन को संदर्भित करता है और उस पर निर्भर करता है।

21. इसके बाद, डॉ. विनय कुमार के मामले (उपरोक्त) में फैसले के पैराग्राफ 24 में, अलका रानी के मामले (उपरोक्त) में निर्णय देखा गया। डॉ. विनय कुमार के मामले (उपरोक्त) में फैसले का पैराग्राफ 24 नीचे दिया गया है: "

24. अलका रानी गुप्ता (उपरोक्त) के मामले में, इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने पैराग्राफ 9 में निम्नानुसार कहा, जो नीचे निर्धारित है: – इस प्रकार अधिनियम और विनियमों में उपर्युक्त प्रावधानों से उभरने वाली कानूनी स्थिति निम्नानुसार है: 17

(i) जहां आयोग द्वारा विभिन्न संस्थाओं के लिए बड़ी संख्या में उम्मीदवारों का चयन किया जाता है, वहां आयोग को आयोग द्वारा निर्धारित योग्यता के अनुसार चयन सूची तैयार करनी होती है।

(ii) जो उम्मीदवार चयन सूची में सबसे ऊपर है, उसे उसकी पहली वरीयता दी जाएगी।

(iii) फिर उम्मीदवार जो चयन सूची में क्रम संख्या 2 पर है, निदेशक द्वारा विचार किया जाएगा। यदि उसकी पहली पसंद पहले से ही चयनित सूची के शीर्ष पर उम्मीदवार द्वारा भरी गई है तो इस उम्मीदवार को उसकी दूसरी पसंद दी जाएगी, अन्यथा उसे अपनी पहली पसंद मिल जाएगी।

(iv) फिर हम उस उम्मीदवार पर आते हैं जो चयन सूची में तीसरे स्थान पर है। यदि चयन सूची में उससे ऊपर के उम्मीदवार को उसकी पहली वरीयता का विकल्प पहले से आवंटित नहीं किया गया है, तो उसे वह संस्थान दिया जाएगा, अन्यथा उसे अपनी दूसरी पसंद दी जाएगी, जब तक कि वह भी उसके ऊपर के उम्मीदवार को आवंटित नहीं किया गया हो, ऐसी स्थिति में उसे अपनी तीसरी पसंद की संस्था आवंटित की जाएगी। इस तरह निदेशक प्लेसमेंट करेंगे।

22. डॉ. विनय कुमार के मामले (उपरोक्त) के फैसले के पैराग्राफ 36, 37, 38 और 39 में, इसे निम्नानुसार निर्धारित किया गया: –

"36. हमारी राय में, सूचना देते समय निदेशक को प्रत्येक उम्मीदवार के संबंध में केवल दो बातों को ध्यान में रखना है, अर्थात्, धारा 13 (1) के तहत निर्धारित उम्मीदवार की योग्यता की स्थिति, और उम्मीदवार द्वारा स्वयं दी गई कॉलेजों या संस्थानों की अधिमान्य सूची।

37. निदेशक को इन दो मदों के आधार पर विभिन्न कॉलेजों को उम्मीदवारों को कैसे आवंटित करना है और इन दो मदों के संबंध में, अल्का रानी के मामले (उपरोक्त) में पैराग्राफ 9 में डिवीजन बेंच द्वारा सही ढंग से निर्धारित किया गया है और हम उस पैराग्राफ से पूरी तरह सहमत हैं।

38. हमारी राय में निदेशक धारा 13 की उपधारा (3) के तहत सूचना देने में विवेकाधीन शक्ति का उपयोग नहीं करता है। निदेशक के बजाय, निदेशक के रूप में समान तार्किक दिमाग वाला कोई अन्य व्यक्ति भी वही कार्य करने में सक्षम होगा, लेकिन निदेशक को अधिकार दिया गया है, ताकि दृढ़ विश्वास हो सके और कॉलेजों के लिए उनके हस्ताक्षर के तहत आने वाली सिफारिशों और सूचनाओं का पालन करना सुरक्षित हो सके।

39. धारा 13 की उप-धारा (3) से पता चलता है कि उक्त उप-धारा द्वारा निदेशक की कार्रवाई अनिवार्य रूप से निर्धारित की गई है। यद्यपि उक्त उप-धारा अभी तक मेरिट सूची का उल्लेख नहीं करती है, जैसा कि डॉ. अलका रानी के मामले (उपरोक्त) के पैराग्राफ 9 में निर्धारित किया गया है, निदेशक द्वारा मेरिट सूची पर विचार किया जाना चाहिए और इस संबंध में निदेशक धारा 13 की उप-धारा (1) और उस उप-धारा के तहत किए गए 19 अभ्यास की अवहेलना नहीं कर सकता है। निदेशक द्वारा कार्यवाही उसके बाद किया जाता है और उस पर की ही जानी चाहिए। "

23. पूर्ण पीठ के निर्णय से, यह स्पष्ट है कि निदेशक को कॉलेजों का आवंटन करने से पहले मेरिट सूची को उचित महत्व देना होगा। इस प्रकार, यदि हम अलका रानी के मामले में निर्धारित सिद्धांत को लागू करते हैं, जिसकी पुष्टि डॉ. विनय कुमार के मामले में की गई है, तो जो स्थिति सामने आएगी, वह यह है कि योग्यता के क्रम में उच्च स्थान पर रखे गए उम्मीदवार को उस व्यक्ति/उम्मीदवार की तुलना में चुने गए कॉलेज में नियुक्त होने का पहला अधिकार होगा, जो योग्यता के क्रम में नीचे है, भले ही वह कॉलेज वरीयता सूची की तुलना में वरीयता के क्रम में नीचे हो। उम्मीदवार योग्यता के क्रम में नीचे है। लेकिन, यदि

योग्यता के क्रम में उच्च व्यक्ति को एक ऐसे कॉलेज में रखा जाता है जो उसकी वरीयता के क्रम में उच्च था, तो योग्यता के क्रम में नीचे दूसरे उम्मीदवार को आवंटित कॉलेज पर उसका दावा नहीं होगा।

24. जैसा कि ऊपर की चर्चा से स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता ने गोकुल दास हिंदू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद को क्रम संख्या 20 पर वरीयता के क्रम में रखा था, लेकिन उसे एक ऐसे कॉलेज में रखा गया था जो वरीयता के क्रम संख्या 41 पर था, जबकि प्रतिवादी संख्या 5, जो योग्यता के क्रम में नीचे थी, उसे उक्त कॉलेज आवंटित किया गया था। हमारे विचार में, निदेशक द्वारा किया गया आवंटन/प्लेसमेंट अलका रानी के मामले (उपरोक्त) में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुरूप था, जिसे डॉ विनय कुमार के मामले (उपरोक्त) में पूर्ण पीठ द्वारा पुष्ट किया गया है।

25. चूंकि विद्वान एकल न्यायाधीश अलका रानी के मामले (उपरोक्त) और डॉ. विनय कुमार के मामले (उपरोक्त) में इस न्यायालय के बाध्यकारी निर्णयों का संज्ञान लेने में विफल रहे हैं, इसलिए विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा लिया गया दृष्टिकोण कायम नहीं रह सकता है।

26. इस स्तर पर, हम प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता की अन्य तर्कों पर विचार कर सकते हैं, जो यह है कि चूंकि याचिकाकर्ता इस याचिका को दायर करने से पहले ही आवंटित कॉलेज में कार्यभार ग्रहण कर चुकी है, इसलिए उसने निदेशक द्वारा किए गए प्लेसमेंट को चुनौती देने के अपने अधिकार को खो दिया है।

27. उपरोक्त तर्क हमें प्रभावित नहीं करता है क्योंकि यहां याचिकाकर्ता ने पहले एक रिट याचिका दायर की थी, अर्थात्, रिट ए संख्या 17108/2021, जिसमें उसने विशेष रूप से अपने प्लेसमेंट को चुनौती दी थी। उस रिट याचिका का निस्तारण उसे निदेशक के समक्ष अपना पक्ष रखने की स्वंतत्रा के साथ किया गया था, जिसमे संबंधित प्रतिवादी (डॉ. चारू मेहरोत्रा) को सुनने के बाद एक सकारण आदेश पारित करना था। दिनांक 09.12.2021 के आदेश में विशेष रूप से निर्देशित किया गया था कि जब तक प्रत्यावेदन पर निर्णय नहीं हो जाता, तब तक याचिकाकर्ता को महिला महाविद्यालय, किदवई नगर, कानपुर में में कार्यभार ग्रहण करने के लिए मजबूर नहीं किया जाएगा। प्रत्यावेदन पर निर्णय लिए जाने के बाद ही उसने आदेश को चुनौती देने के अपने अधिकार को छोड़े बिना कॉलेज में कार्यभार ग्रहण किया था, क्योंकि अगर वह कार्यभार ग्रहण नहीं करती, तो उसकी उम्मीदवारी रद्द कर दी जाती। इन परिस्थितियों में, जहां याचिकाकर्ता अपने कारण के लिए मुकदमा लड़ रही थी, यह नहीं कहा जा सकता है कि उसने प्लेसमेंट को चुनौती देने के अपने अधिकार को खो दिया था।

28. हम प्रतिवादी संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता की इस दलील को भी स्वीकार नहीं करते हैं कि सभी उम्मीदवारों को रिट कार्यवाही में शामिल किया जाना आवश्यक था। इसका कारण यह है कि रिट याचिकाकर्ता उस कॉलेज में प्लेसमेंट की मांग कर रहा था जहां प्रतिवादी संख्या 5 को नियुक्त किया गया था, हालांकि वह याचिकाकर्ता की तुलना में योग्यता क्रम में नीचे थी। वह किसी अन्य व्यक्ति के खिलाफ राहत की मांग नहीं कर रही थी। ऐसी परिस्थितियों में, उसे सभी चयनित उम्मीदवारों को पक्षकार बनाने की आवश्यकता नहीं थी। वैसे भी, एक बार जब आबंटन/प्लेसमेंट पर प्रश्न उठता और निर्णीत हो जाता है, तब यह निदेशक का दायित्व है कि वह कानून के अनुसार कॉलेजों के आबंटन को समायोजित करे।

29. ऊपर दर्ज सभी कारणों से, हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से सहमत होने में असमर्थ हैं। विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय और आदेश दिनांक 20.06.2022 को निरस्त किया जाता है। याचिकाकर्ता की रिट याचिका को स्वीकार किया जाता है। निदेशक के आदेश दिनांक 20.12.2021 को निरस्त किया जाता है और निदेशक को निर्देशित किया जाता है कि अधिमानतः, इस आदेश की एक प्रति उनके कार्यालय में प्रस्तुत किये जाने की तिथि से चार सप्ताह की अवधि में, वह याचिकाकर्ता के प्लेसमेंट के संबंध में कानून के अनुसार एक नया आदेश पारित करें, जैसा उसने अपने प्रत्यावेदन दिनांक 16.12.2021 के माध्यम से रखा है।

30. अपील को उपरोक्त रूप में स्वीकृत की जाती है।

(2023) 1 ILRA 455
अपीलीय क्षेत्राधिकार
सिविल साइड
दिनांक: इलाहाबाद 01.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा
माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार

विशेष अपील संख्या - 671 वर्ष 2022 संबंधित
विशेष अपील संख्या - 666 वर्ष 2022

कुलपति, चंद्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय और एक अन्य ...अपीलार्थी
बनाम
डॉ. लल्लू सिंह और अन्य ...प्रतिवादी

अपीलार्थी के अधिवक्ता:
राकेश कुमार

प्रतिवादी के अधिवक्ता :
सिद्धार्थ श्रीवास्तव

A. सेवा कानून – भारत का संविधान अनुच्छेद 14 - समानता का अधिकार - बोधगम्य विभेदक - वेतन समानता - जूनियर को उच्च वेतन दिया गया, हालांकि समान कर्तव्य का निर्वहन करते हुए – प्रभाव – जूनियर ने सेवा में रहते हुए पीएच.डी. डिग्री प्राप्त की , जबकि याचिकाकर्ता ने सेवा में प्रवेश से पूर्व इसे प्राप्त किया – यह कहां तक उचित है– भेदभाव वेतन समता का कानूनी सिद्धांत – उचित आधार पर निर्धारित किया गया है, जब वरिष्ठ समानता सिद्धांत का आह्वान नहीं कर सकता है, तो समझाया गया है, आमतौर पर, कनिष्ठ को उच्च वेतन देना मनमाना होगा जब तक कि इसे उचित ठहराने वाला कोई समझदार अंतर न हो। निस्संदेह, यदि ऐसा करने के लिए उचित आधार हैं, तो वरिष्ठ समानता सिद्धांत का आह्वान नहीं कर सकते। उचित आधार इस प्रकार हो सकते हैं जैसे (i) जब वेतन निर्धारण वैध वैधानिक नियमों/कार्यकारी निर्देशों के तहत किया जाता है; (ii) जब विभिन्न स्रोतों से भर्ती किए गए व्यक्तियों को वेतन सुरक्षा दी जाती है; (iii) जब किसी वरिष्ठ को दक्षता बार पर रोका जाता है; (iv) जब अनुभव/परीक्षा उत्तीर्ण करने/उच्च योग्यता या दक्षता के लिए प्रोत्साहन के रूप में करने के लिए अग्रिम वेतन वृद्धि दी जाती है। (पैरा 8 और 9)

बी. प्रक्रियात्मक कानून - भारतीय संविधान –अनुच्छेद 226 रिट – आवश्यक पक्ष का गैर-जुड़ाव - हालांकि विश्वविद्यालय को पक्ष बनाया गया था, राज्य और आईसीएआर को रिट याचिका में पक्ष नहीं बनाया गया था – प्रभाव - राज्य के गैर-निष्पादन के संबंध में पूर्व कोई आपत्ति नहीं उठाई गई थी – अपील में पहली बार रिट कोर्ट की आपत्ति, कितनी हद तक स्वीकार्य है - आयोजित, किसी व्यक्ति को कार्यवाही में एक पक्ष के रूप में शामिल करने का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि उस व्यक्ति को कार्यवाही में अपना पक्ष प्रस्तुत रखने का उचित अवसर मिले। वर्तमान मामले में, विश्वविद्यालय के कुलपति, जो विश्वविद्यालय के प्रमुख अधिकारी हैं और विश्वविद्यालय के वाद को सामने रखने के लिए सबसे अच्छे व्यक्ति हैं, रिट कार्यवाही में एक पक्ष थे, उच्च न्यायालय ने इसे अति-तकनीकी मानते हुए आपत्ति को निरस्त कर दिया। (पैरा 11)

विशेष अपील निरस्त। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य बनाम जी. श्रीनिवास राव और अन्य; (1989) 2 एससीसी 290

2. आंध्र प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम वीरा राघवन; (1999) 9 एससीसी 266

3. भारत संघ और अन्य बनाम आर. स्वामीनाथन और अन्य; (1997) 7 एससीसी 690

4. कलकत्ता नगर निगम और अन्य बनाम सुजीत बरन मुखर्जी और अन्य; (1997) 11 463

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा और
माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार द्वारा प्रदत्त)

1. चूंकि यह दोनों अपील रिट-ए संख्या 4194 वर्ष 2022 में विद्वान एकल न्यायाधीश के एक ही निर्णय और आदेश दिनांकित 20.9.2022 के विरुद्ध हैं, वे एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं और, पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की सहमति से, एक साथ सुनी गई हैं और एक ही निर्णय और आदेश द्वारा निर्णीत की जा रही हैं।

2. रिट-ए संख्या 4194 वर्ष 2022 डॉ. लल्लू सिंह (विशेष अपील संख्या 666/2022 में अपीलार्थी, जो विशेष अपील संख्या 671 वर्ष 2022 में प्रतिवादी संख्या 1 भी है) द्वारा, निदेशक, प्रशासन एवं निगरानी, चन्द्रशेखर आज़ाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (संक्षेप में विश्वविद्यालय) के, रिट याचिकाकर्ता (अर्थात डॉ. लल्लू सिंह) के वेतन में वृद्धि करके उसे अपने कनिष्ठ के बराबर करने के दावे को खारिज करने वाले आदेश दिनांकित 13.03.2020 और 16.07.2021, को अपास्त करने हेतु दायर की गई थी। रिट याचिकाकर्ता ने विश्वविद्यालय प्राधिकारियों को याचिकाकर्ता की वेतन वृद्धि और उनके कनिष्ठों को उच्च वेतन दिए जाने की तारीख से उनका वेतन अपने कनिष्ठों के बराबर किए जाने और ब्याज सहित बकाया राशि का भुगतान किए जाने हेतु निर्देशित करने की भी प्रार्थना की।

3. याचिकाकर्ता ने इस आधार पर वेतन में वृद्धि का दावा किया कि भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) के परिपत्र दिनांकित 3 मार्च, 1999 के खंड IV (ii) (घ) द्वारा जब विश्वविद्यालय का कोई शिक्षक अपने सेवा काल में पीएच.डी. डिग्री प्राप्त करता है तो दो अग्रिम वेतन वृद्धि दी जानी होती थी। इसके आधार पर, कई शिक्षक, जिन्होंने अपनी सेवा अवधि के दौरान पीएच.डी की डिग्री प्राप्त की, जो यद्यपि रिट याचिकाकर्ता से कनिष्ठ थे,

अनूदित

उनका वेतन बढ़ गया और याचिकाकर्ता से अधिक हो गया, इसलिए वेतन समानता के सिद्धांत पर, रिट याचिकाकर्ता वेतन में वृद्धि का हकदार था। विश्वविद्यालय प्राधिकारियों ने निम्नलिखित आधारों पर दावे की अस्वीकृति को उचित ठहराने की मांग की: कि रिट याचिकाकर्ता ने पीएचडी की डिग्री के साथ सेवा में प्रवेश किया था और उसका लाभ प्राप्त किया जैसा कि उस समय ऐसी अतिरिक्त योग्यता के लिए उपलब्ध था; जबकि, जिन कनिष्ठों के साथ रिट याचिकाकर्ता ने वेतन समानता का दावा किया था, उन्होंने सेवा के दौरान पीएच.डी. डिग्री प्राप्त की और, इसलिए, आईसीएआर के परिपत्र दिनांकित 3 मार्च, 1999 के आधार पर उन्हें 01.01.1996 से संशोधित वेतनमान में 27.07.1998 से दो अग्रिम वेतन वृद्धि मिली; एवं, आईसीएआर का स्पष्टीकरण परिपत्र दिनांकित 19 अप्रैल, 2004, एक वरिष्ठ द्वारा अपने वेतन में वृद्धि के दावे पर रोक लगाता है, यदि, कनिष्ठ को प्रदान की गई ऐसी वृद्धि से, कनिष्ठ का वेतन वरिष्ठ से अधिक हो जाता है।

4. जो बात निर्विवाद है वह यह है कि रिट याचिकाकर्ता से कनिष्ठ लोग जो एक ही पद पर कार्यरत थे, उन्हें उच्च वेतन केवल इसलिए प्रदान किया गया क्योंकि उन्होंने अपनी सेवा के दौरान पीएचडी की डिग्री प्राप्त की, जो कि रिट याचिकाकर्ता के पास सेवा में प्रवेश के समय से ही थी। यह भी निर्विवाद है कि रिट याचिकाकर्ता के कनिष्ठ को दी गई वेतन वृद्धि आईसीएआर के परिपत्र दिनांकित 3 मार्च, 1999 के आलोक में थी, जिसमें पीएचडी/एम.फिल के लिए कुछ प्रोत्साहन राशि प्रदान की गई थी। आईसीएआर द्वारा जारी परिपत्र दिनांक 3 मार्च, 1999 का प्रासंगिक खंड खंड IV (ii) (घ) है, जो नीचे दिया गया है:

"एक शिक्षक अपने सेवा काल में पीएचडी की डिग्री प्राप्त करने पर दो अग्रिम वेतन वृद्धि हेतु पात्र होगा।"

5. 1999 के आईसीएआर परिपत्र के उपरोक्त भाग को आईसीएआर के परिपत्र दिनांकित 19 अप्रैल, 2004 द्वारा निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया गया था: -

क्रम संख्या	***संदेह के बिंदु***	***स्पष्टीकरण***
1	---	---
2	---	---
3	***क्या वरिष्ठों का वेतन उन कनिष्ठों के बराबर बढ़ाया जा सकता है जिन्हें योग्यता के लिए दी गई 4/2 अग्रिम वेतन वृद्धि के परिणामस्वरूप अधिक वेतन मिलता है***	***यदि कोई कनिष्ठ पीएच.डी. डिग्री/एम.फिल डिग्री प्राप्त करने के कारण मिलने वाली अग्रिम वेतन वृद्धि के फलस्वरूप अधिक वेतन प्राप्त कर रहा है तो वरिष्ठों का वेतन नहीं बढ़ाया जा सकता है***
--	---	---

6. रिट याचिकाकर्ता ने दावा किया कि चूँकि जिस पद पर वह और उसका जूनियर काम कर रहे थे वह एक ही था, पद से जुड़े कार्य समान थे, दोनों को चयन के माध्यम से नियुक्ति मिली, वेतन में अंतर इसलिए नहीं था क्योंकि उनमें से कोई भिन्न स्ट्रीम या वेतन सुरक्षा के साथ कैडर में दाखिल हुआ, याचिकाकर्ता को उसके कनिष्ठ से सिर्फ इसलिए कम वेतन देने का कोई औचित्य नहीं था कि याचिकाकर्ता ने पीएचडी डिग्री सेवा में प्रवेश करने से पहले प्राप्त की थी जबकि उसके कनिष्ठों ने सेवा में प्रवेश के बाद। संक्षेप में याचिकाकर्ता का दावा भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 में निहित मौलिक सिद्धांत पर आधारित था कि एक वर्ग के भीतर वर्ग नहीं हो सकता है और वेतन निर्धारण में भेदभाव का कोई तर्कसंगत आधार नहीं है।

7. विद्वान एकल न्यायाधीश ने पक्षकारों की दलीलों और पत्रावली का अवलोकन करने के पश्चात यह विचार किया कि आईसीएआर का स्पष्टीकरण परिपत्र दिनांकित 19 अप्रैल, 2004 ऐसे वरिष्ठों को वेतन समानता के दावे से वंचित करने के लिए नहीं है, जिनके पास पीएच.डी. डिग्री/एम.फिल डिग्री है। बल्कि, यह यह स्पष्ट करने के लिए है कि यदि कनिष्ठ को उच्च योग्यता प्राप्त करने के कारण वेतन में वृद्धि मिलती है तो वरिष्ठ को वेतन समानता का दावा करने का अधिकार नहीं होगा।

8. इससे पहले कि हम आगे बढ़ें, वेतन समानता को नियंत्रित करने वाले विधिक सिद्धांतों पर ध्यान देना उपयोगी होगा। यह सुस्थापित है कि सामान्यतः, किसी कनिष्ठ को अधिक वेतन देना तब तक जाहिर तौर पर मनमाना होगा जब तक कि इसे उचित ठहराने वाला कोई स्पष्ट वैशिष्ट्य न हो। निस्संदेह, यदि ऐसा करने के लिए उचित आधार हैं, तो वरिष्ठ समानता सिद्धांत का आह्वान नहीं कर सकते। उचित आधार इस प्रकार हो सकते हैं जैसे (i) जब वेतन निर्धारण वैध वैधानिक नियमों/कार्यकारी निर्देशों के तहत किया जाता है; (ii) जब विभिन्न स्रोतों से भर्ती किए गए व्यक्तियों को वेतन सुरक्षा दी जाती है; (iii)

जब किसी वरिष्ठ को दक्षता बार पर रोका जाता है; (iv) जब अनुभव/परीक्षा उत्तीर्ण करने/उच्च योग्यता प्राप्त करने या दक्षता के लिए प्रोत्साहन के रूप में अग्रिम वेतन वृद्धि दी जाती है **(आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य बनाम जी. श्रीनिवास राव और अन्य, (1989) 2 एससीसी 290 जो कि आंध्र प्रदेश सरकार एवं अन्य बनाम वीरा राघवन, (1999) 9 एससीसी 266 में दोहराया गया);** (v) जहां किसी कनिष्ठ को उच्च वेतन स्थानीय स्थानापन्न पदोन्नति के कारण पूर्व में उच्च पद पर स्थानापन्न होने के फलस्वरूप मिलता है **(भारत संघ और अन्य बनाम आर. स्वामीनाथन और अन्य, (1997) 7 एससीसी 690 के द्वारा)। कलकत्ता नगर निगम एवं अन्य बनाम सुजीत बरन मुखर्जी और अन्य, (1997) 11 463,** में उच्चतम न्यायालय ने वरिष्ठ के वेतन को कनिष्ठ के बराबर बढ़ाने के संदर्भ में, यह गौर किया कि जब वे सभी समान कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं और समान जिम्मेदारी के तहत कार्य कर रहे होते हैं न कि अलग-अलग परिस्थितियों में, तो वेतन वृद्धि का सिद्धांत लागू होगा।

9. वर्तमान मामले में, इसमें कोई विवाद नहीं है कि रिट याचिकाकर्ता के कनिष्ठ समान कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे थे और समान परिस्थितियों में थे, फिर भी, उन्हें उच्च वेतन केवल इसलिए दिया जा रहा था क्योंकि उन्होंने सेवा में रहते हुए पीएचडी की डिग्री प्राप्त की थी जबकि रिट याचिकाकर्ता के पास पीएचडी डिग्री सेवा में प्रवेश से पहले ही थी। विद्वान एकल न्यायाधीश के अनुसार यह विसंगति अनुचित और भेदभावपूर्ण थी क्योंकि दोनों के बीच कोई स्पष्ट वैशिष्ट्य मौजूद नहीं था। हमारे विचार में, विद्वान एकल न्यायाधीश का उपरोक्त दृष्टिकोण को अपनाना उचित है, क्योंकि, एक व्यक्ति, जो योग्यता के संदर्भ में, शुरू से ही अर्थात सेवा में प्रवेश के समय से ही उच्च योग्यता रखता है, उसे, उस व्यक्ति की तुलना में जो बाद में उसके बराबर आता है, अलाभकारी स्थिति में नहीं रखा जा सकता है। प्रति शपथपत्र में या रिट याचिका में आक्षेपित आदेश में ऐसा कुछ भी नहीं दिखाया गया है कि अधिक वेतन पाने वाला कनिष्ठ वेतन संरक्षण के साथ एक अलग स्ट्रीम से आया था या भिन्न कर्तव्यों या अतिरिक्त कार्यों का निर्वहन कर रहा था अथवा कोई परीक्षा उत्तीर्ण की थी या उसे अतिरिक्त अनुभव, आदि के कारण वेतन वृद्धि दी गई थी। केवल 3 मार्च, 1999 के आईसीएआर के परिपत्र और 19 अप्रैल, 2004 के स्पष्टीकरण परिपत्र को आधार बनाया गया है। जहां तक 1999 के परिपत्र का सवाल है, यह प्रावधान करता है कि एक शिक्षक जब भी अपने सेवा काल में पीएच.डी. की डिग्री प्राप्त करेगा, तब वह दो अग्रिम वेतन वृद्धि के लिए पात्र होगा। वह यह नहीं कहता है कि एक शिक्षक जो पहले से ही पीएच.डी. है वह उस लाभ का हकदार नहीं है। जहां तक 19 अप्रैल, 2004 के स्पष्टीकरण परिपत्र का सवाल है, हमारे विचार में, यह ऐसे वरिष्ठ के दावे पर रोक लगाएगा जिसके पास पीएचडी डिग्री नहीं है किंतु उसके दावे पर नहीं जो पीएच.डी. डिग्री धारित करता है। उपरोक्त कारणों से, हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से सहमत हैं।

10. इस स्तर पर, विश्वविद्यालय के विद्वान अधिवक्ता श्री राकेश कुमार ने प्रस्तुत किया कि विश्वविद्यालय अपना फंड राज्य सरकार के साथ-साथ आईसीएआर से भी प्राप्त करता है, किंतु रिट याचिका में न तो राज्य सरकार और न ही आईसीएआर एक पक्षकार हैं अतः आवश्यक पक्षों के शामिल न होने के कारण रिट याचिका खारिज होने योग्य थी। यह प्रस्तुत किया गया है कि विश्वविद्यालय को भी विपक्षी पक्ष के रूप में शामिल नहीं किया गया था। केवल विश्वविद्यालय के कुलपति को ही पक्षकार के रूप में शामिल किया गया था। इसी कारण मात्र से, याचिका खारिज किये जाने योग्य थी।

11. उपरोक्त निवेदन अति-तकनीकी है। यदि इसे विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष प्रति शपथपत्र में या मौखिक रूप से उठाया गया होता, तो यह आक्षेपित निर्णय और आदेश में परिलक्षित हो सकता था। रिट की कार्यवाही में विपक्षी पक्षों द्वारा दाखिल प्रति शपथपत्र पत्रावली पर है। उसके अवलोकन से यह नहीं पता चलता कि ऐसा कोई आधार लिया गया था। यदि इसे उठाया गया होता, तो उचित पक्षों को पक्षकार बनाकर दोष को ठीक किया जा सकता था। अन्यथा भी, किसी व्यक्ति को कार्यवाही में पक्षकार बनाने का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि उस व्यक्ति को कार्यवाही में अपना पक्ष रखने का उचित अवसर मिले। वर्तमान मामले में, विश्वविद्यालय के कुलपति, जो विश्वविद्यालय के प्रमुख अधिकारी हैं और विश्वविद्यालय के पक्ष को सामने रखने के लिए सर्वाधिक उचित व्यक्ति हैं, रिट कार्यवाही में पक्षकार थे और यह उनका निर्णय था जिसे रिट याचिकाकर्ता को सूचित किया गया था। विशेष रूप से, उन्होंने और विश्वविद्यालय के अन्य अधिकारी ने विश्वविद्यालय का प्रतिनिधित्व किया और विश्वविद्यालय का पक्ष रखते हुए एक प्रति शपथपत्र भी दाखिल किया गया था। ऐसी परिस्थितियों में, हम उस तकनीकी आधार पर विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश को रद्द करने का कोई उचित कारण नहीं पाते हैं।

12. जहां तक राज्य सरकार और आईसीएआर को पक्षकार न बनाने का प्रश्न है, रिट याचिकाकर्ता को विश्वविद्यालय द्वारा नियोजित किया गया था और उसका वेतन विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान किया जाता था। विश्वविद्यालय अपना फंड कहां से प्राप्त करता है, यह याचिकाकर्ता की चिंता का विषय नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में, हमें उस आधार पर विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश को रद्द करने का कोई औचित्य नहीं दिखता है।

13. इस स्तर पर, श्री सिद्धार्थ श्रीवास्तव, जो रिट याचिकाकर्ता (डॉ. लल्लू सिंह) की ओर से पेश होते हैं, अपनी विशेष अपील संख्या 666 वर्ष 2022 पर जोर देते हुए कहते हैं कि विद्वान एकल न्यायाधीश को स्वयं द्वारा निर्देशित वेतन में वृद्धि के कारण देय बकाया पर ब्याज प्रदान करना चाहिए था।

14. हम विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश में यह गौर करते हैं कि उन्होंने रिट याचिकाकर्ता के वेतन को भूतलक्षी प्रभाव से बढ़ाने का निर्देश दिया है, अर्थात उस तारीख से जब रिट याचिकाकर्ता के कनिष्ठ डॉ. हरज्ञान प्रकाश को प्रथम बार याचिकाकर्ता से अधिक उच्च वेतन प्रदान किया गया था। बार में की गई दलीलों से, हम यह आकलन कर सकते हैं कि डॉ. हरज्ञान प्रकाश को वर्ष 2007 में किसी समय, अथवा किसी पूर्व तिथि से, रिट याचिकाकर्ता को प्रदान किए जाने वाले वेतन से अधिक वेतन प्रदान किया गया था। यद्यपि यह कहा गया है कि रिट याचिकाकर्ता 2011 से अपने मामले का प्रतिनिधित्व कर रहा था, परंतु जिस प्रत्यावेदन पर बल दिया गया था वह वर्ष 2017 में किया गया था। निःसंदेह तब से याचिकाकर्ता अपने दावे को आगे बढ़ाने में सतत प्रयासरत था किंतु उसके पूर्व, अपने दावे को आगे बढ़ाने में सुस्त था। इसलिए, हम पूर्व तिथि से बकाए पर ब्याज के लिए याचिकाकर्ता की प्रार्थना को अस्वीकार करते हैं।

15. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, दोनों अपील विफल हो जाती हैं और **खारिज** की जाती हैं। विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय एवं आदेश की पुष्टि की जाती है।

(2023) 1 ILRA 459

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांकः इलाहाबाद 23.12.2022

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायाधीश राजेश बिंदल
माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

विशेष अपील संख्या 781/2011

दि मैनेजिंग डायरेक्टर, प्रादेशिक को-ऑपरेटिप डेयरी फेडरेशन लिमिटेड एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

वीरेंद्र कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य ...प्रत्यर्थी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
श्री जी.डी. मिश्रा

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता:
श्री एस.सी. श्रीवास्तव, श्री वी.के. सक्सेना, श्री ए.के. त्रिपाठी, श्री अरविन्द कुमार त्रिपाठी, श्री श्यामल कुमार प्रयागी, श्री एस.वी. श्रीवास्तव

क. सेवा कानून - उ.प्र. सहकारी समिति अधिनियम, 1965 - उ.प्र. सहकारी समितियां कर्मचारी सेवा विनियम, 1975 - विनियमन 87 - अधिसूचना दिनांक 04.03.1972 और 17.11.1979 - सेवा से बर्खास्तगी - बर्खास्तगी आदेश पारित करने से पहले पीसीडीएफ द्वारा उ.प्र. सहकारी संस्था सेवा बोर्ड की कोई मंजूरी नहीं ली गई - प्रभाव - 1975 का विनियमन, पीसीडीएफ पर कितना लागू होता है - अवधारित किया गया, पीसीडीएफ दिनांक 17.11.1979 की अधिसूचना जारी होने के बाद अपने कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण और अनुशासनात्मक नियंत्रण के संबंध में अब बोर्ड के दायरे में नहीं है - जबकि 1975 के विनियम पीसीडीएफ पर लागू होते रहेंगे, विनियम 87, जो खंड (i) के उप-खंड (ई), (एफ) और (जी) में किसी भी निर्दिष्ट प्रमुख दंड से पहले बोर्ड की पूर्व सहमति को अनिवार्य करता है, विनियम 84 लगाए गए हैं, पीसीडीएफ पर लागू नहीं होंगे– पीसीडीएफ को किसी भी निर्दिष्ट प्रमुख दंड को लगाने से पहले बोर्ड की पूर्व सहमति प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होगी - आगे अवधारित किया गया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने विश्वनाथ गुप्ता-III और विश्वनाथ गुप्ता-II में कानून की स्पष्ट व्याख्या को गलत समझा है। (पैरा 25 और 27)

विशेष अपील की अनुमति दी गई और रिट याचिका खारिज कर दी गई।(ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. विशेष अपील संख्या 992/1997; प्रादेशिक कोऑपरेटिव डेयरी फेडरेशन लिमिटेड और अन्य बनाम विश्व नाथ गुप्ता एवं अन्य, दिनांक 27.08.2007 को निर्णीत।

2. सिविल अपील संख्या 7676/2009; एम.डी., प्रादेशिक कोऑपरेटिव डेयरी फेडरेशन लिमिटेड और अन्य बनाम वी ईश्वरनाथ गुप्ता, दिनांक 19.05.2014 को निर्णीत

3. विश्वनाथ गुप्ता बनाम प्रादेशिक सहकारी डेयरी फेडरेशन एवं अन्य; 1998 (80) एफएलआर 457

(माननीय मुख्य न्यायाधीश राजेश बिंदल एवं न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा सुनाया गया)

1. यह प्रतिवादियों की अपील है, जो विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय दिनांक 1 अप्रैल, 2011 से उत्पन्न हुई है, जिसमें रिट याचिका को अनुमति देते हुए और इस अपील के रिट याचिकाकर्ता-प्रतिवादी संख्या 1 के खिलाफ पारित सेवा से बर्खास्तगी के आदेश दिनांक 21 जून, 1996 को अपास्त कर दिया गया। आक्षेपित निर्णय द्वारा, विद्वान एकल न्यायाधीश ने 50% बकाया वेतन के भुगतान का भी निर्देश दिया है। प्रतिवादियों को कानून के अनुसार नया आदेश पारित करने की स्वतंत्रता दी गई।

2. अनावश्यक विवरण को छोड़कर, तथ्य यह है कि रिट याचिकाकर्ता को उत्तर प्रदेश सहकारी सोसायटी अधिनियम, 1965 (संक्षेप में, ''1965 का अधिनियम') की धारा 2 (ए -4) में परिकल्पित, प्रादेशिक सहकारी डेयरी फेडरेशन लिमिटेड, लखनऊ, (संक्षेप में, ''पीसीडीएफ') एक शीर्ष दुग्ध सहकारी समिति के साथ एक परियोजना संचालक के रूप में नियुक्त किया गया था। पीसीडीएफ में कार्यरत एक प्रोजेक्ट ऑपरेटर चतुर्थ श्रेणी का पद धारित करता है। रिट याचिकाकर्ता पर पीसीडीएफ के धन के गबन और दुरुपयोग के आरोप में आरोप पत्र दायर किया गया था। विभागीय जांच के बाद दिनांक 21 जून 1996 को प्रबंध निदेशक, पीसीडीएफ द्वारा पारित आदेश द्वारा उन्हें सेवा से बर्खास्त कर दिया गया।

3. सेवा से बर्खास्तगी के आदेश को चुनौती देते हुए और परिणामी राहत के लिए रिट याचिका दायर की गई थी। हलफनामों के आदान-प्रदान के बाद, रिट याचिका को विद्वान एकल न्यायाधीश ने 1 अप्रैल, 2011 के आदेश द्वारा संक्षिप्त आधार पर अनुमति दी थी कि उत्तर प्रदेश सहकारी समितियां कर्मचारी सेवा विनियम, 1975 (संक्षेप में '1975 के विनियम') के नियम 87 के तहत उ.प्र. सहकारी संस्थागत सेवा बोर्ड (संक्षेप में, 'बोर्ड') की मंजूरी के बिना पीसीडीएफ द्वारा बर्खास्तगी का आदेश पारित नहीं किया जा सकता है। रिट याचिका के प्रतिवादियों, जो पीसीडीएफ के प्रबंध निदेशक और दो अन्य अधिकारी हैं, ने विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले के खिलाफ अपील दायर की है।

4. पीसीडीएफ के विद्वान अधिवक्ता श्री जी.डी. मिश्रा और रिट याचिकाकर्ता-प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री एस.सी. श्रीवास्तव को सुना गया।

5. पीसीडीएफ के विद्वान अधिवक्ता श्री जी.डी. मिश्रा द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस आशय का गलत निष्कर्ष दर्ज किया है कि जवाबी हलफनामे में, पीसीडीएफ ने यह रुख अपनाया था कि 1975 के नियम उन पर लागू नहीं होते, जबकि जवाबी हलफनामे में वे यही कहते हैं कि जहां तक पीसीडीएफ का संबंध है, भर्ती, प्रशिक्षण और अनुशासनात्मक नियंत्रण से संबंधित प्रावधानों को छोड़कर, 1975 के विनियम लागू होते हैं, जिन्हें 17 नवंबर 1979 की वैधानिक अधिसूचना के तहत बाहर रखा गया है। विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान पेपर-बुक के पेज नंबर 120 पर जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ नंबर 27 की ओर आकर्षित किया है। श्री मिश्रा द्वारा यह तर्क दिया गया है कि राज्य ने दिनांक 4 मार्च, 1972 की अधिसूचना के तहत 1965 के अधिनियम की धारा 122 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए शीर्ष स्तर की समितियों, केंद्रीय या प्राथमिक समितियों के कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण और अनुशासनात्मक नियंत्रण के लिए बोर्ड का गठन किया, जैसा कि 7 फ़रवरी 1973 को संशोधित किया गया। दिनांक 4 मार्च 1972 की अधिसूचना के संदर्भ में, नियम 87 सहित 1975 की विनियम पूरी तरह से लागू होते हैं। पीसीडीएफ के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, दिनांक 17 नवंबर 1979 की एक बाद की अधिसूचना द्वारा, 4 मार्च 1972 की अधिसूचना को संशोधित किया गया और एपेक्स लेवल मिल्क सोसायटी यानी पीसीडीएफ, केंद्रीय या प्राथमिक दुग्ध समितियां, जिनका संचालन क्षेत्र एक से अधिक जिलों या राज्य तक फैला हुआ है और कानपुर सहकारी दुग्ध बोर्ड सहित सहकारी दुग्ध संघों को बोर्ड के दायरे से बाहर कर दिया गया है।

6. श्री जी.डी. मिश्रा द्वारा आगे तर्क दिया गया कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह मानकर त्रुटि की है कि रिट याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त करने का आदेश कानून की दृष्टि से गलत है, क्योंकि विनियम 1975 के नियम 87 के अनुसार बोर्ड की कोई पूर्व स्वीकृति प्राप्त नहीं की गई थी। विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विद्वान न्यायाधीश इस न्यायालय की एक खंडपीठ के निर्णय दिनांक 27 अगस्त, 2007 को निर्णीत, विशेष अपील संख्या 992/1997, जिसका शीर्षक ''प्रादेशिक को-ऑपरेटिव डेयरी फेडरेशन लिमिटेड और अन्य बनाम विश्व नाथ गुप्ता और अन्य'', (संक्षेप में, ''विश्व नाथ गुप्ता-।') था, के बाद उपरोक्त निष्कर्ष पर पहुंचे हैं, जो उस बिंदु के बारे में स्पष्ट रूप से अलग है जिस पर निर्णय बदल गया और दिनांक 19, 2014 को निर्णीत सिविल अपील संख्या 7676/2009, जिसका शीर्षक ''एमडी, प्रादेशिक को-ऑपरेटिव डेयरी फेडरेशन लिमिटेड और अन्य बनाम विश्वनाथ गुप्ता'' (संक्षेप में, ''विश्वनाथ गुप्ता-।।') था, में सर्वोच्च न्यायालय की पुष्टि प्राप्त हुई।

7. दूसरी ओर, रिट याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि विद्वान एकल का निर्णय त्रुटिहीन है और प्रस्तुत करता है कि विश्वनाथ गुप्ता-। मामले में डिवीजन बेंच के फैसले को, जिसमें उसने सेवा से बर्खास्तगी का आदेश पारित करने से पहले बोर्ड की पूर्व मंजूरी को अनिवार्य बताया था, विश्वनाथ गुप्ता-।। मामले में सुप्रीम कोर्ट की मंजूरी मिल गई है। यह प्रस्तुत किया गया है कि पीसीडीएफ को 1975 के विनियमों की व्यवस्था से कभी

बाहर नहीं रखा गया है, जो उस पर लागू होते रहेंगे। इसलिए, 1975 के विनियमों के नियम 87 के तहत परिकल्पित अनिवार्य आवश्यकता, पीसीडीएफ को दंड देने से पहले बोर्ड की पूर्व सहमति प्राप्त करने के लिए बाध्य करती है, 1975 के विनियमों के नियम 84(i)(जी) में उल्लिखित अनिवार्य आवश्यकता लागू रहेगी। विशेष रूप से, श्री एससी श्रीवास्तव द्वारा यह तर्क दिया गया है कि 4 मार्च, 1972 की अधिसूचना को पढ़ने से, जैसा कि 1965 के अधिनियम की धारा 122 के तहत जारी 7 फरवरी 1973 की अधिसूचना द्वारा संशोधित किया गया है, साथ ही 17 नवंबर 1979 की अधिसूचना, जो धारा 122 के तहत भी जारी की गई है,बिल्कुल संदेह पैदा नहीं करती है कि विनियमों के तहत अनुशासनात्मक नियंत्रण से संबंधित प्रावधान 1975 को बाहर नहीं किया गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि विनियमन 87 के तहत बोर्ड की पूर्व सहमति के बिना पीसीडीएफ द्वारा अपने किसी कर्मचारी के खिलाफ सेवा से बर्खास्तगी का आदेश पारित नहीं किया जा सकता है। इस बात पर भी जोर दिया गया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्णय विश्व नाथ गुप्ता-I मामले में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा निर्धारित सिद्धांतों द्वारा पूरी तरह से समर्थित है।

8. हमने पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का परिशीलन किया है।

9. पक्षकारों के बीच कोई मुद्दा नहीं है कि पीसीडीएफ एक शीर्ष सोसायटी है, जैसा कि 1965 के अधिनियम की धारा 2 (ए-4) के तहत परिभाषित है, जो उक्त अधिनियम के प्रावधानों द्वारा शासित है।

10. 1965 के अधिनियम की धारा 121 और 122, दोनों सहकारी समितियों के कर्मचारियों के लिए सेवा नियम बनाने के बारे में बताती हैं और कोऑपरेटिव समितियों या समितियों के एक वर्ग के कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण और अनुशासनात्मक नियंत्रण के लिए राज्य सरकार द्वारा बोर्ड की स्थापना के बारे में भी उद्धृत किया जा सकता है। ये इस प्रकार हैं:

"धारा 121 – निबन्धक का समितियों में सेवायोजन की शर्तें अवधारित करने का अधिकार

(1) निबन्धक किसी सहकारी समिति या सहकारी समितियों के वर्ग के कर्मचारीयों की उपलब्धियों और सेवाओं की अन्य शर्तों को, जिनके अन्तर्गत ऐसे कर्मचारीयों पर अनुशासनिक नियंत्रण भी है, विनियमित करने के लिये समय-समय पर विनियमन बना सकता है और समिति, जिस पर ये शर्तें प्रवृत्त होती हों, उन विनियमों का तथा निबंधक के ऐसे आदेशो का जो उनका पालन सुनिश्चित करने के लिये दिये जायें, पालन करेगी।

(2) उपधारा (1) के अधीन बनाये गये विनिमय गजट में प्रकाशित किये जायेंगे और प्रकाशन के दिनांक से प्रभावी होंगे।

धारा 122. सहकारी समिति के कर्मचारियों पर नियत्रण रखने वाला प्राधिकारी

(1) राज्य सरकार ऐसी रीति से जो नियत की जाय, सहकारी समितियों, या सहकारी समितियों के वर्ग के कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण तथा अनुशासिक नियंत्रण के लिये प्राधिकारी या प्राधिकारियों का संघटन कर सकती है और ऐसे प्राधिकारी या प्राधिकारीयों से इस बात की अपेक्षा कर सकती है कि वह या वे ऐसे कर्मचारीयों की भर्ती उपलब्धियों और सेवाओं की शर्तो के सम्बन्ध में, जिनके अन्तर्गत अनुशासिक नियन्त्रण भी है, और धारा 70 के उपबंधों के अधीन रहते हुये, सहकारी समिति के कर्मचारी तथा समिति के बीच विवादों के निपटारे के संबंध में विनिमय बनायें।

(2) उपधारा (1) के अधीन बनाये गये विनियम, राज्य सरकार के अनुमोदनाधीन होंगे और ऐसे अनुमोदन के पश्चात गजट में प्रकाशित किये जायेंगे तथा प्रकाशन के दिनांक से प्रभावी होंगे और धारा 121 के अधीन बनाये गये किन्हीं विनियमों का अतिक्रमण करेंगे।"

11. उ.प्र. सहकारी समिति नियमावली, 1968 के नियम 389-क सपठित अधिनियम 1965 की धारा 122 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, राज्य सरकार ने दिनांक 4 मार्च 1972 को उ.प्र. राजपत्र, असाधारण में प्रकाशित अधिसूचना संख्या 366-सी/XII-सी-3-36-71 के तहत बोर्ड का गठन किया, जिसे दिनांक 7 फरवरी 1973 की अधिसूचना द्वारा संशोधित किया गया था। बोर्ड का गठन सहकारी गन्ना विकास संघों और उ.प्र. सहकारी गन्ना संघ फेडरेशन लिमिटेड, लखनऊ को छोड़कर, शीर्ष स्तर की समितियों, केंद्रीय या प्राथमिक समितियों के कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण और अनुशासनात्मक नियंत्रण के उद्देश्य से किया गया था। शीर्ष स्तर की सोसायटी, जिन्हें बोर्ड के दायरे में रखा गया था, वे हैं जिनका संचालन क्षेत्र एक से अधिक जिलों या राज्यों तक फैला हुआ है। इसके अलावा, बोर्ड के दायरे में जिला या केंद्रीय सहकारी बैंक, जिला सहकारी संघ, कानपुर दुग्ध बोर्ड सहित सहकारी दुग्ध संघ, सहकारी गन्ना चीनी कारखाने, सहकारी कपड़ा मिलें और सहकारी आवास संघ भी हैं। बोर्ड का गठन 4 मार्च 1972 की अधिसूचना द्वारा किया गया था और बोर्ड को भर्ती, परिलब्धियों के अलावा सेवा के नियमों और शर्तों के अलावा कर्मचारियों के अनुशासनात्मक नियंत्रण, बोर्ड के अन्तर्गत में सेवारत सोसाइटियों के संबंध में नियम बनाने की शक्ति दी गई थी। बोर्ड ने अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, इसे बनाने वाली अधिसूचना के तहत, नियमावली

1975 को तैयार करने के लिए आगे बढ़ाया। विनियमों को सरकार द्वारा अनुमोदित किया गया था और 1965 के अधिनियम की धारा 122 की उप-धारा (2) के अनुसार अधिसूचना संख्या 7515 (सी)/ XII-C-37-74, यूपी राजपत्र, असाधारण दिनांक 6 जनवरी 1976 में प्रकाशित किया गया था।

12. 1975 के विनियमों का अध्याय VII विनियमों द्वारा शासित सहकारी समितियों के कर्मचारियों के संबंध में दंड, अनुशासनात्मक कार्यवाही और अपील का प्रावधान करता है।

13. विनियमन 84 विभिन्न दंडों को निर्दिष्ट करता है, जो किसी कर्मचारी पर लगाए जा सकते हैं और व्यापक आधार भी, जिनके आधार पर ऐसा किया जा सकता है। विनियम 84(i) इस प्रकार है:

"84. दंड.- (i) किसी भी अन्य विनियम में निहित प्रावधानों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, एक कर्मचारी जो उसे सौंपे गए कर्तव्य का उल्लंघन करता है या आपराधिक कृत्य या अधिनियम की धारा 103 के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया गया है या इन विनियमों द्वारा निषिद्ध कुछ भी करता है निम्नलिखित दंडों में से किसी एक से दंडित किया जा सकता है: -

(ए) निंदा,

(बी) वेतन वृद्धि रोकने के साथ,

(सी) श्रेणी IV (चपरासी, चौकीदार, आदि) के कर्मचारी पर जुर्माना।

(डी) कर्मचारी के आचरण से सहकारी समिति को हुई किसी भी आर्थिक हानि की पूरी या आंशिक क्षतिपूर्ति के लिए वेतन या सुरक्षा जमा से वसूली,

(ई) कर्मचारी द्वारा मूल रूप से धारित रैंक या ग्रेड में कमी,

(च) सेवा से हटाया जाना, या

(छ) सेवा से बर्खास्तगी"

14. विनियम 87 में कहा गया है कि विनियम 84 के खंड (i) के उप-खंड (ई) से (जी) के तहत जुर्माना लगाने का आदेश बोर्ड की पूर्व सहमति के बिना नहीं किया जाएगा। अधिसूचना दिनांक 4 मार्च, 1972, जिसके तहत सर्वोच्च स्तर की सोसायटी, केंद्रीय या प्राथमिक को बोर्ड के दायरे में रखा गया था, राज्य सरकार द्वारा अधिनियम 1965 की धारा 122 की उप-धारा (1) के साथ पठित अधिसूचना संख्या 4326/XII-P-4-79-3(59)-78 दिनांक 17 नवंबर, 1979 के तहत 1965 के अधिनियम के तहत बनाए गए नियमावली के नियम 389-ए के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए दिनांक 17 नवंबर, 1979 को जारी एक अधिसूचना द्वारा संशोधित किया गया था। 17 नवंबर 1979 की अधिसूचना इस प्रकार है:

"उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम, 1965 की धारा 122 की उपधारा (1) सपठित उत्तर प्रदेश सहकारी समिति नियमावली, 1968 के नियम 389-ए और उत्तर प्रदेश सामान्य खंड अधिनियम, 1904 की धारा 21 और दिनांक 4 मार्च 1972 की अधिसूचना संख्या 366-सी/XII-सी-3-36-71 के आंशिक संशोधन के प्रावधानों के अनुसरण में, राज्यपाल को यह आदेश देते हुए खुशी हो रही है कि उक्त अधिसूचना के तहत गठित उ.प्र. सहकारी संस्थागत सेवा बोर्ड एपेक्स लेवल मिल्क सोसायटी यानी प्रादेशिक सहकारी डेयरी फेडरेशन, केंद्रीय या प्राथमिक दुग्ध समितियों के कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण और अनुशासनात्मक नियंत्रण के संबंध में काम करना बंद कर देगा, जिसका क्षेत्र संचालन का दायरा एक से अधिक जिला या राज्य और सहकारी दुग्ध संघों तक फैला हुआ है, जिसमें कानपुर सहकारी दुग्ध बोर्ड भी शामिल है।

2. इसके अलावा, राज्यपाल, एपेक्स लेवल मिल्क सोसायटी यानी प्रादेशिक सहकारी डेयरी फेडरेशन, सेंट्रल मिल्क सोसायटी और कानपुर सहकारी दुग्ध बोर्ड सहित सहकारी दुग्ध संघ का समय-समय पर निबंधक द्वारा निर्दिष्ट श्रेणी I और II कर्मचारियों की भर्ती के लिए एक चयन समिति का गठन करने में प्रसन्न हैं। उक्त चयन समिति में निम्नलिखित सदस्य शामिल होंगे:-

1. राज्य सरकार द्वारा नामित एक अधिकारी

चेयरमैन

2. राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड का एक प्रतिनिधि

सदस्य

3. प्राचार्य, कृषि संस्थान, नैनी, इलाहाबाद सदस्य

4. राज्य में सहकारी दुग्ध संघ या केंद्रीय दुग्ध समिति का एक अध्यक्ष राज्य सरकार द्वारा नामित

सदस्य

5. मैनेजिंग डायरेक्टर, प्रादेशिक को-ऑपरेटिव डेयरी फेडरेशन

मेम्बर सेक्रेटरी"

15. यह रिट याचिकाकर्ता का मामला है कि उसके खिलाफ पारित बर्खास्तगी का आदेश बोर्ड की पूर्व सहमति पीसीडीएफ द्वारा प्राप्त नहीं किए जाने के कारण गलत है।

16. पीसीडीएफ के विद्वान अधिवक्ता ने आग्रह किया है कि 17 नवंबर, 1979 की अधिसूचना के मद्देनजर, पीसीडीएफ को बोर्ड के दायरे से बाहर रखा गया है और रिट याचिकाकर्ताओं पर कोई जुर्माना लगाने के लिए उनकी पूर्व सहमति की आवश्यकता नहीं है।

17. हमने पाया कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपने निष्कर्ष के आधार पर कहा है कि बोर्ड की पूर्व सहमति के अभाव के कारण रिट याचिकाकर्ता की बर्खास्तगी 1975 के

विनियमों के विनियम 87 का उल्लंघन है। विश्वनाथ गुप्ता बनाम प्रादेशिक सहकारी डेयरी फेडरेशन और अन्य 1998 (80) एफएलआर 457 (संक्षेप में, ''विश्वनाथ गुप्ता-III') में इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले पर, जिसे विश्वनाथ गुप्ता-प्रथम के मामले में खण्ड पीठ द्वारा बरकरार रखा गया था।

18. विश्वनाथ गुप्ता-तृतीय,में यह इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा यह आवधारित किया गया था:

"4. दिनांक 17.11.1979 की अधिसूचना से ऐसा प्रतीत होता है कि कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण और अनुशासनात्मक नियंत्रण के संबंध में केवल यू.पी. सहकारी संस्थागत सेवा बोर्ड का संचालन बंद कर दिया गया था। इसमें यह नहीं कहा गया है कि 1975 के विनियम लागू नहीं होंगे। इसके विपरीत , यह केवल संस्थागत सेवा बोर्ड है जिसने काम करना बंद कर दिया है, इसका मतलब यह है कि जो क्षेत्राधिकार संस्थागत सेवा बोर्ड द्वारा प्रयोग किया जाना था, उसका प्रयोग ऐसी सोसायटी का प्रबंधन करने वाले प्राधिकारी द्वारा किया जा सकता है, जिसका अधिकार क्षेत्र छीन लिया गया था और उसे सौंप दिया गया था। 1975 के विनियमों के आधार पर संस्थागत सेवा बोर्ड, उक्त अधिसूचना के कारण, सोसायटी की प्रबंधन समिति या नियंत्रण प्राधिकरण के अधिकार क्षेत्र को 1975 के विनियमों के दायरे में पुनर्जीवित और बहाल किया गया था। दुग्ध आयुक्त द्वारा दिनांक 17 सितंबर, 1981 को जारी किया गया संचार या पत्र आज दायर किए गए पूरक शपथपत्र के अनुलग्नक एस.ए. 1 में शामिल है। जैसा कि पहले देखा गया था, स्पष्टीकरण के बिना भी, उक्त विनियम लागू रहे जिनका केवल विशेष रूप से उल्लेख किया गया था। अत: उक्त के आधार आदेश (एस. ए. 1), 1975 विनियमन लागू है लेकिन दिनांक 17.11.1979 की अधिसूचना के आधार पर, 1975 विनियमन का आवेदन कभी वापस नहीं लिया गया। इसके बाद जवाबी शपथपत्र में दोबारा आग्रह किया गया कि याचिकाकर्ता के सेवा से फरार होने के कारण 1975 के रेगुलेशन के अनुसार याचिकाकर्ता की सेवाएं समाप्त कर दी गईं। अपने तर्कों के दौरान, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने मेरा ध्यान 1975 के विनियम 85 (ii) (बी) की ओर आकर्षित किया था, जिसके अनुसार किसी भी कर्मचारी की सेवाएं बिना किसी अनुशासनात्मक कार्यवाही के समाप्त की जा सकती हैं, यदि वह मामले में भाग गया हो। खंड (बी) पूर्वोक्त. इसलिए, प्रारंभिक आपत्ति स्वीकार नहीं की जा सकती और तदनुसार खारिज कर दी जाती है।"

19. विश्वनाथ गुप्ता के मामले में खण्ड पीठ ने इस बिंदु पर विद्वान एकल न्यायाधीश की राय को बरकरार रखते हुए कहा:

"उपरोक्त तय कानूनी स्थिति के मद्देनजर वर्तमान मामले के तथ्यों में इसकी जांच की जानी है कि क्या अधिसूचना दिनांक 17.11.1979 जारी करना जिसके तहत प्रादेशिक सहकारी डेयरी फेडरेशन को यूपी सहकारी संस्थागत सेवा बोर्ड के दायरे से बाहर कर दिया गया है, जिससे यूपी सहकारी सोसायटी कर्मचारी सेवा विनियमन, 1975 के प्रावधान सोसायटी के कर्मचारियों पर लागू नहीं होंगे। यह न्यायालय रिकॉर्ड कर सकता है कि माननीय एकल न्यायाधीश ने विशेष रूप से दिनांक 17.11.1979 की अधिसूचना में केवल यह प्रावधान किया है कि संस्थागत बोर्ड के पास प्रादेशिक सहकारी डेयरी फेडरेशन के कर्मचारियों के भर्ती प्रशिक्षण और अनुशासनात्मक नियंत्रण पर कोई नियंत्रण नहीं होगा। अधिसूचना में यह प्रावधान नहीं है कि 1975 का विनियमन लागू नहीं होगा। मामले का उपरोक्त पहलू दुग्ध आयुक्त, जो दुग्ध सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार भी हैं, के दिनांक 17.9.1981 के संचार के कारण स्पष्ट किया गया, जिसमें प्रावधान किया गया था कि 1975 के वैधानिक विनियम प्रादेशिक सहकारी डेयरी फेडरेशन के कर्मचारियों पर लागू रहेंगे।

माननीय एकल न्यायाधीश ने सही ही माना है कि किसी भी समय प्रादेशिक सहकारी डेयरी फेडरेशन लिमिटेड के कर्मचारियों के लिए विनियमन 1975 की प्रयोज्यता को वापस नहीं लिया गया। एक बार यह पाया गया कि 1975 के वैधानिक विनियम लागू थे, यह देखा जाएगा कि बर्खास्तगी का विवादित आदेश यूपी सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियमन, 1975 के विनियमन 85 (II) (बी) के अनुरूप है। इसलिए, यह न्यायालय मानता है कि रिट याचिका को अनुमति देने वाला माननीय एकल न्यायाधीश का निर्णय कानून के अनुसार है।"

20. विशेष अनुमति द्वारा अपील करने पर, उच्चतम न्यायालय विश्वनाथ गुप्ता द्वितीय में विद्वान एकल न्यायाधीश की राय को बरकरार रखा, जैसा कि खण्ड पीठ ने पुष्टि की और कहा:

"तथ्यों पर कोई विवाद नहीं है। जो प्रश्न विचार के लिए उभरता है वह यह है कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा विनियमन 85 (ii) (बी) की व्याख्या सही है और क्या उच्च न्यायालय ने इसके विपरीत राय दी है कि इसमें निहित नियम और शर्तें उक्त विनियम की प्रयोज्यता को आकर्षित करने के लिए इसका अनुपालन नहीं किया गया है। विवाद की सराहना करने के लिए, उक्त विनियम को पुन: प्रस्तुत करना आवश्यक है:

"85. अ"85. अनुशासनात्मक कार्यवाही: (1) किसी कर्मचारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही जांच अधिकारी (नीचे खंड (iv) में संदर्भित) द्वारा प्राकृतिक

न्याय के सिद्धांतों के उचित पालन के साथ की जाएगी जिसके लिए यह आवश्यक होगा: -

(ii (ए) जहां किसी कर्मचारी को उस आचरण के आधार पर सेवा से बर्खास्त या हटा दिया जाता है जिसके कारण उसे आपराधिक आरोप में दोषी ठहराया गया था; या

(बी) जहां कर्मचारी फरार हो गया है और उसका पता तीन महीने से अधिक समय से समाज को नहीं पता है; या

(सी) जहां कर्मचारी ने जांच अधिकारी के समक्ष उपस्थित होने के लिए विशेष रूप से लिखित रूप में बुलाए जाने पर पर्याप्त कारण के बिना उपस्थित होने से इनकार कर दिया या विफल रहा; या

(डी) जहां अन्यथा (रिकॉर्ड किए जाने वाले कारणों से) उसके साथ संवाद करना संभव नहीं है, सक्षम प्राधिकारी अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू किए बिना या अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रखे बिना उचित दंड दे सकता है।

उक्त विनियमन को पढ़ने पर, यह काफी स्पष्ट है कि उक्त खंड को आकर्षित करने के लिए, दो पूर्व शर्तें, अर्थात्, कर्मचारी की अनुपस्थिति और, दूसरी, नियोक्ता यानी सोसायटी को एक राय बनाने की स्थिति में होना चाहिए कि ठिकाना कहां है नियोक्ता को कर्मचारी के बारे में तीन महीने से अधिक समय तक पता नहीं है। हाई कोर्ट ने पाया कि दूसरी शर्त पूरी नहीं हुई। उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया तर्क इस प्रकार है:

X X X X

हम पाते हैं कि तथ्यों की पृष्ठभूमि पर उच्च न्यायालय द्वारा बताए गए कारण बिल्कुल सही हैं। पूर्ववर्ती शर्तें संतुष्ट नहीं थीं और इसलिए, बिना जांच किए नियोक्ता प्रतिवादी की सेवाएं समाप्त नहीं कर सकता। ध्यान दें, यह एक असाधारण खंड है और इसलिए, पूर्ववर्ती शर्तों को सख्ती से समझा जाना चाहिए।"

21. विद्वान एकल न्यायाधीश के विश्वनाथ गुप्ता-तृतीय के फैसले को ध्यानपूर्वक पढ़ने से पता चलता है कि उस मामले में निर्णय बोर्ड द्वारा लगाए गए जुर्माने पर पूर्व सहमति के मुद्दे पर नहीं था, बल्कि इस बिंदु पर था कि विनियमन 85 (ii) (बी) के तहत शक्तियों के प्रयोग से पहले की शर्तें पूरी नहीं की गईं थीं।

22. निस्संदेह, विश्वनाथ गुप्ता-III में एक मुद्दा उठाया गया था कि पीसीडीएफ के एक कर्मचारी की सेवाओं की समाप्ति को चुनौती देने के लिए एक रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं थी, क्योंकि यह ''राज्य'' नहीं था और 17 नवंबर1979, की अधिसूचना के आधार पर, पीसीडीएफ अब बोर्ड के दायरे में नहीं था, लेकिन इस न्यायालय ने जुर्माना लगाने पर सवाल उठाने वाले एक कर्मचारी द्वारा उनके खिलाफ रिट याचिका की स्थिरता के संबंध में पीसीडीएफ के तर्क को स्वीकार नहीं किया। यह राय दी गई कि यह केवल बोर्ड है, जिसका अधिकार क्षेत्र 1975 के विनियमों के तहत समाप्त हो गया है और अब इसका उपयोग संबंधित सोसायटी का प्रबंधन करने वाले प्राधिकरण द्वारा किया जा सकता है, जिसे पहले 1975 के विनियमों के आधार पर वापस ले लिया गया था और बोर्ड को सौंप दिया गया था। यह भी माना गया कि 17 नवंबर, 1979 की अधिसूचना ने पीसीडीएफ को 1975 के विनियमों के दायरे से बाहर नहीं रखा है। इसलिए, अध्याय VII सहित 1975 के विनियमों के अन्य प्रावधानों को उनकी राय में माना गया था। यह न्यायालय, पीसीडीएफ पर लागू होगा।

23. विश्वनाथ गुप्ता-III के तार्किक परिणाम यह है कि 17 नवंबर 1979 की अधिसूचना जारी होने के बाद, पीसीडीएफ के किसी कर्मचारी पर एक या अन्य निर्दिष्ट प्रमुख दंड लगाने से पहले बोर्ड की पूर्व सहमति आवश्यक नहीं रह गई थी। लेकिन, वह उक्त मामले का भाग नहीं था। विशेष अपील संख्या 992/1997 में खण्ड पीठ ने भी विद्वान एकल न्यायाधीश को इस बिंदु पर नहीं ठहराया कि पीसीडीएफ के एक कर्मचारी की सेवाओं को समाप्त करने से पहले बोर्ड की पूर्व सहमति आवश्यक थी, लेकिन 17 नवंबर, 1979 की अधिसूचना द्वारा बोर्ड के अधिकार क्षेत्र को वापस लेने के बावजूद 1975 के नियम लागू रहेंगे और, इसलिए, उस मामले में न्यायालय के समक्ष समाप्ति 1975 के विनियमों के विनियमन 85 (ii) (बी) के तहत थी।

24. विश्वनाथ गुप्ता-द्वितीय में विद्वान एकल न्यायाधीश और खण्ड पीठ दोनों को बरकरार रखते हुए सुप्रीम कोर्ट के माननीय न्यायाधीश के निर्णय को कायम रखने का यह भी प्रभाव है कि न्यायालय के समक्ष मामले में कर्मचारी की बर्खास्तगी विनियमन 85 ii)(बी) 1975 के विनियम का उल्लंघन थी, जो 17 नवंबर 1979 की अधिसूचना के बावजूद लागू होते रहेंगे।

25. इसलिए, हमारी राय में, विद्वान एकल न्यायाधीश का यह मानना सही नहीं था कि विश्वनाथ गुप्ता के मामले में खण्ड पीठ ने यह मानते हुए कि 1975 के नियम पीसीडीएफ पर लागू होते हैं, बर्खास्तगी के विवादित आदेश को पारित करने से पहले पीसीडीएफ को बोर्ड की पूर्व सहमति प्राप्त करनी होगी। हमारी राय में, विश्वनाथ गुप्ता-तृतीय और विश्वनाथ गुप्ता-द्वितीय,यानी, विद्वान एकल न्यायाधीश और वहां की खण्ड पीठ दोनों के फैसले में विद्वान एकल न्यायाधीश ने कानून की स्पष्ट व्याख्या को गलत समझा है, जो स्पष्ट रूप 17 नवंबर, 1979 की अधिसूचना के मद्देनजर निहित हे, 1975 के विनियमों को वापस नहीं लिया गया है और पीसीडीएफ के कर्मचारियों की सेवा शर्तों को विनियमित करना जारी रखा गया है,

लेकिन बोर्ड का नियंत्रण और अधिकार क्षेत्र अब पीसीडीएफ तक विस्तारित नहीं है। यह अधिसूचना द्वारा पीसीडीएफ की तुलना में विनियमों के तहत बोर्ड के अधिकार क्षेत्र को हटाना है

26. विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस आधार पर राय दी है कि चूंकि 1975 के विनियमों को विश्वनाथ गुप्ता-तृतीय और विश्वनाथ गुप्ता के मामले में खण्ड पीठ ने विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पीसीडीएफ पर लागू करने के लिए माना गया है। विनियम 87 के अनुपालन के बिना, अर्थात, बोर्ड की पूर्व सहमति प्राप्त किए बिना, बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश खराब है। हमें डर है कि कहीं ऐसा तो नहीं है.

27. 4 मार्च 1972 की अधिसूचना और उसके बाद 17 नवंबर 1979 की अधिसूचना को ध्यान से पढ़ने पर, हमारी राय है कि ऐसा नहीं है कि 1975 के विनियम पीसीडीएफ पर लागू होना बंद हो गए हैं, लेकिन यह निर्विवाद है कि 17 नवंबर, 1979 की अधिसूचना जारी होने के बाद अपने कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण और अनुशासनात्मक नियंत्रण के संबंध में पीसीडीएफ अब बोर्ड के दायरे में नहीं है। इसलिए, हमारी सुविचारित राय में, 1975 के विनियम पीसीडीएफ, विनियमन 87 में लागू होते रहेंगे, जो किसी भी निर्दिष्ट प्रमुख दंड से पहले बोर्ड की पूर्व सहमति को अनिवार्य बनाता है वह विनियमन 84 के खंड (i) के उप खंड (ई), (एफ) और (जी) को लागू किया जायेगा, जो पसीडीएफ में लागू नहीं होगा। पीसीडीएफ को कोई भी निर्दिष्ट बड़ा जुर्माना लगाने से पहले बोर्ड की पूर्व सहमति प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होगी।

28. विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले का समर्थन करने के लिए हमारे सामने कोई अन्य बिंदु पर तर्क नहीं दिया गया है।

29. इसलिए, हमारी राय में, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को बरकरार नहीं रखा जा सकता है।

30. इस विशेष अपील की अनुमति दी जाती है, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश को अपास्त किया जाता है और रिट याचिका खारिज कर दी जाती है।

(2023) 1 ILRA 468

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांकः इलाहाबाद 23.12.2022

समक्ष
माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह

रिट - ए संख्या – 2830/2020

रामप्यारी @ बुधरानी ... याचिकाकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ... प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
जितेंद्र कुमार मिश्रा, राम नरेश सिंह, सर्वेश सिंह, शिवे दत्त यादव

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता:
सी.एस.सी.

ए. सेवा कानून – अनुकंपा नियुक्ति - लिव इन पार्टनर का अधिकार – याचिकाकर्ता का विवाह किसी अन्य से संपन्न हुआ था – हालांकि विवाह विघटित नहीं हुआ था, उसने स्वयं को मृतक की पत्नी होने का दावा किया था – अनुकंपा नियुक्ति का दावा, कितना विचारणीय है - आयोजित, एक व्यक्ति की कानूनी रूप से विवाहित पत्नी अपने विवाह के निर्वाह के दौरान, अपने लिव इन पार्टनर की मृत्यु के विरुद्ध अनुकंपा नियुक्ति का दावा करने के लिए कभी नहीं सुना जा सकता है - नागरिक इन मामलों में अपनी स्वतंत्र पसंद का प्रयोग कर सकते हैं, अर्थात जीने के लिए ऐसा जीवन जो अभी तक कानून का उल्लंघन नहीं कर सकता है, न्यायालय केवल कानूनी अधिकार को मान्यता दे सकता है और उसकी रक्षा के लिए कार्य कर सकता है हालांकि याचिकाकर्ता के जीवन और स्वतंत्रता को उसकी शादी से बाहर रहने की पसंद के बावजूद संरक्षित किया गया था, वर्तमान में कानून याचिकाकर्ता को उसके लिव इन पार्टनर की मृत्यु के कारण अनुकंपा नियुक्ति अधिकार को मान्यता नहीं दे सकता है। (पैरा 10 और 11)

रिट याचिका निरस्त। (ई-1)

(माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री शिव दत्त यादव और राज्य प्रत्यर्थियों के विद्वान स्थाई अधिवक्ता डॉ. संतोष शुक्ला को सुना।

आज पूरक शपथपत्र दाखिल किया गया, जिसे रिकॉर्ड पर लिया गया। साथ ही, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने मृतक राम सजीवन की मूल सेवा पुस्तिका भी प्रस्तुत की है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा, याचिकाकर्ता और राम सजीवन के मध्य मूल विवाह अनुबंध दिनांक 24.6.2006 भी प्रस्तुत किया गया है।

वर्तमान याचिका जिला विद्यालय निरीक्षक, फ़तेहपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 10.8.2019 को चुनौती देने के लिए दायर की गई है। उसके द्वारा उक्त प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता द्वारा अनुकंपा नियुक्ति प्रदान किए जाने हेतु किए गए आवेदन, जो कि राम सजीवन, जिनकी सुखदेव इंटर कॉलेज, खागा, फतेहपुर में चपरासी के पद पर काम करते समय 20.1.2014 को मृत्यु हो गई थी, की मृत्यु के कारण किया गया था, को खारिज कर दिया है।

याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए आवेदन को खारिज करते हुए, जिला विद्यालय निरीक्षक, फतेहपुर ने मृतक की मां फूलमती के शपथ पत्र दिनांक 12.8.2014 पर विचार किया, जिसमें उन्होंने कहा था कि उनका बेटा राम सजीवन कुंवारा मर गया। साथ ही, मृतक की सेवा पुस्तिका भी याचिकाकर्ता के इस दावे का समर्थन नहीं करती कि वह मृतक की विवाहित पत्नी थी।

वर्तमान कार्यवाही में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने सबसे पहले याचिकाकर्ता और मृतक राम सजीवन की बहनों सुश्री दुर्गा देवी, सुश्री शारदा देवी और सुश्री लक्ष्मी के बीच हुए समझौते का आश्रय लिया है। यह दिनांक 11.7.2018 का है। यह उल्लेखनीय है कि मृतक की मां फूलमती की मृत्यु 13.1.2017 को हो गयी थी। इसलिए, यद्यपि उसका नाम समझौता विलेख में है, पर वह उस पर हस्ताक्षरकर्ता नहीं है।

ऐसे तथ्यों पर ध्यान दिए जाने पर, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता को श्रीमती फूलमती की मृत्यु की घटना को स्थापित करने हेतु प्रमाण पत्र रिकॉर्ड पर लाने के लिए पूरक हलफनामा दाखिल करने की आवश्यकता थी। इसके अलावा, विवाह समझौते की मूल प्रति (याचिकाकर्ता द्वारा आश्रय लिया गया) भी प्रस्तुत करना आवश्यक था।

पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और पत्रावली का परिशीलन करने के पश्चात, अब यह प्रकट हुआ है कि याचिकाकर्ता की पहली शादी होरी लाल नामक व्यक्ति से हुई थी, जैसा कि आज दाखिल किए गए पूरक हलफनामे के पैराग्राफ -4 में कहा गया है। उस विवाह के अस्तित्व के दौरान और बिना उसके कानूनी विघटन के, याचिकाकर्ता ने दावा किया है कि उसका मृतक राम सजीवन के साथ एक रिश्ता कायम हुआ, जिसके अनुसरण में उन्होंने एक लिखित अनुबंध किया जिसे विवाह अनुबंध कहा जाता है। यह दिनांक 24.6.2006 का है।

आज प्रस्तुत किए गए मूल दस्तावेज़ से इंगित होता है कि इस पर एक ने राम सजीवन और दूसरे ने बुधरानी नाम से हस्ताक्षर किए हैं। उस दस्तावेज़ में उक्त बुधरानी के किसी भी उपनाम का उल्लेख नहीं है। इसमें उस शख्स को ओम प्रकाश की पुत्री बताया गया है। उस विवाह अनुबंध पर लगाए गए हस्ताक्षर भी बुधरानी के रूप में लिखित हैं। फिर, यद्यपि दस्तावेज़ 24.6.2006 को तैयार किया गया है, इस पर मुहर 26.9.2005 की है। साथ ही, याचिकाकर्ता की पहचान उसी व्यक्ति के रूप में होना जिसने मृतक के साथ विवाह अनुबंध किया होगा, को लेकर गंभीर संदेह मौजूद है। ऐसा इसलिए क्योंकि उस दस्तावेज़ पर हस्ताक्षरकर्ता ने खुद को बुधरानी उर्फ राम प्यारी नहीं बताया था। उसने उस दस्तावेज़ में अपने माता-पिता का भी खुलासा नहीं किया।

वर्तमान याचिका राम प्यारी उर्फ बुधरानी द्वारा दायर की गई है। शपथपत्र किसी राम प्यारी का है। यह उक्त राम प्यारी के किसी भी उपनाम का खुलासा नहीं करता है। उक्त राम प्यारी की पहचान का दावा वोटर आईडी कार्ड की फोटोस्टेट कॉपी के आधार पर किया गया है। यह उस कार्ड के धारक का नाम राम प्यारी बताता है न कि राम प्यारी उर्फ बुधरानी। ऊपर उल्लिखित तथ्य स्वयं में न्यायालय को ऐसे व्यक्ति को संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कोई राहत देने से रोक सकते हैं जिसकी पहचान के बारे में गंभीर संदेह है।

फिर, एक अधिक गंभीर आपत्ति भी मौजूद है - याचिकाकर्ता ने स्वीकार किया है कि उसने वर्ष 2006 में होरी लाल नामक व्यक्ति से शादी की थी और यह भी कि उस शादी का कभी कानूनी विच्छेद नही हुआ था। धर्म से हिंदू होने के कारण, होरी लाल के जीवनकाल के दौरान कानूनी रूप से मृतक राम सजीवन की विवाहित पत्नी के रूप में याचिकाकर्ता की स्थिति को स्वीकार करना मुश्किल है। होरी लाल की पहचान या उसकी वर्तमान स्थिति के बारे में कोई तथ्यात्मक खुलासा नहीं किया गया है। किसी व्यक्ति की कानूनन विवाहित पत्नी को, अपने विवाह के अस्तित्व में होने के दौरान, अपने लिव-इन पार्टनर की मृत्यु पर अनुकंपा नियुक्ति का दावा करने के लिए, कभी नहीं सुना जा सकता है।

नागरिक इन मामलों में अपनी स्वतंत्र इच्छा का पालन कर सकते हैं अर्थात ऐसा जीवन जी सकते हैं जो अभी तक कानून का उल्लंघन न करता हो, परंतु न्यायालय केवल कानूनी अधिकार को मान्यता दे सकता है और उसी की रक्षा हेतु कार्य कर सकता है। इस प्रकार, यद्यपि याचिकाकर्ता के विवाह से इतर रहने के चुनाव के बावजूद, उसका जीवन और स्वतंत्रता सुरक्षित थी, वर्तमान में कानून लिव-इन पार्टनर की मृत्यु के कारण याचिकाकर्ता के अनुकंपा नियुक्ति के अधिकार को मान्यता नहीं दे सकता है। यह कानून नियम से संचालित है, अतः याचिकाकर्ता को अनुकंपा नियुक्ति के हकदार मृतक के उत्तराधिकारियों की किसी भी श्रेणी के अंतर्गत नहीं पाया गया है। मृतक की

सेवा पुस्तिका में भी मृतक के परिवार के सदस्य के रूप में याचिकाकर्ता का नाम शामिल नहीं है।

उपरोक्त कारणों से, रिट याचिका में बल नहीं है और इसे **खारिज** किया जाता है।

उचित अवलोकन के पश्चात, मृतक की मूल सेवा पुस्तिका विद्वान स्थायी अधिवक्ता को वापस कर दी गई है और मूल विवाह अनुबंध याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को वापस कर दिया गया है।

(2023) 1 ILRA 470
मूल न्यायाधिकार
सिविल साइड
दिनांकःइलाहाबाद 10.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया

रिट-ए संख्या 3042/2015

राजेंद्र सिंह ...याचिकाकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता:
श्री सोम कार्तिक, श्री पीयूष मिश्र

अधिवक्ता प्रतिवादी:
सी.एस.सी., श्री अभिषेक द्विवेदी, श्री अजय कुमार, श्री दिलीप कुमार मिश्रा, श्री जोगेंद्र नाथ वर्मा

ए. सेवा कानून – हेड मास्टर के पद - नियुक्ति– अपेक्षित योग्यता अपरिग्रह – भौतिक तथ्य को छिपाना - प्रभाव - प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत, कहां तक लागू है – आयोजित, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि याचिकाकर्ता के पास कभी भी नियुक्ति के लिए अपेक्षित योग्यता नहीं थी, गैर प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करने से याचिका के परिणाम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि यह अच्छी तरह से स्थापित है कि सेवा न्यायशास्त्र में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के आरोपों को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के कारण होने वाले पूर्वाग्रह के परीक्षण से पुष्ट किया जाना चाहिए। (पैरा 16)

रिट याचिका निरस्त। (ई-1)

उद्धृत वाद सूची:

1. अभिराम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य.; 2021 (2) एएलजे 102

2. सुशील कुमार द्विवेदी बनाम बेसिक शिक्षा अधिकारी, बांदा एवं अन्य; (2003) 2 यूपीएलबीईसी 1216

3. राम सूरत यादव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य। (2014) 1 यूपीएलबीईसी 1

4. राम सूरत यादव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2014) 1 यूपीएलबीईसी 1

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, प्रतिवादी संख्या 1 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता, प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता, श्री अजय कुमार, प्रतिवादी संख्या 3 और 4 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता और श्री दिलीप कुमार मिश्रा, प्रतिवादी संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

वर्तमान याचिका में आदेश दिनांकित 11.05.2015, जिसके तहत याचिकाकर्ता की सेवाओं की समाप्ति के प्रस्ताव को रद्द करने के बेसिक शिक्षा अधिकारी के आदेश के विरूद्ध प्रबंधन समिति की अपील को स्वीकृत किया गया था, को चुनौती दी गई है।

तत्पश्चात रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए एक संशोधन प्रार्थना पत्र दायर किया गया था कि अपील स्वीकृत किए जाने के अनुसरण में दिनांक 19.09.2015 को एक नया आदेश पारित किया गया था जिसके द्वारा बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता को प्रश्नगत संस्थान से पदच्युत किए जाने हेतु प्रबंधन समिति के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया था।

संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता ने अपेक्षित अर्हता होने का दावा करते हुए प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा संचालित कॉलेज में हेडमास्टर के पद पर नियुक्ति हेतु आवेदन किया था। प्रारम्भ में याचिकाकर्ता को नियुक्ति प्रदान कर दी गयी तथा याचिकाकर्ता की नियुक्ति को बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा मान्यता भी दे दी गयी तथा याचिकाकर्ता लगभग 10 वर्षों तक संस्था में कार्य करता रहा।

यह तर्क दिया गया है कि महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाकर नियुक्ति के साथ-साथ अनुमोदन प्राप्त करने के लिए याचिकाकर्ता के विरूद्ध उक्त अवधि के पश्चात कार्यवाही

प्रारंभ की गई। याचिकाकर्ता को प्रबंधन समिति द्वारा दिनांक 10.11.2014 को आरोप पत्र दिया गया, जिसमें याचिकाकर्ता से यह हेतुक दर्शित करने के लिए कहा गया कि इस तथ्य के दृष्टिगत कि उसने महत्वपूर्ण तथ्यों को छुपाकर नियुक्ति प्राप्त है, क्यों न उसे प्रदान की गई नियुक्ति निरस्त कर दी जाए।

उक्त प्रथम आरोप, जैसा कि याचिकाकर्ता के विरूद्ध रोजगार प्राप्त करने के लिए लगाया गया, के समर्थन में याचिकाकर्ता ने किसी इंडियन पब्लिक इंटर कॉलेज, लखनऊ, जहां याचिकाकर्ता ने कथित तौर पर सहायक अध्यापक के रूप में जुलाई, 1998 से दिनांक 10.03.2000 तक कार्य किया था, एवं किसी सर्वोदय पब्लिक इंटर कॉलेज, लखनऊ, जहां याचिकाकर्ता ने स्वीकार्य रूप से जुलाई, 2000 से दिनांक 10.08.2003 तक सहायक अध्यापक के रूप में कार्य किया था, द्वारा निर्गत किए गए दो अनुभव प्रमाणपत्रों का अवलंब लिया। याचिकाकर्ता ने आरोपों से इनकार करते हुए उक्त कारण बताओ नोटिस का उत्तर दिया। प्रतिवादीगणों द्वारा उक्त कारण बताओ नोटिस को गुणहीन माना गया तथा यह मानते हुए आदेश पारित किए गए कि उक्त दोनों विद्यालयों में नियुक्ति की तिथि को याचिकाकर्ता की नियुक्ति बिना अपेक्षित अर्हता धारित करते हुए थी। यह भी अभिलिखित किया गया कि वास्तविकता का पता लगाने के प्रयासों पर यद्यपि सर्वोदय पब्लिक इंटर कॉलेज, लखनऊ ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी, परंतु इंडियन पब्लिक इंटर कॉलेज ने अपनी आख्या दी थी। याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण को अस्वीकार्य पाते हुए दिनांक 30.11.2014 को याचिकाकर्ता की सेवाएं समाप्त करने हेतु प्रस्ताव पारित किया गया। प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा प्रस्ताव के माध्यम से पारित सेवा समाप्ति के उक्त प्रस्ताव को बेसिक शिक्षा अधिकारी के समक्ष अनुमोदन हेतु भेजा गया था, जिन्होंने आदेश दिनांकित 16.01.2015 के माध्यम से प्रबंधन समिति के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था।

अनुमोदन को अस्वीकार करने वाले उक्त आदेश को प्रबंधन समिति द्वारा सचिव, बेसिक शिक्षा परिषद, प्रयागराज के समक्ष की गई अपील में चुनौती दी गई थी। उक्त अपील दिनांक 11.05.2015 को स्वीकृत की गई, जिसके द्वारा अस्वीकृति आदेश को अपास्त कर दिया गया। इसके पश्चात प्रबंधन समिति ने आदेश दिनांकित 21.05.2015 पारित किया जिसमें कहा गया कि याचिकाकर्ता की सेवाएं समाप्त कर दी गईं और नियुक्ति आदेश को अपास्त कर दिया गया। उक्त आदेश के संदर्भ में बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा एक नया आदेश पारित किया गया, जिसके तहत याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त करने संबंधी प्रबंधन समिति के प्रस्ताव को दिनांक 19.09.2015 को स्वीकृति दे दी गई। संशोधन प्रार्थना पत्र के माध्यम से उक्त आदेश को चुनौती दी गई है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क यह है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन नहीं किया गया, क्योंकि अभिलेखों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता द्वारा आरोप-पत्र का उत्तर दाखिल करने के पश्चात दो विद्यालयों से साक्ष्य एकत्र करने हेतु प्रयास किए गए थे और अंतिम आदेश पारित करने से पूर्व याचिकाकर्ता का उक्त साक्ष्यों से कभी भी सामना नहीं कराया गया था। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि राज्य कर्मचारियों पर लागू उ0प्र0 सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 (संक्षेप में 'नियमावली 1999') के उपबंधों का कभी पालन नहीं किया गया, यहां तक कि नियमावली 1999 के नियम 7 के अधीन विहित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया क्योंकि कोई जाँच नहीं की गई एवं नियम 7 की अनिवार्य आवश्यकता का पूर्णतः पालन नहीं किया गया।

उक्त तर्कों के समर्थन में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने **अभिराम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2021 (2) एएलजे 102** के मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया है, जिसमें इस न्यायालय को उ0प्र0 सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 की प्रयोज्यता पर विचार करने का अवसर मिला और न्यायालय का विचार यह था कि नियमावली 1999 के अधीन अनुध्यात जाँच के बिना बर्खास्तगी आदेश को उचित नहीं ठहराया जा सकता है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि सेवा समाप्ति का आदेश पारित करके भी मात्र यह अभिलिखित किया गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर संतोषजनक नहीं है, जो याचिकाकर्ता के अनुसार स्वयमेव मनमाना है एवं याचिकाकर्ता के तर्क को स्वीकार न करने का कोई कारण अभिलिखित नहीं किया गया है। इस प्रकार उनका तर्क है कि आक्षेपित आदेश अपास्त किये जाने योग्य है।

दूसरी ओर, प्रतिवादी संख्या 5 के अधिवक्ता ने विशेष रूप से तर्क दिया है कि प्रासंगिक समय पर प्रधानाध्यापक के पद पर नियुक्ति, उ0प्र0 मान्यता प्राप्त बेसिक स्कूल (जूनियर हाई स्कूल) (अध्यापकों की भर्ती एवं सेवा की शर्तें) नियमावली, 1978 (संक्षेप में 'नियमावली 1978') के उपबंधों द्वारा शासित थी। नियम 4 का अवलंब लेते हुए उन्होंने तर्क दिया है कि नियम 4(1) उस प्रक्रिया को विहित करता है जिसके द्वारा किसी मान्यता प्राप्त विद्यालय के सहायक अध्यापक को नियुक्त किया जा सकता है और नियम 4(2) किसी मान्यता प्राप्त विद्यालय के प्रधानाध्यापक के पद पर नियुक्ति हेतु आवश्यक न्यूनतम अर्हता को

विहित करता है। नियमावली 1978 का नियम 4 नीचे उद्धृत किया गया है:

''**4. न्यूनतम अर्हताएं।** (1) किसी मान्यता प्राप्त विद्यालय के सहायक अध्यापक के पद हेतु माध्यमिक शिक्षा परिषद, उत्तर प्रदेश से इंटरमीडिएट परीक्षा या समकक्ष परीक्षा (हिंदी के साथ) एवं राज्य सरकार या परिषद द्वारा मान्यता प्राप्त कोई शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम यथा हिंदुस्तानी अध्यापक प्रमाण-प्रत्र, जूनियर अध्यापक प्रमाण-प्रत्र, बेसिक अध्यापक प्रमाण-प्रत्र या प्रशिक्षण प्रमाण-प्रत्र न्यूनतम अर्हता होगी।

(2) किसी मान्यता प्राप्त विद्यालय के प्रधानाध्यापक के पद पर नियुक्ति हेतु न्यूनतम अर्हताएं इस प्रकार होंगी: (क) किसी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से डिग्री या समतुल्य मान्यता प्राप्त समकक्ष परीक्षा;

(ख) राज्य सरकार या परिषद द्वारा मान्यता प्राप्त कोई शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम यथा हिंदुस्तानी अध्यापक प्रमाण-प्रत्र, जूनियर अध्यापक प्रमाण-प्रत्र, प्रशिक्षण प्रमाण-प्रत्र या बेसिक शिक्षण प्रमाण-प्रत्र; और

(ग) किसी मान्यता प्राप्त विद्यालय में तीन वर्ष का अध्यापन अनुभव।''

ऊपर उद्धृत यह नियम दोनों पदों सहायक अध्यापक एवं प्रधानाध्यापक के पद हेतु न्यूनतम अर्हता अधिकथित करता है। जहाँ प्रधानाध्यापक के रूप में नियुक्ति हेतु मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से डिग्री, प्रशिक्षण प्रमाणपत्र और अध्यापन का अनुभव आवश्यक है, वहीं सहायक अध्यापक के रूप में नियुक्ति हेतु अध्यापक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के अतिरिक्त आवश्यक अर्हता मात्र इंटरमीडिएट है।

उन्होंने आगे मेरा ध्यान नियम 2(छ) में निहित 'मान्यता प्राप्त विद्यालय' की परिभाषा की ओर आकृष्ट किया, जो निम्नवत है:-

''2. परिभाषाएँ। - इन नियमों में, जब तक संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो -

(क) ...

(ख) ...

(ग) ...

(घ) ...

(ड) ...

(च) ...

(छ)। 'मान्यता प्राप्त विद्यालय' से परिषद द्वारा उस रूप में मान्यता प्राप्त जूनियर हाई स्कूल अभिप्रेत है, जो परिषद या किसी स्थानीय निकाय से संबन्धित या पूर्ण रूप से पोषित संस्थान नहीं है।'

प्रतिवादी संख्या 5 के अधिवक्ता का तर्क है कि स्वीकृत रूप से याचिकाकर्ता ने वर्ष 2003 में प्रशिक्षण प्राप्त किया था और इस प्रकार, याचिकाकर्ता की दलील के अनुसार भी, उसके पास किसी मान्यता प्राप्त विद्यालय, जो नियमावली 1978 के नियम 4(1) के अधीन निर्दिष्ट है, के सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्त होने हेतु अपेक्षित अर्हता नहीं थी। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि यदि याचिकाकर्ता के पास नियमावली 1978 के नियम 4(1) के अनुसार सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्त होने हेतु अपेक्षित अर्हता नहीं थी, तो वह किसी मान्यता प्राप्त विद्यालय में अध्यापन के अनुभव का प्रमाण पत्र प्रस्तुत कर सकता था, जो नियमावली 1978 के नियम 4(2) के अन्तर्गत विशिष्टतः अपेक्षित है। इस प्रकार उनका तर्क है कि याचिकाकर्ता नियुक्ति हेतु अपेक्षित अर्हता धारण नहीं करता था और उसने प्रमाण पत्रों के आधार पर नियुक्ति के साथ-साथ उक्त नियुक्ति की मान्यता भी प्राप्त की थी, जिन्हें प्रश्नगत विद्यालयों द्वारा याचिकाकर्ता को जारी नहीं किया जा सकता था क्योंकि सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति हेतु याचिकाकर्ता के पास अपेक्षित अर्हता नहीं थी। उन्होंने **सुशील कुमार द्विवेदी बनाम बेसिक शिक्षा अधिकारी, बांदा व अन्य {(2003) 2 यूपीएलबीईसी 1216},** के वाद के साथ ही **राम सूरत यादव और अन्य बनाम यूपी राज्य व अन्य {(2014) 1 यूपीएलबीईसी 1}**, के वाद में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया है।

दी गई दलीलों से यह पता चलता है कि याचिकाकर्ता को प्रधानाध्यापक के पद पर नियुक्ति दो अनुभव प्रमाणपत्रों का अवलंब लेते हुए मिली थी, जिन्हें याचिकाकर्ता द्वारा जुलाई 1998 से 10.03.2000 तक सहायक शिक्षक के पद पर उसके कार्य करने के आधार पर तथा अन्य प्रमाण पत्र जिसमें याचिकाकर्ता ने जुलाई, 2000 से 10.08.2003 तक काम करने का दावा किया गया है, के आधार पर प्राप्त किया गया था। स्वयं याचिकाकर्ता के अनुसार उसके पास शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम प्रमाणपत्र नहीं था, जो सहायक शिक्षक के पद पर नियुक्ति हेतु अनिवार्य है, जैसा कि नियमावली 1978 के नियम 4(1) के अधीन निर्दिष्ट किया गया है। उन विद्यालयों, जहाँ याचिकाकर्ता को सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति दी गई थी, के द्वारा जारी किए गए अनुभव प्रमाण पत्रों का कोई महत्व नहीं होगा क्योंकि नियम 4(2) में प्रयुक्त वाक्यांश 'अध्यापन अनुभव' का निर्वचन 'मान्यता प्राप्त विद्यालय में अध्यापन का अनुभव' के रूप में किया जाएगा। नियम 4(2)(ग) में निर्दिष्ट तीन वर्ष के अध्यापन अनुभव का निर्वचन उस मान्यता प्राप्त विद्यालय से जारी अनुभव प्रमाण पत्र से अभिप्रेत किया जाना चाहिए, जहाँ नियुक्ति नियम 4(1) के अनुसार की जाती है। नियम 4(2)(ग) का कोई अन्य निर्वचन नियम 4(2) के तहत अपेक्षित अर्हता उपबंधित करने की सम्पूर्ण व्यवस्था के विरूद्ध होगा एवं नियम 4(2)(ग) के तहत

अर्हता उपबंधित करने के समग्र उद्देश्य को निरर्थक बना देगा। इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा **राम सूरत यादव और अन्य बनाम यूपी राज्य एवं अन्य {(2014) 1 यूपीएलबीईसी 1}** के वाद में इस बिन्दु पर विचार किया गया था, जिसके प्रस्तर 7 में पूर्ण पीठ ने अधोलिखित अवलोकन किया है:-

"7. इससे पहले कि हम अपीलकर्ताओं के तर्कों पर विचार करें, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि नियम 4(1) सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति हेतु न्यूनतम अर्हता का उपबंध करता है। नियम 4(1), चूंकि यह 12 जून 2008 से पहले अस्तित्व में था, में पात्रता की निम्न अर्हताएं निर्दिष्ट की गयी हैं (i) माध्यमिक शिक्षा परिषद, उत्तर प्रदेश से इंटरमीडिएट परीक्षा या हिंदी के साथ समकक्ष परीक्षा; और (ii) राज्य सरकार या बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा मान्यता प्राप्त कोई शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम यथा हिंदुस्तानी अध्यापक प्रमाण-प्रत्र (एच.टी.सी.), जूनियर अध्यापक प्रमाण-प्रत्र (जे.टी.सी.), बेसिक शिक्षण प्रमाण-प्रत्र (बी.टी.सी.) या प्रशिक्षण प्रमाण-प्रत्र (सी.टी.)। चूँकि दिनांक 12 जून 2008 को हुए संशोधन से पूर्व नियमावली 1978 अस्तित्व में थी, अतः उक्त नियमावली के अनुसरण में प्राप्त अनुमोदन के अन्तर्गत चयन प्रक्रिया निश्चय ही प्रारंभ की गई थी, क्योंकि संशोधन प्रभावी होने से पूर्व चयन प्रक्रिया प्रारंभ एवं पूर्ण हो चुकी थी। **जहाँ किसी पद पर नियुक्ति हेतु वैधानिक नियम पात्रता की शर्तों को विहित करते हैं, वहाँ कोई व्यक्ति, जो विहित अर्हता धारित नहीं करता है, उस पद को धारण करने का विधिक अधिकार नहीं पा सकता है। पात्रता अर्हता पूरी नहीं करने वाले व्यक्ति की नियुक्ति नियमों के विपरीत होने के कारण विधिविरूद्ध होगी।"**

प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के संबंध में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की दलील, यद्यपि प्रथम दृष्टया स्वीकृति योग्य है, तथापि, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि याचिकाकर्ता के पास नियुक्ति हेतु अपेक्षित अर्हता कभी नहीं थी, इसलिए प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन नहीं होने से याचिका के परिणाम पर कोई प्रभाव नहीं होगा, क्योंकि यह सुस्थापित है कि सेवा न्यायशास्त्र में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के आरोपों को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के कारण होने वाले पूर्वाग्रह के परीक्षण द्वारा पुष्ट किया जाना चाहिए, इस आधार पर याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कथन अस्वीकार करने योग्य है।

ऊपर अभिलिखित किए गए सभी तर्कों के कारण रिट याचिका गुणहीन है एवं तद्नुसार इसे ***खारिज*** किया जाता है।

नियमावली 1999 का पालन नहीं होने के संबंध में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क भी इन साधारण कारणों से खारिज किए जाने योग्य है कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति ही नियमों के विपरीत पाई गई थी एवं इस प्रकार, एक बार नियुक्ति ग़लत तथ्यों के आधार पर प्राप्त कर ली गई है, तो नियमों का पालन करने की आवश्यकता नहीं है।

(2023) 1 ILRA 475
मूल न्यायाधिकार
सिविल साइड
दिनांकःइलाहाबाद 01.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजीव जोशी

रिट-ए संख्या- 40280/2011

राज कुमार ...याचिकाकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य ... प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
राधा कान्त ओझा, ए.के.सिंह, प्रदीप कुमार वि

प्रत्यर्थी के अधिवक्ताः
मुख्य स्थायी अधिवक्ता, रमेश चन्द्र मिश्रा

ए. सेवा कानून – उत्तर प्रदेश सेवाकाल में मृत सरकारी सेवकों के आश्रित भर्ती नियमावली, 1974 - नियम 7- चुनौती - अनुकंपा नियुक्ति -याचिकाकर्ता के पिता की सेवाकाल में मृत्यु हो गई और याचिकाकर्ता के छोटे भाई को सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया -याचिकाकर्ता का दावा जिला निरीक्षक की अध्यक्षता वाली समिति के समक्ष निरस्त कर दिया गया था याचिकाकर्ता ने कहा कि छोटे भाई की पत्नी सहायक अध्यापक के रूप में काम कर रही है और इसलिए, वह नौकरी में नहीं है और नियुक्ति का हकदार नहीं है – नियमावली, 1974 के नियम 7 में यह प्रावधान है कि यदि मृत सरकारी सेवक के परिवार में एक से अधिक सदस्य हैं इन नियमों के तहत रोजगार चाहता है, कार्यालय प्रमुख पूरे परिवार के समग्र हित को ध्यान में रखते हुए रोजगार देने के लिए व्यक्ति की उपयुक्तता के बारे में निर्णय लेगा-इसलिए याचिकाकर्ता के छोटे भाई को अनुकंपा नियुक्ति मां और परिवार के अन्य सदस्यों की सहमति के आधार पर पारित किया गया है, इसलिए इसे निरस्त नहीं किया जा सकता है। (पैरा 1 से 11)

रिट याचिका निरस्त की जाती है। (ई-6)

(माननीय न्यायमूर्ति राजीव जोशी द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर.के.ओझा के होल्डिंग ब्रीफ श्री शिवेंदु ओझा, अधिवक्ता तथा प्रत्यर्थी संख्या 1 व 2 की ओर से श्री राजेश पांडे, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा सहायता प्राप्त श्री गोविंद नारायण श्रीवास्तव को सुना।

यह रिट याचिका संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत आक्षेपित आदेश दिनांकित 20.06.2011 को रद्द करने के लिए दायर की गई है जो कि प्रतिवादी संख्या 2-चयन समिति, जिला महराजगंज द्वारा अध्यक्ष/जिला विद्यालय निरीक्षक, महराजगंज, द्वारा पारित किया गया था, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता के छोटे भाई को उत्तर प्रदेश सेवाकाल में मृत सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती नियमावली, 1974 (एतदपश्चात नियम, 1974 के रूप में संदर्भित) की धारा-7 के अंतर्गत सहायक शिक्षक के रूप में, याचिकाकर्ता द्वारा अपने पिता जिनकी सेवाकाल में मृत्यु हो गई थी, की मृत्यु के कारण दी गई सहमति के आधार पर, नियुक्त किया गया था।

मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि याचिकाकर्ता के पिता स्वर्गीय पारस नाथ सिंह, जो बापू शताब्दी इंटर कॉलेज, जहदा, पोस्ट बसुलीफार्म, जिला महराजगंज में सहायक अध्यापक के पद पर कार्यरत थे, की मृत्यु दिनांक 11.12.2004 को हो गई थी। प्रत्यर्थी संख्या 4-अरुण कुमार, जो याचिकाकर्ता का छोटा भाई है, ने उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम के अध्याय-3 के विनियम-101 से 107 के प्रावधानों के अंतर्गत सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्ति हेतु अपने पक्ष में आदेश प्राप्त कर लिया था।

याचिकाकर्ता ने सहायक शिक्षक के रूप में अपनी नियुक्ति के लिए रिट याचिका संख्या 37405/2008 (राज कुमार बनाम संयुक्त शिक्षा निदेशक, क्षेत्र-7, गोरखपुर व अन्य) दायर की क्योंकि याचिकाकर्ता समाजशास्त्र में एम.ए. होने के कारण कला शिक्षक के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र था। इस न्यायालय ने आदेश दिनांकित 01.08.2008 द्वारा संबंधित प्राधिकारी को मामले पर निर्णय लेने का निर्देश दिया। उपरोक्त आदेश के अनुपालन में, जिला विद्यालय निरीक्षक ने याचिकाकर्ता के दावे को खारिज कर दिया क्योंकि पक्षकारों के मध्य कोई समझौता नहीं हुआ था।

उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या 58694/2008 दायर की, जिसे स्वीकार किया गया और जिला विद्यालय निरीक्षक, महाराजगंज द्वारा पारित आदेश दिनांकित 22.10.2008 को अपास्त कर दिया गया और मामले को इस निर्देश के साथ वापस भेज दिया गया कि समिति इस मामले पर विचार करे और उचित आदेश पारित करे।

उपरोक्त आदेश के अनुपालन में, जिला विद्यालय निरीक्षक, महराजगंज की अध्यक्षता वाली समिति, बेसिक शिक्षा अधिकारी, महराजगंज और वित्त एवं लेखाधिकारी को सदस्य के रूप में आक्षेपित आदेश दिनांकित 20.06.2011 द्वारा याचिकाकर्ता के दावे को खारिज कर दिया गया और नियम, 1974 के अंतर्गत प्रत्यर्थी संख्या 4 की नियुक्ति के लिए अनुमोदन कर दिया गया। तत्पश्चात, याचिकाकर्ता ने 29.06.2011 को जिला विद्यालय निरीक्षक, महराजगंज के समक्ष एक और प्रार्थना पत्र दिया, जिसमें यह तथ्य बताया गया कि प्रतिवादी-4 की पत्नी श्रीमती पूनम चौधरी, प्राथमिक विद्यालय गौरा निपनिया, ब्लॉक निचलौल, जिला महराजगंज में सहायक अध्यापक के पद पर कार्यरत हैं, इसलिए वह आश्रित नहीं हैं। इसलिए, यह रिट याचिका दायर की गई।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि याचिकाकर्ता स्वर्गीय पारस नाथ सिंह का सबसे बड़ा पुत्र है और सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्त होने के लिए पूरी तरह से योग्य है। उन्होंने आगे कहा कि प्रतिवादी-4 की पत्नी, जो याचिकाकर्ता का छोटा भाई है, सहायक अध्यापक के रूप में कार्यरत है और इसलिए, वह आश्रित नहीं है और नियम, 1974 के अंतर्गत नियुक्ति का हकदार नहीं है।

दूसरी ओर, विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता का तर्क है कि नियम, 1974 के नियम 7 के दृष्टिगत, याचिकाकर्ता के छोटे भाई को अनुकंपा नियुक्ति देने का आदेश दिनांकित 20.06.2011 परिवार के अन्य सदस्यों की सहमति के आधार पर पारित किया गया है, इसलिए, ऐसा उसे अपास्त नहीं किया जा सकता है।

मैंने विपक्षी कथनों पर विचार किया तथा अभिलेखों का परिशीलन किया।

नियम, 1974 के नियम 7 में प्रावधान है कि यदि मृत सरकारी कर्मचारी के परिवार के एक से अधिक सदस्य इन नियमों के अंतर्गत रोजगार चाहते हैं, तो कार्यालय प्रमुख रोजगार देने के लिए व्यक्ति की उपयुक्तता के बारे में निर्णय लेंगे। यह निर्णय पूरे परिवार, विशेषकर विधवा और उसके नाबालिग सदस्यों के कल्याण के समग्र हित को ध्यान में रखते हुए लिया जाएगा। नियम, 1974 के नियम 7 को निम्न प्रकार से उद्धृत किया गया हैः-

''7. जब परिवार के एक से अधिक सदस्य रोजगार चाहते हैं तो प्रक्रिया - यदि मृत सरकारी कर्मचारी के

परिवार के एक से अधिक सदस्य इन नियमों के अंतर्गत रोजगार चाहते हैं, तो कार्यालय प्रमुख रोजगार देने के लिए व्यक्ति की उपयुक्तता के बारे में निर्णय लेंगे। यह निर्णय पूरे परिवार, विशेषकर विधवा और उसके नाबालिग सदस्यों के कल्याण के समग्र हित को ध्यान में रखते हुए लिया जाएगा।"

मुझे प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित प्रतिवादी-4 को अनुकंपा नियुक्ति देने के आदेश दिनांकित 20.06.2011 में कोई अवैधता या अशक्तता नहीं मिली क्योंकि यह याचिकाकर्ता की मां और परिवार के अन्य सदस्यों की सहमति के आधार पर पारित किया गया है।

रिट याचिका में योग्यता का अभाव है और इसे तदनुसार, खारिज किया जाता है।

(2023) 1 ILRA 477

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल साइड

दिनांक: इलाहाबाद 13.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे.मुनीर

रिट-ए संख्या- 50939 वर्ष 2017

प्रेम नारायण सिंह ... प्रार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ... उत्तरदाता

याचिकाकर्ता के वकील:
श्री आशुतोष त्रिपाठी

प्रतिवादियों के वकील:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री ओम प्रकाश सिंह, श्री सुशील कुमार राव

A. सेवा कानून - बर्खास्तगी - प्रमुख दंड - जांच - जांच के दौरान जांच अधिकारी का दायित्व - इसे निर्वहन करने में विफलता - प्रभाव - अवधारित किया गया, जांच अधिकारी, जिसे जांच करने का कार्य सौंपा गया है, को अनिवार्य रूप से जांच की तारीख, समय और स्थान तय करना होगा जिसे उसे आगे बढ़ने से पहले अपराधी को सूचित करना होगा - यह प्रतिष्ठान का दायित्व है कि वह निम्नलिखित द्वारा आयोजित जांच अधिकारी द्वारा मौखिक जांच में आरोपों के समर्थन में गवाहों और अन्य सबूतों को पेश करे– उच्च न्यायालय ने कॉर्प. को निर्देश दिया कि याचिकाकर्ता को उसकी सेवानिवृत्ति की तारीख तक सेवा में बने रहने का इलाज किया जाए – हालांकि, उच्च न्यायालय ने कॉर्प. को यह जांचने के लिए खुला छोड़ दिया कि क्या सेवानिवृत्ति के बाद वे चार्जशीट के आधार पर याचिकाकर्ता के खिलाफ आगे बढ़ सकते हैं। (पैरा 12, 13, 20 और 22)

B. सेवा कानून - बर्खास्तगी - जांच - आरोप पत्र जारी किया गया - कोई जवाब दायर नहीं किया जा सका - प्रभाव - आरोपों की स्वीकारोक्ति, उत्तर दाखिल न करने के कारण - कितनी दूर तक अनुमेय - आरोपों को साबित करने के लिए स्थापना का दायित्व - अपूर्ति - प्रभाव - अवधारित किया, प्रतिष्ठान के दायित्व को दूर नहीं किया जा सकता क्योंकि याचिकाकर्ता डिफ़ॉल्ट था, यह मानते हुए कि वह डिफ़ॉल्ट था - जांच अधिकारी द्वारा अपनाई गई कार्रवाई का तरीका इस कारण से कानून के बिल्कुल विपरीत है कि वह प्रतिष्ठान को गवाहों की जांच करके या आरोप के समर्थन में अन्य सबूत पेश करके आरोपों को साबित करने की आवश्यकता नहीं थी। (पैरा 14)

रिट याचिका की अनुमति दी गई। (ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. सेंट ऑफ उत्तर प्रदेश और अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा; (2010) 2 एससीसी 772
2. श्रीमती करुणा जायसवाल बनाम सेंट ऑफ उत्तर प्रदेश सचिव महिला एवं बाल विकास के माध्यम से; 2018 (9) एडीजे 107 (डीबी) (एलबी)

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

1. यह रिट याचिका प्रबंध निदेशक, उत्तर प्रदेश राज्य भंडारण निगम, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 30.06.2015 के आदेश के खिलाफ निर्देशित है, जिसमें याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था और 6,34,369.52 रुपये की राशि की वसूली का निर्देश दिया गया था। अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दिनांक 12.01.2016 के आदेश के तहत अपील में उक्त आदेश की पुष्टि की गई है। अपीलीय आदेश को भी चुनौती दी जा रही है।

2. पार्टियों ने हलफनामों का आदान-प्रदान किया है।

3. स्वीकार करें।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री आशुतोष त्रिपाठी, श्री ओपी सिंह, श्री सुशील कुमार राव द्वारा सहायता प्राप्त

विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, प्रतिवादी नंबर 2 की ओर से पेश होने वाले विद्वान वकील और प्रतिवादी नंबर 1 की ओर से पेश होने वाले विद्वान स्थायी वकील को सुना।

5. याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश राज्य भंडारण निगम केंद्र, जिला इलाहाबाद में तैनात एक तकनीकी अधिकारी था। वह निगम का स्थायी कर्मचारी था। याचिकाकर्ता को 60 वर्ष की आयु प्राप्त करने पर 30.06.2015 को निगम की सेवा से सेवानिवृत्त होना था। याचिकाकर्ता के खिलाफ 15.07.2014 को उत्तर प्रदेश राज्य भंडारण निगम (संक्षेप में 'निगम') के गाजीपुर केंद्र में चावल के स्टॉक को नुकसान पहुंचाने के आरोप में 2003-2004 और 2009-2010 की अवधि के दौरान अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी। 15.07.2014 को एक जांच अधिकारी नियुक्त किया गया था और जांच अधिकारी द्वारा 26.05.2015 को याचिकाकर्ता को एक पत्र जारी किया गया था, जिसमें याचिकाकर्ता को 01.09.2014 के आरोप पत्र का जवाब प्रस्तुत करने और 8.06.2015 को 3:00 बजे जांच अधिकारी के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया गया था।

6. यह याचिकाकर्ता का मामला है कि उसे आरोप-पत्र की एक प्रति नहीं दी गई थी और इसलिए, उसके लिए जवाब प्रस्तुत करना संभव नहीं था।

7. याचिकाकर्ता के अनुसार, जांच में भाग लेने से कोई उद्देश्य पूरा नहीं होगा। याचिकाकर्ता ने जांच अधिकारी से दिनांक 26.05.2015 का पत्र प्राप्त करने के बाद उप प्रबंधक, वित्त को दिनांक 01.09.2014 के आरोप पत्र की तामील न करने के बारे में सूचित किया। उप प्रबंधक, वित्त ने जांच अधिकारी को याचिकाकर्ता पर आरोप पत्र की तामील सुनिश्चित करने का निर्देश दिया। याचिकाकर्ता को जांच अधिकारी के दिनांक 28.05.2015 के एक पत्र के तहत आरोप पत्र दिया गया था। यह याचिकाकर्ता का मामला है कि आरोप पत्र की एक प्रति के बिना, याचिकाकर्ता ने 28.05.2015 को एक तरह का जवाब प्रस्तुत किया, जहां यह रुख अपनाया गया था कि आरोप पत्र और दस्तावेजों की प्रतियां, जो उसके खिलाफ साक्ष्य के रूप में पेश किए जाने का प्रस्ताव था, तामील नहीं की गई थीं। याचिकाकर्ता का दावा है कि वह असहाय स्थिति में था क्योंकि उसे 30.06.2015 को सेवानिवृत्त होना था और 2.06.2015 को उसे आरोप-पत्र 28.05.2015 के पत्र के साथ दिया गया था।

8. याचिकाकर्ता ने रिट याचिका के पैराग्राफ 13 में एक विशिष्ट मामला पेश किया है कि जांच अधिकारी ने जांच करने के लिए कोई तारीख, समय या स्थान तय किए बिना, याचिकाकर्ता को दोषी ठहराते हुए अनुशासनात्मक प्राधिकारी को दिनांक 15.06.2015 को अपनी जांच-रिपोर्ट प्रस्तुत की। यह याचिकाकर्ता का मामला है कि जांच अधिकारी ने बिना किसी सबूत के आरोपों को साबित किया, उन्हें साबित करने के लिए किसी भी सबूत या गवाहों की जांच नहीं की। आरोप डिफ़ॉल्ट रूप से साबित हुए क्योंकि याचिकाकर्ता ने आरोप पत्र का जवाब प्रस्तुत नहीं किया या बचाव में सबूत पेश नहीं किए। याचिकाकर्ता को जांच अधिकारी द्वारा चावल के थोक यानी आरोप के विषय के नुकसान के लिए जिम्मेदार ठहराया गया था।

9. जांच अधिकारी की रिपोर्ट के आधार पर, याचिकाकर्ता को 30.06.2015 के आक्षेपित आदेश द्वारा सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। याचिकाकर्ता ने निगम के कर्मचारी सेवा विनियमन के विनियमन 21 के तहत बर्खास्तगी के आदेश से कार्यकारी समिति को अपील की। अपीलीय प्राधिकरण ने अपने आदेश दिनांक 12.01.2016 द्वारा अपील को खारिज कर दिया और बर्खास्तगी के आदेश की पुष्टि की।

10. व्यथित होकर यह रिट याचिका दायर की गई है।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से अवैध और निष्फल हैं क्योंकि एक बड़े दंड के अधिरोपण से जुड़े मामले में यह अनिवार्य है कि जांच अधिकारी द्वारा जांच की तारीख, समय और स्थान निर्दिष्ट किया जाए और अपराधी को सूचित किया जाए। इस मामले में याचिकाकर्ता को जांच की तारीख, समय और स्थान के बारे में सूचित नहीं किया गया था। इसके बाद यह प्रस्तुत किया गया है कि एक आरोप, विशेष रूप से एक बड़ा जुर्माना लगाने से जुड़ा हुआ, जांच अधिकारी द्वारा साबित नहीं किया जा सकता है जब तक कि प्रतिष्ठान मौखिक जांच में आरोप के समर्थन में गवाहों की जांच नहीं करता है और अपने साक्ष्य द्वारा आरोप स्थापित नहीं करता है। याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा यह आग्रह किया गया है कि यह कानून नहीं है कि केवल इसलिए कि अपराधी आरोप-पत्र का जवाब प्रस्तुत करने या अपने बचाव में सबूत पेश करने में उपस्थित नहीं होता है या विफल रहता है, आरोप डिफ़ॉल्ट रूप से साबित होते हैं। आरोपों को साबित करने के लिए प्रतिष्ठान के दायित्व को दूर नहीं किया जा सकता है। जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ नंबर 16, 17 और 18 के अवलोकन से पता चलता है कि रिट याचिका के पैराग्राफ नंबर 13, 14, 15 और 16 में दिए गए कथनों से इनकार नहीं किया गया है। रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 13 से 16 में दिए गए कथनों में विशिष्ट आरोप लगाया गया है कि जांच अधिकारी द्वारा जांच की कोई तारीख, समय और स्थान तय नहीं किया गया था और जांच अधिकारी के समक्ष आरोपों को स्थापित करने के लिए मौखिक जांच में किसी भी गवाह से पूछताछ नहीं की गई थी। वास्तव में, इसलिए, उत्तरदाताओं द्वारा इस स्थिति से इनकार नहीं किया गया है।

12. पक्षों के विद्वान वकील को सुनने और रिकॉर्ड के अवलोकन पर, यह न्यायालय पाता है कि वास्तव में जांच अधिकारी द्वारा जांच करने और निष्कर्ष निकालने से पहले जांच की कोई तारीख, और स्थान तय नहीं किया गया था, जिसमें याचिकाकर्ता को दोषी ठहराया गया था। इसके अलावा, यह स्पष्ट है कि जिस आरोप के लिए याचिकाकर्ता को दोषी ठहराया गया है, उसके समर्थन में प्रतिष्ठान द्वारा जांच अधिकारी के समक्ष किसी भी गवाह की जांच नहीं की गई थी। यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता को केवल इसलिए दोषी ठहराया गया है, क्योंकि वह एकपक्षीय था और उसने आरोप-पत्र का जवाब नहीं दिया और जांच अधिकारी के सामने पेश नहीं हुआ या सबूत पेश नहीं किया। कानूनी स्थिति इतनी अच्छी तरह से तय है कि किसी लोक सेवक या निगम के नौकर पर एक बड़ा जुर्माना लगाने से जुड़े मामले में, जिसकी सेवा के नियम और शर्तें कानून द्वारा शासित होती हैं, जांच अधिकारी, जिसे जांच करने का काम सौंपा गया है,को अनिवार्य रूप से एक तारीख, जांच का समय और स्थान तय करनी है, जिसे उसे आगे बढ़ने से पहले अपराधी को सूचित करना होगा। यह आवश्यकता उन सभी मामलों में अनिवार्य है, जहां एक बड़ा जुर्माना लगाने का प्रस्ताव है।

13. यहां, स्वीकृत स्थिति यह है कि कानून की पूर्वोक्त आवश्यकता को छोड़ दिया गया था। यह भी कानून है कि किसी भी अनुशासनात्मक कार्यवाही में, जिसके परिणामस्वरूप एक बड़ा जुर्माना लगाया जाता है, यह जांच अधिकारी द्वारा आयोजित मौखिक जांच में आरोपों के समर्थन में गवाहों और अन्य सबूतों को पेश करने के लिए प्रतिष्ठान का दायित्व है। हालांकि जांच अधिकारी एक ही प्रतिष्ठान का अधिकारी हो सकता है, लेकिन वह एक पक्ष नहीं है जो खुद को प्रतिष्ठान के साथ जोड़ सकता है। जांच अधिकारी को एक निष्पक्ष मध्यस्थ के रूप में कार्य करना होता है। यह प्रतिष्ठान का दायित्व है कि वह साक्ष्य द्वारा कर्मचारी के खिलाफ आरोपों को साबित करे, भले ही वह एकपक्षीय बना रहे। यह गवाहों और प्रमुख सबूतों की जांच करके आरोपों को साबित करने के उनके दायित्व की स्थापना को समाप्त नहीं करता है। ऐसा नहीं है कि कर्मचारी या अपराधी के स्वयं का बचाव करने में चूक से आरोप स्वत ही स्थापित हो जाएंगे। जांच अधिकारी की रिपोर्ट में उल्लिखित प्रासंगिक निष्कर्षों का उल्लेख करना विशेष रूप से प्रासंगिक होगा जिसके आधार पर आक्षेपित आदेश पारित किए गए हैं। जाँच आगे बताता है:

"श्री प्रेम नारायण सिंह, प्राविधिक अधिकारी, क्षेत्रीय कार्यालय इलाहाबाद को उपलब्ध कराए गए आरोप पत्र के संदर्भ मे उनके द्वारा आरोप पत्र का प्रत्युत्तर आज दिनांक 15.06.2015 तक उपलब्ध नहीं कराया गया है। श्री प्रेम नारायण सिंह द्वारा उक्त आरोप के अनुपालन मे पत्र संख्या 523 दिनांक 28.05.2015 अधोहस्ताक्षरी को प्रेषित किया गया जिसमे उनके द्वारा बिन्दु संख्या 01 से 05 तक जानकारी चाही गई। प्रधान कार्यालय के पत्र संख्या 4313 दिनांक 28.05.2015 द्वारा बिन्दु संख्या 01 से 04 के संबंध मे सूचना उपलब्ध कराई गई एवं पत्र संख्या 4653 दिनांक 03.06.2015 द्वारा श्री प्रेम नारायण सिंह, प्राविधिक अधिकारी, द्वारा बिन्दु संख्या 05 पर तत्समय गाजीपुर केंद्र पर चार्ज के आदान प्रदान हेतु गठित की गई कमेटी की रिपोर्ट चाही गई जिसे प्राप्ति हेतु उसे क्षेत्रीय कार्यालय वाराणसी/गाजीपुर केंद्र पर जाने की अनुमति दी गई। प्रेषित अनुस्मारक पत्रों पर आरोप पत्र का उत्तर दिनांक 06.05.2015 तक अधोहस्ताक्षरी को प्रेषित करने हेतु निर्देशित किया गया परंतु उनके द्वारा आरोप पत्र का उत्तर 15.06.2015 तक अधोहस्ताक्षरी को उपलब्ध नहीं कराया गया एवं ऐसा प्रतीत होता है की उन्हे एस संबंध मे कुछ नहीं कहना है तथा उनके विरुद्ध लगाया गया आरोप उन्हे स्वीकार है। इस प्रकार श्री प्रेम नारायण सिंह, प्राविधिक अधिकारी के गाजीपुर केंद्र पर तैनाती के दौरान वर्ष 2008-2009 तथा 2009-2010 मे खाद्य एवं रसद विभाग के भंडारित चावल स्टॉक मे प्रघटित भंडारण क्षति की मात्र 382.89.543 कु० कुल कीमत रुपये 6,34,369,52 मात्र हेतु उत्तरदायी पाए जाते हैं।" [महत्व प्रदान किया गया]

14. जांच अधिकारी द्वारा पूर्वोक्त निष्कर्ष के अवलोकन से मामला कैविल से परे हो जाता है कि जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता को इस धारणा पर डिफ़ॉल्ट रूप से दोषी ठहराया है कि चूंकि याचिकाकर्ता ने आरोप पत्र का जवाब दायर नहीं किया है, इसलिए वह आरोप स्वीकार करता है। यह निष्कर्ष कानून के बिल्कुल विपरीत है। जांच अधिकारी द्वारा अपनाई गई कार्रवाई, जो जांच रिपोर्ट से भी स्पष्ट है, इस कारण से कानून के बिल्कुल विपरीत है कि उसने गवाहों की जांच करके या आरोप के समर्थन में अन्य सबूत पेश करके प्रतिष्ठान से आरोपों को साबित करने की मांग नहीं की। यह पहले ही कहा जा चुका है कि प्रतिष्ठान के इस दायित्व को दूर नहीं किया जा सकता क्योंकि याचिकाकर्ता अनुपस्थित था, यह मानते हुए कि वह था। ऊपर दी गई कानूनी स्थिति उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा, (2010) 2 एससीसी 772 में सुप्रीम कोर्ट के फैसले से मजबूत होती है, जिसमें यह देखा गया था:

"27. पूर्वोक्त उप-नियम के मात्र अवलोकन से पता चलता है कि जब प्रतिवादी आरोप-पत्र में स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में विफल रहा था, तो जांच अधिकारी पर यह निर्भर था कि वह जांच में उसकी उपस्थिति के लिए तारीख तय करे। यह केवल एक मामले में है जब सरकारी कर्मचारी तय तारीख की सूचना के बावजूद उपस्थित होने में विफल रहता है कि जांच अधिकारी जांच के साथ एकपक्षीय आगे बढ़ सकता

है। ऐसी परिस्थितियों में भी जांच अधिकारी के लिए यह आवश्यक है कि वह आरोप-पत्र में उल्लिखित गवाहों के बयान दर्ज करे। चूंकि सरकारी कर्मचारी अनुपस्थित है, इसलिए वह स्पष्ट रूप से गवाहों की जिरह का लाभ खो देगा। लेकिन फिर भी, आरोपों को स्थापित करने के लिए, विभाग को जांच अधिकारी के समक्ष आवश्यक साक्ष्य पेश करने की आवश्यकता होती है। ऐसा इसलिए है ताकि इस आरोप से बचा जा सके कि जांच अधिकारी ने अभियोजक के साथ-साथ न्यायाधीश के रूप में भी काम किया है।

28. अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण में कार्य करने वाला एक जांच अधिकारी एक स्वतंत्र अधिनिर्णायक की स्थिति में होता है। वह विभाग/अनुशासनात्मक प्राधिकारी/सरकार का प्रतिनिधि नहीं होना चाहिए। उसका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की जांच करना है, यहां तक कि अपराधी अधिकारी की अनुपस्थिति में भी यह देखने के लिए कि क्या अखंडित साक्ष्य यह मानने के लिए पर्याप्त है कि आरोप साबित हो गए हैं। वर्तमान मामले में उपरोक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। चूंकि किसी भी मौखिक साक्ष्य की जांच नहीं की गई है, इसलिए दस्तावेजों को साबित नहीं किया गया है, और यह निष्कर्ष निकालने के लिए विचार नहीं किया जा सकता है कि उत्तरदाताओं के खिलाफ आरोप साबित हो गए हैं।

15. सरोज कुमार सिन्हा (सुप्रा) मामले में निर्णय के बाद लखनऊ में बैठी इस न्यायालय की खंडपीठ ने सचिव के माध्यम से श्रीमती करुणा जायसवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य महिला एवं बाल विकास, 2018 (9) एडीजे 107 (डीबी) (एलबी) मामले में अवधारित किया:

"14. इस मामले में ध्यान देना भी समान रूप से प्रासंगिक और महत्वपूर्ण है कि हालांकि याचिकाकर्ता चार्जशीट पर अपना जवाब प्रस्तुत करने में विफल रही, हालांकि, जांच अधिकारी ने मौखिक जांच के लिए कोई तारीख, समय और स्थान तय नहीं किया। यह स्थापित सिद्धांत है कि ऐसी स्थिति में भी जहां अपराधी अधिकारी/कर्मचारी आरोप-पत्र का उत्तर प्रस्तुत नहीं करता है, जांच अधिकारी को अभी भी रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री और साक्ष्य के आधार पर आरोपों को साबित करने की आवश्यकता है और उक्त उद्देश्य के लिए उसे आरोपित अधिकारी को तारीख तय करने और मौखिक जांच के लिए समय और स्थान सूचित करने की आवश्यकता है।

15. इस संबंध में कानून बहुत अच्छी तरह से तय है और इसे दोहराने की आवश्यकता नहीं है, हालांकि, हम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले का उल्लेख कर सकते हैं जिसे [(2010) 2 एससीसी 772] में रिपोर्ट किया गया, जिसमें यह स्पष्ट रूप से माना गया है कि जांच अधिकारी एक अर्ध न्यायिक प्राधिकारी के रूप में कार्य करता है और उसकी स्थिति एक स्वतंत्र अधिनिर्णायक की है और आगे वह विभाग या अनुशासनात्मक प्राधिकारी के प्रतिनिधि के रूप में कार्य नहीं कर सकता है और आगे वह अभियोजक के रूप में कार्य नहीं कर सकता है और न ही उसे न्यायाधीश के रूप में कार्य करना चाहिए; उसका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की जांच करना है और यहां तक कि अपराधी अधिकारी की अनुपस्थिति में भी, यह देखना है कि क्या आरोपों के लिए अखंडित साक्ष्य पर्याप्त हैं।

16. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सरोज कुमार सिन्हा (सुप्रा) के उक्त निर्णय में आगे कहा है कि यह केवल उस मामले में है जब सरकारी कर्मचारी, नोटिस के बावजूद, जांच के दौरान उपस्थित होने में विफल रहता है कि जांच अधिकारी एकपक्षीय कार्यवाही कर सकता है और ऐसी परिस्थितियों में भी गवाह का बयान दर्ज करना जांच अधिकारी पर निर्भर है।

17. वर्तमान मामले में, कोई मौखिक जांच नहीं की गई थी, न ही याचिकाकर्ता को मौखिक जांच के लिए तारीख, समय और स्थान तय करके किसी भी मौखिक जांच में भाग लेने के लिए कोई नोटिस दिया गया था। यह केवल इतना है कि जांच अधिकारी ने यह देखने के बाद कि याचिकाकर्ता को पर्याप्त समय दिए जाने के बावजूद, उसने आरोप पत्र पर अपना जवाब प्रस्तुत नहीं किया, वह इस तरह की मौखिक जांच के लिए तारीख, समय और स्थान तय करके कोई मौखिक जांच किए बिना एकपक्षीय रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए आगे बढ़ा। इस मामले में जांच अधिकारी ने पूर्वोक्त सिद्धांतों का उल्लंघन किया है, जो स्पष्ट रूप से जांच की कार्यवाही को निष्प्रभाव करता है और इस तरह की निष्प्रभाव जांच के आधार पर कोई भी दंड आदेश स्पष्ट रूप से टिकाऊ नहीं है।

16. कानून की स्थापित स्थिति और इस न्यायालय ने जो पाया है, उसे देखते हुए, आक्षेपित आदेशों और जांच रिपोर्ट को बनाए नहीं रखा जा सकता है जिस पर ये आधारित हैं।

17. अब विचार के लिए जो प्रश्न उठता है वह यह है कि क्या याचिकाकर्ता के खिलाफ चार्जशीट जारी करने के चरण से जांच की कार्यवाही फिर से शुरू की जा सकती है, याचिकाकर्ता उसी दिन सेवानिवृत्त हो गया था जिस दिन उसे सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था यानी 30.06.2015 को।

18. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील यहां प्रस्तुत करते हैं कि नियोक्ता और कर्मचारी के संबंध का अस्तित्व समाप्त हो गया है और निगम के नियमों में ऐसा कुछ भी नहीं है जो उन्हें पूर्व कर्मचारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रखने का अधिकार देता हो।

19. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने रिट याचिका के अनुलग्नक 9 के रूप में संलग्न निगम के कर्मचारी विनियमों की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है ताकि यह

प्रस्तुत किया जा सके कि निगम के पास सेवानिवृत्ति के बाद याचिकाकर्ता के खिलाफ जांच जारी रखने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। नियमों के अवलोकन पर, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि निगम के पास ऐसे मामले में अधिकार क्षेत्र की कमी होगी जहां कर्मचारी के सेवा में रहने के दौरान अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी। दोनों संभावनाएं हैं, लेकिन इस उद्देश्य के लिए, संबंधित नियमों की जांच करनी होगी। रिट याचिका से जुड़े स्टाफ विनियमों के अलावा विचार करने के की आवश्यकता हो सकती है।

20. इन परिस्थितियों में, इस न्यायालय की राय है कि निगम को संबंधित नियमों के संदर्भ में इस मुद्दे की जांच करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाना चाहिए कि क्या सेवानिवृत्ति के बाद वे याचिकाकर्ता के खिलाफ जांच के चरण से पहले से जारी आरोप-पत्र के आधार पर आगे बढ़ सकते हैं।

21. परिणाम में, यह रिट याचिका सफल होती है और इसकी अनुमति दी जाती है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा क्रमशः पारित दिनांक 30.06.2015 और 12.01.2016 के आक्षेपित आदेशों को एतद्द्वारा रद्द किया जाता है। जांच अधिकारी की दिनांक 15.06.2015 की रिपोर्ट को भी रद्द किया जाता है।

22. याचिकाकर्ता को उसकी सेवानिवृत्ति की तारीख तक सेवा में बने रहने के लिए माना जाएगा। उन्हें अगले दो महीने के भीतर सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों का भुगतान किया जाएगा। हालांकि, यह उत्तरदाताओं के लिए खुला होगा कि वे याचिकाकर्ता के खिलाफ शुरू की गई जांच कार्यवाही को आरोप पत्र पर उसका जवाब मांगने के चरण से समाप्त करें, बशर्ते कि कानून के तहत निगम के एक पूर्व कर्मचारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रखने की अनुमति है, जो लंबित कार्यवाही को सूपरैन्यूएट करता है। यदि, याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही नए सिरे से की जाती है, तो सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों का भुगतान तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि कार्यवाही समाप्त नहीं हो जाती, जो यदि अनुमेय है और निगम द्वारा पर्सू किया जाता है, तो इस आदेश की एक प्रति प्राप्त होने की तारीख से तीन महीने से अधिक की अवधि के भीतर पूरा नहीं किया जाएगा।

23. इस आदेश की सूचना रजिस्ट्रार अनुपालन द्वारा प्रबंध निदेशक, उ0प्र0 वेयर हाउसिंग कॉर्पोरेशन, न्यू हैदराबाद, लखनऊ को दी जाए।

24. सीलबंद लिफाफे में न्यायालय के समक्ष पेश किए गए मूल रिकॉर्ड, जिन्हें खोला और जांचा गया है, को एक सीलबंद कवर में रखने और निगम के कर्मचारी को वापस करने का निर्देश दिया जाता है, जिसने उन्हें अदालत के समक्ष पेश किया है।

(2023) 1 ILRA 483

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक साइड

दिनांक: इलाहाबाद 16.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति समित गोपाल

आवेदन धारा 482 के तहत संख्या - 1558 वर्ष 2023

मोहम्मद हारून ... **आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ... **प्रतिपक्षी**

आवेदक के अधिवक्ता :
दीपक पांडे

प्रतिपक्षी के लिए अधिवक्ता :
शासकीय अधिवक्ता

ए. आपराधिक कानून – आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 293 - धारा 227 और 239 - दोषमुक्ति - विस्तार - विचारणीय न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति आवेदन की अस्वीकृति – हस्तक्षेप, वारंट – आवेदक का नाम एफआईआर के साथ-साथ बयान अंतर्गत धारा 161 सी.आर.पी.सी. एवं 164 सी.आर.पी.सी. में भी है - प्रभाव - सज्जन कुमार के सिद्धांत पर भरोसा किया गया आरोप तय करते समय, अदालत को उसके समक्ष प्रस्तुत सभी सामग्रियों का अवलोकन करना होगा और यह निर्धारित करना होगा कि प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं - अदालत को साक्ष्य का मूल्य की साक्ष्य पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि साक्ष्य की स्वीकार्यता या विश्वसनीयता का कोई भी प्रश्न परीक्षण का विषय है – आयोजित, आवेदक के विरुद्ध प्रथम दृष्टया साक्ष्य है जिसे केवल देखा जाना है। इस स्तर पर आरोपों की सत्यता को नहीं देखा जा सकता है और न ही उस पर निर्णय सुनाया जा सकता है - आरोपमुक्त करने/आरोप तय करने के चरण में, अदालत को केवल यह पता लगाने के लिए सबूतों को स्थानांतरित करने की आवश्यकता है कि आरोपी के खिलाफ आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं। (पैरा 13, 26 और 27)

आवेदन निरस्त। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. सज्जन कुमार बनाम सी.बी.आई.; (2010) 9 एससीसी 368
2. अमित कपूर बनाम रमेश चंदर; (2012) 9 एससीसी 460
3. आसिम शरीफ बनाम राष्ट्रीय जांच एजेंसी; (2019) 7 एससीसी 148
4. विक्रम जौहर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; 2019 एससीसी ऑनलाइन एससी 609
5. भावना बाई बनाम घनश्याम; (2020) 2 एससीसी217
6. एम.ई. शिवलिंगमूर्ति बनाम सीबीआई; (2020) 2 एससीसी 768
7. राजस्थान राज्य बनाम अशोक कुमार कश्यप; 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 314
8. राजस्थान राज्य बनाम अशोक कुमार कश्यप; 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 314
9. उड़ीसा राज्य बनाम प्रतिमा मोहंती; 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 1222
10. हज़रत दीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1781
11. सेंट थ्रू डिप्टी सुपरिंटेंडेंट ऑफ पुलिस बनाम आर. सौंदिररासु; 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1150
12. मानेन्द्र प्रसाद तिवारी बनाम अमित कुमार तिवारी; 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1057-
13. कंचन कुमार बनाम बिहार राज्य; (2022) 9 एससीसी 577

(माननीय न्यायमूर्ति समित गोपाल, द्वारा प्रदत्त)

1. धारा 482 द०प्र०स० के तहत वर्तमान आवेदन पत्र आवेदक-मोहम्मद हारून द्वारा केस क्राइम नंबर 248/2022, अन्तर्गत धारा 354, 354-ए, 354-डी और 509 भ०द०वि०, थाना कोतवाली, जिला हमीरपुर से उत्पन्न केस संख्या 10417/2022 (राज्य बनाम मोहम्मद हारून) में दिनांक 15.11.2022 के डिस्चार्ज एप्लिकेशन के अस्वीकृति आदेश को रद्द करने/अलग करने और सिविल जज (जूनियर डिवीजन), एफ.टी.सी. महिला विरुद्ध अपराध न्यायालय, हमीरपुर की अदालत में लंबित उक्त मामले की आगे की कार्यवाही पर रोक लगाने की प्रार्थना के साथ दायर किया गया है।

2. प्रतिपक्षी नंबर-2 द्वारा दिनांक 25.07.2022 से 18.08.2022 के बीच घटित एक घटना के लिए आवेदक मो. हारून, अधिवक्ता, हमीरपुर के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 19.08.2022 को दर्ज कराई गई, जिसे धारा 354 (ग), 354 (घ) भ०द०वि० के तहत थाना-कोतवाली, जिला-हमीरपुर में अपराध संख्या 248/2022 के रूप में दर्ज किया गया था। उक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट की सामग्री जो अभियोजन मामले को निर्धारित करती है, नीचे दी गई है: -

"नकल प्रा० पत्र- *सेवा में, एसएचओ थाना कोतवाली, हमीरपुर, प्रेषक हर्षिता सचान, सिविल जज (जे.डी.)/एफ.टी.सी., हमीरपुर। विषय: जिला न्यायालय हमीरपुर में प्रैक्टिस कर रहे एडवोकेट मोहम्मद हारून के खिलाफ शिकायत। महोदय, यह सूचित किया जाता है कि मैंने सिविल जज (जे.डी.) /एफ.टी.सी, हमीरपुर के रूप में 05.07.2022 को कार्यभार संभाला है। जुलाई के चौथे सप्ताह (18 जुलाई - 24 जुलाई) में, मैंने एक अधिवक्ता (मोहम्मद हारून जिला न्यायालय हमीरपुर में वकील हैं) को मेरे कक्ष के पीछे की दीवार के बीच की खाई के माध्यम से मुझे घूरते हुए देखा, जब मैं अपने कक्ष से बाहर निकल रही थी। ऐसा सप्ताह में दो बार हुआ। उस समय मुझे वकील का नाम नहीं पता था, लेकिन मैंने उसे पहचान लिया क्योंकि वह पहले भी मेरे कोर्ट रूम में पेश हुआ था। 25 जुलाई को, लगभग 8:45 बजे, यमुना वॉकवे पर अपनी सामान्य सैर के लिए जाने के बाद, मैं वहां एक बेंच पर बैठ गयी थी। मेरे पास इयरफ़ोन था और मैं संगीत सुन रही थी। दो मिनट बाद, मैंने देखा कि वही अधिवक्ता बेंच के ठीक बगल में खड़ा कुछ कह रहा है। शिष्टाचार के कारण, मैंने अपने इयरफ़ोन हटा दिए और अभिवादन का आदान-प्रदान किया फिर निम्नलिखित बातचीत हुई, एम. हारून:* ***आप हमीरपुर वापस आ गयी हैं तो अच्छा लग रहा होगा।*** *मैंने सिर हिलाया, एम हारून:* ***आप सरीला चली गयी थी तो मन नहीं लग रहा था।*** *मैं स्पष्ट रूप से असहज थी और जैसा कि वह नशे में लग रहा था, इसलिए मैं बेंच से खड़ा होने लगी, जब उसने कहा –* ***मैंने आपको डिस्टर्ब तो नहीं किया।*** *जहाँ मैंने कहा* ***काफी लेट हो गया है, मुझे निकलना चाहिए*** *और फिर मैं पलट गयी। जब मैं जा रही थी तो उसने कहा,* ***वैसे अच्छी लग रही हो***। *क्योंकि पहले ही काफी देर हो चुकी थी। मैंने उस टिप्पणी को नजरअंदाज कर दिया और मैं चली गई। मैं इस घटना से परेशान थी और मैंने कुछ दिनों के लिए वॉकवे पर जाना बंद कर दिया। मैं अपने दोस्तों को उस घटना का उल्लेख किया जिन्होंने मुझे रिपोर्ट करने का आग्रह किया, लेकिन यह मानते हुए कि यह एक बार का अपराध था, मैंने इसे अनदेखा करने का फैसला किया। कुछ दिनों बाद, मैंने एम. हारून को अपने कक्ष के पीछे की दीवार से फिर से घूरते हुए देखा, जब मैं बाहर टहल रही थी। इसने मुझे बहुत असहज और चिंतित कर दिया और मैं अपने कक्ष में वापस चली गयी, यह नहीं जानते हुए कि क्या करना है। मैं अनुचित बातचीत के बाद से भी वॉकवे पर जाने से बच* ***रही थी***। ***दिनांक*** *01.08.2022 को,*

शांत होने के बाद, मैं रात 8:18 बजे यमुना वॉकवे पर टहलने गयी, मैंने किसी भी अप्रिय घटना के डर से अपना लाइव लोकेशन एक दोस्त को भी भेज दिया। रात 8.40 बजे, मैं एक बेंच पर बैठी और एक मिनट के भीतर, एम. हारून बेंच की ओर चला गया। निम्नलिखित बातचीत हुई, मैंने उससे सीधे पूछा। ***आपका नाम क्या है?*** *एम. हारून:* ***मोहम्मद हारून*** *फिर मैंने उसे चेतावनी दी,* ***आपको उस दिन के व्यवहार से मैं काफी डिस्टर्बड हूँ आप जो यहां मेरे पीछे-पीछे चलते हैं और कोर्ट में दिवार से झांकते हैं। यह दोबारा नहीं होना चाहिए। आज के बाद मुझसे बात करने की जरुरत नहीं है। अगर दोबारा ऐसा हुआ तो मैं फिर कम्प्लेन्ट करूंगी।*** *यह सुनकर वह बिना कुछ कहे चला गया।* ***उस दिन के बाद, जब भी मैं यमुना वॉकवे पर टहलने जाती, वह मेरे पीछे कुछ कदम पीछे चलता।*** *वह मेरे कोर्ट-रूम में तब भी पेश होता था जब कोई मैटर सूचीबद्ध नहीं होता था और घंटों तक खुद को बैठाता था। जैसा कि उसने मेरे साथ स्पष्ट रूप से बातचीत नहीं की, इसलिए मैंने इसे नज़रअंदाज़ करना चुना कि मुझे काले स्वेटपैंट, नीले-काले चेकर्ड शर्ट पहनने की आदत है और जूते पहनते समय जब मैं टहलने जाता हूं तो मेरे पास वही पोशाक होती है जब मैं कल टहलने गया था,* ***दिनांक*** *18.08.2022 को रात लगभग 8:00 बजे: जिस क्षण मैं अपने घर के सामने सड़क पर स्थित सीढ़ी पर वॉकवे की ओर चली गयी। मैंने उसे भी सीढ़ियों पर चलते देखा। मैंने अपनी सामान्य सैर जारी रखी। उस दिन, वह मेरे पीछे मुश्किल से दो फीट चला गया, मैंने यह भी देखा कि उसने मेरे जैसे ही कपड़े पहने हुए थे, सफेद जूते के नीचे ठीक वही पोशाक। मैं इस व्यवहार से घबरा गयी और डर गयी और डर के मारे एक दोस्त को बुलाया और एक बेंच पर बैठने का फैसला किया ताकि वह मेरा पीछा करना बंद कर दे। जैसे ही मैं बेंच पर बैठी, उसने भी चलना बंद कर दिया और रात करीब 8.55 बजे पास की एक अलग बेंच पर बैठ गया। यह तय करते हुए कि मुझे घर वापस जाना चाहिए क्योंकि मैं असुरक्षित महसूस कर रही थी, मैं कड़ी हो गयी और मुझे खड़े होते हुए देखकर, वह भी खड़ा हो गया और चलने लगा मैं वापस बैठ गयी और उसे फिल्माने लगी। उसके कदम लड़खड़ा रहे थे और साफ था कि वह नशे में था। वह मुझसे कुछ कदम आगे चला और फिर मेरी तरफ मुड़ा यह देखने के बाद कि मेरा फोन उसकी ओर है, वह वहां कुछ लोगों से बात करने लगा। उसके बाद जब भी मैं चलती, वह पीछा करता और जहां मैं रुकती, वह भी रुक जाता वह मेरी ओर आता और कुछ बुदबुदाता और बातचीत शुरू करने की कोशिश करता लेकिन मैं रुक जाती, चलने से शराब की बदबू आने की आहट आई, उसने फिर से मेरी ओर मुड़कर देखा और फिर उसी जगह पर इधर-उधर चलते हुए, मेरे फिर से चलने का इंतजार किया। इस पूरे घटनाक्रम से भयभीत होकर मैं जितनी जल्दी हो सके अपने आवास के पास की सीढ़ी पर उतर गयी और फिर रात 9:05 बजे के आसपास वरिष्ठ न्यायाधीशों को फोन करके पूरी घटना की जानकारी दी। जब मैं जजेज कॉम्प्लेक्स के बाहर सड़क पर खड़ा होकर कॉल कर रहा थी, मैंने उसे अपनी कार से गाड़ी चलाते और खिड़की के बाहर झुककर मुझे घूरते हुए देखा। मैं एम हारून की ओर से और अधिक उल्लंघनों और दुर्व्यवहार के डरी हुई हूं। उनकी बेहद अनुचित टिप्पणियों और मेरी गोपनीयता में उनके स्पष्ट हस्तक्षेप के बाद पीछे हटने की मेरी सख्त चेतावनी के बावजूद, उन्होंने मेरा पीछा करना और मुझसे संपर्क करने की कोशिश करना जारी रखा है। मैं अदालत परिसर और बाहर भी अपनी सुरक्षा और भलाई को लेकर चिंतित हूं। 19.08.2022। प्रति अग्रेषित की गयी: 1- पुलिस अधीक्षक, हमीरपुर सादर, एस.डी हर्षिता (हर्षिता सचान) सिविल जज (जे.डी.)/एफ.टी.सी., हमीरपुर 8368471367 निवासी जे-6 जजेज कॉलोनी जिला हमीरपुर, पिन- 210301 स्थायी निवासी 174/डब्ल्यू-2, जूही दामोदर नगर, कानपुर पिन 208027* **मैं का०मु० अखिलेश कुमार प्रमाणित करता हूं कि प्रा० पत्र की नक़ल मुझ का०मु० द्वारा बोल गोलकार अक्षरशः अंकित करवाई गयी। - एस०डी० का०मु० अखिलेश कुमार"**

3. आरोपी के खिलाफ प्रतिपक्षी क्रमांक 2 द्वारा अध्यक्ष, आंतरिक शिकायत समिति (पी.ओ.एस.एच अधिनियम), जिला न्यायालय, हमीरपुर को दिनांक 20.08.2022 को शिकायत भेजी गई। उक्त शिकायत पर उक्त समिति के अध्यक्ष द्वारा आरोपी को नोटिस जारी किया गया था।

4. जांच हुई जिसमें शिकायतकर्ता का बयान जो पीड़ित था, धारा 161 द०प्र०स० और धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया था। इसके बाद आवेदक के खिलाफ भ०द०वि० की धारा 354, 354 (ग), 354 (घ), 509 के तहत दिनांक 08.09.2022 का आरोप पत्र क्रमांक 182/2022 प्रस्तुत किया गया।

5. उक्त आरोप-पत्र पर आरोपी को सिविल जज (जूनियर डिवीजन)/एफ.टी.सी (महिलाओं के खिलाफ अपराध), हमीरपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 13.09.2022 द्वारा तलब किया गया था।

6. आवेदक द्वारा धारा 239 द०प्र०स० सपठित धारा 227 के तहत डिस्चार्ज के लिए दिनांक 12.10.2022 को एक आवेदन दायर किया गया था। डिस्चार्ज दिनांक 12.10.2022 के लिए उक्त आवेदन को विचारण न्यायालय ने दिनांक 15.11.2022 के आदेश के तहत खारिज कर दिया था। इस प्रकार वर्तमान याचिका ऊपर उद्धृत प्रार्थनाओं के साथ दायर की गई है।

7. आवेदक के अधिवक्ता श्री दीपक पांडे और राज्य के लिए श्री बीबी उपाध्याय, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

8. आवेदक के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि आवेदक के दिनांक 12.10.2022 के आदेश दिनांक 15.11.2022 के तहत डिस्चार्ज के लिए आवेदन की अस्वीकृति पूरी तरह से अवैध है। यह तर्क दिया गया है कि विचारण न्यायालय ने डिस्चार्ज के लिए उक्त आवेदन को गलत तरीके से खारिज कर दिया है। यह तर्क दिया गया है कि विचारण न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार नहीं किया कि आवेदक पर केवल उन अपराधों के लिए मुकदमा चलाया जाना चाहिए जो बनाए गए हैं, लेकिन चार्जशीट में बताए गए सभी अपराधों के लिए नहीं। यह तर्क दिया गया है कि धारा 354, 354-ए भ०द०वि० के तहत किसी भी अपराध का कोई आरोप नहीं है और इस तरह उक्त अपराध बिल्कुल नहीं बनते हैं। आगे यह तर्क दिया गया है कि पूरा अभियोजन मामला प्रतिपक्षी नंबर-2 / प्रथम सूचनाकर्ता / पीड़ित के एकमात्र अपुष्ट संस्करण पर आधारित है जो बिना किसी सबूत के है और इसकी पुष्टि करने के लिए कोई स्वतंत्र गवाह नहीं है। धारा 161 द०प्र०स० के तहत उनके बयान में उनके द्वारा दिया गया संस्करण पूरी तरह से अस्पष्ट, आधारहीन और विपरीत है, जिस पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। यह तर्क दिया गया है कि आवेदक अधिवक्ता है और उसने कोई अपराध नहीं किया है। यह तर्क दिया गया है कि आवेदक के खिलाफ आरोप पत्र निराधार है और उसके खिलाफ कोई मामला नहीं बनता है और वह बरी होने का हकदार है। इस प्रकार वर्तमान आवेदन की अनुमति दी जानी चाहिए और दिनांक 12.10.2022 को डिस्चार्ज के लिए आवेदन को खारिज करने वाले दिनांक 15.11.2022 के आदेश को रद्द कर दिया जाए और आवेदक को छुट्टी दे दी जाए।

9. इसके विपरीत, प्रतिपक्षी के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने रद्द करने की प्रार्थना का विरोध किया और तर्क दिया कि आवेदक का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में है और उसके खिलाफ आरोप हैं। पहली सूचनाकर्ता जो वर्तमान मामले की पीड़ित है, ने धारा 161 द०प्र०स० और धारा 164 द०प्र०स० के तहत दिए गए अपने बयान में प्रथम सूचना रिपोर्ट के संस्करण की पुष्टि की है। जांच के बाद जांच अधिकारी ने आवेदक के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया है, जिस पर उसे दिनांक 13.09.2022 के आदेश के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया गया है। आगे यह तर्क दिया गया है कि जहां तक आवेदक को आरोपमुक्त करने के आवेदन का सवाल है, आरोपमुक्त करने के चरण में अदालत को केवल आरोपी के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला देखना होगा और उसमें लगाए गए आरोपों की सत्यता का आकलन नहीं किया जा सकता है। यह तर्क दिया गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट और जांच के दौरान प्रथम सूचनाकर्ता/पीड़ित का बयान वर्तमान मामले में आवेदक को फंसाता है और उसके खिलाफ *प्रथम दृष्टया* आरोप हैं। विचारण न्यायालय ने योग्यता के आधार पर एक विस्तृत आदेश द्वारा दिनांक 15.11.2022 के आदेश के तहत आवेदक के डिस्चार्ज के लिए आवेदन को खारिज कर दिया है। उक्त आदेश मामले के प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखता है और कानून को ध्यान में रखते हुए आज तक सुसंगत है, इसे खारिज कर दिया गया।

10. पक्षकारों के अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

11. अभियुक्त के निर्वहन और आरोप तय करने के संबंध में कानून अच्छी तरह से तय है।

12. एक अभियुक्त को धारा 227 द०प्र०स०, 239 के अनुसार भी बरी किया जा सकता है। वे निम्नानुसार हैं:

*"**धारा 227. निर्वहन -** यदि, मामले के रिकॉर्ड और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करने के बाद, और इस संबंध में अभियुक्त और अभियोजन पक्ष की प्रस्तुतियों को सुनने के बाद, न्यायाधीश यह मानता है कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, तो वह आरोपमुक्त कर देगा। आरोप लगाया और ऐसा करने के लिए उसके कारणों को दर्ज किया।"*

*"**धारा 239 द०प्र०स० निर्वहन –** यदि, पुलिस रिपोर्ट और धारा 173 के तहत इसके साथ भेजे गए दस्तावेजों पर विचार करने और अभियुक्त की ऐसी जांच, यदि कोई हो, जैसा कि मजिस्ट्रेट आवश्यक समझता है और अभियोजन पक्ष और अभियुक्त को सुनवाई का अवसर देने के बाद, मजिस्ट्रेट अभियुक्त के खिलाफ आरोप को आधारहीन मानता है, वह आरोपी को बरी करेगा, और ऐसा करने के अपने कारणों को दर्ज करेगा।*

13. सज्जन कुमार बनाम सी.बी.आई: (2010) 9 एस.सी.सी 368 ***के मामले में सर्वोच्च न्यायालय*** ने माना कि आरोप तय करते समय, न्यायालय को उसके सामने रखी गई सभी सामग्री को देखना होगा और यह निर्धारित करना होगा कि प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं, और न्यायालय को किसी भी प्रश्न के रूप में साक्ष्य के साक्ष्य मूल्य पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि साक्ष्य की स्वीकार्यता या विश्वसनीयता का कोई भी प्रश्न परीक्षण का विषय है।

"21. संहिता की धारा 227 और 228 के दायरे के बारे में अधिकारियों के विचार पर, निम्नलिखित सिद्धांत सामने आते हैं:

(i) धारा 227 द०प्र०स० के तहत आरोप तय करने के सवाल पर विचार करते समय न्यायाधीश के पास यह पता लगाने के सीमित उद्देश्य के लिए सबूतों को छानने और तौलने की निस्संदेह शक्ति है कि अभियुक्त के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं। प्रथम दृष्टया मामले का निर्धारण करने के लिए परीक्षण प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा।

(ii) जहां न्यायालय के समक्ष रखी गई सामग्री अभियुक्त के विरुद्ध गंभीर संदेह का खुलासा करती है, जिसे ठीक से स्पष्ट नहीं किया गया है, तो न्यायालय आरोप तय करने और विचारण के साथ कार्यवाही करने में पूरी तरह से न्यायसंगत होगा।

(iii) न्यायालय केवल एक डाकघर या गद्य के मुखपत्र के रूप में कार्य नहीं कर सकता है (i) न्यायाधीश को धारा 227 द०प्र०स० के तहत आरोप तय करने के सवाल पर विचार करते समय निस्संदेह शक्ति है (i) न्यायाधीश को धारा 227 के तहत आरोप तय करने के सवाल पर विचार करते समय द०प्र०स० के तहत यह पता लगाने के सीमित उद्देश्य के लिए सबूतों को छानने और तौलने की निस्संदेह शक्ति है कि आरोपी के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं। प्रथम दृष्टया मामले का निर्धारण करने के लिए परीक्षण प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा।

(iv) यदि अभिलेख में उपलब्ध सामग्री के आधार पर, न्यायालय यह राय बना सकता है कि अभियुक्त ने अपराध किया होगा, तो वह आरोप तय कर सकता है, हालांकि दोषसिद्धि के लिए युक्तियुक्त संदेह से परे निष्कर्ष सिद्ध करना अपेक्षित है कि अभियुक्त ने अपराध किया है।

(v) आरोप विरचित करते समय, अभिलेख में उपलब्ध सामग्री के संभावित मूल्य की जांच नहीं की जा सकती है, लेकिन आरोप विरचित करने से पहले न्यायालय को अभिलेख में रखी गई सामग्री पर अपना न्यायिक ध्यान लगाना चाहिए और इस बात से संतुष्ट होना चाहिए कि अभियुक्त द्वारा अपराध करना संभव था।

(vi) धारा 227 और 228 के चरण में, न्यायालय से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अभिलेख में उपलब्ध सामग्री और दस्तावेजों का मूल्यांकन करे ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या उनसे निकाले गए तथ्यों से कथित अपराध का गठन करने वाले सभी अवयवों के अस्तित्व का पता चलता है। इस सीमित उद्देश्य के लिए, सबूतों को छान लें क्योंकि उस प्रारंभिक चरण में भी यह उम्मीद नहीं की जा सकती है कि अभियोजन पक्ष उन सभी को सुसमाचार सत्य के रूप में स्वीकार करे, भले ही वह सामान्य ज्ञान या मामले की व्यापक संभावनाओं के विपरीत हो।

(vii) यदि दो विचार संभव हों और उनमें से एक गंभीर संदेह से भिन्न होकर केवल संदेह को जन्म दे, तो विचारण न्यायाधीश को अभियुक्त को आरोपमुक्त करने का अधिकार होगा और इस स्तर पर, उसे यह नहीं देखना है कि विचारण दोषसिद्धि या दोषमुक्ति में समाप्त होगा या नहीं।

14. अमित कपूर बनाम रमेश चंदर (2012) 9 एस.सी.सी 460 ***में***, सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायालयों द्वारा धारा 397 द०प्र०स० और धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति के प्रयोग के संदर्भ में कुछ सिद्धांतों को सूचीबद्ध किया, यह तय करते हुए कि किसी अभियुक्त के खिलाफ लगाए गए आरोपों को रद्द किया जाए या नहीं। सूचीबद्ध सिद्धांत निम्नानुसार हैं:

"27. इन दो प्रावधानों, अर्थात् संहिता की धारा 397 और धारा 482 द०प्र०स० के अधीन क्षेत्राधिकार के दायरे और क्षेत्राधिकार भेद की महीन रेखा पर चर्चा करने के बाद, अब हमारे लिए यह उचित होगा कि हम उन सिद्धांतों को सूचीबद्ध करें जिनके संदर्भ में न्यायालयों को ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करना चाहिए। हालांकि, यह न केवल मुश्किल है, बल्कि ऐसे सिद्धांतों को सटीक रूप से बताना स्वाभाविक रूप से असंभव है। इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के अधिक से अधिक और वस्तुनिष्ठ विश्लेषण पर, हम अधिकार क्षेत्र के उचित प्रयोग के लिए विचार किए जाने वाले कुछ सिद्धांतों को समाप्त करने में सक्षम हैं, विशेष रूप से, संहिता की धारा 397 या धारा 482 के तहत अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में या एक साथ, जैसा भी मामला हो:

27.1. हालांकि संहिता की धारा 482 के तहत न्यायालय की शक्तियों की कोई सीमा नहीं है, लेकिन जितनी अधिक शक्ति होगी, इन शक्तियों को लागू करने में उतनी ही अधिक देखभाल और सावधानी बरतनी होगी। आपराधिक कार्यवाहियों को रद्द करने की शक्ति, विशेष रूप से, संहिता की धारा 228 के संदर्भ में तय किए गए आरोप का प्रयोग बहुत संयम से और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए और वह भी दुर्लभतम मामलों में।

27.2. न्यायालय को इस परीक्षण को लागू करना चाहिए कि क्या मामले के रिकॉर्ड से किए गए अविवादित आरोप और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेज प्रथम दृष्टया अपराध को

स्थापित करते हैं या नहीं। यदि आरोप इतने स्पष्ट रूप से बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं कि कोई भी विवेकपूर्ण व्यक्ति कभी भी इस तरह के निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है और जहां आपराधिक अपराध के मूल तत्व संतुष्ट नहीं हैं, तो न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है।

27.3. उच्च न्यायालय को अनुचित रूप से हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। आरोप तय करने या आरोप रद्द करने के चरण में मामला दोषसिद्धि में समाप्त होगा या नहीं, इस पर विचार करने के लिए साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच की आवश्यकता नहीं है।

27.4. जहां न्याय की स्पष्ट हत्या को रोकने के लिए और अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा ऐसे मामलों में भी की जा सकने वाली कुछ गंभीर त्रुटि को ठीक करने के लिए ऐसी शक्ति का प्रयोग नितांत आवश्यक है, वहां उच्च न्यायालय को अपनी अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग में अभियोजन पक्ष का गला घोंटने के लिए सीमा पर हस्तक्षेप करने से घृणा करनी चाहिए।

27.5. जहां संहिता के किसी भी प्रावधान या किसी विशिष्ट कानून में लागू एक स्पष्ट कानूनी रोक है जो बहुत ही दीक्षा या संस्था और ऐसी आपराधिक कार्यवाही को जारी रखने के लिए लागू है, इस तरह के प्रतिबंध का उद्देश्य अभियुक्त को विशिष्ट सुरक्षा प्रदान करना है।

27.6. न्यायालय का कर्तव्य है कि वह किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता और शिकायतकर्ता या अभियोजन पक्ष के अधिकार की जांच और मुकदमा चलाने के लिए संतुलन बनाए।

27.7. न्यायालय की प्रक्रिया को तिरछे या अंतिम/गुप्त उद्देश्य के लिए उपयोग करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

27.8. जहां लगाए गए आरोप और जैसा कि वे मुख्य रूप से जन्म देने के लिए रिकॉर्ड और उसके साथ संलग्न दस्तावेजों से प्रकट होते हैं और एक 'नागरिक गलत' का गठन करते हैं जिसमें कोई 'आपराधिकता का तत्व' नहीं होता है और एक आपराधिक अपराध के मूल तत्व को संतुष्ट नहीं करता है, न्यायालय आरोप को रद्द करने में उचित हो सकता है। ऐसे मामलों में भी, न्यायालय सबूतों के महत्वपूर्ण विश्लेषण पर ध्यान नहीं देगा।

27.9. एक और बहुत महत्वपूर्ण सावधानी जो अदालतों को बरतनी है वह यह है कि वह रिकॉर्ड पर मौजूद तथ्यों, सबूतों और सामग्रियों की जांच यह निधारित करने के लिए नहीं कर सकती है कि क्या पर्याप्त सामग्री है जिसके आधार पर मामला दोषसिद्धि में समाप्त होगा, अदालत मुख्य रूप से चिंतित है आरोपों को समग्र रूप से देखा जाए तो क्या वे अपराध बनेंगे और यदि हां, तो क्या यह अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग है जिससे अन्याय होगा।

27.10. यह न तो आवश्यक है और न ही अदालत से पूर्ण जांच करने या जांच एजेंसियों द्वारा एकत्र किए गए सबूतों की सराहना करने के लिए कहा जाता है ताकि यह पता लगाया जा सके कि यह बरी या दोषसिद्धि का मामला है या नहीं।

27.11. जहां आरोप एक नागरिक दावे को जन्म देते हैं और एक अपराध की राशि भी देते हैं, केवल इसलिए कि एक नागरिक दावा बनाए रखने योग्य है, इसका मतलब यह नहीं है कि आपराधिक शिकायत को बनाए नहीं रखा जा सकता है।

27.12. धारा 228 और/या धारा 482 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए, न्यायालय किसी अभियुक्त द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए दी गई बाहरी सामग्रियों पर विचार नहीं कर सकता है कि किसी अपराध का खुलासा नहीं किया गया था या उसके बरी होने की संभावना थी। न्यायालय को अभियोजन पक्ष द्वारा संलग्न रिकॉर्ड और दस्तावेजों पर विचार करना होगा।

27.13. किसी आरोप को रद्द करना निरंतर अभियोजन के नियम का अपवाद है। जहां अपराध का किया जाना भी मोटे तौर पर संतुष्ट है, न्यायालय को उस प्रारंभिक चरण में इसे रद्द करने के बजाय अभियोजन को जारी रखने की अनुमति देने के लिए अधिक इच्छुक होना चाहिए। न्यायालय से दस्तावेजों या अभिलेखों की स्वीकार्यता और विश्वसनीयता तय करने की दृष्टि से अभिलेखों को मार्शल करने की अपेक्षा नहीं की जाती है, लेकिन यह प्रथम दृष्टया बनाई गई राय है।

27.14. जहां संहिता की धारा 173 (2) के तहत आरोप-पत्र, रिपोर्ट मौलिक कानूनी दोषों से ग्रस्त है, न्यायालय आरोप लगाने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर अच्छी तरह से हो सकता है।

27.15. उपरोक्त में से किसी एक या सभी के साथ युग्मित, जहां न्यायालय पाता है कि यह संहिता की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा या न्याय का हित पक्षधर होगा, अन्यथा यह आरोप को रद्द कर सकता है। शक्ति का प्रयोग पूर्व डेबिटो औचित्य के लिए किया जाना है, अर्थात प्रशासन के लिए वास्तविक और पर्याप्त न्याय करने के लिए, जिसमें से अदालतें मौजूद हैं।

27.16. ये वे सिद्धांत हैं जिन्हें व्यक्तिगत रूप से और अधिमानतः संचयी रूप से (एक या अधिक) उच्च न्यायालय द्वारा संहिता की धारा 482 के तहत असाधारण और व्यापक पूर्णता और अधिकार क्षेत्र के प्रयोग के लिए उपदेशों के रूप में ध्यान में रखा जाना चाहिए। जहां किसी अपराध के लिए तथ्यात्मक आधार निर्धारित किया गया है, अदालतों को अनिच्छुक होना चाहिए और इस आधार पर भी कार्यवाही को रद्द करने में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए कि एक या दो अवयवों को नहीं बताया गया है या यदि अपराध की आवश्यकताओं का पर्याप्त अनुपालन है तो संतुष्ट नहीं हैं।

15. असीम शरीफ बनाम राष्ट्रीय जांच एजेंसी: (2019) 7 एस.सी.सी 148 *के मामले में*, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह दोहराया गया था कि विचारण न्यायालय को यह निर्धारित करने के लिए रिकॉर्ड पर सबूतों का खुलासा नहीं करना चाहिए कि क्या आरोपी बरी हो जाएगा या दोषी ठहराया जाएगा यदि किसी अभियुक्त के खिलाफ कोई विशेष आरोप तय किया जाता है। मामले में अदालत की टिप्पणी का प्रासंगिक हिस्सा निम्नानुसार है:

*"**18.** इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विषय पर कानून की व्याख्या को ध्यान में रखते हुए, यह तय हुआ है कि सत्र मामलों में धारा 227 द०प्र०स० के तहत आरोप तय करने के सवाल पर विचार करते समय न्यायाधीश के पास यह पता लगाने के सीमित उद्देश्य के लिए सबूतों को छांटने और तौलने की निस्संदेह शक्ति है कि प्रथम दृष्टया आरोपी के खिलाफ मामला बनता है या नहीं; जहां अदालत के समक्ष रखी गई सामग्री अभियुक्त के खिलाफ गंभीर संदेह का खुलासा करती है जिसे ठीक से समझाया नहीं गया है, अदालत आरोप तय करने में पूरी तरह से न्यायसंगत होगी; कुल मिलाकर यदि दो विचार संभव हैं और उनमें से एक केवल संदेह को जन्म देता है, जैसा कि अभियुक्त के खिलाफ गंभीर संदेह से अलग है, तो विचारण जज को उसे बरी करने में उचित होगा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि धारा 227 द०प्र०स० के तहत दायर डिस्चार्ज आवेदन की जांच करते समय, विचारण जज से यह अपेक्षा की जाती है कि वह यह निर्धारित करने के लिए अपने न्यायिक दिमाग का प्रयोग करे कि विचारण के लिए मामला बनाया गया है या नहीं। यह सच है कि इस तरह की कार्यवाही में, अदालत को रिकॉर्ड पर सबूतों को मार्शल करके एक मिनी विचारण नहीं करना चाहिए।*

16. इसके अलावा, *विक्रम जौहर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: 2019 एस.सी.सी ऑनलाइन एस.सी 609* के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने दोहराया है कि आरोप के चरण के दौरान, अदालत को मिनी-विचारण नहीं करना चाहिए और निर्णय रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्रियों की प्रथम दृष्टया सराहना पर आधारित होना चाहिए। उक्त निर्णय का प्रासंगिक हिस्सा इस प्रकार है:

"19. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि निर्वहन आवेदन पर विचार करते समय, न्यायालय को यह निर्धारित करने के लिए अपने न्यायिक दिमाग का प्रयोग करना है कि मुकदमे के लिए मामला बनाया गया है या नहीं। यह सच है कि इस तरह की कार्यवाही में, अदालत को सबूतों को मार्शल करके मिनी विचारण नहीं करना है।

17. भावना बाई बनाम घनश्याम: (2020) 2 एस.सी.सी 217 ***में सर्वोच्च न्यायालय*** ने निम्नानुसार देखा है: -

"13. ... आरोप तय करते समय, केवल प्रथम दृष्टया मामला देखा जाना है; क्या मामला उचित संदेह से परे है, इस स्तर पर नहीं देखा जाना चाहिए। आरोप तय करने के चरण में, अदालत को यह देखना होगा कि क्या आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है। सामग्रियों का मूल्यांकन करते समय, प्रमाण के सख्त मानक की आवश्यकता नहीं होती है; केवल प्रथम दृष्टया आरोपी के खिलाफ मामला देखा जाना है।

18. एमई शिवलिंगमूर्ति बनाम सी.बी.आई: (2020) 2 एस.सी.सी 768 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्वहन की मांग करने वाले आवेदन से निपटने के दौरान पालन किए जाने वाले सिद्धांतों पर चर्चा करते हुए निम्नानुसार देखा:

"i) यदि दो विचार संभव हैं और उनमें से एक गंभीर संदेह से अलग केवल संदेह को जन्म देता है, तो विचारण जज को आरोपी को बरी करने का अधिकार होगा।

ii. विचारण जज अभियोजन पक्ष के कहने पर आरोप तय करने के लिए केवल एक डाकघर नहीं है।

iii. न्यायाधीश को केवल यह पता लगाने के लिए सबूतों की जांच करनी है कि कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं। साक्ष्य में पुलिस द्वारा

दर्ज किए गए बयान या अदालत के समक्ष पेश किए गए दस्तावेज शामिल होंगे।

iv. यदि साक्ष्य, जिसे अभियोजक अभियुक्त के अपराध को साबित करने के लिए पेश करने का प्रस्ताव करता है, भले ही इसे जिरह में चुनौती देने से पहले पूरी तरह से स्वीकार किया गया हो या बचाव पक्ष के साक्ष्य द्वारा खंडन किया गया हो, यदि कोई हो, "यह नहीं दिखा सकता है कि अभियुक्त ने अपराध किया है, तो, मुकदमे के साथ आगे बढ़ने के लिए कोई पर्याप्त आधार नहीं होगा।

v. यह अभियुक्त के लिए खुला है कि वह गंभीर संदेह को जन्म देने वाली सामग्री की व्याख्या करे।

vi. अदालत को व्यापक संभावनाओं, साक्ष्य के कुल प्रभाव और अदालत के समक्ष पेश किए गए दस्तावेजों, मामले में दिखाई देने वाली किसी भी बुनियादी दुर्बलता और इतने पर विचार करना होगा। हालांकि, यह अदालत को पेशेवरों और विपक्षों की एक घुमावदार जांच करने का अधिकार नहीं देगा।

आरोप तय करने के समय, रिकॉर्ड पर सामग्री के संभावित मूल्य पर नहीं जाया जा सकता है, और अभियोजन पक्ष द्वारा रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री को सत्य के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

viii. मजबूत संदेह पर विचार करने के लिए कुछ सामग्री मौजूद होनी चाहिए जो आरोप लगाने और आरोपी को बरी करने से इनकार करने का आधार बन सकती है ..."

19. राजस्थान राज्य बनाम अशोक कुमार कश्यप : 2021 एस.सी.सी ऑनलाइन एस.सी 314 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले ने माना कि आरोप तय करने और/या निर्वहन आवेदन पर विचार करने के चरण में, एक मिनी विचारण की अनुमति नहीं है। न्यायालय ने कहा कि कानून की स्थिति जो उभरती है वह यह है कि आरोप-मुक्त करने/आरोप तय करने के चरण में, न्यायाधीश को केवल रिकॉर्ड पर सामग्री पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है ताकि यह पता लगाया जा सके कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं।

20. राजस्थान राज्य बनाम अशोक कुमार कश्यप : 2021 एस.सी.सी ऑनलाइन एस.सी 314 *के मामले में,* सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि निर्वहन के लिए आवेदन पर विचार करने के चरण में योग्यता के आधार पर साक्ष्य का मूल्यांकन स्वीकार्य नहीं है। आरोप तय करने और/या निर्वहन आवेदन पर विचार करने के चरण में, एक मिनी परीक्षण की अनुमति नहीं है। यह निम्नानुसार आयोजित किया गया है:

"23. पी. विजयन (उपरोक्त) के मामले में, इस न्यायालय के पास धारा 227 द०प्र०स० पर विचार करने का अवसर था। आरोप तय करते समय और/या निर्वहन आवेदन पर विचार करते समय क्या विचार किया जाना आवश्यक है, उक्त निर्णय में विस्तृत रूप से विचार किया गया है। यह देखा गया और माना गया कि धारा 227 के चरण में, न्यायाधीश को केवल यह पता लगाने के लिए सबूतों की जांच करनी है कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं। यह देखा गया है कि दूसरे शब्दों में, आधार की पर्याप्तता पुलिस द्वारा दर्ज किए गए साक्ष्य या अदालत के समक्ष पेश किए गए दस्तावेजों की प्रकृति को अपने दायरे में ले लेगी, जो पूर्व दृष्टया खुलासा करते हैं कि अभियुक्त के खिलाफ संदिग्ध परिस्थितियां हैं ताकि उसके खिलाफ आरोप तय किया जा सके। आगे यह देखा गया है कि यदि न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार है, तो वह धारा 228 द०प्र०स० के तहत आरोप तय करेगा, यदि नहीं, तो वह अभियुक्त को बरी कर देगा। आगे यह देखा गया है कि अभियोजन पक्ष द्वारा मुकदमे के लिए मामला बनाया गया है या नहीं यह निर्धारित करने के लिए मामले के तथ्यों पर अपने न्यायिक दिमाग का प्रयोग करते समय, मुकदमा शुरू होने के बाद अदालत के लिए, विचारण शुरू होने के बाद मामले के पक्ष और विपक्ष में प्रवेश करना या सबूतों और संभावनाओं को तौलना और संतुलित करना आवश्यक नहीं है, जो वास्तव में अदालत का कार्य है।''

21. इसके अलावा सर्वोच्च न्यायालय ने उड़ीसा राज्य बनाम प्रतिमा मोहंती: 2021 एस.सी.सी ऑनलाइन एस.सी 1222 के मामले में 11 दिसंबर 2021 को फैसला किया, धारा 482 द०प्र०स० के तहत एक याचिका का फैसला करते समय उच्च न्यायालय की शक्तियों और अधिकार क्षेत्र की सीमा पर व्यापक रूप से विचार किया है। यह निम्नानुसार आयोजित किया गया है:

*"**16.** यह स्थापित कानून है कि रद्द करने की शक्ति को संयम से और सावधानी के साथ और दुर्लभ मामलों में प्रयोग किया जाना चाहिए। कानून के स्थापित प्रस्ताव के अनुसार, किसी प्राथमिकी/शिकायत को रद्द करने की मांग करते समय अदालत प्राथमिकी/शिकायत में लगाए गए आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता के बारे में कोई जांच शुरू नहीं कर सकती है। शिकायत/प्राथमिकी को रद्द करना किसी सामान्य नियम के बजाय एक अपवाद होना चाहिए। आम*

तौर पर धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही को रद्द नहीं किया जाना चाहिए, जब पूरी तरह से जांच के बाद आरोप पत्र दायर किया गया हो। धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदन पर आरोप मुक्त करने और/या विचार करने के चरण में, अदालतों को आरोपों और/या सबूतों के गुण-दोष में विस्तार से जाने की आवश्यकता नहीं है जैसे कि मिनी-विचारण का संचालन करना। जैसा कि इस न्यायालय द्वारा माना गया है कि धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्तियां बहुत व्यापक हैं, लेकिन व्यापक शक्ति प्रदान करने के लिए अदालत को अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है। यह न्यायालय पर एक कठिन और अधिक मेहनती कर्तव्य डालता है।

22. हजरत दीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: 2022 एस.सी.सी ऑनलाइन एस.सी 1781 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 6 में निम्नानुसार आयोजित किया है:

"6. धारा 164 द०प्र०स० के तहत प्राथमिकी और उसके बाद के किसी भी बयान के बीच विसंगतियां बचाव हो सकती हैं। हालांकि, विसंगतियां मुकदमे की शुरुआत के बिना निर्वहन का आधार नहीं हो सकती हैं।

23. पुलिस उपाधीक्षक बनाम आर साउंडइरासु के माध्यम से राज्य के मामले में: 2022 एस.सी.सी ऑनलाइन एस.सी 1150 सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

"75. द०प्र०स० की धारा 239 और 240 के तहत शक्ति के प्रयोग का दायरा और दायरा, इसलिए काफी अच्छी तरह से तय किया गया है। धारा 239 के तहत अभियुक्त को आरोपमुक्त करने की बाध्यता तब उत्पन्न होती है जब मजिस्ट्रेट अभियुक्त के खिलाफ आरोप को "आधारहीन" मानता है। धारा में कहा गया है कि मजिस्ट्रेट आरोपी को रिकॉर्डिंग कारणों से मुक्त करेगा, यदि (i) पुलिस रिपोर्ट और धारा 173 के तहत इसके साथ भेजे गए दस्तावेजों पर विचार करने के बाद, (ii) यदि आवश्यक हो तो अभियुक्त की जांच करना, और (iii) अभियोजन पक्ष और अभियुक्त को सुनवाई का अवसर देना, वह आरोपी के खिलाफ आरोप को आधारहीन मानता है, यानी, या तो कोई कानूनी सबूत नहीं है या तथ्य ऐसे हैं कि कोई अपराध नहीं बनता है। इस स्तर पर सामग्रियों का कोई विस्तृत मूल्यांकन या संभावित बचावों पर सावधानीपूर्वक विचार करने की आवश्यकता नहीं है और न ही इस स्तर पर सुनहरे तराजू में सामग्री तौलने का कोई अभ्यास किया जाना है - धारा 239/240 के स्तर पर एकमात्र विचार यह है कि क्या इलज़ाम/आरोप निराधार है।

76. यह सामग्री के सभी निहितार्थों के पेशेवरों और विपक्षों वजन के लिए मंच नहीं होगा, और न ही अभियोजन पक्ष द्वारा रखी सामग्री को फटकने छानने के लिए इस स्तर पर अभ्यास पुलिस रिपोर्ट और दस्तावेजों पर विचार करने के लिए तय करने के लिए है कि क्या आरोपी के खिलाफ आरोपों को "आधारहीन" कहा जा सकता है.

77. ब्लैक लॉ डिक्शनरी के अनुसार शब्द "जमीन" नींव या आधार को दर्शाता है, और एक आपराधिक मामले में अभियोजन पक्ष के संदर्भ में, यह सबूत की स्वीकार्यता के लिए आरोपी या नींव चार्ज करने के लिए आधार का मतलब करने के लिए आयोजित किया जाएगा. संदर्भ में देखा जाए, तो "आधारहीन" शब्द साक्ष्य में कोई आधार नहीं दर्शाएगा। इसलिए, यह निर्धारित करने के लिए जो परीक्षण लागू किया जा सकता है कि क्या आरोप को आधारहीन माना जाना चाहिए, वह यह है कि जहां सामग्री ऐसी है कि भले ही अखंडित हो, कोई भी मामला नहीं होगा।

24. मनेंद्र प्रसाद तिवारी बनाम अमित कुमार तिवारी : 2022 एस.सी.सी ऑनलाइन एस.सी 1057 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 397 और 482 द०प्र०स० के तहत शक्तियों के प्रयोग पर सुव्यवस्थित कानून की व्याख्या की है:

"21. कानून अच्छी तरह से तय है कि यद्यपि यह उच्च न्यायालय के लिए धारा 482 द०प्र०स० के तहत एक याचिका या धारा 397 द०प्र०स० के तहत एक पुनरीक्षण आवेदन पर विचार करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा तय किए गए आरोपों को रद्द करने के लिए खुला है, फिर भी यह साक्ष्य की शुद्धता या पर्याप्तता को तौलकर नहीं किया जा सकता है। आरोप को रद्द करने की प्रार्थना करने वाले मामले में, उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया जाने वाला सिद्धांत यह होना चाहिए कि यदि अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए पूरे सबूत पर विश्वास किया जाए, तो क्या यह अपराध होगा या नहीं। आरोप तय करते समय उत्पादित सामग्री की सत्यता, पर्याप्तता और स्वीकार्यता केवल परीक्षण के चरण में ही की जा सकती है। इसे और

अधिक संक्षेप में रखने के लिए, आरोप के चरण में न्यायालय को केवल इस दृष्टि से सामग्री की जांच करनी है कि आरोपी व्यक्ति के खिलाफ कथित अपराध के कमीशन का प्रथम दृष्टया मामला बनाया गया है। यह भी अच्छी तरह से तय है कि जब अभियुक्त द्वारा धारा 482 द०प्र०स० के तहत याचिका दायर की जाती है या धारा 401 द०प्र०स० सपठित धारा 397 के तहत एक पुनरीक्षण याचिका दायर की जाती है, जिसमें उसके खिलाफ तय किए गए आरोपों को रद्द करने की मांग की जाती है, तो अदालत को आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक कि न्याय के हित में और अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग से बचने के लिए आरोप तय नहीं किया जाता है आरोपियों के खिलाफ कार्रवाई को खारिज करने की जरूरत है। ऐसा आदेश केवल असाधारण मामलों में और दुर्लभ अवसरों पर पारित किया जा सकता है। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि एक बार विचारण न्यायालय ने एक अभियुक्त के खिलाफ आरोप तय कर दिया है, तो विचारण को एक ऊपरी अदालत द्वारा अनावश्यक हस्तक्षेप के बिना आगे बढ़ना चाहिए और अभियोजन पक्ष के पूरे सबूत को रिकॉर्ड पर रखा जाना चाहिए। अभियोजन पक्ष के पूरे साक्ष्य के रिकॉर्ड पर आने से पहले किसी अभियुक्त द्वारा आरोप को रद्द करने के किसी भी प्रयास को असाधारण मामलों के बिना स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।

22. धारा 397 द०प्र०स० के तहत हस्तक्षेप और अधिकार क्षेत्र के प्रयोग के दायरे को इस न्यायालय द्वारा बार-बार समझाया गया है। इसके अलावा, धारा 397 द०प्र०स० के तहत हस्तक्षेप का दायरा, जब आरोप तय किए गए थे, भी अच्छी तरह से तय है। आरोप तय करने के चरण में, अदालत आरोप के सबूत से संबंधित नहीं है, बल्कि उसे सामग्री पर ध्यान केंद्रित करना है और एक राय बनानी है कि क्या इस बात का मजबूत संदेह है कि अभियुक्त ने अपराध किया है, जो अगर मुकदमे में डाल दिया जाता है, तो वह अपना अपराध साबित कर सकता है। आरोप तय करना एक चरण नहीं है, जिस चरण में अपराध की अंतिम परीक्षा लागू की जानी है। इस प्रकार, यह मानने के लिए कि आरोप तय करने के चरण में, अदालत को एक राय बनानी चाहिए कि अभियुक्त निश्चित रूप से अपराध करने का दोषी है, कुछ ऐसा धारण करना है जो न तो स्वीकार्य है और न ही दंड प्रक्रिया संहिता की योजना के अनुरूप है।

23. धारा 397 द०प्र०स० अदालत को किसी मामले में की गई किसी भी कार्यवाही या आदेश की वैधता और नियमितता के बारे में खुद को संतुष्ट करने के उद्देश्यों के लिए एक निचली अदालत के रिकॉर्ड को मांगने और जांच करने की शक्ति प्रदान करती है। इस प्रावधान का उद्देश्य एक पेटेंट दोष या अधिकार क्षेत्र या कानून की त्रुटि या विकृति को ठीक करना है जो कार्यवाही में आ गई है।

25. कंचन कुमार बनाम बिहार राज्य के मामले में: (2022) 9 एस.सी.सी 577 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने दीपाकभाई जगदीशचंद्र पटेल बनाम गुजरात राज्य के मामले में फैसले पर विचार करते हुए धारा 227 द०प्र०स० के तहत निर्वहन पर सिद्धांतों को संक्षेप में प्रस्तुत किया और निम्नानुसार आयोजित किया:

*"**15.** दीपकभाई जगदीशचंद्र पटेल बनाम गुजरात राज्य [दीपकभाई जगदीशचंद्र पटेल बनाम गुजरात राज्य, (2019) 16 एस.सी.सी 547: (2020) 2 एस.सी.सी (सीआरआई) 361] में धारा 227 द०प्र०स० के तहत निर्वहन पर सिद्धांतों को सारांशित करते हुए, इस न्यायालय ने पुनः कहा: (एस.सी.सी पी. 561, पैरा 23)*

"23. इस न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के अनुसार आरोप तय करने के चरण में, अदालत से यह अपेक्षा की जाती है कि वह केवल डाकघर के रूप में कार्य नहीं करता है। अदालत को वास्तव में उसके समक्ष सामग्री को छानना चाहिए। छंटनी की जाने वाली सामग्री वह सामग्री होगी जिसे अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत और भरोसा किया जाता है। छानना इस अर्थ में सावधानीपूर्वक नहीं होना चाहिए कि न्यायालय पूर्ण विचारण के बाद संपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने के बाद विचारण न्यायाधीश की जिम्मेदारी दलीलें सुनता है और प्रश्न यह नहीं है कि क्या अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त की दोषसिद्धि के लिए मामला बनाया है। आवश्यकता इस बात की है कि न्यायालय को इस बात से संतुष्ट होना चाहिए कि उपलब्ध सामग्री से अभियुक्त के विचारण के लिए एक मामला बनता है. एक मजबूत संदेह पर्याप्त है। हालांकि, कुछ सामग्री पर एक मजबूत संदेह स्थापित किया जाना चाहिए। सामग्री ऐसी होनी चाहिए जिसका परीक्षण के चरण में साक्ष्य में अनुवाद किया जा सके। मजबूत संदेह न्यायाधीश की नैतिक धारणाओं के आधार पर शुद्ध व्यक्तिपरक संतुष्टि नहीं हो सकती है कि यहां एक ऐसा मामला है जहां यह संभव है

कि अभियुक्त ने अपराध किया है। *मजबूत संदेह वह संदेह होना चाहिए जो किसी ऐसी सामग्री पर आधारित हो जो अदालत के सामने खुद को प्रथम दृष्टया इस दृष्टिकोण पर विचार करने के लिए पर्याप्त माना जाए कि अभियुक्त ने अपराध किया है*। (महत्त्व सन्निविष्ट)

26. पक्षों के अधिवक्ता को सुनने के बाद, रिकॉर्ड का अवलोकन करने और निर्वहन से संबंधित कानून के अनुसार, यह स्पष्ट है कि आवेदक का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में है, पहले सूचनाकर्ता /पीड़ित का बयान धारा 161 द०प्र०स० और धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया है। आवेदक के खिलाफ *प्रथम दृष्टया* सबूत हैं जिन्हें केवल देखा जाना है। आरोपों की सत्यता को इस स्तर पर नहीं देखा जा सकता है और न ही निर्णय लिया जा सकता है।

27. इस प्रकार, कानून की स्थिति जो उभरती है वह यह है कि आरोप के निर्वहन/निर्धारण के चरण में, न्यायालय को केवल यह पता लगाने के लिए साक्ष्य को स्थानांतरित करने की आवश्यकता होती है कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं अर्थात क्या अभियुक्त के खिलाफ *प्रथम दृष्टया* मामला बनता है।

28. मामले के तथ्यों को देखते हुए, आवेदक और कानून के खिलाफ प्रथम दृष्टया आरोप, जैसा कि ऊपर कहा गया है, हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता है।

29. धारा 482 द०प्र०स० के तहत वर्तमान आवेदन इस प्रकार खारिज किया जाता है।

30. इस आदेश की एक प्रति इस न्यायालय के रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा एक सप्ताह के भीतर विचारण न्यायालय को भेजी जाए।

(2023) 1 ILRA 496
मूल क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: लखनऊ 16.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 42/2023

अरविंद केजरीवाल ...याचिकाकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...विपक्षीगण

अधिवक्ता याचिकाकर्ता:
महमूद आलम, अंजनी कुमार मिश्रा, मनमोहन सिंह, नदीम मुर्तजा, शीरान मोहिउद्दीन अलवी

अधिवक्ता विपक्षीगण:
जी.ए.

ए. भारत का संविधान, 1950 – अनुच्छेद 19(1)(ए) - भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता – संरक्षण, उचित प्रतिबंध की सीमा - भाषण की सुरक्षा की सीमा – निर्धारित करने के लिए परीक्षण इस बात पर निर्भर करेगा कि क्या, ऐसा भाषण विचारों का प्रचार होगा या कोई सामाजिक मूल्य होगा। यदि उक्त प्रश्न का उत्तर सकारात्मक है, तो ऐसे भाषण को अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत संरक्षित किया जाएगा; यदि उत्तर मूल भाषा में है, तो ऐसे भाषण को अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत संरक्षित नहीं किया जाएगा। (पैरा 22)

बी. आपराधिक कानून - लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 - धारा 125 - अपराध तत्व - ज्ञान और आशय – एक मुख्यमंत्री के विरुद्ध धर्म के आधार पर वोट की अपील करने और लोगों के वर्गों के बीच दुश्मनी को बढ़ावा देने का आरोप; कांग्रेस के मतदाताओं को 'देश का गद्दार' कहा गया – यह कहां तक अपराध माना जाएगा – यदि भारत के नागरिकों के विभिन्न वर्गों के बीच दुश्मनी या घृणा की भावनाओं को बढ़ावा दिया जाता है, तो इसे अधिनियम, 1951 की धारा 125 के तहत दंडनीय अपराध माना जाएगा। (पैरा 24 और 25)

सी. आपराधिक कानून – आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 482– हस्तक्षेप का दायरा – उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति - आयोजित, धारा 482 सीआरपीसी के तहत निहित शक्ति न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने या किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने की एक अंतर्निहित शक्ति है। यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 की तरह उच्च न्यायालय की एक असाधारण शक्ति है, लेकिन साथ ही, न्यायालय को इस शक्ति को लागू करने से पहले बहुत सावधान और सतर्क रहना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि यदि इस शक्ति को लागू नहीं किया जाता है, तो वादी को अपूरणीय क्षति और चोट झेलनी पड़ेगी और यह स्पष्ट रूप से अन्याय और कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा। (पैरा 27)

आवेदन निरस्त। (ई-1)

<u>उद्‌धृत वाद सूची:-</u>

1. श्रीमती अमरावती एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2005; सी.आर.एल.जे.755
2. लाल कमलेन्द्र प्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य.; (2009) 4 एससीसी 437
3. रमाकांत मयेकर बनाम सेलीन डी'सिल्वा (श्रीमती); (1996) 1 एससीसी 399
4. राजेंद्र सिंह भंडारी बनाम उत्तराखंड राज्य एवं अन्य; 2020 एससीसी ऑनलाइन उत्तर 551
5. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 सप्लिमेंट (1) एससीसी 335

(माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एच.जी.एस. परिहार एवं उनके सहायक विद्वान अधिवक्तागण श्री नदीम मुर्तजा, श्री महमूद आलम, श्री मन मोहन सिंह, तथा राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्तागण, श्री राजेश कुमार सिंह एवं श्री आलोक सरन, को सुना।

2. इस प्रार्थना पत्र के माध्यम से आवेदक ने मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रार्थना की है:-

''अतः माननीय न्यायालय से अतिविनम्रता पूर्वक यह प्रार्थना है कि:-

i) थाना मुसाफिरखाना, जिला अमेठी में पंजीकृत मुकदमा अपराध संख्या 608/2014 से उद्‌भूत आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 219/2022 (अरविंद केजरीवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में विद्वान न्यायालय सत्र न्यायाधीश, सुल्तानपुर द्वारा पारित प्रश्नगत आदेश दिनांक 21.10.2022, जिसके द्वारा आवेदक के पुनरीक्षण को खारिज कर दिया गया है, को अभिखंडित एवं अपास्त करने की कृपा करें।

ii) थाना मुसाफिरखाना, जिला अमेठी में पंजीकृत मुकदमा अपराध संख्या 608/2014 से उद्‌भूत आपराधिक वाद संख्या 360/2014 (अरविंद केजरीवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में विद्वान न्यायालय अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट कक्ष सं0 18 (विशेष न्यायाधीश एमपी/एमएलए), सुल्तानपुर द्वारा पारित प्रश्नगत आदेश दिनांक 04.08.2022, जिसके द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 239 के अधीन आवेदक को उन्मोचित करने के प्रार्थना पत्र को खारिज कर दिया गया है, को अभिखंडित एवं अपास्त करने, की कृपा करें।''

3. यथार्थतः आवेदक ने विद्वान सत्र न्यायायाधीश, सुल्तानपुर द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांकित 21.10.2022 को चुनौती दी है, जिसके माध्यम से वर्तमान आवेदक द्वारा दायर पुनरीक्षण को अस्वीकृत करते हुए विद्वान विचारण न्यायालय अर्थात अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय कक्ष संख्या 18 (विशेष न्यायाधीश, एमपी/एमएलए) सुल्तानपुर, द्वारा पारित आदेश दिनांकित 04.08.2022 को यथास्थिति रखा है, जिसके द्वारा वर्तमान आवेदक के उन्मोचन प्रार्थना पत्र को खारिज कर दिया गया है।

4. यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय के समक्ष दायर की गई यह तृतीय याचिका/प्रार्थना पत्र है।

5. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन वर्तमान आवेदक द्वारा इस न्यायालय के समक्ष दायर याचिकाओं/प्रार्थना पत्रों में पूर्व पारित किए आदेशों पर विचार करने से पूर्व वर्तमान मामले के संक्षिप्त तथ्यों पर चर्चा करना उपयुक्त होगा। किन्हीं प्रेम चंद्र , फ्लाइंग स्क्वाड मजिस्ट्रेट, द्वारा लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 (जिसे इसमें इसके बाद ''अधिनियम, 1951'' कहा गया है) की धारा 125 के अधीन, थाना-कोतवाली मुसाफिरखाना, जनपद अमेठी, में दर्ज कराई गई प्रथम सूचना रिपोर्ट, जिसका मुकदमा अपराध संख्या 608/2014 है, में अन्य बातों के साथ-साथ यह आरोप लगाया गया कि अभियुक्त-आवेदक ने सार्वजनिक बयान *''जो कांग्रेस को वोट देगा, मेरा मानना होगा, देश के साथ गद्दारी होगी। भाजपा पर कटाक्ष करते हुए कहा कि जो भाजपा को वोट देगा उसे खुदा भी मुआफ़ नहीं करेगा, देश के साथ गद्दारी होगी''* देकर आदर्श आचार संहिता का उल्लंघन किया है। अन्वेषण पूर्ण होने के पश्चात अन्वेषण अधिकारी ने उनके विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया है। विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियुक्त के विरुद्ध वर्ष 1951 के अधिनियम की धारा 125 के अधीन दिनांक 06.09.2014 को संज्ञान लिया और उसे समनित किया।

6. वर्तमान आवेदक द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482/378/407 के अधीन 'याचिका संख्या 3662/2015; अरविंद केजरीवाल बनाम उ0प्र0 राज्य एवं अन्य' दायर करते हुए मुकदमा अपराध संख्या 608/2014 (उपर्युक्त) से उद्‌भूत वाद संख्या 360/2014 की सम्पूर्ण कार्यवाहियां अभिखंडित करने हेतु प्रार्थना की गई है। उन्होंने उपर्युक्त वाद में प्रस्तुत आरोप पत्र को रद्द करने की भी प्रार्थना की है। आवेदक को उसकी वैयक्तिक हाजिरी से अभिमुक्ति के आधार सहित, सभी दलीलों एवं आधारों को लेकर

अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष उचित प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता प्रदान करते हुए, उपर्युक्त याचिका को अंतिम रूप से आदेश दिनांकित 03.08.2015 के माध्यम से निस्तारित कर दिया गया तथा यह भी निर्देशित किया गया कि ऐसे प्रार्थना पत्र पर पूर्णतः विधि के अनुरूप विचार किया जाएगा। वर्तमान आवेदक के विरुद्ध जारी किए गए जमानती वारंट को चार सप्ताह की अवधि हेतु स्थगित कर दिया गया। सुविधा हेतु आदेश दिनांकित 03.08.2015 को यहाँ पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री महमूद आलम के साथ उपस्थित अधिवक्ता श्री सी0एल0 गुप्ता, तथा राज्य की ओर से विद्वान शासकीय अधिवक्ता श्री रिशद मुर्तजा को सुना गया। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन याचिका के माध्यम से आवेदक द्वारा लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 125 के अधीन, थाना-कोतवाली मुसाफिरखाना, जनपद अमेठी से सम्बन्धित मुकदमा अपराध संख्या 608/2014 से उत्पन्न वाद संख्या 360/2014 की सम्पूर्ण आपराधिक कार्यवाही, जो न्यायिक मजिस्ट्रेट, मुसाफिर खाना, जिला अमेठी के न्यायालय में लंबित है, को अभिखंडित करने की प्रार्थना की गई है। इसके साथ ही आवेदक ने उपर्युक्त मुकदमा अपराध संख्या 608/2014 में दायर आरोप पत्र को अभिखंडित करने की भी प्रार्थना की है। कुछ तर्कों के पश्चात आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि आवेदक ने संबंधित न्यायालय के समक्ष दिनांक 20.07.2015 को एक प्रार्थना पत्र प्रस्तुत कर वैयक्तिक हाजिरी से अभिमुक्ति मांगी थी परन्तु उसे खारिज कर दिया गया। उन्होंने आगे तर्क दिया कि छूट प्रदान करने हेतु दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 317 न्यायालय को उचित आदेश पारित करने की शक्ति देती है। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि आवेदक उन्मोचन हेतु प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करना चाहता है, परंतु इस बीच आवेदक के विरुद्ध जारी जमानती वारंट को स्थगित रखा जाए।

विद्वान शासकीय अधिवक्ता ने कहा कि यद्यपि वैयक्तिक हाजिरी से अभिमुक्ति हेतु आवेदक की ओर से दायर एक प्रार्थना पत्र तकनीकी आधार पर खारिज कर दिया गया है, परंतु आवेदक के पास उचित आधार पर वैयक्तिक हाजिरी से अभिमुक्ति हेतु नया प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करने का विकल्प अभी भी खुला है, उनको इस संबंध में कोई आपत्ति नहीं है। यदि वैयक्तिक हाजिरी से अभिमुक्ति के आवेदन को अधीनस्थ न्यायालय उचित पाता है, तो विधि के अनुरूप नया आदेश पारित किया जा सकता है। जहाँ तक उन्मोचन हेतु प्रार्थना पत्र का संबंध है, उक्त प्रार्थना पत्र अभी तक प्रस्तुत नहीं किया गया है। इसलिए, उसके शीघ्र निस्तारण हेतु इस स्तर पर कोई निर्देश पारित नहीं किया जा सकता है।

उपर्युक्त के दृष्टिगत, वर्तमान प्रार्थना पत्र का निस्तारण इस टिप्पणी के साथ किया जाता है कि आवेदक द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन वर्तमान प्रार्थना पत्र में लिए गए आधारों को अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष उचित स्तर पर प्रस्तुत किया जा सकता है एवं अधीनस्थ न्यायालय के पास उचित आदेश पारित करने का विकल्प खुला रहेगा। आगे यह भी संप्रेक्षण किया गया कि यदि आवेदक वैयक्तिक हाजिरी से अभिमुक्ति हेतु आवेदन करता है, तो उस पर भी अधीनस्थ न्यायालय द्वारा विधि के अनुरूप विचार किया जाएगा।

आवेदक के विरुद्ध जारी जमानती वारंट आज से चार सप्ताह की अवधि तक स्थगित रहेगा।

याचिका अंततः निस्तारित की जाती है।

सामान्य शुल्क के भुगतान पर आवेदक के विद्वान अधिवक्ता को इस आदेश की प्रति 24 घण्टे में प्रदान की जा सकेगी।"

7. उपर्युक्त आदेश दिनांकित 03.08.2015 के परिशीलन से प्रकट होता है कि आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया था कि आवेदक ने दिनांक 20.07.2015 को संबंधित न्यायालय के समक्ष एक प्रार्थना पत्र प्रस्तुत कर वैयक्तिक हाजिरी से अभिमुक्ति मांगी थी, परंतु उसे खारिज कर दिया गया। विद्वान अधिवक्ता ने इस याचिका में आगे तर्क दिया कि आवेदक उन्मोचन हेतु आवेदन प्रस्तुत करना चाहता है, इसलिए आवेदक के विरुद्ध जारी किए जा रहे जमानती वारंट को स्थगित रखा जाए।

8. दिनांक 20.07.2015 को विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा वर्तमान आवेदक के आवेदन को अस्वीकृत किये जाने के पश्चात, जिसमें उसने वैयक्तिक उपस्थिति से अभिमुक्ति मांगी थी, इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांकित 03.08.2015 के अनुपालन में आवेदक द्वारा एक और आवेदन प्रस्तुत किया गया था, एवं विद्वान विचारण न्यायालय ने आदेश दिनांकित 12.08.2015 द्वारा इस आवेदन को अस्वीकृत कर दिया। अतः आवेदक ने दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत द्वितीय याचिका संख्या 4136 /2015; अरविंद केजरीवाल बनाम. उ.प्र. राज्य व अन्य अंतर्गत धारा 482/378/407, उसी प्रार्थना के साथ प्रस्तुत की है, जो दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत प्रस्तुत प्रथम याचिका में एक अन्य प्रार्थना के साथ की गई है कि आदेश दिनांकित 12.08.2015 को अभिखण्डित किया जाए जिसके अंतर्गत वर्तमान आवेदक का अभिमुक्ति आवेदन अस्वीकृत कर दिया गया था।

9. द्वितीय याचिका में, वर्तमान आवेदक की प्रार्थनाओं पर विचार करते हुए एवं इस तथ्य पर ध्यान देते हुए कि वर्तमान आवेदक विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ है एवं उसने प्रतिभुओं सहित अथवा रहित कोई वैयक्तिक बन्धपत्र प्रस्तुत नहीं किया है एवं दं.प्र.सं. की धारा 205 के अंतर्गत अभिमुक्ति हेतु दो आवेदन प्रस्तुत किए हैं, जिन्हें दिनांक 20.07.2015 एवं 12.08.2015 के आदेशों द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया है, न्यायनिर्णयन हेतु इस आशय का प्रश्न तैयार किया कि "क्या संज्ञान लेने एवं आदेशिका, जो समन अथवा वारंट हो सकता है, जारी करने के पश्चात दं.प्र.सं. की धारा 205 या 317 के अंतर्गत अभिमुक्ति आवेदन वैयक्तिक उपस्थिति के बिना एवं जमानत बन्धपत्र प्रस्तुत किए बिना पोषणीय है? उपरोक्त याचिका को अंततः दिनांकित 27.08.2015 के आदेश द्वारा निस्तारित किया गया जो निम्नानुसार है: -

"याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री रिशद मुर्तज़ा एवं विद्वान शासकीय अधिवक्ता को सुना एवं अभिलेख का परिशीलन किया।

यह याचिका निम्नलिखित प्रार्थनाओं के साथ प्रस्तुत की गई है:-

(i) मुकदमा अपराध संख्या 608/ 2014 अंतर्गत धारा 125, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 थाना-कोतवाली मुसाफिरखाना, जिला-अमेठी के आरोप पत्र संख्या 122/2014, दिनांक 09.07.2014 के अनुसरण में, आपराधिक वाद संख्या 360/ 2014 "उ.प्र. राज्य बनाम अरविंद केजरीवाल" में दिनांक 12.08.2015 के आदेश के अभिखण्डन हेतु जो विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट, मुसाफिरखाना, जिला-अमेठी के समक्ष लंबित है।

(ii) वर्तमान मामले के लंबित रहने के दौरान, मुकदमा अपराध संख्या 608/2014 अंतर्गत धारा 125, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 पुलिस थाना-कोतवाली मुसाफिरखाना, जिला-अमेठी से संबंधित आरोप पत्र संख्या 122/2014 दिनांक 09.07.2014 के अनुसरण में, आपराधिक वाद संख्या 360/2014 "उ.प्र. राज्य बनाम अरविंद केजरीवाल" में संपूर्ण आपराधिक कार्यवाही पर रोक लगाने हेतु जो विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट, मुसाफिरखाना, जिला-अमेठी के समक्ष लंबित है।

(iii) मुकदमा अपराध संख्या 608/2014 अंतर्गत धारा 125, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, पुलिस थाना-कोतवाली मुसाफिरखाना, जिला-अमेठी, आपराधिक वाद संख्या 360/2014 "उ.प्र. राज्य बनाम अरविंद केजरीवाल" में दं.प्र.सं. की धारा 239 के परंतुक के अंतर्गत आवेदक के लंबित आवेदन पर निर्णय लेने हेतु संबंधित माननीय न्यायालय को आदेशित करने हेतु, जो विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट, मुसाफिरखाना, जिला-अमेठी के समक्ष लंबित है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने कथन किया कि याचिकाकर्ता दिल्ली के मुख्यमंत्री हैं जिनके विरुद्ध लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 125 के अंतर्गत वाद दर्ज किया गया है। दं.प्र.सं. की धारा 239 के अंतर्गत उन्मोचन हेतु आवेदन प्रस्तुत किया गया है जिस पर अभी तक निर्णय नहीं हुआ है, एवं दं.प्र.सं. की धारा 205 के अंतर्गत वैयक्तिक अभिमुक्ति हेतु आवेदन दुर्भावनापूर्ण तरीके से अस्वीकृत कर दिया गया है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता न्यायालय के समक्ष यह वचन पत्र प्रस्तुत करने हेतु तैयार है कि जब भी उसकी वैयक्तिक उपस्थिति की आवश्यकता होगी, वह वैयक्तिक रूप से उपस्थित होगा।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दं.प्र.सं. की धारा 88 के प्रावधानों पर विश्वास व्यक्त किया है, जो इस प्रकार है:-

*"**88. हाजिरी हेतु बन्धपत्र लेने की शक्ति-** जब कोई व्यक्ति, जिसकी हाजिरी या गिरफ्तारी हेतु किसी भी न्यायालय में पीठासीन अधिकारी समन या वारंट जारी करने हेतु सशक्त है, ऐसे न्यायालय में उपस्थित होता है, तब वह अधिकारी, व्यक्ति से अपेक्षा कर सकता है कि वह उस न्यायालय में या किसी अन्य न्यायालय में, जिसको मामला विचारण हेतु अंतरित किया जाता है, अपनी हाजिरी हेतु बन्धपत्र, प्रतिभूओं सहित या रहित, निष्पादित करें।*

विचारणीय मुख्य प्रश्न यह है कि क्या संज्ञान लेने और आदेशिका जारी करने के बाद, जो समन अथवा वारंट हो सकता है, धारा 205 या 317 दं.प्र.सं. के अंतर्गत अभिमुक्ति हेतु आवेदन बिना वैयक्तिक हाजिरी और बिना जमानत बन्धपत्र प्रस्तुत किए सुनवाई योग्य है?

*वर्तमान मामले में, यह स्वीकार किया गया है कि अब तक याचिकाकर्ता विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ है और उसने प्रतिभुओं सहित अथवा रहित कोई वैयक्तिक बन्धपत्र भी प्रस्तुत नहीं किया है। दं.प्र.सं. की धारा 205 के अंतर्गत अभिमुक्ति हेतु आवेदन प्रस्तुत किया गया था, जिसे आदेश दिनांक 12.08.2015 द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया है। इसी प्रकार का आवेदन पूर्व में भी प्रस्तुत किया गया था, जिसे 20.07.2015 को अस्वीकृत कर दिया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **संतोष चौहान व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व एक अन्य** [(2011) (4) एएलजे 121] में प्रतिपादित किए गए इस न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है, जिसमें, इस न्यायालय ने धारा 205 दं.प्र.सं. की परिधि पर विचार किया है, परन्तु कहीं भी यह नहीं माना गया है कि बिना वैयक्तिक बन्धपत्र या प्रतिभूओं के, धारा 205 दं.प्र.सं. के अंतर्गत अभिमुक्ति दी जा सकती है।*

*याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **रोइटोंग सिंगफो बनाम सज्जन कुमार अग्रवाल** एआईआर 2009 (एनओसी) 129 (जीएयू) के वाद पर विश्वास व्यक्त किया है, जिसमें माननीय गुवाहाटी उच्च न्यायालय, ने धारित किया है कि न्यायालय को इस तथ्य पर विचार करना होगा कि किसी विशेष अभियुक्त व्यक्ति को न्यायालय में उपस्थित*

होने हेतु कितनी यातनाएँ सहनी पड़ सकती हैं, और विवेक का उपयोग न्यायसम्मत रीति से किया जाना चाहिए। गुवाहाटी उच्च न्यायालय के साथ-साथ इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने ***मैसर्स भास्कर इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम मैसर्स भिवानी डेनिम एंड अपैरल्स लिमिटेड और अन्य*** *AIR 2001 (SC) 3625 वाद की निर्णय विधि पर विश्वास व्यक्त किया है।*

मैसर्स भास्कर इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम मैसर्स भिवानी डेनिम एंड अपैरल्स लिमिटेड और अन्य *एआईआर 2001 (एससी) 3625 के मामले में, माननीय शीर्ष न्यायालय ने दं.प्र.सं. की धारा 205 (2), 251 और 317 की परिधि पर विचार किया है और प्रस्तर-12, 13, 14, 15, 16, 17 और 19 में निम्नानुसार धारित किया है: -*

"12. हम द्वितीय अभियुक्त द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष वैयक्तिक हाजिरी से अभिमुक्ति हेतु प्रस्तुत अभिकथन पर ध्यान दिए बिना इस मामले पर विचार नहीं कर सकते। उन्होंने इस तरह की अभिमुक्ति की मांग करते समय दो कारकों पर प्रकाश डाला। प्रथम यह कि परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अंतर्गत अपराध अपेक्षाकृत कोई गंभीर अपराध नहीं है जैसा कि इस तथ्य से देखा जा सकता है कि विधायिका ने इसे मात्र एक सम्मन मामला बनाया है। द्वितीय यह कि मामले में अभियुक्त की भौतिक उपस्थिति पर जोर देने से उसे काफी कठिनाइयों और कष्टों का सामना करना पड़ेगा क्योंकि वह हरियाणा का निवासी है। अधिवक्ता ने तर्क दिया कि न्यायालय में अपनी भौतिक उपस्थिति दर्ज कराने हेतु भोपाल पहुँचने हेतु लंबी यात्रा करने में बड़ी कठिनाइयों के अतिरिक्त, अत्यधिक व्यय भी सम्मिलित है। उन्होंने कहा कि अभियुक्तों की उपस्थिति के कारण न्यायालय को जो लाभ मिलता है, वह उनकी तुलना में बहुत कम है, कुछ निश्चित स्थितियों में ऐसी उपस्थिति दर्ज कराने हेतु अभियुक्तों को जो कष्ट झेलने पड़ते हैं और इसलिए न्यायालय को इस बात पर विचार करना चाहिए कि क्या ऐसे लाभ अन्य उपायों से प्राप्त किए जा सकते हैं। इसलिए, उन्होंने संहिता की धारा 317 पर विश्वास व्यक्त किया। जो निम्नवत है:

"317. कुछ मामलों में अभियुक्त की अनुपस्थिति में जाँच और विचारण किए जाने हेतु उपबंध — (1) इस संहिता के अधीन जाँच या विचारण के किसी प्रक्रम में यदि न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट का उन कारणों से, जो अभिलिखित किए जाएंगे, समाधान हो जाता है कि न्यायालय के समक्ष अभियुक्त की वैयक्तिक हाजिरी न्याय के हित में आवश्यक नहीं है या अभियुक्त न्यायालय की कार्यवाही में बार-बार विघ्न डालता है तो, ऐसे अभियुक्त का प्रतिनिधित्व प्लीडर द्वारा किए जाने की दशा में, वह न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट उसकी हाजिरी से उसे अभिमुक्ति दे सकता है और उसकी अनुपस्थिति में ऐसी जाँच या विचारण करने हेतु अग्रसर हो सकता है और कार्यवाही के किसी पश्चात्वर्ती प्रक्रम में ऐसे अभियुक्त को वैयक्तिक हाजिरी का निदेश दे सकता है।

(2) यदि ऐसे किसी मामले में अभियुक्त का प्रतिनिधित्व प्लीडर द्वारा नहीं किया जा रहा है अथवा यदि न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट का यह विचार है कि अभियुक्त की वैयक्तिक हाजिरी आवश्यक है तो, यदि वह ठीक समझे तो, उन कारणों से, जो उसके द्वारा लेखबद्ध किए जाएंगे, वह या तो ऐसी जाँच या विचारण स्थगित कर सकता है या आदेश दे सकता है कि ऐसे अभियुक्त का मामला अलग से लिया जाए या विचारित किया जाए।"

13. *उपधारा एक में दो अनिवार्यताओं की परिकल्पना की गई है जब न्यायालय किसी अभियुक्त की वैयक्तिक हाजिरी से अभिमुक्ति के बाद किसी आपराधिक मामले में मुकदमे की कार्यवाही आगे बढ़ा सकती है। हमें उन अनिवार्यताओं में से किसी एक, अर्थात जब अभियुक्त लगातार कार्यवाही में बाधा डालता है, की चिंता नहीं है । यहाँ हमें मात्र अन्य अनिवार्यता पर विचार करने की आवश्यकता है। यदि कोई न्यायालय इस बात से संतुष्ट है कि उसके समक्ष न्याय हित में किसी अभियुक्त की वैयक्तिक हाजिरी पर बल देने की आवश्यकता नहीं है तो न्यायालय के पास उस अभियुक्त को उपस्थिति से अभिमुक्ति देने की शक्ति है। इस संदर्भ में संहिता की धारा 273 का संदर्भ आवश्यक है। इसमें कहा गया है कि* ***"अभिव्यक्त रुप से जैसा उपबन्धित है उसके सिवाय, विचारण या अन्य कार्यवाही के अनुक्रम में लिया गया सब साक्ष्य अभियुक्त की उपस्थिति में या जब उसे वैयक्तिक हाजिरी से अभिमुक्त कर दिया गया है तब उसके प्लीडर की उपस्थिति में लिया जाएगा।"*** *यदि किसी न्यायालय को लगता है कि किसी विशेष मामले में किसी अभियुक्त की वैयक्तिक हाजिरी पर बल देना कई कारणों से अत्यधिक कठोर होगा, तो क्या न्यायालय अभियोजन कार्यवाही का सामना करने के मामले में ऐसे अभियुक्त को राहत नहीं दे सकती हैं?*

14. *सामान्य नियम यह है कि साक्ष्य अभियुक्त की उपस्थिति में लिया जाएगा। हालांकि अभियुक्त की अनुपस्थिति में भी ऐसे साक्ष्य लिए जा सकते हैं, किंतु तब उसके अधिवक्ता की न्यायालय में उपस्थिति होनी चाहिए, बशर्ते उसे न्यायालय में उपस्थित होने से छूट प्रदान की गई हो। दांडिक न्यायालय का संबंध मुख्य रूप से दाण्डिक न्याय प्रशासन से होना चाहिए। इस उद्देश्य हेतु वाद में न्यायालय की कार्यवाही में प्रगति होनी चाहिए। न्यायालय में अभियुक्त की उपस्थिति का उद्देश्य मात्र उसे न्यायालय में बुलाकार उपस्थिति चिह्नित करना नहीं है। इसका उद्देश्य न्यायालय को वाद की प्रगति हेतु सक्षम बनाना है। यदि अभियुक्त की अनुपस्थिति में भी वाद की प्रगति का उद्देश्य पूर्ण हो सकता है तो न्यायालय निश्चित रूप से उन कष्टों की गम्भीरता को ध्यान में रख सकता है जो किसी विशेष*

अभियुक्त व्यक्ति को उस विशेष मामले में न्यायालय में उपस्थित होने हेतु उठाना पड़ सकता है।

15. *इन दिनों जब दांडिक न्यायालय में धारा 138 के अन्तर्गत अपराध के मुकदमे तेजी से बढ़ रहे हैं। बैंकों की सुविधाओं के माध्यम से अंतर-राज्यीय लेनदेन में वृद्धि के कारण यह असामान्य नहीं है कि जब एक राज्य में मुकदमा चलाया जाता है तो अभियुक्त किसी अलग राज्य, कभी-कभी दूर के राज्य से संबंधित हो सकता है। कभी-कभी महिलाएँ भी अभियुक्त हो सकती हैं। परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अन्तर्गत वाद चलाने हेतु विचारण समन वाद की भाँति होना चाहिए। जब किसी मजिस्ट्रेट को लगता है कि किसी विशेष स्थिति में किसी समन मामले में अभियुक्त की वैयक्तिक हाजिरी पर बल देने से किसी विशेष अभियुक्त को अत्यधिक कठिनाई होगी तो मजिस्ट्रेट यह विचार करने हेतु स्वतंत्र है कि वह अभियोजन कार्यवाही पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे अभियुक्त को बड़ी कठिनाईयों से कैसे राहत दी जा सकती है।*

16. *संहिता के अध्याय 20 की धारा 251 में प्रारंभिक प्रावधान मजिस्ट्रेट द्वारा समन मामलों की सुनवाई से संबंधित है। इसमें न्यायालय को निर्देश दिया गया है कि जब "अभियुक्त मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत होता है या लाया जाता है" तो वह अभियुक्त से पूछे कि क्या वह स्वयं को दोषी मानता है। इसमें परिकल्पित उपस्थिति या तो अभियुक्त की वैयक्तिक हाजिरी या उसके अधिवक्ता के माध्यम से हो सकती है। इसे संहिता की धारा 205(1) से समझा जा सकता है जिसके अनुसार* ***"जब कभी कोई मजिस्ट्रेट समन जारी करता है तब यदि उसे ऐसा करने का कारण प्रतीत होता है तो वह अभियुक्त को वैयक्तिक हाजिरी से अभिमुक्त कर सकता है और अपने प्लीडर द्वारा हाजिर होने की अनुज्ञा दे सकता है।***

17. इस प्रकार, समुचित मामलों में मजिस्ट्रेट किसी अभियुक्त को अधिवक्ता द्वारा प्रथम उपस्थिति की भी अनुमति प्रदान कर सकता है। मजिस्ट्रेट को अभियुक्त की याचिका को अभिलिखित करने का अधिकार है, तब भी जब भले ही उसका अधिवक्ता किसी मामले में अभियुक्त के पक्ष से अभिकथन करे जहाँ अभियुक्त को वैयक्तिक उपस्थिति से अभिमुक्ति प्रदान की दी गई है। संहिता की धारा 317 को उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए क्योंकि यह वाद की अग्रिम चरणों पर प्रगति हेतु कार्यवाही में भी अभियुक्त को वैयक्तिक उपस्थिति (बशर्ते उस मामले में उसका प्रतिनिधित्व एक अधिवक्ता द्वारा किया गया हो) से अभिमुक्ति प्रदान करने का अधिकार देती है। हालांकि, एक सावधानी जो न्यायालय को ऐसी स्थिति में बरतनी चाहिए वह यह है कि उक्त लाभ मात्र उस अभियुक्त को दिया जाना चाहिए जो न्यायालय की संतुष्टि हेतु यह वचन देता है कि उस मामले में विशेष अभियुक्त के रूप में अपनी पहचान पर विवाद नहीं करेगा और यह कि उसकी ओर से एक अधिवक्ता न्यायालय में उपस्थित रहेगा और उसे उसकी अनुपस्थिति में साक्ष्य लेने में कोई आपत्ति नहीं है। साक्षियों से परीक्षा सहित कार्यवाही की अग्रिम प्रगति हेतु यह सावधानी आवश्यक है।

19. *अत: स्थिति इस प्रकार स्पष्ट होती है कि - यह एक मजिस्ट्रेट को प्रदत्त शक्तियों और उसके न्यायिक विवेकाधिकार के अंतर्गत है कि वह किसी समन मामले में ऐसी संपूर्ण कार्यवाही अथवा किसी विशेष चरण के दौरान किसी अभियुक्त को वैयक्तिक उपस्थिति से अभिमुक्ति प्रदान करे, यदि मजिस्ट्रेट के अनुसार उसकी वैयक्तिक उपस्थिति पर बल देने से उसके लिए गंभीर कष्ट अथवा समस्या होगी और तुलनात्मक लाभ कम होगा। इस प्रकार के विवेकाधिकार का प्रयोग मात्र विरली स्थितियों में ही किया जाना चाहिए, जहाँ अभियुक्त के दूर रहने या व्यवसाय करने के कारण या किसी शारीरिक या अन्य युक्तियुक्त कारणों से मजिस्ट्रेट को लगता है कि अभियुक्त को वैयक्तिक उपस्थिति से अभिमुक्ति प्रदान करना ही न्याय हित में उचित होगा। हालांकि, जो मजिस्ट्रेट अभियुक्त को ऐसा लाभ प्रदान करता है उसे निश्चित रूप से उपर बताई गई सावधानियां बरतनी चाहिए। हम पुनः कह सकते हैं कि जब कोई अभियुक्त अपने अधिकृत अधिवक्ता द्वारा मजिस्ट्रेट के समक्ष विधिवत आवेदन करता है और अपनी वैयक्तिक उपस्थिति से अभिमुक्ति का लाभ प्रदान करने हेतु प्रार्थना करता है तो मजिस्ट्रेट अग्रिम कार्यवाही से पूर्व सभी आयामों पर विचार कर सकता है और उचित निर्णय ले सकता है।*

मैंने निर्णय का अध्ययन किया और उपरोक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित विधि पर विचार किया। उपरोक्त वाद धारा 138 परक्राम्य लिखत अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही से संबंधित है, जो एक समन मामला है, जबकि वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता के विरुद्ध लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 की धारा 125 के अन्तर्गत आरोप पत्र दाखिल किया गया है एवं लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 125 के अन्तर्गत दंडनीय अपराध है जिसके अंतर्गत तीन वर्ष का कारावास अथवा जुर्माना अथवा दोनों का प्रावधान है। अत: दं०प्र०सं० की धारा 2(x) के प्रावधानों के अंतर्गत यह एक वारंट मामला है क्योंकि कारावास की अवधि दो वर्ष से अधिक है। यह निर्विवाद है कि दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 के अन्तर्गत दंडनीय अपराध के संबंध में लागू होते हैं।

जहाँ तक धारा 88 दं०प्र०सं० के प्रावधानों का संबंध है, जैसा कि उपरिलिखित है, ऐसे प्रावधानों का लाभ मात्र तभी लिया जा सकता है जब उस व्यक्ति की न्यायालय में उपस्थिति अथवा गिरफ्तारी हेतु न्यायालय में उपस्थिति हेतु समन अथवा वारंट जारी किया जा चुका है। धारा 88 दं०प्र०सं० न्यायालय में उपस्थिति हेतु प्रतिभूओं रहित

अथवा सहित बंध-पत्र निष्पादित किए बिना अभियुक्त को छूट प्रदान करने की भी बात नहीं करता है। धारा 90 दं०प्र०सं० के प्रावधानों के अंतर्गत यह प्रावधान मात्र इस संहिता के अंतर्गत जारी किए गए प्रत्येक समन और गिरफ्तारी के प्रत्येक वारंट पर ही लागू होता है। ऐसा माना जाता है कि याचिकाकर्ता अभी तक व्यक्तिगत रूप से न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ है इसलिए वह दं०प्र०सं० की धारा 88 का लाभ नहीं प्राप्त कर सकता है।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 14 विधि के समक्ष समानता और विधियों का समान संरक्षण प्रदान करता है। जब संविधान ने शक्तिशाली और शक्तिहीन व्यक्तियों के बीच अंतर नहीं किया है तो निश्चित रूप से न्यायालय भी किसी भी शक्तिशाली व्यक्ति को कोई विशेष रियायत नहीं दे सकता है जैसे कि वर्तमान वाद जहाँ याचिकाकर्ता राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली का मुख्यमंत्री है। विधि सब के लिये समान है एवं सभी को समान संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए। दंड प्रक्रिया संहिता में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो यह प्रावधान करता हो कि वारंट मामले की सुनवाई अभियुक्त की अनुपस्थिति में अथवा उसके व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए और जमानत बंध-पत्र जमा किए बिना भी आगे बढ़ सकती है। यह निर्विवाद है की सुनवाई की अगली तिथियों पर पर्याप्त अभिलेख प्रदर्शित किये जाने पर अभियुक्त को वैयक्तिक उपस्थिति से अभिमुक्ति प्रदान की जा सकती है, बशर्ते अभियुक्त का प्रतिनिधित्व एक अधिवक्ता द्वारा किया गया हो। किंतु साथ ही दंड प्रक्रिया संहिता विचारण न्यायालय को ऐसे आरोपियों की वैयक्तिक उपस्थिति का निदेश देने का अधिकार प्रदान करती है।

वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता के विरुद्ध लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 125 के अन्तर्गत दंडनीय अपराध के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी और अन्वेषण के पश्चात लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 125 के अंतर्गत दंडनीय अपराध हेतु उसके विरुद्ध आरोप पत्र दायर किया गया है। लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 125 इस प्रकार है: -

"125. निर्वाचन के संबंध में वर्गों के बीच शत्रुता संप्रवर्तित करना- जो कोई व्यक्ति इस अधिनियम के अधीन होने वाले निर्वाचन के संबंध में शत्रुता या घृणा की भावनाएं भारत के नागरिकों के विभिन्न वर्गों के बीच धर्म, मूलवंश, जाति, समुदाय या भाषा के आधारों पर संप्रवर्तित करेगा या संप्रवर्तित करने का प्रयत्न करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दण्डनीय होगा।"

वर्तमान मामला एक चुनाव के संबंध में 02.05.2014 को याचिकाकर्ता के कथित भाषण से संबंधित है जो कथित तौर पर भारत के नागरिकों के विभिन्न वर्गों के बीच शत्रुता या घृणा की भावनाओं को बढ़ावा देने का प्रयास करता है। राजनेताओं को अपने भाषणों में अधिक सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है क्योंकि उन्हें देश पर शासन करना है और उन्हें धार्मिक, भाषाई और क्षेत्रीय या श्रेणीगत विविधताओं से परे भारत के सभी लोगों के बीच समान भाईचारे और सद्भाव की भावना का संवर्धन करना चाहिए। भारत के नागरिक के रुप में राजनेताओं को लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 द्वारा आरोपित प्रतिबंधों और दिशानिर्देशों के अतिरिक्त, भारत के संविधान के अनुच्छेद 51-ए में वर्णित मौलिक कर्तव्यों का भी पालन करना पड़ता है, क्योंकि वे संविधान से ऊपर नहीं हैं।

परन्तु आजकल हम जो अनुभव कर रहे हैं वह यह है कि कुछ राजनेताओं का मतदाताओं को अपने पक्ष में आकर्षित करने या गुमराह करने हेतु अपने उग्र भाषणों पर कोई नियंत्रण नहीं करते है। ऐसी प्रवृत्ति बंद होनी चाहिए क्योंकि भारत की जनता अब वास्तविक सत्य के प्रति अत्यधिक जागरूक हो गई है। राजनेताओं को संसदीय भाषा का प्रयोग करना चाहिए। तथापि, यह टिप्पणियाँ वर्तमान वाद के गुण-दोषों को प्रभावित नहीं करेंगी।

मजिस्ट्रेट द्वारा वारंट मामले के विचारण की प्रक्रिया संहिता के अध्याय-XIX में निहित है। धारा 238 दं.प्र.सं. विशेष रुप से यह प्रावधान है कि जब पुलिस रिपोर्ट पर संस्थित किसी भी वारंट मामले में, अभियुक्त विचारण प्रारम्भ होने पर मजिस्ट्रेट के सामने प्रस्तुत होता है या लाया जाता है, तब धारा 207 दं.प्र.सं. के प्रावधान का अनुपालन किया जाएगा। धारा 238 दं.प्र.सं. के उपरोक्त प्रावधान की भाषा से यह भी परिकल्पना की गई कि या तो अभियुक्त को उपस्थित होना चाहिए या उसे मजिस्ट्रेट के सामने लाया जाना चाहिए। यह प्रावधान यह भी उपबन्धित नहीं करता है कि वारंट विचारण प्रारम्भ पर अभियुक्त को अधिवक्ता के माध्यम उपस्थित होने की स्वतंत्रता है। क्योंकि यह एक वारंट विचारण है, इसलिए, अभियुक्त को न्यायालय में पेश होना होगा और अभियुक्त दं.प्र.सं. की धारा 205 के अन्तर्गत छूट का दावा नहीं कर सकता है, जब तक कि उसने विचारण न्यायालय के निर्देशानुसार प्रतिभुओं सहित अथवा रहित बंधपत्र प्रस्तुत नहीं कर दिया है।

प्रश्न यह है कि क्या संज्ञान लेने और आदेशिका, जो समन अथवा वारंट हो सकता है, जारी करने के बाद, अभिमुक्ति आवेदन धारा 205 के अन्तर्गत या धारा 317 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत वैयक्तिक उपस्थिति के बिना और जमानत बंधपत्र प्रस्तुत किए बिना बनाए रखा जा सकता है, तदनुसार इसका निर्णय यह है कि यदि किसी अभियुक्त के मामले में वारंट विचारण है, तो धारा 205 के अन्तर्गत या धारा 317 दं.प्र.सं. के प्रावधान तब तक लागू नहीं होगा जब तक कि अभियुक्त को जमानत न दे दी गई हो और उसने जमानत बंधपत्र न प्रस्तुत कर दिया हो।

यह याचिका दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत दायर की गई है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विभिन्न निर्णयों में धारा 482 दं.प्र.सं. की परिधि पर विचार किया गया है।

दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत शक्ति को नियमित रीति से प्रयोग नहीं किया जाना है, अपितु यह सीमित उद्देश्यों हेतु है, यथा, संहिता के अन्तर्गत किसी भी आदेश को प्रभावी बनाने हेतु, या किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने हेतु या अन्यथा न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने हेतु समय-समय पर, सर्वोच्च न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों, जिनमें हमारा उच्च न्यायालय भी शामिल है, ने ध्यान दिलाया है कि दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग कब उचित होगा, जिसे एक साधारण सूत्र की भाँति प्रयोग नहीं किया जा सकता है। लेकिन एक बात बहुत स्पष्ट है कि इसे पूर्व निर्धारित नहीं किया जाना चाहिए और इसका नैत्यिक प्रयोग नहीं किया जा सकता है ताकि विचारण न्यायालयों के समक्ष वाद की समग्र प्रक्रिया के परिणाम में कमी हो जाए। यदि प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद के अवलोकन से ही यह स्पष्ट है कि यह किसी भी अपराध का खुलासा नहीं करता है या यह देखने में तुच्छ, दुरभिसंधियुक्त या दमनकारी है, तो न्यायालय धारा 482 दं.प्र.सं. के अंतर्गत अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग कर सकता है। किंतु इसका प्रयोग संयमित ढंग से किया जाना चाहिए। इसमें यह तथ्य सम्मिलित नहीं होगा कि अभियोजन पक्ष द्वारा अपना वाद स्थापित करने की संभावना है या नहीं, क्या प्रश्न में साक्ष्य विश्वसनीय है या नहीं, अथवा क्या इसके युक्तियुक्त अधिमूल्यन पर, आरोप सिद्ध नहीं हो पाएगा, अथवा अन्य परिस्थितियाँ जो दं.प्र.सं. की धारा 482 के अन्तर्गत क्षेत्राधिकार के प्रयोग को न्यायोचित नहीं ठहराएंगी। मुझे विभिन्न पक्षों पर विस्तार से विचार करने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन इन सभी मामलों का विस्तार से निस्तारण करने वाली नवीनतम निर्णय विधियों का उल्लेख करना पर्याप्त होगा, अर्थात्, ***हरियाणा राज्य और अन्य बनाम चौ. भजन लाल और अन्य 1992 SUPP (1) एससीसी 335, पॉपुलर मुथैया बनाम राज्य द्वारा पुलिस निरीक्षक (2006) 7 एससीसी 296, हमीदा बनाम राशिद उर्फ रशीद और अन्य(2008) 8 एससीसी 781, एम.एन. ओझा एवं अन्य बनाम आलोक कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य, (2009) 9 एससीसी 682, आंध्र प्रदेश राज्य बनाम गौरीशेट्टी महेश और अन्य जेटी 2010 (6) एससी 588 और इरिडियम इंडिया टेलीकॉम लिमिटेड बनाम मोटोरोला इनकॉर्पोरेटेड और अन्य 2011(1) एससीसी 74 एवं ली कुन ही और अन्य बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य जेटी 202 (2) एससी 237*** *में यह धारित किया गया कि न्यायालय धारा 482 दं.प्र.सं. के अंतर्गत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए आरोपों की सच्चाई या अन्यथा पर विचार नहीं कर सकता और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य, यदि कोई हो, का अधिमूल्यन नहीं कर सकता। हस्तक्षेप तभी उचित होगा जब एसे हस्तक्षेप का कोई स्पष्ट कारण सामने आए। उच्च न्यायालय द्वारा प्रारंभिक चरण में भी बार-बार और अकारण हस्तक्षेप के परिणामस्वरुप आपराधिक मामले में जाँच की प्रगति में बाधा उत्पन्न हो सकती है जो सार्वजनिक हित में नहीं होगा। यद्यपि, इसमें संदेह नहीं किया जा सकता है, यदि प्रथम दृष्टया, प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद से, यह स्पष्ट है कि आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रुप से असंभव हो कि कोई भी निष्पक्ष मस्तिष्क एवं सूचनायुक्त पर्यवेक्षक कभी भी कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधारों के अस्तित्व के बारे में एक न्यायसंगत और उचित निष्कर्ष पर पहुँचे। ऐसे मामलों में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इन्कार करने पर समान रुप से अन्याय हो सकता है, विशेष रुप से, उन मामलों में, जहाँ परिवादी दबाव डालने और परिवाद में आरोपी बताए गए व्यक्तियों को परेशान करने की दृष्टि से आपराधिक विधि का प्रयोग करता है। हालांकि इस मामले में पुलिस ने जाँच के बाद प्रथम दृष्टया अभियुक्त के विरुद्ध मामला पाते हुए विचारण न्यायालय में आरोप पत्र दाखिल कर दिया है। अन्वेषण के पश्चात पुलिस ने प्रथम दृष्टया अभियुक्त द्वारा संज्ञेय अपराध करने का मामला पाया है, जिसका विचारण न्यायालय में होना चाहिए था। इस स्तर पर इस प्रश्न पर गौर करने का कोई अवसर नहीं है कि क्या आरोप अंततः प्रमाणित किया जा सकता है या नहीं क्योंकि यह विचारण का विषयवस्तु होगी। ऐसा कोई ठोस आधार नहीं प्रस्तुत किया गया है जो दं.प्र.सं की धारा 482 के अन्तर्गत इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप को उचित ठहरा सके।*

उपरोक्त के दृष्टिगत, मुझे दिनांक 12.08.2015 के आदेश जिसके द्वारा अभिमुक्ति हेतु आवेदन खारिज कर दिया गया है, में कोई विधिक त्रुटि या विकृति नहीं दिखती है।

जहाँ तक संपूर्ण आपराधिक कार्यवाही पर रोक लगाने की प्रार्थना का सवाल है, मुझे भी उपरोक्त आपराधिक कार्यवाही पर रोक लगाने हेतु कोई पर्याप्त आधार नहीं मिला क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय-XIX के प्रावधानों के दृष्टिगत, अभियुक्त को यह अधिकार है कि वह दं.प्र.सं. की धारा 239 के अंतर्गत उन्मोचन हेतु आवेदन प्रस्तुत करें और यदि वह आवेदन खारिज कर दिया जाता है तो निश्चित रुप से मजिस्ट्रेट को दं.प्र.सं. की धारा 240 के अंतर्गत आरोप निर्धारित करने का अधिकार है। अतः प्रार्थना संख्या (ii) भी भ्रान्तिपूर्ण है।

जहाँ तक प्रार्थना (iii) का प्रश्न है, उन्मोचन के आवेदन पर निर्णय लेने हेतु धारा 239 दं.प्र.सं. का विशिष्ट प्रावधान पूर्व से ही उपलब्ध है एवं इस न्यायालय के आदेशों की आवश्यकता नहीं है। किंतु निश्चित रुप से, दं.प्र.सं. की धारा 239 के अंतर्गत आवेदन पर निर्णय लेने के पूर्व, प्रतिभूओं सहित या रहित बन्धपत्र प्रस्तुत करने हेतु न्यायालय में अभियुक्त की उपस्थिति आवश्यक है। अतः यह प्रार्थना भी भ्रान्तिपूर्ण है।

अंत में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रार्थना की कि अभियुक्त व्यक्तिगत रूप से न्यायालय में उपस्थित

होने और जमानतपत्र दाखिल करने के लिये तैयार है, इसलिए उसे कुछ राहत दी जाए।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के अनुरोध पर विचार करते हुए, यह प्रावधान किया गया है कि यदि याचिकाकर्ता अरविंद केजरीवाल आज से चार सप्ताह की अवधि में विचारण न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करते है और जमानत हेतु आवेदन करते है, तो उस पर विचार किया जाएगा तथा विधि के अनुसार एवं श्रीमती अमरावती व अन्य बनाम उ०प्र० राज्य 2005 सी.आर.एल.जे.755, के वाद में प्रतिपादित विधि, जिसकी पुष्टि मा० सर्वोच्च न्यायालय ने लाल कमलेन्द्र प्रताप सिंह बनाम उ०प्र० राज्य व अन्य,(2009) 4एस.सी.सी. 437 में की है, के अनुसार शीघ्रता से निस्तारित किया जायेगा। तब तक, याचिकाकर्ता के विरूद्ध कोई दंडात्मक कार्रवाई नहीं की जाएगी।

तदनुसार याचिका निस्तारित की जाती है।"

10. उपर्युक्त याचिका का निस्तारण करते हुए इस न्यायालय ने टिप्पणी की कि पुलिस ने अन्वेषण के बाद प्रथमदृष्ट्या अभियुक्तों के विरुद्ध मामला पाया है और विचारण न्यायालय में आरोप-पत्र प्रस्तुत किया है। अन्वेषण के बाद, पुलिस ने प्रथमदृष्ट्या अभियुक्त द्वारा संज्ञेय अपराध कारित किये जाने का मामला पाया है, जिसकी सुनवाई न्यायालय में की जानी चाहिए थी। इस स्तर पर न्यायालय ने आगे टिप्पणी की है कि इस प्रश्न पर विचार करने का कोई अवसर नहीं है कि आरोप अंततः सिद्ध होने योग्य है या नहीं क्योंकि यह विचारण न्यायालय द्वारा परीक्षण की विषयवस्तु होगी। उपर्युक्त के दृष्टिगत, इस न्यायालय ने धारित किया है कि कोई ठोस आधार नहीं प्रस्तुत किया गया है जो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप को उचित ठहरा सके और आदेश दिनांक 12.08.2015, जिसके द्वारा अवमुक्ति हेतु आवेदन अस्वीकृत किया गया है, में कोई विधिक त्रुटि या विकृति नहीं है। तदनुसार, उस याचिका की प्रार्थना संख्या 1 को खारिज कर दिया गया है।

11. उस याचिका की द्वितीय प्रार्थना पर निर्णय लेने हेतु, इस न्यायालय ने धारित किया है कि चूँकि अभियुक्त को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 239 के अन्तर्गत उन्मोचन हेतु आवेदन करने का अधिकार है और यदि यह आवेदन अस्वीकृत कर दिया जाता है तो निश्चित रूप से दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 के प्रावधान के अन्तर्गत मजिस्ट्रेट आरोप निर्धारित करने हेतु सशक्त है, इसलिए प्रार्थना संख्या (ii) भ्रान्तिपूर्ण है।

12. उक्त याचिका की प्रार्थना संख्या (iii) पर निर्णय लेते हुए, इस न्यायालय ने अवधारित किया है कि अवमुक्ति आवेदन पर निर्णय हेतु दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 239 का विशिष्ट प्रावधान पहले से ही उपलब्ध है और उसके लिए इस न्यायालय के आदेशों की आवश्यकता नहीं है, लेकिन निश्चित रूप से, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 239 के अन्तर्गत आवेदन पर निर्णय लेने से पूर्व न्यायालय में प्रतिभूओं सहित या रहित बन्धपत्र दाखिल करने हेतु अभियुक्त की उपस्थिति आवश्यक है, इसलिए यह प्रार्थना भी भ्रान्तिपूर्ण है।

13. तत्पश्चात, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने वचन दिया कि वर्तमान आवेदक व्यक्तिगत रूप से न्यायालय में उपस्थित होने और जमानतपत्र दाखिल करने हेतु तैयार है इसलिए उसे कुछ राहत दी जाए। उस अनुरोध पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने वर्तमान आवेदक को विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करने और जमानत हेतु आवेदन प्रस्तुत करने के लिये चार सप्ताह का समय दिया और उस पर विचार करने तथा श्रीमती अमरावती व अन्य बनाम उ०प्र० राज्य 2005: सीआर.एल.जे. 755, के वाद मेंं प्रतिपादित कानून, जिसकी पुष्टि मा० सर्वोच्च न्यायालय ने लाल कमलेन्द्र प्रताप सिंह बनाम उ०प्र० राज्य व अन्य, (2009)4एस.सी.सी. 437 में की है, के अनुसार शीघ्रता से निस्तारित किये जाने का निर्देश दिया।

14. उपर्युक्त आदेश दिनांक 27.08.2015 को अपील हेतु विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 7989/2015; अरविंद केजरीवाल बनाम उ०प्र० राज्य व अन्य दायर करके सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गयी है और मा० सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 22.09.2015 को आदेश पारित किया जो इस प्रकार हैः-

"दर्ज किया गया।

नोटिस निर्गत करें।

अगले आदेश तक विचारण न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता को उपस्थितिसे छूट दी जाती है।"

15. उपर्युक्त आदेश के माध्यम से, मा० सर्वोच्च न्यायालय ने नोटिस जारी किया और निर्देश दिया कि अगले आदेश तक विचारण न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता को उपस्थिति से छूट दी जाये। याचिकाकर्ता ने आदेश दिनांक

04.08.2022 को चुनौती दी है, जिसके द्वारा वर्तमान आवेदक के अवमुक्ति प्रार्थना पत्र को पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष विद्वान विचारण न्यायालय ने खारिज कर दिया था और पुनरीक्षण न्यायालय ने आदेश दिनांक 21.10.2022 द्वारा विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 04.08.2022 को बरकरार रखते हुए पुनरीक्षण को खारिज कर दिया था। इस आवेदन में उपर्युक्त दोनों आदेशो को इस आधार पर चुनौती दी गई है कि आवेदक ने धर्म आदि के आधार पर मत हेतु कोई अपील नहीं की है और जनता के वर्गों के मध्य शत्रुता को बढ़ावा नहीं दिया है इसलिए उसे अधिनियम 1951 की धारा 125 के अन्तर्गत अपराध हेतु उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। उसके उपर्युक्त कथन के समर्थन में आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने रमाकान्त मायेकर बनाम सेलीन डी सिल्वा (श्रीमती), (1996) 1 एससीसी 399, में मा० सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास जताते हुए प्रस्तर 27 को उद्धृत किया है, जो इस प्रकार हैः-

"27. विधि द्वारा किसी उम्मीदवार को 'अपने' धर्म या लोगों के समूहों के बीच घृणा या शत्रुता को बढ़ावा देने आदि के आधार पर मत की अपील करना वर्जित है, न कि मात्र धर्म का उल्लेख करना। इसमें कोई संदेह नहीं है कि धर्मनिरपेक्षता के संदर्भ में किसी धर्म का उल्लेख या किसी राजनीतिक दल या उम्मीदवार के धर्मनिरपेक्ष विरोधी रुख की आलोचना धारा 123 की उपधारा (3) या (3-ए) के अन्तर्गत भ्रष्ट आचरण नहीं माना जा सकता है। दूसरे शब्दो में, यह प्रत्येक मामले में तथ्य का प्रश्न है, न कि विधि की कोई प्रतिपादना जिसे उच्च न्यायालय द्वारा समझा और प्रतिपादित किया गया है।

16. यद्यपि, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय को अवगत कराया है कि वर्तमान आवेदक कानून का पालन करने वाला नागरिक होने के नाते दिनांक 25.10.2021 को विद्वान मजिस्ट्रेट न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ और उसे जमानत दे दी गयी है। इस आशय का पाठ दिनांको एवं घटनाओं के क्रमांक13 में उपलब्ध है।

17. वर्तमान आवेदक के अवमुक्ति प्रार्थना पत्र (संलग्नक संख्या 8) के प्रस्तर- 9 में कहा गया है कि आवेदक द्वारा अपने भाषण के दौरान जो भी कथन किया गया था, वह मात्र उसकी व्यक्तिगत राय पर आधारित था और ऐसा कथन भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 अर्थात "भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता" के अन्तर्गत संरक्षित है। अवमुक्ति प्रार्थना पत्र के प्रस्तर-8 में उन्होने कहा है कि उनका कथन अधिनियम 1951 की धारा 125 के अन्तर्गत अपराध नहीं माना जा सकता है।

18. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार विद्वान विचारण न्यायालय और साथ ही साथ विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने वर्तमान आवेदक के अवमुक्ति प्रार्थना पत्र और पुनरीक्षण को खारिज करते समय विधि एवं तथ्य दोनों की स्पष्ट त्रुटि की है। इसलिए उपर्युक्त आदेश अपास्त एवं अभिखंडित किए जाएं।

19. इसके विपरीत, श्री आलोक सरन, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत दायर आवेदन का विरोध यह कहते हुए किया कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत यह तृतीय याचिका/आवेदन है। उन्होनें यह भी कथन किया कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत दायर द्वितीय याचिका में न्यायालय की टिप्पणी के अनुसार, प्रथमदृष्टया पुलिस ने अभियुक्तो के विरुद्ध मामला पाया है, और अन्वेषण के उपरान्त विचारण न्यायालय में आरोप-पत्र दाखिल किया है, तथा विचारण न्यायालय ने अपराध का संज्ञान लिया है; इसलिए यह आरोप विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष सिद्ध किया जा सकता है अथवा सिद्ध नहीं किया जा सकता है और इस स्तर पर दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय की अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होगी। इसलिए वर्तमान मामले का विचारण पूर्णतः विधि के अनुसार किया जाना चाहिए।

20. पुनः श्री सरन ने कहा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने वर्तमान आवेदक के विरूद्ध लम्बित विचारण पर रोक नहीं लगायी है; मात्र विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष उनकी उपस्थिति को छूट दी गयी है, इसलिए वर्तमान मामले के विचारण को रोका नहीं जा सकता है, अपितु विचारण को विधि के अनुसार शीघ्र संचालित और सम्पन्न किये जाने हेतु निदेश जारी किये जा सकते है। पुनः उन्होनें कहा कि आवेदक द्वारा दिया गया बयान स्पष्ट रूप से अधिनियम 1951 की धारा 125 का उल्लंघन है, जहाँ तक उनका यह कथन यह है कि जो कांग्रेस के पक्ष में मत देगा गद्दार करार दिया जाएगा और जो कोई भी भारतीय जनता पार्टी के पक्ष में मत देगा, खुदा उसे माफ नहीं करेगा। श्री सरन के अनुसार, आवेदक "भगवान' शब्द का उपयोग कर सकता था लेकिन उन्होनें जानबूझकर और इरादतन उन मतदाताओं हेतु "खुदा' शब्द का उपयोग किया, जिन्होने अपना मत भारतीय जनता पार्टी को दिया था। जाँच के दौरान, आरोप के समर्थन में अन्वेषण अधिकारी द्वारा पर्याप्त सामग्री एकत्र की गयी है, इसलिए उन मतदाताओं, जिन्होने भारतीय जनता पार्टी को मत दिया है, हेतु वर्तमान आवेदक द्वारा "खुदा' शब्द उपयोग करने का आशय और कांग्रेस के मतदाताओं को "देश का गद्दार' क्यो करार दिया जाएगा, यह विचारण के दौरान

निर्धारित किया जा सकता है। श्री सरन ने कथन किया कि दोनों ही न्यायालय अर्थात विद्वान विचारण न्यायालय साथ ही पुनरीक्षण न्यायालय ने वर्तमान आवेदक के तर्कों पर समग्रता और सावधानी से विचार किया है तथा अपने निष्कर्षों को पूर्णतः विधि के अनुसार प्रस्तुत किया है, इसलिए उन आदेशों में कोई शिथिलता या अवैधता नहीं है। इसलिए वर्तमान याचिका को खारिज किया जाए और आवेदक को विचारण की कार्यवाही में भाग लेने हेतु निदेशित किया जाए, ताकि विचारण शीघ्र चलाया और समाप्त किया जा सके। चूँकि उन्हें पहले ही मा० सर्वोच्च न्यायालय द्वारा राहत प्रदान की गयी है, इसलिए उन्हें किसी भी तरह से अपनी गिरफ्तारी की कोई युक्तियुक्त आशंका नहीं है।

21. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया।

22. भारत के संविधान का अनुच्छेद 19 सभी नागरिकों को वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है, लेकिन अन्य बातों के साथ-साथ सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता या नैतिकता को बनाए रखने हेतु उचित प्रतिबंधों के अधीन सामान्य तथ्य यह है कि वाक् की सुरक्षा की परिसीमा इस पर निर्भर करेगी कि क्या ऐसा भाषण विचारों का प्रचार करेगा या इसका कोई सामाजिक मूल्य होगा। यदि उक्त प्रश्न का उत्तर सकारात्मक है, तो ऐसे भाषण को अनुच्छेद 19(1)(ए) के अन्तर्गत संरक्षित किया जाएगा; यदि उत्तर नकारात्मक है, तो ऐसे भाषण को अनुच्छेद 19(1)(ए) के अन्तर्गत संरक्षित नहीं किया जाएगा। इसके अतिरिक्त, उचित प्रतिबंध अन्य बातों के साथ-साथ सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता या नैतिकता को बनाए रखने हेतु हैं। प्रथम दृष्टया, एक व्यक्ति, जो एक राज्य का मुख्यमंत्री है, हेतु कोई भी ऐसा वाक्य या शब्द बोलना उचित नहीं है जिसका कोई गुप्त अर्थ हो। उनके भाषण की सामग्री के अनुसार, कांग्रेस के मतदाताओं को ''देश का गद्दार'' कहा जाएगा जबकि भारतीय जनता पार्टी के मतदाताओं को ''खुदा'' माफ नहीं करेगा। यह सच है कि खुदा, भगवान या गॉड एक ही हैं, लेकिन एक हिंदू नेता द्वारा 'खुदा' शब्द का प्रयोग मात्र उन मतदाताओं हेतु किया जाना जिन्होंने अपना वोट भारतीय जनता पार्टी को दिया था, कांग्रेस को नहीं, मात्र आवेदक द्वारा ही ऐसे विचारण के दौरान ऐसे शब्द का उपयोग करने के अपने मंतव्य को स्पष्ट किया जा सकता है। मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि इस तरह के भाषण से विचारों का प्रचार कैसे होगा या इसका कोई सामाजिक मूल्य कैसे होगा। चूँकि कहा जाता है कि इस आशय के विश्वसनीय साक्ष्य अन्वेषण के दौरान एकत्र किए गए हैं और आरोप पत्र दायर किया गया है, इसलिए, इस न्यायालय द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करके आरोप की सत्यता की जाँच या परीक्षण नहीं किया जा सकता है।

23. सुविधा हेतु, 1951 के अधिनियम की धारा 125 को नीचे पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:-

125. निर्वाचन के संबंध में वर्गों के बीच शत्रुता संप्रवर्तित करना- *जो कोई व्यक्ति इस अधिनियम के अधीन होने वाले निर्वाचन के संबंध में शत्रुता या घृणा की भावनाएं भारत के नागरिकों के विभिन्न वर्गों के बीच धर्म, मूलवंश, जाति, समुदाय या भाषा के आधारों पर संप्रवर्तित करेगा या संप्रवर्तित करने का प्रयत्न करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दण्डनीय होगा।*

24. 1951 के अधिनियम की धारा 125 के परिशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि यदि भारत के नागरिकों के विभिन्न वर्गों के बीच शत्रुता या घृणा की भावनाओं को बढ़ावा दिया जाता है, तो इसे इस धारा के अन्तर्गत अपराध माना जाएगा जो दंडनीय होगा। आवेदक द्वारा दिया गया बयान इतना स्पष्ट और सरल नहीं है क्योंकि वह मतदाताओं के एक समूह हेतु ''देश का गद्दार'' शब्द का प्रयोग कर रहा है और मतदाताओं के दूसरे समूह हेतु वह ''खुदा उन्हें माफ नहीं करेगा' कह रहा है।' प्रथमदृष्टया, ऐसा प्रतीत होता है कि वह "खुदा" के नाम पर अन्य मतदाताओं को धमकी दे रहे हैं, यह अच्छी तरह से जानते हुए कि यदि वह ''खुदा'' शब्द का उपयोग करते हैं, तो अन्य धर्मों से संबंधित मतदाताओं का एक समूह गंभीर रूप से प्रभावित हो सकता था ।

25. जहाँ तक आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि आवेदक का भाषण उनकी व्यक्तिगत राय पर आधारित है, इसलिए, 1951 के अधिनियम की धारा 125 के अन्तर्गत कोई अपराध गठित नहीं हो सकता है क्योंकि इसमें आपराधिक मनःस्थिति का अभाव है, इसलिए उन्हें विचारण न्यायालय के समक्ष अपनी राय स्पष्ट करनी होगी कि उनके इस ज्ञान का क्या स्रोत है कि अगर कोई भी ''खुदा'' में विश्वास रखता है और भारतीय जनता पार्टी को वोट देता है, तो ''खुदा'' उसे माफ नहीं करेगा और इस बारे में भी कि यह बात कांग्रेस को वोट देने वाले मतदाताओं पर क्यों लागू नहीं होगी। कुछ मामलों में, न्यायालयों ने 'ज्ञान' को अपराध का एक आवश्यक तत्व माना है, 'आपराधिक मनःस्थिति को नहीं'। इसलिए, यदि अन्वेषण के दौरान कुछ विश्वसनीय साक्ष्य/सामग्री एकत्र की गई है, आरोप पत्र दाखिल किया जा चुका है, संज्ञान लिया जा चुका है, अवमुक्ति आवेदन को विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा मौखिक और तर्कसंगत आदेश द्वारा खारिज किया जा चुका है, और उस आदेश को भी मौखिक और तर्कसंगत आदेश के रूप में पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा बरकरार रखा जा

चुका है, तो आवेदक को विचारण की कार्यवाही में भाग लेना होगा।

26. विशेष रूप से, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के समक्ष वर्तमान आवेदक के विरुद्ध लंबित कार्यवाही पर रोक नहीं लगाई है; अपील के लंबित रहने के दौरान मात्र उसे उपस्थिति से छूट दी है, इसलिए, वर्तमान मामले की सुनवाई/कार्यवाही को रोका या रद्द नहीं नहीं किया जा सकता।

27. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत निहित इस न्यायालय की शक्ति न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने या किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के किसी भी दुरुपयोग को रोकने हेतु एक अंतर्निहित शक्ति है। यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 की भाँति उच्च न्यायालय की एक असाधारण शक्ति है, लेकिन साथ ही, इस न्यायालय को इस शक्ति को लागू करने से पहले बहुत सावधान और सतर्क रहना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि यदि इस शक्ति का उपयोग नहीं किया जायेगा, तो वादी को अपूरणीय क्षति और अपार कष्ट सहना होगा और यह स्पष्ट रूप से अन्याय और विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा। इसलिए, शीर्ष न्यायालय ने कई मामलों में कहा है कि इस शक्ति का प्रयोग बहुत ही संयमपूर्वक और सावधानी से किया जाना चाहिए।

28. नैनीताल स्थित उत्तराखंड उच्च न्यायालय ने **राजेंद्र सिंह भंडारी बनाम उत्तराखंड राज्य और एक अन्य, 2020 एससीसी ऑनलाइन यूटीटी 551**, वाद का विचारण किया है जो वर्तमान वाद के लगभग समान और समरुप वाद है; और शीर्ष न्यायालय की प्रासंगिक उक्तियों पर विचार करते हुए, उस याचिका को खारिज कर दिया गया था। उक्त निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर संख्या 10 से 18 को यहाँ पुन: प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है:-

"10. संहिता की धारा 482 की परिधि के सम्बन्ध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विभिन्न निर्णयों में विचार किया गया है।

*11.**मधु लिमाया बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1977) 4 एससीसी 551: एआईआर 1978 एससी 47**, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया है कि निम्नलिखित सिद्धांत उच्च न्यायालय के अंतर्निहित क्षेत्राधिकार के प्रयोग को नियंत्रित करेंगे -*

(1) यदि पीड़ित पक्ष की शिकायतों के निवारण हेतु संहिता में विशिष्ट प्रावधान है, तो शक्ति का आश्रय नहीं लिया जाना चाहिए।

(2) किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने हेतु या न्याय के उद्देश्यों को सुनिश्चित करने हेतु इसका संयमपूर्वक प्रयोग किया जाना चाहिए।

(3) इसका प्रयोग संहिता के किसी भी अन्य प्रावधान में सम्मिलित विधि द्वारा अभिव्यक्त स्पष्ट निषेध के विरुद्ध नहीं किया जाना चाहिए।

*12. **पेप्सी फूड लिमिटेड बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट, (1998) 36 एससीसी 20** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 एवं 227 व संहिता की धारा 482 के अंतर्गत उच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों की कोई सीमा नहीं है, लेकिन जितनी अधिक शक्ति होगी, इन शक्तियों को लागू करने में उतनी ही अधिक सावधानी बरतनी होगी।*

*13. **ली कुन ही बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, जेटी (2012) 2 एससी 237** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि संहिता की धारा 482 के अंतर्गत न्यायालय अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए आरोपों की सत्यता या अन्यथा एवं साक्ष्य विश्लेषण, यदि कोई अभिलेख पर उपलब्ध हो, नहीं कर सकता।*

*14. **हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 सप्लिमेंट (1) एससीसी 335** में, भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संहिता की धारा 482 के प्रावधानों पर विस्तार से विचार किया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने अंतर्निहित क्षेत्राधिकार के प्रयोग में उच्च न्यायालयों द्वारा पालन किए जाने वाले निम्नलिखित दिशा-निर्देश देकर विधिक स्थिति को संक्षेप में प्रस्तुत किया:-*

"(1) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में कथित आरोपों, भले ही उन्हें प्रत्यक्ष मूल्य पर ग्रहण किया गया हो एवं पूर्णतः स्वीकार किया गया हो, द्वारा समग्र रूप से प्रथमदृष्टया कोई अपराध नहीं गठित होता है या अभियुक्त के विरुद्ध मामला नहीं बनता है।

(2) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट एवं इसके साथ संलग्न अन्य सामग्री में आरोप, यदि कोई हो, किसी संज्ञेय अपराध को प्रकट नहीं करते हैं, जो संहिता की धारा 155(2) के क्षेत्रांतर्गत, मजिस्ट्रेट के आदेश के अतिरिक्त संहिता की धारा 156(1) के अंतर्गत पुलिस अधिकारियों द्वारा जाँच को उचित ठहरा सके।

(3) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद में लगाए गए निर्विवाद आरोप एवं उसके समर्थन में एकत्र किए गए साक्ष्य किसी अपराध के घटित होने को प्रकट नहीं करते हैं एवं अभियुक्त के विरुद्ध मामला गठित करते हैं।

(4) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट में कथित आरोप संज्ञेय अपराध नहीं हैं, अपितु मात्र गैर-संज्ञेय अपराध हैं, जैसा कि संहिता की धारा 155 (2) के अंतर्गत माना गया है कि मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा कोई भी अन्वेषण किये जाने की अनुमति नहीं दी जाती है।

(5) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद में कथित आरोप निरर्थक एवं स्वाभाविक रूप से असंभव हैं, जिनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकता है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार है।

(6) जहाँ संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके अंतर्गत आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) के किसी भी प्रावधान में संस्था एवं कार्यवाही जारी रखने पर स्पष्ट विधिक रोक है एवं/या जहाँ संहिता या संबंधित अधिनियम में पीड़ित पक्ष की शिकायत हेतु प्रभावी निवारण प्रदान करने वाला एक विशिष्ट प्रावधान है।

(7) जहाँ किसी आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से असद्भावनापूर्वक भाग लिया जाता है एवं/या जहाँ कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से आरोपी से प्रतिशोध लेने हेतु एवं निजी एवं व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे परेशान करने की दृष्टि से संस्थित की जाती है।

15. वर्तमान वाद में, अधिनियम, 1951 की धारा 125 के अंतर्गत दंडनीय अपराध में संज्ञान लिया गया है। अधिनियम, 1951 की धारा 125 इस प्रकार है:-

***125. निर्वाचन के संबंध में वर्गों के बीच शत्रुता संप्रवर्तित करना-** जो कोई व्यक्ति इस अधिनियम के अधीन होने वाले निर्वाचन के संबंध में शत्रुता या घृणा की भावनाएं भारत के नागरिकों के विभिन्न वर्गों के बीच धर्म, मूलवंश, जाति, समुदाय या भाषा के आधारों पर संप्रवर्तित करेगा या संप्रवर्तित करने का प्रयत्न करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दण्डनीय होगा।"*

16. धार्मिक, भाषाई एवं क्षेत्रीय या अनुभागीय विविधताओं से परे भारत के सभी लोगों के बीच सद्भाव एवं समान भाईचारे की भावना को बढ़ावा देना प्रत्येक नागरिक का मौलिक कर्तव्य है। निष्पक्ष एवं शांतिपूर्ण चुनाव हेतु चुनाव प्रचार के दौरान पार्टी या उम्मीदवार को ऐसी किसी भी गतिविधि में सम्मिलित नहीं होना चाहिए जिससे भारत के नागरिकों के विभिन्न वर्गों के बीच धर्म, नस्ल, जाति, समुदाय या भाषा के आधार पर पारस्परिक घृणा या तनाव उत्पन्न हो।

17. वर्तमान वाद में, विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों पर विचार करने के बाद संज्ञान लिया। यह सुस्थापित है कि संज्ञान एवं सम्मन हेतु वाद पर विचार करते समय, वाद के गुण-दोष का परीक्षण नहीं किया जा सकता है एवं इस न्यायालय हेतु आरोपों की सत्यता का निर्णय करने हेतु तथ्यात्मक क्षेत्र में प्रवेश करना पूर्णतः अननुमन्य है। यह न्यायालय आरोपों की वास्तविकता का परीक्षण भी नहीं करेगा क्योंकि यह न्यायालय संहिता की धारा 482 के अंतर्गत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए अपील या पुनरीक्षण न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करता है। इस वाद में यह नहीं कहा जा सकता कि आवेदक पर कोई आरोप नहीं हैं। इसके अतिरिक्त, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता इस स्तर पर यह सिद्ध करने में सक्षम नहीं हो सके कि आरोप इतने निरर्थक एवं स्वाभाविक रूप से असंभव हैं, जिनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकता है कि आवेदक के विरुद्ध कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार है।

18. अधिनियम 1951 की धारा 125 में अभिव्यक्ति "संप्रवर्तित करेगा या संप्रवर्तित करने का प्रयत्न करेगा" का प्रयोग दर्शाता है कि धारा 125 के अंतर्गत विभिन्न धर्मों के बीच वैमनस्य को बढ़ावा देने का अपराध करने हेतु अभियुक्त के पक्ष से मनःस्थिति होनी चाहिए, जबकि आवेदक का वाद यह है कि यह वाद राजनीतिक विरोधियों द्वारा प्रारम्भ किया गया है। इन आरोपों का परीक्षण विचारण के समय ही किया जाना आवश्यक है। यह न्यायालय संहिता की धारा 482 के अंतर्गत किसी आवेदन में समानांतर सुनवाई नहीं कर सकता।

29. शीर्ष न्यायालय (उपरोक्त) द्वारा निर्धारित सामान्य विधि, उपरोक्त विचार किए गए तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान वाद **हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 पूरक (1) एससीसी 335** के निर्णय में निर्धारित किसी भी श्रेणी में नहीं आता है। इसके अतिरिक्त, मुझे पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 21.10.2022 एवं विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 04.08.2022 के आदेश में कोई अशक्तता, अवैधता या विकृति नहीं मिली क्योंकि दोनों आदेश सुविचारित, तर्कपूर्ण व सकारण हैं। तदनुसार, इस आवेदन में की गई प्रार्थनाएं अस्वीकार की जाती हैं।

30. चूँकि वाद का विचारण होना है, अतः मैं यह स्पष्ट करता हूं कि इस आदेश के पूर्ववर्ती प्रस्तरों में की गई टिप्पणियां मात्र दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत दायर इस आवेदन के निस्तारण हेतु हैं। वाद का निर्णय करते समय विचारण न्यायालय इन टिप्पणियों से प्रभावित नहीं होगा।

31. उपरोक्त निबंधनों द्वारा में दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत दायर आवेदन खारिज किया जाता है।

32. वाद-व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

33. समापन से पूर्व, मैं वर्तमान मामले में प्रयोज्य निर्णय विधियों हेतु अपने विधि प्रशिक्षु श्री मुदित सिंह द्वारा किये गये श्रम एवं शोध की सराहना करता हूँ।

(2023) 1 ILRA 512

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 13.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

रिट - ए संख्या - 4900 वर्ष2022

डॉ. राकेश कुमार बाजपेयी और अन्य ... याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा अपर मुख्य सचिव, आयुष विभाग, उ.प्र. सरकार, सिविल सचिवालय- लखनऊ एवं अन्य। ... प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:-
नीरव चित्रवंशी, मृणाल चंद्रा, ओम प्रकाश पांडे

प्रतिवादी के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता, मृणाल चंद्रा, पल्लवी वत्सला, विशाल कुमार उपाध्याय

सिविल विधि – उत्तर प्रदेश होम्योपैथिक चिकित्सा सेवा नियमावली, 1990 - उप निदेशक (होम्योपैथिक), जिला होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारी वरिष्ठ होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारी की नियुक्ति - उप निदेशक (होम्योपैथिक), जिला होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारी एवं वरिष्ठ होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारी का ग्रेड समान है – नियमों में केवल चार वरिष्ठतम व्यक्तियों को उप निदेशक (होम्योपैथिक) के रूप में नियुक्त – जी.ओ. दिनांक 03.01.2017 का प्रावधान है कि सबसे वरिष्ठ होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारियों को उप निदेशक (होम्योपैथिक) के रूप में नियुक्त किया जाएगा और अगले 75 वरिष्ठतम व्यक्तियों को 75 जिलों में होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारी के रूप में नियुक्त किया जाएगा - इसके बाद, 20.07.2022 के एक अन्य जी.ओ. ने पिछली व्यवस्था को वापस लेते हुए इस नीति को बदल दिया - राज्य सरकार ने किसी भी वरिष्ठ चिकित्सा अधिकारी को उनकी वरिष्ठता के बावजूद जिला होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारी के रूप में नियुक्त करने का अधिकार सुरक्षित रखा - आयोजित दिनांक 20.07.2022 के जी.ओ. में निर्धारित शर्तें, आत्म-पराजय, मनमानी और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन हैं- जी.ओ. दिनांक 20.07.2022 को निरस्त किया जाता हैं।

स्वीकृत। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री वी.के.शाही के सहअधिवक्ता श्री प्रफुल्ल यादव को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

याचिकाकर्ताओं ने प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा पारित दिनांक 20.07.2022 के आक्षेपित आदेश (रिट याचिका की संलग्नक संख्या 1) और साथ ही उसी तिथि यानी 20.07.2022 के शासकीय आदेश, जो रिट याचिका का संलग्नक संख्या 2 है, को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी है।

वाद के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता, जो वरिष्ठ होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारी के रूप में कार्यरत हैं, ने दावा किया है कि वे और अन्य व्यक्ति जिन्हें जिला होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारी और उप निदेशक (होम्योपैथिक) के रूप में भी नियुक्त किया गया है, एक ही संवर्ग से सम्बन्धित है। इससे पूर्व दिनांक 03.01.2017 के एक शासकीय आदेश द्वारा यह प्रावधान किया गया था कि वरिष्ठतम होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारियों को उप निदेशक (होम्योपैथिक) के रूप में नियुक्त किया जाएगा और अगले 75 वरिष्ठतम व्यक्तियों को 75 जिलों में जिला होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारियों के रूप में नियुक्त किया जाएगा एवं शेष व्यक्ति वरिष्ठ होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारी के रूप में कार्य करेंगे। ऐसा ही किया गया क्योंकि उप निदेशक (होम्योपैथिक) और जिला होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारियों द्वारा उच्चस्तरीय प्रशासनिक कर्तव्यों का वहन किया जा रहा था और वे अपने अधीन कार्यरत वरिष्ठ होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारियों सहित अन्य अधिकारियों के एसीएआर लिखने के भी हकदार थे।

आश्चर्यजनक रूप से, दिनांक 20.07.2022 के आक्षेपित शासकीय आदेश द्वारा, उक्त नीति को संशोधित किया गया था और चार वरिष्ठतम व्यक्तियों को उप निदेशक (होम्योपैथिक) के रूप में और अगले 75 व्यक्तियों को जिला होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारी के रूप में नियुक्त करने की उक्त शर्त को वापस ले लिया गया। राज्य सरकार किसी भी वरिष्ठ चिकित्सा अधिकारी को उसकी वरिष्ठता के परे जिला होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारी के रूप में कार्य करने हेतु नियुक्त करने का विवेकाधिकार रखती है और उक्त शासकीय आदेश उक्त सीमा तक वापस ले लिया गया था। इसके कारण शासनादेश के प्रस्तर 5 में उल्लिखित हैं, जो निम्नवत है:-

"यह उल्लेखनीय है कि होम्योपैथिक चिकित्साधिकारियों का मुख्य कार्य रोगियों का उचित प्रकार से उपचार किया जाना है। वरिष्ठ एवं अनुभवी होम्योपैथिक चिकित्साधिकारियों की आवश्यकता प्रत्येक जनपद के रोगियों को है। यदि सभी वरिष्ठ होम्योपैथिक चिकित्साधिकारियों को वरिष्ठता क्रम में जिला होम्योपैथिक चिकित्साधिकारी (प्रशासनिक पद) बना दिया जाता है तो उनकी योग्यता और अनुभव का लाभ आम जनता/ रोगियों को प्राप्त नहीं हो पायेगा। उक्त के दृष्टिगत आयुष अनुभाग-2 के उक्त आदेश संख्या-3141/71-आयुष-2-2016-158/2016, दिनांक 03.01.2017 को अवक्रमिक करते हुए व्यापक जनहित में यह निर्णय लिया जाता है कि प्रदेश के समस्त जनपदों में तैनात होम्योपैथिक चिकित्साधिकारियों में से वरिष्ठतम वरिष्ठ होम्योपैथिक चिकित्साधिकारी को जिला होम्योपैथिक चिकित्साधिकारी के रूप में तैनात किया जायेगा और यह सुनिश्चित किया जायेगा कि जनपद का कोई भी वरिष्ठ चिकित्साधिकारी किसी कनिष्ठ जिला होम्योपैथिक चिकित्साधिकारी के अधीन कार्यरत न हो।"

कारण यह बताया गया कि प्रत्येक जिले में अनुभवी वरिष्ठ होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारियों की आवश्यकता है। इसमें यह भी कहा गया है कि किसी जिले में जिला होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारी से वरिष्ठ व्यक्ति को वरिष्ठ होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारी के रूप में नियुक्त नहीं किया जाएगा। सरकारी आदेश के प्रस्तर 5 में उल्लिखित कारण और शर्तें उस उद्देश्य को ही विफल कर देती हैं जो इस संबंध में उपबंधित की गयी है। एक बार जब किसी कनिष्ठ व्यक्ति को किसी जिले में जिला होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारी के रूप में नियुक्त किया जाता है तब उससे वरिष्ठ किसी भी व्यक्ति को नियुक्त नहीं किया जाएगा। इस प्रकार, केवल अन्य कनिष्ठतर व्यक्तियों को ही उक्त जिले में वरिष्ठ होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारी के रूप में नियुक्त किया जाएगा। राज्य सरकार की विगत नीति, जो यह प्रावधान करती है कि 75 जिलों में 75 वरिष्ठतम व्यक्तियों को जिला होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारियों के रूप में नियुक्त किया जाएगा, ने सरकार को प्रत्येक जिले में वरिष्ठ होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारियों में से वरिष्ठ व्यक्तियों को नियुक्त करने के लिए पर्याप्त शिथिलता प्रदान की। आक्षेपित सरकारी आदेश में प्रदान की गई शर्तें स्वयंमेव विफलकारी एवं मनमाना होने के कारण भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के असंगत है। अत: शासनादेश दिनांक 20.07.2022 को एतदद्वारा निरस्त किया जाता है।

विद्वान स्थायी अधिवक्ता का कथन है कि राज्य सरकार को वरिष्ठ होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारियों को अपनी इच्छानुसार नियुक्त करने के लिए उक्त नियम पर्याप्त विवेकाधिकार प्रदान करते हैं, क्योंकि उक्त नियमों में चार वरिष्ठतम व्यक्तियों को उप निदेशक (होम्योपैथिक) के रूप में नियुक्त करने के अतिरिक्त कोई शर्त नहीं रखी गई है। उन्होंने यह भी कहा कि उप निदेशक (होम्योपैथिक) और जिला होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारियों और वरिष्ठ होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारियों का ग्रेड समान है।

मैं विद्वान स्थायी अधिवक्ता के तर्कों को नितान्त बलहीन पाता हूँ। नियमों में कमी को पूरा करने के लिए राज्य सरकार ने स्वयं एक शासनादेश दिनांक 03.01.2017 निर्गत कर उक्त कमी को पूरा किया है। शासनादेश दिनांक 03.01.2017 में वर्णित प्रक्रिया स्वयमेव वह प्रक्रिया पर्याप्तरूपेण प्रस्तुत करती है जो मनमानी नहीं थी और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के अनुरूप थी।

चूंकि शासनादेश दिनांक 20.7.2022 को रद्द कर दिया गया है, इसलिए दिनांक 20.07.2022 का आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा विभिन्न व्यक्तियों को शासनादेश दिनांक 20.07.2022 के अनुपालन में नियुक्त किया गया है, भी अपोषणीय है; अतः इसे रद्द किया जाता है। राज्य सरकार को समय-समय पर संशोधित उत्तर प्रदेश होम्योपैथिक चिकित्सा सेवा नियमावली, 1990 के साथ-साथ शासनादेश दिनांक 03.01.2017 के अनुसार व्यक्तियों की नियुक्ति करने का निर्देश दिया जाता है। नियुक्तियों में उक्त संशोधन आज से चार सप्ताह की अवधि के भीतर अवश्य किया जाएगा।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

(2023) 1 ILRA 514

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा

रिट-ए संख्या 11196/2022

श्रीमती किरण ...याचिकाकर्ता

बनाम

उ.प्र. राज्य एवं अन्य ...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री प्रतीक श्रीवास्तव, श्री अभिषेक भूषण, श्री अनिल भूषण वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता:

सी.एस.सी., श्री अभिषेक श्रीवास्तव, श्री कृष्ण अग्रवाल

क. सिविल कानून - भारत का संविधान, अनुच्छेद 16 - अनुकंपा नियुक्ति - मृतक आश्रित नियमावली, 1974- विवाहित बेटी - मृतक आश्रित नियमावली, 1974 के तहत दिनांक 04.05.2022 को मृत्यु और अब विवाहित बेटियां भी अनुकंपा नियुक्ति की हकदार हैं - हालाँकि, निगम अपनी स्वयं की नीतियों और विनियमों द्वारा शासित होता है और निगम के बोर्ड ने 2021 में सरकार द्वारा नियमावली 1974 में किए गए संशोधनों को अभी तक नहीं अपनाया है- अनुकंपा नियुक्ति अनुच्छेद 16 के तहत सीधी भर्ती के सामान्य नियम का अपवाद है - किसी भी अभ्यर्थी को अनुकंपा नियुक्ति का अधिकार नहीं है और इस पर तभी विचार किया जा सकता है जब आवेदन पर विचार की तिथि पर राज्य की नीतियों/विनियमों में निर्धारित सभी मानदंडों को ऐसे परिवार के सदस्यों द्वारा पूरा किया जाता है, जिसका अनुकंपा नियुक्ति के दावे पर विचार के लिए इसका कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए (पैरा 11, 12)

ख. अनुकंपा नियुक्ति - विवाहित बेटी - याचिकाकर्ता के पिता एक तृतीय श्रेणी कर्मचारी थे, जिनकी नौकरी के दौरान मृत्यु हो गई - प्रत्यर्थी निगम ने याचिकाकर्ता के अनुकंपा के दावे को अस्वीकार कर दिया क्योंकि वह शादीशुदा बेटी थी, अपने ससुराल में रहती थी, उसका भाई एक सरकारी कर्मचारी था, उसकी बहन की शादी भी एक सरकारी कर्मचारी से हुई थी- याचिकाकर्ता की मां को पारिवारिक पेंशन मिल रही थी और उनके पिता की मृत्यु पर उन्हें सभी सेवांत लाभ भी दिए गए थे-अवधारित किया गया- केवल इसलिए कि याची की मां याची के साथ रहने लगी है और याची का पति बेरोजगार है, यह नहीं कहा जा सकता कि परिवार वित्तीय संकट का सामना कर रहा है - याचिकाकर्ता यह दिखाने में असमर्थ है कि वह अपने पिता की मृत्यु के समय उनकी आय पर निर्भर थी (पैरा 16)

खारिज किया गया।(ई-5)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. उ.प्र. राज्य और अन्य बनाम माधवी मिश्रा और अन्य विशेष अपील संख्या 223 दिनांक 2021 दिनांक 23.09.2021
2. दि डायरेक्टर ऑफ ट्रेजरी इन कर्नाटक और अन्य बनाम सौम्यश्री सिविल अपील संख्या 5122/2021 दिनांक 13.09.2021
3. श्रीमती विमला श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2016 1एडीजे पेज नंबर 21
4. वी. सुनीथाकुमारी बनाम के.एस.ई.बी. एवं अन्य, 1992 एससीसी ऑनलाइन केईआर145

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और विपक्षी प्रत्यर्थीगणों के विद्वान अधिवक्ता श्री अभिषेक श्रीवास्तव को सुना गया।

2. यह याचिका अनुकंपा नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के आवेदन को खारिज करने वाले प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.06.2022 को चुनौती देते हुए दायर की गई है।

3. याचिकाकर्ता का मामला है कि उसके पिता स्वर्गीय गिरीश चंद्र प्रत्यर्थी संख्या 3 के कार्यालय में तृतीय श्रेणी कर्मचारी के रूप में कार्यरत थे और दिनांक 15.09.2020 को उनकी मृत्यु हो गई, उनके परिवार में उनकी विधवा और दो बेटियाँ और एक बेटा था। याचिकाकर्ता दूसरी बेटी है, पहली बेटी की शादी अमरोहा में कार्यरत एक सरकारी कर्मचारी से हुई है और बेटा अमित कुमार सरकारी कर्मचारी है जो मुरादाबाद में तैनात है। स्वर्गीय गिरीश चंद्र मुरादाबाद के स्थायी निवासी थे और इसलिए जब उनकी मृत्यु हुई तो उनकी विधवा मुरादाबाद में रहने लगीं। याचिकाकर्ता की शादी मुरादाबाद में हुई है और वह अपने ससुराल वालों के साथ रह रही है लेकिन उसका पति राहुल

कुमार बेरोजगार है। याचिकाकर्ता की मां उसके पिता की मृत्यु के बाद याचिकाकर्ता और उसके पति और ससुराल वालों के साथ रहने लगी और वह विधवा मां की देखभाल कर रही है और इसलिए, वह अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति की हकदार है।

4. याचिकाकर्ता ने दिनांक 22.04.2022 को अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन दायर किया और कहा कि वह स्नातक है और उसके पास "सीसीसी" प्रमाण पत्र है और इसलिए, तृतीय श्रेणी के पद पर नियुक्ति के लिए पात्र है, जब याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर निर्णय नहीं लिया गया, तो उसने फिर से एक अभ्यावेदन दिया। इस बार चीफ इंजीनियर को भी और निगम चेयरमैन को भी। अब, याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को प्रत्यर्थी संख्या 3, अधिशाषी अभियंता, विद्युत वितरण खंड, बिजनौर द्वारा दिनांक 25.06.2022 को एक गैर मौखिक आदेश द्वारा यह विचार किए बिना खारिज कर दिया गया है कि यहां तक कि एक विवाहित बेटी भी अनुकंपा नियुक्ति की हकदार है, लेकिन केवल यह कहकर कि निगम द्वारा जारी परिपत्र दिनांक 05.07.2012 के मद्देनजर याचिकाकर्ता को ऐसी नियुक्ति नहीं दी जा सकती है।

5. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि उ.प्र. सरकार के कर्मचारियों और उनके आश्रितों के लिए लागू मृतक आश्रित नियमावली, 1974 को इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि के आधार पर वर्ष 2021 में संशोधित किया गया था और अब भी एक विवाहित पुत्री को परिवार की परिभाषा में शामिल किया गया है।

6. प्रत्यर्थी संख्या 2 से 4 के अधिवक्ता ने एक प्रति शपथपत्र दायर किया है जिसमें उन्होंने याचिकाकर्ता को अनुकंपा नियुक्ति के अधिकार से वंचित कर दिया है और कहा है कि याचिकाकर्ता एक विवाहित बेटी है और वह अपने ससुराल में रहती है और उसका भाई एक सरकारी कर्मचारी है और उसकी बहन की शादी भी एक सरकारी कर्मचारी से हुई है। केवल इसलिए कि याचिकाकर्ता की मां याचिकाकर्ता के साथ रहने लगी है और याचिकाकर्ता का पति बेरोजगार है, यह नहीं कहा जा सकता कि परिवार वित्तीय संकट का सामना कर रहा है जो अनुकंपा के आधार पर मृत कर्मचारी के आश्रितों की नियुक्ति के लिए आवश्यक शर्त है। याचिकाकर्ता की मां को पारिवारिक पेंशन मिल रही है और स्वर्गीय गिरीश चंद्र की मृत्यु पर सभी सेवांत लाभ भी दिए गए हैं। यदि राज्य सरकार ने 1974 के नियमों में कोई संशोधन जारी किया है तो वे स्वचालित रूप से निगम पर लागू नहीं होंगे क्योंकि निगम के कर्मचारी कंपनी के निदेशक मंडल द्वारा बनाए गए अपने नियमों/विनियमों और नीतियों द्वारा शासित होते हैं।

7. प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता ने इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच द्वारा दिनांक 23.09.2021 को निर्णीत विशेष अपील संख्या 223/2021 (उ.प्र. राज्य और अन्य बनाम माधवी मिश्रा और 2 अन्य) मामले पर अवलम्ब लिया और दिनांक 13.09.2021 को निर्णीत सिविल अपील संख्या 5122/2021 (दि डायरेक्टर ऑफ ट्रेजरी इन कर्नाटक और अन्य बनाम सौम्यश्री) मामले में भी सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता अपने मृत पिता पर आश्रित नहीं है और कर्मचारी की मृत्यु के बाद परिवार आर्थिक संकट में नहीं है, इसलिए अनुकंपा नियुक्ति के लिए उसके मामले पर विचार नहीं किया जा सकता।

8. प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता श्री कृष्ण अग्रवाल का कहना है कि गलती से प्रत्यर्थी संख्या 3 की ओर से एक अलग प्रति शपथपत्र दायर किया गया है जिसे इस न्यायालय द्वारा नजरअंदाज किया जा सकता है क्योंकि यह निगम की ओर से दायर प्रति शपथपत्र द्वारा शासित होगा।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अपने प्रति शपथपत्र में कहा है कि याचिकाकर्ता के पिता बिजनौर में तृतीय श्रेणी कर्मचारी के रूप में कार्यरत थे और उसके दो भाई-बहन, उसकी बहन और उसका भाई अपनी विधवा मां की देखभाल नहीं कर रहे हैं। विधवा मां याचिकाकर्ता के साथ रह रही है और वह विधवा मां की देखभाल कर रही है और इसलिए वह अनुकंपा नियुक्ति की हकदार है। इस न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के संदर्भ में यह भी प्रस्तुत किया गया है कि 04.05.2022 को उ.प्र. राज्य में मृतक आश्रित नियमावली, 1974 में संशोधन किया गया है और विवाहित बेटियां भी अनुकंपा नियुक्ति की हकदार हैं। संशोधित शासनादेश दिनांक 04.05.2022 की एक प्रति प्रत्युत्तर शपथपत्र में आर.ए.-1 के रूप में दाखिल की गई है।

10. इस न्यायालय ने दिनांक 04.05.2022 की अधिसूचना का अवलोकन करने के बाद पाया कि यह विवाहित बेटियों और विधवा बहुओं के अधिकारों को संदर्भित करता है और स्पष्ट करता है कि मृतक आश्रित नियमावली, 1974 में 12वां संशोधन 1993 से लागू होगा। यह भी स्पष्ट किया गया है कि राज्य सरकार वास्तविक कठिनाई के मामलों में अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन दाखिल करने में 5 साल से अधिक की देरी को भी माफ कर सकती है।

11. निगम द्वारा जारी परिपत्र का अध्ययन करने के बाद इस न्यायालय की स्पष्ट राय है कि निगम अपनी स्वयं की नीतियों और विनियमों द्वारा शासित होता है। निगम बोर्ड ने वर्ष 2021 में सरकार द्वारा नियमावली 1974 में किये गये संशोधन को अब तक नहीं अपनाया है। इसके अलावा, याचिकाकर्ता यह दिखाने में असमर्थ रही है कि वह अपने पिता की मृत्यु के समय उनकी आय पर निर्भर थी। रिकॉर्ड पर दलील से यह स्पष्ट है कि उसकी बड़ी बहन की शादी

अमरोहा में रहने वाले एक सरकारी कर्मचारी से हुई है। याची का भाई भी मुरादाबाद में सरकारी कर्मचारी है। याचिकाकर्ता की विधवा मां, परिवार को बेहतर ज्ञात कारणों से, अपने नियोजित बेटे के साथ नहीं रह रही है। स्वर्गीय गिरीश चंद्र की पारिवारिक पेंशन और सेवांत लाभ प्राप्त करने के बाद उसने याचिकाकर्ता के ससुराल में जाकर रहने का विकल्प चुना, ऐसा शायद इसलिए हुआ क्योंकि याचिकाकर्ता का पति कथित तौर पर बेरोजगार है, और यह विधवा मां की पारिवारिक पेंशन है जिसका उपयोग याचिकाकर्ता और उसके बेरोजगार पति की देखभाल के लिए किया जा रहा है।

12. इस न्यायालय ने द्वितीय अपील संख्या 223/2021 (उपरोक्त) में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा दिए गए फैसले को भी देखा है, जहां इस न्यायालय ने श्रीमती विमला श्रीवास्तव बनाम यू.पी. राज्य 2016 1एडीजे पृष्ठ संख्या 21 के मामले और उसके बाद राज्य सरकार द्वारा परिवार की परिभाषा में किए गए संशोधन पर विचार करते हुए मृत कर्मचारियों के आश्रितों को अनुकंपा नियुक्ति के मानदंडों को ध्यान में रखा है। डिवीजन बेंच द्वारा यह देखा गया है कि सेवा के दौरान वेतनभोगी की मृत्यु पर आश्रितों को अनुकंपा नियुक्ति का अधिकार केवल तभी मिलेगा जब परिवार के सदस्य वेतनभोगी की आय पर निर्भर थे और उनकी देखभाल के लिए किसी के अभाव में वित्तीय संकट का सामना करना पड़ता था। इस न्यायालय ने दिनांक 13.09.2021 को निर्णीत दि डायरेक्टर ऑफ ट्रेजरी इन कर्नाटक और अन्य बनाम सौम्यश्री मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया था, जहां सर्वोच्च न्यायालय ने अवलोकित किया था कि अनुकंपा नियुक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेद 16 के तहत सीधी भर्ती के सामान्य नियम का अपवाद है। किसी भी अभ्यर्थी को अनुकंपा नियुक्ति का अधिकार नहीं है। यदि मृत कर्मचारी के परिवार के सदस्य द्वारा अनुकंपा नियुक्ति की मांग की जाती है तो इस पर तभी विचार किया जा सकता है जब राज्य की नीतियों/विनियमों में निर्धारित सभी मानदंड ऐसे परिवार के सदस्यों द्वारा परिपूर्ण करते हों। अनुकंपा नियुक्ति के दावे पर विचार करने के लिए आवेदन पर विचार करने की तिथि पर प्रचलित मानदंडों का सख्ती से पालन किया जाएगा।

13. डिवीजन बेंच ने उ.प्र. राज्य और अन्य बनाम माधवी मिश्रा (उपरोक्त) के मामले में तथ्यों पर विचार करने के बाद यह कहा कि अपने आवेदन में माधवी मिश्रा ने कहीं भी इस बात का खुलासा नहीं किया कि उनकी मां को पारिवारिक पेंशन मिल रही थी और वह शादी के बाद भी अपने पिता पर कैसे निर्भर थीं। योजना का उद्देश्य काम के दौरान मृत कर्मचारी के बेरोजगार सदस्य को रोजगार प्रदान करना था। केवल इसलिए कि विवाहित बेटी को अब परिवार की परिभाषा से बाहर नहीं रखा गया है, यह नहीं कहा जा सकता है कि श्रीमती माधवी मिश्रा अपनी शादी के बाद किसी भी तरह से अपने पिता पर निर्भर थीं। कानून कहता है कि अपनी पत्नी का भरण-पोषण करना पति का कर्तव्य है और यदि वह उसे भरण-पोषण देने से इनकार करता है तो वह उसे गुजारा भत्ता का दावा करने में सक्षम बनाता है। इसलिए, बेटी की शादी होते ही पिता पर निर्भरता समाप्त हो जाती है और विवाहित बेटियों को आश्रितों की श्रेणी से बाहर करने का यही औचित्य है।

14. न्यायालय ने वी. सुनीता कुमारी बनाम के.एस.ई.बी. और अन्य, 1992 एससीसी ऑनलाइन केईआर 145 के समान मामले में केरल उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर भी विचार किया।

15. इसके बाद डिवीजन बेंच ने माधवी मिश्रा (उपरोक्त) के मामले में कहा कि याचिकाकर्ता अधिकार के रूप में अनुकंपा नियुक्ति के लिए दावा नहीं कर सकता है, खासकर जब उसने जानबूझकर पारिवारिक पेंशन पाने के लिए अपनी मां की पात्रता का उल्लेख करना छोड़ दिया है, इस प्रकार उसे गरीबी में नहीं छोड़ा जाएगा और उसे वर्तमान आवेदक पर निर्भर नहीं किया जाएगा। ऐसी भी परंपरा है कि शादीशुदा बेटी अपने पिता पर नहीं बल्कि अपने पति पर निर्भर होती है।

16. इस न्यायालय ने रिकॉर्ड पर दलीलों को देखा और पाया कि याचिकाकर्ता की मां को स्वर्गीय गिरीश चंद्र की मृत्यु पर पारिवारिक पेंशन और अन्य सेवांत लाभ मिलने के संबंध में कोई दलील नहीं है। याचिकाकर्ता द्वारा दायर प्रत्युत्तर शपथपत्र में प्रत्यर्थियों द्वारा अपने प्रति शपथपत्र में दिए गए ऐसे बयान से भी इनकार नहीं किया गया है। दलीलों से यह सामने नहीं आया कि याचिकाकर्ता किसी भी तरह से अपने पिता की आय पर उस समय निर्भर थी जब वह जीवित थे। केवल इसलिए कि याचिकाकर्ता का पति कथित तौर पर बेरोजगार है और याचिकाकर्ता की मां याचिकाकर्ता और उसके पति और ससुराल वालों के साथ याचिकाकर्ता के ससुराल में रह रही है, यह नहीं कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता को अनुकंपा नियुक्ति का कोई अधिकार है।

17. इस न्यायालय को आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप दिखाने का कोई अच्छा आधार नहीं मिला। रिट याचिका खारिज की जाती है।

18. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 1 ILRA 518

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल साइड

दिनांक: इलाहाबाद 16.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा

रिट - ए नंबर – 15733/2022

खलीफा राम चौहान ... याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य ... प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
मनोज कुमार सिंह, अवधेश कुमार मालवीय

प्रतिवादी के अधिवक्ता:

सी.एस.सी., ओंकार दत्त मालवीय

A. सिविल कानून– भारतीय संविधान, अनु. 226 –सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 –इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम 1952, अध्याय XXII के नियम 7 - दूसरी रिट याचिका – पोषणीयता - आदेश 2 के सिद्धांत नियम 2 और रचनात्मक न्यायिक न्याय रिट क्षेत्राधिकार पर लागू होंगे - यदि कोई पक्ष किसी पक्ष द्वारा याचिका दायर कर सकता है तो उसके और उसके प्रतिद्वंद्वी के बीच की कार्यवाही में, उसे बाद की कार्यवाही में उसी पक्ष के विरुद्ध उस याचिका को प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी जाएगी जो कार्रवाई के समान कारण पर आधारित है, भले ही याचिकाकर्ता ने पूर्व की रिट याचिका वापस ले ली हो या इसे निरर्थक में, नई याचिका दायर करने की अनुमति के बिना निरस्त कर दिया गया हो, कार्रवाई के समान कारण के लिए दूसरी रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं है - एक बार प्रार्थना एक विशेष तरीके से रिट याचिका में तैयार की जाती है और न्यायालय द्वारा रिट याचिका के अंतिम निस्तारण के समय ऐसी प्रार्थना नहीं प्रदान की जाती है, तो यह माना जाएगा कि दावा की गई प्रार्थना निरस्त कर दी गई है - वर्तमान वाद में, स्वीकार्य ब्याज के साथ सेवानिवृत्ति लाभ के लिए प्रार्थना करते हुए एक पिछली याचिका दायर की गई थी - उक्त याचिका में, याचिकाकर्ता ने अदालत के समक्ष बयान दिया कि याचिका में अब कुछ भी नहीं बचा है क्योंकि प्रतिवादियों ने उसे सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों का भुगतान कर दिया है और तदनुसार, रिट याचिका को निष्फल के रूप में खारिज कर दिया गया था - प्रतिवादियों को निर्देश देने के लिए दूसरी रिट याचिका दायर की गई सेवानिवृत्ति बकाया पर 9% ब्याज का भुगतान करें - माना गया, विलंबित भुगतान पर ब्याज का दावा करने वाली कोई दूसरी रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं है। (पैरा 7,8,9,10)

निरस्त। (ई-5)

उद्धृत वाद सूची:

1. देवीलाल मोदी बनाम एसटीओ 1965 (1) एससीआर 686

2. सूर्य देव मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2007 (1) एसएलआर 546 (एआईएल)

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा, द्वारा प्रदत्त)

(मौखिक)

यह याचिका निम्नलिखित प्रार्थना के साथ दायर की गई है:

"(ए) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें उत्तरदाताओं को 30.06.2017 से आज तक याचिकाकर्ता को निर्धारित अवधि के भीतर, सेवानिवृत्ति के बकाया 15,00,000/- रुपये की राशि पर 9% ब्याज का भुगतान करने का निर्देश दिया जाए ।

प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने रिट याचिका की विचारणीयता के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति उठाई है। उनका कहना है कि याचिकाकर्ता ने पहले इस न्यायालय के समक्ष रिट-ए संख्या 9556 सन् 2020 दायर की थी, जिसमें स्वीकार्य ब्याज के साथ सेवानिवृत्ति लाभ और याचिकाकर्ता का दिनांकित 17.08.2020 के प्रतिनिधित्व पर निर्णय

लेने के लिए उत्तरदाताओं को निर्देश देने की प्रार्थना की गई थी।

इस न्यायालय ने शुरू में 11.11.2020 को उक्त रिट याचिका पर विचार किया और उत्तरदाताओं को याचिकाकर्ता के सेवानिवृत्ति बकाया के भुगतान के संबंध में निर्देश प्राप्त करने का निर्देश दिया। इस अदालत ने मामले को 18.08.2021 को सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया और आगे निर्देश दिया कि याचिकाकर्ता के सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों का भुगतान उसे किया जा सकता है, ऐसा न होने पर, सचिव (जल आपूर्ति) यूपी, लखनऊ अपना व्यक्तिगत हलफनामा निर्धारित तिथि से पहले या अन्यथा दाखिल करेंगे। न्यायालय संबंधित अधिकारी को व्यक्तिगत रूप से बुलाने के लिए बाध्य होगा। जब मामला 18.08.2021 को लिया गया, तो याचिकाकर्ता ने अदालत के समक्ष एक बयान दिया कि याचिका में अब कुछ भी नहीं बचा है क्योंकि उत्तरदाताओं ने दिनांक 12.07.2021 के आदेश के अनुपालन को प्रभावी किया है और तदनुसार, रिट याचिका को उसी दिन निरर्थक मानकर खारिज कर दिया गया।

दिनांकित 18.08.2021 के आदेश की प्रति न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया है।

प्रतिवादी के अधिवक्ता का कहना है कि एक बार याचिकाकर्ता ने अपनी पिछली रिट याचिका में स्वीकार्य ब्याज के साथ सेवानिवृत्ति लाभ देने के लिए प्रार्थना की थी, जो रिट याचिका निरर्थक हो जाने के कारण निस्तारित कर दी गई थी, विलंबित भुगतान के ब्याज का दावा करने वाली कोई दूसरी रिट याचिका पोशणीय नहीं है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि प्रतिवादियों ने माना कि ब्याज का भुगतान नहीं किया गया है।

उच्चतम् न्यायालय ने देवीलाल मोदी बनाम एसटीओ 1965(1) एससीआर 686 के मामले में इस बात पर विचार कर रहा था कि क्या आदेश 2 नियम 2 और रचनात्मक रेस जुडिकेटा के सिद्धांत रिट क्षेत्राधिकार पर लागू होंगे और यह देखा गया कि हालांकि अदालतें मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के सवालों से निपट रही हैं। उक्त अधिकारों को बनाए रखने के लिए लगातार प्रयास करना चाहिए और उनके असंवैधानिक आक्रमण को रोकना चाहिए, अपने मौलिक अधिकारों के उल्लंघन का आरोप लगाने वाले नागरिकों द्वारा दायर रिट याचिकाओं से निपटने में रेस जुडिकेटा के सिद्धांत को पूरी तरह से नजरअंदाज करना सही नहीं होगा। यदि उसके और उसके प्रतिद्वंदी के बीच की कार्यवाही में किसी पक्ष द्वारा कोई याचना किसी याचिका में दायर की जा सकती है, तो उसे बाद की कार्यवाही में उसी पक्ष के खिलाफ उस याचना को दूसरी याचिका में उठाने की अनुमति नहीं दी जाएगी, जो कार्रवाई के समान कारण पर आधारित है, क्योंकि सिद्धान्त रचनात्मक निर्णयो को अंतिम रूप देने की ठोस सार्वजनिक निति पर आधारित है।

सुप्रीम कोर्ट ने सूर्य देव मिश्रा बनाम यूपी राज्य 2007 (1) एसएलआर 546 (इलाहाबाद) में अपने पूर्ण पीठ के फैसले में माना है कि अदालत के नियम, कार्रवाई के समान कारण के लिए दूसरी रिट याचिका पर के रोक लगाते हैं। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के नियम 1952 के अध्याय XXII के नियम 7 में प्रावधान है कि जहां एक आवेदन खारिज कर दिया गया है, तो आवेदक उन्हीं तथ्यों पर दूसरा आवेदन दायर करने में सक्षम नहीं होगा। भले ही याचिकाकर्ता ने पिछली रिट याचिका वापस ले ली हो या इसे निष्फल मानकर खारिज कर दिया गया हो, नई याचिका दायर करने की अनुमति के बिना, कार्रवाई के समान कारण के लिए दूसरी रिट याचिका पोषणीय नहीं है।

एक बार जब एक रिट याचिका में एक विशेष तरीके से याचना तैयार की जाती है और न्यायालय द्वारा रिट याचिका के अंतिम निपटाने के समय ऐसी राहत नहीं दी जाती है, तो यह माना जाएगा कि दावा की गई याचना खारिज कर दी गई है।

इसलिए यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

अतः रिट याचिका पोषणीय न होने के कारण खारिज की जाती है।

(2023) 1 ILRA 520

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल साइड

दिनांक: इलाहाबाद 23.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजीव जोशी

रिट-ए संख्या- 23396 वर्ष 2014

नरसिंह रावत ... . याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य . ... प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
श्री एम संजय कुमार श्रीवास्तव, श्री सिद्धार्थ खरे

प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता

क. दीवानी कानून - अनुकंपा नियुक्ति - दावा - विलंब - याचिकाकर्ता की मां संस्था में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी (स्वीपर) के रूप में कार्यरत थीं, जिनकी 29.6.1999 को सेवा अवधि के दौरान मृत्यु हो गई, उस समय, याचिकाकर्ता की आयु 15 वर्ष चार महीने 16 दिन थी - वयस्कता की आयु प्राप्त करने पर याचिकाकर्ता ने अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन किया – प्रधानाचार्य ने 22.06.2002 को आवेदन को डी.आई.ओ.एस. को विचार के लिए अग्रेषित किया जो लंबित रहा - वर्ष 2014 में रिट याचिका दायर की गई – अवधारित - याचिकाकर्ता की ओर से कोई देरी या लापरवाही नहीं थी, लेकिन देरी राज्य की ओर से थी - प्रतिपक्षियों को अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के मामले पर विचार करने का निर्देश दिया गया (पैरा 16)

अनुमति। (ई-5)

<u>उद्धृत विधि न्याय निर्णयों की सूची:</u>

1. मलाया नंदा सेठी बनाम उड़ीसा राज्य और अन्य (एस.एल.पी (सिविल) नंबर 936 वर्ष 2022) दिनांक 20.05.2022

2. महाराष्ट्र राज्य और अन्य बनाम सुश्री माधुरी मारुति विधाटे 2022 सुप्रीम (एस.सी) 1001

3. भारत सरकार और अन्य बनाम पी वेंकटेश 2019 (15) एस.सी.सी. 613

4. सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया बनाम नितिन मनु/एस.सी/1151/2022

(माननीय न्यायमूर्ति राजीव जोशी द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ खरे, और राज्य प्रतिपक्षी के लिए स्थायी अधिवक्ता श्री गोविंद नारायण श्रीवास्तव को सुना।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता प्रतिपक्षी संख्या-3 और 4 को अर्थात् अमर शहीद भगत सिंह इंटर कॉलेज, रसड़ा, बलिया, जिला- बलिया को याचिककर्ता को किसी भी श्रेणी के पद पर 'डाइंग इन हार्नेस' नियम के तहत नियुक्त करने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक निर्देश चाहता है।

3. वर्तमान मामले के तथ्यों का संक्षिप्त विवरण यह है कि याचिकाकर्ता की मां जानकी देवी संस्था अर्थात् अमर शहीद भगत सिंह इंटर कॉलेज, रसड़ा, बलिया, जिला- बलिया में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी (स्वीपर) के रूप में काम कर रही थीं, जिनकी 29.6.1999 को सेवा काल के दौरान मृत्यु हो गई थी। अपनी मां की मृत्यु के बाद, याचिकाकर्ता ने प्राचार्य अमर शहीद भगत सिंह इंटर कॉलेज, रसड़ा, बलिया, जिला- बलिया के समक्ष यू.पी के तहत अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए आवेदन किया। 'हार्नेस रूल्स, 1974 (इसके बाद '1974 के नियम' के रूप में संदर्भित) में मरने वाले सरकारी कर्मचारियों के आश्रितों की भर्ती के तहत कई मौकों पर, संस्था के प्रधानाचार्य ने याचिकाकर्ता के आवेदन को विचार करने के लिए 22.06.2002 को जिला विद्यालय निरीक्षक, बलिया को भेज दिया जो आज की तारीख तक लंबित है।

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता ने 1974 के नियमों के तहत अपनी अनुकंपा नियुक्ति के लिए सभी आवश्यक औपचारिकताएं पूरी कर ली हैं। हालांकि, प्रतिपक्षी अधिकारियों ने इस संबंध में कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता की ओर से कोई देरी या लापरवाही नहीं हुई थी, बल्कि राज्य-प्रतिपक्षी की ओर से देरी की गई, याचिकाकर्ता को 1974 के नियमों के तहत अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए सभी शर्तों को पूरा किया गया था। अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने मलाया नंदा सेठी बनाम उड़ीसा राज्य और अन्य (एस.एल.पी (सिविल) संख्या 936 वर्ष 2022) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के हालिया फैसले जो 20 मई, 2022 को किया गया था, पर भरोसा किया।

5. दूसरी ओर, स्थायी अधिवक्ता ने कहा कि मृत्यु के समय, याचिकाकर्ता नाबालिग था और उसकी उम्र 15 साल, 4 चार महीने और 16 दिन थी। इसके बाद यह प्रस्तुत किया गया है कि अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता का आवेदन वर्ष 2020 में जिला विद्यालय निरीक्षक, बलिया के कार्यालय में प्राप्त हुआ है, प्रतिपक्षी प्राधिकारी यानी जिला विद्यालय निरीक्षक, जिला बलिया की ओर से देरी का कोई सवाल नहीं है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने महाराष्ट्र राज्य में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया और एक अन्य बनाम सुश्री माधुरी मारुति विधाते ने 2022 में रिपोर्ट सुप्रीम (एससी) 1001; भारत सरकार और एक अन्य बनाम पी वेंकटेश ने 2019 (15) एस.सी.सी. 613 में रिपोर्ट और सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया बनाम नितिन ने 2022 के मनु/एससी/1151 में रिपोर्ट किया गया निर्णय, जिसमें यह माना गया है कि मृतक कर्मचारी की मृत्यु से कई वर्षों के बाद अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति हकदार नहीं होगी।

6. मैंने पक्षकारों के अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

7. याचिकाकर्ता की मां की मृत्यु 26.9.1999 को हुई और उस समय, याचिकाकर्ता की उम्र 15 साल चार महीने और 16 दिन थी। याचिकाकर्ता ने वयस्कता प्राप्त करने पर, संस्थान के प्रधानाचार्य के समक्ष अपनी मां के स्थान पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए आवेदन किया, जिन्होंने संबंधित रिकॉर्ड के साथ उक्त आवेदन को 22.6.2002 को जिला विद्यालय निरीक्षक, बलिया को भेज दिया, जो प्रतिशपथ पत्र के अनुलग्नक संख्या-3 से स्पष्ट है। जवाबी हलफनामे के साथ दायर अनुलग्नक सीए-2 वह रिपोर्ट/टिप्पणी नहीं है जिसे 26.9.2020 को संस्थान के प्रधानाचार्य से कथित रूप से मांगा गया था, यह केवल वर्तमान रिट याचिका दायर करने के बाद की जानकारी है और उक्त पत्र में, एक सप्ताह के भीतर संस्थान के प्रधानाचार्य से रिपोर्ट मांगी गई थी जो काउंटर एफिडेविट के पैराग्राफ नंबर-8 से स्पष्ट है।

8. जिला विद्यालय निरीक्षक, बलिया के दिनांक 22.9.2020 के पत्र में निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:-

प्रेषक,

जिला विद्यालय निरीक्षक,

बलिया।

सेवा में,

प्रधानाचार्य,

अमर शहीद भगत सिंह इण्टर कॉलेज,

रसड़ा, बलिया।

पत्रांक/३६२६-२७/२०२०-२१ दिनांक: २६/९/२०२०

विषय:- मा० उच्च न्यायालय इलाहबाद में योजित याचिका संख्या-२३३९६/२०१४ में पारित आदेश दिनांक २३.०४.२०१४ के अनुपालन हेतु आख्या/अभिलेख मांगे जाने के सम्बन्ध में।

महोदय,

उपर्युक्त विषय के सम्बन्ध में अवगत कराना है कि श्री नरसिंह रावत पुत्र जानकी देवी द्वारा इस आशय का आवेदन पत्र दिया गया है कि उनकी माता श्रीमती जानकी देवी स्वीपर, विद्यालय में कार्यकाल के दौरान ही उनकी दिनांक २६.०६.१९९९ को मृत्यु हो गयी। श्री रावत द्वारा अपनी माता के स्थान पर मृतक आश्रित कोटे के अन्तर्गत नियुक्ति की मांग तथा इस हेतु मा० उच्च न्यायालय इलाहबाद में याचिका संख्या-२३३९६/२०१४ श्री नरसिंह रावत बनाम उ० प्र० सरकार व तीन अन्य में दिनांक २३.०४.२०१४ को पारित आदेश संलग्न कर आवश्यक कार्यवाही हेतु निवेदन किया गया है। मा० उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक २३.०४.२०१४ को पारित आदेश निम्नवत—

9. प्रतिपक्षी संख्या-1 और 2 का प्रतिनिधित्व करने वाले स्थायी अधिवक्ता एक महीने के भीतर जवाबी हलफनामा दायर कर सकते हैं। याचिकाकर्ता के पास प्रत्युत्तर हलफनामा दाखिल करने के लिए उसके बाद दो सप्ताह का समय होगा। प्रतिपक्षी संख्या-3 और 4 को नोटिस जारी करें जो छह सप्ताह के भीतर वापस करने योग्य है। एक सप्ताह के भीतर कदम उठाए जा सकते हैं। नोटिस की तामील के बाद सूचीबद्ध करें।

अतः मा० उच्च न्यायालय के उक्त आदेश दिनांक २३.०४.२०१४अनुपालन/प्रकरण निस्तारण हेतु श्रीमती जानकी देवी की सेवा अभिलेख से सम्बन्धित समस्त पत्रजात तथा प्रकरण अब तक लम्बित होने का कारण का उल्लेख करते हुए अनुपूरक अभिलेखों सहित अपनी आख्या एक सप्ताह के भीतर इस कार्यालय का उपलब्ध कराने का कष्ट करें जिससे अग्रेत्तर कार्यवाही की जा सके।

भवदीय

ह० अपठनीय

(भास्कर मिश्रा)

बलिया।

२६/९

पृ० सं०/३६२६-२७/२०२०-२१ तददिनांक

प्रतिलिपि- नर सिंह रावत पुत्र स्व० जानकी देवी साकिन मुहल्ला- उततरपट्टी रसड़ा बलिया को सूचनार्थ प्रेषित।

ह० अपठनीय

जिला विद्यालय निरीक्षक,

बलिया, २६/९

10. बदले में, संस्थान के प्रधानाचार्य ने जिला विद्यालय निरीक्षक, बलिया को दिनांक 17.11.2020 के पत्र के माध्यम से जवाब दिया, जिसमें यह कहा गया है कि तत्कालीन प्रधानाचार्य मो. श्री बसीर अंसारी ने अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के आवेदन को पहले ही 22-6-2002 को अग्रेषित कर दिया है जो जिला विद्यालय निरीक्षक, बलिया के कार्यालय में लंबित है।

11. संस्थान के प्राचार्य द्वारा डी.आई.ओ.एस., बलिया को अग्रेषित पत्र दिनांक 17.11.2020 का प्रासंगिक भाग निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"उक्त के संबंध में अवगत कराना है कि श्रीमती जानकी देवी इस विद्यालय में चतुर्थ कर्मचारी के रूप में स्वीपर के पद पर कार्यरत थी। सेवाकाल में इनकी मृत्यु दिनांक २६.०६.१९९९ को हो गयी। नियमानुसार श्रीमती जानकी देवी को मृत्यु उपरान्त पारिवारिक पेंशन आदि इनके पति का पूर्व में ही मृत्यु होने के कारण नहीं दिया गया लेकिन मृतक आश्रित नियमानुसार मृतक के पाल्य श्री नरसिंह रावत का प्रस्ताव तत्कालीन प्रधानाचार्य मु० वसीर अंसारी द्वारा मृतक आश्रित कोटे में दिनांक २२.०६.२००२ को प्रेषित किया गया जो अद्यतन आपके यहाँ अनिस्तारित रहिए। (छायाप्रति संलग्न)

यहाँ यह भी अवगत कराना है कि श्री नरसिंह रावत द्वारा कई बार इस विद्यालय को एवं आपके कार्यालय को प्रत्यावेदन प्रस्तुत किया गया। नियमानुसार मृतक के कुटुम्ब के एक सदस्य को सेवा योजित करने का प्राविधान है। विद्यालय में परिधारक के कुल १५ की जनशक्ति शासन द्वारा निर्धारित है। वर्तमान में कुल ६ परिचालक कार्यरत है। इन ६ कर्मचारियों में स्वीपर के पद पर कोई कार्यरत एवं नियुक्त नहीं है। विद्यालय के साफ सफाई एवं आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए श्री नरसिंह रावत को सेवायोजित किया जाना संस्था हिट में होगा।

अतः आपके आदेश के क्रम में श्री नरसिंह रावत को मृतक आश्रित के अन्तर्गत सफाई कर्मी/स्वीपर के रिक्त पद पर चयन किये जाने की संस्तुति की जाती है।"

12. प्रधानाचार्य के पत्र से स्पष्ट है कि चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के छह पद हैं, लेकिन संस्था में स्वीपर के पद पर कोई कार्य नहीं कर रहा है।

13. राज्य के जवाबी हलफनामे से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता की ओर से कोई गलती या देरी नहीं हुई थी और विभाग/अधिकारियों की ओर से देरी हुई थी, याचिकाकर्ता को पीड़ित नहीं किया जाना चाहिए।

14. मलाया नंदा सेठी (सुप्रा) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार आयोजित किया है: "7. इस प्रकार, पूर्वोक्त से, यह देखा जा सकता है कि अपीलकर्ता की ओर से कोई गलती और/या देरी और/या लापरवाही नहीं थी। वह 1990 के नियमों के तहत अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए सभी शर्तों को पूरा कर रहे थे। बिना किसी कारण के उनके आवेदन को लंबित रखा गया और/या किसी न किसी आधार पर कोई आदेश पारित नहीं किया गया। इसलिए, जब अपीलकर्ता की ओर से कोई गलती और/या देरी नहीं हुई और विभाग/अधिकारियों की ओर से देरी हुई, तो अपीलकर्ता को पीड़ित नहीं किया जाना चाहिए। 1990 के नियमों के तहत अपीलकर्ता को नियुक्त नहीं करना विभाग/अधिकारियों की ओर से देरी और/या निष्क्रियता को प्रीमियम देना होगा। विभाग/अधिकारियों की ओर से घोर संवेदनहीनता थी। तथ्य स्पष्ट हैं और रोजगार की तलाश में अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत आवेदन पर विचार करने में गंभीर देरी को प्रकट करते हैं जो निर्विवाद रूप से विभाग/अधिकारियों के लिए जिम्मेदार है। वास्तव में, अपीलकर्ता को अनुकंपा नियुक्ति की मांग से वंचित किया गया है, अन्यथा वह 1990 के नियमों के तहत हकदार था। अपीलकर्ता विभाग/अधिकारियों की ओर से देरी और/या निष्क्रियता का शिकार हो गया है जो जानबूझकर या संबंधित अधिकारियों द्वारा ऐसे कारणों से हो सकता है, जो वही जानते हैं। इसलिए, मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में, अहम प्रश्न को एक तरफ रखते हुए, जैसा कि ऊपर देखा गया है, हमारी राय है कि अपीलकर्ता को 1990 के नियमों के तहत नियुक्ति से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। अपीलकर्ता विभाग/अधिकारियों की ओर से देरी और/या निष्क्रियता का शिकार हो गया है जो जानबूझकर या संबंधित अधिकारियों द्वारा ऐसे कारणों से हो सकता है, जो वही जानते हैं। इसलिए, मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में, अहम प्रश्न को एक तरफ रखते हुए, जैसा कि यहां देखा गया है, हमारी राय है कि अपीलकर्ता को 1990 के नियमों के तहत नियुक्ति से वंचित नहीं किया जाएगा।

15. राज्य की ओर से उद्धृत निर्णय वर्तमान मामले में लागू नहीं होता है क्योंकि मृत कर्मचारी के आश्रितों की ओर से देरी हुई थी और उक्त निर्णय वर्तमान मामले में लागू नहीं होता है।

16. उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, प्रतिपक्षियों को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता के मामले पर 1974 के नियमों के तहत अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए उसके आवेदन, जो 22.6.2002 को जिला विद्यालय निरीक्षक, बलिया के कार्यालय में प्राप्त हुआ था, और यदि याचिकाकर्ता अन्यथा उसे अमर शहीद भगत सिंह इंटर कॉलेज नामक संस्थान, रसड़ा, बलिया, जिला: बलिया में चतुर्थ श्रेणी में नियुक्त करने के लिए योग्य पाया जाता है, के अनुसार विचार करें।

17. उपरोक्त प्रक्रिया संबंधित प्रतिपक्षियों द्वारा आज से चार सप्ताह की अवधि के भीतर पूरी की जानी चाहिए और

अप्रकाशित

याचिकाकर्ता केवल अपनी नियुक्ति की तारीख से सभी लाभों का हकदार है।

18. उपरोक्त के मद्देनजर, रिट याचिका की अनुमति दी जाती है। लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

(2023) 1 ILRA 524

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 11.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

रिट-ए नंबर 26963/2018

राजेश कुमार यादव ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता:

श्री सिद्धार्थ खरे

अधिवक्ता प्रतिवादी:

सी.एस.सी.

सिविल कानून - सेवा न्यायशास्त्र - वेतन का बकाया - "काम नहीं तो वेतन नहीं" का सिद्धांत - जब लागू न हो - जहां कर्मचारी नियोक्ता के एकतरफा कार्य के कारण सेवा से निर्वित्त रहता है जो बाद में वैध नहीं पाया जाता है, तो नियोक्ता द्वारा "काम नहीं तो वेतन नहीं" के सिद्धांत पर उनके वेतन से इनकार नहीं किया जा सकता (पैरा 15)

याचिकाकर्ता को 2004 में नलकूप मिस्त्री के रूप में नियुक्त किया गया था, लेकिन दिनांक 14.09.2011 के एक आदेश द्वारा उनकी सेवाएं समाप्त कर दी गईं, परिणामस्वरूप उन्होंने रिट याचिका दायर की – याचिका को अनुमति दी गई थी और वाद को प्रतिवादियों को नए सिरे से निर्णय लेने के लिए प्रेषित दिया गया था – आदेश दिनांक 28.04.2017 द्वारा प्रतिवादियों ने पूर्व आदेश दिनांक 14.09.2011 को अपास्त कर तत्काल प्रभाव से बहाल कर दिया - याचिकाकर्ता ने दिनांक 14.09.2011 से 01.05.2017 की अवधि के बकाया वेतन के लिए आवेदन दिया, जिसे "कोई काम नहीं कोई वेतन नहीं" के सिद्धांत पर भरोसा करते हुए निरस्त कर दिया गया। आयोजित-याचिकाकर्ता की बहाली बिना शर्त थी और इसमें ऐसी कोई शर्त नहीं थी जिसके अधीन याचिकाकर्ता को बहाली दी गई हो – लेकिन दिनांक 14.09.2011 को उसकी सेवाएं समाप्त करने के प्रतिवादियों के निर्णय के बाद, याचिकाकर्ता सेवा में जारी रहेगा और प्रतिवादियों को सेवा प्रदान करेगा – याचिकाकर्ता को सेवा दूर रहने के लिए मजबूर किया गया – प्रतिवादियों को 14.09.2011 से 1.05.2017 की अवधि के लिए याचिकाकर्ता के वेतन के बकाया को मंजूरी देने और प्रदान करने का निर्देश दिया गया।

अनुमत। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. शोभा राम रतूड़ी बनाम हरियाणा विद्युत प्रसारण निगम लिमिटेड एवं अन्य, 2016 (16) एससीसी 683

2. प्रयाग नारायण दुबे बनाम यू.पी.एस.आर.टी.सी. एवं अन्य, रिट-ए संख्या 40927/2004 निर्णित दिनांक 29.03.2018

3. उ.प्र. राज्य सड़क परिवहन निगम एवं अन्य। बनाम प्रयाग नारायण दुबे विशेष अपील दोष संख्या 405 / 2018 निर्णित दिनांक 23.08.2018

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

यह रिट याचिका दिनांक 29.10.2018 के एक आदेश के खिलाफ निर्देशित है, जिसके तहत प्रत्यर्थियों ने "काम नहीं तो वेतन नहीं" के सिद्धांत पर 14.9.2011 से 1.5.2017 की अवधि के लिए याचिकाकर्ता के वेतन के बकाया का भुगतान करने से इनकार कर दिया है। प्रत्यर्थियों को 14.9.2011 से 1.5.2017 की अवधि के लिए न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट दर पर ब्याज के साथ बकाया वेतन स्वीकृत करने और वितरित करने का आदेश देने के लिए एक परमादेश मांगा गया है। एक और निर्देश की मांग की गई है जिसमें प्रत्यर्थियों को एक निश्चित अवधि के भीतर याचिकाकर्ता के लिए भी सुनिश्चित करियर प्रगति को मंजूरी देने का आदेश दिया जाए।

पक्षों ने हलफनामों का आदान-प्रदान किया है।

पक्षों की सहमति से तत्काल सुनवाई की गई।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ खरे और राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री प्रवीण ओझा को सुना।

इस याचिका को जन्म देने वाले संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि प्रत्यर्थियों, जो कि उ0प्र0 सरकार है, ने 09.08.2004 को नलकूप मिस्त्री के पद (संक्षेप में 'प्रश्नाधीन पद') के लिए एक विज्ञापन जारी किया था। याचिकाकर्ता का विधिवत चयन किया गया, और चयन के परिणामस्वरूप, 12.10.2004 को प्रश्नगत पद पर नियुक्त किया गया। उसकी सेवाएं दिनांक 15.07.2010 के एक आदेश द्वारा 08.10.2007 से नियमित कर दी गईं। याचिकाकर्ता को 10.12.2010 को एक शिकायत के आधार पर कारण बताओ नोटिस दिया गया था कि याचिकाकर्ता के पास आई.टी.आई. से आवश्यक ट्रेड सर्टिफिकेट नहीं था, जिससे नलकूप मिस्त्री के रूप में नियुक्ति के लिए उसकी पात्रता समाप्त हो गई। याचिकाकर्ता ने जवाब दाखिल कर कहा कि उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद उसका चयन किया गया है। यह बताया गया कि विज्ञापन में आवश्यक योग्यता के संबंध में एक शर्त थी जिसमें कहा गया था: "पांच साल के अनुभव के साथ हाई स्कूल/आई.टी.आई." याचिकाकर्ता का मामला यह है कि वह मैट्रिक पास है और इसलिए, वह वैकल्पिक शर्तों में से एक को पूरा करता है। दिनांक 14.09.2011 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता की सेवाएँ समाप्त कर दी गईं। वस्तुतः दिनांक 14.09.2011 का आदेश समाप्ति का आदेश नहीं है, इस अर्थ में इसे अनुशासनात्मक क्षेत्राधिकार में समझा जाता है। यह वस्तुत: याचिकाकर्ता द्वारा प्रासंगिक समय पर लिए गए प्रत्यर्थियों के रुख के कारण अपेक्षित योग्यताएं पूरी नहीं करने के कारण नियुक्ति रद्द करने का आदेश है। याचिकाकर्ता की विभागीय अधिकारियों से अपील और समीक्षा विफल रही। फलस्वरूप उसने रिट-ए संख्या 52876/2012 कायम की। उक्त याचिका पर दिनांक 07.12.2016 के एक आदेश द्वारा सुनवाई की गई और स्वीकार किया गया, जिसमें कहा गया कि रिट याचिका में लगाए गए नियुक्ति को रद्द करने के आदेश से यह नहीं पता चला कि अधिकारियों ने याचिकाकर्ता के मामले पर उसकी पात्रता के बारे में विज्ञापन में उल्लिखित बातों के आधार पर विचार किया था। निर्णय में दिए गए मार्गदर्शन को ध्यान में रखते हुए और याचिकाकर्ता को सुनने के बाद मामले को नए सिरे से निर्णय लेने के लिए प्रत्यर्थियों को भेज दिया गया।

मामले को प्रत्यर्थियों के समक्ष रखे जाने के परिणामस्वरूप, उन्होंने 28.04.2017 को एक आदेश पारित किया जिसमें कहा गया कि वास्तव में याचिकाकर्ता विज्ञापित योग्यताओं को पूरा करता है, हालांकि वह नियमों के तहत प्रदान की गई योग्यताओं को पूरा नहीं करता है। प्रत्यर्थियों ने अपने आदेश दिनांक 28.04.2017 के अनुसार आगे बढ़ते हुए याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त करने वाले दिनांक 14.09.2011 के पहले के आदेश को रद्द कर दिया और उसे तत्काल प्रभाव से विचाराधीन पद पर बहाल कर दिया। याचिकाकर्ता को बहाल करने के दिनांक 28.04.2017 के आदेश में कोई और शर्त, सीमा या अवरोध नहीं जुड़ा है। उस स्तर पर, याचिकाकर्ता ने 07.10.2017 को एक आवेदन दिया और उसके बाद 3.05.2018 को एक और आवेदन दिया, जिसमें उसने कहा कि उसे बिना किसी गलती के 14.09.2011 के आदेश के परिणामस्वरूप अपने कर्तव्यों से दूर रहने के लिए मजबूर किया गया था, और इसलिए, वह 14.09.2011 से 01.05.2017 की अवधि के लिए बकाया वेतन का हकदार था। आक्षेपित आदेश के अनुसार उक्त आवेदन खारिज कर दिया गया है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ खरे का कहना है कि आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से अवैध है क्योंकि याचिकाकर्ता प्रत्यर्थियों की गलत सलाह के कारण उसकी नियुक्ति रद्द कर सेवा से बाहर रहा, जिसे बाद में उन्होंने स्वयं, इस न्यायालय द्वारा रिमांड पर, संदिग्ध पाया।

दूसरी ओर, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री प्रवीण ओझा का कहना है कि चूंकि याचिकाकर्ता के पास आवश्यक आई.टी.आई. प्रमाणपत्र नहीं था और उसकी सेवाएं दिनांक 14.09.2011 के आदेश द्वारा उस आधार पर समाप्त कर दी गई थीं, इसलिए वह संबंधित अवधि के लिए बकाया वेतन पाने का हकदार नहीं है। श्री ओझा ने "काम नहीं तो वेतन नहीं" के सिद्धांत पर भी भरोसा किया जो कि विवादित आदेश की नींव है।

पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, इस न्यायालय ने पाया कि जहां तक याचिकाकर्ता की योग्यता का सवाल है, प्रत्यर्थी ढुलमुल रुख नहीं अपना सकते हैं। हो सकता है कि सेवा नियमों के तहत आई.टी.आई. ट्रेड सर्टिफिकेट जरूरी हो लेकिन विज्ञापन में इसका जिक्र नहीं था। याची ने विज्ञापन के अनुसार आवेदन किया था। उसका विधिवत चयन एवं नियुक्ति की गई थी। उसने उसी आधार पर वेतन प्राप्त कर कार्य किया। सेवा नियमों पर भरोसा करते हुए उसकी नियुक्ति रद्द कर दी गई, लेकिन इस बात पर ध्यान दिए बिना कि विज्ञापन में याचिकाकर्ता द्वारा आवश्यक योग्यताएं पूरी करने के बारे में क्या उल्लेख किया गया था। इस न्यायालय ने याचिकाकर्ता की नियुक्ति रद्द करने के आदेश को रद्द कर दिया और मामले को प्रत्यर्थियों के पास पुनर्विचार के लिए वापस भेज दिया। इस स्तर पर, प्रत्यर्थियों ने यह विचार किया है कि चूंकि जो विज्ञापित किया गया था उसे बदला नहीं जा सकता है और याचिकाकर्ता के पास उस विज्ञापन के अनुसार अपेक्षित योग्यताएं थीं, इसलिए याचिकाकर्ता की नियुक्ति को रद्द करने का उनका पिछला आदेश गलत था। प्रत्यर्थियों ने याचिकाकर्ता की नियुक्ति रद्द करने में अपनी गलती स्वीकार की और उसे बिना शर्त बहाल करने का आदेश दिया। ऊपर यह टिप्पणी की गई है कि बहाली बिना शर्त थी और हम इस बात पर जोर देते हैं कि याचिकाकर्ता को सेवा में बहाल करने का आदेश अयोग्य है और इसमें ऐसी

कोई शर्त नहीं है जिसके अधीन याचिकाकर्ता को बहाली दी गई हो।

इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता को 14.09.2011 से 01.05.2017 की अवधि के बीच अपने कर्तव्यों का पालन न करने के लिए दोषी ठहराना स्पष्ट रूप से मनमाना होगा। यदि याचिकाकर्ता के पास आवश्यक योग्यता के बारे में एक विशेष दृष्टिकोण पर 14.09.2011 को उसकी सेवाएं समाप्त करने का उत्तरदाताओं का निर्णय न होता, तो याचिकाकर्ता सेवा में जारी रहता और प्रत्यर्थियों की सेवा करता। हालाँकि, बाद में, जब इस न्यायालय ने इस मुद्दे पर पुनर्विचार करने के लिए मामले को प्रत्यर्थियों के पास वापस भेजा, तो प्रत्यर्थियों ने अपनी गलती स्वीकार की और माना कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति को बताए गए कारण से रद्द करना उचित नहीं था। इसलिए, याचिकाकर्ता के नौकरी से बाहर रहने या काम नहीं करने को उस अवधि के लिए उसकी परिलब्धियों से इनकार करने का आधार नहीं बनाया जा सकता, जिस अवधि के लिए उसे बाहर रहने के लिए मजबूर किया गया था। इस मामले में यह और भी अधिक प्रासंगिक हो जाता है क्योंकि प्रत्यर्थियों ने याचिकाकर्ता को बहाल करते समय अपनी गलती स्वीकार कर ली है, और, बहाली की शर्तों के संबंध में किसी भी सीमा के बिना, ऐसा किया है।

इस संबंध में, शोभा राम रतूड़ी बनाम हरियाणा विद्युत प्रसारण निगम लिमिटेड और अन्य, 2016 (16) एससीसी 683 में उच्चतम न्यायालय के फैसले का संदर्भ लिया जा सकता है जहां यह अभिनिर्धारित किया गया है:

"1. यह विवाद का विषय नहीं है, कि अपीलकर्ता 31.12.2002 को सेवा से सेवानिवृत्त हो गया था, भले ही वह सामान्य प्रक्रिया में, सेवानिवृत्ति पर अपनी सेवानिवृत्ति की तारीख 31.12.2005 को ही प्राप्त करता। अपीलकर्ता ने रिट याचिका संख्या 751/2003 दायर करके अपनी सेवानिवृत्ति के आदेश दिनांक 31.12.2002 को चुनौती दी। इसे 14.09.2010 को पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा स्वीकार किया गया था। आदेश का ऑपरेटिव भाग यहां नीचे दिया गया है: "तदनुसार वर्तमान रिट याचिका स्वीकार की जाती है; आदेश दिनांक 31.12.2002 (अनुलग्नक पी-4) को रद्द किया जाता है। याचिकाकर्ता को सभी परिणामी लाभों के साथ निरंतर सेवा में माना जाएगा। हालाँकि यह स्पष्ट किया गया है कि चूंकि याचिकाकर्ता ने इस पद पर काम नहीं किया है, इसलिए "कोई काम नहीं, कोई वेतन नहीं" की कहावत लागू होगी और परिणामी लाभ केवल टर्मिनल लाभों के लिए निर्धारित किए जाएंगे। हालाँकि लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।"

2. उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 14.09.2010 के आदेश के तहत अपीलकर्ता को पिछला वेतन देने से इनकार करने पर अपीलकर्ता ने लेटर्स पेटेंट अपील संख्या 489/2011 दायर करके इसका विरोध किया था। उच्च न्यायालय ने 26.5.2011 को लेटर्स पेटेंट अपील को खारिज करते हुए अपीलकर्ता के दावे को खारिज कर दिया। बकाया वेतन के भुगतान के मुद्दे तक सीमित उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 14.09.2010 और 26.5.2011 के आदेश इस न्यायालय के समक्ष चुनौती का विषय हैं।

3. विवाद पर विचारपूर्वक विचार करने के बाद, हम संतुष्ट हैं कि दिनांक 31.12.2002 के सेवानिवृत्ति के आदेश को रद्द किए जाने के बाद, अपीलकर्ता सभी परिणामी लाभों का हकदार था। 1.1.2003 से 31.12.2005 की अवधि के लिए अपीलकर्ता की सेवाओं का उपयोग न करने में प्रत्यर्थियों की गलती है। यदि अपीलकर्ता को सेवा में बने रहने की अनुमति दी गई होती, तो वह आसानी से अपने कर्तव्यों का निर्वहन करता। 1.1.2003 से 31.12.2005 तक उसे अपनी सेवाएँ प्रदान करने से रोकते हुए, प्रत्यर्थी को "काम नहीं तो वेतन नहीं" के सिद्धांत की दलील पर, प्रश्नगत अवधि के लिए उसे वेतन देने से इनकार करने की स्व-सेवा याचिका पर दबाव डालने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।"

(न्यायालय द्वारा जोर)

इस निर्णय का पालन इस न्यायालय द्वारा प्रयाग नारायण दुबे बनाम यू.पी.एस.आर.टी.सी और अन्य, रिट-ए संख्या 40927/2004, 29.03.2018 को निर्णीत, में किया गया है। प्रयाग नारायण दुबे (पूर्वोक्त) में निर्णय को उ0प्र0 राज्य सड़क परिवहन निगम और अन्य बनाम प्रयाग नारायण दुबे में विशेष अपील डिफेक्टिव संख्या 405/2018 में खण्ड न्यायपीठ द्वारा बरकरार रखा गया है, जिसका निर्णय 23.08.2018 को हुआ था। इन सभी निर्णयों में सिद्धांत बिल्कुल स्पष्ट है और वह यह है कि जहां कर्मचारी नियोक्ता के एकतरफा कार्य के कारण सेवा से बाहर रहता है जो बाद में वैध और विधिपूर्ण नहीं पाया जाता है, नियोक्ता "काम नहीं तो वेतन नहीं" के सिद्धांत पर उसके वेतन से इनकार नहीं कर सकता है।

एक और शिकायत है जो याचिकाकर्ता ने उठाई है और वह सेवा से बाहर रहने की अवधि को ध्यान में रखते हुए, सुनिश्चित कैरियर प्रगति प्रदान न करने के बारे में है। मेरी राय है कि, यह एक निर्णय है जिसे प्रत्यर्थियों को लेना है, न कि इस न्यायालय को; कम से कम, प्रथम दृष्टया में।

कानून की उपरोक्त स्थिति और यहां प्राप्त तथ्यों को देखते हुए, यह याचिका सफल होती है और स्वीकार की जाती है। अधिशाषी अभियंता, नलकूप अनुरक्षण खंड, भदोही (संत रविदास नगर) द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 29.10.2018 को निरस्त किया जाता है।

प्रत्येक प्रत्यर्थी को इस आदेश की प्रति प्राप्त होने के एक महीने के भीतर 14.09.2011 से 1.05.2017 की अवधि के

लिए याचिकाकर्ता के वेतन के बकाया को मंजूरी देने और वितरित करने का आदेश देते हुए एक परमादेश जारी किया जाए।

प्रत्यर्थियों को यह भी निर्देशित किया जाता है कि वे याचिकाकर्ता को निरंतर सेवा में मानते हुए 14.09.2011 से 01.05.2017 के बीच सेवा की अवधि को ध्यान में रखते हुए सुनिश्चित कैरियर प्रगति प्रदान करने के लिए याचिकाकर्ता के मामले पर विचार करें। इस संबंध में निर्णय प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा इस आदेश की प्रति प्राप्त होने की तारीख से छह सप्ताह के भीतर लिया जाएगा।

लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

इस आदेश को रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा अधिशाषी अभियंता, नलकूप संरक्षण खण्ड, भदोही (संत रविदास नगर) को सूचित किया जाये।

(2023) 1 ILRA 528

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल साइड

दिनांक: इलाहाबाद 06.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार
माननीय न्यायमूर्ति विक्रम डी. चौहान

जेल अपील नं. 7728 वर्ष 2010
के साथ
आपराधिक अपील संख्या - 7484 वर्ष 2010

कैलाश ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश सरकार ... प्रतिवादी

अपीलकर्ता के वकील:
गगन प्रताप सिंह (जेल से)

प्रतिवादी के वकील:
ए.जी.ए.

ए. आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 – धारा 302/45, 394 और 422 - शस्त्र अधिनियम, 1959– धारा 25 – हत्या –आजीवन कारावास - दोषसिद्धि और सजा के विरुद्ध अपील - स्थिरता - मौत आग्नेयास्त्र की चोट के कारण हुई थी – बयान में विरोधाभास, कितनी प्रासंगिकता - आयोजित, जब तक कि किसी विरोधाभास को मूल कथन को अभिलेख करने वाले व्यक्ति के समक्ष रखकर साबित नहीं किया जाता है, ऐसे विरोधाभास का कोई परिणाम नहीं होता है – साक्ष्य की सराहना करते समय, न्यायालय को संपूर्ण गवाह का कथन को पढ़ने के बाद उसकी संपूर्णता में जांच करनी चाहिए, और यदि न्यायालय कथन को सत्य और विश्वसनीयता के योग्य पाता है, तो प्रत्येक भिन्नता या विसंगति, विशेष रूप से जो सारहीन है और अभियोजन मामले की जड़ को प्रभावित नहीं करती है, उसका कोई परिणाम नहीं होगा। (पैरा 31 और 32)

बी. आपराधिक कानून – भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1972 – धारा 9 – प्रासंगिक तथ्य– पहचान – संपार्श्विक साक्ष्य, जब प्राप्य - आयोजित, एक तथ्य जो किसी भी चीज़ या व्यक्ति की पहचान स्थापित करता है जिसकी पहचान प्रासंगिक है, प्रासंगिक तथ्य हैं। अनुभाग में सिद्धांत सामान्य नियम का अपवाद है कि संपार्श्विक तथ्यों का साक्ष्य आमतौर पर प्राप्य नहीं होता है – अक्सर उस व्यक्ति की पहचान स्थापित करना महत्वपूर्ण होता है जो गवाही देता है कि उसने विशेष अवसर पर देखा था। कभी-कभी, कोई गवाह उस व्यक्ति को नहीं पहचान सकता है लेकिन फिर भी वह गवाही दे सकता है कि बाद की घटना में वह उस व्यक्ति की पहचान करने में सक्षम था जिसे उसने शुरू में उस विशेष अवसर पर देखा था। (पैरा 35 और 36)

सी. आपराधिक कानून - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1972 - धारा 9 - शिनाख्त - उद्देश्य और आवश्यकता – आयोजित, शिनाख्त करने की आवश्यकता केवल तभी उत्पन्न हो सकती है जब आरोपी व्यक्ति गवाहों को पहले से नहीं जानते हों। शिनाख्त का पूरा विचार गवाहों से है जो लोग घटना के समय अपराधियों को देखने का दावा करते हैं, उन्हें बिना किसी सहायता या किसी अन्य स्रोत के अन्य व्यक्तियों के बीच से उनकी पहचान करनी होती है। परीक्षण उनकी सत्यता की जांच करने के लिए किया जाता है - परीक्षण पहचान परेड कोई ठोस सबूत नहीं है और इसे केवल अदालत में बयान की पुष्टि के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। (पैरा 52 और 54)

डी. आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता धारा 34 - दायरा - सामान्य आशय– प्रतिवर्ती जिम्मेदारी और रचनात्मक दायित्व – व्याख्या – धारा 34 आईपीसी सामान्य कानून से एक अपवाद है कि एक व्यक्ति अपने कार्य के लिए जिम्मेदार है, क्योंकि यह प्रदान करता है कि एक व्यक्ति भी जिम्मेदार हो सकता है, यदि उसके पास अपराध करने का "सामान्य इरादा" है

तो उसे दूसरों के कृत्य के लिए परोक्ष रूप से जिम्मेदार ठहराया जाता है। यह धारा किसी आपराधिक कृत्य को करने में संयुक्त दायित्व के सिद्धांत पर अधिनियमित की गई है। यह धारा केवल साक्ष्य का नियम है और कोई ठोस अपराध नहीं बनाती है – यह रचनात्मक दायित्व के सिद्धांत को मान्यता देती है और उस दायित्व का सार एक सामान्य आशय का अस्तित्व है। (पैरा 66 और 67)

ई. आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता की धारा 300 - हत्या और गैर इरादतन हत्या – भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के तहत गैर इरादतन हत्या है, जहां कार्य जानबूझकर या ज्ञान या जानने के साधनों के साथ किया जाता है, जो कार्य के प्राकृतिक परिणाम हैं – अभियोजन पक्ष के गवाह और अपीलकर्ताओं के मध्य कोई पूर्व शत्रुता नहीं दिखाई गई है – पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार मृतक के बन्दूक के घाव पर कालापन और टैटू दिखाई दे रहा है, जो इस तथ्य का संकेत है कि अपीलकर्ता द्वारा नजदीक से गोली चलाई गई थी - मौत सदमे और रक्तस्राव के कारण हुई थी - उच्च न्यायालय ने निचली अदालत द्वारा अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराए जाने को उचित ठहराया। (पैरा 58, 78, 82 और 85)

अपील निरस्त। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. कार्तिक मल्हार बनाम बिहार राज्य, (1996) 1 एससीसी 614
2. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सम्मान दास; (1972)3 एससीसी 201
3. खुर्शीद अहमद बनाम जम्मू कश्मीर राज्य; (2018) 7 एससीसी 429
4. मो. रोजली अली बनाम असम राज्य; (2019) 19 एससीसी 567
5. कुलविंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य (2015) 6 एससीसी 674
6. हरबंस कौर बनाम हरियाणा राज्य; (2005) 9 एससीसी 195
7. सुरिंदर कुमार बनाम पंजाब राज्य; एआईआर 2020 एससी303
8. एम. नागेश्वर रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (एससी) 2022 सीआरएलजे 2254
9. परमहंस यादव और सदानंद त्रिपाठी बनाम बिहार राज्य और अन्य; एआईआर 1987 एससी 955
10. हरि नाथ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; एआईआर 1988 एससी 345
11. मलखानसिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य; (2003) 5 एससीसी 746
12. लाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2003) 12 एससीसी 554
13. प्रमोद मंडल बनाम बिहार राज्य; (2004) 13 एससीसी 150
14. आपराधिक अपील संख्या 740/2018; राजा बनाम राज्य द्वारा पुलिस निरीक्षक निर्णित दिनांक 10.12.2019
15. आपराधिक अपील संख्या 288/2022; कृष्णमूर्ति @ गुनोडु बनाम सेंट ऑफ कर्णा। (SC) दिनांक 16.2.2022 को निर्णय लिया गया
16. सुदीप क्र. सेन @ बिल्टू एवं अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य.; (2016) 3 एससीसी 26
17. बालू @ बाला सुब्रमण्यम और अन्य बनाम राज्य (पांडिचेरी का केन्द्र शासित प्रदेश); (2016) 15 एससीसी 471
18. ए.पी. राज्य बनाम एम. सोहन बाबू; (2010) 15 एससीसी 69: (2013) 2 एससीसी (सीआरआई) 123: 2010 एससीसी
19. सतीश नारायण सावंत बनाम गोवा राज्य; (2009) 17 एससीसी 724: (2011) 2 एससीसी (सीआरआई) 110 2009 एससीसी ऑनलाइन एससी 1638
20. अब्दुल वहीद खान बनाम ए.पी. राज्य; (2002) 7 एससीसी 175: 2005 एससीसी (सीआरआई) 1301
21. ए.पी. राज्य बनाम रायवरापु पुन्नय्या; (1976) 4 एससीसी 382: 1976 एससीसी (सीआरआई) 659

(माननीय न्यायमूर्ति विक्रम डी चौहान द्वारा प्रदत्त)

1. 2010 की जेल अपील संख्या 7728 में अपीलकर्ता के लिए न्यायमित्र श्री गगन प्रताप सिंह और 2010 की आपराधिक अपील संख्या 7484 में अपीलकर्ता के वकील श्री अनादि कृष्ण नारायण राज्य के लिए एजीए को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

2. वर्तमान अपील अपीलकर्ताओं द्वारा विशेष न्यायाधीश (डीएए), आगरा द्वारा पारित 20 अक्टूबर, 2010 के फैसले और आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है। विवादित फैसले के माध्यम से, अपीलकर्ताओं-कैलाश और बाबा ठाकुर @ प्रवेश कुमार सिंह को आईपीसी की धारा 394 के तहत दोषी ठहराया गया है और 10 साल के कठोर कारावास और 5000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई है। इसके अलावा, अपीलकर्ताओं को धारा 302/34 आईपीसी के तहत दोषी ठहराया गया है और आजीवन कारावास और 10,000 रुपये जुर्माने की सजा सुनाई गई है; अपीलकर्ता-कैलाश को भी आईपीसी की धारा 411 के तहत दोषी ठहराया गया है और 2 साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है; अपीलकर्ता-कैलाश को शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत दोषी ठहराया गया

है और 3 साल के कठोर कारावास और 10,000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई है।

प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि 23 जून, 2005 को शाम लगभग 6.30 बजे, मुखबिर (पीडब्ल्यू 1) बबुआ अपने बेटे असलम (पीडब्ल्यू 2) के साथ मुखबिर के दूसरे बेटे आरिफ से मिलने के लिए मंटोला रोड पर टेम्पो स्टैंड पर जा रहे थे। जब वे सुभाष रोड के पास पहुंचे, तो एक कपड़ा एजेंट अमर नाथ (पीडब्ल्यू 4) ने फोन किया कि उसका सामान जबरदस्ती ले जाया गया है और उपरोक्त संकट कॉल पर, मुखबिर और उसके बेटे ने देखा कि दो व्यक्ति पावरहाउस की ओर भाग रहे थे जिसमें एक के पास देसी पिस्तौल और एक बैग था और दूसरे आरोपी के पास देसी पिस्तौल थी। आरिफ और असलम (पीडब्ल्यू2) के बेटे अमर नाथ की फोन कॉल सुनकर शाहिद अनवर, मो. शाहिद, फतेह सिंह (टेम्पो चालक), इल्बास, राकेश शर्मा, मुहीउद्दीन और अमर नाथ उपरोक्त आरोपियों को पकड़ने के लिए दौड़ने लगे और एक आरोपी-व्यक्ति को पकड़ लिया, जिसने पकड़े जाने पर गोली चला दी, जिससे शिकायतकर्ता के बेटे आरिफ को चोट लगी और उसी के परिणामस्वरूप, आरोपी व्यक्ति को मुक्त कर दिया गया और उसी अवसर पर एक टेम्पो चालक ने आरोपी व्यक्ति के साथ अपने टेम्पो को टक्कर मार दी। इसके कारण वह घायल हो गया और नीचे गिर गया। इसके बाद, अमर नाथ को अपना बैग वापस मिला, जिसे आरोपी व्यक्ति ने जबरदस्ती ले लिया और जब शिकायतकर्ता और उसका बेटा असलम मौके पर पहुंचे, तो आरोपी के हाथ में देसी पिस्तौल थी और उसकी जेब में चार जिंदा कारतूस थे, जिसे हिरासत में ले लिया गया। आरोपी व्यक्ति ने बताया कि उसका नाम कैलाश पुत्र अशर्फी लाल है. घायल आरिफ को असलम और अन्य व्यक्ति अस्पताल लेकर आए और बीच में पुलिस कर्मी आ गए. अमर नाथ के हथियार कारतूस और बैग को पुलिस स्टेशन में जमा किया गया था और नसरुद्दीन द्वारा लिखे जाने के बाद प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी और उसी के आधार पर 2005 का केस क्राइम नंबर 98, धारा 394, 411, 302 आईपीसी के तहत और 2005 का केस क्राइम नंबर 99 धारा 25 आर्म्स एक्ट के तहत उसी दिन 19.20 बजे दर्ज किया गया था।

4. वर्तमान मामले में जांच की गई और 23 जून, 2005 को मृतक का पंचायतनामा तैयार किया गया। 23 जून, 2005 को आगरा के एसएन अस्पताल में 20.20 बजे पंचायतनामा आयोजित किया गया और इसे 22.05 बजे पूरा किया गया। पंचायतनामा के पंच गवाह हाजी मो. गुलफाम, अब्दुल हनीफ, मो. मुइम, शमीमोद्दीन, अलाउद्दीन और पंच गवाहों की राय के अनुसार आरिफ की मौत बंदूक की चोट के कारण हुई। तत्पश्चात्, शव को पोस्टमार्टम के लिए भेजा गया और 24 जून, 2005 को सुबह 10.00 बजे पोस्टमार्टम किया गया। पोस्टमार्टम डॉ. एपी सिंह (पीडब्ल्यू-6) ने किया। पोस्टमार्टम रिपोर्ट में निम्नलिखित चोटें पाई गईं: –

"ऊपरी भाग में पेट की पूर्ववर्ती दीवार पर 0.5 सेमी और मध्य रेखा में 0.5 सेमी की दूरी पर स्थित 0.4 सेमी x 0.4 सेमी प्रवेश वाली बन्दूक का घाव ज़ेफिस्टरम से 2 सेमी नीचे के स्तर पर स्थित है। जांच करने पर गहरी गुहा पेरिटोनियल गुहा पर पहुंचती है। कालापन और जलना उपस्थित थे। । तीसरी लम्बर कशेरुका का फ्रेक्चर। इस हड्डी से धातु की गोली 3 सेमी X 0.8 सेमी बरामद की गई है। 5. पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार मृतक आरिफ की मौत पोस्टमार्टम से पहले की चोट के परिणामस्वरूप सदमे और रक्तस्राव के कारण हुई। जांच अधिकारी ने 23 जून, 2005 को घटना स्थल का नक्शा नज़री तैयार की। 8 सितम्बर, 2005 को जांच अधिकारी द्वारा आरोपी बाबा ठाकुर @ प्रवेश कुमार सिंह के संबंध में पहचान की कार्यवाही की गई।

6. जांच के बाद, जांच अधिकारी द्वारा अपीलकर्ताओं के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था।

7. ट्रायल कोर्ट ने 23 जनवरी, 2006 को अपीलकर्ता-कैलाश के खिलाफ धारा 25 आर्म्स एक्ट और आईपीसी की धारा 411 के तहत आरोप तय किए। ट्रायल कोर्ट ने अपीलकर्ताओं कैलाश और बाबा ठाकुर @ प्रवेश कुमार सिंह के खिलाफ धारा 394 और 302 के साथ धारा 34 आईपीसी के तहत आरोप तय किए। अपीलकर्ताओं ने आरोपों से इनकार किया और उन पर मुकदमा चलाने का दावा किया।

8. अभियोजन पक्ष ने अपने मामले के समर्थन में निम्नलिखित गवाह पेश किए: –

(क) बबुआ (पीडब्ल्यू1), जो मामले का मुखबिर है, ने कहा है कि 23 जून, 2005 को शाम लगभग 530 बजे मुखबिर और उसका पुत्र असलम टेम्पो स्टैंड मंटोला में कार्यरत अपने दूसरे पुत्र आरिफ से मिलने गए और जब वे शुभस नगर पहुंचे तो उन्होंने एजेंट अमर नाथ की फोन कॉल सुनी कि उसे लूट लिया गया है और फिर शिकायतकर्ता और उसके बेटे ने दो आरोपी व्यक्तियों को बिजलीघर की ओर भागते हुए देखा। जिसमें से एक के हाथ में देसी पिस्तौल और एक बैग था और दूसरे व्यक्ति के पास देसी पिस्तौल थी। परेशान करने वाली कॉल सुनने पर, उनके बेटे आरिफ और असलम और अन्य व्यक्ति शाहिद और अनवर और मो. शाहिद कुरैशी, फतेह सिंह (टेम्पो चालक), मो. इलियास और अन्य उपरोक्त आरोपी व्यक्तियों की ओर भागे; जिस व्यक्ति का बैग जबरदस्ती ले जाया गया, वह भी आरोपी व्यक्तियों के पीछे भाग गया। आरोपी व्यक्तियों की ओर भागते समय उसके बेटे आरिफ ने एक आरोपी व्यक्ति को पकड़ लिया। हालांकि, उसने अपने बेटे आरिफ पर गोली चलाई और उसी के परिणामस्वरूप, आरिफ को बन्दूक से चोट लगी; उपरोक्त आरोपी व्यक्ति को आरिफ की हिरासत से छोड़ दिया गया था। बाद में एक टेम्पो चालक ने

उक्त आरोपी व्यक्ति को अपने टेम्पो से टक्कर मार दी, जिसके परिणामस्वरूप वह घायल हो गया और नीचे गिर गया। बीच की अवधि में, अमर नाथ ने घायल आरोपी व्यक्ति से बैग ले लिया। मुखबिर ने घायल आरोपी व्यक्ति की जेब से देसी पिस्तौल और चार जिंदा कारतूस छीन लिए। घायल आरोपी व्यक्ति ने अपना नाम कैलाश पुत्र अशर्फी कश्यप बताया और आगे बताया कि अन्य आरोपी व्यक्ति बाबा सिंधी निवासी गुरुद्वारा एटा है।

इसके बाद, शिकायतकर्ता (पीडब्ल्यू 1) ने अपने घायल बेटे आरिफ को अपने दूसरे बेटे असलम और अन्य व्यक्तियों की मदद से चिकित्सा उपचार के लिए अस्पताल भेजा। घटना स्थल पर पुलिसकर्मी पहुंचे और उनके निर्देश पर नुरुद्दीन द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई और आरोपी कैलाश के पास से बरामद देसी पिस्तौल, जिंदा कारतूस और अमर नाथ के बैग को पुलिस स्टेशन रकाबगंज ले जाया गया और प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई। गवाह ने 23 जून, 2005 की प्रथम सूचना रिपोर्ट की पहचान की है और इसे ट्रायल कोर्ट के समक्ष एक्स.के.1 के रूप में चिह्नित किया गया था; बरामद देसी पिस्तौल और जिंदा कारतूस भी पुलिस को सौंप दिए गए और एक फ़र्द बरामदगी तैयार किया गया और बरामद वस्तुओं को मुखबिर (पीडब्ल्यू 1) की उपस्थिति में सील कर दिया गया। शिकायतकर्ता ने यह भी कहा है कि मुस्तकीम और साजिद ने हस्ताक्षर किए थे और मुखबिर ने अपने अंगूठे का निशान दिया था; गवाह ने दिनांक 23 जून, 2005 के फ़र्द बरामदगी की पहचान की है और इसे ट्रायल कोर्ट के समक्ष एक्स-के.2 के रूप में चिह्नित किया गया था। गवाह ने आगे गवाही दी है कि घटना स्थल से भागने वाला आरोपी व्यक्ति बाबा सिंधी था और उसे बाबा ठाकुर के नाम से भी जाना जाता है। घटना के बाद वह अपने बेटे असलम, शाहिद, अनवर और राकेश शर्मा के साथ बाबा सिंधी @ बाबा ठाकुर की पहचान करने के लिए जेल गए; सभी चार व्यक्तियों ने आरोपी की पहचान की थी और पहचान ज्ञापन को एक्स.के.ए.3 के रूप में चिह्नित किया गया है। देसी पिस्तौल और चार जिंदा कारतूस को एक्स.के.6 के रूप में प्रदर्शित किया गया था और अमर नाथ के बैग को एक्स.के.8 के रूप में प्रदर्शित किया गया था। गवाह ने आगे कहा है कि दोनों आरोपी व्यक्ति अदालत में मौजूद हैं और इसलिए उन्होंने ट्रायल कोर्ट के समक्ष आरोपी व्यक्ति की पहचान की है।

(ख) असलम (पी.डब्ल्यू.2), पुत्र हाजी बबुआ ने कहा है कि 23 जून, 2005 को यह घटना हुई थी। वह अपने पिता हाजी बबुआ के साथ शाम करीब 6.30 बजे अपने भाई से मिलने के लिए टेम्पो स्टैंड गया और जब वे सुभाष बाजार पहुंचे, तो उन्होंने अमर नाथ की फोन कॉल सुनी, जिसने चिल्लाकर कहा कि उसे लूट लिया गया है और गवाह ने देखा कि दो आरोपी व्यक्ति पावरहाउस की ओर भागे, जिसमें एक के पास देसी पिस्तौल और एक बैग था और दूसरे आरोपी के पास एक देसी पिस्तौल थी। परेशान करने वाली कॉल सुनने पर, आरिफ, शाहिद, अनवर और शाहिद कुरैशी और अन्य व्यक्ति उपरोक्त आरोपियों के पीछे गए और जब उन्होंने आरोपियों में से एक को पकड़ लिया, तो आरोपी व्यक्ति ने जान से मारने के इरादे से गोली चलाई और उसी के परिणामस्वरूप उसका भाई आरिफ गोली लगने से घायल हो गया। आरोपी व्यक्ति को हिरासत से बाहर कर दिया गया और वह भागने की कोशिश कर रहा था, इस बीच, एक टेम्पो चालक ने आरोपी व्यक्ति को टक्कर मार दी, जिसके परिणामस्वरूप, आरोपी व्यक्ति घायल हो गया और नीचे गिर गया। इसके बाद, अमर नाथ (पीडब्ल्यू 4) ने अपना बैग ले लिया; गवाह ने आगे कहा कि उसके पिता ने घायल आरोपी से देसी पिस्तौल और चार जिंदा कारतूस लिए। घायल आरोपी ने बताया कि उसका नाम कैलाश है और आरोपी व्यक्ति जो मौके से भाग गया है, उसका नाम बाबा सिंधी है। इस बीच, पुलिस आई और गवाह अन्य व्यक्तियों की मदद से उसके भाई को एसएन अस्पताल ले गया जहां डॉक्टरों ने उसके भाई को मृत घोषित कर दिया। गवाह ने अदालत में अपीलकर्ताओं की पहचान की है।

(ग) महावीर सिंह चौहान (पी.डब्ल्यू.3), एस.ओ. नाई की मंडी, आगरा ने उल्लेख किया है कि 23 जून, 2005 को उन्हें पुलिस स्टेशन रकाबगंज के अंतर्गत चौकी प्रभारी किला के रूप में तैनात किया गया था। उन्होंने कहा है कि उक्त तारीख को उन्होंने पंच गवाहों के सामने एसएन मेडिकल कॉलेज में मृतक आरिफ का पंचायतनामा किया था। गवाह ने पंचायतनामा की पहचान की है और ट्रायल कोर्ट के समक्ष इसे एक्स.के.4 के रूप में चिह्नित किया गया था। गवाह ने आगे उस पत्र को सी.एम.ओ. को प्रस्तुत किया है, फोटो लाश, चालान लाश उपरोक्त गवाह द्वारा भरा गया था और विधिवत हस्ताक्षरित किया गया था और इसे क्रमशः एक्स.के.5, एक्स.के.6 और एक्स.के.7 के रूप में चिह्नित किया गया था।

(घ) अमर नाथ (पी.डब्ल्यू.4), पुत्र स्वर्गीय श्री सेवाराम ने कहा है कि 23 जून, 2005 को वह एटा गया था और कपड़े के खुदरा विक्रेताओं से पैसे वसूलने के बाद उसने अपने बैग में पैसे रखे और सुभाष बाजार जा रहा था; जब वह शाम करीब 6.30 बजे टेम्पो स्टैंड के पास पहुंचा तो दो लोगों के पास देसी पिस्तौल और एक आरोपी व्यक्ति ने देसी पिस्तौल की बट से वार किया और उसके बाद जबरन बैग लेकर पावरहाउस की ओर भाग गए। गवाह ने डिस्ट्रेस कॉल किया और यह सुनकर, कुछ व्यक्ति आए और उन्हें पकड़ने के लिए आरोपी व्यक्ति की ओर दौड़े और उसी के परिणामस्वरूप, आरोपी व्यक्ति में से एक ने गोली चला दी; वर्तमान गवाह और आरिफ को चोटें आईं और आरोपी व्यक्ति को छोड़ दिया गया। बाद में, एक टेम्पो ने एक आरोपी व्यक्ति को टक्कर मार दी और गवाह का बैग बरामद कर लिया गया। इस बीच बंदूक से घायल हुए व्यक्ति के परिवार के सदस्य आए और एक आरोपी व्यक्ति

की हिरासत से देसी पिस्तौल और चार जिंदा कारतूस बरामद किए गए; मौके पर पकड़े गए आरोपी व्यक्ति ने अपना नाम कैलाश बताया और उसने अन्य आरोपियों का नाम भी बाबा ठाकुर बताया। घायल को अस्पताल ले जाया गया और मृतक के पिता पुलिस स्टेशन गए। उन्होंने यह भी कहा है कि पुलिस ने देसी पिस्तौल, जिंदा कारतूस और बैग की बरामदगी के संबंध में कागजात भी तैयार किए हैं। घटना पुरानी होने के कारण गवाह आरोपी व्यक्ति की पहचान नहीं कर पाया है।

(ङ) मनोज कुमार शुक्ला (पी.डब्ल्यू.5), पुलिस अधीक्षक मनियांव, लखनऊ ने कहा है कि 23 जून, 2005 को उन्हें पुलिस स्टेशन रकाबगंज में एचएम के रूप में तैनात किया गया था और वर्तमान मामले में बबुआ द्वारा दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट के आधार पर चिक एफआईआर दर्ज की गई थी। उन्होंने चिक एफआईआर की पहचान की है और इसे ट्रायल कोर्ट के समक्ष एक्स.के.9 के रूप में प्रदर्शित किया गया था।

(च) डा ए पी सिंह (पीडब्ल्यू 6), जिला महिला अस्पताल, हाथरस महामाया नगर ने कहा है कि 24 जून, 2005 को वह जिला महिला अस्पताल, आगरा में तैनात थे और उक्त तारीख को उन्होंने सुबह 10.00 बजे मृतक आरिफ का पोस्टमार्टम किया था; मृतक की मौत पोस्टमार्टम से पहले हुई बंदूक की चोट के कारण; हो सकता है कि 23 जून, 2005 को शाम 6.30 बजे उन्हें चोटें लगी हों और वे बंदूक की चोटें थीं।

(छ) बालेश्वर प्रसाद त्रिपाठी (पी.डब्ल्यू.7), एसआई, थाना कोतवाली ने कहा है कि 23 जून, 2005 को वह पुलिस स्टेशन रकाबगंज में एसआई के रूप में तैनात थे और जांच अधिकारी थे; उसी दिन उन्होंने नकल चिक, नकल रपट तैयार किया था और हेड मोहर्रिर मनोज कुमार, मुखबिर हाजी बबुआ का बयान दर्ज किया था और घटना स्थल का दौरा करने के बाद साइट प्लान भी तैयार किया था। 26 जून, 2005 को आरोपी कैलाश का बयान भी दर्ज किया गया था: पंचायतनामा गवाह का बयान दर्ज किया गया था और एसआई महावीर सिंह का बयान भी केस डायरी में दर्ज किया गया था: 1 जुलाई, 2005 को असलम और मुस्तकीम, मो. साजिद और राकेश शर्मा।

(ज) श्री अम्बेश चंद त्यागी (पी.डब्ल्यू.8), उप पुलिस अधीक्षक, गौतमबुद्ध नगर ने कहा है कि 9 जुलाई, 2005 को उन्हें प्रभारी निरीक्षक, पुलिस स्टेशन रकाबगंज के रूप में तैनात किया गया था। 11 जुलाई, 2005 को एसआई महावीर सिंह का बयान दर्ज किया गया। 16 जुलाई, 2005 को आरोपी बाबा ठाकुर को गिरफ्तार किया गया और उसका बयान दर्ज किया गया और उसे छिपाकर रखा गया। 10 अगस्त, 2005 को मुस्तकीम का वक्तव्य और 15 अगस्त, 2005 को मोहम्मद मुश्ताक और साजिद का वक्तव्य रिकॉर्ड किया गया। 12 सितम्बर, 2005 को बरामद वस्तुओं को फोरेंसिक जांच के लिए भेजा गया था। 15 अगस्त, 2005 को आरोपी कैलाश के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया था। 8 सितम्बर, 2007 को बाबा ठाकुर की पहचान की गई और उसके बाद आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया जो प्रदर्श क-5 है।

9. अभियुक्त व्यक्तियों ने अपने बचाव के समर्थन में किसी भी गवाह से पूछताछ नहीं की और 26 जुलाई, 2010 को ट्रायल कोर्ट द्वारा सीआरपीसी की धारा 313 के तहत उनका बयान दर्ज किया गया।

10. अपीलकर्ता-कैलाश ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के तहत अपने बयान में अपने खिलाफ आरोपों से इनकार किया है और कहा है कि वह अपने रिश्तेदार से मिलने आया था और एक टेम्पो ने उसे टक्कर मार दी है और परिणामस्वरूप उसे चोट लगी है और सभी टेम्पो चालक इकट्ठा हो गए हैं। उसने मृतक पर गोली नहीं चलाई है और न ही उसके पास कोई रिवॉल्वर है।

11. अपीलकर्ता-बाबा ठाकुर ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के तहत अपने बयान में आरोपों से इनकार किया है और कहा है कि वह घटना के स्थान पर मौजूद नहीं थे और उन्हें घटना के संबंध में कोई जानकारी नहीं है। यह आगे कहा गया है कि गवाह ने अपीलकर्ता की पहचान नहीं की है।

12. अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार 23 जून, 2005 को शाम लगभग 6:30 बजे जब पी.डब्ल्यू.4 अमरनाथ पावरहाउस क्षेत्र, पुलिस स्टेशन - रकाबगंज, जिला - आगरा के पास टिफिन से भरे बैग के साथ यात्रा कर रहा था, जिसमें नकदी रखी गई थी, तो अपीलकर्ता कैलाश और बाबा ठाकुर उर्फ प्रवेश कुमार ने अमरनाथ का बैग छीन लिया। उसी समय मुखबिर (पीडब्ल्यू 1) बबुआ अपने बेटे असलम (पीडब्ल्यू 2) के साथ मुखबिर के दूसरे बेटे आरिफ से मिलने के लिए मंटोला रोड पर टेम्पो स्टैंड पर जा रहा था। अमरनाथ की फोन कॉल सुनने पर कि आरोपी व्यक्ति जबरन नकदी से भरा बैग ले गए हैं; मुखबिर और उसके बेटे ने आरोपी व्यक्तियों को पावरहाउस की ओर भागते हुए देखा, एक के पास देसी पिस्तौल और एक बैग था और दूसरे आरोपी व्यक्ति के पास देसी पिस्तौल थी।

13. घबराई हुई कॉल सुनने पर, मुखबिर मृतक के बेटे-आरिफ और असलम (पीडब्ल्यू 2), शाहिद अनवर, मो. शाहिद, फतेह सिंह (टेम्पो चालक), इलबास, राकेश शर्मा, मुहीउद्दीन और अमर नाथ ने उपरोक्त आरोपियों को पकड़ने के लिए दौड़ना शुरू कर दिया और एक आरोपी-व्यक्ति को पकड़ लिया, जिसने पकड़े जाने पर गोली चला दी, जिससे शिकायतकर्ता के बेटे आरिफ को चोट लगी, जिसे अग्नेयास्त्र की चोट लगी और उसी के परिणामस्वरूप, उपरोक्त आरोपी व्यक्ति को छोड़ दिया गया और उसी समय, एक टेम्पो चालक ने आरोपी व्यक्ति के साथ अपने टेम्पो को टक्कर मार दी। उसी के परिणामस्वरूप, वह घायल हो गया और नीचे गिर गया। इसके बाद, अमर नाथ को अपना बैग वापस मिला, जिसे आरोपी व्यक्ति ने

जबरदस्ती ले लिया और जब मुखबिर और उसका बेटा असलम उक्त स्थान पर पहुंचे, तो आरोपी के हाथ में देसी पिस्तौल थी और उसकी जेब में चार जिंदा कारतूस थे, जिसे हिरासत में ले लिया गया।

14. उपरोक्त आरोपी व्यक्ति ने सूचित किया कि उसका नाम कैलाश पुत्र अशर्फी लाल है। आरोपी कैलाश ने अन्य आरोपी व्यक्ति का नाम बाबा सिंधी बताया, गुरुद्वारा कॉलोनी के पास, एटा, जो घटना स्थल से भाग गया। घायल आरिफ को असलम और अन्य लोग अस्पताल लेकर आए और बीच में पुलिस कर्मी आ गए। अमर नाथ की देसी पिस्तौल, कारतूस और बैग को पुलिस स्टेशन में जमा किया गया था और नसरुद्दीन द्वारा बताए जाने के बाद प्राथमिकी दर्ज की गई थी।

15. अभियोजन पक्ष के गवाहों ने अभियोजन की कहानी का समर्थन किया है। अमरनाथ ने अभियोजन पक्ष का समर्थन करते हुए कहा है कि 23 जून, 2005 को वह एटा गया और कपड़ा व्यापारियों से नकदी बरामद करने के बाद जो एक बैग में रखा गया था; एटा से आगरा बस से वापस आए। शाम करीब 6:30 बजे बस से उतरने और सुभाष बाजार से गुजरने के बाद देसी पिस्तौल के साथ दो लोग आए। एक व्यक्ति ने उसे बट से मारा और दूसरा व्यक्ति बैग छीनकर पावरहाउस की ओर भाग गया। जब अमरनाथ ने फोन किया तो आम लोग आरोपी व्यक्ति की ओर दौड़े और पकड़े जाने पर गोली चलाने वाले एक व्यक्ति को पकड़ लिया और उसी के परिणामस्वरूप, आरिफ घायल हो गया और पकड़े गए व्यक्ति को छोड़ दिया गया, लेकिन टेम्पो से टकराने के बाद गिर गया। अमरनाथ का बैग बरामद किया गया था और उपरोक्त व्यक्ति के पास से देसी पिस्तौल और जिंदा कारतूस भी बरामद किए गए थे, जिसे पकड़ा गया था; उक्त व्यक्ति ने अपना नाम कैलाश बताया और आरोपी के नाम का खुलासा किया जो बाबा सिंधी के रूप में भाग गया। P.W.4 के उपर्युक्त कथन को P.W.1 द्वारा समर्थित किया जाता है जो मृतक का पिता है और P.W.2 जो मृतक का भाई है। पी.डब्ल्यू.1 और पी.डब्ल्यू.2 ने ट्रायल कोर्ट के समक्ष अपीलकर्ताओं की पहचान की। आरोपी बाबा ठाकुर की पहचान जेल में अभियोजन पक्ष के गवाह ने भी की थी।

16. मृतक का पोस्टमार्टम 24 जून, 2005 को पीडब्ल्यू 6 - डॉ एपी सिंह द्वारा किया गया था; उपरोक्त गवाह ने पोस्टमार्टम रिपोर्ट साबित कर दी है और इसे ट्रायल कोर्ट के समक्ष एक्स का -11 के रूप में चिह्नित किया गया था। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार- आरिफ की मौत एंटी-मॉर्टम बन्दूक की चोट के परिणामस्वरूप सदमे और रक्तस्राव के कारण हुई। मृतक के पेट में गोली लगी है। कालापन और टैटू मौजूद था। लम्बर वर्टिब्रा की हड्डी टूट गई थी और मृतक के शरीर से एक गोली बरामद की गई थी। पीडब्ल्यू 6 ने आगे गवाही दी है कि बन्दूक की चोट से मौत संभव थी। उक्त गवाह की राय थी कि मौत शाम 6 बजे हो सकती थी।

17. अपीलकर्ताओं के वकील द्वारा यह प्रस्तुत किया जाता है कि वर्तमान मामले में पीडब्ल्यू 1 - मृतक के पिता और पीडब्ल्यू 2 - असलम (मृतक के भाई) स्वतंत्र गवाह नहीं हैं और पीडब्ल्यू 4 की गवाही अभियोजन पक्ष के मामले को साबित नहीं करती है। ट्रायल कोर्ट ने पाया है कि अपीलकर्ताओं और पीडब्ल्यू 1 और पीडब्ल्यू 2 के बीच कोई दुश्मनी नहीं दिखाई गई है। ट्रायल कोर्ट ने आगे पाया है कि उपरोक्त गवाहों की उपस्थिति इस आधार पर दिखाई गई है कि वे मृतक की बहन की शादी की बातचीत के लिए गए थे जो एक स्वाभाविक घटना है।

18. एक गवाह को आम तौर पर स्वतंत्र माना जाता है जब तक कि वह उन स्रोतों से बाहर न निकले जो दागदार होने की संभावना रखते हैं और आमतौर पर इसका मतलब है कि जब तक गवाह के पास आरोपी के खिलाफ दुश्मनी जैसे कारण नहीं हैं, उसे झूठा फंसाने की इच्छा रखते हैं। आम तौर पर एक करीबी रिश्तेदार असली अपराधी की जांच करने और एक निर्दोष व्यक्ति को गलत तरीके से फंसाने वाला आखिरी व्यक्ति होगा। अक्सर ऐसा होता है कि अपराध पीड़ित के एक करीबी रिश्तेदार द्वारा देखा जाता है, जिसकी अपराध स्थल पर उपस्थिति स्वाभाविक होगी। ऐसे गवाह के साक्ष्य को स्वतः ही नहीं छोड़ा जा सकता है, जिसके लिए गवाह को दिलचस्पी के रूप में लेबल किया जा सकता है। यह ध्यान देने योग्य है कि एक गवाह जो संबंधित है और एक इच्छुक गवाह के बीच अंतर है। एक रिश्तेदार एक प्राकृतिक गवाह है। कार्तिक मल्हार बनाम बिहार राज्य, (1996) 1 एससीसी 614 मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने राय दी है कि एक करीबी रिश्तेदार जो एक प्राकृतिक गवाह है, को एक इच्छुक गवाह के रूप में नहीं माना जा सकता है, क्योंकि "रुचि" शब्द यह मानता है कि गवाह को आरोपी को किसी न किसी तरह से किसी न किसी कारण से दोषी ठहराने में कुछ दिलचस्पी होनी चाहिए।

19. केवल इसलिए कि गवाह परिवार के सदस्य हैं, उनके साक्ष्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। जब रुचि का आरोप लगाया जाता है, तो इसे स्थापित किया जाना चाहिए। केवल यह बयान कि मृतक के रिश्तेदार होने के नाते उनके द्वारा आरोपी को गलत तरीके से फंसाने की संभावना है, उन सबूतों को खारिज करने का आधार नहीं हो सकता है जो अन्यथा ठोस और विश्वसनीय हैं। संबंध गवाह की विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाला कारक नहीं है। यह अक्सर नहीं होता है कि एक रिश्तेदार वास्तविक अपराधी को नहीं छिपाएगा और एक निर्दोष व्यक्ति के खिलाफ आरोप लगाएगा। यदि झूठे आरोप लगाने की दलील दी जाती है तो इसकी नींव रखी जानी चाहिए। गवाह के रूप में परिवार के सदस्यों से पूछताछ करने पर कानून में कोई रोक नहीं है। एक संबंधित गवाह

के साक्ष्य पर भरोसा किया जा सकता है बशर्ते वह भरोसेमंद हो।

20. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सम्मान दास, (1972) 3 एससीसी 201 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की: –

"यह सर्वविदित है कि एक मारे गए व्यक्ति के करीबी रिश्तेदार असली हमलावर को छोड़ने के लिए सबसे अनिच्छुक हैं और हमलावर के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को गलत तरीके से शामिल करते हैं..."

21. खुर्शीद अहमद बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य (2018) 7 एससीसी 429 में, संबंधित गवाह के साक्ष्य के मुद्दे पर सुप्रीम कोर्ट ने निम्नानुसार टिप्पणी की: –

"कानून में ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं है कि रिश्तेदारों को असत्य गवाहों के रूप में माना जाए। इसके विपरीत, जब पक्षपात की दलील यह दिखाने के लिए उठाई जाती है कि गवाहों के पास वास्तविक अपराधी को बचाने और आरोपी को गलत तरीके से फंसाने का कारण था, तो कारण दिखाया जाना चाहिए।

22. सुप्रीम कोर्ट ने रोजाली अली वी बंधित गवाह के संबंध में असम राज्य, (2019) 19 एससीसी 567 में निम्नानुसार टिप्पणी की गई है: –

"13. इस विवाद के संबंध में कि सभी प्रत्यक्षदर्शी मृतक के करीबी रिश्तेदार हैं, यह अब तक अच्छी तरह से तय है कि एक संबंधित गवाह को केवल पीड़ित का रिश्तेदार होने के आधार पर "इच्छुक" गवाह नहीं कहा जा सकता है। इस न्यायालय ने कई मामलों में "इच्छुक" और "संबंधित" गवाहों के बीच अंतर को स्पष्ट किया है, जिसमें कहा गया है कि एक गवाह को केवल तभी हितबद्ध कहा जा सकता है जब वह मुकदमेबाजी के परिणाम से कुछ लाभ प्राप्त करता है, जिसका अर्थ यह होगा कि आपराधिक मामले के संदर्भ में गवाह का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हित है कि पूर्व शत्रुता या अन्य कारणों से आरोपी को दंडित किया जाए, और इस प्रकार अभियुक्त को झूठा फंसाने का एक मकसद है (उदाहरण के लिए, देखें राजस्थान राज्य बनाम कल्कि [राजस्थान राज्य बनाम कल्कि, (1981) 2 एससीसी 752: 1981 एससीसी (सीआरआई) 593]; अमित वी। उत्तर प्रदेश राज्य [अमित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2012) 4 एससीसी 107: (2012) 2 एससीसी (सीआरआई) 590] ; और गंगाभवानी बनाम रायपति वेंकट रेड्डी [गंगाभवानी बनाम रायपति वेंकट रेड्डी, (2013) 15 एससीसी 298: (2014) 6 एससीसी (सीआरआई) 182])। हाल ही में, गणपति वी में इस अंतर को दोहराया गया था। टी.एन. राज्य [गणपति बनाम तमिलनाडु राज्य, (2018) 5 एससीसी 549: (2018) 2 एससीसी (सीआरआई) 793] राजस्थान राज्य बनाम कल्कि [राजस्थान राज्य बनाम कल्कि, (1981) 2 एससीसी 752: 1981 एससीसी (सीआरआई) 593] मामले में तीन न्यायाधीशों की पीठ के फैसले का उल्लेख करते हुए: (गणपति बनाम तमिलनाडु राज्य) 593] (2018) 5 एससीसी 549: (2018) 2 एससीसी (सीआरआई) 793] , एससीसी पी 555, पैरा 14)।

"संबंधित" "रुचि" के बराबर नहीं है। एक गवाह को "रुचि" केवल तभी कहा जा सकता है जब वह मुकदमेबाजी के परिणाम से कुछ लाभ प्राप्त करता है; एक नागरिक मामले में डिक्री में, या एक आरोपी व्यक्ति को दंडित देखने में। एक गवाह जो एक प्राकृतिक है और किसी मामले की परिस्थितियों में एकमात्र संभावित प्रत्यक्षदर्शी है, उसे "रुचि" नहीं कहा जा सकता है।

14. आपराधिक मामलों में, अक्सर ऐसा होता है कि अपराध पीड़ित के एक करीबी रिश्तेदार द्वारा देखा जाता है, जिसकी अपराध स्थल पर उपस्थिति स्वाभाविक होगी। गवाह को हितबद्ध के रूप में लेबल करके ऐसे गवाह के साक्ष्य को स्वचालित रूप से खारिज नहीं किया जा सकता है। वास्तव में, आपराधिक मामलों में इच्छुक गवाहों के संबंध में सबसे शुरुआती बयानों में से एक इस अदालत द्वारा दलीप सिंह बनाम दलीप सिंह मामले में दिया गया था। पंजाब राज्य [दलीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, 1954 एससीआर 145 : एआईआर 1953 एससी 364: 1953 क्रि एलजे 1465], जिसमें इस न्यायालय ने कहा: (एआईआर पी 366, पैरा 26)

"एक गवाह को आम तौर पर स्वतंत्र माना जाता है जब तक कि वह उन स्रोतों से नहीं निकलता है जिनके दागी होने की संभावना है और आमतौर पर इसका मतलब है कि जब तक गवाह के पास आरोपी के खिलाफ दुश्मनी जैसे कारण नहीं हैं, उसे झूठा फंसाने की इच्छा रखते हैं। आम तौर पर एक करीबी रिश्तेदार असली अपराधी को स्क्रीन करने और एक निर्दोष व्यक्ति को गलत तरीके से फंसाने वाला आखिरी व्यक्ति होगा।

15. संबंधित गवाह के मामले में, न्यायालय उसकी गवाही को स्वाभाविक रूप से दूषित नहीं मान सकता है, और केवल यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि साक्ष्य स्वाभाविक रूप से विश्वसनीय, संभावित, ठोस और सुसंगत है। हम इस मामले में इस न्यायालय की टिप्पणियों का जयबालन बनाम में उल्लेख कर सकते हैं। राज्य (पांडिचेरी संघ राज्य क्षेत्र) [जयबालन बनाम राज्य (पांडिचेरी संघ राज्य क्षेत्र), (2010) 1 एससीसी 199: (2010) 2 एससीसी (सीआरआई) 966] : (एससीसी पी. 213, पैरा 23) "23. हमारा विचार है कि ऐसे मामलों में जहां इच्छुक गवाहों के साक्ष्य से निपटने के लिए अदालत को बुलाया जाता है, ऐसे गवाहों के साक्ष्य की सराहना करते समय अदालत का दृष्टिकोण पक्षपातपूर्ण नहीं होना चाहिए। अदालत को इच्छुक गवाहों द्वारा दिए गए सबूतों की सराहना करने और स्वीकार करने में सावधानी बरतनी चाहिए, लेकिन अदालत को ऐसे सबूतों पर संदेह नहीं होना चाहिए। न्यायालय का प्राथमिक प्रयास निरंतरता की तलाश करना होना चाहिए। एक गवाह के साक्ष्य को केवल इसलिए नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है या बाहर नहीं फेंका जा सकता है

क्योंकि यह एक ऐसे व्यक्ति के मुंह से आता है जो पीड़ित से निकटता से संबंधित है।

23. माननीय उच्चतम न्यायालय ने कुलविंदर सिंह बनाम सुप्रीम कोर्ट पंजाब राज्य, (2015) 6 एससीसी 674 में कहा कि अभियोजन पक्ष के मामले को केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि स्वतंत्र गवाहों से पूछताछ नहीं की गई है, जब रिकॉर्ड पर सबूतों के अवलोकन पर अदालत ने पाया कि अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किया गया मामला भरोसेमंद है। जब आधिकारिक गवाहों के साक्ष्य भरोसेमंद और विश्वसनीय हैं, तो उनके सबूतों के आधार पर दोषसिद्धि को आराम नहीं देने का कोई कारण नहीं है।

24. हरबंस कौर बनाम हरियाणा राज्य, (2005) 9 एससीसी 195, माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा कि:

"कानून में ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं है कि रिश्तेदारों को असत्य गवाहों के रूप में माना जाए। इसके विपरीत, जब पक्षपात की दलील यह दिखाने के लिए उठाई जाती है कि गवाहों के पास वास्तविक अपराधी को बचाने और आरोपी को गलत तरीके से फंसाने का कारण था, तो कारण दिखाया जाना चाहिए।

25. यह सुरिंदर कुमार बनाम पंजाब राज्य एआईआर 2020 सुप्रीम कोर्ट 303 मामले में हाल ही में दिए गए निर्णय में माना गया है कि केवल इसलिए कि अभियोजन पक्ष ने किसी भी स्वतंत्र गवाह से पूछताछ नहीं की है, इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलेगा कि अपीलकर्ता को गलत तरीके से फंसाया गया है।

26. एम. नागेश्वर रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (एससी) – 2022 सीआरएलजे 2254 सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि केवल इसलिए कि गवाह मृतक के रिश्तेदार थे, उनके साक्ष्य को केवल उपरोक्त आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है।

27. यह भी देखा जाना चाहिए कि वर्तमान मामले में ऐसी कोई सामग्री नहीं दिखाई गई है जिससे यह प्रदर्शित हो कि पी.डब्ल्यू.1 और पी.डब्ल्यू.2 और आरोपी व्यक्ति के बीच कोई पूर्व शत्रुता थी। इस बात का कोई कारण नहीं बताया गया है कि उपरोक्त गवाह अपीलकर्ता के पक्ष को गलत तरीके से क्यों फंसाएगा। इस मामले का एक और पहलू यह है कि वर्तमान मामले में पीडब्ल्यू 4 - अमरनाथ एक स्वतंत्र गवाह है जो पैसे की थैली के साथ यात्रा कर रहा था और घटना उपरोक्त गवाह की उपस्थिति में हुई थी। उक्त गवाह उपरोक्त घटना का प्रत्यक्षदर्शी है और इस तरह यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करने के लिए कोई स्वतंत्र गवाह नहीं है।

28. अपीलकर्ता के वकील द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया जाता है कि वर्तमान मामले में, प्रथम सूचना रिपोर्ट के लेखक - नूरुद्दीन और टेम्पो चालक जिसने आरोपी कैलाश को टक्कर मारी थी, से पूछताछ नहीं की गई है और अभियोजन पक्ष द्वारा एक महत्वपूर्ण सबूत को कब्जे में लिया गया है और इस तरह अपीलकर्ता को कथित अपराध के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता था। वर्तमान मामले में, प्रथम सूचना रिपोर्ट को प्रथम सूचनादाता के निर्देश पर लिखा गया था और सूचनादाता ने ट्रायल कोर्ट के समक्ष शपथ लेकर गवाही दी है और प्रथम सूचना रिपोर्ट को साबित किया है, उपरोक्त परिस्थितियों में प्रथम सूचना रिपोर्ट के लेखक को पेश न करने से अभियोजन पक्ष के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसके अलावा, टेम्पो चालक जिसने अपीलकर्ता कैलाश को टेम्पो से टक्कर मारी थी, उसे पीडब्ल्यू -1, पीडब्ल्यू -2 और पीडब्ल्यू -4 द्वारा देखा गया था और अपीलकर्ता कैलाश को घटना के स्थान पर देशी पिस्तौल और बैग के साथ पकड़ा गया था और अभियोजन पक्ष द्वारा अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही से यह साबित हो गया है और इस तरह टेम्पो चालक की जांच न करने से अभियोजन पक्ष के मामले पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

29. अपीलकर्ता के वकील द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया जाता है कि गवाहों के बयान में विरोधाभास है। यह प्रस्तुत किया गया है कि एक गवाह ने कहा है कि वह सौ मीटर दूर था और आरोपी व्यक्ति को दौड़कर पकड़ लिया, जबकि दूसरे गवाह ने कहा है कि गवाह घटना के स्थान के पास था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि मुखबिर ने कहा है कि कथित घटना शाम 5:30 बजे की है, जबकि अन्य गवाह ने कहा है कि कथित घटना शाम 6:30 बजे की है और इस तरह विरोधाभास है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि अभियोजन पक्ष के गवाह संख्या 1 और 2 का बयान वर्ष 2008 में ट्रायल कोर्ट के समक्ष दर्ज किया गया था और घटना 23 जून, 2005 को हुई थी और इस तरह बयान घटना की तारीख के तीन साल बाद दर्ज किया जाता है। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि प्रथम सूचना रिपोर्ट एक्ज़िबिट का-1 में कथित घटना का समय शाम 6:30 बजे बताया गया है। गवाह की स्मृति समय बीतने के साथ फीकी पड़ जाती है और इस तरह जब तक विरोधाभास भौतिक नहीं होता है, तब तक अभियोजन पक्ष के मामले को ध्वस्त नहीं किया जा सकता है, खासकर जब अभियोजन पक्ष के गवाह नंबर 1 द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट विधिवत साबित की गई हो। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि गवाह के बयान में विरोधाभास को जिरह में उपरोक्त गवाह के साथ सामना नहीं किया गया है।

30. गवाहों के बयानों में मामूली बदलाव अक्सर उनकी गवाही की सच्चाई की पहचान होती है। जब विसंगतियां तुलनात्मक रूप से एक मामूली चरित्र की थीं और अभियोजन की कहानी की जड़ तक नहीं गईं, तो उन्हें अनुचित महत्व देने की आवश्यकता नहीं है। केवल सामंजस्य या निरंतरता गवाही में सच्चाई की एकमात्र परीक्षा नहीं है। गवाहों की गवाही में हमेशा सामान्य विसंगति होती है, चाहे वे कितने भी ईमानदार और सच्चे क्यों न हों। इस तरह की विसंगतियां अवलोकन की

सामान्य त्रुटियों, समय बीतने के कारण स्मृति की सामान्य त्रुटियों, घटना के समय सदमे और आतंक जैसे मानसिक स्वभाव के कारण होती हैं। भौतिक विसंगतियां वे हैं जो सामान्य नहीं हैं, और एक सामान्य व्यक्ति से अपेक्षित नहीं हैं। आपराधिक मामलों में गणितीय बारीकियों के साथ साक्ष्य की पुष्टि की उम्मीद नहीं की जा सकती है। मामूली अलंकरण हो सकता है, लेकिन इसके कारण में भिन्नता से चश्मदीद गवाहों के सबूत अविश्वसनीय नहीं होने चाहिए।

31. जब तक मूल कथन दर्ज करने वाले व्यक्ति के सामने रखकर कोई विरोधाभास सिद्ध नहीं किया जाता है, तब तक इस तरह के विरोधाभास का कोई परिणाम नहीं है।

32. गवाह के सामने विरोधाभास रखने का मुख्य उद्देश्य उसे विरोधाभासी बयान, यदि कोई हो, को समझाने का अवसर देना है। साक्ष्य की सराहना करते समय, न्यायालय को गवाह के बयान को समग्र रूप से पढ़ने के बाद साक्ष्य की पूरी तरह से जांच करनी चाहिए, और यदि न्यायालय को कथन सत्य और विश्वसनीयता के योग्य लगता है, तो हर भिन्नता या विसंगति विशेष रूप से जो सारहीन है और अभियोजन मामले की जड़ को प्रभावित नहीं करती है, का कोई परिणाम नहीं होगा।

33. अपीलकर्ता के वकील द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि पीडब्ल्यू 1 मृतक का पिता है और पीडब्ल्यू 2 मृतक का भाई है, हालांकि पीडब्ल्यू 1 अपने बेटे के गोली लगने से घायल होने के बाद पुलिस स्टेशन गया था और न ही भाई के खून के धब्बे वाले कपड़े बरामद किए गए हैं और इस तरह उपरोक्त गवाहों की गवाही प्राकृतिक नहीं है। ट्रायल कोर्ट ने अपीलकर्ता के वकील द्वारा उठाए गए उपरोक्त तर्क को खारिज कर दिया है। वर्तमान मामले में पीडब्ल्यू 1 ने अपनी गवाही में कहा है कि मृतक को उसके बेटे और अन्य व्यक्तियों द्वारा अस्पताल ले जाया गया था और इस बीच पुलिस कर्मी घटना के स्थान पर आए और इस तरह मुखबिर के निर्देश पर प्रथम सूचना रिपोर्ट लिखी गई और वह प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए पुलिस स्टेशन गया। पुलिस कर्मी पहले ही घटना स्थल पर आ चुके थे और इस प्रकार एक बार जब मृतक को मुखबिर के बेटे और अन्य व्यक्तियों के साथ अस्पताल भेजा गया तो यह स्वाभाविक है कि मुखबिर तुरंत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए पुलिस स्टेशन गया। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि सिर्फ इसलिए कि अभियोजन पक्ष ने पीडब्ल्यू 1 और पीडब्ल्यू 2 के कपड़ों पर खून के धब्बे के संबंध में सबूत एकत्र नहीं किए हैं, अभियोजन पक्ष के मामले को ध्वस्त नहीं करेगा, खासकर जब कथित घटना के प्रत्यक्षदर्शी हैं जिन्होंने ट्रायल कोर्ट के समक्ष अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है।

34. अपीलकर्ता-बाबा ठाकुर के वकील द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार दो आरोपी व्यक्ति कथित घटना में शामिल थे। अपीलकर्ता-कैलाश को घटना के स्थान पर अभियोजन पक्ष के गवाहों और अन्य व्यक्तियों द्वारा पकड़ा गया था। जबकि दूसरा आरोपी व्यक्ति घटना स्थल से फरार हो गया था। अपीलकर्ता-कैलाश ने भीड़ द्वारा पकड़े जाने पर अन्य आरोपी व्यक्ति का नाम बाबा सिंधी बताया है। अपीलकर्ता के वकील के अनुसार सह-अभियुक्त का बयान मुकदमे में अन्य सह-अभियुक्तों के खिलाफ ठोस सबूत नहीं है, लेकिन इसका उपयोग केवल आश्वासन देने के लिए किया जा सकता है यदि कोई अन्य ठोस सबूत हो। इस संदर्भ में अपीलकर्ता के वकील ने परमहंस यादव और सदानंद त्रिपाठी बनाम बिहार राज्य और अन्य, एआईआर 1987 एससी 955 में शीर्ष अदालत के फैसले पर भरोसा किया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता परवेश कुमार सिंह है और यह साबित नहीं हुआ है कि बाबा सिंधी, बाबा ठाकुर और प्रवेश कुमार सिंह एक ही व्यक्ति हैं।

35. साक्ष्य अधिनियम की धारा 9 के अनुसार, एक तथ्य जो किसी भी चीज या व्यक्ति की पहचान स्थापित करता है जिसकी पहचान प्रासंगिक है, प्रासंगिक तथ्य है। खंड में सिद्धांत सामान्य नियम का अपवाद है कि संपार्श्विक तथ्यों का सबूत आमतौर पर प्राप्य नहीं होता है।

36. अक्सर एक ऐसे व्यक्ति की पहचान स्थापित करना महत्वपूर्ण होता है जो गवाही देता है कि उसने विशेष अवसर पर देखा था। कभी-कभी, एक गवाह उस व्यक्ति को पहचान नहीं सकता है, लेकिन वह अभी भी गवाही दे सकता है कि बाद की घटना पर वह उस व्यक्ति को पहचानने में सक्षम था जिसे उसने शुरू में विशेष अवसर पर देखा था। बाद की घटना औपचारिक हो सकती है, उदाहरण के लिए, परीक्षण, पहचान परेड या अनौपचारिक, उदाहरण के लिए, किसी व्यक्ति को सड़क पर देखना, या किसी अन्य व्यक्ति से पहचान के संबंध में जानकारी प्राप्त करना जो घटना के समय मौजूद था। आरोपी व्यक्ति की पहचान का तथ्य प्रासंगिक तथ्य है क्योंकि यह उस व्यक्ति की ओर इशारा करता है जिसने अपराध किया है।

37. वर्तमान मामले में, अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार दो व्यक्तियों ने कथित घटना में भाग लेने का आरोप लगाया है। एक आरोपी व्यक्ति अर्थात् अपीलकर्ता-कैलाश को अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा घटना के स्थान पर पकड़ा गया था। घटना एक सार्वजनिक स्थान की है। जब अपीलकर्ता-कैलाश को पीडब्ल्यू 1, 2 और 4 द्वारा पकड़ा गया था, तो अपीलकर्ता-कैलाश ने दूसरे आरोपी व्यक्ति की पहचान बाबा सिंधी के रूप में बताई है। अन्य आरोपी व्यक्ति की पहचान का उपरोक्त खुलासा अपीलकर्ता-कैलाश द्वारा अभियोजन पक्ष के गवाह द्वारा पकड़े जाने के तुरंत बाद घटना के स्थान पर किया गया था।

38. पी.डब्ल्यू.1 और पी.डब्ल्यू.2 ने ट्रायल कोर्ट के समक्ष आरोपी व्यक्ति अपीलकर्ताओं की पहचान की है। दिनांक 23 जून, 2005 की प्रथम सूचना रिपोर्ट में अपीलकर्ताओं के नामों का खुलासा किया गया है। प्रथम सूचना रिपोर्ट

पीडब्ल्यू1-बबुआ द्वारा दर्ज कराई गई है जो मृतक के पिता हैं और कथित घटना के समय वहां मौजूद थे।

39. अपीलकर्ता-बाबा सिंधी को कथित घटना के समय अभियोजन पक्ष के गवाह द्वारा देखा गया था। आरोपी कैलाश द्वारा उपरोक्त अपीलकर्ता की पहचान का खुलासा किया गया था। आरोपी कैलाश द्वारा पहचान का खुलासा करने के बारे में तथ्य अभियोजन पक्ष के गवाह संख्या 1, 2 और 4 के बयान से साबित होता है। आरोपी व्यक्ति की पहचान से संबंधित तथ्य प्रासंगिक है और ट्रायल कोर्ट के समक्ष अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा साबित किया गया है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 के तहत साक्ष्य प्रत्येक तथ्य के अस्तित्व या गैर-अस्तित्व की किसी भी कार्यवाही में और ऐसे अन्य तथ्यों को हमारे घोषित प्रासंगिक के रूप में दिया जा सकता है। अपीलकर्ता – बाबा सिंदी की पहचान के संबंध में तथ्य जैसा कि अपीलकर्ता – कैलाश द्वारा खुलासा किया गया है एक प्रासंगिक तथ्य है और इस प्रकार उपरोक्त तथ्य को साबित करने के लिए उसी के संबंध में सबूत दिए जा सकते हैं। यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि अपीलकर्ता – बाबा सिंधी की पहचान घटना के ठीक बाद घटना के स्थान पर प्रकट की गई है। अपीलकर्ता का नाम – बाबा सिंधी को पीडब्ल्यू 1 द्वारा दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट में सह-अभियुक्त के रूप में बताया गया है। घटना के समय अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा अपीलकर्ताओं को देखा गया था, हालांकि उपरोक्त व्यक्तियों के नाम का खुलासा तब किया गया था जब अपीलकर्ता कैलाश को पकड़ा गया था और उसने अन्य आरोपी व्यक्ति के नाम का खुलासा किया था।

40. यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि बाबा सिंधी सहित अपीलकर्ताओं की पहचान प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा ट्रायल कोर्ट के समक्ष की गई है और पहचान परेड के समय आरोपी व्यक्ति की पहचान से इसकी पुष्टि होती है। कथित अपराध में शामिल व्यक्ति की पहचान से संबंधित तथ्य एक प्रासंगिक तथ्य है जो घटना के समय अपीलकर्ता की उपस्थिति के अनुरूप है। एक बार जब प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा ट्रायल कोर्ट के समक्ष आरोपी व्यक्ति को अपराध के अपराधी के रूप में पहचाना जाता है और परीक्षण पहचान परेड द्वारा इसकी पुष्टि की जाती है, तो अपीलकर्ताओं के लिए यह विकल्प प्रस्तुत करना खुला नहीं है कि सह-अभियुक्त का खुलासा अपीलकर्ता की दोषसिद्धि का आधार नहीं हो सकता है।

41. अपीलकर्ता बाबा सिंधी के वकील द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता का नाम प्रवेश कुमार सिंह है और वह किसी अन्य नाम से नहीं जाना जाता है, अर्थात् बाबा सिंधी और बाबा ठाकुर। इस संबंध में, अपीलकर्ता के वकील ने प्रस्तुत किया कि पीडब्ल्यू 1 ने कहा है कि सह-अभियुक्त कैलाश ने अपीलकर्ता के नाम का खुलासा किया है जो घटना स्थल से बाबा सिंधी के रूप में भाग गया है। उन्होंने आगे कहा है कि अपीलकर्ता को बाबा ठाकुर के नाम से भी जाना जाता है। इसी तरह, पीडब्ल्यू 4 ने कहा है कि घटना स्थल से भागने वाला आरोपी बाबा सिंधी था, हालांकि उसे कैसे पता चला कि उसका नाम बाबा ठाकुर था, यह ज्ञात नहीं है।

42. आरोपी व्यक्तियों में से एक अपीलकर्ता – कैलाश को अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा घटना के स्थान पर पकड़ा गया था। घटना एक सार्वजनिक स्थान है। जब अपीलकर्ता कैलाश को पीडब्ल्यू 1, 2 और 4 द्वारा पकड़ा गया था, तो उपरोक्त अपीलकर्ता कैलाश ने अन्य आरोपी व्यक्ति की पहचान बाबा सिंधी के रूप में बताई है।

43. उपर्युक्त आधार पर, पीडब्ल्यू1 द्वारा अपीलकर्ता के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट में अपीलकर्ता का नाम बाबा सिंधी के रूप में बताया गया था।

44. प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने के बाद, जांच अधिकारी द्वारा जांच की गई और दिनांक 26 जून, 2005 की केस डायरी में जांच अधिकारी द्वारा यह दर्ज किया गया है कि उप-निरीक्षक जितेंद्र सिंह अन्य पुलिस अधिकारियों के साथ आरोपी बाबा सिंधी की तलाश में गए थे, हालांकि उस स्थान पर पहुंचने पर जहां उपरोक्त आरोपी रह रहा था, यह पता चला है कि आरोपी का सही नाम बाबा ठाकुर है। और क्षेत्र में बाबा सिंधी के नाम से भी जाना जाता था।

45. अपीलकर्ता ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के तहत एक बयान में अपना नाम बाबा ठाकुर उर्फ प्रवेश कुमार के रूप में दर्ज कराया है। सीआरपीसी की धारा 313 के तहत एक बयान में उपरोक्त अभियुक्त - अपीलकर्ता ने यह नहीं कहा है कि उसे बाबा सिंधी के नाम से नहीं जाना जाता है। अपीलकर्ता द्वारा इस अदालत के समक्ष बाबा ठाकुर उर्फ परवेश कुमार सिंह के नाम से अपील का ज्ञापन दायर किया गया है। पीडब्ल्यू 7 ने अपनी जिरह में कहा है कि उसकी जांच में आरोपी बाबा ठाकुर का नाम जांच के दौरान आया है। पीडब्ल्यू 1 ने अपने बयान में अपीलकर्ता बाबा ठाकुर उर्फ सिंधी उर्फ परवेश कुमार की पहचान की है। इन परिस्थितियों में, बाबा सिंधी, बाबा ठाकुर और प्रवेश कुमार वही व्यक्ति हैं जिनकी पहचान अभियोजन पक्ष के गवाह ने ट्रायल कोर्ट के समक्ष उस व्यक्ति के रूप में की है जो कथित अपराध में शामिल आरोपियों में से एक है।

46. अपीलकर्ता-बाबा ठाकुर की ओर से आगे यह प्रस्तुत किया जाता है कि कथित घटना के किसी भी गवाह ने घटना के स्थान पर अपीलकर्ता को नहीं देखा है।

47. अभियोजन पक्ष के गवाह की गवाही जो कथित घटना के प्रत्यक्षदर्शी हैं, ट्रायल कोर्ट के समक्ष साक्ष्य का एक महत्वपूर्ण टुकड़ा है। पी.डब्ल्यू.1 ने ट्रायल कोर्ट के समक्ष अपीलकर्ताओं की पहचान की है। पी.डब्ल्यू.1 23 जून, 2005 को घटना स्थल पर मौजूद था क्योंकि वह अपने बेटे असलम से मिलने गया था। यह कथित घटना पी.डब्ल्यू.1

की उपस्थिति में हुई है। पहचान परेड में उपरोक्त गवाह द्वारा अपीलकर्ताओं की भी पहचान की गई है।

48. इसी प्रकार, पी.डब्ल्यू.2 ने भी ट्रायल कोर्ट के समक्ष अपीलकर्ताओं की पहचान की है। उपरोक्त गवाह ने आगे कहा है कि उसने आरोपी व्यक्तियों को देखा था; घटना स्थल से भागे आरोपी व्यक्ति को उसने 20 कदम की दूरी से देखा; दोनों आरोपी व्यक्ति कथित घटना में शामिल थे। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि अभियोजन पक्ष के गवाह नंबर 1 और 2 मृतक के रिश्तेदार हैं।

49. पीडब्ल्यू 4 ने अभियोजन की कहानी का समर्थन किया है, हालांकि कहा है कि सह-अभियुक्त कैलाश ने बाबा ठाकुर के नाम का खुलासा किया है और आगे कहा है कि वह ट्रायल कोर्ट के समक्ष आरोपी व्यक्ति को पहचानने की स्थिति में नहीं है क्योंकि कथित घटना होने के बाद पर्याप्त समय बीत चुका है। यह नोट किया जाना चाहिए कि कथित घटना 23 जून, 2005 की है और पीडब्ल्यू-4 का बयान 16 मार्च, 2010 को दर्ज किया गया था और इस प्रकार यदि अभियोजन पक्ष के गवाह के बयान में मामूली भिन्नता है तो यह किसी भी तरह से अभियोजन पक्ष के मामले को प्रभावित नहीं करेगा, विशेष रूप से जब पीडब्ल्यू 1 और पीडब्ल्यू 2 ने आरोपी व्यक्तियों की पहचान की है और अभियोजन मामले का समर्थन किया है।

50. अपीलकर्ता-बाबा ठाकुर की ओर से आगे यह प्रस्तुत किया जाता है कि पहचान परेड 8 सितंबर, 2005 को आयोजित की गई थी, जबकि कथित घटना 23 जून, 2005 को हुई थी। उन्होंने प्रस्तुत किया कि परीक्षण पहचान परेड आयोजित करने में अत्यधिक देरी होती है और इस तरह पहचान स्वयं अपनी विश्वसनीयता खो देती है। अपीलकर्ता के वकील ने इस संबंध में हरिनाथ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1988 एससी 345 मामले में शीर्ष अदालत के फैसले पर भरोसा किया है।

51. वर्तमान मामले में, कथित घटना 23 जून, 2005 को हुई थी और उसके बाद अपीलकर्ता बाबा सिंधी को 16 जुलाई, 2005 को गिरफ्तार किया गया था और 8 सितंबर, 2005 को जेल में परीक्षण पहचान परेड आयोजित की गई थी। आरोपी व्यक्ति की पहचान निचली अदालत के समक्ष पीडब्ल्यू 1 और 2 द्वारा की गई है। उपरोक्त गवाह कथित घटना के समय मौजूद थे और मृतक से संबंधित हैं।

52. पहचान परेड आयोजित करने की आवश्यकता केवल तभी उत्पन्न हो सकती है जब आरोपी व्यक्ति पहले गवाहों को नहीं जानते हों। एक परीक्षण पहचान परेड का पूरा विचार यह है कि जो गवाह घटना के समय अपराधियों को देखने का दावा करते हैं, उन्हें बिना किसी सहायता या किसी अन्य स्रोत के अन्य व्यक्तियों के बीच से उनकी पहचान करनी होती है। उनकी सत्यता की जांच करने के लिए परीक्षण किया जाता है। दूसरे शब्दों में, जांच चरण के दौरान पहचान परेड आयोजित करने का मुख्य उद्देश्य, पहली छाप के आधार पर गवाहों की स्मृति का परीक्षण करना है और अभियोजन पक्ष को यह तय करने में सक्षम बनाना है कि क्या उनमें से सभी या किसी को अपराध के प्रत्यक्षदर्शी के रूप में उद्धृत किया जा सकता है।

53. पहचान परेड जांच चरण से संबंधित हैं और वे जांच प्राधिकरण को खुद को आश्वस्त करने के लिए सामग्री प्रदान करने का काम करते हैं कि क्या जांच सही लाइनों पर आगे बढ़ रही है। दूसरे शब्दों में, इन पहचान परेडों के माध्यम से जांच एजेंसी को यह पता लगाने की आवश्यकता होती है कि जिन व्यक्तियों पर उन्हें अपराध करने का संदेह है, वे वास्तविक अपराधी थे या नहीं। संहिता में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो जांच एजेंसी को आरोपी को परीक्षण पहचान परेड का दावा करने का अधिकार देने के लिए बाध्य करता हो। वे ठोस सबूत का गठन नहीं करते हैं और ये परेड अनिवार्य रूप से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 द्वारा शासित होती हैं। परीक्षण पहचान परेड आयोजित करने में विफलता अदालत में पहचान के सबूत को अस्वीकार्य नहीं बनाएगी।

54. परीक्षण पहचान परेड ठोस सबूत नहीं है और इसका उपयोग केवल अदालत में बयान की पुष्टि के रूप में किया जा सकता है। तथ्य, जो आरोपी व्यक्तियों की पहचान स्थापित करते हैं, साक्ष्य अधिनियम की धारा 9 के तहत प्रासंगिक हैं। एक सामान्य नियम के रूप में, एक गवाह का मूल सबूत अदालत में दिया गया बयान है।

55. मलखानसिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2003) 5 एससीसी 746 उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने निम्नानुसार टिप्पणी की:-

"7. यह कहना सही है कि ठोस सबूत अदालत में पहचान का सबूत है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 9 के स्पष्ट प्रावधानों के अलावा, कानून में स्थिति इस न्यायालय के निर्णयों की एक श्रेणी द्वारा अच्छी तरह से तय की गई है। तथ्य, जो आरोपी व्यक्तियों की पहचान स्थापित करते हैं, साक्ष्य अधिनियम की धारा 9 के तहत प्रासंगिक हैं। एक सामान्य नियम के रूप में, एक गवाह का मूल सबूत अदालत में दिया गया बयान है। पहली बार मुकदमे में आरोपी व्यक्ति की पहचान मात्र का सबूत एक कमजोर चरित्र की प्रकृति से है। इसलिए, एक पूर्व परीक्षण पहचान का उद्देश्य उस सबूत की विश्वसनीयता का परीक्षण और मजबूत करना है। तदनुसार, यह विवेक का एक सुरक्षित नियम माना जाता है कि आम तौर पर अदालत में गवाहों की शपथ ली गई गवाही की पुष्टि की जाती है कि आरोपी जो उनके लिए अजनबी हैं, पहले की पहचान कार्यवाही के रूप में। विवेक का यह नियम, हालांकि, अपवादों के अधीन है, जब, उदाहरण के लिए, अदालत एक विशेष गवाह से प्रभावित होती है, जिसकी गवाही पर वह सुरक्षित रूप से भरोसा कर सकती है, बिना इस तरह या अन्य पुष्टि के। पहचान परेड जांच के चरण से संबंधित है, और दंड प्रक्रिया संहिता में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो जांच एजेंसी को परीक्षण पहचान परेड का दावा करने के लिए

अनुवाद

आरोपी को अधिकार देने के लिए बाध्य करता है। वे ठोस सबूत नहीं हैं और ये परेड अनिवार्य रूप से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 द्वारा शासित होती हैं। परीक्षण पहचान परेड आयोजित करने में विफलता अदालत में पहचान के सबूत को अस्वीकार्य नहीं बनाएगी। इस तरह की पहचान के साथ जोड़ा जाने वाला वजन तथ्य की अदालतों के लिए एक मामला होना चाहिए। उचित मामलों में यह पुष्टि पर जोर दिए बिना भी पहचान के सबूत को स्वीकार कर सकता है।

56. परीक्षण पहचान परेड से जुड़ा मूल्य मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा और कोई कठोर और तेज़ नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है। हालांकि, जहां अदालत इस बात से संतुष्ट है कि गवाहों को अपराध के समय आरोपी को देखने का पर्याप्त अवसर मिला था और गलत पहचान की कोई संभावना नहीं है, परीक्षण पहचान परेड आयोजित करने में देरी को घातक नहीं माना जा सकता है।

57. लाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2003) 12 एससीसी 554, पैरा 28 और 43 में उच्चतम न्यायालय ने परीक्षण पहचान परेड से जुड़े मूल्य या महत्व और ऐसी परीक्षण पहचान परेड आयोजित करने में विलंब के प्रभाव पर विचार किया।

"28. अगला सवाल यह है कि क्या अभियोजन पक्ष ने उचित संदेह से परे साबित कर दिया है कि अपीलकर्ता असली अपराधी हैं। एक परीक्षण पहचान परेड से जुड़ा मूल्य प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है और कोई कठोर और तेज़ नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है। अदालत को यह पता लगाने के लिए मामले के तथ्यों की जांच करनी है कि क्या गवाहों के लिए आरोपियों की पहचान करने का पर्याप्त अवसर था। अदालत को इस संभावना से भी इनकार करना होगा कि परीक्षण पहचान परेड आयोजित करने से पहले गवाहों को उन्हें दिखाया गया था। जहां परीक्षण पहचान परेड आयोजित करने में अत्यधिक देरी होती है, अदालत को एक सतर्क दृष्टिकोण अपनाना चाहिए ताकि न्याय के गर्भपात को रोका जा सके। अत्यधिक देरी के मामलों में, यह हो सकता है कि गवाह परीक्षण पहचान परेड में पहचान के लिए रखे गए अभियुक्तों की विशेषताओं को भूल जाएं। हालांकि, यह एक पूर्ण नियम नहीं है क्योंकि यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और उस अवसर पर निर्भर करता है जो गवाहों को आरोपी की विशेषताओं और उन परिस्थितियों को नोटिस करना था जिनमें उन्होंने आरोपी को अपराध करते हुए देखा था। जहां गवाह को घटना के समय आरोपी की केवल एक क्षणभंगुर झलक थी, परीक्षण पहचान परेड आयोजित करने में देरी को गंभीरता से देखा जाना चाहिए। हालांकि, जहां अदालत इस बात से संतुष्ट है कि गवाहों को अपराध के समय आरोपी को देखने का पर्याप्त अवसर मिला था और गलत पहचान की कोई संभावना नहीं है, परीक्षण पहचान परेड आयोजित करने में देरी को घातक नहीं माना जा सकता है। यह सब प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

43. इस प्रकार यह देखा जाएगा कि प्रत्येक मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में पहचान के साक्ष्य पर विचार किया जाना चाहिए। यद्यपि परीक्षण पहचान परेड को जल्द से जल्द आयोजित करना वांछनीय है, लेकिन इस संबंध में कोई कठोर और तेज़ नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है। यदि देरी असाधारण है और आरोपी को गवाहों को दिखाए जाने की संभावना को साबित करने वाले सबूत हैं, तो अदालत ऐसे सबूतों के आधार पर कार्रवाई नहीं कर सकती है। इसके अलावा, जिन मामलों में दोषसिद्धि केवल अदालत में पहचान के आधार पर नहीं होती है, बल्कि अन्य पुष्ट सबूतों के आधार पर होती है, जैसे कि लूटी गई वस्तुओं की बरामदगी, एक अलग स्तर पर खड़े होते हैं और अदालत को सबूतों पर पूरी तरह से विचार करना पड़ता है।

58. वर्तमान मामले में, कथित घटना 23 जून, 2005 को हुई और अपीलकर्ता को 16 जुलाई, 2005 को गिरफ्तार किया गया और परीक्षण पहचान परेड 8 सितंबर, 2005 को आयोजित की गई। पी.डब्ल्यू.1 और पी.डब्ल्यू.2 ने निचली अदालत के समक्ष अपनी गवाही में अपीलकर्ताओं की पहचान 23 जून, 2005 को कथित अपराध में संलिप्त व्यक्तियों के रूप में की है। P.W.1 और 2 मृतक से संबंधित हैं। कथित घटना से पहले अपीलकर्ताओं को गवाहों की जानकारी नहीं है। अभियोजन पक्ष के गवाह और अपीलकर्ताओं के बीच कोई पूर्व समानता नहीं दिखाई गई है। अभियोजन पक्ष के गवाहों ने अपीलकर्ता में से एक कैलाश को पकड़ लिया और दूसरा अपीलकर्ता बाबा सिंधी घटना स्थल से भाग गया। 8 सितम्बर, 2005 को आयोजित परीक्षण पहचान परेड में अभियोजन पक्ष के गवाह द्वारा अपीलकर्ताओं की पहचान की गई है। पीडब्ल्यू 1 के अनुसार वे बाजार में मौजूद थे जब अपीलकर्ताओं ने पीडब्ल्यू 4 का बैग लिया और पावरहाउस की ओर भागने लगे। पीडब्ल्यू 4 के संकट पूर्ण कॉल पर, अपीलकर्ता का बेटा आरिफ (मृतक) और असलम अपीलकर्ताओं को पकड़ने गए। अपीलकर्ताओं में से एक, अर्थात्, कैलाश ने आरिफ (मृतक) पर गोली चलाई, जिसके परिणामस्वरूप वह घायल हो गया और बाद में उसकी मृत्यु हो गई। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार मृतक के बन्दूक के घाव में कालिख और टैटू दिखाई देता है जो इस तथ्य का संकेत है कि अपीलकर्ता द्वारा करीब से गोली चलाई गई थी।

59. पी.डब्ल्यू.1 ने कहा है कि जब आरोपी व्यक्ति पकड़ा गया था तो उसने गोली चलाई थी। गोली 2 से 3 कदम से चलाई गई थी! इसके अलावा, पीडब्ल्यू 2 ने यह भी कहा है कि जब आरोपी व्यक्ति पकड़ा गया तो उनमें से एक ने गोली चला दी और आरिफ घायल हो गया। उन्होंने आगे कहा है कि आरोपी व्यक्ति से बैग वापस लिया जा रहा था

जब उसने गोली चलाई। उक्त गवाह ने बताया है कि उसने घटना को 20 कदम से देखा था। जब परीक्षण पहचान परेड आयोजित की गई थी तो पीडब्ल्यू 8 जांच अधिकारियों में से एक था। उन्होंने कहा है कि अपीलकर्ता का चेहरा छिपा हुआ था (बापरदा)।

60. इस मुद्दे का एक और पहलू है, अभियोजन पक्ष के गवाहों की जिरह में अभियुक्त ने परीक्षण पहचान परेड आयोजित करने में देरी के संबंध में कोई प्रश्न नहीं उठाया है। यह आरोपी का कर्तव्य था कि वह जांच अधिकारी से पूछताछ करे, अगर परीक्षण पहचान परेड आयोजित करने में देरी के कारण कोई लाभ उठाने की कोशिश की गई थी। दोष साबित करने का भार अभियोजन पक्ष पर है, लेकिन इस सिद्धांत को यहां तक नहीं ले जाया जा सकता है कि अभियोजन पक्ष को सभी संभावित बचावों का खंडन करने के लिए सबूतों सबूत को आगे बढ़ना चाहिए! यदि परीक्षण पहचान परेड अनियमित तरीके से आयोजित की गई थी, तो जांच अधिकारी को इस संबंध में जिरह की जानी चाहिए थी। जिरह का उद्देश्य गवाह के साक्ष्य का परीक्षण करना है, कमजोरियों को उजागर करना है जहां वे मौजूद हैं और यदि हां, तो गवाह द्वारा दिए गए विवरण को कमजोर करना। यह अभियोजन पक्ष के गवाह को बचाव पक्ष के मामले का जवाब देने और या तो इससे सहमत या असहमत होने का अवसर देता है। एक बार बचाव पक्ष के गवाह को बचाव पक्ष के मामले में जवाब देने का ऐसा अवसर नहीं दिया जाता है, तो अभियुक्त व्यक्ति के लिए अपीलीय स्तर पर परीक्षण पहचान परेड की सत्यता को चुनौती देना का विकल्प खुला नहीं होगा। वर्तमान मामले में हम पाते हैं कि बचाव पक्ष ने परीक्षण पहचान परेड आयोजित करने में देरी के लिए अभियोजन पक्ष के लिए कोई उद्देश्य नहीं है, न ही बचाव पक्ष ने आरोप लगाया है कि ट्रायल कोर्ट के समक्ष परीक्षण पहचान परेड के आयोजन में कोई अनियमितता थी। इस संबंध में जांच अधिकारी के साक्ष्य को कोई चुनौती नहीं दी गई है।

61. प्रमोद मंडल बनाम बिहार राज्य, (2004) 13 एससीसी 150, उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

"18. राज्य के वकील ने प्रस्तुत किया कि वर्तमान मामले में परीक्षण पहचान परेड आयोजित करने में कोई असाधारण देरी नहीं हुई थी ताकि परीक्षण पहचान परेड की वास्तविकता पर संदेह पैदा किया जा सके। किसी भी घटना में उन्होंने प्रस्तुत किया कि भले ही यह मान लिया जाए कि परीक्षण पहचान परेड आयोजित करने में कुछ देरी हुई थी, लेकिन यह आरोपी का कर्तव्य था कि वह जांच अधिकारी और मजिस्ट्रेट से पूछताछ करे कि क्या परीक्षण पहचान परेड आयोजित करने में देरी के कारण कोई लाभ लेने की कोशिश की गई थी। इस अदालत के भारत सिंह बनाम भारत मामले में दिए गए फैसले पर निर्भर किया गया है! उत्तर प्रदेश राज्य [(1973) 3 एससीसी 896: 1973 एससीसी (सीआरआई) 574] उपरोक्त निर्णय में इस न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी की: (एससीसी पी. 898, पैरा 6)

6. एसके हसीब वी में। बिहार राज्य [(1972) 4 एससीसी 773 : एआईआर 1972 एससी 283] न्यायालय द्वारा यह देखा गया कि पहचान परेड जांच के चरण से संबंधित हैं और इसलिए उन्हें जल्द से जल्द आयोजित करना वांछनीय है। पहचान करने का एक प्रारंभिक अवसर लंबे समय के कारण पहचान करने वाले गवाहों की स्मृति के कम होने की संभावना को कम करता है। इस फैसले पर भरोसा करते हुए, अपीलकर्ता के वकील का तर्क है कि परेड में जो कुछ हुआ, उससे कोई समर्थन प्राप्त नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह अपीलकर्ता की गिरफ्तारी के लंबे समय बाद आयोजित किया गया था। अब यह सच है कि इस मामले में पहचान परेड आयोजित करने में लगभग तीन महीने की देरी हुई थी, लेकिन यहां भी जांच अधिकारी से कोई सवाल नहीं पूछा गया कि देरी क्यों और कैसे हुई। यह सच है कि अपराध साबित करने का भार अभियोजन पक्ष पर है, लेकिन इस सिद्धांत को इस हद तक नहीं ले जाया जा सकता है कि अभियोजन पक्ष को सभी संभावित बचावों का खंडन करने के लिए सबूतों सबूत को आगे बढ़ना चाहिए। अगर तर्क यह था कि पहचान परेड अनियमित तरीके से आयोजित की गई थी या इसे आयोजित करने में अनुचित देरी हुई थी, तो परेड आयोजित करने वाले मजिस्ट्रेट और जांच करने वाले पुलिस अधिकारी से इस संबंध में जिरह की जानी चाहिए थी।

इस मामले में हम पाते हैं कि बचाव पक्ष ने परीक्षण पहचान परेड आयोजित करने में देरी के लिए अभियोजन पक्ष के लिए कोई उद्देश्य नहीं लगाया है, न ही बचाव पक्ष ने आरोप लगाया है कि परीक्षण पहचान परेड के आयोजन में कोई अनियमितता थी। परीक्षण पहचान परेड आयोजित करने वाले मजिस्ट्रेटों के साथ-साथ जांच अधिकारी के साक्ष्य को कोई चुनौती नहीं दी गई है। इसलिए, राज्य के वकील का यह तर्क उचित है कि इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, घटना के लगभग एक महीने बाद परीक्षण पहचान परेड का आयोजन, अभियोजन पक्ष के मामले के लिए घातक नहीं है क्योंकि यह सुझाव देने के लिए कुछ भी नहीं है कि अभियोजन पक्ष के लिए परीक्षण पहचान परेड के आयोजन में देरी करने का कोई उद्देश्य था या परीक्षण पहचान परेड आयोजित करने में कोई अनियमितता की गई थी।

20. यह न तो संभव है और न ही विवेकपूर्ण है कि परीक्षण पहचान परेड किस अवधि के भीतर आयोजित की जानी चाहिए, या कितने गवाहों को आरोपी की सही पहचान करनी चाहिए, ताकि उसकी दोषसिद्धि को बनाए रखा जा सके। इन मामलों को प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में निर्णय लेने के लिए तथ्यों की अदालतों पर छोड़ दिया जाना चाहिए। यदि एक नियम निर्धारित किया जाता है जिसके भीतर परीक्षण पहचान परेड आयोजित की

जानी चाहिए, तो यह केवल उन पेशेवर अपराधियों को लाभान्वित करेगा जिनके मामलों में गिरफ्तारी में देरी होती है क्योंकि पुलिस के पास उनकी पहचान के बारे में कोई स्पष्ट सुराग नहीं है, वे पीड़ितों के लिए अज्ञात व्यक्ति हैं। इसलिए, उन्हें दोषसिद्धि से बचने के लिए केवल निर्धारित अवधि के लिए अपनी गिरफ्तारी से बचना होगा। इसी तरह, ऐसे अपराध भी हो सकते हैं जो अपनी प्रकृति से एक ही गवाह द्वारा देखे जा सकते हैं, जैसे कि बलात्कार। अपराधी पीड़ित के लिए अज्ञात हो सकता है और मामला पूरी तरह से पीड़ित द्वारा पहचान पर निर्भर करता है, जो अन्यथा सच्चा और विश्वसनीय पाया जाता है। यह तर्क देने का क्या औचित्य हो सकता है कि ऐसे मामलों में केवल एक ही गवाह होने के कारण बरी हो जाना चाहिए? इसलिए विवेक की मांग है कि इन मामलों को तथ्यों की अदालतों के विवेक पर छोड़ दिया जाना चाहिए, जिन्हें इस तरह की पहचान की स्वीकार्यता या अस्वीकृति पर फैसला सुनाने से पहले रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों के प्रकाश में मामले के सभी पहलुओं पर विचार करना चाहिए।

62. पुलिस निरीक्षक द्वारा राजा बनाम राज्य मामले में, 2018 की आपराधिक अपील संख्या 740 पर 10.12.2019 को फैसला सुनाया गया, शीर्ष अदालत ने कहा:

"इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि यदि रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री पर्याप्त रूप से इंगित करती है कि "गवाहों के दिमाग और स्मृति पर पहचान की स्थायी छाप प्राप्त करने" के कारण रिकॉर्ड पर उपलब्ध हैं, तो मामला पूरी तरह से अलग परिप्रेक्ष्य में खड़ा है। इस अदालत ने यह भी कहा कि ऐसे मामलों में पहचान परेड का आयोजन न करना भी अभियोजन पक्ष के मामले के लिए घातक नहीं होगा।

63. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, गवाहों को अपराध के समय आरोपी को देखने का पर्याप्त अवसर था और गलत पहचान की कोई संभावना नहीं है, परीक्षण पहचान परेड आयोजित करने में देरी को घातक नहीं माना जा सकता है। इसके अलावा, तथ्य और परिस्थितियां गवाहों के दिमाग और स्मृति पर पहचान की स्थायी छाप का संकेत देती हैं।

64. अपीलकर्ता बाबा सिंधी के वकील द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि यह मानते हुए भी कि अपीलकर्ता घटना के स्थान पर आरोपी के साथ मौजूद था, तब भी अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और 34 के तहत दोषी नहीं ठहराया जा सकता था। वह प्रस्तुत करता है कि हत्या करने का कोई इरादा नहीं था और सामान्य इरादा डकैती करना और भाग जाना था। हत्या करने के लिए कोई पूर्वाभास नहीं था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि सह-अभियुक्त ने खुद को बचाने के लिए गोली चलाई है, जिसके परिणामस्वरूप मृतक की मृत्यु हो गई है, इसलिए भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के प्रावधान भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत दोषी अपीलकर्ता-बाबा सिंधी पर लागू नहीं होंगे।

65. भारतीय दंड संहिता की धारा 34 में प्रावधान है कि जब सभी के सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए कई व्यक्तियों द्वारा आपराधिक कार्य किया जाता है, तो ऐसे प्रत्येक व्यक्ति उस कार्य के लिए उसी तरह उत्तरदायी होते हैं जैसे कि यह अकेले उसके द्वारा किया गया था।

66. आईपीसी की धारा 34 सामान्य कानून से एक अपवाद बनाती है कि एक व्यक्ति अपने स्वयं के कृत्य के लिए जिम्मेदार है, क्योंकि यह प्रावधान करता है कि किसी व्यक्ति को दूसरों के कृत्य के लिए परोक्ष रूप से जिम्मेदार ठहराया जा सकता है यदि उसके पास अपराध करने का "सामान्य इरादा" है। यह धारा आपराधिक कृत्य करने में संयुक्त दायित्व के सिद्धांत पर लागू की गई है। यह धारा केवल साक्ष्य का एक नियम है और एक महत्वपूर्ण अपराध नहीं बनाती है। अनुभाग की विशिष्ट विशेषता कार्रवाई में भागीदारी का तत्व है। कई व्यक्तियों द्वारा किए गए आपराधिक कृत्य के दौरान दूसरे द्वारा किए गए अपराध के लिए एक व्यक्ति का दायित्व धारा 34 के तहत उत्पन्न होता है यदि ऐसा आपराधिक कृत्य अपराध करने में शामिल होने वाले व्यक्तियों के सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए किया जाता है।

67. यह धारा रचनात्मक दायित्व के सिद्धांत को मान्यता देती है और उस दायित्व का सार एक सामान्य इरादे का अस्तित्व है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि भारतीय दंड संहिता की धारा 34 में "अपराध" नहीं बल्कि "आपराधिक कार्य" शब्द का उपयोग किया गया है। भारतीय दंड संहिता की धारा 33 में प्रावधान है कि "अधिनियम" शब्द एक ही कार्य के रूप में कृत्यों की एक श्रृंखला को दर्शाता है। भारतीय दंड संहिता की धारा 34 को पूर्ववर्ती धारा 33 के साथ पढ़ा जाना है जो यह अनिवार्य बनाता है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 34 में निर्दिष्ट अधिनियम में एकल अधिनियम के रूप में कृत्यों की श्रृंखला शामिल है। ऐसे सभी कार्य जो या तो विचार किए गए थे और सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए किए जाने थे, उन्हें आपराधिक कृत्य में शामिल किया जाएगा।

68. कृष्णमूर्ति @ गुनोडू वी। कर्नाटक राज्य (एससी): 2022 की आपराधिक अपील संख्या 288 (2021 की विशेष अनुमति याचिका (सीआरएल) संख्या 6893 से उत्पन्न), 16.2.2022 को तय की गई, सुप्रीम कोर्ट ने निम्नानुसार टिप्पणी की है: –

"10. इस स्तर पर इस न्यायालय के एक पूर्व निर्णय का संदर्भ उचित होगा जो अफरहीम शेख और अन्य बनाम अन्य के मामले में दिया गया था। पश्चिम बंगाल राज्य, एआईआर 1964 एससी 1263, जिसने बरेंद्र कुमार घोष बनाम पश्चिम बंगाल मामले में न्यायिक आयुक्त द्वारा समझाए गए "अधिनियम" शब्द पर निम्नलिखित उद्धरण को अनुमोदन के साथ संदर्भित किया। राजा-सम्राट, आईएलआर (1925) 52 कैल।

"आपराधिक कृत्य का अर्थ है आपराधिक व्यवहार की एकता, जिसके परिणामस्वरूप कुछ होता है, जिसके लिए एक व्यक्ति दंडनीय होगा, अगर यह सब अकेले किया गया था यानी एक आपराधिक अपराध"।

भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के तहत यह "आपराधिक कृत्य" वहां लागू होता है जहां सभी के समान इरादे को आगे बढ़ाने के लिए कई व्यक्तियों द्वारा आपराधिक कृत्य किया जाता है। आपराधिक अपराध अंतिम परिणाम या परिणाम है लेकिन यह व्यक्तिगत या कई आपराधिक कृत्यों की उपलब्धि के माध्यम से हो सकता है। प्रत्येक व्यक्तिगत कार्य अंतिम अपराध का गठन या परिणाम नहीं हो सकता है। जब किसी व्यक्ति पर कई अभियुक्तों द्वारा हमला किया जाता है, तो "अंतिम आपराधिक कृत्य" आम तौर पर उस अपराध का गठन करेगा जो अंत में परिणाम देता है या जिसके परिणामस्वरूप मृत्यु, साधारण चोट, गंभीर चोट आदि हो सकती है। यह आपराधिक कृत्य का अंतिम परिणाम, या परिणाम है, अर्थात, कई व्यक्तियों की कार्रवाई या कार्य। प्रत्येक व्यक्ति आईपीसी की धारा 38 में निर्धारित अपने स्वयं के कार्य के लिए जिम्मेदार होगा। हालांकि, धारा 34 और 35 दायरे का विस्तार करती है और यह निर्धारित करती है कि यदि आपराधिक कृत्य सामान्य इरादे का परिणाम है, तो प्रत्येक व्यक्ति, जिसने सामान्य इरादे से आपराधिक कृत्य का एक हिस्सा किया है, अपराध के लिए जिम्मेदार होगा।

69. सुदीप कुमार सेन @ बिल्टू और अन्य के मामले में डब्ल्यू.बी. और अन्य की स्थिति। (2016) 3 एससीसी 26, सुप्रीम कोर्ट ने निम्नानुसार माना है: –

"14. आईपीसी की धारा 34 एक आपराधिक कार्य करने में संयुक्त दायित्व के सिद्धांत का प्रतीक है और उस दायित्व का सार सामान्य इरादे का अस्तित्व है। सामान्य आशय का अर्थ है एक पूर्व-व्यवस्थित योजना के साथ कार्य करना और उसका अस्तित्व जिसे या तो अभियुक्त व्यक्तियों के आचरण से या परिचर परिस्थितियों से सिद्ध/अनुमान लगाया जाना है। आईपीसी की धारा 34 को लागू करने के लिए, यह स्थापित किया जाना चाहिए कि आपराधिक कृत्य सभी के सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा किया गया था। इसलिए, यह साबित किया जाना चाहिए कि:-

(i) किसी विशेष अपराध को करने के लिए कई व्यक्तियों की ओर से एक समान इरादा था और

(ii) अपराध वास्तव में उनके द्वारा उस सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए किया गया था।

70. बालू @ बाला सुब्रमण्यम और अनर में। v. राज्य (पांडिचेरी संघ राज्य क्षेत्र) (2016) 15 एससीसी 471, उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

"सामान्य इरादा शायद ही कभी प्रत्यक्ष प्रमाण देने में सक्षम होता है, यह लगभग हमेशा सभी व्यक्तियों के पूरे आचरण से संबंधित सिद्ध परिस्थितियों से अनुमान लगाया जाता है, न कि केवल वास्तव में किए गए व्यक्तिगत कार्य से। घटना की उत्पत्ति के तरीके, जिस तरह से आरोपी घटनास्थल पर पहुंचे और जिस संगीत कार्यक्रम के साथ हमला किया गया था और उनमें से एक या कुछ को लगी चोटों से निष्कर्ष निकाला जा सकता है। वास्तव में किया गया आपराधिक कृत्य निश्चित रूप से महत्वपूर्ण कारकों में से एक होगा जिसे ध्यान में रखा जाना चाहिए, लेकिन इसे एकमात्र कारक नहीं माना जाना चाहिए।

71. कृष्णमूर्ति @ गुनोडू वी कर्नाटक राज्य (एससी): 2022 की आपराधिक अपील संख्या 288 (2021 की विशेष अनुमति याचिका (सीआरएल) संख्या 6893 से उत्पन्न), 16.2.2022 को तय की गई, सुप्रीम कोर्ट ने निम्नानुसार टिप्पणी की है: –

"19. आईपीसी की धारा 34 भी "सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने में कार्य" शब्द का उपयोग करती है। इसलिए, प्रत्येक मामले में जब धारा 34 लागू की जाती है, तो यह जांचना आवश्यक है कि क्या आरोपित आपराधिक अपराध भागीदार के सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए किया गया था। यदि आपराधिक अपराध स्पष्ट रूप से दूरस्थ है और सामान्य इरादे से जुड़ा नहीं है, तो धारा 34 लागू नहीं होगी। हालांकि, यदि किया गया या निष्पादित आपराधिक अपराध मुख्य रूप से जुड़ा हुआ था या पूर्वगामी / समकालीन जुड़ाव का ज्ञात या यथोचित संभावित परिणाम था या सामान्य उद्देश्य को पूरा करने के लिए आपसी सहमति की अभिव्यक्ति थी, तो यह सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए किए गए कार्य के दायरे और क्षेत्र में आएगा। इस प्रकार, "आगे" शब्द एक व्यापक दायरे को प्रतिपादित करता है लेकिन इसे क़ानून के इरादे और उद्देश्य से परे विस्तारित नहीं किया जाना चाहिए। रसेल ऑन क्राइम, (10 वां संस्करण पृष्ठ 557) ने "आगे बढ़ने की कार्रवाई" की जांच करते हुए कहा था कि यह "आगे बढ़ने में मदद करने की कार्रवाई" को संदर्भित करता है और "यह भविष्य में प्रभाव पैदा करने वाली किसी प्रकार की सहायता या सहायता को इंगित करता है" और "किसी भी कार्य को परम गुंडागर्दी को आगे बढ़ाने के लिए किया जा सकता है यदि यह उस अपराध को प्रभावित करने के उद्देश्य से जानबूझकर उठाया गया कदम है। एक कार्य जो सामान्य इरादे से अलग है या इसके विरोध में किया गया है और सामान्य इरादे को पूरा करने के लिए बिल्कुल भी करने की आवश्यकता नहीं है, उसे सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए नहीं कहा जा सकता है।

72. वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष का मामला इस तथ्य पर आधारित है कि अपीलकर्ताओं ने बाजार से एक अमर नाथ (पीडब्ल्यू 4) का बैग ले लिया और मृतक और अन्य अभियोजन पक्ष के गवाह उन्हें पकड़ने के लिए अपीलकर्ताओं की ओर दौड़े और अपीलकर्ता में से एक कैलाश को अभियोजन पक्ष के गवाह ने पकड़ लिया, जिसने अन्य अपीलकर्ता-बाबा सिंधी के नाम का खुलासा

किया है। जब अपीलकर्ता में से एक, अर्थात् कैलाश को पकड़ा गया, तो उसने उसी मृतक आरिफ को बन्दूक की चोट लगने के परिणामस्वरूप गोली चला दी और बाद में अस्पताल में उसकी मृत्यु हो गई। अपीलकर्ता कैलाश ने अपीलकर्ता-बाबा ठाकुर उर्फ बाबा सिंधी के नाम का खुलासा किया है। दोनों अपीलकर्ता एक सार्वजनिक स्थान से अमरनाथ के बैग की लूट में लगे हुए थे और जब कैलाश को अभियोजन पक्ष के गवाहों ने पकड़ लिया, तो उसने मृतक पर गोली चला दी।

73. दोनों आरोपी व्यक्ति का सामान्य इरादा डकैती करना था और मृतक पर गोली चलाने का कार्य उस समय किया गया था जब अपीलकर्ता-कैलाश को मृतक ने पकड़ लिया था जबकि दोनों अपीलकर्ता अमरनाथ का बैग लेकर भाग रहे थे। आपराधिक अपराध पूर्वगामी या समकालीन मिलीभगत या डकैती के लिए आपसी सहमति की अभिव्यक्ति के संभावित परिणाम के लिए जिम्मेदार या जुड़ा हुआ था और यह सामान्य इरादे से किए गए कार्य के दायरे में आएगा। अपीलकर्ता – कैलाश ने डकैती करने के कार्य में मृतक पर गोली चलाई है और इस तरह के सह-आरोपी बाबा ठाकुर अपराध करने के सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए इस तरह के कृत्य के लिए उत्तरदायी होंगे और भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के दायरे में आएंगे। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि अपीलकर्ता-कैलाश डकैती करते समय एक फायर आर्म ले जा रहा था, जो अपराध करने के समय अपीलकर्ताओं के इरादे का संकेत है। घटना की उत्पत्ति का तरीका, जिस तरीके से आरोपी घटनास्थल पर पहुंचा और जिस तरह से हमला किया गया और उनमें से एक को लगी चोटों से इसमें कोई संदेह नहीं है कि आरोपी व्यक्ति का अपराध करने का सामान्य इरादा था और सामान्य इरादे से किए गए कार्य भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के दायरे में आएंगे।

74. सर्वोच्च न्यायालय ने आंध्र प्रदेश बनाम एम सोहन बाबू राज्य में, (2010) 15 एससीसी 69: (2013) 2 एससीसी (सीआरआई) 123: 2010 एससीसी में निम्नानुसार टिप्पणी की है: –

"9. हम पाते हैं कि मामले के तथ्यों में, ऊपर दी गई टिप्पणियां सही नहीं हैं। इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि दोनों आरोपी लूट के इरादे से आधी रात को परिसर में दाखिल हुए थे। उन पर आईपीसी की धारा 460 के तहत भी आरोप लगाए गए थे। यह भी सबूत में है कि मृतक ए -2 को जमीन पर पिन करने में कामयाब रहा था और ए -2 ने मृतक के पेट में एक चोट पहुंचाई थी, जबकि वह उसके ऊपर पड़ा था। इसके बाद ए-2 और अन्य आरोपियों द्वारा मृतक की जांघ पर दो चोटें आईं। यह भी सबूत है कि जब पड़ोसी घटनास्थल पर पहुंचे तो उन्हें भी चोटें आईं और गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी गई। इसलिए, यह कहना कि आरोपी की ओर से मौत का कोई इरादा नहीं था, मामले को थोड़ा आगे ले जाना होगा।

10. उच्च न्यायालय इस तथ्य से प्रभावित हुआ है कि आरोपी की ओर से हत्या करने का कोई सामान्य इरादा नहीं था। हालांकि, हम देखते हैं कि सामान्य इरादे को मामले की परिस्थितियों से अनुमान लगाया जा सकता है और यह कि इरादा परिस्थितियों से इकट्ठा किया जा सकता है क्योंकि वे एक घटना के दौरान भी उत्पन्न होते हैं। प्रारंभिक उद्देश्य लूटपाट करना था, लेकिन चूंकि आरोपी चाकू से लैस थे, जिनका उन्होंने बार-बार और प्रभावी ढंग से इस्तेमाल किया था, इसलिए वे हत्या करने के लिए भी तैयार थे और वे अधिक नुकसान नहीं पहुंचा सकते थे क्योंकि वे अभिभूत और नीचे गिर गए थे।

75. अपीलकर्ता-बाबा सिंधी के वकील द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता-कैलाश को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत अपराध के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि अपीलकर्ता-कैलाश द्वारा सबसे खराब स्थिति में देशी पिस्तौल से गोली चलाने का कार्य इस ज्ञान के साथ किया गया था कि इससे मृत्यु होने की संभावना है, लेकिन यह कृत्य मृत्यु का कारण बनने या ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से नहीं किया गया था जिससे मृत्यु होने की संभावना हो। वह प्रस्तुत करता है कि गोलीबारी का कार्य बिना किसी पूर्वधारणा के था और अचानक झगड़े पर जुनून की गर्मी में अचानक लड़ाई में था। उपरोक्त के मद्देनजर अपीलकर्ता कैलाश को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (II) के तहत दोषी ठहराया जा सकता है।

76. हत्या किसी अन्य मनुष्य द्वारा किसी मनुष्य की हत्या है। यह या तो वैध या गैरकानूनी हो सकता है। कानूनी हत्या में भारतीय दंड संहिता के अध्याय IV के तहत प्रदान किए गए सामान्य अपवादों के तहत आने वाले कई मामले शामिल हैं। गैर इरादतन हत्या (धारा 299), हत्या (धारा 300), लापरवाही से हत्या (धारा 304 ए), आत्महत्या (धारा 305 और 306) शामिल हैं।

77. भारतीय दंड संहिता की धारा 299 में यह प्रावधान है कि जो कोई भी मृत्यु के इरादे से या ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से कोई कार्य करके मृत्यु का कारण बनता है जिससे मृत्यु होने की संभावना है या इस ज्ञान के साथ कि वह इस तरह के कृत्य से मृत्यु का कारण बन सकता है, वह गैर-इरादतन हत्या का अपराध करता है।

78. भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के तहत गैर इरादतन हत्या है जहां यह कृत्य जानबूझकर या ज्ञान या जानने के साधनों के साथ किया जाता है जो कि कृत्य के प्राकृतिक परिणाम हैं। गैर-इरादतन हत्या करने के लिए आवश्यक इरादा या ज्ञान अभियोजन पक्ष द्वारा स्पष्ट रूप से साबित किया जाना चाहिए, जो आमतौर पर उन परिस्थितियों के प्रमाण द्वारा किया जा सकता है जो इस धारणा के लिए कार्य या चूक को साबित करते हैं कि व्यक्ति अपने आचरण के संभावित परिणाम को जानता है। कोई अपराध तब तक हत्या नहीं माना जा सकता जब तक

कि वह गैर इरादतन हत्या की परिभाषा में नहीं आता लेकिन अपराध बिना हत्या के गैर इरादतन हत्या भी हो सकता है। गैर इरादतन हत्या को हत्या घोषित करने के लिए मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के खंड 1, 2, 3 या 4 के प्रावधानों के तहत आना चाहिए।

79. सतीश नारायण सावंत बनाम गोवा राज्य, (2009) 17 एससीसी 724 : (2011) 2 एससीसी (सीआरआई) 110 : 2009 एससीसी ऑनलाइन एससी 1638 पृष्ठ 738 पर, उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है: –

35. आईपीसी की धारा 299 और धारा 300 क्रमशः गैर इरादतन हत्या और हत्या की परिभाषा से संबंधित है। धारा 299 गैर-इरादतन हत्या को इस रूप में परिभाषित करती है कि (i) मौत के इरादे से, या (ii) ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से जिससे मृत्यु होने की संभावना हो, या (iii) इस ज्ञान के साथ कि इस तरह के कार्य से मृत्यु होने की संभावना है। खंड के नंगे पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि खंड के पहले और दूसरे खंड ज्ञान के अलावा इरादे को संदर्भित करते हैं और तीसरा खंड केवल ज्ञान को संदर्भित करता है न कि इरादे को। "इरादा" और "ज्ञान" दोनों अभिव्यक्तियां एक सकारात्मक मानसिक दृष्टिकोण के अस्तित्व को दर्शाती हैं जो अलग-अलग डिग्री की है। गैर इरादतन हत्या में मानसिक तत्व यानी आचरण के परिणामों के प्रति मानसिक दृष्टिकोण इरादा और ज्ञान में से एक है। यदि यह उपरोक्त तीन परिस्थितियों में से किसी में भी होता है, तो कहा जाता है कि गैर-इरादतन हत्या का अपराध किया गया है।

36. धारा 300 आईपीसी, हालांकि, हत्या से संबंधित है, हालांकि धारा 300 आईपीसी में हत्या की कोई स्पष्ट परिभाषा प्रदान नहीं की गई है। इस न्यायालय द्वारा बार-बार यह माना गया है कि गैर-इरादतन हत्या जीनस है और हत्या प्रजाति है और सभी हत्याएं गैर-इरादतन हत्या हैं, लेकिन इसके विपरीत नहीं। भारतीय दंड संहिता की धारा 300 में उन अपवादों का भी प्रावधान है जो गैर इरादतन हत्या का मामला है और धारा 304 के तहत दंडनीय है। जब और यदि इरादा और ज्ञान है तो वही धारा 304 भाग 1 का मामला होगा और यदि यह केवल ज्ञान का मामला है और हत्या और शारीरिक चोट पहुंचाने का इरादा नहीं है, तो धारा 304 भाग 2 का मामला भी होगा। इस न्यायालय के अनेक निर्णयों में हत्या के कृत्य और हत्या के समान कृत्य के बीच उपरोक्त अंतर को उजागर किया गया है।

80. अब्दुल वहीद खान बनाम आंध्र प्रदेश राज्य [(2002) 7 एससीसी 175 : 2005 एससीसी (सीआरआई) 1301] निम्नानुसार देखा गया: (एससीसी पीपी 184-87, पैरा 13-22)।

"धारा 299 का खंड (बी) धारा 300 के खंड (2) और (3) से मेल खाता है। खंड (2) के अधीन अपेक्षित नियमों की विशिष्ट विशेषता यह है कि अपराधी के पास यह ज्ञान है कि विशेष पीड़ित ऐसी विशिष्ट स्थिति या स्वास्थ्य की स्थिति में है कि उसे होने वाला आंतरिक नुकसान घातक होने की संभावना है, इस तथ्य के बावजूद कि इस तरह के नुकसान प्रकृति के सामान्य तरीके से सामान्य स्वास्थ्य या स्थिति में किसी व्यक्ति की मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त नहीं होंगे। यह उल्लेखनीय है कि 'मृत्यु का कारण बनने का इरादा' खंड (2) की एक अनिवार्य आवश्यकता नहीं है। केवल शारीरिक चोट पहुंचाने का इरादा और अपराधी को इस तरह की चोट की संभावना के बारे में जानकारी है, जिससे विशेष पीड़ित की मृत्यु हो जाती है, हत्या को इस खंड के दायरे में लाने के लिए पर्याप्त है। खंड (2) का यह पहलू धारा 300 में संलग्न चित्रण (बी) द्वारा उत्पन्न होता है।

14. धारा 299 का खंड (बी) अपराधी की ओर से इस तरह के किसी भी ज्ञान को नहीं मानता है। धारा 300 के खंड (2) के तहत आने वाले मामलों के उदाहरण ऐसे हो सकते हैं जहां हमलावर जानबूझकर मुट्ठी के वार से मौत का कारण बनता है, यह जानते हुए कि पीड़ित बढ़े हुए यकृत, या बढ़े हुए प्लीहा या रोगग्रस्त दिल से पीड़ित है और इस तरह के झटके से यकृत के टूटने के परिणामस्वरूप उस विशेष व्यक्ति की मृत्यु होने की संभावना है, या प्लीहा या दिल की विफलता, जैसा कि मामला हो सकता है। यदि हमलावर को पीड़ित की बीमारी या विशेष कमजोरी के बारे में ऐसी कोई जानकारी नहीं थी, न ही मृत्यु का कारण बनने के लिए प्रकृति के सामान्य पाठ्यक्रम में मृत्यु या शारीरिक चोट पहुंचाने का इरादा था, तो अपराध हत्या नहीं होगा, भले ही जिस चोट के कारण मृत्यु हुई हो, जानबूझकर दी गई थी। धारा 300 के खंड (3) में, धारा 299 के तदनुरूपी खंड (ख) में होने वाले 'मृत्यु का कारण बनने की संभावना' शब्दों के स्थान पर 'सामान्य प्रकृति में पर्याप्त' शब्दों का प्रयोग किया गया है। जाहिर है, अंतर एक शारीरिक चोट के बीच है जो मृत्यु का कारण बन सकता है और एक शारीरिक चोट जो मृत्यु का कारण बनने के लिए प्रकृति के सामान्य पाठ्यक्रम में पर्याप्त है। भेद ठीक है लेकिन वास्तविक है और अगर अनदेखी की जाती है, तो इसके परिणामस्वरूप न्याय का गर्भपात हो सकता है। धारा 299 के खंड (बी) और धारा 300 के खंड (3) के बीच का अंतर इच्छित शारीरिक चोट के परिणामस्वरूप मृत्यु की संभावना की डिग्री में से एक है। इसे अधिक व्यापक रूप से कहें, तो यह मृत्यु की संभावना की डिग्री है जो यह निर्धारित करती है कि क्या एक गैर-इरादतन हत्या गंभीर, मध्यम या निम्नतम डिग्री की है। धारा 299 के खंड (बी) में 'संभावित' शब्द केवल संभावना से अलग होने की भावना को व्यक्त करता है। शब्द 'शारीरिक चोट ... प्रकृति के सामान्य पाठ्यक्रम में मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त है' का अर्थ है कि प्रकृति के सामान्य पाठ्यक्रम को ध्यान में रखते हुए, मृत्यु चोट का 'सबसे संभावित' परिणाम होगा।

15. खंड (3) के अंतर्गत आने वाले मामलों के लिए, यह आवश्यक नहीं है कि अपराधी का इरादा मृत्यु का कारण बनना हो, जब तक कि मृत्यु जानबूझकर शारीरिक चोट या

अप्रमाणित

प्रकृति के सामान्य पाठ्यक्रम में मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त चोटों से होती है। राजवंत सिंह बनाम केरल राज्य [एआईआर 1966 एससी 1874] इस बिंदु का एक उपयुक्त उदाहरण है।

20. इस प्रकार, विरसा सिंह मामले [एआईआर 1958 एससी 465] में निर्धारित नियम के अनुसार, भले ही अभियुक्त का इरादा सामान्य प्रकृति में मौत का कारण बनने के लिए पर्याप्त शारीरिक चोट पहुंचाने तक सीमित था, और मौत का कारण बनने के इरादे तक विस्तारित नहीं था, अपराध हत्या होगा। धारा 300 में संलग्न चित्रण (ग) स्पष्ट रूप से इस बिंदु को दर्शाता है।

21. धारा 299 के खंड (सी) और धारा 300 के खंड (4) दोनों में मृत्यु के कारण होने वाले कार्य की संभावना के ज्ञान की आवश्यकता होती है। इस मामले के उद्देश्य के लिए इन संबंधित खंडों के बीच अंतर पर बहुत अधिक विस्तार करना आवश्यक नहीं है। यह कहना पर्याप्त होगा कि धारा 300 का खंड (4) वहां लागू होगा जहां अपराधी का ज्ञान सामान्य रूप से किसी व्यक्ति या व्यक्ति की मृत्यु की संभावना के बारे में है, जो किसी विशेष व्यक्ति या व्यक्तियों से अलग है, जो उसके आसन्न खतरनाक कृत्य के कारण होता है। अपराधी की ओर से इस तरह का ज्ञान उच्चतम स्तर की संभावना का होना चाहिए, अपराधी द्वारा मृत्यु या ऐसी चोट के जोखिम के लिए बिना किसी बहाने के किया गया कार्य जैसा कि पूर्वोक्त है।

81. आंध्र प्रदेश बनाम रायवरपु पुनय्या राज्य (1976) 4 एससीसी 382: 1976 एससीसी (सीआरआई) 659] में शीर्ष अदालत द्वारा पैराग्राफ 12 और 13 में दोनों प्रावधानों के बीच अंतर को नोट किया गया था, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है।

"12. दंड संहिता की योजना में, "गैर इरादतन हत्या" जीनस है और "हत्या" इसकी प्रजाति है। सभी "हत्या" "गैर इरादतन हत्या" है, लेकिन इसके विपरीत नहीं। आम तौर पर, "हत्या की विशेष विशेषताओं" के बिना "गैर-इरादतन हत्या" "गैर-इरादतन हत्या" है। सजा तय करने के उद्देश्य से, इस सामान्य अपराध की गंभीरता के अनुपात में, संहिता व्यावहारिक रूप से गैर-इरादतन हत्या के तीन डिग्री को मान्यता देती है। पहला, जिसे "पहली डिग्री की गैर-इरादतन हत्या" कहा जा सकता है। यह गैर इरादतन हत्या का सबसे बड़ा रूप है, जिसे धारा 300 में "हत्या" के रूप में परिभाषित किया गया है। दूसरे को "दूसरी डिग्री की गैर इरादतन हत्या" कहा जा सकता है। यह धारा 304 के पहले भाग के तहत दंडनीय है। फिर, "तीसरे स्तर की गैर-इरादतन हत्या" होती है। यह गैर-इरादतन हत्या का निम्नतम प्रकार है और इसके लिए प्रदान की गई सजा भी तीन ग्रेड के लिए प्रदान की गई सजा में सबसे कम है। इस डिग्री की गैर इरादतन हत्या धारा 304 के दूसरे भाग के तहत दंडनीय है।

13. "हत्या" और "गैर इरादतन हत्या" के बीच अकादमिक अंतर ने एक सदी से अधिक समय से अदालतों को परेशान किया है। भ्रम तब पैदा होता है, जब अदालतें इन धाराओं में विधायिका द्वारा उपयोग किए जाने वाले शब्दों के सही दायरे और अर्थ को खो देती हैं, खुद को सूक्ष्म अमूर्तता में खींचने की अनुमति देती हैं। इन प्रावधानों की व्याख्या और आवेदन के दृष्टिकोण का सबसे सुरक्षित तरीका धारा 299 और 300 के विभिन्न खंडों में उपयोग किए गए कीवर्ड को ध्यान में रखना प्रतीत होता है।

पुलिचेरला नागराजू वी। आन्ध्र प्रदेश राज्य, (2006) 11 एससीसी 444, में इस न्यायालय के पास गैर-इरादतन हत्या के मामले और मृत्यु का कारण बनने के इरादे पर विचार करने का अवसर था। इस न्यायालय द्वारा यह देखा गया और माना गया कि मृत्यु का कारण बनने का इरादा आम तौर पर निम्नलिखित में से कुछ या कई के संयोजन से एकत्र किया जा सकता है, अन्य परिस्थितियों के बीच:

(i) प्रयुक्त हथियार की प्रकृति;

(ii) क्या हथियार अभियुक्त द्वारा ले जाया गया था या उसे मौके से उठाया गया था;

(iii) क्या यह झटका शरीर के एक महत्वपूर्ण अंग को लक्षित करता है;

(iv) चोट पहुंचाने में कितना बल नियोजित किया गया है;

(v) क्या यह कृत्य अचानक हुए झगड़े अथवा अचानक हुए झगड़े अथवा सभी के लिए खुली लड़ाई के दौरान किया गया था;

(vi) क्या यह घटना संयोग से हुई है या क्या इसके पीछे कोई पूर्वाभास था;

(vii) क्या पहले से कोई दुश्मनी थी या क्या मृतक अजनबी था;

(viii) क्या कोई गंभीर और अचानक उकसावा दिया गया था और यदि हां, तो ऐसे उकसावे के क्या कारण हैं;

(ix) क्या यह जुनून की गर्मी में था;

(x) क्या चोट पहुंचाने वाले व्यक्ति ने अनुचित लाभ उठाया है या क्रूर और असामान्य तरीके से कार्य किया है;

(xi) क्या आरोपी ने एक ही झटका दिया या कई वार किए;

82. वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता ने बलपूर्वक अमर नाथ का बैग छीन लिया और जब वे भाग रहे थे तो उन्हें अभियोजन पक्ष के गवाह और मृतक द्वारा पकड़ लिया गया, जिसके बाद आरोपी कैलाश ने मृतक पर गोली चला दी, जिसके परिणामस्वरूप मृतक के पेट में बन्दूक की चोट लगी। मृतक का पोस्टमार्टम 24 जून, 2005 को किया गया था और पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार मृतक की मृत्यु पोस्टमार्टम चोट के परिणामस्वरूप सदमे और रक्तस्राव के कारण हुई थी।

83. ट्रायल कोर्ट के समक्ष अपनी गवाही में पोस्टमार्टम करने वाले डॉक्टर ने कहा है कि मौत मृतक को लगी चोटों के परिणामस्वरूप हो सकती है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि मृतक द्वारा लगी चोट पर कालापन और टैटू

मौजूद था। पूर्वोक्त इस तथ्य का संकेत है कि बन्दूक हथियार का इस्तेमाल करीब से किया गया था। मृतक को लगी चोट की प्रकृति और जिस स्थान पर चोटें आई हैं, यह कहा जा सकता है कि अपीलकर्ता-कैलाश ने मृतक पर चोट पहुंचाने के इरादे से गोली चलाई, क्योंकि इससे मृत्यु होने की संभावना है या चोट सामान्य प्रकृति में मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त थी। इसके अलावा, अपीलकर्ता-कैलाश की चोटें और कृत्य आसन्न रूप से खतरनाक थे कि यह पूरी संभावना में मौत या ऐसी शारीरिक चोट का कारण बन सकता है जो मृत्यु का कारण बन सकता है।

84. यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि घटना के स्थान पर बन्दूक हथियार ले जाना अपने आप में आरोपी व्यक्ति की मृत्यु या ऐसी चोट पहुंचाने के इरादे का संकेत है जिससे मृत्यु होने की संभावना हो। चोट आरोपी व्यक्ति द्वारा महत्वपूर्ण हिस्से पर की गई है। इन परिस्थितियों में अपीलकर्ता-कैलाश को हत्या के कृत्य के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत दोषी ठहराया जा सकता है।

85. अपीलकर्ताओं के वकीलों की समग्र परिस्थितियों और प्रस्तुतियों को ध्यान में रखते हुए, राज्य के लिए एजीए को सुनने और सबूतों और निचली अदालत के रिकॉर्ड को देखने के बाद, हम ट्रायल कोर्ट से अलग राय लेने में खुद को राजी करने में असमर्थ हैं। ट्रायल कोर्ट ने अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने में पूरी तरह से उचित था।

86. अपीलकर्ताओं के वकील ट्रायल कोर्ट के फैसले में किसी भी अवैधता, दुर्बलता या विकृति को इंगित करने में विफल रहे।

87. दोनों अपीलों में दम नहीं है और तदनुसार इन्हें खारिज कर दिया जाता है।

88. इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल को अपील में प्रभावी सहायता प्रदान करने के लिए श्री गगन प्रताप सिंह, एमिकस क्यूरी को 25,000 रुपये का मानदेय देने का निर्देश दिया जाता है।

89. निचली अदालत के रिकॉर्ड को इस आदेश की एक प्रति के साथ नीचे अदालत में वापस प्रेषित किया जाए।

(2023) 1 ILRA 555

मूल क्षेत्राधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति चन्द्र कुमार राय

रिट-ए संख्या - 921 वर्ष 2020

दीप नारायण प्रसाद ... याचिकाकर्ता

बनाम

राजस्व बोर्ड, यू.पी. & अन्य ... उत्तरदाता

याचिकाकर्ता के वकील:

श्री सुरेंद्र कुमार चौबे

उत्तरदाताओं के वकील:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री जितेंद्र कुमार यादव, श्री आर.के.आर शर्मा, श्री राकेश पांडे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

सिविल कानून - उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 - धारा 34 – म्यूटैशन- याचिकाकर्ता का नाम सिविल कोर्ट की समझौता डिक्री के आधार पर दर्ज किया गया - म्यूटेशन कोर्ट ने राजस्व रिकॉर्ड से याचिकाकर्ता का नाम हटाने का आदेश दिया – अवधारित किया - चूंकि समझौता डिक्री को किसी भी अदालत द्वारा वापस नहीं लिया गया था, अलग रखा गया था या संशोधित नहीं किया गया था, इसलिए, याचिकाकर्ता का नाम राजस्व रिकॉर्ड से हटाया नहीं जा सकता है - उत्तरदाताओं को राजस्व रिकॉर्ड में सिविल सूट में सिविल कोर्ट द्वारा पारित समझौता डिक्री के आधार पर याचिकाकर्ता का नाम दर्ज करने का निर्देश दिया गया (पैरा 19)

अनुमत। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के वकील श्री सुरेंद्र कुमार चौबे, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राकेश पांडे को सुना, जिनकी सहायता प्रतिवादी नंबर 4 के वकील श्री जितेंद्र कुमार यादव ने की।

2. मामले का संक्षिप्त तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता और प्रतिवादी नंबर 4 सगे भाई हैं। याचिकाकर्ता के पिता विजय प्रसाद द्वारा 17.01.2002 को याचिकाकर्ता के पक्ष में गांव सोनवर्षा, बहुआरा और अराजी माफी बाल गोविंद राम उपाध्याय में स्थित उसकी पूरी संपत्ति के संबंध में एक पंजीकृत वसीयत विलेख निष्पादित किया गया था। याचिकाकर्ता के पिता विजय प्रसाद की मृत्यु 12.10.2009 को हुई, तदनुसार याचिकाकर्ता ने स्वर्गीय विजय प्रसाद द्वारा 17.01.2002 को निष्पादित पंजीकृत वसीयत के आधार पर उनके नाम के म्यूटेशन के लिए आवेदन किया। केस नंबर 552, 553 और 554 के रूप में मामले दर्ज किए गए थे। प्रतिवादी नंबर 4 ने 28.01.2002 को निष्पादित वसीयत विलेख के आधार पर अपने नाम के म्यूटेशन के लिए भी आवेदन किया, जिसे केस नंबर 626, 627 और 628 के रूप में दर्ज किया गया था। म्यूटेशन मामले के लंबित रहने के दौरान, प्रतिवादी नंबर 4 ने याचिकाकर्ता के

पक्ष में निष्पादित वसीयत विलेख दिनांक 17.01.2002 की वैधता को चुनौती देते हुए 2010 का एक सिविल सूट नंबर 333 दायर किया। हालांकि, प्रतिवादी नंबर 4 और याचिकाकर्ता ने 2010 के सिविल सूट नंबर 333 में 02.01.2015 को समझौता किया है। तदनुसार, 2010 के सिविल सूट नंबर 333 को दिनांक 20.01.2015 के निर्णय के तहत समझौते के संदर्भ में डिक्री दी गई थी। उपरोक्त म्यूटेशन मामलों 552, 553 और 554 में दोनों पक्षों के बीच एक समझौता भी किया गया था, तदनुसार, प्रतिवादी नंबर 3 द्वारा मृतक पट्टा धारक विजय प्रसाद के स्थान पर याचिकाकर्ता का नाम दर्ज करने के लिए म्यूटेशन कार्यवाही में एक आदेश दिनांक 26.05.2016 के आदेश द्वारा पारित किया गया था। दिनांक 26.05.2016 के आदेश के पारित होने के बाद, प्रतिवादी नंबर 4 द्वारा प्रतिवादी नंबर 3 के समक्ष एक रिकॉल आवेदन दायर किया गया है और दिनांक 17.05.2018 के आदेश के तहत प्रतिवादी नंबर 3 ने याचिकाकर्ता के नाम को हटाने और मृतक विजय प्रसाद के प्राकृतिक उत्तराधिकारी होने के साथ-साथ प्रतिवादी नंबर 4 का नाम दर्ज करने का आदेश दिया है। दिनांक 17.05.2018 के आदेश के खिलाफ, याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी नंबर 2 के समक्ष एक अपील दायर की, जिसमें विशिष्ट आधार लिया गया कि पंजीकृत वसीयत विलेख के संबंध में सिविल सूट दिनांक 20.01.2015 के आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता के पक्ष में तय किया गया है, लेकिन अपीलीय अदालत ने इस पर विचार किए बिना याचिकाकर्ता की अपील को 31.12.2018 के आदेश के तहत इस आधार पर खारिज कर दिया है कि वसीयत विलेख कानून के अनुसार साबित नहीं हुआ है। याचिकाकर्ता ने तहसीलदार के आदेश के साथ-साथ राजस्व बोर्ड के समक्ष संशोधन के माध्यम से अपीलीय अदालत के आदेश को चुनौती दी। राजस्व बोर्ड ने याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण पर विचार किया है और लंबित संशोधन में अंतरिम आदेश दिया है, लेकिन दोनों पक्षों को सुनने के बाद राजस्व बोर्ड ने दिनांक 04.03.2020 के आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता के पुनरीक्षण को खारिज कर दिया है, इसलिए यह रिट याचिका दायरकी गई है।

3. इस न्यायालय ने रिट याचिका पर विचार करते हुए, निम्नलिखित आदेश दिनांक 06.08.2020 पारित किया है: -

"श्री आर.के.आर.शर्मा, एडवोकेट ने श्री जितेंद्र कुमार यादव की अनापत्ति प्राप्त करने के बाद प्रतिवादी नंबर 2 की ओर से अपनी पॉवर दायर की है, जिन्होंने इस मामले में कैविएट दायर की

याचिकाकर्ता के लिए विद्वान वकील का तर्क यह है कि उसका म्यूटेशन आवेदन आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है, हालांकि, पार्टियों ने सिविल कोर्ट के समक्ष एक समझौता किया था, जो एक स्वीकृत तथ्य है। समझौते ने याचिकाकर्ता के दावे को स्वीकार कर लिया।

प्रतिवादी नंबर 4 की ओर से पेश वकील तीन सप्ताह के भीतर जवाबी हलफनामा दायर कर सकते हैं।

याचिकाकर्ता के पास प्रत्युत्तर हलफनामा दाखिल करने के लिए दो सप्ताह का समय होगा।

इसके बाद प्रवेश/अंतिम निपटान के लिए सूची।

4. 20.09.2022 को इस न्यायालय ने निम्नलिखित अंतरिम आदेश पारित किया:-

"पार्टियों के लिए विद्वान वकील को सुना।

चूंकि सिविल कोर्ट ने प्रतिवादी द्वारा वसीयत विलेख के संबंध में दायर सिविल सूट का फैसला किया है, जो कि अंतिम रूप प्राप्त कर चुका है और प्रतिवादी द्वारा दायर बाद के मुकदमे में, कोई निषेधाज्ञा लागू नहीं हो रही है।

तदनुसार, लिस्टिंग की अगली तारीख तक, विवादित संपत्ति के संबंध में पार्टियों द्वारा कोई हस्तांतरण नहीं किया जाएगा।

इस याचिका को 10.10.2022 को सूचीबद्ध करें।

5. 14.10.2022 को 20.09.2022 के दिन दिए गए अंतरिम आदेश को इस न्यायालय के अगले आदेश तक बढ़ा दिया गया।

6. प्रतिवादी नंबर 4 ने अपना जवाबी हलफनामा दायर किया है और याचिकाकर्ता ने अपना जवाबी हलफनामा भी दायर किया है।

7. याचिकाकर्ता के वकील ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता ने पंजीकृत वसीयत विलेख दिनांक 17.01.2002 के आधार पर अधिकार का दावा किया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के पंजीकृत वसीयत विलेख को रद्द करने के लिए प्रतिवादी नंबर 4 द्वारा दायर सिविल सूट का निर्णय सिविल कोर्ट में पक्षों के बीच किए गए समझौते के आधार पर दिनांक 20.01.2015 के निर्णय के आधार पर किया गया है और समझौता आवेदन दिनांक 02.01.2015 को निर्णय और डिक्री का हिस्सा बनाया गया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि दोनों पक्षों द्वारा हस्ताक्षरित समझौता आवेदन में यह विशेष रूप से उल्लेख किया गया है कि 2010 के सिविल सूट नंबर 333 के प्रतिवादी दीप नारायण को पंजीकृत वसीयत विलेख दिनांक 17.01.2002 के आधार पर दर्ज किया जाएगा और वादी प्रेम चंद्र को इसके बारे में कोई आपत्ति नहीं होगी। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि जब तक सिविल कोर्ट के समझौता डिक्री को वापस नहीं लिया जाता है/रद्द नहीं किया जाता है/संशोधित नहीं किया जाता है, तब तक म्यूटेशन कोर्ट के पास विवादित भूखंड के संबंध में राजस्व प्रविष्टि को बदलने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि

आक्षेपित आदेश मनमाने ढंग से पारित किए गए हैं, इसलिए उन्हें अलग रखा जा सकता है।

8. दूसरी ओर, प्रतिवादी नंबर 4 के विद्वान वरिष्ठ वकील ने प्रस्तुत किया कि विचाराधीन विलेख एक काल्पनिक दस्तावेज है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता द्वारा दायर 2010 का पूर्व सूट नंबर 333 धोखाधड़ी समझौता डिक्री प्राप्त करने के लिए याचिकाकर्ता का एक कार्य था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि समझौता डिक्री अस्पष्ट डिक्री है और किसी भी कार्यवाही में इस पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के साथ-साथ प्रतिवादी नंबर 4 के म्यूटेशन को म्यूटेशन कोर्ट द्वारा सही आदेश दिया गया है और याचिकाकर्ता को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय के समक्ष इसे चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि सारांश कार्यवाही में आक्षेपित आदेश पारित किया गया है क्योंकि इस तरह की रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं है और खारिज करने योग्य है।

9. मैंने पक्षकारों के विद्वान वकील द्वारा दिए गए तर्क पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

10. याचिकाकर्ता का दावा है कि याचिकाकर्ता के पिता विजय प्रसाद, जिनकी मृत्यु 12.10.2009 को हुई थी, द्वारा निष्पादित पंजीकृत वसीयत विलेख दिनांक 17.01.2002 के आधार पर अधिकार का दावा किया गया है। याचिकाकर्ता के अनुसार, सिविल कोर्ट द्वारा 2010 के सिविल सूट नंबर 333 में समझौता डिक्री पारित की गई है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को पंजीकृत वसीयत विलेख दिनांक 17.01.2002 के आधार पर राजस्व रिकॉर्ड में अपना नाम दर्ज करने का अधिकार दिया गया है, हालांकि प्रतिवादी नंबर 4 2010 के सूट नंबर 333 में पारित सिविल कोर्ट की डिक्री की वैधता से इनकार कर रहा है, प्रतिवादी संख्या 4 ने 2020 का सिविल सूट नंबर 1037 दायर किया है ताकि इस आशय की घोषणा की जा सके कि वादी दीप नारायण प्रसाद को 1/2 हिस्से का कानूनी उत्तराधिकारी घोषित किया जाए और दिनांक 17.01.2002 को शून्य और अप्रभावी घोषित किया जाए, वाद में यह भी प्रार्थना की गई है कि 2010 के सिविल सूट नंबर 333 में पारित समझौता डिक्री दिनांक 04.02.2015 को भी शून्य और अप्रभावी घोषित किया जाए। म्यूटेशन कोर्ट ने शुरू में केवल याचिकाकर्ता का नाम दर्ज करने का आदेश पारित किया, लेकिन बाद में याचिकाकर्ता के नाम के साथ-साथ प्रतिवादी नंबर 4 का नाम घोषित कर विजय प्रसाद का स्वाभाविक उत्तराधिकारी होने का आदेश पारित किया।

11. चूंकि, प्रतिवादी नंबर 4 द्वारा घोषणा और निषेधाज्ञा के लिए दायर 2010 का सिविल सूट नंबर 333 प्रेम चंद्र और दीप नारायण के बीच हुए समझौते के आधार पर तय किया गया है और सूट का फैसला समझौता आवेदन दिनांक 02.01.2015 के आधार पर किया गया था। समझौता आवेदन दिनांक 02.01.2015 के पैराग्राफ संख्या 4 में किए गए कथन निम्नानुसार हैं: -

"न्यायालय सिविल जज सीनियर डिवीजन

बलिया

मु. न . 333/1096 क

प्रेम चंद बनाम दीपनारायण

4. एकरार व बयान मुझ वादी यह है की प्रतिवादी को सभी अधिकार हासिल है जो पिता वादी को हासिल थे। प्रतिवादी अपना नाम कागजात सरकारी मे मुताबिक पंजीकृत वसीयत दिनांक 17.01.2002 के आधार पर दर्ज करा लेंगे। इसमें मुझ वादी को कोई उज या ऐतराज न होगा।"

12. 2010 के वाद संख्या 333 में दर्ज प्रेमचंद (वादी) का मौखिक बयान निम्नानुसार है: -

"न्यायालय सिविल जज सीनियर डिवीजन

बलिया

मु. न . 333/1096 क 2

प्रेम चंद बनाम दीपनारायण

दिनांक 05.01.2015

सीक्षी: प्रेमचंद्र उम्र लगबाग 50 वर्ष पेशे से दुकानदार पुत्र स्व विजय प्रसाद सा चिरंजी छपरा परगना दवाबा जिला बलिया।

हलफ़नामा बयान किया गया है की विजय प्रसाद के दो लड़के प्रेमचंद और दीपनारायण हैं। लालगंज बाजार मे हम लोगों की दुकान है। उसे प्रेमचंद चलाते हैं। पिता जी ने जो वसीयत किया था ओ सही है। उसी वसीयत के बाबत मैंने मुकदमा किया था। वसीयत मे मेरे पिता जी द्वारा दिनांक 17.01.02 को रेजिस्टर्ड दीपनारायण के पक्ष मे लिखा गया था। अब गाव के प्रतिस्थित ब्यक्ति सुमेर सिंह व सुनील सिंह की गवाहान से सुलह हो गया है। सुलहनामे का कागज जो पंचों ने लिखा है वह मेरे पास है। एस मुकदमे मे मैंने सुलहनामा दाखिल किया है उसके अनुसार मुकदमे का फैसला कर दिया जाए।

सुनकर तसदीक किया गया है।

प्रेमचंद प्रसाद

बयान मेरे बोलने पर पेशकार द्वारा लिखा गया है।

ह0-सी0-जी0-एस0-डी0

05.01.2015"

13. समझौता आवेदन दिनांक 02.01.2015 में इस आशय का बहुत विशिष्ट पैराग्राफ नंबर 4 है कि प्रतिवादी दीप

नारायण राजस्व रिकॉर्ड में पंजीकृत वसीयत दिनांक 17.01.2002 के आधार पर अपना नाम दर्ज करवाएगा और वादी प्रेम चंद्र को इसके बारे में कोई आपत्ति नहीं होगी। वादी प्रेम चंद के मौखिक बयान दिनांक 05.01.2015 में उन्होंने वादी और प्रतिवादी के बीच समझौता स्वीकार किया, तदनुसार सिविल सूट का निर्णय समझौता डिक्री दिनांक 02.01.2015 के आधार पर किया गया था। सिविल कोर्ट द्वारा पारित समझौता डिक्री का कार्यकारी कार्यकारी हिस्सा इस प्रकार है: -

"न्यायालय सिविल जज सीनियर डिवीजन

बलिया

मु. न . 333/1098 क1 98 क1

14

प्रेम चंद बनाम दीपनारायण

“प्रेमचंद प्रसाद उम्र अंदाजी 45 वर्ष पुत्र स्व0 विजय प्रसाद उर्फ छोटकन प्रसाद, सा. चिरंजी छपरा पत्रालय सूर्यभानपुर, परगना दवाबा जिला बलिया।

... वादी

बनाम

दीपनारायन प्रसाद उम्र अंदाजी 52 वर्ष पुत्र स्व0 विजय प्रसाद उर्फ छोटकन प्रसाद, सा. चिरंजी छपरा पत्रालय सूर्यभानपुर, परगना दवाबा जिला बलिया।

.. प्रतिवादी आदेश

वादी का वाद पक्षों के बयानात एवं कागजात दिनांकित 02.01.2015 मे वर्णित कथन के आधार पर डिक्री किया जाता है। बयानात एवं कागजात दिनांकित 02.01.2015 डिक्री का भाग होगा। उभय पक्ष अपना वाद व्यय स्वयं वहाँ करेंगे।

दिनांक:-20.01.2015

(एस. एन. सिंह)

सिविल जज (वरिष्ठ वर्ग)

बलिया। ”

14. यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि, प्रतिवादी नंबर 4 प्रेम चंद्र ने इस आशय की घोषणा और निषेधाज्ञा के लिए 2020 का सिविल सूट नंबर 1037 शुरू किया कि 17.01.2002 के साथ-साथ समझौता डिक्री दिनांक 20.01.2015 को शून्य और अप्रभावी घोषित किया जाएगा। बाद का सूट नंबर 1037 वर्ष 2020 अभी भी पक्षकारों के बीच सिविल कोर्ट के समक्ष निर्णय के लिए लंबित है, 2020 के सिविल सूट नंबर 1037 के वाद की प्रति प्रतिवादी नंबर 4 द्वारा स्वयं प्रतिशविदपत्र के साथ अनुलग्नक सीए -1 के रूप में संलग्न की गई है, वाद का राहत खंड प्रासंगिक होगा जो इस प्रकार है: -

“न्यायालय सिविल जज (जू0 डि0) पूर्वी बलिया

वाद संख्या 1037/2020

प्रेमचंद्र उम्र तख0 55 साल पुत्र स्व0 विजय प्रसाद उर्फ छोटकन प्रसाद, ग्राम चिरंजी छपरा, पो0 सूर्यनगर, परगना दवाबा जिला बलिया। ?

वादी मो0 – 8896725495

बनाम

दीप नारायण प्रसाद उम्र तख0 62 साल पुत्र स्व0 विजय प्रसाद उर्फ छोटकन प्रसाद, ग्राम चिरंजी छपरा, पो0 सूर्यनगर, परगना दवाबा जिला बलिया।

“11- उपरोक्त वादी निम्नलिखित अनुतोष पाने का अधिकारी है:-

अ- यह की डिक्री घोषणात्मक वाहक वादी खिलाफ प्रतिवादी पारित किया जाए की वादी संपत्ति जिसका विवरण वाद पत्र के अंत मे दिया गया है का वरासतन वकदर ½ का हिस्सेदार है तथा यह भी घोसीत किया जावे की वसीयतनामा दिनांक 07.01.2002 एवं दिनांक 17.01.2002 निष्पादक स्व0 विजय प्रसाद उर्फ छोटकन वाहक प्रतिवादी शून्य वो निष्प्रभावी है तथा यह उद्घोषित किया जावे की सुलहनामा डिक्री दिनांक 04.02.2015 पारित न्यायालय सिविल जज(सी.डि.) बलिया मु.न. 333/2010 प्रेमचंद बनाम दीप नारायण शून्य व निष्प्रभावी है तथा उक्त डिक्री का असर वादी के राइट, टाइटल व इन्टरिस्ट पर नई पड़ता है।

ब- यह की वजरिए हुक्म इंतनाई दवामी प्रतिवादी को मना किया जावे की उपरोक्त दोनो वसीयतनामा दिनांक 07.01.2002 व 17.01.2002 निष्पादक विजय प्रसाद उर्फ छोटकन वाहक प्रतिवादी के आधार पे जायदाद जिसका विवरण वाद पत्र के अंत मे दिया गया है के हक व हिस्सा वकदर ½ भाग के अनुसार वादी के कब्जा दखल मे न तो किसी भी प्रकार से कोई मुजाहिमत करे न कराए न उसके किसी भाग का विक्री करे न किसी प्रकार का अंतरण करे न ही कोई ऐसा कार्य करे जिससे उक्त सम्पूर्ण जायदाद पर हम वादी के तन्हा कब्जा दखल मे कोई मुजाहिमत व ब्यवधान न डाले।

स. यह की खर्च मुकदमा हम वादी को प्रतिवादी से दिलवा दिया जावे।

द. यह की अलावे ख्वाह बजाय दादरसी बाला के जिस किसी दीगर दादरसी के मुशतहक हम वादी वनजदीक राय अदालत करार पाए जावे उसकी भी डिक्री वाहक वादी विरुद्ध प्रतिवादी सादिर वहक वादी विरुद्ध प्रतिवादी सादिर फरमाई जावे।”

15. उपर्युक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि सिविल कोर्ट की डिक्री दिनांक 20.01.2015 को किसी भी न्यायालय

द्वारा वापस नहीं लिया गया है/रद्द नहीं किया गया है/संशोधित नहीं किया गया है, याचिकाकर्ता का नाम राजस्व रिकॉर्ड से तब तक हटाया नहीं जा सकता जब तक कि सिविल कोर्ट की डिक्री दिनांक 20.01.2015 को वापस नहीं लिया जाता है/रद्द नहीं किया जाता है।

16. उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 34 के तहत नीचे की अदालतों ने मनमाने ढंग से याचिकाकर्ता के साथ प्रतिवादी नंबर 4 का नाम दर्ज करने के लिए दिनांक 17.05.2018 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता का नाम हटा दिया गया, जिसे विशेष रूप से उनके पिता विजय प्रसाद के स्थान पर सिविल कोर्ट के समझौता डिक्री दिनांक 20.01.2015 के आधार पर दर्ज किया गया था। तहसीलदार के आदेश दिनांक 17.05.2018 को अपील एवं पुनरीक्षण में मनमाने ढंग से रखा गया है, जो सिविल वाद क्रमांक 333 ऑफ 2010 में सिविल कोर्ट द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध है।

17. मामले के पूरे तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, प्रतिवादी नंबर 1 राजस्व बोर्ड, यूपी इलाहाबाद द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 04.03.2020, प्रतिवादी नंबर 2 उप-जिलाधिकारी, बैरिया, जिला-बलिया द्वारा पारित आदेश दिनांक 31.12.2018 और प्रतिवादी नंबर 3- तहसीलदार, तहसील-बैरिया, जिला बलिया द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.05.2018 को रद्द किया जा सकता है।

18. रिट याचिका की अनुमति दी जाती है।

19. उत्तरदाताओं को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता का नाम 2010 के सिविल सूट नंबर 333 में सिविल कोर्ट द्वारा पारित समझौता डिक्री दिनांक 20.01.2015 के आधार पर राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज करें, जो बलिया में सिविल कोर्ट में प्रतिवादी नंबर 4 द्वारा दायर बाद के 2020 के सिविल सूट नंबर 1037 के अंतिम निर्णय के अधीन होगा।

20. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 1 ILRA 560

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल साइड

दिनांक: इलाहाबाद 13.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति चन्द्र कुमार राय

रिट-ए नंबर 3985 वर्ष 2018

जगदीश सिंह और अन्य ...याचिकाकर्ताओं

बनाम

इलाहाबाद में राजस्व बोर्ड उत्तर प्रदेश एवं अन्य ... उत्तरदाताओं

याचिकाकर्ताओं के वकील:

श्री ओम प्रकाश पांडेय, श्री अरविंद कुमार मिश्रा

प्रतिवादियों के वकील:

सीएससी, श्री धर्म वीर जायसवाल, श्री प्रदीप कुमार, श्री अजय कुमार गौतम, श्री अजय पाल, श्री आशुतोष कुमार गौतम, श्री महेश प्रसाद, श्री सत्य प्रिया मिश्रा, श्री तारिक मकबूल खान

A. सिविल कानून - उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम, 1953 - धारा 49 - सिविल न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र पर रोक - चकबंदी कार्यवाहियों में चकबंदी न्यायालयों द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष अंतिम हैं और सभी पक्षों पर बाध्यकारी हैं और ऐसे निष्कर्षों को किसी सिविल या राजस्व न्यायालय में फिर से न्यायनिर्णयित या चुनौती नहीं दी जा सकती है - चकबंदी अधिनियम की धारा 49 एक तरह से न्यायनिर्णयन का नियम निर्धारित करती है, जहां तक निर्णय और निर्णय से संबंधित प्रश्न और उसकी धारिता के संबंध में एक पट्टा धारक के अधिकारों का अधिनिर्णय (पैरा 8, 9)

B. सिविल कानून - यूपी चकबंदी अधिनियम, 1953- धारा 49 - याचिकाकर्ताओं ने चकबंदी ऑपरेशन से पहले से खुद को कब्जे में होने का दावा किया - पट्टा देने के समय जमीन खाली नहीं थी - याचिकाकर्ता के प्लॉट के संबंध में अवैध प्रवेश किया गया था जिसे उप निदेशक चकबंदी के आदेश से ठीक किया गया था - प्रतिवादी को पट्टा देने का कोई अवसर नहीं था – अवधारित किया - तीनों न्यायालयों ने मनमाने ढंग से याचिकाकर्ताओं के पट्टा रद्द करने लिए आवेदन को खारिज कर दिया - विचारण न्यायालय इस बात पर विचार करने में विफल रहे कि चकबंदी न्यायालय द्वारा पारित आदेश को राजस्व न्यायालय द्वारा नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है, लेकिन विचारण न्यायालयों ने प्रतिवादी प्रतिवादियों के पक्ष में निष्पादित पट्टे को रद्द करने के लिए याचिकाकर्ताओं के आवेदन को मनमाने ढंग से खारिज कर दिया (पैरा 10)

अनुमति दी। (ई-5)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. बलबीर सिंह और अन्य बनाम सेंट ऑफ उत्तर प्रदेश 2011 आईबीआरडी 201

2. बेनीमाधो बनाम उप निदेशक चकबंदी देवरिया और अन्य।

(माननीय चंद्र कुमार राय द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के लिए अधिवक्ता श्री प्रदीप कुमार द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान वकील श्री ओपी पांडे को और प्रतिवादी नंबर 4 के लिए अधिवक्ता श्री प्रदीप कुमार द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान वकील श्री डी.वी.जायसवाल, को सुना।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि पुराना प्लॉट नंबर 138 मीटर क्षेत्र 0.9 एकड़ और 520 मीटर क्षेत्र 0.14 एकड़, आवंटित प्लॉट नंबर 262 (नया प्लॉट नंबर 448 मीटर क्षेत्र 0.17 हेक्टेयर इलाहाबाद, टप्पा बांकी, परगना, हवेली तहसील - सदर, गोरखपुर, अब महाराजगंज में स्थित है। याचिकाकर्ताओं के कब्जे में प्लॉट नंबर 138 और 520 (नया प्लॉट नंबर 448) चकबंदी प्रबंध से पहले भी है और चकबंदी प्रबंध के दौरान भी, याचिकाकर्ता उपरोक्त भूखंड के कब्जे में हैं और उसी पर खेती कर रहे हैं। चकबंदी प्रबंध के दौरान आवंटित प्लॉट संख्या 262 (नया प्लॉट संख्या 448) बनाया गया था। सी.एच. फॉर्म नंबर 41 को रिट याचिका के अनुलग्नक नंबर 1 के रूप में रिट याचिका के साथ संलग्न किया गया है। उपरोक्त पुराना प्लॉट नंबर 138 मीटर क्षेत्र 14 दशमलव और 520 मीटर क्षेत्र 14 दशमलव को माटरूक के रूप में दर्ज किया गया था। चकबंदी अधिकारी, गोरखपुर ने दिनांक 4.7.1984 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता के पक्ष में आदेश पारित किया और विवादित भूखंड के संबंध में माटरूक के प्रवेश को स्थगित कर दिया। चकबंदी अधिकारी ने यह भी आदेश दिया है कि प्लॉट को जय नाथ सिंह पुत्र राम राज (याचिकाकर्ता नंबर 1 के पिता और याचिकाकर्ता नंबर 2 के दादा) के नाम पर दर्ज किया जाए। मामला संख्या 14570/452 में पारित आदेश दिनांक 4.7.1984 को लागू किया गया है और संदर्भ मामला संख्या 649 दिनांक 20.4.1985 को शुरू किया गया था और उसके आधार पर, उप निदेशक चकबंदी के समक्ष संशोधन संख्या 649 दर्ज किया गया था। उप निदेशक चकबंदी अधिकारी द्वारा उन्हें भेजी गई रिपोर्ट का अनुमोदन किया। रिपोर्ट को मंजूरी देने वाले उप निदेशक चकबंदी के आदेश के अनुसरण में, याचिकाकर्ताओं के चक नंबर 80 में पुराना प्लॉट नंबर 262 एम (नया प्लॉट नंबर 448) दर्ज किया गया था। तदनुसार, चक सं 294 के नवीन पार्टी से क्षेत्र की कटौती की गई थी। केस संख्या 2091 में पारित दिनांक 4.7.1984 के आदेश और दिनांक 25.4.1985 के कार्यान्वयन आदेश के साथ-साथ संशोधन संख्या 649 में पारित संदर्भ आदेश दिनांक 29.5.1985 के अनुसरण में, याचिकाकर्ताओं के नाम से अंतिम रिकॉर्ड तैयार किए गए हैं।

3. खतौनी की प्रति को रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 4 के रूप में संलग्न किया गया है ताकि यह प्रदर्शित किया जा सके कि प्लॉट नंबर 448 मीटर क्षेत्र 0.17 जय नाथ (याचिकाकर्ता नंबर 1 के पिता) के नाम पर दर्ज किया गया है। प्लॉट नंबर 448 को ग्राम सभा की जमीन के रूप में दर्ज नहीं किया गया था और न ही यह खाली जमीन थी, तब भी पट्टा को यूपीजेडए और एलआर एक्ट की धारा 19 (5) के तहत प्रतिवादी नंबर 4 से 10 के पक्ष में निष्पादित करने का आरोप लगाया गया था। याचिकाकर्ताओं के अनुसार, प्रतिवादी संख्या 4 से 10 विवादित प्लॉट नंबर 448 के कब्जे में नहीं हैं और न ही प्रतिवादी के नाम पर पट्टा निष्पादित किया गया था। याचिकाकर्ताओं ने प्रतिवादी संख्या 4 से 10 के पक्ष में किए गए कथित आवंटन आदेश के खिलाफ 13.2.1985 को पट्टा रद्द करने के लिए एक आवेदन दायर किया, जिसमें विशिष्ट आधार लिया गया कि विवादित भूखंड खाली नहीं था और न ही विवादित भूखंड को प्रासंगिक समय पर गांव सभा भूखंड के रूप में दर्ज किया गया था, इसलिए पट्टा रद्द किया जा सकता है। प्रतिवादी संख्या 3 ने दिनांक 31.12.1987 के आदेश के तहत याचिकाकर्ताओं द्वारा पट्टा रद्द करने के लिए दायर आवेदन को खारिज कर दिया। याचिकाकर्ताओं ने दिनांक 31.12.1987 के आदेश के विरुद्ध आयुक्त के समक्ष 16.1.1988 को 1995 का पुनरीक्षण संख्या 710 दायर किया, आयुक्त, गोरखपुर मंडल, गोरखपुर ने अपने आदेश दिनांक 27.8.1988 के माध्यम से याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर पुनरीक्षण को खारिज कर दिया। याचिकाकर्ताओं ने राजस्व बोर्ड के समक्ष संशोधन के माध्यम से अपर आयुक्त के आदेश को चुनौती दी जिसमें प्रारंभ में अंतरिम आदेश मंजूर किया गया था लेकिन बाद में, पक्षों को सुनने के बाद राजस्व बोर्ड ने दिनांक 25.5.2002 के आदेश द्वारा संशोधन को खारिज कर दिया। याचिकाकर्ताओं ने दिनांक 25.5.2002 के आदेश के खिलाफ राजस्व बोर्ड के समक्ष समीक्षा याचिका दायर की, जिसे सीमा के आधार पर दिनांक 28.2.2018 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। इसलिए यह रिट याचिका दायर की गई है।

4. इस न्यायालय ने रिट याचिका पर विचार करते हुए दिनांक 23.5.2018 को निम्नलिखित अंतरिम आदेश पारित किया जिसे समय-समय पर बढ़ाया गया: -

"यह कहा गया है कि राजस्व बोर्ड ने 8.1.1991 को संशोधन को स्वीकार करते हुए यथास्थिति का आदेश दिया है और यह संशोधन के निपटान तक जारी था।

प्रतिवादी संख्या 1, 2 और 3 के लिए विद्वान स्थायी वकील उपस्थित होते हैं और श्री तारिक मकबूल खान, विद्वान

अधिवक्ता ने प्रतिवादी संख्या 11 की ओर से उपस्थिति दर्ज कराई है।

प्रतिवादी संख्या 4 से 10 को नोटिस जारी करें जो 5.9.2018 को वापस किया जा सके।

दस दिनों के भीतर कदम उठाए जाएं।

प्रतिवादी लिस्टिंग की अगली तारीख को या उससे पहले जवाबी हलफनामा दायर कर सकते हैं। इस मामले को 5.9.2018 को सूचीबद्ध करें।

तब तक पक्षकारों को यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया जाता है और वे न्यायालय की अनुमति के बिना तीसरे पक्ष के हित का सृजन नहीं करेंगे।

5. याचिकाकर्ता के वकील ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता विवादित भूखंड के कब्जे में मालिक है, इसलिए प्रतिवादी संख्या 4 से 10 के पक्ष में पट्टा निष्पादित नहीं किया जा सकता है क्योंकि विवादित भूखंड न तो ग्राम सभा का भूखंड है और न ही यह प्रासंगिक समय पर खाली था जैसा कि यू.पी.जेड.ए. और एलआर अधिनियम की धारा 19 (5) के तहत प्रदान किया गया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि केस नंबर 2091 में पारित दिनांक 25.4.1985 के कार्यान्वयन आदेश के साथ-साथ संशोधन संख्या 649 में पारित दिनांक 29.5.1985 के संदर्भ आदेश के साथ-साथ दिनांक 4.7.1984 के आदेश के अनुसरण में, याचिकाकर्ता के नाम पर अंतिम रिकॉर्ड तैयार किए गए हैं, इसलिए प्रतिवादी संख्या 4 से 10 के पक्ष में विवाद में भूखंड के आवंटन का कोई अवसर नहीं था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता द्वारा यू.पी.जेड.ए. और एलआर अधिनियम की धारा 198 (4) के तहत दायर आवेदन, यूपी कंसोलिडेशन ऑफ होल्डिंग्स एक्ट की धारा 52 के तहत अधिसूचना के प्रकाशन से पहले पट्टा प्रदान करना, पूरी तरह से अवैध है क्योंकि विवादित प्लॉट खाली प्लॉट नहीं था, याचिकाकर्ता उसी के कब्जे में है, गांव सभा विवादित प्लॉट नंबर 448 का मालिक नहीं था और न ही इस तथ्य के साथ उसके कब्जे में था कि यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 52 के तहत अधिसूचना का प्रकाशन नहीं किया गया था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी संख्या 1, 2 और 3 ने कानून के अनुसार याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए बिंदु पर विचार किए बिना याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर पट्टा रद्द करने के लिए पुनरीक्षण अपील और आवेदन को मनमाने ढंग से खारिज कर दिया है। उन्होंने आगे कहा कि राजस्व बोर्ड ने याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर समीक्षा आवेदन को खारिज करने में अवैधता की है। उन्होंने इस न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया;

(i) 2011 आईबीआरडी 201 बलबीर सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य। (ii) (2003) 5 आंगनवाड़ी केंद्र 3808 बेनीमाधो बनाम उप निदेशक चकबंदी देवरिया एवं अन्य।

6. दूसरी ओर, प्रतिवादी प्रतिवादी संख्या 4 से 10 के वकील ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता ने कार्यवाही में सभी आवश्यक पक्षों को शामिल नहीं किया है क्योंकि याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर इस तरह की रिट याचिका पर विचार नहीं किया जा सकता है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि विवाद में भूखंड ग्राम सभा के पक्ष में दर्ज किया गया था क्योंकि इस तरह का आवंटन कानून के अनुसार प्रतिवादी नंबर 4 को किया गया था जो अनुसूचित जाति समुदाय से संबंधित थे। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी नंबर 4 का नाम तदनुसार राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज किया गया है। उन्होंने आगे कहा कि अपीलीय अदालत और पुनरीक्षण न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर अपील और पुनरीक्षण को खारिज कर दिया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि प्लॉट नंबर 448, क्षेत्र 0.41 हेक्टेयर सीएच फॉर्म 45 में नवीन पार्टी के रूप में दर्ज किया गया था, तदनुसार, पट्टा कानून के अनुसार उत्तरदाताओं के पक्ष में निष्पादित किया गया था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि उप निदेशक चकबंदी दिनांक 30.3.1992 द्वारा पारित आदेश काल्पनिक प्रतीत होता है, इसलिए उस पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ताओं ने 2012 का सिविल सूट नंबर 915 दायर किया है, जिसे गैर-अभियोजन के लिए खारिज कर दिया गया था, दिनांक 21.4.2014 के आदेश के माध्यम से, इस प्रकार, आक्षेपित आदेश के खिलाफ किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने अंत में प्रस्तुत किया कि उप निदेशक चकबंदी द्वारा पारित आदेश से बहुत पहले प्रतिवादी को आवंटन किया गया था, भूमि को माट्ठक के रूप में दर्ज किया गया था, जिसका अर्थ है कि गांव सभा में किसी की जमीन निहित नहीं है। इस प्रकार, प्रतिवादी के पक्ष में दिए गए पट्टे को रद्द करने का कोई मामला नहीं बनता है और रिट याचिका खारिज की जा सकती है।

7. मैंने पक्षकारों के विद्वान वकीलों द्वारा दिए गए तर्कों पर विचार किया है और अभिलेखों का अवलोकन किया है। इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि यू.पी.जेड.ए. और एलआर अधिनियम की धारा 198 (4) के तहत याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर पट्टे को रद्द करने के लिए आवेदन को 564 भारतीय कानून रिपोर्ट इलाहाबाद श्रृंखला प्रतिवादी नंबर 3 द्वारा खारिज कर दिया गया है और आदेश को क्रमशः प्रतिवादी नंबर 2 और 1 द्वारा अपील और संशोधन में बनाए रखा गया है। चकबंदी कार्यवाही में याचिकाकर्ताओं के अनुसार, उप निदेशक चकबंदी ने दिनांक 25.04.1985 के आदेश के तहत कार्यवाही में प्रस्तुत संदर्भ को मंजूरी दे दी जिसके द्वारा विवादित भूखंड को याचिकाकर्ताओं के पिता के नाम पर दर्ज करने का आदेश दिया गया था और मट्ठक की प्रविष्टि को हटा दिया गया है। हालांकि प्रतिवादी इस तथ्य से इनकार कर रहे हैं

और प्रस्तुत कर रहे हैं कि चकबंदी न्यायालय द्वारा पारित आदेश वास्तविक आदेश नहीं हैं।

8. चूंकि चकबंदी न्यायालय ने दिनांक 4.7.1984, 25.4.1985 और 29.5.1985 का आदेश पारित किया है जिसके द्वारा मातरूक की प्रविष्टि को हटा दिया गया है और याचिकाकर्ताओं के पिता का नाम दर्ज करने का आदेश दिया गया था और आदेश को अंतिम रूप दिया गया है, इसलिए चकबंदी न्यायालय के आदेश की वास्तविकता के बारे में प्रतिवादियों द्वारा केवल इनकार करना पर्याप्त नहीं है। चकबंदी न्यायालय द्वारा पारित आदेश और अन्य कार्यवाही में इसके बाध्यकारी प्रभाव के संबंध में याचिकाकर्ताओं के वकील द्वारा उद्धृत निम्नलिखित मामला विचार के लिए प्रासंगिक है। बलबीर सिंह (सुप्रा) मामले में दिए गए निर्णय का पैराग्राफ संख्या 11 इस प्रकार है: -

"11. बेशक, जब पट्टा धारक जसवंत के खिलाफ सीलिंग की कार्यवाही शुरू की गई, तो गांव में चकबंदी की कार्यवाही पूरी हो गई और जसवंत अपनी व्यक्तिगत क्षमता में संपत्ति का पूर्ण मालिक बन गया। जसवंत कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में यह माना गया था कि चकबंदी कार्यवाही में चकबंदी न्यायालयों द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष अंतिम हैं और सभी पक्षों के लिए बाध्यकारी हैं और इस तरह के निष्कर्षों को किसी भी सिविल या राजस्व न्यायालय में फिर से निर्णय या चुनौती नहीं दी जा सकती है। न्यायालय ने आगे कहा कि चकबंदी अधिनियम की धारा 49 ने एक तरह से पुनर्निर्णय का नियम निर्धारित किया है, जहां तक उसकी धारिता के संबंध में एक पट्टा धारक के अधिकारों की घोषणा और अधिनिर्णय से संबंधित प्रश्न है। न्यायालय ने आगे कहा कि सीलिंग अधिकारियों को किरायेदार से भूमि लेने का अधिकार था क्योंकि इसे चकबंदी न्यायालय द्वारा अधिशेष घोषित किया गया था।

9. बेनीमाधो (सुप्रा) में दिए गए फैसले का पैरा नंबर 14 इस प्रकार है: -

"14. हस्तक्षेप न करने का एक अन्य आधार यह है कि पक्षकारों को चकबंदी कार्यवाहियों में अपील में गुण-दोष के आधार पर अपने मामले को लड़ने का पूरा अवसर दिया गया है, जहां अधिकारों का अंतिम रूप से निपटान किया जाता है और ऐसे आदेशों के बाद न तो सिविल न्यायालय और न ही राजस्व न्यायालय ऐसे अधिनिर्णय में हस्तक्षेप कर सकते हैं। चकबंदी विवाद वे विवाद हैं जो उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 4 के तहत अधिसूचना पर उत्पन्न होते हैं। इच्छुक या नहीं इच्छुक पार्टियों को अपने अधिकारों को अंतिम रूप से निपटाने के लिए अनिवार्य रूप से इस मंच पर जाने के लिए मजबूर किया जाता है। ऐसी स्थिति में, परिसीमा के मामले में तकनीकी दृष्टिकोण नहीं अपनाया जा सकता है और ऐसे सभी तकनीकी मामलों का उदारतापूर्वक अर्थ लगाए जाने की आवश्यकता है। मैं इसे इस अतिरिक्त आधार पर भी हस्तक्षेप के लिए उपयुक्त मामला नहीं मानता।

10. तीनों न्यायालयों ने पट्टा रद्द करने के याचिकाकर्ताओं के आवेदन को मनमाने ढंग से खारिज कर दिया है और प्रतिवादियों के पक्ष में दिए गए पट्टे को इस आधार पर अनुमोदित किया है कि पट्टा प्रदान करते समय, विवाद में भूखंड नवीन पार्टी और खाली भूमि के रूप में दर्ज किया गया था। नीचे के न्यायालय चकबंदी न्यायालय द्वारा पारित आदेश के प्रभाव पर विचार करने में विफल रहे हैं। नीचे की अदालतें इस बात पर विचार करने में विफल रही हैं कि चकबंदी न्यायालय द्वारा पारित आदेश को बिल्कुल भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है, लेकिन नीचे के न्यायालयों ने प्रतिवादियों के पक्ष में निष्पादित पट्टे को रद्द करने के लिए याचिकाकर्ताओं के आवेदन को मनमाने ढंग से खारिज कर दिया है।

11. यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि याचिकाकर्ता चकबंदी अभियान से पहले से ही खुद को कब्जे में होने का दावा कर रहे हैं, जैसे, पट्टा देने के समय भूमि बिल्कुल भी खाली नहीं थी और याचिकाकर्ता के भूखंड के संबंध में अवैध रूप से की गई प्रविष्टि जिसे उप निदेशक चकबंदी के आदेश से ठीक किया गया था, इस प्रकार, प्रतिवादी को पट्टा देने का कोई अवसर नहीं था।

12. बलबीर सिंह (सुप्रा) के साथ-साथ बेनीमाधो (सुप्रा) में निर्धारित कानून के अनुपात के साथ-साथ पूरे तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, राजस्व बोर्ड द्वारा पारित दिनांक 28.2.2018 और 25.5.2002, अतिरिक्त आयुक्त द्वारा पारित 27.8.1988 और अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट, वित्त और राजस्व, गोरखपुर द्वारा पारित 31.12.1987 के आक्षेपित आदेश रद्द किए जाने योग्य हैं और उन्हें एतद्द्वारा रद्द किया जाता है।

13. रिट याचिका को अनुमति दी जाती है और मामला प्रतिवादी नंबर 3 के समक्ष वापस भेज दिया जाता है? धारा 198 (4) के तहत याचिकाकर्ताओं के आवेदन पर निर्णय लेने के लिए, जिसे 1985 के केस नंबर 382 के रूप में नए सिरे से निर्णय लिया गया था, निर्णय में की गई टिप्पणियों के आलोक में, अधिमानतः इस आदेश की प्रमाणित प्रति के उत्पादन की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर।

14. लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

(2023) 1 ILRA 565
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल साइड
दिनांक: इलाहाबाद 19.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति चन्द्र कुमार राय

रिट-बी संख्या 6490/2002

श्रीमती मनोरमा ... याचिकाकर्ता
बनाम
राजस्व बोर्ड / सी. सी. ए. राजस्व का और स्टाम्प इलाहाबाद एवं अन्य ... प्रतिवादी

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता:
एस. के. चतुर्वेदी

प्रतिवादी की ओर से अधिवक्ता:
सी.एस.सी.

सिविल कानून– भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899– धारा 47-ए – विलेख का कम मूल्यांकन - स्टाम्प शुल्क की कमी – कलेक्टर को संभावित उपयोग के बारे में जांच शुरू करने की अनुमति नहीं है जिसके लिए भूमि को अनिश्चित भविष्य की तारीख में उपयोग में लाया जा सकता है - संपत्ति का बाजार मूल्य उस उपयोग के संदर्भ में निर्धारित किया जाना चाहिए जिसके उपयोग के लिए भूमि उचित रूप से तत्काल या निकट भविष्य में उपयोग की जा सकती है। तत्काल मामले में विवादित भूखंड निष्पादन की तिथि पर राजस्व रिकॉर्ड में कृषि भूखंड के रूप में दर्ज किया गया है। याचिकाकर्ता के पक्ष में विक्रय विलेख अर्थात दिनांक 23.03.1995 को नायब तहसीलदार ने दिनांक 06.11.1995 को रिपोर्ट प्रस्तुत की कि विवादित भूखंड एक कृषि भूखंड है और उस पर कोई भवन स्थित नहीं है - हालाँकि, अतिरिक्त कलेक्टर द्वारा आयोजित भूमि की भविष्य की क्षमता आधार पर स्टांप शुल्क लगाया गया था - आयोजित, विवादित भूमि की भविष्य की क्षमता के आधार पर भूमि का मूल्यांकन निर्धारित करने के लिए आवासीय/आबादी दर लगाना अवैध है, अभिलेख पर यह मानने के लिए कोई साक्ष्य नहीं था कि विवादित भूमि कृषि भूमि नहीं है – आपेक्षित आदेश विधि संगत नहीं है। (पैरा 9, 10)

स्वीकृत। (ई-5)

उद्धृत वाद सूची:-

1. छोटे लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2021 (152) आरडी 141
2. श्रीमती पुष्पा सरीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य . 2015 (127) आरडी 855

(माननीय न्यायमूर्ति चन्द्र कुमार राय द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता श्री एस. के. चतुर्वेदी और प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता ने 23.03.1995 को निष्पादित पंजीकृत विक्रय पत्र के माध्यम से ग्राम फौटापार तप्पा - हवेली, जिला- बासी में स्थित कृषि भूखंड संख्या 26 क्षेत्रफल 5 बिस्वा 6 धूर को 47,200/- रुपये में खरीदा है। 1,06,000/- के स्टाम्प मूल्य पर 15370/- रुपये का भुगतान किया गया है। याचिकाकर्ता के उपरोक्त विक्रय पत्र के संबंध में भारतीय स्टांप की धारा 47-ए के तहत कार्यवाही शुरू की गई थी, जिसे धारा 47ए स्टांप अधिनियम के तहत स्टांप केस संख्या 899 / 301 / 1994 राज्य बनाम मनोरमा के रूप में पंजीकृत किया गया था। मामले में एक रिपोर्ट मांगी गई थी जिसके अनुसार नायब तहसीलदार ने अपनी रिपोर्ट दिनांक 06.11.1995 को कलेक्टर के समक्ष स्टाम्प प्रकरण क्रमांक 899/301/1994 में प्रस्तुत की थी जिसमें उल्लेख किया गया था कि विवादित बेचा गया भूखंड कृषि संपत्ति है और विवादित भूखंड पर कोई भवन स्थित नहीं है, विवादित प्लॉट आवासीय/व्यावसायिक महत्व का नहीं है। भूमि का उपयोगकर्ता नहीं बदला गया है और यू.पी.जेड.ए. की धारा 143 एवं एल. आर. एक्ट के तहत विवादित प्लॉट नंबर 26 के संबंध में कोई वर्णन नहीं है। नोटिस के बाद उपरोक्त मामले में याचिकाकर्ता उपस्थित हुए और अपर कलेक्टर ने मामले की सुनवाई की। अपर कलेक्टर ने नायब तहसीलदार के प्रतिवेदन दिनांक 06.11.1995 पर विचार किये बिना एवं स्वयं मौका निरीक्षण किये बिना ही 1000/- रूपये प्रति वर्ग मीटर की दर निर्धारित कर दी. तदनुसार स्टाम्प शुल्क रु. 97.585 तय किया गया इसलिए 82,215 रुपये की कमी और 82,215 रुपये का जुर्माना उनके आदेश दिनांक 29.01.1996 द्वारा लगाया गया था। याचिकाकर्ता ने अतिरिक्त कलेक्टर द्वारा पारित आदेश दिनांक 29.01.1996 को पुनरीक्षण के माध्यम से राजस्व बोर्ड/मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकारी के समक्ष चुनौती दी, जिसमें पुनरीक्षण के आधार पर विशिष्ट आधार दिया गया कि विवाद में भूमि कृषि भूमि है और राजस्व बोर्ड को छोड़कर सभी तरफ से कृषि भूमि से घिरी हुई है। मनमाने

तरीके से पुनरीक्षण पक्ष को केवल जुर्माना लगाने के आदेश को रद्द करने की अनुमति दी गई, लेकिन स्टांप शुल्क की कमी का आदेश बरकरार रखा गया, इसलिए याचिकाकर्ता की ओर से यह रिट याचिका दाखिल की गई।

इस न्यायालय ने रिट याचिका पर विचार करते हुए दिनांक 13.02.2002 को निम्नलिखित अंतरिम आदेश पारित किया:

"प्रतिवादी संख्या 1 और 2 की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता उपस्थित हुए हैं। उन्होंने प्रार्थना की है और उन्हें जवाबी हलफनामा दाखिल करने के लिए छह सप्ताह का समय दिया गया है।

याचिकाकर्ता को आज से छह सप्ताह की अवधि के भीतर प्रतिवादी संख्या 2 की संतुष्टि के लिए 82,215/- रुपये की स्टांप शुल्क की कमी की समान राशि की सुरक्षा देने के अधीन, याचिकाकर्ता के खिलाफ आक्षेपित आदेश के अनुसरण में वसूली की कार्यवाही रुका रहेगा। "

इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश दिनांक 13.02.2002 के बावजूद राज्य की ओर से स्थायी अधिवक्ता द्वारा रिट याचिका में दिए गए कथन को नकारते हुए कोई जवाबी हलफनामा दाखिल नहीं किया गया है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने कहा कि याचिकाकर्ताओं के खिलाफ भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 47-ए के तहत कार्यवाही मनमाने ढंग से शुरू की गई है। उन्होंने आगे कहा कि नायब तहसीलदार ने अपनी प्रतिवेदन दिनांक 06.11.1995 प्रस्तुत की है कि विवादित भूखंड एक कृषि भूमि है और विवादित भूखंड पर भवन स्थित नहीं है, लेकिन अपर कलेक्टर ने नायब तहसीलदार की दिनांक 06.11.1995 की रिपोर्ट पर विचार किए बिना इस आशय के अभिलेख पर बिना किसी साक्ष्य के स्टांप शुल्क के भुगतान और जुर्माना का आदेश दिया है। उन्होंने आगे कहा कि पुनरीक्षण अदालत ने हालांकि जुर्माना लगाने के आदेश को रद्द कर दिया, लेकिन संभावना के आधार पर स्टांप शुल्क के भुगतान के आदेश को बरकरार रखा। उन्होंने आगे कहा कि पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा सुनवाई का उचित अवसर भी प्रदान नहीं किया गया। उन्होंने आगे कहा कि यू.पी.जेड. ए की धारा 143 एवं एल. आर. एक्ट के तहत विवादित प्लॉट नंबर 26 क्षेत्रफल 5 बिस्वा 6 धूर के संबंध में कोई वर्णन नहीं की गई है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने 2021 (152) आरडी 141 छोटे लाल बनाम यूपी राज्य और अन्य में प्रतिवेदित इस अदालत के फैसले पर भरोसा जताया है, जिसमें इस न्यायालय ने माना है कि मूल्यांकन बिक्री विलेख के निष्पादन की तारीख पर किया जाना चाहिए, न कि बाद में किसी अलग उद्देश्य के लिए इसके संभावित उपयोग के आधार पर। फैसले के पैराग्राफ संख्या 8 पर भरोसा किया गया है जो इस प्रकार है :

प्रस्तुत तर्कों के आधार पर, संक्षिप्त प्रश्न यह उठता है कि क्या स्टांप शुल्क लगाने को इस आधार पर उचित ठहराया जा सकता है कि भूमि का उपयोग उस उद्देश्य के लिए नहीं किया जा रहा है जिसके लिए इसे खरीदा गया था और क्या स्टांप शुल्क जमीन पर लगाया जा सकता है। आसपास की भूमि का उपयोग आवासीय उद्देश्यों के लिए किया जा रहा है, उपरोक्त दो संदर्भित निर्णय वर्तमान रिट याचिका में उठाए गए सवालों का स्पष्ट उत्तर देते हैं। इस न्यायालय द्वारा इन पहलुओं पर विधिवत विचार किया गया है। संपत्ति के मूल्यांकन के लिए प्रदान किए गए नियमों में अन्यथा भी, यह स्पष्ट है कि मूल्यांकन बिक्री विलेख के निष्पादन की तारीख पर किया जाना चाहिए, न कि बाद में किसी अलग उद्देश्य के लिए इसके संभावित उपयोग के आधार पर यह प्रदर्शित करने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं है कि बिक्री विलेख के निष्पादन की तारीख पर, भूमि राजस्व अभिलेख में उल्लिखित कृषि संपति नहीं थी। यह प्रदर्शित करने के लिए भी अभिलेख पर कुछ भी नहीं है कि विचाराधीन भूमि को यू.पी.जेड.ए. की धारा 143 एवं एन.आर. एक्ट के तहत आवासीय उपयोग के लिए उपयुक्त घोषित किया गया था। ऐसा होने पर, यह ए.डी.एम. में निहित क्षेत्राधिकार के अनुचित प्रयोग का एक साधारण मामला है और पुनरीक्षण न्यायालय में निहित क्षेत्राधिकार का अनुचित प्रयोग है।

दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पुनरीक्षण न्यायालय ने याचिकाकर्ता के खिलाफ जुर्माना लगाने के आदेश को रद्द करते हुए आंशिक रूप से याचिकाकर्ता के पुनरीक्षण की अनुमति दी है और भविष्य की संभावनाओं के आधार पर स्टांप शुल्क लगाने के आदेश की पुनरीक्षण न्यायालय ने सही पुष्टि की है। हालांकि विद्वान स्थायी अधिवक्ता अदालत को संतुष्ट करने में विफल रहे कि क्या राजस्व अभिलेख, बिक्री पत्र और नायब तहसीलदार की रिपोर्ट दिनांक 06.11.1995 यह पूरी तरह प्रदर्शित करें कि विवादित भूखंड कृषि भूमि है विक्रय विलेख के निष्पादन की तिथि दिनांक 23.03.1995 तत्समय किन परिस्थितियों में याचिकाकर्ता के विरुद्ध स्टाम्प शुल्क निर्धारण हेतु आवासीय भूखंड की दर लगाई जा सकती है।

मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई तकी पर विचार किया है और अभिलेखों का अवलोकन किया है।

इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि विवादित भूखंड संख्या 26 क्षेत्रफल 5 बिस्वा 6 धूर याचिकाकर्ता के पक्ष में विक्रय पत्र के निष्पादन की तिथि यानी 23.03.1995 को राजस्व अभिलेख में कृषि भूखंड के रूप में दर्ज किया गया था। इस तथ्य पर भी कोई विवाद नहीं है कि नायब

तहसीलदार ने भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 47-ए के तहत मामले में दिनांक 06.11.1995 को आपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है कि विवादित भूखंड एक कृषि भूखंड है और उस पर कोई भवन स्थित नहीं है। अतिरिक्त कलेक्टर ने नायब तहसीलदार की दिनांक 06.11.1995 की रिपोर्ट पर विचार किए बिना याचिकाकर्ता के खिलाफ स्टांप शुल्क के साथ-साथ जुर्माना लगाने का आदेश दिया और पुनरीक्षण न्यायालय ने हालांकि याचिकाकर्ता के खिलाफ जुर्माना लगाने के आदेश को रद्द कर दिया, लेकिन भूमि की भविष्य की संभावनाओं के आधार पर स्टांप शुल्क के भुगतान के आदेश की पुष्टि की।

चूंकि विवादित भूखंड युग्मित विक्रय पत्र के निष्पादन की तिथि पर राजस्व अभिलेख में कृषि भूखंड के रूप में दर्ज किया गया था, इस तथ्य के साथ कि नायब तहसीलदार की रिपोर्ट 06.11.1995 को प्रस्तुत की गई. यानी बिक्री विलेख के निष्पादन की तारीख से लगभग 7 महीने से अधिक समय के बाद विवादित भूखंड को सभी प्रकार से कृषि भूमि पाया गया, इस प्रकार विवादित भूमि की भविष्य की क्षमता के आधार पर भूमि का मूल्यांकन कर आवासीय/ आबादी का अधिरोपण निर्धारित करने की दर अवैध है।

रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 6, 7 और 8 अवलोकन के लिए प्रासंगिक हैं जो इस प्रकार हैं:

"6. नायब तहसीलदार ने निम्नलिखित बातें बताई हैं कि विचाराधीन भूमि कृषि भूमि है और कृषि भूमि उपयोगकर्ता द्वारा घिरी हुई है और उद्देश्य भी कृषि है। भूमि ब्लॉक रोड से 500 मीटर दूर है और सीवान में स्थित है, आबादी के प्रयोजनों के लिए पूर्ण उपयोग नहीं किया जाता है। भूमि की प्रकृति डोरस 4' है, मूल्यांकन भी निर्धारित किया गया है। और 50,880/- रुपये पाया गया है।

7. यहां यह उल्लेख करना उचित है कि निरीक्षण प्रतिवेदन दिनांकित 06.11.1995 (अनुलग्नक 2) के अलावा कोई अन्य प्रतिवेदन नहीं है और न ही पीठासीन अधिकारी ने कभी मौके का दौरा किया या अपनी मूल्यांकन प्रतिवेदन दी। न ही कलेक्टर / पीठासीन अधिकारी की कोई रिपोर्ट अभिलेख पर है।

8. यह बताना भी बहुत प्रासंगिक है कि भूमि की प्रकृति और उसके उपयोगकर्ता में भी आज तक कोई बदलाव नहीं किया गया है। जैसा कि यू.पी.जेड.ए. की धारा 43 एवं एल.आर. अधिनियम के तहत कृषि प्रयोजनों के अलावा अन्य भूमि के उपयोग के लिए आवश्यक है। आगे कहा गया है कि विचाराधीन भूमि का उपयोग अभी भी कृषि उद्देश्य के रूप में किया जा रहा है। "

राज्य ने 20 वर्ष की समाप्ति के बावजूद जवाबी हलफनामा दायर करके उपरोक्त पैराग्राफ में लगाए गए आरोप का खंडन नहीं किया है, इसलिए रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 6 7 और 8 में लगाए गए आरोप सही माने जाते हैं।

2015 (127) आरडी 855 श्रीमती पुष्पा सरीन बनाम उ.प्र. राज्य में प्रतिवेदित मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने पैराग्राफ संख्या 27 28 और 29 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है. -

"27. कलेक्टर द्वारा निर्धारण के लिए सत्य परीक्षण दस्तावेज की तारीख पर संपत्ति का बाजार मूल्य है, क्योंकि अधिनियम के प्रावधानों के तहत, प्रत्येक दस्तावेज पर निष्पादन से पहले या निष्पादन के समय मुहर लगाना आवश्यक है। उस निर्धारण में, कलेक्टर को इस तथ्य से सावधान रहना होगा कि संपत्ति का बाजार मूल्य स्थान दर-स्थान भिन्न हो सकता है और यह भूमि के तुलनात्मक फायदे या नुकसान के साथ-साथ बड़ी संख्या में परिस्थितियों पर निर्भर करता है। जिसका उपयोग दस्तावेज के निष्पादन की तिथि पर भूमि का उपयोग किया जा सके।

28. निस्संदेह, कलेक्टर को संभावित उपयोग के बारे में एक काल्पनिक जांच शुरू करने की अनुमति नहीं है जिसके लिए अनिश्चित भविष्य की तारीख में भूमि का उपयोग किया जा सकता है। संपत्ति का बाजार मूल्य उस उपयोग के संदर्भ में निर्धारित किया जाना चाहिए जिसके लिए भूमि तुरंत या निकट भविष्य में उचित रूप से उपयोग करने में सक्षम है। बेहतर उपयोग और आनंद के लिए भूमि के तत्काल या निकट भविष्य में उपलब्ध होने की संभावना भूमि की क्षमता को दर्शाती है। इस क्षमता का आकलन दस्तावेज के निष्पादन की तारीख के संदर्भ में किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, कलेक्टर की शक्ति को दस्तावेज के निष्पादन के समय या उचित रूप से निकटवर्ती अवधि में भूमि को लाभप्रद रूप से प्रसारित करने की क्षमता को खारिज करके अनावश्यक रूप से सीमित नहीं किया जा सकता है। पुनः, क्षेत्र में किस भूमि का उपयोग किया गया यह एक भौतिक विचार है। यदि विचाराधीन संपत्ति के आसपास की भूमि को व्यावसायिक उपयोग के लिए रखा गया है, तो यह मानना अनुचित होगा कि यह एक ऐसी परिस्थिति है जिसे कलेक्टर को एक कारक के रूप में नहीं तौलना चाहिए जो भूमि के बाजार मूल्य को प्रभावित करता है।

29. तथ्य यह है कि भूमि को एक विशेष उपयोग के लिए रखा गया था, उदाहरण के लिए बाद के समय में एक वाणिज्यिक उद्देश्य, स्टांप शुल्क के उद्देश्य के लिए मूल्य तय करने के लिए एक प्रासंगिक मानदंड नहीं हो सकता है, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम अंबरीश टंडन और एवं 11 में अभिनिर्धारित किया है। ऐसा इसलिए है क्योंकि उपयोगकर्ता की प्रकृति खरीद की तारीख से संबंधित है जो स्टॉप शुल्क की गणना के

उद्देश्य से प्रासंगिक है। हालांकि, जहाँ भूमि की क्षमता का आकलन दस्तावेज के निष्पादन की तारीख पर ही किया जा सकता है, यह स्पष्ट रूप से एक ऐसी परिस्थिति है जो वास्तविक बाजार मूल्य के निर्धारण के लिए प्रासंगिक और उचित है। साथ ही, कलेक्टर के समक्ष प्रयोग पर्याप्त सामग्री पर आधारित होना चाहिए और यह परिकल्पना या अनुमान का विषय नहीं हो सकता है। कलेक्टर के पास अभिलेख पर इस आशय की सामग्री होनी चाहिए कि निकटवर्ती क्षेत्रों के संबंध में उपयोग में बदलाव या अन्य समसामयिक बिक्री कार्यों में बदलाव हुआ है जिसका उस संपत्ति के बाजार मूल्य पर असर पड़ेगा जो विचाराधीन है। इसलिए कलेक्टर ऐसे उदाहरणों या तुलनीय बिक्री उदाहरणों का संदर्भ देने के अधिकार क्षेत्र में होगा, जिनका संपत्ति के वास्तविक बाजार मूल्य पर असर पड़ता है, जिसका मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है। यदि बिक्री के उदाहरण तुलनीय हैं, तो वे भूमि की क्षमता को भी प्रतिबिंबित करेंगे, जिसे विक्रेता और खरीदार के बीच सहमत मूल्य में ध्यान में रखा जाएगा।

वर्तमान मामले में नायब तहसीलदार की रिपोर्ट दिनांक 06.11.1995 राजस्व अभिलेख और विचाराधीन बिक्री विलेख को छोड़कर, अभिलेख पर कोई सबूत नहीं था कि विवाद में भूमि कृषि भूमि नहीं है, इसलिए लगाए गए आदेशों को कानून के नज़र में नहीं रखा जा सकता है, जिसमें बिना किसी आधार के भूमि की भविष्य की संभावनाओं के बिंदु पर याचिकाकर्ता द्वारा भुगतान की गई स्टांप शुल्क को कमतर पाया गया।

छोटे लाल (पूर्वोक्त) में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत केस कानून वर्तमान विवाद में भी लागू है जिसमें श्रीमती पुष्पा सरीन (पूर्वोक्त) में पूर्ण पीठ का निर्णय दिया गया है. पर भी विचार किया गया है।

मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ श्रीमती पुष्पा सरीन (पूर्वोक्त) और छोटे लाल (पूर्वोक्त) में निर्धारित अनुपात कानून को ध्यान में रखते हुए, अपर कलेक्टर द्वारा पारित आदेश दिनांक 29.01.1996 और राजस्व बोर्ड, इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 14.05.2001 को कानून की नजर में बरकरार नहीं रखा जा सकता है, अतः उपरोक्त को रद्द किया जाता है। रिट याचिका स्वीकार की जाती है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 1 ILRA 570
मूल क्षेत्राधिकार
नागरिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 23.12.2022

समक्ष
माननीय न्यायमूर्ति श्री चन्द्र कुमार राय

रिट-बी संख्या 45796 वर्ष 2017

बीरेंद्र सिंह और अन्य ... याचिकाकर्ता
बनाम
इलाहाबाद में राजस्व बोर्ड उत्तर प्रदेश एवं अन्य ...उत्तरदाता

याचिकाकर्ताओं के वकील:

श्री सुनील कुमार राय, श्री बसंत कुमार उपाध्याय, श्री साकेत मणि त्रिपाठी

उत्तरदाताओं के वकील:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री मदन मोहन, श्री प्रेम सागर वर्मा

नागरिक कानून - भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धारा 47-ए - उपकरणों का मूल्यांकन कम किया गया है - मूल्यांकन बिक्री विलेख के निष्पादन की तारीख पर किया जाना है न कि बाद में इसके संभावित उपयोग के आधार पर एक अलग उद्देश्य के लिए - याचिकाकर्ता ने पंजीकृत बिक्री विलेख के माध्यम से 47,200 रुपये में कृषि भूखंड खरीदा - 1,06,000 रुपये मूल्य पर 15370/- रुपये के स्टाम्प का भुगतान किया गया - भारतीय स्टाम्प की धारा 47-ए के तहत कार्यवाही शुरू की गई - नायब तहसीलदार ने दिनांक 06-11-1995 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की कि विवादित भूखंड एक कृषि भूखंड है और इसके ऊपर कोई भवन स्थित नहीं है - अतिरिक्त कलेक्टर ने याचिकाकर्ता के खिलाफ स्टांप शुल्क के साथ-साथ जुर्माना लगाने का आदेश दिया - विवादित भूमि की भविष्य की संभावना के आधार पर पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा स्टाम्प शुल्क लगाने के आदेश की पुष्टि की गई – अवधारित किया- विवादित भूमि की भविष्य की क्षमता के आधार पर भूमि के मूल्यांकन का निर्धारण करने के लिए आवासीय/आबादी दर लगाना अवैध है - आक्षेपित आदेश रद्द किया गया (पैरा 10, 14, 16)

अनुमति. (ई-5)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. छोटे लाल बनाम सेंट ऑफ उत्तर प्रदेश और अन्य। 2021 (152) आरडी 141
2. श्रीमती पुष्पा सरीन बनाम उत्तर प्रदेश के सेंट 2015 (127) आरडी 855

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री सुनील कुमार राय, प्रतिवादी संख्या 6 के लिए विद्वान वकील श्री मदन मोहन और राज्य-उत्तरदाताओं के लिए विद्वान स्थायी वकील को सुना।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि मौजा बसई शेर घर, बांगर, तहसील-छाता, जिला मथुरा में स्थित 1.06 हेक्टेयर (2.68 एकड़) का खसरा नंबर 395 एम घनटूरी के पुत्र मुंशी का है, जिसने 21.11.1991 को भजन के पुत्र बसंत के पक्ष में एक पंजीकृत बिक्री विलेख निष्पादित किया। बसंत द्वारा घंटूरी के पुत्र भागवत के पक्ष में 0.82 एकड़ और 0.62 एकड़ क्षेत्र के लिए बिक्री विलेख बसंत द्वारा मुंसी के पुत्र बलराम के पक्ष में निष्पादित किया गया था। 21.06.1993 को बलराम ने प्रतिवादी नंबर 6 के पक्ष में बिक्री-विलेख निष्पादित किया, बसंत ने 07.02.1992 को मुंशी के पुत्र हरवीर के पक्ष में 0.62 एकड़ क्षेत्र के संबंध में एक और बिक्री विलेख निष्पादित किया। 07.05.1994 को मुशी ने भंवर सिंह और अन्य के पक्ष में 0.62 एकड़ क्षेत्र के संबंध में बिक्री विलेख निष्पादित किया, जिन्होंने 29.08.2000 को प्रतिवादी नंबर 6 के पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित किया। यू.पी.जेड.ए. और एलआर अधिनियम की धारा -168-ए के उल्लंघन के कारण, प्रतिवादी नंबर 6 द्वारा लागू नामांतरण को तहसीलदार द्वारा दिनांक 30.06.2006 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। दिनांक 30.06.2006 के तहसिलदार के आदेश के खिलाफ प्रतिवादी संख्या 6 द्वारा दायर पुनरीक्षण को अतिरिक्त आयुक्त द्वारा दिनांक 26.06.2008 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। बलराम और अन्य (प्रतिवादी संख्या 6 के विक्रेता ने 23.07.2008 और 01.08.2008 को याचिकाकर्ता के पिता के पक्ष में दो बिक्री विलेख निष्पादित किए, याचिकाकर्ता के पिता का नाम तदनुसार दिनांक 09.09.2008 के आदेश द्वारा उत्परिवर्तित किया गया था। प्रतिवादी संख्या 6 ने तहसीलदार द्वारा पारित दिनांक 09.09.2008 के आदेश को वापस लेने के लिए एक आवेदन दायर किया, जिसे 2008 की रिट याचिका संख्या 47211 (भागवत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) के लंबित होने के आधार पर दिनांक 09.06.2009 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। इस न्यायालय द्वारा 2008 की रिट याचिका संख्या 47211 में यथास्थिति का आदेश भी पारित किया गया है। प्रतिवादी संख्या 6 ने दिनांक 05.02.2010 की सरकारी अधिसूचना के आधार पर दिनांक 05.05.2010 को एक और नामांतरण आवेदन दायर किया, जिसके द्वारा धारा -168-ए की रोक को 1000/- रुपये या भूमि की लागत का 2%, जो भी अधिक हो, के भुगतान की शर्त के साथ हटा दिया गया था, उपज़िलाधिकारी ने दिनांक 22.05.2010 के फैसले के तहत आदेश दिया कि यदि प्रतिवादी नंबर 6 14420/- रुपये कोषागार में जमा करेगा, तो उसके पक्ष में निष्पादित बिक्री-विलेख नियमित और कानूनी हो जाएगा।

3. याचिकाकर्ताओं ने सी.पी.सी. तथापि, उपजीलाधिहार द्वारा दिनांक 04042012 के आदेश द्वारा इसे अस्वीकृत कर दिया गया था। याचिकाकर्ताओं ने राजस्व बोर्ड के समक्ष संशोधन के माध्यम से दिनांक 04.04.2012 के आदेश को चुनौती दी, जिसे 16.11.2016 को चूक में खारिज कर दिया गया था, तदनुसार याचिकाकर्ताओं ने 30.01.2017 को बहाली आवेदन दायर किया जिसे राजस्व बोर्ड द्वारा 04.08.2017 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया था, इस आधार पर कि 30.11.2016 को पहले पारित किया गया था, जो योग्यता पर था क्योंकि इस तरह के आदेश दिनांक 30.11.2016 के खिलाफ कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया था, इसलिए यह रिट याचिका दायर की गई थी।

4. इस न्यायालय ने रिट याचिका पर विचार करते हुए दिनांक 22.09.2017 को निम्नलिखित आदेश पारित किए हैं: –

"याचिकाकर्ता के विद्वान वकील के साथ-साथ राज्य के प्रतिवादी संख्या 1 से 5 के लिए उपस्थित विद्वान स्थायी वकील को सुना।

पंजीकृत पोस्ट एडी द्वारा जल्द से जल्द प्रतिवादी संख्या 6 से 10 तारीख निश्चित करते हुए नोटिस जारी करें।एक सप्ताह के भीतर कदम उठाए जाएं।

सभी प्रतिवादियों को जवाबी हलफनामा दाखिल करने के लिए छह सप्ताह का समय दिया गया है। याचिकाकर्ता के पास प्रत्युत्तर हलफनामा दाखिल करने के लिए तीन सप्ताह का समय होगा।

इसके तुरंत बाद सूची बनाएं। "

5. दिनांक 22.09.2017 के आदेश के अनुसरण में प्रतिवादी नंबर 6 ने उपस्थिति दर्ज कराई है और रिट याचिका पर अपना जवाबी हलफनामा दायर किया है। याचिकाकर्ताओं ने अपना प्रत्युत्तर हलफनामा भी दायर किया है।

6. याचिकाकर्ताओं के वकील ने प्रस्तुत किया कि 2010 में यू.पी.जेड.ए. और एलआर अधिनियम की धारा 168-ए में किए गए संशोधन का कोई पूर्वव्यापी प्रभाव नहीं है क्योंकि प्रतिवादी नंबर 6 के इस तरह के म्यूटेशन को प्रतिवादी नंबर 6 के पक्ष में निष्पादित बिक्री विलेख के आधार पर अनुमति नहीं दी जा सकती है जो यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 168-ए के अनुसार शून्य था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि यू.पी.जेड.ए. और एलआर अधिनियम की धारा 168-ए में संशोधन से पहले बिक्री विलेख शून्य और अस्तित्वहीन थे, इस तथ्य के साथ कि

उनके उत्परिवर्तन को भी खारिज कर दिया गया था, इसलिए इसे बाद में जमा के माध्यम से मान्य नहीं किया जा सकता है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी संख्या 1 और 4 द्वारा पारित आक्षेपित आदेश अधिकार क्षेत्र के अनियमित प्रयोग से ग्रस्त है क्योंकि इस तरह को खारिज किया जा सकता है। याचिकाकर्ता के वकील ने यू.पी.जेड.ए. और एलआर अधिनियम की धारा 168-ए के बिंदु पर अपने तर्क के समर्थन में दो निर्णयों पर भरोसा किया है जो इस प्रकार हैं:

[1] 1991 (2) जेटी 75 = 1991 आरडी 184 मिथिलेश कुमार बनाम फतेह बहादुर सिंह

[II] 2000(4) एडब्ल्यूसी 2891 फतेह बहादुर सिंह बनाम जंग बहादुर गुप्ता एवं अन्य

7. याचिकाकर्ता के वकील ने आगे प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी संख्या 7, 9 और 10 (हरवीर और दो अन्य) द्वारा दायर 2006 का मुकदमा संख्या 84 प्लॉट नंबर 395 एम के संबंध में दिनांक 21.12.1991, 08.05.1992, 21.06.1993, 07.05.1994 और 29.08.2000 के बिक्री विलेख को शून्य और अप्रभावी घोषित करने की घोषणा के लिए सिविल कोर्ट में लंबित है जिसमें प्रतिवादी नंबर 6 (भागवत) और प्रतिवादी नंबर 8 (बलराम) प्रतिवादी नंबर 1 और 2 हैं, विवादित भूखंड के संबंध में निषेधाज्ञा के लिए प्रतिवादी संख्या 7, 9 और 10 द्वारा दायर 2005 का एक सिविल सूट नंबर 120 भी सिविल कोर्ट में लंबित है, क्योंकि इस तरह के आक्षेपित आदेशों को रद्द कर दिया जाए जो सिविल सूट के निर्णय के अधीन होगा।

8. दूसरी ओर, प्रतिवादी संख्या 6 के वकील ने प्रस्तुत किया कि उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा जारी दिनांक 05.04.2010 की राजपत्र अधिसूचना के मद्देनजर, बिक्री विलेख, जो यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा - 168-ए के प्रावधानों द्वारा वर्जित हो गया था, को निर्धारित समय के भीतर कुछ जमा राशि पर मान्य किया गया है, क्योंकि याचिकाकर्ताओं के वकील द्वारा दिया गया पूरा तर्क गलत है, दिनांक 05-04-2010 की अधिसूचना इस मामले में हुए विवाद का पूर्ण उत्तर है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी नंबर 6 ने 24.05.2010 को 14,420/- रुपये (भूमि की लागत का 2%) जमा करके सरकारी अधिसूचना की शर्त का अनुपालन किया, इस तरह 22.05.2010 को उपखंड अधिकारी द्वारा प्रतिवादी नंबर 6 के पक्ष में बिक्री विलेख को मान्य करने के लिए आदेश पारित किया गया था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि चूंकि मुंशी ने पहले ही पूरी जमीन को मुंशी के वारिस यानी प्रतिवादी संख्या 7 से 10 के रूप में हस्तांतरित कर दिया था, इसलिए प्रतिवादी संख्या 7 से 10 को विवादित प्लॉट नंबर 395 एम को किसी भी व्यक्ति को हस्तांतरित करने का कोई अधिकार और शीर्षक नहीं था, याचिकाकर्ताओं के हित में पूर्ववर्ती के पक्ष में प्रतिवादी संख्या 7 से 10 द्वारा 23.07.2008 को निष्पादित किया जाने वाला बिक्री विलेख शून्य है और अशक्त इसलिए वे विवादित भूखंड में कोई शीर्षक प्राप्त नहीं कर सकते। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी संख्या 6 द्वारा दायर 2008 की रिट याचिका संख्या 47211 को राज्य सरकार द्वारा जारी अधिसूचना दिनांक 05.04.2010 के तहत प्रतिवादी संख्या 6 के पक्ष में निष्पादित बिक्री-विलेख के सत्यापन के कारण दिनांक 14.12.2018 के आदेश द्वारा वापस ले लिया गया था। प्रतिवादी नंबर 6 के वकील ने अपने तर्क के समर्थन में निम्नलिखित निर्णय दिए: -

(i) 2011 (4) एडीजे 796 = 2011 (4) एडब्ल्यूसी 3366, श्रीमती सुमित्रा देवी बनाम सुशीला देवी और अन्य

(ii) 2011 (114) आरडी 767, दीप चंद बनाम राजस्व बोर्ड उत्तर प्रदेश इलाहाबाद और अन्य।

(iii) विजय बहादुर बनाम लक्ष्मी देवी, 2011 की द्वितीय अपील संख्या 1138, पर निर्णय 02.02.2012 को दिया गया

9. मैंने पक्षकारों के विद्वान वकीलों द्वारा दिए गए तर्क पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

10. इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि विवादित प्लॉट नंबर 395 एम के संबंध में प्रतिवादी नंबर 6 के पक्ष में बसंता, बलराम और भंवर सिंह द्वारा तीन बिक्री विलेख निष्पादित किए गए थे, कुल क्षेत्रफल 2.06 एकड़ और शेष 0.62 एकड़ क्षेत्र हरवीर के पक्ष में हस्तांतरित किया गया था। प्रतिवादी संख्या 6 के पक्ष में निष्पादित बिक्री विलेख को उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 168-ए के तहत निहित प्रावधानों के मद्देनजर नामांतरण कार्यवाही में शामिल नहीं किया जा सका, लेकिन राज्य सरकार की अधिसूचना दिनांक 05.04.2010 के कारण बिक्री विलेख वैध हो गया और तदनुसार याचिकाकर्ताओं के नामांतरण का आदेश दिया गया है।

11. तत्काल रिट याचिका में शामिल विवाद की गुण पहचानने करने के लिए, 23.08.2004 से पहले और 23.08.2004 के बाद यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 168-ए के प्रावधान के साथ-साथ 05.04.2010 की सरकारी अधिसूचना का अवलोकन आवश्यक होगा जो निम्नानुसार हैं:

23.08.2004 से पहले:-

(1) "168-ए. भूखंडों का स्थानांतरण-

(1) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के उपबंधों के होते हुए भी, कोई भी व्यक्ति किसी समेकित क्षेत्र में स्थित किसी भूखंडों को बिक्री, उपहार या विनिमय द्वारा हस्तांतरित नहीं करेगा, सिवाय इसके कि जहां अंतरण पदावधि धारक के

पक्ष में हो, जिसके पास खंड से सटा हुआ भूखंड है या जहां अंतरण ऐसे किसी पदावधि धारक के पक्ष में नहीं है, उस पूरे भूखंड का या इतना हिस्सा जिसमें व्यक्ति को भूमिधारी अधिकार प्राप्त हैं, जो भूखंडों से संबंधित है, इस प्रकार स्थानांतरित किया जाता है।

(2) उपधारा (1) के प्रावधानों के विपरीत किसी भी भूमि का हस्तांतरण शून्य होगा।

(3) जब भूमिधर ने उपधारा (1) के उपबंधों के उल्लंघन में कोई अंतरण किया है तो धारा 167 के उपबंध यथोचित परिवर्तनों के साथ लागू होंगे।

"23.08.2004 से:-

(2) "धारा 168-ए: विखंडन की रोकथाम" "लोप"

168-ए भूखंडों का हस्तांतरण- वैधानिक संशोधन

धारा 168-ए 1956 के यूपी अधिनियम 18 द्वारा जोड़ा गया था। लेकिन 23 अगस्त, 2004 से 2004 के यूपी अधिनियम 27 द्वारा इसे हटा दिया गया था। इसके विलोपन से पहले, धारा 168 -ए निम्नानुसार थी:

(1) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के उपबंधों के होते हुए भी, कोई भी व्यक्ति किसी समेकित क्षेत्र में स्थित किसी भूखंड को बिक्री, उपहार या विनिमय द्वारा हस्तांतरित नहीं करेगा, सिवाय इसके कि जहां अंतरण पदावधि धारक के पक्ष में हो, जिसके पास खंड से सटा हुआ भूखंड है या जहां अंतरण ऐसे किसी पदावधि धारक के पक्ष में नहीं है, उस भूखंड का पूरा या इतना हिस्सा जिसमें व्यक्ति के पास भूमिधारी अधिकार हैं, जो टुकड़े से संबंधित है, इस प्रकार स्थानांतरित किया जाता है।

(2) उपधारा (1) के प्रावधानों के विपरीत किसी भी भूमि का हस्तांतरण शून्य होगा।

(3) जब भूमिधर ने उपधारा (1) के उपबंधों का उल्लंघन करते हुए कोई अंतरण किया है तो धारा 167 के उपबंध यथोचित परिवर्तनों के साथ लागू होंगे।

"सरकारी गजट, उत्तर प्रदेश

उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा प्रकाशित

असाधारण

विधायी परिशिष्ट

भाग-4 खंड (ख)

(परिनीयत आदेश)

(लखनऊ, सोमवार, 05 अप्रैल, 2010)

चैत्र 15, 1932 शक सम्वत

उत्तर प्रदेश सरकार राजस्व अनुभाग-1

संख्या ....

लखनऊ अप्रैल 2010

अधिसूचना

प0अ0-19... ....

21/4

"उत्तर प्रदेश जमीदारी विनाश और भूमि व्यवस्था(विशेष उपबंध)अधिनियम,2010 (उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 4 सन 2010) की धार 2 के अधीन शक्ति का प्रयोग करके राज्यपाल अधिसूचित करते हैं की किसी टुकड़े के किसी अंतरण जो उत्तर प्रदेश जमीदारी विनाश और भूमि व्यवस्था अधिनियम,1950 (उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 1 सन 1951) की धार 168-क जैसा की वह उत्तर प्रदेश जमीदारी विनाश और भूमि(संशोधन) अधिनियम, 2004 (उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 27 सन 2004) के प्रारंभ के पूर्व विद्यमान थी, के अधीन शून्य हो गया था और जिसकी राज्य सरकार के पक्ष मे राजस्व अभिलेखों मे प्रविष्टि नहीं की गई थी, निर्विहित समझा जाएगा, के विधिमान्यकरण के लिए एक हजार रुपये या भूमि के मूल्य का 2 प्रतिशत, जो भी अधिक हो, होगी जो लेखा शीर्षक "0029 भू-राजस्व-800-अन्य प्राप्तियाँ-08-मालिकाना राजस्व-0806 प्रकीर्ण प्राप्तियाँ के अधीन जमा की जाएंगी। विधिमान्यकरण आवेदन इस अधिसूचना के गजट मे प्रकाशित होने के दिनांक से छह माह के भीतर परगना के प्रभारी असिस्टन्ट कलेक्टर के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा। भूमि वो मूल्य का होगा जो कलेक्टर द्वारा स्टाम्प शुल्क के लिए अवधारित किया है और ऐसे आवेदन.. को लागू हो।

आज्ञा से

शंभु नाथ शुक्ला

"संविधान के अनुच्छेद 348 के खंड (3) के उपबन्ध के अनुसरण में राज्यपाल ने अधिसूचना संख्या 605/1.1, 2010-12(7)2003-31 के निम्नलिखित अंग्रेजी अनुवाद के प्रकाशन का आदेश दिया है। सामान्य जानकारी के लिए दिनांक 05 अप्रैल, 2010।

संख्या.605/1-1-2010-12(7)2003-31 दिनांक लखनऊ 05 अप्रैल, 2010

उत्तर प्रदेश ज़मीदारी उन्मूलन और भूमि सुधार (विशेष प्रावधान) अधिनियम 2010 (2010 का उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या IV) की धारा 2 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, राज्यपाल ने उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम 1950 (1951 का उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 1) की धारा 168-ए के तहत शून्य हो गए टुकड़े के किसी भी हस्तांतरण के लिए शुल्क लागू करने की कृपा की है जैसा कि यह उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार (संशोधन) अधिनियम 2004 (2004 का उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या XXVII) के प्रारंभ होने से पहले था और राज्य सरकार के पक्ष में राजस्व अभिलेखों में प्रविष्ट नहीं किया गया था, यह समझा

जाएगा कि भूमि की लागत का एक हजार या दो प्रतिशत, जो भी अधिक हो, शीर्ष "0029 बीएचयू-राजस्व-800-आन्या पर्प्तिया-08-मलिकाना राजस्व-0806 प्रकिर्ण प्राप्तिया" के तहत राजपत्र में इस अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख से छह महीने के भीतर उपखंड के सहायक कलेक्टर प्रभारी के समक्ष जमा किया जाएगा। भूमि की लागत ऐसी होगी जो कलेक्टर द्वारा स्टाम्प ड्यूटी के लिए निर्धारित की जाएगी और इस तरह के आवेदन की तारीख पर लागू होगी "

12. ऊपर उद्धृत प्रावधानों से यह स्थापित होता है कि यू.पी.जेड.ए. और एलआर अधिनियम की धारा 168-ए के प्रावधानों को 2004 के यूपी अधिनियम संख्या 27 द्वारा 23.08.2004 से हटा दिया गया है और 05.04.2010 को जारी राज्य सरकार की अधिसूचना ने बिक्री-विलेख को मान्य किया है जिसे यू.पी.जेड.ए. और एलआर अधिनियम की धारा 168-ए द्वारा कुछ नियमों और शर्तों पर रोक दिया गया था।

13. प्रतिवादी संख्या 6 ने दिनांक 05.04.2010 की सरकारी अधिसूचना के अनुपालन में 05.05.2010 को 14,420/- रुपये जमा किए जो छह महीने की समयावधि के भीतर विवादित भूमि की लागत का 2% है। तदनुसार, याचिकाकर्ताओं के पक्ष में म्यूटेशन का भी आदेश दिया गया था और बहाली आवेदन के साथ-साथ याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर संशोधन को कानून के अनुसार खारिज कर दिया गया था।

14. प्रतिवादी नंबर 6 के वकील द्वारा उद्धृत निर्णय वर्तमान विवाद में लागू होते हैं। श्रीमती सुमित्रा देवी (सुप्रा) में दिए गए निर्णय के पैराग्राफ संख्या 4 और 7 प्रासंगिक होंगे जो इस प्रकार हैं: -

"4. मैं याचिकाकर्ता के विद्वान वकील के तर्क से पूरी तरह सहमत हूं कि सिविल सूट और अपील को खारिज करने के बाद, अतिरिक्त कलेक्टर या पुनरीक्षण प्राधिकरण/न्यायालय के लिए विपरीत दृष्टिकोण लेने की अनुमति नहीं थी और यह प्रतिवादी नंबर 2 द्वारा अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग था। इसके अलावा, जैसा कि अपीलीय न्यायालय/एडीजे द्वारा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत अधिनियम की धारा 168-ए द्वारा हिट किए जाने की दलील दी गई है, केवल राज्य या गांव सभा द्वारा उठाया जा सकता है और प्रतिवादी नंबर 2 के पास मामले को उत्तेजित करने का कोई अधिकार नहीं था। याचिकाकर्ता के पक्ष में प्रतिवादी नंबर 5 द्वारा बिक्री-विलेख निष्पादित किया गया था और दोनों पूरी तरह से संतुष्ट थे और गांव सभा या राज्य सरकार ने इसे चुनौती नहीं दी थी। इस परिदृश्य में, किसी अन्य व्यक्ति के पास इस मामले को उत्तेजित करने का कोई अधिकार नहीं था।

7. इसके अलावा, धारा 168- ए के प्रावधान काफी कठोर थे। अनुभाग को भी हटा दिया गया है। 2004 का उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 27 जिसने धारा 168-ए को हटा दिया, उक्त धारा द्वारा प्रभावित पिछले लेनदेन को शून्य (शून्य के स्थान पर) और एक विशेष अवधि के भीतर कुछ मामूली शुल्क के भुगतान पर सुसाध्य (मान्य होने में सक्षम) बना दिया जो अब समाप्त हो गया है (धारा 11)। तदनुसार, इन दो कारणों से धारा की व्याख्या (पिछले लेनदेन के लिए) उदारतापूर्वक विक्रेता और गाहक के पक्ष में की जाएगी।

15. प्रतिवादी नंबर 6 के विद्वान वकील द्वारा उद्धृत एक अन्य निर्णय दीप चंद (सुप्रा) भी प्रासंगिक है। दीप चंद (सुप्रा) में दिए गए फैसले के पैराग्राफ नंबर 6, 7 और 8 इस प्रकार हैं: -

"6. प्रतिवादी नंबर 4 के विद्वान वकील, श्री गुप्ता ने प्रस्तुत किया कि जवाब देने वाले प्रतिवादी के पास खसरा नंबर 518 पर उसका और उसके भाई मुरली का आस-पास का चक था और तदनुसार याचिकाकर्ता ने दिनांक 8.10.1985 की बिक्री के माध्यम से चक नंबर 521 से पंद्रह बिस्वास भूमि को उत्तर देने वाले प्रतिवादी के पिता को हस्तांतरित कर दिया। याचिकाकर्ता ने बिक्री विलेख के निष्पादन को कभी चुनौती नहीं दी। याचिकाकर्ता बेईमान हो गया और उसने एक आवेदन दायर किया कि कार्यवाही शुरू की जानी चाहिए क्योंकि हस्तांतरण भूमि के एक टुकड़े के हस्तांतरण के बराबर है, इसलिए अमान्य था। उसके बारे में पता चलने पर, जवाब देने वाला प्रतिवादी अतिरिक्त कलेक्टर के सामने चला गया और आदेश पारित किए गए। तदनुसार, दिनांक 18-8-1987 को उत्तर देने वाले प्रतिवादी के पिता का नाम भी उत्परिवर्तित कर दिया गया था और दिनांक 9 जुलाई, 1987 का आदेश पारित करते समय प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पूर्ण अनुपालन किया गया था। यह केवल याचिकाकर्ता का बेईमान इरादा है जो उसके द्वारा की जाने वाली कार्यवाही में परिलक्षित हुआ था। अन्यथा भी, यह मानते हुए कि यदि भूमि का एक टुकड़ा थी तो भी यह राज्य में निहित होगी और याचिकाकर्ता को इसके विपरीत कुछ भी हासिल नहीं होगा। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि वास्तव में, राज्य सरकार ने अधिसूचनाएं जारी की हैं कि यदि कोई विखंडन होता है तो उसे कुछ जमा करके नियमित किया जा सकता है और इसलिए, बिक्री विलेख शून्य नहीं होगा।

7. पक्षकारों के विद्वान वकीलों को सुनने और काउंटर और प्रत्युत्तर हलफनामों का अवलोकन करने के बाद, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के अधिकार बिक्री विलेख के निष्पादन के साथ समाप्त हो गए थे। याचिकाकर्ता ने कभी भी बिक्री विलेख को चुनौती नहीं दी थी, इसलिए ऐसा प्रतीत होता है

कि याचिकाकर्ता ने किसी तरह बिना किसी वैध कारण के जवाब देने वाले प्रतिवादी को नुकसान पहुंचाने की कोशिश की है। याचिकाकर्ता प्रतिवादी नंबर 4 को सरासर उत्पीड़न करने के अलावा कुछ भी हासिल करने के लिए खड़ा नहीं होगा। प्रतिवादी का यह तर्क कि याचिकाकर्ता कुछ भी हासिल करने के लिए खड़ा नहीं होगा, सही प्रतीत होता है।

8. इस तथ्य के मद्देनजर कि याचिकाकर्ता रिकॉर्ड पर लाए गए तथ्यों और अधिकारियों द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों के मद्देनजर हस्तक्षेप के लिए कोई मामला बनाने में असमर्थ रहा है, मैं भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में हस्तक्षेप करने का इच्छुक नहीं हूं। रिट याचिका में योग्यता का अभाव है और इसे तदनुसार खारिज कर दिया जाता है। पहले दिए गए अंतरिम आदेश को निरस्त किया जाता है।"

16. याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान वकील द्वारा उद्धृत निर्णय वर्तमान विवाद में लागू नहीं होते हैं क्योंकि दोनों निर्णय वर्ष 1991 और 2000 के हैं, जबकि यू.पी.जेड.ए. और एलआर अधिनियम की धारा 168-ए को 2004 के यूपी अधिनियम संख्या 27 द्वारा 23.08.2004 तारीख से हटा दिया गया है और बिक्री विलेख के सत्यापन के लिए राज्य सरकार की अधिसूचना जो यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 168-ए द्वारा प्रभावित थी, 05.04.2010 को लागू हुई थी।

17. यह भी महत्त्वपूर्ण है कि प्रतिवादी संख्या 7, 9 और 10 (याचिकाकर्ताओं के विक्रेता) द्वारा प्रतिवादी संख्या 6 के बिक्री-विलेख को अवैध, शून्य और अप्रभावी घोषित करने के लिए 2006 का सिविल सूट नंबर 4 दायर किया गया है जो सिविल कोर्ट के समक्ष निर्णय के लिए लंबित है।

18. मामले के पूरे तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ श्रीमती सुमित्रा देवी (सुप्रा) और दीप चंद (सुप्रा) में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुपात को ध्यान में रखते हुए, 05.04.2010 की सरकारी अधिसूचना के मद्देनजर बिक्री-विलेख के सत्यापन के प्रावधानों के साथ, आक्षेपित आदेशों के खिलाफ किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

19. रिट याचिका योग्यता से रहित है और तदनुसार इसे खारिज कर दिया जाता है।

20. लागत के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं है।

(2023) 1 ILRA 576

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 22.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा
माननीय न्यायमूर्ति मो. असलम

आपराधिक अपील संख्या-500 वर्ष 1984

राम शंकर व अन्य ... अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ... प्रतिपक्षी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:
सुबुध, के. शुक्ला, के. एम. राकेश, के. मुकुल राकेश, शांति प्रकाश, प्राची

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

क. दांडिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 374(2) - दोषसिद्धि और सजा के विरुद्ध अपील - सुनवाई का दायरा - सिद्धांत समझाया गया - अवधारित, प्रथम अपीलीय न्यायालय को तथ्यों पर आपराधिक अपील का निर्णय करते समय अपने स्वतंत्र दिमाग का प्रयोग करना चाहिए और अपने स्वयं के मूल्यांकन के आधार पर अपने निष्कर्षों को अभिलिखित करना चाहिए, साक्ष्य के हमारे स्वतंत्र मूल्यांकन और निष्कर्षों को रिकॉर्ड करने के लिए साक्ष्य का मूल्यांकन करना चाहिए, यदि हम उन निष्कर्षों तक पहुँचते हैं जो विचारण न्यायालय निष्कर्षों के अनुरूप है, अपील खारिज की जा सकती है और यदि साक्ष्य के मूल्यांकन के बाद दो विचार संभव हैं और एक दृष्टिकोण बरी करने के पक्ष में है, तो अपील की अनुमति दी जाएगी या यदि साक्ष्य के मूल्यांकन के आधार पर हम पाते हैं कि विचारण न्यायालय ने अपराध के निष्कर्षों को रिकॉर्ड करते समय साक्ष्य का सही मूल्यांकन नहीं किया है और यह अवैध है, अपील को स्वीकार किया जाएगा। (पैरा 24)

B. आपराधिक कानून – प्रथम सूचना रिपोर्ट – देरी, इसकी प्रामाणिकता को कितना प्रभावित करता है – अंजन दासगुप्ता के मामले पर भरोसा – एक त्वरित रूप से दर्ज की गई प्राथमिकी वास्तव में क्या हुआ है, और विचाराधीन अपराध के लिए कौन जिम्मेदार था – विचारण न्यायालय ने सही माना है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट तुरंत दर्ज की गई थी जो किसी भी प्रकार की मनगढ़ंत और विचार-विमर्श थ्योरी को खारिज करती है और यह सूचनाकर्ता के संस्करण की सच्चाई के बारे में आश्वासन देती है। (पैरा 25 और 26)

C. आपराधिक कानून – प्रथम सूचना रिपोर्ट – कुछ तथ्यों की भूल, अभियोजन के लिए कितना घातक है – माना जाता है, कुछ चूक जैसे श्याम बिहारी द्वारा स्कार्फ द्वारा

चेहरे को ढंकने का उल्लेख न करना और प्राथमिकी में कुछ अन्य छोटी चूक अभियोजन मामले की जड़ तक नहीं जाती है, इसलिए यह घातक नहीं है। इसके अलावा, प्राथमिकी को एक विश्वकोश नहीं कहा जा सकता है। यह उम्मीद नहीं की जाती है कि सभी विवरण प्राथमिकी में पाए जाने चाहिए। इसलिए, यह अभियोजन पक्ष के मामले को प्रभावित नहीं करेगा। (पैरा 29)

D. आपराधिक मुकदमा - हितबद्ध गवाह - विश्वसनीयता - अवधारित, इस आधार पर कि गवाह एक करीबी रिश्तेदार है और परिणामस्वरूप एक पक्षपातपूर्ण गवाह है, पर भरोसा नहीं किया जाना चाहिए, इसमें कोई तथ्य नहीं है - दलीप सिंह के मामले पर भरोसा किया गया है। (पैरा 37)

E. आपराधिक विचारण – भारतीय दंड संहिता, 1860 – धारा 302 – हत्या – घायल गवाह – गवाहों का पक्ष कि अपीलकर्ता ने घायल पर गोली चलाई – विश्वसनीयता – उसकी जिरह में कुछ भी नहीं आया जो उसकी गवाही को अविश्वसनीय बनाता है – प्रासंगिकता – माना जाता है कि इस तथ्य को चुनौती नहीं दी गई थी कि अभियुक्त की पहचान टॉर्च के प्रकाश में की गई थी और अभियुक्त की टॉर्च की रोशनी में जिरह में चुनौती नहीं दी गई थी। इसलिए, इस गवाह की गवाही विश्वास को प्रेरित करती है और इस पर भरोसा किया जा सकता है – अभियोजन पक्ष ने धारा 302/149, 307/149, 148, 323/149 और धारा 449 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए आरोपी अपीलकर्ताओं के खिलाफ उचित संदेह से परे अपना मामला साबित कर दिया है। विद्वान निचली अदालत ने अपीलकर्ताओं को सही दोषी ठहराया है और सजा सुनाई है। (पैरा 31 और 40)

अपील खारिज। (ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:-</u>

1. मज्जल बनाम हर की अवस्था; (2013) 6 एस.सी.सी. 798

2. बख्शीश राम और एक और बनाम राज्य पंजाब; ए.आई.आर. 2013 एस.सी. 1484

3. फूला सिंह बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य; ए.आई.आर. 2014 एस.सी. 1256

4. अंजन दासगुप्ता बनाम पश्चिम बंगाल और अन्य राज्य; (2017) एस.सी.सी. 2022

5. आपराधिक अपील संख्या-525-526 वर्ष 2012; जय प्रकाश सिंह बनाम बिहार राज्य

और एक अन्य का फैसला दिनांकित: 14 मार्च, 2012

6. गंगाधर बेहरा और अन्य बनाम उड़ीसा राज्य; (2002) 8 एस.सी.सी.

7. दलीप सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य; (ए.आई.आर. 1953 एस.सी. 364)

8. गुली चंद और अन्य बनाम राजस्थान राज्य; (1974 (3) एस.सी.सी. 698

9. वडिवेलु थेवर बनाम मद्रास राज्य; ए.आई.आर. 1957 एस.सी. 614

10. मसाल्टी और अन्य। बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 202

11. संदू सरन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; (2016) 4 एस.सी.सी. 357

(माननीय न्यायमूर्ति मोहम्मद असलम द्वारा प्रदत्त)

1. सुश्री प्राची त्रिवेदी, आवेदक संख्या-3 के अधिवक्ता, श्री धर्म त्रिवेदी, अपीलकर्ता संख्या-4 के अधिवक्ता, साथ ही उत्तर प्रदेश राज्य के लिए अपर सरकारी अधिवक्ता श्री उमेश चन्द्र वर्मा को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

2. यह आपराधिक अपील अपीलकर्ताओं (1) राम शंकर, (2) गोकरण शुक्ला, (3) जागेश्वर, (4) साबित, और (5) मुकद्दर की ओर से धारा 374 (2) द०प्र०स० के तहत अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या-1, लखीमपुर खीरी द्वारा केस अपराध संख्या-146 वर्ष 1981, थाना-धौरहरा, जिला- लखीमपुर खीरी से उद्‌भूत सत्र परीक्षण संख्या-168 वर्ष 1984 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम शंकर और 4 अन्य) में पारित दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय और सजा, जिसके तहत अपीलकर्ताओं को धारा 302/149 भारतीय दंड संहिता (संक्षेप में "भ०द०वि०") के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया गया था और उन्हें आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी, उन्हें धारा 148 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए भी दोषी ठहराया गया था और एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई थी, धारा 307/149 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए भी दोषी ठहराया गया और सात साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई और धारा 449 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए भी दोषी ठहराया गया और आठ साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई, और धारा 323/149 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया गया और एक महीने के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई, के आदेश के खिलाफ दायर की गई है। यह भी निर्देश दिया गया था कि सभी सजाएं साथ-साथ चलेंगी।

3. अपील के लंबित रहने के दौरान, अपीलकर्ता नं. (1) राम शंकर, (2) गोकर्ण शुक्ला और (5) मुकाद्दर की मृत्यु हो गई और उनके संबंध में अपील दिनांक 29.09.2021 के आदेश के तहत निरस्त कर दी गई, अब वर्तमान अपील

केवल अपीलकर्ता संख्या-(3) जागेश्वर और (4) साबित के खिलाफ बची है।

4. संक्षेप में, अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि सूचनाकर्ता देवी चरण मिश्रा (अ०सा०-1) पुत्र राम स्वरूप मिश्रा, निवासी गांव शेखान पुरवा, थाना-धौरहरा, जिला-लखीमपुर खीरी ने दिनांक 06.07.1981 को सुबह 7.00 बजे थाना-धौरहरा में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई जिसमें आरोप लगाया गया कि वह अपने चचेरे भाई लालजी प्रसाद पुत्र संतराम के साथ उसी घर में रहता था। उसकी दूसरी शादी करीब 12 साल पहले गांव मुरासा, थाना-मितौली निवासी बाबू राम शुक्ला की पुत्री विद्या से हुई थी। उनकी पत्नी विद्या एक बुरे चरित्र की महिला थीं, जिसके कारण उनके साथ उनके संबंध अच्छे नहीं थे और उन्होंने उनको अलग कर दिया और अपने पैतृक घर में रह रही थीं। यह भी आरोप लगाया जाता है कि इसके कारण उनके ससुर, बहनोई राम शंकर और अन्य लोगों को संदेह था कि लालजी प्रसाद और उनकी पत्नी श्रीमती रामश्री इस सब परेशानी के पीछे थे, इसलिए उन्होंने देवी चरण को लालजी प्रसाद से अलग होने के लिए मनाने का बार-बार असफल प्रयास किया। घटना से एक साल पहले, उनकी पत्नी ने भी कहा था कि जब तक लालजी और उनकी पत्नी नहीं मरेंगे या मारे नहीं जाएंगे, तब तक वह अपने ससुराल नहीं आएंगी। उसकी पत्नी विद्या के पड़ोस में रहने वाले आरोपी सबीत और मुकद्दर के साथ अवैध संबंध हो गए थे और इस अपवित्र गतिविधि के कारण उपरोक्त आरोपी ने लालजी प्रसाद के साथ अपशब्दों का आदान-प्रदान किया था। 5/6.07.1981 की रात को वह और उसका चचेरा भाई लालजी प्रसाद रात का खाना खाने के बाद आंगन में सो रहे थे और उनकी भाभी राम श्री, भतीजी श्रवण कुमारी और भतीजे दिनेश कुमार छत पर सो रहे थे और उनका एक अन्य भाई श्रीकांत और उनका नौकर अर्जुन लोध (अ०सा०-3) उसी आंगन के पश्चिम की ओर सो रहे थे। आंगन में टॉर्च जल रही थी। आधी रात को लगभग 12:30 बजे सूचनाकर्ता उठा और चौकी पर बैठ गया। रात में 5-6 लोगों ने ततीहार (फूस) गेट के उत्तर की ओर से टॉर्च चमकाते हुए घुसपैठ की, उस पर सूचनाकर्ता ने उन्हें टोका, तब बदमाशों ने उन्हें चुपचाप बैठने की आज्ञा दी। तभी उसने टॉर्च की चमक में देखा कि उसका साला राम शंकर बंदूक से लैस, श्याम बिहारी शुक्ल देसी अद्धी से लैस और उसका साले का बीटा जागेश्वर लाठी से लैस किया, कुदाल से लैस सबीत, लाठी से लैस मुकद्दर आए। आरोपी सबीत और मुकद्दर ने उसे पकड़ लिया लेकिन जैसे ही उसके साले और श्याम बिहारी ने कहा कि उसे मत मारना वरना उसकी बहन विधवा हो जाएगी, उन्हें लालजी प्रसाद और उसकी पत्नी को मारना पड़ा। उसके शोर गुल पर श्रीकांत और अर्जुन लोध जाग गए और बासुदेव ने बगल की छत से टॉर्च जलाई, फिर साबित चिल्लाया कि लालजी प्रसाद पास में सो रहे हैं जिस पर राम शंकर और श्याम बिहारी ने लालजी प्रसाद पर गोली चला दी जिससे उनकी मौत हो गई, तब साबित चिल्लाया कि लालजी प्रसाद की पत्नी छत पर सो रही है, इसके बाद सभी बदमाश छत की ओर दौड़े। सूचनाकर्ता और अर्जुन लोध भी अपनी भाभी को बचाने के लिए छत पर गए, तभी राम शंकर ने उसकी भाभी पर गोली चला दी। सूचनाकर्ता देबी चरण ने अपनी भाभी को गले से लापता लिया, फिर जागेश्वर और मुकद्दर ने लाठी से हमला किया, जिसके परिणामस्वरूप वह, उसकी भाभी राम श्री और भतीजी घायल हो गए। इस बीच, सुंदर लाल तिवारी और गांव के कई अन्य लोग लाठी से लैस होकर आए, टॉर्च जलाया और शोर गुल मचाया। इसके बाद सभी आरोपी फायरिंग करते हुए उत्तर की ओर भाग गए। उन्होंने आरोपियों की पहचान स्पष्ट रूप से की और उनके नामों से भी वो परिचित हैं। उसके भाई का शव घर पर पड़ा था और घायल भी घर पर ही थे। उन्होंने निवेदन किया कि उनकी प्राथमिकी दर्ज की जाए और आरोपियों के खिलाफ कानूनी कार्रवाई की जाए।

5. हेड कांस्टेबल रघुनाथ सिंह ने सूचनाकर्ता की तहरीर (प्रदर्श क-1) के आधार पर दिनांक 06.07.1981 को प्रातः 7 बजे चिक रिपोर्ट (प्रदर्श क-5) अंकित की और दिनांक 06.07.1981 को प्रातः 7 बजे रिपोर्ट क्रमांक-9 द्वारा जी.डी. में आवश्यक प्रविष्टि करके थाना-धौरहरा में धारा 147, 148, 149, 449, 302 भ०द०वि० के तहत मुकदमा अपराध संख्या-146 दर्ज किया।

6. मामले की जांच सब-इंस्पेक्टर सरदार सिंह को सौंपी गई थी। उन्होंने केस डायरी में मामला दर्ज करते हुए चिक रिपोर्ट और जी.डी. की नकल की और 06.07.1981 को हेड कांस्टेबल रघुनाथ सिंह, चिक और जी.डी. के लेखक का बयान दर्ज किया। इसके बाद उपनिरीक्षक सरदार सिंह के साथ उपनिरीक्षक इरशाद, आरक्षक राम प्रकाश, आरक्षक रागिनी, आरक्षक गायत्री प्रसाद यादव और आरक्षी उदय नारायण घटनास्थल के लिए रवाना हुए। उन्होंने श्रीकंठ, बासुदेव, श्रीकृष्ण, वंश गोपाल और परशुराम को पंचायतनामा का गवाह नियुक्त किया। मृतक लालजी प्रसाद का शव सूचनाकर्ता के घर के एक कमरे में पड़ा मिला। शव का सिर दक्षिण की ओर और पैर उत्तर की ओर था। कोहनी शव के किनारे पाई गई। उंगलियां मुड़ी हुई पाई गईं। आंखें खुली थीं और मुंह बंद था। मृतक के शरीर पर खून से सना जनेऊ, कुर्ता और धोती मिला है। चटाई (कथरी) और खाट खून से सनी मिली। सीने के बाईं ओर खून से सनी बन्दूक की चोट पाई गई। छाती के दाहिनी ओर खून के धब्बे के साथ चोट के निशान भी पाए गए। पंचनामा गवाहों ने कहा कि मृतक की मौत चोट के कारण हुई और मौत के सही कारण का पता लगाने के लिए शव के शव परीक्षण की आवश्यकता है। उपनिरीक्षक सरदार सिंह ने पंचायतनामा (प्रदर्श क-7), फोटो लाश

(प्रदर्श क-8), चालान लाश (प्रदर्श क-9), नमूना मुहर (प्रदर्श क-10), सी.एम.ओ. को पत्र (प्रदर्श क-11) तैयार किया और कांस्टेबल राम प्रकाश (अ०सा०-4) और गांव चौकीदार कुंज बिहारी द्वारा शव को शव परिक्षण के लिए भेजा। उन्होंने घटनास्थल से सादी मिट्टी और खून से सनी मिट्टी भी ली और उन्हें कंटेनरों में सील कर दिया। खून से सना तौलिया, चटाई का टुकड़ा, खाट की रस्सी का टुकड़ा भी लिया और उन्हें सील कर दिया। उसने एक बूढ़ी औरत की इस्तेमाल की हुई धोती ली और उसे सील कर दिया। उसने चार खाली कारतूस (लाल रंग के) और कारतूस की दो टिकली मिली और उसे सील कर दिया। मामले की जांच बाद में थानाध्यक्ष उप-निरीक्षक के.डी सिंह (अ०सा०-5) द्वारा की गई थी। 06.07.1981 को उन्होंने सूचनाकर्ता देबी चरण (अ०सा०-1) का बयान दर्ज किया, जिन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया, देबी चरण के कहने पर घटनास्थल का निरीक्षण किया और नक्शा नज़री (प्रदर्श क-13) तैयार किया। दिनांक 07.07.1981 को उपनिरीक्षक के.डी सिंह ने प्रत्यक्षदर्शी श्रीकांत, अर्जुन लोध (अ०सा०-3), श्रीमती राम श्री (अ०सा०-2), मृतक की पुत्री श्रवण कुमारी का बयान दर्ज किया।

7 . घायल श्रवण कुमारी पुत्री लालजी आयु लगभग 14 वर्ष की डा. आर. पी. राठौर, चिकित्सा अधिकारी, प्रभारी प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, धौरहरा द्वारा दिनांक 06.07.1981 को अपराह्न 02.45 बजे चिकित्सकीय जांच की गई। चिकित्सा जांच के समय, उसके शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

"(i). माथे के बीच में 5 सेमी x 4 सेमी का संलयन होता है।

(ii) सी/ओ दर्द दोनों नितंब। डॉ. राठौर ने चोट की रिपोर्ट अपनी लिखावट (प्रदर्श क-2) में तैयार की थी और श्रवण कुमारी के अंगूठे के निशान की पहचान की थी।

8. उसी दिन अपराह्न 03:00 बजे उन्होंने लगभग 40 वर्ष आयु के लालजी प्रसाद की पत्नी रामश्री की भी जांच की। उसके शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

"(i) बाएं अग्रभाग के पीछे 5 सेमी x 4 सेमी, बाईं कोहनी से 4 सेमी नीचे,

(ii) बाएं टखने के पीछे 4 सेमी x 2 सेमी घर्षण,

(iii) बाएं घुटने के सामने 7.5 सेमी x 2.5 सेमी संलयन,

(iv) बाएं नितंब के भीतरी और निचले चतुर्थांश पर 8 सेमी x 4 सेमी x मांसपेशियों में प्रवेश की गोली का घाव जो वल्वा तक फैला हुआ है, चारिंग और गोदना मौजूद है, और

(v) दाहिने नितंब के निचले और आंतरिक चतुर्थांश पर 5 सेमी x 3 सेमी x मांसपेशियों में प्रवेश की बंदूक की गोली का घाव, चारिंग और गोदना मौजूद है।

डॉ. राठौर ने रामश्री (प्रदर्श क-3) की चोट रिपोर्ट अपनी लिखावट में तैयार की। उन्होंने चोट की रिपोर्ट पर राम श्री के दायें अंगूठे के निशान की भी पहचान की।

9. डॉ. आर. पी. राठौर ने उसी दिन दोपहर 3:15 बजे लगभग 30 वर्ष की देबी चरण की चिकित्सकीय जांच भी की। मेडिकल जांच के समय उसके शरीर पर चोट के निशान पाए गए।

"(i) गुंमड़ ऊपरी चेहरे के समकोण पर 4.5 सेमी x 1 सेमी, और

(ii) घर्षण के साथ संलयन 10 सेमी x 15 सेमी।

10. डॉ. आर. पी. राठौर ने घायल देबी चरण की चोट की रिपोर्ट (प्रदर्श क-4) अपनी लिखावट में तैयार की। उन्होंने देबी चरण के दायें अंगूठे के निशान की भी पहचान की।

11. मृतक लालजी प्रसाद का शव परिक्षण डॉ. कमलेश कुमार (अ०सा०-6) द्वारा दिनांक 07.07.1981 को अपराह्न 2:40 बजे किया गया। शव परिक्षण के समय मृतक की उम्र 55 साल पाई गई। मृतक का शव औसत पाया गया। रिगर मोर्टिस ऊपरी भागों से पारित होते हैं और निचले हिस्सों में मौजूद हैं। शव परिक्षण के पीठ पर दाग पाए गए। मृतक का शव कटा हुआ मिला। पूरे शरीर में छाला मौजूद था। कुछ स्थानों पर त्वचा छिल गई। आंखें खुली मिलीं। मृतक लालजी प्रसाद के शरीर पर निम्न मृत्यु पूर्व चोटें पाईं गईं:

"(i) कॉलर बोन के अंदरूनी छोर के ठीक नीचे बाईं ओर की छाती के ऊपरी हिस्से के सामने 9 सेमी x 5 सेमी x छाती गुहा गहरी बंदूक की गोली का प्रवेश घाव। घाव के आसपास कालापन और गोदना मौजूद पाया गया, मार्जिन अनियमित एवरटेड थे। घाव में मौजूद खून का थक्का।

(ii) 11 सेमी x 7 सेमी x छाती गुहा का बंदूक की गोली का निकास घाव, बाईं ओर छाती और कंधे के सामने गहरी चोट संख्या-1 के बाईं ओर 2 सेमी। मार्जिन अनियमित, थक्का जमा हुआ खून मौजूद है।

चोट संख्या-1 चोट संख्या-2 से जुड़ी हुई है, जबकि घावों के ट्रैक में थक्के वाले रक्त, टूटी हुई पसलियों से हड्डी के टुकड़े और मांसपेशियों, वाहिकाओं और नसों के व्यापक क्षरण हैं, जैसा कि बाईं ओर की पहली से छठी पसलियों के विच्छेदन पर पाया जाता है, जो कई टुकड़ों में खंडित है। 75 छोटे अनियमित धातु शॉट्स बाएं हाथ के अंदरूनी हिस्से की बाईं ओर एक्सिला मांसपेशी, कंधे के जोड़, कंधे और बांह के पिछले हिस्से पर हाथ की मांसपेशियों में एम्बेडेड पाए गए और चोटों और मांसपेशियों को बाहर निकाला गया जिसमें शॉट्स एम्बेडेड थे, उनमें थक्का जमा रक्त था।

(iii) मर्मज्ञ घाव 4 सेमी x 2 सेमी x छाती गुहा बाईं ओर छाती के ऊपरी हिस्से के सामने गहरी, दाएं कॉलर हड्डी से

3 सेमी नीचे, आकार में अण्डाकार, मार्जिन स्पष्ट-कट तेज, थक्के वाले रक्त मौजूद पाए गए।

12. डॉक्टर ने कहा कि मृतक की मृत्यु लगभग डेढ़ दिन पहले पूर्व-मृत्यु चोटों के परिणामस्वरूप सदमे और रक्तस्राव के कारण हुई थी। डॉ. कमलेश कुमार (अ०सा०-6) ने शव परिक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श क-16) अपनी लिखावट में तैयार की। उन्होंने धोती-1, कुर्ता-1, जनेऊ-1 से भरा एक सीलबंद बंडल कांस्टेबल को सौंप दिया, जो शव को शव परिक्षण के लिए ले गया। उन्होंने मृतक के शरीर से बरामद 75 छोटे धातु के शॉट्स (छर्रे) वाले एक लिफाफे को भी सील कर दिया और इसे एस.पी, खीरी को भेज दिया।

13. दिनांक 17.07.1981 को विवेचनाधिकारी को पता चला कि अभियुक्त जागेश्वर और राम शंकर ने अपर मुंसिफ मजिस्ट्रेट, न्यायालय संख्या-8 की अदालत में आत्मसमर्पण कर दिया है और आरोपी श्याम बिहारी, गोकर्ण, मुकद्दर व साबित को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया है। दिनांक 05-08-1981 को उन्होंने बासुदेव तिवारी का बयान दर्ज किया। बाद में जांच थानाध्यक्ष, उपनिरीक्षक लईक अहमद को स्थानांतरित कर दी गई। उन्होंने गवाहों सुंदर लाल तिवारी और बाबू राम तिवारी का बयान 01.03.1982 को दर्ज किया। विवेचनाधिकारी ने राम शंकर और श्याम बिहारी का बयान भी दर्ज किया, जिसमें उन्होंने घटना से इनकार किया। विवेचनाधिकारी ने 20.05.1982 को पंचायतनामा के गवाहों अर्थात् वंश गोपाल, श्रीकांत, परशुराम और श्रीकृष्ण के बयान दर्ज किए और दिनेश कुमार का बयान भी दर्ज किया। विवेचनाधिकारी ने जांच के बाद आरोपी साबित और मुकद्दर के खिलाफ आरोप पत्र (प्रदर्श क-14) और आरोपी राम शंकर, गोकर्ण शुक्ला और जागेश्वर के खिलाफ केस अपराध संख्या-146 वर्ष 1981 में धारा 147, 148, 149, 302, 449 भ०द०वि० के तहत आरोप पत्र (प्रदर्श क-15) प्रस्तुत किया।

14. उपरोक्त आरोप पत्र के आधार पर अपराध का संज्ञान 18.06.1982 को अतिरिक्त न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखीमपुर खीरी द्वारा लिया गया था और धारा 207 द०प्र०स० के प्रावधान का पालन करने के बाद मामले को विचारण के लिए सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया था। राम शंकर, गोकर्ण शुक्ला, जागेश्वर, साबित और मुकद्दर के खिलाफ धारा 148 भ०द०वि०, 302 भ०द०वि० सपठित 149, 307 भ०द०वि० सपठित धारा 149, 323 सपठित 149 और धारा 449 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए आरोप तय किए गए थे। आरोपी-अपीलकर्ताओं को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उन्होंने इन्कार किया और विचारण चाहा।

15. अपने मामले को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने सूचनाकर्ता देबी चरण (घायल) को अ०सा०-1 के रूप में जांचा है जिसने तहरीर रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) को साबित किया है। गवाह राम श्री, मृतक लालजी प्रसाद की विधवा, अ०सा०-2 के रूप में और अर्जुन लोध अ०सा०-3 के रूप में, घटना के कथित चश्मदीद गवाह हैं। औपचारिक गवाह के रूप में, अभियोजन पक्ष ने कांस्टेबल राम प्रकाश की जांच की है जो शव को अ०सा०-4 के रूप में शव परीक्षण के लिए ले गया था, विवेचनाधिकारी के.डी सिंह को अ०सा०-5 के रूप में पेश किया गया है। विवेचनाधिकारी ने जांच में उठाए गए कदमों और पंचनामा रिपोर्ट (प्रदर्श क-5), जी.डी. द्वारा मामले को दर्ज करने (प्रदर्श क-6) को माध्यमिक साक्ष्य द्वारा साबित किया। उन्होंने यह भी साबित किया कि मृतक का पंचायतनामा एस.आई. सरदार सिंह द्वारा उनकी उपस्थिति में किया गया था और पंचायतनामा (प्रदर्श क-7), फोटो लाश (प्रदर्श क-8), चालान लाश (प्रदर्श क-9), नमूना बिक्री (प्रदर्श क-10), शव परिक्षण के लिए सी.एम.ओ. को पत्र (प्रदर्श क-11) जो उप-निरीक्षक सरदार सिंह की हस्तलिपि में तैयार किया गया था, को साबित किया। उन्होंने यह भी साबित किया कि घटनास्थल से उपनिरीक्षक सरदार सिंह ने खून से सनी चादर, तौलिया और चटाई का टुकड़ा (कथरी), चारपाई की रस्सी का टुकड़ा (बान) और सादी मिट्टी और खून से सनी मिट्टी, खून से सनी महिला धोती, चार खाली कारतूस और दो टिकली अपने कब्जे में लेकर उन्हें अलग-अलग सील कर दिया था। उन्होंने अदालत में सीलबंद पैकेट पेश किया जिसमें से कठारी का एक टुकड़ा और एक तौलिया जो कथित तौर पर पाया गया था और एस.आई. सरदार सिंह द्वारा घटनास्थल से कब्जे में लिया गया था और सीलबंद बंडल को सामग्री (प्रदर्श-1 के रूप में प्रदर्शित किया गया था। उन्होंने सामग्री (प्रदर्श- 2 और 3 के रूप में सादे मिट्टी और खून से सनी मिट्टी वाले सीलबंद कंटेनर को भी प्रस्तुत किया। उन्होंने निचली अदालत के समक्ष सामग्री (प्रदर्श-4 के रूप में चार खाली कारतूस और दो टिकली वाले एक सीलबंद कंटेनर का भी उत्पादन किया। उन्होंने यह भी साबित किया कि ये सामान घटनास्थल से सब-इंस्पेक्टर सरदार सिंह के पास ले जाया गया था। उन्होंने नक्शा नज़री (प्रदर्श क-13) को भी साबित किया। उन्होंने यह भी साबित किया कि उन्हें थाना-धौरहरा से स्थानांतरित किया गया था और बाद में जांच उपनिरीक्षक लईक अहमद द्वारा की गई थी, जिन्होंने आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप पत्र (प्रदर्श क-14) और (प्रदर्श क-15) दायर किया था। अभियोजन पक्ष ने शव परीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श क-6) को साबित करने के लिए चिकित्सा अधिकारी डॉ. कमलेश कुमार से पूछताछ की है। उन्होंने सीलबंद पैकेट भी पेश किया जिसमें से 75 शॉट्स (छर्रे) पाए गए और कहा कि ये धातु के शॉट्स मृतक के शरीर से निकाले गए थे। उन्होंने एक सीलबंद बंडल भी साबित किया जिसमें से खून से सना जनेऊ, कुर्ता और धोती मिले और इसे सामग्री (प्रदर्श-6) के रूप में प्रदर्शित किया गया। श्रवण कुमारी, रामश्री और

देबी चरणकी मेडिकल रिपोर्ट (प्रदर्श क-2, 3, 4)की वास्तविकता को अभियुक्त-अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने निचली अदालत के समक्ष स्वीकार किया था।

16. धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्त अपीलकर्ता का बयान निचली अदालत द्वारा दर्ज किया गया था, जिसमें उन्होंने अभियोजन के मामले से इनकार किया और कहा कि पुलिस के साथ दुश्मनी के कारण उन्हें झूठा फंसाया गया था। उन्होंने कहा कि भूमि और विवाद को लेकर बासुदेव से उनकी दुश्मनी है। उन्होंने अपने बचाव में कोई मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया और अपने बचाव में निम्नलिखित दस्तावेज दायर किए और अपने साक्ष्य बंद कर दिए:

"(i) अपराध संख्या-117 वर्ष 1981, थाना- बेनीगंज, जिला- हरदोई के संबंध में विवेचनाधिकारी द्वारा मुनसिफ मजिस्ट्रेट पूर्व की अदालत में धारा 60 आबकारी अधिनियम (प्रदर्श ख1) के तहत दायर रिमांड आवेदन दिनांक 05.07.1981 की प्रति।

(ii) धारा 60 आबकारी अधिनियम थाना- बेनीगंज, जिला हरदोई (प्रकट-2) के तहत मुकदमा अपराध संख्या-117 वर्ष 1981 में मुंसिफ मजिस्ट्रेट पूर्व, हरदोई द्वारा पारित आदेश दिनांक 12.04.1983 की प्रति।

(iii) मामला अपराध संख्या-117 वर्ष 1981, थाना- बेनीगंज, जिला हरदोई (प्रदर्श ख-3) में धारा 60 आबकारी अधिनियम के तहत दिनांक 01.08.1981 (राज्य बनाम श्याम बिहारी) की आरोप-पत्र की प्रति।

(iv) आबकारी अधिनियम (प्रदर्श ख-4) की धारा 60 के तहत आरोपी श्याम बिहारी के खिलाफ मामला अपराध संख्या-117 वर्ष 1981 के रूप में दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 04.07.1981 की प्रति।

(v) धारा 60 आबकारी अधिनियम (प्रदर्श-5) के तहत मुकदमा अपराध संख्या-117 वर्ष 1981 में आरोपी श्याम बिहारी की ओर से प्रस्तुत जमानत आवेदन दिनांक 08.07.1981 की प्रति।

(vi) धारा 60 आबकारी अधिनियम के तहत मुकदमा अपराध संख्या-117 वर्ष 1981 में मुंसिफ पूर्व, हरदोई द्वारा पारित जमानत आदेश की प्रति, थाना- बेनीगंज, हरदोई (प्रदर्श-6)।

(vii) धारा 60 आबकारी अधिनियम के तहत मामला अपराध संख्या-117 वर्ष 1981 में रिमांड के आदेश की प्रति, थाना- बेनीगंज, हरदोई (प्रदर्श ख-7)।

(viii) धारा 60 आबकारी अधिनियम थाना- बेनीगंज, हरदोई (प्रदर्श ख-8) के तहत मामला अपराध संख्या-117 वर्ष 1981 में जमानतदार राजा बख्श द्वारा दायर दिनांक 08.07.1981 के ज़मानत बांड की प्रति।

17. निचली अदालत ने माना कि परिस्थितियों और सबूतों की बारीकी से जांच के बाद अभियुक्त के खिलाफ आरोप उचित संदेह से परे स्थापित होते हैं। यह भी माना गया कि लालजी प्रसाद की हत्या पर कोई विवाद नहीं था। इस बिंदु पर पर्याप्त से अधिक सबूत हैं, तहरीर (प्रदर्श क-1) इस तथ्य की पुष्टि करती है। जांच कार्यवाही से संबंधित सबूत और कागज इसे अत्यधिक समर्थन देते हैं क्योंकि डॉक्टरों ने सीने में प्रवेश और निकास के बंदूक की गोली के घाव को एक दूसरे से जोड़ते हुए पाया। पसलियां टूटी हुई पाई गईं। मांसपेशियों, वाहिकाओं और नसों में भी बेहद घाव हो गए और 75 छोटे अनियमित धातु शॉट्स पेक्टोरल मांसपेशी बाईं ओर, बाएं हाथ के अंदरूनी हिस्से की एक्सिला मांसपेशी, कंधे के जोड़, हाथ की मांसपेशियों में एम्बेडेड पाए गए और बाहर निकाले गए। घाव और मांसपेशियों जिसमें शॉट्स एम्बेडेड थे, उनमें थक्का रक्त है। अ०सा०-6 डॉ. कमलेश कुमार ने शव परीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श क-16) को साबित किया और शव परिक्षण के समय पाए गए मृतक की एंटीमॉर्टम चोटों को साबित किया। उन्होंने यह भी साबित कर दिया है कि मृतक के सीने पर पंक्चर घाव था। निचली अदालत ने कहा कि गवाह देबी चरण अ०सा०-1, राम श्री अ०सा०-2 और अर्जुन लोध अ०सा०-3 ने मृतक लालजी प्रसाद की हत्या को साबित कर दिया है। सब-इंस्पेक्टर के.डी सिंह अ०सा०-5 ने जांच की औपचारिकताओं को साबित किया। आरक्षक राम प्रकाश शव को सीलबंद हालत में शव परिक्षण के लिए मोर्चरी ले गए थे। बचाव पक्ष ने गवाहों को इस तथ्य का सुझाव दिया कि शिकायतकर्ता के घर पर डकैती की गई थी और डकैती में हत्या की गई थी। इस तरह दिए गए समय और स्थान पर लालजी की हत्या बचाव पक्ष द्वारा भी की जाती है। मौके पर खून से सना सामान भी मिला। घटनास्थल पर खून से सनी महिला की धोती और खाली कारतूस भी मिले हैं। डाक्टर द्वारा बताए गए मृत्यु के समय का आकलन भी घटना के तरीके और घटना के समय से मेल खाता है। निचली अदालत ने इस निष्कर्ष को दर्ज किया कि सभी अपीलकर्ताओं, अर्थात् राम शंकर, गोकर्ण शुक्ला, जागेश्वर, साबित और मुकद्दर ने मृतक लालजी प्रसाद की हत्या का प्रयास किया है, राम श्री की हत्या का प्रयास किया है, और पूरे अक्षय से हमला किया है और सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में घायल को साधारण चोट पहुंचाई है, नाजायज मजमा और घातक हथियारों से लैस दंगा करने का अपराध भी किया है और मौत की सजा के साथ दंडनीय अपराध करने के लिए घर में अतिचार किया है और उन्हें दोषी ठहराया है भ०द०वि० की धारा 149 सपठित धारा 148, धारा 149 भ०द०वि० सपठित धारा 307, धारा 149 भ०द०वि० सपठित 323 और भ०द०वि० की धारा 449 सपठित और उन्हें धारा 148 के तहत दंडनीय अपराध के लिए प्रत्येक को एक वर्ष की अवधि के लिए कठोर कारावास की सजा सुनाई गई थी। प्रत्येक को

भ०द०वि० की धारा 148 के तहत दंडनीय अपराध के लिए एक वर्ष की अवधि के कठोर कारावास की सजा, भ०द०वि० की धारा 149 सपठित धारा 302 के तहत दंडनीय अपराध के लिए आजीवन कारावास, भ०द०वि० की धारा 149 सपठित धारा 307 के तहत दंडनीय अपराध के लिए सात साल की अवधि के लिए कठोर कारावास, भ०द०वि० की धारा 149 सपठित धारा 323 के तहत दंडनीय अपराध के लिए एक महीने के कठोर कारावास की सजा, और भ०द०वि० की धारा 449 के तहत दंडनीय अपराध के लिए आठ साल की अवधि के लिए कारावास की सजा भुगतने की सजा सुनाई गई। यह निर्देश दिया गया था कि सभी सजाएं साथ-साथ चलेंगी। इससे व्यथित होकर अपीलकर्ताओं/दोषियों राम शंकर, गोकरण शुक्ला, जागेश्वर, सबीत और मुकद्दर ने निचली अदालत द्वारा दी गई दोषसिद्धि और सजा के खिलाफ द०प्र०स० की धारा 374 (2) के तहत ये अपील दायर किया।

18. अपीलकर्ताओं की ओर से पेश अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि यह स्वीकार किया गया है कि मृतक और अपीलकर्ताओं के बीच पूर्व दुश्मनी थी। यह भी एक स्वीकृत स्थिति है कि तथ्य के गवाह, अर्थात् देबी चरण अ०सा०-1, राम श्री अ०सा०-2 मृतक के करीबी संबंधी हैं और गवाह अर्जुन लोध अ०सा०-3 मृतक श्रीकांत के भाई का नौकर है, और इसलिए, वे सबसे अधिक हितबद्ध गवाह हैं और उनकी गवाही पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट पूर्व-समय है और घटना के लगभग साढ़े छह घंटे की देरी के बाद अपीलकर्ताओं/दोषियों को झूठा फंसाने के लिए उचित विचार-विमर्श और परामर्श के बाद दर्ज की गई है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि अभियोजन पक्ष द्वारा किसी भी स्वतंत्र गवाह की जांच नहीं की गई है और केवल अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 की अपुष्ट गवाही के आधार पर, अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि उचित नहीं है। आगे प्रस्तुत किया गया है कि शव परिक्षण के दौरान, डॉक्टर ने मृतक का पेट खाली पाया है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि खाली पेट से पता चलता है कि मृतक की हत्या सुबह में हुई है, न कि आधी रात में। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि घटना कथित तौर पर आधी रात में हुई थी, जबकि पहली सूचना रिपोर्ट लगभग साढ़े छह घंटे की देरी के बाद सुबह 7:00 बजे दर्ज की गई है। अभियोजन पक्ष द्वारा देरी को स्पष्ट नहीं किया गया है और उपरोक्त परिस्थितियों में देरी का स्पष्टीकरण न देने से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट मनगढ़ंत है। उपरोक्त तथ्यों के मद्देनजर, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि डॉक्टर के उपरोक्त विश्लेषण से पता चलता है कि मृतक की मृत्यु भोजन करने के लगभग 10 घंटे बाद हुई थी। तदनुसार, यह प्रस्तुत किया गया है कि मृत्यु का समय रात में 12:30 बजे नहीं हो सकता था, बल्कि यह सुबह 5-6 बजे हो सकता था। तदनुसार, अ०सा०-1, 2 और 3 के साक्ष्य विश्वसनीय नहीं हैं और यह अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि का आधार नहीं बन सकता है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि अ०सा०-1 देबी चरण ने अपने बयान में स्वीकार किया है कि विवेचनाधिकारी ने टॉर्च के संबंध में कोई सुपर्दगिनामा तैयार नहीं किया है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रकाश की उपलब्धता के बारे में बयान धारा 161 द०प्र०स० के तहत बयान में उल्लेख नहीं किया गया है। अदालत के समक्ष बयान में, गवाहों ने कहा है कि अपीलकर्ताओं की लालटेन की रोशनी थी और टॉर्च की रोशनी भी थी। विवेचनाधिकारी के.डी सिंह (अ०सा०-5) ने गवाही दी है कि धारा 161 द०प्र०स० के तहत बयान देते समय राम श्री ने कहा कि वह बुरी तरह रो रही थी और अन्य तथ्य नहीं बता सकती थी। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त परिस्थितियों में यह स्थापित नहीं किया गया है कि अपीलकर्ताओं/दोषियों को पहचानने के लिए प्रकाश का कोई स्रोत था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि गवाहों का बयान विवेचनाधिकारी द्वारा देरी से दर्ज किया गया था, इसलिए, अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि मृतक की शव परीक्षण परीक्षा और घायलों की चिकित्सा परीक्षा देरी से की गई थी, जिससे अभियोजन पक्ष के मामले पर संदेह पैदा हुआ। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि विवेचनाधिकारी ने टॉर्च और लालटेनों का कोई सुपर्दगिनामा तैयार नहीं किया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि अदालत में पहली बार गवाहों ने गवाही दी कि श्याम बिहारी ने अपना चेहरा ढंका था और उनका चेहरा उनके द्वारा नहीं देखा जा सकता था। इस तथ्य का उल्लेख तहरीर (प्रदर्श क-1) और धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज गवाहों के बयान में नहीं किया गया है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता/दोषी श्याम बिहारी को 04.07.1981 को हरदोई में धारा 60 आबकारी अधिनियम के तहत गिरफ्तार किया गया था और 08.07.1981 तक जेल में रहा और राम शंकर पुलिस ड्यूटी पर था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त परिस्थितियों में, यह साबित होता है कि श्याम बिहारी और राम शंकर घटनास्थल पर मौजूद नहीं थे। श्याम बिहारी को जेल में हिरासत में रखा गया था और अपीलकर्ता राम शंकर अपनी पोस्टिंग के स्थान पर ड्यूटी पर था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि निचली अदालत ने बचाव पक्ष द्वारा पेश किए गए दस्तावेजी सबूतों पर विचार नहीं किया है और सही परिप्रेक्ष्य में रिकॉर्ड पर सबूतों का उचित मूल्यांकन नहीं किया है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि तहरीर (प्रदर्श क-1) में बल्लम द्वारा चोट का कोई उल्लेख नहीं है, लेकिन धारा 161 द०प्र०स० के तहत बयान में शिकायतकर्ता और गवाहों ने कहा है कि साबित ने मृतक को बल्लम का प्रहार

किया है। आगे यह तर्क दिया गया है कि यह शव परीक्षण रिपोर्ट देखने के बाद सुधार किया गया था, इसलिए, गवाहों का बयान विश्वसनीय नहीं है। अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि यह घटना रात में हुई थी, लेकिन यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि पहचान के लिए प्रकाश का कोई स्रोत था। तदनुसार, यह प्रस्तुत किया जाता है कि अपीलकर्ताओं/दोषियों की पहचान के किसी भी स्रोत के अभाव में, अ०सा०-1, 2 और 3 का ऐसा दावा संदिग्ध प्रतीत होता है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि अभियोजन पक्ष अपीलकर्ताओं के खिलाफ लगाए गए आरोपों को सभी उचित संदेहों की छाया से परे लाने में सक्षम नहीं है। इसलिए, निचली अदालत के आक्षेपित निर्णय को इस अपील में बरकरार नहीं रखा जा सकता है।

19. दूसरी ओर, अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि यह अच्छी तरह से तय है कि केवल इसलिए कि गवाह एक-दूसरे से संबंधित हैं, उनके साक्ष्य को दरकिनार नहीं किया जा सकता है। कानून केवल यह मांग करता है कि उनके सबूतों की जांच पूरी सावधानी और सतर्कता के साथ की जाएगी। यह प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त कानून को ध्यान में रखते हुए, निचली अदालत ने अ०सा०-1, 2 और 3 के साक्ष्य का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन किया है और इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि उनके साक्ष्य पूरी तरह से विश्वसनीय और स्वीकार्य हैं। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि अ०सा०-1, 2 और 3 के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच करने पर, यह स्पष्ट है कि उनका बयान घटना की उत्पत्ति, घटना के तरीके, घटना के स्थान, घटना के समय के संबंध में संगत है और प्रतिपरीक्षा के दौरान बचाव पक्ष अपने साक्ष्य से ऐसी कोई सामग्री प्राप्त करने में सक्षम नहीं रहा है जिस पर उनकी विश्वसनीयता को चुनौती दी जा सके। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि केवल मृतक के खाली पेट के कारण यह नहीं कहा जा सकता है कि घटना गवाहों द्वारा बताए गए समय की तुलना में बाद में हुई थी। यह प्रस्तुत किया गया है कि चिकित्सा न्यायशास्त्र के अनुसार, सामान्य, स्वस्थ व्यक्ति में पाचन की प्रक्रिया तीन घंटे के भीतर पूरी हो सकती है और आंत में चली जाती है। यह प्रस्तुत किया गया है कि इस मामले में, शव परिक्षण 07.07.1981 को लगभग 2:40 बजे किया गया था और छोटी और बड़ी आंत में मल पदार्थ पाया गया था, इस प्रकार, मृतक द्वारा खाया गया भोजन उस अवधि के दौरान पच गया होगा और यह छोटी और बड़ी आंत में चला गया। उपरोक्त परिस्थितियों में, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता की उपरोक्त प्रस्तुतिकरण गलत प्रतीत होता है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि डॉक्टर (अ०सा०-6) ने छाती गुहा के भीतर रक्त और रक्त के थक्कों का विशाल संग्रह पाया है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि यह साक्ष्य में आया है कि मृतक को तुरंत घटनास्थल से हटा दिया गया था और मोटरसाइकिल पर अस्पताल ले जाया गया था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि यह घटना 05/06.07.1981 को रात में लगभग 12.30 बजे हुई थी, इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यह घटना गर्मियों के दौरान हुई थी, और इसलिए, मृतक ने अन्य कपड़ों के अलावा स्कार्फ के कपड़े पहने होंगे। तदनुसार, यह प्रस्तुत किया जाता है कि उपरोक्त परिस्थिति के कारण, खून जमीन, खाट, कथरी और बान पर गिर गया था और विवेचनाधिकारी ने घटनास्थल से इसे एकत्र किया है। विवेचनाधिकारी ने घटनास्थल से पास में चार खाली कारतूस और दो टिकली भी एकत्र की है। उपरोक्त परिस्थिति में, यह नहीं कहा जा सकता है कि घटना, घटना के स्थान पर नहीं हुई होगी जैसा कि अभियोजन पक्ष के गवाहों ने दावा किया है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि अ०सा०-1, 2, 3 और 4 के साक्ष्य में यह घटना शिकायतकर्ता के घर की छत पर भी हुई थी। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि घटना के समय, मृतक आंगन में सो रहा था। यह भी साक्ष्य में आया है कि उस समय 5 से 6 व्यक्ति फूस के दरवाजे से आंगन में घुसे जहां सूचनाकर्ता अ०सा०-1 अपने भाई श्रीकांत के साथ अर्जुन लोध (अ०सा०-3) और लालजी प्रसाद सो रहा था और वहां टॉर्च जल रही थी। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि आंगन में और छत पर उन्होंने अभियुक्तों को अपीलकर्ताओं/दोषियों की लालटेन, टॉर्च और पड़ोसियों की टॉर्च की रोशनी में अपराध करते देखा। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त परिस्थिति से पता चलता है कि आंगन में टॉर्च जल रही थी। तदनुसार, यह प्रस्तुत किया जाता है कि चूंकि मृतक, सूचनाकर्ता और श्रीकांत एक ही घर में रहते थे, इसलिए, प्रकाश के उक्त स्रोत में अपीलकर्ताओं/दोषियों को अ०सा०-1, 2 और 3 द्वारा आसानी से पहचाना जा सकता है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि मृतक के शरीर से निकाले गए छर्रों को भी निचली अदालत में पेश किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि चिकित्सा साक्ष्य के साथ प्रत्यक्ष चक्षुक साक्ष्य पूरी तरह से अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन और स्थापित करते हैं। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि निचली अदालत ने सही माना है कि अपीलकर्ताओं/दोषियों द्वारा पेश किए गए दस्तावेज श्याम बिहारी से संबंधित नहीं हो सकते। इसके अलावा, अपीलकर्ता/दोषी राम शंकर, जिनके खिलाफ अपील को निरस्त कर दिया गया है, यह साबित नहीं कर सके कि वह अपनी पोस्टिंग के स्थान पर ड्यूटी पर थे, और तदनुसार, यह नहीं कहा जा सकता है कि जीवित अपीलकर्ताओं को झूठा फंसाया गया था। तदनुसार, यह प्रस्तुत किया जाता है कि निचली अदालत के फैसले में कोई अवैधता या अनियमितता नहीं है जो इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप को आवश्यक कर सकती है।

20. हमने पक्षों की ओर से उठाए गए तर्कों पर गंभीर विचार किया और रिकॉर्ड भी देखा।

21. सबसे पहले हम प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील की सुनवाई को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों और प्रक्रिया का मूल्यांकन करना आवश्यक समझते हैं। (2013) 6 एस.सी.सी. 798 में रिपोर्ट किए गए मज्जल बनाम हरियाणा राज्य में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 7 में निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"7. उच्च न्यायालय के लिए यह विचार करना आवश्यक था कि क्या विचारण न्यायालय के सबूतों के आकलन और उसकी राय कि अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया जाना चाहिए, की पुष्टि की जानी चाहिए। यह करना आवश्यक है क्योंकि व्यक्तिगत खोज अवकाश? रिपोर्ट इसका कारण बताती है कि यह रिकॉर्ड पर साक्ष्य क्यों स्वीकार्य है। निचली अदालतों के दृष्टिकोण के साथ उच्च न्यायालय की सहमति केवल तभी स्वीकार्य होगी जब यह कारणों से समर्थित हो। ऐसी अपीलों में यह प्रथम अपील की अदालत है। कारण गूढ़ नहीं हो सकते। इसके द्वारा, हमें यह आवश्यक नहीं है कि उच्च न्यायालय से अनावश्यक रूप से लंबी बहस लिखने की अपेक्षा की जाए। निर्णय छोटा हो सकता है लेकिन इसमें महत्वपूर्ण सबूतों और महत्वपूर्ण प्रस्तुतियों पर दिमाग के उचित अनुप्रयोग को प्रतिबिंबित करना चाहिए जो मामले की जड़ तक जाते हैं। चूंकि यह अभ्यास उच्च न्यायालय द्वारा नहीं किया जाता है, इसलिए अपील को आक्षेपित आदेश को रद्द करने के बाद नए सिरे से सुनवाई के लिए भेजा जाना चाहिए।

22. ए.आई.आर. 2013 एस.सी. 1484 में रिपोर्ट किए गए बख्शीश राम और अन्य बनाम पंजाब राज्य में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा आपराधिक अपील के निपटान के तरीके के बारे में कानून निर्धारित किया है। यह माना गया है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय को साक्ष्य का स्वतंत्र मूल्यांकन करते समय अपने स्वतंत्र दिमाग और रिकॉर्ड को प्रयोग करना होगा और अदालत द्वारा स्वतंत्र मूल्यांकन के अभाव में, इसका अंतिम निर्णय कायम नहीं रह सकता है। पैराग्राफ 14 में निम्नानुसार देखा गया है:

"14. उच्च न्यायालय को, प्रथम अपील न्यायालय के रूप में, तथ्यों पर अपने स्वतंत्र दिमाग का प्रयोग करना चाहिए और साक्ष्य के अपने स्वयं के मूल्यांकन के आधार पर अपने स्वयं के निष्कर्षों को रिकॉर्ड करना चाहिए। विचारण न्यायालय के मूल्यांकन का केवल पुनरुत्पादन पर्याप्त नहीं हो सकता है और उच्च न्यायालय द्वारा स्वतंत्र मूल्यांकन के अभाव में, इसका अंतिम निर्णय कायम नहीं रह सकता है। इसी विचार को इस न्यायालय द्वारा सकतर सिंह और अन्य बनाम हरियाणा राज्य, (2004) 11 एस.सी.सी. 291 में दोहराया गया है:

23. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने "फुला सिंह बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 2014 एस.सी. 1256 में रिपोर्ट किया गया" में माना है कि जहां रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य पर दो विचार संभव हैं, एक दोषसिद्धि का और दूसरा बरी करने का, अभियुक्त को लाभकारी अपीलीय न्यायालय द्वारा लिया जाना चाहिए।

24. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए कि प्रथम अपीलीय न्यायालय को तथ्यों पर आपराधिक अपील का फैसला करते समय अपने स्वतंत्र दिमाग का इस्तेमाल करना चाहिए और अपने स्वयं के मूल्यांकन के आधार पर अपने स्वयं के निष्कर्षों को रिकॉर्ड करना चाहिए, साक्ष्य के हमारे स्वतंत्र मूल्यांकन और निष्कर्षों को रिकॉर्ड करने के लिए साक्ष्य का मूल्यांकन किया जाता है, यदि हम निष्कर्षों तक पहुंचते हैं कि विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष हमारे निष्कर्षों के अनुरूप हैं, तो अपील को खारिज किया जा सकता है और यदि साक्ष्य के मूल्यांकन के बाद दो विचार संभव हैं और एक दृष्टिकोण बरी करने के पक्ष में है, तो अपील की अनुमति दी जाएगी या साक्ष्य के मूल्यांकन के आधार पर यदि हम पाते हैं कि विचारण न्यायालय ने अपराध के निष्कर्षों को रिकॉर्ड करते समय साक्ष्य को नहीं समझा है और यह अवैध है, तो अपील को स्वीकार किया जाएगा।

25. वर्तमान मामले में, अब हम अपीलकर्ताओं के लिए पूर्व-समय के साथ-साथ प्राथमिकी दर्ज करने में देरी के संबंध में अधिवक्ता के प्रस्तुतिकरण पर विचार करने के लिए आगे बढ़ेंगे। इस मामले में, घटना कथित रूप से 5/6.7.1981 को मध्यरात्रि लगभग 12:30 बजे हुई थी, जबकि, प्रथम सूचना रिपोर्ट कथित रूप से अ०सा०-1 देबी चरण द्वारा दिनांक 06.07.1981 को लगभग 7 बजे लिखित तहरीर (प्रदर्श क-1) के आधार पर दर्ज की गई थी, जिसे थाना के बाहर लिखा गया था और थाना-धौरहरा, जिला: लखीमपुर खीरी के मुंशी को सौंप दिया गया था। अ०सा०-1 देबी चरण ने गवाही दी है कि सुबह वह थाना-धौरहरा गए थे और थाना के बाहर लिखित शिकायत (प्रदर्श क-1) लिखा और उसके बाद, रिपोर्ट दर्ज करने के लिए थाना-धौरहरा के कांस्टेबल क्लर्क को सौंप दिया है। चिक रिपोर्ट (प्रदर्श क-5) और जी.डी. मामला (प्रदर्श क-6) दर्ज किया गया और औपचारिक गवाहों द्वारा साबित किया गया था। चिक रिपोर्ट के अवलोकन से पता चलता है कि घटनास्थल थाना-धौरहरा से छह मील दूर है। अपनी लिखित शिकायत में, उन्होंने पूरी कहानी सुनाई है और विशेष रूप से उल्लेख किया है कि उनके भाई का शव उनके घर पर पड़ा था। घायल भी अपने घर पर थे। अ०सा०--1 ने आगे गवाही दी है कि प्राथमिकी दर्ज करने के बाद, थाना के सब-इंस्पेक्टर उसे जीप से घटनास्थल पर ले गए। उन्होंने आगे गवाही दी है कि घटनास्थल से उन्हें अन्य घायलों के

साथ पुलिस कांस्टेबल के साथ चिकित्सा जांच के लिए अस्पताल भेजा गया था। पंचनामा रिपोर्ट (प्रदर्श क-7) के अवलोकन से पता चलता है कि यह उल्लेख मिलता है कि सुबह 7 बजे प्राथमिकी दर्ज की गई थी और लगभग 9 बजे पंचनामा के लिए उपनिरीक्षक घटनास्थल पर पहुंचे थे। इस मामले में प्राथमिकी दर्ज करने के बाद सुबह शव की जांच की गई और शव को लगभग 11 बजे शव परिक्षण के लिए ले जाने के लिए कांस्टेबल राम प्रकाश और ग्राम चौकीदार को सौंप दिया गया। अपीलकर्ताओं/दोषियों के अधिवक्ता ने प्रतिपरीक्षण में प्राथमिकी दर्ज करने के समय को चुनौती नहीं दी है। उपरोक्त परिस्थितियों में, यह नहीं कहा जा सकता है कि प्राथमिकी पूर्व-समय पर थी। चिक रिपोर्ट के अवलोकन से, ऐसा प्रतीत होता है कि मजिस्ट्रेट की अदालत में रसीद के समय और तारीख का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। अंजन दासगुप्ता बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य, (2017) एस.सी.सी. 2022 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि अदालत में प्राथमिकी को अग्रेषित करने में देरी उस मामले में घातक नहीं है जिसमें जांच इसके आधार पर तुरंत शुरू हो गई है। यह भी माना जाता है कि यह केवल असाधारण और अस्पष्टीकृत देरी है, जो प्राथमिकी की प्रामाणिकता के बारे में संदेह पैदा कर सकती है। आपराधिक अपील संख्या-525-526 वर्ष 2012 "जय प्रकाश सिंह बनाम बिहार राज्य और अन्य", पैराग्राफ 11 और 12 में 14 मार्च, 2012 को फैसला सुनाया गया था, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

"11. बेशक, आधी रात को घटना के समय से दो घंटे की अवधि के भीतर प्राथमिकी दर्ज की गई थी। प्राथमिकी दर्ज करने में तत्परता सूचनाकर्ता/शिकायतकर्ता द्वारा दिए गए संस्करण की सत्यता का निश्चित आश्वासन देती है।

12. आपराधिक मामले में प्राथमिकी सबूत का एक महत्वपूर्ण और मूल्यवान टुकड़ा है, हालांकि सबूत का ठोस टुकड़ा नहीं हो सकता है। किसी अपराध को किए जाने के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने पर जोर देने का उद्देश्य उन परिस्थितियों, जिनमें अपराध किया गया था, वास्तविक अपराधियों के नाम और उनके द्वारा निभाई गई भूमिका के साथ-साथ घटनास्थल पर उपस्थित चश्मदीद गवाहों के नामों के बारे में शीघ्र सूचना प्राप्त करना है। यदि प्राथमिकी दर्ज करने में देरी होती है, तो यह बड़ी संख्या-में परामर्शों/विचार-विमर्श के परिणामस्वरूप स्वयंस्फूर्ति, रंगीन संस्करण, अतिरंजित विवरण या मनगढ़ंत कहानी की शुरूआत के खतरे का लाभ खो देता है। निस्संदेह, प्राथमिकी दर्ज करने में तत्परता सूचनाकर्ता के बयान की सच्चाई के बारे में एक आश्वासन है। तुरंत दर्ज की गई प्राथमिकी इस बात का प्रत्यक्ष विवरण दर्शाती है कि वास्तव में क्या हुआ है, और विचाराधीन अपराध के लिए कौन जिम्मेदार था। (वीडियो: थुलिया काली बनाम तमिलनाडु राज्य, ए.आई.आर. 1973 एस.सी. 501; पंजाब राज्य बनाम सुरजा राम, ए.आई.आर. 1995 एस.सी. 2413; गिरीश यादव और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1996) 8 एस.सी.सी. 186; और तकदीर शम्सुद्दीन शेख बनाम गुजरात राज्य और अन्य, ए.आई.आर. 2012 एस.सी. 37)।

26. प्रस्तुत मामले में, घटना आधी रात में लगभग 12:30 बजे हुई है। घटनास्थल थाना-धौरहरा से छह मील दूर है। घटना में सूचना देने वाले के भाई की हत्या कर दी गई थी और मृतक की पत्नी को घातक चोट आई थी और मृतक की बेटी को भी चोट आई थी। उपरोक्त परिस्थितियों में, कोई भी डर के कारण प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए थाना जाने की हिम्मत नहीं कर सका। अपीलकर्ताओं/अभियुक्त के अधिवक्ता ने केवल यह सुझाव दिया था कि सूचना देने वाले के घर पर रात में डकैती हुई है और उन्हें डकैती में चोट लगी है और दुश्मनी के कारण अपीलकर्ताओं का नाम प्राथमिकी में झूठा नाम लिया गया है। प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के समय को अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी गई है। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, यह साबित होता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट तुरंत दर्ज की गई थी और प्राथमिकी दर्ज करने में तत्परता सूचनाकर्ता के कथन की सच्चाई के बारे में एक आश्वासन है। तुरंत दर्ज की गई प्राथमिकी इस बात का प्रत्यक्ष विवरण दर्शाती है कि वास्तव में क्या हुआ है, और विचाराधीन अपराध के लिए कौन जिम्मेदार था। उपरोक्त परिस्थितियों में, विद्वान विचारण न्यायालय ने सही माना है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट तुरंत दर्ज की गई थी जो किसी भी प्रकार की मनगढ़ंत और विचार-विमर्श को खारिज करती है और यह सूचनाकर्ता के संस्करण की सच्चाई के बारे में आश्वासन देती है।

27. इस मामले में, गवाह अ०सा०-1 देबी चरण, मृतक के चचेरे भाई, अ०सा०-2 राम श्री, मृतक की पत्नी और अ०सा०-3 अजुन लोध, उनके भाई श्रीकांत के नौकर, घटना के प्रत्यक्षदर्शी हैं। गवाह देबी चरण और राम श्री कथित तौर पर घायल गवाह हैं।

28. अ०सा०-1 देबी चरण ने अपने बयान में कहा है कि वह अपने चचेरे भाई लालजी प्रसाद पुत्र संतराम के साथ उसी घर में रह रहा था। उसकी दूसरी शादी करीब 12 साल पहले गांव मुरासा, थाना-मितौली निवासी बाबू राम शुक्ला की पुत्री विद्या से हुई थी। उनकी पत्नी विद्या एक ग़लत चरित्र की महिला थीं, जिसके कारण उनके साथ उनके संबंध अच्छे नहीं थे और उन्होंने उनको अलग कर दिया और वह अपने पैतृक घर में रह रही थीं। इससे उनके ससुर, बहनोई राम शंकर और अन्य लोगों को संदेह था कि लालजी प्रसाद और उनकी पत्नी श्रीमती रामश्री इस सारी परेशानी के पीछे थे, इसलिए उन्होंने लालजी प्रसाद से खुद को अलग करने के लिए उन्हें मनाने का बार-बार असफल प्रयास किया। घटना से एक साल पहले, उनकी पत्नी ने भी

कहा था कि जब तक लालजी प्रसाद और उनकी पत्नी की मृत्यु नहीं होगी या उन्हें मार नहीं दिया जाएगा, तब तक वह अपने ससुराल नहीं आएंगी। उन्होंने आगे कहा है कि उनकी पत्नी विद्या के पड़ोस में रहने वाले आरोपी साबित और मुकद्दर के साथ अवैध संबंध थे और इस अपवित्र गतिविधि के कारण उपरोक्त आरोपी ने लालजी प्रसाद के साथ अपशब्दों का आदान-प्रदान किया था। 5/6.07.1981 की रात को वह और उसका चचेरा भाई लालजी प्रसाद रात का खाना खाने के बाद आंगन में सो रहे थे और उनकी भाभी (भाऊजी) राम श्री, भतीजी श्रवण कुमारी और भतीजे दिनेश कुमार छत पर सो रहे थे और उनका एक अन्य भाई श्रीकांत और उनका नौकर अर्जुन लोध (अ०सा०-3) उसी आंगन के पश्चिम की ओर सो रहे थे। आंगन में टॉर्च जल रही थी। आधी रात को वह उठा और चौकी पर बैठ गया और लगभग 12:30 बजे। रात में 5-6 लोगों ने ततीहार (फूस) गेट के उत्तर की ओर से टॉर्च चमकाते हुए घुसपैठ की, तभी उसने उन्हें टोका, तब बदमाशों ने उसे चुपचाप बैठने की आज्ञा दी। तभी टॉर्च की चमक में उसने अपने बहनोई राम शंकर को बंदूक से लैस देखा, श्याम बिहारी शुक्ल देसी अद्धी से लैस और उसके साले के बेटे जागेश्वर लाठी से लैस, साबीत कुदाल से लैस, और मुकद्दर को लाठी से लैस देखा। आरोपी सबीत और मुकद्दर ने उसे पकड़ लिया लेकिन जैसे ही उसके साले और श्याम बिहारी ने कहा कि उसे मत मारना नहीं तो उसकी बहन विधवा हो जाएगी, उन्हें लालजी प्रसाद और उसकी पत्नी को मारना पड़ा। उसके शोर गुल पर श्रीकांत और अर्जुन लोध जाग गए और बासुदेव ने बगल की छत से टॉर्च जलाई, फिर साबित ने कहा कि लालजी प्रसाद पास में सो रहे थे जिस पर राम शंकर और श्याम बिहारी ने लालजी प्रसाद पर गोली चला दी जिससे उनकी मौत हो गई, तब साबित ने कहा कि लालजी प्रसाद की पत्नी छत पर सो रही है, इसके बाद सभी बदमाश छत की ओर दौड़ते हैं। वह और अर्जुन लोध अपनी भाभी को बचाने के लिए छत पर भी गए, तभी राम शंकर ने उसकी भाभी पर गोली चला दी। उसने अपनी भाभी को गले से लपटाया तो फिर जागेश्वर और मुकद्दर ने लाठी से हमला किया, जिसके परिणामस्वरूप वह, उसकी भाभी राम श्री और भतीजी घायल हो गए। इस बीच, सुंदर लाल तिवारी और गांव के कई अन्य लोग लाठी से लैस होकर आए, टॉर्च जलाया और शोर गुल मचाया इसके बाद सभी आरोपी फायरिंग करते हुए उत्तर की ओर भाग गए। उन्होंने आरोपियों की और उनके नामों की भी पहचान स्पष्ट रूप से की।

29. जिरह में, उन्होंने अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन किया है कि उनके पास कोई अन्य घर नहीं है। उन्होंने आगे बयान दिया है कि वह और मृतक लालजी प्रसाद एक ही घर में एक साथ रह रहे थे। उसने आगे बयान दिया है कि उसकी पहली शादी गांव नये गांव में हुई थी और उसकी पहली पत्नी जीवित है और एक बेटा उनके विवाह से पैदा हुआ था। उन्होंने प्राथमिकी के उस संस्करण का समर्थन किया है जिसमें कहा गया था कि विद्या से उनकी दूसरी शादी के बाद उनकी पहली पत्नी ने उन्हें छोड़ दिया था और वह अलग रहने लगी थीं। उन्होंने आरोपी के अधिवक्ता के इस बात से इनकार किया है कि लालज प्रसाद की पत्नी के साथ अवैध संबंध के कारण उनकी पहली पत्नी ने उन्हें छोड़ दिया था। उन्होंने आगे गवाही दी है कि उन्होंने यह उल्लेख नहीं किया था कि अपीलकर्ता श्याम बिहारी ने दुपट्टे से अपना चेहरा छुपाया था। उन्होंने आगे गवाही दी है कि उन्होंने दरोगा जी को टॉर्च दिखाई थी, लेकिन उन्हें इस बात की जानकारी नहीं है कि दरोगा जी ने इसके बारे में फर्द तैयार किया था या नहीं। उन्होंने आगे स्पष्ट किया है कि छप्पर के दक्षिण में टॉर्च जल रही थी। उन्होंने आगे स्पष्ट किया है कि उन्होंने आरोपी व्यक्तियों को देखकर शोर गुल बजाया, लेकिन लालजी प्रसाद जाग नहीं सके और इस बीच उन्हें बन्दूक से चोट लगी। उन्होंने आगे बताया है कि उस समय लालजी प्रसाद दक्षिण की ओर मुंह करके सो रहे थे। उन्होंने आगे बयान दिया है कि मृतक पर उनकी तरफ से गोली चलाई गई थी। उन्होंने आगे बताया है कि गोली उनके भाई लालजी प्रसाद पर करीब से चलाई गई थी। जिरह के दौरान उसने आगे बताया है कि जब उसके भाई लालजी प्रसाद पर गोली चलाई गई तो उसके भाई श्रीकांत और उसके नौकर अर्जुन लोध की नींद खुल गई। उन्होंने यह भी पुष्टि की है कि राम श्री पर गोली राम शंकर ने चलाई थी। कुछ चूक जैसे श्याम बिहारी द्वारा स्कार्फ द्वारा चेहरे को ढंकने का उल्लेख न करना और प्राथमिकी में कुछ अन्य छोटी चूक अभियोजन मामले की जड़ तक नहीं जाती है, इसलिए, यह घातक नहीं है। इसके अलावा, प्राथमिकी को एक विश्वकोश नहीं कहा जा सकता है। यह उम्मीद नहीं की जाती है कि सभी विवरण प्राथमिकी में पाए जाने चाहिए। इसलिए, यह अभियोजन पक्ष के मामले को प्रभावित नहीं करेगा। अ०सा०-1 देबी चरण के बयान के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि उनके जिरह में कुछ भी नहीं आया जो उनके वसीयतनामा को अविश्वसनीय बनाता है। अ०सा०-1 देवी चरण के बयान की पुष्टि लिखित शिकायत (प्रदर्श क-1), मृतक की सूचना देने वाले, बेटी और पत्नी रामश्री की चोट रिपोर्ट से होती है, जिसकी वास्तविकता अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने विचारण न्यायालय के समक्ष स्वीकार की थी। अ०सा०-1 देबी चरण के बयान को शव परिक्षण रिपोर्ट, नक्शा नज़री और अ०सा०-2 राम शी और अ०सा०-3 अर्जुन लोध के बयानों द्वारा भी समर्थन दिया गया है। जिस तरह से मृतका और घायल राम श्री, उनकी बेटी और सूचनाकर्ता को चोट लगी, उसकी पुष्टि चिकित्सीय सबूतों से होती है। अ०सा०-1 देबी चरण का बयान आत्मविश्वास को प्रेरित करता है और उस पर भरोसा किया जा सकता है।

इसलिए, विद्वान निचली अदालत ने गवाह अ०सा०-1 देबी चरण के बयान पर सही भरोसा किया है।

30. अ०सा०-2 रामश्री मृतक लालजी प्रसाद की पत्नी हैं। उसने अपने बयान में कहा है कि देबी चरण उसका चचेरा भाई (देवर) है जो संयुक्त परिवार में अपने पति के साथ रह रहा था। देवीचरण ने विद्या से दूसरी शादी की थी, जिसके आरोपी/अपीलकर्ता साबित के साथ अवैध संबंध थे। उसने आगे कहा है कि देवी चरण ने उसे इसके कारण छोड़ दिया था और वह अपने माता-पिता के घर में रह रही थी। उन्होंने आगे बयान दिया है कि विद्या ने कई बार डकैती किया था; जब विद्या जाने वाली थीं तो उन्होंने कहा था कि वह शेखानपुरवा तब तक नहीं आएंगी जब तक रामश्री और उनके पति लालजी प्रसाद की हत्या नहीं कर दी जाती। वह बुरे चरित्र की महिला थी और जब उसे इंगित किया गया तो वह नाराज हो गई। उन्होंने यह भी बयान दिया है कि घटना तीन साल पहले आधी रात करीब 12 बजे हुई थी। उनके पति लालजी प्रसाद और देवीचरण आंगन में सो रहे थे। वह अपनी बेटी श्रवण कुमारी और बेटे दिनेश कुमार के साथ छत पर सो रही थीं। आंगन में टॉर्च जल रही थी। जब देवीचरण चिल्लाई और गोली चल गई, तो वह जाग गई और देखा कि राम शंकर और एक आदमी जो अपना चेहरा छुपा रहा था, जो शायद श्याम बिहारी था, जागेश्वर, गोकरन, साबित और मुकददर वहां था। राम शंकर बंदूक से लैस, श्याम बिहारी बड़ी-बड़ी देसी पिस्तौल से लैस, गोकरण देसी पिस्तौल से लैस, जागेश्वर लाठी से लैस, साबित बल्लम और मुकद्दर लाठी से लैस होकर आंगन में थे। राम शंकर और श्याम बिहारी ने उसके पति लालजी प्रसाद पर बंदूक और बड़ी देसी पिस्तौल से गोली चला दी, जिससे उसने दम तोड़ दिया। इसके बाद सभी आरोपी लोग छत पर चढ़ गए। देबी चरण और अर्जुन लोध ने भी छत पर उनका पीछा किया। आरोपियों ने उसकी पिटाई शुरू कर दी। राम शंकर ने उस पर गोली चला दी और जागेश्वर ने उसे भी लाठी से पीटना शुरू कर दिया। उन्हें देबी चरण और अर्जुन लोध ने बचाया था। उनकी बेटी श्रवण कुमारी और देबी चरण को भी चोटें आई थीं। शोरगुल सुनकर बासुदेव ने अपनी छत से टॉर्च चमकाई थी। उसने टॉर्च और लालटेन की रोशनी में आरोपियों के चेहरे देखे थे। छत से उतरने के बाद आरोपी वहां से फरार हो गए। वह, उनकी बेटी और देबी चरण की मेडिकल जांच की गई। वहीं उसके पति के शव को सील कर शव परिक्षण के लिए भेज दिया गया। जिरह के दौरान, उसने आरोपी के अधिवक्ता के इस सुझाव से इनकार किया कि विद्या को इस बात का गहरा संदेह था कि उसके (राम श्री) देबी चरण के साथ अवैध संबंध थे। अगर ऐसा था तो देबी चरण ने दूसरी पत्नी विद्यावती से शादी क्यों की? विद्यावती उन्हें और देबी चरण को ताना मारती थीं। विद्यावती के साबित से अवैध संबंध थे और उसने (रामश्री) उन्हें अपनी आंखों से देखा था। उसने साबित और मुकद्दर को भी चुपके से देखा था। वे चोरी-छिपे उससे मिलने जाते थे। उसने उसे (विद्यावती) चुपके से अंदर से बंद कमरे में भी देखा था। रामश्री जैसे ही शौचालय आदि के लिए बाहर जाती थी, ये लोग आ जाते थे। जब वह शौचालय आदि के लिए जाती थी, सबीत और मुकद्दर आंगन और बंगले में आकर विद्यावती से बात करते थे और खुद को एक कमरे में बंद भी कर लेते थे। जब वह विद्यावती को उनसे अवैध संबंध न रखने के लिए कहती थी तो विद्यावती कहती थी कि वह उसे सबक सिखाएगी। वह जब विद्यावती को इस बात के लिए डांटती थी तो वह सुनती थी। उसने आरोपी के अधिवक्ता के इस सुझाव का खंडन किया है कि जब वह इस संबंध में विद्यावती को फटकार लगाती थी तो वह कहती थी, बेशक उसके भी देबी चरण के साथ अवैध संबंध हैं। उसने आगे बयान दिया है कि इस दुश्मनी के कारण विद्यावती ने उसे लूटकर उसका बक्सा आदि छीन लिया। घटना से पहले, सभी आरोपी व्यक्तियों ने उसके पति की हत्या से दस साल पहले उसके घर पर डकैती भी की थी, जिसमें गणसी द्वारा उसके साथ मारपीट की गई थी, लेकिन कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई थी। उसने आगे गवाही दी है कि उस पर गोली चलाने और उसकी बेटी और देबी चरण पर हमला करने के बाद, आरोपी व्यक्ति वहां से भाग गए। उसने आगे गवाही दी है कि राम शंकर ने उस पर केवल एक कदम की दूरी से गोली चलाई है। उसने आगे गवाही दी है कि उसने नीचे आंगन में तीन राउंड फायर की आवाज सुनी थी। उसने आगे गवाही दी है कि छत पर दो गोलियां चलाई गई थीं। हाल ही में दस दिन पहले वह शिकायत करने गई थी कि आरोपी उसके घर आए और धमकी दी कि अगर वे गवाहों के खिलाफ गवाही देंगे तो वे उन पर तेजाब फेंक देंगे और यह भी कहा कि गवाहों को उसी तरह मार दिया जाएगा जैसे उन्होंने उसके पति को मारा था और उनकी आंखों में तेजाब डाल दिया जाएगा। उसने आगे गवाही दी है कि उसके खून से सने कपड़े विवेचनाधिकारी द्वारा लिए गए थे। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि सड़क (रास्ता) के विवादों के कारण सबीत और मुक्कदर को झूठा फंसाया गया था। उसकी जिरह में ऐसा कुछ नहीं आया जो उसके बयान को अविश्वसनीय बनाता हो। अ०सा०-2 के बयान की पुष्टि प्रथम सूचना रिपोर्ट, शव परिक्षण रिपोर्ट और चोट की रिपोर्ट से होती है। इसलिए, उसके बयान पर भरोसा किया जा सकता है और निचली अदालत ने सही माना है कि अ०सा०-2 राम श्री का बयान भरोसेमंद है और उस पर भरोसा करने योग्य है।

31. तीसरा चश्मदीद गवाह अर्जुन लोध अ०सा०-3 सूचनाकर्ता के भाई श्रीकांत का नौकर है। अ०सा०-3 के रूप में इस गवाह ने शपथ पर कहा है कि वह श्रीकांत के साथ 25 साल से रह रहा है। लालजी प्रसाद, देबी चरण और श्रीकांत सगे भाई हैं और वे एक ही घर में रह रहे हैं।

ऊसने शपथ पर यह भी कहा है कि घटना तीन साल पहले आधी रात को हुई थी। वह और श्रीकांत पश्चिम दिशा में आंगन में सो रहे थे, जबकि लालजी प्रसाद और देबी चरण एक ही आंगन के दक्षिणी हिस्से में सो रहे थे। श्रवण कुमारी, दिनेश और रामश्री छत पर सो रहे थे और आंगन के दक्षिण में टॉर्च जल रही थी। देबी चरण के चिल्लाने और बंदूक चलाने की आवाज सुनकर वह जाग गया। उसने देखा कि आंगन में 5-6 आदमी थे, उनमें से एक आदमी अपना चेहरा ढके हुए था, जो श्याम बिहारी था। उनके साथ राम शंकर, श्याम बिहारी, गोकर्ण, जागेश्वर, साबित और मुकद्दर भी थे। श्याम बिहारी को छोड़कर सभी आरोपियों ने मुंह खोल दिया था। वे अपनी टॉर्च जला रहे थे। राम शंकर बंदूक से लैस था, श्याम बिहारी एक छोटी सी देशी बंदूक से लैस था, गोकरण देशी पिस्तौल से लैस था, जागेश्वर और मुकद्दर लाठी से लैस थे और साबित भाला से लैस था। जब वह उठे तो उन्होंने गोली चलने की आवाज सुनी और लालजी प्रसाद को आंगन में घायल पाया। इसके बाद सभी आरोपी व्यक्ति छत पर चढ़ गए। उन्होंने और देबी चरण ने उनका पीछा किया था। राम शंकर ने घायल राम श्री पर गोली चलाई थी और बाकी आरोपियों ने अपने-अपने हथियारों से उस पर हमला किया था। उन्होंने श्रवण कुमारी को बचाने की कोशिश की और देबी चरण ने रामश्री को बचाने की कोशिश की जिसमें उन्हें भी चोटें आईं। उन्होंने आरोपियों की टॉर्च की फ्लैश में आरोपी को पहचान लिया था जो छत पर भी अपनी टॉर्च दिखा रहे थे। इसी बीच बाबू राम और सुंदर लाल अपनी टॉर्च चमकाते हुए सूचनाकर्ता की छत से सटी अपनी छत पर आ गए। इसके बाद आरोपी वहां से फरार हो गए। जिरह में उसने बताया है कि उसके दो भतीजे और एक भाई है। उनका घर लालजी के घर की उत्तर दिशा में स्थित है और 10-20 घर दूर हैं। जानवरों पर नजर रखने के लिए वह रात में आंगन में सोता था। वह तब जाग गया जब उसने बन्दूक चलाने की आवाज सुनी और देबी चरण के चिल्लाने की आवाज सुनी। जब आरोपी व्यक्ति छत पर चढ़ गए तो उन्होंने भी उनका पीछा किया था। उन्होंने आगे स्पष्ट किया है कि छत पर पहुंचने के बाद राम श्री को बंदूक और अन्य चोटें आई थीं। उसने छत पर दो गोली चलने की आवाज सुनी। जब रामश्री पर गोली चलाई गई तो पीछे देबी चरण थे। उन्होंने आगे स्पष्ट किया है कि वे आग्नेयास्त्र की गोली से नहीं मारे गए थे। देबी चरण और श्रवण कुमारी के साथ भी साबित और मुकद्दर ने मारपीट की। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि वह राम श्री और पुलिस के दबाव में आरोपियों के खिलाफ सबूत दे रहे हैं। उन्होंने आरोपी के अधिवक्ता के इस सुझाव से भी इनकार किया कि उन्होंने घटना नहीं देखी है। जिरह के अवलोकन से, यह पता चलता है कि अ०सा०-3 अर्जुन लोध की गवाही को इस बिंदु पर चुनौती नहीं दी गई थी कि वह जानवरों पर नजर रखने के लिए आंगन में सो नहीं रहा था। उसकी गवाही को भी चुनौती नहीं दी गई कि वह सूचनाकर्ता के भाई श्रीकांत का नौकर नहीं था। घटनास्थल पर उसकी उपस्थिति अडिग है। उनकी जिरह में ऐसा कुछ भी नहीं आया जो उनकी गवाही को अविश्वसनीय बनाता हो। उन्होंने घटना का विशद वर्णन किया है। टॉर्च की रोशनी में और आरोपी की टॉर्च की रोशनी में आरोपियों की पहचान करने वाले तथ्य को प्रतिपरीक्षा में चुनौती नहीं दी गई। इसलिए, इस गवाह की गवाही विश्वास को प्रेरित करती है और इस पर भरोसा किया जा सकता है और निचली अदालत ने अ०सा०-2 अर्जुन लोध की गवाही पर सही भरोसा किया है। इस गवाह की गवाही की पुष्टि घायल गवाहों अ०सा०-1 देबी चरण, अ०सा०-2 राम श्री की गवाही और प्रथम सूचना रिपोर्ट, घायलों की चोट रिपोर्ट और मृतक की शव परीक्षण रिपोर्ट से होती है। इसलिए, अ०सा०-1, 2 और 3 भी विश्वसनीय हैं और अपीलकर्ताओं की सजा दर्ज करने के लिए उनके बयानों पर भरोसा किया जा सकता है।

32. देबी चरण अ०सा०-1 की गवाही से यह साबित होता है कि सुबह की घटना के बाद, वह गांव चौकीदार के साथ थाना गया था और थाना के परिसर के बाहर तहरीर (प्रदर्श-1) लिखी थी और इसे प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए पुलिस को सौंप दिया था। बचाव पक्ष के अधिवक्ता ने श्रवण कुमारी (प्रदर्श क-2), अ०सा०-2 रामश्री (प्रदर्श क-3) और अ०सा०-1 देबी चरण (प्रदर्श क-4) की चोट रिपोर्टों की वास्तविकता को स्वीकार किया है। उप-निरीक्षक के.डी सिंह अ०सा०-5 द्वारा यह भी सिद्ध किया गया है कि सूचनाकर्ता देबी चरण की लिखित तहरीर के आधार पर उनकी अनुपस्थिति में रघुनाथ सिंह द्वारा चिक रिपोर्ट (प्रदर्श क-5) लिखी गई थी और जी.डी. (प्रदर्श क-6) में प्रविष्टि करने के बाद पंजीकृत की गई थी। उन्होंने माध्यमिक साक्ष्य से यह भी साबित किया है कि मामले की जांच उप-निरीक्षक सरदार सिंह द्वारा की गई थी, जिन्होंने घटनास्थल का दौरा किया था और मृतक की जांच की कार्यवाही का संचालन किया था और पंचायतनामा (प्रदर्श क-7), फोटो लाश (प्रदर्श क-8), चालान लाश (प्रदर्श क-9), नमूना मुहर (प्रदर्श क-10), सी.एम.ओ. को पत्र (प्रदर्श क-11) तैयार किया था। अ०सा०-5 के उपनिरीक्षक के.डी सिंह ने यह भी साबित किया है कि उपनिरीक्षक सरदार सिंह ने घटनास्थल से तौलिया, कठारी का टुकड़ा, खाट का बान, खून से सनी और साधारण मिट्टी भी एकत्र की थी और महिला के खून से सने धोती, चार खाली कारतूस और दो टिकली भी अपने कब्जे में ले ली थीं और सभी वस्तुओं को अलग-अलग सील कर फर्द (प्रदर्श क-12) तैयार किया था। निचली अदालत के समक्ष सीलबंद पैकेट भी पेश कर खोला गया जिसमें खाट का बान, कठारी का टुकड़ा, चादर का टुकड़ा था और उन्होंने इसे (प्रदर्श-1 साबित किया, दूसरा सीलबंद बंडल जिसमें

अप्रमाणित

महिला की धोती थी, उसे उन्होंने (प्रदर्श-2 के रूप में सिद्ध किया। घटनास्थल से ली गई सादी और खून से सनी मिट्टी को भी (प्रदर्श-3 के रूप में प्रस्तुत और सिद्ध किया गया, खाली कारतूस और टिकली को भी सीलबंद पैकेट में प्रस्तुत किया गया और उपनिरीक्षक के.डी सिंह द्वारा (प्रदर्श-4 के रूप में सिद्ध किया गया। इन सभी वस्तुओं को सब-इंस्पेक्टर सरदार सिंह ने मौके से अपने कब्जे में ले लिया था, जिसके संबंध में फर्द (प्रदर्श क-12) तैयार किया गया था। गवाह के.डी सिंह ने आगे कहा है कि उन्होंने जांच शुरू की और देबी चरण के कहने पर घटनास्थल का निरीक्षण किया और नक्शा नज़री (प्रदर्श क-13) तैयार किया। उन्होंने यह भी साबित किया है कि सब-इंस्पेक्टर सरदार सिंह ने कांस्टेबल राम प्रकाश और गांव चौकीदार द्वारा पुलिस कागजात के साथ एक सीलबंद लिफाफे में शव को भेजा और उन्होंने खुद घायल श्रवण कुमारी, राम श्री और देबी चरण को कांस्टेबल उदय नारायणन द्वारा चिकित्सा परीक्षण के लिए 07.07.1981 को पी.एच.सी, धौरहरा भेजा। उन्होंने यह भी साबित कर दिया है कि 19.10.1981 को उनका तबादला कर दिया गया था और बाद में आरोप पत्र (प्रदर्श क-14) और (प्रदर्श क-15) उपनिरीक्षक लईक अहमद द्वारा प्रस्तुत किए गए थे।

33. अ०सा०-6 डॉ. कमलेश कुमार ने मृतक की शव परिक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श क-16) को सिद्ध किया है। उन्होंने यह भी साबित किया है कि मृतक के शव से 75 शॉट (छर्रे) बरामद किए गए थे जिन्हें एस.एस.पी, खीरी को सीलबंद लिफाफे में भेजा गया था और इसे (प्रदर्श-5 के रूप में साबित किया गया था और शव परिक्षण के समय मृतक के शरीर पर पाए गए खून से सने धोती, कुर्ता, जेनेऊ भी साबित हुए थे। उन्होंने मृतक की पूर्व-मृत्यु चोटों और मृत्यु के कारण को भी साबित कर दिया है कि पूर्व-मृत्यु चोट बन्दूक की गोली और बल्लम के कारण हुई थी जो प्रकृति के सामान्य क्रम में मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त थी। उन्होंने आगे साबित किया है कि चोट संख्या-1 और 2 बन्दूक के कारण हुई थी और चोट संख्या-3 बल्लम के कारण हुई थी। देबी चरण, श्रवण कुमारी और रामश्री की चोटों की चोट की रिपोर्ट की वास्तविकता को अभियुक्तों/अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने निचली अदालत के समक्ष स्वीकार किया था। रामश्री के शरीर पर आग्नेयास्त्र के निशान पाए गए थे, जिसे करीब से फायर किया गया था। मृतक की शव परिक्षण रिपोर्ट से यह भी स्थापित होता है कि चोट संख्या-1 प्रवेश घाव है, जिसे भी करीब से दागा गया था, और चोट संख्या-3 बल्लम के कारण हुई थी। चोट की रिपोर्ट और शव परीक्षण रिपोर्ट का विवरण निर्णय में ऊपर उल्लिखित है। विवेचनाधिकारी और डॉ. कमलेश कुमार (अ०सा०-6) के बयान और घायल देबी चरण, श्रवण कुमारी और राम श्री की चोट रिपोर्ट से यह साबित होता है कि उन्हें इस घटना में चोटें आई थीं, जैसा कि अभियोजन पक्ष ने आरोप लगाया है। शव परिक्षण रिपोर्ट से पता चलता है कि मृतक का पेट खाली पाया गया था और छोटी और बड़ी आंत में मल पदार्थ पाए गए थे, जो स्थापित करता है कि घटना मृतक द्वारा रात का खाना खाने के चार घंटे से अधिक समय बाद हुई है। यह तथ्य यह भी स्थापित करता है कि घटना उस समय हुई है जैसा कि अभियोजन पक्ष द्वारा आरोप लगाया गया है। चश्मदीद गवाह देबी चरण, राम श्री और अर्जुन लोध की चक्षुक गवाही की पुष्टि मृतक लालजी प्रसाद की शव परिक्षण रिपोर्ट द्वारा देबी चरण, श्रवण कुमारी, राम श्री की चोट रिपोर्ट से होती है और प्राथमिकी के संस्करण से भी इसकी पुष्टि होती है, इसलिए, सबूतों की विस्तृत मूल्यांकन से साबित होता है कि अपीलकर्ता राम शंकर, गोकरण और मुकद्दर (जो अपील के लंबित रहने के दौरान मारे गए) साबित के साथ, जागेश्वर और श्याम बिहारी ने नाजायज मजमा के सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में उन्होंने मृतक लालजी की हत्या की थी और राम श्री, देवी चरण और श्रवण कुमारी को चोट पहुंचाई थी, इसलिए, धारा 148, 302 भ०द०वि० सपठित 149 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध है।

34. जहां तक अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता के तर्क का संबंध है कि सभी गवाह अ०सा०-1 देवी चरण, मृतक के भाई, अ०सा०-2 राम श्री, मृतक की विधवा, और अ०सा०-3 अर्जुन लोध, सूचनाकर्ता श्रीकांत के भाई के नौकर हितबद्ध गवाह हैं और उनके बयानों पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता है, गंगाधर बेहरा और अन्य बनाम उड़ीसा राज्य में सर्वोच्च न्यायालय, (2002) में रिपोर्ट किए गए 8 एस.सी.सी. ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

"...... संबंध गवाह की विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाला कारक नहीं है। यह अधिक बार नहीं होता है कि एक रिश्तेदार वास्तविक अपराधी को छिपाएगा और एक निर्दोष व्यक्ति के खिलाफ आरोप लगाएगा। यदि मिथ्या आरोप लगाया जाता है तो नींव रखनी होगी। ऐसे मामलों में, अदालत को सावधानीपूर्वक दृष्टिकोण अपनाना होगा और यह पता लगाने के लिए सबूतों का विश्लेषण करना होगा कि क्या यह ठोस और विश्वसनीय है।

35. दलीप सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य, (ए.आई.आर. 1953 एस.सी. 364) में, यह निम्नानुसार निर्धारित किया गया है:

"एक गवाह को आम तौर पर स्वतंत्र माना जाता है जब तक कि वह उन स्रोतों से उत्पन्न नहीं होता है जो दागी होने की संभावना रखते हैं और आमतौर पर इसका मतलब है कि जब तक गवाह के पास कारण नहीं है, जैसे कि अभियुक्त के खिलाफ दुश्मनी, उसे झूठा फंसाने की इच्छा है। आमतौर पर एक करीबी रिश्तेदार असली अपराधी को छुपाने और एक निर्दोष व्यक्ति को झूठा फंसाने के लिए अंतिम व्यक्ति होगा। यह सच है, जब भावनाएं अधिक होती

हैं और दुश्मनी के लिए व्यक्तिगत कारण होता है, कि एक निर्दोष व्यक्ति में घसीटने की प्रवृत्ति होती है, जिसके खिलाफ एक गवाह को दोषी के साथ एक शिकायत होती है, लेकिन इस तरह के तर्क के लिए नींव रखी जानी चाहिए और नींव होने से दूर रिश्ते का मात्र तथ्य अक्सर सच्चाई की एक निश्चित गारंटी है। हालांकि, हम किसी भी व्यापक सामान्यीकरण का प्रयास नहीं कर रहे हैं। प्रत्येक मामले को अपने तथ्यों पर आंका जाना चाहिए। हमारी टिप्पणियां केवल उस बात के क्रम में कह रहे हैं जो अक्सर हमारे सामने मामलों में विवेक के सामान्य नियम के रूप में सामने रखी जाती हैं। ऐसा कोई सामान्य नियम नहीं है। प्रत्येक मामले को अपने स्वयं के तथ्यों तक सीमित होना चाहिए और नियंत्रित होना चाहिए।

36. उपरोक्त निर्णय तब से गुली चंद और अन्य बनाम राजस्थान राज्य, (1974 (3) एस.सी.सी. 698) में पालन किया गया है जिसमें वडिवेलु थेवर बनाम मद्रास राज्य, (ए.आई.आर. 1957 एस.सी. 614) पर भी भरोसा किया गया था।

37. हम यह भी देख सकते हैं कि इस आधार पर कि गवाह एक करीबी रिश्तेदार है और परिणामस्वरूप एक पक्षपातपूर्ण गवाह है, उस पर भरोसा नहीं किया जाना चाहिए, इसमें कोई सार नहीं है। इस सिद्धांत को इस न्यायालय ने दलीप सिंह के मामले (सुप्रा) में ही खारिज कर दिया था, जिसमें बार के सदस्यों के मन में व्याप्त इस धारणा पर आश्चर्य व्यक्त किया गया था कि रिश्तेदार स्वतंत्र गवाह नहीं थे। न्यायमूर्ति विवियन बोस के माध्यम से बोलते हुए:

पीठ ने कहा, ''हम उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों की इस बात से सहमत नहीं हो पा रहे हैं कि दो चश्मदीदों की गवाही की पुष्टि की आवश्यकता है। यदि इस तरह के अवलोकन की नींव इस तथ्य पर आधारित है कि गवाह महिलाएं हैं और सात पुरुषों का भाग्य उनकी गवाही पर लटका हुआ है, तो हम ऐसे किसी नियम के बारे में नहीं जानते हैं। यदि यह इस कारण पर आधारित है कि वे मृतक से निकटता से संबंधित हैं, तो हम सहमत नहीं हो सकते। यह कई आपराधिक मामलों के लिए एक भ्रम है जिसे इस न्यायालय की एक अन्य पीठ ने 'रामेश्वर बनाम राजस्थान राज्य' (ए.आई.आर. 1952 एस.सी. 54 पी .59 पर) में दूर करने का प्रयास किया। हालांकि, हम पाते हैं कि दुर्भाग्य से, यदि न्यायालयों के निर्णयों में नहीं, तो अधिवक्ता के तर्कों में यह अभी भी कायम है।

38. फिर से मसाल्टी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 202) में इस न्यायालय ने कहा: (पी, 209-210 पैरा 14):-

"लेकिन हमें लगता है कि यह तर्क देना अनुचित होगा कि गवाहों द्वारा दिए गए सबूतों को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया जाना चाहिए कि यह पक्षपातपूर्ण या हितबद्ध गवाहों का सबूत है....... इस तरह के साक्ष्य की यांत्रिक अस्वीकृति एकमात्र आधार पर कि यह पक्षपातपूर्ण है, हमेशा न्याय की विफलता का कारण बनेगी। कोई कठोर नियम नहीं बनाया जा सकता है कि कितने साक्ष्य को वज़न दिया जाना चाहिए। ऐसे सबूतों से निपटने में न्यायिक दृष्टिकोण से सतर्क रहना होगा; लेकिन यह दलील कि इस तरह के साक्ष्य को खारिज कर दिया जाना चाहिए क्योंकि यह पक्षपातपूर्ण है, को सही नहीं माना जा सकता है। (महत्त्व सन्निविष्ट)

हमारी सामाजिक व्यवस्था तीव्र गति से बदल रही है। वर्तमान सामाजिक परिदृश्य में, लोग अपमान और उत्पीड़न के डर से पुलिस स्टेशनों और अदालतों में जाने से बचते हैं। आम तौर पर, लोग किसी घटना का गवाह बनने से बचते हैं क्योंकि किसी अपराध में शामिल अपराधी के खिलाफ गवाही देने से उनका जीवन खतरे में पड़ जाएगा। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में, यह कम से कम संभव है कि कोई तीसरा व्यक्ति अपराधी के खिलाफ गवाही दे।

39. संदू सरन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय, (2016) 4 एस.सी.सी. 357 में रिपोर्ट किया गया है:

"29. ..... इन दिनों में, सभ्य लोग आमतौर पर किसी भी आपराधिक अपराध के संबंध में कोई भी बयान देने के लिए आगे आने के लिए असंवेदनशील होते हैं। जब तक यह अपरिहार्य न हो, लोग आम तौर पर अदालत से दूर रहते हैं क्योंकि वे इसे परेशान और तनावपूर्ण महसूस करते हैं। हालांकि इस तरह का मानव व्यवहार वास्तव में दुर्भाग्यपूर्ण है, लेकिन यह एक सामान्य घटना है। हम अपने कर्तव्य के निर्वहन में जांच एजेंसी की इस बाधा को नजरअंदाज नहीं कर सकते। हम पूरे मामले को केवल स्वतंत्र गवाह की अनुपस्थिति के आधार पर पटरी से नहीं उतार सकते, जब तक कि प्रत्यक्षदर्शी के सबूत, हालांकि वे हितबद्ध होते हैं, परंतु भरोसेमंद हैं।

40. पूर्वोक्त के मद्देनजर, अभियोजन पक्ष ने धारा 302/149, 307/149, 148, 323/149 और धारा 449 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए आरोपी अपीलकर्ताओं के खिलाफ उचित संदेह से परे अपना मामला साबित कर दिया है। विद्वान निचली अदालत ने कानून के अनुसार, ऊपर वर्णित अपराधों के लिए अपीलकर्ताओं को सही दोषी ठहराया और सजा सुनाई है, जिसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

41. मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हमारी राय है कि 1984 के सत्र परीक्षण संख्या-168 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम शंकर और 4 अन्य) में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या-1, लखीमपुर खीरी द्वारा पारित 27.06.1984 के सजा के आक्षेपित निर्णय और

सजा के आदेश में कोई अवैधता या विकृति नहीं है, केस अपराध संख्या-146 वर्ष 1981, थाना-धौरहरा, जिला-लखीमपुर खीरी, जिसके तहत आरोपी-अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया गया है और धारा 148 भ०द०वि० के तहत एक वर्ष की अवधि के लिए सश्रम कारावास, धारा 302/149 भ०द०वि० के तहत जीवन के लिए सश्रम कारावास, धारा 307/149 भ०द०वि० के तहत सात साल की अवधि के लिए सश्रम कारावास, धारा 323/149 भ०द०वि० के तहत एक महीने की अवधि के लिए सश्रम कारावास और धारा 449 भ०द०वि० के तहत आठ साल की अवधि के लिए सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई है, नतीजतन, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या- 1, लखीमपुर खीरी द्वारा पारित दोषसिद्धि और सजा के आदेश दिनांक 27.06.1984 के आक्षेपित निर्णय को इसके द्वारा बरकरार रखा जाता है।

42. जीवित अपीलकर्ता संख्या-3 जागेश्वर और अपीलकर्ता संख्या-4 साबित के संबंध में प्रस्तुत आपराधिक अपील, तदनुसार, खारिज कर दी जाती है।

43. अपीलकर्ता जागेश्वर और साबित जमानत पर हैं। उनके जमानत बांड रद्द किए जाते हैं और जामिनान को उन्मोचित किया जाता है। संबंधित निचली अदालत उन्हें गिरफ्तार करवाएगी और निचली अदालत द्वारा उन्हें दी गई शेष सजा काटने के लिए जेल भेजेगी।

44. निचली अदालत के रिकॉर्ड के साथ इस फैसले को संबंधित निचली अदालत को तुरंत जानकारी और आवश्यक अनुपालन के लिए प्रमाणित करें।

(2023) 1 ILRA 598
अपीलीय क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: लखनऊ 12.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा,
माननीय न्यायमूर्ति मो. असलम

आपराधिक अपील संख्या 2735/2004

अमिताभ दीक्षित ...**अपीलकर्ता**
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य ...**विपक्षीगण**

अधिवक्ता अपीलकर्ता:
श्री राम चंद्र सिंह, श्री अरुण सिन्हा

अधिवक्ता विपक्षीगण:
जी.ए., श्री बाल केश्वर श्रीवास्तव, हरि बक्स सिंह, श्री इज़हार हुसैन सिद्दीकी, श्री उपेन्द्र कुमार अवस्थी, श्री विजय किशोर मिश्रा

ए. आपराधिक कानून – भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 302 – हत्या - दोषसिद्धि और सजा के विरुद्ध अपील – पिस्तौल से आग्नेयास्त्र की चोट लगी थी - घटनास्थल से 315 बोर के दो खाली कारतूस बरामद हुए – आरोपी-अपीलकर्ता की निशानदेही पर हथियार बरामद हुआ - एफ.आई.आर. बिना किसी देरी के दर्ज किया गया था - आई.ओ. की ओर से चूक या लापरवाही, आरोपी पक्ष में कितनी हद तक दोषी ठहराया गया – विवेचक की ओर से चूक को अभियुक्त पक्ष में नहीं लिया जाना चाहिए, ऐसी चूक जानबूझ कर की हो या लापरवाही के कारण की हो - उच्च न्यायालय ने अपराध के आरोपों को आईपीसी की धारा 302 और 25 शस्त्र अधिनियम के तहत अपराध उचित संदेह से परे साबित हुआ। (पैरा 6, 9, 16, 31 और 38)

बी. आपराधिक कानून – आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 374(2) - विस्तार– अपील की सुनवाई करते समय अपीलीय अदालत का कर्तव्य - विस्तारित - साक्ष्य का उचित विश्लेषण करना और विचार करना कि क्या विचारणीय न्यायालय सबूतों का मूल्यांकन करता है और दोषसिद्धि के संबंध में इसकी राय की पुष्टि की जानी चाहिए क्योंकि दोषसिद्धि के कारण किसी अभियुक्त की व्यक्तिगत स्वतंत्रता कम हो जाती है। विचारणीय न्यायालय के दृष्टिकोण के साथ प्रथम अपीलीय न्यायालय की सहमति तभी स्वीकार्य होगी जब वह तर्क द्वारा समर्थित हो। (पैरा 23)

सी. आपराधिक कानून –आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 161 और 162(2) – बयान, कहां तक मृत्युकालीन बयान के रूप में माना जा सकता है - धारित, धारा 161 सीआरपीसी के तहत मृतक का बयान, सीआरपीसी की धारा 162(2) के प्रावधान के अनुसार इसे मृत्युपूर्व बयान के रूप में माना जा सकता है, यदि अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य से यह साबित होता है कि सीआरपीसी की धारा 161 के तहत बयान दिया गया है वह संदेह से परे है - दलीप सिंह के मामले पर भरोसा किया गया। (पैरा 28 और 29)

डी. आपराधिक मुकदमा – आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 293 - विशेषज्ञ रिपोर्ट स्वीकार्यता - जिरह के लिए विशेषज्ञ को नहीं बुलाना - प्रभाव - माना गया, अपीलकर्ता ने विशेषज्ञ की जिरह के लिए नहीं बुलाया था, इसलिए, यह माना जाएगा कि

सीरोलॉजिकल रिपोर्ट को अपीलकर्ता के समक्ष स्वीकार कर लिया गया है – भूपिंदर के मामले में औपचारिक सबूत के बिना विशेषज्ञ की रिपोर्ट को साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। (पैरा 33 और 34)

ई. आपराधिक मुकदमा - इच्छुक गवाह – विश्वसनीयता– गंगाधर बेहरा के मामले पर भरोसा किया गया - रिश्ता किसी गवाह की विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाला कारक नहीं है। यह अक्सर होता है कि कोई रिश्तेदार वास्तविक अपराधी को नहीं छुपाता और किसी निर्दोष व्यक्ति पर आरोप नहीं लगाता। गलत फंसाने की दलील दी गई तो नींव रखनी पड़ेगी। ऐसे मामलों में, अदालत को सावधानीपूर्वक दृष्टिकोण अपनाना होगा और यह पता लगाने के लिए साक्ष्य का विश्लेषण करना होगा कि क्या यह ठोस और विश्वसनीय है। (पैरा 39)

अपील निरस्त (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. पंजाब राज्य बनाम हाकम सिंह; (2005) एससीसी 408
2. अशोक कुमार चौधरी बनाम बिहार राज्य; 2008(61) एसीसी 1972 (एससी)
3. ओम प्रकाश एवं अन्य बनाम राज्य; 1995 सभी. एल. जे. 1210
4. बख्शीश राम और अन्य बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 2013 एससी 1484: 2013 एयर एससीडब्ल्यू 14
5. मज्जल बनाम हरियाणा राज्य; (2013) 6 एससीसी 798
6. दलीप सिंह बनाम पंजाब राज्य; (1979) 4 एससीसी 332
7. पारस यादव एवं अन्य बनाम बिहार राज्य; (1999) 2 एससीसी 126: 1999 एससीसी (सीआरआई) 104
8. भूपिंदर बनाम पंजाब राज्य; एआईआर 1988 एससी 10119
9. गंगाधर बेहरा और अन्य बनाम उड़ीसा राज्य; (2002) 8 एससीसी 381

(माननीय न्यायमूर्ति मोहम्मद असलम, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अरुण सिन्हा, वादी के विद्वान अधिवक्ता श्री विजय किशोर मिश्रा और राज्य/प्रतिवादी की विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्रीमती स्मिति सहाय को सुना गया।

2. यह आपराधिक अपील दं.प्र.सं. की धारा 374(2) के अंतर्गत अपीलकर्ता/दोषसिद्ध अमिताभ दीक्षित द्वारा मुकदमा अपराध संख्या 209/2003, धारा 302/307 भा.दं.सं., पुलिस थाना- शाहाबाद, जिला-हरदोई से उद्‌भूत सत्र परीक्षण संख्या 673/2003 (राज्य बनाम अमिताभ दीक्षित), एवं अपराध संख्या 266/2003, धारा 25 आयुध अधिनियम के अंतर्गत, पुलिस थाना- शाहाबाद, जिला हरदोई से उद्‌भूत, सत्र परीक्षण संख्या 674/2003 (राज्य बनाम अमिताभ दीक्षित) में अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, त्वरित न्यायालय संख्या 4, हरदोई द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय एवं सजा के आदेश दिनांक 16.12.2004 के विरूद्ध दायर की गई है। अपीलकर्ता को धारा 302 भा.दं.सं. के अंतर्गत दंडनीय अपराध हेतु दोषसिद्ध किया गया था। अपीलकर्ता को धारा 302 भा.दं.सं. के अंतर्गत 5000/- रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा एवं आयुध अधिनियम की धारा 25 के अंतर्गत 500/- रुपये के जुर्माने के साथ दो वर्ष के कठोर कारावास, एवं जुर्माना अदा न करने पर दो वर्ष के अतिरिक्त साधारण कारावास की सजा प्रदान की गई थी। सभी सजाएं एक साथ चलाने का निर्देश दिया गया।

3. इस अपील के निस्तारण हेतु आवश्यक संक्षिप्त तथ्य यह है कि वादी कमल किशोर दीक्षित (अ.सा.-1) पुत्र स्वर्गीय मूंगा राम दीक्षित, निवासी मोहल्ला बुध बाजार, थाना शाहाबाद, हरदोई ने मुकदमा अपराध संख्या 209 वर्ष2003 में लिखित तहरीर (प्रदर्श क-1) के आधार पर धारा 307, 302 भा.दं.सं. के अंतर्गत दिनांक 25.5.2003 को 15:20 बजे पुलिस थाना-शाहाबाद, जिला-हरदोई में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई एवं आरोप लगाया गया कि 25.5.2003 को 02:45 बजे उनके छोटे भाई राम किशोर दीक्षित सरसों का तेल पिरवाकर साइकिल से घर लौट रहे थे। सूचना दाता कमल किशोर एवं उसका दूसरा भाई राम प्रमोद भी घर आ रहे थें एवं वे उसके भाई राम किशोर से 50 गज पीछे थे। जब उनके भाई राम किशोर दीक्षित मुहल्ला बुध बाजार के पास स्थित परशुराम की चक्की के पास पहुँचे तो भूमि के बंटवारे को लेकर रंजिश मानने वाले आरोपी अमिताभ दीक्षित पुत्र ओम प्रकाश दीक्षित ने उनके भाई राम किशोर दीक्षित पर जान से मारने की नियत से देसी तमंचे से गोली चला दी। उनके भाई राम किशोर दीक्षित अपनी जान बचाने हेतु साइकिल छोड़कर उनकी ओर भागे। इसी बीच अमिताभ दीक्षित ने गोली चला दी, तब तक उनके भाई राम शंकर मिश्र के दरवाजे पर पहुँच गये। पीछा करने पर अमिताभ दीक्षित ने पुनः गोली चला दी, जिससे उनका भाई घायल हो गया। घटना स्थल से गुजर रहे साक्षी मुहल्ला होलीकलां कस्बे के निवासी गोविंद राम जी तिवारी पुत्र गोविंद प्रसाद तिवारी एवं सुरेश कुमार गुप्ता पुत्र स्वर्गीय रघुवर प्रसाद गुप्ता ने पूरी घटना देखी। अमिताभ दीक्षित द्वारा सरेआम सड़क पर लगातार फायरिंग करने से वहाँ आसपास के लोग सहम गये ; महिलाएं, पुरुष एवं बच्चे घर में घुस गए एवं अपने दरवाजे बंद कर लिए, जिससे घटनास्थल के आसपास का सामान्य

जनजीवन अस्त-व्यस्त हो गया, जिसका लाभ उठाते हुए आरोपी वहाँ से भाग गए। रामजी तिवारी एवं सुरेश कुमार गुप्ता की सहायता से उनके घायल भाई राम किशोर दीक्षित को सरकारी चिकित्सालय शाहाबाद ले जाया गया एवं वादी ने थाने जाकर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई।

4. हेड मोहर्रिर ने वादी की लिखित तहरीर के आधार पर धारा 307 भा.दं.सं. के अंतर्गत चिक रिपोर्ट संख्या 71 सन 2003 (प्रदर्श क-5) लिखी एवं थाना शाहाबाद में धारा 307 भा.दं.सं. के अंतर्गत मुकदमा अपराध संख्या 209 वर्ष 2003, दिनांक 25.05.2003 को 15:20 बजे जीडी रिपोर्ट संख्या 26 (प्रदर्श क.-6) में आवश्यक प्रविष्टि कर पंजीकृत किया। मामले का अन्वेषण थाना अध्यक्ष शाहाबाद, निरीक्षक एस.एन. सिंह, अ.सा.-7, द्वारा की गई। 25.05.2003 को उन्होंने सी.डी. में चिक रिपोर्ट की नकल तैयार की एवं घायल राम किशोर दीक्षित का बयान (प्रदर्श क-25) धारा 161 दं.प्र.सं. के अंतर्गत दर्ज किया। इसके बाद उन्होंने आरोपी की तलाश की लेकिन वह नहीं मिला।

5. उसी दिन अर्थात 25.05.2003 को शाम 16:20 बजे वादी ने एक अन्य लिखित तहरीर (प्रदर्श क-2) देते हुए आरोप लगाया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने के उपरांत वह अपने घायल भाई को देखने चिकित्सालय गया था। तब तक राम प्रमोद, सुरेश कुमार गुप्ता व रामजी तिवारी भी चिकित्सालय पहुँच गये थे। इन सभी ने चिकित्सालय में चिकित्सकों को बहुत खोजा, लेकिन चिकित्सक नहीं मिले, तब वे लोग घायल को डॉ. माया प्रकाश के निजी नर्सिंग होम में ले गये। डॉ. माया प्रकाश के चिकित्सालय पहुँचने से पूर्व ही उनके भाई की मृत्यु हो गई। वह अपने भाई के शव को थाने ले गया था एवं पुलिस थाने के गेट के बाहर रख दिया था। प्रदर्श क-2 का सार रिपोर्ट संख्या 27 के माध्यम से जी.डी(प्रदर्श क-7) में दिनांक 25.05.2003 को 16:20 बजे दर्ज किया गया और धारा 302 भा.दं.सं. को जोड़ा गया। मृतक के शव का पंचायतनामा उपनिरीक्षक एस.एन.सिंह द्वारा 25.05.2003 को किया गया। उन्होंने नवल किशोर दीक्षित, सुरेश कुमार गुप्ता, राम प्रमोद, रामजी तिवारी एवं कमलेश गुप्ता को पंचायतनामा के साक्षी के रूप में नियुक्त किया एवं पंचायतनामा (प्रदर्श क-12), चालान लैश (प्रदर्श क-13), फोटो नैश (प्रदर्श क-14) मुख्य चिकित्सा अधिकारी को पत्र (प्रदर्श क.-15) तैयार किया ; शव को सील किया ; नमूना मोहर (प्रदर्श क-16) तैयार किया ; एवं शव को शवपरीक्षण हेतु शवगृह में ले जाने हेतु कांस्टेबल उजैर खान को सौंप दिया।

6. दिनांक 25.05.2003 को अन्वेषण अधिकारी एस.एन. सिंह ने घायल राम किशोर दीक्षित का बयान (प्रदर्श क.-25) दं.प्र.सं. की धारा 161 के अंतर्गत प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, शाहाबाद में दर्ज किया , एवं तत्पश्चात उन्होंने वादी कमल किशोर (अ.सा.-1) का बयान दर्ज किया एवं घटना स्थल का निरीक्षण किया एवं उनकी निशानदेही पर नक्शा नज़री(प्रदर्श क-17) तैयार किया। उन्होंने 315 बोर के दो ख़ाली कारतूस, एक जोड़ी चप्पल, सादा व खून आलूदा मिट्टी, साइकिल व तेल का कनस्तर, जिसका तेल सड़क पर बह गया था, बरामद कर उसकी फर्द(प्रदर्श क-18) तैयार कर साक्षीगण विमलेश सिंह एवं राजीव कुमार मिश्र की उपस्थिति में सील कर दिया। उन्होंने एक जोड़ी चप्पल की फर्द (प्रदर्श क-19) भी तैयार कर उसे सील कर दिया। उन्होंने साइकिल एवं तेल के कनस्तर (प्रदर्श क-21) का सुपर्दगीनामा भी तैयार कर वादी की सुपुर्दगी में दे दिया। 26.05.2003 को उन्होंने साक्षीगण राजीव कुमार मिश्र, विमलेश सिंह, रामजी तिवारी एवं सुरेश कुमार गुप्ता का बयान दर्ज किया। उन्होंने मृतक की पत्नी श्रीमती मंजू दीक्षित, मृतक के पुत्र लक्ष्मी कांत दीक्षित एवं साक्षी राम प्रमोद के बयान भी दर्ज किये।

7. मृतक का शव परीक्षण डॉ. जे.एल. गौतम(अ.सा.-5) द्वारा 26.05.2003 को सायं काल 04:00 बजे किया गया। मृतक राम किशोर दीक्षित की आयु लगभग 40 वर्ष, औसत शारीरिक गठन होना पाया गया। आँखें एवं मुंह खुले मिले। मृत्यु पश्चात अकड़न शरीर से समाप्त हो चुकी थी। पीठ एवं नितंब पर मरणोत्तर अभिरंजन उपस्थित पाया गया। पेट फूला हुआ पाया गया। मृतक के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:-

(i) पेट के दाहिनी ओर नाभि से 12 सेमी दूर, 10 बजे की स्थिति पर 2 सेमी X 1.5 सेमी X आर-पार आग्नेयास्त्र प्रवेश घाव, घाव के चारों ओर 15 सेमी X 15 सेमी का फटा हुआ टैटू।

(ii) एल-2 स्तर पर दाहिनी पीठ पर 3 सेमी x 2 सेमी का आग्नेयास्त्र निकास घाव, किनारे बाहर की ओर, चोट संख्या 1 के साथ संपर्कित, क्षत-विक्षत, दिशा आगे से पीछे दाहिनी ओर।

(iii) जांघ के बाएं ऊपरी हिस्से पर उपस्थित 2 सेमी X 10 सेमी X आर-पार आग्नेयास्त्र प्रवेश घाव, किनारे उलटे एवं फटे हुए।

(iv) बाईं जांघ के पिछले हिस्से पर ग्लूटियल क्षेत्र के निचले हिस्से के पास उपस्थित 3 सेमी X 2 सेमी का आग्नेयास्त्र निकास घाव, किनारे बाहर की ओर मुड़े हुए, फटे हुए, चोट संख्या 3 से संपर्कित।

(v) गटर के आकार का आग्नेयास्त्र घाव 5 सेमी X 1.5 सेमी Xमांसपेशी तक गहरा।

चोट संख्या 3 के अंतर्गत ऊरु धमनी क्षतिग्रस्त हो गई है।

8. आंतरिक जाँच करने पर हृदय का बायां कक्ष रिक्त तथा दाहिना कक्ष भरा हुआ पाया गया। उदर गुहा में 2 लीटर जमा हुआ रक्त पाया गया। पेट फटा हुआ पाया गया एवं उसमें खून के थक्के के साथ दो औंस लेईनुमा पदार्थ पाया गया था। छोटी एवं बड़ी आंतें फटी हुई एवं मल एवं गैसों से भरी हुई पाई गईं। यकृत फटा हुआ मिला, पित्ताशय आधा भरा हुआ मिला। चिकित्सक की राय थी कि मृतक की मृत्यु शव परीक्षण से लगभग एक दिन पूर्व मृत्यु पूर्व चोट के कारण सदमे एवं रक्तस्राव के कारण हुई थी। डॉ. जे.एल. गौतम(अ.सा.-5) ने अपनी लिखावट में शव परीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श क-8) तैयार की एवं मृतक के वस्त्रों को, जिसमें शर्ट, जनेऊ, अंडरवियर, अंगौछा एवं कलावा सम्मिलित थे,सील किया एवं पुलिस अधीक्षक को भेज दिया।

9. दिनांक 05.06.2003 को अन्वेषण अधिकारी निरीक्षक एस.एन. सिंह (अ.सा.-7) को अभियुक्त अमिताभ दीक्षित के न्यायालय में समर्पण के संबंध में रोपकर प्राप्त हुआ। दिनांक 06.06.2003 को उन्होंने न्यायालय की अनुमति से जिला जेल, हरदोई में अभियुक्त अमिताभ दीक्षित का बयान दर्ज किया, जिसमें उसने कहा कि उसने मृतक की हत्या में इस्तेमाल किए गए हथियार को छुपाया था, जिसे वह बरामद कर सकता था। इसके बाद, अन्वेषण अधिकारी ने आरोपी की पुलिस अभिरक्षा हेतु आवेदन किया, जिसे स्वीकृति दे दी गई एवं तत्पश्चात, उन्होंने आरोपी को पुलिस अभिरक्षा में ले लिया। 11.06.2003 को अन्वेषण अधिकारी ने साक्षीगण छेदालाल वर्मा, राम विलास वर्मा एवं संजय की उपस्थिति में अभियुक्त-अपीलकर्ता की निशानदेही पर अभियुक्तों द्वारा मृतक की हत्या में प्रयुक्त कथित हथियार एवं दो कारतूस बरामद किए एवं उसका फर्द बरामदगी(प्रदर्श क-23) तैयार कर सील कर दिया। उन्होंने दो खाली कारतूस के साथ 315 बोर की देसी पिस्तौल की बरामदगी संबंधी साक्षीगण के बयान भी दर्ज किए।

10. फर्द बरामदगी(प्रदर्श क-23) के आधार, चिक रिपोर्ट सं. 80 वर्ष2003 (प्रदर्श क-3) दिनांक 12.6.2003 को प्रातः 8.30 बजे कांस्टेबल राम प्रताप द्वारा अंकित की गई तथा जीडी रिपोर्ट संख्या16 (प्रदर्श क-4) में आवश्यक प्रविष्टि कर दिनांक 12.6.2003 को प्रातः 8.30 बजे मुकदमा अपराध संख्या 266 वर्ष2003 धारा 3/25 आयुध अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत किया गया।

11. धारा 3/25 आयुध अधिनियम के अंतर्गत वाद का अन्वेषण उपनिरीक्षक इकरार हुसैन (अ.सा.-6) को सौंपा गया, जिन्होंने साक्षीगण के बयान दर्ज किए थे एवं बरामदगी अधिकारी निरीक्षक एस.एन. सिंह(अ.सा.-7) की निशानदेही पर नक्शा नज़री(प्रदर्श क-9) तैयार किया था। उन्होंने 04.07.2003 को तत्कालीन जिला मजिस्ट्रेट, हरदोई (प्रदर्श क-10) से अभियोजन की स्वीकृति भी प्राप्त कर ली एवं अभियुक्त अमिताभ दीक्षित के विरूद्ध धारा 3/25 आयुध अधिनियम के अंतर्गत आरोप पत्र(प्रदर्श क-11) प्रस्तुत किया।

12. निम्नलिखित वस्तुएं अर्थात (1) चप्पल की जोड़ी, (2) खून आलूदा मिट्टी, (3) पैंट, (4) शर्ट (5) अंडरवियर, (6) अँगौछा, (7) जनेऊ एवं (8) रक्षा (कलावा) को अन्वेषण अधिकारी, निरीक्षक एस.एन. सिंह द्वारा विधिविज्ञान प्रयोगशाला में जाँच हेतु भेजा गया था जिसके संबंध में रिपोर्ट दिनांक 24.9.2003 (प्रदर्श क-26) प्राप्त हुई थी जिसमें आइटम संख्या 1 से 8 के बड़े भाग पर रक्त पाया गया था। आइटम नंबर 4 से 6 पर रक्त का सबसे बड़ा धब्बा पाया गया जिनकी लंबाई क्रमशः 50, 20 एवं 40 सेमी है। वस्तु क्रमांक 1 से 8 पर मानव रक्त पाया गया। घटनास्थल से बरामद 315 बोर के दो खाली कारतूस एवं अभियुक्त के पास से बरामद देसी तमंचे को विधिविज्ञान प्रयोगशाला, लखनऊ भेजा गया था जिसके संबंध में रिपोर्ट दिनांक 13.10.2003 (प्रदर्श क-27) प्राप्त हुई थी। जिसमें घटनास्थल से बरामद खाली कारतूसों को क्रमशः EC-1 एवं EC-2 के रूप में चिह्नित किया गया था, एवं दो परीक्षण कारतूस TC1 एवं TC2 कथित तौर पर अपीलकर्ता-अभियुक्तों से बरामद 315 बोर के देसी तमंचे से फायर किए गए थे। कारतूसों के आवरण पर उनके निशान का माइक्रोस्कोप से मिलान किया गया एवं पाया गया कि EC1 एवं EC2 एवं TC1 एवं TC2 को आरोपी से कथित तौर पर बरामद 315 बोर के एक ही देसी तमंचे से फायर किया गया था। अन्वेषण के उपरान्त निरीक्षक एस.एन. सिंह(अ.सा-7) ने धारा 307/302 भा.दं.सं. के अंतर्गत वर्ष 2003 के मुकदमा अपराध संख्या 209 में आरोप पत्र(प्रदर्श क-24) प्रस्तुत किया।

13. अभियुक्त-अपीलकर्ता के विरुद्ध भा.दं.सं. की धारा 307/302 के अंतर्गत दंडनीय अपराध का संज्ञान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा 14 जुलाई, 2003 को लिया गया था। अभियुक्त-अपीलकर्ता के विरुद्ध धारा 3/25 आयुध अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय अपराध का संज्ञान भी 14.07.2003 को लिया गया था। दोनों आरोप पत्र एक ही घटना से उद्‌भूत थे, अतः दोनों वादों को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, हरदोई द्वारा धारा 207 दं.प्र.सं. के प्रावधान का अनुपालन करने के उपरान्त विचारण हेतु सत्र न्यायालय को उपान्तरित किया गया। वर्ष2003 के मुकदमा अपराध संख्या 209 से उद्‌भूत वाद को धारा 307/302 भा.दं.सं. के अंतर्गत सत्र परीक्षण संख्या 673 वर्ष 2003 (यूपी राज्य बनाम अमिताभ दीक्षित) के रूप में दर्ज किया गया था एवं मुकदमा अपराध संख्या 266 वर्ष 2005 से उद्‌भूत वाद को धारा 3/25 आयुध अधिनियम के अंतर्गत सत्र परीक्षण

संख्या 674 वर्ष 2003 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अमिताभ दीक्षित) के रूप में दर्ज किया गया था।

14. इन सत्र वादों को बाद में विचारण हेतु अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक न्यायालय संख्या 4, हरदोई में स्थानांतरित कर दिया गया। विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक न्यायालय संख्या 4, हरदोई ने दिनांक 07.01.2004 को अभियुक्त-अपीलार्थी अमिताभ दीक्षित के विरूद्ध धारा 302 भा.दं.सं. एवं धारा 25 आयुध अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय अपराध का आरोप विनिश्चित किया। अपीलकर्ता/अभियुक्त अमिताभ दीक्षित ने स्वयं को निर्दोष बताया है एवं विचारण की प्रार्थना की है।

15. दोनों सत्र वादों को विचारण हेतु समेकित किया गया क्योंकि वे एक ही संव्यवहार से संबंधित थे एवं धारा 302 भा.दं.सं. के अंतर्गत 2003 के सत्र परीक्षण संख्या 673 (राज्य बनाम अमिताभ दीक्षित) को प्रमुख वाद माना गया।

16. अपने वाद को सिद्ध करने हेतु, अभियोजन पक्ष ने वादी कमल किशोर को अ.सा.-1 एवं रामजी तिवारी को अ.सा.-2 के रूप में घटना का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी बनाया। वादी ने लिखित तहरीर (प्रदर्श क-1), मृतक की मृत्यु की सूचना (प्रदर्श क-2) को सिद्ध किया। औपचारिक साक्षी के रूप में, अभियोजन पक्ष ने आयुध अधिनियम की चिक रिपोर्ट(प्रदर्श क-3) एवं जीडी, जिसके द्वारा धारा 3/25 आयुध अधिनियम (प्रदर्श क-4) के अंतर्गत वाद दर्ज किया गया,को सिद्ध करने हेतु अ.सा-3 के रूप में कांस्टेबल राम प्रताप की परीक्षा की, एवं द्वितीयक द्वारा साक्ष्य के रूप में उन्होंने भा.दं.सं. की धारा 307 (प्रदर्श क-5) के अंतर्गत वर्ष2003 की प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 71 की चिक रिपोर्ट, मुकदमा कायमी जीडी (प्रदर्श क-6) एवं जीडी रिपोर्ट संख्या 27 दिनांक 25.05.2003 (प्रदर्श क-7), जिसके द्वारा धारा 302 भा.दं.सं. जोड़ी गई, को सिद्ध किया। अभियोजन ने पुलिस हिरासत रिमांड के दौरान आरोपी-अपीलकर्ता से दो जिंदा कारतूस के साथ 315 बोर के देसी तमंचे की बरामदगी को सिद्ध करने हेतु छेदा लाल को अ.सा. -4 के रूप में भी परीक्षित किया। अभियोजन पक्ष ने शव परीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श क-8) को सिद्ध करने हेतु डॉ. जे.एल. गौतमको अ.सा. -5 के रूप में परीक्षित किया। अभियोजन पक्ष ने धारा 3/25 आयुध अधिनियम के अंतर्गत वाद के अन्वेषण में कृत कार्यवाही नक्शा नज़री (प्रदर्श क-9), अभियोजन स्वीकृति (प्रदर्श क-10) एवं धारा 3/25 आयुध अधिनियम के अंतर्गत आरोप पत्र (प्रदर्श क-11) को सिद्ध करने हेतु अ.सा.-6 के रूप में उप निरीक्षक इकरार हुसैन की परीक्षा की। अभियोजन पक्ष ने अन्वेषण अधिकारी निरीक्षक एस.एन. सिंह की मृतक की हत्या के अन्वेषण में कृत कार्यवाही एवं घटनास्थल से 315 बोर की देसी तमंचे एवं दो जिंदा कारतूसों की बरामदगी को सिद्ध करने हेतु अ.सा.-7 के रूप में परीक्षा की। दिनांक 25.05.2003 को उन्होंने वाद दर्ज करते हुए चिक रिपोर्ट एवं जीडी की नकल तैयार की तथा वादी कमल किशोर अ.सा.-1 का बयान दर्ज किया, तथा उसी दिन वे तत्काल प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, शाहाबाद गये तथा घायल राम किशोर दीक्षित(प्रदर्श क-25) का बयान दर्ज किया जिन्होंने अभियोजन वाद का समर्थन किया था। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि मृतक के शव का पंचायतनामा उपनिरीक्षक सियाराम द्वारा किया गया था, जिन्होंने पंचायतनामा (प्रदर्श क-12) , चालान लैश (प्रदर्श क-13), फोटो नैश (प्रदर्श क.-14) मुख्य चिकित्सा अधिकारी को पत्र (प्रदर्श क-15) तैयार किया, शव को सील किया, तथा नमूना मोहर (प्रदर्श क.-16) तैयार कर उनकी उपस्थिति में शव को शव परीक्षण हेतु शवगृह भेज दिया। उनसे यह सिद्ध करने हेतु भी परीक्षा की गई कि उन्होंने घटनास्थल से बरामद 315 बोर के दो खाली कारतूस लिए थे ; उन्हें सील किया एवं साक्षीगण विमलेश सिंह एवं राजीव कुमार मिश्रा की उपस्थिति में फर्द (प्रदर्श क-18) तैयार किया; घटनास्थल से एक जोड़ी चप्पल लेकर उसे सील किया एवं फर्द (प्रदर्श क.-19) तैयार किया। उसने सादी मिट्टी एवं खून आलूदा मिट्टी भी ली एवं उन्हें दो डिब्बों में सील किया एवं फर्द (प्रदर्श क-20) तैयार की तथा मृतक की साइकिल को कब्जे में लेकर सुपुर्दगीनामा (प्रदर्श क.-21) तैयार कर वादी की अभिरक्षा में दे दिया। नक्शा नज़री (प्रदर्श क-17) को सिद्ध करने के लिए भी उनकी परीक्षा की गई। अपीलार्थी/अभियुक्त से पुलिस अभिरक्षा रिमांड के दौरान दिनांक 12.6.2003 को लगभग 06:45 बजे साक्षीगण छेदालाल वर्मा एवं संजय मिश्रा की उपस्थिति में 315 बोर के देसी तमंचे एवं दो कारतूस की बरामदगी एवं उसका फर्द (प्रदर्श क-23) तैयार किये जाने के बिन्दु पर भी उनकी परीक्षा की गई। उन्होंने घटना स्थल से बरामद दो खाली कारतूस वस्तु प्रदर्श क-1 एवं 315 बोर का देसी तमंचा (वस्तु प्रदर्श-2) एवं दो जीवित कारतूस (वस्तु प्रदर्श-3 एवं 4) भी प्रस्तुत किया, जो पुलिस अभिरक्षा रिमांड के दौरान अपीलकर्ता/अभियुक्त के कब्जे से बरामद किया गया था। उन्होंने दो परीक्षण कारतूस (वस्तु प्रदर्श-5 एवं 6) भी सिद्ध किये। उन्होंने मुकदमा अपराध संख्या 209 वर्ष 2003 अंतर्गत धारा 307/302 भा.दं.सं. के आरोप पत्र (प्रदर्श क-24) को भी सिद्ध किया। अभियोजन पक्ष ने विधिविज्ञान प्रयोगशाला की बैलिस्टिक रिपोर्ट (प्रदर्श क-27) एवं सीरोलॉजिकल विशेषज्ञ की रिपोर्ट (प्रदर्श क.-26) भी प्रस्तुत की एवं अभियोजन ने अपने साक्ष्य का समापन किया।

17. धारा 313 दं.प्र.सं. के अंतर्गत अपीलकर्ता/अभियुक्त का बयान दर्ज किया गया था जिसमें उसने स्वीकार किया था कि भूमि के बंटवारे के कारण मृतक के परिवार से उसकी शत्रुता थी। उसने अभियोजन

पक्ष के आरोप से इनकार किया एवं कहा कि उसे अभियोजन पक्ष ने झूठा फंसाया था, लेकिन उसने अपने बचाव में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया।

18. विद्वान विचारण न्यायालय ने राज्य हेतु विद्वान अपर जिला शासकीय अधिवक्ता एवं अपीलकर्ता/अभियुक्त हेतु विद्वान अधिवक्ता के तर्कों को सुना एवं पत्रावली का अध्ययन करते हुए धारित किया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट तत्काल दर्ज की गई थी, एवं साक्षीगण, वादी कमल किशोर (अ.सा.-1) एवं रामजी तिवारी (अ.सा.-2) की उपस्थिति युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध हुई है। यह भी धारित किया गया है कि यद्यपि वे मृतक से संबंधित हैं, किंतु मृतक से रिश्तेदारी के आधार पर उनके साक्ष्य पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है। पुन: यह धारित किया गया है कि संबंधित साक्षी के साक्ष्य की सूक्ष्मता से जाँच की आवश्यकता है। उनके साक्ष्यों की जाँच करने के उपरान्त विद्वान विचारण न्यायालय ने माना है कि उनका साक्ष्य स्वाभाविक है एवं विश्वास उत्पन्न करता है, जिसकी पुष्टि प्रथम सूचना रिपोर्ट, शव परीक्षण रिपोर्ट एवं बैलिस्टिक विशेषज्ञ रिपोर्ट से होती है। पुन: यह धारित किया गया कि अपीलकर्ता के विरूद्ध धारा 302 भा.दं.सं. एवं धारा 25 आयुध अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय अपराध के आरोप उचित संदेह से परे सिद्ध हुए हैं एवं यह निष्कर्ष दर्ज किया गया है कि अपीलकर्ता/अभियुक्त मृतक राम किशोर दीक्षित की हत्या का दोषसिद्ध है, एवं एक देसी तमंचे के साथ ही उसके पास से दो कारतूस बरामद हुएहै। तदोपरान्त उसे उपरोक्त सजा सुनाई गई। दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय एवं सजा के आदेश से व्यथित होकर दोषसिद्ध/अपीलकर्ता अमिताभ दीक्षित ने यह अपील दायर की है।

19. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अभिकथन किया गया है कि मृतक की मृत्यु के बाद मनगढ़ंत एवं उचित विचार-विमर्श के बाद समयप्रतिकूल प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। पुन: यह कहा गया है कि धारा 307 के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट 25.05.2003 को 15:20 बजे दर्ज नहीं की गई है जैसा कि अभियोजन पक्ष ने आरोप लगाया था, अपितु इसे मृतक की मृत्यु के उपरान्त दर्ज किया गया था एवं अन्वेषण रिपोर्ट तैयार होने तक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई थी एवं प्रथम सूचना रिपोर्ट मात्र झूठी अभियोजन कथा प्रदर्शित करने हेतु, एवं झूठे साक्षियों का नाम दर्ज करने हेतु समय पूर्व दर्ज की गई थी। पुन: यह अभिकथन किया गया है कि पंचायतनामा से ज्ञात होता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित कथित प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का उल्लेख पंचायतनामा के साक्षीगण के रूप में किया गया है एवं प्रत्यक्षदर्शी साक्षीगण, अर्थात कमल किशोर (गलत तरीके से पंचायतनामा में नवल किशोर के रूप में उल्लेख किया गया है, जिन्होंने पंचायतनामा में कमल किशोर के रूप में हस्ताक्षर किए हैं), राम प्रमोद एवं रामजी तिवारी को पंचायतनामा के साक्षी के रूप में भी दिखाया गया था। यह अभिकथन भी किया गया है कि पंचायतनामा के परिशीलन से ज्ञात होता है कि पंचायतनामा एक व्यक्ति द्वारा नहीं तैयार किया /लिखा गया है, बल्कि कुछ लेख अलग-अलग व्यक्तियों की लिखावट में हैं। पुन: यह अभिकथन किया गया है कि मृतक की मृत्यु की रिपोर्टिंग के संबंध में जीडी रिपोर्ट संख्या को रिक्त छोड़ दिया गया था, जिससे ज्ञात होता है कि पंचायतनामा कार्यवाही के समय प्रथम सूचना रिपोर्ट अस्तित्व में नहीं थी। आगे कहा गया है कि पंचायतनामा में यह उल्लेख किया गया था कि मृतक की मृत्यु के संबंध में सूचना किसी नवल किशोर द्वारा दी गई थी, न कि वादी द्वारा। पुन: यह अभिकथन किया गया है कि मृतक की मृत्यु के संबंध में जीडी रिपोर्ट संख्या को पंचायतनामा में जानबूझकर रिक्त छोड़ दिया गया था ताकि मृतक की मृत्यु की रिपोर्टिंग के संबंध में जीडी रिपोर्ट संख्या के रिक्त स्थान को भरकर पंचायतनामा कार्यवाही को समायोजित करने हेतु समय पूर्व प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की जा सके। किन्तु पंचायतनामा संपन्न करने वाले उप-निरीक्षक मृतक की मृत्यु की रिपोर्टिंग के संबंध में जीडी रिपोर्ट संख्या भरना भूल गए। यह अभिकथन किया गया है कि इससे यह स्थापित होता है कि अपीलकर्ता अमिताभ दीक्षित को झूठा फंसाने हेतु मृतक की मृत्यु के उपरांत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। पुन: यह प्रस्तुत किया गया है कि मात्र पंचायतनामा में ही नहीं अपितु पंचायतनामा के समय कथित तौर पर तैयार किए गए अन्य पुलिस दस्तावेज अर्थात चालान नाश आदि में भी यह स्पष्ट है कि पंचायतनामा कार्यवाही के समय एवं जीडी रिपोर्ट एवं पंचायतनामा कार्यवाही में गलत प्रविष्टियों के समय भी प्रथम सूचना रिपोर्ट अस्तित्व में नहीं थी। आगे कहा गया है कि पुलिस कागज संख्या 30 चालान लैश से ज्ञात होता है कि मृतक का नाम भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा विभिन्न हस्तलेखों में लिखा गया है एवं अन्य विवरण किसी अन्य व्यक्ति द्वारा लिखा गया है। पुन: यह अभिकथन किया गया है कि वादी अ.सा.-1 कमल किशोर ने अपने मुख्य परीक्षण में स्वीकार किया है कि उसके भाई की मृत्यु अपराह्न 03:20 बजे हुई है। यह भी कहा गया है कि भा.दं.सं. की धारा 307 के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट समयप्रतिकूल है एवं मृतक का बयान, जो दं.प्र.सं. की धारा 161 के अंतर्गत दर्ज किया गया है, अन्वेषण अधिकारी एस.एन. सिंह द्वारा गढ़ा गया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि वादी अ.सा.-1 ने कहा है कि उसके भाई की मृत्यु के पश्चात, वह अन्य लोगों की सहायता से मृतक के शव को पुलिस थाना ले आया एवं गेट के बाहर रख दिया। किंतु पंचायतनामा से ज्ञात होता है कि नवनिर्मित मुंसिफ न्यायालय, शाहाबाद के परिसर में एस.आई सियाराम को शव मिला, जिससे अभियोजन वाद पर संदेह उत्पन्न होता है। पुन: यह

अभिकथन किया गया है कि वादी ने न्यायालय के समक्ष अपने बयान में कहा है कि देसी तमंचे से पहला फायर अमिताभ दीक्षित ने किया था जो उसके भाई के हाथ में लगा एवं तत्पश्चात उसका भाई उनकी ओर भागा। उसके बाद अपीलकर्ता द्वारा दूसरा फायर किया गया जो उसके भाई के बाएं पैर में लगा। पुन: यह अभिकथन किया गया है कि वादी ने स्वीकार किया है कि पहली गोली लगने से घायल होने के बाद, उसका भाई साइकिल वहीं छोड़कर उनकी ओर भागा। पुन: यह अभिकथन किया गया है कि वादी ने यह भी स्वीकार किया है कि उसका भाई रामजी किशोर राम शंकर के दरवाजे के सामने गिर गया था, इसी बीच अपीलकर्ता अमिताभ दीक्षित ने तीसरी गोली चलाई जो उसके भाई के सीने के दाहिनी ओर लगी। पुन: यह अभिकथन किया गया है कि अ.सा.-1 के रूप में वादी कमल किशोर के बयान से ज्ञात होता है कि गोली मृतक के पीछे की ओर से चलाई गई थी जो कि पोस्टमार्टम रिपोर्ट में दिखाई गई चोट से असंगत है। इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि वादी घटना स्थल पर उपस्थित नहीं था एवं उसने घटना देखी नहीं थी। पुन: यह प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने वादी अ.सा.-1 की गवाही पर गलत विश्वास किया है। आगे कहा गया है कि साक्षी रामजी तिवारी अ.सा.-2 ने स्वीकार किया है कि उसके पिता का नाम गोविंद प्रसाद तिवारी है। गोविंद प्रसाद तिवारी की बहन अर्थात श्रीमती सरस्वती की शादी मूंगा राम से हुई थी, जो मृतक, वादी कमल किशोर दीक्षित एवं राम प्रमोद के पिता हैं। यह अभिकथन किया गया है कि कथित प्रत्यक्षदर्शी साक्षीगण, वादी अ.सा. 1 कमल किशोर एवं रामजी तिवारी मृतक से संबंधित हैं एवं उनके साक्ष्य में विरोधाभास है। इसलिए, उनके साक्ष्य पर कोई विश्वास नहीं किया जा सकता है, किंतु विद्वान विचारण न्यायालय ने उनकी गवाही पर गलत विश्वास किया है। यह भी कहा गया है कि साक्षी रामजी तिवारी ने अपने बयान में संशोधन किया है ताकि पोस्टमार्टम रिपोर्ट में उल्लिखित चोटों से अभियोजन पक्ष के मामले की पुष्टि हो सके। अ.सा.-2 रामजी तिवारी शाहाबाद में प्रैक्टिस करने वाले एक अधिवक्ता हैं एवं उन्होंने जानबूझकर विचारण न्यायालय के समक्ष अपने बयान में सुधार किया है क्योंकि वह अच्छी तरह से जानते थे कि वह न्यायालय के समक्ष अपने बयान को कैसे सुधार सकते हैं ताकि इसकी पुष्टि प्रथम सूचना रिपोर्ट एवं पोस्टमार्टम रिपोर्ट से की जा सके। आगे यह कहा गया है कि वादी अ.सा.-1 ने अपनी प्रतिपरीक्षा में स्वीकार किया है कि उसकी उपस्थिति में घटना स्थल पर उसके घायल भाई को किसी ने नहीं छुआ था एवं उसने भी अपने भाई को नहीं छुआ था एवं रिपोर्ट दर्ज कराने हेतु पुलिस थाना चला गया था। यह वादी का अप्राकृतिक आचरण है जो घटना स्थल पर उसकी उपस्थिति को भी संदिग्ध बनाता है एवं इसलिए, उसके साक्ष्य पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। पुन: यह अभिकथन किया गया है कि कथित घटना प्रमुखत: जनता के मध्य हुई है, किंतु अभियोजन पक्ष द्वारा किसी भी स्वतंत्र साक्षी की परीक्षा नहीं की गई है। अत: मात्र हितबद्ध साक्षी के साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्ध सिद्धि दर्ज नहीं की जा सकती है। पुन: अभिकथन किया गया है कि उपरोक्त परिस्थितियों में अभियोजन पक्ष भा.दं.सं. की धारा 302 एवं 25 आयुध अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय अपराध के आरोपों हेतु अपना वाद संदेह से परे सिद्ध करने में बुरी तरह विफल रहा है। इसलिए, आक्षेपित निर्णय एवं दोषसिद्धि को अपास्त करने एवं आरोपी-अपीलकर्ता को दोषसिद्धि से मुक्त करने की प्रार्थना की गई।

20. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा यह अभिकथन किया गया है कि घटना 25.05.2003 को दोपहर 02:45 बजे घटित हुई है जिसके सम्बन्ध में उसी दिन अपरान्ह 15:20 बजे प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करायी गयी। चिक रिपोर्ट(प्रदर्श क-5) जिसके संबंध में कॉन्स्टेबल/क्लर्क अ.सा.-3 राम प्रताप ने अपने द्वितीयक साक्ष्य से यह सिद्ध किया है कि चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट हेड मोहर्रिर हेमराज द्वारा लिखी गई थी, जिसके हस्तलेख से वह परिचित है। इस तथ्य को कि चिक रिपोर्ट हेड मोहर्रिर हेमराज द्वारा लिखी गई थी, अपीलकर्ता/अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता ने विचारण न्यायालय के समक्ष साक्षी की प्रतिपरीक्षा में चुनौती नहीं दी थी। पुन: यह भी कहा गया कि पुलिस थाना से घटनास्थल डेढ़ किलोमीटर दूर दिखाया गया है एवं इस तथ्य को भी विचारण न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी गई। पुन: यह अभिकथन किया गया है कि अ.सा.-1 कमल किशोर ने अपने बयान में कहा है कि घटना के बाद वह रिक्शा से पुलिस थाना गया था एवं पुलिस थाना, शाहाबाद में तहरीर सौंपी थी। यह भी कहा गया है कि वादी ने यह भी कहा कि उसने तहरीर अपने हस्तलेख में एवं अपने हस्ताक्षर के अंतर्गत लिखी थी। यह भी कहा गया है कि अ.सा.-1 कमल किशोर ने आगे कहा है कि दरोगा जी उनसे पुलिस थाना में मिले थे एवं मृतक की दिनांक 25.5.2003 को लगभग 03:30 बजे चिकित्सालय में मृत्यु हो गई है जिसके संबंध में उसने अपने हस्तलेख में थाना शाहाबाद पुलिस को तहरीर (प्रदर्श क-2) दी है। उसने आगे कहा है कि उसने अपने भाई की मृत्यु की जानकारी दी है। आगे यह अभिकथन किया गया है कि अ.सा.-1 कमल किशोर ने कहा है कि त्रुटिवश उसने अपने बयान में कहा है कि उसके भाई की मृत्यु दोपहर 03:30 बजे हुई । पुन: यह अभिकथन किया गया है कि अ.सा.-1 कमल किशोर ने साक्ष्य दिया है कि पुलिस थाना घटना स्थल से लगभग 2 किमी दूर है। आगे यह अभिकथन किया गया है कि अ.सा.-1 कमल किशोर ने न्यायालय के समक्ष अपने बयान में कहा है कि उन्होंने न तो राम किशोर को उठाया है एवं न ही उन्हें चिकित्सालय या पुलिस थाना ले गए हैं, परंतु वह तत्काल प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने हेतु

पुलिस थाना गए। आगे यह अभिकथन किया गया है कि अ.सा.-1 कमल किशोर ने साक्ष्य दिया है कि उसने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने से पहले दरोगा जी को बताया था कि उसके भाई राम किशोर को आग्नेयास्त्र से तीन चोटें लगी हैं, एवं तत्पश्चात, दरोगा जी प्राथमिक स्वास्थय केन्द्र, शाहाबाद गए थे एवं राम किशोर को उपस्थित पाया और उसका बयान दर्ज किया। अ.सा.-1 कमल किशोर ने आगे बताया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट की प्रति उन्हें उसी दिन शाम को दी गई थी। आगे कहा गया है कि इस घटना में वादी के सगे छोटे भाई की हत्या कर दी गई थी, उसकी मानसिक स्थिति का अनुमान उसके बयान से भी लगाया जा सकता है कि शव को चिकित्सालय में सील कर दिया गया था। अर्थात, इस साक्षी के बयान के अनुसार पंचायतनामा कार्यवाही जिला चिकित्सालय में संपन्न की गई थी। विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा यह भी अभिकथन किया गया है कि उन्हें पंचायतनामा के साक्षी के रूप में प्रदर्शित किया गया था, किंतु उसने कहा है कि उसने पंचायतनामे पर हस्ताक्षर नहीं किए थे, जिससे ज्ञात होता है कि वह इस घटना से सदमे में था एवं जब उसके बयान को प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के बयान के तौर पर दर्ज किया जा रहा था उस समय अपना मानसिक संतुलन भी खो चुका था। इसलिए उसके बयान में इस प्रकार का विरोधाभास उत्पन्न हुआ है। यह भी कहा गया है कि जहाँ तक इस साक्षी के अपने घायल भाई को न लेने एवं पुलिस थाना न जाने के तथ्य का संबंध है, तो यह उसके साक्ष्य को अविश्वसनीय नहीं बनाता है क्योंकि आचरण उसकी मानसिक स्थिति पर निर्भर करता है। पुन: कहा गया है कि यह नहीं कहा जा सकता कि वादी ने 15:20 बजे थाना शाहाबाद में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं कराई थी। आगे यह कहा गया है कि यह नहीं कहा जा सकता कि प्रथम सूचना रिपोर्ट समयप्रतिकूल है। यह भी अभिकथन किया गया है कि मृतक का पोस्टमार्टम 26.5.2003 को शाम 04:00 बजे किया गया था एवं पोस्टमार्टम रिपोर्ट डॉ. जे.एल. गौतम द्वारा तैयार की गई थी, जिन्होंने अ.सा.-5 के रूप में साक्ष्य दिया था कि मृतक की मृत्यु 25.5.2003 को लगभग 3-4 बजे हुई थी। आगे यह भी कहा गया है कि पोस्टमार्टम के समय पेट में खून के थक्के के साथ दो औंस चिपचिपा पदार्थ पाया गया, जिसका अर्थ है कि यह घटना दोपहर का भोजन करने के लगभग 2-3 घंटे पश्चात हुई है। अत: यह नहीं कहा जा सकता है कि मृतक को रात में अज्ञात व्यक्तियों द्वारा डकैती में चोट पहुँचाई गई थी। पुन: विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा अभिकथन किया गया है कि अ.सा.-1 कमल किशोर ने विचारण न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता/अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता के इस सुझाव को अस्वीकृत कर दिया था कि मृतक राम किशोर को रात के अंधेरे में एक सुनसान स्थान पर लूट लिया गया था। पुन: यह अभिकथन किया गया है कि वर्तमान वाद में प्रथम सूचना रिपोर्ट तत्काल दर्ज की गई थी, इसलिए, यह तथ्य अपीलकर्ता को झूठा फंसाने संबंधी किसी भी प्रकार की मनगढ़ंत कहानी को अस्वीकृत कर देगा। विद्वान अपर अधिशासी अधिवक्ता द्वारा पुन: अभिकथन किया गया है कि अ.सा.-7 निरीक्षक एस.एन. सिंह के साक्ष्य से यह सिद्ध हो गया है कि तत्काल प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के बाद उसी दिन अन्वेषण प्रारंभ कर दिया गया था। यह भी कहा गया है कि अ.सा.-7 एस.एन. सिंह ने बताया कि वादी अकेले ही प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने आया था। आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि ये परिस्थितियाँ मनगढ़ंत कहानी एवं आरोपी को गलत फंसाने की संभावनाओं को भी नकारती हैं। यह भी कहा गया है कि अ.सा.-7 के बयान से यह भी स्पष्ट है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट को पुलिस के क्षेत्राधिकारी एवं संबंधित क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय को अग्रेषित करने में कुछ विलंब हुआ था, परंतु यह नहीं कहा जा सकता कि प्रथम सूचना रिपोर्ट समयप्रतिकूल है। विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा **पंजाब राज्य बनाम हाकम सिंह(2005) SCC 408** वाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि पर विश्वास व्यक्त किया गया है, जिसमें यह धारित किया गया है कि क्षेत्र मजिस्ट्रेट को प्रतिलिपि भेजने में विलंब तात्विक नहीं है, जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट अविलंब दर्ज कर ली गयी है एवं इसके आधार पर अन्वेषण प्रारंभ हो गया है। यह भी कहा गया है कि भले ही प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में विलंब हुआ हो किंतु अभियोजन पक्ष ने विलंब हेतु ठोस एवं युक्ति युक्त स्पष्टीकरण दिया हो तो विलंब महत्वपूर्ण नहीं है। इन्होंने **अशोक कुमार चौधरी बनाम बिहार राज्य, 2008 (61) SCC 1972 (SC)** में शीर्ष न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि पर विश्वास व्यक्त किया है जिसमें यह धारित किया गया है कि भले ही प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में विलंब हुआ हो एवं कारण किसी कथानक को गढ़ने के किसी भी प्रयास हेतु उत्तरदायी नहीं हो एवं अभियोजन पक्ष द्वारा विलंब की संतोषजनक व्याख्या की गई हो, तो मात्र प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में विलंब का कोई परिणाम नहीं होगा एवं विलंब के कारण अभियोजन वाद पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। यदि अभियोजन पक्ष ने विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा अपना वाद सिद्ध कर दिया है तो संबंधित क्षेत्राधिकार वाले मजिस्ट्रेट को प्रथम सूचना रिपोर्ट की प्रति भेजने में हुआ विलंब भी महत्वहीन होगा। पुन: यह कहा गया है कि निरीक्षक एस.एन. सिंह अ.सा.-7 ने अपने साक्ष्य में कहा है कि कांस्टेबल मोहर्रिर हेमराज द्वारा चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट एवं वाद दर्ज करने की जीडी लिखने में 10 मिनट का समय लिया गया एवं तत्पश्चात, वह उसी की प्रतिलिपि लेकर प्राथमिक स्वास्थय केन्द्र, शाहाबाद चला गया, जो थाने से लगभग 200-300 मीटर की दूरी पर है जहाँ उसे राम किशोर मिला एवं घायल के साथ आया व्यक्ति चिकित्सक को ढूंढ रहा था। पुन: यह कहा गया है कि अ.सा.-7 ने दं.प्र.सं. की धारा 161 के अंतर्गत घायल राम किशोर का

बयान दर्ज किया एवं तत्पश्चात घायल को चिकित्सा हेतु निजी नर्सिंग होम ले जाया गया। पुन: कहा गया है कि घटना में लगी चोटों के परिणामस्वरूप, राम किशोर की मृत्यु उसी दिन लगभग 03:30-03:45 बजे हो गई। दं.प्र.सं. की धारा 161 के अंतर्गत उसका बयान दर्ज किया गया जिसे दं.प्र.सं. की धारा 162 की उपधारा (2) के अनुसार मृत्युपूर्व बयान माना जाएगा। पुन: यह अभिकथन किया गया है कि दं.प्र.सं. की धारा 161 के अंतर्गत मृतक का बयान अन्वेषण अधिकारी अ.सा.-7 निरीक्षक एस.एन. सिंह द्वारा प्रदर्श क-25 के रूप में सिद्ध किया गया जिसमें उन्होंने प्रथम सूचना रिपोर्ट के कथन का समर्थन किया है। पुन: यह अभिकथन किया गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट, मृत्यु पूर्व बयान एवं वादी-प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अ.सा.-1 कमल किशोर एवं प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अ.सा.-2 रामजी तिवारी द्वारा समर्थित है, जिनकी घटना स्थल पर उपस्थिति पर प्रतिपरीक्षा के दौरान प्रश्न नहीं उठाया जा सका एवं जिन्होंने इस घटना का विशद विवरण दिया है जिसकी पुष्टि प्रथम सूचना रिपोर्ट एवं पोस्टमार्टम रिपोर्ट से होती है। इसलिए, उनके साक्ष्य पर विश्वास किया जा सकता है एवं उन्होंने इस न्यायालय द्वारा **ओम प्रकाश एवं अन्य बनाम राज्य, 1995 एल.जे. 1210** में प्रतिपादित विधि पर विश्वास व्यक्त किया है। यह भी कहा गया है कि अन्वेषण अधिकारी द्वारा घटना स्थल से 315 बोर के दो खाली कारतूस बरामद किए गए थे, जिन्होंने फर्द (प्रदर्श क-18) तैयार किया एवं इसे अ.सा.-7 के रूप में सिद्ध किया है। अन्वेषण अधिकारी श्याम नाथ सिंह को यह भी ज्ञात हुआ कि आरोपी ने रोबकर मिलने पर न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया है एवं न्यायालय की अनुमति से उन्होंने 6.6.2003 को अपीलकर्ता/अभियुक्त अमिताभ दीक्षित से पूछताछ की एवं उसका बयान दर्ज किया जिसमें उसने खुलासा किया कि रामकिशोर की हत्या के मामले में जिस हथियार का इस्तेमाल किया गया था, उसने हत्या करने के बाद उसे छुपा दिया था, जिसे बरामद कराने हेतु वह तैयार है। तत्पश्चात दिनांक 11.6.2003 को न्यायालय के आदेश से उसे पुलिस अभिरक्षा में ले लिया गया तथा दिनांक 12.6.2003 को उसका अनुसरण करते हुए कब्रिस्तान के निकट स्थित ट्यूबवेल पर ले जाया गया तथा साक्षी अ.सा.-3 छेदालाल वर्मा एवं संजय मिश्रा की उपस्थिति में वह ट्यूबवेल के कुएं में उतर गया एवं काली पॉलिथीन के साथ बाहर आया जिसमें से चालू स्थिति में 315 बोर का एक देसी तमंचा एवं दो जिंदा कारतूस निकाले गए। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि अपीलकर्ता के कब्जे से 315 बोर का देसी तमंचा एवं 315 बोर के दो कारतूस बरामद हुए थे। जिसका उन्होंने बरामदगी फर्द(प्रदर्श क.-23) तैयार किया था एवं साक्षीगण छेदालाल वर्मा एवं संजय मिश्रा की उपस्थिति में 315 बोर का तमंचा एवं दो कारतूस सील कर दिए थे। अपीलकर्ता के पास से 315 बोर का तमंचा एवं दो कारतूस की बरामदगी भी साक्षी अ.सा.-4 ने सिद्ध की है, जिसने सिद्ध किया है कि इसकी बरामदगी उसके सामने की गई थी एवं उसने उस पर हस्ताक्षर किए थे। हालाँकि अपीलकर्ता को बरामदगी फर्द की प्रति देने एवं बरामदगी फर्द की प्रति प्राप्त करने के संबंध में बरामदगी फर्द पर अपीलकर्ता के हस्ताक्षर करने के बिंदु पर उसे पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया था। पुन: यह अभिकथन किया गया है कि अ.सा.4 छेदालाल एवं अ.सा.7 निरीक्षक एस.एन. सिंह अपने बयान में तमंचा 315 बोर एवं दो जिंदा कारतूस 315 बोर की बरामदगी के बिंदु पर अडिग रहे। पुन: विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा अभिकथन किया गया है कि अ.सा-7 निरीक्षक एस.एन. सिंह ने यह भी सिद्ध किया है कि उन्होंने घटनास्थल से बरामद खाली कारतूस एवं अपीलकर्ता/अभियुक्त की निशानदेही पर बरामद कारतूस सहित पिस्तौल को विधिविज्ञान प्रयोगशाला भेजा था। अभियोजन पक्ष द्वारा बैलिस्टिक रिपोर्ट दिनांक 13.10.2003 (प्रदर्श क-27) प्रस्तुत की गई थी जो सिद्ध करती है कि घटनास्थल से बरामद खाली कारतूस पुलिस अभिरक्षा रिमांड के दौरान अपीलकर्ता/अभियुक्त द्वारा बरामद कराये गए315 बोर की पिस्तौल से चलाये गये थे। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि अ.सा.-7 निरीक्षक एस.एन. सिंह ने विचारण न्यायालय के समक्ष एक सीलबंद बंडल भी पेश किया है जिसमें 315 बोर के दो खाली कारतूस ईसी (परीक्षित कारतूस) एवं अन्य टीसी (परीक्षण कारतूस) के रूप में चिह्नित हैं। ईसी कारतूस को वस्तु प्रदर्श क-1 के रूप में प्रदर्शित किया गया था एवं टीसी कारतूस को वस्तु प्रदर्श क-3 के रूप में प्रदर्शित किया गया था। उसी बंडल से 315 बोर का एक देसी तमंचा भी मिला। इसे अ.सा.-7 एस.एन. सिंह द्वारा भी सिद्ध किया गया है। जिसने बताया कि यह वही पिस्तौल है जो अभियुक्त की निशानदेही पर बरामद की गई थी जिसे वस्तु प्रदर्श क-2 के रूप में प्रदर्शित किया गया था। विचारण न्यायालय के समक्ष दो जिंदा कारतूस भी पेश किए गए, जो पुलिस अभिरक्षा रिमांड के दौरान अपीलकर्ता की निशानदेही पर पिस्तौल के साथ बरामद किए गए थे एवं उसे वस्तु प्रदर्श क-4 एवं 5 के रूप में प्रदर्शित किया गया था। पुन: यह प्रस्तुत किया गया है कि अ.सा. -6 उपनिरीक्षक इकरार हुसैन ने धारा 25 आयुध अधिनियम के अंतर्गत वाद के अन्वेषण में की गई कार्यवाही एवं नक्शा नज़री (प्रदर्श क-9), अभियोजन स्वीकृति (प्रदर्श क-10) एवं आरोप पत्र अंतर्गत धारा 3/25 आयुध अधिनियम (प्रदर्श क-11) को सिद्ध किया है। पुन: यह कहा गया है कि अ.सा.-1 कमल किशोर एवं अ.सा.-2 रामजी तिवारी संबंधित साक्षी हैं। विद्वान विचारण न्यायालय ने उनके बयानों की अत्यंत सूक्ष्मता से जाँच की है एवं पाया है कि उनके बयान विश्वसनीय हैं जिनमें कोई कमी नहीं हैं। पुन: यह कहा गया है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर यह निष्कर्ष दर्ज किया है कि धारा 302 भा.दं.सं. एवं 25 आयुध अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय अपराध के आरोप अपीलकर्ता के

विरूद्ध युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध हुए हैं जो विधि अनुरूप है, एवं आक्षेपित निर्णय एवं आदेश द्वारा अभियुक्त-अपीलकर्ता को सही दोषसिद्ध किया गया एवं सजा सुनाई गई, जिसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। उपरोक्त के दृष्टिगत, वर्तमान अपील खारिज किये जाने योग्य है।

21. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता एवं विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार करने एवं विचारण न्यायालय के आक्षेपित निर्णय एवं आदेश सहित पत्रावली के अध्ययन के उपरांत, हमें आपराधिक अपील की सुनवाई से संबंधित विधि का उल्लेख करना उचित प्रतीत होता है:-

बख्शीश राम एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य वाद (AIR 2013 SC 1484: 2013 AIR SCW 14) के प्रस्तर 10 एवं 11 में में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नवत टिप्पणी की है:-

"10. उच्च न्यायालय को, प्रथम अपीलीय न्यायालय के रूप में, तथ्यों पर अपना स्वतंत्र विवेक प्रयोग करना चाहिए एवं साक्ष्य के स्वमूल्यांकन के आधार पर अपने स्वनिष्कर्ष को अभिलिखित करना चाहिए। मात्र विचारण न्यायालय के मूल्यांकन का पुनरुत्पादन पर्याप्त नहीं हो सकता है एवं उच्च न्यायालय द्वारा स्वतंत्र मूल्यांकन के अभाव में, इसका अंतिम निर्णय बरकरार नहीं रखा जा सकता है। इस न्यायालय द्वारा ***शंकर सिंह एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य [(2004) 11 SCC 291: (AIR 2004 SC 2570:2004 AIR SCW 2388)]*** *में भी यही दृष्टिकोण दोहराया गया है।*

11. ***अरुण कुमार शर्मा बनाम बिहार राज्य [(2010) 1 SCC 108: (AIR SC (Supp) 2882:2009 AIR SCW)]*** *में उपरोक्त दृष्टिकोण को दोहराते हुए, इस न्यायालय ने धारित किया कि उच्च न्यायालय अपीलीय क्षेत्राधिकार में समस्त तथ्यों पर विचारण हेतु स्वतंत्र था एवं इसलिए, उच्च न्यायालय से अपेक्षा थी कि वह साक्ष्यों एवं विशेष रूप से अभिलेख एवं सिद्ध दस्तावेजों की गहराई से जाँच करेगा। उपरोक्त सिद्धांत के विपरीत, हम संतुष्ट हैं कि वर्तमान वाद में, उच्च न्यायालय वाद के संबंध में एवं साक्ष्यों के साक्ष्य की गहराई से जाँच करने में विफल रहा है। आपराधिक अपील में अपीलीय न्यायालय की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है एवं अपीलीय न्यायालय तथ्य के सभी प्रश्नों पर विचार करने हेतु स्वतंत्र हैं। विचारण न्यायालय के निर्णय की पुष्टि करते समय उच्च न्यायालय द्वारा उक्त सिद्धांत का आश्रय नहीं लिया गया है।"*

22. म**ज्जल बनाम हरियाणा राज्य(2013) 6 SCC 798 (तीन न्यायाधीशों की पीठ)** में शीर्ष न्यायालय ने धारा 386 दं.प्र.सं. के अंतर्गत अपील निस्तारण में अपीलीय अदालत के कर्तव्य के संबंध में प्रस्तर 6 एवं 7 में निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

"6. इस मामले में जो बात हमें चौंकाती है, वह मामले की योग्यता पर उच्च न्यायालय की टिप्पणी की अप्रकट प्रकृति है। उच्च न्यायालय ने तथ्यों का विस्तार से उल्लेख किया है। इसमें अभियोजन पक्ष के साक्षीगण के नाम एवं संख्या का उल्लेख किया गया है। न्यायालय में प्रस्तुत किये गये दस्तावेजों सहित उनके प्रदर्श संख्या का उल्लेख किया गया है। विचारण न्यायालय की टिप्पणियों एवं निष्कर्षों का सार एक लंबे प्रस्तर में दिया गया है। तदोपरांत अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों का संदर्भ है। तत्पश्चात, साक्ष्यों के उचित विश्लेषण के बिना ही लगभग संक्षेप में उच्च न्यायालय ने अपील खारिज कर दी। उच्च न्यायालय का रहस्यपूर्ण तर्क दो लघु प्रस्तरों में निहित है। हम उच्च न्यायालय द्वारा आपराधिक अपील के ऐसे निस्तारण को विशेष रूप से भा.दं.सं. की धारा 302 के अंतर्गत आरोप से संबंधित वाद में असंतोषजनक पाते हैं, जहाँ आरोपी को असंतोषपूर्ण रीति से आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है।

7. उच्च न्यायालय हेतु यह विचार करना आवश्यक था कि क्या विचारण न्यायालय द्वारा साक्ष्यों के मूल्यांकन एवं उसकी राय कि अपीलकर्ता को दोषसिद्ध ठहराया जाना चाहिए, की पुष्टि की जानी चाहिए। यह प्रक्रिया आवश्यक है क्योंकि दोषसिद्धि के कारण किसी अभियुक्त की व्यक्तिगत स्वतंत्रता कम हो जाती है। उच्च न्यायालय को इसका कारण बताना चाहिए कि वह पत्रावली पर साक्ष्य क्यों स्वीकार कर रहा है। विचारण न्यायालय के दृष्टिकोण के साथ उच्च न्यायालय की सहमति तभी स्वीकार्य होगी जब वह कारणों से समर्थित हो। ऐसी अपीलों में यह प्रथम अपीलीय न्यायालय है। कारण रहस्यमय/गुप्त नहीं हो सकते। इससे हमारा तात्पर्य यह नहीं है कि उच्च न्यायालय से अनावश्यक रूप से लंबा ग्रंथ लिखने की अपेक्षा की जाती है। निर्णय छोटा हो सकता है लेकिन मामले की जड़ तक जाने वाले महत्वपूर्ण साक्ष्यों एवं महत्वपूर्ण अभिकथनों पर मस्तिष्क का उचित प्रयोग प्रतिबिंबित होना चाहिए। चूँकि यह प्रक्रिया उच्च न्यायालय द्वारा नहीं की गई है, इसलिए प्रश्नगत आदेश अपास्त करने के उपरांत अपील नए सिरे से सुनवाई हेतु प्रतिप्रेषित किये जाने योग्य है।"

23. उच्चतम न्यायालय के उपर्युक्त निर्णयों के विनिश्चय आधारों से आपराधिक अपील को निर्णीत करने हेतु यह सिद्धांत प्रकट होता है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह साक्ष्य का उचित विश्लेषण करे एवं इस पर विचार करे कि क्या विचारण न्यायालय द्वारा साक्ष्य के मूल्यांकन एवं दोषसिद्धि के संबंध में उसकी राय की पुष्टि की जानी चाहिए क्योंकि दोषसिद्धि के कारण किसी अभियुक्त की व्यक्तिगत स्वतंत्रता कम हो जाती है। विचारण न्यायालय के दृष्टिकोण पर प्रथम अपीलीय

न्यायालय की सहमति तभी स्वीकार्य होगी जब वह तर्क द्वारा समर्थित हो। निर्णय लघु हो सकता है लेकिन मामले की जड़ तक जाने वाले महत्वपूर्ण साक्ष्यों एवं अभिकथनों पर मस्तिष्क का उचित प्रयोग प्रतिबिंबित होना चाहिए।

24. इस अपील में वादी अ.सा.-1 कमल किशोर दीक्षित एवं साक्षी अ.सा.-2 रामजी तिवारी घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं। अ.सा.-1 मृतक का सगा भाई है एवं अ.सा.-2 मृतक का निकट संबंधी है। अ.सा.-1 ने अपनी प्रतिपरीक्षा में स्वीकार किया है कि मूंगा राम उसके पिता हैं एवं गोविंद प्रसाद उसके पिता का साला है एवं साक्षी अ.सा.-2 रामजी तिवारी गोविंद प्रसाद का पुत्र है।

25. वादी अ.सा.-1 कमल किशोर दीक्षित ने बयान दिया कि घटना 25.05.2003 को दोपहर 02:45 बजे की है। आरोपी अमिताभ दीक्षित उन्हीं के क्षेत्र का रहने वाला है एवं उन्हीं के खानदान का है। घटना से पूर्व उनके बीच भूमि के बंटवारे को लेकर विवाद हुआ था। उन्होंने आगे कहा कि 25.05.2003 को अपराह्न 02:45 बजे उनका भाई राम किशोर दीक्षित सरसों का तेल पिरवाने हेतु मुहल्ला चौक पर गया था एवं जब वह साइकिल से वापस घर लौट रहा था, तो वह एवं उसका दूसरा भाई राम प्रमोद भी बाजार से घर आ रहे थे एवं वे मृतक से 50 गज पीछे थे। जब उसका भाई राम किशोर बुध बाजार स्थित परशुराम की मिल के पास पहुँचा तो आरोपी 315 बोर के देसी तमंचे से लैस होकर आया एवं उसके भाई राम किशोर पर गोली चला दी जो उसके बाएं हाथ में लगी एवं उसका भाई घायल हो गया। तभी उसका भाई रामकिशोर उनकी ओर दौड़ा। इस पर अपीलार्थी अमिताभ दीक्षित ने उसके भाई का पीछा किया एवं लगभग 8-9 कदम की दूरी से उसके भाई के पीछे से उस पर पुन: गोली चला दी एवं अपीलार्थी ने पुन: एक गोली चलाई जो उसके भाई के बाएं पैर में लगी। इसके बाद उसके भाई (मृतक) ने अपनी जान बचाने हेतु राम शंकर के घर में घुसने का प्रयत्न किया, लेकिन दरवाजा बंद था। तब तक अपीलकर्ता आरोपी ने पुन: गोली चला दी जो उसके भाई (मृतक) की छाती के दाहिनी ओर लगी जिस कारण वह गिर गया। साक्षीगण अ.सा.-2 रामजी तिवारी, सुरेश चंद्र गुप्ता एवं कई अन्य लोग वहां पहुंचे एवं अपीलकर्ता को चुनौती दी, तो अपीलकर्ता वहाँ से भाग गया। फिर वह रिक्शे पर बैठकर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने थाने पहुंचा एवं अपने हस्तलेख एवं अपने हस्ताक्षर में लिखी गई लिखित तहरीर के आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई। घटना के बाद जाँच अधिकारी अ.सा.-7 एस.एन. सिंह ने अपना बयान दर्ज कराया। मृतक की उसी दिन अर्थात 25.05.2003 को अपराह्न 03:30 बजे मृत्यु हो गई, एवं तत्पश्चात वादी ने अपने भाई राम किशोर की मृत्यु के संबंध में अपने हस्तलेख में एक लिखित तहरीर (प्रदर्श क.-2) दी थी। पुन: वादी ने अभिसाक्ष्य दिया कि घटना से पूर्व मृतक ने चौकी प्रभारी, सरदारगंज, शाहाबाद को आरोपी-अपीलकर्ता एवं उसके सहयोगियों द्वारा दीवार को गिराने के संबंध में एक आवेदन दिया था, जिसकी प्रतिलिपि विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई थी जिस पर मृतक रामकिशोर के हस्ताक्षर हैं।

26. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि मृत्यु पूर्व बयान विश्वसनीय नहीं है क्योंकि अ.सा.-1 कमल किशोर ने न्यायालय के समक्ष अपने बयान में स्वीकार किया है कि मृतक की मृत्यु 25.05.2005 को अपराह्न 03:30 बजे हुई है एवं प्रथम सूचना रिपोर्ट दोपहर 03:20 बजे उसी समय लिखित तहरीर (प्रदर्श क-1 & क-2) के आधार पर दर्ज की गई। ताकि मृत्यु पूर्व बयान को समायोजित किया जा सके।

27. इस संबंध में हमने अ.सा.-1 कमल किशोर एवं अ.सा.-7 निरीक्षक एस.एन. सिंह के बयान का अवलोकन किया है। वादी अ.सा.1 ने अदालत के समक्ष कहा है कि घटना दोपहर 02:45 बजे हुई है। चिक रिपोर्ट संख्या. 71 वर्ष2003 दिनांक 25.05.2003 को 15:20 बजे हेड मोहर्रिर हेमराज द्वारा लिखी गई थी। उसने गवाही दी है कि वह घटनास्थल से तुरंत निकल गया था एवं रिक्शा द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने हेतु पुलिस थाना गया था। साक्षी अ.सा.-3 कांस्टेबल राम प्रताप ने द्वितीयक साक्ष्य द्वारा कहा है कि धारा 307 भा.दं.सं. के अंतर्गत चिक रिपोर्ट (प्रदर्श क-5) हेड मोहर्रिर हेमराज द्वारा 15:20 बजे लिखी गई थी। दिनांक 25.05.2003 को थाना शाहाबाद पर जीडी रिपोर्ट संख्या 26 (प्रदर्श क-6) में प्रविष्टि कर दिनांक 25.05.2003 को समय 15:20 बजे मुकदमा अपराध संख्या 209 सन् 2003 धारा 307 भा.दं.सं. के अंतर्गत पंजीकृत किया गया था। अ.सा.-3 कांस्टेबल राम प्रताप ने द्वितीयक साक्ष्य द्वारा प्रदर्श क-5 एवं प्रदर्श क-6 को सिद्ध किया है। अन्वेषण अधिकारी अ.सा.-7 एस.एन. सिंह ने बताया कि मामला पुलिस थाना में उनकी उपस्थिति में दर्ज किया गया था। उन्होंने आगे कहा कि हेड मोहर्रिर हेमराज ने 10 मिनट में चिक रिपोर्ट (प्रदर्श क.-5) एवं मुकदमा कायमी जीडी (प्रदर्श क.-6) तैयार कर मामला दर्ज कर लिया था एवं तत्पश्चात उन्होंने चिक रिपोर्ट एवं जीडी की प्रति प्राप्त कर ली थी एवं प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, शाहाबाद प्रस्थान किया, जो पुलिस थाना से लगभग 200-300 मीटर की दूरी पर है एवं घायल राम किशोर का दं.प्र.सं. की धारा 161 के अंतर्गत बयान दर्ज किया। अ.सा.-1 कमल किशोर ने अपने बयान में कहा है कि दारोगा जी ने थाने में उसका बयान दर्ज किया था एवं बाद में दारोगा जी ने प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, शाहाबाद में राम किशोर का बयान दर्ज किया था। उसने आगे कहा है कि थाने पहुँचकर उसने दारोगा जी को बताया था कि उसके भाई को तीन गोलियां मारी गयीं, जो उसे लगीं एवं वह प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र,

शाहाबाद में हैं। पुन: उसने बताया कि दारोगा जी उसे प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, शाहाबाद ले गये। इसके अतिरिक्त जीडी के जिस रिपोर्ट नंबर के अंतर्गत मृत्यु की सूचना मिली थी, उसे पंचायतनामा में रिक्त छोड़ दिया गया था। अत: उपरोक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 25.05.2003 को अपराह्न 15:20 बजे थाना शाहाबाद पर दर्ज की गई थी। वादी अ.सा.-1 कमल किशोर के बयान से यह सिद्ध होता है कि उसके भाई की मृत्यु दिनांक 25.05.2003 को अपरान्ह 03:20 बजे हो गयी थी। अ.सा.-7 निरीक्षक एस.एन. सिंह ने अपनी प्रतिपरीक्षा में स्वीकार किया है कि हेड मोहर्रिर हेमराज द्वारा चिक रिपोर्ट एवं मुकदमा कायमी की जीडी लिखने में दस मिनट का समय लिया गया था। वादी (अ.सा.-1) ने स्वीकार किया है कि दरोगा जी ने उसका बयान दर्ज किया था, एवं तत्पश्चात, प्राथमिक स्वास्थय केन्द्र, शाहाबाद चले गए। इस संबंध में, हमने केस डायरी का परिशीलन भी किया जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि 25.05.2003 को 15:30 बजे अन्वेषण अधिकारी ने केस डायरी में चिक रिपोर्ट की नकल तैयार की थी, एवं तत्पश्चात, उन्होंने मुकदमा कायमी जीडी की सामग्री की नकल तैयार की थी। तत्पश्चात उन्होंने घायल रामकिशोर का बयान अभिलिखित किया था। साक्ष्यों के सूक्ष्म परीक्षण से यह सिद्ध होता है कि अ.सा.-1 कमल किशोर के बयान के अनुसार मृतक की मृत्यु अपरान्ह 03:20 बजे हुई है, एवं केस डायरी के अनुसार अन्वेषण अधिकारी ने चिक रिपोर्ट एवं मुकदमा कायमी जीडी के बाद में सीडी में अभिलिखित किया। इसलिए उपरोक्त परिस्थितियों, में चूँकि मृतक की मृत्यु 03:20 बजे हुई है, अत: अन्वेषण अधिकारी के पास उसका मृत्यु पूर्व बयान (प्रदर्श क-25) दर्ज करने का कोई अवसर नहीं था। उपरोक्त परिस्थितियों में मृत्यु पूर्व बयान संदिग्ध है एवं उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है एवं हमें अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों में बल प्रतीत होता है कि मृत्यु पूर्व दिया गया बयान संदिग्ध है एवं उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है।

28. जहाँ तक दं.प्र.सं. की धारा 161 के अंतर्गत दर्ज किए गए मृतक के बयान को महत्वपूर्ण बयान मानने के संबंध में विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता के तर्क का प्रश्न है, इसे दं.प्र.सं. की धारा 162(2) के प्रावधान के अनुसार मृत्युपूर्व बयान माना जा सकता है, यदि रिकॉर्ड पर उपस्थित साक्ष्य से यह सिद्ध हो जाता है कि धारा 161 दं.प्र.सं. के अंतर्गत दिया गया बयान संदेह से परे है। धारा 162 दं.प्र.सं. का प्रावधान इस प्रकार है:

"162. पुलिस से किये गए कथनों का हस्ताक्षरित न किया जाना; कथनों का साक्ष्य में उपयोग-

(1) किसी व्यक्ति द्वारा किसी पुलिस अधिकारी से इस अध्याय के अधीन अन्वेषण के दौरान किया गया कोई कथन, यदि लेखबद्ध किया जाता है तो कथन करने वाले व्यक्त द्वारा हस्ताक्षरित नहीं किया जाएगा, और न ऐसा कोई कथन या उसका कोई अभिलेख चाहे वह पुलिस, डायरी में हो या न हो, और न ऐसे कथन या अभिलेख का कोई भाग ऐसे किसी अपराध की, जो ऐसा कथन किए जाने के समय अन्वेषणाधीन था, किसी जाँच या विचारण में, इसमें इसके पश्चात् यथाउपबंधित के सिवाय, किसी भी प्रयोजन के लिए उपयोग में लाया जाएगा था:

परंतु जब कोई ऐसा साक्षी, जिसका कथन उपर्युक्त रूप में लेखबद्ध कर लिया गया है, ऐसी जाँच या विचारण में अभियोजन की ओर से बुलाया जाता है तब यदि उसके कथन का कोई भाग, सम्यक् रूप से साबित कर दिया गया है तो, अभियुक्त द्वारा और न्यायालय की अनुज्ञा से अभियोजन द्वारा उसका उपयोग ऐसे साक्षी का खंडन करने के लिए भारतीय साक्ष्य अधिनियम,1872 (1 वर्ष1872) की धारा 145 द्वारा उपबंधित रीति से किया जा सकता है और जब ऐसे कथन का कोई भाग इस प्रकार उपयोग में लाया जाता है तब उसका कोई भाग ऐसे साक्षी की पुन:परीक्षा में भी, किंतु उसकी प्रतिपरीक्षा में निर्दिष्ट किसी बात का स्पष्टीकरण करने के प्रयोजन से ही, उपयोग में लाया जा सकता है।

(2) इस धारा की किसी बात के बारे में यह न समझा जाएगा कि वह भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1 वर्ष1872) की धारा 32 के खंड (1) के उपबंधों के अंदर आने वाले किसी कथन को लागू होती है या उस अधिनियम की धारा 27 के उपबंधों पर प्रभाव डालती है।

स्पष्टीकरण- उप-धारा (1) में निर्दिष्ट कथन में किसी तथ्य या परिस्थिति को लोप या खंडन हो सकता है यदि वह उस संदर्भ को ध्यान में रखते हुए जिसमें ऐसा लोप किया गया है महत्वपूर्ण और अन्यथा संगत प्रतीत होता है और कोई लोप किसी विशिष्ट संदर्भ में खंडन है या नहीं यह तथ्य का प्रश्न होगा।"

29. सर्वोच्च न्यायालय ने **दलीप सिंह बनाम पंजाब राज्य (1979) 4 SCC 332** के प्रस्तर 8 में धारित किया है कि धारा 161 दं.प्र.सं. के अंतर्गत साक्षी का बयान कि मृत्युपूर्व बयान माना जा सकता है, प्रस्तर 8 का संबंधित भाग निम्नवत है: -

*"8....हम यह भी जोड़ सकते हैं कि हालांकि जाँच के दौरान पुलिस अधिकारियों द्वारा दर्ज किया गया मृत्यु पूर्व बयान दं.प्र.सं. 1973 की धारा 162 की उप-धारा (2) में उपबंधित अपवाद के दृष्टिगत भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के अंतर्गत स्वीकार्य है। इस तरह के मृत्युपूर्व बयान पर तब तक विचार न करना बेहतर है जब तक कि अभियोजन पक्ष अदालत को संतुष्ट नहीं कर देता कि इसे मजिस्ट्रेट या चिकित्सक द्वारा दर्ज क्यों नहीं किया गया। जैसा कि इस अदालत ने **मुन्नू राजा बनाम मध्य प्रदेश राज्य [(1976)***

***3 SCC 104]** वाद में टिप्पणी की थी। अन्वेषण के दौरान अन्वेषण अधिकारी द्वारा स्वयं मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने की प्रथा को प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए। हमारा यह सुझाव देने का अर्थ यह नहीं है कि इस प्रकार के मृत्यु पूर्व बयान सदैव अविश्वसनीय होते हैं, लेकिन हम इस बात पर बल देना चाहते हैं कि किसी घायल व्यक्ति का मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने हेतु बेहतर एवं अधिक विश्वसनीय तरीके का सहारा लिया जाना चाहिए एवं यदि अभियोजन पक्ष के पास कोई बेहतर तरीका अपनाने हेतु कोई समय या सुविधा उपलब्ध नहीं है तो पुलिस अधिकारी द्वारा अभिलिखित मृत्युपूर्व बयान पर विश्वास किया जा सकता है।''*

30. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधिक स्थिति के अनुसार, अन्वेषण अधिकारी द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 161 के अंतर्गत अभिलिखित बयान को मृत्युपूर्व बयान के रूप में माना जा सकता है, किंतु यह संदेह से मुक्त होना चाहिए। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, धारा 161 दं.प्र.सं. के अंतर्गत अन्वेषण अधिकारी द्वारा अभिलिखित घायल व्यक्ति का बयान संदिग्ध है। अत: हमें विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता के इस तर्क में कोई बल नहीं दिखता कि घायल का दं.प्र.सं. की धारा 161 के अंतर्गत दर्ज किया गया बयान सत्य था एवं संदेह या शंका से मुक्त था, अत: दं.प्र.सं. की धारा 162 के दृष्टिगत इस बयान पर विश्वास नहीं किया जा सकता। उपरोक्त परिस्थिति में, हमें अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क में बल प्रतीत होता है कि घायल व्यक्ति का मृत्यु पूर्व बयान सत्य नहीं था एवं इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। अत: इस बयान को वाद के साक्ष्य के रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता।

31. अब हम अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के इस कथन पर विचार कर रहे हैं कि प्रथम सूचना रिपोर्ट समयप्रतिकूल है। अ.सा.-1 कमल किशोर ने अपने बयान में कहा है कि घटना के उपरांत वह अपने घायल भाई राम किशोर को उठाए बिना रिक्शा द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने हेतु पुलिस थाना चला गया। पुन: उसने बताया कि घटना दोपहर 02:45 बजे हुई है एवं उसने 25.05.2003 को 15:20 बजे अपने हस्तलेख में व अपने हस्ताक्षर के अंतर्गत लिखित रिपोर्ट सौंप कर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई थी। अ.सा.-3 कांस्टेबल राम प्रताप द्वारा द्वितीयक साक्ष्य द्वारा सिद्ध की गई चिक रिपोर्ट (प्रदर्श क.-5) के परिशीलन से प्रकट होता है कि घटनास्थल एवं थाने के बीच की दूरी डेढ़ किलोमीटर थी। अ.सा.-1 कमल किशोर को तहरीर लिखने में कुछ समय लगा होगा एवं रिक्शा की तलाश में कुछ समय लगा होगा, एवं तत्पश्चात वह एक व्यस्त सड़क से होते हुए पुलिस थाना गया होगा। अत: उपरोक्त परिस्थिति में यह सिद्ध होता है कि प्राथमिकी अविलंब दर्ज करायी गयी थी। जहाँ तक अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क का प्रश्न है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट मृतक की मृत्यु के उपरांत दर्ज की गई थी एवं झूठी मृत्युपूर्व घोषणा बनाने हेतु, मृतक द्वारा चोट लगने के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट समयप्रतिकूल दर्ज की गई थी एवं बाद में मृतक की मृत्यु की सूचना अन्वेषण अधिकारी द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 161 के अंतर्गत बयान को समायोजित करने के लिये ग्रहण की गई, यह अन्वेषण अधिकारी की ओर से चूक थी जिसका लाभ आरोपी को नही दिया जाना चाहिए। हो सकता है कि ऐसी चूक जानबूझकर या लापरवाही के कारण की गई हो, ताकि यह निष्कर्ष न निकले कि प्रथम सूचना रिपोर्ट तत्काल दर्ज नहीं की गई थी जैसा कि **पारस यादव एवं अन्य बनाम बिहार राज्य, [(1999) 2 एससीसी 126: 1999 SCC 126 : 1999 SCC (Cri) 104]** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया था। इस वाद में 25.05.2003 को 15:20 बजे प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई एवं तत्पश्चात अ.सा.-1 कमल किशोर द्वारा लिखित तहरीर (प्रदर्श क.-2) के माध्यम से 16:20 बजे पुलिस थाना शाहाबाद पर मृतक की मृत्यु के संबंध में सूचित किया गया था, जिसे दिनांक 25.05.2003 को 16:20 बजे रिपोर्ट संख्या 27 के अंतर्गत जीडी (प्रदर्श क.-7) में दर्ज किया गया था, जिसे अ.सा.-3 कांस्टेबल राम प्रताप ने द्वितीयक साक्ष्य द्वारा सिद्ध किया एवं धारा 302 भा.दं.सं. की अभिवृद्धि गई। यदि पुलिस प्रथम सूचना रिपोर्ट को समयप्रतिकूल करना चाहती तो संभवत: पुलिस जीडी (प्रदर्श क-7) को रोक देती। अ.सा.-5 डॉ. जे.एल. गौतम ने पोस्टमार्टम रिपोर्ट (प्रदर्श क.-8) को सिद्ध किया है एवं कहा है कि मृतक की मृत्यु पोस्टमार्टम से एक दिन पूर्व हुई होगी। उन्हें मृतक के पेट में रक्त का थक्का एवं चिपचिपा पदार्थ मिला था। मृतक का पोस्टमार्टम दिनांक 26.05.2003 को लगभग 04:00 बजे किया गया, जिसका अर्थ है कि मृतक ने दोपहर का भोजन किया था एवं उसके भोजन करने के लगभग दो घंटे पश्चात घटना हुई है, जो यह भी सिद्ध करता है कि घटना 25.05.2003 दोपहर करीब 02:45 बजे की है एवं इस संभावना को वर्जित करता है कि मृतक को रात्रि के अंधकार में किसी सुनसान स्थान पर लूटा गया था। क्योंकि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने के एक घंटे के अंतराल में मृतक की मृत्यु की सूचना वादी अ.सा.-1 कमल किशोर द्वारा दी गई थी। अत: उप निरीक्षक सियाराम ने मृतक के शव के पंचायतनामा में जीडी रिपोर्ट संख्या रिक्त छोड़ दिया होगा ताकि पंचायतनामा में गलत जीडी रिपोर्ट संख्या न लिखी जाए, लेकिन बाद में त्रुटिवश वह रिक्त स्थान न भर सके। पंचायतनामा के शीर्ष पर उसने मुकदमा अपराध संख्या 209 सन् 2003, धारा 307/302 भा.दं.सं. के अंतर्गत लिखा था एवं मृत्यु के संबंध में सूचना देने वाले व्यक्ति का नाम भी पंचायतनामा(प्रदर्श क-12) में कमल किशोर अंकित किया था। उन्होंने चालान लैश (प्रदर्श क.-13), फोटो नाश (प्रदर्श क-14) में भी मुकदमा अपराध संख्या 209/2003 अंतर्गत धारा

307/302 भा.दं.सं. का भी उल्लेख किया था। पंचायतनामा कार्यवाही को अ.सा.-7 निरीक्षक एस.एन. सिंह द्वारा द्वितीयक साक्ष्य द्वारा सिद्ध किया गया। यह सिद्ध होता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के तत्काल पश्चात अन्वेषण प्रारंभ कर दिया गया था, इसलिए यह तथ्य युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध हो गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट तत्काल दर्ज की गई थी। उपरोक्त परिस्थितियों में हम अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क में कोई बल नहीं पाते हैं कि प्रथम सूचना रिपोर्ट समयप्रतिकूल थी एवं अपीलकर्ता अमिताभ दीक्षित को झूठा फंसाने हेतु उचित विचार-विमर्श करने एवं मनगढ़ंत कथा रचने के उपरांत दर्ज की गई थी। जहाँ तक वादी अ.सा.-1 कमल किशोर के आचरण का सवाल है कि चोट लगने के बाद उसने भाई को नहीं उठाया तो इसका कोई प्रभाव नहीं है क्योंकि विभिन्न व्यक्ति किसी स्थिति में भिन्न-भिन्न प्रतिक्रिया करते हैं एवं उसने सोचा होगा कि उस स्थान पर अन्य व्यक्ति भी उपस्थित हैं जो घटना के उपरांत उसके घायल भाई को उठाकर चिकित्सालय ले जाएंगे। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि घटना के समय अ.सा.-1 कमल किशोर घटनास्थल पर उपस्थित नहीं था। अत: हम पाते हैं कि अ.सा.-1 कमल किशोर ने उपरोक्त परिस्थितियों में बिना समय गंवाए तुरंत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने हेतु कदम उठाया था ताकि उसके भाई की प्राण रक्षा एवं चिकित्सालय में बेहतर चिकित्सा हेतु पुलिस सहायता प्राप्त हो सके।

32. अब प्रश्न यह उठता है कि क्या घटना घटनास्थल पर हुई है या किसी निर्जन स्थान पर? एवं क्या मृतक के साथ निर्जन स्थान पर लूट हुई है एवं क्या उसे लूट में चोटें आई हैं?

33. अन्वेषण अधिकारी अ.सा.-7 निरीक्षक एस.एन. सिंह ने अभिसाक्ष्य प्रस्तुत किया है कि उन्होंने घटना स्थल से सादी एवं खून आलूदा मिट्टी एकत्र की थी एवं उन्होंने इसका फर्द (प्रदर्श क.-20) तैयार किया था। उन्हें घटना स्थल पर 315 बोर के दो खाली कारतूस भी मिले थे एवं उन्होंने उसका फर्द (प्रदर्श क.-18) तैयार किया था; एक जोड़ी चप्पल मिली थी एवं उन्होंने उसका फर्द (प्रदर्श क.-19) तैयार किया था; एवं मृतक की साइकिल भी मिली थी एवं उन्होंने एक प्लास्टिक कनस्तर बरामद किया था जिसमें से तेल सड़क पर बह गया था एवं उसका फर्द (प्रदर्श क-21) तैयार किया था। अ.सा.-7 ने यह अभिसाक्ष्य भी प्रस्तुत किया है कि उसने मृतक के वस्त्र, अर्थात अँगौछा, जनेऊ एवं रक्षा के साथ चप्पल की जोड़ी, सादा एवं खून आलूदा मिट्टी को एक सीलबंद लिफाफे में विधि विज्ञान प्रयोगशाला, लखनऊ भेजा। विधि विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट दिनांकित 24.09.2003 (प्रदर्श क-26) अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत की गई थी। उक्त रिपोर्ट सरकारी सीरोलॉजिस्ट विशेषज्ञ द्वारा तैयार की गई थी जिसे संयुक्त निदेशक विधि विज्ञान प्रयोगशाला, लखनऊ द्वारा अग्रसारित किया गया था। अपीलकर्ता ने विशेषज्ञ से प्रतिपरीक्षा की मांग नहीं की थी, अत:, यह माना जाएगा कि सीरोलॉजिकल रिपोर्ट अपीलकर्ता द्वारा स्वीकार कर ली गई है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 293 में कुछ सरकारी वैज्ञानिक विशेषज्ञों की रिपोर्टों के संबंध में उपबंधित किया गया है। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 293 इस प्रकार है:-

"293. कुछ सरकारी विशेषज्ञों की रिपोर्ट: (1) कोई दस्तावेज, जो किसी सरकारी वैज्ञानिक विशेषज्ञ की, जिसे यह धारा लागू होती है, इस संहिता के अधीन किसी कार्यवाही के दैरान परीक्षा या विश्लेषण और रिपोर्ट के लिए सम्यक रूप से उसे भेजी गई किसी सामग्री या चीज के बारे में स्वहस्ताक्षरित रिपोर्ट होनी तात्पर्यित है, इस संहिता के अधीन किसी जाँच, विचारण या अन्य कार्यवाही में साक्ष्य के तौर पर उपयोग में लाई जा सकेगी।

(2) यदि न्यायालय ठीक समझता है तो वह ऐसे विशेषज्ञ को समन कर सकता है और उसकी रिपोर्ट की विषयवस्तु के बारे में उसकी परीक्षा कर सकेगा।

(3) जहाँ ऐसे किसी विशेषज्ञ को न्यायालय द्वारा समन किया जाता है और वह स्वयं हाजिर होने में असमर्थ है वहाँ, उस दशा के सिवाय जिससे न्यायालय ने उसे स्वयं हाजिर होने के लिए स्पष्ट रुप से निदेश दिया है, वह अपने साथ काम करने वाले किसी जिम्मेदार अधिकारी को न्यायालय में हाजिर होने के लिए प्रतिनियुक्त कर सकता है यदि वह अधिकारी मामले के तथ्यों से अवगत है तथा न्यायालय में उसकी ओर से समाधानप्रद रूप में अभिसाक्ष्य दे सकता है।

(4) यह धारा निम्नलिखित सरकारी वैज्ञानिक विशेषज्ञों को लागू होती है,

अर्थात: -

(क) सरकार का कोई भी रासायनिक परीक्षक या सहायक रासायनिक परीक्षक;

(ख) मुख्य विस्फोटक नियंत्रक;

(ग) अंगुली-छाप कार्यालय निदेशक;

(घ) निदेशक, हाफकिन संस्थान, मुम्बई;

(ड़) किसी केंद्रीय न्याय संबंधी विज्ञान प्रयोगशाला या किसी राज्य न्याय संबंधी विज्ञान प्रयोगशाला का निदेशक[उप निदेशक या सहायक निदेशक];

(च) सरकार का सीरम विज्ञानी।"

(छ) [कोई अन्य सरकारी वैज्ञानिक विशेषज्ञ, जो इस प्रयोजन के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा, अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट किया गया हो।]"

34. उप-धारा मात्र यह उपबंधित करती है कि विशेषज्ञ की रिपोर्ट को औपचारिक सबूत के बिना साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है जैसा कि **भूपिंदर बनाम**

पंजाब राज्य AIR 1988 SC 1011 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा धारित किया गया था। उपधारा (1) में शब्द "सकता है" स्पष्ट करता है कि यह मात्र एक सक्षमकारी प्रावधान है। यद्यपि रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट, जब उचित रूप से स्वीकार की जाती है, तो शपथकृत परिसाक्ष्य की भाँति महत्व की अधिकारिणी होती है, जैसा कि **भूपिंदर बनाम पंजाब राज्य (उपरोक्त)** में शीर्ष न्यायालय ने धारित किया था। सीरोलॉजिकल विशेषज्ञ रिपोर्ट को अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिपरीक्षा हेतु विचारण न्यायालय में चुनौती नहीं दी थी। रक्तरंजित मिट्टी पर रक्त की उपस्थिति तथा सादी मिट्टी की प्रकृति से यह सिद्ध होता है कि इसे एक ही स्थान से लिया गया है। चप्पल, सादी एवं खून आलूदा मिट्टी पर मानव रक्त की उपस्थिति संदेह के परे सिद्ध करती है कि घटना अभियोजन पक्ष द्वारा कथित स्थान पर हुई है। यह बचाव पक्ष के मामले को भी नकार कर देता है कि मृतक को रात्रि में एक सुनसान स्थान पर लूट में चोट लगी थी एवं अपीलकर्ता को शत्रुता के कारण झूठा फंसाया गया था।

35. अब हमें यह विश्लेषण करना होगा कि क्या अपराध का आशय युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध हो गया है? इस संबंध में अ.सा.-1 कमल किशोर ने अभिसाक्ष्य दिया है कि अपीलकर्ता उसी खानदान का है एवं घटना से पूर्व उनके मध्य भूसम्पदा के बंटवारे को लेकर विवाद हुआ था। उसने प्रतिपरीक्षा में यह भी बताया कि मृतक ने दिनांक 08.08.2000 को अपीलकर्ता एवं उसके सहयोगियों द्वारा मृतक द्वारा निर्मित की जा रही दीवार को गिराने के संबंध में चौकी प्रभारी सरदारगंज को एक प्रार्थनापत्र दिया था। उन्होंने उपरोक्त प्रार्थनापत्र की प्रतिलिपि भी दाखिल की है जो पत्रावली में है। अपीलकर्ता/अभियुक्त ने दं.प्र.सं. की धारा 313 के अंतर्गत अपने बयान में स्वीकार किया है। साक्षी अ.सा.-1 कमल किशोर का यह कथन कि वह (अपीलकर्ता) उसी खानदान का है, सही है। उन्होंने अ.सा.-1 कमल किशोर के इस बयान को भी स्वीकार किया है कि अभियुक्त के परिवार एवं अपीलकर्ता के परिवार के बीच भूसम्पदा के बंटवारे को लेकर विवाद था। पुन: उन्होंने स्वीकार किया है कि वादी एवं उनके परिवार के सदस्य ने इसी शत्रुता के कारण उनका घर हड़प लिया, एवं उन्हें इस मामले में झूठा फंसाया गया है। उपरोक्त विवेचन से एवं दं.प्र.सं. की धारा 313 के अंतर्गत साक्ष्यों एवं अपीलार्थी के बयान में स्वीकारोक्ति से यह तथ्य संदेह से परे सिद्ध होता है कि मृतक के परिवार एवं अपीलकर्ता के मध्य शत्रुता थी। शत्रुता दोधारी अस्त्र है जिसका प्रयोग झूठे आरोप लगाने के लिये तो होता ही है, साथ ही साथ अपराध के कारण की जननी भी यहीं है। साक्ष्य का अधिमूल्यन करते हुए अभियुक्त-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत सुझाव पर गौर किया जा सकता है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता का यह सुझाव कि मृतक को घटना स्थल पर नहीं अपितु किसी सुनसान जगह पर रात्रि के अंधकार में लूटा गया था एवं उसे लूट में चोट लगी थी, इस मामले में सत्य नही प्रतीत होता है। अत: इस वाद में अपीलकर्ता को झूठा फँसाने के अभिकथन को अस्वीकृत किया जाता है। अत: अपीलकर्ता द्वारा अपराध करने का आश्य युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध होता है।

36. अ.सा.-2 रामजी तिवारी भी घटना का कथित प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है जिसने अभिसाक्ष्य प्रस्तुत किया सम्पुष्टि की कि घटना लगभग 9-10 माह पूर्व हुई थी। उसने यह भी बताया कि घटना वाले दिन जब वह अपने खेत से लौट रहा था तो उसने राम किशोर दीक्षित को साइकिल द्वारा बाजार से आते देखा था एवं यह भी देखा था कि अमिताभ दीक्षित ने उसे रोका एवं उस पर गोलियां चला दीं, तब वह मृतक राम किशोर से 10- 12 मीटर की दूरी पर था। मृतक के हाथ पर गोली लगी। इस पर राम किशोर अपनी साइकिल छोड़कर पीछे की ओर भागा, तभी अपीलार्थी अमिताभ दीक्षित ने पुन: गोली चला दी जो राम किशोर की जांघ में लगी। इसके बाद राम किशोर (मृतक) राम शंकर के घर की ओर भागने लगा एवं उसके घर में घुसना चाहा, लेकिन दरवाजा बंद था। तभी राम किशोर (मृतक) राम शंकर के घर के बाहर चबूतरे पर गिर गया। इसी बीच अपीलार्थी अमिताभ दीक्षित ने पुन: गोली चलाई जो उसे लगी एवं तत्पश्चात अपीलकर्ता अपनी पिस्तौल लहराते हुए वहाँ से भाग गया। उसने आगे बताया कि कमल किशोर (वादी) एवं रामप्रमोद भी पीछे से आ रहे थे। उनके साथ सुरेश गुप्ता भी थे। वह, रामप्रमोद एवं सुरेश गुप्ता घायल राम किशोर को उठाकर दोपहर में सरकारी चिकित्सालय, शाहाबाद ले गए, लेकिन वहाँ कोई चिकित्सक नहीं मिला। फिर वे राम किशोर को डॉ. माया प्रकाश के क्लीनिक पर ले गए, जहाँ मृतक राम किशोर की मृत्यु दोपहर करीब 03:30-03:45 बजे हो गई। प्रतिपरीक्षा में उसने स्वीकार किया कि वह घटनास्थल से करीब एक किमी उत्तर दिशा में स्थित मोहल्ला होली कलां का निवासी है। पुन: उसने स्पष्ट किया कि इनायतपुर उनके घर से लगभग 1.5-2 किमी दक्षिण की ओर है। उसका खेत इनायतपुर गांव में है। उसके खेत तक पहुँचने हेतु तीन मार्ग हैं, एक राय साहब गेट से पाली रोड होते हुए जाता है। पुन: उसने स्पष्ट किया कि वह अपने खेत पर स्कूटर से नहीं जाता था क्योंकि उसके पास स्कूटर नहीं था। वह इन तीनों मार्गों से होकर, प्राय: दो मार्गों से एवं कभी-कभी पाली मार्ग से होकर अपने खेत पर जाता था। घटना के दिन वह अपने घर से बीच वाले मार्ग से होते हुए अपने खेत पर गया था। पुन: उसने स्पष्ट किया है कि घटनास्थल इन तीन सड़कों पर नहीं पड़ता है। घटना वाले दिन वह अपनी फसल का भाग लेने गया था, लेकिन बटाईदार के अपने घर पर उपस्थित न होने के कारण उसने भाग नहीं दिया। बटाईदार का नाम रामदीन है।

दोपहर करीब 01:15 बजे वह बटाईदार के घर पहुँचा एवं वहाँ करीब 15 मिनट तक रुका। घटना वाले दिन वह देवी मंदिर वाले खरंजा रोड से वापस आ रहा था। संयोगवश सुरेश मुहल्ला बुध बाजार में संजय मिश्रा के दरवाजे पर उससे बातचीत करते हुए मिल गया। जिस सड़क पर घटना हुई है, उसी सड़क के किनारे संजय का घर है। घटना स्थल संजय के घर से सौ मीटर दक्षिण दिशा में है। घटना वाले दिन उसके पास बुध बाजार जाने का कोई उद्देश्य नहीं था। वह अपने खेत की देखभाल करके वापस आ रहा था एवं सुरेश भी संजय के घर से वापस आ रहा था। उसने स्वीकार किया है कि घटना के समय वह शाहाबाद तहसील में वकालत कर रहा था। पुन: उसने स्पष्ट किया है कि सुरेश मुहल्ला चौक पर डाक खाने के सामने पुस्तक की दुकान चलाता है। पुन: उसने स्वीकार किया कि मृतक एवं साक्षी कमल किशोर उनकी बुआ के बेटे हैं। प्रतिपरीक्षा में उसने यह भी पुष्टि की कि घायल राम किशोर को सुरेश, राम प्रमोद एवं उसके द्वारा सरकारी चिकित्सालय ले जाया गया, एवं वे लगभग 03:00 बजे चिकित्सालय पहुंचे। पुन: उसने कहा कि सरकारी चिकित्सालय घटनास्थल से लगभग एक किलोमीटर उत्तर में है। उसने आगे कहा कि जब सरकारी चिकित्सालय में चिकित्सक नहीं मिले, तब वे घायल राम किशोर को डॉ. माया प्रकाश के चिकित्सालय पर ले गये, जो सरकारी चिकित्सालय से लगभग एक किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम में है। उसने आगे बताया कि वे लगभग 03:45 बजे डॉ. माया प्रकाश के चिकित्सालय पर पहुंचे, जहाँ घायल रामकिशोर की मृत्यु हो गई। उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में स्पष्ट किया है कि मृतक साइकिल से उत्तर से दक्षिण की ओर आ रहा था जो अपीलार्थी द्वारा दूसरी बार फायर किये जाने पर साइकिल छोड़कर उत्तर की ओर भाग गया था। उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में इस बात की पुष्टि भी की है कि जब तीसरा फायर किया गया, जो रामकिशोर को लगा। तब रामकिशोर रामशंकर के घर के सामने चबूतरे पर गिर गया था। पुन: उसने कहा कि उसने अन्वेषण अधिकारी के समक्ष कहा था कि राम किशोर पीछे देखते हुए भाग रहा था, किंतु वह इसका कारण नहीं बता सका कि अन्वेषण अधिकारी ने दं.प्र.सं. की धारा 161 के अंतर्गत बयान में यह तथ्य क्यों नहीं लिखा था। यह चूक छोटी प्रकृति की है एवं मामले को प्रभावित नहीं करती है, अत: इस चूक से अभियोजन मामले पर कोई असर नहीं पड़ेगा। उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में अभियुक्त-अपीलकर्ता के अधिवक्ता के इस सुझाव से इनकार किया है कि वह घटना स्थल पर मौजूद नहीं था एवं उसने कोई घटना नहीं देखी थी।

37. इस साक्षी ने घटना का सजीव वर्णन किया है तथा यह भी बताया है कि जब वह अपने खेत तथा बटाईदार के घर से लौट रहा था तो मार्ग में सुरेश उससे मिला। इस साक्षी को पंचायतनामा के साक्षी के रूप में दर्शाया गया है। उसके बयान की पुष्टि प्रथम सूचना रिपोर्ट एवं शव परीक्षण रिपोर्ट से होती है। यद्यपि यह साक्षी मृतक से संबंधित है, तथापि यह विधि की अपेक्षा है कि संबंधित साक्षी के बयान को संबंध के आधार पर अस्वीकृत नहीं किया जा सकता है, अपितु अत्यन्त सावधानी से इसकी जाँच की जा सकती है। अ.सा.-2 रामजी तिवारी के बयान की जाँच के उपरान्त, हमने पाया कि यह विश्वास उत्पन्न करता है एवं विश्वास योग्य है, एवं विचारण न्यायालय ने विधि के अनुसार उसके बयान पर विश्वास किया एवं धारित किया कि अ.सा.-2 ने घटना देखी थी एवं वह घटना के समय घटनास्थल उपस्थित था।

38. अ.सा.-1 ने प्रतिपरीक्षा में संपुष्टि की है कि वह, उसका भाई रामप्रमोद एवं रामकिशोर (मृतक) एक ही घर में एक साथ रह रहे थे एवं उनके मध्य कोई बंटवारा नहीं हुआ था। पुन: उसने कहा है कि वह प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने के बाद अपने घर वापस आ गया था। संभवत: वह अपने भाई की चिकित्सा हेतु धन का प्रबंध करने हेतु प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने के बाद अपने घर लौट आया हो। पुन: उसने बताया कि रिपोर्ट की प्रति उसे उसी दिन सायंकाल दी गई थी। मृतक के शव को सील करते समय पुलिस ने उससे यह नहीं पूछा कि उसके भाई राम किशोर की हत्या किसने की है। पंचायतनामा कार्यवाही के समय उसने पुलिस को यह नहीं बताया कि उसके भाई की हत्या अपीलकर्ता अमिताभ दीक्षित ने की थी। इस साक्षी ने अभियुक्त-अपीलकर्ता के अधिवक्ता के इस सुझाव से इनकार किया है कि वह घटना के समय घटनास्थल पर उपस्थित नहीं था। उसने इस सुझाव का भी खंडन किया है कि उसे चिक रिपोर्ट उसी दिन नहीं मिली थी एवं इस सुझाव का भी कि उसने तहरीर (प्रदर्श क-1 एवं क-2) नहीं लिखी थी एवं तहरीर पुलिस के बोलने पर लिखी गई थी। उसने अपनी पुत्री के विवाह हेतु, अपने भाई रामप्रमोद के साथ वस्त्र खरीदने को बाजार जाने का कारण बताया है एवं मृतक को भी वहाँ दुकान पर बताया है। पुन: उसने स्पष्ट किया है कि सरसों का बीज एक दिन पूर्व ही मशीन धारक को सौंपा गया था। उसने आगे बताया कि वह अपने साथ रुपये 1200/- लेकर बाजार गया था एवं रुपये 900/- के वस्त्र खरीदे थे। पुन: उसने स्पष्ट किया कि उसने वस्त्र राम किशन एंड संस की दुकान से खरीदे थे। इसके बाद वह मृतक रामकिशोर एवं उसके एक अन्य भाई रामप्रमोद के साथ बाजार से घर लौट रहा था। मृतक रामकिशोर साइकिल पर प्लास्टिक के कनस्तर में सरसों का तेल लेकर जा रहा था एवं मार्ग में घटना दोपहर 02:45 बजे घटी। उसने अपने बयान में घटना का विवरण दिया है एवं इसका कारण भी बताया है कि वह घटना स्थल पर क्यों उपस्थित था, जिस पर प्रतिपरीक्षा में संदेह उत्पन्न नही किया जा सका। अ.सा.-1 कमल किशोर का बयान चिकित्सा साक्ष्य एवं विधिविज्ञान रिपोर्ट के साथ-साथ बैलिस्टिक रिपोर्ट द्वारा

अप्रमाणित

भी समर्थित है। अत: उसका बयान विश्वसनीय है एवं विचारण न्यायालय ने उसके बयान पर ठीक विश्वास किया है। अ.सा.-1 कमल किशोर के अभिसाक्ष्य की संपुष्टि अ.सा.-2 रामजी तिवारी के अभिसाक्ष्य से होती है। अन्वेषण अधिकारी ने सिद्ध कर दिया है कि 12.06.2003 को पुलिस अभिरक्षा रिमांड के दौरान अपीलकर्ता की निशानदेही पर 315 बोर का देसी तमंचा एवं दो जिंदा कारतूस बरामद किए गए थे। बरामदगी को स्वतंत्र साक्षी अ.सा.-4 छेदालाल ने भी सिद्ध किया है, जिसने फर्द बरामदगी (प्रदर्श क.-23) पर अपने हस्ताक्षर स्वीकार किए हैं, एवं जो अपने बयान पर अडिग रहा। अत: बरामदगी के बिंदु पर अ.सा.-7 निरीक्षक एस.एन. सिंह के बयान की संपुष्टि साक्षी अ.सा.-4 छेदालाल के बयान से होती है। अ.सा.-7 निरीक्षक एस.एन. सिंह ने 25.05.2003 को घटनास्थल से दो खाली कारतूसों की बरामदगी को भी सिद्ध किया है, एवं खाली कारतूस एवं 315 बोर के देसी तमंचे के साथ दो जिंदा कारतूस विधि विज्ञान प्रयोगशाला में भेजे गए थे, एवं बैलिस्टिक रिपोर्ट (प्रदर्श क-27) दिनांक 13.10.2003 में यह पाया गया कि घटना स्थल से बरामद खाली कारतूस 315 बोर के उसी पिस्तौल से फायर किए गए थे जो पुलिस अभिरक्षा रिमांड के दौरान अपीलकर्ता की निशानदेही पर बरामद की गई थी। इसलिए यह बिना किसी संदेह के सिद्ध हो गया है कि घटना स्थल से दो खाली कारतूस बरामद किए गए थे एवं 315 बोर के देसी तमंचे के साथ दो जिंदा कारतूस 12.06.2003 को 8:10 बजे आरोपी-अपीलकर्ता की निशानदेही पर बरामद किए गए थे, एवं बरामद खाली कारतूस अपीलार्थी अभियुक्त अमिताभ दीक्षित ने फायर किये थे। इसलिए, पुलिस अभिरक्षा रिमांड के दौरान पिस्तौल एवं दो जिंदा कारतूस की बरामदगी साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अंतर्गत आरोपी के प्रकटीकरण बयान की पुष्टि करती है, जिसकी पुष्टि विधि विज्ञान प्रयोगशाला एवं बैलिस्टिक विशेषज्ञ की रिपोर्ट से भी होती है। इसलिए, उपरोक्त परिस्थितियों में, अभियोजन पक्ष का वाद युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध हुआ है एवं विचारण न्यायालय ने इस निष्कर्ष को उचित अभिलिखित किया है कि धारा 302 भा.दं.सं. एवं धारा 25 आयुध अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय अपराध के आरोप उचित संदेह से परे सिद्ध हुए हैं, एवं अभियुक्त-अपीलकर्ता को उचित दोषसिद्ध किया गया है एवं उसे विधि के अनुसार सजा सुनाई गई है।

39. जहाँ तक हितबद्ध साक्षियों के संबंध में अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के तर्क का प्रश्न है, **गंगाधर बेहरा एवं अन्य बनाम उड़ीसा राज्य (2002) 8 SCC 381** वाद में उच्चतम न्यायालय ने निम्नवत धारित किया है:

"......रिश्ता किसी साक्षी की विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाला कारक नहीं है। प्राय: ऐसा होता है कि कोई संबंधी वास्तविक अपराधी को छिपा कर किसी निर्दोष व्यक्ति के विरूद्ध आरोप नहीं लगाएगा। यदि झूठा फंसाने का अभिकथन किया गया है तो इसका उचित समाधान खोजना होगा। ऐसे मामलों में, अदालत को सावधानीपूर्ण दृष्टिकोण अपनाना होगा एवं यह ज्ञात करने हेतु साक्ष्य का विश्लेषण करना होगा कि क्या यह ठोस एवं विश्वसनीय है।"

दलीप सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य, (AIR 1953 SC 364) वाद में उच्चतम न्यायालय ने इसे निम्नानुसार प्रतिपादित किया है:-

"एक साक्षी को सामान्यत: स्वतंत्र माना जाता है जब तक कि वह ऐसे स्त्रोतो से संबोधित न हो जिनके दूषित होने की संभावना हो। इसका सामान्य अर्थ यह है कि जब तक साक्षी के पास कोई कारण न हो, जैसे कि अभियुक्त से शत्रुता जिस कारण वह उसे झूठा फंसाना चाहता हो। प्राय: कोई निकट संबंधी ही वास्तविक अपराधी को बचाने एवं किसी निर्दोष व्यक्ति को झूठा फंसाने वाला अंतिम व्यक्ति होता है। यह सत्य है, कि जब भावनाएँ चरम पर होती हैं एवं शत्रुता का व्यक्तिगत कारण होता है, तो दोषी के साथ-साथ किसी निर्दोष व्यक्ति को भी घसीटने की प्रवृत्ति होती है जिसके प्रति साक्षी के मन में द्वेष हो। किंतु ऐसी धारणा किसी ठोस नींव पर आधारित होनी चाहिए एवं रिश्ते का ऐसी नींव से कोसों दूर होने का तथ्य मात्र ही प्राय: सच्चाई की सुनिश्चित गारंटी होता है। हालाँकि, हम किसी व्यापक सामान्यीकरण का प्रयास नहीं कर रहे हैं। प्रत्येक वाद का निर्णय उसके अपने तथ्यों के आधार पर किया जाना चाहिए। हमारी टिप्पणियां मात्र प्रज्ञा के एक सामान्य नियम के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत होने वाले मामलों में प्राय: उपस्थित तथ्यों का सामना करने के उद्देश्य से है, ऐसा कोई सामान्य नियम नहीं है। प्रत्येक मामले को अपने तथ्यों तक ही सीमित एवं उनसे ही शासित होना चाहिए।"

उपरोक्त निर्णय का **गुली चंद एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य,(1974 (3) SCC 698)** में अनुसरण किया गया है जिसमें **वडिवेलु थेवर बनाम मद्रास राज्य, (AIR 1957 SC 614)** पर भी विश्वास किया गया था। यह आधार बलहीन है कि साक्षी एक निकटसंबंधी होने के कारण एक पक्षपातपूर्ण साक्षी होता है, अत: उस पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए। इस सिद्धांत को दलीप सिंह के मामले (उपरोक्त) में इस न्यायालय द्वारा पहले ही अभिखंडित कर दिया गया था, जिसमें बार के सदस्यों के मन में व्याप्त इस धारणा पर आश्चर्य व्यक्त किया गया था कि संबंधी स्वतंत्र साक्षी नहीं होते। माननीय न्यायाधीश विवियन बोस, ने निम्नवत टिप्पणी की:-

"हम उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों से सहमत होने में असमर्थ हैं कि दो प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के परिसाक्ष्य को संपुष्टि की आवश्यकता है। यदि इस प्रकार की टिप्पणी इस

तथ्य पर आधारित है कि साक्षीगण महिलाएं हैं एवं उनके परिसाक्ष्य पर सात पुरुषों का भाग्य निर्भर है, तब हम ऐसे किसी नियम के बारे में नहीं जानते हैं। यदि यह इस कारण पर आधारित है कि उनका मृतक से गहरा संबंध है तो हम सहमत होने में असमर्थ हैं। यह कई आपराधिक मामलों में सामान्य बात है एवं इस न्यायालय की एक अन्य पीठ ने ***''रामेश्वर बनाम राजस्थान राज्य'' (AIR 1952 SC 54 पृष्ठ 59)*** *में इस पर विचार करने का प्रयास किया है। हालाँकि, हम पाते हैं कि दुर्भाग्यवश यह अभी भी जीवित है, यदि न्यायालयों के निर्णयों में नहीं तो किसी भी रूप में अधिवक्तागण के तर्कों में।"*

पुन: **मसल्टी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (AIR 1965 SC 202) में इस न्यायालय ने कहा: (पृष्ठ, 209-210 प्रस्तर 14)**:-

"किंतु हमारा मत है कि यह तर्क देना अनुचित होगा कि साक्षियों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों को मात्र इस आधार पर अस्वीकृत कर दिया जाना चाहिए कि यह पक्षपातपूर्ण या हितबद्ध साक्षियों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य है....... ऐसे साक्ष्यों को एकमात्र आधार पर यांत्रिक रूप से अस्वीकार करना कि यह पक्षपातपूर्ण है, सदैव न्याय की विफलता का कारण बनेगा। साक्ष्यों का कितना अधिमूल्यन किया जाना चाहिए, इस संबंध में कोई निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता है। न्यायिक दृष्टिकोण को ऐसे साक्ष्यों पर विचार करने में सतर्क रहना होगा, किंतु यह अभिकथन सही नहीं माना जा सकता कि ऐसे साक्ष्यों को पक्षपातपूर्ण होने के कारण अस्वीकार कर देना चाहिये।

(बल दिया गया)

[38]. हमारी सामाजिक व्यवस्था तेजी से बदल रही है। वर्तमान सामाजिक परिदृश्य में लोग अपमान एवं उत्पीड़न के डर से पुलिस थाने एवं न्यायालयों में जाने से कतराते हैं। प्राय: लोग किसी घटना का साक्षी बनने से सिर्फ इस कारण से बचते हैं कि किसी अपराध में सम्मिलित अपराधी के विरूद्ध साक्ष्य देने से उनकी जान को खतरा हो सकता है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में इसकी अल्पतम संभावना है कि कोई अपरिचित व्यक्ति अपराधी के विरूद्ध साक्ष्य दे।"

40. **संद्रू सरन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य(2016) 4 SCC 357** वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नवत धारित किया:-

"29. ...इन दिनों, सभ्य लोग आमतौर पर किसी भी आपराधिक कृत्य के संबंध में कोई भी बयान देने हेतु आगे आने के प्रति असंवेदनशील होते हैं। जब तक यह अपरिहार्य न हो, लोग सामान्यत: न्यायालय से दूर रहते हैं क्योंकि उन्हें यह कष्टकारी एवं तनावपूर्ण लगता है। यद्यपि इस प्रकार का मानवीय व्यवहार वास्तव में दुर्भाग्यपूर्ण है, लेकिन यह एक सामान्य घटना है। हम अपने कर्तव्य का निर्वहन करने में जाँच एजेंसी की इस बाधा को अनदेखा नहीं कर सकते। हम स्वतंत्र साक्षी की अनुपस्थिति के आधार पर पूरे वाद को तब तक अस्त-व्यस्त नहीं कर सकते, जब तक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी, भले ही वह हितबद्ध हो, का साक्ष्य विश्वसनीय है।"

41. उपरोक्त के आलोक में, अभियोजन पक्ष ने भा.दं.सं. की धारा 302 एवं धारा 25 आयुध अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय अपराध हेतु अभियुक्त-अपीलकर्ता के विरूद्ध युक्तियुक्त संदेह से परे अपना वाद सिद्ध कर दिया है। विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता को विधि के अनुसार उपरिवर्णित अपराधों हेतु उचित दोषसिद्ध किया है एवं सजा सुनाई है, जिसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

42. वाद के समग्र तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए, हमारा मत है कि मुकदमा अपराध सं 209/2003 अंतर्गत धारा 302/307 भा.दं.सं., थाना शाहाबाद, जिला हरदोई से उद्भूत सत्र विचारण सं 673/2003(राज्य बनाम अमिताभ दीक्षित), एवं मुकदमा अपराध सं. 266/2003 अंतर्गत धारा 25 आयुध अधिनियम थाना शाहाबाद, जिला हरदोई से उद्भूत सत्र विचारण सं. 674/2003(राज्य बनाम अमिताभ दीक्षित) में अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश त्वरित न्यायालय सं. 4, हरदोई द्वारा पारित प्रश्नगत दोषसिद्ध सिद्धि एवं दंडादेश के निर्णय दिनांक 16.12.2004, जिसके द्वारा अपीलकर्ता को धारा 302 भा.दं.सं. एवं धारा 25 आयुध अधिनियम के अंतर्गत दोषसिद्ध करते हुए धारा 302 भा.दं.सं. के अंतर्गत आजीवन कारावास एवं रु. 5000 अर्थदण्ड, एवं धारा 25 आयुध अधिनियम के अंतर्गत दो वर्ष के सश्रम कारावास एवं रु. 500 अर्थदण्ड, एवं अर्थदण्ड अदा न करने पर दो वर्ष अतिरिक्त साधारण कारावास प्रदान किया गया है, में कोई अवैधता अथवा विकृति नहीं है। अत:, अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, त्वरित न्यायालय नंबर 4, हरदोई द्वारा पारित दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय एवं सजा के आदेश दिनांक 16.12.2004 को बरकरार रखा जाता है।

43. तदनुसार, वर्तमान आपराधिक अपील खारिज की जाती है।

44. चूँकि अपीलकर्ता अमिताभ दीक्षित जमानत पर हैं, इसलिए उनके निजी बांड रद्द कर दिए जाते हैं एवं जमानतदारों को उन्मोचित किया जाता है। संबंधित विचारण न्यायालय उसे गिरफ्तार कराएगी एवं विचारण न्यायालय द्वारा दी गई शेष सजा को पूरा करने हेतु कारागार में दाखिल कराएगी।

45. विचारण न्यायालय के अभिलेख के साथ इस निर्णय की प्रमाणित प्रति सूचना एवं आवश्यक अनुपालन

हेतु संबंधित विचारण न्यायालय को तत्काल प्रेषित की जाए।

(2023) 1 ILRA 622
अपीलीय क्षेत्राधिकार
आपराधिक साइड
दिनांक: इलाहाबाद 12.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा

आपराधिक अपील संख्या - 3544 वर्ष 2012

राकेश कुमार पांडे @ दद्दू पांडे ...अपीलकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के वकील:
अपुल मिश्रा, सी एन पांडेय, डी.एम त्रिपाठी, लव श्रीवास्तव, वी प्रभा शंकर मिश्रा

प्रतिवादी के वकील:
सरकारी वकील, शेषाद्री त्रिवेदी

ए. आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 – धारा 302 - हत्या– दोषसिद्धि और सजा के विरुद्ध अपील – संबंधित और इच्छुक गवाह - विश्वसनीयता - राजेश यादव वाद पर भरोसा किया गया - एक करीबी रिश्तेदार को 'इच्छुक' गवाह के रूप में चित्रित नहीं किया जा सकता है। वह एक 'प्राकृतिक' गवाह है। हालाँकि, उसके सबूतों की सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए। यदि ऐसी जांच पर, उसके साक्ष्य आंतरिक रूप से विश्वसनीय, स्वाभाविक रूप से संभावित और पूरी तरह से भरोसेमंद पाया जाता है, दोषसिद्धि ऐसे गवाह की "एकमात्र" गवाही पर आधारित हो सकती है। मृतक या पीड़ित के साथ गवाह का घनिष्ठ संबंध उसके साक्ष्य को अस्वीकार करने का कोई आधार नहीं है - आयोजित, विचारणीय न्यायालय ने सावधानीपूर्वक जांच और विश्लेषण के बिना पीडब्लू -2 और पीडब्लू -3 की गवाही पर भरोसा करते हुए अभियोजन वाद को स्वीकार कर लिया है। तथ्य यह है कि पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3 मौकापरस्त और इच्छुक गवाह हैं और उनकी गवाही के कई अस्पष्ट पहलू पूरी तरह से अछूते रह गए हैं, उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि के फैसले को अस्वीकार कर दिया। (पैरा 35 और 61)

अपील स्वीकृत। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. राजेश यादव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 ऑनलाइन एससी 150

(माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा द्वारा दिया गया)

1. यह अपील अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश (पूर्व संवर्ग), न्यायालय संख्या 20, इलाहाबाद द्वारा दिनांक 31.7.2012 को 2006 के सत्र विचारण संख्या 99 में पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध निर्देशित की जाती है, जो 2005 के केस अपराध संख्या 152 के तहत धारा 302 भ० द० वि०, थाना खुल्दाबाद, जिला इलाहाबाद के साथ-साथ 2006 के सत्र परीक्षण संख्या 100 में उत्पन्न होता है। शस्त्र अधिनियम की धारा 3/25 के तहत थाना खुल्दाबाद, जिला इलाहाबाद ने आरोपी अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के साथ-साथ शस्त्र अधिनियम की धारा 3/25 के तहत दोषी ठहराया और उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत आजीवन कारावास और 5,000/- रुपये जुर्माने की सजा सुनाई और जुर्माना जमा करने में विफल रहने पर एक वर्ष के लिए अतिरिक्त कठोर कारावास की सजा सुनाई; शस्त्र अधिनियम की धारा 3/25 के तहत पांच साल की कैद और 2,000 रुपये का जुर्माना और जुर्माना जमा करने में विफल रहने पर छह महीने के लिए अतिरिक्त कारावास की सजा भुगतनी होगी। सभी दंड साथ-साथ चलेंगे।

2. वर्तमान मामले में पहला शिकायतकर्ता सुधीर कुमार द्विवेदी (अ०सा०-1) है, जिसने इस घटना में अपने भाई सुरेश कुमार द्विवेदी को खो दिया है। अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि मृतक 18.7.2005 को रात लगभग 8.45 बजे अपनी मोटरसाइकिल पर राजरूपपुर से इलाहाबाद के बेनीगंज जा रहा था। जब वह चक निरातुल बड़ी मसजिद के पास पहुंचा तो दो लोगों ने उस पर गोली चला दी, जिससे उसकी मौत हो गई। हमलावर कर्बला की ओर भाग गए। इस घटना को कथित तौर पर, दूसरों के साथ, सुशील कुमार त्रिपाठी (अ०सा०-3) द्वारा देखा गया था, जो मृतक का पहला चचेरा भाई है। और मृतक के भतीजे नागेंद्र कुमार द्विवेदी (अ०सा०-2) द्वारा देखा गया और यह कि वे हमलावरों को देखकर उन्हें पहचान सकते हैं, क्योंकि घटना के स्थान पर पर्याप्त प्रकाश था। इस घटना के बाद लोगों में अफरा-तफरी मच गई और इलाके में दहशत का

माहौल पैदा हो गया। दुकानों के शटर गिरा दिए गए और पूरी तरह से अफरा-तफरी मच गई।

3. अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि शिकायतकर्ता के दूसरे भाई सुरेंद्र कुमार द्विवेदी की पहले 14.5.2004 को हत्या कर दी गई थी। हत्या का आरोप आरोपी राकेश कुमार पांडेय @ दद्दू पांडेय और मुन्ना पांडेय पर लगा था। मृतक सुरेश कुमार द्विवेदी अपने भाई सुरेंद्र कुमार द्विवेदी की हत्या के संबंध में शिकायतकर्ता था। आरोपी राकेश कुमार पांडे की जमानत याचिका मंजूर कर ली गई और उसे जमानत पर रिहा कर दिया गया जबकि मुन्ना पांडे की जमानत याचिका को उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया। मृतक सुरेश कुमार द्विवेदी को उस मामले में अभियोजन पक्ष के गवाह के रूप में पेश होना था और उसे हटा दिया गया है ताकि वह अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करने के लिए जीवित न रहे और आरोपी मुन्ना पांडे को जमानत पर रिहा किया जाए। अदालत को आगे सूचित किया जाता है कि सुरेंद्र कुमार द्विवेदी की हत्या के मामले में अभियोजन पक्ष आरोपी को बरी कर दिया गया क्योंकि मुख्य गवाह, अर्थात् सुरेश कुमार द्विवेदी, गवाही नहीं दे सके और अन्य गवाह मुकर गए।

4. शिकायतकर्ता के परिवार के अवध नारायण पांडे और उनके दो बेटों राकेश कुमार पांडे @ दद्दू पांडे यानी आरोपी अपीलकर्ता और मुन्ना पांडे के साथ कथित तौर पर शत्रुतापूर्ण संबंध थे। यह दुश्मनी इस मामले में अपराध करने का कथित कारण है।

5. दो चश्मदीद गवाह, जो अभियोजन पक्ष के पक्ष का समर्थन करने के लिए आगे आए हैं, अर्थात् अ०सा०-2 और अ०सा०-3, करीबी रिश्तेदार हैं और इस अपील में जांच किया जाने वाला प्राथमिक मुद्दा इन चश्मदीद गवाहों की विश्वसनीयता और भरोसा है। अ०सा०-1 पहला शिकायतकर्ता है, जिसे अ०सा०-3 से उपरोक्त घटना के संबंध में लिखित रिपोर्ट मिली, जिसके आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई और धारा 302 भ० द० वि० के तहत 2005 के केस क्राइम नंबर 152 के रूप में दर्ज किया गया। प्राथमिकी में दो अज्ञात लोगों को आरोपी के रूप में दिखाया गया है।

6. इस मामले में दर्ज एफ.आई.आर के अनुसरण में, जांच अधिकारी ने घटना स्थल से रक्तरंजित और सादे मिट्टी एकत्र की। मृतक की मोटरसाइकिल भी बरामद कर ली गई है और उसे पहले शिकायतकर्ता की हिरासत में दे दिया गया है। जांच की कार्यवाही सुबह 6.30 बजे शुरू हुई और अंतत 19-7-2005 को सुबह 8.00 बजे समाप्त हुई। देरी के कारण को स्पष्ट रूप से समझाया गया था कि घटना के स्थान पर पर्याप्त प्रकाश उपलब्ध नहीं था।

7. जांच के दौरान मृतक पर विभिन्न चोटें देखी गईं और जांच के गवाहों ने राय दी कि मृतक की मौत गोली लगने से हुई थी। शव को सील कर पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया गया है। 19-7-2005 को पोस्टमार्टम किया गया है और मृतक के शरीर पर निम्नलिखित पूर्व-पोस्टमार्टम चोटें पाई गई हैं:-

"1. लाबुला से सटे दाहिने कान के सामने 5 सेमी x 3 सेमी प्रवेश करने वाली बन्दूक का घाव। कालापन और टैटू मौजूद है। घाव मस्तिष्क गुहा की गहराई है। मस्तिष्क गुहा में मौजूद रक्त दाएं टेम्पोरो-पैरिटल और बाएं टेम्पोरल बेस फ्रैक्चर है! फूस और वैड के चार टुकड़े मस्तिष्क गुहा की दिशा से बरामद किए गए थे, जो पीछे के हिस्से से बाईं ओर तिरछे थे। दाहिना जबड़ा फ्रैक्चर है!

2. बन्दूक का घाव 2 सेमी x 2 सेमी वक्ष क्षेत्र छाती के दाईं ओर 5 सेमी नीचे दाईं ओर गहरा है। कालापन और टैटू सामने से पीछे तक थोड़ा तिरछा है। दिल से गोली बरामद की गई!

3. बाएं कंधे पर 6 सेमी × 4 सेमी का गुम्मड़!

8. घटना के दो चश्मदीद गवाह, अर्थात् अ०सा०-2 और अ०सा०-3, हमलावरों को पहले से नहीं जानते थे, हालांकि यह दावा किया गया था कि वे हमलावरों को पहचान सकते थे। अ०सा०-2 का दावा है कि वह इमली गांव में एक रिश्तेदार से मिलने गया और वहां उसने दो हमलावरों में से एक को देखा, जिसका नाम आरोपी अपीलकर्ता था। पूछताछ करने पर हमलावर की पहचान राकेश कुमार पांडे यानी आरोपी अपीलकर्ता के रूप में हुई। अ०सा०-2 का दावा है कि उसने वापस आकर जांच अधिकारी को मृतक पर गोली चलाने वाले आरोपियों में से एक की पहचान के बारे में सूचित किया था। हमलावर की पहचान के संबंध में अ०सा०-2 द्वारा किए गए पूर्वोक्त खुलासे के आधार पर, पुलिस ने 2-8-2005 को आरोपी अपीलकर्ता को गिरफ्तार कर लिया। उसके कब्जे से .315 बोर का तमंचा बरामद किया गया और आरोपी ने कबूल किया कि यह वही बंदूक है जिससे उसने मृतक को गोली मारी थी। इसके परिणामस्वरूप देशी पिस्तौल, जिंदा कारतूसों की बरामदगी और आरोपियों की गिरफ्तारी का ज्ञापन प्रदर्श क-16 के रूप में चिह्नित बरामदगी ज्ञापन के माध्यम से तैयार किया गया था। शस्त्र अधिनियम की धारा 3/25 के तहत 2005 के केस क्राइम नंबर 169 के तहत भी एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी।

9. जांच आगे बढ़ी और अंततः 26.8.2005 को 2006 के केस क्राइम नंबर 152 में और 29.10.2005 को 2005 के केस क्राइम नंबर 169 में संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष दो आरोप पत्र दायर किए गए (क्रमशः प्रदर्श क -18 और प्रदर्श क -15)। जिला मजिस्ट्रेट ने अपने दिनांक 18.8.2005 के आदेश द्वारा शस्त्र अधिनियम की धारा 39 के तहत अभियोजन की भी मंजूरी दी। 2006 का सत्र परीक्षण संख्या 99, 2005 के अपराध संख्या 152 के संबंध में, धारा 302 भ० द० वि० के तहत दर्ज किया गया था और 2006 का सत्र परीक्षण संख्या 100 शस्त्र अधिनियम की धारा 3/25 के तहत 2005 के केस अपराध संख्या 169 के संबंध में दर्ज किया गया था। 22-3-2006 को अभियुक्तों

को आरोप पढ़कर सुनाए गए, जिन्होंने आरोपों से इंकार किया और विचारण की मांग की।

10. अभियुक्त के अपराध को स्थापित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1), दिनांक 18.7.2005 (प्रदर्श क-20), दिनांक 3.8.2005 की एफ.आई.आर (प्रदर्श क-22), पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट (एक्स.केए-2), दिनांक 19.7.2005 के सूचकांक के साथ साइट प्लान (प्रदर्श क-3), देसी पिस्तौल की बरामदगी मेमो (प्रदर्श क-3), देसी पिस्तौल की बरामदगी मेमो (प्रदर्श क-20), 18.7.2005 (प्रदर्श क-20), एफ.आई.आर दिनांक 3.8.2005 (प्रदर्श क-22), 19.7.2005 के इंडेक्स के साथ साइट प्लान (एक्स.के-3), देसी पिस्तौल की बरामदगी मेमो (प्रदर्श क-3) के रूप में दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए। चप्पल का रिकवरी मेमो (एक्स.के-5), मोटरसाइकिल का रिकवरी मेमो और सुपुरदगीनामा (प्रदर्श क-6), पंचायतनामा (प्रदर्श क-7), दिनांक 26.8.2005 (एक्स.के.-18), चार्जशीट दिनांक 29.10.2005 (प्रदर्श क-15), जिला मजिस्ट्रेट (प्रदर्श क-19) का आदेश, दिनांक 29.10.2005 के सूचकांक के साथ साइट प्लान (प्रदर्श क-14) और दिनांक 4.8.2005 के इंडेक्स के साथ नक्शा नज़री (प्रदर्श क-17) प्रस्तुत किया!

11. अभियोजन पक्ष ने सुधीर कुमार द्विवेदी (प्रथम शिकायतकर्ता) (अ०सा०-1), नागेंद्र कुमार द्विवेदी (अ०सा०-2) और सुशील कुमार त्रिपाठी (अ०सा०-3) के मौखिक साक्ष्य भी जोड़े हैं। पोस्टमार्टम करने वाले डॉ. एपी त्रिपाठी को अ०सा०-4 के रूप में पेश किया गया है। महमूद आलम (अ०सा०-5), कृष्णकांत तिवारी (अ०सा०-6), प्रदुम्न कुमार सिंह (अ०सा०-7), महाबली (अ०सा०-8), शवीमुद्दीन (अ०सा०-9), राजाराम (अ०सा०-10) और धनुषधारी पांडेय (अ०सा०-11) औपचारिक गवाह हैं।

12. अ०सा०-1 ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है और कहा है कि मृतक मोटरसाइकिल से राजरूपपुर से बेनीगंज आ रहा था और दो हमलावरों ने उसका पीछा किया, जिन्होंने उसे गोली मार दी। आरोपी कर्बला की ओर भाग गया। अ०सा०-1 और अ०सा०-2 ने अन्य लोगों के साथ मिलकर स्ट्रीट लाइट में घटना देखी है और हमलावरों को उनके द्वारा पहचाना जा सकता है। उन्होंने अपीलकर्ता को इस आधार पर फंसाया है कि मृतक अपने भाई सुरेंद्र कुमार द्विवेदी की हत्या के मामले में मुकदमे में गवाह था और मृतक को कथित तौर पर मौत की सजा दी गई है ताकि आरोपी मुन्ना पांडे को जमानत पर रिहा किया जा सके। जिरह में अ०सा०-1 ने कहा कि आरोपी अपीलकर्ता के पिता और शिकायतकर्ता के बीच जमीन को लेकर विवाद था।

13. गवाह अ०सा०-1 ने इस सुझाव से भी इनकार किया है कि दुश्मनी के कारण आरोपी अपीलकर्ता को गलत तरीके से फंसाया गया है। अ०सा०-1 ने जिरह में कहा कि वह रात नौ बजे घटनास्थल पर पहुंचा और उसके 10 मिनट बाद ही जांच अधिकारी पहुंचे। जब जांच अधिकारी पहुंचे तो अ०सा०-3 भी घटना स्थल पर आ गया। जांच अधिकारी द्वारा जांच करने पर अ०सा०-3 ने सूचित किया कि वह साक्षर व्यक्ति है और अ०सा०-1 के कहने पर अ०सा०-3 द्वारा एफ.आई.आर दर्ज की गई थी।

14. अ०सा०-2 ने अभियोजन पक्ष के मामले का भी समर्थन किया है। उन्होंने बताया है कि मृतक बेनीगंज से राजरूपपुर आ रहा था। तभी दो लोगों ने उनकी मोटरसाइकिल को रोक लिया। अ०सा०-2 और अ०सा०-3 ने घटना को देखने का दावा किया है। शुरुआत में दोनों हमलावरों ने मृतक से बात की, जो गर्म बात में बदल गई और मृतक को गालियां दी गईं, जिसके बाद हमलावरों ने मृतक पर एक-एक गोली चलाई। हालांकि, अ०सा०-2 का दावा है कि उसे आरोपी की पहचान के बारे में पता नहीं था। अ०सा०-2 ने विचारण के दौरान आरोपी अपीलकर्ता को उन दो हमलावरों में से एक के रूप में पहचाना है, जिन्होंने मृतक पर गोली चलाई थी। अ०सा०-2 ने दावा किया है कि जब तक वह मृतक के पास पहुंचा, तब तक उसकी मौत हो चुकी थी। घटना स्थल पर शव छोड़कर अ०सा०-2 बेनीगंज के लिए रवाना हो गया और अ०सा०-1 को घटना की सूचना दी। इसके बाद अ०सा०-1 और अ०सा०-3 मौके पर आए। हालांकि, अ०सा०-2 बेनीगंज में ही रहा।

15. अगले दिन अ०सा०-2 अपने गांव के लिए रवाना हुआ और परिजनों को घटना की जानकारी दी। 2-3 दिनों के बाद वह इमली गांव गए जहां उन्होंने आरोपी अपीलकर्ता को देखा। ग्रामीणों से पूछताछ करने पर वह आरोपी अपीलकर्ता की पहचान का पता लगा सका। जिरह में उसने स्वीकार किया कि उसने जांच अधिकारी को सूचित नहीं किया था कि वह राजरूपपुर से आ रहा है या वह राजरूपपुर में मृतक से मिलने गया था। मृतक से मिलने के कारणों का भी खुलासा नहीं किया गया है।

16. मृतक हालांकि अ०सा०-2 का चाचा था, फिर भी वह मृतक की स्थिति के बारे में पूछने के लिए वापस नहीं आया। उन्होंने आगे स्वीकार किया कि घटना के दिन या उसके अगले दिन उनका बयान दर्ज नहीं किया गया था, क्योंकि वह अपने पैतृक गांव गए थे और उसके बाद इमली गांव गए थे और उसके बाद ही द०प्र०स० की धारा 161 के तहत उनका बयान दर्ज किया गया था। उन्होंने दावा किया कि वह आरोपियों को पहले से नहीं जानते थे और उन्हें इस बात की भी जानकारी नहीं थी कि जेल में अन्य आरोपियों की पहचान की गई थी या नहीं। हालांकि बाद में उन्होंने स्वीकार किया कि वह राजेश कुमार मिश्रा की पहचान के लिए जेल गए थे, लेकिन हमलावरों में से एक के रूप में उनकी पहचान नहीं की गई थी।

17. अ०सा०-3 ने अपनी गवाही में कहा है कि जब उसने गोली चलने की आवाज सुनी तो वह लगभग 10-15 किलोमीटर की दूरी पर था और जब तक वह मौके पर

पहुंचा, आरोपी अपनी मोटरसाइकिल पर भाग गए थे। अ०सा०-3 का दावा है कि वह बेनीगंज से राजरूपपुर जाने के लिए अ०सा०2 के साथ गया था। अ०सा०-2 के विपरीत, अ०सा०-3 का दावा है कि जब वे एक-दूसरे को पार कर रहे थे तो उन्होंने मृतकों को रुकने का संकेत दिया था, लेकिन मृतक आगे बढ़ गया था। जब तक वह मृतक के पास लौटा, उसने पाया कि दो हमलावर मृतक को गाली दे रहे थे और उसे गोली मार दी। जब तक अ०सा०-3 घटना स्थल पर पहुंचा, मृतक की मौत हो चुकी थी और आरोपी फरार हो चुका था।

18. अ०सा०-3 ने कटघरे में आरोपी अपीलकर्ता की पहचान मृतक पर गोली चलाने वाले आरोपी के रूप में भी की है। तथापि, अ०सा०-3 ने अ०सा०-2 द्वारा सूचित स्थान से भिन्न स्थान की पहचान की है। अ०सा०-3 के अनुसार घटना का स्थान जीटी रोड पर था, जबकि अभियोजन पक्ष के अनुसार घटना का स्थान राजरूपपुर-बेनीगंज रोड पर है। इसलिए दोनों चश्मदीद गवाह घटना के स्थान के संबंध में अपनी गवाही में एक-दूसरे के अनुरूप नहीं हैं। उनके द्वारा चिह्नित स्थानों के बीच लगभग 600 मीटर की दूरी है।

19. अ०सा०-3 का दावा है कि वह मृतक से मिलने गया था, लेकिन जब उसे पता चला कि मृतक राजरूपपुर के लिए रवाना हो गया है, तो वह राजरूपपुर के लिए रवाना हो गया। हालांकि, द०प्र०स० की धारा 161 के तहत पुलिस को यह खुलासा नहीं किया गया था। इस गवाह ने इस बात से इनकार किया है कि उसने घटना नहीं देखी है और जब वह घटना स्थल पर पहुंचा तो घटना पहले ही हो चुकी थी।

20. डॉक्टर और अन्य औपचारिक गवाहों ने भी अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है। आरोपी के खिलाफ एकत्र की गई आपत्तिजनक सामग्री को द०प्र०स० की धारा 313 के तहत उसके पास रखा गया है। आरोपी ने कहा है कि हालांकि वह सुरेंद्र कुमार द्विवेदी की हत्या में आरोपी था, लेकिन उसे झूठा फंसाया गया और कार्यवाही के परिणामस्वरूप उसे बरी कर दिया गया। एफ.आई.आर के बारे में उन्होंने दावा किया कि इसका पंजीकरण पुलिस के परामर्श के बाद किया गया था। उन्होंने अपने पास से बन्दूक की बरामदगी से भी इनकार किया है और आरोप लगाया है कि उन्हें उनके घर से गिरफ्तार किया गया है। उन्होंने विशेष रूप से जोर देकर कहा कि दुश्मनी के कारण उन्हें इस मामले में झूठा फंसाया गया है।

21. ट्रायल कोर्ट ने मुकदमे के दौरान अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में सबूतों के आधार पर आरोपी के खिलाफ धारा 302 भ०द०वि० और शस्त्र अधिनियम की धारा 3/25 के तहत आरोप साबित होते हुए पाया है। इस प्रकार व्यथित, आरोपी अपीलकर्ता इस न्यायालय के समक्ष है।

22. श्री मनीष तिवारी, अपीलकर्ता के लिए श्री डी.एम त्रिपाठी द्वारा सहायता प्राप्त वरिष्ठ वकील ने प्रस्तुत किया कि आरोपी अपीलकर्ता को पुरानी दुश्मनी के कारण वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है, और यह कि दो चश्मदीद गवाह भरोसेमंद नहीं हैं। गवाहों के बयान में विभिन्न विरोधाभासों को इंगित किया गया है ताकि यह आरोप लगाया जा सके कि गवाह विश्वसनीय नहीं हैं। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि घटना के स्थान पर मृत शरीर को छोड़ने में गवाहों का आचरण; मृतक को चिकित्सा सहायता के लिए अस्पताल नहीं ले जाना; जांच की कार्यवाही आदि का गवाह नहीं होना स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि कथित प्रत्यक्षदर्शी वास्तव में घटना के समय घटनास्थल पर मौजूद नहीं थे। तर्क यह है कि यह संपत्ति के सौदे में मृतक की भागीदारी के कारण अंधे हत्या का मामला है और केवल इसलिए कि आरोपी अपीलकर्ता के साथ पुरानी दुश्मनी थी, इसलिए, उसे इस मामले में झूठा फंसाया गया है।

23. श्री तिवारी ने यह भी तर्क दिया कि हमलावरों की पहचान करने के लिए घटना के स्थान पर प्रकाश का कोई स्रोत उपलब्ध नहीं था। उन्होंने आगे कहा कि हालांकि आसपास के क्षेत्र में विभिन्न दुकानें आदि मौजूद थीं, लेकिन कोई भी स्वतंत्र गवाह गवाही देने के लिए आगे नहीं आया है और केवल संदेह के आधार पर, पुरानी दुश्मनी के कारण, आरोपी अपीलकर्ता को फंसाया गया है। निवेदन यह है कि दोषसिद्धि और सजा का निर्णय रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य और सामग्री के वजन के विपरीत है।

24. इसके विपरीत, शिकायतकर्ता के लिए श्री शेषाद्रि त्रिवेदी द्वारा सहायता प्राप्त वरिष्ठ वकील श्री सतीश त्रिवेदी ने प्रस्तुत किया कि यह एक प्रत्यक्षदर्शी की हत्या का मामला है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि मृतक मुन्ना पांडे के खिलाफ गवाही न दे सके, ताकि उसे जमानत पर रिहा किया जा सके। उन्होंने आगे कहा कि मौके पर पर्याप्त रोशनी थी। यह भी आग्रह किया जाता है कि चश्मदीद गवाहों का विवरण पूरी तरह से प्राकृतिक और विश्वसनीय है और दोषसिद्धि और सजा का निर्णय अच्छी तरह से तर्कपूर्ण है और इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

25. इस मामले के तथ्यों में हमें यह जांचना आवश्यक है कि क्या घटना अभियोजन पक्ष द्वारा बताए गए तरीके से हुई थी; दो चश्मदीद गवाह अ०सा०-2 और अ०सा०-3 विश्वसनीय और भरोसेमंद हैं; क्या घटनास्थल पर पर्याप्त रोशनी थी जिसमें हमलावरों को पहचाना जा सकता था; गवाहों का आचरण स्वाभाविक और प्रेरणादायक है और क्या नीचे दी गई अदालत ने आरोपी के खिलाफ अपराध के निष्कर्ष को सही तरीके से वापस कर दिया है और सजा न्यायपूर्ण, निष्पक्ष और उचित है?

26. हमने दो चश्मदीदगवाहों अ०सा०-2 और अ०सा०-3 की गवाही की सावधानीपूर्वक जांच की है। अभियोजन पक्ष के अनुसार, यह घटना तब हुई जब मृतक मोटरसाइकिल पर राजरूपपुर से बेनीगंज जा रहा था। वह अपनी बाइक पर बिल्कुल अकेला था। दोनों आरोपियों ने कथित तौर पर मृतक को रोका; उसे गालियां दीं और एक-एक गोली

चलाई जिससे उसकी मौत हो गई। घटना स्थल खुल्दाबाद थाना क्षेत्र में आने वाले चक निरातुल बड़ी मसजिद के पास राजरूपपुर-बेनीगंज रोड है। घटना का समय 18 जुलाई, 2005 को रात लगभग 8.45 बजे का है।

27. नक्शा नज़री रिकॉर्ड पर है। राजरूपुर से आने वाली सड़क पुराने जीटी रोड से जुड़ती है। करबला के माध्यम से जीटी रोड को जोड़ने वाली इस सड़क से निकलने वाली एक संकरी सड़क है, जो जीटी रोड पर पूर्व की ओर थोड़ी आगे है। इस सड़क के एक तरफ चकिया मोहल्ले में राज कुमार, सतीश कुमार, पप्पू वर्मा और संतोष आदि के घर और दुकानें हैं, जबकि सड़क के दूसरी तरफ मोहल्ला चक निरातुल है, जिसके बाद एक गली है जिसके बाद श्याम कारपेंटर का घर है और फारुख का घर और चक निरातुल की मस्जिद है। यह जगह विभिन्न व्यक्तियों की छोटी दुकानों और घरों से घिरा हुआ है और मस्जिद के ठीक सामने है। यह पता चलता है कि घटना के स्थान के आसपास विभिन्न व्यक्तियों की दुकानें और घर हैं और इस प्रकार घटना के स्थान के आसपास जनता का अस्तित्व स्वाभाविक और संभावित है। हालांकि, अभियोजन पक्ष द्वारा आस-पास की दुकानों या घरों से कोई भी पेश नहीं किया गया है और न ही स्थानीय निवासियों से घटना के तरीके के बारे में पूछताछ करने का कोई प्रयास किया गया है।

28. अभियोजन पक्ष ने तथ्य के तीन गवाहों, अर्थात् अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 पर भरोसा किया है। जहां तक अ०सा०1 का सवाल है, वह इस घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है। उनकी गवाही अ०सा०-2 और अ०सा०-3 द्वारा किए गए तथ्यों के खुलासे पर आधारित है। उनका व्यक्तिगत ज्ञान पक्षकारों यानी आरोपी परिवार और शिकायतकर्ता परिवार के बीच दुश्मनी के पहलू तक सीमित है। अ०सा०-1 रिपोर्ट दर्ज कराने थाने आया था। अ०सा०-3 लिखित रिपोर्ट (एक्स.केए -1) का लेखक है। अ०सा०-1 ने लिखित रिपोर्ट की सामग्री की पुष्टि की है। अपनी जिरह में अ०सा०-1 ने कहा है कि वह रात नौ बजे घटनास्थल पर पहुंचे और जांच अधिकारी उसके दस मिनट बाद आए। जब जांच अधिकारी पहुंचे, लगभग उसी समय अ०सा०-3 भी आ गया।

29. अ०सा०-2 अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किया गया पहला चश्मदीद गवाह है। उसकी उम्र 19 साल है और वह पुरे बुनापुरवा, थाना सराय अकिल, जिला इलाहाबाद का रहने वाला है और छात्र है। उनका दावा है कि जब वह बेनीगंज से राजरूपपुर की ओर अ०सा०-3 के साथ आ रहे थे, तब लगभग 9.00 बजे या पौने 9.00 बजे थे। मृतक विपरीत दिशा यानी बेनीगंज से राजरूपपुर की ओर आ रहा था, तभी दो हमलावरों ने उसे मस्जिद से थोड़ा आगे रोक लिया। अ०सा०-2 मृतक का भतीजा है और उसका दावा है कि उसने इस घटना को देखा है।

30. अ०सा०-2 की यात्रा के उद्देश्य का खुलासा नहीं किया गया है। इस गवाह ने इलाहाबाद में अपने निवास स्थान का खुलासा नहीं किया है और न ही मृतक से मिलने या राजरूपपुर से उससे मिलने के लिए लौटने के लिए किसी विशेष कारण का खुलासा किया गया है। यह भी आरोप नहीं है कि यह उनका दैनिक मार्ग था। किसी विशेष उद्देश्य के संबंध में घटनास्थल पर उनकी उपस्थिति भी स्थापित नहीं हुई है। द०प्र०स० की धारा 161 के तहत अपने बयान में अ०सा०-2 ने दावा नहीं किया है कि वह मृतक से मिलने जा रहा था। मृतक से मिलने के किसी कारण का भी खुलासा नहीं किया गया है। इस प्रकार, अ०सा०-2 की गवाही से यह सुरक्षित रूप से अनुमान लगाया जा सकता है कि वह एक मौका गवाह है।

31. मामले पर आगे बढ़ने से पहले, इस मोड़ पर घटना के स्थान पर अ०सा०-3 की उपस्थिति से संबंधित परिस्थितियों की जांच करना उचित होगा। अ०सा०-3 करेला बाग कॉलोनी का रहने वाला है और उसकी उम्र करीब 48 साल है। वह कुछ काम कर रहे हैं। उसका दावा है कि वह अ०सा०-2 के साथ बेनीगंज से राजरूपपुर जा रहा था। मृतक अपने पिता की बहन (बुआ) का बेटा था और इस तरह अ०सा०-3 मृतक का पहला चचेरा भाई था। हालांकि, उन्होंने राजरूपपुर-बेनीगंज रोड पर हुई घटना के अभियोजन मामले के विपरीत, जीटी रोड पर घटना के स्थान का खुलासा किया है। उनका भी दावा है कि वह बेनीगंज में मृतक से मिलने गए थे, जहां उन्हें पता चला कि वह राजरूपपुर गए हैं और इसलिए अ०सा०-3 भी राजरूपपुर जा रहा था! अ०सा०-3 ने भी द०प्र०स० की धारा 161 के तहत अपने बयान में जांच अधिकारी को इस तथ्य का खुलासा नहीं किया था और न ही जांच अधिकारी को उनकी यात्रा के उद्देश्य का खुलासा किया गया था। इस प्रकार यह गवाह भी एक संयोग गवाह है।

32. एक और पहलू है, जिसे अ०सा०-2 और अ०सा०-3 की गवाही का मूल्यांकन करने से पहले ध्यान में रखा जाना चाहिए। अ०सा०-2 और अ०सा०-3 दोनों मृतक के भतीजे और चचेरे भाई होने से संबंधित हैं। मृतक और आरोपी के बीच पुरानी दुश्मनी की बात स्वीकार की गई है। दुश्मनी अपराध करने का कारण हो सकती है और झूठे निहितार्थ का कारण भी हो सकती है।

33. दोनों गवाह फिर भी मृतक से संबंधित हैं और स्पष्ट रूप से अभियुक्त की दोषसिद्धि में रुचि रखते हैं। इस प्रकार वे इच्छुक गवाहों की श्रेणी में आएंगे। इसलिए, अदालत को उनकी गवाही का मूल्यांकन करने में सावधानी बरतनी चाहिए, जिस पर अभियोजन का मामला टिका हुआ है।

34. मौका गवाह और इच्छुक गवाह के संबंध में कानून को हाल ही में सुप्रीम कोर्ट द्वारा राजेश यादव और एक अन्य बनाम यूपी राज्य, 2022 ऑनलाइन एससी 150 में

अभिव्यक्त किया गया है। निर्णय के पैरा 26 और 27 में न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है: –

"एक मौका गवाह वह है जो संयोग से अपराध होने के स्थान पर होता है, और इसलिए, निश्चित रूप से नहीं। दूसरे शब्दों में, उनके उक्त स्थान पर होने की उम्मीद नहीं है। सड़क पर चलने वाला व्यक्ति किसी अपराध को देखने का गवाह बन सकता है। केवल इसलिए कि एक गवाह संयोग से एक घटना को देखता है, उसकी गवाही से बचा नहीं जा सकता है, हालांकि कभी-कभी थोड़ी अधिक जांच की आवश्यकता हो सकती है। यह फिर से एक पहलू है जिसे अदालत द्वारा किसी दिए गए मामले में देखा जाना है। हम कानून की पूर्वोक्त स्थिति को दोहराना नहीं चाहते हैं जिसे इस न्यायालय द्वारा आंध्र प्रदेश बनाम के श्रीनिवासुलु रेड्डी, (2003) 12 एससीसी 660 राज्य में स्पष्ट रूप से निधारित किया गया है:

12. अ०सा० 4 और 9 के सबूतों के खिलाफ आलोचना की गई थी, जो स्वतंत्र गवाह हैं, उन्हें मौका गवाह के रूप में लेबल करके। अ०सा० 4 और 9 के मौके के गवाह होने के बारे में आलोचना भी बिना किसी आधार के है। उन्होंने स्पष्ट रूप से बताया है कि वे घटना स्थल पर कैसे हुए और ट्रायल कोर्ट और उच्च न्यायालय ने इसे स्वीकार कर लिया है।

13. अभियुक्तों की इस दलील पर आते हुए कि अ०सा० 4 और 9 "संयोग के गवाह" थे, जिन्होंने यह नहीं बताया है कि वे घटना के कथित स्थान पर कैसे हुए, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि उक्त गवाह स्वतंत्र गवाह थे। गवाहों को यह सुझाव भी नहीं दिया गया कि उनकी किसी भी आरोपी के प्रति कोई दुश्मनी है। स्वतंत्र गवाहों को "मौका गवाह" के रूप में वर्णित करके हत्या के मुकदमे में यह नहीं कहा जा सकता है कि उनके सबूत संदिग्ध हैं और घटनास्थल पर उनकी उपस्थिति संदिग्ध है। गवाहों को पहले से बुलाकर और उनको उपस्थित होने का अनुरोध करके हत्याएं नहीं की जाती हैं! यदि हत्या एक घर में की जाती है, तो घर के निवासी स्वाभाविक गवाह होते हैं। अगर किसी गली में हत्या की जाती है, तो केवल राहगीर ही गवाह होंगे। उनके सबूतों को दरकिनार नहीं किया जा सकता है या इस आधार पर संदेह की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता है कि वे केवल "संयोग के गवाह" हैं। "मौका गवाह" शब्द उन देशों से उधार लिया गया है जहां हर आदमी के घर को उसका महल माना जाता है और हर किसी के पास कहीं और या किसी अन्य व्यक्ति के महल में उसकी उपस्थिति के लिए स्पष्टीकरण होना चाहिए। यह एक ऐसे देश में काफी अनुपयुक्त अभिव्यक्ति है जहां लोग कम औपचारिक और अधिक आकस्मिक हैं, किसी भी दर पर अपनी उपस्थिति की व्याख्या करते हैं।

27. जरनैल सिंह बनाम इस मामले में इस अदालत द्वारा इस सिद्धांत को दोहराया गया था। पंजाब राज्य, (2009) 9 एससीसी 719:

21. सच्चेलाल तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 11 एससीसी 410: 2004 सुप्प एससीसी (सीआरआई) 105] इस न्यायालय ने हत्या के एक मामले में गवाह के साक्ष्य मूल्य पर विचार करते हुए जो एक गली में हुआ था और एक राहगीर ने गवाही दी थी कि उसने घटना देखी थी, निम्नानुसार देखा गया था: यदि अपराध सड़क पर किया जाता है तो केवल एक राहगीर ही गवाह होगा। उनके सबूतों को हल्के में नहीं लिया जा सकता है या इस आधार पर संदेह की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता है कि वह केवल एक संयोग गवाह थे। हालांकि, वहां उनकी उपस्थिति के लिए एक स्पष्टीकरण होना चाहिए। अदालत ने आगे बताया कि "मौका गवाह" शब्द उन देशों से उधार लिया गया है जहां हर आदमी के घर को उसका महल माना जाता है और हर किसी के पास कहीं और या किसी अन्य व्यक्ति के महल में उसकी उपस्थिति के लिए स्पष्टीकरण होना चाहिए। यह भारत जैसे देश में काफी अनुपयुक्त अभिव्यक्ति है जहां लोग अपनी उपस्थिति को समझाने के मामले में किसी भी दर पर कम औपचारिक और अधिक आकस्मिक हैं।

22. एक गवाह के साक्ष्य के लिए बहुत सतर्क और बारीकी से जांच की आवश्यकता होती है और एक मौका गवाह को घटना के स्थान पर अपनी उपस्थिति को पर्याप्त रूप से स्पष्ट करना चाहिए (सतबीर बनाम सूरत सिंह [(1997) 4 एससीसी 192: 1997 एससीसी (सीआरआई) 538], हरजिंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य [(2004) 11 एससीसी 253: 2004 सुप्प एससीसी (सीआरआई) 28], अचारपरमबाथ प्रदीपन बनाम केरल राज्य [2006 (2008) 1 एससीसी (सीआरआई) 241] और सर्वेश नारायण शुक्ला बनाम दरोगा सिंह [(2007) 13 एससीसी 360: (2009) 1 एससीसी (सीआरआई) 188)। एक संभावित गवाह की गवाही जिसकी घटना के स्थान पर उपस्थिति संदिग्ध है, को खारिज कर दिया जाना चाहिए (शंकरलाल बनाम राजस्थान राज्य [(2004) 10 एससीसी 632: 2005 एससीसी (सीआरआई) 579 के अनुसार)।

23. घटना के बाद गवाह के आचरण को भी विशेष रूप से ध्यान में रखा जा सकता है कि क्या उसने गांव में किसी और को घटना के बारे में सूचित किया है (थंगैया बनाम तमिलनाडु राज्य [(2005) 9 एससीसी 650: 2005 एससीसी (सीआरआई) 1284)। गुरचरण सिंह (अ०सा० 18) ने प्राथमिकी दर्ज करने से पहले शिकायतकर्ता दर्शन सिंह (अ०सा० 4) से मुलाकात की और गुरचरण सिंह (अ०सा० 18) और दर्शन सिंह (अ०सा० 4) ने साजिश के तथ्य का खुलासा नहीं किया। एफ.आई.आर में साजिश के तथ्य का उल्लेख नहीं किया गया है। इस मुद्दे पर एक अन्य गवाह हाकम सिंह से अभियोजन पक्ष ने पूछताछ नहीं की है। इस प्रकार, उच्च न्यायालय को साजिश से संबंधित अभियोजन मामले के हिस्से को खारिज करने में उचित ठहराया गया था। हालांकि, जहां तक वर्तमान अपील का

संबंध है, वर्तमान मामले की तथ्य स्थिति में, उक्त दो सह-अभियुक्तों को बरी करने का कोई असर नहीं है।

35. न्यायालय ने रिपोर्ट के पैराग्राफ 28 और 29 में संबंधित और इच्छुक गवाह के बीच अंतर पर भी विस्तार से प्रकाश डाला है, जिसे इस मुद्दे की बेहतर समझ के लिए बाद में पुन: प्रस्तुत किया गया है: –

"28. एक संबंधित गवाह को एक इच्छुक गवाह के रूप में नहीं कहा जा सकता है। अन्य परिस्थितियों के साथ-साथ घटना के स्थान को भी देखना होगा। एक संबंधित गवाह एक प्राकृतिक गवाह भी हो सकता है। यदि कोई अपराध मृतक के परिसर के भीतर किया जाता है, तो उसके परिवार के सदस्यों की उपस्थिति से इनकार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वे प्राकृतिक गवाहों की स्थिति ग्रहण करते हैं। जब उनके साक्ष्य स्पष्ट, ठोस और प्रति परीक्षण की कठोरता का सामना करते हैं, तो यह स्टर्लिंग हो जाता है, जिसे आगे की पुष्टि की आवश्यकता नहीं होती है। एक संबंधित गवाह एक इच्छुक गवाह बन जाएगा, केवल तभी जब वह आरोपी को जानबूझकर दोषसिद्धि प्रदान करने में फंसाने का इच्छुक हो।

29. जब अदालत प्रस्तुत साक्ष्य की गुणवत्ता से आश्वस्त हो जाती है, तो ऊपर उद्धृत वर्गीकरण के बावजूद, यह सबसे अच्छा सबूत बन जाता है। इस तरह की गवाही स्वाभाविक होने के कारण, संभावना की डिग्री को जोड़ते हुए, अदालत को एक तथ्य साबित करने में उस पर भरोसा करना होगा। भास्करराव बनाम भारत में कानून की पूर्वोक्त स्थिति को अच्छी तरह से निर्धारित किया गया है। महाराष्ट्र राज्य, (2018) 6 एससीसी 591:

"32. सबूतों की सराहना पर वापस आते हुए, शुरुआत में, हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित होता है कि गवाह आपस में जुड़े हुए थे, और इस न्यायालय को उनके बयानों को स्वीकार करने में सावधानी बरतनी चाहिए। संबंधित गवाह के साक्ष्य की सराहना से संबंधित कानून को फिर से परिभाषित करना फायदेमंद होगा। दलीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, 1954 एससीआर 145 : एआईआर 1953 एससी 364 : 1953 क्रि एलजे 1465, पीठ के लिए विवियन बोस, जे ने कानून का अवलोकन निम्नानुसार किया: (एआईआर पी 366, पैरा 26)

"एक गवाह को आम तौर पर स्वतंत्र माना जाता है जब तक कि वह उन स्रोतों से नहीं निकलता है जिनके दागी होने की संभावना है और आमतौर पर इसका मतलब है कि जब तक गवाह के पास आरोपी के खिलाफ दुश्मनी जैसे कारण नहीं हैं, उसे झूठा फंसाने की इच्छा रखते हैं। आम तौर पर, एक करीबी रिश्तेदार असली अपराधी की जांच करने और एक निर्दोष व्यक्ति को झूठा फंसाने वाला आखिरी व्यक्ति होगा। यह सच है, जब भावनाएं उफान पर होती हैं और दुश्मनी का व्यक्तिगत कारण होता है, एक निर्दोष व्यक्ति को खींचने की प्रवृत्ति होती है, जिसके खिलाफ एक गवाह दोषी के साथ दुर्भावना रखता है, लेकिन इस तरह की आलोचना के लिए नींव रखी जानी चाहिए और नींव होने से दूर संबंध का तथ्य अक्सर सच्चाई की एक निश्चित गारंटी है। हालांकि, हम किसी व्यापक सामान्यीकरण का प्रयास नहीं कर रहे हैं। प्रत्येक मामले को अपने स्वयं के तथ्यों के आधार पर आंका जाना चाहिए। हमारी टिप्पणियां केवल उन मामलों का मुकाबला करने के लिए की जाती हैं जो अक्सर हमारे सामने आने वाले मामलों में विवेक के सामान्य नियम के रूप में सामने रखी जाती हैं। ऐसा कोई सामान्य नियम नहीं है। प्रत्येक मामले को अपने स्वयं के तथ्यों तक सीमित होना चाहिए और नियंत्रित किया जाना चाहिए।

33. मसाल्टी वी में। उत्तर प्रदेश राज्य, (1964) 8 एससीआर 133 : एआईआर 1965 एससी 202: (1965) 1 क्रि एलजे 226), इस न्यायालय की पांच न्यायाधीशों की पीठ ने स्पष्ट रूप से निम्नानुसार टिप्पणी की है: (एआईआर पीपी 209-210, पैरा 14)

"14. ... इसमें कोई संदेह नहीं है कि जब एक आपराधिक अदालत को उन गवाहों द्वारा दिए गए सबूतों की सराहना करनी होती है जो पक्षपातपूर्ण या रुचि रखते हैं, तो उसे ऐसे सबूतों को तौलने में बहुत सावधान रहना पड़ता है। साक्ष्य में विसंगतियां हैं या नहीं; सबूत अदालत को वास्तविक मानते हैं या नहीं; सबूतों द्वारा प्रकट की गई कहानी संभावित है या नहीं, ये सभी मामले हैं जिन्हें ध्यान में रखा जाना चाहिए। लेकिन हमें लगता है कि यह तर्क देना अनुचित होगा कि गवाहों द्वारा दिए गए सबूतों को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया जाना चाहिए कि यह पक्षपातपूर्ण या इच्छुक गवाहों का सबूत है। अक्सर, जहां गांवों में गुट प्रबल होते हैं और ऐसे गुटों के बीच दुश्मनी के परिणामस्वरूप हत्याएं की जाती हैं, आपराधिक अदालतों को पक्षपातपूर्ण प्रकार के सबूतों से निपटना पड़ता है। इस तरह के सबूतों को केवल इस आधार पर यांत्रिक रूप से अस्वीकार करना कि यह पक्षपातपूर्ण है, हमेशा न्याय की विफलता का कारण बनेगा। कोई कठोर और तेज़ नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि कितने सबूतों की सराहना की जानी चाहिए। न्यायिक दृष्टिकोण को ऐसे सबूतों से निपटने में सतर्क रहना होगा; लेकिन यह दलील कि इस तरह के साक्ष्य को खारिज कर दिया जाना चाहिए क्योंकि यह पक्षपातपूर्ण है, को सही नहीं माना जा सकता है।

34. दरिया सिंह बनाम पंजाब राज्य [(1964) 3 एससीआर 397 : एआईआर 1965 एससी 328: (1965) 1 सीआरआई एलजे 350], इस न्यायालय ने कहा कि एक प्रत्यक्षदर्शी के साक्ष्य जो पीड़ित का निकट रिश्तेदार है, की बारीकी से जांच की जानी चाहिए लेकिन उसके साक्ष्य की स्वीकृति के लिए कोई पुष्टि आवश्यक नहीं है। हरबंस कौर बनाम हरियाणा राज्य [(2005) 9 एससीसी 195: 2005 एससीसी (सीआरआई) 1213: 2005 सीआरआई एलजे 2199], इस न्यायालय ने कहा कि: (एससीसी पी 227, पैरा 6) "6।

कानून में ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं है कि रिश्तेदारों को असत्य गवाह माना जाए। इसके विपरीत, जब पक्षपात की दलील यह दिखाने के लिए उठाई जाती है कि गवाहों के पास वास्तविक अपराधी को बचाने और आरोपी को गलत तरीके से फंसाने का कारण था, तो कारण दिखाया जाना चाहिए।

35. अंतिम मामला जो हमें खुद को चिंतित करने की आवश्यकता है, वह नामदेव वी है। महाराष्ट्र राज्य [(2007) 14 एससीसी 150: (2009) 1 एससीसी (सीआरआई) 773], जिसमें इस न्यायालय ने पिछले उदाहरणों को देखने के बाद कानून को निम्नलिखित तरीके से सारांशित किया है: (एससीसी पी 164, पैरा 38)

"38. ... यह स्पष्ट है कि एक करीबी रिश्तेदार को हितबद्ध गवाह के रूप में चित्रित नहीं किया जा सकता है। वह एक "प्राकृतिक" गवाह है। हालांकि, उनके सबूतों की सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए। यदि इस तरह की जांच पर, उसके साक्ष्य आंतरिक रूप से विश्वसनीय, स्वाभाविक रूप से संभावित और पूरी तरह से भरोसेमंद पाए जाते हैं, तो दोषसिद्धि ऐसे गवाह की "एकमात्र" गवाही पर आधारित हो सकती है। मृतक या पीड़ित के साथ गवाह का घनिष्ठ संबंध उसके साक्ष्य को अस्वीकार करने का कोई आधार नहीं है। इसके विपरीत, मृतक के करीबी रिश्तेदार आम तौर पर असली अपराधी को छोड़ने और एक निर्दोष व्यक्ति को गलत तरीके से फंसाने के लिए सबसे अनिच्छुक होंगे।

36. इस न्यायालय के उपर्युक्त दृष्टांतों के अध्ययन से, हम यह नोट कर सकते हैं कि जो कोई भी न्यायालय के समक्ष गवाह रहा है, जिसके परिणाम में गहरी रुचि है, यदि उसे उन लोगों के साथ समान तराजू में तौलने की अनुमति दी जाती है, जिनकी परिणाम में कोई रुचि नहीं है, तो विकृत सत्य के लिए अदालत के दरवाजे खोलना होगा। यह ध्वनि नियम जो इस प्रणाली का आधार बना हुआ है, और जो ऐसे स्रोतों से प्राप्त साक्ष्य के मूल्य को निर्धारित करता है, को सावधानीपूर्वक देखा और लागू करने की आवश्यकता है। इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि गवाह का हित उसकी गवाही को प्रभावित करना चाहिए, एक सार्वभौमिक सत्य है। इसके अलावा, पूर्वाग्रह के प्रभाव में, एक आदमी सही तरीके से न्याय करने की स्थिति में नहीं हो सकता है, भले ही वे ईमानदारी से ऐसा करने की इच्छा रखते हों। इसी तरह, वह निष्पक्ष तरीके से सबूत प्रदान करने की स्थिति में नहीं हो सकता है, जब इसमें उसका हित शामिल हो। ऐसे प्रभावों के तहत, मनुष्य, भले ही सचेत रूप से नहीं, कुछ तथ्यों को दबा देगा, दूसरों को नरम या संशोधित करेगा, और अनुकूल रंग प्रदान करेगा। ये मानव गवाही की विश्वसनीयता के संबंध में सबसे अधिक नियंत्रित विचार हैं, और साक्ष्य के नियमों को लागू करने और प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत सच्चाई के पैमाने में इसके वजन को निर्धारित करने में कभी भी अनदेखी नहीं की जानी चाहिए।

36. उपरोक्त कानून के संदर्भ में हमें दो इच्छुक गवाहों की गवाही की सावधानीपूर्वक जांच करने की आवश्यकता है ताकि यह पता लगाने के लिए उनकी विश्वसनीयता निर्धारित की जा सके कि अभियोजन पक्ष ने उचित संदेह से परे अपना मामला स्थापित किया है या नहीं।

37. अ०सा०-2 का दावा है कि जब मृतक राजरूपपुर से बेनीगंज लौट रहा था, तो दो व्यक्तियों ने उसे मस्जिद के बाद थोड़ा आगे रोक दिया। उन्होंने शुरू में बात की और फिर मृतक के साथ दुर्व्यवहार किया और दो गोलियां चलाईं, जिससे मृतक की मौत हो गई। उनका दावा है कि जब उन्होंने गोली चलने की आवाज सुनी तो वह 10-15 क़दम की दूरी पर थे। गोली की आवाज सुनकर गवाह रुक गया और हमलावर अपनी मोटरसाइकिल पर कर्बला की ओर भाग गए, जब तक कि गवाह घटना स्थल पर पहुंच गए।

38. इस गवाह ने आगे कहा कि वह पूर्व से आने के बाद पश्चिम से दक्षिण की ओर जा रहा था और जिस सड़क पर यह घटना हुई वह पूर्व से पश्चिम की ओर जा रही थी।

39. हमने साइट प्लान देखा है जिसमें जिस सड़क पर घटना हुई है वह उत्तर से दक्षिण की ओर चल रही है और साइट प्लान में राजरूपपुर को दक्षिण की ओर दिखाया गया है। मृतक इस प्रकार दक्षिण से आ रहा था और उत्तर की ओर जा रहा था, जबकि 19 अ०सा०-2 पश्चिम और दक्षिण की ओर विपरीत दिशा में जा रहा था। इस प्रकार मृतक की दिशा उत्तर की ओर थी जबकि अ०सा०-2 दक्षिण की ओर थी। अ०सा०-2 भी मृतक और हमलावरों की तरह मोटरसाइकिल पर था।

40. अ०सा०-2 के बयान से पता चलता है कि मृतक और अ०सा०-2 दोनों मोटरबाइक पर थे और विपरीत दिशाओं में यात्रा कर रहे थे। हालांकि अ०सा०-2 में कहा गया है कि वह घटनास्थल पर मौजूद थे, लेकिन उनके द्वारा यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि क्या उन्होंने मृतक को पार किया था जो दूसरी दिशा से आ रहा था या नहीं?

41. अ०सा०-2 ने हालांकि स्वीकार किया है कि उसने 10-15 क़दम की दूरी से गोलियों की आवाज सुनी और जब तक वह मृतक के पास आया तब तक हमलावर कर्बला की ओर भाग चुके थे।

42. अ०सा०-2 और मृतक की दिशा दो घटनाओं के विपरीत होना संभव है। या तो वह मृतक को पार कर चुका था या उसे पार करना बाकी था। यदि उसने मृतक को पार किया था, तो गवाह अ०सा०-2 मृतक को पार करने के बाद दक्षिण की ओर उन्मुख था, जबकि मृतक उत्तर की ओर बढ़ रहा था। उस परिदृश्य में घटना गवाह की पीठ पर 10-15 क़दम की दूर हुई होगी और यह विश्वास करना मुश्किल है कि अ०सा०-2 ने घटना देखी होगी।

43. यदि हम वैकल्पिक परिदृश्य लेते हैं तो अ०सा०-2 को मृतक को पार करना बाकी था। मृतक अ०सा०-2 से 10-15 क़दम की दूरी पर था और यह कल्पना करना मुश्किल है कि अ०सा०-2 हमलावरों द्वारा मृतक को कैसे रोक सकता था; इसके बाद उनकी बातें हुईं और गालियां दी गईं और अंत में गोलीबारी की गई। उस घटना में हमलावरों की दिशा उत्तर की ओर होगी और उनकी पीठ अ०सा०-2 की ओर होगी। हमलावर आखिरकार कर्बला रोड पर उत्तर की ओर भाग गए। अ०सा०-2 द्वारा उस घटना में हमलावरों को पहचानने की संभावना दूरस्थ और संदिग्ध होगी।

44. दोनों घटनाओं में से किसी में भी यह स्वीकार करना मुश्किल है कि अ०सा०-2 ने घटना को देखा। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि यह एक रात की घटना थी और साइट प्लान में कोई स्ट्रीट लाइट मौजूद नहीं दिखाई गई है। यहां तक कि अगर हम श्री त्रिवेदी के तर्क को स्वीकार करते हैं कि बगल की दुकान में प्रकाश उपलब्ध था, फिर भी, हमें संदेह है कि गवाह के लिए 10-15 क़दम की दूरी पर मोटरबाइक से आरोपी को स्पष्ट रूप से पहचानना पर्याप्त था या नहीं। ऐसी परिस्थितियों में अभियोजन का मामला संदिग्ध हो जाता है।

45. अ०सा०-2 की गवाही एक अलग पहलू से भी थोड़ी मनोरंजक है। अ०सा०-2 में कहा गया है कि वह आरोपी को पहले से नहीं जानता था। घटना को देखते ही वह सीधे अ०सा०-1 पहुंचे और उन्हें घटना की जानकारी दी। वह यह पता लगाने के लिए घटना स्थल पर नहीं लौटा कि उसके चाचा (मृतक) मर चुके हैं या जीवित हैं या कोई रिपोर्ट दर्ज की गई है। उस दिन या अगली तारीख पर भी उनका बयान दर्ज नहीं किया गया था। वह (अ०सा०-2) दावा करता है कि वह अपने गांव के लिए रवाना हो गया है और पांचवें दिन वह इमली गांव के लिए रवाना हो गया। इमली गांव संयोग से वह गांव है जहां आरोपी अपीलकर्ता रहता था। जिरह में इस गवाह ने कहा है कि इमली गांव में उसने आरोपी के बारे में पूछताछ की थी। एक विशेष प्रश्न के उत्तर में, अ०सा०-2 ने स्वीकार किया कि मृतक की मृत्यु के बाद वह आरोपी दद्दू पांडे की पहचान करने में लगे रहे। इससे साफ पता चलता है कि अ०सा०-2 ने पहले ही तय कर लिया था कि हमलावर आरोपी दद्दू पांडेय है और गांव इमली जाने का मकसद सिर्फ उसकी पहचान की पुष्टि करना था।

46. अ०सा०-2 ने ग्राम इमली का दौरा किया जहां आरोपी दद्दू पांडे रहता था और एक ग्रामीण ने आरोपी दद्दू पांडे की पहचान के बारे में सूचित किया। हालांकि, ऐसे ग्रामीण के नाम का खुलासा नहीं किया गया है। अभियोजन पक्ष के अनुसार, जिस तरह से आरोपी अपीलकर्ता दद्दू पांडे की पहचान स्थापित की गई है, उसमें बहुत सारे संयोग हैं और अभियोजन पक्ष के बयान पर संदेह पैदा करते हैं।

47. दिलचस्प बात यह है कि अ०सा०-2 का बयान जांच अधिकारी द्वारा केवल 23.7.2005 को दर्ज किया गया था यानी घटना के पांचवें दिन, जब तक उन्होंने आरोपी अपीलकर्ता को पहचान लिया था। जिस तरह से अ०सा०-2 ने आरोपी अपीलकर्ता की पहचान की है, वह संदिग्ध बना हुआ है।

48. एक अन्य आरोपी राजेश कुमार मिश्रा को भी गिरफ्तार किया गया था और उस पर परीक्षण पहचान परेड आयोजित की गई थी लेकिन अ०सा०-2 उसे पहचानने में विफल रहा।

49. आरोपी अपीलकर्ता की पहचान करने के लिए अ०सा०-2 ने जिस परिस्थितियों और अजीब तरीके से इमली गांव की यात्रा की, वह मृतक और आरोपी के बीच मौजूद मजबूत दुश्मनी की पृष्ठभूमि में महत्वपूर्ण है।

50. अ०सा०-2 की प्रति-परीक्षा 13-7-2007 को संपन्न हुई। अ०सा०-3 को उसके बाद 25-7-2007 को साक्ष्य के रूप में पेश किया गया था। हालांकि अ०सा०-3 और अ०सा०-2 मोटरबाइक पर एक साथ थे लेकिन अ०सा०-3 का संस्करण अ०सा०-2 से अलग है। अ०सा०-3 ने बताया है कि वह अ०सा०-2 के साथ राजरूपपुर की ओर जा रहा था और उसने मृतक को मसजिद के पास देखा और उसे रुकने का इशारा किया। अ०सा०-3 और अ०सा०-2 हालांकि थोड़ा आगे जाकर मृतक की ओर लौटे तो देखा कि हमलावर मृतक को गाली दे रहे हैं और उस पर गोली चला रहे हैं। जब तक 22 अ०सा०-3 मृतक के पास पहुंची, तब तक उसकी मौत हो चुकी थी और हमलावर फरार हो चुके थे।

51. अ०सा०-3 ने अपनी जिरह में कहा है कि यह घटना जीटी रोड पर उनके आवास से राजरूपपुर जाने वाली सड़क पर हुई, जो अभियोजन पक्ष द्वारा साइट प्लान में बताई गई घटना की जगह से अलग है। इस प्रकार दो चश्मदीद गवाहों की गवाही के अनुसार घटना के स्थान के संबंध में एक मुद्दा उठाया गया है, जिससे अभियोजन पक्ष के मामले पर संदेह बढ़ जाता है। इस गवाह ने यह भी स्वीकार किया है कि उसने जांच अधिकारी को मृतक से मिलने के उद्देश्य के बारे में नहीं बताया था या उसे बेनीगंज में पता चला था कि मृतक राजरूपपुर के लिए रवाना हो गया था।

52. अपनी जिरह में अ०सा०-3 ने स्वीकार किया कि जिस सड़क पर यह घटना हुई वह उत्तर से दक्षिण की ओर जाती है और वह दक्षिण की ओर जा रहा था। उन्होंने भी कहा है कि उन्होंने 10-15 क़दम की दूरी से गोली चलने की आवाज सुनी।

53. इस गवाह का सामना द०प्र०स० की धारा 161 के तहत उसके पिछले बयान से कराया गया है, जिसमें उसने इस तथ्य का खुलासा नहीं किया था कि उसने मृतक को रुकने का इशारा किया था या वह मृतक की ओर लौटा था और फिर घटना को देखा था। द०प्र०स० की धारा 161 के तहत उनका बयान भी 27.7.2005 को देर से दर्ज किया गया था

यानी घटना के लगभग 09 दिनों के बाद, जिसके लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है।

54. अ०सा०-5, जांच अधिकारी ने कहा है कि न तो अ०सा०-2 और न ही अ०सा०-3 ने उन्हें सूचित किया था कि वे मृतक से मिलने जा रहे थे या बेनीगंज पहुंचने पर उन्हें पता चला कि मृतक राजरूपपुर गया था। उन्होंने यह भी कहा कि अ०सा० 3 ने उन्हें कभी सूचित नहीं किया कि उन्होंने मृतक को रुकने का इशारा किया या वे आगे बढ़ गए थे और लौटने पर गोलीबारी की घटना देखी। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि घटना के स्थान पर साइट प्लान में बिजली पोल नहीं दिखाया गया था।

55. अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार दोनों चश्मदीद गवाह, अर्थात् अ०सा०-2 और अ०सा०-3 एक बाइक पर एक साथ थे। अभियोजन पक्ष के अनुसार उन्होंने एक साथ घटना देखी है। इस प्रकार यह उम्मीद की जाएगी कि वे घटना को देखने के तरीके के बारे में तथ्यात्मक दावों पर सुसंगत होंगे।

56. हम पहले ही देख चुके हैं कि अ०सा०-2 ने अपने बयान में घटना को देखने के तरीके को स्पष्ट नहीं किया था। यह स्पष्ट नहीं किया गया था कि उसने मृतक को पार किया था या नहीं और हमने पहले ही अ०सा०-2 द्वारा इस तरह के कारण देखी जा रही घटना के बारे में अपना संदेह व्यक्त किया है। अ०सा०-3 का बयान कि उसने मृतक को रुकने का संकेत दिया और घटना को देखकर वापस आ गया, स्पष्ट रूप से अ०सा०-2 द्वारा बताए गए अ०सा०-3 के बयान में सुधार है। द०प्र०स० की धारा 161 के तहत अ०सा०-3 का बयान दर्ज करते समय जांच अधिकारी को इस तरह का खुलासा नहीं किया गया था। अ०सा०-2 की तुलना में अ०सा०-3 की गवाही में यह असंगति न केवल घटना के स्थान पर उनकी उपस्थिति पर बल्कि घटना को देखने पर भी गंभीर संदेह पैदा करती है।

57. हमें वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मनीष तिवारी के इस तर्क में भी दम नजर आता है कि अ०सा०-2 और अ०सा०-3 का आचरण घायल के पास नहीं रुकना, उसे अस्पताल ले जाने या चिकित्सा सहायता प्रदान करने के लिए कोई प्रयास नहीं करना या पूछताछ आदि के समय उपस्थित होने में विफल रहना और उनके बयान दर्ज करने में देरी अभियोजन पक्ष के मामले में संदेह पैदा करने वाले कारक हैं।

58. वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सतीश त्रिवेदी का तर्क है कि एफ.आई.आर में अभियुक्त का नाम न लेने से अभियोजन की निष्पक्षता का पता चलता है, हालांकि शुरुआत में आकर्षक लगता है, लेकिन यह अपने आप में अभियोजन पक्ष के मामले की विश्वसनीयता को कम नहीं कर सकता है। अभियोजन पक्ष के गवाह मौके और इच्छुक गवाह की श्रेणी में आते हैं और उनकी गवाही पर भरोसा करने से पहले उन्हें पूरी तरह से विश्वसनीय दिखाना होगा। अ०सा०-2 और अ०सा०-3 की गवाही का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन करने पर हम पाते हैं कि घटना के स्थान पर उनकी उपस्थिति के बारे में संदेह बना हुआ है और जिस तरह से उन्होंने कथित तौर पर घटना को देखा था।

59. अन्यथा पार्टियों के बीच दुश्मनी स्वीकार की जाती है, जो दोधारी तलवार के रूप में कार्य करती है और दोनों तरीकों को काटती है। यह अपराध करने का एक कारण हो सकता है और झूठे निहितार्थ का कारण भी हो सकता है। इस तरह के मामले में अदालत को अन्यथा यह निर्धारित करने के लिए सबूतों का विश्लेषण करने में सावधान और सतर्क रहना होगा कि गवाह पूरी तरह से विश्वसनीय, पूरी तरह से अविश्वसनीय या आंशिक रूप से विश्वसनीय और आंशिक रूप से अविश्वसनीय हैं या नहीं।

60. जैसा कि पहले देखा गया है, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 मौका और इच्छुक गवाह हैं और उनके बयानों का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन उनकी गवाही में भौतिक विरोधाभास दिखाता है जो काफी हद तक अस्पष्ट है। घटना स्थल पर उनकी उपस्थिति या जिस तरह से उन्होंने घटना को देखा, वह संदिग्ध बना हुआ है। उनका आचरण भी स्वाभाविक नहीं है। एक साथ रहने के दौरान उनके संस्करण में अंतर अस्पष्ट बना हुआ है। अ०सा०-2 के संस्करण के अलावा अ०सा०-3 के बयान में सुधार, अ०सा०-2 की मौखिक गवाही में कमियों को स्पष्ट करने की मांग करना, अभियोजन पक्ष के मामले पर पर्याप्त संदेह पैदा करता है ताकि इसे निर्भरता के लिए अयोग्य बना दिया जाए। एक बार ऐसा होने के बाद, हम बचाव पक्ष द्वारा उठाए गए अन्य पहलुओं की जांच करने के इच्छुक नहीं हैं, जिसमें आरोपी अपीलकर्ता की पहचान निर्धारित करने के लिए आइडेंटिफिकेशन परेड टेस्ट आयोजित नहीं करना और इस तरह के पहलू पर बार में उद्धृत फैसले शामिल हैं। हम पाते हैं कि टी.आई.पी. मुद्दे के बावजूद अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही विश्वसनीय नहीं पाई जाती है।

61. ट्रायल कोर्ट ने रिकॉर्ड पर लाए गए तथ्यों और सबूतों को देखने के बाद फैसले के पैराग्राफ 38 से 48 में सबूतों का विश्लेषण किया है, जिसे हमारे द्वारा सावधानीपूर्वक जांचा गया है। नीचे दी गई अदालत ने अ०सा०-2 और अ०सा०-3 की गवाही पर भरोसा करते हुए अभियोजन पक्ष के मामले को सावधानीपूर्वक जांच और विश्लेषण के अधीन किए बिना स्वीकार कर लिया है। तथ्य यह है कि अ०सा०-2 और अ०सा०-3 मौका और इच्छुक गवाह हैं और उनकी गवाही कई अस्पष्ट पहलुओं को पूरी तरह से अछूता छोड़ देती है। इसलिए, हम अपने फैसले में निहित कारणों के लिए दोषसिद्धि और सजा के फैसले को मंजूरी नहीं देते हैं।

62. ऊपर की गई चर्चाओं और विचार-विमर्श के लिए, हम पाते हैं कि अभियोजन पक्ष सभी उचित संदेहों से परे आरोपी अपीलकर्ता के अपराध को स्थापित करने में विफल रहा है। अपीलकर्ता जो पहले ही बारह साल से अधिक समय तक वास्तविक कारावास में रह चुका है, इस मामले में संदेह के लाभ का हकदार है।

63. नतीजतन, वर्तमान अपील सफल होती है और अनुमति दी जाती है। अपर सत्र न्यायाधीश (पूर्व संवर्ग), न्यायालय संख्या 20, इलाहाबाद द्वारा दिनांक 31.07.2012 को पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 31.07.2012 को 2006 के सत्र विचारण संख्या 99 में, जो 2005 के केस अपराध संख्या 152 के तहत भारतीय दंड संहिता, पुलिस स्टेशन खुल्दाबाद, जिला इलाहाबाद और 2006 के सत्र विचारण संख्या 100 में पारित किया गया था। शस्त्र अधिनियम की धारा 3/25 के तहत थाना खुल्दाबाद, जिला इलाहाबाद को निरस्त किया जाता है। चूंकि आरोपी अपीलकर्ता जेल में है, इसलिए उसे तुरंत स्वतंत्रता दी जाएगी, जब तक कि वह द०प्र०स० की धारा 437-ए के अनुपालन के अधीन किसी अन्य मामले में वांछित न हो।

(2023) 1 ILRA 637

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक साइड

दिनांक: इलाहाबाद 04.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा
माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद

आपराधिक अपील संख्या - 6107 वर्ष 2018

श्रीमती गीता राकेश ...अपीलकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य ...उत्तरदाता

अपीलकर्ता के वकील:
राज कुमार मिश्रा, आदित्य गुप्ता, आशीष मल्होत्रा, आरबी सिंह

प्रतिवादी के वकील:
शासकीय अधिवक्ता, इमरान उल्लाह

ए. आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता 1860 – धारा 120-बी, 188, 363, 370(3), 370(5) और 370(7) – अनैतिक व्यापार (रोकथाम) अधिनियम, 1956 – धारा 9 - यू.पी. अनैतिक व्यापार (रोकथाम) नियम , 1993 – नियम 38 - यौन अपराध से बच्चों की रोकथाम अधिनियम, 2012– धारा 16 और 17 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1972 - धारा 65- बी (4) - दोषसिद्धि और सजा के विरुद्ध अपील – स्थिरता – अधीक्षक के विरुद्ध 43 कैदियों को उनके बच्चों के साथ रिहा करने का आरोप लगाया गया था - एक वर्ष की हिरासत अवधि दिनांक 20.05.2017 को समाप्त होने वाली थी - एफ.आई.आर. उप मुख्य परिवीक्षा अधिकारी की रिपोर्ट पर दर्ज किया गया था जिसमें कहा गया था कि हिरासत की अवधि दिनांक 18.05.2017 के आदेश द्वारा बढ़ा दी गई थी, जिसका अनुपालन नहीं किया गया था – ज्ञान की कमी का बचाव किया गया था और दिनांक 18.05.2017 के आदेश की कोई सेवा नहीं की गई थी – प्रासंगिकता - आयोजित, अभियोजन यह स्थापित करने में विफल रहा है कि दिनांक 18.5.2017 का आदेश आरोपी अपीलकर्ता को प्रदान किया गया था या 24.5.2017 से पूर्व अधीक्षक, सरकारी महिला संरक्षण गृह, आगरा के कार्यालय में प्राप्त हुआ था जब रिहा कर दिया गया – 43 कैदियों व उनके आठ बच्चे को रिहा कर दिया गया था – रिहा किए गए कैदी इन आठ नाबालिग बच्चों के प्राकृतिक अभिभावक थे। हिरासत की अवधि समाप्त होने पर कैदियों की रिहाई 1956 के अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार कोई अपराध नहीं होगी। (पैरा 54, 60, 61, 70 और 71)

अपील की अनुमति प्रदान की गई। (ई-1)

(माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा के द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता की ओर से श्री आदित्य गुप्ता के साथ-साथ सुश्री सौम्या चतुर्वेदी द्वारा सहायता प्राप्त वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जीएस चतुर्वेदी को सुना; राज्य के अतिरिक्त महाधिवक्ता केएम मीणा और पीडब्ल्यू-2 की ओर से श्री फैज अहमद और श्री यशदीप रस्तोगी, श्री इमरान उल्लाह का विवरण लिया और वर्तमान आपराधिक अपील के रिकॉर्ड का अवलोकन किया।
2. यह आपराधिक अपील विशेष न्यायाधीश (पॉक्सो अधिनियम)/VIII अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, आगरा द्वारा 2017 के केस क्राइम नंबर 455 से उत्पन्न विशेष ट्रायल नंबर 1848 में धारा 370 (3), 370 (5), 370 (7), 363, 188, 120 बी आईपीसी के तहत पारित 6.10.2018 के फैसले और आदेश के खिलाफ निर्देशित की जाती है; 9 अनैतिक व्यापार (रोकथाम) अधिनियम और धारा 16/17 पॉक्सो अधिनियम, पुलिस स्टेशन – एत्माद्दौला, जिला आगरा; जिसके तहत अपीलकर्ता श्रीमती गीता राकेश को आईपीसी की धारा 370 (3) के तहत दोषी ठहराया गया है और 10 साल के कठोर कारावास के साथ 50,000 रुपये का जुर्माना, जिसका भुगतान न करने पर, छह महीने के अतिरिक्त कठोर कारावास की सजा; भारतीय दंड संहिता की धारा 370 (5) के तहत 14 वर्ष के सश्रम कारावास के साथ-साथ 1,00,000/- रुपये के जुर्माने की सजा, जिसका भुगतान न करने पर, और एक वर्ष के अतिरिक्त सश्रम कारावास की सजा; भारतीय दंड संहिता की धारा 370 (7)

के तहत 1,00,000 रुपये के जुर्माने के साथ कठोर आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई और जिसका भुगतान न करने पर, एक वर्ष के अतिरिक्त सश्रम कारावास की सजा दी गई। भारतीय दंड संहिता की धारा 363 के तहत पांच वर्ष के सश्रम कारावास के साथ-साथ 1,00,000/- रुपये के जुर्माने की सजा, जिसका भुगतान न करने पर और एक वर्ष के अतिरिक्त सश्रम कारावास की सजा; भारतीय दंड संहिता की धारा 188 के तहत छह महीने के साधारण कारावास के साथ 1,000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई है। भारतीय दंड संहिता की धारा 120बी के तहत 1,00,000 रुपये के जुर्माने के साथ कठोर आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई, जिसका भुगतान न करने पर और एक वर्ष का अतिरिक्त सश्रम कारावास; अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम की धारा 9 के तहत 10 वर्ष के सश्रम कारावास के साथ-साथ 1,00,000/- रुपये का जुर्माना, जिसका भुगतान न करने पर और एक वर्ष का अतिरिक्त सश्रम कारावास; पोक्सो अधिनियम की धारा 16 के साथ-साथ धारा 17 के तहत 1,00,000 रुपये के जुर्माने के साथ कठोर आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई, जिसका भुगतान न करने पर और एक वर्ष का अतिरिक्त सश्रम कारावास! सभी सज़ायें को अलग-अलग चलाने के लिए निर्देशित किया जाता है।

3. आरोपी अपीलकर्ता गीता राकेश आगरा में सरकारी संरक्षण गृह (महिला) के अधीक्षक के रूप में तैनात थी। यह पता चला है कि इलाहाबाद में राज्य प्राधिकारियों ने अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956 (जिसे बाद में 1956 का अधिनियम कहा जाता है) की धारा 16 का उल्लेख करते हुए एक कार्य शुरू किया, जिसमें अनैतिक तस्करी में शामिल 67 महिलाओं और सैंतीस बच्चों को बचाया गया। इन बचाए गए पीड़ितों को 1956 के अधिनियम की धारा 17 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया, जिन्होंने 21.5.2016 को एक आदेश पारित किया, जिसमें इन बचाए गए पीड़ितों को आरोपी अपीलकर्ता की देखभाल और नियंत्रण में आगरा में सरकारी संरक्षण गृह (महिला) में रखने का निर्देश दिया गया। दिनांक 21.5.2016 के आदेश में बरामद कैदियों की हिरासत की अवधि एक वर्ष या अगले आदेश के लिए निर्दिष्ट की गई है। इस आदेश के अनुसार एक वर्ष की हिरासत अवधि 20.5.2017 को समाप्त होनी थी। आरोपी अपीलकर्ता ने 21.5.2017 से 23.5.2017 के बीच 43 कैदियों को उनके आठ बच्चों के साथ इस आधार पर रिहा कर दिया कि उनकी हिरासत की अवधि समाप्त हो गई है। अपीलकर्ता द्वारा बचाए गए इन पीड़ितों की रिहाई ने अंततः उसके अभियोजन और परिणामी सजा का कारण बना है।

4. ऐसा प्रतीत होता है कि मजिस्ट्रेट, जिन्होंने 1956 के अधिनियम की धारा 17 (4) के तहत हिरासत का प्रारंभिक आदेश पारित किया था, ने 18.5.2017 के अपने पाश्चवर्ती आदेश के माध्यम से इन बचाए गए पीड़ितों की हिरासत की अवधि को दो साल की अवधि के लिए बढ़ा दिया। यह आदेश कथित तौर पर संबंधित मजिस्ट्रेट के कार्यालय द्वारा व्हाट्सएप/ ई-मेल और पंजीकृत डाक द्वारा भेजा गया था। अपीलकर्ता के खिलाफ प्राथमिक आरोप यह है कि उसने 18.5.2017 के आदेश का उल्लंघन करते हुए बचाए गए पीड़ितों को रिहा कर दिया।

5. इन 43 कैदियों को उनके आठ बच्चों के साथ रिहा करने के तथ्य को श्री सुनील कुमार (पीडब्ल्यू -2) द्वारा राज्य के अधिकारियों के समक्ष उजागर किया गया था।

6. अधिकारियों के समक्ष लाए गए तथ्यों को ध्यान में रखते हुए आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 370, 363, 188, 120 बी आईपीसी और 1956 के अधिनियम की धारा 9 के तहत पीडब्ल्यू -1 की लिखित रिपोर्ट के अनुसार 2017 के केस क्राइम नंबर 455 के रूप में एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई। जांच के समापन पर आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ एक आरोप-पत्र दायर किया गया था, जिसके कारण 2017 के केस क्राइम नंबर 455 से उत्पन्न 2017 के विशेष ट्रायल नंबर 1848 में उसे धारा 370 (3), 370 (5), 370 (7), 363, 188, 120 बी आईपीसी के अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम और 16/17 पॉक्सो अधिनियम, पुलिस स्टेशन - एत्माद्दौला, जिला आगरा; और दिनांक 6.10.2018 के निर्णय और आदेश के के तहत अंतिम दोषी और सजा ठहराया गया, जिसे वर्तमान अपील में चुनौती दी गई है।

7. अधिकारियों के ध्यान में यह भी लाया गया था कि इलाहाबाद की सक्षम अदालत ने पहले 3.2.2017 को इन 67 पीड़ितों में से बाईस को रिहा करने के आदेश पारित किए थे। संबंधित अदालत के इस आदेश को 2017 की अपील की विशेष अनुमति (आपराधिक) संख्या 3324 में चुनौती दी गई थी और 13.2.2017 को सुप्रीम कोर्ट ने और फिर 21.4.2017 को रिहा किए गए कैदियों को पुनः प्राप्त करने और आगरा में सरकारी संरक्षण गृह (महिला) में फिर से रखने का निर्देश दिया था।

8. अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि बरामद किए गए 67 पीड़ितों को दिनांक 21.5.2016 के आदेश के तहत एक वर्ष की अवधि के लिए आगरा में सरकारी संरक्षण गृह (महिला) में रखा गया था। एफआईआर में आगे कहा गया है कि मजिस्ट्रेट के 18.5.2017 के आदेश के तहत इन कैदियों की हिरासत की अवधि दो साल की अवधि के लिए बढ़ा दी गई थी। यह आदेश कथित तौर पर आरोपी अपीलकर्ता को दिया गया था और इसकी सामग्री वास्तव में 20.5.2017 को ही आरोपी अपीलकर्ता द्वारा उसके व्हाट्सएप पर देखी गई थी, फिर भी उसने मजिस्ट्रेट या सक्षम अदालत द्वारा पारित किसी भी आदेश के बिना अपने आठ बच्चों के साथ 43 बंदियों को रिहा कर दिया। नोटरी हलफनामा और वचन पत्र आदि प्राप्त करने के बाद

43 कैदियों को उनके आठ बच्चों के साथ उनके कथित परिवार के सदस्यों/सुपुर्दगुरों को रिहा करने की आरोपी अपीलकर्ता की कार्रवाई आईपीसी, पॉक्सो अधिनियम और 1956 के अधिनियम के तहत अपराध है। यह एफआईआर उप मुख्य परिवीक्षा अधिकारी, निदेशालय, महिला कल्याण, उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा दिनांक 1.6.2017 को भेजी गई एक लिखित रिपोर्ट के आधार पर दर्ज की गई है।

9. मामले में जांच आगे बढ़ी और सीआरपीसी की धारा 161 के तहत विभिन्न गवाहों के बयान दर्ज किए गए, दो कैदियों के बयान भी सीआरपीसी की धारा 164 के तहत दर्ज किए गए थे, जिन्हें अभी तक रिहा नहीं किया गया था, विभिन्न टीमों को रिहा किए गए कैदियों का पता लगाने के लिए भेजा गया था, लेकिन वे अपने प्रकट पते पर नहीं पाए गए और एक निष्कर्ष निकाला गया कि ये कैदी एक बार और अनैतिक तस्करी में शामिल हो सकते हैं। कैदियों के साथ सुपरदगारों के संबंधों के बारे में भी संदेह व्यक्त किया गया था। जांच अधिकारी ने इन पीड़ितों की हिरासत की अवधि बढ़ाने वाले 18.5.2017 के बाद के आदेश को भेजने के बारे में दस्तावेज भी एकत्र किए और 21.8.2017 को आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप-पत्र प्रस्तुत किया। मजिस्ट्रेट ने आरोप-पत्र पर संज्ञान लिया और मामले को सत्र अदालत में भेज दिया। सत्र न्यायालय ने आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ निम्नलिखित आरोप तय किए: –

''मैं, सुनील कुमार मिश्र, विशे ा न्यायाधीश/(च्ब्ैब ।बज)/अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या–17, आगरा आप गीता राकेश को निम्न आरोप से आरोपित करता हूँः–

प्रथमः यह कि राजकीय संरक्षण गृह (महिला), आगरा की अधीक्षिका के पद पर रहते हुये आपको उप जिला मजिस्ट्रेट, सदर इलाहाबाद के आदेश दिनांक 21.05.2016 के तहत 67 पीड़िताएं और 37 बच्चों को एक साल या अग्रिम आदेश तक के लिये नारी संरक्षण गृह (महिला), आगरा में आवासित किये जाने का आदेश दिया गया था। इनमें से 22 पीड़िताओं को अपर सत्र न्यायाधीश, इलाहाबाद के आदेश से मुक्त कर दिया गया था। उप जिला मजिस्ट्रेट, सदर, इलाहाबाद ने अपने आदेश दिनांक 18.05.2017 से ो ा बची 45 पीड़िताओं और उनके बच्चों को अपने इन पीड़िताओं में से 43 पीड़िताओं व उनके बच्चों को बिना समुचित आदेश के दिनांक 21.05.2017 से 23.05.2017 के मध्य किसी समय पर राजकीय संरक्षण गृह (महिला), अंतर्गत थाना–एत्माद्दौला, जिला आगरा में अवमुक्त कर दिया। चुंकि अवमुक्त की गयी पीड़िताओं की संख्या काफी है और पीड़िताएं अवमुक्त होने के बाद अपने अंकित पते पर मौजूद नहीं मिली। पीड़िताओं को अवमुक्त करते समय उनके संबंध में समुचित अण्डरटेकिंग व आई0डी0 प्रूफ आदि भी नहीं मिले, जिससे उनके दुर्व्यापार में सम्मिलित होने की प्रबल सम्भावना है। इस प्रकार आपने धारा 370 (3) भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत दण्डनीय अपराध किया है, जो इस न्यायालय के प्रसंज्ञान में है।

द्वितीयः यह कि उपरोक्त दिनांक, समय व स्थान पर आपके द्वारा अवमुक्त की गयी 43 पीड़िताओं के साथ उनके अवयस्क बच्चों को भी अवमुक्त किया गया, जिससे कि बच्चों से भी दुर्व्यापार कराया जाएगा। इस प्रकार आपने धारा 370 (5) भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत दण्डनीय अपराध किया है, जो इस न्यायालय के प्रसंज्ञान में है।

द्वितीयः यह कि उपरोक्त दिनांक, समय व स्थान पर आपके द्वारा अवमुक्त की गयी 43 पीड़िताओं के साथ उनके अवयस्क बच्चों को भी अवमुक्त किया गया, जिससे कि बच्चों से भी दुर्व्यापार कराया जाएगा। इस प्रकार आपने धारा 370 (5) भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत दण्डनीय अपराध किया है, जो इस न्यायालय के प्रसंज्ञान में है।

तृतीयः यह कि उपरोक्त दिनांक, समय व स्थान पर आपके उक्त कार्य लोक सेवक होते हुये किया है। इस प्रकार आपने धारा 370 (7) भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत दण्डनीय अपराध किया है, जो इस न्यायालय में प्रसंज्ञान में है।

चतुर्थः यह कि उपरोक्त दिनांक, समय व स्थान पर आपको उप जिला मजिस्ट्रेट, सदर, इलाहाबाद के आदेश से उक्त तिथि पर जिन पीड़िताओं व बच्चों को राजकीय नारी संरक्षण गृह (महिला), आगरा में आवासित करने के लिये दिया गया था। उनके संरक्षक उस समय उप जिला मजिस्ट्रेट, सदर, इलाहाबाद थे और उनकी अनुमति के बिना आपने उन पीड़िताओं व बच्चों को अवमुक्त कर दिया। इस प्रकार संरक्षक की

सहमति के बिना पीड़िताओं और बच्चों को हटाकर आपने धारा 363 भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत दण्डनीय अपराध किया है, जो इस न्यायालय के प्रसंज्ञान में है।

पंचमः यह कि उपरोक्त दिनांक, समय व स्थान पर लोक सेवक होने के नाते आपका यह कर्तव्य था कि आपके ऊपर जिस आदेश को प्रख्यापित किया जाय, उसका आप अनुपालन करें। आपने उप जिला मजिस्ट्रेट, सदर, इलाहाबाद दिनांक 18.05.2017 की अवज्ञा की। इस प्रकार आपने धारा 188 भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत दण्डनीय अपराध किया है, जो इस न्यायालय के प्रसंज्ञान में है।

भा टमः यह कि उपरोक्त दिनांक, समय व स्थान पर आपने जिन 43 पीड़िताओं और उनके बच्चों को बिना किसी समुचित आदेश के अवमुक्त किया, दौरान विवेचना उन पीड़िताओं में से ज्यादातर अपने अंकित पते पर नहीं मिली तथा कुछ स्थानों पर ताले लगे हुये मिले, जो पूर्व से प्रशासन द्वारा सील किये गये थे। इन पीड़िताओं को अवमुक्त करते समय आपने समुचित तरीके से आई0डी0 प्रूफ व अण्डरटेकिंग नहीं ली, जिससे यह बात प्रमाणित होती है कि आपके द्वारा इन पीड़िताओं को अवमुक्त करते समय आपने समुचित तरीके से आई0डी0 प्रूफ व अण्डरटेकिंग नहीं ली, जिससे यह बात प्रमाणित होती है कि आपके द्वारा इन पीड़िताओं से वैश्यावृत्ति कराने के उद्देश्य से मानव तस्करों के साथ मिलकर एक षड्यन्त्र किया गया। इस प्रकार आपने धारा 120बी भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत दण्डनीय अपराध किया है, जो इस न्यायालय के प्रसंज्ञान में है।

सप्तमः यह कि उपरोक्त दिनांक, समय व स्थान पर आपके द्वारा जिन 43 पीड़िताओं व बच्चों को उपरोक्त कथित मानव तस्करों की ओर से दिये गये प्रलोभन के तहत अवमुक्त किया गया। इस प्रकार आपके द्वारा धारा 9 अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम के अंतर्गत दण्डनीय अपराध किया है, जो इस न्यायालय के प्रसंज्ञान में है।

अ टमः यह कि उपरोक्त दिनांक, समय व स्थान पर आपके द्वारा 43 पीड़िताओं व बच्चों को यह जानकारी रखते हुये अवमुक्त किया गया कि उनका उपयोग पाक्सो अधिनियम के अंतर्गत गठित विभिन्न अपराधों में किया जाएगा। इस प्रकार आपने उनको अवमुक्त करके उनको पाक्सो अधिनियम के अंतर्गत विभिन्न अपराध करने के लिये दु प्रेरित किया है। इस प्रकार आपने धारा 16/17 पाक्सो अधिनियम के अंतर्गत दण्डनीय अपराध किया है, जो इस न्यायालय के प्रसंज्ञान में है।

एतद्द्वारा मैं आपको निर्देश देता हूँ कि आपका उपर्युक्त आरोपों पर विचारण इस न्यायालय द्वारा किया जावे।''

10. आरोपों की सामग्री को अभियुक्तों को पढ़कर सुनाया गया, जिन्होंने आरोपों से इनकार किया और मुकदमे की मांग की।

11. अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को साबित करने के लिए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य पेश किए, जिन पर बाद में विचार किया जाएगा। अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में दस्तावेजी साक्ष्य विधिवत प्रदर्शित किए गए थे और इसमें 1.6.2017 की पहली सूचना रिपोर्ट शामिल थी। पुनीत कुमार मिश्रा, उप मुख्य परिवीक्षा अधिकारी, निदेशालय, महिला कल्याण, उत्तर प्रदेश लखनऊ की दिनांक 1.6.2017 की लिखित रिपोर्ट; उत्तर प्रदेश निदेशालय आवेदन दिनांक 31.05.2017 दिनांक 31.7.2017 को प्रर्दश क6 के रूप में लिखित रिपोर्ट; सीआरपीसी की धारा 164 के तहत दिनांक 9.7.2017 को पीड़िता सोना का बयान पूर्व के रूप में दिया गया; सीआरपीसी की धारा 164 के तहत 5.7.2017 को पीड़िता अनीता का बयान पूर्व में दर्ज किया गया है। राकेश कुमार द्वारा बीएसएनएल को दिनांक 30.08.2018 को आवेदन किया गया। पुलिस अधीक्षक का दिनांक 9.6.2017 का आदेश प्रर्दश के.11 के रूप में; प्रर्दश क14 के रूप में फैक्स रसीद; प्रर्दश कए.15 के रूप में स्पीड पोस्ट रसीद की प्रमाणित प्रति।; प्रर्दश क16 के रूप में ई-मेल रसीद की प्रमाणित प्रति; डाक-बाही की प्रमाणित प्रति पूर्व-17 के रूप में; प्रर्दश क18 के रूप में व्हाट्सएप संदेशों की प्रमाणित प्रति; एसडीएम सदर इलाहाबाद का दिनांक 13.06.2017 का पत्र प्रर्दश का.13 के रूप में; एसडीएम के दिनांक 18.5.2017 के आदेश की प्रमाणित प्रति प्रर्दश -19 के रूप में और अंतिम प्रपत्र/रिपोर्ट प्रर्दश -19 के रूप में।

12. अभियोजन पक्ष ने निदेशालय, महिला कल्याण, उ0प्र0, लखनऊ के कार्यालय में तैनात उप मुख्य प्रोबेशन अधिकारी पुनीत कुमार मिश्रा को भी पीडब्ल्यू-1 के रूप में पेश किया है, जिन्होंने अपने परीक्षा-इन-चीफ में प्रथम सूचना रिपोर्ट की सामग्री को दोहराया है। उन्होंने कहा है

कि इन कैदियों को संरक्षण गृह में रखने का उद्देश्य पीड़ितों का पुनर्वास सुनिश्चित करना था और इस संबंध में 1956 के अधिनियम के तहत कार्य किया जा रहा था, जिसमें हिरासत की अवधि को दो साल की अवधि के लिए बढ़ाया गया था, लेकिन सक्षम प्राधिकारी के आदेशों के विपरीत, आरोपी अपीलकर्ता ने इन कैदियों को रिहा कर दिया है, जिसके परिणामस्वरूप कैदी फिर से तस्करी में उतर सकते हैं, जिसके परिणामस्वरूप उनका शोषण हो सकता है और उस उद्देश्य को पराजित कर देगा जिसके लिए उन्हें बचाया गया था और संरक्षण गृह में रखा गया था। उन्होंने यह भी कहा है कि इन कैदियों के परिवार के सदस्यों का विवरण, जैसा कि दस्तावेजों में उल्लेख किया गया था, बाद में गलत और उनके वास्तविक पते से अलग पाया गया, और इनमें से अधिकांश कैदी रिहाई आदेशों में दिखाए गए पते पर नहीं पाए गए। उन्होंने आगे कहा है कि कथित परिवार के सदस्यों के डीएनए परीक्षण आदि से उनके संबंधों का भी पता नहीं लगाया गया था, क्योंकि यह आशंका थी कि कैदियों के कथित परिवार के सदस्य परिवार के सदस्य नहीं थे, बल्कि अनैतिक तस्करी में लगे व्यक्ति थे, जो इन कैदियों को अनैतिक तस्करी में बहाल कर देते, जिससे उनका शोषण होता। इस गवाह से भी जिरह की गई है। उन्होंने कहा है कि निदेशक महिला कल्याण यूपी द्वारा इस मामले में एफआईआर दर्ज करने के लिए एक निर्देश जारी किया गया था, लेकिन आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ एफआईआर दर्ज करने के लिए कोई विशेष निर्देश नहीं था। उन्होंने लिखित रिपोर्ट की सामग्री की पुष्टि की है जिसके आधार पर खुद प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उन्होंने 1956 के अधिनियम की धारा 9 को छोड़कर उन प्रावधानों के बारे में अनभिज्ञता व्यक्त की है जिनके तहत आरोपी अपीलकर्ता द्वारा अपराध किए गए थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि उन्हें आरोपी अपीलकर्ता को 18.5.2017 के आदेश की सेवा के संबंध में कोई व्यक्तिगत जानकारी नहीं है। उन्होंने यह भी कहा है कि जिला प्रोबेशन अधिकारी की रिपोर्ट और सुनील कुमार की शिकायत रिकॉर्ड में है, जिसके अनुसार कैदियों को समय से पहले रिहा कर दिया गया था। हालांकि, उन्होंने गवाह को दिए गए इस सुझाव से इनकार किया है कि हिरासत की अवधि बढ़ाने के आदेश के बारे में संबंधित अधिकारी को सूचित नहीं किया गया था। उनके पास इस बात की कोई जानकारी नहीं है कि इन तैंतालीस कैदियों में से किसी ने भी उन्हें प्रतिबंधित गतिविधियों में वापस लगाए जाने के बारे में सक्षम प्राधिकारी से कोई शिकायत की है।

13. सुनील कुमार को पीडब्ल्यू -2 के रूप में जोड़ा गया है, जो गुरिया स्वयं सेवी संस्थान का प्रतिनिधित्व करते हैं जो मानव तस्करी और बाल वेश्यावृत्ति के उन्मूलन में लगी एक पंजीकृत सोसायटी है और दावा है कि उनके हस्तक्षेप के कारण अब तक लगभग 2500 पीड़ितों को रिहा किया गया है। उन्होंने कहा है कि 19.4.2016 को जिला मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद को उनके द्वारा भेजे गए एक पत्र पर, अधिकारियों ने इलाहाबाद में महिलाओं की कथित तस्करी और यौन शोषण के संबंध में कार्रवाई की। उनके द्वारा एक जनहित याचिका भी दायर की गई थी, जिस पर निर्देश जारी किए गए थे। पीडब्ल्यू-2 द्वारा की गई शिकायत के आधार पर 67 महिलाओं और 37 बच्चों को बचाया गया और 1956 के अधिनियम की धारा 17 (4) के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए मजिस्ट्रेट के आदेश के तहत आगरा में सरकारी संरक्षण गृह (महिला) में रखा गया। उन्होंने दावा किया कि अवधि को दो साल की अवधि के लिए बढ़ाने का आदेश वास्तव में अपीलकर्ता को 19.5.2017 को फैक्स द्वारा और 20.5.2017 को ई-मेल, व्हाट्सएप और पंजीकृत डाक द्वारा दिया गया था। उन्होंने आगे दावा किया कि एसडीएम सदर इलाहाबाद ने व्यक्तिगत रूप से उन्हें सूचित किया कि आरोपी अपीलकर्ता ने 18.5.2017 के आदेश वाले व्हाट्सएप और ई-मेल को देखा है। उन्होंने यह भी कहा है कि 27.5.2017 को उन्हें पता चला कि मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश के बावजूद आरोपी अपीलकर्ता ने अपनी अंतिम तस्करी के लिए आपराधिक साजिश में 43 पीड़ितों को उनके आठ बच्चों के साथ रिहा कर दिया और इन कैदियों को वेश्यालयों के मालिकों को बेच दिया। उन्होंने आगे दावा किया कि इस संबंध में शिकायत 29.5.2017 को राज्य सरकार को भी भेजी गई थी। उनका दावा है कि सीआरपीसी की धारा 161 के तहत उनका बयान 14.6.2017 को जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किया गया था। इस गवाह से जिरह की गई है जिसमें वह स्वीकार करता है कि वह गुरिया स्वयं सेवी संस्थान का सदस्य नहीं है। उनका दावा है कि वह केवल एक सामाजिक कार्यकर्ता हैं जो लगभग तीन वर्षों से इस क्षेत्र में काम कर रहे हैं। वह यह भी दावा करता है कि उसे व्हाट्सएप के बारे में पता है; ई-मेल और फैक्स, आदि। उन्होंने आधिकारिक ईमेल के माध्यम से आधिकारिक संचार भेजने के लिए केंद्र सरकार की नीति के बारे में अनभिज्ञता दिखाई है या क्या ई-मेल वास्तव में इस तरह की नीति के अनुसार आरोपी अपीलकर्ता को भेजा गया था। उसे पंजीकृत डाक द्वारा संचार भेजने की तारीख के बारे में पता नहीं है। उन्होंने डिस्पैच रजिस्टर नहीं देखा है। उसे आरोपी अपीलकर्ता के टेलीफोन नंबर के बारे में पता नहीं है, न ही उसे उसके व्हाट्सएप, फ़ैक्स या ई-मेल नंबर के बारे में पता है;. उन्होंने कहा है कि एसडीएम सदर ने उन्हें सूचित किया था कि 18.5.2017 के आदेश की सामग्री को आरोपी अपीलकर्ता ने 20.5.2017 को शाम लगभग 5 बजे अपने व्हाट्सएप पर देखा था। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि आरोपी अपीलकर्ता के पास कोई व्हाट्सएप, ईमेल आईडी नहीं थी और उस संबंध में उनके द्वारा एक गलत बयान दिया गया है।

14. पीडब्ल्यू-3 कांस्टेबल होशियार सिंह हैं, जिन्होंने चिक एफआईआर का सत्यापन किया है। पीडब्ल्यू-4 इंस्पेक्टर योगेंद्र यादव का दावा है कि वह पुलिस स्टेशन एत्माद्दौला में सब-इंस्पेक्टर के रूप में तैनात थे और जांच सर्कल अधिकारी के निर्देश पर, वह पुणे में चंद्र बहादुर की पत्नी रूपा के माध्यम से कैदी रूपा पुत्री रूबीर का पता लगाने गए थे। उनका दावा है कि दिए गए पते पर कैदी नहीं मिला। सुपुर्दगर के बारे में भी कोई जानकारी एकत्र नहीं की जा सकी। जिरह के दौरान गवाह ने स्वीकार किया कि रूपा की तस्वीर रिकॉर्ड में उपलब्ध नहीं है और उसकी तस्वीर उसने व्हाट्सएप पर देखी थी।

15. सब-इंस्पेक्टर सतेंद्र सिंह पीडब्ल्यू-5 हैं, जो इसी तरह पश्चिम बंगाल के जलपाईगुड़ी में कैदियों पूजा और बबीता का पता लगाने गए थे, लेकिन उनका पता नहीं चल सका। उन्होंने कहा कि पूछताछ में उन्होंने पाया कि कैदी पूजा पुत्री संजय जलपाईगुड़ी में रसोइये के रूप में काम कर रहा है और बबीता कलकत्ता में रह रही है। गवाह द्वारा उनके सुपुर्दों से संपर्क किया जा सकता है। जिरह के दौरान उन्होंने स्वीकार किया कि जलपाईगुड़ी में उनके आगमन के संबंध में विवरण का उल्लेख नहीं किया गया था और न ही सीआरपीसी की धारा 161 के तहत उनके बयान में विवरण दिया गया है। यह भी स्वीकार किया जाता है कि वह बबीता के ठिकाने का पता लगाने के लिए कलकत्ता नहीं गए थे।

16. पीडब्ल्यू -6 सोना उन कैदियों में से एक है, जिन्होंने सीआरपीसी की धारा 164 के तहत अपने बयान में दावा किया था कि उसे आरोपी अपीलकर्ता ने अन्य कैदियों के साथ रिहा नहीं किया था, क्योंकि उसके पास रिश्वत देने के लिए पैसे नहीं थे। हालांकि, अदालत के समक्ष दिए गए अपने बयान में इस गवाह ने कहा है कि उसे संरक्षण गृह में रखा गया था और उसे रिहा नहीं किया गया था क्योंकि उसके माता-पिता उसे लेने नहीं आए थे। उसने विशेष रूप से इस आरोप से इनकार किया है कि रिश्वत लेने के बाद आरोपी अपीलकर्ता द्वारा कैदियों को रिहा कर दिया गया था। इस गवाह को अपने बयान से मुकर जाने का दोषी घोषित कर दिया गया है। जिरह में इस गवाह ने कहा है कि उसने सीआरपीसी की धारा 164 के तहत झूठा बयान दिया था।

17. पीडब्ल्यू -7 अनीता एक अन्य कैदी है, जिसने भी अदालत के समक्ष अपने बयान में आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ कुछ भी नहीं कहा है। हालांकि, उसने कहा है कि उसका बयान पहले सीआरपीसी की धारा 164 के तहत दर्ज किया गया था।

18. पीडब्ल्यू-8 सब-इंस्पेक्टर नित्यानंद पांडे हैं, जिन्होंने भी अनीता और पिंकी का पता लगाने का प्रयास किया था, जिन्हें बस्ती में उनके परिवार के सदस्यों को रिहा कर दिया गया था। उनका दावा है कि इन कैदियों का दिए गए पते पर पता नहीं चल रहा था। इस गवाह से जिरह की गई है और उसने स्वीकार किया है कि उसके पास उन कैदियों की कोई तस्वीर नहीं थी, जिनका वह पता लगाना चाहता था और इस बात से इनकार किया है कि वह वास्तव में कैदियों का पता लगाने के लिए बस्ती नहीं गया है।

19. पीडब्ल्यू -9 जांच अधिकारी है, जो सर्कल ऑफिसर, छत्ता के रूप में तैनात था और उसने चार्जशीट साबित कर दी है। जिरह में उन्होंने स्वीकार किया कि किसी भी कैदी से कोई शिकायत नहीं मिली और उन्हें इस बात की कोई जानकारी नहीं है कि कैदी नाबालिग थे या नहीं। उन्होंने स्वीकार किया है कि उन्हें कैदियों की उम्र के बारे में कोई जानकारी नहीं है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि आपराधिक साजिश के अपराध के लिए एक से अधिक व्यक्ति होने चाहिए और इस मामले में आरोपी अपीलकर्ता के अलावा साजिशकर्ता के रूप में कोई अन्य व्यक्ति आरोपी नहीं है। उन्होंने स्वीकार किया कि जांच के दौरान एसडीएम सदर इलाहाबाद, जिन्होंने हिरासत और इसके विस्तार का आदेश पारित किया था, से पूछताछ नहीं की गई है और धारा 161 सीआरपीसी के तहत उनका बयान दर्ज नहीं किया गया है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि एसडीएम सदर के फोन नंबर या व्हाट्सएप नंबर या आधिकारिक व्हाट्सएप नंबर, आरोपी अपीलकर्ता गीता राकेश का फैक्स नंबर अन्यथा रिकॉर्ड पर उपलब्ध नहीं है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि वह 1956 के अधिनियम के तहत नामित प्राधिकारी नहीं हैं। उन्होंने स्वीकार किया है कि आरोपी अपीलकर्ता को कैदियों की अवधि बढ़ाने के संबंध में एसडीएम सदर इलाहाबाद द्वारा कोई जानकारी केस डायरी में उपलब्ध नहीं है।

20. पीडब्ल्यू-10 बी.एस. त्यागी पहले जांच अधिकारी हैं, जिन्होंने कहा कि 17.6.2017 को उन्होंने सब-इंस्पेक्टर आजाद पाल सिंह का बयान दर्ज किया था, जो इलाहाबाद में उनके दिए गए पते पर कैदियों का पता लगाने गए थे, लेकिन वे नहीं मिले। जिरह में, उन्होंने स्वीकार किया है कि वह 1956 के अधिनियम के तहत नामित अधिकारी नहीं थे, फिर भी उन्होंने 1.6.2017 को आरोपी अपीलकर्ता को गिरफ्तार किया था। उन्होंने यह भी कहा है कि वह व्यक्तिगत रूप से एसडीएम सदर इलाहाबाद से नहीं मिले हैं, न ही उन्होंने सीआरपीसी की धारा 161 के तहत अपना बयान दर्ज कराया है। उनके अनुसार, उमाशंकर के बयान में 11.6.2017 को केस डायरी में एसडीएम इलाहाबाद के कार्यालय में फैक्स नंबर के साथ-साथ उनके व्हाट्सएप और ई-मेल आईडी का उल्लेख किया गया है। इसी बयान में एसडीएम सदर के कार्यालय में कार्यरत संजीव खरे का मोबाइल नंबर भी 9450509758 के रूप में उल्लिखित किया गया है, जिससे 18.5.2017 के आदेश की सामग्री आरोपी अपीलकर्ता को उसके मोबाइल नंबर 9457020485 पर मोबाइल द्वारा भेजी गई थी। उन्होंने स्वीकार किया है कि उन्होंने उपरोक्त दो मोबाइल नंबरों के संबंध में पूछताछ नहीं की है और न ही उस संबंध में

विवरण केस डायरी में उल्लिखित हैं। उन्होंने आगे कहा कि वह संजीव खरे से नहीं मिले हैं। उन्होंने स्वीकार किया है कि केस डायरी में आरोपी अपीलकर्ता का मोबाइल नंबर और फैक्स नंबर अंकित नहीं है। इस गवाह ने स्पष्ट रूप से कहा है कि आरोपी अपीलकर्ता द्वारा रिहा किए गए सभी कैदी बालिग थे। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि आईपीसी की धारा 363 के तहत अपराध को आकर्षित करने के लिए प्रलोभन दिए गए व्यक्ति को नाबालिग दिखाया जाना चाहिए।

21. पीडब्ल्यू -11 आनंद पाल सिंह, आरोपी अपीलकर्ता द्वारा रिहा किए गए कैदियों का पता लगाने के लिए प्रतिनियुक्त टीम के सदस्य हैं और कैदियों को उनके दिए गए पते पर नहीं पाया गया है। हालांकि, सुपुर्दगुरों का पता लगाया गया और उन्होंने रिहा किए गए कैदियों के ठिकाने का खुलासा किया।

22. पीडब्ल्यू-12 दीपक प्रजापति हैं, जो इलाहाबाद में सदर तहसील के कार्यालय में संग्रह अमीन के रूप में तैनात थे। उनका दावा है कि समर पटेल एसडीएम सदर इलाहाबाद के कार्यालय में स्टेनो के पद पर तैनात थे, जहां वह भी तैनात थे, और उन्होंने समर पटेल को कार्यालय में काम करते देखा है। समर पटेल इलाहाबाद के जिला मजिस्ट्रेट के कार्यालय में स्टेनो के पद पर तैनात थे। वह स्वीकार करते हैं कि वास्तव में समर पटेल को पेश होने के लिए समन जारी किया गया था, लेकिन समर पटेल के बजाय वह हैं, जो सब डिवीजनल मजिस्ट्रेट, सदर, इलाहाबाद के निर्देश पर रिकॉर्ड के साथ पेश हुए हैं। उन्होंने प्रमाणित दस्तावेज दाखिल किए हैं। इस गवाह की गवाही महत्वपूर्ण है क्योंकि वह एकमात्र व्यक्ति है जिसने आरोपी अपीलकर्ता को 18.5.2017 के संचार के प्रेषण के बारे में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है। वह मुख्य गवाह भी हैं जिन्होंने आरोपी अपीलकर्ता पर 18.5.2017 के आदेश की कथित सेवा की पुष्टि की है। इस गवाह ने कहा है कि सरकारी संरक्षण गृह (महिला), आगरा में 67 कैदियों और 37 बच्चों की हिरासत की अवधि 18.5.2017 के आदेश के तहत दो साल के लिए बढ़ा दी गई थी। दिनांक 18.5.2017 के आदेश की प्रति उनके द्वारा अदालत में दायर की गई है और इसकी मूल राशि कार्यालय रिकॉर्ड में उपलब्ध है। दिनांक 18.5.2017 के आदेश की मूल प्रति प्रस्तुत नहीं की गई है और अधिकारियों द्वारा प्रमाणित इसकी जेरोक्स प्रति को ए -13 के रूप में रिकॉर्ड पर प्रदर्शित किया गया है। इसकी स्वीकार्यता के संबंध में बचाव पक्ष द्वारा आपत्ति उठाई जाती है। कथित फैक्स की फोटोकॉपी को के-14 के रूप में प्रदर्शित किया गया है, जबकि पंजीकृत स्पीड पोस्ट द्वारा प्रेषण की प्रति को **प्रर्दश** के 15 के रूप में चिह्नित किया गया है। कार्यालय में रखे गए डिस्पैच रजिस्टर की छायाप्रति भी प्रदर्शित की गई है। **प्रर्दश** के-18 कथित व्हाट्सएप संचार है जो एक फोटोकॉपी की प्रकृति का है जिसमें दस्तावेज पर संलग्न प्रमाणन के साथ दो ब्लू टिक मार्क हैं, जिसमें कहा गया है कि सामग्री संजीव खरे नंबर 9450509758 के मोबाइल से आरोपी अपीलकर्ता को उसके मोबाइल नंबर पर 20.5.2017 को शाम 4.56 बजे 9457020485 भेजी गई है।

23. प्रर्दश के-19 दिनांक 18.5.2017 के आदेश के संचार की प्रमाणित प्रति भी है, जिसमें हिरासत की अवधि को दो साल की अवधि के लिए और बढ़ाया गया है। पीडब्ल्यू -12 की गवाही के साथ-साथ प्रति परीक्षण निम्नानुसार निकाला गया है: –

"नाम साक्षी–दीपक प्रजापति पिता का नाम–स्व0 बुलाकीलाल प्रजापति उम्र–48 व र्ा पेशा–नौकरी, निवासी–38 सी बेली रोड नया कटरा, इलाहाबाद ने सशपथ बयान किया कि–

मैं वर्तमान में संग्रह अमीन, तहसील सदर, इलाहाबाद के पद पर तैनात हूँ। समय पटेल, स्टेनो उप जिलाधिकारी कार्यालय, सदर इलाहाबाद में तैनात थे। वहां पर मैं भी अमीन के पद पर तैनात हूँ। मैं समय सिंह पटेल को जानता हूँ तथा उनको लिखते पढ़ते देखा है। समर पटेल वर्तमान में जिलाधिकारी, इलाहाबाद के के कार्यालय में स्टेनो के पद पर तैनात हैं। समर पटेल के नाम के द्वारा जारी समन के आधार पर मुझे उप जिलाधिकारी, सदर इलाहाबाद द्वारा इस मुकदमें से सम्बन्धित चाहे गये दस्तावेज के साथ साक्ष्य हेतु भेजा गया है। जिस पत्र के द्वारा मुझे आदेशित किया गया है, वह मैं साथ लाया हूँ, जिसे मैं पत्रावली पर दाखिल कर रहा हूँ।

कार्यालय उपजिलाधिकारी, सदर इलाहाबाद द्वारा दिनांक 13/06/2017 को पत्रांक संख्या 4470/एस0डी0एम0 सदर–एस–17 के माध्यम से इस मुकदमें के विवेचक बी0एस0 त्यागी क्षेत्राधिकारी, छत्ता जनपद आगरा को दिनांक 18/05/2017 को जरिये फैक्स/स्पीड पोस्ट/ पंजीकृत/ ईमेल/व्हाट्सअप के माध्यम से डाक संख्या 115 दिनांक 19 व 20/05/2017 को इलाहाबाद के अन्तर्गत क्षेत्र मीरगंज में अनैतिकर व्यापार अधिनियम 1956 के अन्तर्गत की गयी कार्यवाही में मुक्त कराई गयी पीड़िताओं को उप जिला मजिस्ट्रेट, सदर के आदेश दिनांक 21/05/2016 अन्तर्गत धारा 17(4) अनैतिक

देह व्यापार अधिनियम 1956 द्वारा 67 संवासनियों एवं 37 बच्चों को एक व ा की अवधि तक राजकीय संरक्षण, गृह आगरा में भेजा गया था, जिसकी अवधि दिनांक 18/05/2017 को बढ़ाकर दो व ा के लिए कर दी गयी थी, उक्त बढ़ाई गयी समयावधि के आदेश को अधीक्षिक, आगरा एवं अन्य अधिकारियों को भेजे गये थे, जो उप जिलाधिकारी, सदर इलाहाबाद के हस्ताक्षरित पत्र, इस पत्रावली में मौजूद है। जिसकी कार्यालय प्रति मैं आज अपने साथ लेकर आया हूँ। जिसकी मूल पत्रावली पर उपलब्ध है। मूल को रिकार्ड से मिलान कर लाये गये कार्यालय रिकार्ड से मिलर कर साबित किया गया। जिस पर प्रदर्श क-13 डाला गया। जिस पर अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता की ओर से आपत्ति की गयी।

इस पत्र के साथ संलग्न फैक्स रसीद एस0डी0एम0 सदर, इलाहाबाद द्वारा दिनांक 19/05/2017 की प्रमाणित है, जिसे उप जिलाधिकारी, सदर इलाहाबाद द्वारा अपनी सील एवं हस्ताक्षर से प्रमाणित की गयी है। जिसकी मूल प्रति मैं साथ लेकर आया हूँ। जो मिलान कर मूल की छाया प्रति है। पत्रावली पर उपलब्ध फैक्स रसीद पर प्रदर्श क-14 डाला गया। जिस पर अभियुक्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आपत्ति की गयी। एस0डी0एम0 सदर इलाहाबाद द्वारा भेजे गये पत्र जो इस मुकदमें के विवेचक बी0एस0 त्यागी को भेजा गया था, के अतिरिक्त जिलाधिकारी, आगरा, अधीक्षिका राजकीय संरक्षण गृह आगरा, जिला प्रोवेशन अधिकारी, वरि ठ पुलिस अधीक्षक, आगरा को पंजीकृत डाक से पत्र भेजे गये थे, उनकी मूल डाक रसीद मैं अपने साथ लेकर आया हूँ। मूल डाक रसीद की छाया प्रतियां एस0डी0एम0 सदर, इलाहाबाद की सील एवं हस्ताक्षर से प्रमाणित है। रसीदें पत्रावली पर मौजूद है, मैं उनके हस्ताक्षर की शिनाख्त करता हूँ। रसीदों पर प्रदर्श क-15 डाला गया। जिस पर अभियुक्ता की ओर से आपत्ति की गयी। उप जिलाधिकारी, सदर इलाहाबाद द्वारा दिनांक 19.05.2017 को समय 08.54 पी0एम0 पर अभियुक्ता गीता राकेश को उनके ईमेल आई0डी0 पर जरिये उपरोक्त आदेश की प्रति प्रेि ात की गयी। जिसे गीता राकेश द्वारा दिनांक 19/05/2017 को 09.01 पी0एम0 पर खोलकर पढ़ा गया। इस ईमेल संदेश आदान-प्रदान की मूल प्रिंट को मैं आज अपने साथ लेकर आया हूँ जिसकी फोटो प्रति एस0डी0एम0 सदर इलाहाबाद द्वारा अपने हस्ताक्षर व सील से प्रमाणित की गयी है, जो पत्रवाली पर मौजूद है। जिस पर प्रदर्श क-16 डाला गया। जिला पर अभियुक्ता की ओर से आपत्ति की गयी।

उप जिलाधिकारी सदर इलाहाबाद द्वारा अपने आदेश दिनांकित 18/05/2017 को अपने अपने डाक वही क्रमांक 115/एस0डी0एम0 सदर/18/05/2017 का इन्द्राज अपने डाक रजिस्टर में करते हुए इस आदेश को राजकीय संरक्षण गृह, महिला अधीक्षिका, आगरा व जिलाधिकारी इलाहाबाद, जिलाधिकारी आगरा, एस0एस0पी0 इलाहाबाद, एस0एस0पी0 आगरा, जिला प्रोवेशन अधिकारी आगरा को भेजा गया। वह मूल डाक बही/रस्टिर मैं अपने साथ लेकर आया हूँ। जिसकी छाया प्रति उप जिलाधिकारी, सदर इलाहाबाद द्वारा प्रमाणित कर दाखिल कर रहा हूँ। उनके हस्ताक्षरों की मैं शिनाख्त करता हूँ। जिस पर प्रदर्श क-17 डाला गया। जिस पर अभियुक्ता की ओर से आपित्त की गयी। एस0डी0एम0 सदर इलाहाबाद के आदेश दिनांकित 18/05/2017 को उनके कार्यालय में कार्यरत लेखपाल श्री संजीव खरे के मोबाइल नम्बर 9450509758 द्वारा राजकीय संरक्षण गृह, आगरा की अधीक्षिका श्रीमती गीता राकेश के मोबाइल नम्बर 945 (स्प ट)020485 व दिनांक 20/05/2017 को समय 04.56 पी0एम0 पर व्हाट्सअप किया गया है, जिसकी रंगीन प्रिंटआउट जिसमें व्हाट्सअप के रिसीव डबल ब्लू टिक साइन मौजूद है तथा इस रंगीन व्हाट्सअप की प्रिंटआउट पर एस0डी0एम0 सदर इलाहाबाद महोदय ने इस आशय का प्रमाण पत्र अपने हस्तलेख में दिया है। मैं उनके हस्तलेख व उनकी सील मुहर व मूल हस्ताक्षर (का0फटा) तस्दीक करता हूँ। जिस पर प्रदर्श क-18 डाला गया। जिस पर अभियुक्ता की ओर से (का0फटा) गयी। उप जिलाधिकारी सदर इलाहाबाद के आदेश दिनांकित 18/05/2017 पत्रांक संख्या (का0फटा) जो अधीक्षिका राजकीय संरक्षण गृह, महिला आगरा के नाम संबोधित है, आदेश वि ाय राजकीय संरक्षण गृह महिला आगरा में

आवासित थाना कोतवाली इलाहाबाद में पंजीकृत अभियोग संख्या 119/2016 की पीड़िताओं व बच्चों के अनैतिक व्यापार अधिनियम 1956 की धारा 17(4) के तहत पारित आदेश की प्रमाणित प्रतिलिपि कुल 08 वर्क में मौजूद है। मूल आदेश मैं आप उप जिला मजिस्ट्रेट सदर इलाहाबाद के कार्यालय से अपने साथ लाया हूँ। यह मूल आदेश भी 08 वर्क का है। प्रमाणित व मूल आदेश का अक्षरशः मिलान किया गया, जो एक ही है। इस आदेश पर कार्यालय की मुहर एवं हस्ताक्षर मौजूद है। जिसे आज मैं पुनः प्रमाणित कर रहा हूँ। जिस पर प्रदर्श क–19 डाला गया। जिस पर अभियुक्ता की ओर से आपत्ति की गयी।

प्रति परीक्षा द्वारा अभियुक्ता

यह कहना सही है कि मुझे न्यायालय से गवाही के लिए समन नहीं मिला था। संजीव खरे लेखपाल कार्यालय में सम्बद्ध थे तथा कार्यालय का कार्य देखते थे। यह कहना गलत है कि संजीव खरे फील्ड वर्क करते हो और कार्यालय का कार्य नहीं करते हो। संजीव खरे का मोबाइल मैंने नहीं देखा है। न ही संजीव खरे ने मेरे सामने मोबाइल का प्रयोग किया।

मेरी ड्यूटी रेवेन्यू कलेक्शन के लिए है। मैं फील्ड वर्क के लिए जाता हूँ। मैं सुबह 09 बजे फील्ड में जाकर 12 बजे तहसील में आ जाता हूँ और ाम को पांच बजे वहॉ से वापस आ जाता हूँ। गीता राकेश का मोबाइल नम्बर मुझे नहीं मालूम। गीता राकेश को मैं नहीं जानता हूँ। मैं केवल मांगा गया रिकार्ड अपने अधिकारी के कहने पर न्यायालय में लेकर आया आया हूँ और उसी रिकार्ड के संबंध में मैंने अपना साक्ष्य दिया है। मुझे गीता राकेश के किसी फोन के वि ाय में कोई जानकारी नहीं है।

यह कहना सही है कि प्रदर्श क–13, दिनांक 13 जून 2017 का है। प्रदर्श क–14 जीराक्स प्रमाणित प्रति है। प्रदर्श क–14 किसको भेजा गया, यह प्रमाणित नहीं है। प्रदर्श क–15 प्रमाणित छाया प्रति है। इस रसीद से क्या भेजा गया, यह कवरिंग पत्र में लिखा होगा। रसीद में नहीं लिखा है। मैं नहीं बता सकता कि जो भी मजमून भेजा गया, वह प्राप्तकर्ता पर कब पहुंचा।

मुझे नहीं मालूम कि गीता राकेश की कोई ईमेल आई0डी0 है या नहीं। मैं अधीक्षिका कार्यालय में ईमेल, व्हाट्सअप या फैक्स की क्या सुविधायें है, इसकी जानकारी नहीं रखता हूँ। मैं नहीं बता सकता कि गीता राकेश के कार्यालय में ईमेल, व्हाट्सअप या फैक्स की सुविधा नहीं है। मुझे इसकी भी जानकारी नहीं है कि प्रदर्श क–17 से भेजा गया पत्र कार्यालय में किस तारीख को पहुंचा। यह कहना गलत है कि प्रदर्श क–18 से भेजा गया व्हाट्सअप फर्जी हो तथा नहीं भेजा गया हो। यह कहना गलत है कि प्रदर्श क–19 फर्जी बनाकर तैयार किया गया हो। यह कहना सही है कि यह मेरे साामने किसी को नहीं भेजे गये। यह कहना गलत है कि कोई भी फैक्स, ईमेल, व्हाट्सअप या पत्र गीता राकेश अधीक्षिका को प्राप्त नहीं हुए हो तथा उसे फंसााने के लिए बाद में फर्जी प्रपत्र तैयार किये गये हों। यह कहना गलत है कि जो प्रपत्र मैंने दाखिल किये हैं, वह फर्जी हो। यह कहना गलत है कि मैं आज न्यायालय में झूंठी गवाही दे रहा हूँ।''

24. मुकदमे के दौरान पेश की गई आपत्तिजनक सामग्री, जिसे ऊपर देखा गया है, आरोपी अपीलकर्ता को दी गई है, जिसने सीआरपीसी की धारा 313 के तहत अपने बयान में आरोपों से इनकार किया है। उसने कहा है कि वर्ष 2016 में, उसने अपनी पदोन्नति के लिए एक रिट याचिका दायर की थी और कुछ लोग उसका विरोध कर रहे थे, जिन्हें एक पक्ष के रूप में भी शामिल किया गया था और उसके साथ केवल इसलिए भेदभाव किया गया है क्योंकि वह अनुसूचित जाति से संबंधित है। उन्होंने यह भी कहा है कि प्रमुख सचिव, महिला कल्याण उनसे नाराज थे और यही कारण है कि उन्हें उच्च जाति के अधिकारियों द्वारा झूठा फंसाया गया है।

25. आरोपी अपीलकर्ता ने डीडब्ल्यू -1 के रूप में गवाह बॉक्स में भी प्रवेश किया है और स्पष्ट रूप से कहा है कि 18.5.2017 का आदेश उसे कभी नहीं दिया गया था और न ही उसे इस तरह के आदेश जारी करने के बारे में कोई जानकारी थी। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि 18.5.2017 का आदेश उन्हें 24.5.2017 को दोपहर 2.15 बजे उनके कार्यालय में प्राप्त हुआ था, जिसके तहत हिरासत की अवधि दो साल के लिए बढ़ा दी गई थी, लेकिन तब तक

सभी 43 कैदियों को उनके द्वारा पहले ही रिहा कर दिया गया था। उसने कहा है कि 20.5.2017 के बाद वह किसी भी कैदी को एक दिन के लिए भी हिरासत में नहीं ले सकती थी, और कैदियों को हिरासत में लेने से बाद में उन पर आरोप लग सकते थे। उन्होंने कहा कि कैदियों को भाइयों और बहनों सहित उनके परिवार के सदस्यों को छोड़ दिया गया था, जिनके नोटरी हलफनामे लिए गए थे और उनके वचनों को भी रिकॉर्ड पर लिया गया था। ये सभी कैदी बालिग थे और रिहाई के लिए उनके अनुरोध पत्र रिकॉर्ड पर उपलब्ध हैं। उसने कहा है कि ई-मेल की कोई सुविधा नहीं है; उनके कार्यालय में एसडीएम सदर इलाहाबाद के कार्यालय से फैक्स या व्हाट्सएप और उन्हें कोई ई-मेल नहीं मिला है। उन्होंने कहा है कि 18.5.2017 के आदेश को ई-मेल द्वारा भेजने वाले सभी दस्तावेज; व्हाट्सएप मनगढ़ंत और फर्जी हैं। उसने यह भी कहा है कि पिछले 19 वर्षों से उसे पदोन्नत नहीं किया गया है और चूंकि उसके दावे पर विचार नहीं किया गया था, इसलिए उसने उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया और केवल इसके कारण उच्च अधिकारी उससे नाराज थे। उन्होंने आगे कहा है कि सुप्रीम कोर्ट के आदेशों के तहत, जिला न्यायाधीश, आगरा संरक्षण गृह के मामलों के संबंध में अंतिम प्राधिकारी हैं और उन्होंने जिला न्यायाधीश को सूचित किया था कि इन कैदियों की हिरासत की अवधि 20.5.2017 को समाप्त होने वाली है। उसने आगे दावा किया कि इस तरह के संचार के जवाब में जिला न्यायाधीश ने 4.5.2017 और 20.5.2017 के अपने आदेश के तहत उसे सब डिवीजनल मजिस्ट्रेट सदर इलाहाबाद के आदेशों का पालन करने का निर्देश दिया। वह दावा करती है कि उसने इस तरह के आदेश दायर किए हैं, लेकिन जाहिर है कि वे वर्तमान अपील के रिकॉर्ड का हिस्सा नहीं हैं। डीडब्ल्यू-1 ने कहा कि 67 महिला कैदियों के अलावा एसडीएम सदर इलाहाबाद ने 29 नाबालिग बच्चों को भी भेजा था, जिनकी देखभाल बाल कल्याण समिति द्वारा की जा रही है और उन्होंने इन 29 कैदियों के संबंध में कोई नियंत्रण नहीं रखा। रिहा किए गए आठ कैदी वास्तव में संरक्षण गृह में बंद 43 महिला कैदियों के नाबालिग बच्चे थे। उसने इस बात से इनकार किया है कि 18.5.2017 के आदेश का संचार उसे व्हाट्सएप ई-मेल या फ़ैक्स द्वारा प्राप्त किया गया था!

26. डीडब्ल्यू -2 राकेश कुमार बचाव पक्ष का दूसरा गवाह है जो आरोपी अपीलकर्ता का पति है। वह इटावा में एक सरकारी संस्थान में कार्यरत एक शिक्षक है। वह अपने आधिकारिक आवास में रहते हैं और 2009 से काम कर रहे हैं। उन्होंने कहा है कि मोबाइल सिम तीन प्रकार के होते हैं अर्थात् साधारण सिम, नैनो सिम और माइक्रो सिम। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि मोबाइल नंबर 9457020485 बीएसएनएल द्वारा जारी किया गया उनका मोबाइल नंबर है और उनके द्वारा उपयोग किया जा रहा है। उन्होंने परीक्षण के दौरान सिम के साथ मोबाइल फोन का उत्पादन किया है और इसे **प्रर्दश**-बी के रूप में प्रदर्शित किया गया है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि व्हाट्सएप की सुविधा; उनके मोबाइल नंबर पर ईमेल या फैक्स कभी उपलब्ध नहीं था। इस गवाह से जिरह भी की गई है और उसने इस बात से इनकार किया है कि व्हाट्सएप और ई-मेल को किसी भी सिम पर संचालित किया जा सकता है।

27. मुकदमे के दौरान किए गए उपरोक्त सबूतों के आधार पर नीचे दी गई अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे आरोपी अपीलकर्ता के अपराध को स्थापित करने में सफल रहा है। नीचे दी गई अदालत ने कहा है कि 18.5.2017 का आदेश आरोपी अपीलकर्ता को विधिवत दिया गया था और उप-विभागीय मजिस्ट्रेट के आदेशों के विपरीत 43 कैदियों को रिहा करने की उसकी कार्रवाई एक अपराध है क्योंकि इन 43 कैदियों के फिर से 1956 के अधिनियम के तहत निषिद्ध गतिविधियों में शामिल होने की संभावना है। इसलिए, उसने आईपीसी की विभिन्न धाराओं के तहत अपराध किया है।

28. अभियुक्त अपीलकर्ता को दी गई दोषसिद्धि और सजा को विभिन्न तथ्यात्मक और कानूनी आधारों पर वर्तमान अपील में चुनौती दी गई है।

29. अपीलकर्ता के वरिष्ठ वकील श्री जीएस चतुर्वेदी ने प्रस्तुत किया कि आरोपी अपीलकर्ता ने नेक नीयत से काम किया था और चूंकि कैदियों को केवल एक वर्ष की अवधि के लिए हिरासत में रखा गया था, इसलिए वह एक वर्ष की अवधि से अधिक संरक्षण गृह में कैदियों को नहीं रख सकती थी और कैदियों को रिहा करने में उसकी कार्रवाई कानूनी और उचित थी। उन्होंने आगे कहा कि कैदियों की हिरासत की अवधि बढ़ाने का आदेश कभी भी आरोपी अपीलकर्ता को नहीं दिया गया था और आरोपी को 18.5.2017 के आदेश की सेवा को प्रदर्शित करने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सबूत नहीं है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि ई-मेल, फैक्स या व्हाट्सएप द्वारा कथित सेवा सेवा के इलेक्ट्रॉनिक मोड हैं जो स्वीकार्य नहीं हैं क्योंकि साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी के तहत कोई प्रमाण पत्र उपलब्ध नहीं है और मामले के इस पहलू को नीचे की अदालत द्वारा पूरी तरह से अनदेखा किया गया है। उन्होंने आगे कहा कि संचार का प्रेषण अन्यथा साबित नहीं हुआ है, क्योंकि डिस्पैचर यानी एसडीएम सदर, इलाहाबाद न तो गवाह के रूप में पेश हुए हैं और न ही उनके कार्यालय में उस व्यक्ति को पेश किया गया है, जिसने कथित तौर पर पत्र भेजा था। उन्होंने आगे तर्क दिया कि सरकारी संरक्षण गृह (महिला), आगरा के अधीक्षक के कार्यालय में ई-मेल, फैक्स या व्हाट्सएप की अनुपलब्धता को भी ध्यान में नहीं रखा गया है। श्री चतुर्वेदी ने आगे कहा कि 18.5.2017 के आदेश वाले एसडीएम सदर के कार्यालय के मूल रिकॉर्ड

अनौपचारिक

भी परीक्षण के दौरान पेश और प्रदर्शित नहीं किए गए हैं और इसकी अनुपस्थिति के किसी भी कारण के अभाव में संचार की प्रमाणित प्रति के रूप में द्वितीयक साक्ष्य को नहीं देखा जा सकता है। उन्होंने जोर देकर तर्क दिया कि भले ही अभियोजन पक्ष के बयान को पूरी तरह से लिया जाए, फिर भी, आईपीसी या 1956 के अधिनियम के तहत किसी भी अपराध का खुलासा नहीं किया जाता है। अभियोजन पक्ष के सबूतों के संदर्भ में, वरिष्ठ वकील ने तर्क दिया कि अभियोजन पक्ष के गवाहों ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि 43 कैदी बालिग हैं और उनके अल्पसंख्यक होने को साबित करने के लिए अन्यथा कोई सबूत नहीं दिया गया था, और इसलिए पॉक्सो अधिनियम के प्रावधानों को वर्तमान मामले के तथ्यों में आकर्षित नहीं किया गया है। रिहा किए गए 08 नाबालिग 43 कैदियों के बच्चे बताए जा रहे हैं, जो उनके अभिभावक थे, और इसलिए पॉक्सो अधिनियम के तहत किसी भी अपराध को आरोपी के लिए दूर-दूर तक जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। श्री चतुर्वेदी ने अपने विभिन्न आदेशों में सुप्रीम कोर्ट द्वारा जारी निर्देशों पर भी भरोसा किया, जिसके अनुसार जिला न्यायाधीश, आगरा सरकारी संरक्षण गृह (महिला) के मामलों के संबंध में अंतिम पर्यवेक्षी प्राधिकरण थे और अपीलकर्ता ने उन्हें विधिवत सूचित किया और उनका मार्गदर्शन मांगा जब कैदियों की रिहाई की अवधि समाप्त हो रही थी और उन्हें जिला न्यायाधीश द्वारा बताया गया था, आगरा उप-मंडल मजिस्ट्रेट के आदेश के अनुसार कार्य करेगा। इसलिए, निवेदन यह है कि आरोपी अपीलकर्ता ने कैदियों के आवेदनों और उनके परिवार के सदस्यों के नोटरी हलफनामों पर विचार करने के बाद कैदियों को रिहा करने में कानूनी रूप से काम किया। उन्होंने प्रस्तुत किया कि धारा 188 आईपीसी के तहत अपराध भी आरोपी अपीलकर्ता को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता था क्योंकि इसके संबंध में संज्ञान केवल धारा 195 आईपीसी के आधार पर एक शिकायत पर लिया जा सकता था और नीचे दी गई अदालत ने इसके तहत आरोपी की सजा दर्ज करने में गलती की है। विद्वान वरिष्ठ वकील ने अंत में प्रस्तुत किया कि राज्य के अधिकारियों ने रिकॉर्ड को सत्यापित किए बिना पीडब्ल्यू -2 द्वारा की गई शिकायत पर अनुचित जल्दबाजी में काम किया, जिसके परिणामस्वरूप आरोपी अपीलकर्ता के अधिकारों से इनकार कर दिया गया है, जिसे अनावश्यक रूप से साढ़े छह साल से अधिक समय तक कैद में रखा गया है।

30. श्री फैज अहमद पीडब्ल्यू -2 के लिए पेश हुए हैं और प्रस्तुत करते हैं कि आरोपी अपीलकर्ता की दोषसिद्धि और सजा न्यायसंगत, कानूनी और वैध है और अपील में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। उनका तर्क है कि मीरगंज, इलाहाबाद से बरामद कैदियों का उद्देश्य उनका उचित पुनर्वास सुनिश्चित करना था ताकि उन्हें यौनकर्मियों के रूप में शोषण से गुजरने के लिए मजबूर न किया जाए। उनका कहना है कि सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों और 1956 के अधिनियम के साथ-साथ 1993 के नियमों के प्रावधानों का आरोपी अपीलकर्ता द्वारा उल्लंघन किया गया है, जिसने मजिस्ट्रेट के आदेशों के विपरीत कैदियों को रिहा करने में बाहरी कारणों से अनुचित जल्दबाजी में काम किया है, जिसके परिणामस्वरूप इन कैदियों का अब पता नहीं चल पा रहा है और पूरी संभावना है कि वे फिर से वेश्यावृत्ति में उतर गए हों। उन्होंने आगे कहा कि इन कैदियों को रिहा करने का अधिकार मुख्य निरीक्षक का था, न कि सरकारी संरक्षण गृह (महिला) के अधीक्षक और सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों के विपरीत कैदियों को रिहा करने में उनकी कार्रवाई पूरी तरह से कानून के अधिकार के बिना है। उन्होंने यह भी कहा कि अभियोजन पक्ष द्वारा दिए गए साक्ष्य स्पष्ट रूप से आरोपी पर 18.5.2017 के आदेश की सेवा को दर्शाते हैं और उस संबंध में नीचे दी गई अदालत के निष्कर्ष में कोई हस्तक्षेप नहीं है।

31. राज्य के अतिरिक्त महाधिवक्ता केएम मीणा ने श्री फैज अहमद के तर्क को स्वीकार करते हुए प्रस्तुत किया कि आरोपी अपीलकर्ता द्वारा संबंधित उप-विभागीय मजिस्ट्रेट से कोई मार्गदर्शन प्राप्त किए बिना कैदियों को उनकी हिरासत अवधि समाप्त होने पर तुरंत रिहा करने में अनुचित जल्दबाजी दिखाई गई, जो इस मामले में उनकी मिलीभगत को दर्शाता है। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि शेष कैदियों में से दो को इसी तरह की परिस्थितियों में रिहा नहीं किया गया था, जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि कैदियों की रिहाई बाहरी विचार के लिए थी और दो कैदियों ने भी सीआरपीसी की धारा 164 के तहत अपने बयान में विशेष रूप से ऐसा कहा है। उन्होंने कहा कि 43 कैदियों के लिए हुए गंभीर परिणामों को देखते हुए, उनकी दोषसिद्धि और सजा उचित है।

32. उपरोक्त प्रस्तुतियों के संदर्भ में इस न्यायालय को यह जांचना आवश्यक है कि क्या अभियुक्त अपीलकर्ता को उसके द्वारा किए गए अपराधों के लिए सही ढंग से दोषी ठहराया गया है और सजा सुनाई गई है या नहीं। रिहाई की वैधता की भी जांच की जानी चाहिए। ट्रायल कोर्ट ने इस मामले में विचार के लिए निम्नलिखित मुद्दे तैयार किए हैं: -

1. क्या 43 कैदियों को उनके बच्चों के साथ आरोपी गीता राकेश, अधीक्षक, राजकीय महिला संरक्षण गृह, आगरा की अभिरक्षा में दिनांक 21.5.2016 के आदेश के तहत एक वर्ष की अवधि के लिए /एसडीएम सदर, इलाहाबाद द्वारा अगले आदेश तक रखा गया था और क्या इसमें कैदियों को रिहा करने का कोई निर्देश था?

2. क्या आरोपी गीता राकेश ने हिरासत की अवधि समाप्त होने से पहले 43 कैदियों को उनके बच्चों के साथ अवैध रूप से रिहा कर दिया था और क्या वह ऐसा करने के लिए सक्षम थी या अधिकार क्षेत्र वाले किसी सक्षम प्राधिकारी ने उसे ऐसा करने का निर्देश दिया था?

3. क्या आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ कार्यवाही करने से पहले सीआरपीसी की धारा 197 के तहत मंजूरी प्राप्त करना अनिवार्य था?

4. क्या इस मामले को केवल सीआरपीसी की धारा 195 (1) (ए) के तहत दायर शिकायत पर आगे बढ़ाया जा सकता है या नहीं?

5. क्या जांच दोषपूर्ण है और यह नामित अधिकारी द्वारा नहीं की गई थी?

6. अभियुक्तों के खिलाफ लगाए गए आरोपों के संबंध में अभियोजन पक्ष और बचाव पक्ष के नेतृत्व में सबूतों का विश्लेषण?

33. पहले मुद्दे पर ट्रायल कोर्ट ने कहा है कि कैदियों को 21.5.2016 के आदेश के तहत एक वर्ष की अवधि /अगले आदेशों तक के लिए रखा गया था और हिरासत की अवधि पूरी होने पर उन्हें रिहा करने के लिए अधीक्षक के पास कोई अधिकार नहीं था। कैदियों की रिहाई के लिए कोई आवेदन प्राप्त होने पर, अधीक्षक मामले को मुख्य निरीक्षक या सक्षम अदालत को भेज सकते थे। नीचे दिए गए मामले में अदालत ने कहा है कि 43 कैदियों को उनके बच्चों के साथ एसडीएम के आदेश के अनुसार रखा गया था, जो अकेले इन कैदियों की रिहाई का निर्देश देने के लिए सक्षम थे और चूंकि उनके द्वारा कोई आदेश पारित नहीं किया गया था, इसलिए इन 43 कैदियों को उनके 8 बच्चों के साथ रिहा करने में आरोपी अपीलकर्ता की कार्रवाई अधिकार क्षेत्र से परे थी। मुद्दा संख्या 3 पर नीचे दिए गए न्यायालय ने राय दी कि चूंकि आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ आरोपों में धारा 370 आईपीसी शामिल है, इसलिए, धारा 197 के परंतुक के आधार पर आरोपी द्वारा किए गए अपराधों के संबंध में दंडात्मक कार्रवाई शुरू करने के लिए कोई पूर्व अनुमति की आवश्यकता नहीं थी।

34. मुद्दा संख्या 4 के संबंध में, नीचे की अदालत द्वारा यह देखा गया है कि नीचे की अदालत के समक्ष अभियुक्त की ओर से कोई प्रारंभिक आपत्ति नहीं की गई थी और चूंकि अपराध केवल सीआरपीसी की धारा 188 तक सीमित नहीं हैं, बल्कि 1956 के अधिनियम के तहत अपराध शामिल हैं, इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि केवल शिकायत के आधार पर आरोपी पर मुकदमा चलाया जा सकता है। मुद्दा संख्या 5 पर, नीचे दी गई अदालत ने कहा है कि हालांकि शुरुआत में इस मामले में जांच इंस्पेक्टर बृजेश कुमार पांडे द्वारा की गई थी, लेकिन मुख्य जांच बीएस त्यागी द्वारा की गई थी। रिलायंस को दिनांक 17-7-2003 के सरकारी आदेश पर रखा गया है जिसमें 1956 के अधिनियम के तहत अपराधों की जांच सहायक/पुलिस उपाधीक्षक द्वारा उनके क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र के भीतर करने की अनुमति दी गई है और चूंकि बीएस त्यागी ऐसे पद पर थे, इसलिए जांच को गलत नहीं ठहराया जा सकता है। मुद्दा संख्या 6 पर ट्रायल कोर्ट ने पार्टियों के नेतृत्व में सबूतों का विश्लेषण किया है ताकि यह माना जा सके कि अभियोजन पक्ष आरोपी अपीलकर्ता के अपराध को उसके द्वारा जिम्मेदार अपराधों के उचित संदेह से परे साबित करने में सफल रहा है, और इसलिए, उसकी सजा दी जाती है। अपराधों की गंभीरता को देखते हुए नीचे दी गई अदालत ने आरोपी अपीलकर्ता को सजा सुनाई है।

35. पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों और दिए गए तर्कों के आलोक में वर्तमान अपील में उठाए गए मुद्दों पर ध्यान देने से पहले, हम सरकारी संरक्षण गृह (महिला), आगरा के मामलों/प्रबंधन से संबंधित मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित कुछ आदेशों का उल्लेख करना उचित समझते हैं। डॉ उपेंद्र बक्शी और अन्य (II) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत 1981 की एक रिट याचिका (सीआरएल) संख्या 1900 सुप्रीम कोर्ट के समक्ष दायर की गई थी, जिस पर 23.7.1986 को (1986) 4 एससीसी 106 में रिपोर्ट किए गए फैसले के तहत निर्णय लिया गया था। आगरा में सरकारी संरक्षण गृह (महिला) में लड़कियों के रहने की स्थितियों और बुनियादी मानवीय गरिमा के साथ जीने के उनके अधिकार से वंचित करने से संबंधित चिंताएं इस मामले में उठाई गई थीं। सुप्रीम कोर्ट द्वारा इस मामले में विभिन्न निर्देश जारी किए गए थे। हम स्वयं को उन दिशाओं तक सीमित रखेंगे जिनका वर्तमान प्रयोजनों पर प्रभाव पड़ सकता है। निर्णय के पैरा 6 और 9 में निहित निर्देश को हमारे सामने उजागर किया गया है और इसके बाद पुनः प्रस्तुत किया गया है: –

6. चौथा, संरक्षण गृह के अधीक्षक इस बात का ध्यान रखेंगे कि किसी भी महिला या लड़की को उचित अधिकार और कानून की प्रक्रिया के बिना संरक्षण गृह में हिरासत में न लिया जाए। जिला न्यायाधीश, आगरा जो संरक्षण गृह का मासिक निरीक्षण करता है, प्रत्येक यात्रा के दौरान यह सत्यापित करेगा कि किसी भी महिला या लड़की को कानून के अधिकार के अलावा हिरासत में नहीं लिया गया है और यदि वह पाता है कि उनमें से किसी को भी कानून के अधिकार के बिना हिरासत में लिया गया है, तो वह यह सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाएगा कि उसे रिहा कर दिया जाए और उसके माता-पिता या पति या अन्य उचित प्राधिकारी को वापस भेज दिया जाए।

9. जिला न्यायाधीश, आगरा या उनके द्वारा नामित कोई अन्य अतिरिक्त जिला न्यायाधीश यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य से हर महीने में एक बार संरक्षण गृह का दौरा करेंगे कि हमारे द्वारा दिए गए उपरोक्त निर्देशों का पूरी तरह से और प्रभावी ढंग से पालन किया जाता है और वह हर महीने की 15 तारीख को या उससे पहले इस न्यायालय को एक निरीक्षण रिपोर्ट प्रस्तुत करेंगे। (जोर दिया गया)

36. हम (1983) 2 एससीसी 308 (डॉ. उपेंद्र बक्शी (आई) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पहले रिपोर्ट की गई उसी याचिका में पारित निर्णय का भी उल्लेख कर सकते

हैं। कैदियों की रिहाई के संबंध में उच्चतम न्यायालय ने दिनांक 6.2.1961 की अधिसूचना के माध्यम से 1956 के अधिनियम की धारा 23 के तहत बनाए गए नियमों के प्रावधानों का उल्लेख किया, जिसमें नियम 37 शामिल है, जिसमें राज्य सरकार को किसी भी समय, या तो बिल्कुल या ऐसी शर्तों पर किसी भी कैदी को आरोपमुक्त करने का अधिकार दिया गया है, जो उचित समझा जाता है। उपर्युक्त याचिका में दिनांक 29.01.1982 के आदेश के तहत उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित निर्देश जारी किए:

"....... जिला न्यायाधीश, आगरा तुरंत संरक्षण गृह का दौरा करेंगे और संरक्षण गृह में बंद लड़कियों की वर्तमान स्थिति के साथ-साथ वहां की स्थितियों के संबंध में हमें विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत करेंगे। यह रिपोर्ट जिला न्यायाधीश द्वारा 10 फरवरी, 1982 को या उससे पहले इस न्यायालय में प्रस्तुत की जाएगी और जब रिपोर्ट प्रस्तुत की जाएगी, तो प्रतिवादियों की ओर से पेश श्री आरके भट्ट एडवोकेट को एक प्रति दी जाएगी। समय-समय पर न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशों और आदेशों की एक प्रति डॉ. सोढ़ी को भी दी जा सकती है, जिन्होंने वास्तव में याचिकाकर्ताओं के माध्यम से इस मामले को अदालत के समक्ष लाया है।

37. ऊपर दिए गए सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों को पूरा नहीं किया गया है और हमें बार में सूचित किया गया है कि जिला न्यायाधीश, आगरा संरक्षण गृह के मामलों की देखरेख करना जारी रखते हैं। हम यह भी नोट कर सकते हैं कि 1961 के नियमों की अनदेखी करते हुए उत्तर प्रदेश राज्य ने उत्तर प्रदेश अनैतिक व्यापार (निवारण) नियमावली, 1993 बनाई है, जिसमें सुरक्षात्मक गृहों/सुधारात्मक संस्थाओं की स्थापना के संबंध में प्रावधान हैं। नियम 2 (एच) निम्नलिखित शब्दों में अधीक्षक को परिभाषित करता है: –

"(ज) "अधीक्षक" से एक सुरक्षात्मक गृह या सुधारात्मक संस्था का प्रभारी प्रधान अधिकारी अभिप्रेत है, जैसा भी मामला हो, और इन नियमों के तहत अधीक्षक के कार्यों का निर्वहन करने के लिए राज्य सरकार द्वारा नियुक्त कोई व्यक्ति शामिल होगा।

38. 1993 के नियमों के नियम 13 में प्रावधान है कि प्रत्येक सुरक्षात्मक गृह या सुधारात्मक संस्थान का नेतृत्व एक पूर्णकालिक अधीक्षक द्वारा किया जाएगा, अधिमानतः एक महिला, जो सामाजिक कार्य में पेशेवर रूप से प्रशिक्षित है या जिसे महिला कल्याण में व्यापक अनुभव है। नियम 14 में अधीक्षक के कर्तव्य शामिल हैं। नियम 14 के खंड (I) के आधार पर अधीक्षक संरक्षण गृह के सामान्य पर्यवेक्षण का प्रभारी होगा। नियम 38 में संरक्षण गृह या सुधारात्मक संस्थान में रहने वालों को छुट्टी देने का प्रावधान है और इसे इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया जाता है: –

38. संरक्षण गृह या सुधारात्मक संस्थान में रहने वालों को छुट्टी दी जाए। –

(1) अधीक्षक की रिपोर्ट पर मुख्य निरीक्षक किसी सुरक्षात्मक गृह या सुधारात्मक संस्था में हिरासत में रखे गए किसी भी व्यक्ति, जिसका व्यवहार अच्छा पाया जाता है और जिसके अधिनियम के तहत कोई अपराध करने की संभावना नहीं है, को बिना किसी शर्त के या शर्तों के साथ आरोपमुक्त करने का आदेश दे सकता है, जो वह फॉर्म-एक्स में इस तरह के निर्वहन का लिखित लाइसेंस लागू करने और देने के लिए उचित समझता है:

परन्तु ऐसे किसी भी व्यक्ति को लाइसेंस पर तब तक आरोपमुक्त नहीं किया जाएगा जब तक कि वह सुधारात्मक संस्था में कम से कम छह महीने की अवधि के लिए या अपनी हिरासत के कम से कम एक तिहाई के लिए सुरक्षात्मक गृह में नहीं रहा हो, जैसा भी मामला हो।

(2) अधीक्षक प्रत्येक महीने के अंत में उन कैदियों का विवरण तैयार करेगा जिन्हें अगले महीने में छुट्टी दी जानी है और कैदियों को उस बयान को पढ़कर सुनाएगा। ऐसे सभी मामले जिनमें कैदियों के पास वापस जाने के लिए कोई सुरक्षित स्थान नहीं है, अधीक्षक द्वारा गृह या संस्थान से तीसरे प्रभार की तारीख से कम से कम एक महीने पहले मुख्य निरीक्षक को ऐसे पुनर्वास प्लेसमेंट के लिए सूचित किया जाएगा जो मुख्य निरीक्षक उचित समझता है।

(3) आरोपमुक्त किए जाने के दिन, कैदी के स्वास्थ्य की स्थिति को अधीक्षक द्वारा कैदी के रजिस्टर में दर्ज किया जाएगा, वह रजिस्टर में उन लोगों के साथ सुपुर्दगी के वारंट में प्रविष्टियों की तुलना करेगा और खुद को संतुष्ट करेगा कि वे सहमत हैं और कैदी की अवधि विधिवत पूरी हो गई है। फिर वह वारंट पर निर्वहन के लिए अनुमोदन पर हस्ताक्षर करेगा, जो अवधि की उचित समाप्ति को प्रमाणित करेगा। कैदियों का सामान उन्हें सौंप दिया जाएगा और कैदी रजिस्टर में उपयुक्त कॉलम में दर्ज विवरण दिया जाएगा। कैदी को छुट्टी दिए जाने से एक दिन पहले भोजन दिया जाएगा। यदि आवश्यक हो, तो कैदी को उपयुक्त कपड़े प्रदान किए जाएंगे।

(4) प्रत्येक मुक्त कैदी जिसका गंतव्य रेलवे लाइन पर या उसके पास है, को निम्नतम श्रेणी का रेल टिकट प्रदान किया जाएगा। किराए का भुगतान रेलवे वारंट द्वारा किया जाएगा जहां यात्रा की लागत पचास रुपये से अधिक है। अन्य मामलों में, भुगतान नकद में किया जाएगा। जब यात्रा नाव/बस या स्टीमर से की जानी है, तो कैदी को उसके गंतव्य के निकटतम ठहराव स्थान तक न्यूनतम दर पर मार्ग या मार्ग धन प्रदान किया जाएगा। प्रत्येक कैदी जिसे सड़क मार्ग से 8 किलोमीटर से अधिक के गंतव्य के लिए जाना है या रेल या परिवहन के किसी अन्य साधन से तीन घंटे से अधिक की यात्रा करनी है, उसे छुट्टी मिलने पर पांच रुपये की दर से निर्वाह भत्ता दिया जाएगा, यदि यात्रा अगली सुबह पूरी की जानी है और अन्यथा दस रुपये प्रति दिन की दर से निर्वाह भत्ता दिया जाएगा।

(5) यदि मुक्त किए गए कैदी के माता-पिता, रिश्तेदार या अभिभावक सुरक्षात्मक गृह या सुधारात्मक संस्थान में कैदी का प्रभार लेने के लिए अपनी व्यवस्था करने में विफल रहते हैं, तो छुट्टी पर कैदी को गृह या संस्थान के एक अधिकारी के प्रभार के तहत भेजा जाएगा जो कैदी की देखभाल और सुरक्षा के लिए जिम्मेदार होगा जब तक कि उसे ऐसे माता-पिता रिश्तेदार या अभिभावक को नहीं सौंप दिया जाता! अधिकारी को यात्रा के लिए यात्रा भत्ता दिया जाएगा, जो राज्य सरकार के नियमों के तहत स्वीकार्य दरों पर होगा।

(6) राज्य सरकार किसी भी समय संरक्षण गृहों या सुधारात्मक संस्थाओं के उपयुक्त कैदियों को राज्य सरकार के देखभाल पश्चात कार्यक्रमों के अंतर्गत स्थापित संस्थाओं में भर्ती करने का आदेश दे सकती है।

(7) प्रत्येक सुरक्षात्मक गृह या सुधारात्मक संस्था में फार्म XI में एक निपटान रजिस्टर रखा जाएगा जिसमें प्रत्येक कैदी को डिस्चार्ज किए जाने पर और उसकी देखभाल करने वालों के निपटान के तरीके का पूरा विवरण दर्ज किया जाएगा। अधीक्षक द्वारा कैदियों को छुट्टी दिए जाने के बाद कम से कम पांच साल तक उनके संपर्क में रहने के लिए हर संभव प्रयास किया जाएगा।

(8) फार्म XII में एक वार्षिक विवरणी अधीक्षक द्वारा मुख्य निरीक्षक को दी जाएगी। जिस वर्ष से रिटर्न संबंधित है, उस वर्ष के दौरान समय-समय पर बोर्ड ऑफ विजिटर्स द्वारा की गई टिप्पणियों को रिटर्न के साथ मुख्य निरीक्षक को भी सूचित किया जाएगा।

39. नीचे दिए गए न्यायालय ने नियम 38 पर ध्यान देते हुए कहा है कि अधीक्षक के पास कानून में किसी कैदी की रिहाई का निर्देश देने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, भले ही हिरासत की अवधि समाप्त हो गई हो और ऐसी शक्ति का उपयोग मुख्य निरीक्षक या मजिस्ट्रेट द्वारा किया जा सकता है, जिसने इन कैदियों को 1956 के अधिनियम की धारा 17 (4) के आधार पर अधीक्षक की हिरासत में रखा था।

40. उपरोक्त वैधानिक योजना के संदर्भ में और आगरा में सरकारी संरक्षण गृह (महिला) चलाने के लिए सुप्रीम कोर्ट द्वारा जारी निर्देशों के आलोक में आरोपी अपीलकर्ता की कार्रवाई की जांच अभियोजन पक्ष और बचाव पक्ष के नेतृत्व में सबूतों के आधार पर की जानी चाहिए।

41. अभिलेखों से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि राज्य के अधिकारियों ने मीरगंज, इलाहाबाद में एक वेश्यालय में वेश्यावृत्ति के संचालन के संबंध में प्राप्त सूचना के आधार पर परिसर पर छापा मारा और 67 महिलाओं और 37 बच्चों को बचाया। इन बचाए गए पीड़ितों को 21 मई, 2016 को एसडीएम सदर, इलाहाबाद के समक्ष पेश किया गया था। मजिस्ट्रेट के आदेश में कहा गया है कि 37 बच्चों के साथ 67 कैदियों को एक वर्ष की अवधि के लिए आगरा के सरकारी संरक्षण गृह (महिला) में रखा जाना है और यदि इस अवधि के दौरान रिहाई के लिए कोई आवेदन दिया जाता है तो कानून के अनुसार सामग्री/साक्ष्य के आधार पर उचित आदेश पारित किए जाएंगे। 21 मई, 2016 के आदेश के आधार पर इन कैदियों की हिरासत की अवधि एक वर्ष थी। एक वर्ष की यह अवधि 20 मई, 2017 को समाप्त होने वाली थी। अभियोजन पक्ष का यह स्वीकार किया गया मामला है कि 20 मई, 2017 को हिरासत की एक साल की अवधि समाप्त होने के बाद आरोपी अपीलकर्ता द्वारा 43 कैदियों को रिहा कर दिया गया है। 21 मई, 2017 से 23 मई, 2017 के बीच 43 कैदियों की रिहाई हुई है।

42. इस स्तर पर यह ध्यान देने योग्य होगा कि संरक्षण गृह में बंद 67 वयस्क महिलाओं में से 22 को इलाहाबाद में संबंधित न्यायालय के निर्देशों के तहत रिहा कर दिया गया था। संबंधित अदालत के आदेश को 2017 की अपील की विशेष अनुमति (सीआरएल) संख्या 3324 में सुप्रीम कोर्ट के समक्ष चुनौती दी गई थी और 13.2.2017 और 21.4.2017 को पारित आदेशों के तहत, इन कैदियों को पुनः प्राप्त करने और फिर से संरक्षण गृह में रखने का निर्देश दिया गया था। ऐसा कोई आरोप नहीं है कि इन बाईस कैदियों में से किसी को भी आरोपी अपीलकर्ता द्वारा रिहा कर दिया गया है और इसलिए, बाईस कैदियों की रिहाई की वैधता पर टिप्पणी नहीं की जानी चाहिए क्योंकि यह इस अपील का विषय नहीं है। वर्तमान अपील का दायरा 21.5.2017 से 23.5.2017 के बीच 43 कैदियों को उनके आठ बच्चों के साथ रिहा करने तक सीमित है।

43. मोटे तौर पर वर्तमान अपील में विचार के लिए दो मुद्दे उठते हैं। पहला यह है कि क्या आरोपियों ने कैदियों को उनकी हिरासत की अवधि समाप्त होने से पहले रिहा कर दिया था? पहले मुद्दे का दूसरा पहलू यह होगा कि क्या 18.5.2017 का आदेश, जिसमें हिरासत की अवधि को दो साल के लिए बढ़ाया गया था, इन कैदियों की रिहाई से पहले आरोपी अपीलकर्ता को दिया गया था या नहीं। दूसरा मुद्दा यह होगा कि क्या आरोपी अपीलकर्ता सरकारी संरक्षण गृह (महिला) के अधीक्षक के रूप में कैदियों को रिहा करने के लिए सक्षम थी या उसके पास ऐसा करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था?

44. रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य पहले ही ऊपर देखे जा चुके हैं और अब इस अपील में तैयार किए गए मुद्दों के निर्धारण के उद्देश्य से इसकी जांच की जाती है।

45. माना जाता है कि कैदियों की प्रारंभिक बंदी एक वर्ष की अवधि के लिए थी / अगले आदेश जो 20 मई, 2017 को समाप्त होने वाले थे। आरोपी अपीलकर्ता पर एक वर्ष की अवधि के भीतर इनमें से किसी भी कैदी को रिहा करने का आरोप नहीं है। उन पर 18.5.2017 को संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा आदेशित हिरासत की विस्तारित अवधि के भीतर कैदियों को रिहा करने का आरोप है। पक्षकार 21.5.2017 से 23.5.2017 के बीच कैदियों की रिहाई से

पहले 18.5.2017 के आदेश की सेवा/संचार के संबंध में मुद्दे पर हैं।

46. यह अभियोजन पक्ष का मामला है कि कैदियों की प्रारंभिक हिरासत की अवधि संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा 18.5.2017 को बढ़ा दी गई थी। जिस मजिस्ट्रेट ने दिनांक 18.5.2017 का आदेश पारित किया है, उसे साक्ष्य के रूप में पेश नहीं किया गया है। 18.5.2017 का मूल आदेश भी नीचे की अदालत के समक्ष पेश नहीं किया गया है। इसकी प्रमाणित प्रति प्रर्दश-19 के रूप में प्रदर्शित की गई है। यह आदेश कथित तौर पर अधीक्षक को ई-मेल, फैक्स, व्हाट्सएप और पंजीकृत डाक द्वारा भेजा जाता है। हालांकि, कैदियों की रिहाई से पहले इस आदेश को प्राप्त करने के संबंध में अपीलकर्ता का एक विशिष्ट आपत्ति है। आरोपी अपीलकर्ता खुद गवाह के कठघरे में पेश हुई है और उसने स्वीकार किया है कि 18.5.2017 का आदेश उसे 24.5.2017 को दोपहर 2.15 बजे प्राप्त हुआ था। उनका विशिष्ट मामला यह है कि तब तक उन्होंने सभी 43 कैदियों को रिहा कर दिया था क्योंकि उन्होंने हिरासत की अवधि पूरी कर ली थी और उनकी निरंतर हिरासत कानून के विपरीत होती।

47. दिनांक 18.5.2017 के आदेश के प्रेषण के संबंध में पहला दस्तावेज फैक्स रसीद की एक फोटोकॉपी है जिसे प्रर्दश क14 के रूप में चिह्नित किया गया है। यह दस्तावेज़ डिस्पैचर का विवरण नहीं दिखाता है या इससे भेजे गए नंबर को नहीं दिखाया गया है और यह केवल यह दर्शाता है कि जिला मजिस्ट्रेट, आगरा को एक फैक्स संदेश भेजा गया है। इस फ़ैक्स संदेश की सामग्री क्या है, यह नहीं दिखाया गया है. यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि यह दस्तावेज वास्तव में अधीक्षक, सरकारी संरक्षण गृह (महिला), आगरा को भेजा गया था। अन्यथा यह दस्तावेज एक फोटोकॉपी है जिसमें न तो इसका मूल उत्पादन किया गया है, न ही मूल दस्तावेज की अनुपलब्धता / अनुपस्थिति के संबंध में कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया गया है। अभियोजन पक्ष ने अन्यथा यह दिखाने के लिए कोई सबूत पेश नहीं किया है कि सरकारी संरक्षण गृह (महिला) के अधीक्षक के कार्यालय में फैक्स की सुविधा मौजूद थी। यह दिखाने के लिए भी कोई सबूत नहीं है कि जिला मजिस्ट्रेट, आगरा के कार्यालय ने सरकारी संरक्षण गृह (महिला) के अधीक्षक को कथित फैक्स संदेश भेजा था। डॉयचे वेले-1 ने अपने बयान में अपने कार्यालय में फैक्स की किसी भी सुविधा के अस्तित्व से इनकार किया है और फैक्स द्वारा अपने कार्यालय में दिनांक 18.5.2017 के आदेश की प्राप्ति के बारे में उन्हें दिए गए सुझाव से इनकार किया है।

48. उप-मंडल मजिस्ट्रेट, सदर, इलाहाबाद के कार्यालय से फैक्स द्वारा अधीक्षक, राजकीय संरक्षण गृह (महिला), आगरा को दिनांक 18.05.2017 के आदेश के प्रेषण को साबित करने की जिम्मेदारी अभियोजन पक्ष की थी। हमने निचली अदालत के रिकॉर्ड सहित इस अपील के रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों की बारीकी से जांच की है और हमें यह निष्कर्ष निकालने में कोई संकोच नहीं है कि 18.5.2017 के कथित आदेश को फैक्स द्वारा अधीक्षक, सरकारी संरक्षण गृह (महिला), आगरा के कार्यालय में नहीं भेजा गया है और फैक्स द्वारा प्राप्त यह साबित नहीं हुआ है। इस प्रकार, अभियोजन पक्ष फैक्स द्वारा आरोपी अपीलकर्ता के कार्यालय को 18.5.2017 के आदेश के प्रेषण को स्थापित करने में विफल रहा है।

49. अभिलेख में अगला दस्तावेज स्पीड पोस्ट द्वारा भेजे गए कतिपय पत्रों की छायाप्रति है और ऐसी रसीदों की छायाप्रति प्रर्दश क 15 के रूप में प्रदर्शित की गई है।. प्रेषण की फोटोकॉपी से पता चलता है कि 20.5.2017 को उप-मंडल मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद के कार्यालय द्वारा सरकारी संरक्षण गृह (महिला), आगरा के अधीक्षक को कुछ संचार भेजा गया है। इस प्रेषण की मूल राशि प्रदर्शित नहीं की गई है और ऐसे साक्ष्य की स्वीकार्यता पर बचाव पक्ष द्वारा एक विशिष्ट आपत्ति की गई है। यहां तक कि अगर हम मानते हैं कि 20.5.2017 को पंजीकृत स्पीड पोस्ट द्वारा कुछ संचार भेजा गया था, तो अभियोजन पक्ष द्वारा यह दिखाना होगा कि 18.5.2017 का आदेश वास्तव में 24.5.2017 से पहले अधीक्षक के कार्यालय में प्राप्त हुआ था। वास्तव में, आरोपी अपीलकर्ता ने स्वीकार किया है कि उसे दिनांक 18.5.2017 का आदेश 24.5.2017 को दोपहर 2.15 बजे प्राप्त हुआ था। इसलिए, अभियोजन पक्ष को यह दिखाने की आवश्यकता थी कि यह आदेश वास्तव में अधीक्षक के कार्यालय में 24.5.2017 से पहले 2.15 बजे प्राप्त हुआ था। इसलिए, दस्तावेज़ (प्रर्दश क15), अधीक्षक द्वारा 24.5.2017 से पहले 2.15 बजे 2.15 बजे दिनांक 18.5.2017 के आदेश की प्राप्ति के प्रमाण के रूप में नहीं माना जा सकता है। इसलिए, यह दस्तावेज़ अभियोजन पक्ष के मामले में मदद नहीं कर सकता है, भले ही हम इसकी स्वीकार्यता के संबंध में आपत्ति को इस आधार पर अनदेखा कर दें कि यह एक फोटोकॉपी है और भेजे गए संचार की सामग्री अज्ञात है।

50. अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत अगला दस्तावेज geetarakeshetw@gmail.com से भेजे गए ई-मेल की फोटोकॉपी है। इस ई-मेल पोस्ट के अनुसार प्रेषक वह है जो उप-विभागीय मजिस्ट्रेट, सदर, इलाहाबाद का ई-मेल पता नहीं दिखाया गया है। ऐसा कोई सबूत नहीं है जिससे पता चले कि अधीक्षक, राजकीय महिला संरक्षण गृह, आगरा के कार्यालय में ई-मेल की कोई सुविधा थी। डीडब्ल्यू -1 (आरोपी अपीलकर्ता) का विशिष्ट बयान यह है कि उसके कार्यालय में ई-मेल की कोई सुविधा नहीं थी। इसलिए 19.5.2017 को रात 8.54 बजे geetarakeshetw@gmail.com को ई-मेल भेजने वाली ई-मेल रसीद की फोटोकॉपी अधीक्षक को दिनांक 18.5.2017 के आदेश की सूचना का पर्याप्त प्रमाण नहीं होगी।

51. अगला अभियोजन दस्तावेज प्रेषण रजिस्टर की प्रमाणित प्रति है जिसमें राजकीय महिला संरक्षण गृह, आगरा को एक पत्र भेजा गया दिखाया गया है। यह पत्र कैसे दिया गया है या यहां तक कि भेजा भी गया है, यह स्पष्ट नहीं है। इसलिए, इस दस्तावेज की फोटोकॉपी 24.5.2017 से पहले अधीक्षक के कार्यालय में दिनांक 18.5.2017 के आदेश की सेवा के संबंध में प्रमाण नहीं होगी।

52. अभियोजन का अन्य दस्तावेज प्रर्दश क18 है जिस पर अभियोजन पक्ष द्वारा भारी भरोसा किया गया है। यह दस्तावेज इलाहाबाद में तहसील सदर के कार्यालय में कार्यरत लेखपाल संजीव खरे द्वारा अपने मोबाइल नंबर 9450509758 से अधीक्षक को उनके मोबाइल नंबर 9457020485 पर भेजे गए व्हाट्सएप संचार की प्रमाणित फोटोकॉपी है। यह दस्तावेज कथित तौर पर रिसीवर द्वारा 20.5.2017 को शाम 4.56 बजे देखा गया है।

53. जहां तक व्हाट्सएप द्वारा दिनांक 18.5.2017 के आदेश के प्रेषण का संबंध है, इस संचार का प्रेषक संजीव खरे है, जिसे सबूत के रूप में पेश नहीं किया गया है। इस व्हाट्सएप नंबर को भेजने वाला सब डिविजनल मजिस्ट्रेट सदर इलाहाबाद का नहीं है। इस व्हाट्सएप का रिसीवर मोबाइल नंबर 9457020485 है जो निश्चित रूप से आरोपी अपीलकर्ता से संबंधित नहीं है। मोबाइल नंबर 9457020485 आरोपी अपीलकर्ता के पति राकेश कुमार पुत्र राम दुलारे के नाम पर पंजीकृत है, जो इटावा में रहता है और उसने जोर देकर कहा है कि उसके पास एक साधारण सिम था जिस पर व्हाट्सएप की कोई सुविधा नहीं थी। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि यह सिम नंबर आरोपी अपीलकर्ता के पास था या वह इसका इस्तेमाल कर रही थी।

54. दिनांक 30 18.05.2017 के पत्र प्राप्त होने के संबंध में रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य आरोपी अपीलकर्ता की स्वीकारोक्ति है कि उसे यह 24.5.2017 को दोपहर 2.15 बजे प्राप्त हुआ था। यह दिखाने के लिए कोई कानूनी सबूत नहीं है कि अधीक्षक को यह पत्र 24.5.2017 को दोपहर 2.15 बजे प्राप्त हुआ था। हालांकि यह विशेष रूप से नहीं कहा गया है, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि दिनांक 18.5.2017 का आदेश वास्तव में अधीक्षक के कार्यालय में 24.5.2017 को स्पीड पोस्ट द्वारा प्राप्त किया गया था।

55. जहां तक ई-मेल, व्हाट्सएप या फैक्स द्वारा दिनांक 18.5.2017 के आदेश के प्रेषण का संबंध है, सभी तीन तरीकों से प्रेषण इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड के बराबर होगा और इस तरह के साक्ष्य केवल तभी स्वीकार्य होंगे जब यह भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी (4) के संदर्भ में जारी प्रमाण पत्र द्वारा समर्थित हो।

"65-बी (4) किसी भी कार्यवाही में जहां इस धारा के आधार पर साक्ष्य में बयान देना वांछित है, निम्नलिखित में से कोई भी काम करने वाला प्रमाण पत्र, अर्थात्,

(ए) विवरण वाले इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड की पहचान करना और जिस तरीके से इसे प्रस्तुत किया गया था;

(ख) उस इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के उत्पादन में शामिल किसी उपकरण का ऐसा विवरण देना जो यह दर्शाने के प्रयोजनरा्थ उपयुक्त हो कि इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख किसी कंप्यूटर द्वारा निर्मित किया गया था;

(ग) उपधारा (2) में उल्लिखित शर्तों में से किसी से संबंधित किसी मामले से निपटना, और संबंधित उपकरण के संचालन या प्रासंगिक गतिविधियों के प्रबंधन (जो भी उचित हो) के संबंध में जिम्मेदार आधिकारिक पद पर आसीन व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित किया जाना प्रमाण पत्र में उल्लिखित किसी मामले का प्रमाण होगा; और इस उप-धारा के प्रयोजनों के लिए यह पर्याप्त होगा कि किसी मामले को बताने वाले व्यक्ति के ज्ञान और विश्वास के अनुसार कहा जाए।

56. साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी (4) में निहित प्रावधान की जांच सुप्रीम कोर्ट द्वारा अर्जुन पंडितराव खोतकर बनाम कैलाश कुशानराव गोरंट्याल, (2020) 7 एससीसी 1 और फिर रवींद्र सिंह @ काकू बनाम पंजाब राज्य, (2022) 7 एससीसी 581 में निम्नानुसार की गई है: –

"21. अंत में, इस अपील ने कानून का एक महत्वपूर्ण महत्वपूर्ण प्रश्न भी उठाया कि क्या अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत कॉल रिकॉर्ड साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-ए और 65-बी के तहत स्वीकार्य होंगे, इस तथ्य को देखते हुए कि इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य के प्रमाणीकरण की आवश्यकता का अनुपालन नहीं किया गया है जैसा कि अधिनियम के तहत विचार किया गया है। अनवर पी.वी.वी.वी.पी.के. बशीर [अनवर पी.वी.वी.पी.बशीर, (2014) 10 एससीसी 473 कानून के इस क्षेत्र में दायर की गई है या नहीं या क्या शफी मोहम्मद बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, (2018) 2 एससीसी 801 इस संबंध में सही कानून निर्धारित करता है, इस न्यायालय द्वारा अब इस न्यायालय द्वारा अर्जुन पंडितराव खोतकर बनाम कैलाश कुशानराव गोरंट्याल (2020) के मामले में 14-7-2020 के एक फैसले द्वारा निर्णायक रूप से तय किया गया है। यह माना जाता है कि:

61. "इसलिए, हम दोहरा सकते हैं कि धारा 65-बी (4) के तहत आवश्यक प्रमाण पत्र इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड के माध्यम से साक्ष्य की स्वीकार्यता के लिए एक शर्त मिसाल है, जैसा कि अनवर पीवी [अनवर पीवी बनाम पीके बशीर, (2014) 10 एससीसी 473] में सही ढंग से कहा गया है, और बनाम शफी मोहम्मद गलत तरीके से "स्पष्ट" किया गया है। हिमाचल प्रदेश राज्य, (2018) 2 एससीसी 801। ऐसे प्रमाण पत्र के स्थान पर मौखिक साक्ष्य संभवतः पर्याप्त नहीं हो सकता है क्योंकि धारा 65-बी (4) कानून की अनिवार्य आवश्यकता है। दरअसल, टेलर वी (1875) एलआर 1 सीएच डी 426, में पवित्र सिद्धांत, जिसका इस न्यायालय के कई निर्णयों में पालन किया गया है, को भी लागू किया जा सकता है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी (4) में स्पष्ट

रूप से कहा गया है कि द्वितीयक साक्ष्य केवल तभी स्वीकार्य है जब बताए गए तरीके से लीड हो और अन्यथा नहीं। अन्यथा धारण करने से धारा 65-बी (4) लागू हो जाएगी।

अनवर पीवी (सुप्रा), जैसा कि हमने ऊपर स्पष्ट किया है, साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी पर इस न्यायालय द्वारा घोषित कानून है। टॉमासो ब्रूनो [टॉमासो ब्रूनो बनाम यूपी राज्य, (2015) 7 एससीसी 178] में फैसला, लाइलाज होने के नाते, कानून को सही ढंग से निर्धारित नहीं करता है। इसके अलावा, शैफी मोहम्मद (सुप्रा) में फैसला और 3-4-2018 के फैसले को शफी मोहम्मद (सुप्रा) के रूप में रिपोर्ट किया गया है, कानून को सही ढंग से निर्धारित नहीं करता है और इसलिए इसे खारिज कर दिया जाता है।

ऊपर उल्लिखित स्पष्टीकरण यह है कि धारा 65-बी (4) के तहत आवश्यक प्रमाण पत्र अनावश्यक है यदि मूल दस्तावेज स्वयं प्रस्तुत किया गया है। यह लैपटॉप कंप्यूटर, कंप्यूटर टैबलेट या यहां तक कि एक मोबाइल फोन के मालिक द्वारा किया जा सकता है, गवाह बॉक्स में कदम रखकर और यह साबित करके कि संबंधित डिवाइस, जिस पर मूल जानकारी पहली बार संग्रहीत की जाती है, उसके स्वामित्व में और / या संचालित है। ऐसे मामलों में जहां "कंप्यूटर" "कंप्यूटर सिस्टम" या "कंप्यूटर नेटवर्क" का एक हिस्सा होता है और ऐसे सिस्टम या नेटवर्क को भौतिक रूप से अदालत में लाना असंभव हो जाता है, तो ऐसे इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड में निहित जानकारी प्रदान करने का एकमात्र साधन धारा 65-बी (1) के अनुसार हो सकता है, साथ ही धारा 65-बी (4) के तहत आवश्यक प्रमाण पत्र के साथ।

22. उपरोक्त के प्रकाश में, उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य क़ानून के अनुसार होना चाहिए था और प्रमाणन आवश्यकता का अनुपालन करना चाहिए था, ताकि यह कानून की अदालत में स्वीकार्य हो। जैसा कि ऊपर सही कहा गया है, इस तरह के प्रमाण पत्र के स्थान पर मौखिक साक्ष्य, जैसा कि वर्तमान मामले में है, संभवतः पर्याप्त नहीं हो सकता है क्योंकि धारा 65-बी (4) कानून की अनिवार्य आवश्यकता है।

57. श्री जी एस चतुर्वेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता का यह तर्क कि अभियोजन पक्ष द्वारा मुकदमे के दौरान साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी (4) के संदर्भ में कोई प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया है, अतिरिक्त महाधिवक्ता या पीडब्ल्यू -2 के लिए प्रस्तुत अधिवक्ता द्वारा विवादित नहीं है।

58. हमने मूल अभिलेखों की भी जांच की है और हमें धारा 65-बी (4) के तहत रिकॉर्ड पर ऐसा कोई प्रमाण पत्र मौजूद नहीं मिला है। इसकी अनुपस्थिति में अभियोजन पक्ष द्वारा व्हाट्सएप, ई-मेल या फैक्स के प्रेषण के रूप में प्रस्तुत इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य स्पष्ट रूप से अस्वीकार्य होंगे। अन्यथा भी, हम पाते हैं कि राज्य ने दिनांक 18.5.2017 के आदेश के प्रेषण को साबित करने में एक कठोर दृष्टिकोण अपनाया है, क्योंकि न तो एसडीएम स्वयं, न ही उनके स्टेनोग्राफर या इस तरह के संचार के प्रेषण के लिए जिम्मेदार किसी अन्य कर्मचारी को सबूत के रूप में पेश किया गया है। एसडीएम के कार्यालय के मूल रिकॉर्ड भी प्रस्तुत या प्रदर्शित नहीं किए गए हैं। मूल रिकॉर्ड की अनुपलब्धता दिखाने के लिए सबूतों के अभाव में, हमें अभियोजन पक्ष द्वारा मांगे गए द्वितीयक साक्ष्य पर विचार करने के लिए राजी नहीं किया जाता है। हम यह भी नोट कर सकते हैं कि जांच के दौरान भी किसी भी जांच अधिकारी ने एसडीएम सदर, इलाहाबाद से मुलाकात नहीं की, न ही सीआरपीसी की धारा 161 के तहत उनका बयान दर्ज किया गया था। चार्जशीट दाखिल करने वाले जांच अधिकारी पीडब्ल्यू-9 ने अपनी जिरह में स्पष्ट रूप से कहा है कि एसडीएम सदर इलाहाबाद का व्हाट्सएप नंबर या आरोपी अपीलकर्ता का व्हाट्सएप नंबर, फैक्स नंबर रिकॉर्ड में नहीं है। उनके कथन का निम्नलिखित सार पुनः प्रस्तुत किया गया है: –

> ''पूरी विवेचना में ैक्ड सदर इलाहाबाद का कोई भी ब्यान हस्व दफा 161 ब्तच्ब् दर्ज नहीं है। आरोप पत्र में भी उन्हें दस्तखत नहीं बनाया गया। सम्पूर्ण विवेचना में ैक्ड सदर इलाहाबाद का कोई भी ॅींजे।चच नम्बर बनाया फोन नम्बर तथा गीता राकेश का सरकारी ॅींजे।चच नम्बर, फैक्स नम्बर फोन नम्बर दर्ज नहीं है।''

59. दूसरे जांच अधिकारी बीएस त्यागी ने भी स्वीकार किया है कि वह एसडीएम सदर इलाहाबाद से कभी नहीं मिले। फोन नंबर का पता लगाने के संबंध में उनका बयान निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है: –

> ''यह सही है कि ैक्ड सदर इलाहाबाद से व्यक्तिगत मेरी मुलाकात नहीं हुई। और अपने 161 ब्तच्ब् का ब्यान भी मेरे ब्क में दर्ज नहीं किये। कयोंकि मेरी उनसे कभी व्यक्तिगत मुलाकात नहीं हुई। चार्जशीट मेरे द्वारा दाखिल नहीं की गई है। ैक्ड इलाहाबाद का फैक्स नम्बर और ॅींजे।चच नम्बर मउंपस प्क दर्ज कराई थी जो मैंने केस डायरी में दिनांक 11/6/17 को उमाशंकर के ब्यान में दर्ज की है। और उसी में ैक्ड सदर के कार्यालय में तैनात संजीव खरे के मोबाइल नम्बर 9450509758 के द्वारा श्रीमती गीता राकेश के मोबाइल नम्बर 9457020485 पर सूचना देकर अंकित कराया था। समय 4ण्56 च्ड पर 20 मई 2017 को फैक्स नम्बर ब्क में दर्ज नहीं है। मैंने स्वयं इन नम्बरों की जॉच नहीं की

> ये नम्बर सही है या नहीं। नहीं थे ये किसी जॉच का उल्लेख ब्क्ण में किया है। संजीव खरे से भी मेरी व्यक्तिगत मुलाकात नहीं हुई।''

उन्होंने आगे इस प्रकार कहा है:-

> ''गीता राकेश का म्उंपस तथा फैक्स नम्बर ब्क्ण में दर्ज नहीं है।''

60. इसलिए, रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य स्पष्ट रूप से दिखाते हैं कि अभियोजन पक्ष यह स्थापित करने में विफल रहा है कि दिनांक 18.5.2017 का आदेश आरोपी अपीलकर्ता को दिया गया था या 24.5.2017 से पहले अधीक्षक, सरकारी महिला संरक्षण गृह, आगरा के कार्यालय में प्राप्त किया गया था, जब तक कैदियों को रिहा कर दिया गया था। 61. इस मोड़ पर, हम यह भी नोट कर सकते हैं कि आरोपी अपीलकर्ता को पॉक्सो अधिनियम की धारा 16 के साथ 17 के तहत अपराधों के लिए भी दोषी ठहराया गया है और उसे इसके लिए आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है। अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में ऐसा कोई सबूत नहीं है जिससे पता चले कि रिहा किया गया कोई भी कैदी नाबालिग था। 43 कैदियों को उनके आठ बच्चों के साथ रिहा कर दिया गया। रिहा किए गए कैदी इन आठ नाबालिग बच्चों के प्राकृतिक अभिभावक थे। सभी 43 कैदी बालिग थे और अभियोजन पक्ष की ओर से ऐसा कोई सबूत पेश नहीं किया गया जिससे पता चले कि वे नाबालिग थे। पीडब्ल्यू -10, जो मामले के जांच अधिकारी थे, ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि आरोपी अपीलकर्ता द्वारा रिहा किए गए सभी कैदी बालिग थे। इस संबंध में सुस्पष्ट विवरण निम्नानुसार दिया गया है:-

> ''संवासिनियॉ जो छोड़ी गई थी वो सभी बालिग हैं।''

62. अन्य जांच अधिकारी ने भी स्वीकार किया है कि रिकॉर्ड पर ऐसी कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है जिससे यह पता चले कि रिहा किया गया कोई कैदी नाबालिग था। हमें अन्य सभी गवाहों के साक्ष्य के माध्यम से लिया गया है और हम पाते हैं कि किसी भी गवाह ने यह दावा भी नहीं किया है कि रिहा किया गया कोई भी कैदी नाबालिग था। एक बार ऐसा होने के बाद, हम यह समझने में असमर्थ हैं कि आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ पॉक्सो अधिनियम की धारा 16/17 के तहत अपराध कैसे साबित हो सकता है।

63. यह हमें दूसरे प्रश्न पर ले जाता है, जो यह है कि क्या आरोपी अपीलकर्ता अपने आठ बच्चों के साथ तैंतालीस कैदियों को रिहा कर सकता था या उन्हें रिहा करने के लिए किसी अन्य अधिकारी की मंजूरी की आवश्यकता थी।

64. ऊपर तैयार किए गए दूसरे मुद्दे के संबंध में सबूतों की जांच करने के लिए आगे बढ़ने से पहले, हम वर्तमान मुकदमे में आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ तय किए गए आरोपों का उल्लेख करना चाहते हैं। आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ आठ आरोप लगाए गए हैं। प्रभार पहले ही ऊपर निकाले जा चुके हैं। चौथा आरोप यह है कि इन कैदियों को उप-मंडल मजिस्ट्रेट, सदर, इलाहाबाद की संरक्षकता में राजकीय महिला संरक्षण गृह, आगरा में रखा गया था और उनकी अनुमति के बिना उन्हें रिहा नहीं किया जा सकता था। यह आईपीसी की धारा 363 के तहत अपराध है।

65. नीचे दी गई अदालत ने 1993 के नियमों के नियम 38 के मद्देनजर कैदियों को रिहा करने के लिए अधीक्षक के अधिकार क्षेत्र पर संदेह किया, जो पहले से ही ऊपर निकाले गए हैं। अपील का विरोध करने वाले वकीलों ने भी इस पर बहुत जोर दिया है। हालांकि हम इस पहलू की जांच करने का प्रस्ताव करते हैं, लेकिन हम यह संकेत दे सकते हैं कि एक आरोपी पर केवल उसके खिलाफ विशेष रूप से तय किए गए आरोपों के लिए मुकदमा चलाया जा सकता है। आरोपी के पास आरोप के संदर्भ में ही अपना बचाव करने का अवसर होगा। नियम 38 का पालन न करने के संबंध में आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ कोई आरोप तय नहीं किया गया है, जो मुख्य निरीक्षक को कैदी को आरोपमुक्त करने का अधिकार देता है। इसलिए, हमें संदेह है कि क्या आरोपी अपीलकर्ता को नियम 38 के उल्लंघन के लिए दंडित किया जा सकता है, जब उसके खिलाफ ऐसा कोई आरोप नहीं लगाया गया है। नियम 38 का उल्लंघन भी अधिनियम या 1993 के नियमों के तहत अपराध नहीं है।

66. यह तय है कि मुकदमे में अपराध के लिए आरोप लगाए बिना एक अभियुक्त को दंडित नहीं किया जा सकता है। इसलिए, हमारी सुविचारित राय है कि नियम 38 पर भरोसा नहीं किया जा सकता है और न ही इसके उल्लंघन के संबंध में आरोपी अपीलकर्ता को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। यह तब और अधिक होता है जब क़ानून/कानून नियम 38 के उल्लंघन को एक महत्वपूर्ण अपराध नहीं मानता है। आरोपी अपीलकर्ता पर केवल यह आरोप लगाया गया है कि उसने कैदियों को रिहा करने में अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन किया क्योंकि रिहाई के लिए सब डिवीजनल मजिस्ट्रेट के पास अधिकार है और इस हद तक अकेले आरोपी अपीलकर्ता पर मुकदमा चलाया जा सकता है।

67. उप-संभागीय मजिस्ट्रेट के दिनांक 21.05.2016 के आदेश में संरक्षण गृह में रहने वालों को एक वर्ष की अवधि के लिए हिरासत में रखने का निर्देश दिया गया है। हम पहले ही कह चुके हैं कि कैदियों की रिहाई से पहले आरोपी अपीलकर्ता को 18.5.2017 के अगले आदेश के बारे में सूचित नहीं किया गया था। रिकॉर्ड पर एकमात्र

आदेश 21.5.2016 का है, जिसके अनुसार, कैदी की हिरासत की अवधि एक वर्ष के लिए थी। यह अवधि 20.5.2017 को समाप्त हो गई। 20.5.2017 तक आरोपी अपीलकर्ता द्वारा किसी भी कैदी को रिहा नहीं किया गया था। इन परिस्थितियों में इस बात की जांच करने की आवश्यकता है कि क्या 20.5.2017 को उनकी हिरासत की अवधि समाप्त होने के बाद भी संरक्षण गृह में कैदियों को हिरासत में रखा जा सकता है?

68. उपर्युक्त मुद्दे पर, हम पाते हैं कि डॉ उपेंद्र बक्शी और अन्य (II) (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का एक विशिष्ट आदेश है, जिसे पहले ही ऊपर निकाला जा चुका है। सुप्रीम कोर्ट ने संरक्षण गृह के अधीक्षक को स्पष्ट रूप से निर्देश दिया है कि वह इस बात का ध्यान रखें कि किसी भी महिला या लड़की को उचित अधिकार और कानून की प्रक्रिया के बिना हिरासत में न लिया जाए। जिला न्यायाधीश, आगरा को संरक्षण गृह का मासिक निरीक्षण करने और हर दौरे के दौरान सत्यापित करने का भी निर्देश दिया गया था कि कानून के अधिकार के अलावा किसी भी महिला या लड़की को हिरासत में नहीं लिया गया है और यदि वह पाते हैं कि उनमें से किसी को भी कानून के अधिकार के बिना हिरासत में लिया गया है, तो वह यह सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाएंगे कि उसे रिहा किया जाए और उसके माता-पिता या पति या अन्य उचित प्राधिकारी को वापस भेज दिया जाए। आरोपी अपीलकर्ता (डीडब्ल्यू-1) ने अपनी गवाही में स्पष्ट रूप से कहा है कि उसने इस मामले में मार्गदर्शन के लिए जिला न्यायाधीश, आगरा को लिखा और जिला न्यायाधीश, आगरा ने उसे एसडीएम सदर इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश के अनुसार कार्य करने का निर्देश दिया। इस संबंध में डीडब्ल्यू -1 का बयान निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है: –

> ''मा0 जिला जज के 4.5.17 एवं 20.5.17 दोनों पत्रों में पीड़िता की आवासित अवधि 20.5.17 को ही समाप्त होना बताया है तत्क्रम में ैक्ड सदर इलाहाबाद के आदेश तत्काल अनुपालन आदेश मुझे दिये। दोनों पत्र में अन्य सबूत के साथ दाखिल कर रही हूॅं।''

69. अभियुक्त अपीलकर्ता के उपरोक्त बयान को अभियोजन पक्ष द्वारा चुनौती नहीं दी गई है, न ही इस तरह के बयान को गलत या गलत दिखाया गया है। अन्यथा अधीक्षक संरक्षण गृह का प्रधान अधिकारी (प्रभारी) होता है और संरक्षण गृह के सामान्य पर्यवेक्षण का प्रभार अधीक्षक के पास होता है। इस प्रकार यह सुनिश्चित करना अधीक्षक की जिम्मेदारी होगी कि किसी भी व्यक्ति को कानून के अधिकार के बिना संरक्षण गृह में हिरासत में नहीं लिया जाए। कैदियों की हिरासत की अवधि समाप्त होने के बाद कैदियों को रिहा करने का उनका निर्णय समाप्त हो गया था, इसलिए इस पर नाराजगी नहीं जताई जा सकती है।

70. नियम 38, जिसे नीचे दिए गए न्यायालय द्वारा संदर्भित किया गया है और प्रतिवादियों द्वारा जोर दिया गया है, स्पष्ट रूप से संरक्षण गृह के निवासियों को छुट्टी देने के संबंध में है और हिरासत अवधि समाप्त होने पर रिहा नहीं किया गया है। यह शक्ति स्पष्ट रूप से एक अलग आपात स्थिति को नियंत्रित करती है जहां कैदी को अच्छे व्यवहार के कारण संरक्षण गृह से छुट्टी दी जानी है और हिरासत अवधि के दौरान कोई अपराध करने की संभावना नहीं है। नियम 38 को लागू करने वाली अनिवार्यता वर्तमान मामले के तथ्यों में नहीं उठती। वर्तमान मामले में कैदियों ने अपनी हिरासत की अवधि पूरी कर ली थी और चूंकि वे अन्यथा प्रमुख थे, इसलिए 20.5.2017 के बाद उनकी हिरासत वैध नहीं होती। संरक्षण गृह की प्रधान अधिकारी के रूप में, यह अधीक्षक की क्षमता के भीतर था कि कैदियों की हिरासत की अवधि समाप्त होने के बाद उन्हें रिहा कर दिया जाए। अन्यथा अधिकारी ने जिला न्यायाधीश, आगरा को पत्र लिखने में उचित सावधानी बरती थी और जिला न्यायाधीश से प्राप्त सीमित मार्गदर्शन एसडीएम के आदेश के अनुसार कार्य करना था। आरोपी अपीलकर्ता द्वारा कैदियों को उनकी हिरासत अवधि समाप्त होने पर रिहा करने का निर्णय इस प्रकार अवैध नहीं कहा जा सकता है।

71. इसके अलावा, 1956 के अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार हिरासत अवधि की समाप्ति पर कैदियों की रिहाई किसी भी अपराध की श्रेणी में नहीं आएगी। आरोपी अपीलकर्ता पर हालांकि धारा 370 (3), 370 (5), 370 (7), 363, 188, 120 बी आईपीसी के साथ 1956 के अधिनियम की धारा 9 और पॉक्सो अधिनियम की धारा 16/17 के तहत अपराध का आरोप लगाया गया है। आईपीसी की धारा 370 को इस प्रकार पुन: प्रस्तुत किया गया है: –

"370. व्यक्ति की तस्करी। –

(1) जो कोई भी, शोषण के प्रयोजन के लिए, (क) भर्ती करता है, (ख) परिवहन करता है, (ग) बंदरगाह, (घ) स्थानान्तरण करता है, या (ङ) किसी व्यक्ति या व्यक्ति को प्राप्त करता है, निम्नलिखित के द्वारा-

पहला। - धमकियों का उपयोग करना, या

दूसरे। - बल का उपयोग करना, या किसी अन्य प्रकार की जबरदस्ती, या

तीसरे। - अपहरण से, या

चौथा। - धोखाधड़ी, या धोखे का अभ्यास करके, या

पांचवां। - शक्ति के दुरुपयोग से, या

छठा। - प्रलोभन द्वारा, जिसमें भुगतान या लाभ देना या प्राप्त करना शामिल है, किसी भी व्यक्ति की सहमति प्राप्त करने के लिए, भर्ती, परिवहन, आश्रय, स्थानांतरित या प्राप्त व्यक्ति पर नियंत्रण रखने के लिए, तस्करी का अपराध करता है।

स्पष्टीकरण 1. - "शोषण" शब्द में शारीरिक शोषण का कोई भी कार्य या किसी भी प्रकार का यौन शोषण, या

दासता, या दासता जैसे अंगों को जबरन हटाने के समान प्रथाएं शामिल होंगी।

स्पष्टीकरण 2. - तस्करी के अपराध के निर्धारण में पीड़ित की सहमति महत्वहीन है।

(2) जो कोई भी अवैध व्यापार का अपराध करता है, उसे उस अवधि के लिए कठोर कारावास से दंडित किया जाएगा जो सात वर्ष से कम नहीं होगी, लेकिन जिसे दस वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है, और जुर्माना भी लगाया जाएगा।

(3) जहां अपराध में एक से अधिक व्यक्तियों का अवैध व्यापार शामिल है, वह उस अवधि के लिए कठोर कारावास से दंडनीय होगा जो दस वर्ष से कम नहीं होगा, लेकिन जिसे आजीवन कारावास तक बढ़ाया जा सकता है, और जुर्माना भी लगाया जा सकता है।

(4) जहां अपराध में नाबालिग का अवैध व्यापार शामिल है, वह उस अवधि के लिए कठोर कारावास से दंडनीय होगा जो दस वर्ष से कम नहीं होगा, लेकिन जिसे आजीवन कारावास तक बढ़ाया जा सकता है, और जुर्माना भी लगाया जा सकता है।

(5) जहां अपराध में एक से अधिक अवयस्कों का अवैध व्यापार शामिल है, वह उस अवधि के लिए कठोर कारावास से दंडनीय होगा जो चौदह वर्ष से कम नहीं होगा, लेकिन जिसे आजीवन कारावास तक बढ़ाया जा सकता है, और जुर्माना भी लगाया जा सकता है।

(6) यदि कोई व्यक्ति एक से अधिक अवसरों पर नाबालिग के अवैध व्यापार के अपराध का दोषी पाया जाता है, तो ऐसे व्यक्ति को आजीवन कारावास से दंडित किया जाएगा, जिसका अर्थ उस व्यक्ति के शेष प्राकृतिक जीवन के लिए कारावास होगा, और जुर्माना भी लगाया जाएगा।

(7) जब कोई लोक सेवक या पुलिस अधिकारी किसी व्यक्ति के अवैध व्यापार में संलिप्त होता है, तो ऐसे लोक सेवक या पुलिस अधिकारी को आजीवन कारावास से दंडित किया जाएगा, जिसका अर्थ उस व्यक्ति के शेष प्राकृतिक जीवन के लिए कारावास होगा, और जुर्माना भी लगाया जाएगा।

72. धारा की उपधारा (1) में यह प्रावधान है कि जो कोई भी, शोषण के प्रयोजन के लिए, (क) भर्ती करता है, (ख) परिवहन करता है, (ग) बंदरगाह, (घ) स्थानान्तरण करता है, या (ङ) किसी व्यक्ति या व्यक्ति को प्राप्त करता है, निम्नलिखित

सबसे पहले- धमकियों का उपयोग करना, या

दूसरा- बल का उपयोग करना, या किसी अन्य प्रकार की जबरदस्ती, या

तीसरा- अपहरण से, या

चौथा- धोखाधड़ी, या धोखे का अभ्यास करके, या

पांचवां- शक्ति के दुरुपयोग से, या

छठा- भर्ती, परिवहन, आश्रय, स्थानांतरित या प्राप्त व्यक्ति पर नियंत्रण रखने वाले किसी व्यक्ति की सहमति प्राप्त करने के लिए भुगतान या लाभ देने या प्राप्त करने सहित प्रलोभन देकर तस्करी का अपराध करता है।

73. भारतीय दंड संहिता की धारा 370 (5) और (7) की उप-धाराएं भारतीय दंड संहिता की धारा 370 (1) में निहित अपराध के संदर्भ में उत्पन्न विशिष्ट अनिवार्यताओं से संबंधित हैं।

74. वर्तमान मामले के तथ्यों में, हम पाते हैं कि आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ कोई आरोप या सबूत नहीं है कि उसने धमकी या जबरदस्ती या अपहरण का उपयोग करके या धोखाधड़ी या धोखे या शक्ति के दुरुपयोग का अभ्यास करके या प्रलोभन देकर शोषण के लिए किसी व्यक्ति या व्यक्तियों को भर्ती या परिवहन या आश्रय दिया या स्थानांतरित किया या प्राप्त किया आदि। अपीलकर्ता के खिलाफ एकमात्र आरोप 18.05.2017 को मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश का अनादर करते हुए संरक्षण गृह से कैदियों को गैरकानूनी रूप से रिहा करने का है। रिकॉर्ड पर यह दिखाने के लिए कोई सबूत नहीं है कि कैदियों की रिहाई उनके शोषण के उद्देश्य से थी, न ही उन्हें भर्ती किया गया था; पहुँचाया; बंदरगाह; शोषण के लिए हस्तांतरित या प्राप्त। अधिक से अधिक इस बात की आशंका है कि रिहा किए गए कैदियों को फिर से अनैतिक तस्करी के लिए मजबूर किया जा सकता है। अन्यथा इस बात का कोई सबूत नहीं है कि रिहा किए गए किसी भी कैदी को आरोपी अपीलकर्ता के इशारे पर फिर से तस्करी के लिए मजबूर किया गया था। यह आशंका कि ये कैदी फिर से मानव तस्करी में शामिल हो सकते हैं, आईपीसी की धारा 370 के तहत आरोप स्थापित करने के लिए अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में साक्ष्य का विकल्प नहीं हो सकता है। आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ तस्करी के सबूतों के अभाव में, उसे आईपीसी की धारा 370 (3) (5) (7) के तहत दोषी नहीं ठहराया जा सकता था और सजा नहीं दी जा सकती थी। नीचे दी गई अदालत ने मामले के इस पहलू को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया है।

75. जहां तक आईपीसी की धारा 363 के तहत आरोप का संबंध है, किसी भी कैदी को नाबालिग नहीं दिखाया गया है और उनकी हिरासत की अवधि समाप्त हो गई है। आईपीसी की धारा 363 के तहत अपराध स्थापित करने के लिए आवश्यक सामग्री मामले के तथ्यों में पूरी तरह से गायब है। कैदियों को किसी और के वैध संरक्षकता से हटाया या अपहरण नहीं दिखाया गया है।

76. जहां तक भारतीय दंड संहिता की धारा 188 के तहत अपराध का संबंध है, हम पाते हैं कि लोक सेवक द्वारा विधिवत प्रख्यापित किसी भी आदेश की अवज्ञा नहीं की गई थी। हमने पहले ही कहा है कि 18.5.2017 के सब-डिवीजनल मजिस्ट्रेट के बाद के आदेश को कैदियों की रिहाई से पहले आरोपी अपीलकर्ता को नहीं दिया गया था और उस संबंध में दायर किसी भी शिकायत के अभाव में

आईपीसी की धारा 188 के तहत आरोपी अपीलकर्ता की दोषसिद्धि और सजा भी कानून में अनुचित होगी।

77. जहां तक भारतीय दंड संहिता की धारा 120बी के तहत अपराध का संबंध है, आपराधिक षड्यंत्र के लिए दो या दो से अधिक व्यक्तियों को अवैध कार्य या अवैध तरीकों से कोई कार्य करने या करने के लिए सहमत होने की आवश्यकता होती है। अकेले एक व्यक्ति आपराधिक साजिश नहीं कर सकता। चूंकि अपमानजनक कृत्य केवल आरोपी अपीलकर्ता को जिम्मेदार ठहराया जाता है, इसलिए आईपीसी की धारा 120 बी के तहत आरोप तब स्थापित नहीं किया जा सकता है जब यह साबित नहीं होता है कि दो साल या उससे अधिक की अवधि के लिए दंडनीय अपराध करने के लिए कोई आपराधिक साजिश रची गई है।

78. जहां तक 1956 के अधिनियम की धारा 9 के तहत आरोप का संबंध है, यह हिरासत में किसी व्यक्ति को प्रलोभन देने पर विचार करता है। इस प्रावधान में कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति जो किसी अन्य कारण या सहायता का संरक्षण करता है या उस व्यक्ति को वेश्यावृत्ति के लिए प्रलोभन देता है, उसे उस अवधि के लिए दंडित किया जाएगा जो सात साल से कम नहीं होगी, लेकिन जो आजीवन या दस साल तक की अवधि के लिए हो सकती है। वर्तमान मामले के तथ्यों में न तो कोई आरोप है और न ही कोई सबूत है कि आरोपी अपीलकर्ता की देखभाल या प्रभार में किसी भी व्यक्ति को वेश्यावृत्ति के लिए बहकाया गया है और इसलिए, अधिनियम की धारा 9 के तहत भी आरोप नहीं लगाया जा सकता है।

79. आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ अंतिम आरोप पॉक्सो अधिनियम की धारा 16/17 के तहत अपराध करने का है। हम पहले ही देख चुके हैं कि संरक्षण गृह से रिहा किया गया कोई भी कैदी नाबालिग नहीं था। 43 कैदियों के साथ केवल आठ बच्चों को रिहा किया गया था जो इन कैदियों के नाबालिग बच्चे थे और इसलिए, रिहा किए गए कैदी इन बच्चों के कानूनी और वैध अभिभावक थे। एक बार जब इन कैदियों को उनकी हिरासत अवधि पूरी होने पर संरक्षण गृह से रिहा किया जा रहा था, तो यह आवश्यक था कि उनके आश्रित बच्चों को भी उनकी माताओं के साथ रिहा किया जाए। अभियोजन पक्ष का सकारात्मक सबूत यह है कि सभी कैदी बालिग थे। ऐसी परिस्थितियों में, हम यह समझने में विफल हैं कि आरोपी अपीलकर्ता को पॉक्सो अधिनियम की धारा 16/17 के तहत अपराध के लिए कैसे दंडित किया जा सकता है।

80. रिकॉर्ड पर दिए गए सबूतों के मूल्यांकन और ऊपर की गई चर्चाओं के बाद लिए, हम पाते हैं कि नीचे दी गई अदालत ने आईपीसी की विभिन्न धाराओं के तहत किए गए अपराध के लिए आरोपी अपीलकर्ता को दोषी ठहराने में, 1956 का अधिनियम और POCSO अधिनियम के तहत खुद को पूरी तरह से गलत तरीके से निर्देशित किया है; आरोपी अपीलकर्ता की ओर से एकमात्र कार्रवाई संरक्षण गृह में हिरासत की अवधि पूरी होने के बाद कैदियों को रिहा करना है। इस तरह के कृत्य को किसी भी तरह से आरोपी अपीलकर्ता की ओर से अपराध के रूप में नहीं माना जा सकता है।

81. अलग होने से पहले, हमें उन तैंतालीस कैदियों के पुनर्वास की चिंताओं से निपटने के तरीके पर अपनी नाराजगी व्यक्त करनी चाहिए जिन्हें बचाया गया था और फिर सरकारी महिला संरक्षण गृह, आगरा की अधीक्षक की हिरासत में रखा गया था और जिस तरह से इस मामले में परीक्षण के चरण में साक्ष्य का नेतृत्व किया गया है। कैदियों को हिरासत में रखना एक वर्ष की अवधि के लिए था और किसी भी राज्य प्राधिकरण ने स्पष्ट रूप से एक वर्ष की अवधि में उनके पुनर्वास के लिए उठाए जाने वाले कदमों की देखरेख नहीं की। रिकॉर्ड में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे पता चले कि इन कैदियों के पुनर्वास की दिशा में कोई ठोस कदम उठाए गए थे। इन कैदियों को किसी भी अपराध के लिए दंडित नहीं किया गया था और उनकी हिरासत का उद्देश्य केवल उनके पुनर्वास को सुनिश्चित करना था। अधिकारियों ने इन कैदियों को अधीक्षक की हिरासत में रखा था, लेकिन जाहिर तौर पर उनका पता नहीं चल पाया। पीडब्ल्यू -1, जो महिला विकास विभाग के अधिकारी हैं, ने स्वीकार किया है कि उन्होंने 43 कैदियों के पुनर्वास की देखभाल के लिए एक बार भी आगरा का दौरा नहीं किया। ऐसा प्रतीत होता है कि पीडब्ल्यू -2 द्वारा चिंता व्यक्त किए जाने के बाद, अधिकारी अचानक अपनी गहरी नींद से जाग गए और केवल आरोपी अपीलकर्ता पर सारी जिम्मेदारी डालकर अपना पल्ला झाड़ लिया। हमारी राय में महिला विकास विभाग और 1956 के अधिनियम के तहत अधिकारियों को इन छुड़ाई गई कैदियों के पुनर्वास के लिए किए जाने वाले अभ्यास की निगरानी करनी चाहिए थी और कुछ योजना/योजनाएं तैयार की जानी चाहिए थीं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि इन कैदियों को फिर से अनैतिक तस्करी के लिए मजबूर न किया जाए।

यहां तक कि मुकदमे के चरण में भी संबंधित मजिस्ट्रेट के कार्यालय से कोई भी पेश नहीं किया गया था और न ही मूल रिकॉर्ड प्रदर्शित किए गए थे। यह बचाए गए श्रमिकों की दुर्दशा से निपटने में जिम्मेदार अधिकारियों की लापरवाही को दर्शाता है। वर्तमान मामले की परिस्थितियों में, हम यह देखना उचित समझते हैं कि बचाए गए यौनकर्मियों के पुनर्वास का कार्य सौंपे गए अधिकारियों को अधिक उत्तरदायी बनाया जाना चाहिए और बचाए गए श्रमिकों की सुरक्षा और पुनर्वास के लिए उचित योजनाएं तैयार की जानी चाहिए। हम आशा और विश्वास करते हैं कि राज्य के प्राधिकारी बचाए गए कामगारों की भलाई की ऐसी गंभीर चिंताओं पर उचित ध्यान देंगे ताकि 1956 के अधिनियम का उद्देश्य पूरा हो सके।

82. ऊपर आयोजित विचार-विमर्श और चर्चाओं के बाद, यह अपील सफल होती है और इसकी अनुमति दी जाती है। आगरा के विशेष न्यायाधीश (पॉक्सो अधिनियम)/आठवें अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा 2017 के विशेष मुकदमे संख्या 1848 में पारित दिनांक 6.10.2018 के फैसले और आदेश को निरस्त किया जाता है। आरोपी अपीलकर्ता, जो 1.6.2017 से जेल में है, को तुरंत स्वतंत्रता दी जाएगी, जब तक कि वह सीआरपीसी की धारा 437 ए के अनुपालन के अधीन किसी अन्य मामले में वांछित न हो।)

(2023) 1 ILRA 665

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक साइड

दिनांक: इलाहाबाद 19.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा
माननीय न्यायमूर्ति समीर जैन

संदर्भ संख्या 3 वर्ष 2021 से संबंधित
कैपिटल केस संख्या : - 4 वर्ष 2021

चंदन .. अपीलार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य .. प्रतिवादी

अपीलार्थी के अधिवक्ता:
जेल से, श्वेता सिंह राणा, विनय सरन (वरिष्ठ वकील) (एसी)

प्रतिवादी के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

ए. आपराधिक कानून – यौन अपराध से बच्चों की रोकथाम अधिनियम, 2012 - धारा 5(i)(एम) और 6(1) - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302, 376-ए और 376-बी - मृत्युदंड - मेडिकल रिपोर्ट और सीआरपीसी की धारा 313 के तहत स्पष्टीकरण मांगने के लिए आरोपी को एफएसएल रिपोर्ट नहीं दी गई - प्रभाव - फॉरेंसिक रिपोर्ट में डाले गए नोट से जो संदेह उत्पन्न होता है, वह अभियोजन पक्ष द्वारा दूर नहीं किया जाता है – रिपोर्ट, साक्ष्य के आधार पर कितनी महत्वपूर्ण है – आयोजित, आपत्तिजनक स्थिति यह है कि न तो अपीलकर्ता की मेडिकल जांच रिपोर्ट जो अंडरगारमेंट्स के संग्रह का खुलासा करती है और न ही एफएसएल रिपोर्ट धारा 313 सीआरपीसी के तहत अपीलकर्ता को उसकी जांच के दौरान रखा गया था, जिसे विचार से विरक्त किया जाना चाहिए - फोरेंसिक रिपोर्ट जिस पर दोषसिद्धि को दर्ज करने के लिए विचारणीय न्यायालय द्वारा भारी निर्भरता अपीलकर्ता के खिलाफ सबूत का एक वैध टुकड़ा नहीं बन सकती है। (पैरा 29, 71, 72 और 74)

बी. आपराधिक कानून – साक्ष्य अधिनियम, 1872 धारा 106 - परिस्थितिजन्य साक्ष्य विश्वसनीयता - निर्धारित सिद्धांत - ये परिस्थितियाँ एक निश्चित प्रवृत्ति की होनी चाहिए जो अभियुक्त की दोष की ओर इंगित करती हों; संचयी रूप से ली गई परिस्थितियों को इतनी पूर्ण श्रृंखला बनानी चाहिए कि इस निष्कर्ष से कोई बच नहीं सकता है कि सभी मानवीय संभावनाओं के भीतर अपराध आरोपी द्वारा किया गया था और वे आरोपी के अपराध के अलावा अन्य परिकल्पना की व्याख्या करने में असमर्थ होना चाहिए और उनकी बेगुनाही के साथ असंगत हो - आयोजित, जब अभियोजन पक्ष आपत्तिजनक परिस्थितियों की श्रृंखला स्थापित करने में सफल होता है, जिससे तार्किक निष्कर्ष निकलता है कि सभी मानवीय संभावनाओं में यह केवल आरोपी और आरोपी ही है जो अपराध कारित कर सकता है, तो जिम्मेदारी समझाने की जिम्मेदारी आरोपी पर आ जाती है वे परिस्थितियाँ और उनकी अनुपस्थिति में साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 की सहायता से अभियुक्त के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जा सकता है। (पैरा 41 और 45)

सी. आपराधिक मुकदमा - अंतिम बार देखा गया साक्ष्य, दोषसिद्धि के लिए कितना पर्याप्त है– माना गया कि आम तौर पर, मृतक को आखिरी बार आरोपी के साथ जीवित देखे जाने की परिस्थिति अकेले दोषसिद्धि दर्ज करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकती है। (पैरा 44)

डी. आपराधिक मुकदमा - यौन अपराध से बच्चों की रोकथाम अधिनियम, 2012- धारा 29 - अभियुक्त के विरुद्ध अनुमान - अभियोजन के लिए उपलब्ध होने पर लाभ – आयोजित, अनुमान का लाभ अधिनियम की धारा 29 के तहत अभियोजन को तभी उपलब्ध होगा जब मूलभूत अभियोजन पक्ष द्वारा तथ्यों को कानूनी रूप से स्वीकार्य साक्ष्य द्वारा साबित किया जाता है और वह भी, केवल उसमें निर्दिष्ट अपराधों के संबंध में हो। (पैरा 49 और 51)

अपील की अनुमति प्रदान की गई। (ई-1)

उद्धृत वाद सूची:-

1. विजय शंकर बनाम हरियाणा राज्य; (2015) 12 एससीसी 644
2. शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य; (1984) 4 एससीसी 116
3. बब्लू बनाम राजस्थान राज्य; (2006) 13 एससीसी 116
4. शिवाजी साहबराव बोबडे और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य; (1973) 2 एससीसी 793
5. देवीलाल बनाम राजस्थान राज्य; (2019) 19 एससीसी 447
6. निज़ाम बनाम राजस्थान राज्य; (2016) 1 एससीसी 550
7. नवनीतकृष्णन बनाम राज्य; (2018) 16 एससीसी 161
8. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतीश; (2005) 3 एससीसी 114
9. रामरेड्डी राजेश खन्ना रेड्डी और अन्य बनाम ए.पी. राज्य ; (2006) 10 एससीसी 172
10. बोधराज बनाम जम्मू एवं कश्मीर राज्य; (2002) 8 एससीसी 45
11. शंभू नाथ मेहरा बनाम अजमेर राज्य; एआईआर 1956 एससी 404-
12. नागेन्द्र साह बनाम बिहार राज्य; (2021)10 एससीसी 725
13. शिवाजी चिन्तप्पा पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य (2021) 5 एससीसी 626
14. राज. बनाम काशीराम; (2006) 12 एससीसी 254
15. कैपिटल वाद संख्या 13/2021; मोनू ठाकुर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, दिनांक 14 मार्च 2022 को निर्णय लिया गया।

(न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा द्वारा सुनाया गया)

1. मुकदमा अपराध संख्या 1470 वर्ष 2020 से उत्पन्न वाद संख्या 313 वर्ष 2020, थाना कवि नगर, जिला गाजियाबाद में विशेष न्यायाधीश (पॉक्सो एक्ट)/अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 18.01.2021 /20.01.2021 द्वारा, अपीलार्थी को धारा 302, 376-ए, 376-एबी, 201 भारतीय दण्ड संहिता और धारा 5 (i) (एम) / 6 (1) यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम (पोक्सो एक्ट) के तहत दोषी ठहराया गया है और क्योंकि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 376-ए, 376-एबी और पोक्सो अधिनियम की धारा 5(i)(एम)/ 6(1) के तहत दंडनीय अपराध समान प्रकृति के अपराध थे, यह देखते हुए कि पॉक्सो अधिनियम की धारा 5(i)(एम)/ 6(1) के तहत सजा अधिक है, पॉक्सो अधिनियम की धारा 42 के प्रावधानों के आलोक में अपीलकर्ता को निम्नानुसार दंडित किया गया है:- (i) पोक्सो अधिनियम की धारा 5(i)(m)/6(1) के तहत मृत्युदंड; (ii) आजीवन कारावास के साथ-साथ 1,00,000/- रुपये का जुर्माना अंतर्गत धारा 302 भारतीय दण्ड संहिता; भारतीय दण्ड संहिता की धारा 201 के तहत सात साल की सज़ा और 50,000/- रुपये का जुर्माना, साथ ही अतिरिक्त एक साल की डिफ़ॉल्ट सज़ा।

2. चूंकि ट्रायल कोर्ट द्वारा मौत की सजा दी गई थी, ट्रायल कोर्ट ने मौत की सजा की पुष्टि के लिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 366 के तहत एक संदर्भ प्रस्तुत किया, जिसे संदर्भ संख्या 3 वर्ष 2021 के रूप में पंजीकृत किया गया है।

3. दोषी अभियुक्त ने जेल अधिकारियों से दोषसिद्धि और सजा के आदेश के खिलाफ उसकी अपील को आगे बढ़ाने का अनुरोध किया, जिसके परिणामस्वरूप, जेल अधीक्षक, जिला जेल, गाजियाबाद ने अपीलार्थी की अपील को दिनांक 25.01.2021 के पत्र के माध्यम से अग्रेषित कर दिया, जिससे कैपिटल केस नं. 4 वर्ष 2021 का जन्म होता है।

4. इस अपील की सुनवाई पहले न्यायमूर्ति पंकज नकवी और न्यायमूर्ति नवीन श्रीवास्तव की खंडपीठ ने की थी। पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुनने के बाद 19.07.2021 को फैसला सुरक्षित रख लिया गया। हालाँकि, निर्णय सुनाने के बजाय, मामले को आगे की सुनवाई के लिए सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया गया और अंततः, उचित पीठ के समक्ष रखे जाने का निर्देश दिया गया। इसके बाद हमने मामले की सुनवाई की और फैसला सुरक्षित रख लिया। लेकिन फैसला सुनाने से पहले ही हमारी पीठ विघटित हो गई, परिणामस्वरूप फैसला नहीं सुनाया जा सका। इसके बाद, मुख्य न्यायाधीश के आदेश दिनांक 24.11.2022 द्वारा मामला फिर से हमारे पास नामांकित किया गया। 9.12.2022 को हमने मामले की दोबारा सुनवाई की और फैसला सुरक्षित रख लिया, जो अब सुनाया जा रहा है।

5. हमने अपीलार्थी के लिए श्री विनय सरन, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता को एमिकस क्यूरी के रूप में सुना है, उनकी श्री प्रदीप कुमार मिश्रा ने सहायता की है; और श्री जेके उपाध्याय, राज्य के लिए विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना।

6. अपराध की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, हम उस क्षेत्र के गवाहों सहित पीड़िता/उसके परिवार के सदस्यों के नाम का खुलासा नहीं कर रहे हैं, इसलिए जहां भी आवश्यक है, उन्हें छद्म नाम या उनके गवाह संख्या द्वारा वर्णित किया गया है।

परिचयात्मक तथ्य

7. अभियोजन साक्षी-1 (पीड़िता के पिता) द्वारा 20.10.2020 को 14.34 बजे थाना कविनगर, जिला गाजियाबाद में एक लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) प्रस्तुत की

गई, जिससे मुकदमा अपराध संख्या 1470 वर्ष 2020 का जन्म हुआ। लिखित रिपोर्ट शिकायतकर्ता के भतीजे, अर्थात् अभियोजन साक्षी-3 द्वारा लिखी गई थी। लिखित रिपोर्ट में इस प्रकार आरोप लगाए गए हैं: कि शिकायतकर्ता बिहार का निवासी है; वह अपनी पत्नी और बच्चों के साथ कवि नगर, जिला गाजियाबाद के औद्योगिक क्षेत्र में किराए के मकान में रह रहा था, जिसका स्वामित्व एक्स के पास है; आरोपी- अपीलार्थी, जो बिहार का निवासी है, पिछले 10 वर्षों से नियमित रूप से शिकायतकर्ता के घर जा रहा था; कि 19.10.2020 को, शिकायतकर्ता, आरोपी-अपीलार्थी और दो अन्य, अर्थात्, ''Y'' और ''Z'' शिकायतकर्ता के घर पर / उसके पास पेय (शराब) पी रहे थे; शराब पीने के दौरान, आरोपी-अपीलार्थी रात लगभग 8.00 बजे शिकायतकर्ता के कमरे में गया, शिकायतकर्ता की पत्नी (पीडब्लू-2) से शिकायतकर्ता की छोटी बेटी यानी पीड़िता, आयु लगभग ढाई वर्ष, को सौंपने के लिए कहा और इस बहाने से कि वह उसके साथ खेलेगा, पीड़िता को अपने साथ ले गया; जब शिकायतकर्ता अपने कमरे में दाखिल हुआ, तो उसकी पत्नी (पीडब्लू-2) ने शिकायतकर्ता को बताया कि आरोपी-अपीलार्थी पीड़िता को अपने साथ खेलने के लिए ले गया है; इसके बाद पूरी रात पुलिस के साथ मिलकर पीड़िता की तलाश की गई; अगले दिन यानी 20.10.2020 को लगभग 12.30 बजे सूचना मिली कि आरटीओ कार्यालय के पास बीयर फैक्ट्री रोड से लगे नाले के पास पीड़िता का शव मिला है। यह आरोप लगाकर कि शिकायतकर्ता के पास यह विश्वास करने का कारण है कि आरोपी-अपीलार्थी ने शिकायतकर्ता की बेटी के साथ बलात्कार किया और उसकी हत्या कर दी, उपरोक्त लिखित रिपोर्ट को प्राथमिकी (एफआईआर) के रूप में दर्ज किया गया था।

8. प्राथमिकी दर्ज होने के बाद, 20.10.2020 को जांच की गई और 15.30 बजे तक पूरी कर ली गई। अन्वीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श क-2) सब इंस्पेक्टर महक सिंह बलियान (अभियोजन साक्षी-6) द्वारा तैयार की गई थी। अभियोजन साक्षी-1 (शिकायतकर्ता), अभियोजन साक्षी-4 (पीड़ित की चाची) और अभियोजन साक्षी-3 (शिकायतकर्ता का भतीजा और लिखित रिपोर्ट का लेखक), अन्य के साथ-साथ, जांच रिपोर्ट के गवाह थे। जांच रिपोर्ट में कहा गया है कि पीड़िता का शरीर नग्न था और शव के पास एक पीले रंग का फ्रॉक पड़ा हुआ था। चेहरे और गुप्तांगों समेत पूरे शरीर पर चोटों के निशान थे।

9. 20.10.2020 को शाम लगभग 7 बजे डॉक्टरों की एक टीम, जिसमें अभियोजन साक्षी-7 और अभियोजन साक्षी-8 शामिल थे, ने शव का शव परीक्षण किया। **शव परीक्षण रिपोर्ट** (प्रदर्श क-5) की प्रासंगिक विशेषताएं इस प्रकार हैं: -

उम्र: ढाई साल
लिंग: महिला

बाहरी सामान्य स्वरूप

(i) सामान्य स्वरूप: औसत शरीर नग्न पाया गया। आंखें भिंची हुई, नाखून पीले, जीभ दांतों में भिंची हुई।

(ii) मृत्युज काठिन्य पूरे शरीर पर मौजूद।

मृत्यु पूर्व बाहरी चोटें:-

(i) गर्दन के पूर्वकाल क्षेत्र(अधिकतम: 5 सेमी x 1 सेमी, न्यूनतम: 1 सेमी x 0.5 सेमी) पर खरोंच (एकाधिक) 12 सेमी x 6 सेमी । चोट का निशान दाहिने कान से 6 सेमी नीचे, ठुड्डी से 4 सेमी नीचे और बाएं कान से 4 सेमी नीचे है। चूषण पर गहरे ऊतकों के नीचे रक्त का प्रवाह मौजूद ।

(ii) बाएं गाल पर चोट 10 सेमी x 7 सेमी।

(iii) दाहिने गाल पर चोट 9 सेमी x 6 सेमी।

(iv) नाक की नोक के ऊपर 2 सेमी x 2 सेमी घिसा हुआ घाव।

(v) हंसली के ठीक नीचे छाती के दोनों तरफ एकाधिक घिसे हुए घाव 19 सेमी x 10 सेमी (अधिकतम: 1 सेमी x 1 सेमी और न्यूनतम: 0.5 सेमी x 0.5 सेमी)।

(vi) छाती के पीछे और पेट के दोनों तरफ 35 सेमी x 18 सेमी (अधिकतम 5 सेमी x 0.5 सेमी और न्यूनतम 0.5 सेमी x 0.5 सेमी) एकाधिक घिसे हुए घाव।

(vii) बायीं कोहनी के जोड़ का पूर्वकाल क्षेत्र 1 सेमी x 1 सेमी का संलयन।

(viii) चोट 1.5 सेमी x 0.5 सेमी दाहिनी जांघ के अंदरूनी हिस्से में, दाहिने घुटने के जोड़ से 13 सेमी ऊपर।

आंतरिक परीक्षण:-

(i) श्वासनली संकुचित। श्वासनली की अंगूठी टूटी हुई; हाइपोइड हड्डी टूटी हुई।

(ii) पेट में लगभग 50 मिलीलीटर आधा पचा हुआ भोजन मौजूद। छोटी आंत: पचा हुआ भोजन और गैसें। जिगर : भरा हुआ । पित्ताशय: आधा भरा हुआ और संकुलित।

(iii) गर्भाशय खाली जननांग के बाहरी क्षेत्र पर सूजन। हाइमन टूटा हुआ। जननांग के बाहरी क्षेत्र के आंतरिक पहलू में मौजूद संलयन।

(iv) रेक्टोवाजाइनल फाड़ मौजूद।

मृत्यु के बाद से बीता समय: लगभग एक दिन।

मृत्यु का कारण और तरीका: मृत्यु-पूर्व गला घोंटने के परिणामस्वरूप दम घुटना।

10. शव परीक्षण रिपोर्ट के अनुसार निम्नलिखित वस्तुओं को फोरेंसिक जांच/डीएनए विश्लेषण के लिए संरक्षित किया गया था:- (i) एक फ्रॉक, (ii) एक दांत, (iii) एक जोड़ी योनि स्लाइड (iv) एक योनि स्वाब, (v) एक जोड़ी गुदा स्लाइड, (vi) और एक गुदा स्वाब, (vii) एक जोड़ी मौखिक स्लाइड (viii) एक मौखिक स्वाब, (ix) नाखून खरोंच और (x) जघन क्षेत्र पर मौजूद एक बाल।

अप्रमाणित

सभी वस्तुओं को सील कर दिया गया और शुक्राणु और आगे की जांच के लिए संबंधित कांस्टेबल को सौंप दिया गया।

11. जांच के दौरान, उस स्थान का साइट प्लान तैयार किया गया जहां से शव बरामद किया गया था, जिसे अभियोजन साक्षी-9 द्वारा साबित किया गया और प्रदर्श क-6 के रूप में प्रदर्शित किया गया। साइट योजना (प्रदर्श क-6) का सूचकांक सुझाव देगा कि यह एक खुली जगह थी जहां सभी की पहुंच थी। इससे यह भी पता चलता है कि जिस स्थान पर शव मिला, उसके पास नमकीन के खाली पाउच, पानी की खाली बोतल और एक रुपये के दो सिक्के देखे गए। साइट प्लान के सूचकांक से पता चलता है कि वहां से गीली मिट्टी और सादी मिट्टी उठाई गई थी। ज्ञात हो कि मौके से उठाये गये इन सामानों का एक जब्ती ज्ञापन भी अभियोजन साक्षी-9 द्वारा तैयार किया गया था, जिसे प्रदर्श क-7 के रूप में अंकित किया गया।

12. 20.10.2020 को महक सिंह बलिया (अभियोजन साक्षी-6) ने आत्मा राम स्टील अंडरपास, कवि नगर के पास से आरोपी की गिरफ्तारी की। डीके बसु के मामले में शीर्ष अदालत द्वारा जारी निर्देशों के अनुसार तैयार किए गए गिरफ्तारी ज्ञापन (प्रदर्श क-4) में गिरफ्तारी की तारीख और समय क्रमशः 20.10.2020 और 21.50 बजे दर्शाया गया है। इसमें अभियुक्त के हस्ताक्षर हैं और गिरफ्तार व्यक्ति (यानी अपीलार्थी) की स्वीकृति है कि उसका चिकित्सकीय परीक्षण किया गया था और मेडिकल रिपोर्ट पर उसके अंगूठे का निशान लिया गया है और उसकी एक प्रति उसे सौंप दी गई है। गिरफ्तार व्यक्ति अभियुक्त-अपीलार्थी की यह मेडिकल रिपोर्ट कागज संख्या 6-क के रूप में रिकॉर्ड पर है, लेकिन अपीलार्थी की जांच करने वाले डॉक्टर से गवाह के रूप में जांच नहीं की गई है और निचले न्यायालय के रिकॉर्ड में इसे अलग से एक प्रदर्श के रूप में चिह्नित नहीं किया गया है। लेकिन चूंकि गिरफ्तारी ज्ञापन में, जो प्रदर्शित किया गया है, यह कहा गया है कि गिरफ्तारी के समय आरोपी की चिकित्सकीय जांच की गई थी और उसे इंज्यूरी रिपोर्ट दी गई थी, इसलिए हम इंज्यूरी रिपोर्ट की सामग्री पर ध्यान देने का प्रस्ताव करते हैं। इंज्यूरी रिपोर्ट दर्शाती है कि आरोपी-अपीलार्थी की मेडिकल जांच 20.10.2020 को रात 11.30 बजे की गई थी। उसकी चिकित्सीय जांच के समय, डॉक्टर ने निम्नलिखित चोटें देखीं:-

(i) बाईं बांह पर चोट, आकार 10 सेमी x 5 सेमी बाईं कलाई के जोड़ के ठीक ऊपर ।

(ii) दाहिनी बांह पर चोट, दाहिनी कलाई के जोड़ के ठीक ऊपर आकार 9 सेमी x 5 सेमी।

(iii) बाईं जांघ पर चोट (पीछे), आकार 10 सेमी x 6 सेमी: बाएं घुटने के जोड़ से 10 सेमी ऊपर।

(iv) दाहिनी जांघ (पीछे) पर चोट, आकार 11 सेमी x 6 सेमी: दाहिने घुटने के जोड़ से 10 सेमी ऊपर।

(v) बाएं निचले पैर के पीछे चोट, आकार 8 सेमी x 5 सेमी।

(vi) दाहिने निचले पैर के पिछले हिस्से में चोट साइज़ 8 सेमी x 5 सेमी।

(vii) बाएं नितंब पर चोट, आकार 10 सेमी 5 सेमी।

चोटें सामान्य प्रकृति की हैं जो कठोर और कुंद वस्तु से लगी हैं।

यह ध्यान दिया जाए कि आरोपी-अपीलार्थी के रक्त के नमूने और अंडरगारमेंट्स को डीएनए प्रोफाइलिंग के प्रयोजनों के लिए लिया गया था, साथ ही उसके मौखिक स्मीयर, पेनाइल स्वाब और मूत्रमार्ग मांस, फ्रेनुलम, ग्लान्स, अंडकोश, शाफ्ट, पेरिनेम और कटे हुए नाखून से स्वाब लिया गया था।

13. 21.10.2020 को, जांच अधिकारी - नागेंद्र चौबे (अभियोजन साक्षी-9- विवेचना अधिकारी) ने महक सिंह बलियान,जिन्होंने अन्वीक्षा की कार्यवाही की, के बयान सहित गवाहों के बयान दर्ज किए, और 22.10.2020 को विवेचना अधिकारी ने घटनास्थल का निरीक्षण किया जहां आरोपी, शिकायतकर्ता और अन्य लोग शराब पी रहे थे और साइट प्लान तैयार किया (प्रदर्श क-8)। उसी दिन, विवेचना अधिकारी ने परिसर के मालिक से सीसीटीवी फुटेज भी प्राप्त किया और उसके संबंध में एक जब्ती ज्ञापन प्रदर्श क-9 रूप में तैयार किया गया। 24.10.2020 को, विवेचना अधिकारी ने सीडी में पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट रखी और उन डॉक्टरों के बयान दर्ज किए जो शव की ऑटोप्सी करने वाली डॉक्टरों की टीम का हिस्सा थे। 26.10.2020 को परचा संख्या 5 द्वारा एकत्रित सामग्री को फोरेंसिक जांच के लिए फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला, गाजियाबाद भेजा गया।

14. दिनांक 16.11.2020 को मामले की जांच अजय कुमार सिंह (अभियोजन साक्षी-10) को सौंपी गई। अभियोजन साक्षी-10 ने फोरेंसिक रिपोर्ट उपलब्ध कराने के लिए 21.11.2020 और 01.12.2020 को अनुस्मारक पत्र भेजे। 16.12.2020 को आरोपी-अपीलार्थी के विरुद्ध पर्याप्त सामग्री पाए जाने पर आरोप पत्र (प्रदर्श क-10) प्रस्तुत किया गया। दिनांक 05.01.2021 को फोरेंसिक प्रयोगशाला, गाजियाबाद से रिपोर्ट प्राप्त हुई जिसे पूरक केस डायरी में दर्ज किया गया और रिपोर्ट कागज संख्या 25-क/3 के रूप में न्यायालय में दाखिल की गई।

15. संज्ञान लेने के बाद, 24.12.2020 को विशेष न्यायालय, पोक्सो अधिनियम ने अपीलार्थी पर धारा 376-ए, 376-एबी, 302 और 201 भारतीय दण्ड संहिता और धारा 5 (i) (एम)/6(1) पॉक्सो एक्ट के तहत दंडनीय अपराध करने का आरोप लगाया। आरोपी-अपीलार्थी ने आरोपों से इनकार किया और मुकदमे की मांग की।

अभियोजन साक्ष्य

16. मुकदमे के दौरान, अभियोजन पक्ष ने 10 गवाहों की जांच की। उनकी गवाही, संक्षेप में, इस प्रकार है:-

17. **अभियोजन साक्षी-1 - शिकायतकर्ता - मृतक/पीड़ित का पिता**- उन्होंने कहा कि 19.10.2020 को वह आरोपी-अपीलार्थी और दो अन्य लोगों के साथ अपने अपार्टमेंट के पास नीचे के फ्लोर पर पेय (शराब) पी रहे थे। जब वे शराब पी रहे थे, आरोपी-अपीलकर्ता खड़ा हुआ, शिकायतकर्ता के कमरे में गया और शिकायतकर्ता की बेटी को इस बहाने से ले गया कि वह उसके साथ खेलेगा। जब अभियोजन साक्षी-1 अपने अपार्टमेंट में गया, तो उसकी पत्नी (अभियोजन साक्षी-2) ने बताया कि आरोपी पीड़िता को अपने साथ खेलने के लिए ले गया है। इसके बाद अभियोजन साक्षी-1 ने पुलिस के साथ मिलकर रात में पीड़िता की तलाश की लेकिन वह नहीं मिली। अभियोजन साक्षी-1 ने कहा कि 20.10.2020 को लगभग 12.30 बजे उन्हें सूचना मिली कि उनकी बेटी (पीड़िता) बीयर फैक्ट्री रोड पर आरटीओ कार्यालय के पास एक नाले के पास मृत पड़ी है। उन्होंने लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) को साबित किया।

जिरह के दौरान, अभियोजन साक्षी-1 ने कहा कि वे रात करीब 8 बजे ग्राउंड फ्लोर पर, अपने अपार्टमेंट के नीचे, ''वाई'' के कमरे में शराब पी रहे थे; ''वाई'' अपने कमरे में अकेला रहता था और उसका परिवार गाँव में रहता था; शराब की बोतल अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा लाई गई थी; यह देशी शराब थी; अभियोजन साक्षी-1 रात लगभग 8.30 बजे अपनी शराब की थैली के साथ उस कमरे में दाखिल हुआ, जबकि आरोपी-अपीलार्थी और ''वाई'' दिन के समय से ही शराब पी रहे थे और पूरी तरह से नशे में थे, लेकिन चलने की स्थिति में थे। जब वे शराब पी रहे थे, रात 8.45 से 9 बजे के बीच, आरोपी-अपीलार्थी खड़ा हुआ और यह कहते हुए चला गया कि वह अपने कमरे में जा रहा है। जब अभियोजन साक्षी-1 रात लगभग 9.30 बजे अपने अपार्टमेंट में पहुंचा, तो उसे सूचित किया गया कि आरोपी-अपीलार्थी आया था और पीड़िता को बहाने से ले गया था कि वह उसे अभियोजन साक्षी-1 के पास ले जा रहा था। अभियोजन साक्षी-1 ने कहा कि आरोपी उसकी बेटी को उसके पास नहीं लाया। फिर उन्होंने कहा कि आरोपी-अपीलार्थी "भाटिया मोड़" (क्रॉसिंग) के पास रहता है, लेकिन उसका परिवार गांव में रहता था और वह अपने एक दोस्त के पास रहता था, जिसके बारे में उसे कोई जानकारी नहीं है। अभियोजन साक्षी-1 ने कहा कि वह पहली बार आरोपी-अपीलाथी से गाजियाबाद में मिला था और पिछले 10-12 वर्षों से उसके संपर्क में था क्योंकि वे दोनों बिहार से थे और मजदूर के रूप में काम करते थे। हालाँकि, उन्होंने स्पष्ट किया कि आरोपी-अपीलार्थी और वह एक-दूसरे के घर नियमित रूप से नहीं आते थे, हालांकि कुछ अवसरों पर उन्होंने आरोपी-अपीलार्थी को भोजन करने के लिए अपने घर बुलाया था।

घटना की रात के संबंध में आगे जिरह करने पर, अभियोजन साक्षी-1 ने बताया कि 19.10.2020 की रात में ही उसने इलाके की गलियों में पीड़ित की तलाश करने के बाद पुलिस को लिखित सूचना दी। उस वक्त उनके साथ उनकी भाभी, भतीजा, भाई और बहन भी थे. उन्होंने कहा कि जब उन्होंने रिपोर्ट दर्ज की थी तो वह 19/20.10.2020 की आधी रात के आसपास रही होगी, जबकि पीड़ित का शव अगले दिन (यानी 20.10.2020) दोपहर के समय (12 बजे) के आसपास मिला था।

मृतक के शव की खोज के संबंध में, अभियोजन साक्षी-1 ने कहा कि "दी० 20 तारीख को मिली थी। मेरी बेटी आराध्या की डेड बाडी पुलिस वालों को मिली थी। पुलिस वालों ने हमें सूचना दी थी जहां पर बच्ची की डेड बाडी मिली थी वहां पर दरोगा जी ने लिखत पढत नहीं की बल्कि थाने पर ले जाकर (पंचायतनामा) की थी। लिखित पढ़त वाले कागज पर मैंने मेरी पत्नी मेरी बहन मेरी भाभी व महेश ठेकेदार ने दस्तकखत किये थे। थाने घटनास्थल से लगभग 1 किमी० दूर था। जहां पहुंचने में करीब 7 - 8 मिनट लगे थे। लडकी की डेड बाड़ी के पास खाने पीने का सामान मिला था उसकी लिखत पढत हुयी थी।" इसके अतिरिक्त, उन्होंने कहा कि "मै चन्दन को पिछले 10-12 साल से जनता हूं मेरा चन्दन से कोई पैसा का लेन देन था और ना ही मेरी चन्दन से कोई पुरानी रंजिश थी। "

उन्होंने इस सुझाव से इनकार किया कि उनकी बेटी की हत्या आरोपी-अपीलार्थी द्वारा नहीं की गई थी।

18. **अभियोजन साक्षी-2- पीड़िता की मां (शिकायतकर्ता की पत्नी)।** उसने कहा कि आरोपी-अपीलार्थी पिछले 10 वर्षों से उनसे मिलने आ रहा था; कि आरोपी-अपीलार्थी और उसके पति सहित कुछ अन्य लोग एक ठेकेदार के लिए काम करते थे; उसके अपने बच्चे आरोपी-अपीलार्थी से अच्छी तरह परिचित थे; उसकी बेटी (मृतक) आरोपी-अपीलार्थी को "चाचा" कहती थी; अभियुक्त-अपीलार्थी के पास कोई निश्चित निवास नहीं था; कभी-कभी वह ठेकेदार के यहाँ रात भर रुक जाता था। घटना की तारीख पर, उसके पति, आरोपी-अपीलार्थी और दो अन्य लोग शराब पी रहे थे; शाम 7.30 और 8 बजे के बीच, आरोपी-अपीलार्थी उसके कमरे में आया और पीड़िता को इस बहाने से खेलने के लिए बाहर ले गया कि उसके पिता (यानी शिकायतकर्ता) ने उसे बुलाया था; शुरुआत में, उसने विरोध किया लेकिन उसकी बेटी आरोपी के साथ खेलने लगी और वह अपने काम में व्यस्त हो गई, इसलिए आरोपी-अपीलार्थी ने उसकी बेटी को उठाया और यह कहकर उसे ले गया कि वह उसे जल्द ही वापस लाएगा। अभियोजन साक्षी-2 ने कहा कि जब उसने अपने पति (यानी अभियोजन साक्षी-1) को बताया कि आरोपी-अपीलार्थी ने उसे बताया था कि वह उनकी बेटी को अभियोजन साक्षी-1 के पास ले जा रहा है, तो उसे उसके

पति (यानी अभियोजन साक्षी-1) ने सूचित किया कि आरोपी -अपीलार्थी उनकी बेटी को उसके पास नहीं लाया था। इसके बाद वे सभी अपनी बेटी की तलाश करने लगे। तलाशी के दौरान, अभियोजन साक्षी-1 का भतीजा (यानी अभियोजन साक्षी-3) आया और उन्हें सूचित किया कि उसने आरोपी-अपीलार्थी को पीड़िता को अपने कंधे पर ले जाते देखा है। अभियोजन साक्षी-2 ने बताया कि अगले दिन मृतक का शव एक नाले के पास मिला था।

जिरह के दौरान, अभियोजन साक्षी-2 ने कहा कि उसकी शादी सात साल पहले हुई थी; अभियुक्त-अपीलार्थी की उसके पति से, उसकी शादी से पहले, पिछले 10-12 वर्षों से पहचान थी; अभियुक्त-अपीलार्थी एक विवाहित व्यक्ति था और उसके दो बच्चे थे, लेकिन उसकी पत्नी और बच्चों पर उसका ध्यान नहीं गया, हालाँकि उसने उनसे टेलीफोन पर बात की थी। अभियोजन साक्षी-2 ने कहा कि आरोपी-अपीलार्थी की पत्नी ने अपने पति द्वारा उसे पीटने और खर्च के लिए पर्याप्त पैसे नहीं भेजने की शिकायत की थी। अभियोजन साक्षी-2 ने कहा कि उसने कभी उम्मीद नहीं की थी कि आरोपी-अपीलार्थी उसकी बेटी के साथ इतना जघन्य अपराध कर सकता है। घटना के दिन के संबंध में, अभियोजन साक्षी-2 ने कहा कि उसे पता था कि आरोपी-अपीलार्थी और उसका पति एक साथ शराब पी रहे थे। उसने कहा कि उसका पति उस समय आरोपी-अपीलार्थी से भी अधिक नशे में था। उसने कहा कि शुरू में उसने आरोपी-अपीलार्थी को अपनी बेटी को ले जाने से रोकने की कोशिश की क्योंकि उसका पति शराब के नशे में था, लेकिन बाद में, उसने आरोपी-अपीलार्थी का विरोध नहीं किया क्योंकि वह उसके पति को अच्छी तरह से जानता था और उसे विश्वास था कि वह उसकी बेटी को सकुशल लौटा देगा। आगे जिरह करने पर उसने बताया कि उसने तुरंत पुलिस चौकी में रिपोर्ट दर्ज कराई थी; और अगले दिन उसकी बेटी का शव मिला। उन्होंने कहा कि शव मिलने के बाद, कागजात पुलिस स्टेशन में लिखे गए और कुछ घटनास्थल पर लिखे गए और उसके बाद शव को शव परीक्षण के लिए भेजा गया। उन्होंने बताया कि जब पेपर लिखे जा रहे थे तो उनका पूरा परिवार मौजूद था। उन्होंने घटना वाले दिन ही रिपोर्ट दर्ज कराने की बात फिर दोहराई। इस संबंध में उनका कथन इस प्रकार है:- " रिपोर्ट घटना वाले दिन ही मेरे द्वारा करा दी गयी थी अगले दिन मेरी बेटी की डेड बाडी एक बजे के करीब दिन में मिली थी| चन्दन पाण्डे को पुलिस ने रात में घटना के बाद ही पकड़ लिया था| मैंने चन्दन पाण्डे से बेटी के गायब होने के बाद पूछताछ की थी कि मेरी बेटी कहा है तो चन्दन ने कुछ नहीं बताया और यह कह रहा था कि मैंने तुम्हारी बेटी को तुम्हारे पति के पास छोड दिया था। चन्दन मेरे पति को फंसाने के चक्कर में लग रहा था। "

उपरोक्त बातें कहने के बाद, अभियोजन साक्षी-2 ने कहा कि अगले दिन पुलिस उसके मकान मालिक के घर आई और मोबाइल फोन की दुकान के ऊपर लगे कैमरे का सीसीटीवी फुटेज लिया जिससे यह पुष्टि हुई कि आरोपी-अपीलार्थी उसकी बेटी को ले गया था। उसने इस सुझाव से इनकार किया कि उसने जो कुछ भी कहा है वह गलत और झूठा है और आरोपी-अपीलार्थी ने उसकी बेटी के साथ मारपीट या हत्या नहीं की।

19. **अभियोजन साक्षी-3 - शिकायतकर्ता का भतीजा और रिपोर्ट का लेखक।** उन्होंने कहा कि घटना के दिन जब वह अपनी साइकिल से अपने घर जा रहे थे, तो उन्होंने आरोपी-अपीलार्थी को अनमोल बिस्किट फैक्ट्री के पास पीड़िता को अपने कंधे पर ले जाते देखा। जब वह घर पहुंचा तो देखा कि सभी लोग परेशान थे और पीड़ित को ढूंढ रहे थे। अभियोजन साक्षी-3 ने उन्हें बताया कि उसने क्या देखा था। इसके बाद वे पीड़िता की तलाश में निकल पड़े। बाद में पीड़िता का शव एक नाले के पास मिला। उन्होंने अपीलार्थी को उस व्यक्ति के रूप में पहचाना जो पीड़िता को ले जा रहा था और कहा कि उनके पास यह विश्वास करने का कारण है कि अपीलार्थी ने ही जघन्य अपराध किया है। उसने कहा कि उसने अपने चाचा (शिकायतकर्ता) के बोलने पर लिखित रिपोर्ट लिखी थी, जिस पर उसके चाचा ने अपना अंगूठा लगाया है। उन्होंने कहा कि जांच के दौरान विवेचना अधिकारी द्वारा उनका बयान दर्ज किया गया था।

जिरह के दौरान उन्होंने कहा कि वह आरोपी अपीलकर्ता को पिछले 10-12 वर्षों से जानते थे। वह भी उसी राज्य (यानी बिहार) से आते हैं लेकिन एक अलग जिले से। अभियोजन साक्षी-3 ने कहा कि जिस समय वे उसके और उसके चाचा (अभियोजन साक्षी-1) के साथ थाने में रिपोर्ट दर्ज कराने गए, उस समय तक उसकी चाची (बुआ) भी वहां आ गई थीं। उन्होंने बताया कि शव मिलने के बाद रिपोर्ट 20.10.2020 की दोपहर 1 से 1.30 बजे के बीच लिखी गई थी। अभियोजन साक्षी-3 ने बताया कि अन्वीक्षा के कागजात चौकी प्रभारी द्वारा उनकी उपस्थिति में तैयार किए गए थे और जिस समय वे कागजात तैयार किए जा रहे थे, उस समय परिवार के सभी सदस्य मौजूद थे। उन्होंने कहा कि विवेचना अधिकारी ने 21.10.2020 को उनका बयान दर्ज किया। अभियोजन साक्षी-3 ने यह भी कहा कि उसके चाचा (अभियोजन साक्षी-1) आरोपी-अपीलार्थी के साथ रोजाना शराब नहीं पीते थे, लेकिन वे सप्ताह में कम से कम एक या दो बार एक साथ शराब पीते थे। अभियोजन साक्षी-3 ने कहा कि शिकायतकर्ता (अभियोजन साक्षी-1) उसका असली चाचा (चाचा) है; कि उसकी चाची (चाची) ने उसे बताया था कि पीड़िता को आरोपी-अपीलार्थी द्वारा ले जाया गया था; कि उसके चाचा (अभियोजन साक्षी-1) का आरोपी-अपीलार्थी के साथ कभी झगड़ा या किसी प्रकार की दुश्मनी नहीं थी और उसके आरोपी-अपीलार्थी के साथ अच्छे संबंध थे। अभियोजन साक्षी-3 ने इस सुझाव का खंडन किया कि अपने चाचा की

वजह से उसने झूठी रिपोर्ट लिखी थी। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि वह झूठ बोल रहे हैं।

20. **अभियोजन साक्षी-4 - मृतका की बुआ।** उन्होंने बताया कि उनके पति हृदय रोगी हैं; घटना की तारीख को, वह उनके लिए दवा लाने के लिए बाहर गई थी। फिर उसने देखा कि आरोपी-अपीलार्थी बाहर खड़ा है और पीड़िता के साथ खेल रहा है। जब वह ऊपर अपने कमरे में गई, तो पीड़िता की मां ने उसे बताया कि आरोपी-अपीलार्थी पीड़िता को ले गया था; अभियोजन साक्षी-4 ने पुष्टि की कि उसने पीड़िता की मां को वह सब बताया जो उसने अभी देखा था यानी पीड़िता को अपीलार्थी के साथ। उसने बताया कि बाद में जब उन्हें पीड़िता नहीं मिली तो पीड़िता की तलाश की गई। उसने कहा कि पुलिस ने उसका बयान लिया था और वह अन्वीक्षा रिपोर्ट की गवाह थी। उसने अन्वीक्षा रिपोर्ट पर अपने हस्ताक्षर साबित किए जिस पर प्रदर्श क-2 अंकित था।

जिरह के दौरान, उसने कहा कि उसका अपार्टमेंट और उसके भाई (शिकायतकर्ता) का अपार्टमेंट एक-दूसरे से सटे हुए हैं। वे दोनों "X" के किरायेदार हैं। आगे पूछताछ करने पर, उसने बताया कि आरोपी-अपीलार्थी को 19.10.2020 को गिरफ्तार किया गया था। उसने कहा कि उसने खुद आरोपी-अपीलार्थी को पकड़ा था और पुलिस को बुलाया था। हालाँकि उसे वह नंबर याद नहीं है जिस पर उसने कॉल की थी लेकिन उसने बताया कि विवेचना अधिकारी ने खुद उसे वह नंबर दिया था। उसने कहा कि जब उसने आरोपी-अपीलार्थी को पकड़ा था, तो वह अकेला था और उसकी पतलून पर खून लगा हुआ था। उसने आगे कहा कि जब आरोपी-अपीलार्थी को उसने पकड़ा था, तो उसकी भाभी (अभियोजन साक्षी-2) भी वहां थी। अभियोजन साक्षी-4 ने कहा कि पीड़िता का शव पुलिस ने अगले दिन बरामद किया था और अन्वीक्षा के संबंध में पुलिस द्वारा उसके सामने कागजात तैयार किए गए थे। अभियोजन साक्षी-4 ने कहा कि जब शव को शव परीक्षण के लिए भेजा गया, तो वह शव के साथ गई थी। उसने यह भी कहा कि उसे पता चला था कि आरोपी-अपीलार्थी ने गांव में अपनी ही बेटी की हत्या कर दी थी और इसलिए, उसने अपनी भाभी (अभियोजन साक्षी-2) और भाई (अभियोजन साक्षी-1) को इसके बारे में चेतावनी दी थी। उसने यह भी कहा कि वह आरोपी-अपीलार्थी की आदतों के कारण उससे नफरत करती थी। उसने इन सुझावों का खंडन किया कि आरोपी-अपीलार्थी ने उसकी भतीजी की हत्या नहीं की; कि वह झूठ बोल रही है; और आरोपी-अपीलार्थी को झूठा फंसाया है।

21. **अभियोजन साक्षी-5 - "एक्स" (मकान मालिक) का बेटा**। उन्होंने कहा कि कॉम्प्लेक्स में उनकी एक मोबाइल फोन की दुकान है जहां शिकायतकर्ता उनके पिता (एक्स) के किरायेदार के रूप में रहता है। दुकान के ऊपर सीसीटीवी कैमरा लगा हुआ है। 19.10.2020 की शाम को उन्हें दरोगा (सब इंस्पेक्टर) का फोन आया कि उन्हें उनकी दुकान का सीसीटीवी फुटेज चाहिए। अगले दिन यानी 20.10.2020 को सुबह करीब 7.30 बजे उसने सीसीटीवी रिकॉर्डिंग का डीवीआर दरोगा को दिया, जिसे चलाया गया। उन्होंने कहा कि सीसीटीवी फुटेज से पता चला कि आरोपी-अपीलार्थी मृतक को रात 8.50 और 8.55 बजे के बीच अपने कंधों पर ले जा रहा था। उन्होंने कहा कि यह क्लिप उन्होंने ही दरोगा को दी थी। उन्होंने कहा कि जो वीडियो क्लिप उन्होंने दरोगा को दी थी, उसमें कोई छेड़छाड़ नहीं की गई थी। उन्होंने कहा कि उन्होंने फुटेज का सर्टिफिकेट भी दिया है। पीडब्लू-5 द्वारा दिए गए प्रमाणपत्र पर प्रदर्श क-3 अंकित था।

जिरह के दौरान, अभियोजन साक्षी-5 ने कहा कि शिकायतकर्ता और उसका परिवार पिछले 4-5 वर्षों से आवास के किरायेदारों के रूप में रह रहे थे और आरोपी-अपीलार्थी उनके किरायेदारों का नियमित आगंतुक था और उन्होंने उसे कई बार देखा था। उन्होंने सीसीटीवी फुटेज या डीवीआर से छेड़छाड़ से इनकार किया। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि वह झूठ बोल रहे हैं।

22. **अभियोजन साक्षी-6 - सब इंस्पेक्टर महक सिंह बलिया**। उन्होंने बताया कि 20.10.2020 को उनकी तैनाती थाना कविनगर पर थी। शिकायतकर्ता की लिखित रिपोर्ट पर प्राथमिकी दर्ज की गई। प्राथमिकी में आरोप लगाया गया कि मृतक का शव बीयर फैक्ट्री के पास आरटीओ कार्यालय के पास सड़क किनारे पड़ा हुआ था। उन्होंने बताया कि सूचना मिलने पर वह वरिष्ठ निरीक्षक, कांस्टेबल और महिला कांस्टेबल के साथ अन्वीक्षा रजिस्टर और अन्य कागजात के साथ मौके पर जाने के लिए रवाना हुए। घटनास्थल पर उन्होंने मृतक का शव देखा। एक महिला कांस्टेबल द्वारा शव की जांच की गई और जांच गवाहों की नियुक्ति के बाद अन्वीक्षा की कार्यवाही पूरी की गई। उसी दिन यानी 20.10.2020 को, लगभग 23.00 बजे (नोट: गिरफ्तारी ज्ञापन में गिरफ्तारी का समय 21.50 बजे दर्शाया गया है), उन्होंने अपनी पुलिस टीम के साथ आरोपी-अपीलार्थी को आत्मा राम स्टील अंडरपास के पास से गिरफ्तार कर लिया। उसकी गिरफ़्तारी के बाद उन्होंने गिरफ़्तारी मेमो तैयार करवाया, जिस पर प्रदर्श क-4 अंकित था। उन्होंने अन्वीक्षा रिपोर्ट पर अपने हस्ताक्षर और उस पर अभियोजन साक्षी-4 के हस्ताक्षर भी साबित किये।

जिरह के दौरान, अभियोजन साक्षी-6 ने कहा कि पूछताछ के समय शिकायतकर्ता के परिवार के सदस्य मौजूद थे और उनमें से, शिकायतकर्ता की बहन (अभियोजन साक्षी-4), शिकायतकर्ता का भतीजा (अभियोजन साक्षी-3), शिकायतकर्ता के रिश्तेदार (जिनकी जांच नहीं की गई) और शिकायतकर्ता के पड़ोसी (जांच नहीं की गई) वहाँ थे। अभियोजन साक्षी-6 ने बताया कि मुखबिर से मिली सूचना पर उन्होंने आरोपी को गिरफ्तार

अप्रमाणित

किया। उन्होंने इस बात से साफ तौर पर इनकार किया कि आरोपी को पुलिस के अलावा किसी और ने पकड़ा था। उन्होंने आरोपी के पकड़े जाने के संबंध में मृतक के परिवार के किसी भी सदस्य से कोई भी जानकारी मिलने से विशेष रूप से इनकार किया। अभियोजन साक्षी-6 ने इस सुझाव से इनकार किया कि पूछताछ मौके पर नहीं की गई थी और यह पुलिस स्टेशन में बैठकर की गई थी। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि उन्होंने जो कुछ भी कहा है वह झूठ है।

23. **अभियोजन साक्षी-7 - डॉ. सुधीर कुमार शर्मा - ऑटोप्सी सर्जन।** उन्होंने पीड़िता की शव परीक्षण रिपोर्ट को साबित किया और कहा कि मृतक के शव को सीलबंद हालत में शव परीक्षण के लिए शवगृह में लाया गया था। उन्होंने बताया कि शरीर पर एक पाजेब (कमर में बंधा धागा) और एक फ्रॉक थी, जो अलग रखी हुई थी। उन्होंने बताया कि पाजेब और फ्रॉक को अलग सील कर सिपाही को सौंप दिया गया। उन्होंने उन चोटों का वर्णन किया जो देखी गई थीं और जिनका उल्लेख शव परीक्षण रिपोर्ट में किया गया था (जैसा कि हम पहले ही ऊपर चोटों को इंगित कर चुके हैं, हम इसे यहां दोबारा इंगित करने का प्रस्ताव नहीं करते हैं)। उन्होंने कहा कि शव परीक्षण के समय निम्नलिखित चीजों को सील कर दिया गया था: - डीएनए प्रोफाइलिंग के लिए एक दांत, एक जोड़ी योनि स्लाइड और एक योनि स्वाब, एक जोड़ी गुदा स्लाइड और एक गुदा स्वाब, एक जोड़ी मौखिक स्लाइड और एक मौखिक स्वाब, नाखून स्क्रैप और मृतक के जघन क्षेत्र पर मौजूद एक बाल। उन्होंने बताया कि उपरोक्त सभी सामान को फोरेंसिक जांच के लिए सील किया गया था। उन्होंने यह भी कहा कि पूरी शव परीक्षण प्रक्रिया की वीडियो रिकॉर्डिंग की गई थी। पोस्टमार्टम के बाद शव कांस्टेबल को सौंप दिया गया। उनकी राय के अनुसार, मृत्यु एक दिन पहले मृत्यु पूर्व गला दबाने के कारण दम घुटने से हुई थी। उन्होंने कहा कि उनकी टीम में अन्य डॉक्टर भी थे और वे डॉ. दिनेश कुमार और डॉ. सुषमा भारती (अभियोजन साक्षी-8) थे। उन्होंने कहा कि शव परीक्षण के समय, हाइमन और योनी फटी हुई पाई गई और रेक्टो-वेजाइनल फाड़ था जो योनि या गुदा में किसी कठोर वस्तु के जबरदस्ती प्रवेश का परिणाम हो सकता है।

जिरह के दौरान, उन्होंने कहा कि उन्हें पूरे शरीर पर मृत्युज काठिन्य दिखाई दिया। मृत्युज काठिन्य मृत्यु के 2-3 घंटों के भीतर शुरू हो सकता है और 12 घंटों के भीतर पूरे शरीर को कवर कर लेता है और अगले 12 घंटों तक वहीं रहता है और उसके बाद अगले 12 घंटों में समाप्त हो जाता है। उन्होंने इस संभावना को स्वीकार किया कि उनके द्वारा देखा गया रेक्टो-वेजाइनल फाड़ किसी कठोर वस्तु या मानव लिंग के प्रवेश के कारण हो सकता है। एलील के संबंध में न्यायालय ने उनसे पूछताछ की। उन्होंने कहा कि एलील डीएनए का हिस्सा है।

24. **अभियोजन साक्षी-8** - डॉ. सुषमा भारती। उन्होंने कहा कि वह शव का पोस्टमार्टम करने वाली डॉक्टरों की टीम का हिस्सा थीं। उन्होंने शव परीक्षण रिपोर्ट की पुष्टि की जिस पर प्रदर्श क-5 अंकित था।

जिरह के दौरान, उन्होंने कहा कि चोट के कारण हुए रक्तस्राव से पीड़िता की मृत्यु हो सकती थी, लेकिन वर्तमान मामले की पीड़िता की मौत गला घोंटने के कारण हुई। उन्होंने इस सुझाव से इनकार किया कि वह शव परीक्षण करने वाली टीम का हिस्सा नहीं थीं।

25. **अभियोजन साक्षी-9 - नागेंद्र चौबे - विवेचना अधिकारी।** उन्होंने बताया कि 20.10.2020 को वह थाना कविनगर के प्रभारी पुलिस अधिकारी थे। केस दर्ज होने के बाद मामले की जांच उन्होंने अपने हाथ में ले ली थी। उन्होंने कहा कि उन्होंने शिकायतकर्ता और गिरफ्तार आरोपी का बयान दर्ज किया था, जिसे केस डायरी में दर्ज किया गया था। दिनांक 20.10.2020 को उन्होंने शिकायतकर्ता की निशानदेही पर उस क्षेत्र का साइट प्लान तैयार किया जहां से शव बरामद किया गया था, जिस पर प्रदर्श क-6 अंकित किया गया था। उन्होंने कहा कि जिस स्थान से मृतक का शव बरामद किया गया था, वहां से उन्हें एक खाली बोतल, नमकीन के तीन खाली पाउच, एक रुपये के दो सिक्के और गीली मिट्टी और सादा मिट्टी मिली। बरामदगी ज्ञापन को प्रदर्श क-7 के रूप में प्रदर्शित किया गया था। अभियोजन साक्षी-9 ने कहा कि 21.10.2020 को उन्होंने आरोपी की मेडिकल रिपोर्ट प्राप्त की और उसे केस डायरी में दर्ज किया और डीएनए प्रोफाइल के लिए रक्त का नमूना लिया। उन्होंने कहा कि उन्होंने अभियोजन साक्षी-6 द्वारा तैयार की गई अन्वीक्षा रिपोर्ट को सीडी में दर्ज किया और अन्य पुलिस कर्मियों के बयान भी दर्ज किए और जांच को आगे बढ़ाया। 22.10.2020 को उन्होंने उस स्थान का साइट प्लान तैयार किया, जहां मृतक को आखिरी बार आरोपी के साथ जीवित देखा गया था। उन्होंने कहा कि शिकायतकर्ता के कहने पर साइट प्लान तैयार किया गया था। साइट योजना को प्रदर्श क-8 के रूप में चिह्नित किया गया था। अभियोजन साक्षी-9 ने कहा कि उसी दिन, उन्होंने सीसीटीवी फुटेज का एक जब्ती ज्ञापन तैयार किया और अन्य गवाहों के बयान दर्ज किए। उन्होंने सीसीटीवी फुटेज के जब्ती मेमो को साबित किया, जिस पर प्रदर्श क-9 अंकित था। उन्होंने कहा कि एक पेन ड्राइव ली गई और उसे सील कर दिया गया। इसे अदालत के समक्ष खोला गया और पेन ड्राइव को सामग्री प्रदर्श 1 के रूप में चिह्नित किया गया। उन्होंने कहा कि 24.10.2020 को उन्होंने मृतक की पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट सीडी में दर्ज की और डॉक्टरों का बयान दर्ज किया, जो सीडी में था। उन्होंने कहा कि

26.10.2020 को उन्होंने बरामद वस्तुओं को फोरेंसिक जांच के लिए भेज दिया।

जिरह के दौरान, उन्होंने बताया कि आरोपी को महक सिंह बलियान ने 20.10.2020 को गिरफ्तार किया था; और अभियोजन साक्षी-4 का बयान 22.10.2020 को दर्ज किया गया था। उन्होंने इस सुझाव का खंडन किया कि अभियोजन साक्षी-4 ने कहा था कि उसने खुद आरोपी-अपीलकर्ता को गिरफ्तार किया था और पुलिस को फोन पर इसकी सूचना दी थी। उन्होंने कहा कि उन्हें नहीं पता कि उन्होंने ऐसा बयान, यदि है, तो क्यों दिया। उन्होंने इस सुझाव से इनकार किया कि सीसीटीवी फुटेज और इसकी पेन ड्राइव उनके द्वारा नहीं ली गई थी और इसका कोई जब्ती ज्ञापन तैयार नहीं किया गया था। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि उन्होंने मौके पर जाकर साइट प्लान तैयार नहीं किया था। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि पूरी जांच थाने में बैठ कर की गयी। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि उन्होंने जो कुछ भी कहा है वह झूठ है।

26. **अभियोजन साक्षी-10-स्टेशन हाउस ऑफिसर अजय कुमार सिंह-द्वितीय जांच अधिकारी।** उन्होंने कहा कि मामले की जांच उन्हें 16.11.2020 को सौंपी गई थी। उन्होंने परचा नंबर 6 तैयार किया और उसके बाद फोरेंसिक रिपोर्ट प्राप्त करने के लिए एक अनुस्मारक भेजकर 21.11.2020 को सीडी परचा नंबर 7 तैयार किया। उन्होंने कहा कि उनके द्वारा 01.12.2020 को दूसरा अनुस्मारक भेजा गया था, जिसकी प्रविष्टि सीडी परचा संख्या 8 में की गई थी। उन्होंने कहा कि 16.12.2020 को आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ पर्याप्त सबूत मिलने के बाद, उन्होंने आरोप पत्र प्रस्तुत किया, जिसकी प्रविष्टि सीडी पर्चा नंबर 9 में की गई थी। उनके द्वारा प्रस्तुत आरोप पत्र पर प्रदर्श क-10 अंकित किया गया था। उन्होंने कहा कि 05.01.2021 को उन्होंने फोरेंसिक प्रयोगशाला, गाजियाबाद से रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद एक पूरक सीडी पर्चा तैयार किया। उन्होंने कहा कि फोरेंसिक प्रयोगशाला, गाजियाबाद से प्राप्त रिपोर्ट को उनके द्वारा कागज संख्या 25-क/3 के रूप में रिकॉर्ड पर रखा गया है।

जिरह के दौरान, उन्होंने स्वीकार किया कि उन्होंने आरोप पत्र के समर्थन में किसी भी गवाह का बयान दर्ज नहीं किया है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि फोरेंसिक प्रयोगशाला से रिपोर्ट मिलने से पहले ही उनके द्वारा आरोप पत्र दाखिल कर दिया गया था। उन्होंने इस सुझाव से इनकार किया कि उन्होंने उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

27. इस स्तर पर, हम फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला, यूपी, गाजियाबाद द्वारा प्रदान की गई रिपोर्ट के रूप में लाए गए फोरेंसिक साक्ष्य को देख सकते हैं। यह फोरेंसिक रिपोर्ट 29.12.2020 की है और 05.01.2021 को, यानी आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद, पूरक केस डायरी में दर्ज की गई थी। इसे 08.01.2021 को विचारण न्यायालय द्वारा रिकॉर्ड पर लिया गया था। संपूर्ण फोरेंसिक रिपोर्ट नीचे प्रस्तुत की गई है:-

कार्यालय विधि विज्ञान प्रयोगशाला उ० प्र० गाजियाबाद C-2414

प्रेषक,

सयुक्त निदेशक,
विधि विज्ञान प्रयोगशाला, उ० प्र०,
गाजियाबाद।

सेवा में,

पुलिस अधीक्षक नगर।
गाजियाबाद

पत्रांक: 4760 - डी०एन०ए०-2020
दिनांक:
अ०सं०- 1470/2020 थाना: कविनगर
राज्य बनाम: चन्दन पाण्डेय
धारा:376,302,201 भा.द.वि 5/6 पोक्सो एक्ट
पत्र संख्या: छपस दिनांक: 25.10.2020

उपर्युक्त मामले से सम्बंधित प्रदर्श प्रयोगशाला में दिनांक 26.10.2020 को विशेष वाहक द्वारा प्राप्त हुये।

पार्सल व सील का विवरण

नौ समुद्रित लिफाफे, दो समुद्रित बंडल (बंडल + थर्माकोल) तथा दो प्लास्टिक डिब्बी लिफाफे (1) से (7) व दो प्लास्टिक डिब्बी (8) व (9) तथा एक बंडल (10) पर मुद्रा नमूनासार, दो लिफाफे (11) व (12) तथा (13) थर्माकोल पर, मुद्रा नमूनासार अक्षत थी।

प्रदर्श का विवरण

1.दांत(एक) । मृतका आराध्य से एक समुद्रित लिफाफे में।
2.वैजाइनल स्लाइड (दो) । मृतका आराध्य से एक समुद्रित लिफाफे में।
3.ओरल स्लाइड (दो) । मृतका आराध्य से एक समुद्रित लिफाफे में।
4.एनल स्लाइड (दो) । मृतका आराध्य से एक समुद्रित लिफाफे में।
5.एनल स्वैब (एक) । मृतका आराध्य से एक समुद्रित लिफाफे में।
6.वैजाइनल स्वैब । मृतका आराध्य से एक समुद्रित लिफाफे में।
7.ओरल स्वैब । मृतका आराध्य से एक समुद्रित लिफाफे में।
8.नेल्स के टुकड़े डिब्बी में। । मृतका आराध्य से एक समुद्रित प्लास्टिक
9.बाल (एक) डिब्बी में। । मृतका आराध्य से एक समुद्रित प्लास्टिक

10.फ्रॉक । मृतका आराध्य से एक समुद्रित बंडल में।
11.एक पायल (सफ़ेद धातु) ।
12.अंडरवियर ।अभि० चन्दन पाण्डेय से एक समु० लिफाफे में।
13.स्लाइड (दो) ।अभि० चन्दन पाण्डेय से एक समु० लिफाफे में।
14.यूरेथ्रल मीट्स स्वैब (एक) ।
15.फ्रेनुलम स्वैब (एक) ।
16.ग्लान्स स्वैब (एक) ।
17.फोरस्किन स्वैब (एक) ।
18.स्कोट्रन स्वैब (एक) ।
19.शाफ्ट्स स्वैब (एक) ।
20.ओरल स्मीयर (एक) ।
21.हेयर (बाल) (कागज में) ।
22.नेल्स के टुकड़े (कागज में) ।
23.रक्त नमूना (एक वायल में) । एक समुद्रित थर्माकाल डिब्बे में अभि० चन्दन पाण्डेय से।

नोट: अग्रेषण पत्र व लिफाफे पर अभियुक्त के अंडरवियर व बनियान वर्णित थे, किन्तु अंडर वियर ही प्राप्त हुआ।

कार्यालय विधि विज्ञान प्रयोगशाला उ० प्र० गाजियाबाद 2415

पत्रांक : 4760 -डी० एन ० ए० -2020 गाजियाबाद

परीक्षा परिणाम

प्राप्त प्रदर्शों (1) से (23) का डी० एन० ए० परीक्षण किया गया।

स्रोत प्रदर्शों (12) (अभि० चन्दन पाण्डेय से) पर उपस्थित बायोलाजिकल द्रव्य का स्रोत, प्रदर्श (3) व (7) (मृतका से) पर उपस्थित स्रोत के समान पाया गया, तथा प्रदर्श (12) के स्रोत में, स्रोत प्रदर्श (23) (चन्दन पान्डेय से) के एलील्स की उपस्थिति भी पायी गयी।

स्रोत प्रदर्श (२), (४), (५), (६) व (१०) (मृतका से) में पुरुष विसिष्ट एलील की उपस्थिति पायी गयी किन्तु आंशिक डीएनए प्रोफाइल जेनेरेट होने के कारण, स्रोत प्रदर्श (२३) (अभियुक्त से) से मिलान के सम्बन्ध में अभिमत दिया जाना संभव न हो सका।

स्रोत प्रदर्श (१) व (८) का डीएनए प्रोफाइल, स्रोत प्रदर्श (३) व (७) के सामन व स्त्री मूल का पाया गया।

स्रोत प्रदर्श (13) से (20) का डीएनए प्रोफाइल, स्रोत प्रदर्श (23) के सामन तथा पुरुष मूल का पाया गया।

स्रोत प्रदर्श (9), (११) (२१) व (२२) में डीएनए निष्कर्षण न हो सका।

डीएनए परीक्षण में जेनेटिक एनेलाइजर व जीन मैपर सॉफ्टवेयर का प्रयोग किया गया।

उक्त परीक्षण में मानक विधियां प्रयोग में लायी गयी।

नोट - परीक्षणोपरांत समस्त प्रदर्शों को एक समुद्रित बंडल में वापस लौटाया जा रहा है।

ह० अप० ह० अप०
29-12-20 29-12-2020

ज्येष्ठ वैज्ञानिक सहाय आवश्यक कार्यवाही हेतु अग्रसारित
वैज्ञानिक अधिकारी
करून कुमार ह० अप०
डॉ राजेंद्र सिंह
ज्येष्ठ वैज्ञानिक सहायक २९.१२. २०२०
(वैज्ञानिक अधिकारी)
विधि विज्ञान प्रयोगशाला डॉ सुधीर कुमार
विधि विज्ञान
प्रयोगशाला गाजियाबाद, उ ० प्र ० (उप निदेशक)
गाजियाबाद
विधि विज्ञान प्रयोगशाला
गाजियाबाद

धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आरोपी का बयान

28. 12.01.2021 को धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आरोपी-अपीलार्थी का बयान दर्ज किया गया। आरोपी-अपीलार्थी ने उसके द्वारा बलात्कार और हत्या किए जाने से इनकार किया और दावा किया कि उसे झूठा फंसाया गया है। प्रश्न संख्या 7, 8, 11, 17 और 19 के संबंध में अभियुक्त-अपीलार्थी का बयान अभियोजन साक्ष्य में उसके खिलाफ दिखाई देने वाली कुछ आपत्तिजनक परिस्थितियों का स्पष्टीकरण देता है। इसलिए हम बचाव के विहंगम दृश्य के लिए उन प्रश्नों और उत्तरों को निकालना और पुन: प्रस्तुत करना उचित समझते हैं। वे इस प्रकार हैं:-

" प्रश्न :-7 साक्षी पी० डब्लू -१ वीरेन्द्र ठाकुर ने अपने शपथपूर्ण बयान की मुख्य परीक्षा में कहा है की दि ० १९.२०. २० को मैं चन्दन और दो अन्य व्यक्ति साहेब और अमरजीत अपने घर के पास शराब पी रहे थे उस समय चन्दन हमारे पास से उठकर कमरे पर गया और मेरी पत्नी से मेरी बेटी आराध्या को खिलाने को कहकर घर से ले गया। मेरी बेटी की उम्र करीब ढाई वर्ष थी,जब मै घर आया तो मेरी पत्नी ने बताया कि चन्दन आराध्या को खिलाने ले गया है। हमने बहुत तलाश किया और रात से ही पुलिस के साथ तलाश करते रहे , फिर दि ० २०. १०. २० को करीब समय १२:३० बजे पता चला कि मेरी बेटी मरी हुई आर. ओ. ओ कार्यालय के पास बीयर फैक्ट्री वाली रोड पर सड़क के किनारे आड़ में नाले के पास पड़ी हुई है। मुझे पूरा विश्वाश है कि चन्दन ने ही मेरी बेटी के साथ गलत काम करके उसकी हत्या कर दी। मैंने पुलिस को भी यह बयान दिया था। मैंने एक तहरीर लिखवाकर थाना कविनगर पर अपना अंगूठा लगाकर दी थी। जिसमें मैंने घटना की सारी सच्चाई बोलकर लिखाई थी। उक्त

तहरीर पत्रावली पर मौजूद है जिस पर साक्षी ने अपनी अंगूठे की शिनाख्त करते हुए प्र ० क ० -१ के रूप में साबित किया है। इस बारे में आपको क्या कहना है?

उत्तर - पी ० डब्लू० १ के बयान में यह बात सही है कि मैंने वीरेंद्र, साहेब व अमरजीत के साथ शराब पी थी और मै वीरेन्द्र की पुत्री को उसकी पत्नी के पास से लाया क्यूंकि वीरेन्द्र ने ही मेरे से ऐसा करने को कहा था। वीरेन्द्र ने अपनी बेटी आराध्या को दस रूपए दिये थे तथा आराध्या १० रुपये लेकर चली गयी फिर वापस नही आयी। मै तो वीरेन्द्र के पास ही शराब पीता रहा तथा उसके बाद अपने घर चला गया|

प्रश्न :-8 साक्षी पी० डब्लू -2 गुंजन देवी ने अपने बयान की मुख्य परीक्षा में यह अभिकथन किया है की चन्दन हमारे यहां 10 वर्षो से आता जाता था। मेरे पति के साथ चन्दन, साहिब पासवान, अमरजीत उ अमरपाल ठेकेदार महेशचन्द शर्मा के यहां काम करते थे। मेरे बच्चे उसे जानते पहचानते थे और मेरी बेटी चन्दन को चाचा कहती थी। उसके सोने का कोई ठिकाना नही था कभी मेरे यहां कभी ठेकेदार के यहाँ कभी शर्मा जी के घर पर सो जाता था। हमारी शादी से पहले कभी चन्दन व मेरे पति के बीच झगड़ा हुआ था परन्तु फिर दोस्ती हो गयी थी। घटना वाले दिन मेरे पति व चन्दन पांडे , साहेब पासवान और अमरजीत दुकान के पीछे बैठकर शराब पी रहे थे। शाम को करीब 07:30 – 08:00 बजे के करीब चन्दन हमारे कमरे पर आया और सने मेरी बेटी आराध्या को बाहर खिलाने के लिए ले जाने के लिए आराध्या को मेरे से जबरदस्ती ले लिया और कहा उसके पापा मांगा रहे हैं। मैंने उसे मना किया मेरी बच्ची खेलने लगी और मै अपने काम में लग गयी, इसी बीच चन्दन मेरी बच्ची को मेरे सामने से उठाकर ले गया और कहा कि अभी दे जाऊंगा। मैंने अपने पति से पूछा कि आराध्या कहां है चन्दन उसे लेकर गया था और कह रहा था की आपके पास ले जा रहा हूँ तो मेरे पति ने कहा कि चन्दन मेरे पास आराध्या को लेकर नहीं आया था। उसके बाद हमने बेटी को तलाश करना शुरू किया, पर वह नहीं मिली,तब विक्की जो मेरे पति का भतीजा है ने बताया कि चन्दन आराध्या को कंधे पर बैठाकर ले जा रहा था। अगले दिन बीयर वाली फैक्ट्री रोड पर तलाश करते रहे| बाद में मेरी बेटी की लाश सड़क के किनारे नाले के पास मिली थी। मेरा पूरा विश्वास है की घटना वाले दिन चन्दन ने ही मेरी बेटी आराध्या का बलात्कार कर उसकी हत्या की। आपको इस सम्बन्ध में क्या कहना है?

उत्तर -पी० डब्लू -2 का बयान यहां तक सही है कि मै वीरेन्द्र के घर १० वर्षो से आता -जाता था तथा महेश शर्मा ठेकेदार के यहां काम करते थे तथा वीरेन्द्र से झगड़ा हुआ था। इसके अतिरिक्त सारा बयान गलत व झूठा है। यह बयान मुझे फंसाने के लिए दिया गया है

प्रश्न 11 -साक्षी पी० डब्लू -5 कुलदीप यादव ने अपने शपथ पूर्ण बयान में कहा है कि औद्योगिक छेत्र कविनगर में धर्मवीर ट्रेवल्स के नाम से हमारी मोबाइल की दुकान है| दुकान के ऊपर बना कमरा पिता जी ने वीरेंद्र ठाकुर, गुंजन देवी, सतेन्द्र देवी, रानी देवी को किराये पर दे रखा है। अभी भी ये लोग किराये पर वहीं रह रहे है। उस दिन दिनांक 19.10.20 की शाम को दरोगा जी का मेरे पास फ़ोन आया कि दुकान पर लगे सी० सी ० टी० वी० फुटैज की जरुरत है तो मैंने अगले दिन 20.10.20 की सुबह 07:30 बजे के करीब दरोगा जी को डी ० वी० आर० उपलब्ध करा दी थी, क्योकि सी० सी० टी० वी० फुटैज को मैंने व गुंजन देवी व उसके परिवार के अन्य लोगो ने दरोगा जी के सामने चलाकर देखा था तो हाजिर अदालत चन्दन अपने कंधे पर मृतका को बैठाकर समय 08:50 से 08:55 पी ० एम ० तक घटना वाले दिन चन्दन को ले जाते हुए क्लिप में देखा था। यही फुटैज व डी ० वी० आर० मैंने दरोगा जी को दे दिया था। मैंने सी० सी ० टी० वी० फुटैज जो दरोगा जी को दी है उसमे कोई छेड़छाड़ नहीं की है। वह जैसी थी वैसी ही दरोगा जी को दे दिया था। कपडे में रखकर सील किया था, नमूना मोहर भी बनाया गया था। उक्त सी० सी ० टी० वी० फुटैज का प्रमाणपत्र अंतर्गत धारा 65 बी साक्ष्य अधिनियम पत्रावली पर मौजूद है उस पर साक्षी ने अपने हस्तचार देखकर तस्दीक कर प्रमाणपत्र को प्र ० क- 3 के रूप में साबित किया है| इस बारे में आपको क्या कहना है ?

उत्तर - कुलदीप यादव का यह बयान सही है कि वीरेन्द्र , सत्येंद्र व कुलदीप की मोबाइल की दुकान के उपर किराये पर मकान में वादी लोग रहते है तथा सी० सी ० टी० वी० फुटैज में आराध्या को ले जाता हुआ मै दिखाई दिया यह सही है क्यूंकि वीरेन्द्र ठाकुर ने ही मुझसे अपनी पुत्री को मंगवाया था।

प्रश्न:-17 आपके विरुद्ध मुकदमा क्यों चला ?

उत्तर - वीरेन्द्र ठाकुर के साथ मेरा झगड़ा हुआ था उसका बदला लेने के लिए मेरे विरुद्ध झूठा मुकदमा चला है। वीरेन्द्र ठाकुर की पुत्री आराध्या को किसी और व्यक्ति वे मारा है मैंने नहीं मारा मैं निर्दोष हूँ।

प्रश्न:-19 क्या आपको कुछ और कहना है ?

उत्तर- श्रीमान जी मैंने यह अपराध नहीं किया है मै बिल्कुल निर्दोष हूं। मेरे मां - बाप काफी बुजुर्ग है। मेरी एक पत्नी है तथा दो छोटे- छोटे बच्चे है। मेरे अलावा कमाने वाला कोई नहीं है मै एकदम गरीब आदमी हूं मुझे इन्साफ चाहिए।

29. इस स्तर पर, हम देख सकते हैं कि न तो आरोपी-अपीलकर्ता की मेडिकल जांच रिपोर्ट और न ही दिनांक 29.12.2020 की फोरेंसिक रिपोर्ट आरोपी को उसका स्पष्टीकरण मांगने हेतु, दी गई थी। अभियोजन साक्षी-6, एसआई महक सिंह बलियान का बयान, प्रश्न संख्या 12 के तहत आरोपी-अपीलार्थी के सामने रखा गया था। अभियुक्त-अपीलार्थी ने उस प्रश्न के उत्तर में उसमें प्रकट

होने वाली आपत्तिजनक परिस्थितियों से इनकार किया। सुविधा हेतु, प्रश्न क्रमांक 12 एवं प्रश्न क्रमांक 12 का उत्तर नीचे दिया जा रहा है:-

" प्रश्न:-12 साक्षी पी० डब्लू -6 उपनिरीक्षक महक सिंह बालियान ने अपने शपथपूर्ण बयान की मुख्या परीक्षा में कहा है कि दि० 20.10.20 को मैं थाना कविनगर पर नियुक्त था। उस दिन वादी मुकदमा की लिखित तहरीर के आधार पर थाना हाजा पर मु० अ० स० 1470/20 धरा 302,201, 376 ए बी भा० द० सं० व 5/6 पोक्सो अधिनियम पंजीकृत हुआ था। उस दिन एफ० आई० आर० में अंकित मुकदमा उपरोक्त में मृतका कु० आराध्या आयु करीब ढाई वर्ष का शव आर० टी० ओ० ऑफिस के पास बीयर फैक्ट्री वाली रोड पर सड़क के किनारे पड़ा है पर मैं वरिष्ठ उप निरीक्षक मय का० 1993 फारुख अहमद व महिला का० 656 बबीता पंवार के साथ थाने से जिल्द पंचनामा व दीगर कागजात लेकर घटनास्थल आर० टी० ओ० ऑफिस के पास पहुंचा तथा मृतका कु० आराध्या के शव को महिला कांस्टेबल द्वारा स्त्री की लाज व हया को देखते हुए निरीक्षण कराकर उसके द्वारा बतायी गयी चोट एवं हुलिया कपडे के आधार पर मृतका के परिजनो से पंच नियुक्त कर पंचायतनामे की कार्यवाही की गयी थी तथा दि० 20.10.20 को ही समय करीब 23 बजे मेरे द्वारा हमराही फोर्स के मुकदमा उपरोक्त के नामजद अभियुक्त चन्दन को आत्मा स्टील अंडर पास से गिरफ्तार किया था। अभियुक्त का गिरफ़्तारी मैमो पत्रावली पर मेरे लेख व हस्ताक्षर में है जिसे प्र० क -4 के रूप में साक्षी ने साबित किया है। साक्षी ने आगे कहा है कि मेरे द्वारा पंचायतनामे को नियुक्त की गयी पंच रीना देवी ने पत्रावली पर प्र ० क -2 के रूप में साबित किया है। इस बारे में आपको क्या कहना है ?"

उत्तर - 6 का सारा बयान गलत है।

30. इस स्तर पर, हम यह भी देख सकते हैं कि प्रश्न संख्या 11 के उसके उत्तर में, जो रात 8.50 से 8.55 बजे के बीच की अवधि के सीसीटीवी फुटेज जिसमें आरोपी-अपीलार्थी के कंधे पर मृतक दिखाई दे रही है, के संबंध में अभियोजन साक्षी-5 के बयान से संबंधित था, आरोपी-अपीलार्थी ने स्वीकार किया कि मृतक के पिता (अभियोजन साक्षी-1) अभियोजन साक्षी-5 की दुकान के ऊपर स्थित एक आवास के किरायेदार थे और सीसीटीवी फुटेज से पता चलता है कि वह मृतक को अपने कंधे पर ले जा रहा था।हालाँकि, उसने स्पष्ट किया कि मृतक के पिता (अभियोजन साक्षी-1) ने आरोपी-अपीलार्थी से अपनी बेटी (मृतका) को लाने के लिए कहा था। प्रश्न संख्या 7 के अपने उत्तर में, अपीलार्थी ने शिकायतकर्ता (अभियोजन साक्षी-1) और दो अन्य लोगों के साथ शराब पीने की बात स्वीकार की और यह भी स्वीकार किया कि वह शिकायतकर्ता की बेटी को शिकायतकर्ता की पत्नी से उस स्थान पर लाया था जहां शिकायतकर्ता शराब पी रहा था क्योंकि शिकायतकर्ता ने स्वयं उसे अपनी बेटी को लाने के लिए अनुरोध किया था और शिकायतकर्ता की बेटी को शिकायतकर्ता के पास लाने के बाद, शिकायतकर्ता ने उसे 10 रुपये दिए और उसके बाद वह चली गई लेकिन वापस नहीं लौटी। अपीलार्थी ने कहा कि वह शिकायतकर्ता के साथ शराब पीता रहा और उसके बाद वह अपने घर चला गया। प्रश्न संख्या 8 के उत्तर में, अभियुक्त-अपीलार्थी ने स्वीकार किया कि वह पिछले 10 वर्षों से शिकायतकर्ता के घर आता जाता था। झूठा फंसाने के कारण के संबंध में प्रश्न संख्या 17 के उत्तर में उसने बताया कि पूर्व में शिकायतकर्ता से उसका विवाद हुआ था और उसी विवाद के कारण उसे झूठा फंसाया गया है।

विचारण न्यायालय के निष्कर्ष

31. विचारण न्यायालय ने पाया:- (i) यह न केवल अभियोजन साक्षी-1 और अभियोजन साक्षी-2 द्वारा साबित किया गया है, बल्कि आरोपी-अपीलार्थी ने भी स्वीकार किया है कि 19.10.2020 की शाम को आरोपी-अपीलार्थी, शिकायतकर्ता और दो अन्य लोग एक साथ पेय (शराब) पी रहे थे और आरोपी-अपीलार्थी उस स्थान को छोड़कर गया जहां वे शराब पी रहे थे और उसके बाद, शिकायतकर्ता की बेटी (यानी मृतक) को उसकी मां से अपने पास ले लिया; (ii) सीसीटीवी फुटेज से पुष्टि होती है कि मृतक आरोपी-अपीलार्थी के कंधे पर थी और इसलिए, यह बिना किसी संदेह के साबित होता है कि मृतक 19.10.2020 की रात लगभग 8.50 बजे आरोपी-अपीलार्थी के साथ थी; (iii) कि अभियोजन साक्षी-3 और अभियोजन साक्षी-4 ने भी पुष्टि की है कि आरोपी-अपीलार्थी और मृतक घटना की तारीख पर एक साथ थे; (iv) उसके बाद मृतक को जीवित नहीं देखा गया और 20.10.2020 को उसका शव बरामद किया गया; (v) मेडिकल/फॉरेंसिक साक्ष्य से पता चलता है कि उसके साथ बलात्कार किया गया और उसकी हत्या कर दी गई; और (vi) कि फोरेंसिक रिपोर्ट पुष्टि करती है कि अपीलार्थी से बरामद अंडरवियर में जैविक सामग्री थी जो मृतक के शरीर से प्राप्त मौखिक स्लाइड और मौखिक स्वाब में मौजूद जैविक सामग्री से मेल खाती थी। विचारण न्यायालय ने उपरोक्त आपत्तिजनक परिस्थितियों को एक शृंखला के रूप में इतना संपूर्ण पाया कि इसने निर्णायक रूप से बच्चे के साथ बलात्कार और हत्या के अपराध करने के लिए अपीलार्थी के अपराध की ओर इशारा किया, परिणामस्वरूप, आरोपी-अपीलार्थी के स्पष्टीकरण को झूठा और असंबद्ध पाते हुए, उपर्युक्त के अनुसार अपीलार्थी को दोषी ठहराया गया और दंडित किया गया।

अपीलार्थी की ओर से दलीलें

32. अपीलार्थी की ओर से एमिकस क्यूरी के रूप में उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री विनय सरन ने प्रस्तुत किया कि (i) अभियुक्त का शिकायतकर्ता और उसके परिवार के घर आना-जाना था; उनका रिश्ता 10-12 साल का था; बच्ची (पीड़ित) अपीलकर्ता को चाचा कहती थी और

अपीलार्थी के साथ उसका दोस्ताना व्यवहार था और अपीलार्थी भी बच्ची के साथ बहुत दोस्ताना था; यहां तक कि सीसीटीवी फुटेज से भी पता चलता है कि बच्ची चंचल मूड में थी और अपीलार्थी के कंधे पर थी, इसलिए अपीलार्थी के साथ मृतक की उपस्थिति को अपने आप में एक आपत्तिजनक परिस्थिति के रूप में नहीं लिया जा सकता क्योंकि उनका एक-दूसरे के साथ घनिष्ठ संबंध था। (ii) अभियोजन साक्षी-1 (शिकायतकर्ता) और अभियोजन साक्षी-2 (शिकायतकर्ता की पत्नी) की गवाही से यह स्पष्ट है कि शिकायतकर्ता, दो अन्य और अपीलार्थी काफी समय से शराब पी रहे थे; अभियोजन साक्षी-2 (शिकायतकर्ता की पत्नी) की गवाही से यह भी स्पष्ट है कि शिकायतकर्ता (अभियोजन साक्षी-1) ने शराब पी रखी थी (नशे की हालत में था); इन परिस्थितियों में, जिस मुद्दे की जांच करने की आवश्यकता है वह यह है कि क्या पीडब्लू-1 घटनाओं के अनुक्रम की स्पष्ट समझ रखने के लिए अपने होश में था, अर्थात क्या मृतक को आरोपी-अपीलार्थी द्वारा उसके पास लाया गया था जैसा कि आरोपी-अपीलार्थी द्वारा दावा किया गया है या नहीं। नशे की ऐसी स्थिति में, जहां दोनों व्यक्ति नशे में हों, यह तय करना मुश्किल है कि किसकी बात को स्वीकार किया जाए और किस पर विश्वास किया जाए, इसलिए संदेह का लाभ आरोपी को मिलना चाहिए; (iii) दो अन्य व्यक्ति जो आरोपी-अपीलार्थी और शिकायतकर्ता के साथ वहां थे, उनसे अभियोजन पक्ष द्वारा पूछताछ नहीं की गई है। उनका बयान प्रतिद्वंद्वी दावों पर प्रकाश डाल सकता था कि क्या आरोपी-अपीलार्थी मृतिका को उसके पिता के पास लाया था या नहीं, जैसा कि आरोपी-अपीलार्थी ने दावा किया था, या मृतक को अपने कंधे पर ले जाने के बाद परिसर से दूर चला गया था जैसा कि अभियोजन पक्ष द्वारा दावा किया गया था।

33. यह भी जोर देकर कहा गया कि अभियोजन साक्षी-1 (शिकायतकर्ता) और उसकी पत्नी (अभियोजन साक्षी-2) के बयान में उस समय को लेकर विसंगति है जब आरोपी-अपीलार्थी मृतक (यानी अभियोजन साक्षी-1 और अभियोजन साक्षी-2 की बेटी) को अपने साथ खेलने के लिए ले गया था। अभियोजन साक्षी-1 के अनुसार, वह, आरोपी-अपीलार्थी और दो अन्य लोग 'वाई' के कमरे में शराब पी रहे थे। रात लगभग 8.30 बजे, अभियोजन साक्षी-1 अन्य शराब पीने वाले साथियों, जो दिन के समय से शराब पी रहे थे और पूरी तरह से नशे में थे, हालांकि चलने की स्थिति में थे, का साथ देने के लिए देशी शराब का एक पाउच लाया। अभियोजन साक्षी-1 ने कहा कि रात 8.45 से 9.00 बजे के बीच आरोपी-अपीलार्थी ने कमरे में जाने के लिए वहां से चला गया। रात 9.30 बजे जब पीडब्लू-1 अपने कमरे में गया तो उसे अपनी बेटी नहीं मिली। उसके परिवार के सदस्यों ने उसे सूचित किया कि अभियुक्त-अपीलार्थी उसकी बेटी को यह कहकर अपने साथ ले गया था कि अभियोजन साक्षी-1 ने उसे बुलाया है। दिलचस्प बात यह है कि आरोपी-अपीलार्थी द्वारा पीड़िता को लेने के लिए कमरे में आने के संबंध में पीडब्लू-2 द्वारा बताया गया समय शाम 7.30 से 8.00 बजे के बीच है, जो अभियोजन साक्षी-1 द्वारा बताए गए समय से काफी पहले है। जहां तक अभियोजन साक्षी-3 और अभियोजन साक्षी-4 का सवाल है, उन्होंने उस समय का खुलासा नहीं किया था जब उन्होंने आरोपी-अपीलकर्ता और मृतक को एक साथ देखा था। यह कहा गया है कि चूंकि यह एक स्वीकृत तथ्य है कि आरोपी-अपीलार्थी शिकायतकर्ता के घर नियमित रूप से आता था और पीड़िता के साथ खेलता था और एक-दूसरे के साथ वे खुश रहते थे, यह बहुत संभव है कि आरोपी अपीलार्थी ने मृतक को अपने कंधे पर ले लिया, कुछ देर तक मृतक के साथ खेला, मृतक को शिकायतकर्ता को वापस सौंप दिया और उसके बाद मृतक कहीं चली गई और उसके बाद उसे जीवित नहीं देखा गया। चूंकि सभी खिलाड़ी, अर्थात् शिकायतकर्ता, आरोपी और अन्य दो व्यक्ति, जो एक साथ शराब पी रहे थे, नशे में थे और उनकी चेतना क्षीण थी, उन्होंने जो देखा उसके संबंध में इन खिलाड़ियों के बयान को आसपास की परिस्थितियों के आलोक में समझना होगा क्योंकि उनका बयान उनके जानकारी से अधिक उनके विश्वास पर आधारित हो सकता है। इस प्रकार, जो महत्वपूर्ण है वह यह है कि आरोपी-अपीलार्थी शिकायतकर्ता और अन्य लोगों से कब अलग हुआ, जबकि वे शराब पीते रहे। सीसीटीवी फुटेज में रात करीब 8.51 बजे अपीलार्थी के कंधे पर मृतक की मौजूदगी दिखाई देती है। इसके बाद अपीलार्थी शिकायतकर्ता के पास वापस गया या नहीं, यह भी महत्वपूर्ण है, जिसके संबंध में साक्ष्य स्पष्ट नहीं है, क्योंकि अभियोजन साक्षी-1 के अनुसार, अपीलार्थी ने रात 8.45-9.00 बजे के बीच उसके पास से चला गया, जबकि अभियोजन साक्षी-2 के अनुसार, अपीलार्थी शाम 7.30 से 8 बजे के बीच पीड़िता को लेने आया और जहां तक अन्य दो गवाहों, अभियोजन साक्षी-3 और अभियोजन साक्षी-4 का सवाल है, उन्होंने उस समय का खुलासा नहीं किया जब उन्होंने अपीलार्थी को मृतक के साथ देखा था। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, ये परिस्थितियाँ अपने आप में अभियोगात्मक नहीं हैं और निर्णायक नहीं हैं, जिससे अदालत यह मान सके कि मृतक को आखिरी बार अपीलार्थी के साथ जीवित देखा गया था, उसके बाद नहीं।अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि अभियोजन साक्षी-1 के बयान से ऐसा प्रतीत होता है कि पुलिस को 19.10.2020 को ही सूचित कर दिया गया था, लेकिन उस जानकारी के संबंध में रिपोर्ट अभियोजन पक्ष द्वारा दबा दी गई है। उनका कहना है कि अभियोजन साक्षी-4 के अनुसार, आरोपी को शिकायतकर्ता पक्ष ने 19.10.2020 को गिरफ्तार कर पुलिस को सौंप दिया था। दिलचस्प बात यह है कि अभियोजन साक्षी-5 के बयान से पता चलता है कि पुलिस ने सीसीटीवी फुटेज देखने के लिए

19.10.2020 की शाम को उससे फोन पर संपर्क किया था, जो उसने 20.10.2020 की सुबह उपलब्ध कराया था। इसका मतलब यह है कि पुलिस को लापता लड़की की जानकारी 19.10.2020 को ही दे दी गई थी; जानकारी अनिर्णायक थी और इसलिए, विवेचना अधिकारी घटनास्थल के सीसीटीवी फुटेज से पुष्टि करना चाहता था। इन परिस्थितियों में, यह कहा जा सकता है कि अभियोजन पक्ष ने जानबूझकर पुलिस को दी गई प्रारंभिक जानकारी को छुपाया है, जिसके परिणामस्वरूप अभियोजन पक्ष के खिलाफ प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए।

34. उपरोक्त के अलावा, यह प्रस्तुत किया गया कि अपीलार्थी की गिरफ्तारी की तारीख और समय के संबंध में एक गंभीर संदेह है। अभियोजन साक्षी-6 के अनुसार, अपीलार्थी को 20.10.2020 को 23.00 बजे आत्मा राम स्टील के अंडरपास के पास एक जगह से गिरफ्तार किया गया था। दिलचस्प बात यह है कि गिरफ्तारी ज्ञापन (प्रदर्श क-4) से पता चलता है कि गिरफ्तारी का समय 21.50 बजे था। अभियोजन साक्षी-4 (शिकायतकर्ता की बहन), जो उसी परिसर में रहती है, की गवाही इस आशय की है कि आरोपी-अपीलार्थी को 19.10.2020 को गिरफ्तार किया गया था और उसने विवेचना अधिकारी द्वारा उपलब्ध कराए गए नंबर पर पुलिस को सूचित किया था। प्रस्तुत किया गया है कि अभियोजन साक्षी-4 का बयान अभियोजन साक्षी-3 के बयान से इस हद तक पुष्ट होता है कि घटना की रिपोर्ट उसी दिन दी गई थी और शव अगले दिन बरामद किया गया था। तथ्य यह है कि कुछ रिपोर्ट रात में ही दर्ज की गई थी और अगले दिन शव बरामद किया गया था, इसकी पुष्टि नीचे दिए गए अभियोजन साक्षी-2 के बयान से भी होती है:-

"उसके बाद चन्दन मेरी बेटी को ले गया तो मैने इसलिए मना नहीं किया कि वह मेरे पति का जानने वाला है और मेरी बेटी को खिलाकर वापस ले आयेगा। इस घटना की रिपोर्ट मैने तुरन्त पुलिस चौकी में करायी थी। मेरी बेटी घटना के अगले ही दिन डेड बॉडी के रूप में मिली थी। "

अभियोजन साक्षी-4 के बयान से यह भी पता चलता है कि पुलिस ने अपीलार्थी को घटना की रात ही गिरफ्तार कर लिया था। इसके अलावा, अभियोजन साक्षी-2 का बयान यह भी इंगित करता है कि जब अपीलार्थी को गिरफ्तार किया गया और पूछताछ की गई, तो उसने कहा कि पीड़िता को शिकायतकर्ता को सौंप दिया गया था। इन परिस्थितियों में, यह प्रस्तुत किया गया कि लापता लड़की के बारे में पुलिस को कुछ जानकारी थी; वह जानकारी जानबूझकर दबा दी गई है; अपीलार्थी को उसी दिन पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया और उससे पूछताछ की गई; अपीलार्थी ने कहा कि उसने शिकायतकर्ता की बेटी को शिकायतकर्ता को सौंप दिया था; कि पीड़िता का शव अगले दिन बरामद किया गया; पूरे अभियोजन मामले में इस बात का कोई सुराग नहीं है कि शव कैसे बरामद किया गया; कि अपीलार्थी की इंज्यूरी रिपोर्ट तैयार करने वाले डॉक्टर को आरोपी के शरीर पर यातना के निशान की उपस्थिति के संबंध में करीबी जिरह से बचने के लिए पेश नहीं किया गया है। डॉक्टर को पेश न करने का कारण यह है कि आरोपी-अपीलार्थी के शरीर पर कठोर और कुंद वस्तु से साधारण प्रकृति की कई चोटें थीं और दिनांक 20.10.2020 की मेडिकल रिपोर्ट में यह खुलासा नहीं किया गया था कि चोटें ताजा थीं, जिसका अर्थ है कि वे चोटें बहुत पहले लगी होंगी और या तो पुलिस के कारण लगी होंगी जिसने अपीलकर्ता को 19.10.2020 को गिरफ्तार किया था, या उन गवाहों के कारण हुई होगी जिन्होंने अपीलकर्ता को पकड़कर पुलिस को सौंप दिया था। महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रताड़ना के बावजूद, स्वीकारोक्ति/खुलासा करवाने के लिए, अपीलकर्ता से कुछ भी नहीं उगलवाया जा सका, जबकि शव किसी अन्य जानकारी से बरामद हुआ, जिसे भी दबा दिया गया है। इस प्रकार, पहले के सभी घटनाक्रमों को दबाकर अपीलार्थी को फंसाया गया। यह आग्रह किया गया है कि इन सभी परिस्थितियों से पता चलता है कि अपीलार्थी को केवल मजबूत संदेह के आधार पर झूठा फंसाया गया है।

35. फोरेंसिक साक्ष्य यानी एफएसएल, गाजियाबाद की रिपोर्ट के संबंध में, अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि सबसे पहले, धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अपना स्पष्टीकरण दर्ज करते समय रिपोर्ट अपीलार्थी को नहीं दी गई है, इसलिए उसे विचारण हेतु नही लिया जा सकता है। और, दूसरी बात, रिपोर्ट का आपत्तिजनक हिस्सा, अर्थात् अंडरवियर पर पाई गई जैविक सामग्री, मृतक की मौखिक स्लाइड/स्वैब में पाई गई जैविक सामग्री से मेल खाती हुई, को साक्ष्य में स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि पत्रावली पर इस संबंध में कोई सबूत नहीं है कि अपीलार्थी से अंडरवियर की बरामदगी/जब्ती की गई थी और तीसरा, एक और दिलचस्प विशेषता जो एफएसएल रिपोर्ट से उभरती है वह यह है कि रिपोर्ट में लगाए गए नोट में यह उल्लेख किया गया है कि लिफाफे के कवर/अग्रेषण पत्र में उल्लेख किया गया है कि लिफाफे में आरोपी का अंडरवियर और एक बनियान (बनियान) है लेकिन लिफाफे के अंदर केवल एक अंडरवियर मिला जिसका मतलब है कि लिफाफे के साथ छेड़छाड़ की गई थी। यह भी जोर देकर कहा गया कि जिस अंडरवियर को बरामद करने और डीएनए प्रोफाइलिंग के लिए भेजे जाने का कथन है, उसे विचारण के दौरान सामग्री प्रदर्शन के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है और अभियोजन पक्ष के पास यह प्रदर्शित करने के लिए कोई लिंक साक्ष्य नहीं है कि अपीलकर्ता से बरामद अंडरवियर सील कर उस व्यक्ति को सौंप दिया गया जिसकी अभिरक्षा में इसे सुरक्षित रखा गया और सील की अक्षुण्णता एफएसएल द्वारा परीक्षण किए जाने तक बनाए रखी गई। यह कहा गया कि इस साक्ष्य के अभाव में कि अंडरवियर को कैसे

रखा गया और फोरेंसिक जांच के लिए दिया गया, उसके संबंध में फोरेंसिक रिपोर्ट को अपीलार्थी के खिलाफ साक्ष्य में नहीं पढ़ा जा सकता है।

36. ऊपर जो देखा गया है उसके अलावा, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अभियोजन पक्ष द्वारा मृतक के शव की बरामदगी के कथित स्थान के संबंध में एक गंभीर संदेह है। प्राथमिकी के अनुसार, शिकायतकर्ता (अभियोजन साक्षी-1) को शव मिलने की सूचना मिली और उस सूचना के आधार पर, 20.10.2020 को 12.30 बजे, उसने मृतक का शव आरटीओ कार्यालय के पास एक सड़क से सटे हुए नाले के किनारे पड़ा देखा। जबकि अभियोजन साक्षी-1 के अनुसार, पुलिस कर्मियों को मृतक का शव मिला और उन्होंने शव की बरामदगी के बारे में शिकायतकर्ता को सूचित किया, जिसके बाद अन्वीक्षा की गई। अभियोजन साक्षी-4 का बयान भी ऐसा ही है, लेकिन दिलचस्प बात यह है कि पुलिस ने उस सबूतको दबा दिया है कि वे शव को कैसे ढूंढ पाए, जिससे पता चलता है कि अभियोजन पक्ष उन महत्वपूर्ण तथ्यों को दबा रहा है जो अपराध में किसी अन्य व्यक्ति की संलिप्तता पर प्रकाश डाल सकते थे। यह भी तर्क दिया गया कि अभियोजन पक्ष द्वारा सबूतों को छुपाना इस तथ्य से भी स्पष्ट है कि जिस स्थान से शव बरामद किया गया था, वहां से एक बोतल, नमकीन के तीन खाली पाउच आदि उठाये गये थे, लेकिन उस बोतल पर उंगलियों के निशान को आरोपी-अपीलार्थी की उंगलियों के निशान से मिलाने के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया था। क्योंकि इससे स्पष्ट रूप से स्थापित हो सकता था कि आरोपी-अपीलार्थी इसमें शामिल नहीं था। इसलिए, यह एक ऐसा मामला है जहां अभियोजन पक्ष महत्वपूर्ण साक्ष्यों को दबाने का दोषी है।

37. उपरोक्त बातें प्रस्तुत करने के बाद, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विचारण न्यायालय ने पत्रावली पर मौजूद साक्ष्यों की ठीक से जांच नहीं की और यह ध्यान देने में विफल रहा कि क्या लिंक साक्ष्य यानी सामग्री की बरामदगी का सबूत और उसके परीक्षण तक उसकी सुरक्षित अभिरक्षा, के अभाव में फोरेंसिक रिपोर्ट पर विचार किया जा सकता है। इसके अलावा, धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत बयान दर्ज करते समय आरोपी को रिपोर्ट नहीं दी गई थी। इस प्रकार यह तर्क दिया गया कि निचली अदालत का निर्णय और दोषसिद्धि का आदेश कानून की दृष्टि से गलत है और इसे रद्द किया जाना चाहिए। विकल्प में, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यदि अपीलार्थी को दोषी ठहराया जाता है तो मृत्युदंड उचित नहीं होगा, क्योंकि अभियोजन साक्ष्य के अनुसार, अपीलार्थी शराब के प्रभाव में था और इसलिए वह अपने कृत्यों पर नियंत्रण रखने की स्थिति में नहीं हो सकता है। ऐसी परिस्थितियों में, यह ध्यान में रखते हुए कि अपीलार्थी एक विवाहित व्यक्ति है और उसके बच्चे भी हैं, वह मृत्युदंड को आजीवन कारावास में बदले जाने का हकदार है जो एक सुधारात्मक उपाय के रूप में काम कर सकता है।

राज्य की ओर से दलीलें

38. विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री जेके उपाध्याय ने प्रस्तुत किया कि यह रिकॉर्ड पर साबित हुआ है कि अपीलार्थी ने 19.10.2020 को रात 8.51 बजे मृतक को अपने कंधे पर रखा था और उसके बाद मृतक को जीवित नहीं देखा गया था। अपीलार्थी का यह कथन कि उसने मृतक को शिकायतकर्ता (मृतक के पिता) को सौंप दिया था, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के तहत दर्ज अपीलार्थी के बयान को छोड़कर किसी भी कानूनी रूप से स्वीकार्य साक्ष्य से साबित नहीं होता है। अभियोजन साक्षी-3 और अभियोजन साक्षी-4 की गवाही भी इस बात की पुष्टि करती है कि अपीलार्थी को उस शाम मृतक के साथ देखा गया था, इसलिए, अपीलकर्ता के नेतृत्व में स्पष्ट और ठोस सबूत के अभाव में कि उसने मृतक को उसके वैध अभिभावक को सौंप दिया था, तार्किक निष्कर्ष यह होगा कि मृतक के साथ जो कुछ भी हुआ वह अपीलार्थी का गलत काम था। नतीजतन, विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी को दोषी ठहराना उचित था। फोरेंसिक रिपोर्ट की स्वीकार्यता के संबंध में, विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि धारा 293 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत वैज्ञानिक विशेषज्ञ की रिपोर्ट को औपचारिक प्रमाण की आवश्यकता के बिना किसी भी जांच या परीक्षण या अन्य कार्यवाही में सबूत के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि यद्यपि आरोपी-अपीलार्थी की मेडिकल जांच रिपोर्ट औपचारिक रूप से डॉक्टर की जांच से साबित नहीं हुई है, लेकिन गिरफ्तारी ज्ञापन (प्रदर्श क-4) में विशेष रूप से उल्लेख किया गया है कि अपीलार्थी की चिकित्सकीय जांच की गई है और उसने रिपोर्ट पर अपने अंगूठे का निशान लगाया है। रिपोर्ट पर अपीलकर्ता के अंगूठे का निशान है, इसलिए रिपोर्ट की सामग्री को साक्ष्य के रूप में पढ़ा जा सकता है। उनका कहना है कि मेडिकल जांच रिपोर्ट इंगित करती है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 53-ए के प्रावधानों के अनुपालन में, फोरेंसिक जांच को सक्षम करने के लिए, आरोपी से निम्नलिखित सामग्री ली गई थी: "ओरल स्मीयर; पेनाइल स्वैब; स्क्रोटम स्वैब; शाफ्ट स्वैब, पेरिनेम, कटे हुए नाखून, अंतः वस्त्र और खून की शीशियाँ।"

39. इसके अलावा, एफएसएल रिपोर्ट इंगित करती है कि अपीलार्थी के अंडरवियर में पाए गए जैविक पदार्थ में अपीलार्थी के साथ-साथ मृतक के भी जीन शामिल थे, क्योंकि यह मृतक के शरीर से प्राप्त मौखिक स्मीयर और साथ ही अपीलार्थी के खून से मेल खाता था। विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह पोक्सो अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध से निपटने

वाला मामला होने के कारण, कानूनी अनुमान का लाभ अभियोजन पक्ष को उपलब्ध होगा। इस प्रकार, अभियोजन पक्ष द्वारा दिए गए सबूतों के आधार पर विचारण न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि दर्ज करना उचित था। उन्होंने यह भी कहा कि चूंकि यह ढाई साल की बच्ची के बलात्कार और हत्या से संबंधित मामला है, जो अपीलार्थी को अपना चाचा मानती थी, यह दुर्लभ से दुर्लभतम मामलों में से एक है जहां दोषी पाए जाने पर मौत की सजा होनी चाहिए। इसलिए, उन्होंने प्रार्थना की कि विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज की गई दोषसिद्धि और सजा की पुष्टि की जाए और अपीलार्थी को दी गई मौत की सजा की पुष्टि की जाए।

40. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता की इस दलील के जवाब में कि अभियोजन पक्ष महत्वपूर्ण तथ्यों को दबाने का दोषी है, विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह मानते हुए कि फिंगर प्रिंट विशेषज्ञ रिपोर्ट प्राप्त नहीं की गई थी या रिकॉर्ड पर नहीं रखी गई थी, डीएनए प्रोफाइलिंग रिपोर्ट अपीलार्थी की संलिप्तता का संकेत देती है और वह परिस्थिति कि मृतक को आखिरी बार अपीलार्थी के साथ देखा गया था, इस मुद्दे को तय करता है, इसलिए, भले ही फिंगर प्रिंट विशेषज्ञ रिपोर्ट प्राप्त नहीं की गई हो, यह अभियोजन के लिए घातक नहीं होगा क्योंकि अपीलार्थी को अपराध से जोड़ने वाली अन्य निर्णायक परिस्थितियां भी थीं।

विश्लेषण

41. प्रतिद्वंदी दलीलों और मुकदमे के दौरान लाए गए सबूतों पर ध्यान देने के बाद, यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामला है। घटना का कोई सीधा चश्मदीद गवाह नहीं है। जब परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि दर्ज की जा सकती है, तो कानून सुस्थापित है, वह यह कि जिन परिस्थितियों से अपराध का अनुमान लगाया जा रहा है, उन्हें ठोस और दृढ़ता से स्थापित किया जाना चाहिए; कि ये परिस्थितियाँ एक निश्चित प्रवृत्ति की होनी चाहिए जो त्रुटिहीन रूप से अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करती हैं; संचयी रूप से ली गई परिस्थितियों को इतनी पूर्ण श्रृंखला बनानी चाहिए कि इस निष्कर्ष से कोई बचाव न हो कि सभी मानवीय संभावनाओं के भीतर अपराध आरोपी द्वारा किया गया था और वे आरोपी के अपराध के अलावा अन्य परिकल्पना की व्याख्या करने में असमर्थ और उसकी बेगुनाही के साथ असंगत होना चाहिए **(विजय शंकर बनाम हरियाणा राज्य, (2015) 12 एससीसी 644; शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 एससीसी 116; बब्लू बनाम राजस्थान राज्य, (2006) 13 एससीसी 116)**। इसके अलावा, **शरद बिरधीचंद सारदा के मामले (उपरोक्त)** में सुप्रीम कोर्ट के प्रसिद्ध निर्णय में, यह स्पष्ट किया गया है कि जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए, जिसका अर्थ है कि उन्हें स्थापित होना 'चाहिए' न कि 'हो सकता है'। उपरोक्त के अलावा, हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि आपराधिक न्यायशास्त्र का सबसे बुनियादी सिद्धांत यह है कि अभियुक्त को अदालत द्वारा दोषी ठहराए जाने से पहले दोषी होना चाहिए और न कि केवल दोषी हो सकता है और 'हो सकता है' और 'होना चाहिए' के बीच की मानसिक दूरी लंबी है और अस्पष्ट अनुमानों को निश्चित निष्कर्षों से विभाजित करती है **(द्वारा शिवाजी साहबराव बोबडे और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1973) 2 एससीसी 793)**। **देवीलाल बनाम राजस्थान राज्य, (2019) 19 एससीसी 447** में सुप्रीम कोर्ट की तीन-न्यायाधीशों की बेंच के फैसले में इन स्थापित कानूनी सिद्धांतों को फिर से दोहराया गया है, जिसमें फैसले के पैराग्राफ 18 और 19 में, इस प्रकार माना गया था :-

"18. वर्तमान मामले में समग्र तथ्य स्थिति के विश्लेषण पर, और अभियोजन पक्ष द्वारा भरोसा किए गए और उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित फैसले में देखे गए परिस्थितिजन्य साक्ष्य की श्रृंखला पर विचार करते हुए, यह साबित करने के लिए कि आरोप, जिसके आधार पर, बिना किसी संदेह के, अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया जा सके, स्पष्ट रूप से अधूरा और असंगत है। हालांकि रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री उनके प्रति कुछ संदेह रखती है, लेकिन अभियोजन पक्ष अपने मामले को "सत्य हो सकता है" के दायरे से "सत्य होना चाहिए" के दायरे तक ऊपर उठाने में विफल रहा है, जैसा कि किसी आपराधिक आरोप पर दोषसिद्धि के लिए कानून में अनिवार्य रूप से आवश्यक है। यह कहना उचित है कि एक आपराधिक मुकदमे में, संदेह, चाहे कितना भी गंभीर हो, सबूत का स्थान नहीं ले सकता है।

19. यह कि एक तरफ, परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में, रिकॉर्ड के मामले पर दो दृष्टिकोण संभव है, एक आरोपी के अपराध की ओर इशारा करता हुआ और दूसरा उसकी बेगुनाही की ओर इशारा करता हुआ। आरोपी वास्तव में उस लाभ का हकदार है जो उसके अनुकूल है। परिस्थितिजन्य साक्ष्य की गुणवत्ता और सामग्री को परिभाषित करने वाले सभी न्यायिक रूप से निर्धारित मानदंड, एक आपराधिक आरोप पर अभियुक्त के अपराध को सामने लाते हैं, हमें यह मानने में कोई कठिनाई नहीं होती है कि अभियोजन पक्ष, वर्तमान मामले में, इसे पूरा करने में विफल रहा है।"

42. ऊपर देखे गए कानून के आलोक में, हमें यह देखना होगा कि क्या अपीलार्थी के खिलाफ जिन आपत्तिजनक परिस्थितियों को साबित किया जाना है, वह उचित संदेह से परे साबित हुई हैं। यदि हां, तो क्या उन परिस्थितियों को मिलाकर इतनी संपूर्ण श्रृंखला बनती है कि यह इंगित हो सके कि पूरी मानवीय संभावना में यह अपीलार्थी ही है, कोई और नहीं, जिसने अपराध किया है।

43. मौजूदा मामले में, आरोप को साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष निम्नलिखित परिस्थितियों पर भरोसा करता है: (i) कि अपीलार्थी ने बच्चे को उसकी मां से अपने साथ

खेलने के लिए लिया था; (ii) बच्चे को आखिरी बार 19.10.2022 को रात 9 बजे या उसके आसपास, अपीलार्थी के कंधों पर या यूं कहें कि अपीलार्थी के साथ जीवित देखा गया था; (iii) उसके बाद बच्चा जीवित नहीं देखा गया; (iv) 20.10.2022 को, लगभग 12.30 बजे, बच्चे का बेरहमी से मारा और बलात्कार किया हवाशव मिला; (v) कि अपीलार्थी के अंडरवियर में जैविक सामग्री की उपस्थिति का पता चला जो बच्चे के शव से प्राप्त मौखिक धब्बे से मेल खाता था; और (v) अंत में, अपीलार्थी का यह स्पष्टीकरण कि उसने बच्ची को उसके पिता को सौंप दिया था, गलत पाया गया।

44. इससे पहले कि हम ऊपर निर्दिष्ट परिस्थितियों पर अभियोजन साक्ष्य का परीक्षण करने के लिए आगे बढ़ें, मृतक को आखिरी बार आरोपी के साथ जीवित देखे जाने की स्थिति के कानूनी मूल्य पर चर्चा करना उपयोगी होगा। आमतौर पर, मृतक को आखिरी बार आरोपी के साथ जीवित देखे जाने की परिस्थिति अकेले दोषसिद्धि दर्ज करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकती है (निज़ाम बनाम राजस्थान राज्य, (2016) 1 एससीसी 550; और नवनीतकृष्णन बनाम राज्य, (2018) 16 एससीसी 161 द्वारा)। लेकिन, यह परिस्थितियों की श्रृंखला में एक महत्वपूर्ण कड़ी है जो कुछ निश्चितता के साथ आरोपी के अपराध की ओर इशारा कर सकती है। लास्ट सीन थ्योरी तब काम में आती है जब उस समय के बीच का अंतराल, जब आरोपी और मृतक को आखिरी बार जीवित देखा गया था और जब मृतक मृत पाया गया है, इतना कम होता है कि आरोपी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अपराध कारित होने की संभावना असंभव हो जाती है। कुछ मामलों में यह निश्चित रूप से स्थापित करना मुश्किल होगा कि मृतक को आखिरी बार आरोपी के साथ देखा गया था जब लंबा अंतराल हो और बीच में अन्य व्यक्तियों के आने की संभावना मौजूद हो **(द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतीश, (2005) 3 एससीसी 114)। इसी तरह का दृष्टिकोण रामरेड्डी राजेश खन्ना रेड्डी और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2006) 10 एससीसी 172** में लिया गया है, जहां **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतीश (उपरोक्त) और बोधराज बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य, (2002) 8 एससीसी 45** के निर्णयों का पालन करते हुए, फैसले के पैराग्राफ 27 में, यह माना गया कि "आखिरी बार देखे जाने का सिद्धांत, इसके अलावा, तब काम में आता है जब उस समय के बीच का अंतराल, जब आरोपी और मृतक को आखिरी बार जीवित देखा गया था और जब मृतक मृत पाया गया है, इतना कम होता है कि आरोपी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अपराध कारित होने की संभावना असंभव हो जाती है। ऐसे मामलों में भी, अदालतों को कुछ समर्थन की तलाश करनी चाहिए।"

45. परिस्थितिजन्य साक्ष्यों पर आधारित मामलों में, जब अभियोजन पक्ष आपत्तिजनक परिस्थितियों की एक श्रृंखला स्थापित करने में सफल होता है, जिससे यह तार्किक निष्कर्ष निकलता है कि सभी मानवीय संभावनाओं में यह केवल अभियुक्त और अभियुक्त ही है जो अपराध कर सकता है, तो बोझ अभियुक्त पर स्थानांतरित हो जाता है कि वह उन परिस्थितियों की व्याख्या करे और उनके अभाव में साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 की सहायता से आरोपी के खिलाफ प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जा सकता है। इसलिए, कानून पर ध्यान देना उपयोगी होगा कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 की सहायता से किसी दोषसिद्धि को कब बरकरार रखा जा सकता है। **शंभू नाथ मेहरा बनाम अजमेर राज्य, एआईआर 1956 एससी 404** के मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने आपराधिक मुकदमे में साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के दायरे की व्याख्या की थी। यह पैरा 9 में निर्धारित किया गया था:

"9. यह सामान्य नियम बताता है कि एक आपराधिक मामले में सबूत का बोझ अभियोजन पक्ष पर है और धारा 106 का उद्देश्य निश्चित रूप से उसे उस कर्तव्य से मुक्त करना नहीं है। इसके विपरीत, इसे कुछ असाधारण मामलों से निपटने के लिए बनाया गया है जिसमें अभियोजन पक्ष के लिए उन तथ्यों को स्थापित करना असंभव या किसी भी दर पर बेहद मुश्किल होगा जो "विशेष रूप से" अभियुक्त के ज्ञान में हैं और जिन्हें वह बिना किसी कठिनाई या असुविधा के साबित कर सकता है। "विशेष रूप से" शब्द उस पर जोर देता है। इसका मतलब तथ्य जो प्रमुख रूप से या असाधारण रूप से उसकी जानकारी में हैं। यदि धारा की अन्यथा व्याख्या की जाती, तो बहुत ही चौंकाने वाला निष्कर्ष निकलता कि हत्या के मामले में यह साबित करने का भार अभियुक्त पर होता है कि उसने हत्या नहीं की, क्योंकि उससे बेहतर कौन जान सकता है कि उसने ऐसा किया या नहीं किया। यह स्पष्ट है कि यह इरादा नहीं हो सकता है और प्रिवी काउंसिल ने दो बार इस धारा का यह अर्थ लगाने से इनकार कर दिया है, जैसा कि भारत के बाहर कुछ अन्य अधिनियमों में प्रस्तुत किया गया है, कि यह दिखाने का बोझ एक आरोपी व्यक्ति पर है कि उसने वह अपराध नहीं किया जिसके लिए उस पर मुकदमा चलाया गया है। ये मामले हैं अट्टीगेल बनाम एम्परर [एआईआर 1936 पीसी 169] और सेनेविरत्ने बनाम आर. [(1936) 3 ऑल ईआर 36, 49]।"

46. नागेंद्र साह बनाम बिहार राज्य (2021) 10 एससीसी 725 में सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 22 और 23 में इस प्रकार टिप्पणी की:-

"22. इस प्रकार, साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 उन मामलों पर लागू होगी जहां अभियोजन पक्ष उन तथ्यों को स्थापित करने में सफल रहा है जिनसे कुछ अन्य तथ्यों के अस्तित्व के संबंध में उचित निष्कर्ष निकाला जा सकता है जो अभियुक्त के विशेष ज्ञान में हैं। जब अभियुक्त उक्त अन्य तथ्यों के अस्तित्व के बारे में उचित स्पष्टीकरण देने में

विफल रहता है, तो न्यायालय हमेशा उचित निष्कर्ष निकाल सकता है।

23. जब कोई मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित होता है, यदि अभियुक्त साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के आधार पर उस पर रखे गए बोझ के निर्वहन में उचित स्पष्टीकरण देने में विफल रहता है, तो ऐसी विफलता परिस्थितियों की श्रृंखला में एक अतिरिक्त लिंक प्रदान कर सकती है। ***परिस्थितिजन्य साक्ष्य द्वारा संचालित होने वाले मामले में, यदि अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित की जाने वाली परिस्थितियों की श्रृंखला स्थापित नहीं की गई है, तो साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के तहत बोझ का निर्वहन करने में अभियुक्त की विफलता बिल्कुल भी प्रासंगिक नहीं है। जब श्रृंखला पूरी नहीं होती है, तो बचाव पक्ष की असत्यता आरोपी को दोषी ठहराने का कोई आधार नहीं है।"***

47. इसके अलावा, **शिवाजी चिंताप्पा पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2021) 5 एससीसी 626** के मामले में पैराग्राफ संख्या 25 में यह देखा गया था:-

"25. अभियोजन पक्ष द्वारा भरोसा की गई एक अन्य परिस्थिति यह है कि अपीलकर्ता दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के तहत अपने बयान में कोई स्पष्टीकरण देने में विफल रहा। ***अब तक यह कानून का सुस्थापित सिद्धांत है, कि गलत स्पष्टीकरण या गैर-स्पष्टीकरण केवल एक अतिरिक्त परिस्थिति के रूप में उपयोग किया जाता है, जब अभियोजन पक्ष ने उन परिस्थितियों की श्रृंखला को साबित कर दिया है जो आरोपी के अपराध के अलावा किसी अन्य निष्कर्ष पर नहीं पहुंचती हैं। हालाँकि, इसका उपयोग श्रृंखला को पूरा करने के लिए एक लिंक के रूप में नहीं किया जा सकता है।*** *इस संबंध में शरद बिरधीचंद सारदा (उपरोक्त) में इस न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया जा सकता है।"*

48. **राजस्थान बनाम काशी राम, (2006) 12 एससीसी 254** में, फैसले के पैराग्राफ 26 में सुप्रीम कोर्ट ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के प्रावधानों के संबंध में कानून को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया: -

"अधिकारियों के साथ बढ़ना आवश्यक नहीं है। सिद्धांत अच्छी तरह से तय है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के प्रावधान स्वयं स्पष्ट और निर्धारक हैं कि जब कोई तथ्य विशेष रूप से किसी व्यक्ति के ज्ञान में होता है, तो उस तथ्य को साबित करने का भार उस पर होता है। इस प्रकार, यदि किसी व्यक्ति को आखिरी बार मृतक के साथ देखा गया है, तो उसे स्पष्टीकरण देना होगा कि वह कैसे और कब अलग हुआ। उसे एक स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना होगा जो अदालत को संभावित और संतोषजनक प्रतीत हो। यदि वह ऐसा करता है तो यह माना जाना चाहिए कि उसने अपना बोझ उतार दिया। यदि वह अपने विशेष ज्ञान के भीतर तथ्यों के आधार पर स्पष्टीकरण देने में विफल रहता है, तो वह साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 द्वारा उस पर डाले गए बोझ का निर्वहन करने में विफल रहता है। परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर निर्भर मामले में, यदि अभियुक्त अपने ऊपर डाले गए बोझ के निर्वहन में उचित स्पष्टीकरण देने में विफल रहता है तो यह बात स्वयं उसके खिलाफ साबित हुई परिस्थितियों की श्रृंखला में एक अतिरिक्त लिंक प्रदान करता है। धारा 106 किसी आपराधिक मुकदमे में सबूत का बोझ नहीं डालती, जो हमेशा अभियोजन पक्ष पर होता है। वह यह नियम निर्धारित करती है कि जब अभियुक्त उन तथ्यों पर कोई प्रकाश नहीं डालता है जो विशेष रूप से उसके ज्ञान के भीतर हैं और जो उसकी बेगुनाही के साथ संगत किसी भी सिद्धांत या परिकल्पना का समर्थन नहीं कर सकते हैं, तो अदालत कोई स्पष्टीकरण पेश करने में उसकी विफलता को एक अतिरिक्त लिंक मान सकती है जो श्रृंखला को पूरा करता है। नैना मोहम्मद में इस सिद्धांत को संक्षेप में बताया गया है।"

49. इससे पहले कि हम उन परिस्थितियों के संबंध में अभियोजन पक्ष द्वारा दिए गए सबूतों का विश्लेषण करने के लिए आगे बढ़ें, जिनके माध्यम से अभियोजन अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप साबित चाहता है, क्योंकि यह मामला पोक्सो अधिनियम के प्रावधानों के तहत दंडनीय अपराध से भी संबंधित है, यह जांचना उपयोगी होगा कि आरोपी के खिलाफ पोक्सो अधिनियम की धारा 29 के तहत अनुमान कब लगाया जा सकता है। इस संबंध में **मोनू ठाकुर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (14 मार्च 2022 को निर्णित, कैपिटल केस संख्या 13 वर्ष 2021)** के मामले में हमारे पास इस मुद्दे को तय करने का अवसर था कि पोक्सो अधिनियम की धारा 29 के तहत कब और किस स्थिति में अनुमान लगाया जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय और अन्य उच्च न्यायालयों के विभिन्न निर्णयों पर ध्यान देने के बाद, हमने पैराग्राफ 33 में निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला है:-

"33. ऊपर देखे गए निर्णयों के आलोक में, जो कानूनी स्थिति उभरती है वह यह है कि यद्यपि निर्दोषता का अनुमान एक मानव अधिकार है, लेकिन इसके लिए वैधानिक अपवाद हो सकते हैं। उसके अपराध के संबंध में अनुमान लगाकर किसी आरोपी को दोषी ठहराने की प्रक्रिया निर्धारित करने वाला एक वैधानिक प्रावधान, निष्पक्ष, उचित और तार्किक होने के परीक्षणों को पूरा करना चाहिए जैसा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 में निहित है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि एक वैधानिक प्रावधान जो अभियुक्त पर उल्टा बोझ डालता है, संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के आदेश का उल्लंघन नहीं करता है, इसकी व्याख्या इस तरीके से की जानी चाहिए कि इससे बेतुके परिणाम न निकले जैसे कि पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद बचाव में संतोषजनक सबूत

पेश करने में विफलता मात्र पर गलत सजा। परिणामस्वरूप, अदालतें लगातार यह मानती रही हैं कि अपनी बेगुनाही साबित करने का बोझ अभियुक्त पर केवल अनुमानित खंड की सहायता से डाला जा सकता है, जहां अभियोजन अभियुक्त द्वारा अपराध के संबंध में बुनियादी या मूलभूत तथ्यों को साबित करने में सफल होता है जिसके संबंध में क़ानून के तहत अभियोजन पक्ष को अनुमान उपलब्ध है। अभियुक्त द्वारा कारित किए गए मामले के संबंध में बुनियादी तथ्यों को साबित किए बिना, क़ानून के तहत दंडनीय मामला दर्ज करने मात्र से, वास्तव में अभियुक्त पर अपनी बेगुनाही साबित करने का बोझ नहीं आ जाएगा। इससे भी अधिक, क्योंकि नकारात्मक को साबित करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। ऐसा तभी होता है जब किसी तथ्य के अस्तित्व को, कम से कम प्रथम दृष्ट्या, साबित करने के लिए नींव रखी जाती है, जिसे कोई, ऐसे व्यक्ति द्वारा जिसे उसके अस्तित्व का खंडन करने के लिए कहा गया हो, उसके अस्तित्व को नकारने वाले साक्ष्य पेश किए जाने की उम्मीद कर सकता है। अधिनियम की धारा 29 के प्रावधानों की व्याख्या इस तरह से करना कि यह अभियुक्त पर नकारात्मक यानी बेगुनाही साबित करने का पूर्ण बोझ डालता है, यहां तक कि अभियुक्त द्वारा निर्दिष्ट अपराध के संबंध में बुनियादी तथ्यों को साबित करने वाले अभियोजन के अभाव में भी, हमारे विचार में, इससे न्याय का पूर्णरूपेण दुरवहन हो जाएगा और इस तरह अधिनियम की धारा 29 के प्रावधान कमजोर हो जाएंगे और संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के दायरे में आ जाएंगे। इसलिए, हमारा मानना है कि पोक्सो अधिनियम की धारा 29 के अनुमानित प्रावधानों का लाभ उठाने के लिए, अभियोजन पक्ष को कानूनी रूप से स्वीकार्य सबूत पेश करके, अभियुक्त द्वारा उसमें निर्दिष्ट अपराध किए जाने के संबंध में मूलभूत या बुनियादी तथ्यों को साबित करना होगा। पोक्सो अधिनियम की धारा 29 में निर्दिष्ट अपराध के संबंध में अभियुक्त के खिलाफ पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करने मात्र से अभियोजन पक्ष अभियुक्त द्वारा उन अपराधों को कारित करने के संबंध में मूलभूत तथ्यों को साबित करने के लिए कानूनी रूप से स्वीकार्य साक्ष्य देने की अपनी जिम्मेदारी से मुक्त नहीं हो जाएगा।"

50. **मोनू ठाकुर के मामले (उपरोक्त)** में, हमने अपने फैसले के पैराग्राफ 36 में यह भी स्पष्ट किया था कि पोक्सो अधिनियम की धारा 29 और 30 में निहित अनुमानित प्रावधान उसमें निर्दिष्ट अपराधों तक सीमित थे। **मोनू ठाकुर के मामले (उपरोक्त)** में हमारे निर्णय का पैराग्राफ 36 नीचे दिया गया है: -

"36. इस स्तर पर, हम स्पष्ट कर सकते हैं कि यद्यपि धारा 29 और 30 में निहित अनुमानित प्रावधान अधिनियम में हैं, लेकिन उनका संचालन उनमें निर्दिष्ट अपराध तक सीमित है । निःसंदेह, अधिनियम की धारा 28 की उपधारा (2) के आधार पर, अधिनियम के तहत किसी अपराध की सुनवाई करते समय, एक विशेष न्यायालय को अधिनियम की धारा 28 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट अपराध (अर्थात अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध) के अलावा किसी अन्य अपराध की भी सुनवाई करनी होती है, जिसमें अभियुक्त पर उसी मुकदमे में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के तहत भी आरोप लगाया जा सकता है, लेकिन, चूंकि धारा 29 के अनुमानित प्रावधान हैं केवल उसमें निर्दिष्ट अपराधों पर लागू होते हैं, वे भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के तहत दंडनीय हत्या के अपराध को साबित करने के लिए लागू नहीं होंगे। इसलिए, हमारे विचार में, विचारण न्यायालय ने पोक्सो अधिनियम की धारा 29 में निहित अनुमानित प्रावधानों के सही अर्थ को पूरी तरह से गलत समझा। "

51. ऊपर देखे गए कानून से यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 29 के तहत अभियोजन को अनुमान का लाभ तभी उपलब्ध होगा जब अभियोजन द्वारा कानूनी रूप से स्वीकार्य साक्ष्य द्वारा मूलभूत तथ्य साबित किए जाएंगे और वह भी केवल उसमें निर्दिष्ट अपराधों के संबंध में। चूंकि तत्काल मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है, अभियोजन पक्ष को कानूनी रूप से स्वीकार्य साक्ष्य की सहायता से आपत्तिजनक परिस्थितियों को स्थापित करना होगा।

52. अब हम यह जांचने के लिए आगे बढ़ रहे हैं कि क्या अभियोजन पक्ष उन आपत्तिजनक परिस्थितियों को साबित करने में सफल रहा है।

53. जिन आपत्तिजनक परिस्थितियों पर अभियोजन पक्ष अपीलार्थी के खिलाफ आरोप साबित करने के लिए भरोसा करता है, उन्हें नीचे दोहराया गया है: (i) कि अपीलार्थी मृतक को उसकी मां (अभियोजन साक्षी-2) से अपने साथ खेलने या उसे उसके पिता (अभियोजन साक्षी-1) के पास ले जाने के बहाने ले गया था। ; कि अभियोजन साक्षी-4 ने अपीलार्थी को रात में मृतक के साथ खेलते हुए देखा जिसके बाद मृतक लापता हो गई; कि अभियोजन साक्षी-3 ने भी मृतक को अनमोल बिस्किट फैक्ट्री के पास अपीलार्थी के कंधे पर देखा था, जिसके बाद, उसने मृतक को जीवित नहीं देखा; कि 20.10.2020 को मृतिका का शव मिला, जिसकी जांच से पता चला कि उसके साथ यौन उत्पीड़न किया गया और बेरहमी से हत्या कर दी गई; कि 20.10.2020 को अपीलार्थी को गिरफ्तार कर लिया गया, उसकी मेडिकल जांच के समय उसके अंडरगारमेंट्स लिए गए और सील कर दिए गए; और अपीलार्थी के अंडरवियर में जैविक सामग्री थी जो मृतक के शरीर से लिए गए मौखिक स्वाब/ओरल स्मीयर से मेल खाती थी। इस प्रकार, संक्षेप में, अपीलार्थी के खिलाफ चार आपत्तिजनक परिस्थितियां हैं: - (क) मृतक को आखिरी बार 19.10.2020

अप्रमाणित

को रात 9.00 बजे या उसके आसपास अपीलकर्ता के साथ जीवित देखा जाना; (ख) मृतक का शव 20.10.2020 को 12.30 बजे मिलना, यानी उस शाम के अगले दिन जब उसे आखिरी बार अपीलार्थी के साथ जीवित देखा गया था; (ग) मृतक की शव परीक्षा रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि उसके साथ यौन उत्पीड़न किया गया और उसकी हत्या कर दी गई और उसकी मृत्यु का संभावित समय उस समय से मेल खाता है जब उसे आखिरी बार अपीलार्थी के साथ जीवित देखा गया था; और (घ) फोरेंसिक साक्ष्य अपीलार्थी के अंडरवियर पर मृतक के शरीर की जैविक सामग्री की उपस्थिति की पुष्टि करते हैं।

54. इससे पहले कि हम ऊपर देखी गई प्रत्येक परिस्थिति से निपटने के लिए आगे बढ़ें, इस स्तर पर, हम स्पष्ट कर सकते हैं कि यह एक ऐसा मामला है जहां पीड़ित का शव एक खुली जगह पर पाया गया था जिसका अपीलार्थी से कोई संबंध नहीं है। इसके अलावा, अपीलार्थी द्वारा किए गए खुलासे या उसकी निशानदेही पर शव बरामद नहीं किया गया है। दरअसल, अभियोजन पक्ष के साक्ष्यों से यह स्पष्ट नहीं है कि शव किसने पाया। अभियोजन साक्षी-1 और अभियोजन साक्षी-4, अर्थात् शिकायतकर्ता और शिकायतकर्ता की बहन, का कहना है कि पुलिस को शव मिला और उन्हें शव की खोज के संबंध में जानकारी दी गई थी, जबकि पुलिस गवाह उस संबंध में एक सुनहरी चुप्पी बनाए रखते हैं। अभियोजन साक्षी-6, उप-निरीक्षक, जिसने प्राथमिकी दर्ज होने के बाद अन्वीक्षा की थी, ने अपने बयान में कहा है कि लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) सूचना का स्रोत थी कि शव मिल गया है। जांच अधिकारी (अभियोजन साक्षी-9) इस बात का कोई संकेत नहीं देते हैं कि शव की खोज की बात उनके संज्ञान में कैसे आई। उनका बस इतना कहना है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने के बाद उन्होंने मामले की जांच अपने हाथ में ले ली और जांच को आगे बढ़ाया। अन्य पुलिस गवाह, अर्थात्, अभियोजन साक्षी-10, जिसने आरोप पत्र प्रस्तुत किया, ने 16.11.2020 को जांच संभाली, इसलिए, वह शव की खोज/बरामदगी से संबंधित जानकारी के बारे में गवाही देने के लिए सक्षम गवाह नहीं है। चूंकि पुलिस गवाहों की ओर से कोई सबूत नहीं मिल रहा है कि शव कैसे मिला, जबकि इसके विपरीत, शिकायतकर्ता (अभियोजन साक्षी-1) और शिकायतकर्ता की बहन (अभियोजन साक्षी-4) का कहना है कि शव पुलिस को मिला था और पुलिस ने शव की खोज के संबंध में जानकारी दी थी, गवाहों के दो समूहों की गवाही में यह दरार महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि शव की खोज के लिए कहीं न कहीं से कुछ जानकारी होनी चाहिए। यह जानकारी किसी व्यक्ति के विरुद्ध भी दोषारोपण कर सकती है, इसलिए अभियोजन पक्ष द्वारा इस जानकारी को दबाना महत्वपूर्ण हो जाता है और हमें यह सोचने पर मजबूर करता है कि क्या कोई और अपराध करने वाला था जिसे पुलिस बचा रही है। इससे भी अधिक, क्योंकि परिस्थितिजन्य साक्ष्यों पर आधारित किसी मामले में, अदालत न केवल तब दोषसिद्धि दर्ज कर सकती है, जब अभियोगात्मक परिस्थितियों की श्रृंखला पूरी हो, जो बिना किसी त्रुटि के अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करती है, बल्कि यह अपराध में किसी अन्य व्यक्ति की संलिप्तता से इनकार करते हुए निर्दोषता के अनुरूप किसी भी परिकल्पना के लिए कोई जगह नहीं छोड़ती है।

55. हमने ऊपर जो चर्चा की है, उसके आलोक में, एक और परिस्थिति है जो इंगित करती है कि जांच सुस्त थी और सच्चाई का पता लगाने के लिए उस स्तर तक नहीं थी, जो यह है कि शव के पास के स्थान से पानी की एक खाली बोतल, स्नैक्स के खाली पाउच और एक रुपये के दो सिक्के बरामद किए गए, लेकिन उन पर उंगलियों के निशान का आरोपी अपीलकर्ता से मिलान कराने का कोई प्रयास नहीं किया गया।

56. उपरोक्त के अतिरिक्त, जब हम शिकायतकर्ता द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट में दिए गए बयान सहित अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही को ध्यान से देखते हैं तो हमें ऐसा प्रतीत होता है कि लड़की के गायब होने के संबंध में 19.10.2020 को पुलिस को कुछ जानकारी दी गई थी और उस जानकारी को आगे बढ़ाते हुए आरोपी-अपीलार्थी को उसी दिन रात में गिरफ्तार कर लिया गया और उससे पूछताछ भी की गई, लेकिन जांच के दौरान, आरोपी-अपीलार्थी ने कहा कि उसने बच्ची को उसके पिता को सौंप दिया था। इस संबंध में, हम देख सकते हैं कि प्राथमिकी में भी, जो अगले दिन यानी 20.10.2020 को 14.34 बजे दर्ज की गई थी, शिकायतकर्ता (अभियोजन साक्षी-1) द्वारा विशेष रूप से उल्लेख किया गया था कि लड़की की रात में ही पुलिस की मदद से तलाश शुरू हो गई थी और अगले दिन लाश मिली। अभियोजन साक्षी-5 का बयान भी इस आशय का है कि 19.10.2020 की शाम को सब-इंस्पेक्टर ने उनसे उनकी दुकान पर लगे कैमरे की सीसीटीवी फुटेज मांगी थी। इतना ही नहीं, अभियोजन साक्षी-5 का कहना है कि सब-इंस्पेक्टर ने 20.10.2020 की सुबह 7.30 बजे सीसीटीवी फुटेज (डीवीआर) देखा। जब इन साक्ष्यों को अभियोजन साक्षी-1 के बयान के साथ पढ़ा जाता है कि 19.10.2020 को लगभग आधी रात को उनके द्वारा रिपोर्ट दर्ज की गई थी और पुलिस ने शव की खोज की थी तो यह हमारे मन में किसी अन्य व्यक्ति की संलिप्तता के संबंध में एक संदेह पैदा करता है क्योंकि वह कौन सी जानकारी थी जिसके कारण शव की खोज हुई, यह अभियोजन पक्ष द्वारा दबा दिया गया है। यह भी महत्वपूर्ण है कि मृतक के परिवार के सदस्यों का कहना है कि 19.10.2020 को अपीलार्थी को पुलिस को सौंप दिया गया था और पुलिस ने उससे पूछताछ की थी। शिकायतकर्ता की पत्नी भी स्वीकार करती है कि अपीलार्थी ने अपनी संलिप्तता से इनकार किया और दृढ़ता से कहा कि उसने मृतक को शिकायतकर्ता को सौंप दिया था। इन

परिस्थितियों में हमें ऐसा प्रतीत होता है कि पुलिस अपीलार्थी की संलिप्तता के संबंध में निश्चित नहीं थी और इसलिए उन्होंने अपीलार्थी के खिलाफ आरोप, यदि कोई हो, की पुष्टि करने के लिए सीसीटीवी फुटेज का इंतजार किया था। उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, अब हम उन परिस्थितियों के संबंध में अभियोजन साक्ष्य का मूल्यांकन करने के लिए आगे बढ़ते हैं जिन पर विचारण न्यायालय ने दोषसिद्धि दर्ज करने के लिए भरोसा किया था।

(क) अंतिम बार देखी गई परिस्थिति

57. जहां तक मृतक को आखिरी बार अपीलकर्ता के साथ जीवित देखे जाने की स्थिति का सवाल है, अभियोजन तीन गवाहों की गवाही पर निर्भर करता है, अर्थात्, अभियोजन साक्षी-2 (मृतक की मां), अभियोजन साक्षी-3 (शिकायतकर्ता का भतीजा) और अभियोजन साक्षी-4 (शिकायतकर्ता की बहन); और सीसीटीवी फुटेज। अभियोजन साक्षी-2 का कहना है कि आरोपी-अपीलार्थी, उसका पति (अभियोजन साक्षी-1) और दो अन्य (जिनकी जांच नहीं की गई) शराब पी रहे थे, जब शाम 7.30 से 8 बजे के बीच, आरोपी-अपीलार्थी उसके कमरे में पहुंचा और मृतक को अपने साथ इस बहाने से ले गया कि उसके पिता (अभियोजन साक्षी-1) ने उसे बुलाने के लिए कहा है और वह भी उसके साथ खेलेगा। अभियोजन साक्षी-2 ने कहा कि बाद में, अपने पति के आने पर, जब उसने अपने पति (अभियोजन साक्षी-1) से पूछा कि उसकी बेटी कहाँ है, तो उसके पति ने उसे बताया कि आरोपी-अपीलार्थी उसकी बेटी को उसके पास नहीं लाया। अभियोजन साक्षी-2 ने यह भी कहा कि अभियोजन साक्षी-3 ने उसे सूचित किया कि उसने अपीलार्थी को मृतक को अपने कंधे पर ले जाते देखा था। जिरह के दौरान, अभियोजन साक्षी-2 ने कहा कि शुरू में उसने अपनी बेटी को आरोपी-अपीलार्थी को सौंपने का विरोध किया क्योंकि उसका पति नशे में था और आरोपी-अपीलार्थी भी शराब के नशे में था, हालाँकि उस हद तक नहीं जितना उसका पति था। लेकिन वह ज्यादा विरोध नहीं कर सकी क्योंकि आरोपी-अपीलार्थी बच्चे के साथ-साथ उसके पति से भी अच्छी तरह से परिचित था और इसलिए, उसके मन में कोई संदेह नहीं था कि वह बच्चे को वापस लाएगा। जिरह के दौरान अभियोजन साक्षी-2 ने स्वीकार किया कि घटना की रिपोर्ट उसी दिन पुलिस को दी गई थी जबकि शव अगले दिन बरामद किया गया था। उसने यह भी कहा कि पुलिस ने आरोपी-अपीलार्थी को रात में ही गिरफ्तार कर लिया था और जब आरोपी-अपीलार्थी से पूछताछ की गई तो उसने बताया कि उसने बच्ची को उसके पिता के पास छोड़ दिया था। अभियोजन साक्षी-2 के बयान की सावधानीपूर्वक जांच से पता चलेगा कि आरोपी-अपीलार्थी, शिकायतकर्ता और दो अन्य लोग शाम को एक साथ शराब पी रहे थे और अपीलार्थी मृतक (शिकायतकर्ता और अभियोजन साक्षी-2 की बेटी) को लगभग 7.30 और 8 बजे लेने आया था।

58. जहां तक अभियोजन साक्षी-3 के बयान का सवाल है, उसने कहा कि घटना की तारीख को जब वह अपनी साइकिल से घर लौट रहा था, अनमोल बिस्किट फैक्ट्री के पास, उसने अपीलार्थी को देखा। पीड़िता को अपीलार्थी के कंधे पर देखा गया। उसने कहा कि जब वह घर पहुंचा तो देखा कि हर कोई पीड़िता को लेकर चिंतित था। फिर, उसने सभी को सूचित किया कि उसने अपीलार्थी को पीड़िता को अपने कंधे पर ले जाते देखा है। उसने यह भी कहा कि इसके बाद पीड़िता की तलाश की गई और उसका शव बीयर फैक्ट्री के पास मिला। उसने स्वीकार किया कि प्राथमिकी उनके द्वारा लिखी गई थी। गौरतलब है कि 20.10.2020 को शव मिलने के बाद रिपोर्ट दर्ज की गई थी। अभियोजन साक्षी-3 ने यह भी कहा कि उसकी आंटी ने उसे सूचित किया था कि पीड़िता को अपीलार्थी अपने साथ ले गया है।

59. हमारे विचार के लिए जो मुद्दा उठता है वह यह है कि क्या अभियोजन साक्षी-3 का यह कथन कि उसने मृतक को अनमोल बिस्किट फैक्ट्री के पास अपीलार्थी के कंधे पर देखा था, विश्वसनीय है या नहीं। विशेष रूप से, अभियोजन साक्षी-3 प्रथम सूचना रिपोर्ट का लेखक है जो अभियोजन साक्षी-1 के बोलने पर दर्ज की गई थी। लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) (प्राथमिकी) में, जो शव मिलने के अगले दिन दर्ज की गई है, इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि अभियोजन साक्षी-3 ने मृतक को अनमोल बिस्किट फैक्ट्री के पास अपीलार्थी के साथ देखा था। इन परिस्थितियों में, यह ध्यान में रखते हुए कि अभियोजन साक्षी-3 उस समय का भी खुलासा नहीं करता है जब उसने मृतक को अपीलार्थी के साथ देखा था और जिरह के दौरान उसने कहा था कि उसकी आंटी ने उसे सूचित किया था कि अपीलार्थी मृतक को अपने साथ ले गया था। इस तथ्य के साथ कि उसके द्वारा किया गया खुलासा उसके द्वारा लिखी गई लिखित रिपोर्ट में परिलक्षित नहीं होता है, पीडब्लू-3 की गवाही कि उसने अपीलार्थी को अनमोल बिस्किट फैक्ट्री के पास मृतक के साथ देखा था, हमारे विश्वास को प्रेरित नहीं करता है। एक और कारण भी है जिसके कारण हम आखिरी बार देखी गई परिस्थिति के गवाह के रूप में पीडब्लू-3 पर भरोसा करने का प्रस्ताव नहीं करते हैं क्योंकि अभियोजन साक्ष्य में इस बात का कोई खुलासा नहीं है कि अनमोल बिस्किट फैक्ट्री कहां स्थित है और वह वहां क्या कर रहा था। इसके अलावा, अभियोजन पक्ष के साक्ष्य चुप हैं कि क्या अनमोल बिस्किट फैक्ट्री उस स्थान के पास है जहां से मृतक का शव बरामद किया गया था। इन परिस्थितियों में, पीडब्लू-3 एक आकस्मिक गवाह की श्रेणी में आता है जिसकी घटना स्थल पर उपस्थिति का कारण नहीं बताया गया है।

60. अब हम अभियोजन साक्षी-4 (शिकायतकर्ता की बहन) की गवाही पर आते हैं। हमने साइट प्लान (प्रदर्श क-8) सहित रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों से देखा कि अभियोजन

साक्षी-4 उसी परिसर में रहती है जहां शिकायतकर्ता और उसका परिवार रहता था। अभियोजन साक्षी-4 ने कहा कि जब वह अपने पति, जो हृदय रोगी है, के लिए दवा लाने के लिए अपने आवास से बाहर आई, तो उसने अपीलार्थी को बच्चे के साथ खेलते हुए पाया। उसने बताया कि जब वह ऊपर अपने कमरे में गई तो उसने यह बात पीड़िता की मां को बताई। उसने कहा कि इसके बाद वे चिंतित हो गए और पीड़िता की तलाश की। जब हम अभियोजन साक्षी-4 के साक्ष्यों की सावधानीपूर्वक जांच करते हैं, तो हम देखते हैं कि उसने उस समय का खुलासा नहीं किया है जब उसने अपीलार्थी को मृतक के साथ खेलते हुए देखा था और उसने उस समय के बीच के समय अंतराल का भी खुलासा नहीं किया है जब उसने मृतक को अपीलार्थी के साथ खेलते हुए देखा था और जिस वक्त मृतक की तलाश शुरू हुई। ऐसी परिस्थितियों में, अभियोजन साक्षी-4 की गवाही कि मृतक को आखिरी बार अपीलार्थी के साथ जीवित देखा गया था, अनिर्णायक है। यह संभव हो सकता है कि उसने पहले अपीलार्थी को मृतक के साथ खेलते हुए देखा हो और उसके बाद मृतक को उसके पिता को सौंप दिया गया हो जैसा कि आरोपी-अपीलार्थी का बचाव है। इसके अलावा, इसमें कोई विवाद नहीं है कि अपीलार्थी मृतक को अपने कंधे पर ले जा रहा था और पहले भी, वह मृतक के साथ खेलता था क्योंकि वह मृतक सहित शिकायतकर्ता के परिवार से अच्छी तरह से परिचित था, और मृतक उसे चाचा कहती थी। इसके अलावा, उसने ऐसा कोई बयान नहीं दिया है कि उसने मृतक को बच्चे को ले जाते देखा था। जिस स्थान पर बच्चा रहता है उस स्थान पर खेलना और उस स्थान से बच्चे को ले जाना दो अलग-अलग बातें हैं। उपरोक्त कारणों से, अभियोजन साक्षी-4 का साक्ष्य प्रथम तो निर्णायक नहीं है कि मृतक को आखिरी बार अपीलार्थी के साथ जीवित देखा गया था और उसके बाद नहीं देखा गया था, हालांकि इसे 19.10.2020 को शाम को या उसके आसपास मृतक के अपीलार्थी के साथ होने के साक्ष्य के रूप में लिया जा सकता है। और, दूसरी बात, जिस परिस्थिति का उसने खुलासा किया है वह निश्चित प्रवृत्ति की नहीं है जो कि आरोपी के अपराध की ओर त्रुटिहीन रूप से इशारा करती है क्योंकि आरोपी को बच्चे के साथ खेलते हुए न कि जाते हुए देखा गया था।

61. अभियोजन साक्षी-4 की गवाही में अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसका दावा है कि उसने अपीलार्थी को 19.10.2020 को गिरफ्तार किया था और अपीलार्थी की गिरफ्तारी के बारे में पुलिस को फोन पर सूचित करने के बाद उसे पुलिस को सौंप दिया था। लेकिन जब उससे पूछा गया कि उसने किस नंबर पर सूचना दी थी, तो उसने कहा कि यह वह नंबर था जो सब-इंस्पेक्टर ने उसे तब दिया था जब वह और उसका परिवार मृतक की तलाश कर रहे थे। महत्वपूर्ण बात यह है कि उप-निरीक्षक ने अपीलार्थी की गिरफ्तारी के संबंध में अभियोजन साक्षी-4 से कोई भी जानकारी प्राप्त होने से इनकार किया है, बल्कि पुलिस गवाहों द्वारा यह दावा किया गया है कि अपीलार्थी को 20.10.2020 की रात में एक मुखबिर द्वारा प्रदान की गई जानकारी के आधार पर गिरफ्तार किया गया था। अभियोजन साक्षी-4 के बयान और पुलिस गवाहों के बयान में यह विसंगति अभियोजन साक्षी-4 की विश्वसनीयता के संबंध में संदेह पैदा करती है। यद्यपि, यदि हम अभियोजन साक्षी-4 की गवाही को स्वीकार भी कर लें, तो उसकी गवाही दो कारणों से अनिर्णायक है:- (क) कि वह उस समय का खुलासा नहीं करती है जब उसने अपीलार्थी को मृतक के साथ खेलते हुए देखा था; और (ख) वह यह नहीं बताती कि अपीलार्थी को मृतक को ले जाते देखा गया था। बल्कि, उसकी गवाही यह है कि अपीलार्थी को मृतक के साथ खेलते हुए देखा गया था, जो हमें आपत्तिजनक नहीं लगता क्योंकि स्वीकार्यतः अपीलार्थी एक पुराना परिचित था और घर आता था और बच्चे के साथ खेलता था।

62. अब, हम सीसीटीवी फुटेज में कैद सबूत को उठाएंगे। 17.02.2022 को, इस मामले की सुनवाई के दौरान, अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुरोध पर, हमने पेन ड्राइव (सामग्री प्रदर्श 1) चलाई थी, जिसमें उस स्थान के सीसीटीवी फुटेज का रिकॉर्ड है, जहां से पीड़िता को ले जाया गया। 17.02.2022 को वीडियो चलाने के बाद हमने देखा कि:-

> "वीडियो चलाने पर हमने देखा कि वीडियो रात 8.50 बजे शुरू होता है। 8.51.41 बजे एक आदमी एक लड़की को अपने कंधों पर उठाए हुए दिखाई देता है। न तो आदमी का चेहरा दिखता है और न ही लड़की का। वह आदमी रात 8.51.48 बजे दाहिनी ओर मुड़ता है और दोबारा नहीं दिखता है। वीडियो क्लिप 8.57.18 तक चलती है और उसके बाद बंद हो जाती है। यह भी देखा गया है कि वह आदमी जो लड़की को कंधे पर ले जाता दिख रहा है वह सीढ़ियों पर चढ़ता या उतरता नहीं दिख रहा है, बल्कि वह ज़मीन के स्तर पर है और सामने एक व्यस्त सड़क है।"

जैसा कि हमने देखा, वीडियो क्लिप बमुश्किल सात मिनट की है।

63. विशेष रूप से, धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज किए गए अपने बयान में, अपीलार्थी ने सीसीटीवी फुटेज के संबंध में कोई विवाद नहीं उठाया है जिसमें वह बच्चे को अपने कंधे पर ले जाते हुए दिख रहा है। अपीलार्थी वास्तव में स्वीकार करता है कि शिकायतकर्ता (अभियोजन साक्षी-1 - मृतक के पिता) के अनुरोध पर वह मृतक को उसके पिता (अभियोजन साक्षी-1) के पास लाया और उसके बाद, उसने शराब पीना जारी रखा और फिर घर चला गया। अपीलार्थी का कहना है कि शिकायतकर्ता ने

मृतक को 10 रुपये दिए और उसके बाद मृतक कहां गई, उसे नहीं पता। चूंकि यह वीडियो क्लिप बमुश्किल सात मिनट की है और घटना की पूरी रात की डीवीआर रिकॉर्डिंग नहीं है, इसलिए बचाव पक्ष की इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि लड़की के साथ कुछ मिनट खेलने के बाद उसे उसके पिता के पास लाया गया था।

64. श्री जे.के. उपाध्याय, विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता, जो राज्य की ओर से उपस्थित हुए, ने इस समय हमारा ध्यान साइट प्लान (प्रदर्श क-8) की ओर आकर्षित किया ताकि यह प्रदर्शित किया जा सके कि दाहिनी ओर मुड़ने से अपीलार्थी मुख्य सड़क पर चला गया होगा, न कि उस स्थान पर जहां अपीलार्थी, मुखबिर और अन्य लोग शराब पी रहे थे, जिसका अर्थ है कि अपीलार्थी लड़की (पीड़ित) को उसके पिता के पास नहीं ले गया था बल्कि उसे अन्यत्र ले गया था।

65. उपरोक्त प्रस्तुतीकरण के जवाब में, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह मानते हुए कि दाहिना मोड़ सड़क की ओर होगा, न कि उस स्थान की ओर जहां वे शराब पी रहे थे, लेकिन यह अपीलकर्ता द्वारा लड़की को कहीं और ले जाने के संबंध में निर्णायक सबूत नहीं है क्योंकि वीडियो क्लिप केवल सात मिनट की है। संभव है कि कुछ देर खेलने के बाद बच्ची को उसके पिता के पास लाया गया होगा। महत्वपूर्ण बात यह है कि अभियोजन साक्षी-4 ने स्वयं कहा कि अपीलार्थी लड़की के साथ बाहर खेल रहा था। विशेष रूप से, अभियोजन साक्षी-4 उसी परिसर की निवासी है और वह अपने बीमार पति के लिए दवा खरीदने के लिए उस क्षेत्र में निकली थी। जब वह सड़क पार कर रही थी, अपीलार्थी उस लड़की के साथ खेल रहा था। अपीलार्थी के अधिवक्ता के अनुसार इसका मतलब यह है कि अपीलार्थी लड़की को ले गया, उसके साथ खेला और उसके बाद लड़की को उसके पिता के पास ले आया। इसलिए यह परिस्थिति निर्णायक नहीं है कि अपीलार्थी लड़की को ले गया था। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि अभियोजन पक्ष ने धारा 363 भारतीय दण्ड संहिता के तहत दंडनीय अपराध का कोई आरोप नहीं लगाया है।

66. वीडियो क्लिप को देखने के बाद, इसके संभावित उपयोगिता के संबंध में, हमारा विचार है कि सीसीटीवी फुटेज ऐसा सबूत नहीं है जिसके आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकें कि अपीलार्थी लड़की को किसी अन्य स्थान पर ले गया। बल्कि, यह अपीलार्थी के कंधे पर लड़की के होने का प्रमाण है। लेकिन लड़की को अपने कंधे पर रखना इस तथ्य का संकेत नहीं है कि अपीलार्थी लड़की के साथ जा रहा था क्योंकि, यहां, हम एक ऐसे मामले से निपट रहे हैं जहां लड़की आरोपी के साथ दोस्ताना थी। वह आरोपी के साथ खेलती थी और उसे चाचा कहती थी। किसी बच्चे को चंचल मुद्रा में कंधे पर बैठे हुए देखना बहुत सामान्य बात है। अपीलार्थी ने यह भी स्वीकार किया कि वह बच्ची को उसके पिता के पास लाया था। अपीलार्थी उस लड़की को उस परिसर से ले गया था या नहीं, यह उस वीडियो क्लिप से बिना किसी संदेह के साबित नहीं होता है। दरअसल, अभियोजन साक्षी-4 के बयान से ऐसा प्रतीत होता है कि अभियोजन साक्षी-4, जब वह अपने अपार्टमेंट तक पहुंचने के लिए सड़क पार कर रही थी, उसने अपीलार्थी को बच्चे के साथ खेलते हुए देखा, जिसका मतलब है कि बच्चा आसपास ही था। इसके अलावा, वीडियो क्लिप मुश्किल से सात मिनट की है। इसमें पूरी रात की घटनाओं का चित्रण नहीं किया गया है, जिससे हम बचाव पक्ष से इनकार कर सकें कि बच्ची को उसके पिता को सौंप दिया गया था।

67. ऊपर चर्चा किए गए कारणों से, क्योंकि हमने अभियोजन साक्षी -3 की गवाही कि उसने अनमोल फैक्ट्री के पास मृतक के साथ अपीलार्थी को देखा था, अविश्वसनीय पाया है, अभियोजन पक्ष जिस अंतिम बार देखी गई परिस्थिति को साबित करने में सफल हुआ है, वह किसी निश्चित प्रवृत्ति से आरोपी के अपराध की ओर इशारा नहीं करती है क्योंकि वह, उचित संदेह से परे, यह साबित करने में विफल रहा कि मृतक ने अभियुक्त-अपीलार्थी के साथ अपना आवासीय क्षेत्र छोड़ा था।

68. उपरोक्त के अतिरिक्त, अंतिम बार देखी गई परिस्थिति एक कमजोर प्रकार का साक्ष्य है। यह एक निर्णायक परिस्थिति तभी बनती है जब उस समय और स्थान जहां मृतक को आखिरी बार आरोपी के साथ जीवित देखा गया था और वह समय और स्थान जहां से मृतक का शव बरामद किया गया था, के बीच निकटता होती है । यदि स्थान और समय में बहुत बड़ा अंतर है तो अन्य व्यक्तियों की संलिप्तता की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है, इसलिए अदालतें अंतिम बार देखी गई परिस्थिति को ही दोषसिद्धि का एकमात्र आधार मानने में सावधानी बरतती हैं। इस मामले में महत्वपूर्ण बात यह है कि अभियोजन पक्ष ने धारा 363 भारतीय दण्ड संहिता के तहत दंडनीय अपहरण के अपराध के लिए आरोपी पर आरोप नहीं लगाया है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि आरोप को किसी भी स्तर पर बदला जा सकता है लेकिन मौजूदा मामले में पीड़ित और अपीलार्थी एक-दूसरे को जानते थे। पीड़िता अपीलार्थी को चाचा कहती थी और अपीलार्थी उसके जन्म से पहले से ही पीड़िता के घर नियमित रूप से आता था। इस प्रकार यह विवादित नहीं है कि अपीलार्थी पहले भी पीड़िता के साथ खेलता था। इसके अलावा, अभियोजन साक्षी-4 की गवाही भी इस आशय की है कि जब अभियोजन साक्षी-4 ने पीड़िता को अपीलार्थी के साथ देखा तो अपीलार्थी पीड़िता के साथ खेल रहा था। इसलिए, अभियोजन पक्ष ने, उचित ही, अपहरण का आरोप नहीं

अनुवादित

लगाया क्योंकि यह शायद अपीलार्थी के खिलाफ कायम नहीं रह सकता था।

69. हम यह भी देखते हैं कि इस मामले में इस बात का कोई सबूत नहीं है कि अपीलार्थी और मृतक को उस स्थान के पास देखा गया था जहां से मृतक का शव बरामद किया गया था। वास्तव में, अभियोजन पक्ष ने यह प्रदर्शित करने के लिए कोई सबूत पेश नहीं किया है कि उक्त स्थान उस स्थान के करीब था जहां से मृतक अपीलार्थी को ले गया था या उस स्थान के करीब था जहां मृतक को आखिरी बार अपीलार्थी के साथ जीवित देखा गया था। इस प्रकार, हमारे विचार में, अंतिम बार देखी गई परिस्थिति जिस पर अभियोजन भरोसा करता है वह अनिर्णायक है और अपीलार्थी की सजा का आधार नहीं बन सकती है।

(ख) मेडिकल/फोरेंसिक साक्ष्य

70. अभियोजन पक्ष ने फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला, गाजियाबाद की रिपोर्ट पर भारी भरोसा किया है जिसके अनुसार अपीलार्थी के अंडरवियर पर पाई गई जैविक सामग्री मृतक के शरीर से लिए गए मौखिक स्वाब में पाई गई जैविक सामग्री से मेल खाती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि वैज्ञानिक विशेषज्ञ रिपोर्ट औपचारिक सबूत के बिना साक्ष्य में स्वीकार्य हो जाती है, लेकिन फोरेंसिक रिपोर्ट को आरोपी के साथ जोड़ने के लिए, इस बात का सबूत होना चाहिए कि जिस आपत्तिजनक सामग्री के संबंध में फोरेंसिक रिपोर्ट प्राप्त की गई है, उसे विधिवत जब्त/बरामद किया गया था, सीलबंद किया गया, छेड़छाड़ रहित रखा गया, एफएसएल (प्रयोगशाला) द्वारा जांच की गई और सीलबंद हालत में अदालत में पेश किया गया। यदि घटनास्थल से आपत्तिजनक सामग्री बरामद की जाती है तो उसके संबंध में एक जब्ती ज्ञापन होना चाहिए जिसे साक्ष्य के रूप में रिकॉर्ड पर लाया जाना चाहिए। इसी तरह, यदि अभियुक्त के पास से आपत्तिजनक सामग्री की जब्ती होती है, तो जब्ती का एक ज्ञापन बनाना होगा और उस जब्ती को साबित करना होगा। केवल जब जब्ती विधिवत साबित हो जाती है और अदालत को इस बात की संतुष्टि हो जाती है कि जब्त की गई वस्तु को सीलबंद अवस्था में रखा गया था और फोरेंसिक जांच के लिए बिना किसी छेड़छाड़ के भेजा गया था, तो फोरेंसिक रिपोर्ट सबूत का एक विश्वसनीय टुकड़ा बन जाती है और दोष सिद्ध का आधार बन सकती है।

71. मौजूदा मामले में, आरोपी से अंडरवियर की बरामदगी का कोई अलग ज्ञापन नहीं है। कथित तौर पर आरोपी के अंडरगारमेंट्स ले लिए गए थे और इस आशय की प्रविष्टि अपीलकर्ता की मेडिकल रिपोर्ट में की गई थी, लेकिन रिपोर्ट तैयार करने वाले डॉक्टर की जांच नहीं की गई है। निःसंदेह, अभियोजन पक्ष ने गिरफ्तारी ज्ञापन को साबित किया है जिस पर प्रदर्श क-4 अंकित था लेकिन गिरफ्तारी मेमो में केवल इतना लिखा है कि आरोपी की चिकित्सकीय जांच की गई और उसने रिपोर्ट पर अपना अंगूठा लगाया है। लेकिन, जिस डॉक्टर ने आरोपी का मेडिकल परीक्षण किया था, उससे अभियोजन गवाह के रूप में पूछताछ नहीं की गई है। यह प्रदर्शित करने के लिए रिकॉर्ड पर कोई अलग ज्ञापन नहीं है कि अपीलार्थी से प्राप्त अंडरवियर/अंडरगारमेंट को सील कर दिया गया था और फोरेंसिक जांच के लिए भेजा गया था। इस प्रकार, मेडिकल जांच रिपोर्ट में प्रविष्टि, जो स्वयं साबित नहीं हुई है और न ही प्रदर्शित की गई है, को आरोपी से अंडरगारमेंट्स की जब्ती के सबूत के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है। अगर हम यह मान भी लें कि अपीलार्थी के अंडरगारमेंट्स ले लिए गए थे, तो जो बात रिपोर्ट को श्रेय देने योग्य नहीं बनाती है, वह यह है कि फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट यह संकेत देगी कि लिफाफा और अग्रेषण पत्र से पता चला है कि एक बनियान और एक अंडरवियर फॉरेंसिक जांच के लिए भेजा गया था, लेकिन एफएसएल में जो लिफाफा आया, उसमें सिर्फ अंडरवियर था। कोई बनियान नहीं था। यदि अग्रेषण पत्र और लिफाफे पर दो वस्तुओं का प्रेषण दर्शाया गया है, लेकिन प्रयोगशाला में केवल एक ही पहुंचता है, तो लिफाफे के साथ छेड़छाड़ किए जाने के संबंध में गंभीर संदेह पैदा होता है। इसके बावजूद कि फोरेंसिक रिपोर्ट में यह उल्लेख किया गया है कि सीलबंद लिफाफे प्राप्त हुए थे, लेकिन रिकॉर्ड पर यह दिखाने के लिए कोई सबूत नहीं है कि इसमें वही सील थी जिससे संग्रह के समय इसे सील किया गया था। हम रिकॉर्ड से यह गौर नहीं कर सके कि पुलिस द्वारा बनाए गए नमूना सील को परीक्षण के दौरान प्रदर्शित किया गया था या फोरेंसिक जांच के लिए भेजी गई चीजों को सीलबंद हालत में अदालत में पेश किया गया था ताकि यह प्रदर्शित किया जा सके कि अमुक सामान फोरेंसिक जांच के लिए प्रस्तुत किया गया था। ऐसे में फॉरेंसिक रिपोर्ट में डाले गए नोट से जो संदेह पैदा होता है, वह अभियोजन पक्ष द्वारा दूर नहीं हो पाता है।

72. इसके अलावा, धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत उसकी जांच के दौरान, न तो अपीलार्थी की मेडिकल जांच रिपोर्ट जो अंडरगारमेंट्स के संग्रह का खुलासा करती है और न ही फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट अपीलार्थी के सामने पेश की गई। इसे ध्यान में रखते हुए, हमारे सुविचारित दृष्टिकोण में, इस आपत्तिजनक परिस्थिति को विचारण से दूर रखना होगा।

73. इस स्तर पर, हम यह देख सकते हैं कि हालांकि फॉरेंसिक जांच के लिए सामान भेजने वाले अग्रेषण पत्र को विचारण न्यायालय की कार्यवाही में भौतिक प्रदर्श नहीं बनाया गया है, लेकिन यह केस डायरी आदि के हिस्से के रूप में रिकॉर्ड पर है। उस पत्र का अवलोकन करने से खुलासा होता है कि एफएसएल को निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत करने की आवश्यकता थी:

" प्रश्नः-1 उपरोक्त प्रदर्शो के अन्दर रखी वस्तुओं पर मानव सीमन है अथवा नही

2. मृतका आराध्या के नाख़ून में किसी के रक्त व् त्वचा के रेशे हैं। अथवा नही

3. मृतका के .... पर पाया गया बाल और अभि० चन्दन पांडे के बालों से क्या मेल खाता है। अथवा नही।

4. पीड़िता के नाखून में ब्लड व रेशे पाये जाते हैं तो क्या अभि० के ब्लड से मेल खाते हैं अथवा नही।"

4. दिलचस्प बात यह है कि जिस फोरेंसिक रिपोर्ट पर ट्रायल कोर्ट ने भरोसा जताया है, वह योनि स्लाइड, गुदा स्लाइड, गुदा स्वाब, योनि स्वाब और मृतक की फ्रॉक के संबंध में अनिर्णायक है क्योंकि रिपोर्ट में यह कहा गया है कि यद्यपि पुरुष एलील की उपस्थिति पाई गई है, लेकिन आरोपी के रक्त के नमूने के साथ इसकी तुलना करने के लिए डीएनए प्रोफाइलिंग नहीं की जा सकी। इसी प्रकार, वस्तु संख्या 9 (मृतक के बाल), वस्तु संख्या 11 (मृतक की धातु पायल), वस्तु संख्या 21 (मृतक के जघन क्षेत्र में पाए गए बाल जो संभवतः आरोपी के हो सकते हैं) और वस्तु संख्या 22 (आरोपी के कटे हुए नाखून) पर डीएनए प्रोफाइलिंग सफल नहीं हो सकी। इसके अलावा, फोरेंसिक रिपोर्ट शुक्राणु की उपस्थिति के संबंध में चुप है। इसलिए, हमारे विचार में, फॉरेंसिक रिपोर्ट, जिस पर दोषसिद्धि दर्ज करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा भारी निर्भरता रखी गई है, निम्नलिखित कारणों से अपीलार्थी के खिलाफ वैध सबूत नहीं बन सकती है: - (i) अपीलार्थी की एकमात्र चीज जो उसे अपराध से जोड़ सकती थी वह है अंडरवियर (वस्तु संख्या 12) लेकिन अपीलार्थी से इस अंडरवियर की जब्ती साबित नहीं हुई है, क्योंकि मेडिकल रिपोर्ट जिससे पता चलता है कि अपीलार्थी से अंडरगारमेंट बरामद हुए थे, वह न ही डॉक्टर की जांच द्वारा साबित की गई है और न ही प्रदर्श के रूप में अंकित हुई है। और तो और, फोरेंसिक जांच के लिए भेजे गए अंडरवियर को भौतिक प्रदर्शन के रूप में अदालत में पेश नहीं किया गया है; (ii) फोरेंसिक रिपोर्ट में यह लिखा गया है कि जब आरोपी के अंडरवियर और बनियान (बनियान) वाले लिफाफे को खोला गया, तो केवल एक अंडरवियर की उपस्थिति का पता चला। अभियोजन पक्ष द्वारा ऐसा कोई सबूत पेश नहीं किया गया है कि जब अपीलार्थी से अंडरवियर एकत्र किया गया था तो उसे विधिवत सील कर दिया गया था और उसे फोरेंसिक प्रयोगशाला में भेजने के लिए सीलबंद स्थिति में ठीक से रखा गया था और जिस सील के साथ इसे सील किया गया था उसका मिलान किया गया था और अक्षुण्ण पाया गया था। इसके अलावा, चूंकि लिफाफे की सामग्री उसके कवर पर या अग्रेषण पत्र/लिफाफे में अंकित सामग्री से भिन्न थी, लिफाफे के साथ छेड़छाड़ की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है, खासकर, जब उन मोहरों का नमूना जिसके द्वारा वे लिफाफे ले जाने के लिए सील किए गए थे और जांच के बाद फोरेंसिक प्रयोगशाला द्वारा वापस भेजे गए थे, साबित नहीं हुए या प्रदर्श नहीं बनाए गए; और (iii) धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अपना बयान दर्ज करते समय अपीलार्थी को, न तो अंडरवियर का जब्ती ज्ञापन और न ही फोरेंसिक रिपोर्ट पेश की गई थी।

75. ऊपर दर्ज सभी कारणों से, हमारा मानना है कि विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को अपराध से जोड़ने के लिए फोरेंसिक रिपोर्ट पर भरोसा करके कानून में गलती की है।

76. उपरोक्त के अलावा, हमारा यह भी मानना है कि अभियोजन ने महत्वपूर्ण तथ्यों को छुपाया है, क्योंकि -

(1) अभियोजन पक्ष के गवाहों, अर्थात् अभियोजन साक्षी-1, अभियोजन साक्षी-4 और अभियोजन साक्षी-2 के साक्ष्य सुसंगत हैं कि घटना की रिपोर्ट 19.10.2020 को पुलिस को दी गई थी और पुलिस ने पीड़िता की रात में ही तलाश की थी। यह तथ्य कि घटना की सूचना पुलिस को 19.10.2020 को दी गई थी, इसकी पुष्टि अभियोजन साक्षी-5 के बयान से भी होती है, जिसमें कहा गया है कि पुलिस ने 19.10.2020 को उससे सीसीटीवी फुटेज मांगा था। लेकिन, दुर्भाग्य से, उस रिपोर्ट को अभियोजन पक्ष द्वारा दबा दिया गया है। उस रिपोर्ट में संदिग्ध कौन था और बच्ची कहां से गायब हुई, इससे सच्चाई पर प्रकाश पड़ सकता था, लेकिन चूंकि इस जानकारी को अभियोजन पक्ष ने दबा दिया है, इसलिए अदालत यह अनुमान लगा रही है कि क्या कोई और भी था जो अपराध में शामिल था। ;

(2) अभियोजन साक्षी-1, अभियोजन साक्षी-2 और अभियोजन साक्षी-3 ने कहा कि आरोपी को 19.10.2020 की रात में गिरफ्तार किया गया था, जबकि पुलिस ने 20.10.2020 को 21.50 बजे अपीलार्थी की गिरफ्तारी का खुलासा किया; इससे हमें यह अहसास होता है कि पुलिस इस तथ्य को छिपाना चाहती है कि गहन पूछताछ के बावजूद अपीलार्थी के खिलाफ कुछ भी आपत्तिजनक नहीं पाया जा सका और उसकी निशानदेही पर कुछ भी आपत्तिजनक बरामद नहीं किया जा सका;

(3) अभियोजन पक्ष ने उस डॉक्टर से पूछताछ नहीं की जिसने अपीलार्थी की गिरफ्तारी के समय उसकी चिकित्सीय जांच की थी। यह महत्वपूर्ण है क्योंकि अपीलार्थी की मेडिकल जांच रिपोर्ट विचारण न्यायालय के रिकॉर्ड पर है और यह इंगित करती है कि मेडिकल जांच 20.10.2020 को रात 11.30 बजे की गई थी और अपीलार्थी के शरीर पर सात चोटें देखी गईं थीं, जो कठोर और कुंद वस्तु से कारित होने वाली सरल प्रकृति की थी। मेडिकल रिपोर्ट से यह पता नहीं चलता है कि वे चोटें ताज़ा थीं, इसलिए अपीलार्थी को पहले गिरफ्तार किए जाने और पीटे जाने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है, इसलिए यह सुनिश्चित करने के लिए कि पुलिस की गलती न पकड़ी जाए, उस रिपोर्ट को साबित करने के लिए डॉक्टर से जांच नहीं कराई गई ;

(4) प्रथम सूचना रिपोर्ट से पता चलता है कि शव मिलने की सूचना 20.10.2020 को 12.30 बजे प्राप्त हुई थी जिसके बाद प्राथमिकी दर्ज की गई थी। गवाहों का मौखिक

बयान इस आशय का है कि शव पुलिस को मिला था और उन्होंने शिकायतकर्ता को सूचित किया था कि शव मिला है। अभियोजन पक्ष ने इस बात का कोई सबूत नहीं दिया कि शव किसकी सूचना पर मिला था। इससे हमारे मन में यह संदेह पैदा होता है कि कहीं किसी और को बचाने की दृष्टि से उस स्थान के संबंध में आपत्तिजनक जानकारी तो नहीं दबायी जा रही है, जहां शव को फेंका गया था;

(5) जिस स्थान पर शव मिला था, उसके पास से एक बोतल और अन्य सामान उठाया गया था, लेकिन उन्हें किसी अन्य व्यक्ति की संलिप्तता से इंकार करने के लिए फोरेंसिक जांच या फिंगर प्रिंट विशेषज्ञ रिपोर्ट के लिए नहीं भेजा गया;

(6) अभियोजन पक्ष ने उन दो अन्य व्यक्तियों की जांच नहीं की है जो उस समय शिकायतकर्ता के साथ शराब पी रहे थे जब अपीलार्थी मुखबिर की बेटी को लाने के लिए उठा था। ये गवाह अपीलार्थी द्वारा लिए गए बचाव पर प्रकाश डाल सकते थे कि वह शिकायतकर्ता की बेटी को उसके पिता के पास लाया था जहाँ वे सभी शराब पी रहे थे।

77. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, हालांकि अभियोजन यह साबित करने में सफल रहा है कि पीड़िता का यौन उत्पीड़न किया गया और उसे मार दिया गया, लेकिन यह साबित करने में विफल रहा कि अपीलार्थी ने पीड़िता का यौन उत्पीड़न किया और उसकी हत्या कर दी। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण मामला है जहां ऐसा प्रतीत होता है कि पीड़िता के पिता और अपीलार्थी सहित अन्य तीन इतने नशे में थे कि उन्हें अपने कृत्य के बारे में पता ही नहीं था। अपीलार्थी जो पीड़िता के पिता के साथ शराब पी रहा था और पीड़िता को नीचे लाया था, उसे उसके साथ खेलते हुए देखा गया था, इसलिए वह मुख्य संदिग्ध था। लेकिन, क्या पीड़िता को उसके पिता के पास लाया गया था या उसे सड़क पर छोड़ दिया गया था, इसका अंदाजा किसी को नहीं है। बल्कि ऐसा लगता है कि ये तीन लोग इतने नशे में थे कि उन्हें बच्चे के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी का भी एहसास नहीं था। क्या बच्ची को कोई अनजान अजनबी उठाकर ले गया था या बच्ची को किसी अजनबी को सौंप दिया गया था या बच्ची को उसके पिता के पास लाया गया था और उसके बाद पिता ने उसे कहीं भेज दिया, यह सिर्फ अटकलों का विषय है। अपीलार्थी के पक्ष में जो बात जाती है वह यह है कि अपीलार्थी के खिलाफ कुछ भी नहीं है कि वह इतना जघन्य अपराध क्यों करेगा, खासकर, जब वह खुद एक शादीशुदा व्यक्ति था और उसके बच्चे भी थे और पीड़िता उसकी अपनी भतीजी की तरह थी जिसके साथ वह खेलता था। अपीलार्थी के पक्ष में यह भी जाता है कि अपीलकर्ता ने बच्चे को उसकी मां से लेने से इनकार नहीं किया है, बल्कि पूछताछ के दौरान भी उसने अपना रुख बरकरार रखा है, कि उसने बच्चे को उसके पिता को सौंप दिया था और उसके बाद उसके पिता ने बच्चे को कुछ पैसे दिए और उन्होंने अपना पेय (शराब) जारी रखा। अपीलार्थी के पक्ष में जो बात आगे बढ़ती है वह यह है कि रिकॉर्ड पर लाए गए सबूतों से ऐसा प्रतीत होता है कि आरोपी को 19.10.2020 की रात में ही पकड़ लिया गया था, लेकिन पूछताछ के बावजूद कोई खुलासा नहीं हुआ जिससे उसकी निशानदेही पर किसी आपत्तिजनक सामग्री की खोज हुई। अभियोजन पक्ष के ख़िलाफ़ जो बात जाती है वह यह है कि वे साफ़-सुथरे हाथों से सामने नहीं आए हैं और उन्होंने महत्वपूर्ण तथ्यों को दबाने की कोशिश की है जिसे हम पहले ही ऊपर देख चुके हैं। इसके अलावा, अभियोजन पक्ष के खिलाफ जो बात जाती है वह यह है कि उन्होंने आगे के अंडरवियर को जब्त करने और फोरेंसिक जांच के लिए अंडरवियर को सीलबंद और बिना छेड़छाड़ की स्थिति में भेजने के संबंध में ठोस सबूत देने का ध्यान नहीं रखा है। अभियोजन पक्ष के खिलाफ यह भी जाता है कि अंडरवियर की जब्ती से संबंधित आपत्तिजनक परिस्थिति को औपचारिक रूप से साबित भी नहीं किया गया था और यहां तक कि धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत पूछताछ के दौरान आरोपी के सामने फोरेंसिक रिपोर्ट भी नहीं रखी गई थी। आगे जो बात अभियोजन पक्ष के ख़िलाफ़ जाती है वह यह है कि अंडरवियर को छोड़कर अन्य सभी सामग्रियां अपीलार्थी को अपराध से नहीं जोड़ सकीं। लेकिन, चूंकि उस अंडरवियर की जब्ती साबित नहीं हुई थी, फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला को इसे सीलबंद/अछूता स्थिति में भेजा जाना संदिग्ध हो जाता है और अंडरवियर को भौतिक प्रदर्श भी नहीं बनाया गया था, फोरेंसिक रिपोर्ट सबूत का एक अविश्वसनीय टुकड़ा बन जाती है।

78. इस प्रकार, ऊपर दर्ज सभी कारणों से, हमें अपील को स्वीकार करने और संदर्भ को अस्वीकार करने में कोई झिझक नहीं है। अपील स्वीकार की जाती है। विचारण न्यायालय के निर्णय और आदेश को रद्द किया जाता है। मृत्युदंड की पुष्टि के संदर्भ का उत्तर नकारात्मक में दिया जाता है। अपीलार्थी को उन आरोपों से बरी किया जाता है जिनके लिए उस पर मुकदमा चलाया गया था। निचले विचारण न्यायालय की संतुष्टि के अनुसार धारा 437-ए दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अनुपालन के अधीन, यदि वह किसी अन्य मामले में वांछित न हो, उसे तुरंत रिहा किया जाए।

79. इस स्तर पर, हम रिकॉर्ड पर रखना चाहेंगे कि हमारी पूर्ववर्ती पीठ ने दिनांक 28.07.2021 के आदेश द्वारा आरोपी-अपीलार्थी के आचरण और व्यवहार के संबंध में जेल अधीक्षक से रिपोर्ट मांगी थी। उक्त रिपोर्ट कार्यालय द्वारा एक सीलबंद लिफाफे में रखी गई है जिसे हमने नहीं खोला है क्योंकि हम पहले ही अपीलार्थी को बरी करने का निर्णय ले चुके हैं।

80. निचली अदालत के रिकॉर्ड को आदेश की प्रमाणित प्रति के साथ विचारण न्यायालय को अनुपालन हेतु भेजा जाए।

(2023) 1 ILRA 700
मूल क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: लखनऊ 24.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 677 /2023

कृष्ण कुमार एवं अन्य ...आवेदक
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक:
सिद्धार्थ शंकर दुबे

अधिवक्ता विपक्षीगण:
जी.ए.

ए. आपराधिक कानून – आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 190(1) – अपराध का संज्ञान - मजिस्ट्रेट द्वारा मुद्रित प्रोफार्मा पर समन आदेश पारित किया गया था - वैधानिकता को चुनौती दी गई, कोई न्यायिक मस्तिस्क नहीं प्रयोग किया गया - प्रभाव– आयोजित, आदेश पारित करने में संबंधित न्यायिक अधिकारियों का आचरण मुद्रित प्रोफार्मा पर न्यायिक दिमाग का उपयोग किए बिना रिक्त स्थान भरना आपत्तिजनक है और निंदा के योग्य है – किसी आपराधिक मामले में आरोपी को बुलाना एक गंभीर वाद है और आदेश में यह दर्शाया जाना चाहिए कि मजिस्ट्रेट ने तथ्यों के साथ-साथ अपने मस्तिष्क का भी इस्तेमाल किया था। जबकि आक्षेपित सम्मन आदेश न्यायिक मस्तिस्क के प्रयोग के बिना यांत्रिक तरीके से पारित किया गया था। (पैरा 12 और 23)

बी. भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 21 – मौलिक अधिकार – निष्पक्ष जांच और त्वरित सुनवाई का अधिकार - निष्पक्ष और उचित जांच करना जांच अधिकारी का प्राथमिक कर्तव्य है – कोई भी जांच एजेंसी जांच पूरी करने में अनावश्यक रूप से लंबा समय नहीं ले सकती। त्वरित सुनवाई के लिए अनुच्छेद 21 के तहत अंतर्निहित अधिकार है जिसमें त्वरित जांच, जांच, अपील, पुनरीक्षण और पुन: सुनवाई शामिल है। (पैरा 14)

आवेदन स्वीकृत। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. दिलावर बनाम हरियाणा राज्य; (2018) 16 एससीसी 521
2. मेनका गांधी बनाम भारत संघ .; एआईआर 1978 एससी 597
3. हुसैनारा खातून (प्रथम) बनाम बिहार राज्य; (1980)1 एससीसी 81
4. अब्दुल रहमान अंतुले बनाम आर.एस. नायक; (1992) 1 एससीसी 225
5. पी. रामचन्द्र राव बनाम कर्नाटक राज्य; (2002) 4 एससीसी 578
6. एच.एन. रिशबड बनाम दिल्ली राज्य; एआईआर 1955 एससी 196
7. भूषण कुमार और अन्य बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) एवं अन्य; एआईआर 2012 एससी 1747
8. बसरुद्दीन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य.; 2011 (1) जेआईसी 335 (सभी)(एलबी)
9. भूषण कुमार और अन्य बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) एवं अन्य; एआईआर 2012 एससी 1747
10. सुनील भारती मित्तल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो; एआईआर 2015 एससी 923-
11. दर्शन सिंह राम किशन बनाम महाराष्ट्र राज्य.; (1971) 2 एससीसी 654
12. आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 19647 /2009; अंकित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, दिनांक 15.10.2009 को निर्णय लिया गया।
13. आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 3209/2010; कवि अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य
14. अब्दुल रशीद और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2010 (3) जेआईसी 761 (सभी)

(माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद द्वारा प्रदत्त)

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्रीमती जन लक्ष्मी तिवारी सेनानाई सहित श्री सिद्धार्थ शंकर दुबे, राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना व अभिलेख का परिशीलन किया।

दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत वर्तमान आवेदन आवेदकों द्वारा वाद सं. 21/2019 उत्तर प्रदेश राज्य बनाम

कृष्ण कुमार, अंतर्गत भा.द.वि. की धारा 363, 366 एवं लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम 2012 की धारा 16 एवं 17, जो ASJ/POCSO II रायबरेली की न्यायालय के समक्ष लंबित है व अन्य की संपूर्ण आपराधिक कार्यवाही एवं आरोप पत्र संख्या 101/2019,दिनांक 05.02.2019 एवं समन आदेश दिनांक 08.02.2019 को भी रद्द करने की प्रार्थना के साथ यह आवेदन प्रस्तुत किया गया है।

प्र.सू.रि. के अनुसार, 13.11.2018 को सुबह 08.40 बजे वादी अपनी पुत्री को उसके विद्यालय छोड़ने गया एवं विद्यालय का समय समाप्त होने के बाद, वादी को ज्ञात हुआ कि उसकी पुत्री उस दिन विद्यालय नहीं गई थी। वादी ने घर जाकर अपने संदूक की जाँच की एवं पाया कि पुत्री अपने साथ 20,000/- रुपये लेकर भाग गई है। वादी का घर एक पड़ोसी कृष्ण कुमार नाई के घर के समीप है जो अपने परिवार में अपने पुत्र अविनाश उर्फ शिवम, पत्नी श्रीमती, पुत्री शिवानी एवं दूसरे पुत्र अभिषेक के साथ रहता है। वादी का कथन है कि अविनाश उर्फ शिवम जीविकोपार्जन के उद्देश्य से किसी शहर में रह रहा था। इसके अतिरिक्त, वादी द्वारा लगाए गए आरोपों के अनुसार दिनांक 13.11.2018 को लगभग सुबह 8.40 बजे शिवानी एवं अभिषेक ने पीड़िता को विद्यालय से स्टेशन छोड़ा, जहाँ आरोपी अविनाश उर्फ शिवम पहले से मौजूद था, जो पीड़िता को बहला-फुसलाकर अपने साथ ले गया। साथ ही प्र.सू.रि. में यह भी आरोप लगाया गया है कि कृष्ण कुमार नाई पूरे समय फोन से संपर्क में था एवं इसलिए कृष्ण कुमार नाई की माँ श्रीमती, बहन शिवानी एवं भाई अभिषेक सभी उक्त अपराध में उल्लिखित हैं।

पुनः आवेदकों के अधिवक्ता ने कहा कि अभियोजन की पूरी कहानी झूठी है। ऐसी कोई घटना नहीं हुई एवं आवेदकों को वर्तमान वाद में झूठा फंसाया गया है।

पुनः आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि वाद में गुण-दोष के आधार पर बहस करने से पूर्व, वह भा.द.वि. की धारा 363, 366 एवं लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 16 व 17के अंतर्गत अन्वेषण अधिकारी द्वारा यांत्रिक रीति से प्रस्तुत दिनांक 05.02.2019 के आरोप पत्र पर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं, जिसकी प्रति शपथपत्र के संलग्नक संख्या 1 के रूप में प्रस्तुत की गई है, जबकि पुनः उन्होंने कहा है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने आरोप पत्र पर संज्ञान लिया था एवं समन आदेश दिनांक 08.02.2019 को पारित किया था। मुद्रित प्रारूप पर भा.द.वि. की धाराएं, दिनांक एवं संख्या भरकर संज्ञान लिया गया एवं उक्त प्रारूप में विद्वान मजिस्ट्रेट ने बिना कोई कारण बताए आवेदकों को विचारण हेतु तलब किया। संज्ञान आदेश की प्रति भी शपथ पत्र के संलग्नक संख्या 2 के रूप में संलग्न है।

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि दिनांक 08.02.2019 के आदेश द्वारा विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा बिना कोई कारण बताए मुद्रित प्रारूप पर लिया गया संज्ञान विधिक प्रक्रिया का दुरुपयोग है एवं यह बिना विवेक का प्रयोग किए व नैत्यिक रीति से किया गया था।

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि मुद्रित प्रारूप पर आरोप पत्र एवं संज्ञान आदेश प्रस्तुत करने के बाद, आवेदकों को दिनांक 08.02.2019 के आदेश द्वारा यांत्रिक रूप से तलब किया गया है एवं विचारण न्यायालय ने आवेदकों को सम्मन करते हुए वास्तव में त्रुटि की है एवं माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विभिन्न वादों में प्रतिपादित विधिक सिद्धांत का पालन नहीं किया है जिसके अनुसार आपराधिक वाद में सम्मन भेजना एक गंभीर मामला है एवं विचारण न्यायालय को सामग्री पर ध्यान दिए बिना एवं वाद को संभाव्यता की कसौटी पर कसे बिना अभियुक्त को आपराधिक विचारण हेतु नहीं बुलाना चाहिए। पुनः प्रस्तुत किया गया है कि विचारण न्यायालय ने आरोप-पत्र के साथ विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री पर विचार नहीं किया है एवं इसलिए विचारण न्यायालय ने आवेदक को बुलाने में तात्विक त्रुटि की है। विचारण न्यायालय ने आवेदक को मुद्रित आदेश के माध्यम से तलब किया गया, जो पूर्णतः अवैध है।

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आग्रह किया गया है कि दिनांक 08.02.2019 का प्रश्नगत संज्ञान/सम्मन आदेश विधिक रुप से पोषणीय नहीं है, क्योंकि इसे न्यायिक विवेक का उपयोग किए बिना यंत्रवत पारित किया गया है, क्योंकि प्रथमदृष्टया अभिलेख से ही यह स्पष्ट है कि संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 08.02.2019 का प्रश्नगत संज्ञान/सम्मन आदेश रिक्त स्थानों की पूर्ति कर मुद्रित प्रारूप पर पारित किया गया है, अतः यह न्यायालय द्वारा रद्द किये जाने योग्य है।

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य पर अत्यधिक बल दिया है कि यदि मुद्रित प्रारूप पर संज्ञान लिया गया है तो वह पोषणीय नहीं है।

इसके विपरीत, राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने कहा कि अभियोजन वाद के अनुसार,

अभिलेखों पर आवेदकों के विरुद्ध तात्विक साक्ष्य एवं आरोपों पर विचार करते हुए, वर्तमान में, आवेदकों के विरुद्ध संज्ञेय अपराध गठित होता है। अतः आवेदन खारिज किये जाने योग्य है। किन्तु तथ्य को अस्वीकृत नहीं किया है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने मुद्रित प्रारूप पर संज्ञान लिया है। तदनुसार, इस वाद का अंतिम निर्णय इस स्तर पर विरोधी पक्षकार संख्या 2 को नोटिस जारी किए बिना एवं प्रतिशपथपत्र मांगे बिना किया जा रहा है।

मैंने उभय पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण को सुना है एवं अभिलेख का परिशीलन किया है।

इस न्यायालय के समक्ष विचारण हेतु मुख्य बिंदु यह है कि क्या विद्वान मजिस्ट्रेट अभियुक्त को बिना कोई कारण बताए मुद्रित प्रारूप पर बुला सकता है एवं दं.प्र.सं. की धारा 173 के अंतर्गत प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट पर संज्ञान ले सकता है। इस संबंध में, यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि यहाँ यह बताया गया है कि कोई न्यायालय किसी अपराध का संज्ञान मात्र तब ले सकता है जब संहिता के अध्याय XIV में निर्धारित कार्यवाही प्रारंभ करने हेतु आवश्यक शर्तें पूरी होती हों। अन्यथा, न्यायालय को दं.प्र.सं. की धारा 190 (1) के अंतर्गत अपराधों के विचारण का क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं होता है, बशर्ते कि "इस अध्याय के उपबंधों के अधीन रहते हुए, कोई प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट और उपधारा (2) के अधीन विशेषतया सशक्त किया गया कोई द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट, किसी भी अपराध का संज्ञान निम्नलिखित दशाओं में कर सकता है :-

(क) उन तथ्यों का, जिनसे ऐसा अपराध बनता है, परिवाद प्राप्त होने पर;

(ख) ऐसे तथ्यों के बारे में पुलिस रिपोर्ट पर;

(ग) पुलिस अधिकारी से भिन्न किसी व्यक्ति से प्राप्त इस इत्तिला पर या स्वयं अपनी इस जानकारी पर कि ऐसा अपराध किया गया है ।

(2) मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट किसी द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट को ऐसे अपराधों का, जिनकी अन्वेषण या विचारण करना उसकी क्षमता के अंदर है, उपधारा (1) के अधीन संज्ञान करने हेतु सशक्त कर सकता है।

इस अवसर पर, दं.प्र.सं. की धारा 173 के अंतर्गत दर्ज की गई पुलिस रिपोर्ट पर संज्ञान लेते हुए, अभियुक्तगण को तलब करने से संबंधित विधि का परिशीलन उपयोगी होगा। निम्नलिखित निर्णय विधि के परिशीलन से स्पष्ट होगा कि परिवाद पर अपराध का संज्ञान आरोपी को आदेशिका जारी करने के उद्देश्य से लिया गया है। चूँकि यह कुछ तथ्यों पर न्यायिक नोटिस लेने की एक प्रक्रिया है जो एक अपराध का गठन करती है, अतः इसमें विवेक का उपयोग करना होगा कि क्या जाँच अधिकारी द्वारा एकत्र की गई सामग्री के आधार पर आगे की कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार है, व क्या किसी व्यक्ति को विचारण हेतु आपराधिक न्यायालय में प्रस्तुत होने हेतु बुलाना विधि का उल्लंघन होगा। यह विवेक संबंधित मजिस्ट्रेट पर सबंधित वाद के तथ्यों एवं विषय पर विधि के दृष्टिगत विवेकपूर्ण रीति से कार्य करने का दायित्व आरोपित करता है, एवं मजिस्ट्रेट के आदेश अपराध का संज्ञान लेते समय न्यायिक विवेक का उपयोग न करने से प्रभावित नहीं होते हैं।

निष्पक्ष एवं उचित अन्वेषण, अन्वेषण अधिकारी का प्राथमिक कर्तव्य है। कोई भी अन्वेषण एजेंसी अन्वेषण पूर्ण करने में अनावश्यक रूप से अधिक समय नहीं ले सकता। अनुच्छेद 21 के अंतर्गत त्वरित विचारण हेतु अंतर्निहित अधिकार है जिसमें त्वरित अन्वेषण, जाँच, अपील, पुनरीक्षण एवं पुनः विचारण सम्मिलित है।

आंतरिक निरीक्षण तंत्र हेतु जाँच पूरी करने के लिए समय-सीमा एक स्पष्ट अपेक्षा है, जिसमें पदानुक्रम में विभिन्न स्तरों पर समय-सीमा का पालन करने का उत्तरदायित्व निर्धारित किया जा सके, जैसा कि **दिलावर बनाम हरियाणा राज्य, (2018) 16 एससीसी 521, मेनका गांधी बनाम भारत संघ, एआईआर 1978 एससी 597, हुसैनारा खातून (I) बनाम बिहार राज्य, (1980)1 एससीसी 81, अब्दुल रहमान अंतुले बनाम आरएस नायक, (1992) 1 एससीसी 225 एवं पी. रामचन्द्र राव बनाम कर्नाटक राज्य, (2002) 4 एससीसी 578** वादों में धारित किया गया है।

अन्वेषण के प्रयोजनों हेतु, अपराधों को दो श्रेणियों "संज्ञेय" एवं "गैर-संज्ञेय" में विभाजित किया गया है। जब किसी संज्ञेय अपराध की सूचना प्राप्त होती है या ऐसे किसी अपराध के घटित होने का संदेह होता है तब उचित पुलिस अधिकारी को उसकी अन्वेषण करने का अधिकार होता है, किन्तु जहाँ सूचना असंज्ञेय अपराध से संबंधित होती है तब वह सक्षम मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना इसका अन्वेषण नहीं करेगा। अन्वेषण के अंतर्गत किसी पुलिस अधिकारी, या मजिस्ट्रेट के अलावा किसी अन्य व्यक्ति (जो मजिस्ट्रेट की ओर से उसके द्वारा अधिकृत है) द्वारा किए गए साक्ष्यों के संग्रह हेतु दं.प्र.सं. के अंतर्गत की गई समस्त कार्यवाही सम्मिलित है। अन्वेषण में निम्नलिखित चरण हैं- (i) घटनास्थल हेतु प्रस्थान (ii) वाद के तथ्यों एवं परिस्थितियों का निर्धारण (iii) संदिग्ध अपराधी की खोज एवं गिरफ्तारी (iv) अपराध के घटित होने से संबंधित साक्ष्यों का संग्रह एवं (v) इस बारे में राय बनाना कि क्या एकत्र की गई सामग्री

के आधार पर अभियुक्त को विचारण हेतु मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है, एवं यदि हाँ, तो दं.प्र.सं. की धारा 173 के अंतर्गत आरोप पत्र प्रस्तुत कर इस निमित्त आवश्यक कदम उठाए जा सकते हैं **(संदर्भ- एच.एन. रिशबड बनाम दिल्ली राज्य, एआईआर 1955 एससी 196)।** तदोपरांत विद्वान मजिस्ट्रेट को न्यायिक विवेक का प्रयोग करने के उपरांत व तर्कसंगत आदेश द्वारा संज्ञान लेना होगा।

भूषण कुमार एवं एक अन्य बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) व एक अन्य, एआईआर 2012 एससी 1747वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने टिप्पणी की है कि संहिता की धारा 204 मजिस्ट्रेट को समन जारी करने के कारणों को स्पष्ट रूप से बताने का आदेश नहीं देती है। इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यदि किसी अपराध का संज्ञान लेने वाले मजिस्ट्रेट की राय में कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार है तब सम्मन जारी किया जा सकता है। **बसरुद्दीन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 2011 (1) JIC 335 (All) (LB)** वाद में माननीय न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की : -

''प्रश्नगत आदेश के परिशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने वादी द्वारा प्रस्तुत परिवाद पर मशीनी ढंग से टंकित प्रारूप में दिनांक भरकर आरोपी को तलब किया है। परिवाद पर अपराध का संज्ञान लेते समय विद्वान मजिस्ट्रेट से अपेक्षित था कि वह परिवाद में कथित आरोपों का अध्ययन करें एवं स्वंय को संतुष्ट करें कि परिवाद में कथित आरोपों के आधार पर आरोपी के विरुद्ध प्रथमदृष्टया कौन सा अपराध गठित होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने परिवाद में उल्लिखित आरोपों पर ध्यान देने एवं यह पता लगाने का कष्ट नहीं किया कि परिवाद में उल्लिखित आरोपों के आधार पर आरोपी के विरुद्ध प्रथम दृष्टया कौन से अपराध गठित होते हैं। स्पष्ट रुप से, विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश अपराध का संज्ञान लेते समय विवेक का उपयोग न करने के दोष से ग्रस्त है। प्रश्नगत आदेश भली-भांति तर्कसंगत नहीं है इसलिए यह रद्द किये जाने योग्य है, अतः याचिका स्वीकार किये जाने योग्य है एवं मामले को विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखीमपुर खीरी को इस निदेश के साथ प्रतिप्रेषित किया जा सकता हैकि वह परिवाद में उल्लिखित आरोपों का अध्ययन करें एवं यह सुनिश्चित करें कि परिवाद में लगाए गए आरोपों के आधार पर आरोपी के विरुद्ध प्रथम दृष्टया कौन से अपराध गठित होते हैं एवं नया आदेश पारित करें। तदोपरान्त वह विधिसम्मत कार्यवाही करेंगे।

भूषण कुमार एवं अन्य बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) व अन्य, एआईआर 2012 एससी 1747, के वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि संहिता की धारा 204 मजिस्ट्रेट को समन जारी करने के कारणों को स्पष्ट रूप से बताने का आदेश नहीं देती है। इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यदि किसी अपराध का संज्ञान लेने वाले मजिस्ट्रेट की राय में कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार है तब सम्मन जारी किया जा सकता है। यह धारा मजिस्ट्रेट को इस बारे में राय बनाने का आदेश देती है कि क्या समन जारी करने हेतु पर्याप्त आधार मौजूद है, किन्तु धारा में कहीं भी यह उल्लेख नहीं किया गया है कि इसका स्पष्ट विवरण प्रदान करना अनिवार्य है, अर्थात जारी किए गए समन की वैधता तय करने हेतु यह पूर्व-अपेक्षित नहीं है।

सुनील भारती मित्तल बनाम केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो, एआईआर 2015 एससी 923 के वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय के प्रस्तर संख्या 47 में निम्नानुसार टिप्पणी की:-

"47. हालांकि, धारा में प्रदर्शित होने वाले शब्दों " कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार हैं" का अत्यधिक महत्व है। ये शब्द पर्याप्त सुझाव देते हैं कि सम्यक विवेक के प्रयोग उपरान्त ही एक राय बनाई जानी चाहिए कि उक्त आरोपी के विरुद्ध कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार उपलब्ध है एवं ऐसी राय का गठन आदेश में ही स्पष्ट किया जाए..''

दर्शन सिंह राम किशन बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1971) 2 एससीसी 654 के वाद में, माननीय न्यायालय ने टिप्पणी की है कि संज्ञान लेने की प्रक्रिया में कोई औपचारिक कार्रवाई सम्मिलित नहीं है, किन्तु ज्यों ही मजिस्ट्रेट आरोपों पर अपने विवेक का प्रयोग करता है एवं अपराध का न्यायिक नोटिस लेता है, संज्ञान की प्रक्रिया हो जाती है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 के अनुसार, एक मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान निम्न स्थितियों में ले सकता है, (ए) परिवाद प्राप्त होने पर, या (बी) पुलिस रिपोर्ट पर, या (सी) किसी पुलिस अधिकारी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति से प्राप्त जानकारी पर या यहाँ तक कि उसकी स्वयं की जानकारी या संदेह पर भी कि ऐसा अपराध किया गया है। जैसा कि प्रायः धारित किया गया है, संज्ञान लेने में कोई औपचारिक कार्रवाई या वास्तव में किसी भी प्रकार की कार्रवाई सम्मिलित नहीं होती है, किंतु यह तब होता है जब मजिस्ट्रेट किसी अपराध के संदिग्ध घटित होने पर अपने विवेक का प्रयोग करता है। अतः, संज्ञान उस बिंदु पर होता है जब मजिस्ट्रेट पहली बार किसी अपराध का न्यायिक नोटिस लेता है। यह वह स्थिति है, जब मजिस्ट्रेट किसी परिवाद पर, या पुलिस रिपोर्ट पर, या पुलिस अधिकारी के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति की सूचना पर अपराध का संज्ञान लेता है। अतः जब कोई मजिस्ट्रेट किसी

पुलिस रिपोर्ट पर किसी अपराध का संज्ञान लेता है, तब प्रथम दृष्टया मजिस्ट्रेट ऐसी रिपोर्ट में बताए गए अपराध या अपराधों का संज्ञान लेता है।"

अंकित बनाम उ.प्र. राज्य एवं एक अन्य -धारा 482 के अंतर्गत आवेदन क्र. संख्या- 19647/2009 में पारित निर्णय दिनांक15.10.2009 में इस न्यायालय ने प्रस्तर संख्या 8 में निम्नवत धारित किया: -

"8 प्रारंभ में, न्यायालय का नाम, वाद संख्या, राज्य बनाम ....अंतर्गत धारा .... पुलिस थाना .... जिला .... मुकदमा अपराध संख्या ..../2009 भी मुद्रित किया गया है एवं किसी कर्मचारी द्वारा वाद संख्या, अभियुक्त का नाम, धारा, पुलिस थाना, जिला इत्यादि का उल्लेख करते हुए रिक्त स्थान की पूर्ति कर दी गई है। उपरोक्त मुद्रित सामग्री के नीचे हस्तलिपि में निम्नलिखित वाक्य का उल्लेख किया गया है ***"अभियुक्त अंकित की गिरफ्तारी मा0 उच्च न्यायालय द्वारा। Crl. Writ No.19559/08 अंकित बनाम राज्य में पारित आदेश दिनांक 5.11.08 द्वारा आरोप पत्र प्राप्त होने तक स्थगित थी।"***

उपरोक्त वाक्य के नीचे, श्री तालेवर सिंह, तत्कालीन न्यायिक मजिस्ट्रेट-III के नाम वाली न्यायालय की मुहर अंकित है एवं विद्वान मजिस्ट्रेट ने अपने नाम पर अपने संक्षिप्त हस्ताक्षर किये हैं। जिस रीति से प्रश्नगत आदेश तैयार किया गया है, उससे ज्ञात होता है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने इस आदेश को पारित करते समय अपने न्यायिक विवेक का तनिक भी उपयोग नहीं किया एवं न्यायालय के किसी कर्मचारी द्वारा रिक्त स्थान भरने के पश्चात, उन्होंने न्यायालय की मुहर पर अपना आद्याक्षर अंकित कर दिया है। न्यायिक आदेश पारित करने की यह प्रक्रिया पूर्णतः अवैध है। यदि तर्क हेतु, यह मान भी लिया जाए कि मुद्रित प्रारूप पर रिक्त स्थान विद्वान मजिस्ट्रेट की लिखावट में भरे गए थे, तब भी प्रश्नगत आदेश अवैध एवं अमान्य होगा क्योंकि किसी अन्य न्यायिक आदेश का संज्ञान लेने का आदेश मुद्रित प्रारूप पर रिक्त स्थान भरकर पारित नहीं किया जा सकता है। हालाँकि, जैसा कि ***मेघ नाथ गुप्ता एवं एक अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य, 2008 (62) एसीसी 826*** *के वाद में इस न्यायालय द्वारा धारित किया गया था, जिसमें* ***उप मुख्य नियंत्रक आयात एवं निर्यात बनाम रोशन लाल अग्रवाल, 2003 (4) एसीसी 686 (एससी), उ.प्र. प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड बनाम मोहन मीकिन्स, 2000 (2) जेआईसी 159 (एससी): एआईआर 2000 एससी 1456 एवं कांति भद्रा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 2000 (1) जेआईसी 751 (एससी) : 2000 (40) एसीसी 441 (एससी)*** *के वादों को संदर्भित किया गया है, मजिस्ट्रेट को आरोपपत्र पर संज्ञान लेते समय विस्तृत तर्कसंगत आदेश पारित करने की आवश्यकता नहीं है, किंतु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मुद्रित प्रारूप पर रिक्त स्थान भरकर संज्ञान लेने का आदेश पारित किया जा सकता है। आरोपपत्र पर संज्ञान लेने के आदेश सहित किसी भी न्यायिक आदेश को पारित करते समय, न्यायालय को न्यायिक विवेक का प्रयोग करने की आवश्यकता होती है एवं यहाँ तक कि संज्ञान लेने का आदेश भी यांत्रिक तरीके से पारित नहीं किया जा सकता है। इसलिए, प्रश्नगत आदेश रद्द किए जाने योग्य है एवं न्यायिक विवेक का प्रयोग करने के पश्चात आरोप पत्र पर नया आदेश पारित करने हेतु वाद को विचारण न्यायालय में वापस भेजा जाना चाहिए।"*

वर्ष2010 के आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 3209 में पारित कवी अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य के वाद में धारा 190 (1) (बी) के अंतर्गत मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध का संज्ञान लेते हुए अन्वेषण अधिकारी द्वारा मुद्रित प्रारूप पर एकत्रित सामग्री के प्रति अपने न्यायिक विवेक का उपयोग न किए जाने को अवैध निर्धारित किया गया है।

अब्दुल रशीद एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2010 (3) जेआईसी 761 (All) के उक्त वाद में दर्ज प्रासंगिक टिप्पणियाँ एवं निष्कर्ष नीचे उद्धृत किए गए हैं:-

"6. जब भी कोई पुलिस रिपोर्ट या परिवाद मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत की जाती है, तब मजिस्ट्रेट को संज्ञान लेने से पूर्व रिपोर्ट या परिवाद में उल्लिखित तथ्यों पर अपने विवेक का प्रयोग करना होता है। यदि वाद के तथ्यों पर अपने विवेक का प्रयोग करने के उपरांत, मजिस्ट्रेट का यह निष्कर्ष है कि वाद में अग्रिम कार्यवाही हेतु पर्याप्त सामग्री है तो वह संज्ञान ले सकता है। वर्तमान वाद में, सम्मन आदेश एक सादे कागज पर सम्मन आदेश की तैयार मुहर लगाकर पारित किया गया है एवं विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने मात्र तैयार आदेश के रिक्त भाग में वाद में निर्धारित अगली तारीख दर्ज की गई। निश्चय ही विद्वान मजिस्ट्रेट ने दिनांक 20.12.2018 को आदेश पारित करने से पूर्व वाद के तथ्यों पर अपना विवेक प्रयोग नहीं किया था, अतः प्रश्नगत आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता है।

7. न्यायिक आदेशों को मुद्रित प्रारूप पर रिक्त स्थान की पूर्ति कर या सादे कागज पर आदेश की तैयार मुहर आदि लगाकर यांत्रिक तरीके से पारित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। ऐसी प्रवृत्ति को हतोत्साहित किया जाना चाहिए। इसे बनाये रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

अनुवाद

यह न केवल वाद के तथ्यों पर विवेक प्रयोग न करने के दोष को दर्शाता है, अपितु स्थापित न्यायिक मानदंडों के भी विरुद्ध है। अतःइस परिपाटी को तत्काल समाप्त किया जाना चाहिए।"

उपरोक्त के दृष्टिगत, इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि न्यायिक विवेक का प्रयोग किए बिना रिक्त स्थान भरकर मुद्रित प्रारूप पर आदेश पारित करने से संबंधित न्यायिक अधिकारियों का आचरण आपत्तिजनक है एवं निंदनीय हैं । किसी आपराधिक वाद में किसी आरोपी को तलब करना एक गंभीर मामला है। आदेश में यह दर्शाया जाना चाहिए कि मजिस्ट्रेट ने तथ्यों के साथ-साथ प्रयोज्य विधि पर भी अपने विवेक का प्रयोग किया था, जबकि प्रश्नगत समन आदेश न्यायिक विवेक प्रयोग किये बिना यांत्रिक रीति से पारित किया गया था, बिना इस तथ्य से संतुष्ट हुए कि वादी द्वारा कथित आरोपों के आधार पर आवेदकों के विरुद्ध प्रथमदृष्टया कौन सा अपराध गठित होता है। विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित प्रश्नगत संज्ञान आदेश स्थापित न्यायिक मानदण्डों के विरुद्ध है।

उपरोक्त उल्लिखित निर्णयों के आलोक में, यह पूर्णतः स्पष्ट है कि ASJ/POCSO-II,रायबरेली द्वारा पारित दिनांक 08.02.2019 का आदेश माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है। परिणामस्वरूप, दिनांक 08.02.2019 के संज्ञान/सम्मन आदेश विधिक रूप से पोषणीय नहीं है क्योंकि मजिस्ट्रेट अपने निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में असफल रहा, जिसका परिणाम न्याय की विफलता है ।

तदनुसार, वर्तमान आपराधिक प्रकीर्ण आवेदन अन्तर्गत धारा 482 दं.प्र.सं. स्वीकृत किया जाता है। प्रश्नगत समन आदेश दिनांक 08.02.2019 जो वर्ष 2019 के वाद संख्या-21 उत्तर प्रदेश राज्य बनाम कृष्ण कुमार एवं अन्य अन्तर्गत भा.द.वि. की धारा 363, 366 एवं लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 16 एवं 17 के अंतर्गत, जो ASJ/POCSO-II रायबरेली के समक्ष लंबित है, को रद्द किया जाता है।

ASJ/POCSO-II रायबरेली को इस बिंदु पर नए सिरे से संज्ञान लेने एवं इस आदेश की प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से दो माह की अवधि में आवेदकों को तलब करने एवं इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों के साथ उपरोक्त उल्लिखित निर्णयों में निहित निदेशों के आलोक में विधि अनुरुप उचित आदेश पारित करने हेतु वाद को वापस भेजा जाता है।

पक्षकार, उच्च न्यायालय इलाहाबाद की आधिकारिक वेबसाइट से डाउनलोड किए गए ऐसे आदेश की प्रमाणित प्रति या कंप्यूटर जनित प्रति या उच्च न्यायालय, इलाहाबाद की रजिस्ट्री द्वारा निर्गत प्रमाणित प्रति दाखिल करेंगे।

संबंधित न्यायालय/प्राधिकरण/कर्मचारी, उच्च न्यायालय इलाहाबाद की आधिकारिक वेबसाइट से आदेश की ऐसी कम्प्यूटरीकृत प्रति की प्रामाणिकता को सत्यापित व लिखित रूप में ऐसे सत्यापन की घोषणा करेगा।

(2023) 1 ILRA 707

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

धारा 482 के तहत आवेदन संख्या- 7151 वर्ष 2022

मदन पाल सिंह ... **आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ... **विरोधी पक्ष**

आवेदक के वकील:
श्री संतोष कुमार राय, श्री वी.पी.श्रीवास्तव (सीनियर एडवोकेट)

विरोधी पक्षों के लिए वकील:
शासकीय अधिवक्ता

A. आपराधिक कानून – आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 190 () (बी), 200, 202 और 204 – अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी और इसके खिलाफ कोई विरोध याचिका दायर नहीं की गई थी – मजिस्ट्रेट की शक्ति इसे आपराधिक शिकायत मामला मानने के लिए, कितनी दूर तक झूठ है – माना जाता है, पुलिस रिपोर्ट के मामले में कि अभियुक्त के खिलाफ कोई मामला नहीं बनता है, मजिस्ट्रेट पुलिस द्वारा निकाले गए निष्कर्ष की अनदेखी कर सकता है और धारा 190 (1) (बी) द.प्र.स के तहत संज्ञान ले सकता है और प्रक्रिया जारी कर सकता है या

विकल्प में वह मूल शिकायत का संज्ञान ले सकता है और शिकायतकर्ता और उसके गवाहों की जांच कर सकता है और उसके बाद आरोपी को प्रक्रिया जारी कर सकता है, यदि उसकी राय है कि आरोपी के खिलाफ आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार हैं – इंडिया कैरेट प्राइवेट लिमिटेड का मामला जिस पर भरोसा किया गया है। (पैरा 14)

B. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 197 – पूर्व स्वीकृति का संरक्षण – आधिकारिक कार्य करते समय पुलिस कर्मियों द्वारा दावा – गिरफ्तारी के बाद पुलिस कर्मियों द्वारा मृतक को अस्पताल ले जाना, क्या इसे आधिकारिक कर्तव्य के रूप में परिभाषित किया जाएगा – आयोजित, आवेदक का कार्य आधिकारिक कर्तव्य से जुड़ा था – इसके अलावा, आवेदक के खिलाफ आगे बढ़ने के लिए धारा 197 द.प्र.स के तहत एक बार था, एक पुलिस कर्मी, जब उसके द्वारा कथित अपराध किया गया था, तो सरकारी कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करते समय या कार्य करने का इरादा रखते हुए, कोई भी न्यायालय पूर्व मंजूरी के अलावा ऐसे अपराध का संज्ञान नहीं लेगा - आवेदक के खिलाफ शुरू की गई आपराधिक कार्यवाही को गलत और अवैध ठहराया गया था। (पैरा 19, 20 और 21)

आवेदन की अनुमति दी। (ई-1)

<u>उदधृत मामलों की सूची:-</u>

1. एच.एस. बैंस बनाम द सेंट (केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़); एआईआर 1980 एससी 1883

2. अभिनंदन झा और अन्य बनाम दिनेश मिश्रा; एआईआर 1968 एससी 117

3. इंडिया कैरेट प्राइवेट लिमिटेड बनाम सेंट ऑफ कर्ण; 1989(2) एससीसी 132

4. सेंट ऑफ हर. और अन्य बनाम चौधरी भजन लाल और अन्य; एआईआर 1992 एससी 604

5. डी. देवराज बनाम ओवैस सबीर हुसैन; (2020) 7 एससीसी 695

6. राजीव थापर और अन्य बनाम मदन लाल कपूर; (2013) 3 एससीसी 330

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा प्रदत्त)

1. प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार करने के लिए, मामले के संक्षिप्त तथ्यों को रिकॉर्ड पर रखना आवश्यक है।

2. दिनांक 02-12-1999 को एक पुलिस दल ने सामान्य गश्त ड्यूटी पर तीन व्यक्तियों को रोका और गोलीबारी के बाद दो व्यक्तियों को पकड़ा गया लेकिन एक व्यक्ति भागने में सफल रहा। उन्होंने बताया कि दो घायलों को गिरफ्तार कर लिया गया है और मामला अपराध संख्या 228 वर्ष 1999, भ.द.स की धारा 307 और 1999 के केस क्राइम नंबर 229 के साथ-साथ 1999 की केस क्राइम नंबर 230, धारा 25 आर्म्स एक्ट के तहत, थाना रोजा, जिला शाहजहांपुर में मुकदमा दर्ज किया गया है और आरोपी याकूब उर्फ गुलाम ख्वाजा और आरिश को पुलिस हिरासत में भेज दिया गया है। उन्हें अस्पताल में भर्ती कराया गया और उनका उपचार चल रहा था और डॉक्टरों की सलाह पर एक अभियुक्त याकूब की केजीएमसी लखनऊ की स्पाइनल सर्जरी यूनिट जाते समय 04.12.1999 को मृत्यु हो गई। पोस्टमार्टम कराया गया, जिसमें उसके शरीर पर पांच चोट के निशान पाए गए।

3. इन परिस्थितियों में, मृतक याकूब की पत्नी सरून ने पुलिस दल के खिलाफ मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, शाहजहांपुर के समक्ष द.प्र.स की धारा 156 (3) के तहत एक आवेदन दायर किया, जिन्होंने गोलीबारी के बाद मृतक को गिरफ्तार कर लिया है, इस आरोप के साथ कि यह हिरासत में यातना के कारण मौत थी। उक्त आवेदन दिनांक 02.02.2001 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया था, हालांकि दिनांक 09.02.2001 के आदेश के तहत उसके संशोधन की अनुमति दी गई थी और उसके बाद 23.02.2001 को वर्तमान आवेदक और अन्य पुलिस कर्मियों के खिलाफ धारा 147, 148, 149, 302 अधीन भ.द.स , पुलिस स्टेशन रोजा, जिला शाहजहांपुर में प्राथमिकी दर्ज की गई थी। जांच के बाद दिनांक 24-10-2001 को एक अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। मानव अधिकार आयोग द्वारा मृतक-अभियुक्त की पत्नी द्वारा दायर एक आवेदन के आधार पर एक नोटिस भी जारी किया गया था जिसमें एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी कि मृतक को सही तरीके से गिरफ्तार किया गया था और उचित उपचार के बावजूद गिरफ्तारी के दौरान लगी चोटों के कारण उसकी मृत्यु हो गई।

4. दिनांक 24.10.2001 की उपरोक्त अंतिम रिपोर्ट विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई थी, हालांकि, दिनांक 03.01.2002 के आदेश के तहत एक नाराजी याचिका को बुलाए बिना अदालत ने एक आपराधिक शिकायत मामला दर्ज किया और शिकायतकर्ता यानी सरोन, मृतक की पत्नी को नोटिस जारी किया और उसके बाद धारा 200 द.प्र.स के तहत उसका बयान दर्ज किया गया और साथ ही द.प्र.स की धारा 202 के तहत दो गवाहों के बयान भी दर्ज किए गए और और परिणामस्वरूप द.प्र.स की धारा 204 के तहत पारित दिनांक 28.09.2010 के आक्षेपित आदेश द्वारा, आवेदक और अन्य व्यक्तियों के खिलाफ धारा 147, 148, 149, 302 भ.द.स के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए समन जारी किए गए थे।

5. उपरोक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि के तहत और प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों के आधार पर इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए मुद्दे हैं, कि क्या बिना किसी विरोध याचिका के एक मजिस्ट्रेट अंतिम रिपोर्ट को अस्वीकार करते समय इसे आपराधिक शिकायत का मामला मान सकता है और आगे

अनुवादित

धारा 200 और 202 द.प्र.स के तहत दर्ज बयानों के आधार पर आरोपी व्यक्तियों को बुलाने के लिए द.प्र.स की धारा 204 के तहत एक आदेश पारित कर सकता है और यदि उपरोक्त मुद्दे का उत्तर सकारात्मक है, क्या वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, द.प्र.स की धारा 204 के तहत पारित आदेश कानूनी रूप से टिकाऊ है या नहीं, साथ ही क्या आवेदक एक पुलिस कर्मी होने के नाते धारा 197 द.प्र.स के तहत विचाराधीन आपराधिक कार्यवाही शुरू करने से सुरक्षा का हकदार है?

6. श्री वीपी श्रीवास्तव, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री संतोष कुमार राय द्वारा सहायता प्राप्त, आवेदक के विद्वान वकील ने जोर देकर आग्रह किया कि मृतक अभियुक्त को अन्य आरोपियों के साथ घायल हालत में गोलीबारी के बाद 02.12.1999 को गिरफ्तार किया गया था और उन्हें तुरंत मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया था, जिन्होंने दिनांक 02.12.1999 के आदेश द्वारा अभियुक्त की रिमांड मंजूर की थी कि उसे गंभीर चोटें आई हैं और उसे अस्पताल में भर्ती कराया गया है और आगे के निर्देश के साथ कि अस्पताल से छुट्टी आरोपी को हिरासत में भेज दिया जाए। वरिष्ठ वकील ने चिकित्सा उपचार रिपोर्ट पर भरोसा किया और दो दिनों के बाद 04.12.1999 को उन्हें दूसरे अस्पताल (केजीएमसी, लखनऊ में स्पाइनल केयर यूनिट) में रेफर कर दिया गया, हालांकि अस्पताल जाते समय उनकी मृत्यु हो गई और केजीएमसी, लखनऊ में मृत लाया गया। इसलिए, रिमांड के आदेश को किसी भी विवाद या चुनौती के बिना या अन्यथा पुलिस कर्मियों द्वारा रिमांड के दौरान यातना का कोई भी आरोप टिकाऊ नहीं है जब आरोपी को गिरफ्तारी के तुरंत बाद, अस्पताल में भर्ती कराया गया था। पुलिस ने मामले की निष्पक्ष जांच कर फाइनल रिपोर्ट सौंप दी है। गिरफ्तारी के दौरान लगी चोटों के कारण मृतक की मृत्यु हो गई और हिरासत में यातना के किसी भी आरोप झूठे और निराधार थे। कानूनी मुद्दे पर विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने एचएस बैंस बनाम राज्य (चंडीगढ़ संघ राज्य), एआईआर 1980 एससी 1883 पर भरोसा किया ताकि यह दिखाया जा सके कि गिरफ्तारी, जांच, पुलिस रिपोर्ट और अंतिम रिपोर्ट दाखिल करने के बाद मजिस्ट्रेट द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया के संबंध में सही प्रक्रिया क्या होनी चाहिए।

7. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने अभिनंदन झा और अन्य बनाम दिनेश मिश्रा, एआईआर 1968 एससी 117 के पैराग्राफ 15 और 21 पर भरोसा किया, जिन्हें निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"15. फिर प्रश्न यह है कि जब मजिस्ट्रेट पुलिस द्वारा धारा 173 के अंतर्गत प्रस्तुत की गई रिपोर्ट पर विचार कर रहा है कि किसी अभियुक्त को विचारण के लिए भेजने का कोई मामला नहीं बनता है, तो जैसा कि हमने पहले ही संकेत दिया है, उस रिपोर्ट को प्रश्नगत क्षेत्र में अंतिम रिपोर्ट कहा जाता है? यहां तक कि उन मामलों में, यदि मजिस्ट्रेट उक्त रिपोर्ट से सहमत होता है, तो वह अंतिम रिपोर्ट को स्वीकार कर सकता है और कार्यवाही को बंद कर सकता है। लेकिन ऐसे उदाहरण हो सकते हैं जब मजिस्ट्रेट अंतिम रिपोर्ट पर राय करने पर यह विचार कर सकता है कि पुलिस द्वारा बनाई गई राय पूर्ण और मुकम्मल जांच पर आधारित नहीं है, जिस मामले में हमारी राय में मजिस्ट्रेट के पास धारा 156 (3) के तहत पुलिस को आगे की जांच करने के लिए निर्देश देने का पर्याप्त अधिकार होगा। अर्थात्, यदि मजिस्ट्रेट अंतिम रिपोर्ट पर विचार करने के बाद महसूस करता है कि जांच असंतोषजनक है, या अधूरी है, या आगे की जांच की गुंजाइश है, तो यह मजिस्ट्रेट के लिए खुला होगा कि वह अंतिम रिपोर्ट को स्वीकार करने से इनकार कर दे और पुलिस को धारा 156 (3) के तहत आगे की जांच करने का निर्देश दे। ऐसी आगे की जांच के बाद पुलिस उनके द्वारा की गई आगे की जांच के आधार पर आरोप पत्र प्रस्तुत कर सकती है अथवा पुन अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत कर सकती है। यदि, अंततः, मजिस्ट्रेट यह राय बनाता है कि अंतिम रिपोर्ट में निर्धारित तथ्य, अपराध का गठन करते हैं, तो वह धारा 190 (1) (सी) के तहत अपराध का संज्ञान ले सकता है, भले ही पुलिस की विपरीत राय हो, जो अंतिम रिपोर्ट में व्यक्त की गई थी।

"21. इन दो अपीलों में एक और तथ्य पर ध्यान देना होगा। यह बहुत स्पष्ट नहीं है कि क्या मजिस्ट्रेट ने इनमें से प्रत्येक मामले में, संबंधित प्रतिवादियों द्वारा दायर नाराजी याचिकाओं को शिकायत के रूप में मानने का विकल्प चुना है, क्योंकि, हम यह नहीं पाते हैं कि मजिस्ट्रेट ने संहिता में इंगित उपयुक्त प्रक्रिया को अपनाया है, जब वह किसी अपराध का संज्ञान लेता है, तो उसे की गई शिकायत पर। इसलिए, यह मानते हुए कि इनमें से प्रत्येक मामले में मजिस्ट्रेट का आदेश, पुलिस को आरोप-पत्र दाखिल करने का निर्देश देना, अधिकार क्षेत्र के बिना है, हम यह स्पष्ट करते हैं कि यह मजिस्ट्रेट के लिए खुला है कि वह संबंधित नाराजी याचिकाओं को शिकायतों के रूप में माने और इस फैसले में कानून के अनुसार, और हमारे द्वारा व्यक्त किए गए विचारों के आलोक में आगे की कार्यवाही करे।

8. इंडिया कैरेट प्राइवेट लिमिटेड बनाम कर्नाटक राज्य, 1989 (2) एससीसी 132 के पैरा 16 पर भी भरोसा रखा गया था, कि:

"16. इसलिए, अब स्थिति अच्छी तरह से तय है कि धारा 173 (2) के तहत एक पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर एक मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 190 (1) (बी) के तहत अपराध का संज्ञान लेने का हकदार है, भले ही पुलिस रिपोर्ट इस आशय की हो कि आरोपी के खिलाफ कोई मामला नहीं बनता है। मजिस्ट्रेट जांच के दौरान पुलिस द्वारा जांचे गए गवाहों के बयानों को ध्यान में रख सकता है और शिकायत

किए गए अपराध का संज्ञान ले सकता है और आरोपी को प्रक्रिया जारी करने का आदेश दे सकता है। धारा 190 (1) (बी) यह नहीं कहती है कि मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान तभी ले सकता है जब जांच अधिकारी यह राय देता है कि जांच में आरोपी के खिलाफ मामला बनता है। मजिस्ट्रेट जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष की अनदेखी कर सकता है; और स्वतंत्र रूप से जांच से उभरने वाले तथ्यों पर अपना दिमाग लगाकरऔर धारा 190 (1) (बी) के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए मामले का संज्ञान ले सकता है, यदि वह उचित समझता है और अभियुक्त को प्रक्रिया जारी करने का निर्देश दे सकता है। मजिस्ट्रेट ऐसी स्थिति में धारा 190 (1) (बी) के तहत किसी मामले का संज्ञान लेने के लिए संहिता की धारा 200 और 202 में निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने के लिए बाध्य नहीं है, हालांकि यह उसके लिए धारा 200 या धारा 202 के तहत भी कार्य करने के लिए खुला है। इसलिए, उच्च न्यायालय ने यह विचार गलत किया कि द्वितीय अतिरिक्त मुख्य मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट दूसरे प्रतिवादी के खिलाफ मामला दर्ज करने और उसे समन जारी करने का आदेश देने का हकदार नहीं था।

9. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने हरियाणा राज्य और अन्य बनाम चौधरी भजन लाल और अन्य, एआईआर 1992 एससी 604 पर भरोसा करते हुए कहा कि "जहां एक आपराधिक कार्यवाही स्पष्ट रूप से दुर्भावनापूर्ण रूप से दुर्भावना के साथ की जाती है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से अभियुक्त पर प्रतिशोध लेने के लिए एक गुप्त उद्देश्य के साथ शुरू की जाती है और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे नाराज करने की दृष्टि से", ऐसी आपराधिक कार्यवाही को उच्च न्यायालय द्वारा निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करके रद्द किया जा सकता है।

10. श्री वी.पी. श्रीवास्तव, वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि आवेदक एक पुलिस कर्मी है, इसलिए, उसके कार्यों को द.प्र.स की धारा 197 के साथ-साथ 30.06.1975 के सरकारी आदेश के आलोक में संरक्षित किया गया है, जिसमें कहा गया है कि सुरक्षा सभी पुलिस बलों को दी गई है और चूंकि कोई पूर्व मंजूरी नहीं थी, इसलिए आपराधिक कार्यवाही अपने आप में अवैध है।

11. इसके विपरीत, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान एजीए-। श्री परितोष मालवीय ने कानूनी मुद्दे पर अपनी सहायता प्रदान की है कि आवेदक और अन्य पुलिस कर्मियों के खिलाफ गिरफ्तार व्यक्ति की हिरासत में यातना के बहुत गंभीर आरोप हैं, जिसकी बाद में मृत्यु हो गई। मजिस्ट्रेट केवल दर्शक बनकर नहीं रह सकता है और चूंकि उसने इसे एक शिकायत का मामला माना है, इसलिए धारा 200 और 202 द.प्र.स के तहत दर्ज बयानों पर विचार करने के लिए आवेदक और अन्य को बुलाने की कोई अवैधता नहीं थी। द.प्र.स की धारा 197 के तहत दी गई सुरक्षा किसी भी अपराध तक सीमित है जो केवल आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करते समय या कार्य करने के लिए कथित रूप से किया गया है, हालांकि, आरोप ऐसे हैं कि इसे उनके आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में कार्य नहीं कहा जा सकता है।

12. पक्षकारों के विद्वान वकील को सुना, रिकॉर्ड और लिखित प्रस्तुतियों का अवलोकन किया।

13. पहले मुद्दे पर विचार करने के लिए, क्या एक मजिस्ट्रेट बिना किसी नाराजी याचिका के अंतिम रिपोर्ट को अस्वीकार करते समय इसे आपराधिक शिकायत का मामला मान सकता है और आगे बढ़ सकता है, यह इंडिया कैरेट प्राइवेट लिमिटेड (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट द्वारा पारित निर्णय के पैरा 17 को संदर्भित करने के लिए प्रासंगिक होगा:

"17. तथ्य यह है कि इस मामले में जांच मजिस्ट्रेट को अधिमानित की गई शिकायत से उत्पन्न नहीं हुई थी, लेकिन पुलिस को दी गई रिपोर्ट के अनुसार बनाई गई थी, किसी भी तरह से स्थिति को नहीं बदलेगी। यहां तक कि अगर अपीलकर्ता ने विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत की होती और मजिस्ट्रेट ने धारा 156 (3) के तहत जांच का आदेश दिया होता, तो पुलिस को धारा 173 (2) के तहत एक रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होती। यह तुफा राम और अन्य बनाम किशोर सिंह, [1978] 1 एससीआर 615 में अवधारित किया गया है कि यदि पुलिस, जांच करने के बाद, एक रिपोर्ट भेजती है कि आरोपी के खिलाफ कोई मामला नहीं बनाया गया था, तो मजिस्ट्रेट पुलिस द्वारा निकाले गए निष्कर्ष की अनदेखी कर सकता है और धारा 190 (1) (बी) के तहत मामले का संज्ञान ले सकता है और प्रक्रिया जारी कर सकता है या विकल्प में वह मूल शिकायत का संज्ञान ले सकता है और शिकायतकर्ता और उसके गवाहों की जांच कर सकता है और उसके बाद आरोपी को प्रक्रिया जारी करें, यदि उसकी राय है कि मामले को आगे बढ़ाया जाना चाहिए।

(जोर दिया गया)

14. यह विवाद में नहीं है कि वर्तमान मामले में शुरू में द.प्र.स की धारा 156 (3) के तहत दायर एक आवेदन को खारिज कर दिया गया था, लेकिन इस पर कि एफआईआर दर्ज करने के लिए पुनरीक्षण में पारित एक आदेश पर जांच की गई थी, लेकिन एक अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। इसलिए, मजिस्ट्रेट के समक्ष द.प्र.स की धारा 156 (3) के तहत एक आवेदन के रूप में एक शिकायत पहले से ही रिकॉर्ड पर थी। हालांकि, आम तौर पर इन परिस्थितियों में जब एक अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी, तो शिकायतकर्ता को एक नोटिस जारी किया जा सकता है जो एक विरोध याचिका दायर कर सकता है, जिसे शिकायत के रूप में माना जा सकता है, हालांकि,

जैसा कि इंडिया कैरेट प्राइवेट लिमिटेड (सुप्रा) के उपरोक्त संदर्भित पैराग्राफ में संदर्भित है, यहां तक कि विरोध याचिका के अभाव में भी द.प्र.स की धारा 156 (3) के तहत पहले से दायर शिकायत को आपराधिक मामला माना जा सकता है और मजिस्ट्रेट आगे बढ़ सकता है शिकायतकर्ता को द.प्र.स की धारा 200 के तहत अपना बयान और धारा 202 द.प्र.स के तहत गवाहों के बयान दर्ज करने होंगे और यदि आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार हैं, तो वह धारा 204 द.प्र.स के तहत समन जारी कर सकता है। जैसा कि इंडिया कैरेट प्राइवेट लिमिटेड (सुप्रा) में उल्लेख किया गया है कि पुलिस रिपोर्ट के मामले में कि आरोपी के खिलाफ कोई मामला नहीं बनता है, मजिस्ट्रेट पुलिस द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को नजरअंदाज कर सकता है और द.प्र.स की धारा 190 (1) (बी) के तहत संज्ञान ले सकता है और प्रक्रिया जारी कर सकता है या विकल्प में वह मूल शिकायत का संज्ञान ले सकता है और शिकायतकर्ता और उसके गवाहों की जांच कर सकता है और उसके बाद आरोपी को प्रक्रिया जारी कर सकता है, यदि उसकी राय है कि अभियुक्त के खिलाफ आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार हैं और वर्तमान मामले में मजिस्ट्रेट ने इसी तरह की प्रक्रिया अपनाई है और द.प्र.स की धारा 156 (3) के तहत दायर मूल शिकायत को शिकायत माना गया और अंतिम रिपोर्ट को अस्वीकार करने के बाद, धारा 200 और 202 द.प्र.स के तहत दर्ज बयानों पर विचार करने के बाद प्रक्रिया जारी करने के लिए आगे बढ़े कि धारा 204 द.प्र.स के तहत आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार हैं।

15. आदेश पत्र में यह भी उल्लेख किया गया है कि 03.01.2002 को मजिस्ट्रेट ने आदेश पारित किया कि अंतिम रिपोर्ट प्राप्त हो, एक आपराधिक मामला दर्ज किया जाए और शिकायतकर्ता को नोटिस जारी किया जाए। इसके बाद शिकायतकर्ता के अनुरोध पर उसका बयान दर्ज किया गया और गवाहों के बयान भी दर्ज किए गए और बयानों के आधार पर समन जारी किए गए। इसलिए, संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा कोई प्रक्रियात्मक अनियमितता या अवैधता नहीं अपनाई गई थी क्योंकि कानून की प्रक्रिया का कोई दुरुपयोग नहीं हुआ था।

16. जैसा कि पहले जारी किए गए का उत्तर सकारात्मक में दिया गया है, न्यायालय अब दूसरे मुद्दे पर विचार करने के लिए आगे बढ़ता है, क्या आक्षेपित आदेश कानूनी रूप से टिकाऊ है या नहीं और यह कि आवेदक एक पुलिस कर्मी होने के नाते धारा 197 द.प्र.स के तहत संरक्षित है या नहीं?

17. इस मुद्दे पर प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार करने के लिए, मैंने शिकायतकर्ता के साथ-साथ गवाहों के बयानों को ध्यान से देखा है। शिकायतकर्ता ने आरोप लगाया है कि मृतक, उसके पति को अवैध रूप से गिरफ्तार किया गया था और यह हिरासत में प्रताड़ना का मामला था। वह आगे कहती है कि जब पुलिस कर्मी उसके पति को लखनऊ ले जा रहे थे, तो उसने हिरासत के दौरान उस पर की गई यातना के बारे में बताया। प्रत्यक्षदर्शियों ने मृतक पर हिरासत में यातना देने के आरोप को भी बताया कि यह पीड़िता द्वारा उन्हें सूचित किया गया था। उपरोक्त बयानों पर विचार करते हुए, हालांकि आवेदक और अन्य पुलिस कर्मियों के खिलाफ एक प्रथम दृष्टया मामला बनता है, हालांकि, तथ्य और दस्तावेज जो इस रिकॉर्ड का हिस्सा हैं कि मृतक को सह-अभियुक्तों के साथ गोलीबारी के बाद घायल स्थिति में पुलिस छापे के दौरान गिरफ्तार किया गया था और उसकी चिकित्सकीय जांच की गई थी कि उसे गंभीर चोटें आई हैं। चिकित्सा उपचार के भी सबूत हैं और साथ ही रिकॉर्ड के अनुसार पीड़ित को 02.11.1999 को गिरफ्तार किया गया था और उसे तुरंत अस्पताल में भर्ती कराया गया था और रिमांड का आदेश अस्पताल से छुट्टी मिलने के बाद ही निष्पादित किया गया था, लेकिन उसकी स्थिति को देखते हुए छुट्टी से पहले उसे केजीएमसी, लखनऊ भेजा गया था जब यात्रा के दौरान उसकी मृत्यु हो गई। इसलिए, मृत्यु का कारण सीधे तौर पर हिरासत में यातना के कारण नहीं माना जा सकता है, यदि कोई हो।

18. रिमांड के आदेश में मजिस्ट्रेट ने पीड़िता की स्थिति उसके साथ बातचीत के बाद बताई थी। इसलिए, प्रथम दृष्टया यह नहीं कहा जा सकता है कि पुलिस कर्मियों ने अपने आधिकारिक कर्तव्य से परे कोई कार्य किया है। संबंधित मजिस्ट्रेट को समन जारी करने से पहले विचार करना चाहिए था कि क्या द.प्र.स की धारा 197 के तहत संरक्षण दिया जा सकता है कि पूर्व अनुमति के बिना कोई संज्ञान नहीं लिया जा सकता है। हालांकि, मजिस्ट्रेट ने इस पहलू पर विचार करने का प्रयास भी नहीं किया है। इस संबंध में डी. देवराज बनाम ओवैस सबीर हुसैन (2020) 7 एससीसी 695 में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के कुछ पैराग्राफ को पुन: प्रस्तुत करना प्रासंगिक होगा:

"65. कर्नाटक पुलिस अधिनियम की धारा 170 के साथ पठित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के तहत एक पुलिस अधिकारी द्वारा कथित रूप से किए गए अपराध के मनोरंजन और/या संज्ञान लेने के लिए मंजूरी की आवश्यकता से संबंधित कानून, इस न्यायालय द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ ऊपर उल्लिखित अपने निर्णयों द्वारा अच्छी तरह से तय किया गया है।

66. पुलिस अधिकारी को उत्पीड़नकारी, बदला का, प्रतिशोधी और तुच्छ कार्यवाही का सामना करने से बचाने के लिए एक पुलिस अधिकारी पर सरकारी कर्तव्य के निर्वहन से संबंधित किसी भी कार्य के लिए मुकदमा चलाने के लिए सरकार की मंजूरी अनिवार्य है। मुकदमा चलाने के लिए सरकार से मंजूरी की आवश्यकता एक ईमानदार

पुलिस अधिकारी को आपराधिक कार्रवाई शुरू करके प्रतिशोधी प्रतिशोध के डर के बिना अपने आधिकारिक कर्तव्यों का कुशलतापूर्वक निर्वहन करने का विश्वास दिलाएगी, जिससे उसे कर्नाटक पुलिस अधिनियम की धारा 170 के साथ पठित आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के तहत संरक्षित किया जाएगा। साथ ही, यदि पुलिसकर्मी ने कोई गलत कार्य किया है, जो एक आपराधिक अपराध है और उसे अभियोजन के लिए उत्तरदायी बनाता है, तो उस पर उपयुक्त सरकार से मंजूरी के साथ मुकदमा चलाया जा सकता है।

67. एक पुलिस अधिकारी द्वारा किया गया प्रत्येक अपराध कर्नाटक पुलिस अधिनियम की धारा 170 के साथ पठित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 को आकर्षित नहीं करता है। कर्नाटक पुलिस अधिनियम की धारा 170 के साथ पठित आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के तहत दी गई सुरक्षा की अपनी सीमाएं हैं। संरक्षण केवल तभी उपलब्ध होता है जब लोक सेवक द्वारा किया गया कथित कार्य उसके आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन से यथोचित रूप से जुड़ा हुआ हो और आधिकारिक कर्तव्य केवल आपत्तिजनक कार्य के लिए एक लबादा नहीं है। पूरी तरह से पुलिस अधिकारी के कर्तव्य के दायरे से बाहर किए गए अपराध को निश्चित रूप से मंजूरी की आवश्यकता नहीं होगी। एक उदाहरण का हवाला देते हुए, एक पुलिस कर्मी जो घरेलू नौकर पर हमला करता है या घरेलू हिंसा में लिप्त होता है, निश्चित रूप से सुरक्षा का हकदार नहीं होगा। हालांकि अगर कोई कार्य किसी दर्ज आपराधिक मामले की जांच के आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन से जुड़ा है, तो अधिनियम निश्चित रूप से कर्तव्य के रंग में है, चाहे वह कार्य कितना भी अवैध क्यों न हो।

68. यदि एक सरकारी कर्तव्य करने में एक पुलिसकर्मी ने कर्तव्य से अधिक काम किया है, लेकिन अधिनियम और आधिकारिक कर्तव्य के प्रदर्शन के बीच एक उचित संबंध है, तो तथ्य यह है कि कथित कार्य कर्तव्य से अधिक है, पुलिसकर्मी को वंचित करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं होगा उसके खिलाफ आपराधिक कार्रवाई शुरू करने के लिए सरकारी मंजूरी की सुरक्षा।

69. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 और कर्नाटक पुलिस अधिनियम की धारा 170 की भाषा और कार्यकाल यह बिल्कुल स्पष्ट करता है कि मंजूरी न केवल आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में किए गए कृत्यों के लिए आवश्यक है, यह आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में किए जाने वाले कार्य और/या ऐसे कर्तव्य या अधिकार के प्रकार या उससे अधिक के तहत किए गए कार्य के लिए भी आवश्यक है।

70. यह तय करने के लिए कि क्या मंजूरी आवश्यक है, परीक्षण यह है कि क्या अधिनियम आधिकारिक कर्तव्य से पूरी तरह से असंबद्ध है या आधिकारिक कर्तव्य के साथ उचित संबंध है या नहीं। किसी पुलिसकर्मी या किसी अन्य लोक सेवक के कृत्य के मामले में जो आधिकारिक कर्तव्य से असंबद्ध है, मंजूरी का कोई सवाल नहीं हो सकता है। हालांकि, अगर किसी पुलिसकर्मी के खिलाफ आरोप लगाया गया कृत्य यथोचित रूप से अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन से जुड़ा हुआ है, तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि पुलिसकर्मी ने अपनी शक्तियों के दायरे को पार कर लिया है और / या कानून के दायरे से परे काम किया है।

71. यदि पुलिसकर्मी के खिलाफ दायर की जाने वाली शिकायत में कथित रूप से किया गया कृत्य यथोचित रूप से कुछ आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन से जुड़ा हुआ है, तो उसका संज्ञान तब तक नहीं लिया जा सकता जब तक कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 और/या कर्नाटक पुलिस अधिनियम की धारा 170 के तहत उपयुक्त सरकार की अपेक्षित मंजूरी प्राप्त नहीं की जाती। - (जोर दिया गया)

19. जैसा कि अंतिम पैराग्राफ में चर्चा की गई है कि ऐसे दस्तावेज हैं जो दर्शाते हैं कि पीड़ित की गिरफ्तारी के बाद उसे घायल हालत में अस्पताल में भर्ती कराया गया था और उसका इलाज किया गया था। चोटें गंभीर प्रकृति की थीं और मजिस्ट्रेट ने रिमांड का आदेश देते हुए न केवल अस्पताल का दौरा किया बल्कि पीड़िता से बातचीत भी की। इसके अलावा, 02.12.1999 को पीड़ित की गिरफ्तारी के बाद उसे 02.12.1999 से 04.12.1999 तक अस्पताल में भर्ती रखा गया जब उसे स्पाइनल केयर यूनिट, केजीएमसी, लखनऊ में भेजा गया और 04.12.1999 को उक्त अस्पताल ले जाने के रास्ते में उसकी मृत्यु हो गई। इन परिस्थितियों में परीक्षण, चाहे पूर्व मंजूरी आवश्यक हो, एक संतुष्टि है कि कथित कार्य का आधिकारिक कर्तव्य के साथ उचित संबंध है या नहीं। रिकॉर्ड पर मौजूद दस्तावेजों की अनदेखी करते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि आवेदक, एक पुलिस कर्मी का कार्य आधिकारिक कर्तव्य से जुड़ा नहीं था।

20. इन परिस्थितियों में, चौधरी भजन लाल (सुप्रा) में उल्लिखित सिद्धांत पर विचार करते हुए, विशेष रूप से कि, "जहां संहिता या संबंधित अधिनियम के किसी भी प्रावधान (जिसके तहत एक आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) में संस्था या कार्यवाही जारी रखने के लिए एक स्पष्ट कानूनी प्रतिबंध लगाया गया है.....", और जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है कि वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में धारा 197 द.प्र.स के तहत आवेदक के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए एक रोक थी, किसी पुलिस कामक को, जब उसके द्वारा शासकीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करते समय या कार्य करने का तात्पर्यित

अपराध किया गया हो, तब कोई न्यायालय पूर्व स्वीकृति के बिना ऐसे अपराध का संज्ञान नहीं लेगा।

21. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, कथित अधिनियम का आवेदक के आधिकारिक कर्तव्य के साथ कम से कम उचित संबंध है, इसलिए, बिना किसी पूर्व मंजूरी के, जैसा कि द.प्र.स की धारा 197 के तहत आवश्यक है, आवेदक के खिलाफ शुरू की गई आपराधिक कार्यवाही गलत और अवैध है। इसके अलावा, शिकायतकर्ता द्वारा रिकॉर्ड पर दस्तावेजों का खंडन नहीं किया जाता है, इसलिए, राजीव थापर और अन्य बनाम मदन लाल कपूर (2013) 3 एससीसी 330 में सुप्रीम कोर्ट द्वारा पारित फैसले के मद्देनजर, इन दस्तावेजों को न्याय को सुरक्षित करने के लिए माना जा सकता है।

22. उपरोक्त चर्चा का परिणाम यह है कि 2010 के शिकायत केस नंबर 3848 (श्रीमती सैरून बनाम जितेंद्र नाथ सिंह और अन्य) में आवेदक के खिलाफ धारा 147, 148, 149, 302 आईपीसी के तहत शुरू की गई आपराधिक कार्यवाही के साथ-साथ सत्र न्यायाधीश, शाहजहांपुर द्वारा 2021 के आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 58 (मदन पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 10.01.2022 और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित सम्मन आदेश दिनांक 28.09.2010, शाहजहांपुर, इसके द्वारा रद्द कर दिया जाता है। हालांकि, शिकायतकर्ता को कानून के अनुसार आवेदक के खिलाफ कोई आपराधिक कार्यवाही शुरू करने के लिए द.प्र.स की धारा 197 के तहत आवश्यक मंजूरी मांगने की स्वतंत्रता होगी।

23. तदनुसार आवेदन की अनुमति दी जाती है।

(2023) 1 ILRA 714
मूल क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: लखनऊ 29.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह

धारा 482 के तहत आवेदन संख्या-8292 वर्ष 2018

डॉ. सैयद फरीद हैदर रिजवी @ डॉ. एस.एफ.एच रिजवी ...आवेदक

बनाम

सी.बी.आई. ...प्रतिपक्षी

आवेदक के अधिवक्ता:
नंदित कुमार श्रीवास्तव, प्रांजल कृष्ण

प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता:
बीरेश्वर नाथ

A. आपराधिक कानून – दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम, 1946 – धारा-6 – भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 – धारा-19 – लोक सेवक का अभियोजन – सी.बी.आई. उच्च न्यायालय के आदेश के अनुपालन में जांच शुरू की गई थी – सक्षम प्राधिकारी की कोई पूर्व स्वीकृति नहीं ली गई थी – प्रभाव – राज्य की सहमति कितनी दूर तक आवश्यक है – अवधारित, जहां किसी अपराध की जांच सी.बी.आई. को सौंपी गई है संवैधानिक न्यायालय द्वारा पारित आदेश और भूमिका के अनुसार यदि कोई लोक सेवक ऐसा अपराध करने के लिए अभियुक्त के रूप में आता है तो ऐसे लोक सेवक पर मुकदमा चलाने के लिए धारा-19 पी.सी. अधिनियम के तहत किसी पूर्व मंजूरी की आवश्यकता नहीं होगी। (पैरा 18)

B. आपराधिक कानून - क़ानून में संशोधन - इसकी प्रयोज्यता की प्रासंगिक तारीख – अवधारित, अपराध के संबंध में कानून की प्रयोज्यता के लिए प्रासंगिक तारीख अपराध के कारित करने की तारीख होगी। संविधि में बाद में किए गए संशोधन से किसी अभियुक्त के अपराध की जांच और अभियोजन शासित नहीं होगा जो संविधि में संशोधन के लागू होने से पहले किया गया था। (पैरा 19)

आवेदन अस्वीकृत कर दिया गया। (ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:-</u>

1. तेलंगाना राज्य बनाम मांगीपेट @ मांगपेट सर्वेश्वर रेड्डी; (2019) 19 एस.सी.सी. 87

2. कौशलेश कुमार सिन्हा बनाम सी.बी.आई.; 2018 एस.सी.सी. ऑनलाइन सभी 5546

(माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक का प्रतिनिधित्व करते हुए वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नंदित कुमार श्रीवास्तव को सुना, जिनकी सहायता श्री जे.पी अवस्थी, साथ ही प्रतिवादी के अधिवक्ता और श्री मो. इब्राहिम खान अधिवक्ता, सी.बी.आई. के अधिवक्ता श्री अनुराग कुमार सिंह को सुना, और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

2. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (इसके बाद "द०प्र०स०" के रूप में संदर्भित) की धारा 482 के तहत यह आवेदन दायर किया गया है, जिसमें 13.12.2018 के आदेश को

चुनौती देते हुए, 2018 के आपराधिक मामला संख्या 1968 (सी.बी.आई. बनाम सच्चिदानंद दुबे और अन्य) के संबंध में आवेदक के खिलाफ गिरफ्तारी के गैर-जमानती वारंट जारी किए गए हैं, जो धारा 420 और 409 सपठित धारा 120-बी के तहत है। (ख) भारतीय दंड संहिता (सी.बी.आई.) के न्यायालय, लखनऊ के न्यायालय संख्या 1860 (जिसे इसके बाद "भ०द०वि०" कहा गया है) और धारा 13(2) सपठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (इसके बाद "पी.सी. अधिनियम" के रूप में संदर्भित) की धारा 13(2) है। RC0062014A0008 थाना सी.बी.आई./एसीबी, लखनऊ में दर्ज किया गया है।

3. आवेदक एक लोक सेवक था, जो वर्ष 2007 से 2009 के दौरान जिला विकास अधिकारी, बलरामपुर के रूप में तैनात था; सुसंगत समय में, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (जिसे इसके बाद एन.आर.ई.जी.एस. कहा गया है) के अंतर्गत आबंटित सार्वजनिक निधियों में बड़े पैमाने पर वित्तीय घपले, घोर अनियमितताएं और दुर्विनियोजन तत्कालीन सरकारी अधिकारियों/कर्मचारियों द्वारा लेखन सामग्री और अन्य सामग्रियों की खरीद में निजी अपूर्तिकर्ताओं के साथ आपराधिक षडयंत्र और मिलीभगत से किए जाने की सूचना मिली थी।

4. जनहित याचिका संख्या-12802 (एम/बी) वर्ष 2011 श्री सच्चिदानंद गुप्ता द्वारा इस न्यायालय के समक्ष दायर की गई थी, जिसमें तत्कालीन मुख्य विकास अधिकारी द्वारा अत्यधिक कीमत पर 1,81,18,602/- रुपये की स्टेशनरी और अन्य वस्तुओं की केंद्रीकृत खरीद में निजी आपूर्तिकर्ताओं के साथ मिलीभगत से ब्लॉक विकास अधिकारियों और अन्य सरकारी अधिकारियों/कर्मचारियों, एन.आर.ई.जी.एस. निधियों के परियोजना निदेशक, डी.आर.डी.ए. और जनपद बलरामपुर के अन्य अधिकारी, द्वारा बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार, हेराफेरी और दुरुपयोग के बारे में बताया गया था। इन सरकारी अधिकारियों/कर्मचारियों और निजी व्यक्तियों ने कथित तौर पर सरकारी खजाने को भारी नुकसान पहुंचाया और खुद को लाभ पहुंचाया। केंद्रीय जांच ब्यूरो (इसके बाद "सी.बी.आई." के रूप में संदर्भित) द्वारा प्राथमिकी दर्ज करने और जांच के लिए प्रार्थना की गई थी।

5. इस न्यायालय ने दिनांक 31.01.2014 के निर्णय और आदेश के तहत जनहित याचिका संख्या-12802 (एम/बी) वर्ष 2011 पारित किया, जिसमें सी.बी.आई. को निर्देश दिया गया कि वह वर्ष 2007 से 2010 के दौरान उत्तर प्रदेश राज्य के सात जिलों अर्थात् बलरामपुर, गोंडा, महोबा, सोनभद्र, संत कबीर नगर, मिर्जापुर और कुशीनगर के संबंध में नरेगा के तहत आवंटित निधियों के दुरुपयोग और दुर्विनियोजन की जांच करे और इसमें शामिल व्यक्तियों पर कानून के अनुसार उचित कार्रवाई करे और मुकदमा चलाए।

6. उक्त आदेश के अनुसरण में, प्रासंगिक अवधि के लिए उपर्युक्त सात जिलों के संबंध में राज्य गुणवत्ता मॉनिटर (इसके बाद "एसक्यूएम" के रूप में संदर्भित) की रिपोर्टों की जांच सी.बी.आई. द्वारा की गई थी। यह खुलासा हुआ कि जिला बलरामपुर में वर्ष 2007-2008 और 2008-2009 की अवधि के दौरान स्टेशनरी और अन्य वस्तुओं की केंद्रीय खरीद में एन.आर.ई.जी.एस. निधियों का दुर्विनियोजन में बड़े पैमाने पर वित्तीय घपला, घोर अनियमितताएं और ब्लॉक विकास अधिकारी और अन्य सरकारी अधिकारियों/कर्मचारियों द्वारा निजी आपूर्तिकर्ताओं के साथ मिलीभगत से किया गया था, जो तत्कालीन मुख्य विकास अधिकारी द्वारा अत्यधिक मूल्य पर 1,81,18,602/- रुपये था। परियोजना निदेशक, डी.आर.डी.ए. और जिला बलरामपुर के अन्य अधिकारियों ने निजी आपूर्तिकर्ताओं के साथ मिलकर सरकारी खजाने को भारी नुकसान पहुंचाया और खुद को लाभ पहुंचाया।

7. एक नियमित मामला जो ऊपर उल्लिखित है, तत्कालीन मुख्य विकास अधिकारी, परियोजना निदेशक और जिला बलरामपुर के अन्य अधिकारियों/कर्मचारियों के साथ-साथ निजी आपूर्तिकर्ताओं के खिलाफ दर्ज किया गया था।

8. सी.बी.आई. ने गहन जांच करने के बाद, 21.02.2014 को प्राथमिकी दर्ज की और धारा 173 (2) द०प्र०स० दिनांक 15.11.2018 के तहत धारा 420 और 409 भ०द०वि० सपठित धारा 120-बी और पी.सी. अधिनियम की धारा 13 (1) (डी) सपठित धारा 13 (2) और उसके मूल अपराधों के तहत आरोप पत्र दायर किया।

9. सी.बी.आई. ने आवेदक को अपराध के वास्तुकारों में से एक के रूप में पाया, जो प्रासंगिक समय में जिला विकास अधिकारी, बलरामपुर के रूप में तैनात था। हालांकि, आरोप पत्र दाखिल होने के बाद वह सेवानिवृत्त हो गए।

10. विद्वान विचारण न्यायालय ने 23.11.2018 को संज्ञान लिया और 30.11.2018 को आवेदक और सह-अभियुक्त की उपस्थिति के लिए समन जारी किए।

11. आवेदक 30.11.2018 को उपस्थित नहीं हुआ और उसके बाद गिरफ्तारी के गैर-जमानती वारंट जारी किए गए।

12. आवेदक की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नंदित कुमार श्रीवास्तव द्वारा आग्रह किया गया एकमात्र आधार यह है कि सक्षम प्राधिकारी से मंजूरी मांगे बिना, आरोप-पत्र पर संज्ञान लेने और गिरफ्तारी के गैर-जमानती वारंट जारी करने सहित आगे की कार्यवाही का आदेश शून्य है। वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि पी.सी. अधिनियम (संशोधन अधिनियम संख्या-16 वर्ष 2018) में संशोधन के मद्देनजर, एक व्यक्ति के अभियोजन के लिए, जो अपराध के कमीशन के समय एक लोक सेवक था, मंजूरी आवश्यक है। वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि

संज्ञान 23.11.2018 को लिया गया था और धारा-19 पी.सी. अधिनियम में संशोधन को 26.07.2018 को राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हुई और उसी दिन आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित किया गया, और यह 26.07.2018 से प्रभावी हुआ। चूंकि 26.7.2018 से धारा-19 पी.सी. अधिनियम में संशोधन लागू होने के बाद संज्ञान का आदेश पारित किया गया है, इसलिए यह कानून में गलत है, और संज्ञान के बाद की पूरी कार्यवाही शून्य/अवैध है।

13. दूसरी ओर, प्रतिवादी - सी.बी.आई. के अधिवक्ता श्री अनुराग कुमार सिंह ने प्रस्तुत किया है कि धारा-19 पी.सी. अधिनियम (संशोधन अधिनियम संख्या-16 वर्ष 2018) में संशोधन आवेदक के संबंध में लागू नहीं है क्योंकि कथित अपराध आवेदक और सह-अभियुक्त द्वारा वर्ष 2008 से 2010 के दौरान किया गया था। संशोधनकारी अधिनियम का भविष्यलक्षी प्रभाव होगा और यह उन अपराधों के संबंध में लागू होगा जो धारा-19 भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम में संशोधन के लागू होने के बाद किए गए थे/किए गए हैं। संशोधन लागू होने से पहले सेवानिवृत्त हुए सरकारी कर्मचारी पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। वर्तमान मामले में, आवेदक ने कथित तौर पर 26.07.2018 से पहले अपराध किया। इसलिए, अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आवेदन में कोई योग्यता और तत्व नहीं है और ये खारिज किए जाने योग्य है।

14. सी.बी.आई. ने जनहित याचिका संख्या-12802 (एमबी) वर्ष 2011 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 31.01.2014 के माध्यम से इस न्यायालय द्वारा जारी परमादेश के अनुपालन में जांच की। वर्तमान मामले में निम्नलिखित दो प्रश्नों पर विचार करने की आवश्यकता है: -

(I) क्या जब सी.बी.आई. या कोई अन्य एजेंसी संवैधानिक न्यायालय (उच्च न्यायालय/सर्वोच्च न्यायालय) द्वारा पारित निर्णय और आदेश के अनुपालन में किसी अपराध की जांच करती है और लोक सेवक की भूमिका पी.सी. अधिनियम के तहत अपराध करने के लिए एक अभियुक्त पर लागू होती है, तो क्या ऐसे लोक सेवक पर मुकदमा चलाने के लिए सक्षम प्राधिकारी से धारा-19 पी.सी. अधिनियम के तहत मंजूरी अदालत द्वारा संज्ञान लेने से पहले अनिवार्य होगी?

(II) क्या धारा-19 पी.सी. अधिनियम के संशोधन प्रावधानों का भविष्यलक्षी प्रभाव होगा, अर्थात 26.07.2018 के बाद कथित रूप से किया गया अपराध या संशोधन अधिनियम उस अपराध के संबंध में लागू होगा जो कथित रूप से 26.07.2018 से पहले किया गया था?

15. धारा-19 पी.सी. अधिनियम, अधिनियम संख्या-16 वर्ष 2018 में संशोधन के बाद निम्नानुसार पढ़ा जाएगा: -

"19. अभियोजन के लिए पूर्व स्वीकृति आवश्यक - (1) कोई न्यायालय [धारा 7, 11, 13 और 15] के अधीन कथित रूप से किसी लोक सेवक द्वारा किए गए दंडनीय अपराध का संज्ञान, पूर्व मंजूरी [लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम, 2013 (2014 का 1) में अन्यथा उपबंधित को छोड़कर] के बिना नहीं लेगा,--

(क) किसी व्यक्ति की दशा में [जो नियोजित है, या यथास्थिति नियोजित कथित अपराध किए जाने के समय वह संघ के कार्यकलाप के संबंध में था] और केन्द्रीय सरकार द्वारा या उस सरकार की मंजूरी के बिना अपने पद से हटाया नहीं जा सकता;

(ख) किसी व्यक्ति की दशा में [जो नियोजित है, या यथास्थिति नियोजित कथित अपराध किए जाने के समय था] किसी राज्य के कार्यकलाप के संबंध में और राज्य सरकार द्वारा या उस सरकार की मंजूरी के बिना अपने पद से हटाया नहीं जा सकता;

(ग) किसी अन्य व्यक्ति की दशा में, उसे अपने पद से हटाने के लिए सक्षम प्राधिकारी का।

परन्तु पुलिस अधिकारी या किसी अन्वेषण अभिकरण के अधिकारी या अन्य विधि प्रवर्तन प्राधिकारी से भिन्न किसी व्यक्ति द्वारा यथास्थिति, समुचित सरकार या सक्षम प्राधिकारी को इस उपधारा में विनिर्दिष्ट अपराधों में से किसी अपराध का न्यायालय द्वारा संज्ञान लेने के लिए ऐसी सरकार या प्राधिकारी की पूर्व मंजूरी के लिए कोई अनुरोध नहीं किया जा सकेगा, जब तक कि:

(i) ऐसे व्यक्ति ने उन कथित अपराधों के बारे में सक्षम न्यायालय में शिकायत दर्ज की है जिनके लिए लोक सेवक पर मुकदमा चलाने की मांग की गई है; और

(ii) न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973(2 वर्ष 1974) की धारा 203 के तहत शिकायत को खारिज नहीं किया है और शिकायतकर्ता को आगे की कार्यवाही के लिए लोक सेवक के खिलाफ अभियोजन की मंजूरी प्राप्त करने का निर्देश दिया है:

परंतु यह कि पुलिस अधिकारी या किसी जांच एजेंसी के अधिकारी या अन्य विधि प्रवर्तन प्राधिकरण से भिन्न व्यक्ति के अनुरोध के मामले में, उपयुक्त सरकार या सक्षम प्राधिकारी संबंधित लोक सेवक को सुनवाई का अवसर प्रदान किए बिना किसी लोक सेवक पर मुकदमा चलाने की मंजूरी नहीं देगा:

बशर्ते कि उपयुक्त सरकार या कोई सक्षम प्राधिकारी, इस उप-धारा के तहत एक लोक सेवक के अभियोजन के लिए मंजूरी की आवश्यकता वाले प्रस्ताव की प्राप्ति के बाद, इस तरह के प्रस्ताव पर निर्णय को इसकी प्राप्ति की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर सूचित करने का प्रयास करेगा:

बशर्ते कि उस मामले में, जहां, अभियोजन के लिए मंजूरी देने के उद्देश्य से, कानूनी परामर्श की आवश्यकता है, ऐसी अवधि, लिखित में दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए, एक महीने की आगे की अवधि तक बढ़ाई जा सकती है:

परंतु यह भी कि केन्द्रीय सरकार, लोक सेवक के अभियोजन की मंजूरी के प्रयोजन के लिये, ऐसे दिशा-निर्देश विहित कर सकेगी जो वह आवश्यक समझे।

स्पष्टीकरण- उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए, अभिव्यक्ति "लोक सेवक" में ऐसा व्यक्ति शामिल है-

(क) जिसने उस पद को धारण करना बंद कर दिया है जिसके दौरान अपराध कथित रूप से किया गया है; नहीं तो

(ख) जिसने उस पद को धारण करना बंद कर दिया है जिसके दौरान अपराध किए जाने का आरोप लगाया गया है और उस पद से भिन्न पद धारण कर रहा है जिसके दौरान अपराध किए जाने का आरोप लगाया गया है।

(2) जहाँ किसी कारण से यह सन्देह उत्पन्न होता है कि उपधारा (1) के अधीन यथा अपेक्षित पूर्व मंजूरी केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा दी जानी चाहिए या नहीं, वहाँ ऐसी मंजूरी उस सरकार या प्राधिकारी द्वारा दी जाएगी जो उस लोक सेवक को उसके पद से उस समय हटाने के लिए सक्षम होता, किया गया जब अपराध कथित रूप से किया गया था।

(3) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) में किसी बात के होते हुए भी, - (क) किसी विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित कोई निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश उपधारा (1) के अधीन अपेक्षित मंजूरी की अनुपस्थिति या किसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के आधार पर अपील, पुष्टिकरण या पुनरीक्षण में न्यायालय द्वारा उल्टा या परिवर्तित नहीं किया जाएगा, जब तक कि उस अदालत की राय में, न्याय को वास्तव में उसके द्वारा विफल नहीं किया गया है;

(ख) कोई न्यायालय प्राधिकरण द्वारा मंजूर की गई स्वीकृति में किसी त्रुटि, लोप या अनियमितता के आधार पर इस अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों पर तब तक रोक नहीं लगाएगा जब तक उसका यह समाधान न हो जाए कि ऐसी त्रुटि, लोप या अनियमितता के परिणामस्वरूप न्याय विफल हुआ है:

(ग) कोई न्यायालय इस अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों पर किसी अन्य आधार पर रोक नहीं लगाएगा और कोई न्यायालय किसी जांच, विचारण, अपील या अन्य कार्यवाहियों में पारित किसी वादकालीन आदेश के संबंध में पुनरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग नहीं करेगा।

(4) उपधारा (3) के अधीन अवधारित करने में कि क्या ऐसी मंजूरी की अनुपस्थिति या कोई त्रुटि, चूक या अनियमितता हुई है या उसके परिणामस्वरूप न्याय की विफलता हुई है, न्यायालय इस तथ्य के संबंध में आगाह होगा कि क्या आपत्ति कार्यवाही में किसी पूर्व चरण में उठाई जा सकती थी और की जानी चाहिए थी।

स्पष्टीकरण- इस खंड के प्रयोजनों के लिए:

(क) त्रुटि के अंतर्गत स्वीकृति प्रदान करने के लिए प्राधिकारी की सक्षमता भी है;

(ख) अभियोजन के लिए अपेक्षित मंजूरी में किसी अपेक्षा का संदर्भ भी शामिल है कि अभियोजन किसी विनिर्दिष्ट प्राधिकारी के कहने पर या किसी विनिर्दिष्ट व्यक्ति की मंजूरी से, या इसी प्रकार के किसी तरीके से होगा।

16. यह अच्छी तरह से तय है कि सी.बी.आई. संबंधित राज्य सरकार की सहमति के बिना किसी अपराध के संबंध में कोई जांच नहीं कर सकती है, जैसा कि दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम, 1946 (इसके बाद "डी.एस.पी.ई. अधिनियम" के रूप में संदर्भित) की धारा-6 के तहत अनिवार्य है। संवैधानिक न्यायालयों की शक्तियां डी.एस.पी.ई. अधिनियम के वैधानिक प्रतिबंधों से बंधी नहीं हैं। संवैधानिक योजना और केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों के विभाजन के अंतर्गत राज्य पुलिस संविधान की सूची-VII और सूची-2 के अंतर्गत आती है। सामान्यत किसी अपराध की जांच, उस संबंधित राज्य की पुलिस द्वारा की जानी होती है जहां मामला दर्ज होता है। कुछ मामलों में, जहां अपराध की प्रकृति ऐसी है और निष्पक्ष और पारदर्शी जांच में लोगों का विश्वास बनाए रखने के लिए, जांच को संबंधित राज्य सरकार की सहमति से या संवैधानिक न्यायालय के आदेश पर सी.बी.आई. को सौंपा जा सकता है। यदि जांच के बाद अपराध करने में एक लोक सेवक की भूमिका आरोपी के रूप में पाई जाती है, तो जब न्यायालय सी.बी.आई. को जांच सौंपता है, धारा-6 डी.एस.पी.ई. अधिनियम के अधिदेश को समाप्त कर दिया जाता है।

17. हाल के दिनों में, कई राज्यों ने सी.बी.आई. द्वारा अपराध की जांच के लिए धारा-6 डी.एस.पी.ई. अधिनियम के तहत सामान्य सहमति वापस ले ली है, लेकिन संवैधानिक न्यायालयों ने अभी भी ऐसे राज्यों में अपराध (अपराधों) की जांच का काम सौंपा है जहां राज्य पुलिस के हाथों निष्पक्ष और पारदर्शी जांच पर संदेह किया गया था। यदि जहां अपराध की जांच संवैधानिक न्यायालय के आदेश पर सी.बी.आई. को सौंप दी गई है, किसी लोक सेवक के अभियोजन के लिए मंजूरी अनिवार्य है, तो इसका परिणाम निरर्थक हो सकता है क्योंकि ऐसी राज्य सरकार जिसने डी.एस.पी.ई. अधिनियम की धारा-6 के तहत सहमति वापस ले ली है, वह लोक सेवक के अभियोजन के लिए मंजूरी नहीं दे सकती है।

18. पूर्वोक्त के मद्देनजर, मेरा विचार है कि जहां किसी अपराध की जांच संवैधानिक न्यायालय द्वारा पारित आदेश

के अनुसरण में सी.बी.आई. को सौंपी गई है और एक लोक सेवक की भूमिका इस तरह के अपराध को करने के लिए एक अभियुक्त के रूप में आती है, ऐसे लोक सेवक पर मुकदमा चलाने के लिए धारा-19 पी.सी. अधिनियम के तहत किसी पूर्व मंजूरी की आवश्यकता नहीं होगी।

19. किसी अपराध के संबंध में कानून के लागू होने की प्रासंगिक तारीख अपराध होने की तारीख होगी। संविधि में बाद में किए गए संशोधन से किसी अभियुक्त के अपराध की जांच और अभियोजन शासित नहीं होगा जो संविधि में संशोधन के लागू होने से पहले किया गया था।

20. सुप्रीम कोर्ट ने (2019) 19 एस.सी.सी. 87 (तेलंगाना राज्य बनाम मैनागिपेट उर्फ मांगपेट सर्वेश्वर रेड्डी) में रिपोर्ट किए गए मामले में माना है कि संशोधन अधिनियम संख्या-16 वर्ष 2018 उस अपराध के लिए लागू नहीं होगा जो संशोधन किए जाने से पहले किया गया था। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम में 26.07.2018 को किए गए संशोधन से पहले मौजूद क़ानून के प्रावधानों के आलोक में कोई अपराध किया गया है या नहीं, इसकी जांच की जानी है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ-35, 36 और 37 को उद्धृत करना उपयुक्त होगा: -

"35. हमें इस तर्क में भी कोई दम नहीं मिलता कि रिपोर्ट दाखिल करने से पहले कोई मंजूरी नहीं दी गई है। अभियोजन पक्ष द्वारा मुकदमे के दौरान मंजूरी को प्रस्तुत किया जा सकता है, इसलिए आरोपी अधिकारी की सेवानिवृत्ति के बाद यह आवश्यक नहीं हो सकता। के. कालीमुथु बनाम राज्य [के. कालीमुथु बनाम राज्य, (2005) 4 एस.सी.सी. 512: 2005 एस.सी.सी. (सीआरआई) 1291] मामले में इस न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया: (एस.सी.सी.पी. 521, पैरा 15)

"15. संहिता की धारा-197 के तहत मंजूरी की आवश्यकता से संबंधित प्रश्न पर शिकायत दर्ज होते ही और उसमें निहित आरोपों पर विचार किया जाना जरूरी नहीं है। यह प्रश्न कार्यवाही के किसी भी चरण में उठ सकता है। मंजूरी जरूरी है या नहीं, इस सवाल को एक चरण से दूसरे चरण में तय करना पड़ सकता है।

36. उच्च न्यायालय ने सही माना है कि जांच एजेंसी ने जानबूझकर आरोपी अधिकारी की सेवानिवृत्ति तक इंतजार करने के लिए कार्यवाही को रद्द करने का कोई आधार नहीं बनाया है। यह प्रश्न कि क्या आरोपी अधिकारी, एक सेवानिवृत्त लोक सेवक पर मुकदमा चलाने के लिए मंजूरी आवश्यक है, एक ऐसा प्रश्न है जिसकी जांच इस न्यायालय द्वारा के. कालीमुथु [के. कालीमुथु बनाम राज्य, (2005) 4 एस.सी.सी. 512: 2005 एस.सी.सी. (सीआरआई) 1291] मामले में किए गए मुकदमे के दौरान की जा सकती है। वास्तव में, विनोद कुमार गर्ग बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) (2020) 2 एस.सी.सी. 88: (2020) 1 एस.सी.सी. (सीआरआई) 545: (2020) 1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 146] में हाल के एक फैसले में, इस न्यायालय ने माना है कि यदि अधिनियम की धारा 17 के तहत आवश्यक रैंक और स्थिति के पुलिस अधिकारी द्वारा जांच नहीं की गई थी तो इस तरह की चूक एक अनियमितता होगी, हालांकि जब तक इस तरह की अनियमितता के परिणामस्वरूप पूर्वाग्रह पैदा नहीं होता है, दोषसिद्धि दूषित नहीं होगी या कानून में खराब नहीं होगी। इसलिए, मंजूरी की कमी को कार्यवाही को रद्द करने का आधार नहीं पाया गया।

37. श्री गुरु कृष्ण कुमार आगे एम. सुंदरराजन बनाम राज्य [एम. सुंदरराजन बनाम राज्य, 2018 एस.सी.सी. ऑनलाइन मैड 13515] में मद्रास उच्च न्यायालय की एकल पीठ के फैसले का उल्लेख करते हैं कि अधिनियम के संशोधित प्रावधान अधिनियम 16 वर्ष 2018 द्वारा संशोधित लागू होंगे क्योंकि आरोप पत्र दाखिल करने से पहले संशोधन अधिनियम लागू हुआ था। हमें उक्त तर्क में कोई दम नजर नहीं आता। उपरोक्त मामले में, विद्वान विचारण न्यायालय ने अधिनियम में संशोधित प्रावधानों को लागू किया जो 26.7.2018 को लागू हुआ और दोनों अभियुक्तों को अधिनियम की धारा 13(2) सपठित धारा 13(1)(डी) के तहत आरोप से बरी कर दिया। उच्च न्यायालय ने पाया कि अधिनियम के संशोधित प्रावधानों को लागू करने के लिए विचारण न्यायालय का आदेश उचित नहीं था और यह देखते हुए मामले को वापस भेज दिया कि संशोधन किए जाने से पहले अपराध किए गए थे। वर्तमान मामले में, वर्ष 2018 में अधिनियम में संशोधन होने से बहुत पहले 9-11-2011 को प्राथमिकी दर्ज की गई थी। कोई अपराध हुआ है या नहीं, इसकी जांच क़ानून के प्रावधानों के आलोक में की जानी चाहिए क्योंकि यह 26-7-2018 को किए गए संशोधन से पहले मौजूद थी।

21. इस न्यायालय ने 2018 एस.सी.सी. ऑनलाइन ऑल 5546 (कौशलेश कुमार सिन्हा बनाम सी.बी.आई.) में रिपोर्ट किए गए निर्णय और आदेश दिनांक 22.10.2018 के तहत इस तर्क को भी खारिज कर दिया है कि संशोधन अधिनियम संख्या-16 वर्ष 2018, 26.07.2018 से प्रभावी होने के बाद, एक लोक सेवक के संबंध में, जो सेवानिवृत्त हो गया है, यथा इससे पहले कि विचारण न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया जा सके, मंजूरी जरूरी है।

22. इसके मद्देनजर, मुझे आवेदक का प्रतिनिधित्व करने वाले वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नंदित कुमार श्रीवास्तव का तर्क प्रभावशाली नहीं लगता है और इसलिए, आवेदन को खारिज किया जाता है। हालांकि, आवेदक को आत्मसमर्पण करने और नियमित जमानत के लिए आवेदन करने के लिए आज से चार दिन का समय दिया जाता है और यदि ऐसा होता है, तो नियमित जमानत के

लिए उसके आवेदन पर कानून के अनुसार तेजी से विचार किया जाएगा और निर्णय लिया जाएगा।

(2023) 1 ILRA 721
मूल क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 09.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति समित गोपाल

आवेदन धारा 482 संख्या-10778 वर्ष 2022 के तहत
सम्बद्ध
क्रिमनल अग्रिम जमानत आवेदन धारा 438 के तहत
संख्या-- 8945 वर्ष 2020

बाल कुमार पटेल @ राज कुमार ...आवेदक
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य ... प्रतिपक्षी

आवेदक के अधिवक्ता:
श्री सत्य धीर सिंह जादौन, श्री दुर्गेश कुमार सिंह, श्री बिंदेश्वरी प्रसाद तिवारी, श्री संकल्प नारायण, श्री हेमंत कुमार श्रीवास्तव, श्री धनंजय शुक्ला

विरोधी पक्षों के अधिवक्ता:
श्री संजय कुमार सिंह (अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता), श्री जितेंद्र प्रसाद मिश्रा

क. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 482 – कार्यक्षेत्र – आरोप पत्र और कार्यवाही को रद्द करना – निहित शक्ति का प्रयोग कैसे किया जा सकता है – तथ्यों के प्रश्न, किस हद तक निर्णय लिया जा सकता है – ये माना जाता है कि धारा 482 द०प्र०स० के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग एक असाधारण प्रयोग है। उच्च न्यायालय द्वारा शिकायत/प्राथमिकी/आरोप पत्र की जांच शुरू करने से पहले यह तय करने में बहुत सावधानी बरतनी चाहिए कि क्या दुर्लभ मामले को अभियोजन पक्ष को शुरुआत में ही विफल कर देने के लिए बनाया गया है - रद्द करने के चरण में, केवल अभियोजन पक्ष की सामग्री को देखा जाना चाहिए और अदालत आरोपों की शुद्धता या अभियुक्त के बचाव में नहीं जा सकती है और न मामले की जांच करने के लिए आगे बढ़ सकती है इस प्रकार प्रस्तुत साक्ष्यों को तौलकर इसके गुण-दोष के आधार पर – धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए मामले के तथ्यों के विवादित प्रश्नों का इस स्तर पर निष्कर्ष और निर्णय नहीं निकाला जा सकता है और केवल प्रथम दृष्टया अभियोजन मामले को उसी रूप में देखा जाना चाहिए। आरोपी के बचाव को साबित करने के लिए सबूत पेश करने की जरूरत है। (पैरा-20 और 24)

ख. आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 438 – अग्रिम जमानत – गुंजाइश – बैंक के माध्यम से धन का लेनदेन – धारा 419, 420 और 406 भ०द०वि० के तहत अपराध करने का आरोप – पहले आवेदक एक जन प्रतिनिधि था और वह कई आपराधिक मामलों में शामिल था, जिसमें वह जांच के दौरान विवेचनाधिकारी के कॉल पर खुद को उपलब्ध कराने में विफल रहा – प्रासंगिकता – नरिंदर सिंह साहनी का मामला जिस पर भरोसा किया गया – धारा 406, 409, 420 और 120-ख के तहत आरोप का सामना करने वाले अभियुक्त को, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के उपबंधों को सामान्यत तब तक लागू करने का अधिकार नहीं दिया है जब तक कि यह स्थापित न हो जाए कि ऐसा आपराधिक आरोप प्रामाणिक नहीं है - आवेदन को खारिज करते हुए उच्च न्यायालय ने संबंधित न्यायालय के समक्ष अभियुक्त के आपराधिक इतिहास के प्रकटीकरण के संबंध में प्रधान सचिव (गृह) को भी निर्देश जारी किया। (पैरा-26, 28 और 31)

आवेदन अस्वीकृत किया गया। (ई-1)

उद्धृत मामलों की सूची:-

1. आर.पी कपूर बनाम पंजाब राज्य; ए.आई.आर. 1960 एस.सी. 866

२. हरियाणा राज्य और अन्य .. बनाम भजन लाल और अन्य 1992 पूरक (1) एस.सी.सी. 335

3. बिहार राज्य बनाम पी. पी. शर्मा; 1992 पूरक (1) एस.सी.सी. 222

4. ट्रिसन्स केमिकल इंडस्ट्री बनाम राजेश अग्रवाल और अन्य; (1999) 8 एस.सी.सी. 686

5. एम. कृष्णन बनाम विजय सिंह और अन्य; (2001) 8 एस.सी.सी. 645

6. झंडू फार्मास्यूटिकल्स वर्क्स लिमिटेड बनाम मो. शराफुल हक और दूसरा; (2005) 1 एस.सी.सी. 122

7. एम.एन ओझा बनाम आलोक कुमार श्रीवास्तव; (2009) 9 एस.सी.सी. 682

8. जोसेफ सल्वराज ए बनाम गुजरात राज्य और अन्य..; (2011) 7 एस.सी.सी. 59

9. अरुण भंडारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य..; (2013) 2 एस.सी.सी. 801

10. मोहम्मद अलाउद्दीन खान बनाम बिहार राज्य; (2019) 6 एस.सी.सी. 107

11. आनंद कुमार मोहत्ता और अन्य बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), गृह विभाग और अन्य; (2019) 11 एस.सी.सी. 706

12. राजीव कौरव बनाम बालासाहेब और अन्य; (2020) 3 एस.सी.सी. 317

13. नल्लापारेड्डी श्रीधर रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य; (2020) 12 एस.सी.सी. 467

14. प्रीति सराफ और दूसरा बनाम एनसीटी राज्य दिल्ली और दूसरा; 2021 एस.सी.सी.

ऑनलाइन एस.सी. 206

15. रामवीर उपाध्याय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; 2002 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 484

16. भद्रेश बिपिनभाई सेठ बनाम गुजरात राज्य; (2016) 1 एस.सी.सी. 152

17. नरिंदर सिंह साहनी बनाम यू.ओ.आई. (2002) 2 एस.सी.सी. 210

18. आद्री धरन दास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य। (2005) 4 एस.सी.सी. 303

19. बालाचंद जैन बनाम म.प्र. (1976) 4 एस.सी.सी. 572

(माननीय न्यायमूर्ति समित गोपाल द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के अधिवक्ता श्री सत्य धीर सिंह जादौन को, प्रथम सूचनाकर्ता के अधिवक्ता श्री जितेंद्र प्रसाद मिश्रा, और उत्तर प्रदेश राज्य के लिए अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता श्री संजय कुमार सिंह को सुना, और अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. ये दोनों याचिकाएं एक साथ सम्बद्ध हैं क्योंकि वे एक ही मामले से संबंधित हैं और एक ही आरोपी की हैं और इस तरह एक सामान्य आदेश द्वारा तय की जा रही हैं।

3. आपराधिक प्रकीर्ण आवेदन धारा 482 द०प्र०स० के तहत (इसके बाद "482 याचिका" के रूप में संदर्भित) आवेदक- बाल कुमार पटेल @ राज कुमार द्वारा निम्नलिखित प्रार्थनाओं के साथ दायर किया गया है: -

"इसलिए, सम्मानपूर्वक यह प्रार्थना की जाती है कि यह माननीय न्यायालय कृपया इस आवेदन को अनुमति देने की कृपा करे और धारा 419, 420 और 406 भ०द०वि० थाना-कोतवाली नगर, जिला: बांदा के तहत केस अपराध संख्या-0831 वर्ष 2020 से उत्पन्न आपराधिक मामला संख्या-02 वर्ष 2022 की कार्यवाही को रद्द कर दे, जिस पर थाना-कोतवाली नगर, जिला: बांदा द्वारा 29.9.2021 को आवेदक के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद 2.11.2021 को संज्ञान लिया गया था और आगे आवेदक के पक्ष में एक अंतरिम आदेश पारित करने की कृपा करें कि विवेचनाधिकारियों को उसके खिलाफ कोई भी कठोर कार्रवाई न करने का निर्देश देकर गिरफ्तारी से संरक्षण प्रदान करें; ताकि न्याय हो।

3. यह भी प्रार्थना की जाती है कि वर्तमान आपराधिक प्रकीर्ण आवेदन के लंबित रहने के दौरान, धारा 419, 420 और 406 भ०द०वि० थाना-कोतवाली नगर, जिला: बांदा के तहत मामला अपराध संख्या-0831 वर्ष 2020 से उद्भूत आपराधिक मामला संख्या-02 वर्ष 2022 की कार्यवाही जिस पर थाना-कोतवाली नगर, जिला: बांदा की पुलिस द्वारा 29.9.2021 को आवेदक के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद 2.11.2021 को संज्ञान लिया गया था, को रोक दिया जाए और आवेदक के पक्ष में एक अंतरिम आदेश पारित करने की कृपा की जाए कि विवेचनाधिकारियों को उसके खिलाफ कोई कठोर कार्रवाई न करने और/या इस तरह के आदेश को पारित करने के लिए निर्देश देकर गिरफ्तारी से संरक्षण प्रदान किया जाए जैसा कि माननीय न्यायालय वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उचित और उपयुक्त समझता हो; ताकि न्याय हो।

4. आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन धारा 438 द०प्र०स० के तहत (इसके बाद "अग्रिम जमानत आवेदन" के रूप में संदर्भित) आवेदक बाल कुमार पटेल @ राज कुमार द्वारा निम्नलिखित प्रार्थनाओं के साथ दायर किया गया है: -

"इसलिए, यह विनम्र प्रार्थना की जाती है कि यह माननीय न्यायालय आवेदन को अनुमति देने की कृपा करे और निर्देश दे कि थाना-कोतवाली नगर, जिला: बांदा में दर्ज मामला अपराध संख्या-831 वर्ष 2020 के तहत धारा 419, 420 और 406 भ०द०वि० में आवेदक की गिरफ्तारी की स्थिति में, उसे अग्रिम जमानत पर रिहा किया जाय।

आगे यह प्रार्थना की जाती है कि इस माननीय न्यायालय के समक्ष इस आवेदन के लंबित रहने के दौरान थाना-कोतवाली नगर, जिला बांदा (या उत्तर प्रदेश राज्य की किसी अन्य जांच एजेंसी) को निर्देश दिया जाए कि वह धारा 419, 420 और 406 भ०द०वि० के तहत केस अपराध संख्या-831 वर्ष 2020 में आवेदक को गिरफ्तार न करे, और/या इस तरह के अन्य आदेश पारित करें जैसा कि यह माननीय न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उचित और उपयुक्त समझे।

5. अग्रिम जमानत आवेदन में दिनांक 21.05.2021 को मोहम्मद अकरम उप-निरीक्षक, थाना-कोतवाली नगर, जिला: बांदा द्वारा शपथ पर दिया गया एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया है। उक्त जवाबी हलफनामे में पैराग्राफ-10 और 12 में आवेदक का आपराधिक इतिहास होने का उल्लेख किया गया है और इस तरह

दोनों पैराग्राफ में कहा गया है कि वह एक आदतन अपराधी है। उक्त जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ-10 और 12 को नीचे उद्धृत किया गया है:

"10. हलफनामे के पैराग्राफ संख्या-14 की सामग्री गलत है और इस तरह उसका खंडन किया जाता है। सही तथ्य यह है कि आवेदक को आरोपी और आदतन अपराधी का नाम दिया गया है और उसका लंबा आपराधिक इतिहास है। आवेदक के आपराधिक इतिहास की फोटोस्टेट प्रति इसके साथ दायर की जा रही है और इस हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-सीए 1 के रूप में चिह्नित की जा रही है।

12. हलफनामे के पैराग्राफ-संख्या-16, 17, 18 और 19 की सामग्री गलत है और इस तरह इसका खंडन किया जाता है। सच तो यह है कि आवेदक आरोपी है और उसने रेत के कारोबार के झूठे बहाने से सूचना देने वाले से पैसे लिए और उसने सूचनाकर्ता के पैसे वापस नहीं किए और धोखाधड़ी की है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक आदतन अपराधी है और उसका लंबा आपराधिक इतिहास है।

6. उक्त प्रतिशपथ पत्र के संलग्नक सीए-1 को आवेदक का आपराधिक इतिहास बताया गया है। उसी के अवलोकन से पता चलता है कि उसके खिलाफ 18 आपराधिक मामले हैं। उक्त प्रतिशपथ पत्र के अनुबंध सीए-1 यहां दिए गए हैं: -

यहां टाइप की जाएगी हिंदी

7. आवेदक के आपराधिक इतिहास को स्पष्ट करते हुए अग्रिम जमानत आवेदन में राज्य के दिनांक 21.05.2022 के प्रतिशपथ पत्र दिनांक 20.08.2022 का प्रत्युत्तर हलफनामा दायर किया गया है।

8. 482 याचिका में राज्य का एक जवाबी हलफनामा दिनांक 10.06.2022 को ब्रह्मदेव गोस्वामी, उप-निरीक्षक, थाना-कोतवाली नगर, जिला: बांदा द्वारा शपथ दिया गया, दायर किया गया है। उक्त हलफनामे के पैरा-संख्या-12 में, जो 482 याचिका के समर्थन में हलफनामे के पैरा-19 और 20 के जवाब में है, यह कहा गया है कि आरोपी आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। उक्त पैरा-को नीचे उद्धृत किया गया है:-

"12. हलफनामे के पैराग्राफ-संख्या-19 और 20 की सामग्री गलत है और इसका खंडन किया गया है। जवाब में, यह कहा गया है कि आरोपी आवेदक और सह-अभियुक्त ने पूर्व नियोजित तरीके से सूचनाकर्ता के साथ मिलीभगत और धोखाधड़ी की और जांच के दौरान, विवेचनाधिकारी ने सूचनाकर्ता और गवाहों का बयान दर्ज किया, जिन्होंने सभी उचित संदेहों से परे अभियोजन की कहानी का समर्थन किया है और विवेचनाधिकारी ने पूरी जांच के बाद विश्वसनीय और ठोस सबूत एकत्र किए और आरोपी आवेदक के खिलाफ दिनांक 21.09.2021 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया, और विद्वान मजिस्ट्रेट ने दिनांक 02.11.2021 के आदेश के द्वारा धारा 419, 420, 406 भ०द०वि० तहत आरोप पत्र पर संज्ञान लिया है और मामला आपराधिक मामला संख्या-02 वर्ष 2022 के रूप में दर्ज किया गया था और मामला मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बांदा की अदालत में लंबित था।

डी.सी.आर.बी. और सी.सी.टी.एन.एस. की रिपोर्ट के अनुसार, आरोपी आवेदकों का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। डी.सी.आर.बी. और सी.सी.टी.एन.एस. रिपोर्ट की प्रतियां इसके साथ फाइल की जा रही हैं और इस हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-सीए-1 के रूप में चिह्नित की जा रही हैं।

9. आवेदक के आपराधिक इतिहास के संबंध में 482 के तहत याचिका में विशेष रूप से तथ्य यह है कि इस कथन के साथ चरणबद्ध रूप से आवेदक का आपराधिक इतिहास है, लेकिन राज्य के जवाबी हलफनामे में कहा गया है कि उसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है, इस न्यायालय ने उसी के संबंध में 28.07.2022 को एक आदेश पारित किया। इसे नीचे उद्धृत किया गया है: -

"आवेदक के अधिवक्ता श्री दुर्गेश कुमार सिंह को, श्री जितेंद्र प्रसाद मिश्रा, प्रथम सूचनाकर्ता के अधिवक्ता और राज्य के अधिवक्ता श्री ज्ञान प्रकाश सिंह को सुना।

आवेदक के अधिवक्ता ने राज्य द्वारा दायर याचिका और जवाबी हलफनामे की प्रति आज अदालत में राज्य के अधिवक्ता को प्रदान की है क्योंकि महाधिवक्ता के कार्यालय में 17.07.2022 को आग लगने की दुर्भाग्यपूर्ण घटना के कारण, कई फाइलें जल गई हैं और अभिलेखागार में व्यापक आग के कारण फाइल का पता लगाना असंभव था।

पहले सूचनाकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि आवेदक के पास 11 मामलों का आपराधिक इतिहास है, जिसमें आवेदक के अधिवक्ता ने कहा है कि वर्तमान मामला एक ऐसा मामला है जिसमें आवेदक को झूठा फंसाया गया है। उन्होंने कहा कि हालांकि धारा 482 द०प्र०स० के तहत वर्तमान आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे के पैरा-संख्या-20 में कहा गया है कि आवेदक का आपराधिक इतिहास है और इसका खुलासा उसकी अग्रिम जमानत याचिका में किया गया है, लेकिन राज्य की ओर से दायर जवाबी हलफनामे में पैरा-संख्या-12 में, एक विशिष्ट पैरा-है कि आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। धारा 482 द०प्र०स० के तहत वर्तमान आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे का पैरा-संख्या-20 यहां उद्धृत किया गया है: -

"20. कि, आवेदक ने अपनी अग्रिम जमानत याचिका में अपने आपराधिक इतिहास की व्याख्या की है जो पहले से ही इस माननीय न्यायालय के समक्ष लंबित है। वर्तमान

याचिका पर फैसला करने के उद्देश्य से यह अप्रासंगिक है।

राज्य का दिनांक 10.06.2022 का जवाबी हलफनामा रिकॉर्ड पर है जिसे ब्रह्मदेव गोस्वामी ने उप-निरीक्षक, थाना-कोतवाली नगर, जिला: बांदा के रूप में शपथ दिलाई है। उक्त हलफनामे के पैरा-संख्या-12 में, जो धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदन के समर्थन में हलफनामे के पैरा-19 और 20 के जवाब में है, यह कहा गया है कि आरोपी आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। उक्त पैरा-को नीचे उद्धृत किया गया है:

"12. हलफनामे के पैराग्राफ-संख्या-19 और 20 की सामग्री गलत है और इसका खंडन किया गया है। जवाब में, यह कहा गया है कि आरोपी आवेदक और सह-अभियुक्त ने पूर्व नियोजित तरीके से सूचनाकर्ता के साथ मिलीभगत और धोखाधड़ी की और जांच के दौरान, विवेचनाधिकारी ने सूचनाकर्ता और गवाहों का बयान दर्ज किया, जिन्होंने सभी उचित संदेहों से परे अभियोजन की कहानी का समर्थन किया है और विवेचनाधिकारी ने पूरी जांच के बाद विश्वसनीय और ठोस सबूत एकत्र किए और आरोपी आवेदक के खिलाफ दिनांक 21.09.2021 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया। धारा 419, 420, 406 भ०द०वि० और विद्वान मजिस्ट्रेट ने दिनांक 02.11.2021 के आदेश के तहत आरोप पत्र पर संज्ञान लिया है और मामला आपराधिक मामला संख्या-02 वर्ष 2022 के रूप में दर्ज किया गया था और मामला मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बांदा की अदालत में लंबित था।

डी.सी.आर.बी. और सी.सी.टी.एन.एस. की रिपोर्ट के अनुसार, आरोपी आवेदकों का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। डी.सी.आर.बी. और सी.सी.टी.एन.एस. रिपोर्ट की प्रतियां इसके साथ फाइल की जा रही हैं और इस हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-सीए- 1 के रूप में चिह्नित की जा रही हैं।

यह न्यायालय प्रतिशपथपत्र के पैरा-संख्या-12 की सामग्री को समझ पाने में असमर्थ है क्योंकि आवेदक की अपनी दलीलों पर, उसका आपराधिक इतिहास है जिसे उसकी अग्रिम जमानत याचिका में समझाया गया है जिसे इस न्यायालय के समक्ष लंबित बताया गया है। उक्त जवाबी हलफनामे से अदालत को जो पहली धारणा मिलती है, वह यह है कि जवाबी हलफनामे का प्रतिवादी आपराधिक इतिहास को छिपाने की कोशिश कर रहा है, जिसके कारण उसे सबसे अच्छी तरह से पता है, वह कोशिश कर रहा है कि आरोपी इस मामले में अपने पूरे आपराधिक इतिहास का खुलासा न करे और इसके विपरीत, प्रथम दृष्टया उसी के पैरा-संख्या-12 में एक गलत बयान दे रहा है जिसमें उसने कहा है कि आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है।

इन परिस्थितियों में, इस मामले को पुलिस अधीक्षक, बांदा द्वारा तुरंत देखा जाए, जो आज से सात दिनों के भीतर आवेदक के आपराधिक इतिहास का खुलासा करते हुए मामले में अपना व्यक्तिगत हलफनामा दायर करेंगे और यह भी खुलासा करेंगे कि मामले में पहले दायर जवाबी हलफनामे में इसका खुलासा क्यों नहीं किया गया है। वह प्रतिशपथ पत्र के पैरा-12 की सामग्री के लिए, यदि वह इसे असत्य पाता है, तो शपथकर्ता के खिलाफ कोई भी कार्रवाई शुरू करने के लिए स्वतंत्र है। यदि कोई कार्रवाई की जाती है, तो उसका खुलासा उनके व्यक्तिगत हलफनामे में भी किया जाएगा। यदि उक्त व्यक्तिगत हलफनामा दायर नहीं किया जाता है तो पुलिस अधीक्षक, बांदा अगली तारीख को इस अदालत के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होंगे।

यदि आवेदक का आपराधिक इतिहास पाया जाता है, तो न्यायालय गलत हलफनामा दाखिल करने के लिए जवाबी हलफनामे के प्रतिवादी के खिलाफ प्रक्रिया आगे बढ़ाने पर विचार कर सकता है।

मामले को 06.08.2022 को 'फ्रेश' के रूप में सूचीबद्ध किया जाए।

इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल (महानिबंधक) और राज्य के अधिवक्ता कल तक पुलिस अधीक्षक, बांदा को इस आदेश से अवगत कराएंगे।

10. दिनांक 28.07.2022 के आदेश के अनुपालन में, श्री अभिनंदन, पुलिस अधीक्षक, बांदा द्वारा शपथ ग्रहण दिनांक 05.08.2022 को एक व्यक्तिगत शपथ पत्र दायर किया गया है जिसमें कुल 11 पैराग्राफ-हैं। उक्त पैराग्राफ-नीचे उद्धृत किए गए हैं: -

"1. कि प्रतिवादी वर्तमान में पुलिस अधीक्षक, जिला: बांदा के रूप में तैनात है और माननीय न्यायालय के आदेश दिनांक 28.07.2022 के अनुपालन में, वह उपरोक्त मामले में तत्काल व्यक्तिगत हलफनामा दायर कर रहा है। प्रतिवादी ने उसे उपलब्ध रिकॉर्ड का अवलोकन किया है और इस तरह, वह नीचे दिए गए तथ्यों से अच्छी तरह परिचित है। शपथकर्ता न्यायालय नियमावली, 1952 के प्रावधानों के अनुसार अपनी तस्वीर और अपने पहचान पत्र की फोटोकॉपी संलग्न कर रहा है।

2. कि इस माननीय न्यायालय ने निर्देश दिया था कि दिनांक 28.07.2022 के आदेश के तहत, पुलिस अधीक्षक, बांदा अपना व्यक्तिगत हलफनामा दायर करेंगे जिसमें खुलासा किया जाएगा कि मामले में पहले दायर जवाबी हलफनामे में इसका खुलासा क्यों नहीं किया गया है। इसके अलावा, माननीय न्यायालय द्वारा यह निर्देश भी दिया गया है कि वह प्रतिशपथपत्र के पैरा-12 की सामग्री के लिए, यदि वह इसे असत्य पाता है, तो शपथकर्ता के खिलाफ कोई भी कार्रवाई शुरू करने के लिए स्वतंत्र है।

यदि कोई कार्रवाई की जाती है, तो उसका खुलासा उनके व्यक्तिगत हलफनामे में भी किया जाएगा। यदि उक्त व्यक्तिगत शपथ पत्र दायर नहीं किया जाता है, तो पुलिस अधीक्षक, बांदा अगली तारीख को माननीय न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होंगे।

3. पूर्वोक्त आदेश (उपरोक्त) के अनुपालन में, शपथकर्ता तत्काल व्यक्तिगत हलफनामा दाखिल कर रहा है और प्रार्थना करता है कि यह माननीय न्यायालय कृपया तत्काल हलफनामे को रिकॉर्ड पर लेने की अनुमति दे।

4. कि शुरुआत में, शपथकर्ता इस माननीय न्यायालय को हुई असुविधा के लिए बिना शर्त, बेझिझक और ईमानदारी से माफी मांगता है, हालांकि यह अनजाने में था।

5. यह कि शपथकर्ता ने माननीय उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त की गई न्यायोचित चिंता को नोट किया कि क्यों, जब आवेदक ने स्वयं संकेत दिया था कि उसका कुछ आपराधिक इतिहास था (हालांकि समझाया गया था), तो यह पैराग्राफ-संख्या-2 में कहा गया था, तो भी क्यों थाना-कोतवाली नगर, जिला: बांदा में उप-निरीक्षक ब्रह्मदेव गोस्वामी द्वारा शपथ पत्र में कहा गया है कि डी.सी.आर.बी. और सी.सी.टी.एन.एस. की रिपोर्टों के अनुसार आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं था। माना कि यदि आरोपी का ज्ञान शपथकर्ता के आपराधिक इतिहास जिला: बांदा तक ही सीमित था या में इसमें भी कोई कमी थी, तो सही कथन को प्रस्तुत चाहिए था कि उसकी जानकारी के अनुसार, जिला: बांदा में उसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं था।

6. यह बताते हुए कि डी.सी.आर.बी. और सी.सी.टी.एन.एस. रिकॉर्ड में कोई आपराधिक इतिहास नहीं है, आवेदक को क्लीन चिट का आभास देता है और यह बताता प्रतीत होता है कि उसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। चूंकि आवेदक का आपराधिक इतिहास है, इसलिए उपरोक्त कथन, भले ही यह नेकनीयती से लिखे गए प्रारूपण का एक वास्तविक उदाहरण हो, लेकिन इसे माफ नहीं किया जा सकता है।

7. आवेदक का विभिन्न जनपदों में लंबे आपराधिक मामलों का आपराधिक इतिहास है अर्थात जिला: बांदा में 01 आपराधिक मामला (प्रश्नगत आपराधिक मामला), जिला चित्रकूट में 10 आपराधिक मामले, जिला रायबरेली में 10 आपराधिक मामले, जिला प्रतापगढ़ में 04 आपराधिक मामले, जिला मिर्जापुर में 01 आपराधिक मामला और जिला प्रयागराज में 01 आपराधिक मामला हैं। आवेदक के पूरे आपराधिक इतिहास को दर्शाने वाले चार्ट की एक प्रति इसके साथ संलग्न की जा रही है और इस हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-1 के रूप में चिह्नित की जा रही है।

8. यह विनम्रतापूर्वक प्रस्तुत किया जाता है कि प्रतिवादी ने उप-निरीक्षक द्वारा की गई उपरोक्त चूक को गंभीरता से लिया और अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक, जिला: बांदा द्वारा स्पष्ट रूप से मनमाने, लापरवाह और गैर-जिम्मेदाराना तरीके से प्रारंभिक जांच करने के लिए दिनांक 30.07.2022 को एक आदेश पारित किया, जिसमें थाना-कोतवाली नगर, जिला: बांदा में उप-निरीक्षक ब्रह्मदेव गोस्वामी द्वारा दिनांक 10.06.2022 को जवाबी हलफनामा दायर किया गया था। प्रतिवादी द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.07.2022 की एक प्रति इसके साथ संलग्न की जा रही है और इस हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-2 के रूप में चिह्नित की जा रही है।

9. कि प्रतिवादी इस माननीय न्यायालय को आश्वासन देता है कि प्रासंगिक और मौजूदा कानून और नियमों के अनुसार दोषी पुलिस अधिकारी के खिलाफ सबसे कठोर कार्रवाई की जाएगी।

10. कि प्रतिवादी विनम्रतापूर्वक असुविधा के लिए इस माननीय न्यायालय में अपनी बिना शर्त, और विनम्र माफी को दोहराता है, और इसके लिए उसे ईमानदारी से खेद है, हालांकि यह अनजाने में था।

11. ऊपर बताए गए तथ्यों और परिस्थितियों के मद्देनजर, विनम्रतापूर्वक प्रार्थना की जाती है कि यह माननीय न्यायालय ऐसा अन्य या आगे का आदेश पारित कर सकता है, जिसे यह माननीय न्यायालय वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत उचित और उपयुक्त समझे, ताकि न्याय किया जा सके।

11. उक्त व्यक्तिगत शपथ पत्र के अनुलग्नक-1 आवेदक के आपराधिक इतिहास को दर्शाने वाला एक चार्ट है। उक्त व्यक्तिगत हलफनामे के पैराग्राफ-7 में इसका उल्लेख किया गया है। उक्त चार्ट में वर्णित आपराधिक इतिहास 27 आपराधिक मामलों का है। सीरियल संख्या-27 में उल्लिखित मामला अपराध संख्या-831 वर्ष 2020, धारा 419, 420, 406 भ०द०वि०, थाना-कोतवाली नगर, जिला: बांदा के तहत 482 याचिका और अग्रिम जमानत आवेदन में भी विषय है। उक्त चार्ट में पांच कॉलम में 27 प्रकरणों की सूची नीचे दी गई है:-

हिंदी यहाँ टाइप की जानी है और तालिका यहाँ सम्मिलित की जाएगी

12. पुलिस अधीक्षक, बांदा के व्यक्तिगत शपथ पत्र के जवाब में आवेदक की ओर से 482 याचिका में दिनांक 16.08.2022 को एक हलफनामा दायर किया गया है जिसमें आवेदक के आपराधिक इतिहास के बारे में स्पष्टीकरण दिया गया है जैसा कि अनुलग्नक-1 में विस्तृत है, उक्त व्यक्तिगत हलफनामे के पैराग्राफ-संख्या-8 से 22 तक जिसमें कहा गया है कि क्रम संख्या-1 से 5 तक के मामले गोशवारा रजिस्टर के अनुसार बरी हो गए हैं, लेकिन आवेदक का अधिवक्ता उक्त मामलों के निर्णयों की प्रमाणित प्रतियां प्राप्त करने का प्रयास कर रहा है,

क्रम संख्या-6 पर मामला एक दंडात्मक कार्यवाही है, क्रम संख्या-7, 8 और 9 पर मामले गैर-संज्ञेय अपराध हैं, क्रम संख्या-10 पर मामला बरी हो गया है, सीरियल संख्या-11 से 17 पर आवेदक द्वारा उन स्थानों से आग्नेयास्त्र लाइसेंस प्राप्त करने से संबंधित मामले जहां वह उस समय रह रहा था, उक्त हथियार जब्त किए गए थे जिन्हें बाद में संबंधित जिला मजिस्ट्रेट के आदेश पर उसके पक्ष में जारी किया गया था, क्रम संख्या-18 में उल्लिखित मामला भी बरी हो गया, क्रम संख्या-19 पर मामले में हालांकि संबंधित अदालत को एक आरोप-पत्र भेजा गया है जिसमें संज्ञान लिया गया है, लेकिन आवेदक को आज तक कोई समन या नोटिस नहीं मिला है, क्रम संख्या-20 और 21 पर मामले ऐसे मामले हैं जिनमें आवेदक का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में नहीं है। उनके खिलाफ कोई आरोप-पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया है और उन्हें आज तक न तो बुलाया गया है और न ही कोई नोटिस मिला है, सीरियल संख्या-22 पर मामला धारा 321 द०प्र०स० के तहत वापस ले लिया गया है, सीरियल संख्या-23 पर मामला आवेदक के पक्ष में अंतिम रिपोर्ट में समाप्त हो गया है, क्रम संख्या-24 और 25 के मामलों के लिए आवेदक को उसके खिलाफ प्रस्तुत किए जा रहे किसी भी आरोप पत्र का कोई ज्ञान नहीं है और न ही उसे प्राप्त हुआ है आज तक कोई समन या कोई नोटिस और क्रम संख्या-26 पर मामला सरल/साधारण प्रकृति का मामला है।

13. श्री अभिनंदन, पुलिस अधीक्षक, बांदा द्वारा अग्रिम जमानत आवेदन में दिनांक 06.09.2022 को अनुपालन का एक हलफनामा दायर किया गया है जिसमें कुल मिलाकर 12 पैराग्राफ हैं। इसे नीचे उद्‌धृत किया गया है: -

"1. कि शपथकर्ता वर्तमान में पुलिस अधीक्षक, बांदा है, और वह उपरोक्त मामले में तत्काल हलफनामा दायर कर रहा है। शपथकर्ता ने उसे उपलब्ध रिकॉर्ड का अवलोकन किया है और इस तरह, वह नीचे दिए गए तथ्यों से अच्छी तरह परिचित है। शपथकर्ता न्यायालय नियमावली, 1952 के प्रावधानों के अनुसार अपनी तस्वीर और अपने पहचान पत्र की फोटोकॉपी संलग्न कर रहा है।

2. कि इस माननीय न्यायालय ने दिनांक 02.09.2022 के आदेश के माध्यम से राज्य को आवेदक के आपराधिक इतिहास के बारे में उचित हलफनामा दायर करने का निर्देश दिया था।

3. पूर्वोक्त आदेश (उपरोक्त) के अनुपालन में, प्रतिवादी तत्काल हलफनामा दायर कर रहा है, और विनम्रतापूर्वक प्रार्थना करता है कि यह माननीय न्यायालय विनम्रतापूर्वक तत्काल हलफनामे को रिकॉर्ड पर लेने की अनुमति देने की कृपा करे।

4. कि अभियुक्त ने शुरू में ही इस माननीय न्यायालय को हुई असुविधा के लिए बिना शर्त, अयोग्य, निरंकुश और ईमानदारी से माफी मांगी, हालांकि यह अनजाने में हुआ था।

5. यह विनम्रतापूर्वक प्रार्थना की जाती है कि यह माननीय न्यायालय पुलिस अधीक्षक, बांदा द्वारा शपथ पत्र के संयोजन में तत्काल शपथ पत्र को पढ़ने की अनुमति देने की कृपा करे और 05.08.2022 को आपराधिक विविध आवेदन (धारा 482 द०प्र०स० के तहत) संख्या-10778 वर्ष 2022 में दायर किया जाए।

6. धारा 482 द०प्र०स० के तहत उपरोक्त (उपरोक्त) आवेदन में थाना-कोतवाली नगर, जिला: बांदा के उपनिरीक्षक ब्रह्म देव गोस्वामी द्वारा दिनांक 10.06.2022 को दायर किए गए लापरवाही और गैरजिम्मेदाराना तरीके से जवाबी हलफनामा दायर करने को गंभीरता से लेते हुए, प्रतिवादी ने अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक, बांदा को आदेश दिनांक 30.07.2022 के आदेश द्वारा उनके खिलाफ प्रारंभिक जांच करने का आदेश दिया था। प्रतिवादी द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.07.2022 की एक प्रति इसके साथ संलग्न की जा रही है और इस हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-1 के रूप में चिह्नित की जा रही है।

7. यह प्रथम दृष्टया पाया गया कि ब्रह्म देव गोस्वामी नामक उक्त उप-निरीक्षक घोर लापरवाही और लापरवाही का दोषी था, इसलिए, उसे 24.08.2022 को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, जिसमें उसे 15 दिनों के भीतर जवाब प्रस्तुत करने की आवश्यकता थी कि उसके खिलाफ प्रासंगिक और मौजूदा नियमों के तहत कार्रवाई क्यों न की जाए। प्रतिवादी द्वारा जारी कारण बताओ नोटिस दिनांक 24.08.2022 की एक प्रति इसके साथ संलग्न की जा रही है और इस हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-2 के रूप में चिह्नित की जा रही है।

8. संबंधित उप-निरीक्षक के खिलाफ आरोपों की गंभीर प्रकृति को देखते हुए, प्रतिवादी ने अराजपत्रित पुलिस अधिकारी (सजा और अपील) नियम, 1991 के नियम 17 (1) (केए) के तहत उसमें निहित शक्तियों का आह्वान किया और दिनांक 24.08.2022 के आदेश द्वारा संबंधित उप-निरीक्षक ब्रह्म देव गोस्वामी को निलंबित कर दिया, और उन्हें यह भी सूचित किया गया कि उनके खिलाफ विभागीय जांच पर विचार किया गया था। प्रतिवादी द्वारा पारित निलंबन आदेश दिनांक 24.08.2022 की एक प्रति इसके साथ संलग्न की जा रही है और इस हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-3 के रूप में चिह्नित की जा रही है।

9. अपूर्ण आपराधिक इतिहास (केवल 18 मामलों को दिखाते हुए) के संबंध में, जिसे अनुलग्नक संख्या-2 के रूप में संलग्न किया गया था। सीए-1 ने थाना-कोतवाली, जिला: बांदा के उपनिरीक्षक मोहम्मद अकरम द्वारा दिनांक 21.05.2021 को शपथ पत्र के प्रतिवाद में दोषी अधिकारी की ओर से इस गंभीर चूक को गंभीरता से लिया और

दिनांक 01.09.2022 के आदेश से, प्रतिवादी ने अपर पुलिस अधीक्षक, बांदा को प्रासंगिक और मौजूदा नियमों के तहत अनुमति के अनुसार प्रारंभिक जांच करने का आदेश दिया। प्रतिवादी द्वारा पारित आदेश दिनांक 01.09.2022 की एक प्रति इसके साथ संलग्न की जा रही है और इस हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-4 के रूप में चिह्नित की जा रही है।

10. तथ्य यह है कि आवेदक के इतिहास को मिलाकर कुल 27 आपराधिक मामले हैं। पूरे आपराधिक इतिहास की एक सूची इसके साथ संलग्न की जा रही है और इस हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-5 के रूप में चिह्नित की जा रही है।

11. कि प्रतिवादी विनम्रतापूर्वक इस माननीय न्यायालय को असुविधा के लिए अपनी बिना शर्त और बिना शर्त माफी दोहराता है, हालांकि यह अनजाने में हुआ था।

12. कि ऊपर वर्णित मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के मद्देनजर, यह न्याय के हित में समीचीन है कि यह माननीय न्यायालय आवेदक की जमानत याचिका को अस्वीकार करने की कृपा करे।

14. उक्त हलफनामे के अनुलग्नक-5 जिसे पैराग्राफ-10 में संदर्भित किया गया है, आवेदक के खिलाफ 27 मामलों का आपराधिक इतिहास है जो याचिका अंतर्गत 482 में दायर व्यक्तिगत हलफनामे में बताए गए हैं और ऊपर उद्धृत किए गए हैं और इस तरह दोहराए जाने के रूप में उद्धृत नहीं किए जा रहे हैं।

15. रमाकांत त्रिपाठी द्वारा दिनांक 11.10.2020 को दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार मामला अपराध संख्या-0831 वर्ष 2020, धारा 419, 420, 406 भ०द०वि०, पुलिस थाना-कोतवाली नगर, जिला: बांदा के तहत आवेदक और भानु प्रताप चतुर्वेदी पुत्र वीरेंद्र चतुर्वेदी के खिलाफ आरोप लगाया गया है कि वह पी.डब्ल्यू.डी. में ठेकेदार है और गली संख्या-9, स्वराज कॉलोनी, जिला: बांदा में रहता है। भानु प्रताप चतुर्वेदी उनके रिश्तेदार हैं। वह बांदा में लेखपाल हैं। मार्च 2017 में भानु प्रताप चतुर्वेदी उनके घर आए और उनसे कहा कि रेत का बड़ा काम है जिसमें अगर वो एक बार निवेश कर लें तो उन्हें कभी टेंशन नहीं होगी। पहले सूचनाकर्ता ने उन्हें बताया कि 10 दिसंबर तक घर में शादी है और इस तरह वह पैसे निवेश नहीं कर सकता। 14 दिसंबर को उन्होंने बताया कि 17.12.2017 को 'साहब' आ रहे हैं जो उन्हें 10 प्रतिशत का साथी बनाएंगे। 17.12.2017 को भानु प्रताप चतुर्वेदी के साथ पहला सूचनाकर्ता सिंचाई निरीक्षण बंगला, बांदा गया और फिर एक सूचना साहब के पास भेजी गई जिन्होंने 10 महीने बाद उन्हें फोन किया जिस पर चतुर्वेदी ने एक-दूसरे को पेश किया और तब उन्हें पता चला कि 'साहब' पूर्व सांसद बाल कुमार पटेल हैं जिसके बाद चतुर्वेदी ने उन्हें पैसे देने के लिए कहा। तब पूर्व सांसद बाल कुमार पटेल ने उन्हें बताया कि वह रायबरेली में रहेंगे और 5 लाख रुपये पंजाब नेशनल बैंक में उनके खाता संख्या-06122800100031928 में जमा किए जाएंगे। पहले सूचनाकर्ता ने तब 20.12.2017 को आर.टी.जी.एस. के माध्यम से उक्त खाते में 5 लाख रुपये ट्रांसफर किए। जब भी वह बाल कुमार पटेल को फोन करते थे और उनसे एग्रीमेंट करवाने के लिए कहते थे, तो एक-दो दिन में करवा लेने के लिए कहते थे। एक दिन चतुर्वेदी ने पहले सूचनाकर्ता को बुलाया और कहा कि 28.05.2018 को सांसद बाल कुमार पटेल आ रहे हैं और निरीक्षण बंगले में बैठक करेंगे क्योंकि वहां बहुत रेत है और लगभग 50-60 लाख की आवश्यकता होगी जिसके लिए वह अपने दोस्तों के माध्यम से व्यवस्था करने की कोशिश कर रहे हैं। तब ठेकेदार रुद्र प्रकाश, ठेकेदार सतेंद्र शुक्ला और उनके रिश्तेदार योगेश पांडे पैसे लगाने के लिए सहमत हुए और 28 मई को वे निरीक्षण बंगले पर पहुंचे जहां बाल कुमार पटेल ने उन्हें बताया कि उनके बेटे सुधीर के पक्ष में एक पट्टा दिया गया है और एक आवश्यक रवन्ना भरना है। उस पर विश्वास हुए रुद्र प्रकाश ने 10 लाख रुपये, सतेंद्र शुक्ला ने 20 लाख रुपये और योगेश पांडे ने 9 लाख रुपये दिए, जिसके लिए योगेश को बताया गया कि वह केवल 9 प्रतिशत का भागीदार होगा, जिस पर उसने कहा कि वह पैसे भेज देगा या आर.टी.जी.एस. के माध्यम से ट्रांसफर करवा देगा जिसके बाद उसने आर.टी.जी.एस. के माध्यम से 16 लाख रुपये बाल कुमार पटेल के खाते में ट्रांसफर कर दिए। बाल कुमार पटेल वार्ता में देरी करते थे और फिर 27.12.2018 को आर.टी.आई. के माध्यम से पहले सूचनाकर्ता ने आर.टी.आई. के माध्यम से यह जानकारी देने का अनुरोध किया कि क्या मानपुर खुर्द नारायणी के लिए सुधीर, राम शंकर पटेल और देव शरण पटेल के नाम पर रेत के पट्टे के लिए कोई फाइल स्वीकृत हुई है, जिसका उसे कोई जवाब नहीं मिला और फिर वह खुद संबंधित विभाग में गए और वहां से पूछताछ की और पता चला कि वहां उक्त नामों के लिए कोई फाइल नहीं है। इसके बाद उन्होंने फोन पर पूर्व सांसद बाल कुमार पटेल से संपर्क करने की कोशिश की, जिस पर वह कहते थे कि कभी वह दिल्ली में हैं, कभी रायबरेली में और कभी प्रतापगढ़ में और बाद में वर्ष 2019 में उन्होंने समाजवादी पार्टी छोड़कर कांग्रेस पार्टी में शामिल होकर बांदा चित्रकूट लोकसभा क्षेत्र से चुनाव लड़ा लेकिन हार गए। प्रथम सूचनाकर्ता और उसके व्यक्तियों को विश्वास है कि भानु प्रताप चतुर्वेदी और बाल कुमार पटेल पूर्व सांसद ने मिलकर उसके और उसके साथियों रुद्र प्रकाश, सतेंद्र शुक्ला और योगेश पांडे के साथ धोखाधड़ी और धोखाधड़ी की है। पहले सूचनाकर्ता और उसके साथी फिर 2-3 बार चित्रकूट में बाल कुमार पटेल के घर गए और साझेदारी के बारे में पूछा जिससे उसने उन्हें गुमराह करने की कोशिश

की और फिर उन्होंने अपने पैसे वापस मांगे जो कि उसके द्वारा टाले जा रहे हैं। उसने पहले सूचनाकर्ता और उसके सहयोगियों को बकाया 65 लाख रुपये नहीं लौटाए हैं और न ही उनके फोन कॉल का जवाब दे रहे हैं। बाल कुमार पटेल @ राज कुमार पूर्व सांसद को बार-बार बुलाया गया और फिर 07.07.2020 को उन्होंने सितंबर 2020 में पैसे वापस करने का वादा किया लेकिन अब फोन कॉल का जवाब नहीं दे रहे हैं। कुछ अज्ञात लोग पहले सूचनाकर्ता के घर आए और धमकी दी कि वह बाल कुमार पटेल को दिए गए पैसे भूल जाए अन्यथा यह उसके लिए अच्छा नहीं होगा। उसे और उसके परिवार को जान का खतरा है। वह प्रार्थना करता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की जाए। आर.टी.जी.एस. रसीदों के रूप में प्रथम सूचना रिपोर्ट संलग्नक के साथ, आर.टी.आई. की रजिस्ट्री के आवेदन और रसीद संलग्न की गई है। इसलिए प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई।

16. आवेदक के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट गलत धारणा के तहत दर्ज की गई है। आवेदक और सह-आरोपी के साथ पहले सूचनाकर्ता और उसके दोस्तों और रिश्तेदारों के बीच सौदा एक व्यावसायिक लेनदेन था। आवेदक द्वारा न तो प्रथम सूचनाकर्ता को कोई प्रस्ताव दिया गया और न ही उसके सहयोगियों को आश्वासन दिया गया। अपराध प्रकृति में छोटा है। जांच के दौरान दर्ज किए गए पहले सूचनाकर्ता और गवाहों के बयान स्टीरियो टाइप किए गए बयान हैं। वर्तमान विवाद एक निजी विवाद है। 482 अंतर्गत याचिका की पेपरबुक में अनुलग्नक-4 रखते हुए यह तर्क दिया गया है कि धारा 156 (3) द०प्र०स० के तहत बाल कुमार पटेल @ राज कुमार (आवेदक) द्वारा रमाकांत त्रिपाठी (प्रथम सूचनाकर्ता), योगेश पांडे, रुद्र प्रकाश और सतेंद्र शुक्ला के खिलाफ एक आवेदन दायर किया गया था, जिसमें आरोप लगाया गया था कि आरोपी व्यक्तियों ने जमीन खरीदने के लिए पैसे दिए थे, लेकिन पक्षों के बीच कुछ विवाद उत्पन्न हुआ और इस तरह आवेदक ने 17.11.2020 को इस आशय का एक आवेदन पुलिस अधीक्षक, चित्रकूट को दिया और चूंकि इस पर कोई कार्रवाई नहीं हुई थी, इसलिए उनके द्वारा धारा 156 (3) द०प्र०स० के तहत एक आवेदन दायर किया गया है। हलफनामे के पैराग्राफ-4 और अनुलग्नक-4 में उक्त आवेदन दिनांक 17.11.2020 (पेपर-बुक के पृष्ठ संख्या-62 और 63) और धारा 156 (3) द०प्र०स० (पेपर-बुक के पृष्ठ संख्या-64 से 67) के तहत आवेदन न्यायालय के समक्ष रखा गया है। यह तर्क दिया गया है कि आवेदक के झूठे आरोप का कारण भी यही है। यह तर्क दिया गया है कि वर्तमान विवाद, यदि कोई हो, व्यावसायिक लेनदेन से उत्पन्न एक निजी विवाद है और इस तरह कार्यवाही रद्द करने योग्य है। आरोपों में कोई आपराधिकता नहीं है। यह तर्क दिया गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के बाद जांच समाप्त हो गई और आवेदक और सह-आरोपी भानु प्रताप चतुर्वेदी के खिलाफ धारा 419, 420, 406 भ०द०वि० के तहत दिनांक 21.09.2021 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है, जिस पर दिनांक 02.11.2021 के आदेश के तहत उन्हें मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया गया है जो पूरी तरह से अवैध है। अग्रिम जमानत याचिका को पेश करते हुए अधिवक्ता ने तर्क दिया कि यदि इस न्यायालय का विचार याचिका को अनुमति देने का नहीं है तो आवेदक को मुकदमे के समापन तक अग्रिम जमानत दी जा सकती है, तर्क और आधार वही हैं जो ऊपर तर्क दिए गए हैं।

17. पहले सूचनाकर्ता के अधिवक्ता ने याचिका और अग्रिम जमानत आवेदन की प्रार्थनाओं का विरोध करते हुए तर्क दिया कि आवेदक का शुरू से ही धोखा देने का इरादा था जैसा कि आरोपों से ही स्पष्ट है। झूठे आश्वासन पर पैसा लिया गया। आवेदक ने न केवल पहले सूचनाकर्ता बल्कि कई अन्य लोगों को धोखा दिया है। अग्रिम जमानत आवेदन में अपने जवाबी हलफनामे दिनांक 27.08.2022 के पैराग्राफ-2 को रखते हुए यह तर्क दिया जाता है कि विवेचनाधिकारी ने आवेदक को द०प्र०स० की धारा 41(ए) के तहत नोटिस देने की कोशिश की, लेकिन आवेदक उससे नहीं मिला और इस तरह उसने उक्त नोटिस अपने घर पर चिपका दिया। इसके बाद विवेचनाधिकारी को दिनेश कुमार पटेल के मोबाइल फोन से एक कॉल आया जिसमें कहा गया था कि आवेदक चुनाव में व्यस्त है और वह नहीं आ सकता है और चूंकि धारा 41 (ए) द०प्र०स० के तहत नोटिस उसे भेजा गया है, इसलिए वह उससे फोन पर ही बात कर सकता है, जिस पर विवेचनाधिकारी ने आवेदक से फोन पर बात की और फोन पर ही अपना बयान दर्ज किया। अधिवक्ता ने सी.डी. संख्या-25 दिनांक 18.09.2021 को प्रस्तुत करने के लिए प्रतिशपथ पत्र में अनुलग्नक सीए-1 के रूप में संलग्न किया है और अपने तर्क को और विस्तार से बताते हुए कहा है कि यह दर्शाता है कि आवेदक ने जांच में कभी सहयोग नहीं किया और यहां तक कि विवेचनाधिकारी ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत बयान दर्ज करने में असमर्थ महसूस किया तो फिर जो उसके द्वारा टेलीफोन पर किया गया था।

अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि पैसे की मांग और पक्षों के बीच बातचीत की रिकॉर्डिंग जैसा कि रिकॉर्ड किया गया था, विवेचनाधिकारी को पहले सूचनाकर्ता द्वारा एक पेन-ड्राइव में दिया गया था जिसे उसके द्वारा सील कर दिया गया था और केस डायरी का हिस्सा बनाया गया था। अग्रिम जमानत आवेदन में दिनांक 27.08.2022 के जवाबी हलफनामे में अतिरिक्त प्रस्तुतियों का पैराग्राफ-7 और उसी के अनुलग्नक-7 सी.डी. संख्या-5 दिनांक 24.11.2020 है जिसमें विवेचनाधिकारी द्वारा उक्त पेन-ड्राइव के संबंध में एक नोट बनाया गया है और इसे केस

डायरी का हिस्सा बनाकर इसे प्रदर्शित करने के लिए अदालत के समक्ष रखा गया है। आगे यह तर्क दिया गया है कि कथित आवेदन दिनांक 17.11.2020 पुलिस अधीक्षक, जिला चित्रकूट को संबोधित किया गया था और धारा 156 (3) द०प्र०स० के तहत आवेदन, जैसा कि आवेदक द्वारा पहले सूचनाकर्ता और उसके सहयोगियों के खिलाफ दायर किया गया था, पूरी तरह से झूठा संस्करण है जिसमें एक मनगढ़ंत कहानी है। जवाबी हलफनामा देते समय यह तर्क दिया गया है कि आवेदक आपराधिक पृष्ठभूमि का व्यक्ति है। उक्त जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ-18 को यह तर्क देने के लिए रखा गया है कि आवेदक खूंखार ददुआ गिरोह का सदस्य था और वर्ष 1979 से आपराधिक गतिविधियों में शामिल है जो अभी भी जारी है। आगे तर्क दिया जाता है कि आवेदक के खिलाफ 27 मामले हैं। अधिवक्ता ने तर्क दिया कि याचिका और अग्रिम जमानत याचिका खारिज किए जाने योग्य हैं।

18. राज्य के अधिवक्ता ने भी याचिका 482 और अग्रिम जमानत आवेदन का विरोध किया और तर्क दिया कि आवेदक का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में है और उसके खिलाफ आरोप हैं। आवेदक की ओर से गलत बयानी की गई है और वह बातचीत में सक्रिय रूप से शामिल था जिसके कारण उसके खाते में पैसे ट्रांसफर किए गए थे। उसकी ओर से 'मेन्स रीया' था। यह तर्क दिया जाता है कि आवेदक ने जांच में सहयोग नहीं किया है जैसा कि केस डायरी से स्पष्ट है। द०प्र०स० की धारा 41 (ए) के तहत उन्हें नोटिस देने की कोशिश की गई, लेकिन उन्हें तामील नहीं किया जा सका और इस तरह ये उनके घर पर चस्पा कर दिया गया, जिसके बाद विवेचनाधिकारी को आवेदक के किसी व्यक्ति का फोन आया, जिसमें उन्होंने आवेदक की विवेचनाधिकारी के सामने पेश होने में असमर्थता के बारे में बताया और फिर विवेचनाधिकारी ने केवल टेलीफोन के माध्यम से धारा 161 द०प्र०स० के तहत बयान दर्ज किया। यह तर्क दिया जाता है कि यद्यपि पहले जवाबी हलफनामे में आवेदक के आपराधिक पूर्ववृत्त का खुलासा नहीं किया गया था, लेकिन दोनों याचिकाओं में पुलिस अधीक्षक, बांदा के अनुपालन के हलफनामे से पता चलता है कि वर्तमान मामले सहित 27 मामले हैं जिनमें आवेदक शामिल रहा है। यह तर्क दिया जाता है कि पुलिस अधीक्षक, बांदा ने 10.06.2022 के जवाबी हलफनामे के पहले के प्रतिवादी के खिलाफ कार्रवाई की है, जिसने आवेदक के आपराधिक पूर्ववृत्त का बिल्कुल भी खुलासा नहीं किया था, लेकिन पैराग्राफ-12 में कहा गया है कि आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। आगे यह तर्क दिया गया है कि मामले में जांच समाप्त हो गई है जिसमें आवेदक के खिलाफ विश्वसनीय सबूत पाए गए हैं। धन का अंतरण हुआ है जो एक रिकॉर्डेड घटना और रिकॉर्डेड लेन-देन है। पैसा आवेदक के बैंक खाते में चला गया है। गहन जांच के बाद आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है, जिसके आधार पर संबंधित अदालत ने वर्तमान मामले में संज्ञान लिया है। यह तर्क दिया गया है कि इस प्रकार याचिका और अग्रिम जमानत याचिका खारिज किए जाने योग्य हैं।

19. पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेखों का अवलोकन करने के बाद, यह स्पष्ट है कि आवेदक का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में है। धन का लेन-देन बैंक हस्तांतरण के माध्यम से हुआ है जैसा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में कहा गया है। आरोप प्रथम दृष्टया प्रथम सूचनाकर्ता और उसके सहयोगियों के साथ व्यवहार करते समय सह-अभियुक्त के साथ आवेदक की सक्रिय भागीदारी को दर्शाते हैं। मामले की जांच की गई और आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया, जिस पर संबंधित अदालत ने संज्ञान लिया है और आवेदक और सह-आरोपी को तलब किया है। आवेदक द्वारा पुलिस अधीक्षक, जिला चित्रकूट को दिया गया आवेदन दिनांक 17.11.2020 का है और कथित रूप से धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत दिया गया आवेदन एक अदिनांकित आवेदन है और यहां तक कि बिना संख्या के भी है। और यहां तक कि आवेदक के अधिवक्ता से जांच करने पर भी इसकी तारीख का खुलासा नहीं किया जा सका। इसके अलावा, वर्तमान मामले की पहली सूचना रिपोर्ट 11.10.2020 को दर्ज की गई है, जबकि कथित तौर पर पुलिस अधीक्षक, जिला चित्रकूट के समक्ष दायर किया गया आवेदन दिनांक 17.11.2020 का है, जो वर्तमान प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लगभग 01 महीने और 07 दिनों के बाद है। धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत आवेदन यदि स्थानांतरित किया जाता है तो स्पष्ट रूप से 17.11.2020 के बाद होना चाहिए, जो कि कथित रूप से पुलिस अधीक्षक, जिला चित्रकूट को दिए जाने वाले आवेदन की तारीख है। यह वर्तमान प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के बाद है और वर्तमान मामले में अभियुक्त का बचाव है।

20. कार्यवाही/आरोप-पत्र को रद्द करने के संबंध में कानून अच्छी तरह से तय है।

निम्नलिखित मामलों में:

i) आर.पी कपूर बनाम पंजाब राज्य: ए.आई.आर. 1960 एस.सी. 866;

ii) हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य,1992 पूरक (1) एस.सी.सी. 335;

iii) बिहार राज्य बनाम पीपी शर्मा: 1992 पूरक (1) एस.सी.सी. 222;

iv) ट्राईसन्स केमिकल इंडस्ट्री बनाम राजेश अग्रवाल और अन्य: (1999)8 एस.सी.सी. 686;

v) एम. कृष्णन बनाम विजय सिंह और अन्य: (2001) 8 एस.सी.सी. 645;

vi) झंडू फार्मास्युटिकल्स वर्क्स लि बनाम मो. शराफुल हक और एक और: (2005)-1

एस.सी.सी. 122;

vii) एम.एन ओझा बनाम आलोक कुमार श्रीवास्तव (2009) 9 एस.सी.सी. 682;

viii) जोसेफ सल्वराज ए बनाम गुजरात राज्य और अन्य: (2011) 7 एस.सी.सी. 59;

ix) अरुण भंडारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य: (2013) 2 एस.सी.सी. 801;

x) मोहम्मद अलाउद्दीन खान बनाम बिहार राज्य: (2019) 6 एस.सी.सी. 107;

xi) आनंद कुमार मोहत्ता और अन्य बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), गृह विभाग और अन्य:

(2019) 11 एस.सी.सी. 706;

xii) राजीव कौरव बनाम बालासाहेब और अन्य: (2020) 3 एस.सी.सी. 317;

xiii) नल्लापारेड्डी श्रीधर रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य : (2020) 12 एस.सी.सी. 467,

यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग एक असाधारण प्रयोग है।

शिकायत/प्राथमिकी/आरोप-पत्र की जांच शुरू करने से पहले उच्च न्यायालय द्वारा यह तय करने में बहुत सावधानी बरतनी चाहिए कि क्या अभियोजन पक्ष को उसकी शुरुआत में निष्फल करने को ये असाधारण मामला बनता है।

21. इसके अलावा प्रीति सराफ और एक अन्य बनाम एनसीटी दिल्ली राज्य और अन्य: 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 206 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्तियों पर विचार करते हुए निम्नानुसार अवधारित किया है:

"23. यह कानून का एक स्थापित सिद्धांत है कि धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए, शिकायत की संपूर्णता में शिकायत/प्राथमिकी/आरोप पत्र में लगाए गए आरोप के आधार पर जांच करनी होगी और उस स्तर पर उच्च न्यायालय मामले में जाने या इसकी शुद्धता की जांच करने के लिए बाध्य नहीं था। शिकायत/प्राथमिकी/आरोप-पत्र के चेहरे पर जो कुछ भी दिखाई देता है, उसे बिना किसी आलोचनात्मक जांच के ध्यान में रखा जाएगा। अपराध को शिकायत/प्राथमिकी/आरोप-पत्र और अन्य दस्तावेजी साक्ष्य, यदि कोई हो, रिकॉर्ड पर प्रकट होना चाहिए।

24. विचारणीय प्रश्न यह है कि किन परिस्थितियों और श्रेणियों के मामलों में, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय की असाधारण शक्तियों का प्रयोग करते हुए, या धारा 482 द०प्र०स० के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग में आपराधिक कार्यवाही को रद्द किया जा सकता है। इस पर अक्सर इस न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों के समक्ष गरमागरम बहस होती रही है। हालांकि निर्णयों की एक श्रृंखला में, इस प्रश्न का उत्तर इस न्यायालय द्वारा कई अवसरों पर दिया गया है, फिर भी यह अभी भी विचार के लिए आता है और गंभीरता से बहस की जाती है।

25. इस पृष्ठभूमि में, धारा 482 द०प्र०स० के तहत उच्च न्यायालय के निहित अधिकार क्षेत्र के दायरे और क्षेत्र की जांच हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य, (1992 पूरक (1) एस.सी.सी. 335) में इस न्यायालय के फैसले में की गई है। संबंधित पैरा-का उल्लेख यहां किया गया है: -

"102. अध्याय XIV के तहत संहिता के विभिन्न प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या और अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति के प्रयोग से संबंधित निर्णयों की एक श्रृंखला में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में या संहिता की धारा 482 के तहत निहित शक्तियां, जिन्हें हमने ऊपर निकाला और पुन: प्रस्तुत किया जाता है, हम उदाहरण के रूप में मामलों की निम्नलिखित श्रेणियां देते हैं जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग या तो किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है, हालांकि कोई भी सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त रूप से चैनलीकृत और अनम्य दिशानिर्देश या कठोर सूत्र निर्धारित करना और असंख्य प्रकार के मामलों की एक विस्तृत सूची देना संभव नहीं हो सकता है जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया गया हो और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया गया हो, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है या अभियुक्त के खिलाफ मामला नहीं बनता है।

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप और प्राथमिकी के साथ अन्य सामग्री, यदि कोई हो, संहिता की धारा 155(2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराते हुए संहिता की धारा 156(1) के तहत एक संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हैं।

(3) जहां प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए सबूत किसी अपराध के होने का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला नहीं बनाते हैं।

(4) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध नहीं हैं बल्कि केवल असंज्ञेय अपराध ही हैं वहां किसी पुलिस अधिकारी द्वारा मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना जांच की अनुमति नहीं दी जाती है, जैसा कि संहिता की धारा 155(2) के अधीन विचार किया गया है।

(5) जहां प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं जिनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) के किसी भी प्रावधान में संस्था पर एक स्पष्ट कानूनी प्रतिबंध लगाया गया है और कार्यवाही को जारी रखना और/या जहां संहिता या संबंधित अधिनियम में एक विशिष्ट प्रावधान है, पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करना।

(7) जहां एक आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावना के साथ भाग लिया जाता है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से अभियुक्त पर प्रतिशोध लेने के लिए एक गुप्त उद्देश्य के साथ और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे अपमानित करने की दृष्टि से शुरू की जाती है।

26. इस न्यायालय ने उन दिशानिर्देशों को निर्धारित करने में व्यापक रूपरेखा और मापदंडों को स्पष्ट किया है, जिन्हें उच्च न्यायालयों द्वारा धारा 482 द०प्र०स० के तहत निहित शक्तियों का प्रयोग करते समय ध्यान में रखा जाना है। इस न्यायालय द्वारा निर्धारित पूर्वोक्त सिद्धांत व्याख्यात्मक हैं और संपूर्ण नहीं हैं। फिर भी, यह उन परिस्थितियों और स्थिति पर प्रकाश डालता है जिन्हें जब उच्च न्यायालय धारा 482 द०प्र०स० के तहत अपनी निहित शक्तियों का प्रयोग करता है, तब ध्यान में रखा जाना चाहिए।

27. इस न्यायालय द्वारा हाल ही में अर्नब मनोरंजन गोस्वामी बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 964 में इसे और स्पष्ट किया गया है, जहां भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और धारा 482 द०प्र०स० के तहत उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का विस्तार से विश्लेषण किया गया है।

28. इस प्रकार यह तय किया गया है कि उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग एक असाधारण शक्ति है जिसे यह तय करने में शिकायत/प्राथमिकी/आरोप-पत्र की जांच करने से पहले बहुत सावधानी और सतर्कता के साथ प्रयोग किया जाना चाहिए कि क्या अभियोजन पक्ष को इसकी शुरुआत में ही निष्फल करने के लिए, वास्तव में ये एक असाधारण मामला है।

22. रामवीर उपाध्याय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: 2002 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 484 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ-27, 38 और 39 में कहा है कि धारा 482 द०प्र०स० के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करके आपराधिक मामले को रद्द करना केवल असाधारण मामलों में ही किया जाना चाहिए। आगे यह कहा गया कि आपराधिक कार्यवाही को शुरू में ही समाप्त नहीं किया जा सकता है, चाहे आरोप सही हों या असत्य, मुकदमे में फैसला करना होगा। अदालत शिकायत में आरोपों की शुद्धता की जांच नहीं कर सकती है। पैराग्राफ-27, 38 और 39 में उद्धृत:

"27. भले ही, आपराधिक कार्यवाही में हस्तक्षेप करने के लिए धारा 482 द०प्र०स० के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति व्यापक है, लेकिन असाधारण मामलों में ऐसी शक्ति का प्रयोग सावधानी के साथ किया जाना चाहिए। धारा 482 द०प्र०स० के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग पूछने के लिए नहीं किया जाना है।

38. न्याय के उद्देश्य को बेहतर ढंग से पूरा किया जाएगा यदि न्यायालय का बहुमूल्य समय धारा 482 के तहत याचिकाओं पर सुनवाई करने के बजाय एक वादकालीन चरण में खर्च किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप अंततः न्याय की हानि हो सकती है जैसा कि हमीदा बनाम राशिद @ रशीद और अन्य, (2008) 1 एस.सी.सी. 474 में अवधारित किया गया था।

39. हमारी सुविचारित राय में, धारा 482 द०प्र०स० के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करके आपराधिक कार्यवाही को केवल इसलिए समाप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि शिकायत एक राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी द्वारा दर्ज की गई है। यह संभव है कि किसी राजनीतिक विरोधी के इशारे पर झूठी शिकायत दर्ज कराई गई हो। हालांकि, इस तरह की संभावना आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए धारा 482 द०प्र०स० के तहत हस्तक्षेप को उचित नहीं ठहराएगी। जैसा कि ऊपर देखा गया है, पहले के आपराधिक मामले के बंद होने के बाद, कथित कृत्यों द्वारा याचिकाकर्ताओं की ओर से प्रतिशोध की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है। शिकायत में लगाए गए आरोप अत्याचार अधिनियम के तहत अपराध हैं। आरोप सही हैं या असत्य, मुकदमे में तय होना चाहिए। धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति के प्रयोग में, न्यायालय असाधारण दुर्लभ मामलों को छोड़कर शिकायत में आरोपों की शुद्धता की जांच नहीं करता है, जहां यह स्पष्ट

रूप से स्पष्ट है कि आरोप तुच्छ हैं या किसी अपराध का खुलासा नहीं करते हैं। शिकायत केस संख्या-19/2018 ऐसा मामला नहीं है जिसे बिना आगे के विचारण के शुरुआत में ही रद्द कर दिया जाए। उच्च न्यायालय ने धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदन को खारिज कर दिया।

23. इसके अलावा दाक्साबेन बनाम गुजरात राज्य: 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 936 के मामले में पैरा-49 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

"49. द०प्र०स०, 1973 की धारा 482 के तहत शक्ति के प्रयोग में न्यायालय असाधारण दुर्लभ मामलों को छोड़कर शिकायत में आरोप की शुद्धता की जांच नहीं करता है जहां यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि आरोप तुच्छ हैं या किसी अपराध का खुलासा नहीं करते हैं।

24. इस प्रकार, यह स्थापित कानून है कि रद्द करने के चरण में केवल अभियोजन पक्ष की सामग्री को देखा जाना चाहिए और अदालत आरोपों की शुद्धता या अभियुक्त के बचाव में नहीं व्यस्त हो सकती है और न फिर इस प्रकार पेश किए गए सबूतों को तौलकर मामले की जांच करने के लिए आगे बढ़ सकती है। धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय मामले के तथ्यों के विवादित प्रश्नों को इस स्तर पर नहीं आंका जा सकता है और केवल प्रथम दृष्ट्या अभियोजन मामले को देखा जाना चाहिए। आरोपी के बचाव को साबित करने के लिए सबूत पेश करने की जरूरत है। आरोपी निचली अदालत के समक्ष उचित स्तर पर आरोपमुक्त होने का दावा करते हुए अपनी शिकायतें उठा सकते हैं।

25. अग्रिम जमानत के संबंध में कानून भी अच्छी तरह से तय है। भद्रेश बिपिनभाई सेठ बनाम गुजरात राज्य (2016) 1 एस.सी.सी. 152 के मामले में अग्रिम जमानत से संबंधित कानून को दोहराया गया है। यह निम्नानुसार कहा गया है:

"21. इससे पहले कि हम आगे बढ़ें, हम अग्रिम जमानत देने से संबंधित कानून पर चर्चा करना चाहेंगे जैसा कि न्यायिक व्याख्यात्मक प्रक्रिया के माध्यम से विकसित किया गया है। एक निर्णय जिसे इंगित करने की आवश्यकता है, वह गुरबख्श सिंह सिब्बिया बनाम पंजाब राज्य [(1980) 2 एस.सी.सी. 565: 1980 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 465] में इस न्यायालय की संविधान पीठ का निर्णय है। इस मामले में संविधान पीठ ने इस बात पर जोर दिया कि संहिता की धारा 438 में निहित अग्रिम जमानत के प्रावधान की अवधारणा संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत की गई है जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता से संबंधित है। इसलिए, इस तरह के प्रावधान के लिए संविधान के अनुच्छेद 21 के आलोक में संहिता की धारा 438 की उदार व्याख्या की आवश्यकता है। संहिता बताती है कि अग्रिम जमानत एक गिरफ्तारी-पूर्व कानूनी प्रक्रिया है जो निर्देश देती है कि यदि जिस व्यक्ति के पक्ष में यह जारी किया गया है, उसे उस आरोप पर गिरफ्तार किया जाता है जिसके संबंध में निर्देश जारी किया गया है, तो उसे जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा। जमानत के एक सामान्य आदेश और अग्रिम जमानत के आदेश के बीच अंतर यह है कि पहला गिरफ्तारी के बाद दिया जाता है और इसलिए पुलिस की हिरासत से रिहाई का मतलब है, दूसरे में गिरफ्तारी की प्रत्याशा में दी जाती है और इसलिए, ये गिरफ्तारी के क्षण में प्रभावी होती है। इसलिए धारा 438 के तहत एक निर्देश का उद्देश्य संहिता की धारा 46 द्वारा चिंतन किए गए 'स्पर्श' (पकड़ना) या कारावास से सशर्त प्रतिरक्षा प्रदान करना है। इस प्रावधान का सार निम्नलिखित तरीके से सामने लाया गया है: (गुरबख्श सिंह मामला [(1980) 2 एस.सी.सी. 565: 1980 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 465], एस.सी.सी. पी. 586, पैरा-26)

"26. हम श्री तारकुंडे के सबमिशन में बहुत अधिक सार पाते हैं कि चूंकि जमानत से इनकार व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित करने के बराबर है, इसलिए अदालत को धारा 438 के दायरे पर अनावश्यक प्रतिबंध लगाने के खिलाफ झुकना चाहिए, खासकर जब विधायिका द्वारा उस धारा की शर्तों में ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं लगाया गया है। धारा 438 एक प्रक्रियात्मक प्रावधान है जो व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता से संबंधित है, जो निर्दोषता की धारणा के लाभ का हकदार है क्योंकि वह अग्रिम जमानत के लिए अपने आवेदन की तारीख पर, उस अपराध का दोषी नहीं है जिसके संबंध में वह जमानत चाहता है। धारा 438 में नहीं पाई जाने वाली बाधाओं और शर्तों का एक अतिउदार मिश्रण इसके प्रावधानों को संवैधानिक रूप से कमजोर बना सकता है क्योंकि व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को अनुचित प्रतिबंधों के अनुपालन पर निर्भर नहीं किया जा सकता है। धारा 438 में निहित लाभकारी प्रावधान को बचाया जाना चाहिए, न कि बंद किया जाना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि मेनका गांधी बनाम भारत संघ [(1978) 1 एस.सी.सी. 248] के फैसले के बाद, संविधान के अनुच्छेद 21 की चुनौती का सामना करने के लिए, किसी व्यक्ति को उसकी स्वतंत्रता से वंचित करने के लिए कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया निष्पक्ष, न्यायपूर्ण और उचित होनी चाहिए। धारा 438, जिस रूप में विधायिका द्वारा इसकी कल्पना की गई है, इस आधार पर कोई अपवाद नहीं है कि यह एक ऐसी प्रक्रिया निर्धारित करती है जो अन्यायपूर्ण या अनुचित है। हमें हर कीमत पर इसमें उन शब्दों को जो इसमें नहीं पाए जाते हैं, पढ़कर संवैधानिक चुनौती के लिए खुला फेंकने से बचना चाहिए।

22. हालांकि न्यायालय ने कहा कि सामान्य जमानत देने को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत अग्रिम जमानत के अधिकार के सटीक समानांतर प्रस्तुत नहीं कर सकते हैं, फिर भी ऐसे सिद्धांतों को ध्यान में रखा जाना चाहिए,

अर्थात्, जमानत का उद्देश्य जो मुकदमे में अभियुक्त की उपस्थिति को सुरक्षित करना है, और इस सवाल के समाधान में लागू किया जाने वाला उचित परीक्षण कि क्या जमानत दी जानी चाहिए या इनकार कर दिया जाना चाहिए यह संभव है कि पक्ष उसका परीक्षण करने के लिए प्रकट होगा। अन्यथा, जमानत को सजा के रूप में नहीं रोका जाना चाहिए। न्यायालय को यह भी विचार करना होगा कि क्या अभियुक्त द्वारा सबूतों के साथ छेड़छाड़ करने या गवाहों को प्रभावित करने आदि की कोई संभावना है। एक बार जब ये परीक्षण संतुष्ट हो जाते हैं, तो एक विचाराधीन कैदी को जमानत दी जानी चाहिए जो कि एक अन्य कोण से देखने के लिए भी महत्वपूर्ण है, अर्थात्, एक अभियुक्त व्यक्ति जो स्वतंत्रता का आनंद लेता है, अपने मामले की देखभाल करने और हिरासत में होने की तुलना में खुद का उचित बचाव करने के लिए बेहतर स्थिति में है। इस प्रकार, जमानत देना या न देना विभिन्न परिस्थितियों पर निर्भर करता है और उसका संचयी प्रभाव न्यायिक निर्णय में भी होता है। न्यायालय ने जोर देकर कहा कि किसी भी परिस्थिति को सार्वभौमिक वैधता के रूप में नहीं माना जा सकता है या जमानत देने या इनकार करने को आवश्यक रूप से उचित ठहराया जा सकता है। इस स्थिति को स्पष्ट करने के बाद, न्यायालय ने निम्नलिखित तरीके से अग्रिम जमानत के निष्कर्षों पर चर्चा की: (गुरबख्श सिंह मामला [(1980) 2 एस.सी.सी. 565: 1980 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 465], एस.सी.सी. पृष्ठ 588, पैरा-31)।

"31. अग्रिम जमानत के संबंध में, यदि प्रस्तावित आरोप न्याय के लक्ष्य को आगे बढ़ाने के उद्देश्यों से नहीं बल्कि किसी गुप्त उद्देश्य से उपजा प्रतीत होता है, तो उद्देश्य आवेदक को गिरफ्तार करके उसे घायल करना और अपमानित करना है, आवेदक की गिरफ्तारी की स्थिति में जमानत पर रिहा करने का निर्देश आम तौर पर किया जाएगा। दूसरी ओर, यदि आवेदक के पूर्ववृत्त को देखते हुए यह संभावना प्रतीत होती है कि अग्रिम जमानत के आदेश का लाभ उठाते हुए वह न्याय से भाग जाएगा, तो ऐसा आदेश नहीं दिया जाएगा। लेकिन इन प्रस्तावों का उलटा जरूरी नहीं कि सच हो। कहने का तात्पर्य यह है कि इसे एक कठोर नियम के रूप में निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि अग्रिम जमानत तब तक नहीं दी जा सकती जब तक कि प्रस्तावित आरोप दुर्भावना से प्रेरित न हो; और समान रूप से, अग्रिम जमानत दी जानी चाहिए यदि कोई डर नहीं है कि आवेदक फरार हो जाएगा। कई अन्य विचार हैं, जिनकी गणना कि जानी है, जिनके संयुक्त प्रभाव को अग्रिम जमानत देने या खारिज करते समय अदालत को तौलना चाहिए। प्रस्तावित आरोपों की प्रकृति और गंभीरता, उन घटनाओं का संदर्भ जो आरोप लगाने की संभावना रखते हैं, मुकदमे में आवेदक की उपस्थिति सुरक्षित नहीं होने की उचित संभावना, गवाहों के साथ छेड़छाड़ की उचित आशंका और 'जनता या राज्य के बड़े हित' कुछ ऐसे विचार हैं जिन्हें अदालत को अग्रिम जमानत के लिए आवेदन पर फैसला करते समय ध्यान में रखना होता है। इन विचारों की प्रासंगिकता को राज्य बनाम कैप्टन जगजीत सिंह [ए.आई.आर. 1962 एस.सी. 253: (1962) 1 सी.आर.आई. एलजे 215: (1962) 3 एस.सी.आर 622] में इंगित किया गया था, जो, हालांकि, पुरानी धारा 498 के तहत एक मामला था जो संहिता की वर्तमान धारा 439 से मेल खाता है। यह याद रखना सर्वोपरि है कि व्यक्ति की स्वतंत्रता समाज के अस्तित्व के लिए उतनी ही आवश्यक है जितनी कि व्यक्ति के अहंकारी उद्देश्यों के लिए। अग्रिम जमानत मांगने वाला व्यक्ति अभी भी एक स्वतंत्र व्यक्ति है जो निर्दोषता की धारणा का हकदार है। वह अपनी स्वतंत्रता पर प्रतिबंधों को प्रस्तुत करने के लिए तैयार है, उन शर्तों की स्वीकृति से, जिन्हें अदालत लगाने के लिए उपयुक्त समझ सकती है, इस आश्वासन पर विचार करते हुए कि यदि गिरफ्तार किया जाता है, तो उसे जमानत पर बढ़ाया जाएगा।

26. नरेंद्रजीत सिंह साहनी बनाम भारत संघ: (2002) 2 एस.सी.सी. 210 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि धारा 406, 409, 420 और 120-बी के तहत आरोप का सामना करने वाला अभियुक्त आमतौर पर आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के प्रावधानों को लागू करने का हकदार नहीं है जब तक कि यह स्थापित नहीं किया जाता है कि ऐसा आपराधिक आरोप प्रामाणिक नहीं है।

27. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के तहत अग्रिम जमानत के दायरे पर विचार करते हुए आद्री धरन दास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य: (2005) 4 एस.सी.सी. 303 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने बालाचंद जैन बनाम मध्य प्रदेश राज्य के मामले में पहले संवैधानिक पीठ के फैसले पर भरोसा करते हुए: (1976) 4 एस.सी.सी. 572, पैरा-7 में इस प्रकार देखा है:

"7. संहिता की धारा 438 जो सुविधा देती है उसे आम तौर पर "अग्रिम जमानत" कहा जाता है। विधि आयोग द्वारा अपनी 41वीं रिपोर्ट में प्रयुक्त इस अभिव्यक्ति का प्रयोग न तो धारा में किया गया है और न ही इसके सीमांत नोट में। लेकिन अभिव्यक्ति "अग्रिम जमानत" संकेत का एक सुविधाजनक तरीका है कि गिरफ्तारी की प्रत्याशा में जमानत के लिए आवेदन करना संभव है। जमानत का कोई भी आदेश आरोपी की गिरफ्तारी के समय से ही प्रभावी हो सकता है। व्हार्टन का लॉ लेक्सिकन "जमानत" को "गिरफ्तार या कैद किए गए व्यक्ति को उसकी उपस्थिति के लिए सुरक्षा पर ले जाने पर" स्वतंत्रता पर छोड़ने के रूप में बताता है। इस प्रकार जमानत मूल रूप से हिरासत से मुक्त करती है, विशेष रूप से पुलिस की हिरासत से। जमानत के एक साधारण आदेश और संहिता

की धारा 438 के तहत एक आदेश के बीच अंतर यह है कि जबकि ये गिरफ्तारी-पूर्व दिया जाता है, और इसलिए पुलिस की हिरासत से रिहाई का मतलब है, दूसरा गिरफ्तारी की प्रत्याशा में दिया जाता है और इसलिए गिरफ्तारी के क्षण में प्रभावी होता है। (गुरबख्श सिंह सिब्बिया बनाम पंजाब राज्य [(1980) 2 एस.सी.सी. 565: 1980 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 465] देखें। संहिता की धारा 46 (1), जो इस बात से संबंधित है कि गिरफ्तारी कैसे की जानी है, यह प्रावधान करती है कि गिरफ्तारी करने में पुलिस अधिकारी या अन्य व्यक्ति "वास्तव में गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति के शरीर को छूएगा या उसको कैद करेगा, जब तक कि शब्द या कार्रवाई द्वारा हिरासत में प्रस्तुत न किया गया हो"। संहिता की धारा 438 के तहत आदेश का उद्देश्य संहिता की धारा 46(1) या किसी भी कारावास द्वारा परिकल्पित स्पर्श से सशर्त प्रतिरक्षा प्रदान करना है। बालचंद जैन बनाम मध्य प्रदेश राज्य [(1976) 4 एस.सी.सी. 572: 1976 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 689: ए.आई.आर. 1977 एस.सी. 366] में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिव्यक्ति "अग्रिम जमानत" को मिथ्या नाम बताया है। यह सर्वविदित है कि जमानत गिरफ्तारी की सामान्य अभिव्यक्ति है, कि अदालत पहले एक आदेश देने के लिए सोचती है कि गिरफ्तारी की स्थिति में एक व्यक्ति को जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा। जाहिर है कि जब तक आरोपी को गिरफ्तार नहीं किया जाता है, तब तक जमानत पर रिहाई का कोई सवाल ही नहीं है, और इसलिए गिरफ्तारी होने पर ही आदेश लागू होता है। धारा 438 के तहत प्रयोग की जाने वाली शक्ति प्रकृति में कुछ असाधारण है और यह केवल असाधारण मामलों में है जहां ऐसा प्रतीत होता है कि व्यक्ति को झूठा फंसाया जा सकता है या जहां यह धारण करने के लिए उचित आधार हैं कि अपराध का आरोपी व्यक्ति अन्यथा अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करने की संभावना नहीं रखता है, तो धारा 438 के तहत शक्ति का प्रयोग किया जाना है। शक्ति महत्वपूर्ण प्रकृति की होने के कारण इसे केवल न्यायिक मंचों के उच्च क्षेत्रों यानी सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय को सौंपा जाता है। यह गैर-जमानती अपराध के प्रत्याशित आरोप के मामले में प्रयोग की जाने वाली शक्ति है। संहिता की धारा 438 द्वारा जिस उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास किया गया है वह यह है कि जिस क्षण किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाता है, यदि उसने सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय से पहले ही आदेश प्राप्त कर लिया है, तो उसे जेल भेजे बिना जमानत पर तुरंत रिहा कर दिया जाएगा। (महत्त्व सन्निविष्ट)

28. उपरोक्त के रूप में चर्चाओं, मामले के तथ्यों, आवेदक के खिलाफ प्रथम दृष्टया आरोपों, विषय पर कानून और आवेदक के आपराधिक पूर्ववृत्त को देखते हुए, यह न्यायालय याचिका में कार्यवाही को, जैसा कि प्रार्थना की गई थी, रद्द करना उचित नहीं समझता है।

जहां तक अग्रिम जमानत आवेदन का संबंध है, हालांकि हस्तक्षेप का मामला बनाया जा सकता था, लेकिन मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए कि आवेदक पहले एक जन प्रतिनिधि था, तथ्य यह है कि वह पहले कई आपराधिक मामलों में शामिल था, विवेचनाधिकारी के आह्वान पर खुद को उपलब्ध नहीं कराकर जांच में उसके द्वारा असहयोग, अपने बैंक खाते में धन के अंतरण का दर्ज तथ्य, आवेदक द्वारा वार्ता शुरू होने से ही पहले सूचनाकर्ता को गलत तरीके से प्रस्तुत करने का आरोप, आवेदक के गुर्गों द्वारा पहले सूचनाकर्ता को धमकी दिए जाने का आरोप, एकत्र किए गए साक्ष्य जिसके बाद आवेदक और सह-अभियुक्त के खिलाफ आरोप-पत्र दायर करके जांच समाप्त की गई और इस तरह मामला प्रथम दृष्टया साबित हुआ, अदालत ने इस पर संज्ञान लेते हुए और आरोपी व्यक्तियों को तलब किया, तथ्य यह है कि पहले सूचनाकर्ता के लिए आवेदक को झूठा फंसाने का कोई कारण नहीं था, आम जनता की किसी राजनेता या सार्वजनिक प्रतिनिधि के खिलाफ आरोप लगाने में हिचकिचाहट, लेकिन फिर भी एक प्रथम सूचना रिपोर्ट और कानून दर्ज करना जैसा कि ऊपर कहा गया है, उक्त तथ्यों के मद्देनजर यह अदालत अग्रिम जमानत याचिका को भी खारिज करती है।

29. तदनुसार, याचिका और अग्रिम जमानत आवेदन खारिज किया जाता है। 482 याचिका में पारित दिनांक 07.09.2022 के अंतरिम आदेश को खारिज किया जाता है।

30. मामले से अलग होने से पहले विशेष रूप से किसी अभियुक्त के आपराधिक पूर्ववृत्त के संबंध में जवाबी हलफनामा दाखिल करने के संबंध में कुछ निर्देश देना उपयुक्त होगा। वर्तमान मामला इस बात का एक ज्वलंत उदाहरण है कि कैसे चीजें विशेष रूप से उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से ब्रह्मदेव गोस्वामी, उपनिरीक्षक, थाना-कोतवाली नगर, जिला: बांदा द्वारा दायर किए जा रहे जवाबी हलफनामे दिनांक 10.06.2022 में आरोपी के आपराधिक पूर्ववृत्त के संबंध में आगे बढ़ी हैं, जिसमें शुरू में उल्लेख किया गया था कि उसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है जिसके बाद आवेदक के पहले सूचनाकर्ता के अधिवक्ता के बयान पर 11 मामलों का आपराधिक इतिहास लाया गया। इस न्यायालय ने इसका संज्ञान लिया और 28.07.2022 को उक्त प्रभाव का एक आदेश पारित किया जिसके बाद पुलिस अधीक्षक, बांदा का व्यक्तिगत हलफनामा दायर किया गया और फिर यह खुलासा किया गया कि आवेदक का वर्तमान मामले सहित 27 मामलों का आपराधिक इतिहास है। यद्यपि किसी व्यक्ति का आपराधिक पूर्ववृत्त किसी मामले में एकमात्र निर्णायक

कारक नहीं हो सकता है, लेकिन किसी मामले का निर्णय लेते समय निश्चित रूप से इसे देखने की आवश्यकता है। अग्रिम जमानत आवेदन में पुलिस अधीक्षक, बांदा के अनुपालन के हलफनामे से पता चलता है कि पहले के जवाबी हलफनामे के प्रतिवादी के खिलाफ कुछ कार्रवाई शुरू की गई है, लेकिन जिस तरह से यह तथ्य सामने आया है और वह भी पहले सूचनाकर्ता के अधिवक्ता की ओर इशारा करने पर, चिंता का विषय है। ऐसा मामला हो सकता है जहां प्रथम सूचनादाता का न्यायालय में प्रतिनिधित्व न हो और इस प्रकार न्यायालय राज्य/पुलिस अधिकारियों द्वारा दायर हलफनामे को सही मानते हुए मामले की सुनवाई और निर्णय लेता है लेकिन इस प्रकार अभियुक्त के आपराधिक इतिहास के बारे में वास्तविक तथ्य न्यायालय के समक्ष नहीं आएगा।

वर्तमान डिजिटल युग के साथ जहां अब सब कुछ संभव है और एक बटन के प्रेस या माउस के एक क्लिक के साथ सब उपलब्ध है, यह नहीं कहा जा सकता है कि किसी व्यक्ति के आपराधिक इतिहास को पुलिस एजेंसी द्वारा तुरंत एक समर्पित पोर्टल के माध्यम से एकत्र नहीं किया जा सकता है ताकि वह अदालतों को रिपोर्ट कर सके। यदि इसे अद्यतन नहीं किया गया है अथवा यह कार्य नहीं कर रहा है तो यह चिंता का विषय है।

31. प्रधान सचिव (गृह), उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ और पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ को निर्देश दिया जाता है कि वे इस मुद्दे की जांच करें और आवश्यक कार्रवाई करें और इस मुद्दे को अपने स्तर पर उठाएं ताकि एक ही बार में किसी व्यक्ति के आपराधिक इतिहास का विवरण उपलब्ध हो सके। यहां तक कि अनुदेश/उत्तर/शपथ पत्र के माध्यम से या अन्यथा अभियुक्त के पूरे आपराधिक इतिहास का खुलासा करने के लिए न्यायालय(ओं) में जवाब देने वाले व्यक्ति के लिए जिम्मेदारी तय की जानी चाहिए, जिसमें विफल होने पर आरोपी व्यक्तियों को बचाने के जानबूझकर प्रयासों से बचने और संबंधित अदालतों के समक्ष उनके आपराधिक इतिहास का खुलासा नहीं करने के लिए कुछ निवारक होना चाहिए।

32. इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल (महानिबंधक) और उत्तर प्रदेश राज्य के अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता को निर्देश दिया जाता है कि वे इस आदेश की एक प्रति आज से एक सप्ताह के भीतर प्रमुख सचिव (गृह), उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ, पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ और पुलिस अधीक्षक, बांदा को आवश्यक अनुपालन के लिए भेजें।

(2023) 1 ILRA 742
मूल क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 19.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेन्द्र कुमार-चतुर्थ

धारा 482 के तहत आवेदन संख्या- 24025 वर्ष 2021

चौधरी छत्रपाल यादव **... आवेदक**
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **... विरोधी पक्ष**

आवेदक के वकील:
रामानुज यादव

विरोधी पक्षों के लिए वकील:
शासकीय अधिवक्ता, अनुराग वाजपेयी, अश्विनी कुमार अवस्थी, राजेश कुमार सिंह

ए. आपराधिक कानून– आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 227 - आरोप तय करना - धारा 306 के तहत अपराध का आरोप था - उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप, जब वारंट हुआ - आयोजित, विद्वान विचारणीय न्यायाधीश ने याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध आरोप तय किए -आईपीसी की धारा 306 के तहत आरोपी है, इसलिए यह देखा जाना चाहिए कि याचिकाकर्ता-अभियुक्त के खिलाफ क्या सबूत हैं, जांच अधिकारी द्वारा यह प्रदर्शित करने लिए कोई सबूत एकत्र नहीं किया गया है कि आवेदक का आशय इस तरह के कृत्य से मृतक को आत्महत्या के लिए उकसाने का था – उच्च न्यायालय ने आवेदक को अपराध से मुक्त कर दिया। (पैरा 15, 23 और 24)

बी. आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1973 धारा 306 - आत्महत्या के लिए उकसाना, उकसाने का घटक - विस्तारित– आयोजित, उकसावे में किसी व्यक्ति को उकसाने या जानबूझकर किसी काम को करने में सहायता करने की मानसिक प्रक्रिया शामिल होती है। आत्महत्या के लिए उकसाने या सहायता करने के लिए आरोपी की ओर से कोई सकारात्मक कार्य होना चाहिए। यदि आरोपी की ओर से आत्महत्या के लिए उकसाने या सहायता करने के लिए कोई सकारात्मक कार्य नहीं किया गया है, तो धारा 306 के तहत अपराध नहीं माना जा सकता है - इसके अलावा, विवेचना के दौरान एकत्र की गई सामग्री में आत्महत्या के लिए उकसाने के सभी तत्व पूरी तरह से

अनुपस्थित हैं, इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि आरोपी-आवेदक ने आईपीसी की धारा 306 के तहत कोई अपराध किया है। (पैरा 10, 20 और 23)

आवेदन स्वीकृत। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. केरल राज्य एवं अन्य बनाम एस उन्नीकृष्णन नायर और अन्य.; (2015) 9 एससीसी 639

2. उदे सिंह एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य; (2019) 17 एससीसी 301

3. अर्नब मनोरंजन गोस्वामी बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य .; (2021) 2 एससीसी 427

4. प्रवीण प्रधान बनाम उत्तराँचल राज्य एवं अन्य (2012) 9 एससीसी 734

5. अमित कपूर बनाम रमेश चंदर और अन्य; (2012) 9 एससीसी 460

6. निरंजन सिंह करम सिंह पुंज, एडवोकेट बनाम जितेंद्र भीमराज बिज्जा और अन्य; एआईआर 1990 एससी 1962

7. भारत संघ बनाम प्रफुल्ल कुमार सामल एवं अन्य; एआईआर 1979 एससी 366

8. पश्चिम बंगाल राज्य बनाम ओरीलाल जयसवाल; (1994) एससीसी (सीआरआई) 107

9. चित्रेश कुमार चोपड़ा बनाम राज्य (एनसीटीए दिल्ली सरकार); 2009 (16) एससीसी 605: (2010)3 एससीसी (सीआरआई) 367

10. संजू बनाम मध्य प्रदेश राज्य; (2002) 5 एससीसी 371

11. आपराधिक अपील संख्या 93/2019; राजेश बनाम हरियाणा राज्य, दिनांक 18 जनवरी, 2019 को निर्णय लिया गया

(माननीय न्यायमूर्ति राजेन्द्र कुमार-चतुर्थ द्वारा प्रदत्त)

1. संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण को सुना।

2. धारा 482 दं0प्र0सं0 के तहत वर्तमान प्रार्थना पत्र आवेदक द्वारा अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश, न्याय कक्ष संख्या 1/विशेष न्यायाधीश, डीएए, महोबा द्वारा सत्र मुकदमा संख्या 291/2021, राज्य बनाम चौधरी छत्रपाल यादव और अन्य (मुकदमा अपराध संख्या 65/2021), अन्तर्गत धारा 306, 504 और 506 भा0दं0सं0, थाना कोतवाली नगर महोबा, जिला महोबा के तहत पारित आदेश दिनांकित 08.10.2021 को रद्द करने के लिए दायर किया गया है , जिसके तहत विद्वान विचारण न्यायालय ने आवेदक द्वारा धारा 227 के तहत कथित धाराओं में आरोपमुक्त करने के लिए दायर आरोपमुक्त करने के आवेदन को खारिज कर दिया और आवेदक और अन्य सह-आरोपियों के खिलाफ धारा 306, 504 और 506 के तहत आरोप तय करने का निर्देश दिया।

3. प्रार्थना पत्र में मुख्य प्रार्थना निम्नानुसार है: –

"इसलिए, यह सविनय निवेदन है कि यह माननीय न्यायालय वर्तमान प्रार्थना पत्र को स्वीकार करने की कृपा करे और सत्र मुकदमा संख्या 291/2021(राज्य बनाम चौधरी छत्रपाल यादव और अन्य) जो मुकदमा अपराध संख्या 65/2021 अन्तर्गत धारा 306, 504 और 506 भा0दं0सं0 के तहत, पुलिस स्टेशन कोतवाली नगर (महोबा), जिला महोबा से उत्पन्न हुआ है, में अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश, न्याय कक्ष संख्या 1/विशेष न्यायाधीश, डीडीए, महोबा, द्वारा पारित 08.10.2021 के आदेश को रद्द कर दे , जिसके तहत अवर न्यायालय ने आवेदक की धारा 227 दं0प्र0सं0 के तहत आरोपमुक्त करने के प्रार्थना पत्र को खारिज कर दिया है।"

4. आरोपी-आवेदक द्वारा आक्षेपित आदेश को मुख्य रूप से इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि उसे राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता के कारण वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। उनका वर्तमान अपराध से कोई लेना-देना नहीं है। उसने कोई अपराध नहीं किया है। अभियोजन की कहानी झूठी और फर्जी है। उसने न तो पीड़ित/मृतक को प्रताड़ित किया और न ही कोई पैसा मांगा/लिया। उसने कभी भी पीड़ित को आत्महत्या के लिए नहीं उकसाया। पीड़ित की आत्महत्या करने में वर्तमान आवेदक की कोई भूमिका नहीं है। आरोपी-आवेदक का वर्तमान मामले से कोई लेना-देना नहीं है। विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि जैसा कि आरोप लगाया गया है, कोई अपराध नहीं बनता है। उन्होंने अपने तर्क के समर्थन में कुछ कागजात और बयान दिखाए और निर्णयों पर भरोसा किया जो निम्नानुसार हैं: –   I. जलील खान और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2021 लॉ सूट (एमपी) 2021)   ii. एम. मोहन बनाम पुलिस उपाधीक्षक द्वारा प्रस्तुत, (2011) सर्वोच्च न्यायालय के मामले 626   iii. गुरचरण सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2017) 1 सर्वोच्च न्यायालय के मामले 433.

iv. एम. अर्जुनन बनाम पुलिस निरीक्षक द्वारा प्रस्तुत राज्य, (2019) 3 सर्वोच्च न्यायालय के मामले 315.

5. विपक्षीगणों की ओर से, दं0प्र0सं0 की धारा 482 के तहत आवेदन का विरोध यह आरोप लगाते हुए किया गया है कि आरोपी-आवेदक आपराधिक पृष्ठभूमि का व्यक्ति है, उसके खिलाफ कई आपराधिक मामले दर्ज किए गए हैं।

वह अपराधियों का एक गिरोह चलाता है। वर्तमान घटना से पहले, अभियुक्त-आवेदक ने पीड़ित/मृतक के बेटे से कुछ पैसे मांगे/लिए हैं, जिन्होंने आवेदक और कुछ अन्य व्यक्तियों के खिलाफ संबंधित पुलिस स्टेशन में धारा 386 भा0दं0सं0 के तहत प्राथमिकी दर्ज कराई है। जब पुलिस ने कोई कार्रवाई नहीं की, तो पीड़ित/मृतक ने अपना जीवन समाप्त करने का फैसला किया और अपनी लाइसेंसी राइफल से खुद को गोली मारकर आत्महत्या कर ली, जिसे कथित तौर पर घटना में इस्तेमाल किया गया था, मौके पर पाया गया और कथित तौर पर पीड़ित द्वारा लिखा गया सुसाइड नोट भी पुलिस ने मौके से बरामद किया। यह आगे कहा गया है कि जांच अधिकारी ने सुसाइड नोट, पिछली प्रथम सूचना रिपोर्ट और सीसीटीवी क्लिप और गवाहों के बयान जैसे विश्वसनीय सबूत एकत्र किए हैं, जिन्होंने अभियोजन पक्ष के बयानों को सत्यापित किया है। विवेचना अधिकारी ने आवेदक और अन्य आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ सही आरोप पत्र प्रस्तुत किया है और इसमें कोई अवैधता नहीं है। आगे यह आरोप लगाया गया कि आरोपी-आवेदक आदतन अपराधी है, जिसका कर लेने के लिए हत्या, डकैती, जबरन वसूली आदि जैसे जघन्य अपराधों का लंबा आपराधिक इतिहास है। उसने विपक्षी संख्या 2 के भाई को धमकी देना शुरू कर दिया और उससे बड़ी राशि ले ली, जब पीड़ित/मृतक को आरोपी-आवेदक द्वारा लिए गए टैक्स के तथ्य का पता चला, तो उसने उसी पर आपत्ति जताई और मुकदमा संख्या 52/2021 के साथ धारा 386 भा0दं0सं0 के तहत प्राथमिकी दर्ज की लेकिन स्थानीय पुलिस ने ऐसे आवेदक के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की। जिसके कारण पीड़ित/मृतक आत्महत्या करने की स्थिति में पहुंच गया। विवेचना अधिकारी ने कथित धारा के तहत सही आरोप पत्र दायर किया। जहां तक पीड़ित/मृतक के खिलाफ आपराधिक इतिहास का संबंध है, उसे स्थानीय दुश्मनों द्वारा फंसाया गया था और पीड़ित को अदालत द्वारा बरी कर दिया गया था। आरोपी-आवेदक के खिलाफ आरोप तय करने के लिए पर्याप्त आधार था। विचारण न्यायालय ने आरोप तय करने का आदेश सही पारित किया जिसमें कोई अवैधता या अनियमितता नहीं है।

6. आरोपी-आवेदक की ओर से विपक्षीगणों द्वारा लिए गए आधार के जवाब में, यह कहा गया है कि दं0प्र0सं0 की धारा 161 के तहत दर्ज सूचनाकर्ता और अन्य गवाहों के बयान विरोधाभासी हैं और विवेचना अधिकारी ने स्पष्ट और निष्पक्ष जांच किए बिना और विश्वसनीय सबूत एकत्र किए बिना, मामले में आरोप पत्र प्रस्तुत किया और विचारण न्यायालय ने अवैध रूप से आरोपमुक्त करने के आवेदन को खारिज कर दिया। आवेदक के खिलाफ आरोप तय करने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं था और आवेदक के खिलाफ पहले दर्ज सभी मामलों में, या तो आवेदक को अदालत द्वारा बरी कर दिया गया है या मामलों को राज्य सरकार या आरोपी-आवेदक द्वारा जमानत पर वापस ले लिया गया है। उनके खिलाफ दर्ज सभी मामले राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता के कारण पूरी तरह से झूठे हैं क्योंकि वह सक्रिय राजनीति में हैं। जवाबी हलफनामे और प्रत्युत्तर हलफनामे की छायाप्रति अभिलेख में है।

7. अभियोजन वाद द्वारा संक्षेप में कहा गया है, निम्नानुसार है: – सूचनाकर्ता ने संबंधित प्रभारी अधिकारी पुलिस थाने के समक्ष आवेदन देकर आरोप लगाया कि उसके पिता मुकेश कुमार पाठक ने आरोपी-आवेदक छत्रपाल यादव और उसके अन्य साथी रवि और अन्य की धमकी के कारण 13.02.2021 को रात में लगभग 10:45 बजे अपनी लाइसेंसी राइफल से खुद को गोली मारकर आत्महत्या कर ली है। लिखित तहरीर में यह भी कहा गया है कि दिनांक 13.02.2021 को लगभग 05:00 बजे गांधी नगर स्थित आरआरसी होटल में पीड़ित/मृतक और शिकायतकर्ता को फोन किया गया, जहां आरोपी-आवेदक ने उसे भविष्य में देखने की धमकी दी। पिता की मौत के बाद एडिशनल एसपी ने पीड़िता का लिखा सुसाइड नोट बरामद किया, जिसे पुलिस ने अपने कब्जे में ले लिया है। मृत्यु पूर्व बयान से ही पता चलता है कि आरोपी-आवेदक और उसके अन्य साथी, विक्रम, आनंद मोहन, रवि, मनीष, अंकित और अभय प्रताप के खिलाफ दिनांक 07.02.2021 की एफआईआर में, पुलिस द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई थी, जिसके परिणामस्वरूप पुलिस अधिकारी की उदासीनता और लापरवाही, हत्या की धमकी और आपराधिक मामले में झूठे आरोप के कारण, पीड़ित/मृतक ने आत्महत्या कर ली। मुखबिर द्वारा प्रस्तुत इस लिखित तहरीर के आधार पर, आवेदक और छह अन्य के खिलाफ थाना कोतवाली नगर महोबा में धारा 306 भा0दं0सं0 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 65/2021 वाली एफआईआर दर्ज की गई है। पुलिस द्वारा मामले की जांच की गई जिसने कथित धारा में आवेदक और अन्य व्यक्तियों के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

8. सुसाइड नोट, जैसा कि मृतक द्वारा कथित तौर पर अंग्रेजी अनुवाद पर लिखा गया है, निम्नानुसार पढ़ा जाएगा: – 'मैंने, मुकेश कुमार पाठक, छत्रपाल चौधरी और उसके अन्य साथी रवि, विक्रम, मनीष चौबे, आनंद मोहन यादव ने मेरे बेटे से लगभग 60,00,000 रुपये (60 लाख रूपये) लिए और उसके साथ मारपीट की। मेरे द्वारा शिकायत किए जाने पर, मुझे लगातार धारा 376 भा0दं0सं0 के तहत फंसाने की धमकी दी जा रही थी। महोबा पुलिस, एसपी, सीओ ने मिलीभगत की। उसे जान से मारने की धमकी दी जा रही थी। वह मजबूरी में आत्महत्या कर रहा है, इसकी जिम्मेदारी छत्रपाल और

अन्य लोगों की होगी। मेरे बच्चों, पत्नी मुझे माफ कर दो, मैं तुम्हें बीच में छोड़कर जा रहा हूं। मेरे दोनों बड़े भाइयों को सलाम और छोटे रमेश को अलविदा।

एसडी/-
दिनांक: 13.02.2021
समय: 08:00 बजे"

9. सूचनाकर्ता राहुल पाठक द्वारा दर्ज वर्तमान मामले की एफआईआर अपराध संख्या 65/2021 में दर्शाया गया है कि 13.02.2021 को रात में लगभग 10:45 बजे, उसके पिता मुकेश कुमार पाठक ने आवेदक और उसके साथी की धमकी और आतंक के कारण अपनी लाइसेंसी राइफल से खुद को गोली मारकर आत्महत्या कर ली। इसमें आगे कहा गया है कि उसी दिन शाम 05:00 बजे, उसे (सूचनाकर्ता) और उसके पिता (मृतक) को महोबा के गांधी नगर में स्थित आरआरसी होटल में बुलाया गया था, जहां आरोपी छत्रपाल और उसके अन्य साथी ने भविष्य में देखने की धमकी दी थी। पिता की मौत के बाद अपर पुलिस अधीक्षक ने उनके पिता द्वारा लिखा गया एक सुसाइड नोट बनवाया था, जिसे पुलिस अपने साथ ले गई थी। प्राथमिकी में यह भी उल्लेख किया गया है कि मृतक के मृत्यु पूर्व बयान में स्पष्ट किया गया है कि आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ दिनांक 07.02.2021 की प्राथमिकी के संबंध में पुलिस अधिकारियों की निष्क्रियता और आरोपी व्यक्ति द्वारा आपराधिक मामलों में जान से मारने और झूठे आरोप लगाने की धमकी के कारण उसके पिता ने आत्महत्या कर ली। एफआईआर के अवलोकन से ही पता चलता है कि अपर पुलिस अधीक्षक अन्य पुलिस अधिकारियों के साथ मामला दर्ज होने से पहले मौके पर पहुंचे और कथित सुसाइड नोट प्राप्त किया। अभिलेख से यह स्पष्ट नहीं है कि पुलिस अधिकारी को घटना की जानकारी कैसे मिली और वे मौके पर कैसे पहुंचे। एक जगह सूचनाकर्ता राहुल पाठक ने दं0प्र0सं0 की धारा 161 के तहत अपने बयान में कहा कि सुसाइड नोट की मूल प्रति बयान के समय जांचकर्ता को प्राप्त हुई है, इस प्रकार सुसाइड नोट की बरामदगी, जैसा कि मृतक द्वारा लिखा गया है, खुद उच्च संदेह से घिरा हुआ है और सुसाइड नोट के अनुसार, यदि आत्महत्या का कोई कारण है, यह पुलिस अधिकारी की लापरवाही हो सकती है जिन्हें जांच में क्लीन चिट दे दी गई है।

10. उकसाने में किसी व्यक्ति को उकसाने या जानबूझकर किसी व्यक्ति को किसी काम को करने में सहायता करने की मानसिक प्रक्रिया शामिल है। आत्महत्या करने के लिए उकसाने या सहायता करने के लिए आरोपी की ओर से एक सकारात्मक कार्य होना चाहिए। यदि आरोपी की ओर से आत्महत्या करने के लिए उकसाने या सहायता करने के लिए कोई सकारात्मक कार्य नहीं किया जाता है, तो धारा 306 के तहत अपराध नहीं कहा जा सकता है। भा0दं0सं0 की धारा 306 के तहत किसी व्यक्ति को दोषी ठहराने के लिए, अपराध करने के लिए एक स्पष्ट प्रक्रिया होनी चाहिए। एक सक्रिय कार्य या प्रत्यक्ष कार्य होना चाहिए, जिसके कारण मृतक ने आत्महत्या की। अतिरंजित कृत्य ऐसी प्रकृति का होना चाहिए कि मृतक को अपने जीवन के अंत के अलावा कोई विकल्प नहीं मिलना चाहिए। उस कृत्य का उद्देश्य मृतक को ऐसी स्थिति में धकेलना रहा होगा कि वह आत्महत्या कर ले। सुसाइड नोट में, केवल आरोप है कि मृतक को भविष्य में देखने की धमकी दी गई थी और उसे आवेदक द्वारा परेशान किया जा रहा था, जिसके लिए मृतक संबंधित प्राधिकारी से शिकायत कर सकता था, लेकिन यह आत्महत्या करने का आधार नहीं था। मृतक को आत्महत्या करने के लिए मजबूर करने का कोई इरादा नहीं है, आवेदक के खिलाफ धारा 306 भा0दं0सं0 के तहत अपराध को आकर्षित नहीं कहा जा सकता है। सुसाइड नोट को पढ़ने से पता चलता है कि मृतक द्वारा आत्महत्या करने के लिए आवेदकों की ओर से कोई उकसाया नहीं गया था।

11. केरल राज्य और अन्य बनाम एस उन्नीकृष्णन नायर और अन्य, (2015) 9 एससीसी 639, के मामले में निम्नानुसार देखा गया: – 13. नेताई दत्ता [(2005) 2 एससीसी 659: 2005 एससीसी (सीआरआई) 543] में, दो न्यायाधीशों की पीठ कोधारा 107 भा0दं0सं0 के तहत उकसाने की अवधारणा पर विचार करते हुए और विशेष रूप से, सुसाइड नोट के संदर्भ में, यह कहना पड़ा: (एससीसी पी 661, पैरा 6-7)

"6. सुसाइड नोट में, दो स्थानों पर अपीलकर्ता के नाम का उल्लेख करने के अलावा, किसी भी कार्य या घटना का कोई संदर्भ नहीं है, जिसके तहत अपीलकर्ता पर आरोप लगाया गया है कि उसने जानबूझकर कोई कार्य या चूक की है या जानबूझकर मृतक प्रणब कुमार नाग को आत्महत्या करने में सहायता या उकसाया है। ऐसा कोई मामला नहीं है कि अपीलकर्ता ने किसी भी साजिश में कोई अंश या कोई भूमिका निभाई है, जिसने अंततः मृतक प्रणब कुमार नाग द्वारा आत्महत्या के लिए उकसाया या परिणाम दिया।

7. सुसाइड नोट के अलावा, शिकायतकर्ता द्वारा कोई आरोप नहीं लगाया गया है कि अपीलकर्ता किसी भी तरह से अपने भाई प्रणब कुमार नाग को परेशान कर रहा था। अपीलकर्ता के खिलाफ दर्ज मामला बिना किसी तथ्यात्मक

आधार के है। कथित सुसाइड नोट की सामग्री किसी भी तरह से अपीलकर्ता के खिलाफ अपराध नहीं बनाती है। अपीलकर्ता के खिलाफ शुरू किया गया अभियोजन बिना किसी फलदायी परिणाम के अपीलकर्ता को केवल सरासर उत्पीड़न का परिणाम देगा। हमारी राय में, विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह कहने में गंभीरता से गलती की कि अपीलकर्ता के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट ने एक संज्ञेय अपराध के तत्वों का खुलासा किया। यहां अपीलकर्ता के खिलाफ आगे बढ़ने का कोई आधार नहीं था। हम पाते हैं कि यह एक उपयुक्त मामला है जहां दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत असाधारण शक्ति का उपयोग किया जाना है। हम अपीलकर्ता के खिलाफ शुरू की गई आपराधिक कार्यवाही को रद्द करते हैं और तदनुसार अपील की अनुमति देते हैं।

14. एम. मोहन [(2011) 3 एससीसी 626: (2011) 2 एससीसी (सीआरआई) 1] में, उकसाने से निपटने के दौरान, न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी की है: (एससीसी पी 638, पैरा 44-45)

"44. उकसाने में किसी व्यक्ति को उकसाने या जानबूझकर किसी व्यक्ति को किसी काम को करने में सहायता करने की मानसिक प्रक्रिया शामिल है। आत्महत्या करने के लिए उकसाने या सहायता करने के लिए आरोपी की ओर से सकारात्मक कार्य के बिना, दोषसिद्धि को बनाए नहीं रखा जा सकता है।

45. विधायिका की मंशा और इस न्यायालय द्वारा तय किए गए मामलों का अनुपात स्पष्ट है कि धारा 306 भा0दं0सं0 के तहत किसी व्यक्ति को दोषी ठहराने के लिए अपराध करने के लिए एक स्पष्ट प्रक्रिया होनी चाहिए। इसके लिए एक सक्रिय कार्य या प्रत्यक्ष कार्य की भी आवश्यकता होती है जिसने मृतक को कोई विकल्प नहीं देखते हुए आत्महत्या करने के लिए प्रेरित किया और इस कार्य का उद्देश्य मृतक को ऐसी स्थिति में धकेलना होगा कि उसने आत्महत्या कर ली।

15. जहां तक प्रवीण प्रधान [(2012) 9 एससीसी 734: (2013) 1 एससीसी (सीआरआई) 146] का संबंध है, श्री राव ने इस उद्देश्य के लिए इस पर जोर देकर भरोसा किया है कि अदालत ने एफआईआर को रद्द करने से इनकार कर दिया था क्योंकि एक सुसाइड नोट था। राव ने फैसले के पैरा 10 की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है, जिसमें सुसाइड नोट को पुन: प्रस्तुत किया गया है। उक्त मामले में न्यायालय ने धारा 107 भा0दं0सं0 के संबंध में कुछ अधिकारियों को संदर्भित किया है और निम्नानुसार राय दी है: (एससीसी पी 741, पैरा 18-19)

"18. वास्तव में, उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि किसी विशेष मामले की परिस्थितियों से उकसाना होगा। यह पता लगाने के लिए कोई स्पष्ट आधार नहीं रखा जा सकता है कि क्या किसी विशेष मामले में उकसाया गया है जिसने व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए मजबूर किया है। किसी विशेष मामले में, उकसाने के संबंध में प्रत्यक्ष सबूत नहीं हो सकते हैं जिसका आत्महत्या से सीधा संबंध हो सकता है। इसलिए, ऐसे मामले में, परिस्थितियों से एक अनुमान निकाला जाना चाहिए और यह निर्धारित किया जाना चाहिए कि क्या परिस्थितियां ऐसी थीं जिन्होंने वास्तव में ऐसी स्थिति पैदा की थी कि एक व्यक्ति पूरी तरह से निराश महसूस कर रहा था और आत्महत्या कर ली थी। इसके अलावा, कार्यवाही को रद्द करने के आवेदन से निपटते समय, एक अदालत एक दृढ़ राय नहीं बना सकती है, बल्कि एक अस्थायी दृष्टिकोण जो धारा 228 दं0प्र0सं0 के तहत संदर्भित धारणा को जन्म देगी।

19. इस प्रकार, मामले पर उपरोक्त स्थापित कानूनी प्रस्तावों के प्रकाश में विचार किया जाना आवश्यक है। इस मामले में, कथित उत्पीड़न एक आकस्मिक विशेषता नहीं थी, बल्कि लगातार उत्पीड़न का मामला बना रहा। यह एक ड्राइवर का मामला नहीं है; या एक विवाहित महिला के साथ अवैध संबंध रखने वाला एक आदमी, यह जानते हुए कि उसके पास एक और प्रेमी भी था; और इसलिए, इस मामले में मृतक की स्थिति से तुलना नहीं की जा सकती है, जो एक योग्य स्नातक इंजीनियर था और अभी भी लगातार उत्पीड़न और अपमान का सामना करना पड़ा और इसके अलावा, अपीलकर्ता द्वारा की गई निरंतर अवैध मांगों को भी सहन करना पड़ा, जिसके पूरा नहीं होने पर, उसे लंबे समय तक अपीलकर्ता द्वारा बेरहमी से परेशान किया जाएगा। उन्हें कारखाने में लंबे समय तक लगातार काम करने के लिए मजबूर किया गया था, अन्य कर्मचारियों की तुलना में, जो अक्सर लगातार 16-17 घंटे तक भी काम करते थे। इस तरह के उत्पीड़न के साथ-साथ इस आशय के शब्दों का उच्चारण कि, 'अगर उनकी जगह कोई अन्य व्यक्ति होता, तो उन्होंने निश्चित रूप से आत्महत्या कर ली होती' यही बात वर्तमान मामले को उपरोक्त मामलों से अलग बनाती है। वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हमें नहीं लगता कि यह एक ऐसा मामला है जिसमें उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश के संबंध में इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

12. सर्वोच्च न्यायालय ने (2019) 17 एससीसी 301 (उदे सिंह और अन्य बनाम हरियाणा राज्य) में भा0दं0सं0 की धारा 306 के तहत परिभाषित आत्महत्या के लिए उकसाने के अपराध की अनिवार्यताओं का व्यापक सर्वेक्षण किया

और सिद्धांतों को संक्षेप में प्रस्तुत किया। यह अभिनिर्धारित किया गया है कि आत्महत्या के लिए कथित रूप से उकसाने के मामलों में, आत्महत्या के लिए उकसाने के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कृत्य (ओं) का ठोस और संतोषजनक सबूत होना चाहिए। किसी भी व्यक्ति द्वारा मृतक के उत्पीड़न का आरोप आत्महत्या के लिए उकसाने के अपराध को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा जब तक कि आरोपी की ओर से ऐसी कार्रवाई न हो जिसने मृतक को आत्महत्या करने के लिए मजबूर किया हो। यह भी प्रासंगिक है कि इस तरह की अपमानजनक कार्रवाई घटना के समय के निकट होनी चाहिए। यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि पीड़ित की मानस, संवेदनशीलता/अतिसंवेदनशीलता प्रासंगिक और भौतिक विचार हैं। प्रत्येक मामले को अपने स्वयं के तथ्यों पर जांच करने और आसपास के सभी कारकों पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है, जो आरोपी और मृतक के कार्यों और मानस को प्रभावित करते हैं। अदालत ने उदे सिंह और अन्य बनाम हरियाणा राज्य मामले (पूर्वोक्त) के पैरा - 16 में आत्महत्या के लिए उकसाने की अनिवार्यता ओं की व्याख्या की है जो निम्नानुसार है:

16. आत्महत्या के लिए कथित रूप से उकसाने के मामलों में, आत्महत्या के लिए उकसाने के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कार्य का सबूत होना चाहिए। इस बात पर शायद ही कोई विवाद हो कि आत्महत्या के कारण का सवाल, विशेष रूप से आत्महत्या के लिए उकसाने के अपराध के संदर्भ में, एक जटिल प्रश्न बना हुआ है, जिसमें मानव व्यवहार और प्रतिक्रियाओं/प्रतिक्रियाओं के बहुमुखी और जटिल गुण शामिल हैं। आत्महत्या के लिए उकसाने के आरोप के मामले में, अदालत आत्महत्या के लिए उकसाने के कृत्य के ठोस और संतोषजनक सबूत की तलाश करेगी। आत्महत्या के मामले में, किसी अन्य व्यक्ति द्वारा मृतक के उत्पीड़न का केवल आरोप पर्याप्त नहीं होगा जब तक कि आरोपी की ओर से ऐसी कार्रवाई न हो जो व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए मजबूर करती है; और इस तरह की अपमानजनक कार्रवाई घटना के समय के निकट होनी चाहिए। क्या किसी व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति द्वारा आत्महत्या करने के लिए उकसाया है या नहीं, केवल प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से एकत्र किया जा सकता है।

16.1. यह पता लगाने के उद्देश्य से कि क्या किसी व्यक्ति ने किसी अन्य व्यक्ति द्वारा आत्महत्या के लिए उकसाया गया है, विचार यह होगा कि क्या अभियुक्त आत्महत्या के कार्य के लिए उकसाने के कार्य का दोषी है। जैसा कि इस न्यायालय द्वारा ऊपर संदर्भित निर्णयों में समझाया और दोहराया गया है, उकसाने का अर्थ है किसी कार्य को करने के लिए उकसाना, आग्रह करना, उकसाना, उकसाना या प्रोत्साहित करना। यदि आत्महत्या करने वाले व्यक्ति अतिसंवेदनशील थे और आरोपी की कार्रवाई से आमतौर पर इसी तरह के परिस्थितिवश व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करने की उम्मीद नहीं की जाती है, तो आरोपी को आत्महत्या के लिए उकसाने का दोषी ठहराना सुरक्षित नहीं हो सकता है। लेकिन, दूसरी ओर, यदि अभियुक्त अपने कृत्यों और अपने निरंतर आचरण से ऐसी स्थिति पैदा करता है जिससे मृतक को आत्महत्या करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं मिलता है, तो मामला धारा 306 भा0दं0सं0 के चार कोनों के भीतर आ सकता है। यदि आरोपी पीड़ित के व्यक्तिनिष्ठा और आत्मसम्मान को धूमिल करने में सक्रिय भूमिका निभाता है, जो अंततः पीड़ित को आत्महत्या करने के लिए आकर्षित करता है, तो आरोपी को आत्महत्या के लिए उकसाने का दोषी ठहराया जा सकता है। ऐसे मामलों में आरोपी की ओर से अपराध के सवाल की जांच आरोपी के वास्तविक कृत्यों और कर्मों के संदर्भ में की जाएगी और यदि कृत्य और कर्म केवल ऐसी प्रकृति के हैं जहां आरोपी का इरादा उत्पीड़न या क्रोध के प्रदर्शन से ज्यादा कुछ नहीं है, तो एक विशेष मामला आत्महत्या के लिए उकसाने के अपराध से कम हो सकता है। हालांकि, अगर आरोपी मृतक को शब्दों या कर्मों से परेशान या परेशान करता रहा जब तक कि मृतक ने प्रतिक्रिया नहीं दी या उकसाया गया, तो एक विशेष मामला आत्महत्या के लिए उकसाने का हो सकता है। मानव व्यवहार के नाजुक विश्लेषण का मामला होने के नाते, प्रत्येक मामले को अपने स्वयं के तथ्यों पर जांच करने की आवश्यकता होती है, जबकि आरोपी और मृतक के कार्यों और मानस को प्रभावित करने वाले आसपास के सभी कारकों पर ध्यान दिया जाता है।

16.2. हम यह भी देख सकते हैं कि मानव मन प्रभावित हो सकता है और असंख्य तरीकों से प्रतिक्रिया कर सकता है; और किसी के कार्य का दूसरे के मन पर प्रभाव कई अपरिवर्तनीय बातें रखता है। समान कार्यों को अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा अलग-अलग तरीके से निपटाया जाता है; और जहां तक किसी अन्य मानव के कार्य के प्रति किसी विशेष व्यक्ति की प्रतिक्रिया का संबंध है, इसका अनुमान लगाने या आकलन करने के लिए कोई विशिष्ट प्रमेय या मानदंड नहीं है। यहां तक कि एक लड़की के उत्पीड़न के सवाल से संबंधित कारकों के संबंध में, कई कारकों पर विचार किया जाना चाहिए जैसे उम्र, व्यक्तित्व, परवरिश, ग्रामीण या शहरी व्यवस्थीकरण, शिक्षा, आदि। यहां तक कि छेड़खानी की बुरी कार्रवाई और एक युवा लड़की पर इसके प्रभाव की प्रतिक्रिया भी विभिन्न कारकों के लिए भिन्न हो सकती है, जिसमें पृष्ठभूमि, आत्मविश्वास और परवरिश शामिल हैं। इसलिए, प्रत्येक मामले को

अपने स्वयं के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर निपटाया जाना चाहिए।

13. अर्नब मनोरंजन गोस्वामी बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, (2021) 2 एससीसी 427 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित है कि एक व्यक्ति, जिसके बारे में कहा जाता है कि उसने आत्महत्या के लिए उकसाया है, ने उकसाने के कार्य से या आत्महत्या को सुविधाजनक बनाने के लिए कुछ कार्य करके सक्रिय भूमिका निभाई होगी। उक्त निर्णय के पैरा 50 और 51 निम्नानुसार हैं:–

"50. धारा 107 का पहला खंड किसी व्यक्ति को किसी विशेष काम को करने के लिए उकसाने के रूप में परिभाषित करता है। दूसरा खंड इसे किसी काम को करने के लिए एक या एक से अधिक अन्य व्यक्तियों के साथ साजिश में शामिल होने और साजिश के अनुसरण में एक कार्य या अवैध चूक के संदर्भ में परिभाषित करता है। तीसरे खंड के तहत, उकसाने की स्थापना जानबूझकर किसी कार्य या चूक से किसी काम को करने में सहायता करने पर की जाती है। इन प्रावधानों को विशेष रूप से धारा 306 के संदर्भ में माना गया है, जिसके लिए एफआईआर की सामग्री का आकलन करने के लिए कानूनी आधार प्रस्तुत करने के लिए एक संदर्भ आवश्यक है। इन प्रावधानों को इस न्यायालय के पूर्व के निर्णयों में पश्चिम बंगाल राज्य बनाम ओरीलाल जायसवाल [पश्चिम बंगाल राज्य बनाम ओरीलाल जायसवाल, (1994) 1 एससीसी 73: 1994 एससीसी (सीआरआई) 107], रणधीर सिंह बनाम पंजाब राज्य [रणधीर सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2004) 13 एससीसी 129: 2005 एससीसी (सीआरआई) 56], किशोरी लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य [किशोरी लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2007) 10 एससीसी 797: (2007) 3 एससीसी (सीआरआई) 701] ("किशोरी लाल") और किशनगिरी मंगलगिरी गोस्वामी बनाम गुजरात राज्य [किशनगिरी मंगलगिरी गोस्वामी बनाम गुजरात राज्य, (2009) 4 एससीसी 52: (2009) 2 एससीसी (सीआरआई) 62] के मामले में लिया गया है। अमलेंदु पाल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य [अमलेंदु पाल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2010) 1 एससीसी 707: (2010) 1 एससीसी (सीआरआई) 896], माननीय न्यायमूर्ति मुकुंदकम शर्मा, ने इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ के लिए बोलते हुए और पहले के निर्णयों का उल्लेख करते हुए कहा: (एससीसी पृष्ठ 712, पैरा 12) "12. ... यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि आत्महत्या के लिए कथित रूप से उकसाने के मामलों में आत्महत्या के लिए उकसाने के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कृत्यों का सबूत होना चाहिए। केवल उत्पीड़न के आरोप पर आरोपी की ओर से कोई सकारात्मक कार्रवाई किए बिना, जिसके कारण व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए मजबूर किया गया, भा0दं0सं0 की धारा 306 के संदर्भ में दोषसिद्धि पोषणीय नहीं है।

51. न्यायालय ने कहा कि इससे पहले कि किसी व्यक्ति को आत्महत्या के लिए उकसाने के लिए कहा जा सके, उन्होंने "उकसाने के कार्य से या आत्महत्या को सुविधाजनक बनाने के लिए कुछ कार्य करके सक्रिय भूमिका निभाई होगी"। जैसा कि इस न्यायालय ने किशोरी लाल [किशोरी लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2007) 10 एससीसी 797: (2007) 3 एससीसी (सीआरआई) 701] में कहा था, "उकसाने का शाब्दिक अर्थ है कुछ भी करने के लिए उकसाना, भड़काना, आग्रह करना या समझाना"। एस.एस. छीना बनाम विजय कुमार महाजन [एस.एस. छीना बनाम विजय कुमार महाजन, (2010) 12 एससीसी 190: (2011) 2 एससीसी (सीआरआई) 465] मामले में इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने माननीय न्यायमूर्ति दलवीर भंडारी के माध्यम से बोलते हुए कहा: (एससीसी पृष्ठ 197, पैरा 25)

"25. उकसाने में किसी व्यक्ति को उकसाने या जानबूझकर किसी व्यक्ति को किसी काम को करने में सहायता करने की मानसिक प्रक्रिया शामिल है। आत्महत्या करने के लिए उकसाने या सहायता करने के लिए आरोपी की ओर से सकारात्मक कार्य के बिना, दोषसिद्धि को बनाए नहीं रखा जा सकता है। विधायिका की मंशा और इस न्यायालय द्वारा तय किए गए मामलों का अनुपात स्पष्ट है कि धारा 306 भा0दं0सं0 के तहत किसी व्यक्ति को दोषी ठहराने के लिए अपराध करने के लिए एक स्पष्ट प्रक्रिया होनी चाहिए। इसके लिए एक सक्रिय कार्य या प्रत्यक्ष कार्य की भी आवश्यकता होती है जिसने मृतक को कोई विकल्प नहीं देखकर आत्महत्या करने के लिए प्रेरित किया और उस कार्य का उद्देश्य मृतक को ऐसी स्थिति में धकेलना होगा कि उसने आत्महत्या कर ली।

14. राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने (2012) 9 एससीसी 734 (प्रवीण प्रधान बनाम उत्तरांचल राज्य और अन्य) में प्रतिवेदित सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए प्रस्तुत किया है कि उकसाने का अपराध उकसाने वाले व्यक्ति के इरादे पर निर्भर करता है और यह उस व्यक्ति द्वारा किए गए कार्य पर निर्भर नहीं करता है जिसने उकसाया है। उकसाने को किसी विशेष मामले की परिस्थितियों से इकट्ठा किया जाना चाहिए और वर्तमान मामले में परिस्थितियों से यह स्पष्ट है कि मृतक को आवेदक के हाथों परेशान किया गया था और इसलिए, मृतक ने आत्महत्या कर ली। अपर शासकीय अधिवक्ता ने आगे कहा कि आरोप तय करने का आदेश अवैधता से ग्रस्त नहीं है और इसे रद्द नहीं किया जाना चाहिए। उन्होंने

अमित कपूर बनाम रमेश चंदर और अन्य, (2012) 9 एससीसी 460 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा किया है, जिसमें यह देखा गया है कि अदालत को मामले के अभिलेख और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करने की आवश्यकता है ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या आरोपी द्वारा अपराध करने के लिए मजबूत संदेह पैदा होगा और उसे दोषी साबित किया जाएगा।

15. अभिलेख से यह स्पष्ट है कि विद्वान विचारण न्यायाधीश ने भा0दं0सं0 की धारा 306 के तहत याचिकाकर्ताओं-अभियुक्तों के खिलाफ आरोप तय किए, इसलिए यह देखा जाना चाहिए कि याचिकाकर्ताओं-अभियुक्तों के खिलाफ क्या सबूत हैं। मामले के गुण-दोष में प्रवेश करने से पहले, मैं आरोप तय करने के संबंध में संहिता के तहत संबंधित धाराओं को पढ़ना पसंद करूंगा। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 227 निम्नानुसार है:

"227. बर्खास्त। यदि, मामले के अभिलेख और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेज़ों पर विचार करने के बाद, और इस संबंध में आरोपी और अभियोजन पक्ष की प्रस्तुतियों को सुनने के बाद, न्यायाधीश को लगता है कि आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, तो वह आरोपी को आरोपमुक्त कर देगा और ऐसा करने के अपने कारणों को दर्ज करेगा।" दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 228 भी निम्नानुसार है:

"228. आरोप तय करना। (1) यदि, पूर्वोक्त विचार और सुनवाई के बाद, न्यायाधीश की राय है कि यह अनुमान लगाने का आधार है कि अभियुक्त ने कोई ऐसा अपराध किया है जो (क) विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा सुनवाई योग्य नहीं है, तो वह अभियुक्त के खिलाफ आरोप तय कर सकता है और आदेश द्वारा, मामले को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को परीक्षण के लिए स्थानांतरित कर सकता है, और उसके बाद मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट पर स्थापित वारंट-मामलों के परीक्षण के लिए प्रक्रिया के अनुसार अपराध का मुकदमा चलाएगा;

(ख) जो न्यायालय द्वारा अनन्य रूप से सुनवाई योग्य है, तो वह अभियुक्त के विरुद्ध लिखित में आरोप तय करेगा। (2) जहां न्यायाधीश उपधारा (1) के खंड (ख) के अधीन कोई आरोप तय करता है, वहां अभियुक्त को आरोप पढ़ा और समझाया जाएगा और अभियुक्त से पूछा जाएगा कि क्या वह आरोपित अपराध का दोषी है या उस पर मुकदमा चलाए जाने का दावा करता है।

16. निरंजन सिंह करम सिंह पंजाबी, एडवोकेट बनाम जितेंद्र भीमराज बिज्जा और अन्य एआईआर 1990 एससी 1962 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार फैसला सुनाया है: –

"7. पुनः अधीक्षक एवं विधि मामलों के स्मरणकर्ता, पश्चिम बंगाल बनाम अनिल कुमार भुंजा एवं अन्य, (1979)4 एससीसी 274 के मामले में इस न्यायालय ने पैरा 18 में निम्नानुसार टिप्पणी की: "परीक्षण, प्रमाण और निर्णय का मानक जिसे अभियुक्त को दोषी या अन्यथा खोजने से पहले अंततः लागू किया जाना है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 या 228 के स्तर पर बिल्कुल लागू नहीं किया जाना है। इस स्तर पर, मजिस्ट्रेट के समक्ष सामग्री पर एक बहुत मजबूत संदेह भी जो उन्हें कथित अपराध का गठन करने वाले तथ्यात्मक तत्वों के अस्तित्व के बारे में एक अनुमानित राय बनाने के लिए प्रेरित करता है, उस अपराध के संबंध में आरोपी के खिलाफ आरोप तय करने को सही ठहरा सकता है। उपरोक्त चर्चा से यह अच्छी तरह से स्थापित प्रतीत होता है कि धारा 227-228 चरण में न्यायालय को अभिलेख पर सामग्री और दस्तावेजों का मूल्यांकन करने की आवश्यकता है ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या उनसे सामने आने वाले तथ्यों से कथित अपराध का गठन करने वाले सभी अवयवों के अस्तित्व का पता चलता है। अदालत इस सीमित उद्देश्य के लिए सबूतों को हटा सकती है क्योंकि उस प्रारंभिक चरण में भी यह उम्मीद नहीं की जा सकती है कि अभियोजन पक्ष उन सभी को स्वीकार करेगा जो अभियोजन पक्ष कहता है, भले ही वह सामान्य ज्ञान या मामले की व्यापक संभावनाओं के खिलाफ हो।

17. माननीय उच्चतम न्यायालय ने भारत संघ बनाम प्रफुल्ल कुमार सामल और अन्य, एआईआर 1979 एससी 366 के मामले में निम्नानुसार कहा है:

"इस प्रकार, ऊपर उल्लिखित प्राधिकारियों के विचार करने पर, निम्नलिखित सिद्धांत सामने आते हैं: (1) संहिता की धारा 227 के तहत आरोप तय करने के प्रश्न पर विचार करते समय न्यायाधीश के पास यह पता लगाने के सीमित उद्देश्य के लिए सबूतों को जांचने और तौलने की निस्संदेह शक्ति है कि क्या आरोपी के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं:
(2) जहां न्यायालय के समक्ष रखी गई सामग्री अभियुक्त के खिलाफ गंभीर संदेह का खुलासा करती है जिसे ठीक से समझाया नहीं गया है, अदालत आरोप तय करने और मुकदमे के साथ आगे बढ़ने में पूरी तरह से उचित होगी।
(3) प्रथम दृष्टया मामले को निर्धारित करने के लिए परीक्षण स्वाभाविक रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा और सार्वभौमिक आवेदन का नियम निर्धारित करना मुश्किल है। कुल मिलाकर यदि दो विचार समान रूप से संभव हैं और न्यायाधीश इस बात से संतुष्ट हैं कि उनके समक्ष पेश किए गए साक्ष्य, कुछ संदेह को जन्म देते हैं, लेकिन अभियुक्त के खिलाफ गंभीर संदेह नहीं हैं, तो वह आरोपी को आरोपमुक्त करने के अपने अधिकार के

भीतर होगा। (4) संहिता की धारा 227 के अधीन अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए न्यायाधीश, जो वर्तमान संहिता के अधीन एक वरिष्ठ और अनुभवी न्यायाधीश है, केवल डाकघर या अभियोजन पक्ष के मुख-पत्र के रूप में कार्य नहीं कर सकता है, बल्कि उसे मामले की व्यापक संभावनाओं, साक्ष्य के कुल प्रभाव और न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करना होगा, मामले में दिखाई देने वाली कोई बुनियादी कमजोरी आदि। हालांकि, इसका मतलब यह नहीं है कि न्यायाधीश को मामले के फायदे और नुकसान की जांच करनी चाहिए और सबूतों को इस तरह तौलना चाहिए जैसे कि वह मुकदमा चला रहे हों।

18. पश्चिम बंगाल राज्य बनाम ओरीलाल जायसवाल, (1994) एससीसी (सीआरआई) 107 मामले में, न्यायालय ने चेतावनी दी है कि न्यायालय को प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और मुकदमे में शामिल सबूतों का आकलन करने में बेहद सावधानी बरतनी चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या पीड़िता के साथ की गई क्रूरता ने वास्तव में उसे आत्महत्या करके जीवन समाप्त करने के लिए प्रेरित किया था। यदि न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि आत्महत्या करने वाला पीड़ित घरेलू जीवन में सामान्य अशांति, कलह और मतभेद के प्रति अतिसंवेदनशील था, जो उस समाज में काफी आम है, जिसमें पीड़ित था और इस तरह की नाराजगी, कलह और मतभेद से समान परिस्थिति उत्पन्न होने की उम्मीद नहीं थी, किसी समाज में किसी व्यक्ति द्वारा आत्महत्या करने के मामले में, न्यायालय की अंतरात्मा को इस निष्कर्ष पर संतुष्ट नहीं होना चाहिए कि आत्महत्या के अपराध के लिए उकसाने के आरोपी को दोषी पाया जाना चाहिए।

19. चित्रेश कुमार चोपड़ा बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार) 2009 (16) एससीसी 605: (2010)3 एससीसी (सीआरआई) 367 मामले में अदालत के पास उकसाने के इस पहलू से निपटने का अवसर था। अदालत ने 'उकसाना' और भड़काना शब्द के शब्दकोश अर्थ पर विचार किया। अदालत ने कहा कि बाद में किसी कृत्य को करने के लिए उकसाने, भड़काने या प्रोत्साहित करने का इरादा होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति की आत्महत्या का स्वरूप दूसरों से अलग होता है। प्रत्येक व्यक्ति के पास आत्म-सम्मान और आत्म-सम्मान का अपना विचार है। इसलिए, ऐसे मामलों से निपटने में कोई सीधा-सीधा फार्मूला निर्धारित करना असंभव है। प्रत्येक मामले का निर्णय अपने तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर किया जाना चाहिए।

20. उकसाने में किसी व्यक्ति को उकसाने या जानबूझकर किसी व्यक्ति को किसी काम को करने में सहायता करने की मानसिक प्रक्रिया शामिल है। आत्महत्या करने के लिए उकसाने या सहायता करने के लिए आरोपी की ओर से सकारात्मक कार्य के बिना, दोषसिद्धि को बनाए नहीं रखा जा सकता है।

21. माननीय उच्चतम न्यायालय ने संजू बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2002) 5 सर्वोच्च न्यायालय मामले 371 में इसी तरह के मुद्दे पर विचार करते हुए शीर्ष न्यायालय को निम्नानुसार कहा: –

8. स्वामी प्रहलाददास बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य, 1995 पूरक (3) एससीसी 438: 1995 एससीसी (सीआरआई) 943, अपीलकर्ता को धारा 306 भा0दं0सं0 के तहत अपराध के लिए इस आधार पर आरोपित किया गया था कि झगड़े के दौरान अपीलकर्ता ने मृतक को 'जाने और मरने' की टिप्पणी की थी। इस अदालत का विचार था कि आरोपी द्वारा मृतक को 'जाने और मरने के लिए' कहे गए शब्द प्रथम दृष्टया मृतक को आत्महत्या के लिए उकसाने के लिए पर्याप्त नहीं थे।

9. महेंद्र सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 1995 पूरक (3) एससीसी 731: 1995 एससीसी (सीआरआई) 1157, अपीलकर्ता पर मूल रूप से मृतक के मृत्यु पूर्व बयान के आधार पर भा0दं0सं0 की धारा 306 के तहत अपराध का आरोप लगाया गया था, जो निम्नानुसार है: (एससीसी पी 731, पैरा 1) "मेरी सास और पति और जेठानी(पति के बड़े भाई की पत्नी) ने मुझे परेशान किया। उन्होंने मुझे पीटा और गालियां दीं। मेरे पति महेंद्र दूसरी शादी करना चाहते हैं। उसके मेरी भाभी के साथ अवैध संबंध हैं। इन कारणों और परेशान किए जाने के कारण मैं जलकर मरना चाहती हूं।

10. इस न्यायालय ने धारा 107 भा0दं0सं0 के तहत 'उकसाने' की परिभाषा पर विचार करते हुए पाया कि धारा 306 के तहत अपराध के लिए अपीलकर्ता का आरोप और दोषसिद्धि केवल मृतक के उत्पीड़न के आरोप पर टिकाऊ नहीं है। इस अदालत ने आगे कहा कि मृतक के बयान पर उकसाने का कोई भी तत्व आकर्षित नहीं होता है।

11. रमेश कुमार बनाम छत्तीसगढ़ राज्य (2001) 9 एससीसी 618 मामले में, इस न्यायालय ने एक कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज मृत्यु पूर्व बयान के आधार पर भा0दं0सं0 की धारा 306 के तहत अपराध के लिए तय किए गए आरोप और दोषसिद्धि पर विचार करते हुए, जिसमें उसने कहा था कि पहले मृतक और उसके पति के बीच झगड़ा हुआ था और घटना के दिन उसका अपने पति के साथ झगड़ा हुआ था। वह जहां जाना चाहती थी वहां जा सकती थी और उसके बाद उसने खुद पर मिट्टी का तेल

डालकर आग लगा ली थी। आरोपी को बरी करते हुए इस अदालत ने कहा: (एससीसी पृष्ठ 620) "वास्तव में परिणामों का इरादा किए बिना क्रोध या भावना में बोले गए शब्द को उकसाने वाला नहीं कहा जा सकता है। यदि अदालत को यह पता चलता है कि आत्महत्या करने वाला पीड़ित सामान्य पेशा, कलह और घरेलू जीवन में मतभेदों के प्रति अतिसंवेदनशील था, जो उस समाज के लिए काफी आम था, जिससे पीड़ित संबंधित था और इस तरह के कटुता, कलह और मतभेदों से किसी दिए गए समाज में इसी तरह के परिस्थिति ग्रस्त व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करने की उम्मीद नहीं थी, तो अदालत की अंतरात्मा को इस निष्कर्ष के आधार पर संतुष्ट नहीं होना चाहिए कि आरोपी पर अपराध को उकसाने का आरोप लगाये जाने के आधार पर आत्महत्या के दोषी पाए जाने चाहिए।

22. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 18 जनवरी, 2019 को आपराधिक अपील संख्या 93/2019 में राजेश बनाम हरियाणा राज्य के मामले में निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"9. भा0दं0सं0 की धारा 107 के तहत उकसाने शब्द को राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार2) में निम्नानुसार समझाया गया है:

"16. रमेश कुमार मामले [(2001) 9 एससीसी 618: 2002 एससीसी (सीआरआई) 1088] में तीन न्यायाधीशों की पीठ के लिए बोलते हुए, माननीय न्यायमूर्ति आरसी लाहोटी (जैसा कि तब माननीय न्यायमूर्ति थे) ने कहा कि भड़काना, उकसाना, आगे बढ़ाना, उकसाना, भड़काना या प्रोत्साहित करना है (2010) 1 एससीसी 707 (2009) 16 एससीसी 605: (2010) 3 एससीसी 605: (2010) 3 एससीसी 605: (2010) "उकसाने" की आवश्यकता को पूरा करने के लिए, हालांकि यह आवश्यक नहीं है कि वास्तविक शब्दों का उपयोग उस प्रभाव के लिए किया जाना चाहिए या जो "उकसाने" का गठन करता है, वह आवश्यक रूप से और विशेष रूप से परिणाम का संकेत होना चाहिए। फिर भी परिणाम को उकसाने के लिए एक उचित निश्चितता बताई जाने में सक्षम होनी चाहिए। जहां अभियुक्त ने अपने कृत्यों या चूक से या निरंतर आचरण से ऐसी परिस्थितियां पैदा कर दी थीं कि मृतक के पास आत्महत्या करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं बचा था, इस मामले में, "उकसाने" का अनुमान लगाना पड़ सकता है। क्रोध या भावना में बोले गए एक शब्द को वास्तव में परिणामों का इरादा किए बिना, उकसाने वाला नहीं कहा जा सकता है। 17. इस प्रकार, "उकसाने" का गठन करने के लिए, एक व्यक्ति जो दूसरे को उकसाता है, उसे "उकसाना" या "आगे बढ़ना" करके दूसरे द्वारा किसी कार्य को करने के लिए उकसाना, भड़काना, आग्रह करना या प्रोत्साहित करना होगा। शब्द "उकसाना" का शब्दकोश अर्थ "एक ऐसी चीज है जो किसी को कार्रवाई में उत्तेजित करती है; कार्रवाई या प्रतिक्रिया के लिए उकसाएं" (संक्षिप्त ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी देखें); "किसी को तब तक परेशान या परेशान करते रहना जब तक वह प्रतिक्रिया न करे" (देखें ऑक्सफोर्ड एडवांस्ड लर्नर डिक्शनरी, 7 वां संस्करण)। 23. उपरोक्त चर्चाओं से, यह स्पष्ट है कि मृतक ने आवेदक द्वारा उत्पीड़न का अनुभव किया क्योंकि उसे भविष्य में भा0दं0सं0 की धारा 376 के तहत गलत निहितार्थ देखने की धमकी दी गई थी। अभिलेख में ऐसा कुछ भी नहीं है जो आवेदक द्वारा आत्महत्या के लिए उकसाने या भड़काने के लिए किसी भी शिकायत का सुझाव देता हो। जैसा कि ऊपर बताया गया है, सुसाइड नोट में यह भी नहीं कहा गया है कि आरोपी-आवेदक का मृतक को आत्महत्या करने के लिए उकसाने या भड़काने का कोई इरादा था। मृतक को धमकी देना, उसे भविष्य में देखने के लिए कहना या भा0दं0सं0 के आपराधिक मामले में निहितार्थ अपने आप में आत्महत्या के लिए उकसाने का अपराध नहीं होगा। विवेचना अधिकारी द्वारा ऐसा कोई साक्ष्य एकत्र नहीं किया गया है जिससे यह पता चले कि आवेदक का इरादा मृतक को आत्महत्या के लिए उकसाने का था। इस न्यायालय का विचार है कि आत्महत्या के लिए उकसाने के सभी तत्व जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री में पूरी तरह से अनुपस्थित हैं और इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि आरोपी-आवेदक ने धारा 306 भा0दं0सं0 के तहत कोई अपराध किया है। आवेदक की ओर से घटना के समय के निकट कोई अपमानजनक कार्रवाई नहीं है, जिसके कारण मृतक आत्महत्या करने के लिए प्रेरित या मजबूर होता। अभियुक्त-आवेदक के हाथों मृतक द्वारा उत्पीड़न को भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के तहत अपराध को लागू करने का आधार नहीं हो सकता है क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता है कि आरोपी-आवेदक ने कोई सक्रिय भूमिका निभाकर या आत्महत्या करने के लिए उकसाने या कुछ कार्य करके आत्महत्या के लिए उकसाया है। आरोप तय करते समय, विचारण न्यायालय ने सही परिप्रेक्ष्य में आक्षेपित आदेश के निकाय में उद्धृत फैसले की सराहना नहीं की है और इसने फैसले की गलत व्याख्या की है।

24. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, आवेदक के खिलाफ लगाए गए आरोपों, अभियोजन पक्ष द्वारा एकत्र किए गए सबूतों और उपरोक्त चर्चाओं के प्रकाश में, इस न्यायालय का विचार है कि प्रार्थना पत्र को अनुमति दी जानी चाहिए। दिनांक 08.10.2021 के आक्षेपित आदेश और आवेदक के खिलाफ आगे की कार्यवाही को रद्द किया जाता है। आवेदक को कथित अपराध से मुक्त किया जाता है।

25. आवेदन का निपटान उपर्युक्त शर्तों में किया जाता है। तदनुसार आदेश दें।

(2023) 1 ILRA 754
क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 06.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति प्रीतिंकर दिवाकर
माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव

आपराधिक अपील संख्या - 4053 वर्ष 2014

विमल कुमार मौर्य ...अपीलकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य ... उत्तरदाता

अपीलकर्ता के वकील:
राजीव लोचन शुक्ला, चंद्र भान दुबे

प्रतिवादी के वकील:
सरकारी वकील, ईश्वर चंद्र श्रीवास्तव, कमल श्रीवास्तव, कौशलेंद्र

ए. आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 – धारा 326-ए - एसिड (तेजाब) फेंकने और चेहरे को विकृत करने का आरोप– चिकित्सा साक्ष्य –यह पुष्टिकारक मूल्य है– आयोजित, चिकित्सा साक्ष्य का हमेशा एक बड़ा पुष्टिकारक मूल्य होता है क्योंकि यह न केवल उन चोटों को साबित करता है जो घटना में कृत कहा जाता है, बल्कि जिस तरीके का भी आरोप लगाया गया है, वह भी प्रदर्शित करता है। अभियोजन पक्ष का वाद, जैसा कि हमारे समक्ष है, अनिवार्य रूप से चिकित्सा साक्ष्य के माध्यम से पुष्टि की जानी है, जो अभियोजन पक्ष के लिए भी अपने मामले की पुष्टि के लिए हमेशा बहुत महत्वपूर्ण है और यही कारण है कि एक चिकित्सा गवाह का साक्ष्य मूल्य कभी भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। (पैरा 38)

बी. अपराधिक कानून– एसिड फेंकने के लिए इस्तेमाल किए गए बर्तन के संबंध में मुख्य जांच और जिरह के दौरान घायल-पीड़ित के बयान में आपराधिक कानून विरोधाभास– प्रासंगिकता - इसमें कोई संदेह नहीं है कि सबूत बहुत निश्चित नहीं है कि एसिड लोटा या गिलास से फेंका गया था, लेकिन हमारी राय में, यह तथ्य अभियोजन पक्ष पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालता है। दोनों घायल खाट पर लेटे हुए थे और लालटेन की रोशनी में जैसे ही उठे तो तेजाब फेंकने की घटना देखी। प्रासंगिक बात यह है कि तेजाब फेंका गया था। (पैरा 44 और 45)

सी. आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 धारा 326-ए - आजीवन कारावास दोषसिद्धि और सजा के विरुद्ध अपील - धारा 161 सीआरपीसी के तहत धारा में विरोधाभास - प्रासंगिकता - पीड़िता द्वारा आरोपी की गैर-खुलासा और गैर-पहचान, जब वह (आरोपी) इलाज के दौरान उसके (पीड़िता) के साथ था - प्रभाव - आयोजित, अभियोजन पक्ष यह समझाने में पूरी तरह से विफल रहा है कि किन परिस्थितियों में घायल पी.डब्ल्यू.2 ने दोषी-अपीलकर्ता को घटना के बाद उसके साथ जाने की अनुमति दी और यहां तक कि अपीलकर्ता के अपराध का खुलासा भी उसने पुलिस के सामने लंबे अंतराल के पश्चात किया - अभियोजन पक्ष द्वारा पी.डब्ल्यू. 2 और पी.डब्लू 3 के धारा 161 सीआरपीसी के तहत दिए गए कथनों में हुए विरोधाभासों को समझाने में बुरी तरह विफल रहा है - आगे कहा गया, इन गवाहों के विरोधाभास और अप्राकृतिक कथन पूरी अभियोजन कहानी को अत्यधिक संदिग्ध बना दें। (पैरा 50, 53 और 56)

अपील स्वीकृत। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. हरियाणा राज्य बनाम कृष्ण; एआईआर 2017 एससी 3125
2. लक्ष्मण सिंह बनाम बिहार राज्य; (2021) 9 एससीसी 191
3. नारायण चेतनराम चौधरी एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य; (2000) 8 एससीसी 457
4. खेमा उर्फ खेम चन्द्र आदि बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 991
5. शीला सेबेस्टियन बनाम आर जवाहराज; 2018 (5) सुप्रीम 239
6. अंतर सिंह बनाम राजस्थान राज्य; एआईआर 2004 एससी 2865
7. मौसम सिंघा रॉय बनाम पश्चिम बंगाल राज्य .; 2003 12 एससीसी 377
8. सुचंद पाल बनाम फणी पाल; 2004 एससीसी (सीआरआई) 220

(माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के वकील श्री राजीव लोचन शुक्ला , अमित सिन्हा और राज्य के लिए ए.जी.ए. को सुना!

2. अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय क्रमांक 4, जौनपुर की अदालत ने अपीलकर्ता विमल कुमार मौर्य को वर्ष 2013 के अपराध क्रमांक 846, थाना बदलापुर, जिला जौनपुर से उत्पन्न 2013 के सत्र विचारण संख्या 507 में धारा 326-ए आईपीसी के तहत दोषी ठहराया और उसे दिनांक 22.09.2014 के निर्णय एवं आदेश के तहत दोषी सजा के साथ आजीवन कारावास एवं 1 लाख रुपये जुर्माने की सजा सुनाई। जिससे व्यथित महसूस करते हुए वर्तमान आपराधिक अपील दायर की गई है।

3. अभियोजन का मामला, संक्षेप में, निम्नानुसार है। दिनांक 07.11.2013 को रात लगभग 12:00 बजे जब शिकायतकर्ता और उसके परिवार के सदस्य अपने घर में सो रहे थे और उन्होंने चंपा देवी, सास और माधुरी को घायल कर दिया, शिकायतकर्ता की सास और माधुरी भी खिड़की के सामने उसहरा (बरमदा) में स्थित एक कमरे में सो रही थीं, किसी अज्ञात व्यक्ति ने खिड़की से एसिड (तेजाब) फेंक दिया और उनके चेहरे पर गंभीर चोट और विकृति पैदा कर दी। घायल महिलाओं को सरकारी अस्पताल ले जाया गया, लेकिन उन्हें आगे के इलाज के लिए जौनपुर और बाद में वाराणसी रेफर कर दिया गया।

4. शिकायतकर्ता की लिखित रिपोर्ट के आधार पर दिनांक 08.11.2013 को सुबह 6.20 बजे प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई और उक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसरण में जांच शुरू की गई।

5. जांच अधिकारी ने घायल गवाहों, शिकायतकर्ता और अन्य गवाहों के बयान दर्ज किए, घटना के स्थान का निरीक्षण किया और साइट प्लान तैयार किया। उन्होंने घटना स्थल से तेजाब से जला तकिया, तौलिया, दुपट्टा और लालटेन भी जब्त की और मेमो तैयार किया गया। जांच के दौरान, वर्तमान दोषी-अपीलकर्ता विमल कुमार मौर्य का नाम प्रकाश में आया और उसे पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। दो अन्य आरोपी सोनू @ संतोष कुमार और वेद प्रकाश यादव को भी गिरफ्तार किया गया था, लेकिन बाद में उनके पक्ष में अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। वर्तमान दोषी-अपीलकर्ता की निशानदेही पर, जांच अधिकारी ने बोतल के टुकड़े भी जब्त किए, जिसमें एसिड रखा गया था, बाकी एसिड और एसिड से सनी मिट्टी और गम की एक ट्यूब और जब्ती मेमो भी तैयार किए गए थे। दोषी की निशानदेही पर स्टील का एक गिलास भी बरामद किया गया। घायल माधुरी की तस्वीरें और आरोपी के मोबाइल फोन के साथ-साथ आरोपी द्वारा पीड़िता को दिए गए अन्य मोबाइल फोन भी बरामद किए गए और जब्ती ज्ञापन तैयार किए गए।

6. जांच पूरी करने के बाद, वर्तमान दोषी-अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया था।

7. यह मामला, विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा सुनवाई योग्य होने के कारण, परीक्षण के लिए सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया था।

8. भारतीय दंड संहिता की धारा 326-ए के तहत दिनांक 06.11.2014 को आरोप तय किए गए थे। दोषी-अपीलकर्ता ने खुद को निर्दोष बताया और मुकदमा चलाए जाने का दावा किया।

9. आरोपी को कानून की गिरफ्त में लाने के लिए, अभियोजन पक्ष ने मौखिक और साथ ही दस्तावेजी सबूतों पर भरोसा किया।

10. मौखिक साक्ष्य में शिकायतकर्ता अ०सा०-.1 सुमन देवी, घायल अ०सा०-.2 माधुरी, घायल अ०सा०-.3 चंपा देवी, अ०सा०-.4 डॉ. रत्नेश द्विवेदी, अ०सा०-.5 प्रकाश चंद राव, मुख्य फार्मासिस्ट, अ०सा०-.6 डॉ. सैफ हुसैन खान, अ०सा०-.7 समर बहादुर यादव, पत्रकार अ०सा०-.8 डॉ. रफीक, अ०सा०-.9, एसआई अच्छे लाल, जांच अधिकारी और अ०सा०-.10 एच.एम.अमर नाथ कुशवाहा, प्रथम सूचना रिपोर्ट के लेखक से पूछताछ की गई। प्रदर्श क-

11. दस्तावेजी साक्ष्य में लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-.-1, मेडिकल सर्टिफिकेट प्रदर्श क-.-2 और के.ए.-3, घायल माधुरी प्रदर्श क-.-4 की बी.एच.टी., घायल माधुरी प्रदर्श क-.-5 की चोट रिपोर्ट, साइट प्लान प्रदर्श क-.-6, तकिया, तौलिया और दुपट्टा की जब्ती मेमो, लालटेन प्रदर्श क-.-8 का जब्ती ज्ञापन, एसिड की बोतल के टुकड़ों की जब्ती मेमो। स्टील ग्लास प्रदर्श क-.-11 का जब्ती ज्ञापन, मोबाइल फोन प्रदर्श क-.-12 और 13 का जब्ती ज्ञापन, घायल माधुरी प्रदर्श क-.-14 की चार तस्वीरों का जब्ती ज्ञापन, आरोप-पत्र प्रदर्श क-.-15, चिक एफ.आई.आर. को साबित और सत्यापित किया गया है।

12. मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर और पक्षों को विस्तार से सुनने और बचाव पक्ष के सबूतों का विश्लेषण करने के बाद, दिनांक 22.09.2014 के फैसले और आदेश के तहत, 4 विद्वान ट्रायल कोर्ट ने आईपीसी की धारा 326-ए के तहत आरोपी अपीलकर्ता की सजा दर्ज की और उसे सजा सुनाई।

13. अपीलकर्ता की ओर से पेश वकील श्री राजीव लोचन शुक्ला ने जोरदार ढंग से प्रस्तुत किया है कि अपीलकर्ता की दोषसिद्धि कानून की नजर में खराब है और विद्वान ट्रायल कोर्ट ने अवैध और अनुचित तरीके से रिकॉर्ड पर सबूतों का विश्लेषण किए बिना, अपीलकर्ता की सजा दर्ज की है, जो कानून की नजर में टिकाऊ नहीं है। यह साबित करने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सबूत नहीं था कि यह अपीलकर्ता था जिसने कि अपराध का कथानक लिखा एवं परियोजना बनाई! उसकी मौके पर पहचान नहीं हो पाई है और घटना से संबंधित सभी बरामदगी झूठी और मनगढ़ंत हैं। अभियोजन पक्ष के मामले को चिकित्सा साक्ष्य से समर्थन नहीं मिलता है। यहां तक कि घायल गवाह अभियोजन पक्ष के मामले को साबित करने में असमर्थ हैं, क्योंकि उनके सबूत अस्थिर और विरोधाभासों से भरे हुए हैं। घटना की जगह परिभाषित नहीं है और जांच बुरी तरह से दोषपूर्ण है। यह अपीलकर्ता के झूठे निहितार्थ का

मामला है और रिकॉर्ड पर पूरे साक्ष्य के आधार पर, अपीलकर्ता के खिलाफ कोई अपराध स्थापित और साबित नहीं होता है। अपीलकर्ता के वकील ने आगे कहा कि विद्वान निचली अदालत ने मनमाने तरीके से बचाव पक्ष के सबूतों की उपेक्षा की है। ट्रायल कोर्ट द्वारा आक्षेपित निर्णय और आदेश में दर्ज किए गए निष्कर्ष कानून के प्रतिकूल हैं और अपीलीय न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता है। अपराध का मकसद भी साबित नहीं हुआ है।

14. दूसरी ओर, श्री अमित सिन्हा, विद्वान ए.जी.ए. ने प्रस्तुत किया कि विद्वान ट्रायल कोर्ट ने रिकॉर्ड पर सबूतों का उचित और कानूनी विश्लेषण किया है और अपीलकर्ता को सही तरीके से दोषी ठहराया गया है। 5 आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है और इस प्रकार अपीलीय न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और अपील खारिज की जा सकती है।

15. हमने पक्षकारों की ओर से पेश हुए वकील द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

16. पक्षकारों द्वारा दी गई दलीलें हमें अभियोजन पक्ष के गवाहों और बचाव पक्ष के गवाहों के बयान के माध्यम से ले जाती हैं और साथ ही साथ पार्टियों द्वारा जोड़े गए दस्तावेजी सबूतों के माध्यम से भी ले जाती हैं।

17. अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 तथ्य के गवाह हैं।

18. अ०सा०-.1 शिकायतकर्ता है। हालांकि, वह घटना की चश्मदीद गवाह नहीं है। अपने बयान में, उसने कहा है कि दो घायलों, उसकी सास चंपा देवी और ननद (नंद) माधुरी की चीख पर, वह मौके पर पहुंची और पाया कि दो घायलों के चेहरे पर एसिड (तेजाब) फेंका गया था, जो दर्द से कराह रहे थे। उन्हें अस्पताल ले जाया गया। ग्राम प्रधान समर बहादुर यादव ने उनके इशारे पर लिखित रिपोर्ट लिखी और उन्हें पढ़कर सुनाया और फिर उन्होंने इस पर हस्ताक्षर किए। घटना के चार दिन बाद वह अस्पताल गई जहां घायल माधुरी ने उसे बताया कि अपीलकर्ता उसे छेड़ता था और उसने उसे थप्पड़ मारा था। उसने यह भी बताया है कि घटना के एक दिन बाद उसके नंद (घायल माधुरी) की सगाई होनी थी, लेकिन 2-3 दिन पहले, अपीलकर्ता ने उसे धमकी दी थी कि अगर वह उससे शादी नहीं करती है तो उसके चेहरे पर विकृति आ जाएगी। जिरह में उसने बयान दिया था कि जब रेणु देवी और वह खुद घटना स्थल पर पहुंचे तो उन्होंने दोनों घायलों को रोते हुए पाया कि उनके चेहरे पर कुछ फेंका गया है। उसने यह भी कहा कि उसने जांच अधिकारी के सामने किसी का नाम नहीं लिया कि तेजाब किसने फेंका था। उसने आगे कहा है कि आरोपी का नाम भी उसकी भाभी ने उसे नहीं बताया था, बल्कि उसने इसे अपने पति को बताया था, जिसे उसने अस्पताल में सुना था। उसने एक विरोधाभासी बयान भी दिया था कि क्या घायल माधुरी ने कभी उसे बताया था कि दोषी-अपीलकर्ता उसे चिढ़ाते थे।

19. अ०सा०-.2 माधुरी प्रजापति मामले की मजरूब हैं, जिन्होंने अभियोजन पक्ष के बयान की पुष्टि करते हुए अपने एग्जामिनेशन-इन-चीफ में कहा है कि दोषी-अपीलकर्ता उसका पक्ष लेने के लिए तैयार था और उसने उसे शादी के लिए प्रस्तावित किया, जिससे उसने इनकार कर दिया। उसकी सगाई 08.11.2013 को होनी थी और इससे 2-4 दिन पहले, आरोपी ने उसे धमकी दी थी कि अगर उसने उसके साथ शादी करने से इनकार किया तो उसके चेहरे में विकृति आ जाएगी और उसे बर्बाद कर दिया जाएगा। घटना के समय वह अपनी मां के साथ उसहरा (बरमदा) में बिस्तर पर गई थी, जहां लालटेन जल रही थी और खिड़की का एक दरवाजा टूटा हुआ था। आरोपी ने खिड़की का पर्दा हटाया और अंदर झांककर देखा, तो उसने उसे पहचान लिया, लेकिन उसने किसी सफेद धातु के लोटे (पानी के लिए एक छोटा कंटेनर जो आकार में गोल होता है, आमतौर पर पीतल या तांबे का) से एसिड फेंक दिया, जिससे वह और उसकी मां घायल हो गईं और उन्होंने चिल्लाना शुरू कर दिया। परिवार के सदस्य वहां आए और उन्हें बदलापुर के अस्पताल में भेजा गया और वहां से जिला अस्पताल, जौनपुर और बाद में प्रज्ञा अस्पताल, वाराणसी ले जाया गया, जहां उसे 13 दिनों के लिए भर्ती कराया गया था। दिनांक 28.11.2013 को जांच अधिकारी द्वारा उसका बयान दर्ज किया गया। जलने के निशान अभी भी उसके चेहरे पर मौजूद हैं। इस गवाह ने अपनी गवाही के दौरान अदालत के समक्ष अपराध के लेखक के रूप में दोषी-अपीलकर्ता की पहचान की है और कहा है कि लालटेन की रोशनी में, उसने उसे पहचाना था। जिरह में उसने कहा है कि जांच अधिकारी द्वारा 28.11.2013 को केवल एक बार उसका बयान दर्ज किया गया था और 08-11-2013 को कोई बयान दर्ज नहीं किया गया था। उसने यह भी कहा है कि तेजाब लोटा द्वारा फेंका गया था और उसने जांच अधिकारी के सामने कहा था कि एसिड एक सफेद धातु के बर्तन से फेंका गया था। उसने अपनी जिरह में आगे एक महत्वपूर्ण बयान दिया था कि उसकी बहन रेणु या भाभी (भाभी) सुमन ने उससे यह नहीं पूछा कि एसिड किसने फेंका था और न ही उसने इसके बारे में कुछ बताया क्योंकि वह बोलने की स्थिति में नहीं थी। उसने यह भी बताया है कि दोषी-अपीलकर्ता उसके घर से वाराणसी तक उसके इलाज के दौरान उसके साथ रहा और उस अवधि के दौरान, उसने किसी को नहीं बताया कि तेजाब किसने फेंका था।

20. अ०सा०-.3 चंपा देवी भी घायल हैं और अन्य घायल माधुरी की मां हैं। उसने अपने एग्जामिनेशन-इन-चीफ में कहा है कि घटना की रात लगभग 12:00 बजे, दोषी-अपीलकर्ता ने खिड़की के माध्यम से उस पर और उसकी बेटी पर एसिड फेंक दिया और उनके चेहरे पर चोटें आईं।

कमरे में लालटेन जल रही थी, जिसकी रोशनी में उसने दोषी-अपीलकर्ता को गिलास से तेजाब फेंकते देखा था। उसने अपनी गवाही के दौरान अदालत के समक्ष आरोपी की पहचान की थी और कहा था कि उसे नहीं पता कि आरोपी ने तेजाब क्यों फेंका था। जिरह में उसने कहा कि वह माधुरी के साथ करीब 12-13 दिन वाराणसी के अस्पताल में भर्ती रही। उसने जांच अधिकारी को दिए अपने बयान से इनकार किया था कि सोनू पाल और वेद प्रकाश यादव ने उसकी बेटी के चेहरे पर तेजाब फेंककर उसे विकृत कर दिया था। उसने अपनी जिरह में कुछ विरोधाभासी बयान दिए हैं कि तेजाब किस बर्तन से फेंका गया था। इस गवाह द्वारा एक और महत्वपूर्ण बयान दिया गया है कि घटना के समय, उसने और उसकी बेटी ने चिल्लाकर कहा था कि विमल कुमार उन पर एसिड फेंककर भाग रहा है, जिसे उसके परिवार के सदस्यों, उसकी बेटी रेनू और उसकी बहू सुमन ने भी सुना था।

21. अ०सा०-.4 से अ०सा०-.10 औपचारिक गवाह हैं।

22- अ०सा०-.4 डॉ. रत्नेश द्विवेदी ने दोनों घायलों का इलाज वाराणसी के प्रज्ञा अस्पताल में किया था। अपनी जांच में, उन्होंने कहा है कि दोनों घायल महिलाओं के चेहरे, गर्दन और दाहिने हाथ पर एसिड की चोट पाई गई थी, हालांकि, चंपा देवी को केवल चेहरे पर एसिड की चोट मिली थी। इनका इलाज डॉ. एसजे सिंह ने किया। उन्होंने दोनों घायल महिलाओं के चिकित्सा प्रमाण पत्रों को प्रदर्श क-.2 और 3 के रूप में साबित किया है। हालांकि, अपनी जिरह में, उन्होंने स्वीकार किया है कि प्रदर्श क-.2 और 3 चोट की रिपोर्ट नहीं हैं, बल्कि वे चिकित्सा प्रमाण पत्र हैं जिन पर "मेडिको कानूनी उद्देश्य के लिए नहीं" का कैप्शन है। उपरोक्त प्रमाणपत्रों पर किसी भी घायल महिला के हस्ताक्षर या अंगूठे का निशान नहीं पाया गया है। इसके अलावा उपरोक्त प्रमाणपत्रों में किसी संदर्भ का उल्लेख नहीं किया गया है और यह भी उल्लेख नहीं किया गया है कि उन्हें किसके द्वारा लाया गया था। एसिड जलने की चोटों का विवरण भी Ex.Ka.-2 & 3 में उल्लिखित नहीं है।

23. अ०सा०-.5 प्रकाश चंद राव ने जिला अस्पताल, जौनपुर की घायल माधुरी से संबंधित बी.एच.टी. न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया है, जिसे दिनांक 08.11.2013 को तड़के 3:00 बजे ई.एम.ओ. डॉ. सैफ हुसैन खान द्वारा तैयार किया गया है।

24. अ०सा०-.6 डॉ. सैफ हुसैन खान, ई.एम.ओ., जिला अस्पताल, जौनपुर ने कहा है कि उन्होंने घायल माधुरी का इलाज किया था, जिसे सी.एच.सी., बदलापुर से रेफर किया गया था, उसके चेहरे और गर्दन पर जलने के निशान थे। उसकी सामान्य स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी और उसे हायर सेंटर के लिए सुबह 3:45 बजे रेफर किया गया था। घायल माधुरी से संबंधित बी.एच.टी. को इस गवाह द्वारा प्रदर्श क-.-4 के रूप में साबित किया गया है। हालांकि, अपनी जिरह में, उन्होंने स्वीकार किया है कि उन्होंने घायल माधुरी का कोई मेडिकल प्रिस्क्रिप्शन या पूरक चोट रिपोर्ट तैयार नहीं की है, बल्कि उसकी सदर अस्पताल, जौनपुर में मेडिकल जांच नहीं की गई थी। वह एक सामान्य सर्जन है और एसिड बर्न का विशेषज्ञ नहीं है और यह समझाने में असमर्थ है कि घटना में किस एसिड का उपयोग किया गया था।

25. अ०सा०-.7 समर बहादुर यादव वह पत्रकार हैं, जिन्होंने अपने परीक्षा-इन-चीफ में बताया है कि 08.11.2013 को सुबह जब उन्हें घटना की जानकारी मिली तो वे घायल के घर पहुंचे। यह गवाह ग्राम प्रधान मछली का पति है। उन्होंने कहा है कि शिकायतकर्ता के निर्देश पर, उन्होंने तहरीर लिखी थी, जिसे शिकायतकर्ता को पढ़ा गया था। उन्होंने एक्स-के-1 पर अपने हस्ताक्षर की पहचान की है और तौलिया और दुपट्टे की जब्ती ज्ञापन पर भी हस्ताक्षर किए हैं।

26. अ०सा०-.8 डॉ. मो. रफीक ने घायल माधुरी का बदलापुर के सीएचसी में इलाज कराया था। उन्होंने कहा है कि दिनांक 08-11-2013 को अपराह्न 1:40 बजे उन्होंने घायल माधुरी की चिकित्सकीय जांच की और उसके चेहरे और गर्दन पर जलने और फफोले के निशान पाए। उसकी सामान्य स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। उन्होंने उसका प्राथमिक उपचार किया। चोटें एसिड जलने की और ताजा प्रतीत होती हैं। इस गवाह द्वारा अदालत के समक्ष आकस्मिक चिकित्सा रजिस्टर पेश किया गया है और इसे एक्स-के-5 के रूप में साबित किया गया था। इस गवाह के अनुसार, 30 - 40 मिनट के बाद, घायल को बेहतर इलाज के लिए जिला अस्पताल, जौनपुर रेफर कर दिया गया। जिरह में उन्होंने स्वीकार किया है कि फफोले केवल घायल के पूरे चेहरे पर मौजूद थे, गर्दन पर नहीं। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि उन्होंने एक्स-रे के लिए सलाह नहीं दी थी और उनके द्वारा कोई पूरक रिपोर्ट तैयार नहीं की गई थी और उन्हें यकीन नहीं है कि चोटें एसिड जलने की चोटें थीं या नहीं।

27. अ०सा०-.9 एसआई अच्छे लाल मामले के जांच अधिकारी हैं, जिन्होंने जांच की कार्यवाही और साइट प्लान प्रदर्श क-.-6 और जब्ती ज्ञापन प्रदर्श क-.-7, 8, 9, 10, 11, 12, 13 और 14 को साबित किया है। अपनी जिरह में, उन्होंने साइट प्लान तैयार करने में कुछ चूक स्वीकार की है। हालांकि, इस गवाह के सामने कोई केस प्रॉपर्टी पेश नहीं की गई है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि बोतल, एसिड, एसिड से सनी मिट्टी और एसिड से जले कपड़े, तकिया और दुपट्टा सीएफएल को नहीं भेजे गए थे, पीड़ित माधुरी के विपरीत, इस गवाह ने गवाही दी है कि उसका बयान 08.11.2013 को दर्ज किया गया था जिसमें उसने कहा था कि सोनू @ संतोष पाल और वेद प्रकाश यादव ने उस पर एसिड फेंका था। एक अन्य घायल चंपा देवी, पीड़ित माधुरी की मां ने भी घायल माधुरी के उपरोक्त बयान की पुष्टि की थी और तदनुसार सोनू @

संतोष पाल और वेद प्रकाश यादव दोनों को जेल भेज दिया गया था। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि उन्होंने इस बिंदु पर कोई जांच नहीं की कि उनके द्वारा एकत्र किए गए मोबाइल फोन का सिम किसके नाम पर आवंटित किया गया था। उन्होंने यह भी कहा है कि एसिड एक गिलास द्वारा फेंका गया था, न कि लोटे द्वारा और उनके द्वारा कोई लोटा बरामद नहीं किया गया था। इसके अलावा, उन्होंने कहा है कि घायल चंपा देवी ने 08.11.2013 को दर्ज किए गए अपने बयान में सोनू @ संतोष पाल और वेद प्रकाश यादव को अपराध के लेखकों के रूप में भी नामित किया था। इस गवाह को सीआरपीसी की धारा 311 के तहत फिर से पूछताछ के लिए वापस बुलाया गया है, जिसमें उसने जांच के दौरान जब्त की गई केस संपत्तियों को सामग्री 11 एक्स -1 से 8 के रूप में साबित किया है। उन्होंने जीडी एक्सकेए-15 को भी साबित किया है। उन्होंने यह भी कहा है कि पीड़ित द्वारा कभी भी किसी मामले की संपत्ति की पहचान नहीं की गई थी।

28. अ०सा०-.10 एच.एम. अमर नाथ कुशवाहा एफ.आई.आर. के लेखक हैं, जिन्होंने चिक एफ.आई.आर. प्रदर्श क-.-16 और जी.डी. प्रदर्श क-.-17 को साबित किया था और कहा है कि शिकायतकर्ता सुमन देवी की लिखित रिपोर्ट के आधार पर, एफ.आई.आर. दर्ज किया गया था और उनके द्वारा अपनी लिखावट और हस्ताक्षर और मामले के जी.डी. में भी तैयार किया गया था।

29. सीआरपीसी की धारा 313 के तहत अपने बयान में, जब अभियुक्त को आपत्तिजनक सबूत और परिस्थितियां पेश की गईं, तो उन्होंने झूठे आरोप लगाने की दलील दी है और कहा है कि दुश्मनी के कारण उनके खिलाफ मामला दर्ज किया गया था और बचाव पक्ष के साक्ष्य के लिए भी अनुरोध किया था।

30. अभियुक्तों द्वारा एक लिखित निवेदन भी किया गया है जिसमें कहा गया है कि अभियुक्त को बिना किसी ठोस और विश्वसनीय साक्ष्य के गिरफ्तार किया गया था और दो आरोपी व्यक्ति सोनू @ संतोष पाल और वेद प्रकाश यादव, जिनका नाम जांच के दौरान विशेष रूप से दोनों घायल महिलाओं के बयान के आधार पर प्रकाश में आया था, जांच अधिकारी द्वारा आरोप पत्र दायर नहीं किया गया था, बल्कि उनके पक्ष में एक अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। किसी भी घायल ने पुलिस के सामने आरोपी के नाम का उल्लेख नहीं किया और उसका नाम भी एफ.आई.आर. में ही नहीं है। घटना के समय उसकी पहचान नहीं की गई थी और अभियोजन पक्ष का मामला चिकित्सा साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं है।

31. डी.डब्ल्यू.1 प्रेम चंद गुप्ता और डी.डब्ल्यू.2 राजेंद्र सिंह सेंगर से बचाव पक्ष के गवाहों के रूप में पूछताछ की गई है।

प्रेम चंद गुप्ता सिंधी लस्कर प्राथमिक विद्यालय, बदलापुर, जौनपुर में प्रभारी प्रधानाचार्य के रूप में कार्यरत हैं और उन्होंने कहा है कि दोषी-अपीलकर्ता विमल कुमार मौर्य उनके स्कूल में शिक्षा मित्र के रूप में काम कर रहा था। दिनांक 12.11.2013 को जब वह स्कूल में उपस्थित था, पुलिस उसे पूर्वाह्न 11:30 बजे पूछताछ के लिए ले गई, लेकिन उसने उच्च अधिकारियों को सूचित नहीं किया। उन्होंने स्कूल की मूल लॉग बुक को एक्स-खा-1 और उपस्थिति रजिस्टर को एक्स-खा-2 के रूप में साबित किया है।

राजेंद्र सिंह सेंगर, अतिरिक्त सिटी मजिस्ट्रेट -1, वाराणसी ने कहा है कि 11.11.2013 को वह एसडीएम, पिंडरा के रूप में काम कर रहे थे और उन्होंने प्रज्ञा अस्पताल, हरहुआ, वाराणसी में शाम लगभग 7:00 बजे घायल माधुरी का बयान दर्ज किया था। उक्त बयान को इस गवाह द्वारा एक्स-3 साबित कर दिया गया है और उसने स्पष्ट बयान दिया है कि घायल माधुरी ने उसे दिए गए अपने बयान में किसी भी आरोपी का नाम नहीं लिया जिसने उस पर तेजाब फेंका था। बयान के समय, डॉ. वीके दुबे ने एक प्रमाण पत्र निष्पादित किया था कि बयान दर्ज करने के समय घायल पूरी तरह से होश में है और फिट मानसिक स्थिति में है।

34. उपरोक्त साक्ष्य के आधार पर, विद्वान ट्रायल कोर्ट ने अपीलकर्ता के खिलाफ दोषसिद्धि का निर्णय और आदेश पारित किया।

35. अपीलकर्ता के वकील द्वारा दी गई प्रस्तुतियों को रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों के आधार पर पूरा किया जाना है।

36. पहली आपत्ति घटना के स्थान के निर्धारण से संबंधित है। यह तर्क दिया गया है कि इस मामले में घटना का स्थान निश्चित नहीं है। इस बिंदु पर कोई निश्चित सबूत नहीं है कि वह विशिष्ट स्थान क्या था जहां दोनों घायल सो रहे थे। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से पता चलता है कि इस मुद्दे पर विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा भी चर्चा की गई है। अदालत को इस मुद्दे पर शिकायतकर्ता और घायल व्यक्तियों के बयान के बीच कुछ मामूली विरोधाभास मिलते हैं। साइट प्लान प्रदर्श क-.6 से पता चलता है कि जगह 'ए' पर दोनों घायल सो रहे थे। जिस जगह से तेजाब फेंके जाने की बात कही जा रही है, उसके पश्चिमी हिस्से में 'बी' अक्षर से चिह्नित एक खिड़की दिखाई गई है। अ०सा०-.9 के बयान से पता चलता है कि यह एक कमरा था जहां दोनों घायल सो रहे थे। हालांकि, शिकायतकर्ता अ०सा०- 1 ने यह भी कहा है कि चंपा देवी और माधुरी कमरे में सो रही थीं। अ०सा०-.2 माधुरी, घायल ने कहा कि वह अपनी मां के साथ उसहरा में पड़ी थी। हालांकि, अपनी क्रॉस-एग्जामिनेशन में आगे वह कहती है कि वह एक कमरे में सो रही थी और उसने उस कमरे की चौड़ाई भी बताई है। इसके अलावा वह बताती है कि घटना एक

कमरे में हुई जिसमें उत्तरी तरफ एक दरवाजा और पश्चिमी तरफ खिड़की है। अ०सा०-.3 घायल चंपा देवी ने यह भी कहा कि "मैं और मेरी लड़की उसेहरा वाले कमरे में लेते थे!" उसने आगे कहा है कि उसके पास एक कच्चा घर है जो जीर्ण-शीर्ण है और केवल उसहरा (बरमदा) बचा है।

37. हमें यह ध्यान रखना होगा कि वर्तमान वह मामला है जिसमें घटना एक गांव में हुई है। गांवों में, उसहरा एक कमरे के प्रकार का स्थान है जो दीवारों से घिरा हुआ है और आम तौर पर कोई निश्चित दरवाजा नहीं होता है और स्थानीय शब्द में आम तौर पर एक गांव में उसहरा (बरमदा) को एक कमरे के रूप में लिया जाता है। इसलिए, हमें इस बिंदु पर कोई विरोधाभास नहीं मिलता है कि घायल महिलाएं एक कमरे में सो रही थीं या उसहरा। साइट प्लान प्रदर्श क-.-6 में, घटना के स्थान को अक्षर 'ए' द्वारा चिह्नित किया गया है, जिसमें पश्चिमी तरफ एक खिड़की है और उत्तरी तरफ निकास है जो अभियोजन पक्ष के गवाहों के तथ्य के संस्करण की पुष्टि करता है। एक्स-के-6 में यह भी दिखाया गया है कि शिकायतकर्ता स्थान 'सी' पर सो रहा था, जो उस स्थान के ठीक बगल में है जहां घायल महिलाएं सो रही थीं और यही कारण है कि सबसे पहले शिकायतकर्ता घायल महिलाओं की चीखें सुनने के बाद घटना स्थल पर पहुंचा। इसलिए, जहां तक घटना के स्थान के निर्धारण का संबंध है, हमें अभियोजन पक्ष के बयान में कोई विसंगति नहीं मिलती है।

38. अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए चिकित्सा साक्ष्य को अपीलकर्ता के वकील द्वारा जोरदार तरीके से चुनौती दी गई है। हम इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं कि चिकित्सा साक्ष्य का हमेशा एक बड़ा पुष्ट मूल्य होता है क्योंकि यह न केवल उन चोटों को साबित करता है जो घटना में हुई हैं, बल्कि जिस तरह से आरोप लगाया गया है। अभियोजन पक्ष के मामले को, जैसा कि हमारे पास है, अनिवार्य रूप से चिकित्सा साक्ष्य के माध्यम से पुष्टि की जानी चाहिए, जो अभियोजन पक्ष के लिए भी अपने मामले की पुष्टि के लिए हमेशा बहुत महत्वपूर्ण होता है और यही कारण है कि एक चिकित्सा गवाह के साक्ष्य मूल्य को कभी भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

39. अपीलकर्ता के वकील ने जोरदार तर्क दिया है कि प्रज्ञा मल्टी स्पेशलिटी हॉस्पिटल एंड रिसर्च सेंटर प्राइवेट लिमिटेड, वाराणसी द्वारा जारी प्रमाण पत्र प्रदर्श क-.ए.-2 और प्रदर्श क-.-3 को घायल महिलाओं की चोट की रिपोर्ट नहीं कहा जा सकता है। दिनांक 11.11.2013 को जारी किए गए उपर्युक्त दस्तावेजों की विषय-वस्तु के अवलोकन से पता चलता है कि वे केवल इस आशय के प्रमाण पत्र हैं कि घायल व्यक्तियों को 08-11-2013 को होमीसाइडल एसिड बर्न के मामले के रूप में अस्पताल में भर्ती कराया गया था और उनका अभी भी उपचार चल रहा है। इसमें कहीं भी यह उल्लेख नहीं किया गया है कि घायल व्यक्तियों के चेहरे और शरीर पर क्या चोटें पाई गई थीं और क्या उपचार चल रहा था। यह भी तर्क दिया गया कि मेडिकल रिपोर्ट के आधार पर, यह निश्चित रूप से निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि यह एसिड बर्न का मामला था।

40. विद्वान ए.जी.ए. ने कहा है कि अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के अनुसार दोनों घायल महिलाओं को पहले सीएचसी बदलापुर, फिर सरकारी अस्पताल, जौनपुर ले जाया गया और उसके बाद उन्हें जिला वाराणसी रेफर कर दिया गया और इससे संबंधित दस्तावेज रिकॉर्ड में उपलब्ध हैं।

41. हमने मेडिकल पेपर्स प्रदर्श क-.-4 और प्रदर्श क-.ए.-5 का अध्ययन किया है। डॉ. मो. रफीक, अ०सा०-.8 ने सी.एच.सी., बदलापुर से संबंधित मेडिकल रिपोर्ट को साबित कर दिया है और वह मूल रजिस्टर के साथ अदालत के समक्ष पेश हुआ है और घायल माधुरी की मेडिकल रिपोर्ट को उसने प्रदर्श क-.-5 के रूप में साबित किया है, जिसमें डॉक्टर ने पूरे चेहरे पर छाले और चेहरे पर जली हुई त्वचा पाई है। घायल को निगरानी में रखा गया और घायल को जौनपुर के जिला अस्पताल रेफर कर दिया गया। चोट किसी जलने वाली सामग्री के कारण हुई थी और ताजा थी। जिला अस्पताल, जौनपुर के बी.एच.टी. डॉ. सैफ हुसैन खान ने प्रदर्श क-.-4 के रूप में साबित किया है, जिन्होंने इस तथ्य की पुष्टि की है कि घायल माधुरी को जिला अस्पताल, जौनपुर लाया गया था, जिसे सीएचसी, बदलापुर से रेफर किया गया था और उन्होंने घायल के चेहरे और गर्दन पर एसिड जलने के घाव पाए थे। उसे अस्पताल में भर्ती कराया गया और इलाज शुरू किया गया। मरीज की सामान्य स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी और उसे बेहतर इलाज के लिए हायर सेंटर रेफर कर दिया गया। इसके बाद उसे वाराणसी के प्रज्ञा अस्पताल लाया गया। एजीए ने दलील दी है कि भले ही प्रज्ञा अस्पताल से संबंधित चोट की रिपोर्ट रिकॉर्ड पर उपलब्ध न हो, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि यह एसिड बर्न का मामला नहीं था। अ०सा०-.4 ने इस तथ्य की पुष्टि की है कि घायल माधुरी और चंपा देवी दोनों एसिड से झुलस गई थीं। उन्हें अस्पताल में भर्ती कराया गया। यह गवाह दोनों मरीजों के इलाज के संबंध में मूल कागजात के साथ अदालत के समक्ष पेश हुआ है।

42. उपरोक्त परिस्थितियों में, हम यह भी पाते हैं कि दोनों घायल महिलाओं के एसिड बर्न चोटों के उपचार के संबंध में परिस्थितियां पूरी तरह से स्थापित हैं। प्रारंभ में, सीएचसी, बदलापुर और फिर जिला अस्पताल, जौनपुर की मेडिकल रिपोर्ट स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि यह एसिड बर्न का मामला था और चोटें सामान्य नहीं थीं। इस तरह अभियोजन पक्ष के बयान में मेडिकल साक्ष्य से भी पुष्टि होती है और यह स्थापित होता है कि दोनों घायलों पर लगी चोटें एसिड के कारण थीं।

43. घटना से संबंधित अन्य परिस्थितियों को अपीलकर्ता के वकील द्वारा प्रश्न में रखा गया है। यह तर्क दिया गया है कि अभियोजन पक्ष के साक्ष्य इस बिंदु पर विरोधाभासी हैं कि किस माध्यम से घायल महिलाओं पर एसिड फेंका गया था। दोनों घायल महिलाओं ने अपने-अपने बयानों में इस संबंध में विरोधाभासी बयान दिए हैं और इसी तरह मामले के जांच अधिकारी की गवाही का मामला भी है।

44. घायल महिलाओं अ०सा०-.2 और अ०सा०-.3 तथा जांच अधिकारी अ०सा०-.9 के साक्ष्यों के अवलोकन से हमें कुछ विरोधाभासी बयान मिलते हैं कि तेजाब किस बर्तन से फेंका गया था। यह ध्यान रखना प्रासंगिक है कि आरोपी की निशानदेही पर एक स्टील ग्लास बरामद किया गया है। घायल माधुरी अ०सा०- 2 ने अपने बयान में कहा है कि एसिड किसी भी सफेद धातु के बर्तन से फेंका गया था, लेकिन आगे अपनी जिरह में, उसने कहा है कि एसिड एक लोटे से फेंका गया था और आरोपी उस लोटे के साथ भाग गया। हालांकि, उसने स्वीकार किया है कि सीआरपीसी की धारा 161 के तहत अपने बयान में उसने यह नहीं कहा था कि एसिड लोटा द्वारा फेंका गया था।

45. अ०सा०-.3, अन्य घायल ने अपने परीक्षा-इन-चीफ में कहा है कि एसिड एक गिलास से फेंका गया था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि सबूत बहुत निश्चित नहीं हैं क्योंकि एसिड लोटे या कांच से फेंका गया था, लेकिन हमारे विचार में, यह तथ्य अभियोजन पक्ष के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालता है। दोनों घायल चारपाई पर पड़े थे और लालटेन की रोशनी में उन्होंने गवाही देते हुए तेजाब फेंकने की घटना देखी थी. प्रासंगिक यह है कि एसिड फेंका गया था। जांच अधिकारी ने तेजाब की बोतल और बोतल के टुकड़े तथा तेजाब से सनी मिट्टी को उस खिड़की के बाहर से जब्त कर लिया जहां से तेजाब फेंका गया था। जांच अधिकारी ने एसिड स्पॉटेड तकिया कवर, तौलिया, दुपट्टा, कथरी और चादर भी जब्त की है। सभी परिस्थितियों और सबूतों से पता चलता है कि निर्विवाद रूप से यह एक एसिड बर्न केस है।

46. हम मामले की परिस्थितियों की सराहना करने के लिए बाध्य हैं और यदि हम मौखिक और दस्तावेजी सबूतों को एक साथ लेते हैं, तो हम अभियोजन की कहानी को इस तरह से चित्रित कर सकते हैं कि आरोपी घायल माधुरी को छेड़ता था और वह उसके साथ शादी करना चाहता था, लेकिन वह तैयार नहीं थी। इससे नाराज होकर आरोपी ने उसके चेहरे को विकृत करने और उसे गंभीर चोट पहुंचाने की धमकी दी थी। घटना के अगले दिन घायल माधुरी की सगाई होनी थी। घटना से पहले आरोपी ने घायल माधुरी को उसके संपर्क में रहने के लिए मोबाइल फोन दिया था। उसका धमकी भरा नोट भी जब्त किया गया था जिसे गम ट्यूब का उपयोग करके चिपकाया गया था और उसे भी जांच अधिकारी ने जब्त कर लिया था। आरोपी के कब्जे से घायल माधुरी की तस्वीरें भी बरामद की गई हैं। विद्वान ए.जी.ए. ने जोरदार तर्क दिया है कि उपरोक्त सबूतों और परिस्थितियों के आधार पर, संदेह की कोई छाया नहीं है कि अपराध केवल अभियुक्त द्वारा किया गया था।

47. अपीलकर्ता के वकील ने जोरदार तर्क दिया है कि भले ही यह मान लिया जाए कि दोनों घायल महिलाओं को उनके चेहरे और शरीर पर तेजाब फेंकने से चोटें आई हैं, लेकिन किसी भी सबूत से यह संदेह से परे साबित नहीं होता है कि यह केवल आरोपी था जो अपराध का लेखक था। अपने तर्क को बल देने के लिए, उन्होंने दोनों घायल महिलाओं के मौखिक साक्ष्य का हवाला दिया है और जांच अधिकारी अ०सा०- 9 और शिकायतकर्ता अ०सा०- 1 के सबूतों का अवलोकन करने के लिए भी दबाव डाला है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि अ०सा०- 2 घायल माधुरी का आचरण और गवाही इस मामले में वर्तमान अपीलकर्ता की भागीदारी पर संदेह की छाया डालती है, बल्कि यह दर्शाता है कि अपीलकर्ता को इस मामले में झूठा फंसाया जा रहा है। आगे यह तर्क दिया गया है कि वास्तव में, घायल महिलाओं ने किसी भी आरोपी की पहचान नहीं की जिसने उन पर एसिड फेंका और बाद में एक जानबूझकर कार्रवाई करके, अपीलकर्ता को इस मामले में फंसाया गया।

48. अपीलकर्ता के वकील द्वारा उठाए गए तर्क हमें अ०सा०-.1, अ०सा०-.2, अ०सा०-.3 और अ०सा०-.9 की गवाही के माध्यम से ले जाते हैं।

49. अ०सा०-.1 पहली शिकायतकर्ता है, जो दोनों घायल महिलाओं की चीखें सुनकर मौके पर आई और अपनी सास चंपा देवी और ननद (नंद) माधुरी को दर्द से रोते हुए पाया, क्योंकि उनके चेहरे पर एसिड फेंका गया था। दोनों घायल महिलाओं को सीएचसी, बदलापुर और फिर जौनपुर के जिला अस्पताल ले जाया गया। उसने आगे कहा है कि घटना के चार दिन बाद, वह अपने पति के साथ घायल महिलाओं को देखने के लिए अस्पताल गई, जहां घायल माधुरी ने उसे आरोपी के आपराधिक इरादे के बारे में बताया, जिसे माधुरी ने थप्पड़ मारा था और उसके बाद धमकी दी थी कि अगर वह उससे शादी नहीं करती है तो उसके चेहरे को विकृत कर दिया जाएगा। यहां हम एफ.आई.आर. के अवलोकन से पाते हैं कि यह 08.11.2013 की सुबह यानी घटना की अगली सुबह अज्ञात व्यक्ति के खिलाफ दर्ज किया गया है। अ०सा०-.1 ने आगे कहा है कि जब वह मौके पर पहुंची, तो उसने दोनों घायल महिलाओं को रोते हुए देखा और कहा कि उनके चेहरे पर कुछ फेंका गया है। यहां यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि अ०सा०- 1 में कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि घटना के ठीक बाद, घायल महिलाएं हमलावर के रूप में आरोपी का नाम ले रही थीं। अ०सा०-.1 द्वारा अपने पहले के बयान के विपरीत आगे कहा गया है कि माधुरी ने उसे उस आरोपी का नाम नहीं बताया, जिसने एसिड फेंका

था, लेकिन उसने यह तथ्य अ०सा०- 1 के पति को बताया था, जिसे उसने सुन लिया।

50. अ०सा०-.2 घायल माधुरी ने अपने एग्जामिनेशन इन चीफ में बताया है कि खिड़की का दरवाजा टूटा हुआ था और खिड़की का पर्दा फिसलने के बाद आरोपी विमल कुमार मौर्य ने खिड़की से झांककर देखा तो उसने लालटेन की रोशनी में उसे पहचान लिया था। आरोपी विमल ने उस पर किसी सफेद धातु के बर्तन से तेजाब फेंक दिया। जांच अधिकारी ने 28.11.2013 को उसका बयान दर्ज किया था और उसने घटना के संबंध में तथ्यों का खुलासा किया था। कोर्ट में भी उसने आरोपी की पहचान की है और स्पष्ट किया है कि लालटेन की रोशनी में उसने आरोपी को पहचान लिया है। यह उल्लेख करना उचित है कि अ०सा०- 2 ने इस तथ्य से स्पष्ट रूप से इनकार किया है कि उसका बयान कभी भी जांच अधिकारी द्वारा 08.11.2013 को दर्ज किया गया था। घटना में सोनू @ संतोष कुमार और वेद प्रकाश यादव की संलिप्तता के बारे में जांच अधिकारी को दिए गए उसके बयान से उसका सामना कराया गया। उसने इस बात से भी इनकार किया है कि उसने कभी भी जांच अधिकारी को इस आशय का कोई बयान दिया था कि सोनू @ संतोष कुमार और वेद प्रकाश यादव ने उसे धमकी दी थी कि अगर उसने उनकी बात नहीं मानी तो उसके चेहरे पर विकृति आ जाएगी। उसने आगे कहा है कि जांच अधिकारी को दिए गए अपने बयान में उसने इस तथ्य का खुलासा किया था कि 'आरोपी व्यक्तियों' ने उसे बर्बाद करने और शादी नहीं करने पर उसके चेहरे को विकृत करने की धमकी दी थी। विद्वान ए.जी.ए. ने प्रस्तुत किया है कि अ०सा०- 2 के बयान काफी स्वाभाविक और निर्दोष हैं। लालटेन, जिसके आलोक में उसने आरोपी की पहचान की थी, को जांच अधिकारी द्वारा जब्त कर लिया गया है और इस तथ्य की पुष्टि एक अन्य घायल अ०सा०- 3 ने भी की थी। अ०सा०-.2 ने आगे एक बहुत ही प्रासंगिक बयान दिया है कि "मुल्जिम विमल कुमार दवा इलाज में मेरे साथ अस्पताल में रहा! वह घर से लेकर बनारस तक मेरे साथ था! उस अवधि में मैंने किसी से भी नहीं बताया कि तेजाब किसने फेंका था!" यह बयान बहुत महत्वपूर्ण है और हमारा विचार है कि यह अभियोजन मामले की नींव को हिट करता है। यह घटना दिनांक 07.11.2013 को हुई और घायल माधुरी को 19.11.2013 तक अस्पताल में भर्ती बताया गया है। यह बहुत अजीब है कि अगर आरोपी को घायल माधुरी ने उस समय पहचान लिया था जब वह उस पर एसिड फेंक रहा था, तो कैसे और किन परिस्थितियों में, वह उसके घर से वाराणसी के अस्पताल तक उसके साथ था और पूरी अवधि के दौरान, घायल माधुरी ने कभी किसी को नहीं बताया कि वह वह व्यक्ति था जिसने उस पर एसिड फेंका था। यह कहीं भी अ०सा०- 2 का बयान नहीं है कि आरोपी की किसी भी धमकी के कारण उक्त अवधि के दौरान, उसने किसी को भी अपना नाम नहीं बताया था। इसलिए, उसका आचरण काफी अप्राकृतिक और असंभव है।

51. विद्वान ए.जी.ए. यह बताने में विफल रहा है कि घायल माधुरी ने जांच अधिकारी के सामने यह क्यों कहा कि उसे 'आरोपी व्यक्तियों' हिंदी द्वारा धमकी दी गई थी यदि उसने केवल एक आरोपी यानी वर्तमान अपीलकर्ता को उस पर तेजाब फेंकते हुए देखा था और जिसने घटना से पहले अकेले उसे धमकी दी थी। अपीलकर्ता के वकील ने प्रस्तुत किया कि उपरोक्त बयान से पता चलता है कि अपराध सोनू @ संतोष कुमार और वेद प्रकाश यादव, दो आरोपी व्यक्तियों द्वारा किया गया था और उन्होंने घटना से पहले घायलों को धमकी दी थी।

52. अ०सा०-.9, जांच अधिकारी ने कहा है कि आरोपी विमल कुमार का नाम घायल माधुरी के बयान और उसके खुद के कबूलनामे के आधार पर वर्तमान मामले में लाया गया था। उन्होंने आगे कहा है कि उन्होंने 08-11-2013 को घायल माधुरी का बयान दर्ज किया है जिसमें उसने कहा था कि सोनू @ संतोष पाल और वेद प्रकाश यादव ने उस पर तेजाब फेंका था। यह बयान वाराणसी के प्रज्ञा अस्पताल में दर्ज किया गया और साथ ही उन्होंने घायल चंपा देवी का बयान भी दर्ज किया है और उनके बयानों के आधार पर सोनू @ संतोष पाल और वेद प्रकाश यादव को फिर से जेल भेज दिया गया। उन्होंने आगे कहा है कि पीड़िता का बयान महिला थाना की स्टेशन ऑफिसर रंजना सचान द्वारा भी दर्ज किया गया था, जो आरोपी विमल कुमार की गिरफ्तारी का आधार भी था। अ०सा०- 9 ने स्वीकार किया है कि आरोपी सोनू @ संतोष कुमार पाल और वेद प्रकाश यादव के संबंध में अदालत को एक अंतिम रिपोर्ट भेजी गई थी। उपर्युक्त परिस्थितियों में, हम इस तथ्य को बहुत प्रासंगिक पाते हैं कि अ०सा०-.2, घायल व्यक्ति 08.11.2013 को जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए अपने बयान से इनकार क्यों कर रही है, जिसमें उसने सोनू @ संतोष कुमार पाल और वेद प्रकाश यादव को अपराध के लेखकों के रूप में नामित किया है, न कि वर्तमान आरोपी के रूप में, जबकि जांच अधिकारी अ०सा०- 9 ने स्पष्ट रूप से कहा है कि 08.11.2013 को, उन्होंने माधुरी और चंपा देवी और कुछ अन्य गवाहों के बयान दर्ज किए थे और घटना के बाद जांच अधिकारी को दिया गया दोनों घायल महिलाओं का यह पहला बयान था।

53. इन परिस्थितियों में, जब हम मुख्य घायल गवाह अ०सा०-.2 की गवाही की जांच करते हैं, तो हम खुद को इस बात पर संतोष व्यक्त करने की स्थिति में पाते हैं कि अपीलकर्ता की ओर से दी गई दलीलें और अ०सा०- 2 की पूरी गवाही विश्वसनीय और अप्राकृतिक नहीं पाई जाती है, जहां तक कथित अपराध में अपीलकर्ता की भागीदारी का संबंध है। अभियोजन पक्ष यह बताने में पूरी तरह से विफल रहा है कि किन परिस्थितियों में, घायल अ०सा०- 2 ने घटना के बाद दोषी अपीलकर्ता को उसके साथ जाने की

अनुमति दी और यहां तक कि अपीलकर्ता के अपराध का खुलासा उसने लंबे समय बाद पुलिस के सामने किया। इस बिंदु पर जांच अधिकारी को दिए गए उसके बयानों में उतार-चढ़ाव हो रहा है और इसलिए अ०सा०- 3 की गवाही की स्थिति भी उतार-चढ़ाव है। अभियोजन पक्ष सीआरपीसी की धारा 161 के तहत अ०सा०- 2 और अ०सा०- 3 द्वारा दिए गए बयानों में हुए विरोधाभासों को समझाने में बुरी तरह विफल रहा है और अदालत के समक्ष दर्ज उनके बयानों ने कहा कि किन परिस्थितियों में, उन्होंने आरोपी सोनू @ संतोष कुमार पाल और वेद प्रकाश यादव को हमलावरों के रूप में नामित किया, जबकि उन्होंने पहले ही उन पर एसिड फेंकते हुए वर्तमान दोषी-अपीलकर्ता की पहचान कर ली थी। दोनों घायल महिलाओं का आचरण यह पता लगाने में एक वास्तविक संदेह पैदा करता है कि अपराध का लेखक कौन था।

54. विद्वान ए.जी.ए. ने जोरदार तर्क दिया है कि अ०सा०-.2 और अ०सा०-.3 घायल गवाह हैं और घटनास्थल पर उनकी उपस्थिति इस मामले में स्थापित होती है और यह भी साबित होता है कि उन्हें उक्त घटना के दौरान चोटें आई हैं। हमारे विचार में, एक घायल गवाह के साक्ष्य की सत्यता कभी विवादित नहीं होती है और इसमें कोई संदेह नहीं है कि एक घायल गवाह गवाह की विशेष श्रेणी में आता है और तुच्छ प्रकृति की विसंगतियां एक घायल गवाह के साक्ष्य को अस्वीकार करने का आधार नहीं बन सकती हैं, लेकिन एक घायल गवाह की गवाही को सभी परिस्थितियों में सुसमाचार सत्य के रूप में नहीं लिया जा सकता है।

55. हरियाणा राज्य बनाम कृष्ण, एआईआर 2017 सुप्रीम कोर्ट 3125 में, यह माना गया था कि एक घायल गवाह की गवाही पर भरोसा किया जाना चाहिए जब तक कि प्रमुख विरोधाभासों और विसंगतियों के आधार पर उसके साक्ष्य को अस्वीकार करने के लिए मजबूत आधार न हों। लक्ष्मण सिंह बनाम बिहार राज्य, (2021) 9 एससीसी 191 में भी यही विचार दोहराया गया था कि घायल गवाह की गवाही पर भरोसा किया जाना चाहिए जब तक कि उसमें प्रमुख विरोधाभासों और विसंगतियों के आधार पर उसके साक्ष्य को अस्वीकार करने का मजबूत आधार न हो। घायल गवाह के साक्ष्य को एक बड़ा वजन देने का अधिकार है और उसके साक्ष्य को त्यागने के लिए बहुत ठोस और ठोस आधार की आवश्यकता होती है। 56. माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई उपरोक्त टिप्पणियों के आलोक में और एक प्रत्यक्षदर्शी की गवाही के मूल्य के संबंध में स्थापित कानूनी सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, जब हम इस मामले में घायल गवाहों के साक्ष्य की जांच करते हैं, तो हम पाते हैं कि इन गवाहों के विरोधाभास और अप्राकृतिक बयान पूरी अभियोजन कहानी को अत्यधिक संदिग्ध बनाते हैं। विरोधाभास और चूक, जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया है, प्रकृति में बहुत भौतिक हैं।

57. नारायण चेतनराम चौधरी और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (2000) 8 एससीसी 457 में एक आपराधिक मुकदमे में गवाही में विरोधाभास के मुद्दे पर विचार करते हुए, यह माना गया था:

"42. केवल ऐसी चूक जो भौतिक विवरणों में विरोधाभास के बराबर है, का उपयोग गवाह की गवाही को बदनाम करने के लिए किया जा सकता है। पुलिस के बयान में चूक अपने आप में गवाह की गवाही को अविश्वसनीय नहीं बनाएगी। जब गवाह द्वारा अदालत में दिया गया बयान उसके पहले के बयानों में बताए गए भौतिक विवरणों से अलग होता है, तो अभियोजन पक्ष का मामला संदिग्ध हो जाता है और अन्यथा नहीं। सच्चे गवाहों के बयानों में मामूली विरोधाभास दिखाई देते हैं क्योंकि स्मृति कभी-कभी झूठी होती है और अवलोकन की भावना एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न होती है। यदि पूर्व के वक्तव्य में की गई चूकों को तुच्छ विवरणों का पाया जाता है, जैसा कि वर्तमान मामले में है, तो इससे अ०सा०-.2 की गवाही में कोई सेंध नहीं लगेगी। यहां तक कि अगर किसी भी भौतिक बिंदु पर गवाह के बयान में विरोधाभास है, तो ऐसे गवाह की पूरी गवाही को अस्वीकार करने का कोई आधार नहीं है।

58. यदि हम उपर्युक्त मामले में निर्धारित सिद्धांत का अनुवाद करते हैं, तो हम पाते हैं कि अ०सा०- 2 और अ०सा०- 3 की गवाही में पाए गए विरोधाभास और चूक भौतिक हैं और उनके साक्ष्य को बदनाम करने में सक्षम हैं। यही कारण है कि हम निश्चित रूप से अभियोजन पक्ष द्वारा दिए गए सबूतों के आधार पर अपीलकर्ता की दोषसिद्धि की पुष्टि करने में संकोच करते हैं, खासकर जब हम सही परिप्रेक्ष्य में घायल गवाहों के साक्ष्य की सराहना करते हैं। हम उनके सबूतों में महत्वपूर्ण विसंगतियों और विसंगतियों को उनके अप्राकृतिक और असंभव आचरण के साथ पाते हैं, विशेष रूप से इस बिंदु पर कि अपराध का लेखक कौन था और घायल महिलाओं पर तेजाब किसने फेंका और यह उनकी गवाही को विश्वसनीयता के योग्य नहीं बनाता है।

59. खेमा उर्फ खेम चंद्र आदि बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 991 मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने रिकॉर्ड पर पूरे मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य की सराहना की, और विशेष रूप से घायल प्रत्यक्षदर्शी के सबूतों की जांच की, पाया कि चोटों के समय और जिस समय उसकी चिकित्सा जांच की गई थी, उसके संबंध में गंभीर विसंगतियां और विसंगतियां थीं। कुछ अन्य विसंगतियों को इंगित करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि घायल प्रत्यक्षदर्शी की एकमात्र गवाही के आधार पर दोषसिद्धि को आधार बनाना सुरक्षित नहीं था और अपीलकर्ता को संदेह के लाभ का हकदार पाया गया था।

60. इस मामले में, इसमें कोई संदेह नहीं है कि घटना का स्थान और समय, जिस तरह से आरोप लगाया गया है, चोट का कारण, चिकित्सा साक्ष्य ऐसे तत्व हैं जो अभियोजन पक्ष के पक्ष में खड़े हैं, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि हमलावर कौन था, रिकॉर्ड पर मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर उचित संदेह से परे साबित नहीं होता है। यहां तक कि अगर यह मान लिया जाए कि दोषी-अपीलकर्ता घायल अ०सा०- 2 के साथ शादी करना चाहता था और पहले के मौकों पर उसने उसे धमकी भी दी थी, तो यह उस डिग्री का सबूत नहीं है जिसे अभियोजन पक्ष के मामले को उचित संदेह से परे साबित करने में सक्षम माना जा सकता है, लेकिन रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों के प्रकाश में केवल संदेह बना हुआ है। निर्णयों की एक श्रेणी में, कानूनी स्थिति स्थापित की गई है कि संदेह, चाहे कितना भी मजबूत हो, सबूत की जगह नहीं ले सकता है।

61. शीला सेबेस्टियन वी. आर. जवाराज 2018 (5) सुप्रीम 239 में, यह आयोजित किया गया था –

पीठ ने कहा, ''कानून इस तथ्य के संबंध में अच्छी तरह से तय है कि संदेह कितना भी मजबूत क्यों न हो, यह सबूत की जगह नहीं ले सकता। मजबूत संदेह, संयोग, गंभीर संदेह सबूत की जगह नहीं ले सकते। हमेशा अदालतों का कर्तव्य है कि वे यह सुनिश्चित करें कि कानूनी सबूत पर संदेह न हो।

62. दोषी-अपीलकर्ता की निशानदेही पर इतने सारे लेखों की तथाकथित बरामदगी कानून द्वारा निर्धारित तरीके से साबित नहीं होती है। अ०सा०-.7, तकिया और दुपट्टे की बरामदगी का स्वतंत्र गवाह इस मुद्दे पर अभियोजन पक्ष का समर्थन नहीं करता है। उन्होंने कहा है कि जब उन्हें पुलिस स्टेशन में बुलाया गया था तो पुलिस ने एक सादे कागज पर उनके हस्ताक्षर प्राप्त किए थे। साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत बरामदगी साक्ष्य के लिए, आवश्यक शर्तें इस प्रकार प्रतिपादित की जाती हैं जैसे अंतर सिंह बनाम राजस्थान राज्य, एआईआर 2004 एससी 2865 –

"इस धारा को लागू करने के लिए आवश्यक पहली शर्त एक अपराध के आरोपी व्यक्ति से प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप एक तथ्य की खोज है, हालांकि एक प्रासंगिक तथ्य। दूसरा यह है कि इस तरह के तथ्य की खोज को हटा दिया जाना चाहिए। तीसरा यह है कि सूचना प्राप्त होने के समय आरोपी को पुलिस हिरासत में होना चाहिए। अंतिम लेकिन सबसे महत्वपूर्ण शर्त यह है कि केवल "इतनी जानकारी" जो इस तरह खोजे गए तथ्य से स्पष्ट रूप से संबंधित है, स्वीकार्य है। बाकी जानकारी को बाहर रखा जाना चाहिए।

63. अ०सा०-.9 ने अपनी पूरी गवाही में, जैसा कि हम पाते हैं, कहीं भी स्पष्ट शब्दों में नहीं कहा है कि अपीलकर्ता द्वारा कभी भी कोई प्रकटीकरण बयान दिया गया था और उसने प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप एक तथ्य की खोज की थी। यह जांच अधिकारी अ०सा०-.9 है जो सभी बरामदगी के बारे में बताता है, लेकिन जैसा कि उसने स्वीकार किया है, उसकी गवाही में, उसके द्वारा वसूली के किसी भी स्थान का कोई नक्शा तैयार नहीं किया गया है। वसूली के स्वतंत्र गवाहों को क्यों पेश नहीं किया गया, जबकि वे अभियोजन पक्ष के लिए उपलब्ध थे और उनके नाम भी आरोप-पत्र एक्स-15 में शामिल हैं, यह अभियोजन पक्ष के मामले में एक झटका है। जांच अधिकारी अ०सा०-.9 के साक्ष्य भी अस्थिर हैं और उनके बयान के अवलोकन से हम पाते हैं कि इस मामले में उचित जांच नहीं की गई थी। अ०सा०- 9 के साक्ष्य दर्शाते हैं कि जांच के दौरान, एक स्थान पर उन्होंने पाया कि मुख्य अपराधी सोनू @ संतोष कुमार पाल और वेद प्रकाश यादव हैं, लेकिन दूसरी जगह वह उन्हें क्लीन चिट देते हैं और वर्तमान दोषी-अपीलकर्ता को फंसाते हैं, लेकिन जब जांच आगे बढ़ती है, तो उपरोक्त दो व्यक्तियों की भागीदारी फिर से अपराध में पाई जाती है। लेकिन बाद में उनके पक्ष में एक अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है और वर्तमान दोषी अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप-पत्र दायर किया जाता है। अभियोजन पक्ष यह बताने में पूरी तरह से विफल रहा है कि घटना के इतने दिनों बाद घायल अ०सा०- 2 द्वारा किसी को भी दोषी-अपीलकर्ता का नाम क्यों नहीं बताया गया। यदि हम अ०सा०-.1 के इस कथन को स्वीकार करते हैं कि घायल अ०सा०-.2 ने वर्तमान दोषी-अपीलकर्ता को अस्पताल में अपने पति के हमलावर के रूप में नामित किया था, तो अ०सा०--1 के पति को अदालत में पेश क्यों नहीं किया गया, यह भी अभियोजन पक्ष द्वारा स्पष्ट नहीं किया गया है। इसलिए, इस मोड़ पर, अ०सा०- 1 के साक्ष्य केवल सुनी-सुनाई बातें ही रह जाते हैं।

64. हम अपीलकर्ता के वकील की इस दलील में भी बल पाते हैं कि यदि दोषी-अपीलकर्ता घायल अ०सा०- 2 के साथ पूरी अवधि के दौरान अस्पताल में रहा, जैसा कि अ०सा०- 2 भी स्वीकार करता है, तो जांच अधिकारी ने उसे गिरफ्तार क्यों नहीं किया। कुल मिलाकर, यदि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और संलग्न सबूतों को एक साथ लिया जाता है, तो उनका संचयी प्रभाव कथित अपराध में दोषी-अपीलकर्ता की भागीदारी और भागीदारी के बारे में एक मजबूत संदेह पैदा करता है और मामले की न्यायिक जांच और विश्लेषण हमें दोषी-अपीलकर्ता के पक्ष में संदेह के लाभ की दिशा में ले जाता है।

65. मौसम सिंघा रॉय बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 2003 12 एससीसी 377 मामले में यह माना गया था कि आपराधिक न्यायशास्त्र का यह स्थापित सिद्धांत भी है कि अपराध जितना गंभीर होगा, सबूत की डिग्री उतनी ही सख्त होगी, क्योंकि अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए उच्च स्तर के आश्वासन की आवश्यकता होती है।

66. हमारे आकलन में, इस मामले में अभियोजन पक्ष के साक्ष्य सबूत की आवश्यक डिग्री को पूरा नहीं करते हैं।
67. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में स्थापित कानूनी स्थिति के सावधानीपूर्वक विश्लेषण और विचार करने पर, हमारा विचार है कि विवादित निर्णय में विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा निकाला गया निष्कर्ष कानून और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सबूतों के अनुसार नहीं है। इस प्रकार, इस न्यायालय का विचार है कि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे और अदालत के न्यायिक विवेक की संतुष्टि के लिए आईपीसी की धारा 326-ए के तहत दोषी-अपीलकर्ता के अपराध को स्थापित करने में सक्षम नहीं है।
68. सुचंद पाल बनाम फनी पाल, 2004 एससीसी (सीआरआई) 220 मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि यदि रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में दो विचार संभव हैं, एक आरोपी की बेगुनाही की ओर इशारा करता है और दूसरा अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करता है, तो आरोपी के पक्ष में दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
69. विद्वान ट्रायल कोर्ट ने रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों की जांच और विश्लेषण करने में गलती की है और अपीलकर्ता के अपराध के संबंध में निष्कर्ष विकृत है और कानून के अनुसार नहीं है। इसलिए, हम सावधानी के नियम के आधार पर दोषी-अपीलकर्ता को संदेह का लाभ देने के इच्छुक हैं।
70. इसलिए, दोषी ठहराए जाने और सजा के आक्षेपित निर्णय और आदेश, जिसे रद्द करने की मांग की गई है, हस्तक्षेप की मांग करता है और इसके योग्य है। आपराधिक अपील की अनुमति दी जा सकती है और तदनुसार इसकी अनुमति दी जाती है।

71. दिनांक 22.09.2014 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को तदनुसार निरस्त किया जाता है। दोषी-अपीलकर्ता को संदेह का लाभ दिया जाता है और तदनुसार आईपीसी की धारा 326-ए के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी नहीं पाया जाता है। उसे आरोप से बरी किया जाता है। दोषी-अपीलकर्ता जेल में है। यदि वह किसी अन्य मामले में वांछित नहीं है तो उसे तुरंत रिहा कर दिया जाएगा।
72. ट्रायल कोर्ट के रिकॉर्ड के साथ इस फैसले की एक प्रति आवश्यक अनुपालन के लिए संबंधित न्यायालय को भेजी जाए।

(2023) 1 ILRA 770
मूल न्यायाधिकार
नागरिक पक्ष
दिनांक:इलाहाबाद 22.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह

रिट बी संख्या - 692/2022

श्रीमती अंजू राजपाल एवं अन्य ...याचिकाकर्ता
बनाम
यूपी राज्य एवं अन्य ...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ताओं के लिए अधिवक्ता:
चन्द्र भूषण पांण्डेय, आसिम कुमार सिंह

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ताः
सी.एस.सी. प्रतीश कुमार, शान्तनु गुप्ता, वैभव गुप्ता

ए. सिविल कानून - यूपी चकबंदी अधिनियम, 1953 - रिमांड - डीडीसी, चकबंदी न्यायालय के पदानुक्रम में सर्वोच्च न्यायालय है और इसमें तथ्य और कानून दोनों के निष्कर्षों का मूल्यांकन करने की शक्तियां हैं - डीडीसी तथ्य और कानून का अंतिम न्यायालय है लेकिन वर्तमान मामले में मामला साझेदारी अधिनियम में निहित प्रावधानों यानी धारा 5, 6, 14, 37, 42 से 49 की अनदेखी करते हुए आगे बढ़ा है और पार्टियों ने अपेक्षित साक्ष्य भी रिकॉर्ड पर नहीं लाए हैं जो संबंधित तर्कों का समर्थन कर सकें - कोई नहीं दोनों प्राधिकरणों अर्थात चकबंदी अधिकारी और चकबंदी के बंदोबस्त अधिकारी ने समस्या को कानूनी प्रावधानों के सही चश्मे से देखा था, इसलिए, उपरोक्त परिस्थितियों में, रिमांड ही एकमात्र विकल्प था - उप निदेशक द्वारा पारित आदेश मामले को नए सिरे से निर्णय के लिए भेजने वाले समेकन में कोई त्रुटि नहीं होती (पैरा 41, 46, 47, 48)

बी. सिविल कानून - साझेदारी अधिनियम - एक फर्म का विघटन - धारा 39 - विघटन पर अपने भागीदारों के बीच एक फर्म की संपत्ति के वितरण और एक दायित्व को पूरा करने के लिए फर्म की कुछ संपत्तियों को किसी तीसरे पक्ष (गैर भागीदार) को हस्तांतरित करने के बीच अंतर या किसी तीसरे पक्ष की शेयर मांग को निपटाना/संतुष्ट करना काफी वास्तविक और अलग है - साझेदारी अधिनियम के संदर्भ में विघटन पर भागीदारों के बीच किसी फर्म की संपत्ति का वितरण पुन: समायोजन के अलावा कुछ नहीं हो सकता है, जिसके लिए हालांकि विलेख तैयार किया गया है लेकिन इसकी हालाँकि, पंजीकरण की आवश्यकता नहीं हो सकती है, लेकिन यदि ऐसा किसी तीसरे पक्ष के लिए किया जाता है जो भागीदार नहीं है और जिसका केवल फर्म के खिलाफ दावा है तो स्थिति बदल जाती है क्योंकि उसकी क्षमता एक लेनदार की होगी और क्या लाभ उपलब्ध हो सकता है साझेदारों के बीच ऐसे तीसरे पक्ष (लेनदार) के लिए उपलब्ध नहीं है क्योंकि यह उसकी सभी

कानूनी आवश्यकताओं को आकर्षित करने वाला एक हस्तांतरण होगा। (पैरा 39)

अनुमति है। (ई-5)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. काले बनाम उप निदेशक चकबंदी (1976) (2) एएलआर 173

2. गोपी नाथ बनाम सतीश चन्द्र 1ए.आई.आर964 एएलडी 53

3. संपदा शुल्क नियंत्रक, अहमदाबाद, गुजरात बनाम मृदुला (श्रीमती) नरेश चंद्र ए.आई.आर 1986 एस.सी 1821

(माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सी.बी. पांडे, राज्य-प्रतिवादियों के लिए विद्वान स्थाई अधिवक्ता और साथ ही निजी प्रत्यर्थी संख्या -3 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री प्रीतीश कुमार को सुना गया।

2. चूंकि पक्षों के मध्य बहस हुई है, तदनुसार, पक्षों के विद्वान अधिवक्ता की सहमति से, मामले को अंतिम रूप से प्रारम्भिक चरण में ही सुना गया है।

3. चुनौती के अंतर्गत डीडीसी, सीतापुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 20.09.2022 है जिसके माध्यम से निजी प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा प्रस्तुत किये गये संशोधन को अनुमति दी गयी है तथा चकबन्दी अधिकारी के बन्दोबस्त अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 16.12.2022 एवं चकबन्दी अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.01.2021 को निरस्त कर प्रकरण को नये सिरे से निर्णय हेतु प्रेषित किया गया है। रिमांड के इसी आदेश को मौजूदा याचिका में चुनौती दी गई है।

4. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री सी.बी. पांडे ने मुख्य रूप से दो आधारों पर डीडीसी, सीतापुर द्वारा पारित रिमांड के आदेश की आलोचना की:-

(i) यह मामला उन तथ्यों के निष्कर्षों के आधार पर समाप्त हुआ जो चकबंदी अधिकारी और चकबंदी के निपटान अधिकारी द्वारा विधिवत दर्ज किए गए थे और डीडीसी के समक्ष कोई विपरीत दृष्टिकोण रखने के लिए कोई सामग्री नहीं थी और यहां तक कि डीडीसी ने इसे अपास्त करने में गलती की एवं आदेश दिया और मामले को वापस भेज दिया, जिससे दशकों की मुकदमेबाजी के बाद तय हुई स्थिति अस्थिर हो गई।

(ii) यह भी आग्रह किया गया है कि डीडीसी, सीतापुर ने मामले को दोबारा भेजने में गलती की, खासकर जब चकबंदी न्यायालय के पदानुक्रम में सर्वोच्च न्यायालय होने और तथ्य और कानून दोनों के निष्कर्षों का मूल्यांकन करने की शक्तियां होने के कारण, वह मामले का फैसला कर सकते थे। मामले को वापस भेजने के बजाय और परिणामस्वरूप अपर्याप्त कारणों के कारण सी.ओ. द्वारा आदेश पारित किए गए और एसओसी को क्रमशः अपास्त कर दिया गया है जिसके परिणामस्वरूप न्याय नही हो पाया है। डीडीसी यह भी नोटिस करने में विफल रहे कि प्रत्यर्थी नं. 3 ने स्वीकार किया कि वह उस फर्म के साथ अपनी सांठगांठ स्थापित नहीं कर सका जो विवादित संपत्ति का दर्ज मालिक था और साथ ही यह तथ्य भी था कि याचिकाकर्ता मूल मृत साथी के कानूनी उत्तराधिकारियों के उत्तराधिकारी हैं और संपत्ति उन्ही में निहित है। उन्हें रिमांड के आदेश से अस्थिर कर दिया गया है जो कानून की नजर में बुरा है।

5. अपनी दलीलों को विस्तार से बताते हुए, श्री सी.बी. पांडे ने प्रस्तुत किया है कि विचाराधीन विवाद खाता संख्या 46, 124 और 125 से संबंधित है, जिसमें ग्राम जमैतपुर, परगना खैराबाद, तहसील और जिला सीतापुर में स्थित कई भूखंड शामिल हैं, जो कि फर्म घन्नूमल भगवान दास,सीतापुर के नाम पर दर्ज थे।

6. याचिकाकर्ताओं का मामला है कि घन्नूमल भगवान दास के नाम और शैली के तहत एक अपंजीकृत फर्म का गठन 15.01.1950 को किया गया था। घन्नूमल और भगवान दास दोनों एक ही परिवार से थे और एक पारिवारिक इतिहास भी रिकॉर्ड में लाया गया है और रिट याचिका के पैराग्राफ 14 में यह संकेत दिया गया है कि घन्नूमल और भगवान दास क्रमशः चाचा और भतीजे के रूप में एक दूसरे से संबंधित थे। (भगवान दास बंधनमल के पुत्र थे जो घन्नूमल के सगे भाई थे)।

7. उक्त फर्म घन्नूमल भगवान दास, सीतापुर के निम्नलिखित साझेदार थे जिनके नाम सेठ घन्नूमल, सेठ भगवान दास, श्री हासानंद और श्री वरंदमल हैं। याचिकाकर्ताओं का यह भी मामला है कि घन्नूमल और भगवान दास वर्किंग पार्टनर थे जबकि श्री हासानंद और वरंदमल स्लीपिंग पार्टनर थे।

8. अनुबंध संख्या 4 के रूप में रिकॉर्ड पर रखे गए दिनांक 15.01.1950 के विलेख के अनुसार, यह इंगित करेगा कि घन्नूमल की उक्त साझेदारी में 12.5% हिस्सेदारी थी, श्री भगवान दास और हासानंद की हिस्सेदारी 31.25% थी और श्री वारंडमल की 25% की हिस्सेदारी थी।

9. याचिकाकर्ताओं का यह भी मामला है कि उपरोक्त फर्म जिसका नाम घन्नूमल भगवान दास, सीतापुर

है, मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिलों में किए जाने वाले रेलवे ठेकों में लगी हुई थी और इसने अपने व्यवसाय के हिस्से के रूप में सीतापुर में एक ईंट भट्ठा भी स्थापित किया था। यह विशेष रूप से अनुरोध किया गया है कि फर्म द्वारा खरीदी गई विभिन्न संपत्तियों में से, उक्त फर्म ने ग्राम जमैतपुर, परगना खैराबाद, तहसील और जिला सीतापुर में खाता संख्या 125 से संबंधित कृषि भूमि खरीदी, जिस पर ईंट भट्ठा स्थापित किया गया था। जैसा कि रिट याचिका के पैराग्राफ 7 में दर्शाया गया है जबकि दूसरी भूमि जिसमें खाता संख्या 46 की खरीद घन्नूमल के जीवनकाल में उक्त फर्म द्वारा की गई थी शामिल है। उक्त भूमि को फर्म द्वारा खरीदने के बाद राजस्व अभिलेखों में घन्नूमल भगवान दास, सीतापुर के पक्ष में नामांतरण भी कर दिया गया।

10. कहा जाता है कि श्री घन्नूमल ने 21.10.1964 को एक वसीयत निष्पादित की थी, जिसके तहत उन्होंने अपनी वसीयत में दिए गए विवरण के अनुसार अपनी पूरी संपत्ति/संपत्ति अपने बेटों, पोते-पोतियों और अपनी पत्नी के पक्ष में कर दी थी (रिट याचिका के साथ अनुलग्नक संख्या 8)। याचिकाकर्ता की ओर से आगे दलील दी गई है कि 23.10.1964 को श्री घन्नूमल की मृत्यु के बाद, फर्म मैसर्स घन्नूमल भगवान दास, सीतापुर को शेष तीन भागीदारों के साथ व्यापार करने के लिए 24.10.1964 को फिर से गठित किया गया था।

11. आगे यह आग्रह किया गया है कि साझेदारी में घन्नूमल भगवान दास, सीतापुर की हिस्सेदारी बरकरार रहे और पुनर्गठित फर्म में ही निवेश किया जाए। इसके बाद, पुनः गठित फर्म अर्थात् मैसर्स घन्नूमल भगवान दास, सीतापुर को 19.03.1965 को शेष तीन साझेदारों अर्थात् भगवान दास, हासानंद और वरंदमल के साथ उसी व्यवसाय को चलाने के लिए पंजीकृत किया गया जैसा कि श्री की मृत्यु से पहले किया जा रहा था।.

12. याचिकाकर्ताओं की ओर से यह भी विशेष रूप से अनुरोध किया गया है कि फर्म अर्थात् मैसर्स घन्नूमल भगवान दास, सीतापुर, जो शुरू में वर्ष 1950 में गठित की गई थी, जैसा कि ऊपर बताया गया है, वर्ष 1972 में भंग कर दी गई थी और उक्त विघटन की सूचना दी गई थी दिनांक 01.11.1972 को बिक्री कर अधिकारी, सीतापुर को भी सूचित किया गया था।

13. यह भी आग्रह किया गया है कि चूंकि श्री घन्नूमल और भगवान दास एक ही परिवार के थे और रिश्ते में चाचा-भतीजा लगते हैं, इसलिए वर्ष 1972 में फर्म मैसर्स घन्नूमल भगवान दास, सीतापुर के विघटन पर, की संपत्तियां ग्राम जमैतपुर में स्थित फर्म, जो विवादित भूमि है, सेठ घन्नूमल के हिस्से में आती है, तदनुसार, विघटन के बाद उक्त संपत्ति श्री घन्नूमल के पुत्रों दया सिंह, हशमत राय और हरि लाल को विरासत में मिली।

14. इसके बाद घन्नूमल के तीन बेटों ने 01.11.1972 को एक नई फर्म का गठन किया, जिसमें पूर्ववर्ती फर्म घन्नूमल एंड संस के विघटन के बाद उन्हें विरासत में मिली संपत्तियां मिलीं। यहां तक कि यह फर्म मैसर्स घन्नूमल एंड संस भी दिनांक 01.01.2017 से भंग कर दी गई थी। 31.10.1975 को और उपरोक्त फर्म घन्नूमल एंड संस की संपत्ति का विभाजन फर्म घन्नूमल एंड संस के तीन भागीदारों (घन्नूमल के तीन बेटों) के बीच किया गया था।

15. घन्नूमल के सबसे बड़े बेटे दया सिंह ने जमैतपुर गांव की जमीन पर ईंट भट्ठा व्यवसाय चलाने के लिए मेसर्स दया सिंह बेदी नाम से एक और फर्म बनाई। श्री घन्नूमल द्वारा निष्पादित वसीयत के अनुसार, सीतापुर में स्थित आवासीय घर श्री घन्नूमल के पोते श्री दिलीप कुमार को विरासत में मिला था।

16. याचिकाकर्ताओं का यह भी मामला है कि निजी प्रत्यर्थी नं. 3 केवल एक प्रबंधक/मुंशी था जिसे फर्म द्वारा ईंट भट्ठा व्यवसाय की देखभाल के लिए नियुक्त किया गया था। फर्म मैसर्स घन्नूमल एंड संस के विघटन के बाद भी, ईंट भट्टे के उक्त व्यवसाय को फर्म मैसर्स दया सिंह बेदी और श्री उत्तम चंद यानी प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा ले लिया गया था। ईंट भट्टे के व्यवसाय की देखभाल के लिए प्रबंधक के रूप में कार्य करता रहा। यह इंगित करने के लिए विभिन्न दस्तावेजों और रसीदों/लाइसेंस पर भरोसा किया गया है कि विचाराधीन संपत्ति श्री घन्नूमल के परिवार के सदस्यों, अर्थात् श्री दया सिंह के पुत्र श्री दिलीप कुमार (घन्नूमल के पोते) के कब्जे में रही।

17. यह भी बताया गया है कि श्री उत्तम चंद, प्रत्यर्थी संख्या 3 ने केवल गाटा संख्या 334, 329 और 244 के संबंध में अधिकार का दावा करते हुए उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 229-बी के तहत मुकदमा दायर करके संपत्ति पर दावा ठोकते हुए एक मुकदमा दायर किया, जो कि खाता संख्या 44 के भूखंड थे। हालाँकि, उक्त मुकदमा 09.02.1983 को डिफ़ॉल्ट रूप से खारिज कर दिया गया। हालाँकि, रिकॉल/पुनर्स्थापना के लिए एक आवेदन दायर किया गया था जिसे अनुमति दे दी गई थी, उसके बाद ग्राम जमाइतपुर, परगना खैराबाद, जिला सीतापुर में चकबंदी अभियान शुरू हुआ और कार्यवाही समाप्त हो गई लेकिन फिर भी तथ्य यह है कि श्री उत्तम चंद का यह कृत्य एक प्रयास के अलावा और कुछ नहीं था फर्म मैसर्स घन्नूमल भगवान दास, सीतापुर से संबंधित संपत्तियों को हड़पने के लिए, जो विघटन के बाद श्री घन्नूमल के कानूनी उत्तराधिकारियों के हिस्से में आ गई और किसी भी मामले

में श्री उत्तम चंद के पास कोई अधिकार, शीर्षक या हित नहीं था।

18. आगे यह आग्रह किया गया है कि समेकन संचालन शुरू होने पर, श्री उत्तम चंद द्वारा आपत्तियां दायर की गईं और श्री उत्तम चंद द्वारा खुद को मेसर्स घन्नूमल भगवान दास कॉन्ट्रैक्टर्स, गोंडा और एक फर्म का भागीदार होने का दावा करते हुए मुद्दा उठाया गया था। मैसर्स घन्नूमल भगवान दास, लखनऊ और गाटा संख्या 329, 244, 344, 332 और 315 की संपत्ति पर अधिकार का दावा कर रहे हैं। यह भी आग्रह किया गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 3 मुकदमे के विभिन्न चरणों में ढुलमुल रुख अपना रहा है।

19. चकबंदी अधिकारी ने दलीलों के आदान-प्रदान के बाद सात मुद्दों को तैयार किया था और संबंधित पक्षों के साक्ष्यों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद, निष्कर्ष दर्ज किया था कि घन्नुमल भगवान दास, सीतापुर की फर्म के विघटन पर, एक पारिवारिक समझौता हुआ था। वर्ष 1975 में विचाराधीन संपत्तियां याचिकाकर्ताओं के हिस्से में आ गईं और श्री उत्तम चंद की कोई हिस्सेदारी नहीं थी। यह भी माना गया कि चूँकि घन्नुमल की मृत्यु के बाद, फर्म एक पारिवारिक फर्म थी, इसलिए, पारिवारिक समझौते के संदर्भ में, संपत्तियाँ संबंधित पक्षों के हिस्से में आ गईं, जो श्री घन्नूमल के उत्तराधिकारी थे और इसके अलावा वे अधिकृत थे। जहाँ तक निजी प्रत्यर्थी सं. 3 का संबंध है, वह प्रश्नगत संपत्ति पर अपना अधिकार स्थापित नहीं कर सका या यह नहीं बता सका कि उसका पूर्ववर्ती फर्म मैसर्स घन्नुमल भगवान दास, सीतापुर से कैसे कोई संबंध था, जिसका गठन वर्ष 1950 में किया गया था और जिसने प्रश्नगत संपत्ति खरीदी थी और वर्ष 1972 में भंग कर दिया गया था, इसलिए, श्री उत्तम चंद की आपत्तियों को खारिज कर दिया गया और चकबंदी अधिकारी दिनांक 23.01.2021 द्वारा पारित निर्णय के माध्यम से संपत्ति के अधिकारों का निर्णय वर्तमान याचिकाकर्ताओं के पक्ष में किया गया।

20. श्री उत्तम चंद द्वारा की गई अपील पर, बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी, सीतापुर ने दिनांक 16.12.2021 के फैसले के माध्यम से निजी प्रत्यर्थी संख्या 3 की अपील को खारिज कर दिया तथा चकबन्दी अधिकारी के निष्कर्षों की पुष्टि की।

21. चकबन्दी अधिकारी द्वारा पारित उपरोक्त दो निर्णय दिनांक 23.01.2021 तथा बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी द्वारा पारित आदेश दिनांक 16.12.2021 के विरूद्ध निजी प्रत्यर्थी सं. 3 ने डीडीसी, सीतापुर के समक्ष एक पुनरीक्षण प्रस्तुत किया, जिसे दिनांक 20.9.2022 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से अनुमति दी गई है और मामले को रिमांड पर लिया गया है और यह इस निर्णय के पैरा 4 में पहले से ही देखे गए आधारों के लिए अधिकार क्षेत्र का उचित प्रयोग नहीं है।

22. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने काले बनाम चकबंदी के उप निदेशक ने (1976) (2) एएलआर 173 और गोपी नाथ बनाम सतीश चंद्रा ने ए.आई.आर 1964 एएलएलडी के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है।

23. श्री प्रीतीश कुमार, निजी प्रत्यर्थी संख्या 3 के लिए विद्वान अधिवक्ता ने अपनी दलीलें पेश करते हुए कहा है कि पूरा आधार जिस पर चकबंदी अधिकारी और साथ ही चकबंदी के निपटान अधिकारी आगे बढ़े हैं वह काफी गलत है। यह आग्रह किया गया है कि चकबंदी अधिकारी और चकबंदी के बंदोबस्त अधिकारी ने इस तथ्य को नजरअंदाज कर दिया कि एक बार यह पार्टियों का स्वीकृत मामला है कि प्रश्नगत संपत्ति मैसर्स घन्नूमल भगवान दास, सीतापुर की फर्म की थी, जिसे वर्ष 1972 भंग कर दिया गया था और उसके बाद हुए घटनाक्रमों पर सही कानूनी परिप्रेक्ष्य में ध्यान नहीं दिया गया या उनका अवलोकन नहीं किया गया, भागीदारी अधिनियम के प्रावधानों की अनदेखी की गई जो अनिवार्य रूप से लागू थे और इसके परिणामस्वरूप असंगत परिणाम सामने आए।

24. अपनी दलीलों को विस्तार से बताते हुए, प्रत्यर्थी संख्या 3 के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह आग्रह किया गया है। कि किसी व्यक्ति की निजी संपत्ति और किसी फर्म की संपत्ति के बीच अंतर होता है। किसी फर्म के विघटन पर, मृत साझेदार के अधिकार केवल फर्म में उसके शेयर के मूल्य तक ही सीमित होते हैं और उन्हें फर्म की किसी विशेष संपत्ति के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है और यह लाभ/हानि साझाकरण अनुपात के अधीन है।

25. यह भी आग्रह किया जाता है कि साझेदारी अधिनियम, 1932 की धारा 14, 42 (सी), 46 और 37 को समझना और किसी फर्म की संपत्ति और उसके भागीदारों के बीच इसके वितरण से निपटने के दौरान इसका पालन करना महत्वपूर्ण है, जो कि नहीं किया गया है। दो प्राधिकारियों अर्थात चकबंदी अधिकारी और चकबंदी के निपटान अधिकारी द्वारा ध्यान दिया गया, जबकि चकबंदी के उप निदेशक ने एक व्यक्ति की निजी संपत्तियों और एक फर्म में एक भागीदार के अधिकारों और संपत्तियों के बीच अंतर को स्पष्ट रूप से देखा है और पाया है कि इस पहलू पर ध्यान नहीं दिया गया है। दोनों प्राधिकारियों द्वारा इस बात पर ध्यान दिया गया है कि मामले को वापस भेज दिया गया है क्योंकि साक्ष्यों और कानूनी प्रावधानों की उचित अवलोकन के अभाव में, दो समेकन प्राधिकारियों द्वारा निकाले गए निष्कर्ष गलत हैं,

इसलिए, डीडीसी द्वारा मामले को वापस भेजना बिल्कुल उचित था।

26. प्रत्यर्थी संख्या 3 के लिए विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि दिए गए तथ्यों और याचिकाकर्ताओं के स्वीकृत मामले के अवलोकन पर, यह आग्रह किया गया है कि यह कहना गलत है कि फर्म मैसर्स घन्नूमल भगवान दास, सीतापुर जो मूल रूप से वर्ष 1950 में गठित की गई थी। पारिवारिक फर्म. याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर साझेदारी विलेख के अवलोकन से, यह संकेत मिलता है कि श्री घन्नुमल के पास केवल 12.5% हिस्सेदारी थी, बल्कि प्रमुख शेयरधारक श्री भगवान दास, श्री हासानंद और श्री वरंदमल थे। रिट याचिका के पैराग्राफ 14 में याचिकाकर्ताओं द्वारा उल्लिखित वंशावली के अवलोकन से भी, यह संकेत मिलता है कि वारंडमल और हासानंद घन्नुमल के परिवार का हिस्सा नहीं थे। श्री वारंदमल और हासानंद परिवार के लिए बाहरी व्यक्ति थे और उनके पास उक्त फर्म में 56.25% यानी बहुमत में हिस्सेदारी थी।

27. इसे और विस्तार से बताया गया है कि वर्ष 1972 में फर्म मैसर्स घन्नुमल भगवान दास, सीतापुर के विघटन पर भले ही घन्नुमल का हिस्सा बरकरार रहा और फर्म में निवेश किया गया, तब भी घन्नूमल का हिस्सा अधिकतम तक ही सीमित था। वर्ष 1964 में पुनर्गठित की गई फर्म में निवेशित राशि की सीमा और मूल्य, वर्ष 1972 में इसके विघटित होने तक अधिकतम है। हालाँकि, वर्ष 1972 में जब फर्म विघटित हुई थी, तब भी मौजूदा भागीदार किसी विशेष परिसंपत्ति पर किसी विशिष्ट शेयर का दावा नहीं किया जा सका। माना जाता है कि, श्री घन्नूमल की मृत्यु की तिथि पर, उनके कानूनी उत्तराधिकारियों को 1964 से 1972 तक पुनर्गठित साझेदारी में कभी भी शामिल नहीं किया गया था जब यह भंग हो गई थी और यदि कोई दावा था, तो कानूनी उत्तराधिकारी इसके खिलाफ मुकदमा दायर कर सकते थे। घन्नुमल के शेयर का मूल्य और फर्म की किसी विशेष संपत्ति को अपना होने का दावा करते हुए उस पर अधिकार का दावा नहीं कर सकता।

28. आगे यह आग्रह किया गया है कि अक्टूबर, 1964 में श्री घन्नुमल की मृत्यु के बाद, एक अन्य फर्म मेसर्स घन्नूमल भगवान दास कॉन्ट्रैक्टर्स, गोंडा का गठन श्री भगवान दास, पंजुमल, उत्तम चंद (प्रत्यर्थी संख्या 3) और उक्त फर्म के भागीदार श्री परसराम के साथ किया गया था। न्यायालय का ध्यान उक्त विलेख की ओर आकर्षित किया गया है जिसे प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा दायर जवाबी शपथपत्र के अनुबंध संख्या सीए-1 के रूप में रिकॉर्ड पर लाया गया है। जिसमें कहा गया है कि उक्त फर्म के गठन पर, यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि फर्म नामतः मेसर्स घन्नूमल भगवान दास, सीतापुर के सभी रेलवे अनुबंध, संपत्ति और देनदारियां और उत्कृष्ट कार्यों को मेसर्स घन्नूमल भगवानदास, गोण्डा द्वारा ले लिया जाएगा।

29. आगे कहा गया है कि भगवान दास उत्तम चंद (प्रत्यर्थी संख्या 3), श्री हशमत राय और श्री घनश्याम दास के बीच फिर से एक साझेदारी विलेख निष्पादित किया गया था। इस फर्म को "घन्नुमल भगवान दास, लखनऊ" के नाम से जाना जाता था और उक्त विलेख में यह भी स्पष्ट रूप से दर्शाया गया था कि फर्म मेसर्स घन्नूमल भगवान दास, सीतापुर और मेसर्स घन्नूमल भगवान दास, गोंडा को इस नई फर्म मेसर्स घन्नूमल भगवान दास, लखनऊ द्वारा अधिग्रहित किया जा रहा है।। यह फर्म भी वर्ष 1966 में अस्तित्व में आई थी, जिसमें श्री उत्तम चंद, यानी प्रत्यर्थी नंबर 3, श्री भगवान दास और श्री हशमत राय, लखनऊ के साथ भागीदार थे वर्ष 1966 में अस्तित्व में आए हशमत राय कोई और नहीं बल्कि श्री घन्नुमल के पुत्र थे जो उनकी एचयूएफ क्षमता में भागीदार थे।

30. तर्क यह है कि साझेदारी विलेख और कुछ नहीं बल्कि पार्टियों के बीच किया गया एक अनुबंध है। श्री भगवान दास वर्ष 1950 में गठित फर्म मेसर्स घन्नुमल भगवान दास, गोंडा में भी एक सामान्य भागीदार थे, जो कि घन्नूमल की मृत्यु के बाद अक्टूबर, 1964 में अस्तित्व में आई थी, इसी तरह फर्म मेसर्स घन्नुमल में भी एक सामान्य भागीदार था। घन्नुमल भगवान दास, लखनऊ जो नवंबर 1966 में लागू हुआ, जिसने फर्म मेसर्स घन्नूमल भगवान दास, गोंडा और मेसर्स घन्नूमल भगवान दास, सीतापुर का व्यवसाय अपने हाथ में ले लिया था।

31. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि किसी फर्म के विघटन पर, विघटन का एक विलेख तैयार किया जाना है जिसमें फर्म के सभी ऋणों और बकाया का भुगतान करने के बाद भागीदारों के अधिकारों और देनदारियों का निपटान किया जाता है। इसके बाद ही अधिशेष को भागीदारों और केवल स्वयं भागीदारों के बीच विभाजित किया जाता है। मौजूदा मामले में, वर्ष 1964 में श्री घन्नुमल की मृत्यु के बाद घन्नूमल के उत्तराधिकारियों को कभी भी साझेदारी में शामिल नहीं किया गया, परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत यह है कि फर्म मैसर्स घन्नुमल के बाद भगवान दास, सीतापुर जो कि पुनः था -वर्ष 1964 में केवल तीन साझेदारों के साथ गठित किया गया था और जिसे वर्ष 1972 में भंग कर दिया गया था और उक्त विघटन पर, घन्नूमल के उत्तराधिकारियों को प्रश्नगत संपत्ति मिल गई क्योंकि घन्नूमल की मृत्यु पर निवेश की गई राशि के बराबर उनका कोई कानूनी बाध्यकारी आधार नहीं था।

32. अधिक से अधिक याचिकाकर्ता को केवल फर्म में शेयर के मूल्य की सीमा तक ही शेयर मिल

सकता है, न कि उक्त शेयर का प्रतिनिधित्व करने वाली कोई विशेष संपत्ति से। अन्यथा भी, यदि कोई विशेष संपत्ति श्री घन्नुमल के उत्तराधिकारियों को उनके हिस्से का प्रतिनिधित्व करने के लिए दी गई थी, तो वह केवल एक उचित विलेख द्वारा ही की जा सकती थी, जिस पर विधिवत मुहर लगाई गई थी और पंजीकृत किया गया था क्योंकि श्री घन्नुमल के उत्तराधिकारी स्वीकारोक्ति के बाद भागीदार नहीं थे। श्री घन्नूमल की मृत्यु और उन्हें केवल फर्म में निवेश किए गए घन्नूमल के हिस्से के धन मूल्य पर दावा करने का अधिकार था। स्थानांतरण या हस्तांतरण के किसी उचित विलेख के अभाव में, यह सिद्धांत कि फर्म की संपत्ति पारिवारिक समझौते के आधार पर घन्नूमल के उत्तराधिकारियों के हाथों में आ गई, कानूनी प्रावधानों के विपरीत है और ऐसा कोई पारिवारिक समझौता नहीं हो सका। विशेष रूप से, जब यह स्पष्ट है कि फर्म मैसर्स घन्नूमल भगवान दास, सीतापुर वर्ष 1950 में गठित होने के बावजूद एक पारिवारिक फर्म नहीं थी, जहां घन्नूमल की केवल 12.5% की मामूली हिस्सेदारी थी और 56.25% की बड़ी हिस्सेदारी बाहरी लोग अर्थात् श्री हासानंद और श्री वरंदमल के पास थी।

33. प्रत्यर्थी संख्या 3 के लिए विद्वान अधिवक्ता का आगे प्रस्तुतीकरण यह है कि किसी भी उचित विलेख के अभाव में, घन्नूमल के उत्तराधिकारी फर्म की विशेष संपत्ति पर अधिकार का दावा नहीं कर सकते थे और इसके अलावा याचिकाकर्ताओं द्वारा रिकॉर्ड पर रखी गई वसीयत से यह संकेत मिलता है कि श्री घन्नूमल ने स्वयं स्वीकार किया था कि उन्होंने कोई विशेष अचल संपत्ति नहीं लगाई थी बल्कि उनका पैसा फर्म में निवेश किया गया था। श्री घन्नूमल के शेयर का प्रतिनिधित्व करने वाली फर्म में किसी भी निवेश को धन मूल्य के संदर्भ में माना जाना चाहिए, न कि किसी विशेष और विशिष्ट संपत्ति/अचल संपत्ति के संदर्भ में माना जाना चाहिये।

34. उपरोक्त परिस्थितियों में विधिवत मुद्रांकित और पंजीकृत किसी भी उचित विलेख के अभाव में किसी तीसरे पक्ष के पक्ष में कोई अधिकार नहीं बनाया जा सकता है जो भागीदार नहीं था और सिद्धांतों के साथ-साथ कानून को लागू करने के बाद कानून में इसका क्या प्रभाव होने वाला है साझेदारी अधिनियम में निहित प्रावधानों के अनुसार मामले पर पुनर्विचार की आवश्यकता है और उक्त कारणों से, मामले को रिमांड पर लिया गया है और डीडीसी द्वारा किए गए क्षेत्राधिकार की कोई त्रुटि नहीं है, तदनुसार, रिट याचिका खारिज की जानी चाहिए।

35. निजी प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने भी अपनी संक्षिप्त दलीलें दाखिल की हैं और अपने तर्कों के समर्थन में संपदा शुल्क नियंत्रक, गुजरात, अहमदाबाद बनाम मृदुला (श्रीमती) नरेश चंद्रा ने AIR 1986 SC 1821 के मामले में शीर्ष अदालत के फैसले पर भरोसा किया है।

36. न्यायालय ने प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और संबंधित पक्षों द्वारा उद्धृत लिखित प्रस्तुतियाँ और केस कानूनों सहित रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री का अवलोकन किया है।

37. आरंभ में, यह देखा जा सकता है कि साझेदारी अनुबंध के एक रूप के अलावा और कुछ नहीं है। साझेदारी फर्म का गठन किसी परिवार के सदस्यों या ऐसे व्यक्तियों द्वारा भी किया जा सकता है जो संबंधित नहीं हो सकते हैं, लेकिन तथ्य यह है कि किसी भी स्थिति में संबंधित साझेदारों के अधिकार और दायित्व साझेदारी विलेख में दिए गए भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 के प्रावधानों के अधीन अधिकारों और दायित्वों तक ही सीमित हैं।

38. चकबन्दी अधिकारी एवं बन्दोबस्त चकबन्दी अधिकारी द्वारा पारित निर्णयों का अवलोकन करने पर पता चलता है कि उक्त दोनों प्राधिकारियों ने अपने निष्कर्ष इस आधार पर निकाले हैं कि फर्म मैसर्स घन्नूमल भगवान दास, सीतापुर का गठन वर्ष 1950 एक पारिवारिक फर्म थी और पारिवारिक समझौते के तहत वर्ष 1972 में विघटन के बाद, उक्त फर्म की संपत्ति श्री घन्नूमल के कानूनी उत्तराधिकारियों और शेष भागीदारों के बीच वितरित की गई, हालांकि ऐसा कोई कार्य रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया था।

39. किसी फर्म के विघटन पर उसके साझेदारों के बीच परिसंपत्तियों के वितरण और किसी दायित्व को पूरा करने या किसी तीसरे पक्ष की शेयर मांग को निपटाने/संतुष्ट करने के लिए फर्म की कुछ परिसंपत्तियों को तीसरे पक्ष (गैर-साझेदार) को हस्तांतरित करने के बीच अंतर काफी वास्तविक और अलग है. साझेदारी अधिनियम के अनुसार विघटन पर साझेदारों के बीच किसी फर्म की संपत्ति का वितरण पुनः समायोजन के अलावा और कुछ नहीं हो सकता है, जिसके लिए विलेख तैयार किया गया है, लेकिन इसके पंजीकरण की आवश्यकता नहीं हो सकती है, लेकिन यदि ऐसा एक तिहाई के लिए किया जाता है वह पक्ष जो साझेदार नहीं है और जिसका केवल फर्म के विरुद्ध दावा है, तो स्थिति बदल जाती है क्योंकि उसकी क्षमता एक ऋणदाता की होगी और साझेदारों को जो लाभ मिल सकता है वह ऐसे तीसरे पक्ष (लेनदार) को उपलब्ध नहीं होता है। इसकी सभी कानूनी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए एक स्थानांतरण माना जाएगा। जाहिर तौर पर, इस न्यायालय के समक्ष रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री से भी, न तो कोई विघटन विलेख रिकॉर्ड पर लाया गया है जो यह दर्शाता हो कि फर्म मैसर्स घन्नूमल भगवान दास, सीतापुर की संपत्ति

को विघटन पर कैसे वितरित किया गया था। ऐसे साक्ष्य के अभाव में कोई स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज नहीं किया जा सका।

40. इस तथ्य का प्रभाव कि हशमत राय, घन्नूमल के पुत्रों में से एक, जो फर्म मेसर्स घन्नूमल भगवान दास, लखनऊ में भागीदार थे, जो वर्ष 1966 में अस्तित्व में आया था और वह भी एक एचयूएफ के रूप में है जिसमें श्री भगवान दास भी प्रत्यर्थी संख्या 3 उत्तम चंद के साथ भागीदार थे। यहां और उक्त विलेख में स्पष्ट उल्लेख है कि फर्म मेसर्स घन्नूमल भगवान दास, लखनऊ और मेसर्स घन्नूमल भगवान दास कॉन्ट्रैक्टर्स, गोंडा की सभी संपत्ति और देनदारियां उक्त फर्म द्वारा ली जा रही हैं। साझेदारी के इन दोनों कृत्यों के कानूनी प्रभाव पर भी विचार नहीं किया गया है। क्या इन दोनों फर्मों अर्थात मैसर्स घन्नूमल भगवान दास, लखनऊ और मैसर्स घन्नूमल भगवान दास कॉन्ट्रैक्टर्स, गोंडा के गठन पर, जिसमें साझेदार अपनी अलग-अलग क्षमताओं में थे, इस तथ्य के साथ-साथ घन्नूमल द्वारा निष्पादित वसीयत में भी, हिस्सेदारी फर्म में निवेश किए गए घन्नूमल की संपत्ति विशेष रूप से वर्तमान याचिकाकर्ताओं या उनके पूर्ववर्ती हितधारकों को नहीं दी गई है और इस न्यायालय के समक्ष रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह दर्शाता हो कि कैसे वर्तमान याचिकाकर्ता अकेले अपने अधिकार का दावा कर रहे हैं, भले ही 1974 में श्री घन्नूमल की मृत्यु हो गई हो और वर्ष 1966 में उनके एक बेटे हशमत राय को फर्म मेसर्स घन्नूमल भगवान दास, लखनऊ में एक एचयूएफ के रूप में शामिल किया गया था और वर्ष 1972 में फर्म के विघटन पर फर्म मेसर्स घन्नूमल की संपत्ति कैसे थी? भगवान दास, लखनऊ का बंटवारा घन्नूमल के उत्तराधिकारियों के बीच किया जा सकता था, इसके विपरीत जिस तरीके से "घन्नूमल ने खुद वसीयत तैयार की है, वे सभी प्रश्न हैं जिन पर विचार करने की आवश्यकता है। इस पहलू पर भी सीओ और एसओसी द्वारा ध्यान नहीं दिया गया।

41. सही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, साझेदारी अधिनियम में निहित प्रावधानों यानी धारा 5, 6, 14, 37, 42 से 49 को समय-समय पर गठित और उनके संबंधित विघटन के लिए विभिन्न साझेदारी फर्मों से संबंधित साक्ष्य के संदर्भ में ध्यान में रखना होगा। चूंकि दोनों प्राधिकारियों यानी चकबंदी अधिकारी और चकबंदी के बंदोबस्त अधिकारी में से किसी ने भी कानूनी प्रावधानों के सही चश्मे से समस्या को नहीं देखा था और इस पहलू ने डीडीसी का ध्यान आकर्षित किया था, जिन्होंने इस पर ध्यान देने के बाद पाया कि इस मामले की आवश्यकता है। एक पुन: अवलोकन और उक्त उद्देश्य के लिए इसने मामले को वापस भेज दिया है।

42. जहां तक काले बनाम के मामले में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय का संबंध है। डीडीसी (उपरोक्त) का संबंध है, प्रस्ताव विवादित होने के लिए बहुत अच्छी तरह से तय है, हालांकि, इस बात पर ध्यान देने की जरूरत है कि क्या काले (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों को तत्काल मामला में कोई प्रयोज्यता मिली है । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि जिन परिवार के सदस्यों के पास पहले से कोई अधिकार है, उनके बीच पारिवारिक समझौता हो सकता है। क्या उक्त सिद्धांतों को एक साझेदारी फर्म तक बढ़ाया जा सकता है जिसमें परिवार और गैर-पारिवारिक सदस्य शामिल हैं जैसा कि मौजूदा मामले में है और गैर-परिवार के सदस्यों के पास बड़ा हिस्सा है, इस पर विचार किया जाना चाहिए।

43. चन्द्र कुमारी बनाम डीडीसी (उपरोक्त) के मामले में भी, तत्काल मामले में प्रस्ताव की प्रयोज्यता पर विचार किया जाना है।

44. इसी प्रकार, मृदुला नरेश चंद्रा (उपरोक्त) के मामले में प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय कि क्या यह दिए गए तथ्यों पर लागू होगा, स्वाभाविक रूप से दिए गए तथ्य की स्थिति में परीक्षण करना होगा।

45. जैसा कि पहले ही ऊपर देखा जा चुका है कि पार्टियों के अधिकारों से संबंधित यह पहलू एक साझेदारी फर्म से प्राप्त होता है, एक पार्टी के अधिकार जो उन्हें एक परिवार के सदस्यों के रूप में विरासत में मिलते हैं। यह भी देखना होगा कि जहां श्री घन्नूमल ने एक वसीयत निष्पादित की थी और अपनी संपत्ति को उक्त वसीयत के अनुसार तैयार किया था, तो क्या, जब तक उक्त वसीयत कायम रहेगी, एक पारिवारिक समझौता किया जा सकता है और इसकी वैधता क्या होगी, इस पर भी ध्यान दिया जा सकता है। विचारणीय बात है. ये जटिल प्रश्न उन तथ्यों के साथ गुंथे हुए हैं जिन पर न तो चकबंदी अधिकारी ने और न ही चकबंदी के बंदोबस्त अधिकारी ने विचार किया है।

46. यह सच हो सकता है कि डीडीसी तथ्य और कानून का अंतिम न्यायालय है, लेकिन वर्तमान मामले में जहां मामला एक स्पर्शरेखा पर आगे बढ़ गया है और विवाद में आकर्षित सिद्धांतों की अनदेखी करते हुए साझेदारी के प्रावधानों को खारिज कर दिया गया है। अधिनियम और पक्षों ने आवश्यक साक्ष्य भी रिकॉर्ड पर नहीं लाए हैं जो संबंधित तर्कों का समर्थन कर सकें, इसलिए, इस न्यायालय का स्पष्ट विचार है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि दी गई परिस्थिति में रिमांड का आदेश खराब है।

47. वर्तमान मामले में दोबारा गौर करने की आवश्यकता है और उपरोक्त परिस्थितियों में यह न्यायालय संतुष्ट है कि चकबंदी के उप निदेशक द्वारा

मामले को नए सिरे से निर्णय के लिए भेजने का दिनांक 20.09.2022 का आदेश किसी भी त्रुटि से ग्रस्त नहीं है।

48. तथ्य यह है कि पक्ष लंबे समय से मुकदमेबाजी कर रहे हैं, इस न्यायालय के लिए हस्तक्षेप करने का एकमात्र कारण नहीं हो सकता है क्योंकि इसमें शामिल प्रश्नों पर नीचे के न्यायालयों द्वारा ध्यान नहीं दिया गया है, इसलिए, उपरोक्त परिस्थितियों में, रिमांड एकमात्र विकल्प था और इस प्रकार इस आशंका का ध्यान रखते हुए कि पार्टियां कई वर्षों से मुकदमा कर रही हैं, पार्टियों को 05.01.2023 को संबंधित चकबंदी अधिकारी के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश देकर इस पहलू पर ध्यान दिया जा सकता है और पार्टियां कोई भी अतिरिक्त वाद फाइल करने की हकदार होंगी। अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के तीन सप्ताह की अवधि के भीतर वे अदालत के समक्ष उठाए गए मुद्दों के आलोक में अपनी दलीलों के समर्थन में साक्ष्य दाखिल करना चाहते हैं और उसके बाद चार सप्ताह की अतिरिक्त अवधि के भीतर साप्ताहिक आधार पर तारीखें तय करके मामले का फैसला किया जाएगा। पार्टियों को सुनवाई का उचित अवसर, लेकिन असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर किसी भी आधार पर कोई अनावश्यक स्थगन दिए बिना।

49. यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय द्वारा की गई किसी भी टिप्पणी को योग्यता के आधार पर राय की अभिव्यक्ति के रूप में नहीं माना जा सकता है, बल्कि उप निदेशक,चकबंदी द्वारा पारित रिमांड के आदेश का परीक्षण करने के लिए पार्टियों के संबंधित तर्कों का आकलन करने के सीमित उद्देश्य के लिए था। इसलिए, चकबंदी अधिकारी का न्यायालय इस निर्णय में देखे गए मुद्दों और टिप्पणियों के प्रकाश में और रिकॉर्ड पर साक्ष्य के आधार पर, कानून के अनुसार सख्ती से विवाद का फैसला करने के लिए स्वतंत्र होगा।

50. आदेश दिनांक 20.09.2022 को यथावत रखते हुए उपरोक्त निर्देशों एवं टिप्पणियों के अधीन रखते हुए याचिका खारिज की जाती है। तथ्यों और परिस्थितियों में, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

(2023) 1 ILRA 779
मूल क्षेत्राधिकार
नागरिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 06.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय

रिट बी संख्या 3586/2018

श्रीमती सैदन　　...याचिकाकर्ता
बनाम
राजस्व बोर्ड, इलाहाबाद और अन्य　　...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
श्री संतोष कुमार तिवारी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री अरुण कुमार पांडे

नागरिक कानून - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 157- क – अनुसूचित जाति के सदस्यों द्वारा भूमि के हस्तांतरण पर प्रतिबंध - नीलामी बिक्री - नीलामी विक्रय कार्यवाही के सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 157-क की धारा लागू नहीं होगी - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 157-ए कानून के अनुसार बैंक द्वारा देय राशि की वसूली के लिए एक विघटनकारी बिक्री पर लागू नहीं होती है, इसलिए, कलेक्टर से पूर्व अनुमति का प्रतिबंध लागू नहीं हो सकता (पैरा 12)

नागरिक कानून - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 157-क – अनुसूचित जाति के नाम पर शुरू में दर्ज विवादित भूखंड - ऋण न चुकाने के कारण गिरवी रखी गई जमीन को कुर्क कर नीलामी के लिए रख दिया गया - नीलामी की कार्यवाही में, याचिकाकर्ता, जो उच्च जाति का था, सबसे अधिक बोली लगाने वाले के रूप में उभरा, और उसके पक्ष में एक बिक्री विलेख निष्पादित किया गया - शिकायत पर कि विचाराधीन संपत्ति मूल रूप से अनुसूचित जाति की थी, इस प्रकार, उसे याचिकाकर्ता को हस्तांतरित नहीं किया जा सकता है, जो उच्च जाति से संबंधित था, कलेक्टर से अनुमति प्राप्त किए बिना- उक्त शिकायत पर अतिरिक्त कलेक्टर ने राजस्व रिकॉर्ड से याचिकाकर्ता का नाम हटा दिया और संपत्ति को राज्य के पक्ष में निहित कर दिया - अभिनिर्धारित - उधारकर्ता जो संपत्ति का मालिक था, अनुसूचित जाति से संबंधित था - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम के अनुसार उधारकर्ता की संपत्ति की नीलामी की गई थी - नीलामी होने और पुष्टि करने के बाद, उक्त बिक्री विलेख राज्य द्वारा याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्पादित किया गया था, इस प्रकार, धारा 157-ए का प्रतिबंध इस मामले में लागू नहीं होगा (पैरा 11)

अनुमति। (ई-5)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. राम सरन बनाम प्रथम अपर जिला न्यायाधीश, रामपुर और अन्य, नागरिक विविध रिट याचिका संख्या 28205/1992 1981 सभी। एलजे 794 794,

2. हरमल बनाम विशेष/अपर जिला न्यायाधीश, दिनांक 1.10.1992 को निर्णय

3. श्याम सुंदर एवं अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी, सीतापुर एवं अन्य 2019 0 सर्वोच्च (सभी) 37

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री संतोष कुमार तिवारी, प्रतिवादी - गाँव सभा के अधिवक्ता श्री अरुण कुमार पांडे और प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. प्रकरण के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि खाता संख्या 4, खसरा संख्या 6/12, रकबा 1.265 हेक्टेयर, मौजा- साबूवाला, परगना- बढ़ापुर, तहसील- नगीना, जिला बिजनौर में स्थित है, जो मूल रूप से सुक्के का पुत्र अमर सिंह के नाम पर दर्ज था, जो अनुसूचित जाति समुदाय से है। अमर सिंह ने उक्त जमीन को गिरवी रखकर खादी ग्रामोद्योग से ऋण लिया था, लेकिन उधारकर्ता राशि चुकाने में विफल रहा, इस प्रकार, गिरवी रखी गई जमीन को कुर्क कर नीलामी में लगा दिया गया। नीलामी कार्यवाही में, याचिकाकर्ता सबसे अधिक बोली लगाने वाला था, इस प्रकार, 21.12.2000 को हुई नीलामी बिक्री के आधार पर याचिकाकर्ता के पक्ष में बिक्री पत्र निष्पादित किया गया था। विक्रय पत्र के आधार पर याचिकाकर्ता का नाम म्यूटेशन कार्यवाही के माध्यम से राजस्व अभिलेखों में दर्ज किया गया। अतिरिक्त कलेक्टर के समक्ष प्रतिवादी संख्या 4 से 10 द्वारा कुछ शिकायतें दर्ज की गई थीं, जिसमें कहा गया था कि संबंधित संपत्ति मूल रूप से अनुसूचित जाति की है, इसलिए कलेक्टर से अनुमति प्राप्त किए बिना इसे याचिकाकर्ता को हस्तांतरित नहीं किया जा सकता है। अतिरिक्त कलेक्टर ने याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना, दिनांक 6.10.2008 को एक पक्षीय आदेश पारित किया, जिसमें याचिकाकर्ता का नाम राजस्व अभिलेख से हटा दिया गया और संपत्ति राज्य के पक्ष में निहित कर दी गई। याचिकाकर्ता ने दिनांक 6.10.2008 के आदेश के विरुद्ध पुनर्स्थापना आवेदन, विलंब माफी आवेदन और स्थगन आवेदन दायर किया लेकिन अतिरिक्त कलेक्टर ने दिनांक 9.4.2009 के आदेश के अन्तर्गत याचिकाकर्ता के पुनर्स्थापना आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया कि याचिकाकर्ता कार्यवाही में पक्षकार नहीं था, इसलिए याचिकाकर्ता के आवेदन पर आदेश दिनांक 6.11.2008 को वापस नहीं लिया जा सकता/अलग नहीं किया जा सकता। याचिकाकर्ता ने विधिक सलाह के अन्तर्गत दिनांक 6.10.2008 और 9.4.2009 के आदेशों को जिला उपभोक्ता निवारण फोरम, बिजनौर के समक्ष शिकायत वाद संख्या 167/2009 दायर करके चुनौती दी, जिसे 1.1.2011 को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि फोरम के पास विवाद का निर्णय करने का क्षेत्राधिकार नहीं है। आदेश की प्रमाणित प्रतियां और अन्य प्रासंगिक दस्तावेज प्राप्त करने के बाद, याचिकाकर्ता ने प्रकरण में आवश्यक कदम उठाने के लिए अधिवक्ता से संपर्क किया, इस प्रकार, सीमा अधिनियम की धारा 5 के अन्तर्गत एक आवेदन के साथ 22.12.2017 को राजस्व बोर्ड के समक्ष एक पुनरीक्षण दायर किया गया था। एक शपथ पत्र द्वारा समर्थित। राजस्व बोर्ड ने याचिकाकर्ता के प्रकरण पर गुण-दोष के आधार पर विचार किए बिना, परिसीमन के आधार पर याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण को खारिज कर दिया है, इसलिए, यह रिट याचिका।

3. इस न्यायालय ने रिट याचिका पर विचार करते हुए दिनांक 23.4.2018 को निम्नलिखित अंतरिम आदेश पारित किया है: -

"याचिकाकर्ता की ओर से तर्क दिया गया कि प्लॉट संख्या 4 क्षेत्रफल 1.265 हेक्टेयर याचिकाकर्ता द्वारा नीलामी में खरीदा गया है, उक्त भूमि के मालिक अमर सिंह ने उक्त भूमि को खादी ग्रामोद्योग के पक्ष में गिरवी रखकर खादी ग्रामोद्योग से ऋण लिया था। ऋण राशि के भुगतान में चूक के कारण, उक्त भूमि को नीलामी में रखा गया था और याचिकाकर्ता ने उच्चतम बोली लगाने वाले होने के नाते उक्त भूमि खरीदी थी, संबंधित प्राधिकारी द्वारा निष्पादित बिक्री विलेख की एक प्रति रिट याचिका के अनुबंध संख्या 1 के रूप में अभिलेख में है। कहा गया है कि प्रकरण पर उचित परिप्रेक्ष्य में विचार किए बिना याचिकाकर्ता के दूसरे आवेदन को राजस्व परिषद ने गलत तरीके से खारिज कर दिया है।

प्रकरण पर विचार की जरूरत है.

विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रतिवादी संख्या 3 की ओर से नोटिस स्वीकार कर लिया है।

प्रतिवादी संख्या 4 से 10 को नोटिस जारी करें।

सभी प्रतिवादीगण द्वारा निर्धारित तिथि को या उससे पहले प्रति शपथपत्र दायर किया जाना चाहिए।

इस वाद को 28 अगस्त 2018 को सूचीबद्ध करें।

लिस्टिंग की अगली तिथि तक, दोनों पक्ष विवादित संपत्ति के संबंध में यथास्थिति बनाए रखेंगे।"

4. दिनांक 23.4.2018 के आदेश के क्रम में प्रतिवादी संख्या 3 ने अपना प्रति शपथ पत्र दाखिल किया है तथा याचिकाकर्ता ने भी अपना प्रत्युत्तर शपथ पत्र दाखिल किया है। कार्यालय रिपोर्ट दिनांक 27.8.2018 के

अनुसार प्रतिवादी संख्या 4 से 10 तक की सेवा को पर्याप्त माना जाता है।

5. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता ने नीलामी में सबसे अधिक बोली लगाने वाले होने के नाते संबंधित भूमि खरीदी थी, इस प्रकार, राज्य द्वारा याचिकाकर्ता के पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित किया गया था, इस प्रकार, धारा 157-ए की रोक इस तथ्य के बावजूद कि उधारकर्ता अनुसूचित जाति समुदाय से है, उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन अधिनियम याचिकाकर्ता पर नहीं लगाया जा सकता है। उन्होंने आगे कहा कि नीलामी बिक्री, बिक्री प्रमाणपत्र और याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्पादित बिक्री विलेख के आधार पर, याचिकाकर्ता का नाम राजस्व अभिलेख में दर्ज किया गया था, लेकिन याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर दिए बिना, याचिकाकर्ता की प्रविष्टि को हटा दिया गया है और भूमि को राज्य में निहित करने का आदेश दिया गया। उन्होंने यह भी कहा कि याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिकॉल/पुनर्स्थापना आवेदन को मनमाने आधार पर खारिज कर दिया गया है कि याचिकाकर्ता धारा 157-ए के अन्तर्गत कार्यवाही में पक्षकार नहीं था, ऐसे में याचिकाकर्ता को अवसर देने की कोई आवश्यकता नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि अपर कलेक्टर के आदेश के विरुद्ध राजस्व बोर्ड के समक्ष दायर पुनरीक्षण परिसीमा द्वारा वर्जित था, लेकिन देरी को उचित रूप से समझाया गया था, राजस्व मंडल ने परिसीमा के आधार पर पुनरीक्षण को खारिज कर दिया है जो अवैध है।

6. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने 1981 ऑल. एल.जे. 794 794, राम सरन बनाम प्रथम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, रामपुर और अन्य, सिविल विविध रिट याचिका संख्या 28205/1992, हरमल बनाम विशेष जिला न्यायाधीश, निर्णय दिनांक 1.10.1992, 2019 0 सुप्रीम (सभी) 37, श्याम सुन्दर व अन्य बनाम उप निदेशक चकबन्दी, सीतापुर व अन्य में दिए गए निर्णय पर विश्वास किया। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने उपरोक्त निर्णयों के आधार पर कहा कि उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन अधिनियम की धारा 157-ए की बाधा नीलामी बिक्री कार्यवाही के संबंध में लागू नहीं होगी, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने एआईआर 1987 एससी 1353, कलेक्टर, भूमि अधिग्रहण अनंतनाग और अन्य बनाम एमएसटी कांतिजी और अन्य में दिए गए निर्णय पर विश्वास किया कि विवाद को तकनीकी आधार पर तय करने के बजाय, प्रकरण को योग्यता के आधार पर निपटाया जाना चाहिए, यह भी प्रस्तुत किया गया है कि रिट याचिका की अनुमति दी जाए और याचिकाकर्ता, जो परदा नशीन महिला है, रिट याचिका में दावा की गई उपचार की हकदार है।

7. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता द्वारा राजस्व बोर्ड के समक्ष दायर किया गया पुनरीक्षण लगभग 7 वर्षों की अत्यधिक देरी के साथ दायर किया गया था, इस प्रकार, राजस्व बोर्ड द्वारा सीमा के आधार पर पुनरीक्षण को खारिज कर दिया गया था। उन्होंने आगे कहा कि कारण की पर्याप्तता और कारण की वास्तविकता दो अलग-अलग चीजें हैं और कारण की वास्तविकता पर विचार करते समय, प्रकरण का कोई उदार दृष्टिकोण नहीं हो सकता है, जैसे कि कलेक्टर भूमि अधिग्रहण अनंतनाग और अन्य (सुप्रा) के प्रकरण में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत विधि लागू नहीं होगा, उन्होंने आगे कहा कि उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन अधिनियम की धारा 157-ए के प्रावधानों को पूरा करने के कारण भूमि राज्य में उचित रूप से निहित हो गई है।

8. मैंने पक्षों के अधिवक्ता द्वारा दी गई तर्कों पर विचार किया है और अभिलेखों का अवलोकन किया है।

9. इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता नीलामी बिक्री कार्यवाही में सबसे अधिक बोली लगाने वाला है जो 21.12.2000 को आयोजित की गई थी और राज्य द्वारा संबंधित संपत्ति की नीलामी आयोजित करने के बाद बिक्री विलेख इस प्रकार याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्पादित किया गया था, उधारकर्ता जो अनुसूचित जाति समुदाय से है। इस प्रकार याचिकाकर्ता का नाम राजस्व अभिलेखों में दर्ज किया गया था, लेकिन धारा 157-ए के अन्तर्गत कार्यवाही शुरू कर दी गई है और याचिकाकर्ता का नाम हटाकर उसकी भूमि राज्य में निहित कर दी गई है। याचिकाकर्ता द्वारा राजस्व बोर्ड के समक्ष देरी से दायर पुनरीक्षण को परिसीमन के आधार पर खारिज कर दिया गया था।

10. वर्तमान याचिका में सम्मिलित विवाद को समझने के लिए अधिनियम की धारा 157-ए का अवलोकन आवश्यक होगा जो इस प्रकार है:

"157-ए अनुसूचित जाति के सदस्यों द्वारा भूमि के हस्तांतरण पर प्रतिबंध-

(1) धारा 153 से 157 में निहित प्रतिबंध पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, अनुसूचित जाति से संबंधित किसी भी भूमिधर या आसामी को किसी भी भूमि को बिक्री, उपहार, बंधक या पट्टे के माध्यम से किसी अनुसूचित जाति से संबंधित व्यक्ति को, कलेक्टर की पूर्व मंजूरी को छोड़कर हस्तांतरित करने का अधिकार नहीं होगा:

बशर्ते कि ऐसी कोई संस्तुति कलेक्टर द्वारा उस स्थिति में नहीं दी जाएगी जहां इस धारा के अन्तर्गत आवेदन की तिथि पर हस्तांतरणकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश में रखी गई भूमि 1.26 हेक्टेयर से कम है या जहां हस्तांतरणकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश में इस प्रकार रखी गई भूमि का क्षेत्रफल है

उक्त तिथि को ऐसे हस्तांतरण के बाद 1.26 हेक्टेयर से भी कम होने की संभावना है।

(2) कलेक्टर, निर्धारित तरीके से उस संबंध में किए गए आवेदन पर, ऐसी जांच करेगा जो निर्धारित की जा सकती है।"

11. उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन अधिनियम की धारा 157-ए का अवलोकन पूरी तरह से दर्शाता है कि जब अनुसूचित जाति का कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति किसी ऐसे व्यक्ति को हस्तांतरित कर रहा है जो अनुसूचित जाति से संबंधित नहीं है, तो कलेक्टर की पूर्व मंजूरी अनिवार्य है, लेकिन वर्तमान वाद में ऋण लेने वाला, जो संपत्ति का मालिक था, अनुसूचित जाति का था और ऋण लेने वाले की संपत्ति की नीलामी उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन अधिनियम के अन्तर्गत निहित प्रावधानों और उसके अन्तर्गत बनाए गए नियमों के अनुसार नीलामी के बाद की गई थी और पुष्टि की गई, उक्त विक्रय विलेख राज्य द्वारा याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्पादित किया गया था, इस प्रकार, धारा 157-ए की रोक इस प्रकरण में लागू नहीं होगी।

12. श्याम सुंदर (सुप्रा) के इस न्यायालय ने धारा 157-ए से संबंधित विवाद पर विचार किया है और माना है कि उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन अधिनियम की धारा 157-ए बैंक द्वारा बकाए की वसूली के लिए बाधा बिक्री पर लागू नहीं होती है। विधि के अनुसार, कलेक्टर से पूर्व अनुमति का प्रतिबंध लागू नहीं हो सकता। श्याम सुंदर (सुप्रा) में निर्णय का पैराग्राफ संख्या 10 इस प्रकार है:

"10. जहां तक अधिनियम, 1950 की धारा 157-ए पर आधारित अन्य तर्क का संबंध है, उक्त प्रावधान अनुसूचित जाति के व्यक्तियों को अनुचित प्रभाव, जबरदस्ती आदि के अन्तर्गत शोषण या धोखाधड़ी वाले लेन-देन से बचाने का आशय रखता है। वर्तमान लेन-देन ऐसा कोई लेन-देन नहीं है लेकिन यह बकाया की वसूली के लिए विधि में स्वीकार्य लेन-देन है, यहां यह प्रावधान अनुसूचित जाति से संबंधित भूमिधर, आसमी पर भी लागू होता है, जिसे अनुसूचित जाति से संबंधित किसी व्यक्ति को बिक्री, उपहार, बंधक या पट्टे के माध्यम से किसी भी भूमि को संग्राहक के पूर्व अनुमोदन से हस्तांतरित करने का अधिकार होगा। यह प्रत्यक्ष प्रकरण में विधि के अनुसार बैंक द्वारा बकाया की वसूली के लिए बाधा बिक्री पर लागू नहीं होता है। इस संबंध में भी 1981 आरडी 252 में प्रतिवेदित बिंदु पर सीधा निर्णय है; राम सरन बनाम प्रथम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, रामपुर और अन्य जिसमें यह माना गया है कि कलेक्टर की पूर्व अनुमति का प्रतिबंध भूमिधर द्वारा स्वैच्छिक बिक्री पर लागू होता है, लेकिन अधिनियम, 1989 के अन्तर्गत निर्धारित जबरदस्ती कदमों और प्रतिबंधों के अन्तर्गत की गई जबरन बिक्री पर नहीं और नियम, 1971 यहां ऊपर संदर्भित हैं। उसमें निहित सिद्धांत इस प्रकरण पर भी लागू होता है।"

13. राम शरण (सुप्रा) में दिए गए निर्णय का पैराग्राफ संख्या 7 भी प्रासंगिक है जो इस प्रकार है:-

"7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने विशेष रूप से अधिनियम की धारा 23(2) पर विश्वास किया है जिसमें प्रावधान है कि उप-धारा (1) में कुछ भी पैसे के भुगतान के लिए किसी आज्ञप्ति या आदेश के निष्पादन में न्यायालय के आदेश के अन्तर्गत की गई किसी भी बिक्री पर लागू नहीं होगा। विधानमंडल इस तथ्य से अवगत था कि नीलामी द्वारा बिक्री एक आज्ञप्ति के निष्पादन में विचार के लिए आ सकती है जो विशेष रूप से अधिनियम की धारा 23 के अन्तर्गत उक्त बिक्री को बाहर करती है। अधिनियम की धारा 157-ए के अन्तर्गत ऐसा कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं किया गया है। इन परिस्थितियों में धारा 23 याचिकाकर्ता की ओर से दिए गए तर्कों को आगे नहीं बढ़ाती है बल्कि वास्तव में उस दृष्टिकोण का समर्थन करती है जो मैंने पहले ही ऊपर ले लिया है। किसी भी प्रकरण में, जैसा कि मैंने पूर्व में स्पष्ट किया है, यह याचिकाकर्ता द्वारा किसी तीसरे पक्ष के पक्ष में स्थानांतरण का प्रकरण नहीं है। यह याचिकाकर्ता के विरुद्ध न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में आयोजित नीलामी बिक्री का प्रकरण है।

14. उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन अधिनियम की धारा 157-ए के प्रावधानों के साथ-साथ श्याम सुंदर (सुप्रा) और राम सरन (सुप्रा) में निर्धारित विधि के अनुपात को ध्यान में रखते हुए, यह बहुत स्पष्ट है कि धारा 157-ए का प्रतिबंध उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन अधिनियम वर्तमान प्रकरण में लागू नहीं होगा जहां याचिकाकर्ता के पक्ष में राज्य द्वारा नीलामी बिक्री के बाद बिक्री विलेख निष्पादित किया गया है, जो उच्च जाति से संबंधित है, इस तथ्य के बावजूद कि भूमि का पूर्व मालिक जो उधारकर्ता था, वह अनुसूचित जाति समुदाय का है।

15. जहां तक सीमा के आधार पर पुनरीक्षण बोर्ड द्वारा पुनरीक्षण को खारिज करने का प्रश्न है, कलेक्टर, भूमि अधिग्रहण अनंतनाग और अन्य (सुप्रा) के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि विवाद को तकनीकी आधार पर तय करने के स्थान पर जमीन पर, विवाद गुण-दोष के आधार पर चलाया जाना चाहिए।

16. वर्तमान प्रकरण में, चूंकि उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन अधिनियम की धारा 157-ए की रोक लागू नहीं है, ऐसे में, राजस्व बोर्ड को सीमा पर पुनरीक्षण को खारिज करने के बजाय, योग्यता के आधार पर पुनरीक्षण पर विचार करना चाहिए था,

क्योंकि ऐसे में, विवादित पुनरीक्षण आदेश विधि की नजर में कायम नहीं रह सकता। अपर कलेक्टर द्वारा पारित आदेश, जिसमें याचिकाकर्ता के प्रत्याह्वान आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि याचिकाकर्ता के पास उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन अधिनियम की धारा 157-ए के अन्तर्गत कार्यवाही में कोई अधिकार नहीं है, गलत भी है।

17. वाद के तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुपात को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ता के अधिकार का उल्लंघन नहीं किया जा सकता है और उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम एवं भूमि उन्मूलन अधिनियम धारा 157-ए के अन्तर्गत निहित रोक के कारण संपत्ति राज्य में निहित नहीं की जा सकती है, इस प्रकार, राजस्व बोर्ड द्वारा पारित दिनांक 23.2.2018 का आक्षेपित आदेश और अपर कलेक्टर (प्रशासन), जिला बिजनौर द्वारा पारित दिनांक 9.4.2009 और 6.10.2008 के आदेश रद्द किए जाने योग्य हैं और उसे एतद्द्वारा अलग रखा जाता है।

18. रिट याचिका स्वीकार की जाती है और विवादित भूखंडों के संबंध में याचिकाकर्ता के पक्ष में 27.3.2001 को निष्पादित बिक्री विलेख के आधार पर याचिकाकर्ता की प्रविष्टि बरकरार रहेगी।

19. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 1 ILRA 784
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 22.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायाधीश चंद्र कुमार राय

रिट याचिका- बी संख्या 15899/1985

हरबर चमार ... याचिकाकर्ता

बनाम

बी. ओ. आर. और अन्य ... प्रत्यर्थी

आवेदक के अधिवक्ता:
श्री संजय श्रीवास्तव, श्री एच. एन. पाण्डेय, श्री राजेश कुमार त्रिपाठी

विरोधी पक्षों के अधिवक्ता:
एस. सी., श्री एम. एन. सिंह

सिविल कानून– उत्तर प्रदेश जमीदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 –धारा 112-बी और 122-बी (4-एफ) – क्या लेखपाल अपने व्यक्तिगत रूप से , बिना किसी समाधान के गाँव सभा को सिरदारी अधिकार प्रदान करने वाले आदेश के विरुद्ध बहाली आवेदन दायर करने का अधिकार है? - याचिकाकर्ता, अनुसूचित जाति से व्यक्ति था और भूमिहीन खेतिहर मजदूर था – धारा 122-बी यूपीजेडएलआर अधिनियम के तहत कार्यवाही शुरू की गई - लेखपाल ने कहा कि याचिकाकर्ता जून 1976 से कब्जे में था - 30.03.1977 की एक रिपोर्ट में, तहसीलदार ने उल्लेख किया कि याचिकाकर्ता के पास दिनांक 30.06.1975 से पहले से कब्जा था और उसने सिफारिश की कि याचिकाकर्ता को अधिनियम की धारा 122-बी (4-एफ) के अनुसार सिरादरी घोषित किया जाए – इसके बाद, उप प्रभागीय अधिकारी ने धारा 122-बी के तहत कार्यवाही को रद्द कर दिया और याचिकाकर्ता को सिरदारी अधिकार प्रदान किए गए - बाद में, लेखपाल ने तहसीलदार के आदेश के खिलाफ बहाली आवेदन दायर किया – आयोजित, याचिकाकर्ता, अनुसूचित जाति समुदाय का सदस्य और एक भूमिहीन कृषि मजदूर होने के नाते, और 30.06.1975 से पहले से लगातार कब्जे में था। यू.पी.जेड.ए एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 122-बी (4-एफ) के तहत कब्जे की प्रासंगिक तारीख अब 30.06.1975 के स्थान पर 13.05.2007 हो गया - लेखपाल को अपनी व्यक्तिगत क्षमता में, गाँव सभा के किसी भी प्रस्ताव के बिना, बहाली आवेदन दायर करने का कोई अधिकार नहीं है, जो कि गाँव सभा मैनुअल ट्रायल कोर्ट के पैरा 128 का उल्लंघन था – याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान किए बिना, पहले की आदेश को गैरकानूनी तरीके से रद्द कर दिया गया –याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण को राजस्व मंडल द्वारा खारिज कर दिया –यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 122-बी (4एफ) के अंतर्गत ट्रायल कोर्ट का पूर्व आदेश दिनांक 19.04.1977 की याचिकाकर्ता के पक्ष में की पुष्टि की गई (पैरा 18)

स्वीकृत। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. मनोरे @ मनोहर बनाम राजस्व बोर्ड एवं अन्य, एआईआर 2003 एससी 4102 2003 (94) आरडी 538

2. अजीमुल्लाह बनाम ग्राम सभा 1971 आर.डी. 115

3. जगदीश पांडे (मृत) द्वारा वारिसान बनाम अपर जिलाधिकारी (नगर) गोरखपुर एवं अन्य 2011 (114) आरडी 106

(माननीय न्यायाधीश चंद्र कुमार राय द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता श्री राजेश कुमार त्रिपाठी और श्री एच. एन. पाण्डेय, प्रत्यर्थी संख्या 1, 2, 3 और 5 की ओर से विद्वान स्थाई अधिवक्ता और प्रत्यर्थी संख्या 4 और 6 की ओर से अधिवक्ता श्री भूपेन्द्र कुमार त्रिपाठी को सुना।

मामले के संक्षेपिक तथ्य इस प्रकार हैं कि यू. पी. जेड. ए. और एल. आर. अधिनियम के धारा 122-ब के तहत प्रारंभ हुई प्रक्रिया के तहत याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्रवाई की गई थी, जिसमें प्लॉट नंबर 314 क्षेत्र 1.28 एकड़ के संबंध में गांव सभा भूमि के गैरकानूनी कब्ज़े की रिपोर्ट के आधार पर याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्रवाई की गई थी। याचिकाकर्ता ने अपना आपत्ति दर्ज कराया कि याचिकाकर्ता अनुसूचित जाति समुदाय से संबंधित हैं और उसका विवादित प्लॉट पर 30.06.1975 से पहले ही कब्ज़ा है, और एक (1) एकड़ से कम भूमि है, इसलिए याचिकाकर्ता को सीरदार के रूप में रिकॉर्ड किया जाना चाहिए। लेखपाल को महकमे के सामने पेश किया गया और उन्होंने कहा कि याचिकाकर्ता अनुसूचित जाति समुदाय से संबंधित हैं, उनका कब्ज़ा जून 1976 से है। उप-मण्डल अधिकारी ने 19.04.1977 को उस केस के रिकॉर्ड पर मौखिक और प्रमाणिक प्रमाण के आधार पर याचिकाकर्ता को विवादित प्लॉट के सीरदार के रूप में घोषित किया। बिना किसी देरी की क्षमा के एक पुनर्स्थापन आवेदन लेखपाल ने 25.05.1977 को दर्ज किया है जिसमें उसने 19.04.1977 की आदेश को पुनः बुलाने की अनुमति के साथ। उप-मण्डल अधिकारी ने अपने 12.10.1977 के आदेश में 19.04.1977 की आदेश को रद्द करने की अनुमति दी और कार्रवाई के लिए आवश्यक कार्यवाही के लिए रिकॉर्ड को तहसीलदार के समक्ष भेज दिया। याचिकाकर्ता ने 12.10.1977 के आदेश के खिलाफ कमिश्नर के सामने संवाद के माध्यम से आपत्ति दर्ज की और अतिरिक्त कमिश्नर ने 19.09.1978 की आदेश में सिफारिश की कि लेखपाल अपने व्यक्तिगत क्षमता में पुनर्स्थापन आवेदन दाखिल करने का कोई अधिकार नहीं रखते और उप-मण्डल अधिकारी ने याचिकाकर्ता को सुनाए बिना 19.04.1977 की आदेश को रद्द किया, लेकिन राजस्व मंडल के बोर्ड ने 10.07.1985 की आदेश में याचिकाकर्ता की आपत्ति को खारिज किया और 12.10.1977 की परीक्षा अदालत के आदेश को बरकरार रखा। इसलिए यह रिट पेटीशन है।

इस न्यायालय ने रिट याचिका को संज्ञान में लेते समय निम्नलिखित अंतरिम आदेश दिनांक 12.11.1987 को जारी किया:

"गांव सभा के विद्वान अधिवक्ता श्री के. बी. गर्ग प्रार्थना करते हैं और उन्हें दो माह के अंदर जवाबी शपथ-पत्र दाखिल करने के लिए समय दिया जाता है। प्रत्युत्तर शपथ-पत्र , यदि कोई हो, एक और महीने के भीतर दाखिल किया जा सकता है। स्वीकृति के लिए याचिका को 08.03.1988 को सूचीबद्द करें।

इस न्यायालय के अग्रिम आदेश तक, याचिकाकर्ता को विवादग्रस्त भूमि से बेदखल नहीं किया जाएगा।"

04.07.1988 को रिट याचिका को स्वीकृति प्रदान की गई और निम्नलिखित अंतरिम आदेश पारित किया गया:

"सूचना जारी करे।

इस न्यायालय के अग्रिम आदेश तक, याचिकाकर्ता को विवादग्रस्त भूमि से बेदखल नहीं किया जाएगा।"

आदेश दिनांक 12.11.1987/ 04.07.1988 के अनुसरण में स्थायी अधिवक्ता ने स्टे वेकेशन के साथ जवाबी हलफनामा दाखिल किया आवेदन दिनांक 09.05.2012 को दिया गया जिस पर सुनवाई एवं निस्तारण किया गया आदेश दिनांक 24.07.2012, आदेश इस प्रकार है:-

"यह कि प्रत्यर्थी संख्या 3 एवं 5 की ओर से जवाबी शपथ-पत्र के साथ एक स्थगन अवशान आवेदन दाखिल किया गया। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि वह प्रत्युत्तर शपथ-पत्र दायर करने का इरादा नहीं है।

अंतरिम आदेश के तहत विद्वान स्थायी अधिवक्ता के अनुसार आदेश दिनांक 04.07.1988 एवं 12.11.1987 विवादित भूमि से याचिकाकर्ता के वेदखली पर रोक लगा दी गई है जिसे जवाबी हलफनामे में दिए गए कथनों के मद्देनजर खाली करना आवश्यक है इस आशय से कि यद्यपि याचिकाकर्ता की सिफारिश तहसीलदार ने की थी कि याचिकाकर्ता हकदार हैं और उसे यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. कि धारा 122-बी (4-एफ) का लाभ दिया जाएगा लेकिन लेखपाल, तहसीलदार के उक्त आदेश के विरुद्ध एक बहाली आवेदन दाखिल करने में सक्षम था के चूंकि धारा 122-बी के तहत लेखपाल की रिपोर्ट पर कार्यवाही शुरू की गई थी।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया है संदर्भ संख्या 208 वर्ष 1978-79 (हरबर चमार बनाम राजस्व मंडल एवं अन्य) में पारित आक्षेपित आदेश को पुनरीक्षण न्यायालय ने अवैध रूप से यह माना है कि लेखपाल आदेश दिनांक 30.3.1977 को वापस लेने के लिए एक आवेदन दायर ऐसा कर सकता है जिसे तहसीलदार द्वारा पारित किया गया था जिसमें उन्होंने इसकी अनुशंसा की थी याचिकाकर्ता को धारा धारा 122-बी (4-एफ) के अनुसार सीरदार घोषित किया जाए जिसमें उपविभागीय अधिकारी ने धारा 122-बी के तहत कार्यवाही बंद कर दी थी अधिनियम का और याचिकाकर्ता

को सिरदारी अधिकार प्रदान किया गया। वह कहा गया है कि तहसीलदार की रिपोर्ट पर अगर एक बार सिरदारी अधिकार प्रदान कर दिए जाए तो लेखपाल पुनर्स्थापना आवेदन दाखिल नहीं कर सकते।

प्रस्तुतियों के लिए न्यायनिर्णय की आवश्यकता होती है।

उपरोक्त परिस्थितियों को देखते हुए स्थगन अवशान आवेदन खारिज किया जाता है। अंतरिम आदेश दिनांकित 4.7.1988 प्रभावी रहेगा।

लागत के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया गया है"

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने कहा कि याचिकाकर्ता अनुसूचित जाति समुदाय का है और भूमिहीन कृषक मजदूर है। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता का कब्जा 30.06.1975 से पहले से है। उन्होंने आगे कहा कि ट्रायल कोर्ट ने तहसीलदार द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर याचिकाकर्ता के पक्ष में धारा 122बी (4एफ) उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 लाभ दिया गया और आदेश दिनांक 19.04.1977 के द्वारा याचिकाकर्ता को सीरदार के रूप में घोषित किया गया। उसके द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया कि ट्रायल कोर्ट के आदेश दिनांक 19.04.1977 के विरुद्ध बिना किसी देरी को माफ़ी के प्रार्थना के ही लेखपाल ने बहाली की अर्जी दाखिल कर दी और ट्रायल कोर्ट ने आदेश दिनांक 12.10.1977 के द्वारा याचिकाकर्ता को बिना कोई अवसर दिये बहाली आवेदन को अनुमति दे दी और आदेश दिनांक 19.04.1977 को अपास्त कर दिया है। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता द्वारा आदेश दिनांकित 12.10.1977 के विरुद्ध पुनरीक्षण दायर प्रस्तुत किया, जिसमे याचिकाकर्ता के मामले पर विचार किए बिना खारिज कर दिया गया। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने धारा 122-बी -(4एफ) यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम के तहत निहित प्रावधानों पर भरोसा किया है, जो इस प्रकार है:

"धारा 122-बी (4एफ):- पूर्ववर्ती उपधाराओं में किसी बात के होते हुए भी, जहाँ अनुसूचित जाति या अनुसूचित आदिम जाति के किसी खेतिहर मजदूर के अध्यासन में धारा 117 के अधीन गाँव सभा में निहित कोई भूमि (जो धारा 132 में उल्लिखित भूमि न हो) 13 मई, 2007] के पूर्व से हो और भूमिधर, सौरदार या असामी के रूप में उक्त दिनांक के पूर्व से उसके द्वारा भूत किसी भूमि सहित इस प्रकार अध्यासित भूमि 1.26 हेक्टेयर (3.125 एकड़) से अधिक न हो तो ऐसे मजदूर के विरुद्ध भूमि प्रबन्धक समिति या कलेक्टर द्वारा इस धारा के अधीन कोई कार्यवाही नहीं की जायेगी, और उसे वह भूमि असंक्रमणीय अधिकार वाले भूमिधर के रूप में धारा 195 के अधीन उठा दी जायेगी और उसके लिये उस भूमि में असंक्रमणीय अधिकार चाले भूमिधर के रूप में अपने अधिकारों की घोषणा के लिये कोई बाद संस्थित करना आवश्यक न होगा।"

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि लेखपाल द्वारा दाखिल की गई पुनर्स्थापना/वापसी आवेदन गाँव सभा मैनुअल के पैरा 128 के तहत निहित प्रावधानों के विरुद्ध है। उसने 1971 आर.डी. 115 अज़ीमुल्लाह बनाम ग्राम सभा में रिपोर्ट किए गए फैसले पर निर्भरता जताया।

दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता के साथ-साथ प्रतिवादी के अधिवक्ता - गाँव सभा ने प्रस्तुत किया कि विचारण न्यायालय के पूर्व आदेश को इस आधार पर वापस लिया गया है कि याचिकाकर्ता का संबंधित तिथि पर कब्जा नहीं पाया गया, इसलिए मामले में किसी हस्तक्षेप की आवश्यक नहीं है और रिट याचिका खारिज किये जाने योग्य है।

मैंने पक्षों के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों पर विचार किया और दस्तावेज का अवलोकन किया।

इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता अनुसूचित जाति समुदाय से है और उसके पास प्रासंगिक तिथि के अनुसार 1.28 एकड़ जमीन थी जैसा कि वह भूमिहीन कृषक मजदूर था। याचिकाकर्ता के मुताबिक विवादित भूखंड पर 30.06.1975 से पहले से उनका कब्जा है, लेकिन यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 122-बी के तहत शुरू की गई कार्यवाही में लेखपाल ने अपने बयान में कहा कि याचिकाकर्ता का कब्जा जून 1976 से है। तहसीलदार अपनी रिपोर्ट दिनांक 30.03.1977 में कहा है कि धारा 122-बी यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम के तहत कार्यवाही में जोड़े गए दस्तावेजी साक्ष्य तथा मौखिक साक्ष्य से यह स्थापित है कि याचिकाकर्ता 30.06.1975 से पहले से ही मुकदमे के अनुसार कब्जे में है न्यायालय ने आदेश दिनांक 19.04.1977 द्वारा धारा 122- बी (4एफ) यू.पी.जेड.ए. का एवं एल.आर. का लाभ याचिकाकर्ता को देते हुए याचिकाकर्ता को सीरदार के रूप में दर्ज करें। लेखपाल के रिकॉल/वापसी प्रार्थना पत्र पर आदेश दिनांक 12.10.1977 से याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर दिए बिना विचारण न्यायालय के आदेश दिनांक 19.04.1977 को अपास्त कर दिया गया। विचारण न्यायालय के आदेश दिनांक 12.10.1977 के विरुद्ध याचिकाकर्ता ने पुनरीक्षण दायर किया जिसे राजस्व बोर्ड के समक्ष भेजा गया संशोधन की अनुमति के लिए संदर्भ के माध्यम से लेकिन राजस्व बोर्ड ने पुनरीक्षण को खारिज कर दिया और विचारण न्यायालय के आदेश दिनांक 12.10.1977 को बरकरार रखा है.

चूंकि विचारण न्यायालय ने याचिकाकर्ता को धारा-122-बी (4एफ) यूपी जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम का लाभ देते

हुए सिरदार के तौर पर नाम दर्ज करने का आदेश दिया तहसीलदार की रिपोर्ट दिनांकित 30.03.1977 पर विचार किया गया जो लेखपाल, गांव सभा के सदस्य, याचिकाकर्ता और राजस्व के कथन पर विचार करने के बाद प्रस्तुत किया गया था ऐसे में लेखपाल द्वारा दाखिल रिकाल/वापसी आवेदन के बिना किसी गाँव सभा के रेसोल्यूशन के आधार पर विचारण न्यायालय के आदेश को रद्द नहीं किया जा सकता, गांव सभा ने बहाली आवेदन का आधार यही है कि उनके कोर्ट के समक्ष कहा कि जून 1976 से याचिकाकर्ता का कब्जा है। विचारण न्यायालय के साथ-साथ तहसीलदार ने लेखपाल का बयान और ग्राम सभा सदस्यों के बयान भी विचार किया है इसलिए लेखपाल को बहाली/वापस आवेदन दाखिल करने का कोई अधिकार नहीं है उसी आधार पर जिस पर पहले ही विचारण न्यायालय द्वारा विचार किया जा चुका है और याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर दिए बिना पारित आदेश 19.04.1977 को अपास्त कर दिया गया और याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण को खारिज कर दिया गया है, जो कि विचारण न्यायालय और पुनरीक्षण न्यायालय का मनमाना द्रष्टकोण है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दर्ज एक मामले में ए. आई. आर. 2003 एस सी 4102 = 2003 (94) आर डी 538 मनोरे @ मनोहर बनाम बोर्ड राजस्व और अन्य धारा 122-बी (4एफ) यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम के दायरे पर चर्चा की और यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. की धारा 122-बी (4एफ) तहत निहित प्रावधानों को लाभदायक माना गया है और व्यक्ति का एक बार दावा स्वीकार होने पर बेदखली के लिए उत्तरदायी नहीं है राजस्व अभिलेखों में आवश्यक प्रविष्टि करने का राजस्व अधिकारियों का अनिवार्य कर्तव्य है। मनोरे (सुप्रा) के पैराग्राफ संख्या 8, 9, 10, 11 और 12 में दिए गए निर्णय इस प्रकार हैं:

"....8. प्रथम, प्रयास धारा 122बी की धारा (4एफ) द्वारा प्रदत्त अधिकार या सुरक्षा की प्रकृति का विश्लेषण और पहचान करने का होना चाहिए। उपधारा (1) से (3) और उप-धारा (4ई) के सहायक प्रावधान गाँव सभा में निहित भूमि अनाधिकृत लोगों को बेदखल करने की प्रक्रिया के साथ-साथ परस्पर संबंधित हैं । उपधारा (4एफ) एक कृषक श्रमिक के पक्ष में एक अपवाद तैयार करता है जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित जिसके पास 3.125 एकड़ की सीमा से नीचे की भूमि। उन परिस्थितियों के बावजूद, जिसमे ऐसे पात्र व्यक्ति ने गाँव सभा में निहित भूमि (धारा 132 में उल्लेखित भूमि के अलावा) कब्जा कर लिया है। उसे बेदखल करने की कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी और इसके अलावा, उसे भूमि पर अहस्तांतरणीय अधिकार वाले भूमिधर के रूप में भर्ती किया गया माना जाएगा, बशर्ते वह उपधारा में निर्दिष्ट शर्तों को पूरा करता हो। उपविभागीय अधिकारी के साथ-साथ अपीलीय प्राधिकारी के निष्कर्षों के अनुसार, अपीलकर्ता भी शर्तों को पूरा करता है। यदि हां, तो दो कानूनी परिणाम सामने आएंगे। भूमि के ऐसे कब्जेदार को धारा 122बी की उपधारा (1) से (3) का सहारा लेकर बेदखल नहीं किया जाएगा । इसका मतलब है कि भूमि पर कब्जा करने वाला जो उपधारा (4एफ) के तहत शर्तों को पूरा करता है वह गाँव सभा के विरुद्ध अपने कब्जे कि सुरक्षा का हकदार है। दूसरा और अधिक महत्वपूर्ण अधिकार जो उप-धारा (4एफ) प्रदान करता है वह यह है कि वह गैर हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर के अधिकारों से संपन्न है। डीमिंग प्रावधान को विशेष रूप से सामाजिक-आर्थिक न्याय पर जोर देने के साथ कृषि सुधार के एक उपाय के रूप में विशेष रूप से अधिनियमित किया गया है। गैर हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर के बैधानिक रूप से प्रदत्त अधिकार की प्रतिध्वनि धारा 131 के खंड (बी) में मिलती है। कोई भी व्यक्ति जो अधिनियम के प्रावधानों के तहत या उसके अनुरूप भूमिधर के अधिकार प्राप्त करता है उसे धारा 131 के अंतर्गत मान्यता प्राप्त है। भूमिधर की श्रेणी उप-धारा (4एफ) के तहत अर्जित या उपार्जित अधिकार एक ऐसा अधिकार है जो धारा 131(बी) के दायरे में आता है।

9. इस प्रकार, धारा 122बी की उपधारा (4एफ) न केवल उच्च न्यायालय की राय के अनुसार कब्जे की रक्षा के लिए एक ढाल प्रदान करता है, बल्कि यह निर्धारित मानदंड को पूरा करने वाली भूमि पर कब्जा करने वाले पर भूमिधर का एक सकारात्मक अधिकार भी प्रदान करता है। उस स्पष्ट भाषा होते हुए भी जिसमें विचारणीय प्रावधान निहित है और विधान का सुधारात्मक उद्देश्य है, उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने रामदीन बनाम राजस्व बोर्ड (सुप्रा) (इसके बाद वर्तमान मामले में वही विद्वान न्यायाधीश) में इस पर विचार किया था कि उप-धारा (4एफ) द्वारा विचारित रहने वाले के भूमिधारी अधिकार केवल तभी विकसित हो सकता है जब भूमि प्रबंधन समिति द्वारा धारा 198 के तहत कोई विशिष्ट आवंटन आदेश हो। उच्च न्यायालय के अनुसार उप-धारा (4एफ) में निहित डीमिंग प्रावधान को विशेष रूप से भूमिधर के अधिकार के निर्माण से संबंधित अन्य प्रावधानों को प्रतिस्थापित करने के लिए अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, उच्च न्यायालय का विचार यह था कि उप-धारा (4एफ) में निहित लाभकारी प्रावधान द्वारा कवर होने वाले एक व्यक्ति को अभी भी धारा 198 के तहत आवंटन की प्रक्रिया से गुजरना होगा, भले ही वह बेदखली लिए उत्तरदायी नहीं है। इस दृष्टिकोण के परिणाम के रूप में, यह माना गया कि कब्जाधारी राजस्व रिकॉर्ड में सुधार मांगने का हकदार नहीं था, भले ही उसका मामला धारा 122बी उप-धारा (4F) के अंतर्गत आता हो। हमारा मानना है कि उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से अस्थिर

है। यह एक निश्चित सामाजिक उद्देश्य से अधिनियमित किए गए मानद प्रावधान के प्रभाव को नजरअंदाज करने के समान है। जब एक बार डीमिंग प्रावधान धारा 195 के तहत अहस्तांतरणीय अधिकार के साथ भूमिधर के रूप में प्रावधान में निर्धारित अपेक्षित मानदंड को पूरा करने वाले व्यक्ति के प्रवेश के लिए स्पष्ट रूप से प्रदान करता है, तो इसे पूर्ण प्रभाव दिया जाना चाहिए। धारा 195 में कहा गया है कि भूमि प्रबंधन समिति, उपखण्ड के प्रभारी सहायक कलेक्टर के पूर्व अनुमोदन से किसी भी खाली भूमि पर अधिकार (धारा 132 के अंतर्गत आने वाला भूमि के अलावा) किसी भी व्यक्ति को अहस्तांतरणीय रूप से भूमिधर के रूप में स्वीकार करने का अधिकार गाँव सभा में निहित है। । धारा 198 "धारा 195 और 197 के तहत व्यक्तियों को भूमि पर प्रवेश में वरीयता क्रम" निर्धारित करती है। धारा 122बी की उप-धारा (4एफ) का अंतिम भाग वैधानिक रूप से भूमि के पात्र कब्जेदार पर गैर-हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर की स्थिति प्रदान करता है। जैसे कि उसे धारा 195 के तहत इस रूप में स्वीकार किया गया हो। सार रूप और प्रभाव में डीमिंग प्रावधान यह घोषित करता है कि वैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त भूमिधर को अन्य प्रावधान के साथ पठित धारा 195 के तहत भूमिधरी अधिकार स्वीकार व्यक्ति के समान ही अच्छा होना चाहिए। एक तरह से उपधारा (4एफ) विशेष रूप से उस उपधारा की सुरक्षात्मक छतरी के भीतर आने वाला व्यक्ति को समान लाभ प्रदान करके धारा 195 पूरक बनती है। धारा 195 को धारा 198 के साथ पढ़ने के तहत गाँव सभा से संपर्क करने की आवश्यकता उप-धारा (4एफ) में निहित प्रावधान द्वारा समाप्त हो गई है। हम देखतें है डीमिंग प्रावधान के दायरे को सीमित करने का कोई वारंट नहीं है।

10. कानूनी स्थिति होने के कारण, राजस्व रिकार्ड में आवश्यक परिवर्तन करने के लिए उप-धारा (4एफ) के चारों कोनों के भीतर आने वाले पात्र व्यक्ति द्वारा किए गए आवेदन के विरुद्ध कोई रोक नहीं है । जब एक बार आवेदक का दावा स्वीकार किया जाता है, तो वैधानिक अधिदेश को प्रभावी बनाने के लिए राजस्व रिकॉर्ड में आवश्यक प्रविष्टियाँ करना संबंधित राजस्व अधिकारी का परम कर्तव्य है। ऐसा करने का दायित्व उपधारा (4एफ) के दायरे में आने वाले व्यक्ति में निहित वैधानिक अधिकार के कारण आवश्यक निहितार्थ से उत्पन्न होता है । अधिनियम के अंतर्गत आवेदन करने के लिए विशिष्ट का प्रावधान कि कमी के कारण आवेदन को रखरखाव योग्य नहीं मानकर खारिज करने का कोई आधार नहीं है। राजस्व रिकॉर्ड स्वाभाविक रूप से अधिकारों के अनुरूप होने चाहिए इसलिए उपखण्ड अधिकारी को आवेदन की अनुमति देने और अभिलेखों को दुरुस्त करने का निर्देश देने का अधिकार था। राजस्व मंडल और उच्च न्यायालय को उस आदेश को रद्द नहीं करना चाहिए था। तथ्य यह है कि गाँव सभा की भूमि प्रबंधन समिति ने उत्तरदाताओं के पक्ष में लीज होल्ड अधिकार बनाए थे यहाँ कोई परिणाम नहीं है। अपीलकर्ता का वैधानिक अधिकार के सामने ऐसे पट्टे कानून की नजर में कोई महत्व नहीं रखता और इसे नजरअंदाज किया जा सकता है।

11. आश्चर्य की बात है कि उ.प्र. गाँव सभा के साथ मिलकर एस.डी.ओ. के आदेश के विरुद्ध अपील दाखिल करने का विकल्प चुना था। स्पष्ट मामला प्रतीत होता है कि यह राज्य से संबंधित अधिकारियों की ओर से मस्तिस्क का उपयोग न करने का स्पष्ट मामला है, जिससे कानून के सामाजिक-आर्थिक उद्देश्य को पूरा करने की अपेक्षा की जाती है।

12. अपील स्वीकार की जाती है। राजस्व मण्डल और उच्च न्यायालय के आदेश को खारिज किया जाता है। एस.डी.ओ का आदेश बहाल है। कोई लागत नहीं।"

वर्तमान मामले में विचारण न्यायालय ने तहसीलदार की रिपोर्ट दिनांक 30.03.1977 के आधार पर पाया गया की 122बी (4एफ) यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. का लाभ देने के लिए सभी याचिकाकर्ता के पक्ष में अधिनियम के अनुसार कार्रवाई करें। विचारण न्यायालय ने याचिकाकर्ता का नाम सीरदार के रूप में दर्ज करने का आदेश दिया है, क्योंकि ऐसा लेखपाल के पास गाँव सभा नियमावली के पैरा 128 के उल्लंघन में बहाली/वापसी आवेदन दाखिल करने का कोई अधिकार नहीं है, विचारण न्यायालय बिना अनुमति के याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर देते हुए पूर्व आदेश को निरस्त कर दिया है जिससे याचिकाकर्ता को धारा 122-बी (4-एफ) यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. का लाभ दिया गया था। इस प्रकार कार्य करें कि विचारण न्यायालय का आदेश सही था के माध्यम से अपर आयुक्त द्वारा निरस्त करने का आदेश दिया गया राजस्व बोर्ड का संदर्भ लेकिन राजस्व बोर्ड ने याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनिरीक्षण को मनमाने ढंग से खारिज कर दिया और विचारण न्यायालय के एक पक्षीय आदेश दिनांक 12.10.1977 को बरकरार रखा।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने 1971 आर.डी. पृष्ठ-115 अजीमुल्लाह बनाम गांव सभा में रिपोर्ट किए गए राजस्व बोर्ड के फैसले पर भरोसा किया। जिसमें यह अवधारित किया गया है कि गाँव समाज मुकदमा गाँव सभा के सदस्य की इच्छानुसार संचालित नहीं किया जा सकता।

यह न्यायालय 2011 (114) आरडी 106 जगदीश पांडे (मृत) एलआर के माध्यम से बनाम अपर कलेक्टर (शहर) गोरखपुर एवं अन्य दर्ज मामले में यह अवधारित किया है कि गांव सभा के पैरा 128 के प्रावधान प्रकृतिक रूप में बाध्यकारी और अनिवार्य है। प्रासंगिक अनुच्छेद फैसले की संख्या 13 और 14 इस प्रकार हैं:

"...13. पैरा 131 के प्रावधान बाध्यकारी प्रतीत होते हैं और प्रकृति में स्थायी. उसमें प्रक्रिया नहीं हो सकती नजरअंदाज कर दिया जाए अन्यथा इससे अराजकता फैल जाएगी। यदि कोई व्यक्ति या ग्रामीण को दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने की अनुमति होगी ऐसा व्यक्ति न केवल अनुचित बल्कि अवैध भी होगा गाँव सभा का प्रतिनिधित्व करने का कोई अधिकार नहीं है। कहा प्रावधान को केवल निर्देशिका के रूप में नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता उसमें प्रयुक्त भाषा का।

14. उपरोक्त निष्कर्ष के आलोक में आदेश दिनांक 14 मार्च, 1997 को दिया गया आक्षेप टिकने योग्य नहीं है इसके द्वारा रद्द कर दिया गया। फलस्वरूप 28 अप्रैल, 1997 के आदेश द्वारा जो पुनिरीक्षण तय किया गया वह भी एक अक्षम आदेश था और उसे भी अपास्त कर दिया गया है।"

मामले का एक और पहलू है कि लेखपाल की पुनर्स्थापना/वापसी का आवेदन का आधार यह था कि याचिकाकर्ता जून 1976 से कब्ज़े में है लेकिन उस पर कोई विवाद नहीं था कि याचिकाकर्ता अनुसूचित जाति समुदाय से और भूमिहीन खेतिहर मजदूर है। तारीख की कटौती/कब्जे की प्रासंगिक तारीख धारा 122-बी (4-एफ) यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की के तहत 13.05.2007 से 30.06.1975 तक बन गया है । याचिकाकर्ता लगातार 30.06.1975 से पहले से कब्ज़े में है याचिकाकर्ता के अनुसार साथ ही अन्य सबूतों के आधार पर लेकिन लेखपाल के बयान अनुसार याचिकाकर्ता जून 1976 से कब्जे में है। इस न्यायालय ने अंतरिम आदेश दिनांक 12.11.1987 / 4.07.1988 के जरिए याचिकाकर्ता की बेदखली पर रोक लगा दी है और राज्य द्वारा दायर किया गया स्थगन अवकाश आवेदन को अस्वीकार करते हुए अंतरिम आदेश की पुष्टि आदेश दिनांक 24.07.2012 द्वारा की, जो पूरी तरह से याचिकाकर्ता के विवादित भूखंड पर कब्जे को लंबे समय से प्रदर्शित करता है।

प्रकरण के समस्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए साथ ही साथ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मनोरे (सुप्रा) में निर्धारित कानून, प्रतिवादी संख्या 1 के द्वारा आलोच्य आदेश दिनांक 10.07.1985 और प्रतिवादी संख्या 3 के द्वारा पारित आदेश दिनांक 12.10.1977 को अपास्त किए जाने योग्य है और उन्हें एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है।

रिट याचिका को स्वीकार किया जाता है और ट्रायल कोर्ट के आदेश दिनांक 19.04.1977 की धारा 122-बी (4एफ) यू.पी.जेड.ए. एवं एल. आर. अधिनियम का लाभ प्रदान करते हुए याचिकाकर्ता के पक्ष में की पुष्टि की जाती है।

लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 1 ILRA 792
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 01.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति चन्द्र कुमार राय

रिट बी संख्या 68155/2006

प्रेम सिंह ...याचिकाकर्ता
बनाम
उ.प्र. राज्य एवं अन्य ...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
श्री के.एन. मिश्रा

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता:
सी.एस.सी., श्री ए.के. श्रीवास्तव, श्री आशीष कुमार श्रीवास्तव, श्री वी.के. सिंह, श्री अविनाश चन्द्र श्रीवास्तव

क. सिविल कानून - उ.प्र. भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 - धारा 33 और 39 - वार्षिक रजिस्टर में गलतियों का सुधार - स्वामित्व प्रश्न, आदि धारा 33/39 के तहत सारांश कार्यवाही में नहीं जा सकते - धारा 39 कलेक्टर को स्वामित्व के किसी भी प्रश्न से जुड़े विवाद का निर्णय करने का अधिकार नहीं देती है।

ख. सिविल कानून - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 198 - किसी पट्टे या भूमि आवंटन को रद्द करने की शक्ति केवल कलेक्टर के पास है जो अधिनियम की धारा 333 के तहत संशोधन के अधीन है – चकबंदी प्राधिकारियों के पास पट्टे या आवंटन की वैधता के प्रश्न पर निर्णय लेने का क्षेत्राधिकार नहीं था। (पैरा 12)

ग. सिविल कानून - उ.प्र. भू-राजस्व अधिनियम, 1901 - धारा 33 एवं 39 - याचिकाकर्ता को वर्ष 1983 में पट्टा प्रदान किया गया था – पट्टा प्रमाण पत्र जारी किया गया था, याचिकाकर्ता के पक्ष में कब्जे की कार्यवाही निष्पादित की गई थी, और याचिकाकर्ता के नाम पर राजस्व प्रविष्टि की गई थी- याचिकाकर्ता के पट्टे को रद्द करने के लिए कोई कार्यवाही शुरू नहीं की गई थी – याचिकाकर्ता को दिए गए पट्टे या याचिकाकर्ता के प्रविष्टि के संबंध में न तो राज्य और न ही गांव सभा ने कोई कार्रवाई की- वर्ष 1997 में, याचिकाकर्ता को हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर घोषित किया गया था, और इस आदेश के खिलाफ

25.2.1997 को एक अजनबी, ज्ञान सिंह द्वारा दायर पुनरीक्षण, 18.4.2022 को खारिज कर दिया गया था- अवधारित किया गया – उ.प्र. भू-राजस्व अधिनियम की धारा 33/39 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए याचिकाकर्ता की प्रविष्टि को सारांश कार्यवाही में समाप्त नहीं किया जा सकता है। याचिकाकर्ता के पक्ष में दिए गए पट्टे की पुष्टि की गई (पैरा 8, 9, 10, 16)

अनुमत दी गई।(ई-5)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. सिमिलेश कुमार बनाम गाँव सभा उस्कर, ग़ाज़ीपुर व अन्य, 1977 आरडी 408

2. यू.पी. स्टेट शुगर कार्पोरेशन लिमिटेड बनाम उप निदेशक चकबंदी एवं अन्य 2000 (91) आरडी 165

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री के.एन. मिश्रा, प्रत्यर्थी संख्या 1 से 4 के लिए स्थायी अधिवक्ता और भूमि प्रबंधन समिति के अधिवक्ता श्री अविनाश चंद्र श्रीवास्तव को सुना गया।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को उस भूमि का कृषि पट्टा दिया गया था जिसे उत्तर प्रदेश अधिकतम जोत-सीमा आरोपण अधिनियम, 1960 के तहत अधिशेष घोषित किया गया था। वर्ष 1983 में याचिकाकर्ता के पक्ष में पट्टा प्रदान किया गया और पट्टे के आधार पर याचिकाकर्ता को आवंटित भूमि पर कब्ज़ा दे दिया गया और तदनुसार याचिकाकर्ता का नाम राजस्व अभिलेखों में दर्ज कर दिया गया। याचिकाकर्ता विवादित भूमि पर काबिज रहा और उसका नाम राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज किया गया था और कानून के संचालन के कारण, याचिकाकर्ता वर्ष 1983 में याचिकाकर्ता को आवंटित की गई भूमि के संबंध में दिनांक 25.2.1997 के आदेश के तहत हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर बन गया। ज्ञान सिंह नामक व्यक्ति, जिसका इस मामले में कोई अधिकार नहीं है, ने उप-विभागीय अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.2.1997 के खिलाफ उ.प्र. भू-राजस्व अधिनियम की धारा 219 के तहत एक कालातीत पुनरीक्षण दायर किया है, जिसमें याचिकाकर्ता को हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर घोषित किया गया है। पुनरीक्षण पर पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा सुनवाई की गई और इसे अंततः दिनांक 18.4.2002 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया, हालांकि बर्खास्तगी के उसी आदेश में यह टिप्पणी की गई थी कि अधिकारी विवादग्रस्त भूखंड की राजस्व प्रविष्टियों के सुधार के संबंध में मामले की जांच करेंगे। आदेश दिनांक 18.4.2002 के आधार पर उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 33/39 के तहत कार्यवाही शुरू की गई और याचिकाकर्ता की प्रविष्टि दिनांक 24.7.2002 के आदेश द्वारा इस आधार पर समाप्त कर दी गई कि पट्टा याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्पादित नहीं किया गया था। याचिकाकर्ता ने दिनांक 24.7.2002 के आदेश को राजस्व बोर्ड के समक्ष पुनरीक्षण में चुनौती दी और दिनांक 7.12.2005 के आदेश द्वारा उसे खारिज कर दिया गया, इसलिए यह रिट याचिका है।

3. इस न्यायालय ने रिट याचिका पर विचार करते हुए दिनांक 2.2.2016 को एक आदेश पारित किया है जो इस प्रकार है:-

"याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री के.एन.मिश्रा और प्रत्यर्थियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

आक्षेपित आदेश की आलोचना करते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि एक बार जब प्रत्यर्थियों ने याचिकाकर्ता के पक्ष में पट्टे के निष्पादन को स्वीकार कर लिया और वर्ष 1997 में हस्तांतरणीय अधिकार के साथ भूमिधर का अधिकार प्रदान कर दिया, तो यह प्रत्यर्थियों के लिए राजस्व रिकॉर्ड से याचिकाकर्ता का नाम हटाने के लिए स्वतंत्र नहीं था। प्रथम दृष्टया, मुझे याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दलील में प्रभाव नजर आया।

मामले की जांच की आवश्यकता है।

नोटिस जारी किया जाये।

प्रत्यर्थी संख्या 1 से 4 की ओर से नोटिस विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता के कार्यालय द्वारा स्वीकार कर लिया गया है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने 48 घंटे के भीतर प्रत्यर्थी संख्या 5 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष कुमार श्रीवास्तव को रिट याचिका की एक प्रति देने का निर्णय लिया है, इसलिए, प्रत्यर्थी संख्या 1 से 5 को नोटिस जारी करने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्यर्थी संख्या 6 को पंजीकृत डाक से नोटिस जारी किया जाए जिसे शीघ्र वापस किया जा सके। दो सप्ताह के भीतर कदम उठाए जाएं।

प्रत्यर्थियों को छह सप्ताह के भीतर प्रति शपथपत्र दाखिल करने का निर्देश दिया गया है। प्रत्युत्तर शपथपत्र, यदि कोई हो, उसके बाद दो सप्ताह के भीतर दाखिल किया जाना चाहिए। इसके बाद प्रत्यर्थी के अधिवक्ता के रूप में श्री आशीष कुमार श्रीवास्तव का नाम दर्शाते हुए सूचीबद्ध किया जाए।"

4. दिनांक 2.2.2016 के आदेश के अनुपालन में, गाँव सभा ने प्रति शपथपत्र दायर किया है और याचिकाकर्ता ने प्रति शपथपत्र दायर किया है।

5. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने कहा कि याचिकाकर्ता को वर्ष 1983 में विवादित भूखंड के संबंध में कृषि पट्टा दिया गया था और याचिकाकर्ता के पट्टे को रद्द करने की कोई कार्यवाही आज तक शुरू नहीं की गई है। उन्होंने आगे कहा कि कानून के संचालन के कारण, याचिकाकर्ता को हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर घोषित किया गया था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि प्रत्यर्थी संख्या 6 जिसके पास याचिकाकर्ता की प्रविष्टि को चुनौती देने का कोई अधिकार/स्थान नहीं है, ने एक पुनरीक्षण दायर किया था, जिसमें याचिकाकर्ता को हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर घोषित किया गया था, हालांकि, पुनरीक्षण खारिज कर दिया गया था लेकिन राजस्व प्रविष्टि की जांच करने के लिए टिप्पणियां की गई हैं। उन्होंने प्रस्तुत किया कि पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश के आधार पर, याचिकाकर्ता की प्रविष्टि उ.प्र. भू-राजस्व अधिनियम की धारा 33/39 के तहत समाप्त कर दी गई है, जो पूर्णतः अवैध है। उन्होंने यह भी कहा कि याचिकाकर्ता का पट्टा आज तक रद्द नहीं किया गया है, बल्कि याचिकाकर्ता को हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर घोषित किया गया है, इसलिए सारांश कार्यवाही में उसकी प्रविष्टि को समाप्त नहीं किया जा सकता है। उन्होंने उ.प्र. भू-राजस्व अधिनियम की धारा 33/39 के दायरे पर अवलम्ब लिया जो इस प्रकार हैः-

33. वार्षिक रजिस्टर- (1) कलेक्टर अधिकार अभिलेख का अनुरक्षण करेगा तथा इस प्रयोजन लिए प्रति वर्ष या इतनी अवधि के बाद जो राज्य सरकार विहित करे, धारा 32 में उल्लिखित एक संशोधित रजिस्टर तैयार करायेगा।

इस प्रकार तैयार किया गया रजिस्टर वार्षिक रजिस्टर कहलायेगा।

(2). कलेक्टर वार्षिक रजिस्टर में निम्नलिखित बातों को अभिलिखित करायेगा-

(क). धारा 35 के प्रावधानों के अनुसार सभी उत्तराधिकार और अन्तरण; या

(ख). अन्य परिवर्तन जो किसी भूमि के सम्बन्ध में हो सकते हैं,

तथा धारा 39 के प्रावधानों के अनुसार सभी त्रुटियाँ और लोपों को सुधारेगा:

परन्तु खण्ड (ख) के अन्तर्गत किसी परिवर्तन को अभिलिखित करने की शक्ति का तात्पर्य हक के बारे में विवाद के प्रश्न के विनिश्चय करने की शक्ति का सम्मिलित करना नहीं समझा जायेगा।

(3). ऐसा कोई परिवर्तन या संव्यवहार (लेन-देन कलेक्टर, या जैसा एतद्पश्चात उपबन्धित किया गया है, तहसीलदार अथवा [कानूनगो] के आदेश के बिना अभिलिखित नहीं किया जायेगा।

(4). कलेक्टर प्रत्येक उस व्यक्ति के निमित्त जो भूमिधर चाहे अन्तरणीय अधिकार वाला हो या नहीं असामी या सरकारी पट्टेदार अभिलिखित हो, एक किसान बही (पास बुक) तैयार करायेगा और उसे दिलवायेगा, जिसमें

(क). उप-धारा (1) के अधीन तैयार किये गये वार्षिक रजिस्टर से लिये गये ऐसे उद्धरण जिसमें उन सभी जोतों के विषय में जिनके सम्बन्ध में वह (अकेले या दूसरों के साथ संयुक्त रूप से) उस प्रकार अभिलिखित हो, होंगे;

(ख). उसमें स्वीकृत अनुदानों का विवरण होगा, और

(ग). ऐसे अन्य विवरण जो विहित किये जायें, होंगे

परन्तु यह कि संयुक्त जोतों की स्थिति में इस उपधारा के प्रयोजन के लिए यह पर्याप्त होगा, यदि किसान बही (पास बुक) ऐसे अभिलिखित सह-अंशधारियों में से ऐसे या एक या एकाधिक को, जो विहित किया जाये, दी जाये।

(4-क). उप-धारा (4) में निर्दिष्ट किसान बही (पास बुक) ऐसी रीति से तैयार की जायेगी और ऐसे शुल्क के, जो भू-राजस्व के बकाये की भाँति वसूल किया जा सकेगा, भुगतान पर दी जायेगी, जैसा विहित किया जाये।

(5) ऐसा प्रत्येक व्यक्ति बिना अतिरिक्त शुल्क दिये उप-धारा (2) के अधीन वार्षिक रजिस्टर में किये गये किसी संशोधन को अपनी किसान बही (पास बुक) में समादिष्ट कराने का हकदार होगा।

(6) राज्य सरकार इस धारा के प्रयोजनों को क्रियान्वित करने के लिए नियम निर्मित कर सकेगी, जिनमें विशिष्ट रूप से साक्ष्य को ग्रहण करने और न्यायिक कार्यवाहियों में किसान बही [पास बुक] में प्रविष्टियों के सबूत के ढंग और उसके पुनरीक्षण तथा अद्यतन अधिप्रमाणीकरण के ढंग और उसकी दूसरी प्रति को जारी करने के ढंग तथा उक्त प्रयोजनों के लिए प्रभारित की जाने वाली फीस, यदि कोई हो, को विहित करते हुए नियम शामिल है।

(7) इस धारा में "विहित" से राज्य सरकार द्वारा बनाये गये नियम द्वारा विहित अभिप्रेत है।

(8) उपधारा (4) से (7) में किसी बात के होते हुए भी उन सन्दर्भों में लागू होंगे जो क्षेत्र चकबन्दी या अधिकार अभिलेख के अधीन है।

39. वार्षिक पंजिका में अशुद्धियों की शुद्धि- (1) वार्षिक पंजिका में किसी अशुद्धि या उपेक्षा सुधार के लिये प्रार्थना-पत्र तहसीलदार को दिया जायेगा।

(2) उप-धारा (1) के अन्तर्गत प्रार्थना-पत्र पाने पर या वार्षिक पंजिका में कोई अशुद्धि या उपेक्षा अन्यथा उसकी जानकारी में आने पर, तहसीलदार ऐसी जाँच करेगा जो आवश्यक प्रतीत हो और तब वह मामले को कलेक्टर के पास भेजेगा, जो धारा 40 के प्रावधानों के अनुसार विवाद का निर्णय करे, उसका निस्तारण करेगा।

अप्रमाणित

परन्तु इस उप-धारा का तात्पर्य कलेक्टर को हक के प्रश्न को अन्तर्विष्ट करने वाले किसी विवाद को निर्णीत करने की शक्ति प्रदान करना न होगा ।

(3) उ०प्र० पंचायत राज अधिनियम, 1947 में किसी अन्य व्यवस्था के होने के बावजूद, उप-धारा (1) और (2) के प्रावधान प्रभावी होंगे।

6. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी-गांव सभा के अधिवक्ता श्री ए.सी. श्रीवास्तव और विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आक्षेपित आदेश के तहत यह पाया गया है कि रिकॉर्ड पर कुछ भी आपत्तिजनक नहीं है, इसलिए, पट्टा धोखाधड़ीपूर्ण प्रतीत होता है। उन्होंने आगे कहा कि उ.प्र. भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 33/39 के तहत क्षेत्राधिकार का उपयोग निचली अदालतों द्वारा सही ढंग से किया गया है, इसलिए इस मामले में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और रिट याचिका खारिज होने योग्य है।

7. मैंने पक्षों के अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है और अभिलेखों का अवलोकन किया है।

8. इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता को वर्ष 1983 में पट्टा प्रदान किया गया था जो कि याचिकाकर्ता के पक्ष में जारी पट्टा प्रमाण पत्र, याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्पादित कब्जे की कार्यवाही के साथ-साथ याचिकाकर्ता के पक्ष में की गई राजस्व प्रविष्टि से काफी हद तक साबित होता है। याचिकाकर्ता के पट्टे को रद्द करने की कोई कार्यवाही न तो उ.प्र.जेडए और एलआर अधिनियम के तहत या उत्तर प्रदेश अधिकतम जोत-सीमा आरोपण अधिनियम, 1960 के तहत शुरू की गई है।

9. चूँकि याचिकाकर्ता को वर्ष 1983 में पट्टा प्रदान किया गया था और 1983 से आज तक बिक्री विलेख को रद्द करने की कोई कार्यवाही शुरू नहीं की गई है, ऐसे में याचिकाकर्ता की प्रविष्टि को सारांश कार्यवाही में नहीं हटाया जा सकता है।

10. जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, धारा 33/39 का दायरा पूरी तरह से दर्शाता है कि स्वामित्व प्रश्न आदि को सारांश कार्यवाही में नहीं डाला जा सकता है। याचिकाकर्ता को वर्ष 1997 में हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर घोषित किया गया था, इसलिए उ.प्र. भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 33/39 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए याचिकाकर्ता की प्रविष्टि को समाप्त नहीं किया जा सकता है। यह भी महत्वपूर्ण है कि कार्यवाही ज्ञान सिंह द्वारा शुरू की गई है जिनके पास याचिकाकर्ता के आदेश/प्रविष्टि को चुनौती देने का कोई अधिकार/स्थान नहीं है। राज्य या गाँव सभा ने याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्पादित पट्टे के संबंध में या याचिकाकर्ता के प्रवेश के संबंध में कोई कार्यवाही शुरू नहीं की है क्योंकि गाँव सभा ने स्वयं वर्ष 1983 में याचिकाकर्ता के पक्ष में पट्टा प्रदान किया था।

11. मामले का एक और पहलू यह है कि वर्ष 1983 में याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्पादित पट्टे के आधार पर याचिकाकर्ता दिनांक 25.2.1997 के आदेश के तहत हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर बन गया और अजनबी व्यक्ति ज्ञान सिंह द्वारा दिनांक 25.2.1997 के आदेश के खिलाफ दायर पुनरीक्षण को आदेश दिनांक 18.4.2022 के तहत खारिज कर दिया गया, ऐसे में दिनांक 18.4.2022 के आदेश में की गई टिप्पणी के आधार पर याचिकाकर्ता की प्रविष्टि को समाप्त करने के लिए सारांश कार्यवाही शुरू करना, अजनबी ज्ञान सिंह के पुनरीक्षण को खारिज करना पूरी तरह से अवैध है और कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

12. इस न्यायालय ने सिमिलेश कुमार बनाम गाँव सभा उस्कर, गाज़ीपुर और अन्य, 1977 आरडी 408 मामले में पूर्ण पीठ के फैसले में अवधारित किया है कि अधिनियम की धारा 198 में किए गए संशोधनों के मद्देनजर किसी पट्टे या आवंटन को रद्द करने की शक्ति भूमि अधिनियम की धारा 333 के तहत संशोधन के अधीन केवल कलेक्टर के पास है और, इसलिए, चकबंदी अधिकारियों के पास पट्टे या आवंटन की वैधता के प्रश्न पर निर्णय लेने का अधिकार क्षेत्र नहीं था।

13. सिमिलेश कुमार (उपरोक्त) में निर्धारित कानून के अनुपात को ध्यान में रखते हुए याचिकाकर्ता की प्रविष्टि को समाप्त करने के लिए सारांश कार्यवाही का कार्य पूरी तरह से अवैध है जब तक कि याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्पादित पट्टा कानून के अनुसार रद्द नहीं किया जाता है।

14. सिमिलेश कुमार (उपरोक्त) के पूर्ण पीठ के निर्णय को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उ.प्र. राज्य चीनी निगम लिमिटेड बनाम उप निदेशक चकबंदी और अन्य, 2000 (91) आरडी 165 के मामले में यह कहते हुए अवधारित किया है कि यदि प्रश्नगत पट्टा शून्य है तो पट्टे को नजरअंदाज किया जा सकता है, लेकिन मौजूदा मामले में यह स्थिति नहीं है क्योंकि पट्टा याचिकाकर्ताओं के पक्ष में निष्पादित किया गया था, जो कि रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों से काफी हद तक साबित हो चुका है और याचिकाकर्ता प्रश्नगत पट्टे के आधार पर हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर बन गया है, जैसे, इसमें कोई प्रश्न नहीं है कि प्रश्नगत पट्टा शून्य है।

15. मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थी संख्या 2/राजस्व मंडल द्वारा पारित आदेश दिनांक 7.12.2005 और अनुविभागीय अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.4.2002 रद्द किये जाने योग्य है और एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है।

16. रिट याचिका स्वीकार की जाती है। याचिकाकर्ता के पक्ष में दिए गए पट्टे की पुष्टि की जाती है।

17. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 1 ILRA 796

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 29.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करूणेश सिंह पवार

प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 482 संख्या 25924/2022

गौरव शर्मा ... आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ... विपक्षीगण

आवेदक की ओर से अधिवक्ता:

श्री अभिषेक त्रिपाठी, श्री विभु राय

विपक्षीगण की ओर से अधिवक्ता:

जी.ए., श्री संजय कुमार दुबे

(माननीय न्यायमूर्ति करूणेश सिंह पवार द्वारा प्रदत्त)

ए. आपराधिक कानून – दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 319 – कार्यक्षेत्र – व्यक्ति के खिलाफ प्रक्रिया जारी करने की शक्ति अपराध का दोषी प्रतीत होता है – शक्ति, इसका प्रयोग कैसे किया जा सकता है – जांच अधिकारी ने आवेदक के पक्ष में क्लोजर रिपोर्ट दायर की – आईओ द्वारा विचार की गई सामग्री को देखने के लिए विचारण न्यायालय का कर्तव्य – धारित, धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत शक्ति का प्रयोग मुख्य रूप से आपराधिक न्याय के कारण प्रदान करने या समर्थन करने के लिए किया जाना है। दं0प्र0सं0 की धारा 319 के चरण में, विचारण न्यायालय कम से कम उस सामग्री को देखने के लिए बाध्य है, जिसने जांच अधिकारी को एक आरोपी व्यक्ति के खिलाफ अंतिम रिपोर्ट/क्लोजर रिपोर्ट दायर करने के लिए राजी किया- हरदीप सिंह का मामला जिस पर निर्भर था। (पैरा 7)

प्रार्थना पत्र स्वीकृत। (ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:-</u>

1. हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य; (2014) 3 एससीसी 92

2. बृजेंद्र सिंह और अन्य बनाम राजस्थान राज्य; (2017)7 एससीसी 706

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार द्वारा पारित)

1. मुकदमा अपराध संख्या 126/2019, अन्तर्गत धारा 307, 147, 148, 149, 120-बी भा0दं0सं0, थाना कोतवाली, जिला हाथरस से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या 216/2019 राज्य बनाम योगेश बघेल एवं अन्य में अपर जनपद एवं सत्र न्यायाधीश, न्याय कक्ष संख्या 5, हाथरस द्वारा पारित आदेश दिनांक 28.7.2022 तथा अग्रिम कार्यवाही को रद्द करने हेतु यह याचिका धारा 482 दं0प्र0सं0 के अन्तर्गत दायर की गई है।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री विभु राय और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. के साथ-साथ प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय कुमार दुबे को भी सुना, जिन्होंने प्रस्तुत किया है कि वह कोई जवाबी हलफनामा दायर नहीं करना चाहते हैं। दोनों पक्षों के अधिवक्ता का कहना है कि मामले पर अंतिम फैसला किया जा सकता है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता वर्तमान में सेठ हरिजन दास गर्ल्स इंटर कॉलेज, हाथरस (इसके बाद 'कॉलेज' के रूप में संदर्भित) में सहायक क्लर्क के रूप में काम कर रहा है। घायल मदन मोहन गौतम भी उस समय कॉलेज में क्लर्क के पद पर कार्यरत थे।

यह प्रस्तुत किया गया है कि अपने दो नियुक्ति पत्रों में घायल लोगों द्वारा की गई जालसाजी के संबंध में, आवेदक द्वारा जिला मजिस्ट्रेट, हाथरस को एक शिकायत दर्ज की गई थी, जिस पर प्रबंधक से जवाब मांगा गया था। इसके बाद, जिला विद्यालय निरीक्षक, हाथरस ने 31.8.2020 को प्रबंधक को घायल मैडम मोहन गौतम की अवैध नियुक्ति के संबंध में एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश दिया। इसी बीच, मैडम मोहन गौतम, घायल भी जाली और मनगढ़ंत कागजों पर एक राजेश्वरी की श्रेणी-IV पद पर नियुक्ति में शामिल थी और उसने कॉलेज में उक्त नियुक्ति प्राप्त करने के लिए रिश्वत भी ली थी। उक्त अवैधता सामने आने पर राजेश्वरी को सेवा से हटा दिया गया और मदन मोहन गौतम को जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा सरकारी प्रयोगशाला में कुर्क कर दिया गया। चूंकि राजेश्वरी ने घायल मदन मोहन गौतम को नियुक्ति के लिए मोटी रकम दी थी, इसलिए उनके बेटे लालतू उर्फ ललित की मदन मोहन गौतम से दुश्मनी थी।

घटना की तारीख यानी 12.4.2019 को घायल मदन मोहन गौतम का तबादला वापस कॉलेज में कर दिया गया और उन्होंने ज्वाइन कर लिया। उस दिन उस पर लालतू उर्फ ललित ने दो सह-आरोपियों के साथ हमला किया था। मेडिकल जांच रिपोर्ट में बंदूक की गोली से एक चोट दिखाई गई है।

यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में, आवेदक की उपस्थिति को मौके पर नहीं दिखाया गया है, हालांकि अन्य सह-आरोपी व्यक्तियों के साथ आवेदक पर संदेह जताया गया था।

अभियोजन पक्ष के गवाह यशोमणि गौतम (प्रतिवादी संख्या 2), जो घायल के बेटे हैं, ने अपने बयान में आरोप लगाया है कि तीन आरोपियों ने उनके पिता पर हत्या के इरादे से गोली चलाई, हालांकि, वर्तमान आवेदक की उपस्थिति मौके पर नहीं दिखाई गई। फिर से, उसके द्वारा संदेह उठाया गया था।

घायल राजतमणि उर्फ राहुल के एक अन्य बेटे ने अपने बयान में तीन हमलावरों यानी विशाल, लालतू और कान्हा के नाम स्पष्ट रूप से बताए हैं और आरोप लगाया है कि तीनों हमलावर प्लेटिना मोटरसाइकिल पर सवार थे और उन्होंने उनके पिता मदन मोहन गौतम पर जान से मारने की नीयत से गोली चलाई थी। घायल मदन मोहन गौतम ने उक्त तीन आरोपियों विशाल, लालतू और कान्हा का नाम भी लिया है। उन्होंने घटना स्थल पर आवेदक की उपस्थिति भी नहीं दिखाई। वास्तव में, उन्होंने किसी भी तरह से आवेदक का नाम भी नहीं लिया है। उन्होंने यहां तक कहा कि उन्हें इस बात की जानकारी नहीं है कि इस साजिश के पीछे कौन है और यह तथ्य विशाल, लालतू और कान्हा से पूछताछ करके पता लगाया जा सकता है।

सह-आरोपी लालतू ने अपने इकबालिया बयान में अपराध स्वीकार किया है और कहा है कि साजिश उसके द्वारा अन्य दो सह-आरोपियों के साथ रची गई थी और योगेश बघेल द्वारा एक मोटरसाइकिल प्लेटिना ब्लैक कलर भी उपलब्ध कराई गई थी और कुछ नकदी भी उसके द्वारा दी गई थी। उन्होंने घटना में आवेदक का नाम भी नहीं लिया है। जांच अधिकारी द्वारा योगेश कुमार, लालतू, विशाल शर्मा और कान्हा के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया था। जांच अधिकारी ने आवेदक की मिलीभगत नहीं पाई। एक बजाज प्लेटिना ब्लैक मोटरसाइकिल संख्या यूपी 86 ई 3056 बरामद की गई।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि 4.2.2020 को, आवेदक द्वारा की गई शिकायत पर, आयुक्त, अलीगढ़ क्षेत्र ने जिला मजिस्ट्रेट, हाथरस को मदन मोहन गौतम द्वारा उनके दो नियुक्ति पत्रों के संबंध में की गई जालसाजी के मामले में जांच करने का निर्देश दिया है।

यह प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त पत्र दिनांक 4.2.2020 लिखे जाने के बाद, पीडब्ल्यू 2 मदन मोहन गौतम, घायल की विचारण न्यायालय के समक्ष जांच की गई थी। विचारण न्यायालय के समक्ष पूछताछ के दौरान, उन्होंने यू-टर्न लिया और अभियोजन पक्ष के मामले में पहली बार, घायल गवाह द्वारा दूसरी मोटरसाइकिल पेश की गई। यह प्रस्तुत किया गया है कि यह अदालत के समक्ष बयान में है, पीडब्ल्यू 2 घायल गवाह ने दूसरी मोटरसाइकिल पेश करते समय अपनी जिरह में कहा है कि आवेदक स्प्लेंडर मोटरसाइकिल पर सवार था जो उसकी है। उन्होंने आगे कहा कि घटना स्थल पर पांच लोग मौजूद थे। स्प्लेंडर मोटरसाइकिल ललित चला रहा था जिस पर गौरव शर्मा, ललित और योगेश बघेल सवार थे और नितिन और विशाल प्लेटिना मोटरसाइकिल पर सवार थे।

आवेदक के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि विचारण न्यायालय इस तथ्य पर विचार करने में विफल रहा है कि जांच अधिकारी ने सावधानीपूर्वक जांच के बाद और ललित द्वारा दिए गए इकबालिया बयान के आधार पर आरोप पत्र दायर किया है और प्लेटिना मोटरसाइकिल बरामद की है। जांच अधिकारी द्वारा कोई अन्य मोटरसाइकिल बरामद नहीं की गई और न ही अपराध में शामिल पाया गया। घायल के दोनों बेटों के साथ-साथ खुद घायल ने भी आवेदक को फायरिंग की भूमिका नहीं बताई है या धारा 161 दं0प्र0सं0 के तहत अपने बयानों में मौके पर अपनी उपस्थिति नहीं दिखाई है। घायल मदन मोहन गौतम द्वारा अदालत के समक्ष दिया गया बयान एक स्पष्ट झूठ के अलावा और कुछ नहीं है और आवेदक पर दबाव डालने के लिए एक उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया गया है जो उसके खिलाफ शिकायतकर्ता होता है और उसकी शिकायत पर, आयुक्त, अलीगढ़ द्वारा पहले ही उसके नियुक्ति पत्र में किए गए जालसाजी के संबंध में जांच का आदेश दिया गया है।

4. इसके विपरीत विद्वान ए.जी.ए. तथा प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने याचिका का विरोध किया है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि दं0प्र0सं0 की धारा 319 के तहत प्रक्रिया जारी करते समय, केवल प्रथम दृष्टया मामला देखा जाना चाहिए। अदालत इस स्तर पर सबूतों की गहराई से सराहना नहीं कर सकती है।

5. हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य (2014)3 एससीसी 92 में सुप्रीम कोर्ट की एक संविधान पीठ ने माना कि दं0प्र0सं0 की धारा 319 के तहत शक्ति, जो एक विवेकाधीन और असाधारण शक्ति है, का प्रयोग संयम से और केवल उन मामलों में किया जाना चाहिए जहां मामले की परिस्थितियां इतनी जरूरी हैं और जब अदालत के समक्ष पेश किए गए सबूतों से किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस सबूत हों। यह भी माना गया है कि

शक्ति का प्रयोग आकस्मिक और लापरवाह तरीके से नहीं किया जाना चाहिए। प्रासंगिक पैरा 105 और 106 नीचे दिए गए हैं:

"105. दं0प्र0सं0 की धारा 319 के तहत शक्ति एक विवेकाधीन और असाधारण शक्ति है। इसका प्रयोग संयम से और केवल उन मामलों में किया जाना चाहिए जहां मामले की परिस्थितियां इतनी वारंट हैं। इसका प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश की राय है कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस अपराध को करने का दोषी हो सकता है। केवल जहां अदालत के समक्ष दिए गए सबूतों से किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस सबूत होते हैं कि इस तरह की शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए और आकस्मिक और लापरवाह तरीके से नहीं।

106. इस प्रकार, हम मानते हैं कि हालांकि अदालत के समक्ष पेश किए गए सबूतों से केवल एक प्रथम दृष्टया मामला स्थापित किया जाना है, जरूरी नहीं कि जिरह की निहाई पर परीक्षण किया जाए, इसके लिए उसकी संलिप्तता की संभावना की तुलना में बहुत मजबूत सबूत की आवश्यकता होती है। जिस परीक्षण को लागू किया जाना है वह वह है जो आरोप तय करने के समय प्रयोग किए गए प्रथम दृष्टया मामले से अधिक है, लेकिन इस हद तक संतुष्टि से कम है कि सबूत, यदि खंडन नहीं किया जाता है, तो दोषसिद्धि का कारण होगा। इस तरह की संतुष्टि के अभाव में, अदालत को धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए। दं0प्र0सं0 की धारा 319 में, यदि "सबूतों से यह प्रतीत होता है कि किसी भी व्यक्ति, जो आरोपी नहीं है, ने कोई अपराध किया है" प्रदान करने का उद्देश्य इन शब्दों से स्पष्ट है कि "जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर अभियुक्त के साथ मिलकर मुकदमा चलाया जा सकता है"। इस्तेमाल किए गए शब्द "जिसके लिए ऐसे व्यक्ति को दोषी ठहराया जा सकता है" नहीं हैं। इसलिए, दं0प्र0सं0 की धारा 319 के तहत कार्य करने वाली अदालत के लिए आरोपी के अपराध के बारे में कोई राय बनाने की कोई गुंजाइश नहीं है।

बृजेंद्र सिंह और अन्य बनाम राजस्थान राज्य (2017) 7 एससीसी 706 के मामले में यह माना गया है कि विचारण न्यायालय को जांच के दौरान जांच अधिकारी द्वारा एकत्र की गई सामग्री को देखने की आवश्यकता है, इससे पहले कि जांच अधिकारी द्वारा एकत्र की गई सामग्री किसी व्यक्ति को अतिरिक्त आरोपी के रूप में बुलाने के लिए प्रथम दृष्टया राय बनाई जाए, अगर जांच अधिकारी द्वारा एकत्र की गई सामग्री एक और कहानी दिखाती है।

6. मौजूदा मामले में, दं0प्र0सं0 की धारा 161 के तहत घायल का बयान और उसके दो बेटों के बयान घटना स्थल पर आवेदक की उपस्थिति नहीं दिखाते हैं। अभियोजन पक्ष के सभी तीन महत्वपूर्ण गवाहों ने कहा है कि केवल एक प्लेटिना मोटरसाइकिल का इस्तेमाल किया गया था। दूसरी मोटरसाइकिल के बारे में कोई कानाफूसी नहीं है। हालांकि, विचारण न्यायालय के समक्ष बयान और जिरह के समय, घायल गवाह ने यू-टर्न ले लिया है और तीन के बजाय, पांच हमलावरों को पेश किया है, आवेदक से संबंधित एक अतिरिक्त मोटरसाइकिल और इसलिए, विचारण न्यायालय को कम से कम धारा 161 दं0प्र0सं0 के तहत जांच अधिकारी को दिए गए उनके बयानों पर ध्यान देना चाहिए था। जिसके आधार पर जांच अधिकारी द्वारा आरोप पत्र दायर किया गया और आवेदक का नाम हटा दिया गया।

तथ्य यह है कि आरोपी ललित ने दं0प्र0सं0 की धारा 161 के तहत अपने बयान में अपना अपराध कबूल किया है और जांच अधिकारी द्वारा केवल एक मोटरसाइकिल बरामद की गई थी, इस पर भी विचारण न्यायालय को ध्यान देना चाहिए था।

7. यह अच्छी तरह से तय है कि दं0प्र0सं0 की धारा 319 के तहत शक्ति का प्रयोग मुख्य रूप से आपराधिक न्याय प्रदान करने या समर्थन करने के लिए किया जाना है। दं0प्र0सं0 की धारा 319 के चरण में, विचारण न्यायालय कम से कम उस सामग्री को देखने के लिए बाध्य है, जिसने जांच अधिकारी को एक आरोपी व्यक्ति के खिलाफ अंतिम रिपोर्ट/क्लोजर रिपोर्ट दायर करने के लिए राजी किया। विचारण न्यायालय को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि किसी आरोपी के खिलाफ क्लोजर रिपोर्ट दाखिल की गई है और आरोप पत्र दाखिल करते समय उसका नाम हटा दिया गया है। केवल अभियोजन पक्ष के गवाह द्वारा दिए गए बयान और मुकदमे के दौरान पहली बार एक नया तथ्य पेश करने पर, जो दं0प्र0सं0 की धारा 161 के तहत जांच के दौरान उस व्यक्ति द्वारा दिए गए बयान के विपरीत है, वह भी एक घायल गवाह द्वारा, अतिरिक्त अभियुक्त जो इस मामले में आवेदक है, को तलब नहीं किया जा सकता था। इसलिए, विचारण न्यायालय को घायल गवाह द्वारा जांच अधिकारी को दिए गए बयान, घायल के दो बेटों के बयान के साथ-साथ मुख्य आरोपी व्यक्ति के इकबालिया बयान और जांच अधिकारी द्वारा की गई बरामदगी को नोट करना चाहिए था, जिसके आधार पर पुलिस रिपोर्ट दर्ज की गई थी।

8. वर्तमान मामले में, विचारण न्यायालय ने उपरोक्त सामग्री पर विचार नहीं किया है, यानी दं0प्र0सं0 की धारा 161 के तहत घायल का बयान, दं0प्र0सं0 की धारा 161 के तहत उसके दो बेटों का बयान, सह-आरोपी व्यक्ति का इकबालिया बयान, केवल एक मोटरसाइकिल यानी प्लेटिना की बरामदगी, और इसलिए जांच अधिकारी द्वारा एकत्र किए गए सबूतों की अनदेखी करके जो प्रदर्शित

करता है कि वर्तमान आवेदक घटना के समय और स्थान पर मौजूद नहीं था, न तो अपराध करने में उसकी साजिश को इंगित करने के लिए कोई सामग्री थी और केवल घायल गवाह की परीक्षा के दौरान दर्ज बयान पर भरोसा करते हुए, जो पहले पूरे अभियोजन मामले के साथ कोई पुष्टि नहीं करता है; बल्कि पहले के अभियोजन मामले और जांच अधिकारी द्वारा एकत्र की गई सामग्री के विपरीत है, इसलिए, आक्षेपित आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता है और यह अपास्त किये जाने योग्य है।

9. तदनुसार, याचिका स्वीकृत की जाती है और आक्षेपित आदेश दिनांक 28.7.2022 (पूर्वोक्त) को अपास्त किया जाता है।

(2023) 1 ILRA 800

मूल क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: लखनऊ 16.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 161/2023

सिद्दीक कप्पन ...**आवेदक**
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य ...**विपक्षीगण**

अधिवक्ता आवेदक: इशान बघेल, मो. खालिद

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

ए. आपराधिक कानून – आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 227, 228 और 482 – निर्वहन - विवरण और उद्देश्य - आरोप तय करने का आदेश डिस्चार्ज आवेदन पर विचार किए बिना पारित किया गया – वैधता को चुनौती दी गई - आयोजित, सीआरपीसी की धारा 227 में निर्धारित प्रक्रिया में अभियुक्त को बरी करना वास्तव में सुरक्षा और राइडर है ताकि जिस व्यक्ति पर अपराध करने का आरोप लगाया गया है, उसे मुकदमे की कार्यवाही का सामना करने के लिए परेशान न किया जा सके - सीआरपीसी की धारा 227 के तहत आदेश पारित करने के लिए मस्तिष्क का उपयोग और साथ ही कारण बताना बहुत महत्वपूर्ण है, जिसका ध्यान ट्रायल कोर्ट को रखना है - उच्च न्यायालय ने आरोप तय करने के आदेश को निरस्त कर दिया। (पैरा 17 और 22)

बी. आपराधिक कानून – आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 227 और 228 – डिस्चार्ज –आवेदन, आरोपी द्वारा प्रस्तुत करना कितना आवश्यक है - ट्रायल कोर्ट के कर्तव्य - विवरण – यह आरोपी पर निर्भर नहीं है कि उसने डिस्चार्ज के लिए आवेदन दायर किया होगा, यहां तक कि ऐसी स्थिति में भी कि आरोपमुक्त करने के लिए कोई आवेदन नहीं दिया गया है, तो ट्रायल कोर्ट को यह तय करना होगा कि क्या आरोपी के खिलाफ आरोप तय करने के लिए पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। (पैरा 18)

सी. आपराधिक वाद – आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 304 – निष्पक्ष सुनवाई – न्याय मित्र - नियुक्ति की शर्त – स्पष्ट - एक न्याय मित्र नियुक्त किया जा सकता है यदि अभियुक्त का प्रतिनिधित्व वकील द्वारा नहीं किया जाता है या अभियुक्त के पास वकील को नियुक्त करने के लिए पर्याप्त साधन नहीं हैं – कोई पूर्ति नहीं इन शर्तों के प्रभाव में – आयोजित, न्याय मित्र की नियुक्ति करते समय, ट्रायल कोर्ट ने अत्यावश्यकता का उल्लेख नहीं किया जैसा कि सीआरपीसी की धारा 304 में परिकल्पित है और न्यायमित्र की नियुक्ति करते समय कोई न्यायिक मस्तिस्क का प्रयोग नहीं किया गया है। (पैरा 8 और 20)

आवेदन स्वीकृत। (ई-1)

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह, जे. द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक हेतु श्री आई.बी.सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता व उनके सहायक श्री ईशान बघेल, विद्वान अधिवक्ता श्री अनिरुद्ध कुमार सिंह, एवं राज्य हेतु विद्वान राज्य अपर शासकीय अधिवक्ता-। को सुना।

2. धारा 482 द.प्र.सं. के अन्तर्गत वर्तमान आवेदन, प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 199/2020, थाना-माँट, जिला-मथुरा, अन्तर्गत धारा 153-ए, धारा 295 ए, धारा 120-बी भा.द.सं. एवं यू.ए.पी.ए. अधिनियम, 1967 की धारा 17, धारा 18 और आईटी अधिनियम, 2008 की धारा 65 और धारा 72 से उत्पन्न सत्र वाद संख्या 2219/2021 में विद्वान विशेष न्यायाधीश, एनआईए/एटीएस/अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश-5, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनाँक 19-12-2022 को रद्द करने की प्रार्थना के साथ प्रस्तुत किया गया है। विद्वान विशेष न्यायाधीश, एनआईए/एटीएस/अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश-5, लखनऊ को सुनवाई का अवसर प्रदान

करने के उपरान्त आवेदक के दिनाँक 19-12-2022 के उन्मोचन प्रार्थनापत्र को गुण-दोष के आधार पर निर्णीत करने का निदेश देने की प्रार्थना की गई है।

3. वाद के तथ्य संक्षेप में यह है कि आवेदक एक पत्रकार है और अझिमुखम.कॉम हेतु काम कर रहा था। और जब वह "हाथरस गैंगरेप" की घटना को कवर करने हेतु रिपोर्टिंग हेतु हाथरस जा रहा था, तो उसे 05-10-2020 को दं.प्र.सं. की धारा 107,116 और 151 के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिया गया, और 06-10-2020 को मथुरा में न्यायालय, उपजिला मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया गया, और तदोपरान्त, उसे दं.प्र.सं. की धारा 167 के अन्तर्गत न्यायिक रिमांड पर भेज दिया गया। यद्यपि, 06-10-2022 को मीडिया में झूठी कहानी प्रसारित की गई कि चार पीएफआई सदस्यों को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया है और तदोपरान्त प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 199/2020 दिनाँक 07-10-2022 धारा 153-ए, 295 ए और 124 भा.द.सं. व यूएपीए अधिनियम की धारा 17 और 18 और आईटी अधिनियम की 65, 72 और 76 के अन्तर्गत दर्ज किया गया था; और तदोपरान्त 02-04-2021 को आरोप पत्र दायर किया गया और वाद में अग्रिम कार्यवाही हुई।

4. आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का कथन है कि दं.प्र.सं. की धारा 207 के अनुपालन हेतु कई आवेदन दायर किए गए थे। और अंततः 07-01-2022 को, आवेदक को मात्र 106 पृष्ठ उपलब्ध कराए गए, और अधिकांश प्रतियां पठनीय नहीं हैं। एतद्पश्चात, आवेदक ने दं.प्र.सं. की धारा 207 का अनुपालन सुनिश्चित करने हेतु विचारण न्यायालय के समक्ष 21-04-2022 और 23-09-2022 को आवेदन प्रस्तुत किया। पुनः उसने कथन प्रस्तुत किया कि सह-अभियुक्त, फिरोज को 4872 पृष्ठ उपलब्ध कराए गए हैं, जबकि आवेदक को इससे वंचित कर दिया गया है और उसे मात्र 106 पृष्ठ उपलब्ध कराए गए हैं।

5. पुनः उसने कथन प्रस्तुत किया कि विचारण न्यायालय ने दं.प्र.सं. की धारा 207 के अनुपालन में अभियोजन कागजात उपलब्ध कराए बिना मामले में अग्रिम कार्यवाही प्रारम्भ कर दी गई और आरोप तय करने हेतु 16-12-2022 की तारीख तय कर दी गई । उसका कथन है कि अभियुक्तगण उस तारीख पर उपस्थित नहीं थे या उन्हें जेल से बुलाया नहीं गया था और इसलिए, मामले को आरोप तय करने हेतु 19-12-2022 हेतु पुनः पोस्ट किया गया है।

6. पुनः उसने तर्क प्रस्तुत किया कि 19-12-2022 को, आवेदक ने अपने अधिवक्ता के माध्यम से विचारण न्यायालय के समक्ष एक उन्मोचन प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया और तदोपरान्त, विचारण न्यायालय ने उन्मोचन प्रार्थनापत्र, जो आवेदक द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 227 के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया था, पर विचार किए बिना आरोप निर्धारित करने की कार्यवाही की और तदोपरान्त 19-12-2022 को ही आरोप निर्धारित कर दिए गए। पुनः उसने अभिकथन प्रस्तुत किया कि यद्यपि आवेदक के अधिवक्ता न्यायालय कक्ष के अंदर बैठे थे, लेकिन न्यायालय ने अपने कक्ष में बैठकर आदेश पारित किया और आवेदक के अधिवक्ता की बात नहीं सुनी गई। अपने तर्कों के समर्थन में उन्होंने पृष्ठ संख्या 21 की ओर ध्यान आकर्षित किया है जिसमें आवेदक के अधिवक्ता द्वारा उसी दिन आपत्ति दर्ज की गई है।

7. उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान आवेदन के ही पृष्ठ 21 की ओर भी आकर्षित किया है, अर्थात विचारण न्यायालय द्वारा पारित एक आदेश कि "श्री राम शंकर द्विवेदी को न्यायमित्र नियुक्त किया जाता है" और कहाकि न तो अभियुक्त की ओर से कोई आवेदन दिया गया था और न ही आवेदक का प्रतिनिधित्व उस के अधिवक्ता के माध्यम से, न्यायमित्र की नियुक्ति हेतु कोई प्रार्थना करने हेतु किया गया था, जैसा कि आदेश से ही स्पष्ट है। इस प्रकार, न्याय मित्र नियुक्त करने का आदेश दं.प्र.सं. की धारा 304 के प्रावधानों के भी विरुद्ध है। दं.प्र.सं. की धारा 304 यहाँ अधोउद्धृत है:-

> **304. कुछ मामलों में अभियुक्त को राज्य के व्यय पर विधिक सहायता**-(1) जहां सेशन न्यायालय के समक्ष किसी विचारण में, अभियुक्त का प्रतिनिधित्व किसी प्लीडर द्वारा नहीं किया जाता है और जहां न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त के पास किसी प्लीडर को नियुक्त करने के लिए पर्याप्त साधन नहीं है, वहां न्यायालय उसकी प्रतिरक्षा के लिए राज्य के व्यय पर प्लीडर उपलब्ध करेगा ।
>
> (2) राज्य सरकार के पूर्व अनुमोदन से उच्च न्यायालय-
>
> (क) उपधारा (1) के अधीन प्रतिरक्षा के लिए प्लीडरों के चयन के ढंग का,
>
> (ख) ऐसे प्लीडरों को न्यायालयों द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं का,
>
> (ग) ऐसे प्लीडरों को सरकार द्वारा संदेय फीसों का और साधारणतः उपधारा (1) के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए,
>
> उपबंध करने वाले नियम बना सकता है ।
>
> (3) राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा यह निदेश दे सकती है कि उस तारीख से, जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाए, उपधारा (1) और (2) के उपबंध राज्य के अन्य न्यायालयों के समक्ष किसी वर्ग के विचारणों के संबंध में वैसे ही लागू

होंगे जैसे वे सेशन न्यायालय के समक्ष विचारणों के संबंध में लागू होते हैं ।

8. उपरोक्त का उल्लेख करते हुए, उसका कथन है कि दं.प्र.सं. की धारा 304 के अन्तर्गत एक विशिष्ट प्रावधान है। यदि अभियुक्त का प्रतिनिधित्व किसी अधिवक्ता द्वारा नहीं किया जाता है या अभियुक्त के पास अधिवक्ता को नियुक्त करने हेतु पर्याप्त साधन नहीं हैं, तो न्यायमित्र नियुक्त किया जा सकता है। उसने कहा कि दोनों शर्तें पूर्ण नहीं होती थी, और इस प्रकार, न्यायमित्र की नियुक्ति अनावश्यक है और दं.प्र.सं. की धारा 304 के प्रावधानों के आशय के विरुद्ध है।

9. उन्होंने यह तर्क भी प्रस्तुत किया कि जहाँ तक दं.प्र.सं. की धारा 227 के प्रावधान का सम्बन्ध है, यदि कोई आवेदन प्रस्तुत किया जाता है, तो उस पर विचार किया जाना चाहिए और निर्णय लिया जाना चाहिए। उनका कथन है कि दं.प्र.सं. की धारा 227 के अन्तर्गत एक आवेदन वर्तमान आवेदक द्वारा दायर किया गया था, जो विचाराधीन था और न्यायालय ने उस पर विचार किए बिना ही आरोप विनिश्चित करने की कार्रवाई प्रारम्भ कर दी है। उनका कथन है कि यह कहना गलत है कि आवेदक के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत उन्मोचन प्रार्थनापत्र पर बल देने हेतु कोई उपस्थित नहीं था। उन्मोचन प्रार्थनापत्र अभी भी लंबित है। पुनः उन्होंने यह तर्क भी प्रस्तुत किया यहाँ तक कि उन्मोचन प्रार्थनापत्र भी अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है और यह न्यायालय पर ही निर्भर है कि यदि न्यायालय मानती है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार नहीं है, तो वह आरोपी को आरोपमुक्त कर देगा। उनका कथन है कि दिनाँक 19-12-2022 के आदेश में, इस तथ्य के संबंध में विवेक के अनुप्रयोग के संबंध में एक भी शब्द नहीं है कि विचारण न्यायालय ने कभी भी यह जानने हेतु अपने विवेक का अनुप्रयोग किया है कि क्या वाद में अग्रिम कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार है।

10. एतद्पश्चात उन्होंने **चंडी पुलिया बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, आपराधिक अपील संख्या 2022 (एसएलपी (आपराधिक) संख्या 9897/2022 से उद्भूत)** के वाद में शीर्ष न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनाँक 12-12-2022 की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, और उपरोक्त निर्णय के प्रस्तर संख्या 3.2, 4, 4.1. और 7 का उल्लेख किया गया है जो अधोउद्धृत हैं: -

3.2 तदनुसार, धारा 227 सहपठित धारा 300(1) द.प्र.सं. के अन्तर्गत एक उन्मोचन प्रार्थनापत्र अपीलार्थी द्वारा विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष दायर किया गया था। विद्वान विचारण न्यायालय ने उक्त प्रार्थनापत्र को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि ऐसी आपत्ति आरोप विनिश्चित करने के चरण में प्रस्तुत की जा सकती है, उन्मोचन के चरण में नहीं। विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश की पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा प्रश्नगत निर्णय और आदेश द्वारा की गई है। इसलिए, वर्तमान अपील प्रस्तुत की गई है।

4. यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि दं.प्र.सं. की धारा 227 के अन्तर्गत उन्मोचन का चरण, आरोप विनिश्चित करने से पूर्व का चरण है और मात्र इसी चरण में न्यायालय दं.प्र.सं. की धारा 300 के अन्तर्गत एक आवेदन पर विचार कर सकती है। यह प्रस्तुत किया गया है कि एक बार जब न्यायालय उन्मोचन प्रार्थनापत्र को खारिज कर देती है, तो वह दं.प्र.सं. की धारा 228 के अन्तर्गत आरोप विनिश्चित करने हेतु कार्यवाही करेगी, और इसके समक्ष एकमात्र प्रश्न अपराध की प्रकृति के बारे में होगा, न कि यह कि अपीलकर्ता ने कोई अपराध नहीं किया है, या धारा 300 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत रोक के कारण उस पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है।

4.1 पुनः यह कथन प्रस्तुत किया गया है कि अधीनस्थ न्यायालयें यह मूल्यांकन करने में विफल रही हैं कि वर्तमान कार्यवाही उन्मोचन कार्यवाही से उत्पन्न होती है और धारा 227 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत उन्मोचन का चरण दं.प्र.सं. की धारा 228 के अन्तर्गत आरोप विनिश्चित करने के चरण से पूर्व का चरण है। यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि जैसा कि इस न्यायालय ने रतिलाल भानजी मिठानी बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1979) 2 एससीसी 179 के मामले में टिप्पणी की एवं धारित किया कि एक बार आरोप विनिश्चित हो जाने के उपरान्त, आरोपी उन्मोचन हेतु प्रार्थना करने से वंचित हो जाता है।

7. दं.प्र.सं. की धारा 227 के निष्पक्ष वाचन, वाद के अभिलेख और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करने पर, और इस संबंध में अभियुक्त और अभियोजन पक्ष के तर्क सुनने के उपरान्त, यदि न्यायाधीश मानते हैं कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने हेतु पर्याप्त आधार नहीं है, तो वह अभियुक्त को उन्मोचित कर देगा और ऐसा करने हेतु कारण लेखबद्ध करेगा। धारा 228 दं.प्र.सं. के अनुसार, मात्र तदोपरान्त और यदि, उपरोक्त विचार और सुनवाई के उपरान्त, न्यायाधीश की राय है कि यह मानने का आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है, तो विचारण न्यायालय आरोप

> *विनिश्चित करेगा। इसलिए, जैसा कि अपीलकर्ता-अभियुक्त की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ दवे ने सही कहा है कि दं.प्र.सं. की धारा 227 के अन्तर्गत उन्मोचित करने का चरण उचित है। यह आरोप विनिश्चित करने से पूर्व का चरण है (दं.प्र.सं. की धारा 228 के अन्तर्गत) और मात्र उसी चरण में न्यायालय धारा 300 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत आवेदन पर विचार कर सकती है।"*

11. उपरोक्त प्रस्तरों का उद्धरण देते हुए, उनका कथन है कि उपरोक्त निर्णय में विधि की स्थापित अवधारणा का विचारण न्यायालय द्वारा उल्लंघन किया गया है, और इस प्रकार उनका कथन है कि जहाँ तक कार्यवाही दिनाँक 19-12-2022 के आदेश के आधार पर तय किए गए आरोपों का संबंध है, विचारण न्यायालय की अब तक की सम्पूर्ण कार्यवाही विधिक दृष्टि सेदोषपूर्ण है, और इस प्रकार, दिनाँक 19-12-2022 के आदेश के साथ-साथ अन्य परिणामी कार्रवाई अपास्त किये जाने योग्य है।

12. दूसरी ओर, विद्वान राज्य अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा उपस्थित होकर उपरोक्त तर्कों का प्रबल विरोध किया गया और कहा गया कि आवेदक के अधिवक्ता के उपस्थित न होने की स्थिति में, न्यायालय ने 19-12-2022 को आदेश पारित किया है। उन्होंने कहा कि ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायालय की कार्य अवधि के दौरान आदेश पारित किया गया और आवेदक के अधिवक्ता बाद में आए। उनका कथन है कि कोई भी उन्मोचन प्रार्थनापत्र पर बल देने हेतु उपस्थित नहीं हुआ, और इस प्रकार, विचारण न्यायालय के पास 19-12-2022 को आदेश पारित करने और दं.प्र.सं. की धारा 228 के अन्तर्गत आगे की कार्यवाही के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं था। पुनः उन्होंने अभिकथन प्रस्तुत किया कि पूरी जाँच के उपरान्त आवेदक के विरुद्ध पर्याप्त सामग्री पाई गई और इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनाँक 19-12-2022 के आदेश में कोई अवैधता या कमजोरी नहीं है।

13. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों पर विचार करने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के अवलोकन के उपरान्त, यह स्पष्ट है कि वर्तमान आवेदक द्वारा दिनाँक 19-12-2022 को उन्मोचन प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया गया था और आदेश दिनाँक 19-12-2022 के परिशीलन, जिसके आधार पर आरोप निर्धारित किए गए, से पता चलता है कि दिनाँक 19-12-2022 की उन्मोचन प्रार्थनापत्र को न्यायालय ने न तो स्वीकार किया और न ही खारिज किया। इसके अलावा, आदेश-पत्र पर नोटिंग से पता चलता है कि आवेदक के अधिवक्ता न्यायालय में उपस्थित थें, किन्तु प्रथमदृष्टया ऐसा लगता है कि उनकी बात नहीं सुनी गई। इस न्यायालय ने इस तथ्य पर भी ध्यान दिया है कि एक अधिवक्ता रमा शंकर द्विवेदी को भी दिनाँक 19-12-2022 को न्यायमित्र के रूप में नियुक्त किया गया था, यद्यपि ऐसी नियुक्ति का कोई अवसर नहीं था।

14. चूँकि दं.प्र.सं. की धारा 227 का प्रावधान स्वयं यह आदेश देता है कि विचारण न्यायालय इस बात पर विचार करेगा कि आरोपी के विरुद्ध कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार है या नहीं और यदि विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि पर्याप्त आधार नहीं है, तो आरोपी को उन्मोचित कर दिया जाएगा। दं.प्र.सं. की धारा 227 अधोउद्धृत है:-

> **227. उन्मोचन**-यदि मामले के अभिलेख और उसके साथ दी गई दस्तावेजों पर विचार कर लेने पर, और इस निमित्त अभियुक्त और अभियोजन के निवेदन की सुनवाई कर लेने के पश्चात न्यायाधीश यह समझता है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है तो वह अभियुक्त को उन्मोचित कर देगा और ऐसा करने के अपने कारणों को लेखबद्ध करेगा।

15. उपरोक्त प्रावधानों पर एक दृष्टि डालने पर, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि उपरोक्त प्रावधानों में आदेश पारित करते समय, विचारण न्यायालय निम्नलिखित पर विचार करेगा;-

> सर्वप्रथम, वाद का अभिलेख और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेज़;
> द्वितीय, अभियुक्त के तर्क;
> एवं तृतीय, अभियोजन पक्ष के तर्क।

16. यह स्थापित विधि है कि इस प्रकार के विचार के उपरान्त भी, दो दृष्टिकोण संभव हैं और यदि उनमें से एक संदेह को जन्म देता है, जो गंभीर संदेह से अलग है, तो विचारण न्यायाधीश को इस प्रश्न पर विचार किए बिना आरोपी को उन्मोचित करने का अधिकार है कि अभियोजन पक्ष का वाद बनता है अथवा नहीं।

17. इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि आरोपमुक्त करने पर न्यायिक विवेक के अनुप्रयोग के उपरान्त, विचारण न्यायाधीश अगली कार्यवाही यानी आरोप तय करने में प्रवेश करेगा। यह दं.प्र.सं. की धारा 228 के शब्दों से प्रथम दृष्टया स्पष्ट है। यानी "आरोप का विरचन" और " यदि पूर्वोक्त रूप से विचार और सुनवाई के पश्चात", दं.प्र.सं. की धारा 227 की प्रक्रिया अत्यन्त महत्वपूर्ण है और इसे विचारण न्यायालय द्वारा छोड़ा नहीं जा सकता है। विधायिका की मंशा बिल्कुल स्पष्ट है कि दं.प्र.सं. की धारा 227 में जो प्रक्रिया निर्धारित है। अभियुक्त को उन्मोचित करना वास्तव में रक्षाकवच और संकेतक है ताकि जिस व्यक्ति पर अपराध करने का आरोप लगाया गया है, उसे वाद की कार्यवाही का सामना

करने हेतु प्रताड़ित न किया जा सके। इसलिए, दं.प्र.सं. की धारा 227 के अन्तर्गत आदेश पारित करने हेतु विवेक के अनुप्रयोग करने के साथ-साथ कारणों को भी लेखबद्ध करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है, जिसका ध्यान विचारण न्यायालय को रखना है।

18. इसके अतिरिक्त, अभियुक्त हेतु यह भी आवश्यक नहीं है कि उसे उन्मोचन हेतु प्रार्थनापत्र प्रस्तुत करना ही होगा। यहाँ तक कि ऐसी स्थिति में भी कि जब उन्मोचन हेतु करने हेतु कोई प्रार्थनापत्र प्रस्तुत नहीं किया गया है, तो भी विचारण न्यायालय को यह तय करना होगा कि क्या आरोपी के विरुद्ध आरोप विरचित करने हेतु पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। किन्तु इस स्तर पर एक अनिवार्य शर्त है कि आरोपी को सुनवाई का अवसर दिया जाएगा।

19. दिनाँक 19-12-2022 के आदेश के परिशीलन से पता चलता है कि विचारण न्यायालय द्वारा यह अभिलिखित किया गया है कि दं.प्र.सं. की धारा 227 के अन्तर्गत दायर आवेदन पर बल देने हेतु कोई भी उपस्थित नहीं है। परन्तु आवेदक के अधिवक्ता ने उल्लेख किया कि वह न्यायालय में उपस्थित था और उसकी बात नहीं सुनी गई।

20. इसके अतिरिक्त जहाँ तक न्यायमित्र की नियुक्ति का सवाल है, दं.प्र.सं. की धारा 304 के प्रावधानों के अनुसार, दो शर्तें हैं, जिसमें न्यायमित्र की नियुक्ति की जा सकती है, और जहाँ तक वर्तमान मामले का संबंध है, प्रथम दृष्टया, ऐसी कोई भी शर्त पूरी होती प्रदर्शित नहीं होती है। दिनाँक 19-12-2022 के आदेश के परिशीलन से पता चलता है कि न्याय मित्र की नियुक्ति करते समय, विचारण न्यायालय ने दं.प्र.सं. की धारा 304 में संकल्पित अत्यावश्यकता का उल्लेख नहीं किया और न्यायमित्र की नियुक्ति करते समय न्यायिक विवेक का प्रयोग नहीं किया गया है।

21. यह उल्लेखनीय है कि बार-बार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह धारित किया है कि यदि विधि किसी भी बात को किसी विशेष रीति से करने का प्रावधान करता है, तो उसे मात्र उसी रीति से किया जाना चाहिए, अन्यथा नहीं, और इस प्रकार दिनाँक 19-12-2022 का प्रश्नगत आदेश माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के विरूद्ध है।

22. अब, यह विधि की स्थापित अवधारणा है कि विचारण न्यायालय को मुकदमे को निष्पक्ष रखने हेतु हर संभव प्रयास करना होगा, लेकिन आरोप विरचित करने के क्रम में, कुछ अवैधताएँ और अस्पष्टताएँ स्पष्ट हैं और इसलिए, आदेश दिनाँक 19-12-2022 प्रथम दृष्टया, अपोषणीय प्रतीत होता है, और इसलिए दिनाँक 19-12-2022 के आदेश को अपास्त किया जाता है।

23. परिणामस्वरूप, प्रार्थी के उन्मोचन प्रार्थनापत्र दिनाँक 19-12-2022 पर नए सिरे से निर्णय लेने हेतु मामले को विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया जाता है। दिनाँक 19-12-2022 के उन्मोचन प्रार्थनापत्र पर सुनवाई हेतु संबंधित पक्षों को 27-12-2022 को विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का निदेश दिया जाता है। आवेदक के अधिवक्ता भी उक्त तिथि पर विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहेंगे और पक्षकारों को सुनने के उपरान्त विचारण न्यायालय वाद में अग्रेतर कार्यवाही करेगा।। संबंधित पक्ष या उनके अधिवक्ता उक्त तिथि पर किसी भी स्थगन की माँग नहीं करेंगे।

24. उपरोक्त टिप्पणियों के साथ वर्तमान प्रार्थनापत्र स्वीकृत किया जाता है।

25. यह स्पष्ट किया जाता है कि ऊपर की गई टिप्पणियों का विचारण न्यायालय के समक्ष विचाराधीन मामले के गुण दोष पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(2023) 1 ILRA 806

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 30.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद

प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 378 संख्या 109/2022

उत्तर प्रदेश राज्य ... आवेदक

बनाम

हफीजुल्लाह ... विपक्षी

आवेदक की ओर से अधिवक्ता:

जी.ए.

विपक्षी के लिए अधिवक्ता: -

आपराधिक कानून – आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा - 378, - उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम, 1986 - धारा 14, 14(1), 15, 15(2), 16, 16(1), 17 & 18 - अपील की अनुमति के लिए प्रार्थना पत्र - रिहाई के आक्षेपित आदेश के खिलाफ - पुलिस रिपोर्ट - जिलाधिकारी ने संपत्ति कुर्की की कार्यवाही शुरू की - कुर्की के खिलाफ प्रत्यावेदन - अस्वीकृत - संदर्भ - अवर न्यायालय ने पाया कि, जिस संपत्ति को कुर्की का विषय बनाया जा रहा है, वह किसी गैंगस्टर द्वारा अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के परिणामस्वरूप अर्जित नहीं

की गई थी - न्यायिक जांच की शक्ति प्रदान करने के पीछे उद्देश्य शक्ति के मनमाने ढंग से प्रयोग को रोकना और कानून के शासन को बहाल करना है - न्यायालय ने पाया कि, जिला मजिस्ट्रेट संलग्न संपत्ति के संबंध में विश्वास करने का कारण होने पर अपनी संतुष्टि दर्ज करने में विफल रहा है। अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कमीशन के परिणामस्वरूप प्रतिवादी, - इसलिए, निचली अदालत के फैसला अवैध नहीं कहा जा सकता है, और यह अभिलेख पर मजूद सामग्री पर आधारित नहीं है ऐसा नहीं कहा जा सकता - परिणामस्वरूप, अपील की अनुमति खारिज कर दी गई है।

(अनुच्छेद – 8, 10, 11, 13)

<u>परिणाम:</u> - अपील खारिज । (ई-11)

<u>संदर्भित मामलों की सूची:-</u>

1. श्रीमती मियां देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2013 (83) एसीसी 902,
2. श्रीमती शांति देवी पत्नी श्री राम बनाम उ0प्र0 राज्य (2007 (2) एएलजे 483 (एएलएल)।

(माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद द्वारा पारित)

1. मामले को पुनरीक्षित पुकार में लिया गया। विपक्षी की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं है।

2. राज्य-अपीलकर्ता की ओर से विद्वान एजीए-प्रथम श्री प्रेम प्रकाश को सुना तथा अभिलेख का अवलोकन किया।

3. उत्तर प्रदेश गैंगस्टर्स और असामाजिक गतिविधि (रोकथाम) अधिनियम, 1986 की धारा 378 के साथ पठित धारा 378 दं0प्र0सं0 के तहत अपील की अनुमति के लिए वर्तमान प्रार्थना पत्र को राज्य-अपीलकर्ता द्वारा जिलाधिकारी के आदेश दिनांकित 24.11.2020 के सन्दर्भ में मुकदमा अपराध संख्या 153/2020, अन्तर्गत धारा 16 (1) यूपी गैंगस्टर अधिनियम, 1986 (इसके बाद 'अधिनियम' के रूप में संदर्भित), पुलिस स्टेशन फखरपुर, जिला बहराइच से उत्पन्न आपराधिक विविध मुकदमासंख्या 484/2020, राज्य बनाम हाफिजुल्ला में विशेष न्यायाधीश, गैंगस्टर एक्ट, बहराईच द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 10.03.2022 के खिलाफ दायर किया गया है। विद्वान विशेष न्यायाधीश ने अपने आदेश दिनांक 10.3.2022 के तहत जिलाधिकारी, बहराइच द्वारा पारित दिनांक 8.9.2020 और 24.11.2020 के आदेशों को रद्द कर दिया और विपक्षी-हफीजुल्ला के पक्ष में घर को रिहा कर दिया।

4. संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि पुलिस अधीक्षक, बहराइच की रिपोर्ट दिनांक 4.9.2020 पर जिलाधिकारी, बहराइच ने अधिनियम की धारा 14 (1) के तहत कार्यवाही शुरू की और विपक्षी के घर को कुर्क कर लिया गया क्योंकि यह पाया गया कि कुर्क की गई संपत्ति आपराधिक अपराध करके अर्जित की गई थी। विपक्षी ने कुर्की के आदेश के खिलाफ आपत्ति दर्ज की और यह रुख अपनाया कि दिनांक 24.11.2020 का आदेश जिलाधिकारी द्वारा विपक्षी द्वारा लिए गए दस्तावेजों और दलीलों पर विचार किए बिना पारित किया गया था।

5. **श्रीमती मैना देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2013 (83) एसीसी 902** और **श्रीमती शांति देवी पत्नी श्री राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2007 (2) एएलजे 483 (एएलएल)** के मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद अवर न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंची कि कुर्की गई घर विपक्षी की एकमात्र संपत्ति है और अभियोजन पक्ष साबित करने में विफल रहा है यह मामला है कि विचाराधीन घर, जिसे संलग्न किया गया था, अपराध करने के बाद धन जमा करने के बाद विपक्षी द्वारा अधिग्रहित किया गया था। यह स्थापित कानून है कि अधिनियम की धारा 14 के तहत कुर्की का विषय बनाई जा रही संपत्ति एक गैंगस्टर द्वारा अर्जित की जानी चाहिए और वह भी अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कारित द्वारा।

6. विद्वान ए.जी.ए.-1 ने जोरदार तर्क दिया है कि विद्वान अवर न्यायालय ने अभिलेख पर सामग्री की अवलोकन नहीं करके गलती की है। जिलाधिकारी, बहराइच ने पूरी तरह से संतुष्ट होने के बाद दिनांक 24.11.2020 को आदेश पारित किया है कि विपक्षी ने अवैध तरीकों से संपत्ति का अधिग्रहण किया है और गैंगस्टर अधिनियम के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया है।

7. गैंगस्टर अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों का उल्लेख करना उचित और समीचीन प्रतीत होता है जो निम्नानुसार हैं:

> **14. संपत्ति की कुर्की-** (1) यदि जिलाधिकारी के पास यह विश्वास करने का कारण है कि किसी व्यक्ति के कब्जे में कोई संपत्ति, चाहे वह चल या अचल हो, इस अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कमीशन के परिणामस्वरूप एक गैंगस्टर द्वारा अर्जित की गई है, तो वह ऐसी संपत्ति की कुर्की का आदेश दे सकेगा, चाहे किसी भी न्यायालय द्वारा ऐसे अपराध का संज्ञान लिया गया हो या नहीं।
>
> (2) संहिता के उपबंध ऐसे प्रत्येक अनुलग्नक पर यथोचित परिवर्तनों के साथ लागू होंगे।
>
> (3) संहिता के उपबन्धों के होते हुए भी, जिलाधिकारी उपधारा (1) के अधीन कुर्क

अप्रमाणित

की गई किसी संपत्ति का प्रशासक नियुक्त कर सकेगा और प्रशासक को ऐसी संपत्ति को उसके सर्वोत्तम हित में प्रशासित करने की सभी शक्तियाँ होंगी।

(4) जिलाधिकारी ऐसी संपत्ति के उचित और प्रभावी प्रशासन के लिए प्रशासक को पुलिस सहायता प्रदान कर सकता है।

15. संपत्ति की मुक्ति- (1) जहां धारा 14 के अधीन कोई संपत्ति कुर्क की जाती है वहां उसका दावाकर्ता, ऐसी कुर्की की जानकारी होने की तारीख से तीन मास के भीतर, जिलाधिकारी को उन परिस्थितियों और उन स्रोतों को दर्शाते हुए अभ्यावेदन कर सकेगा जिनके द्वारा ऐसी संपत्ति उसके द्वारा अर्जित की गई थी ।

(2) यदि जिलाधिकारी उपधारा (1) के अधीन किए गए दावे की वास्तविकता के बारे में संतुष्ट है तो वह संपत्ति को कुर्की से तुरंत मुक्त करेगा और उसके बाद ऐसी संपत्ति दावेदार को सौंप दी जाएगी।

16. न्यायालय द्वारा संपत्ति के अर्जन के चरित्र की जांच करना-

(1) जहाँ धारा 15 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर कोई अभ्यावेदन नहीं किया जाता है या जिलाधिकारी धारा 15 की उपधारा (2) के अधीन संपत्ति को निर्मुक्त नहीं करता है वहाँ वह अपनी रिपोर्ट सहित उस मामले को न्यायालय को, जिसकी अधिकारिता है, इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध का विचारण करेगा।

(2) जहाँ जिलाधिकारी ने धारा 14 की उपधारा (1) के अधीन कोई सम्पत्ति कुर्क करने से मना कर दिया है या धारा 15 की उपधारा (2) के अधीन किसी सम्पत्ति को निर्मुक्त करने का आदेश दिया है वहाँ राज्य सरकार या ऐसे इन्कार या निर्मुक्ति से व्यथित कोई व्यक्ति उपधारा (1) में निर्दिष्ट न्यायालय को इस बात की जाँच करने के लिये प्रार्थना पत्र कर सकेगा कि क्या सम्पत्ति किसी अपराध के किए जाने के द्वारा या उसके परिणामस्वरूप अजत की गई थी इस अधिनियम के तहत विचारणीय है। ऐसा न्यायालय, यदि ऐसा करने के लिए न्याय के हित में आवश्यक या समीचीन समझता है, तो ऐसी संपत्ति की कुर्की का आदेश दे सकता है।

(3) (ए) उपधारा (1) के अधीन संदर्भ या उपधारा (2) के अधीन प्रार्थना पत्र प्राप्त होने पर, न्यायालय जांच की तारीख नियत करेगा और उपधारा (2) के अधीन प्रार्थना पत्र करने वाले व्यक्ति को या, यथास्थिति, धारा 15 के अधीन अभ्यावेदन करने वाले व्यक्ति को और राज्य सरकार को उसकी सूचनाएं देगा,और किसी अन्य व्यक्ति को भी जिसका हित मामले में शामिल प्रतीत होता है।

(बी) इस प्रकार नियत तारीख को या किसी परवर्ती तारीख को, जिस तक जांच स्थगित की जाए, न्यायालय पक्षकारों की सुनवाई करेगा, उनके द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य प्राप्त करेगा, ऐसे और साक्ष्य लेगा जो वह आवश्यक समझे, यह विनिश्चय करेगा कि क्या संपत्ति इस अधिनियम के अधीन विचारणीय अपराध किए जाने के परिणामस्वरूप किसी गैंगस्टर द्वारा अजत की गई थी और धारा 17 के अधीन ऐसा आदेश पारित करेगा जो इस अधिनियम के अधीन विचारणीय न्यायोचित और आवश्यक हो। मामले की परिस्थितियां।

(4) उपधारा (3) के अधीन जांच के प्रयोजन के लिये, निम्नलिखित विषयों के संबंध में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का अधिनियम सं. V) के अधीन किसी वाद का विचारण करते समय न्यायालय को सिविल न्यायालय की शक्ति होगी, अर्थात:

(ए) किसी व्यक्ति को बुलाना और उसकी उपस्थिति को प्रवृत्त करना और शपथ पर उसकी परीक्षा करना;

(बी) दस्तावेजों की खोज और उत्पादन की आवश्यकता है;

(सी) शपथ पत्र पर साक्ष्य प्राप्त करना;

(डी) किसी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रति की मांग करना;

(ई) साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन जारी करना;

(एफ) किसी संदर्भ को चूक के लिए खारिज करना या उसे एकपक्षीय रूप से विनिश्चित करना;

(जी) चूक या पूर्व पक्षीय निर्णय के लिए बर्खास्तगी के आदेश को अलग रखना।

(5) इस धारा के अधीन किसी कार्यवाही में, यह साबित करने का भार कि प्रश्नगत संपत्ति या उसका कोई भाग इस अधिनियम के अधीन विचारणीय किसी अपराध के किए जाने के परिणामस्वरूप किसी गैंगस्टर द्वारा अधिगृहीत नहीं किया गया था, भारतीय साक्ष्य अधिनियम,1872(1872 का अधिनियम संख्या 1) में अन्तर्विष्ट कुछ भी विवाद, इसके बावजूद संपत्ति का दावा करने वाले व्यक्ति पर होगा।

17. जांच के बाद आदेश- *यदि ऐसी जांच के बाद न्यायालय यह पाता है कि संपत्ति इस अधिनियम के तहत विचारणीय किसी अपराध के कमीशन के परिणामस्वरूप गैंगस्टर द्वारा अर्जित नहीं की गई थी, तो वह उस व्यक्ति की संपत्ति को मुक्त करने का आदेश देगा जिसके कब्जे से वह कुर्क की गई थी। किसी अन्य मामले में न्यायालय संपत्ति के निपटान के लिए ऐसा आदेश दे सकता है जो वह संपत्ति के कब्जे के हकदार किसी व्यक्ति को कुर्की, जब्ती या परिदान द्वारा या अन्यथा उसके निपटान के लिए उचित समझे।*

8. अब यह अच्छी तरह से तय है कि संपत्ति को अधिनियम की धारा 14 के तहत कुर्की का विषय बनाया जा रहा है, एक गैंगस्टर द्वारा अर्जित किया जाना चाहिए और वह भी अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कमीशन द्वारा। जिलाधिकारी को इस बिंदु पर अपनी

संतुष्टि दर्ज करनी होगी। जिलाधिकारी की संतुष्टि किसी भी अपील में चुनौती देने के लिए खुली नहीं है। अधिनियम की धारा 15 के तहत स्वयं जिलाधिकारी के समक्ष केवल एक अभ्यावेदन प्रदान किया जाता है और यदि वह इस तरह के अभ्यावेदन पर संपत्ति को जारी करने से इनकार करता है, तो उसे अधिनियम के तहत अपराध का विचारण करने के लिए क्षेत्राधिकार रखने वाले न्यायालय को संदर्भ देना होगा। न्यायालय को, अधिनियम की धारा 15 की उप-धारा (2) के तहत किए गए संदर्भ से निपटने के दौरान यह देखना होगा कि क्या संपत्ति अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कमीशन के परिणामस्वरूप गैंगस्टर द्वारा अर्जित की गई थी और उसे प्रश्न में प्रवेश करना होगा और अधिनियम की धारा 16 के तहत उसके द्वारा की गई जांच के आधार पर अपना निष्कर्ष दर्ज करना होगा। यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि संपत्ति अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कमीशन के परिणामस्वरूप गैंगस्टर द्वारा अर्जित नहीं की गई थी, तो न्यायालय उस व्यक्ति के पक्ष में संपत्ति को मुक्त करने का आदेश देगी जिसके कब्जे से वह कुर्क की गई थी।

9. संहिता की धारा 16 के तहत न्यायिक जांच की शक्ति प्रदान करने के पीछे का उद्देश्य जिलाधिकारी द्वारा किसी व्यक्ति को उसकी संपत्तियों से वंचित करने और कानून के शासन को बहाल करने में शक्ति के मनमाने प्रयोग की जांच करना है, इसलिए प्रश्न के संबंध में सच्चाई का पता लगाने के लिए औपचारिक जांच करने के लिए न्यायालय पर एक भारी कर्तव्य है,क्या संपत्ति अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कमीशन द्वारा या उसके परिणामस्वरूप अर्जित की गई थी। अधिनियम की धारा 17 के तहत पारित किए जाने वाले आदेश में न्यायालय के निष्कर्षों के समर्थन में कारणों और सबूतों का खुलासा करना चाहिए। न्यायालय को डाकघर या राज्य या जिलाधिकारी के मुखपत्र के रूप में कार्य करने का अधिकार नहीं है। यदि किसी व्यक्ति का उस अवधि के दौरान कोई आपराधिक इतिहास नहीं है, जब तक कि उसके द्वारा संपत्ति का अधिग्रहण नहीं किया गया था, तो संपत्ति को अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कमीशन के परिणामस्वरूप या उसके परिणामस्वरूप अर्जित संपत्ति के रूप में कैसे रखा जा सकता है, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसका उत्तर न्यायालय द्वारा दिया जाना है। उपरोक्त प्रश्न के अलावा, न्यायालय द्वारा विचार किया जाने वाला दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या अधिनियम के तहत आरोपी के खिलाफ मामला दर्ज होने से पहले या गैंगस्टर चार्ट के पहले मामले के पंजीकरण से पहले अर्जित की गई संपत्ति को अधिनियम की धारा 14 के तहत जिलाधिकारी द्वारा कुर्क किया जा सकता है।

10. अधिनियम की धारा 14 के प्रावधान, जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है, जिलाधिकारी को इस अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के परिणामस्वरूप गैंगस्टर द्वारा अर्जित संपत्ति को कुर्क करने का अधिकार देता है। जिलाधिकारी किसी भी संपत्ति के लिए एक मालिक को नियुक्त कर सकता है, ऐसी संपत्ति को उसके सर्वोत्तम हित में प्रशासित करने के लिए, लेकिन यह विश्वास करने का कारण होना चाहिए कि किसी भी व्यक्ति के कब्जे में चल या अचल संपत्ति, एक गैंगस्टर द्वारा अपराध के कारित करने के परिणामस्वरूप अर्जित की गई है, इस अधिनियम के तहत विचारणीय लेकिन आक्षेपित आदेश में जिलाधिकारी ने संलग्न संपत्ति के संबंध में यह विश्वास करने का कारण बताते हुए अपनी संतुष्टि दर्ज नहीं की है कि इसे गैंगस्टर अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कारित करने के परिणामस्वरूप विपक्षी द्वारा अधिग्रहित (अर्जित) किया गया था ।

11. कानून के पूर्वोक्त स्थापित प्रस्ताव को ध्यान में रखते हुए, मेरा विचार है कि अवर न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण एक संभावित और तार्किक दृष्टिकोण था, जो वैध कारणों और इस संबंध में प्रतिपादित कानून पर आधारित है। अवर न्यायालय के फैसले को अवैध, अतार्किक और असंभव नहीं कहा जा सकता है और यह अभिलेख पर मौजूद सामग्री पर आधारित नहीं है या गलत विचारों पर आधारित है और कानून की स्थापित स्थिति के खिलाफ है। इसलिए, यह न्यायालय संतुष्ट है कि इस अपील में सफलता की कोई उम्मीद नहीं है और तदनुसार, किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

12. अपील की अनुमति देने से इनकार कर दिया जाता है।

13. अपील की अनुमति के लिए प्रार्थना पत्र **निरस्त** किया जाता है।

14. तदनुसार, अपील पोषणीय नहीं है, और उपरोक्त के मद्देनजर, अपील **खारिज** की जाती है ।

15. लागत के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं ।

16. इस फैसले की प्रति इसके अनुपालन हेतु अवरन्यायालय को प्रेषित की जाए ।

(2023) 1 ILRA 810
अपील न्यायिक क्षेत्र
आपराधिक पक्ष
दिनांक: लखनऊ 13.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा,
माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सरोज यादव,

आपराधिक अपील संख्या 530/2004

मो. असलम ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता:
श्री आर.बी.एस. राठौड़ (न्याय मित्र)

अधिवक्ता प्रतिवादी:
अपर शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 3- वाद परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है, क्योंकि अपराध का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है- मृतिका खैरुन्निसा के भाई द्वारा धारा 156 (3) सी.आर.पी.सी. के तहत दायर एक आवेदन पर पारित आदेश के अनुसार अपराध की एफआईआर दर्ज की गई -परिस्थितिजन्य साक्ष्यों के आधार पर अपराध सिद्ध करने के लिए सभी परिस्थितियों में यह दर्शाया जाना चाहिए कि अपराध कारित करने वाला अभियुक्त एवं अभियुक्त ही है तथा किसी अन्य द्वारा अपराध किये जाने की सम्भावना नहीं है। परिस्थितियों की श्रृंखला पूरी होनी चाहिए और उचित संदेह की कोई छाया नहीं होनी चाहिए - अभियोजन पक्ष उन परिस्थितियों को साबित करने में विफल रहा है जो इस निष्कर्ष पर पहुंचीं कि अपीलकर्ता/दोषी ने सभी चार मृत व्यक्तियों को मांस में जहर देकर मार डाला।

यह स्थापित कानून है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर किसी वाद में अभियोजन पक्ष को उन सभी परिस्थितियों को एक श्रृंखला में जोड़ना होगा जो अभियुक्त की दोषमुक्ति के लिए आगे बढ़ती हैं। (पैरा 7,8,11,12)

आपराधिक अपील स्वीकृत। (ई-3)

<u>केस कानून/निर्णयों पर निर्भरता व्यक्तः-</u>
1. शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 1984 (एससी) 1622।
2. रामगोपाल बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 1972 (एससी) 656. (उद्धृत)
3. शिवाजी चिंताप्पा पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2021)5 एससीसी 626

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सरोज यादव, द्वारा प्रदत्त)

(यह निर्णय माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा, द्वारा इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 के नियम (1) के अध्याय VII उप-नियम (2) के संदर्भ में सुनाया गया है।)

1. यह आपराधिक अपील एकमात्र अपीलकर्ता/ दोषसिद्ध मोहम्मदअसलम द्वारा अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, त्वरित न्यायालय संख्या 5, जिला हरदोई द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1861 (संक्षेप में भा०दं०सं०) की धारा 302 के अन्तर्गत पुलिस स्टेशन मल्लावां जिला हरदोई में 2002 के सत्र परीक्षण संख्या 241 , 2001 के अपराध संख्या 318, में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 30.01.2004 के विरुद्ध दायर की गई है, जिसके अन्तर्गत अपीलकर्ता को भा०दं०सं० की धारा 302 के अन्तर्गत दोषी ठहराया गया है एवं आजीवन कारावास के साथ 10,000/- रुपये का जुर्माना एवं जुर्माना न देने पर दो वर्ष के अतिरिक्त कारावास का दंडादेश प्रदान किया गया है।

2. इस अपील के निस्तारण हेतु आवश्यक तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं:-

(i) भा०दं०सं० की धारा 302 के अन्तर्गत मुकदमा अपराध संख्या 318/2001 में द०प्र०सं० की धारा 156(3) के अन्तर्गत शिकायतकर्ता अब्दुल सत्तार द्वारा प्रस्तुत प्रार्थना पत्र पर विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, हरदोई द्वारा पारित आदेश के अनुपालन में पुलिस स्टेशन मल्लावां, जिला हरदोई में प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 22.12.2001 को अभिलिखित की गई थी। प्रार्थना पत्र / प्रथम सूचना रिपोर्ट में कहा गया था कि वादी की बहन खैरुन्निसा की शादी मोहम्मद सलीस निवासी ग्राम पुरवयां, थाना मल्लावां, जिला हरदोई से हुई थी। मोहम्मद असलम उनके बहनोई मोहम्मद सलीस के सगे भाई हैं। उसके जीजा एवं सलीस मोहम्मद असलम के बीच धन संबंधी विवाद था, क्योंकि मोहम्मद सलीस ने आलू की फसल के समय मोहम्मद असलम को 25,000 रुपये ऋणस्वरूप दिये थे। मोहम्मद असलम घाटे का जिक्र करते हुए धन नहीं लौटा रहा था। जब भी वह (वादी) मोहम्मद सालिस से अपने 10,000/- रुपये के विषय में पूछता था, तो मोहम्मद सलीस उत्तर देता था कि जब भी मोहम्मद असलम पैसे लौटाएगा वह उसे (वादी) धन लौटा देगा। मोहम्मद सलीस ने वादी को बताया कि जब भी वह धन के विषय में पूछता था तो मोहम्मद असलम बहाने बनाता था एवं जान से मारने की धमकी देता था।

(ii) 13.01.2001 को दोपहर में मो. असलम भैंस का मांस लाया एवं शिकायतकर्ता की बहन खैरुन्निसा को पकाने के लिए दिया। मांस देने के बाद वह किसी जरूरी काम का बहाना बनाकर घर से बाहर चला गया। उस मांस को खाने के बाद शिकायतकर्ता के बहनोई मोहम्मद सलीस, बहन खैरुन्निसा, भांजा अजमेरी एवं भांजी गुलशन की मौत हो गई। मल्लावां ले जाते समय अजमेरी एवं

गुलशन की मौत हो गई, जबकि मो. सलीस एवं खैरुन्निसा की मौत हरदोई में हो गई। वह (वादी) मल्लावां में अपनी बहन एवं जीजा से मिला क्योंकि उस समय वह मल्लावां में था। उसकी बहन एवं बहनोई ने बताया कि मोहम्मद असलम धन लौटाना नहीं चाहता था, इसलिए उसने मांस में विष मिला दिया था। इस घटना से पूर्व मोहम्मद असलम ने अपनी पत्नी को उसके मायके में छोड़ दिया था। उसने घटना की सूचना थाना मल्लावां में दी लेकिन कोई कार्रवाई नहीं हुई। पुनः उसने कई उच्च अधिकारियों को इसकी जानकारी दी, लेकिन कोई कार्रवाई नहीं हुई। इसलिए उन्होंने द०प्र०सं० की धारा 156 (3) के अन्तर्गत एक प्रार्थना पत्र दिया एवं प्रथम सूचना रिपोर्ट अभिलिखित करने का अनुरोध किया।

(iii) अभिलेख से स्पष्ट है कि दिनांक 13.01.2001 को थाना मल्लावां जिला हरदोई की पुलिस ने जिला अस्पताल हरदोई से प्राप्त सूचना के आधार पर सभी चार मृत व्यक्तियों के पंचायतनामों को तैयार किया। सूचना देने वाले शख्स का नाम कृष्ण कुमार है, जो जिला अस्पताल हरदोई का वार्ड ब्वॉय है। चारों लोगों के पंचायतनामे में इस तथ्य का उल्लेख किया गया है। पंचायतनामा तैयार करने के उपरांत पुलिस ने आवश्यक दस्तावेज तैयार किए एवं शवों को पोस्टमॉर्टम हेतु भेज दिया। पुलिस भी घटनास्थल पर पहुँची एवं मृत व्यक्तियों के घर के अंदर पाए गए मांस का कुछ भाग जब्त कर लिया एवं उसका फर्द बरामदगी तैयार किया।

(iv) प्रथम सूचना रिपोर्ट अभिलिखित होने के उपरान्त अन्वेषण प्रारम्भ हुआ। अन्वेषण अधिकारी ने घटना स्थल का नक्शा नजरी तैयार किया, साक्षियों के बयान अभिलिखित किए एवं अभियुक्त -अपीलकर्ता के विरुद्ध भा०दं०सं० की धारा 302 के अन्तर्गत उपरोक्त चार मृत व्यक्तियों की हत्या के अपराध के संबंध में आरोप पत्र प्रस्तुत किया। संबंधित मजिस्ट्रेट ने आरोप पत्र पर संज्ञान लेने के बाद मामले को सुनवाई हेतु सत्र न्यायालय को सौंप दिया, जिसने मामले को अपर सत्र न्यायाधीश के पास सुनवाई के लिए स्थानांतरित कर दिया। अपर सत्र न्यायाधीश ने भा०दं०सं० की धारा 302 के अन्तर्गत आरोप विरचित किया।

अभियुक्त ने अपराध से इनकार किया एवं मुकदमा चलाये जाने का दावा किया। अभियोजन पक्ष ने अपने वाद को सिद्ध करने हेतु निम्नलिखित साक्षियों का परीक्षण किया: -

(क) अभियोजन साक्षी-1 अब्दुल सत्तार, शिकायतकर्ता।

(ख) अ०सा०-2 नफ़ीज़ अहमद।

(ग) अ०सा०-3 डॉक्टर सी.पी. रावत, जिन्होनें पोस्टमार्टम किया।

(घ) अ०सा०-4 रईस अहमद।

(ड.) अ०सा०5 सिराजुद्दीन।

(च) अ०सा०6 उपनिरीक्षक संतोष कुमार दीक्षित।

(छ) अ०सा०7 उपनिरीक्षक एस.एन. सिंह।

(ज) अ०सा०8 उपनिरीक्षक सी.एस.सक्सेना।

(झ) अ०सा०9 उपनिरीक्षक एस.के. दीक्षित।

(v) उपरोक्त मौखिक साक्ष्यों के अतिरिक्त, अभियोजन पक्ष ने प्रासंगिक दस्तावेजों को भी प्रदर्श क-1 से क-34 के रूप में सिद्ध किया, जो इस प्रकार हैं:-

(1) प्रदर्श क-1, द०प्र०सं० की धारा 156(3) के अन्तर्गत प्रार्थनापत्र की छाया प्रति।

(2) प्रदर्श क-2, मृतक सलीस की पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट।

(3) प्रदर्श क-3, मृतका खैरुन्निसा की पोस्टमार्टम रिपोर्ट।

(4) प्रदर्श क-4, मृतका गुलशन की पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट।

(5) प्रदर्श क- 5, मृतक अजमेरी की पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट।

(6) प्रदर्श क- 6 मृतक सलीस का पंचायतनामा।

(7) प्रदर्श क- 7 मृतका खैरुन्निसा का पंचायतनामा।

(8) प्रदर्श क- 8 मृतक गुलशन का पंचायतनामा।

(9) प्रदर्श क- 9 मृतक अज़मेरी का पंचायतनामा।

(10) प्रदर्श क- 10 मृतक सलीस के पोस्टमॉर्टम हेतु प्रतिसार निरीक्षक को पत्र।

(11) प्रदर्श क- 11 मृतक सलीस का पोस्टमॉर्टम हेतु मुख्य चिकित्सा अधिकारी को पत्र।

(12) प्रदर्श क- 12 मृतक सलीस का चालान नाश।

(13) प्रदर्श क- 13 मृतक सलीस का फोटो नाश।

(14) प्रदर्श क- 14 मृतक सलीस की नमूना मुहर।

(15) प्रदर्श क- 15 मृतका खैरुन्निसा का फोटो नाश।

(16) प्रदर्श क- 16 मृतका खैरुन्निसा का चालान नाश।

(17) प्रदर्श क- 17 मृतका खैरुन्निसा के विषय में प्रतिसार निरीक्षक को पत्र।

(18) प्रदर्श क-18 मृतका खैरुन्निसा के पोस्टमॉर्टम हेतु मुख्य चिकित्साधिकारी को पत्र।

(19) प्रदर्श क-19 मृतका खैरुन्निसा की नमूना मुहर।

(20) प्रदर्श क-20 मृतका गुलशन के पोस्टमॉर्टम हेतु मुख्य चिकित्सा अधिकारी को पत्र।

(21) प्रदर्श क- 21 मृतका गुलशन के पोस्टमार्टम हेतु प्रतिसार निरीक्षक को पत्र।
(22) प्रदर्श क- 22 मृतका गुलशन का चालान नाश।
(23) प्रदर्श क- 23 मृतका गुलशन का फोटो नाश।
(24) प्रदर्श क- 24 मृतका गुलशन का नमूना मुहर।
(25) प्रदर्श क- 25मृतक अजमेरी का चालान नाश।
(26) प्रदर्श क- 26 मृतक अजमेरी की फोटो नाश।
(27) प्रदर्श क- 27 अजमेरी के पोस्टमॉर्टम हेतु प्रतिसार निरीक्षक को पत्र।
(28) प्रदर्श क-28 मृतक अजमेरी के पोस्टमॉर्टम हेतु मुख्य चिकित्सा अधिकारी को पत्र।
(29) प्रदर्श क- 29 मृतक अजमेरी का नमूना मुहर।
(30) प्रदर्श क- 30 घटना स्थल का नक्शा नजरी।
(31) प्रदर्श क- 31 मृत व्यक्तियों के घर से मांस को कब्जे में लेने का फर्द बरामदगी।
(32) प्रदर्श क-32 आरोप पत्र।
(33) प्रदर्श क-33 चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट।
(34) प्रदर्श क-34 समय 14:10 बजे दिनांक 22.12.2001 की नकल रिपोर्ट संख्या-2
(36) प्रदर्श क-36 मृतक सालिस की विसरा जांच रिपोर्ट।
(37) प्रदर्श क- 37 मृतक खैरुन्निसा की विसरा जांच रिपोर्ट।

(vi) अभियोजन साक्ष्य समाप्त होने के बाद, अभियुक्त मोहम्मद असलम का बयान दंड प्रक्रिया संहिता 1973 (संक्षेप में द०प्र०सं०) की धारा 313 के अन्तर्गत अभिलिखित किया गया। अभियुक्त ने स्वयं पर लगे सभी आरोपों से इनकार किया एवं कहा कि वादी अब्दुल सत्तार उसके पास धन मांगने आया था, एवं धमकी दी थी कि अगर धन नहीं दिया गया तो वह प्रथम सूचना रिपोर्ट अभिलिखित करा देगा। मांगे गए पैसे न देने पर उसने प्रथम सूचना रिपोर्ट अभिलिखित कराई। बचाव में प्रतिरक्षा साक्षी-1 मोहम्मद अनीस से पूछताछ की गई। इसके बाद विद्वान विचारण न्यायालय दोनों पक्षों के तर्कों को सुनने एवं अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का विश्लेषण करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँची कि अभियोजन पक्ष ने सभी परिस्थितियों को सिद्ध कर दिया है, जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अभियुक्त असलम ने अपराध किया है। यह भी निष्कर्ष प्राप्त किया गया है कि सभी परिस्थितियां संचयी रूप से यह सिद्ध करती हैं कि अभियुक्त ने अपराध किया है एवं अंत में निष्कर्ष निकाला है कि अभियोजन पक्ष ने विशेष रूप से चिकित्सा साक्ष्य एवं विशेषज्ञ साक्ष्य द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर अभियोजन कथानक को सभी युक्तियुक्त संदेहों से परे स्थापित किया है। विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को भा०दं०सं० की धारा 302 के अन्तर्गत दोषी ठहराया एवं उसे आजीवन कारावास के साथ 10,000/- रुपये के जुर्माने का दंडादेश प्रदान किया एवं जुर्माना न देने पर दो वर्ष अतिरिक्त कारावास का दंडादेश सुनाया।

(vii) इस दोषसिद्धि एवं दंडादेश से व्यथित होकर दोषी /अपीलकर्ता द्वारा यह अपील दायर की गई है।

(viii) अपीलकर्ता / दोषी ने मुख्य रूप से इस आधार पर आक्षेपित निर्णय एवं आदेश को चुनौती दी है कि घटना 13.09.2001 को हुई थी, लेकिन अब्दुल सत्तार, जो खैरुन्निसा का सगा भाई है, के प्रार्थना पत्र के आधार पर 20.12.2001 को लगभग 14:10 बजे प्रथम सूचना रिपोर्ट अभिलिखित की गई थी। मृतक मोहम्मद सलीस के किसी भी निकट संबंधी या आसपास रहने वाले किसी व्यक्ति ने प्रथम सूचना रिपोर्ट अभिलिखित नहीं कराई थी। वादी अब्दुल सत्तार ने एक कहानी गढ़ी है कि मोहम्मद सलीस ने आलू के व्यापार के लिए अपीलकर्ता को 25,000/- रुपये दिए थे, जिसमें मोहम्मद सलीस के साले ने भी 10,000 रुपये दिए थे, एवं उसके द्वारा उसी की मांग की गई थी परन्तु अपीलकर्ता ने इसे नहीं दिया है। अभियोजन पक्ष के साक्षियों में से सिराजुद्दीन एवं नफीस अहमद पक्षद्रोही हो गये एवं मात्र अब्दुल सत्तार ने घटना के संबंध में बयान दिया है एवं वह भी विरोधाभासी तरीके से जो विश्वसनीय नहीं है। विद्वान विचारण न्यायालय का निष्कर्ष विधि एवं तथ्य- दोनों के विरुद्ध है, एवं विचारण न्यायालय का आक्षेपित निर्णय एवं आदेश अनुमान एवं अटकलों पर आधारित है।

(3) श्री आर.बी.एस. राठौर, दोषी/अपीलकर्ता के लिए न्यायमित्र अधिवक्ता एवं श्री उमेश चंद्र वर्मा, राज्य हेतु अपर शासकीय अधिवक्ता (संक्षेप में ए.जी.ए.) को सुना।

(4) दोषसिद्ध/अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि यह वाद परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है, क्योंकि घटना का कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है। खैरुन्निसा एवं मोहम्मद सलीस को अब्दुल सत्तार को घटना के विषय में बताने का कोई अवसर नहीं मिला, क्योंकि अब्दुल सत्तार तब पहुंचे जब चारों व्यक्तियों की मृत्यु हो चुकी थी। अभियोजन साक्षी-4 रईस अहमद एवं अभियोजन साक्षी-5 सिराजुद्दीन पक्षद्रोही हो गए हैं। अभियोजन साक्षी-1, वादी अब्दुल सत्तार ने विरोधाभासी बयान दिया है एवं यह विश्वसनीय नहीं है। पुनः उन्होंने तर्क दिया कि अभियोजन पक्ष परिस्थितिजन्य साक्ष्यों की श्रृंखला को युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध करने में विफल रहा है। वास्तव में दोषसिद्ध - अपीलकर्ता के विरुद्ध कोई साक्ष्य

नहीं है इसलिए आक्षेपित निर्णय एवं आदेश को अपास्त किया जाना चाहिए एवं दोषी/अपीलकर्ता को मुक्त किया जाना चाहिए। उन्होंने निम्नलिखित निर्णय विधियों पर विश्वास व्यक्त किया: -

(1) **शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य AIR 1984 (SC) 1622 ।**
(2) **रामगोपाल बनाम महाराष्ट्र राज्य, AIR 1972 (SC) 656 ।**

(5) इसके विपरीत विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने विद्वान न्यायमित्र द्वारा प्रस्तुत तर्कों का विरोध किया एवं कहा कि अपराध करने का प्रबल आशय था, एवं विधि विज्ञान प्रयोगशाला में किए गए मांस के परीक्षण में विष पाया गया, एवं मृतक व्यक्तियों के संरक्षित विसरा में भी विष पाया गया था। इसलिए अपील खारिज होने योग्य है एवं खारिज की जानी चाहिए।

(6) दोनों पक्षों के तर्कों पर विचार किया गया, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों, आक्षेपित निर्णय एवं आदेश का भी परिशीलन किया गया, एवं विद्वान न्यायमित्र द्वारा संदर्भित निर्णय विधि विधि का अध्ययन किया गया।

(7) यह मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है, क्योंकि अपराध का कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है। परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर साक्ष्य के मूल्यांकन को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत को विद्वान न्यायमित्र द्वारा उद्धृत ***शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य (उपरोक्त)***, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संक्षेपित किया गया है एवं माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनेक वादो में दोहराया गया है। हाल ही में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस संबंध में ***शिवाजी चिंताप्पा पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य (2021) 5 SCC 626*** के वाद में निम्नानुसार प्रतिपादित किया (प्रस्तर-12): -

"12. परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि के संबंध में विधि को शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य (SCC p185, प्रस्तरों 153-54) में इस न्यायालय के निर्णय में भली-भाँति स्पष्ट किया गया है:-

"153. इस निर्णय का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर पता चलेगा कि किसी अभियुक्त के विरुद्ध वाद पूरी तरह से स्थापित होने के लिए निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए:

(1) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूर्णतः स्थापित किया जाना चाहिए। यहाँ यह ध्यान दिया जा सकता है कि इस न्यायालय ने दर्शाया है कि संबंधित परिस्थितियों को "होना ही चाहिये" द्वारा स्थापित किया जाना चाहिए न कि "किया जा सकता है" द्वारा । "सिद्ध किया जा सकता है" एवं "सिद्ध किया जाना ही चाहिए" या "सिद्ध किया जाना चाहिए" के मध्य न केवल व्याकरणिक अपितु विधिक अंतर भी है, जैसा कि शिवाजी साहबराव बोबडे बनाम महाराष्ट्र राज्य वाद [SCC p 807: प्रस्तर19, SCC (Cri) p. 1047] में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित किया गया था, जहाँ निम्नवत टिप्पणियां की गई थीं:

"19. ...निश्चित रूप से, यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि न्यायालय द्वारा दोषी ठहराए जाने से पूर्व अभियुक्त को 'दोषी होना ही चाहिए' और न कि मात्र "दोषी हो सकता है'" एवं "हो सकता है" तथा "होना ही चाहिए" के मध्य लंबी मानसिक दूरी है जो निश्चित निष्कर्षों को अस्पष्ट अनुमानों में विभाजित करती है।"

(2) इस प्रकार स्थापित तथ्य मात्र अभियुक्त के अपराध की प्रकल्पना के संगत होने चाहिए, अथति, उनका निर्वचन किसी अन्य प्रकल्पना के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए , सिवाय इसके कि अभियुक्त दोषी है,

(3) परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति एवं प्रवृत्ति की होनी चाहिए,

(4) उन्हें सिद्ध की जाने वाली प्रकल्पना को छोड़कर प्रत्येक संभावित प्रकल्पना को वर्जित करना चाहिए, एवं

(5) साक्ष्यों की श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की निर्दोषिता के संगत निष्कर्ष हेतु कोई युक्तियुक्त आधार न छूटे ,एवं यह दर्शाया जाना चाहिए कि समस्त मानवीय संभावनाओं में कृत्य अभियुक्त द्वारा ही कारित किया गया होगा।

154. हम ऐसा कह सकते हैं, परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर किसी मामले को सिद्ध करने हेतु ये पाँच स्वर्णिम सिद्धांत , सबूत के पंचशील का गठन करते हैं।"

(8) संक्षेप में परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर अपराध को सिद्ध करने के लिए समस्त परिस्थितियों में यह इंगित होना चाहिए कि अपराधकर्ता अभियुक्त ही है तथा किसी अन्य द्वारा अपराध किये जाने की सम्भावना नहीं है। परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण होनी चाहिए एवं युक्तियुक्त संदेह की संभावना नहीं होनी चाहिए। वर्तमान वाद में स्वीकार किया गया है कि अपराध का कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है क्योंकि कोई भी यह कहने नहीं आया है कि उसने अभियुक्त को अपराध करते देखा है। अपराध की प्रथम सूचना रिपोर्ट द०प्र०सं० की धारा 156(3) के अन्तर्गत मृतका खैरुन्निसा के भाई द्वारा दायर एक प्रार्थना पत्र पर पारित आदेश के अनुसरण में अभिलिखित की गई थी। यह भी निर्विवाद है कि चारों मृत व्यक्तियों की मृत्यु थायोडॉन (ऑर्गेनोक्लोरो) कीटनाशक विष के कारण हुई, जैसा कि सलीस एवं (फैरूम) खैरुन्निसा के संरक्षित

विसरा में पाया गया था। सलीस की विसरा रिपोर्ट प्रदर्श क-36 एवं प्रदर्श क-37 अभिलेख पर उपलब्ध हैं।

विष देकर हत्या को सिद्ध करने के लिए अभियोजन पक्ष को निम्नलिखित तीन आवश्यक घटक स्थापित करने थे: -

(ए) व्यक्ति की मृत्यु विष के कारण हुई।

(बी) अभियुक्त के पास विष था।

(सी) अभियुक्त के पास मृतक को विष देने का अवसर था।

(9) वर्तमान मामले में, यह निर्विवाद है कि सभी चार मृत व्यक्तियों की मृत्यु विष से हुई है, जैसा कि विधि विज्ञान प्रयोगशाला ने विसरा परीक्षण रिपोर्ट में बताया है, इसलिए प्रथम घटक सिद्ध हुआ है। अब प्रश्न द्वितीय घटक का है कि क्या मो. अपीलकर्ता / दोषसिद्ध मो० असलम के पास विष था। इस संबंध में अभिलेख पर कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है। अभियोजन साक्षी-1 ने मात्र यह कहा है कि जब वह मोहम्मद असलम से बस में मिला था तो वह मांस एवं दवा की एक बोतल ले जा रहा था। जब उसने मो. असलम से बोतल के विषय में पूछा तो उसने जवाब दिया कि यह खांसी का सीरप है। यह दर्शाने के लिए कोई अन्य साक्ष्य नहीं है कि मो. असलम के पास विष था। अभिलेख पर कोई साक्ष्य नहीं है कि उस बोतल, जो मो. असलम खांसी के सीरप के बहाने से ले गया, में विष मिला हुआ था। यहाँ तक कि यह सिद्ध करने के लिए भी कोई साक्ष्य नहीं है कि मो. असलम ने मांस के टुकड़े मृतक खैरुन्निसा को दे दिये एवं उस मांस में वह कफ सिरप मिला दिया। इसलिए, अभियोजन पक्ष द्वारा द्वितीय घटक सिद्ध नहीं किया गया है। अब प्रश्न तृतीय घटक का है कि क्या मो. असलम को मृत व्यक्ति को विष देने का अवसर मिला। मृत महिला खैरुन्निसा के भाई, मृतक मोहम्मद सलीस के साले तथा दो मृत बच्चों के मामा अब्दुल सत्तार द्वारा अभिलिखित करायी गयी प्राथमिकी में यह आरोप लगाया गया है कि मो. असलम मांस लाया एवं उसे पकाने के लिए खैरुन्निसा को दिया एवं जब मांस पकाया जा रहा था तो उसने उस मांस में कुछ विष मिला दिया, एवं उस मांस को खाने के बाद चारों व्यक्तियों की मृत्यु हो गई। यह स्वीकृत तथ्य है कि कि वादी, अब्दुल सत्तार कथित तौर पर मांस लाने एवं विष मिलाने या मृत महिला को मांस सौंपने के समय मौजूद नहीं था। कोई अन्य साक्षी प्रस्तुत नहीं किया जा सका जिसने अभियुक्त को मृत महिला को मांस सौंपते या विष मिलाते हुए देखा हो या कम से कम यह कहा हो कि उसने दोषी-असलम के कब्जे में विष देखा था।

(10) अभियोजन ने अब्दुल सत्तार (अभियोजन साक्षी-1 वादी) के बयान पर बल दिया है, जिसमें उसने कहा है कि जब अब्दुल सत्तार उन्हें हरदोई के अस्पताल ले जा रहा था तब उसकी मृत बहन एवं बहनोई ने उसे मरने से पूर्व बताया था कि मो. असलम मांस लाया एवं उसकी मृत बहन को मसाले के साथ पकाने के लिए दिया। जब मांस पकाया जा रहा था तो मो. असलम ने बर्तन में कुछ विष डाला एवं यह उसकी मृत बहन ने देखा। अब्दुल सत्तार के साक्ष्यों की जांच करने पर यह तथ्य प्रकट हुआ कि उसे अपनी बहन, बहनोई एवं उनके दो बच्चों की गंभीर स्थिति के विषय में जानकारी मिली थी। इस पर वह मल्लावां गया, लेकिन मल्लावां में डॉक्टरों ने उन्हें हरदोई के अस्पताल ले जाने को कहा। जब वह उन्हें लेकर हरदोई जा रहा था तो रास्ते में उसकी बहन ने उसे बताया कि मो. असलम ने मसाले के साथ मांस पकाने के लिए दिया एवं मांस पकाते समय उसने मांस में कोई विष डाल दिया। इस संबंध में इस साक्षी ने विरोधाभासी बयान दिया है। एक जगह उसने कहा कि जब वह पहुंचा तो उसकी बहन एवं बहनोई की मृत्यु हो चुकी थी, दूसरी जगह उसने कहा कि वे जीवित थे। पुनः उसने बताया कि उसके बहनोई की मृत्यु हो चुकी थी लेकिन बहन जिंदा थी। इसके अतिरिक्त प्रतिरक्षा साक्षी -1, मो. अनीस ने कहा कि जब वह मृतकों को हरदोई ले गया तो अब्दुल सत्तार उसके साथ नहीं था। इस प्रकार अभियोजन साक्षी-1 अब्दुल सत्तार का साक्ष्य विश्वसनीय नहीं है। यह सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं है कि दोषी मो. असलम मसालों के साथ मांस लाया एवं खैरुन्निसा को पकाने के लिए दे दिया, एवं जब मांस पकाया जा रहा था तो उसने उसमें कुछ विष मिला दिया।

(11) इस प्रकार अभियोजन पक्ष उन परिस्थितियों को सिद्ध करने में विफल रहा है जिससे यह निष्कर्ष प्राप्त हो कि अपीलकर्ता / दोषसिद्ध ने सभी चार मृत व्यक्तियों को मांस में विष देकर मार डाला। यह सिद्ध करने के लिए कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है कि मो. असलम मांस एवं मसाले लाया एवं मृतक महिला को पकाने के लिए सौंप दिया। इस तथ्य का कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं है कि मो. असलम के पास विष था एवं यह सिद्ध करने के लिए कोई विश्वसनीय एवं ठोस साक्ष्य नहीं है कि मोहम्मद असलम ने मांस पकाते समय मांस में कोई विष मिला दिया।

(12) अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य ऐसी गुणवत्ता का नहीं है कि हम निःसंकोच यह मान सकें कि मृत व्यक्तियों की मृत्यु दोषसिद्ध / अपीलकर्ता द्वारा दिए गए विष का परिणाम थी। दूसरे शब्दों में अभियोजन पक्ष यह सिद्ध करने में विफल रहा कि मो. असलम ने मसालों के साथ मांस लाकर खैरुन्निसा को पकाने के लिए दिया एवं पकाते समय मांस में विष मिला दिया।

(13) इस न्यायालय के लिए यह जानना दुखद है कि परिवार के चार लोगों को विष देकर मार डाला गया, लेकिन अपराध के असली अपराधी को दंडित नही किया

जा सका। जहां तक अपीलकर्ता /अभियुक्त मो. असलम का प्रश्न है, अभियोजन पक्ष ठोस साक्ष्यों द्वारा यह स्थापित करने में विफल रहा है कि यह अभियुक्त / अपीलकर्ता ही था जिसने चार मृतकों की हत्या की थी।

(14) अत: आक्षेपित निर्णय एवं आदेश अपास्त किये जाने योग्य है एवं ख़ारिज किया जाता है।

(15) अपील स्वीकार की जाती है। अपीलकर्ता जेल में है। यदि किसी अन्य मामले में आवश्यकता न हो तो उसे तत्काल मुक्त कर दिया जाए।

(16) अपीलकर्ता मो. असलम को आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 437-ए के अनुपालन में संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए व्यक्तिगत बंधपत्र एवं समान राशि की दो प्रतिभूतियां प्रस्तुत करने का निर्देश दिया जाता है।

(17) समापन से पूर्व, हम दोषसिद्ध-अपीलकर्ता हेतु न्यायमित्र श्री आर.बी.एस.राठौर द्वारा प्रदान की गई सहायता के लिए अपनी मुक्त एवं निःसंकोच सराहना व्यक्त करना चाहेंगे। अतः हम न्यायालय के नियमों के अनुसार अपनी बहुमूल्य सहायता हेतु विद्वान न्यायमित्र श्री आर.बी.एस.राठौर को भुगतान करने का निर्देश देना उचित समझते हैं।

(18) कार्यालय को एक माह की अवधि में न्यायालय के नियमों के अनुसार विद्वान न्याय मित्र श्री आर.बी.एस.राठौर को पारिश्रमिक का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है।

(19) इस आदेश की एक प्रति मूल अभिलेख के साथ संबंधित विचारण न्यायालय को आवश्यक सूचना एवं अग्रेतर कार्रवाई हेतु प्रेषित की जाए।

(2023) 1 ILRA 817
अपीलीय क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: लखनऊ 25.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा,
माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती रेनू अग्रवाल,

आपराधिक अपील संख्या 551/1982

राम सनेही एवं अन्य ...अपीलकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता:
आर. के. सिंह, अनुराग कुमार सिंह, बृजमोहन सहाय, सुनील कुमार सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी:
शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1972- धारा 3 - इच्छुक गवाह- पी.डब्लू.-2 मृतक का सगा भाई है, उसने अपने बयान में स्वीकार किया कि उसके भाई प्रकाश पर छोटे की हत्या का मुकदमा चलाया गया था, जो राम सहाय का सगा भाई है, उन्होंने यह भी कहा कि उन पर आरोपी राम सहाय के भाई की हत्या का मुकदमा चलाया गया था, इसलिए, वह पक्षपातपूर्ण गवाह हो सकते हैं, लेकिन केवल इसलिए कि वह मृतक का भाई है और दोनों परिवारों के बीच शत्रुतापूर्ण संबंध हैं, उसके साक्ष्य को निरस्त नहीं किया जा सकता है, इसके अलावा उसके साक्ष्य की पुष्टि स्वतंत्र गवाह द्वारा की जाती है - संबंधित गवाह के साक्ष्य को केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि वह मृतक से संबंधित है।

स्थापित कानून है कि किसी गवाह को तभी हितैषी कहा जा सकता है, जब वह आरोपी को फंसाने से कुछ लाभ प्राप्त करता हो, लेकिन जहां गवाह स्वाभाविक है, उसकी गवाही ठोस और सच्ची है, और वाद की परिस्थितियों में एकमात्र संभावित प्रत्यक्षदर्शी है, तो वह रुचिकर नहीं कहा जा सकता। (पैरा 29,30)

आपराधिक अपील निरस्त। (ई-3)

<u>केस कानून/निर्णयों पर निर्भरता:-</u>

1. गुलाब बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2021 एससीसीऑनलाइन एससी 1211

2. राजेश यादव एवं अन्य आदि बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 एससीसीऑनलाइन एससी 150
3. कार्तिक मल्हार बनाम बिहार राज्य (1996) 1 एससीसी 614

(माननीय न्यायमूर्ति रेणु अग्रवाल द्वारा घोषित)

1. वर्तमान आपराधिक अपील दं.प्र.सं. की धारा 374(2) के अंतर्गत द्वितीय अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, हरदोई, द्वारा दिनांक 14.07.1982 को मुकदमा अपराध संख्या 43/143, पुलिस थाना पाली, जिला हरदोई से उद्भुत सत्र परीक्षण संख्या 06/1982 में पारित निर्णय एवं आदेश के विरूद्ध प्रस्तुत की गई है जिसके द्वारा अपीलकर्ताओं राम सहाय, बिश्राम, जोगराज एवं मोतीलाल को दोषी ठहराया गया एवं उन्हें धारा 302 भा.द.सं. सहपठित धारा 34 भा.द.सं. के अंतर्गत आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई।

2. संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार है- वादी झिंगुरी पुत्र लोचन, निवासी अहीर मौजा अंता की राम सहाय से पुरानी रंजिश थी क्योंकि उसके भाई प्रकाश (मृतक) ने 10 वर्ष पूर्व राम सहाय पर गोली चलाई थी एवं उसके भाई पर मुकदमा चलाया गया एवं उसे 7 वर्ष की सजा हुई। वह अपनी सजा पूरी करके घटना से कुछ दिन पूर्व ही जेल से बाहर आया। आरोपी बिश्राम एवं जोगराज आरोपी राम सहाय का सगा भाई एवं भतीजा है। आरोपी मोतीलाल भी राम सहाय का भतीजा है। घटना दिनांक 11.07.1981 को सायं लगभग6.30 बजे, वादी गाँव के पश्चिम स्थित तालाब के पास शौच हेतु गया था एवं उसका भाई प्रकाश तालाब के उत्तर स्थित रास्ते से घर जा रहा था। उसने गोली चलने की आवाज सुनी एवं देखा कि उसका भाई गाँव की ओर भाग रहा है, उसके पीछे राम सहाय पुत्र दीवानी कट्टा लिए हुए, जोगराज पुत्र मुरली लाठी लिए हुए, मोती पुत्र छोटे भाला लिए हुए एवं बिश्राम पुत्र मुरली कट्टा लिए हुए है। उसका भाई बैजनाथ के घर के समीप पश्चिमी पथ पर गिर गया। चारों अभियुक्तगण ने अपने हाथों में लिये हथियार से उसके भाई पर हमला एवं पीटना प्रारंभ कर दिया। वह घटनास्थल की ओर दौड़ा एवं अपने भाई को बचाने के लिए चिल्लाने लगा। रघुनंदन, बडे, दरबारी एवं कई अन्य ग्रामीण वहाँ पहुँचे एवं अभियुक्तगण को डांटा, लेकिन सभी अभियुक्तगण ने उन्हें धमकाना प्रारंभ कर दिया एवं उसके भाई को पीटते एवं घसीटते हुए गन्ने के खेत के पश्चिम की ओर भाग गए। उन्होंने कुछ दूरी बनाकर अभियुक्तगण का पीछा किया। फिर आरोपी वादी के भाई को जवाहर के खेत में छोड़कर पश्चिम दिशा की ओर भाग गए। उनके भाई को कांटा, भाला एवं आग्नेयास्त्र से चोटें आईं। मृतक की गर्दन पर हल्का सा घाव था। अगली सुबह लिखित रिपोर्ट पुलिस थाने में प्रस्तुत की गई एवं प्र.सू.रि में ही यह बताया गया है कि वह डर एवं अंधेरे के कारण रात्रि में सूचना नहीं दे सका।

3. लिखित रिपोर्ट के आधार पर पुलिस थाना पाली, जिला हरदोई में प्र.सू.रि. दर्ज की गई एवं अन्वेषण उपनिरीक्षक, प्रहलाद तिवारी को सौंपा गया, जिन्होंने वादी का बयान दर्ज किया एवं तत्काल घटना स्थल हेतु प्रस्थान किया। उन्होंने पंचायतनामा किया एवं अन्य संबंधित दस्तावेज यथा फोटो लैश, चालान लैश, सीएमओ को पत्र एवं प्रतिसार निरीक्षक को पत्र आदि के साथ पंचायतनामा तैयार किया। शव को सील कर शव-परीक्षण हेतु जिला चिकित्सालय शाहजहाँपुर भेज दिया गया। इसके पश्चात अन्वेषण अधिकारी ने साक्षियों के बयान दर्ज किए। उन्होंने घटनास्थल का दौरा किया एवं घटनास्थल पर घास का बंडल पाया एवं नक्शा- नज़री (प्रदर्श क-9) तैयार किया, घास एकत्र की एवं फर्द बरामदगी (प्रदर्श क-10) तैयार किया। अन्वेषण अधिकारी ने घटना स्थल से छह छर्रे एवं तीन गोलियां एकत्र की। उन्होंने इसे एकत्र किया एवं फर्द बरामदगी (प्रदर्श क-11) तैयार किया। उन्होंने दो अलग-अलग स्थानों से सादी एवं खूनआलूदा मिट्टी भी एकत्र की एवं क्रमशः फर्द बरामदगी प्रदर्श क-12 एवं प्रदर्श क-13 तैयार किया। अन्वेषण अधिकारी ने अभियुक्तगण की गिरफ्तारी हेतु उपनिरीक्षक बी.पी. सिंह को नियुक्त किया। अभियुक्तगण राम सहाय एवं बिश्राम को दिनांक15.07.1981 को गिरफ्तार किया गया एवं जोगराज एवं मोतीलाल ने दिनांक 02.07.1981 को न्यायालय में आत्मसमर्पण कर दिया। अन्वेषण अधिकारी ने आवश्यक साक्ष्य एकत्र करने के पश्चात दिनांक 24.07.1981 को न्यायालय के समक्ष आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

4. समस्त अभियुक्तगण को न्यायालय में तलब किया गया तथा द.प्र.स. की धारा 207 के अनुपालनोपरांत सभी अभियुक्तगण को विचारण हेतु सत्र न्यायालय के सुपुर्द किया गया। अभियुक्तगण के विरुद्ध भा.दं.सं. की धारा 302 सहपठित धारा 34भा.दं.सं. के अंतर्गत आरोप निर्धारित किये गए एवं अभियुक्तगण को पढ़कर सुनाया गया, जो आरोपों से मुकर गए एवं विचारण किये जाने का दावा किया।

5. अभियोजन पक्ष ने अभियोजन वाद को सिद्ध करने हेतु निम्नलिखित आठ साक्षी प्रस्तुत किए:-

(i) अभियोजन साक्षी-1 राम प्रसाद, जो शव को शव-परीक्षण हेतु लाए थे,

(ii) अभियोजन साक्षी-2 झिंगुरी, वादी,

(iii) अभियोजन साक्षी-3, बड़े, जो इस वाद का साक्षी बताया जाता है,

(iv) अभियोजन साक्षी-4, प्रह्लाद तिवारी, अन्वेषण अधिकारी,

(v) अभियोजन साक्षी हेड कांस्टेबल, भोला सिंह, जिन्होंने वाद संपत्ति के प्रेषण के संबंध में जी.डी. प्रदर्श क- 17 को सिद्ध किया।

(vi) अभियोजन साक्षी -6, कांस्टेबल शिवलाल जो वाद संपत्ति को सीलबंद बंडलों में सदर मालखाना, हरदोई लाये।

(vii) अभियोजन साक्षी-7, डा॔.एम.एल. टंडन जिन्होंने दिनांक 13.07.1981 को सांय चार बजे प्रकाश के शव का शव-परीक्षण किया।

(viii) अभियोजन साक्षी-8, कांस्टेबल, राम समुझ यादव, जो दिनांक 13.07.1981 को घटना स्थल से वाद संपत्ति को पुलिस थाना पचदेवरा, जिला हरदोई में लाए थे।

6. प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के अतिरिक्त अभियोजन पक्ष द्वारा निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य भी प्रस्तुत एवं सिद्ध किये गये।

(i) प्रदर्श क-1, प्रथम सूचना रिपोर्ट,

(ii) प्रदर्श क-2, नक्शा नज़री,

(iii) प्रदर्श क-3, पंचायतनामा,

(iv) प्रदर्श क-10, घास की बरामदगी,

(v) प्रदर्श क-11, टिकुली एवं छर्रा की बरामदगी,

(vi) प्रदर्श क-12, खून अलूदा एवं सादी मिट्टी की बरामदगी,

(vii) प्रदर्श क-18, शव-परीक्षण रिपोर्ट,

(ix) प्रदर्श क-19, विश्वनाथ पांडे नामक व्यक्ति द्वारा दायर शपथ पत्र,

(x) प्रदर्श क-20, रंगनाथ मिश्र द्वारा दाखिल शपथ पत्र,

(xi) प्रदर्श क-21, रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट,

(xii) प्रदर्श क-22, सीरोलॉजिस्ट की रिपोर्ट एवं बरामदगी सूची।

7. न्यायालय में प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर, विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियुक्तगण राम सहाय, बिश्राम, जोगराज एवं मोतीलाल को भा.दं.सं. की धारा 302 सहपठित धारा 34 भा.दं.सं. के अंतर्गत दोषी पाया एवं उसे आजीवन कारावास की सजा सुनाई। विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 14.07.1982 से व्यथित हो, वर्तमान अपील दायर की गई है।

8. अपील के दौरान, अभियुक्तगण राम सहाय, बिश्राम एवं मोतीलाल की मृत्यु चुकी है एवं इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 20.11.2019 के अन्तर्गत उनके विरुद्ध अपील को समाप्त करने का आदेश दिया गया था, एवं अब वास्तव में अपील मात्र अपीलकर्ता जोगराज के विरुद्ध ही शेष है, अतः न्यायालय इसकी सुनवाई करेगा।

9. हमने अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री बृज मोहन शाई, राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री चंद्र शेखर पांडे के तर्कों को सुना एवं अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री का परिशीलन किया।

10. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा प्राप्त निष्कर्ष विकृत एवं अभिलेख पर उपस्थित साक्ष्य के विपरीत है। चिकित्सा साक्ष्य प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रत्यक्षदर्शी साक्षी द्वारा दिये गए बयान के संगत नहीं हैं। शरीर पर खरोंच के अभाव से अभियोजन का वाद झूठा सिद्ध होता है, जिससे सम्पूर्ण अभियोजन कथानक संदिग्ध हो जाती है। साक्षीगण के बयान में तात्विक विरोधाभास है, इसलिए, विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश अपास्त किए जाने योग्य है।

11. इसके विपरीत, राज्य-प्रतिवादी के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश ठोस साक्ष्य पर आधारित है तथा चिकित्सा साक्ष्य एवं चक्षुदर्शी साक्ष्य के मध्य कोई तात्विक विरोधाभास नहीं है। अपीलकर्ताओं ने नृशंस हत्या की एवं पूरे गांव में आतंक फैलाया। वाद का आशय सिद्ध हो गया है, इसलिए विचारण न्यायालय का निर्णय स्थिर रखा जाना चाहिए।

12. प्रथम सूचना रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि पुरानी शत्रुता के कारण अपीलकर्ताओं ने वादी झिंगुरी के भाई प्रकाश पर हमला किया था। घटना 11.07.1981 को सायं 18.30 बजे घटित हुई एवं रिपोर्ट 12.07.1981 को सुबह 7.10 बजे दर्ज की गई थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट में ही देरी का कारण प्रस्तुत किया गया है कि वादी के भाई पर अपीलकर्ताओं ने हमला किया एवं बेरहमी से उसकी हत्या कर दी, इसलिए, डर एवं रात्रि के अंधकार के कारण वह रात्रि में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं करा सका एवं सुबह रिपोर्ट दर्ज करायी। इसलिए, देरी के कारण को उचित रूप से समझाया गया है। विचारण न्यायालय में प्रस्तुत साक्ष्यों को स्पष्ट करने से पूर्व उनका संक्षिप्त पुनःप्रस्तुतिकरण वांछनीय है।

13. अभियोजन साक्षी-1 ने सशपथ कहा कि वह चौकी पचदेवरा में कान्स्टेबल क्लर्क के पद पर तैनात है, एवं वह मृतक प्रकाश के शव को सीलबंद हालत में आवश्यक दस्तावेजों व नमूना सील के साथ लाया एवं शव को जिला चिकित्सालय, शाहजहाँपुर में सौंप दिया। उसने बताया कि कान्स्टेबल-58 रामदयाल, चौकीदार राम सहाय एवं वादी का भाई सरकस भी उनके साथ थे। उन्होंने 13.07.1981 को सुबह 6.10 बजे जी.डी. नंबर 3 में अपने आगमन का पृष्ठांकन किया एवं डॉकेट तैयार कराया। उन्होंने डॉक्टर के समक्ष शव की पहचान की एवं पोस्टमार्टम के उपरांत चिकित्सालय द्वारा मृतक के कपड़े सीलबंद लिफाफे में उन्हें सौंप दिए गए, जिसे उन्होंने अगले दिन चौकी पचदेवरा में जमा कर दिया। शव, लिफाफा एवं पोटलियां उनके कब्जे में यथावत एवं सीलबंद रहीं।

14. अभियोजन साक्षी-2 वादी ने बताया कि दीवानी के चार पुत्र हैं- मुरली, छोटे, राम सिंह एवं राम सहाय । दस वर्ष पूर्व उसके भाई प्रकाश (अब मृतक) पर अपीलकर्ता राम सहाय पर गोली चलाने हेतु भा०द०सं० की धारा 307 के अन्तर्गत मुकदमा चलाया गया था एवं उसे सात वर्ष कारावास की सजा सुनाई गई थी, एवं इस घटना से दो वर्ष पूर्व वह कारागार से रिहा हुआ था। इसलिए, परिवारों के मध्य शत्रुता थी। लगभग नौ माह पूर्व सायं करीब साढ़े छह बजे जब वह तालाब के पश्चिमी किनारे शौच हेतु गया था, उसने अपने भाई प्रकाश को पूर्व दिशा की ओर अपने घर की ओर जाते देखा। उसने तत्काल फायर की आवाज सुनी एवं उसके भाई ने दौड़ने एवं सहायता हेतु पुकार करनी प्रारम्भ कर दी, लेकिन आग्नेयास्त्र की चोट के कारण वह हेमसिंह के घर के समक्ष दक्षिणी मार्ग पर एवं बैजनाथ के घर के उत्तर पश्चिम में गिर गया। उसके गिरने के उपरांत भी राम सहाय द्वारा दो गोलियां चलाई गई। बिश्राम ने कांता से, जोगराज ने लाठी से एवं मोतीलाल ने नुकीले एवं तेज धार वाले भाले से हमला किया। वह बैजनाथ के घर के उत्तर पश्चिम कोने में आया। गोली चलने की आवाज सुनकर साक्षीगण रघुनंदन, बड़े एवं दरबारी भी वहाँ पहुँचे एवं अभियुक्तों को ललकारा, लेकिन अपीलकर्ता ने एक न सुनी एवं उसके भाई के शरीर को उठाकर जवाहर के खेत के दक्षिणी कोने में फेंक दिया। साक्षीगण ने न्यायालय में पेश किए गए मृतक के वस्त्रों की पहचान की।

15. अभियोजन साक्षी-3 बड़े इस मामले का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है जिसने सशपथ कहा कि 8-9 माह पूर्व सायं करीब 6.30 बजे उसने तीन गोलियां चलने की आवाज सुनी एवं किसी के चिल्लाने की आवाज सुनी। वह तत्काल बैजनाथ के निवास के उत्तर-दक्षिण कोने पर पहुंच गया। झिंगुरी, रघुनन्दन एवं दरबारी भी वहाँ आ पहुँचे। बिश्राम कांता से, जोगराज लाठी से एवं मोतीलाल भाले से प्रकाश पर हमला कर रहे थे, जो बैजनाथ के घर के उत्तर-पश्चिम कोने की ओर एवं हेमसिंग के घर के समक्ष दक्षिणी मार्ग पर भूमि पर पड़ा था। उन्होंने राम सहाय आदि को डाँटा, फिर अभियुक्तगण ने प्रकाश को लटका कर पश्चिम दिशा की ओर ले जाकर जवाहर के खेत में फेंक दिया। जब उन्होनें प्रकाश को देखा तो वह मर चुका था। उसने यह भी कहा कि उसने भूमि पर रक्त देखा है।

16. अभियोजन साक्षी-4 प्रहलाद तिवारी, उपनिरीक्षक चौकी पचदेवरा, जिला पाली, हरदोई ने सशपथ कहा कि मुकदमा चौकी में पंजीकृत है एवं उसने अपने हस्ताक्षर प्रदर्श क-1 की पहचान की हैं। उन्होंने प्रदर्श क-1 के साथ-साथ जी.डी संख्या-6 दिनांक 12.07.1981, प्रदर्श क-2 को भी सिद्ध किया। उन्होंने प्रदर्श क-3 से प्रदर्श क- 8 तक नक्शा नजरी, पंचायतनामा एवं इससे सम्बन्धित आवश्यक कागजात भी सिद्ध किए। इस साक्षी ने नक्शा नजरी प्रदर्श क-9, फर्द बरामदगी प्रदर्श क-10 एवं घास का फर्द बरामदगी प्रदर्श क-2 को भी सिद्ध किया । इस साक्षी ने गोलियों एवं छर्रों के फर्द बरामदगी को प्रदर्श क-11 के रूप में सिद्ध किया। डिब्बे को न्यायालय में साक्षी के समक्ष खोला गया एवं उसने सिद्ध किया कि यह वही सामग्री है जिसे उसने एकत्र किया, सील किया एवं घटनास्थल से सुरक्षित वस्तु प्रदर्श क-3 के रूप में लाया था। साक्षी ने सादे एवं खून आलूदा मिट्टी की फर्द बरामदगी को वस्तु प्रदर्श क-12 एवं वस्तु प्रदर्श क-13 के रूप में सिद्ध किया एवं अन्य सभी बरामद वस्तुओं को वस्तु प्रदर्श क-4 के रूप में सिद्ध किया। उन्होंने पोस्टमॉर्टम का परिणाम प्राप्त किया एवं उसे केस डायरी का एक भाग बनाया। दिनांक 15.07.1981 को रात लगभग साढ़े आठ बजे उन्होंने राम सहाय एवं बिश्राम को गिरफ्तार कर लिया एवं रात्रि 11.00 बजे जी.डी. संख्या 24 में इस सम्बन्ध में प्रविष्टि दर्ज की तथा न्यायालय की अनुमति से दिनांक 24.07.1981 को अभियुक्तगण जोगराज एवं मोतीलाल का बयान दर्ज किया, क्योंकि आत्मसमर्पण के आवेदन पर 22.07.1981 को उन्हें कारागार भेज दिया गया था। साक्षी ने आरोप पत्र जी.डी. सं.9 दिनांक 13.07.1981 समय 09:30 को प्रदर्श क-15 के रूप में एवं उसी दिन की जी.डी. सं. 16 समय सायं 04.35 बजे की प्रदर्श क-16 के रूप में एवं जी.डी. सं.6 दिनांक 31.08.1981 प्रातः 6.20 बजे को प्रदर्श क-17 के रूप में सिद्ध किया।

17. अभियोजन साक्षी-5 भोला सिंह एवं अभियोजन साक्षी-6 शिवलाल औपचारिक साक्षी हैं, जिन्होंने प्रदर्श क-17 को सिद्ध किया।

18. अभियोजन साक्षी-7 डा. एम.एल.टंडन ने मृतक के शव का पोस्टमॉर्टम किया, पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट तैयार की एवं इसे सिद्ध किया। पोस्टमॉर्टम के दौरान उन्होंने शव पर निम्नलिखित चोटें पाईं:-

"1. कटा हुआ घाव, 12 सेमी. x 4सेमी. x हडडी तक गहरा, बायें कान के लोब्यूल के पीछे एवं 8सेमी नीचे, बायी तरफ पीछे गर्दन पर, छठी एवं सातवी ग्रीवा कशेरूका कटी हुई (फ्रैक्चर्ड) तीक्ष्ण स्पष्ट किनारे।

2. कटा हुआ घाव, 2 सेमी. x 0.5 सेमी. x मांसपेशी तक गहरा, चोट नंबर 1 से 1.5 सेमी नीचे,बायीं ओर पीछे।

3. कटा हुआ घाव, 2 सेमी. x 0.5 x मांसपेशी तक गहरा, चोट संख्या 2 से 17 सेमी नीचे पीठ एवं मध्य रेखा पर, तीक्ष्ण स्पष्ट किनारे।

4. आग्नेयास्त्र प्रवेश घाव, 1.5 सेमी x 0.5 सेमी. x हड्डी तक गहरा, बाएं गाल पर बाएं नासिका छिद्र से सटा, किनारे उल्टे, घाव के चारों ओर कालिमा विद्यमान है। ऊपरी जबड़ा एवं दांत टूट हुए। दिशा आगे से पीछे, नीचे की ओर तथा दाहिनी ओर ।

5. आग्नेयास्त्र निकास घाव, 2 सेमी x 1.5 सेमी x हड्डी तक गहरा, अंदर की तरफ, ऊपरी होंठ एवं जबड़े चोट संख्या 4 से संपर्कित है एवं दोनों तरफ के ऊपरी दांत टूटे हुए हैं।

6. कटा हुआ घाव, 3 सेमी. x 1 सेमी. x मांसपेशी तक गहरा। बाएं हंसली के 2 सेमी ऊपर बायीं ओर गर्दन पर तीक्ष्ण स्पष्ट किनारे।

7. बायीं ओर छाती पर एवं पेट के ऊपरी भाग पर बाएं हंसली के 3 सेमी. नीचे 29 सेमी X 27सेमी क्षेत्रफल में कई कटे हुए घाव, न्यूनतम आकार 1 सेमी. X 0.5 x मांसपेशी तक गहरा से दीर्घतम आकार 2 सेमीx 1 सेमी. x छाती की गुहा तक गहरा, तीक्ष्ण स्पष्ट किनारे।

8. आग्नेयास्त्र प्रवेश घाव 1.5सेमी. x 0.5 सेमी. x छाती की गुहा तक गहरा, बायी तरफ एवं 12 सेमी दूर बाएँ निपल के नीचे घाव, किनारे उलटे। आगे से पीछे एवं दाहिनी ओर की दिशा

9. आग्नेयास्त्र प्रवेश घाव 1 से.मी. x 0.5 सेमी. x उदर गुहा तक गहरा, नाभि के 13 सेमी ऊपर एवं बाईं ओर, किनारे उलटे। घाव के चारों ओर कालिमा वर्तमान।

10. आग्नेयास्त्र प्रवेश घाव 1 से.मी. x 0.5 सेमी. x उदर गुहा तक गहरा, बायीं ओर पेट पर, बायीं अग्रवर्ती उच्च इलियाक रीढ़ के ठीक पास। किनारे उलटे, दिशा आगे से पीछे नीचे की ओर एवं बायीं ओर। कोई कालापन नहीं। कोई गोदन नही।

11. आग्नेयास्त्र निकास घाव 1.5. सेमी x 1 सेमी. x उदर गुहा तक गहरा, चोट संख्या 10 से संपर्कित एवं बायीं अग्रवर्ती उच्च इलियाक रीढ़ से 3 सेमी नीचे बायीं ऊपरी जांघ पर। किनारे उलटे।

12. आग्नेयास्त्र प्रवेश घाव 1.5 सेमी. x 0.5 सेमी. x उदर गुहा तक गहरा, नाभि से 2 सेमी दाहिनी ओर, आंत एवं ओमेंटम का टुकड़ा घाव से बाहर आता हुआ। किनारे उलटे। कालिमा वर्तमान। आगे से पीछे की ओर दिशा।

13. चोट संख्या 12 से 11 सेमी ऊपर, दाहिनी ओर पेट में आग्नेयास्त्र प्रवेश घाव। घाव के चारों ओर कालिमा वर्तमान। दिशा आगे से पीछे। किनारे उलटे।

14. नीलगू निशान 3 सेमी. x 2 सेमी, दाहिने कंधे के ऊपर।

15. फटा हुआ घाव, 2 सेमी x 1 सेमी x मांसपेशी तक गहरा, दाहिने हाथ की दाहिनी तर्जनी अंगुली एवं दाहिने अंगूठे के मध्य जालक स्थान पर ।

16. कटा हुआ घाव, 1 सेमी x 0.5 सेमी x मांसपेशी तक गहरा, दाहिने हाथ के पश्चभाग पर मध्य में, किनारे स्पष्ट कटे हुए।

17. कटा हुआ घाव 1 सेमी x 0.5 सेमी x हड्डी तक गहरा, बाएं पैर के सामने की हड्डी पर, घुटने के नीचे 14 सेमी, किनारे स्पष्ट कटे हुए।

18. कटा हुआ घाव, 2 सेमी x 1 सेमी x मांसपेशी तक गहरा, बाएं हाथ की कनिष्ठिका एवं अनामिका अंगुलियों के मध्य जालक स्थान में, किनारे स्पष्ट कटे हुए।

<u>आंतरिक परीक्षण</u>

छठी और सातवीं ग्रीवा कशेरुका टूटी हुई, गर्दन की बाईं तरफ वाहिकाएं कटी और फटी हुई।
बाई ओर का फुस्फुस आवरण और फेफड़ा क्षतिग्रस्त। हृदय रिक्त।
छाती की गुहा में 4 औंस रक्त था एवं एक बड़ा धातु का छर्रा गुहा से प्राप्त हुआ। पेरिटोनियम फटा हुआ। उदर गुहा में लगभग 4 औंस रक्त एवं धातु की एक बड़ी गोली प्राप्त हुई।
उदर में 1 ½ आउंस अधपचा हुआ भोजन पदार्थ था। छोटी आंत फटी हुई। बड़ी आंत में जगह-जगह मल मौजूद था।
यकृत क्षतिग्रस्त हो गया था, यकृत के बाएं भाग से धातु की एक बड़ी गोली बरामद की गई थी।"

19. डॉक्टर की राय है कि मृतक की मृत्युपूर्व चोटों और रक्तस्राव के कारण हुई थी। चोट संख्या 1, 2, 3, 6, 7, 16, 17 और 18 कटे हुए घाव थे और कांटा जैसे तेज धार वाले हथियार के कारण हो सकते थे, और चोट संख्या 4, 5, 8, 9, 10, 11, 12 और 13 आग्नेयास्त्र के कारण कारित हुए थे, जिसकी संख्या उन्होंने एक से अधिक बताई। अ.सा.-7 ने मृतक के वस्त्र और मृतक के शरीर से बरामद तीन छर्रों की पहचान प्रदर्श क.-18 के रूप में की। यह भी कहा गया है कि चोट संख्या 6, 16 और 18 भाला समान नुकीले और तेज धार वाले हथियार से कारित हो सकती है

20. अ.सा.-8 राम समुझ यादव, ने जी0डी0 सं0 9 दिनांक 13.07.1981 समय 9.30 बजे को सिद्ध किया।

21. उपर्युक्त मौखिक साक्ष्यों के अलावा कार्यालय जिला अस्पताल, हरदोई के लिपिक विश्वनाथ पांडे, हेड कांस्टेबल संख्या 34, सी.पी., मालखाना मोहर्रिर ने अपना शपथ पत्र न्यायालय में प्रस्तुत किया और कहा कि वाद

संपत्ति पाँच बंडलों में कांस्टेबल-681 शिवलाल, ओ.पी.पचदेवरा, थाना पाली के माध्यम से रासायनिक परीक्षक आगरा, उ.प्र. भेजी गई थी, और वाद सम्पत्ति सही सलामत रही। रघुनाथ मिश्रा ने अपने शपथ पत्र में बताया कि वाद सम्पत्ति (4 डब्बे और 1 पोटली) आरक्षी शिवलाल-681 के माध्यम से रासायनिक परीक्षण हेतु मुख्य चिकित्सा अधिकारी कार्यालय हरदोई भेजी गई तथा वह सुरक्षित रही।

22. साक्ष्यों के साक्ष्य का बयान होने के उपरांत आरोपियों के बयान धारा 313 दं.प्र.सं. के अंतर्गत दर्ज किये गये। सभी आरोपियों ने अपने विरूद्ध कथित आरोपों और प्रस्तुत साक्ष्यों से इनकार किया और कहा कि उन्हें रंजिश और पक्षपात के कारण वर्तमान मुकदमे में झूठा फंसाया गया है। बचाव पक्ष का कोई साक्षी प्रस्तुत नहीं किया गया। यद्यपि बचाव पक्ष को साक्षी प्रस्तुत करने का अवसर दिया गया।

23. जहाँ तक शत्रुता का प्रश्न है, सभी आरोपी-अपीलकर्ताओं ने दं.प्र.सं. की धारा 313 अंतर्गत अपने बयान में कहा कि उन्हें झूठा फंसाया गया था क्योंकि दोनों पक्षों के मध्य पूर्व शत्रुता थी। अ.सा.-2 झिंगुरी ने प्रथम सूचना रिपोर्ट में विशेष रूप से कहा था कि उनके भाई प्रकाश (अब मृतक) पर न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता राम सहाय पर गोली चलाने के लिए विचारण किया गया, दोषी ठहराया गया और उसे सात वर्ष कारावास की सजा दी गई। इस घटना से दो वर्ष पूर्व ही वह जेल से बाहर आया था। यह सच है कि शत्रुता दोधारी तलवार है और इसका प्रयोग झूठा फंसाने के लिए किया जा सकता है या शत्रुता के कारण घटना घट सकती है। अब यह देखना होगा कि क्या अभियुक्त- अपीलकर्ताओं को मामले में झूठा फंसाया गया था या उन्होंने वास्तव में अपराध किया है। इस मामले में अ.सा.-2 और अ.सा.-3, प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं। दोनों न्यायालय में उपस्थित हुए और साक्ष्य प्रस्तुत किया।अ.सा.-2 ने विशेष रूप से कहा कि जब वह तालाब के पास शौच हेतु गया तो उसने गोली चलने की आवाज और अपने भाई के चिल्लाने की आवाज सुनी और उसने अपने भाई को चिल्लाते हुए और अपने घर की ओर भागते हुए भी देखा। यह भी कहा गया है कि गोली लगने के कारण वह नीचे गिर गया और गिरने के बाद भी उस पर दो गोलियां चलाई गई। अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को साक्षीगण रघुनंदन, बड़े और दरबारी द्वारा चुनौती दी गई थी और बड़े ने अ.सा.-3 के रूप में अ.सा.-2 झिंगुरी के साक्ष्य की संपुष्टि की है। दोनों साक्षियों ने सिद्ध किया कि इसके बाद अपीलकर्ताओं ने मृतक के शव को उठाया और जवाहर के खेतों में फेंक दिया। अ.सा.-2 द्वारा यह भी स्वीकार किया गया है कि जब प्रकाश जेल में था तो अपीलकर्ता राम सहाय के सगे भाई छोटे की किसी और ने हत्या कर दी थी और उस मामले में उसके भाई सरकेश, अनंगपाल और हरकरन को भी नामित किया गया था और घटना से 4 से 5 माह पूर्व हत्या के आरोप से मुक्त कर दिया गया था। उनके भाई सरकेश की पत्नी की भी हत्या कर दी गई और इसके लिए गंगाराम, मुलायम और भ्रमरपाल पर मुकदमा चलाया गया।

24. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार मृतक के शव को जवाहर के खेत की ओर ले जाते समय अपीलकर्ताओं द्वारा घसीटा गया था। हालांकि न्यायालय में बयान के समय गवाहों ने कहा कि प्रकाश की हत्या कर शव को लटकाया गया था व जवाहर के खेत में फेंक दिया गया था। यह तुच्छ विरोधाभास हैं, जो अभियोजन के संपूर्ण वाद हेतु घातक नहीं है।

25. अपीलकर्ताओं की ओर से यह भी तर्क दिया गया कि अ.सा.-2 का साक्ष्य भी संदिग्ध है, क्योंकि अपीलकर्ताओं ने उसे लक्षित नहीं किया। हालांकि, दोनों परिवारों के मध्य रंजिश की बात कही गई है। इस संदर्भ में पत्रावली से यह प्रकट होता है कि मृतक प्रकाश ने पूर्व घटना में राम सहल पर गोली चलाई थी। हालांकि, अ.सा.-3 का उस मामले से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। इसके अतिरिक्त, अभियुक्त-अपीलकर्तागण मृतक प्रकाश का पीछा कर रहे थे जब वह घास का गट्ठर लेकर अपने घर जा रहा था। हालाँकि, पीड़ित शौच हेतु तालाब के पश्चिमी किनारे पर था। इसलिए वादी को लक्षित करने का कोई कारण नहीं था। इसलिए, यह तर्क मान्य नहीं है।

26. अ.सा.-4 ने घटना स्थल से तथा जिस स्थान पर शव फेंका गया था, वहाँ से खून आलूदा मिट्टी तथा सादी मिट्टी को एकत्रित कर उस सामग्री को पत्र प्रदर्श क-21 के माध्यम से रासायनिक परीक्षण हेतु भेजा गया। रिपोर्ट (प्रदर्श क- 22)- सीरोलॉजिकल रिपोर्ट के अनुसार, खून आलूदा मिट्टी और मृतक के अंडरवियर पर मानव रक्त पाया गया था। यहाँ यह उल्लेख करना भी आवश्यक है कि प्रदर्श क-11 के अनुसार, अन्वेषण अधिकारी ने घटना स्थल से छह छर्रे और तीन गोलियां एकत्र की और गोलियों के निचले हिस्से पर एल.जी. उत्कीर्ण था। अ.सा.-7 के अनुसार मृतक के शरीर से तीन छर्रे बरामद हुए और उदर गुहा से धातु की एक गोली बरामद हुई। अ.सा.-7 के अनुसार चोट संख्या 4, 5, 8, 9, 10, 11, 12 और 13 गोली से कारित की गई। सभी वाद संपत्तियों को अ.सा.-4 अन्वेषण अधिकारी ने न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया एवं सिद्ध किया कि घटना स्थल से छह टिकली और तीन गोलियां बरामद की गई थीं, जिन्हें अन्वेषण अधिकारी ने न्यायालय में सिद्ध कर दिया है। अ.सा.-4, अन्वेषण अधिकारी ने नक्शा नजरी को भी सिद्ध किया है, जिसके

अनुसार नक्शा नजरी में "X" अक्षर द्वारा दर्शाए गए स्थान से घास का बंडल बरामद किया गया था। यह घास का वह गट्ठर है जिसे मृतक घटना के समय अपने सिर पर उठाए हुए था। हालाँकि, "बी" वह स्थान है जहाँ उसे गोली मारी गई थी और वह गाँव की ओर भागने लगा था, और "सी" वह स्थान है जहाँ वह चोट लगने के कारण गिर गया था। मृतक का शव नक्शा नजरी में अक्षर "सी" द्वारा दर्शाए गए स्थान से बरामद किया गया।

27. वर्तमान अपीलकर्ता जोगराज की ओर से कहा गया है कि उसे लाठी से हमला करने की भूमिका सौंपी गई थी और जिन लोगों ने गोली चलाई और भाला और कांटा से हमला किया, उनकी मृत्यु पहले ही हो चुकी है और उनके विरुद्ध अपील समाप्त कर दी गई है।

28. इंजरी रिपोर्ट के अनुसार चोट संख्या. 14 व 15 लाठी से कारित होना पाया गया। चोट क्रमांक 14, 3 सेमी X 2 सेमी., दाहिने कंधे के ऊपरी भाग पर नीलगू निशान है और चोट सं. 15, 2 सेमी X1 सेमी Xमांसपेशी तक गहरा कटा हुआ घाव है जो कि दाहिने हाथ के अंगूठे और दाहिनी तर्जनी के मध्य जालक स्थल में है। इसलिए, घटना के समय अभियुक्त जोगराज की उपस्थिति के बारे में कोई भ्रम नहीं है और अभियुक्त जोगराज ने अन्य सह-अभियुक्तगण के साथ मिलकर मृतक प्रकाश पर हमला किया और उसे चोट पहुंचाई। डॉक्टर, अ.सा.-7, के अनुसार मृत्यु पोस्टमॉर्टम से लगभग दो दिन पूर्व हुई है और मृत्यु का कारण मृत्यु पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप सदमा और रक्तस्राव बताया गया है। यह मत भी व्यक्त किया गया है कि चोटें सामान्य प्रकृति में मृत्यु कारित करने हेतु पर्याप्त थीं। अभियोजन ने ठोस सबूतों से सिद्ध किया कि मृतक की मृत्यु हेतु आग्नेयास्त्र, तेज और नुकीले हथियार और लाठी का प्रयोग किया गया था।

29. यह भी तर्क दिया गया है कि अ.सा.-2 झिंगुरी हितबद्ध और संबंधित साक्षी है और इसलिए, इस स्पष्ट कारण से उसने अभियुक्तगण के विरूद्ध साक्ष्य प्रस्तुत किया है,अत: उसका साक्ष्य विश्वसनीय नहीं है। झिंगुरी, अ.सा.-2, मृतक का सगा भाई है। उसने अपने बयान में स्वीकार किया है कि उसके भाई प्रकाश पर अभियुक्त राम सहाय के भाई छोटे की हत्या का मुकदमा चलाया गया था। उसने यह भी कहा कि उस पर अभियुक्त राम सहाय के भाई की हत्या का मुकदमा चलाया गया था, इसलिए, वह पक्षपातपूर्ण गवाह हो सकता है। लेकिन मात्र इसलिए कि वह मृतक का भाई है और दोनों परिवारों के मध्य शत्रुतापूर्ण संबंध हैं, उसके साक्ष्य को अस्वीकृत नही किया जा सकता। इसके अतिरिक्त उसके साक्ष्य की संपुष्टि स्वतंत्र गवाह बड़े ने की है।

30. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि अ.सा.-2 का साक्ष्य विश्वसनीय नहीं है क्योंकि वह वाद में हितबद्ध साक्षी है। इस संदर्भ में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कई निर्णयों में कहा कि संबंधित गवाह के साक्ष्य को मात्र इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि वह मृतक से संबंधित है।

31. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा "गुलाब बनाम स्टेट ऑफ यूपी"2021 SCC Online SC 1211 निर्णयविधि के प्रस्तर -15 में यह धारित किया गया था कि-

> *"किसी संबंधित साक्षी को मात्र पीड़िता का संबंधी होने के आधार पर "हितबद्ध" साक्षी नहीं कहा जा सकता है। इस न्यायालय ने कई मामलों में "हितबद्ध" और "संबंधित" साक्षी के मध्य अंतर को स्पष्ट करते हुए कहा कि एक साक्षी मात्र तब ही हितबद्ध कहा जा सकता है जब उसे किसी वाद के परिणाम से कुछ लाभ प्राप्त होता है। एक आपराधिक मामले के संदर्भ में इसका अर्थ यह होगा कि पूर्व शत्रुता या अन्य कारणों से अभियुक्त को सजा दिलाने में साक्षी की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुचि है, और इस प्रकार उसका उद्देश्य आरोपी को झूठा फंसाना है।*

32. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ''राजेश यादव और अन्य इत्यादि बनाम उ.प्र. राज्य'', 2022 एससीसीऑनलाइन एससी 150, वाद निर्णय के प्रस्तर-28 में यह भी धारित किया गया था कि:-

> *"संबंधित साक्षी को स्वतः ही हितबद्ध साक्षी नहीं कहा जा सकता है। अन्य परिस्थितियों के साथ-साथ घटना स्थल पर भी ध्यान देना होगा। संबंधित साक्षी स्वाभाविक साक्षी भी हो सकता है। यदि कोई अपराध मृतक की परिसीमा में किया जाता है, तो उसके परिवार के सदस्यों की उपस्थिति को नकारा नहीं जा सकता है, क्योंकि वे स्वाभाविक साक्षी हैं। जब उनके साक्ष्य स्पष्ट, ठोस और प्रतिपरीक्षा की कसाौटी पर खरे उतरते हैं, तो यह वास्तविक बन जाता है, और संपुष्टि की आवश्यकता नहीं होती है। कोई संबंधित साक्षी मात्र तब ही हितबद्ध साक्षी बनेगा जब वह जानबूझकर अभियुक्त को दोषसिद्धि हेतु फंसाने का इच्छुक हो।"*

33. कार्तिक मल्हार बनाम बिहार राज्य, (1996) 1 एससीसी 614, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार धारित किया है: -

"हम यह भी टिप्पणी कर सकते हैं कि इस आधार पर कि साक्षी एक निकट संबंधी है, परिणामस्वरूप, पक्षपातपूर्ण साक्षी होने के कारण उस पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए। इस तर्क में कोई सार नहीं है। इस सिद्धांत को इस न्यायालय ने दिलीप सिंह (उपरोक्त) वाद में पहले ही खंडित कर दिया था, जिसमें इस न्यायालय ने बार के सदस्यों के मन में व्याप्त इस धारणा पर आश्चर्य व्यक्त किया कि संबंधी स्वतंत्र साक्षी नहीं थे। न्यायमूर्ति विवियन बोस ने टिप्पणी की:

*हम उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों से सहमत हो सकने में असमर्थ हैं कि दो प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के परिसाक्ष्य में संपुष्टि की आवश्यकता होती है। यदि इस प्रकार की टिप्पणी की नींव इस तथ्य पर आधारित है कि साक्षीगण महिलाएं हैं और सात पुरुषों का भाग्य उनके साक्ष्य पर निर्भर है, तो हम ऐसे किसी नियम के बारे में नहीं जानते हैं। यदि यह इस कारण पर आधारित है कि उनका मृतक से गहरा संबंध है तो हम सहमत होने में असमर्थ हैं। यह कई आपराधिक वादों में सामान्य धारणा है और जिसे इस न्यायालय की एक अन्य पीठ ने **रामेश्वर बनाम राजस्थान राज्य, [1952] एससीआर 377= एआईआर 1952 एससी 54,** वाद में दूर करने का प्रयास किया। हालांकि, हम पाते हैं कि दुर्भाग्य से यह यदि न्यायालयों के निर्णयों में नहीं, तो किसी न किसी स्तर पर अधिवक्ताओं के तर्कों में अभी भी जीवित है।"*

इस वाद में, न्यायालय ने आगे निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

"एक साक्षी को सामान्यतः तब तक स्वतंत्र माना जाता है जब तक कि वह ऐसे स्रोत से संबंधित नहीं है जिसके दूषित होने की संभावना हो और प्रायः इसका अर्थ है कि जब तक साक्षी के पास आरोपी के विरुद्ध शत्रुता जैसे कारण न हो कि वह उसे झूठा फंसाना चाहता हो। सामान्यतः कोई निकट सम्बन्धी वास्तविक अपराधी को बचाने वाला और किसी निर्दोष व्यक्ति को झूठा फंसाने वाला अंतिम व्यक्ति होगा..." यह सत्य है, जब भावनाएं चरम पर होती हैं और शत्रुता का व्यक्तिगत कारण होता है, तो किसी ऐसे निर्दोष व्यक्ति को दोषियों के साथ सम्मिलित कर देने की प्रवृत्ति होती है, जिसके विरुद्ध साक्षी के मन में कोई द्वेष हो, किन्तु इसके लिए ठोस नींव होनी चाहिए और जब सम्बन्ध ऐसी नींव से दूर हो तो मात्र यह तथ्य ही प्रायः सत्यता की सुनिश्चित गारंटी होता है।

एक अन्य वाद मो. रोज़ली बनाम असम राज्य: (2019) 19 एससीसी 567, में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार धारित किया है : -

*"जहाँ तक इस विवाद का संबंध है कि सभी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी मृतक के निकट संबंधी हैं, अब यह निर्धारित हो गया है कि संबंधित साक्षी को मात्र पीड़ित का संबंधी होने के कारण "हितबद्ध साक्षी" नहीं कहा जा सकता है। इस न्यायालय ने "हितबद्ध" और "संबंधित साक्षी" के मध्य अंतर को कई मामलों में स्पष्ट किया है, जिसमें कहा गया है कि एक साक्षी को हितबद्ध मात्र तब ही कहा जा सकता है जब वह वाद के परिणाम से कुछ लाभ प्राप्त करता/करती है, जिसका एक आपराधिक वाद के संदर्भ में अर्थ यह होगा कि साक्षी की,अभियुक्त को पूर्व शत्रुता या अन्य कारणों से दंडित होते देखने में, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुचि है, और इस प्रकार अभियुक्त को झूठा फंसाने का यह एक उद्देश्य है (उदाहरण के लिए, **राजस्थान राज्य बनाम कल्की (1981) 2 एससीसी 752; अमित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2012) 4 एससीसी 107; और गंगाभवानी बनाम रायापति वेंकट रेड्डी, (2013) 15 एससीसी** का संदर्भ ग्रहण करें)। हाल ही में राजस्थान राज्य बनाम कल्की (उपरोक्त) में तीन न्यायधीशों की खंडपीठ के निर्णय का संदर्भ देकर **गणपति बनाम तमिलनाडु राज्य(2018)5 एससीसी 549** में निम्नलिखित शब्दों में इस अंतर को दोहराया गया : "*

14." संबंधित", "हितबद्ध" के समकक्ष नहीं है। एक साक्षी को "हितबद्ध" मात्र तब कहा जा सकता है जब वह वाद के परिणाम से, सिविल मामले में डिक्री में, या किसी अभियुक्त व्यक्ति के दंडित होने से कुछ लाभ प्राप्त करता/करती है। एक साक्षी जो एक स्वाभाविक साक्षी है और किसी वाद की परिस्थितियों में एकमात्र संभावित प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है उसे "हितबद्ध" नहीं कहा जा सकता है... ... "

11. आपराधिक मामलों में, प्रायः अपराध को पीड़ित के किसी निकट संबंधी ने देखा होता है, जिसकी अपराध स्थल पर स्वाभाविक उपस्थिति होगी। ऐसे साक्षी के साक्ष्य को हितबद्ध साक्षी का साक्ष्य कह कर स्वत: खारिज नहीं किया जा सकता। वास्तव में, आपराधिक वाद में हितबद्ध साक्षीयों के संबंध में सर्वाधिक प्रारंभिक बयानों में से एक, इस न्यायालय द्वारा दलीप सिंह बनाम पंजाब

राज्य, 1954 एससीआर 145, में दिया गया था, जिसमें इस न्यायालय ने टिप्पणी की थी:-

"26. ""एक साक्षी को सामान्यतः तब तक स्वतंत्र माना जाता है जब तक कि वह ऐसे स्रोत से संबंधित नहीं है जिसके दूषित होने की संभावना हो और प्रायः इसका अर्थ है कि जब तक साक्षी के पास आरोपी के विरुद्ध शत्रुता जैसे कारण न हो कि वह उसे झूठा फंसाना चाहता हो। सामान्यतः कोई निकट सम्बन्धी वास्तविक अपराधी को बचाने वाला और किसी निर्दोष व्यक्ति को झूठा फंसाने वाला अंतिम व्यक्ति होगा..."

12. संबंधित साक्षी के मामले में, न्यायालय उसके साक्ष्य को स्वाभाविक रूप से दूषित नहीं मान सकता है, और मात्र यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि साक्ष्य स्वाभाविक रूप से विश्वसनीय, संभावित, ठोस और सुसंगत है। हम ***जयबालन बनाम केंद्र शासित प्रदेश पांडिचेरी, (2010) 1 एससीसी 199****; में इस न्यायालय की टिप्पणियों का उल्लेख कर सकते हैं:-*

"23. हमारा विचार यह है कि ऐसे वादों में जहाँ न्यायालय के समक्ष हितबद्ध साक्षियों का साक्ष्य प्रस्तुत होता है। ऐसे साक्षियों के साक्ष्य को ग्रहण करते समय न्यायालय का दृष्टिकोण रुढ़िवादी नहीं होना चाहिए। न्यायालय को हितबद्ध साक्षी द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य का मूल्यांकन करने और स्वीकार करने में सतर्क रहना चाहिए, लेकिन न्यायालय को ऐसे साक्ष्यों पर संदेह नहीं करना चाहिए। न्यायालय का प्राथमिक प्रयास निरंतरता का अवलोकन होना चाहिए। किसी साक्षी के साक्ष्य को मात्र इसलिए अनदेखा नहीं किया जा सकता है या अस्वीकार किया जा सकता है क्योंकि वह उस व्यक्ति के मुख से आया है जिसका पीड़ित से निकट संबंध है।"

34. अतः अभियोजन पक्ष ने ठोस साक्ष्य द्वारा वाद को उचित संदेह से परे सिद्ध कर दिया कि वर्तमान अपीलकर्ता ने अन्य सह-अभियुक्तों के साथ मिलकर मृतक पर हमला किया और चोटें पहुंचाईं, जिसे डॉक्टर,अभियोजन साक्षी संख्या-7, ने मृत्यु का पर्याप्त कारण माना हैं । प्रत्यक्षदर्शी गवाहों ने वाद को सिद्ध कर दिया और अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता साक्षीगण के बयानों में कोई दोष अथवा भौतिक विरोधाभास प्रदर्शित नहीं कर सके। विद्वान अधिवक्ता विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय में किसी भी विकृति या अवैधता को उजागर नहीं कर सके।

35. विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत सभी साक्ष्यों पर विचार किया, वाद की परिस्थितियों के अंतर्गत साक्ष्यों का विशदीकरण किया और पाया कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य अपीलकर्ता के विरुद्ध वाद को युक्तियुक्त रूप से सिद्ध करने हेतु पर्याप्त हैं।

36. उपरोक्त विवेचना के दृष्टिगत, हमारा मानना है कि अपीलकर्ता संख्या 3- जोगराज को विचारण न्यायालय द्वारा धारा 302 सहपठित धारा 34 भा.दं.सं. के कथित अपराध हेतु दोषी ठहराने और आजीवन कठोर कारावास की सजा देने का कारण पर्याप्त हैं और अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त के अपराध को युक्तियुक्त संदेह से परे स्थापित किया है।

37. उपरोक्त विवेचना के आधार पर अपीलार्थी जोगराज द्वारा दायर अपील खारिज किये जाने योग्य है एवं तदनुसार खारिज की जाती है। विचारण न्यायालय का निर्णय एतद्द्वारा पुष्ट किया जाता है।

38. अभियुक्त जोगराज कारागार में है। वह विचारण न्यायालय द्वारा दी गई सजा भुगतेगा।

39. निर्णय और आदेश की प्रति के साथ-साथ विचारण न्यायालय के अभिलेखों को इस आदेश की आवश्यक सूचना और अनुपालन हेतु संबंधित विचारण न्यायालय को शीघ्र प्रेषित किया जाए।

(2023) 1 ILRA 828
अपीलीय क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: लखनऊ 09.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद

आपराधिक अपील संख्या 1385/2021

वीरेश सिंह और अन्य ... अपीलकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य ... प्रतिवादी

अपीलकर्तागण की ओर से अधिवक्ता:
नदीम मुर्तजा, अमित कुमार सिंह भदौरिया, जयंत मोहन वर्मा

प्रतिवादी की ओर से अधिवक्ता:
जी.ए., अनुपम रस्तोगी, पारिजात बेलरवा

आपराधिक कानून- अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989-

धारा 3 (1) (आर) – धारा 3 (1) (एस) - यह स्थापित कानून है कि किसी व्यक्ति का सभी अपमान या धमकी अधिनियम के तहत अपराध नहीं होगा जब तक कि इस तरह का अपमान या धमकी अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित पीड़ित के कारण न हो- अधिनियम के तहत अपराध केवल इस तथ्य पर स्थापित नहीं किया जाता है कि सूचनाकर्ता अनुसूचित जाति का सदस्य है जब तक कि अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को इस कारण अपमानित करने का इरादा न हो कि पीड़ित ऐसी जाति का है- यह शिकायतकर्ता का मामला नहीं है कि घटना के समय इलाके के अन्य लोग मौजूद थे। यह घटना एक घर के अंदर हुई थी जो सार्वजनिक दृष्टि में नहीं था और उस समय जनता का कोई सदस्य मौजूद नहीं था-शिकायत में न तो शिकायतकर्ता या उसके परिवार के सदस्यों की जाति का खुलासा किया गया है और न ही आरोप यह हैं कि वे सार्वजनिक रूप से किए गए थे। साथ ही, अपमानजनक शब्दों को इस कारण से नहीं बनाया जाता है कि सूचनाकर्ता अनुसूचित जाति का व्यक्ति है।

जहां घटना घर के अंदर हुई है और सार्वजनिक दृष्टि में नहीं है, तो एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (1) (आर) और 3 (1) (एस) के तहत अपराध केवल इसलिए नहीं बनेगा क्योंकि शिकायतकर्ता एससी / एसटी से संबंधित है (पैरा 10, 11, 13, 14)

आपराधिक अपील स्वीकृत। (ई-3)

<u>केस लॉ/निर्णय जिन पर भरोसा किया गया:-</u>

1. हितेश वर्मा बनाम उत्तराखण्ड राज्य और अन्य (2020)10 एससीसी 710
2. खुमान सिंह बनाम म0प्र0 राज्य, (2020) 18 एससीसी 763
3. स्वर्ण सिंह बनाम राज्य, (2008) 8 एससीसी 435

(माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद द्वारा पारित)

1. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता, प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता, विद्वान एजीए को सुना तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

2. अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 14-ए (1) के तहत वर्तमान अपील के माध्यम से अपीलकर्तागण ने शिकायत वाद संख्या 242/2019 (श्रीमती प्रेमा उर्फ रामगुनी बनाम राकेश सिंह एवं अन्य) अन्तर्गत धारा 452,323,504 और 506 भा0दं0सं0 और धारा 3 (1) (आर) और 3 (1) (एस) में विशेष न्यायाधीश एससी/एसटी अधिनियम, सीतापुर द्वारा पारित आक्षेपित तलबी आदेश दिनांकित 9.3.2021 तथा उक्त शिकायत वाद को रद्द करने का प्रार्थना किया है।

3. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि प्रेमा @ रामगुनी पत्नी पतिराम, निवासी गांव राम नगर, पुलिस स्टेशन- रामकोट, जिला सीतापुर ने धारा 156 (3) दं0प्र0सं0 के तहत विद्वान विशेष न्यायाधीश (एससी/एसटी एक्ट) सीतापुर के समक्ष एक प्रार्थना पत्र दायर किया, जिसमें आरोप लगाया गया कि 16.08.2019 को लगभग 9 बजे अपीलकर्ता शिकायतकर्ता के घर में घुस गए और शिकायतकर्ता और उसके पति को गाली देना शुरू कर दिया और उसके पति के साथ भी मारपीट की। शोर सुनकर बेटे-बेटियों ने आकर रेस्क्यू किया। अपीलकर्तागण ने अपने बेटों के साथ भी दुर्व्यवहार किया और जातिगत आक्षेपों का इस्तेमाल किया। अपीलकर्तागण ने उसके बेटों और बेटी बेबी के साथ भी मारपीट की, जो गर्भवती थी। जब परिवार के सभी लोगों ने शोर मचाना शुरू किया, तो अपीलकर्ता वहां से चले गए। उपरोक्त घटना पुलिस स्टेशन-रामकोट की पुलिस के संज्ञान में लाई गई थी, लेकिन अपीलकर्तागण के प्रभाव के कारण, पुलिस ने उनकी मदद नहीं की। इसके बाद, उपरोक्त घटना के बारे में एक प्रार्थना पत्र पुलिस अधीक्षक, सीतापुर को पंजीकृत डाक के माध्यम से 26.08.2019 को दिया गया और पुलिस अधीक्षक से भी मुलाकात की गई लेकिन कोई कार्रवाई नहीं की गई। मजबूरी में आवेदकों ने न्यायालय में शिकायत दर्ज कराई।

4. उपरोक्त शिकायत पर, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने दिनांक 25.9.20219 को एक आदेश पारित कर इसे शिकायत मामले के रूप में दर्ज किया। दं0प्र0सं0 की धारा 200 के तहत बयान दर्ज करने के बाद, पतिराम और बीबी का बयान, विद्वान अवर न्यायालय ने उपरोक्त धाराओं के तहत अपीलकर्तागण को तलब करते हुए दिनांक 9.3.2021 को आक्षेपित आदेश पारित किया।

5. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि शिकायत दुर्भावनापूर्ण इरादे से दायर की गई है क्योंकि जब अपीलकर्तागण को पता चला कि प्रतिवादी हानिकारक रसायन डालकर अपने पेड़ों को नष्ट कर रहे हैं, तो अपीलकर्तागण ने पुलिस को मामले की सूचना दी है। प्रतिवाद के रूप में, वर्तमान शिकायत दर्ज की गई है। ऐसा कहा जाता है कि प्रतिवादी संख्या 2 के पति पतिराम और उनका बेटा सीतापुर जज के पद पर कार्यरत हैं और उनका बहुत प्रभाव है। यह कहा गया है कि जब स्थानीय पुलिस पर उत्तरदाताओं के प्रभाव के कारण उनकी प्राथमिकी दर्ज नहीं की गई थी, तो अपीलकर्ता संख्या 1 ने 6.11.2019 को दं0प्र0सं0 की धारा 156 (3) के तहत एक प्रार्थना पत्र दायर किया था, लेकिन प्रतिवादी संख्या 1 और उनके बेटे की दबाव की रणनीति के कारण यह अभी भी लंबित है।

6. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि अधिनियम की धारा 3 (1) (आर) और 3 (1) (एस) के तत्व मामले की परिस्थितियों में आकर्षित नहीं होते हैं क्योंकि कथित घटना घर के अंदर हुई है और सार्वजनिक दृष्टि के भीतर एक जगह पर नहीं हुई है। इसके अलावा, **फियोना श्रीखंडे बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (2013) 14 एससीसी 44** में दिए गए निर्णय के मद्देनजर, अपीलकर्तागण के खिलाफ अन्य धाराओं के तहत भी अपराध नहीं किया जाता है।

7. अंत में, यह तर्क दिया गया है कि वर्तमान आपराधिक कार्यवाही अपीलकर्तागण को परेशान करने के लिए एक गुप्त उद्देश्य से शुरू की गई है, जो गंभीर पूर्वाग्रह के साथ-साथ उस इलाके में प्रतिष्ठा का नुकसान पहुंचा रहा है जहां अपीलकर्ता रह रहे हैं। यह कहा जाता है कि वर्तमान आपराधिक कार्यवाही कानून की प्रक्रिया के पूर्ण दुरुपयोग के अलावा और कुछ नहीं है।

8. अपीलकर्तागण के दावों का खंडन करते हुए, प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता और एजीए ने प्रस्तुत किया है कि आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है।

9. विद्वान अवर न्यायालय ने उचित प्रक्रिया का पालन करने और शिकायतकर्ता और अन्य गवाहों के बयान दर्ज करने के बाद सम्मन आदेश पारित करने के लिए कार्यवाही की है। इसलिए, वर्तमान को खारिज कर दिया जाना चाहिए।

10. यह स्थापित कानून है कि किसी व्यक्ति का सभी अपमान या धमकी अधिनियम के तहत अपराध नहीं होगा जब तक कि ऐसा अपमान या धमकी अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित पीड़ित के कारण न हो। अधिनियम की धारा 3 (1) (आर) के तहत अपराध अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के सदस्य को अपमानित करने के इरादे से जानबूझकर अपमान और धमकी के घटक को इंगित करेगा। प्रावधान का एक अन्य प्रमुख घटक "सार्वजनिक दृष्टिकोण के भीतर किसी भी स्थान" में अपमान या धमकी है। **हितेश वर्मा बनाम उत्तराखंड राज्य एवं अन्य (2020)10 एससीसी 710** के मामले में जिस पर याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने भरोसा किया है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पास एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 की प्रयोज्यता की जांच करने का अवसर था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि अधिनियम की धारा 3 (1) (आर) के तहत अपराध के मूल तत्वों को (1) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के सदस्य को अपमानित करने के इरादे से जानबूझकर अपमान या डराने और (2) सार्वजनिक दृष्टि के भीतर किसी भी स्थान पर वर्गीकृत किया जा सकता है। इस मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार आयोजित किया: -

"13. अधिनियम की धारा 3 (1) (आर) के तहत अपराध अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के सदस्य को अपमानित करने के इरादे से जानबूझकर अपमान और धमकी के घटक को इंगित करेगा। किसी व्यक्ति का अपमान या धमकी अधिनियम के तहत अपराध नहीं होगी जब तक कि ऐसा अपमान या धमकी अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित पीड़ित के कारण न हो। इस अधिनियम का उद्देश्य अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की सामाजिक-आथक स्थितियों में सुधार करना है क्योंकि उन्हें अनेक नागरिक अधिकारों से वंचित रखा गया है। इस प्रकार, अधिनियम के तहत एक अपराध तब किया जाएगा जब सोसायटी के कमजोर वर्ग के सदस्य को अपमान, अपमान और उत्पीड़न के अधीन किया जाता है। किसी भी पक्ष द्वारा भूमि पर स्वामित्व का दावा न तो अपमान, अपमान या उत्पीड़न के कारण है। प्रत्येक नागरिक को कानून के अनुसार उनके उपायों का लाभ उठाने का अधिकार है। इसलिए, यदि अपीलकर्ता या उसके परिवार के सदस्यों ने सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आह्वान किया है, या प्रतिवादी संख्या 2 ने सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आह्वान किया है, तो पार्टियां कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार अपने उपायों का लाभ उठा रही हैं। इस तरह की कार्रवाई इस कारण से नहीं है कि प्रतिवादी संख्या 2 अनुसूचित जाति का सदस्य है।

11. **खुमान सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2020) 18 एससीसी 763** के रूप में रिपोर्ट किए गए एक अन्य फैसले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि अधिनियम की धारा 3 (2) (वी) की प्रयोज्यता के मामले में, यह तथ्य कि मृतक अनुसूचित जाति का था, बढ़ी हुई सजा देने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। न्यायालय ने कहा कि यह सुझाव देने के लिए कुछ भी नहीं था कि अपीलकर्ता द्वारा अपराध केवल इसलिए किया गया था क्योंकि मृतक अनुसूचित जाति से संबंधित था। इसलिए, अधिनियम के तहत अपराध केवल इस तथ्य पर स्थापित नहीं किया जाता है कि सूचनाकर्ता अनुसूचित जाति का सदस्य है, जब तक कि अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के सदस्य को इस कारण अपमानित करने का इरादा न हो कि पीड़ित ऐसी जाति से संबंधित है।

12. **स्वर्ण सिंह बनाम राज्य (2008) 8 एससीसी 435** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिव्यक्ति "सार्वजनिक दृश्य के भीतर स्थान" और "सार्वजनिक स्थान" को परिभाषित किया है। संबंधित पैराग्राफ निम्नानुसार है: -

> *"28. एफआईआर में आरोप लगाया गया है कि प्रथम मुखबिर विनोद नागर का अपीलकर्ता 2 और 3 (उसे 'चमार' कहकर) द्वारा अपमान किया गया था, जब वह उस कार के पास खड़ा था जो परिसर के गेट पर खड़ी*

थी। हमारी राय में, यह निश्चित रूप से सार्वजनिक दृश्य के भीतर एक जगह थी, क्योंकि एक घर का द्वार निश्चित रूप से सार्वजनिक दृश्य के भीतर एक जगह है। यह एक अलग मामला हो सकता था अगर कथित अपराध एक इमारत के अंदर किया गया होता, और सार्वजनिक दृष्टि में भी नहीं था। हालांकि, अगर अपराध इमारत के बाहर किया जाता है जैसे कि घर के बाहर लॉन में, और लॉन को चारदीवारी के बाहर सड़क या गली से किसी के द्वारा देखा जा सकता है, तो लॉन निश्चित रूप से सार्वजनिक दृश्य के भीतर एक जगह होगी। इसके अलावा, भले ही टिप्पणी एक इमारत के अंदर की गई हो, लेकिन जनता के कुछ सदस्य वहां हैं (केवल रिश्तेदार या दोस्त नहीं) तो भी यह एक अपराध होगा क्योंकि यह सार्वजनिक दृष्टि में है। इसलिए, हमें अभिव्यक्ति 'सार्वजनिक दृश्य' के भीतर 'सार्वजनिक स्थान' अभिव्यक्ति के साथ भ्रमित नहीं होना चाहिए। एक जगह एक निजी जगह हो सकती है लेकिन फिर भी सार्वजनिक दृश्य के भीतर। दूसरी ओर, एक सार्वजनिक स्थान का मतलब आमतौर पर एक ऐसा स्थान होगा जो सरकार या नगरपालिका (या अन्य स्थानीय निकाय) या गांव सभा या राज्य के एक साधन के स्वामित्व या पट्टे पर है, न कि निजी व्यक्तियों या निजी निकायों द्वारा।"

13. वर्तमान मामले की जांच पूर्वोक्त मामलों में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित पूर्वोक्त प्रस्ताव के आलोक में की जानी है। दं0प्र0सं0 की धारा 156 (3) के तहत शिकायत में शिकायतकर्ता-प्रेमा @ रामगुनी का यह स्पष्ट रुख है कि अपीलकर्तागण ने रात 9 बजे अपमानजनक भाषा का इस्तेमाल करते हुए घर में प्रवेश किया और उसके पति और बेटों पर हमला किया। शिकायतकर्ता का यह मामला नहीं है कि घटना के समय मोहल्ले के अन्य लोग मौजूद थे। यह घटना एक घर के अंदर हुई थी जो सार्वजनिक रूप से नहीं था और उस समय कोई भी जनता मौजूद नहीं थी।

14. इसलिए, अभिलेख पर मौजूद सामग्री से अधिनियम के तहत अपराध केवल इस तथ्य पर स्थापित नहीं होता है कि शिकायतकर्ता अनुसूचित जाति का सदस्य है, जब तक कि अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के सदस्य को इस कारण अपमानित करने का इरादा न हो कि पीड़ित ऐसी जाति के हैं। इसके अलावा, अभिलेख से यह पता चलता है कि प्रतिवादी संख्या 2 के घर के पास स्थित जमीन के एक टुकड़े पर खड़े पेड़ों के संबंध में पक्षों के बीच विवाद था। अपीलकर्तागण ने पहले हुए विवाद के संबंध में निजी प्रतिवादियों के खिलाफ भी शिकायत दर्ज की है। यह जोड़ना प्रासंगिक है कि शिकायत न तो शिकायतकर्ता या उसके परिवार के सदस्यों की जाति का खुलासा करती है और न ही आरोप यह हैं कि वे सार्वजनिक रूप से लगाए गए थे। इसके अलावा, अपमानजनक शब्दों को इस कारण से नहीं बनाया जाता है कि सूचनाकर्ता अनुसूचित जाति से संबंधित व्यक्ति है। भा0दं0सं0 की अन्य धाराएं भी आकर्षित नहीं होती हैं, इस प्रकार पूर्वोक्त मामले में अपीलकर्तागण के खिलाफ कोई मामला नहीं बनता है।

15. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, मेरी सुविचारित राय है कि अपीलकर्तागण के खिलाफ भा0दं0सं0 की धारा 452, 323,504 और 506 और अधिनियम की धारा 3 (1) (आर) और 3 (1) (एस) के तहत लगाए गए आरोप अपीलकर्तागण के खिलाफ नहीं बनते हैं।

16. तदनुसार, अपील **स्वीकृत** की जाती है और शिकायत वाद संख्या 242/2019 (श्रीमती प्रेमा उर्फ रामगुनी बनाम राकेश सिंह और अन्य) की कार्यवाही, जहां तक यह अपीलकर्तागण से संबंधित है, अन्तर्गत धारा 452,323,504 और 506 भा0दं0सं0 और अधिनियम की धारा 3 (1) (आर) और 3 (1) (एस) के तहत, विशेष न्यायाधीश, एससी/एसटी अधिनियम, सीतापुर की न्यायालय में लंबित है और विशेष न्यायाधीश, एससी/एसटी अधिनियम, सीतापुर द्वारा पारित दिनांक 09.03.2021 के आक्षेपित सम्मन आदेश को एतद्द्वारा रद्द किया जाता है।

(2023) 1 ILRA 832
अपीलीय क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांकः इलाहाबाद 23.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

द्वितीय अपील संख्या 2396/1981

श्रीमती राम रत्ती एवं अन्य ...अपीलकर्ता
बनाम
गोरख प्रसाद दुबे ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता:
श्री वी. बी. खरे, श्री अशोक कुमार शुक्ला, श्री सतेंद्र कुमार सिंह, श्री सुरेश चंद्रवर्मा

अधिवक्ता प्रतिवादी:
श्री डी.एन. मिश्रा, श्री आद्या प्रसाद तिवारी, श्री सी.बी. धर दुबे, श्री पी.पी. चौधरी

दीवानी कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – धारा 100, - विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 – धारा 16(सी), 20और 20(2): वादी की द्वितीय अपील - विशिष्ट प्रदर्शन के लिए सिविल अपील सूट में निचली अदालत द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को चुनौती देना के लिए एक बिक्री अनुबंध - विचारणीय न्यायालय के निष्कर्षों से व्यथित होकर, दोनों पक्षों ने प्रथम अपीलीय अदालत के समक्ष अलग-अलग अपील दायर की, प्रथम अपीलीय अदालत ने वादी-प्रतिवादी के पक्ष में विचारणीय न्यायालय के निर्णय और डिक्री को अपास्त कर दिया - कानून का महत्वपूर्ण प्रश्न –विशेष रूप से अनुचित अनुबंध लाभ पर कानून निष्पादन अच्छी तरह से नियत है - और इसकी उत्पत्ति समानता के सिद्धांतों से हुई है - और – 'नोटिस'के दूसरे मुद्दे पर - अभिलेख पर ऐसा कोई नोटिस नहीं है कि क्या वादी प्रतिवादी ने वादे के अपने हिस्से को पूरा करने की इच्छा व्यक्त की है - वादी- विपक्षीगण ने प्रतिवादी-अपीलकर्ता को अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए दिए गए नोटिस को प्रस्तुत करने और साबित करने में विफल रहा, इस संबंध में कानून बहुत अच्छी तरह से स्थापित है कि कानून के तहत आवश्यक नोटिस का स्पष्ट और स्पष्ट सबूत होना चाहिए, इस प्रकार, दोनों आधारों पर अपील सफल होती है और अनुमति दी जाती है - अपीलीय अदालत के फैसले को निरस्त कर दिया जाता है - प्रतिवादी प्राप्त राशि वापस कर देंगे - तदनुसार निर्देश जारी किए जाते हैं।

(अनुछेद - 8, 12, 13)

परिणाम - द्वितीय अपील स्वीकृत। (ई-11)

<u>सन्दर्भित वादों की सूची:</u>

1. ए.सी. अरुलप्पन बनाम अहल्या नाइक, (2001) 6एससीसी 600

2. रमेश चंद बनाम असरुद्दीन, रिपोर्ट (2016) 1एससीसी 653,

3. मंजूनाथ आनंदप्पा उर्फ शिवप्पा हांसी अपीलकर्ता बनाम तम्मनसा और अन्य, एआईआर 2003एससी 1391

4. उमाबाई और अन्य-अपीलकर्ता बनाम नीलकंठ धोंडीबा चव्हाण (मृत) लार्स और अन्य 2005 3एडब्ल्यूसी 2948

5. सी.एस. वेंकटेश बनाम ए.एस.सी. मूर्ति (डी) द्वारा वारिसन और अन्य 2020 3एससीसी 280

6. सुघर सिंह बनाम हरि सिंह (मृत) द्वारा वारिसन एवं अन्य 2021एआईआर (एससी) 5581

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी द्वारा प्रदत्त)

पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुना और उनकी सहायता से अभिलेख का अवलोकन किया।

अपीलकर्ताओं ने सिविल अपील संख्या 28 सन् 1980 और सिविल अपील संख्या 29 सन् 1980 में प्रथम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, गोरखपुर द्वारापारित निर्णय और डिक्री दिनांक 04.07.1981 को चुनौती देते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

उत्तरदाता द्वारा दायर इस द्वितीय अपील में, दोनो अपीलें बिक्री के लिए एक अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एकवाद, वाद संख्या 62 सन् 1973 से उत्पन्न होती हैं। मुकदमा आंशिक रूपसे डिक्री किया गया था और विचारण न्यायालय के निष्कर्षों से व्यथित दोनों पक्षोंने प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष अपनी अलग-अलग अपील दायर की थी। प्रथम अपीलीय न्यायालय नेविचारण न्यायालयकेनिर्णय और डिक्री को निरस्त कर दिया और वादी-उत्तरदाताके पक्ष में मुकदमाका निर्णय सुनाया। प्रथमअपीलीय न्यायालय केनिर्णयकेविरूद्ध, मूल मुकदमे में प्रतिवादियों ने यह द्वितीय अपील दायर की है।

अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ताप्रस्तुत करते हैं कि वर्तमानद्वितीय अपीलमें विधिके दो सारभूतप्रश्न शामिल हैं, अर्थात,

क्या अपीलीय न्यायालय का निर्णय और डिक्री कानूनी रूप सेप्रतिकूल है?

क्या अपीलीय न्यायालय ने बिक्री विलेख निष्पादित करने के दायित्वके अपने हिस्से को पूरा करने के लिए वादी-प्रतिवादियों की ओर से उनकी इच्छा और तत्परता कागलत अनुमान लगाया है जबकि उनकी इच्छाको दर्शाने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है?

विधि के सारवान प्रश्न संख्या एक के संबंध में, प्रतिवादी अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अभिलेख पर साक्ष्यो की गलत व्याख्या की और अनुचित लेनदेन और अनुचित लाभ के आधार पर बिक्री विलेखके गैर-निष्पादन के स्थापित विधि के विपरीत निष्कर्ष दिया। अपीलकर्ता के अधिवक्ता अपीलीय न्यायालय के निर्णय के बिंदु संख्या 2 और 3 को संदर्भित करते हैं जहां वे विचारण न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से सहमत है कि संपत्ति का बाजार मूल्य कम से कम 30,000/रूपये होना चाहिए,जबकि बिक्री का समझौता 15,000/- रुपये के प्रतिफल पर हुआ था। अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि दोनों न्यायालयों ने वादी-प्रतिवादीके मौखिक बयान में उसके द्वारा की गई स्वीकारोक्ति पर विचार किया है, कि संपत्ति का बाजार मूल्य 35,000/- रुपये था, लेकिन अपीलीय न्यायालय ने अपने निर्णय में उक्त स्वीकारोक्ति को नजरअंदाज कर दिया और प्रतिवादी-अपीलकर्ता द्वारा अनुचित लाभ और प्रतिफल की अपर्याप्तता के तर्क के विरूद्ध निर्णय सुनाया।

वादी-उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ताका तर्क है कि प्रथम अपीली यन्यायालय के निर्णय में कोई विकृति नहीं है और प्रतिफल की अपर्याप्तता बिक्री विलेखके गैर-निष्पादन के लिए आधार नहीं है। वह आगे कहते हैं कि यह दलील कि प्रतिवादी-अपीलकर्ता के हस्ताक्षर जाली थे,

दोनों न्यायालयों द्वारा स्वीकार नहीं किए गए हैं। वादी के अधिवक्ता ने आगे कहा कि प्रतिवादी-उत्तरदाता बंसराज ने पहले ही अपनी अधिकांश संपत्ति बेच दी थी, इसलिए यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उसे पैसे की अत्यन्त जरूरत थी और यही तर्क प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा दिया गया है, जबकि समझौते की शर्तों की असंगतता और प्रतिवादी-अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए अनुचित लाभ की दलील को अस्वीकार कर दिया गया है।

अभिलेख के अवलोकन से पता चलता है कि प्रतिवादी, गोरख प्रसाद ने पीडब्ल्यू 1 के रूप में संपत्ति का मूल्य लगभग 35,000/-रुपये स्वीकार किया और दोनों न्यायालयों ने अपने निर्णयों में इसका मूल्य 30,000/- रुपये से कम नहीं लगाया है। अपीलीय न्यायालय ने वादी-प्रतिवादी को अनुचित लाभ के संबंध में विचारण न्यायालय के निर्णय को उलटते हुए दर्ज किया है कि प्रतिवादी बंसराज अपनी अन्य संपत्तियों को बेच रहा है, और इसलिए, उसे पैसे की अत्यन्त जरूरत होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, दोनों न्यायालयों ने दर्ज किया है कि बेचने के लिए समझौते के निष्पादन के समय भुगतान की गई 5,000 रुपये की राशि का उपयोग प्रतिवादी-अपीलकर्ता द्वारा अपनी संपत्ति पर कुछ जरूरी मरम्मत कार्यों के लिए किया जाना था। अपीलीय न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए ये दोनों निष्कर्ष एक दूसरे के विरोधाभासी हैं। यदि प्रतिवादी को धन की अत्यन्त जरूरत थी और वह संपत्ति के बाजार मूल्य के आधे से भी कम पर 15,000/- रुपये में संपत्ति बेचने के लिए सहमत हो गया, तो प्रतिवादी बंसराज अग्रिम के रूप मेंकेवल 5,000 रुपये क्यों लेगा, और पूरे प्रतिफल को क्यों नहीं लेगा। ठोस कारणों को दर्जकिए बिना, विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए अनुचित लाभ के निष्कर्ष को प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा उलटा नहीं जा सकता था।

अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन में अनुचित लाभ पर विधि-व्यवस्था अच्छी तरह से तय है और समता के सिद्धांतों से इसकी उत्पत्ति होती है औरइसे विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (इसके बाद 1963 के अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 20 में शामिल किया गयाहै। एसी अरुलप्पन बनाम अहल्या नाइक,जिसे (2001) 6 एससीसी 600 में प्रकाशित किया गया है, के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का उल्लेख करना पर्याप्त होगा, जहां पैराग्राफ 15 में उल्लिखित है;

"15. विशिष्ट निष्पादन प्रदान करना एक न्यायसंगत राहत है, यद्यपि यह अब विशिष्टअनुतोष अधिनियम, 1963 के वैधानिक प्रावधानोंद्वारा शासित है। इन न्यायसंगत सिद्धांतों को अधिनियम की धारा 20 में अच्छी तरह सेशामिल किया गया है। विशिष्ट प्रदर्शन के लिए डिक्री प्रदान करते समय, ये हितकारी दिशानिर्देश न्यायालय के दिमाग में सबसे आगे होंगे।विचारण न्यायालय, जिसके पास साक्ष्यों को दर्ज करने और गवाहों केआचरण को देखने का अतिरिक्त लाभ था, ने प्रासंगिक तथ्यों पर विचार किया और एक निष्कर्षपर पहुंच गया। अपीलीय न्यायालय को इन तथ्यों की अवहेलना करते हुए उस निर्णयको उलट नहीं देना चाहिए था और हमारे विचार में, अपीलीय न्यायालय ने अपनेनिर्णयमें गंभीरत्रुटियों की हैं।इसलिए, हम मानते हैं कि उत्तरदाता अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के डिक्रीका हकदार नहीं है।"

इसके अतिरिक्त, अपीलीय न्यायालय ने वादी केपक्ष में विशिष्ट प्रदर्शनकी डिक्री करते समय स्थापित न्यायिक मिसाल का पालननहीं किया जो कि उचित और तर्क संगत है तथा स्थापित न्यायिक सिद्धान्तों द्वारा निर्देशित है। विधि व्यवस्थातय है कि विशिष्ट प्रदर्शन की कोई डिक्री नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि न्यायालय ऐसा करने के लिए बाध्य हैं, न्यायालयों के पास यह तय करते समय पर्याप्त विवेकाधिकार होताहै कि उन्हें किसी विशिष्टनिष्पादन के लिए डिक्री जारी करना चाहिएया नहीं। यद्यपि, इस तरह के विवेकाधिकार को मनमाना नहीं किया जा सकता है और इसेसर्वोच्च न्यायालय द्वारा कई निर्णयों में दोहराया गया है।रमेश चंद बनाम असरुद्दीन, जिसे(2016) 1 एससीसी 653 में प्रकाशित किया गया, के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का उल्लेख करना पर्याप्तहोगा,जहां पैराग्राफ 8 मेंयह अभिनिर्धारित किया गया है कि;

"8. विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 20, यह प्रदान करती है कि विशिष्ट प्रदर्शन को डिक्री करने का क्षेत्राधिकार विवेकाधीन है, और न्यायालय केवल इसलिए ऐसी राहत देने केलिए बाध्य नहीं है क्योंकि ऐसा करना वैध है। यद्यपि, न्यायालयका विवेकाधिकार मन माना नहीं है, बल्कि न्यायिक सिद्धांतों द्वारा निर्देशितठोष और उचित है। अधिनियम की धारा20 की उपधारा (2) में उन तीन स्थितियों का प्रावधान किया गया है जिनमें न्यायालय विशिष्टनिष्पादन की डिक्री न करने के विवेक का प्रयोग कर सकता है। ऐसी एक स्थिति धारा 20 कीउप-धारा (2) के खंड (क) में निहित है जो यह प्रदान करती है किजहां अनुबंध की शर्तें या अनुबंध में प्रवेश करने के समय पक्षोंका आचरण या अन्य परिस्थितियांजिन के तहत अनुबंध में प्रवेश किया गया था, ऐसी हैं कि अनुबंध, यद्यपि शून्यकरणीय नहीं है, वादी को प्रतिवादी पर अनुचित लाभ देता है, विशिष्टप्रदर्शन की डिक्री को पारित करने की आवश्यकता नहीं है। यहां यह उल्लेख करना उचित हैकि वर्तमान मामले में, यद्यपिपक्षों के बीच 21-6-2004 के समझौते का निष्पादन साबित होता है, लेकिन वादी द्वारा कहीं भी यह दलील या साबित नहीं किया गयाहै कि उसने समझौते के संदर्भ में प्रतिवादी 2 के पक्ष में बंधक भूमि को छुड़ा लियाहै, और न ही यह विशेष रूप से दलील दी गई है कि वह बंधक से संपत्ति को छुड़ाने के लिएतैयार और इच्छुक था।"

प्रश्न संख्या दो के संबंध में, प्रतिवादी-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता नेप्रस्तुत किया कि यह दिखाने के लिए अभिलेखपर कुछ भी नहीं था कि उसके मुवक्किल कोकभी भी वादी-उत्तरदातासे शेष 10,000/- रुपये के भुगतान पर बिक्री विलेख निष्पादित करनेकी इच्छा के बारे में कोई नोटिस मिला हो। उन्होंने आगे कहा कि 1963 के अधिनियम की धारा16 (ग) के अनुसार, स्पष्ट शब्दों में वादी की इच्छा का कथन और प्रमाणआवश्यक है। केवल यह कहना कि उन्होंने विशिष्ट प्रदर्शन केलिए अपने मुकदमे में दायरकिसी भीसाक्ष्यके बिना, बिक्री विलेख के निष्पादन के लिए नोटिस जारी किया है, 1963 के अधिनियम की धारा 16 (ग) की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है। अपीलकर्ता के अधिवक्ताने उच्चतम न्यायालय के मंजूनाथ आनंदप्पा उर्फ शिवप्पा हांसी अपीलकर्ता बनाम तम्मनासा एवं अन्य उत्तरदातागण, जिसे एआईआर 2003 उच्चतम् न्यायालय 1391 में प्रकाशित किया गया, तथाउमाबाई और अन्य-अपीलकर्तागण बनाम नीलकंठ धोंडिबा चव्हाण(मृत) द्वारा एलआरएस और अन्य-उत्तरदातागण जिसे 2005 3एडब्ल्यूसी में प्रकाशित किया गया,के दो निर्णयों पर भरोसा किया है।

वादी-उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ताका तर्क है कि अपीलीय न्यायालय ने अनुबंध के अपने हिस्से को उसके पक्ष में करने की उसकी इच्छा के मुद्दे पर सही निर्णय किया है। वह आगे कहते हैं कि वादी-उत्तरदाता के विरूद्ध प्रतिवादी अपीलकर्ता द्वारा बेदखली और किराए की वसूली के लिए वाद में, उसने एकरूख लिया है कि वह किरायेदार नहीं है और बाकी प्रतिफल का भुगतान करने और बिक्री विलेख को अपने पक्ष में निष्पादित करने के लिए तैयार है। प्रतिवादी के नोटिस के जवाब में, यह प्रतिवादी-अपीलकर्ता था जिसने शेष राशि को स्वीकार करने और प्रतिवादी के पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित करने से इनकार कर दियाथा। वादी-उत्तरदाता के अधिवक्ताने आगे तर्क दिया कि सौदे के अपने हिस्सेको पूरा करने की उसकी इच्छा को वादी के आचरण को ध्यान में रखते हुए निर्णय लिया जाना चाहिए, जो कि मुकदमा दायर करने से पहले और बाद में अन्य उपस्थित परिस्थितियों के साथ-साथबेदखली के लिए बाद के मुकदमे में उसका मत है। उत्तरदाता के अधिवक्ता ने उच्चतम न्यायालय के निर्णयों सीएस वेंकटेश बनाम एएससी मूर्ति (डी) द्वारा एल आर एस और अन्य, जिसे 2020 3 एससीसी 280में प्रकाशित किया गया, और सुघर सिंह बनाम हरि सिंह(मृत) एलआरएस के माध्यम से और अन्य जैसा कि 2021 एआईआर (एससी) 5581 पर भरोसा कियाहै।

इस मुद्दे पर अपीलीय न्यायालय के निर्णय के अवलोकन से पता चलता है कियह कहीं भी वादी-उत्तरदाताओं द्वारा भेजे गए "नोटिस" को संदर्भित नहीं करता है। अभिलेखपर ऐसा कोई नोटिस नहीं है। यह सब माना जाता है कि एक पत्र जिसमें पेपर संख्या115/ग,प्रदर्श-2,के रूप में चिह्नित है, प्रतिवादी-अपीलकर्ता द्वारा भेजा गया है जो बेचनेके लिए समझौते के अपने हिस्से का सम्मान करने से इनकार करता है, और उसके और वादी-उत्तरदाता के बीच बिक्री के लिए किसीभी अनुबंध को अस्वीकार करता है। पत्र के अवलोकन से यह पता नहीं चलता है कि क्या यहवादी-उत्तरदाता द्वारा भेजे गए किसी नोटिस के जवाब में था, जहां वादी-उत्त दाता ने बचन के अपने हिस्से को पूरा करनेकी इच्छा व्यक्त की है। वादी-उत्तरदाता प्रतिवादी-अपीलकर्ता को अनुबंध के अपनेहिस्से को पूरा करने के लिए अपने नोटिस को टालने और साबित करने में असफल रहा है। सीएस वेंकटेश (उपरोक्त) और सुघर सिंह (उपरोक्त) के निर्णयों, जिन पर वादी-उत्तरदाता के अधिवक्ता ने भरोसा किया, भी इस दृष्टिकोण को मंजूरी देते हैं। इस संबंध में विधि बहुत अच्छी तरह से स्थापित है कि 1963 के अधिनियम की धारा 16 (ग) और सीपीसी 1908 के परिशिष्टक के फॉर्म 47 और 48 के अंतर्गत आवश्यक नोटिस का स्पष्ट और साफ प्रमाण होना चाहिए। मंजुनाथ आनंदप्पा (उपरोक्त)के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का उल्लेख करना पर्याप्त होगा, जिसके पैराग्राफ13,14 और 15 इस प्रकारहैं:

"13. विशिष्टअनुतोषअधिनियम की धारा 16 (ग) इस प्रकार है:

"किसी अनुबंध का विशिष्टप्रदर्शन किसी व्यक्ति के पक्ष में लागू नहीं किया जा सकता है-

***

जो यह साबित करने में असफल रहे कि उसके संविदा उन निबन्धनों से भिन्न जिनका पालन प्रतिवादी द्वारा निवारित अथवा अधिरक्त किया गया है, ऐसे मर्मभूत निबन्धनों का, जो उसके द्वारा पालन किये जाने हैं, उसने पालन कर दिया है अथवा पालन करने के लिए वह सदा तैयार और रजामन्द रहा है।

उपर्युक्त प्रावधान के संदर्भ में, यह वादी पर निर्भर है कि वह यहसाबित करे कि वह अनुबंध की आवश्यक शर्तों को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुकथा जो उसके द्वारा किए जानेकी आवश्यकता थी।

सिविल प्रक्रिया संहिता के परिशिष्टकके फॉर्म 47 और 48 में उस तरीकेको निर्धारित किया गया है जिसमें वादी द्वारा इस तरह के कथन किए जाने की आवश्यकता है।निर्विवाद रूप से, वादी ने इस आशय का कोई कथन नहीं किया है। जैसा कि यहां देखा गयाहै, उसने केवल यह तर्क दिया कि उसने प्रतिवादी 2 को एक पंजीकृत बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए प्रतिवादी 1कोलाने के लिए बुलाया। इस तथ्य के अलावा कि कथित मांग की तारीख का खुलासा नहीं किया गया है, बेशक, प्रतिवादी 1 पर ऐसी

कोई मांगनहीं की गई थी। हम देख सकते हैं, इस मोड़ पर, कि वादी ने अपने साक्ष्य में स्वीकार किया कि प्रतिवादी 1 ने प्रतिवादी 2 के पक्ष मेंदिए गए मुख्तारनामा को निरस्तकर दिया था। अपने अभिसाक्ष्यमें, उसने केवल यह कहा कि बिक्री केलिए समझौते को निष्पादित करने के बाद इस तरह का निरसन हुआ। यदि वह इस तथ्य से अवगतथा कि प्रतिवादी 2 के पक्ष में निष्पादित मुख्तारनामा की शक्ति को रद्द कर दिया गयाथा, तो बिक्री के लिए समझौते के निष्पादन के लिए प्रतिवादी 1 को लाने के लिए प्रतिवादी2 पर उसके द्वारा किसी भी मांग का सवाल बिल्कुल नहीं उठेगा। इसके अलावा, निर्विवादरूप से उक्त मुख्तारनामा पंजीकृत नहीं था। इसलिए, प्रतिवादी 2, अपनेपक्ष में बिक्री के पंजीकृत विलेख को निष्पादित नहीं करासका। बिक्री के समझौते के संदर्भमें बिक्री के विलेख के निष्पादन के लिए मांग, यदि कोई हो, इस प्रकार, केवल प्रतिवादी1, संपत्ति के मालिक पर की जा सकती थी। 10,000 रुपये का शेष प्रतिफल भी केवल प्रतिवादी1 को दिया जा सकता था। जैसा कि यहां पहले बताया गया है, कथित नोटिस केवल 8-8-1984 कोजारी किया गया था, अर्थात, तीन साल की अवधि समाप्त होने के बाद, जिसके भीतर बिक्रीके समझौते पर कार्रवाई करने की आवश्यकता थी।"

पूर्वोक्त से, यह स्पष्ट है कि वादी ने प्रतिवादियों को बिक्री विलेखके निष्पादन के बारे में कोई नोटिस नहीं दिया थाजैसा किविधि के अंतर्गत आवश्यक है। इस प्रकार, दोनों आधारों पर वर्तमान अपील सफल होती है और स्वीकार की जाती है। अपीलीय न्यायालय केफैसले को निरस्त किया जाता है। विशिष्ट प्रदर्शन के लिए वादी का मुकदमा विफल होजाता है। प्रतिवादी वादी को बेचने के लिए समझौते के अन्तर्गत प्राप्त राशि को आज से तीन महीने की अवधि के भीतर 6% प्रति वर्षब्याज की दर के साथ वापस कर देंगे।

पूर्वोक्त के साथ, अपील की स्वीकार की जाती है।

(2023) 1 ILRA 837
अपीलीय क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 15.11.2022

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

वादः आदेश से प्रथम अपील संख्या - 46/2013

क्षेत्रीय प्रबन्धक के माध्यम से उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम ... अपीलकर्ताः
बनाम
श्रीमती मेघकौर व अन्य .. प्रत्यर्थी

अपीलकर्ता के अधिवक्ताः
संजीव कुमार यादव

प्रत्यर्थी के अधिवक्ताः
निगमेन्द्र शुक्ला, सुरेश बहादुर सिंह

दिवानी कानून – मोटर वाहन अधिनियम, 1988 – धारा -173, - उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियम, 1998 –नियम 220-ए (3) (आई) – सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 41, नियम 33: - बीमाकर्ता की अपील - दो वाद पर आदेश के विरुद्ध– मुआवजे की मात्रा और अंशदायी लापरवाही – मृतक की मृत्यु मोटर दुर्घटना में हुई थी – जिसमें यू० पी० एस० आर० टी० बस की तेज और लापरवाही से ड्राइविंग से मृतक को उस समय टक्कर मार दी जब वह साइकिल चला रहा था - अंशदायी लापरवाही के वाद पर, अदालत ने घटना की एकमात्र जिम्मेदारी यू० पी० एस० आर० टी० पर तय की और मुआवजे की मात्रा के मुद्दे पर प्रणय सेठी, उर्मिला शुक्ला, सरला वर्मा के मामलो में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के मानदंडो के आलोक में आय, भविष्य की संभावनाओं और पारंपरिक प्रमुखों के मुद्दे पर विद्वान न्यायाधिकरण के निष्कर्ष को निरस्त कर दिया – विवादित पंचाट तदनुसार संशोधित – दिशा-निर्देश जारी किए गए – अपील निस्तारित। (अनुच्छेद - 24, 25, 30, 33, 34, 36, 38, 42, 44)

परिणाम - अपील निस्तारित । (ई-11)

<u>संदर्भित मामलों की सूचीः -</u>

1. जीतेन्द्र किमशंकर त्रिवेदी एवं अन्य बनाम कसामा दाउद कुंभार और अन्य (2015) 4एससीसी 237,
2. अरुण कुमार अग्रवाल एवं अन्य बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य (2010) 9एससीसी 218,
3. महंत धनगीर एवं अन्य बनाम मदन मोहन और अन्य (एआईआर 1988एससी 54),
4. दिल्ली इलेक्ट्रिक सप्लाई अंडरटेकिंग बनाम बसंती देवी (एआईआर 2000एससी 43),
5. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती विद्यावती देवी एवं अन्य (एफएएफओ संख्या

2389/2016पर दिनांक 27.07.2016को निर्णय पारित किया गया),
6. न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती सुमन मिश्रा एवं अन्य (2019 (5) एडीजे 669),
7. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य, (2017 (16) एससीसी 680),
8. न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला और अन्य (2021एसएससी ऑनलाइन एससी 822),
9. श्रीमती सरला वर्मा एवं अन्य बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन एवं अन्य (2009 (6) एससीसी 121)।

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट द्वारा प्रदत्त)

I. प्रस्तावना

1. यह आदेश से प्रथम अपील, मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/विद्वान जिला एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 4, गाजियाबाद द्वारा मोटर दुर्घटना दावा याचिका संख्या 261/2011 (श्रीमती मेघकौर व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सडक परिवहन निगम) में पारित निर्णय और अधिनिर्णय दिनांकित 29.09.2012से उत्पन्न हुई है।

2. आदेश से प्रथम अपील उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम द्वारा दायर की गई है, जिसमें भुगतान करने के अपने दायित्व और विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए मुआवजे की मात्रा को चुनौती दी गई है। प्रत्यर्थीगण-दावेदारों द्वारा मुआवजे को बढ़ाने की मांग करते हुए एक मौखिक प्रति-आपत्ति की गई है।

II. विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष दावेदारों और प्रत्यर्थीगण का मामलाः

3. विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष दावेदारों का संक्षेप में मामला यह था कि मृतक-भीकम सिंह की दिनांक 29.12.2010को एक मोटर दुर्घटना में मृत्यु हो गई, जो यू.पी.एस.आर.टी.सी. के बस चालक की तेज और लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण हुई थी। मृतक साइकिल चला रहा था जब उसे यू.पी.एस.आर.टी.सी. बस ने टक्कर मार दी। दावेदार मृतक पर निर्भर थे और यू.पी.एस.आर.टी.सी. से मुआवजा पाने के अधिकारी थे। यू.पी.एस.आर.टी.सी. ने एक लिखित बयान दाखिल करके दावेदारों के दावे का विरोध किया। मुकदमे में दोनों पक्षों ने साक्ष्य पेश किए।

III. विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया मुआवजाः

4. विद्वान न्यायाधिकरण ने पाया कि दुर्घटना यू.पी.एस.आर.टी.सी. नंबर की बस के चालक की तेज और लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण हुई थी।

5. विद्वान न्यायाधिकरण ने आक्षेपित निर्णय दिनांकित 29.09.2012द्वारा मुआवजा प्रदान किया, जिसे नीचे सारणीबद्ध रूप में दर्शाया गया हैः-

क्रम सं.	मद	धनराशि (रूपए में)
1	मासिक आय (ए)	निजी नौकरी से 5500/- प्रतिमाह एवं कृषि से 3000/- प्रतिमाह
2	वार्षिक आय (बी)	8500/-
3	भविष्य की संभावनाएं (सी)	8500का 30% = 11050/-
4	वार्षिक आय +भविष्य की संभावनाएं (बी+सी=डी)	19550/-
5	कटौती पश्चात कुल आय (ई)	11050 - 3683 = 7367/-
6	गुणक (एफ)	11
7	निर्भरता की कुल हानि	7367 x 12 x 11 = 972444/-
8	अंत्येष्टि खर्च	10000/-
9	प्रेम व स्नेह की हानि	25000/-
10	संपदा की हानि	25000/-
11	सह-व्यवस्था की हानि	30000/-
12	कुल मुआवजा	1062444/-
13	ब्याज	7.50%

6. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री संजीव कुमार यादव ने इन दो मुद्दों पर अधिनिर्णय पर आक्षेप किया है। विद्वान न्यायाधिकरण ने अंशदायी लापरवाही के मुद्दे पर अपीलकर्ता के विरूद्ध निर्णय देकर गलती की। दावेदारों-प्रत्यर्थीगण को दिया गया मुआवजा अत्यधिक था।

7. उत्तरदाताओं-दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता श्री निगमेंद्र शुक्ला ने प्रदत्त मुआवजे की मात्रा पर आपत्ति जताते हुए एक मौखिक प्रति-आपत्ति उठाई है। प्रत्यर्थी/दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, मृतक की आय का अनुचित मूल्यांकन किया गया था। मुआवजा बढ़ाए जाने योग्य है।

मुद्दे पर दोबारा जुड़ते हुए, अपीलकर्ता-यू.पी.एस.आर.टी.सी. के विद्वान अधिवक्ता ने अपीलीय स्तर पर प्रति-आपत्ति की पोषणीयता पर आपत्ति की।

IV. विचारणीय मुद्देः-

8. अपने तर्कों को आगे बढ़ाने के पश्चात, उभयपक्षों के विद्वान अधिवक्ता इस बात से सहमत हैं कि यद्यपि कई आधारों की वकालत की गई है, इस अपील में केवल निम्नलिखित प्रश्न ही विचारणीय हैं-

(ए) क्या अपील के चरण में दावेदारों द्वारा मौखिक प्रति आपत्तियां उठाई जा सकती हैं?

(बी) क्या यू.पी.एस.आर.टी.सी. बस का ड्राइवर दुर्घटना के लिए पूरी तरह जिम्मेदार था या यह अंशदायी लापरवाही का मामला था?

(सी) क्या विद्वान न्यायाधिकरण ने मुआवजे की गणना करते समय इन विभिन्न मदों के अंतर्गत मुआवजे की सही गणना की हैः-

(1) आय,
(2) परंपरागत व्यय,
(3) भविष्य की संभावनाएं,
(4) गुणक, और
(5) मुआवजे की गणना करते समय ब्याज?

V. मौखिक प्रति-आपत्ति का बिन्दुः

9. यह प्रश्न कि क्या अपील के स्तर पर मुआवजे में वृद्धि के लिए मौखिक आपत्तियाँ उठाई जा सकती हैं, अच्छे प्राधिकारियों द्वारा अच्छी तरह से तय किया गया है।

10. किसी पक्ष को मौखिक आपत्तियां लेने की अनुमति देने का अपीलकर्ता न्यायालय का क्षेत्राधिकार आदेश-41नियम-33सिविल प्रक्रिया संहिता में उल्लिखित अपील न्यायालय की शक्ति से पता लगाया जा सकता है। सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश-41नियम-33को पुनः प्रस्तुत किया गया हैः-

"नियम 33. अपील के न्यायालय की शक्ति- अपीलीय न्यायालय के पास कोई भी डिक्री पारित करने और कोई भी आदेश देने की शक्ति होगी, जो पारित या बनाया जाना चाहिए और ऐसे अतिरिक्त अन्य डिक्री या आदेश पारित करने की जो मामले की आवश्यकता के अनुसार हो तथा इस आदेश का प्रयोग न्यायालय द्वारा इस बात के बावजूद किया जा सकता है कि अपील केवल डिक्री का हिस्सा है और यह सभी या किसी भी प्रत्यर्थी या पक्षकार के पक्ष में प्रयोग किया जा सकता है, जिन्होंने कोई अपील या आपत्ति दायर नहीं की है और जहां क्रॉस वाद में डिक्री हुई हैं या जहां एक वाद में दो या दो से अधिक डिक्री पारित की गई हैं, ये सभी या किसी भी डिक्री के संबंध में प्रयोग किया जा सकता है, हालांकि ऐसी डिक्री के विरूद्ध कोई अपील दायर नहीं की जा सकती है।''

(जोर दिया गया)

11. प्रावधान का दायरा यह सुनिश्चित करता है कि कानून के हाथ अन्याय तक पहुंचने के लिए काफी लंबे हो, और न्यायालय के हाथ न्याय दिलाने के लिए पर्याप्त हो। उपरोक्त प्रावधान से अपनी शक्ति प्राप्त करते हुए, अपीलीय न्यायालय न्याय के उद्देश्य की पूर्ति के लिए आदेश पारित कर सकती है।

12. विशेष रूप से विधि की लाभकारी प्रकृति और मोटर वाहन अधिनियम, 1988का वैधानिक आदेश, अपीलीय न्यायालय को आदेश 41नियम 33के अंतर्गत उचित मुआवजा देने के लिए अपनी शक्तियों का प्रयोग करने का आदेश देता है। (देखें: जीतेंद्र किमशंकर त्रिवेदी व अन्य बनाम कसम दाउद कुंभार व अन्य, अरुण कुमार अग्रवाल व अन्य बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड व अन्य)

13. आदेश-41नियम-33सिविल प्रक्रिया संहिता का दायरा माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने महंत धनगीर व अन्य बनाम मदन मोहन व अन्य में कहाः-

"11. अगला विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या सह-प्रत्यर्थी मदन मोहन के विरूद्ध प्रति-आपत्ति पोषणीय थी, और यदि नहीं, तो क्या न्यायालय आदेश 41नियम 33की सहायता ले सकता है। विवाद पर विचार करने के लिए यहां आदेश 41के आर. 22और आर. 33का अवलोकन करना उपयोगी होगाः

"आर. 22सुनवाई पर, प्रत्यर्थी डिक्री पर आपत्ति कर सकता है जैसे कि उसने अलग अपील की हो। (1) कोई भी प्रत्यर्थी, हालांकि हो सकता है कि उसने डिक्री के किसी भी भाग से अपील न की हो, न केवल डिक्री का समर्थन कर सकता है (अपितु यह भी कह सकता है कि किसी भी मुद्दे के संबंध में अधीनस्थ न्यायालय में उसके विरूद्ध निष्कर्ष उसके पक्ष में होना चाहिए था, और वह कोई भी प्रति आपत्ति ले सकता है) जिस डिक्री को वह अपील के माध्यम से ले सकता था, बशर्ते कि उसने अपील की सुनवाई के लिए निर्धारित तिथि को उसको या उसके अधिवक्ता को नोटिस की तामील की तारीख से एक महीने

के भीतर अपीलीय न्यायालय में ऐसी आपत्ति दायर की हो, या ऐसे अतिरिक्त समय के भीतर की हो जिसे अपीलीय न्यायालय अनुमति देना उचित समझे।

आर. 33 अपील के न्यायालय की शक्ति।
अपीलीय न्यायालय के पास कोई भी डिक्री पारित करने और कोई भी आदेश देने की शक्ति होगी, जो पारित या बनाया जाना चाहिए और ऐसे अतिरिक्त अन्य डिक्री या आदेश पारित करने की जो मामले की आवश्यकता के अनुसार हो तथा इस आदेश का प्रयोग न्यायालय द्वारा इस बात के बावजूद किया जा सकता है कि अपील केवल डिक्री का हिस्सा है और यह सभी या किसी भी प्रत्यर्थी या पक्षकार के पक्ष में प्रयोग किया जा सकता है, जिन्होंने कोई अपील या आपत्ति दायर नहीं की है और जहां क्रॉस वाद में डिक्री हुई हैं या जहां एक वाद में दो या दो से अधिक डिक्री पारित की गई हैं, ये सभी या किसी भी डिक्री के संबंध में प्रयोग किया जा सकता है, हालांकि ऐसी डिक्री के विरूद्ध कोई अपील दायर नहीं की जा सकती है।''

14. दिल्ली इलेक्ट्रिक सप्लाई अंडरटेकिंग बनाम बसंती देवी में भी यही दृष्टिकोण दोहराया गया था।

15. आदेश-41नियम-33सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत शक्तियों की सीमा पर ध्यान दें, तो इस न्यायालय ने नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती विद्यावती देवी व अन्य में कहाः-
''अपील के न्यायालय की शक्ति निर्धारित करने वाले आदेश-41नियम-33सिविल प्रक्रिया संहिता में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि अपीलीय न्यायालय के पास कोई भी डिक्री पारित करने और कोई भी आदेश देने की शक्ति होगी, जिसे मामले के अनुसार पारित किया जाना चाहिए या बनाया जाना चाहिए, और इस शक्ति का प्रयोग सभी या किसी भी प्रत्यर्थी या पक्षकार के पक्ष में किया जा सकता है, भले ही उन्होंने कोई क्रॉस अपील या आपत्ति दाखिल न की हो।

16. न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती सुमन मिश्रा व अन्य मामले में निम्न प्रकार से विद्यावती देवी (उपरोक्त)का अनुसरण किया गया। जहां न्यायमूर्ति ठाकेर ने अधिवक्ता को मौखिक आपत्तियां उठाने की अनुमति दी और अपील में लिखित प्रति-आपत्तियों के अभाव में भी मुआवजा बढ़ा दियाः-
"44. यह कथन किया गया है कि जो धनराशि प्रदत्त की गई है वह उचित मुआवजा नहीं है और यह मौखिक रूप से प्रस्तुत किया गया है कि इस उच्च न्यायालय की खण्डपीठ से दिनांक 27.07.2016को निस्तारित आदेश से प्रथम अपील संख्या 2389 (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती विद्यावती देवी और 2अन्य) के निर्णय के आलोक में मुआवजे की राशि को बढ़ाने की आवश्यकता है, जिसमें यह माना गया कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41नियम 33के अंतर्गत, मुआवजे की राशि को बढ़ाया जा सकता है, भले ही कोई लिखित अपील या लिखित प्रति-आपत्ति न हो। यह इस मामले पर भी लागू होता है, हाल ही में उत्तर पूर्व कर्नाटक सड़क परिवहन निगम बनाम श्रीमति सुजाता ए.आई.आर. 2018एस.सी. 5593में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि लाभकारी विधान के लिए न्यायालय को वृद्धि प्रदान करनी चाहिए, भले ही दूसरा पक्ष मौजूद न हो।
45. यह नहीं कहा जा सकता है कि उचित मुआवजा देने से संबंधित विधि के सिद्धांतों का अधिकरण द्वारा पालन किया गया है और इसलिए, यह आदेश से प्रथम अपील संख्या 2389/2016 (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती विद्यावती देवी व 2अन्य) के निर्णय दिनांकित 27.07.2016के अनुसार इस पर पुनः निर्णय लिया जाएगा।''

17. जब प्रति-आपत्ति उठाने के लिए पूर्ववर्ती शर्तें पूरी हो गईं हो, तो विद्यावती देवी (उपरोक्त)के मामले में यह न्यायालय इस प्रकार प्रति-आपत्तियों पर विचार करने हेतु इच्छुक, यह कहते हुए नहीं पाया गयाः
''हमारा विचार है कि आदेश-41नियम-33के प्रावधानों में निर्धारित शर्तें, वर्तमान मामले में संतुष्ट हैं। दिल्ली इलेक्ट्रिक सप्लाई अंडरटेकिंग (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अवलोकित किया है कि जब ऐसी परिस्थितियाँ मौजूद होती हैं जिनमें नियम-33द्वारा प्रदत्त विवेक के प्रयोग की आवश्यकता होती है, तो जब अपनी शक्तियों का प्रयोग करने की बात आती है तो न्यायालय को लापरवाही नहीं बरतनी चाहिए।''

18. पूर्ववर्ती चर्चा और प्राधिकारों के मद्देनजर, दावेदारों-प्रत्यर्थीगण की ओर से प्रस्तुत मौखिक प्रति-आपत्तियां सुनवाई योग्य हैं। हालाँकि, यह न्यायालय किसी भी पक्ष के पूर्वाग्रह को दूर करने के लिए राहत को उचित रूप से ढाल सकता है।

V.(बी) दुर्घटना में अंशदायी लापरवाही का मुद्दाः
19. दावेदारों ने यू.पी.एस.आर.टी.सी. बस चालक द्वारा लापरवाही से गाड़ी चलाने को स्थापित करने के लिए पी.डब्ल्यू.-2यामीन को प्रस्तुत किया। पी.डब्लू.-2यामीन ने विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष गवाही दी कि उसने दुर्घटना देखी थी। पी.डब्लू.-2यामीन ने बयान दिया कि यू.पी.एस.आर.टी.सी. बस चालक की तेज और लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण दुर्घटना हुई जिसमें मृतक की मृत्यु हो गई। पी.डब्लू.-2यामीन वैध यात्री टिकट के साथ प्रश्नगत बस में उक्त यात्रा कर रहा था। उन्होंने बस का टिकट प्रस्तुत किया और इसे साबित भी किया। पी.डब्लू.-

2यामीन को प्रतिपरीक्षा के दौरान डिगाया नहीं जा सका। बस टिकट की प्रामाणिकता को कभी चुनौती नहीं दी गई।

20. विद्वान न्यायाधिकरण जिसे पी.डब्लू.-2यामीन के आचरण को देखने का लाभ मिला, द्वारा उसे एक विश्वसनीय साक्षी पाया गया और उसकी गवाही पर विश्वास किया गया। अभिलेखों पर उपलब्ध मौजूद साक्ष्यों से, इस न्यायालय के पास इस बिंदु पर अलग दृष्टिकोण अपनाने का कोई कारण नहीं है।

21. अपीलकर्ता-यू.पी.एस.आर.टी.सी. की ओर से इस तर्क पर विचार करना उचित होगा कि चश्मदीद गवाह पी.डब्ल्यू.-2यामीन भरोसे के लायक नहीं था क्योंकि उसने पुलिस अधिकारियों को विलम्ब से शपथपत्र दिया था। तर्क के पास टिकने के लिए कोई आधार नहीं हैं।

22. दं.प्र.सं. सपठित भा.दं.सं. के प्रावधानों के अंतर्गत आपराधिक आरोप की पुलिस जांच की गई। मुआवजे की कार्रवाई, जो इस अपील का विषय है, मोटर वाहन अधिनियम, 1988के अंतर्गत एक पूरी तरह से अलग उद्देश्य के लिए की गई है। संबंधित कार्यवाहियों पर साक्ष्य के अलग-अलग मानक लागू होते हैं।

23. मुझे प्रत्यर्थीगण-दावेदार-प्रतिआपत्तिकर्ताओं की ओर से विद्वान श्री निगमेंद्र शुक्ला के कथन में योग्यता दिखाई देती है कि चश्मदीद साक्षी पी.डब्लू.-2यामीन के बयान दर्ज करने में विलम्ब पुलिस विवेचकों की अक्षमता के कारण हुआ था, जिसके लिए दावेदार को न तो गलत कहा जा सकता है और न ही उत्तरदायी बनाया जा सकता है।

24. अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्य स्थापित करते हैं कि यू.पी.एस.आर.टी.सी. बस चालक ने तेजी और लापरवाही से गाड़ी चलाई, और दुर्घटना के लिए पूर्ण रूप से जिम्मेदार था। तेज रफ्तार बस के कारण मृतक के पास दुर्घटना को रोकने या खुद को बचाने का न तो समय था और न ही मौका। मृतक समझदारी से साइकिल चला रहा था और दुर्घटना के लिए उसे किसी भी तरह से दोषी नहीं ठहराया जा सकता। यह अंशदायी लापरवाही का मामला नहीं है। इस आधार पर यू.पी.एस.आर.टी.सी. को दावेदारों को मुआवजा देने के लिए पूर्ण रूप से उत्तरदायी माना जाता है।

25. विद्वान न्यायाधिकरण ने अंशदायी लापरवाही के मुद्दे पर दावेदारों के पक्ष में और यू.पी.एस.आर.टी.सी. के विरूद्ध मामला पाया और तदनुसार उत्तरवर्ती पर संपूर्ण दायित्व तय किया। इस मुद्दे पर विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा तर्कों और साक्ष्यों के मूल्यांकन के तरीके में कोई अशक्तता नहीं है।

VI.(सी)(i) मृतक की आयः-

26. विद्वान न्यायाधिकरण ने साक्ष्यों पर विचार करने के पश्चात पाया कि विभिन्न स्रोतों से मृतक की आय 8,500/- रुपये प्रति माह है।

27. दावेदारों ने विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष मृतक की आय सिद्ध करने के लिए पी.डब्लू.-1मेघकौर (मृतक की विधवा) और भू-अभिलेख प्रस्तुत किए थे। मृतक की पत्नी पी.डब्लू.-1मेघकौर ने गवाही दी कि मृतक एक पेपर मिल में काम करता था, और कृषि गतिविधियों में भी लगा हुआ था। मृतक के नाम पर कृषि जोत को प्रमाणित करने वाले भू-अभिलेख दावेदारों द्वारा साबित किए गए थे।
विद्वान न्यायाधिकरण ने पाया कि मृतक को पेपर मिल में कर्मचारी के रूप में प्रति माह 5,500/- रुपये का मासिक वेतन मिलता था और मृतक की नियत कृषि आय 3,000/- रुपये प्रति माह थी।

28. प्रत्यर्थीगण-दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा कृषि के लिए निर्धारित 3,000/- रुपये प्रतिमाह की आय अनुचित थी।

29. उभयपक्षों के विद्वान अधिवक्तागणों ने न्यायालय में मूल अभिलेखों का परिशीलन किया और पुष्टि की कि संयुक्त कृषि जोत में मृतक के हिस्से में आने वाली भूमि 0.7हेक्टेयर थी।

30. दावेदार-प्रत्यर्थीगण/प्रतिआपत्तिकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के तर्क में दम है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने कृषि आय तय करते समय भूमि की उर्वरता और मृतक की भूमि जोत की सीमा पर विचार करने पर ध्यान नहीं दिया। यह निर्विवाद है कि कृषि जोतें जिला-गाजियाबाद में एक उपजाऊ क्षेत्र में स्थित हैं। तदनुसार, कृषि आय रुपए 4,000/- प्रति माह तय की गई है। इस संबंध में विद्वान विचारण न्यायालय का निष्कर्ष पलटा जाता है।

31. पूर्ववर्ती चर्चा के परिप्रेक्ष्य में मृतक की कुल मासिक आय रूपए 9,500/- प्रतिमाह निर्धारित की जाती है।

IV.(सी)(ii) परंपरागत मदों की गणनाः-

32. आक्षेपित अधिनिर्णय में परंपरागत मदों के अंतर्गत निर्धारित राशि नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी व अन्य से भिन्न है। परंपरागत मदों को प्रणय सेठी (उपरोक्त)में निम्नानुसार तय किया गया थाः-

"54. ......कहने की आवश्यकता नहीं है कि पारंपरिक और पारंपरिक मदों को प्रतिशत के आधार पर निर्धारित नहीं किया जा सकता क्योंकि यह स्वीकार्य मानदंड नहीं होगा। आय के निर्धारण के विपरीत, उक्त मदों को मात्राबद्ध करना होगा। किसी भी परिमाणीकरण का उचित आधार होना चाहिए। इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं हो सकता है कि मूल्य सूचकांक, बैंक ब्याज में गिरावट, कई क्षेत्रों में दरों में वृद्धि पर ध्यान देना होगा। न्यायालय इससे बेखबर नहीं रह सकती। इस परिप्रेक्ष्य में एक अचूक नियम रहा है। अन्यथा, इसके निर्धारण में अत्यधिक कठिनाई होगी और जब तक उस अचूक नियम को लागू नहीं किया जाता है, तब तक किसी भी प्रकार की स्थिरता की कमी के कारण भारी भिन्नता होगी, जिसके परिणामस्वरूप, न्यायाधिकरण और न्यायालयों द्वारा पारित आदेश दिशाहीन होने की संभावना है। इसलिए, हमारा मानना है कि यह उचित रकम तय करने जैसा प्रतीत होता है। हमें ऐसा लगता है कि पारंपरिक मदों, अर्थात् संपत्ति की हानि, सह-व्यवस्था की हानि और अंत्येष्टि व्यय पर उचित आंकड़े क्रमशः रूपए 15,000/-, रूपए 40000/- होने चाहिए, अंत्येष्टि व्यय क्रमशः रूपए 15000/-, रूपए 40,000/- व रूपए 15,000/- होना चाहिए।"

33. प्रणय सेठी (उपरोक्त)में निर्धारित पारंपरिक मदों के अंतर्गत आंकड़े इस मामले के तथ्यों पर लागू होंगे। अधिनिर्णय तदनुसार संशोधित किया जाता है।

IV.(सी)(iii) भविष्य की संभावनाएंः-

34. भविष्य की संभावनाओं की गणना उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियम, 1998के अनुसार की जानी चाहिए। नियमों का नियम 220ए-3(1) प्रासंगिक है और यहां पुनः प्रस्तुत किया गया हैः

"(3) मृतक की भविष्य की संभावनाओं को मृतक के वास्तविक वेतन या न्यूनतम वेतन में निम्नानुसार जोड़ा जाएगा-

(3) 50वर्ष से अधिक आयुरूः वेतन का 20प्रतिशत।"

35. न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला व अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उत्तर प्रदेश नियम, 1998विचार हेतु आया। प्रणय सेठी (उपरोक्त)सहित विभिन्न निर्णयों पर विचार करने पर उर्मिला शुक्ला (उपरोक्त)में कहा गयाः-

"10. प्रणय सेठी के मुद्दे पर चर्चा मोटर वाहन अधिनियम, 1988की धारा-8के संदर्भ में "उचित मुआवजे" के निर्धारण के दृष्टिकोण से थी।

11. यदि एक संकेत एक वैधानिक साधन के रूप में उपलब्ध कराया जाता है जो एक अनुकूल निराकरण प्रदान करता है, तो प्रणय सेठी के मामले के निर्णय को, ऐसे वैधानिक प्रावधान के संचालन को सीमित करने हेतु प्रयोग नहीं किया जा सकता है, विशेषकर जब नियमों की वैधता को चुनौती नहीं दी गई है। उन मामलों में 15प्रतिशत का निर्धारण, जहां मृतक 50-60वर्ष की आयु वर्ग में था, जैसा कि प्रणय सेठी में कहा गया है, को अधिकतम के रूप में नहीं लिया जा सकता है। वैधानिक व्यवस्था में उपलब्ध किसी शासी सिद्धांत के अभाव में, यह केवल संकेत के रूप में था। यदि किसी वैधानिक दस्तावेज ने कोई ऐसा सूत्र तैयार किया है जो बेहतर या अधिक लाभ देता है, तो ऐसे वैधानिक दस्तावेज को तब तक संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए, जब तक कि वैधानिक दस्तावेज अन्यथा अमान्य न पाया जाए।(जोर दिया गया)

36. उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियम, 1998के नियम प्रणय सेठी (उपरोक्त) या सरला वर्मा (श्रीमती) व अन्य बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कंपनी व अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचाराधीन नहीं थे। प्रणय सेठी (उपरोक्त) में भविष्य की संभावनाएं उत्तर प्रदेश नियम, 1998पर ध्यान दिए बिना निर्धारित की गईं। इस तथ्य पर उर्मिला शुक्ला (उपरोक्त)में ध्यान आकर्षित किया गया थाः-

"8. श्री राव द्वारा यह कथन किया गया है कि प्रणय सेठी मामले में निर्णय यह नहीं दर्शाता है कि न्यायालय का ध्यान नियम 3(3) जैसे विशिष्ट नियमों की ओर आकर्षित किया गया था, जो वेतन में 15प्रतिशत की तुलना में 20प्रतिशत जोड़ने पर विचार करता है जो कि प्रणय सेठी में एक उपाय के रूप में कहा गया है। उनके कथन में, चूंकि वैधानिक दस्तावेज को ऐसे स्थान पर स्थापित किया गया है जो कि अधिक लाभप्रद उपाय प्रदान करता है, प्रणय सेठी के निर्णय को, ऐसे वैधानिक नियम को लागू करने तक ही सीमित करने के लिए नहीं माना जाना चाहिए।

37. उत्तर प्रदेश नियम, 1998प्रकृति में वैधानिक हैं और उनका संचालन प्रणय सेठी (उपरोक्त) द्वारा बाधित नहीं किया गया है। उत्तर प्रदेश नियम, 1998में विधि की शक्ति है और यह उचित मामलों में पूर्ण शक्ति से लागू होगा। उत्तर प्रदेश नियम, 1998दावेदारों के लिए प्रणय सेठी (उपरोक्त) में किए गए प्रावधानों की तुलना में उनके लिए अधिक लाभकारी है। प्रणय सेठी (उपरोक्त) की अवधाराणांए उत्तर प्रदेश नियम, 1998द्वारा पात्र लाभार्थीयों को प्रदत्त लाभों को घटा नहीं सकती।

अनूदित

38. इस न्यायालय ने पाया कि दावेदार/प्रत्यर्थी उत्तर प्रदेश नियम, 1998के अनुरूप, भविष्य की संभावनाओं के लिए वेतन में 20प्रतिशत वृद्धि के हकदार हैं। अधिनिर्णय में आवश्यक परिवर्तन तदनुसार किए जाएंगे।

39. इस परिप्रेक्ष्य में, यह न्यायालय भविष्य की संभावनाओं के अनुदान के मुद्दे को अपीलकर्ता के हक में पाता है।

IV.(सी)(iv) गुणकः

40. मृत्यु के समय मृतक की आयु 55वर्ष थी। 11के गुणक को विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा सही ढंग से लागू किया गया है और यह प्रणय सेठी (उपरोक्त) और सरला वर्मा (उपरोक्त) के अनुरूप है।

IV.(सी)(v) ब्याज

41. 7.5प्रतिशत का ब्याज और भुगतान के तरीके में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। हालाँकि, दावेदार-प्रत्यर्थी इस निर्णय में निर्धारित बढ़ी हुई आय पर ब्याज के हकदार नहीं होंगे।

VII. मुआवजे का निर्धारण जिसके दावेदार-प्रत्यर्थी हकदार हैंः

42. पिछली चर्चा के मद्देनजर, दावेदारों को दी गई मुआवजे की राशि नीचे सारणीबद्ध हैः-

1. दुर्घटना की तिथि - 29.12.2010रात्रि 8.00बजे
2. मृत्यु की तिथि - 29.12.2010
3. मृतक का नाम - भीखम सिंह
4. मृतक की आयु - 55वर्ष
5. मृतक का व्यवसाय - निजी नौकरी/कृषि
6. मृतक की आय - रूपए 8,500/-
7. दावेदारों के नाम, आयु व मृतक से संबंध

क्रम सं.	नाम	आयु	संबंध
1	श्रीमती मेघकौर	50	पत्नी
2	नीरज कुमार	29	पुत्र

vii. मुआवजे की गणनाः

क्रम सं.	मद	धनराशि (रूपए में)
1	मासिक आय (ए)	निजी नौकरी से 5500/- प्रतिमाह एवं कृषि से 4000/- प्रतिमाह = 9500/-
2	वार्षिक आय (बी) (ए x 12 = बी)	9500/- x 12 = 114000/-
3	भविष्य की संभावनाएं (सी)	114000का 20% = 22800/-
4	वार्षिक आय + भविष्य की संभावनाएं (बी+सी=डी)	114000+22800=151000/-
5	कुल वार्षिक आय (डी)	136800/-
6	कटौती 1/3वां (ई)	45600/-
7	1/3कटौती पश्चात कुल आय (डी-ई=एफ)	136800/- का 1/3= 91200/-
8	गुणक (जी) (एफ x जी=एच)	91200/- x11= 10,03,200/-
9	मुआवजा (एच)	10,03,200/-
10	पारंपरिक मद (आई): (एच+आई=जे) (ए) सह-व्यवस्था की हानि (बी) संपदा की हानि (सी) अंत्येष्टि व्यय	70,000/-
11	कुल मुआवजा (एच+आई=जे)	1003200/- + 70000/- = 10,73,200/-
12	ब्याज	7.50प्रतिशत

VII. निष्कर्ष और निर्देशः

43. मुआवजे की वह राशि जिसके दावेदार हकदार पाए गए हैं, निगम द्वारा विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष तीन माह के भीतर जमा की जाए। तत्पश्चात, विद्वान

न्यायाधिकरण बिना किसी विलम्ब के दावेदारों को राशि जारी करेगा। दावेदारों को पूर्व में वितरित की गई धनराशि (यदि कोई हो) को विधिवत समायोजित किया जाएगा।

44. अपील दायर करते समय अपीलकर्ता द्वारा जमा की गई रूपए 25,000/- की धनराशि तुरंत विद्वान न्यायाधिकरण को भेजी जाए। यह राशि दावेदारों को प्रदान की गई मुआवजा राशि के हिस्से के रूप में भुगतान की जाएगी।

45. आदेश से प्रथम अपील तथा प्रति-आपत्तियाँ दोनों को उपरोक्तानुसार निस्तारित किया जाता है।

(2023) 1 ILRA 845
अपीलीय क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक:इलाहाबाद 15.11.2022-

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सरल कुमार श्रीवास्तव

आदेश से प्रथम अपील क्रमांक 366 /2021

श्रीमती उर्मिला देवी ...अपीलकर्ता
बनाम
राजेंद्र पाल तायल एवं अन्य ... विपक्षीगण

अधिवक्ता अपीलकर्ता:
श्री अमिताभ अग्रवाल, श्री किरण कुमार अरोड़ा, श्री सिद्धार्थ सिंह

अधिवक्ता विपक्षीगण:
सी.एस.सी., श्री रमेश उपाध्याय, श्री ए.ए. खान, श्री मो. सलीम खान, श्री श्वेताश्व अग्रवाल

सिविल कानून– न्यायालय शुल्क अधिनियम, 1870 – धारा - 7 (iv)(बी), 7 (v)(II): अपील -अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए यथामूल्य मूल मुकदमे में अदालती फीस का भुगतान करने के विवादित निर्देश के विरुद्ध – मूल वाद –अनिवार्य निषेधाज्ञा– अपीलकर्ता ने मिट्टी के बर्तन चलाने के लिए प्रतिवादी का लाइसेंस समाप्त कर दिया – वाद संपत्ति जब प्रतिवादी/प्रतिवादी ने मुकदमे की संपत्ति पर कब्जा नहीं दिया - वादी ने कब्जे से राहत का दावा किया - अदालत ने माना कि संत लाल जैन में शीर्ष अदालत के निर्णय के आलोक में, मूल वाद अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए होगा - इसलिए, धारा 7(v)(II) के तहत फीस का भुगतान करने के लिए विचारणीय न्यायालय का विवादित निर्देश अपास्त होने योग्य है– वादी द्वारा भुगतान की गई न्यायालय शुल्क सही और उचित है - तदनुसार शीघ्रता से मुकदमा समाप्त करने के लिए अपील की अनुमति दी गई है। (पैरा-18,24,26)

अपील स्वीकृत। (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. श्री डोरी लाल प्रेमी बनाम श्रीमती विद्या देवी, द्वितीय अपील सं. 2013 का 975,
2. मलिक मोहम्मद तनवीर बनाम उज्मा मलिक एवं अन्य, दिनांक 18.07.2016,
3. सुधीर बंसल और अन्य बनाम गिरीश बंसल, 2015 (5) एडीजे 624 (डीबी),
4. दिनेश कुमार बनाम ए.डी.जे. हरद्वार, 1996 (1) एडब्ल्यूसी 433,
5. अज़ीज़ुर रहमान बनाम सलाम खान और अन्य (1995(3) ए. डब्लू. सी.,
6. संत लाल जैन बनाम अवतार सिंह, एआईआर 1985 एससी 857,
7. इस्लाम अहमद बनाम मकसूद एवं अन्य, 2007 (8) एडीजे 239

(माननीय न्यायमूर्ति सरल कुमार श्रीवास्तव द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. वर्तमान अपील अपर सिविल न्यायाधीश (एस.डी) कोर्ट नं.-2, बुलंदशहर द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.01.2014 के विरूद्ध निर्देशित है, जिसके द्वारा वादी/अपीलार्थी द्वारा संस्थित मूल वाद संख्या 1285/2008 में मुद्दा संख्या 7, वादी/अपीलकर्ता के विरूद्ध निर्णीत किया गया है और विचारण न्यायालय ने वादी/अपीलार्थी को मूल्यानुसार न्यायालय शुल्क का भुगतान करने का निर्देश दिया है।

3. वादी अपीलकर्ता ने मूल वाद संखया 1285/2008 संस्थित किया है जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह तर्क दिया गया है कि वाद संपत्ति वादी/अपीलार्थी द्वारा दिनांक 24.08.1966 के पंजीकृत विक्रय विलेख द्वारा खरीदी गई है, जिस पर मेसर्स तयाल पाटरी वादी/अपीलार्थी और प्रतिवादी/प्रत्यर्थी सं.-1 राजेंद्र पाल तयाल द्वारा चलाया जाता था । इसके बाद, वादी अपीलार्थी और/प्रत्यर्थी राजेंद्र पाल तयाल (मृत्यु के बाद से) की सहमति से तयाल पॉटरी को भंग कर दिया गया था। वाद में आगे दलील दी गई है कि यूपी वित्तीय निगम, कानपुर (इसके बाद यू.पी.एफ.सी. के रूप में संदर्भित) से

अनुवादित

ऋण लिया था, जिसे 13.06.2007 को चुकाया गया था, और ऋण के निर्वहन के बाद, वादी/अपीलार्थी और प्रतिवादियों/प्रत्यर्थियों के पक्ष में एक पंजीकृत पुनः हस्तांतरण विलेख तैयार किया गया था।

4. वादी/अपीलार्थी का अगला मामला यह है कि यू.पी.एफ.सी. के ऋण भुगतान होने के बाद, वादी/अपीलकर्ता के पति का सगा भाई होने के नाते प्रतिवादी मिट्टी के बर्तनों का व्यवसाय करने लगा। यह प्रस्तुत किया जाता है कि वाद संंपत्ति पर प्रतिवादियों/प्रत्यर्थियों का कब्जा लाइसेंसधारी की हैसियत से था। यह लाइसेंस वादी/अपीलकर्ता द्वारा पंजीकृत नोटिस दिनांक 16.09.2008 के जरिए समाप्त कर दिया गया, और प्रतिवादियों से वाद संपत्ति का कब्जा सौंपने के लिए कहा गया था। प्रतिवादियों ने वाद संपत्ति का कब्जा नहीं दिया, जिसने वादी/अपीलकर्ता को वर्तमान वाद संस्थित करने के लिए हेतुक दिया।

उपरोक्त पृष्ठभूमि में वाद/अपीलार्थी द्वारा निम्नलिखित अनुतोष की प्रार्थना की गई हैः-

"अ- यह कि प्रतिवादीगण को द्वारा आदेशात्मक निशेधाज्ञा आदेशित किया जाए कि यह निम्न वर्णित पोटरी का दखल वादिनी को दे और यदि प्रतिवादीगण ऐसा ना करे तो प्रतिवादीगण के खर्चे पर द्वारा सिविल कोर्ट अमीन वादिनी को पोटरी उपरोक्त का दखल दिलाया जाए ।

ब- यह कि वादिनी को प्रतिवादीगण से दौरान वाद निम्न वर्णित पाटरी के इस्तेमाल की एवज में रू. 8000/- मासिक प्रतिवादीगण से उपयोग धन दिलाया जाए जिस पर यदि आवश्यक हुआ तो न्याय शुल्क निष्पादन के समय दिया जायेगा।

स- यह कि वादिनी को प्रतिवादीगण से वाद व्यय दिलाया जाए।

द- यह कि कोई अन्य अनुतोष जिसका वादिनी पाने की अधिकारी हो दिलाया जाये।"

6. विचारण न्यायलय ने न्यायालय फीस की पर्याप्तता के संबंध में मुद्दा बनाया। हालांकि प्रतिवादियों/प्रत्यर्थियों के अनुसार, अनिवार्य व्यादेश के लिए मुकदमा शुरू किया गया है, लेकिन वादी/अपीलकर्ता अनिवार्य रूप से कब्जे से राहत का दावा कर रहा है। इसलिए, वादी/अपीलार्थी, न्यायालय शुल्क अधिनियम की धारा 7 (v) (II) के तहत प्रदान किए गए यथामूल्यानुसार न्यायालय शुल्क का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है।

7. विचारण न्यायालय ने तथ्यों पर विस्तार से विचार करने के बाद प्रतिवादियों/प्रत्यर्थियों के तर्क में बल पाया और यह माना कि चूंकि वादी/अपीलार्थी अनिवार्य रूप से कब्जे की वसूली से राहत का दावा कर रहा है, इसलिए, वह न्यायालय शुल्क अधिनियम, 1887 की धारा 7 (v) (II) के अनुसार नयायालय शुल्क भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है।

8. पूर्वोक्त आदेश को चुनौती देते हुए वादी/अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि विचारण न्यायालय इस मुद्दे पर सही कानून का मूल्यांकन करने में विफल रहा है क्योंकि वादी/अपीलार्थी द्वारा अनिवार्य निषेधाज्ञा की डिक्री के लिए मुकदमा दायर किया गया है। इस आधार पर कि, वाद संपत्ति वादी/अपीलार्थी के नाम पर है और वाद की संपत्ति पर प्रतिवादियों/प्रत्यर्थियों के कब्जे की प्रकृति एक लाइसेंसधारी की है जिसका अर्थ है कि वाद संपत्ति पर प्रतिवादियों/प्रत्यर्थियों कब्जा केवल अनुज्ञेय था। इसलिए अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए वाद पोषणीय है और वादी/प्रत्यर्थी न्यायालय शुल्क अधिनियम की धारा 7 (iv-बी) के तहत निर्धारित न्यायालय शुल्क का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है। यह प्रस्तुत किया गया है की विचारण न्यायालय ने गलत तरीके से यह माना है की वादी/प्रत्यर्थी अनिवार्य व्यादेश की आड़ मे अनिवार्य रूप से कब्जे से राहत की मांग कर रहा है इसलिए वह न्यायालय शुल्क अधिनियम की धारा 7(5)(ii) के तहत प्रदान किए गए न्यायालय शुल्क का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है । पूर्वोक्त तर्क के समर्थन में उन्होंने दूसरी अपील सं. 975/2013 (श्री डोरी लाला प्रेमी, अधिवक्ता बनाम श्रीमती विद्या देवी) के मामले में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर भरोसा किया है। उन्होंने आगे दिल्ली उच्च न्यायालय के मलिक मोहम्मद तनवीर बनाम उज़्मा मलिक व अन्य के मामले में निर्णय पर भरोसा किया है जो दिनांक 18.07.2016 को सुनाया गया था ।

9. इसके विपरीत, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता यह तर्क देंगे कि विचारण न्यायालय ने ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि चूंकि यह रिकॉर्ड पर स्वीकार किया जाता है कि वाद संपत्ति प्रतिवादी/प्रत्यर्थी के कब्जे में है, इसलिए वादी/अपीलकर्ता यथामूल्य न्यायालय शुल्क जमा करने के लिए उत्तरदायी है, और इस प्रकार आज्ञापक व्यादेश की आड़ में वाद/अपीलार्थी अनिवार्य रूप से कब्जे से राहत का दावा कर रहा है। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि विचारण न्यायालय ने वाद/अपीलार्थी के विरुद्ध न्यायालय शुल्क के मुद्दे का निर्णय करने में कोई अवैधता नहीं की है। अपने तर्क के समर्थन में, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने सुधीर बंसल और अन्य बनाम गिरीश बंसल 2015 (5) एडीजे 624 डीबी, दिनेश कुमार बनाम एडीजे हरिद्वार 1996 (1) एडब्लूयूसी 433 तथी अज़ीजुर रहमान बनाम सलाम खान और अन्य 1994 (3) एडब्ल्यूसी, के मामलों में इस न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया है।

10. मैंने पश्रकारों के प्रतिद्वंद्वी निवेदनों पर विचार किया है और अभिलेख का अवलोकन किया।

11. वाद को वादी/अपीलार्थी द्वारा इस आधार पर संस्थापित किया गया है कि वाद संपत्ति वादी/अपीलकर्ता के नाम पर पंजीकृत बिक्री विलेख दिनांकित 24.08.1966

द्वारा खरीदी गई है। वादी अपीलार्थी और प्रतिवादी/प्रत्यर्थी द्वारा संयुक्त रूप से मैसर्स तायल पॉटरी के नाम से वाद संपत्ति पर एक व्यवसाय चलाया जा रहा था। उनके द्वारा यू.पी.एफ.सी. से तायल पॉटरी के नाम पर ऋण लिया गया था, जो दिनांक 13.06.2007 को चुका दिया गया था। तत्पश्चात, प्रतिवादी/प्रत्यर्थी, वादी/अपीलार्थी की सहमति से, वाद संपत्ति पर मिट्टी के बर्तनों का व्यवसाय करते रहे। वादी मामले के अनुसार, वाद संपत्ति पर प्रतिवादियों/प्रत्यर्थियों की स्थिति एक लाइसेन्सधारी की थी । वादी/अपीलकर्ता ने पंजीकृत नोटिस दिनांकित 16.09.2008 द्वारा प्रतिवादियों/प्रत्यरथियों के अनुज्ञप्ति को समाप्त कर दिया। चूँकि प्रतिवादियों/प्रत्यर्थियों ने वादी/अपीलार्थी को वाद संपत्ति का कब्जा नहीं सौपा था, इसलिए उपरोक्त उद्धृत राहत के लिए वादी/अपीलार्थी द्वारा एक वाद स्थापित किया गया है।

12. हालांकि, वादी/अपीलार्थी द्वारा आज्ञापक व्यादेश की राहत का दावा किया गया है, क्योंकि रिकॉर्ड में स्वीकार्य तथ्यों के कारण, कि वाद संपत्ति प्रतिवादी/प्रत्यर्थी के कब्जे में है, यह वाद अनिवार्य रूप से कब्जे के लिए है।

13. अब विचारण हेतु जो प्रश्न उठता है वह यह है कि क्या वर्तमान मामले के तथ्यों में, वादी/अपीलार्थी न्यायालय शुल्क अधिनियम की धारा 7 (iv-बी) के तहत प्रदान किए गए एक निश्चित न्यायालय शुल्क का भुगतान करने का हकदार है या न्यायालय शुल्क अधिनियम की धारा 7 (v) (ii) के तहत यथामूल्य न्यायालय शुल्क प्रदान किया जाने का हकदार है ।

14. उक्त मामले का मूल्यांकन करने के लिए, पहला प्रश्न जो मौजूदा मामले में निर्धारण करने के लिए उठता है, वह यह है कि क्या वादी/अपीलार्थी का वाद आज्ञापक व्यादेश के लिए होगा या नहीं या वादी/अपीलार्थी के लिए कब्जे के लिए डिक्री की मांग करना ही एकमात्र उपचार है। इस संबंध में, एआईआर 1985 एस.सी. 857 में अभिलिखित संत लाल जैन बनाम अवतार सिंह के मामले में माननीय उच्च न्यायालय के निर्णय का उल्लेख करना उपयुक्त होगा।

15. उक्त मामले में, समान विवाद मा. सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया और मा. सर्वोच्च न्यायालय ने पुराने विशिष्ट राहत अधिनियम, 1877 की धारा 55 के प्रभाव पर विचार किया, जिसे नए विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 में धारा 39, जो धारा 41 के साथ पढ़ा जाए, के रूप में शामिल किया गया है।

16. मा. सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जब एक अनुज्ञप्ति को समाप्त कर दिया गया हो और अनुज्ञप्तिधारी वाद संपत्ति का कब्जा चाहता हो तब आज्ञापक व्यादेश से राहत की मांग करने के लिए आज्ञापक व्यादेश के वाद का रास्ता केवल चालक के पास होगा जिसके लिए वादी को बिना किसी देरी के न्यायालय के समक्ष जाना होगा और आज्ञापक व्यादेश का वाद स्थापित करने का उचित समय कार्यवाही की तारीख से तीन साल तक का होगा। हालांकि, अगर वादी अनुज्ञप्ति की समाप्ति के बाद अपने अधिकार के बारे में निष्क्रिय रहता है और अपने अधिकार के लिए न्यायालय के समक्ष नहीं जाता है और अनुज्ञप्ति की समाप्ति से तीन साल की अवधि समाप्त हो गई है, तब वादी को कब्जे की वापसी के लिए वाद स्थापित करना होगा और आज्ञापक व्यादेश का वाद मान्य नहीं होगा।

17. यह न्यायालय, श्री डोरी लाल प्रेमी (उपरोक्त) के मामले में, संत लाल जैन (उपरोक्त) के मामले में मा. सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर तथा इस्लाम अहमद बनाम मकसूद और अन्य 2007 (8) एडीजे 239 के मामले में मा. सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए निम्नलिखित निर्धारित करती हैः-

"पूर्वोक्त प्राधिकारी के दृष्टिगत,यह स्पष्ट है कि लाइसेन्सकर्ता के पास, अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए या वसूली के लिए मुकदमा करने जैसे दोनों उपाय हैं, यदि वह तीन वर्ष के भीतर वाद लाता है तो वह ऐसा अनिवार्य निषेधाज्ञा का मुकदमा करके कर सकता है और यदि वह तीन वर्ष के उपरांत लाता है तो वाद साधारणतया कब्जे की वसूली के लिए हो सकता है । हालांकि, लाइसेन्सकर्ता को, जिसने लाइसेंस को वैध रूप से निर्धारित किया है, संपत्ति पर अधिकार से वंचित नही किया जा सकता चाहे वाद में किसी भी रूप में प्रार्थना की गयी हो। न्याय उन्मुख दृष्टिकोण तकनीकियों से बचने की मांग करता है और सारवान न्याय को आगे बढ़ाता है। इसलिए, प्रतिवादी को कब्जे के अनुतोष से मना करना, जब वह विधि के अनुसार इसका हकदार है, सिर्फ इस कारण से कि अनुतोष उचित शब्दों में परिभाषित नहीं है और न्यायालय शुल्क का भुगतान नहीं किया गया, उचित नहीं होगा। कब्जे की दिशा के लिए अनिवार्य व्यादेश के लिए वाद और कब्जे की बहाली के लिए वाद के बीच एकमात्र अंतर न्यायालय शुल्क का होगा यहां तक कि अनिवार्य व्यादेश के वाद में निश्चित न्यायालय शुल्क संदाय किया जाता है, जबकि कब्जे की बहाली के लिए वाद में मूल्यानुसार न्यायालय शुल्क का संदाय करना होगा।

प्रतिवादी की ओर से अधिवक्ता कब्जे के लिए वाद मूल्यानुसार न्यायालय शुल्क के भुगतान के लिए सहमत है।

इसी तरह का विवाद, मेरे सामने इस्लाम अहमद बनाम मकसूद अहमद और अन्य 2007 (8) एडीजे 239 में सामने आया था और यह माना गया था कि हालांकि पार्टी द्वारा दावा किया अनुतोष का मसौदा ठीक से तैयार नहीं किया गया था और ऐसी भाषा में लिखा गया था मानो अनिवार्य व्यादेश कब्जे का है, कब्जे का दावा करने वाली पार्टी जो विधिक रूप से उसकी हकदार है को उक्त अनुतोष के लिए न्यायालय शुल्क के भुगतान के अधीन

इसके लाभों से मना नहीं किया जा सकता। न्यायालीय शुल्क को जमा करने की अनुमति दी गयी क्योंकि इसका भुगतान ना करना एक अनियमितता माना गया जो कि सुधार योग्य प्रकृति का था। ऐसी कई मिसालें हैं जहां उचित अदालती शुल्क का भुगतान नहीं किया गया, लेकिन न्यायालय ने अपील पर अंतिम रूप से फैसला करते हुए और अनुतोष देते हुए अपेक्षित अदालती शुल्क का भुगतान डिक्री के क्रियान्वयन की शर्त के रूप में किया।

18. वर्तमान मामले में, वाद प्रकरण के अनुसार, प्रतिवादी/प्रत्यर्थी का लाइसेंस पंजीकृत नोटिस दिनांकित 16.09.2008 द्वारा वादी/अपीलार्थी द्वारा समाप्त कर दिया गया था और वाद को दिनांक 22.10.2008 को संस्थित किया गया था। इसलिए, वादी/अपीलार्थी ने मुकदमा शुरू करने में तत्परता से काम किया है और इस प्रकार, प्रस्तुत विवाद शीर्ष न्यायालय के संत लाल जैन (उपरोक्त) के मामले के निर्णय से आच्छादित है, और अनिवार्य व्यादेश के लिए मुकदमा चलेगा।

19. यह ध्यान रखना उचित है कि, न्यायालय शुल्क के विषय पर विचार करते समय, केवल वादी-कथनों को देखा जाना चाहिए। इस संबंध में, मालिक मो. तनवीर (उपरोक्त) के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय के पैराग्राफ-9 को फिर से प्रस्तुत करना उपयुक्त होगाः-

"9. मैं देख सकता हूं कि सुस्थापित विधिक स्थिति यह है कि एक वाद पत्र पर देय न्यायालय शुल्क की राशि से संबंधित प्रश्न का निर्णय करने के लिए वादपत्रों के प्रकथनों को देखा जाना चाहिए। इस न्यायालय ने ओरिएंटल ट्रेडिंग कॉरपोरेशन बनाम पंजाब स्किन ट्रेडिंग कम्पनी में दिल्ली स्थित पंजाब उच्च न्यायालय की सर्किट बेंच की पूर्ण पीठ की जय कृष्णा दास बनाम बाबू राय, 1967 पीएलआरडी के निर्णय का आश्रय लेते हुए निम्नलिखित कथन किया कि-

"(1).......यह एक स्थापित विधि थी कि किसी वादपत्र पर देय न्यायालय शुल्क की राशि से सम्बंधित प्रश्न का निर्णय करने के लिए, न सिर्फ वाद पत्र के प्रकथन को ध्यान में रखते हुए, बल्कि उक्त आरोपों को सही मानते हुए एवं निर्णय, न तो बनाए गये वाद की पोषणीयता पर, न ही इस धारणा पर न्यायालय को किसी तरह के वाद पत्र से ऐसा दावा करना चाहिए, जो अंततः निर्णय लेने में सक्षम हो, और न्यायालय को वाद पत्र को जस का तस लेना है बिना किसी भी सामग्री को छोड़े और इसमे निहितार्थ के द्वारा जो उसमें नहीं कहा गया है, उसे बिना पढे ही स्पष्ट करे।"

20. अब सुधीर बंसल (उपरोक्त) के मामले में प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता द्वारा किये गये निर्णय पर आते हैं। यह न्यायालय पाता है कि सुधीर बंसल (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय का निर्णय वर्तमान मामले मे लागू नहीं होता, क्योंकि इन मामलों में तथ्य भिन्न है।

21. उक्त मामले में, वाद संपत्ति को मूल स्वामी द्वारा वादी को बेंच दिया था और वाद में मूल स्वामी की तुलना में प्रतिवादी का कब्जा अनुज्ञप्तिधारी का था। वादी द्वारा संपत्ति की खरीद के बाद, उसने अनिवार्य व्यादेश के लिए एक मुकदमा दायर किया और न्यायालय शुल्क अधिनियम की धारा 7 (4 बी) के तहत प्रदान किए गए न्यायालय शुल्क का भुगतान किया। विचारण न्यायालय ने पाया कि वादी यथामूल्य न्यायालय शुल्क का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी था। अपील में यह मामला इस न्यायालय के समक्ष आया। भारतीय सुगमता अधिनियम, 1882 की धारा 59 के प्रभाव पर विचार करते हुए इस न्यायालय ने कहा कि चूंकि वादी को हस्तांतरण द्वारा मूल लाइसेंसकर्ता संपत्ति मिली थी, इसलिए प्रतिवादी के पक्ष में दिया गया लाइसेंस अस्तित्व में नहीं था और वादी/अपीलकर्ता और प्रतिवादी/प्रत्यर्थी के बीच लाइसेंधारी और लाइसेंसकर्ता का कोई संबंध नहीं था। उक्त मामले में इस न्यायालय ने पाया कि क्योंकि बाद के क्रेता अर्थात वादी और प्रतिवादी के बीच लाइसेंसकर्ता और लाइसेंसधारी का कोई संबंध नहीं था, इसलिए वादी को कब्जे के अनुतोष का दावा करना होगा, जिसके लिए न्यायालय शुल्क अधिनियम की धारा 7 (v)(II) के तहत न्यायालय शुल्क का भुगतान करना होगा।

22. दिनेश कुमार (उपरोक्त) के मामले में, यह न्यायालय एक ऐसे मामले पर विचार कर रहा था, जहां वाद संपत्ति की नीलामी की गई थी और याचिकाकर्ता की बोली उच्चतम थी, उसे समझौते की शर्तों के तहत वाद संपत्ति दी गई थी। याचिकाकर्ता ने कुछ किश्तों का भुगतान किया और उसके बाद, उसने किश्तों का भुगतान रोक दिया, और प्रतिवादी/राज्य द्वारा उसके खिलाफ वसूली की गई, जिसे याचिकाकर्ता ने मुकदमे मे चुनौती दी थी। उक्त मामले में,याचिकाकर्ता ने निषेधाज्ञा से राहत के लिए प्रार्थना की और रु. 500 की निर्धारित न्यायालय शुल्क का भुगतान किया । विचारण न्यायालय ने माना की याचिकाकर्ता पूरी राशि पर न्यायालय शुल्क का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी था, जिसे उससे वसूला जाना है। विचारण न्यायालय के निष्कर्ष की अपीलीय न्यायालय के साथ-साथ रिट याचिका में इस न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई थी। इसलिए, उक्त मामले के तथ्य वर्तमान मामले के तथ्यों से भिन्न थे क्योंकि उक्त मामले मे न्यायालय ऐसे मामले पर विचार कर रही थी जहां वादी ने पैसे की वसूली को चुनौती दी है, जो उसके अनुसार अवैध रूप से उससे वसूला जा रहा था, जो वर्तमान मामले में ऐसा नहीं है।

23. अज़ीज़ुर रहमान (उपरोक्त) मामले में, इस न्यायालय ने पैरा ५ में एक विशिष्ट निष्कर्ष दर्ज किया कि दी गई राहत, घर के कब्जे की वसूली के लिए है, जिसकी कीमत चार लाख रूपये थी, परिणामस्वरूप, न्यायालय ने कहा कि उस राशि पर न्यायालय शुल्क देय है। तदनुसार,

इस न्यायालय ने विचारण न्यायालय के आदेश को बरकरार रखा।

24. इस प्रकार, उपरोक्त कारणों से, इस न्यायालय का विचार है कि विचारण न्यायालय ने अवैध रूप से यह अभिनिर्धारित करने का कार्य किया है कि वादी/अपीलकर्ता न्यायालय शुल्क अधिनियम की धारा 7 (v) (II) के तहत न्यायालय शुल्क का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है। फलस्वरूप विचारण न्यायालय के आदेश को अपास्त किया जाता है। यह आगे अभिनिर्धारित किया जाता है कि वादी/अपीलार्थी द्वारा भुगतान किया गया निर्धारित न्यायालय शुल्क वर्तमान मामले में सही और उचित है।

25. तदनुसार, लागत के रूप में बिना किसी आदेश के अपील की स्वीकृति दी जाती है।

26. विचारण न्यायालय को इस आदेश की प्रमाणित प्रति के पेश होने की तारीख से एक वर्ष के भीतर वाद को शीघ्रता से समाप्त करने का निर्देश दिया जाता है। यदि कोई स्थगन आवश्यभावी है, तो संबंधित प्राधिकारी भारी शुल्क लगाकर, जो रू. 5000/- से कम नहीं हो सकता है, इसे प्रदान कर सकता है।

(2023) 1 ILRA 851
अपीलीय क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक:- इलाहाबाद 24.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव

आदेश से प्रथम अपील संख्या - 481/2020

श्री कृष्णप्रसाद तिवारी और अन्य ...अपीलकर्ता
बनाम
प्रमोद कुमार यादव और अन्य ..प्रतिवादीगण

अपीलकर्तागण के अधिवक्ता:
श्री राम सिंह, श्री अमित कुमार सिंह

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:
श्री अरविन्द कुमार, श्री अरुण कुमार शुक्ल

दीवानी कानून – मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा 166 और 168: - दावेदार की अपील - मुआवजे की राशी में वृद्धि के लिए - दुर्घटना मृतक की मोटरसाइकिल को टक्कर मारने वाली बस के चालक की तेज और लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण हुई - अंशदायी लापरवाही - साक्ष्यो का मूल्यांकन - इस अदालत ने पाया कि दुर्घटना में मृतक के संबंध में न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) का निष्कर्ष विकृत है और रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों के विपरीत है - इस प्रकार, अदालत ने माना कि, दुर्घटना अपराधी वाहन के चालक की एकमात्र लापरवाही का परिणाम थी और मामले में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा निर्णय मैग्मा जनरल इंश्योरेंस कंपनी के ममाले दिया गए फैसले के आलोक में,अदालत ने न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) को निर्देश दिया कि - वह मृतक की आय रु. 3000/- के स्थान पर रु. 6000/-प्रति माह मानकर मुआवजे की राशी की गणना दोबारा करे, और मुआवजे की बढ़ी हुई राशि पर 6% साधारण ब्याज के साथ - अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है - तदनुसार भुगतान के निर्देश जरी किया गया है ।

(अनुच्छेद - 7, 8, 9, 11)

परिणाम : - अपील आंशिक रूप से स्वीकृत की जाती है। (ई-11)

संदर्भित मामलों की सूची:-

1. मैग्मा जनरल इंश्योरेंसकंपनी लिमिटेड बनाम नानूरामउर्फचुहरूरामऔरअन्य (2018, वॉल्यूम 18, एससीसी 130.
2. सुधीरकुमारराणाबनामसुरिंदरसिंहऔरअन्य (2008, वॉल्यूम 2, टीएसी 769 एससी).

(माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव द्वारा पारित)

1.दावेदारों/अपीलकर्तागण के विद्वानअधिवक्ता श्री राम सिंह और प्रतिवादीगण के विद्वानअधिवक्ता श्री अरुण कुमार शुक्ला को सुना।

2. दावेदारों/अपीलकर्तागण ने मुआवजे की राशी से असंतुष्ट होने के कारण मुआवजे को बढ़ाने की प्रार्थना के साथ वर्तमान अपील को प्राथमिकता दी है।

3. दावेदारों/अपीलकर्तागण के विद्वानअधिवक्ता ने तर्क दिया है कि न्यायाधिकरण का यह निष्कर्ष कि चूंकि मृतक के पास मोटर साइकिल चलाने के लिए वैध ड्राइविंग लाइसेंस न हीं था, इसलिए, दुर्घटना में मृतक की कुछ लापरवाही विकृत और अभिलेख के खिलाफ है क्योंकि दुर्घटना में मृतक की लापरवाही साबित करने के लिए अभिलेख पर कोई साक्ष्य नहीं था । यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि दावेदारों/अपीलकर्तागण ने दुर्घटना पी डब्ल्यू - 2 राम विलास मिश्रा के चश्मदीद गवाह पेश किए थे, जिन्होंने साबित किया कि बस नंबर यू.पी.-70-सीटी-4080 नामक वाहन के चालक की लापरवाही साबित हुई और इस प्रकार, मृतक की लापरवाही के संबंध में न्यायाधिकरण का निष्कर्ष कानून में पोषणीय नहीं है।

4. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि दुर्घटना 15.11.2015 को हुई थी और न्यायाधिकरण ने मृतक की आय 3,000/-

रुपये प्रतिमाह का आकलन किया है और भले ही मृतक की आय का कोई साक्ष्य नहीं था, न्यायाधिकरण को मुआवजे की गणना में मैग्मा जनरलइंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नानू राम उर्फ चुहरू एवं अन्य 2018 (18) एस सी सी 130 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के मद्देनजर मृतक की आय के रूप में 6,000/- रुपये लेने चाहिए थे।

5. प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता का तर्क होगा कि यह स्वीकार किया जाता है कि मृतक के पास मोटर साइकिल चलाने के लिए वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था और इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि दुर्घटना में मृतक की ओर से कुछ लापरवाही हुई थी । वह आगे प्रस्तुत करता है कि न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया मुआवजा उचित और समीचीन है क्योंकि मृतक की आयका कोई साक्ष्य नहीं था और इसलिए, अपील में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

6. मैंने पक्षकारगण की प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और अभिलेख का अवलोकन किया है।

7. वर्तमान मामले में, दावेदारों/अपीलकर्तागण ने चश्मदीद गवाह पी०डब्ल्यू-2 को पेश किया है, जिसने स्पष्ट रूप से कहा था कि दुर्घटना उल्लंघन करने वाले वाहन के चालक के तेज और लापरवाही से ड्राइविंग का परिणाम थी। बीमा कंपनी द्वारा पी०डब्ल्यू-2 की गवाही के खंडन में कोई साक्ष्य दायर नहीं किया गया था। न्यायाधिकरण ने अभिलेख पर कोई सामग्री होने के बिना अपने दम पर यह मान लिया कि चूंकि मृतक के पास मोटर-साइकिल चलाने के लिए वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था, इसलिए उसने दुर्घटना में भी लापरवाही बरती । इस न्यायालय ने दुर्घटना में मृतक की लापरवाही के संबंध में न्यायाधिकरण के निष्कर्ष को विकृत और अभिलेख के खिलाफ पाया। इस संबंध में, सुधीर कुमार राणा बनाम सुरिंदर सिंह और अन्य 2008 (2) टीएसी 769 (एससी) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के अनुछेद संख्या 7 और 8 को पुन: प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा: -

"7. सवाल यह है कि लापरवाही किस बात की है? यदि शिकायतकर्ता को किसी ऐसे कार्य या चूक का दोषी होना चाहिए जिसने दुर्घटना में योगदान दिया और जिसके परिणाम स्वरूप चोट और क्षति हुई, तो अंशदायी लापरवाही की अवधारणा लागू होगी।

[देखेः न्यूइंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम अविनाश, 1988 ए.सी.जे. 322: 1996 (2) टी.ए.सी. 182 (राजस्थान)]।

टी ओ एंथोनी बनाम कवर्नन और अन्य (2008) 3 एससीसी 748,में यह अभिनिर्धारित किया गया था:

6. 'समग्र लापरवाही' दो या दो से अधिक व्यक्तियों की ओर से लापरवाही को संदर्भित करता है। जहाँ कोई व्यक्ति दो या अधिक गलत कर्ताओं की लापरवाही के परिणाम स्वरूप घायल हुआ है, यह कहा जाता है कि वह व्यक्ति उन गलत काम करने वालों की समग्र लापरवाही के कारण घायल हुआ था। ऐसे मामले में, प्रत्येक गलतकर्ता, पूरे नुकसान के भुगतान के लिए घायल व्यक्ति के लि एसंयुक्त रूप से और अलग-अलग उत्तरदायी होता है और घायल व्यक्ति के पास उन सभी या किसी के खिलाफ कार्यवाही करने का विकल्प होता है। ऐसे मामले में, घायल को प्रत्येक गलत करने वाले की जिम्मेदारी की सीमा को अलग से स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है, न ही न्यायालय के लिए प्रत्येक गलत करने वाले की जिम्मेदारी की सीमा को अलग से निर्धारित करना आवश्यक है। दूसरी ओर जहां किसी व्यक्ति को चोट लगती है, आंशिकरूप से किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों की लापरवाही के कारण, और आंशिकरूप से अपनी लापरवाही के परिणाम स्वरूप, तो घायल के हिस्से की लापरवाही जिसने दुर्घटना में योगदान दिया, उसे उसकी अंशदायी लापरवाही कहा जाता है। जहां घायल किसी लापरवाही का दोषी है, वहां क्षति के लिए उसका दावा केवल उसकी ओर से लापरवाही के कारण पराजित नहीं होता है, बल्कि चोटों के संबंध में उसके द्वारा वसूली जाने वाली क्षति उसकी अंशदायी लापरवाही के अनुपात में कम हो जाती है।

7. इसलिए, जब दो वाहन एक दुर्घटना में शामिल होते हैं, और ड्राइवरों में से एक लापरवाही का आरोप लगाते हुए दूसरे चालक से मुआवजे का दावा करता है, और दूसरा चालक लापरवाही से इनकार करता है या दावा करता है कि घायल दावेदार खुद लापरवाह था, तो यह विचार करना आवश्यक हो जाता है कि क्या घायल दावेदार लापरवाह था और यदि हां, तो क्या वह दुर्घटना के लिए पूरी तरह से या आंशिक रूप से जिम्मेदार था और उसकी जिम्मेदारी की सीमा क्या थी, यह उन की लापरवाही है। इसलिए जहां घायल स्वयं आंशिकरूप से उत्तरदायी है , वहां समग्र लापरवाही का सिद्धांत लागू नहीं होगा और न ही यह स्वत निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि लापरवाही 50-50 थी जैसा कि इस मामले में माना गया है। न्यायाधिकरण को अपीलकर्ता की अंशदायी लापरवाही की सीमा की जांच करनी चाहिए थी और इस तरह समग्र लापरवाही और अंशदायीलापरवाही के बीच भ्रम से बचना चाहिए था। उच्च न्यायालय उक्त त्रुटिको सुधार ने में विफल रहा है।

8. यदि कोई व्यक्ति बिना लाइसेंस के वाहन चलाता है, तो वह अपराध करता है। वही, अपने आप में, हमारी राय में, दुर्घटना के संबंध में लापरवाही का पता नहीं चल सकता है। अवर न्यायालयों द्वारा यह माना गया है कि यह मिनीट्रक का चालक था जिसे लापरवाही से चलाया जा रहा था। यह कहना एक बात है कि अपीलकर्ता के पास कोई लाइसेंस नहीं था, लेकिन इस तथ्य का कोई निष्कर्ष नहीं निकला है कि वह दोपहियावाहन को लापरवाही से चला रहा था। यदि वह लापरवाही से गाड़ी नहीं चला रहा था जिस के कारण दुर्घटना हुई, तो हम यह नहीं समझ पा रहे

हैं कि कैसे, केवल इसलिए कि उसके पास लाइसेंस नहीं था, उसे अंशदायीलापरवाही का दोषी ठहराया जाएगा।

8. इस प्रकार, इस तथ्य के मद्देनजर, यह न्यायालय पाता है कि दुर्घटना चालक की एकमात्र लापरवाही का परिणाम थी।

9. इसके अलावा, मैग्मा जनरल इंश्योरेंस कंपनी (पूर्वोक्त)के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अनुमानित आय को 6,000/- रुपये प्रति माह माना है और इस प्रकार, मैग्मा जनरल इंश्योरेंस कंपनी (पूर्वोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के मद्देनजर दावेदारों/अपीलकर्तागण के लिए विद्वान अधिवक्ता के प्रस्तुतिकरण को स्वीकार करते हुए, यह न्यायालय न्यायाधिकरण को मृतक की आय को 3,000/- रुपये प्रतिमाह के स्थान पर 6000/- रुपये प्रतिमाह रुपये मान कर मुआवजे की पुनर्गणना करने का निर्देश देता है।

10. यह भी प्रावधान किया गया है कि मुआवजे की बढ़ी हुई राशि में दावा याचिका दायर करने की तारीख से 6% साधारण ब्याज लगेगा।

11. इस प्रकार, ऊपर दिए गए कारणों के लिए, अपील को आंशिकरूप से स्वीकृत किया जाता है और न्यायाधिकरण के अधिनिर्णयको ऊपर बताए अनुसार संशोधित किया जाता है। बीमा कंपनी को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुतकरने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर दावेदारों/अपीलकर्तागण को मुआवजे की बढ़ी हुई राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है। लागत के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 1 ILRA 854
अपीलीय क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 04.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट,

आदेश से प्रथम अपील क्रमांक 2385/2017 ,
संलग्न
आदेश से प्रथम अपील क्रमांक 3211 /2017

टाटा ए.आई.जी. जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड परेल मुंबई ...अपीलकर्ता
बनाम
अमर कौर और अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता:
श्री सुशील कुमार मेहरोत्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी:
श्री राम सिंह, श्री सुधीर दीक्षित

दिवानी कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा 166 और 168, - यूपी मोटर वाहन नियम, 1998 - नियम 220-ए (3) – अपील – दावेदारों की मुआवजे की वृद्धि की मांग और बीमा कंपनी ने मुआवजे की मात्रा पर विरोध किया – साक्ष्य की सराहना की - दुर्घटना और आकस्मिक मृत्यु पर कोई विवाद नहीं हैं - न्यायालय ने पाया कि - विद्वान न्यायाधिकरण ने गुणक के आवेदन को छोड़कर वेतन, भविष्य की संभावनाओं और पारंपरिक प्रमुखों और ब्याज के प्रमुखों के तहत रकम की गणना करते समय कानूनी रूप से मुआवजे का निर्धारण नहीं किया - इसलिए, बीमा कंपनी की अपील निरस्त कर दी गई है लेकिन, प्रणय सेठी, उर्मिला शुक्ला, सरला वर्मा, सरला देवी, के.आर. मधुसूदन का, के.एल. नारायण रेड्डी में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर प्रकाश डाला गया, दावेदारों की अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है - विवादित पुरस्कार को संशोधित और रुपये 34,96,000/- से 39,17,563/- तक 7% ब्याज के साथ से वृद्धि की जाती है - तदनुसार निर्देश जारी किए गए।

(अनुच्छेद - 18, 19, 21, 22, 23, 24, 25, 26)

परिणाम - अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची: -</u>

1. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य, (2017 (16) एससीसी 680),
2. न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला और अन्य (2021 एसएससी ऑनलाइन एससी 822),
3. श्रीमती. सरला वर्मा एवं अन्य बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कार्पोरेशन और अन्य (2009 (6) एससीसी 121),
4. डिविजनल मैनेजर, रॉयल सुंदरम एलायंस इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम सरलादेवी और अन्य (2013 (1) टीएसी 77 (मैड),
5. के आर मधुसूदन वी.एस. प्रशासनिक अधिकारी (2011 खंड 4 एससीसी 689),
6. पुट्टम्मा बनाम के.एल. नारायण रेड्डी (2013 खंड 15 एससीसी 45),

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलार्थी-दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता, श्री राम सिंह और अपीलार्थी-इंश्योरेंश कम्पनी के विद्वान अधिवक्ता, श्री सुशील कुमार मेहरोत्रा को सुना।

I. प्रस्तावना

2. यह दो अपीलें, विद्वान मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/अपर जिला न्यायाधीश, अलीगढ़ द्वारा, मोटर दुर्घटना दावा याचिका संख्या 709/2014 (अमर कौर और अन्य बनाम टाटा एआईजी जनरल इंश्योरेंश कम्पनी लिमिटेड और अन्य) दिनांक 11.04.2017 ने आंशिक रूप से दावेदारों के दावों की अनुमति देते हुए किये गए एक अधिनिर्णय से उत्पन्न होती है।

2.1 दोनों अपीलें इंश्योरेंश कम्पनी और वादी क्रमशः द्वारा दायर की गयी हैं और एक ही निर्णय द्वारा तय की गईं हैं।

II विद्वान अधिकरण के समक्ष दावेदारों और प्रत्यर्थियों का वाद

3. संक्षेप में, विद्वान अधिकरण के समक्ष दावेदारों का मामला यह था कि मृतक की मृत्यु, 26.08.2014 को हुयी दुर्घटना में लगी चोटों के कारण हुयी थी और दुर्घटना बोलेरो जीप, जिसकी पंजीकरण संख्या यूपी81एक्स0168 है, के चालक के लापरवाही एवं जल्दबाजी से गाड़ी चलाने के कारण हुयी थी। अपराध कारित करने वाले वाहन का बीमा टाटा एआईजी जनरल इंश्योरेंश कम्पनी लिमिटेड द्वारा किया गया था। जब दुर्घटना घटित हुयी मृतक अपने बेटे पवन कुमार द्वारा चलाए जा रहे पंजीकरण संख्या डीएल45बीके-4482 वाली मोटरसाइकिल की पिछली सीट पर सवार था। सभी वादी मृतक कालीचरण के आश्रित हैं। मृत्यु के समय मृतक की आयु 58 वर्ष थी।

III विद्वान अधिकरण द्वारा अधिनिर्णीत मुआवजा

4. विद्वान अधिकरण द्वारा आक्षेपित निर्णय दिनांकित 11.04.2017में जो मुआवजा प्रदान किया गया वह नीचे सारणीबद्ध रूप में दिखाया गया हैः-

क्रमांक	शीर्ष	अधिकरण द्वारा निर्णीत राशि
1.	मासिक आय (A)	40,000/-
2.	वार्षिक आय (B) (A*12=B)	4,80,000/-
3.	भविष्य की संभावनाएं (C)	4,80,000 का 20% = 96,000/-
4.	वार्षिक आय +भविष्य की संभावनाएं (B+C=D)	4,80,000 + 96,000 = 5,76,000/-
5.	व्यक्तिगत व्यय में कटौती (E) (Dका 1/3)	5,76,000 का 1/3 = 1,92,0000/-
6.	निर्भरता की वार्षिक क्षति (F) (D – E=F)	5,76,000 – 1,92,000 = 3,84,000/-
7.	गुणक (G)	9
8.	निर्भरता की कुल क्षति (F*G)	3,84,000 * 9 = 3,456,000
9.	पारम्परिक शीर्ष A) कंसोर्टियम की क्षति B) संपदा की क्षति C) अन्तिम संस्कार का व्यय	40,000/-
10.	कुल मुआवजा	3456000 + 40000 = 3496000/-
11.	ब्याज	7 %

4.1 दावेदारों द्वारा दायर की गई अपील मुआवजे में वृद्धि की मांग करती है, और बीमा कम्पनी ने मुआवजे की मात्रा को अत्यधिक बताया है।

IV. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत निवेदनः

5. अपीलार्थी- इंश्योरेंश कम्पनी के विद्वान अधिवक्ता, श्री सुशील कुमार मेहरोत्रा ने निवेदन किया कि मृतक की आय की गणना गलत की गयी थी। दूसरी बात यह है कि नेशनल इंश्योरेंश कम्पनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य के फैसले को देखते हुए 20% की भविष्य की संभावनाएं गणना के लिए उत्तरदायी नहीं थी। तीसरा यह है कि, बीमा कंपनी की ओर से विभाजन गुणक को अपनाने का पक्ष पोषण किया गया।

6. दावेदारों-प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता, श्री राम सिंह ने निवेदन किया कि मुआवजे की गणना सही नहीं की गई थी। सभी दावेदार अधिक राशि हकदार थे।

V. विचारण के लिए मुद्देः

7. अपने तर्कों को बढ़ाने के उपरान्त, तत्सम्बन्धी पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सहमत हैं कि इन अपीलों में केवल निम्नलिखित प्रश्न ही विचार के लिए आते हैः

क्या विद्वान अधिकरण ने मुआवजा निर्धारित करते समय, निम्न शीर्षों के तहत राशियों की गणना विधिपूर्वक की- वेतन, भविष्य की संभावना, गुणक का आवेदन, पारम्परिक शीर्ष और ब्याज?

V (क). मृतक के वेतन का मामलाः

8. मृतक राजस्थान में कृषि विभाग में निरीक्षक के पद पर कार्यरत था। मृतक के नियोक्ता द्वारा जारी किया गया वेतन निर्धारण प्रमाणपत्र यह अभिलिखित करता है कि मृतक का मासिक वेतन 49,480/- था और दावेदारों द्वारा विधिवत रूप से सिद्ध किया गया था।

9. विद्वान अधिकरण ने मनमाने ढंग से रू. 10,000/- प्रतिमाह राशि की कटौती कर दी। मुझे डर है कि उपरोक्त कटौती अनुचित है और इसका कोई औचित्य नहीं है। मृतक के वेतन से 10% की दर से आयकर काटे जाने पर, मृतक की वार्षिक आय रू. 5,93760/- बनती है। यह राशि वेतन शीर्ष के तहत तय की जाती है और यह ही मुआवजे की गणना का आधार होगी।

VI ख. भविष्य की संभावनाएं :

10. भविष्य की संभावनाओं की गणना उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियमावली, 1998 के अनुसार की जाने हेतु उत्तरदायी होगी। इस नियमावली का नियम 220A-3(iii) प्रासांगिक है और नीचे पुनरूत्पादित हैः

"(3) मृतक की भविष्य की संभावनाओं को मृतक के वास्तविक वेतन या न्यूनतम वेतन में निम्नानुसार जोड़ा जाएगाः

(iii) पचास वर्ष से अधिक आयु के लिए वेतन का 20%"

11. न्यू इण्ड़िया इन्श्योरेंश कम्पन लिमिटेड़ बनाम उर्मिला शुक्ला एवं अन्य में, सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचार क लिए यूपी नियमावली, 1998 आया। नेशनल इंश्योरेंश कंपनी लिमिटेड़ बनाम प्रणय सेठी और अन्य सहित विभिन्न निर्णयों पर विचार करने पर उर्मिला शुक्ला और अन्य (उपरोक्त) में यह अभिनिर्धारित किया गयाः

"10. प्रणय सेठी में इस बिन्दु पर चर्चा मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 168 के संदर्भ में न्यायोचित मुआवजे पर पहुंचने के दृष्टिकोण से थी।

11. यदि कोई संकेतक एक वैधानिक उपकरण के रूप में उपलब्ध कराया जाता है, जो एक अनुकूल उपचार प्रदान करता है। प्रणय सेठी के मामले में हुआ निर्णय ऐसे वैधानिक प्रावधान के संचालन को सीमित करने के लिए नहीं लिया जा सकता है। विशेष रूप से जब नियमों की वैधता को चुनौती के तहत नहीं रखा गया था। उन मामलों में 15% का निर्धारण, जहाँ पर मृतक 50 – 60 वर्ष की आयु वर्ग में थे जैसा कि प्रणय सेठी के मामले में, अधिकतम रूप में नहीं लिया जा सकता है। वैधानिक व्यवस्था मं उपलब्ध किसी भी शासकीय सिद्धान्त के आभाव में, यह केवल एक संकेत के रूप में था। यदि एक वैधानिक साधन के रूप में सूत्र तैयार किया है, जो बेहतर या अधिक लाभ प्रदान करता है ऐसे वैधानिक उपकरण को तब तक संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए जब तक कि वैधानिक साधन अन्यथा अमान्य न पाया जाए।

(प्रभाव वर्धित)

12. उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियमावली, 1998 प्रणय सेठी (उपरोक्त) या सरला वर्मा (श्रीमती) और अन्य बनाम दिल्ली यातायात कम्पनी और अन्य मामले में, उच्चतम न्यायालय के समक्ष विचाराधीन नहीं थे, प्रणय सेठी (उपरोक्त) उ.प्र. नियमावली, 1998 को ध्यान में रखे बिना निर्धारित की गई थी। यह तथ्य उर्मिला शुक्ला (उपरोक्त) विज्ञापित किया गया था।

"8. श्री राव द्वारा निवेदन किया गया है कि प्रणय सेठी मामले के निर्णय से यह दर्शित नहीं होता है कि न्यायालय का ध्यान विशिष्ट नियमों जैसे नियम 3 (iii) की ओर आकृष्ट किया गया था, जो कि वेतन को 15 % के मुकाबले 20 % जोड़ने पर विचार करता है, जो प्रणय सेठी मामले में एक उपाय के रूप में कहा गया था। उनके निवेदन में, चूँकि वैधानिक उपकरण को उस स्थान पर रखा गया है, जो अधिक लाभप्रद उपचार प्रदान करता है, प्रणय सेठी के मामले में निर्णय को इस तरह के आवेदन को सामित करने के लिए नहीं माना जाना चाहिए।"

13. उ. प्र. नियमावली, 1998 प्रकृति में वैधानिक है और प्रणय सेठी मामले (उपरोक्त) द्वारा उनका संचालन बाधित नहीं है। उ. प्र. नियमावली, 1998 में विधि का बल है और उपयुक्त मामलों में पूरी शक्ति के साथ लागू होगा। उ. प्र. नियमावली, 1998 दावेदारों के लिए प्रणय सेठी (उपरोक्त) में किए गए प्रावधानों की तुलना में उनके लिए अधिक लाभप्रद है। प्रणय सेठी मामले में अभिनिर्धारित (उपरोक्त) उ. प्र. नियमावली, 1998 द्वारा, पात्र लाभार्थियों को प्रदत्त लाभों को कम नहीं कर सकता।

14. इसके मद्देनजर, इस न्यायालय ने निष्कर्षित किया है कि दावेदारों/प्रत्यर्थियों भविष्य के संभावनाओं के शीर्ष के अधीन वेतन में 20% के वृद्दि के हकदार हैं, जैसा कि उ. प्र. नियमावली, 1998 विचार किया गया है। अधिनिर्णय में आवश्यक परिवर्तन तद्नुसार किये जाएंगे।

VI- ग. विभाजन गुणक का अनुप्रयोग

15. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता, श्री सुशील कुमार मेहरोत्रा द्वारा उठाया गया दूसरा मुद्दा यह है कि चूंकि मृतक सेवानिवृत्ति की कगार पर था, इसलिए 9 का गुणक गलत तरीके से लगाया गया था। उन्होंने संभागीय प्रबंधक रायल सुंदरम एलायंस इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड़ चेन्नई बाम सरला देवी और अन्य में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा किये गये निर्णय का आश्रय लेते हुए विभाजन गुणक के उपयोग की वकालत की। मद्रास उच्च न्यायालय ने विभाजन गुणकों की अवधारणआ को विकसित करते हुए निम्न अभिनिर्धारित कियाः

"10. अभिलेखों के अवलोकन करने पर, हम पाते हैं कि मृतक की मृत्यु के समय उसकी आयु 58 वर्ष थी और उसकी केवल दो वर्ष की सेवी बची थी।"

ऐसा होने पर अधिकरण को "शीर्ष आय की क्षति" अधीन मूल्य राशि की गणना करते समय, गुणक को दो भागों मं विभाजित करना चाहिए था और शेष बचे वर्षों के लिए वास्तविक वेतन के आधार पर दुर्घटना की तिथि से सेवानिवृत्ति की तिथि तक, वेतन के 50% को आय के सांकेतिक क्षति के रूप में स्थिर करते हुए, गणना करनी चाहिए। ऐसा करने के बजाय, अधिकरण ने आठ का गुणक अपना लिया और वास्तविक वेतन के आधार पर

गणना की जिसके परिणामस्वरूप निर्भरता की कुल क्षति के रूप में रू. 36,58,248/- की अत्यधिक राशि प्रदान की गई। अग्रेतर, हम पाते हैं कि, अधिकरण ने निर्भरता की क्षति शीर्ष के अधीन गणना करते समय मृतक के व्यक्तिगत व्यय के लिए ¼ मूल्य की राशि की कटौती की। इसलिए, हम मानते हैं कि अधिकरण द्वारा अपनायी गई गुणक की विधि, निर्भरता के क्षति के अधीन मुआवजे के निर्धारण के लिए सही नहीं है, और इसको पुनर्मूल्यांकन के माध्यम से संशोधित करना पड़ेगा।

11. सरला वर्मा और अन्य बनाम दिल्ली परिवहन निगम और अन्य में, शीर्ष न्यायालय के निर्णय के अनुसार 56 से 60 वर्ष तक की आयु के बीच उचित गुणक 9 है। इसलिए गुणक 9 को मौजूदा मामले में मुआवजे पर पहुंचने के लिए ध्यान में रखा जा सकता है क्योंकि मृतक अपनी मृत्यु के समय 58 वर्ष का था। यदि रू. 50,809/- के वास्तविक वेतन को ध्यान में रखा जाए, तो आय की वार्षिक क्षति रू. 6,09,708/- बनती है। इस राशि का 10% आय कर योग्य कटौती के लिए है। 6,09,708/- रूपये की राशि में 10% , 60,970.80 रूपये बनता है, और इसे 61,000/- रूपये तक पूर्णांकित किया जा सकता है। यदि ऐसा है शेष राशि (रू. 5,48,708 – रू6,09,708 = रू61,000/-) बनती है, जो कि पूर्णांक के रूप में 5,49,000/- होती है। इस प्रकार, आय की वार्षिक क्षति रू. 5,49,000/- निर्धारित की जा सकती है। पहले दो वर्षों के लिए, आय की क्षति रू. 10,98,000/- (रू 5,49,000/- *2 वर्ष) शेष सात वर्षों के लिए केवल 50% वार्षिक आय को सांकेतिक आय के रूप में माना जाता है जो कि रूपये 19,21,500/- (रू 2,74,500/- *7 वर्ष) बनती है। इसलिए, आय की कुल क्षति रू. 30,19,500/- (रू.10,98,000 + रू. 19,21,500/-) बनती है।"

16. हालांकि, विभाजन गुणक विधि के आवेदन को के० आर० मधुसूदन बनाम प्रशासनिक अधिकारी में बिना किसी निश्चित शर्तों के खारिज कर दिया गया था। इस प्रकार धारणा करके-

"14 . अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष दायर की गई अपील में, उच्च न्यायालय ने अधिकरण द्वारा दी गई मुआवजे की राशि को बनाए रखने की बजाए, उसे कम कर दिया है। ऐसा करने में, उच्च न्यायालय ने कोई कारण नहीं बताया है। उच्च न्यायालय विभाजन गुणक (सिप्लट मल्टीप्लायर) की अवधारणा पेश की और अधिकरण द्वारा प्रयोग किये गये मल्टीप्लायर से बिना कोई कारण बताए अलग हो गया। उच्च न्यायालय ने मृतक की भविष्य की वृद्धि की संभावना के बारे में स्पष्ट और पुष्टिकारक साक्ष्य पर भी विचार नहीं किया। जब मृतक की आयु 51 और 55 वर्ष के बीच है, गुणक 11 है, जो मोटर वाहन अधिनियम की दूसरी अनुसूची में दूसरे कॉलम में निर्दिष्ट है और अधिकरण ने उक्त गुणक को स्वीकार करके कोई त्रुटि नहीं कारित की है। यह न्यायालय इस बात का मूल्यांकन करने में विफल रहा है कि उच्च न्यायालय ने 6 के गुणक को लागू करने का विकल्प क्यों चुना।

15. इस प्रकार, हमारी राय है कि उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त करने योग्य है क्योंकि यह मृतक के भविष्य की संभावनाओं पर विचार नहीं करने और विभाजन गुणक विधि को अपनाने पर अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के स्पष्ट रूप से विपरीत और अनुचित है।"

(प्रभाव वर्धित)

17. सर्वोच्च न्यायालय ने पुत्तम्मा बनाम के. एल. नारायण रेड्डी के मामले में, के. आर. मधुसूदन (उपरोक्त) के मामले का अनुसरण करते हुए, मोटर वाहन अधिनियम के प्रावधानों और सरला वर्मा (उपरोक्त) मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय का हवाला देते हुए एक समरूप दृष्टिकोण अपनाया है। के. एल. नारायण रेड्डी (उपरोक्त) में इस विषय पर ध्यान दिया गया कि मोटर वाहन अधिनियम, 1988 में विभाजन गुणक के आवेदन की परिकल्पना नहीं की गई है और निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया गया हैः-

"32. धारा 166 के तहत मोटर दुर्घटना के दावों में मुआवजा के निर्धारण के लिए इस न्यायालय ने हमेशा गुणक विधि क पालन किया। चूंकि गुणक के चयन में विसंगतियां थी, इस न्यायालय ने सरला वर्मा के मामले में [सरला वर्मा बनाम डी.टी.सी. (2000) 6 एस.सी.सी. 121: (2009) 2 एस.सी.सी. (सिविल) 770: (2009) 2 एस.सी.सी. (दाण्ड़िक) 1002] आयु समूह के आधार पर एक गुणक के चयन के लिए एक तालिका तैयार की। 1988 के अधिनियम में एक विभाजन गुणक के आवेदन की परिकल्पना नहीं की गई थी।

34. इसलिए हम मानते हैं कि किसी विशेष कारण और अभिलेखीय साक्ष्य के आभाव में अधिकरण या न्यायालय को नियमित रूप से विभाजन गुणक लागू नहीं करना चाहिए। और सरला वर्मा (सरला वर्मा बनाम डी.टी.सी. 2009 6 एस.सी.सी. 121:(2009) 2 एस.सी.सी. (सिविल) 770: (2009) 2 एस.सी.सी. (दाण्ड़िक) 1002] के मामले में इस न्यायालय के निर्णय के अनुसार गुणक लागू करना चाहिए जिससे कि रेश्मा कुमारी के मामले में [रेश्मा कुमारी बनाम मदन मोहन, (2013) 9 एस.सी.सी. 65: (2013) 4 एस.सी.सी. (सिविल) 191: (2013) 3 एस.सी.सी. (दाण्ड़िक) 826] पुष्टि हुई थी।"

18. विभाजन गुणक को लागू करने का तर्क गलत है और तदनुसार खारिज कर दिया गया है। इस मामले के तथ्यों में विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा 9 के गुणक के आवेदन में कोई त्रुटि नहीं थी, क्योंकि मृतक 58 वर्ष के थे।

VI घ. पारम्परिक शीर्षों की गणनाः-

19. विवादित अधिनिर्णय में पारंपरिक शीर्षों के तहत निर्धारित राशि प्रणय सेठी (उपरोक्त) के मामले से भिन्न है। प्रणय सेठी (उपरोक्त) में परंपरागत मदों को निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गयाः-

"54. .... परंपरागत और पारंपरिक शीर्षों को, कहने की जरूरत नहीं है, प्रतिशत के आधार पर निर्धारित नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह एक स्वीकार्य मानदंड़ नहीं होगा। आय के निर्धारण के विपरीत, उक्त मदों को निर्धारित किया जाना है। किसी भी परिमाणन का उचित आधार होना चाहिए। इस बात पर कोई विवाद नहीं हो सकता है कि मूल्य सचकांक, बैंक ब्याज में गिरावट, कई क्षेत्रों में दरों में वृद्धि पर ध्यान देना होगा। अदालत इससे बेखबर नहीं रह सकती है। इस पहलू में एक सामान्य नियम रहा है। अन्यथा इसका निर्धारण करने में अत्यधिक कठिनाई होगी और जबतक उक्त सामान्य नियम को लागू नहीं किया जाता है, तब तक किसी भी प्रकार की निरंंतरता की कमी के कारण अत्यधिक भिन्नता होगी, जिसके परिणामस्वरूप, न्यायाधिकरणों और न्यायालयों द्वारा पारित आदेश अनिर्देशित होने की संभावना है। इसलिए, हमारे विचार में, उचित रकम तय करना सही प्रतीत होता है। हमें ऐसा लगता है कि परंपरागत शीर्षों, अर्थात संपत्ति की हानि, कंसोर्टियम की हानि और अन्त्येष्टि व्यय पर उचित रकम क्रमशः रू. 15,000/-, रू. 40,000/- और रू. 25,000/-है।"

20. प्रणय सेठी (उपरोक्त) के मामले में, निर्धारित पारंपरिक शीर्ष के तहत आँकड़े इस मामले के तथ्यों पर लागू होंगे। अभिनिर्णय को एतद्वारा संशोधित किया जाता है-

VI (ड.) ब्याजः-

21. 7 % का ब्याज और विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा तय किए भुगतान का तरीका उचित और वैध है और इसमें हस्तक्षेप करने आवश्यकता नहीं है।

VII. मुआवजे का निर्धारण जिसके लिए दावेदार हकदार हैः-

22. पूर्ववर्ती चर्चा को विचार में रखते हुए, मुआवजे की राशि, जिसके लिए दावेदार हकदार है और एतद्द्वारा अभिनिर्णीत किया गया है, नीचे सारणीबद्ध हैः-

(I) दुर्घटना की तारीख - 26.08.2014
(ii) मृतक का नाम श्री कालीचरण
(iii) मृतक की आयु - 58
(iv) मृतक का पेशा - राजस्थान में कृषि विभाग में पर्यवेक्षक
(v) मृतक की आय - रू. 49,480/- प्रतिमाह
(vi) दावेदारों के नाम, आयु और मृतक के साथ संबंधः

क्रम सं.	नाम	आयु	रिश्ता
1.	अमर कौर	56	पत्नी
2.	लोकेश कुमार	25	पुत्र

(vii). मुआवजे की गणनाः-

	शीर्ष	राशि (रूपये में)
1.	मासिक आय (A)	रू. 49,480/-
2.	वार्षिक आय (B) (A*12=B)	रू. 5,93,760/-
3.	आयकर @ 10 %	59,376/-
	मृतक की वार्षिक आय में से घटाकर	5,93,760 – 5,9376 = 534384/-
4.	भविष्य की संभावनाएँ (C)	5,34,384 का 20 % = 1,06,876.80
5.	व्यक्तिगत व्यय के लिए कटौती(1/3 का D)	641260.80 का 1/3 = 213753.60-
6.	निर्भरता की वार्षिक क्षति (F) (D - F)	641,260.80 – 213753.60 = 4,27,507.20/-
7.	गुणक (G)	9
8.	निर्भरता का कुल नुकसान (F*G)	427507.20/-*9 = 38.475631/-
9.	पारंपरिक शीर्षः- (A) कंसोर्टियम का नुकसान (B) संपदा का नुकसान (C) अंतिम संस्कार व्यय	70,000/-
10.	ब्याज	7 %

(vii). निष्कर्ष और निर्देशः-

23. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, बीमा कंपनी द्वारा दायर की गई प्रथम अपील आदेश संख्या - 2385/2017 निरस्त की जाती है।

24. दावेदार द्वारा दायर की गई अपील अर्थात प्रथम अपील आदेश संख्या 3211/2017 आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

25. बीमा कंपनी द्वारा दावाकर्ताओं को दिए गए मुआवजे की राशि को तीन महीने की अवधि के भीतर विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष जमा किया जाना जाएगा। तत्पश्चात विद्वान न्यायाधिकरण बिना किसी देरी के दावेदारों को राशि जारी करेगा। दावेदारों को पहले से ही वितरित राशि, (यदि कोई हो) को समायोजित किया जाएगा।

26. इस न्यायालय के समक्ष बीमा कंपनी द्वारा जमा की गई राशि विद्वान विचारण न्यायालय को प्रेषित की जाएगी जो अपील में निर्धारित मुआवजे के रूप में दावेदारों के पक्ष में जारी करेगा।

(2023) 1 ILRA 860
अपीलीय क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 16.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट,

आदेश से प्रथम अपील संख्या - 3227/2017

मोसाहेब अली ... अपीलकर्ताः
बनाम

प्रत्यर्थीः- महाप्रबंधक यू.पी.एस.आर.टी.सी. लखनउ व अन्य ... प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ताः
-ब्रज राज सिंह, अजय श्याम प्रजापति, संतोष कुमार श्रीवास्तव

प्रतिवादी के अधिवक्ताः
-अनिरूद्ध कुमार मिश्रा

दीवानी कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 – धारा 168 - भारतीय संविधान, अनुच्छेद 21 – विकलांगता (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 – अपील - मुआवज़े की मात्रा के विरुद्ध अपीलकर्ता को लापरवाही से यूपीएसआरटीसी बस चलाने के कारण हुई दुर्घटना में चोट लगी - न्यायाधिकरण आंशिक रूप से पप्पू देव यादव, काजल, निर्मला देवी, आर.डी. हट्टंगड़ी, राज कुमार, के सुरेश और सरला वर्मा में माननीय शीर्ष न्यायालय के निर्णयों के आलोक में क्षति का आकलन करने और मुआवजे का पुनर्निर्धारण करने के लिए दावेदार-अपीलकर्ता के विकलांगता के कारण मुआवजे के दावे की अनुमति दी गई – विवादित पुरस्कार रुपये 1,52,067/- से रु. 9,01,560/- 7% ब्याज के साथ से संशोधित किया जाता है – निर्देश जारी - अपील की अनुमति।
(अनुच्छेद - 16, 18, 20, 39, 40)

परिणाम - अपील स्वीकृत। (ई-11)

<u>संदर्भित मामलों की सूचीः</u>
1. पप्पू देव यादव बनाम नरेश कुमार एवं अन्य, एआईआर 2020एससीसी 4424,
2. काजल बनाम जगदीश चंद एवं अन्य, (2020) 4एससीसी 413,
3. वार्ड बनाम जेम्स, 1965 (1) ऑल ईआर 563,
4. मेसर्स कॉनकॉर्ड ऑफ इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम निर्मला देवी और अन्य, 1980 एसीजे 55 एससी,
5. आर. डी. हट्टंगडी बनाम पेस्ट कंट्रोल (इंडिया) प्रा. लिमिटेड, 1995 (1) एससीसी 551,
6. राज कुमार बनाम अजय कुमार एवं अन्य, 2011 (1) एससीसी 343,
7. के. सुरेश बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य, 2012 (12) एससीसी 274,
8. न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम अमित कुमार यादव एवं अन्य, एफएएफओ नंबर 1285/2008 निर्णय दिनांक 23.03.2022,
9. सरला वर्मा (श्रीमती) एवं अन्य बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कंपनी एवं अन्य, 2009 (6) एससीसी 121,

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट द्वारा प्रदत्त)

1. यह अपील मोटर दुर्घटना दावा याचिका संख्या 265/2012में विद्वान मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण/अपर जिला न्यायाधीश, कुशीनगर द्वारा दिए गए निर्णय और अधिनिर्णय दिनांकित 29.10.2016से उत्पन्न हुई है, जिसमें घायल-दावाकर्ता के दावे को आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए उसे मुआवजा दिया गया है और प्रतिवादी-यू.पी.एस.आर.टी.सी. को मुआवजे के भुगतान करने के लिए उत्तरदायी ठहराया गया है।

2. संक्षेप में, विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष दावेदार-अपीलकर्ता का मामला यह था कि अपीलकर्ता को दिनांक 29.06.2012को हुई एक दुर्घटना में चोटें लगी थीं और यह यू.पी.एस.आर.टी.सी. बस पंजीकरण संख्या यूपी27/टी0235के चालक की तेज और लापरवाह ड्राइविंग के कारण हुई थी। विद्वान न्यायाधिकरण ने दुर्घटना में हुई विकलांगता के कारण मुआवजे के लिए दावेदार-अपीलकर्ता के दावे को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया।

3. विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा आक्षेपित निर्णय दिनांकित 29.10.2016में विभिन्न मदों के तहत दिए गए मुआवजे को नीचे सारणीबद्ध किया गया हैः-

क्रम सं0	मद	न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया
1	मासिक आय	35000/-
2	वार्षिक आय	420000/-
3	इलाज	12567/-

4	परिवहन	10000/-
5	भविष्य के चिकित्सा व्यय अर्थात उपकरण खरीद	10000/-
6	दर्द व पीड़ा सुविधाओं की हानि	100000/-
7	विषेष आहार व विविध व्यय	10000/-
8	परिचारक शुल्क	निल
9	गुणक	निल
10	आय की हानि (अस्पताल में 19दिन भर्ती)	9500/-
11	कुल मुआवजा	1,52,067/-
12	ब्याज	7प्रतिशत

4. अपील दावेदार-अपीलकर्ता द्वारा दायर की गई है जो मुआवजे में वृद्धि चाहता है।

5. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अजय श्याम प्रजापति का तर्क है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने अपीलकर्ता के जीवन पर विकलांगता की सीमा पर विचार करते समय और मामूली और अनुचित मुआवजा देते समय गलती की है। उन्होंने एक परिचारक के अधिकार का भी दावा किया तथा विभिन्न मदों के तहत दिए गए मुआवजे में वृद्धि की मांग की।

6. यू.पी.एस.आर.टी.सी. के विद्वान अधिवक्ता श्री अनिरुद्ध कुमार मिश्रा का कहना है कि विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया मुआवजा वैध और उचित है और इसमें कोई हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

7. अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्य और सामग्री और विद्वान न्यायाधिकरण के निष्कर्षों से सामने आए निर्विवाद तथ्य ये हैं। यह दुर्घटना हमलावर यू.पी.एस.आर.टी.सी. बस के चालक की तेज गति और लापरवाही से वाहन चलाने के कारण हुई। अपीलकर्ता को दिनांक 29.06.2012को दुर्घटना में गंभीर चोटें आईं, जिससे उसका बायां हाथ कट गया। दुर्घटना की तिथि पर दावेदार-अपीलकर्ता की उम्र 43वर्ष थी।

8. विकलांगता प्रमाण पत्र में विकलांगता की प्रकृति को "कंधे के नीचे बाएं हाथ का विच्छेदन पाया गया" के रूप में दर्ज किया गया है। विकलांगता प्रमाण पत्र में विशेषज्ञों द्वारा 70प्रतिशत स्थायी प्रकृति की विकलांगता की राय दी गई है।

9. अपीलकर्ता पेशे से शिक्षक है। आक्षेपित अधिनिर्णय में विद्वान न्यायाधिकरण ने पाया है कि बाएं हाथ के नुकसान से उसकी कमाई की क्षमता कम नहीं होती है। इस आधार पर विद्वान न्यायाधिकरण ने माना है कि अपीलकर्ता कमाई के नुकसान के आधार पर किसी भी मुआवजे का हकदार नहीं है।

10. अपीलकर्ता के जीवन पर विकलांगता के प्रभाव पर विचार करने की उपेक्षा करके विद्वान न्यायाधिकरण ने त्रुटि की है। उपरोक्त विकलांगता से उनकी शिक्षण गतिविधियाँ सीधे तौर पर बाधित नहीं हो सकती हैं। तथ्य यह है कि जीवन के दैनिक कार्यों और अन्य रोजमर्रा की गतिविधियों में, विकलांगता उसे बहुत बाधित करेगी। जीवन की जो नियमित गतिविधियाँ अब तक आसानी से और बिना सोचे-समझे की जाती थीं, उन्हें विकलांगता ने बोझिल बना दिया है। इसके अलावा, इस प्रकार की शारीरिक विकलांगता सामाजिक हानि भी पहुंचाती है। हमारा समाज विकलांग लोगों की दुर्दशा के प्रति पूरी तरह संवेदनशील नहीं है। प्रत्येक दिन छीनी गई व्यक्तिगत इच्छाओं और कुछ कम मनुष्य वाले जीवन की ओर धकेले जाने की हठी याद दिलाता है।

11. थोड़े विचलन की कीमत पर, परन्तु समग्र दृष्टिकोण के लाभ के लिए, इस तथ्य पर ध्यान दिया जा सकता है कि दुनिया भर में शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्तियों की दुर्दशा ने वैश्विक समुदाय का ध्यान एशियाई और प्रशांत क्षेत्र में विकलांग लोगों की समानता एवं पूर्ण भागीदारी पर उद्घोषणा, 1992द्वारा आकर्षित किया है। भारत उपरोक्त उद्घोषणा का एक हस्ताक्षरकर्ता था।

12. विकलांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 (एतदपश्चात विकलांगता अधिनियम, 1995के रूप में संदर्भित) की घोषणा के साथ वैश्विक समुदाय की चिंता राष्ट्र की अंतरात्मा पर लाई गई।

13. विकलांगता अधिनियम, 1995विधायी मान्यता को दर्शाता है कि शारीरिक विकलांगता वाले लोगों को भेदभाव और बहिष्कार का सामना करना पड़ता है। विकलांगता अधिनियम 1995का विधायी उद्देश्य विकलांगता से जुड़े कलंक को मिटाने और विकलांग व्यक्तियों के जीवन में पूर्ण भागीदारी सुनिश्चित करने के राष्ट्रीय संकल्प की पुष्टि करता है।

अनुवादित

14.	विकलांगता अधिनियम, 1995का संदर्भ केवल विकलांग व्यक्तियों की परिस्थितियों को रेखांकित करने और उनकी स्थिति में सुधार के लिए अंतरराष्ट्रीय उपकरणों, वैश्विक न्यायिक मूल्यों के साथ-साथ नगरपालिका कानूनों की आम सहमति को उजागर करने के लिए किया गया है।

15.	इस कठिन समय में, विकलांग व्यक्तियों को न्यायालयों द्वारा उचित मुआवजा देना सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता है, एक समान सामाजिक उद्देश्य प्रदान करता है और एक कल्याणकारी राज्य में एक लाभकारी उपाय के रूप में कार्य करता है। मोटर वाहन अधिनियम, 1988की धारा 168में वाक्यांश "उचित मुआवजा" विकसित न्यायिक मानकों के अनुसार न्यायालयों द्वारा अधिनिर्णय के माध्यम से एक कल्याणकारी उपाय प्राप्त करने के विधायी इरादे को प्रकट करता है।

16.	उदाहरणों का निकाय संवैधानिक विधिक अधिकार को मुआवजे से भी संबंधित करता है। शारीरिक विकलांगता भी व्यक्ति की गरिमा को कमजोर करती है। पप्पू देव यादव बनाम नरेश कुमार व अन्य में, मुआवजे इस पुनरावृत्ति के साथ दिया गया था कि मानव गरिमा भारत के संविधान के अनुच्छेद 21द्वारा प्रदत्त अधिकार का अभिन्न अंग है।

17.	अनुकूल सामाजिक वातावरण और सहायता प्रणाली मिलने पर विकलांग लोग ऊंचाइयां हासिल कर सकते हैं और समाज में उत्कृष्ट योगदान दे सकते हैं। मानवीय भावना ने सदैव शारीरिक अक्षमताओं पर विजय प्राप्त की है।

17.1.	हेलेन केलर की दृष्टि तो चली गई लेकिन दृष्टिकोण नहीं। हाथ-पैर खोने के बावजूद डगलस बेडर ने "रीच फॉर द स्काई" की उड़ान भरी। एक मोटर न्यूरॉन बीमारी ने स्टीफन हॉकिंग के शरीर को बर्बाद कर दिया परन्तु सितारों से बात करने की उनकी जिज्ञासा पर अंकुश नहीं लगाया; और उन्होंने मानव ज्ञान को उसकी सीमाओं तक पहुँचाया। मेजर एच.पी.एस. अहलूवालिया को युद्ध में चोट लगी और उनका कमर के नीचे का हिस्सा लकवाग्रस्त हो गया। विकलांगता ने उनके कदम तोड़े लेकिन हौसला नहीं। चोटों ने उनके अंगों को निष्क्रिय कर दिया लेकिन उनके सपनों को बाधित नहीं कर सके। युद्ध नायक का लक्ष्य हमेशा "एवरेस्ट से भी ऊंचा" था।

18.	विधायिका और न्यायालयों ने समान रूप से विकलांग व्यक्तियों को सशक्त बनाकर सामाजिक पूर्वाग्रह को दूर करने और उक्त वर्ग को मुख्यधारा में लाकर विकलांगता को स्वीकार करने का एक सामाजिक वातावरण बनाने का प्रयास किया है। अच्छे न्यायिक प्राधिकार और विधिक मानदंडों के अनुरूप उचित मुआवजे का भुगतान इस अभ्यास का एक हिस्सा है।

19.	इस मामले के तथ्यों में, परिचारक के बिना अपीलकर्ता के लिए सामान्य जीवन संभव नहीं होगा। अपीलकर्ता को जीवन के नियमित कार्य जैसे एक स्थान से दूसरे स्थान तक यात्रा करना (उसके कार्यस्थल सहित), वजन उठाना आदि के लिए एक परिचारक की आवश्यकता होगी। एक परिचारक की सहायता से घायल को कठिनाई से उबरने, असुविधा को कम करने और विकलांगता के कारण जीवन में हुई असुविधा और मानसिक परेशानी को कम करने में मदद मिलेगी। एक परिचर निश्चित रूप से अपीलकर्ता के पुनर्वास और सामाजिक मुख्यधारा में एकीकरण का मार्ग प्रशस्त करेगा और जीवन के सभी पहलुओं में अपीलकर्ता की पूर्ण भागीदारी को सक्षम करेगा। संक्षेप में एक गरिमापूर्ण और पूर्ण जीवन जीने के लिए।

20.	व्यक्तिगत चोट के मामलों में व्यक्तिगत क्षति का आकलन तथ्य और विधि का एक जटिल प्रश्न है। क्षति का आकलन करने और मुआवजा निर्धारित करने की प्रक्रिया में हमेशा शिक्षित अनुमान शामिल होता है। हालाँकि, वस्तुनिष्ठ आधार पर व्यक्तिपरक मुद्दों का निर्धारण करके ऐसी जांच में त्रुटियों की गुंजाइश को कम किया जा सकता है।

21.	ऐसी कठिनाइयों को पहचानते हुए, माननीच सर्वोच्च न्यायालय ने काजल बनाम जगदीश चंद व अन्य में निम्न प्रकार से अपनी राय दीः-

"12.	व्यक्तिगत चोट के मामलों में क्षति का आकलन बड़ी कठिनाइयाँ खड़ी करता है। शारीरिक और मानसिक क्षति को आर्थिक रूप में बदलना आसान नहीं है। परिकलित अनुमान और संभावना का माप होना चाहिए। परिस्थितियों में जितना हो सके, सर्वोत्तम मूल्यांकन किया जाना चाहिए।"

22.	ऐसे मामलों में न्यायालयों की जांच से न्यायिक प्राधिकारियों के बाहुल्य से आसानी से लाभ उठाया जा सकता है। इससे न केवल त्रुटियों की गुंजाइश कम होगी बल्कि न्यायिक घोषणाओं में विसंगतियों पर भी रोक लगेगी।

23.	वार्ड बनाम जेम्स में लॉर्ड डेनिंग ने बुनियादी सिद्धांत निर्धारित किए जिनका ऐसे मामलों में पालन किया जाना चाहिएः-

"सर्वप्रथम, मूल्यांकनः गंभीर चोट के मामलों में, जहां शरीर क्षतिग्रस्त हो गया है या मस्तिष्क नष्ट हो गया है, धन के रूप में उचित मुआवजे का आकलन करना बहुत मुश्किल

है, इतना मुश्किल है कि पुरस्कार मूल रूप से एक पारंपरिक आंकड़ा होना चाहिए, जो अनुभव से या समान मामलों में मुआवजे में प्राप्त किया गया हो। दूसरे, एकरूपताः मुआवजे में कुछ हद तक एकरूपता होनी चाहिए ताकि समान मामलों में समान निर्णय दिए जा सकें; अन्यथा समुदाय में बहुत असंतोष होगा और न्याय प्रशासन की बहुत आलोचना होगी। तीसरा, पूर्वानुमेयताः पक्षकारों को कुछ सटीकता के साथ किसी विशेष मामले में दी जाने वाली राशि का अनुमान लगाने में सक्षम होना चाहिए, क्योंकि इस माध्यम से मामलों को शांतिपूर्ण तरीके से निपटाया जा सकता है और उन्हें न्यायालय में नहीं लाया जाएगा, जो कि जन हित के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।''

24. नुकसान पर मैकग्रेगर का ग्रंथ, 14वां संस्करण पैरा 1157, व्यक्तिगत चोटों में प्रासंगिक प्रमुखों का उचित रूप से वर्णन करता हैः-

"शारीरिक रूप से घायल व्यक्ति अपने आर्थिक नुकसान और गैर-आर्थिक नुकसान दोनों की भरपाई कर सकता है। इनमें से आर्थिक हानियों में स्वयं दो अलग-अलग मदें शामिल हैं- कमाई और अन्य लाभ की हानि जो वादी को होती अगर वह घायल नहीं हुआ होता और चिकित्सा और अन्य खर्च जो चोट के परिणामस्वरूप उसे भुगतना पड़ा, और न्यायालयों ने गैर-आर्थिक नुकसान को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है अर्थात दर्द और पीड़ा, जीवन की सुविधाओं की हानि और जीवन प्रत्याशा की हानि।"

25. मैसर्स कॉनकॉर्ड ऑफ इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम निर्मला देवी व अन्य में जीवन और अंग को न्यायालय मूल्य से जोड़ना, यह अवधारित किया गया थाः

"2. ... मात्रा का निर्धारण उदार होना चाहिए, लापरवाही से नहीं क्योंकि विधि एक स्वतंत्र देश में जीवन और अंग को उदार पैमाने पर महत्व देता है।''

26. विभिन्न मद जिनके तहत व्यक्तिगत चोट के लिए मुआवजा दिया जाना है, निम्न प्रकार आर.डी. हट्टंगडी बनाम पेस्ट कंट्रोल (इंडिया) प्रा.लि.में निर्धारित किए गए थेः

"9. मोटे तौर पर किसी दुर्घटना के शिकार व्यक्ति को देय मुआवजे की राशि तय करते समय, क्षति का आकलन आर्थिक क्षति और विशेष क्षति के रूप में अलग-अलग किया जाना चाहिए। आर्थिक क्षति वे हैं जो पीड़ित ने वास्तव में व्यय किए हैं और जिनकी गणना धन के रूप में की जा सकती है; जबकि गैर-आर्थिक क्षति वे हैं जिनका आकलन गणितीय गणनाओं द्वारा नहीं किया जा सकता है। दो अवधारणाओं को समझने के लिए आर्थिक क्षति में दावेदार द्वारा किए गए खर्च शामिल हो सकते हैं:- (1) चिकित्सा देखभाल; (2) परीक्षण की तिथि तक लाभ अर्जित करने की हानि; (3) अन्य भौतिक हानि। जहां तक गैर-आर्थिक क्षति का प्रश्न है, इसमें शामिल हो सकते हैं:- (1) मानसिक और शारीरिक आघात, दर्द और पीड़ा के लिए क्षति, जो पहले ही भुगती जा चुकी है या भविष्य में भुगतने की संभावना है; (2) जीवन की सुविधाओं के नुकसान की भरपाई जिसमें कई तरह के मामले शामिल हो सकते हैं अर्थात चोट के कारण दावेदार चलने, दौड़ने या बैठने में सक्षम नहीं हो; (3) जीवन की प्रत्याशा की हानि के लिए क्षतिपूर्ति, अर्थात चोट के कारण संबंधित व्यक्ति की सामान्य दीर्घायु कम हो जाती है; (4) जीवन में असुविधा, कठिनाई, बेचौनी, निराशा, हताशा और मानसिक तनाव।

27. इसी प्रकार, राज कुमार बनाम अजय कुमार व अन्य में, व्यक्तिगत चोट के मामलों में नुकसान का आकलन करने और मुआवजा तय करने के लिए प्रासंगिक कारकों को निम्नलिखित शब्दों में बतायाः-

"6. व्यक्तिगत चोट के मामलों में जिन मदों के अंतर्गत मुआवजा दिया जाता है वे निम्नलिखित हैं:-

आर्थिक क्षति (विशेष क्षति)

(1) उपचार, अस्पताल में भर्ती, दवाएं, परिवहन, पौष्टिक भोजन और विविध व्यय से संबंधित व्यय।

(2) कमाई का नुकसान (और अन्य लाभ) जो घायल को होता यदि वह घायल नहीं हुआ होता, जिसमें शामिल हैं:-

(क) उपचार की अवधि के दौरान कमाई का नुकसान;

(ख) स्थायी विकलांगता के कारण भविष्य की कमाई का नुकसान।

(3) भविष्य के चिकित्सा व्यय।

गैर-आर्थिक क्षति (सामान्य क्षति)

(4) चोटों के परिणामस्वरूप दर्द, पीड़ा और आघात के लिए क्षति।

(5) सुविधाओं की हानि (और/या विवाह की संभावनाओं की हानि)।

(6) जीवन प्रत्याषा में कमी (सामान्य दीर्घायु में कमी)।

सामान्य व्यक्तिगत चोट के मामलों में, मुआवजा केवल शीर्ष (1), (2)(क) और (4) के अंतर्गत दिया जाएगा। यह केवल चोट के गंभीर मामलों में है, जहां दावेदार के साक्ष्य की पुष्टि करने वाले विशिष्ट चिकित्सा साक्ष्य हैं कि मुआवजा किसी भी मद (2)(ख), (3), (5) और (6) के अंतर्गत दिया जाएगा, जो कि स्थायी विकलांगता, भविष्य के चिकित्सा व्यय, सुविधाओं की हानि (और/या विवाह की संभावनाओं की हानि) और जीवन प्रत्याशा की हानि के कारण भविष्य की कमाई की हानि से संबंधित है।

28. के. सुरेश बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड व अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार बताते हुए ''उचित मुआवजा'' प्रदान करते समय सुनहरे रास्ते की समर्थन कियाः-

''2. ... हृदय की पीड़ा या मानसिक कष्टों के लिए कोई वास्तविक मुआवजा नहीं हो सकता। सर्वोत्कृष्टता नुकसान की व्यावहारिक गणना में निहित है जिसे यथार्थवादी अनुमान के दायरे में होना चाहिए। इसलिए, मोटर वाहन अधिनियम, 1988की धारा 168 (संक्षिप्तता के लिए 'अधिनियम') यह निर्धारित करती है कि ''उचित मुआवजा'' दिया जाना चाहिए। इस प्रकार, विधि के न्यायालय के लिए ''उचित मुआवजा'' निर्धारित करना एक चुनौती बन जाता है जो न तो कोई बोनस है और न ही अप्रत्याशित लाभ, और साथ ही, नाममात्र भी नहीं होना चाहिए।

29. अब तक व्यक्तिगत चोट के मामलों में उचित मुआवजे के निर्धारण के लिए सुस्थापित सिद्धांतों और दिशानिर्देशों को काजल (उपरोक्त)में दोहराया गया थाः-

"5.अधिनियम के तहत विचार किए गए उचित मुआवजे के निर्धारण के संबंध में सिद्धांत अच्छी तरह से तय किए गए हैं। चोटें शरीर को नुकसान पहुंचाती हैं जो दावेदार को नुकसान का दावा करने का अधिकार देता है। किसी दुर्घटना में दावेदार को लगी चोटों की गंभीरता के अनुसार क्षति अलग-अलग हो सकती है। चोटों के कारण, दावेदार को अनुवर्ती नुकसान हो सकते है जैसेः-

(1) कमाई का नुकसान;

(2) उपचार पर होने वाला खर्च जिसमें चिकित्सा व्यय, परिवहन, विशेष आहार, परिचारक शुल्क आदि शामिल हैं,

(3) शरीर के किसी विशेष अंग के नुकसान से जीवन के सुखों की हानि या कमी, और;

(4) भविष्य की कमाई क्षमता की हानि। हानि आर्थिक और गैर-आर्थिक हो सकती है, परन्तु सभी का आकलन रुपये और पैसे में किया जाना चाहिए।

6. मानवीय पीड़ा और व्यक्तिगत वियुक्ति की तुलना धन से करना असंभव है। हालाँकि, अधिनियम न्यायालय को यही करने का आदेश देता है। न्यायालय को हर्जाना देने का विवेकपूर्ण प्रयास करना होगा, ताकि पीड़ित को हुए नुकसान की भरपाई दावेदार को की जा सके। एक ओर, मुआवजे का मूल्यांकन बहुत परंपरागत तरीके से नहीं किया जाना चाहिए, परन्तु दूसरी ओर, मुआवजे का मूल्यांकन इतने उदार तरीके से भी नहीं किया जाना चाहिए कि यह दावेदार के लिए एक इनाम बन जाए। मुआवजे का आकलन करते समय न्यायालय को वंचना की मात्रा और इस वंचना से होने वाले नुकसान को ध्यान में रखना चाहिए। ऐसे मुआवजे को ही उचित मुआवजा कहा जाता है। व्यक्तिगत चोटों के लिए मूल्यांकन किया गया मुआवजा या क्षति घायल व्यक्ति को उसके पूरे जीवन में झेले गए अभाव की भरपाई करने के लिए पर्याप्त होनी चाहिए। उन्हें केवल सांकेतिक नहीं होना चाहिए।

30. हाल ही में एक चोट के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम अमित कुमार यादव व अन्य में, अच्छे अधिकार के आधार पर इस बात पर जोर दिया कि उचित मुआवजे में यह परिकल्पना की गई है कि "मुआवजा दावेदार को दुर्घटना से पहले की स्थिति में पर्याप्त रूप से बहाल करने वाला चाहिए'', कहाः-

"यह देखा गया कि अधिनियम, 1988से पता चलता है कि पुरस्कार "न्यायसंगत" होना चाहिए, जिसका अर्थ है कि मुआवजा, जहां तक संभव हो, दावेदार को दुर्घटना से पहले की स्थिति में पूरी तरह और पर्याप्त रूप से बहाल करने वाला होना चाहिए। हर्जाना देने का उद्देश्य गलत काम के परिणामस्वरूप हुए नुकसान की भरपाई उचित, न्यायपूर्ण और न्यायसंगत तरीके से करना है, जहां तक धन से संभव हो सके। किसी व्यक्ति को न केवल शारीरिक चोट के लिए मुआवजा दिया जाना चाहिए, अपितु उस क्षति के लिए भी मुआवजा दिया जाना चाहिए जो उसे ऐसी चोट के परिणामस्वरूप हुई है। इसका अर्थ है कि उसे पूर्ण जीवन जीने में असमर्थता, उन सामान्य सुविधाओं का आनंद लेने में असमर्थता, जिनको वह चोटों कारण नहीं ले पाया, और उतना कमाने में असमर्थता के लिए मुआवजा दिया जाना चाहिए जितना वह कमाता था या कमा सकता था।"

31. "दावेदार को दुर्घटना से पूर्व की स्थिति में बहाल करने'' के लिए पूर्ण और पर्याप्त पुनर्वास की आवश्यकता होती है जो विकलांग व्यक्तियों को यथासंभव सामाजिक मुख्यधारा में एकीकृत करता है। उचित मुआवजे की यह अनिवार्यता विकलांगता अधिनियम, 1995की निम्नलिखित प्रस्तावना के अनुरूप हैः-

''उद्देश्यों और कारणों का विवरण

(6) विकलांग व्यक्तियों को सामाजिक मुख्यधारा में शामिल करने के लिए विशेष प्रावधान करना।

32. चोटों के लिए दावेदार जिस मुआवजे का हकदार है, उसका निर्धारण करने के लिए न्यायिक जांच की दिशा को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत, जैसा कि पूर्ववर्ती प्राधिकारियों में निर्धारित किया गया है, इस मामले के लिए भी एक विश्वसनीय मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। हालाँकि यह जोड़ना होगा कि उचित मुआवजा देने की जाँच तथ्य आधारित जाँच है। इससे सभी मामलों के लिए एक

आंकडा या एक सूत्र तय करने में कठिनाई होती है। अदालतों का दृष्टिकोण सूक्ष्म होना चाहिए न कि पांडित्यपूर्ण। उचित मुआवजा देने का न्यायालय का प्रयास रास्ते से नहीं भटकना चाहिए।

33. तथ्य आधारित जांच में पूर्व उदाहरणों को लागू करते समय न्यायालयों को सचेत रूप से प्रतिनिधि अनुमान या पूर्वाग्रह से बचना होगा। न्यायिक निर्णय लेने में "प्रतिनिधि पूर्वाग्रह की त्रुटियां'' तब होती हैं जब भ्रामक तथ्यात्मक समानताओं पर सतही विचार पर किसी मामले में मिसालें लागू की जाती है। अंतिम परिणाम एक निर्णय है जो प्रासंगिक विचारों को अपवर्जित करता है, जिसे वास्तव में इसके परिणाम को प्रभावित करना चाहिए।

34. गंभीर चोटों से उत्पन्न स्थायी विकलांगता के मामलों में कठिनाइयों को कम करने के लिए एक परिचारक की भूमिका को न्यायालयों द्वारा लंबे समय से स्वीकार किया गया है। एक बार जब एक परिचारक की आवश्यकता को सही ठहराया दिया जाता है, तो उसकी सेवाओं को प्रभावी बनाने के लिए प्रावधान किया जाए। इसलिए ऐसे मामलों में उचित मुआवजा देते समय परिचारक शुल्कों को शामिल किया जाता है और गुणक प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त न्यायालयों को भविष्य में पारिचारक शुल्क में होने वाली बढोतरी के प्रति सजग रहना होगा और उनमें भविष्य में होने वाली बढ़ोतरी को भी ध्यान मंे रखना होगा। उपरोक्त मद ऐसे मामलों में उचित मुआवजे का निर्धारण करने के लिए अभिन्न अंग हैं। इस मामले में भविष्य में परिचारक शुल्क में बढ़ोतरी के लिए 10प्रतिषत का आंकड़ उचित लगता है।

35. कथानक में मामले में अच्छे प्रधिकार का लाभ प्राप्त है। काजल (उपरोक्त)में एक परिचारक की आवश्यकता पाए जाने के बाद, परिचारक शुल्क का मूल्यांकन किया गया और उचित मुआवजा देने के लिए गुणक विधि यह अवधारित करते हुए अपनाई गईः-

"22. उच्च न्यायालय द्वारा 44वर्षों के लिए 2500रुपये प्रति माह की दर से परिचारक शुल्क निर्धारित किया गया है, जो 13,20,000रुपये बनता है। दुर्भाग्य से यह प्रणाली उचित प्रणाली नहीं है। गुणक प्रणाली का उपयोग विभिन्न कारकों को संतुलित करने के लिए किया जाता है। जब मुआवजा एकमुश्त दिया जाता है, तो विभिन्न कारकों को ध्यान में रखा जाता है। जब मुआवजे का भुगतान एकमुश्त किया जाता है, तो इस न्यायालय ने हमेशा गुणक प्रणाली का पालन किया है। गुणक प्रणाली का पालन न केवल आय की हानि के कारण मुआवजा निर्धारित करने के लिए किया जाना चाहिए, अपितु परिचारक शुल्क आदि निर्धारित करने के लिए भी किया जाना चाहिए। इस प्रणाली को इस न्यायालय द्वारा गोबाल्ड मोटर सर्विस लिमिटेड बनाम आर.एम.के. वेलुस्वामी (गोबल्ड मोटर सर्विस लिमिटेड बनाम आर.एम.के. वेलुस्वामी, ए.आई.आर. 1962एस.सी. 1) के मामले में मान्यता दी गई थी। गुणक प्रणाली मुद्रास्फीति दर, एकमुश्त मुआवजे पर देय ब्याज की दर, दावेदार की दीर्घायु और जीवन की अनिश्चितताओं जैसे अन्य मुद्दों को भी प्रभावित करती है। सभी विभिन्न वैकल्पिक उपायों में से, गुणक विधि को सबसे यथार्थवादी और उचित विधि के रूप में मान्यता दी गई है। यह पक्षों के बीच बेहतर न्याय सुनिश्चित करता है और इस प्रकार अधिनियम के आषय के अंतर्गत फलस्वरूप "उचित मुआवजा'' मिलता है।

36. पूर्व कथानक के दृष्टिगत और इस मामले के तथ्यों के आलोक में परिचारक के लिए शुल्क 2200/- रुपये प्रतिमाह निर्धारित किया गया है। भविष्य में ऐसे खर्चों में वृद्धि को देखते हुए परिचारक शुल्क के लिए 10प्रतिशत वृद्धि की सीमा तक अतिरिक्त प्रावधान किया जा रहा है।

37. भविष्य में वृद्धि का प्रावधान करने के बाद मासिक परिचारक शुल्क 2420/- रुपये प्रतिमाह तय किया गया है। घायल की उम्र 43साल है। सरला वर्मा (श्रीमती) व अन्य बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कंपनी व अन्य सपठित काजल (उपरोक्त), के अनुसार लागू गुणक 14है।

38. उपरोक्त के अतिरिक्त, आक्षेपित अधिनिर्णय चिकित्सा व्यय, दर्द पीड़ा जैसे विभिन्न व्ययों हेतु अपर्याप्त प्रावधान करता है। चोटों और स्थायी विकलांगता के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो प्रदान की गई धनराशि बहुत कम है। अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्यों से रकम को न्यायसंगत नहीं ठहराया जा सकता। 7प्रतिषत ब्याज न्याय के उद्देश्य के पूर्ति करेगा।

39. पूर्ववर्ती चर्चा के दृष्टिगत, मुआवजे की वह राशि जिसके लिए दावेदार हकदार है और जो

उसे प्रदान की गई है, उसे नीचे सारणीबद्ध किया गया हैः-

क्रम सं.	मद	हकदार राशि (रुपये में)
1	इलाज	30000/-
2	परिवहन	35000/-
3	दो माह की आय की हानि	50000/-
4	भविष्य के चिकित्सा व्यय अर्थात उपकरण खरीद	150000/-
5	दर्द व पीड़ा सुविधाओं की हानि	150000/-
6	विशेष आहार	30000/-
7	विविध व्यय	50000/-
8	परिचारक शुल्क	2200/- प्रतिमाह
9	परिचारक शुल्क की भविष्य मं वृद्धि	10प्रतिशत
10	कुल परिचारक व्यय	29040/-
11	गुणक	14 x 29040= 406560/-
12	कुल मुआवजा	9,01,560/-
13	ब्याज	7प्रतिशत

40. मृतक को प्रदान किए गए मुआवजे की राशि प्रतिवादी-यू.पी.एस.आर.टी.सी. द्वारा तीन माह के भीतर विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष जमा कराई जाए। तत्पश्चात,विद्वान न्यायाधिकरण घायल-दावेदार को बिना किसी देरी के राशि जारी करेगा। घायल-दावेदार को पहले ही दी जा चुकी धनराशि (यदि कोई हो तो) को विधिवत समायोजित किया जाए।

41. उपरोक्त सीमा तक अपील स्वीकार की जाती है।

(2023) 1 ILRA 868
अपीलीय क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 17.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

आदेश से प्रथम अपील क्रमांक 3263 /2014 ,
संलग्न
आदेश से प्रथम अपील क्रमांक 2556/2014

यू.पी.एस.आर.टी.सी ....अपीलकर्ता
बनाम
श्रीमती निर्मला कनौजिया @ निर्मला देवी एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता:
श्री एस.के. मिश्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी:
श्रीमती दीपाली श्रीवास्तव, श्री अमित के. सिन्हा

(ए) दीवानी कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988धारा - 168और 173 - यूपी मोटर वाहन नियम, 1998 - नियम 220-ए(3)(iii): -अपील – एक ही दुर्घटना के विरुद्ध – मुआवजे के दावेदार, मुआवजे की वृद्धि की मांग करते हैं और विवादित आदेश को दो आधारों पर दूषित ठहराया, अंशदायी लापरवाही और न्यायाधिकरण द्वारा लागू गलत गुणक - साक्ष्य की सराहना - यूपीएसआरटीसी की एक बस के चालक की तेज और लापरवाही से ड्राइविंग के कारण हुई दुर्घटना में निरंतर चोटों के कारण मृतक की मृत्यु हो गई, जब बस मृतक की मोटरसाइकिल से टकरा गई – अदालत ने पाया कि आमने-सामने की टक्कर का वास्तव में यह मतलब नहीं है कि यह अंशदायी लापरवाही का मामला है - अभिलेख पर साक्ष्य के मूल्यांकन पर अदालत ने माना कि, अंशदायी लापरवाही के बाद पर न्यायाधिकरण के निष्कर्ष की पुष्टि गया है - और - चूंकि सरला वर्मा और प्रणय सेठी के निर्णयों के अनुसार मृतक की आयु 36 वर्ष थी, इसलिए 16 के स्थान पर गुणक 15 होगा - तदनुसार निर्देश पारित किए गए।
(अनुच्छेद -14,15)

(बी) दीवानी कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988धारा - 168और 173 -यूपी मोटर वाहन नियम, 1998 - नियम 220-ए(3)(iii): - एक ही दुर्घटना के खिलाफ अपील और आदेश के दावेदार ने मुआवजे में वृद्धि की मांग और निगम ने आदेश को दो आधारों पर पंचाट का उल्लंघन किया गया, अंशदायी लापरवाही और सबूतों की प्रशंसा के मुआवजे की मात्रा का न्यायाधिकरण द्वारा लागू किया गया गलत गुणक - विद्वान न्यायाधिकरण ने वेतन, भविष्य की संभावनाओं, व्यक्तिगत खर्चों और पारंपरिक के लिए कटौती और गणना के गुणक सहित शीर्ष प्रमुखों के तहत रकम की गणना करते समय कानूनी रूप से मुआवजे का निर्धारण नहीं किया - इसलिए, प्रणय सेठी, उर्मिला शुक्ला, सरला वर्मा दोनों के मामले में दिए गए माननीय सर्वोच्च

न्यायालय के निर्णय के प्रकाश में, अपील को आंशिक रूप से स्वीकार किया जाता है और विवादित मुआवजे की राशी को संशोधित और बढ़ाकर रु. 32,13,720/- से रु. 58,24,375/- मय 7% ब्याज के साथ तदनुसार जारी किए गए।

(अनुच्छेद - 16, 17, 22, 23, 26, 28, 29, 30)

परिणाम - दोनों अपीलें आंशिक रूप से स्वीकार की जाती हैं। (ई-11)

<u>संदर्भित मामलो की सूची:-</u>

1. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य, (2017 (16) एससीसी 680),
2. न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला और अन्य (2021एसएससी ऑनलाइन एससी 822),
3. श्रीमती सरला वर्मा एवं अन्य बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन एवं अन्य (2009 (6) एससीसी 121),

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट, द्वारा प्रदत्त)

1. प्रस्तावना

1. ये दोनों अपीलें एक ही दुर्घटना और विद्वान मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण / अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, न्याय कक्ष संख्या 8 इलाहाबाद द्वारा दिनांक 31.05.2014 को एम.ए.सी.पी. संख्या 770 / 2011 (श्रीमती निर्मला कनौजिया @ निर्मला देवी और अन्य बनाम यू. पी. एस. आर. टीसी.) में दिये गये पंचाट से उत्पन्न होती हैं।

II विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष दावेदारों और प्रत्यर्थीगण का वाद

2. संक्षेप में न्यायाधिकरण के समक्ष दावेदारों का वाद यह था कि मृतक की मृत्यु दिनांक 04.06.2011 को हुई एक दुर्घटना में लगी चोटों के कारण हुई थी, और यह यूपीएसआरटीसी बस नंबर UP 70 AT 6658 के चालक की तेज और लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण हुई थी। जिस समय अपराध में शामिल बस की मोटरसाइकिल से टक्कर हुई, उस समय मृतक जीटी रोड, हटवा क्रॉसिंग, कौशांबी पर मोटरसाइकिल चला रहा था। दुर्घटना के समय मृतक की उम्र 36 वर्ष थी। दावेदार मृतक के आश्रित थे। यूपीएसआरटीसी ने लिखित कथन दर्ज कर दावे का विरोध किया। मुकदमे में दोनों पक्षों ने सबूत पेश किए।

III. विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया मुआवजा:

3. विद्वान न्यायाधिकरण ने दिनांक 21.05.2014 के आक्षेपित निर्णय में मुआवजा प्रदान किया जो नीचे सारणीबद्ध रूप में दर्शाया गया है:

क्रम सं.	शीर्ष	न्यायाधिकरण द्वारा निर्णीत राशि
1	मासिक आय (A)	24,990/-
2	वार्षिक आय (B) (Ax12 = B)	2,99,880/-
3	भविष्य की सम्भावनायें (c)	Nil (शून्य)
4	वार्षिक आय +भविष्य की सम्भावनायें (B+ C=D)	2,99,880+Nil=2,99,880/
5	व्यक्तिगत खचों के लिये कटौती (E) (D का 1/3)	1/3 of 2,99,880/- =99,960/-
6	निर्भरता की वार्षिक हानि (F) (D-E=F)	2,99,880- 99,960=1,99,920/-
7	गुणक (G)	16
8	निर्भरता का कुल नुकसान (FxG)	1,99,920x16=31,98,720/-
9	प्यार और स्नेह की हानि	5,000/-
10	सम्पत्ति की हानि	5,000/-
11	अंतिम संस्कार	5,000/-
12	अंशदायी लापरवाही के लिये कटौती	Nil (शून्य)
13	कुल मुआवजा	31,98,720 + 15,000= 32,13,720/-
14	व्याज	7.00%

4. न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय दिनांकित 31.5.2014 को चुनौती देते हुए यूपीएसआरटीसी द्वारा एफ. ए. एफ. ओ. संख्या 3263 / 2014 (U.P.S.R.T.C. बनाम श्रीमती निर्मला कनौजिया @ निर्मला देवी और अन्य) दायर किया गया है। एफ. ए. एफ. ओ. संख्या 2556/ 2014 (श्रीमती निर्मला कनौजिया उर्फ निर्मला देवी व अन्य U.P.S.R.T.C.) को मुआवजे में वृद्धि के लिए दावेदारों द्वारा दाखिल किया गया है।

विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कः

5. यूपीएसआरटीसी द्वारा अपील में विभिन्न आधार लिए गए हैं। तथापि, अपीलकर्ता- यूपीएसआरटीसी (एफ. ए. एफ. ए. संख्या 3263 / 2014 में) की ओर से विद्वान अधिवक्ता, श्री एस. के. मिश्रा ने आक्षेपित पंचाट के खिलाफ केवल दो आधारों पर जोर दिया। सबसे पहले, यह अंशदायी लापरवाही का मामला था, और विद्वान न्यायाधिकरण ने अपीलकर्ता पर संपूर्ण दायित्व तय करते हुए विधिक त्रुटि की दूसरे आक्षेपित पंचाट में गलत गुणक का प्रयोग किया गया है। 6. इसके विपरीत, वृद्धि के लिए अपील (एफ. ए. एफ. ओ. संख्या 2556/2014) में, श्रीमती दीपाली श्रीवास्तव, दावेदारों अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि यह अंशदायी लापरवाही का मामला नहीं था। आक्षेपित निर्णय में विभिन्न दोषों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए दावेदारों अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती अत्यधिक और कानून में अपोषणीय थी, भविष्य की संभावनाओं को गैरकानूनी रूप से अस्वीकार कर दिया गया था और विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा मृतक के वेतन में अनुचित कटौती की गई थी। अंततः, पारंपरिक शीषों के तहत दी गई राशि नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी व अन्य361 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित विधि के विपरीत थी।

IV. विचार के लिए विवाद्यक:

7. अपने तर्क प्रस्तुत करने के बाद, संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सहमत हैं कि इन अपीलों में केवल निम्नलिखित प्रश्न ही विचारणीय हैं. -

A. क्या दुर्घटना मृतक मोटरसाइकिल चालक की अंशदायी लापरवाही के कारण हुई थी

B. क्या मुआवजे का निर्धारण करते समय विद्वान न्यायाधिकरण ने विभिन्न शीषों वेतन, भविष्य की संभावनाएं गुणक, पारंपरिक मद, व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती के अन्तर्गत धनराशियों की विधिक रूप से गणना की थी?

C. दावेदार कानूनी रूप से किस मुआवजे के हकदार हैं?

IVA. अंशदायी लापरवाही का विवाद्यक:

8. दुर्घटना के तथ्य और अपराध में शामिल यूपीएसआरटीसी बस के चालक की लापरवाही को स्थापित करने के लिये दावेदारों ने दो गवाह पेश किये। पीडब्लू 1- श्रीमती निर्मला देवी (मृतक की पत्नी) और पीडब्लू-2 - प्रदीप कुमार, उस व्यक्ति को देखने का साक्षी जो दुर्घटनाग्रस्त मोटरसाइकिल चला रहा था।

9. पी. डब्ल्यू. - 1 निर्मला देवी ने विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष गवाही दी कि उन्होंने दुर्घटना देखी थी। उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन, वह अपने मृतक पति द्वारा चलायी जा रही मोटरसाइकिल पर पिछली सीट पर बैठी थी। जैसे ही वे मल्लाहपुर (हटवा रोड) पहुंचे, यूपी रोडवेज की एक बस जो तेज रफ्तार में थी और सड़क के गलत साइड पर लापरवाही से चलाई जा रही थी, मोटरसाइकिल से टकरा गई। दुर्घटना में मृतक को प्राणघाती चोटें लगीं, और पी. डब्ल्यू 1 को भी चोटें आई। मोटरसाइकिल चालक (मृतक पति) धीमी गति से दाहिनी ओर चला रहा था। सड़क पर मोटरसाइकिल के आगे कोई ट्रैफिक नहीं था।

10. पीडब्लू -2 प्रदीप कुमार ने भी गवाही दी कि वह दुर्घटना का चश्मदीद गवाह था, उसने मृतक को अपनी पत्नी को पिछली सीट पर बैठाकर मोटरसाइकिल चलाते हुए देखा था। यूपी रोडवेज की बस अनियंत्रित गति से गलत साइड में चलाई जा रही थी। परिणामतः अपराध में शामिल बस की टक्कर मोटरसाइकिल से हो गई। हादसे में मृतक की चोट की वजह से मौत हो गई और उसकी पत्नी गंभीर रूप से घायल हो गई।

11. पूर्वोक्त पी.डब्ल्यू-1 और पीडब्लू -2 की गवाही को जिरह के तहत विचलित नहीं किया गया। विद्वान न्यायाधिकरण, जिसे गवाहों के आचरण को देखने का लाभ था, ने गवाहों की साख को बरकरार रखा और उनकी गवाही पर विश्वास किया।

12. यूपीएसआरटीसी बस के ड्राइवर ने विचारण न्यायालय के समक्ष गवाही में अपनी लापरवाही से इनकार किया। उसके बयान के अनुसार हादसा उस समय हुआ, जब मोटरसाइकिल बस के पिछले हिस्से से टकरा गई। डीडब्ल्यू 1 राम, (अपराध में शामिल बस का चालक) जिसने विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष गवाही दी थी, की विश्वसनीयता को जिरह के चुनौती दी गयी थी। विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा उनकी गवाही पर विश्वास नहीं किया गया था।

---

36 112017 (16) एस सी सी 680

13. विज्ञान न्यायाधिकरण ने पाया कि दुर्घटना सड़क के गलत साइड पर अपराध में शामिल बस की लापरवाही से चलाये जाने के कारण हुई थी।

14. आमने-सामने की टक्कर का मतलब यह नहीं है कि यह अंशदायी लापरवाही का मामला है। अंशदायी लापरवाही तब होती है जब दोनों पक्ष लापरवाही से गाड़ी चलाते हैं, यातायात नियमों का उल्लंघन करते हैं या सुरक्षित ड्राइविंग के मानदंडों का पालन करने में विफल रहते हैं। अंशदायी लापरवाही का तात्पर्य है कि दुर्घटना के लिए दोनों पक्ष दोषी हैं। ऐसे मामलों में, न्यायालयों को दुर्घटना के कारण के लिये प्रत्येक पक्ष की जिम्मेदारी और तदनुसार संबंधित पक्षों के दुर्घटना के दायित्व का आकलन करना होता है।

15. अभिलेख में अभिवचनों और साक्ष्यों से जो तथ्य स्थापित होते हैं, वे ये हैं। केवल यूपीएसआरटीसी बस के चालक द्वारा सुरक्षित ड्राइविंग के मानदंडों के साथ-साथ यातायात नियमों का उल्लंघन किया गया। अपराध में शामिल यूपीएसआरटीसी बस के चालक ने सड़क के गलत साइड पर तेजी से गाड़ी चलाई। दुर्घटना में मोटरसाइकिल चालक की कोई गलती नहीं थी। मृतक मोटरसाइकिल चालक ने यातायात नियमों और सुरक्षित ड्राइविंग के मानदंडों का पालन करते हुए विवेकपूर्ण ढंग से दाहिनी ओर गाड़ी चलाई। उसके पास दुर्घटना को रोकने या खुद को बचाने के लिए उपाय करने का कोई समय या अवसर नहीं था, क्योंकि अपराध में शामिल बस का चालक तेज गति और लापरवाही से गाड़ी चला रहा था। दुर्घटना पूरी तरह से अपराध में शामिल यूपीएसआरटीसी वाहन के चालक की गलती के कारण हुई और यूपीएसआरटीसी मुआवजे का भुगतान करने के लिए पूरी तरह उत्तरदायी है।

15.1 विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा साक्ष्य का मूल्यांकन और अभिवचनों तथा अभिलेख सामग्री पर विचार त्रुटिहीन है। यह न्यायालय किसी अन्य दृष्टिकोण के लिए राजी नहीं है। इस विवाधक पर विद्वान न्यायाधिकरण के निष्कषों को बरकरार रखा जाता है।

15.2. अंशदायी लापरवाही का विवाद्यक दावेदारों के पक्ष में और यूपीएसआरटीसी के खिलाफ तय किया जाता है।

IV C. विभिन्न शीर्षों के तहत मुआवजे की गणना का विवाद्यक:

a. मृतक का वेतन -

16. मृतक यू.पी. जल विद्युत निगम लिमिटेड में एक जूनियर इंजीनियर था। विभाग द्वारा जारी किया गया वेतन प्रमाण पत्र और विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष अभिलेख से विधिवत रूप से सिद्ध होता है कि मृतक का मासिक वेतन रु. 29,205 / - था । विद्वान न्यायाधिकरण ने मृतक के वेतन में 4000/- रूपये की अनुचित कटौती की। वेतन में स्वीकार्य एकमात्र कटौती लागू दर के अनुसार आयकर के रूप में थी।

b. भविष्य की संभावनायें:-

17. भविष्य की संभावनाओं की गणना उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियम, 1998372के अनुसार की जाती है। नियमावली का नियम 220 क - 3 (III) उचित है और इसके अन्तर्गत इसे यहाँ पुनः प्रस्तुत किया गया है-

" (3) मृतक के भविष्य की संभावनाओं को मृतक के वास्तविक वेतन या न्यूनतम मजदूरी में निम्नानुसार जोड़ा जाएगा:
(1) 40 वर्ष से कम आयु वेतन का 50%"

18. उ०प्र० नियमावली, 1998 न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला व अन्य383 में सुप्रीम कोर्ट के समक्ष विचार के लिए आया था। उर्मिला शुक्ला (पूर्वोक्त) में नेशनल एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी व अन्य394 सहित विभिन्न निर्णयों पर विचार करने पर अभिनिर्धारित किया गया-

10. प्रणय सेठी में इस बिंदु पर चर्चा मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 168 के संदर्भ में 'उचित मुआवजे पर पहुंचने के दृष्टिकोण से थी।

11. यदि कोई संकेतक एक वैधानिक दस्तावेज के रूप में उपलब्ध कराया जाता है जो एक अनुकूल उपचार प्रदान करता है, प्रणय सेठी में निर्णय ऐसे वैधानिक प्रावधान के संचालन को सीमित करने के लिए नहीं लिया जा सकता है, विशेष रूप । जब नियमों की वैधता को किसी चुनौती के अधीन नहीं रखा गया था। जैसा कि प्रणय सेठी मामले में बताया गया है, जहां मृतक 50-60 वर्ष की आयु वर्ग में था, वहां 15% का निर्धारण अधिकतम के रूप में नहीं लिया जा सकता है। वैधानिक व्यवस्था में उपलब्ध किसी भी शासकीय सिद्धांत के अभाव में यह केवल एक संकेत के रूप में था। यदि एक वैधानिक दस्तावेज ने एक सूत्र तैयार किया है जो बेहतर या अधिक लाभ प्रदान करता है, तो ऐसे वैधानिक दस्तावेज को तब तक परिचालन करने की

---

37 22इसके बाद से उ.प्र. नियमावली 1998 से सन्दर्भित

38 332021एस सी सी आनलइन एस सी 822

39 442017 (16) एस सी सी 680

अनुमति दी जानी चाहिए जब तक कि वैधानिक दस्तावेज अन्यथा अमान्य न पाया जाए।"
(प्रभाव वर्द्धित)
19. उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियमावली, 1998 को नियम प्रणय सेठी (पूर्वोक्त) या सरला वर्मा (श्रीमती) व अन्य बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कंपनी व अन्य405में सुप्रीम कोर्ट के समक्ष विचाराधीन नहीं थी। प्रणय सेठी (पूर्वोक्त)में उ०प्र० नियमावली, 1998 को ध्यान दिये बिना भविष्य की संभावनाएं निर्धारित की गई थीं। इस तथ्य को उर्मिला शुक्ला (पूर्वोक्त) में उल्लेख किया गया था:
8. श्री राव द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रणय सेठी के फैसले से यह नहीं पता चलता है कि न्यायालय का ध्यान नियम 3 (III) जैसे विशिष्ट नियमों की ओर आकर्षित किया गया था, जो 15% के मुकाबले वेतन के 20% को जोड़ने पर विचार करता है, जो प्रणय सेठी में एक उपाय के रूप में कहा गया था। उनकी प्रस्तुति में, चूंकि वैधानिक दस्तावेज को रखा गया है जो अधिक लाभप्रद उपचार प्रदान करता है, प्रणय सेठी के निर्णय को इस तरह के वैधानिक नियम के प्रयोग को सीमित करने के लिए नहीं माना जाना चाहिए।"
20. उ. प्र. नियमवली, 1998 वैधानिक प्रकृति की है और प्रणय सेठी (पूर्वोक्त)द्वारा उनका संचालन बाधित नहीं होता। उ.प्र. नियमावली, 1998 में विधिक बल है और उपयुक्त मामलों में पूर्ण प्रभाव के साथ लागू होगा। उ. प्र. नियमावली, 1998 दावेदारों के लिए प्रणय सेठी (पूर्वोक्त)में उनके लिए किए गए प्रावधानों की तुलना में उनके लिए अधिक फायदेमंद हैं। प्रणय सेठी (पूर्वोक्त)में अधिकार उ.प्र. नियमावली, 1998 द्वारा पात्र लाभग्राही को प्रदत्त लाभों को कम नहीं कर सकती है।

21. यह तर्क कि उ.प्र. नियमावली, 1998 न्यायालयों की न्यायिक शक्ति का अतिक्रमण करता है और मोटर वाहन अधिनियम, 1988 के विपरीत है और इसलिए राज्य की विधायी क्षमता से परे इस न्यायालय द्वारा विचारणीय नहीं है। इस अपील में उत्तर प्रदेश नियमावली, 1998 के अधिकार विचाराधीन नहीं हैं। इसके अलावा, उ.प्र. नियमावली, 1998 एक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में देय उचित मुआवजे का आकलन करने के लिये न्यायालय द्वारा की गयी जाँच में एक विश्वसनीय मार्गदर्शक है।

22. इस मद्देनजर इस न्यायालय ने पाया कि दावेदार / प्रतिवादी भविष्य की संभावनाओं के लिये वेतन में 50% की वृद्धि के हकदार हैं।

b. व्यक्तिगत खर्चों के लिये कटौती:-

23. मृतक के चार आश्रित (माता-पिता, पत्नी एवं दो अवयस्क बच्चे) थे। विद्वान न्यायाधिकरण
द्वारा व्यक्तिगत खचों के लिए 1/3 भाग की कटौती अत्यधिक थी। वह राशि जो मृतक के व्यक्तिगत खचों के लिए कटौती के लिए उत्तरदायी है वह 1/4 भाग है।

24. इस बिन्दु पर चर्चा को प्राधिकारों का लाभ प्राप्त है। व्यक्तिगत खचों में कटौती के विवाद्यक पर फैसला करते हुए सरला वर्मा (श्रीमती) व अन्य बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कम्पनी व अन्य416 में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा-
"30. हालांकि कुछ मामलों में व्यक्तिगत और रहने वाले खचों के लिए की जाने वाली कटौती की गणना त्रिलोक चंद्र ((1996) 4 SCC 362) में दर्शाई गई इकाइयों के आधार पर की जाती है, सामान्य प्रथा में मानकीकृत कटौती को लागू करना है। इस न्यायालय के बाद के कई फैसलों पर विचार करने के बाद हम इस राय पर पहुँचे हैं कि जहाँ मृतक का विवाह हुआ हो और आश्रित परिवार के सदस्यों की संख्या 2 से 3 हो, वहाँ मृतक के व्यक्तिगत और जीवन-यापन व्ययों के लिए कटौती एक-तिहाई (1/3) होनी चाहिए। जहां आश्रित परिवार के सदस्यों की संख्या 4 से 6 है, वहाँ एक चौथाई (1/4 वां), और जहां आश्रित परिवार के सदस्यों की संख्या छह से अधिक है, वहाँ एक पांचवां (1/5 वां) होना चाहिए।"

25. सरला वर्मा (पूर्वोक्त) में नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी व अन्य427 में अनुमोदन के साथ बाद में पालन किया गया था (पैरा 37 देखें).

C. गुणक का विवाधक:

26. यूपीएसआरटीसी के विद्वान अधिवक्ता श्री एस. के. मिश्रा के कथन में गुणवत्ता है कि विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा 16 के एक गलत गुणक का प्रयोग किया गया है। दावेदारों-प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता इस बात को निष्पक्ष रूप से स्वीकार करते हैं। पीड़ित की उम्र 36 साल थी । सरला वर्मा (पूर्वोक्त) और प्रणय सेठी (पूर्वोक्त)में यथाअभिनिर्धारण के अनुसार लागू गुणक 15 है।

27. मुआवजे की पुनर्गणना 15 का गुणक लगाकर करनी होगी।

D. पारंपरिक शीषों की गणना -

40 552009 (6) एस सी सी 121

41 662009 (6) एस सी सी 121

42 772017 (16) एस सी सी 680

28. आक्षेपित पंचाट में पारंपरिक शीर्ष के अंतर्गत निर्धारित राशि प्रणय सेठी (पूर्वोक्त)से भिन्न है। दावेदार प्रणय सेठी (पूर्वोक्त)में निर्धारित राशि के हकदार हैं जो निम्नानुसार है: -

54........ कहने की आवश्यकता नहीं है कि पारंपरिक और परम्परागत मदों को प्रतिशत के आधार पर निर्धारित नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह एक स्वीकार्य मानदंड नहीं होगा। आय के निर्धारण के विपरीत, उक्त शीर्षो को परिमाणित करना होता है। किसी भी मात्रा का उचित आधार होना चाहिए। इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं हो सकता है कि मूल्य सूचकांक, बैंक ब्याज में गिरावट, कई क्षेत्रों में दरों में वृद्धि पर ध्यान देना होगा। न्यायालय इससे बेखबर नहीं रह सकती। इस पहलू में एक सामान्य नियम रहा है। अन्यथा, इसके निर्धारण में अत्यधिक कठिनाई होगी और जब तक सामान्य नियम को लागू नहीं किया जाता है, तब तक किसी भी प्रकार की स्थिरता की कमी के कारण अत्यधिक भिन्नता होगी, जिसके परिणामस्वरूप न्यायाधिकरणों और न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों के अनिर्देशित होने की संभावना है। इसलिए हमें लगता है। कि उचित रकम तय करना तार्किक है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि परम्परागत मदों पर वाजिब रकम अर्थात् संपत्ति की हानि, सहायता संघ की हानि और अंत्येष्टि व्यय क्रमशः 15000/-, 40000/- और 15000/- होना चाहिए। (15000/-, 40000 /- अन्त्येष्टि व्यय) -

e. ब्याज:-

29. 7% का ब्याज और विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा तय किए गए भुगतान का तरीका न्यायसंगत और वैध है और इसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

IV D. मुआवज़े का निर्धारण जिसके लिए दावेदार प्रतिवादी हकदार हैं.

30. पिछली चर्चा के मद्देनजर मुआवजे की राशि जिसके दावेदार हकदार हैं और एतद्द्वारा नीचे सारणीबद्ध तरीके से प्रदत्त की जाती है।

i. दुर्घटना की तिथि 04.06.2011
ii.मृतक का नाम- नरेश कुमार
iii. मृतक की उम्र - 36 वर्ष
iv. मृतक का पेशा -कनिष्ठ अभियंता
V. मृतक की आय -29,205 /- प्रति माह

vi. दावेदारों के नाम, उम्र तथा मृतक से सम्बन्धः

क्रम सं०	नाम	उम्र	सम्बन्ध
1	श्रीमती निर्मला कनौजिया	35	पत्नी
2	निखिल कुमार	11	पुत्र
3	कुमारी दीक्षा	9	पुत्री
4	श्रीमती सूरज कली	60	माता
5	मुन्नी लाल	65	पिता

vii. मुआवजे की गणनाः

क्रम सं०	मद	राशि (रूपये में)
1	मासिक आय (A)	29,205/-
2	वार्षिक आय (B) (Ax12 = B)	3,50,460/-
3	शुद्ध आयकर देय	9460/-
4	मृतक की वार्षिक आय कर घटाकर	3,50,460-9,460=3,41,000/-
5	भविष्य की सम्भावनायें (c)	3,41,000 का 50%=1,70,500/-
6	वार्षिक आय +भविष्य की सम्भावनायें (B+ C=D)	3,41,000+1,70,500= 5,11,500/-
7	व्यक्तिगत खचों के लिये कटौती (E) (D का 1/4)	5,11,500 का 1/4=1,27,875/-
8	निर्भरता की वार्षिक हानि (F) (D-E=F)	5,11,500- 1,27,875= 3,83,625/-
9	गुणक (G)	15
10	निर्भरता की कुल हानि (FxG)	383625x15=57,54,375/-
11	पारम्परिक मदः (a) संघ की हानि (b) सम्पत्ति की हानि (c) अंतिम संस्कार	70,000/-
12	कुल मुआवजा	58,24,375/-
13	ब्याज	7.00%

V. निष्कर्ष और निर्देश: -

31. मुआवजे की राशि जिसके लिये मृतक हकदार पाया गया, बीमा कंपनी द्वारा विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष तीन महीने के भीतर जमा किया जाएगा। तत्पश्चात विद्वान न्यायाधिकरण बिना किसी देरी के दावेदारों को राशि जारी करेंगे। दावेदारों को पहले से ही वितरित की गई राशि (यदि कोई हो) को विधिपूर्वक समायोजित किया जायेगा।

32. इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश के आलोक में उक्त अपीलार्थी द्वारा जमा की गई प्रतिभूति को उन्मोचित कर दिया जाएगा।

33. उपर्युक्तानुसार दोनों अपीलें आंशिक रूप से स्वीकृत की जाती हैं।

(2023) 1 ILRA 875
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: लखनऊ 27.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय
माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया

जनहित याचिका संख्या 878 सन् 2022
संबद्ध
रिट सी सं. 8904 सन् 2022 और अन्य वाद

वैभव पाण्डेय ... याचिकाकर्ता
बनाम
उ.प्र. राज्य और अन्य .. .प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता:
शरद पाठक, पीयूष पाठक

प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ता : सी.एस.सी.,
अनुराग कुमार सिंह

(क) दीवानी कानून – उ.प्र. नगर पालिका अधिनियम, 1916 - धारा 2(1), 7, 9(ए) और 9(ए)(5)(3), - उ.प्र. नगर निगम अधिनियम, 1959 - धारा - 2(51-ए), 7 - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 141, 144, 15(4), 16(4), 243(डी), 243(डी)(6), 243(टी), 243(टी)(1), 243(टी))(2), 243(टी)(6) और 243(यू), - अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए उ.प्र. राज्य लोक सेवा आरक्षण अधिनियम, 1994 - धारा 2(बी): - जनहित में याचिकाएँ - स्थानीय निकायों में आरक्षण की प्रकृति और उद्देश्य - राज्य सरकार द्वारा जारी अधिसूचना को चुनौती। - आपत्तियां आमंत्रित करना - विभिन्न नगरपालिका निकायों के अध्यक्षों की सीटों एवं पदों के प्रस्तावित निर्धारण पर विशेष रूप से नागरिकों के पिछड़े वर्ग को आरक्षण प्रदान करने तक सीमित - राज्य ने दलील दी है कि इस स्तर पर याचिकाएं समय से पहले हैं - भारत के संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में निहित प्रावधान जो राज्य को एससी, एसटी, महिलाओं या ओबीसी के लिए स्थानीय निकाय में सीटों के आरक्षण का प्रावधान करने में सक्षम बनाते हैं लगभग समान आधार पर हैं- अदालत ने धारित किया कि, ट्रिपल शर्त (i) एससी/एसटी/ओबीसी को प्रदान किए गए 50% आरक्षण की सीमा का पालन और (ii) स्थानीय निकायों के संबंध में पिछड़ापन की प्रकृति और निहितार्थों की अनुभवजन्य जांच करने के लिए एक समर्पित आयोग के गठन की आवश्यकता (iii) ऐसे आयोग की सिफारिश के आलोक में आवश्यक आरक्षण का अनुपात निर्धारण, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा के. कृष्ण मूर्ति एवं विकास किशनराव गावली के मामलों में निर्देशित और परिकल्पित है, इस मामले में पूरा नहीं किया गया है। - इसलिए, दिनांक 05.12.2022 की आक्षेपित अधिसूचना को रद्द कर दिया गया - तदनुसार चुनाव को तुरंत अधिसूचित करने के लिए निर्देश जारी किए गए और चुनाव के लिए जारी की जाने वाली अधिसूचना में संवैधानिक प्रावधान के अनुसार आरक्षण शामिल होगा।
(अनुच्छेद - 8.33, 8.52-ए, सी)

(ख) सिविल कानून – उ.प्र. नगर पालिका अधिनियम, 1916 - धारा 2(1), 7, 9(ए) और 9(ए)(5)(3), - उ.प्र. नगर निगम अधिनियम, 1959 - धारा - 2(51-ए) और 7 - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 141, 144, 15(4), 16(4), 243(डी), 243(डी)(6) , 243(टी), 243(टी)(1), 243(टी)(2), 243(टी)(6) और 243(यू), - अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए उ.प्र. राज्य लोक सेवा आरक्षण अधिनियम, 1994 - धारा - 2(बी):-
जनहित में याचिकाएँ - स्थानीय निकायों में आरक्षण की प्रकृति और उद्देश्य - सरकारी आदेश को चुनौती देते हुए - जिसके तहत विभिन्न स्थानीय निकायों का कार्यकाल समाप्त होने पर, संदीप @संदीप मेहरोत्रा के मामले में अपने फैसले के तहत इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिए गए निर्देशों और अंतरिम व्यवस्था के आलोक में संबंधित जिलों के जिला मजिस्ट्रेट कार्यकारी अधिकारी के संयुक्त हस्ताक्षर के तहत ऐसे स्थानीय निकायों के बैंक खातों के संचालन को अधिकृत करेंगे - सरकार के आक्षेपित आदेश दिनांकित 12.12.2022 को एतद्द्वारा रद्द किया जाता है - तदनुसार निर्देश जारी किए गए हैं कि निर्वाचित निकाय के गठन तक ऐसे नगर निकाय के मामलों का संचालन डीएम की अध्यक्षता वाली तीन सदस्यीय समिति द्वारा किया जाएगा, जिसमें से कार्यकारी अधिकारी/मुख्य कार्यकारी अधिकारी/नगर आयुक्त सदस्य होंगे।
(अनुच्छेद - 8.51, 8.52-बी, डी)

(ग) सिविल कानून – उ.प्र. नगर पालिका अधिनियम, 1916 - धारा 2(1), 7, 9(ए) और 9(ए)(5)(3), - उ.प्र. नगर निगम अधिनियम, 1959 - धारा - 2(51-ए) एवं 7, - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 141, 144, 15(4), 16(4),

243(डी), 243(डी)(6), 243(टी), 243(टी)(1), 243(टी))(2), 243(टी)(6) और 243(यू) - अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए उ.प्र. राज्य लोक सेवा आरक्षण अधिनियम, 1994 - धारा 2(बी): - जनहित में याचिकाएँ - राज्य सरकार को शहरी स्थानीय निकायों के चुनाव के मामले में ट्रांसजेंडर को नागरिकों के पिछड़े वर्ग में शामिल करने का निर्देश देने की मांग - समर्पित आयोग द्वारा स्थानीय निकायों में पिछड़ेपन की प्रकृति और निहितार्थों की समसामयिक कठोर अनुभवजन्य जांच करने के उपरान्त, राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले के आलोक में, राज्य सरकार का भी यही विवेक हो सकता है - नागरिकों के पिछड़े वर्ग में शामिल करने के लिए ट्रांसजेंडर के दावे पर भी विचार किया जाएगा - तदनुसार निर्देश।

(अनुच्छेद - 8.52, 8.52-डी)

सिविल कानून – उ.प्र. नगर पालिका अधिनियम, 1916 - धारा - 2(1), 7, 9(ए) और 9(ए)(5)(3), - उ.प्र. नगर निगम अधिनियम, 1959 - धारा 2(51-ए) और 7- भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 141, 144, 15(4), 16(4), 243(डी), 243(डी) (6) , 243(टी), 243(टी)(1), 243(टी)(2), 243(टी)(6) और 243(यू), - अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए के लिए उ.प्र. राज्य लोक सेवा आरक्षण अधिनियम, 1994 - धारा 2(बी):-जनहित में याचिकाएँ - स्थानीय निकायों में आरक्षण की प्रकृति और उद्देश्य - कानूनी सिद्धांत -कोई भी अपनी गलती का फायदा नहीं उठा सकता- देवेन्द्र कुमार के मामले में माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा व्यक्त की गई टिप्पणी के आलोक में न्यायालय राज्य को अपनी ग़लती का लाभ लेने की अनुमति नहीं दे सकता - ग़लती करने वाला व्यक्ति अपनी ग़लती का फ़ायदा नहीं उठा सकता।

(अनुच्छेद - 8.47)

परिणाम - रिट याचिकाएँ निस्तारित।(ई-11)

संदर्भित मामलों की सूची:

1. राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण बनाम यू.ओ.आई. (निर्णीत दिनांक 15.04.2014 - डब्ल्यू पी (सिविल) सं. 400 सन् 2012),
2. के. कृष्ण मूर्ति बनाम यू.ओ.आई., (2010) 7 एससीसी 202: (2010) 2 एससीसी 202,
3. विकास किशनराव गावली बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य (2021) 6 SCC 73,
4. सुरेश महाजन बनाम म.प्र. राज्य एवं अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 589,
5. संदीप @संदीप मेहरोत्रा एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य (प्रदत्त दिनांक 05.12.2011 – डब्ल्यू. पी. सं. 11226 सन् 2011)
6. इंदिरा साहनी बनाम यू.ओ.आई., 1992 एसयूपीपी 3 एससीसी 217
7. सुनील कुमार बनाम बिहार राज्य एवं अन्य। (निर्णीत दिनांक 04.10.2022 डब्ल्यू. पी. (सिविल) सं. 13513 सन् 2022
8. देवेन्द्र कुमार बनाम उत्तरांचल राज्य एवं अन्य, 2013 9 एससीसी 363,
9. कुशेश्वर प्रसाद सिंह बनाम बिहार राज्य एवं अन्य,(2007) 11 एससीसी 447,

(माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय द्वारा प्रदत्त)

1. प्रस्ताव

1.1 समावेश न कि बहिष्करण, समानता न कि असमानता और लोकतंत्र न कि कार्यपालिका वे तत्व हैं जो हमारे पूरे संविधान में तंतुबद्ध हैं। हमारे जैसे विविधतापूर्ण समाज में हमारे संवैधानिक न्यायालयों का प्रयास इस धागे को और मजबूत करने का रहा है।

इस धारणा को ध्यान में रखते हुए, हम याचिकाओं के इस समूह में हमारे सामने रखे गए मुद्दों पर विचार करने के लिए आगे बढ़ते हैं जिनमें तथ्य और कानून के एक जैसे प्रश्न उठाए गए हैं और इसलिए इस सामान्य निर्णय द्वारा निर्णीत की जा रही हैं, जो इस प्रकार है:

1.2 इनमें से कुछ याचिकाएँ जनहित याचिका के रूप में दायर की गई हैं और उनमें से कुछ शहरी विकास विभाग में राज्य सरकार द्वारा जारी दिनांक 05.12.2022 की एक अधिसूचना से उत्पन्न कथित व्यक्तिगत शिकायत उठाती हैं, जो उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम, 1916 (एतश्मिनपश्चात 'नगर पालिका अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 9ए (5) (3) के संदर्भ में एक मसौदा आदेश है जिसमें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ा वर्ग और महिलाओं के लिए आरक्षित किए जाने वाले विभिन्न नगर निकायों के अध्यक्षों के पदों की संख्या के प्रस्तावित निर्धारण पर आपत्तियां आमंत्रित की गई हैं। हालाँकि, चुनौती इन निकायों के अध्यक्षों की सीटों और पदों के संबंध में नागरिकों के पिछड़े वर्ग को आरक्षण प्रदान करने के प्रस्तावित निर्धारण तक ही सीमित है।

1.3 दिनांक 12.12.2022 के सरकारी आदेश को भी चुनौती दी गई है जिसमें यह प्रावधान किया गया है कि विभिन्न स्थानीय निकायों का कार्यकाल समाप्त होने पर, संबंधित जिलों के जिला मजिस्ट्रेट कार्यकारी अधिकारी और उत्तर प्रदेश नगर पालिका केंद्रीकृत सेवा (लेखा संवर्ग) के वरिष्ठतम अधिकारी के संयुक्त हस्ताक्षर के तहत ऐसे स्थानीय निकायों के बैंक खातों के संचालन को अधिकृत करेंगे। उक्त शासनादेश के अनुसार स्थानीय निकायों का वर्तमान कार्यकाल 12.12.2022 से 31 जनवरी 2023 के मध्य पड़ने वाली विभिन्न तिथियों पर समाप्त हो रहा है।

1.4 एक याचिका में राज्य सरकार को ट्रांसजेंडरों को नागरिकों के पिछड़े वर्ग में शामिल करने और उन्हें

उस आरक्षण के भीतर आरक्षण प्रदान करने का निर्देश देने की प्रार्थना की गई है जो शहरी स्थानीय निकायों के चुनाव के मामले में नागरिकों के पिछड़े वर्ग के लिए उपलब्ध है। राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण बनाम भारत संघ और अन्य, रिट याचिका (सिविल) सं. 400 सन् 2012 में दिनांक 15.04.2014 को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के आलोक में यह प्रार्थना की गई है।

1.5 रिट याचिकाओं की पोषणीयता के संबंध में राज्य द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति कि- दिनांक 05.12.2022 की अधिसूचना केवल एक मसौदा आदेश है और इसलिए याचिकाकर्ताओं के पास संबंधित प्राधिकारी के समक्ष अपनी आपत्तियां उठाने का अवसर होगा, अतैव, याचिकाएँ अपरिपक्व हैं, हमारे आदेश दिनांक 12.12.2022 द्वारा पहले ही निरस्त कर दी गई हैं और उसमें दिए गए कारणों के आधार पर हमने पहले ही याचिकाओं को पोषणीय माना है।

2. तथ्य

2.1 संसद ने संविधान (चौहत्तरवां) संशोधन अधिनियम 1992 अधिनियमित करके दिनांक 01.06.1993 से भारत के संविधान में भाग IXA शामिल किया। शहरी स्थानीय निकायों से संबंधित प्रावधानों को संविधान में शामिल करने का उद्देश्य इन निकायों को स्वशासन की जीवंत लोकतांत्रिक इकाइयों के रूप में प्रभावी ढंग से कार्य करने में सक्षम बनाना था। 74वें संवैधानिक संशोधन के उद्देश्यों और कारणों का अभिकथन इस प्रकार है:

" उद्देश्यों और कारणों का अभिकथन

1. कई राज्यों में स्थानीय निकाय कई कारणों से कमजोर और अप्रभावी हो गए हैं, जिनमें नियमित चुनाव कराने में विफलता, लंबे समय तक अधिक्रमण और शक्तियों और कार्यों का अपर्याप्त हस्तांतरण शामिल है। परिणामस्वरूप, शहरी स्थानीय निकाय स्वशासन की जीवंत लोकतांत्रिक इकाइयों के रूप में प्रभावी ढंग से कार्य करने में सक्षम नहीं हैं।

2. इन अपर्याप्तताओं को ध्यान में रखते हुए, यह आवश्यक माना जाता है कि शहरी स्थानीय निकायों से संबंधित प्रावधानों को विशेषकर इन कारणों से संविधान में शामिल किया जाए-

(i) राज्य सरकार और शहरी स्थानीय निकायों के बीच संबंधों को मजबूत आधार पर रखना-

(क) कार्य और कराधान शक्तियों के संबंध में; और

(ख) राजस्व बंटवारे की व्यवस्था के संबंध में;

(ii) चुनावों का नियमित संचालन सुनिश्चित करना;

(iii) अधिक्रमण की स्थिति में समय पर चुनाव सुनिश्चित करना; और

(iv) अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और महिलाओं जैसे कमजोर वर्गों के लिए पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्रदान करना।

3. तदनुसार, निम्नलिखित का उपबंध करने के लिए संविधान में शहरी स्थानीय निकायों से संबंधित एक नया भाग जोड़ने का प्रस्ताव किया गया है-

(क) तीन प्रकार की नगर पालिकाओं का गठन:

(i) ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्र में संक्रमण वाले क्षेत्रों के लिए नगर पंचायतें;

(ii) छोटे शहरी क्षेत्रों के लिए नगर परिषदें;

(iii) बड़े शहरी क्षेत्रों के लिए नगर निगम। उक्त क्षेत्रों को निर्दिष्ट करने के लिए व्यापक मानदंड का उपबंध अनुच्छेद 243-0 में किया जा रहा है;

(ख) नगर पालिकाओं की संरचना, जो राज्य के विधानमंडल द्वारा तय की जाएगी, जिसमें निम्नलिखित विशेषताएं होंगी:

(i) प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा चुने जाने वाले व्यक्ति;

(ii) नगर पालिकाओं में वार्ड या अन्य स्तरों पर समितियों के अध्यक्षों का प्रतिनिधित्व, यदि कोई हो;

(iii) नगर पालिकाओं में नगर प्रशासन का विशेष ज्ञान या अनुभव रखने वाले व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व (मतदान अधिकार के बिना);

(ग) राज्य कानून में निर्दिष्ट तरीके से नगर पालिका के अध्यक्षों का चुनाव;

(घ) वार्ड स्तर या अन्य स्तर पर या नगर पालिका के स्थानीय क्षेत्र के भीतरी स्तरों पर समितियों का गठन, जैसा कि राज्य कानून में उपबंध किया जाए ;

(ङ) प्रत्येक नगर पालिका में सीटों का आरक्षण-

(i) अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में जिसमें एक तिहाई से अन्यून महिलाओं के लिए होगा;

(ii) महिलाओं के लिए सीटों की कुल संख्या के एक तिहाई से कम नहीं होगी;

(iii) यदि राज्य के विधानमंडल द्वारा ऐसा प्रावधान किया जाता है तो नागरिकों के पिछड़े वर्ग के पक्ष में;

(iv) अध्यक्ष के पद पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और महिलाओं के लिए, जैसा कि राज्य कानून द्वारा निर्दिष्ट किया जाए ;

(च) नगर पालिका के लिए 5 वर्ष का निश्चित कार्यकाल और कार्यकाल समाप्त होने के छह महीने के भीतर पुनः चुनाव। यदि किसी नगर पालिका को उसकी अवधि समाप्त होने से पहले भंग कर दिया जाता है, तो उसके विघटन के छह महीने की अवधि के भीतर चुनाव कराए जाएंगे;

(छ) राज्य विधानमंडल द्वारा नगर पालिकाओं को आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं तैयार करने और विकास योजनाओं के कार्यान्वयन के संबंध में शक्तियों और जिम्मेदारियों का हस्तांतरण, जो उन्हें स्व-शासन संस्थानों के रूप में कार्य करने में सक्षम बनाने के लिए आवश्यक हो सकते हैं ;

(ज) नगर पालिकाओं द्वारा कर और शुल्क लगाना, राज्य सरकारों द्वारा नगर पालिकाओं को ऐसे कर और शुल्क सौंपना और राज्य द्वारा नगर पालिकाओं को सहायता अनुदान देना, जैसा कि राज्य कानून में उपबंध किया जाए;

(i) नगर पालिकाओं के वित्त की समीक्षा करने और सिद्धांतों की सिफारिश करने के लिए एक वित्त आयोग-

(1) उन करों का निर्धारण करना जो नगर पालिकाओं को सौंपे जा सकते हैं;

(2) राज्य और नगर पालिकाओं के बीच करों का बंटवारा

(3) राज्य की संचित निधि से नगर पालिकाओं को सहायता अनुदान;

(झ) भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक द्वारा नगर निगमों के खातों की लेखापरीक्षा और राज्य के विधानमंडल और संबंधित नगर निगम के समक्ष रिपोर्ट रखना;

(ञ) राज्य के मुख्य निर्वाचन अधिकारी के अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण के तहत आयोजित किए जाने वाले नगर पालिकाओं के चुनावों के संबंध में राज्य विधानमंडल द्वारा कानून बनाना;

(ट) विधेयक के प्रावधानों को किसी भी केंद्र शासित प्रदेश या उसके हिस्से में ऐसे संशोधनों के साथ लागू करना जो राष्ट्रपति द्वारा निर्दिष्ट किए जाए;

(ठ) अनुच्छेद 244 के खंड (1) में निर्दिष्ट अनुसूचित क्षेत्रों और खंड (2) में निर्दिष्ट आदिवासी क्षेत्रों को विधेयक के प्रावधानों के लागू होने से छूट देना। ऐसे क्षेत्रों में विधेयक के प्रावधानों का विस्तार संसद द्वारा कानून के माध्यम से किया जा सकता है;

(ड) नगर पालिका की सदस्यता के लिए अयोग्यताएँ

(ढ) नगर पालिकाओं के चुनाव से संबंधित मामलों में न्यायालयों के क्षेत्राधिकार पर रोक।

2.2 74वें संशोधन के माध्यम से संविधान में शामिल अनुच्छेद 243-टी में प्रावधान है कि प्रत्येक नगर पालिका में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए सीटें आरक्षित की जाएंगी और इन श्रेणी के नागरिकों के लिए प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा भरी जाने वाली सीटों की आरक्षित की जाने वाली संख्या , यथा संभव, नगरपालिका क्षेत्र की कुल जनसंख्या में इन वर्गों की जनसंख्या के अनुपात में होनी चाहिए। इस प्रावधान में यह भी कहा गया है कि ऐसी सीटों का आवंटन किसी नगर पालिका में विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों के रोटेशन द्वारा किया जा सकता है। अनुच्छेद 243-टी का उप खंड 2 अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के लिए सीटों की कुल संख्या का कम से कम एक तिहाई आरक्षित करने का प्रावधान करता है। उप खंड 3 में प्रावधान है कि प्रत्येक नगर पालिका में भरी जाने वाली सीटों की कुल संख्या में से कम से कम एक तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित होंगी और उनका आवंटन रोटेशन द्वारा किया जाएगा, जिसमें अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की महिलाओं के लिए आरक्षित सीटों की संख्या भी शामिल होगी। अनुच्छेद 243-टी (1)(2) और (3) में दिए गए तरीके से सीटों के सापेक्ष आरक्षण का प्रावधान करने के अलावा, उप खंड (4) में प्रावधान है कि अध्यक्षों के पद भी अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं के लिए उस रीति से आरक्षित किए जाएंगे जैसा किसी राज्य के विधानमंडल द्वारा उपबंध किया जाए।

2.3 इस प्रकार, जहां तक अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और महिलाओं के लिए नगर पालिका में सीटों के आरक्षण का सवाल है, यह संवैधानिक रूप से अनिवार्य है, हालांकि, जहां तक "नागरिकों के पिछड़े वर्ग" के लिए आरक्षण का सवाल है, उप खंड (6) अनुच्छेद 243-टी में केवल एक सक्षम प्रावधान है जिसके अनुसार किसी राज्य का विधानमंडल उनके पक्ष में नगर पालिका या अध्यक्षों के पदों में सीटों के आरक्षण का प्रावधान कर सकता है।

2.4चूंकि भारत के संविधान के भाग IX-ए में निहित विभिन्न प्रावधानों के लिए उ.प्र. अधिनियम बनाकर संबंधित नगरपालिका कानूनों में राज्य विधानमंडलों द्वारा किए जाने वाले संबंधित परिवर्तनों की आवश्यकता होती है। 1994 के अधिनियम सं. 12 में उत्तर प्रदेश राज्य में नगर पालिका अधिनियम में व्यापक संशोधन किया गया। इसी प्रकार, उसी संशोधित अधिनियम द्वारा, अर्थात् यू.पी. 1994 के अधिनियम सं. 12, उत्तर प्रदेश नगर निगम अधिनियम, 1959 में भी व्यापक संशोधन किया गया।

2.4 चूंकि भारत के संविधान के भाग IX-ए में निहित विभिन्न प्रावधानों द्वारा राज्य विधानमंडलों द्वारा संबंधित नगर निगम कानूनों में परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता थी, 1994 के अधिनियम सं. 12 द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य में नगर पालिका अधिनियम में व्यापक संशोधन किया गया। इसी प्रकार, उसी संशोधन अधिनियम द्वारा, अर्थात् उ.प्र. अधिनियम सं. 12 सन् 1994 के द्वारा, उत्तर प्रदेश नगर निगम अधिनियम, 1959 में भी व्यापक संशोधन किया गया।

2.5 भारत के संविधान के अनुच्छेद 243-टी को प्रभावी बनाने के लिए, नगर पालिका अधिनियम, 1916 और नगर निगम अधिनियम, 1959 में क्रमशः धारा 9-ए और धारा 7 शामिल की गईं। ये प्रावधान नगर पालिकाओं और नगर निगमों में अध्यक्षों के पदों और सीटों के आरक्षण का प्रावधान करते हैं।

2.6 हम ध्यान दे सकते हैं कि भारत के संविधान में भाग IX-A के सम्मिलन के लगभग साथ ही, भाग IX जो कि पंचायतों के संबंध में है, जो कि ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाली स्थानीय स्व-शासन निकाय हैं, को संविधान (तिहत्तरवाँ) संशोधन अधिनियम, 1992 अधिनियमित करके शामिल किया गया, जो दिनांक 24.04.1993 से लागू हुआ। चूंकि भाग IX का उद्देश्य ग्रामीण स्थानीय स्व-शासन निकायों को मजबूत करना था, इसलिए अनुच्छेद

अनुवादित

243-टी में निहित प्रावधानों के समान प्रावधान, जो भाग IX-ए में आते हैं, भाग IX में भी अनुच्छेद 243-डी के रूप में शामिल किए गए थे, जो अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों और महिलाओं को भी पंचायतों के अध्यक्षों की सीटों और पदों में संवैधानिक रूप से अनिवार्य आरक्षण प्रदान करता है। अनुच्छेद 243-डी का खंड (6) किसी राज्य के विधानमंडल को नागरिकों के पिछड़े वर्ग के पक्ष में पंचायतों में अध्यक्षों के पदों में आरक्षण के लिए प्रावधान करने में सक्षम बनाता है। इस प्रकार, ग्रामीण स्थानीय निकायों के लिए संविधान में उपलब्ध अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, महिलाओं और नागरिकों के पिछड़े वर्ग के आरक्षण से संबंधित प्रावधान शहरी स्थानीय निकायों के लिए संविधान में उपलब्ध ऐसे प्रावधानों के लगभग बराबर हैं।

2.7 ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों के लिए स्थानीय स्व-शासन संस्थानों के संबंध में संविधान में निर्धारित आरक्षण नीति के कुछ पहलुओं की संवैधानिक वैधता, के. कृष्ण मूर्ति और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, (2010) 7 एससीसी 202 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती का विषय बना। संविधान में प्रावधान जो सीटों और इन निकायों के अध्यक्षों के पदों में पिछड़े वर्गों के पक्ष में आरक्षण को सक्षम बनाता है, को भी चुनौती दी गई थी जिस पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने विचार किया। भारत के संविधान के अनुच्छेद 243-डी और 243-टी में कुछ भी गलत नहीं पाया गया। हम यह भी जोड़ सकते हैं कि के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम और उत्तर प्रदेश (क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत) अधिनियम, 1961 के तहत सीटों और पंचायतों के अध्यक्षों के पदों में आरक्षण प्रदान करने वाले प्रावधान को भी चुनौती दी गई। जो नगर पालिका अधिनियम और नगर निगम अधिनियम की धारा 9-ए और धारा 7 के समान हैं। लेकिन माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने निर्णयों में बताए गए कारणों से उक्त चुनौती पर विचार नहीं किया।

2.8 के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ पांच निष्कर्षों पर पहुंची और अन्य बातों के साथ-साथ यह धारित किया कि स्थानीय निकायों के संबंध में आरक्षण की प्रकृति और उद्देश्य उच्च शिक्षा और सार्वजनिक रोजगार के मामले में प्रदान किए गए आरक्षण की प्रकृति और उद्देश्य से अलग है और अनुच्छेद 243-डी और अनुच्छेद 243-टी सकारात्मक कार्रवाई के लिए एक विशिष्ट और स्वतंत्र संवैधानिक आधार बनाते हैं और इसके अलावा अनुच्छेद 15(4) और 16(4) द्वारा प्रदत्त आरक्षण के संबंध में विकसित सिद्धांतों को लागू नहीं किया जा सकता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी स्वयं को राज्य के विधानों (जिसमें उत्तर प्रदेश राज्य में पंचायतों से संबंधित विधान शामिल हैं) के तहत नागरिकों के पिछड़े वर्गों के लिए प्रदान किए गए आरक्षण की मात्रा की अधिकता से संबंधित मुद्दे की जांच करने की स्थिति में नहीं पाया क्योंकि कोई समसामयिक अनुभवजन्य डेटा उपलब्ध नहीं था। इस तथ्यात्मक की स्थिति के मद्देनजर, संविधान पीठ ने यह भी कहा कि पिछड़ेपन के उन पैटर्न की कठोर जांच करने का दायित्व कार्यपालिका पर है जो राजनीतिक भागीदारी में बाधाओं के रूप में कार्य करते हैं, जो माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ की राय में शिक्षा और रोजगार तक पहुंच के मामले में आने वाली बाधाओं के पैटर्न से बिल्कुल अलग हैं।

2.9 माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने के.कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में यह विचार व्यक्त किया कि अनुच्छेद 243-डी(6) और अनुच्छेद 243-टी(6) के तहत "पिछड़े वर्गों" की पहचान का कार्य अनुच्छेद 15(4) के प्रयोजनों के लिए और अनुच्छेद 16(4) के प्रयोजनों के लिए "सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों" की पहचान से अलग है।

2.10 के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के फैसले के बाद अनुच्छेद 243-टी के संदर्भ में नागरिकों के पिछड़े वर्गों के आरक्षण से संबंधित मामले ने फिर से माननीय सर्वोच्च का ध्यान आकर्षित किया। यह महाराष्ट्र राज्य का मामला था -विकास किशनराव गवली बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (2021) 6 एससीसी 73, निर्णीत दिनांक 04.03.2021। इस फैसले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अपना मत व्यक्त किया कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के संबंध में संवैधानिक आरक्षण के विपरीत, नागरिकों के पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण केवल राज्य विधानमंडल द्वारा प्रदान किया जाने वाला वैधानिक आरक्षण है, जो जनसंख्या के अनुपात से जुड़ा हुआ है। विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) के मामले में शीर्ष अदालत ने यह भी धारित किया कि राज्य-प्राधिकरण स्थानीय निकायों में नागरिकों के पिछड़े वर्ग के लिए सीटें आरक्षित करने से पहले कुछ पूर्व शर्तों को पूरा करने के लिए बाध्य हैं और रेखांकित किया कि सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता पर्याप्त सामग्री और दस्तावेज़ एकत्र करना है जो एक स्वतंत्र समर्पित आयोग के माध्यम से पिछड़ेपन की प्रकृति और निहितार्थ की समसामयिक कठोर अनुभवजन्य जांच करके आरक्षण के प्रयोजनों के लिए पिछड़े वर्गों की पहचान करने में मदद करेंगे।

2.11 के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में संविधान पीठ द्वारा निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि पिछड़े वर्ग के नागरिकों के लिए स्थानीय निकायों में सीटें आरक्षित करने से पहले राज्य द्वारा ट्रिपल परीक्षण/शर्तों का पालन करना आवश्यक है। विकास

किशनराव गवली (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उल्लिखित यह ट्रिपल परीक्षण/शर्तें हैं:

(क) राज्य के भीतर स्थानीय निकायों के संबंध में पिछड़ेपन की प्रकृति और निहितार्थ की समसामयिक कठोर अनुभवजन्य जांच करने के लिए एक समर्पित आयोग की स्थापना करना।

(ख) आयोग की सिफारिशों के आलोक में स्थानीय निकाय-वार आवश्यक आरक्षण के अनुपात को निर्दिष्ट करना ताकि अधिकता की गड़बड़ी का सामना न करना पड़े, और

(ग) किसी भी स्थिति में, ऐसा आरक्षण अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/पिछड़े वर्ग के नागरिकों के पक्ष में आरक्षित कुल सीटों को मिलाकर 50% सेअधिक नहीं होना चाहिए।

2.12 इस प्रकार, ये याचिकाएं इस प्राथमिक आरोप के साथ दायर की गई हैं कि राज्य सरकार की दिनांक 05.12.2022 की अधिसूचना न केवल अनुच्छेद 243-टी में निहित संवैधानिक अधिदेश के खिलाफ काम कर रही है, बल्कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा के.कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) और विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) के मामलों में निर्धारित सिद्धान्तों का भी पालन नहीं किया जा रहा है।

3. प्रासंगिक संवैधानिक प्रावधान

3.1 बहस के दौरान संबंधित पक्षों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्तागण द्वारा विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों का उल्लेख किया गया है और हम इस फैसले में अपनी चर्चा में ऐसे प्रावधानों को भी ध्यान में रखेंगे। प्रासंगिक संवैधानिक प्रावधान हैं :

(i)243घ स्थानों का आरक्षण (1) प्रत्येक पंचायत में-

(क) अनुसूचित जातियों ; और

(ख) अनुसूचित जनजातियों,

के लिए स्थान आरक्षित रहेंगे और इस प्रकार आरक्षित स्थानों की संख्या का अनुपात, उस पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थानों की कुल संख्या से यथाशक्य वही होगा जो उस पंचायत क्षेत्र में अनुसूचित जातियों की अथवा उस पंचायत क्षेत्र में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या का अनुपात उस क्षेत्र की कुल जनसंख्या से हैं और ऐसे स्थान किसी पंचायत में भिन्न-भिन्न निर्वाचन क्षेत्रों को चक्रानुक्रम से आबंटित किए जा सकेंगे।

(2) खंड (1) के अधीन आरक्षित स्थानों की कुल संख्या के कम से कम एक-तिहाई स्थान, यथास्थिति, अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेंगे।

(3) प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थानों की कुल संख्या के कम से कम एक तिहाई स्थान (जिनके अंतर्गत अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या भी है) स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेंगे और ऐसे स्थान किसी पंचायत में भिन्न-भिन्न निर्वाचन क्षेत्रों को चक्रानुक्रम से आबंटित किए जा सकेंगे।

(4) ग्राम या किसी अन्य स्तर पर पंचायतों में अध्यक्षों के पद अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और स्त्रियों के लिए ऐसी रीति से आरक्षित रहेंगे, जो राज्य का विधान मंडल, विधि द्वारा उपबंधित करे :

परंतु किसी राज्य में प्रत्येक स्तर पर पंचायतों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित अध्यक्षों के पदों की संख्या का अनुपात, प्रत्येक स्तर पर उन पंचायतों में ऐसे पदों की कुल संख्या से यथाशक्य वही होगा, जो उस राज्य में अनुसूचित जातियों की अथवा उस राज्य में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या का अनुपात उस राज्य की कुल जनसंख्या से है :

परंतु यह और कि प्रत्येक स्तर पर पंचायतों में अध्यक्षों के पदों की संख्या के कम से कम एक तिहाई पद स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेंगे :

परंतु यह भी कि इस खंड के अधीन आरक्षित पदों की संख्या प्रत्येक स्तर पर भिन्न-भिन्न पंचायतों को चक्रानुक्रम से आबंटित की जाएगी।

(5) खंड (1) और खंड (2) के अधीन स्थानों का आरक्षण और खंड (4) के अधीन अध्यक्षों के पदों का आरक्षण (जो स्त्रियों के लिए आरक्षण से भिन्न है) अनुच्छेद 334 में विनिर्दिष्ट अवधि की समाप्ति पर प्रभावी नहीं रहेगा।

(6) इस भाग की कोई बात किसी राज्य के विधान-मंडल को पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में किसी स्तर पर किसी पंचायत में स्थानों के या पंचायतों में अध्यक्षों के पदों के आरक्षण के लिए कोई उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।

(ii) 243टी स्थानों का आरक्षण (1) प्रत्येक नगरपालिका में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित रहेंगे और इस प्रकार आरक्षित स्थानों की संख्या का अनुपात, उस नगरपालिका में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थानों की कुल संख्या से यथाशक्य वही होगा जो उस नगरपालिका क्षेत्र में अनुसूचित जातियों की अथवा उस नगरपालिका क्षेत्र में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या का अनुपात उस क्षेत्र की कुल जनसंख्या से है और ऐसे स्थान किसी नगरपालिका के भिन्न-भिन्न निर्वाचन-क्षेत्रों को चक्रानुक्रम से आबंटित किए जा सकेंगे।

(2) खंड (1) के अधीन आरक्षित स्थानों की कुल संख्या के कम से कम एक-तिहाई स्थान, यथास्थिति, अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेंगे।

(3) प्रत्येक नगरपालिका में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थानों की कुल संख्या के कम से कम एक तिहाई स्थान (जिनके अंतर्गत अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या भी है) स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेंगे और ऐसे स्थान किसी

नगरपालिका के भिन्न-भिन्न निर्वाचन क्षेत्रों को चक्रानुक्रम से आबंटित किए जा सकेंगे।

(4) नगरपालिकाओं में अध्यक्षों के पद अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियाँ और स्त्रियों के लिए ऐसी रीति से आरक्षित रहेंगे, जो राज्य का विधान मंडल, विधि द्वारा, उपबंधित करे।

(5) खंड (1) और खंड (2) के अधीन स्थानों का आरक्षण और खंड (4) के अधीन अध्यक्षों के पदों का आरक्षण (जो स्त्रियों के लिए आरक्षण से भिन्न है) अनुच्छेद 334 में विनिर्दिष्ट अवधि की समाप्ति पर प्रभावी नहीं रहेगा।

(6) इस भाग की कोई बात किसी राज्य के विधान-मंडल को पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में किसी नगरपालिका में स्थानों के या नगरपालिकाओं में अध्यक्षों के पद के आरक्षण के लिए कोई उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।

(iii) अनुच्छेद 243 -यू नगरपालिकाओं की अवधि, आदि

(1) प्रत्येक नगरपालिका, यदि तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन पहले ही विघटित नहीं कर दी जाती है तो, अपने प्रथम अधिवेशन के लिए नियत तारीख से पांच वर्ष तक बनी रहेगी, इससे अधिक नहीं: परंतु किसी नगरपालिका का विघटन करने के पूर्व उसे सुनवाई का उचित अवसर दिया जाएगा।

(2) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के किसी संशोधन से किसी स्तर पर ऐसी नगरपालिका का, जो ऐसें संशोधन के ठीक पूर्व कार्य कर रही है, तब तक विघटन नहीं होगा जब तक खंड (1) में विनिर्दिष्ट उसकी अवधि समाप्त नहीं हो जाती।

(3) किसी नगरपालिका का गठन करने के लिए निर्वाचन, -

(क) खंड (1) में विनिर्दिष्ट उसकी अवधि की समाप्ति के पूर्व ;

(ख) उसके विघटन की तारीख से छह मास की अवधि की समाप्ति के पहले पूरा किया जाएगा :

परंतु जहां वह शेष अवधि, जिसके लिए कोई विघटित नगरपालिका बनी रहती, छह मास से कम है वहां ऐसी अवधि के लिए उस नगरपालिका का गठन करने के लिए इस खंड के अधीन कोई निर्वाचन कराना आवश्यक नहीं होगा।

(4) किसी नगरपालिका की अवधि की समाप्ति के पूर्व उस नगरपालिका के विघटन पर गठित की गई कोई नगरपालिका, उस अवधि के केवल शेष भाग के लिए बनी रहेगी जिसके लिए विघटित नगरपालिका खंड (1) के अधीन बनी रहती, यदि वह इस प्रकार विघटित नहीं की जाती।

(iv) 340. पिछड़े वर्गों की दशाओं के अन्वेषण के लिए आयोग की नियुक्ति - (1) राष्ट्रपति, भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों की दशाओं के और जिन कठिनाइयों को वे झेल रहे हैं उनके अन्वेषण के लिए और उन कठिनाइयों को दूर करने और उनकी दशा को सुधारने के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा जो उपाय किए जाने चाहिएं उनके बारे में और उस प्रयोजन के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा जो अनुदान किए जाने चाहिएं और जिन शर्तों के अधीन वे अनुदान किए जाने चाहिएं उनके बारे में सिफारिश करने के लिए आदेश द्वारा एक आयोग नियुक्त कर सकेगा जो ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बनेगा जो वह ठीक समझे और ऐसे आयोग को नियुक्त करने वाले आदेश में आयोग द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया परिनिश्चित की जाएगी।

(2) इस प्रकार नियुक्त आयोग अपने को निर्देशित विषयों का अन्वेषण करेगा और राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देगा, जिसमें उसके द्वारा पाए गए तथ्य उपवर्णित किए जाएंगे और जिसमें ऐसी सिफारिशें की जाएंगी जिन्हें आयोग उचित समझे।

(3) राष्ट्रपति, इस प्रकार दिए गए प्रतिवेदन की एक प्रति उस पर की गई कार्रवाई को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन सहित, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा।

(v) अनुच्छेद 15 (4) इस अनुच्छेद की या अनुच्छेद 29 के खंड (2) की कोई बात राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।

(vi) अनुच्छेद 15 (5) इस अनुच्छेद या अनुच्छेद 19 के खंड (1) के उपखंड (छ) की कोई बात राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के लिए, विधि द्वारा कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी, जहां तक ऐसे विशेष उपबंध अनुच्छेद 30 के खंड (1) में निर्दिष्ट अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थाओं से भिन्न, शिक्षा संस्थाओं में, जिनके अंतर्गत प्राइवेट शिक्षा संस्थाएं भी हैं, चाहे वे राज्य से सहायता प्राप्त हों या नहीं, प्रवेश से संबंधित हैं।

(vii) अनुच्छेद 16 (4) इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, राज्य के अधीन सेवाओं में किसी वर्ग या वर्गों के पदों पर आरक्षण के लिए उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।

4. राज्य अधिनियमों में प्रावधान

राज्य अधिनियमों के प्रासंगिक प्रावधान जिन्हें संदर्भित किया जाना है और जिन पर विचार किया जाना है वे हैं:

4.1धारा 9-ए उ.प्र. नगर पालिका अधिनियम, 1916 जो इस प्रकार है:

"धारा 9-ए स्थानों का आरक्षण- (I) प्रत्योक नगर पालिका में,अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और पिछड़ी जातियों के लिए स्थान आरक्षित रहेंगे और इस प्रकार

आरक्षित स्थानों की संख्या का अनुपात, उस नगर पालिका में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थानों की कुल संख्या से यथाशक्य वही होगा जो उस नगर पालिका क्षेत्र में अनुसूचित जातियों की अथवा उस नगर पालिका क्षेत्र में अनुसूचित जनजातियों की अथवा उस नगर पालिका क्षेत्र में पिछड़ी जातियों की जनसंख्या का अनुपात उस क्षेत्र की कुल जनसंख्या से हैं और ऐसे स्थान किसी नगर पालिका में भिन्न-भिन्न वार्ड को चक्रानुक्रम से आबंटित किए जा सकेंगे, जैसा कि नियम द्वारा विहित किया जाए। [बशर्ते कि पिछड़े वर्ग का आरक्षण उस नगर पालिका की कुल सीटों के सताईस प्रतिशत से अधिक नहीं होगा

बशर्ते यह और कि यदि पिछड़े वर्ग की जनसंख्या का आंकड़ा उपलब्ध नहीं है, उसकी जनसंख्या का निर्धारण नियमों द्वारा विहित तरीके से सर्वे कराकर निर्धारित किया जा सकेगा]

(2) [***]

(3) उपधारा (1) के तहत आरक्षित सीटों की संख्या का कम से कम एक तिहाई स्थान अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और पिछड़े वर्ग की स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेगा, जैसा भी मामला हो।

(4) किसी नगर पालिका में उप-धारा (3) के तहत आरक्षित सीटों की संख्या सहित कुल सीटों की एक तिहाई से कम संख्या महिलाओं के लिए आरक्षित नहीं की जाएगी और ऐसी सीटें नगर पालिका में विभिन्न वार्डों, ऐसे क्रम में जो नियमों द्वारा निर्धारित किया जाए, रोटेशन द्वारा आवंटित की जा सकती हैं।

[(5) नगरपालिका परिषदों और नगर पंचायत के अध्यक्ष और [* * *] के पद अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़े वर्गों और महिलाओं के लिए नीचे दिए गए तरीके से आरक्षित और आवंटित किए जाएंगे: -

(1) अध्यक्ष के पदों का आरक्षण और आवंटन - (क) इस उपधारा के तहत अध्यक्ष के पदों का आरक्षण और आवंटन, इसके बाद उपबंधित किए गए तरीके से नगर पालिका परिषदों और नगर पंचायतों के लिए अलग से किया जाएगा।

(ख) आरक्षित किए जाने वाले पदों की संख्या -

(i) अनुसूचित जातियों के लिए या अनुसूचित जनजातियों के लिए या पिछड़े वर्गों के लिए इस प्रकार निर्धारित की जाएगी कि राज्य में पदों की कुल संख्या का, जितना संभव हो, अनुपात वही होगा जो कि राज्य के शहरी क्षेत्र में अनुसूचित जाति, या राज्य के शहरी क्षेत्र में अनुसूचित जनजाति, या राज्य के शहरी क्षेत्र में पिछड़ा वर्ग की जनसंख्या का अनुपात राज्य में ऐसे क्षेत्र की कुल संख्या से है और यदि पदों की इतनी संख्या निर्धारित करने पर शेषफल आता है, यदि वह भाजक का आधा या आधे से कम है, तो उसे नजरअंदाज कर दिया जाएगा और यदि वह भाजक के आधे से अधिक है, तो भागफल में एक की वृद्धि कर दी जाएगी और प्राप्त संख्या, जैसा भी मामला हो, अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति या पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षित किए जाने वाले पदों की संख्या होगी :

बशर्ते कि इस खंड के तहत पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित किए जाने वाले पदों की संख्या राज्य में पदों की कुल संख्या के सत्ताईस प्रतिशत से अधिक नहीं होगी;

(ii) अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़े वर्ग की महिलाओं के लिए, जैसा भी मामला हो, उपधारा (3) के तहत पदों की संख्या अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजातियों और पिछड़े वर्गों के लिए के लिए निर्धारित संख्या के एक तिहाई से कम नहीं होगी और यदि पदों की संख्या निर्धारित करने में शेष बचता है तो भागफल में एक की वृद्धि की जाएगी और इस प्रकार निकाली गई संख्या, जैसा भी मामला हो, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़े वर्ग से संबंधित महिलाओं के लिए पदों की आरक्षित संख्या होगी:

बशर्ते कि इस खंड के तहत पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित किए जाने वाले पदों की संख्या राज्य में पदों की कुल संख्या के सत्ताईस प्रतिशत से अधिक नहीं होगी;

(iii) अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़े वर्ग की महिलाओं के लिए, जैसा भी मामला हो, उपधारा (3) के तहत पदों की संख्या अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजातियों और पिछड़े वर्गों के लिए के लिए निर्धारित संख्या के एक तिहाई से कम नहीं होगी और यदि पदों की संख्या निर्धारित करने में शेष बचता है तो भागफल में एक की वृद्धि की जाएगी और इस प्रकार निकाली गई संख्या, जैसा भी मामला हो, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़े वर्ग से संबंधित महिलाओं के लिए पदों की आरक्षित संख्या होगी:

(ग) राज्य की सभी नगर पालिका परिषदों और नगर पंचायतों को ऐसे क्रम में व्यवस्थित किया जाएगा कि राज्य में अनुसूचित जाति की आबादी का सबसे बड़ा प्रतिशत वाला नगर परिषद या नगर पंचायत को क्रम संख्या 1 और जिन नगर परिषद या नगर पंचायतों में अनुसूचित जाति की आबादी उनसे कम है, उन्हें संख्या 2 पर रखा जाएगा और बाकी को भी इसी तरह क्रमशः अगले स्थानों पर रखा जाएगा।

(घ) उपखंड (बी) के आइटम (ii) के अधीन, राज्य की नगर पालिका परिषदों या नगर पंचायतों के लिए उपखंड (बी) के तहत निर्धारित अध्यक्षों के पदों की संख्या राज्य के विभिन्न नगर परिषदों या नगर पंचायतों, जैसी भी स्थिति हो, को इस प्रकार आवंटित की जाएगी -

(i) अनुसूचित जाति के पदों के लिए उप-खंड (बी) के आइटम (i) के तहत निर्धारित पदों की संख्या, जिसमें अनुसूचित जाति की महिलाओं के लिए उक्त उप-खंड के मद (ii) के तहत निर्धारित पदों की संख्या भी शामिल है। उप-खंड (सी) के तहत क्रम संख्या 1 पर रखी गई नगर पालिका परिषद या नगर पंचायत के बगल में अनुसूचित जातियों को आवंटित की जाएंगी:

बशर्ते कि ऐसी नगर पालिका परिषद या नगर पंचायतें पहले अनुसूचित जाति की महिलाओं को आवंटित की जाएंगी:

(ii) अनुसूचित जनजाति के पदों के लिए उपखंड (बी) के आइटम (i) के तहत निर्धारित पदों की संख्या, जिसमें अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के लिए उक्त उपखंड के आइटम (ii) के तहत निर्धारित पदों की संख्या शामिल है, अनुसूचित जनजातियों को मद (i) के अंतर्गत आवंटित अंतिम क्रम के आगे क्रमानुसार आवंटित की जाएँगी:

बशर्ते कि ऐसी नगर पालिका परिषद या नगर पंचायत पहले अनुसूचित जनजाति की महिलाओं को आवंटित की जाएगी।

(iii) पिछड़े वर्ग के पदों के लिए उपखंड (बी) के आइटम (i) के तहत निर्धारित पदों की संख्या, जिसमें उक्त उपखंड के आइटम (ii) के तहत पिछड़ा वर्ग की महिलाओं के लिए निर्धारित पदों की संख्या भी शामिल है, पिछड़ा वर्ग को आइटम (ii) के अंतर्गत आवंटित अंतिम क्रमांक के आगे क्रमवार आवंटित की जाएगी।

बशर्ते कि ऐसी नगर पालिका परिषद या नगर पंचायत पहले पिछड़े वर्ग की महिलाओं को आवंटित की जाएगी।

(iv) अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़े वर्ग की महिलाओं के लिए उक्त उपखंड के तहत निर्धारित पदों को छोड़कर उप-खंड (बी) के आइटम (ii) के तहत निर्धारित पदों की संख्या, महिलाओं को क्रमानुसार मद (iii) के तहत आवंटित अंतिम क्रमांक के आगे आवंटित की जाएगी।

(ङ) यदि किसी नगर पालिका परिषद या नगर पंचायत में अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या के आधार पर-

(i) केवल एक पद अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित किया जा सकता है, जैसा भी मामला हो, ऐसा पद महिलाओं को आवंटित किया जाएगा।

(ii) कोई भी पद अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित नहीं किया जा सकता है, उप-खंड (डी) में निर्दिष्ट पदों के आवंटन के क्रम का इस प्रकार पालन किया जाएगा जैसे कि इसमें अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के लिए कोई संदर्भ नहीं है, जैसा भी मामला हो।

(च) किसी भी पिछले चुनाव में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग या महिलाओं को आवंटित पद क्रमशः बाद के चुनाव में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग या महिलाओं को आवंटित नहीं किए जाएंगे। ऐसे बाद के चुनाव में पद महिलाओं को पिछले चुनाव में आवंटित पद के अगले से लेकर अंतिम पद तक चक्रीय क्रम में उप-खंड (डी) में निर्दिष्ट क्रम में आवंटित किए जाएंगे।

["स्पष्टीकरण- I: इसके द्वारा यह स्पष्ट किया जाता है कि इस खंड के उप-खंड (एफ) और अधिनियम में अन्यत्र आने वाले शब्द "पिछले चुनाव" और "बाद के चुनाव" में उत्तर प्रदेश नगर पालिका (संशोधन) अध्यादेश 2006 (उत्तर प्रदेश अध्यादेश संख्या 3 सन् 2006) के प्रावधानों और उक्त अध्यादेश द्वारा संशोधित इस अधिनियम के अनुसार हुए चुनाव को शामिल नहीं किया जाएगा और कभी भी शामिल नहीं माना जाएगा।

स्पष्टीकरण- II: उत्तर प्रदेश नगर पालिका (संशोधन) अध्यादेश 2006 (उत्तर प्रदेश अध्यादेश संख्या 3, 2006) के निरसन और उत्तर प्रदेश शहरी स्थानीय स्वशासन कानून (संशोधन) अधिनियम 2006 (उ.प्र. अधिनियम संख्या 25 सन् 2006) द्वारा इसके प्रतिस्थापन के बावजूद या किसी न्यायालय, ट्रिब्यूनल या प्राधिकरण के निर्णय, आदेश या डिक्री के बावजूद यह घोषित किया जाता है कि उक्त अध्यादेश और उक्त अध्यादेश द्वारा संशोधित इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार होने वाले चुनावों को "पिछला चुनाव" नहीं माना जाएगा जैसा कि इस धारा के तहत परिकल्पित है और इस धारा के तहत कराए जाने वाले अगले चुनाव तदनुसार बाद के चुनाव नहीं माने जाएगें।"]

(2) [x x x]

(3) आवंटन आदेश. - (क) पूर्वगामी खंडों में किसी बात के होते हुए भी, राज्य सरकार, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ा वर्ग और महिलाओं के लिए आरक्षित किए जाने वाले पदों की संख्या निर्धारित करके, उन्हें नगर पालिका पद आवंटित करेगी।

(ख) उप-खंड (ए) के तहत आदेश का मसौदा सात दिनों से कम की अवधि के लिए आपत्तियों के लिए प्रकाशित किया जाएगा।

(ग) राज्य सरकार आपत्तियां, यदि कोई हो, पर विचार करेगी, लेकिन ऐसी आपत्तियों पर व्यक्तिगत रूप से सुनवाई करना आवश्यक नहीं होगा जब तक कि राज्य सरकार ऐसा करना आवश्यक न समझे और उसके बाद यह अंतिम हो जाएगी।

(घ) उप-खंड (बी) में निर्दिष्ट आदेश का मसौदा संबंधित जिले में व्यापक प्रसार वाले कम से कम एक दैनिक समाचार पत्र में प्रकाशित किया जाएगा और जिला मजिस्ट्रेट और संबंधित नगर पालिका कार्यालय के नोटिस बोर्ड पर भी चिपकाया जाएगा।

(6) इस धारा के तहत अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए अध्यक्ष की सीटों का आरक्षण संविधान के अनुच्छेद 334 में निर्दिष्ट अवधि की समाप्ति पर प्रभावी नहीं होगा।

स्पष्टीकरण - यह स्पष्ट किया गया है कि इस धारा की कोई भी बात अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग के व्यक्तियों और महिलाओं को अनारक्षित सीटों और पदों पर चुनाव लड़ने से नहीं रोकेगी।

4.2 उ.प्र. नगर निगम अधिनियम, 1959 की धारा 7 उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम की धारा 9-ए के अनुरूप है। इसलिए उसे उद्धृत नहीं किया जा रहा है।

4.3 उ.प्र. राज्य लोक सेवा (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 की धारा 2(बी) इस प्रकार है:

2. इस अधिनियम में-

[(ख) "नागरिकों के अन्य पिछड़े वर्ग" का अर्थ अनुसूची । में निर्दिष्ट नागरिकों के पिछड़े वर्ग हैं;]

4.4 उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 में लगी अनुसूची-1 इस प्रकार है:

[अनुसूची - ।]

[धारा 2(बी) देखें]

1. अहीर, यादव, ग्वाला, यदुवंशीय
2. सोनार, सुनार,, स्वर्णकार
3. जाट.
4. कुर्मी, चनऊ, पटेल,, पाटनवार, कुर्मी-मल्ल, कुर्मी-सैंथवार
5. गिरि
6. गूजर
7. गोसाईं
8. लोध,, लोधा, लोधी,, लोट,, लोधी-राजपूत
9. कंबोज
10. अरख,, अरकवंशीय
11.काछी,,काछी-कुशवाहा, शाक्य
12.कहार,,कश्यप
13.केवट, मल्लाह, निषाद
14.किसान
15.कोइरी
16.कुम्हार,प्रजापति
17.कसगर
18.कुंजड़ा या राईन
19.गड़ेरिया, पाल, वाघेल
20.गद्दी, घोषी।
21.चिकवा, क़स्साब क़ुरैशी, चक
22.छिप्पी,छीपा
23.जोगी
24.झोझा
25.ढफाली
26.तमोली,बरई,,चौरसिया
27.तेली, समानी,, रोगांगर,, साहू,, रौनियार, गुंधी,,अरक
28.दारजी, इदरीसी,, काकुत्स्थ
29.धीवर
30.नक्काल
31.नैट (जो अनुसूचित जाति श्रेणी में शामिल नहीं हैं)
32.नाइक
33.फकीर
34.बंजारा, रंकी, मुकेरी, मुकेरानी
35.बरहाई,,सैफ़ी,विश्वकर्मा,, पांचाल, रामगढ़िया, जांगिड़, धीमान
36.बारी
37.बेरागी
38.बिंद
39.बियार
40.भर, राज-भर।
41.भुर्जी, भरभुंजा, भुज, कंदु, कशौधन
42.भठियारा
43.माली, सैनी
44. स्वीपर (जो अनुसूचित जाति श्रेणी में शामिल नहीं हैं), हलालखोर
45. लोहार, लोहार-सैफ़ी
46.लोनिया,. नोनिया, गोले-ठाकुर, लोनियाचौहान
47. रंगरेज़, रंगवा
48.मार्चा
49.हलवाई. मोदनवाल
50. हज्जाम, नाई, सलमानी, सविता, श्रीवास
51. राय सिख
52. सक्का-भिस्ती, भिस्ती-अब्बासी
53. धोबी (जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति श्रेणी में शामिल नहीं हैं
54. कसेरा,, ठठेरा, ताम्रकार
55. नानबाई
56. मिर्शिकारी
57. शेख सरवरी (पिराई), पीरही
58. मेव, मेवाती
59. कोष्टा/कोष्टी
60. रोर
61. खुमरा, संगलाराश, हंसिरी
62. मोची
63. खागी
64. तंवर सिंघारिया
65. कटुवा
66. माहीगीर
67. दांगी
68. धाकड़
69. गदा
70. तंतावा
71. जोरिया
72. पटवा, पटहरा, पटचरा, देववंशी
73. कलाल, कलवार, कलार
74. मनिहार,, कचेर,,लखारा
75. मुराव, मुराई, मौर्य
76. मोमिन (अंसार)
77. मुस्लिम कायस्थ
78. मिरासी
79. नद्दार (धुनिया),, मंसूरी,, कंडेरे, कादेरा, करण (कर्ण)

4.5 उत्तर प्रदेश राज्य पिछड़ा वर्ग आयोग अधिनियम, 1996 की धारा 2(ए) इस प्रकार है:

“2(ए) "पिछड़ा वर्ग" का अर्थ नागरिकों के ऐसे वर्ग हैं जो समय-समय पर यथा संशोधित उत्तर प्रदेश सेवा (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 की धारा 2 के खंड (बी) में परिभाषित हैं।

4.6 उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम, 1916 की धारा 2(1) नीचे दी गई है-

"2. परिभाषाएँ -इस अधिनियम में जब तक विषय या सन्दर्भ में कोई प्रतिकूल बात न हो-

[(1) "पिछड़ा वर्ग" का अर्थ उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े

अनुवादित

वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 की अनुसूची 1 में निर्दिष्ट नागरिकों का पिछड़ा वर्ग है;]"

4.7 उत्तर प्रदेश नगर निगम अधिनियम, 1959 की धारा 2(51-ए) इस प्रकार है-

"2. परिभाषाएँ -इस अधिनियम में जब तक कि विषय या सन्दर्भ में कुछ प्रतिकूल न हो -

....

....

[(51-ए) "पिछड़े वर्ग" का अर्थ उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 की अनुसूची I में निर्दिष्ट नागरिकों के पिछड़े वर्ग हैं;]"

5. याचिकाकर्ताओं की ओर से दलील

5.1 इन सभी मामलों में याचिकाकर्ताओं की ओर से दलीलें अधिवक्ता डॉ. एल.पी. मिश्रा और श्री शरद पाठक द्वारा दी गई हैं, जिन्हें संबंधित रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले अन्य विद्वान अधिवक्तागण द्वारा सहायता प्रदान की गई है।

रिट याचिकाओं में की गई प्रार्थनाओं के समर्थन में, इस मामले में याचिकाकर्ताओं की ओर से दलीलें मुख्य रूप से माननीय सर्वोच्च न्यायालय के तीन निर्णयों के इर्द-गिर्द घूमती हैं, जो हैं:

(i) के. कृष्ण मूर्ति (डॉ.) और अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2010)7 एससीसी 202।

(ii) विकास किशनराव गवली बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य। (2021) 6 एससीसी 73

(iii) सुरेश महाजन बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 589।

5.2 के.कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में संविधान पीठ के फैसले का व्यापक रूप से उल्लेख करते हुए, याचिकाकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया है कि संविधान का अनुच्छेद 243-टी(6) केवल एक सक्षमकारी प्रावधान है और चूंकि इसमें नागरिकों के पिछड़े वर्ग को प्रदान किए जाने वाले आरक्षण की मात्रा के बारे में कोई भी दिशानिर्देश शामिल नहीं है, इसे प्रदान करने का विकल्प राज्य सरकार के पास है और ऐसा आरक्षण तब तक प्रदान नहीं किया जा सकता है जब तक कि पिछड़ेपन के अस्तित्व की जांच न हो। आगे यह तर्क दिया गया है कि अनुच्छेद 243-टी में आने वाला वाक्यांश "नागरिकों का पिछड़ा वर्ग" अनुच्छेद 15(4) और अनुच्छेद 15(5) में आने वाले वाक्यांश "सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़ा वर्ग" या भारत के संविधान के अनुच्छेद 16(4) में आने वाला वाक्यांश "नागरिकों का पिछड़ा वर्ग" के समान अर्थ वाला नहीं है।

5.3 याचिकाकर्ताओं की ओर से आगे तर्क यह है कि अनुच्छेद 15(4) और 16(4) के तहत उपलब्ध आरक्षण को लागू करने के लिए विकसित मानदंड को भारत के संविधान के अनुच्छेद 243-टी(6) के तहत प्रदान किए जाने वाले आरक्षण के संदर्भ में लागू नहीं किया जा सकता है। और अनुच्छेद 243-टी का प्रावधान कुल मिलाकर स्थानीय निकायों में आरक्षण के लिए एक अलग आधार प्रदान करता है क्योंकि स्थानीय निकायों में आरक्षण प्रदान करने का उद्देश्य उस उद्देश्य से अलग है जिसके लिए अनुच्छेद 15(4) और 16(4) संविधान में अधिनियमित हैं।

5.4 डॉ. मिश्रा और उनके सहयोगियों के अनुसार, भारत के संविधान के अनुच्छेद 15(4) और 16(4) में परिकल्पित आरक्षण नीति का उद्देश्य उच्च शिक्षा और सार्वजनिक रोजगार तक पहुंच में सुधार करना है जबकि अनुच्छेद 243-टी द्वारा परिकल्पित आरक्षण नीति का एक अलग उद्देश्य है और वह उद्देश्य है राजनीतिक प्रतिनिधित्व के क्षेत्र में नागरिकों के वंचित वर्ग में सुधार करना। याचिकाकर्ताओं की ओर से तर्क दिया गया है कि शहरी स्व-शासन निकायों के चुनावों में आरक्षण प्रदान करने के लिए सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक पिछड़ेपन को पिछड़ेपन के बराबर नहीं रखा जा सकता है। आगे दलील दी गई है कि शिक्षा और सार्वजनिक रोजगार तक पहुंच सुनिश्चित करने के लिए दिए जाने वाले आरक्षण हेतु अपनाए गए किसी भी मानदंड को स्थानीय स्व-शासन संस्थानों में अध्यक्षों के पदों पर आरक्षण प्रदान करने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है।

5.5 के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में संविधान पीठ के फैसले के आधार पर, कहा गया है कि सामाजिक और आर्थिक अर्थों में पिछड़ापन प्रभावी राजनीतिक भागीदारी और प्रतिनिधित्व में बाधा के रूप में भी कार्य कर सकता है, लेकिन, ऐसा पिछड़ापन नागरिकों के पिछड़े वर्ग की पहचान करने का एकमात्र मानदंड नहीं हो सकता है, जिनके बारे में कहा जा सकता है कि उनका राजनीतिक रूप से पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है।

5.6 दलील को आगे बढ़ाते हुए, याचिकाकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया है कि के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश को ध्यान में रखते हुए, राजनीतिक प्रतिनिधित्व में बाधाओं के रूप में कार्य करने वाले पिछड़ेपन की जांच करने के लिए समसामयिक अनुभवजन्य डेटा संग्रह के आधार पर पर्याप्त सामग्री और दस्तावेजों को समय -समय पर इकट्ठा करने और संग्रह करने का दायित्व राज्य सरकार पर था। तर्क यह दिया गया है कि आक्षेपित अधिसूचना ऐसी किसी भी प्रक्रिया के बिना जारी की गई है और हालांकि अधिसूचना अस्थायी है, जो उ.प्र. राज्य में नगर निकायों के अध्यक्ष के पदों पर आरक्षण का प्रावधान करती है, हालांकि, अधिसूचना से ही यह स्पष्ट है कि राज्य का इरादा पिछड़े वर्ग के नागरिकों को आरक्षण प्रदान करने का है जो माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आदेशित प्रक्रिया के अभाव में अस्वीकार्य है। याचिकाकर्ताओं के अनुसार, के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में माननीय

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनिवार्य किए गए किसी भी प्रक्रिया के अभाव में, आक्षेपित अधिसूचना को कायम रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

5.7 विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ के फैसले का भी संदर्भ दिया गया है और उक्त आधार पर यह तर्क दिया गया है कि उक्त निर्णय हालांकि एक ऐसे मामले में दिया गया था जो महाराष्ट्र राज्य से माननीय सर्वोच्च न्यायालय में आया था, तथापि, यह उ.प्र. राज्य सहित पूरे देश के सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के लिए बाध्यकारी है। विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) के मामले में उक्त निर्णय का आगे उल्लेख करते हुए, यह तर्क दिया गया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रत्येक राज्य के लिए यह अनिवार्य कर दिया है कि स्थानीय निकायों में पिछड़े वर्ग के नागरिकों के लिए सीटें आरक्षित करने से पहले, ट्रिपल परीक्षण/शर्तों का अनुपालन करना आवश्यक है।

5.8 आगे यह तर्क दिया गया है कि इस पर विवाद नहीं है कि उत्तर प्रदेश राज्य ने अभी तक पिछड़ेपन की प्रकृति और निहितार्थों की समसामयिक, कठोर अनुभवजन्य जांच करने के लिए समर्पित आयोग की स्थापना नहीं की है, और, इस प्रकार, आयोग की सिफारिशों के आलोक में स्थानीय निकायों के चुनावों में प्रदान किए जाने वाले आवश्यक आरक्षण के अनुपात को भी निर्दिष्ट नहीं किया गया है और इसलिए राज्य में नगर निकायों के अध्यक्षों के पदों को आरक्षित करके चुनाव कराने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि जैसा कि विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) के मामले में और सुरेश महाजन (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिदेशित किया गया है, ट्रिपल टेस्ट/शर्तों को पूरा करने के अभाव में, पिछड़े वर्ग के नागरिकों के लिए कोई सीट आरक्षित नहीं की जा सकती और यह प्रावधान करके चुनाव कराया जाना चाहिए कि ऐसी सभी सीटें अनारक्षित/खुली श्रेणी के उम्मीदवारों द्वारा चुनाव लड़ने के लिए उपलब्ध होंगी।

5.9 याचिकाकर्ताओं की ओर से माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुरेश महाजन (उपरोक्त) के मामले में दिए गए फैसले का संदर्भ भी अदालत को प्रभावित करने के लिए दिया गया है कि जब तक उ.प्र. राज्य द्वारा सभी मामलों में ट्रिपल परीक्षण/शर्तें पूरी नहीं की जाती जातीं, नागरिकों के पिछड़े वर्ग के लिए कोई आरक्षण प्रदान नहीं किया जा सकता है और यदि चुनाव कार्यक्रम जारी होने से पहले ऐसी प्रक्रिया पूरी नहीं की जा सकती है, तो अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित सीटों को छोड़कर, सभी सीटों को सामान्य/खुली श्रेणी के लिए अधिसूचित किया जाना चाहिए।

5.10 जहां तक राज्य सरकार द्वारा जारी अधिसूचना दिनांकित 12.12.2022, जिसके तहत सभी जिला मजिस्ट्रेटों को कार्यकारी अधिकारियों और उ.प्र. पालिका केंद्रीकृत सेवा (लेखा संवर्ग) के वरिष्ठतम सदस्य के संयुक्त हस्ताक्षर द्वारा संबंधित नगर पालिकाओं के बैंक खातों के संचालन को अधिकृत करने का निर्देश दिया गया है, को चुनौती का प्रश्न है, यह तर्क दिया गया है कि उक्त सरकारी आदेश राज्य सरकार द्वारा जारी नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह उ.प्र. नगर पालिका अधिनियम, 1916 अथवा उ.प्र. नगर निगम अधिनियम, 1959 के किसी प्रावधान को संदर्भयोग्य नहीं है। यह तर्क दिया गया है कि उक्त सरकारी आदेश दिनांकित 12.12.2022 में दर्शाया गया इस आशय का कारण कि यह इस न्यायालय द्वारा संदीप @संदीप मेहरोत्रा एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य, रिट याचिका सं. 11226 सन् 2011 में पारित निर्णय और आदेश दिनांकित 05.12.2011 के अनुपालन में जारी किया गया है, अत्यधिक गलत धारणा वाला है और वास्तव में राज्य दिनांक 12.12.2022 के सरकारी आदेश को जारी करने को उचित ठहराने के लिए न्यायालय के दिनांक 05.12.2011 के उक्त फैसले की कोई सहायता नहीं ले सकता है।

5.11 जैसा कि ऊपर देखा गया है कि एक रिट याचिका में प्रार्थना की गई है कि राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण बनाम भारतीय संघ निर्णीत दिनांक 15.04.2014, रिट याचिका (सिविल) सं. 400 सन् 2012 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले के आलोक में, राज्य सरकार को पिछड़ेपन का पता लगाने के उद्देश्य से अनुभवजन्य सर्वेक्षण करते समय ट्रांसजेंडरों को नागरिकों के पिछड़े वर्ग के रूप में मानने और उन्हें विभिन्न नगर निकायों के चुनावों में अध्यक्षों के पदों के लिए आरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से नागरिकों के उक्त वर्ग में शामिल करने का निर्देश दिया जा सकता है।

5.12 याचिकाकर्ताओं की ओर से यह भी तर्क दिया गया है कि राज्य यह कहने के लिए उ.प्र. लोक सेवा (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 में संलग्न अनुसूची-I का आश्रय नहीं ले सकता है कि नगर निकायों के चुनावों में आरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से उसमें उल्लिखित जातियाँ नागरिकों के पिछड़े वर्ग का गठन करती हैं। इस तर्क के कारणों को विस्तृत करते हुए, यह कहा गया है कि 1994 आरक्षण अधिनियम को अधिनियमित करने का उद्देश्य नागरिकों के सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 15 (4) और 16 (4) में यथा परिकल्पित आरक्षण प्रदान करना है जबकि अनुच्छेद 243-टी(6) में परिकल्पित आरक्षण का उद्देश्य नागरिकों के उस पिछड़े वर्ग को स्थानीय निकायों के चुनावों के संदर्भ में समान अवसर प्रदान करना है जो राजनीतिक रूप से इस अर्थ में पिछड़े हैं कि इन निकायों में उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है। दलील यह है कि पर्याप्त/अपर्याप्त राजनीतिक प्रतिनिधित्व या राजनीतिक

पिछड़ेपन का निर्धारण उक्त उद्देश्य के लिए सामग्री और अनुभवजन्य डेटा के संग्रह और मिलान के आधार पर किया जाना चाहिए। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि आरक्षण अधिनियम, 1994 की अनुसूची- । में उल्लिखित जातियों को भारत के संविधान के अनुच्छेद 243-टी (6) के तहत परिकल्पित आरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से नागरिकों के पिछड़े वर्ग के निर्धारण का आधार नहीं बनाया जा सकता है।

5.13 याचिकाकर्ताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क भी दिया गया है कि यद्यपि नगर पालिका अधिनियम की धारा 9-ए(5)(1)(एफ) अध्यक्षों के पदों को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति, पिछड़ा वर्ग या महिलाओं के लिए आरक्षित करने के उद्देश्य से रोटेशन प्रक्रिया या चक्रीय क्रम अपनाने का प्रावधान करती है, लेकिन, राज्य ने उक्त प्रावधान में यथा परिकल्पित रोटेशन का पालन पिछले चुनाव में नहीं किया और चक्रीय क्रम का पालन नहीं किया गया। इस दृष्टि से, दलील दी गई है कि आक्षेपित अधिसूचना, जो इस तरह के रोटेशन का पालन नहीं किया जाना दर्शाती है, इस आधार पर भी रद्द किए जाने योग्य है।

5.14 उपरोक्त तर्कों और दलीलों के आधार पर, यह प्रार्थना की गई है कि आक्षेपित अधिसूचना को रद्द कर दिया जाए और राज्य सरकार को निर्देश दिया जाए कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) के मामले में यथा आदेशित ट्रिपल टेस्ट की प्रक्रिया पूरी करे और तिहरी शर्तों को पूरा करे, उसके बाद चुनाव कराए। यह भी प्रार्थना की गई है कि चूंकि नगर निकायों का कार्यकाल जल्द ही समाप्त होने वाला है, इसलिए अध्यक्षों के पदों को पिछड़े वर्ग के नागरिकों के लिए आरक्षित किए बिना और उन्हें खुली/सामान्य श्रेणी के नागरिकों को चुनाव लड़ने के लिए उपलब्ध कराते हुए चुनाव के लिए जल्द से जल्द अधिसूचना जारी करने का निर्देश जारी किया जाए।

6. राज्य सरकार की ओर से दलीलें

6.1 इस मामले में उत्तर प्रदेश राज्य का प्रतिनिधित्व विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री वी.के. शाही, विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री अभिनव एन. त्रिवेदी और विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री अमिताभ राय ने किया है।

6.2 राज्य की ओर से विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री अमिताभ राय द्वारा प्रस्तुत तर्क का आधार यह है कि उ.प्र. नगर पालिका अधिनियम की धारा 9-ए में निहित प्रावधानों तथा उ.प्र. नगर निगम अधिनियम की धारा 7 के प्रावधानों को किसी चुनौती के अभाव में, रिट याचिका में की गई प्रार्थना मंजूर नहीं की जा सकती। उन्होंने आगे कहा है कि विभिन्न स्तरों पर नगर पालिकाओं के अध्यक्षों की सीटें और पद उ.प्र. नगर पालिका अधिनियम की धारा 9-ए एवं उ.प्र. नगर निगम अधिनियम की धारा 7 सपठित उक्त अधिनियम के अंतर्गत बनाये गए वैधानिक नियमों जिन्हें उ.प्र. नगर पालिका (सीटों का आरक्षण और आवंटन) नियमावली, 1994 के रूप में जाना जाता है, के अनुसार आरक्षित किया गया है। तदनुसार, श्री राय द्वारा इस संबंध में दी गई दलील यह है कि जब तक उन अधिनियमों और नियमावली के प्रावधानों को चुनौती नहीं दी जाती जिनके तहत राज्य नगर पालिकाओं के अध्यक्षों की सीटों और पदों को आरक्षित करने का इरादा रखता है, तब तक याचिकाकर्ता किसी भी राहत के हकदार नहीं हैं जिसके लिए प्रार्थना की गई है।

6.3 विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री अमिताभ राय ने आगे तर्क दिया है कि जहां तक अनुच्छेद 243-टी के तहत नागरिकों के पिछड़े वर्ग को आरक्षण का सवाल है, भारत के संविधान में भाग IXA को शामिल करने के तुरंत बाद, उ.प्र. अधिनियम सं. 12 सन् 1994 द्वारा नगरपालिका कानूनों में व्यापक संशोधन करके इसे नगर निकायों के सभी चुनावों में प्रदान किया गया है। उन्होंने कहा है कि उ.प्र. नगर पालिका अधिनियम, 1916 की धारा 2(1) पिछड़े वर्ग को आरक्षण अधिनियम, 1994 की अनुसूची- । में निर्दिष्ट नागरिकों के पिछड़े वर्ग के रूप में परिभाषित करता है। उन्होंने आगे कहा है कि इसी तरह उ.प्र. नगर निगम अधिनियम, 1959 की धारा 2 (51-ए) भी आरक्षण अधिनियम, 1994 की अनुसूची-1 में निर्दिष्ट नागरिकों के पिछड़े वर्ग की परिभाषा स्वीकार करता है। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि जब तक ये प्रावधान, अर्थात् उ.प्र. नगर पालिका अधिनियम, 1916 की धारा 2(ए) और उ.प्र. नगर निगम अधिनियम, 1959 की धारा 2(51) -ए को भी चुनौती नहीं दी जाती और रद्द नहीं किया जाता, इन दो राज्य विधानों के अनुसार नगर निकायों के चुनावों में अन्य पिछड़े वर्ग के नागरिकों को आरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।

6.4 राज्य की ओर से यह भी तर्क दिया गया है कि इंदिरा साहनी बनाम भारत संघ, 1992 एसयूपीपी. (3) एससीसी 217, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के अनुसरण में राज्य सरकार ने प्रारंभ में एक कार्यकारी अधिसूचना दिनांकित 22.03.1993 द्वारा पिछड़े वर्ग के लिए एक आयोग का गठन किया था, हालांकि, बाद में, उक्त आयोग का गठन एक अधिनियम द्वारा किया गया, जिसे उ.प्र. राज्य पिछड़ा वर्ग आयोग अधिनियम, 1996 के नाम से जाना जाता है। उन्होंने आगे कहा कि 1996 के अधिनियम की धारा 2 (ए) पिछड़े वर्गों को परिभाषित करती है, जिसका अर्थ नागरिकों के ऐसे वर्ग से है जो आरक्षण अधिनियम, 1994 के खंड 2 (बी) में परिभाषित हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि, आरक्षण अधिनियम, 1994 में लगी अनुसूची- । में शामिल जातियाँ राज्य के सभी नगर निकायों के चुनावों के संदर्भ में आरक्षण प्रदान करने के प्रयोजनों के लिए नागरिकों के पिछड़े वर्ग का निर्माण करेंगी। तदनुसार, दलील यह दी गई है कि जहां

तक उत्तर प्रदेश राज्य का प्रश्न है, नागरिकों के पिछड़े वर्ग का अर्थ आरक्षण अधिनियम, 1994 से जुड़ी अनुसूची-1 में शामिल लोग होंगे और उसी का पालन करते हुए राज्य ने दिनांक 05.12.2022 को अधिसूचना जारी की है और तदनुसार जहाँ तक नगर निकायों के चुनावों में राज्य द्वारा प्रस्तावित आरक्षण का संबंध है, उसमें अब तक कोई दोष या अवैधता मौजूद नहीं है।

6.5 श्री अमिताभ राय और श्री अभिनव एन. त्रिवेदी ने राज्य की ओर से आगे तर्क दिया है कि यद्यपि उ.प्र. नगर पालिका अधिनियम, 1916 की धारा 9-ए एवं उ.प्र. नगर निगम अधिनियम, 1959 की धारा 7 के समान प्रावधान पंचायत राज अधिनियम में मौजूद हैं और के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत अधिनियम को माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के समक्ष रखा गया था, लेकिन, उक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उन्हें खारिज नहीं किया और तदनुसार याचिकाकर्ताओं द्वारा दी जाने वाली यह दलील कि वैधानिक प्रस्तावों को चुनौती देने की कोई आवश्यकता नहीं है, उनके लिए उपलब्ध नहीं है।

6.6 राज्य की ओर से आगे दलील यह है कि जहां तक ट्रिपल टेस्ट/शर्तों की आवश्यकता को पूरा करने का सवाल है, उसे उत्तर प्रदेश राज्य में पूरा किया गया है क्योंकि प्रदान किया जा रहा आरक्षण 50% की अधिकतम सीमा से अधिक नहीं है।

6.7 यह भी तर्क दिया गया है कि जिस उद्देश्य के लिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समर्पित आयोग का गठन अनिवार्य किया गया है, वह आरक्षण को 50% की अधिकतम सीमा तक सीमित करके और नागरिकों के पिछड़े वर्ग को आरक्षण प्रदान करके तथा पिछड़े वर्ग को 27% से अनधिक आरक्षण प्रदान करके और कुल जनसंख्या के मुकाबले उनकी जनसंख्या के अनुपात में नागरिकों के पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षण प्रदान करके पूरी तरह से प्राप्त किया जा रहा है।

6.8 राज्य की ओर से, दिनांक 07.04.2017 के सरकारी आदेश का उल्लेख यह कहने के लिए किया गया है कि उ.प्र. राज्य में उक्त सरकारी आदेश के तहत प्रदान की गई व्यवस्था के अनुसार समसामयिक कठोर अनुभवजन्य जांच की जा रही है। हमारे संज्ञान में यह भी लाया गया है कि राज्य सरकार ने आदेश दिनांकित 21.06.2022 के माध्यम से सभी जिलाधिकारियों को विभिन्न नगर निकायों के प्रत्येक वार्ड में पिछड़े वर्ग के नागरिकों की जनसंख्या निर्धारित करने के उद्देश्य से तेजी से सर्वेक्षण करने का निर्देश दिया है। दलील यह है कि दिनांक 07.04.2017 के सरकारी आदेश में नगर पालिकाओं में नागरिकों के पिछड़े वर्ग के व्यक्तियों की संख्या की गणना के लिए तेजी से सर्वेक्षण करने के उद्देश्य से प्रगणकों को विस्तृत निर्देश दिए गए हैं और इसलिए दिनांक 07.04.2017 के सरकारी आदेश में निर्धारित प्रक्रिया , जिसका सख्ती से पालन किया जा रहा है, विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्देशित कठोर समसामयिक अनुभवजन्य जांच की आवश्यकता को पूरा करता है।

6.9 जहां तक नागरिकों के पिछड़े वर्ग के रूप में ट्रांसजेंडरों को आरक्षण प्रदान करने के लिए रिट याचिकाओं में से एक में की गई प्रार्थना का प्रश्न है, राज्य की ओर से यह कहा गया है कि राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण (उपरोक्त) के मामले में निर्णय उन्हें नागरिकों के सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़ा वर्ग मानने और शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश और सार्वजनिक रोजगार में आरक्षण का लाभ देने तक सीमित है। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि, चूँकि, उक्त निर्णय में नगर निकायों के चुनावों में आरक्षण प्रदान करने के लिए कोई निर्देश नहीं है, इसलिए, उक्त रिट याचिका को सही परिप्रेक्ष्य में नहीं समझा गया है।

6.10 याचिकाकर्ताओं की ओर से दी गई दलीलों के जवाब में, कि नगर पालिका अधिनियम की धारा 9ए(5)(1)(एफ) में परिकल्पित रोटेशन का पालन नहीं किया जा रहा है, सबसे पहले राज्य की ओर से यह तर्क दिया गया है कि आरक्षण में इस तरह के रोटेशन या चक्रीय क्रम को बनाए रखा जा रहा है और दूसरी बात यह है कि यह किसी विशेष नगरपालिका निकाय में अध्यक्ष की किसी विशेष सीट या पद के संबंध में एक व्यक्तिगत शिकायत हो सकती है, इसलिए यदि किसी विशेष मामले में ऐसी आपत्ति उठाई जाती है, तो उस पर संबंधित प्राधिकारी द्वारा निर्णय लिया जाएगा।

6.11 उपरोक्त दलीलें देते हुए, राज्य ने रिट याचिकाओं का पुरजोर विरोध किया है और कहा है कि सभी रिट याचिकाएं खारिज किए जाने योग्य हैं, जो राज्य के अधिकारियों को विभिन्न स्तरों पर नगर निकायों के चुनाव कराने का मार्ग प्रशस्त करेगी, जो इन निकायों को जल्द से जल्द गठित करने के लिए संवैधानिक और वैधानिक अधिदेश को पूरा करेगा क्योंकि इन नगर निकायों का कार्यकाल 12.12.2022 और 31.01.2023 के बीच समाप्त हो रहा है। इस प्रकार प्रार्थना यह है कि रिट याचिकाएं प्रारंभ में ही खारिज कर दी जाएं।

6.12 राज्य चुनाव आयोग का प्रतिनिधित्व करते हुए, श्री राकेश चौधरी और श्री अनुराग कुमार सिंह ने भी राज्य की ओर से दी गई दलीलों को अपनाते हुए रिट याचिकाओं का विरोध किया है। उनके द्वारा कहा गया है कि जब तक उ.प्र. नगर पालिका अधिनियम की धारा 9-ए एवं उ.प्र. नगर निगम अधिनियम की धारा 7 को विधि विरूद्ध घोषित नहीं किया जाता, रिट याचिकाएं सुनवाई योग्य नहीं हैं जिन्हें खारिज किया जाना चाहिए। आगे यह कहा गया है कि इंदिरा साहनी (उपरोक्त) के मामले में निर्णय शैक्षणिक संस्थानों और सार्वजनिक रोजगार में अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण तक ही सीमित नहीं था, बल्कि प्राथमिक

मुद्दा जिस पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त मामले में विचार किया था, सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक पिछड़ेपन को सुनिश्चित करने के संबंध में था और तदनुसार आरक्षण अधिनियम, 1994 में परिभाषित अन्य पिछड़ा वर्ग, भारत के संविधान के अनुच्छेद 243-टी के संदर्भ में आरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से उत्तर प्रदेश राज्य में पिछड़ा वर्ग माना जाएगा। इस प्रकार, प्रार्थना यह है कि रिट याचिकाएं खारिज कर दी जाएं।

7 मुद्दे

7.1 रिकॉर्ड पर उपलब्ध दलीलों और संबंधित पक्षों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार करने पर, इस मामले में हमारे विचार के लिए निम्नलिखित मुद्दे सामने आते हैं:

(1) क्या राज्य द्वारा प्रस्तुत तथ्यों के दृष्टिगत, के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) और विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) के मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिदेशित ट्रिपल टेस्ट/शर्तों की आवश्यकता पूरी हो गई है? यदि नहीं, तो उसके परिणाम।

(2) क्या राज्य अधिनियमों के उन प्रासंगिक प्रावधानों को चुनौती के अभाव में जो अनुच्छेद 243-टी (6) के तहत नागरिकों के पिछड़े वर्ग को आरक्षण प्रदान करते हैं, याचिकाकर्ता उन राहतों के हकदार हैं जिनके लिए प्रार्थना की गई है?

(3) क्या शासनादेश दिनांकित 12.12.2022 कानूनी रूप से वैध है?

(4) क्या शहरी स्थानीय निकायों के गठन के लिए चुनावों के संदर्भ में ट्रांसजेंडरों को नागरिकों के पिछड़े वर्ग में शामिल करने और तदनुसार उन्हें आरक्षण प्रदान करने के लिए कोई निर्देश जारी किया जा सकता है?

(5) मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय द्वारा क्या आदेश और निर्देश पारित और जारी किए जाने की आवश्यकता है?

8. विचार-विमर्श

8.1 इस मामले में हमारे विचार के लिए जो मुद्दे हैं, वे निर्णय के पूर्ववर्ती पैराग्राफ में पहले ही रखे जा चुके हैं।

8.2 संविधान (74वें) संशोधन अधिनियम, 1992 को अधिनियमित करके भारत के संविधान में भाग IX-ए को सम्मिलित करने के साथ, पूरे देश में शहरी स्व-शासन संस्थाओं को संवैधानिक संस्थाओं का दर्जा दिया गया। संविधान के भाग IX A को सम्मिलित करने का उद्देश्य संविधान (74वें) संशोधन अधिनियम, 1992 के एसओआर में सूचीबद्ध किया गया है, जिसके अनुसार प्रत्येक नगर पालिका में सीट का आरक्षण प्रदान करना एक उद्देश्य है। एसओआर को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि भाग IXA को सम्मिलित करने का एक उद्देश्य अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण प्रदान करना है, जिसमें से कम से कम एक तिहाई महिलाओं के लिए होना चाहिए। सीटों के संबंध में एक अन्य उद्देश्य महिलाओं के लिए आरक्षण प्रदान करना है जो कुल सीटों की संख्या के एक तिहाई से कम नहीं होगा। जहां तक नागरिकों के पिछड़े वर्ग के पक्ष में सीटों का आरक्षण प्रदान करने का सवाल है, एसओआर में उल्लेख है कि ऐसा आरक्षण तभी स्वीकार्य होगा जब यह राज्यों के विधानमंडल द्वारा प्रदान किया गया हो।

8.3 संविधान (74वें) संशोधन अधिनियम, 1992 के एसओआर में बताए गए उद्देश्यों के अनुरूप, अनुच्छेद 243-टी नगरपालिका क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों को उनकी आबादी के अनुपात में संवैधानिक रूप से अनिवार्य आरक्षण प्रदान करता है, हालांकि, धारा 243-टी की उप-धारा (6) में नागरिकों के पिछड़े वर्ग के पक्ष में अध्यक्षों की सीटों या पदों का आरक्षण प्रदान करने के लिए कोई सीधा आदेश नहीं है, लेकिन इसमें एक सक्षम प्रावधान है जो किसी राज्य के विधानमंडल को ऐसा प्रावधान करने की अनुमति देता है। ध्यान देने वाली बात यह है कि जहां तक अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और महिलाओं को आरक्षण की मात्रा का सवाल है, अनुच्छेद 243-टी स्पष्ट रूप से इसका प्रावधान करता है। हालाँकि, नागरिकों के पिछड़े वर्ग के लिए प्रदान किए जाने वाले आरक्षण की प्रकृति और मात्रा को राज्य के विधानमंडल के विवेक पर छोड़ दिया गया है।

8.4 के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने कहा है कि अनुच्छेद 243-टी की रेखांकित योजना स्थानीय निकायों में सामाजिक विविधता का उचित प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करना है ताकि समाज के पारंपरिक रूप से कमजोर वर्ग के सशक्तिकरण में योगदान दिया जा सके। इस मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी माना कि ऐसी नीति को आगे बढ़ाने का पसंदीदा साधन अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, महिलाओं और नागरिकों के पिछड़े वर्ग के पक्ष में नगर निकायों की सीटों और पदों का आरक्षण है। हालाँकि, जैसा कि ऊपर धारित किया गया है, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और महिलाओं को आरक्षण की प्रकृति और मात्रा संवैधानिक रूप से अनिवार्य है, जबकि, पिछड़े वर्ग के नागरिकों को प्रदान किए जाने वाले आरक्षण की प्रकृति और मात्रा क्या होनी चाहिए, यह निर्धारण करना राज्य विधानमंडलों की बुद्धिमत्ता पर छोड़ दिया गया है।

8.5 संविधान के भाग IXA में निहित उपरोक्त संवैधानिक प्रावधान की पृष्ठभूमि में ही उ.प्र. राज्य में नगरपालिका कानूनों में उ.प्र. अधिनियम सं. 12 सन् 1994 द्वारा बड़े पैमाने पर संशोधन किया गया। उक्त संशोधन अधिनियम द्वारा परिभाषा खण्ड में उ.प्र. नगर पालिका अधिनियम तथा उ.प्र. नगर निगम अधिनियम में "पिछड़ा वर्ग" को आरक्षण अधिनियम, 1994 की अनुसूची-I में निर्दिष्ट नागरिकों के पिछड़े वर्ग के रूप में परिभाषित किया गया है। इस संबंध में उ.प्र. नगर पालिका

अधिनियम की धारा 2(1) एवं उ.प्र. नगर निगम अधिनियम की धारा 2(51-ए) का हवाला दिया जा सकता है।

उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम, 1916 की धारा 2(1)

2. परिभाषाएँ. -इस अधिनियम में जब तक विषय या सन्दर्भ में कोई प्रतिकूल बात न हो।

[(1) "पिछड़ा वर्ग" का अर्थ उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 की अनुसूची 1 में निर्दिष्ट नागरिकों का पिछड़ा वर्ग है;]

धारा 2(51-ए), उ.प्र. नगर निगम अधिनियम, 1959

2. परिभाषाएँ. –इस अधिनियम में जब तक कि विषय या सन्दर्भ में कुछ प्रतिकूल न हो -

....

....

[(51-ए) "पिछड़े वर्ग" का अर्थ उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 की अनुसूची I में निर्दिष्ट नागरिकों के पिछड़े वर्ग हैं;]

8.6 इस प्रकार, जहां तक उत्तर प्रदेश राज्य की बात है, अनुच्छेद 243-टी की आवश्यकता के अनुसार नगर निकायों के चुनावों में नागरिकों के पिछड़े वर्ग को आरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से, वैधानिक रूप से यह उपबंध किया गया है कि पिछड़े वर्ग में वे जातियाँ शामिल होंगी जो आरक्षण अधिनियम, 1994 की अनुसूची- I में शामिल हैं। उ.प्र. नगर पालिका अधिनियम की धारा 9-ए, जिसके अनुरूप प्रावधान उ.प्र. नगर निगम अधिनियम की की धारा 7 में उपलब्ध हैं, में प्रावधान है कि जहां तक अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षण की मात्रा का सवाल है, यह उनकी जनसंख्या के अनुपात में होगा। इन दो राज्य अधिनियमों में उपलब्ध अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षण का यह प्रावधान नागरिकों की इन श्रेणियों के लिए आरक्षण की संवैधानिक रूप से अनिवार्य मात्रा के अनुरूप है।

8.7 पिछड़े वर्ग के नागरिकों के लिए आरक्षण के संबंध में उ.प्र. नगर पालिका अधिनियम की धारा 9-ए एवं उ.प्र. नगर निगम अधिनियम की धारा 7 में प्रावधान है कि नागरिकों का पिछड़ा वर्ग भी कुल जनसंख्या में अपनी जनसंख्या के अनुपात में नगर पालिकाओं में अध्यक्षों की सीटों और पदों पर आरक्षण का हकदार होगा। इस प्रकार, उत्तर प्रदेश राज्य अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्ग के नागरिकों को प्रदान किए जाने वाले आरक्षण की मात्रा में कोई अंतर नहीं करता है क्योंकि दोनों ही कुल जनसंख्या में इन श्रेणी के नागरिकों की जनसंख्या के अनुपात पर आधारित हैं।

8.8 उक्त उद्देश्य के लिए, जैसा कि राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता ने दावा किया, दिनांक 07.04.2017 को सरकारी आदेश जारी किया गया था जो नागरिकों के अन्य पिछड़े वर्ग की आबादी का निर्धारण करने के लिए तेजी से सर्वेक्षण करने का प्रावधान करता है। राज्य की ओर से दिए गए तर्क के अनुसार, नगर पालिका के प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में इस तरह के त्वरित सर्वेक्षण के आधार पर, संबंधित निर्वाचन क्षेत्र/वार्ड में कुल जनसंख्या में पिछड़े वर्ग की जनसंख्या के अनुपात में सीटें आरक्षित की जाती हैं।

8.9 उ.प्र. राज्य में दिनांक 07.04.2017 के सरकारी आदेश में निहित प्रावधान के संदर्भ में की जाने वाली उपरोक्त कवायद के आधार पर, राज्य की ओर से यह कहने का प्रयास किया गया कि के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) और विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनिवार्य ट्रिपल परीक्षण/शर्तों का अनुपालन किया जा रहा है और इसलिए नागरिकों के पिछड़े वर्ग को आरक्षण प्रदान करने की विधि किसी भी दोष या अवैधता से ग्रस्त नहीं है। उपर्युक्त दलील का परीक्षण करने के लिए, हमें इस बात पर विचार करने की आवश्यकता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय को समसामयिक कठोर अनुभवजन्य जांच करने और ट्रिपल परीक्षण/शर्तें निर्धारित करने की आवश्यकता किस कारण से पड़ी, जिनका राज्य द्वारा पिछड़े वर्ग के नागरिकों के लिए स्थानीय निकाय में सीटें आरक्षित करने से पहले अनुपालन करना आवश्यक है।

8.10 इसमें विवाद नहीं है कि के.कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) और विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यथा अधिदेशित उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा स्थानीय निकायों के लिए पिछड़े वर्ग की प्रकृति और निहितार्थ की समसामयिक, कठोर और अनुभवजन्य जांच करने के लिए एक समर्पित आयोग का गठन नहीं किया गया है। यह तर्क देने का प्रयास किया गया है कि दिनांक 07.04.2017 के सरकारी आदेश के अनुसार राज्य द्वारा की जा रही कवायद वही है जो माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिदेशित समर्पित आयोग द्वारा की जानी है।

8.11 स्थानीय निकायों के संदर्भ में पिछड़ेपन की प्रकृति और निहितार्थों की जांच या अध्ययन में पारंपरिक रूप से वंचित वर्ग के नागरिकों का स्थानीय निकायों में प्रतिनिधित्व का पता लगाना शामिल है। इस तरह की कवायद केवल संख्या गिनती तक ही सीमित नहीं रह सकती है, जैसा कि 07.04.2017 के सरकारी आदेश के अनुसार राज्य द्वारा की जा रही कवायद के माध्यम से किया जा रहा है।

8.12 दिनांक 07.04.2017 के सरकारी आदेश में यह प्रावधान है कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र/वार्ड में आरक्षण अधिनियम, 1994 की अनुसूची-I में परिभाषित अन्य पिछड़ा वर्ग की आबादी का पता लगाया जाए और एक बार ऐसे पिछड़े वर्ग की आबादी सुनिश्चित हो जाने के बाद,

क्षेत्र की कुल जनसंख्या में उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।

8.13 दिनांक 07.04.2017 के सरकारी आदेश के तहत परिकल्पित और की जा रही प्रक्रिया में राज्य में नगर निकायों में अपर्याप्त प्रतिनिधित्व वाले नागरिकों के एक वर्ग या समूह के संबंध में पिछड़ेपन या नुकसानदेह स्थिति के निर्धारण के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण कारक छूट जाता है और जो छूट जाता है वह यह है कि सरकारी आदेश में नगर निकायों में पिछड़े वर्ग के नागरिकों के राजनीतिक प्रतिनिधित्व की जांच का प्रावधान नहीं है।

8.14 स्थानीय निकायों के चुनावों में आरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से आरक्षण अधिनियम, 1994 की अनुसूची- । में शामिल जातियों को नागरिकों के पिछड़े वर्ग के रूप में मानकर राज्य जो कर रहा है वह यह है कि राज्य शैक्षणिक संस्थानों और सार्वजनिक रोजगार में प्रवेश में आरक्षण के लिए अपेक्षित पिछड़ेपन को नगर निकायों में अध्यक्षों की सीटों और पदों में आरक्षण प्रदान करने के लिए अपेक्षित पिछड़ापन के लिए आधार के रूप में मान रहा है। इस संबंध में हम उस उद्देश्य का उल्लेख कर सकते हैं जिसके लिए उत्तर प्रदेश राज्य ने आरक्षण अधिनियम, 1994 अधिनियमित किया है और इसका उद्देश्य है अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्ग के नागरिकों के पक्ष में सार्वजनिक सेवाओं और पदों में आरक्षण प्रदान करना। आरक्षण अधिनियम, 1994 की धारा 3 में प्रावधान है कि सार्वजनिक सेवाओं और पदों में सीधी भर्ती के स्तर पर 21% रिक्तियाँ अनुसूचित जाति के लिए, 2% रिक्तियाँ अनुसूचित जनजाति के लिए और 27% रिक्तियाँ अन्य पिछड़ा वर्ग के नागरिकों के लिए आरक्षित होगीं। उक्त अधिनियम की परिभाषा खंड 2 (बी) के अनुसार, नागरिकों के अन्य पिछड़े वर्ग का तात्पर्य उक्त अधिनियम के अनुसूची- । में निर्दिष्ट नागरिकों के पिछड़े वर्ग से है। 1994 के आरक्षण अधिनियम में संलग्न अनुसूची-। में कुछ जातियों को सूचीबद्ध किया गया है और तदनुसार अनुसूची-। में निर्दिष्ट उक्त जातियों के व्यक्ति सार्वजनिक सेवाओं और पदों पर नागरिकों के अन्य पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षित 27% आरक्षण के हकदार हैं।

8.15 चूँकि उ.प्र. नगर पालिका अधिनियम, 1916 एवं उ.प्र. नगर निगम अधिनियम, 1959 में आने वाला परिभाषा खंड "पिछड़े वर्ग' को आरक्षण अधिनियम, 1994 से जुड़ी अनुसूची-। में निर्दिष्ट नागरिकों के पिछड़े वर्ग के अर्थ में परिभाषित करता है, इस प्रकार नगर निकायों के गठन के संदर्भ में भी केवल अनुसूची-। में निर्दिष्ट जातियों से संबंधित व्यक्तियों को ही आरक्षण दिया जा रहा है। उत्तर प्रदेश राज्य जो कर रहा है वह यह है कि जहां तक नागरिकों के अन्य पिछड़े वर्ग के व्यक्तियों की पहचान करने का संबंध है, वह नगर निकायों के चुनावों में आरक्षण प्रदान करने के लिए आरक्षण अधिनियम 1994 की अनुसूची- । में निर्दिष्ट जातियों को नागरिकों के अन्य पिछड़े वर्ग के रूप में मान रहा है।

8.16 जहां तक नागरिकों के पिछड़े वर्ग को प्रदान किए जाने वाले आरक्षण की मात्रा का सवाल है, जैसा कि राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है, राज्य दिनांक 07.04.2017 के सरकारी आदेश के अनुसार एक कार्य कर रहा है, जिसमें 1994 के आरक्षण अधिनियम की अनुसूची-। में निर्दिष्ट जातियों से संबंधित व्यक्तियों की आबादी का निर्धारण किया जा रहा है और क्षेत्र की कुल जनसंख्या में इन जातियों के सदस्यों की जनसंख्या के अनुपात के आधार पर आरक्षण प्रदान किया जा रहा है। उ.प्र. राज्य द्वारा इस तरह की एक कवायद की जा रही है, जिसकी सहायता राज्य के अधिवक्ता द्वारा यह उचित ठहराने के लिए ली गई है कि राज्य ने ट्रिपल टेस्ट मानदंडों को पूरा किया है जो हमारी सुविचारित राय में, ट्रिपल टेस्ट/शर्तों की आवश्यकता को पूरा नहीं करता है।

8.17 हमारे द्वारा यह कहने का, कि दिनांक 07.04.2017 के सरकारी आदेश के तहत किया जा रहा कार्य ट्रिपल परीक्षण मानदंड/शर्तों को पूरा नहीं करता है, कारण यह है कि इस कार्य में 1994 के आरक्षण अधिनियम में संलग्न अनुसूची-। के संदर्भ में केवल अन्य पिछड़ा वर्ग के नागरिकों की ही आबादी का निर्धारण किया जा रहा है, लेकिन, जहां तक नगर निकायों में नागरिकों के पिछड़े वर्ग के पर्याप्त/अपर्याप्त प्रतिनिधित्व का सवाल है, उक्त शासनादेश इसके निर्धारण के लिए ऐसा कोई प्रावधान नहीं करता है।

8.18 जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा के.कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में धारित किया गया, उक्त मामले में यह स्पष्ट करने का अच्छा अवसर था कि क्या अनुच्छेद 243-टी(6) में आने वाला वाला वाक्यांश "पिछड़ा वर्ग" अनुच्छेद 15(4) और 15(5) के तहत विचारित "सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों" के साथ सह-अस्तित्व में है या भारत के संविधान के अनुच्छेद 16(4) के तहत कम प्रतिनिधित्व वाले पिछड़े वर्गों के साथ सह-अस्तित्व में है। के.कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में भारत संघ द्वारा माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष लिया गया आधार यह था कि अनुच्छेद 243-टी के पीछे की भावना अनुच्छेद 15(3), 15(4) और 16(4) के समान थी, जिसने वास्तविक समानता के लक्ष्य को आगे बढ़ाने के लिए सकारात्मक कार्रवाई के विभिन्न रूपों को संभव बनाया है। उक्त मामले में भारत संघ की ओर से तर्क दिया गया था कि वाक्यांश "पिछड़ा वर्ग" जो अनुच्छेद 243-टी (6) में आता है, को अनुच्छेद 15(4) द्वारा आरक्षण के उद्देश्य के लिए पहचाने गए सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के साथ सहवर्ती होना चाहिए। इस संबंध में के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय का पैरा 49 निम्नानुसार उद्धृत है :

"49. विद्वान सॉलिसिटर जनरल ने आगे तर्क दिया गया कि अनुच्छेद 243-डी और 243-टी के पीछे की भावना अनुच्छेद 15(3), 15(4) और 16(4) के समान थी, जिसने वास्तविक समानता के लक्ष्य को आगे बढ़ाने के लिए सकारात्मक कार्रवाई के विभिन्न रूपों को सक्षम किया है। इस अर्थ में, विद्वान एसजी ने सुझाव देकर एक निश्चित दृष्टिकोण अपनाया है कि वाक्यांश "पिछड़ा वर्ग" जो अनुच्छेद 243-डी (6) और 243-टी (6) में आता है, अनुच्छेद 15(4) द्वारा सक्षम आरक्षण के उद्देश्य के लिए चिन्हित सामाजिक और शैक्षिक रूप सेपिछड़े वर्गों (एसईबीसी) के साथ सहवर्ती होना चाहिए।"

8.19 हालाँकि, माननीय सर्वोच्च न्यायालय भारत संघ की ओर से दी गई उक्त दलील से सहमत नहीं हुआ; बल्कि रिपोर्ट के पैरा-51 में धारित किया कि अनुच्छेद 15(4) और 16(4) द्वारा विचारित आरक्षण का लाभ प्रदान करने के लिए जो सिद्धांत विकसित किए गए हैं, उन्हें अनुच्छेद 243-टी द्वारा विचारित आरक्षण के संदर्भ में यांत्रिक रूप से लागू नहीं किया जा सकता है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने आगे कहा कि अनुच्छेद 243-टी स्थानीय स्व-शासन संस्थानों में आरक्षण के लिए एक विशिष्ट और स्वतंत्र संवैधानिक आधार बनाता है, जिसकी प्रकृति और उद्देश्य उच्च शिक्षा और सार्वजनिक रोजगार तक पहुंच प्रदान करने के लिए क्रमशः अनुच्छेद 15(4) और 16(4) द्वारा उपबंधित आधार से अलग है। के.कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में फैसले का पैरा-51 निम्नवत उद्धृत है:

"51. विवादास्पद मुद्दों पर विचार करने से पहले, निर्वाचित स्थानीय निकायों में आरक्षण के प्रावधानों के पीछे व्यापक विचारों की जांच करना आवश्यक है। सर्वप्रथम, हम श्री राजीव धवन के सुझाव से सहमत हैं कि जो सिद्धांत अनुच्छेद 15(4) और 16(4) द्वारा विचारित आरक्षण का लाभ प्रदान करने के लिए विकसित किए गए है उन्हें अनुच्छेद 243-डी और 243-टी द्वारा विचारित आरक्षण के संदर्भ में यांत्रिक रूप से लागू नहीं किया जा सकता है। इस संबंध में, हम इस प्रस्ताव का समर्थन करते हैं कि अनुच्छेद 243-डी और 243-टी स्थानीय स्व-शासन संस्थानों में आरक्षण के लिए एक विशिष्ट और स्वतंत्र संवैधानिक आधार बनाते हैं, जिसकी प्रकृति और उद्देश्य उच्च शिक्षा और सार्वजनिक रोजगार में भागीदारी बढ़ाने के लिए क्रमशः अनुच्छेद 15(4) और 16(4) के तहत परिकल्पित आरक्षण नीतियों से अलग है।"

8.20 माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में दिए गए तर्क से सहमत थी कि शिक्षा और रोजगार में भागीदारी को बाधित करने वाले कारकों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व बाधित करने वाले कारकों के बराबर नहीं रखा जा सकता है। इस संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आगे की गई टिप्पणी यह है कि सामाजिक और आर्थिक अर्थों में पिछड़ापन जरूरी नहीं कि राजनीतिक पिछड़ापन हो। अनुच्छेद 243-डी और अनुच्छेद 15(4) और 16(4) के तहत प्रदान किए गए आरक्षण की प्रकृति के बीच अंतर को स्पष्ट करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने के.कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में धारित किया कि एक ओर शिक्षा और रोजगार तक पहुंच से मिलने वाले लाभों की प्रकृति और दूसरी ओर जमीनी स्तर पर राजनीतिक प्रतिनिधित्व के बीच एक अंतर्निहित अंतर है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त मामले में आगे कहा है कि उच्च शिक्षा और सार्वजनिक रोजगार तक पहुंच से व्यक्तिगत लाभार्थियों के सामाजिक आर्थिक उत्थान की संभावना बढ़ जाती है, स्थानीय स्वशासन में भागीदारी का उद्देश्य उस समुदाय के सशक्तिकरण का एक अधिक तात्कालिक उपाय करना है जिससे चुने हुएप्रतिनिधि संबंधित हैं। के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में दिए गए उक्त निर्णय का पैरा-55 यहां प्रासंगिक है जिसे नीचे उद्धृत किया गया है:

"55. यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि एक ओर शिक्षा और रोजगार तक पहुंच से मिलने वाले लाभों की प्रकृति और दूसरी ओर जमीनी स्तर पर राजनीतिक प्रतिनिधित्व के बीच एक अंतर्निहित अंतर है। जहाँ उच्च शिक्षा तक पहुंच और सार्वजनिक रोजगार से व्यक्तिगत लाभार्थियों के सामाजिक-आर्थिक उत्थान की संभावना बढ़ जाती है, वहीं स्थानीय स्वशासन में भागीदारी का उद्देश्य उस समुदाय के लिए सशक्तिकरण का एक अधिक तात्कालिक उपाय करना है जिससे निर्वाचित प्रतिनिधि संबंधित है।"

8.21के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस सिद्धांत को भी मान्यता दिया कि राजनीतिक प्रतिनिधित्व के संदर्भ में "क्रीमी लेयर" का बहिष्कार नहीं किया जा सकता है। के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के फैसले का पैरा-56 फिर से प्रासंगिक है जिसे यहां नीचे दिया गया है:

"56. लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण का उद्देश्य न केवल शासन को लोगों के करीब लाना है, बल्कि इसे समाज के कमजोर वर्गों के लिए अधिक सहभागी, समावेशी और जवाबदेह बनाना भी है। इस अर्थ में, स्थानीय स्व-शासन में आरक्षण का उद्देश्य केवल निर्वाचित प्रतिनिधियों के बजाय पूरे समुदाय को सीधे लाभ पहुँचाना है। यही कारण है कि राजनीतिक प्रतिनिधित्व के संदर्भ में "क्रीमी लेयर" का बहिष्कार नहीं किया जा सकता है। समूहों के भीतर व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति में असमानता होना स्वाभाविक है जो आरक्षण नीतियों के लक्षित लाभार्थी हैं, हालांकि शिक्षा और रोजगार के लिए आरक्षण के संदर्भ में "क्रीमी लेयर" का बहिष्कार संभव और वांछनीय हो सकता है, लेकिन स्थानीय स्वशासन के संदर्भ में उसी सिद्धांत को लागू नहीं किया जा सकता है।"

8.22 सामाजिक और आर्थिक पिछड़ेपन और राजनीतिक पिछड़ेपन के बीच अंतर को ध्यान में रखते

हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय को के.कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में राज्य सरकारों को अपनी आरक्षण नीति का पुनर्विन्यास करने की सलाह देने की आवश्यकता भी महसूस हुई, जिसमें अनुच्छेद 243-टी (6) के तहत लाभार्थियों का सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों [अनुच्छेद 15 (4) के प्रयोजन के लिए] या यहां तक कि पिछड़े वर्ग जिनका सरकारी नौकरियों में प्रतिनिधित्व कम है [अनुच्छेद 16(4) के प्रयोजन के लिए] के समान होना आवश्यक नहीं है। के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में रिपोर्ट के पैराग्राफ-63 को त्वरित संदर्भ के लिए उद्धृत किया जा रहा है :

"63.जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, सामाजिक और आर्थिक पिछड़ापन आवश्यक रूप से राजनीतिक पिछड़ेपन से मेल नहीं खाता है। इस संबंध में, राज्य सरकारों को अपनी आरक्षण नीतियों को फिर से पुनर्विन्यासित करने की सलाह दी जाती है, जिसमें अनुच्छेद 243-डी(6) और 243-टी (6) के तहत लाभार्थियों का आवश्यक रूप से सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों (एसईबीसी) [अनुच्छेद 15(4) के प्रयोजन के लिए] या यहां तक कि सरकारी नौकरियों में कम प्रतिनिधित्व वाले पिछड़े वर्गों [अनुच्छेद 16(4) के प्रयोजन के लिए] के साथ सहवर्ती होने की आवश्यकता नहीं है। यह कहना सुरक्षित होगा कि जिन समूहों को शिक्षा और रोजगार के क्षेत्र में आरक्षण का लाभ दिया गया है, उनमें से सभी को स्थानीय स्वशासन के क्षेत्र में आरक्षण की आवश्यकता नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि राजनीतिक भागीदारी में बाधाएं वैसी नहीं हैं जैसी शिक्षा और रोजगार तक पहुंच को सीमित करने के मामले में हैं। स्थानीय स्वशासन में आरक्षण के संबंध में कुछ नई सोच और नीति-निर्माण की आवश्यकता है।"

8.23के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में, अनुच्छेद 243-टी(6) के तहत आरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से पिछड़ेपन की राजनीतिक प्रकृति के निर्धारण पर जोर देने के अलावा, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह प्रावधान भी किया कि किसी भी स्थिति में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/अन्य पिछड़ा वर्ग के पक्ष में ऊर्ध्वाधर आरक्षण 50% की ऊपरी सीमा का उल्लंघन नहीं होना चाहिए। इस प्रकार, की गई चर्चाओं और टिप्पणियों को एक आकार देने के लिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में रिपोर्ट के पैराग्राफ-82 में पाँच निष्कर्षों का उल्लेख किया जो इस प्रकार हैं :

"82. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, हमारे निष्कर्ष हैं:

(i) स्थानीय स्वशासन के संदर्भ में आरक्षण की प्रकृति और उद्देश्य उच्च शिक्षा और सार्वजनिक रोजगार के संबंध में आरक्षण से काफी भिन्न है। इस अर्थ में, अनुच्छेद 243-डी और अनुच्छेद 243-टी सकारात्मक कार्रवाई के लिए एक विशिष्ट और स्वतंत्र संवैधानिक आधार बनाते हैं और अनुच्छेद 15(4) और 16(4) द्वारा सक्षम आरक्षण नीतियों के संबंध में जो सिद्धांत विकसित किए गए हैं, उन्हें स्थानीय स्वशासन के संदर्भ में आसानी से लागू नहीं किया जा सकता है। यदि बनाए जाते हैं, तो भी, उनका अनुच्छेद 15(4) और 16(4) के प्रयोजनों के लिए दिए जाने वाले आरक्षण की अवधि के अनुरूप अवधि का होने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि वे बहुत कम समय के लिए हो सकते हैं।

(ii) अनुच्छेद 243-डी(6) और अनुच्छेद 243-टी(6) संवैधानिक रूप से वैध हैं क्योंकि वे उन प्रावधानों की प्रकृति में हैं जो राज्य विधानमंडलों को पिछड़े वर्गों के पक्ष अध्यक्ष के लिए सीटें और पद आरक्षित करने में सक्षम बनाते हैं। राज्य विधानों के विरुद्ध विशिष्ट चुनौतियों के माध्यम से अनुपातहीन आरक्षण के बारे में चिंताएँ उठाई जानी चाहिए।

(iii) हम आक्षेपित राज्य विधानों के तहत ओबीसी के लिए प्रदान किए गए आरक्षण की मात्रा की अधिकता के दावों की जांच करने की स्थिति में नहीं हैं क्योंकि कोई समसामयिक अनुभवजन्य डेटा उपलब्ध नहीं है। पिछड़ेपन के उन पैटर्न की कठोर जांच करने का दायित्व कार्यपालिका पर है जो राजनीतिक भागीदारी में बाधा के रूप में कार्य करते हैं जो वास्तव में शिक्षा और रोजगार तक पहुंच के मामले में नुकसान के पैटर्न से काफी अलग हैं। चूंकि हमने केवल अनुच्छेद 243-डी(6) और 243-टी(6) की संवैधानिक वैधता पर विचार और निर्णय लिया है, याचिकाकर्ताओं या किसी भी पीड़ित पक्ष के पास उक्त संवैधानिक प्रावधानों के अनुसरण में बनाए गए राज्य कानून को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती देने का विकल्प होगा। हमारा विचार है कि अनुच्छेद 243-डी(6) और अनुच्छेद 243-टी(6) के तहत "पिछड़े वर्गों" की पहचान अनुच्छेद 15(4) के प्रयोजन के लिए एसईबीसी की पहचान और अनुच्छेद 16(4) के प्रयोजन के लिए पिछड़े वर्ग की पहचान से अलग होनी चाहिए।

(iv) स्थानीय स्वशासन के संदर्भ में एससी/एसटी/ओबीसी के पक्ष में 50% उर्ध्वाधर आरक्षण की ऊपरी सीमा का उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए। अपवाद केवल अनुसूचित क्षेत्रों में स्थित पंचायतों में प्रतिनिधित्व के मामले में अनुसूचित जनजातियों के हितों की रक्षा के लिए किया जा सकता है।

(v) अनुच्छेद 243-डी(4) और 243-टी(4) द्वारा निर्धारित तरीके से अध्यक्ष पदों का आरक्षण संवैधानिक रूप से वैध है। सार्वजनिक रोजगार के संदर्भ में इक्का-दुक्का पदों से इन अध्यक्ष पदों की तुलना नहीं की जा सकती।"

8.24 निष्कर्ष (iii) से जैसा कि के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) की रिपोर्ट के पैराग्राफ-82 में पाया जा सकता है, हम यह अंदाजा लगा सकते हैं कि समसामयिक अनुभवजन्य डेटा एकत्र करके राजनीतिक भागीदारी में बाधाओं के रूप में कार्य करने वाले पिछड़ेपन के पैटर्न की कठोर जांच करने

की आवश्यकता क्यों महसूस की गई। गौरतलब है कि उत्तर प्रदेश राज्य के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के उक्त मामले की कार्यवाही में न केवल एक पक्ष था, बल्कि इसका प्रतिनिधित्व भी किया गया और इसकी ओर से दलीलें भी पेश की गईं। माननीय उच्चतम न्यायालय ने खुद को विधान के तहत, जिसे चुनौती दी गई थी, पिछड़े वर्ग के नागरिकों के लिए प्रदान किए गए आरक्षण की मात्रा में अधिकता के दावों की जांच करने की स्थिति में नहीं पाया, क्योंकि कोई समसामयिक अनुभवजन्य डेटा उसके समक्ष उपलब्ध नहीं था। तद्नूसार, उपरोक्त परिस्थितियों के संदर्भ में ही, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में धारित किया कि पिछड़ेपन के पैटर्न की कठोर जांच करने का दायित्व, जो राजनीतिक भागीदारी में बाधा के रूप में कार्य करता है, कार्यपालिका का है। साथ ही, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी धारित किया कि पिछड़ेपन के पैटर्न जो राजनीतिक भागीदारी में बाधा के रूप में काम करते हैं, शिक्षा और रोजगार तक पहुंच के मामले में नुकसान के पैटर्न से काफी भिन्न हैं।

8.25 यदि हम दिनांक 07.04.2017 के सरकारी आदेश के तहत राज्य सरकार द्वारा की जा रही कवायद की जांच करते हैं, तो हम पाते हैं कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में की गई टिप्पणियों के आलोक में उक्त कवायद न्यायोचित नही है।

8.26.विकास किशनराव गवली (उपरोक्त), जो महाराष्ट्र राज्य से आया था, विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) में के.कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले का विस्तार से संदर्भ देते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा है कि राज्य के प्राधिकारी स्थानीय निकायों में नागरिकों के पिछड़े वर्ग के लिए सीटें आरक्षित करने से पहले पूर्व शर्तों को पूरा करने के लिए बाध्य हैं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता पर्याप्त सामग्रियों या दस्तावेजों को एकत्रित करना है जो उस उद्देश्य के लिए स्थापित एक स्वतंत्र समर्पित आयोग के माध्यम से स्थानीय निकायों में पिछड़ेपन की प्रकृति और निहितार्थों की समसामयिक कठोर अनुभवजन्य जांच करके आरक्षण के उद्देश्य के लिए पिछड़े वर्गों की पहचान करने में मदद कर सकते हैं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि राज्य विधान पूरे राज्य में स्थानीय निकायों में अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए सीटों के आरक्षण की एक समान और कठोर मात्रा का उपबंध नहीं कर सकते हैं, वह भी ऐसे आरक्षण की अनिवार्यता के बारे में एक स्वतंत्र आयोग द्वारा पिछड़ेपन की प्रकृति और निहितार्थ की उचित जांच के बिना।

8.27विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी रेखांकित किया है कि पिछड़ेपन की प्रकृति और निहितार्थ की ऐसी जांच एक स्थिर व्यवस्था नहीं हो सकती है; बल्कि समय-समय पर इसकी समीक्षा की जानी चाहिए ताकि इस तरह के आरक्षण की अधिकता के सिद्धांत का उल्लंघन न हो। विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) में आगे अधिदेशित किया गया है कि इस तरह का आरक्षण केवल उसी सीमा तक सीमित किया जाना चाहिए, जो आनुपातिक है और मात्रात्मक सीमा के भीतर है जैसा कि संविधान पीठ [के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त)] द्वारा लक्षित है।

8.28विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विस्तार से बताया कि के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में संविधान पीठ ने आगे धारित किया कि अधिकांश राज्य विधानों के प्रावधानों पर फिर से विचार करने की आवश्यकता हो सकती है। विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) के मामले में आगे की टिप्पणी यह है कि संविधान पीठ ने आशा व्यक्त की थी कि संबंधित राज्यों को स्थानीय स्वशासन में आरक्षण के संबंध में नीति निर्माण पर नए सिरे से विचार करना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि 50% की ऊपरी सीमा का पालन हो जिसमें नागरिकों के पिछड़े वर्ग के पक्ष में मौजूदा कोटा की मात्रा को कम करने के लिए कानून को संशोधित करना और इसे वस्तुनिष्ठ मापदंडों पर यथार्थवादी और मापने योग्य बनाना शामिल है।

8.29 माननीय उच्चतम न्यायालय ने विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) में उल्लेख किया कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा की गई कानून की घोषणा के बावजूद, और विषय वस्तु पर सभी राज्यों को निर्देश जारी करने के बावजूद, महाराष्ट्र राज्य ने मौजूदा प्रावधानों पर दोबारा गौर नहीं किया जो संविधान पीठ द्वारा घोषित कानून के विपरीत हैं। इस प्रकार, न्यायालय ने पाया कि महाराष्ट्र राज्य में स्थानीय निकायों के चुनावों के मामले में नागरिकों के पिछड़े वर्ग को आरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से पिछड़ेपन की प्रकृति और निहितार्थ की कोई समसामयिक कठोर अनुभवजन्य जांच नहीं की गई है।

8.30 माननीय उच्चतम न्यायालय ने महाराष्ट्र राज्य द्वारा जारी अधिसूचना को रद्द करते हुए उस सीमा तक इसे रद्द कर दिया, जिसमें पिछड़े वर्ग के नागरिकों के लिए स्थानीय निकायों में सीटों का आरक्षण प्रदान किया गया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे घोषणा की कि आरक्षित पिछड़ा वर्ग की सीटों के सापेक्ष उम्मीदवारों के परिणाम कानूनन मान्य नहीं होंगे और राज्य चुनाव आयोग को निर्देश दिया कि ऐसी सीटों को सामान्य/खुली श्रेणी नागरिक उम्मीदवारों से भरने की घोषणा करने के लिए तत्काल कदम उठाए। विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) के मामले में फैसले के पैराग्राफ 9 से 13 नीचे दिए गए हैं:

"9. इस अनुल्लंघनीय मात्रात्मक सीमा के अलावा, राज्य प्राधिकारी स्थानीय निकायों में ओबीसी के लिए सीटें आरक्षित करने से पहले अन्य पूर्व शर्तों को पूरा करने के

लिए बाध्य हैं। सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता पर्याप्त सामग्री या दस्तावेजों को एकत्रित करना है जो एक स्वतंत्र समर्पित आयोग के माध्यम से पिछड़ेपन की प्रकृति और निहितार्थ की समसामयिक कठोर अनुभवजन्य जांच करके संबंधित स्थानीय निकायों में आरक्षण हेतु पिछड़े वर्गों की पहचान में मदद कर सकें। इस प्रकार, राज्य विधान राज्य भर में स्थानीय निकाय में केवल ओबीसी के लिए सीटों के आरक्षण की एक समान और कठोर मात्रा का उपबंध नहीं कर सकते हैं, वह भी ऐसे आरक्षण की अनिवार्यता के बारे में एक स्वतंत्र आयोग द्वारा पिछड़ेपन की प्रकृति और निहितार्थ की उचित जांच के बिना। इसके अलावा, यह एक स्थिर व्यवस्था नहीं हो सकती है, इसलिए इसकी समय-समय पर समीक्षा की जानी चाहिए ताकि ऐसे आरक्षण की अधिकता के सिद्धांत का उल्लंघन (जो अपने आप में एक सापेक्ष अवधारणा है और गतिशील है) न हो। इसके अतिरिक्त, इसे केवल उस सीमा तक ही सीमित रखा जाना चाहिए जहां तक यह आनुपातिक है और मात्रात्मक सीमा के भीतर है जैसा कि इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा लक्षित किया गया है।

10. उल्लेखनीय रूप से, संविधान पीठ ने इस तथ्य का उल्लेख किया कि अधिकांश राज्य विधानों के प्रावधानों पर पुनर्विचार की आवश्यकता हो सकती है, लेकिन अनुभवजन्य डेटा के संदर्भ में पिछड़े वर्गों की पहचान में खामियों को इंगित करके विशिष्ट चुनौतियों को उठाने की स्वतंत्रता के साथ उनकी वैधता के संबंध में प्रश्न खुला छोड़ दिया। इसके अलावा, संविधान पीठ ने आशा व्यक्त की कि संबंधित राज्यों को उक्त निर्णय के आलोक में स्थानीय स्वशासन में आरक्षण के संबंध में नीति निर्माण पर नए सिरे से विचार करना चाहिए, साथ ही यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कानूनों में संशोधन द्वारा ऐसी नीति में ऊपरी सीमा का पालन हो - ताकि ओबीसी के पक्ष में मौजूदा कोटा की मात्रा को कम किया जा सके और इसे वस्तुनिष्ठ मापदंडों पर यथार्थवादी और मापने योग्य बनाया जा सके।

11. कानून की इस घोषणा और विषय-वस्तु पर सभी राज्यों को जारी टिप्पणियों-सह-निर्देशों के बावजूद, महाराष्ट्र राज्य के विधानमंडल ने मौजूदा प्रावधानों पर दोबारा विचार नहीं किया, जो इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा घोषित कानून का उल्लंघन थे। वास्तव में, कुछ रिट याचिकाएँ [डब्ल्यूपी (सी) सं. 6676/2016 और डब्ल्यूपी (सी) सं. 5333/2018] बॉम्बे उच्च न्यायालय मेंदायर की गईं, जिसमें सरकार की ओर से गंभीर आश्वासन दिया गया था। महाराष्ट्र राज्य का कहना है कि इस न्यायालय के निर्णय के आलोक में आवश्यक सुधारात्मक कदम गंभीरता से उठाए जाएंगे। हालाँकि, स्थिति अपरिवर्तित रही।

12. वास्तव में, इस बारे में कोई सामग्री सामने नहीं आई है कि ओबीसी के लिए आरक्षण की मात्रा 27 प्रतिशत किस आधार पर तय की गई थी, जब इसे 1994 में संशोधन के माध्यम से शामिल किया गया था। वास्तव में, जब संशोधन 1994 में प्रभावी हुआ था , ओबीसी के लिए आरक्षित सीटों की सीमा तय करने के तौर-तरीकों के संबंध में कोई दिशानिर्देश अस्तित्व में नहीं था जैसा कि के. कृष्ण मूर्ति [के. कृष्णा मूर्ति बनाम भारत संघ, (2010) 7 एससीसी 202: (2010) 2 एससीसी (एल एंड एस) 385] के मामले में नोट किया गया है। हालाँकि, उस निर्णय के बाद, राज्य के लिए पिछड़ेपन की प्रकृति और निहितार्थों की समसामयिक कठोर अनुभवजन्य जांच करने के लिए एक समर्पित आयोग का गठन करना अनिवार्य था और उस आयोग की सिफारिशों के आधार पर मौजूदावैधानिक व्यवस्था में संशोधन करने सहित अनुवर्ती कदम उठाना था, जैसे 1961 के अधिनियम की धारा 12(2)(सी) में संशोधन करना। रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ भी नहीं है कि अब तक ऐसा कोई समर्पित आयोग स्थापित किया गया हो। दूसरी ओर, इस न्यायालय के समक्ष हलफनामे पर राज्य सरकार द्वारा अपनाए गए रुख से पता चलेगा कि इस तरह की अनुभवजन्य जांच करने के लिए अपेक्षित जानकारी भारत संघ द्वारा उसे उपलब्ध नहीं कराई गई है। राज्य सरकार के उस रुख के आलोक में, यह समझ से परे है कि प्रत्यर्थी संबंधित स्थानीय निकायों में ओबीसी के लिए सीटें आरक्षित करने के लिए राज्य चुनाव आयोग द्वारा जारी अधिसूचना को किस आधार पर उचित ठहरा सकते हैं, जिसके चुनाव दिसंबर 2019/जनवरी 2020 में हुए हैं। जिसकी अधिसूचनाओं को वर्तमान रिट याचिकाओं के माध्यम से चुनौती दी गई है। इस न्यायालय ने वर्तमान रिटयाचिकाओं के नतीजे के अधीन चुनाव को आगे बढ़ाने की अनुमति दी थी।

13. जो भी हो, यह निर्विवाद है कि ओबीसी के लिए स्थानीय निकायों में सीटें आरक्षित करने से पहले राज्य द्वारा आवश्यक ट्रिपल टेस्ट/शर्तें अब तक पूरी नहीं की गई हैं। (1) राज्य के भीतर स्थानीय निकायों में प्रतिनिधित्व के संबंध में पिछड़ेपन की प्रकृति और निहितार्थ की समसामयिक कठोर अनुभवजन्य जांच करने के लिए एक समर्पित आयोग की स्थापना करना; (2) आयोग कीसिफारिशों के आलोक में स्थानीय निकाय-वार आवश्यक आरक्षण के अनुपात को निर्दिष्ट करना, ताकि अधिकता से ग्रस्त न हो;और (3) किसी भी स्थिति में, ऐसा आरक्षण एससी/एसटी/ओबीसी के पक्ष में आरक्षित कुल सीटों को मिलाकर 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। किसी दिए गए स्थानीय निकाय में, ओबीसी के पक्ष में ऐसा आरक्षण प्रदान करने की समय चुनाव कार्यक्रम (अधिसूचनाएं) जारी करने के समय उपलब्ध हो सकता है। हालाँकि, उपरोक्त पूर्व शर्तों को पूरा करने पर ही इसे अधिसूचित किया जा सकता है। बेशक, कठोर अनुभवजन्य जांच करने के लिए समर्पित आयोग की स्थापना का पहला कदम अपने आप में एक मृगतृष्णा बना

हुआ है। इसे अलग ढंग से कहें तो, ऊपर उल्लिखित ट्रिपल टेस्ट को पूरा किए बिना प्रत्यर्थी के लिए ओबीसी के लिए आरक्षण को उचित ठहराना संभव नहीं होगा।"

8.31सुरेश महाजन (उपरोक्त) जो कि मध्य प्रदेश राज्य का मामला है, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) के मामले में की गई अपनी टिप्पणियों को दोहराया और राज्य चुनाव आयोग को यह निर्देश देकर चुनाव कार्यक्रम जारी करने का निर्देश दिया कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित को सीटों को छोड़कर, सभी सीटें सामान्य वर्ग के लिए अधिसूचित किया जाना चाहिए। इस मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उक्त निर्देश इस कारण से जारी किया गया था क्योंकि न्यायालय ने पाया कि मध्य प्रदेश राज्य द्वारा ट्रिपल टेस्ट की औपचारिकताएं सभी मामलों में पूरी नहीं की गई थीं। माननीय उच्चतम न्यायालय ने पाया कि अनुभवजन्य डेटा के संकलन और आगे उसका विश्लेषण समर्पित आयोग द्वारा किए जाने की उम्मीद थी और उसके बाद आयोग को स्थानीय निकाय के लिए नागरिकों के पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षित की जाने वाली सीटों की संख्या के संबंध में सिफारिश करनी थी, "और ऐसा कोई कार्य आयोग द्वारा नहीं किया गया था। इस प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि राज्य केवल तभी कार्रवाई कर सकता है जब आयोग द्वारा उसकी सिफारिश के अनुसार ऐसा कार्य किया जाए, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि "संबंधित स्थानीय निकाय" में इस तरह के आरक्षण की अधिकता नहीं है। सुरेश महाजन (उपरोक्त) की रिपोर्ट के पैराग्राफ 8, 12, 13 और 24 संदर्भित करने के लिए प्रासंगिक हैं, जिन्हें यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

"8. यह संवैधानिक आदेश अनुल्लंघनीय है। न तो राज्य चुनाव आयोग, न ही राज्य सरकार या राज्य विधानमंडल और यह यह न्यायालय, भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए इसके विपरीत व्यवस्था कासमर्थन कर सकता है।

12. इसलिए, हम अंतरिम आदेश के माध्यम से राज्य चुनाव आयोग को निर्देश देते हैं कि वह संबंधित स्थानीय निकायों में किए गए परिसीमन के अनुसार वार्डों के आधार पर बिना किसी देरी के निवर्तमान निर्वाचित निकाय का 5 (पांच) वर्ष का कार्यकाल समाप्त होने या आक्षेपित संशोधन अधिनियम के लागू होने से पहले, जो भी बाद में हो, चुनाव कार्यक्रम जारी करे। उस आधार पर, राज्य चुनाव आयोग को उन संबंधित स्थानीय निकायों में अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षणप्रदान करने के लिए राज्य सरकार द्वारा ट्रिपल टेस्ट के अनुपालन की प्रतीक्षा किए बिना, बिना किसी अपवाद के आगे बढ़ना चाहिए जहां चुनाव होने वाले हैं या निकट भविष्य में होने की संभावना है। हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि केवल इस तरह के दिशा निर्देश ही न्याय और व्यापक सार्वजनिक हितों को संवैधानिक अधिदेश के अनुरूप पूरा करेगी कि स्थानीय स्वशासन को विधिवत निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा निर्बाध रूप से शासित किया जाना चाहिए, सिवाय समाप्ति से पहले इसके विघटन के अनुमेय आधारों को छोड़कर।

13. क्योंकि, जब तक राज्य सरकार द्वारा ट्रिपल टेस्ट की औपचारिकता "सभी प्रकार से" पूरी नहीं हो जाती, तब तक अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए किसी आरक्षण का प्रावधान नहीं किया जा सकता है; और यदि वह प्रक्रिया राज्य चुनाव आयोगद्वारा चुनाव कार्यक्रम जारी होने से पहले पूरी नहीं गई, तो अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित सीटों को छोड़कर जो एक संवैधानिक आवश्यकता है, बाकी सीटों को सामान्य वर्ग के रूप में अधिसूचित किया जाना चाहिए वर्ग।

24. दूसरे शब्दों में, अनुभवजन्य डेटा के संकलन और उसके विश्लेषण के बाद, आयोग से "स्थानीय निकाय वार" अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षित की जाने वाली सीटों की संख्या के संबंध में सिफारिश करने की उम्मीद की जाती है। जाहिर है, वह कार्य आयोग द्वारा नहीं किया गया है। राज्य सरकार केवल उसके बाद और आयोग की सिफारिशों के अनुसार कार्रवाई कर सकती है - जो कि एक स्वतंत्र निकाय है जो यह सुनिश्चित करने के लिए बनाया गया है कि "संबंधित स्थानीय निकाय" में इस तरह के आरक्षण की अधिकता न हो।"

8.32 माननीय पटना उच्च न्यायालय ने सुनील कुमार बनाम बिहार राज्य और अन्य , सिविल रिट क्षेत्राधिकार केस नं. 13513/2022, निर्णीत दिनांक 04.10.2022 के मामले में, बिहार सरकार की कार्रवाई को मंजूरी नहीं दी और साथ ही के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) और विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) के मामलों सहित कुछ मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित आदेश के अनुपालन के अभाव में, बिहार चुनाव आयोग द्वारा नगर निकायों के चुनावों के लिए नागरिकों के पिछड़े वर्ग के लिए सीटें आरक्षित करने का अनुमोदन नहीं किया। । माननीय पटना उच्च न्यायालय ने इस प्रकार बिहार के राज्य चुनाव आयोग को निर्देश दिया कि वह पिछड़े वर्ग के नागरिकों के लिए आरक्षित सीटों को सामान्य श्रेणी की सीटों के रूप में मानते हुए फिर से अधिसूचित करके चुनाव कराए। माननीय पटना उच्च न्यायालय ने आगे कहा कि बिहार राज्य को शहरी या ग्रामीण स्थानीय निकायों के चुनावों में आरक्षण से संबंधित एक व्यापक कानून बनाने पर विचार करना चाहिए, ताकि राज्य को, अन्य निर्णयों के साथ-साथ के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त), विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) और सुरेश महाजन (उपरोक्त) में जारी दिशा निर्देशों के अनुरूप बनाया जा सके। सुनील कुमार (उपरोक्त) के मामले में माननीय पटना उच्च न्यायालय द्वारा की गई चर्चा मुख्य रूप से के.कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त), विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) और सुरेश महाजन

(उपरोक्त) के मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर आधारित है।

8.33 ऊपर की गई चर्चाओं के आलोक में, यदि हम विद्वान शासकीय अधिवक्ता द्वारा रखी गई राज्य के पक्ष को देखें, तो हम पाते हैं कि के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) और विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार किए गए ट्रिपल परीक्षण कवायद में से उ.प्र. राज्य ने केवल एक ही शर्त का पालन किया गया है अर्थात अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/पिछड़े वर्ग के नागरिकों को दिए जाने वाले आरक्षण की सीमा कुल मिलाकर 50% होने से संबंधित शर्त। बाकी दो शर्तों के संबंध में, अर्थात्, (1) स्थानीय निकायों के संबंध में पिछड़ेपन की प्रकृति और निहितार्थ की अनुभवजन्य जांच करने के लिए एक समर्पित आयोग का गठन और (2) ऐसे आयोग की सिफारिश के आलोक में आवश्यक आरक्षण का अनुपात प्रदान करना। इस मामले में ट्रिपल परीक्षण/शर्तें पूरी नहीं की गई हैं। वास्तव में, ट्रिपल परीक्षण/शर्तों को पूरा करने के लिए पहला कदम स्थानीय निकायों में पिछड़ेपन की प्रकृति और निहितार्थ की समसामयिक कठोर अनुभवजन्य जांच करने के लिए एक समर्पित आयोग का गठन करना है और एक बार ऐसा आयोग गठित हो जाता है और सिफारिश के आधार पर अपेक्षित जांच करता है, तो आयोग द्वारा नागरिकों के पिछड़े वर्ग को दिए जाने वाले आरक्षण के अनुपात को उस सीमा तक निर्दिष्ट किया जा सकता है, जिससे यह आनुपातिक हो, ताकि ऐसा आरक्षण अधिकता का शिकार न हो।

8.34 हमारी राय में, स्थानीय निकायों के संबंध में, पिछड़ेपन की प्रकृति और निहितार्थों की जांच, जैसा माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने के.कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) और विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) मामले में अपेक्षित किया है, केवल सिरों की गिनती तक ही सीमित है, जैसा कि दिनांक 07.04.2017 के सरकारी आदेश में परिकल्पित है।

8.35 इस प्रकार, उपरोक्त कारणों से, हमारी राय है कि के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) और विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिदेशित ट्रिपल टेस्ट/शर्तों की आवश्यकता को पूरा नहीं किया गया है और तदनुसार, उसके परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेश राज्य में नगर निकायों के अध्यक्षों की सीटों और पदों को आरक्षित करने के लिए राज्य द्वारा किया गया कोई भी कार्य जिसमें दिनांक 05.12.2022 की आक्षेपित अधिसूचना शामिल है, दूषित एवं अपोषणीय है और इसलिए रद्द किए जाने योग्य है।

8.36 हमारे सामने दूसरा मुद्दा, जैसा कि फैसले के पहले भाग में उठाया गया है, यह है कि क्या राज्य अधिनियमों के उन प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों को चुनौती के अभाव में, जो अनुच्छेद 243 टी(सी) के संदर्भ में नागरिकों के पिछड़े वर्ग को आरक्षण प्रदान करते हैं, याचिकाकर्ता उन राहतों के हकदार हैं जिनके लिए प्रार्थना की गई है।

8.37 राज्य की ओर से यह तर्क दिया गया है कि नगर पालिका अधिनियम की धारा 2 (1) और 9-ए और नगर निगम अधिनियम की धारा 2 (51-ए) और धारा 7 को चुनौती के अभाव में, जो पिछड़े वर्ग के नागरिकों को आरक्षण प्रदान करते है और यह उपबंध करते हैं कि ऐसा आरक्षण उ.प्र. लोक सेवा (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 से जुड़ी अनुसूची-1 में शामिल जातियों को भी उपलब्ध होगा, याचिकाकर्ता किसी भी राहत के हकदार नहीं हैं।

8.38 इस संबंध में, हम देख सकते हैं कि इन प्रावधानों के समान प्रावधान उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम और उत्तर प्रदेश क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत अधिनियम, 1961 में उपलब्ध हैं, जिसमें ग्रामीण स्थानीय निकाय चुनाव के संदर्भ में नागरिकों के पिछड़े वर्ग को आरक्षण प्रदान करने के लिए समान प्रावधान शामिल हैं। इन प्रावधानों को माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के समक्ष के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) में चुनौती दी गई थी, हालाँकि, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पर्याप्त सामग्री के अभाव में ऐसी चुनौती की जांच नहीं की, जो माननीय सर्वोच्च न्यायालय को ऐसी चुनौती के बारे में निर्णय लेने में मदद कर सके। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने के. कृष्ण मूर्ति के मामले में रिपोर्ट के पैराग्राफ 60 में यह धारित किया कि आरक्षण के प्रयोजनों के लिए पिछड़े वर्गों की पहचान एक कार्यपालिकीय कार्य है और उक्त उद्देश्य के लिए पिछड़ेपन की प्रकृति और निहितार्थों की कठोर अनुभवजन्य जांच करने के लिए समर्पित आयोग का गठन करने की आवश्यकता है।

8.39 ऐसे किसी समर्पित आयोग की नियुक्ति के अभाव में, ऐसे डेटा जो आरक्षण की अधिकता को स्थापित कर सकें, निर्धारित नहीं किए जा सकते। आज भी स्थिति वैसी ही है।

8.40 हम यह भी देख सकते हैं कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) के मामले में धारित किया कि राज्य प्राधिकारी स्थानीय निकायों में नागरिकों के पिछड़े वर्ग के लिए सीटें आरक्षित करने से पहले पूर्व शर्तों को पूरा करने के लिए बाध्य हैं और तदनुसार इस उद्देश्य के लिए स्थापित एक स्वतंत्र समर्पित आयोग के माध्यम से पिछड़ेपन की प्रकृति और निहितार्थों की समसामयिक कठोर अनुभवजन्य जांच करके आरक्षण के प्रयोजनों के लिए पिछड़े वर्गों की पहचान करने में मदद करने वाली पर्याप्त सामग्रियों या दस्तावेजों को इकट्ठा करने और एकत्र करने की आवश्यकता को रेखांकित किया गया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) के मामले में आगे धारित किया कि संवैधानिक पीठ ने आशा व्यक्त की थी कि राज्यों को स्थानीय स्व-शासन

इकाई में आरक्षण के संबंध में नीति निर्माण पर नए सिरे से विचार करना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि ऐसी नीति में ऊपरी/अधिकतम सीमा का पालन किया जाए ताकि अन्य पिछड़े वर्ग के नागरिकों के पक्ष में मौजूदा कोटा की मात्रा को कम किया जा सके और इसे वस्तुनिष्ठ मापदंडों पर यथार्थवादी और मापने योग्य बनाया जा सके।

8.41 माननीय उच्चतम न्यायालय ने विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) में यह भी धारित किया कि संविधान पीठ के फैसले के बाद राज्यों के लिए पिछड़ेपन की प्रकृति और निहितार्थों की समसामयिक कठोर अनुभवजन्य जांच करने के लिए समर्पित आयोग का गठन करना अनिवार्य था। उस आयोग की सिफारिशों के आधार पर, मौजूदा वैधानिक व्यवस्था में संशोधन सहित अनुवर्ती कदम उठाए जाने चाहिए।

8.42 तदनुसार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के अनुसार उत्तर प्रदेश राज्य भी शहरी स्थानीय निकायों के चुनावों के संदर्भ में पिछड़े वर्ग के नागरिकों को उपलब्ध कराए जाने वाले आरक्षण के संबंध में मौजूदा वैधानिक प्रावधानों में संशोधन सहित अपनी नीति पर फिर से विचार करने के लिए बाध्य था।

8.43 यह ऐसा मामला नहीं है जहां राज्य ने स्थानीय स्व-शासन संस्थानों में नागरिकों के पिछड़े वर्ग को आरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से पिछड़ेपन की प्रकृति और निहितार्थ पर अनुभवजन्य अध्ययन करने के लिए समर्पित आयोग की स्थापना की हो और वैधानिक प्रावधानों में उसके बाद आवश्यक परिवर्तन किए गए हों। इस प्रकार, राज्य के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) और विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) में दिए गए निर्णयों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों और निर्देशों का पालन करने में पूरी तरह से विफल रहा है।

8.44 इस प्रकार, उत्तर प्रदेश राज्य को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश का उल्लंघन करने और यह दलील देने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि इन याचिकाओं में मांगी गई राहतों को अस्वीकार करने के लिए राज्य अधिनियमों को चुनौती नहीं दी गई है, क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय में विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) में दोहराया कि राज्यों को स्थानीय स्व-शासन निकायों में आरक्षण के संबंध में विधायी नीतियों सहित अपनी नीतियों पर फिर से विचार करना चाहिए।

8.45 यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि भारत के संविधान का अनुच्छेद 141 सभी को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई घोषणाओं से बांधता है। इसके अलावा, भारत के संविधान का अनुच्छेद 144 स्पष्ट रूप से निर्देश देता है कि भारत क्षेत्र के भीतर सिविल और न्यायिक प्राधिकारी सर्वोच्च न्यायालय की सहायता में कार्य करेंगे।

8.46 तदनुसार, उत्तर प्रदेश राज्य का दायित्व था कि वह अपनी नीति को फिर से तैयार करे, जिसमें कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) और विकास किशनराव गवई (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा घोषित कानून के अनुरूप अपने विधायी प्रावधानों पर नए सिरे से विचार करना भी शामिल था। हालाँकि, राज्य 12 साल की अवधि बीत जाने के बाद भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के अनुसार अपनी नीतियों को फिर से तैयार करने में विफल रहा है, इसलिए याचिका में ली गई दलील कि याचिकाकर्ता इसलिए याचिका में मांगी गई राहत के हकदार नहीं हैं क्योंकि राज्य अधिनियमों को कोई चुनौती नहीं है, मान्य नहीं हैं।

8.47 इस प्रकार, इस मामले में राज्य, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून के गलत पक्ष पर है और इसलिए न्यायालय राज्य को अपनी गलती का लाभ लेने की अनुमति नहीं दे सकता है। गलत काम करने वाला व्यक्ति अपनी गलती का फायदा नहीं उठा सकता है और किसी भी वैध कार्य को विफल करने के लिए किसी भी कानून का सहारा नहीं ले सकता है। वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में कानूनी कहावत कि गलती करने वाला व्यक्ति अपनी गलती से लाभान्वित नहीं होने दिया जा सकता, लागू होती है। कानून का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों को यह कहने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि उनके अपराध की जांच, या परीक्षण नहीं किया जा सकता है, न ही कोई व्यक्ति अपने स्वयं के गलत काम (जस एक्स इंजुरिया नॉन ओरिटुर) से उत्पन्न किसी अधिकार का दावा कर सकता है [देवेंद्र कुमार बनाम राज्य] उत्तरांचल एवं अन्य, 2013 9 एससीसी 363]।

8.48 इस संबंध में कुशेश्वर प्रसाद सिंह बनाम बिहार राज्य और अन्य (2007) 11 एससीसी 447 के मामले में दिए गए फैसले का भी संदर्भ लिया जा सकता है, जिसमें पैरा 16 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार धारित किया है:

"16. यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि किसी व्यक्ति को कानून की अनुकूल व्याख्या हासिल करने के लिए अपनी गलती का अनुचित और गलत लाभ उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। यह अच्छा सिद्धांत है कि जो कोई भी काम करने से रोकता है, उसे अपनी अकर्मण्यता का फायदा नहीं लेने की अनुमित नहीं दी जा सकती। दूसरे शब्दों में कहें तो, "एक गलत काम करने वाले को अपनी गलती से लाभ कमाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।"

8.49 हम भारत सरकार के कानून, न्याय और कंपनी मामलों के मंत्रालय द्वारा प्रकाशित कानूनी शब्दावली से एक कानूनी कहावत भी उद्धृत कर सकते हैं, जो इस प्रकार है:

"कमोडम एक्स इंजुरिया सुआ मेमो हैबेरे डिबेट: किसी व्यक्ति को अपनी गलतियों से लाभ उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। किसी पक्ष को अपनी गलतियों से सुविधा नहीं मिल सकती है, दूसरे शब्दों में किसी को भी

अपने गलत कार्य से लाभ उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है [मृत्युंजय पानी बनाम नर्मदा बाला ससमल और अन्य, ए.आई.आर. 1961 एस.सी.1353]।"

8.50 उपरोक्त कारणों से, हमारी सुविचारित राय है कि राज्य अधिनियमों के वैधानिक प्रावधानों को चुनौती का अभाव, जो स्थानीय शहरी निकायों के चुनावों के संदर्भ में नागरिकों के पिछड़े वर्ग को आरक्षण प्रदान करता है, याचिकाकर्ताओं को इन याचिकाओं में माँगी गई राहत से अयोग्य नहीं बनाता।

8.51 दिनांक 12.12.2022 के सरकारी आदेश की वैधता के संबंध में, राज्य, न्यायालय को संतुष्ट करने में पूरी तरह से विफल रहा है कि यह नगर पालिका अधिनियम या नगर निगम अधिनियम के किसी भी प्रावधान के लिए संदर्भ योग्य है। उक्त सरकारी आदेश दिनांक 12.12.2022 में दिया गया कारण संदीप @ संदीप मेहरोत्रा और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य प्रदत्त दिनांक 05.12.2011 (रिट याचिका संख्या 11226/2011) में दिए गए निर्णय पर आधारित है। हालाँकि, जब हमने उक्त निर्णय का अवलोकन किया तो हम पाते हैं कि उक्त मामले में नगर पालिका अधिनियम की तत्कालीन मौजूदा धारा 10 (ए), जो यह प्रावधान करती है कि जहां किसी अपरिहार्य परिस्थिति में चुनाव नहीं होता है, वहां ऐसी नगर पालिका की सभी शक्तियां, कार्य और कर्तव्य का प्रयोग जिला मजिस्ट्रेट या एक राजपत्रित अधिकारी द्वारा किया जाएगा जो उपायुक्त के पद से नीचे का न हो, को चुनौती दी गई थी। उक्त मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ ने उक्त प्रावधान को रद्द कर दिया और इसे अधिकारातीत असंवैधानिक घोषित कर दिया और आगे उक्त प्रावधान को अवैध, निष्क्रिय और शून्य घोषित कर दिया। हालाँकि, न्यायालय ने नवनिर्वाचित प्रतिनिधियों के काम फिर से शुरू करने तक उक्त व्यवस्था को जारी रखने की अनुमति दी और प्रावधान किया कि नगर पालिकाओं और नगर निगमों के मामलों का प्रबंधन संबंधित नगर निकायों के कार्यकारी अधिकारियों और नगर आयुक्तों द्वारा किया जाएगा। तदनुसार, डिवीजन बेंच द्वारा संदीप उर्फ संदीप मेहरोत्रा (उपरोक्त) के मामले में अपने फैसले दिनांकित 05.12.2011 द्वारा की गई अंतरिम व्यवस्था, दिनांक 05.12.2011 के उक्त फैसले के अनुसार नगर पालिकाओं के गठन पर अपनी प्रभावकारिता खो देती है और इसलिए दिनांक 12.12.2022 का सरकारी आदेश जारी करने के लिए राज्य द्वारा उसकी सहायता नहीं ली जा सकती।

8.52राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के आलोक में ट्रांसजेंडरों को नागरिकों के पिछड़े वर्ग में शामिल करने के लिए इन रिट याचिकाओं में की गई प्रार्थना से संबंधित मुद्दे के संबंध में, हम यह ध्यान रखें कि एक बार समर्पित आयोग स्थानीय निकायों में पिछड़ेपन की प्रकृति और निहितार्थों की समसामयिक कठोर अनुभवजन्य जांच कर ले तो यह राज्य के विवेक द्वारा हो सकता है।

आदेश

ऊपर की गई चर्चा और दिए गए कारणों के आधार पर सभी रिट याचिकाएं निम्नलिखित निर्देशों के अनुसार स्वीकार की जाती हैं:

(क) उत्तर प्रदेश सरकार, शहरी विकास विभाग द्वारा धारा 9-ए (5)(3) के तहत जारी अधिसूचना दिनांकित 05.12.2022 को एतद्द्वारा रद्द किया जाता है।

(ख) राज्य सरकार द्वारा जारी शासनादेश दिनांकित 12.12.2022 को भी रद्द किया जाता है, जिसमें नगर पालिकाओं के बैंक खातों को कार्यकारी अधिकारियों और उत्तर प्रदेश पालिका केंद्रीकृत सेवा (लेखा संवर्ग) के वरिष्ठतम अधिकारी के संयुक्त हस्ताक्षर के तहत संचालन का प्रावधान है।

(ग) आगे यह निर्देशित किया जाता है कि जब तक के. कृष्ण मूर्ति (उपरोक्त) और विकास किशनराव गवली (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनिवार्य ट्रिपल टेस्ट/शर्तें राज्य सरकार द्वारा सभी मामलों में पूरी नहीं हो जातीं, तब तक पिछड़े वर्ग के नागरिकों को कोई आरक्षण नहीं दिया जाएगा और चूंकि नगर पालिकाओं का कार्यकाल या तो समाप्त हो गया है या 31.01.2023 तक समाप्त हो जाएगा और ट्रिपल परीक्षण/शर्तों को पूरा करने की प्रक्रिया कठिन होने के कारण काफी समय लगने की संभावना है, इसलिए यह निर्देश दिया जाता है कि राज्य सरकार/राज्य चुनाव आयोग तुरंत चुनावों को अधिसूचित करेगा। चुनावों को अधिसूचित करते समय अध्यक्षों की सीटें और पद, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित सीटों को छोड़कर, सामान्य/खुली श्रेणी के लिए अधिसूचित की जाएगी।

चुनाव के लिए जारी होने वाली अधिसूचना में संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार महिलाओं के लिए आरक्षण शामिल होगा।

(घ) यदि नगर निकाय का कार्यकाल समाप्त हो जाता है, तो निर्वाचित निकाय के गठन तक ऐसे नगर निकाय के मामलों का संचालन संबंधित जिला मजिस्ट्रेट की अध्यक्षता वाली तीन सदस्यीय समिति द्वारा किया जाएगा, जिसमें कार्यकारी अधिकारी/ मुख्य कार्यकारी अधिकारी/नगर आयुक्त सदस्य होंगे। तीसरा सदस्य जिला स्तरीय अधिकारी होगा जिसे जिला मजिस्ट्रेट द्वारा नामित किया जाएगा।

हालाँकि, उक्त समिति संबंधित नगर निकाय के केवल रोजमर्रा के कार्यों का निर्वहन करेगी और कोई बड़ा नीतिगत निर्णय नहीं लेगी।

हमने भारत के संविधान के अनुच्छेद 243-यू के प्रावधानों द्वारा निर्देशित होते हुए चुनावों को तुरंत अधिसूचित करने का निर्देश जारी किया है, जिसमें कहा गया है कि नगर पालिका के गठन के लिए चुनाव उसकी अवधि समाप्त

होने से पहले पूरा किया जाएगा। हम समझते हैं कि समर्पित आयोग द्वारा सामग्रियों का संग्रह और संकलन एक कठिन और समय लेने वाला कार्य है, हालांकि, भारत के संविधान के अनुच्छेद 243-यू में निहित संवैधानिक अधिदेश के कारण चुनाव द्वारा निर्वाचित नगर निकायों के गठन में देरी नहीं की जा सकती है। इस प्रकार समाज के शासन के लोकतांत्रिक चरित्र को मजबूत करने के लिए, यह आवश्यक है कि चुनाव जल्द से जल्द हों, जिसके लिए इंतजार नहीं किया जा सकता।

हम यह भी निर्देश देते हैं कि एक बार शहरी स्थानीय निकायों के चुनावों के संदर्भ में नागरिकों के पिछड़े वर्ग को आरक्षण प्रदान करने के प्रयोजनों के लिए पिछड़ेपन की प्रकृति और निहितार्थ के बारे में अनुभवजन्य अध्ययन करने के लिए समर्पित आयोग का गठन हो जाए, फिर ट्रांसजेंडरों को नागरिकों के पिछड़े वर्ग में शामिल करने पर भी विचार किया जाएगा।

(ङ) लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 1 ILRA 912
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: ,इलाहाबाद 04.01.2023

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल
माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

जनहित याचिका सं. 2440 सन् 2022

प्रोफेसर विनीता सिंह ...याचिकाकर्ता
बनाम
उ.प्र. राज्य एवं अन्य ...प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता:
: श्री शिवम यादव

प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ता:
: सी.एस.सी., श्री पंकज कुमार शुक्ल, श्री लाल देव चौरसिया, श्री अवनीश त्रिपाठी

सिविल कानून - पी. राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 - धारा 2(3), 4(1-ए), 4(4) और 5:- विश्वविद्यालय की भूमि का पट्टा विलेख - जिला मजिस्ट्रेट द्वारा निष्पादित - एक विशाल विद्युत उप-स्टेशन की स्थापना के लिए - कार्यकारी परिषद और विश्वविद्यालय के कुलपति ने विश्वविद्यालय की सहमति या अनुमति के बिना, पावर कार्पोरेशन द्वारा एक सब-स्टेशन की स्थापना के उद्देश्य से विश्वविद्यालय की भूमि के अनधिकृत उपयोग को रोकने के लिए कोई कदम नहीं उठाया है, - क्या वर्तमान में प्रस्तुत जनहित याचिका में जनहित कायम है - अदालत ने माना कि याचिका में गुड-दोष के आधार पर कोई भी सार्वजनिक हित शामिल नहीं है, क्योंकि, एक बड़े सब-स्टेशन स्थापना के मामले में लिया गया निर्माण अन्य क्षेत्रों के अलावा विश्वविद्यालय के हितों को भी पूरा करेगा - लीज डीड के अवलोकन पर यह पाया गया कि जिस सरकारी भूमि पर उप-स्टेशन की स्थापनाकी गई है वह पावर कॉर्पोरेशन के पक्ष में राज्यपाल की ओर से कलेक्टर द्वारा लीज डीड निष्पादित की गई है - याचिका में प्रामाणिकता का अभाव है, यह याचिकाकर्ता पर 50,000/- रुपये के जुर्माने के साथ खारिज किए जाने योग्य है - तदनुसार निर्देश दिया गया । (अनुच्छेद – 11, 12)

परिणाम - रिट याचिका खारिज (ई-11)

(माननीय मुख्य न्यायाधीश राजेश बिंदल & माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर)

1. याचिकाकर्ता एक सेवानिवृत्त प्रोफेसर और संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी (संक्षेप में, 'विश्वविद्यालय') के आधुनिक भाषा एवं भाषा विज्ञान विभाग के पूर्व प्रमुख हैं। सेवा में रहते हुए, उन्होंने विश्वविद्यालय में फ्रेंच भाषा पढ़ाती थी और वर्ष 2018 में सेवानिवृत्त हो गईं।

2. याचिकाकर्ता का पक्ष है कि सेवानिवृत्ति के बाद, उन्होंने खुद को सामाजिक जीवन तक ही सीमित कर लिया है, साथ ही साथी नागरिकों के जीवन को बेहतर बनाने के लिए भी समय दे रही है। याचिकाकर्ता का कहना है कि उन्होंने विश्वविद्यालय में 39 वर्षों तक काम किया है। याचिकाकर्ता का कहना है कि उन्हें पता चला है कि जिला मजिस्ट्रेट, वाराणसी ने कानून की अनदेखी करते हुए विश्वविद्यालय की भूमि को 13 सितंबर, 2022 के एक पंजीकृत पट्टा विलेख के माध्यम से उत्तर प्रदेश पावर ट्रांसमिशन कॉरपोरेशन के पक्ष में उक्त निगम को

अनूदित

विश्वविद्यालय की भूमि पर एक विशाल विद्‌युत उप-स्टेशन स्थापित करने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से आवंटित कर दिया है। विश्वविद्यालय में निर्बाध बिजली आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए निगम द्वारा पहले से ही एक छोटा सब-स्टेशन स्थापित किया गया है। याचिकाकर्ता के मुताबिक जिलाधिकारी द्वारा प्रश्नगत पट्टा विलेख के माध्यम से जो जमीन उ.प्र. पावर ट्रांसमिशन कॉर्पोरेशन को पट्टे पर दी गई है वह विश्वविद्यालय की भूमि है। राज्यपाल के नाम पर कार्य करने वाले जिला मजिस्ट्रेट के पास पावर कॉर्पोरेशन के पक्ष में उपरोक्त पट्टा विलेख निष्पादित करने का न तो अधिकार है और न ही क्षेत्राधिकार। विश्वविद्यालय के अधिकारी मूकदर्शक बने हुए हैं और उन्होंने जिला मजिस्ट्रेट को विश्वविद्यालय की भूमि को विद्‌युत निगम को पट्टा पर देने से रोकने के लिए कोई कदम नहीं उठाया है।

3. याचिकाकर्ता के अनुसार, विश्वविद्यालय की जो भूमि जिला मजिस्ट्रेट द्वारा निगम को पट्टे पर दी गई है, वह ऐसी भूमि है जिसका प्रबंधन या निपटान विश्वविद्यालय द्वारा ही किया जा सकता है। इसका उपयोग भविष्य में विश्वविद्यालय के विस्तार के लिए किया जाना है। विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद इस मामले में निर्णय लेने के लिए सक्षम निकाय है, लेकिन कार्यकारी परिषद और विश्वविद्यालय के कुलपति ने विश्वविद्यालय की सहमति या अनुमति के बिना, विद्‌युत निगम द्वारा उपकेन्द्र की स्थापना हेतु विश्वविद्यालय की भूमि के अनधिकृत उपयोग को रोकने के लिए कोई कदम नहीं उठाया है।

4. हमने जनहित से संबंधित होने का दावा करने वाली रिट याचिका के समर्थन में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को विस्तार से सुना है।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, पावर कॉरपोरेशन द्वारा विद्‌युत उप-स्टेशन स्थापित करने के उद्देश्य से पट्टा विलेख निष्पादित करने में जिला मजिस्ट्रेट की कार्रवाई से विश्वविद्यालय का क्षेत्र कम हो गया है जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 (संक्षेप में, ''अधिनियम') की धारा 2 (3) के तहत परिभाषित किया गया है। उनका कहना है कि यह केवल अधिनियम की धारा 4(4) के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार किया जा सकता है, जिसमें कहा गया है कि विश्वविद्यालय के क्षेत्र को कम करने का निर्णय राज्य सरकार द्वारा राजपत्र में अधिसूचना द्वारा लिया जा सकता है और ऐसा अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (4) के परंतुक के अनुसार राज्य विधानमंडल के दोनों सदनों के संकल्प द्वारा पूर्व अनुमोदन से किया जा सकता है।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय से कहा कि ऐसा नहीं है कि राज्य सरकार अधिनियम द्वारा विश्वविद्यालय या किसी अन्य विश्वविद्यालय के क्षेत्र को कम करने का निर्णय ले सकती है, और राजपत्र में अधिसूचना द्वारा भी ऐसा कर सकती है। राज्य सरकार के इस प्रकार के निर्णय को पहले राज्य विधानमंडल के दोनों सदनों द्वारा पारित प्रस्तावों द्वारा अनुमोदित किया जाना चाहिए, उसके बाद ही राज्य सरकार के निर्णय को राजपत्र में प्रकाशन द्वारा अधिसूचित किया जा सकता है।

7. यहां, विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, निर्णय क़ानून द्वारा परिकल्पित तरीके से नहीं लिया गया है। यह निर्णय राज्यपाल के नाम पर कार्य करते हुए कलेक्टर द्वारा लिया गया है, जो अधिनियम की धारा 4(4) के अधिकार क्षेत्र से बाहर है। अधिनियम की धारा 4 की उप-धारा (1-ए) और 4 तथा धारा 5 भी नीचे उद्‌धृत की गई हैं:

"4. नए विश्वविद्यालयों की स्थापना और विश्वविद्यालयों के क्षेत्रों या नामों में परिवर्तन।--(1) x x x x

(1-ए) ऐसी तारीख या तारीखों से, जो राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस संबंध में निर्धारित की जाए, निम्नलिखित की स्थापित किया जाएगा--

(क) झाँसी में बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय;

(ख) अयोध्या में अवध विश्वविद्यालय, जिसे 18 जून, 1994 से डॉक्टर राम मनोहर लोहिया विश्वविद्यालय, अयोध्या कहा जाएगा, और 11 जुलाई, 1995 से डॉक्टर राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या कहा जाएगा

;

(ग) बरेली में रोहिलखंड विश्वविद्यालय, जो उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय (द्वितीय संशोधन) अधिनियम, 1997 के प्रारंभ होने की तारीख से महात्मा ज्योतिबा फुले रोहिलखंड विश्वविद्यालय, बरेली कहा जाएगा;

(घ) जौनपुर में पूर्वांचल विश्वविद्यालय के नाम से जाना जाने वाला विश्वविद्यालय, जो उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय (संशोधन) अधिनियम, 1999 के प्रारंभ

होने की तारीख से "वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर" कहा जाएगा;

(ङ) ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती भाषा विश्वविद्यालय, लखनऊ के नाम से जाना एक विश्वविद्यालय;

(च) सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थ नगर के नाम से एक विश्वविद्यालय;

(छ) प्रोफेसर राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज के नाम से एक विश्वविद्यालय;

(ज) जननायक चन्द्रशेखर विश्वविद्यालय, बलिया के नाम से एक विश्वविद्यालय;

(i) माँ शाकुंभरी विश्वविद्यालय, सहारनपुर के नाम से एक विश्वविद्यालय;

(झ) महाराजा सुहेल देव राज्य विश्वविद्यालय, आज़मगढ़ के नाम से एक विश्वविद्यालय ;

(ञ) राजा महेंद्र प्रताप सिंह राज्य विश्वविद्यालय, अलीगढ़ के नाम से एक विश्वविद्यालय;

अनुसूची में क्रमशः निर्दिष्ट क्षेत्रों के लिए।

(4) राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा--

(क) किसी विश्वविद्यालय का क्षेत्र बढ़ा सकती है ;

(ख) किसी विश्वविद्यालय का क्षेत्र कम कर सकती है; या

(ग) किसी विश्वविद्यालय का नाम बदल सकती है :

बशर्ते कि ऐसी कोई भी अधिसूचना राज्य विधानमंडल के दोनों सदनों के संकल्प द्वारा पूर्व अनुमोदन के बिना जारी नहीं की जाएगी।

"5. शक्तियों का क्षेत्रीय प्रयोग.--(1) इस अधिनियम द्वारा या इसके तहत उपबंधित के अन्यथा, प्रत्येक विश्वविद्यालय (संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय के अलावा) को प्रदत्त शक्तियां अनुसूची में इसके विरुद्ध निर्दिष्ट समय के लिए क्षेत्र के संबंध में प्रयोग की जाएंगी।

(2) संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय भारत के किसी भी हिस्से में स्थित संस्थानों को संबद्ध कर सकता है और ऐसे क्षेत्र या विदेश से शिक्षकों को मान्यता दे सकता है और अपनी परीक्षाओं में उम्मीदवारों को प्रवेश दे सकता है:

बशर्ते कि विश्वविद्यालय--

(क) उत्तर प्रदेश के बाहर किसी संस्था को संबद्ध नहीं करेगा; या

(ख) उत्तर प्रदेश के बाहर स्थित और किसी सरकार द्वारा संचालित संस्थान में कार्यरत किसी भी शिक्षक को मान्यता नहीं देगा;

संबंधित सरकार के अनुमोदन को छोड़कर।

(3) एवं (4) x x x

(5) उपधारा (1) में निहित किसी भी बात के बावजूद, पूरे उत्तर प्रदेश में होम्योपैथिक शैक्षणिक या शिक्षण संस्थान डॉ. भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा या छत्रपति] शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर से संबद्ध हो सकते हैं।

(6) धारा 37 की उपधारा (1) या उपधारा (1) में निहित किसी भी बात के बावजूद, भारतीय चिकित्सा डिग्री अधिनियम 1916 में यथा परिभाषित पश्चिमी चिकित्सा विज्ञान में शिक्षा या निर्देश प्रदान करने के लिए उत्तर प्रदेश में कहीं भी स्थापित या स्थापित किए हेतु प्रस्तावित इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिकी या प्रबंधन संस्थान , राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में जारी किए गए निर्देशों के अधीन, किसी भी विश्वविद्यालय से संबद्ध हो सकता है।

(7) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती भाषा विश्वविद्यालय, लखनऊ को भारतीय और विदेशी भाषाओं की शिक्षा और अनुसंधान और उनके ज्ञान की उन्नति और प्रसार के संबंध में प्रदत्त शक्ति पूरे उत्तर प्रदेश राज्य में प्रयोग की जाएगी।"

8. अधिनियम से जुड़ी अनुसूची, जो उन क्षेत्रों को परिभाषित करती है जिनके भीतर विश्वविद्यालय, जैसा कि इसे क़ानून द्वारा कहा गया है, अनुसूची के माध्यमस क्षेत्राधिकार का प्रयोग करेगी निम्नवत है :

" अनुसूची

(धारा 5 देखें)

क्र. सं.	विश्वविद्यालय का नाम	वे क्षेत्र जिनके भीतर विश्वविद्यालय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करेगा
1.	लखनऊ विश्वविद्यालय	हरदोई, लखनऊ, लखीमपुर खीरी, सीतापुर और रायबरेली जिले
2.	चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ	बागपत, बुलन्दशहर, गौतम बुद्ध नगर, गाजियाबाद, हापुड, मेरठ, मुजफ्फर नगर, सहारनपुर और शामली जिले।
	(i)सहारनपुर राज्य विश्वविद्यालय, सहारनपुर	बागपत, बुलन्दशहर, गौतमबुद्ध नगर, गाजियाबाद, हापुड और मेरठ जिले।

	की स्थापना तक (ii) सहारनपुर राज्य विश्वविद्यालय, सहारनपुर की स्थापना पर	
3.	छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर	औरैया, इटावा, फर्रुखाबाद, कन्नौज, कानपुर देहात, कानपुर नगर और उन्नाव जिले।
4.	दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (i) सिद्धार्थ विश्वविद्यालय की स्थापना तक (ii) सिद्धार्थ विश्वविद्यालय की स्थापना पर	बस्ती,देवरिया,गोरखपुर,कुशीनगर,महाराजगंज,संत कबीर नगर और सिद्धार्थ नगर जिले जनपद-देवरिया,कुशीनगर एवं गोरखपुर
5.	डॉक्टर भीम राव अंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा (i) राजा महेंद्र प्रताप सिंह राज्य विश्वविद्यालय, अलीगढ़ की स्थापना तक (ii) राजा महेंद्र प्रताप सिंह राज्य विश्वविद्यालय, अलीगढ़ की स्थापना पर	आगरा, अलीगढ, एटा, फिरोजाबाद, हाथरस, कागंज, मैनपुरी और मथुरा जिले आगरा, फ़िरोज़ाबाद, मैनपुरी और मथुरा जिले
6.	डॉक्टर राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या	अम्बेडकरनगर,अमेठी,अयोध्या,बहराइच,बारा बांकी,गोंडा और सुल्तानपुर जिले।
7.	महात्मा ज्योतिबा फुले रोहिल खंड विश्वविद्यालय, बरेली	बदायूँ, बरेली, बिजनोर, ज्योतिबा फुले नगर, मोरादाबाद, पीलीभीत, रामपुर [सम्भल और शाहजहाँपुर] जिले
8.	बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी	बांदा, चित्रकुट, हमीरपुर, जालौन, झाँसी, ललितपुर और महोबा जिले
9.	वीर बहादुर सिंह पूर्वान्चल विश्वविद्यालय, जौनपुर- (i) आज़मगढ़	आज़मगढ़, ग़ाज़ीपुर, जौनपुर और मऊ जिले। ग़ाज़ीपुर और जौनपुर जिले]

अनुवादित

	राज्य विश्वविद्यालय, आज़मगढ़ की स्थापना तक (ii) आज़मगढ़ राज्य विश्वविद्यालय, आज़मगढ़ की स्थापना पर	
10.	महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी- (i) जननायक चन्द्रशेखर विश्वविद्यालय, बलिया की स्थापना तक (ii) जननायक चन्द्रशेखर विश्वविद्यालय, बलिया की स्थापना पर।	बलिया, चंदौली, मिर्ज़ापुर, संत रविदास नगर, सोनभद्र और वाराणसी जिले चंदौली, मिर्ज़ापुर, संत रविदास नगर, सोनभद्र और वाराणसी जिले
11.	ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती भाषा विश्वविद्यालय, लखनऊ	उर्दू, अरबी और फ़ारसी में शिक्षा और शोध के संबंध में संपूर्ण उत्तर प्रदेश
12.	प्रोफेसर राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज	फ़तेहपुर, कौशांबी, प्रतापगढ़ और प्रयागराज जिले।]
13.	सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर	बलरामपुर, बस्ती, महराजगंज श्रावस्ती, सिद्धार्थ नगर और संत कबीर नगर जिले।
14.	जननायक चन्द्रशेखर विश्वविद्यालय, बलिया	बलिया जिला
15.	माँ शाकुंभरी विश्वविद्यालय, सहारनपुर	मुजफ्फर नगर, सहारनपुर और शामली जिले।
16.	महाराजा सुहेल देव राज्य विश्वविद्यालय, आज़मगढ़	आज़मगढ़ और मऊ जिले
17.	राजा महेंद्र प्रताप सिंह राज्य विश्वविद्यालय, अलीगढ़	अलीगढ़, एटा, हाथरस, कासगंज जिले

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर, हमने पाया कि अधिनियम की धारा 2(3), धारा 4(1-ए), 4(4) और 5 का अधिनियम से जुड़ी अनुसूची के साथ संयुक्त वाचन से, इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता कि धारा 2(3) में संदर्भित 'विश्वविद्यालय का क्षेत्र' का विश्वविद्यालय परिसर से कोई संबंध नहीं है। इसका उस भूमि क्षेत्र से कोई लेना-देना नहीं है, जिस पर विश्वविद्यालय स्थापित है। इसके बजाय, विश्वविद्यालय के क्षेत्र का स्पष्ट अर्थ वह क्षेत्र

अनुवादित

है जिसके अंतर्गत विश्वविद्यालय के पास अधिनियम में उल्लिखित संबद्धता शक्तियाँ या अन्य शक्तियाँ हैं।

10. याचिकाकर्ता का यह कहने का प्रयास है कि "विश्वविद्यालय का क्षेत्र" का अर्थ उसके परिसर का भूमि क्षेत्र है, जिसे अधिनियम की धारा 4(4) के विपरीत कम नहीं किया जा सकता है, पूरी तरह से गलत धारणा पर आधारित है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को तथ्य बताए जाने पर, उनके पास कोई ठोस जवाब नहीं था, लेकिन याचिकाकर्ता से प्राप्त इंस्ट्रक्शन पर यह कहने का प्रयास किया कि अधिनियम की धारा 2(3) के तहत "विश्वविद्यालय के क्षेत्र" का अर्थ वह भूमि है, जिस पर परिसर स्थित है।

11. हमारी राय है कि याचिका न केवल पूरी तरह से गलत है, बल्कि याचिकाकर्ता द्वारा किसी बाहरी उद्देश्य के लिए दायर की गई है। वह विश्वविद्यालय की एक सेवानिवृत्त प्रोफेसर हैं और जाहिर तौर पर कुछ हिसाब-किताब तय करने के अलावा उनका परिसर से कोई लेना-देना नहीं है। याचिका में मेरिट के आधार पर कोई भी सार्वजनिक हित शामिल नहीं है, क्योंकि एक बड़े सब-स्टेशन की स्थापना से अन्य क्षेत्रों के अलावा विश्वविद्यालय के हित भी पूरे होंगे। पट्टा विलेख को देखने पर हमें यह भी पता चला कि जिस भूमि पर सब-स्टेशन स्थापित किया गया है वह सरकारी भूमि है और इस कारण से, पट्टा विलेख पावर कॉर्पोरेशन के पक्ष में राज्यपाल की ओर से कलेक्टर द्वारा 29 वर्ष , 11 महीने और 29 दिन की अवधि के लिए निष्पादित किया गया है।

12. याचिका पूरी तरह से गलत है और इसमें प्रामाणिकता का अभाव है, इसलिए इसे भारी वादव्यय लगाकर खारिज किया जाना चाहिए । तदनुसार, याचिकाकर्ता पर 50,000/- रुपये, का जुर्माना लगाते हुए इसे खारिज किया जाता है, जिसे यदि रजिस्ट्रार जनरल, इलाहाबाद उच्च न्यायालय मध्यस्थता और सुलह केंद्र के खाते में एक महीने के भीतर जमा नहीं किया जाता है, तो जिला मजिस्ट्रेट, वाराणसी द्वारा भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल किया जाएगा और उपरोक्त खाते में जमा कराया जाएगा।

13. इस आदेश को रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा जिला मजिस्ट्रेट, वाराणसी को संसूचित किया जाए ।

(2023) 1 ILRA 916
अपीलीय क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 13.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-I

आपराधिक अपील संख्या-98 वर्ष 1989

दिगंबर सिंह व अन्य ... अपीलकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य ... प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:
श्री एस.डी.एन सिंह, श्री अभिनव द्विवेदी

प्रतिवादी के अधिवक्ता:
अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता

दंड विधि- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 357- प्रतिकर- अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम, 1958 - धारा 4 और 5 - आनुपातिक सजा- अभियुक्त दिगंबर सिंह और धनपाल सिंह के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 323/34 और 325/34 के तहत आरोप उचित संदेह से परे साबित होता है - वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और साथ ही ऊपर वर्णित कानून की स्थिति को ध्यान में रखते हुए और यह देखते हुए कि घटना लगभग 39 वर्ष हुई थी; और क्षड़िक आवेग में हुई थी; और अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 और 5 के प्रावधानों पर विचार करते हुए यह उचित प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता आरोपी दिगंबर सिंह और धनपाल सिंह को अधिनियम की धारा 4 (1) के तहत परिवीक्षा पर रिहा किया जाए - प्रत्येक अपीलकर्ता को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से एक महीने की अवधि के भीतर 5000/- रुपये जमा करने का निर्देश दिया जाता है, जो घायलों को भुगतान किया जाएगा।

हालांकि अपीलकर्ताओं के खिलाफ आरोप साबित हो गए हैं, लेकिन अपराध के होने के बाद से एक लंबा समय बीत चुका है, और वह क्षड़िक आवेग में हुआ था और अपीलकर्ताओं का पहला अपराध था, इसलिए पीड़ितों को उचित मुआवजा प्रदान करके न्याय का लक्ष्य हासिल किया जाएगा। (पैरा 17, 24, 26)

आपराधिक अपील का निपटान किया गया। (ई-3)

<u>केस लॉ/निम्न न्याय निर्णयों पर भरोसा किया गया</u>:-

1. अभियुक्त 'X' बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2019) 7 एस.सी.सी. 1)
2. मध्य प्रदेश राज्य बनाम विक्रम दास (2019) 4 एस.सी.सी. 125)
3. मनोहर सिंह बनाम राजस्थान राज्य और अन्य, (2015) 3 एस.सी.सी. 449

(माननीय न्यायमूर्ति सुरेंद्र सिंह-I द्वारा प्रदत)

1. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री शैलेन्द्र कुमार त्रिपाठी को जो श्री अभिनव द्विवेदी के ब्रीफ़ होल्डर हैं, और राज्य की ओर से उपस्थित अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री सुनील कुमार त्रिपाठी को सुना।

2. यह आपराधिक अपील विशेष न्यायाधीश (आवश्यक वस्तु अधिनियम), फर्रुखाबाद द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 21.12.1988 के खिलाफ सत्र विचारण संख्या-113 वर्ष 1984 (राज्य बनाम दिगंबर सिंह और तीन अन्य) से उत्पन्न केस अपराध संख्या-7 वर्ष 1983 से उत्पन्न धारा 302 भ०द०वि० पीएस थाथिया, जिला फर्रुखाबाद के तहत दायर की गई है। अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा दायर स्थिति रिपोर्ट के अनुसार, उपरोक्त बरी करने के आदेश के खिलाफ कोई सरकारी आपराधिक अपील दायर नहीं की गई है।

3. आक्षेपित आदेश द्वारा, विचारण न्यायालय ने आरोपी अपीलकर्ता दिगंबर सिंह, बच्चू सिंह और धनपाल सिंह को धारा 323 भ०द०वि० के साथ धारा 34 भ०द०वि० सपठित धारा 325 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया है और प्रत्येक आरोपी को धारा 323 भ०द०वि० के तहत एक साल के कठोर कारावास के साथ 1,000 रुपये के जुर्माने और धारा 325 भ०द०वि० के तहत तीन साल के सश्रम कारावास के साथ 2,000 रुपये के जुर्माने के साथ दोषी ठहराया है। विचारण न्यायालय ने सभी आरोपियों को धारा 302 सपठित धारा 34 भ०द०वि० के तहत लगाए गए सभी आरोपों से बरी कर दिया है।

4. आपराधिक अपील के लंबित रहने के दौरान, अपीलकर्ता संख्या-3 बच्चू सिंह की मृत्यु हो गई और उसके खिलाफ आपराधिक कार्यवाही समाप्त कर दी गई। इस प्रकार, अपीलकर्ता दिगंबर सिंह और धनपाल सिंह द्वारा दायर आपराधिक अपील का फैसला इस न्यायालय द्वारा किया जाना है।

5. संक्षेप में अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि अपीलकर्ता आरोपी दिगंबर सिंह और बच्चू सिंह सगे भाई हैं और आरोपी धनपाल सिंह बच्चू सिंह का बेटा है। सूचनाकर्ता लखन सिंह पुत्र कुंवर सिंह निवासी ग्राम मनअपुरवा, परगना नरसाई, थाना ठठिया, जिला फर्रुखाबाद है। सूचनाकर्ता लखन सिंह और अपीलकर्ता आरोपी रिश्तेदार हैं। सूचनाकर्ता लखन सिंह का चाचा मुकुट सिंह आरोपी धनपाल सिंह से 150 रुपये मांगने गया था, जो उसने लगभग 5-6 साल पहले मुकुट सिंह से उधार लिया था। बार-बार मांगने के बाद भी धनपाल सिंह ने लोन की रकम नहीं चुकाई। दिनांक 11.01.1983 को सायं 5.00 बजे ग्राम मन्नापुरवा, परगना नरसाई, थाना ठठिया, जिला फर्रुखाबाद में मुकुट सिंह गए और धनपाल सिंह से ऋण राशि का भुगतान करने को कहा। धनपाल सिंह ने कर्ज की रकम चुकाने से इनकार कर दिया और गाली-गलौज की। मुकुट सिंह ने गाली देने से मना किया, आरोपी बच्चू सिंह और धनपाल सिंह ने मुकुट सिंह की पिटाई शुरू कर दी। मुकुट सिंह द्वारा शोर मचाने पर सूचनाकर्ता लखन सिंह, उसके पिता कुंवर सिंह घटनास्थल पर पहुंचे, इसके बाद आरोपी दिगंबर सिंह, बच्चू सिंह और धनपाल सिंह अपने घर से लाठी ले आए और लखन सिंह और उसके पिता कुंवर सिंह को पीटना शुरू कर दिया। उन्होंने मुकुट सिंह के साथ भी मारपीट की। कुंवर सिंह के सिर पर चोट लगी और वह जमीन पर गिर गया, जिसकी बाद में मौत हो गई। अ०सा० इंद्रपाल सिंह और किशनपाल घटनास्थल पर पहुंचे और उन्होंने घटना देखी और पीछा करने पर सभी आरोपी मौके से भाग गए। घटना में कुंवर सिंह की मौत हो गई और सूचनाकर्ता लखन सिंह और उसके चाचा मुकुट सिंह लाठी से घायल हो गए। सूचनाकर्ता लखन सिंह ने लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-9) तैयार की, जिसके आधार पर दिनांक 11.01.1983 को रात्रि 9.30 बजे अपराध संख्या-7 वर्ष 1983 के रूप में अभियुक्त दिगंबर सिंह, गोरखनाथ सिंह, बच्चू सिंह एवं धनपाल सिंह के विरूद्ध धारा 302 भ०द०वि० के अंतर्गत चिक प्राथमिकी प्रदर्श क-6 है। आपराधिक मामले का पंजीकरण जी.डी. में दर्ज किया गया था जो प्रदर्श क-9 है।

6. घायल मुकुट सिंह की मेडिकल जांच दिनांक 12.01.1983 को प्रातः 9.00 बजे राजकीय औषधालय ठठिया में डॉ. डी.पी. बाजपेयी (प्रदर्श क- 4) द्वारा की गई। दाहिने घुटने के जोड़ पर दर्द के दो निशान और शिकायत पाई गई। घायल लखन सिंह की दिनांक 12.01.1983 को प्रातः 9.30 बजे राजकीय औषधालय ठठिया (प्रदर्श क-5) में चिकित्सा जांच की गई। उसके शरीर के विभिन्न हिस्सों में घाव और खरोंच सहित आठ चोटें पाई गईं।

7. मृतक कुंवर सिंह का पंचनामा उपनिरीक्षक बी.एस. तोमर द्वारा किया गया। मामले की जांच उपनिरीक्षक के.के. शर्मा और डी.एस. दीक्षित द्वारा की गई, जिन्होंने घटनास्थल से खून से सनी और सादा मिट्टी एकत्र की और फ़र्द बरामदगी (प्रदर्श क-12) तैयार किया। उन्होंने खून से सना तौलिया भी अपने कब्जे में ले लिया, जिसका फ़र्द बरामदगी प्रदर्श क-11 है। विवेचनाधिकारी ने घटनास्थल का दौरा किया और नक्शा नज़री (प्रदर्श क-13) तैयार किया और गवाहों के बयान दर्ज किए और जांच के बाद दिगंबर सिंह, गोरखनाथ सिंह, बच्चू सिंह और धनपाल सिंह के खिलाफ धारा 302 भ०द०वि० के तहत आरोप पत्र (प्रदर्श क-20) प्रस्तुत किया।

8. कुँवर सिंह के शव का शव परीक्षण दिनांक 13.01.1983 को अपरान्ह 2.30 बजे चिकित्सा अधिकारी डॉ. सर्वेश चन्द्र गुप्ता द्वारा जिला अस्पताल फतेहगढ़ में किया गया और शव परीक्षण रिपोर्ट तैयार की गई जो कि प्रदर्श क-2 है। मृतक के शरीर के अलग-अलग हिस्सों पर मृत्यु पूर्व चोट के नौ के निशान पाए गए। चिकित्सा

अधिकारी डॉ. सर्वेश चंद्र गुप्ता की राय के अनुसार कुंवर सिंह की मौत लाठी से लगी चोटों के कारण हुई।

9. दिनांक 05.07.1985 को न्यायालय ने अभियुक्त दिगंबर सिंह, गोरखनाथ सिंह, बच्चू सिंह एवं धनपाल सिंह के विरुद्ध धारा 302 और धारा 34 भ०द०वि० के अंतर्गत आरोप विरचित किए। आरोपियों/अभियुक्तों को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उन्होंने इन्कार किया और विचारण चाहा।

10. आरोप साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने अ०सा०-1 लखन सिंह, अ०सा०-2 मुकुट सिंह और अ०सा०-3 इंद्रपाल सिंह को तथ्य के गवाह के रूप में पेश किया। अभियोजन पक्ष ने अ०सा०-4 डॉ सर्वेश चंद्र गुप्ता, अ०सा०-5 डॉ डी.पी बाजपेयी, अ०सा०-6 कमल किशोर, अ०सा०-7 हेड कांस्टेबल जगन्नाथ प्रसाद और अ०सा०-8 उप-निरीक्षक बीएस तोमर और अ०सा०-9 उप-निरीक्षक देवी शंकर की औपचारिक गवाहों के रूप में भी पूछताछ की। औपचारिक गवाहों ने चोट की रिपोर्ट, शव परीक्षण रिपोर्ट और अभियोजन पक्ष के अन्य कागजात साबित किए।

11. 08.01.1988 को, अदालत ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्तों का बयान दर्ज किया, जिन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले से इनकार किया। उन्होंने कहा कि गवाह रंजिश के चलते गलत बयान दे रहे हैं।

12. आरोपी ने ब०सा०- 1 सुधार सिंह, ब०सा०- 2 विपुल संग्राम सिंह से पूछताछ की। उनके बचाव में, सीडब्ल्यू-1 महेंद्र सिंह, कांस्टेबल को अदालत के गवाह के रूप में पूछताछ की गई थी।

13. अ०सा०-1 लखन सिंह ने अपने साक्ष्य में गवाही दी है कि कुंवर सिंह उसका पिता है। अपीलकर्ता आरोपी दिगंबर सिंह और धनपाल सिंह सगे भाई हैं। अपीलकर्ता आरोपी धनपाल सिंह बच्चू सिंह का बेटा है। आरोपी अपने दादा के सगे भाइयों के बेटे हैं। अ०सा०-1 लखन सिंह ने दिनांक 01.01.1986 के अपने साक्ष्य में गवाही दी है कि लगभग तीन साल पहले, शाम 5.00 बजे उनके चाचा मुकुट सिंह 150 रुपये वापस लेने के लिए धनपाल सिंह के घर गए थे, जो उन्होंने उन्हें लगभग 3-4 साल पहले ऋण के रूप में दिए थे। धनपाल सिंह ने राशि चुकाने से इनकार कर दिया और अपने चाचा मुकुट सिंह को गाली दी। जब उसके चाचा ने उसे गाली देने से मना किया तो धनपाल सिंह, बच्चू सिंह और दिगंबर सिंह ने उसे मुट्ठियों से पीटा। मुकुट सिंह के शोर मचाने पर उसके पिता कुंवर सिंह उसे बचाने के लिए वहां आए। अपीलकर्ताओं ने आरोपी दिगंबर सिंह, बच्चू सिंह और धनपाल सिंह पर और उसके पिता कुंवर सिंह पर लाठी से हमला किया। पिता के सिर पर चोट आई और वह मौके पर ही गिर गए। अ०सा०-1 लखन सिंह और अ०सा०-2 मुकुट सिंह द्वारा शोर मचाए जाने पर गवाह इंद्रपाल सिंह और किशनपाल सिंह मौके पर पहुंचे। उनके आने पर आरोपी घटनास्थल से फरार हो गए। अ०सा०-1 लखन सिंह ने अपने साक्ष्य में गवाही दी है कि उसकी और उसके चाचा मुकुट सिंह की सरकारी अस्पताल ठठिया में मेडिकल जांच की गई थी। अ०सा०-1 लखन सिंह ने भी अपनी लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) साबित की है।

14. इस प्रकार अ०सा०-1 लखन सिंह ने अपने साक्ष्य द्वारा घटना की तारीख, समय और स्थान को साबित किया है। उन्होंने आरोपी दिगंबर सिंह, बच्चू सिंह और धनपाल सिंह की संलिप्तता और उनके द्वारा प्राप्त चोटों को भी साबित किया है। उन्होंने यह भी साबित कर दिया है कि आरोपियों ने उन्हें और उनके चाचा मुकुट सिंह को किस तरह से चोट पहुंचाई। अ०सा०-1 लखन सिंह ने यह भी साबित किया है कि आरोपी ने उसके पिता कुंवर सिंह के सिर पर हमला किया, जिससे उसकी खोपड़ी टूट गई, जिससे उसकी मौत हो गई।

15. अ०सा०-2 घायल मुकुट सिंह और अ०सा०-3 इंद्रपाल सिंह ने भी अपने साक्ष्य दिनांक, समय और घटना की जगह से साबित कर दिया है जिसमें आरोपी ने उसे और अ०सा०-1 लखन सिंह को चोट पहुंचाई थी। अ०सा०-2 घायल मुकुट सिंह और अ०सा०-3 इंद्रपाल सिंह ने यह भी साबित किया है कि आरोपियों ने लखन सिंह के पिता कुंवर सिंह के सिर पर हमला किया, जिससे उनकी खोपड़ी की हड्डी टूट गई, जिससे उनकी मौत हो गई।

16. अ०सा०-1 लखन सिंह और अ०सा०-2 मुकुट सिंह घायल गवाह हैं। घटनास्थल पर उनकी उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता है। अ०सा०-3 इंद्रपाल सिंह के साक्ष्य से भी मौके पर उसकी मौजूदगी पर विश्वास किया जा सकता है। इस प्रकार, अ०सा०-3 इंद्रपाल सिंह भी चश्मदीद गवाह है और उसने घटना देखी है। अ०सा०-1 लखन सिंह, अ०सा०-2 मुकुट सिंह और अ०सा०-3 इंद्रपाल सिंह के साक्ष्य ठोस, सत्य और विश्वसनीय प्रतीत होते हैं। उनकी जिरह में ऐसा कुछ भी नहीं आता है जो इसे गलत या अविश्वसनीय बनाता हो। अ०सा०-1 लखन सिंह, अ०सा०-2 मुकुट सिंह और अ०सा०-3 इंद्रपाल सिंह के मौखिक साक्ष्य की दस्तावेजी साक्ष्य यानी लिखित रिपोर्ट, चिक प्राथमिकी, घटनास्थल से एकत्र किए गए खून से सने और साधारण मिट्टी की बरामदगी फर्द, लखन सिंह और मुकुट सिंह की चोट रिपोर्ट, कुंवर सिंह की शव परीक्षण रिपोर्ट, घटनास्थल की नक्शा नज़री के आधार पर अपीलकर्ताओं के खिलाफ आरोप-पत्र दायर किया गया।

17. उपरोक्त मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के मूल्यांकन से, यह साबित होता है कि आरोपी दिगंबर सिंह, बच्चू सिंह और धनपाल सिंह ने सामान्य आशय के अग्रसारण में लखन सिंह, मुकुट सिंह और कुंवर सिंह को साधारण और गंभीर चोट पहुंचाई। इस प्रकार, आरोपी दिगंबर सिंह और धनपाल सिंह के खिलाफ धारा 323/34 और 325/34 भ०द०वि० के तहत आरोप उचित संदेह से परे साबित होते हैं। विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता आरोपी दिगंबर सिंह

और धनपाल सिंह को धारा 323/34 और 325/34 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया है।

18. सजा के सवाल पर अपीलकर्ताओं, अभियुक्तों के अधिवक्ता और अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना गया।

19. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि यह घटना लगभग 40 साल पहले 11.01.1983 को हुई थी। घायल लखन सिंह, मुकुट सिंह, मृतक कुंवर सिंह व आरोपी धनपाल सिंह रिश्तेदार हैं। वे एक ही गांव के निवासी हैं और वे पिछले 40 वर्षों से शांतिपूर्ण तरीके से रह रहे हैं। राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने अपीलकर्ताओं के आरोपी दिगंबर सिंह और धनपाल सिंह का कोई आपराधिक इतिहास प्रस्तुत नहीं किया है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता अभियुक्त दिगंबर सिंह की जन्म तिथि 20.05.1955 है और वर्तमान में वह लगभग 66 वर्ष का है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ताओं के साथ नरमी से व्यवहार किया जा सकता है और उन्हें अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ दिया जाना चाहिए और परिवीक्षा पर रिहा किया जाना चाहिए।

20. प्रति विरोध, राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ताने प्रस्तुत किया है कि अपीलकर्ताओं के अभियुक्तों को अनुकरणीय सजा दी जाए ताकि यह भविष्य के अपराधियों के लिए निवारक बन जाए।

21. भारतीय विधायिका ने कोई सजा नीति नहीं दी है, हालांकि मलिमथ समिति (2003) और माधव मेनन समिति (2008) ने भारत में सजा नीति की आवश्यकता पर जोर दिया है।

22. सजा का सिद्धांत कई मामलों में सुप्रीम कोर्ट के समक्ष चिंता का विषय रहा है और इस मुद्दे पर स्पष्टता प्रदान करने की कोशिश की गई है। उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालयों और विचारण न्यायालयों द्वारा सजा सुनाए जाने के लापरवाह तरीके के मद्देनजर सावधान करता रहा है।

"... यह स्थापित किया गया है कि सजा एक सामाजिक-कानूनी प्रक्रिया है, जिसमें एक न्यायाधीश तथ्यात्मक परिस्थितियों और समानता पर विचार करते हुए अभियुक्त के लिए अमुक सजा उचित पाता है। इस तथ्य के आलोक में कि विधायिका ने न्यायाधीशों को सजा देने के लिए विवेक प्रदान किया है, सैद्धांतिक तरीके से इसका प्रयोग करना महत्वपूर्ण हो जाता है। (अभियुक्त 'X' बनाम महाराष्ट्र राज्य का पैरा 49 (2019) 7 SCC 1)

"12. अपराधों के लिए सजा का विश्लेषण तीन परीक्षणों की कसौटी पर किया जाना है, अपराध परीक्षण, आपराधिक परीक्षण और तुलनात्मक आनुपातिकता परीक्षण। अपराध परीक्षण में योजना की सीमा, हथियार का चयन, अपराध का तरीका, निपटान का तरीका (यदि कोई हो), अभियुक्त की भूमिका, अपराध का असामाजिक या घृणित चरित्र, पीड़ित की स्थिति जैसे कारक शामिल होते हैं। आपराधिक परीक्षण में अपराधी की उम्र, अपराधी का लिंग, आर्थिक स्थिति या अपराधी की सामाजिक पृष्ठभूमि, अपराध के लिए प्रेरणा, बचाव की उपलब्धता, मन की स्थिति, मृतक या मृतक समूह से किसी एक द्वारा उकसाना, मुकदमे में पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व करना, अपील प्रक्रिया में एक न्यायाधीश द्वारा असहमति, जैसे कारकों का आकलन शामिल है। पश्चाताप, सुधार की संभावना, पूर्व आपराधिक रिकॉर्ड (लंबित मामलों को नहीं लेना) और कोई अन्य प्रासंगिक कारक। (संपूर्ण सूची नहीं)

13. इसके अतिरिक्त, हम ध्यान दें कि अपराध परीक्षण के तहत, गंभीरता का पता लगाने की आवश्यकता है। अपराध की गंभीरता का पता (i) पीड़ित की शारीरिक संपूर्णता; (ii) सुविधा के भौतिक सहायता की हानि; (iii) अपमान की सीमा; और (iv) गोपनीयता उल्लंघन। (मध्य प्रदेश राज्य बनाम उधम और अन्य (2019) 10 एस.सी.सी. 300)"

23. यह भी उल्लेखनीय है कि "... जहां न्यूनतम सजा का प्रावधान किया गया है, अदालत न्यूनतम सजा से कम नहीं लगा सकती है। (मध्य प्रदेश राज्य बनाम विक्रम दास (2019) 4 एस.सी.सी. 125 का पैरा 8)

24. धारा 357 द०प्र०स० अदालत को पीड़ित को मुआवजा देने की शक्ति प्रदान करती है, जो अन्य आदेश के अतिरिक्त है और सहायक नहीं है। न्यायसंगत और उचित मुआवजा देते समय न्यायालय को इस तरह के भुगतान के लिए अभियुक्त की क्षमता के साथ-साथ प्रासंगिक कारकों जैसे चिकित्सा व्यय, कमाई की हानि, दर्द और पीड़ा आदि पर विचार करना चाहिए।

25. सुप्रीम कोर्ट ने मनोहर सिंह बनाम राजस्थान राज्य और अन्य में धारा 357 द०प्र०स० के तहत मुआवजा देने की शक्ति के उचित प्रयोग की आवश्यकता को दोहराया है: (2015) 3 एस.सी.सी. 449 और पैरा 11, 31 और 54 में यह कहा गया है कि:

"11....पीड़ित को चिकित्सा और अन्य खर्चों, दर्द और पीड़ा, कमाई की हानि और अन्य प्रासंगिक कारकों के संबंध में सिर्फ मुआवजा तय किया जाना चाहिए। जबकि अभियुक्त को सजा एक पहलू है, पीड़ित को सिर्फ मुआवजे का निर्धारण दूसरा पहलू है। कई बार इस संबंध में साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते हैं। ऐसी स्थिति में कुछ अनुमान लगाना अपरिहार्य होता है। धारा 357 और 357-क के तहत मुआवजा देय है। जबकि धारा 357 के तहत, अभियुक्त की वित्तीय क्षमता को ध्यान में रखा जाना चाहिए, धारा 357-ए जिसके तहत मुआवजा राज्य निधि से आता है, को उचित मुआवजे की आवश्यकता को पूरा करने के लिए लागू किया जाना चाहिए।

"31. इस न्यायालय ने कहा कि मुआवजे की राशि, अदालतों द्वारा प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति, दावे की औचित्य और अभियुक्त की

भुगतान करने की क्षमता के आधार पर निर्धारित की जानी थी।

"54. उपरोक्त मामलों से धारा 357 में उभरने वाले परीक्षणों को लागू करते हुए, हमें यह प्रतीत होता है कि प्रावधान अदालतों को हर आपराधिक मामले में मुआवजा देने के सवाल पर अपना दिमाग लगाने के लिए एक कर्तव्य के साथ एक शक्ति प्रदान करता है। हम ऐसा इसलिए कहते हैं क्योंकि जिस पृष्ठभूमि और संदर्भ में इसे पेश किया गया था, मुआवजा देने की शक्ति का उद्देश्य पीड़ित को आश्वस्त करना था कि वह आपराधिक न्याय प्रणाली में भुलाया नहीं गया है। आपराधिक न्याय प्रणाली में पीड़ित को भुला दिया जाएगा यदि विधायिका पीड़ित मुआवजे से संबंधित विशिष्ट प्रावधानों को लागू करने के लिए इतनी दूर चली जाएं, तो अदालतें प्रावधानों को पूरी तरह से अनदेखा कर देती हैं और मुआवजे के सवाल पर अपना दिमाग भी नहीं लगाती हैं। यह इस प्रकार है कि जब तक धारा 357 को अदालतों को मुआवजे के सवाल पर अपना दिमाग लगाने के लिए दायित्व प्रदान करने के लिए नहीं पढ़ा जाता है, तब तक यह प्रावधान की शुरूआत के पीछे के उद्देश्य को हानि करेगा।

26. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और साथ ही ऊपर वर्णित कानून की स्थिति को ध्यान में रखते हुए और यह विचार करते हुए कि घटना लगभग 39 साल पहले हुई थी; घटना क्षणिक आवेग में हुई; और अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 और 5 के प्रावधानों पर विचार करते हुए यह उचित प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता आरोपी दिगंबर सिंह और धनपाल सिंह को अधिनियम की धारा 4 (1) के तहत एक वर्ष की अवधि के लिए परिवीक्षा पर रिहा किया जाए, जिसमें 20,000/- रुपये (बीस हजार रुपये) का व्यक्तिगत बांड और इतनी ही राशि में दो जमानतें प्रस्तुत की जाएं। इस अवधि के दौरान, वे अच्छे आचरण को बनाए रखेंगे और शांति बनाए रखेंगे और इस शर्त के उल्लंघन पर, वे सजा भुगतने के लिए अदालत के समक्ष उपस्थित होंगे। यह भी उचित प्रतीत होता है कि अधिनियम की धारा 5(1)(ए) के तहत, प्रत्येक अपीलकर्ता को मुआवजे के रूप में इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से एक महीने की अवधि के भीतर 5000/- रुपये जमा करने का निर्देश दिया जाता है जो घायल लखन सिंह और मुकुट सिंह को समान रूप से भुगतान किया जाएगा। इन घायलों की मृत्यु के मामले में, उनके कानूनी प्रतिनिधि मुआवजे के अपने हिस्से प्राप्त करने के हकदार होंगे।

27. आपराधिक अपील तदनुसार निपटाया जाता है।

28. इस आदेश की प्रमाणित प्रति रिकॉर्ड के साथ अनुपालन के लिए संबंधित न्यायालय को भेजी जाए। यदि प्रोबेशन बॉन्ड दाखिल नहीं किया जाता है और अपीलकर्ताओं द्वारा मुआवजे की राशि जमा नहीं की जाती है, तो उन्हें विचारण न्यायालय द्वारा दी गई सजा काटनी होगी।

(2023) 1 ILRA 922
अपीलीय क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 08.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेन्द्र ठाकेर
माननीय न्यायमूर्ति अजय त्यागी

क्रिमिनल अपील नंबर-703 वर्ष 2017

अनिल .. अपीलार्थी
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य ... प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
श्री अपुल मिश्रा, श्री रामेंद्र पाल सिंह श्री वीरेन्द्र कुमार शुक्ल, श्री त्रिपुरारी पाल

प्रतिवादी के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, धारा 101 और 106 - दहेज हत्या अतिरिक्त दहेज की मांग अभियोजन पक्ष द्वारा साबित नहीं की जा सकी - तथ्य के गवाह मुकर गए- विद्वान विचारण न्यायालय भी इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि मृतक की मृत्यु दहेज हत्या के दायरे के भीतर नहीं थी- विद्वान विचारण न्यायालय ने माना था कि यह धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपीलकर्ता का बयान है कि वह और मृतक अपने माता-पिता से अलग घर में रहता था। इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता के कंधों पर बोझ को स्थानांतरित कर दिया ताकि मृतक की मृत्यु के तथ्य को साबित किया जा सके कि उसकी मृत्यु कैसे हुई- जब हत्या जैसा अपराध घर के अंदर गोपनीयता से किया जाता है, तो मामले को स्थापित करने का प्रारंभिक बोझ निस्संदेह अभियोजन पक्ष पर होगा - घर के निवासियों पर एक समान बोझ होगा कि वे ठोस स्पष्टीकरण दें कि अपराध कैसे किया गया था - यह साबित करने का प्रारंभिक भार कि, कथित घटना की तारीख के अनुसार, अभियुक्त मृतक के साथ अंतिम बार देखे गए घर में मौजूद था या वह घटना के समय मृतक के साथ अंतिम रूप से था, मुख्य रूप से अभियोजन पक्ष पर होगा - अभियोजन पक्ष ने कोई सबूत नहीं दिया है जो कम से कम इस तथ्य को स्थापित कर सके कि घटना के समय,

अपीलकर्ता घर के अंदर था। इसलिए, इस मामले में भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा-106 की कोई प्रयोज्यता नहीं है- अभियोजन पक्ष ने मामले को उचित संदेह से परे साबित करने के लिए अपने बोझ का निर्वहन नहीं किया है और भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा-106 की सहायता से, जब अभियोजन पक्ष ने पहले अपने बोझ का निर्वहन नहीं किया है, अभियुक्त पर कोई रिवर्स बोझ नहीं डाला जा सकता है।

जहां अभियोजन पक्ष ने साक्ष्य के अपने प्रारंभिक बोझ का निर्वहन नहीं किया है कि मृतक को अंतिम बार अभियुक्त के साथ देखा गया था, तो साक्ष्य अधिनियम की धारा-106 के तहत रिवर्स बोझ अभियुक्त पर नहीं डाला जा सकता है। (अनुच्छेद 16, 18, 19)

आपराधिक अपील की अनुमति दी। (ई-3)

<u>केस लॉ/विधि निर्णय जिन पर भरोसा किया गया</u>:-

संतोष बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2021-0 सर्वोच्च (सभी) 173

(माननीय न्यायमूर्ति अजय त्यागी द्वारा प्रदत्त)

1. यह अपील अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश, ई.सी. अधिनियम, बदायूं द्वारा सत्र विचारण संख्या 826 वर्ष 2013 में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 08.11.2016 के विरुद्ध की गई है, जो प्रकरण अपराध क्रमांक 100 वर्ष 2013, थाना-उघैती, जिला-बदायूं से उद्भूत हुआ है, जिसके द्वारा अपीलार्थी को दोषी ठहराया गया था और धारा 302 भ०द०वि० के तहत आजीवन कारावास के साथ 20000/- रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई थी। जुर्माने का भुगतान न करने पर उन्हें एक वर्ष का साधारण कारावास और भुगतना पड़ता।

2. रिकॉर्ड से निकाले गए मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि थाना- उघैती, जिला बदायूं में एक लिखित रिपोर्ट इस कथन के साथ दर्ज की गई है कि सूचनकर्ता की बहन की शादी अपीलकर्ता अनिल के साथ हुई थी, जिसमें दहेज उसकी वित्तीय स्थिति के अनुसार दिया गया था लेकिन उसकी बहन के ससुराल वालों ने अतिरिक्त दहेज के रूप में 50000/- रुपये की मांग करना शुरू कर दिया। दिनांक 24.06.2013 को सायं लगभग 4:00 बजे उसे अपनी बहन के पड़ोसी से फोन आया कि उसकी बहन को उसके ससुराल वालों ने दहेज के अभाव में मार डाला है। खबर सुनकर, वह परिवार के अन्य सदस्यों के साथ अपनी बहन के ससुराल पहुंचा और देखा कि उसकी बहन को उसके ससुराल वालों ने जहर देकर मार डाला था।

3. उपरोक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर, धारा 498ए, 304बी भ०द०वि० के तहत और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के तहत मामला अपराध संख्या-100 वर्ष 2013 के रूप में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। उन्होंने घटनास्थल का दौरा किया और नक्शा नज़री तैयार किया। विवेचनाधिकारी द्वारा धारा 161 द०प्र०स० के तहत गवाहों के बयान दर्ज किए गए। पंचनम की कार्यवाही हुई और पंचनामा रिपोर्ट तैयार की गई। शव का परीक्षण कराकर शव परीक्षण रिपोर्ट तैयार की गई। शव परीक्षण में मौत के कारण का पता नहीं चल पाया था और इसलिए विसरा को सुरक्षित रखा गया और रासायनिक जांच के लिए विधि विज्ञान प्रयोगशाला भेजा गया। जहां से रिपोर्ट मिली, जिसमें विसरा में ऑर्गनोफॉस्फोरस कीटनाशक जहर मिला था। जांच पूरी होने के बाद आरोपी अनिल, लालू प्रसाद और जलेश्वरी के खिलाफ प्राथमिकी आरोप पत्र में तब्दील हो गई। मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया और इसे सत्र न्यायालय के लिए प्रतिबद्ध किया क्योंकि मामला विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था।

4. विद्वान विचारण न्यायालय ने सभी आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ धारा 304 बी भ०द०वि० के तहत आरोप तय किए, जिसमें धारा 302 और धारा 498 ए भ०द०वि० और 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत वैकल्पिक आरोप लगाए गए। आरोपियों/अभियुक्तों को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उन्होंने इन्कार किया और विचारण चाहा।

5- अभियुक्तों के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को कानून के दायरे में लाने के लिए अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित गवाहों की जांच की:

1	नरोत्तम	अ०सा०-1
2	छत्र पाल	अ०सा०-2
3	ओम शंकर	अ०सा०-3
4	श्रीमती संतोषी कुमारी	अ०सा०-4
5	नेत्रपाल	अ०सा०-5
6	शकुंतला देवी	अ०सा०-6
7	भीकम सिंह	अ०सा०-7
8	डा अशोक प्रसाद	अ०सा०-8
9	महेश चंद्र	अ०सा०-9
10	नरेंद्र पाल सिंह	अ०सा०-10
11	राधे श्याम शर्मा	अ०सा०-11

6. अभियोजन पक्ष द्वारा निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य दायर किए गए थे, जो प्रमुख साक्षियों द्वारा साबित किए गए थे:

1	प्राथमिकी	प्रदर्श क-3
2	तहरीरी रिपोर्ट	प्रदर्श क-1
3	शव परीक्षण रिपोर्ट	प्रदर्श क-2
4	विधि विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट	प्रदर्श क-12
5	पंचायतनामा	प्रदर्श क-7
6	मूल आरोप पत्र	प्रदर्श क-6

7	सारणी के साथ नक्शा नज़री	प्रदर्श क-5

7. अभियोजन साक्ष्य के पूरा होने के बाद, आरोपी व्यक्तियों के बयान धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए थे, जिसमें उन्होंने कहा है कि उनके खिलाफ झूठे सबूत पेश किए गए हैं और विशेष रूप से कहा गया है कि सह-आरोपी अनिल और मृतक अन्य सह-अभियुक्तों, अर्थात् लालू प्रसाद और श्रीमती जलेश्वरी से अलग घर में रहते थे। बचाव पक्ष के अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा किसी गवाह से पूछताछ नहीं की गई है।

8. दोनों पक्षों को सुनने के बाद, विचारण न्यायालय ने आरोपी अपीलकर्ता अनिल को धारा 302 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया और आजीवन कारावास और जुर्माना सुनाया। अन्य सह-अभियुक्तों लालू प्रसाद और श्रीमती जलेश्वरी को सभी आरोपों से बरी कर दिया गया। इसलिए यह अपील की गई है।

9. अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री त्रिपुरारी पाल और श्री पतंजलि मिश्रा के साथ राज्य की ओर से अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री एन. के. श्रीवास्तव को सुना।

10. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता को इस मामले में झूठा फंसाया गया है। यह बिना किसी सबूत का मामला है। अभियोजन पक्ष ने इस मामले में तथ्य के सात गवाहों की जांच की है, लेकिन किसी ने भी अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है और उन्हें पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है; राज्य द्वारा जिरह के बाद भी, कोई सबूत सामने नहीं आया है, जो अपीलकर्ता के खिलाफ जा सके। तथ्य के सभी गवाहों ने कहा है कि अपीलकर्ता की ओर से दहेज की कोई मांग नहीं की गई थी। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि वास्तव में मृतक ने कीटनाशक का सेवन किया था, जिसे उसने गलती से दवा के स्थान पर ले लिया था। यह रुख अपीलकर्ता ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में भी लिया है।

11. अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि विचारण न्यायालय ने यह भी कहा है कि अपीलकर्ता के खिलाफ दहेज हत्या का कोई मामला नहीं बनता है, लेकिन उसे भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा-106 और परिस्थितिजन्य साक्ष्य की सहायता से दोषी ठहराया गया था, जो इस मामले में लागू नहीं होता है। अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि अभियोजन पक्ष ने यह साबित नहीं किया है कि जिस समय मृतक ने कीटनाशक का सेवन किया था, उस समय वह घर में था। यह स्थापित करने के लिए पर्याप्त तथ्य नहीं है कि आरोपी और मृतक एक ही घर में रहते थे। इसके अलावा, जब विद्वान विचारण न्यायालय ने कहा है कि यह दहेज हत्या का मामला नहीं है और अतिरिक्त दहेज की कोई मांग साबित नहीं हुई है, तो मकसद भी साबित नहीं होता है, जो परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में आवश्यक परिस्थिति है। इस मामले में कोई चश्मदीद गवाह नहीं है और अभियोजन पक्ष इस तथ्य के संबंध में कोई सबूत नहीं लाया है कि अपीलकर्ता द्वारा मृतक को जहर दिया गया था। इसलिए, विचारण न्यायालय ने धारा 302 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए अपीलकर्ता को दोषी ठहराने में गंभीर त्रुटि की है और अपील की अनुमति दी जा सकती है।

12. अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों का विरोध किया और तर्क दिया कि अपीलकर्ता द्वारा इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि वह मृतक के साथ नहीं रह रहा था। इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा-106 के प्रावधान के माध्यम से अभियुक्त को दोषी ठहराने में कोई त्रुटि नहीं की है, क्योंकि जब मृतक और अपीलकर्ता एक साथ रह रहे थे, तो अपीलकर्ता पर यह समझाने और साबित करने का भार था कि उसने जहर नहीं दिया, जिसे वह साबित नहीं कर सका। अतिरिक्त दहेज की मांग के तथ्य के संबंध में, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि तथ्य के गवाहों को आरोपी द्वारा प्रलोभन दिया गया था, इसलिए उन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया। इसलिए, आक्षेपित निर्णय में ऐसी कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है, जिसके लिए इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता हो।

13. अभियोजन पक्ष ने इस मामले को दहेज हत्या के मामले के रूप में स्थापित किया है। सूचनकर्ता ने इस कथन के साथ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई कि अपीलकर्ता अपने परिवार के सदस्यों के साथ अतिरिक्त दहेज की मांग के संबंध में मृतक को प्रताड़ित करता था। लेकिन अभियोजन पक्ष द्वारा इस तथ्य को साबित नहीं किया जा सका। अभियोजन पक्ष द्वारा जांच किए गए तथ्य के गवाह मुकर गए हैं। अ०सा०-1 नरोत्तम सूचनकर्ता और मृतक का भाई है। अ०सा०-2, अ०सा०-3 और अ०सा०-5 भी उसके भाई हैं, अ०सा०-4 मृतक की भाभी है। अ०सा०-6 और अ०सा०-7 क्रमशः मृतक की माता और पिता हैं। उन सभी ने गवाही दी है कि अपीलकर्ता की ओर से दहेज की कोई मांग नहीं की गई थी और जहर को मृतक ने गलती से खा लिया था। उपरोक्त साक्ष्यों के आधार पर, विद्वान विचारण न्यायालय भी इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि मृतक की मृत्यु दहेज हत्या के दायरे के भीतर नहीं थी।

14. विद्वान विचारण न्यायालय ने आगे बढ़कर भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा-106 में परिकल्पित प्रावधान का सहारा लिया, जहां विद्वान विचारण न्यायालय ने माना था कि यह धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में अपीलकर्ता का बयान है कि वह और मृतक अपने माता-पिता से अलग घर में रहते थे। इसलिए, विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता के कंधों पर बोझ डाल दिया ताकि मृतक

की मौत के तथ्य को साबित किया जा सके कि उसकी मृत्यु कैसे हुई।

15. हमारी राय में, विद्वान विचारण न्यायालय ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा-106 के प्रावधान को गलत पढ़ा है, जो इस प्रकार है:

106. तथ्य को साबित करने का बोझ विशेष रूप से ज्ञान के भीतर - जब कोई तथ्य विशेष रूप से किसी व्यक्ति के ज्ञान में होता है, तो उस तथ्य को साबित करने का भार उस पर होता है। व्याख्या:

(ए) जब कोई व्यक्ति उस कार्य के चरित्र और परिस्थितियों के अलावा किसी अन्य इरादे से कार्य करता है, जो अधिनियम के चरित्र और परिस्थितियों का सुझाव देता है, तो उस इरादे को साबित करने का बोझ उस पर होता है।

(b) A को बिना टिकट रेलवे पर यात्रा करने का आरोपित किया जाता है। यह साबित करने का बोझ कि उसके पास टिकट था, उस पर है।

16. जहां तक भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा-106 की अवधारणा का संबंध है, इसे विद्वान विचारण न्यायधीश द्वारा गलत पढ़ा गया है क्योंकि जब हत्या जैसा अपराध घर के अंदर गोपनीयता में किया जाता है, तो मामले को स्थापित करने का प्रारंभिक बोझ निस्संदेह अभियोजन पक्ष पर होगा। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा-106 के मद्देनजर, घर के रहने वालों पर एक समान भार होगा कि वे ठोस स्पष्टीकरण दें कि अपराध कैसे किया गया था। घर में वाले केवल चुप्पी साधे रहने और कथित आधार पर कोई स्पष्टीकरण नहीं देने से बच नहीं सकते हैं कि अपने मामले को स्थापित करने का बोझ पूरी तरह से अभियोजन पक्ष पर है और आरोपी पर कोई कर्तव्य या चुनौती नहीं है। फिर यह साबित करने का प्रारंभिक भार कि, कथित घटना की तारीख के अनुसार, अभियुक्त मृतक के साथ अंतिम बार देखे गए घर में मौजूद था या वह घटना के समय मृतक के साथ था, मुख्य रूप से अभियोजन पक्ष पर होगा।

17. संतोष बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2021 0 सुप्रीम (सभी) 173 के मामले में इस उच्च न्यायालय ने, जिसमें हम में से एक (न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकेर) हस्ताक्षरकर्ता हैं, ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा-106 से संबंधित कानून पर भी चर्चा की है, जिसे यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

"35. हाल ही में, इसी तरह की स्थिति में धर्मेंद्र राजभर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त) में इस न्यायालय ने अधिनियम, 1872 की धारा-106 के संबंध में कानूनी स्थिति पर विचार किया है। हम उक्त निर्णय के पैरा-40 को छोड़कर उक्त निष्कर्षों और विश्लेषण के पुनरुत्पादन के साथ अपने निर्णय को बोझिल नहीं करना चाहते हैं, जिसमें न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया:

"40. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के अध्याय-VII की धारा-101 से धारा-114A "सबूत के बोझ के" विषय से संबंधित है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा-106 में यह प्रावधान है कि जब कोई तथ्य विशेष रूप से किसी व्यक्ति के ज्ञान में होता है, तो उस तथ्य को साबित करने का भार उस पर होता है। धारा-106 साक्ष्य अधिनियम की धारा-101 का अपवाद है, जो यह निर्धारित करती है कि जो कोई भी न्यायालय चाहता है कि वह तथ्यों के अस्तित्व पर निर्भर किसी कानूनी अधिकार या दायित्व के बारे में निर्णय दे, जिसके बारे में वह दावा करता है, उसे यह साबित करना होगा कि वे तथ्य मौजूद हैं। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा-106 अभियोजन पक्ष को बचाव पक्ष की कमजोरियों से स्वतंत्र सभी उचित संदेहों से परे अभियुक्त के अपराध को स्थापित करने के अपने प्राथमिक और सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य से मुक्त नहीं करती है। यह केवल तभी होता है जब अभियोजन, अच्छी तरह से बोधगम्य और स्वीकार्य कारणों से, अपने नियंत्रण से परे परिस्थितियों के कारण साक्ष्य को प्रस्तुत करने में असमर्थ होता है, जिसमें यह कारण भी शामिल है कि साबित करने के लिए आवश्यक तथ्य "अकेले अभियुक्त के विशेष ज्ञान के भीतर" था और अभियोजन पक्ष इसे उचित परिश्रम से भी नहीं जान सकता था, कि धारा-106 का सहारा अभियुक्त पर उस तथ्य का खुलासा करने के लिए बोझ डालकर किया जा सकता है जो "उसके विशेष ज्ञान में था और यदि अभियुक्त न्यायिक जिज्ञासु जांच को संतुष्ट करने के लिए कोई उचित स्पष्टीकरण देने में विफल रहता है, तो वह दंडित होने योग्य है। धारा-106 का उपयोग अभियोजन पक्ष की अक्षमता के लिए अग्रणी, ठोस और विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा अपने मामले को स्थापित करने में असमर्थता के लिए नहीं किया जाना है।

18. हमारे मामले में, यह स्थापित तथ्य है कि अपीलकर्ता और उसकी मृत पत्नी एक ही घर में रहते थे। इसलिए, मृतक की मृत्यु के तथ्य को साबित करने का बोझ अपीलकर्ता के कंधों पर तब तक नहीं डाला जा सकता जब तक कि अभियोजन पक्ष सबसे पहले इस तथ्य को साबित करके अपने बोझ का निर्वहन नहीं करता है कि कथित घटना के समय या उस समय जब मृतक ने जहर खाया था, अपीलकर्ता भी घर के अंदर था। इस संबंध में अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि अपीलकर्ता ने यह दलील नहीं दी है कि वह उस समय, जब मृतक द्वारा जहर खाया गया था या उसे जबरन दिया गया था, घर में नहीं था। लेकिन यह अपीलकर्ता आरोपी पर नकारात्मक बोझ था। अभियोजन पक्ष ने ऐसा कोई सबूत सामने नहीं दिया है जो कम से कम इस तथ्य को स्थापित कर सके कि घटना के समय, अपीलकर्ता घर के अंदर था। इसलिए, इस मामले में भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा-106 लागू नहीं है।

19. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, हमारा विचार है कि अभियोजन पक्ष ने मामले को उचित संदेह से परे साबित करने के लिए अपने बोझ का निर्वहन नहीं किया है और भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा-106 की सहायता से

अभियुक्त पर कोई रिवर्स बोझ नहीं डाला जा सकता है जबकि अभियोजन पक्ष ने पहले स्वंय अपने बोझ का निर्वहन नहीं किया है।

20. इसलिए, विद्वान विचारण न्यायधीश ने सही परिप्रेक्ष्य में सबूतों का मूल्यांकन नहीं किया है और अपीलकर्ता को गलत तरीके से दोषी ठहराया है और सजा सुनाई है। हम आक्षेपित निर्णय में दर्ज निष्कर्षों से सहमत नहीं हैं और अपीलकर्ता को संदेह का लाभ दिया जाता है। नतीजतन, अपील की अनुमति दी जाती है।

21. तदनुसार, अपील की अनुमति दी जाती है।

22. धारा 302 भ०द०वि० के तहत अपीलकर्ता की दोषसिद्धि और सजा को रद्द किया जाता है। अपीलकर्ता को, यदि वह किसी अन्य मामले में वांछित नहीं है, तो तत्काल रिहा कर दिया जाए। पहले से जमा होने पर जुर्माना वापस किया जाए।

23. अभिलेख और कार्यवाही निचली अदालत को वापस भेजी जाए।

(2023) 1 ILRA 927

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.09.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी

क्रिमिनल अपील संख्या-770 वर्ष 2022

पीर मोहम्मद ... अपीलार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ... प्रतिपक्षी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री धर्मेंद्र कुमार

प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, मो. असलम अजहर खान,

श्री राजीव रतन शुक्ला

आपराधिक कानून- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 87 और 482 - संज्ञान लेने के तुरंत बाद जारी किए गए गैर-जमानती वारंट - आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद, निचली अदालत ने दिनांक 19.08.2020 के आदेश के तहत संज्ञान लिया और उसी आदेश से, अपीलकर्ता के खिलाफ बिना कोई कारण बताए गैर-जमानती वारंट भी जारी कर दिया - धारा 87 द०प्र०स० में, यह स्पष्ट रूप से प्रदान किया गया है कि गिरफ्तारी के लिए समन जारी करते समय, लिखित रूप में कारण दिए जाने की आवश्यकता होती है, लेकिन उसी के माध्यम से जाने के बिना संज्ञान लेने के तुरंत बाद, गैर-जमानती वारंट भी जारी किया गया है - न्यायिक अधिकारियों की ओर से यह आवश्यक है कि वे धारा 87 द०प्र०स० के प्रावधानों के साथ-साथ सम्मन आदेश जारी करते समय, जमानती या गैर-जमानती वारंट, जैसा भी मामला हो, न्यायालयों द्वारा निर्धारित कानून का पालन करें। यदि मामले के तथ्यों में संज्ञान लेते समय जमानती या गैर-जमानती वारंट तत्काल जारी करने की आवश्यकता है, तो मजिस्ट्रेट की ओर से उसकी संतुष्टि दर्ज करना आवश्यक है।

गिरफ्तारी के लिए वारंट केवल मजिस्ट्रेट द्वारा अभियुक्त को सम्मन करते समय, लिखित में कारणों को दर्ज करने के बाद जारी किया जा सकता है और अन्यथा नहीं। (पैरा 8, 9)

आपराधिक अपील की अनुमति दी। (ई-3)

<u>विधि निर्णय जिन पर पर भरोसा किया गया:-</u>

1. श्रीमती उषा जैन और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (धारा 482 के तहत आवेदन संख्या-19037 वर्ष 2018

2. इंद्र मोहन गोस्वामी बनाम उत्तरांचल राज्य, (2007) 12 एस.सी.सी.-1

3. सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम सी.बी.आई. और अन्य (विविध आवेदन संख्या 1849 वर्ष 2021 एसएलपी (सीआरएल) संख्या 5191 वर्ष 2021 में 11.07.2022 को निर्णय लिया गया।

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के अधिवक्ता को सुना, राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता और, प्रतिवादी नंबर 2 के अधिवक्ता श्री राजीव रतन शुक्ला को सुना।

2. धारा 14ए-1 के तहत वर्तमान आपराधिक अपील के माध्यम से, अपीलकर्ता दिनांक 19.08.2020 के आदेश और दिनांक 06.07.2020 के आदेश की वैधता के साथ-साथ केस नंबर-88 वर्ष 2020, राज्य बनाम पीर मोहम्मद, अपराध संख्या-163 वर्ष 2019 से उत्पन्न होने वाली पूरी कार्यवाही की धारा-419, 420, 467, 468, 471, 504,

506 और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 3(2)5क और 3(1)एस, थाना-पश्चिमी शरीरा, जिला-कौशाम्बी, के मामले में केस दर्ज किया गया।

3. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आरोप पत्र 19.08.2020 को प्रस्तुत किया गया था और उसी तारीख को संज्ञान लेने के बाद, अपीलकर्ता के खिलाफ सीधे गैर जमानती वारंट जारी किया गया है, जो कानून में गलत है। इसके बाद यह प्रस्तुत किया गया है कि गैर-जमानती वारंट जारी करते समय, संबंधित मजिस्ट्रेट की ओर से संतुष्टि दर्ज करना आवश्यक है, लेकिन वर्तमान मामले में इस बात पर कोई संतुष्टि दर्ज नहीं की गई है कि संज्ञान लेते समय गैर-जमानती वारंट क्यों जारी किया गया है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि न्यायालयों की ओर से पहले सम्मन आदेश जारी करना आवश्यक है, उसके बाद जमानती वारंट, फिर यदि आवश्यक हो तो एक गैर-जमानती वारंट। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने इस न्यायालय के निर्णयों के साथ-साथ श्रीमती उषा जैन और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (आवेदन धारा 482 संख्या-19037 वर्ष 2018, इंदर मोहन गोस्वामी बनाम उत्तरांचल राज्य, (2007) 12 एस.सी.सी. 1 और विशेष अनुमति याचिका (दांडिक) संख्या 5191 वर्ष 2021 सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो और अन्य (विविध आवेदन संख्या 1849 वर्ष 2021 में) के मामलों में पारित दिनांक 11.07.2022 सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया है।

4. प्रतिपक्षियों के अधिवक्ताओं ने अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों का जोरदार विरोध किया है, लेकिन उपरोक्त तथ्यों के साथ-साथ कानूनी प्रस्तुतियों पर विवाद नहीं कर सके।

5. मैंने पक्षों के अधिवक्ताओं द्वारा दी गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है और इस न्यायालय के साथ-साथ श्रीमती उषा जैन (उपरोक्त) और सतेंद्र कुमार अंतिल (उपरोक्त) में पारित सर्वोच्च न्यायालय के रिकॉर्ड के साथ-साथ निर्णयों का अवलोकन किया है।

6. श्रीमती उषा जैन (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय ने समन, जमानती और गैर-जमानती वारंट जारी करने के बारे में विस्तार से चर्चा की है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किया गया है: -

"आवेदकों के अधिवक्ता ने आपराधिक शिकायत मामले के आदेश-पत्र की ओर अदालत का ध्यान आकर्षित किया है और आदेश पत्र के अवलोकन से, मुझे लगता है कि 27.11.2017 को जमानती वारंट जारी करने से पहले विद्वान मजिस्ट्रेट ने आरोपी आवेदकों को सम्मन की तामील के संबंध में अपनी संतुष्टि दर्ज नहीं की है।

धारा 482 द०प्र०स० के तहत हर दिन बड़ी संख्या में आवेदन दायर किए जा रहे हैं, जिनमें 90 दिन से अधिक समय पहले जारी किए गए सम्मन आदेश, जमानती और गैर-जमानती वारंट को चुनौती दी जा रही है और यहां तक कि ऐसे आवेदन समन आदेश की तारीख से 12 महीने बाद भी दायर किए जाते हैं और देरी को सही ठहराने के लिए एकमात्र बहाना यह है कि समन तामील नहीं किए गए/प्राप्त नहीं किए गए और इसलिए कोई जानकारी नहीं है।

न्यायिक मजिस्ट्रेट के अंत में यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि जमानती वारंट जारी करने के लिए आगे बढ़ने से पहले, आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ सम्मन की प्रभावी तामील के बारे में कोई संतुष्टि दर्ज नहीं की जाती है, जो जमानती वारंट जारी करने के लिए एक पूर्ववर्ती शर्त होनी चाहिए। ऐसी कोई संतुष्टि दर्ज न होने की स्थिति में जमानती और गैर जमानती वारंट जारी करना न्यायोचित नहीं है।

प्रक्रिया की सेवा या पंजीकरण के संबंध में सामान्य नियम (आपराधिक) के अध्याय-III के तहत उनके परिपत्र पत्र को बनाए रखने के लिए सीएल नंबर 42/98 दिनांक: इलाहाबाद: 20/8/1998 जारी किया गया है जो निम्नानुसार है: -

"माननीय अदालत ने पाया है कि समन की तामील की वर्तमान प्रणाली प्रभावी ढंग से काम नहीं कर रही है और गवाह/आरोपी व्यक्तियों को अदालतों द्वारा निर्धारित अवधि के भीतर तामील नहीं किया जा रहा है। यह प्रणाली सत्रों और मजिस्ट्रियल मामलों की त्वरित सुनवाई को प्रभावित कर रही है। इस संबंध में, अदालत ने सभी के सख्त अनुपालन के लिए निम्नलिखित निर्णय लिए हैं: -

1. निरंतरता में तीन दिनों के लिए एक सत्र परीक्षण तय करने की पुरानी प्रथा को पुनर्जीवित किया गया है। किसी भी औपचारिक आंशिक सुनवाई को छोड़कर कोई अन्य सत्र परीक्षण जिसमें एक या दो औपचारिक गवाहों की जांच की जानी है, उस दिन तय नहीं किया जाना चाहिए।

2. जी.आर क्रिमिनल के अध्याय-III के नियम 12 में उल्लिखित प्रक्रिया पंजीकरण पुस्तिका को सभी न्यायालयों द्वारा सख्ती से बनाए रखा जाए। सम्मन प्राप्त करने वाले पुलिस अधिकारियों को कॉलम संख्या-5 में स्पष्ट रूप से अपना नाम और संख्या लिखना होगा ताकि उस पर जिम्मेदारी डाली जा सके।

3. लोक अभियोजक और डी.जी.सी. (आपराधिक), जैसा भी मामला हो, को समन जारी करने के लिए अदालत में गवाह का पूरा विवरण देते हुआ आवेदन करने के लिए कहा जाना चाहिए। इसके बाद, समन तैयार किया जाना चाहिए और गवाहों को तामीला किया जाना चाहिए।

4. यदि पुलिस कर्मी न्यायालय के निर्देशों का पालन नहीं कर रहे हैं तो उनके खिलाफ अदालत की अवमानना

अधिनियम के प्रावधान के तहत उचित कार्रवाई शुरू की जाए।

"उपरोक्त परिपत्र जारी करके, उच्च न्यायालय ने आपराधिक मामलों में मुकदमे के त्वरित निपटान का लगभग ध्यान रखा है, लेकिन अंततः ऐसा प्रतीत होता है, परिपत्र पत्र (उपरोक्त) का पालन मजिस्ट्रेटों के अंत में इसकी वास्तविक भावना में नहीं किया जाता है क्योंकि वे यह सुनिश्चित करने के लिए उचित सावधानी नहीं बरतते हैं कि समन की तामील के बारे में रिपोर्ट पुलिस रिकॉर्ड पर उपलब्ध है, या पुलिस ज्यादातर मामलों में कोई रिपोर्ट नहीं दे रही है।

न्यायिक अधिकारियों या पुलिस प्रशासन की ओर से ढिलाई एक गंभीर मुद्दा है और तत्काल कार्रवाई की मांग करता है। इसलिए, मैं निर्देश देता हूं कि न्यायिक मजिस्ट्रेट अनिवार्य रूप से 20 अगस्त, 1998 (पूर्व) के परिपत्र पत्र का कड़ाई से अनुपालन सुनिश्चित करेंगे।

इस आदेश की एक प्रति राज्य के सभी न्यायिक मजिस्ट्रेटों को भेजी जाए ताकि परिपत्र का कड़ाई से अनुपालन सुनिश्चित किया जा सके और जमानती या गैर-जमानती वारंट जारी करने से पहले सम्मन की तामील के संबंध में उनकी संतुष्टि दर्ज की जा सके।

इस न्यायालय की रजिस्ट्री को इस आदेश की एक प्रति पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश और सचिव, गृह मामलों, उत्तर प्रदेश सरकार को भेजने का भी निर्देश दिया जाता है ताकि अधीनस्थ पुलिस अधिकारियों को उनके संबंधित स्तर पर आवश्यक निर्देश जारी किए जा सकें ताकि वे 1998 सामान्य नियम (आपराधिक) के तहत जारी किए गए 20 अगस्त के परिपत्र पत्र के तहत वांछित प्रक्रियाओं की सेवा के मामले में नियमानुसार कार्य कर सकें।

7. हाल ही में, सतेंद्र कुमार अंतिल (उपरोक्त) के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने धारा-41 द०प्र०स० और 41ए के अनुपालन पर विचार करते हुए, धारा-87 और 88 द०प्र०स० पर भी विचार किया है और इंदर मोहन गोस्वामी (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को दोहराया है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए गए हैं: -

"30. हम यह भी उम्मीद करते हैं कि अदालतें धारा-41 और धारा-41ए के उचित अनुपालन के बिना गिरफ्तारी करने वाले अधिकारियों पर सख्ती से कार्रवाई करेंगी। हम अपनी आशा व्यक्त करते हैं कि जांच एजेंसियां अर्नेश कुमार (उपरोक्त) में निर्धारित कानून, निर्दोषता की धारणा की कसौटी पर प्रयोग किए जाने वाले विवेक और धारा-41 के तहत प्रदान किए गए सुरक्षा उपायों को ध्यान में रखेंगी, क्योंकि गिरफ्तारी अनिवार्य नहीं है। यदि इस तरह की गिरफ्तारी को प्रभावित करने के लिए विवेक का प्रयोग किया जाता है, तो प्रक्रियात्मक अनुपालन होगा। हमारा विचार संहिता की धारा 60A के तहत विशिष्ट प्रावधान की व्याख्या से भी परिलक्षित होता है जो संबंधित अधिकारी को संहिता के अनुसार गिरफ्तारी करने के लिए बाध्य करता है।

संहिता-87 की धारा 87 और 88

सम्मन के बदले या उसके अतिरिक्त वारंट जारी करना -- कोई न्यायालय, किसी ऐसे मामले में, जिसमें उसे इस संहिता द्वारा किसी व्यक्ति की उपस्थिति के लिए सम्मन जारी करने की शक्ति दी गई है, उसके कारणों को लिखित रूप में अभिलिखित करने के पश्चात् उसकी गिरफ्तारी के लिए वारंट जारी कर सकेगा-

(ए) यदि, या तो इस तरह के सम्मन के जारी होने से पहले, या जारी होने के बाद, लेकिन उसकी उपस्थिति के लिए नियत समय से पहले, न्यायालय यह विश्वास करने का कारण देखता है कि वह फरार हो गया है या सम्मन का पालन नहीं करेगा; नहीं तो

(ख) यदि ऐसे समय में वह उपस्थित होने में असफल रहता है और सम्मन उसके अनुसार उपस्थित होने की स्वीकृति के लिए, सम्मन समय पर विधिवत तामील किया गया साबित हो जाता है और ऐसी विफलता के लिए कोई युक्तियुक्त कारण नहीं बताया जाता है।

88. उपस्थित होने के लिए बंधपत्र लेने की शक्ति – जब कोई व्यक्ति, जिसके उपस्थित होने या गिरफ्तार करने के लिए किसी न्यायालय में पीठासीन अधिकारी को सम्मन या वारंट जारी करने की शक्ति है, ऐसे न्यायालय में उपस्थित होता है, तो ऐसा अधिकारी ऐसे व्यक्ति से यह अपेक्षा कर सकेगा कि वह ऐसे न्यायालय में या किसी अन्य न्यायालय में, जिसमें वह मामला विचारण के लिए अंतरित किया जा सके, जमानतों सहित या उसके बिना बंधपत्र निष्पादित करे।

31. जब न्यायालय किसी व्यक्ति की उपस्थिति की मांग करते हैं, तो मामले को नियंत्रित करने वाले प्रकृति और तथ्यों के आधार पर या तो एक सम्मन या वारंट जारी किया जाना चाहिए। धारा 87 अदालत को या तो समन के बदले या इसके अलावा, वारंट जारी करने का विवेकाधिकार देती है। उपरोक्त शक्ति का प्रयोग कारणों को दर्ज करने के बाद ही किया जा सकता है। वारंट या तो जमानती या गैर जमानती हो सकता है। संहिता की धारा 88 न्यायालय को जमानतदार या उसके बिना किसी व्यक्ति की उपस्थिति के लिए बांड लेने का अधिकार देती है।

32. उपर्युक्त दो प्रावधानों पर विचार करते हुए, अदालतों को पहले समन जारी करने की प्रक्रिया अपनानी होगी, उसके बाद एक जमानती वारंट जारी करना होगा, और फिर, यदि ऐसा आवश्यक हो, एक गैर-जमानती वारंट जारी किया जा सकता है, जैसा कि इस न्यायालय ने इंदर मोहन गोस्वामी बनाम उत्तरांचल राज्य, (2007) 12

एस.सी.सी.1 में अवधारित किया था। उपरोक्त स्पष्ट उक्ति के बावजूद, हम देखते हैं कि गैर-जमानती वारंट बिना किसी विचार के और प्रावधान के खिलाफ जारी किए जाते हैं, जो केवल एक विवेक की सुविधा प्रदान करता है, जिसे स्पष्ट रूप से उस व्यक्ति के पक्ष में प्रयोग किया जाना है जिसकी उपस्थिति मांगी गई है, विशेष रूप से संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत निहित स्वतंत्रता के प्रकाश में। इसलिए, उक्त व्यक्ति के पक्ष में विवेक का प्रयोग न करने के लिए वैध कारण दिए जाने चाहिए। इस न्यायालय ने इंदर मोहन गोस्वामी बनाम उत्तरांचल राज्य, (2007) 12 एस.सी.सी. 1 में कहा है कि:

50. सभ्य देशों ने माना है कि स्वतंत्रता सभी मानवाधिकारों में सबसे कीमती है। अमरीकी स्वतंत्रता घोषणा, 1776, पुरुषों और नागरिकों के अधिकारों की फ्रांसीसी घोषणा, 1789, मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा और नागरिक और राजनीतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिज्ञा, 1966 सभी एक स्वर में बोलते हैं - स्वतंत्रता प्रत्येक मनुष्य का प्राकृतिक और अहस्तांतरणीय अधिकार है। इसी तरह, हमारे संविधान का अनुच्छेद 21 यह घोषित करता है कि कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार किसी को भी उसकी स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।

51. गैर-जमानती वारंट जारी करने में व्यक्तिगत स्वतंत्रता में हस्तक्षेप शामिल है। गिरफ्तारी और कारावास का अर्थ है किसी व्यक्ति के सबसे कीमती अधिकार से वंचित। इसलिए, अदालतों को गैर-जमानती वारंट जारी करने से पहले बेहद सावधान रहना होगा।

52. जिस तरह स्वतंत्रता एक व्यक्ति के लिए कीमती है, उसी तरह कानून और व्यवस्था बनाए रखने में समाज का हित है। सभ्य समाज के अस्तित्व के लिए दोनों ही अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। कभी-कभी जनता और राज्य के व्यापक हित में किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता को एक निश्चित अवधि के लिए कम करना नितांत अनिवार्य हो जाता है, तभी गैर-जमानती वारंट जारी किए जाने चाहिए।

कब गैर-जमानती वारंट जारी किया जाना चाहिए

53. जब सम्मन या जमानती वारंट का वांछित परिणाम होने की संभावना नहीं होगी, तब किसी व्यक्ति को अदालत में लाने के लिए गैर-जमानती वारंट जारी किया जाना चाहिए। यह तब हो सकता है जब:

यह विश्वास करना उचित है कि व्यक्ति स्वेच्छा से अदालत में उपस्थित नहीं होगा; नहीं तो–

पुलिस अधिकारी उस व्यक्ति को समन तमीला करवाने में असमर्थ हैं; नहीं तो–

यह माना जाता है कि व्यक्ति, अगर उसे तुरंत हिरासत में नहीं रखा जाए, तो किसी को नुकसान पहुंचा सकता है।

54. जहां तक संभव हो, यदि अदालत की राय है कि अदालत में अभियुक्त की उपस्थिति करवाने के लिए एक सम्मन पर्याप्त होगा, तो समन या जमानती वारंट को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। वारंट जारी करने पर होने वाले अत्यंत गंभीर परिणामों और प्रभावों के कारण जमानती या गैर-जमानती वारंट को तथ्यों की उचित जांच और दिमाग के पूर्ण अनुप्रयोग के बिना कभी भी जारी नहीं किया जाना चाहिए। अदालत को बहुत सावधानी से जांच करनी चाहिए कि क्या आपराधिक शिकायत या प्राथमिकी एक परोक्ष मकसद से दर्ज नहीं की गई है।

55. शिकायत के मामलों में, पहली बार में, अदालत को शिकायत की प्रति के साथ सम्मन की तामील का निर्देश देना चाहिए। यदि अभियुक्त सम्मन से बचते प्रतीत होते हैं, तो दूसरी बार में अदालत को जमानती वारंट जारी करना चाहिए। तीसरे उदाहरण में जब अदालत पूरी तरह से संतुष्ट है कि आरोपी जानबूझकर अदालत की कार्यवाही से बच रहा है, तो गैर-जमानती वारंट जारी करने की प्रक्रिया का सहारा लिया जाना चाहिए। व्यक्तिगत स्वतंत्रता सर्वोपरि है, इसलिए हम पहली और दूसरी बार अदालतों को गैर-जमानती वारंट जारी करने से बचने की चेतावनी देते हैं।

56. विवेकाधीन होने के कारण शक्ति का प्रयोग अत्यधिक सावधानी और सतर्कता के साथ विवेकपूर्ण तरीके से किया जाना चाहिए। न्यायालय को वारंट जारी करने से पहले व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक हित दोनों को उचित रूप से संतुलित करना चाहिए। वारंट जारी करने के लिए कोई स्ट्रेट-जैकेट (सीधा-सटीक) फॉर्मूला नहीं हो सकता है, लेकिन एक सामान्य नियम के रूप में, जब तक कि किसी अभियुक्त पर जघन्य अपराध के अपराध का आरोप नहीं लगाया जाता है और यह आशंका नहीं है कि उसके सबूतों को छेड़छाड़ करने या नष्ट करने की संभावना है या कानून की प्रक्रिया से बचने की संभावना है, तब तक गैर-जमानती वारंट जारी करने से बचा जाना चाहिए।

57. अदालत को गैर-जमानती वारंट जारी करते समय व्यक्तिगत स्वतंत्रता, जनता और राज्य के हित के बीच उचित संतुलन बनाए रखने की कोशिश करनी चाहिए।

8. वर्तमान मामले में, तथ्य निर्विवाद हैं। आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद, निचली अदालत ने दिनांक 19.08.2020 के आदेश के तहत संज्ञान लिया है और इसी आदेश से अपीलकर्ता के खिलाफ बिना कोई कारण बताए गैर-जमानती वारंट भी जारी किया गया है। धारा 87 द०प्र०स० में, यह स्पष्ट रूप से प्रदान किया गया है कि गिरफ्तारी के लिए समन जारी करते समय, लिखित में कारण दिए जाने की आवश्यकता होती है, लेकिन उसके माध्यम से जाए बग़ैर, संज्ञान लेने के तुरंत बाद, गैर-जमानती वारंट भी जारी किया गया है।

9. श्रीमती उषा जैन (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय ने माना है कि जमानती वारंट जारी करने के लिए संतुष्टि दर्ज की जानी चाहिए और जमानती या गैर-जमानती वारंट जारी करने से पहले सम्मन की तामील के संबंध में संतुष्टि दर्ज करने के लिए सख्त अनुपालन के लिए राज्य के सभी न्यायिक अधिकारियों को उक्त निर्णय की प्रति भी प्रसारित की गई है। हाल ही में, सतेंद्र कुमार अंतिल (उपरोक्त) के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने इंदर मोहन गोस्वामी (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को दोहराते हुए बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा है कि अदालतों को पहले समन जारी करने की प्रक्रिया अपनानी होगी, उसके बाद एक जमानती वारंट जारी करना होगा, और फिर यदि ऐसा आवश्यक है तो एक गैर-जमानती वारंट जारी किया जा सकता है। इसलिए, न्यायिक अधिकारियों के लिए यह आवश्यक है कि वे सम्मन आदेश, जमानती या गैर-जमानती वारंट जारी करते समय धारा 87 द०प्र०स० के प्रावधानों के साथ-साथ न्यायालयों द्वारा निर्धारित कानून का पालन करें। यदि मामले के तथ्यों में संज्ञान लेते समय जमानती या गैर-जमानती वारंट तत्काल जारी करने की आवश्यकता होती है, तो मजिस्ट्रेट की ओर से उसकी संतुष्टि दर्ज करना आवश्यक है।

10. ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायिक अधिकारी दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के साथ-साथ न्यायालयों द्वारा निर्धारित कानून का पालन नहीं कर रहे हैं और बहुत ही लापरवाह तरीके से आदेश पारित कर रहे हैं।

11. जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, विशेष न्यायाधीश, एस.सी./एस.टी. अधिनियम, कौशाम्बी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 19.08.2020 धारा 87 द०प्र०स० के प्रावधानों के साथ-साथ श्रीमती उषा जैन (उपरोक्त), सतेंद्र कुमार अंतिल (उपरोक्त) और इंदर मोहन गोस्वामी (उपरोक्त) के मामलों में न्यायालयों द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार नहीं है। इसलिए, यह बुरा है और इसके द्वारा रद्द कर दिया जाता है।

12. एस.सी./एस.टी. एक्ट के विशेष न्यायाधीश कौशांबी को कानून के अनुसार नए सिरे से सम्मन जारी करने का निर्देश दिया जाता है।

13. रजिस्ट्रार जनरल (महानिबंधक) को निर्देश दिया जाता है कि वह इस आदेश को जिला न्यायाधीशों के माध्यम से राज्य के सभी न्यायिक मजिस्ट्रेटों को प्रसारित करे ताकि सम्मन आदेश, जमानती या गैर-जमानती वारंट, जैसा भी मामला हो, जारी करते समय दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के साथ-साथ न्यायालयों द्वारा निर्धारित कानून का कड़ाई से अनुपालन सुनिश्चित किया जा सके।

14. पूर्वोक्त टिप्पणियों के साथ, अपील की अनुमति दी जाती है।

15. लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

(2023) 1 ILRA 933
अपीलीय क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 18.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा
माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद

केस:- जेल अपील नं. - 777 वर्ष 1991

राम प्रकाश ... अपीलकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य ... उत्तरदाता

अपीलकर्ता के वकील:
जेल से, देवेंद्र दहमा

प्रतिवादी के वकील:
अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 3- यह स्थापित कानून है कि सभी आपराधिक वादों में, अवलोकन की सामान्य त्रुटियों के कारण गवाहों के बयानों में सामान्य विसंगतियां होती हैं, अर्थात् समय बीतने के कारण स्मृति की या घटना के समय आघात और भय जैसे मानसिक स्वभाव के कारण त्रुटियां होती हैं। जहां चूक विरोधाभास की तरह होती है, गवाह की सत्यता के बारे में गंभीर संदेह पैदा करती है और अन्य गवाह भी अदालत में गवाही देते समय भौतिक सुधार करते हैं, ऐसे साक्ष्य पर भरोसा करना सुरक्षित नहीं हो सकता है। हालाँकि, मामूली विरोधाभासों, विसंगतियों, अलंकरणों या तुच्छ मामलों पर सुधार जो अभियोजन मामले के मूल को प्रभावित नहीं करते हैं, उन्हें ऐसा आधार नहीं बनाया जाना चाहिए जिस पर साक्ष्य को पूरी तरह से निरस्त

किया जा सके। अदालत को गवाह की विश्वसनीयता के बारे में राय बनानी होती है और निष्कर्ष दर्ज करना होता है कि क्या उसका बयान आत्मविश्वास को प्रेरित करता है।

गवाहों के साक्ष्य में मामूली विसंगतियां, विरोधाभास और अलंकरण जो अभियोजन पक्ष के मामले के मूल को प्रभावित नहीं करते हैं, इसका परिणाम यह नहीं होगा कि अदालत ऐसे साक्ष्य को निरस्त कर देगी, लेकिन जहां विरोधाभास गंभीर हैं और अभियोजन के मामले के मूल को प्रभावित करते हैं , तो ऐसे सबूतों पर सुरक्षित रूप से भरोसा नहीं किया जा सकता।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 3- यह अच्छी तरह से नियत है कि इच्छुक या शत्रु गवाहों के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए, लेकिन केवल पक्षपातपूर्ण साक्ष्य होने के आधार पर निरस्त नहीं किया जा सकता है। यदि साक्ष्यों के अवलोकन से न्यायालय संतुष्ट है कि साक्ष्य श्रेयस्कर है तो उक्त साक्ष्यों पर भरोसा करने में कोई रोक नहीं है। यह भी अच्छी तरह से स्थापित है कि रुचिकर साक्ष्य आवश्यक रूप से अविश्वसनीय साक्ष्य नहीं है। बस इतना आवश्यक है कि इच्छुक गवाहों के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच की जाए और सावधानी के साथ स्वीकार किया जाए। इस प्रकार, साक्ष्यों पर केवल इस आधार पर अविश्वास नहीं किया जा सकता कि गवाह एक-दूसरे से या मृतक से संबंधित हैं। यदि साक्ष्य में पूरी सच्चाई है, वह ठोस, विश्वसनीय और भरोसेमंद है, तो उस पर भरोसा किया जा सकता है और निश्चित रूप से उस पर भरोसा किया जाना चाहिए।

जहां किसी संबंधित या इच्छुक गवाह का साक्ष्य सत्य और विश्वसनीय पाया जाता है, तो उस पर इस आधार पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है कि गवाह पीड़ित से संबंधित है, हालांकि ऐसे गवाह के साक्ष्य की उचित देखभाल और सावधानी से जांच की जानी चाहिए।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 8- यह अच्छी तरह से स्थापित है कि प्रत्यक्ष साक्ष्य में, आशय प्रासंगिक नहीं होगा और केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में, मकसद बहुत महत्व रखता है। जिस मामले में साक्ष्य स्पष्ट और असंदिग्ध है और परिस्थितियाँ आरोपी का अपराध साबित करती हैं, वह वाद कमजोर नहीं होगा, भले ही आशय बहुत मजबूत न हो। ऐसे मामले में जहां चशमदीद गवाहों के प्रत्यक्ष साक्ष्य उपलब्ध हों, आशय अपना सारा महत्व खो देता है।

यह स्थापित कानून है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य में आशय प्रासंगिक होता है लेकिन प्रत्यक्ष साक्ष्य में आशय महत्वहीन हो जाता है।

भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 302- धारा 304– कानून तय करता है कि धारा 302आई.पी.सी. के तहत दोषसिद्धि को धारा 304आई.पी.सी. में बदला जा सकता है, यदि मामला धारा 300आई.पी.सी. के अपवाद-4के किसी भी घटक में आता है, तो अपवाद-4आकर्षित होगा। धारा 300आई.पी.सी. के अपवाद-4के लिए आवश्यक सामग्री हैं कि घटना बिना किसी पूर्वचिन्तन के घटित हुई; अचानक हुई लड़ाई में; अचानक झगड़े पर जोश की गर्मी में; अपराधी द्वारा अनुचित लाभ उठाए बिना या क्रूर या असामान्य तरीके से कार्य किए बिना - वाद स्पष्ट रूप से आईपीसी की धारा 300के अपवाद-4के अंतर्गत केवल इस कारण से नहीं आएगा कि अपराधी ने अपराध करते समय सबसे क्रूर और असामान्य तरीके से काम किया है। आरोपी-अपीलकर्ता ने अपनी पत्नी (मृतक) की उसके माता-पिता के घर जाने की इच्छा पर आपत्ति जताई और जब मृतक ने अपने पिता के साथ जाने की जिद की, तो आरोपी-अपीलकर्ता ने उस पर दरांती से हमला किया और लगभग 15वार किए।

जहां आरोपी ने असामान्य क्रूरता के साथ काम किया है और मृतक पर बार-बार वार किया है तो वाद आईपीसी की धारा 304के दायरे में नहीं आएगा।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860- धारा 302आई.पी.सी.- उपरोक्त धारा के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि कोई भी अभियुक्त, जो किसी की हत्या करेगा, उसे मृत्यु या आजीवन कारावास से दण्डित किया जायेगा तथा उसके विरूद्ध जुर्माना भी लगाया जायेगा। "जुर्माना"शब्द से पहले "करेगा"शब्द का प्रयोग किया जाता है और इसलिए, हत्या करने वाले किसी भी आरोपी को मौत या आजीवन कारावास की सजा देते समय जुर्माना लगाना अनिवार्य है - तदनुसार, विचारणीय न्यायालय के आदेश की पुष्टि करते समय आजीवन कारावास के अलावा कारावास की सजा दी जाती है , हम आरोपी पर 10,000/- का का जुर्माना भी आरोपित करते हैं।

अपीलकर्ता यह भी स्पष्ट किया गया है कि उक्त जुर्माना अदा न करने पर छह माह अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा। चूंकि जुर्माना लगाना अनिवार्य है जहां दी गई सजा मौत या आजीवन कारावास है और जुर्मने को दी गई सजा के साथ पढ़ा जाना चाहिए, तदनुसार अपीलकर्ता पर जुर्माना लगाया जाएगा। (पैरा 35, 37, 38, 41, 42, 43, 45, 47, 54, 55, 56)

आपराधिक अपील निरस्त। (ई-3)

केस कानून/निर्णयों पर निर्भरता व्यक्त:-

1. दिलदार सिंह बनाम हरियाणा राज्य, जेटी 1992 (4) एस.सी 19 (उद्धृत)
2. बलदेव सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य, 1996एआईआर 372 (उद्धृत)
3. मेर धाना सीदा बनाम गुजरात राज्य, एआईआर 1985एससी 386 (उद्धृत)
4. दलीप सिंह बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर 1993एससी 2302 (उद्धृत)
5. कंसा बेहरा बनाम ओडिसा राज्य, 1987एआईआर 1507 (उद्धृत)
6. सत्ये सिंह एवं अन्य बनाम उत्तराखण्ड राज्य ., 15/02/2022, अपराधिक अपील संख्या 2374/2014 (उद्धृत)
7. आशिग लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1997लीगल ईगल (एल्ड) 35 (उद्धृत)
8. मेकला सिवैया बनाम ए.पी. राज्य, 2022एससीसी ऑनलाइन एससी 887 (उद्धृत)
9. राम कुमार मधुसूदन पाठक बनाम गुजरात राज्य, 1998 0सुप्रीम (एससी) 836 (उद्धृत)
10. अरुलवेलु और अन्य बनाम सेंट प्रतिनिधि सार्वजनिक पेशेवरों एवं अन्य, 2009 0सुप्रीम (एससी) 1628 (उद्धृत)
11. रामनाथ नोनिया बनाम बिहार राज्य, 1999 01सुप्रीम (पैट) 778. (उद्धृत)
12. सुरेश चन्द्र बाहरी बनाम बिहार राज्य., 1995सप्प (1) एससीसी 80-
13. पुलिचेरला नागराजू [पुलिचेरला नागराजू बनाम एपी राज्य, (2006) 11 एससीसी 444]

(प्रति: माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद)

1. अपीलकर्ता राम प्रकाश द्वारा विशेष न्यायाधीश (ई.सी.एक्ट)/अपर सत्र न्यायाधीश, फर्रुखाबाद द्वारा 1982 के सत्र विचारण संख्या 169 (राज्य बनाम राम प्रकाश) में धारा 302 भ० द० वि०, पुलिस स्टेशन-गुरसहायगंज, जिला-फर्रुखाबाद में पारित 11 सितंबर, 1984 के निर्णय और आदेश के खिलाफ यह अपील की गई है, जिसके तहत अभियुक्त/अपीलकर्ता को दोषी ठहराया गया है और धारा 302 के तहत आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है।

2. हमने अपीलकर्ता की ओर से न्यायमित्र श्री राज कुमार शर्मा और राज्य की ओर से अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री अरुण कुमार सिंह को सुना है और रिकॉर्ड पर उपलब्ध पूरी सामग्री का अवलोकन भी किया है।

3. शुरू में इस मामले में सुनवाई 2 नवंबर, 2022 को पूरी हुई थी और 10 नवंबर, 2022 को फैसला सुनाने के लिए तय किया गया था। निर्णय तैयार करते समय यह देखा गया कि सत्र न्यायालय ने अभियुक्त/अपीलकर्ता को दोषी ठहराने के बाद जुर्माने से संबंधित पहलू पर कोई आदेश पारित किए बिना उसे धारा 302 भ० द० वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए आजीवन कारावास की सजा सुनाई है।

4. एक बार जब सत्र की संबंधित अदालत भ० द० वि० की धारा 302 के तहत एक आरोपी को दोषी ठहराती है, तो उसे सजा और जुर्माना दोनों के संबंध में आदेश पारित करना आवश्यक था। वर्तमान मामले के तथ्यों में, हालांकि, जुर्माने के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया गया है। उक्त के कारण, हमने वर्तमान मामले को 10 नवंबर, 2022 को स्थगित कर दिया ताकि इस पहलू पर आरोपी-अपीलकर्ता की ओर से पेश होने वाले एमिकस क्यूरी को सुनवाई का अवसर मिल सके।

5. 14 नवंबर, 2022 को, हमने उक्त मुद्दे पर राज्य के लिए एमिकस क्यूरी और अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना।

6. अभियोजन की कहानी, जैसा कि रिकॉर्ड से परिलक्षित होता है, इस प्रकार है:

शिकायतकर्ता अ०सा०-2 राम बाबू की दिनांक 3 नवम्बर, 1981 (प्रदर्श-क/1) की लिखित रिपोर्ट पर मुनेश्वर दयाल (शिकायतकर्ता के पुत्र) द्वारा 3 नवम्बर, 1981 को पूर्वाह्न 1135 बजे अभियुक्त-अपीलकर्ता के विरुद्ध एक प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श क/2) दर्ज की गई है, जिसमें आरोप लगाया गया है कि लगभग 4-5 वर्ष पहले उसने अपनी पुत्री का विवाह अभियुक्त-अपीलकर्ता के साथ किया था। शादी के बाद शिकायतकर्ता की बेटी (अब मृतक) और उसका दामाद यानी आरोपी-अपीलकर्ता अक्सर आपस में लड़ते रहते थे। ऐसी घटनाएं हुईं जब शिकायतकर्ता आरोपी-अपीलकर्ता के स्थान पर उसे अपने साथ अपने स्थान पर ले जाने के लिए गया लेकिन आरोपी-अपीलकर्ता ने उसे अपने साथ नहीं भेजा। आगे आरोप है कि करीब दो महीने पहले शिकायतकर्ता की बेटी यानी मृतक ने जुड़वां बच्चियों को जन्म दिया, दोनों की कुछ समय बाद मौत हो गई। अपनी जुड़वां पोतियों के दुखद निधन के बारे में जानने के बाद, शिकायतकर्ता अपनी बेटी (मृतक) को अपने साथ अपने घर ले जाने के लिए अपने बेटे के साथ आरोपी-अपीलकर्ता के घर आया और जब शिकायतकर्ता/अ०सा०2 और उसके बेटे मुनेश्वर दयाल ने बार-बार अनुरोध किया, तो आरोपी-अपीलकर्ता ने उसे अपने साथ भेजने से इनकार कर दिया। अगले दिन सुबह लगभग 09:00 बजे जब शिकायतकर्ता यानी मृतका की बेटी शिकायतकर्ता और मुनेश्वर दयाल के साथ जाने के लिए तैयार होने लगी, तो आरोपी-अपीलकर्ता ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया और उसे अपने साथ जाने से रोक

दिया। हालांकि, मृतक ने कहा कि वह उसके साथ नहीं रहेगी और किसी भी कीमत पर जाएगी, जिस पर आरोपी-अपीलकर्ता ने उसे धमकी दी कि अगर उसने उसकी अवज्ञा की तो उसे गंभीर परिणाम भुगतने होंगे। शिकायतकर्ता अपने बेटे मुनेश्वर दयाल के साथ घर के बाहर प्लेटफॉर्म पर बैठे थे और अपनी बेटी का इंतजार कर रहे थे, तभी उन्होंने उसे बचाने के लिए मृतका के शोर/चीखने की आवाज सुनी। शिकायतकर्ता और उसका बेटा आंगन के अंदर भागे और देखा कि आरोपी-अपीलकर्ता कमरे में मृतक को दरांती से मार रहे थे। वही देख शिकायतकर्ता और मुनेश्वर दयाल चिल्लाए जिस पर हनुमंत लाल पुत्र धानुक, शिव राम पुत्र राम लाल लोधी, राम गोपाल, राम विलास भुर्जी, राम किशोर पुत्र मथुरी लाल सहित कई लोग आ गए और उन्होंने आरोपी-अपीलकर्ता को मृतक को दरांती से मारते हुए भी देख लिया। मृतका को दरांती से चोट लगने के कारण उसकी मौके पर ही मौत हो गई। शिकायतकर्ता और मुनेश्वर दयाल सहित मौके पर मौजूद सभी व्यक्तियों ने आरोपी-अपीलकर्ता को उक्त दरांती के साथ पकड़ लिया और उसे उन दो पुलिस कांस्टेबलों को सौंप दिया जो उस समय गश्त पर थे।

7. आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा पहनी गई खून से सनी दरांती और खून से सनी बनियान (बनियान), जिसे प्रदर्श क/4 और प्रदर्श क/5 के रूप में चिह्नित किया गया था, को इकट्ठा करने के बाद, जांच अधिकारी मौके पर पहुंचे और खून से सनी और सादे मिट्टी को इकट्ठा किया और गवाहों के बयान भी दर्ज किए। मृतक की जांच उसी दिन अर्थात् 3 नवम्बर, 1981 को पूर्वाह्न 1135 बजे से अपराह्न 0200 बजे के बीच की गई थी और जांच रिपोर्ट (प्रदर्श-8) पर गवाहों के बयान लिए गए थे। जांच कर रहे गवाहों ने कहा कि चूंकि मृतका की मौत का कारण दरांती से लगी चोटें थीं, इसलिए पोस्टमॉर्टम जरूरी था।

8. इसके बाद मृतक के शव को सील कर मोर्चरी भेज दिया गया। मृतक का शव परीक्षण अगले दिन यानी 4 नवंबर, 1981 को दोपहर 03:30 बजे डॉ. के.के अग्रवाल (अ०सा०-5) द्वारा किया गया था। अ०सा०-5 की राय में, मृतक की मृत्यु का कारण निम्नलिखित पोस्टमार्टम चोटों के कारण सदमे और रक्तस्राव था:

"1- बाएं पिन्ना के बाहरी हिस्से में गहरा घाव 1 1/2 "x 1/4" x उपास्थि। ऊपर से नीचे की ओर दिशा। कार्टिलेज काट दिया गया था।

2- दाईं ओर के सुप्राक्लेवकुलर फोसा पर गहरी त्वचा 1/2 "x 1/10" x घाव।

3- बाएं स्तन के ऊपरी भाग पर 1"x 1/2" x छाती गुहा गहरा घाव करें। दिशा सामने-पीछे और अंदर की ओर।

4- बाएं स्तन के निचले हिस्से में चाकू का घाव 3/4 "x 1/2"x छाती गुहा गहरा है। दिशा सामने से पीछे और ऊपर की ओर।

5- एक्सिला के नीचे छाती के मध्य एक्सिलरी लाइन 6"के दाईं ओर गहरी 1 "x 4/10" x मांसपेशी का घाव है। अंदर की ओर झुकना।

6- चोट संख्या 5 के नीचे मध्य एक्सिलरी लाइन 2 में छाती के दाईं ओर 1 x 1/2 "एक्स छाती गुहा गहरा घाव है। दिशा दाएं से बाएं।

7- दाहिने हाइपोकॉन्ड्रियम पर 11/4"x 3/4" x पेट की गुहा पर चाकू का घाव। दिशा सामने से पीछे की ओर।

8- 1/2"x 1/4"से 3/10"x 2/10"x मांसपेशियों से लेकर बाएं हाथ की चार उंगलियों के पामर पहलू पर गहरी हड्डी तक। ट्रांसवर्सल रूप से रखा गया।

9- कलाई के जोड़ के ऊपर बाएं अग्रभाग के पीछे 3/4"x 1/4"x मांसपेशी 2 1/2"गहरी घाव है। अग्रभाग की लंबी धुरी में घाव।

10- दाहिनी ओर छाती के पिछले हिस्से में 3/4"x 1/2"छाती गुहा को दाहिने कंधे के नीचे 5"पर गहरा घाव करें। दिशा वापस सामने की ओर।

छाती के पिछले हिस्से और काठ के क्षेत्र में 1/4 "x 1/2" x हड्डी गहरी, 1/2 "x 2/10" x त्वचा गहरी 1/4 "x 1/2"x 2/10" x त्वचा।

12- घाव 1 1/2 "x 1/2" x मांसपेशी दाईं जांघ के सामने गहरी है। लंबी धुरी में घुटने के जोड़ से 2 "ऊपर।

घुटने के जोड़ के नीचे दाएं पैर की पिंडली पर गहरी 2 "x 3/4" x हड्डी 2"x 3/4"x हड्डी है। अनुप्रस्थ विमान में घाव।

14-दो घाव 3"अलग 1/2"x 1/4"x त्वचा गहरी और 1"x 1/2" x मांसपेशी दाहिने कूल्हे पर गहरी है।

बाएं पैर के बाहरी मॉलोलस पर 15-घर्षण 4/10 "x 3/10"।

9. जांच आगे बढ़ी और अध्याय XII द० प्र० स० के संदर्भ में वैधानिक जांच पूरी होने के बाद, जांच अधिकारी ने आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ 30 नवंबर, 1981 को आरोप-पत्र (प्रदर्श क18) प्रस्तुत किया। संबंधित मजिस्ट्रेट ने आरोप-पत्र पर अपराध का संज्ञान लिया और चूंकि मामला सत्र न्यायालय द्वारा सुनवाई योग्य था, इसलिए मामले को सत्र न्यायालय में भेज दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप इसे 1982 के सत्र परीक्षण संख्या 169 (राज्य बनाम राम प्रकाश) के रूप में भ० द० वि० की धारा 302, पुलिस स्टेशन-गुरसहायगंज, जिला-फर्रुखाबाद के तहत दर्ज किया गया।

10. 14 अक्टूबर, 1982 को विचारण न्यायालय ने भ० द० वि० की धारा 302 और 504 के तहत अपराध के लिए आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ निम्नलिखित आरोप तय किए:

"फतेहगढ़ में फर्रुखाबाद के प्रथम अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश आई. के. के. वर्मा आप पर राम प्रकाश का आरोप इस प्रकार है:
आप 3.11.81 को सुबह लगभग 9 बजे मीरपुर गांव, थाना गुरसहायगंज जिला फर्रुखाबाद में उपस्थित थे। आपने श्रीमती उषा देवी की हत्या जानबूझकर हंसिया से की और इस तरह भ० द० वि० की धारा 302 के तहत दंडनीय अपराध किया और इस अदालत के संज्ञान में लिया। और मैं आपको निर्देश देता हूं कि इस अदालत द्वारा उपरोक्त आरोप पर आप पर मुकदमा चलाया जाए।

11. अपने मामले को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने दस्तावेजी सबूतों पर भरोसा किया, जिन्हें विधिवत साबित किया गया और परिणामस्वरूप प्रदर्शन के रूप में चिह्नित किया गया। इन्हें नीचे सूचीबद्ध किया गया है: –
(i) शिकायतकर्ता/अ०सा०2 की दिनांक 3 नवम्बर, 1981 की लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श का-1), जिसका वर्णन अ०सा०-3 द्वारा किया गया है;
ii) दिनांक 3 नवम्बर, 1981 की प्रथम सूचना रिपोर्ट को प्रदर्श-क/2 के रूप में चिह्नित किया गया है;
3) दिनांक 3 नवम्बर, 1981 को रक्त रंजित हंसिया के रिकवरी मेमो को प्रदर्श का/4 के रूप में चिह्नित किया गया है;
(iv) दिनांक 3 नवम्बर, 1981 के रक्त रंजित बनियान (बनियान) के पुनर्प्राप्ति ज्ञापन को प्रदर्श-क/5 के रूप में चिह्नित किया गया है;
(v) दिनांक 3 नवम्बर, 1981 को रक्तरंजित और सादे मृदा के रिकवरी मेमो को प्रदर्श-क/16 के रूप में चिह्नित किया गया है;
(vi) दिनांक 3 नवम्बर, 1981 की जांच रिपोर्ट (पंचायतनामा) को प्रदर्श का/8 के रूप में चिह्नित किया गया है;
(vii) दिनांक 3 नवम्बर, 1981 के सूचकांक वाली स्थल योजना को प्रदर्श-क/15 के रूप में चिह्नित किया गया है;
4 नवंबर, 1981 की पोस्टमार्टम/ऑटोप्सी रिपोर्ट को प्रदर्श-क-7 के रूप में चिह्नित किया गया है;
9 जुलाई, 1982 की रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट को प्रदर्श-क/19 के रूप में चिह्नित किया गया है;
27 जुलाई, 1982 की रासायनिक परीक्षक और सीरोलॉजिस्ट की रिपोर्ट को प्रदर्श-क/20 के रूप में चिह्नित किया गया है;
अ०सा०-1 राम बिलास की जांच करना; और
30 नवंबर, 1981 के आरोप-पत्र को प्रदर्श-क/18 के रूप में चिह्नित किया गया है।

12. अभियोजन पक्ष ने कुल नौ गवाहों से भी निम्नलिखित तरीके से पूछताछ की: –
(i) अ०सा०-1 राम बिलाश, आरोपी-अपीलकर्ता के गांव का निवासी, जिसे चश्मदीद गवाह कहा जाता है; शिकायतकर्ता/अ०सा०-2, अर्थात् मृतक के पिता राम बाबू, जिन्हें चश्मदीद गवाह भी कहा जाता है;
(iii) अ०सा०-3, अर्थात् आरोपी अपीलकर्ता के गांव निवासी राम किशोर, जिसे एक चश्मदीद गवाह भी कहा जाता है;
अ०सा०-4, अर्थात् कांस्टेबल -697 कृष्णपाल सिंह, जो घटना की तारीख और समय पर गश्त पर थे और आरोपी-अपीलकर्ता को खून से सनी दरांती के साथ पुलिस स्टेशन ले गए;
(v) अ०सा०-5, अर्थात् कांस्टेबल-360 पदम सिंह, जिन्होंने चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श क/2) तैयार की और इस संबंध में जेनेरल डायरी (प्रदर्श क/3) में प्रविष्टि भी की है;
अ०सा०-6, अर्थात् डॉ. के.के.अग्रवाल, जिन्होंने मृतक का शव परीक्षण किया और पोस्टमार्टम रिपोर्ट तैयार की (प्रदर्श-क/7);
(vii) अ०सा०-7, अर्थात् उप-निरीक्षक होरी लाल यादव, जिन्होंने मामले की जांच की है।

13. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य दर्ज करने के बाद, अभियोगात्मक साक्ष्य को धारा 313 द० प्र० स० के तहत सामना करने के लिए आरोपी-अपीलकर्ता के सामने रखा गया। द० प्र० स० की धारा 313 के तहत दर्ज किए गए अपने बयान में, आरोपी अपीलकर्ता ने भ० द० वि० की धारा 302 के तहत अपराध करने में अपनी भागीदारी से इनकार किया, आरोपी अपीलकर्ता राम प्रकाश ने विचारण न्यायालय के समक्ष विशेष रूप से कहा है कि उसे दुश्मनी के कारण इस मामले में झूठा फंसाया गया है। उन्होंने आगे कहा है कि घटना की तारीख पर, जब वह अपने खेत में थे, कुछ अज्ञात व्यक्तियों ने तड़के उनके घर पर छापा मारा था, जब अभी भी अंधेरा था और उन्होंने उनकी पत्नी को घायल कर दिया था। हालांकि बचाव पक्ष की ओर से कोई गवाह पेश नहीं किया गया है।

14. विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष द्वारा दिए गए सबूतों पर भरोसा करने और अपने निष्कर्ष को दर्ज करने के बाद, दोषसिद्धि के आक्षेपित फैसले के तहत इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि इस मामले में अभियोजन पक्ष संदेह की छाया से परे यह स्थापित करने में सक्षम रहा है कि एक बहुत ही मामूली कारण से आरोपी ने अपनी निर्दोष पत्नी की हत्या की, जिसका एकमात्र दोष कुछ समय के लिए अपने पिता के साथ जाने की जिद थी। परिवर्तन क्योंकि उसकी नवजात जुड़वां बेटियों की हाल ही में मृत्यु हो गई थी। इस मामूली सी बात पर आरोपी ने अपना आपा खो दिया और अपनी पत्नी पर हंसिया से कई वार किए, जिससे उसकी मौत हो गई। निचली अदालत ने बचाव पक्ष की इस दलील को स्वीकार नहीं किया कि घटना की तारीख को जब वह अपने खेत में था तो कुछ लोग तड़के उसके घर में घुस आए और उन्होंने उसकी पत्नी पर हमला किया जिससे उसकी मौत हो गई। इस संबंध में एक निष्कर्ष दर्ज करने के बाद, विचारण

न्यायालय ने कहा है कि बचाव पक्ष का बयान स्पष्ट रूप से झूठा है क्योंकि आरोपी के परिवार के किसी भी सदस्य द्वारा कोई रिपोर्ट या डकैती की कोई घटना दर्ज नहीं की गई थी और इसलिए भी कि आरोपी के गांव से कोई भी इस बयान का समर्थन करने के लिए आगे नहीं आया है। उपरोक्त की संचयी ताकत पर, विचारण न्यायालय ने माना है कि आरोपी-अपीलकर्ता मृतक यानी उसकी पत्नी की हत्या के लिए भ० द० वि० की धारा 302 के तहत दंडनीय अपराध का दोषी है। इस प्रकार, विचारण न्यायालय ने आरोपी-अपीलकर्ता को उपरोक्त अपराध के लिए दोषी ठहराया और सजा सुनाई। यह विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि के इस फैसले और आदेश के खिलाफ है कि वर्तमान जेल अपील इस आधार पर दायर की गई है कि दोषसिद्धि रिकॉर्ड पर सबूतों के वजन के खिलाफ और कानून के खिलाफ है और आरोपी-अपीलकर्ता को दी गई सजा बहुत गंभीर है।

15. दोषी ठहराए जाने के फैसले और आदेश का विरोध करते हुए, आरोपी अपीलकर्ता की ओर से पेश न्यायमित्र श्री राज कुमार शर्मा ने प्रस्तुत किया कि:

(i) मृतक की शव परीक्षण रिपोर्ट के अनुसार, अ०सा०6 द्वारा मृतक की छोटी आंत में अर्ध-पका हुआ भोजन और बड़ी आंत में मल पदार्थ पाया गया था और उन्होंने यह भी पाया कि मृतक के मूत्राशय में कोई मूत्र नहीं था, जिसका अर्थ है कि मृतक ने छह घंटे पहले यानी सुबह 3.00 बजे से 4.00 बजे के बीच भोजन किया होगा जो सही प्रतीत नहीं होता है। इसलिए अभियोजन पक्ष के अनुसार मृतक की मृत्यु का समय यानी लगभग 09.00 बजे भी संदिग्ध है। इसलिए, यह सही प्रतीत होता है कि मृतक की मृत्यु तड़के हुई होगी, यानी 3.00 बजे से 4.00 बजे के बीच।

(ii) अभियुक्त-अपीलकर्ता ने उक्त अपराध नहीं किया है, बल्कि डकैतों या किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किया है जो तड़के 3.00 बजे से 4.00 बजे के बीच उसके घर में घुस आया था, जब अंधेरा था और जब आरोपी-अपीलकर्ता अपने खेत में था तो उसकी अनुपस्थिति में संपत्ति लूट ली थी।

(iii) न तो अ०सा०-2/शिकायतकर्ता और न ही उनके पुत्र मुनेश्वर, जिन्हें अभियोजन पक्ष के गवाह के रूप में शामिल नहीं किया गया है, ने इस घटना को अपनी आंखों से देखा था क्योंकि जब घटना हो रही थी तब वे घटनास्थल पर मौजूद नहीं थे। यह विश्वास करना असंभव है कि जब एक विवाहित महिला (मृतक) को उसके पति (आरोपी-अपीलकर्ता) ने मार डाला और उसे बचाने के बजाय, उसके पिता (शिकायतकर्ता / अ०सा०-2) और भाई (मुनेश्वर) खड़े होकर दूसरों से मदद मांग रहे थे।

(iv) अभियोजन पक्ष का यह मामला भी संदेहास्पद है कि शिकायतकर्ता/अ०सा०2 और उसका पुत्र मुनेश्वर मृतका को अपने साथ ले जाने के लिए उसके ससुराल में रुके थे, क्योंकि भारतीय सभ्यता में, विशेष रूप से एक हिंदू ब्राह्मण परिवार में, कोई भी पिता या भाई अपनी विवाहित बेटी या बहन के साथ उसके ससुराल में तीन दिनों तक नहीं रहता है। इसलिए, घटना के समय शिकायतकर्ता/अ०सा०-2 और मुनेश्वर की उपस्थिति संदिग्ध है।

(v) आवेदक को अभियोजन पक्ष द्वारा गलत तरीके से फंसाया गया है और उक्त अपराध करने का उसका कोई इरादा या उद्देश्य नहीं है।

(vi) अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों में विरोधाभास थे।

(vii) अभियोजन पक्ष का यह कथन कि अभियुक्त-अपीलकर्ता ने मृतक पर दरांती से हमला किया है, भी संदेहास्पद है क्योंकि दरांती एक घुमावदार हथियार है और इसका केवल एक पक्ष तेज है। जबकि वास्तव में पोस्टमार्टम के समय डॉक्टर द्वारा मृतक के मृत शरीर पर पाई गई चोटें इसके कारण नहीं हो सकती थीं। उपरोक्त की संचयी ताकत पर, आरोपी-अपीलकर्ता की ओर से पेश वकील ने प्रस्तुत किया कि आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि का आदेश कानूनी रूप से कायम नहीं रह सकता है और इसे रद्द किया जा सकता है। उपर्युक्त के अलावा, वैकल्पिक न्याय मित्र ने यह भी प्रस्तुत किया है कि चूंकि विचाराधीन घटना अचानक झगड़े पर आवेग में हुई थी, इसलिए इसे धारा 300 भ० द० वि० के चौथे अपवाद के तहत कवर किया जाएगा, जो निम्नानुसार है:

"अपवाद 4) गैर-इरादतन हत्या नहीं है, अगर यह बिना सोचे-समझे किया जाता है, बिना सोचे-समझे किया जाता है, जुनून की गर्मी में, अचानक झगड़े में, और अपराधी के बिना अनुचित लाभ उठाया जाता है या क्रूर या असामान्य तरीके से काम किया जाता है।

इसलिए, एमिकस क्यूरी का कहना है कि यदि यह न्यायालय आरोपी-अपीलकर्ता को उचित संदेह से परे अपराध का दोषी पाता है, तो उसे धारा 302 भ० द० वि० के बजाय धारा 304 भाग 2 भ० द० वि० के तहत दंडित किया जाना चाहिए। उपर्युक्त प्रस्तुतियों के समर्थन में, न्यायमित्र ने सर्वोच्च न्यायालय, इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है:

(क) दिलदार सिंह बनाम हरियाणा राज्य की रिपोर्ट संयुक्त राज्य 1992 (4) अनुसूचित जाति 19 में दी गई है;

(ख) बलदेव सिंह और अन्न बनाम पंजाब राज्य 1996 में एआईआर 372 की सूचना दी गई;

(ग) मेर धना सीदा बनाम गुजरात राज्य की रिपोर्ट एआईआर 1985 एससी 386 में दी गई है;

(घ) दलीप सिंह बनाम हरियाणा राज्य की रिपोर्ट एआईआर 1993 एससी 2302 में दी गई है;

(ङ) कंस बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य की रिपोर्ट 1987 एआईआर 1507 में दी गई थी;

(च) सत्ये सिंह और अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य मामले में 15 फरवरी, 2022 को 2014 की आपराधिक अपील संख्या 2374 में पारित निर्णय लिया गया।

(ङ) आशिक लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मामले की रिपोर्ट 1997 में लीगल ईगल (एएलडी) 35 में दी गई थी।

16. दूसरी ओर, श्री अरुण सिंह, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता, राज्य के फैसले और दोषसिद्धि के आदेश का समर्थन करते हुए, प्रस्तुत करते हैं कि आरोपी व्यक्ति को नामित करते हुए प्रथम सूचना रिपोर्ट तुरंत दर्ज की गई है; अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करने के लिए ठोस सबूत हैं; जिस घटना में आरोपी अपीलकर्ता राम प्रकाश द्वारा मृतक की हत्या का आरोप लगाया गया है, वह सुबह लगभग 09:00 बजे यानी दिन के उजाले में हुई; कथित घटना के तीन चश्मदीद गवाह हैं; एक परिस्थितिजन्य गवाह; घटना के स्थान को बचाव पक्ष द्वारा विवादित नहीं किया गया है; और आरोपी-अपीलकर्ता का मजबूत मकसद या इरादा है और इसे अभियोजन पक्ष के साक्ष्य द्वारा भी समझाया गया है। इसलिए, अभियोजन पक्ष ने आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप को उचित संदेह से परे साबित कर दिया है।

17. उपरोक्त प्रस्तुतियों को मजबूत करने के लिए, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 887 में रिपोर्ट किए गए मेकला सिवैया बनाम आंध्र प्रदेश राज्य के मामले में सुप्रीम कोर्ट के नवीनतम फैसले की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जिसमें पैराग्राफ संख्या 25 और 26 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार कहा है:

"25. वर्तमान मामले में तथ्यों और सबूतों को विचारण न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय दोनों द्वारा स्पष्ट रूप से सत्यापित किया गया है और इसे संक्षेप में निम्नानुसार किया जा सकता है: अभियोजन पक्ष ने उचित संदेह से परे भ० द० वि० की धारा 302 के तहत अपराध के लिए अपीलकर्ता के अपराध को साबित करने में अपने कर्तव्यों का निर्वहन किया है।

ii. जब चिकित्सा साक्ष्य द्वारा पुष्टि किए गए पर्याप्त ओकुलर सबूत हैं, तो अपीलकर्ता से हथियार की बरामदगी न होने से अभियोजन पक्ष के मामले पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

iii. यदि किसी प्रत्यक्षदर्शी की गवाही अन्यथा विश्वसनीय पाई जाती है, तो उस पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है और केवल इसलिए अस्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसकी गवाही में कुछ महत्वहीन, सामान्य या प्राकृतिक विरोधाभास दिखाई दिए हैं।

iv. मृतक पर अपीलकर्ता द्वारा दिन के उजाले में हमला किया गया है और इसे साबित करने के लिए प्रत्यक्ष सबूत उपलब्ध हैं और अपीलकर्ता और अ०सा०-1 के बीच पिछली दुश्मनी को देखते हुए हमले के पीछे का मकसद भी स्पष्ट है।

26. वर्तमान मामले के उपरोक्त तथ्यों को ऊपर उल्लिखित निर्णयों के साथ जोड़कर विचार करने और प्रत्यक्षदर्शियों के साक्ष्य और अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत अन्य सामग्री की सराहना करने पर, विचारण न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता को धारा 302 भ० द० वि० के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया। इसलिए, हमें विचारण न्यायालय और हाईकोर्ट के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं मिला। (जोर जोड़ा गया)

राज्य के अटॉर्नी जनरल श्री अरुण सिंह ने भी सर्वोच्च न्यायालय और पटना उच्च न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है:

(क) राम कुमार मधुसूदन पाठक बनाम गुजरात राज्य 1998 में सूचित 0 उच्चतम (अनुसूचित जाति) 836;

(ख) अरुलवेलु और अन्नर। बनाम राज्य प्रतिनिधि, लोक अभियोजक और वकील द्वारा। 2009 में रिपोर्ट किया गया 0 सुप्रीम (एससी) 1628; और

(ग) राम नाथ नोनिया बनाम बिहार राज्य की रिपोर्ट 1999 में 0 उच्चतम (पीएटी) 778 थी।

उपरोक्त प्रस्तुतियों की संचयी ताकत पर, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि चूंकि यह प्रत्यक्ष साक्ष्य का मामला है, इसलिए आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि का आदेश किसी भी अवैधता और दुर्बलता से ग्रस्त नहीं है ताकि इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता हो। इस प्रकार, मृतक की हत्या करके जघन्य अपराध करने वाले आरोपी अपीलकर्ताओं द्वारा दायर वर्तमान जेल अपील खारिज होने योग्य है।

18. हमने पक्षों के वकील द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है और नीचे दिए गए न्यायालय के मूल रिकॉर्ड के साथ-साथ हमारे सामने चुनौती दिए गए फैसले और दोषसिद्धि के आदेश की जांच की है।

19. इस जेल अपील में जिस एकमात्र प्रश्न को संबोधित करने और निर्धारित करने की आवश्यकता है, वह यह है कि क्या विचारण न्यायालय द्वारा किए गए अपराध का निष्कर्ष और सुनाई गई सजा कानून के तहत कानूनी और टिकाऊ है और इसमें कोई दुर्बलता और विकृति नहीं है।

20. अपीलकर्ता के वकील और राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा स्थापित मामले के गुण-दोष में प्रवेश करने से पहले, ऊपर उल्लिखित विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश के लिए, हमारे लिए अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयान संक्षेप में दर्ज करना वांछनीय है।

21. अ०सा०-1 राम बिलास जो आरोपी-अपीलकर्ता के गांव का निवासी है, ने कहा है कि वह आरोपी-अपीलकर्ता को जानता था जिसने उसकी पत्नी की हत्या की थी। आगे कहा गया है कि घटना की तारीख को सुबह लगभग 8.30 से 9.00 बजे जब वह अपने खेत से अपने घर आ रहा था और जैसे ही वह एक पंडित राधेश्याम के घर के दरवाजे पर पहुंचा, उसने एक तेज आवाज सुनी और आरोपी-अपीलकर्ता के घर में प्रवेश किया, जहां उसने देखा कि आरोपी-अपीलकर्ता के रिश्तेदार यानी उसके ससुर और

बहनोई आरोपी-अपीलकर्ता के पीछे खड़े थे। उसके हाथ में एक दरांती थी जो खून से भरी हुई थी। अन्य ग्रामीण, अर्थात् हनुमान और शिव, राज, राम किशोर, राम गोपाल भी वहां थे। आरोपी/अपीलकर्ता के रिश्तेदारों ने उसे पकड़ लिया और बाहर ले आए। आरोपी-अपीलकर्ता की पत्नी जमीन पर पड़ी थी, उसके शरीर से खून बह रहा था। इसके तुरंत बाद दो कांस्टेबल मौके पर पहुंचे और उनकी मदद से आरोपी-अपीलकर्ता को अ०सा०-2 और उसके बेटे मुनेश्वर द्वारा पुलिस स्टेशन ले जाया गया। हालांकि, अ०सा०-1 ने कहा है कि उसने आरोपी को अपनी पत्नी को दरांती से पीटते हुए नहीं देखा था। इस तरह उन्हें शत्रुतापूर्ण घोषित किया गया था। अभियोजन पक्ष द्वारा जिरह में उसने स्वीकार किया कि उसका घर आरोपी-अपीलकर्ता के घर के काफी करीब है और उसकी उससे कोई दुश्मनी नहीं है। हालांकि, बचाव पक्ष के वकील द्वारा जिरह में, उन्होंने कहा कि आरोपी-अपीलकर्ता और उसके चचेरे भाई, अर्थात् बेंचाय लाल (उसके पिता की बहन का बेटा) के बीच कुछ मुकदमा चल रहा था। उन्होंने यह भी कहा है कि घटना के समय आरोपी-अपीलकर्ता के अन्य भाई मौजूद नहीं थे, लेकिन उसकी मां मौके पर मौजूद थी और वह रो रही थी। उन्होंने यह भी कहा है कि अ०सा०-2 और उनके बेटे मुनेश्वर द्वारा पहने गए कपड़ों पर कुछ खून के धब्बे भी थे। उन्होंने घटना के बचाव पक्ष को स्वीकार नहीं किया।

22. अ०सा०-2, मृतक के पिता और आरोपी-अपीलकर्ता के ससुर राम बाबू, जो घटना के मुख्य गवाह हैं, ने अभियोजन की पूरी कहानी का समर्थन और पुष्टि की है जैसा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में और द० प्र० स० की धारा 161 के तहत दर्ज किए गए अपने बयान में सामने आया है। उन्होंने कहा है कि घटना की तारीख को जैसे ही मृतक उनके साथ जाने के लिए तैयार होने लगा, वह घर से बाहर आया और अपने बेटे मुनेश्वर के साथ चबूतरे पर बैठ गया। कुछ देर बाद घर के अंदर से बेटी को बचाने की आवाज आई। आरोपी-अपीलकर्ता के गांव के ग्रामीण, अर्थात् शिवराम, रामकिशोर, रामविलास रामगोपाल, हनुमंत घटना के समय मंच के पास थे। शोर सुनकर अ०सा०-2 और उनका बेटा मुनेश्वर घर के अंदर गए जहां उन्होंने पूरी घटना देखी।

23 अ०सा०-3 राम किशोर, जिन्हें एक चश्मदीद गवाह भी कहा जाता है, ने अभियोजन पक्ष की पूरी कहानी का समर्थन किया है। उसने अपनी परीक्षा में कहा है कि सुबह 09.00 बजे जब वह बैल मांगने लज्जाराम के घर गया तो उसने अ०सा०-2 और उसके बेटे मुनेश्वर की चीख सुनी और आरोपी-अपीलकर्ता के घर में घुस गया और देखा कि आरोपी मृतक को दरांती से मार रहा है। उस समय शिवराम, रामविलास, हनुमंतलाल भी आ गए। दरांती की ऐसी चोटों को सहन करने के बाद, मृतक जमीन पर गिर गया और उसकी मृत्यु हो गई। इसके बाद आरोपी-अपीलकर्ता जैसे ही कमरे से बाहर आया, अ०सा०-2 उसे दरांती सहित पकड़कर बाहर ले आया। उसी समय कांस्टेबल कृष्णपाल और वीरेंद्र मौके पर आए और आरोपी-अपीलकर्ता को उनके हवाले कर दिया गया। बचाव पक्ष के वकील ने भी उनसे जिरह की लेकिन उन्होंने अपना बयान नहीं बदला।

24. अ०सा०-4 कांस्टेबल-697 कृष्णपाल सिंह ने बताया है कि घटना की तारीख को वह सुबह करीब 09.15 बजे गश्त करके थाने लौट रहे थे और रास्ते में आरोपी/अपीलकर्ता के दरवाजे पर भीड़ देखकर वह वहां रुक गए और अपने दरवाजे पर पहुंचे तो देखा कि अ०सा०-2 और उनका बेटा मुनेश्वर आरोपी-अपीलकर्ता को पकड़े बैठे थे। रामप्रकाश। वहां एक दरांती थी जिस पर खून मौजूद था। उन्होंने आगे कहा है कि पूछताछ करने पर, अ०सा०-2 और उनके बेटे मुनेश्वर ने उन्हें बताया कि आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा मृतक को कैसे मारा गया था। अ०सा०-4 आरोपी-अपीलकर्ता को अ०सा०-2 के साथ पुलिस स्टेशन ले गया था, जहां उसने लिखित रिपोर्ट दर्ज की थी। अ०सा०-4 जांच अधिकारी (अ०सा०-7) के साथ घटना स्थल पर लौट आया और आवश्यक औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद, वह मृतक के शव को पोस्टमार्टम के लिए फतेहगढ़ में शवगृह ले गया, जो आरोपी-अपीलकर्ता के गांव से 35 से 36 किलोमीटर दूर है।

25. अ०सा०-5 कांस्टेबल-360 पदम सिंह ने कहा है कि शिकायतकर्ता मुनेश्वर के बेटे द्वारा दी गई अ०सा०-2/शिकायतकर्ता (प्रदर्श क/1) की लिखित रिपोर्ट के आधार पर उन्होंने चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श क/2) तैयार की है। उन्होंने उक्त चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट को भी साबित कर दिया है। उन्होंने आरोपियों के खून से सने दरांती और बनियान के रिकवरी मेमो (प्रदर्श-क/4 और प्रदर्श-क/5) को भी साबित किया है, जिन्हें पुलिस ने कब्जे में ले लिया था।

डॉ. के. के. अग्रवाल, जिन्होंने 4 नवंबर, 1981 को दोपहर 3.30 बजे मृतका के शरीर का शव परीक्षण किया था, ने कहा है कि मृतका के शरीर पर पाई गई चोटें उसकी मृत्यु के लिए पर्याप्त थीं जो या तो तात्कालिक थीं या चोटों के एक घंटे के भीतर हुई होंगी। अ०सा०-6 ने यह भी कहा है कि शव परीक्षण के समय उन्होंने पाया कि मृतक का पेट खाली था। छोटी आंत में अर्धपका हुआ भोजन था और मृतक की बड़ी आंत में फेकल पदार्थ और गैसें थीं। अ०सा०-6 की राय में मृतक की मृत्यु 3 नवम्बर, 1981 को लगभग 0900 बजे हुई होगी या जिसमें तो छह घंटे का अंतर था।

27. अ०सा०-7 के उपनिरीक्षक होरी लाल यादव ने बताया है कि घटना की तिथि को वह थाना गुरसहायगंज में तैनात थे। इस मामले की जांच उन्हें सौंपी गई थी। पुलिस स्टेशन में ही, उन्होंने आरोपी-अपीलकर्ता और

शिकायतकर्ता/अ०सा०2 के बयान लिए। गवाह मुनेश्वर (शिकायतकर्ता का बेटा) का बयान लेने और पुलिस स्टेशन से आवश्यक दस्तावेज लेने के बाद, वह अपराध स्थल पर पहुंचे और उसी का निरीक्षण करने के बाद, उन्होंने साइट प्लान (प्रदर्श क/ 15), मृत शरीर की जांच रिपोर्ट (प्रदर्श क/8), अन्य दस्तावेज, अर्थात् सीएमओ और आरआई को पत्र, मृत शरीर का स्केच और चालन (प्रदर्श-क/9 और प्रदर्श-क/14) तैयार किया और शव को सौंप दिया।

28. मामले के तथ्यों के साथ-साथ मामले में नेतृत्व किए गए सबूतों को ध्यान में रखते हुए, हम पक्षों के वकील की संबंधित प्रस्तुतियों से निपटने के लिए आगे बढ़ते हैं।

29. एमिकस क्यूरी द्वारा की गई पहली दलील कि अभियोजन पक्ष के अनुसार मृतक की मृत्यु का समय यानी 09:00 बजे संदिग्ध है, इस आधार पर खारिज किया जा सकता है कि मृतक की ऑटोप्सी रिपोर्ट स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि मृतक की मृत्यु 3 नवंबर 1981 को लगभग 09.00 बजे की गई थी। प्रति परीक्षण में, अ०सा०6 ने स्पष्ट रूप से कहा है कि किसी भी तरह से छह घंटे का अंतर हो सकता था। ऐसी परिस्थितियां हैं कि हत्या लगभग 4.00 या 5.00 बजे नहीं हुई थी। उपरोक्त के अलावा, सभी चश्मदीद गवाहों ने कहा है कि घटना लगभग 9.00 बजे हुई थी और परिस्थितिजन्य साक्ष्य ने भी इसका समर्थन किया है। मृतक की छोटी और बड़ी आंतों में क्रमशः अर्ध-पका हुआ भोजन और मल पदार्थ की उपस्थिति रक्षा को मृत्यु के समय को बदलने में मदद नहीं करती है। अभियोजन पक्ष के अनुसार, मृतका अपने पति यानी आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा उसे अपने पिता के साथ जाने की अनुमति देने से इनकार करने के कारण बहुत दुखी रही होगी, उसने अपने पति के साथ झगड़े के कारण देर रात भोजन किया होगा। अन्यथा भी, मृतक की छोटी आंत में केवल अर्ध पके हुए भोजन की उपस्थिति घटना के समय को बदलने के लिए पर्याप्त नहीं थी।

30. न्यायमित्र द्वारा दी गई दूसरी दलील कि कथित अपराध आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा नहीं किया गया है और यह किसी और या डकैतों द्वारा आरोपी-अपीलकर्ता की संपत्ति लूटने के लिए किया गया है, के पास भी इस आधार पर खड़े होने के लिए कोई पैर नहीं है कि रिकॉर्ड पर कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सबूत नहीं है जिससे यह स्थापित होता है कि उक्त अपराध डकैतों या डकैतों के अलावा किसी एक द्वारा किया गया है। यदि डकैतों या कुछ चोरों द्वारा आरोपी-अपीलकर्ता की संपत्ति लूटने के लिए अपराध सुबह यानी लगभग 04.00 बजे जब अंधेरा था, तो आरोपी-अपीलकर्ता या उसके परिवार के किसी अन्य सदस्य द्वारा पुलिस स्टेशन में बहुत पहले किसी प्रकार की जानकारी दर्ज की गई होगी या कुछ समाचार ग्रामीणों और प्रत्यक्षदर्शियों की जानकारी में रहे होंगे। पोस्टमार्टम के समय अ०सा०-6 द्वारा मृतक के शरीर पर पाए गए घावों से, यह विश्वास करना असंभव है कि ऐसा किसी डकैत या किसी और द्वारा किया गया है। उसी से ऐसा लगता है कि ऐसा ही एक क्रोधित व्यक्ति द्वारा किया गया है।

31. एमिकस क्यूरी द्वारा की गई तीसरी दलील के लिए कि न तो अ०सा०-2 और न ही उनके बेटे मुनेश्वर ने अपनी आंखों से इस घटना को देखा था क्योंकि वे क्रमशः अपनी बेटी और बहन को बचाने के लिए आगे नहीं आए थे, जब आरोपी-अपीलकर्ता मृतक पर हमला कर रहे थे, तो हम यह दर्ज कर सकते हैं कि यह एक सामान्य ज्ञान है कि जब कोई व्यक्ति किसी को तेज धार वाले हथियार से मार रहा है, कोई भी साधारण व्यक्ति जिसके पास कोई हथियार नहीं है, उस व्यक्ति को बचाने की कोशिश नहीं करेगा, क्योंकि उसके अपने जीवन के खतरे की आशंका होगी और उस व्यक्ति को बचाने का एकमात्र तरीका **<u>अलार्म उठाना</u>** और भीड़ इकट्ठा करना है। इसलिए, केवल इस तथ्य पर संदेह नहीं किया जा सकता है कि अ०सा०-2 और उनके बेटे मुनेश्वर ने क्रमशः अपनी बेटी और बहन को बचाने की कोशिश नहीं की, घटना के समय उनकी उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता है। इसके बावजूद, अ०सा०-1 और अन्य गवाहों के बयानों के चश्मदीद बयानों से, घटना के समय अ०सा०-2 और उनके बेटे मुनेश्वर की उपस्थिति स्थापित होती है।

32. न्यायमित्र द्वारा की गई इस दलील के लिए कि कोई भी ब्राह्मण पिता या भाई जो अपनी विवाहित बेटी या बहन के ससुराल का पानी नहीं पीता है, तो वे वहां तीन दिनों तक कैसे रह सकते हैं?, इसे केवल इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया है कि आज की दुनिया में और इस देश की स्वतंत्रता के अधिक वर्षों के बाद, यह गले से नीचे नहीं जाता है। अगर यह आजादी से पहले की बात होती तो इसे स्वीकार किया जा सकता था लेकिन आज के दौर में इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। जब प्रत्यक्ष और ठोस सबूत हैं, तो इस मामले में ऐसा कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता है।

33. न्यायमित्र द्वारा दी गई पांचवीं दलील के बाद, हम देख सकते हैं कि वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा आरोपी-अपीलकर्ता को गलत तरीके से फंसाने के लिए, बचाव पक्ष यह साबित करने में पूरी तरह से विफल रहा है कि उसे वर्तमान मामले में क्यों फंसाया गया है। बचाव पक्ष की ओर से इस संबंध में न तो कोई दस्तावेजी और न ही मौखिक साक्ष्य पेश किया गया है। बचाव पक्ष द्वारा ली गई अगली दलील कि आरोपी-अपीलकर्ता का कथित अपराध करने का कोई मकसद या इरादा नहीं है, इस आधार पर खड़े होने के लिए कोई पैर नहीं है कि उसके पास ऐसा करने का स्पष्ट इरादा और मकसद था। अभियोजन पक्ष के बयान से यह पता चलता है कि मृतक की जुड़वां बेटियों की मृत्यु के कारण, वह दुखी थी और थोड़ी देर के लिए, उसने आरोपी-अपीलकर्ता पर जोर दिया कि वह उसे अपने पिता के साथ जाने की अनुमति दे, आरोपी-अपीलकर्ता ने इस मामूली मामले पर अपना आपा खो

दिया और अपनी पत्नी पर अपनी दरांती से कई वार किए, जिसके परिणामस्वरूप उसकी मौत हो गई। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार, उसके शरीर के विभिन्न हिस्सों पर 15 घाव पाए गए थे। यह संख्या और भी बड़ी थी अगर सीरियल नंबर 8 और 11 पर कई घावों और सीरियल नंबर 14 पर दो घावों को ध्यान में रखा जाए। इसका मतलब यह होगा कि मृतक शरीर पर बीस चोटें थीं। चोटें हाथ, जांघ, कूल्हे, पीठ, छाती और चेहरे सहित विभिन्न हिस्सों पर थीं। उन्हें डकैती करने गए व्यक्ति की तुलना में गुस्से में एक आदमी द्वारा अधिक चोट पहुंचाई गई होगी।

34. जहां तक न्यायमित्र द्वारा दी गई छठी दलील कि गवाहों के बयानों में विरोधाभास है, विशेष रूप से अ०सा०-2 का संबंध है, यह न्यायालय यह दर्ज कर सकता है कि अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों में बचाव पक्ष द्वारा पेश किए जाने वाले विरोधाभास मामूली विरोधाभास हैं और यह पूरे सबूत को खारिज करने का आधार नहीं हो सकता है। जहां अ०सा०-2 एक इच्छुक प्रत्यक्षदर्शी है, अ०सा०1 और अ०सा०3 स्वतंत्र चश्मदीद गवाह हैं और चिकित्सा साक्ष्य ने अभियोजन पक्ष के मामले का पूरी तरह से समर्थन किया है।

35. यह स्थापित कानून है कि सभी आपराधिक मामलों में, अवलोकन की सामान्य त्रुटियों के कारण गवाहों की गवाही में सामान्य विसंगतियां होना तय है, अर्थात्, समय की कमी के कारण स्मृति की त्रुटियां या घटना के समय सदमे और आतंक जैसे मानसिक स्वभाव के कारण। जहां चूक एक विरोधाभास है, गवाह की सत्यता के बारे में गंभीर संदेह पैदा करती है और अन्य गवाह भी अदालत में गवाही देते समय भौतिक सुधार करते हैं, ऐसे साक्ष्य पर भरोसा करना सुरक्षित नहीं हो सकता है। हालांकि, मामूली विरोधाभासों, विसंगतियों, अलंकरण या मामूली मामलों पर सुधार जो अभियोजन मामले के मूल को प्रभावित नहीं करते हैं, को एक आधार नहीं बनाया जाना चाहिए जिसके आधार पर साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज किया जा सकता है। अदालत को गवाह की विश्वसनीयता के बारे में अपनी राय बनानी होगी और यह निष्कर्ष दर्ज करना होगा कि क्या उसकी गवाही आत्मविश्वास को प्रेरित करती है।

36. न्यायमित्र द्वारा की गई अंतिम दलील कि घटना के समय मृतक के शरीर पर पाई गई चोटें दरांती के कारण नहीं हुई हैं, हमने पोस्टमार्टम रिपोर्ट और अ०सा०-6 के बयान की सावधानीपूर्वक जांच की है। हमें डॉक्टर की राय में कोई कमी नहीं मिली कि चोटों का आकार और प्रकृति हमलावर द्वारा हथियार का इस्तेमाल करने के तरीके और जिस तरह से घायल ने वार को रोकने की कोशिश की थी, उस पर निर्भर करेगा। अ०सा०-6 ने राय दी है कि मृतक के शरीर पर पाई गई चोटें दरांती के कारण हो सकती हैं।

37. यह अच्छी तरह से तय है कि इच्छुक या शत्रुतापूर्ण गवाहों के साक्ष्य की सावधानी से जांच की जानी चाहिए, लेकिन केवल पक्षपातपूर्ण साक्ष्य होने के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है। यदि साक्ष्य के अवलोकन पर न्यायालय संतुष्ट हो जाता है कि साक्ष्य विश्वसनीय है तो उक्त साक्ष्य पर भरोसा करने में कोई रोक नहीं है। यह भी अच्छी तरह से तय है कि इच्छुक साक्ष्य आवश्यक रूप से अविश्वसनीय सबूत नहीं हैं। बस इतना आवश्यक है कि इच्छुक गवाहों के साक्ष्य को सावधानीपूर्वक जांच के अधीन किया जाना चाहिए और सावधानी के साथ स्वीकार किया जाना चाहिए। इस प्रकार, साक्ष्य पर केवल इस आधार पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है कि गवाह एक-दूसरे से या मृतक से संबंधित हैं। यदि साक्ष्य में सच्चाई है, ठोस, विश्वसनीय और भरोसेमंद है, तो उस पर भरोसा किया जा सकता है और निश्चित रूप से किया जाना चाहिए।

38. इसके अलावा यह अच्छी तरह से तय है कि प्रत्यक्ष साक्ष्य के मामले में, मकसद प्रासंगिक नहीं होगा और केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में, मकसद बहुत महत्व रखता है। एक ऐसे मामले में जिसमें सबूत स्पष्ट हैं और परिस्थितियां आरोपी के अपराध को साबित करती हैं, ऐसे मामले में जिसमें सबूत कमजोर नहीं होगा, भले ही मकसद बहुत मजबूत न हो। मकसद एक ऐसे मामले में अपना सारा महत्व खो देता है जहां चश्मदीद गवाहों के प्रत्यक्ष सबूत उपलब्ध हैं।

39. सुरेश चंद्र बाहरी बनाम बिहार राज्य मामले में 1995 में सुप्रीम कोर्ट ने कहा था कि मकसद कुछ ऐसा है जो किसी व्यक्ति को कुछ अवैध कार्य या यहां तक कि कानूनी कार्य करने के लिए एक राय या इरादा बनाने के लिए प्रेरित करता है, लेकिन अपराध के लिए मकसद के सबूत के साथ यह अदालत के निष्कर्ष को अतिरिक्त समर्थन देता है कि आरोपी अपराध का दोषी था। आरोप लगाया।

40. एमिकस क्यूरी द्वारा की गई वैकल्पिक दलील यह है कि विचाराधीन घटना बिना किसी पूर्वधारणा के हुई और इसलिए, भले ही पहले की प्रस्तुतियों को स्वीकार नहीं किया गया हो, फिर भी पति (आरोपी-अपीलकर्ता) को भ० द० वि० की धारा 304 के तहत दंडित किया जा सकता है और 10 साल के कारावास की सजा पर्याप्त होगी। एमिकस क्यूरी का यह तर्क इस आधार पर आगे बढ़ता है कि मामला धारा 300 भ० द० वि० के अपवाद -4 के तहत आता है और इसलिए, धारा 302 भ० द० वि० के स्थान पर धारा 304 भ० द० वि० के तहत सजा पर्याप्त होगी।

41. कानून यह तय है कि धारा 302 भ० द० वि० के तहत दोषसिद्धि को धारा 304 भ० द० वि० में बदला जा सकता है, यदि मामला धारा 300 भ० द० वि० के अपवाद -4 के किसी भी घटक में आता है, तो अपवाद -4 आकर्षित होगा। भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद-4 के लिए आवश्यक सामग्री यह होगी कि घटना बिना किसी पूर्व-विचार के हुई हो; अचानक लड़ाई में; अचानक झगड़े पर जुनून की गर्मी में; अपराधी ने अनुचित लाभ उठाया हो या क्रूर या असामान्य तरीके से काम किया हो।

42. मामले के तथ्यों में हमारे द्वारा सबूतों का विश्लेषण किया गया है। हमारा विचार है कि मामला स्पष्ट रूप से धारा 300 भ० द० वि० के अपवाद 4 के अंतर्गत नहीं आता है, केवल इस कारण से कि अपराधी ने अपराध करते समय सबसे क्रूर और असामान्य तरीके से काम किया है।

43. कानून अच्छी तरह से तय है कि धारा 300 भ० द० वि० के अपवाद -4 के सभी अवयवों को किसी दिए गए मामले में लागू करने से पहले पूरा किया जाना चाहिए। भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद-4 के अवयवों में से एक यह है कि अपराधी ने क्रूर और असामान्य तरीके से कार्य नहीं किया है।

44. पुलिचेरला नागराजू [पुलीचेरला नागराजू बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, जिसकी रिपोर्ट (2006) 11 एससीसी 444: (2007) 1 एससीसी (सीआरआई) 500) में दी गई है, एपेक्स के पास गैर इरादतन हत्या के मामले और मौत का कारण बनने के इरादे पर विचार करने का अवसर था। इस न्यायालय द्वारा यह देखा गया और माना गया कि मृत्यु का कारण बनने का इरादा आम तौर पर निम्नलिखित में से कुछ या कई के संयोजन से एकत्र किया जा सकता है, अन्य परिस्थितियों के बीच:

(i) प्रयुक्त हथियार की प्रकृति;

(ii) क्या हथियार अभियुक्त द्वारा ले जाया गया था या उसे मौके से उठाया गया था;

(iii) क्या यह झटका शरीर के एक महत्वपूर्ण अंग को लक्षित करता है;

(iv) चोट पहुंचाने में कितना बल नियोजित किया गया है;

(v) क्या यह कृत्य अचानक हुए झगड़े अथवा अचानक हुए झगड़े अथवा सभी के लिए संघर्ष के दौरान किया गया था;

(vi) क्या यह घटना संयोग से हुई है या क्या इसके पीछे कोई पूर्व इरादा था;

(vii) क्या पहले से कोई दुश्मनी थी या क्या मृतक अजनबी था;

(viii) क्या कोई गंभीर और अचानक उकसावा दिया गया था और यदि हां, तो ऐसे उकसावे के क्या कारण हैं;

(ix) क्या यह जुनून की गर्मी में था;

(x) क्या चोट पहुंचाने वाले व्यक्ति ने अनुचित लाभ उठाया है या क्रूर और असामान्य तरीके से कार्य किया है;

(xi) क्या आरोपी ने एक भी झटका दिया या कई वार किए।

45. वर्तमान मामले के तथ्यों में रिकॉर्ड पर लाए गए साक्ष्य स्पष्ट रूप से दिखाते हैं कि आरोपी-अपीलकर्ता ने अपनी पत्नी (मृतक) की अपने माता-पिता के घर जाने की इच्छा पर आपत्ति जताई और जब मृतका ने अपने पिता के साथ जाने पर जोर दिया, तो आरोपी-अपीलकर्ता ने उस पर दरांती से हमला किया और 15 वार किए। पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट में चोटों का पता चला है, जो स्पष्ट रूप से दिखाएगा कि आरोपी-अपीलकर्ता ने अपनी पत्नी पर बार-बार हमला करके क्रूर और असामान्य तरीके से काम किया, जिसके कारण उसकी मृत्यु हो गई। हमारी राय में आरोपी-अपीलकर्ता का कृत्य क्रूर और असामान्य तरीके से कार्य करने के समान होगा, जो वर्तमान मामले के तथ्यों में धारा 300 भ० द० वि० के अपवाद-4 की प्रयोज्यता को स्पष्ट रूप से बाहर कर देगा।

46. दलीप सिंह (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को छोड़कर, उक्त वैकल्पिक निवेदन के समर्थन में एमिकस क्यूरी द्वारा भरोसा किए गए अन्य सभी निर्णयों का वर्तमान मामले के तथ्यों में कोई आवेदन नहीं है। जहां तक दलीप सिंह (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का सवाल है, तथ्य कुछ अलग थे। उस मामले में मृतक को कथित तौर पर पुलिस स्टेशन में प्रताड़ित किया गया था और बाद में सड़क पर फेंक दिया गया था। यह उस संदर्भ में था कि सर्वोच्च न्यायालय ने अधिनियम को दलीप सिंह (सुप्रा) के मामले में होने वाले तथ्यों के खिलाफ भ० द० वि० की धारा 300 के अपवाद-4 में माना था। इस मामले में आरोपी-अपीलकर्ता का कृत्य हालांकि अपनी ही असहाय पत्नी पर बार-बार 15 वार करने में उसकी ओर से क्रूरता को दर्शाता है। न केवल आरोपी-अपीलकर्ता ने ज्ञान के साथ काम किया कि इस तरह की चोटें घातक साबित होंगी, बल्कि इस तरह की चोटों को पैदा करने का तरीका भी क्रूरता को दर्शाता है।

47. जिस तरह से अपराधी द्वारा अपनी पत्नी के खिलाफ गुस्से में कई घाव किए गए हैं, वह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि अपराधी का कृत्य क्रूर है और अपराध उसके द्वारा असामान्य तरीके से किया गया है। पीड़ित/मृतका पर लगी चोटें स्पष्ट रूप से दर्शाती हैं कि अपराधी ने अत्यधिक क्रूरता के साथ काम किया और उसके व्यक्ति को एक के बाद एक चोट पहुंचाई, इस तथ्य के बावजूद कि मृतक/पीड़ित उसकी अपनी पत्नी थी और उसके पास हथियार नहीं थे। अपने पिता के साथ जाने की उसकी जिद आरोपी-अपीलकर्ता की ओर से इस तरह के क्रूर कृत्य को सही नहीं ठहरा सकती है।

48. हमारे समक्ष उठाए गए तथ्यों के संचयी विश्लेषण पर, हमारा विवेक हमें आरोपी-अपीलकर्ता को धारा 300 भ० द० वि० के अपवाद-4 में अपना कृत्य रखने या विचारण न्यायालय द्वारा दी गई सजा के अलावा अन्य सजा देने की अनुमति नहीं देता है।

49. वर्तमान मामले में तीन चश्मदीद गवाहों अर्थात् अ०सा०-1 से अ०सा०-3 और एक परिस्थितिजन्य गवाह यानी अ०सा०-4 के इरादे/मकसद के साथ-साथ प्रत्यक्ष साक्ष्य उपलब्ध हैं। रिकॉर्ड से, यह स्पष्ट है कि अ०सा०-1 यानी एक स्वतंत्र चश्मदीद गवाह अ०सा०2 और उसके बेटे के अलार्म पर घटना के स्थान पर पहुंचा था और उसने आरोपी को अपने हाथ में दरांती के साथ देखा था। हंसिया पर खून के धब्बे थे। आरोपी-अपीलकर्ता को अ०सा०-2 और उसके बेटे मुनेश्वर ने पकड़ लिया और मृतक पास के कमरे में मृत पड़ा था। हालांकि यह गवाह अपने बयान से

मुकर गया है, लेकिन उसके साक्ष्य का यह हिस्सा स्वीकार्य है और इस बिंदु पर उस पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। अ०सा०-2, एक इच्छुक प्रत्यक्षदर्शी, जो मृतक का पिता है और घटनास्थल के अपराध में उसकी उपस्थिति स्वाभाविक है, वह अपने बेटे के साथ आरोपी अपीलकर्ता के घर गया ताकि मृतक को बदलाव के लिए उसके घर वापस ले जाया जा सके क्योंकि उसकी नवजात जुड़वां बेटियों की लगभग दो सप्ताह पहले मृत्यु हो गई थी। अ०सा०3, जो एक स्वतंत्र चश्मदीद गवाह है, आरोपी-अपीलकर्ता का पड़ोसी है। घटनास्थल पर उनकी उपस्थिति भी स्वाभाविक थी। उन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले के साथ पूरी तरह से पुष्टि की है और कहा है कि उन्होंने आरोपी अपीलकर्ता को मृतक पर दरांती मारते हुए देखा है। इसी तरह, अ०सा०-4 का बयान जो घटना के दस मिनट बाद घटना स्थल पर पहुंच गया था, विश्वसनीय है। वह गश्त पर थे। जब वह अपने साथी कांस्टेबल वीरेंद्र सिंह के साथ घटना स्थल पर पहुंचे, तो उन्होंने आरोपी को अ०सा०-2 और उसके बेटे मुनेश्वर की हिरासत में पाया और पास में खून से सना दरांती पड़ा था। यह भी सबूत का एक मजबूत टुकड़ा है।

50. उपर्युक्त तथ्यों से, जिन्हें ऊपर नोट किया गया है, हम अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रस्तुतियों में सार पाते हैं कि यह घटना के तीन चश्मदीद गवाहों, अर्थात् अ०सा०-1 से अ०सा०-3 और एक परिस्थितिजन्य गवाह यानी अ०सा०- 4 जैसे प्रत्यक्ष और ठोस साक्ष्य का मामला है। यह घटना दिन के उजाले में यानी 09:00 बजे हुई। शिकायतकर्ता द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम सूचना रिपोर्ट त्वरित है, जो 3 नवंबर, 1981 को सुबह 11.35 बजे दर्ज की गई थी, यानी घटना के दो घंटे और पैंतीस मिनट बाद! आरोपी-अपीलकर्ता का भी इस तरह का अपराध करने का मकसद था। बचाव पक्ष द्वारा घटना और घटना के स्थान पर विवाद नहीं किया गया था।

51. जैसा कि ऊपर पहले ही चर्चा की जा चुकी है, हम पाते हैं कि दोनों चश्मदीद गवाहों अर्थात अ०सा०-1 से अ०सा०-3 और परिस्थितिजन्य गवाह यानी अ०सा०-4 ने घटना के स्थानों पर उनकी उपस्थिति के बारे में संतोषजनक ढंग से समझाया है। उनसे लंबी जिरह की गई लेकिन उनकी गवाही को बदनाम करने के लिए कुछ भी हासिल नहीं किया जा सका। पुलिस के दस्तावेज और आरोपी-अपीलकर्ता की गिरफ्तारी सहित जांच अधिकारी के बयान और आरोपी-अपीलकर्ता के खून के धब्बों के साथ-साथ चिकित्सा साक्ष्य की बरामदगी अभियोजन पक्ष के बयान का पूरी तरह से समर्थन करते हैं।

52. साक्ष्य का संचयी प्रभाव लेते हुए, हम विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष के साथ निश्चित रूप से सहमत हैं और अपीलकर्ता को दोषी ठहराने में यह पूरी तरह से उचित था। तदनुसार, हम विचारण न्यायालय के आदेश की पुष्टि करते हैं।

53. अपील में कोई दम नहीं है और इसे खारिज किया जाता है। अपीलकर्ता के जमानत पर होने की सूचना है। उनकी जमानत रद्द कर दी गई है और शेष सजा काटने के लिए उन्हें हिरासत में लिया जाए।

54. अब जुर्माने के प्रश्न पर आते हुए, हम इसे अनिवार्य पाते हैं जहां दंड भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत दिया जाता है। तैयार संदर्भ के लिए, धारा 302 आई.पी.सी. निम्नानुसार है:

"जो कोई भी हत्या करता है, उसे मौत की सजा या [आजीवन कारावास] से दंडित किया जाएगा, और जुर्माना भी लगाया जाएगा।

55. उपर्युक्त धारा के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि कोई भी अभियुक्त, जो किसी भी हत्या को अंजाम देता है, उसे मौत या आजीवन कारावास से दंडित किया जाएगा और उसके खिलाफ जुर्माना भी लगाया जाएगा। मौत या आजीवन कारावास की सजा देते समय, जुर्माना एक साथ पढ़ा जाना चाहिए। "जुर्माना"शब्द से पहले, "होगा"शब्द का उपयोग किया जाता है और इसलिए, हत्या करने वाले किसी भी आरोपी को मौत या आजीवन कारावास की सजा देते समय जुर्माना लगाना अनिवार्य है।

56. तदनुसार, आजीवन कारावास के अलावा, विचारण न्यायालय के फैसले की पुष्टि करते हुए, हम आरोपी-अपीलकर्ता पर 10,000 रुपये का जुर्माना भी लगाते हैं। यह भी स्पष्ट किया जाता है कि उक्त जुर्माने के भुगतान में चूक के मामले में, उसे छह महीने का अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा।

57. इस आपराधिक अपील को खारिज करने से अभियुक्त-अपीलकर्ता के छूट के लिए आवेदन करने के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा, जिसे गुण-दोष के आधार पर कानून के अनुसार निपटाया जाएगा।

58. हम श्री राज कुमार शर्मा, एमिकस क्यूरी द्वारा मामले में प्रदान की गई सक्षम सहायता के लिए अपनी सराहना दर्ज करते हैं, जो उच्च न्यायालय कानूनी सेवा प्राधिकरण से उनकी फीस के हकदार होंगे।

59. इस निर्णय की एक प्रति मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, फर्रुखाबाद को भेजी जाए, जो अभियुक्त-अपीलकर्ता की जानकारी के लिए इसे संबंधित जेल अधीक्षक को प्रेषित करेंगे।

(2023) 1 ILRA 949

अपीलीय क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: लखनऊ 13.01.2023
समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा,
माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सरोज यादव,

जेल अपील संख्या 1545/2019
और
जेल अपील संख्या 1546/2019

मिन्नी @ मीना ...अपीलकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता:
श्री अनुराग शुक्ला (न्याय मित्र)

अधिवक्ता प्रतिवादी:
ए.जी.ए.

आपराधिक कानून- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 3- वादी सियापति और पोहकर जो स्वयं को अपराध के प्रत्यक्षदर्शी के रूप में दावा कर रहे हैं, विश्वसनीय नहीं थे। घटना स्थल पर उनकी उपस्थिति अत्यधिक अविश्वसनीय है - इन दोनों गवाहों के बयान भौतिक दृष्टि से विरोधाभासी हैं और घटनास्थल पर उनकी उपस्थिति के बारे में गंभीर संदेह पैदा करते हैं, इसके अलावा अपराध के हथियार की बरामदगी भी अत्यधिक संदिग्ध है क्योंकि पी.डब्लू.1 सियापति ने अपनी जिरह में कहा है कि दोनों तौलिया (ट्रॉवेल) यानी एक मिन्नी का और दूसरा बलराम का घटनास्थल पर छोड़ दिया गया था और उन्हें पुलिस ने ले लिया था। दूसरी ओर, विवेचक का कहना है कि उन्हें आरोपी बलराम ने अपनी नर्सरी से तौलिया (ट्रॉवेल) दिया था।

यह स्थापित कानून यह है कि जहां अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही में ऐसे भौतिक विरोधाभास हों कि वे अभियोजन कथा की जड़ तक पहुंच जाएं और घटना स्थल पर उनकी उपस्थिति अविश्वसनीय हो जाए और बरामदगी साबित न हो सके, तो न्यायालय द्वारा ऐसे साक्ष्य पर भरोसा नहीं किया जा सकता। (पैरा 17, 18)

परिणाम - आपराधिक अपील स्वीकृत। (ई-3)

<u>संदर्भित निर्णयों की सूचि :-</u>

1. सुनील कुंडू और अन्य बनाम झारखंड राज्य, (2013) 4एससीसी 422
2. कृष्णेगौड़ा एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, (2017) एससीसी 98.
3. पूरन सिंह बनाम उत्तरांचल राज्य (2008) (3) एससीसी 795
4. मनीराम एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1994 सप्लीमेंट (2) एससीसी 289
5. भिखारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एआईआर 1966 एससी 1

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सरोज यादव, द्वारा प्रदत्त)

(यह निर्णय माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा, द्वारा इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम 1952 के नियम (1) के अध्याय VII उप-नियम (2) के संदर्भ में घोषित किया गया है।)

1. ये आपराधिक अपीलें अपीलकर्ताओं/ दोषियों मिन्नी@मीना एवं बलराम द्वारा, अपराध संख्या 349/2009 से उद्भूत सत्र परीक्षण संख्या 79/2010 अंतर्गत धारा 302/34 भारतीय दंड संहिता 1860 (संक्षेप में भा.द.सं.), पुलिस स्टेशन माल, जिला लखनऊ में अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 5 विशेष न्यायाधीश, गैंगस्टर एक्ट, लखनऊ द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 19.06.2019 के विरूद्ध जेल से दायर की गई हैं जिसके अंतर्गत दोषियों/अपीलकर्ताओं को भा.द.स. की धारा 302/34 के अंतर्गत दोषी ठहराया गया है एवं प्रत्येक को 25,000/- रुपये के जुमनि के साथ कारावास की सजा सुनाई गई है, एवं जुर्माना अदा न करने पर छह माह के अतिरिक्त कारावास से भी दंडित किया गया है।

2. इन अपीलों के निस्तारण हेतु आवश्यक तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं-

(i) सियापति द्वारा प्रस्तुत लिखित रिपोर्ट के आधार पर, पुलिस स्टेशन माल, जिला लखनऊ में मुकदमा अपराध संख्या 349/2009 में एक प्रथम सूचना रिपोर्ट (संक्षेप में प्र.सू.रि.) दर्ज की गई थी। लिखित रिपोर्ट में कहा गया था कि दिनांक 17.10.2009 को सायं लगभग 7:00 बजे वह अपने पिता लल्लू एवं मां ललाईन से मिलने ग्राम बड़खोरवा गई थी। जैसे ही वह दरवाजे से अंदर घुसी तो देखा कि उसकी छोटी बहन मिन्नी एवं उसके पति बलराम ने उसके माता-पिता पर खुरपी से हमला कर हत्या कर दी एवं वे उसे देखते ही वे घर से भाग गये। उसने शोर मचाया तो गाँव के कुछ लोग वहाँ आ गए एवं उन्होंने भी मिन्नी एवं बलराम को भागते हुए देखा। उसकी छोटी बहन मिन्नी एवं उसके पति बलराम ने धन एवं संपत्ति के लिए उसके माता-पिता की हत्या कर दी। घटनास्थल पर शव पड़े हुए थे।

(ii) अन्वेषण के उपरान्त अपीलार्थियों/दोषियों के विरुद्ध धारा 302/34 भा.द.स. के अंतर्गत आरोप पत्र न्यायालय में प्रस्तुत किया गया। संबंधित मजिस्ट्रेट ने आरोप पत्र पर संज्ञान लेने के बाद वाद को सुनवाई हेतु सत्र न्यायालय में उपान्तरित किया, जिसे वर्ष2010 के सत्र परीक्षण संख्या

79 के रूप में पंजीकृत किया गया। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने मामले को सुनवाई के लिए अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 5/ विशेष न्यायाधीश, गैंगस्टर एक्ट, लखनऊ की न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया। अपर सत्र न्यायाधीश, लखनऊ ने भा.द.स. की धारा 302/34 के अंतर्गत आरोप तय किया। अपीलकर्ताओं/दोषियों ने अपराध से इनकार किया एवं विचारण की प्रार्थना की।

(iii) अभियोजन पक्ष ने अपना वाद सिद्ध करने हेतु निम्नलिखित साक्षियों की परीक्षा की:-

(क) अ.सा.1 वादिनी सियापति शिकायतकर्ता
(ख) अ.सा. 2 पोखर वादिनी सियापति के पति
(ग) अ.सा. 3 डॉ. पीके द्विवेदी, जिन्होंने दोनों मृतकों के शवों का शव परीक्षण किया।
(घ) अ.सा. 4, सब इंस्पेक्टर अवधू प्रसाद आज़ाद जिन्होंने संबंधित पुलिस स्टेशन के थाना प्रभारी के निर्देश पर दोनों मृतकों के शवों का पंचायतनामा किया।
(ङ.) अ.सा. 5, सूरजभान सिंह, हेड-मोहर्रिर, जिन्होंने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की एवं चिक प्र.सू.रि. प्रदर्श क-13 एवं कायमी नकल रिपोर्ट प्रदर्श क-14 तैयार किया।
(च) अ.सा. 6, सब इंस्पेक्टर गौरी शंकर पाल, वाद के अन्वेषण अधिकारी।

(iv) उपरोक्त मौखिक साक्ष्यों के अतिरिक्त निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य भी सिद्ध किये गये एवं प्रदर्श क-1 से क-25के रूप में अंकित किये गये:-

(1) प्रदर्श क-1, लिखित रिपोर्ट।
(2) प्रदर्श क-2, मृतक लल्लू का पंचायतनामा।
(3) प्रदर्श क-3, मृतका ललाईन का पंचायतनामा।
(4) प्रदर्श क-4, निर्णय में लिखित त्रुटि के कारण गलत उल्लेख किया गया है।
(5) प्रदर्श क-5, मृतक लल्लू की शव विच्छेदन रिपोर्ट
(6) प्रदर्श क-6, मृतक ललाईन की शव विच्छेदन रिपोर्ट
(7) प्रदर्श क-7, मृतक लल्लू का चालान'नाश'
(8) प्रदर्श क-8, मृतक लल्लू का फोटो 'नाश'
(9) प्रदर्श क-9, मृतक लल्लू से संबंधित नमूना मुहर
(10) प्रदर्श क-10, मृतका ललाइन का चालान 'नाश'
(11) प्रदर्श क-11, मृतका ललाइन का फोटो 'नाश'
(12) प्रदर्श क-12, मृतका ललाइन से संबंधित नमूना मुहर
(13) प्रदर्श क-13, चिक प्र.सू.रि.
(14) प्रदर्श क-14, नकल रिपोर्ट
(15) प्रदर्श क-15, नक्शा नजरी
(16) प्रदर्श क-16, घटनास्थल से सादे एवं खून आलूदा मिट्टी एकत्रित किये जाने का बरामदगीनामा
(17) प्रदर्श क-17, आरोपी मिन्नी की साड़ी का बरामदगीनामा
(18) प्रदर्श क-18, अपराध हथियार खुरपी (खुरपी) का बरामदगीनामा
(19) प्रदर्श क-19, आरोपी बलराम की खून आलूदा कमीज़ एवं बनियान का बरामदगीनामा
(20) प्रदर्श क-20, खुरपी, खून आलूदा कमीज़ एवं बनियान की बरामदगी के स्थानों की नक्शा नजरी
(21) प्रदर्श क-21, आरोपी मिन्नी की साड़ी की बरामदगी के स्थान की नक्शा नजरी
(22) प्रदर्श क-22, आरोप पत्र
(23) प्रदर्श क-23, सादे एवं खून आलूदा मिट्टी के संबंध में फोरेंसिक साइंस लैब रिपोर्ट
(24) प्रदर्श क-24, सादे एवं खून आलूदा मिट्टी के संबंध में फोरेंसिक साइंस लैब रिपोर्ट।
(25) प्रदर्श क-25, आरोपी व्यक्तियों के बरामद कपड़ों एवं अपराध के हथियार के संबंध में फोरेंसिक साइंस लैब रिपोर्ट

(v) अभियोजन साक्ष्य समाप्त होने के बाद, दंड प्रक्रिया संहिता 1973 (संक्षेप में द.प्र.सं.) की धारा 313 के अंतर्गत अपीलकर्ताओं/दोषियों के बयान दर्ज किए गए, जिसमें उन्होंने अपराध से इनकार किया एवं कहा कि गवाहों ने झूठी गवाही दी है। उन्होंने यह भी कहा है कि उन्हें दुश्मनी के कारण इस अपराध में फंसाया गया है। दोषी/अपीलकर्ता मिन्नी ने आगे कहा है कि उसके माता-पिता ने उसकी बहन (शिकायतकर्ता) एवं उसके पति को अपने घर नहीं आने दिया, क्योंकि वे शराब बेचते थे। उनके माता-पिता सारी संपत्ति उन्हें देना चाहते थे, लेकिन उन्होंने इनकार कर दिया एवं उनसे कहा कि उनकी मृत्यु के बाद दोनों बहनों को बराबर हिस्सा मिलेगा। जब वह

जेल में बंद थी तो उसकी बहन ने जमीन बेचकर मकान भी बनवा लिया था। यह कहना गलत है कि वह (उसकी बहन) कुछ समय अपने माता-पिता के साथ एवं कुछ समय तक अपनी ससुराल में रहती थी, क्योंकि उसके माता-पिता ने उसे अपने घर में आने की अनुमति नहीं दी थी। उसकी बहन ने अपने पिता की सारी ज़मीन बेच दी। उसने आगे कहा कि उसने कोई अपराध नहीं किया है। उसे उसकी ससुराल से गिरफ्तार किया गया था। दोषी/अपीलकर्ता बलराम ने यह भी कहा है कि वह घटना के समय गांव में मौजूद नहीं था क्योंकि वह लखनऊ में था।

(vi) अपने बचाव में दोषियों/अपीलकर्ताओं ने प्रतिरक्षा साक्षी-1 डा.राकेश कुमार, चिकित्सक सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र हैदरगढ़ से पूछताछ की।

(vii) साक्ष्य पूरा होने के बाद, दोनों पक्षों के तर्क सुनने एवं अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का विश्लेषण करने के बाद विद्वान विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँची कि दोषीगण/अपीलकर्ता मिन्नी एवं बलराम ने मिन्नी के माता-पिता एवं बलराम के ससुरलीजन लल्लू एवं ललाईन की हत्याएं की। विद्वान विचारण न्यायालय ने सियापति एवं पोखर के साक्ष्यों एवं दोनों आरोपियों के खून आलूदा कपड़ों की बरामदगी एवं अपराध के हथियार खुरपी (खुरपी) की बरामदगी पर विश्वास व्यक्त किया। विद्वान विचारण न्यायालय का निष्कर्ष था कि अभियोजन पक्ष ने वाद को सभी युक्तियुक्त संदेहों से परे सिद्ध कर दिया है। विद्वान विचारण न्यायालय ने दोनों दोषियों/अपीलकर्ताओं को भा.दं.सं. की धारा 302/34 के अंतर्गत दोषी ठहराया एवं उन्हें आजीवन कारावास के साथ 25,000/- रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई एवं जुर्माना न देने पर छह महीने की अतिरिक्त कैद की सजा सुनाई।

(viii) इस दोषसिद्धि एवं सजा से व्यथित होकर दोषी/अपीलकर्ता द्वारा, वर्तमान अपीलें दायर की गई हैं ।

(3) दोषियों/अपीलकर्ताओं हेतु विद्वान न्याय मित्र श्री अनुराग शुक्ला एवं राज्य-प्रतिवादीगण हेतु विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री धनंजय कुमार सिंह को सुना गया।

(4) विद्वान न्याय मित्र श्री अनुराग शुक्ला ने अपीलकर्ताओं हेतु तर्क दिया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट समय से पूर्व की है। मौके पर सर्वप्रथम पुलिस पहुंची, उसके बाद पुलिस से सलाह कर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई। घटनास्थल पर कथित चश्मदीदों यानी अ.सा.1 एवं अ.सा. 2 की उपस्थिति अत्यधिक संदिग्ध है क्योंकि वे घटना के गाँव से 1 किमी की दूरी पर स्थित दूसरे गाँव के निवासी थे। खुरपी एवं खून आलूदा कपड़ों की बरामदगी फर्जी है। यह बरामदगी पुलिस द्वारा साक्ष्य बनाने के लिए रची गई एवं फर्जी तरीके से की गई है। अ.सा.1 सियापति ने विचारण न्यायालय के समक्ष अपने बयान में कहा है कि घटनास्थल पर दो खुरपी थी, किन्तु अन्वेषण अधिकारी ने कहा है कि केवल एक खुरपी बरामद की गयी थी एवं वह भी घटनास्थल से नहीं, बल्कि अन्यत्र कहीं से। उन्होंने पुन: तर्क दिया कि कथित आशय सिद्ध नहीं हुआ है क्योंकि मृत व्यक्तियों के स्वामित्व में भूमि का बहुत छोटा टुकड़ा था एवं उनकी मृत्यु के बाद दोनों बहनों को समान भाग में विरासत मिली होगी। अ.सा.1, अ.सा.2 एवं अ.सा.6 एवं अन्वेषण अधिकारी के बयान विरोधाभासी हैं। कथित बरामदगी को भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अंतर्गत दोषियों/अपीलकर्ताओं के खिलाफ साक्ष्य के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह उनके कब्जे से या उनकी निशानदेही पर बरामद नहीं किया गया है। पुन: उन्होंने कहा कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य अत्यधिक अविश्वसनीय हैं एवं इस साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि को अपास्त किया जाना चाहिए एवं दोषियों/अपीलकर्ताओं को मुक्त किया जाना चाहिए।

(5) विद्वान न्याय मित्र ने निम्नलिखित निर्णय विधियों का अवलंब लिया:-

(क) सुनील कुंडू एवं अन्य बनाम झारखंड राज्य (2013) 4 एससीसी 422

(ख) कृष्णेगौड़ा एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य (2017) 18 एससीसी 98

(ग) पूरन सिंह बनाम उत्तरांचल राज्य (2008) (3) एससीसी 795

(घ) मनीराम एवं अन्य बनाम उ.प्र.राज्य 1994 सप्लिमेंट (2) एससीसी 289

(ड.) भिखारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एआईआर 1966 एससी 1

(6) दूसरी ओर, विद्वान अपर शासकीय अधीवक्ता श्री धनंजय कुमार सिंह ने विद्वान न्याय मित्र द्वारा प्रस्तुत तर्कों का प्रतिवाद किया एवं प्रस्तुत किया कि अ.सा.1 एवं अ.सा.2 प्रत्यक्षदर्शी साक्षीगण हैं। उन दोनों ने दोषियों/अपीलकर्ताओं द्वारा घटना को कारित होते देखा तब वादिनी सियापति ने शोर मचाया तो गाँव के अन्य व्यक्ति भी वहाँ पहुँच गए। पुलिस ने अपराध का हथियार खुरपी बरामद किया एवं खुरपी पर खून के धब्बे पाए गए। उसकी निशानदेही पर मिन्नी की खून आलूदा साड़ी भी बरामद कर ली गई। उसकी निशानदेही पर बलराम की खून आलूदा कमीज़ एवं बनियान भी बरामद कर ली गई।

फोरेंसिक लैब की रिपोर्ट में इन बरामद कपड़ों पर मानव रक्त पाया गया है। दोषियों/अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त साक्ष्य हैं। इसलिए, विचारण न्यायालय ने सही ही उन्हें दोषी ठहराया है एवं तदनुसार दंडित किया है। अत: अपील खारिज कर दी जानी चाहिए

(7) विरोधी प्रस्तुतियों पर विचार किया गया, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का अवलोकन किया गया एवं ऊपर उद्‌धृत निर्णय विधि का अध्ययन किया गया। प्र.सू.रि. के कथनानुसार, घटना के दिन अर्थात 17.10.2009 को सायं लगभग 7.00 बजे शिकायतकर्ता सियापति अपने वैवाहिक गाँव अटवाथरी से बड़खोरवा गांव में अपने माता-पिता से मिलने गई थी। जैसे ही वह दरवाजे से अंदर घुसी तो देखा कि उसकी छोटी बहन मिन्नी एवं बलराम ने उसके माता-पिता को खुरपी से मार डाला है। जैसे ही उन्होंने (अपीलकर्ताओं ने) शिकायतकर्ता को देखा, वे घर से बाहर भाग गए। जब वादिनी ने शोर मचाया तो गाँव के लोग वहाँ आ गए एवं उन्होंने भी मिन्नी एवं बलराम को भागते हुए देखा। प्राथमिकी में यह भी उल्लेख किया गया है कि अपीलकर्ताओं ने धन एवं संपत्ति के लालच में मृतक की हत्या कर दी।

(8) अ.सा.1 सियापति ने स्वयं को अपराध का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी बताया है एवं अ.सा.1 के रूप में दिए गए अपने बयान में कहा है कि घटना दीपावली के दिन सायं लगभग 7:00 बजे की है जब वह अपने पिता लल्लू एवं मां ललाइन से मिलने बड़खोरवा गाँव गई थी। जैसे ही वह दरवाजे पर पहुँची तो उसने देखा कि उसकी छोटी बहन मिन्नी एवं उसका पति बलराम, जो कि बड़खोरवा गांव में ही रहते थे, ने उसके माता-पिता पर खुरपी से हमला कर उन्हें घायल कर दिया, जिससे उनकी मृत्यु हो गयी। जैसे ही उन्होंने उसे देखा, वे दोनों घर से बाहर भाग गये। तत्पश्चात उसने शोर मचाया, जिस पर गाँव के कई लोग वहाँ आ गए एवं उन्होंने भी मिन्नी एवं बलराम को भागते हुए देखा। पुन: उसने कहा कि अपीलकर्ताओं ने धन एवं संपत्ति के लालच में उसके माता-पिता की हत्या कर दी है। उसने अपनी लिखित रिपोर्ट को प्रदर्श क-1 के रूप में सिद्ध किया है एवं उस पर अपने अंगूठे के निशान की पहचान की है। प्रतिपरीक्षा में उसने बताया कि उसका ससुराल उसके पैतृक घर से 1 किमी की दूरी पर स्थित है। उसके पिता की दो संताने थीं - एक वह एवं दूसरी उसकी बहन। मिन्नी उसकी छोटी बहन है। माता-पिता की मृत्यु के बाद दोनों बहनों को आधा-आधा हिस्सा विरासत में मिलता। पुन: उसने कहा है कि उसके पिता की मृत्यु के समय उनके पास तीन बीघा भूमि थी, अब मात्र ढाई बिस्वा भूमि बची है। उसने आगे कहा कि उसके माता-पिता ने अपनी हत्या से पूर्व भूमि बेच दी थी, मात्र ढाई बिस्वा भूमि बची थी। अब उनकी मृत्यु के बाद, उनका घर खाली पड़ा है एवं कोई भी वहाँ नहीं रह रहा है।

(9) पुन: उसने कहा है कि जब उसके माता-पिता की हत्या उसके पिता के घर में की गई थी तो प्रवेश के लिए मात्र एक ही दरवाजा था। उसने आगे कहा कि पहले वह घर में प्रविष्ट हुई एवं कोई भी घर में नहीं आया। जब उसने शोर मचाया तो गाँव के कई लोग वहांँ आ गए। जब वह घर में प्रविष्ट हुई तो उसने सर्वप्रथम अपीलकर्ताओं को दरवाजे से बाहर आते देखा एवं दोनों अपीलकर्ता उसके माता-पिता के शव के पास आंगन में थे। जब वे भाग गए तो गाँव के कई लोग वहाँ आ गये। दस-पंद्रह मिनट बाद उसका पति वहाँ पहुँच गया। उसके साथ उसके ससुराल वाले गाँव के दस से बारह लोग भी थे क्योंकि वे (अपीलकर्ता) उसे अकेला देखकर उसे भी मार सकते थे। उसके साथ दलिये, पप्पू, जगदीश, जघत्ते एवं विकास भी थे। ये सभी लोग सिर्फ उसके साथ गए थे, उन्हें घटना की पूर्व जानकारी नहीं थी। उसके घर का दरवाज़ा खुला था। उसकी ससुराल से आये लोग बाहर खड़े थे। जब उसने शोर मचाया तो उसके ससुराल एवं मायके वाले गाँव के लोग अंदर आए एवं तब तक दोनों आरोपी भाग गए। पुन: उसने कहा कि उसने पुलिस को बताया कि मिन्नी ने मृत व्यक्तियों को पकड़ रखा था एवं बलराम उन्हें मार रहा था, एवं यही तथ्य उसने प्र.सू.रि. में भी लिखा था। बलराम जाति से रैदास है एवं मिन्नी ने अपनी मर्जी से उससे शादी की थी। इस कारण उसके माता-पिता एवं वह मिन्नी एवं बलराम से खुश नहीं थे। मिन्नी एवं बलराम उसके माता-पिता के घर आते थे। घटना के समय बलराम ने सफेद कमीज़-पैंट पहन रखा था एवं गले में सफेद रूमाल बांध रखा था। उसकी बहन मिन्नी ने लाल रंग की साड़ी एवं ब्लाउज पहना हुआ था। दोनों ने अपने हाथों में खुरपी पकड़ रखी थी एवं वे खुरपी लेकर भागे। पुन: उसने कहा कि मिन्नी की खुरपी घटना स्थल पर छूट गयी थी जिसे पुलिस उठा ले गई एवं बलराम की खुरपी घर के बाहर रह गयी थी उसे भी पुलिस उठा ले गई। खुरपी की बरामदगी के संबंध में बरामदगीनामा तैयार किया गया था एवं उसने एवं उसके पति ने उस बरामदगीनामा पर अपना अंगूठा लगाया था।

(10) वादिनी सियापति के पति पोहकर से अ.सा.2 के रूप में परीक्षा की गई है एवं उन्होंने विचारण न्यायालय के समक्ष कहा है कि वह अपनी पत्नी सियापति के साथ बडखोरवा गाँव में पत्नी के पैतृक घर गए थे, उनकी पत्नी आगे निकल गयी थी क्योंकि वह पेशाब करने के लिए रास्ते में रुके थे। इसी कारण वह पीछे रह गया। जब वह घर पहुँचा तो उसने अपनी पत्नी को रोते हुए पाया। उसकी पत्नी ने बताया कि मिन्नी एवं बलराम उसके (अ.सा.2) सास-ससुर को खुरपी से काट रहे थे। इस पर वह भी रोने लगा एवं इस पर गांव के लोग वहाँ एकत्रित हो गए एवं अपीलकर्ता हत्या करने के बाद भाग गये। उसने आगे कहा है कि उसने एवं ग्रामीणों ने मिन्नी एवं बलराम को

हत्या करने के बाद भागते देखा था। उसने यह भी बताया कि वह अटवाथरी गांव का रहने वाला है एवं वह गाँव घटना वाले गाँव से 1 किमी की दूरी पर स्थित है। पुन: उसने बताया कि शोर सुनकर गाँव के आसपास के ग्रामीण भी मौके पर पहुंच गये। उसने आगे कहा है कि जब बलराम भागा तो उसने दरवाजा नहीं खोला। आरोपी दरवाजा खोलकर भाग गए एवं उसने देखा कि उसके सास एवं ससुर आंगन में पड़े हुए थे। डर के मारे उन्होनें उन्हें नहीं पकड़ा। उसने आगे कहा है कि घटना स्थल पर सबसे पहले उसकी पत्नी पहुँची एवं पाँच मिनट बाद वह पहुँचा। उसने आरोपियों को उसके ससुराल वालों की हत्या करते देखा।

(11) अ.सा.3 डॉ.पी.के. द्विवेदी ने दोनों मृतकों के शवों का पोस्टमार्टम कराया। मृतक लल्लू के शव पर उन्हें निम्नलिखित मृत्यु पूर्व चोटें मिलीं-

1. चेहरे के बायीं ओर बाईं आंख के नीचे 5 सेमी, मांसपेशियों तक गहरा घाव 3 सेमी x 0.5 सेमी, तीक्ष्ण स्पष्ट किनारे।

2. नीलगू निशान 8 सेमी x 4 सेमी यह सिर के बायीं ओर बायें कान के ठीक ऊपर मौजूद है।

3. नीलगू निशान 20 सेमी X 10 सेमी कान के बाईं ओर एवं बाईं कॉलर हड्डी के नीचे मौजूद है।

4. पेट के दाहिनी ओर के पार्श्व पक्ष पर इलियाक क्रेस्ट से 7 सेमी ऊपर नीलगू निशान 8 सेमी x 5 सेमी का मौजूद है। खुलने पर उपरोक्त चोटों के नीचे की ओर एकिमोसिस पाया गया। बाएं टेम्पोरल एवं पैरिटल हड्डी का फ्रेक्चर मौजूद है। फ्रैक्चर के नीचे मस्तिष्कावरक झिल्लियां एवं मस्तिष्क फटा हुआ, छाती के बायीं ओर दूसरे से छठे क्रमांक की पसली का फ्रैक्चर मौजूद है, फ्रैक्चर के नीचे फेफड़ा एवं फुफ्फुस फटा हुआ है, बायीं छाती की गुहा में लगभग एक लीटर तरल रक्त का थक्का जमा हुआ।

डॉक्टर की राय में, मृत्यु का कारण सदमा एवं रक्तस्राव था, जो कि मृत्यु-पूर्व चोटों, जिनका उल्लेख उपर किया गया है (प्रदर्श क-5), के परिणामस्वरूप हुआ था

(12) अ.सा.3 डा.पी के.द्विवेदी को मृतक ललाइन के शवपरीक्षण में निम्नलिखित मृत्युपूर्व चोटें मिलीं:-

1. चेहरे के दाहिनी ओर बायीं आंख के नीचे 4 सेमी, हाशिये पर मौजूद 3 सेमी x 1 सेमी का फटा हुआ घाव, किनारे स्पष्ट कटे हुए।

2. चेहरे एवं ठुड्डी के दाईं ओर 10 सेमी X 8 सेमी का नीलगू निशान।

3. भौंह के ठीक ऊपर माथे के दाईं ओर 15 सेमी X 10 सेमी का नीलगू निशान।

4. नीलगू निशान 15 सेमीX 10 सेमी छाती के दाहिनी ओर के पार्श्व पक्ष पर दाहिनी हंसली से 3 सेमी नीचे मौजूद सामने की हड्डी में फ्रेक्चर, फ्रेक्चर के नीचे मस्तिष्कावरक झिल्लियां व मस्तिष्क फटा हुआ। छाती के बायीं ओर क्रमांक संख्या 6 की पसली में फ्रेक्चर के नीचे फेफड़े एवं फुफ्फुस फटे हुए, बायीं छाती की गुहा में लगभग एक लीटर तरल रक्त का थक्का जमा हुआ।

उनकी राय में, मृत्यु का कारण सदमा एवं रक्तस्राव था, जो कि मृत्यु-पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप हुआ था जैसा कि ऊपर उल्लिखित है(प्रदर्श क-6)

(13) अ.सा.4 सब इंस्पेक्टर अवधू प्रसाद आजाद, जिन्होंने थानाध्यक्ष के निर्देश पर पंचतायतनामा तैयार किया, ने मृतक लल्लू (प्रदर्श क-2) एवं मृतका ललाइन (प्रदर्श क-3) के पंचायतनामा को सिद्ध किया है। उन्होंने अन्य प्रासंगिक दस्तावेज़ों को भी सिद्ध किया है जो प्रदर्श क-7 से क-12 तक है।

(14) अ.सा.5 का ॅस्टेबल-मोहर्रिर सूरज भान है जिसने चिक प्र.सू.रि. को प्रदर्श क- 13 एवं कायमी नकल को प्रदर्श क-14 के रूप में सिद्ध किया है।

(15) अ.सा. 6 उप निरीक्षक गौरी शंकर पाल, जो कि वाद के अन्वेषण अधिकारी हैं, ने कहा है कि अन्वेषण ग्रहण करने के बाद उन्होंने गवाहों के बयान दर्ज किये एवं वादिनी सियापति की निशानदेही पर घटना स्थल का नक्शा नजरी तैयार किया। उन्होंने नक्शा नजरी को प्रदर्श क-15 के रूप में सिद्ध किया है। उन्होंने यह भी सिद्ध किया है कि उन्होंने घटनास्थल से खून आलूदा एवं सादी मिट्टी को एकत्रित किया है एवं उप निरीक्षक अर्जुन सिंह द्वारा बरामदगीनामा तैयार कराया है। तत्पश्चात उन्होंने आरोपी मिन्नी को गिरफ्तार कर उसका बयान दर्ज किया एवं मिन्नी की निशानदेही पर साक्षियों की उपस्थिति में खून आलूदा साड़ी बरामद कर ली। उन्होंने संबंधित बरामदगीनामा को प्रदर्श क-17 के रूप में सिद्ध किया है। पुन: उन्होंने कहा कि उन्होंने आरोपी बलराम को भी गिरफ्तार कर लिया, उसका बयान दर्ज किया एवं अपराध का हथियार, खून आलूदा तौलिया, खून आलूदा कमीज़ एवं बनियान बरामद किया, जो बलराम ने उसे अपनी नर्सरी से निकालकर दिया था। उन्होंने खुरपी के बरामदगीनामा को प्रदर्श क-18 एवं कमीज़ एवं बनियान को प्रदर्श क-19 के

रूप में सिद्ध किया है। उन्होंने बरामदगी स्थल की नक्शा नजरी को प्रदर्श क-20 एवं 21 के रूप में भी सिद्ध किया है। उन्होंने यह भी कहा है कि अन्वेषण पूर्ण करने पश्चात उन्होंने अभियुक्तगणों के विरूद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया जो प्रदर्श क-22 के रूप में सिद्ध हुआ। कथित तौर पर बरामद करी गयी खुरपी को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया एवं इस साक्षी ने आरोपी बलराम की निशानदेही पर बरामद करी गयी खुरपी की पहचान की। इस गवाह ने कहा है कि अभियुक्तों ने उसे बताया कि उन्होंने इस खुरपी से मृत व्यक्तियों की हत्या की है। प्रतिपरीक्षा में इस गवाह ने कहा है कि प्रदर्श क-19 अर्थात कि खुरपी, कमीज़ एवं बनियान के बरामदगीनामा में अभियुक्त द्वारा किए गए अपराध स्वीकृति का कोई उल्लेख नहीं है।

(16) पुन: उन्होंने कहा है कि उन्हें मिन्नी के पास से कोई खुरपी नहीं मिली, लेकिन फोरेंसिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट के कॉलम दो में उल्लेख है कि मिन्नी ने हत्या करने के लिए किस हथियार का प्रयोग किया था। पुन: उन्होंने कहा उन्हें नहीं पता कि ये हथियार किसने भेजा। अपनी प्रतिपरीक्षा में पुन: उन्होंने कहा कि क्षेत्राधिकारी मलिहाबाद द्वारा तैयार किए गए डॉकेट में घटना स्थल से मिन्नी एवं बलराम के कब्जे से बरामद किये गए अपराध के हथियारों का उल्लेख है एवं फोरेंसिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट में बलराम के कब्जे से अपराध के हथियार की बरामदगी के बारे में कोई उल्लेख नहीं है। पुन: उन्होंने कहा कि यह सत्य है कि सर्किल ऑफिसर ने डॉकेट तैयार कर फोरेंसिक प्रयोगशाला में जाँच के लिए भेज दिया। पूरी जाँच में इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि उन्होंने (अन्वेषण अधिकारी) मिन्नी के कब्जे से कोई खुरपी (अपराध का हथियार) बरामद किया हो।

(17) सभी साक्षियों के साक्ष्यों का समग्रता से परीक्षण करने पर यह प्रतीत होता है कि वादिनी सियापति एवं पोहकर, जो स्वयं को अपराध का प्रत्यक्षदर्शी बता रहे हैं, विश्वसनीय नहीं हैं। घटना स्थल पर उनकी उपस्थिति बेहद अविश्वसनीय है क्योंकि उनके कथनानुसार घटना का दिन दीपावली पर्व का दिन था एवं वे कुछ दूरी पर स्थित दूसरे गाँव घटना के गाँव से 1 किमी दूर गाँव में रहते थे। अ.सा.1 एवं अ.सा. 2 दोनों ने विरोधाभासी बयान दिए हैं, क्योंकि अ.सा.1 ने प्र.सू.रि. में कहा है कि वह बड़खोरवा गांव में अपने माता-पिता से मिलने गई थी। प्र.सू.रि. में इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि उसके पति पोहकर भी उसके साथ आए थे, अ.सा.1 के रूप में उसने कहा है कि वह अपने माता-पिता से मिलने गई थी एवं देखा कि मिन्नी एवं बलराम ने उसके माता-पिता पर खुरपी से हमला किया था। वे मर गए एवं वे (मिन्नी एवं बलराम) सियापति को देखते ही भाग गए। जब उसने शोर मचाया तो गाँव के कई लोग वहाँ आ गए एवं उन्होंने भी मिन्नी एवं बलराम को वहाँ से भागते देखा। मुख्य परीक्षा में उसने यह नहीं बताया कि उसके साथ उसका पति भी था अथवा कुछ देर बाद उसका पति वहाँ आया। प्रतिपरीक्षा में उसने बताया कि आरोपियों के दस-पंद्रह मिनट तक भागने के बाद उसका पति वहाँ पहुँच गया। उसने यह भी कहा है कि जब वह अपने माता-पिता से मिलने गई थी तो उसके ससुराल के दस-बारह लोग उसके (सियापति) साथ गए थे। उसने यह नहीं बताया कि उसका पति एवं वह एक साथ घर से निकले थे, लेकिन उसका पति रास्ते में पेशाब करने के लिए रुक गया एवं वह अपने माता-पिता के घर पहले पहुँच गई।

(18) दूसरी ओर, अ.सा. 2 ने कहा है कि वह अपनी पत्नी सियापति के साथ ग्राम बडखोरवा स्थित अपने ससुराल गया था, उसकी पत्नी उसके पास पहले ही पहुँच गई थी क्योंकि वह पेशाब करने के लिए मार्ग में रुक गया था। जब वह मौके पर पहुंचा तो उसने अपनी पत्नी की रोने की आवाज सुनी एवं उसकी पत्नी ने उसे बताया कि मिन्नी एवं बलराम उसके ससुराल वालों को खुरपी से काट रहे हैं। उन्होंने कहा है कि उन्होंने अन्य ग्रामीणों के साथ मिलकर, मिन्नी एवं बलराम को भागते हुए देखा था। इन दोनों गवाहों के बयान भौतिक दृष्टि से विरोधाभासी हैं एवं घटनास्थल पर उनकी मौजूदगी के बारे में गंभीर संदेह पैदा करते हैं। इसके अलावा अपराध के हथियार की बरामदगी भी अत्यंत संदिग्ध है क्योंकि अ.सा.1 सियापति ने प्रतिपरीक्षा में कहा है कि दोनों खुरपी, मिन्नी की एक एवं बलराम की, एक मौके पर ही रह गयी, जिन्हें पुलिस ले गई। उधर अन्वेषण अधिकारी का कहना है कि उन्हें खुरपी आरोपी बलराम ने अपनी नर्सरी से दिया था। फॉरेंसिक साइंस लेबोरेटरी की रिपोर्ट प्रदर्श क-25 में मिन्नी के पास से खुरपी बरामद होने का उल्लेख है। ये सभी तथ्य एवं परिस्थितियाँ बरामदगी को लेकर भी गंभीर संदेह पैदा करती हैं। इसके अतिरिक्त अन्वेषण अधिकारी के बयान में ऐसा कुछ भी नहीं है कि कथित खून से सने कपड़ों की बरामदगी के समय आरोपियों ने उन्हें बताया हो कि उन्होंने हत्या करने के समय कपड़े पहने थे या कथित तौर पर बलराम द्वारा सौंपे गए हथियार का प्रयोग मृत व्यक्तियों की हत्याएं करने में किया था। अ.सा.2 के रूप में अन्वेषण अधिकारी के बयान में उल्लेख है कि क्षेत्राधिकारी ने अपराध के हथियार की बरामदगी का डॉकेट तैयार किया था, लेकिन उस क्षेत्राधिकारी की न्यायालय के समक्ष साक्षी के रूप में परीक्षा नहीं की गई है।

(19) साक्ष्यों का विश्लेषण करने पर यह सिद्ध होता है कि अभियोजन पक्ष दोषियों/अपीलकर्ताओं के विरूद्ध लगाए गए आरोपों को युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध नहीं कर सका। अत: आक्षेपित निर्णय एवं आदेश अपास्त किये

जाने योग्य है एवं दोनों अपीलें तदनुसार स्वीकार की जाती हैं। अपीलकर्ताओं मिन्नी उर्फ मीना एवं बलराम को जेल से रिहा किया जाए, यदि किसी अन्य मामले में आवश्यक न हो तो।

(20) अपीलकर्ताओं मिन्नी उर्फ मीना एवं बलराम को निदेश दिया जाता है कि वे दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 437-ए के अनुपालन में संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के अधीन अपने व्यक्तिगत बंधपत्र एवं समान राशि की दो जमानतें दाखिल करें।

(21) इससे पुर्व कि हम इस वाद की प्रक्रिया का समापन करें, हम दोषियों-अपीलकर्ताओं हेतु श्री अनुराग शुक्ला न्यायमित्र द्वारा प्रदत्त सहायता हेतु उनकी निर्बाध प्रशंसा करते हैं। इसलिए, हम श्री अनुराग शुक्ला को भुगतान करने का निदेश देना उचित समझते हैं।

(22) कार्यालय को एक माह की अवधि में न्यायालय के नियमानुसार विद्वान न्याय मित्र श्री अनुराग शुक्ला को पारिश्रमिक का भुगतान करने का निदेश दिया जाता है।

(23) मूल अभिलेख के साथ इस आदेश की एक प्रति आवश्यक सूचना एवं अनुवर्ती कार्रवाई हेतु संबंधित विचारण न्यायालय को अविलंब भेजी जाए।

(2023) 1 ILRA 958

अपीलीय क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 22.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकेर
माननीय न्यायमूर्ति अजय त्यागी

आपराधिक अपील संख्या - 5125 वर्ष 2018

कुमारी संध्या सिंह एवं अन्य ... अपीलकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य ... प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
सरोज कुमार यादव, राहुल मिश्रा, विश्वदीप पटेल

प्रतिवादी के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता, बीरेंद्र सिंह

आपराधिक कानून- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 3 और 60- परिस्थितिजन्य साक्ष्य का वाद-'अंतिम-दृश्य' का साक्ष्य-अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति-पीडब्लू1 का साक्ष्य सुनी-सुनाई साक्ष्य है और स्वीकार्य नहीं है-'अंतिम-दृश्य' का तथ्य का खुलासा उक्त घटना के 25 दिनों के बाद पीडब्लू2 और पीडब्लू4 द्वारा किया गया था जब बच्चे का शव बरामद किया गया था - पीडब्लू4-जय करण ने भी 25 दिनों की इस अवधि के दौरान किसी को 'अंतिम बार देखे जाने' के तथ्य का खुलासा नहीं किया था - PW2 और PW4 की गवाही विश्वसनीय नहीं है और यह विश्वास को प्रेरित नहीं करती है। परिस्थितियों की शृंखला की अहम कड़ी यहीं टूट जाती है।

परिस्थितिजन्य साक्ष्य में अभियोजन पक्ष को परिस्थितियों की हर कड़ी को साबित करना होता है और जहां अंतिम बार देखे जाने की कहानी अविश्वसनीय हो जाती है और गवाह की गवाही अफवाहों पर आधारित होती है, तो अभियोजन पक्ष की कहानी की कड़ियाँ टूट जाती हैं।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 3- धारा 8- परिस्थितिजन्य साक्ष्य में – आशय एक मजबूत महत्व होता है - अपराध के पीछे के आशय को साबित करना अभियोजन पक्ष पर निर्भर था, फिर भी पीडब्लू 3, मृतक की मां ने पहली बार अपनी गवाही में मकसद का खुलासा किया है कि अपीलकर्ता अपने पति पर उसके साथ छेड़छाड़ करने का झूठा आरोप लगाती थी। इस मकसद को अभियोजन पक्ष द्वारा किसी भी सबूत के माध्यम से साबित नहीं किया जा सका।

परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर किसी मामले में आशय एक प्रासंगिक तथ्य है क्योंकि वही परिस्थितियों की श्रृंखला में एक कड़ी बनाता है और जहां अभियोजन मकसद साबित करने में विफल रहता है तो अभियोजन की कहानी संदिग्ध हो जाती है।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 24 – न्यायिकेतर संस्वीकृति के संबंध में स्थापित कानून है कि इसे ऐसे व्यक्ति के समक्ष किया जाना चाहिए, जो संस्वीकृति करने वाले आरोपी को बचाने या मदद करने की स्थिति में हो। इस मामले में, मृत बच्चे की चाची अपीलकर्ताओं को बचाने या मदद करने की स्थिति में नहीं थी, इसलिए किसी भी अपीलकर्ता के

लिए पीडब्लू 5 के समक्ष स्वीकार करने का कोई सवाल ही नहीं था।

जहां न्यायेतर संस्वीकृति ऐसे व्यक्ति से की जाती है जो आरोपी को बचाने या उसकी मदद करने की स्थिति में नहीं है तो ऐसे न्यायेतर संस्वीकृति पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। (पैरा 17, 19, 20, 21, 22, 23)

आपराधिक अपील स्वीकृत। (ई-3)

<u>केस कानून/निर्णयों पर निर्भरता व्यक्त:-</u>

1. शिवाजी चिन्तप्पा पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य, अपराधिक की अपील संख्या 1348/2013 निर्णित दिनांक 2.3.2021
2. शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 एससीसी 116
3. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम किशनपाल (2008) 16 एससीसी 73
4. पन्नयार बनाम तमिलनाडु राज्य, (2009) 9 एससीसी 152

(माननीय न्यायमूर्ति अजय त्यागी के द्वारा)

1. यह अपील, मुकदमा अपराध संख्या 119 वर्ष 2010 अन्तर्गत धारा 364/34, 302/34, 201/34 भा०द०वि०, थाना-बबेरू, जिला-बांदा से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या 204 वर्ष 2010 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम कुमारी संध्या सिंह एवं अन्य) में विद्वान अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश-पंचम, बांदा द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 6.8.2018 के विरुद्ध दायर की गई है, जिसके तहत अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया गया है और उनको भारतीय दंड संहिता की धारा 364/34, 302/34 और 201/34 के तहत आजीवन कारावास और 5000/- रुपए के जुर्माने की सजा सुनाई गयी है, और जुर्माने में चूक की स्थिति में उनको और एक माह के कारावास भुगतना होगा।

2. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री विश्वदीप पटेल, सूचनाकर्ता के अधिवक्ता श्री बीरेंद्र सिंह, राज्य के लिए विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री पतंजलि मिश्रा को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि सूचनाकर्ता का पुत्र, अर्थात् किशन, जिसकी आयु लगभग 2-1/2 वर्ष थी, दिनांक 24.4.2010 को लापता हो गया। अगले दिन, दिनांक 25-04-2010 को सूचनाकर्ता द्वारा थाना-बबेरू, जिला-बांदा में उसकी गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज कराई गई। दिनांक 18-05-2010 को लापता पुत्र का शव अभियुक्त प्रकाशवीर के आवासीय परिसर में स्थित कुएं में पाया गया। इसी बीच, दिनांक 01-05-2010 को सूचनाकर्ता द्वारा इस कथन के साथ प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) दर्ज कराई गई कि उसका पुत्र किशन दिनांक 24-04-2010 को सायं लगभग 6.15 बजे घर के द्वार के सामने खेल रहा था और कुछ अज्ञात व्यक्तियों ने उसका अपहरण कर लिया है।

4. दिनांक 18.5.2010 को शव बरामद करने के बाद थाना-बबेरू, जिला-बांदा में एक और रिपोर्ट (प्रदर्श क-3) दी गई जिसमें सूचनाकर्ता द्वारा यह कहा गया है कि दिनांक 24.4.2010 को उसका पुत्र किशन अभियुक्त प्रकाशवीर के दरवाज़े से लापता हो गया था। उस तारीख को वह अपनी मां के साथ तालाब पर गया था। वापस आकर वह अपनी मां के पीछे-पीछे चल रहा था और प्रकाशवीर के गेट के पास खेलने लगा। उस समय प्रकाशवीर, संध्या (प्रकाशवीर की पुत्री), मुकुट, गुलाब और राकेश घर के अंदर मौजूद थे। उसी समय शंकर और जयकरण @ फक्कू मट्टू की दुकान से शंकर के घर की ओर जा रहे थे। उन्होंने देखा कि किशन प्रकाशवीर के गेट के अंदर खेल रहा था और उक्त सभी व्यक्ति गेट के अंदर खड़े थे। उसे विश्वास था कि उपरोक्त व्यक्तियों ने उसके बेटे की हत्या कर दिनेश और देशराज की मदद से शव को कुएं में फेंक दिया था।

5. विवेचना के दौरान, विवेचनाधिकारी ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत गवाहों के बयान दर्ज किए। फ़र्द बरामदगी तैयार किया गया था। शव बरामद होने पर जांच की गई और शव को शव परिक्षण के लिए भेज दिया गया। संबंधित डॉक्टर ने मृतक के शव का शव परिक्षण कर शव परिक्षण रिपोर्ट तैयार की। विवेचना पूरी होने के बाद, विवेचनाधिकारी ने आरोपी कुमारी संध्या, प्रकाशवीर @ मलखान, गुलाब और मुकुट के खिलाफ धारा 364, 302 और 201 भा०द०वि० के तहत आरोप पत्र दाखिल किया।

6. मामला, सत्र न्यायालय द्वारा विशेष रूप से विचारणीय होने के कारण, मजिस्ट्रेट द्वारा सत्र न्यायालय के लिए प्रतिबद्ध किया गया था। विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ताओं के खिलाफ धारा 364, 302 भा०द०वि० सपठित धारा 34 भा०द०वि० और धारा 201 भा०द०वि० के तहत आरोप तय किए। आरोपियों-अपीलकर्ताओं ने आरोपों से इंकार किया और विचारण की मांग की।

7. अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित गवाहों की जांच की:

1	वीरेंद्र सिंह	अ०सा०-1
2	शंकर	अ०सा०-2
3	पिंकी @ संध्या	अ०सा०-3
4	जयकरण	अ०सा०-4
5	संगीता देवी	अ०सा०-5
6	डॉक्टर पी.एस सागर	अ०सा०-6

7	राकेश कुमार मिश्रा	अ०सा०-7
8	अशोक धर पांडे	अ०सा०-8

8. उपरोक्त गवाहों के अलावा, अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए, जो जो साबित किये गए:

1	तहरीरी रिपोर्ट	प्रदर्श क-1
2	लाश की फर्द बरामदगी	प्रदर्श क-2
3	प्रार्थना पत्र	प्रदर्श क-3
4	कुआँ और घर का तलाशी की और खोपड़ी की फर्द बरामदगी	प्रदर्श क-4
5	शंकर सिंह का हलफनामा	प्रदर्श क-5
6	जय करण सिंह का हलफनामा	प्रदर्श क-6
7	शव परीक्षण रिपोर्ट	प्रदर्श क-8
8	नक्शा नज़री (सारणी के साथ)	प्रदर्श क-9
9	पंचायत नामा	प्रदर्श क-10
10	नक्शा नज़री (सारणी के साथ)	प्रदर्श क-16
11	नक्शा नज़री (सारणी के साथ)	प्रदर्श क-18
12	मूल आरोप पत्र	प्रदर्श क-19

9. अभियोजन साक्ष्य पूरा होने के बाद, आरोपी व्यक्तियों के बयान धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए जिसमें उन्होंने बताया कि उन्हें इस मामले में झूठा फंसाया गया है और उनके खिलाफ झूठे सबूत पेश किए गए हैं। उन्हें दुश्मनी के आधार पर ही फंसाया गया। अभियुक्त व्यक्तियों ने अपने बचाव में दो गवाहों का परीक्षण किया है। विद्वान विचारण न्यायालय ने दोनों पक्षों को सुनने के बाद सभी अभियुक्तों अर्थात् कुमारी संध्या सिंह, प्रकाशवीर @ मलखान, गुलाब सिंह और मुकुट @ तरुण सिंह को धारा 364 सपठित धारा 34, धारा 302 सपठित धारा 34, धारा 201 सपठित धारा 34 भा०द०वि० के तहत अपराधों के लिए दोषी ठहराया और उन्हें आजीवन कारावास और जुर्माने की सजा सुनाई। इसलिए यह अपील की गई है।

10. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है क्योंकि अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार किसी ने भी मृत बच्चे के दुर्भाग्य को नहीं देखा है। इस मामले में कोई चश्मदीद गवाह नहीं है। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि मृतक के शव की बरामदगी के एक सप्ताह बाद सूचनाकर्ता द्वारा विस्तृत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी, जिसमें उसने सबसे पहले अपीलकर्ताओं के नामों का खुलासा किया है, वह भी संदेह के आधार पर।

11. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता की आगे की प्रस्तुति यह है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में, आशय एक महान महत्व रखता है जबकि इस मामले में, अभियोजन पक्ष द्वारा कोई आशय स्थापित नहीं किया गया है। रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ भी नहीं है कि अपीलकर्ताओं ने मृत-बच्चे की हत्या क्यों की। मृतक बच्चे की मां, अर्थात् पिंकी @ संध्या ने पहली बार अपने बयान में खुलासा किया था कि आरोपी संध्या सूचनाकर्ता पर झूठा आरोप लगा रही थी कि उसने उसके साथ छेड़छाड़ की थी। यह कोई ऐसा मकसद नहीं है जिसके आधार पर बच्चे की हत्या जैसा अपराध किया जा सके।

12. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि अभियोजन पक्ष ने 'अंतिम बार देखे गए' का सिद्धांत विकसित किया है जिसके लिए अ०सा०-2 शंकर, अ०सा०-4 जय करण की जांच की गई थी। इन दोनों गवाहों ने गवाही दी है कि उन्होंने मृतक बच्चे को 24.4.2010 को अपीलकर्ताओं के साथ देखा था और वे उसे उस कुएं की ओर ले जा रहे थे जहां से शव बरामद किया गया था। अधिवक्ता ने दृढ़ता से तर्क दिया कि उपरोक्त दोनों गवाहों ने शव की बरामदगी के बाद मृतक बच्चे के परिवार के सदस्यों को इस तथ्य का खुलासा किया है, जो काफी अविश्वसनीय है क्योंकि अगर किसी भी गांव में इस तरह की घटना होती है, तो कोई भी 25 दिनों की अवधि तक, जब लापता लड़के की तलाश जारी थी, चुप नहीं रहेगा। यह दर्शाता है कि अ०सा०-2 और अ०सा०-4 दोनों प्रायोजित गवाह हैं। अभियोजन पक्ष द्वारा अंतिम रूप से देखा गया सिद्धांत बिल्कुल साबित नहीं होता है।

13. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि इस मामले में न्यायिकेत्तर स्वीकारोक्ति का सबूत भी है, जिसे अभियोजन पक्ष द्वारा फ़र्ज़ी बनाया गया है। ऐसा कहा जाता है कि अ०सा०-5 संगीता देवी मृत-बच्चे की बुआ है और आरोपी कु. संध्या सिंह उसके पास गई थी और कबूल किया था कि 24.4.2010 को उसने मृतक-बच्चे किशन को बहला-फुसलाकर अपने घर के अंदर ले गई जहां अन्य सभी आरोपी व्यक्ति मौजूद थे। सभी ने किशन की हत्या कर शव को कुएं में फेंक दिया। यह भी बताया गया कि मृतक के पिता द्वारा उसके साथ छेड़छाड़ किए जाने से उसका परिवार दर्द में था। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह गवाह भी प्रायोजित था। अगर आरोपी कु. संध्या सिंह ने उसके सामने कबूल कर लिया था तो अ०सा०-5 के लिए बच्चे के शव की बरामदगी तक चुप रहना संभव नहीं था क्योंकि अ०सा०-5 मृतक बच्चे की बुआ है।

14. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि विवेचनाधिकारी के बयान के अनुसार, किसी ने विवेचनाधिकारी को सुराग दिया था कि शव प्रकाशवीर के कुएं में मिलेगा, फिर पुलिस ने शव बरामद किया, लेकिन अभियोजन पक्ष के साक्ष्य में यह कहीं नहीं है कि किसने सुराग दिया था। वह महत्वपूर्ण कड़ी गायब है क्योंकि किसी भी अपीलकर्ता के इशारे पर शव बरामद नहीं किया गया था। अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने आपराधिक अपील संख्या 1348 वर्ष 2013 में 2.3.2021 को दिए गए शिवाजी चिंतप्पा पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया और प्रस्तुत किया कि उपरोक्त निर्णय में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि यदि अभियोजन साक्ष्य के आधार पर दो विचार संभव हैं, एक आरोपी के पक्ष में और दूसरा आरोपी के खिलाफ, तो अभियुक्त के पक्ष में दृष्टिकोण अपनाया जाना है। इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ताओं को उनके खिलाफ बिना किसी सबूत के दोषी ठहराकर गंभीर गलती की है और आक्षेपित निर्णय को रद्द किया जाना चाहिए और आरोपियों को बरी किया जाना चाहिए।

15. सूचनाकर्ता के अधिवक्ता श्री बीरेंद्र सिंह ने अभियोजन पक्ष की ओर से प्रस्तुत किया कि जिस कुएं से मृतक बच्चे का शव बरामद किया गया था, वह अपीलकर्ताओं के घर के कमपाउंड में स्थित है, जो एक चारदीवारी से मजबूत है और विचाराधीन कुआं आम जनता की पहुंच में नहीं है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि यह अपराध बलि का अपराध प्रतीत होता है जहां मृतक बच्चे को अपीलकर्ताओं द्वारा कुछ अंधविश्वासी अनुष्ठानों के लिए बलि दिया गया था। अंतिम बार देखे गए साक्ष्य के तथ्य के संबंध में, अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि अ०सा०-2 और अ०सा०-4 ने अपीलकर्ताओं के साथ बच्चे के अंतिम दर्शन के तथ्य को नहीं बताया होगा ताकि वे अपीलकर्ताओं के साथ दुश्मनी पैदा न कर सकें। इसके बाद यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता, कु. संध्या सिंह द्वारा अ०सा०-5 संगीता के समक्ष न्यायिकेत्तर स्वीकारोक्ति की गई है और उसने अपीलकर्ताओं के साथ दुश्मनी के डर से बच्चे के परिवार के सदस्यों को भी यह तथ्य नहीं बताया होगा।

16. विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों का विरोध किया और तर्क दिया कि इस मामले में सभी परिस्थितियां स्पष्ट रूप से अपीलकर्ताओं की ओर इंगित करती हैं और साबित करती हैं कि अपराध केवल अपीलकर्ताओं द्वारा किया गया है। यह प्रस्तुत किया गया कि यदि सूचनाकर्ता अपीलकर्ताओं को झूठा फंसाना चाहता था, तो उस मामले में, उसे उसी दिन उनके खिलाफ प्राथमिकी दर्ज करनी चाहिए थी जब उसका बेटा लापता हो गया था, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया और थाना में गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज कराई जिसमें किसी का नाम नहीं था। विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि अ०सा०-2 शंकर, अ०सा०-4 जय करण स्वतंत्र गवाह हैं, जिन्होंने गवाही दी है कि उन्होंने मृतक लड़के को अपने घर के अंदर अपीलकर्ताओं के साथ देखा था और उसके बाद मृतक-लड़के को कभी किसी और के साथ जीवित नहीं देखा गया था। उनके बयानों में कोई विरोधाभास नहीं है। अ०सा०-5 संगीता देवी की गवाही के संबंध में, विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वह वह महिला है जिसके समक्ष अभियुक्त कु. संध्या सिंह ने कबूल किया है। अ०सा०-5 ने उपरोक्त तथ्यों को किसी के सामने प्रकट नहीं किया क्योंकि वह आरोपी संध्या सिंह के साथ विश्वास में थी, लेकिन मृत-बच्चे के शव की बरामदगी के बाद, वह खुद को रोक नहीं सकी और खुलासा किया कि आरोपी संध्या सिंह द्वारा उसके समक्ष किए गए न्यायिकेत्तर कबूलनामे का खुलासा किया गया था। यह असामान्य नहीं है। इसके अलावा, विवेचनाधिकारी ने कुएं से शव की बरामदगी के तथ्य को भी साबित कर दिया है, जो अपीलकर्ताओं के आवास परिसर में स्थित है। यह कुआं किसी अन्य व्यक्ति की नज़र में नहीं था। यह परिस्थिति अपीलकर्ताओं के अपराध की ओर भी इशारा करती है। इसलिए, अभियोजन का मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर उचित संदेह से परे साबित होता है और आक्षेपित निर्णय में कोई ऐसी अवैधता नहीं है, जो इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की मांग करता हो।

17. यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है क्योंकि किसी ने भी मृतक बच्चे की हत्या नहीं देखी है। अभियोजन पक्ष ने मुख्य रूप से अ०सा०-2, अ०सा०-4 द्वारा 'अंतिम बार देखे गए' साक्ष्य के आधार पर और अ०सा०-5 के समक्ष अपीलकर्ताओं में से एक, अर्थात् कु. संध्या सिंह द्वारा किए गए न्यायिकेत्तर स्वीकारोक्ति के आधार पर अपना मामला आधारित किया है।

18. परिस्थितिजन्य साक्ष्य के कानून के संबंध में, शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 एस.सी.सी 116 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

> *153. इस निर्णय का विश्लेषण ये दिखाता है कि एक अभियुक्त के ख़िलाफ एक मामले को पूरी तरह से स्थापित करने से पहले निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए कि:*
>
> *(1) जिस परिस्थिति से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उसे पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए। यहां यह ध्यान दिया जा सकता है कि इस न्यायालय ने संकेत दिया कि संबंधित परिस्थितियों को 'ज़रूर स्थापित किया जाना चाहिए' और 'सम्भवता नहीं' होना*

चाहिए। शिवाजी साहबराव बोबडे बनाम महाराष्ट्र राज्य (1973) 2 एस.सी.सी 793 में इस न्यायालय द्वारा अवधारित शिवाजी साहबराव बोबडे बनाम महाराष्ट्र राज्य (1973) 2 एस.सी.सी 793 में केवल व्याकरणिक लेकिन कानूनी अंतर नहीं है, जहां टिप्पणियां की गई थीं: [एस.सी.सी पैरा 19, पृष्ठ 807: एस.सी.सी (सी.आर.आई) पृष्ठ 1047]

"19. ... निश्चित रूप से, यह प्राथमिक सिद्धांत है कि अभियुक्त को अदालत द्वारा दोषी ठहराए जाने से पहले दोषी होना चाहिए और न केवल दोषी होना चाहिए और 'हो सकता है' और 'होना चाहिए' के बीच की मानसिक दूरी लंबी है, और स्पष्ट निष्कर्षों से अस्पष्ट अनुमानों को विभाजित करती है।

(2) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात उन्हें किसी अन्य परिकल्पना पर स्पष्टीकरण योग्य नहीं होना चाहिए, सिवाय इसके कि केवल अभियुक्त ही दोषी है,

(3) परिस्थितियाँ एक निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए,

(4) उन्हें सिद्ध की जाने वाली परिकल्पना को छोड़कर हर संभव परिकल्पना को बाहर करना चाहिए, और

(5) साक्ष्य की श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की निर्दोषिता के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़ा जाए और यह दिखाना चाहिए कि सभी मानवीय संभावना में कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया होगा।

154. ये पांच स्वर्णिम सिद्धांत, यदि हम ऐसा कह सकते हैं, तो परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर किसी मामले के प्रमाण का पंचशील बनाते हैं।

19. अभियोजन पक्ष ने सूचनाकर्ता-वीरेंद्र सिंह को अ०सा०-1 के रूप में जांच की है, जिसने औपचारिक रूप से गुमशुदगी की रिपोर्ट और प्रथम सूचना रिपोर्ट को साबित किया है। तथ्यों के संबंध में बयान, जिसके कारण बच्चे की मृत्यु हुई, अ०सा०-1 द्वारा अपने साक्ष्य में सुनाये गए हैं, लेकिन यह केवल सुनी-सुनाई बात थी। उन्होंने गवाही दी है कि अपीलकर्ता उनके बेटे किशन को कुएं की ओर ले गए थे और उन्होंने हत्या के बाद उसे कुएं में फेंक दिया था। इस गवाह ने विशेष रूप से गवाही दी है कि यह उपरोक्त तथ्य उसे शंकर और जय करण ने शव बरामद होने के बाद बताया था। इसलिए, अ०सा०-1 का साक्ष्य सुनी-सुनाई बात है और स्वीकार्य नहीं है।

20. अभियोजन पक्ष ने अ०सा०-2 शंकर और अ०सा०-4 जय करण को 'अंतिम बार देखे गए' के गवाह के रूप में जांचा है। उन दोनों ने गवाही दी है कि 24.4.2010 को उन्होंने देखा था कि मृतक-लड़का अपीलकर्ताओं के गेट के अंदर खेल रहा था जहां अन्य सभी अपीलकर्ता मौजूद थे। वे सभी लड़के को कुएं की ओर ले गए। अ०सा०-4 शंकर ने आगे बढ़कर कहा कि उसने देखा कि आरोपी कु. संध्या सिंह अपने हाथ में बिस्किट लेकर बाहर आई और बिस्किट दिखाकर लड़के को उसके घर के अंदर ले गई, जहां अन्य सभी अपीलकर्ता खाट पर बैठे थे। यह स्थिति का स्वीकृत तथ्य है कि 'अंतिम दृश्य' के इस तथ्य का खुलासा अ०सा०-2 और अ०सा०-4 द्वारा उक्त घटना के 25 दिनों के बाद किया गया था जब बच्चे का शव बरामद किया गया था। अ०सा०-2-शंकर ने प्रतिपरीक्षा में स्वीकार किया है कि उसने विवेचनाधिकारी को इस तथ्य के बारे में नहीं बताया कि अपीलकर्ता ने इस तथ्य को नहीं बताया कि अपीलकर्ता कु. संध्या सिंह बिस्किट दिखाकर बच्चे को बहला-फुसलाकर ले गयी थी। इसलिए, यह अ०सा०-2 द्वारा किए गए उसके साक्ष्य में सुधार है। इसके अलावा, अपनी प्रतिपरीक्षा में, अ०सा०-2 ने स्वीकार किया है कि 24.4.2010 से मृतक-किशन के शव की बरामदगी तक, वह लगातार गांव में रहा और मृतक के परिवार के सदस्यों से मिलता था। ऐसी स्थिति में, यह बहुत ही महत्वपूर्ण है कि अ०सा०-2 ने 'अंतिम बार देखे गए' के तथ्य का खुलासा क्यों नहीं किया, जैसा कि ऊपर वर्णित है। गवाह द्वारा अपनी गवाही में ऐसा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि अगर उसने मृतक बच्चे को अपीलकर्ताओं की कंपनी में 24.4.2010 को देखा था, तो वह 25 दिनों की अवधि के लिए चुप क्यों रहा। वही मामला अ०सा०-4 जय करण के साथ है। उन्होंने 25 दिनों की इस अवधि के दौरान किसी को भी 'अंतिम बार देखे गए' के तथ्य का खुलासा नहीं किया। शव बरामद होने के बाद उन्होंने भी अपनी बात रखी। उसने अपनी गवाही में स्वीकार किया है कि उसने किसी को यह नहीं बताया कि आरोपी संध्या मृतक-किशन को ले गई थी और इस गवाह द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि वह 25 दिनों तक चुप क्यों रहा और शव बरामद होने के बाद पहली बार 'आखिरी बार देखे जाने' के तथ्य का खुलासा क्यों किया। इसलिए, हमारे विचार में, अ०सा०-2 और अ०सा०-4 की गवाही विश्वसनीय नहीं है और यह विश्वास प्रेरित नहीं करती है। तो परिस्थितियों की श्रृंखला की महत्वपूर्ण कड़ी यहां टूट जाती है।

21. परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में, आशय एक मजबूत भार वहन करता है। **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम किशनपाल (2008) 16 एस.सी.सी 73** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि आशय एक ऐसी चीज है जो मुख्य रूप से अभियुक्त को ही पता है और अभियोजन

पक्ष के लिए यह बताना संभव नहीं है कि वास्तव में उन्हें विशेष अपराध करने के लिए किसने प्रोत्साहित किया। मकसद को एक ऐसी परिस्थिति के रूप में माना जा सकता है जो साक्ष्य का आकलन करने के लिए प्रासंगिक है लेकिन अगर सबूत स्पष्ट और असंदिग्ध हैं और परिस्थितियां अभियुक्त के अपराध को साबित करती हैं, तो वह कमजोर नहीं होता है; भले ही आशय बहुत मजबूत न हो। यह भी स्थापित कानून है कि आशय एक ऐसे मामले में अपना सारा महत्व खो देता है जहां प्रत्यक्षदर्शी गवाहों का प्रत्यक्ष सबूत उपलब्ध है, क्योंकि भले ही आरोपी व्यक्तियों के लिए एक विशेष अपराध करने का बहुत मजबूत मकसद हो, अगर प्रत्यक्षदर्शियों के सबूत विश्वसनीय नहीं हैं तो उन्हें दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। उसी तरह, भले ही कोई स्पष्ट मकसद न हो, लेकिन अगर चश्मदीद गवाहों के सबूत स्पष्ट और विश्वसनीय हैं, तो मकसद की अनुपस्थिति या अपर्याप्तता दोषसिद्धि के रास्ते में नहीं आ सकती है। **पन्नायर बनाम तमिलनाडु राज्य, (2009) 9 एस.सी.सी 152** में आगे यह माना गया है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर किसी मामले में मकसद की अनुपस्थिति एक ऐसा कारक है जो अभियुक्त के पक्ष में है।

22. इस मामले में, अ०सा०-2 और अ०सा०-4 की गवाही, जिन्हें अंतिम बार देखे गए गवाह कहा जाता है, हमारे द्वारा विश्वसनीय नहीं पाए जाते हैं। इसलिए, अपराध के पीछे के आशय को साबित करना अभियोजन पक्ष पर निर्भर था। हालांकि, प्राथमिकी कोई विश्वकोश नहीं है क्योंकि सूचनाकर्ता द्वारा मकसद नहीं बताया गया है, फिर भी मृतक की मां अ०सा०-3 ने पहली बार अपनी गवाही में मकसद का खुलासा किया है कि अपीलकर्ता-कु. संध्या सिंह ने उसके पति पर छेड़छाड़ का झूठा आरोप लगाया था। अभियोजन पक्ष द्वारा किसी भी सबूत के माध्यम से इस मकसद को साबित नहीं किया जा सका।

इसके अलावा, हमारी राय में, यह एक मजबूत मकसद नहीं है, जिसने अपीलकर्ताओं को छोटे बच्चे की हत्या करने के लिए प्रेरित किया और अभियोजन पक्ष के तर्क को स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि यह बलि का मामला प्रतीत होता है क्योंकि इस संबंध में कोई सबूत रिकॉर्ड पर नहीं है और किसी ने भी ऐसा नहीं कहा है। इसलिए, परिस्थितियों की श्रृंखला की एक और कड़ी टूट जाती है।

23. अ०सा०-5 संगीता देवी की गवाही पर भी हमारे द्वारा भरोसा नहीं किया जा सकता है। उसने गवाही दी है कि अपीलकर्ता कु. संध्या सिंह ने उसके समक्ष न्यायिकेत्तर स्वीकारोक्ति की थी। हम उसकी गवाही पर विश्वास नहीं कर सकते क्योंकि अगर ऐसा था तो उससे लड़के के शव की बरामदगी तक चुप रहने की उम्मीद नहीं थी क्योंकि वह उसकी बुआ थी। इसके अतिरिक्त, यह न्यायिकेत्तर संस्वीकृति के संबंध में स्थापित कानून है कि इसे किसी ऐसे व्यक्ति के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए जो संस्वीकृति करने वाले अभियुक्त को बचाने या उसकी सहायता करने की स्थिति में हो। इस मामले में, मृतक-बच्चे की बुआ अपीलकर्ताओं को बचाने या मदद करने की स्थिति में नहीं थी, इसलिए किसी भी अपीलकर्ता के लिए अ०सा०-5 के समक्ष कबूल करने का कोई सवाल ही नहीं था।

24. मौजूदा मामले में, अभियोजन पक्ष अपराध के पीछे के मकसद के साथ-साथ 'अंतिम बार देखे जाने' के साक्ष्य के तथ्य को साबित करने में विफल रहा है। अ०सा०-5 संगीता देवी की गवाही भी न्यायिकेत्तर स्वीकारोक्ति के तथ्य के संबंध में विश्वास प्रेरित नहीं करती है। इसलिए, अभियोजन पक्ष मामले की परिस्थितियों को साबित करने में विफल रहा है। इस मामले में कोई परिस्थितिजन्य साक्ष्य नहीं है, जो हर संभव परिकल्पना को बाहर कर सकता है और यह साबित कर सकता है कि अपराध केवल अपीलकर्ताओं द्वारा किया गया है और किसी और ने नहीं किया। इसलिए, परिस्थितिजन्य साक्ष्य की श्रृंखला पूरी नहीं है ताकि यह इंगित किया जा सके कि ये केवल अपीलकर्ता हैं जिन्होंने अपराध किया है। इसलिए, अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए सबूतों को श्रृंखला को पूरा करने के लिए एक कड़ी के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है, क्योंकि सबूतों की श्रृंखला मकसद, 'अंतिम बार देखा गया' और न्यायिकेत्तर स्वीकारोक्ति के सिद्धांत के बिंदु पर टूट जाती है। इसके अलावा, यह तय कानून है कि यदि मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए सबूतों पर दो विचार संभव हैं; एक अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करता है और दूसरा उसकी बेगुनाही की ओर, तो अभियुक्त के पक्ष में दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। यह सिद्धांत वहां अधिक प्रासंगिक हो गया है जहां अभियोजन पक्ष परिस्थितिजन्य साक्ष्य द्वारा अभियुक्त के अपराध को स्थापित करना चाहता है।

25. वर्तमान मामले में, हम इस विचार के हैं कि ऐसी घटनाओं की श्रृंखला स्थापित करने की बात तो छोड़ दें, जो एक-दूसरे से इतनी जुड़ी हुई हैं जिससे कि अभियुक्त के अपराध के अलावा कोई अन्य निष्कर्ष नहीं निकलता है, अभियोजन एक भी दोषी परिस्थिति उचित संदेह से परे साबित करने में भी विफल रहा है। इस प्रकार, अपीलकर्ताओं को संदेह का लाभ दिया जाता है और अपील की अनुमति दी जा सकती है।

26. अपील की अनुमति दी जाती है और विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि और सजा को रद्द कर दिया जाता है। अपीलकर्ताओं को सभी आरोपों से बरी किया जाता है और उन्हें निर्देश दिया जाता है कि यदि किसी अन्य मामले में आवश्यक नहीं है तो उन्हें तुरंत रिहा कर दिया जाए।

(2023) 1 ILRA 965
अपीलीय क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 23.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार
माननीय न्यायमूर्ति सैयद वाएज़ मियां

क्रिमिनल अपील नंबर-6649 वर्ष 2006

जमशेद ... अपीलकर्ता (जेल में)
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य ... प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
श्री अजातशत्रु पांडे, श्री जे. जे मुनीर, श्री मो. फैज, श्री मोहम्मद, फारूक, श्री नरेन्द्र सिंह, श्री प्रेमचंद सरोज, श्री आशीष कुमार नागवंशी, श्री आर.पी. राघिब अली, श्री सगीर अहमद, वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता, श्री डी. के श्रीवास्तव

आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 300, 302 और 304- गैर इरादतन मानव वध हत्या की श्रेणी में नहीं- प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार, घटना अचानक हुई थी और यह रिकॉर्ड पर सामग्री के अवलोकन से परिलक्षित होता है कि अपीलकर्ता/अभियुक्त का कार्य धारा 300 (अपवाद-1) के दायरे में आता है क्योंकि अपीलकर्ता का मृतक को मारने का कोई इरादा नहीं था और अचानक उकसावे और झगड़े की घटना हुई थी। इसके अलावा, उसने मृतक पर केवल एक बार गोली चलाई थी- 'गैर इरादतन हत्या' जीनस है और 'हत्या' इसकी प्रजाति है। सभी 'हत्या' गैर इरादतन मानव वध है लेकिन इसके विपरीत नहीं। साधारणतया 'गैर इरादा' मानव वध 'हत्या की विशेष विशेषता' वाला गैर इरादतन मानव वध है, जो हत्या नहीं है- गैर इरादतन मानव वध के मामले में इरादा या ज्ञान इतना सकारात्मक या निश्चित नहीं है। जहां घटना पूर्व नियोजित और इरादे के बिना अचानक होती है और आग्नेयास्त्र चलाने की पुनरावृत्ति नहीं होती है, तो मामला धारा 302 भ०द०वि० के बजाय धारा 304 भ०द०वि० के तहत आएगा। दोषसिद्धि और सजा तदनुसार संशोधित की गई।

आपराधिक अपील आंशिक रूप से अनुमति दी। (ई-3)

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद वैज़ मियां द्वारा प्रदत्त)

1. धारा 374 (2) द०प्र०स० के तहत यह आपराधिक अपील अपीलकर्ता/अभियुक्त, जमशेद द्वारा सत्र परीक्षण संख्या-29 वर्ष 2022 (राज्य बनाम जमशेद) में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, (फास्ट ट्रैक कोर्ट), चंदौली द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 26.10.2006 के खिलाफ दायर की गई है, जिसके तहत उसे दोषी ठहराया गया है और धारा 302 भ०द०वि० के तहत 10,000/- रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है। और धारा 323, 504, 506 भ०द०वि० के तहत क्रमशः 6 महीने, एक साल और डेढ़ साल, साधारण कारावास, और जुर्माना के भुगतान में चूक की स्थिति में, उसे एक वर्ष का साधारण कारावास और भुगतना होगा। सभी सजाएं साथ-साथ चलाने का निर्देश दिया गया है।

2. अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री सगीर अहमद, वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता मो. फारूक द्वारा कि गई, और राज्य प्रतिवादी श्री रत्नेन्दु कुमार सिंह, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना, और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

3. अभियोजन पक्ष की कहानी के संक्षिप्त तथ्य निम्नानुसार सामने आते हैं:

4. सूचनकर्ता विजेन्द्र यादव ने दिनांक 05.07.2001 को लगभग 20.30 बजे एक लिखित प्रथम सूचना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसके आधार पर अपीलकर्ता/अभियुक्त के विरूद्ध धारा-302, 323, 504 एवं 506 भ०द०वि० के अन्तर्गत प्रथम सूचना प्रतिवेदन संख्या 96 वर्ष 2001, प्रकरण अपराध क्रमांक 113 वर्ष 2001 थाना-बलुआ, जनपदः चंदौली में दर्ज किया गया।

5. प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह आरोप लगाया गया है कि 05.07.2001 को सतीश यादव उचित मूल्य की दुकान से मिट्टी का तेल लेने के बाद अपने घर जा रहा था; जैसे ही वह शाम को 6.30 बजे चौराहे के पास नाहकू प्रजापति की चाय और पान की दुकान पर पहुंचा था, आरोपी वहां आया और उसे गालियां देने लगा। जब सतीश यादव ने उसे चेतावनी दी, तो अपीलकर्ता वाहन से उतर गया और उसे मुट्ठी और लातों से पीटना शुरू कर दिया; वहां मौजूद गवाह, लालजी, संजय और अन्य ने हस्तक्षेप किया और सतीश यादव को आरोपियों से छुड़वाया और आरोपी को

उसके कृत्य के लिए फटकार भी लगाई; लेकिन उसने (आरोपी) उन्हें जगह छोड़ने की धमकी दी कि वह उन्हें गोली मार देगा; प्रत्यक्षदर्शियों ने उसे यह कहकर चुनौती दी कि उसे मारना उसके लिए आसान नहीं है, जिस पर आरोपी ने गुस्से में आकर राजवंश के सीने पर बंदूक से गोली चला दी, जिससे वह नीचे गिर गया और मौके पर ही उसकी मौत हो गई। आरोपी ने अपनी बंदूक लहराते हुए गवाहों को धमकी दी और वह भयभीत लोगों को मौके पर छोड़कर भाग गया।

6. प्रथम सूचना रिपोर्ट का सार 05.07.2001 को जी.डी. में दर्ज किया गया था और जांच थाना के प्रभारी को सौंप दी गई थी जिन्होंने इसे लिया और इसे शुरू किया।

7. सूचनकर्ता के कहने पर घटनास्थल का नक्शा नज़री तैयार की गई। मृतक के शव की जांच की गई और मृतक की मौत के वास्तविक कारण का पता लगाने के लिए मृतक के शव को जांच रिपोर्ट और अन्य आवश्यक कागजात के साथ जिला शवगृह भेज दिया गया।

8. जांच के दौरान विवेचनाधिकारी ने अ०सा०-1 व अन्य गवाहों के बयान दर्ज किए। दिनांक 08.07.2001 को अभियुक्त को गिरफ्तार कर लिया गया, जिसने थाना प्रभारी सामंत भद्र शुक्ला के समक्ष स्वीकार किया कि वर्तमान घटना के संबंध में उसने ग्राम नाथूपुर में पुराने ईदगाह के निकट अनुज्ञप्तिधारी बन्दूक डीबीबीएल .12 बोर से राजवंश की हत्या की थी और हथियार झाड़ियों में छुपाया था। उसने गिरफ्तार करने वाले अधिकारी को यह भी बताया कि वह उक्त स्थान से इसे बरामद करा सकता हैं, जिस पर विवेचनाधिकारी सामंत भद्र शुक्ला, थाना के प्रभारी, गवाह राजा राम यादव और राजेंद्र यादव के साथ, इस बरामदगी की उम्मीद में, आरोपी को दिए गए स्थान पर ले गए, जहां 14:00 बजे, उसने झाड़ियों से डीबीबीएल बंदूक बरामद करवाई और 05-07-2001 को मृतक की हत्या करने की बात स्वीकार की। उन्होंने यह भी बताया कि उसका भाई तंजीन अहमद हथियार का लाइसेंसिंग धारक था, जो सेना में सेवारत था और जम्मू-कश्मीर में तैनात था। बरामद डीबीबीएल बंदूक के बट के कवर में तीन जिंदा कारतूस भी बरामद किए गए। दोनों सामग्री, अर्थात डीबीबीएल बंदूक और बरामद जिंदा कारतूस को आरोपी और गवाहों की उपस्थिति में कपड़े के एक टुकड़े में अलग से सील कर दिया गया और फ़र्द बरामदगी, पेपर नं प्रदर्श-क-15, 212(?) विवेचनाधिकारी सामंत भद्र शुक्ला द्वारा तैयार किया गया था और उस पर आरोपी और अन्य लोगों ने हस्ताक्षर भी किए थे।

9. बरामद डीबीबीएल बंदूक को विधि विज्ञान प्रयोगशाला, उत्तर प्रदेश, महानगर, लखनऊ को जांच के लिए भेजा गया था। मारपीट के हथियार की विधि विज्ञान प्रयोगशाला जांच रिपोर्ट, पेपर नंबर 6 का रिकॉर्ड है।

10. फ़र्द बरामदगी प्रदर्श क-15 के आधार पर अभियुक्तों के विरुद्ध शस्त्र अधिनियम की धारा 3/25/27 के तहत अपराध क्रमांक-115 वर्ष 2001 के रूप में प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 98 वर्ष 2001 दर्ज कर इसकी जांच एस.जी.पी राणा प्रताप सिंह को सौंपी गई जिन्होंने आग्नेयास्त्र व तीन कारतूस बरामद होने की जगह का निरीक्षण किया था। विवेचनाधिकारी ने सूचनकर्ता और गवाहों के बयान भी दर्ज किए।

11. प्रकरण क्रमांक-113 वर्ष 2001 के विवेचनाधिकारी ने धारा 323, 504, 506 एवं 302 भ०द०वि० में धारा 161 के अन्तर्गत अभियुक्त के विरूद्ध साक्ष्य एकत्रित करने के बाद आश्वस्त होकर चालान को संबंधित सामग्री के साथ न्यायालय में प्रस्तुत किया।

12. इसी प्रकार विवेचनाधिकारी ने साक्ष्य एकत्र करने के बाद अपराध क्रमांक-115 वर्ष 2001 में शस्त्र अधिनियम की धारा 3/25/27 के अंतर्गत अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप-पत्र संबंधित न्यायालय को अग्रेषित किया।

13. प्रस्तुत आपराधिक अपील के माध्यम से, आक्षेपित निर्णय और आदेश को सत्र परीक्षण संख्या 29 वर्ष 2002, जो अपराध संख्या-113 वर्ष 2001 से उद्‌भूत होती है में धारा-302, 323, 504, 506 भ०द०वि० उसकी सजा के संबंध में है, के तहत चुनौती दी जा रही है।

14. आरोपी के खिलाफ धारा 302, 323, 504 और 506 भ०द०वि० के तहत आरोप तय किए गए थे, जो दिनांक 03.02.2003 के आदेश के तहत विद्वान जिला सत्र न्यायालय द्वारा तय विरचित किए गए थे। अपीलकर्ता को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उसने इन्कार किया और विचारण चाहा।

15. अभियुक्तों के विरूद्ध आरोपों को सिद्ध करने के लिए अभियोजन पक्ष ने अ०सा०-1, बृजेंद्र यादव, अ०सा०-2-सतीश यादव, अ०सा०-3 लाल जी, अ०सा०-4 लाल मोहर राम, अ०सा०-5 शिव चंद्र त्रिपाठी, विवेचनाधिकारी, अ०सा०-6-सामंत भद्र शुक्ला, विवेचनाधिकारी, अ०सा०-7 सुनील कुमार सक्सेना, जो शिवचंद्र त्रिपाठी व पंचान के तौर पर उपस्थित थे, मृतक का पंचनामा प्रदर्श-क-6 अपने लेखन और हस्ताक्षर में तैयार की और मृतक के सीलबंद शव को पंचनामा व अन्य कागजात के साथ जिला शवगृह में ले जाकर मृतक की मौत के वास्तविक कारण का पता लगाने के लिए अ०सा०-8 एच.सी.पी. राणा प्रताप सिंह, जिन्होंने केस क्राइम नंबर 115 वर्ष 2001 में जांच की है, आरोपी के खिलाफ आर्म्स एक्ट की धारा 3/25/27 के तहत तैयार किया। अ०सा०-10 डॉ. ए.के प्रधान मृतक के शव की जांच कर अपने हस्ताक्षर और लेखन में मृतक की शव परीक्षण रिपोर्ट तैयार की थी।

16. धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्त का बयान दर्ज किया गया, जिसमें आरोपी ने कहा है कि सूचनकर्ता और

अन्य गवाहों के साक्ष्य झूठे हैं। उसने इस बात से भी इनकार किया है कि उनके इशारे पर हत्या वाले हथियार यानी डीबीबीएल बंदूक और जिंदा कारतूस बरामद किए गए थे। इसके अलावा, उसने विवेचनाधिकारी को इकबालिया बयान देने और खुलासा करने से इनकार किया। उसने आगे कहा है कि वर्तमान मामले में उसके खिलाफ मुकदमा उसकी दुश्मनी के कारण किया गया था। उसने खुद को निर्दोष भी बताया है।

17. इसके अलावा, अपीलकर्ता की ओर से, सत्र परीक्षण संख्या-29 वर्ष 2002 के संबंध में दस्तावेजी साक्ष्य दिनांक 09.03.2006, डाक रसीद संख्या-12 दिनांक 08.07.2001, टेलीग्राफ संदेश की प्रमाणित प्रति, एक नफीस फातिमा और शमीम अहमद द्वारा प्रेषित और एस.टी नंबर-28 वर्ष 2002 के संबंध में दस्तावेजी साक्ष्य दिनांक 03.12.2004 की अनुसूची के अनुसार, जी.डी. क्रमांक 29 समय 21.10 घंटे, दिनांक 06.07.2001, थाना-बलुआ की प्रमाणित प्रति संलग्न की गई है।

18. दोनों संबंधित पक्षों के लिए आरोपी अपीलकर्ता के अधिवक्ता और डी.जी.सी (आपराधिक) को सुनने के बाद, विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता/अभियुक्त को क्रमशः 19.10.2006 और 26.10.2006 के दोषसिद्धि और सजा आदेश के माध्यम से दोषी ठहराया और सजा सुनाई।

19. आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित महसूस करते हुए, धारा 374(2) द०प्र०स० के तहत प्रस्तुत आपराधिक अपील दायर की गई है, जहां उक्त आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर चुनौती दी गई है कि दोषसिद्धि और सजा रिकॉर्ड पर साक्ष्य के वजन के खिलाफ है और कानून के विपरीत है। प्रस्तुत अपील में यह भी कहा गया है कि दोषसिद्धि और सजा तथ्यों के खिलाफ हैं और बहुत गंभीर हैं। यह प्रार्थना की जाती है कि विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश (एफ.टी.सी), चंदौली द्वारा पारित दिनांक 26.10.2006 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द कर दिया जाए और परिणामस्वरूप उसे दोषमुक्त किया जाए।

20. शुरुआत में अपीलकर्ता/अभियुक्त के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि कथित घटना के तथ्यों के मद्देनजर, अपराध धारा 300 भ०द०वि० (अपवाद 1) के तहत आता है क्योंकि अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार घटना कथित रूप से अचानक झगड़े के कारण और क्षणिक क्रोध की गर्मी में बिना किसी पूर्व विचार के हुई है, इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता को भ०द०वि० की धारा 302 के तहत दोषी ठहराने की गलती की है। वह प्रस्तुत करता है कि घटना के तथ्यों से पता चलता है कि कोई इरादा/पूर्व-विचार नहीं था, इसलिए यह गैर इरादतन हत्या के बराबर है। उन्होंने आगे दलील दी कि भारतीय दंड संहिता के तहत हत्या और गैर इरादतन हत्या अलग-अलग अपराध हैं। अभियोजन की कहानी के अनुसार, अपीलकर्ता/अभियुक्त का कृत्य धारा 300 (अपवाद -1) के तहत कवर किया गया है, यानी गैर इरादतन मानव वध जो हत्या की श्रेणी में नहीं आता है, अपवाद-1 (धारा -300) के लिए निर्धारित कुछ प्रावधानों के अधीन है।

21. अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि अपीलकर्ता/अभियुक्त का कोई पिछला आपराधिक इतिहास नहीं है और वह 19.10.2006 से जेल में बंद है। यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता अभियुक्तों को अधिक से अधिक गैर इरादतन मानव वध जो हत्या नहीं है, के अपराध के लिए दोषी ठहराया जा सकता है और सजा सुनाई जा सकती है।

22. धारा 304 भ०द०वि० के तहत, यह निर्धारित किया गया है कि: वे कारक जो हत्या को गैर इरादतन मानव वध बनाते हैं:

(ए) यह पूर्व विचार के बिना कारित किया जाना चाहिए था:

(बी) यह अचानक झगड़े में किया जाना चाहिए था:

(ग) यह क्षणिक जुनून की गर्मी में होना चाहिए था:

(घ) यह अपराधी के अनुचित लाभ लेने या क्रूर या असामान्य तरीके से कार्य किए बिना किया जाना चाहिए था:

23. इसके बाद अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया जाता है कि धारा 304 भ०द०वि० के तहत अधिकतम सजा 10 साल है, जबकि अपीलकर्ता/अभियुक्त 19.10.2006 से कैद से पीड़ित है।

24. अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि चूंकि अपीलकर्ता/अभियुक्त ने 15 साल से अधिक समय तक कैद का सामना किया है, इसलिए उसे कारावास की सजा सुनाई जा सकती है, जिससे वह पहले ही गुजर चुका है।

25. प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार, यह घटना अचानक हुई थी और यह रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के अवलोकन से परिलक्षित होता है कि अपीलकर्ता/अभियुक्त का कार्य धारा 300 (अपवाद 1) के दायरे में आता है क्योंकि अपीलकर्ता का मृतक को मारने का कोई इरादा नहीं था और अचानक उकसावे और झगड़े की घटना हुई थी। इसके अलावा, उसने मृतक पर केवल एक बार गोली चलाई थी।

26. अ०सा०-10, डॉ. ए.के.प्रधान, जिन्होंने मृतक के शरीर का शव परीक्षण किया है, ने भी अपने बयान में कहा है कि मृतक के शरीर में केवल एक गोली मिली थी।

27. भारतीय दंड संहिता की योजना के तहत 'गैर इरादतन हत्या' जीनस है और 'हत्या' इसकी प्रजाति है। सभी 'हत्या' गैर इरादतन मानव वध है लेकिन इसके विपरीत नहीं। आम तौर पर 'गैर इरादा' मानव वध बिना 'हत्या की विशेष

विशेषता' वाला गैर इरादतन मानव वध है, जो हत्या नहीं है। सजा तय करने के उद्देश्य से, इस सामान्य अपराध की गंभीरता के अनुपात में, संहिता व्यावहारिक रूप से गैर इरादतन हत्या के तीन स्तर को मान्यता देती है। पहला है, जिसे पहली डिग्री का गैर इरादतन मानव वध कहा जा सकता है। यह गैर इरादतन मानव वध का सबसे गंभीर रूप है जिसे धारा 300 में 'हत्या' के रूप में परिभाषित किया गया है। दूसरे को 'दूसरी डिग्री की गैर इरादतन हत्या' कहा जा सकता है। यह धारा 304 के पहले भाग के तहत दंडनीय है।

28. गैर इरादतन हत्या के मामले में इरादा या ज्ञान इतना सकारात्मक या निश्चित नहीं है। चोट लगने से मृत्यु हो भी सकती है और नहीं भी। भले ही धारा 300 भ०द०वि० के अपवाद-1 से 4 तक सदोष न हों, फिर भी अपराध गैर इरादतन हत्या हो सकता है।

29. हमारी राय में, अभियुक्त का अपराध धारा 300 भ०द०वि० के अपवाद-1 के भीतर आता है, इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय ने धारा 302 भ०द०वि० के तहत अभियुक्त को दोषी ठहराकर गलती की है।

30. पक्षकारों के वकीलों की प्रतिद्वंद्वी दलीलों, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने पर, और अपीलकर्ता द्वारा अपराध करने का तरीका, अपीलकर्ता की दोषसिद्धि, जो 19.10.2006 से जेल में है, पर विचार करने पर, धारा 302 भ०द०वि० को धारा 304 भ०द०वि० में परिवर्तित किया जाता है। तदनुसार, सजा को कैद की अवधि के लिए संशोधित किया जाता है, जिससे अभियुक्त पहले ही गुजर चुका है। इस प्रकार, प्रस्तुत अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है।

31. आक्षेपित निर्णय तदनुसार संशोधित किया जाता है।

32. अभियुक्त/अपीलकर्ता यदि वह किसी अन्य आपराधिक मामले में वांछित नहीं है, को जेल से रिहा कर दिया जाए क्योंकि वह पहले ही धारा 304 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए अपनी अपेक्षित सजा काट चुका है।

33. निचली अदालत के रिकॉर्ड के साथ इस फैसले की एक प्रति अनुपालन के लिए तत्काल संबंधित अदालत को वापस भेजी जाए।

34. आदेश का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए कार्यालय संबंधित सी.जे.एम. के माध्यम से संबंधित जेल अधीक्षक को सूचित करेगा।

(2023) 1 ILRA 970

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार

माननीय न्यायमूर्ति सैयद वाएज़ मियां

जेल अपील संख्या-7291 वर्ष 2017

गुलाम रशुल ... अपीलार्थी

बनाम

राज्य .. प्रतिपक्षी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

जेल से, श्री अभिनव जायसवाल (ए.सी.)

प्रतिपक्षी के लिए अधिवक्ता:

अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून- धारा 201- भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 201 भ०द०वि० के तहत अपराध का गठन करने के लिए अपराध के कमीशन के कुछ सबूतों को गायब होना चाहिए; मारे गए व्यक्ति की लाश को हत्या के दृश्य से दूसरी जगह ले जाना धारा 201 के तहत नहीं आता क्योंकि हटाने से हत्या के कमीशन के सबूत गायब नहीं हो जाते हैं। धारा 201 केवल तभी लागू होगी जब अपराधी को बचाने के इरादे से अपराध से संबंधित झूठी जानकारी उन लोगों को दी जाती है जो अपराधी को कानून के दायरे में लेने की रुचि रखते हैं।

मृतक को केवल एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना भारतीय दंड संहिता की धारा 201 के तहत अपराध नहीं होगा क्योंकि उक्त धारा तभी लागू होगी जब अपराधी को कानूनी सजा से बचाने के लिए सबूत नष्ट कर दिए जाएं या झूठी जानकारी दी जाए।

धारा 106- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 – अ०सा०-1, आनंद सिंह, अ०सा०-2 आशीष मलिक और अ०सा०-5 मनोज कुमार अभियुक्त मृतक के उनसे अलग होने के संबंध में अपने पक्ष में रत्ती भर सबूत पेश करने में विफल रहे हैं, इसलिए, यह भी अभियुक्त के संज्ञान में था कि उसने मृतक को क्यों और किस कारण से मौत के घाट उतार दिया था। केवल अभियुक्त के बाद के आचरण के आधार पर रिकॉर्ड पर गवाहों के भरोसेमंद सबूतों पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है। यह स्पष्ट है कि 15.02.2004 को दोपहर लगभग 1.30 बजे आरोपी मृतक

को अपने साथ अपने घर से चारा लेने के लिए खेत में ले गया था, जो गांव से एक किलोमीटर की दूरी पर स्थित है, लेकिन अकेले अशोक के घर लौट आया था - आरोपी ने इस बात से इनकार नहीं किया है कि वह मृतक को चारा लेने के लिए घर से खेत की ओर नहीं ले गया था और इससे भी इनकार और बचाव नहीं किया है कि अशोक के घर से गन्ने के खेत तक जाते समय मृतक ने उसकी कंपनी से अलग हो गया था। ऐसी परिस्थितियों में उसके खिलाफ यह निष्कर्ष निकालना होगा कि उसने मृतक को गन्ने के खेत में मार डाला था। अभियुक्त साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के तहत अनुमान का खंडन करने में बुरी तरह विफल रहा है।

जहां यह स्थापित किया जाता है कि मृतक अभियुक्त के साथ चला गया था और उसके बाद मृत पाया गया था, तो उक्त तथ्य अभियुक्त के विशेष ज्ञान में होने के कारण सबूत का भार उस पर पड़ता है कि वह उन परिस्थितियों की व्याख्या करे जिनके तहत मृतक की मृत्यु हुई थी, ऐसा न करने पर आरोपी के खिलाफ प्रतिकूल अनुमान लगाया जाएगा। (पैरा 18, 19, 40, 41, 43)

आपराधिक अपील खारिज। (ई-3)

केस लॉ/न्याय निर्णय जिन पर पर भरोसा किया गया:-

1. सूरज सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2008 (11) एस.सी.आर. 286

2. शरद बिरधी चंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 एस.सी.सी. 116

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद वैज़ मियां द्वारा दिया गया)

1. धारा 383 द०प्र०स० के तहत यह जेल अपील अपीलकर्ता/अभियुक्त, गुलाम रशुल, वरिष्ठ जेल अधीक्षक, आगरा के माध्यम से, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कोर्ट नंबर-10, गाजियाबाद द्वारा सत्र परीक्षण संख्या-576 वर्ष 2004 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 30.06.2005 के खिलाफ, धारा 302 और 201 भ०द०वि० के तहत केस अपराध संख्या-37 वर्ष 2004 थाना-मुरादनगर, जिला गाजियाबाद से संबंधित है जिसके द्वारा आरोपी अपीलकर्ता को धारा 302 और 201 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया गया है। धारा 302 भ०द०वि० के तहत उसे 5,000 रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है और जुर्माना अदा न करने पर उसे छह महीने की कैद और काटनी होगी। धारा 201 भ०द०वि० के तहत उसे तीन साल के कठोर कारावास और 1,000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई है और जुर्माना अदा न करने पर उसे एक महीने का और कारावास भुगतना होगा। दोनों सजाएं साथ-साथ चलने के लिए निर्देशित हैं।

2. अपीलकर्ता/अभियुक्त के लिए श्री अभिनव जायसवाल, न्याय मित्र और राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

3. अभियोजन पक्ष की कहानी के संक्षिप्त तथ्य निम्नानुसार सामने आते हैं:

4. एक सूचनाकर्ता आनंद सिंह ने दिनांक 15.02.2004 को अपराह्न लगभग 1.30 बजे से सायं 5.00 बजे तक थाना-मुरादनगर, जिला-गाजियाबाद में एक लिखित प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें आरोप लगाया गया कि अभियुक्त गुलाम रशुल, जो जिला समस्तीपुर, जिला-बिहार का मूल निवासी है, उसके भाई अशोक का नौकर है। आज, उसने अपने नियोक्ता अशोक से उधार पर 500 रुपये की मांग की, जिसने उसे बताया कि वह कल राशि उधार देगा और उसे चारा इकट्ठा करने के लिए खेत में जाने का निर्देश दिया। आरोपी दोपहर करीब 1.30 बजे अशोक के करीब 9 साल के बेटे गौरव को अपने साथ खेत में ले गया, लेकिन शाम करीब 5 बजे गुलाम रशुल बिना चारे के अकेले लौट आया। उसका भतीजा भी उसके साथ नहीं था, इसलिए सूचनाकर्ता और अन्य लोगों ने उससे गौरव के बारे में पूछताछ की, जिस पर उसने स्वीकार किया कि उसने कृपाल के खेत में गला दबाकर उसकी हत्या कर दी थी। उन्होंने यह भी खुलासा किया था कि गौरव का शव गन्ने के खेत में पड़ा था। आशीष मलिक, मनोज और अन्य लोगों ने मृतक को आरोपी के साथ देखा था, जब वह गन्ने के खेत में जा रहा था। गुलाम रशूल ने उसके भतीजे की हत्या कर दी है।

5. लिखित प्रथम सूचना रिपोर्ट-पेपर नं. क-1 अपीलकर्ता/अभियुक्त के विरूद्ध थाना-मुरादनगर, जिला-ग़ाज़ियाबाद में धारा 302 एवं 201 भ०द०वि० में अपराध क्रमांक 227 वर्ष 2004 में केस दर्ज किया गया तथा प्रधान मोहर्रिर 270-चतर सिंह द्वारा उसी दिन जीडी में प्रथम सूचना रिपोर्ट का सार दर्ज कर विवेचनाधिकारी को सौंप दिया गया, जिन्होंने जांच अपने हाथ में लेकर इसे अंजाम दिया।

6. जांच के दौरान 'पंचान' नियुक्त करने के बाद मृतक के शव का पंचनामा किया गया और अन्य औपचारिकताओं के साथ कागजात भी तैयार किए गए।

7. विवेचनाधिकारी ने सूचनाकर्ता के कहने पर घटनास्थल का निरीक्षण किया और स्केच नक्शा नज़री प्रदर्श क-11 बनाया गया और विवेचनाधिकारी ने सूचनाकर्ता और अन्य गवाहों के बयान दर्ज किए।

8. मृतक की मौत के असली कारण का पता लगाने के लिए मृतक के शव को मोर्चरी भेजा गया।

9. 16.02.2004 को डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद ने मृतक के शरीर का शव परिक्षण किया था और शव परीक्षण रिपोर्ट में उन्होंने उल्लेख किया है कि मृतक की मृत्यु का कारण थ्रॉटलिंग (गला दबाना) के परिणामस्वरूप श्वासावरोध था।

10. विवेचनाधिकारी ने आरोपी के खिलाफ धारा 161 द०प्र०स० के तहत सबूत इकट्ठा करने के बाद निष्कर्ष निकाला कि अपीलकर्ता/अभियुक्त ने मृतक की हत्या कर दी है और एकत्रित सबूतों के मद्देनजर, जांच के दौरान, उसने अपीलकर्ता/अभियुक्त के खिलाफ 04.02.2004 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

11. अपीलकर्ता/अभियुक्त के खिलाफ धारा 302 और 201 भ०द०वि० के तहत आरोप अपर सत्र न्यायाधीश, एफ.टी.सी. कोर्ट नंबर-2 द्वारा दिनांक 01.06.2004 के आदेश द्वारा तय किए गए, जिसे अपीलकर्ता को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे ऊसने इन्कार किया और विचारण चाहा।

12. आरोपों को साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने अ०सा०-1-आनंद सिंह, अ०सा०-2 आशीष मलिक, अ०सा०-3-नंद किशोर, अ०सा०-4-नरेंद्र सिंह, अ०सा०-5-मनोज कुमार, अ०सा०-6- हेड कांस्टेबल चतर सिंह, अ०सा०-7- डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद (रेडियोलॉजिस्ट) और अ०सा०-8 ओपी यादव से पूछताछ की है।

13. अपीलकर्ता अभियुक्त गुलाम रशुल का धारा 313 द०प्र०स० के तहत बयान दर्ज किया गया जिसमें उसने रिकॉर्ड पर मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य से इनकार किया है और यह भी कहा है कि यह गलत है। उसने आगे कहा है कि गवाहों ने दुश्मनी के कारण उनके खिलाफ गवाही दी है।

14. अपीलकर्ता/अभियुक्त और दोनों पक्षों के लिए विद्वान एडीजीसी और न्याय मित्र को सुनने के बाद, विचारण न्यायालय ने दिनांक 30.06.2005 के आक्षेपित निर्णय और आदेश के तहत आरोपी को दोषी ठहराया है और उसे धारा 302 और 201 भ०द०वि० के तहत सजा भी सुनाई है। भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत उसे आजीवन कठोर कारावास और 5,000 रुपये का जुर्माना तथा जुर्माना अदा न करने पर छह माह की कैद और काटने की सजा सुनाई गई है। धारा 201 भ०द०वि० के तहत उसे तीन साल के कठोर कारावास और 1,000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई है और जुर्माना अदा न करने पर उसे एक महीने का और कारावास भुगतना होगा। दोनों सजाएं साथ-साथ चलने के लिए निर्देशित हैं।

15. प्रथम सूचना रिपोर्ट में सूचनाकर्ता आनंद सिंह ने यह खुलासा नहीं किया है कि आरोपी द्वारा उसे उधार पर 500/- रुपये उधार देने के अनुरोध के समय वह घर में उपस्थित था या नहीं।

16. प्रथम सूचना रिपोर्ट, प्रदर्श क-1 में, यह विशेष रूप से वर्णित है कि शाम को लगभग 5.00 बजे जब अपीलकर्ता/अभियुक्त अकेले लौटा और अपने भतीजे की हत्या की स्वीकारोक्ति पर, सूचनाकर्ता अन्य लोगों के साथ खेत में गया था। प्रथम सूचना रिपोर्ट के अवलोकन से पता चलता है कि जब अपीलकर्ता अकेले मैदान से लौटा था, सूचनाकर्ता शाम 5.00 बजे दूसरों के साथ मौजूद था।

17. विद्वान विचारण न्यायालय ने धारा 201 भ०द०वि० के तहत अपीलकर्ता/अभियुक्त की दोषसिद्धि को भी दर्ज किया है और तदनुसार उसे सजा सुनाई है।

18. प्रथम सूचना रिपोर्ट और रिकॉर्ड पर मौजूद अन्य सामग्री से यह प्रकट होता है कि अपीलकर्ता मृतक को चारा इकट्ठा करने के लिए अपने साथ ले गया था और अकेले चारे के बिना अपने नियोक्ता अशोक के घर लौट आया था। अशोक ने उससे अपने बेटे के बारे में पूछताछ की, जिस पर उसने स्वीकार किया कि उसने उसकी हत्या की थी और मृतक का शव उसी दिन गन्ने के खेत में पड़ा हुआ था। रिकॉर्ड पर कोई सबूत नहीं है कि अपीलकर्ता/अभियुक्त ने मृतक के मृत शरीर या मृतक की पहचान छिपाई थी। यह एक स्वीकृत तथ्य है कि मृतक की हत्या बेरहमी से नहीं बल्कि गला दबाकर की गई थी। यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सबूत नहीं है कि मृतक का गला कैसे घोंटा गया था, लेकिन, जैसा कि ऊपर कहा गया है, अपीलकर्ता/अभियुक्त ने खुद अशोक को गवाहों की उपस्थिति में बताया था कि उसने मृतक का गला घोंटा था, इसलिए हमें यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सबूत नहीं मिलता है कि अपीलकर्ता/अभियुक्त ने कानूनी सजा से खुद को बचाने की कोशिश की थी या उसने सूचनाकर्ता या किसी को गुमराह किया था। यह स्थापित करने के लिए कोई सबूत नहीं है कि अपीलकर्ता ने अपराध के कमीशन यानी हत्या के किसी भी सबूत को गायब कर दिया था। धारा 201 भ०द०वि० में कहा गया है कि:

धारा 201 – जो कोई, यह जानते हुए या विश्वास करने का कारण रखते हुए कि कोई अपराध किया गया है, अपराधी को विधिक दंड से विहित करने के आशय से या उस आशय से अपराध के संबंध में ऐसी कोई जानकारी देता है जिसे वह मिथ्या जानता या विश्वास करता है, उस अपराध के संबंध में कोई सूचना देता है, जिसे वह जानता है या विश्वास करता है कि वह मिथ्या है, यदि वह अपराध जिसके बारे में वह जानता है या विश्वास करता है कि किया गया है, मृत्यु से दंडनीय है, दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जाएगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा;"

19. हमारे विचार में धारा 201 भ०द०वि० के तहत अपराध का गठन करने के लिए अपराध के कमीशन के कुछ

सबूतों का गायब होना चाहिए; मारे गए व्यक्ति की लाश को हत्या के दृश्य से दूसरी जगह ले जाना धारा 201 के तहत नहीं आता क्योंकि हटाने से हत्या के कमीशन के सबूत गायब नहीं हो जाते हैं। धारा 201 इस आशय से गलत जानकारी देने वाले व्यक्ति को देखती है कि वह इस तथ्य के बाद अपराधी को सहायक के रूप में पेश करे और उसे सार्वजनिक न्याय के खिलाफ अपराध करने वाले अपराधी के रूप में दोषी ठहराता है। धारा 201 केवल तभी लागू होगी जब अपराधी को बचाने के इरादे से अपराध से संबंधित झूठी जानकारी उन लोगों को दी जाती है जो अपराधी को कानून के घेरे में लाने में रुचि रखते हैं।

20. चूंकि धारा 201 भ०द०वि० के तहत अपराध से संबंधित कोई सबूत नहीं है, इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त धारा के तहत दोषसिद्धि गलत, विकृत और बिना किसी सबूत के है, इसलिए, अपीलकर्ता/अभियुक्त की दोषसिद्धि को धारा 201 भ०द०वि० के तहत अपीलकर्ता के खिलाफ बरकरार नहीं रखा जा सकता है और इस तरह अपीलकर्ता/अभियुक्त गुलाम रशुल को धारा 201 भ०द०वि० के तहत आरोप से बरी किया जाता है।

21. अ०सा०-1 आनंद सिंह ने अपनी जांच में प्रथम सूचना रिपोर्ट के कथनों का वर्णन किया है।

22. अ०सा०-1 आनंद सिंह ने अपनी जिरह में कहा है कि अशोक उसका बड़ा भाई है। अजय और अरुण भी उससे बड़े हैं, वह सबसे छोटा है। वह और अरुण दूध का कारोबार करते हैं, जबकि अशोक कृषि कर रहे हैं। ये सभी संयुक्त परिवार में रह रहे हैं। इसके बाद उन्होंने बयान दिया है कि शाम 5.00 बजे उनके साथ उनके सभी भाई घर में मौजूद थे। उन्होंने आगे कहा है कि भाइयों के बीच, कोई विभाजन नहीं हुआ है। यह दर्शाता है कि वे एक आम घर में रह रहे हैं। तथापि, इस संबंध में गवाहों से कोई विशिष्ट प्रश्न नहीं पूछा गया है। इसलिए, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि घटना के बारे में, अ०सा०-1 आनंद सिंह को घटना का ज्ञान था जैसा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रदर्श क-1 में आरोप लगाया गया है।

23. अ०सा०-1 आनंद सिंह ने अपनी जांच में यह भी कहा है कि मृतक का शव गन्ने के खेत में मिला था; वह और अन्य लोग वहां गए थे; मृतक का चेहरा कपड़े से ढका हुआ था और उसके हाथ उसकी पीठ पर थे; उसकी पीठ मिट्टी से सना हुआ था; मृत शरीर सीधा पड़ा था; शरीर पर चोट का कोई निशान नहीं था; शाम के 7-7.30 बज रहे थे; यह मैदान गांव से एक किलोमीटर की दूरी पर स्थित है।

24. इस प्रकार, अ०सा०-1 आनंद सिंह ने प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रदर्श क-1 में निहित आरोपों की पुष्टि की है। उनके मौखिक वर्णन में कोई असंगति नहीं है।

25. चश्मदीद गवाह अ०सा०-2 आशीष मलिक ने अपनी जांच में बताया है कि वह अशोक कुमार को जानता था। वह एक कृषक हैं। आरोपी गुलाम रशुल उसका नौकर था। यह घटना 15-02-2004 को हुई थी। 15.02.2004 को, गुलाम रशूल ने अशोक से उसे पैसे उधार देने के लिए कहा था, लेकिन उक्त राशि का भुगतान करने के बजाय, अशोक ने उसे चारा इकट्ठा करने का निर्देश दिया था। अशोक का बेटा गौरव भी आरोपियों के साथ था। दोपहर करीब 1.30 बजे उसने गौरव को गुलाम रशुल के साथ देखा था। मृतक की उम्र 9 साल थी। शाम को गुलाम रशूल ने खेत से चारा नहीं लिया और उस वक्त गौरव भी उनके साथ नहीं था। शाम करीब 5.00 बजे गुलाम रशूल से गौरव के बारे में पूछा गया, जिस पर उसने स्वीकार किया था कि उसने मृतक की गला दबाकर हत्या की थी और मृतक का शव खेत में पड़ा था। वह अन्य लोगों के साथ मृतक के शव को देखने गया और खेत में मृतक का शव पड़ा मिला।

26. अ०सा०-1-आनंद सिंह ने न तो प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रदर्श क-1 में और न ही अपने चक्षुक साक्ष्य में यह कहा है कि आरोपी ने अशोक से उसकी उपस्थिति में 500/- रुपये की मांग की थी। इसलिए, इस संबंध में अ०सा०-2 आशीष मलिक की गवाही प्रत्यक्ष नहीं है और उन्होंने अपने साक्ष्य में यह खुलासा नहीं किया है कि उन्हें घटना का वर्णन किसने किया था, हालांकि, उन्होंने प्रथम सूचना रिपोर्ट-प्रदर्श क-1 के कथनों और अ०सा०-1 आनंद सिंह की गवाही की पुष्टि की है कि उन्होंने मृतक को 15.02.2004 को लगभग 1.30 बजे अभियुक्त की कंपनी में देखा था। आरोपी ने सूचनाकर्ता, अशोक और अन्य को मृतक की हत्या के बारे में और शाम 5.00 बजे बताया था। उस समय भी अ०सा०-2 आशीष मलिक मौजूद नहीं थे। हालांकि, जहां तक तथ्यों के बारे में उनकी गवाही का संबंध है कि उन्होंने मृतक को दोपहर लगभग 1.30 बजे आरोपी के साथ देखा था और वह शाम 5.00 बजे खेत में मृतक के शव को देखने के लिए अन्य लोगों के साथ गए थे, विश्वसनीय है क्योंकि यह प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोपों से समर्थन पाता है और अ०सा०-1 आनंद सिंह की गवाही से भी है।

27. अ०सा०-2-आशीष मलिक ने भी अपनी जिरह में स्वीकार किया है कि उसकी उपस्थिति में अभियुक्त ने 14.02.2004 को पैसे उधार देने का अनुरोध नहीं किया था, न ही अगले दिन उसने अशोक से उधार पर 500/- रुपये की मांग की थी, उसे इसके बारे में पता चला था।

28. अ०सा०-2 आशीष मलिक ने अपनी जिरह में यह खुलासा नहीं किया है कि अशोक को आरोपी द्वारा उधार पर 500/- रुपये उधार देने के अनुरोध के बारे में उसे किसने अवगत कराया था। हालांकि, अ०सा०-2 आशीष मलिक ने अपनी शेष जिरह में स्पष्ट रूप से कहा है कि उन्होंने उस समय आरोपी को गौरव के साथ देखा था जब

वह खेत से लौट रहा था; अन्य व्यक्तियों ने भी मृतक गौरव को आरोपी के साथ देखा था; जब वह खेत से लौटा था तो उसने आरोपी को नहीं देखा। उसने आरोपी की ओर से दिए गए इस सुझाव का भी खंडन किया है कि यह कहना सही होगा कि उसने मृतक गौरव को आरोपी के साथ नहीं देखा था। उन्होंने आगे इस बात से इनकार किया है कि वह अ०सा०-1 की सह-जाति होने के कारण गवाही दे रहे हैं।

29. अ०सा०-5 मनोज कुमार ने अपनी जिरह में कहा है कि उनकी उपस्थिति में, अभियुक्त ने क्रेडिट पर लगभग 8 बजे 500/- रुपये उधार देने का अनुरोध किया था, लेकिन हमारी राय में इस गवाह का यह सबूत विश्वास को प्रेरित नहीं करता क्योंकि न तो प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रदर्श क-1, और न ही अ०सा०-1 आनंद सिंह, अ०सा०-2 आशीष मलिक ने कहा है कि आरोपी द्वारा अशोक कुमार से पैसे की मांग के दौरान ब०सा०-5? मनोज कुमार मौजूद था। हालांकि, अ०सा०-5 मनोज कुमार ने अपनी जिरह में स्पष्ट रूप से कहा है कि उसने आरोपी को गौरव के साथ देखा था। उसने यह भी स्वीकार किया है कि आरोपी चारा लेकर नहीं लौटा था और न ही उसने आरोपी को खेत से गांव लौटते समय देखा था। उसने स्वीकार किया है कि वह मृतक का शव देखने खेत में नहीं गया था, न ही वह सूचनाकर्ता के साथ थाने गया था। यह कहना गलत है कि उन पर बयान देने के लिए दबाव डाला गया है। इस प्रकार, अ०सा०-2 आशीष मलिक और अ०सा०-5 मनोज कुमार ने अपनी प्रतिपरीक्षा में स्पष्ट रूप से कहा है कि 15.02.2004 को शाम लगभग 5.00 बजे जब वे खेत से गांव की ओर आ रहे थे, उन्होंने मृतक को अभियुक्त के साथ देखा था। अ०सा०-2 आशीष मलिक और अ०सा०-5 मनोज कुमार ने न केवल अ०सा०-1 आनंद सिंह की गवाही का समर्थन किया है बल्कि प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रदर्श क-1 में इस संबंध में लगाए गए आरोपों का भी समर्थन किया है।

30. अभियुक्त ने अपने बयान में कहा है कि गवाहों ने उनके साथ उसकी दुश्मनी के कारण उसके खिलाफ गवाही दी है, लेकिन उसकी ओर से अ०सा०-2 आशीष मलिक और अ०सा०-5 मनोज कुमार की गवाही का उनकी जिरह में सामना नहीं किया गया है कि वे उसके प्रति शत्रुतापूर्ण थे या उन्होंने दुश्मनी के कारण उसके खिलाफ गवाही दी है। इसके अलावा, कथित दुश्मनी के समर्थन में, कोई मौखिक या दस्तावेजी सबूत पेश नहीं किया गया है, इसलिए, अ०सा०-1 आनंद सिंह, अ०सा०-2 आशीष मलिक और अ०सा०-5 मनोज कुमार के साथ आरोपी/अपीलकर्ता की घटना से पहले कोई दुश्मनी स्थापित नहीं हुई है।

31. अ०सा०-7, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, रेडियोलॉजिस्ट, ने अपनी जांच में बताया है कि 16.02.2004 को शवगृह में अपनी पोस्टिंग के दौरान, उन्होंने मृतक-गौरव के शव का शव परिक्षण किया था, जिसकी पहचान कांस्टेबल नरेंद्र कुमार और कांस्टेबल मनोज कुमार ने की थी। उन्होंने शव परीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श क-9 से संबंधित साक्ष्य भी विस्तार से प्रस्तुत किए हैं और इस संबंध में उन्होंने स्वीकार किया है कि उक्त रिपोर्ट प्रदर्श क-9 उनके लेखन और हस्ताक्षर में थी।

32. अ०सा०-7 डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने भी अपनी गवाही में यह गवाही दी है कि मृतक की मौत लगभग एक दिन पहले हुई थी, मृतक के शव की जांच के आधार पर, उन्होंने निष्कर्ष निकाला है कि आरोपी की मौत थ्रॉटलिंग (गला दबाना) के परिणामस्वरूप श्वासावरोध के कारण हुई थी।

33. अ०सा०-7 राजेंद्र प्रसाद के साक्ष्य अ०सा०-1 आनंद सिंह, अ०सा०-2 आशीष मलिक और अ०सा०-5 मनोज कुमार के साक्ष्य को विश्वसनीयता प्रदान करते हैं कि मृतक की मौत थ्रॉटलिंग (गला दबाना) के कारण हुई है। इन गवाहों ने अपने बयानों में स्पष्ट रूप से कहा है कि मृतक के शरीर पर चोट का कोई निशान नहीं पाया गया था और गौरव का अपीलकर्ता/आरोपी द्वारा गला घोंटा गया था। तथापि, अ०सा०-1, आनंद सिंह, अ०सा०-2 आशीष मलिक और अ०सा०-5 मनोज कुमार चश्मदीद गवाह नहीं हैं, लेकिन अ०सा०-1 आनंद सिंह ने कहा है कि आरोपी मृतक को अशोक के घर से चारा इकट्ठा करने के लिए खेत में ले गया था, जबकि अ०सा०-2 आशीष मलिक और अ०सा०-5 मनोज कुमार ने मृतक को 15.02.2004 को शाम लगभग 5 बजे अभियुक्त के साथ देखा था। आरोपी-अपीलकर्ता ने खेत से घर लौटने पर अशोक कुमार और अ०सा०-1 आनंद सिंह के समक्ष स्वीकार किया था कि उसने मृतक का गला घोंटकर हत्या की थी, इसके बाद, आरोपी द्वारा मृतक की हत्या की स्वीकारोक्ति पर अ०सा०-1 आनंद सिंह और अ०सा०-2 आशीष मलिक, लगभग 7.00 बजे मौके पर गए थे और उन्होंने गौरव का शव गन्ने में पड़ा देखा था अत: दिनांक 15-02-2004 को अंतिम बार देखे जाने का समय सायं 5.00 बजे था और उसी दिन मृतक का शव सूचनाकर्ता अ०सा०-1 आनंद सिंह और अ०सा०-2 आशीष मलिक द्वारा 15-02-2004 को लगभग 7.00 बजे देखा गया था, इसलिए अंतिम बार देखे गए साक्ष्य और देखे गए समय के बीच शव निकट है। और आरोपी ने धारा 313 के तहत अपने बयान में यह नहीं कहा है कि अपीलकर्ता/आरोपी ने मृतक को छोड़ दिया था या उससे अलग हो गया था, और न ही इस संबंध में अ०सा०-1, आनंद सिंह, अ०सा०-2 आशीष मलिक और अ०सा०-5 मनोज कुमार का सामना किया गया है।

34. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने लगातार कहा है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर एक आपराधिक मामले में, परिस्थितियों की श्रृंखला पूरी होनी चाहिए और

इस तरह की श्रृंखला के पूरा होने पर, केवल एक निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह केवल अभियुक्त है जिसने अपराध किया था।

35. सूरज सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2008 (11) एस.सी.आर. 286 में रिपोर्ट किए गए मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"साक्ष्य को इसकी अंतर्निहित स्थिरता और कहानी की अंतर्निहित संभावना के लिए परीक्षण किया जाना चाहिए; अन्य गवाहों के वर्णन के साथ निरंतरता को श्रेय देने योग्य माना जाता है; निर्विवाद तथ्यों के साथ संगति, गवाहों का "श्रेय"; गवाह बॉक्स में उनका प्रदर्शन; उनकी अवलोकन शक्ति आदि। फिर इस तरह के साक्ष्य का संभावित मूल्य संचयी मूल्यांकन के लिए तराजू में डालने के योग्य हो जाता है।

36. शरद बिरधी चंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य (1984) 4 एस.सी.सी. 116 के मामले में, पराग्रह 153 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पांच स्वर्ण सिद्धांत (पंचशील) निर्धारित किए हैं। पैरा 153 को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"इस फैसले का एक करीबी विश्लेषण यह दिखाएगा कि किसी आरोपी के खिलाफ मामले को पूरी तरह से स्थापित करने से पहले निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए:

(1) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए।

यहां यह ध्यान दिया जा सकता है कि इस न्यायालय ने संकेत दिया कि संबंधित परिस्थितियों को 'स्थापित किया जाना चाहिए' और 'नहीं' होना चाहिए। न केवल व्याकरणिक बल्कि 'साबित किया जा सकता है' और 'होना चाहिए या साबित किया जाना चाहिए' के बीच एक कानूनी अंतर है जैसा कि शिवाजी साहबराव बोबडे और अन्य के मामले में इस न्यायालय द्वारा आयोजित किया गया था।

"निश्चित रूप से, यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि अभियुक्त को अदालत को दोषी ठहराए जाने से पहले दोषी होना चाहिए और न केवल दोषी होना चाहिए और 'हो सकता है' और 'होना चाहिए' के बीच मानसिक दूरी लंबी है और कुछ निष्कर्षों से अस्पष्ट अनुमानों को विभाजित करती है।

(2) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात् उन्हें किसी अन्य परिकल्पना पर व्याख्या नहीं की जानी चाहिए, सिवाय इसके कि अभियुक्त ही दोषी है।

(3) परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए।

(4) उन्हें साबित होने वाली परिकल्पना को छोड़कर हर संभव परिकल्पना को बाहर करना चाहिए, और

(5) साक्ष्य की एक श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की निर्दोषता के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़ा जाए और यह दिखाना चाहिए कि सभी मानवीय संभावना में कार्य अभियुक्त द्वारा ही किया गया होगा।

37. परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर टिकी हुई मामले में, मकसद एक प्रासंगिक कारक है, लेकिन अन्यथा साबित होने पर आवश्यक नहीं है। हमने देखा है कि अ०सा०-1, आनंद सिंह, अ०सा०-2 आशीष मलिक और अ०सा०-5 मनोज कुमार के सबूत ठोस और मज़बूत हैं और आरोपी मृतक के उससे अलग होने के संबंध में अपने पक्ष में रत्ती भर सबूत पेश करने में विफल रहा है, इसलिए यह भी आरोपी के संज्ञान में था कि उसने मृतक को क्यों और किस कारण से मौत के घाट उतार दिया था। मृतक और उसके परिवार के सदस्यों के साथ आरोपी के बीच कोई पूर्व दुश्मनी नहीं थी, और आरोपी ऐसी कोई पूर्व दुश्मनी साबित करने में विफल रहा है।

38. अपीलकर्ता की ओर से न्याय मित्र की यह भी दलील थी कि आरोपी ने मृतक की हत्या कर दी होती तो वह गांव से अपने मालिक/नियोक्ता के घर नहीं लौटता। इस संबंध में अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि अपीलकर्ता/अभियुक्त घर लौट आया प्रतीत होता है ताकि वह अपनी निर्दोषता का बचाव कर सके।

39. हमारे विचार में केवल अभियुक्त के बाद के आचरण के आधार पर रिकॉर्ड पर गवाहों के भरोसेमंद सबूत पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है।

40. रिकॉर्ड पर साक्ष्य के मूल्यांकन पर यह स्पष्ट है कि 15.02.2004 को, लगभग 1.30 बजे अभियुक्त मृतक को घर से अपने साथ चारा इकट्ठा करने के लिए खेत में ले गया था जो गांव से एक किलोमीटर की दूरी पर स्थित है, लेकिन वह अशोक के घर अकेले लौटा था; जब वह मृतक के साथ खेत की ओर जा रहा था, तभी अ०सा०-2 आशीष मलिक और अ०सा०-5 मनोज कुमार ने उन्हें देख लिया था। इसके अतिरिक्त, अभियुक्त ने दिनांक 15-02-2004 को सायं लगभग 5.00 बजे अशोक और अन्य को मृतक की हत्या करने के बारे में स्वीकार किया था और जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, शव लगभग 7.00 बजे गन्ने के खेत में पाया गया। आरोपी ने इस बात से इनकार नहीं किया है कि वह मृतक को चारा लेने के लिए घर से खेत की ओर नहीं ले गया था और यह भी बचाव नहीं किया है कि अशोक के घर से गन्ने के खेत तक जाते समय मृतक ने उसकी कंपनी को अलग कर दिया था। ऐसी परिस्थितियों में उसके खिलाफ यह निष्कर्ष निकालना होगा कि उसने मृतक को गन्ने के खेत में मार डाला था।

41. यह सभी उचित संदेह से परे है कि अपराध कारित करने में अभियुक्त की भागीदारी साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष पर बोझ है। प्रस्तुत मामले में अभियोजन पक्ष ने परिस्थितियों की श्रृंखला को सफलतापूर्वक पूरा किया है। तथ्य यह है कि अ०सा०-2 आशीष मलिक, अ०सा०-5- मनोज कुमार द्वारा अंतिम बार देखे जाने के बाद पीड़ित के साथ क्या हुआ, आरोपी के संज्ञान में था, लेकिन उसने इस तथ्य के बारे में कोई भ्रम नहीं फैलाया जो विशेष रूप से उसके ज्ञान में था।

42. भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 इस प्रकार है:

106. तथ्य को सिद्ध करने का भार विशेषतः ज्ञान के भीतर भी- जब कोई तथ्य विशेषतः किसी व्यक्ति के ज्ञान में होता है तो उस तथ्य को सिद्ध करने का भार उस पर होता है।

व्याख्या:

43. अभियुक्त साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के तहत अनुमान खंडन करने में बुरी तरह से विफल रहा है.

44. इसलिए, पूर्वोक्त निर्णयों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों को लागू करते हुए और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता, अपराध की प्रकृति और जिस तरीके से इसे निष्पादित या प्रतिबद्ध किया गया था, उसे ध्यान में रखते हुए, हम पाते हैं कि धारा 302 भ०द०वि० के तहत अपीलकर्ता की दोषसिद्धि कानून में उचित और न्यायसंगत है और आक्षेपित निर्णय और आदेश अत्यधिक नहीं है और उस पर लगाए गए दंड के बिंदु पर मामले में हस्तक्षेप करने का कोई सवाल ही नहीं उठता है।

45. उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के मद्देनजर, आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 28.03.2011 को धारा 302 भ०द०वि० के तहत अपीलकर्ता की दोषसिद्धि और सजा की सीमा तक पुष्टि की जानी चाहिए और अपील उस सीमा तक खारिज किए जाने योग्य है। तदनुसार आदेश दिया गया।

46. परिणाम में, आपराधिक अपील को आंशिक रूप से उस सीमा तक अनुमति दी जाती है जो धारा 201 भ०द०वि० के तहत दोषसिद्धि से संबंधित है।

47. आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 28.03.2011, एतद्द्वारा धारा 302 भ०द०वि० के तहत अपीलकर्ता की दोषसिद्धि की सीमा तक पुष्टि की जाती है। अपीलकर्ता, जो जेल में है, विचारण न्यायालय द्वारा उसे दी गई सजा को पूरा करेगा।

47. इस आदेश की प्रति निचली अदालत के रिकॉर्ड के साथ संबंधित न्यायालय को तत्काल भेजी जाए।

48. इस आदेश की एक प्रति संबंधित जेल अधीक्षक के माध्यम से अपीलकर्ता को भी भेजी जाए।

49. श्री अभिनव जायसवाल, न्याय मित्र को, उनकी सहायता के लिए, राज्य सरकार द्वारा भुगतान किए जाने वाले 21,000 रुपये के शुल्क के हकदार हैं।

(2023) 1 ILRA 978
अपीलीय क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक:इलाहाबाद 22.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा,
माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद,

आपराधिक अपील संख्या 7478/2018

अजीत सिंह आरक्षी ...अपीलकर्ता (जेल में)
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य. ...विपक्षीगण

अधिवक्ता अपीलकर्ता:
श्री राजेश कुमार सिंह, श्री राजीव लोचन शुक्ला, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री तरुण कुमार श्रीवास्तव, श्री प्रभु त्रिपाठी

अधिवक्ता विपक्षीगण:
जी.ए., श्री पवन कुमार श्रीवास्तव, श्री आर.बी. सहाय, श्री संजय श्रीवास्तव, श्री शैलेन्द्र कुमार द्विवेदी

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 3 - यह ऐसा वाद नहीं है जहां आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा बलात्कार के अपराध को अंजाम देने के बारे में पीड़िता के बयानों में मामूली विसंगतियां हैं, बल्कि यह एक ऐसा मामला है जहां पीड़िता ने पहली बार अपने बयान के बाद एक नई कहानी विकसित की है जब धारा 164सीआरपीसी के तहत दर्ज किया गया था, यानी एक महीने या उससे अधिक समय के बाद आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा उसके साथ बलात्कार किए जाने के बारे में - मेडिकल रिपोर्ट अन्यथा पीड़िता के खिलाफ बलात्कार के कृत का समर्थन नहीं करती है क्योंकि डॉक्टर की राय थी कि उसका हाइमन बरकरार है और बाहरी चोट का कोई निशान नहीं पाया गया है - पीड़िता के संबंध में कोई एफएसएल रिपोर्ट या डीएनए रिपोर्ट नहीं है, इसलिए बलात्कार के अपराध का पता नहीं लगाया जा सका - वर्तमान मामले के तथ्यों में अभियोजन पक्ष की ओर से एकल गवाही यह स्वयं पीड़िता का है लेकिन सीआरपीसी की धारा 161और 164के तहत दर्ज पीड़िता के बयान

का गहन मूल्यांकन करने पर और नीचे अदालत के समक्ष दिए गए बयान से हम पाते हैं कि सीआरपीसी की धारा 161के तहत बयान दर्ज होने के बाद पीड़िता के बयानों में सुधार हुआ है। उसी दिन यानी घटना की तारीख और पीड़ित के बयान में इस तरह के विकास या सुधार से बड़ा सुधार होता है, जो पीडब्लू 1/पीड़ित की गवाही को अविश्वसनीय बनाता है- जहां पिछले बयान और नीचे की अदालत के समक्ष सबूत इतने असंगत हैं और एक-दूसरे के साथ असंगत होने के अलावा दोनों एक साथ मौजूद नहीं रह सकते, इसलिए, यह कहा जा सकता है कि पिछला बयान गवाह द्वारा अदालत के समक्ष दिए गए सबूतों से विरोधाभासी है।

यद्यपि अभियोक्ता की एकान्त गवाही पर अभियुक्त की दोषसिद्धि सुनिश्चित की जा सकती है, लेकिन जहां ऐसी गवाही में अभियोजन पक्ष के जड़ तक जाने वाले बड़े विरोधाभास और सुधार हैं और चिकित्सा और अन्य सबूतों द्वारा इसकी पुष्टि नहीं की जाती है, तो कोई निर्भरता नहीं है ऐसी गवाही पर रखा जा सकता है। (पैरा 24, 40, 41, 45, 46)

आपराधिक अपील स्वीकृत। (ई-3)

<u>केस कानून/निर्णयों पर निर्भरता व्यक्त:-</u>

1. शाम सिंह बनाम हरियाणा राज्य., 2018एससीसी ऑनलाइन एससी 1042
2. राज्य बनाम सरवनन, (2008) 17एससीसी 587
3. महेंद्र प्रताप सिंह बनाम यू.पी. राज्य (2009) 11एससीसी 334
4. सुनील कुमार शंभूदयाल गुप्ता और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (2010) 13एससीसी 657
5. डोला @ डोलागोबिंदा प्रधान और अन्य बनाम ओडिशा राज्य (2018) 8एससीसी 695

(माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद द्वारा दिया गया)

1. यह आपराधिक अपील विशेष सत्र न्यायाधीश-8, फतेहपुर द्वारा विशेष परीक्षण संख्या 110 वर्ष 2015 (राज्य बनाम अजीत सिंह आरक्षी) में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 12.11.2018 के खिलाफ निर्देशित है; जिसके तहत अभियुक्त-अपीलकर्ता को धारा 3(ii)(v)/3(i)(xii) एस.सी/एस.टी अधिनियम और धारा 5/6 पोक्सो अधिनियम सपठित धारा 376 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया गया है और परिणामस्वरूप पोक्सो अधिनियम की धारा 6 के तहत अपराध के लिए कठोर आजीवन कारावास के साथ 20,000/- रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई है और जुर्माने में चूक में, उसे 6 महीने के अतिरिक्त साधारण कारावास से गुजरना होगा; धारा 3(ii)(v) एस.सी/एस.टी अधिनियम के तहत अपराध के लिए कठोर आजीवन कारावास के साथ 20,000 रुपये का जुर्माना और चूक करने पर उसे 6 महीने का अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतना होगा। धारा 3(i)(xii) एस.सी/एस.टी अधिनियम के तहत अपराध के लिए 5 साल के सश्रम कारावास के साथ 5000 रुपये का जुर्माना और चूक करने पर, उसे दो महीने का अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतना होगा। सभी सजाएं समवर्ती रूप से चलेंगी।

2. अभियोजन मामले के अनुसार, 9 सितंबर, 2015 को एक लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-8) थाना मालवा, जिला फतेहपुर को पहले सूचनाकर्ता, कल्लू कोरी (अ०सा०-2) द्वारा दी गई थी, जिसमें कहा गया था कि 9 सितंबर, 2015 को सुबह लगभग 4:30 बजे, सूचनाकर्ता की लगभग 16 साल की बेटी शौच के लिए घर के पीछे गई थी, फिर थाना कल्याणपुर में तैनात आरक्षी अभियुक्त अजीत सिंह ने उसकी बेटी का मुंह बंद कर उसे खेत में खींच लिया और उसके साथ दुष्कर्म किया। जब गैगिंग (मुंह दबाकर आवाज न निकलने देना) कम हो गई, तो पीड़िता ने शोरगुल हल्ला मचाया। उसकी चीख सुनकर सूचनाकर्ता की पत्नी मौके पर पहुंची और आरोपी-अपीलकर्ता धान के खेत से होते हुए जी.टी रोड की ओर भाग गया। वहीं मालवा थाने के सामने सड़क के किनारे पहला सूचनाकर्ता/शिकायतकर्ता/अ०सा०-2 भी शौच कर रहा था और जब उसने आरोपी से पूछा तो वह भागने लगा और पहले सूचनाकर्ता/शिकायतकर्ता/अ०सा०-2 ने उसका पीछा किया। आरोपी-अपीलकर्ता भाग नहीं पा रहा था क्योंकि उसके पैर कीचड़ से सने हुए थे और पहले सूचनाकर्ता ने इत्ररौरा मोड़, जी.टी रोड पर आरोपी-अपीलकर्ता की गर्दन पकड़ रखी थी। हालांकि आरोपी-अपीलकर्ता अपनी टी-शर्ट और बनियान को खिसकाकर पहले सूचनाकर्ता/शिकायतकर्ता की पकड़ से बच निकला।

3. उपरोक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर 9 सितंबर, 2015 को सुबह 08.15 बजे प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श क-9) दर्ज की गई थी, जिसे धारा 376 भ०द०वि०, एस.सी/एस.टी एक्ट की धारा 3 (ii) (v)/3 (i) (xii) और धारा 3/4 पॉक्सो एक्ट के तहत केस अपराध संख्या-0235 वर्ष 2015 के रूप में दर्ज किया गया था। चिक प्राथमिकी आरक्षी -828 सत्य प्रकाश मिश्रा (अ०सा०-8) ने तैयार की है। उपरोक्त प्रथम सूचना दर्ज होने के बाद विवेचनाधिकारी यानी पुलिस उपाधीक्षक (अ०सा०-10) ने प्रथम सूचनाकर्ता(अ०सा०-2), और उसकी पत्नी के बयान धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए और पीड़िता के खुलासे पर उन्होंने नक्शा नज़री भी तैयार किया। इसके बाद अ०सा०-10 ने टी-शर्ट, काली लोअर पैंट, काला समीज और सफेद अंडरवियर अपने कब्जे में लिया, जो पीड़िता द्वारा पहने गए थे। इसके बाद

अ०सा०-10 ने आरक्षी वंदना द्विवेदी (अ०सा०-3) के साथ पीड़िता को मेडिकल जांच के लिए महिला जिला अस्पताल भेज दिया।

4. डॉ. रानी बाला शर्मा (अ०सा०-4) ने पीड़िता की जांच की और 09.09.15 को मेडिकल परीक्षण किया। अ०सा०-4 ने कहा है कि पीड़िता की बाहरी और आंतरिक जांच के बाद, उसे पीड़िता के शरीर पर कोई चोट नहीं मिली। हाइमन को बरकरार पाया गया और उसके अनुसार, यौन उत्पीड़न से संबंधित कोई राय नहीं दी जा सकती है। पीड़िता की सही उम्र का पता लगाने के लिए, उसे रेडियोलॉजिस्ट डॉ. मनु गोपाल (अ०सा०-5) के पास भेजा गया, जिन्होंने पीड़िता की उम्र 16-18 वर्ष बताई। मेडिकल बोर्ड के गठन के आधार पर पीड़िता को दिनांक 23..092015 को पुन जांच के लिए डॉ. रेखा रानी (अ०सा०-7) के पास भेजा गया, जहां उसे पीड़िता के शरीर पर कोई आंतरिक और बाहरी चोट नहीं मिली। अ०सा०-7 नेपीड़िता के शरीर पर पिंचिंग (चुटकी काटने) की कोई चोट नहीं पाई और पीड़िता की योनि पर कोई चोट या खून नहीं पाया गया। हाइमन बरकरार पाया गया। उनकी राय में फॉरेंसिक साइंस लेबोरेटरी की रिपोर्ट पर विचार करते हुए, शारीरिक हिंसा से इनकार नहीं किया जा सकता है। डॉ. विनय कुमार पांडेय, मुख्य चिकित्सा अधिकारी, फतेहपुर (अ०सा०-6), जो मुख्य चिकित्सा अधिकारी थे, ने कहा कि बोर्ड द्वारा प्रस्तुत मेडिकल रिपोर्ट के आधार पर पीड़िता की आयु 16 वर्ष पाई गई है।

5. इसके बाद जांच आगे बढ़ी और धारा 161 द०प्र०स० के तहत पीड़िता का बयान दर्ज किया गया और अध्याय-XII सी.पी.सी के तहत प्रदान की गई आवश्यक औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद, आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 376 भ०द०वि०, एस.सी/एस.टी अधिनियम की धारा 3 (ii) (v)/3 (i) (xii) और धारा 3/4 पॉक्सो अधिनियम के तहत संबंधित अदालत के समक्ष 7 नवंबर, 2015 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया, जिस पर संबंधित मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया और मामला सत्र न्यायालय में प्रतिबद्ध किया।

6. 18 फरवरी, 2016 को विशेष न्यायाधीश (पॉक्सो अधिनियम)/अपर सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक न्यायालय, फतेहपुर न्यायालय द्वारा निम्नलिखित आरोप तय किए गए:

"मैं आदिल आफताब अहमद विशेष न्यायाधीश लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम अपर सत्र न्यायाधीश फास्ट ट्रैक कोर्ट फतेहपुर आप अभियुक्त अजीत सिंह को निम्न आरोप से आरोपित करता हूं -

***प्रथम**: यहकि दिनांक 9.9.2015 को प्रातः 4:30 बजे स्थान बमुकाम वादी के घर के पीछे के खेत बहद ग्राम मालवा थाना मालवा जिला फतेहपुर में आप जो लोक सेवक हैं ने वादी मुकदमा वादी कल्लू कोरी की अवयस्क 16 वर्षीय पुत्री दिव्या देवी जो अनुसूचित जाति की है के साथ लैंगिक हमला/बलातसंग किया इस प्रकार अपने भारतीय दंड संहिता की धारा 376 सपठित धारा 3(2)(5)/3(1)(12) अनुसूचित जाति जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय अपराध कार्य किया है जो इस न्यायालय के प्रसंज्ञान में है।*

***द्वितीय:**यहकि उक्त दिनांक, समय व स्थान पर आप जो लोक सेवक पुलिस कर्मचारी हैं ने वादी मुकदमा वादी कल्लू कोरी की अवयस्क 16 वर्षीय पुत्री दिव्या देवी के साथ गुरुत्व प्रवेशक / लैंगिक हमला किया इस प्रकार अपने धारा 5/6 लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम 2012 के अंतर्गत दंडनीय अपराध कार्य किया जो इस न्यायालय के प्रसंज्ञान में हैं।*

मैं एतद्द्वारा निर्देश देता हूं कि उपरोक्त आरोपों में आपका विचरण इस न्यायालय द्वारा किया जाएगा।

7. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के खिलाफ लगाए गए आरोप को स्थापित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्यों पर भरोसा किया है, जो विधिवत साबित हुए और परिणामस्वरूप प्रदर्श के रूप में चिह्नित किए गए:

"लिखित रिपोर्ट दिनांक 9.9.2015 को प्रदर्श क-8 के रूप में चिह्नित किया गया है; दिनांक 9.9.2015 की प्राथमिकी को प्रदर्श क-9 के रूप में चिह्नित किया गया है; दिनांक 9.9.2015 के सारणी के साथ नक्शा नज़री को प्रदर्श क-13 के रूप में चिह्नित किया गया है; पीड़िता के बयान को प्रदर्श क-1 के रूप में चिह्नित किया गया है; चिकित्सा संबंधी जांच रिपोर्ट दिनांक 9.9.2015 को प्रदर्श क-2 के रूप में चिह्नित किया गया है; एक्स-रे रिपोर्ट दिनांक 16.09.2015 को प्रदर्श क-4 के रूप में चिह्नित किया गया है, एक्स-रे रिपोर्ट दिनांक 23.09.2015 को प्रदर्श क-3 के रूप में चिह्नित किया गया है, चिकित्सा संबंधी रिपोर्ट दिनांक 23.9.2015 को प्रदर्श क-7 के रूप में चिह्नित किया गया है, मेडिकल बोर्ड रिपोर्ट दिनांक 24.09.2015 को प्रदर्श क-6 के रूप में चिह्नित किया गया है और दिनांक 7.11.2015 के आरोप-पत्र (मूल) को प्रदर्श क-15 के रूप में चिह्नित किया गया है।

8. अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित गवाहों की मौखिक गवाही भी करवाई है: -

अ०सा०-1/पीड़िता, अर्थात् दिव्या देवी; अ०सा०-2/सूचनाकर्ता, कल्लू कोरी, अ०सा०-3, महिला आरक्षी अर्थात् वंदना द्विवेदी ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत पीड़िता का बयान दर्ज किया, जिसकी वीडियोग्राफी की गई है और उसने पीड़िता का मज़ीद बयान भी रिकॉर्ड किया है और उसे मेडिकल जांच के लिए अस्पताल भी ले गई है, अ०सा०-4, अर्थात् डॉ. रानी बाला शर्मा, जिसने पीड़िता की मेडिकल जांच की है; अ०सा०-5, अर्थात्, डॉ. मनु गोपाल, रेडियोलॉजिस्ट; अ०सा०-6, अर्थात्, डॉ विनय कुमार पांडेय, मुख्य चिकित्सा अधिकारी जिनके आदेश से मेडिकल बोर्ड का गठन किया गया था; अ०सा०-7, अर्थात्, डॉ. रेखा रानी, मेडिकल बोर्ड की सदस्य; अ०सा०-8,

अर्थात् सत्य प्रकाश मिश्रा, आरक्षी , जिन्होंने चिक प्राथमिकीअ०सा०-9 अर्थात् डॉ. रेखा मिश्रा, प्रभारी प्राचार्य, राजकीय कन्या इंटर कॉलेज, मालवा, फतेहपुर, जिन्होंने पीड़िता के जन्म की तारीख प्रमाणित की है और अ०सा०-10 वंदना सिंह, पुलिस उपाधीक्षक, विवेचनाधिकारी।

9. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य दर्ज करने के बाद, अभियुक्त-अपीलकर्ता को धारा 313 द०प्र०स० के तहत उसका सामना करने के लिए दोषी ठहराने वाले साक्ष्य रखे गए। धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज अपने बयान में, आरोपी अपीलकर्ता ने धारा 376 भ०द०वि०,धारा 3(ii)(v)/3(i)(xii) एस.सी/एस.टी अधिनियम और धारा 5/6 पॉक्सो अधिनियम और उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों के तहत अपराध के कमीशन में अपनी भागीदारी से इनकार किया। उक्त बयान में, आरोपी अपीलकर्ता ने विचारण न्यायालय के समक्ष विशेष रूप से कहा है कि चूंकि उसने हमेशा पहले सूचनाकर्ता/अ०सा०-2 को फटकार लगाई थी और इसीलिए उसे सबक सिखाने के लिए इस मामले में फंसाया गया है, और अन्यथा वह निर्दोष है।

10. रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री से यह प्रतीत होता है कि पीड़िता (अ०सा०-1) का बयान धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया था, जिसमें उसने आरोपी अपीलकर्ता द्वारा उस पर बलात्कार करने का आरोप नहीं लगाया था, लेकिन धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज बयान में, जो संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष दर्ज किया गया था, उसने आरोपी अपीलकर्ता द्वारा उस पर बलात्कार के अपराध के बारे में खुलासा किया।

11. विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए सबूतों पर भरोसा करने और अपने निष्कर्ष को दर्ज करने के बाद कि घटना सुबह 4:30 बजे के आसपास हुई थी और घटना के बाद, घटना की सुबह लगभग चौथाई से चार घंटे के भीतर एक त्वरित प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी, जैसा कि पहले सूचनाकर्ता/अ०सा०-2 और अ०सा०-8 के साक्ष्य से स्पष्ट है। अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा बलात्कार का तथ्य पीड़िता के साक्ष्य से निर्णायक रूप से साबित हुआ है और माना जाता है कि आरोपी-अपीलकर्ता घटना से पहले थाना-मालवां में काम कर रहा था। आरोपी-अपीलकर्ता मालवां क्षेत्र के लोगों को परिचित था। धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज आरोपी-अपीलकर्ता के बयान में उसके द्वारा कहा गया था कि वह प्रतिद्वंद्विता में फंसा हुआ था, लेकिन बचाव पक्ष द्वारा किसी प्रतिद्वंद्विता को नहीं समझाया गया था, ताकि पॉक्सो अधिनियम की धारा 29 के तहत अनुमान को खारिज नहीं किया जा सके। उपरोक्त सभी साक्ष्यों के अवलोकन के बाद, धारा 376 भ०द०वि० और पॉक्सो अधिनियम की धारा 6 के तहत दंडनीय अपराध आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ साबित हुआ है। उपरोक्त निष्कर्ष के आधार पर, विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि अभियोजन पक्ष अभियुक्त-अपीलकर्ता अजीत सिंह सिपाही के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के तहत दंडनीय अपराध सपठितएस.सी/एस.टी अधिनियम की धारा 3(ii)(v)/3(i) (xii) के और पॉक्सो अधिनियम की धारा 5/6 के, आरोप उचित संदेह से परे साबित करने में सफल रहा है। तदनुसार, अभियुक्त-अपीलकर्ता को एस.सी/एस.टी अधिनियम की धारा 3(ii)(v)/(i) (xii) सपठित भारतीय दंड संहिता की धारा 376 और पोक्सो अधिनियम की धारा 5/6 के तहत दोषी ठहराया गया और उसे ऊपर बताए अनुसार जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है।

12. अभियुक्त के अधिवक्ता श्री राजीव लोचन शुक्ला ने प्रस्तुत किया कि अभियोजन पक्ष के संस्करण के अनुसार, घटना 9.9.2015 को सुबह 4:30 बजे हुई थी, जबकि धारा 161 द०प्र०स० के तहत पीड़िता का बयान पुलिस द्वारा दर्ज किया गया है जिसमें उसने कहा है कि वह अपने घर के पीछे शौच करने गई थी और किसी ने उसे पीछे से पकड़ लिया और उसका मुंह दबा दिया। पीड़िता ने शोर मचाया तो उसके माता-पिता वहां आए। अंधेरा होने के कारण पीड़िता आरोपी को पहचान नहीं पा रही थी। उसने यह भी कहा है कि उसके साथ कोई गलत कार्य नहीं किया गया था। उसने आगे कहा है कि उसने उस व्यक्ति को नहीं देखा जिसने अंधेरे में उसका मुंह बंद कर दिया था।

13. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि चूंकि धारा 161 द०प्र०स० के तहत पीड़िता का बयान घटना के तुरंत बाद दर्ज किया गया था और अदालत में गवाह द्वारा प्रदर्शित और स्वीकार किया गया है, इसलिए इसे एक प्राकृतिक बयान माना जा सकता है।

14. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया है कि चिकित्सा परीक्षा में, जो 9.9.2015 को शाम 6:15 बजे आयोजित की गई थी, उसने उस व्यक्ति के नाम का खुलासा नहीं किया था जिसने उस पर कथित अपराध किया था। डॉक्टर ने कहा कि पीड़िता का हाइमन बरकरार था और यौन उत्पीड़न के बारे में कोई निश्चित राय नहीं दी जा सकती थी। पीड़िता की री-मेडिकल जांच करने वाले मेडिकल बोर्ड की रिपोर्ट में पीड़िता का हाइमन बरकरार पाया गया। यह परीक्षा 23.9.2015 पर 2.00 बजे आयोजित किया गया था। बोर्ड ने राय दी है कि बल प्रयोग के कोई संकेत नहीं हैं, हालांकि, अंतिम राय विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट की उपलब्धता लंबित है, लेकिन बोर्ड ने यह भी कहा है कि यौन हिंसा से इनकार नहीं किया जा सकता है।

15. अभियुक्त-अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि धारा 164 द०प्र०स० के तहत पीड़िता का बयान घटना के लंबे अंतराल के बाद दर्ज किया गया था और पीड़िता अपने घर में अपनी मां और पिता के साथ रह रही थी। धारा 164 द०प्र०स० के तहत बयान और पीड़िता द्वारा निचली अदालत के समक्ष दिया गया बयान पीड़िता के माता-पिता के दबाव में था। पीड़िता के उपरोक्त बयानों

में भौतिक सुधार हुआ है। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि जब आरोपी-अपीलकर्ता कुछ समय पहले थाना मालवा में तैनात था, तो उसने हमेशा पहले सूचनाकर्ता/अ०सा०-2 को फटकार लगाई और इससे नाराज होकर सूचनाकर्ता/अ०सा०-2 ने उसे इस फर्जी और तुच्छ मामले में फंसाया है। आरोपी-अपीलकर्ता निर्दोष है और उसने पीड़िता के खिलाफ कोई अपराध नहीं किया है।

16. यह भी तर्क दिया जाता है कि कोई भी विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट और डी.एन.ए परीक्षण रिपोर्ट रिकॉर्ड पर नहीं है। जिस स्थान पर आरोपी-अपीलार्थी को सूचनाकर्ता/अ०सा०-2 द्वारा पकड़ा गया था, उसे भी नक्शा नज़री में नहीं दिखाया गया है। जिस टॉर्च से अभियुक्त-अपीलकर्ता को पीड़िता ने पहचाना था, उसे बरामद नहीं किया गया है और न विचारण न्यायालय के समक्ष पेश किया गया है ताकि इसे साबित किया जा सके। मेडिकल जांच रिपोर्ट के अनुसार, अभियोजन पक्ष द्वारा पीड़िता पर बलात्कार का कोई अपराध नहीं किया गया है, जैसा कि अभियोजन पक्ष ने आरोप लगाया है। पीड़िता द्वारा बाद में रुख बदलने से रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री से कोई पुष्टि नहीं मिलती है और इसलिए, विचारण न्यायालय ने अ०सा०-1 के रूप में पीड़िता के बयान पर भरोसा करने में घोर गलती की है, जबकि उसके बयान की अधिक जांच की जानी चाहिए थी। यह भी तर्क दिया जाता है कि ऐसी परिस्थितियों में धारा 3(ii)(v)/3(i)(xii) एस.सी/एस.टी अधिनियम और धारा 5/6 पोक्सो अधिनियम सपठित धारा 376 भ०द०वि० के तहत अभियुक्त-अपीलकर्ता की दोषसिद्धि को कानूनी रूप से उपरोक्त की संचयी शक्ति पर बरकरार नहीं रखा जा सकता है और इसे रद्द किया जाना चाहिए।

17. दूसरी ओर शासकीय अधिवक्ता ने अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन किया है और प्रस्तुत किया है कि पीड़िता का बयान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में विश्वसनीय है और चूंकि उसने अभियुक्त अपीलकर्ता द्वारा बलात्कार के अपराध को अंजाम देने के बारे में स्पष्ट रूप से खुलासा किया है, इसलिए, विचारण न्यायालय ने आरोपी-अपीलकर्ता को धारा 3(ii)(v)/(i)(xii) अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम और धारा 5/6 पोक्सो अधिनियम की सजा ठहराने में कोई गलती नहीं की है।

18. उपरोक्त तथ्यों के संदर्भ में वर्तमान अपील सुनवाई के लिए हमारे समक्ष आई है। 19. हमने पक्षों के वकीलों द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है और वर्तमान अपील के रिकॉर्ड विशेष रूप से निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश और विचारण न्यायालय के समक्ष पेश किए गए सबूतों का अध्ययन किया है।

20. इस अपील में संबोधित और निर्धारित किया जाने वाला एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या विचारण न्यायालय द्वारा अपराध का आरोप लगाया गया है और दी गई सजा कानूनी और पुख्ता है और इसमें कोई दुर्बलता और विकृति नहीं है।

21. ऊपर जो तथ्य देखे गए हैं, वे स्पष्ट रूप से यह दर्शाते हैं कि प्रथम सूचनाकर्ता/अ०सा०-2 की लिखित रिपोर्ट पर 9.9.2015 को एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी, जिसमें उसने आरोप लगाया है कि सुबह पीड़िता अपने स्कूल जाने के लिए अपने घर के पीछे आराम करने के लिए गई थी और जब वह शौच कर रही थी, आरोपी अपीलकर्ता ने उसे पीछे से पकड़ लिया और उसका मुंह दबाया और घसीटते हुए खेत में ले गया और उसके साथ दुष्कर्म किया। घटना के दुर्भाग्यपूर्ण दिन, धारा 161 द०प्र०स० के तहत उसका बयान पुलिस आरक्षी वंदना द्विवेदी (अ०सा०-3) द्वारा विवेचनाधिकारी यानी अ०सा०-10 के निर्देश पर दर्ज किया गया है, जिसमें पीड़िता ने कहा है कि दुर्भाग्यपूर्ण दिन वह अपने घर के पीछे शौच करने के लिए गई थी और किसी ने उसे पीछे से पकड़ लिया और उसका मुंह बंद कर दिया। आगे यह आरोप लगाया गया है कि जब पीड़िता ने शोर मचाया, तो उसके माता-पिता यानी सूचनाकर्ता/अ०सा०-2 और उसकी पत्नी (पीड़िता की मां) मौके पर आ गए। पीड़िता ने अंधेरे के कारण उस अनजान व्यक्ति का चेहरा नहीं देखा और अंधेरा होने के कारण वह आरोपी को पहचान नहीं पाई। उसके बाद उसके पिता ने कहा कि वह सिपाही अजीत सिंह था। उसने आगे स्वीकार किया है कि उक्त बयान उसके द्वारा बिना किसी दबाव के दिया गया है।

22. लंबे अंतराल के बाद, पीड़िता का बयान धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया था, जिसे प्रदर्श ख-2 के रूप में प्रदर्शित किया गया है, जिसमें उसने सुधार किया है और कहा है कि जब वह अपने घर के पीछे शौच करने गई, तो उसके पास एक टॉर्च थी और उसी के प्रकाश में उसने आरोपी-अपीलकर्ता अजीत सिंह सिपाही को पहचान लिया, जिसने उसे पीछे से पकड़कर उसका मुंह दबाया और घसीटते हुए धान के खेत में ले गया और उसके साथ दुष्कर्म किया। किसी न किसी तरह जब पीड़िता बोल पाती तो उसने शोर मचा दिया जिस पर उसकी मां वहां आ गई और उन्हें देखकर आरोपी पीड़िता को छोड़कर भाग गया। जब आरोपी भाग रहा था तो पीड़िता के पिता भी वहां आ गए और उसने उसका पीछा करने की कोशिश की लेकिन वह उसे पकड़ नहीं पाया।

23. विचारण न्यायालय के समक्ष अ०सा०-1 के रूप में पीड़िता से पूछताछ की गई है और उसने अपनी जिरह में स्वीकार किया है कि धारा 164 द०प्र०स० के तहत उसका बयान कथित घटना की तारीख से एक महीने बाद दर्ज किया गया था और इस अवधि के दौरान वह अपने माता-पिता के साथ रह रही थी। उसने यह भी कहा है कि धारा 164 द०प्र०स० के तहत बयान में उसने संबंधित मजिस्ट्रेट के सामने यह खुलासा नहीं किया है कि आरोपी ने अपना लिंग उसकी योनि में डाला था। उसने आगे कहा है कि

उसके पिता (सूचनाकर्ता/अ०सा०-2) ने आरोपी अजीत सिंह सिपाही को फोन किया लेकिन वह नहीं रुका और भाग गया। पीड़िता ने खुद स्वीकार किया है कि जब धारा 161 द०प्र०स० के तहत उसका बयान दर्ज किया गया था, तो उसी की वीडियोग्राफी भी की गई थी। पीड़िता ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में खुलासा की गई सामग्री की पुष्टि की है।

24. धारा 161 द०प्र०स० और धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज पीड़िता के बयान और निचली अदालत के समक्ष दिए गए बयान के समग्र मूल्यांकन से, हम पाते हैं कि यह ऐसा मामला नहीं है जहां अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा बलात्कार के अपराध को अंजाम देने के बारे में पीड़िता के बयानों में मामूली विसंगतियां हैं, लेकिन यह एक ऐसा मामला है जहां पीड़िता ने पहली बार एक नई कहानी विकसित की है जब उसका बयान धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया था, यानी आरोपी अपीलकर्ता द्वारा उसके साथ बलात्कार करने के बारे में एक महीने या उससे अधिक समय के बाद। घटना की तारीख पर धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज बयान में, उसने आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा उस पर बलात्कार के अपराध का आरोप नहीं लगाया, जिसका अर्थ है कि कुछ अंतराल के बाद, उसने आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा उसके खिलाफ बलात्कार के बारे में कहानी विकसित की, जो भरोसेमंद नहीं है और संदेह पैदा करता है। मेडिकल रिपोर्ट अन्यथा पीड़िता के खिलाफ बलात्कार के कमीशन का समर्थन नहीं करती है क्योंकि डॉक्टर ने कहा कि उसका हाइमन बरकरार था और बाहरी चोट का कोई संकेत नहीं मिला है। डॉक्टर द्वारा यौन उत्पीड़न के बारे में कोई निश्चित राय नहीं दी गई है। जिस टॉर्च की रोशनी में अभियुक्त-अपीलकर्ता को पीड़िता ने पहचाना था, उसे बरामद नहीं किया गया है और निचली अदालत में पेश किया गया है। यह भी उल्लेखनीय है कि पीड़िता (अ०सा०-1) ने अपनी जिरह में कहा है कि घटना के समय धान के खेत में, जहां अपराध का आरोप लगाया गया था, पानी और कीचड़ था। पीड़िता ने कहा है कि वह जिस जगह आराम करने गई थी, वह सूखी थी, वहां कीचड़ और पानी नहीं था। यह कल्पना करना असंभव है कि जब सुबह लगभग 4:30 बजे अंधेरा हो गया था, तो आरोपी-अपीलकर्ता को गोपनीयता बनाए रखने और उसे धान के खेत में खींचने की कोई आवश्यकता भी थी जहां पीड़िता पर बलात्कार का अपराध करने के लिए पानी और कीचड़ था। यह दावा अभियोजन पक्ष की कहानी पर संदेह पैदा करता है।

25. अभियोजन पक्ष द्वारा यह भी आरोप लगाया गया है कि आरोपी-अपीलकर्ता ने सड़क पर सूचनाकर्ता को पकड़ लिया लेकिन यह स्थान विवेचनाधिकारी यानी अ०सा०-10 द्वारा नक्शा नज़री में नहीं दिखाया गया है, जो अभियोजन पक्ष के संस्करण में भी संदेह पैदा करता है। कीचड़ से सने कपड़े और आरोपियों की चप्पलें जो कथित तौर पर उस जगह से बरामद की गई हैं जहां आरोपी-अपीलकर्ता को सूचनाकर्ता ने पकड़ा था, उन्हें भी निचली अदालत के समक्ष पेश नहीं किया गया और साबित नहीं किया गया है।

26. अभियोजन पक्ष द्वारा अ०सा०-2 कल्लू कोरी (सूचनाकर्ता) की भी जांच की गई है। उसने अपनी जिरह में स्वीकार किया है कि यह सच है कि उसने आरोपी-अपीलकर्ता अजीत सिंह सिपाही को अपनी बेटी (पीड़िता) के साथ बलात्कार करते नहीं देखा था। इसलिए, वह चश्मदीद गवाह नहीं है। उनका बयान सीधा-सादा सुनी-सुनाई बात है। उसने जिरह में स्वीकार किया है कि उसने पीड़िता के कपड़े पुलिस को नहीं सौंपे हैं। अभियोजन पक्ष द्वारा कपड़ों के संबंध में कोई विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट भी प्रस्तुत नहीं की गई है।

27. अ०सा०-3 महिला आरक्षी वंदना द्विवेदी से पूछताछ की गई है। उसने अपनी जिरह में कहा है कि प्रदर्श ख-1 (धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज पीड़िता का बयान) पीड़िता के बोलने पर उसके द्वारा दर्ज किया गया है, जिसकी वीडियोग्राफी की जा रही थी। पीड़िता को उक्त बयान पढ़कर भी सुनाया गया और उसने उस पर हस्ताक्षर भी किए हैं। धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज पीड़िता के बयान को प्रदर्शित किया गया है और उसने इसे सत्यापित किया है।

28. उसने आगे कहा है कि खुली अदालत में जब सी.जे.एम ने पीड़िता से बलात्कार के संबंध में पूछा, तो उसने कहा है कि उस पर बलात्कार का कोई अपराध नहीं किया गया था और उसने किसी के नाम का खुलासा नहीं किया था। धारा 164 द०प्र०स० के तहत पीड़िता का बयान उस तारीख को दर्ज नहीं किया गया था। कुछ अंतराल के बाद पीड़िता को फिर से धारा 164 द०प्र०स० के तहत अपना बयान दर्ज करने के लिए बुलाया गया, जिसमें उसने आरोप लगाया कि आरोपी-अपीलकर्ता ने उसके साथ बलात्कार का अपराध किया है। यह स्पष्ट रूप से अभियोजन पक्ष की कहानी में एक सुधार है।

29. अ०सा०-4 डॉ. रानी बाला शर्मा वह डॉक्टर हैं जिन्होंने पीड़िता की चोटों की जांच की है। उसने पाया कि पीड़िता का हाइमन बरकरार था और पीड़िता के शरीर पर बाहरी या आंतरिक रूप से कोई चोट नहीं थी। पीड़िता के शरीर के प्राइवेट पार्ट पर भी कोई चोट नहीं थी। डॉक्टर ने कहा कि पीड़िता के साथ बलात्कार का अपराध नहीं किया गया था। कोई पूरक रिपोर्ट तैयार नहीं की गई और न ही पीड़िता का कोई कपड़ा कब्जे में लिया गया।

30. अ०सा०-5 डॉ. मनु गोपाल, रेडियोलॉजिस्ट, जिला अस्पताल, फतेहपुर की भी जांच की गई और उन्होंने राय दी कि घटना के समय पीड़िता की उम्र 16 से 18 वर्ष के बीच थी। हालांकि जांच में अ०सा०-5 ने बताया है कि 23 सितंबर, 2015 को पीड़िता का एक्स-रे उनके द्वारा किया गया है और उन्होंने यह भी कहा है कि 23 सितंबर, 2015

से पहले यानी 10 सितंबर, 2015 को उन्होंने पीड़िता का एक्स-रे कराया, लेकिन जिरह में उन्होंने कहा कि उन्होंने 23 सितंबर 2015 को ही पीड़िता का एक्स-रे किया, और 10 सितंबर, 2015 को नहीं किया।

31. अ०सा०-6 डॉ. विनय कुमार पांडेय, जो मेडिकल बोर्ड के अध्यक्ष थे, ने कहा कि घटना के समय पीड़िता की उम्र लगभग 16 वर्ष थी। यह 17 से 18 साल हो सकती है। उन्होंने आरोप लगाया है कि इस बोर्ड का गठन जिलाधिकारी के दिनांक 15.9.2015 के आदेश द्वारा किया गया था।

32. अ०सा०-7 डॉ. रेखा रानी भी बोर्ड की सदस्य थीं। उन्होंने कहा कि मेडिकल जांच के समय पीड़िता का हाइमन बरकरार था। उन्होंने आगे कहा कि संभोग का कोई संकेत नहीं था, हालांकि, अंतिम राय सुरक्षित रखी गई थी, विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट की उपलब्धता लंबित थी। अपील के चरण में उपलब्ध मूल रिकार्डों और अन्य दस्तावेजों के अवलोकन से पीड़िता के संबंध में कोई विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट या डी.एन.ए रिपोर्ट नहीं है, इसलिए बलात्कार के अपराध का पता नहीं लगाया जा सका। अ०सा०-7 ने यह भी कहा है कि पीड़िता के शरीर पर कोई चोट नहीं थी और पीड़िता के शरीर के निजी हिस्सों पर कोई चोट और खून नहीं था।

33. अ०सा०-8 आरक्षी सत्य प्रकाश मिश्रा से भी अभियोजन पक्ष द्वारा पूछताछ की गई है। उन्होंने अपनी जिरह में कहा है कि सूचनाकर्ता कल्लू कोरी ने उन्हें आरोपी या पीड़िता के कोई भी कपड़े उपलब्ध नहीं कराए हैं जो प्राथमिकी के लेखन के दौरान घटना के समय उनके द्वारा पहने गए थे।

34. अ०सा०-9 राजकीय कन्या इंटर महाविद्यालय की कार्यवाहक प्रधानाचार्य डॉ. रेखा मिश्रा से भी परीक्षा ली गई है। उसने पीड़िता की जन्म तिथि साबित की है, जो 6.5.2000 है।

35 अ०सा०-10 बंदना सिंह, पुलिस उपाधीक्षक, जो मामले की विवेचनाधिकारीथीं,से भी पूछताछ की गई है। उन्होंने कहा कि उन्होंने पीड़िता के कपड़े ले लिए लेकिन पीड़िता या आरोपी के कपड़ों के संबंध में रिकॉर्ड पर कोई विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट नहीं है। उन्होंने अपनी जिरह में यह भी पुष्टि की है कि पीड़िता की दिनांक 9.9.2015 की मेडिकल रिपोर्ट में बलात्कार के अपराध के संबंध में आरोपी सिपाही अजीत सिंह का नाम नहीं बताया गया। पीड़िता ने किसी ऐसे व्यक्ति के नाम का भी खुलासा नहीं किया है जिसने पीछे से मुंह दबा रखा है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि दोनों मेडिकल रिपोर्टों में पीड़िता पर यौन हमले के बारे में कोई निश्चित राय नहीं है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि उन्होंने कपड़ों का फ़र्द बरामदगी तैयार नहीं किया जो उन्होंने पीड़िता से लिया था।

36, इसके अलावा अभियुक्त अजीत सिंह सिपाही के बयान को अदालत द्वारा धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया है जिसमें उसने कहा कि वह निर्दोष है और उसने पीड़िता पर कोई अपराध नहीं किया है। उन्होंने शिकायतकर्ता को कभी फटकार लगाई थी और इसीलिए उन्हें सबक सिखाने के लिए शिकायतकर्ता द्वारा वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। आरोपी-अपीलकर्ता के इस बयान को रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों के अवलोकन से समर्थन मिलता है। शिकायतकर्ता कल्लू कोरी एक परेशान करने वाला मुकदमेबाज है।

37. इस तथ्य को सूचनाकर्ता ने स्वयं न्यायालय के समक्ष अपने कथन में स्वीकार किया है कि उसके विरूद्ध धारा 302 भ०द०वि० के अन्तर्गत प्रकरण अपराध क्रमांक 447 वर्ष 2013 दर्ज है तथा उसके विरूद्ध न्यायालय में चार अन्य वाद लंबित हैं तथा उसने यह भी स्वीकार किया है कि उसने महिला आयोग के समक्ष धीरेन्द्र कुमार झा नामक व्यक्ति के विरुद्ध परिवाद दायर किया है।

38. विभिन्न मामलों में अ०सा०-2 के निहितार्थ के संबंध में स्वीकारोक्ति के अवलोकन से, अभियुक्त के झूठे फंसाए जाने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है। आरोपी-अपीलकर्ता अन्यथा हाल तक थाना में तैनात था, जहां अ०सा०-2 की दुकान थी और वो रहता था।

39. 2018 एस.सी.सी ऑनलाइन एस.सी1042 में रिपोर्ट किए गए शाम सिंह बनाम हरियाणा राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को निम्नानुसार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है: "एक अभियुक्त को अभियोक्त्रि की एकमात्र गवाही के आधार पर धारा 376 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया जा सकता है, यदि ऐसी गवाही विश्वास के योग्य है और आत्मविश्वास को प्रेरित करती है और स्टर्लिंग गुणवत्ता की है तो अन्य सबूतों से पुष्टि की आवश्यकता नहीं है। लेकिन जहां अभियोक्त्रि का बयान भौतिक असंगति, विरोधाभास से ग्रस्त है और विश्वास को प्रेरित नहीं करता है, तो कुछ अन्य सामग्री जांच के दौरान एकत्र किए गए अन्य सबूतों से भी कम हो सकती है।

40. वर्तमान मामले के तथ्यों में अभियोजन पक्ष की ओर से एकमात्र गवाही स्वयं पीड़िता की है, लेकिन धारा 161 द०प्र०स० और धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज पीड़िता के बयान और निचली अदालत के समक्ष दिए गए बयान के गहन मूल्यांकन पर, हम पाते हैं कि उसी दिन यानी घटना की तारीख को धारा 161 द०प्र०स० के तहत उसका बयान दर्ज किए जाने के बाद पीड़िता के बयानों में सुधार हुआ है और पीड़िता के बयान में इस तरह का विकास या सुधार बड़े सुधार के बराबर है, जो अ०सा०-1/पीड़िता की गवाही को अविश्वसनीय बनाता है।

41. यह तय कानून है कि जहां पिछले बयान और निचली अदालत के समक्ष सबूत तो असंगत और दोनों की तुलना में एक दूसरे के साथ असंगत हैं, दोनों सह-अस्तित्व में नहीं हो सकते हैं, इसलिए, यह पिछले बयान अदालत के समक्ष

उसके द्वारा दिए गए सबूत के साथ, कहा जा सकता है कि गवाह का बयान विरोधाभासी है।

42. राज्य के मामले में बनाम सरवनन (2008) 17 एस.सी.सी587 में रिपोर्ट किया गया सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार राय दी है:

"चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य में विसंगतियां, यदि मामूली प्रकृति में नहीं पाई जाती हैं, तो उनके सबूतों पर अविश्वास करने और उन्हें बदनाम करने का आधार हो सकती है। ऐसी परिस्थितियों में, गवाह विश्वास को प्रेरित नहीं कर सकते हैं और यदि उनके साक्ष्य अन्य सबूतों के साथ या पहले से दर्ज बयान के साथ असंगत और विरोधाभास में पाए जाते हैं, तो ऐसे मामले में यह नहीं माना जा सकता है कि अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को उचित संदेह से परे साबित कर दिया।

43. उपरोक्त निर्णय महेंद्र प्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2009) 11 एस.सी.सी334 में रिपोर्ट के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पालन किया गया है।

44. फिर से सुनील कुमार शंभूदयाल गुप्ता और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या 30 से 32 में (2010) 13 एस.सी.सी657 में रिपोर्ट किया है:

"30. सबूतों का मूल्यांकन करते समय, अदालत को यह ध्यान रखना होगा कि क्या विरोधाभास/चूक इतने परिमाण के थे कि वे मुकदमे को गंभीर रूप से प्रभावित कर सकते हैं। अभियोजन पक्ष के मामले के मूल को प्रभावित किए बिना मामूली विरोधाभासों, विसंगतियों, अलंकरणों या तुच्छ मामलों में सुधार को सबूतों को पूरी तरह से खारिज करने का आधार नहीं बनाया जाना चाहिए। विचारण न्यायालय को, पूरे सबूतों को देखने के बाद, गवाहों की विश्वसनीयता के बारे में एक राय बनानी चाहिए और सामान्य रूप से अपीलीय न्यायालय उचित कारणों के बिना फिर से समीक्षा करने में न्यायसंगत नहीं होगा।

31. जहां चूक विरोधाभास का कारण बनती है, एक गवाह और अन्य गवाह की सत्यता के बारे में, सबूत स्वीकार्य बनाने के क्रम में अदालत के समक्ष एक गंभीर संदेह भी पैदा करती है; इस तरह के सबूत पर भरोसा करने के लिए सुरक्षित नहीं हो सकता.

32. चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य में विसंगतियां, यदि मामूली प्रकृति में नहीं पाई जाती हैं, तो उनके साक्ष्य पर अविश्वास करने और उन्हें बदनाम करने का आधार हो सकती हैं। ऐसी परिस्थितियों में यदि गवाह के सबूत अन्य सबूतों के साथ या पहले बयान के साथ विरोधाभास में पाए जाते हैं, तो गवाह विश्वास को प्रेरित नहीं कर सकते हैं।

45. पूर्वोक्त से, हमारा विचार है कि पीड़िता का साक्ष्य वर्तमान मामले के तथ्यों में विश्वसनीय नहीं है।

46. चिकित्सा परीक्षण रिपोर्ट और डॉक्टरों यानी अ०सा०-4, अ०सा०-5, अ०सा०-6 और अ०सा०-7 के बयानों से यह स्पष्ट है कि चिकित्सा साक्ष्य पीड़िता पर बलात्कार के अभियोजन के मामले का समर्थन नहीं करते हैं।

47. पीड़िता के बयान में विरोधाभासों के मुद्दे के साथ-साथ यह मुद्दा कि चिकित्सा साक्ष्य अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं करता है, डोला @ डोलागोबिंदा प्रधान और अन्य बनाम ओडिशा राज्य (2018) 8 एस.सी.सी695 में रिपोर्ट किए गए डोला @ डोलागोबिंदा प्रधान और अन्य बनाम ओडिशा राज्य के मामले में पैराग्राफ 15-17 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अच्छी तरह से चर्चा किये गए हैं।

"36. हमारी सुविचारित राय में, विचारण न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ताओं को उनके उचित परिप्रेक्ष्य में उपरोक्त कारकों पर विचार किए बिना दोषी ठहराया है। पीड़िता की गवाही विसंगतियों से भरी है और इसे किसी भी अन्य सबूत से समर्थन नहीं मिलता है। इसके अलावा, सूचनाकर्ता/पीड़िता के साक्ष्य विभिन्न स्थानों पर असंगत और आत्म-विनाशकारी हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि मेडिकल रिकॉर्ड और डॉक्टर के सबूत यह निर्दिष्ट नहीं करते हैं कि जबरन संभोग के कोई संकेत थे या नहीं। ऐसा लगता है कि अपीलकर्ताओं से बदला लेने के लिए झूठे आरोपों के साथ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी, जिन्होंने सूचनाकर्ता और उसके पति द्वारा वन उपज की चोरी का खुलासा किया था। उच्च न्यायालय ने हमारी सुविचारित राय में, हमारे द्वारा बताई गई विभिन्न विसंगतियों को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया है कि पीड़िता अदालत के समक्ष झूठी गवाही नहीं दे सकती थी। उच्च न्यायालय ने मान्यताओं और अनुमानों के आधार पर कार्यवाही की है, क्योंकि ऐसी धारणाओं की किसी विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा पुष्टि नहीं की जाती है। चिकित्सा साक्ष्य बलात्कार के अपराध से संबंधित अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं करते हैं। (महत्व दिया)

48. उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, हम पाते हैं कि विचारण न्यायालय अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त-अपीलकर्ता के कमीशन को पाने में न्यायसंगत नहीं था। निचली अदालत का निष्कर्ष कि अभियुक्त-अपीलकर्ता का अपराध उचित संदेह से परे साबित हो गया है, इस प्रकार अस्थिर है। हम मानते हैं कि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे आरोपी-अपीलकर्ता के अपराध को साबित करने में विफल रहा है।

49. नतीजतन, ऊपर आयोजित विचार-विमर्श के मद्देनजर, यह अपील सफल होती है और अनुमति दी जाती है।

50. विशेष विचारण संख्या 110 वर्ष 2015 (राज्य बनाम अजीत सिंह आरक्षी) में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश-आठ, फतेहपुर द्वारा पारित दिनांक 12.11.2018 को आरोपी अजीत सिंह सिपाही के खिलाफ निर्णय और दोषसिद्धि का आदेश एतद्द्वारा रद्द किया जाता है।

51. अभियुक्त अपीलकर्ता- अजीत सिंह सिपाही / आरक्षी स्पष्ट रूप से संदेह के लाभ का हकदार है। वह 5 नवंबर,

2018 से जेल में है और पहले ही चार साल और दो महीने की कैद काट चुका है, वह धारा 437-ए द०प्र०स० के अनुपालन के अधीन तुरंत रिहा होने का हकदार है, जब तक कि वह किसी अन्य मामले में वांछित न हो।

52. इस निर्णय की एक प्रति मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, फतेहपुर को भेजी जाए, जो इस निर्णय के संदर्भ में संबंधित जेल अधीक्षक को प्रेषित करेंगे।

(2023) 1 ILRA 990
मूल क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: लखनऊ 16.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मो. फ़ैज़ आलम खान

आवेदन अंतर्गत धारा 378 संख्या 262/2017
और
आवेदन अंतर्गत धारा 378 संख्या 261 /2017

श्रीमती कल्पना गुप्ता ...आवेदक
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक:
रजेश कुमार श्रीवास्तव, प्रवीण सिंह

अधिवक्ता विपक्षीगण:
सरकारी अधिवक्ता, भास्कर प्रसाद पांडे, मनोज साहू, संदीप श्रीवास्तव

(ए) आपराधिक कानून – आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 244, 246, 313, 377, 378, 378(1)(ए), 378(1)(बी), 378(2)(बी), 378(4) , 386, 397, 398, 399 और 401(5), भारतीय दंड संहिता, 1860 – धारा 120बी, 405 और 406: - सजा में वृद्धि के लिए अपील – अपील के लिए विशेष अनुमति के लिए आवेदन - आपराधिक विश्वास उल्लंघन की शिकायत अपील की स्थिरता/ आवेदन क्या शिकायतकर्ता सजा बढ़ाने के लिए अपील/विशेष अनुमति दायर कर सकता है - न्यायालय ने माना कि, वादी को विचारणीय न्यायालय द्वारा पारित सजा की अपर्याप्तता को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं है - वह उपयुक्त अदालत के समक्ष आपराधिक पुनरीक्षण दाखिल करके चुनौती दे सकता है – विशेष छुट्टी देने के लिए तत्काल अपील/आवेदन सुनवाई योग्य नहीं है - तदनुसार खारिज कर दिया गया है। (पैरा - 27, 31, 35, 36)

(बी) आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 244, 246, 313, 377, 378, 378(1)(ए), 378(1)(बी), 378(2)(बी), 378(4)), 386, 397, 398, 399 और 401 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 120बी, 405 और 406 - दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील करने के लिए विशेष अनुमति के लिए आवेदन - आपराधिक विश्वास उल्लंघन की शिकायत –साक्ष्य की सराहना – त्वरित आवेदन के लंबित रहने के दौरान प्रतिवादी संख्या 3 और 4 की मृत्यु हो गई, इसलिए उनके खिलाफ कार्यवाही समाप्त कर दी गई है, मामले की पृष्ठभूमि में विचारणीय न्यायालय के निर्णय का अध्ययन करने के साथ-साथ इस मामले में कानूनी स्थिति को बनाए रखते हुए, इस अदालत का विचार है कि आरोपी व्यक्ति(यों) के अपराध को उचित संदेह से परे साबित करने का भार हमेशा अभियोजन/शिकायतकर्ता पर होता है और यदि साक्ष्य की उचित सराहना पर दो दृष्टिकोण संभव प्रतीत होते हैं, तो वह दृष्टिकोण जो आरोपी व्यक्तियों के लिए अनुकूल है अपनाया जाना चाहिए - तदनुसार, निचली अदालत के फैसले में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है - परिणामस्वरूप, अपील की विशेष अनुमति खारिज कर दी जाती है। (पैरा-44,45,46)

अपील निरस्त। (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. सुभाष चंद बनाम सेंट (दिल्ली प्रशासन), MANU/SC/0016/2013,
2. परविंदर कंसल बनाम दिल्ली राज्य एवं अन्य, (2020) 19 एससीसी 496,
3. टी. जयराजन बनाम पी.आर. मुहम्मद एवं अन्य, मनु/केई/0758/1999,
4. साहब सिंह बनाम हरियाणा राज्य MANU/SC/0224/1990,
5. दर्शन लाल बनाम इंद्र कुमार मेहता, 1980 ऑल एलजे 217,
6. प्रतिभा रानी बनाम सूरज कुमार एवं अन्य MANU/SC/0090/1985,
7. टोपंडास बनाम बॉम्बे राज्य, मनु/एससी/0032/1955,
8. परवीन बनाम हरियाणा राज्य., MANU/SC/1190/2021,
9. अजमेर सिंह बनाम पंजाब राज्य., 1953 एससीआर 418,
10. सांवत सिंह एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य., एआईआर 1961 एससी, 715,

11. साधु शरण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2016 सीआर.एल.जे. 1908.

(माननीय न्यायमूर्ति मोहम्मद फैज़ आलम खान, द्वारा प्रदत्त)

1. धारा 378 के अन्तर्गत आवेदन संख्या 262/ 2017 हेतु आवेदक/ अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री राजेश कुमार श्रीवास्तव, निजी प्रतिवादी संख्या 2 और धारा 378के अन्तर्गत आवेदन संख्या 262 /2017 में प्रतिवादी संख्या 2 और 5 हेतु विद्वान अधिवक्ता सुश्री सोनल पांडे एवं साथ ही राज्य हेतु विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया।

2. प्रारंभ में आवेदक/ अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि प्रतिवादी संख्या 3-अवधेश चंद्र गुप्ता और प्रतिवादी संख्या 4-श्रीमती धनेश्वरी गुप्ता की वर्तमान आवेदन/अपील के लंबित रहने के दौरान की मृत्यु हो गई थी और उनके विरुद्ध कार्यवाही उपशमित की जाए।

3. प्रतिवादी संख्या 2 से 5 हेतु उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सुश्री सोनल पांडेय आवेदन संख्या 261 /2017 अन्तर्गत धारा 378 के इस तथ्य पर विवाद नहीं करती है,अतः धारा 378 के अन्तर्गत आवेदन संख्या 261/ 2017 की कार्यवाही, जो कि प्रतिवादी संख्या 3-अवधेश चंद्र गुप्ता और प्रतिवादी संख्या 4 से संबंधित है, उपशमित की जाती है।

4. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378(4) के अन्तर्गत उपरोक्त दोनों आवेदन उसी परिवाद मामले से सम्बन्धित हैं, जिसके द्वारा आपराधिक अपील संख्या 262/ 2017 में अभियुक्त/प्रतिवादी संख्या 2 से 6 को सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया है और अभियुक्त "संतोष कुमार गुप्ता" को धारा 120-बी भारतीय दंड संहिता के अन्तर्गत निर्धारित आरोप से दोषमुक्त कर दिया गया है और भा०दं०सं० की धारा 406 के अन्तर्गत अपराध के लिए दोषी ठहराया गया है, और इसलिए सुविधा हेतु इन दोनों आवेदनों का निस्तारण इसी आदेश द्वारा किया जा रहा है।

5. वादिनी श्रीमती कल्पना गुप्ता द्वारा धारा 378के अन्तर्गत आवेदन संख्या 261/ 2017 के साथ-साथ आवेदन संख्या 262/2017, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा शिकायत वाद संख्या 9/2016 श्रीमती कल्पना गुप्ता बनाम संतोष कुमार गुप्ता और छह अन्य में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 27.4.2017 , जिसमें मात्र अभियुक्त संतोष कुमार गुप्ता को भा०द०सं० की धारा 406 के अन्तर्गत अपराध हेतु दोषी ठहराया गया, तदनुसार दंडित किया गया और धारा 120-बी भा०दं०सं० के अन्तर्गत आरोप से दोषमुक्त कर दिया गया और अन्य अभियुक्त व्यक्ति, अर्थात प्रदीप कुमार गुप्ता उर्फ टिंकू, श्रीमती राज कु., अवधेश चन्द्र गुप्ता,श्रीमती. धनेश्वरी उर्फ वंदना और श्रीमती सरोज को भा०दं०सं० की धारा 406/120बी के अन्तर्गत लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया के विरुद्ध अपील करने की विशेष अनुमति हेतु अनुरोध करते हुए, प्रस्तुत किया है।

6. अभियुक्त श्री राम गुप्ता की विचारण के दौरान मृत्यु हो गई थी और उनके विरुद्ध कार्यवाही विचारण न्यायालय द्वारा उपशमित कर दी गई थी, जब कि अभियुक्त अवधेश चंद्र गुप्ता और श्रीमती धनेश्वरी गुप्ता की तत्कालीन कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई थी और उनके विरुद्ध इस मामले की कार्यवाही उपशमित कर दी गई है।

7. तत्कालीन कार्यवाही के निस्तारण हेतु आवश्यक संक्षिप्त तथ्य, जैसा कि अभिलेख से स्पष्ट है, यह है कि वादिनी श्रीमती कल्पना गुप्ता ने न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ के समक्ष एक परिवाद प्रस्तुत किया था जिसमें कहा गया था कि वादिनी का विवाह अभियुक्त संतोष कुमार गुप्ता के साथ 29.11.1989 को हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार हुआ था और उसके विवाह के समय उसके रिश्तेदार और अन्य व्यक्तियों ने उसके उपयोग हेतु उपहार दिए थे और जिसकी सूची परिवाद के साथ संलग्न की गई है।

8. पुनः यह कहा गया है कि वादिनी को दिये गए समस्त उपहार वादिनी के परिवार के सदस्यों द्वारा अभियुक्तो के सुपुर्द किये गए थे और अभियुक्तो ने वचन दिया था कि वे वादिनी को उपहार सौंप देंगे। हालांकि, बाद में विवाह के कुछ दिनों बाद, अभियुक्तो का व्यवहार वादिनी के प्रति बदल गया था और अभियुक्त संख्या 1 (पति) ने वादिनी पर दबाव डालना शुरू कर दिया था कि वह अपना समस्त वेतन उसे दे और उसने वादिनी पर दबाव डालकर उसके बैंक खाते से रुपये 7,600/-निकाले और उसे अभियुक्त संख्या 5 और 6 को खुर्रम नगर, लखनऊ में उनके गृह निर्माण के उद्देश्य से दे दिया।

9. परिवाद में यह भी कहा गया है कि वर्ष 1991 में दशहरा उत्सव के अवसर पर सभी अभियुक्तो ने उससे 50,000/- रुपये की मांग की थी और इनकार करने पर शिकायतकर्ता को कई दिनों तक भोजन नहीं दिया गया और उसके सभी आभूषण, वस्त्र और विवाह में दिये गए अन्य उपहार अभियुक्तो ने इस वायदे के साथ ले लिए कि वे इन उपहारों, वस्त्रों और आभूषणों को दिनांक 28.2.1990 तक वापस कर देंगे लेकिन उन्होंने शिकायतकर्ता को उपरोक्त वस्तुएं, जो शिकायतकर्ता का 'स्त्रीधन' था, लौटाने के स्थान पर उसका दुरुपयोग किया और वे उसका अवैध रूप से उपयोग कर रहे हैं।

10. यह भी कहा गया है कि आवेदिका द्वारा अभियुक्तो को उसके स्त्रीधन की समस्त वस्तुएं लौटाने का नोटिस दिया गया था, लेकिन अभियुक्तो ने उसका स्त्रीधन वापस नहीं किया, और इसलिए सभी अभियुक्तो को न्यायालय में समन कर दंडित किया जाए।

11. विचारण न्यायालय ने शिकायतकर्ता और उसके साक्षियों के कथन अभिलिखित करने के बाद अभियुक्तो को भा०दं०सं० की धारा 406 और 120-बी के अन्तर्गत विचारण हेतु समन किया।

12. अभियुक्तों के उपस्थित होने पर धारा 244 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत शिकायतकर्ता के साक्ष्य अभिलिखित किये गये,जिसमें श्रीमती कल्पना गुप्ता (शिकायतकर्ता) का कथन अभिलिखित किया गया था एवं निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य भी प्रस्तुत किए गए थे: -

I. शिकायतकर्ता की ओर से अधिवक्ता श्री सी.बी. सिंह द्वारा भेजा गया नोटिस। (प्रदर्श क-1)

II. दिनांक 10.2.1992 पावती पत्र। (प्रदर्श क-2)

III श्री सी.बी. सिंह, अधिवक्ता द्वारा प्रेषित नोटिस की प्रति। (प्रदर्श क-3)

IV पावती की प्रति। (प्रदर्श क-4)

V. नोटिस दिनांक 29.4.2012 की प्रति। (प्रदर्श क-5)

VI. नोटिस दिनांक 7.5.91की प्रति। (प्रदर्श क-6)

VI. नोटिस दिनांक 1.5.1992की प्रति। (प्रदर्श क-7)

VII. रजिस्ट्री पावती की प्रति। (प्रदर्श क-9)

VIII. रजिस्ट्री पावती दिनांक 24.10.1989 की प्रति। (प्रदर्श क-10)

IX. रजिस्ट्री पावती दिनांक 23.11.1989 की प्रति। (प्रदर्श क-11)

X. रजिस्ट्री पावती दिनांक 29.11.1989, 24.11.1989, 27.11.1989 और 31.5.2015 की प्रतियां। (प्रदर्श क-12, प्रदर्श क- 13, प्रदर्श क-14 और प्रदर्श क-15)

XI. "स्त्रीधन" के रूप में प्रदान की गयी वस्तुओं की सूची। (प्रदर्श क-16)

XII. परिवाद याचिका। (प्रदर्श क-17)

13. शिकायतकर्ता के अतिरिक्त, जिसका कथन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 244 के अन्तर्गत अभियोजन साक्षी-1 के रूप में अभिलिखित किया गया था, अभियोजन साक्षी संख्या 2- संजय कुमार गुप्ता और अभियोजन साक्षी संख्या 3- सुनील कुमार गुप्ता का बयान भी धारा 244 दंड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत अभिलिखित किया गया था।

14. सभी अभियुक्तो के विरुद्ध भा०दं०सं० की धारा 406 और भा०दं०सं० की धारा 120-बी के अन्तर्गत आरोप निर्धारित किए गए थे, जिससे अभियुक्तो ने इनकार किया और वाद का दावा किया।

15. द०प्र०सं० की धारा 246 के अन्तर्गत अभियोजन साक्षी 1- श्रीमती. कल्पना, अभियोजन साक्षी 2- संजय कुमार गुप्ता तथा अभियोजन साक्षी 3- सुनील कुमार गुप्ता का कथन अभिलिखित किया गया।

16. वादी के साक्ष्य के समापन के उपरांत अभियुक्तगण का बयान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अन्तर्गत अभिलिखित किया गया था, जिसमें उन्होंने शिकायतकर्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों को नकार दिया और बचाव साक्षी संख्या 1 - संतोष कुमार गुप्ता और बचाव साक्षी संख्या 2- अर्जुन सिंह को भी बचाव साक्षियों के रूप में प्रस्तुत किया था।

17. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के मूल्यांकन के बाद विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वादिनी मात्र अभियुक्त संतोष कुमार गुप्ता के संबंध में मात्र धारा406 भा०दं०सं० के अन्तर्गत कारित अपराध हेतु अपने वाद को युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध करने में सक्षम है और उसे मात्र भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के अन्तर्गत दोषसिद्ध किया गया जब कि अन्य आरोपियों को उनके विरुद्ध लगाए गए सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया और अभियुक्त संतोष कुमार गुप्ता को भी भारतीय दंड संहिता की धारा 120 बी के अन्तर्गत आरोप से दोषमुक्त कर दिया गया।

18. आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित होकर वादिनी ने आक्षेपित निर्णय और आदेश को चुनौती हेतु अपील करने की विशेष अनुमति देने का अनुरोध करते हुए द०प्र०सं० की धारा 378(4) के अन्तर्गत वर्तमान आवेदन प्रस्तुत किया है।

19. वादिनी के विद्वान अधिवक्ता श्री राजेश कुमार श्रीवास्तव ने दृढ़तापूर्वक कहा कि विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का मूल्यांकन करने में स्पष्ट अवैधता की है और अभियुक्तो को उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त कर दिया है, जब कि यह युक्तियुक्तसंदेह से परे सिद्ध हुआ था कि शिकायतकर्ता

की उपहार सामग्री (स्त्रीधन) सभी अभियुक्तो को सुपुर्द कर दी गई थी और उन्होंने उसका दुरुपयोग किया और स्वयं प्रयोग करने लगे और इसलिए किया गया अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और धारा 120-बी के अन्तर्गत युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध हुआ।

20. पुनः यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि सभी अभियुक्तो ने उसके ''स्त्रीधन'' पर बलपूर्वक कब्जा कर लिया था और उसे उसके वैवाहिक गृह से निष्कासित कर दिया था।

21. यह भी कहा गया है कि वादिनी का मामला स्वयं उस के साक्ष्य के साथ-साथ दो अन्य साक्षियों, अर्थात् अभियोजन साक्षी 2- संजय कुमार गुप्ता और अभियोजन साक्षी- 3 सुनील कुमार गुप्ता के विश्वसनीय साक्ष्य से सिद्ध हुआ था, किंतु ऐसा लगता है कि विचारण न्यायालय ने बचाव पक्ष के साक्षियों को ज्यादा महत्व दिया है।

22. यह भी कहा गया है कि विचारण न्यायालय ने गलत निर्वचन किया है तथा अनुमानों और अटकलों के आधार पर निर्णय पारित किया है, इसलिए वादिनी को विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश को चुनौती देने हेतु अपील करने की विशेष अनुमति दी जानी चाहिए।

23. धारा 378 के अन्तर्गत आवेदन संख्या 262 / 2017 में प्रतिवादी संख्या 2 हेतु और प्रतिवादी संख्या 2 और 5 हेतु धारा 378 के अन्तर्गत आवेदन संख्या 261/ 2017 में उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सुश्री सोनल पांडे ने दृढ़तापूर्वक अभिकथन किया है कि जहाँ तक उत्तरदाताओं को दोषमुक्त करने का संबंध है, विचारण न्यायालय ने कोई अवैधता नहीं की है, क्योंकि वादिनी अपने वाद को युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध करने में पूर्णतः विफल रही है।

24. पुनः यह प्रस्तुत किया गया है कि अभिलेख से यह स्पष्ट है कि बिना किसी आधार के, पति संतोष कुमार गुप्ता के सम्पूर्ण परिवार को इसमें सम्मिलित कर लिया गया है, जहाँकि अभियोजन पक्ष के मामले पर यदि एक क्षण के लिए भी विश्वास किया जा सकता है, तो उसके स्वकथनानुसार ''स्त्रीधन'' पति को सौंपा गया था और इसलिए जहाँ तक अन्य उत्तरदाताओं की दोषमुक्ति का प्रश्न है, इसमें कोई अवैधता नहीं है।

25. अभिलेख के परिशीलन से ज्ञात होता है कि विशेष अनुमति हेतु आवेदन संख्या 262/ 2017 को प्रस्तुत कर भा०दं०सं० की धारा 120-बी के अन्तर्गत प्रतिवादी संतोष कुमार गुप्ता को सम्बन्धित अपराध से दोषमुक्त करने के आदेश को चुनौती हेतु अपील करने के लिए विशेष अनुमति देने हेतु अनुरोध किया गया है, जिसमें प्रतिवादी संतोष कुमार गुप्ता को विचारण न्यायालय द्वारा दोषी ठहराया गया है एवं भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के अन्तर्गत उपबंधित अधिकतम कारावास का दंडादेश देने की प्रार्थना के साथ दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 (4) के अन्तर्गत आवेदन संख्या 261/ 2017प्रस्तुत कर अन्य अभियुक्त गण/प्रतिवादी संख्या 2 से 6 को विचारण न्यायालय द्वारा उनके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 406/120बी के अन्तर्गत निर्धारित आरोप से दोषमुक्ति के संबंध में विचारण न्यायालय के निर्णय और दोषमुक्त किए जाने के आदेश को चुनौती देने हेतु अपील करने की विशेष अनुमति हेतु अनुरोध किया गया है।

26. प्रारम्भ में मैं इस बिंदु पर विचार करना चाहूँगा कि क्या वर्तमान अपीलकर्ता जो किसी परिवाद

अनुदित

मामले का शिकायतकर्ता भी है, भा०दं०सं० की धारा 406 के अन्तर्गत अपराध करने के लिए अभियुक्त संतोष कुमार गुप्ता के संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा आरोपित दंडादेश में वृद्धि हेतु अपील करने की अनुमति हेतु दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378(4) के अन्तर्गत आवेदन प्रस्तुत कर सकता है। भा०दं०सं० की धारा 120 बी के अन्तर्गत उनके दोषमुक्त होने के विषय के साथ ही अन्य अभियुक्तो पर बाद में इस आदेश के समुचित चरण में विचार किया जाएगा।

27. अभिलेख के परिशीलन से ज्ञात होता है कि प्रतिवादी संतोष कुमार गुप्ता को धारा 406 भारतीय दंड संहिता के अन्तर्गत अपराध हेतु विचारण न्यायालय द्वारा दोषी ठहराया गया है और तीन माह के सश्रम कारावास एवं जुर्मानें का दंडादेश सुनाया गया है। इसलिए, प्रश्न यह है कि क्या परिवाद मामले का शिकायतकर्ता दंडादेश में वृद्धि हेतु अपील या विशेष अनुमति दायर कर सकता है। इस विवाद को समझने के लिए संहिता की धारा 378 का अवलोकन आवश्यक है। यह इस प्रकार है:-

378. दोषमुक्ति की दशा में अपील-

(1) उप-धारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय और उप-धारा (3) और (5) के उपबंधो के अधीन रहते हुए, -

(क) जिला मजिस्ट्रेट, किसी मामले में, लोक अभियोजक को किसी संज्ञेय और अजमानतीय अपराध के बाबत किसी मजिस्ट्रेट द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश से सेशन न्यायालय में अपील प्रस्तुत करने का निदेश दे सकेगा;

(ख) राज्य सरकार, किसी मामले में, लोक अभियोजक को उच्च न्यायालय से भिन्न किसी न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के मूल या अपीलीय आदेश से [जो खंड (क) के अधीन आदेश नहीं है] या पुनरीक्षण में सेशन न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश से उच्च न्यायालय में अपील प्रस्तुत करने का निदेश दे सकेगी]

(2) यदि ऐसा दोषमुक्ति का आदेश किसी ऐसे मामले में पारित किया गया है जिसमें अपराध का अन्वेषण दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम, 1946 (1946 का 25) के अन्तर्गत गठित दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन द्वारा या इस संहिता से भिन्न किसी केंद्रीय अधिनियम के अधीन अपराध का अन्वेषण करने के लिए सशक्त किसी अन्य अभिकरण द्वारा किया गया है तो [केंद्रीय सरकार उप-धारा (3) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, लोक अभियोजक को-

(क) दोषमुक्ति के ऐसे आदेश से जो संज्ञेय और अजमानतीय अपराध की बाबत किसी मजिस्ट्रेट द्वारा पारित द्वारा पारित किया गया है सेशन न्यायालय में;

(ख) दोषमुक्ति के ऐसे मूल या अपीलीय आदेश से जो किसी उच्च न्यायालय से भिन्न किसी न्यायालय द्वारा पारित किया गया है [जो खंड (क) के अधीन आदेश नहीं है] या दोषमुक्ति के ऐसे आदेश से जो पुनरीक्षण में सेशन न्यायालय द्वारा पारित किया गया है, उच्च न्यायालय में, अपील प्रस्तुत करने का निदेश दे सकती है।]

(3) उप-धारा (1) या उप-धारा (2) के अधीन कोई भी अपील उच्च न्यायालय की अनुमति के बिना ग्रहण नहीं की जाएगी।

(4) यदि दोषमुक्ति का ऐसा आदेश परिवाद पर संस्थित किसी मामले में पारित किया गया है और उच्च न्यायालय, परिवादी द्वारा उससे इस निमित्त आवेदन किये जाने पर, दोषमुक्ति के आदेश की अपील करने की विशेष अनुमति

देता है, तो परिवादी ऐसी अपील उच्च न्यायालय में उपस्थित कर सकता है।

(5) दोषमुक्त के आदेश से अपील करने की विशेष अनुमति दिए जाने के लिए उप-धारा (4) के अधीन कोई आवेदन उच्च न्यायालय द्वारा, उस दशा में जिसमें परिवादी लोक सेवक है, उस दोषमुक्ति के आदेश से संगणित, छह मास की समाप्ति के पश्चात, और प्रत्येक अन्य दशा में ऐसे संगणित साठ दिन की समाप्ति के बाद पश्चात ग्रहण नहीं किया जाएगा।

(6) यदि किसी मामले में दोषमुक्ति के आदेश से अपील करने की विशेष अनुमति दिए जाने के लिए उप-धारा (4) के अधीन कोई आवेदन नामंजूर कर दिया जाता है, तो उस दोषमुक्ति के आदेश से उप-धारा (1) के अधीन या उपधारा (2) के अधीन कोई अपील नहीं होगी।

28. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **सुभाष चंद बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन); MANU/SC/ 0016/2013** के मामले में निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

"15. सर्वप्रथम, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि धारा 378(3) के अनुसार दोषमुक्ति के आदेशों के विरुद्ध जो अपीलें संहिता की धारा 378(1)(ख) और 378(2) (ख) के अन्तर्गत उच्च न्यायालय में दायर की जानी है, उच्च न्यायालय की अनुमति के बिना ग्रहण नही की जा सकती है। धारा 378(1)(क) के प्रावधानानुसार किसी भी मामले में, यदि किसी संज्ञेय और अजमानतीय अपराध के संबंध में मजिस्ट्रेट द्वारा दोषमुक्त करने का आदेश पारित किया जाता है, तो जिलाधिकारी लोक अभियोजक को सेशन न्यायालय में अपील प्रस्तुत करने का निर्देश दे सकता है। धारा 378 की उप-धारा (1)(ख) के प्रावधानानुसार किसी भी मामले में, राज्य सरकार लोक अभियोजक को उच्च न्यायालय के खंड (क) के अन्तर्गत किसी आदेश या पुनरीक्षण में सत्र न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश के अतिरिक्त दोषमुक्त करने के मूल या अपीलीय आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील दायर करने का निर्देश दे सकती है। धारा 378 की उप-धारा (2) दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम, 1946 के अन्तर्गत गठित दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन या संहिता से भिन्न किसी केन्द्रीय अधिनियम के अधीन किसी अपराध का अन्वेषण करने के लिए सशक्त किसी अन्य अभिकरण द्वारा अन्वेषण किए गए किसी भी मामले में पारित दोषमुक्ति के आदेश को संदर्भित करती है। यह प्रावधान उप-धारा (1) के समान है, सिवाय इसके कि यहाँ "राज्य सरकार" शब्द को "केंद्र सरकार" शब्दों से प्रतिस्थापित किया गया है।

16. यदि हम धारा 378(1) (क) और (ख) का विश्लेषण करते हैं, तो यह स्पष्ट है कि राज्य सरकार लोक अभियोजक को किसी संज्ञेय और गैरजमानतीय अपराध के संबंध में मजिस्ट्रेट द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील दायर करने का निर्देश नहीं दे सकती है क्योंकि यह धारा 378(1)(ख) के अनुसार प्रतिबंधित है। ऐसी अपीलें, अर्थात किसी संज्ञेय

और गैर-जमानती अपराध के संबंध में मजिस्ट्रेट द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील मात्र जिलाधिकारी के निर्देशानुसार लोक अभियोजक के कहने पर सत्र न्यायालय में दायर की जा सकती हैं। धारा 378 (1)(ख) "किसी मामले में" शब्दों का उपयोग करती है लेकिन राज्य सरकार के नियंत्रण से संज्ञेय और अजमानतीय अपराध के संबंध में मजिस्ट्रेट द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश को छोड़ देती है। इसलिए, अन्य सभी मामलों में जहाँ दोषमुक्ति का आदेश पारित किया गया है, राज्य सरकार के निदेशानुसार लोक अभियोजक द्वारा उच्च न्यायालय में अपील दायर की जा सकती है।

17. धारा 378 की उपधारा (4) परिवाद पर संस्थित मामले में पारित दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील का प्रावधान करती है। इसमें कहा गया है कि ऐसे मामले में यदि परिवादी उच्च न्यायालय में आवेदन करता है और उच्च न्यायालय अपील हेतु विशेष अनुमति प्रदान करता है, तो परिवादी ऐसी अपील उच्च न्यायालय में प्रस्तुत कर सकता है। यह उपधारा अन्य अपीलों से संबंधित उपधारा (3) के विपरीत ''विशेष अनुमति'' की बात करती है जो ''अनुमति'' की बात करती है। इस प्रकार, दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध परिवादी की अपील स्वयं में एक श्रेणी है। परिवादी कोई निजी व्यक्ति या लोक सेवक हो सकता है। उप-धारा (5) से यह स्पष्ट है, जो परिवादी द्वारा ''विशेष अनुमति'' के लिए दायर आवेदन को संदर्भित करती है। यह एक परिवादी को, जो एक लोक सेवक है, आवेदन दाखिल करने के लिए छह माह की समय सीमा और अन्य मामले में साठ दिन की अवधि प्रदान करता है। उपधारा (6) महत्वपूर्ण है। इसमें कहा गया है कि यदि किसी मामले में उप-धारा (4) के अन्तर्गत ''विशेष अनुमति'' के लिए परिवादी के आवेदन को अस्वीकार कर दिया जाता है, तो दोषमुक्त किए जाने के आदेश के विरुद्ध उप-धारा (1) या उप-धारा (2) के अन्तर्गत कोई अपील नहीं की जाएगी। इस प्रकार, यदि परिवादी को दोषमुक्त करने के आदेश के विरुद्ध अपील करने के लिए ''विशेष अनुमति'' नहीं दी जाती है तो मामला वहीं समाप्त हो जाना चाहिए। दोषमुक्त करने के उस आदेश के विरुद्ध न तो जिलाधिकारी और न ही राज्य सरकार अपील कर सकती है। ऐसी स्थिति में मामले को शांत करने का विचार प्रतीत होता है।

18. चूँकि विधि आयोग की अनुशंसा के बावजूद धारा 378(1)(क) से ''पुलिस रिपोर्ट'' शब्द हटा दिया गया है, अतः इस पर ध्यान देना आवश्यक नहीं है। संहिता की धारा 2(द) के अन्तर्गत एक पुलिस रिपोर्ट को परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ है संहिता की धारा 173 की उपधारा (2) के अन्तर्गत एक पुलिस अधिकारी द्वारा मजिस्ट्रेट को भेजी गई रिपोर्ट। यह किसी संज्ञेय या गैर-संज्ञेय अपराध की सूचना प्राप्त करने के बाद पुलिस द्वारा किसी अपराध की जाँच की परिणति है। धारा 2(घ) परिवाद से संहिता के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा कार्रवाई किए जाने की दृष्टि से मौखिक या

लिखित रूप में उससे किया गया यह अभिकथन अभिप्रेत है कि किसी व्यक्ति ने, चाहे वह ज्ञात हो या अज्ञात, अपराध किया है, किंतु इसके अंतर्गत पुलिस रिपोर्ट नहीं है । धारा 2(घ) के स्पष्टीकरण में कहा गया है कि ऐसे किसी मामले में, जो अन्वेषण के पश्चात् किसी असंज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट करता है, पुलिस अधिकारी द्वारा की गई रिपोर्ट परिवाद समझी जाएगी और वह पुलिस अधिकारी जिसके द्वारा ऐसी रिपोर्ट की गई है, परिवादी समझा जाएगा। कभी-कभी संहिता की धारा 154 के अन्तर्गत की गई संज्ञेय अपराध की जाँच एक परिवाद मामले (ड्रग्स एंड कॉस्मेटिक्स एक्ट, 1940 के अन्तर्गत मामले) में समाप्त हो सकती है। पीएफए अधिनियम के अन्तर्गत , मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट की न्यायालय के समक्ष परिवाद दाखिल करने पर मामले शुरू किए जाते हैं, जैसा कि पीएफए अधिनियम की धारा 20 में निर्दिष्ट है और पीएफए अधिनियम के अन्तर्गत अपराध संज्ञेय और गैर-संज्ञेय दोनों हैं। इस प्रकार, कोई मामला किसी परिवाद पर संस्थित मामला है या नहीं, यह उसमें सम्मिलित अपराध से संबंधित विधिक प्रावधानों पर निर्भर करता है। लेकिन एक बार जहाँ परिवाद पर मामला संस्थित किया जाता है और दोषमुक्त करने का आदेश पारित किया जाता है, तो चाहे अपराध जमानती हो या गैर-जमानती, संज्ञेय हो या असंज्ञेय, परिवादी इसके विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील करने की विशेष अनुमति के लिए धारा 378(4) के अन्तर्गत आवेदन प्रस्तुत कर सकता है। धारा 378(4) परिवादी पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाती। जहाँ तक राज्य का प्रश्न है, धारा 378(1)(ख) के अनुसार, वह किसी भी मामले में, यहाँ तक कि किसी परिवाद पर संस्थित किए गए मामले में भी, लोक अभियोजक को उच्च न्यायालय के अलावा किसी अन्य न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के मूल या अपीलीय आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील दायर करने का निदेश दे सकता है। लेकिन, जैसा कि हमने यहाँ ऊपर कहा है, राज्य की शक्ति पर एक महत्वपूर्ण अंतर्निहित और स्पष्ट प्रतिबंध है। यह लोक अभियोजक को किसी संज्ञेय और गैर-संज्ञेय अपराध के संबंध में मजिस्ट्रेट द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील करने का निदेश नहीं दे सकता है। ऐसे मामले में जिलाधिकारी धारा 378(1)(क) के अन्तर्गत लोक अभियोजक को सत्र न्यायालय में अपील दायर करने का निर्देश दे सकता है। यह संहिता की धारा 378 का सही दृष्टिकोण और सही व्याख्या प्रतीत होती है।"

29. इस प्रकार, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378(4) के अन्तर्गत परिवादी को दोषमुक्ति के निर्णय को चुनौती देने के लिए अपील दायर करने के लिए उच्च न्यायालय से विशेष अनुमति मांगने का अधिकार दिया गया है। धारा 378(1)(ए) मात्र जिलाधिकारी को, किसी भी मामले में, लोक अभियोजक को एक संज्ञेय और अजामनतीय अपराध के संबंध में मजिस्ट्रेट द्वारा पारित दोषमुक्ति आदेश के विरुद्ध सत्र न्यायालय में अपील करने का निदेश देने की अनुमति देती है। यह प्रावधान जिसके अन्तर्गत दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध सत्र न्यायालय में अपील दायर की जा सकती थी, प्रस्तुत किया गया था। ऐसी अपीलें संज्ञेय और अजमानतीय अपराधों में मजिस्ट्रेट

द्वारा पारित आदेशों तक ही सीमित थीं। धारा 378(1)(ख) ने विशेष रूप से और स्पष्ट शब्दों में राज्य द्वारा ऐसी अपील दायर करने के अधिकार पर प्रतिबंध लगा दिया है। इसमें कहा गया है कि राज्य सरकार, किसी भी मामले में, लोक अभियोजक को खंड (क) के अन्तर्गत उच्च न्यायालय के आदेश या पुनरीक्षण में सत्र न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति का आदेश के अलावा किसी अन्य न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के मूल या अपीलीय आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील पेश करने का निदेश दे सकेगी। इस प्रकार, राज्य सरकार किसी संज्ञेय और अजमानतीय अपराध के संबंध में मजिस्ट्रेट द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील नहीं कर सकती है और परिवाद मामले का परिवादी मात्र दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील दायर कर सकता है।

30. इस समय द०प्र०सं० की धारा 377 पर भी विचार करना आवश्यक है और इसे निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

> "377. राज्य सरकार द्वारा दंडादेश के विरुद्ध अपील-
>
> (1) उप-धारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय, राज्य सरकार, उच्च न्यायालय से भिन्न किसी न्यायालय द्वारा किए गए विचारण में दोषसिद्धि के किसी मामले में लोक अभियोजक को दंडादेश की अपर्याप्तता के आधार पर उसके विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील प्रस्तुत करने का निदेश दे सकती है।
>
> (2) यदि ऐसी दोषसिद्धि किसी ऐसे मामले में है जिसमें अपराध का अन्वेषण दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम, 1946 (1946 का 25) के अधीन गठित दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन द्वारा या इस संहिता से भिन्न किसी केंद्रीय अधिनियम के अधीन अपराध का अन्वेषण करने के लिए सशक्त किसी अन्य अभिकरण द्वारा किया गया है तो केन्द्रीय सरकार भी लोक अभियोजक को दंडादेश की अपर्याप्तता के आधार पर उसके विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील प्रस्तुत करने का निदेश दे सकती है।
>
> (3) जहाँ दंडादेश के विरुद्ध अपर्याप्तता के आधार पर अपील की गई है तब उच्च न्यायालय उस दंडादेश में वृद्धि तब तक नही करेगा जहाँ तक कि अभियुक्त को ऐसी वृद्धि के विरुद्ध कारण दर्शित करने का युक्तियुक्त अवसर नही दे दिया गया है और कारण दर्शित करते समय अभियुक्त अपनी दोषमुक्ति के लिए या दंडादेश में कमी करने के लिए अभिवचन कर सकता है।

31. इस धारा के सामान्य वाचन से यह प्रकट होगा कि राज्य सरकार को द०प्र०सं० की धारा 377 के अन्तर्गत वर्णित रीति से "किसी भी मामले" के संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा प्रदत्त दंडादेश के विरुद्ध अपील प्रस्तुत करने की शक्ति दी गई है। इस प्रकार, यह धारा राज्य सरकार को दंडादेश की अपर्याप्तता के विरुद्ध जिला न्यायालय या उच्च न्यायालय, जैसा भी मामला हो, के समक्ष अपील दायर करने का अधिकार देती है। इस धारा से यह भी स्पष्ट है कि पर्याप्त दंडादेश के विरुद्ध ऐसी अपील इस तथ्य के बावजूद प्रस्तुत की जा सकती है कि अभियोजन वाद पुलिस द्वारा प्रस्तुत आरोप पत्र के आधार पर या निजी परिवाद के आधार पर था। इसलिए, उपरोक्त चर्चा पर्याप्त रूप से प्रदर्शित करेगी कि दंडादेश की अपर्याप्तता को चुनौती देने का उपचार राज्य सरकार या

केंद्र सरकार या जिला मजिस्ट्रेट, जैसा भी मामला हो, के अधिकार क्षेत्र में है। इस संबंध में **परविंदर कंसल बनाम एनसीटी दिल्ली राज्य और अन्य; (2020) 19 एससीसी 496** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि का सन्दर्भ उपयोगी है, जिसमें विशेष रूप से यह मत प्रकट किया गया है कि धारा 2(ब क) के अन्तर्गत परिभाषित पीड़ित मात्र द०प्र०सं० की धारा 372 के परंतुक के अनुसार दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध, कमतर अपराध के लिए दोषसिद्ध किये जाने और अपर्याप्त मुआवजा आरोपित किये जाने के आदेश के विरुद्ध अपील दायर कर सकता है और पीड़ित को द०प्र०सं० की धारा 372 के अन्तर्गत दंडादेश में वृद्धि हेतु अपील करने का कोई अधिकार नहीं है। इस प्रकार, इस न्यायालय के सुविचारित मत में, किसी परिवाद मामले के परिवादी को भी परिवाद मामले में किसी भी अपराध के लिए अभियुक्त को दोषसिद्ध करने वाले विचारण न्यायालय द्वारा पारित दंडादेश की अपर्याप्तता को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं है।

32. अब यह प्रश्न उठेगा कि किसी परिवाद मामले के उस परिवादी हेतु क्या उपचार उपलब्ध होगा, जो विचारण न्यायालय द्वारा आरोपित दंड की अपर्याप्तता से व्यथित है और जिला मजिस्ट्रेट या राज्य सरकार, जैसा भी मामला हो, ने द०प्र०सं० की धारा 377 के अन्तर्गत अपील दायर कर दंडादेश की वृद्धि हेतु कोई भी कार्यवाही प्रारम्भ नही की है। इस संबंध में माननीय केरल उच्च न्यायालय की एकल पीठ द्वारा **टी. जयराजन बनाम पी.आर. मुहम्मद और अन्य; MANU/KE/0758/1999** में पारित निर्णय प्रासंगिक होगा जिसमें केरल उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने कई निर्णय विधियों को संदर्भित करते हुए और द०प्र०सं० की धारा 397, 398, 399, 401 और 386 पर विचार करने के साथ ही माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **साहब सिंह बनाम हरियाणा राज्य; MANU/SC/0224/1990** के मामले में प्रतिपादित विधि पर विचार करने के बाद और इस न्यायालय द्वारा **दर्शन लाल बनाम इंद्र कुमार मेहता 1980 All LJ 217** में, निम्नानुसार मत प्रकट किया है: -

> *"14 विभिन्न उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों से यह स्पष्ट है कि द०प्र०सं० की धारा 377 के अन्तर्गत दंडादेश की अपर्याप्तता को चुनौती देने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष अपील करने में राज्य सरकार की विफलता, उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय को दंडादेश की अपर्याप्तता को चुनौती देने वाले परिवादी या हितबद्ध पक्ष द्वारा दायर किए गए पुनरीक्षण के आधार पर दंडादेश की अपर्याप्तता पर विचार करने के अधिकार क्षेत्र को नही रोकेगी, सिवाय उन मामलों के जहाँ द०प्र०सं० की धारा 401 की उपधारा (4) के अन्तर्गत ऐसे पुनरीक्षण प्रतिबंधित हैं। इसलिए मद्रास उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ का* ***1984 Cri JJ 243 (In re; Krishnamoorthy)*** *में निर्णय का आशय है कि उच्च न्यायालय के पास परिवादी द्वारा निजी परिवाद में दायर किए गए पुनरीक्षण में दंडादेश अपर्याप्तता पर विचार करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, उच्चतम न्यायालय के आधिकारिक निर्णयों के दृष्टिगत पालन किये जाने वाली मान्य विधि नहीं है। इसलिए मद्रास उच्च न्यायालय के उपर्युक्त निर्णय पर विश्वास करते हुए विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में पुनरीक्षण याचिका को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि यह दंडादेश की अपर्याप्तता को*

चुनौती देने वाले परिवादी द्वारा दायर की गई है, जो पोषणीय और धारणीय भी नहीं है।"

33. **साहब सिंह (उपरोक्त)** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है: -

> *"राज्य सरकार द्वारा अपील करने में विफलता, हालांकि, उच्च न्यायालय को संहिता की धारा 401 सपठित धारा 397 के अन्तर्गत पुनरीक्षण की स्वत: प्रेरणा शक्ति का प्रयोग करने से नहीं रोकती है, क्योंकि उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ किसी भी न्यायालय की कार्यवाही का अभिलेख मांगने हेतु अधिकारवान है। धारा 401 की उप-धारा (4) उस पक्ष के लिए एक बाधा के रूप में कार्य करती है जिसके पास अपील करने का अधिकार है लेकिन वह ऐसा करने में विफल रही है, लेकिन यह उप-धारा उच्च न्यायालय द्वारा स्वप्रेरणा से पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में बाधा नहीं बन सकती है। लेकिन इससे पहले कि उच्च न्यायालय दंडादेश की वृद्धि हेतु अपने स्वतः संज्ञान से पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करे, यह अनिवार्य है कि दोषी को नोटिस दिया जाए और उसे दंडादेश के प्रश्न पर या तो व्यक्तिगत रूप से या उसके अधिवक्ता के माध्यम से सुनवाई का अवसर दिया जाए ।"*

34. **दर्शन लाल (उपरोक्त)** के मामले में इस न्यायालय की एक खंडपीठ की भी टिप्पणी इस प्रकार थी: -

> *"धारा 397(1) के अनुसार एक सत्र न्यायाधीश किसी भी निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश की शुद्धता, वैधता या औचित्य के सम्बन्ध में स्वयं को संतुष्ट करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र में स्थित किसी भी अवर आपराधिक न्यायालय की किसी भी कार्यवाही के अभिलेख की मांग और जाँच कर सकता है। विचारण न्यायालय के समक्ष प्रार्थी द्वारा दायर पुनरीक्षण में उसकी शिकायत पूर्णतः अपर्याप्त थी। इसलिए, सत्र न्यायाधीश द०प्र०सं० की धारा 397 की उप-धारा (1) द्वारा उसे प्रदत्त शक्तियों के दृष्टिगत उस प्रश्न की जाँच कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, धारा 399 की उप-धारा (1) के अन्तर्गत, किसी पुनरीक्षण पर विचार करते समय, , सत्र न्यायाधीश धारा 401 की उप-धारा (1) के अन्तर्गत उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की जा सकने वाली सभी या किसी भी शक्ति का प्रयोग कर सकते हैं। इससे यह होगा कि यदि उच्च न्यायालय किसी पुनरीक्षण के उपरांत दंडादेश बढ़ा सकता है, तो सत्र न्यायाधीश भी ऐसा कर सकता है। धारा 401 की उपधारा (1) के अनुसार, उच्च न्यायालय, किसी पुनरीक्षण की सुनवाई के समय, संहिता की धारा 386 द्वारा अपीलीय न्यायालय को प्रदत्त किसी भी शक्ति का प्रयोग कर सकता है। संहिता की धारा 386 के खंड (ग) के अनुसार, अपीलीय न्यायालय, दंडादेश की वृद्धि की अपील में, दंडादेश की प्रकृति या सीमा को बदल सकता है ताकि उसे बढ़ाया या घटाया जा सके। द०प्र०सं० की धारा 386 में निहित इस प्रावधान के दृष्टिगत यह माना जाना चाहिए कि उच्च न्यायालय, पुनरीक्षण की सुनवाई के समय, दंडादेश में वृद्धि कर सकता है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, पुनरीक्षण की सुनवाई के समय किसी सत्र न्यायाधीश की शक्तियां उच्च*

न्यायालय के समान ही होती हैं। चूँकि उच्च न्यायालय पुनरीक्षण पर विचार करते समय दंडादेश में वृद्धि कर सकता है, इसलिए सत्र न्यायाधीश भी ऐसा कर सकता है।"

35. इस प्रकार, यहाँ पूर्ववर्णित विधि के दृष्टिगत, यह स्पष्ट होगा कि यदि राज्य सरकार किसी परिवाद मामले में पारित दंडादेश की अपर्याप्तता को चुनौती नहीं दे रही है, तो उस मामले का परिवादी उपचारहीन नहीं होगा और समुचित न्यायालय के समक्ष आपराधिक पुनरीक्षण दायर कर चुनौती दे सकेगा, और पुनरीक्षण न्यायालय द०प्र०सं० की धारा 386 के अन्तर्गत प्रदत्त किसी भी शक्ति का प्रयोग द०प्र०सं० की धारा 401 के आधार पर, द०प्र०सं० के धारा 401 की उपधारा 5 के अन्तर्गत निर्धारित सीमा के अधीन कर सकती है।

36. उपरोक्त विधिक स्थिति द्वारा यह सुझाव प्रस्तुत होता है कि द०प्र०सं० की धारा 377 के अन्तर्गत दंडादेश वृद्धि हेतु अपील दायर करना राज्य या जिलाधिकारी पर निर्भर है, और द०प्र०सं० की धारा 372 के अन्तर्गत न ही पीड़ित को न ही किसी परिवाद मामले का परिवादी दंडादेश बढ़ाने से संबंधित अपील के लिए विशेष अनुमति हेतु अपील या आवेदन प्रस्तुत कर सकता है। इस प्रकार, इस न्यायालय के सुविचारित मत में धारा 406 भा०दं०सं० के अन्तर्गत अपराध करने के संबंध में अभियुक्त संतोष कुमार गुप्ता को विचारण न्यायालय द्वारा दी गई दंडादेश से संबंधित दंडादेश को बढ़ाने हेतु विशेष अनुमति की अपील/आवेदन द०प्र०सं० की धारा 378(4) के अन्तर्गत पोषणीय नहीं है, अत: इस सीमा तक अपीलकर्ता/आवेदक की प्रार्थना अस्वीकार की जाती है।

37. अब अगले प्रश्न पर विचार किया जाता है कि क्या विचारण न्यायालय ने अभियुक्त संतोष कुमार गुप्ता को दोषमुक्त करने के लिए अभिलेख पर, भा०दं०सं० की धारा 120-बी के अन्तर्गत अपराध कारित किये जाने से सम्बंधित, उपलब्ध साक्ष्यों का मूल्यांकन करने में कोई अवैधता की है या भा०द०सं० की धारा 120-बी एवं 406 के अन्तर्गत अन्य अभियुक्तो के अपराध करने के लिए, इस तथ्य के अलावा कोई अन्य पूर्वसर्ग नहीं हो सकता है कि भा०द०सं० की धारा 120-बी के अन्तर्गत अपराध के गठन हेतु, विचारों का मिलन एक महत्वपूर्ण घटक है और या तो प्रत्यक्ष साक्ष्य होना चाहिए या परिस्थितिजन्य प्रकृति के साक्ष्य, जिससे एक वैध निष्कर्ष प्राप्त किया जा सके कि विशेष अपराध करने से पूर्व, अभियुक्तो को षडयन्त्र रचने के लिए आम सहमति बनाने का अवसर मिला था। विचारण न्यायालय के निर्णय के परिशीलन से प्रकट होगा कि विचारण न्यायालय ने अभियुक्त संतोष कुमार गुप्ता को भा०दं०सं० की धारा 120-बी के अन्तर्गत अपराध करने से दोषमुक्त कर दिया है और धारा 406/120-बी भा०दं०सं० के अन्तर्गत निर्धारित आरोपों से अन्य अभियुक्तों को निम्नलिखित आधारों पर दोषमुक्त कर दिया है-

(i) परिवादी यह सिद्ध करने में विफल रही कि उसके स्त्रीधन का दुरुपयोग करने का षडयन्त्र रचने के लिए अभियुक्तो में वैचारिक समानता थी।

(ii) परिवाद के साथ प्रस्तुत वस्तुओं की सूची में मात्र परिवादी के हस्ताक्षर हैं और किसी भी अभियुक्त के हस्ताक्षर नहीं हैं।

(iii) परिवादी ने विचारण न्यायालय के समक्ष अभिलिखित अपने बयान में स्वीकार किया है कि विदाई के समय उसके माता-पिता द्वारा

अभियुक्त संतोष कुमार गुप्ता की सुपुर्दगी में वस्तुएं दी गई थी।

(iv) अभियुक्त संतोष कुमार गुप्ता (स्वयं) को वस्तुएं वापस करने का नोटिस दिया गया था।

(v) अभियोजन साक्षी-3 सुनील कुमार गुप्ता ने अनुश्रुत साक्ष्य प्रस्तुत किया है।

(vi) अभियोजन पक्ष के साक्ष्य मात्र यह सिद्ध करते हैं कि वस्तुएं मात्र पति को सौंपी गयी थी और नोटिस के बावजूद उसने वस्तुएं वापस नहीं की और उसका दुर्विनियोग किया और फिर मात्र अभियुक्त संतोष कुमार गुप्ता को भा०दं०सं० की धारा 406 के अन्तर्गत अपराध हेतु दोषसिद्ध किया गया और उसे भा०दं०सं० की धारा 120, तथा अन्य व्यक्तियों को धारा 120-बी और धारा 406 भा०दं०सं० के अन्तर्गत दोषमुक्त कर दिया गया।

38. **प्रतिभा रानी बनाम सूरज कुमार और अन्य; MANU/SC/0090/1985** में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भा०दं०सं० की धारा 405, जो भा०दं०सं० की धारा 406 के अन्तर्गत दंडनीय है, के घटक पर चर्चा करते हुए निम्नानुसार टिप्पणी की गई: -

"दंड संहिता की धारा 405 इस प्रकार है: -

"धारा 405.- आपराधिक न्यास भंग- किसी व्यक्ति द्वारा जिसे उसे सौंपा गया है या जिस पर उसका प्रभुत्व है और वह बेईमानी से अपने उद्देश्य के लिए ऐसी संपत्ति का उपयोग करता है या उसका दुरुपयोग करता है या उस संपत्ति का निपटान करता है जो कानून के किसी भी निर्देश के उल्लंघन में है जिस तरीके से इस तरह के न्यास का पालन किया जाना है, या किसी भी कानूनी अनुबंध (कॉन्ट्रैक्ट), व्यक्त या निहित (इंप्लाइड), जिसे उसने इस तरह के विश्वास के निर्वहन (डिस्चार्ज) के संबंध में बनाया है, या जानबूझकर किसी अन्य व्यक्ति को ऐसा करने के लिए मजबूर किया है, इसे आपराधिक न्यास भंग कहा जाता है।

धारा 405 को ध्यानपूर्वक वाचन स्पष्ट करता है कि आपराधिक न्यास भंग के तत्व इस प्रकार हैं:

i) किसी व्यक्ति को संपत्ति सौंपी जानी चाहिए, या संपत्ति पर प्रभुत्व सौंपा जाना चाहिए;

ii) उस व्यक्ति को उस संपत्ति का बेईमानी से दुरुपयोग करना चाहिए या अपने उपयोग के लिए परिवर्तित करना चाहिए, या उस संपत्ति का बेईमानी से उपयोग या निपटान करना चाहिए या जानबूझकर किसी अन्य व्यक्ति को ऐसा करने के लिए मजबूर करना चाहिए; और

iii) इस तरह का दुरुपयोग, रूपांतरण, उपयोग या निपटान जो विधि के किसी भी ऐसे निर्देश का उल्लंघन करता है, जो इस प्रकार के न्यास का पालन किये जाने की रीति उपबंधित करती है, या किसी भी ऐसे विधिक अनुबंध का उल्लंघन होना चाहिए जो व्यक्ति ने ऐसे न्यास के निर्वहन हेतु किया है।

सौंपना अपराध का एक अनिवार्य घटक है। एक व्यक्ति जो दायित्व की शर्तों के विपरीत उन्हें सौंपी गई संपत्ति का बेईमानी से दुर्विनियोग करता है, आपराधिक न्यास भंग हेतु उत्तरदायी है और भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के अन्तर्गत दंडित किया जाता है। द०प्र०सं० की धारा 482 के अन्तर्गत क्षेत्राधिकार का उपयोग सतर्कता से किया जाना चाहिए। अपने अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में, एक उच्च न्यायालय यह जाँच कर सकता है कि क्या अनिवार्य रूप से सिविल प्रकृति के किसी मामले को आपराधिक प्रकृति का जामा पहनाया गया है। जहाँ किसी आपराधिक मामले का गठन करने के लिए आवश्यक सामग्री परिवाद को वाचन से प्राप्त नहीं होती है, वहाँ आपराधिक कार्यवाही जारी रखना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा।

39. सर्वोच्च न्यायालय ने कई वादो में धारित किया है कि आपराधिक न्यास भंग के अपराध का मूल आधार यह है कि एक संपत्ति अवश्य ही सौंपी जानी चाहिए और संपत्ति का प्रभुत्व न्यासी को दिया जाना चाहिए। वर्तमान वाद में ये सभी शर्तें न्यायालय के विनिश्चयन के अनुसार भी स्पष्ट रूप से स्थापित हैं; हालांकि इसके निष्कर्ष स्पष्ट रूप से स्थापित नहीं हैं। यह कई निर्णय विधियों से स्पष्ट होगा कि उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण बिल्कुल गलत है। इनमें से कुछ पर हम यहाँ चर्चा करना चाहेंगे।

*40. **चेल्लूर माणकलाल नरवन इत्तिरवी अनंबुदिरी बनाम त्रावणकोर राज्य MANU/SC/0091/1952: AIR1953SC478** में इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियाँ कीं:*

जैसा कि धारा 385, कोचीन दंड संहिता (धारा 405, भारतीय दंड संहिता के अनुरूप) में उपबंधित किया गया है, आपराधिक न्यास भंग हेतु यह आवश्यक है कि अभियोजन पक्ष को सर्वप्रथम यह सिद्ध करना होगा कि अभियुक्त को कुछ संपत्ति या इस पर कोई प्रभुत्व या शक्ति सौंपी गई थी ... इस परिभाषा से यह लगभग स्वयंसिद्ध है कि जिस संपत्ति के संबंध में आपराधिक न्यास भंग का आरोप लगाया गया है, उसका स्वामित्व या लाभकारी हित अभियुक्त के अलावा किसी अन्य व्यक्ति में निहित होना चाहिए और अभियुक्त को इसे उस अन्य व्यक्ति हेतु या उस अन्य के लाभ हेतु रखना होगा।

*41. **जसवन्तमत मणिलाल अखाने बनाम स्टेट ऑफ बॉम्बे MANU/SC/0030/1956: 1956CriLJ1116** में न्यायमूर्ति सिन्हा, ने निम्नवत टिप्पणी की:*

भारतीय दंड संहिता की धारा 409 के अन्तर्गत किसी अपराध को सिद्ध करने वाला प्रथम आवश्यक घटक यह है कि संपत्ति सौंपी गई थी... लेकिन जहाँ धारा 405 जो "आपराधिक न्यास भंग" को परिभाषित करती है, किसी व्यक्ति को किसी भी रीति से संपत्ति न्यस्त किये जाने की बात करती है, यह न्यास की सभी तकनीकी विशेषताओं के साथ एक न्यास के निर्माण पर विचार नहीं करता है। यह एक ऐसे संबंध के निर्माण पर विचार करता है जिसके

अन्तर्गत संपत्ति का स्वामी इसे किसी अन्य व्यक्ति को सौंप देता है ताकि कोई निश्चित आकस्मिकता उत्पन्न होने तक वह उसे अपने पास रखे या एक निश्चित घटना के घटित होने पर, उसका निपटान किए जाने तक वह उसे अपने पास रखे।

*42. **अखरभाई नज़रअली बनाम मोहम्मद हुसैन भाई MANU/MP/0021/1961 :AIR1961MP37** में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियाँ कीं:*
ऐसा हो सकता है कि कर्मचारियों के योगदान की कटौती और प्रतिधारण उसी तथ्य के आधार पर, या विधि या वैधानिक नियम के प्रावधान के आधार पर बनाया गया एक न्यास है। लेकिन इसके अलावा भी, कर्मचारियों को यह बताना कि यह भविष्य निधि योजना में उनका योगदान है और फिर कटौती या वसूली करना और फिर इसे प्रतिधारित करना, आपराधिक न्यास भंग का अपराध गठित करता है। यह इतना स्पष्ट है कि इसके बारे में और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

*43. इन टिप्पणियों को **हरिहर प्रसाद दुबे बनाम तुलसी दास मुंधड़ा और अन्य MANU/ SC/0263/1980 : 1980CriLJ1340** में इस न्यायालय द्वारा पूर्णतः समर्थित और अनुमोदित किया गया था, जो निम्नवत है:*

हमारे मत में, यह स्थिति का सही कथन है और हम मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीश की इस टिप्पणी से भी सहमत हैं कि "यह इतना स्पष्ट है कि इसके बारे में और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है"। इसलिए, हमारा विचार हैं कि प्रतिवादियों के विरुद्ध आरोप को रद्द करने वाला आदेश स्पष्ट रूप से गलत है।

*44. **बासुदेब पात्रा बनाम कनाई लाल हलधर AIR 1949 Cal 207** में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने निम्नवत टिप्पणी की:*
जबकि धारा 405 का उदाहरण समान रूप से, स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करता है कि संपत्ति अभियुक्त के कब्जे में या तो एक अभिव्यक्त न्यास द्वारा या किसी प्रक्रिया द्वारा अभियुक्त को न्यास की स्थिति में रख देने से आती है... वर्तमान मामले के तथ्यों पर, जो, जैसा कि मैंने कहा है, इस स्तर पर प्रश्न नही किया जा सकता है। यह पूर्णतः स्पष्ट है कि आभूषण लाभार्थी स्वामी द्वारा याचिकाकर्ता को इस विश्वास के साथ सौंपे गए थे कि जिस उद्देश्य के लिए उन्हें सौंपा गया था, उपयोग के बाद उन्हें उचित समय पर लाभार्थी स्वामी को वापस कर दिया जाएगा। यदि यह न्यस्त करना नहीं है, तो यह कल्पना करना असंभव है कि न्यस्त करना क्या हो सकता है।

*45. **वेलजी राघवजी पटेल बनाम महाराष्ट्र राज्य MANU/SC/0091/1964: 1965CriLJ431** मामले में इस निर्णयाधार को इस न्यायालय द्वारा पूर्णतः अनुमोदित किया गया था, जहाँ निम्नलिखित टिप्पणी की गई थी:*

किसी अभियुक्त को संपत्ति पर "प्रभुत्व सौंपने" को स्थापित करने के लिए संपत्ति पर उस व्यक्ति के प्रभुत्व का अस्तित्व ही पर्याप्त नहीं है। आगे यह अवश्य प्रदर्शित किया जाना चाहिए कि उसका प्रभुत्व न्यास का परिणाम था। इसलिए, जैसा कि हैरिस, मुख्य न्यायाधीश ने उचित टिप्पणी की है कि अभियोजन पक्ष को यह स्थापित करना ही चाहिए कि साझेदारी की परिसम्पत्तियों पर अथवा किसी विशिष्ट परिसम्पत्ति पर प्रभुत्व, पक्षकारों के मध्य एक विशिष्ट करार के कारण था जो अभियुक्त के पक्ष मे न्यस्त था।

*46. **गुजरात राज्य बनाम जसवन्त लाल नाथलाल MANU/SC/0091/1967: 1968CriLJ803** के मामले में, न्यायमूर्ति हेगड़े द्वारा यह प्रकार टिप्पणी की गई:*

'न्यस्त' शब्द का प्रभाव यह है कि किसी संपत्ति को न्यस्त करने वाला व्यक्ति या जिसकी ओर से वह संपत्ति किसी अन्य को सौंपी गई है, वह उसका स्वामी बना रहेगा। इसके अलावा संपत्ति न्यस्त करने वाले व्यक्ति को संपत्ति प्राप्त करने वाले व्यक्ति पर विश्वास होना चाहिए ताकि उनके मध्य एक विश्वसनीय संबंध बन सके।

*47. **सुशील कुमार गुप्ता बनाम जॉय शंकर भट्टाचार्जी MANU/SC/0201/1970: [1970]3SCR770** में इस न्यायालय ने निम्नवत टिप्पणी की:*

आपराधिक न्यास भंग का अपराध तब कारित होता है, जब कोई व्यक्ति, जिसे किसी भी रीति से संपत्ति न्यस्त की जाती है या तो वह उस पर प्रभुत्व रखता है या बेईमानी से उसका दुरुपयोग करता है या उसे स्वयं उपयोग हेतु संपरिवर्तित कर लेता है... अपीलकर्ता का उसके न्यास में उसे सौंपे गए धन के निस्तारण का तरीका स्पष्ट रूप से आपराधिक न्यास भंग है।

*48. **सुपरिटेंडेंट एण्ड रिमेम्ब्रान्सर आफ लीगल अफेयर्स, पश्चिम बंगाल बनाम एस.के. रॉय MANU/SC/0229/1974: 1974CriLJ678** के वाद में इस न्यायालय ने धारित किया कि 'न्यास' हेतु दो तथ्य आवश्यक हैं, अर्थात, (1) न्यास "किसी भी तरीके से" उत्पन्न हो सकता है, चाहे वह धोखाधड़ीपूर्ण हो या नहीं, और (2) अभियुक्त का संपत्ति पर अधिग्रहण या प्रभुत्व होना चाहिए।"*

39. विधि की उपरोक्त प्रस्थापना की पृष्ठभूमि में अभिलेख के साथ-साथ अभियोजन पक्ष के साक्षियों के कथन के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि विचारण न्यायालय के निष्कर्ष इस तथ्य के संबंध में हैं कि विदाई के समय, परिवादी के स्वयं के कथनानुसार वस्तुयें अभियुक्त संतोष कुमार गुप्ता को सौंपी गयी थी। हालाँकि, परिवादी द्वारा अपने साक्ष्य में यह विशेष रूप से कहा गया है कि संतोष कुमार गुप्ता को वस्तुओं का उक्त न्यास उन्हें वस्तुएं लौटाने के उद्देश्य से किया गया था। इस प्रकार, इस तथ्य के संबंध में विचारण न्यायालय के इस निष्कर्ष के सम्बन्ध में कि वस्तुएं मात्र अभियुक्त संतोष कुमार गुप्ता (पति) को सौंपी गयी थी, यह नहीं कहा जा सकता है कि यह अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर आधारित नहीं है। यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि भा०दं०सं० की धारा 406 के अन्तर्गत अपराध संस्थित करने के लिए उन वस्तुओं या

संपत्ति को न्यस्त करना, जिनके बारे में कहा जाता है कि उनका दुरुपयोग किया गया है, एक महत्वपूर्ण घटक है और इसके अभाव में, अभियुक्तों को भा०द०सं० की धारा 406 के अन्तर्गत दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

40. अभिलेख पर उपलब्ध समग्र अभियोजन साक्ष्य के अवलोकनोपरान्त, यह स्पष्ट है कि पहले तो वस्तुएं मात्र अभियुक्त संतोष कुमार गुप्ता को सौंपी गयी थी और उक्त वस्तुएं वापस करने का नोटिस भी मात्र और मात्र अभियुक्त संतोष कुमार गुप्ता को दिया गया था। इस प्रकार, तथ्यात्मक संरचना/साक्ष्य की इस पृष्ठभूमि में, मुझे विचारण न्यायालय के निष्कर्षों में कोई अवैधता नहीं मिली कि संतोष कुमार गुप्ता को छोड़कर अन्य सह-अभियुक्त व्यक्तियों को भा०दं०सं० की धारा 406 के अन्तर्गत अपराध करने के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

41. भा०दं०सं० की धारा 120 बी के अन्तर्गत अपराध के लिए अभिलिखित दोषमुक्ति के निष्कर्ष पर इस न्यायालय का विचार है कि जहाँ सभी सह-अभियुक्तों को भा०दं०सं० की धारा 406 के अन्तर्गत लगाए गए आरोपों से विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया है, तो विचारण न्यायालय के लिए अपीलकर्ता संतोष कुमार गुप्ता को भा०दं०सं० की धारा 120 बी के अन्तर्गत अपराध के लिए दोषी ठहराना संभव नहीं था क्योंकि आपराधिक षडयन्त्र के लिए किसी अन्य व्यक्ति की उपस्थिति की आवश्यकता होती है, और किसी भी एकमात्र अभियुक्त को भा०दं०सं० की धारा 120 बी के अन्तर्गत अपराध करने के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। यह स्पष्ट किया जाना होगा कि भले ही अभियोजन पक्ष का आरोप इस आशय का हो कि कुछ अज्ञात व्यक्ति थें, जिनके साथ षडयन्त्र रचा गया था, तब उस स्थिति में एकमात्र अभियुक्त की दोषसिद्धि भा०दं०सं० की धारा 120-बी के अन्तर्गत बरकरार रखी जा सकती है, जो कि वर्तमान वाद में वादी का मामला नहीं है। अन्यथा भी अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य दर्शाति हैं कि विचारण न्यायालय के समक्ष पेश किए गए साक्ष्यों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए एकमात्र अभियुक्त संतोष कुमार गुप्ता की दोषसिद्धि उचित थी। **टोपनदास बनाम बम्बई राज्य; MANU/SC/0032/1955** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार मत प्रकट किया है:-

"6. भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ए में आपराधिक षडयन्त्र को परिभाषित किया गया है:-"जहाँ दो या दो से अधिक व्यक्ति (i) कोई अवैध कार्य, या (ii) कोई ऐसा कार्य जो अवैध साधनों द्वारा अवैध नहीं है, करने के लिए सहमत होते हैं, ऐसे समझौते को आपराधिक षडयन्त्र माना जाता है। परिभाषा की शर्तों के अनुसार दो या दो से अधिक व्यक्ति ऐसी सहमति में पक्षकार होने चाहिए और यह पुरानी उक्ति है कि किसी अकेले व्यक्ति को कभी भी आपराधिक षडयन्त्र का दोषी नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि इसका सीधा सा कारण यह है कि कोई अपने साथ षडयन्त्र नहीं रच सकता। इसलिए, यदि 4 नामित व्यक्तियों पर भारतीय दंड संहिता की धारा 120-बी के अन्तर्गत अपराध करने का आरोप लगाया गया था, और यदि इन 4 में से तीन को आरोप से दोषमुक्त कर दिया गया, तब शेष आरोपी, जो हमारे समक्ष वाद में अभियुक्त संख्या 1 है, को कभी भी आपराधिक षडयन्त्र के अपराध का दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

*7. यदि उपर्युक्त प्रस्थापना के प्राधिकारों की आवश्यकता थी, तो इसे **आर्चबोल्ड कृत***

क्रिमिनल प्लीडींग, इविडेंस एण्ड प्रैक्टिस, 33वें संस्करण, पृष्ठ 201, प्रस्तर 361 *में पाया जा सकता है: -*

"जहाँ एक ही अभियोग में कई कैदी सम्मिलित हैं, जूरी एक व्यक्ति को दोषी पा सकती है और अन्य व्यक्तियों को दोषमुक्त कर सकती है, और इसके विपरीत भी कर सकती है। लेकिन अगर कुछ कैदियों को दंगे के लिए दोषी ठहराया जाता है, और जूरी दो को छोड़कर सभी को दोषमुक्त कर देती है, तो उन्हें उन दो को भी दोषमुक्त करना होगा, जब तक कि अभियोग में यह आरोप नहीं लगाया जाता है और सिद्ध नहीं किया जाता है कि उन्होंने किसी अन्य व्यक्ति के साथ मिलकर दंगा किया है जिस पर उस अभियोग में विचारण नहीं किया गया है।

2 ***Hawk. c, 47. s. 8. And****, यदि किसी षडयंत्र के अभियोग पर, जूरी एक के अतिरिक्त सभी कैदियों को दोषमुक्त कर देती है, तो उन्हें उस एक को भी दोषमुक्त करना होगा, जहाँ तक कि अभियोग में यह आरोप नहीं लगाया जाता है, और सिद्ध नहीं किया जाता है, कि उसने किसी अन्य व्यक्ति के साथ षडयन्त्र रचा है, जिस पर उस अभियोग में विचारण नहीं किया गया है।* ***2 Hawk.C.47. s. 8; 3 Chit. Cr. L., (दूसरा संस्करण) 1141; R. v. थॉम्पसन, 16 Q.B.D. 832; R.v. मैनिंग, 12. Q.B.D. 241; R.v. प्लमर [1902] 2 के.बी. 339"***

8. ***द किंग बनाम प्लमर ([1902] 2 K.B. 339),*** *जिसे इस प्रस्थापना के समर्थन में उद्धृत किया गया है, एक ऐसा वाद था जिसमें तीन व्यक्तियों पर एक साथ षडयन्त्र रचने का आरोप लगाने वाले अभियोग के परीक्षण पर, एक व्यक्ति को दोषी ठहराया गया था और एक निर्णय उसके विरुद्ध पारित किया गया था, और अन्य दो को दोषमुक्त कर दिया गया। यह कहा गया कि जिसने अपना दोष स्वीकार कर लिया था उसके विरुद्ध दिया गया निर्णय गलत था और पोषणीय नही था। लॉर्ड जस्टिस राइट ने पृष्ठ 343 पर टिप्पणी किया:-*

"इस आशय का बहुत अधिक प्रमाण है कि, यदि अपीलकर्ता ने षडयन्त्र के आरोप में दोषी नहीं होने का अभिकथन किया था, और सभी तीन प्रतिवादियों का विचारण एक साथ उस आरोप पर किया गया था, और अपीलकर्ता को दोषी ठहराया गया था और एकमात्र कथित सह-षडयन्त्रकर्ता को दोषमुक्त कर दिया गया था । अपीलकर्ता पर कोई निर्णय पारित नहीं किया जा सकता था क्योंकि निर्णय को इस निष्कर्ष पर प्रतिकूल माना गया होगा कि अपीलकर्ता और अन्य व्यक्तियों के बीच एक आपराधिक समझौता था और उनके बीच कोई समझौता नहीं था: ***हैरिसन बनाम एरिंगटन (Popham, 202)*** *का सन्दर्भ ग्रहण करें, जहाँ दंगे के लिए तीन व्यक्तियों के अभियोजित होने पर दो को दोषी नहीं पाया गया और एक को दोषी पाया गया, और त्रुटि होने पर इसे "शून्य निर्णय" धारित किया, और कहा गया कि "11 Hen. 4, c. 2 में दो व्यक्तियों के विरुद्ध षडयंत्र मामले की तरह",, और उनमें से मात्र एक को दोषी पाया जाता है, तो यह शून्य है, क्योंकि कोई अकेला व्यक्ति षडयंत्र नहीं कर सकता।"*

*9. लॉर्ड जस्टिस ब्रूस ने पृष्ठ 347 पर **चिट्टीज़ क्रिमिनल लॉ, द्वितीय संस्करण, खंड तृतीय, पृष्ठ 1141** में कथन को अनुमोदन सहित उद्धृत किया:-*

"और यह माना जाता है कि यदि एक व्यक्ति के अतिरिक्त अभियोग में उल्लिखित सभी प्रतिवादियों को, एक को छोड़कर, दोषमुक्त कर दिया जाता है, और इसे कुछ निश्चित अज्ञात व्यक्तियों के साथ षडयन्त्र का तथ्य नहीं बताया गया है, तो एकल प्रतिवादी हेतु दंडादेश अमान्य होगा, और उस पर कोई निर्णय पारित नहीं किया जा सकता है"।

10. लॉर्ड जस्टिस ब्रूस द्वारा की गई निम्नलिखित टिप्पणियाँ हमारे समक्ष प्रस्तुत सन्दर्भ में उपयुक्त हैं:-

" इस प्रस्तर का मुद्दा इस परिस्थिति पर केंद्रित है कि प्रतिवादियों को एक ही अभियोग में सम्मिलित किया गया है, और मुझे लगता है कि यह तार्किक रूप से षडयन्त्र के अपराध की प्रकृति का अनुसरण करता है, जहाँ दो या दो से अधिक व्यक्तियों पर एक ही अभियोग में षडयन्त्र रचने का आरोप लगाया जाता है, और अभियोग में नामित नहीं किए गए अन्य व्यक्तियों के साथ षडयन्त्र रचने का कोई आरोप अभियोग में नहीं है। तब, यदि अभियोग में नामित व्यक्तियों में से एक को छोड़कर सभी को दोषमुक्त कर दिया जाता है, तो शेष एकमात्र व्यक्ति पर कोई वैध निर्णय पारित नहीं किया जा सकता है, चाहे वह जूरी के निर्णय से या अपनी स्वयं की स्वीकारोक्ति पर दोषी ठहराया गया है, क्योंकि, दंडादेश का अभिलेख मात्र अभियोग के अनुसार ही बनाया जा सकता है, यह असंगत और विरोधाभासी होगा और प्रथमदृष्टया अत्यधिक अनुचित होगा। षडयन्त्र के अपराध का सार यह है कि दो या दो से अधिक व्यक्ति षडयन्त्र के उद्देश्य को पूरा करने के लिए एकजुट हुए, समूहगत हुए और एक साथ सहमत हुए।''

*11. भारत में भी इस स्थिति को स्वीकार किया गया है। **गुलाब सिंह बनाम द एम्परर (A.I.R. 1916 All. 141)** में जस्टिस नॉक्स **ने द किंग बनाम प्लमर**, के उपरोक्त निर्णय में धारित सिद्धांत का पालन किया और टिप्पणी की कि "षडयन्त्र के अभियोजन में यह सिद्ध करना आवश्यक है कि दो या दो से अधिक व्यक्ति षडयन्त्र के उद्देश्य से सहमत थे" और "किसी एक द्वारा षडयन्त्र नहीं हो सकता।"*

42. **परवीन बनाम हरियाणा राज्य; MANU/SC/1190/2021** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार मत प्रकट किया है:-

''12. यह स्पष्टतः स्थापित है कि धारा 120-बी के दायरे में षडयन्त्र के आरोप को सिद्ध करने के लिए यह स्थापित करना आवश्यक है कि अविधिक कार्य करने के लिए पक्षों के मध्य सहमति थी। साथ ही, यह ध्यान देने योग्य है कि प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा षडयन्त्र को स्थापित करना नितान्त कठिन है, लेकिन साथ ही, किसी अवैध कार्य को करने के उद्देश्य के लिए षडयन्त्रकर्ताओं के मध्य मस्तिष्को के मिलन के प्रदर्शन हेतु किसी भी साक्ष्य के अभाव में,

> *किसी व्यक्ति को भा०दं०सं० की धारा 120-बी के अन्तर्गत अपराध के लिए दोषी ठहराना सुरक्षित नहीं है। बिखरे हुए साक्ष्य, जिन पर अभियोजन निर्भर करता है, को अभियुक्त के आपराधिक षडयन्त्र के अपराध से जोड़ने के लिए पर्याप्त नहीं माना जा सकता है ...."*

43. यह समझा जाना चाहिए कि द०प्र०सं० की धारा 378(4) के अन्तर्गत, परिवादी को द०प्र०सं० की धारा 378(3) के विपरीत, अपील करने के लिए विशेष अनुमति की आवश्यकता होती है, जहाँ मात्र अपील करने की अनुमति की आवश्यकता है। इसका अर्थ है कि न्यायालय से द०प्र०सं० की धारा 378(4) के अन्तर्गत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने का अनुरोध करने के लिए गंभीर अवैधता या स्पष्ट विकृति प्रदर्शित करना अपेक्षित है। इस प्रस्थापना के अतिरिक्त कोई अन्य दृष्टिकोण नहीं हो सकता है कि दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में, न्यायालय के पास उन साक्ष्यों की समीक्षा करने की पूरी शक्ति है जिनके आधार पर दोषमुक्ति अभिलिखित की गई है। हालाँकि, यह याद रखना होगा और ध्यान में रखना होगा कि निर्दोषिता की प्रारंभिक उपधारणा, जो वाद के समय प्रतिवादियों के लिए उपलब्ध थी, दोषमुक्ति के आदेश से और भी सशक्त हो गई है, और विचारण न्यायालय के निर्णय को मात्र अत्यंत ठोस और बाध्यकारी कारणो से उत्क्रमित किया जा सकता है। हालाँकि, पर्याप्त या बाध्यकारी या सशक्त कारणों का अर्थ दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में अपीलीय न्यायालय की असंदिग्ध शक्तियों को कम करना नहीं है, और अपीलीय न्यायालय साक्ष्यों के पुनः मूल्यांकन के आधार पर स्वयं अपना निष्कर्ष प्रदान कर सकती है, लेकिन इस हेतु, न्यायालय को न केवल अभिलेख पर उपलब्ध प्रत्येक साक्ष्य पर विचार करना चाहिए जो किसी निष्कर्ष पर पहुंचने में तथ्य के प्रश्नों और दोषमुक्त करने के आदेश के समर्थन में विचारण न्यायालय द्वारा प्रस्तुत कारणों पर असर डाल सकता है, बल्कि उन कारणों को भी निर्णय में यह प्रदर्शित करने हेतु व्यक्त करना चाहिए कि दोषमुक्त करना उचित नहीं था। **अजमेर सिंह बनाम पंजाब राज्य, 1953 SCR 418; सांवत सिंह और अन्य बनाम राजस्थान राज्य, AIR 1961 SC, 715;** और **साधु शरण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य Cr.L.J. 1908, 2016** के वादो में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों से हमारा दृष्टिकोण सशक्त हुआ है।

44. उपरोक्त विधिक स्थिति की पृष्ठभूमि में विचारण न्यायालय के निर्णय का अध्ययन करने के साथ-साथ साक्ष्य मूल्यांकन के स्थापित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, मेरा विचार है कि यह सिद्ध करने का भार सदैव अभियोजन पक्ष/वादी पर होता है कि अभियुक्त व्यक्ति(व्यक्तियों) का अपराध युक्तियुक्त संदेह से परे है और यदि साक्ष्य के युक्तियुक्त मूल्यांकन पर दो दृष्टिकोण संभव प्रतीत होते हैं तो वह दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए जो अभियुक्त व्यक्ति(व्यक्तियों) के अनुकूल हो। हालाँकि, न्यायालय को सतर्क रहना है कि प्रत्येक संदेह के लाभ का दावा अभियुक्त व्यक्ति द्वारा न किया जा सके। मात्र युक्तियुक्त संदेह का लाभ ही किसी अपराध के अभियुक्त को दिया जा सकता है।

45. दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील दायर करने हेतु विशेष अनुमति देने के लिए विधि के उपर्युक्त प्रस्थापनाओं को ध्यान में रखते हुए, दोषमुक्ति के निर्णय में हस्तक्षेप करने के लिए अत्यंत सशक्त और ठोस कारणों की आवश्यकता होती है, और यदि विचारण न्यायालय के निष्कर्ष अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर आधारित हैं और ऐसा कुछ भी नहीं है जो विचारण न्यायालय द्वारा किए गए

अनंतिम

साक्ष्यों के मूल्यांकन को विकृत करार दे, तब दोषमुक्ति के निष्कर्ष को सरलता से भंग नहीं किया जाना चाहिए।

46. अभियोजन साक्ष्य में दर्शित होने वाली अंतर्निहित दुर्बलताओं को ध्यान में रखते हुए, हमारा सुविचारित मत है कि विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण एक संभावित और तार्किक दृष्टिकोण था और विचारण न्यायालय के निर्णय को अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर आधारित न होना या अवैध, अतार्किक या असंभाव्य नहीं कहा जा सकता है। इसलिए, मैं संतुष्ट हूं कि इस अपील में सफलता की तनिक भी आशा नहीं है और तदनुसार, विचारण न्यायालय के निर्णय में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। इसलिए, अपील के लिए विशेष अनुमति देने की प्रार्थना अस्वीकृत की जाती है और अपील दायर करने के लिए विशेष अनुमति प्रदान करने का आवेदन खारिज किया जाता है।

47. चूँकि अपील के लिए विशेष अनुमति प्रदान करने का आवेदन खारिज कर दिया गया है, अतः अपील भी पोषणीय नहीं होगी। परिणामस्वरूप, अपील भी खारिज की जाती है।

(2023) 1 ILRA 1006
अपीलीय क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 09.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा
माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद

जेल अपील संख्या-38 वर्ष 2022

दीपक जायसवाल **... अपीलार्थी**
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य **... प्रतिपक्षी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
जेल से, श्री विंदेश्वरी प्रसाद

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 25 और 27- दर्ज की गई किसी भी प्रथम सूचना रिपोर्ट के अभाव में अभियुक्त-अपीलकर्ता का कोई प्रकटीकरण बयान दर्ज नहीं किया जा सकता था और न ही अभियुक्त-अपीलकर्ता की ओर इशारा करने पर शव के संबंध में कोई फर्द बरामदगी तैयार किया जा सकता था। इकबालिया बयान और बरामदगी इस प्रकार प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने या अभियुक्त को हिरासत में लेने से पहले ही की गई थी। इस प्रकार कथित इकबालिया बयान के साथ-साथ शव की बरामदगी इस मामले में दर्ज किसी भी प्रथम सूचना रिपोर्ट या अभियुक्त को हिरासत में लेने के अनुसरण में विवेचनाधिकारी द्वारा तैयार किए गए किसी भी दस्तावेज द्वारा समर्थित नहीं है। इसलिए, इकबालिया बयान, अधिक से अधिक पुलिस को दिया गया एक प्रकटीकरण होगा जो स्पष्ट रूप से भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 के आधार पर अस्वीकार्य होगा। इसके अलावा बरामदगी तब नहीं की जाती है जब आरोपी-अपीलकर्ता प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के बाद हिरासत में था, इसलिए, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के प्रावधान भी लागू नहीं होंगे और कथित बरामदगी को कानूनी सबूत नहीं माना जा सकता है और न ही इसे अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ मुकदमे के चरण में साक्ष्य में पढ़ा जा सकता है।

जहां प्राथमिकी दर्ज होने से पहले शव की कथित बरामदगी की गई है, वहां उक्त बरामदगी पर भरोसा नहीं किया जा सकता है क्योंकि धारा 27 में पुलिस हिरासत में प्रकटीकरण पर विचार किया गया है और चूंकि कोई खुलासा बयान दर्ज नहीं किया गया था, इसलिए आरोपी की स्वीकारोक्ति साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 से प्रभावित होगी।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 313- अभियुक्त-अपीलकर्ता की ओर इशारा करते हुए शव की बरामदगी की दलील उसके खिलाफ अन्यथा नहीं पढ़ी जा सकती क्योंकि अभियुक्त को धारा 313 द०प्र०स के तहत उसके बयान की रिकॉर्डिंग के चरण में इस पहलू पर सामना नहीं किया गया दंड प्रक्रिया संहिता एक खाली औपचारिकता नहीं है और मुकदमे के चरण में उसके खिलाफ उत्पन्न परिस्थितियों की व्याख्या करने के लिए अभियुक्त के पास ठोस अधिकार है। जब तक धारा 313 द०प्र०स० के तहत बयान को दर्ज करने के लिए अभियुक्त के सामने विशेष

रूप से चुनौतीपूर्ण सामग्री नहीं रखी जाती है, तब तक अभियुक्त की दोषसिद्धि को दर्ज करने के लिए अभियुक्त के खिलाफ चुनौतीपूर्ण सामग्री को पढ़ा या भरोसा नहीं किया जा सकता है।

जहां आरोपी की ओर इशारा करने पर शव की बरामदगी के बारे में चुनौतीपूर्ण तथ्य उसके सामने धारा 313 द०प्र०स० के तहत नहीं रखे नहीं गए है, तो उक्त तथ्य को आरोपी के खिलाफ नहीं पढ़ा जा सकता है। (पैरा 35, 36, 37, 40, 42)

आपराधिक अपील की अनुमति दी। (ई-3)

<u>केस लॉ/न्याय निर्णय जिन पर पर भरोसा किया गया</u>:-

1. अघनू नगेसिया बनाम बिहार राज्य, 1966 एस.सी. 119

2. क्रिमनल अपील संख्या-2887 वर्ष 2018 (राम निवास बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) 01.12.2022 का निर्णय

(माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा
और माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद द्वारा प्रदत्त)

1. इस जेल अपील में आरोपी-अपीलकर्ता दीपक जायसवाल द्वारा विशेष सत्र परीक्षण संख्या-12 वर्ष 2016 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम दीपक जायसवाल) में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 1 नवंबर, 2019 के खिलाफ चुनौती दी गई है, जो धारा 376, 302, 201 भ०द०वि०, धारा 3/4 पोक्सो अधिनियम और धारा-7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, थाना-मडियाहू, जिला जौनपुर के तहत मामला अपराध संख्या 266 वर्ष 2016 से उद्भूत हुआ है, जिसके तहत अभियुक्त-अपीलकर्ता को दोषी ठहराया गया है और धारा 302 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है, जिसमें प्रत्येक को 10,000 रुपये का जुर्माना लगाया गया है, उसके चूक में उसे एक वर्ष का अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा; धारा 376 भ०द०वि० के तहत 50,000 रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास और जुर्माने में चूक कि स्थिति में, उसे एक वर्ष का अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा; धारा 201 भ०द०वि० के तहत दो साल के सश्रम कारावास के साथ 5,000 रुपये का जुर्माना, और जुर्माने में चूक कि स्थिति में, उसे तीन महीने की अतिरिक्त कैद काटनी होगी; और 500/- रुपए के जुर्माने के साथ छह माह के साधारण कारावास की सजा भी दी जाती है, और जुर्माने में चूक कि स्थिति में उसे एक माह का अतिरिक्त कारावास और भुगतना पड़ेगा इस टिप्पणी के साथ कि सभी सजाएं साथ-साथ चलाई जाती हैं।

2. हमने श्री विंदेश्वरी प्रसाद, एडवोकेट को सुना, जो अभियुक्त-अपीलकर्ता की ओर से न्याय मित्र के रूप में पेश हुए हैं, राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्रीमती अर्चना सिंह को सुना, और रिकॉर्ड पर उपलब्ध संपूर्ण सामग्री का अवलोकन भी किया।

3. अभियोजन पक्ष के अनुसार प्रथम सूचनाकर्ता बबीता चौबे (अ०सा०-1) की दिनांक 27 जनवरी, 2016 की लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श-क/1) के आधार पर प्राथमिकी (प्रदर्श-क/3) के रूप में मामला अपराध संख्या-0266 वर्ष 2016, उसी दिन रात्रि 08:15 बजे दर्ज किया गया है। अ०सा०-1 द्वारा रिपोर्ट को साबित किया गया है जिसके अनुसार सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 मोहल्ला गंज, थाना-मडियाहू, जिला जौनपुर में अपने माता-पिता के घर आई थी। 27 जनवरी 2016 को सूचनाकर्ता की लगभग 7 वर्ष की पुत्री घर के सामने शिव मंदिर गई थी और अन्य बच्चों के साथ चबूतरे पर खेल रही थी। सूचनाकर्ता उसे घर से देख रही थी। शाम 04:00 बजे पास के इलाके के निवासी आरोपी-अपीलकर्ता को मंदिर के आसपास देखा गया और उसने पीड़िता को स्नेह दिखाया और उसे टॉफी और बिस्किट की पेशकश की और उससे बात करना शुरू कर दिया। आरोपी अपीलकर्ता को पीड़िता को ले जाते हुए देखा गया लेकिन पहले सूचनाकर्ता को उसके इरादों पर संदेह नहीं हुआ और उसने सोचा कि आरोपी-अपीलकर्ता केवल उसे दुलार रहा है। आरोप है कि वहां मौजूद कई बच्चों ने आरोपी-अपीलकर्ता को पीड़िता को ले जाते हुए देखा। सूचनाकर्ता का ध्यान घर के काम के कारण भटक गया और इसका फायदा उठाकर आरोपी-अपीलकर्ता ने कथित तौर पर नाबालिग पीड़िता को बहला-फुसलाया। सूचनाकर्ता इस विश्वास के तहत रही कि उसकी बेटी अपने दोस्त के साथ खेल रही थी। कुछ देर बाद जब पीड़िता दिखाई नहीं दी तो सूचनाकर्ता मंदिर में आई लेकिन उसकी बेटी नहीं मिली। सूचनाकर्ता को दृढ़ विश्वास था कि यह आरोपी अपीलकर्ता था जो पीड़िता को ले गया था। चूंकि आरोपी-अपीलकर्ता की इलाके में खराब प्रतिष्ठा थी, इसलिए सूचनाकर्ता को लगने लगा कि आरोपी-अपीलकर्ता पीड़िता को बुरे इरादे से किसी अज्ञात स्थान पर अपने साथ ले गया।

4. अंततः अभियुक्त-अपीलकर्ता शिव चित्र मंदिर (टॉकीज), मडियाहू में पाया गया। इस संबंध में सूचना पुलिस को दी गई। पुलिस मौके पर आई और आरोपी-अपीलकर्ता से पूछताछ की, जिसने अपना अपराध कबूल कर लिया और बताया कि वह पीड़िता को स्वामी विवेकानंद इंटरमीडिएट गर्ल्स कॉलेज के एक कमरे में ले गया था और उसके मुंह को दबाकर उसके साथ बलात्कार किया ताकि वह चिल्ला न सके। पीड़िता अंततः गतिहीन हो गयी और आरोपी-अपीलकर्ता शिव चित्र मंदिर

(टॉकीज) में छिप गया। आरोपी-अपीलकर्ता ने पुलिस को सूचना दी कि पीड़िता का शव कॉलेज में पड़ा है। वह पुलिस और पहले सूचनाकर्ता को कॉलेज ले गया। कॉलेज का गेट बाहर से बंद था और कोई चपरासी नहीं था। आरोपी-अपीलकर्ता ने बताया कि बेलवन दलित बस्ती की ओर कॉलेज के लिए अलग मार्ग था और चारदीवारी से सटे एक कमरा था जिसमें पीड़िता का शव पड़ा था। आरोपी-अपीलकर्ता पुलिस और पहले सूचनाकर्ता को कमरे में ले गया और टॉर्च की रोशनी में पीड़िता का शव दिखाई दिया। कमरे में न तो कोई खिड़की थी और न ही कोई दरवाजा। पुलिस ने मोहल्ले के अन्य निवासियों के साथ चारदीवारी कूदकर कमरे में प्रवेश किया और टॉर्च की रोशनी में पीड़िता को नग्न पाया। इसलिए पहले सूचनाकर्ता को पता चला कि उसकी बेटी का यौन उत्पीड़न किया गया है और फिर उसकी हत्या कर दी गई है। घटना को सुनकर लोग भयभीत होकर अपने घरों में छिप गए और समाज में भय और आतंक का माहौल व्याप्त हो गया और सार्वजनिक व्यवस्था भंग हो गई। टॉर्च की रोशनी और बिजली में लिखित रिपोर्ट राजेश पांडे (अ०सा०-2) द्वारा लिखी गई थी, जो पहले सूचनाकर्ता का पड़ोसी है। सूचनाकर्ता ने लिखित रिपोर्ट पर अपने अंगूठे का निशान लगाया।

5. मामले में जांच आगे बढ़ी और पुलिस द्वारा मौके से खून से सनी और सादा मिट्टी एकत्र की गई। पुलिस ने आरोपी-अपीलकर्ता को गिरफ्तार कर लिया, जिसकी चिकित्सकीय जांच की गई और उसके अंडरगारमेंट्स (प्रदर्श-क/15) भी बरामद किए गए और फोरेंसिक राय के लिए भेजे गए।

6. पंचनामा की कार्यवाही रात 10.15 बजे शुरू हुई और 23.50 बजे समाप्त हुई। पंचनामा कारवाई उस स्थान पर की गई थी जहां पीड़िता का मृत शरीर पाया गया था, पहले सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 और अ०सा०-2 पंचनामा के गवाह हैं। पीड़िता 7 साल की नाबालिग लड़की पाई गई, उसके नाक और मुंह को दबाया गया था। उसके प्राइवेट पार्ट से खून बह रहा था। कोई अन्य चोट नहीं मिली। शव को सील कर शव परीक्षण के लिए भेज दिया गया है।

7. शव का शव परीक्षण 28 जनवरी, 2016 को दोपहर 01:40 बजे किया गया है। शव परीक्षण रिपोर्ट के अनुसार मृत्यु की अवधि एक दिन है और मृत्यु का कारण मृत्यु पूर्व गला घोंटने के परिणामस्वरूप श्वासावरोध है और योनि रक्तस्राव भी 'सदमे' में योगदान देता है।

8. पीड़िता पर निम्नलिखित मृत्यु पूर्व चोटें पाई गई हैं:

"1. नाक, मुंह, ठोड़ी के नीचे ठोड़ी पर घर्षण और संलयन मौजूद है
2. हाइड की हड्डी बरकरार है।
3. जईफ़्रीज़तरनम पर और दोनों स्तन क्षेत्र के आसपास छाती पर नाखून घर्षण और संलयन।
4. नाखून घर्षण और संलयन बाएं हाथ और बाएं हाथ के पार्श्व पहलू पर मौजूद हैं
5. नाखून घर्षण दाहिने ऊपरी बांह पर मौजूद हैं
6. श्रोणि के बाईं ओर घर्षण
7. जननांग से रक्तस्राव मौजूद है
8. हाइमन फटा हुआ है।
9. लेबिया मेजा और मिनोरा के ऊपर रक्तस्राव और सूजन मौजूद हैं।

9. फोरेंसिक जांच रिपोर्ट दिनांकित 19 दिसंबर, 2016 भी रिकॉर्ड पर लाई गई है, जिसके अनुसार स्लाइड, नेल क्लिपर्स, प्यूबिक हेयर, अंडरवियर, बाल, पैंट, चप्पल, स्ट्रिंग ऑफ पर्ल्स, स्वैब और स्लाइड पर कोई खून नहीं पाया गया। हालांकि मिट्टी पर मानव रक्त बरामद किया गया था। आरोपी-अपीलकर्ता की स्लाइड या अंडरवियर पर कोई शुक्राणु या शुक्राणुजोज़ा नहीं मिला। गवाहों के बयान धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए थे और अंततः वैधानिक जांच के समापन पर आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ 21 नवंबर, 2014 को आरोप पत्र (प्रदर्श-क/13) प्रस्तुत किया गया। विवेचनाधिकारी ने आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 376, 302, 201 भ०द०वि०, धारा 3/4 पॉक्सो एक्ट और धारा-7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम के तहत आरोप साबित पाया।

10. दिनांक 21 नवंबर, 2014 के आरोप-पत्र पर संज्ञान लेने के बाद संबंधित मजिस्ट्रेट ने मामले को सत्र न्यायालय में भेज दिया, जहां 20 अप्रैल, 2016 को अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 376, 302, 201 भ०द०वि० और आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम की धारा-7 के तहत आरोप तय किए गए थे। आरोपी अपीलकर्ता को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उसने इन्कार किया और विचारण चाहा।

11. अपने मामले को स्थापित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं:

"i). सूचनादाता-अ०सा०-1 द्वारा प्रस्तुत लिखित रिपोर्ट दिनांक 27 जनवरी, 2016, जिसे राजेश पांडे (अ०सा०-2) द्वारा लिखा गया है, जिसे प्रदर्श-क/1 के रूप में चिह्नित किया गया है।
ई) 27 जनवरी, 2016 की प्रथम सूचना रिपोर्ट को प्रदर्श-क/3 के रूप में चिह्नित किया गया है;
iii). 27 जनवरी, 2016 की जांच रिपोर्ट (पंचायतनामा) को प्रदर्श-क/8 के रूप में चिह्नित किया गया है;

4). 28 जनवरी, 2016 को खून आलूदा और सादी मिट्टी के फ़र्द बरामदगी को प्रदर्श-क/14 के रूप में चिह्नित किया गया है;

v). 28 जनवरी, 2016 के अंडरवियर के फ़र्द बरामदगी को प्रदर्श-क/15 के रूप में चिह्नित किया गया है;

vi). 28 जनवरी, 2016 की शव परीक्षण रिपोर्ट को प्रदर्श/2 के रूप में चिह्नित किया गया है;

vi). 28 जनवरी, 2016 के इंडेक्स के साथ नक्शा नजरी को प्रदर्श/5 के रूप में चिह्नित किया गया है; और

viii) 17 फरवरी, 2016 के आरोप पत्र को प्रदर्श-क/7 के रूप में चिह्नित किया गया है।

12. उपरोक्त दस्तावेजी साक्ष्य के अलावा अभियोजन पक्ष ने तथ्य के तीन गवाहों को पेश किया है, अर्थात्, बबीता चौबे (अ०सा०-1/प्रथम सूचनाकर्ता), जो पीड़िता की मां है, राजेश पांडे (अ०सा०-2/लिखित रिपोर्ट का लेखक), जो अ०सा०-1 का पड़ोसी है, और शीतला प्रसाद पाठक (अ०सा०-3) जो अ०सा०-1 का भाई है। डॉ. भास्कर सिंह (अ०सा०-4) ने पीड़िता का शव परीक्षण कराया है। डॉ. सूर्य प्रकाश (अ०सा०-5) ने अ०सा०-4 को पीड़िता का शव परीक्षण कराने में सहायता की थी। कांस्टेबल विजय प्रकाश यादव (अ०सा०-6) ने चिक प्राथमिकी को साबित किया। उप-निरीक्षक अखिलेश कुमार यादव (अ०सा०-7) पहले विवेचनाधिकारी थे, जिन्होंने आरोपी-अपीलकर्ता को गिरफ्तार किया और उसका इकबालिया बयान भी दर्ज किया है और उसके इशारा करने पर शव की बरामदगी का सत्यापन किया है। राम भरोसे कुशवाहा (अ०सा०-8) दूसरे विवेचनाधिकारी थे। सब इंस्पेक्टर अखिलेश कुमार यादव (अ०सा०-9) ने बताया है कि जिस समय शव बरामद हुआ था, उस समय पीड़िता की नाक और मुंह दबाया गया था। उन्होंने पंचनामा रिपोर्ट की पुष्टि की है।

13. मुकदमे के दौरान रिकॉर्ड पर लाई गई उपरोक्त चुनौतीपूर्ण सामग्री के आधार पर, अभियुक्त-अपीलकर्ता का बयान धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया है, जिसमें उसने आरोप से इनकार किया है और कहा है कि उसे प्रस्तुत मामले में झूठा फंसाया गया है।

14. विचारण न्यायालय मामले में सबूतों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे आरोपी-अपीलकर्ता के अपराध को स्थापित करने में सफल रहा है। शव परीक्षण रिपोर्ट और पंचनामा रिपोर्ट पर भरोसा किया गया है कि पीड़िता के साथ धारा 376 भ०द०वि० के तहत अपराध कारित किया गया है और उसके बाद उसे मौत के घाट उतार दिया गया है। अभियोजन पक्ष के गवाहों यानी अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 के बयान विश्वसनीय और भरोसेमंद पाए गए हैं और जैसा कि उन्होंने पीड़िता को अभियुक्त-अपीलकर्ता के साथ देखा है और वह पीड़िता को ले गया है, जिसका शव उसके बाद मिला है, इस तरह निचली अदालत ने माना है कि मृतक/पीड़िता पर बलात्कार और हत्या का अपराध अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा किया गया है। निचली अदालत ने तदनुसार आरोपी-अपीलकर्ता को दोषी ठहराया है और उसे आजीवन कारावास की सजा सुनाई है जैसा कि पहले ही ऊपर देखा जा चुका है।

15. श्री विंदेश्वरी प्रसाद, अधिवक्ता जो अभियुक्त अपीलकर्ता की ओर से न्याय मित्र के रूप में पेश हुए हैं, प्रस्तुत करते हैं कि अभियुक्त-अपीलकर्ता को प्रस्तुत मामले में झूठा फंसाया गया है और अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे अभियुक्त-अपीलकर्ता के अपराध को स्थापित करने में सक्षम नहीं है। वह प्रस्तुत करता है कि अ०सा०-1/प्रथम सूचनाकर्ता का बयान कि उसने मृतक/पीड़िता को अभियुक्त-अपीलकर्ता के साथ देखा था, विश्वसनीय नहीं है और उसके बयान के मद्देनजर कि आरोपी-अपीलकर्ता की इलाके में खराब छवि थी, अन्यथा यह उम्मीद की गई थी कि मां पीड़िता के साथ आरोपी-अपीलकर्ता की ऐसी कंपनी/साथ पर आपत्ति करेगी। वह आगे प्रस्तुत करता है कि किसी भी गवाह ने वास्तव में अभियोजन पक्ष द्वारा सुझाए गए तरीके से घटना को नहीं देखा है। वह आगे प्रस्तुत करता है कि पहला सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 उसके माता-पिता के घर आई थी, जबकि उसके ससुराल वाले कहीं और रह रहे थे और आरोपी-अपीलकर्ता अलग-अलग इलाके से था, इसलिए सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 द्वारा अभियुक्त-अपीलकर्ता की पहचान स्वयं संदिग्ध बनी हुई है, विशेष रूप से अभियुक्त अपीलकर्ता को पहले से सूचनादाता/अ०सा०-1 के बारे में नहीं पता था। वह यह भी प्रस्तुत करता है कि आरोपी-अपीलकर्ता की ओर इशारा करते हुए शव की कथित बरामदगी स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि शव की बरामदगी प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने से पहले की गई थी जब अभियुक्त हिरासत में नहीं था और इसलिए, पुलिस को कथित रूप से किया गया खुलासा भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 के आधार पर अस्वीकार्य है। वह आगे प्रस्तुत करता है कि चूंकि बरामदगी तब की गई थी जब आरोपी-अपीलकर्ता हिरासत में नहीं था और यहां तक कि प्रथम सूचना रिपोर्ट भी दर्ज नहीं की गई थी, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के प्रावधान लागू नहीं होंगे और इसलिए, बरामदगी अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ कानूनी रूप से स्वीकार्य नहीं होगी। वह यह भी प्रस्तुत करता है कि इन दो परिस्थितियों को छोड़कर, कोई अन्य सबूत नहीं है जिसके आधार पर अभियुक्त-अपीलकर्ता को प्रस्तुत मामले में फंसाया जा सके।

16. प्रति विरोध, श्रीमती अर्चना सिंह, राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि तथ्य

के सभी गवाहों यानी अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 के बयान विश्वसनीय हैं और जैसा कि अभियुक्त-अपीलकर्ता ने 7 साल की लड़की पर बलात्कार का जघन्य अपराध किया है और उसे गला घोंटकर भी मार डाला है, इसलिए वह किसी भी नरमी का हकदार नहीं है। श्रीमती अर्चना सिंह आगे प्रस्तुत करती हैं कि आरोपी-अपीलकर्ता के इशारे पर शव बरामद किया गया है। इसलिए, यह आग्रह किया जाता है कि परिस्थितियों में, अदालत द्वारा अभियुक्त-अपीलकर्ता को दी गई दोषसिद्धि और सजा में कोई हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है।

17. हमने संबंधित तर्कों की जांच की है जैसा कि पक्षों के लिए विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा आग्रह किया गया है और निचली अदालत के रिकॉर्ड सहित वर्तमान अपील के रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

18. मामले के तथ्य, जैसा कि ऊपर देखा गया है, यह दिखाने के लिए जाएगा कि घटना के संबंध में लिखित रिपोर्ट पूरी घटना के बाद अ०सा०-1/सूचनाकर्ता द्वारा बनाई गई है और पुलिस ने पहले ही हस्तक्षेप किया था और पीड़िता का शव बरामद किया गया था। जांच में साफ पता चला है कि पीड़िता नाबालिग थी, जिसका यौन उत्पीड़न किया गया है और उसके बाद उसकी गला दबाकर हत्या की गई है। पीड़िता की शव परीक्षण रिपोर्ट शव परीक्षण सर्जन डॉ. भास्कर सिंह और डॉ. सूर्य प्रकाश (अ०सा०-4 और अ०सा०-5) द्वारा विधिवत साबित की गई है। अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में सबूतों से यह स्पष्ट है कि मृतक/पीड़िता का यौन उत्पीड़न किया गया था और उसके बाद उसे मौत के घाट उतार दिया गया है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि मौत हत्या है।

19. अभियोजन पक्ष ने आरोप लगाया है कि आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा अपराध किया गया है और अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ सबूत मुख्य रूप से दो गुना हैं। पहले भाग में साक्ष्य अ०सा०-1 के बयान के रूप में है, जो दावा करता है कि उसने पीड़िता को अभियुक्त-अपीलकर्ता की करीबी कंपनी में देखा है; उसे टॉफी और बिस्किट की पेशकश की; और बाद में पीड़िता को अपने साथ ले गया। अ०सा०-2 और अ०सा०-3 के बयान अ०सा०-1 के बयान का समर्थन करते हैं, लेकिन इन दोनों गवाहों ने खुद पीड़िता के साथ अभियुक्त-अपीलकर्ता की घटना या करीबी को उसकी मृत्यु से ठीक पहले नहीं देखा है। इसलिए, पहले भाग पर प्राथमिक साक्ष्य अ०सा०-1 का है।

20. साक्ष्य का दूसरा भाग अभियुक्त-अपीलकर्ता की ओर इशारा करते हुए मृतक के शव की कथित बरामदगी से संबंधित है। वर्तमान जेल अपील में इन दोनों मामलों पर अभियोजन साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच करने की आवश्यकता है ताकि यह पता लगाया जा सके कि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे आरोपी अपीलकर्ता के अपराध को स्थापित करने में सफल रहा है या नहीं।

21. हमने अ०सा०-1 के बयानों की जांच की है, जिसने कहा है कि वह घटना की तारीख यानी 27 जनवरी, 2016 से लगभग 4 से 5 दिन पहले अपने माता-पिता के घर यानी मोहल्ला गंज शहर मडियाहू जौनपुर आई थी। उनका दावा है कि उनके माता-पिता के घर के सामने भगवान शिव का मंदिर है। मोहल्ले के बच्चे मंदिर परिसर के भीतर चबूतरे पर खेला करते थे। उक्त चबूतरा पर अ०सा०-1 की 7 वर्षीय बेटी भी खेलती थी। घटना वाले दिन अ०सा०-1 की बेटी चबूतरा पर खेल रही थी। अ०सा०-1 के पड़ोसी आर्यन सहित मोहल्ले के अन्य बच्चे भी खेल रहे थे। अ०सा०-1 अपने घर से बच्चों को खेलते हुए देख रही थी। उसने कहा है कि लगभग 04:00 बजे आरोपी-अपीलकर्ता को देखा गया था, जिसने उसकी बेटी को टॉफी और बिस्किट की पेशकश की और उसे दुलार कर धीरे-धीरे उसे अपने साथ ले गया। अ०सा०-1 ने ज्यादा ध्यान नहीं दिया और इस भ्रम में थी कि आरोपी-अपीलकर्ता उसकी बेटी के साथ मजाक कर रहा होगा। इसी बीच अ०सा०-1 अपने घर के काम में व्यस्त हो गई और उसका ध्यान अपनी बेटी से हट गया। इसी दौरान आरोपी-अपीलकर्ता ने उसकी बेटी को प्रलोभन देकर अपने साथ छीन लिया। कुछ समय बाद, जब उसे अपनी बेटी मंदिर के पास नहीं मिली तो उसने अ०सा०-2 और अ०सा०-3 को सूचित किया और उन सभी ने पीड़िता का पता लगाने की कोशिश की। अ०सा०-1 आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ आशंकित हो गया और इसलिए, अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 ने आरोपी अपीलकर्ता के घर का दौरा किया, जो वहां उपलब्ध नहीं था, जिसने आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा किसी अप्रिय घटना की उसकी आशंका को और मजबूत कर दिया। अंततः बहुत प्रयासों के बाद आरोपी-अपीलकर्ता शिव चित्रा टॉकीज, मडियाहू के परिसर में पाया गया। अ०सा०-1 यानी अ०सा०-3 के भाई ने इसकी जानकारी पुलिस को दी। पुलिस टॉकीज में आई और आरोपी अपीलकर्ता से पीड़िता के बारे में पूछताछ की। पूछताछ के दौरान, उसने कबूल किया कि उसने पीड़िता को गलत इरादे से बहला-फुसलाकर मडियाहू के स्वामी विवेकानंद इंटर कॉलेज के एक कमरे में ले गया; उसके साथ बलात्कार किया; उसके मुंह को दबा दिया जिसके कारण वह गतिहीन हो गई और अंततः मर गई और वह छिप गया ताकि कोई भी उसका पता न लगा सके। तब यह कहा गया है कि आरोपी-अपीलकर्ता तब पुलिस और अ०सा०-1 को विवेकानंद इंटर कॉलेज मडियाहुन में ले गया, जहां गेट बंद था और परिसर में कोई चपरासी उपलब्ध नहीं था। आरोपी-अपीलकर्ता ने बताया

कि चारदीवारी के पास एक अलग रास्ता है और बगल के कमरे में जिसमें कोई दरवाजा और खिड़की नहीं है, पीड़िता का शव पड़ा है। पुलिस की मौजूदगी में जब अ०सा०-1 वहां पहुंची तो थोड़ा अंधेरा था और टॉर्च की रोशनी में आरोपी-अपीलकर्ता की ओर से इशारा करते ही पीड़िता का शव मिला। उसने आगे कहा है कि मृत शरीर को देखकर, उसे यकीन हो गया कि आरोपी-अपीलकर्ता ने उसे बहकाया, बलात्कार किया और मार डाला। अ०सा०-1 के बयान पर अ०सा०-2 द्वारा लिखित रिपोर्ट लिखी गई थी, जिसके आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है।

22. अ०सा०-1 की जिरह की गई है। उसने कहा है कि मृतक/पीड़िता के अलावा, उसके दो अन्य बेटे हैं, जो मृतक/पीड़िता से छोटे हैं। उन्होंने कहा है कि मंदिर उनके घर से थोड़ी दूरी पर है और दर्शनीय है। मंदिर और उसके घर के बीच की दूरी 15 मीटर है और बीच में चार घर हैं। इन घरों की ऊंचाई लगभग 20 से 30 फीट है और ये सिंगल स्टोरी के हैं। इसके बाद उन्होंने कहा है कि शव बरामद होने के तुरंत बाद रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी। जिरह में उसने खुलासा किया है कि घटना के दिन वह अपने कमरे में एक खाट पर बैठी थी जहां से वह अपनी बेटी को देख सकती थी। उसने आगे कहा है कि उसे अपने घर की दिशा नहीं पता है। उसने तब कहा है कि उसके घर के सामने एक चौड़ा मार्ग है और वह मार्ग केवल उसके घर की ओर जाता है। अ०सा०-1 के घर से लगभग 10 क़दम चलने के बाद, मार्ग दाईं ओर मुड़ता है। उसने स्वीकार किया है कि यह मार्ग 7 से 8 कदम चलने के बाद दाईं ओर मुड़ता है और 7 से 8 कदम आगे बढ़ने के बाद सीधा हो जाता है। इसके बाद सीधा रास्ता लगभग 15 से 20 कदम का होता है, जिसके बाद मार्ग बाईं ओर मुड़ जाता है और 25 से 30 कदम जाने के बाद मंदिर की ओर जाता है जहां पीड़िता घटना की तारीख को खेल रही थी और वह अपने कमरे में बैठी उसे खेलते हुए देख रही थी।

23. मंदिर की स्थिति के संबंध में अ०सा०-1 का कथन यहां उद्धृत किया गया है:

लाश मिलने के बाद पुलिस ने तुरंत रिपोर्ट लिखी थी। घटना के दिन मैं अपने घर जमीन पर नहीं बैठी थी। रूम में खटिया पर बैठी थी। मेरे घर का मोहरा किधर है मुझे नहीं मालूम है। मेरे घर के सामने थोड़ा चौड़ा रास्ता है। वो रस्ता मेरे घर तक ही जाता है। मेरे घर से निकल कर 10 कदम चलने पर वह रास्ता दाहिनी तरफ मुड़ता है कि नहीं मैं नहीं बता सकती।

यह कहना सही है की वो रास्ता पुन सात आठ कदम चलने पर दाहिने मुड़ कर पुन सात आठ कदम चलने पर सीधा होता है। सीधा रास्ता लगभग 15-20 कदम है। फिर बाएं तरफ ये रास्ता मुड़ता है जो 25-30 कदम जाने के पश्चात मंदिर पड़ता है जहाँ रानी घटना के रोज़ खेल रही थी। और मैं अपने कमरे में बैठी रानी को खेलते देख रही थी।

24. उपरोक्त के अलावा, अ०सा०-1 ने यह भी कहा है कि मृतक ने लगभग 04.00 बजे भोजन किया था। उसने यह भी कहा है कि उसकी बेटी के लापता होने के बारे में पुलिस को सूचना रात 09:30 बजे पुलिस को दी गई थी।

25. अ०सा०-2 अ०सा०-1 का पड़ोसी है और उसने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है क्योंकि वह अ०सा०-1 द्वारा सूचित किए जाने के बाद पीड़िता की तलाश में शामिल हुआ था कि वह लापता है और आरोपी अपीलकर्ता की ओर इशारा करते हुए शव की कथित बरामदगी के संबंध में तथ्य उसके द्वारा सत्यापित किया गया है। उसकी जिरह में इस गवाह से बहुत कुछ पाया नहीं गया है। उसने स्वीकार किया है कि उसे घटना की तारीख से 10 से 15 दिन पहले ही आरोपी अपीलकर्ता के बारे में पता चला था। उन्होंने कहा है कि अक्सर आरोपी-अपीलकर्ता मंदिर में आकर बैठ जाता था। उन्होंने यह भी कहा है कि वह भी शाम को मंदिर में बैठते थे।

26. अ०सा०-3 तथ्य का दूसरा गवाह है, जो अ०सा०-1 का भाई है और जब उसे पता चला कि पीड़िता लापता हो गई है तो वह खोज में शामिल हो गया। उन्होंने आरोपी-अपीलकर्ता की ओर इशारा करते हुए पीड़िता के शव की बरामदगी के संबंध में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है। अपनी जिरह में उसने कहा है कि लगभग 07:00 बजे थाना में लिखित रिपोर्ट दी गई थी, जिसके बाद वह पुलिस के साथ शिव टॉकीज में आया था। उन्होंने कहा है कि जब वह आरोपी अपीलकर्ता की तलाश में शिव टॉकीज के लिए रवाना हुए, तो एक कांस्टेबल मौजूद था। इस गवाह ने आगे कहा है कि उसे रात लगभग 10:30 बजे पता चला कि आरोपी-अपीलकर्ता ने अपना अपराध कबूल कर लिया है और पुलिस रात में लगभग 11:00 बजे गर्ल्स कॉलेज में आई थी। स्कूल और मंदिर के बीच की दूरी लगभग 200 मीटर बताई जाती है। इस गवाह ने यह भी बताया है कि मंदिर और उसके घर के बीच करीब चार घर हैं।

27. हमने अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही की सावधानीपूर्वक जांच की है और पहला पहलू जिस पर हमें ध्यान देने की आवश्यकता है, वह यह है कि क्या अभियोजन पक्ष के गवाह अ०सा०- 1 ने वास्तव में अपने घर से उस घटना को देखा है जिसमें पीड़िता को अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा लालच दिया गया था।

28. अभियोजन पक्ष ने मंदिर के अस्तित्व और सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 के घर की स्थिति को दर्शाते हुए कोई नक्शा नज़री तैयार नहीं की है ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या दोनों दृष्टि की सीधी रेखा में आते हैं और घर में बैठे किसी व्यक्ति के लिए यह संभव था कि उसने पीड़िता को मंदिर के मंच पर खेलते हुए देखा हो या आरोपी अपीलकर्ता द्वारा लालच दिया गया हो, जैसा कि अभियोजन पक्ष द्वारा आरोप लगाया गया है।

29. हालांकि अ०सा०-1 ने कहा था कि मंदिर उसके घर से थोड़ी दूरी पर स्थित है और 15 मीटर की दूरी पर दिखाई देता है, लेकिन उसने स्वीकार किया है कि मंदिर और उसके घर के बीच चार घर हैं। हालांकि, जिरह में उसने स्वीकार किया है कि उसके घर तक एक मार्ग आता है और यदि कोई 10 कदम चलता है तो यह दाईं ओर मुड़ जाता है और लगभग 7-8 कदम चलने के बाद यह मार्ग सीधा हो जाता है और यदि कोई 15 से 20 कदम आगे बढ़ता है, तो मार्ग बाईं ओर मुड़ जाता है और उसके बाद मंदिर लगभग 25 से 30 कदम की दूरी पर स्थित होता है। अ०सा०-1 के इस कथन से स्पष्ट होता है कि अ०सा०-1 के घर के सामने स्थित होने का दावा किया गया मंदिर सीधे रास्ते पर नहीं है। सीधे जाना होता है, फिर दाएं मुड़ना होता है और फिर बाएं मुड़ना होता है और लगभग 50 कदम चलने के बाद मंदिर पहुंचता है। मंदिर और प्रथम सूचनाकर्ता के घर के बीच चार मकान हैं।

30. हमें यह विश्वास करना मुश्किल लगता है कि मंदिर की तुलना में घर की उपरोक्त स्थिति में, घर के कमरे में बैठे किसी भी व्यक्ति के लिए मंदिर में बच्चों को खेलते हुए देखना संभव होगा, जब यह दृष्टि की सीधी रेखा पर नहीं था। अभियोजन पक्ष के संस्करण में अ०सा०-1 ने आरोपी-अपीलकर्ता को टॉफी की पेशकश करते हुए देखा और नाबालिग पीड़िता को बिस्कुट दिया जिसने बाद में उसे लालच में डाल दिया, विश्वसनीय और भरोसेमंद नहीं लगता है।

31. अन्यथा हम अभियोजन पक्ष के संस्करण को संदिग्ध पाते हैं क्योंकि अ०सा०-1 ने कहा है कि आरोपी-अपीलकर्ता की इलाके में खराब छवि थी और इसलिए, मां से इस तरह के प्रलोभन पर आपत्ति करने की उम्मीद की गई थी, लेकिन मां द्वारा ऐसी कोई आपत्ति नहीं उठाई गई थी। अ०सा०-1 अन्यथा केवल कुछ दिनों के लिए उसके माता-पिता के घर आई थी और चूंकि अभियुक्त-अपीलकर्ता एक अलग इलाके में राहत था, इसलिए यह स्पष्ट नहीं था कि अ०सा०-1 द्वारा उसकी पहचान कैसे की जा सकती है जब वह न तो उसके परिवार का दोस्त है और न ही उससे संबंधित है। अभियुक्त-अपीलकर्ता की पहचान स्पष्ट रूप से अ०सा०-3 द्वारा स्थापित की गई है, जो अ०सा०-1 का भाई होता है और उसने कहा है कि उसने पिछले 15 से 20 दिनों के दौरान ही आरोपी अपीलकर्ता को मंदिर में आते-जाते पाया था।

32. अभियोजन पक्ष की कहानी का पहला भाग कि पहले सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 ने पीड़िता को अभियुक्त की करीबी संगत में देखा था, जिसने उसे लालच दिया था, इसलिए रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य के मूल्यांकन के आधार पर विश्वसनीय नहीं है।

33. शव की बरामदगी से संबंधित दूसरे पहलू पर आते हुए, हम पाते हैं कि पीड़िता की अनुपस्थिति को सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 द्वारा देखा गया था, जिसने उसका पता लगाने की कोशिश की लेकिन असफल रहा। इसलिए उसके भाई और उसके करीबी पड़ोसी को इस तरह की अनुपस्थिति की सूचना देने का उसका कार्य स्वाभाविक है और उनमें से तीन यानी अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 पीड़िता की तलाश में आगे बढ़े। पीड़िता नहीं मिली और न ही आरोपी-अपीलकर्ता अपने घर पर था और अंततः वह शिव टॉकीज के परिसर में हो सकता है। इस स्तर तक दूसरे पहलू पर अभियोजन मामले को स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं है।

34. अभियोजन पक्ष के गवाहों ने कहा है कि पुलिस को इस स्तर पर आरोपी के टॉकीज परिसर में पाए जाने की सूचना दी गई थी। घटना में ऐसी रिपोर्ट पुलिस को दी गई। उम्मीद की जा रही थी कि मामले में रिपोर्ट दर्ज की जाएगी या कम से कम गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज की जाएगी। वास्तव में ऐसा कुछ नहीं हुआ। अभियोजन पक्ष का साक्ष्य यह है कि पुलिसकर्मी टॉकीज के परिसर में आए जहां आरोपी-अपीलकर्ता मौजूद था और उससे पूछताछ करने पर, आरोपी-अपीलकर्ता ने पीड़िता के बलात्कार और हत्या के अपराध को अंजाम देने के संबंध में एक इकबालिया बयान दिया। अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के इस हिस्से की सावधानीपूर्वक जांच करनी होगी।

35. हम पाते हैं कि तब तक न तो पुलिस के पास कोई रिपोर्ट दर्ज की गई थी और न ही अभियुक्त-अपीलकर्ता को हिरासत में लिया गया था जब उसने कथित रूप से इकबालिया बयान दिया था। इकबालिया बयान भी उस स्तर पर दर्ज नहीं किया गया था और न ही ऐसा करना संभव था क्योंकि तब तक कोई कार्यवाही दर्ज नहीं की गई थी और यहां तक कि पंचनामा की प्रक्रिया भी शुरू नहीं हुई थी। अभियोजन पक्ष के अनुसार, आरोपी-अपीलकर्ता उन्हें उस स्थान पर ले गया जहां शव पड़ा था और आरोपी-अपीलकर्ता की निशानदेही पर शव की बरामदगी की गई। इसके बाद ही प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है।

36. हमने मूल रिकॉर्ड का अवलोकन किया है जो बताते हैं कि प्रथम सूचना रिपोर्ट वास्तव में रात 8:15 बजे दर्ज की गई थी। दर्ज की गई किसी भी प्रथम सूचना रिपोर्ट के अभाव में, अभियुक्त-अपीलकर्ता की ओर इशारा करते हुए शव के संबंध में कोई प्रकटीकरण बयान दर्ज नहीं किया जा सकता है और न ही शव के संबंध में कोई फ़र्द बरामदगी तैयार किया जा सकता है। यहां तक कि अभियुक्त-अपीलकर्ता का बयान धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया था, जिसके बाद इकबालिया बयान दिया गया था, जिससे पीड़िता का शव बरामद हुआ था। अभियुक्त-अपीलकर्ता का धारा 161 द०प्र०स० के तहत बयान 28 जनवरी, 2016 को दर्ज किया गया है, जबकि कथित स्वीकारोक्ति 27 तारीख को ही की गई थी, जिससे शव बरामद हुआ था। यह इकबालिया बयान और बरामदगी प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने या आरोपी को हिरासत में लिए जाने से पहले ही की गई थी। इस प्रकार कथित इकबालिया बयान के साथ-साथ शव की बरामदगी इस मामले में दर्ज किसी भी प्रथम सूचना रिपोर्ट या अभियुक्त को हिरासत में लेने के अनुसरण में विवेचनाधिकारी द्वारा तैयार किए गए किसी भी दस्तावेज द्वारा समर्थित/पुष्ट नहीं है। इसलिए, इकबालिया बयान, अधिक से अधिक पुलिस को दिया गया एक प्रकटीकरण होगा जो स्पष्ट रूप से भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 के आधार पर अस्वीकार्य होगा।

37. इसके अलावा बरामदगी तब नहीं की जाती है जब अभियुक्त-अपीलकर्ता प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के बाद हिरासत में था, इसलिए भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा-27 के प्रावधान भी लागू नहीं होंगे और कथित बरामदगी को कानूनी साक्ष्य नहीं माना जा सकता है और न ही इसे अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ मुकदमे के चरण में साक्ष्य में पढ़ा जा सकता है। अन्यथा रिकॉर्ड से पता चलता है कि अभियुक्त का बयान धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया था जिसमें उसने अभियुक्त-अपीलकर्ता की ओर इशारा करते हुए अपराध करने और शव की बरामदगी में अपनी संलिप्तता से स्पष्ट रूप से इनकार किया है।

38. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने ए.आई.आर. 1966 एस.सी.119 में रिपोर्ट किए गए अघनू नगेसिया बनाम बिहार राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के प्रसिद्ध निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखा है:

"...... हमें लगता है कि पृथक्करण परीक्षण भ्रामक है, और संपूर्ण इकबालिया बयान धारा 25 द्वारा प्रभावित है, धारा 27 द्वारा प्रदान किए गए को छोड़कर और सिवाय इसके कि अभियुक्त को रिपोर्ट के निर्माता के रूप में पहचानने वाले औपचारिक भाग को छोड़कर, इसका कोई भी हिस्सा साक्ष्य में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।

इसलिए, हम सोचते हैं कि प्रथम सूचना रिपोर्ट के निर्माता के रूप में अपीलकर्ता की पहचान करने वाले भाग 1, 15 और 18 को छोड़कर और धारा 27 के दायरे में आने वाले हिस्सों को छोड़कर, पूरी प्रथम सूचना रिपोर्ट को साक्ष्य से बाहर रखा जाना चाहिए।

धारा 27 केवल पुलिस अधिकारी की हिरासत में अपराध के आरोपी व्यक्ति से प्राप्त जानकारी पर लागू होती है। अब, सब इंस्पेक्टर ने कहा कि उसने अपीलकर्ता को पहली सूचना रिपोर्ट देने के बाद गिरफ्तार किया। इसलिए, प्रथम दृष्टया, अपीलकर्ता एक पुलिस अधिकारी की हिरासत में नहीं था, जब तक कि यह नहीं कहा जा सकता कि वह 'कंस्टरक्टिव' हिरासत में था। ......"

39. इस न्यायालय ने आपराधिक अपील संख्या 2887 वर्ष 2018 (राम निवास बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में दिनांक 1 दिसंबर, 2022 के निर्णय और आदेश के तहत जांच के दौरान तैयार किए गए किसी भी प्रकटीकरण बयान या फ़र्द बरामदगी के बिना एक अभियुक्त की ओर इशारा करते हुए शव की बरामदगी की दलील की भी जांच की है। बरामदगी को अस्वीकार्य माना गया था।

40. हम अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता के इस निवेदन पर भी ध्यान दे सकते हैं कि अभियुक्त की ओर इशारा करते हुए शव की बरामदगी की दलील को अन्यथा उसके खिलाफ नहीं पढ़ा जा सकता है क्योंकि अभियुक्त-अपीलकर्ता को धारा 313 द०प्र०स० के तहत उसके बयान की रिकॉर्डिंग के चरण में इस पहलू पर सामना नहीं किया गया है। धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्त के बयान को हमने पढ़ा है, जिसमें मुकदमे के दौरान उसके खिलाफ चुनौतीपूर्ण सामग्री की प्रकृति में 22 प्रश्न पूछे गए थे। किसी भी प्रश्न में धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपना बयान दर्ज करने के लिए आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ चुनौतीपूर्ण सामग्री होने के रूप में शव की कथित बरामदगी का संदर्भ नहीं है, धारा 313 द०प्र०स० एक खाली औपचारिकता नहीं है और मुकदमे के चरण में उसके खिलाफ उत्पन्न परिस्थितियों की व्याख्या करने के लिए अभियुक्त के लिए एक ठोस अधिकार है। जब तक धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान को दर्ज करने के लिए अभियुक्त के सामने विशेष रूप से आपत्तिजनक सामग्री नहीं रखी जाती है, तब तक अभियुक्त की दोषसिद्धि को दर्ज करने के लिए अभियुक्त के खिलाफ चुनौतीजनक सामग्री को पढ़ा या भरोसा नहीं किया जा सकता है।

41. इसलिए, हम विद्वान न्याय मित्र के तर्क में बल पाते हैं कि शव की कथित बरामदगी के संबंध में अभियुक्त-अपीलकर्ता से कोई प्रश्न पूछे जाने के अभाव में उसके खिलाफ इस तरह के पहलू पर भरोसा नहीं किया जा सकता था।

राम निवास (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय ने भी इसी तरह के मुद्दे पर विचार किया और पैराग्राफ संख्या 26 और 27 में निम्नानुसार देखा:

"......

26. अब तक यह अच्छी तरह से तय हो चुका है कि धारा 313 द०प्र०स० अभियुक्त को मामले में उसके खिलाफ प्रतिकूल परिस्थितियों की व्याख्या करने का एक महत्वपूर्ण अधिकार प्रदान करती है। प्रश्न पूछने के तरीके पर भी सुप्रीम कोर्ट द्वारा टिप्पणी की गई है और एक ही प्रश्न में अभियुक्त के खिलाफ पूरे सबूत को रखने की प्रथा को इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि यह अभियुक्त के अधिकार को विशेष रूप से प्रत्येक विशिष्ट और अलग परिस्थिति को समझाने के अधिकार को कम करता है जो अभियुक्त के खिलाफ साक्ष्य में दिखाई देता है।

27. महेश्वर तिग्गा बनाम झारखंड राज्य (2020) 10 एस.सी.सी. 108 में सुप्रीम कोर्ट के हालिया फैसले में, जिस पर आरोपी-अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने भरोसा किया है, अदालत ने नवल किशोर सिंह बनाम बिहार राज्य, (2004) 7 एस.सी.सी. 502 में पहले के फैसले पर भरोसा किया है और निम्नानुसार देखा है: -

"9. यह अच्छी तरह से तय है कि धारा 313 द०प्र०स० के तहत किसी अभियुक्त को नहीं दी गई परिस्थितियों का इस्तेमाल उसके खिलाफ नहीं किया जा सकता है, और इसे विचार से बाहर रखा जाना चाहिए। एक आपराधिक मुकदमे में, एक अभियुक्त से पूछे गए प्रश्नों का महत्व प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के लिए बुनियादी है क्योंकि यह उसे न केवल अपना बचाव प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करता है, बल्कि उसके खिलाफ चुनौतीजनक परिस्थितियों की व्याख्या करने का भी अवसर प्रदान करता है। एक अभियुक्त द्वारा उठाया गया एक संभावित बचाव उचित संदेह से परे सबूत की आवश्यकता के बिना आरोप का खंडन करने के लिए पर्याप्त है। इस न्यायालय ने बार-बार धारा 313 द०प्र०स० के तहत एक अभियुक्त से सभी प्रासंगिक प्रश्न पूछने के महत्व पर जोर दिया है। नवल किशोर सिंह बनाम बिहार राज्य, (2004) 7 एस.सी.सी. 502 के मामले में यह निष्पक्ष विचारण के अनिवार्य भाग के लिए निम्नानुसार आयोजित किया गया था: -

5......धारा 313 द०प्र०स० के तहत आरोपी से पूछताछ सबसे असंतोषजनक तरीके से की गई। धारा 313 द०प्र०स० के तहत आरोपी को उसके खिलाफ सबूतों में दिखाई देने वाली किसी भी परिस्थिति को समझाने का मौका दिया जाना चाहिए था। कम से कम, अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए साक्ष्य की विभिन्न मदों को प्रश्नों के रूप में अभियुक्त के समक्ष रखा जाना चाहिए था और उसे अपना स्पष्टीकरण देने का अवसर दिया जाना चाहिए था। इस मामले में आरोपी को ऐसा कोई अवसर नहीं दिया गया। हम अभियुक्त के खिलाफ पूरे सबूतों को एक ही प्रश्न में एक साथ रखने और उसे समझाने का अवसर देने की प्रथा की निंदा करते हैं, क्योंकि अभियुक्त तर्कसंगत और बुद्धिमत्तापूर्ण स्पष्टीकरण देने की स्थिति में नहीं हो सकता है। विचारण न्यायधीश को साक्ष्य में प्रतिकूल परिस्थितियों की व्याख्या करने के लिए अभियुक्त को अवसर देने के महत्व को ध्यान में रखना चाहिए था और धारा 313 की जांच एक खाली औपचारिकता के रूप में नहीं की जानी चाहिए। पूरा साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने के बाद ही अभियुक्त अपने बचाव को स्पष्ट करने और अपने विरुद्ध साक्ष्य में दिखाई देने वाली परिस्थितियों का स्पष्टीकरण देने की स्थिति में होगा। आरोपी को इस तरह का अवसर दिया जाना एक निष्पक्ष मुकदमे का हिस्सा है और अगर यह लापरवाही से किया जाता है, तो इससे सबूतों का अपूर्ण मूल्यांकन हो सकता है.'

42. उपरोक्त दो पहलुओं पर अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में साक्ष्य के मूल्यांकन पर हम पाते हैं कि न तो अ०सा०-1 का बयान उसके संबंध में अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा पीड़िता को बहकाते हुए देखा गया है और न ही अभियुक्त अपीलकर्ता की ओर इशारा करते हुए शव की बरामदगी से संबंधित परिस्थिति को साक्ष्य में पढ़ा जा सकता है। शव की बरामदगी से संबंधित परिस्थिति अन्यथा स्वीकार्य है क्योंकि ऐसी चुनौतीपूर्ण सामग्री के अभाव में अभियुक्त-अपीलकर्ता को धारा 313 द०प्र०स० के तहत उसका बयान दर्ज करने के लिए रखा गया है।

43. विचारण न्यायालय ने हालांकि अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही का उल्लेख किया है और बरामदगी पर भरोसा किया है, लेकिन उपरोक्त दो पहलुओं पर सबूतों की सावधानीपूर्वक जांच नहीं की गई है, क्योंकि अ०सा०-1 ने क्योंकि दृष्टि की सीधी रेखा की अनुपलब्धता के कारण अपने घर पर बैठे हुए घटना को देखा है कि संभावना, और न ही मृतक के शरीर की बरामदगी से संबंधित आरोपी-अपीलकर्ता की ओर इशारा करते हुए पहलू पर साक्ष्य की अपर्याप्तता देखी गई है ऊपर उल्लिखित कानूनी स्थिति के संदर्भ में सराहा गया है। इसलिए, हमारा विचार है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता की दोषसिद्धि और सजा न्यायिक जांच की कसौटी पर खरी नहीं उतर सकती है और इसलिए, आरोपी-अपीलकर्ता की दोषसिद्धि और सजा कानून की नजर में अस्थिर/कमजोर है।

44. नतीजतन, यह अपील सफल होती है और अनुमति दी जाती है। विशेष सत्र विचारण क्रमांक 12 वर्ष 2016 (उत्तर

प्रदेश राज्य बनाम दीपक जायसवाल) में विशेष सत्र विचारण क्रमांक 12 वर्ष 2016 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम दीपक जायसवाल) में धारा 376, 302, 201 भ०द०वि०, धारा 3/4 पोक्सो अधिनियम एवं धारा-7 दंड विधि संशोधन अधिनियम के तहत प्रकरण अपराध संख्या 266 वर्ष 2016 से उद्भूतब विशेष न्यायाधीश (पोक्सो एक्ट)/अपर सत्र न्यायाधीश-सप्तम, जौनपुर द्वारा पारित निर्णय एवं सजा दिनांक 1 नवम्बर, 2019 का निर्णय, आरोपी अपीलकर्ताओं के विरुद्ध थाना-मड़ियहून, जिला-जौनपुर को निरस्त किया जाता है। आरोपी-अपीलकर्ता को संदेह के लाभ का हकदार माना जाता है।

45. अभियुक्त-अपीलकर्ता दीपक जायसवाल, जो 28 जनवरी, 2016 से जेल में है, को तुरंत रिहा कर दिया जाएगा, जब तक कि वह द०प्र०स० की धारा 437-ए के अनुपालन पर किसी अन्य मामले में वांछित न हो।

46. हम विद्वान न्याय मित्र द्वारा न्यायालय को प्रदान की गई सक्षम सहायता के लिए अपनी प्रशंसा दर्ज करते हैं, जो उच्च न्यायालय कानूनी सेवा प्राधिकरण से 15,000/- रुपये की फीस के हकदार होंगे।

47. इस निर्णय की एक प्रति आवश्यक अनुपालन के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, जौनपुर को भेजी जाए।

(2023) 1 ILRA 1019
अपीलीय क्षेत्राधिकार
आपराधिक वाद
दिनांकःइलाहाबाद 23.12.2022

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नरायन मिश्रा

समक्ष

आपराधिक अपील संख्या - 1717/2019

दीपक शर्मा **.अपीलकर्ता**
बनाम
यूपी राज्य **...विपरीत पक्षकार**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता :
श्री मोहित सिंह

विपक्ष के लिए अधिवक्ता:
जी.ए.

आपराधिक कानून- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 114(ई) और 114(ई) - प्रावधान करता है कि अदालत यह मान सकती है कि न्यायिक और आधिकारिक कार्य नियमित रूप से किए गए हैं। इन पत्रों (दो इनलैण्ड और एक बारोंग) में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे उनकी प्रामाणिकता पर कोई संदेह पैदा हो। यदि जांच के दौरान इन पत्रों के सत्यापन न करने के संबंध में कोई ढिलाई बरती गई है, तो इसके लिए जांच अधिकारी जवाबदेह है, न कि वास्तविक शिकायतकर्ता। इन पत्रों के संबंध में उनसे जो कुछ भी हो सकता था, उन्होंने किया। उन्होंने जांच के दौरान इसकी फोटोकॉपी जांच अधिकारी को शपथ पत्र के तौर पर दी थी। उन्होंने अदालत के समक्ष मुकदमे के दौरान मूल प्रतियाँ दाखिल की और इन पत्रों पर मृतक की लिखावट को उसके पिता के रूप में साबित किया, जो कि उसके लेखन और हस्ताक्षर से परिचित थे, इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय की ओर से इन पत्रों पर भरोसा करने के लिये कानून के तहत कुछ भी नहीं है।

जहां शिकायतकर्ता ने पत्रों की प्रामाणिकता साबित करने के लिए हर संभव प्रयास किया है, तो केवल जांच अधिकारी की चूक के कारण इसकी वास्तविकता पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है, क्योंकि कानून में एक धारणा है कि न्यायिक और आधिकारिक कार्य नियमित रूप से किए गए हैं।

भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 306 और 107- धारा 498-ए- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 8- आरोपी-अपीलकर्ता का आचरण ऐसा था कि यह मृतक, जो की पत्नी थी, को आत्महत्या के लिए उकसाने के समान है। अभियुक्त-अपीलकर्ता के पास, हालांकि, अपीलकर्ता के खिलाफ उकसाने का कोई प्रत्यक्ष सबूत नहीं है, लेकिन मृतक के पिता और भाई के साक्ष्य के साथ-साथ मृतक द्वारा उसकी मां को भेजे गए पत्रों की सामग्री के आधार पर, यह तथ्य उचित से परे साबित हुआ है कि उसके पति और ससुराल वालों ने 1,00,000/- रुपये की मांग पूरी न करने पर उसके साथ क्रूरता की गई।

भले ही आत्महत्या के लिए उकसाने का प्रत्यक्ष सबूत उपलब्ध न हो, लेकिन आरोपियों का आचरण एक प्रासंगिक तथ्य होगा, जो आत्महत्या के लिए उकसाने को स्थापित करेगा। (27, 29, 30 के लिए)

आपराधिक अपील का निस्तारण किया गया। (ई-3)

(माननीय राम मनोहर नारायण मिश्र द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री मोहित सिंह और राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए.को सुना और निचली अदालत के रिकॉर्ड के साथ-साथ अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दायर लिखित दलीलों का अवलोकन किया।

2. वर्तमान अपील अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 13, मुरादाबाद द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 1226/2015 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 17.1.2019 के खिलाफ निर्देशित है, जो अपराध संख्या 191-सी/2015, थाना चंदौली, जिला संभल से उत्पन्न हुआ है, जिसके तहत अपीलकर्ता दीपक शर्मा को धारा 498-ए के तहत अपराध के लिए दो साल का कठोर कारावास और डिफ़ॉल्ट शर्त के साथ 5,000/- रुपये का जुर्माना, धारा 306 आईपीसी के तहत आरोप के लिए सात साल का कठोर कारावास और शर्त के साथ 20,000/- रुपये का जुर्माना लगाया गया है एव डी.पी. एक्ट की धारा 4 के तहत आरोप के लिए एक वर्ष का सश्रम कारावास और 5,000/- रु. जुर्माना के डिफ़ॉल्ट शर्त के साथ सभी सजाएं एक साथ चलाने का निर्देश दिया गया, यह भी प्रावधान है कि अभियुक्त से वसूले गए कुल जुर्माने की आधी राशि सीआरपीसी की धारा 357 के अनुसार मुआवजे के रूप में सूचना देने वाले (मृतक के पिता) को देय होगी।

3. संक्षेप में, वर्तमान अपील के निपटान के लिए विचारण न्यायालय द्वारा नोट किए गए प्रासंगिक तथ्य निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किए गए हैं।

4. सूचनादाता सुधीर शर्मा पुत्र गिरीश चंद्र शर्मा ने सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत मामले के पंजीकरण और जांच के लिए विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया। जिसके बाद अदालत के आदेश से, एक एफ.आई.आर. 24.4.2015 को 11:30 बजे आरोपी अपीलकर्ता दीपक शर्मा और अन्य के खिलाफ थाना चंदौली में दर्ज किया गया था। एफ.आई.आर. के कथानक अनुसार, सूचनादाता ने अपनी बेटी की शादी आरोपी-अपीलकर्ता दीपक शर्मा से 16.1.2005 को हिंदू रीति-रिवाज के अनुसार की थी और 2,50,000/- नकद एवं शादी में 3,00,000/- रु. रुपये खर्च किए थे। उसकी पुत्री कंचन शर्मा के द्वारा उसके पति एवं ससुराल वाले अतिरिक्त दहेज की मांग करने लगे तथा मांग पूरी न होने पर उसे प्रताड़ित करते थे तथा उसके साथ मारपीट करते थे। उसने ये बातें अपने माता-पिता को पत्र के माध्यम से बताईं। 3.12.2013 को लगभग 9:36 बजे (रात) सूचनादाता ने अपनी बेटी से बात करने की कोशिश की लेकिन उसका फोन स्विच ऑफ बता रहा था। दिनांक 4.12.2013 को दोपहर लगभग 12:10 बजे, उनकी बेटी के ससुर ने मुखबिर और उसके बेटे गौरव सुत्रिय को सूचित किया कि कंचन सिरदर्द से पीड़ित है और इसके बाद मुखबिर और उसका बेटा उसके ससुराल पहुंचे और देखा तो वह वहां मृत पड़ी थी। उसके ससुराल वाले उसका दाह संस्कार करने की जल्दी में थे। आरोपी दीपक शर्मा (पति), शिवओम शर्मा (ससुर), निशा रानी (सास) और संचित शर्मा उर्फ बिट्टू (देवर) ने मिलकर मांग पूरी न होने के कारण उसकी बेटी की हत्या कर दी। दहेज के रूप में 1,00,000/- रु. एफ.आई.आर. धारा 498-ए, 302 आईपीसी के तहत दर्ज किया गया था और जी.डी. प्रविष्टि की गई थी, जिसकी कार्बन कॉपी प्रदर्श क-11 के रूप में अभिलेख में दायर की गई है। हालांकि जांच के बाद आरोपी व्यक्तियों के विरूद्ध धारा 306/498-ए आईपीसी और ¾ डी.पी. के तहत अपराध के लिए आरोप पत्र दायर किए गए थे।

5. जांच अधिकारी ने अपराध की जांच की, प्रदर्श क-22 के रूप में नक्सानजरी तैयार किया, गवाहों के बयान दर्ज किये गये। मृतक के शव की जांच एस.आई. अशोक कुमार द्वारा की गई जिसे पीडब्लू-6 श्रीमती द्वारा सिद्ध किया गया। संतोष बिश्नोई (एस.आई. महिला सेल) को उनकी सेवानिवृत्ति के कारण प्रदर्श क-12 के रूप में चिह्नित किया गया है। पीडब्लू-3 डॉ. विजय सिंह ने मृतक के शव का पोस्टमार्टम किया और पोस्टमार्टम रिपोर्ट तैयार की, जो परीक्षण के दौरान साक्ष्य में साबित हुई और प्रदर्श क9 के रूप में चिह्नित की गई। सह अभियुक्त श्रीमती निशा रानी (सास) की जांच के दौरान मृत्यु हो गई और इसलिए उन पर आरोप पत्र दायर नहीं किया गया।

6. जांच अधिकारी ने जांच के बाद आरोपी दीपक शर्मा (मृतका का पति), संचित शर्मा (मृतका का जीजा) के खिलाफ धारा 498-ए, 306 आईपीसी और धारा 3/4 द.प्र. के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया। ।

7. विद्वान निचली अदालत ने धारा 498-ए आईपीसी और 306 आईपीसी और द.प्र. की धारा 4 के तहत आरोप तय किया। आरोपी दीपक शर्मा और संचित शर्मा के खिलाफ अधिनियम और धारा 302 आईपीसी के तहत वैकल्पिक आरोप भी मामले में दोनों आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ उनके संबंधित सत्र परीक्षण यानी सत्र परीक्षण संख्या-1226/2015 एवं 793/2016 में तय किया गया था। आरोपी संचित शर्मा को सभी आरोपों से बरी कर दिया गया और आरोपी दीपक शर्मा को धारा 302 आईपीसी के तहत वैकल्पिक आरोप से बरी कर दिया गया और शेष आरोपों के लिए दोषी ठहराया गया।

8. सत्र परीक्षण में, अभियोजन पक्ष ने तथ्य के गवाह के रूप में पीडब्लू-1 सुधीर शर्मा (सूचनादाता), पीडब्लू-2 गौरव सुत्रिय, पीडब्लू-3 डॉ. विजय सिंह,

जिन्होंने मृतक का पोस्टमार्टम किया, पीडब्लू-4 झाझन लाल से पूछताछ की। जिस एचसीपी ने लड़की को एफ.आई.आर. साबित किया है। धारा 156(3) सीआरपीसी के तहत विद्वान सी.जे.एम. के निर्देश पर दर्ज किया गया। पी.एस. में मामले के पंजीकरण की जी.डी. प्रविष्टियाँ भी प्रदर्श क-10 के रूप में साबित की। विस्तार के रूप में प्रदर्श क-11, पीडब्लू-5 श्री ओम शर्मा तथ्य का गवाह है, जो आरोपी व्यक्तियों का पड़ोसी है। पीडब्लू-7 डॉ. मनीष मल्होत्रा ने तथ्य बताया है कि मृतक को घटना दिनांक 4.12.2013 को 12:30 बजे इलाज के लिए उनके समक्ष पेश किया गया था; उसकी हालत खराब होने के कारण उसे सीटी स्कैन के लिए रेफर किया गया था; सीटी स्कैन के बाद दोपहर करीब 2:00 बजे उसे फिर से उनके सामने पेश किया गया, लेकिन उसका रक्तचाप और नाड़ी का पता नहीं चला और उन्होंने उसे हायर सेंटर रेफर कर दिया, लेकिन उसे एम्बुलेंस में ले जाने की प्रक्रिया में पता चला कि उसकी मौत हो गई है। उनकी राय में उनकी मौत कार्डियक अरेस्ट और सांस लेने में रुकावट के कारण हुई। उन्होंने मृतक के मेडिकल सर्टिफिकेट को प्रदर्श क19 के रूप में साबित किया और उसका रक्त परीक्षण और सी.टी. रिपोर्ट एवं स्कैन रिपोर्ट को प्रदर्श क-20 और 21 के साबित किया गया। पीडब्लू-8 एस.आई. शमशाद अली (जांच अधिकारी) ने जांच की कार्यवाही, नक्सा नजरी को प्रदर्श -22 के रूप में साबित किया है। प्रदर्श क-24 और का-24 के रूप में आरोप पत्र साबित किया। उन्होंने एफएसएल, आगरा द्वारा प्रस्तुत मृतक की विसरा जांच रिपोर्ट को भी प्रदर्श -23 के रूप में प्रमाणित किया है। जिसमें कहा गया है कि मृतक के विसरा में कार्बामेट कीटनाशक जहर पाया गया।

9. अभियुक्तों के बयान सीआरपीसी की धारा 313 के तहत दर्ज किए गए। अभियोजन साक्ष्य के निष्कर्ष के बाद जिसमें यह कहा गया है कि गवाहों ने दुश्मनी के कारण उसके खिलाफ गवाही दी है, हालांकि, उसने इसमें कोई विशिष्ट बचाव मामला नहीं लिया है। बचाव साक्ष्य के चरण में, आरोपी दीपक शर्मा स्वयं DW-1 के रूप में उपस्थित हुए और कहा कि उनकी पत्नी अवसाद से पीड़ित थी। उन्होंने कभी भी अपनी पत्नी के खिलाफ क्रूरता नहीं की और न ही कभी दहेज की मांग की। वह अपनी पत्नी और बच्चों के साथ खुशी से रह रहा था क्योंकि विवाह के बाद उसके दो बच्चे रोशनी और चिराग पैदा हुए थे, जिन्हें उसकी पत्नी की मृत्यु के बाद उसके ससुर ने आपसी समझ से ले लिया था। घटना दिनांक को उनकी बेटी रोशनी का जन्मदिन था और इसी कारण से वह अपनी नौकरी से छुट्टी लेकर सुबह 7:00 बजे अपने घर चंदौसी आए थे और जन्मदिन का जश्न मना रहे थे, तभी उनकी पत्नी कंचन को सिरदर्द हुआ और उनकी हालत बिगड़ गई। वह उसे चंदौसी में डॉ. मनीष मल्होत्रा के पास ले गए, हालांकि वह होश में थी। डॉ. मनीष मल्होत्रा के निर्देश पर उनकी पैथोलॉजी जांच और सीटी स्कैन किया गया, लेकिन इसके बाद उनकी हालत और बिगड़ गई और जब उन्हें हायर सेंटर ले जाने के लिए एम्बुलेंस पर रखा जा रहा था, तो लगभग 2:30 बजे उनकी मृत्यु हो गई।

10. विद्वान निचली अदालत ने रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों का अवलोकन के बाद संचित शर्मा (ससुर) को आरोपों से बरी कर दिया और अपीलकर्ता को दोषी ठहराया और उपरोक्त के अनुसार सजा सुनाई।

11. आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित महसूस करते हुए, अपीलकर्ता ने सीआरपीसी की धारा 374 के तहत वर्तमान अपील दायर की।

12. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि एफ.आई.आर. वर्तमान मामले में सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत एक आवेदन के तहत देर से दिनांक 19.2.2015 को सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत भी आवेदन दर्ज किया गया। जिसका अर्थ है कि घटना के एक महीने से अधिक समय के बाद मुखबिर द्वारा दायर किया गया था जो एक बाद का विचार है और विचार-विमर्श, अलंकरण और मनगढ़ंत कहानी में पर्याप्त गुंजाइश देता है। सह-आरोपी जिनके खिलाफ एफ.आई.आर. में इसी तरह के आरोप लगाए गए हैं। साथ ही तथ्य के गवाहों के बयानों में, जो अपीलकर्ता का भाई है, उसी साक्ष्य के आधार पर विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा बरी कर दिया गया है। शादी के आठ साल तक दहेज की मांग या मृतिका के साथ दुर्व्यवहार के संबंध में कोई शिकायत दर्ज नहीं की गई। अभियुक्त-अपीलकर्ता 2.8.2015 से जांच के चरण से जेल हिरासत में है और संबंधित जेल अधीक्षक की रिपोर्ट से, जो रिकॉर्ड में दर्ज है, उसे 5.10.2022 तक पांच साल पांच महीने सात दिन की वास्तविक सजा भुगतनी पड़ी है, इस प्रकार वह आईपीसी की धारा 306 के तहत मुख्य अपराध में उसे दिए गए सात साल के कारावास में से पांच साल सात महीने से अधिक वास्तविक कारावास का सामना करना पड़ा है। अपील के तहत निर्णय के अनुसार, उसे अधिकतम सात वर्ष तक कारावास की सजा भुगतनी होगी जिसमें छूट की अवधि भी शामिल है। विद्वान विचारण न्यायालय ने रिकॉर्ड पर उपलब्ध सबूतों की सराहना नहीं की और अपीलकर्ता को गलत तरीके से दोषी ठहराया। पता चला कि विचारण न्यायालय ने ऐसा नहीं किया इस तथ्य पर ध्यान दें कि अपीलकर्ता की ओर से मृतक को आत्महत्या के लिए उकसाने का कोई मकसद नहीं था। अभियोजन पक्ष के गवाहों ने मुखबिर के प्रभाव में अपीलकर्ता के खिलाफ गवाही दी है। अपीलकर्ता को दी गई सजा कानून की नजर में अत्यधिक और कठोर है। अपीलकर्ता ने कोई भी

अपराध नहीं किया है और मुखबिर के कहने पर उसे मामले में झूठा फंसाया गया है। सूचनादाता ने सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत आवेदन के माध्यम से गलत इरादे से मामला दर्ज कराया है। विद्वान विचारण न्यायालय ने कथित तौर पर मृतक द्वारा अपनी मां को उसके वैवाहिक घर से भेजे गए अंतर्देशीय पत्रों पर भरोसा किया है, इसे विशेषज्ञ द्वारा विधिवत साबित किए बिना। मृतक और अपीलकर्ता का विवाह घटना की तारीख से आठ साल पहले हुआ था और यह समझ से परे है कि दहेज में 1,00,000/- रुपये की मांग की गई थी। 1,00,000/- का भुगतान अपीलकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा किया जाएगा और इतनी लंबी अवधि तक जारी रहेगा। मृतक के पास मोबाइल फोन था, इसलिए उसके पास अपने माता-पिता से पत्र द्वारा संवाद करने का कोई अवसर नहीं था। अपीलार्थी के विरुद्ध प्रयुक्त पत्रों द्वारा प्रतिपादित अंतर्देशीय पत्रों पर कोई दिनांक अंकित नहीं है। मृतक को आत्महत्या के लिए उकसाने के आरोप के समर्थन में अपीलकर्ता के खिलाफ कोई प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य साक्ष्य नहीं है। पीडब्लू-5 श्रीओम शर्मा, जिनसे स्वतंत्र गवाह के रूप में अभियोजन द्वारा पूछताछ की गई है, ने अपनी जिरह में अपीलकर्ता के खिलाफ आरोपों का समर्थन नहीं किया है।

13. इसके विपरीत, विद्वान ए.जी.ए. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के बयानों का खंडन किया और प्रस्तुत किया कि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय में कोई कानूनी या तथ्यात्मक त्रुटि नहीं है, जो रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य पर आधारित है और रिकॉर्ड पर मौजूद सभी साक्ष्य और सामग्री पर विधिवत चर्चा की गई है और तर्क दिए गए हैं। पार्टियों के लिए विद्वान अधिवक्ता को उसमें विधिवत संबोधित किया जाता है। अपील के तहत निर्णय में कोई त्रुटि नहीं है और इस प्रकार, वर्तमान अपील में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और इसे समग्रता में पुष्टि की जानी चाहिए।

14. मैंने अभियोजन के मामले और रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों का गहन अध्ययन किया है और अपील ज्ञापन में लिए गए आधारों के साथ-साथ अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए बयानों के आलोक में अपील के तहत फैसले की जांच की है।

15. पीडब्लू-1 सुधीर शर्मा (मृतका के पिता) ने अपनी शपथपूर्ण गवाही में कहा है कि उनकी मृत बेटी कंचन और आरोपी दीपक शर्मा की शादी 16.1.2005 को हुई थी और उन्होंने वही तथ्य बताया, जैसा कि धारा 156(3) सी.आर.पी.सी. के तहत आवेदन में उल्लिखित है। उनके द्वारा मामले के पंजीकरण और जांच के लिए आवेदन किया गया, जिसमें एफ.आई.आर. दर्ज करने का आधार पाया गया। यहां तक कि पीडब्लू-5, जो आरोपी व्यक्तियों के पड़ोसी हैं, ने कहा है कि दीपक शर्मा की शादी वर्ष 2005 में मृतक कंचन के साथ हुई थी।

16. आईपीसी की धारा 498-ए निम्नानुसार प्रावधान करती है:-

"जो कोई भी, किसी महिला का पति या पति का रिश्तेदार होते हुए, ऐसी महिला के साथ क्रूरता करेगा, उसे तीन साल तक की कैद की सजा दी जाएगी और जुर्माना भी लगाया जाएगा।

स्पष्टीकरण.--इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "क्रूरता का अर्थ है"--

(ए) कोई भी जानबूझकर किया गया आचरण जो ऐसी प्रकृति का हो जिससे महिला को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित किया जा सके या महिला के जीवन, अंग या स्वास्थ्य (चाहे मानसिक या शारीरिक) को गंभीर चोट या खतरा हो; या

(बी) महिला का उत्पीड़न जहां ऐसा उत्पीड़न जबरदस्ती करने की दृष्टि से हो या उससे संबंधित किसी व्यक्ति को किसी संपत्ति या मूल्यवान सुरक्षा के लिए किसी भी गैरकानूनी मांग को पूरा करने के लिए या उसके या उससे संबंधित किसी भी व्यक्ति द्वारा ऐसी मांग को पूरा करने में विफलता के कारण हो सकता है।

17. इसी प्रकार आईपीसी की धारा 306 में निम्नानुसार प्रावधान है:-

"आत्महत्या के लिए उकसाना.--यदि कोई व्यक्ति आत्महत्या करता है, तो जो कोई भी ऐसी आत्महत्या के लिए उकसाएगा, उसे किसी एक अवधि के लिए कारावास से दंडित किया जाएगा जिसे दस साल तक बढ़ाया जा सकता है, और जुर्माने के लिए भी उत्तरदायी होगा।"

18. द.प्र.स. की धारा 4 में प्रावधान है कि यदि कोई व्यक्ति, जैसा भी मामला हो, दूल्हे या दुल्हन के माता-पिता या अन्य रिश्तेदारों या अभिभावकों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दहेज की मांग करता है, तो उसे कम से कम अवधि के लिए कारावास की सजा दी जाएगी। छह महीने, लेकिन इसे दो साल तक बढ़ाया जा सकता है और जुर्माना दस हजार तक बढ़ाया जा सकता है। बशर्ते कि अदालत, फैसले में उल्लिखित पर्याप्त और विशेष कारणों से, छह महीने से कम अवधि के लिए कारावास की सजा दे सकती है।

19. वर्तमान मामले में पीडब्लू-5 श्री ओम शर्मा, पीडब्लू-7 डॉ. मनीष मल्होत्रा और डीडब्लू-1 दीपक शर्मा (अभियुक्त) के बयान से यह तथ्य साबित होता है कि

4.12.2013 को मृतक कंचन शर्मा अचानक बीमार हो गई और उसे दोपहर करीब 12:30 बजे उसके ससुराल वालों ने पीडब्लू-7 डॉ. मनीष मल्होत्रा के सामने पेश किया। उसे ऐंठन हो रही थी। उनका रक्तचाप कम था और डॉ. ने उन्हें सीटी स्कैन और पैथोलॉजिकल जांच के लिए रेफर किया है। दोपहर करीब 2:00 बजे सीटी स्कैन के बाद मृतिका को वापस डॉक्टर के पास लाया गया लेकिन डॉक्टर ने पाया कि उसका रक्तचाप और नाड़ी गायब थी। उसे हायर सेंटर रेफर कर दिया गया लेकिन जब वह एंबुलेंस में ले जा रहा था तो पता चला कि उसकी मौत हो गई है। मृतिका का इलाज करने वाले डॉक्टर ने कहा है कि उसकी मौत सांस रुकने और सांस लेने में दिक्कत के कारण हुई है। डॉ. ने यह भी कहा है कि यदि कोई व्यक्ति जहर के प्रभाव में है, तो उसे श्वसन संबंधी समस्याएं हो सकती हैं और श्वसन अवरोध के कारण उसकी मृत्यु हो सकती है। रक्त परीक्षण रिपोर्ट में टीएलसी असामान्य पाया गया और ऐसा टीएलसी शरीर में किसी संक्रमण को दर्शाता है जिसे प्रदर्श क-20 के रूप में चिह्नित किया जाता है। डॉ. ने यह भी बताया कि मृतिका कंचन की सीटी स्कैन रिपोर्ट में उसके मस्तिष्क की झिल्ली में सूजन पाई गई थी, जिसके लिए एमआरआई की सलाह दी गई थी। सीटी स्कैन रिपोर्ट को प्रदर्श क-21 के रूप में चिह्नित किया गया है। डॉ. ने आगे कहा कि जब मरीज को उनके सामने लाया गया था, तो वह कुछ बोलने की स्थिति में थी, लेकिन उसने उन्हें यह नहीं बताया था कि उसे किसी ने जहर दिया है। उसने यह भी नहीं बताया था कि उसने खुद जहर खाया है. उसने सिर्फ इतना बताया कि उसे तेज सिरदर्द और उल्टी हो रही थी. उसके कपड़ों से जहर की कोई गंध नहीं निकल रही थी। डॉ. ने बचाव पक्ष के सुझाव पर स्वीकार किया कि चूंकि मरीज की टीएलसी बढ़ी हुई थी, यह एक सामान्य संक्रमण को दर्शाता है और लंबी बीमारी के कारण टीएलसी बढ़ जाती है। उन्होंने यह भी कहा है कि मृतिका के पति और मरीज के ससुराल वाले पूरे समय वहां मौजूद थे। उन्होंने उसे बताया था कि वह अक्सर बीमार रहती है और कमजोर है। वह मृतक के शरीर में जहर के किसी लक्षण की पुष्टि नहीं कर सकते। उन्होंने उसे हायर सेंटर रेफर कर दिया था। कार्डियक अरेस्ट या किसी अन्य संक्रमण की स्थिति में मस्तिष्क की झिल्ली पर सूजन आ जाती है।

20. पीडब्लू-6 एस.आई. श्रीमति संतोष बिश्नोई ने गवाही दी थी कि वह 5.12.2013 को जांच कार्यवाही के समय एस.आई. अशोक कुमार के साथ मौजूद थी जिन्होंने मृतक से पूछताछ की थी। वह उस समय एचसीपी में थीं और उन्होंने मृतक के शव का निरीक्षण किया था। शव पर कोई बाहरी चोट या जहर के लक्षण नहीं दिखे। उसके मुँह से कोई झाग या लार नहीं निकली।

21. पीडब्लू-3 डॉ. विजय सिंह ने मृतक के शव का पोस्टमार्टम किया था और कहा है कि सांस की नली में झागदार स्राव मौजूद था। पोस्टमार्टम दिनांक 5.10.2013 को किया गया तथा पोस्टमार्टम में मृत्यु का समय एक दिन पूर्व पाया गया। आंतरिक जांच में 50 मिलीलीटर सांद्र द्रव्य पाया गया। मौत का कारण स्पष्ट नहीं होने पर विसरा सुरक्षित रखा गया है।

22. जिरह में इस गवाह ने बताया कि मृतक के पेट में 50 मिलीलीटर गाढ़ा तरल पदार्थ मौजूद था जो भोजन नहीं था। मृतक के विसरा में कार्बामेट कीटनाशक जहर पाया गया जो फसलों और सब्जियों में कीड़ों से बचाने के लिए प्रयोग किया जाता है। वह यह नहीं बता सकते कि इस जहर की वाइटल डोज कितनी है। मृतक के शरीर पर कोई आंतरिक या बाहरी चोट नहीं पाई गई।

23. पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2, जो तथ्य के गवाह हैं, ने कहा है कि मृतिका के पति और ससुराल वाले रुपये की मांग कर रहे थे। स्वास्थ्य विभाग में आरोपी दीपक शर्मा की नौकरी के प्रबंधन के लिए 1,00,000/- रुपये, जहां उसकी मां श्रीमती निशा रानी (तत्कालीन सह-अभियुक्त) कार्यरत थी। गवाहों ने बचाव पक्ष की इस बात से अनभिज्ञता जताई कि मृतिका रोशनी ब्यूटी पार्लर के नाम से अपने वैवाहिक घर के एक कमरे में ब्यूटी पार्लर चला रही थी।

24. पीडब्लू-5 ने यह भी कहा है कि अपीलकर्ता दीपक शर्मा कोई प्राइवेट नौकरी करता था और जब भी वह घर आता था तो उसकी पत्नी कंचन से विवाद होता था। मृतिका उससे कहती थी कि ये लोग उसे परेशान करते थे और खर्च के लिए पैसे नहीं देते थे और मायके से पैसे लाने को कहते थे. 3.12.2013 की रात में उसकी हालत खराब हो गई और उसके मुंह से झाग निकल रहा था। आरोपी के घर में हड़कंप मच गया। अगले दिन उन्हें पता चला कि उसे चंदौसी में डॉ. मनीष मल्होत्रा के सामने पेश किया गया और बाद में उसकी मौत हो गई। शाम को उसके मायके से लोग पहुंचे, लेकिन जिरह में उन्होंने बताया कि मृतिका घर के कुछ हिस्से में ब्यूटी पार्लर चलाती थी और अक्सर बीमार रहने के कारण अवसाद से ग्रस्त थी। उनके दाह संस्कार में उनके माता-पिता मौजूद थे। उनके सामने उनके ससुराल वालों ने कभी दहेज की मांग नहीं की। मृतक घर के ऊपरी हिस्से में रहता था जिसमें एक रसोईघर और एक बाथरूम था।

25. बचाव पक्ष ने मामला दर्ज कराया कि मृतिका किसी बीमारी से पीड़ित थी तथा घटना दिनांक को अचानक उसकी हालत गम्भीर हो गयी। सिरदर्द और चक्कर आया और उसी दिन मृत्यु हो गई, जबकि मृतिका

कंचन की विसरा जांच में एफएसएल आगरा द्वारा स्पष्ट निष्कर्ष दिया गया है, जो धारा 293 सीआरपीसी के तहत साक्ष्य में स्वीकार्य है। सरकार को एक रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट दी जा रही है, जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि कार्बामेट कीटनाशक जहर पाया गया था और इस रिपोर्ट पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। घटना से पहले का कोई मेडिकल पेपर इस तर्क के समर्थन में दाखिल नहीं किया गया है कि वह किसी बीमारी से पीड़ित थी या बीमारी के कारण अवसाद में थी।

26. पीडब्लू-1 ने कागज संख्या 15/3 के माध्यम से मृतक द्वारा अपनी मां के पते के नाम पर पोस्ट किए गए दो अनलैण्ड और एक बारॉन्ग पत्र दायर किया है और उसने अपनी बेटी, मृतिका के लेखन की पहचान की थी जिसे प्रदर्श क-3, क-4 और क-5 के रूप में चिह्नित किया गया है, हालांकि पत्र लिखने वाले ने तारीखों का जिक्र नहीं किया है लेकिन एक पत्र में डाक विभाग का पृष्ठांकन 2.2.2009 का है। तीनों पत्र उनकी मां श्रीमती विमलेश शर्मा को संबोधित थे जो अपने पिता की डेयरी दुकान के पते पर प्रेषित किये गये थे। इन पत्रों में उसने बताया था कि उसके ससुरालवाले उससे रुपये की मांग कर रहे थे. अपने पिता से अपनी सास के विभाग में नौकरी संभालने के लिए 1,00,000/- रुपये और एक अवसर पर, उसे उसकी सास ने सीढ़ी से धक्का दे दिया था और उसके बाद भी उसकी सास द्वारा उसके पेट पर लातों से मारा गया था। उसके ससुर ने उसे वॉशिंग मशीन का उपयोग करने की अनुमति नहीं दी थी। चारों आरोपियों ने उसे चेतावनी दी थी कि वह अपने माता-पिता से कोई शिकायत न करे अन्यथा इलाज के दौरान उसे मार दिया जाएगा। उसने यह भी कहा है कि उसका पति उस पर रुपये लाने के लिए भी दबाव बना रहा था। उसके पिता से 1,00,000/- रुपये मिले ताकि उसके लिए एक नौकरी का प्रबंध किया जा सके। आरोपी व्यक्तियों ने उसका मोबाइल फोन रिचार्ज नहीं किया था और इस कारण वह अपने माता-पिता से मोबाइल फोन पर बात करने में असमर्थ थी। इन पत्रों पर मृतक की लिखावट के बारे में किसी विशेषज्ञ की राय नहीं ली गई है लेकिन पत्र डाक एजेंसी के माध्यम से भेजे गए हैं जो एक सरकारी तंत्र है।

27. साक्ष्य अधिनियम की धारा 114(ई) में प्रावधान है कि अदालत यह मान सकती है कि न्यायिक और आधिकारिक कार्य नियमित रूप से किए गए हैं। इन पत्रों (दो अंतर्देशीय और एक बारोंग) में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे उनकी प्रामाणिकता पर कोई संदेह पैदा हो। इन पत्रों में कोई तारीख का उल्लेख नहीं किया गया है, यह इसकी वास्तविकता पर अविश्वास करने का आधार नहीं है। पत्रों को उचित अभिरक्षा से प्रस्तुत किया गया है और यह तथ्य साक्ष्य के रूप में सामने आया है कि उन्होंने इन कागजात की फोटोकॉपी जांच एजेंसी को प्रदान की थी और बाद में अदालत के समक्ष मूल प्रस्तुत की थी।

28. पीडब्लू-8 जांच अधिकारी ने अपने साक्ष्य में यह भी कहा है कि इन पत्रों की फोटोकॉपी जांच के दौरान सूचनादाता द्वारा अपने शपथ पत्र के साथ प्रदान की गई थी और शपथ पत्र का सत्यापन उनके द्वारा किया गया था, हालांकि, उन्होंने इन पत्रों की जांच फिंगर प्रिंट विशेषज्ञ से नहीं कराई थी। उन्होंने यह भी सत्यापित नहीं किया था कि ये पत्र कहां से पोस्ट किए गए थे।

29. यदि जांच के दौरान इन पत्रों के सत्यापन न होने के संबंध में कोई ढिलाई बरती गई है, तो इसके लिए जांच अधिकारी जवाबदेह है, वास्तविक शिकायतकर्ता नहीं। इन पत्रों के संबंध में उनसे जो कुछ बन पड़ा, उन्होंने किया। उन्होंने जांच के दौरान शपथ पत्र के रूप में जांच अधिकारी को इसकी फोटोकॉपी उपलब्ध कराई थी। उन्होंने अदालत के समक्ष मुकदमे के दौरान मूल प्रतियाँ दाखिल कीं और इन पत्रों पर मृतक की लिखावट को उसके पिता के रूप में साबित किया, जो कि उसके लेखन और हस्ताक्षर से परिचित थे, इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय की ओर से इन पत्रों पर भरोसा रखने के लिए कानून के विपरीत कुछ भी नहीं है।

30. रिकॉर्ड पर साक्ष्यों के अवलोकन और विश्लेषण से, ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता का आचरण ऐसा था कि यह मृतक को आत्महत्या के लिए उकसाने के समान था, जो अभियुक्त-अपीलकर्ता की पत्नी थी, हालाँकि, ऐसा कोई मामला नहीं है अपीलकर्ता के खिलाफ दुष्प्रेरण के प्रत्यक्ष साक्ष्य हैं, लेकिन मृतक के पिता और भाई के साक्ष्य के साथ-साथ मृतक द्वारा अपनी मां को भेजे गए पत्रों की सामग्री के आधार पर, यह तथ्य उचित से परे साबित होता है कि उसे उसके पति और ससुराल वालों द्वारा 1,00,000/रुपये की मांग के पूर्ति न करने के लिए क्रूरता का शिकार होना पड़ा और इस कारण से, अपीलकर्ता का आचरण मृतक द्वारा की गई आत्महत्या के निवारण के बराबर है, इस प्रकार, मुझे दोषसिद्धि दर्ज करने में साक्ष्य की सराहना में कोई तथ्यात्मक या कानूनी त्रुटि नहीं मिली। धारा 306 और 498-ए आईपीसी और द.प्र. की धारा 4 के तहत आरोपों के लिए अपीलकर्ता के तहत कार्यवाही की गई। हालाँकि, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपीलकर्ता जांच के चरण से ही जेल में है और उसने अब तक लगभग पांच साल सात महीने का वास्तविक कारावास (बिना छूट के) भुगता है, कारावास की सजा की अवधि को जेल में बिताई गई अवधि से कम किया जा सकता है। मामले की समग्रता और तथ्यों और परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हुए उपरोक्त चर्चा के आलोक में धारा 306, 498-ए आईपीसी

और डीपी अधिनियम की धारा 4 के तहत आरोप के लिए अपीलकर्ता की दोषसिद्धि के फैसले की पुष्टि की जाती है। अपील के तहत फैसले में दी गई मूल सजा को पहले ही पूरी की जा चुकी अवधि तक घटा दिया गया है। अपीलकर्ता को फैसले में दिए गए जुर्माने का भुगतान करने या डिफ़ॉल्ट शर्त के रूप में दी गई सजा भुगतने पर, जैसा भी मामला हो, हिरासत से रिहा किया जाएगा।

31. आपराधिक अपील का निस्तारण इस तरीके से किया जाता है।

32. इस आदेश की एक प्रति संबंधित न्यायालय के माध्यम से अनुपालन हेतु संबंधित जेल को भेजी जाये। संबंधित न्यायालय इस आदेश का कानून के अनुसार अनुपालन सुनिश्चित करेगा।

33. निचली अदालत के रिकॉर्ड को आगे की कार्रवाई के लिए संबंधित अदालत को वापस भेजा जाए।

(2023) 1 ILRA 1027
अपीलीय क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 18.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा
माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद

केस :- क्रिमिनल अपील नं. - 4062 वर्ष 2008
संबद्ध
केस :- क्रिमिनल अपील नं. – 3081 वर्ष 2008

राम वृक्ष यादव ...अपीलकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता :-
आर.पी श्रीवास्तव, अमित कुमार सिंह, अनुभव त्रिवेदी, दिलीप कुमार, जी.एस हजेला, एच.के शुक्ला, नितिन शर्मा, आर.पी दुबे, राजीव लोचन शुक्ला, रवींद्र शर्मा, एस.के दुबे, सतीश त्रिवेदी, यू.एस.शाह, वी.एस.मिश्रा, विक्रांत पांडे

प्रतिवादी के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता, जितेंद्र कुमार यादव, पी.सी.श्रीवास्तव

आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता- धारा 302 और 149- प्रेम सिंह की कार्बाइन से ही आरोपी राम बृक्ष यादव द्वारा उसके गनर से कार्बाइन छीनने के बाद बंद्रूक की गोली से मृतक को चोट पहुंचाई गई थी - जहां तक चोटों का प्रश्न है, पीडब्लू-1 राकेश कुमार यादव, जय प्रकाश, जनार्दन यादव चिंतित हैं कि अभियोजन पक्ष के साक्ष्य यह विशिष्ट नहीं हैं कि उन पर किसने हमला किया और आरोपी ने हमले के लिए कौन सा हथियार इस्तेमाल किया था। किसी भी आरोपी को हमले के लिए कोई विशिष्ट हथियार नहीं सौंपा गया है। मतदान केंद्र पर लगभग 400 व्यक्तियों की मौजूदगी को अभियोजन पक्ष में स्वीकार किया गया है। चूंकि किसी भी आरोपी (राम बृक्ष यादव के अलावा) के पास हमले का कोई विशिष्ट हथियार नहीं है, इसलिए राकेश कुमार यादव, जनार्दन यादव और जय प्रकाश यादव पर हमला करने के लिए किसी विशिष्ट व्यक्ति को दोषी ठहराना हमारे लिए मुश्किल है। ऐसे निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए हम इस तथ्य पर भी भरोसा करते हैं कि चोटें न केवल सूचना देने वाले पक्ष को बल्कि आरोपी पक्ष के सदस्यों को भी पहुंचाई गईं।

जहां घटनास्थल पर बहुत बड़ी संख्या में लोग मौजूद थे और आरोपियों को न तो कोई विशेष हथियार दिया गया है, न ही हमले में उनकी कोई विशेष भूमिका बताई गई है और आरोपी पक्ष को भी चोटें आई हैं, तो यह नहीं कहा जा सकता है अभियुक्त ने एक सामान्य उद्देश्य के साथ एक गैरकानूनी सभा का गठन किया।

भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 300- धारा 302 और 304 भाग I- घटना पंचायत चुनाव के दौरान अचानक हुई - दो प्रतियोगियों के समर्थकों के बीच झगड़ा हो गया था जिसके कारण मारपीट हुई और यह जोश गर्मी में हुआ कि अभियुक्त राम बृक्ष यादव ने उसके गनर की कार्बाइन छीन ली और मृतक पर गोली चला दी। यह दिखाने के लिए अभिलेख पर कोई सबूत मौजूद नहीं है कि मृतक महातम यादव की हत्या करने के लिए आरोपी व्यक्तियों की ओर से कोई सामान्य उद्देश्य या इरादा था। राम बृक्ष यादव द्वारा अचानक कार्बाइन छीनने और मृतक पर गोली चलाने का कृत्य उसका व्यक्तिगत कृत्य प्रतीत होता है - बिना किसी पूर्व-चिंतन के, जिसमें मृतक को आरोपी राम बृक्ष यादव के हाथों गोली लग गई। मृतक की हत्या के इरादे से गोली चलाने की घटना असंभावित प्रतीत होती है। धारा 300 आईपीसी के चौथे अपवाद को आकर्षित करने के लिए आवश्यक तत्व वर्तमान मामले के तथ्यों में स्पष्ट रूप से मौजूद हैं, भले ही मृत्यु हुई हो; वहां कोई पूर्व-ध्यान अस्तित्व में नहीं था; यह

अचानक हुई लड़ाई थी; अपराधी ने अनुचित लाभ नहीं उठाया है या क्रूर या असामान्य तरीके से कार्य नहीं किया है, इसलिए, मामला स्पष्ट रूप से आईपीसी की धारा 300 के चौथे अपवाद के अंतर्गत आता है।

चूँकि अभियुक्त ने बिना किसी पूर्व-चिंतन और अचानक आवेश में आकर अचानक ही ऐसा कार्य किया था, जिसके परिणामस्वरूप उसे एक अकेले आग्नेयास्त्र का सामना करना पड़ा। मृतक को चोट लगी है, इसलिए यह मामला गैर इरादतन हत्या के दायरे में आएगा और आईपीसी की धारा 304 भाग। के तहत दंडनीय होगा। (पैरा 30, 32, 38, 39, 40, 41, 43, 46)

आपराधिक अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-3)

<u>केस कानून/निर्णयों पर निर्भरता व्यक्त:-</u>
उत्तराखंड राज्य बनाम सचेन्द्र सिंह रावत, (2022) 4 एससीसी 227

(माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा द्वारा प्रदत्त)

1. उपरोक्त अपीलकर्ताओं द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 257 वर्ष 2006 (राज्य बनाम सुभाष यादव और अन्य) में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/एफ.टी.सी, कोर्ट नंबर 3, बस्ती द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 30.04.2008/02.05.2008 के खिलाफ आरोपी अपीलकर्ताओं द्वारा पसंद किया गया है, जिसके तहत उन्हें 10,000 रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है और जुर्माना अदा न करने पर प्रत्येक को धारा 302 भ०द०वि०/149 के तहत एक वर्ष का अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा; भ०द०वि० की धारा 308/149 के तहत तीन साल के कठोर कारावास के साथ-साथ 1,000-1,000 रुपये का जुर्माना और जुर्माना अदा न करने पर प्रत्येक को तीन महीने का अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा; भ०द०वि० की धारा 147 के तहत एक-एक साल का सश्रम कारावास; भ०द०वि० की धारा 148 के तहत तीन-तीन महीने का सश्रम कारावास; भ०द०वि० की धारा 323/149 के तहत 6-6 महीने का सश्रम कारावास। अभियुक्त प्रेम सिंह को दोषी ठहराया गया है और 10,000/- रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है और जुर्माना अदा न करने पर भ०द०वि० की धारा 114 के सपठित धारा 302 के तहत एक वर्ष का अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा। सभी अपीलों को एक साथ सुना गया है और इसलिए इस सामान्य/संयुक्त निर्णय द्वारा निपटाया जा रहा है। आपराधिक अपील संख्या 4062 वर्ष 2008 को प्रमुख मामले के रूप में माना जाएगा।

2. उत्तर प्रदेश में पंचायत चुनाव अधिसूचित किए गए थे और संत कबीर नगर में मतदान के लिए 25 अगस्त, 2005 की तारीख निर्धारित की गई थी। जय नारायण इंटर कॉलेज, मौर, संत कबीर नगर जिले में मतदान केंद्रों (इसके बाद 'केंद्र' के रूप में संदर्भित) में से एक था। इस केंद्र पर दोपहर 2.15 बजे एक घटना हुई जिसमें एक महात्मा यादव की गोली लगने से मौत हो गई और कई अन्य घायल हो गए। घटना के संबंध में दो अलग-अलग बयान सामने आए हैं। हम मृतक के बेटे राकेश कुमार यादव की रिपोर्ट के आधार पर घटना के पहले संस्करण के साथ अपील के वर्तमान सेट से संबंधित हैं।

3. सूचनाकर्ता राकेश कुमार यादव (अ०सा०-1) द्वारा 25.8.2005 को गई लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) में कहा गया है कि सूचनाकर्ता की भाभी चंपा देवी पत्नी जय प्रकाश यादव प्रधान पद के लिए उम्मीदवार थीं, जबकि हनुमान यादव अन्य उम्मीदवारों में से एक थे जिन्होंने चुनाव में धांधली करने की कोशिश की थी। विरोध करने पर मनोज गुप्ता नाम के एक व्यक्ति ने सूचनाकर्ता को गाली देना शुरू कर दिया। सूचनाकर्ता और हनुमान यादव का समर्थन कर रहे मनोज गुप्ता के बीच कहासुनी हो गई। इसके बाद हनुमान यादव ने गायघाट पोलिंग बूथ से राम बृक्षा यादव को फोन किया जो अपने गनर प्रेम सिंह व अन्य साथियों के साथ पहुंचे और सूचनाकर्ता के पक्ष में लाठी और डंडों से मारपीट शुरू कर दी। वहां मौजूद लोगों ने मध्यस्थता करने की कोशिश की लेकिन राम भृक्षा यादव और उनके समर्थक शांत नहीं हुए, बल्कि राम भृक्षा यादव ने अपने साथियों से महात्मा यादव और उनके परिवार को खत्म करने का आह्वान किया और उनके अंगरक्षक की कार्बाइन छीनकर मृतक पर गोली चला दी। गोली मृतक के सीने में लगी। वह गिर गया और मर गया। राम बृक्षा यादव के समर्थकों ने सूचनाकर्ता और उसके चाचा जनार्दन यादव, जय प्रकाश यादव और ओंकार यादव के साथ भी मारपीट की। चोट लगने के कारण सूचनाकर्ता बेहोश हो गया। इस घटना को मतदान केंद्र पर बड़ी संख्या में मौजूद लोगों ने कथित तौर पर देखा है। घटना से गुस्साए लोगों ने आरोपी राम बृक्षा यादव और उसके साथियों का पीछा किया और इस तरह सूचना देने वाले और उसके परिवार के अन्य सदस्यों की जान बचाई जा सकी। इस घटना में राम भृक्ष यादव, रामपूजन यादव, सुभाष यादव, हनुमान यादव, मनोज गुप्ता, वीरेंद्र यादव और गनर प्रेम सिंह (अपीलकर्ता) को आरोपी बनाया गया है।

4. उपर्युक्त रिपोर्ट के अनुसरण में उसी तारीख को अपराह्न 2.15 बजे हुई घटना के संबंध में दिनांक 25.8.2005 को अपराह्न 4.20 बजे प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श क-5) दर्ज कराई गई है। विवेचनाधिकारी ने प्रदर्श क-3 के तहत खून से सनी और सादी मिट्टी बरामद की। प्रदर्श क-4 के तहत खाली कारतूस बरामद किया गया।

5. महात्मा यादव के शव के संबंध में 25.8.2005 को शाम 7.30 बजे (प्रदर्श क-2) पूछताछ की गई, जिसमें मृत्यु का कारण बंदूक की गोली की चोट के रूप में दिखाया गया है। शव को सील कर दिया गया था और शव परीक्षण के लिए भेजा गया था, जो अगले दिन अर्थात 26.8.2005 को शाम 4.00 बजे आयोजित किया गया था, जिसमें निम्नलिखित मृत्यु पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप सदमे और रक्तस्राव के कारण मृत्यु पाई गई थी: -

"(1) प्रवेश का घाव 1 x 1 सेमी, दाहिने निप्पल के लिए 6 सेमी औसत दर्जे का, मध्य उरोस्थि गुहा गहरी करने के लिए 4 सेमी औसत दर्जे का। 4 वीं पसली के नीचे घाव के चारों ओर मौजूद कालापन। घाव का मार्जिन उल्टा है।

(2) निकास का घाव 11/2 x 11/2 सेमी गुहा गहरा, 7 सेमी पार्श्व से 5 सेमी दूर की मध्य रेखा से बाएं स्कैपुला के अवर कोण तक, मार्जिन एवर्टेड, 4 वीं और 5 वीं पसली के बीच, प्रवेश के घाव से दाएं आलिंद तक दाएं फेफड़े से बाएं फेफड़े तक फैला हुआ ट्रैक।

(3) संलयन ने कलाई के चारों ओर बाएं अग्रभाग पर 2x1 सेमी संलयन आकार 2 x 1 सेमी को समाप्त कर दिया।

(4) बाईं कोहनी के पीछे के पहलू के आकार 4x2 सेमी पर संलयन

(4) दाहिने हाथ की पीठ के ऊपर 4 x 2 सेमी संलयन

(5) हाथ के पूर्वकाल पहलू पर 5x3 सेमी संलयन 8 सेमी समीपस्थ से दाहिनी कोहनी

(6) दाहिने पैर में 5x2 सेमी, दाहिने घुटने से 25 सेमी दूर फैला।

(7) संलयन छाती के पीछे की ओर 12x3 सेमी स्कैपुला के दाएं अवर कोण को पीछे के 13x2.5 सेमी के मध्य तक फैलाना, बाएं स्कैपुला के अवर कोण को पीछे की मध्य रेखा तक फैला।

(9) बाएं स्कैपुला पर 4x2 सेमी।

(10) संलयन 5x3 पोस्ट। बाएं कंधे का पहलू"

घटना में जनार्दन यादव, राकेश कुमार यादव और जय प्रकाश घायल हो गए और उनकी मेडिकल जांच कराई गई। उनकी चोट रिपोर्ट प्रदर्श क-7, प्रदर्श क-8 और प्रदर्श क-9 में निहित हैं, जिन्हें इसके बाद अभिलिखित गया है: -

<u>जनार्दन यादव की चोटें</u>

"(1) कान के ऊपर सिर के बाईं ओर 4 सेमी x 3 सेमी x लाल रंग।

(2) ऊपरी कान पर बाईं ओर छाती के पीछे 10 सेमी x 2 सेमी x लाल रंग का संलयन।

(3) बाएं अक्ष के नीचे छाती के बाएं पार्श्व पक्ष पर 5 सेमी x 0.5 सेमी x लाल रंग।

(4) दाहिने हाथ और कलाई के पृष्ठक्रम के बाहरी हिस्से पर 10 सेमी x 4 सेमी x लाल रंग। राकेश कुमार यादव की चोटें "(1) ख़ून रिसता घाव 3 सेमी x 0.5 सेमी x हड्डी कान के ऊपर सिर के बाईं ओर गहरी है। ताजा खून बह रहा है। (2) ख़ून रिसता घाव 4 सेमी x 0.5 सेमी x हड्डी सिर के पीछे गहरी है। ताजा खून बह रहा है। (3) ख़ून रिसता घाव 5 सेमी x 0.5 सेमी x हड्डी गहरी x मिडलाइन पर सिर के सामने ताजा खून बह रहा है।

(4) रैखिक घर्षण 5 सेमी लंबा, चेहरे के बाएं मलार क्षेत्र पर ताजा रक्त बह रहा है।

(5) घर्षण 3 सेमी x 1 सेमी x दाहिनी आंख के बाहरी कैंथस के पास दाईं ओर के चेहरे पर
ताजा रक्त बहना।

(6) निचली गर्दन और ऊपरी छाती के सामने बाईं ओर 7 सेमी x 1 सेमी x लाल रंग का संलयन।

(7) दाहिने कंधे के सामने 6 सेमी x 2 सेमी x लाल रंग का संलयन।

(8) बाएं हाथ के मध्य भाग के सामने 5 सेमी x 3 सेमी x लाल रंग।

(9) दाहिने हाथ के मध्य के पीछे 6 सेमी x 2 सेमी x लाल रंग।

जय प्रकाश यादव की चोटें

"(1) घर्षण 1 सेमी x 0.5 सेमी x नाक के पास चेहरे के दाईं ओर ताजा रक्त बहना।

(2) घर्षण 1.5 सेमी x 0.5 सेमी x नाक के पास चेहरे के बाईं ओर ताजा रक्त बहना।

(3) सी/ओ दर्द दाहिनी ओर छाती और दोनों जांघों।

7. आरोपी राम बृक्षा यादव, सुभाष चंद्र यादव, प्रेम सिंह और मनोज कुमार को भी चोटें आई हैं, जिनकी जांच ब०सा०-1 (डॉ. योगेंद्र प्रताप सिंह) ने की थी, जो तब प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, हैसर बाजार में चिकित्सा अधिकारी के रूप में तैनात थे। आरोपी राम वृक्षा यादव की चोटों में उसके सिर पर दो हड्डी के गहरे घाव शामिल थे, जो उसके महत्वपूर्ण हिस्से पर थे और डॉक्टर की राय में उसकी हालत गंभीर थी। इसके अलावा उनके हाथ पर घाव, इसके अलावा सुभाष चंद्र यादव पर चोट और मनोज कुमार पर भी घाव था। इस गवाह की गवाही से साफ पता चलता है कि घटना में आरोपी पक्ष के सदस्यों के साथ मारपीट भी की गई थी।

8. विवेचनाधिकारी ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत विभिन्न गवाहों के बयान दर्ज किए और अंततः 24.10.2005 और 25.1.2006 को आरोपियों के खिलाफ दो आरोप पत्र प्रस्तुत किए। राम पूजन यादव और वीरेंद्र यादव को 25.1.2006 को प्रस्तुत आरोप पत्र में आरोपी के रूप में दिखाया गया था, जबकि अन्य सभी को पहले आरोप पत्र में नामित किया गया था। नतीजतन, दो अलग-अलग सत्र परीक्षण अर्थात सत्र परीक्षण संख्या 257 वर्ष 2006 और 257-ए वर्ष 2006 पंजीकृत किए गए। आरोपी अपीलकर्ताओं पर धारा 147, 148, 149, 308, 302, 323, 504, 506 भ०द०वि०, धारा 7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम और जनप्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 134-बी और 135, थाना धनघटा, जिला संत कबीर नगर के

तहत अपराधों का आरोप लगाया गया था। सभी आरोपियों/अभियुक्तों को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उन्होंने इन्कार किया और विचारण चाहा!

9. अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को साबित करने के लिए लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-1 के रूप में दस्तावेजी साक्ष्य पर भरोसा किया है; प्रदर्श क-5 के रूप में प्रथम सूचना रिपोर्ट; प्रदर्श क-3 के रूप में रक्तरंजित और सादे मिटटी का फ़र्द बरामदगी; प्रदर्श क-4 के रूप में खाली कारतूस का फ़र्द बरामदगी; जनार्दन यादव की प्रदर्श क-7 के रूप में रिपोर्ट प्रदर्श क-8 के रूप में राकेश यादव की चोट रिपोर्ट; प्रदर्श क-9 के रूप में जय प्रकाश की चोट रिपोर्ट; प्रदर्श क-2 के रूप में जांच रिपोर्ट और प्रदर्श क-10 के रूप में शव परीक्षण रिपोर्ट।

10. अभियोजन पक्ष ने दस्तावेजी साक्ष्य के अलावा निम्नलिखित अभियोजन पक्ष के गवाहों की मौखिक गवाही भी पेश की:

(i) अ०सा०-1 (राकेश कुमार) पहला सूचनाकर्ता है। अपने मुख्य परीक्षण में, उन्होंने कहा कि 25 अगस्त, 2005 को पंचायत चुनावों के लिए मतदान का दिन था और उनकी भाभी चंपा देवी पत्नी जय प्रकाश प्रधान के पद के लिए एक उम्मीदवार थीं। आरोपी हनुमान यादव भी इसी ऑफिस का कंटेस्टेंट था। मौड़ के जय नारायण इंटर कॉलेज में वोट डाले जा रहे थे। गवाह का आरोप है कि हनुमान यादव ने फर्जी वोट डालकर चुनाव में धांधली करने की कोशिश की, जिसका उसने विरोध किया। हनुमान यादव के समर्थक मनोज गुप्ता ने गवाह को गाली देना शुरू कर दिया। अ०सा०-1 और हनुमान यादव के बीच कहासुनी शुरू हो गई। हनुमान यादव बूथ छोड़कर गायघाट पोलिंग बूथ से आरोपी राम वृक्षा यादव को अपने साथ लेकर आए. उनके भाई रामपूजन यादव, भतीजे सुभाष यादव, वीरेंद्र यादव, गनर प्रेम सिंह भी राम बृक्षा यादव के साथ थे। वे जय नारायण इंटर कॉलेज में आए। आते ही उन्होंने हिंसा शुरू कर दी। राम वृक्षा यादव के समर्थक लाठी और डंडों लिए हुए थे। बूथ पर मौजूद लोगों ने उसे शांत करने की कोशिश की, लेकिन रामबृक्षा यादव ने आक्रोशित अवस्था में महात्मा यादव के परिवार को खत्म करने का आह्वान किया और उनके गनर की कार्बाइन छीन ली और महात्मा यादव को मारने की नीयत से उन पर गोली चला दी। गोली उसके सीने में लगी। हादसे में महात्मा यादव मौके पर ही गिर गए और उनकी मौत हो गई। रामवृक्ष यादव के समर्थकों राम पूजन, सुभाष यादव, वीरेंद्र यादव, हनुमान यादव, मनोज गुप्ता ने अ०सा०-1 और उसके साथियों के साथ मारपीट की। इस हिंसा में उसके चाचा जनार्दन यादव, बड़े भाई जय प्रकाश यादव को भी चोटें आई थीं। अ०सा०-1 भी कुछ मिनटों के लिए होश खो बैठा। बूथ पर मौजूद जनता ने जवाबी कार्रवाई में ईंट-पत्थर फेंकने के साथ-साथ आरोपी पक्ष को डंडों और डंडों (लाठी, डंडा) से खदेड़ दिया, जिससे सूचना देने वाले पक्ष को बचाया जा सका। अ०सा०-1 ने यह भी कहा है कि उसके और राम वृक्षा यादव के बीच कोई दुश्मनी नहीं थी। हालांकि पिछले चुनावों में राम वृक्षा यादव अपने पिता से नाराज थे। अ०सा०-1 ने धनघाटा थाने में अपनी लिखावट में लिखी लिखित रिपोर्ट का सत्यापन किया है, जिसके आधार पर प्राथमिकी दर्ज की गई थी। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में प्राथमिकी दर्ज होने के बाद अ०सा०-1 की चिकित्सीय जांच की गई। इस घटना को जनार्दन यादव, ओंकार यादव, जय प्रकाश यादव, लक्ष्मण पुत्र झांगूर, चंद्रजीत पाठक आदि ने देखा था।

फर्जी वोट डालने के पहलू पर अ०सा०-1 का बयान इसके बाद निकाला गया है:

> "सुरक्षा कर्मियों से मैंने इस बात की शिकायत कि हनुमान फर्जी वोट डलवा रहे हैं नहीं किया क्योंकि फर्जी वोट के समय मैं मौजूद नहीं था।
>
> मुझे यह बात कि फर्जी वोट देने वाले पुरुष थे कि स्त्री, नहीं पता। फर्जी वोटर किस गांव के निवासी/निवासिनी थे, नहीं पता। फर्जी वोट के बारे में हनुमान फर्जी वोट डलवा रहे थे, यह बात एजेन्ट जनार्दन यादव जो मेरे चाचा भी हैं, से पता चली।
>
> एजेन्ट जनार्दन यादव ने उक्त बात मुझे गेट के बहार आकर नहीं बताई, अन्दर से ही आवाज दी।
>
> आवाज सुनकर मेरे परिवार के २-३ लोग अन्दर जाने लगे, पुलिस वाले उस समय हमें अन्दर नहीं जाने दिए।
>
> फर्जी मत देने वाला वोटर पकड़ा गया कि नहीं, नहीं जनता।
>
> घटना के बाद भी नहीं पता चला कि फर्जी वोट देने वाला पकड़ा गया कि नहीं। मैंने पता ही नहीं किया।"

जिरह के दौरान अ०सा०-1 ने स्वीकार किया कि उसके खिलाफ भ०द०वि० की धारा 147/148, 308 के तहत 16 दिन बाद क्रॉस केस दर्ज किया गया था, जिसमें वह एक सप्ताह तक जेल में रहा था। इस मामले में ओंकार यादव, जय प्रकाश यादव, जनार्दन यादव, अमरजीत यादव भी आरोपी थे। अ०सा०-1 ने भारतीय सेना में एक कांस्टेबल होने का दावा किया और उसे गार्ड्समैन कहा जाता था। घटना के समय वह बारामूला में 46 आर.आर में तैनात थे और आकस्मिक अवकाश पर थे। अ०सा०-1 ने बताया है कि राम बृक्ष, राम पूजन, सुभाष, वीरेंद्र गांव टिकारा के निवासी थे, जो गांव मौड़ से 1 किमी की दूरी पर था। आरोपी का गांव करमपुर में एक घर भी था और उसका पोलिंग बूथ गायघाट में था। उसने अपने पिता पर धारा 395/397 के तहत अपराध का आरोप लगाए जाने के बारे में अनभिज्ञता का नाटक किया है। उनके पिता भी राज्य बनाम पहलवान सिंह और अन्य के मामले में भ०द०वि०

की धारा 307 के तहत आरोपी थे। वह कंचनपुर गांव का मूल निवासी होने का दावा करता है और गांव मौर में उसका कृषि क्षेत्र भी है। उन्होंने कहा है कि प्रेम सिंह सहित राम वृक्षा यादव के सहयोगियों की संख्या 20-25 के बीच थी। अ०सा०-1 ने उनमें से केवल 3-4 को पहचान सका। हिंसा में लिप्त और उन पर हमला करने वाले अन्य व्यक्तियों के नाम का पता नहीं चल पाया है। जनार्दन और अ०सा०-1 के पिता महात्मा यादव चंपा देवी के पोलिंग एजेंट थे। उनके अनुसार विवाद मतदान केंद्र पर हुआ था, न कि 200 मीटर की दूरी पर। उन्होंने मतदान केंद्र में प्रवेश करने की अनुमति मिलने से इनकार किया है। उन्होंने राम वृक्षा यादव को दो जानलेवा चोटों या उन्हें लंबे समय से अस्पताल में भर्ती होने की जानकारी से भी इनकार किया है। अ०सा०-1 ने यह भी स्वीकार किया कि फर्जी वोट डालने के बारे में सुरक्षाकर्मियों से कोई शिकायत नहीं की गई थी।

चूंकि अ०सा०-1 इस तरह के वोट डालने के समय मौजूद नहीं था, इसलिए उसे यह भी पता नहीं था कि फर्जी वोट महिलाओं के थे या पुरुष के। उनका दावा है कि फर्जी वोट डाले जाने की जानकारी एजेंट जनार्दन यादव से मिली थी, जो उनके चाचा थे। जनार्दन यादव ने उन्हें मतदान केंद्र के अंदर से इस बात की जानकारी दी थी। उन्हें नहीं पता था कि फर्जी वोट डालने वाले व्यक्ति को पकड़ा गया या नहीं। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि फर्जी वोटों का आरोप उनकी शिकायत को रंग देने के लिए लगाया गया था। अ०सा०-1 ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि गांव टिकारा, जिससे राम बृक्षा यादव संबंधित थे, का मतदान केंद्र भी जय नारायण इंटर कॉलेज, मौड़ में था और राम बृक्षा यादव और उनके परिवार के सदस्यों को जय नारायण इंटर कॉलेज, मौर में अपना वोट डालना था। उन्होंने मतदान केंद्र पर पहले दिन में राम वृक्षा यादव और उनके परिवार के सदस्यों को भी देखा है। उनका दावा है कि वे वोट डालने आए और उसके बाद चले गए। हालांकि, उन्होंने इस बात से इनकार किया कि घटना के समय राम बृक्षा यादव अपना वोट डालने के लिए मतदान केंद्र पर आए थे। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि रामबृक्ष यादव की पिटाई हुई थी और इसीलिए वह वोट नहीं डाल सके। अ०सा०-1 ने यह भी कहा है कि राम वृक्षा यादव 10.00 बजे वोट डालने आए थे। गवाह ने जिरह में कहा कि 10.00 बजे केवल राम वृक्षा यादव के परिवार के सदस्य आए थे। मतदान केंद्र पर आए परिवार के सदस्यों में राम पूजन की पत्नी और राम वृक्षा यादव के परिवार का कोई पुरुष सदस्य 10 बजे वोट डालने नहीं आया था। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि राम बृक्ष यादव और उनके परिवार का कोई भी सदस्य उस दिन वोट नहीं डाल सका। अ०सा०-1 ने उन व्यक्तियों के बारे में जानकारी होने से भी इनकार किया है जिन्होंने आरोपियों पर पत्थर और ईंटें फेंकी थीं या उन पर लाठी डंडा से हमला किया था क्योंकि वह खुद घायल हो गए थे। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि ये व्यक्ति अपराधी थे, जिन्हें उन्होंने बुलाया था या राम बृक्षा यादव को वोट डालने की अनुमति नहीं देने की कोई योजना थी। अ०सा०-1 ने आखिरकार इस बात से इनकार किया कि उसने राम बृक्षा यादव या उसके साथियों के साथ मारपीट की थी।

(ii) अ०सा०-2 (जनार्दन यादव) ने कहा है कि हनुमान यादव की पत्नी प्रधान के पद के लिए एक प्रतियोगी थी लेकिन उसका नाम ज्ञात नहीं था। उन्होंने कहा है कि उनके विरोधी फर्जी वोट डालने की कोशिश कर रहे थे। यह देखकर उन्होंने गोरखपुर से आए हनुमान यादव के रिश्तेदार द्वारा वोट डालने पर आपत्ति जताई। हनुमान का साथ दे रहे आरोपी मनोज गुप्ता ने अ०सा०-2 और उसके बड़े भाई महात्मा के साथ गाली-गलौज की। आरोपी हनुमान ने दावा किया कि वह गायघाट जा रहा था कि वो राम वृक्षा यादव को अपने साथ लाएगा। हनुमान के बुलाने पर रामबृक्षा यादव कथित तौर पर अपने साथियों के साथ आए थे। आरोपी राम बृक्षा यादव ने कथित तौर पर महात्मा यादव के परिवार के सदस्यों को खत्म करने के लिए कहा। जब राम वृक्षा ने गेट से प्रवेश करने की कोशिश की तो कांस्टेबल ने उन्हें रोक दिया लेकिन राम वृक्षा ने उन्हें डंडे से धक्का दे दिया और कांस्टेबल वापस लौट आया। गेट खोलने के बाद राम वृक्ष ने प्रवेश किया और महात्मा को देखकर उसने अपने गनर प्रेमसिंह की कार्बाइन छीन ली और महात्मा यादव पर निशाना साधा और गोली मारकर उनकी हत्या कर दी। इसके बाद राम बृक्षा के समर्थकों ने अ०सा०-2 और उसके साथियों पर लाठी डंडा डालकर हमला कर दिया, जिसमें जय प्रकाश और राकेश घायल हो गए। जनता ने जवाबी कार्रवाई की और राम भृक्ष और उसके साथियों को लाठी डंडा देकर खदेड़ दिया।

जिरह के दौरान अ०सा०-2 ने कहा कि हनुमान की पत्नी के अलावा प्रधान पद के लिए 12 अन्य दावेदार थे। प्रत्येक प्रतियोगी के पास तीन पोलिंग एजेंट थे। अन्य पोलिंग एजेंटों में से किसी ने भी हनुमान पर आपत्ति नहीं जताई क्योंकि अ०सा०-2 और उनके सहयोगियों ने पहले ही फर्जी वोटों के डाले जाने पर आपत्ति जताई थी। अन्य उम्मीदवारों के पोलिंग एजेंटों ने भी विरोध किया लेकिन उनके नामों का खुलासा नहीं किया गया है। इस गवाह ने यह दिखाने के लिए कोई दस्तावेज पेश नहीं किया है कि वह एक पोलिंग एजेंट था। घटना की सूचना मिलने के बाद एस.पी, डी.एम, सी.ओ समेत सभी वरीय अधिकारी मौके पर आए और जांच की। अ०सा०-2 की भी राकेश के साथ शाम करीब पांच बजे मेडिकल जांच की गई। फर्जी मतों के पक्ष पर अ०सा०-2 का बयान इसके बाद निकाला गया है:

> "गोरखपुर वाला जो वोटर वोट देने आया था, व जिसे मैंने पहचाना वह १ पी.एम. के करीब घटना थी।
> इस फर्जी मतदान की शिकायत मैंने मतदान अधिकारी से लिखित नहीं किया, मौखिक शिकायत।"

(iii) अ०सा०-3 (जय प्रकाश) ने कहा है कि उनकी पत्नी चंपा प्रधान के पद के लिए प्रतियोगी थीं और हनुमान की पत्नी भी उसी पद के लिए एक प्रतियोगी थीं। उन्होंने कहा है कि फर्जी वोट डालने को लेकर विवाद हनुमान यादव के समर्थक मनोज गुप्ता के साथ हुआ। उन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है कि इस तरह के विवाद के बाद हनुमान और राम भृक्षा यादव ने गनर की कार्बाइन छीन ली और महात्मा यादव की गोली मारकर हत्या कर दी। उन्होंने यह भी दावा किया है कि उन्हें चोट लगी है जिसकी जांच शाम करीब पांच बजे की गई।

(iv) अ०सा०-4 (ओंकार) ने बताया कि 25-08-2005 मतदान करने की तारीख थी। उनके बड़े भाई की बहू चंपा प्रधान पद की दावेदार थीं और हनुमान की पत्नी भी दावेदार थीं। मतदान के दिन फर्जी वोट भी डाले गए। इसके कारण उनके भाइयों महात्मा और जनार्दन, जो पोलिंग एजेंट थे, और मनोज गुप्ता, जो हनुमान के समर्थक थे, के बीच विवाद हुआ था। इसके बाद हनुमान गायघाट से राम वृक्षा यादव को ले आए। राम-भृक्ष यादव के साथ रामपूजन यादव, सुभाष यादव, वीरेंद्र यादव, हनुमान और गनर प्रेम सिंह भी आए। उनके आने के तुरंत बाद हाथापाई शुरू हो गई और राम वृक्षा ने महात्मा के परिवार को मारने का आह्वान किया। राम बृक्षा यादव ने अपने गनर की कार्बाइन छीन ली और महात्मा के सीने पर गोली चला दी, जिससे गिरकर उसकी मौत हो गई। आरोपियों ने अ०सा०-4, उसके भतीजे राकेश, जनार्दन और जय प्रकाश के साथ भी मारपीट की।

(v) अ०सा०-5 हेड मोहर्रिर है, जिसने अपराध संख्या 498/05 और उसमें जी.डी एंट्री में चिक प्राथमिकी साबित की है।

(vi) अ०सा०-6 डॉ. योगेंद्र प्रताप सिंह, सी.एच.सी. हैसर बाजार में तैनात हैं। उन्होंने जनार्दन यादव, राकेश कुमार यादव, जय प्रकाश, राम बृक्षा यादव और सुभाष चंद की चोट की रिपोर्ट का सत्यापन किया है।

(vii) अ०सा०-7 डा राकेश कुमार वर्मा हैं, जिन्होंने मृतक महात्मा का शव परीक्षण किया है और शव परीक्षण रिपोर्ट को साबित किया है।

(viii) अ०सा०-8 उप निरीक्षक, वंश बहादुर यादव है, जो मामला अपराध संख्या 498/05 में विवेचनाधिकारी था। उन्होंने जांच रिपोर्ट के साथ-साथ अन्य पुलिस दस्तावेजों को भी सत्यापित किया है। उन्होंने राम बृक्षा यादव, सुभाष, हनुमान, मनोज गुप्ता और गनर प्रेम सिंह को गिरफ्तार किया है। उन्होंने गनर प्रेम सिंह से कार्बाइन भी बरामद की है। तथापि, कार्बाइन के संबंध में कोई फ़र्द बरामदगी तैयार नहीं किया गया था और केस डायरी में केवल पृष्ठांकन किया गया था। परीक्षण के दौरान कार्बाइन को प्रस्तुत किया गया है जिसमें 27 जीवित गोलियां पाई गई थीं। इस गवाह ने इस बात से इनकार किया है कि गनर ने रिकॉर्ड पर मौजूद रिपोर्ट के अलावा कोई अन्य लिखित रिपोर्ट दी थी। उन्होंने स्वीकार किया कि इसी तरह की गोली .9 एम.एम पिस्टल और कार्बाइन में इस्तेमाल की जाती है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि गोली फोरेंसिक रिपोर्ट के लिए नहीं भेजी गई थी। जिरह के दौरान अ०सा०-8 ने इस बात से इनकार किया कि अ०सा०-1 द्वारा उसे दिया गया बयान कि प्रेम सिंह संबंधित तारीख को हिंसा में शामिल नहीं था।

(ix) अ०सा०-9 (अरुण कुमार सिंह) थानाध्यक्ष है जिसे संत कबीर नगर से गोरखपुर में कार्यवाही स्थानांतरित होने के बाद वर्तमान मामले की जांच सौंपी गई थी। उन्होंने उन तारीखों को निर्दिष्ट किया है जब उन्होंने गवाहों के बयान दर्ज किए थे।

11. अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त आपत्तिजनक सामग्री के आधार पर आरोपी अपीलकर्ताओं के बयान धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए थे। सभी आरोपियों ने उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों से इनकार किया है और कहा है कि सूचनाकर्ता राकेश कुमार यादव बहुजन समाज पार्टी के तत्कालीन सांसद भालचंद्र यादव के करीबी थे और इसलिए, उनके हस्तक्षेप के कारण आरोपियों को झूठा फंसाया गया है। यह भी आरोप लगाया गया है कि सांसद के प्रभाव में कागजात तैयार किए गए हैं। आरोपियों ने यह भी बताया है कि वे वोट डालने आए थे और जैसे ही वे मतदान केंद्र पर पहुंचे उन पर महात्मा, ओंकार, जनार्दन आदि ने हमला कर दिया, जिसमें उन्हें चोटें आईं और जैसे ही जनता हिंसक हो गई, गनर प्रेम सिंह ने उन्हें बचाने के लिए गोली चला दी और गोली गलती से मृतक को लग गई।

12. बचाव पक्ष की ओर से आरोपियों ने योगेंद्र प्रताप सिंह (ब०सा०-1), रवींद्र सिंह (ब०सा०-2), मोहर्रिर राम आशीष भारतीय (ब०सा०-3), अशोक कुमार सिंह (ब०सा०-4), धर्म देव सिंह (ब०सा०-5) और श्रीराम (ब०सा०-7) गवाह पेश किए हैं।

13. मुकदमे के दौरान उपरोक्त साक्ष्य के आधार पर, निचली अदालत ने आरोपी अपीलकर्ताओं के खिलाफ लगाए गए आरोपों को उचित संदेह से परे साबित पाया है और परिणामस्वरूप उन्हें अन्य धाराओं के साथ धारा 302 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया है और कम सजा के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई है।

14. आरोपी अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आरोपी अपीलकर्ताओं को राजनीतिक दुश्मनी के कारण मामले में झूठा फंसाया गया है। यह आग्रह किया जाता है कि जाली मतों द्वारा मतदान में धांधली करने का

उनके खिलाफ आरोप निराधार है क्योंकि इस संबंध में मतदान अधिकारियों/सुरक्षाकर्मियों के समक्ष कोई शिकायत नहीं की गई थी और विचारण के चरण में अन्यथा कोई विवरण प्रस्तुत नहीं किया गया है। इसके बाद यह तर्क दिया जाता है कि राम बृक्षा यादव जय नारायण इंटर कॉलेज, मौड़ में एक मतदाता थे और हनुमान यादव द्वारा उनके लाए जाने की पूरी कहानी कल्पना की उपज के अलावा और कुछ नहीं है। यह तर्क दिया जाता है कि सूचनाकर्ता और उसके समर्थकों ने वास्तव में आरोपी अपीलकर्ताओं पर हमला किया था और गनर द्वारा गोलीबारी, मृतक को मारने के किसी भी इरादे या ज्ञान के बिना, केवल आत्मरक्षा में थी। आगे निवेदन यह है कि घायलों या मृतकों पर हमला करने की किसी की (राम वृक्षा यादव को छोड़कर) कोई विशिष्ट भूमिका नहीं सौंपी गई है। हमले का कोई हथियार अन्यथा अपीलकर्ताओं के लिए जिम्मेदार नहीं है। अंत में यह आग्रह किया जाता है कि कोई पूर्व- प्लानिंग नहीं था और घटना क्षणिक आवेग पर हुई।

15. श्रीमती अर्चना सिंह, राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता और साथ ही सूचनाकर्ता के अधिवक्ता श्री पी.सी श्रीवास्तव ने कहा कि आरोपी अपीलकर्ताओं ने दिनदहाड़े हुई घटना में मृतक पर हमला करने और उसे मारने के इरादे से जानबूझकर काम किया है। वे प्रस्तुत करते हैं कि आरोपी हनुमान ने चुनावों में धांधली करने की कोशिश की और सूचनाकर्ता द्वारा आपत्ति किए जाने पर राम बृक्षा यादव को लाया, जिन्होंने अपने गनर की कार्बाइन छीन ली और मृतक की गोली मारकर हत्या कर दी। आरोपी गैरकानूनी जमावड़े के सदस्य थे जिन्होंने मृतक की हत्या में सामान्य उद्देश्य से काम किया। तर्क यह है कि निचली अदालत ने अभियोजन पक्ष द्वारा अभियुक्त को दोषी ठहराने और सजा देने के लिए दिए गए सबूतों का सही मूल्यांकन किया है, जिसमें कोई हस्तक्षेप की जरूरत नहीं है।

16. हमने पक्षकारों के वकीलों को सुना है और रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्रियों का अवलोकन किया है, जिसमें नीचे की अदालत के मूल रिकॉर्ड भी शामिल हैं।

17. अभियोजन और बचाव पक्ष के साक्ष्य से यह बहुत स्पष्ट है कि पंचायत चुनाव हो रहे थे और संत कबीर नगर में 25 अगस्त, 2005 को मतदान की तारीख थी। प्रधान के पद पर खड़े होने वाले उम्मीदवारों में मृतक की बहू चंपा देवी पत्नी जय प्रकाश यादव और हनुमान यादव की पत्नी शामिल हैं। मृतक के परिवार और मुख्य आरोपी राम बृक्षा यादव के बीच पहले से कोई दुश्मनी नहीं थी, जिसे अ०सा०-1 राकेश कुमार यादव ने स्वीकार किया है। पूर्व दुश्मनी का कोई सबूत अन्यथा रिकॉर्ड पर उपलब्ध नहीं है। हालांकि यह आरोप लगाया जाता है कि पिछले चुनाव में मृतक और आरोपी राम बृक्षा यादव के बीच मतभेद उत्पन्न हो गए थे, लेकिन मतदान के समय उम्मीदवारों और उनके परिवार के सदस्यों/समर्थकों के बीच इस तरह के मतभेद आम हैं, जिन्हें दुश्मनी से नहीं जोड़ा जा सकता है।

18. अभियोजन पक्ष के अनुसार घटना की उत्पत्ति मनोज गुप्ता (हनुमान यादव के समर्थक) और पहले सूचनाकर्ता के बीच एक विवाद है क्योंकि यह माना जाता था कि हनुमान यादव फर्जी वोट डालकर चुनाव में धांधली कर रहे हैं। इस उत्पत्ति की रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्यों के संदर्भ में जांच किए जाने की आवश्यकता है।

19. अ०सा०-1 ने अपनी गवाही में स्वीकार किया है कि हनुमान यादव के इशारे पर फर्जी वोट डालने की उसे कोई व्यक्तिगत जानकारी नहीं थी। फर्जी वोटों के बारे में जानकारी का आधार पोलिंग एजेंट जनार्दन यादव (अ०सा०-2) से प्राप्त जानकारी है। अ०सा०-1 का दावा है कि जनार्दन यादव (अ०सा०-2) ने पोलिंग बूथ के भीतर से यह जानकारी दी थी।

20. जहां तक जनार्दन यादव (अ०सा०-2) की गवाही का सवाल है, उन्होंने स्वीकार किया है कि फर्जी वोटों के बारे में मतदान केंद्र पर मौजूद किसी भी चुनाव अधिकारी या सुरक्षा कर्मी को कोई विरोध या शिकायत नहीं की गई थी। उनका आरोप है कि गोरखपुर के हनुमान यादव का एक रिश्तेदार वोट डालने की कोशिश कर रहा था। हालांकि, न तो उसके नाम का खुलासा किया गया है और न ही उसकी पहचान स्थापित की गई है। कोई अन्य सबूत रिकॉर्ड पर सामने नहीं आया है जो यह राय बनाता हो कि चुनावों में धांधली की जा रही थी। मैदान में बारह अन्य प्रतियोगी भी थे, लेकिन कोई भी इस तरह की शिकायत के साथ आगे नहीं आया है। इसलिए जाली वोट डालने के संबंध में साक्ष्य विश्वसनीय प्रतीत नहीं होते क्योंकि इस संबंध में सामग्री विवरण गायब हैं। अधिकारियों से अन्यथा कोई शिकायत नहीं की गई थी। साक्ष्य से पता चलता है कि सूचनाकर्ता या अ०सा०-2 के मन में हनुमान यादव के गुट द्वारा फर्जी वोट डालने के बारे में कुछ आशंका थी। हालांकि, अभियोजन पक्ष इस सबूत को रिकॉर्ड में लाने में विफल रहा है कि चुनाव में फर्जी वोट डालने का प्रयास किया गया था या हनुमान यादव ने चुनाव में धांधली करने की कोशिश की थी।

21. अभियोजन पक्ष ने तब आरोप लगाया कि सूचनाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा आपत्ति किए जाने पर हनुमान यादव यह कहते हुए चले गए कि वह राम बृक्षा यादव को लाएंगे और वह वास्तव में राम बृक्षा यादव और उनके समर्थकों के साथ मतदान केंद्र पर लौट आए। अभियोजन पक्ष के इस संस्करण के खिलाफ दूसरा संस्करण यह है कि राम भृक्ष यादव अपने परिवार के सदस्यों के साथ अपना वोट डालने आए थे।

22. इस तथ्य पर भी एक मुद्दा है कि क्या आरोपी राम भृक्षा यादव और उनके परिवार के लिए मतदान केंद्र जय नारायण इंटर कॉलेज, मौर में था या गायघाट में था। इससे

यह समझने में मदद मिल सकती है कि क्या राम बृक्षा यादव वोट डालने के इरादे से पहुंचे थे या सूचनाकर्ता पक्ष से हनुमान यादव का बदला लेने के इरादे से।

23. विवेचनाधिकारी ने उस केंद्र के बारे में कोई सबूत एकत्र नहीं किया है जहां आरोपी राम बृक्षा यादव और उनके परिवार के सदस्यों को अपना वोट डालना था।

24. अ०सा०-1 का प्रमाण इस संदर्भ में प्रासंगिक है। अपनी जिरह में अ०सा०-1 ने साफ कहा है कि राम वृक्षा यादव के ग्राम टीकारा का पोलिंग बूथ जय नारायण इंटर कॉलेज, मौड़ में था। राम वृक्षा यादव और उनके परिवार के सदस्यों द्वारा वोट डालने के संबंध में उनका संस्करण इसके बाद निकाला गया है:

> "रामवृक्ष यादव को गांव टिघरा का भी मतदान केन्द्र जयनरायन इंटर कॉलेज मौर में था।
> मैं मतदान केन्द्र पर सुबह से था। रामवृक्ष व उनके परिवार वाले भी वोटर हैं, जिन्हे टिकरा मतदान केन्द्र पर वोट देना था।
> इस मारपीट में घटना के पूर्व रामवृक्ष व उनके परिवार वालों को मतदान केन्द्र पर देखा था। वे वोट डालने आए थे। वोट डालकर वे चले गए थे।
> यदि यह कहा जाय कि मैं झूठ बोल रहा हूँ गलत है। यह भी गलत है कि घटना के समय रामवृक्ष अपने परिवार के साथ वोट डालने आए थे, गलत है।
> यह भी गलत है कि इसी दौरान हमने रामवृक्ष को मारा। यह भी गलत है कि इसी कारण रामवृक्ष व उनके परिवार के लोग वोट नहीं दे सके।
> रामवृक्ष वोट करीब १० बजे देने आए थे।
> फिर कहा कि १० बजे रामवृक्ष नहीं बल्कि उनके परिवार के लोग वोट देने आए थे। १० बजे रामवृक्ष के परिवार में रामपूजन की औरत थी, उनके साथ एक लड़की थी, पुरूषों में रामवृक्ष के घर का कोई व्यक्ति १० बजे वोट देने नहीं आया।
> यह कहना कि रामवृक्ष के घर का कोई व्यक्ति या औरत उस दिन वोट नहीं दे पाया था गलत है।"

25. हालांकि अभियोजन का मामला यह है कि आरोपी राम बृक्षा यादव के लिए मतदान केंद्र गायघाट में था, लेकिन अ०सा०-1 के उपरोक्त निकाले गए बयान से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि राम वृक्षा यादव के लिए मतदान केंद्र जय नारायण इंटर कॉलेज, मौर में था। अ०सा०-1 ने दावा किया है कि उसने राम वृक्षा यादव और उनके परिवार के सदस्यों को वोट डालने के लिए दिन में बूथ पर आते देखा था, लेकिन वे कथित तौर पर उसके बाद लौट आए। तब उन्होंने कहा कि राम वृक्षा यादव सुबह करीब 10 बजे वोट डालने आए थे। हालांकि, अ०सा०-1 ने बाद में कहा कि सुबह 10 बजे राम भृक्षा यादव के परिवार के अन्य सदस्य वोट डालने आए थे, जिसमें रामपूजन की पत्नी भी शामिल थीं, लेकिन राम वृक्षा यादव के परिवार का कोई पुरुष सदस्य वोट डालने नहीं आया था। अ०सा०-1 का बयान स्पष्ट रूप से संकेत देता है कि राम बृक्षा यादव परिवार के सदस्यों के साथ जय नारायण इंटर कॉलेज, मौड़ में वोट डालने वाले थे। अ०सा०-1 के साक्ष्य में यह भी आया है कि आरोपी राम बृक्षा यादव के परिवार की महिलाएं सुबह करीब 10 बजे वोट डालने आई थीं, लेकिन राम बृक्षा यादव जय नारायण इंटर कॉलेज में वोट डालने नहीं आए थे। एक बार जब यह अ०सा०-1 कि जिरह में देखा जाता है कि राम बृक्षा यादव को जय नारायण इंटर कॉलेज में अपना वोट डालना था और उन्होंने पहले अपना वोट नहीं डाला था, तो मतदान केंद्र पर उनका आगमन अपना वोट डालने के उद्देश्य से हो सकता है। ऐसे में जय नारायण इंटर कॉलेज, मौड़ में उनकी उपस्थिति को नकारा नहीं जा सकता।

26. अभियोजन पक्ष का यह मामला कि राम वृक्षा यादव को गायघाट में अपना वोट डालना था, उस संबंध में कोई ठोस सबूत पेश करके साबित नहीं हुआ है। ऐसे में जयनारायण इंटर कॉलेज में वोट डालने के लिए रामबृक्ष यादव और उनके परिवार के सदस्यों के आने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है।

27. इस प्रकार हम अभियोजन पक्ष के इस कथन को स्वीकार करने के इच्छुक नहीं हैं कि राम बृक्षा यादव को जय नारायण इंटर कॉलेज, मौर में हनुमान यादव ने फर्जी वोटों के कारण पहले सूचनाकर्ता के साथ अपनी लड़ाई के कारण बुलाया था। हम पहले ही देख चुके हैं कि अभियोजन पक्ष यह साबित करने में नाकाम रहा है कि फर्जी वोट डालने के कारण हनुमान यादव के गुट द्वारा चुनावों में धांधली की जा रही थी। एक बार ऐसा हो जाने के बाद, अभियोजन के अनुसार, घटना की उत्पत्ति स्थापित नहीं होती है।

28. यह सामान्य ज्ञान की बात है कि प्रधान पद के चुनाव के दौरान गांवों में माहौल आमतौर पर गर्म रहता है और चुनाव के तरीके के बारे में अलग-अलग धारणा के कारण अक्सर मतभेद पैदा होते हैं। चुनावों में धांधली की आशंका एक गुट द्वारा उत्पन्न की जा सकती थी, भले ही इस तरह की आशंका का कोई वास्तविक आधार न हो। ऐसी परिस्थितियों में सामान्य परिवर्तन या मतभेद बहुत आम है।

29. चुनावों के आयोजन में निष्पक्षता के बारे में धारणा में अंतर, गर्म तर्कों के लिए अग्रणी; गालियां देना; हाथापाई आदि बहुत असामान्य नहीं हैं। हम यह भी नोट कर सकते हैं कि मतदान केंद्र पर लगभग 400 व्यक्ति वास्तव में मौजूद थे। एक सवाल के जवाब में अ०सा०-1 ने जिरह में कहा कि मतदान केंद्र पर करीब 400 लोग मौजूद थे।

उन्होंने यह भी कहा कि राम वृक्षा यादव के साथ लगभग 25 लोगों ने उन पर हमला किया था, लेकिन उन्होंने उनमें से केवल 3-4 को पहचाना।

30. रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य बताते हैं कि यह उपरोक्त आवेशित वातावरण में है कि हनुमान यादव के गुट द्वारा चुनावों में धांधली करने के कथित प्रयास और सूचनाकर्ता की ओर से इसके प्रतिवाद के कारण दोनों गुटों के बीच मौके पर ही लड़ाई छिड़ गई। इस लड़ाई में दोनों पक्षों के सदस्यों को चोटें आई हैं, इसके अलावा महात्मा यादव मारे गए।

31. प्रति-संस्करण सामने आए हैं कि हमलावर किस पक्ष में था। इस पहलू पर साक्ष्य बहुत विशिष्ट नहीं हैं, सिवाय इसके कि जिस तरह से महात्मा यादव की हत्या हुई।

32. रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य से यह पता चलता है कि मतदान केंद्र पर लगभग 400 व्यक्तियों की उपस्थिति में प्रधान के कार्यालय के दो उम्मीदवारों के समर्थकों ने एक-दूसरे के साथ लड़ाई की, जिसके परिणामस्वरूप दोनों पक्षों को चोटें आईं। इसी आवेशित माहौल में और मौके पर ही आरोपी राम वृक्षा यादव ने जाहिर तौर पर अपने गनर की कार्बाइन छीन ली और मृतक पर गोली चला दी।

33. अभियोजन पक्ष के गवाहों अर्थात् अ०सा०-1 से अ०सा०-4 ने विशेष रूप से कहा है कि मृतक को आरोपी राम वृक्षा यादव ने गोली मार दी थी। घटनास्थल पर इन गवाहों की उपस्थिति पर गंभीर संदेह नहीं है। अभियोजन पक्ष के मामले को शव परीक्षण रिपोर्ट द्वारा भी समर्थन दिया जाता है जिसमें मृतक महात्मा यादव को गोली लगी थी, जिससे उसकी मौत हो गई थी। गनर प्रेम सिंह के पास उपलब्ध कार्बाइन को परीक्षण में पेश किया गया है, जिसमें 27 जिंदा गोलियां सही सलामत पाई गई हैं। इस बात के भी प्रमाण मिले हैं कि कार्बाइन में 28 जिंदा गोलियां भरी हुई थीं। यह अभियोजन पक्ष के मामले का भी समर्थन करता है कि यह प्रेम सिंह की कार्बाइन थी कि आरोपी राम वृक्षा यादव ने अपने गनर से कार्बाइन छीनने के बाद मृतक को गोली मार दी थी। उस संबंध में अभियोजन पक्ष के साक्ष्य सुसंगत हैं और हमें अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य के साथ-साथ धारा 313 द०प्र०स० के तहत आरोपी प्रेम सिंह के बयान पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं मिलता है कि राम वृक्षा यादव द्वारा मृतक को घातक बंदूक की गोली लगी थी।

34. आरोपी प्रेम सिंह की ओर से उसके भाई रविंद्र सिंह ने ब०सा०-2 के रूप में कठघरे में प्रवेश किया है और कहा है कि आरोपी प्रेम सिंह को मृतक पर गोली चलाने की जिम्मेदारी लेने की धमकी दी गई थी अन्यथा उसका शव जेल से बाहर आएगा। इस संबंध में शिकायतें कथित तौर पर पुलिस अधिकारियों को भेजी गई थीं।

35. हमने आरोपी राम बृक्षा यादव की ओर से पेश किए गए तीन अन्य बचाव पक्ष के गवाहों अशोक कुमार सिंह (ब०सा०-4), होमगार्ड धर्म देव सिंह (ब०सा०-5) और श्री राम (ब०सा०-6) की गवाही पर भी विचार किया है, जिनके अनुसार आरोपी पर वोट डालने के लिए मतदान केंद्र में घुसते ही सूचनाकर्ता पक्ष ने हमला किया और यह उसका गनर प्रेम सिंह था जिसने राम बृक्षा यादव को बचाने के लिए गोली चलाई थी।

36. प्रेम सिंह द्वारा मृतक पर गोली चलाने के बारे में बचाव पक्ष विश्वसनीय नहीं लगता है। ब०सा०-4 ने अपने बयान में वस्तुतः बचाव पक्ष को निर्धारित किया है और स्वीकार किया है कि वह न केवल आरोपी राम बृक्षा यादव को बचपन से जानता है, बल्कि उसके साथ घनिष्ठ संबंध हैं। ब०सा०-5 को धारा 161 द०प्र०स० के तहत उनके बयान के साथ सामना कराया गया है जिसमें उन्होंने प्रेम सिंह के बारे में नहीं कहा था कि उन्होंने आरोपी राम बृक्षा यादव को बचाने के लिए गोली चलाई थी। यह गवाह आरोपी राम वृक्षा यादव के साथ ड्यूटी पर था। इसी तरह, ब०सा०-6 को केवल परीक्षण के चरण में पेश किया गया था और धारा 161 द०प्र०स० के तहत विवेचनाधिकारी द्वारा उसका बयान दर्ज नहीं किया गया था। उन्होंने वस्तुतः बचाव संस्करण को हटा दिया है।

37. निचली अदालत ने अभियुक्त राम बृक्षा यादव के बारे में बचाव पक्ष के गवाहों की गवाही को भी स्वीकार नहीं किया है कि उसने मृतक पर गोली नहीं चलाई थी या प्रेम सिंह ने ठोस कारणों से ऐसा किया था, जिसके साथ हम पिछले पैराग्राफ में हमारी चर्चाओं के प्रकाश में असहमत नहीं हैं।

38. जहां तक अ०सा०-1 राकेश कुमार यादव, जय प्रकाश, जनार्दन यादव को हुई चोटों का संबंध है, अभियोजन पक्ष के साक्ष्य इस बात के लिए विशिष्ट नहीं हैं कि उन पर हमला किसने किया और अभियुक्तों द्वारा इस्तेमाल किए गए हमले का हथियार क्या था। किसी भी आरोपी को हमले का कोई विशिष्ट हथियार नहीं सौंपा गया है। मतदान केंद्र पर लगभग 400 व्यक्तियों की मौजूदगी को अन्यथा अभियोजन पक्ष में भर्ती कराया जाता है। हम पहले ही देख चुके हैं कि मतदान केंद्र पर माहौल खराब हो गया था और मतदान में धांधली के कथित प्रयास को लेकर दो उम्मीदवारों के समर्थकों के बीच अचानक लड़ाई शुरू हो गई। चूंकि किसी भी आरोपी (राम वृक्षा यादव के अलावा) को हमले का कोई विशिष्ट हथियार नहीं सौंपा गया, इसलिए हमें राकेश कुमार यादव, जनार्दन यादव और जय प्रकाश यादव पर हमला करने के लिए किसी विशिष्ट व्यक्ति को दोषी ठहराना मुश्किल लगता है। इस तरह के निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए हम इस तथ्य पर भी भरोसा करते हैं कि चोटें न केवल सूचनाकर्ता पक्ष को बल्कि आरोपी पक्ष के सदस्यों को भी लगी थीं।

39. रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों का मूल्यांकन करने पर हम पाते हैं कि यह घटना पंचायत चुनाव के दौरान हुई, एक पक्ष द्वारा मतदान में धांधली करने के कथित प्रयास और दूसरे ने इस पर आपत्ति जताई। मतदान केंद्र पर करीब

400 लोग मौजूद थे। दो प्रत्याशी के समर्थकों के बीच मारपीट हो गई थी और इसी जोश में आरोपी राम वृक्षा यादव ने अपने गनर की कार्बाइन छीन ली और मृतक पर गोली चला दी। अभियोजन पक्ष का यह कथन स्थापित नहीं है कि आरोपी राम वृक्षा यादव को विशेष रूप से हनुमान यादव द्वारा बदला लेने के लिए लाया गया था।

40. यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सबूत मौजूद नहीं है कि मृतक महात्मा यादव की हत्या करने के लिए आरोपी व्यक्तियों की ओर से एक सामान्य उद्देश्य या इरादा था। अचानक कार्बाइन छीनने और मृतक पर गोली चलाने की राम वृक्षा यादव की कार्रवाई उसकी व्यक्तिगत हरकत प्रतीत होती है। हम अभियोजन पक्ष के इस मामले पर पहले ही विश्वास नहीं कर चुके हैं कि हनुमान यादव अपनी लड़ाई का बदला लेने के लिए राम भृक्षा यादव को लाए थे। यह दिखाने के लिए कोई अन्य सबूत मौजूद नहीं है कि अन्य आरोपियों ने महात्मा यादव की हत्या के लिए सामान्य उद्देश्य या इरादे से काम किया। मृतक महात्मा पर अन्य चोटें चोटों के रूप में हैं जो प्रकृति में सरल थीं। इसलिए, राम वृक्षा यादव के अलावा अन्य आरोपी अपीलकर्ताओं पर धारा 149 भ०द०वि० की सहायता से धारा 302 भ०द०वि० के तहत मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है।

41. मतदान केंद्र पर एक आवेशित माहौल में जहां 400 व्यक्ति मौजूद थे और दो प्रतिद्वंद्वी गुटों और उनके समर्थकों के बीच अचानक लड़ाई छिड़ गई, किसी भी पक्ष को चोट लगने के कारण किसी भी व्यक्ति को स्पष्ट रूप से जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है जब तक इनमें से किसी भी व्यक्ति के पास हमले का कोई हथियार या उन्हें सौंपे गए हमले की विशिष्ट भूमिका का कोई सबूत नहीं है।

42. अभियुक्त अपीलकर्ता राम वृक्षा यादव के अधिवक्ता ने सख्ती से प्रस्तुत किया कि आरोपी राम बृक्षा यादव ने खुद अपने सिर पर गंभीर चोटें लगाई थीं और मृतक को गोली का घाव गनर प्रेम सिंह द्वारा गोली लगने के कारण हुआ था। वैकल्पिक अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि घटना मृतक की हत्या करने के लिए किसी भी पूर्व विचार के बिना क्षण की प्रेरणा पर हुई और इसलिए, आरोपी अपीलकर्ता राम वृक्षा यादव की ओर से अपराध अधिक से अधिक धारा 304 भाग II भ०द०वि० के तहत हो सकता है और उसे धारा 302 भ०द०वि० के तहत अवैध रूप से दंडित किया गया है। उन्होंने आगे कहा कि आरोपी अपीलकर्ता राम बृक्षा यादव 2005 से जेल में है और उसके द्वारा जेल में बिताए गए कारावास की वास्तविक अवधि साढ़े 17 साल से ऊपर है और छूट के साथ कैद की अवधि 20 साल से अधिक होगी। अधिवक्ता ने कहा कि ऐसी परिस्थितियों में आरोपी अपीलकर्ता राम वृक्षा यादव की निरंतर कैद, कानून में पूरी तरह से अपोषणीय है।

43. हमने रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों की सावधानीपूर्वक जांच की है और हम पाते हैं कि महात्मा यादव की मौत की घटना दो गुटों के समर्थकों के बीच अचानक लड़ाई के कारण मतदान केंद्र पर एक उत्तेजित वातावरण में हुई, जिसमें दोनों पक्षों को चोटें आई हैं। यहां तक कि अगर हम अभियोजन पक्ष के बयान को स्वीकार करते हैं कि राम वृक्षा यादव की चोटें जनता के प्रतिशोध के कारण हुईं और उन्होंने पत्थर फेंके और लाठी (लाठी डंडा) से उनका पीछा किया, फिर भी, सबूतों के आकलन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि घटना बिना किसी पूर्व इरादे के हुई थी जिसमें मृतक को आरोपी राम वृक्षा यादव के हाथों गोली लगी थी। मृतक की हत्या करने के इरादे से गोलीबारी करने की संभावना नहीं है।

44. आरोपी अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने आग्रह किया है कि विचाराधीन घटना को धारा 300 भ०द०वि० के चौथे अपवाद के तहत कवर किया जाएगा, जो निम्नानुसार पढ़ता है: -

"अपवाद 4. --गैर इरादतन मानव वध हत्या नहीं है यदि यह अचानक झगड़े पर जुनून की गर्मी में, अचानक लड़ाई में पूर्व-विचार के बिना और अपराधी के बिना अनुचित लाभ उठाए या क्रूर या असामान्य तरीके से कार्य किए बिना किया जाता है।

45. हम इस स्तर पर उत्तराखंड राज्य बनाम सचेंद्र सिंह रावत, (2022) 4 एस.सी.सी 227 में सुप्रीम कोर्ट के फैसले का उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें न्यायालय ने धारा 300 भ०द०वि० के अपवाद 4 की जांच की और निम्नानुसार देखा:

"8. विरसा सिंह [विरसा सिंह बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर 1958 एस.सी 465: 1958 सी.आर.आई.एल.जे 818] में, पैरा 16 और 17 में, यह देखा गया और निम्नानुसार आयोजित किया गया: (ए.आई.आर पृष्ठ 468)

"16. ... सवाल यह नहीं है कि कैदी का इरादा गंभीर चोट पहुंचाना था या मामूली चोट पहुंचाना था, बल्कि यह है कि क्या वह उस चोट को कारित का इरादा रखता है जो मौजूद साबित होती है। यदि वह दिखा सकता है कि उसने नहीं किया, या यदि परिस्थितियों की समग्रता इस तरह के अनुमान को सही ठहराती है, तो, निश्चित रूप से, धारा की आवश्यकता का इरादा साबित नहीं होता है। लेकिन अगर चोट से परे कुछ भी नहीं है और तथ्य यह है कि अपीलकर्ता ने इसे कारित किया है, तो एकमात्र संभावित अनुमान यह है कि वह इसे कारित का इरादा रखता था। चाहे वह इसकी गंभीरता के बारे में जानता था, या गंभीर परिणामों का इरादा रखता था, न तो यहां है और न ही वहां। जहां तक इरादे का सवाल है, यह नहीं है कि क्या वह हत्या करने का इरादा रखता था, या किसी विशेष डिग्री की गंभीरता को चोट पहुंचाने का इरादा रखता था, लेकिन क्या वह प्रश्न में चोट पहुंचाने का इरादा रखता था; और एक बार चोट का अस्तित्व साबित हो जाने के बाद, इसे पैदा करने का इरादा तब तक माना जाएगा जब तक कि सबूत या परिस्थितियां विपरीत निष्कर्ष का वारंट न करें। लेकिन इरादा है या नहीं, यह तथ्य का सवाल है और

कानून का नहीं है। घाव गंभीर है या अन्यथा, और यदि गंभीर है, तो कितना गंभीर है, यह एक पूरी तरह से अलग और विशिष्ट प्रश्न है और इसका इस सवाल से कोई लेना-देना नहीं है कि कैदी ने प्रश्न में चोट पहुंचाने का इरादा किया था या नहीं।

17. यह सच है कि किसी दिए गए मामले में जांच को चोट की गंभीरता से जोड़ा जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि यह साबित किया जा सकता है, या यदि परिस्थितियों की समग्रता एक अनुमान को सही ठहराती है, कि कैदी ने केवल एक सतही खरोंच का इरादा किया था और दुर्घटना से उसका शिकार ठोकर खा गया और तलवार या भाले पर गिर गया जिसका इस्तेमाल किया गया था, तो निश्चित रूप से अपराध हत्या नहीं है। लेकिन ऐसा इसलिए नहीं है क्योंकि कैदी का इरादा उस चोट को कारित का नहीं था जो वह उतना ही गंभीर होना चाहता था जितना कि यह निकला, बल्कि इसलिए कि वह प्रश्न में चोट पहुंचाने का इरादा नहीं रखता था। ऐसे मामले में उनका इरादा पूरी तरह से अलग चोट पहुंचाना होगा। अंतर कानून का नहीं बल्कि तथ्य का है; (महत्त्व सन्निविष्ट)

9. धीरजभाई गोरखभाई नायक [धीरजभाई गोरखभाई नायक बनाम गुजरात राज्य, (2003) 9 एस.सी.सी 322: 2003 एस.सी.सी (सी.आर.आई) 1809] में, धारा 300 भ०द०वि० के अपवाद 4 की प्रयोज्यता पर, यह देखा गया और पैरा 11 में निम्नानुसार आयोजित किया गया: (एस.सी.सी पीपी 327-28)

"11. धारा 300 भ०द०वि० का चौथा अपवाद अचानक लड़ाई में किए गए कृत्यों को शामिल करता है। उक्त अपवाद अभियोजन के एक मामले (इस प्रकार उकसाने) से संबंधित है जो पहले अपवाद द्वारा कवर नहीं किया गया है, जिसके बाद इसका स्थान अधिक उपयुक्त होता। अपवाद एक ही सिद्धांत पर आधारित है, क्योंकि दोनों में पूर्वचिंतन का अभाव है। लेकिन, जबकि अपवाद 1 के मामले में आत्म-नियंत्रण का पूर्ण अभाव है, अपवाद 4 के मामले में, केवल जुनून की गर्मी है जो पुरुषों के शांत तर्क को बादल देती है और उन्हें उन कार्यों के लिए आग्रह करती है जो वे अन्यथा नहीं करेंगे। अपवाद 4 में अपवाद 1 के रूप में उत्तेजना है, लेकिन की गई चोट उस उकसावे का प्रत्यक्ष परिणाम नहीं है। वास्तव में, अपवाद 4 उन मामलों से संबंधित है जिनमें इस बात के बावजूद कि एक झटका मारा गया हो, या विवाद की उत्पत्ति में कुछ उकसावा दिया गया हो या जो भी झगड़ा उत्पन्न हुआ हो, फिर भी दोनों पक्षों का बाद का आचरण उन्हें अपराध के संबंध में एक समान स्तर पर रखता है। एक "अचानक लड़ाई" का अर्थ है आपसी उकसावे और प्रत्येक पक्ष पर प्रहार। तब की गई हत्या स्पष्ट रूप से एकतरफा उकसावे के लिए नहीं होती है, न ही ऐसे मामलों में पूरे दोष को एक तरफ रखा जा सकता है। यदि ऐसा होता, तो अपवाद अधिक उपयुक्त रूप से लागू होता। लड़ने के लिए कोई पूर्व विचार-विमर्श या दृढ़ संकल्प नहीं है। अचानक एक लड़ाई होती है, जिसके लिए कमोबेश दोनों पक्षों को दोषी ठहराया जाता है। यह हो सकता है कि उनमें से एक इसे शुरू करता है, लेकिन अगर दूसरे ने इसे अपने आचरण से नहीं बढ़ाया होता तो यह गंभीर मोड़ नहीं लेता था। फिर आपसी उत्तेजना होती है, और दोष के हिस्से को विभाजित करना मुश्किल होता है जो प्रत्येक झगड़ने वाले व्यक्ति से जुड़ा होता है। अपवाद 4 की मदद का आह्वान किया जा सकता है यदि मृत्यु का कारण बनता है: (ए) बिना किसी पूर्वविचार के, (बी) अचानक लड़ाई में, (सी) अपराधियों के बिना अनुचित लाभ उठाए या क्रूर या असामान्य तरीके से काम किए बिना, और (डी) लड़ाई मारे गए व्यक्ति के साथ व्यक्तिगत होनी चाहिए। अपवाद 4 के भीतर एक मामला लाने के लिए इसमें उल्लिखित सभी अवयवों को पाया जाना चाहिए। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि धारा 300 भ०द०वि० के अपवाद 4 में होने वाली "लड़ाई" भ०द०वि० में परिभाषित नहीं है। लड़ाई करने में दो लगते हैं। जुनून की गर्मी के लिए आवश्यक है कि जुनून को ठंडा करने के लिए कोई समय नहीं होना चाहिए और इस मामले में, पार्टियों ने शुरुआत में मौखिक विवाद के कारण खुद रोष में काम किया था। एक लड़ाई दो और दो से अधिक व्यक्तियों के बीच एक लड़ाई है चाहे वह हथियारों के साथ हो या बिना। किसी भी सामान्य नियम को प्रतिपादित करना संभव नहीं है कि अचानक झगड़ा क्या माना जाएगा। यह तथ्य का प्रश्न है और झगड़ा अचानक हुआ है या नहीं, यह आवश्यक रूप से प्रत्येक मामले के सिद्ध तथ्यों पर निर्भर होना चाहिए। अपवाद 4 का प्रयोग यह दिखाने के लिए पर्याप्त नहीं है कि अचानक झगड़ा हुआ था और कोई पूर्व-विचार नहीं था। आगे यह भी दर्शाया जाना चाहिए कि अपराधी ने अनुचित लाभ नहीं उठाया है अथवा क्रूर अथवा असामान्य तरीके से कार्य नहीं किया है। प्रावधान में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "अनुचित लाभ" का अर्थ है "अनुचित लाभ"।

10. पुलिचेरला नागराजू [पुलिचेरला नागराजू बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2006) 11 एस.सी.सी 444: (2007) 1 एस.सी.सी (सी.आर.आई) 500] में, इस न्यायालय के पास गैर इरादतन हत्या के मामले और मौत का इरादा नहीं होने के मामले पर विचार करने का अवसर था। इस न्यायालय द्वारा यह देखा गया और माना गया कि मृत्यु का इरादा आम तौर पर निम्नलिखित में से कुछ या कई के संयोजन से एकत्र किया जा सकता है, अन्य परिस्थितियों के बीच:

(1) इस्तेमाल किए गए हथियार की प्रकृति;

(ii) क्या अभियुक्त द्वारा हथियार ले जाया गया था अथवा उसे घटनास्थल से उठाया गया था;

(2) क्या झटका शरीर के एक महत्वपूर्ण हिस्से के उद्देश्य से है;

(iv) चोट पहुंचाने में नियोजित बल की मात्रा;
(v) क्या यह कृत्य अचानक झगड़े या अचानक लड़ाई या सभी के लिए स्वतंत्र लड़ाई के दौरान हुआ था;
(vi) क्या घटना संयोग से होती है या क्या कोई पूर्व-विचार किया गया था;
(vii) क्या कोई पूर्व शत्रुता थी या क्या मृतक कोई अजनबी था;
(viii) क्या कोई गंभीर और अचानक उत्तेजना हुई और यदि हां, तो इस प्रकार के उकसावे का कारण क्या है;
(ix) क्या यह जुनून की गर्मी में था;
(x) क्या चोट पहुंचाने वाले व्यक्ति ने अनुचित लाभ उठाया है या क्रूर और असामान्य तरीके से कार्य किया है;
(xi) क्या आरोपी ने एक ही झटका या कई वार किए।

46. धारा 300 भ०द०वि० के चौथे अपवाद को आकर्षित करने के लिए आवश्यक सामग्री वर्तमान मामले के तथ्यों में स्पष्ट रूप से मौजूद हैं क्योंकि मृत्यु का कारण है; कोई पूर्व-ध्यान मौजूद नहीं था; यह अचानक लड़ाई थी; अपराधी ने अनुचित लाभ नहीं लिया है या क्रूर या असामान्य तरीके से काम नहीं किया है, इसलिए, मामला स्पष्ट रूप से धारा 300 भ०द०वि० के चौथे अपवाद के तहत आता है। एक और पहलू पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि आरोपी राम वृक्षा यादव अपने साथ कोई आग्नेयास्त्र/हथियार नहीं ले जा रहा था और यह केवल उस क्षण था जब आरोपी ने अपने गनर की कार्बाइन छीन ली और मृतक पर गोली चला दी। इस परिस्थिति से यह भी पता चलता है कि आरोपी की ओर से किया गया कृत्य न तो पूर्व नियोजित था और न ही आरोपी व्यक्तियों के बीच महात्मा यादव की हत्या करने के लिए कोई पूर्व बैठक हुई थी और घटना अचानक हुई। अपराधी ने अनुचित लाभ नहीं लिया है या क्रूर या असामान्य तरीके से काम नहीं किया है। इसलिए, हमारी राय है कि आरोपी अपीलकर्ता राम बृक्षा यादव को धारा 304 भाग I भ०द०वि० के तहत दंडित किया जा सकता है, न कि धारा 302 भ०द०वि० के तहत।

47. निचली अदालत ने अभियोजन पक्ष के गवाहों यानी अ०सा०-1 से अ०सा०-4 की गवाही पर भरोसा करते हुए अभियोजन पक्ष के मामले को सावधानीपूर्वक जांच के अधीन किए बिना स्वीकार कर लिया है। निचली अदालत ने अभियोजन पक्ष को उचित संदेह से परे आरोपी अपीलकर्ताओं के अपराध को साबित करने के लिए दोषी ठहराते हुए अभियोजन की कहानी में ऊपर उल्लिखित विसंगतियों पर ध्यान नहीं दिया है। उत्पत्ति, घटनाओं और घटनाओं के सामने आने के तरीके के बारे में अभियोजन पक्ष के संस्करण की असंभवता अभियोजन पक्ष के मामले पर संदेह पैदा करती है जिसकी जांच नीचे की अदालत द्वारा सही परिप्रेक्ष्य में नहीं की गई है। निचली अदालत का निष्कर्ष कि अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को उचित संदेह से परे स्थापित किया है, इसलिए, अभियुक्त राम वृक्षा यादव के मामले को छोड़कर, इसे कायम नहीं रखा जा सकता है, जिसके संबंध में सजा को धारा 302 भ०द०वि० के खिलाफ धारा 304 (भाग-I) में बदला जा रहा है।

48. उपरोक्त कारणों और चर्चाओं के लिए, आरोपी अपीलकर्ता राम वृक्षा यादव द्वारा दायर आपराधिक अपील संख्या 4062 वर्ष 2008 सफल होने की हकदार है और इसलिए इसे आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है। धारा 302 भ०द०वि० के तहत दिनांक 30.04.2008/02.05.2008 के फैसले और आदेश के तहत आरोपी अपीलकर्ता राम वृक्षा यादव की दोषसिद्धि और सजा को धारा 304 भाग I भ०द०वि० के तहत बदला जाता है और प्रतिस्थापित किया जाता है। चूंकि अभियुक्त अपीलकर्ता पहले ही 17 साल से अधिक की वास्तविक कैद काट चुका है, और छूट के साथ कैद की अवधि 20 साल से अधिक है, इसलिए उसे जेल से पहले से ही दी गई सजा पर रिहा कर दिया जाएगा, जब तक कि वह, धारा 437-ए द०प्र०स० के अनुपालन के अधीन, किसी अन्य मामले में वांछित न हो। जहां तक आपराधिक अपील संख्या 3081 वर्ष 2008 (आरोपी अपीलकर्ता प्रेम सिंह द्वारा दायर), 3082 वर्ष 2008 (आरोपी अपीलकर्ता सुभाष यादव, राम पूजन यादव और वीरेंद्र यादव द्वारा दायर), 3083 वर्ष 2008 (आरोपी अपीलकर्ता मनोज गुप्ता द्वारा दायर) और 3274 वर्ष 2008 (आरोपी अपीलकर्ता हनुमान यादव द्वारा दायर) का संबंध है, यह देखा गया है कि इन आरोपी अपीलकर्ताओं में से किसी को भी विशेष रूप से हमले का कोई हथियार नहीं बताया गया है और न ही उन्हें भूमिका सौंपी गई है (ख) यदि हां, तो तत्संबंधी ब्यौरा क्या है; और तदनुसार उनकी अपीलें सफल होती हैं और उन्हें अनुमति दी जाती है; और दिनांक 30.04.2008/02.05.2008 के निर्णय और आदेश के तहत अभियुक्त प्रेम सिंह, सुभाष यादव, राम पूजन यादव, वीरेंद्र यादव, मनोज गुप्ता और हनुमान यादव की दोषसिद्धि और सजा को अपास्त किया जाता है। यदि उपर्युक्त अपीलकर्ता जेल में हैं, तो उन्हें तुरंत रिहा कर दिया जाएग या यदि वे जमानत पर हैं तो उनकी ज़मानत और जमानत बांड मुक्त हो जाएंगे और उन्हें रिहा कर दिया जाए, जब तक कि वे धारा 437 ए द०प्र०स० 49 के अनुपालन के अधीन, किसी अन्य मामले में वांछित न हो।

49. लागत के रूप में कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है।

(2023) 1 ILRA 1043
अपीलीय क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 22.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेन्द्र ठाकेर
माननीय न्यायमूर्ति अजय त्यागी

क्रिमिनल अपील संख्या-4666 वर्ष 2014

सुरेंद्र कुमार ...अपीलार्थी
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिपक्षी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
श्री एसपी शर्मा, श्री अजय कुमार पांडेय, श्री गौरव कक्कड़, श्री कार्तिकेय सरन, श्री सतीश त्रिवेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री शेषाद्री त्रिवेदी

विपक्ष के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता, कुमारी रचना तिवारी

आपराधिक कानून- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 32- भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 302 और 304 (भाग I) - मृतक की मृत्यु एक हत्या की मौत थी - रिकॉर्ड पर मृत्यु घोषणा, जिसमें मृतक ने कहा है कि फायरिंग अचानक शुरू हो गई थी। अपीलकर्ता और मृतक के बीच कोई दुश्मनी या झगड़ा नहीं था। इसलिए, यह सुरक्षित रूप से माना जा सकता है कि अपीलकर्ता मृतक को खत्म नहीं करना चाहता था। स्पष्ट रूप से मामला दो पहलुओं पर टिका है। एक मृतक की मृत्यु की घोषणा है जिसके द्वारा यह पता नहीं चला है कि अपीलकर्ता का मृतक की हत्या करने का इरादा था, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है। दूसरा पहलू यह है कि मृतक के बेटे के साथ पहले थाने के गेट पर कुछ झगड़ा हुआ था, जहां सूचनाकर्ता और अपीलकर्ता थे- अपराध धारा 304 (भाग I) के तहत दंडनीय होगा क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि मृतक की मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी और यह एकल बंदूक की गोली का मामला है। यह मामला गैर इरादतन हत्या के दायरे में आता है।

जहां, मृत्यु पूर्व बयान के अनुसार, अपीलकर्ता का कार्य अचानक था और पूर्व नियोजित नहीं था और यह एक ही गोली का मामला था, इसलिए मृतक की हत्या करने का कोई इरादा नहीं था, मामला गैर इरादतन हत्या के दायरे में आएगा जो 'हत्या' नहीं है।

सजा की मात्रा- अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, अभियुक्त की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए- देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और सजा के बीच संतुलन बनाने की दिशा में रही है- देश में अपनाया गया आपराधिक न्याय न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक और उपचरात्मक है। साथ ही, हमारी दांडिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए। चूंकि अभियुक्त पहले ही जेल रिपोर्ट के अनुसार छूट के साथ 10 साल और 7 महीने की सजा काट चुका है और वह अपनी नौकरी भी खो देता क्योंकि वह एक पुलिस कांस्टेबल था- धारा 302 भ०द०वि० के तहत अपीलकर्ता की सजा को धारा 304 (भाग I) भ०द०वि० में बदल दिया जाता है और अपीलकर्ता को जुर्माने के साथ पहले से ही बिताई गई अवधि के लिए सजा सुनाई जाती है। चूंकि भारतीय आपराधिक न्यायशास्त्र सुधारात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, इसलिए लगाई गई सजा अपराध की गंभीरता के अनुपात में होनी चाहिए और अनुचित रूप से कठोर नहीं होनी चाहिए, इसलिए चूंकि अपराध गैर इरादतन हत्या है, इसलिए अपीलकर्ता ने अपनी नौकरी खो दी है और 10 साल से अधिक जेल में बिताया है, इसलिए सजा उसके द्वारा पहले से ही दी गई सजा से कम हो गई है। (अनुच्छेद 14, 16, 17, 21, 22, 24, 25)

आपराधिक अपील आंशिक रूप से अनुमति दी। (ई-3)

<u>केस लॉ/नीए निर्णय जिन पर पर भरोसा</u>:-

1. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मो. इकराम और अन्य, (2011) 8 एस.सी.सी. 80

2. मो. गियासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 1977 एस.सी. 1926

3. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2004) 7 एस.सी.सी. 257

4. रवदा शशिकला बनाम आंध्र प्रदेश ए.आई.आर. राज्य 2017 एस.सी. 1166

(माननीय न्यायमूर्ति अजय त्यागी द्वारा दिया गया)

1. यह अपील सत्र न्यायाधीश, हमीरपुर के सत्र विचारण संख्या 9 वर्ष 2009 (राज्य बनाम सुरेन्द्र कुमार) में अपराध संख्या-02 वर्ष 2008 धारा 302, 323 भ०द०वि०, थाना- चिकासी, जिला- हमीरपुर के तहत दायर निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध की गई है, जिसके द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थी को धारा 302 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया

गया और 20,000/- रुपए के जुर्मने सहित आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। और जुर्माना अदा न करने पर दो वर्ष के लिए और कारावास, तथा धारा 323 के अंतर्गत 1000/- रुपए के जुर्माने सहित एक वर्ष का कारावास और जुर्माना अदा न करने के मामले में तीन माह का और कारावास भुगतना होगा।

2. अभिलेख से निकाले गए संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि सूचनाकर्ता संजय कुमार द्वारा थाना-चिकासी, जिला हमीरपुर में 02.01.2008 को एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी। शाम करीब 7:15 बजे सूचनाकर्ता थाने के गेट पर चाय पीकर अपने क्वार्टर जा रहा था। उसी थाने-चिकासी का कांस्टेबल सुरेंद्र कुमार हाथ में राइफल लेकर आया और गाली-गलौज करने लगा। जब उसे गाली देने से रोका गया तो उसने सूचनाकर्ता को राईफ़ल के बट से पीटा। वह थाने के अंदर भागा और नीचे गिर गया। उसकी मां माया दुबे वहां आई और पूछा कि उसे किसने पीटा है। उसी समय कांस्टेबल सुरेंद्र कुमार ने वहां पहुंचकर सूचनादाता की मां पर अपनी सरकारी राइफल से गोली चला दी, जो उसकी मां के पैर में लगी।

3. विवेचनाधिकारी ने जांच शुरू की, घटनास्थल का दौरा किया, नक्शा नज़री तैयार किया और सूचनाकर्ता की मां को सरकारी अस्पताल, राठ ले जाया गया और वहां भर्ती कराया गया। उसी दिन नायब तहसीलदार ने उनका मृत्युपूर्व बयान दर्ज किया था। विवेचनाधिकारी ने धारा 161 और 164 द०प्र०स० के तहत गवाहों के बयान दर्ज किए, राइफ़ल और जिंदा कारतूस के फर्द बरामदगी के साथ-साथ खाली कारतूस भी तैयार किए गए। इलाज के दौरान सूचना देने वाले की घायल मां की मृत्यु हो गई और मामला धारा 302 भ०द०वि० में तब्दील कर दिया गया। मृतक का शव परिक्षण किया गया और पंचनामा कार्यवाही के बाद डॉक्टर द्वारा शव परिक्षण रिपोर्ट तैयार की गई। पंचनामा पूरा होने के बाद, विवेचनाधिकारी द्वारा अपीलकर्ता सुरेंद्र कुमार के खिलाफ धारा 307/302, 323 और 409 भ०द०वि० के तहत और धारा 29 पुलिस अधिनियम के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था।

4. सत्र न्यायालय द्वारा विशेष रूप से विचारणीय होने के कारण मामला सत्र न्यायालय के लिए प्रतिबद्ध था।

5. विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 302 भ०द०वि० और 323 भ०द०वि०के तहत आरोप तय किए। आरोपी को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे ऊसने इन्कार किया और विचारण चाहा। अभियोजन पक्ष ने आरोपी को कानून के दायरे में लाने के लिए, पांच गवाहों की जांच की, जो निम्नानुसार हैं:

1	संजय कुमार द्विवेदी	अ०सा०-1
2	अर्चना द्विवेदी	अ०सा०-2
3	दीन दयाल	अ०सा०-3
4	कुमारी पारुल	अ०सा०-4
5	डॉ अरविन्द कुमार जैन	अ०सा०-5
6	उमेश कुमार	अ०सा०-6
7	आशाराम वर्मा	अ०सा०-7
8	विवेक सिंह	अ०सा०-8
9	सालिकराम	अ०सा०-9
10	डॉ आर के वर्मा	अ०सा०-10

6- गवाहों के चक्षुक संस्करण के समर्थन में, निम्नलिखित दस्तावेज थे प्रस्तुत किए गए और सामग्री प्रमुख साक्ष्य द्वारा साबित की गई:

1	प्राथमिकी	प्रदर्श क-2
2	तहरीरी रिपोर्ट	प्रदर्श क-1
3	मृत्यु पूर्व बयान	प्रदर्श क-16
4	राइफल का फर्द बरामदगी जिंदा कारतूस और खाली कारतूस	प्रदर्श क—5
5	खून आलूदा मिट्टी और सादी मिट्टी का फर्द बरामदगी	प्रदर्श क-7
6	चोट रिपोर्ट	प्रदर्श क-17
7	शव परीक्षण रिपोर्ट	प्रदर्श क-4
8	विधि विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट	प्रदर्श क-18
9	विधि विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट	प्रदर्श क-19
10	विधि विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट	प्रदर्श क-20
11	पंचायतनामा	प्रदर्श क-10
12	आरोप पत्र	प्रदर्श क-8
13	सारणी के साथ नक्शा नज़री	प्रदर्श क-6
14	सारणी के साथ नक्शा नज़री	प्रदर्श क-9

7. अभियोजन साक्ष्य पूरा होने के बाद, आरोपी की धारा 313 द०प्र०स० के तहत जांच की गई। आरोपी ने अपने बचाव में एक गवाह से पूछताछ की।

8. विद्वान विचारण न्यायालय ने दोनों पक्षों को सुनने के बाद आरोपी अपीलकर्ता को धारा 302 भ०द०वि०, 323 के

तहत दोषी ठहराया और तदनुसार सजा सुनाई। इसलिए यह अपील की गई है।

9. अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री सतीश त्रिवेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता को सुना, जिन्हें श्री शेषाद्री त्रिवेदी द्वारा सहायता प्रदान की गई थी, और श्री पतंजलि मिश्रा जिन्हें श्री एन.के. श्रीवास्तव को सुन और अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना और साथ ही रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

10. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इस मामले में बड़े विरोधाभास हैं, जो इस मामले की जड़ तक जाता है क्योंकि प्रथम सूचना रिपोर्ट में, सूचनाकर्ता ने खुद आरोप लगाया है कि गोली उसकी मां के पैर में लगी, जबकि शव परिक्षण रिपोर्ट से पता चलता है कि गोली घायल/मृतक के पेट में डाली गई थी। शव परिक्षण करने वाले डॉक्टर अ०सा०- 5 के साक्ष्य से यह भी पता चलता है कि चोट नंबर-1 पेट में बंदूक की गोली का प्रवेश घाव है और चोट नंबर-2 उसी प्रवेश घाव का निकास घाव है। इसलिए, सूचनाकर्ता चश्मदीद गवाह नहीं है। इसके बाद यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता और मृतक के बीच कोई दुश्मनी नहीं थी।

11. कुछ लंबी बहस के बाद, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वह एकदम बरी करने के लिए नहीं कह रहा है, लेकिन इस मामले में महत्वपूर्ण पहलू है कि यह हत्या का मामला नहीं है क्योंकि अपीलकर्ता का मृतक को मरने का कोई इरादा नहीं था। यह कृत्य पूर्व नियोजित नहीं था और न ही मृतक और अपीलकर्ता के बीच कोई दुश्मनी थी। इसके अलावा, मृतका ने अपने मृत्यु-घोषणा में भी कहा है कि गोली अचानक लगी थी। इसलिए, यदि अभियोजन पक्ष के मामले को सच माना जाता है, तो भी यह धारा 304 भ०द०वि० के दायरे से बाहर नहीं जाता है। अधिवक्ता ने 02.08.2022 को दी गई आपराधिक अपील संख्या-890 वर्ष 2002 (जावेद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) और 16.12.2021 को दी गई आपराधिक अपील संख्या-4718 वर्ष 2018 (निरंजन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में इस न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया।

12. घटना के स्थान पर गवाहों की उपस्थिति के बारे में तथ्य के निष्कर्ष को गलत नहीं ठहराया जा सकता है। मृतक की मौत एक हत्या की मौत थी। तथ्य यह है कि यह एक हत्या की मौत थी, इस न्यायालय को सबसे अधिक परेशान करने वाले प्रश्न पर ले जाता है कि क्या यह हत्या के दायरे के भीतर आएगा या ऐसी गैर इरादतन मानव वध हत्या नहीं होगी। इसलिए, हम इस प्रश्न पर विचार कर रहे हैं कि क्या यह हत्या होगी या गैर इरादतन मानव वध होगा और भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के अंतर्गत दंडनीय होगा।

13. उत्तर प्रदेश राज्य में बनाम मो. इकरम और अन्य, [(2011) 8 एस.सी.सी. 80], सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 26 में निम्नलिखित टिप्पणियां की हैं:

"26. एक बार जब अभियोजन पक्ष अपराध स्थल पर अभियुक्तों की उपस्थिति के सबूत ले आया है, तो बचाव पक्ष पर यह जिम्मेदारी आ गई कि वह सुझाव लाए कि रात के अंधेरे में उन्हें घटनास्थल पर क्या कारण ला सकता था। अभियुक्तों को गिरफ्तार कर लिया गया था और इसलिए, वे अभियोजन पक्ष द्वारा निर्वहन किए गए इस बोझ का खंडन करने के लिए बाध्य थे और उनके द्वारा ऐसा करने में विफल रहने के बाद, विचारण न्यायालय इस मुद्दे पर अपने निष्कर्षों को दर्ज करने में न्यायसंगत था। उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालकर एक त्रुटि की कि अभियोजन पक्ष अपने बोझ का निर्वहन करने में विफल रहा है। इस प्रकार, निर्णय एक अनुमान पर आगे बढ़ता है जो इसे अस्थिर/कमजोर करता है।

14. गवाहों के साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए और शव परिक्षण रिपोर्ट सहित चिकित्सा साक्ष्य पर भी विचार करते हुए, वर्तमान अपीलकर्ताओं के अपराध के बारे में हमारे मन में कोई संदेह नहीं बचा है। हालांकि, जो सवाल हमारे विचार के लिए आता है, वह यह है कि क्या मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के पुनर्मूल्यांकन पर, भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत अपीलकर्ता की दोषसिद्धि को बरकरार रखा जाना चाहिए या दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग-I या भाग-II के तहत परिवर्तित किया जाना चाहिए। भारतीय दंड संहिता की धारा 299 का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा, जो निम्नानुसार है:

"299. सदोष मानव वध : जो कोई मृत्यु कारित करने के आशय से या ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से, जिससे मृत्यु कारित किए जाने की सम्भावना है, या इस ज्ञान के साथ कि वह ऐसे कार्य द्वारा मृत्यु कारित करने की सम्भावना रखता है, वह सदोष मानव वध का अपराध करेगा।

15. 'हत्या' और 'गैर इरादतन मानव वध' के बीच शैक्षणिक अंतर ने न्यायालयों को हमेशा परेशान किया है। भ्रम पैदा होता है, अगर अदालतें इन धाराओं में विधायिका द्वारा उपयोग की जाने वाली शर्तों के सही दायरे और अर्थ की दृष्टि खो देती हैं, तो खुद को बारीक अमूर्तताओं में खिंचने की अनुमति देती हैं। इन प्रावधानों की व्याख्या और लागू के दृष्टिकोण का सबसे सुरक्षित तरीका भारतीय दंड संहिता की धारा 299 और 300 के विभिन्न खंडों में उपयोग किए गए की-वर्ड को ध्यान में रखना प्रतीत होता है।

निम्नलिखित तुलनात्मक तालिका दो अपराधों के बीच अंतर के बिंदुओं को समझने में सहायक होगी।

धारा 299	धारा 300
कोई व्यक्ति गैर इरादतन मानव वध करता है यदि वह कार्य जिसके द्वारा मृत्यु कारित की जाती है-	कुछ अपवादों के अधीन, गैर इरादतन मानव वध हत्या है यदि वह कार्य जिसके द्वारा मृत्यु हुई है, किया जाता है।

आशय

(a) मौत के इरादे से; नहीं तो	(1) मौत के इरादे से; नहीं तो
(b) ऐसा करने के इरादे से शारीरिक चोट के रूप में मृत्यु का कारण बनने की संभावना है; नहीं तो	2) ऐसा करने के इरादे से शारीरिक चोट के रूप में कि अपराधी जानता है उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण बनने की संभावना हो जिसे नुकसान हुआ है
ज्ञान	ज्ञान
(c) इस ज्ञान के साथ कि कार्य से मृत्यु होने की संभावना है	4) इस ज्ञान के साथ कि कार्य इतना तुरंत खतरनाक है कि यह सभी संभावनाओं में मृत्यु या इस तरह का कारण होना चाहिए शारीरिक चोट के रूप में मृत्यु का कारण बनने की संभावना है, और मृत्यु के कारण या होने के जोखिम के लिए किसी भी बहाने के बिना या ऐसी चोट जैसा कि ऊपर बताया गया है.

16. इस मामले में थाने के गेट पर सूचनाकर्ता और अपीलकर्ता के बीच झगड़ा हुआ। अपीलकर्ता और सूचनाकर्ता दोनों एक ही थाने में कांस्टेबल तैनात हैं। जब अपीलकर्ता द्वारा सूचनाकर्ता की पिटाई की गई, तो मृतक, जो सूचनाकर्ता की मां थी, बीच में आ गई। फिर अपीलकर्ता द्वारा गोली चलाई गई, जो मृतक के शरीर पर लगी, रिकॉर्ड पर मृत्यु पूर्व बयान हुआ, जिसमें मृतक ने कहा है कि गोली अचानक मारी गई थी। अपीलकर्ता और मृतक के बीच कोई दुश्मनी या झगड़ा नहीं था। इसलिए, यह सुरक्षित रूप से माना जा सकता है कि अपीलकर्ता मृतक को मारना नहीं चाहता था। स्पष्ट रूप से मामला दो पहलुओं पर टिका है। एक मृतक की मृत्यु पूर्व बयान की घोषणा है जिसके द्वारा यह पता नहीं चला है कि अपीलकर्ता का मृतक की हत्या करने का इरादा था, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है। दूसरा पहलू यह है कि थाने के गेट पर पहले मृतक के बेटे से कुछ झगड़ा हुआ था, जहां सूचनाकर्ता और अपीलकर्ता तैनात थे। यह स्पष्ट है कि घटना क्षणिक आवेग में हुई थी। इसलिए, अपीलकर्ता द्वारा आपराधिक अपील संख्या-4781 वर्ष 2018 और आपराधिक अपील संख्या-890 वर्ष 2002 (उपरोक्त) में भरोसा किए गए निर्णय इस मामले के तथ्यों पर पूरी ताकत से लागू होते हैं। अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री मिश्रा द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि आरोपी 27.01.2017 से जेल में है।

17. मृत्यु पूर्व बयान और रिकॉर्ड पर अन्य सबूतों के साथ इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्र जांच पर, हमारी राय है कि अपराध धारा 304 (भाग-I) के तहत दंडनीय होगा क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि मृतक की मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी और यह एकल बंदूक की गोली का मामला है। यह मामला गैर इरादतन हत्या के दायरे में आता है।

18. जहां तक सजा की मात्रा का संबंध है, सजा की अवधि अपराध की गंभीरता के अनुरूप होनी चाहिए।

19. मो. गियासुद्दीन बनाम स्टेट ऑफ ए.पी, [ए.आई.आर. 1977 एस.सी. 1926], सजा में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए सुप्रीम कोर्ट द्वारा देखा गया है:

"अपराध एक पैथोलॉजिकल विपथन है। अपराधी को आमतौर पर सुधारा जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय पुनर्वास करना होगा। उप-संस्कृति जो असामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं बल्कि पुनर्संस्कृतिकरण द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए, व्यक्ति और लक्ष्य में पेनोलॉजी में रुचि का ध्यान उसे समाज के लिए उबारना है। कठोर और बर्बर दंड का प्रहार इस प्रकार अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। मानव आज एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में सजा देता है जो आपराधिकता में बिगड़ गया है और आधुनिक समुदाय की सामाजिक रक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारी आपराधिक अदालतों में 'आतंक' के दृष्टिकोण के बजाय चिकित्सीय होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति की क्रूर कैद केवल उसके दिमाग की पंगुता पैदा करती है। यदि आप किसी व्यक्ति को प्रतिशोध की सजा देना चाहते हैं, तो आपको उसे घायल करना होगा। यदि आप उसे सुधारना चाहते हैं, तो आपको उसे सुधारना होगा और, मानव का चोटों से सुधार नहीं होगा।

20. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 7 एस.सी.सी. 257] में 'उचित दंड' की व्याख्या यह देखते हुए की गई थी कि दंड अत्यधिक कठोर या हास्यास्पद रूप से कम नहीं होना चाहिए। सजा की मात्रा का निर्धारण करते समय, अदालत को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सजा देने में न्यायालय के विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से या सनकी तरीके से नहीं किया जा सकता है।

21. रवदा शशिकला बनाम एपी ए.आई.आर. राज्य 2017 एस.सी. 1166 में, सुप्रीम कोर्ट ने जमील बनाम यूपी राज्य [(2010) 12 एस.सी.सी. 532], गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एस.सी.सी. 734], सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एस.सी.सी. 323], पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 एस.सी.सी. 441], और राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एस.सी.सी. 463] और दोहराया है कि, सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर सुधारात्मक मशीनरी या निवारक अपनाना चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और दी गई परिस्थितियां, अपराध की प्रकृति, जिस तरीके से इसकी योजना बनाई गई और कारित की गई, अपराध करने का मकसद, अभियुक्त का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी उपस्थित परिस्थितियां प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचारणीय क्षेत्र में आएंगे। इसके अलावा, सजा में अनुचित सहानुभूति न्याय वितरण को अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कम करेगी। प्रत्येक न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह अपराध की प्रकृति और उसके किए जाने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा सुनाए। सुप्रीम कोर्ट ने आगे कहा कि अदालतों को न केवल अपराध के पीड़ित के अधिकार को ध्यान में रखना चाहिए बल्कि बड़े पैमाने पर समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित सजा देने पर विचार करते समय, पूरे समाज पर अपराध के प्रभाव और कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में संपूर्णता और अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा आजीवन कारावास की सजा दी गई सजा बहुत कठोर है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया है कि दांडिक न्याय प्रणाली में अंतनहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए।

25. चूंकि अभियुक्त पहले ही जेल रिपोर्ट के अनुसार छूट के साथ 10 साल और 7 महीने की सजा काट चुका है और

न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और दंड के बीच संतुलन बनाने की ओर रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर मुहर लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित सजा देकर हासिल किया जा सकता है। कानून, व्यवस्था और शांति बनाए रखने के लिए एक उपकरण के रूप में, समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज लंबे समय तक अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरों के तहत सहन और विकसित नहीं हो सकता है। इसलिए सजा देने में अनुचित उदारता से बचना आवश्यक है। इस प्रकार, देश में अपनाया गया आपराधिक न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक और उपचरात्मक है। साथ ही, हमारी दांडिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।

22. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए, जो सुधारात्मक और उपचरात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधरने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर देने के लिए सभी उपायों को लागू किया जाना चाहिए।

23. चूंकि अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने अपील को उसके गुण-दोष के आधार पर जोर नहीं दिया है, हालांकि, रिकॉर्ड पर पूरे साक्ष्य और विचारण न्यायालय के फैसले के अवलोकन के बाद, हम मानते हैं कि अपील योग्यता से रहित है और खारिज होने योग्य है। इसलिए, अपीलकर्ता की सजा को बरकरार रखा जाता है।

24. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'दंड के सुधारवादी सिद्धांत' को अपनाया जाना है और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए दंड देना आवश्यक है। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की

वह अपनी नौकरी भी खो देता क्योंकि वह एक पुलिस कांस्टेबल था, इसलिए हम अपीलकर्ता द्वारा पहले से ही भुगती गई सजा देना उचित समझते हैं।

26. धारा 302 भ०द०वि० के तहत अपीलकर्ता की सजा को धारा 304 (भाग-I) भ०द०वि० में बदल दिया जाता है और अपीलकर्ता को उसके द्वारा पहले से ही भुगती गई अवधि के लिए और 5,000 रुपये के जुर्माने के साथ सजा सुनाई जाती है। जुर्माना न चुकाने की स्थिति में अपीलकर्ता

को तीन महीने की साधारण कैद काटनी होगी। धारा 323 अपीलकर्ता द्वारा पहले ही दी जा चुकी है। धारा 323 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए जुर्माना और उसी में डिफ़ॉल्ट सजा बरकरार रहेगी।

27. तदनुसार, अपील को आंशिक रूप से सजा के संशोधन के साथ अनुमति दी जाती है, जैसा कि ऊपर दिया गया है।

28. अभिलेख और कार्यवाही अनुपालन के लिए निचली अदालत को वापस भेजी जाए।

(2023) 1 ILRA 1050
अपीलीय क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 17.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मयंक कुमार जैन

क्रिमनल अपील संख्या-6929 वर्ष 2017

असलम और एक अन्य ... अपीलकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य ... प्रतिपक्षी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:
श्री वी.पी सिंह कश्यप, श्री दरवेश कुमार, श्री मनीष कुमार कश्यप, श्री संजय सिंह

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 313 और 452 - धारा 366- धारा 376 डी- घटना के संबंध में अ०सा०-1 पीड़िता द्वारा पेश किया गया पूरा सबूत विरोधाभासों से भरा है और विश्वसनीय नहीं है क्योंकि सबसे पहले कथित गर्भपात के संबंध में रिकॉर्ड पर कोई दस्तावेजी सबूत उपलब्ध नहीं है। अभियुक्त असलम से परिचित होने से, जब दोनों गवाहों ने ये स्वीकार किया कि असलम, पीड़िता और पीड़िता की मां, सभी एक-दूसरे से अच्छी तरह परिचित थे, संकेत मिलता है कि अपीलकर्ताओं के लिए 12.06.2014 को पीड़िता के घर में अतिचार और अपहरण करने का कोई अवसर नहीं था। मेडिकल रिपोर्ट भी अभियोक्त्री के साथ बलात्कार के तथ्य की पुष्टि नहीं करती है - पीड़िता अ०सा०-1 का साक्ष्य विश्वास को प्रेरित नहीं करती है क्योंकि यह भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए दोषसिद्धि और सजा अपीलकर्ताओं/अभियुक्तों द्वारा बलपूर्वक गर्भपात की घटना के साथ-साथ 12.06.2014 को कथित अपहरण और सामूहिक बलात्कार की घटना के संबंध में तथ्य अहम विरोधाभासों और अज्ञानता से भरा है। अ०सा०-1 पीड़िता एक स्टर्लिंग गवाह प्रतीत नहीं होती है क्योंकि उसके साक्ष्य निर्णायक रूप से अभियोजन पक्ष की कहानी की पुष्टि नहीं करते हैं।

जहां अभियोक्त्री की गवाही में अहम विरोधाभास हैं और चिकित्सा या किसी अन्य साक्ष्य द्वारा इसकी पुष्टि नहीं की जाती है, तो अपीलकर्ता की दोषसिद्धि सुनिश्चित करने के प्रयोजनों के लिए उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। (पैरा 23, 27, 34, 48)

आपराधिक अपील की अनुमति दी। (ई-3)

केस लॉ/न्याय निर्णयों जिन पर भरोसा किया गया:-

1. राय संदीप बनाम राज्य, (एनसीटी दिल्ली) (2012) 8 एस.सी.सी. 21

2. हेमराज बनाम हरियाणा राज्य, 2014 (2) एस.सी.सी. 395

3. सदाशिव रामराव हडबे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2006) 10 एस.सी.सी. 92

4. कृष्णगौड़ा बनाम कार राज्य, (2017) 13 एस.सी.सी. 98

(माननीय न्यायमूर्ति मयंक कुमार जैन द्वारा प्रदत्त)

1. इस अपील में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक कोर्ट नं.-1, रामपुर द्वारा सत्र विचारण संख्या-533 वर्ष 2014 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 26.10.2017 को चुनौती दी गई है, जो कि केस अपराध संख्या-187-सी वर्ष 2014 से उत्पन्न होता है, जिसमें अभियुक्त-अपीलकर्ता संख्या-1 असलम को दोषी ठहराया गया था और धारा 452 भ०द०वि० के तहत तीन साल के कठोर कारावास और 2000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई थी और धारा 366 भ०द०वि० के तहत पांच साल के कठोर कारावास और 5000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई और धारा 313 भ०द०वि० के तहत दस साल के कठोर कारावास और 5000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई और धारा 376 भ०द०वि० के तहत सात साल के कठोर कारावास और 5000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई। अभियुक्त-अपीलकर्ता संख्या 2 रफीक को दोषी ठहराया गया था और धारा 452 भ०द०वि० के तहत तीन साल के

कठोर कारावास और 2000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई थी और धारा 366 भ०द०वि० के तहत पांच साल के कठोर कारावास और 5000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई, और धारा 313 भ०द०वि० के तहत दस साल के कठोर कारावास और 5000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई। यह भी निर्देश दिया गया था कि आरोपी-अपीलकर्ताओं द्वारा जमा की गई जुर्माने की राशि में से आधी राशि उचित सत्यापन के बाद पीड़िता को दी जाएगी। सभी सजाएं साथ-साथ चलाने का निर्देश दिया गया था।

2. अभियोजन पक्ष के मामले के तथ्य यह हैं कि पीड़िता, सुश्री 'एक्स' ने संबंधित अदालत के समक्ष धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसमें उल्लेख किया गया था कि इससे पहले 09.04.2014 को असलम और उसके पड़ोसी ने हनीफ और कलुआ के साथ उसे बहला-फुसलाकर ले गए थे। इस घटना के संबंध में, पीड़िता की मां ने धारा 363, 366 भ०द०वि० के तहत मामला अपराध संख्या 120 वर्ष 2014 दर्ज कराया। आरोपी असलम ने पीड़िता के साथ शादी करने के बहाने शारीरिक संबंध बनाए। इसके बाद, पीड़िता तीन महीने की गर्भवती हो गई। आरोपी असलम ने पीड़िता और उसकी मां पर दबाव बनाने के बाद पीड़िता का बयान अपने पक्ष में धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज करवाया। दिनांक 05.06.2014 को आरोपी रफीक, जो असलम का बहनोई है, पीड़िता के घर आया और उसे इस बहाने मिलक तिराहा चलने के लिए कहा कि उसकी शादी मिलक में असलम के साथ होगी। इस जानकारी पर विश्वास करते हुए, वह रफीक के साथ गई। रास्ते में असलम भी उनके साथ हो गया और दोनों पीड़िता को एक निजी अस्पताल ले गए और उसका गर्भपात करवा दिया। इंजेक्शन के प्रभाव में, पीड़िता का गर्भपात हो गया था। इसके बाद दोनों आरोपियों ने पीड़िता को उसके घर छोड़ दिया। जब पीड़िता की मां घर लौटी तो पीड़िता ने उसे आपबीती सुनाई। उसकी मां ने पीड़ित? से शिकायत की कि उसने उसकी बेटी का गर्भ क्यों समाप्त किया और ये कि वह उसके खिलाफ पुलिस में रिपोर्ट दर्ज कराएगी। इस पर असलम और रफीक ने उसे भरोसा दिलाया कि असलम पीड़िता से शादी करेगा। दिनांक 12.06.2014 की रात लगभग 10.00 बजे असलम और रफीक दीवार कूदकर पीड़िता के घर के अंदर आए और तमंचा दिखाते हुए उसका अपहरण कर लिया। दोनों ने उसके साथ दुष्कर्म किया। शोर मचाने पर प्रत्यक्षदर्शी इस्लाम, रमजानी और अन्य लोग वहां आए और घटना को देखा। पीड़िता उसी रात प्राथमिकी दर्ज कराने के लिए थाना गई, लेकिन यह दर्ज नहीं की गई, न ही उसकी मेडिकल जांच की गई। इसके बाद, उसने 13.06.2014 को एसपी रामपुर को एक आवेदन दिया, लेकिन इस मामले में कोई कार्रवाई नहीं की गई। इसके बाद अदालत के समक्ष धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत एक आवेदन दायर किया गया। उपरोक्त आवेदन पर पारित न्यायालय के आदेशों के आधार पर, धारा 452, 366, 376-डी और 314 भ०द०वि० के तहत केस अपराध संख्या-187-सी वर्ष 2014 के रूप में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। जांच को गति दी गई और जांच का जिम्मा सब इंस्पेक्टर बीएस बख्शीश को सौंपा गया।

3. प्रारंभिक औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद विवेचनाधिकारी ने गवाहों के साक्ष्य दर्ज किए और पीड़िता का बयान धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया। उसकी मेडिकल जांच की गई। घटनास्थल की नक्शा नज़री तैयार किया गया था और पंचनामा के समापन के बाद, अपीलकर्ताओं/अभियुक्तों के खिलाफ धारा 452, 366, 376-डी और 314 भ०द०वि० के तहत आरोप पत्र दायर किया गया था।

4. केस उपार्पित होने के बाद इसे सत्र विचारण संख्या-533 वर्ष 2014 के रूप में दर्ज किया गया। असलम और रफीक के खिलाफ धारा 452, 366, 376-डी और 314 भ०द०वि० के तहत आरोप तय किए गए। आरोपियों/अभियुक्तों को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उन्होंने इन्कार किया और विचारण चाहा।

5. अपने मामले को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने अ०सा०-1, पीड़िता, अ०सा०-2 श्रीमती जैतून (पीड़िता की मां), अ०सा०-3 इस्लाम और अ०सा०-4 रमजानी, (प्राथमिकी में नामित चश्मदीद गवाह), अ०सा०-5 डॉ अमिता शर्मा और अ०सा०-6 सब इंस्पेक्टर मुकेश सिंह (द्वितीय विवेचनाधिकारी) को पेश किया।

6. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य बंद होने के बाद, धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्तों के बयान दर्ज किए गए, जिसमें उन्होंने घटना और अपराध में उनकी भागीदारी से इनकार किया। उन्होंने आगे कहा कि गवाहों ने उनके खिलाफ झूठी गवाही दी है और वे निर्दोष हैं और उन्हें गांव की दुश्मनी के कारण फंसाया गया था।

7. आरोपी अपीलकर्ताओं की ओर से उनके बचाव में कोई सबूत पेश नहीं किया गया।

8. विद्वान निचली अदालत ने सबूतों की जांच करने और पक्षकारों के अधिवक्ता को सुनने के बाद, उपरोक्त के रूप में अभियुक्त को दोषी ठहराया और सजा सुनाई।

9. व्यथित महसूस करते हुए, अपीलकर्ताओं ने वर्तमान आपराधिक अपील दायर की है।

10. मैंने अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री दरवेश कुमार को सुना, राज्य प्रतिवादी के लिए विद्वान अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है। मैंने रिकॉर्ड पर उपलब्ध सभी सबूतों की फिर से मूल्यांकन किया।

10. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि विचारण न्यायालय ने रिकॉर्ड पर उपलब्ध सबूतों का सही तरीके से मूल्यांकन नहीं किया। पीड़िता आरोपी-अपीलकर्ता असलम के साथ सहमति पक्ष के तौर

पर थी। न तो प्रथम सूचना रिपोर्ट में और न ही पीड़िता और उसकी मां के बयान में इस बात का उल्लेख किया गया है कि पीड़िता का गर्भपात कहां और किस अस्पताल में किया गया। इस तथ्य की पुष्टि करने के लिए रिकॉर्ड पर कोई चिकित्सा साक्ष्य उपलब्ध नहीं है कि पीड़िता का तीन महीने का गर्भ था और इसे अपीलकर्ताओं द्वारा नशे की हालत में खत्म करवाया गया था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि घटना से पहले, पीड़िता की मां द्वारा दो अन्य व्यक्तियों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई थी, और पीड़िता द्वारा मामला वापस ले लिया गया था क्योंकि वह अपीलकर्ता असलम के साथ सहमति पक्ष में थी। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि विचारण न्यायालय सही निष्कर्ष पर पहुंचा कि आरोपी-अपीलकर्ता रफीक ने पीड़िता का बलात्कार नहीं किया। जहां तक अपीलकर्ता असलम की संलिप्तता का सवाल है, पीड़िता ने खुद अपने साक्ष्य में स्वीकार किया था कि वे दोनों एक-दूसरे से प्यार करते थे और कई बार वह अपीलकर्ता असलम के साथ गई थी, इसलिए पीड़िता के साक्ष्य ने अभियोजन पक्ष के बयान को इस आरोप के बारे में झुठला दिया कि अपीलकर्ता असलम ने पीड़िता के साथ बलात्कार किया। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 12.06.2014 की घटना इस कारण से भी विश्वसनीय नहीं है कि एक तरफ, पीड़िता ने आरोप लगाया कि अपीलकर्ताओं ने 05.06.2014 को उसके भ्रूण का गर्भपात कराया जबकि 12.06.2014 को यानी एक सप्ताह के बाद, अपीलकर्ताओं द्वारा उसके साथ बलात्कार किया गया। अपीलकर्ता रफीक अपीलकर्ता असलम के साथ नहीं रहता है, इसलिए उसे केवल असलम का बहनोई होने के कारण झूठा फंसाया गया है। चूंकि अभियोक्त्री सहमति देने वाला पक्ष है, इसलिए धारा 366 और 376 भ०द०वि० के तहत कोई अपराध नहीं बनता है। मेडिकल रिपोर्ट पीड़िता के साथ बलात्कार के बारे में अभियोजन पक्ष के संस्करण की पुष्टि नहीं करती है। इसी तरह, रिकॉर्ड पर कोई सबूत उपलब्ध नहीं है जो यह संकेत दे सकता है कि आरोपी अपीलकर्ताओं ने जबरन पीड़िता का गर्भपात किया। कथित गवाह इस्लाम और रमजानी घटना के चश्मदीद गवाह नहीं हैं क्योंकि उनके सबूतों के अवलोकन पर, यह दर्शाता है कि घटना पीड़िता द्वारा उन्हें सुनाई गई थी, इसलिए उनके सबूतों पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। आगे यह जोड़ा गया है कि अभियोजन पक्ष की कहानी के खिलाफ अभियोक्त्री और उसकी मां के साक्ष्य में अहम विरोधाभास हैं, इसलिए उनके सबूतों पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। अपील की अनुमति दी जा सकती है और अपीलकर्ता बरी होने के योग्य हैं।

11. इसके विपरीत, विद्वान अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता ने तर्क दिया कि चूंकि पीड़िता की चिकित्सा परीक्षा कथित घटना के 1-1/2 महीने बाद हुई थी, इसलिए, गर्भावस्था या इसके समापन के संबंध में किसी भी प्रकार के अवलोकन/अंदाजे की कोई संभावना नहीं थी। गवाहों ने अभियोजन पक्ष के बयान की पुष्टि की है। अपीलकर्ता असलम पीड़िता को अपने साथ ले गया और उसे प्रेरित किया कि वह उससे शादी करेगा और शारीरिक संबंध बनाएगा, इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि पीड़िता एक सहमति पक्ष थी। शोर मचाने पर, स्वतंत्र गवाह मौके पर पहुंचे और उन्होंने अपीलकर्ताओं द्वारा किए गए तथ्य की पुष्टि की। पीड़िता ने अपराध करने में अपीलकर्ताओं की भूमिका के बारे में डॉक्टर के सामने अपना बयान भी दिया था।

13. अ०सा०-1, पीड़िता ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा कि वह आरोपी अपीलकर्ता असलम और रफीक को जानती थी। असलम उसका पड़ोसी है और रफीक असलम का बहनोई है, और वह और असलम एक-दूसरे से प्यार करते थे। असलम कहता था कि वह उसके साथ निकाह करेगा और इसी वादे पर उसने उसके साथ शारीरिक संबंध बनाए और वह तीन महीने की प्रेग्नेंट हो गई। दिनांक 12.06.2014 को जब वह अपने घर में सो रही थी, असलम और रफीक दीवार कूदकर उसके घर में घुस गए और उस पर पिस्तौल तानते हुए असलम के घर ले गए। उन्होंने बार-बार बलात्कार किया। शोर मचाने पर इस्लाम और रमजानी वहां आए और उन्हें देखते ही असलम घटनास्थल से भाग गया। पीड़िता ने उसके द्वारा पेश किए गए आवेदन को प्रदर्श क-1 और उसके द्वारा दिए गए शपथ पत्र को प्रदर्श क-2 और धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज बयान को प्रदर्श क-3 के रूप में साबित किया है।

14. अ०सा०-2 श्रीमती जैतून, जो पीड़िता की मां हैं, ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा कि घटना की तारीख को लगभग 10.00 बजे, असलम और रफीक उसके घर में घुसे और पिस्तौल तानकर उसकी बेटी को ले गए और उसके साथ दुष्कर्म किया। रमजानी और इस्लाम और अन्य व्यक्ति वहां आए और उसकी बेटी को बचाया। पुलिस ने रिपोर्ट दर्ज नहीं की।

15. अ०सा०-3 इस्लाम नबी ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि वह पीड़िता को जानता है, जो उसकी पड़ोसी है। वह असलम और रफीक को भी जानता है। दिनांक 12.06.2014 को रात्रि 10.00 बजे जब वह अपने घर पर थे, उन्होंने नबी खान के घर से शोर सुना। वह रमजानी और अन्य व्यक्तियों के साथ वहां पहुंचा और देखा कि पीड़िता असलम के घर में नग्न अवस्था में थी। उन्होंने इस घटना को डिबिया की रोशनी में देखा। पीड़िता ने पूरी कहानी सुनाई कि असलम और रफीक ने उसके साथ बलात्कार किया।

16. अ०सा०-4, रमजानी ने कहा कि घटना की तारीख लगभग 10.00 बजे उसने शोर सुना और असलम के पिता मुकीम के घर पहुंचा और पाया कि पीड़िता रो रही थी। उन्होंने घटना को दीपक की रोशनी में देखा। पीड़िता के

साथ वहां कोई अन्य व्यक्ति मौजूद नहीं था। पूछने पर पीड़िता ने बताया कि असलम और रफीक ने उसके साथ बलात्कार किया और पिस्तौल की नोक पर उसे मौके पर ले गए।

17. अ०सा०-5 डॉ. अमिता शर्मा ने अपने मुख्य परीक्षण में बताया कि उन्होंने पीड़िता की मेडिकल जांच की। चिकित्सा जांच रिपोर्ट के अनुसार, पीड़िता की आयु अठारह वर्ष से अधिक थी। यौन उत्पीड़न के बारे में कोई सकारात्मक सबूत मौजूद नहीं था। स्मीयर स्लाइड में कोई शुक्राणुजोज़ा नहीं देखा गया था।

18. मामले के दूसरे विवेचनाधिकारी अ०सा०-6 उप-निरीक्षक मुकेश सिंह ने कहा कि जांच के दौरान एकत्र किए गए सबूतों के आधार पर, उन्होंने अपीलकर्ता रफीक और असलम के खिलाफ धारा 452, 363, 376-डी और 314 भ०द०वि० के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया। आरोप पत्र उनके द्वारा प्रदर्श क-6-बी के रूप में साबित किया गया है, इस गवाह ने पिछले विवेचनाधिकारी एस.आई बीएस बख्शीश द्वारा प्रदर्शित दस्तावेज, जैसे कि नक्शा नज़री को प्रदर्श क-7, पहले के विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज गवाहों का बयान और धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज पीड़िता का बयान के रूप में साबित किया। चिक रिपोर्ट को प्रदर्श क-8 और रिपोर्ट 33 में इसकी प्रविष्टि को शाम 7.35 बजे कॉन्स्टेबल पूनम रानी ने प्रदर्श क-9 के रूप में सिद्ध किया है।

19. वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष के संस्करण के अनुसार, अभियोजन पक्ष ने प्रथम सूचना रिपोर्ट में दो घटनाओं का उल्लेख किया है। पहली घटना 05.06.2014 को हुई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि अपीलकर्ता आरोपी रफीक ने अन्य अपीलकर्ता-आरोपी असलम के साथ शादी का झांसा देकर पीड़िता को बहला-फुसलाकर अपनी मोटरसाइकिल पर ले गया। मिलक के रास्ते में आरोपी असलम उनसे मिला और दोनों ने नशे की हालत के तहत ड्रग्स का इंजेक्शन लगाकर जबरन उसका गर्भपात कराया। दूसरी घटना कथित तौर पर 12.06.2014 को हुई जिसमें यह आरोप लगाया गया है कि उस दिन लगभग 10:00 बजे अपीलकर्ता असलम और रफीक दीवार पर कूद गए और पीड़िता के घर आए, उसकी इच्छा के विरुद्ध बंदूक की नोक पर उसका अपहरण कर लिया, और दोनों ने एक के बाद एक बंदूक की नोक पर उसके साथ बलात्कार किया।

20. तथ्यों के पूर्वोक्त संकलन के तहत, यह निर्धारित किया जाना आवश्यक है कि क्या 05.06.2014 को आरोपी अपीलकर्ताओं ने पीड़िता का गर्भपात किया और क्या 12.06.2014 को आरोपी-अपीलकर्ता ने पीड़िता के घर में अतिक्रमण किया और उसे असलम के घर में अपहरण करके दोनों अपीलकर्ताओं ने उसके साथ बलात्कार किया।

21. धारा 313 भ०द०वि० इस प्रकार है:

313. जो कोई भी महिला की सहमति के बिना अंतिम पूर्ववर्ती धारा में परिभाषित अपराध करता है, भले ही महिला जल्दी बच्चे पैदा कर रही हो या नहीं, उसे आजीवन कारावास या किसी एक अवधि के लिए कारावास से दंडित किया जाएगा जिसे दस साल तक बढ़ाया जा सकता है, और जुर्माने के लिए भी उत्तरदायी होगा।

22. जहां तक दिनांक 05.06.2014 की घटना का संबंध है, अ०सा०-1 पीड़िता ने अपनी जांच में कहा है कि 05.06.2014 को आरोपी रफीक उसके पास आया और उससे कहा कि वह आरोपी-अपीलकर्ता असलम के साथ पीड़िता की शादी सुनिश्चित करेगा। वह उसके साथ मिलक गई। उसे जबरदस्ती एक निजी अस्पताल ले जाया गया और उसकी तीन महीने की गर्भावस्था को समाप्त कर दिया गया। अ०सा०-1 पीड़िता ने जिरह में कहा कि आरोपी रफीक 12? .. 2014 को उसके घर आया था, उस समय उसके साथ कोई मौजूद नहीं था। उसे नहीं पता था कि कब रफीक उसके पास आया। उसे पता ही नहीं चला कि कब वह अपने घर से निकली। उसे नहीं पता था कि वह किस समय मिलक पहुंची। उसे नहीं पता था कि मिलक तक कितने गांव हैं। उसने अपनी मां या किसी रिश्तेदार को इसकी सूचना नहीं दी। उसने घटना के समय अपनी मां को गर्भावस्था के बारे में सूचित नहीं किया। घटना के समय उसके पास मोबाइल था लेकिन उसने अपनी मां या अपने किसी रिश्तेदार को फोन नहीं किया। इस घटना से पहले वह कभी मिलक नहीं गई थी। उसे नहीं पता था कि वह किस समय मिलक क्रॉसिंग पर पहुंच गई। वह अपनी मर्जी से आरोपी रफीक के साथ गई थी। उसे मिलक से गंतव्य तक की यात्रा के समय के बारे में भी नहीं पता था। वह पूरी तरह से होश में होने के बावजूद नहीं जानती थी कि उसे किस दिशा में क्रॉसिंग से ले जाया गया था। उसे उस निजी अस्पताल का नाम नहीं पता था जहां उसे ले जाया गया था। वह नहीं जानती थी कि मरीज वहां थे या नहीं या कितने लोग थे। उसे नहीं पता था कि उसे कितने इंजेक्शन दिए गए। उसे नहीं पता था कि वह कितनी देर तक बेहोश रही और कितने बजे अपने घर पहुंची। उसे भी पता नहीं चला कि कब उसे होश आ गया और कोई उसे देखने आ गया।

23. 05.06.2014 को हुई कथित घटना के संबंध में अ०सा०-1 पीड़िता द्वारा पेश किया गया पूरा सबूत विरोधाभासों से भरा है और विश्वसनीय नहीं है क्योंकि सबसे पहले कथित गर्भपात के संबंध में रिकॉर्ड पर कोई दस्तावेजी सबूत उपलब्ध नहीं है। पीड़िता ने अपने बयान में घटना के अहम तथ्यों से संबंधित अनभिज्ञता व्यक्त की, जिसमें निजी अस्पताल का नाम, डॉक्टर का नाम, गर्भपात की घटना का समय और स्थान, उसके घर से अस्पताल की दूरी, उसकी बेहोशी की अवधि, कथित गर्भपात से पहले उसे दिया गया उपचार या गर्भपात के बाद प्राप्त उपचार, अपने घर वापस पहुंचने का समय आदि, भले ही

उसने स्वीकार किया कि घटना के समय जब वह अपने घर से निकली थी उसके पास एक मोबाइल फोन था लेकिन उसने अपनी मां या किसी रिश्तेदार को फोन नहीं किया था। अभियोकत्री ने अपने साक्ष्य में कहा कि उसने अपनी मां को अपनी गर्भावस्था के बारे में सूचित नहीं किया था, लेकिन इसके विपरीत, अ०सा०-2 श्रीमती जैतून, अभियोकत्री की मां, ने अपने साक्ष्य में कहा कि उसे उसकी बेटी ने बताया था कि वह तीन महीने से गर्भवती थी। गवाह का यह आचरण इंगित करता है कि ऐसी कोई घटना नहीं हुई क्योंकि घटना के अहम तथ्यों के आधार पर गवाह ने अदालत में दृढ़ता से गवाही नहीं दी। पीड़िता द्वारा व्यक्त की गई अज्ञानता इस घटना से संबंधित उसके साक्ष्य को अविश्वसनीय बनाती है।

24. अ०सा०-2 श्रीमती जयतून, पीड़िता की मां, ने केवल पीड़िता द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर पीड़िता के गर्भपात के आरोप के बारे में बताया।

25. रिकॉर्ड पर उपलब्ध उपरोक्त साक्ष्य के मूल्यांकन के आधार पर, मेरी राय है कि अभियोजन पक्ष ने ये दावा मौखिक या दस्तावेजी ठोस साक्ष्य के साथ साबित नहीं किया है कि 05.06.2014 को अपीलकर्ताओं ने पीड़िता का जबरदस्ती गर्भपात किया।

(i) अब दिनांक 12.06.2014 की दूसरी घटना की जांच की जानी है।

भ०द०वि० की धारा 452, 366 और 376-डी में प्रावधान है कि :-

452. जो कोई भी किसी और के घर या उस घर के किसी हिस्से में किसी प्रकार का अपराध करने, चोट पहुंचाने, हमला करने या गलत तरीके से रोकने के इरादे से प्रवेश करता है, उसे एक अवधि के कारावास से दंडित किया जाएगा। जिसे सात साल तक बढ़ाया जा सकता है और इसके साथ ही वह व्यक्ति जुर्माना के लिए भी उत्तरदायी होगा।

366. जो कोई किसी स्त्री का उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी व्यक्ति से विवाह करने के लिए उस स्त्री को विवश करने के आशय से या वह विवश की जाएगी यह सम्भाव्य जानते हुए अथवा अवैध संभोग करने के लिए उस स्त्री को विवश करना या बहकाना या वह स्त्री अवैध संभोग के लिए विवश या बहक जाएगी यह संभाव्य जानते हुए व्यपहरण या अपहरण करेगा, तो उसे किसी एक अवधि के लिए कारावास की सजा जिसे दस वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है, और साथ ही आर्थिक दंड से दंडित किया जाएगा; और जो कोई इस संहिता या प्राधिकरण के दुरुपयोग या मजबूर कर किसी भी विधि में परिभाषित आपराधिक धमकियों के माध्यम से किसी स्त्री को किसी अन्य व्यक्ति से अवैध संभोग करने के लिए विवश करने या बहकाने के आशय से या वह स्त्री विवश या बहक जाएगी यह संभाव्य जानते हुए उस स्त्री को किसी स्थान से जाने के लिए उत्प्रेरित करेगा, उसे भी उपरोक्त प्रकार से दण्डित किया जाएगा।

367 जो कोई किसी व्यक्ति का व्यपहरण या अपहरण इसलिए करेगा कि उसे घोर क्षति या दासत्व का या किसी व्यक्ति को प्रकृति विरुद्ध काम वासना का विषय बनाया जाए या बनाए जाने के खतरे में डालने हेतु उसे व्ययनित किया जाए या सम्भाव्य जानते हुए करेगा कि ऐसे व्यक्ति को उपर्युक्त बातों का विषय बनाया जाएगा या उपर्युक्त रूप से व्ययनित किया जाएगा, तो उसे किसी एक अवधि के लिए कारावास जिसे दस वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है से दण्डित किया जाएगा, और साथ ही वह आर्थिक दण्ड के लिए भी उत्तरदायी होगा।

376-घ. सामूहिक बलात्कार--जहाँ किसी स्त्री का सामूहिक रूप से गठित एक या अधिक व्यक्तियों द्वारा बलात्कार किया जाता है या किसी साझे आशय से कार्य किया जाता है वहाँ उन व्यक्तियों में से प्रत्येक व्यक्ति के बारे में यह समझा जाएगा कि उसने बलात्कार का अपराध किया है और वह बीस वर्ष से अन्यून अवधि के लिए कठोर कारावास से दंडित किया जाएगा। लेकिन जो जीवन तक बढ़ सकता है जिसका अर्थ उस व्यक्ति के शेष प्राकृतिक जीवन के लिए कारावास होगा, और जुर्माने के साथ भी दंडित किया जाएगा:

बशर्ते कि ऐसा जुर्माना पीड़िता के चिकित्सा व्यय और पुनर्वास को पूरा करने के लिए न्यायसंगत और उचित होगा:

बशर्ते कि इस धारा के तहत लगाए गए किसी भी जुर्माने का भुगतान पीड़िता को किया जाएगा।

26. जहां तक कथित घटना दिनांक 12.06.2014 का संबंध है, अ०सा०-1 पीड़िता ने अपनी परीक्षा में स्वीकार किया कि वह असलम से प्यार करती थी और असलम भी उससे प्यार करता था। पीड़िता ने अपने साक्ष्य में कहा कि उसके आरोपी असलम के साथ अच्छे संबंध और अच्छी तरह से परिचित थे। वह अक्सर आरोपी असलम के घर जाती थी और उसके साथ संबंध रखती थी और असलम भी घटना से एक साल पहले से अक्सर उसके घर आता था लेकिन उसने अपनी मां को यह बात कभी नहीं बताई। वह अपनी मां को बिना बताए आरोपी असलम के साथ जंगल में चली जाती थी। वह आरोपी असलम के साथ गेहूं, चावल और मेंथॉल की फसल काटने के लिए खेत में जाती थी। असलम उसके साथ मजदूरी करता था।

27. अ०सा०-2 श्रीमती जयतून ने इस तथ्य को भी स्वीकार किया कि अपीलकर्ता असलम उनसे अच्छी तरह परिचित थी और कहा कि उसकी बेटी पिछले छह महीनों से अपीलकर्ता असलम से परिचित थी और वह असलम के साथ जाती थी। अभियुक्त असलम से परिचित होने से संकेत मिलता है कि जब दोनों गवाहों ने स्वीकार किया कि असलम, पीड़िता और पीड़िता की मां, सभी एक-दूसरे से अच्छी तरह परिचित थे, अपीलकर्ताओं के लिए

12.06.2014 को पीड़िता के घर में अतिचार और अपहरण करने का कोई अवसर नहीं था।

28. अ०सा०-1 पीड़िता ने अपने साक्ष्य में बताया कि 12.06.2014 की रात वह अपने घर में अकेली सो रही थी। अपीलकर्ता दीवार पर कूद गए और उसके घर आए और बंदूक की नोक पर उन्होंने उसे असलम के घर में अपहरण कर लिया और दोनों ने बंदूक की नोक पर उसके साथ बलात्कार किया। अ०सा०-2 श्रीमती जयतून ने अपनी जिरह में कहा कि अपीलकर्ता रफीक और असलम ने उसकी बेटी को बुलाया और उसे ले गए।

29. यह अभियोकत्री और उसकी मां के साक्ष्य में, कि जिस तरह से अभियोकत्री को दूर ले जाया गया था, एक बहुत ही अहम विरोधाभास है। अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि अपीलकर्ताओं /अभियुक्तों ने दीवार कूदने के बाद बंदूक की नोक पर अभियोकत्री का अपहरण कर लिया, जबकि अभियोकत्री की मां ने कहा कि अपीलकर्ता आरोपी ने उसकी बेटी को बुलाया और उसे ले गए। यह विरोधाभास अभियोजन की कहानी को संदिग्ध बनाता है।

30. अ०सा०-1 पीड़िता ने अपने बयान में कहा कि उसके घर में केवल एक कमरा था। वह अपनी मां और छोटे भाई जीशान के साथ उस कमरे में एक साथ रह रही थी। अ०सा०-2 जैतून जहां, अभियोकत्री की मां, ने अपने साक्ष्य में कहा कि घटना की रात वह अपने बच्चों के साथ सो रही थी। तीन चारपाई थी। एक खाट पर वह अपने बेटे के साथ सो रही थी, दूसरी खाट पर उसका दूसरा बेटा और तीसरी खाट पर उसकी बेटी 4 से 5 मीटर की दूरी पर सो रही थी। हालांकि, इसके विपरीत, पीड़िता ने कहा कि 12.06.2014 को उसकी मां अपने भाई के साथ एक शादी में शामिल होने गए थे।

31. यह भी बहुत अहम विरोधाभास है। यदि पीड़िता की मां और भाई-बहन उस रात अपने घर में पीड़िता के बगल में सो रहे थे, इसलिए, अभियोजन पक्ष की कहानी कि अपीलकर्ता/आरोपी दीवार पर कूद गए और बंदूक की नोक पर पीड़िता का अपहरण कर लिया और उसे ले गए, अभियोजन पक्ष के संस्करण के बारे में एक गंभीर संदेह पैदा करता है और अपहरण कि थ्योरी को संदिग्ध कर देता है। यदि पीड़िता की मां और भाई-बहन उसी कमरे में सो रहे थे, जहां शिकायतकर्ता भी सो रहा था, तो यह संदिग्ध प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता/आरोपी बंदूक की नोक पर अभियोकत्री का अपहरण कर ले गए और परिवार के किसी भी सदस्य द्वारा कोई शोर गुल नहीं मचाया गया।

32. अ०सा०-1 पीड़िता ने अपनी जिरह में कहा कि जब रफीक और असलम दीवार से कूद गए, तो रफीक ने उसका मुंह बंद कर दिया ताकि वह चिल्ला न सके। यह तथ्य पहली बार उसने न्यायालय में जिरह के दौरान कहा है। न तो पहली सूचना रिपोर्ट में और न ही अपनी जांच में उसने कहा कि रफीक ने उसका मुंह बंद कर दिया था और वह चिल्ला नहीं सकती थी। इसी तरह, यह तथ्य कि अपीलकर्ताओं ने उसके कपड़े उतार दिए, पीड़िता ने पहली बार अपनी जिरह के दौरान सुनाया। इसके अलावा, पीड़िता ने अपीलकर्ताओं द्वारा किए गए संभोग की अवधि के बारे में अनभिज्ञता व्यक्त की, जबकि उसने कहा कि वह उस समय पूरी तरह से सचेत थी। पीड़िता ने बताया कि उसने शोर मचाया लेकिन किसी ने उसे नहीं बचाया। यह तथ्य उसने पहली बार अदालत में अपनी गवाही के दौरान सुनाया है।

33. अ०सा०-1 पीड़िता ने कहा कि वह घटना की रात अपीलकर्ता/आरोपी असलम के घर पर लगभग एक घंटे रुकी थी। उसके कपड़े फटे नहीं थे, बल्कि उन्हें फेंक दिया गया था। कोई खून नहीं निकला। उसके कपड़े खून से सने नहीं थे। उसके शरीर पर कोई खरोंच नहीं आई। वह होश में थी। अ०सा०-5 डॉ अमिता शर्मा ने अपने साक्ष्य में यह भी कहा कि अभियोकत्री की चिकित्सा जांच के समय कोई बाहरी चोट नहीं पाई गई थी। हाइमन पुराना प्रभावित था और काफी पहले ही ठीक हो चुका था। उसके द्वारा यौन उत्पीड़न का कोई संकेत नहीं दिया गया था।

34. मेडिकल रिपोर्ट भी अभियोकत्री के साथ बलात्कार के तथ्य की पुष्टि नहीं करती है। इसके अलावा, घटना के समय अभियोकत्री ने जो कपड़े पहने थे, वे विवेचनाधिकारी को नहीं दिए गए थे और रिकॉर्ड पर कोई एफएसएल रिपोर्ट उपलब्ध नहीं थी जो यह संकेत दे सकती है कि अपीलकर्ताओं/अभियुक्तों द्वारा अभियोकत्री के साथ सामूहिक बलात्कार किया गया था। उपरोक्त स्थिति अभियोजन पक्ष द्वारा बताए गए सामूहिक बलात्कार के सिद्धांत के बारे में भी संदेह पैदा करती है।

35. अ०सा०-2 जयतून पीड़िता की मां ने अपनी जांच में कहा कि उसकी बेटी ने उसे बताया कि अपीलकर्ताओं ने उसके साथ बलात्कार किया और शोर गुल मचाने पर, गवाह रमजानी, इस्लाम और अन्य व्यक्ति वहां आए, लेकिन उसकी जिरह के दौरान उसने कहा कि गवाह रमजानी और इस्लाम ने उसे 2-3 घंटे के बाद घटना के बारे में बताया। उसने आगे कहा कि घटना के अगले दिन वह अपनी बेटी, इस्लाम और रमजानी के साथ थाना गई, लेकिन अभियोजन पक्ष ने अपने साक्ष्य में कहा कि वह अपनी मां के साथ थाना गई थी और कोई भी उनके साथ नहीं था। यह भी अभियोकत्री और उसकी मां के बयान के बीच एक विरोधाभास है।

36. अ०सा०-1 पीड़िता ने अपने साक्ष्य में कहा कि वह अपनी मां को बताए बिना असलम के साथ जंगल में जाती थी, जबकि अ०सा०-2 श्रीमती जैतून ने बयान के बारे में इनकार किया और कहा कि उसकी बेटी असलम को सूचित करने के बाद उसके साथ जाती थी।

37. अ०सा०-3 इस्लाम नबी और अ०सा०-4 रमजानी को दिनांक 12.06.2014 की घटना के चश्मदीद गवाह के रूप में नामित किया गया है।

38. अ०सा०-3 इस्लाम नबी ने अपने मुख्य परीक्षा में कहा कि वह घटनास्थल पर रमजानी के साथ पहुंचे और उन्होंने पीड़िता को नग्न हालत में पाया। इसके बाद, उसे अभियोजन पक्ष द्वारा घटना के बारे में बताया गया। अपनी जिरह में उन्होंने कहा कि इस घटना से पहले, अभियोजन पक्ष अपीलकर्ता-आरोपी असलम के साथ गया था और उसे नहीं पता था कि कोई मामला दर्ज किया गया था या नहीं। आवाज सुनकर वह मौके पर पहुंचे। उन्होंने कोई भी घटना नहीं देखा। विवेचनाधिकारी ने कभी भी उसका बयान दर्ज नहीं किया और उसका बयान पहली बार अदालत में दर्ज किया गया है।

39. अ०सा०-3 इस्लाम नबी के बयान के आधार पर, यह पता चलता है कि घटना केवल अभियोक्त्री द्वारा उसे सुनाई गई थी और उसने खुद से कोई घटना नहीं देखी थी और इसके अलावा, जांच के दौरान विवेचनाधिकारी द्वारा उससे पूछताछ नहीं की गई थी, इसलिए अ०सा०-3 के सबूत अभियोजन पक्ष के संस्करण की पुष्टि नहीं करते हैं।

40. अ०सा०-4 रमजानी एक 'संयोग का गवाह' प्रतीत होता है, क्योंकि अ०सा०-1 पीड़िता ने अपने साक्ष्य में कहा है कि यह गवाह गांव अजीतपुर का निवासी है और अजीतपुर उसके स्थान से बहुत दूर है। इस गवाह ने भी खुद को अजीतपुर का रहने वाला बताया है। वह पीड़िता के गांव में कुछ जमीन देखने गया लेकिन उसे अपने आने की तारीख और महीना याद नहीं था। वह इस्लाम के घर पर रह रहा था। यहां यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि अ०सा०-3 इस्लाम ने घटना की तारीख को रमज़ानी के साथ रहने के बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं किया था।

41. इसके अलावा, इस गवाह ने कहा कि वह असलम के घर पहुंचा और देखा कि पीड़िता वहां रो रही थी और उसे पीड़िता द्वारा ही घटना के बारे में सूचित किया गया था, इसलिए, इस गवाह ने सुनवाई के साक्ष्य के आधार पर गवाही दी है और वह किसी भी घटना का गवाह नहीं है। उन्होंने यह भी कहा है कि जब वह घटनास्थल पर पहुंचे, तो आरोपी वहां मौजूद नहीं थे। उसे नहीं पता था कि रात में अंधेरा था या चाँद की रोशनी थी। जब वे घटनास्थल पर पहुंचे तो आरोपी फरार हो चुका था। अन्य लोग वहां आए लेकिन वह उनके नाम नहीं जानता था। वह कहीं और नहीं गया बल्कि अपने घर लौट आया। इस मामले में उनसे कभी किसी ने पूछताछ नहीं की। उन्होंने केवल पीड़िता के गर्भपात के बारे में सुना। उन्होंने बताया कि पीड़िता के घर की दीवार की ऊंचाई करीब 7 फीट है।

42. अ०सा०-4 रमजानी का साक्ष्य अभियोजन पक्ष के संस्करण की पुष्टि नहीं करता है क्योंकि वह एक 'संयोग से गवाह' प्रतीत होता है और उसने स्वयं किसी भी घटना को नहीं देखा और आगे भी, उसके अनुसार जांच के दौरान विवेचनाधिकारी द्वारा उससे पूछताछ नहीं की गई थी, इसलिए, अ०सा०-4 का सबूत विश्वसनीय नहीं है।

43. इस मामले का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू घटना का समय है, जो कथित तौर पर रात 10.00 बजे हुआ है। विवेचनाधिकारी द्वारा नक्शा नज़री प्रदर्श क-7 में प्रकाश का कोई स्त्रोत नहीं दर्शाया गया है। अ०सा०-1 ने पहली बार अदालत के समक्ष अपने बयान में कहा कि 12.06.2014 को घटना के समय उसके घर में मिट्टी के तेल का दीपक जलाया गया था लेकिन उसने विवेचनाधिकारी को इसके बारे में कुछ नहीं बताया। यह ध्यान देने योग्य है कि, अ०सा०-2 जैतून, अभियोक्त्री की मां ने अपने पूरे बयान के दौरान दिनांक 12.06.2014 की घटना के समय उपलब्ध प्रकाश के स्रोत के बारे में कुछ नहीं कहा। अ०सा०-3 इस्लाम नबी ने कहा कि अभियोक्त्री के घर में मिट्टी के तेल का दीपक जलाया गया था। घटना के समय मिट्टी के तेल के लैंप की मौजूदगी का उल्लेख प्रथम सूचना रिपोर्ट में नहीं किया गया है, न ही अभियोजन पक्ष के प्रमुख गवाहों की जांच में, और विवेचनाधिकारी को भी नहीं बताया गया है। यहां तक कि धारा 164 द०प्र०स० के तहत उनके बयान में भी इसका उल्लेख नहीं किया गया है। विवेचनाधिकारी द्वारा ऐसा कोई मिट्टी के तेल का दीपक अपने कब्जे में नहीं लिया गया था, इसलिए उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, घटना के समय प्रकाश का स्त्रोत संदिग्ध है।

44. यहां यह उल्लेख करना असंगत नहीं होगा कि धारा 164 द०प्र०स० के तहत पीड़िता का बयान दर्ज किया गया था जो उसके द्वारा प्रदर्श क-3 के रूप में साबित होता है। इस बयान में शिकायतकर्ता ने 12.06.2014 की घटना के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा।

45. राय संदीप बनाम राज्य, (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली) (2012) 8 एस.सी.सी. 21 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 'स्टर्लिंग गवाह' के अर्थ को इस प्रकार स्पष्ट किया है: -

"15. हमारी सुविचारित राय में, 'स्टर्लिंग गवाह' एक बहुत ही उच्च गुणवत्ता और क्षमता का होना चाहिए, जिसका संस्करण अभेद्य होना चाहिए। ऐसे गवाह के संस्करण पर विचार करने वाली अदालत को बिना किसी हिचकिचाहट के इसे इसके अंकित मूल्य के लिए स्वीकार करने की स्थिति में होना चाहिए। ऐसे गवाह की गुणवत्ता का परीक्षण करने के लिए, गवाह की स्थिति सारहीन होगी और जो प्रासंगिक होगा वह ऐसे गवाह द्वारा दिए गए बयान की सत्यता है। जो अधिक प्रासंगिक होगा वह प्रारंभिक बिंदु से अंत तक बयान की निरंतरता होगी, अर्थात्, उस समय जब गवाह प्रारंभिक बयान देता है और अंततः न्यायालय के समक्ष होता है। यह अभियुक्त के अभियोजन पक्ष के मामले के साथ स्वाभाविक और संगत होना चाहिए। ऐसे गवाह के बयान में कोई टालमटोल नहीं होनी चाहिए। गवाह को किसी भी लम्बाई की जिरह का सामना करने की स्थिति में होना चाहिए और चाहे वह कितना भी कठोर क्यों न हो और किसी भी परिस्थिति में घटना के तथ्य, इसमें शामिल व्यक्तियों के साथ-साथ इसके अनुक्रम के

बारे में किसी भी संदेह के लिए जगह नहीं देनी चाहिए। इस तरह के संस्करण की अन्य सहायक सामग्री जैसे कि बरामदगी, इस्तेमाल किए गए हथियार, किए गए अपराध का तरीका, वैज्ञानिक साक्ष्य और विशेषज्ञ की राय और सभी के साथ सह-संबंध होना चाहिए। उक्त संस्करण को लगातार हर दूसरे गवाह के संस्करण के साथ मेल खाना चाहिए। यह भी कहा जा सकता है कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में लागू परीक्षण के समान होना चाहिए जहां अभियुक्त को उसके खिलाफ कथित अपराध का दोषी ठहराने के लिए परिस्थितियों की श्रृंखला में कोई लापता लिंक नहीं होना चाहिए। अगर केवल ऐसे गवाह का संस्करण उपरोक्त परीक्षण के साथ-साथ अन्य सभी समान परीक्षणों को लागू करने के योग्य है, तो यह माना जा सकता है कि ऐसे गवाह को "स्टर्लिंग गवाह" कहा जा सकता है, जिसका संस्करण न्यायालय द्वारा बिना किसी पुष्टि के स्वीकार किया जा सकता है और जिसके आधार पर दोषी को दंडित किया जा सकता है। अधिक सटीक होने के लिए, अपराध के मुख्य स्पेक्ट्रम पर उक्त गवाह का संस्करण बरकरार रहना चाहिए, जबकि अन्य सभी परिचर सामग्री, अर्थात्, मौखिक, दस्तावेजी और अहम वस्तुओं को सामग्री विवरणों में उक्त संस्करण से मेल खाना चाहिए ताकि न्यायालय को, अपराध के मुकदमे में कथित आरोप के अपराधी को दोषी ठहराने के लिए अन्य सहायक सामग्री को छानने लिए मुख्य संस्करण पर भरोसा करने के लिए, सक्षम बनाया जा सके।

46. बलात्कार के मामलों में अभियोकत्री की गवाही को दिए गए महत्व पर, हेमराज बनाम हरियाणा राज्य, 2014 (2) एस.सी.सी. 395 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित शब्दों में सावधानीपूर्वक जांच करने में न्यायालय को उनके कर्तव्यों की याद दिलाई: -

"6. बलात्कार के आरोप से जुड़े मामले में अभियोकत्री का सबूत सबसे महत्वपूर्ण है। यदि यह विश्वसनीय पाया जाता है; यदि यह पूर्ण आत्मविश्वास को प्रेरित करता है, तो इसे बिना पुष्टि के भी भरोसा किया जा सकता है। हालाँकि, अदालत इस पर निहित निर्भरता रखने में संकोच कर सकती है, तो किसी साथी के मामले में आवश्यक पुष्टि से कम आश्वासन देने के लिए अन्य सबूतों पर गौर कर सकती है। [देखें: महाराष्ट्र राज्य बनाम चंद्रप्रकाश केवलचंद जैन[1]]। इस तरह का वजन अभियोकत्री के साक्ष्य को दिया जाता है क्योंकि उसका साक्ष्य एक घायल गवाह के साक्ष्य के बराबर है जो शायद ही कभी विश्वास को प्रेरित करने में विफल रहता है। अभियोकत्री के साक्ष्य को इतने ऊंचे पायदान पर रखने के बाद, यह अदालत का कर्तव्य है कि वह इसकी सावधानीपूर्वक जांच करे, क्योंकि उस अकेले सबूत पर दिए गए मामले में एक व्यक्ति को आजीवन कारावास की सजा सुनाई जा सकती है। इसलिए, अदालत को अपने समृद्ध अनुभव के साथ सावधानी और सतर्कता के साथ ऐसे सबूतों का मूल्यांकन करना चाहिए और जब उसकी अंतरात्मा अपनी साख के बारे में संतुष्ट हो जाती है, तभी उस पर भरोसा करना चाहिए।

47. सदाशिव रामराव हदबे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2006) 10 एस.सी.सी. 92 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि: -

"8. यह सच है कि बलात्कार के मामले में अभियुक्त को अभियोजन पक्ष की एकमात्र गवाही पर, यदि वह अदालत के मन में विश्वास पैदा करने में सक्षम हो, दोषी ठहराया जा सकता है। यदि अभियोकत्री द्वारा दिया गया संस्करण किसी भी चिकित्सा साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं है या आसपास की पूरी परिस्थितियां अत्यधिक असंभव हैं और अभियोकत्री द्वारा स्थापित मामले को झुठलाती हैं, तो अदालत अभियोकत्री के एकमात्र साक्ष्य पर कार्रवाई नहीं करेगी। अदालतें अभियोकत्री की एकमात्र गवाही को स्वीकार करने में, जब पूरा मामला असंभव हो और ऐसा होने की संभावना न हो, बेहद सावधानी बरतेंगी।

48. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई उपरोक्त टिप्पणियों के मद्देनजर, अ०सा०-1 पीड़िता का साक्ष्य विश्वास को प्रेरित नहीं करता है क्योंकि यह अपीलकर्ताओं/अभियुक्तों द्वारा बलपूर्वक गर्भपात की घटना के साथ-साथ अपहरण और सामूहिक बलात्कार की घटना के संबंध में अहम तथ्यों से संबंधित भारी विरोधाभासों और अज्ञानता से भरा है। अ०सा०-1 पीड़िता एक स्टर्लिंग गवाह प्रतीत नहीं होती है क्योंकि उसके साक्ष्य निर्णायक रूप से अभियोजन पक्ष की कहानी की पुष्टि नहीं करते हैं।

49. जहां तक गवाह द्वारा किए गए अहम विरोधाभासों और सुधार का संबंध है, कृष्णेगौड़ा बनाम कर्नाटक राज्य, (2017) 13 एस.सी.सी. 98 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने देखा कि: -

"अभियोजन पक्ष के गवाह की गवाही में विरोधाभास अदालत के मन में गवाहों की सत्यता के बारे में गंभीर संदेह पैदा करता है और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियोजन पक्ष ने उचित संदेह से परे अपराध साबित किया है और आरोपी ऐसे मामले में संदेह के लाभ के हकदार हैं। माननीय न्यायालय ने कहा:-

"... 26. अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य और उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को देखने के बाद हमें लगता है कि उच्च न्यायालय इस तथ्य को समझने में विफल रहा है कि अभियुक्त के अपराध को उचित संदेह से परे साबित किया जाना है और यह एक क्लासिक मामला है जहां मुकदमे के प्रत्येक चरण में, जांच एजेंसी की ओर से चूक हुई थी और गवाहों के साक्ष्य विश्वसनीय नहीं हैं जो कभी भी दोषसिद्धि का आधार नहीं हो सकते। आपराधिक न्यायशास्त्र का मूल सिद्धांत यह है कि अभियुक्त को तब तक निर्दोष माना जाता है जब तक कि उसका अपराध उचित संदेह से परे साबित नहीं हो जाता।

27. आम तौर पर आपराधिक मामलों में, गवाह के साक्ष्य में विसंगतियां होना तय है क्योंकि घटना की तारीख और काफी अंतर होगा, लेकिन अगर ये विरोधाभास अदालत के मन में गवाहों की सच्चाई के बारे में इतना गंभीर संदेह पैदा करते हैं और अदालत को यह प्रतीत होता है कि स्पष्ट सुधार हुआ है, तो ऐसे सबूतों पर भरोसा करना सुरक्षित नहीं है।

चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य में मामूली बदलाव और विरोधाभास संदेह के लाभ को अभियुक्त के पक्ष में नहीं झुकाएंगे, लेकिन जब अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य में विरोधाभास अभियोजन पक्ष के मामले के लिए घातक साबित होते हैं तो वे विरोधाभास मामले की जड़ तक जाते हैं और ऐसे मामलों में आरोपी को संदेह का लाभ मिलता है।

50. उपरोक्त चर्चा और रिकॉर्ड पर उपलब्ध दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य की मूल्यांकन के आधार पर, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि अभियोजन पक्ष अपीलकर्ताओं के खिलाफ धारा 452, 366, 376 डी और 313 भ०द०वि० के तहत आरोप लगाने में विफल रहा है। तथ्य के गवाहों के साक्ष्य में भारी विरोधाभास अभियोजन पक्ष की थ्योरी को संदिग्ध बनाते हैं। गवाहों ने अपनी गवाही में कई सुधार और अलंकरण किए हैं। अ०सा०-1 के रूप में जांच की गई अभियोकत्री के साक्ष्य, और अन्य गवाह अ०सा०-2 श्रीमती जैतून, अ०सा०-3 इस्लाम नबी, और अ०सा०-4 रमजानी समग्र रूप से पढ़ने पर आत्मविश्वास को प्रेरित नहीं करते हैं और इनमें सच्चाई की कोई झलक नहीं है। तथ्य के गवाहों के मौखिक साक्ष्य की मूल्यांकन अपीलकर्ताओं द्वारा अपराध कारित करने के बारे में संदेह पैदा करती है। विद्वान विचारण न्यायालय ने रिकॉर्ड पर उपलब्ध सबूतों को सही तरीके से मूल्यांकन नहीं किया है और इसलिए अपीलकर्ताओं को गलत तरीके से दोषी ठहराया है।

51. उपरोक्त के मद्देनजर, अपीलकर्ता संदेह के लाभ के हकदार हैं क्योंकि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे अपीलकर्ताओं के खिलाफ आरोपों को साबित करने में विफल रहा है। इस प्रकार, अपील की अनुमति दी जा सकती है और अपीलकर्ता बरी होने के पात्र हैं।

<u>आदेश</u>

52. तदनुसार आपराधिक अपील की अनुमति दी जाती है। विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित सजा का निर्णय और सजा का आदेश दिनांक 26.10.2017, एस.टी संख्या 533, वर्ष 2014 (राज्य बनाम असलम और अन्य) में पारित किया गया था, जिसे एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है। इसके अनुसार, अपीलकर्ता असलम और रफीक को धारा 452, 366, 376-डी और 313 भ०द०वि० के तहत आरोपों से बरी किया जाता है। अदालत के समक्ष साक्ष्य पेश करने के समय के बीच

53. अपीलकर्ता असलम जेल में है। अगर किसी अन्य मामले में उसकी हिरासत की जरूरत नहीं है तो उसे तत्काल रिहा किया जाए।

54. अपीलकर्ता रफीक जमानत पर है। उसे आत्मसमर्पण करने की जरूरत नहीं है। उसके व्यक्तिगत बांड रद्द कर दिए जाते हैं और जमानतदारों को उनकी देयता से मुक्त किया जाता है।

55. विचारण न्यायालय यह सुनिश्चित करेगा कि अपीलकर्ता विचारण न्यायालय को इस आदेश के संचार की तारीख से दो सप्ताह के भीतर विचारण न्यायालय के समक्ष धारा 437 ए द०प्र०स० के तहत आवश्यक बांड प्रस्तुत करेंगे।

56. इस आदेश की प्रमाणित प्रति अनुपालन के लिए विचारण न्यायालय को प्रेषित की जाए।

57. निचली अदालत के रिकॉर्ड को भी विचारण न्यायालय को प्रेषित किया जाए।

(2023) 1 ILRA 1062

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल

दिनांकः इलाहाबाद 15.09.2021

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेन्द्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष चंद,

आदेश से प्रथम अपील संख्या 795/2011

श्रीमती अनिता सिन्हा एवं अन्य ....अपीलकर्ता

बनाम

श्रीप्रकाश दीक्षित एवं अन्य ...प्रत्यार्थियों

अपीलकर्ताओं के लिए अधिवक्ता:

श्री डी.के. तिवारी, श्री श्रीश श्रीवास्तव

प्रत्यार्थियों के लिए अधिवक्ता:

श्रीअमरेश सिन्हा

(ए) दीवानी कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा 163-क, 168 और 173 - उ.प्र.**मोटर वाहन नियम, 1998 - नियम 220-क(3), 220-क(3)(ii) और 220-क (6):- दावेदार की अपील - मुआवजे में वृद्धि** हेतु **- साक्ष्य और दुर्घटना के तथ्य की सराहना - दुर्घटना और आकस्मिक चोटों पर विवाद नहीं है - मृतक की मृत्यु आकस्मिक चोटों के कारण हुई थी - बीमा कंपनी ने यह साबित नहीं किया कि पॉलिसी शर्तों का कोई उल्लंघन हुआ था - दस्तावेजी साक्ष्यो पर विचार करने के बाद न्यायाधिकरण ने चार मुद्दे तय किए - न्यायाधिकरण ने माना कि ट्रक का ड्राइवर ही दुर्घटना का एक मात्र साक्षी था - न्यायाधिकरण ने मृतक की उम्र के संबंध में मुद्दा संख्या 4 को छोड़कर सभी मुद्दों का फैसला दावेदारों के पक्ष में किया ।**

(अनुछेद -3)

(बी) दीवानी कानून - मोटर वाहन अधिनियम 1988, - धारा 163-क, 168 और 173 - उ.प्र.**मोटर वाहन नियम 1998, - नियम 220-क(3), 220-क(3)(ii) और 220-क (6) :- दावेदार की अपील - मुआवजे की मात्रा - आय और भविष्य की विवरणिका का निर्धारण - 45 वर्ष की आयु में मृतक और वह एक निजी कंपनी में एक अधिकारी के रूप में काम कर रहा था और परामर्श कार्य में भी काम कर रहा था - आईटीआर से पता चलता है कि वह प्रतिवर्ष 1,67,855 रुपये कमा रहा था - न्यायाधिकरण ने एक गलती की है क्योंकि उसने अन्य स्रोतों से आय पर विचार नहीं किया है -** न्यायालय **ने माना कि, आयकर रिटर्न प्रपत्र मृतक की आय का दर्पण है और इसलिए उसी पर विचार किया जाना चाहिए - भविष्य के पूर्वेक्षण पर विचार किया जाना चाहिए - जो माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार निर्धारित किया जाता है।**

(अनुछेद -3,5)

(सी) दीवानी कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा 163-क, 168 और 173 - उ.प्र.**मोटर वाहन नियम, 1998 - नियम 220-क (3), 220- क (3) (ii) और 220-क (6):-दावेदार की अपील - मुआवजे की मात्रा - निर्धारण - गुणक और कटौती - 45 - 47 के आयु वर्ग में माने जानेवाले मृतक को स्वीकार नहीं किया जा सकता - अभिलेखों से पता चला कि उसकी उम्र 45 साल थी - पोस्टमार्टम रिपोर्ट से भी पता चला कि मृतक की उम्र 45 साल थी - माना गया - जैसा कि सरला वर्मा के मामले में निर्धारित कानून के अनुसार न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया है, गुणक '14' न कि 13 होगा।**

(अनुछेद - 4,7)

(डी) दीवानी कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा 163-क, 168 और 173 - उ.प्र.**मोटर वाहन नियम, 1998 - नियम 220-क(3), 220-क(3)(ii) और 220-क(6):- दावेदार की अपील - मुआवजे की मात्रा - सरला वर्मा के मामले, प्रणय शेट्टी के मामले, श्रीमती संगीता आर्य के मामले व् नेशनल इंश्योरेंस कंपनीलिमिटेड मामले में निर्धारित कानून के अनुसार निर्धारित की जानी है - इसलिए, न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए मुआवजे को 7.5% ब्याजदर के साथ बढ़ाकर 21,06,636/- रुपये कर दिया गया - अपील की अनुमति - विवादित फैसले को तदनुसार संशोधित किया गया।**

(अनुछेद - 4, 9, 10, 12)

<u>परिणाम</u> **- अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।**(ई-11)

<u>संदर्भित मामलों की सूची:</u>

1. श्रीमतीसंगीताआर्यएवंअन्यबनामओरिएंटलइंश्योरेंसकंपनीलिमिटेडएवंअन्य। (2020 (5) एससीसी 327),

2. विमलकंवरऔरअन्यबनामकिशोरदानऔरअन्य। (एआईआर 2013 एससी 3830),
3. नेशनलइंश्योरेंसकंपनीलिमिटेडबनामप्रणयसेठीऔरअन्य, (2017 (16) एससीसी 680),
4. सरलावर्माएवंअन्यबनामदिल्लीट्रांसपोर्टकार्पोरेशनएवंअन्य। (2009 (6) एससीसी 121),
5. नेशनलइंश्योरेंसकंपनीलिमिटेडबनाममन्नतजोहलऔरअन्य। (2019 (2) टी.ए.सी. 705 (एससी),
6. श्रीमतीहंसागोरीपी. लधानीबनामदओरिएंटलइंश्योरेंसकंपनीलिमिटेड (2007 (2) जीएलएच 291),
7. ए. वी. पद्माबनामवेणुगोपाल (2012 (1) जीएलएच (एससी) 442),

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, और माननीय न्यायमूर्ति सुभाष चंद, द्वारा दिया गया)

1. पक्षों केविद्वानअधिवक्ताकोसुनाऔरआक्षेपितनिर्णय औरआदेशकाअवलोकनकिया गया।

2. यहअपील, दावेदारोंकेआदेशपर, मोटरदुर्घटनादावान्यायाधिकरणसंख्या 602/2008मामलेमेंमोटरदुर्घटनादावान्यायाधिकरण/अतिरिक्तजिलान्यायाधीश, कोर्टनंबर 10, इलाहाबाद (इसकेबाद 'न्यायाधिकरण' केरूपमेंसंदर्भित) द्वारापारितनिर्णयऔरअधिनिर्णितदिनांक 18.11.2010 कोचुनौतीदेतीहै।

3. हमारेउद्देश्यकेलिएआवश्यकसंक्षिप्ततथ्य, जोमुकदमेबाजीसेसंबंधितहै, वहयहहैकिदुर्घटना 02.12.2007 कोशामलगभग 6.00 बजेहुईजबट्रककेचालकनेट्रककोतेजीसेऔरलापरवाहीसेचलायाऔर मृतकद्वाराचलायीजारहीमारुतिकारकोटक्करमारदी, जिससेमृतकअपनीकारचलाकरलखनऊसेगोरखपुरजारहाथाऔरमृतककीमृत्युआकस्मिकचोटोंकेकारणहुई, इसमेंकोईविवादनहींहै।ट्रक कीसंलिप्तताभीविवादमेंनहींहैबीमा कंपनीयहसाबितनहींकरपाईकिपॉलिसीशर्तोंका कोईउल्लंघनहुआथाऔरउन्हेंमृतककेकानूनीउत्तराधिकारियोंकोक्षतिपूर्तिदेनेकानिर्देशदियागया था।ट्रक केमालिकऔरचालकअनुपस्थितहैंऔरगवाहबॉक्समेंप्रवेशनहींकियाहै।प्रत्यार्थियों (मालिकऔरड्राइवर) नेलिखितबयानदायरकिया, जोइनकारमेंसेएकहै।बीमा कंपनीनेभीअपनाजवाबअस्वीकारकरदियाऔर पॉलिसीशर्तोंकाउल्लंघनकिया।न्यायाधिकरणनेचारमुद्देतयकिएऔरकहाकिचूंकिट्रककेड्राइवर केखिलाफआरोपपत्रदायरकियागयाथाऔरपोस्टमार्टमसेपताचलाकिचोटेंमौतकाकारणबननेकेलिएपर्याप्तथीं।इसलिए, न्यायाधिकरणइसनिष्कर्षपरपहुंचाकिमृत्युआकस्मिकचोटोंकेकारणहुई।न्यायाधिकरणनेमानाकिट्रककाड्राइवरहीदुर्घटनाकाएकमात्रसाक्षीथा।मुद्दा संख्या 2 और 3 कानिर्णयभीप्रत्यार्थियों केविरुद्धकियागया।यह केवलमुद्देसंख्या 4 केतथ्योंकीखोजहै, जिसनेयहांअपीलकर्ताओंकोव्यथितकियाहै।न्यायाधिकरणकेअनुसारमृतककीउम्र 47 वर्षथी।मृतक अपट्रॉनइंडियालिमिटेडमेंएकअधिकारीकेरूपमें

कार्यरतथाऔरकंसल्टेंसीकाकामभीकरताथा।अपीलकर्ता केविद्वानअधिवक्ताकेअनुसार, न्यायाधिकरणनेपरामर्शकीआयपरविचारनहींकियाक्योंकिकोईप्रमाणपत्रप्रस्तुतनहींकियागयाथा। अधिवक्ताकेअनुसार, न्यायाधिकरणनेवेतन 75816/- रुपयेप्रतिवर्षमानाऔर 13 कागुणकदियाऔर 1/3 व्यक्तिगतखर्चकेरूपमेंकाटाऔर 9500/- रुपयेगैरआर्थिकक्षतिकेरूपमेंजोड़ा।यह स्वीकारकियागयाहैकिइसतथ्यकेबावजूदकिआईटीआररिटर्नसेपताचलाहैकिमृतक 1,67,855/- रुपयेकमारहाथा, भविष्यमेंआयकीहानिकेमदमेंकोईराशिनहींदीगई, जोकिखराबहै।

4. अपीलकर्ताओंकेविद्वानअधिवक्तानेप्रस्तुतकियाहैकि**श्रीमतीसंगीताआर्यऔरअन्यबनामओरिएंटलइंश्योरेंसकंपनीलिमिटेडऔरअन्य 2020 5 एससीसी 327**मेंसर्वोच्चन्यायालयकेहालियाफैसलेमें,मृतककीआयकोआयकररिटर्नकेअनुसारमानाजानाचाहिए।अभिलेखोंसेयहस्पष्टहैकिआयपरइसआधारपरविचारनहींकियागयाकिकोईप्रमाणपत्रप्रस्तुतनहींकियागयाथा।हालाँकि, मूलवेतनकीगणनाअन्यपरिलब्धियोंकेसाथकीजानीथी, जोमृतकको**विमलकंवरऔरअन्यबनामकिशोरदानऔरअन्यएआईआर 2013 एससी 3830** मेंशीर्षन्यायालयकेफैसलेकेअनुसारमिलरहाथा। हम इसबातसेसहमतनहींहोसकतेकिन्यायाधिकरणनेदुर्घटनाकेवर्षमेंमृतककीआय 75,816/- रुपयेप्रतिवर्षमानीथीऔरफैसलेकीतारीखमेंभविष्यमेंहोनेवालीआयकीहानिकेअनुदानकेसिद्धांतकोलागूकियागयाथा,इसलिए, **नेशनलइंश्योरेंसकंपनीलिमिटेडबनामप्रणयसेठीऔरअन्य (2017) 16 एससीसी 680**केफैसलेकेअनुसार, क्योंकिउनकीआयुलगभग 45 वर्षथी, 30% स्वीकार्यहोगाजिसमेंसे 1/3 काटाजाएगाक्योंकिउनकीपत्नीऔरनाबालिगबेटाजीवितथीं।**सरला वर्माऔरअन्यबनामदिल्लीपरिवहननिगमऔरअन्य (2009) 6 एससीसी 121**केफैसलेकेअनुसार, न्यायाधिकरणद्वारादिएगएअनुसारगुणकभी 14 नकि 13 होगा,गैर आर्थिकक्षति 7.5% ब्याजकेसाथ 70,000/- रुपये + 30,000/- रुपयेहोगी।

5. हमनेआकलनवर्ष 2008-09 केलिएआयकररिटर्नसत्यापनफॉर्मकाअध्ययन कियाहै।ऐसा प्रतीतहोताहैकिन्यायाधिकरणनेएकत्रुटिकीहैक्योंकिउसनेकॉलम V मेंअन्यस्रोतोंसेआयपरविचारनहींकियाहैऔरइसलिए, इसमेंस्पष्टत्रुटिहोनेपरहमनेइसेठीककरदियाहै। आयकर रिटर्नमृतककीआयकादर्पणहैऔरइसलिए, उसीपरविचारकियाजानाचाहिए।

6. हमप्रतिवादीकेविद्वानअधिवक्ताश्रीअमरेशसिन्हाकाविवरणरखनेवालेअनुभवसिन्हाकीदलीलकोस्वीकारकरनेमेंअसमर्थहैं।न्यायाधिकरण नेउचितरूपसेतर्कसंगतआयपरविचारकियाहैऔ

रगुणकउचितऔरउचितहैक्योंकिवहस्व-नियोजितव्यक्तिथा, भविष्यकीसंभावनाओंकेअनुदानकेलिएकोईसवालनहींहै।

7. यहदलीलकिमृतकको 45-47 आयुवर्गमेंमानाजाए, स्वीकारनहींकियाजासकताक्योंकिअभिलेखोंसेपताचलताहैकिउसकीउम्र 45 वर्षथी।पोस्टमार्टमरिपोर्टसेयहभीपताचलाहैकिमृतककीउम्र 45 सालथी।

8. न्यायाधिकरणनेआयमेंसेभत्तोंकोइसटिप्पणीकेसाथखारिजकरदियाहैकियहकेवलतभीदेयहोगाजबमृतकजीवितहो, यहपहलूऔर इसतथ्यकोगलतीसेदर्जकियागयाहैताकिवर्ष 2008-09 केआयकररिटर्नमेंदर्शाईगईआयकोखारिजकियाजासके।

9. इसलिए, **प्रणयसेठी** (पूर्वोक्त) मेंसर्वोच्चन्यायालयकेफैसलेकेमद्देनजरअपीलकर्ताओंकोदेयकुलमुआवजेकीगणनानीचेकीगईहै:

I. वार्षिकआय:- 1,67,855/-

II. भविष्य कीसंभावनाओंकाप्रतिशत : 30% (रु. 50,356/-)

III. कुल आय : रु. 2,18,211/-

IV. 1/3 कीकटौतीकेबादआय: रु. 1,45,474/-

V. गुणक लागू: 14

VI. निर्भरता कानुकसान: रु. 1,45,474 x 14 = रु. 20,36,633/-

VII. फ़िलियल कंसोर्टियमऔरअन्यगैर आर्थिकमदोंकेतहतराशि: रु. 70,000/-

VIII. कुल मुआवजा: रु. 21,06,636/-

10. जहांतकब्याजदरकेमुद्देकासवालहै, **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मन्नत जोहल और अन्य, 2019 (2) टी.ए.सी. 705 (एस.सी.)**में शीर्ष न्यायालय के नवीनतम निर्णयको देखते हुए यह 7.5% होनी चाहिए। जिस में सर्वो च्चन्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है:

"13. उपरोक्तविशेषताएंब्याजदरकेसंबंधमेंदावेदारोंकी ओरसेदिएगएतर्कोंपरस मानरूपसेलागूहोतीहैं।न्यायाधिकरणने 12% प्रतिवर्षकीदरसेब्याजदियाथा, लेकिनइनमामलोंमेंआम तौरपरजोसोचाजाताहै, उसकीतुलनामेंयहदरबहुतअधिकथी।उच्च न्यायालयनेअधिनिर्णितराशिमेंपर्याप्तवृद्धिकरनेके बाद, 7.5% प्रतिवर्षकीउचितदरपर

ब्याजघटककोसंशोधित कियाऔरहमेंइसमामलेमें उच्चन्यायालयद्वाराअनुमतदरसेअधिककिसीभीदर परब्याजकीअनुमतिदेने काकोईकारणनहींमिला।"

11. जबमामलेकीसुनवाईहुईतोमौखिकरूपसेकिसीअन्यआधारकाआग्रहनहींकियागया।

12. उपरोक्तकोध्यानमेंरखतेहुए, अपीलआंशिकरूपसेस्वीकारकीजातीहै।न्यायाधिकरणद्वारापारितनिर्णयऔरडिक्रीउपरोक्तसीमातकसंशोधितमानेजाएंगे।यह राशिप्रतिवादी-बीमाकंपनीद्वाराआजसे 12 सप्ताहकीअवधिकेभीतर 7.5% कीदरसेब्याजकेसाथजमाकीजानीचाहिए।पहलेसेजमाकीगईराशिकोजमाकीजानेवालीराशिसे काटलियाजाएगा।

13. **श्रीमती हंसा गोरी पी. लधानी बनाम द ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनीलिमिटेड के मामले में माननीय गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को ध्यान में रखते हुए (2) जीएलएच 291,**2007 मेंरिपोर्टकिएगएमुआवजेकीमूलराशिपरअर्जितब्याजकीकुलराशिकोवित्तीयवर्षसेवित्तीयवर्षकेआधारपरविभाजितकियाजानाहैऔरयदिकिसीवित्तीयवर्षकेलिएदावेदारकोदेयब्याज 50,000/- रुपयेसेअधिकहै,बीमाकंपनी/मालिकआयकरअधिनियम, 1961 कीधारा 194क(3)(ix) केतहत "स्रोतपरकरकटौती" केतहतउचितराशिकाटनेकाहकदारहैंऔर यदिकिसीवित्तीयवर्षमेंब्याजकीराशि 50,000/- रुपयेसेअधिकनहींहै, तोन्यायाधिकरणकीरजिस्ट्रीकोनिर्देशदियाजाताहैकिवहदावेदारकोसंबंधितआयकरप्राधिकरणसेप्रमाणपत्रप्रस्तुतकिएबिनाराशिनिकालनेकीअनुमतिदे।उपरोक्त दृष्टिकोणकोइसउच्चन्यायालयद्वाराआदेशसंख्या 23/2001 (श्रीमतीसुदेस्नाऔरअन्यबनामहरिसिंहऔरअन्य) कीपहलीअपीलमेंसमीक्षाआवेदनसंख्या 1/2020 मेंदोहरायागयाहैऔर आदेशसंख्या 2871/2016 (तेजकुमारीशर्माबनामचोलामंडलमएम.एस. जनरलइंश्योरेंसकंपनीलिमिटेड) सेप्रथमअपीलमें 19.03.2021 कोराशिवितरितकरतेहुएनिर्णयलियागया।

14. न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री में राशि जमा करने पर, रजिस्ट्री को पहले घाटे की अदालती फीस की राशि, यदि कोई हो, काटने का निर्देश दिया जाता है। में रिपोर्ट किए गए **ए.वी. पद्माबनाम वेणुगोपाल 2012 (1) जीएलएच (एससी) 442** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को ध्यान में रखते हुए, निवेश का आदेश पारित नहीं किया गया है क्योंकि प्रत्यार्थि न तो अनपढ़ हैं और न ही देहाती ग्रामीण हैं।

15. इस मामले का निपटारा कराने के लिए यह न्यायालय दोनों अधिवक्ताओं का आभारी है।

(2023) 1 ILRA 1066

अपीलीय क्षेत्राधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेन्द्र ठाकेर

प्रथम अपील से आदेश संख्या 1673/2004

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड ... अपीलकर्ता

बनाम

श्रीमती हरदेई और अन्य ... प्रतिवादीगण

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री एस.सी. श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री एसएम खालिद

नागरिक कानून - कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम, 1923 - धारा - 30 : - बीमाकर्ताओं की अपील - कर्मकार प्रतिकर आयुक्त द्वारा पारित अधिनिर्णय के विरुद्ध - दावा आवेदन - धनराशि देना- कानून का सारभूत प्रश्न - बीमा कंपनी ने वाहन के मालिक के आधार पर दलील दी कि घटना के समय उसके रोजगार से उत्पन्न होने वाली मृत्यु को नहीं लिया जाएगा - कामगार क्षतिपूर्ति आयुक्त तथ्य का अंतिम प्राधिकारी है - गोल्ला राजन और माया के मामले में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के आलोक में - उच्च न्यायालय तथ्यों के क्षेत्र में तब तक प्रवेश नहीं कर सकता जब तक कि वे विकृत साबित न हों और साथ ही उच्च न्यायालय तब तक हस्तक्षेप नहीं कर सकता जब तक कि कानून का प्रश्न शामिल न हो - वर्तमान अपील में, बनाए गए कानून के तथाकथित पर्याप्त प्रश्न तथ्यों के प्रश्न हैं और उक्त मुद्दों पर आयुक्त के निष्कर्ष विकृत नहीं हैं - इसलिए, बीमा कंपनी द्वारा बनाए गए कानून के तथाकथित प्रश्न के खिलाफ उत्तर दिया जाता है - इसलिए, यह अपील विफल हो जाती है और खारिज कर दी जाती है - तदनुसार, सौंपी गई राशि के संवितरण के लिए निदेश। (अनुच्छेद - 11, 12, 13, 16)

दोनों अपीलों को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है। (अ-11)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. उत्तर पूर्व कर्नाटक सड़क परिवहन निगम बनाम श्रीमती सुजाता (नागरिक अपील नं. 7470/2009, दिनांक 02.11.2018 को निर्णीत),

2. ईएसआईसी बनाम एस प्रसाद (एफएएफओ सं. 1070/1993 दिनांक 26.10.2017 को निर्णय लिया गया),

3. गोला राजन्ना आदि बनाम डिवीजनल मैनेजर और अन्य (2017 (1) टीएसी 259 (एससी)),

4. माया बनाम मुस्तफा और अन्य, 2022 एसीजे 524,

5. सलीम बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, 2022 एसीजे 526,

6. शाहजहाँ और अन्य बनाम मेसर्स श्री राम जनरल इंस्टुअन्स कंपनी लिमिटेड और अन्य (2021 खंड 4 टीएसी 687 एससी),

7. रीता देवी बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, कानून (एससी) 2000 499,

8. मुकुंद देवांगन बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, एआईआर 2017 एससी 3668।

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकेर द्वारा दिया गया)

(माननीय न्यायमूर्ति, डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर)

1. अपीलकर्ता-न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. इस अपील के माध्यम से, अपीलकर्ता ने कर्मकार क्षतिपूर्ति आयुक्त, बरेली द्वारा वाद संख्या 156/डब्ल्यूसीए/2002 में 3,06,620/- रुपये का क्षतिपूर्ति देने के आदेश दिनांक 31.3.2004 को चुनौती दी है।

3. अपीलकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता - बीमा कंपनी का कहना है कि मालिक के बयान के अनुसार, मृतक वाहन को मरम्मत और सर्विसिंग के लिए कार्यशाला में ले गया था, लेकिन वह अपने वाहन के बिना अनुमति अन्य पांच व्यक्तियों के साथ वाहन को दिल्ली और

मेरठ ले गया था और इस प्रकार उसकी मृत्यु को दुर्घटना के समय और उसके रोजगार के दौरान हुई मृत्यु के रूप में नहीं माना जाएगा। ड्राइवर के पास केवल मोटरसाइकिल और एलएमवी (प्राइवेट) चलाने का लाइसेंस था, जबकि जीप का बीमा टैक्सी के लिए किया गया था और इस तरह यह नीति का उल्लंघन करके चलाई गई थी।

4. दावेदार के लिए विद्वान अधिवक्ता - प्रतिवादी का कहना है कि मृतक चरण सिंह यादव प्रतिवादी संख्या 2 के स्वामित्व वाले वाहन संख्या यूपी-25-जे/2228 के साथ चालक के रूप में कार्यरत था और 19.8.2002 को उसके रोजगार के दौरान उसकी हत्या कर दी गई थी। वाहन का बीमा अपीलकर्ता की कंपनी के साथ किया गया था, जिसके लिए विद्वान न्यायाधिकरण ने वाद संख्या 4 का निर्णय करते हुए कहा कि घटना के दिन वाहन का बीमा किया गया था क्योंकि वाहन का बीमा 20.3.2002 से 19.3.2003 तक किया गया था।

5. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि घटना के दिन मृतक के पास वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था, जिसके लिए बिन्दु संख्या 5 ने अपीलकर्ता के विरुद्ध निर्णय सुनाया। यह निष्कर्ष कि मृतक की मृत्यु रोजगार के दौरान हुई, जिसके लिए बिन्दु संख्या 1 का निर्णय दावेदारों के पक्ष में किया गया था, आयुक्त के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य के विरुद्ध है।

6. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने अभिलेख पर उपलब्ध भौतिक साक्ष्यों पर विचार करते हुए निर्णय और आदेश दिनांक 31.3.2004 द्वारा आंशिक रूप से दावेदार के दावे को स्वीकार करते हुए 3,06,620/- रुपये की राशि ब्याज सहित और अपीलकर्ता पर दायित्व गलती से तय कर दी है, विद्वान न्यायाधिकरण ने दावेदार - प्रतिवादी संख्या 1 के दावे को आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए निष्कर्ष निकाला कि दावेदार विधवा के दावे के अनुसार क्षतिपूर्ति का हकदार था।

7. अपील के ज्ञापन के अवलोकन पर, इस न्यायालय ने पाया कि अपीलकर्ता द्वारा विधि के निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार किए गए हैं, इस न्यायालय ने अपील स्वीकार करते समय यह निर्धारित नहीं किया कि अपील किस विधि के प्रश्न पर स्वीकार की गई है। यह न्यायालय अपीलकर्ता द्वारा तय किए गए विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न पर निर्णय लेना उचित समझता है। विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न इस प्रकार हैं:-

"(ए) क्या विद्वान आयुक्त ने वाहन के मालिक (नियोक्ता) के इस बयान की अनदेखी करते हुए क्षतिपूर्ति देने में विधि की गलती की है कि उसने केवल मृतक को वाहन को मरम्मत के लिए कार्यशाला में ले जाने की अनुमति दी थी और सर्विसिंग और दिल्ली और मेरठ आदि के अवकाश दौरे के लिए नहीं, जो उनकी अनुमति के बिना था?

(बी) क्या ड्राइवर की मृत्यु उसके रोजगार के दौरान और उसके दौरान हुई मानी गई है?

(सी) क्या दुर्घटना के समय चालक के पास वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस था?

(डी) क्या जब तक आपराधिक न्यायालय में यह साबित नहीं हो जाता कि पाई गई हड्डियाँ

कथित मृतक की हैं, दावेदार के पक्ष में कोई पंचाट पारित नहीं किया जा सकता है?"

8. सबसे पहले, कामगार क्षतिपूर्ति आयुक्त के पंचाट के विरुद्ध अपील पर विचार करने के लिए इस न्यायालय के दायरे पर चर्चा करना प्रासंगिक है।

9. सिविल अपील संख्या **7470/2009** उत्तर पूर्व कर्नाटक सड़क परिवहन निगम बनाम श्रीमती सुजाता में सर्वोच्च न्यायालय ने **2.11.2018** को निर्णय सुनाया:

"9. शुरुआत में, हम इस तथ्य पर ध्यान दे सकते हैं, एक स्थापित सिद्धांत होने के नाते, यह प्रश्न कि क्या कर्मचारी किसी दुर्घटना का शिकार हुआ, क्या दुर्घटना रोजगार के दौरान हुई, क्या यह रोजगार के कारण उत्पन्न हुई, दुर्घटना कैसे और किस प्रकार हुई, दुर्घटना कारित करने में किसकी लापरवाही थी, क्या कर्मचारी और नियोक्ता का कोई संबंध था, कर्मचारी की आयु और मासिक वेतन क्या था, मृत कर्मचारी के आश्रितों की संख्या कितनी है किसी दुर्घटना में लगी चोटें, क्या नियोक्ता द्वारा घटना को कवर करने के लिए कोई बीमा कवरेज प्राप्त किया गया था आदि कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे हैं जो दावा याचिका में आयुक्त के उचित निर्णय के लिए तब उठते हैं जब किसी कर्मचारी को कोई शारीरिक चोट लगती है या उसकी मृत्यु हो जाती है। अपने रोजगार के दौरान और वह/उसका एलआरएस अधिनियम के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति का दावा करने के लिए अपने नियोक्ता पर मुकदमा करता है।

10. उपरोक्त प्रश्न अनिवार्य रूप से तथ्य के प्रश्न हैं और इसलिए, उन्हें साक्ष्य की सहायता से साबित करना आवश्यक है। एक बार जब वे किसी भी तरह से साबित हो जाते हैं, तो उस पर दर्ज निष्कर्ष तथ्य के निष्कर्ष माने जाते हैं।"

10. सर्वोच्च न्यायालय ने आगे निम्नलिखित निर्णय दिए:

"15. ऐसी अपील को प्रवेश के प्रश्न पर यह पता लगाने के लिए सुना जाता है कि इसमें विधि का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न सम्मिलित है या नहीं। अपील में विधि का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न सम्मिलित है या नहीं, यह प्रत्येक वाद के तथ्यों पर निर्भर करता है और उच्च न्यायालय द्वारा एक परीक्षा की आवश्यकता है। यदि विधि का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है, तो उच्च न्यायालय योग्यता के आधार पर अंतिम सुनवाई के लिए अपील को स्वीकार कर लेगा अन्यथा इस कारण से खारिज कर देगा कि इसमें विधि का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न सम्मिलित नहीं है।

16. अब इस वाद के तथ्यों पर आते हुए, हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में ऊपर दिए गए भौतिक प्रश्नों पर विधि का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न सम्मिलित नहीं था। दूसरे शब्दों में, हमारे विचार में, आयुक्त ने पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर वाद में उत्पन्न होने वाले सभी भौतिक प्रश्नों का उचित निर्णय लिया और प्रतिवादी को देय क्षतिपूर्ति का सही निर्धारण किया। इसलिए, तथ्यों के आधार पर उच्च न्यायालय द्वारा इसकी सही पुष्टि की गई।

17. प्रकरण के इस दृष्टिकोण में, नीचे दिए गए दो न्यायालयों के तथ्य के समवर्ती निष्कर्ष होने के कारण इस न्यायालय पर बाध्यकारी हैं। अन्यथा भी, हमें किसी भी तथ्यात्मक निष्कर्ष पर किसी भी हस्तक्षेप के लिए कॉल करने का

कोई अच्छा आधार नहीं मिलता है। कोई भी तथ्यात्मक निष्कर्ष या तो विकृत या मनमाना नहीं पाया गया या बिना किसी साक्ष्य के आधारित या विधि के किसी भी प्रावधान के विरुद्ध नहीं पाया गया। हम इस प्रकार इन निष्कर्षों को कायम रखते हैं।"

11. इस न्यायालय ने, हाल ही में **1993** के एफएएफओ **1070** **(**ईएसआईसी बनाम एस प्रसाद**)** में **26.10.2017** को निर्णय लिया, गोला राजाना **(**सुप्रा**)** में निर्णय का पालन किया है और निम्नानुसार आयोजित किया है:

"इस न्यायालय के समक्ष आग्रह किए गए आधार तथ्यों की खोज के दायरे में हैं और विधि का प्रश्न नहीं है। जहां तक विधि का प्रश्न है, गोला राजन्ना आदि आदि बनाम डिविजनल मैनेजर और अन्य (सुप्रा) में उपरोक्त निर्णय में पैराग्राफ 8 इस प्रकार है "कामगार क्षतिपूर्ति आयुक्त तथ्यों पर अंतिम प्राधिकारी है, संसद ने कल्याणकारी विधि होने के कारण अपील के दायरे को केवल विधि के महत्वपूर्ण प्रश्नों तक ही सीमित रखना उचित समझा है। दुर्भाग्य से, उच्च न्यायालय ने सीमित क्षेत्राधिकार के इस महत्वपूर्ण प्रश्न को अनदेखा कर दिया है और साक्ष्यों की फिर से सराहना करने का साहस किया है और विकलांगता के प्रतिशत पर अपने स्वयं के निष्कर्षों को दर्ज किया है, जिसके लिए कोई आधार नहीं है।"

12. जहां तक वर्तमान अपील का प्रश्न है, बनाए गए विधि के तथाकथित महत्वपूर्ण प्रश्न तथ्यों के प्रश्न हैं और उक्त मुद्दों पर आयुक्त के निष्कर्ष विकृत नहीं हैं। नॉर्थ ईस्ट कर्नाटक रोड ट्रांसपोर्ट कॉरपोरेशन प्रकरण **(**सुप्रा**)** और गोला राजन्ना आदि बनाम डिविजनल मैनेजर और अन्य**, 2017 (1)** टीएसी **259 (**एससी**)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए, जहां यह भी माना गया है कि धारा 30 के अन्तर्गत ई.सी. अधिनियम, 1923 के अनुसार, उच्च न्यायालय तथ्यों के क्षेत्र में तब तक प्रवेश नहीं कर सकता जब तक कि वे विकृत साबित न हो जाएं।

13. मयान बनाम मुस्तफा और अन्य**, 2022** एसीजे **524** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के एक तत्कालीन निर्णय में भी कहा गया है कि न्यायालय तब तक हस्तक्षेप नहीं कर सकती जब तक कि विधि का कोई प्रश्न सम्मिलित न हो, हमारे वाद में चोट रोजगार के दौरान लगी थी। चोट का प्रतिशत आयुक्त द्वारा तय किया गया था। सलीम बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य**, 2022** एसीजे **526** में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय भी इस न्यायालय को आयुक्त के तर्कसंगत निर्णय में हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं देगा।

14. यह न्यायालय शाहजहाँ और अन्य बनाम मेसर्स श्री राम जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य***, 2021(4)*** टीएसी ***687 (***एस.सी.***)*** के प्रकरण में भी अपने दृष्टिकोण से मजबूत है क्योंकि यह साबित हो गया है कि दावेदार नियोक्ता का कर्मचारी था और ड्राइवर के तौर पर लगा हुआ था।

15. जहां तक (ए) में विधि का प्रश्न है, यह महत्वहीन है कि क्या मृतक वाहन को मरम्मत के लिए कार्यशाला में ले गया था। वह रोजगार में था और रोजगार के दौरान, उसकी मृत्यु हो गई। यह अवर न्यायालय के समक्ष पेश किए गए

साक्ष्यों के आधार पर तथ्य की खोज है। इसलिए, सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए यह तथ्य का प्रश्न है, जहां कोई विकृति नहीं बताई गई है क्योंकि मालिक ने इस तथ्य पर विवाद नहीं किया है कि मृतक उसका कर्मचारी था। धारा 30 के अन्तर्गत यह न्यायालय तथ्य के इस विवादित प्रश्न पर विचार नहीं कर सकता है जिसका निर्णय आयुक्त द्वारा किया गया है जो कि तथ्य का पहला न्यायालय है। मालिक, जिसकी जांच डीडब्ल्यू 1 के रूप में की गई है, ने वाहन को मृतक के आदेश पर रखा था, जो रोजगार में था। चरण सिंह को ड्यूटी पर रहते हुए मृत्यु कारित किया गया था, जो नीचे की न्यायालय में साबित हो चुका है। प्राथमिकी में यह भी उल्लेख है कि दिनांक 19.8.2002 को चरण सिंह वाहन का चालक था तथा प्रातः 9:00 बजे वाहन को धुलवाने के लिये ले गया था, इस तथ्य की पुष्टि आरोप पत्र से भी होती है। मृतक की हत्या कर दी गई थी क्योंकि उसका अपहरण किया गया था, यह बिन्दु संख्या 1 में तथ्य की खोज है। प्रकरण के उस दृष्टिकोण में, ये तथ्य के प्रश्न हैं और साबित करते हैं कि उसे कुछ तत्वों द्वारा मौत के घाट उतार दिया गया था, रीता देवी बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, विधि ***(एससी) 2000 499*** प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय, इस प्रकरण के तथ्यों पर लागू होगा। जहां तक नीति के उल्लंघन का प्रश्न है, उक्त ड्राइविंग लाइसेंस का समर्थन किया गया था या नहीं, यह मुकुंद देवांगन बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, एआईआर ***2017*** एससी ***3668*** के निर्णय में सम्मिलित है। यह कोई प्रकरण नहीं है कि वाहन चलाया गया था टैक्सी कोटा वाहन के रूप में, जहां तक प्रश्न संख्या (सी) का प्रश्न है तो विद्वान आयुक्त ने प्रकरण संख्या 5 का निर्णय करते हुए अपीलार्थी के विरुद्ध इस तथ्यात्मक आंकड़े का निर्णय किया है। मैं ऊपर दिए गए कारणों और मुकुंद देवांगन (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आधार पर इससे सहमत हूं, जैसा कि बिन्दु संख्या 5 में है, यह साबित होता है कि वाहन का बीमा किया गया था और चालक का बीमा किया गया था और चालक के पास ड्राइविंग लाइसेंस था। उन्होंने यह भी तर्क दिया था कि ड्राइविंग लाइसेंस वैध था लेकिन कोई समर्थन नहीं था। जहां तक विधि का महत्वपूर्ण प्रश्न है, पोस्टमार्टम रिपोर्ट और प्राथमिकी स्पष्ट रूप से साबित करती है कि यह चरण सिंह का शव था और आयुक्त के तथ्यों पर संतुष्ट होने के बाद आपराधिक न्यायालय के निर्णय की प्रतीक्षा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। प्रकरण यह है कि चरण सिंह को मृत्यु कारित किया गया था।

16. प्रकरण को देखते हुए यह अपील विफल हो जाती है और खारिज की जाती है। बीमा कंपनी द्वारा बनाए गए विधि के तथाकथित प्रश्नों का उत्तर इसके विरुद्ध दिया जाता है, वास्तव में विधि के जो महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए गए हैं वे तथ्य के प्रश्न हैं।

17. अंतरिम उपचार तत्काल समाप्त कर दी जाएगी, रजिस्ट्री इस आदेश को डब्ल्यू.सी. आयुक्त को अग्रेषित करेगी जो दावेदारों को तुरंत बुलाएगा और आज से 30 दिनों के भीतर उक्त राशि पर अर्जित ब्याज के साथ सावधि

जमा में रखी गई राशि का भुगतान करेगा।

(2023) 1 ILRA 1070
अपीलीय क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 18.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सरल कुमार श्रीवास्तव

आदेश से प्रथम अपील क्रमांक 2239/2022

श्रीमती शाजिया एवं अन्य ...अपीलकर्ता
बनाम
मुनाज़िर अली एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता:
श्री अजय कुमार सिंह यादव, श्री दिव्यांश

अधिवक्ता प्रतिवादी:
.....

सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 आदेश 7 नियम 11 - धारा - 96 - सीमा अधिनियम, 1963 - अनुच्छेद 59: - अवर अपीलीय अदालत के आदेश के खिलाफ अपील - बिक्री-विलेख को निरस्त करने के लिए मूल वाद– जिसमें अपीलकर्ता ने एक आवेदन दायर किया था, जिसमें कथित विक्रय विलेख वर्ष 2006 में निष्पादित होने के कारण वाद परिसिमा से बाधित हो गया था, लेकिन उसने वर्ष 2012 में चुनौती दी - विचारणीय न्यायालय ने अनुच्छेद 59 के तहत तीन साल समय बाधित होने के कारण मुकदमे को खारिज कर दिया – सिविल अपील – अवर अपीलीय अदालत ने सिविल अपील की अनुमति दी - अदालत ने पाया कि - वादी के तर्क में, कि उसे 2006 के विक्रय पत्र के निष्पादन की जानकारी जनवरी 2012 के अंतिम सप्ताह में ही मिली थी - अदालत ने माना कि , परिसीमा का प्रश्न शुद्ध रूप से कानून का प्रश्न नहीं है, बल्कि तथ्य और कानून का एक मिश्रित प्रश्न है - तथा यह प्रश्न कि क्या वाद-पत्र में दिए गए कथन सत्य हैं या नहीं, इसका निर्णय पक्षों द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत करने के बाद ही किया जा सकता है - इसलिए, विचारणीय न्यायालय के आदेश को अपास्त करने में अवर अपीलीय अदालत द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता नहीं है - तदनुसार अपील में योग्यता (merit) का अभाव है और इसलिए निरस्त कर दिया गया है।

(अनुच्छेद - 26, 30, 34, 35)

परिणाम - अपील स्वीकृत । (ई-11)

<u>संदर्भित मामलों की सूची:-</u>

1. सुखबीरी देवी एवं अन्य बनाम भारत संघ और अन्य. (सिविल अपील संख्या 10834/2010),
2. राघवेंद्र शरण सिंह बनाम राम प्रसन्न सिंह (मृत) द्वारा वारिसन (सिविल अपील क्रमांक 2960 /2019),
3. सी.एस. रामास्वामी बनाम वी.के. सेंथिल एवं अन्य (सिविल अपील क्रमांक 500 / 2022),
4. मो. नूरुल होदा बनाम बीबी रायफुन्निसा एवं अन्य, (1996) 7एससीसी 767),
5. सरनपाल कौर आनंद बनाम प्रदुमन सिंह चंडोक एवं अन्य, (2022) 8एससीसी 401।

(माननीय न्यायमूर्ति सरल कुमार श्रीवास्तव द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री ए.के.एस. यादव की बात सुनी।

2. प्रतिवादियों/अपीलकर्ताओं ने अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित 21.09.2022 के आदेश के खिलाफ वर्तमान अपील को प्राथमिकता दी है, जिसमें विचारण न्यायालय के 11.03.2019 के विचारण न्यायालय के आदेश को रद्द कर दिया गया था, जिसके द्वारा विचारण न्यायालय ने वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा दायर 2012 के मूल वाद संख्या 59 के वाद को इस आधार पर खारिज कर दिया है कि मुकदमा सीमा द्वारा प्रतिबंधित है।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 ने 2012 का मूल मुकदमा संख्या 59 स्थापित किया है, जिसमें वाद संपत्ति के संबंध में 05.12.2006 को कथित रूप से निष्पादित बिक्री विलेख को रद्द करने का अनुरोध किया गया है। वाद वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा दायर किया गया है, जिसमें आरोप लगाया गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 अरैश अली (मुकदमे में प्रत्यर्थी संख्या 2) वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 का बेटा था और अपीलकर्ता संख्या 1 श्रीमती

शाजिया खान (मुकदमे में प्रत्यर्थी संख्या 1) प्रत्यर्थी संख्या 2 (इसके बाद 'प्रत्यर्थी संख्या 2 की पत्नी'के रूप में संदर्भित) की पत्नी है। वाद में आगे का आरोप यह है कि प्रत्यर्थी संख्या 4 (वाद पत्र में प्रत्यर्थी संख्या 4) अपीलकर्ता संख्या 1 का पिता है।

4. वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 के पुत्र प्रत्यर्थी संख्या 2 का विवाह 30.04.2006 को अपीलकर्ता संख्या 1 के साथ संपन्न हुआ था। इसके बाद अपीलकर्ता संख्या 1 ने वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 के घर में प्रत्यर्थी संख्या 2 की पत्नी के रूप में रहना शुरू कर दिया। आगे यह दलील दी गई है कि अपीलकर्ता संख्या 1 ने वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 की संपत्ति को हड़पने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 2 के साथ मिलीभगत की है। उक्त उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, अपीलकर्ता संख्या 1 ने 30.11.2006 को दहेज निषेध अधिनियम के तहत वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 की पत्नी और भांजे (बहन के बेटे) के खिलाफ झूठी शिकायत दर्ज की। दिनांक 30.11.2006 की एफआईआर के अनुसरण में वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 के भतीजे को गिरफ्तार कर लिया गया और उसे जेल में रहना पड़ा।

5. आगे यह कहा गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 4 ने अपीलकर्ता संख्या 1 के साथ मिलकर इस शर्त पर एफआईआर वापस लेने पर सहमति व्यक्त की थी कि वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 अपीलकर्ता संख्या 1 के पक्ष में बिक्री विलेख के माध्यम से अपने स्वामित्व वाले घर को स्थानांतरित करेगा। इस बात पर सहमति हुई कि बिक्री विलेख के निष्पादन पर दिनांक 05-12-2006 की एफआईआर वापस ले ली जाएगी।

6. वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 का एक और मामला यह है कि अपीलकर्ता संख्या 1 द्वारा अपनाई गई दबाव की रणनीति के कारण, वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 के पास बिक्री विलेख को निष्पादित करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था क्योंकि अपीलकर्ता संख्या 1 द्वारा उसकी पत्नी और भतीजे के खिलाफ झूठे आपराधिक मामले दर्ज किए गए थे। यह कहा गया है कि उन्होंने केवल घर के संबंध में बिक्री विलेख निष्पादित किया। वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 ने आगे कहा है कि उसे वाद में वर्णित कृषि भूमि के संबंध में बिक्री विलेख दिनांक 05.12.2006 के निष्पादन के बारे में कोई जानकारी नहीं थी, जिसे अपीलकर्ता संख्या 1 द्वारा धोखाधड़ी करके निष्पादित किया गया था।

7. वाद में वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 का यह विशिष्ट मामला है कि उसने कृषि भूमि के संबंध में कोई बिक्री विलेख निष्पादित नहीं किया है जो वाद संपत्ति है, न ही उसे कोई बिक्री विचार प्राप्त हुआ है जैसा कि उक्त बिक्री विलेख में आरोप लगाया गया है। वाद के पैरा -8 में वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 ने स्पष्ट रूप से कहा है कि वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 को घर के बिक्री विलेख को निष्पादित करने के लिए मजबूर किया गया था और जब वह बिक्री विलेख के निष्पादन के लिए न्यायालय पहुंचा, तो बिक्री विलेख उसे नहीं पढ़ा गया था और जहां भी उसे अपने हस्ताक्षर करने के लिए कहा गया था, उन्होंने अपने हस्ताक्षर किए थे क्योंकि उन्हें बताया गया था कि कागजात घर के संबंध में बिक्री विलेख से संबंधित हैं।

8. वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 का आगे का मामला यह है कि जिस गांव में चक बनाया गया था, वहां चकबंदी की कार्यवाही की गई थी, जिसमें वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 का नाम अभी भी दर्ज है और चक का कब्जा वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 को सौंप दिया गया है।

9. यह कहा गया है कि वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 को जनवरी 2012 के अंतिम सप्ताह में निष्पादित दिनांक 05.12.2006 के बिक्री विलेख के बारे में पता चला जब अपीलकर्ता ने वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 के कब्जे में हस्तक्षेप किया, जिसने वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 को वर्तमान मुकदमा शुरू करने के

लिए कार्रवाई का कारण बनाया। तत्पश्चात्, वाद के पैरा-1 और 2 में वर्णित वाद संपत्ति के संबंध में दिनांक 05-12-2006 के विक्रय विलेख को रद्द करने के लिए वाद दायर किया गया है।

10. उक्त वाद में, अपीलकर्ता ने आदेश 7 नियम 11 सी.पी.सी. के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह तर्क दिया गया कि वाद को सीमा द्वारा प्रतिबंधित किया गया है क्योंकि बिक्री विलेख कथित रूप से **05.12.2006**को निष्पादित किया गया था, जबकि मुकदमा **14.02.2012**को तीन साल की अवधि के बाद स्थापित किया गया है, जो भारतीय परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 59 के तहत प्रदान किए गए बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए वाद के लिए सीमा की अवधि है।

11. विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि वाद को पढ़ने पर, यह स्पष्ट है कि मुकदमा **05.12.2006**के बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए दायर किया गया है, जबकि मुकदमा फरवरी 2012 में स्थापित किया गया है और चूंकि परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 59 के तहत प्रदान किए गए बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए मुकदमा दायर करने की सीमा की अवधि तीन साल है, इसलिए, मुकदमे को सीमा द्वारा प्रतिबंधित कर दिया गया है।

12. वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 ने अपीलीय न्यायालय के समक्ष सी.पी.सी. की धारा 96 के तहत अपील को प्राथमिकता दी, जिसे 2019 के सिविल अपील संख्या 28 के रूप में पंजीकृत किया गया था, जिसे अपीलीय न्यायालय द्वारा 21.09.2022 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी, जिसमें कहा गया था कि विचारण न्यायालय ने इश्यू संख्या 10 तैयार किया है "क्या मुकदमा सीमा द्वारा प्रतिबंधित है"। उक्त मुद्दे पर विचारण न्यायालय ने 20.10.2013 को एक आदेश पारित किया कि दोनों पक्षों के अधिवक्ता, यानी, वादी और प्रत्यर्थी पक्षों द्वारा साक्ष्य के नेतृत्व के बाद इश्यू संख्या 10 के निपटान के लिए सहमत हुए हैं।

13. अपीलीय न्यायालय ने पाया कि चूंकि दिनांक **20.10.2013**का एक आदेश था, जिसमें दोनों पक्षों के वकील साक्ष्य के नेतृत्व के बाद इश्यू संख्या 10 के निपटान के लिए सहमत हुए थे, इसलिए, विचारण न्यायालय 20.10.2013 के आदेश से बाध्य था और जब तक 20.10.2013 के आदेश की समीक्षा नहीं की जाती है, तब तक आदेश 7 नियम 11 सी.पी.सी. के तहत आवेदन का निपटारा नहीं किया जा सकता था। यानी, वादी और प्रत्यर्थी के वकील ने पार्टियों द्वारा साक्ष्य के नेतृत्व के बाद इश्यू संख्या 10 के निस्तारण के लिए सहमति व्यक्त की थी।

14. आदेश को चुनौती देते हुए, अपीलकर्ताओं के वकील ने तर्क दिया है कि वाद-पत्र को पढ़ने पर, यह स्पष्ट है कि मुकदमा सीमा द्वारा निषिद्ध है। यह तर्क दिया जाता है कि यह अभिलेख पर स्वीकार किया जाता है कि मुकदमा संपत्ति के संबंध में बिक्री विलेख **05.12.2006**को निष्पादित किया गया था, जबकि मुकदमा फरवरी 2012 में स्थापित किया गया था और इस प्रकार, यह प्रकट होता है कि तीन साल की अवधि समाप्त हो गई है, इसलिए, वाद को इस आधार पर खारिज कर दिया जाना चाहिए कि वाद अधिनियम,1963 के अनुच्छेद 59 के मद्देनजर सीमा द्वारा निषिद्ध है।

15. यह प्रस्तुत किया जाता है कि न्यायालय इस दलील की

अनुदित

वास्तविक भावना से अवलोकन करने के लिए बाध्य है और यदि वाद के साथ संलग्न वाद-पत्र और अन्य सामग्री को पढ़ने पर कि वाद को सीमा द्वारा प्रतिबंधित किया गया है, वाद को सीमा के भीतर लाने के लिए वाद का चतुर मसौदा वाद को इस आधार पर अस्वीकार किए जाने से नहीं बचा सकता है कि यह सीमा द्वारा निषिद्ध है।

16. वह प्रस्तुत करता है कि वादी से यह स्पष्ट है कि वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 ने बिक्री विलेख के निष्पादन को स्वीकार किया है और केवल दस्तावेजों की सामग्री से इनकार करता है, और इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि उसे **05.12.2006**को बिक्री विलेख के निष्पादन के बारे में जानकारी थी, जिस तारीख को इसे निष्पादित किया गया था और जैसा कि मुकदमा वर्ष 2012 में स्थापित किया गया है, इसलिए, यह स्पष्ट है कि मुकदमा सीमा द्वारा प्रतिबंधित है और अपीलीय न्यायालय ने अभिलेख पर सही तथ्यों की अवलोकन नहीं करके भौतिक अनियमितता की है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि यहां तक कि वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 ने भी मुकदमे में स्वीकार किया है कि चकबंदी कार्यवाही शुरू की गई थी जिसमें आपत्ति उठाई गई थी।

17. यह तर्क दिया जाता है कि बिक्री विलेख के निष्पादन के बाद, अपीलकर्ता संख्या 1 ने राजस्व अभिलेख में अपने नाम के उत्परिवर्तन के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया था, जिस पर वर्ष 2007 में वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा आपत्ति जताई गई थी और इसलिए, यह स्पष्ट है कि वादी / प्रत्यर्थी संख्या 1 को वर्ष 2007 में आपत्ति दर्ज करने की तारीख पर बिक्री विलेख के बारे में जानकारी थी और, इसलिए, मुकदमा अन्यथा सीमा द्वारा भी प्रतिबंधित है। अपने मामले के समर्थन में, उन्होंने शीर्ष न्यायालय के **सिविल अपील संख्या 10834/2010, सुखबीरी देवी और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, सिविल अपील संख्या 2960/2019, राघवेंद्र शरण सिंह बनाम राम प्रसन्न सिंह (मृतक) और सिविल अपील संख्या 500/2022 सी.एस. रामासामी बनाम वीके. सेंथिल और अन्य** मामलों के निर्णय पर भरोसा किया है।

18. मैंने अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है और अभिलेख का अवलोकन किया है।

19. विवाद का अवलोकन करने से पहले, उन तथ्यों का अवलोकन करना उचित होगा जिनके आधार पर मुकदमा दायर किया गया है।

20. वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 ने वाद में कहा है कि वह वाद के पैरा -1 और 2 में वर्णित वाद संपत्ति का मालिक है। वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 का आगे का मामला यह है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 वह बेटा था जिसकी शादी अपीलकर्ता संख्या 1 से हुई थी। अपीलकर्ता संख्या 1 ने प्रत्यर्थी संख्या 2 को विश्वास में लिया और वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 की चल और अचल संपत्ति को हड़पने की साजिश रची और इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, अपीलकर्ता संख्या 1 ने वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 की पत्नी और भतीजे (बहन के बेटे) के खिलाफ **30.11.2006**को एफआईआर दर्ज की। इसके बाद, अपीलकर्ता संख्या 1 और प्रत्यर्थी संख्या 4 ने वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 को अपीलकर्ता संख्या 1 के पक्ष में अपने स्वामित्व वाले घर के संबंध में एक बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए मजबूर किया था, इस शर्त पर कि बिक्री विलेख के निष्पादन पर, दिनांक **30.11.2006**की प्राथमिकी वापस ले ली जाएगी। यह भी दलील दी जाती है कि दिनांक **30.11.2006**की एफआईआर दर्ज होने के बाद, वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 के भतीजे को गिरफ्तार कर लिया गया था और वह कैद में था, ऐसी परिस्थितियों में, वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 के पास अपीलकर्ता संख्या 1 द्वारा

अपनाई गई दबाव रणनीति के कारण बिक्री विलेख निष्पादित करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था, और ऐसी परिस्थितियों में, उसने **05.12.2006**को केवल अपने स्वामित्व वाले घर के संबंध में बिक्री विलेख निष्पादित किया।

21. वाद में विशेष रूप से यह अनुरोध किया गया है कि जब वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 बिक्री विलेख के निष्पादन के लिए न्यायालय में पहुंचा, तो उसने सभी कागजात पर हस्ताक्षर किए क्योंकि वह पत्नी और भतीजे के खिलाफ झूठी प्राथमिकी के कारण दबाव में था। यह भी दलील दी गई है कि दस्तावेजों की सामग्री उन्हें नहीं पढ़ी गई थी और वह इस विश्वास के तहत थे कि वह केवल घर के संबंध में दस्तावेजों पर हस्ताक्षर कर रहे थे, न कि वाद संपत्ति के संबंध में। वाद में यह भी कहा गया है कि वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 ने वाद संपत्ति के संबंध में कोई विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया है, न ही उसे कोई बिक्री विचार प्राप्त हुआ है। उन्होंने अपीलकर्ता संख्या 1 द्वारा एफआईआर दर्ज करके अपनाई गई दबाव की रणनीति के कारण घर के संबंध में बिक्री विलेख निष्पादित किया। उन्होंने सभी दस्तावेजों पर इस विश्वास के तहत हस्ताक्षर किए कि दस्तावेज वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 के घर के संबंध में हैं। वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 ने यह भी कहा है कि वह अनपढ़ है और वह केवल अपने हस्ताक्षर कर सकता है।

22. यह कहा गया है कि उन्होंने वाद संपत्ति के संबंध में कोई विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया है और उन्हें जनवरी 2012 के अंतिम सप्ताह में बिक्री विलेख के कथित निष्पादन के बारे में पता चला जब अपीलकर्ता संख्या 1 ने संपत्ति के कब्जे में हस्तक्षेप करने की कोशिश की और इससे उन्हें मुकदमा दायर करने की कार्रवाई का कारण मिला।

23. ऊपर वर्णित तथ्यों से, यह स्पष्ट है कि वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 ने एक विशिष्ट मामले की पैरवी की है कि उसने सूट संपत्ति के संबंध में कोई बिक्री विलेख निष्पादित नहीं किया है और इस संबंध में, वाद के पैरा -7 और 8 को पुन: पेश करना उचित होगा:

> *"7. यह की माह जनवरी 2012 के अन्तिम सप्ताह में प्रत्यर्थीगण नंबर 1, 2 व 5ने विवादित आराजी गाटा संख्या- 204 पर अवैधानिक रूप से जबरदस्ती बिना किसी अधिकार के कब्जा करने की कोशिश की लेकिन वादी ने स्वयं व दीगर लोगों की मदद से उपरोक्त प्रत्यर्थीगण को उनके मकसद मे कामयाब नही होने दिया तभी उपरोक्त प्रत्यर्थीगण ने वादी की कथित मकान के बयनामे के समय प्रत्यर्थीगण संख्या 1, 2 व 5 ने प्रत्यर्थीगण नंबर 3 व 4 की मदद से उपरोक्त आराजी जिसकी तफसील वाद पत्र के पैरा संख्या 2 में लिखी है, का भी कथित बयनामा करा लिया। वादी ने उपरोक्त आराजी का दिनांक- 5.12.06 को प्रतिवादनी नंबर 1 के हक में कथित कोई बयनामा तहरीर, तकमील व रजिस्ट्री नही कराया और न ही वादी ने प्रतिवादनी नंबर 1 से कथित बयनामे का कथित 4,00000 रूपये प्रतिफल प्राप्त किया। कथित बयनामा अकृत व शून्य है, धोखे व षडयन्त्र पर आधारित है और बिना प्रतिफल के है। वादी ने प्रतिवादनी संख्या 1 से कथित मकान के बयनामें का भी एक रूपये प्रतिफल प्राप्त नहीं किया।*
>
> *8. यह कि कथित मकान के बयनामे के समय वादी कथित बयनामा कराने के लिये मजबूर था और जब वादी तहसील पहुंचा तो कथित मकान*

के कागजात तैयार थे और वादी को यही बताया गया कि कथित कागजात मकान से सम्बन्धित हैं और वादी को कोई भी कागज पढ़कर नहीं सुनाया गया। जहाँ जहाँ चाहे कथित दस्तावेज लेखक ने कथित कागजात पर वादी के निशान अंगूठे लगवा लिये। वादी पढ़ा लिखा व्यक्ति नहीं है केवल वादी ने हस्ताक्षर करना सीख लिये हैं। वादी ने कथित कागजात पर मकान का बयनामा समझकर अपने निशान अंगूठे लगा दिये। कातिब ने या प्रत्यर्थीगण ने या सब रजिस्ट्रार के कार्यालय में किसी ने भी वादी को कोई कागजात पढ़कर नहीं सुनाये और वादी ने मकान के कागजात समझकर अपने निशान अंगूठे लगा दिये। यदि वादी को यह मालूम होता कि प्रत्यर्थीगण मकान के अलावा वादी की आराजी का भी कथित बयनामा करा रहे हैं तब कभी भी वादी कथित बयनामें पर अपने निशान अंगूठे नहीं लगाता। कथित बयनामा बाबत आराजी निजाई सरासर गलत, अवैधानिक व शून्य है और बिना प्रतिफल के है तथा वादी पर काबिले पाबन्दी नहीं है। कथित बयनामे के आधार पर प्रतिवादनी नंबर 1 का नाम कभी भी राजस्व अभिलेखों में दर्ज नही हुआ और नही वादी ने कथित बयनामें के आधार पर विवादित आराजी पर प्रतिवादनी नंबर 1 का कब्जा व दखल कराया। चकबन्दी के दौरान भी चक वादी के नाम बनाया गया है और वादी को ही चक पर कब्जा व दखल दिलाया गया है।

8 अ- यह कि मान्य न्यायालय के आदेशानुसार प्रतिवादी नं० 8 को फरीक मुकदमा बनाया जा रहा है प्रतिवादी नं०8"

24. वाद में वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 की एक विशिष्ट दलील है कि उसने वाद संपत्ति के संबंध में दिनांक 05.12.2006 के विक्रय विलेख को कभी निष्पादित नहीं किया है। वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 ने उसके द्वारा दिनांक 05.12.2006 के बिक्री विलेख के निष्पादन से इनकार कर दिया था और इसलिए, यह न्यायालय अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की इस दलील को स्वीकार करने के लिए इच्छुक नहीं है कि वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 ने बिक्री विलेख के निष्पादन को स्वीकार किया है, लेकिन केवल बिक्री विलेख की सामग्री से इनकार किया है और, इसलिए, अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 59 को ध्यान में रखते हुए वाद को सीमा द्वारा प्रतिबंधित किया जाता है।

25. इस बिंदु पर कानून कि आदेश 7 नियम 11 सी.पी.सी. के तहत आवेदन पर विचार करने में यह तय किया गया है कि न्यायालय को केवल वाद पत्र में दिए गए कथनों को देखने की आवश्यकता है, और यदि वाद को पढ़ने पर, कार्रवाई का कारण बनता है, तो आदेश 7 नियम 11 सी.पी.सी. के तहत वाद को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

26. इस मामले में, वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 ने दिनांक 05.12.2006 के बिक्री विलेख के निष्पादन से इनकार किया है और वाद में कहा है कि उसे 05.12.2006 के बिक्री विलेख के निष्पादन के बारे में जनवरी 2012 के अंतिम सप्ताह में पता चला जब प्रतिवादियों ने मुकदमा संपत्ति के शांतिपूर्ण आनंद में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया।

27. वर्तमान मामले में वादी/प्रत्यर्थी का विशिष्ट मामला यह नहीं है कि उसने दिनांक 05.12.2006 के लिखत (बिक्री

विलेख) को निष्पादित किया था और वह बिक्री विलेख की सामग्री को नहीं जानता था, बल्कि वादी/प्रत्यर्थी ने वाद संपत्ति के संबंध में दिनांक 05.12.2006 के बिक्री विलेख के निष्पादन से इनकार कर दिया है और वाद में आगे विस्तार से बताया है कि सम्मोहक परिस्थितियों में, उन्होंने प्रत्यर्थी/अपीलकर्ताओं द्वारा मांगे गए सभी दस्तावेजों पर हस्ताक्षर किए, यह मानते हुए कि यह उनके घर की बिक्री के संबंध में दस्तावेज है। इसलिए, वाद पत्र के पैरा 7 और 8 में दिए गए कथन सत्य हैं या नहीं, इस प्रश्न पर पक्षकारों के नेतृत्व में साक्ष्य प्रस्तुत करने के बाद ही निर्णय लिया जा सकता है। यदि अभिलेख में उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर वादी के कथन सही पाए जाते हैं, तो वाद संपत्ति के संबंध में वादी/अपीलकर्ता को दिनांक 05.12.2006 के कथित बिक्री विलेख के बारे में पता चलने की तारीख से सीमा की गणना की जाएगी।

28. ऐसे मामले में जहां साधन को कथित तौर पर निष्पादित किया गया है या धोखाधड़ी से प्राप्त किया गया है, ऐसे साधन को अलग करने या रद्द करने की सीमा का प्रारंभिक बिंदु कथित धोखाधड़ी के ज्ञान की तारीख है। इस संबंध में, **मोहम्मद नूरुल होदा बनाम बीबी रायफुन्निसा और अन्य (1996) 7 एससीसी 767**के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के पैरा -6 को पुन: प्रस्तुत करना उपयोगी होगा, जिसे नीचे प्रस्तुत किया गया है:

> *"6. इसलिए, प्रश्न यह है कि क्या इस मामले में तथ्यों पर अधिनियम की अनुसूची का अनुच्छेद 59 या अनुच्छेद 113 लागू होता है। परिसीमा अधिनियम, 1908 की अनुसूची के अनुच्छेद 59 में अन्य बातों के साथ-साथ धोखाधड़ी द्वारा प्राप्त डिक्री को रद्द करने के लिए मुकदमों का प्रावधान किया गया था। किसी अन्य आधार पर डिक्री को रद्द करने के लिए कोई विशिष्ट लेख नहीं था। ऐसे मामले में, अनुसूची III में अवशिष्ट अनुच्छेद 120 आकर्षित किया गया था। अधिनियम की अनुसूची का वर्तमान अनुच्छेद 59 धोखाधड़ी या किसी अन्य आधार पर डिक्री को रद्द करने के लिए किसी भी मुकदमे को शासित करेगा। इसलिए, अनुच्छेद 59 किसी भी मुकदमे पर लागू होगा जो धोखाधड़ी या किसी अन्य आधार पर डिक्री को रद्द करता है। यह सच है कि अनुच्छेद 59 लागू होगा यदि प्रभावित व्यक्ति एक डिक्री या एक साधन या अनुबंध का एक पक्ष है। इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि अनुच्छेद 59 पारस्परिक पक्षों के बीच साधन, डिक्री या अनुबंध को अलग करने के लिए लागू होगा। प्रश्न यह है कि डिक्री या लिखत के पक्षकार के माध्यम से स्वामित्व का दावा करने वाले व्यक्ति के मामले में या साधन या डिक्री या अनुबंध का ज्ञान रखने और एक विशिष्ट घोषणा द्वारा डिक्री से बचने की मांग करने वाले व्यक्ति के मामले में, क्या अनुच्छेद 59 आकर्षित होता है? जैसा कि पहले कहा गया है, अनुच्छेद 59 एक सामान्य प्रावधान*

है। धोखाधड़ी के आधार पर किसी साधन, अनुबंध या डिक्री को रद्द करने या रद्द करने के मुकदमे में, अनुच्छेद 59 आकर्षित होता है। सीमा का प्रारंभिक बिंदु कथित धोखाधड़ी के संज्ञान की तारीख है। जब वादी उस संपत्ति पर अपना स्वामित्व स्थापित करना चाहता है जिसे डिक्री या एक साधन से बचने के बिना स्थापित नहीं किया जा सकता है जो उसके रास्ते में एक दुर्गम बाधा के रूप में खड़ा है जो अन्यथा उसे बांधता है, हालांकि एक पक्ष नहीं है, वादी को आवश्यक रूप से एक घोषणा की मांग करनी होगी और उस डिक्री, साधन या अनुबंध को रद्द या रद्द या रद्द करना होगा। विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 31 किसी लिखत को रद्द करने के लिए मुकदमों को विनियमित करती है, जिसमें कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति जिसके विरुद्ध कोई लिखित लिखत अमान्य या अमान्य है और जिसे इस बात की उचित आशंका है कि यदि ऐसा लिखत बकाया रह जाता है तो वह उसे गंभीर चोट पहुंचा सकता है, तो वह उसे अमान्य या शून्य घोषित करने के लिए मुकदमा दायर कर सकता है और न्यायालय अपने विवेक से इसे अवक्रमित कर सकता है और इसे देने या रद्द करने का आदेश दे सकता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाएगा कि विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 31 में 'व्यक्ति'शब्द इतना व्यापक है कि इसमें अपने विक्रेता से व्युत्पन्न शीर्षक मांगने वाले व्यक्ति को शामिल किया जा सकता है। इसलिए, यह स्पष्ट हो जाएगा कि यदि वह साधन, डिक्री या अनुबंध से बचना चाहता है और डिक्री को रद्द करने या रद्द करने की घोषणा चाहता है, तो वह उस तारीख से तीन साल के भीतर मुकदमा दायर करने के लिए बाध्य है, जब वादी को डिक्री को रद्द करने के लिए बाध्य करने वाले तथ्य पहले उसे ज्ञात हो जाएंगे।"

29. **सरनपाल कौर आनंद बनाम प्रदुम्न सिंह चंडोक और अन्य (2022) 8 एससीसी 401**के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का उल्लेख करना भी उचित है, जिसमें शीर्ष न्यायालय ने पैराग्राफ 11 और 12 में निम्नानुसार कहा है: –

"11... सामान्य सिद्धांत, जो परिसीमा अधिनियम की धारा 17 में भी प्रकट होता है, यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को संपत्ति में अपने स्वयं के कानूनी अधिकार और शीर्षक को जानने के लिए माना जाता है, और यदि वह संपत्ति के अपने अधिकार और शीर्षक का ध्यान नहीं रखता है, तो संपत्ति के ऐसे अधिकार या शीर्षक के आधार पर मुकदमा दायर करने

का समय उसके खिलाफ चलने से नहीं रोका जाता है। धारा 17 (1) के प्रावधानों में न्याय और समानता के मौलिक सिद्धांत शामिल हैं जैसे कि किसी पक्ष को कानूनी कार्यवाही अपनाने में विफल रहने के लिए दंडित नहीं किया जाना चाहिए, जब तथ्यों या दस्तावेजों को जानबूझकर उससे छिपाया गया है और यह भी कि धोखाधड़ी करने वाले पक्ष को इस तरह की धोखाधड़ी के आधार पर अपने पक्ष में चल रही सीमा का लाभ नहीं दिया जाना चाहिए। हालांकि, यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि धारा 17 केवल इसलिए सीमा के शुरुआती बिंदु को स्थगित नहीं करती है क्योंकि प्रतिवादी ने धोखाधड़ी की है। धारा 17 में सभी प्रकार की धोखाधड़ी शामिल नहीं है, लेकिन परिसीमा अधिनियम की धारा 17 (1) के खंड (ए) से (डी) द्वारा कवर की गई विशिष्ट स्थितियां शामिल हैं। धारा 17 (1) (बी) और (डी) में केवल उन धोखाधड़ी दस्तावेजों या दस्तावेजों को छिपाने के कार्य शामिल हैं जो संज्ञान को दबाने का प्रभाव रखते हैं जो पक्षकार को अपने कानूनी उपाय को आगे बढ़ाने के लिए बाध्य करते हैं। एक बार जब कोई पक्ष कानूनी कार्यवाही को आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक पूर्ववर्ती तथ्यों से अवगत हो जाता है, तो सीमा की अवधि शुरू होती है।

12. इसलिए यदि वादी परिसीमा अधिनियम की धारा 17 की उप-धारा (1) के चार खंडों में से किसी एक या अधिक के भीतर आने वाला मामला बनाता है, तो मुकदमा दायर करने की सीमा की अवधि तब तक शुरू नहीं होगी जब तक कि वादी या आवेदक को धोखाधड़ी / गलती का पता नहीं चल जाता है या उचित परिश्रम के साथ इसका पता नहीं चल सकता है या यदि दस्तावेज को तब तक छिपाया जाता है जब तक कि वादी के पास इसका छिपे हुए दस्तावेज़ का निर्माण करना या इसके उत्पादन को मजबूर करने से सम्बन्धित साधन न हो। ।

30. इस प्रकार, वर्तमान मामले में, परिसीमा का प्रश्न कानून का शुद्ध प्रश्न नहीं है, बल्कि तथ्य और कानून का मिश्रित प्रश्न है। शायद, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने भी विचारण न्यायालय के समक्ष सहमति व्यक्त की है, जिसे विचारण न्यायालय के दिनांक 21.09.02022 के आदेश में दर्ज किया गया है कि इश्यू संख्या 10 पर पक्षकारों द्वारा अपने साक्ष्य पेश करने के बाद फैसला किया जाएगा।

31. अब, **29.10.2022** को दिए गए **सिविल अपील संख्या 10834/2010** में अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के पहले फैसले पर आते हुए, यह न्यायालय ध्यान दे सकता है कि उक्त

अनूदित

मामले में, अपीलकर्ताओं के पूर्ववर्ती, अर्थात् राम नंद, दिल्ली के नारायणा गांव में स्थित कृषि भूमि की कुछ सीमा का भूमिधर था। कृषि भूमि के उक्त भूखंड का अधिग्रहण किया गया था और 09.01.1976 को इसके अधिग्रहण के संबंध में एक निर्णय पारित किया गया था। अपीलकर्ताओं के पूर्ववर्ती, अर्थात् रामा नंद की मृत्यु हो गई, जिससे उनकी विधवा, दो बेटे, नाहर सिंह और धन सिंह और चार बेटियां पीछे रह गईं। स्वर्गीय रामानंद की विधवा का भी निधन हो गया। नीति में प्रावधान किया गया था कि भूमिधर अधिग्रहित भूमि के बदले वैकल्पिक आवासीय भूखंड के आवंटन का हकदार था। बाद में, दिनांक 08.03.1991 के एक पत्र के अनुसार पंजीकृत त्याग किए गए विलेख को प्रस्तुत करने पर धन सिंह के अनन्य नाम पर वैकल्पिक भूखंड आवंटित किया गया था। धन सिंह के पक्ष में भूखंड के आवंटन का तथ्य उनके भाई नाहर सिंह के संज्ञान में आया, जिन्होंने 05.04.1991 को धन सिंह के विशेष नाम पर भूखंड के आवंटन के संबंध में आपत्ति दर्ज की। इसके बाद, नाहर सिंह की मृत्यु 14.05.1993 को हो गई। उसके बाद, उनकी विधवा और बच्चे उनके बनाये रास्ते पर चले। वाद मामले के अनुसार, मूल वादी संख्या 1 ने अधिकारियों को धन सिंह के विशेष नाम पर वैकल्पिक भूखंड आवंटित करने से रोकने के लिए कई अभ्यावेदन प्रस्तुत किए। इसके बाद, उन्होंने 14.06.2000 को वाद संख्या 410/2000 की स्थापना की, जिसमें यह घोषणा करने की मांग की गई कि अपीलकर्ताओं को धन सिंह के नाम पर आवंटित आवासीय भूखंड का संयुक्त सह-मालिक घोषित किया जाए। उक्त वाद में, प्रत्यर्थी ने एक दलील उठाई कि जब तक 21.10.1985 को अवैध, अमान्य, शून्य नहीं ठहराया जाता है, और वादी/अपीलकर्ताओं के लिए बाध्यकारी नहीं है, तब तक उन्हें मुकदमे का सह-मालिक घोषित नहीं किया जा सकता है। यह दलील दी जाती है कि इस मामले में दिनांक 21.10.1985 का त्यागित विलेख 08.03.1991 को वादी के संज्ञान में आया और मुकदमा वर्ष 2000 में दायर किया गया है, इसलिए, मुकदमा सीमा द्वारा निषिद्ध है। ऐसी तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि परिसीमा के प्रश्न को प्रारंभिक मुद्दे के रूप में तय किया जा सकता है, और उक्त मामले में तथ्य पर विचार करने पर, सर्वोच्च न्यायालय का विचार था कि विचारण न्यायालय ने सीमा के आधार पर मुकदमे को सही ढंग से खारिज कर दिया।

32. दिनांक **13.03.2019** को निर्णीत **सिविल अपील संख्या 2960/2019**में अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य फैसले में यह ध्यान दिया जा सकता है कि उक्त मामले के तथ्य वर्तमान मामले के तथ्यों से अलग हैं। उक्त मामले में, प्रत्यर्थी ने टीएस मुकदमा संख्या 19/2003 अपीलकर्ता-मूल प्रतिवादी के खिलाफ मुंसिफ दानापुर की न्यायालय में इस घोषणा के लिए दायर किया कि अपीलकर्ता के पक्ष में निष्पादित 06.03.1981 को निष्पादित पंचाट का विलेख दिखावटी और झूठा लेनदेन है और अपीलकर्ता-मूल प्रतिवादी को कभी भी पंचाट में दी गई संपत्ति के संबंध में कोई शीर्षक और कब्जा नहीं है और यह उस पर बाध्यकारी नहीं है। उक्त मामले में, वाद को अस्वीकार करने के लिए आदेश 7 नियम 11 सी.पी.सी. के तहत एक आवेदन दायर किया गया था, इस आधार पर वाद को अस्वीकार करने के लिए कि मुकदमा इस आधार पर सीमा के कानून द्वारा प्रतिबंधित है कि पंचाट का विलेख 06.03.1981 को निष्पादित किया गया था, परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 59 के तहत मुकदमा उपहार विलेख के निष्पादन की तारीख से तीन साल के भीतर दायर किया जाना चाहिए था। जबकि यह उपहार विलेख के निष्पादन की तारीख से 22 साल से अधिक समय के बाद दायर किया गया है। उस मामले में, निर्णय

से निकलने वाला तथ्य यह है कि वादी/प्रत्यर्थी को दिनांक 06.03.1981 के पंजीकृत पंचाट विलेख के निष्पादन के बारे में जानकारी थी, लेकिन उन्होंने वर्ष 2003 तक कोई आपत्ति नहीं उठाई और ऐसी तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि मुकदमा सीमा द्वारा निषिद्ध है।

33. 20.09.2022 को तय किए गए सिविल अपील संख्या 500/2022 में अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य फैसले में, शीर्ष न्यायालय एक ऐसे मामले पर विचार कर रही थी जहां मूल वादी / प्रत्यर्थी ने मूल वादी द्वारा निष्पादित पंजीकृत बिक्री विलेख को रद्द करने की डिक्री के लिए मुकदमा दायर किया था। मुकदमा वर्ष 2015/2016 में स्थापित किया गया है, यानी पंजीकृत बिक्री विलेख के निष्पादन की तारीख से लगभग 10 साल की अवधि के बाद। मुकदमा इस आधार पर स्थापित किया गया था कि बिक्री विलेख धोखाधड़ी और गलत बयानी द्वारा निष्पादित किया गया है और वादी ने उक्त दस्तावेजों पर हस्ताक्षर किए या इसे एक संयुक्त उद्यम समझौते के रूप में माना और वादी ने उक्त दस्तावेजों की अन्तर्वस्तु का अध्ययन नहीं किया और वर्ष 2015 में, उन्हें इस तरह की धोखाधड़ी के बारे में पता चला और गलत बयानी करके बिक्री विलेख के दस्तावेज प्राप्त किए, इसलिए, अधिनियम की धारा 17 पर विचार करते हुए, उक्त मुकदमे को सीमा द्वारा प्रतिबंधित नहीं कहा जा सकता है। उक्त मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने मुकदमे के वाद में दलील के आयात पर विचार करते हुए पाया कि धोखाधड़ी के संबंध में केवल आधारहीन बातें की गई हैं और इस तरह की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि केवल वाद में यह कहना कि धोखाधड़ी की गई है, पर्याप्त नहीं है और धोखाधड़ी के आरोप को विशेष रूप से स्पष्ट किया जाना चाहिए। अन्यथा केवल 'धोखाधड़ी'शब्द का उपयोग करके, वादी सीमा के भीतर मुकदमा प्राप्त करने की कोशिश करेंगे, जो अन्यथा सीमा द्वारा प्रतिबंधित किया जा सकता है। इसलिए, यह निर्णय तथ्यों पर भी भिन्न है और उक्त निर्णय में प्रतिपादित कानून वर्तमान मामले में लागू नहीं होता है। इसलिए, यह निर्णय भी अपीलकर्ता की सहायता में नहीं आता है।

34. इस प्रकार, ऊपर दिए गए कारणों से, इस न्यायालय को अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता नहीं मिलती है, जिसमें विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को सीमा के आधार पर खारिज कर दिया गया था।

35. तदनुसार, अपील में गुण-दोष का अभाव है और इसे लागत के सम्बन्ध में बिना किसी आदेश के **खारिज** किया जाता है।

(2023) 1 ILRA 1079
अपीलीय क्षेत्राधिकार
नागरिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 02.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे.मुनीर

द्वितीय अपील संख्या 172/2021

इस्लाम ... अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ... प्रतिवादीगण

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री रामेंद्र अस्थाना, श्री विजय कुमार ओझा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री देवेंद्र दहमा, श्री गिरिजेश त्रिपाठी (स्थायी अधिवक्ता)

दीवानी कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 100 और 331 - आदेश VII नियम 11, - उप्र पंचायत राज अधिनियम, 1947 - धारा 106, - वक्फ अधिनियम, 1995 - धारा 85 और 85-ए, - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 और 227 - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 122-बी, 122- बी (3), 122-बी (4-ए), 122-बी (4-डी), 122-बी (4- ई), 122-बी (4-एफ), 229-बी (1), 229-बी (2) और 229-बी (3) - द्वितीय अपील – घोषणा और स्थायी निषेधाज्ञा के लिए एक वाद से उत्पन्न - क्षेत्राधिकार - अभिनिर्धारित, यदि अवर न्यायालय को पता चलता है कि उसके पास वाद का विचारण करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है और तैयार किए गए वाद का विचारण सक्षम क्षेत्राधिकार के न्यायालय द्वारा किया जा सकता है, जो कि एक राजस्व न्यायालय है, तो सिविल न्यायालय को वास्तव में वाद को खारिज नहीं करना चाहिए, यदि दीवानी न्यायालय सोचता है कि वाद उसके द्वारा संज्ञेय नहीं है, बल्कि अधिनियम की धारा 331 के प्रावधानों के मद्देनजर राजस्व न्यायालय द्वारा संज्ञेय है, तो किसी पक्ष के मामले के गुण-दोष के मुद्दों पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया जा सकता है – तदनुसार, आंशिक निदेशों में अपील की अनुमति दी गई।

(अनुच्छेद – 57, 59)

परिणाम - द्वितीय अपील आंशिक रूप से स्वीकृत (ई-11)

<u>संदर्भित मामलों की सूची:-</u>

1. राजेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2008 (4) एडीजे 37 (डीबी),

2. शिव राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2016 (9) एडीजे 366 (एफबी),

3. किरण देवी बनाम बिहार राज्य सुन्नी वक्फ बोर्ड, (2021) 153 आरडी 56,

4. प्रेमलता @ सुनीता बनाम नसीब बी और अन्य, (2022) 6 एससीसी 585,

5. रमेश गोबिंदराम (मृत) कानूनी प्रतिनिधियों के माध्यम से बनाम सुगरा हुमायूं मिर्जा वक्फ, (2010) 8 एससीसी 726,

6. पंजाब वक्फ बोर्ड बनाम शाम सिंह हरिके, (2019) 4 एससीसी 698,

7. सेवक शंकर बनाम अतिरिक्त कलेक्टर, आगरा व अन्य, 1985 एससीसी ऑनलाइन सभी 165,

8. शंकर सरन और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य (1987 एससीसी ऑनलाइन सभी 235),

9. बंसराज और अन्य बनाम मोती और अन्य, 2019 एससीसी ऑनलाइन सभी 4238।

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा दिया गया)

1.यह घोषणा और स्थायी निषेधाज्ञा के मुकदमे से उत्पन्न वादी की दूसरी अपील है। वादी-अपीलकर्ता का वाद निम्न दोनों न्यायालयों द्वारा खारिज कर दिया गया है।

2.कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति के अधिकार के संक्षिप्त निर्धारण के खिलाफ कोई उपाय किए बिना कैसे रह सकता है, जबकि कोई निर्णायक क्षेत्राधिकार वाला न्यायालय उसकी सुनवाई नहीं कर रहा है?, सबसे बुनियादी महत्व का प्रश्न है। यह अपील में शामिल आवश्यक मुद्दा है, जिसके कारण इस न्यायालय को एक ही दिन में तैयार किए गए कानून के दो महत्वपूर्ण प्रश्नों पर

सुनवाई के लिए इस अपील को स्वीकार करना पड़ा और फिर सुनवाई शुरू होने से पहले एक और जोड़ना पड़ा। इस अपील में कानून के निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल हैं:

> *1. क्या इस न्यायालय द्वारा राजेंद्र सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य, 2008 (4) एडीजे 37 में निर्धारित कानून के मद्देनजर, यह मानते हुए कि धारा 122-बी यू.पी.जेड.ए. और एल.आर अधिनियम के तहत बेदखली के आदेश के खिलाफ उपाय एक मुकदमा है, क्या वर्तमान वाद सिविल न्यायालय के समक्ष विचारणीय है?*
>
> *2. क्या ऐसे मामले में जहां सिविल कोर्ट को पता चलता है कि मुकदमा उसके द्वारा नहीं बल्कि राजस्व न्यायालय द्वारा संज्ञेय है, सूट को खारिज करने के बजाय वादपत्र को वापस करने का उचित आदेश दिया जाएगा?*
>
> *3. क्या ऐसे मामले में जहां यू.पी.जेड.ए. की धारा 122-बी के तहत बेदखली का आदेश पारित किया गया हो? एवं एल.आर. अधिनियम को धारा 122-बी(4-ए) के तहत संशोधन में चुनौती दी गई है, धारा 122-बी(4-डी) के तहत सक्षम क्षेत्राधिकार की अदालत के समक्ष मुकदमा दायर करनाअधिनियम की धारा 122-बी (4-ई) के तहत वर्जित होगा?*

3. इस अपील को जन्म देने वाले तथ्य ये हैं: 03.01.1993 को, वादी-अपीलकर्ता, चांद खान के बेटे इश्लाम (संक्षेप में, 'वादी', जब तक कि संदर्भ को एक अलग संदर्भ की आवश्यकता न हो) के अनुसार, हलका लेखपाल ने एक प्रस्तुत किया तहसीलदार, बाह को फर्जी रिपोर्ट में कहा गया है कि वादी के पिता, चांद खान (अब दिवंगत) ने ग्राम डेरख, परगना बाह, जिला आगरा में स्थित प्लॉट संख्या 119/1 (मिनजुमला), जिसकी माप 1 बीघा 10 बिस्वा है, पर अवैध रूप से कब्जा कर लिया है। तहसीलदार, बाह ने वादी के पिता के खिलाफ उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (संक्षेप में, 'अधिनियम') की धारा 122-बी के तहत कार्यवाही शुरू की और उन्हें 09.01.1993 को नोटिस जारी किया और उन्हें दिखाने के लिए कहा। क्यों न बेदखली आदि का आदेश दिया जाए। वादी के पिता ने दिनांक 07.01.1994 को तहसीलदार के समक्ष अपनी आपत्तियाँ प्रस्तुत कीं। बचाव में यह कहा गया कि उपरोक्त भूमि उनकी पैतृक संपत्ति थी, भूमिधरी जो उनके पिता के माध्यम से उनके हाथ आई थी। नोटिस की विषयवस्तु भूमि पर वादी का भूमिधर के रूप में कब्जा था और उसने गांव सभा की किसी भी भूमि पर अतिक्रमण नहीं किया था।

4. 28.08.1995 को क्षेत्रीय लेखपाल, जिन्होंने वादी के पिता द्वारा ग्राम सभा भूमि अतिक्रमण का आरोप लगाते हुए तहसीलदार के समक्ष गवाही दी थी, बाह अधिनियम की धारा 122-बी के तहत कार्यवाही में तहसीलदार 26.06.1997 को वादी के पिता को प्लॉट नंबर 119/2 से बेदखली का निर्देश देते हुए एक आदेश पारित किया गया, जबकि प्लॉट नंबर 119/1 के लिये कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था। वादी के पिता ने अधिनियम की धारा 122-बी (4-ए) के तहत आगरा के कलेक्टर को दिये गए पुनरीक्षण में तहसीलदार के दिनांक 26.06.1997 के आदेश को चुनौती दी। अपर कलेक्टर (प्रशासन), आगरा, जिनके समक्ष पुनरीक्षण आया, ने दिनांक 14.06.2001 के एक आदेश द्वारा इसे खारिज कर दिया। वादी के अनुसार बेदखली का आदेश एवं पुनरीक्षण में इसकी पुष्टि पूर्णतः

अवैध एवं क्षेत्राधिकार से परे है। वादी के पिता ने कभी भी गांव सभा की किसी भी जमीन पर कब्जा नहीं किया। अधिनियम की धारा 122-बी (2) के तहत नोटिस गलत तथ्यों पर आधारित था और इसके आधार पर की गई कार्यवाही शून्य थी।

5. वादी ने दावा किया कि उसके पिता और उसके सह-हिस्सेदारों का भूमि पर कब्जा था, जो बेदखली की कार्यवाही का विषय है। लेखपाल की रिपोर्ट अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों से साबित नहीं होती है और तहसीलदार/सहायक कलेक्टर, बाह, जिला आगरा का आदेश, जिसमें वादी को बेदखल करने और मुआवजा देने के लिए बाध्य करने का आदेश दिया गया है, स्पष्ट रूप से अवैध और आधारहीन है। वादी के पिता ने इस न्यायालय के समक्ष सिविल विविध रिट याचिका संख्या 37440/2001 के माध्यम से कलेक्टर द्वारा बेदखली के आदेशों और पुनरीक्षण में इसकी पुष्टि को चुनौती दी। रिट याचिका लंबित रहने के दौरान वादी के पिता का निधन हो गया। वादी ने तब रिट याचिका पर मुकदमा चलाया। इस न्यायालय ने रिट याचिका को इस आधार पर खारिज कर दिया कि वादी के पास मुकदमा दायर करने का एक वैकल्पिक उपाय था। तदनुसार, वादी वर्तमान वाद संस्थित करने के लिए आगे बढ़ा है। लंबित मुकदमे में, ग्राम पंचायत डेरख, परगना बाह, जिला आगरा ने अधिनियम की धारा 122-बी (संक्षेप में, 'मुकदमा संपत्ति') के तहत कार्यवाही की विषय वस्तु, छोटे खान के पक्ष में भूमि आवंटित करने की कार्यवाही की है और एक और मुन्नी खान, दोनों शौकत अली के बेटे हैं। इन आवंटियों को मुकदमे में प्रतिवादी संख्या 5 और 6 के रूप में रखा गया था।

6.यह दलील दी गई कि तहसीलदार/सहायक कलेक्टर और अतिरिक्त कलेक्टर के क्रमशः दिनांक 26.06.1997 और 14.06.2001 के आदेश शून्य थे। सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना इन्हें एकपक्षीय बना दिया गया। यूपी पंचायत राज अधिनियम, 1947 की धारा 80 सीपीसी और धारा 106 के तहत नोटिस की सेवा के बाद मुकदमा शुरू किया गया था, जिसमें इस आशय की घोषणा का दावा किया गया था कि आदेश दिनांक 26.06.1997 को तहसीलदार / सहायक कलेक्टर द्वारा पारित किया गया था और अपर कलेक्टर का आदेश दिनांक 14.062001 को पारित किया गया था। पूरी तरह से अमान्य एवं शून्य हैं और वादी पर बाध्यकारी नहीं हैं। एक स्थायी निषेधाज्ञा के माध्यम से परिणामी राहत का दावा किया गया था, जिसमें प्रतिवादियों को मुकदमे की संपत्ति में वादी के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने या किसी भी तरह से उसे जबरन बेदखल करने से रोका गया था।

7.मुकदमे में दो लिखित बयान दायर किए गए थे। एक प्रतिवादी संख्या 1, 2 और 3 द्वारा एक संयुक्त लिखित बयान था, जो इस अपील के प्रतिवादी संख्या 1, 2 और 3 हैं और दूसरा प्रतिवादी संख्या 5 और 6 द्वारा, जो यहां प्रतिवादी संख्या 5 और 6 हैं। ग्राम सभा जिन्हें मुकदमे में प्रतिवादी संख्या 4 के रूप में सूचीबद्ध किया गया था और वे यहां प्रतिवादी संख्या 4 हैं, जिनका प्रतिनिधित्व प्रधान द्वारा किया जा रहा हैं ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने कोई लिखित बयान दाखिल नहीं किया है। उपरोक्त प्रतिवादी-प्रतिवादियों को इसके बाद मुकदमे को जन्म देने वाले वाद में पक्षकारों की श्रृंखला में उनकी स्थिति के अनुसार 'प्रतिवादी' के रूप में संदर्भित किया जाएगा।

8. प्रतिवादी संख्या 1, 2 और 3 ने अपने लिखित बयान में वादी के आरोपों से इनकार किया और कहा कि 3 जनवरी, 1993 की लेखपाल की रिपोर्ट माप के संदर्भ में भूखंड संख्या 119/1 और 119/2 का इनमें से प्रत्येक का सर्वेक्षण करने के बाद बनाई गई थी। तहसीलदार ने वादी

को नोटिस जारी कर अधिनियम की धारा 122-बी के तहत नियमानुसार कार्यवाही की थी।। वादी के पिता के पास मुकदमे की संपत्ति का स्वामित्व नहीं था और इसके विपरीत दावे गलत हैं। वादी के पिता ने प्लॉट संख्या 119/1 और 119/2 पर कब्जा कर लिया था। तहसीलदार इसे अनाधिकृत कब्जे का मामला पाते हुए वादी को बेदखल करने का आदेश दिया।

9. आगे यह भी कहा गया है कि ग्राम डेरख के प्लॉट नं. 119,परगना बाह, जिला आगरा का कुल क्षेत्रफल 3 है बीघा. प्लॉट संख्या 119 का कोई उपविभाजन या बंटवारा नहीं है। प्लॉट नंबर 119 में से एक एरिया 1बीघा10बिस्वाप्रतिवादी संख्या 5 को और प्रतिवादी संख्या 6 को एक समान क्षेत्र आवंटित किया गया था। यह उनके पक्ष में आवंटन के बाद, प्रतिवादी संख्या 5 और 6 के बीच भूखंड संख्या 119 की भूमि के कुछ हिस्सों के सीमांकन की सुविधा के लिए है। इसमें प्लॉट नंबर 119/1 और 119/2 का जिक्र है. इस बात पर जोर दिया गया है कि औपचारिक रूप से और कानून के अनुसार, प्लॉट नंबर 119 का कोई उपविभाजन या विभाजन कभी नहीं हुआ है। इन प्रतिवादियों का मामला यह है कि वादी के पिता को गैरकानूनी कब्जेदार पाए जाने पर बेदखल कर दिया गया था और वास्तविक भौतिक कब्जा प्रतिवादी नंबर 5 और 6 को दे दिया गया था, जो प्लॉट नंबर 119 में जमीन के अपने-अपने हिस्से के आवंटित हैं। प्रतिवादी का यह भी मामला है कि वादी के पिता या प्लॉट नंबर 119 में उल्लिखित अन्य सह-हिस्सेदारों के पास उक्त प्लॉट के पास या आसपास अपनी जमीन नहीं है। प्रतिवादियों के अनुसार, वादी ने ग़लत दावा किया है कि उसके पिता को सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया या अदालत के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर नहीं दिया गया। तहसीलदार प्रतिवादियों का कहना है कि वादी ने जानबूझकर अपनी पैतृक संपत्ति का प्लॉट नंबर वाद पत्र में नहीं दिखाया है और न ही कोई नक्शा संलग्न किया है, जिससे उस भूमि की पहचान करने में आसानी हो, जिसके बारे में वादी अपनी पैतृक संपत्ति होने का दावा करता है। प्रतिवादी संख्या 5 एवं 6 को प्लॉट संख्या 119 में भूमि आवंटित की गई है, जो ग्राम डेरख की भूमि प्रबंधन समिति के प्रबंधन के तहत सरकारी भूमि है। वादी या उसका सह-हिस्सेदारों के पास वाद संपत्ति में कोई अधिकार, स्वत्व या हित नहीं है। प्रतिवादी संख्या 1, 2 और 3 की ओर से संयुक्त रूप से दायर लिखित बयान में और भी विवरण दिए गए हैं, लेकिन वे बहुत महत्वपूर्ण नहीं हो सकते हैं।

10. प्रतिवादी संख्या 5 और 6 ने अपने संयुक्त लिखित बयान में वादी के आरोपों का खंडन किया है और दावा किया है कि वादी के पिता एक अतिक्रमणकर्ता थे और मुकदमे की संपत्ति पर गैरकानूनी कब्जा कर रहे थे। उन्होंने अपने गैरकानूनी कब्जे की सुरक्षा के लिए अधिनियम की धारा 122-बी के तहत कार्यवाही पर आपत्तियां दायर कीं। जब प्लॉट संख्या 119 से अलग की गई भूमि प्रतिवादी संख्या 5 और 6 को आवंटित की गई थी, तो दो भूखंडों को प्लॉट संख्या 119/1 और 119/2 आवंटित किया गया था। पहले प्लॉट पर एक ही नंबर होता था। वादी के पिता कभी भी मुकदमे की संपत्ति के रिकॉर्ड धारक नहीं थे और यह उनकी पैतृक हिस्सेदारी नहीं है। बल्कि वादी के पिता ने गाँव सभा की भूमि पर कब्जा कर लिया था और उस पर कब्ज़ा था। इसी आधार पर उनके निष्कासन का आदेश दिया गया है। वादी के पिता को सुनवाई का पूरा अवसर दिया गया। एक दलील है कि इस न्यायालय ने संदर्भ के तहत रिट याचिका में दिए गए आदेश के आधार पर वादी को कभी भी सिविल मुकदमा दायर करने की अनुमति नहीं दी थी न तो उसको कहा गया था। वादी ने सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय के समक्ष मुकदमा दायर नहीं किया है। प्रतिवादी संख्या 5

और 6 का मुकदमे की संपत्ति पर कब्जा है और, इस प्रकार, वादी को स्थायी निषेधात्मक निषेधाज्ञा नहीं दी जा सकती है। मुकदमे की सुनवाई के लिए सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र पर सवाल उठाया गया था और प्रतिवादी नंबर 5 और 6 की ओर से दलील दी गई थी कि मुकदमा अधिनियम की धारा 331 के तहत वर्जित है।

11. पक्षकारों की दलीलों पर, निम्नलिखित मुद्दे तय किए गए (हिंदी से अंग्रेजी में अनुवादित):

> "1. क्या प्रतिवादी क्रमांक 3 द्वारा पारित आदेश दिनांक 26.06.1997 और प्रतिवादी क्रमांक- 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 14.06.2001 शून्य और अवैध हैं? यदि हां तो इसका प्रभाव क्या होगा?
>
> 2. क्या मुकदमा सिद्धांत द्वारा वर्जित हैबस इसीलिये?
>
> 3. क्या न्यायालय के पास इस मुकदमे की सुनवाई का क्षेत्राधिकार है?
>
> 4. क्या मुकदमा उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन अधिनियम की धारा 331 के प्रावधानों से वर्जित है?
>
> 5. क्या मुक़दमे का मूल्यांकन कम किया गया है और अदा की गई अदालती फ़ीस अपर्याप्त है?
>
> 6. वादी किस राहत का हकदार है?

12. वादी की ओर से, वादी ने खुद को पीडब्लू-1 के रूप में जांचा, इसके अलावा एक अन्य नत्थी लाल ने, जिसने पीडब्लू-2 के रूप में गवाही दी। प्रतिवादियों ने अपने मौखिक साक्ष्य में विशंभर को डीडब्ल्यू 1 के रूप में परिक्षण किया गया। प्रतिवादी संख्या 5 और 6 की ओर से, प्रतिवादी संख्या 5 ने डीडब्ल्यू -2 के रूप में और एक अन्य धरम सिंह ने डीडब्ल्यू -3 के रूप में गवाही दी।

13. वादी की ओर से कागज संख्या 11-गा वाली एक सूची के माध्यम से दायर किए गए दस्तावेजी साक्ष्य में नोटिस की एक प्रति, पंजीकृत डाक रसीदें और इस न्यायालय के दिनांक 09.09.2008 के आदेश की एक फोटोस्टेट प्रति शामिल है। इन्हें पेपर नंबर 12-Ga/1 से 12-Ga/8 के रूप में क्रमांकित किया गया था। प्रतिवादियों की ओर से एक सूची के माध्यम से, कागज संख्या 21-गा, एक नोटिस, कागज संख्या 22-गा, एक आवेदन, कागज संख्या 23-गा, एक आदेश की प्रति, कागज संख्या 24-गा से 26- गा, खतौनी की नकल, कागज संख्या 27-गा और 28-गा दाखिल की गई। प्रतिवादी संख्या 5 और 6 की ओर से कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया।

14.विचारण न्यायालय ने मुद्दा संख्या 1 पर प्रतिवादियों के पक्ष में निर्णय दिया। मुद्दा संख्या 2, जो प्रतिवादियों का मुद्दा है, को दबाया नहीं गया। मुद्दे संख्या 3 और 4, जिन्हें एक साथ निपटाया गया, ने विचारण न्यायालय को इस निष्कर्ष पर पहुंचाया कि मुकदमा अधिनियम की धारा 331 द्वारा वर्जित है और सिविल कोर्ट के पास कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि मुद्दा संख्या 5 को प्रारंभिक तौर पर बहुत पहले ही निपटा दिया गया था और विचारण न्यायालय द्वारा फैसला सुनाए जाने तक इस पर कोई विवाद नहीं था। मुद्दा संख्या 6 पर, यह माना गया कि मुद्दा संख्या 1 के निष्कर्षों के मद्देनजर, दिनांक 26.06.1997 और 14.06.2001 के आदेश वैध थे। आगे यह माना गया कि सिविल कोर्ट को मुकदमे की सुनवाई का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। इन्हीं निष्कर्षों पर विद्वान विचारण न्यायालय ने मुकदमा खारिज करने का आदेश दिया।

15. वादी ने विचारण न्यायालय के फैसले के खिलाफ आगरा के जिला जज के यहां अपील की, जहां उसकी अपील की संख्या सिविल अपील संख्या 25/ 2017 थी। यह 10.02.2021 को अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 6, आगरा के समक्ष निर्धारण के लिए आई। इन्हीं निष्कर्षों पर विद्वान विचारण न्यायालय ने मुकदमा खारिज करने का आदेश दिया।

16.असंतुष्ट होकर वादी ने अपीलीय डिक्री के विरुद्ध वर्तमान अपील को प्राथमिकता दी है।

17.इस अपील के समर्थन में वादी के विद्वान अधिवक्ता श्री रामेंद्र अस्थाना को सुना गया, प्रतिवादी संख्या 1, 2 और 3 की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री गिरिजेश कुमार त्रिपाठी को तथा प्रतिवादी संख्या 5 और 6 ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री देवेन्द्र दहमा को सुना गया। प्रतिवादी संख्या 4 की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं होता है।

18. निचली अपीलीय अदालत ने सिविल विविध को खारिज करते हुए टिप्पणी की है कि यह अदालत रिट याचिका संख्या 37440/ 2001 ने वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के आधार पर ऐसा किया है और राजेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2008(4) एडीजे 37 (डीबी) में खण्ड पीठ के फैसले के बाद रिट याचिका पर विचार करने से इनकार कर दिया है।. निचली अपीलीय अदालत ने आगे टिप्पणी की कि इस अदालत ने वैकल्पिक उपचार के आधार पर रिट याचिका को खारिज करते हुए कभी नहीं कहा था कि अधिकारियों द्वारा अधिनियम के धारा 122-बी के तहत पारित आदेश को वादी द्वारा किसी मुकदमे में सिविल न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जा सकती है। निचली अपीलीय अदालत ने निर्धारण बिंदु संख्या 1 पर अपने तर्क में निष्कर्ष निकाला है कि तहसीलदार और अपर कलेक्टर द्वारा पारित आदेश शून्य या अवैध नहीं है।आगे निचली अपीलीय अदालत ने यह भी माना कि सिविल कोर्ट के पास सक्षम क्षेत्राधिकार के प्राधिकारियों द्वारा पारित आदेशों की वैधता की जांच करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था, जिसका स्पष्ट संदर्भ था। तहसीलदार और अतिरिक्त कलेक्टर, अधिनियम की धारा 122-बी के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए यह भी राय दी गई है कि यह वादी पर निर्भर है कि वह अपने अधिकारों को स्थापित करने के लिए सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय में मुकदमा दायर करे।

19. वादी के विद्वान अधिवक्ता श्री रामेंद्र अस्थाना ने इस न्यायालय का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया है कि वादी की रिट याचिका को इस न्यायालय ने राजेन्द्र सिंह(उपरोक्त) के वाद के फैसले के बाद वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के आधार पर खारिज कर दिया था, जिसमें माना कि अधिनियम की धारा 122-बी उस व्यक्ति को पुनरीक्षण के माध्यम से बेदखली के आदेश के खिलाफ एक उपाय प्रदान करती है, और वहां विफल होने पर, सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय के समक्ष मुकदमा दायर करती है। उक्त खण्ड पीठ ने माना था कि धारा 122-बी के तहत अधिकारियों द्वारा पारित बेदखली के आदेशों को चुनौती देने वाली रिट याचिका उपयुक्त नहीं होगी। श्री अस्थाना बताते हैं कि वादी की रिट याचिका विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा राजेन्द्र सिंह(उपरोक्त) में पारित आदेश दिनांक 09.09.2008 के द्वारा खारिज कर दिया गया था के अनुसार। निर्णय की शुद्धता पर इस न्यायालय के एक अन्य एकल न्यायाधीश द्वारा संदेह किया गया था, जिन्होंने विचार के लिए कानून के तीन प्रश्न तैयार करते हुए मामले को एक बड़ी पीठ के पास भेज दिया था। शिव राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2016(9) एडीजे 366 (एफबी) के मामलें मे निर्णय के लिये पूर्ण पीठ का गठन किया गया था, जिसके उत्तर के लिये प्रश्न संख्या 1 एवं 2 है जिसमें यह है कि सविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के

तहत इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को कानून द्वारा छीना नहीं जा सकता है और यह न्यायालय उन आदेशों की वैधता की जांच करने के लिए खुला है, जिनके लिए क़ानून के तहत अंतिम निर्णय जुड़ा हुआ है।

20.श्री अस्थाना का कहना है कि राजेन्द्र सिंह में निर्णय इस प्रकार है इसलिए, उन शब्दों का स्पष्ट रूप से उपयोग किए बिना इसे अच्छा कानून नहीं माना जाएगा। चूंकि अंतराल में, यानी राजेन्द्र सिंह में खण्ड पीठ के दिनांक 18.03.2008 के फैसले एवं पूर्ण पीठ का निर्णयशिव राम(उपरोक्त)के फैसले के मध्य, वादी की रिट याचिका को राजेंद्र सिंह के मामलें में खण्ड पीठ के फैसले के बाद 09.09.2008 को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा खारिज कर दिया गया था। वादी ने वैधानिक प्राधिकारियों के आदेशों पर सवाल उठाते हुए, उसे बेदखल करने का आदेश देते हुए, सिविल न्यायालय के समक्ष वर्तमान मुकदमा दायर किया।

21. श्री अस्थाना द्वारा यह तर्क दिया गया है कि वादी की रिट याचिका प्रतिवादियों की आपत्तियों पर खारिज कर दी गई थी कि यह राजेंद्र सिंह के मामालें में हिस्सेदारी के मद्देनजर चलने योग्य नहीं थी और वादी का उपाय मुकदमे के माध्यम से है। यह प्रस्तुत किया गया है कि एक बार प्रतिवादी, जो इस न्यायालय के समक्ष वादी की रिट याचिका के प्रतिवादी हैं, ने वैधानिक प्राधिकारियों के आदेशों के खिलाफ रिट याचिका पर विचार करने के लिए इस न्यायालय के क्षेत्राधिकार पर आपत्ति जताई थी और कहा था कि वादी का उपाय एक मुकदमे के माध्यम से था। यह दलील अब प्रतिवादियों के लिए खुली नहीं थी कि वादी द्वारा सिविल न्यायालय के समक्ष दायर किया गया मुकदमा चलने योग्य नहीं है। वादी के विद्वान अधिवक्ता का आग्रह है कि यह सिद्धांत कानून में अच्छी तरह से स्वीकार किया गया है कि यदि कोई पक्ष एक न्यायालय के क्षेत्राधिकार पर आपत्ति करता है और कहता है कि आवेदन करने वाले पक्ष के पास दूसरे न्यायालय के समक्ष एक अलग क्षेत्राधिकार में उपाय है, तो यह आपत्ति करने वाले पक्ष के लिए खुला नहीं है। दूसरे न्यायालय या फोरम के समक्ष कार्यवाही पर सवाल उठाना, जहां पार्टी को आपत्ति करने वाले पक्ष के कहने पर जाने के लिए मजबूर किया गया हो। अन्य न्यायालय भी किसी पक्ष के क्षेत्राधिकार के प्रश्न पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाल सकता है, जिसे दूसरे फोरम से वैकल्पिक न्यायालय में भेज दिया गया है।

22.यह आग्रह किया जाता है कि उपरोक्त हितकारी सिद्धांत किसी पक्ष को उपचारहीन होने से बचाने के लिए तैयार किया गया है। इस संबंध में, श्री अस्थाना ने कानून के प्रत्येक महत्वपूर्ण प्रश्न पर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जिसके संबंध में उन्होंने एक साथ अपनी दलीलें पेश की हैं, ये प्रश्न कानून के सामान्य और ओवरलैपिंग प्रस्तावों से जुड़े हैं। श्री अस्थाना ने किरण देवी बनाम बिहार राज्य सुन्नी वक्फ बोर्ड, (2021) 153 आरडी 56 में उपरोक्तीम कोर्ट के फैसले और प्रेमलता उर्फ सुनीता बनाम नसीब बी और अन्य, (2022) 6 एससीसी 585 में बाद के फैसले की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है। वादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह बताया गया है कि इन दोनों निर्णयों में यह माना गया है कि पक्षों को न्यायालयों के क्षेत्राधिकार के बारे में अनुमोदन या पुनर्मूल्यांकन करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। एक बार जब एक पक्ष दूसरे पक्ष को अधिकार क्षेत्र के सवाल पर दूसरे न्यायालय में जाने के लिए मजबूर करता है, तो दूसरे न्यायालय में आपत्ति करने वाले पक्ष को यह कहते हुए नहीं सुना जा सकता है कि बाद वाले न्यायालय के पास भी अधिकार क्षेत्र नहीं है। यहां यह टिप्पणी की जानी चाहिए कि इन निर्णयों का कानून संख्या 1 के

महत्वपूर्ण प्रश्न पर प्रभाव पड़ता है और इस निर्णय के दौरान इस पर विचार किया जाएगा।

23.श्री अस्थाना द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि यदि नीचे की अदालतों की राय थी कि मुकदमा विचारण न्यायालय के समक्ष चलने योग्य नहीं है, तो उन्हें पक्षकारों के मामले की योग्यता में प्रवेश नहीं करना चाहिए और मुकदमा खारिज कर देना चाहिए। इसके बजाय, उनके लिए उपलब्ध विकल्प सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय में प्रस्तुत करने के लिए वादपत्र को वापस करने का निर्देश देना था। श्री अस्थाना का कहना है कि कार्रवाई का यह तरीका सर्वथा उचित था क्योंकि निचली अपीलीय अदालत की टिप्पणी के कारण कि वादी का उपाय सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय के समक्ष मुकदमा करके अपने अधिकार स्थापित करना था।

24. अंतिम प्रश्न के संबंध में, श्री अस्थाना का कहना है कि पुनरीक्षण आदेश के बाद धारा 122-बी के तहत वैधानिक प्राधिकारियों के आदेशों पर सवाल उठाने का मुकदमा अधिनियम की धारा 122-बी (4-ई) के तहत वर्जित होगा। शिव राम के मामालें में पूर्ण पीठ का गठन किया गया लेकिन, यह न्यायालय को उस भूमि पर किसी पक्ष के अधिकारों का स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने से नहीं रोकेगा जिस पर वह दावा करता है और धारा 122-बी के तहत वैधानिक प्राधिकारियों द्वारा सारांश कार्यवाही में उसके खिलाफ निर्णय लिया गया है।

25. दूसरी ओर, प्रतिवादी क्रमांक 5 और 6 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री देवेन्द्र दाहमा एक संक्षिप्त प्रस्तुतिकरण लेकर आए हैं, जिसके बारे में उनका कहना है कि यह सभी प्रश्नों का पूर्ण उत्तर है। यह प्रस्तुत किया गया है कि धारा 122-बी (4-डी) और 122-बी (4-ई) के प्रावधानों को संयुक्त रूप से पढ़ने से यह अपरिहार्य निष्कर्ष निकलता है कि बेदखली का आदेश पारित होने के बाद यह एक पार्टी के लिए खुला है। तहसीलदार/ सहायक कलेक्टर अपने उस अधिकार को स्थापित करने के लिए सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय में मुकदमा दायर करेगा जिसका वह दावा करता है, जिसे सहायक कलेक्टर ने वैधानिक कार्यवाही में अस्वीकार कर दिया है। लेकिन, धारा 122-बी की उप-धारा (3) के तहत सहायक कलेक्टर के आदेश से व्यथित व्यक्ति, यानी बेदखली आदि का आदेश, जो उस आदेश के खिलाफ धारा 122-बी की उप-धारा (4-ए), सहायक कलेक्टर के सारांश निर्धारण के खिलाफ कलेक्टर को पुनरीक्षण करने का चुनाव करता है।, उसमें परिकल्पित मुकदमा दायर करने का अधिकार धारा 122-बी की उप-धारा (4-डी) के तहत खो देता है।

26.श्री दाहमा के अनुसार एक बार जिस व्यक्ति को सहायक कलेक्टर द्वारा धारा 122-बी के तहत कार्यवाही करते हुए बेदखल करने का आदेश दिया गया था। कलेक्टर के समक्ष पुनरीक्षण के अपने उपाय को आगे बढ़ाने का विकल्प चुनता है जहां वह विफल रहता है, उसके खिलाफ पारित बेदखली के आदेश को सक्षम क्षेत्राधिकार के न्यायालय के समक्ष अपने अधिकारों को स्थापित करने के लिए एक मुकदमे के माध्यम से चुनौती से प्रतिरक्षा प्रदान की जाती है। श्री दाहमा द्वारा यह तर्क दिया गया है कि यही कारण है कि पूर्ण पीठ ने इसमें भाग लिया शिव रामसहायक कलेक्टर द्वारा पारित बेदखली के आदेश, जिसे कलेक्टर ने पुनरीक्षण में पुष्टि की, को संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के तहत एक याचिका में इस न्यायालय के समक्ष चुनौती देने के लिए खुला रखा है, जिसमें राजेन्द्र सिंह के ममालें में खण्ड पीठ के विपरीत दृष्टिकोण को खारिज कर दिया गया है।

27. प्रतिवादी संख्या 5 और 6 के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि वादी ने कलेक्टर के समक्ष तहसील द्वारा पारित बेदखली के आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण आवेदन

अनुवादित

करने का विकल्प चुना है। वह सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय के समक्ष वाद दायर करके आदेश पर सवाल नहीं उठा सकता या इसके विपरीत अपने अधिकार स्थापित नहीं कर सकता।

28. प्रतिवादी क्रमांक 1, 2 और 3 की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री गिरिजेश त्रिपाठी ने श्री दहमा की दलीलों को जोड़ते हुए कहा कि एक सिविल वाद में, किसी भी मामले में भूमिधारी अधिकार स्थापित करने के लिए है। अधिनियम की धारा 331 के तहत रोक के मद्देनजर सिविल कोर्ट के समक्ष झूठ नहीं बोलेंगे।

29.श्री अस्थाना के इस आकर्षक प्रस्ताव के बावजूद कि इस अपील में शामिल कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न आपस में जुड़े हुए हैं, सभी को एक ही बार में निपटाया जा सकता है, इस न्यायालय का मानना है कि प्रत्येक प्रश्न पर अलग से विचार करना और उत्तर देना अधिक व्यवस्थित होगा।

30. जहां तक पहले सवाल का सवाल है, यह सच है कि वादी राजेंद्र सिंह मामले में खण्ड पीठ के फैसले के कारण कानून में गड़बड़ी का शिकार था, जिसे बाद में शिवराम मामले में पूर्ण पीठ ने खारिज कर दिया था। . राजेंद्र सिंह के मामलें में खंडपीठ ने कहा:

> "19.इसलिए, हमारे अनुसार, 1950 के अधिनियम की धारा 122-बी के तहत मुकदमे का वैकल्पिक और प्रभावी उपाय होने पर, पीड़ित व्यक्ति के लिए सहायक कलेक्टर के आदेश से या अदालत के रिट क्षेत्राधिकार को लागू करने की कोई गुंजाइश नहीं है। कलेक्टर का आदेश इसके तहत यह स्पष्ट किया गया है कि सहायक कलेक्टर के अधिकार क्षेत्र को लागू करने के लिए एक स्व-सुधारात्मक प्रक्रिया, फिर कलेक्टर के समक्ष पुनरीक्षण के माध्यम से और उसके बाद न्यायालय के समक्ष मुकदमा दायर करना, अधिनियम का अभिन्न अंग है, जिसे टाला नहीं जा सकता है। इस प्रकार, हमारी सुविचारित राय में, रिट याचिकाकर्ताओं की दलीलों को टिकाऊ नहीं माना जा सकता है, परिणामस्वरूप, उपरोक्त सभी रिट याचिकाएं बिना कोई जुर्माना लगाए खारिज की जाती हैं। अंतरिम आदेश, यदि कोई हो, निरस्त किया जाता है। हालाँकि, यदि पीड़ित व्यक्तियों को सलाह दी जाए तो वे कानून के अनुसार उचित राहत के लिए सिविल मुकदमा दायर करने के लिए स्वतंत्र हैं।
>
> 20.जहां तक सेवक शंकर (उपरोक्त) और शंकर सरन (उपरोक्त) में विद्वान एकल न्यायाधीश के विरोधाभासी निर्णयों का सवाल है, हम पाते हैं कि पहले का कहना है कि यदि पुनरीक्षण दायर किया गया है, तो मुकदमा दायर नहीं किया जा सकता है, जबकि बाद वाला कहता है कि इसका उपाय आवश्यक संशोधन करने के लिए विधानमंडल को सिफारिश के साथ, कलेक्टर के समक्ष पुनरीक्षण मुकदमे के उपचार से वंचित नहीं करेगा। हमारे विचार में, संशोधन हो या न हो, कानून अपने स्पष्ट पाठ से बिल्कुल स्पष्ट है। यदि सहायक कलेक्टर के आदेश का पुनरीक्षण कलेक्टर के समक्ष दायर किया जाता है, तो यह पुनरीक्षण आदेश से पीड़ित व्यक्ति को न्यायालय के समक्ष मुकदमा दायर करने के रास्ते में नहीं आएगा। संयोग से बाद का दृश्य अधिक स्वीकार्य है। इसलिए, विधानमंडल की मंशा को ध्यान में रखते हुए हमारे द्वारा ऊपर दिए गए अधिनियम के दृष्टिकोण और व्याख्या से विवाद का समाधान हो जाता है।"

31.राजेन्द्र सिंह के मामले में निर्णय, शिव राम में पूर्ण पीठ के फैसले के मद्देनजर अब यह अच्छा कानून नहीं है इस बिंदु पर कि अधिनियम की धारा 122-बी के तहत वैधानिक प्राधिकारियों द्वारा पारित बेदखली के आदेशों के खिलाफ एक रिट याचिका को इस न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका में चुनौती दी जा सकती है। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका या अनुच्छेद 227 के तहत धारा 122-बी के तहत वैधानिक प्राधिकारियों द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध एक याचिका के तहत शिव राम के मामालें में निर्णय के मद्देनजर इस न्यायालय में दायर की जाएगी। शिव राम के मामलें में विद्वान एकल न्यायाधीश, जिन्होंने राजेन्द्र सिंह के मामलें में खण्ड पीठ द्वारा होल्डिंग की शुद्धता पर संदेह किया एवं निम्नलिखित प्रश्नों को एक बड़ी पीठ द्वारा विचार के लिए भेजा:

> "(i) क्या राजेंद्र सिंह (उपरोक्त) के मामले में खण्ड पीठ ने यूपी की धारा 122-बी के तहत कार्यवाही में पारित आदेशों को चुनौती देने वाली रिट याचिका को सही ठहराया है? क्या जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम उक्त कार्यवाही में सहायक कलेक्टर या कलेक्टर द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध क़ानून द्वारा प्रदान किए गए मुकदमे के वैकल्पिक उपचार को ध्यान में रखते हुए बनाए रखने योग्य नहीं होगा?
>
> (ii) क्या राजेंद्र सिंह (उपरोक्त) के मामले में खण्ड पीठ ने यह विचार व्यक्त किया था कि चूंकि धारा 122-बी की उपधारा (4-डी) में मुकदमे के माध्यम से एक उपाय प्रदान किया गया है, इसलिए चुनौती देने वाली रिट याचिका धारा 122-बी के तहत कार्यवाही में पारित आदेश वैकल्पिक उपचार के अस्तित्व के सिद्धांतों से वर्जित होगा, के.एच. के मामले में समन्वय क्षेत्राधिकार की खण्ड पीठों के मद्देनजर पुनर्विचार की आवश्यकता है। पंजानी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1959 सभी। 26 (डीबी); श्रीमती शांति देवी बनाम यूपी राज्य, 1978 एडब्ल्यूसी 189 और सत्यपाल सिंह चौहान बनाम अध्यक्ष-सह-मुख्य कार्यकारी अधिकारी, 1984 यूपीएलबीईसी 587 (डीबी) के साथ-साथ बुद्धू बनाम नगरपालिका बोर्ड, एआईआर 1952 के मामले में पूर्ण पीठ के फैसले सभी 753 (एफबी) और बिजली कॉटन मिल्स प्रा. लिमिटेड, हाथरस बनाम संपदा अधिकारी/सचिव, नेशनल टेक्सटाइल कॉर्पोरेशन, उ.प्र. और अन्य, 1977 एडब्ल्यूसी 191 (एसबी)?
>
> (iii) क्या राजेंद्र सिंह (उपरोक्त) के मामले में खण्ड पीठ के फैसले में कहा गया है कि यूपीजेडए की धारा 122-बी के तहत हर विवाद को हल करने के लिए ''सिविल सूट''उचित उपाय है। एवं एल.आर. अधिनियम, सही कानून निर्धारित करता है, भले ही विधायिका ने उपधारा ''4-डी''और यू.पी.जेड.ए. की धारा 331 में ''सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय में मुकदमा''शब्दों का उपयोग किया है। एवं एल.आर. अधिनियम विशेष रूप से किसी भी मुकदमे, आवेदन या कार्यवाही के संबंध में सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र को रोकता है, जिसके संबंध में कार्रवाई के कारण के आधार पर राजस्व न्यायालयों द्वारा राहत दी जा सकती है?

32. शिव राम में पूर्ण पीठ के आधिपत्य ने रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 17 में उनसे पूछे गए प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार दिया:

> "17.उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, हम हमसे पूछे गए प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार देते हैं:
>
> (i) प्रश्न (i) का उत्तर नकारात्मक है संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार संविधान की मूल संरचना है, इसे संवैधानिक संशोधनों या केंद्र सरकार या राज्य सरकारों के अन्य कानूनों या न्यायिक आदेशों द्वारा न तो छीना जा सकता है और न ही सीमित किया जा सकता है।
>
> (ii) प्रश्न (ii) का उत्तर नकारात्मक है। अधिनियम के तहत वैधानिक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेशों से जुड़ी अंतिमता, इसकी अवैधता, तर्कहीनता और प्रक्रियात्मक अनौचित्य की जांच करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को भी प्रभावित नहीं करती है।
>
> (iii) प्रश्न (iii) का उत्तर नकारात्मक है। अधिनियम की धारा 229-डी के प्रावधानों के मद्देनजर, राजस्व न्यायालय के समक्ष मुकदमा किसी दिए गए मामले में प्रभावी वैकल्पिक उपाय नहीं हो सकता है। अधिनियम की धारा 331 के मद्देनजर सिविल न्यायालय में मुकदमा हर मामले में चलने योग्य नहीं हो सकता है। ऐसे मामलों में, जहां वैधानिक प्राधिकरण ने प्रश्नगत अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार कार्य नहीं किया है, या न्यायिक प्रक्रिया के मौलिक सिद्धांतों की अवहेलना की है, या प्रावधानों को लागू करने का सहारा लिया है, जो निरस्त कर दिए गए हैं, या जब कोई आदेश दिया गया है प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पूर्ण उल्लंघन करते हुए पारित किया गया, रिट याचिका पर विचार किया जा सकता है।
>
> बड़ी बेंच के संदर्भ का तदनुसार उत्तर दिया जाता है। इस फैसले के आलोक में निपटान के लिए रिट याचिकाएं अब माननीय एकल न्यायाधीश के समक्ष रखी जाएंगी।"

33. हालाँकि, यह तय हो गया है कि तहसीन द्वारा धारा 122-बी (3) के तहत बेदखली का आदेश पारित किया गया है धारा 122-बी की उप-धारा (4-ए) के तहत कलेक्टर द्वारा पुनरीक्षण में पुष्टि की गई, वैधानिक प्राधिकारियों के आदेशों के तहत व्यक्ति को बेदखल किया जा सकता है। प्राधिकारियों, अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका या संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत एक याचिका द्वारा इस न्यायालय के समक्ष इसे चुनौती देने का एक उपाय, क़ानून अभी भी सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय के समक्ष मुकदमा दायर करने के विकल्प की बात करता है। राजेन्द्र सिंह के मामले में धारा 122-बी के तहत बेदखली के आदेशों के खिलाफ रिट याचिका की पोषणीयता के बिंदु पर निर्णय को पलटने के बावजूद इसकी जांच की जानी आवश्यक है, यदि वैधानिक अधिकारियों द्वारा जिस व्यक्ति को बेदखल करने का आदेश दिया गया है, वह सिविल न्यायालय के समक्ष अपना अधिकार स्थापित करने के लिए मुकदमा दायर कर सकता है। संक्षेप में, इस बात की जांच की जानी चाहिए कि क्या सक्षम क्षेत्राधिकार वाला न्यायालय, जहां सहायक कलेक्टर के आदेश से व्यथित व्यक्ति उस संपत्ति पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिए मुकदमा दायर

कर सकता है, जहां से उसे बेदखल करने का आदेश सिविल कोर्ट. या, यह कोई अन्य न्यायालय में दिया गया है?

34. जो बात ध्यान में रखनी है वह यह है कि उपाय के साथ गाॅव संभा या धारा 122-बी के तहत किसी अतिचारी को बेदखल करना राज्य से छुटकारा पाने का एक संक्षिप्त उपाय है गाॅव संभा या किसी स्थानीय प्राधिकारी की संपत्ति को अतिक्रमण से बचाना या उसे किसी निजी व्यक्ति के हाथों क्षति से बचाना, जिसने अतिचार किया है। उपरोक्त उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए एक संक्षिप्त उपाय प्रदान किया गया है। गाँव सभा में निहित सार्वजनिक संपत्ति से छुटकारा पाने का प्रशंसनीय उद्देश्य किसी स्थानीय निकाय द्वारा किसी अनाधिकृत व्यक्ति द्वारा किए गए अतिक्रमण, अतिचार या क्षति को इस तरह से नहीं समझा जा सकता है कि यह उस व्यक्ति के अधिकार को बाहर कर सकता है, जो कहता है कि उसके पास संपत्ति का स्वामित्व है, लेकिन वह वैधानिक प्राधिकारियों के समक्ष अंतर्निहित और बोधगम्य अनियमितताएँ उस अधिकार को खोने में असफल है। ।

35. इसलिए अधिनियम की धारा 122-बी की उप-धारा (4-डी) में सहायक कलेक्टर द्वारा पारित आदेश की न्यायिक समीक्षा की परिकल्पना नहीं की गई है, जिसमें इसे चुनौती देने के अर्थ में बेदखली का निर्देश दिया गया है। उप-धारा (4-एफ) के तहत परिकल्पित मुकदमा, लेकिन सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय के समक्ष उस संपत्ति से बेदखल करने का आदेश देने वाले व्यक्ति के अधिकार को स्थापित करने के लिए एक मुकदमा दाखिल किया जा सकता है। यदि उक्त अधिकार या शीर्षक मुक़दमे की सुनवाई के दौरान सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय के समक्ष स्थापित हो जाता है, तो यह सारांश कार्यवाही में दर्ज सहायक कलेक्टर के निष्कर्ष को नष्ट कर देगा। संक्षेप में, इसलिए, धारा 122-बी की उप-धारा (3) के तहत सहायक कलेक्टर द्वारा पारित बेदखली के आदेश के तहत एक बेदखल व्यक्ति को संपत्ति पर अपने अधिकारों की एक स्वतंत्र घोषणा की मांग करनी होगी, जहां से वह प्राधिकरण द्वारा बेदखल करने का आदेश दिया गया है।

36. यहां सूट संपत्ति भूमिधरी होने का दावा किया गया है और इसमें अधिकारों की घोषणा के लिए एक मुकदमा अधिनियम की अनुसूची ॥ के कॉलम 4 में उल्लिखित न्यायालय द्वारा संज्ञेय होगा। भूमिधारी अधिकारों की घोषणा के लिए एक मुकदमा वह है जो धारा 229-बी की उप-धारा (3) के साथ पठित उप-धारा (1) और (2) के तहत परिकल्पित है। अनुसूची ॥ की प्रविष्टि 34 के आधार पर उस राहत के लिए एक मुकदमा सहायक कलेक्टर, प्रथम श्रेणी के समक्ष दायर किया जाएगा; सिविल कोर्ट के सामने नहीं।

37. यह न्यायालय पाता है कि धारा 122-बी की उप-धारा (4-डी) जो अनुमति देती है, वह किसी व्यक्ति को उसके खिलाफ पारित बेदखली के संक्षिप्त आदेश के बावजूद भूमिधर या असमी के रूप में अपने स्वत्व आदि की घोषणा करने का अधिकार धारा 122-बी (3) के तहत सहायक कलेक्टर को है।।

38.वर्तमान मामले में, इसलिए, एक पुनरीक्षण में अतिरिक्त कलेक्टर द्वारा बेदखली का निर्देश देने वाले सहायक कलेक्टर के आदेश की पुष्टि को अलग रखते हुए, यदि वादी उस समय आयोजित कानून के प्रचलित दृष्टिकोण के कारण इस न्यायालय के समक्ष उपयुक्त नहीं था जब उसकी रिट याचिका को खारिज कर दिया गया, वादी जिस सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय में जा सकता था वह राजस्व न्यायालय था। यह सिविल कोर्ट नहीं था.

39.जहां तक एप्रोबेट और रिप्रोबेट के सिद्धांत के संबंध में श्री अस्थाना की दलील का सवाल है, ऐसे मामले में

कार्यवाही का बचाव करने वाले पक्ष को न्यायालय के अधिकार क्षेत्र पर आपत्ति करने से रोकना, जहां न्यायालय के क्षेत्राधिकार के बारे में पार्टी की आपत्तियों को स्वीकार कर लिया गया है, जहां पहले आवेदन करने वाली पार्टी ने आपत्ति करने वाली पार्टी को दूसरे न्यायालय के अधिकार क्षेत्र पर भी सवाल उठाने से रोका, किरण देवी(उपरोक्त) के सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। किरण देवी मामले में, यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आयोजित किया गया था:

> "13.हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताआें को सुना है और पाया है कि इस स्तर पर अपीलकर्ता के लिए इस सवाल पर विवाद करना संभव नहीं है कि विद्वान मुंसिफ के समक्ष दायर किया गया मुकदमा वक्फ ट्रिब्यूनल में स्थानांतरित नहीं किया जा सकता था। वादी ने वर्ष 1996 में सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र का इस्तेमाल किया था। वक्फ बोर्ड और अपीलकर्ता ने तब मुकदमे को वक्फ ट्रिब्यूनल में स्थानांतरित करने के लिए एक आवेदन दायर किया था। हालाँकि, रमेश गोबिन्दराम के संदर्भ में वक्फ ट्रिब्यूनल वादी द्वारा दावा किए गए अनुसार घोषणा नहीं कर सका, लेकिन ऐसी आपत्ति को वक्फ बोर्ड या अपीलकर्ता द्वारा उठाए जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि आदेश उनके कहने पर सिविल कोर्ट द्वारा पारित किया गया था और कोर्ट द्वारा भी इसे बरकरार रखा गया था। उच्च न्यायालय इस तरह के आदेश के द्वारा इस प्रकार अंतर-पक्षीय अंतिमता प्राप्त कर ली है। पक्षकारों को एक ही सांस में अनुमोदन और पुनर्मूल्यांकन की अनुमति नहीं दी जा सकती। इस आदेश पर कि वक्फ ट्रिब्यूनल का क्षेत्राधिकार है, विवादित होने की अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि पक्षकारों ने सिविल कोर्ट के आदेश को स्वीकार कर लिया था और ट्रिब्यूनल के समक्ष सुनवाई के लिए चले गए थे। यह ऐसी स्थिति नहीं है जहां वादी ने वक्फ ट्रिब्यूनल के अधिकार क्षेत्र का इस्तेमाल किया हो।
>
> 14.अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया कि क़ानून के विरुद्ध कोई रोक नहीं है क्योंकि सहमति उस प्राधिकरण को क्षेत्राधिकार प्रदान नहीं कर सकती जिसके पास मूल रूप से क्षेत्राधिकार नहीं था। इसलिए, यह प्रस्तुत किया गया कि ट्रिब्यूनल का निर्णय अधिकार क्षेत्र के बिना था। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि वादी ने सिविल कोर्ट के समक्ष ही कार्यवाही दायर की थी लेकिन अपीलकर्ता के साथ-साथ वक्फ बोर्ड ने भी इस पर आपत्ति जताई थी। इस प्रकार, यह वादी द्वारा स्वेच्छा से अधिकार क्षेत्र प्रदान करना नहीं है, बल्कि एक न्यायिक आदेश के आधार पर है जो अब पक्षकारों के बीच अंतिम रूप ले चुका है। तदनुसार, वक्फ ट्रिब्यूनल द्वारा मुकदमे का निर्णय लिया गया। हमें नहीं लगता कि अपीलकर्ता के लिए यह आपत्ति उठाना खुला है कि वर्तमान मामले के तथ्यों के अनुसार वक्फ ट्रिब्यूनल के पास मुकदमे पर विचार करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। इसलिए, हमें अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए पहले तर्क में कोई योग्यता नहीं मिली।"

40.फिर से, प्रेमलता उर्फ सुनीता (उपरोक्त) में सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीया द्वारा वैकल्पिक रिज़ॉर्ट के न्यायालय के

अधिकार क्षेत्र पर आपत्ति को दूर करने के लिए एप्रोबेट और रिप्रोबेट के समान सिद्धांत को लागू किया, जहां पहला न्यायालय स्थानांतरित हुआ था, उसके अधिकार क्षेत्र पर भी बचाव पक्ष द्वारा आपत्ति जताई गई थी। प्रेमलता उर्फ सुनीता में यह आयोजित किया गया है:

> "4.शुरुआत में, यह ध्यान दिया जाना आवश्यक है और यह विवाद में नहीं है कि वादी ने एमपीएलआरसी की धारा 250 के तहत राजस्व प्राधिकरण के समक्ष कार्यवाही शुरू की थी। इन्हीं प्रतिवादियों ने राजस्व प्राधिकरण के समक्ष आपत्ति उठाई कि राजस्व प्राधिकरण के पास इस मामले से निपटने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। तहसीलदार ने उक्त आपत्ति को स्वीकार कर एमपीएलआरसी की धारा 250 के तहत आवेदन यह मानते हुए खारिज कर दिया कि विवाद स्वत्व के संबंध में है, राजस्व प्राधिकरण के पास एमपीएलआरसी के तहत कोई क्षेत्राधिकार नहीं होगा। तहसीलदार द्वारा पारित उक्त आदेश की अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पुष्टि की गई है (बेशक उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन के लंबित रहने के दौरान)।
>
> 5.इसके बाद तहसीलदार ने एमपीएलआरसी की धारा 250 के तहत आवेदन को खारिज करने का आदेश पारित किया इस आधार पर कि राजस्व प्राधिकरण के पास कोई क्षेत्राधिकार नहीं होगा, जो कि मूल प्रतिवादियों द्वारा उठाई गई आपत्ति पर था, वादी ने सिविल अदालत के समक्ष एक मुकदमा दायर किया। सिविल न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी-मूल प्रतिवादियों ने राजस्व प्राधिकरण के समक्ष उनके द्वारा अपनाए गए रुख के विपरीत रुख अपनाया और सिविल कोर्ट के समक्ष उत्तरदाताओं ने आपत्ति जताई कि सिविल कोर्ट के पास मुकदमे पर विचार करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं होगा।
>
> 6. प्रत्यर्थी-मूल प्रतिवादियों को दो अलग-अलग प्राधिकारियों/अदालतों के समक्ष दो विरोधाभासी रुख अपनाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। एक बार जब मूल प्रतिवादियों की ओर से उठाई गई आपत्ति कि राजस्व प्राधिकरण का कोई क्षेत्राधिकार नहीं होगा, राजस्व प्राधिकरण/तहसीलदार द्वारा स्वीकार कर लिया गया और एमपीएलआरसी की धारा 250 के तहत कार्यवाही करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है एवं खारिज कर दिया गया और उसके बाद जब वादी ने सिविल कोर्ट के समक्ष मुकदमा दायर किया तो यह प्रतिवादियों के लिए खुला नहीं था - मूल प्रतिवादी उसके बाद आपत्ति ले सकते थे कि एमपीएलआरसी की धारा 257 के मद्देनजर सिविल कोर्ट के समक्ष मुकदमा भी वर्जित होगा।
>
> 7.यदि उस स्थिति में प्रत्यर्थियों-प्रतिवादियों की ओर से प्रस्तुतीकरण स्वीकार कर लिया जाता है तो मूल वादी का निवारण नहीं होगा। उच्च न्यायालय ने इस तथ्य की बिल्कुल भी अवलोकन नहीं किया गया है कि जब अपीलकर्ता - मूल वादी ने राजस्व प्राधिकरण/तहसीलदार से उपरोक्त किया तो उसे इस आधार पर गैर-अनुकूलित किया गया कि राजस्व प्राधिकरण/तहसीलदार के पास स्वामित्व के संबंध में विवाद का निर्णय करने

का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। संपत्ति के अनुरूप. इसके बाद जब मुकदमा दायर किया गया और प्रतिवादी-प्रतिवादियों ने इसके विपरीत रुख अपनाया कि सिविल मुकदमा भी रोक दिया जाएगा। उस स्थिति में मूल वादी उपचारहीन होगा। किसी भी मामले में प्रत्यर्थियों- मूल प्रतिवादियों को अनुमोदन और पुनर्मूल्यांकन करने और राजस्व प्राधिकरण के समक्ष उठाए गए विपरीत रुख अपनाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

8. इसलिए, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, विद्वान विचारण न्यायालय ने आदेश 7 नियम 11 सीपीसी के तहत आवेदन को सही ढंग से खारिज कर दिया और वादपत्र को खारिज करने से इनकार कर दिया। उच्च न्यायालय ने सीपीसी के आदेश 7 नियम 11 के तहत आवेदन को स्वीकार करने और इस आधार पर वाद को खारिज करने में गंभीर त्रुटि की है कि एमपीएलआरसी की धारा 257 के मद्देनजर मुकदमा वर्जित होगा। उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय एवं आदेश टिकाऊ नहीं है और अपास्त किये जाने योग्य है।"

41. इस न्यायालय की समझ के लिए, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत किरण देवी यहां के तथ्यों पर लागू नहीं होगा। किरण देवी में तथ्य यह थे कि वादी ने सिविल न्यायालय के समक्ष घोषणा के लिए एक मुकदमा दायर किया और प्रार्थना की कि यह घोषित किया जाए कि वह मुकदमे के परिसर में किरायेदार है और मासिक किराए के भुगतान पर परिसर को जारी रखने का हकदार है। घोषणा इस आधार पर मांगी गई थी कि वादी को अपने परदादा राम शरण राम से किरायेदारी मिली थी। किरायेदारी के उत्तराधिकार के बारे में विवाद किरायेदार के परिवार के भीतर था और कार्रवाई का कारण 21.03.1996 को उत्पन्न हुआ था जब वादी के दादा ने अन्य लोगों के साथ वाद परिसर में तोड़-फोड़ की और वादी का सामान हटा दिया। वादी के पिता रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए पुलिस के पास गए थे, लेकिन उन्होंने रिपोर्ट दर्ज करने से इनकार कर दिया। सिविल कोर्ट के समक्ष दायर वाद में अपीलकर्ता को सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी नंबर 5 के रूप में इस आरोप के साथ शामिल करने के लिए संशोधित किया गया था कि वक्फ बोर्ड द्वारा उसके पक्ष में पट्टा जाली, मनगढ़ंत, पुराना और मिलीभगत से दिया गया है। वक्फ बोर्ड ने अपने लिखित बयान में कहा था कि मोहम्मद सलीमुद्दीन वक्फ के विधिवत नियुक्त मुतवल्ली और मुकदमे के पांचवें प्रतिवादी थे, उपरोक्त को सुप्रीम कोर्ट के समक्ष अपीलकर्ता प्रबंध समिति द्वारा विधिवत नियुक्त किरायेदार था। पांचवें प्रतिवादी के बचाव और वक्फ बोर्ड के अन्य विवरण आवश्यक नहीं हो सकते हैं। हालाँकि, ध्यान देने वाली बात यह है कि दोनों अपीलकर्ताओं, यानी मुकदमे के प्रतिवादी नंबर 5 और वक्फ बोर्ड ने सिविल कोर्ट के समक्ष आवेदन दायर किया, जिसमें मुकदमे को वक्फ ट्रिब्यूनल द्वारा सुनवाई के लिए स्थानांतरित करने की मांग की गई। वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 85 और 85-ए के प्रावधानों के अनुसार उक्त आवेदन मुकदमे को वक्फ ट्रिब्यूनल में स्थानांतरित करना सिविल न्यायालय द्वारा स्वीकार कर लिया गया था। स्थानांतरण आदेश को वादी द्वारा पटना उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण में चुनौती दी गई थी। पुनरीक्षण खारिज कर दिया गया। न्यायाधिकरण द्वारा तय किए गए मुद्दों पर मामले की सुनवाई की गई, जहां पक्षों ने सबूत पेश किए। ट्रिब्यूनल द्वारा मुकदमा खारिज कर दिया गया। वादी की रिट याचिका पर उच्च न्यायालय ने पांचवें प्रतिवादी को मुकदमा परिसर से बेदखल करने और वादी

को खाली कब्जा सौंपने के निर्देश के साथ ट्रिब्यूनल के आदेश को रद्द कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय के आधिपत्य में अपील करने पर, मुकदमे के प्रतिवादी संख्या 5 की ओर से, जो अपीलकर्ता था, एक तर्क यह था कि ट्रिब्यूनल के पास वादी द्वारा दायर मुकदमे पर विचार करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। रमेश गोबिन्दराम मृत द्वारा विधिक प्रतिनिधी बनाम सुगर हुमयुन मिर्जा वक्फ2010) 8 एससीसी 726 में सुप्रीम कोर्ट का फैसला उपरोक्त निर्णय के बाद, वक्फ अधिनियम को 2013 के अधिनियम संख्या 27 द्वारा संशोधित किया गया था। यह बताया गया कि सर्वोच्च न्यायालय ने पंजाब वक्फ बोर्ड बनाम शाम सिंह हरिके, (2019) 4 एससीसी 698 में अधिनियम में संशोधन पर विचार किया था और माना था कि संशोधन से पहले शुरू की गई कार्यवाही, संशोधन से अप्रभावित, जारी रहेगी। यह तर्क दिया गया कि वादी द्वारा वक्फ संपत्ति के किरायेदार के रूप में घोषणा का मुकदमा वक्फ ट्रिब्यूनल के समक्ष सुनवाई योग्य नहीं था। यह आग्रह किया गया था कि क़ानून के विरुद्ध कोई रोक नहीं है और सहमति वक्फ ट्रिब्यूनल को अधिकार क्षेत्र प्रदान नहीं कर सकती है, जो ट्रिब्यूनल के पास कभी नहीं था। किरण देवी उपरोक्त तथ्यों के संदर्भ में था, माननीय न्यायाधीश ने माना कि अनुमोदन और पुनरुत्पादन के सिद्धांत ने प्रतिवादी को वक्फ ट्रिब्यूनल के अधिकार क्षेत्र पर सवाल उठाने से रोका। 'संविधि के विरुद्ध कोई रोक नहीं'के सिद्धांत पर आधारित आपत्ति को भी उनके आधिपत्य द्वारा खारिज कर दिया गया था, जैसा कि यहां पहले ही उल्लेख किया गया है।

42. इसी प्रकार प्रेमलता उर्फ सुनीता मामले में विपक्षी द्वारा राजस्व प्राधिकारी के समक्ष आपत्ति की गई थी कि मप्र भू-राजस्व संहिता, 1959 (संक्षेप में, 'एमपीएलआरसी') की धारा 250 के तहत कार्यवाही चलने योग्य नहीं है, जिसे वाद में वादी ने स्वीकार कर लिया। पहले तहसीलदार/राजस्व प्राधिकारी के समक्ष स्थापित किया गया था। तहसीलदार ने वादी के आवेदन को खारिज कर दिया, प्रतिवादी की आपत्तियों को स्वीकार करते हुए, तहसीलदार के समक्ष विपरीत पक्ष को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि मामला स्वामित्व से संबंधित है, जो एमपीएलआरसी की धारा 25 के दायरे से परे है। वादी ने एमपीएलआरसी की धारा 44 के तहत एस.डी.ओ. के समक्ष तहसीलदार के आदेश की अपील की। राजस्व क्षेत्राधिकार में अपील लंबित होने पर, वादी ने कब्ज़ा और निषेधाज्ञा की वसूली के लिए सिविल न्यायालय के समक्ष मुकदमा दायर किया। उक्त मुकदमे में, प्रतिवादी द्वारा एक आवेदन किया गया था कि वादपत्र आदेश VII नियम 11 सीपीसी के तहत इस आधार पर खारिज किया जा सकता है कि सिविल कोर्ट के समक्ष मुकदमा एमपीएलआरसी की धारा 257 द्वारा वर्जित था। सिविल कोर्ट ने उक्त आवेदन को खारिज कर दिया और आदेश VII नियम 11 सीपीसी के तहत वाद को खारिज करने से इनकार कर दिया। उक्त आदेश को प्रतिवादी द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत एक पुनरीक्षण के माध्यम से जारी किया गया था। उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण की अनुमति दी, आदेश को रद्द कर दिया, आदेश VII नियम 11 सीपीसी के तहत आवेदन की अनुमति दी और याचिका खारिज कर दी। यह माना गया कि मुकदमा एमपीएलआरसी की धारा 257 के तहत वर्जित था। यह पूर्वोक्त तथ्यों के संदर्भ में था कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश ने अनुमोदन और प्रतिशोध के सिद्धांत को लागू किया, यह मानते हुए कि प्रतिवादी राजस्व प्राधिकरण और सिविल न्यायालय दोनों के अधिकार क्षेत्र पर आपत्ति नहीं कर सकता। इस संबंध में माननीय न्यायाधीश की टिप्पणियाँ पहले ही यहाँ ऊपर निकाली जा चुकी हैं।

43. वर्तमान मामले में, रिकॉर्ड से पता चलता है कि सिविल विविध रिट याचिका संख्या 37440/2001, जो वादी द्वारा

दायर की गई थी, प्रतिवादी संख्या 1, 2 और 3 का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान स्थायी अधिवक्ता की उपस्थिति में सुनी गई थी।। रिट याचिका में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 09.09.2008 के आदेश में यह दर्ज नहीं किया गया है कि विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा क्या आपत्ति की गई थी। परामर्शदाता. जो कुछ कहा गया है वह यह है कि रिट याचिका अधिनियम की धारा 122-बी के तहत कार्यवाही से उत्पन्न होती है और राजेंद्र सिंह के मामला पूरी तरह से इस न्यायालय की खण्ड पीठ के फैसले के अंतर्गत आता है, जो मानता है कि अधिनियम की धारा 122-बी के तहत पारित आदेशों के खिलाफ रिट याचिका दायर नहीं की जा सकती। प्रतिवादी संख्या 1, 2 और 3 द्वारा अपनाए गए रुख, अन्य प्रतिवादी, जो रिट याचिका के प्रतिवादी भी थे, बिल्कुल भी नहीं सुने जाने से यह नहीं पता चलता है कि उनकी ओर से यह आग्रह किया गया था कि वादी का उपाय था एक सिविल मुकदमा. कोर्ट ने राजेंद्र सिंह के मामाले में खण्ड पीठ द्वारा निर्धारित सिद्धांत पर याचिका खारिज कर दी एवं धारा 122-बी के तहत बेदखली के आदेश के खिलाफ रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं थी। राजेन्द्र सिंह के मामलें में जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, यह माना गया था कि सहायक कलेक्टर द्वारा पारित बेदखली के आदेश को पुनरीक्षण में या बेदखल किए गए पक्ष द्वारा अपना अधिकार स्थापित करने के लिए मुकदमे के माध्यम से चुनौती दी जा सकती है। यह भी माना गया कि कलेक्टर के समक्ष पुनरीक्षण का उपाय उस पक्ष को न्यायालय के समक्ष वाद दायर करके अपना अधिकार स्थापित करने से वंचित नहीं करेगा। जिसे बेदखल करने का आदेश दिया गया था। आगे यह माना गया कि पुनरीक्षण में कलेक्टर के निर्णय के बाद किसी मुकदमे पर रोक किसी मुकदमे के उपचार को बाहर नहीं करेगी। हालाँकि, अधिनियम की धारा 122-बी के तहत पारित बेदखली के आदेश के खिलाफ एक रिट याचिका को खण्ड पीठ द्वारा सुनवाई योग्य नहीं माना गया था।

44. इस न्यायालय की राय में, इसलिए, यह सिर्फ राजेंद्र सिंह का सिद्धांत था, जिसके कारण न्यायालय ने दिनांक 09.09.2008 के आदेश के तहत 2001 की सिविल विविध रिट याचिका संख्या 37440 को रखरखाव योग्य नहीं होने के कारण खारिज कर दिया। उक्त आदेश का तार्किक परिणाम यह है कि वादी को कानून के तहत अपना उपचार करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया गया था। यह ऐसा मामला नहीं है जहां मुकदमे के प्रतिवादियों ने यह रुख अपनाया था कि वादी का उपाय सिविल कोर्ट के समक्ष एक मुकदमे के माध्यम से था और अदालत ने रिट याचिका को खारिज करते हुए उक्त याचिका को स्वीकार कर लिया था। यदि ऐसा मामला होता, तो एप्रोबेट और रिप्रोबेट का सिद्धांत लागू होता और प्रतिवादियों को यह कहते नहीं सुना जाता कि सिविल कोर्ट के समक्ष वर्तमान मुकदमा चलने योग्य नहीं है। उस मामले में, किरण देवी और प्रेमलता मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित सिद्धांत लागू होगा। यहां, जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, प्रतिवादियों की ओर से ऐसा कोई रुख नहीं है और रिट याचिका को उस समय कानून की घोषणा के अनुसार चलने योग्य नहीं होने के कारण खारिज कर दिया गया था। यह वादी पर निर्भर करता है कि वह कानून के तहत अपने उपचार का सही चुनाव करे। इसलिए, यदि वादी ने मुकदमा दायर करने के लिए अक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय को चुना है, तो अनुमोदन और पुनर्प्रोबेट का सिद्धांत उसे मुक्ति नहीं दिलाएगा।

45.ऊपर जो कहा गया है, उसे ध्यान में रखते हुए, कानून संख्या 1 के महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर इस तरीके से दिया गया है कि इस न्यायालय द्वारा राजेंद्र सिंह के मामाले में निर्धारित कानून के बावजूद यह मानते हुए कि धारा 122-

बी के तहत बेदखली के आदेश के खिलाफ उपाय एक मुकदमा है, वर्तमान मुकदमा सिविल न्यायालय के समक्ष सुनवाई योग्य नहीं है।

46. विवाद के तार्किक अनुक्रम में प्रश्न संख्या 2 का उत्तर देने से पहले कानून संख्या 3 के महत्वपूर्ण प्रश्न को उठाना अधिक सुविधाजनक होगा। प्रश्न यह है कि क्या अधिनियम की धारा 122-बी के तहत पारित बेदखली के आदेश को चुनौती दी गई है। धारा 122-बी(4-ए) के तहत संशोधन से पीड़ित पक्ष को उप-धारा (4-डी) के अनुसार सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय के समक्ष मुकदमा दायर करने का अधिकार मिलता है।

47.यह न्यायालय क्या कहता है, इसे समझने की सुविधा के लिए अधिनियम की धारा 122-बी के प्रावधानों को पुन: प्रस्तुत करना उचित होगा। अधिनियम की धारा 122-बी निम्नानुसार है:

> 122-बी. भूमि प्रबंधन समिति एवं कलेक्टर की शक्तियाँ.—(1) जहां इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत गांव सभा या स्थानीय प्राधिकारी में निहित किसी भी संपत्ति को नुकसान पहुंचा है या उसका दुरुपयोग किया गया है या जहां कोई गांव सभा या स्थानीय प्राधिकारी इस प्रावधान के तहत किसी भी भूमि पर कब्जा लेने या बनाए रखने का हकदार है। अधिनियम और ऐसी भूमि पर इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार अन्यथा कब्जा कर लिया गया है, भूमि प्रबंधन समिति या स्थानीय प्राधिकरण, जैसा भी मामला हो, निर्धारित तरीके से संबंधित सहायक कलेक्टर को सूचित करेगा।
>
> (2) जहां उप-धारा (1) के तहत या अन्यथा प्राप्त जानकारी से, सहायक कलेक्टर संतुष्ट है कि उप-धारा (1) में निर्दिष्ट किसी भी संपत्ति को नुकसान पहुंचा है या दुरुपयोग किया गया है या किसी व्यक्ति ने किसी भी भूमि पर कब्जा कर लिया है, उस उप-धारा में निर्दिष्ट, इस अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन में, वह संबंधित व्यक्ति को कारण बताने के लिए नोटिस जारी करेगा कि इस तरह के नोटिस में उल्लिखित क्षति, दुरुपयोग या गलत कब्जे के लिए मुआवजा उससे क्यों नहीं वसूला जाए या, मामला यह हो कि क्यों न उसे ऐसी भूमि से बेदखल कर दिया जाये।
>
> (3) यदि वह व्यक्ति जिसे उप-धारा (2) के तहत नोटिस जारी किया गया है, नोटिस में निर्दिष्ट समय के भीतर या ऐसे विस्तारित समय के भीतर, जो ऐसे नोटिस की सेवा की तारीख से तीस दिन से अधिक न हो, कारण बताने में विफल रहता है। व्यक्ति, जैसा कि सहायक कलेक्टर इस संबंध में अनुमति दे सकता है, या यदि दिखाया गया कारण अपर्याप्त पाया जाता है, तो सहायक कलेक्टर निर्देश दे सकता है कि ऐसे व्यक्ति को भूमि से बेदखल किया जा सकता है और वह उस उद्देश्य के लिए उपयोग कर सकता है, या उपयोग करवा सकता है। ऐसा बल जो आवश्यक हो और निर्देश दे सकता है कि क्षति, दुरुपयोग या गलत कब्जे के लिए मुआवजे की राशि ऐसे व्यक्ति से भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल की जाए।
>
> (4) यदि सहायक कलेक्टर की राय है कि कारण बताने वाला व्यक्ति उपधारा (2) के तहत नोटिस में निर्दिष्ट क्षति या दुरुपयोग या गलत

कब्जे का दोषी नहीं है, तो वह नोटिस को खारिज कर देगा।

(4-ए) उप-धारा (3) या उप-धारा (4) के तहत सहायक कलेक्टर के आदेश से व्यथित कोई भी व्यक्ति, ऐसे आदेश की तारीख से तीस दिनों के भीतर, कलेक्टर के समक्ष धारा 333 के खंड (ए) से (ई) में उल्लिखित आधार पर संशोधन कर सकता है।

(4-बी) इस धारा के तहत की गई किसी भी कार्रवाई में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया ऐसी होगी जो निर्धारित की जा सकती है।

(4-सी) किसी भी बात के होते हुए भी धारा 333 या धारा 333-ए, लेकिन अधीन इस धारा के प्रावधान-

(i) इस धारा के तहत सहायक कलेक्टर का प्रत्येक आदेश, उप-धारा (4-ए) और (4-डी) के प्रावधानों के अधीन, अंतिम होगा,

(i) इस धारा के तहत कलेक्टर का प्रत्येक आदेश, उपधारा (4-डी) के प्रावधानों के अधीन, अंतिम होगा।

(4-डी) इस धारा के तहत किसी संपत्ति के संबंध में सहायक कलेक्टर या कलेक्टर के आदेश से व्यथित कोई भी व्यक्ति ऐसी संपत्ति पर अपने द्वारा दावा किए गए अधिकार को स्थापित करने के लिए सक्षम क्षेत्राधिकार वाली अदालत में मुकदमा दायर कर सकता है।

(4-ई) ऐयदि उप-धारा (4-ए) के तहत कलेक्टर को पुनरीक्षण दिया जाता है, तो उप-धारा (4-डी) में निर्दिष्ट ऐसा कोई भी मुकदमा सहायक कलेक्टर के आदेश के खिलाफ नहीं होगा।

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्धित)

48. एक ओर अधिनियम की धारा 122-बी की उप-धारा (4-डी) और दूसरी ओर उप-धारा (4-ई) के प्रावधानों के बीच कुछ विरोधाभास प्रतीत होता है। जबकि उप-धारा (4-सी) धारा 122-बी (3) के तहत सहायक कलेक्टर का आदेश बनाती है, उप-धारा (4-ए) और (4-डी) के प्रावधानों के अधीन अंतिम, और का आदेश धारा 122-बी (4-ए) के तहत कलेक्टर अंतिम, उप-धारा (4-डी) के प्रावधानों के अधीन, यानी, सक्षम क्षेत्राधिकार के न्यायालय के समक्ष एक मुकदमा, उप-धारा (4-ई) पीड़ित व्यक्ति के कहने पर मुकदमा दायर करने पर रोक है, जहां सहायक कलेक्टर के आदेश को उप-धारा (4-ए) के तहत कलेक्टर के समक्ष पुनरीक्षण में चुनौती दी गई है। दूसरे शब्दों में, जबकि धारा 122-बी (3), (4), (4-ए), (4-सी) और (4-डी) की योजना इस प्रभाव के अनुरूप है कि निष्कासन का आदेश पारित किया गया है सहायक कलेक्टर, चाहे उप-धारा (4-ए) के तहत कलेक्टर के समक्ष पुनरीक्षण में चुनौती दी गई हो या नहीं, सक्षम क्षेत्राधिकार के न्यायालय के समक्ष एक मुकदमे के परिणाम के अधीन होगा, उप-धारा (4-ई) इसमें शामिल नहीं है उप-धारा (4-ए) के तहत कलेक्टर द्वारा पुनरीक्षण पुष्टि के बाद मुकदमा।

49. मौजूदा प्रावधानों के लिए 1982 के यूपी अधिनियम संख्या 20 द्वारा उप-धारा (1) से (4-ई) को प्रतिस्थापित किया गया था। काफी पहले, संशोधन के बाद, सेवक शंकर बनाम अतिरिक्त कलेक्टर, आगरा और अन्य, 1985 एससीसी ऑनलाइन सभी 165 मामले में विरोधाभास को इस न्यायालय के ध्यान में लाया गया था और आग्रह किया गया था कि यह प्रक्रिया भेदभावपूर्ण थी, एक व्यक्ति को आदेश दिया गया था बेदखल, जिसने कलेक्टर के पास पुनरीक्षण के लिए आवेदन किया था, उसका विधिवत

गठित मुकदमे में अपना अधिकार स्थापित करने का उपाय कम कर दिया गया था। सेवक शंकर (उपरोक्त) में इस न्यायालय ने उक्त विवाद को खारिज कर दिया

22. ऐसा प्रतीत होता है कि धारा 122-बी और विशेष रूप से अधिनियम की धारा 122-बी की उप-धारा (4-ई) के प्रावधान को अधिनियमित करने का प्रमुख उद्देश्य अनधिकृत कब्जेदारों को बेदखल करने के लिए त्वरित, त्वरित और प्रभावी उपाय प्रदान करना है। गाँव सभा की भूमि. धारा 122-बी की उप-धारा (4-ई) द्वारा विचार की गई प्रक्रिया असामान्य, विलंबित प्रक्रिया से बचने और नियमित मुकदमे में लंबे समय तक मुकदमेबाजी का सहारा लिए बिना कब्जा वापस पाने के उद्देश्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से थी। यह सामान्य ज्ञान है कि विचारण न्यायालय प्रथम अपीलीय अदालत, द्वितीय अपीलीय अदालत में नियमित सूट को शुरू करने में काफी समय लगता है और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अनुमति याचिका दायर की जा रही है। राजस्व और दीवानी मुकदमों को आगे बढ़ाने में कब्ज़ा वापस पाने में कई साल लग सकते थे। यह इस उद्देश्य के लिए है कि यदि कोई व्यक्ति कलेक्टर के समक्ष पुनरीक्षण को प्राथमिकता देने के उपाय का लाभ उठाता है, तो उसे मुकदमे के उपचार से वंचित कर दिया गया है। यह वह शरारत थी जिसे विधानमंडल ने अधिनियम की धारा 122-बी की उप-धारा (4-ई) में प्रावधान को शामिल करके टालना चाहा था।

23. धारा 122-सी में प्रावधान है कि गाँव सभा के कब्जे वाली भूमि को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों, खेतिहर मजदूरों और गाँव के कारीगरों के लिए आबादी स्थलों के लिए निर्धारित किया जाना है। इस प्रकार प्राप्त भूमि समाज के दलित और वंचित वर्ग के कल्याण के लिए है। हमारा राज्य एक कल्याणकारी राज्य है।

24. यह उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि एक कहावत है सैलस पॉपुलिस्ट सुप्रीमा लेक्स, जिसका स्पष्ट अर्थ है कि लोक कल्याण का सम्मान सर्वोच्च कानून है। आवश्यकता पड़ने पर व्यक्तिगत कल्याण समुदाय के हित में होगा और उसकी संपत्ति, स्वतंत्रता और जीवन, कुछ परिस्थितियों में, ख़तरे में डाल दिया जाएगा या सार्वजनिक भलाई के लिए बलिदान भी कर दिया जाएगा।

25. इन चर्चाओं के मद्देनजर यह स्पष्ट है कि विधायिका ने अपने विवेक से यह प्रक्रिया निर्धारित करना उचित समझा कि यदि पुनरीक्षण दायर किया गया है, तो मुकदमे का उपाय नहीं उठाया जा सकता है। इसलिए, मेरी राय है कि अधिनियम की धारा 122-बी की उपधारा (4-ए), (4-सी), (4-डी) और (4-ई) के प्रावधान भेदभावपूर्ण नहीं हैं और न ही क्या ये भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन हैं.

50. इसके तुरंत बाद, इस मुद्दे ने फिर से इस न्यायालय का ध्यान शंकर सरन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य। और अन्य, 1987 एससीसी ऑनलाइन सभी 235 के मामले आकर्षित किया यहां, न्यायालय ने स्पष्ट विरोधाभास पर

नाराजगी व्यक्त की और माना कि उप-धारा (4-ई) के प्रावधानों के बावजूद, किसी पक्ष के खिलाफ पुनरीक्षण आदेश दिए जाने के बाद भी मुकदमे का समाधान नहीं खोया जाएगा। शंकर शरण (उपरोक्त) के मामले में न्यायमूर्ति के.पी. सिंह, द्वारा सेवक शंकर के मामलें में न्यायमूर्ति बी.एल. यादव के साथ असहमति व्यक्त किया, जहां माननीय न्यायमूर्ति ने माना था कि एक पक्ष द्वारा संशोधन को प्राथमिकता देने और विफल होने के बाद, मुकदमे का उसका उपाय कम कर दिया जाएगा। शंकर शरण के मामलें में न्यायालय ने सुझाव दिया कि विधायिका को अधिनियम की धारा 122-बी में आवश्यक संशोधन करना चाहिए, ताकि उप-धारा (4-ई) को अधिनियमित करने में विधायी इरादे को स्पष्ट किया जा सके। शंकर शरण के मामलें में इस न्यायालय के अवधारणा का उल्लेख करना उचित होगा, जो निम्नानुसार है-

> "17.यह देखना आवश्यक है कि जब कोई व्यक्ति पुनरीक्षण याचिका दायर करता है तो पुनरीक्षण याचिका में आदेश पक्षों के बीच अंतिम होगा और विचारण न्यायालय यानी सहायक कलेक्टर का आदेश पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश में विलय हो जाएगा। इसलिए, पीड़ित पक्ष द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका में निर्णय के बाद, पीड़ित पक्ष को पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश और उप धारा (4-डी) कलेक्टर के आदेश के विरूद्ध के तहत उपाय के खिलाफ मुकदमा दायर करना होगा।
>
> 18. मैं याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हूं कि याचिकाकर्ताओं के पास अधिनियम की धारा 122-बी(4-ई) के प्रावधानों के मद्देनजर विवादित भूमि पर अपना दावा स्थापित करने के लिए कोई वैकल्पिक उपाय नहीं है। मेरा मानना है कि याचिकाकर्ताओं के पास विवादित भूमि पर अपना मालिकाना हक पाने का एक वैकल्पिक उपाय है क्योंकि पुनरीक्षण आदेश अतिरिक्त कलेक्टर द्वारा पारित किया गया है और उनके आदेश के खिलाफ अधिनियम की धारा 122-बी की उप-धारा (4-डी) के तहत मुकदमा प्रस्तुत किया गया है।

19. 1983 रेव दिसंबर 32 में,अब्दुल गफ़ूर बनाम गाँव सभा के मामलें में एक विद्वान सदस्य ने पैरा 6 के माध्यम से निम्नलिखित टिप्पणियाँ की हैं:-

> ".......यदि कोई पुनरीक्षण दायर किया जाता है, इससे पहले उपधारा (4-ई) के प्रावधानों के मद्देनजर सहायक कलेक्टर के आदेश के विरुद्ध नियमित वाद दायर नहीं किया जाएगा परंतु कलेक्टर द्वारा पुनरीक्षण में पारित आदेश के विरुद्ध नियमित वाद का निवारण उपलब्ध रहेगा। अध्यादेश संशोधन अधिनियम की धारा 333 और 333-ए के तहत सहायक कलेक्टर या कलेक्टर के आदेश के विरुद्ध वर्जित हैं, लेकिन नियमित वाद का उपाय पीड़ित पक्ष, सहायक कलेक्टर या कलेक्टर के आदेश के विरुद्ध उपलब्ध कराया गया है जैसा भी मामला हो, सहायक कलेक्टर, प्रथम श्रेणी एवं कलेक्टर द्वारा यू.एफ.जेड.ए. की संशोधित धारा 122-बी के तहत पारित आदेश और एल.आर. अधिनियम की धारा 333 या एस. 333-ए यू.एफ.जेड.ए. के अंतर्गत पुनरीक्षण योग्य नहीं है। ।"

20.अधिनियम की धारा 122-बी(4-डी) और (4-ई) को पढ़ने से पता चलता है कि दोनों प्रावधानों में कुछ विरोधाभास है। कलेक्टर पुनरीक्षण प्राधिकारी है और उसके आदेश के विरुद्ध उप-धारा (4-डी) के तहत मुकदमा दायर करने पर विचार किया गया है। अत: यह कहना कठिन है कि सहायक समाहर्ता का आदेश जो पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश में सम्मिलित है, उसे नियमित स्वामित्व वाद में चुनौती नहीं दी जा सकती। राजस्व बोर्ड के विद्वान सदस्य का यह सुझाव कि पुनरीक्षण याचिका के लंबित रहने के दौरान सहायक कलेक्टर के आदेश के विरुद्ध कोई मुकदमा पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष नहीं रखा जाएगा, उप-धारा. (4-ई) के प्रावधानों की शब्दावली के कारण आसानी से स्वीकार नहीं किया जा सकता है। यदि विधायिका का ऐसा इरादा होता तो वह स्वयं को इस प्रकार व्यक्त करती:-

> "ऐसा कोई मुकदमा नहीं है जैसा उप-धारा (4डी)में बताया गया है यदि उप-धारा(4-ए) के तहत कलेक्टर को संशोधन पसंद किया जाता है तो यह सहायक कलेक्टर के आदेश के खिलाफ होगा और लंबित है।"

21.जैसा कि मैंने संकेत दिया है कि सहायक कलेक्टर का आदेश पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश में विलय हो जाएगा, इसलिए, पीड़ित पक्ष को पुनरीक्षण आदेश के खिलाफ मुकदमा दायर करना होगा, मैं भाई न्यायमूर्ति बी.एल. यादव से सहमत नहीं हो पा रहा हूं और यह कि जब कोई पीड़ित पक्ष कलेक्टर के समक्ष पुनरीक्षण के उपाय का लाभ उठाता है, तो वह मुकदमे के उपचार से वंचित हो जाएगा। विधानमंडल के लिए बेहतर होगा कि वह यू.पी.जेड.ए. की धारा 122-बी में आवश्यक संशोधन करे और एल.आर. अधिनियम की धारा 122-बी की उप-धारा (4-ई) को अधिनियमित करने में अपने इरादे को स्पष्ट करने के लिए कार्य करें। "

51. इस प्रकार, शंकर शरण के मामले में यह माना गया कि भले ही एक पक्ष उपधारा (4-ए),उपधारा (4-ई) के तहत कलेक्टर को पुनरीक्षण देकर बेदखली के आदेश के खिलाफ अपने उपचार का लाभ उठा रहा हो, उसके अधिकार को उप-धारा (4-डी) के तहत अपना अधिकार स्थापित करने के लिए मुकदमा दायर करना के अधिवकर को कम नहीं करेगा। इस न्यायालय की समझ से, कलेक्टर द्वारा बेदखली आदेश की पुष्टि के बावजूद संपत्ति पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिए मुकदमा दायर करने का अधिकार धारा 122-बी की उप-धारा (4-सी) के दोनों खंड (i) और (ii) द्वारा स्पष्ट रूप से प्रदान किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपधारा (4-ई) सारांश कार्यवाही में पारित निष्कासन के आदेश से पीड़ित पक्ष को मुकदमे के माध्यम से अपना अधिकार स्थापित करने का उपाय प्रदान करने के अन्यथा स्पष्ट विधायी इरादे के अनुरूप नहीं है।

52. ऐसा हो सकता है कि धारा 122-बी की उप-धारा (4-डी) के तहत लाए गए मुकदमे में अधिनियम की धारा 229-डी की उप-धारा (2) के प्रावधानों को देखते हुए, बेदखल करने का अंतरिम राहत आदेश दिया गया व्यक्ति सुरक्षित नहीं हो सकता, धारा 122-बी के तहत पारित बेदखली के आदेश के अनुसार उसे बेदखल कर दिया जाएगा, जिससे उस संपत्ति पर अपना दावा स्थापित करने का अधिकार बरकरार रहेगा, जिससे उसे बेदखल कर दिया गया है। मुक़दमे में सफलता की स्थिति में, वह खोया हुआ कब्ज़ा वापस पा लेगा। इस प्रावधान का उद्देश्य उस उद्देश्य को प्राप्त करना हो सकता है जो यह न्यायालय सेवक शंकर के मामले में चाहता है अर्थात्, गाँव सभा भूमि

से अनाधिकृत व्यक्ति को बाहर निकालने के लिए त्वरित, और प्रभावी उपाय के प्रावधान की बात की गई लेकिन, उस उद्देश्य को इस हद तक आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है कि एक पक्ष जो कहता है कि जिस संपत्ति से उसे सारांश कार्यवाही में वंचित किया गया है वह उसकी संपत्ति है, उसे अदालत के समक्ष विधिवत गठित मुकदमे में उस दावे को सक्षम न्यायालय में स्थापित करने के अधिकार से वंचित किया जा सकता है। यह बाद वाला विचार था जिसने इस न्यायालय शंकर शरण के मामले को टिप्पणी करने के लिए प्रेरित किया, जिस तरह से यह हुआ, वह यहां ऊपर देखा गया है, और यह धारणा है कि संपत्ति पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिए सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय के समक्ष मुकदमा करने का अधिकार, जहां से किसी व्यक्ति को बेदखल कर दिया गया है, खोया नहीं जाएगा, भले ही इसका उपाय हो पुनरीक्षण का लाभ उठाया गया।

53. यह प्रश्न आगे चलकर राजेन्द्र सिंह के मामले में खण्ड पीठ के विचार के लिए गया, जहां इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीशों पर उपरोक्त विरोधी निर्णयों को देखने के बाद सेवक शंकर और शंकर शरण, में न्यायमूर्ति ने माना कि कानून स्पष्ट रूप से पढ़ने पर बहुत स्पष्ट है कि यदि सहायक कलेक्टर के आदेश से कलेक्टर के पास कोई संशोधन किया जाता है, तो यह पुनरीक्षण आदेश से पीड़ित व्यक्ति के पहले मुकदमा दायर करने के अधिकार पर रोक नहीं लगाएगा। सक्षम क्षेत्राधिकार का न्यायालय सेवक शरण के मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्णय राजेंद्र सिंह के मामले में खण्ड पीठ द्वारा अनुमोदित किया गया था। यह टिप्पणी की गई थी कि खण्ड पीठ ने जो दृष्टिकोण अपनाया था और विधायी मंशा को ध्यान में रखते हुए खण्ड पीठ द्वारा अधिनियम की व्याख्या की गई थी, उसके आधार पर विवाद का समाधान हो गया है।

54.इसमें कोई संदेह नहीं, पूर्ण पीठ ने शिव राम के मामले में खण्ड पीठ ने राजेंद्र सिंह के मामले को खारिज कर दिया, लेकिन संदर्भित तीन प्रश्नों के उत्तर से पता चलता है कि खण्ड पीठ ने इस सिद्धांत के संबंध में खारिज कर दिया था कि अधिनियम की धारा 122-बी के तहत बेदखली के आदेश को चुनौती देने के लिए एक रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं होगी। खण्ड पीठ की यह धारणा कि पुनरीक्षण के बावजूद कोई मुकदमा सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय के समक्ष होगा, पूर्ण बेंच द्वारा अबाधित छोड़ दिया गया है; न ही यह पूर्ण पीठ के समक्ष विचार के लिए किसी प्रश्न पर था।

55.पूर्ण पीठ द्वारा प्रश्न संख्या 3 के संदर्भ में एक टिप्पणी है कि अधिनियम की धारा 331 के प्रावधानों के मद्देनजर सिविल कोर्ट में एक मुकदमा हर मामले में चलने योग्य नहीं हो सकता है। लेकिन, यह इस सिद्धांत का खंडन नहीं करता है कि सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय के समक्ष एक मुकदमा खण्ड पीठ द्वारा आयोजित किए जाने के बाद भी धारा 122-बी की उप-धारा (4-ई) के प्रावधानों के बावजूद, कलेक्टर द्वारा पुनरीक्षण आदेश के तहत सुनवाई योग्य होगा।

56. इस न्यायालय की राय में, कानून संख्या 3 के महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर नकारात्मक है और यह माना जाता है कि धारा 122-बी की उप-धारा (4-डी) के तहत बेदखली के आदेश के बावजूद मुकदमा वर्जित नहीं होगा। धारा 122-बी के तहत पारित अधिनियम की धारा 122-बी (4-ए) के तहत संशोधन में असफल रूप से चुनौती दी गई।

57. यह कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न संख्या- 2 को सामने लाता है। असल में सवाल यह है कि ऐसे मामले में जहां सिविल कोर्ट को पता चलता है कि मुकदमा उसके द्वारा नहीं बल्कि राजस्व न्यायालय द्वारा संज्ञेय है, तो क्या

वादपत्र वापस करने या मुक़दमा ख़ारिज करने का निर्देश उचित आदेश माना जाएगा:। मुझे इस प्रश्न पर विचार करने का अवसर बंसराज और अन्य बनाम मोती और अन्य, 2019 एससीसी ऑनलाइन सभी 4238 के मामले में मिला। यदि न्यायालय को लगता है कि उसके पास मुकदमे की सुनवाई करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है और जैसा कि तय किया गया है, मुकदमा सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय, जो कि राजस्व न्यायालय है, द्वारा चलाया जा सकता है, तो सिविल कोर्ट को मुकदमे को खारिज नहीं करना चाहिए। वास्तव में, यदि सिविल कोर्ट को लगता है कि मुकदमा उसके द्वारा नहीं, बल्कि अधिनियम की धारा 331 के प्रावधानों के मद्देनजर राजस्व न्यायालय द्वारा संज्ञेय है, तो किसी पक्ष के मामले के गुण-दोष के मुद्दों पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया जा सकता है। सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत एक प्रावधान है, जो न्यायालय को अधिकार देता है, यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि मुकदमा उसके द्वारा नहीं बल्कि किसी अन्य न्यायालय द्वारा संज्ञेय है, तो वह संहिता के आदेश VII नियम 10 के तहत वादपत्र को वापस करने का निर्देश दे सकता है।

58.इसलिए, कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न संख्या 2 का उत्तर सकारात्मक है और यह माना जाता है कि ऐसे मामले में जहां सिविल कोर्ट को पता चलता है कि मुकदमा उसके द्वारा नहीं बल्कि राजस्व न्यायालय द्वारा संज्ञेय है, उचित आदेश देने का निर्देश देना है वादपत्र की वापसी और मुकदमा खारिज नहीं।

59.परिणाम स्वरूप यह अपील सफल होती है और अनमति प्रदान की जाती है आंशिक रूप से अनुमति दी गई। निचली अपीलीय अदालत द्वारा पारित डिक्री को अपास्त किया जाता है और विचारण न्यायालय को निर्देश देते हुये आदेश दिया गया है कि वह सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय में प्रस्तुत करने के लिए वादी को वाद वापस कर दे। लागत सामान्य है.

(2023) 1 ILRA 1099

अपीलीय क्षेत्राधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेकचौधरी

द्वितीयअपीलसंख्या- 676 वर्ष 1991

भारत संघ और अन्य ... अपीलकर्ता

बनाम

रामधनी प्रसाद ... प्रतिवादी

अपीलकर्ता के वकील:

श्री अमरेश सिंह, श्री अरविंद कुमार गोस्वामी, श्री लाल जी सिन्हा, श्री सिद्धेश्वरी प्रसाद, श्री तरुण वर्मा, श्री विवेक कुमार राय, श्री स्वराज प्रकाश

प्रतिवादी के वकील:

श्री मलिक सैयदउद्दीन, श्री आर के शाही, श्री एस के ओम

नागरिक कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 100 - रेलवे सुरक्षा बल अधिनियम, 1886 - धारा 6, 9 और 9(21)(i) - रेलवे सुरक्षा बल नियम, 1886 - नियम 20 और 43 - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 311 और 311(1): - सेवा – निष्कासन - मूल मुकदमा, Isok Is हटाने के आदेश को चुनौती देना - वाद का खारिज होना - सिविल अपील - प्रथम अपीलीय न्यायालय ने विचारण न्यायालय के फैसले को पलटदिया - द्वितीय अपील - कानून का सारभूत प्रश्न - 'क्या ए0एस0ओ0 / एडजुटेंट के पास वादी -प्रतिवादी के

खिलाफ सेवाओं से हटाने का आदेश पारित करने की शक्ति है, जिसे सी0एस0ओ0 के आदेश से रक्षक के पद पर नियुक्त किया गया था - अदालत ने पाया कि, वर्तमान मामले में बर्खास्त करने वाला अधिकारी अलग है लेकिन नियुक्तिप्राधिकारी के लिए कनिष्ठ/अधीनस्थ है, यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 के तहत एक कर्मचारी को प्रदान की गई सुरक्षा को संतुष्ट नहीं करता है – अवधारित किया, चूंकि अपीलकर्ता को मुख्य सुरक्षा अधिकारी द्वारा नियुक्त किया गया था और अपीलकर्ता की नियुक्ति की तारीख को मुख्य सुरक्षा अधिकारी के रैंक में अधीनस्थ अधिकारी द्वारा सेवा से हटा दिया गया था - यह माना जाना चाहिए कि सहायक सुरक्षा अधिकारी/एडजुटेंट के पास अपीलकर्ता को सेवा से हटाने की कोई शक्ति नहीं थी - द्वितीय अपील खारिज कर दी गई ।

(avuqPNassn & 6, 10, 12, 14)

द्वितीय अपील की अनुमति दी गई । (अ-11)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. यू.ओ.आई. औरअन्य बनाम चंद्रपाल पांडे, एआईआर 1993 एससी 205,

2. कृष्ण कुमार बनाम डिवीजनल असिस्टेंट इलेक्ट्रिक इंजीनियर और अन्य, (1979) 4 एससीसी 289,

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी द्वारा प्रदत्त)

1. वर्तमान द्वितीय अपीलद्वारा, अपीलकर्ता 1989 की सिविल अपील संख्या 30 (रामधनी प्रसाद और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य) में विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, गोरखपुर द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 07.12.1990 को चुनौती दे रहा है।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि इस दूसरी अपील में प्रतिवादी को मुख्य सुरक्षा अधिकारी के वारंट के तहत दिनांक 04.12.1979 के आदेश द्वारा रेलवे पुलिस बल में 'रक्षक' के पद पर नियुक्त किया गया था। इस के बाद प्रतिवादी को असिस्टेन्ट कमांडेंट नंबर 7 बटालियन, रेलवे सुरक्षा विशेष बल, लुमडिंग, असम द्वारा हस्ताक्षरित दिनांक 15.11.1982 के एक आदेश द्वारा बिना किसी आरोप पत्र की तामील के निलंबित कर दिया गया। निलंबन के दौरान, प्रतिवादी अपने गांव में स्थानांतरित हो गया जहां वह बीमार पड़ गया और उसे 29.12.1982 से 07.03.1983 तक रेलवे अस्पताल, गोरखपुर में भर्ती कराना पड़ा। इस बीच, 01.01.1983 को उनकी अनुपस्थिति में प्रतिवादी के खिलाफ विभागीय जांच शुरू की गई। दिनांक 26-02-1983 को प्रतिवादी को कारण बताओ नोटिस भेजा गया था जो प्राप्तकर्ता की अनुपलब्धता के कारण असेवित के रूप में वापस आ गया। 18.03.1983 को एडजुटेंट/सहायक कमांडेंट, रेलवे सुरक्षा विशेष बल, लमडिंग-असम ने प्रतिवादी को सेवा से हटाने का आदेश पारित किया। जब प्रतिवादी को अपने निष्कासन आदेश के बारे में पता चला, तो उसने कमांडेंट, रेलवे सुरक्षा विशेष बल, लुमडिंग-असम के समक्ष अपील की, जिसे 07.11.1984 को खारिज कर दिया गया।

3. उक्त आदेशों के खिलाफ, प्रतिवादी ने 1986 का मूल मुकदमा संख्या 2662 (रामधनी बनाम भारत संघ और दो अन्य) दायर किया जिस में राहत की मांग की गई कि एडजुटेंट, रेलवे सुरक्षा विशेषबल, लमडिंग- असम द्वारा पारित दिनांक 18.03.1983 के आदेश और सहायक कमांडेंट, रेलवेसुरक्षाविशेषबल, लुमडिंग- असम द्वारा पारित आदेश दिनांक 07.11.1984 को रद्दकर दिया जाए और उसे रेलवेसुरक्षाविशेषबल का सदस्य घोषित किया जाए। वादी-प्रतिवादी द्वारा मुकदमा खारिज कर दिया गया था। विचारण न्यायालय के फैसले के खिलाफ, वादी-प्रतिवादी ने एक अपील दायर की जो उसके पक्ष में तय की गई है। प्रथम अपीली यन्यायालय के आदेशसे व्यथित प्रतिवादियों ने यह द्वितीय अपील दायर की है।

4. प्रतिवादी-अपीलकर्तकि विद्वान वकील ने प्रथम अपीली यन्यायालय के फैसले को इस आधार पर नकार दिया कि अपीली यन्यायालय यह मानने में गलत था कि सहायक कमांडेंट/सहायक सुरक्षा अधिकारी द्वारा प्रतिवादी को हटाया नहीं जा सकता क्यों कि वादी -प्रतिवादी मुख्य सुरक्षा अधिकारी के आदेश से नियुक्त होता है। वह विचारण न्यायालय के इस निष्कर्ष का समर्थन करता है कि प्रतिवादी को सहायक कमांडेंट के आदेश से नियुक्त किया गया था और इसलिए उसे सहायक कमांडेंट/सहायक सुरक्षा अधिकारी द्वारा हटाया जा सकता है।

5. पक्षकारों के वकील को सुना और उनकी सहायता से रिकॉर्ड का अनुसरण किया।

6. इस द्वितीय अपील में विधि के सारवान प्रश्न के बाद निम्नलिखित प्रतिपादित किया गया है-

"क्या सहायक सुरक्षा अधिकारी/सहायक कमांडेंट/एडजुटेंट को मुख्य सुरक्षा अधिकारी के आदेश से 'रक्षक' के पद पर नियुक्त वादी-प्रतिवादी के विरुद्ध सेवा से हटाने का आदेश पारित करने की शक्ति है?"

7. प्रतिवादी-अपीलकर्ता के वकील का तर्क है कि विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष दिया है कि वादी-प्रतिवादी को सहायक कमांडेंट/सहायक सुरक्षाअधिकारी द्वारा नियुक्त किया गया था और इसलिए सहायक सुरक्षा अधिकारी को बर्खास्तगी का आदेश पारित करने का अधिकार है, हालांकि, प्रथम अपीली यन्यायालय ने इसे गलत तरी के से उलट दिया है। मामले के रिकॉर्ड के अवलोकन से पता चलता है कि अपीलीय न्यायालय ने मुख्य सुरक्षा अधिकारी द्वारा जारी किए गए वादी-प्रतिवादी के नियुक्ति पत्र पेपर नंबर 65-d का हवाला दे कर विचारण न्यायालय के उक्त निष्कर्ष को उलट दिया है। पेपर नंबर 26-x, जिसे विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा नियुक्ति पत्र के रूप में माना जाता है, वास्तव में सहायक कमांडेंट द्वारा अपने प्रशिक्षण के पूरा होने के बाद वादी-प्रतिवादी की पोस्टिंग के लिए जारी किया गया पोस्टिंग पत्र है। अपीलकर्ता के विद्वान वकील उक्त दस्तावेजों पर विवाद नहीं कर सके।

8. प्रतिवादी-अपीलकर्ता के वकील ने इस न्यायालय के समक्ष रेलवे सुरक्षा बल नियम, 1959 (इसके बाद "नियम, 1959" के रूप में संदर्भित) के नियम 20 और अनुसूची 1 को रखा है, जो रेलवे सुरक्षा बल के विभिन्न सदस्य/संवर्ग के लिए नियुक्ति प्राधिकारी प्रदान करता है। इसमें लिखा है,

"20. **नियुक्ति की शक्तियाँ**- बल के सदस्यों को नियुक्त करने के लिए वरिष्ठ अधिकारियों की शक्तियाँ वे होंगी जो अनुसूची 1 में विनिर्दिष्ट हैं।

अनुसूची ।

(नियम 20)

बल में नियुक्ति करने के लिए

वरिष्ठअधिकारियोंकीशक्तियां

मुख्यसुरक्षाअधिकारी	**सुरक्षाअधिकारी**	**सहायकसुरक्षाअधिकारी**
बलकेसभीसदस्य	उपनिरीक्षक, सहायकउपनिरीक्षक, प्रधानरक्षक, वरिष्ठरक्षक, रक्षक	सीनियररक्षक, रक्षक

अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि सहायक सुरक्षा अधिकारी/एडजुटेंट को रेलवे सुरक्षा बल में रक्षक नियुक्त करने के लिए नियम, 1959 के तहत भी अधिकार प्राप्त है। वह नियम, 1959 के नियम 43 और अनुसूची ॥ पर भरोसा करते हैं जो अनुशासनात्मक प्राधिकारी को रेलवे सुरक्षाबल के सदस्यों के विशिष्ट संवर्ग के लिए जुर्माना लगाने और अनुशासनात्मक आदेश पारित

करने का अधिकार प्रदान करते हैं। नियम 43 और अनुसूची ॥ के प्रासंगिक भाग में लिखा है,

"**43 अनुशासनिक प्राधिकारी** - बल के किसी सदस्य के संबंध में कोई विशेष शास्ति अधिरोपित करने या कोई अनुशासनिक आदेश पारित करने के प्रयोजन के लिए अनुशासनिक प्राधिकारी अनुसूची ॥ में इस निमित्त विनिर्दिष्ट प्राधिकारी होगा जिस के प्रशासनिक नियंत्रण में सदस्य सेवारत है और इसमें ऐसे प्राधिकारी से उच्चतरप्राधिकारी सम्मिलित होगा।"

अनुसूची ॥

(नियम 40 और 43 देखें)

अनुशासनिक प्राधिकारियों की अनुसूची और बल के सदस्यों के विभिन्न वर्गों और ग्रेडों और रैंकों के संबंधमें विभिन्न अनुशासनिक आदेश पारित करने की उनकी शक्तियां।

क्र.सं.	**अनुशासनात्मकआदेशकीप्रकृति**	**महानिरीक्षक**	**सुरक्षाअधिकारीकेप्रमुख**	**सुरक्षाअधिकारी**	**सहायक सुरक्षाअधिकारी**
1.	निलंबन	बलकेसभीसदस्य	बलकेसभीसदस्य	बलकेसभी सदस्य	निरीक्षकों औरउपनिरीक्षकोंको छोड़करबलकेसभी सदस्य।
2.	(a) पदच्युति	**ड्ड**	ड्ड	निरीक्षकों औरउपनिरीक्षकोंको छोड़करबलकेसभी सदस्य।	कोईशक्ति नहीं
	(b) हटाना	**ड्ड**	**ड्ड**	**ड्ड**	वरिष्ठरक्षकऔररक्षक।

अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने आगे कहा कि अनुसूची । और ॥ के साथ नियम 20 और 43 के संयुक्त पठन से, यह स्पष्ट है कि रेलवे पुलिस बल के एक रक्षक को एक सहायक सुरक्षा अधिकारी/एडजुटेंट द्वारा हटाया जा सकता है, भले ही रक्षक को मुख्य सुरक्षा अधिकारी के हाथ और मुहर के तहत नियुक्त किया गया हो। वह **भारतसंघ और अन्य बनाम चंद्रपाल पांडे; एआईआर 1993 एस सी 205** के मामले में सुप्रीमकोर्ट के फैसले पर भी भरोसा करता है।

9. वादी-प्रतिवादी के वकील प्रथम अपीली यन्यायालय के फैसले का समर्थन करते हैं। उनका तर्क है कि यह एक स्थापित कानून है कि बर्खास्तगी/हटाने का आदेश केवल नियुक्ति प्राधिकारी के समकक्ष या उससे बड़े प्राधिकारी द्वारा पारित किया जा सकता है। सहायक सुरक्षाअधिकारी मुख्य सुरक्षाअधिकारी के अधीनस्थ होने के कारण वादी-प्रतिवादी को हटाने का आदेश पारित नहीं कर सकता है। वह कृष्ण कुमार बनाम डिवीजनल असिस्टेंट इलेक्ट्रिकइंजीनियर और अन्य; (1979) 4 एससीसी 289 के मामले में सुप्रीमकोर्ट के फैसले पर भरोसा करता है।

10. अपील कर्ता के वकील का यह तर्क कि सहायक सुरक्षा अधिकारी को रक्षक नियुक्त करने का अधिकार है, इसलिए, वह किसी भी रक्षक को हटाने का आदेश भी

पारित कर सकता है,यह पूरी तस्वीर पेश नहीं करता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि एक सहायकसुरक्षाअधिकारीएकरक्षककोसेवासेहटासकताहै, लेकिनपहलेयहदेखनाहोगाकिऐसेरक्षककीनियुक्तिप्राधिकारीकौनथा। संविधानकेअनुच्छेद 311 (1) द्वाराकिसीकर्मचारीकोप्रदानकीगईसुरक्षामेंयहप्रावधानहैकि सेवासेहटाने/बर्खास्तगीकाआदेशकेवलनियुक्तिप्राधिकारी यानियुक्तिप्राधिकारीकेवरिष्ठप्राधिकारीद्वारापारितकियाजासकताहै। वर्तमानमामलेमेंवादी-प्रतिवादीकोमुख्यसुरक्षाअधिकारीद्वारानियुक्तकियागयाथा औरसहायकसुरक्षाअधिकारीद्वाराहटादियागयाथा, जोरेलवेपुलिसबलकेपदानुक्रममेंमुख्यसुरक्षाअधिकारीकेअधीनस्थहै, यहभारतीयसंविधानकेअनुच्छेद 311 द्वाराकिसीकर्मचारीकोदीगईसुरक्षाकोसंतुष्टनहींकरताहै।

11. चंद्रपालपांडे (सुप्रा) मामलेमेंसुप्रीमकोर्टकाफैसला, जिसपरअपीलकर्ताकेवकीलनेभरोसाकियाथा, वर्तमानमामलेकेतथ्योंसेअलगहै। उसमामलेमें, प्राथमिकमुद्दायहथाकिक्याकेवलमुख्यसुरक्षाअधिकारीकोहीरक्षकोंकीनियुक्तिकाअधिकारथाऔरइसलिएसहायकसुरक्षाअधिकारीकेहाथऔरमुहरकेनीचेरक्षककीकोईभीनियुक्तिअवैधथी। पूर्वोक्तनिर्णयकेप्रासंगिकपैराग्राफ 14, 15, 16 और 19 निम्नानुसारहै,

"14. अधिनियमकोपढ़नेपर, विशेषरूपसेधारा 6 सेपताचलेगाकिअधिनियममेंकहागयाहैकिबलकेसदस्योंकी नियुक्तिमुख्यसुरक्षाअधिकारीकेपासहोगी, जिसेअधिनियमकेतहतबनाएगएनियमोंकेअनुसारशक्तियों काप्रयोगकरनाचाहिए। धारा 6 केपरंतुकमेंअन्यप्राधिकारियोंकोनियुक्तिकरनेकेलिएप्राधिकृतकिएजानेपरविचारकियागयाहैजैसाकिमुख्यसुरक्षाअधिकारीद्वाराऐसेअधिकारियोंकोप्रत्यायोजितकियाजासकताहै। इसलिए, इसमेंकोईसंदेहनहींहैकिअधिनियममेंबलकेसदस्योंकीनियुक्ति न केवलमुख्यसुरक्षाअधिकारीद्वाराबल्किअन्यलोगोंद्वाराभीकरनेपरविचारकियागयाहै। इसलिए, सवालयहउठताहैकिअभिव्यक्ति "बलकेसदस्योंकीनियुक्तिमुख्यसुरक्षाअधिकारीकेसाथरहेगी" काअर्थक्याहै? इसधारामेंअभिव्यक्ति "रेस्ट" नियमोंकेप्रावधानोंकेअधीनमुख्यसुरक्षाअधिकारीकेपासनियुक्तिकेसमग्रनियंत्रणकेविचारकोव्यक्तकरताहै। जैसाकिहमनेपहलेकहाहै, अधिनियमकीधारा 6 ऐसेअधिकारियोंद्वाराबलकेसदस्योंकीनियुक्तिपरविचारकरतीहैजोअधिकृतहोसकतेहैं। धारा 6 केपरंतुकमेंमुख्यसुरक्षाअधिकारीद्वाराप्रत्यायोजनकेविशेषरूपसेलिखितआदेशपरविचारकियागयाहै, लेकिनयहउक्तशक्तिप्रदानकरनेकेलिएनियमबनानेवालेप्राधिकारीकीशक्तिसेकमनहींहै। हमारीरायमेंयहधाराऔरपरंतुकनियुक्तिकीशक्तिकेवलमुख्यसुरक्षाअधिकारीकेपासनहींहै। विचारयहहैकिनियुक्तिकेमामलेमेंमुख्यसुरक्षाअधिकारीकासमग्रनियंत्रणहोगाऔरउसनियंत्रणकाप्रयोगनियमोंकेअनुसारकियाजाएगा। यदिनियमोंमेंअन्यवरिष्ठअधिकारियोंद्वारानियुक्तिकाप्रावधानहै, तोइसेअधिनियमयाअधिनियमकेउद्देश्योंकाअपमाननहींकहाजासकताहै।

15. अधिनियमकीधारा 9 कोपढ़नेसेयहभीपताचलताहैकियहकेवलसंविधानकेअनुच्छेद 311 केप्रावधानोंऔरऐसेनियमोंकेअधीनहैजोकेंद्रसरकारअधिनियमकेतहतबनासकतीहै, किकोईभीवरिष्ठअधिकारीअधिनियमकीधारा 9 (1) (i) मेंउल्लिखितशक्तियोंकाप्रयोगकरसकताहै। यदिकेवलमुख्यसुरक्षाअधिकारी,

जोवरिष्ठअधिकारियोंमेंसेएकहै, केपासहीइसपरिकल्पनापरबर्खास्तगीकीशक्तियांहोतीकिवहअकेलेहीबलकेसदस्योंकोनियुक्तकरनेकेलिएसक्षमथा, तोअधिनियमकीधारा 9 कोउसतरीकेसेशब्दबद्धनहींकियागयाहोताजिसतरहसेइसे अधिनियमितकियागयाहै।

16. अधिनियमकीधारा 21 सेयहस्पष्टहैकिनियमबनानेकीकेंद्रसरकारकीशक्तिअधिनियमकेउद्देश्योंकोपूराकरनेकेलिएहै। अधिनियमकेउद्देश्योंमेंसेएकनिश्चितरूपसेबलकेसदस्योंकी भर्तीहैऔरइसलिए, नियमनियुक्तिप्राधिकारीकेलिएतबतकप्रावधानकरसकतेहैं जबतककियहअधिनियमकेस्पष्टप्रावधानोंकाउल्लंघननहींकरताहै।

19. मामले के इस दृष्टिकोण में हमारा विचार है कि चूंकि उपरोक्त दो मामलों में दोनों प्रतिवादी सहायक सुरक्षा अधिकारी द्वारा नियुक्त किए गए थे, जो उन्हें हटा भी सकते थे और इसलिए, उनकी बर्खास्तगी भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 या अधिनियम का उल्लंघन नहीं है।

चंद्रपालपांडे (सुप्रा) में, जिस रक्षक की सेवा सहायक सुरक्षा अधिकारी द्वारा बर्खास्त की गई थी, उसे भी सहायक सुरक्षा अधिकारी द्वारा नियुक्त किया गया था और इसलिए उसकी बर्खास्तगी का आदेश नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा दिया गया था। वर्तमान मामले के विपरीत जहां न केवल बर्खास्त करने वाला अधिकारी अलग है, बल्कि नियुक्ति प्राधिकारी के कनिष्ठ/अधीनस्थ है।

12. इसके अलावा, भले ही नियुक्ति की शक्ति बाद में अधीनस्थ अधिकारियों को बढ़ा दी गई हो, अनुच्छेद 311 के तहत एक कर्मचारी को संवैधानिक संरक्षण उसकी नियुक्ति की तारीख से ही लागू था। हटाने/बर्खास्तगी का आदेश पारित करने के लिए पात्र उपयुक्त प्राधिकारी का पता लगाने के लिए, नियुक्ति की तारीख को मौजूद मामलों की स्थिति प्रासंगिक है। इस संबंध में कानून कृष्ण कुमार (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट द्वारा तय किया गया है, पैराग्राफ 6 और 7 में यह निम्नानुसार आयोजित किया गया है,

"6. इसके अलावा, किसी विशेष नियुक्ति करने की शक्ति का प्रत्यायोजन प्रतिनिधि की पदानुक्रमित स्थिति को बढ़ाता या सुधारता नहीं है। एक अधिकारी दूसरे के अधीनस्थ उस के रैंक में उसके बराबर नहीं होगा क्यों कि वह उस दूसरे की कुछ शक्तियों के अधिकारी होने के लिए आया था। दूसरे शब्दों में, डिवीजनल इंजीनियर मुख्य इलेक्ट्रिकल इंजीनियर के रैंक में अधीनस्थ होने के लिए केवल इसलिए नहीं रहता है क्योंकि कुछ पदों पर नियुक्ति करने की शक्ति उसे सौंप दी गई है।

7. चूंकि अपीलकर्ता को मुख्य विद्युत अभियंता द्वारा नियुक्त किया गया था और प्रतिवादी 1 द्वारा पारित एक आदेश द्वारा सेवा से हटा दिया गया है, जो किसी भी दर पर, अपीलकर्ता की नियुक्ति की तारीख को मुख्य विद्युत अभियंता के रैंक में अधीनस्थ था, यह माना जाना चाहिए कि प्रतिवादी 1 के पास अपीलकर्ता को सेवासे हटाने की कोई शक्ति नहीं थी। यह आदेश संविधान के अनुच्छेद 311 (1) के प्रावधानों का स्पष्ट उल्लंघन है।

13. प्रथम अपीलीय न्यायालय वादी-प्रतिवादी की अपील की अनुमति देने में सही था। अपने फैसले में, प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अनुच्छेद 311 (1) में निहित एक कर्मचारी को दिए गए संरक्षणको सही ढंग से लागू किया है और विचारण न्यायालय के फैसले को उलट दिया है।

14. उपरोक्त अवलोकन के आलोक में यह द्वितीय अपील **खारिज** की जाती है। प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा दिनांक 07.12.1990 के निर्णय की पुष्टि की जाती है।

(2023) 1 ILRA 1104

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल

दिनांक: इलाहाबाद 31.08.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय,

द्वितीयअपीलक्रमांक 732/2016

उरेहा ....अपीलकर्ता

बनाम

भरोसे और अन्य. **...**प्रत्यार्थियों

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

- श्री आनंद कुमार श्रीवास्तव

प्रत्यार्थियों के लिए अधिवक्ता: -

दिवानी कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 100 - आदेश 41 नियम 11, 31 –उ.प्र.जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा - 331:- वादी की द्वितीय अपील - क्रमशः अवर नयायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को चुनौती - स्थायी निषेधाज्ञा और बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए मुकदमा - दोनों को अवर न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया है - कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न की जांच करते समय, न्यायालय ने पाया - दीवानी वाद की शुरुआत की तारीख पर, न तो वादी - अपीलकर्ता का नाम राजस्व अभिलेखों में दर्ज किया गया था और न ही उनके पास उक्त संपत्ति पर कब्जा था - इस प्रकार, विचाराधीन मुकदमा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 331 द्वारा वर्जित है - इस लिए, वादी अपीलकर्ता दीवानी मुकदमा नहीं चला सकता है, बल्कि वादी अपने अधिकारों और शीर्षक की घोषणा के लिए राजस्व न्यायालय के उपाय का लाभ उठा सकता है - द्वितीय अपील में योग्यता (merit) न हीं है और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 नियम 11 के तहत खारिज कर दी गई है।

(अनुछेद - 12, 16, 18)

द्वितीयअपीलखारिज। (ई-11)

उद्धृतमामलोंकीसूची:

1. श्रीरामऔरअन्यबनामप्रथमए.डी.जे. एवंअन्य, जेटी 2001(2) एससी 573,
2. अज़हरहसनऔरअन्यबनामजिलान्यायाधीश,सहारनपुरएवंअन्य, (1998) 3 एससीसी246,
3. कमलाबनामश्रीमती. गुलाबीदेवीएवंअन्य, (2015) 127आरडी 110,
4. कमलाप्रसादएवंअन्य।बनामकृष्णकांतपाठकएवंअन्य, 2007 इलाहाबादसिविलजर्नल 1275

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय द्वारा दिया गया)

1. अपीलकर्ताओंकेविद्वानअधिवक्ताश्रीआनंदकुमारश्रीवास्तवकोसुनागया।
2. यहदूसरीअपीलवादीपक्षकीओरसेफैसलेकेखिलाफसिविलप्रक्रियासंहिताकीधारा 100 केतहतदायरकीगईहैऔरअतिरिक्तजिलान्यायाधीश, कोर्टसंख्या 4, बस्तीद्वारादिनांकित 7.4.2016 और 16.4.2016 कोडिक्रीपारितकीगई, जिसमेंमूलवादसंख्या 571/1988 सेउत्पन्नसिविलअपीलसंख्या 70/2013 कोखारिजकरदियागयाजिसमेंविचारणन्यायालय नेदिनांकित 28.10.2013 और 9.11.2013 केफैसलेऔरडिक्रीद्वारास्थायीनिषेधाज्ञाऔरबि

अनूदित

3. क्रीविलेखकोरद्दकरनेकेलिएवादीकेमुकदमे कोखारिजकरदिया।

4. अपीलकर्ताओंनेदूसरीअपीलकेज्ञापनमेंकानून केनिम्नलिखितमहत्वपूर्णप्रश्नतैयारकिएहैं: -

(क) *क्याप्रत्यार्थिसंख्या 1 द्वाराविरासतमेंमिलीपैतृकसंपत्तिकानिपटानउसकीपत्नी (वादी) केजीवनकालमेंउसकेससुरालीजनकेबेटे कोविक्रयविलेखद्वाराकियाजासकताहै?*

(ख) *क्याप्रकरणक्र. 1, 10 और 12 कानिर्णयनीचेकीन्यायालयोंद्वाराअभिलेखोंपरमौजूदसाक्ष्योंकेमहत्वकेविरुद्धगलततरीकेसेकियागयाहै?*

(ग) *क्यादिनांक 10.2.1994 कीवसीयत, जिसेएकबारट्रायलकोर्टनेपार्टियोंकेसाक्ष्य कीजांचकेबादवैधघोषितकरदियाथाऔर प्रत्यर्थियोंद्वाराइसकेखिलाफकोईअपील नहींकीगईथी,इसलिए, न्यायालयकायहनिष्कर्षकिवसीयतपरपक्षकारोंकोसाक्ष्यकीआवश्यकताहै?*

5. वादीमामलासंक्षेपमेंयहहैकिवादी (उरेहा) प्रत्यार्थिसंख्या 1 (भरोसे) कीपत्नीहै।वादीऔरप्रत्यार्थिसंख्या 1 केविवाहसेकोईपुरुषमुद्दानहींथा, बल्किउनकेविवाहसे 3 बेटियांथीं, जोविवाहितहैंऔरअपनेपरिवारकेसाथअपनेससुरालमेंरहरहीहैं।वादपत्रमेंआगेउल्लेखकियागया हैकिप्रत्यार्थिसंख्या 2 नेविवादितभूमिकेसंबंधमेंप्रत्यार्थिसंख्या 1 सेधोखाधड़ीकरकेविक्रयपत्रनिष्पादितकरायाहै, तदनुसार, वादीद्वारानिषेधाज्ञाकामुकदमादायरकियागयाथा औरबादमेंविक्रयपत्रकोरद्दकरनेकीराहतभीवाद पत्रमेंजोड़दीगई।

6. लिखितबयानमें, प्रत्यर्थियोंनेवादीकेआरोपोंसेइनकारकियाऔरअपनेअतिरिक्तबयानमें, यहउल्लेखकियाहैकिवादीकेपासमुकदमादायर करनेकाकोईकारणनहींहै।आगेयहउल्लेखकिया गयाहैकिप्रत्यार्थिसंख्या 1 द्वाराविक्रयविलेखप्रत्यार्थिसंख्या 2 केपक्षमेंसहीढंगसेनिष्पादितकियागयाथाक्योंकि उसेपैसेकीआवश्यकताथी।पंजीकृतविक्रयपत्रके निष्पादनकेआधारपरप्रत्यार्थिसंख्या2 काविवादितसंपत्तिपरकब्जाहै, अत: प्रार्थनाकीगयीकिवादखारिजकियेजानेयोग्यहै।

7. मुकदमेमेंविचारणन्यायालयकेसमक्षनिम्नलिखितमुद्देतयकिएगए:-

1- क्यावादिनीप्रत्यार्थिगणकोवादपत्रमेंलिखित कथनोंकेआधारपरविवादितसंपत्तिबेचनेसे मनाकरवापानेकीअधिकारीहै?

2- क्यावादिनीकोवाददायरकरनेकाअधिकार नहींहै?

3- क्याइसन्यायालयकोप्रस्तुतवाददेखनेकाक्षेत्राधिकारप्राप्तनहींहै?

4- क्यावादधारा 331 उत्तरप्रदेशजमींदारीविनाशएवंभूमिसुधार अधिनियमसेबाधितहै?

5- क्यावादमौनस्वीकृतएवंविबंधनकेसिद्धांतसे बाधितहै?

6- क्यावादअल्पमूल्यांकितहै?

7- क्याप्रदत्तन्यायशुल्कअपर्याप्तहै?

8- क्यावादधारा 34 विशिष्टअनुतोषअधिनियमसेबाधितहै?

9- क्यावादिनीकिसीअन्यअनुतोषप्राप्तकरने कीअधिकारिणीहै?

10- क्यारामदेवकेपक्षमेंकियागयाबैनामादिनांक 21.5.88 मसूखकिएजानेयोग्यहै?

11- क्याप्रस्तुतवादधारा 41 विशिष्टअनुतोषअधिनियमसेबाधितहै?

12- क्याउरेहानेईश्वरदेईकेहकमेंवसीयतनामा दिनाकित 10.02.94 कोलिखाहैयदिहांतोप्रभाव?

13- क्याप्रस्तुतवादप्रॉपर्लीप्रिजेंटडएवंवेरीफाइड है?

14- क्यादावावादीसंशोधनकेबादअल्पमूल्यांकितहैतथाप्रदत्तन्यायशुल्कअपर्याप्तहै?

15- क्यादावा,वादीकलबाधितहै?

16- क्याप्रत्यर्थियोंधारा 35(अ) सिविलप्रक्रियासंहितास्पेशलकास्टपानेकी अधिकारिणीहै?

8. दोनोंपक्षोंनेअपनेमामलोंकेसमर्थनमेंमौखिकऔरदस्तावेजीसाक्ष्यपेशकिए।प्रत्यर्थियोंकीओरसे, दस्तावेजीसाक्ष्यकेरूपमेंराजस्वप्रविष्टियाँयहप्रदर्शितकरनेकेलिएदायरकीगईंकिवादीकोराजस्व अभिलेखोंमेंदर्जनहींकियागयाथा, बल्किप्रत्यार्थिसंख्या 1 कोराजस्वअभिलेखोंमेंदर्जकियागयाथा, इसप्रकार, निषेधाज्ञाकेलिएमुकदमाऔरप्रत्यार्थिसंख्या 1 केकहनेपरविक्रयपत्रकोरद्दकरनापोषणीयनहीं था।विचारणन्यायालयनेवादक्रमांक 1 कानिर्णयकरतेसमयइसतथ्यकोदर्जकियाहैकिवादीराजस्वअभिलेखोंमेंविवादितभूखंडकेमालिक केरूपमेंदर्जथा, इसप्रकार, वादीविवादमेंभूखंडकेविक्रयपत्रकोनिष्पादितकरनेकापूर्णहकदारथा।विचारणन्यायालयनेवादसंख्या 10 परनिर्णयकरतेसमयइसतथ्यकोदर्जकियाहैकिप्रत्यार्थिसंख्या 1 द्वारा 21.5.1988 कोप्रत्यार्थिसंख्या 2 केपक्षमेंनिष्पादितबिक्रीविलेखरद्दकरनेयोग्यनहीं है।कथितविक्रयविलेखकेनिष्पादनकेसमय, प्रत्यार्थिसंख्या 1 स्वस्थमानसिकस्थितिमेंथाविचारणन्यायालयनेवादक्रमांक 3 और 4 परनिर्णयकरतेसमयइसतथ्यकास्पष्टनिष्कर्षदर्ज कियाहैकिवादक्रमांक 3 और 4 कानिर्णयवादीकेपक्षमेंकियागयाहैक्योंकिवादी कानामराजस्वअभिलेखोंमेंदर्जनहींकियागयाथा औरनहीवादीकेपासविवादितसंपत्तिकाकब्जाहै। इसप्रकार, मुकदमाउत्तरप्रदेश जमींदारी उन्मूलनऔरभूमि सुधारअधिनियमकीधारा 331 द्वारावर्जितहै।अन्यमुद्दोंपरभीतदनुसारनिर्णयलियागयाऔरविचारणन्यायालयनेदिनांक 28.10.2013 केनिर्णयऔरडिक्रीद्वारावादीकेमुकदमेकोखारिजकरदिया।

9. विचारणन्यायालयकेफैसलेऔरडिक्रीकेखिलाफ, वादीनेसिविलअपीलसंख्या 70/2013 दायरकी, जिसमेंनिचलीअपीलीयन्यायालयनेसिविलप्रक्रिया संहिताकेआदेश 41 नियम 31 केतहतदिएगएनिर्धारणकेबिंदुतैयारकिएहैं।तथा निर्धारणकाबिन्दुक्रमांक 5 तयकरतेसमय, निचलीअपीलीयन्यायालयनेमानाहैकिसिविलको

र्टकेपासइसमुद्देपरफैसलादेनेकाकोईअधिकारक्षेत्रनहींहैक्योंकिवादीकानामराजस्वअभिलेखोंमेंदर्जनहींहैऔरनहीबिक्रीविलेखकेनिष्पादनमेंकोई अवैधताहै, बल्किबिक्रीविलेखप्रत्यार्थिसंख्या 1 काएकमानसिककार्यहै।सिविलअपीलकोनिचली अपीलीयन्यायालयनेदिनांक 7.4.2016 केफैसलेऔरडिक्रीद्वाराखारिजकरदियाथा।

10. अपीलकतकिअधिवक्तानेकहाकिविवादमेंसंपत्तिपैतृकसंपत्तिहैजोप्रत्यार्थिसंख्या 1 कोविरासतमेंमिलीहै।क्योंकि, वहवादीजोप्रत्यार्थिसंख्या 1 कीपत्नीहै, केलिएकोईप्रावधानकिएबिनाअपनेदामादकेपक्षमेंविक्रयविलेखनिष्पादितनहींकरसकताहै।

11. मैंनेअपीलकर्ताओंकेविद्वानअधिवक्ताद्वारादिएगएतर्कोंपरविचारकियाहैऔरसाथहीअभिलेखों काअवलोकनभीकियाहै।

12. ऊपरउद्धृतअपीलकेज्ञापनमेंअपीलकर्ताओं केविद्वानअधिवक्ताद्वाराकानूनकेजोमहत्वपूर्णप्रश्नतैयारकिएगएहैं, उनकीभीइसन्यायालयद्वाराजांचकीगईहै।

13. इसतथ्यपरकोईविवादनहींहैकिसिविलवादसंस्थितहोनेकीतिथिपरवादीकानामराजस्वअभिलेखोंमेंदर्जनहींकियागयाथाबल्किप्रत्यार्थिक्रमांक 1 कानामराजस्वअभिलेखोंमेंदर्जकियागयाथा।इस बिंदुपरकानूनअच्छीतरहसेस्थापितहैकियदिवादी कानामराजस्वअभिलेखोंमेंदर्जनहींहै, तोवहसिविलमुकदमानहींचलासकताहै, बल्किवादीअपनेअधिकारोंऔरशीर्षककीघोषणा केलिएराजस्वन्यायालयकालाभउठासकताहै।सर्वोच्चन्यायालयने**श्रीरामऔरअन्यबनामप्रथमअपरजिलान्यायाधीशऔरअन्य, जेटी 2001(2) एससी 573**केमामलेमेंकहाहैप्रथमदृष्टयाशीर्षकऔरकब्ज़ारखनेवालेअभिलेखोंकिएगएकार्यकालधारक , प्रत्यार्थिकेपक्षमेंनिष्पादितबिक्रीविलेखकोरद्दकरनेकामुकदमादायरकरनेकाफैसलाविचारणन्यायालयद्वाराकियाजासकताहै, लेकिनयदिव्यक्तिअभिलेखोंधारकनहींहैतोस्थिति अलगहोगी।फैसलेकीकंडिकाक्रमांक 7 इसप्रकारहै:-

"ऊपर उद्धृत निर्णयों के विश्लेषण पर, हमारी राय है कि जहां एक अभिलेखों किए गए कार्य कालधारक के पास प्रथम दृष्टया स्वामित्व है और कब्जे में धोखाधड़ी या प्रतिरूपण के आधार पर प्राप्त बिक्री विलेखको रद्द करने के लिए दीवानी न्यायालय में मुकदमा दायर करने के कारण राजस्व न्यायालय में घोषणा के लिए मुकदमा दायर करने का निर्देश नहीं दिया जा सकता है। ऐसे मामले में, प्रथम दृष्टया, दर्ज कार्यकालधारक काशीर्ष संदेह के घेरे में नहीं है। उसे भूमि पर अपने स्वामित्व की घोषणा की आवश्यकता नहीं है। स्थिति अलग होगी जहां कोई व्यक्ति, जो अभिलेखोंधारक नहीं है, धोखाधड़ी या प्रतिरूपण के आधार पर सिविल न्यायालय में मुकदमा दायर करके बिक्री विलेख को रद्दकरने की मांग करता है। वहां आवश्यक रूप से वादी को अपने स्वामित्व की घोषणा की मांग करनी होती है और इसलिए, उसे राजस्व न्यायालय से संपर्क करने के लिए निर्देशित किया जा सकता है, क्योंकि बिक्री विलेख शून्य होने के कारण उसे घोषणा

और कब्जे के लिए राहत देने के लिए इसे नजरअंदाज किया जाना चाहिए।"

14. **अज़हरहसनऔरअन्यबनामजिलान्यायाधीश, सहारनपुरऔरअन्य, (1998) 3 एससीसी 246**केमामलेमेंशीर्षन्यायालयनेमानाहैकिसिविलकोर्टकोऐसेमुकदमेपरविचारकरनेकाकोईअधिकारक्षेत्रनहींहैजहांवादीकानामराजस्व अभिलेखोंमेंदर्जनहींहै।

15. **कमलाबनामश्रीमतीगुलाबीदेवीऔरअन्य, (2015) 127 आरडी 110**केमामलेमेंइसन्यायालयनेमानाहैकिसिविलकोर्टकेपासऐसेमामलेमेंकोईक्षेत्राधिकारनहींहैजहांवादीराजस्वअभिलेखोंमेंदर्जनहींहैऔर स्थायीनिषेधाज्ञाकेलिएमुकदमादायरकरताहै।

16. निचलीअपीलीयन्यायालयने**(कमलाप्रसाद औरअन्यबनामकृष्णकांतपाठकऔरअन्य)** 2007 के**इलाहाबादसिविलजर्नलपृष्ठ 1275** मेंरिपोर्टकिएगएमामलेपरभीविचारकियाहै।जहांसर्वोच्चन्यायालयनेमानाहैकिआबादीऔरकृषिभूमिकेसंबंधमेंविक्रयपत्रकोरद्दकरनेकामुकदमाराजस्वन्यायालयमेंचलेगाक्योंकिवादीकानामराजस्वअभिलेखोंमेंदर्जनहींपायागयाथा।

17. विचारणन्यायालयकेसाथ-साथनिचलीअपीलीयन्यायालयोंनेमुद्दोंऔरनिर्धारणकेबिंदुपरनिर्णयलेतेहुएपक्षोंद्वाराभरोसाकिएगएसबूतोंपरपूरीतरहसेविचारकियाहैऔरइसतथ्यकोदर्जकियाहैकिवादीकानामराजस्व अभिलेखोंमेंदर्जनहींकियागयाथा, इसप्रकार, स्थायीनिषेधाज्ञाऔरकब्जेकेलिएसिविलमुकदमाउत्तरप्रदेश जमींदारी उन्मूलनऔरभूमिसुधारअधिनियमकीधारा 331 द्वारावर्जितहै।नीचेदीगईन्यायालयोंनेइसतथ्यकोभीदर्जकियाहैकिवादीविवादितभूखंडपरकब्जेमेंनहींहैऔरप्रत्यार्थिसंख्या 2 केपक्षमेंप्रत्यार्थिसंख्या 1 (अभिलेखोंधारक) द्वारानिष्पादितबिक्रीविलेख, प्रत्यार्थिसंख्या 1 कास्वस्थमानसिककार्यथा।इसप्रकार, वादीद्वारादायरमुकदमाऔरसिविलअपीलकोनीचेकीन्यायालयोंद्वाराएकसाथखारिजकरदियागयाथा।

18. प्रत्येकपरविचारणन्यायालयद्वारादर्जकिएगएनिष्कर्षोंपरविचारकरनेकेबादऔरप्रत्येकमुद्देकेसाथ-साथनिचलीअपीलीयन्यायालयद्वारानिर्धारणके प्रत्येकबिंदुपर, अपीलकर्ताओंद्वाराअपीलकेज्ञापनमेंतयकिएगएऔरसाथहीउनकेद्वारातर्ककिएगएकानूनकेकोईभीमहत्वपूर्णप्रश्नदूसरीअपीलमेंनहींउठतेहैं।

19. दूसरीअपीलमेंयोग्यतानहींहैऔरइसेआदेश 41 नियम 11 सिविलप्रक्रियासंहिताकेतहतखारिजकियाजाताहै

अनुवादित

(2023) 1 ILRA 1108

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 05.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव

रिट-ए संख्या 8161/2022

भारत संघ एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, लखनऊ एवं अन्य ...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:
सुधांशु चौहान

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता:
प्रवीण कुमार

क. सेवा कानून - स्थानांतरण - अनुच्छेद 226 के तहत हस्तक्षेप का दायरा - कानून का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि राज्य की कोई भी कार्रवाई मनमानी से मुक्त होनी चाहिए और यह निष्पक्षता के सिद्धांतों के अनुरूप होना चाहिए। प्रशासनिक कार्रवाई में निष्पक्षता या गैर-मनमानापन की अवधारणा अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त है। (पैरा 16, 17)

स्थानांतरण सेवा की अनिवार्यता है और यह नियोक्ता का विशेषाधिकार और अधिकार है, इस मामले में रेलवे अपने कर्मचारियों या अधिकारियों को सार्वजनिक हित और प्रशासनिक अत्यावश्यकताओं सहित विभिन्न आधारों पर किसी भी स्थान पर स्थानांतरित कर सकता है।**किसी कर्मचारी के स्थानांतरण से संबंधित मामले में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय द्वारा न्यायिक जांच का दायरा बहुत सीमित है।** जब तक अदालत यह नहीं पाती कि स्थानांतरण आदेश द्वेष या दुर्भावना के कारण किया गया है या यह मनमानेपन से प्रभावित है, तब तक अदालत आम तौर पर स्थानांतरण आदेश में हस्तक्षेप नहीं करेगी। (पैरा 15)

ख. **परिपत्र दिनांक 12.12.2018: रेलवे बोर्ड द्वारा 31.08.2015 को जारी व्यापक स्थानांतरण नीति दिशानिर्देशों का परिशिष्ट-** परिपत्र में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि दो साल की अवधि के भीतर सेवानिवृत्त होने वाले अधिकारियों को आम तौर पर उनकी वर्तमान पोस्टिंग से परेशान नहीं किया जाना चाहिए। (पैरा 12, 13)

यद्यपि परिपत्र दिनांक 12.12.2018 केवल व्यापक स्थानांतरण नीति दिशानिर्देशों का एक हिस्सा है और इसे रेलवे बोर्ड द्वारा किसी भी अधिनियम द्वारा निहित किसी वैधानिक प्राधिकार के तहत जारी नहीं किया गया है, यह वैधानिक नहीं है, तथापि, <u>किसी भी द्वारा लिए गए नीतिगत निर्णय रेलवे बोर्ड सहित प्राधिकरण का सामान्यतः पालन किया जाना चाहिए।</u>

सरकार या किसी अन्य राज्य के प्राधिकारियों की किसी भी कार्रवाई का मूल्यांकन और परीक्षण संबंधित प्राधिकारी/सरकार/राज्य तंत्र द्वारा जारी किए गए दिशानिर्देशों के आधार पर किया जाना चाहिए। आख़िरकार नीति-निर्माताओं द्वारा कोई भी नीति उल्लंघन के लिए नहीं बल्कि पालन करने और आदर और सम्मान देने के लिए बनाई और जारी की जाती है। यह स्पष्ट है कि इस तरह के परिपत्र या ऐसे किसी अन्य स्थानांतरण नीति दिशानिर्देश सरकारी कर्मचारी को अपनी वर्तमान पोस्टिंग पर तैनात रहने का कोई अधिकार नहीं देते हैं, भले ही वह

दो साल की अवधि के भीतर सेवानिवृत्त होने वाला हो। तथापि, **परिपत्र दिनांक 12.12.2018 में निहित नीतिगत निर्णय का अधिकारियों द्वारा सामान्य रूप से पालन किया जाना चाहिए और ऐसे सामान्य से किसी भी विचलन के मामले में, संबंधित प्राधिकारी के समक्ष उचित कारण मौजूद होने चाहिए कि वह सामान्य से विचलन क्यों करना चाहता है जैसा कि संबंधित नीतिगत निर्णय में बताया गया है।** (पैरा 14)

वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ताओं द्वारा इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 2-आवेदक को दिनांक 31.12.2023 को सेवानिवृत्त होना है। उनका स्थानांतरण दिनांक 17.02.2022 के एक आदेश के माध्यम से किया गया था। यह माना गया है कि जिस समय उनका तबादला रायबरेली से हाजीपुर किया गया था, दिनांक 31.12.2023 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर उनकी सेवानिवृत्ति से पहले दो वर्ष से कम की अवधि शेष थी। **इस मामले में दिनांक 12.12.2018 के परिपत्र में निहित उक्त सामान्य से विचलन का कोई कारण सामने नहीं आता है।** इस तरह के प्रावधान का उद्देश्य यह है कि किसी संगठन यानी अपने नियोक्ता को लंबी सेवाएं प्रदान करने के बाद, यदि कर्मचारी/अधिकारी को एक या दो साल की अवधि के भीतर सेवानिवृत्त होना है, तो वह ऐसी मानसिक स्थिति में होता है जहां वह अपना शेष जीवन बिताने का इरादा रखता है और तदनुसार उसे सेवानिवृत्ति के बाद शांतिपूर्ण और सुचारू जीवन की योजना बनाने के लिए कुछ समय और ऊर्जा की आवश्यकता होती है। (पैरा 18)

रिट याचिका खारिज की गई। (ई 4)

<u>नजीर जिनका पालन किया गया:</u>

ई.पी. रोयप्पा बनाम तमिलनाडु राज्य एवं अन्य, (1974) 4 एससीसी 3 (पैरा 16)

वर्तमान याचिका केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण की लखनऊ पीठ द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 04.11.2022 की आलोचना करती है।

(माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय एवं माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता भारत के विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री शशि प्रकाश सिंह, के सहायक विद्वान अधिवक्ता श्री सुधांशु चौहान और प्रत्यर्थी संख्या 2 का प्रतिनिधित्व कर रहे विद्वान अधिवक्ता श्री प्रवीण कुमार को सुना गया। हमने इस रिट याचिका पर हमारे समक्ष उपलब्ध अभिलेखों का भी अवलोकन किया है।

2. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत ये कार्यवाही केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण की लखनऊ पीठ द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 04.11.2022 को चुनौती देती है, जिसके तहत मूल आवेदन संख्या 332/00084/2022 को अनुमति दे दी गई है और स्थानांतरण आदेश दिनांक 17.02.2022 को चुनौती दी गई थी, जिसे रद्द कर दिया गया है।

3. हमारे समक्ष चुनौती के तहत आदेश द्वारा विद्वान न्यायाधिकरण ने यह भी निर्देश दिया है कि प्रत्यर्थी संख्या 1-आवेदक को स्थानांतरण आदेश से ठीक पहले पोस्टिंग के उसी स्थान पर शामिल होने की अनुमति दी जाएगी, भले ही वह कार्यमुक्त हो गया हो या किसी अन्य स्थान पर शामिल हो गया हो।

4. उक्त आदेश के अनुसार चूंकि सभी विविध आवेदनों का भी निस्तारण कर दिया गया है, परिणामस्वरूप अंतरिम आदेश दिनांक 22.02.2022 के निष्पादन की मांग करने वाले प्रत्यर्थी संख्या 2-आवेदक द्वारा दायर निष्पादन आवेदन संख्या 332/00467/2022 का भी निस्तारण कर दिया गया है।

5. भारत के विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल श्री शशि प्रकाश सिंह ने याचिकाकर्ताओं की ओर से पुरजोर तर्क देते हुए प्रस्तुत किया है कि प्रत्यर्थी संख्या 2-आवेदक द्वारा दायर मूल आवेदन की अनुमति देते समय विद्वान न्यायाधिकरण, लखनऊ द्वारा दिए गए कारण तर्कसंगत नहीं हैं। श्री सिंह ने आगे तर्क दिया कि ट्रिब्यूनल द्वारा जिन परिपत्रों पर अवलम्ब लिया गया है, वे वैधानिक नहीं हैं और इसलिए उन्हें बाध्यकारी नहीं कहा जा सकता है। श्री सिंह ने आगे तर्क दिया कि जहां तक रेलवे बोर्ड द्वारा जारी दिनांक 12.12.2018 के परिपत्र का संबंध है, वह भी इस कारण से बाध्यकारी नहीं है कि इसे किसी क़ानून के तहत किसी प्राधिकारी के तहत जारी नहीं किया गया है और यह, केवल सलाहकारी प्रकृति का होने के कारण, स्थानांतरण आदेश को चुनौती देने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 2-आवेदक द्वारा रखे गए दावे का आधार नहीं बनाया जा सकता है। उन्होंने यह भी कहा है कि यदि प्रत्यर्थी संख्या 2-आवेदक अपनी सेवानिवृत्ति/सेवांत की तारीख से पहले दो साल की अवधि के भीतर अपने स्थानांतरण से व्यथित था, उन्हें संबंधित अधिकारियों से संपर्क करना चाहिए था और उनके ध्यान में लाना चाहिए था कि उन्हें दो साल के भीतर सेवानिवृत्त होना है, इसलिए दिनांक 12.12.2018 के परिपत्र में निहित प्रावधानों के मद्देनजर उनका स्थानांतरण नहीं किया जाना चाहिए। आगे प्रस्तुतीकरण यह है कि यह विवाद में नहीं है कि प्रत्यर्थी संख्या 2-आवेदक पर अखिल भारतीय स्थानांतरण दायित्व है और इसलिए प्रशासन और सार्वजनिक हित की अत्यावश्यकताओं में उसे स्थानांतरित किया जा सकता है और इसके अलावा स्थानांतरण के आदेश में कोई अवैधता नहीं है।

6. उपरोक्त सभी प्रस्तुतियों के आधार पर, भारत के विद्वान अपर महाधिवक्ता द्वारा यह कहा गया है कि केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण द्वारा पारित दिनांक 04.11.2022 का निर्णय और आदेश पोषणीय नहीं है और इसलिए यह अपास्त होने का दायी है।

7. इसके विपरीत, प्रतिवादी संख्या 2-आवेदक का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री प्रवीण कुमार ने यह प्रस्तुत किया है कि रेलवे बोर्ड द्वारा जारी परिपत्र दिनांक 18.12.2018 उन्हें उसी स्थान पर तैनात रहने और उनकी सेवानिवृत्ति की तारीख से दो साल पहले स्थानांतरित नहीं होने का कोई अधिकार नहीं दे सकता है, हालाँकि, रेलवे अधिकारियों को उक्त परिपत्र में किए गए प्रावधानों के अनुसार कार्य करना होगा। यह तर्क दिया गया है कि माना जाता है कि प्रत्यर्थी संख्या 2-आवेदक को 31.12.2023 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करनी है, इसलिए उसकी सेवानिवृत्ति की तारीख से दो साल के भीतर उसे स्थानांतरित करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता है। इस तरह का स्थानांतरण दिनांक 12.12.2018 के परिपत्र में निहित प्रावधानों का उल्लंघन है, लेकिन इस कारण से भी कि यह अधिकारियों की ओर से की गई मनमानी का स्पष्ट प्रमाण हैं।

8. संबंधित पक्षकारों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई दलीलों पर विचार किया गया।

9. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई विरोधी दलीलों पर गौर करने से पहले, हम कुछ तथ्यों पर ध्यान दे सकते हैं, जो इस याचिका में शामिल मुद्दों के उचित निर्णय के लिए आवश्यक हैं। याचिकाकर्ता को 03.08.2018 को गोरखपुर से मॉडर्न कोच फैक्ट्री (एतस्मिनपश्चात 'एमसीएफ' के रूप में संदर्भित) रायबरेली में स्थानांतरित कर दिया गया था और मुख्य सामग्री प्रबंधक के पद पर एमसीएफ रायबरेली में तैनात किया गया था। उन्हें दिनांक 25.09.2020 के आदेश द्वारा प्रधान कार्यकारी निदेशक (स्टोर) के पद पर पदोन्नत किया गया था और साथ ही उन्हें लखनऊ में अनुसंधान डिजाइन और मानक संगठन (एतस्मिनपश्चात 'आरडीएसओ' के रूप में संदर्भित) में

शामिल होने की आवश्यकता थी। प्रत्यर्थी संख्या 2-आवेदक को आरडीएसओ लखनऊ में तैनात करने की आवश्यकता का अवसर इस तथ्य के कारण उत्पन्न हुआ था कि प्रासंगिक समय पर यानी जिस समय उन्हें प्रधान कार्यकारी निदेशक (स्टोर) के पद पर पदोन्नत किया गया था, उस समय उक्त पद पर एक पदधारी का कब्जा था, जिसने उनके सेवानिवृत्त होने तक 31.07.2021 तक उक्त पद पर काम किया था। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि एमसीएफ रायबरेली में प्रधान कार्यकारी निदेशक (स्टोर) के पद से पूर्व पदाधिकारी की सेवानिवृत्ति पर प्रत्यर्थी संख्या 2-आवेदक को फिर से उक्त पद पर एमसीएफ रायबरेली में तैनात किया गया था।

10. यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि दिनांक 25.09.2020 के आदेश के अनुसार प्रत्यर्थी संख्या 2 को प्रधान कार्यकारी निदेशक (स्टोर) के पद पर पदोन्नत किया गया और आरडीएसओ रायबरेली में शामिल होने के लिए कहा गया, और उन्होंने 25.01.2021 को आरडीएसओ रायबरेली में अपनी ज्वाइनिंग पूर्ण की और तदनुसार चार्ज रिपोर्ट भी 28.01.2021 को संबंधित अधिकारियों को भेज दी गई। वह आरडीएसओ लखनऊ में तब तक तैनात रहे जब तक उन्हें 31.07.2022 को प्रधान कार्यकारी निदेशक (भंडार) के पद से रायबरेली में पूर्व पदधारी की सेवानिवृत्ति पर एमसीएफ रायबरेली में शामिल होने के लिए नहीं कहा गया। वह आरडीएसओ लखनऊ में तब तक तैनात रहे जब तक उन्हें 31.07.2022 को प्रधान कार्यकारी निदेशक (भंडार) के पद से रायबरेली में पूर्व पदधारी की सेवानिवृत्ति पर एमसीएफ रायबरेली में शामिल होने के लिए नहीं कहा गया। प्रत्यर्थी संख्या 2-आवेदक को आरडीएसओ से एमसीएफ रायबरेली में शामिल होने की आवश्यकता वाला उक्त स्थानांतरण आदेश 18.08.2021 को पारित किया गया था, जिसके अनुसार उसने एमसीएफ रायबरेली में अपनी ज्वाइनिंग पूर्ण कर ली थी, हालाँकि, एमसीएफ रायबरेली में काम करते समय, स्थानांतरण आदेश दिनांक 17.02.2022 पारित किया गया था, जिसके तहत प्रतिवादी संख्या 2-आवेदक को पूर्व मध्य रेलवे, हाजीपुर, बिहार में स्थानांतरित कर दिया गया था। यह स्थानांतरण आदेश दिनांक 17.02.2022 है जिसे प्रत्यर्थी संख्या 2-आवेदक द्वारा मूल आवेदन संख्या 332/00084/2022 स्थापित करके चुनौती दी गई थी जिसमें प्रारंभ में 22.02.2022 को एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था जिसके तहत विद्वान न्यायाधिकरण ने स्थानांतरण आदेश के कार्यान्वयन पर रोक लगा दी थी और आगे निर्देश दिया था कि प्रत्यर्थी संख्या 2-आवेदक को एमसीएफ रायबरेली में अपनी पोस्टिंग के स्थान से मुक्त नहीं किया जाएगा और मूल आवेदन के लंबित होने तक वहां काम करना जारी रखेगा। विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा यह भी निर्देश दिया गया कि भले ही प्रत्यर्थी संख्या 2-आवेदक को कार्यमुक्त कर दिया गया हो, उसे पोस्टिंग के पहले स्थान पर बहाल किया जाना चाहिए। यह अंतरिम आदेश दिनांक 22.02.2022 है जिसके संबंध में निष्पादन आवेदन संख्या 332/00467/2022 दायर किया गया था, जिसे भी इस रिट याचिका में चुनौती के तहत आदेश के माध्यम से निस्तारित किया गया है।

11. अन्य आधारों पर अवलम्ब लेने के अलावा, विद्वान न्यायाधिकरण ने रेलवे बोर्ड द्वारा दिनांक 12.12.2018 को जारी परिपत्र पर अवलम्ब लिया है। जहां तक प्रत्यर्थी संख्या 2-आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई दलीलों का सवाल है, जो उसने अपने कई स्थानांतरणों के संबंध में विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष पेश की थी, हमें इसमें कोई गुण दोष नहीं दिखता है कि याचिकाकर्ता-प्राधिकरणों को प्रधान कार्यकारी निदेशक (भंडार) के पद पर उनकी पदोन्नति पर आरडीएसओ में तैनात करना उचित था, जिस दिन उन्हें उक्त पद पर पदोन्नत किया गया था, एमसीएफ, रायबरेली में कोई समकक्ष पद खाली नहीं

था, बल्कि उस पर पहले के पदाधिकारी का कब्जा था और तदनुसार उन्हें आरडीएसओ, लखनऊ में तैनात किया गया था। चूंकि पूर्व पदाधिकारी 31.07.2021 को एमसीएफ रायबरेली में अपने पद से सेवानिवृत्त हुए थे, इसलिए प्रत्यर्थी संख्या 2-आवेदक को दिनांक 18.08.2021 के आदेश के तहत फिर से एमसीएफ रायबरेली में सही ढंग से तैनात किया गया था।

12. जैसा कि ऊपर देखा गया है, अन्य कारणों के अलावा, एक कारण जिस पर हमें इस मामले में विचार करने की आवश्यकता है, जैसा कि स्थानांतरण आदेश को रद्द करने के लिए विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया है, वह परिपत्र दिनांक 12.12.2018 में निहित प्रावधान हैं। उक्त परिपत्र रेलवे बोर्ड द्वारा दिनांक 31.08.2015 को जारी व्यापक स्थानांतरण नीति दिशानिर्देशों का एक परिशिष्ट है। दिनांक 12.12.2018 के परिपत्र में कहा गया है कि इसे रेलवे बोर्ड द्वारा 31.08.2015 को जारी व्यापक स्थानांतरण नीति दिशानिर्देशों के आंशिक संशोधन में जारी किया गया था। इस प्रकार, दिनांक 12.12.2018 के परिपत्र के माध्यम से जारी परिशिष्ट अन्य बातों के साथ-साथ निम्नानुसार प्रावधान करता है:

> ***"(iii) दो साल की अवधि के भीतर सेवानिवृत्त होने वाले अधिकारियों को आम तौर पर वर्तमान पोस्टिंग से परेशान नहीं किया जाना चाहिए।"***

13. परिपत्र दिनांक 12.12.2018 में निहित उपरोक्त प्रावधान स्पष्ट रूप से प्रदान करता है कि दो साल की अवधि के भीतर सेवानिवृत्ति के लिए आने वाले अधिकारियों को आम तौर पर उनकी वर्तमान पोस्टिंग से परेशान नहीं किया जाना चाहिए।

14. यद्यपि परिपत्र दिनांक 12.12.2018 केवल व्यापक स्थानांतरण नीति दिशानिर्देशों का एक हिस्सा है और इसे रेलवे बोर्ड द्वारा किसी अधिनियम द्वारा निहित किसी भी वैधानिक प्राधिकार के तहत जारी नहीं किया गया है, यह वैधानिक नहीं है, तथापि, लिए गए नीतिगत निर्णय रेलवे बोर्ड सहित किसी भी प्राधिकारी द्वारा, सामान्यतः इसका पालन किया जाना चाहिए। हमारी यह भी राय है कि सरकार या किसी अन्य राज्य के प्राधिकारियों की किसी भी कार्रवाई का मूल्यांकन और परीक्षण संबंधित प्राधिकारी/सरकार/राज्य तंत्र द्वारा जारी किए गए ऐसे दिशानिर्देशों के आधार पर किया जाना चाहिए। आख़िरकार नीति-निर्माताओं द्वारा कोई भी नीति उल्लंघन के लिए नहीं बल्कि पालन करने और आदर और सम्मान देने के लिए बनाई और जारी की जाती है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, हमारे कहने का मतलब यह नहीं है कि दिनांक 12.12.2018 का परिपत्र रेलवे के अधिकारियों पर सभी परिस्थितियों में बाध्यकारी है। हमारे विचार में यह स्पष्ट है कि इस तरह के परिपत्र या ऐसे किसी अन्य स्थानांतरण नीति दिशानिर्देश सरकारी कर्मचारी को अपनी वर्तमान पोस्टिंग पर बने रहने का कोई अधिकार नहीं देते हैं, भले ही वह दो साल की अवधि के भीतर सेवानिवृत्त होने वाला हो। हालाँकि, दिनांक 12.12.2018 के परिपत्र में निहित नीतिगत निर्णय का आमतौर पर अधिकारियों द्वारा पालन किया जाना चाहिए और ऐसे सामान्य से किसी भी विचलन के मामले में, संबंधित प्राधिकारी के समक्ष उचित कारण मौजूद होने चाहिए कि वह सामान्य से विचलन क्यों करना चाहता है जैसा कि संबंधित नीतिगत निर्णय में बताया गया है।

15. हम इस बात से भी अवगत हैं कि स्थानांतरण सेवा की एक अत्यावश्यकता है और यह नियोक्ता का विशेषाधिकार और अधिकार है, इस मामले में रेलवे है, कि वह अपने कर्मचारियों या अधिकारियों को सार्वजनिक हित और प्रशासनिक अत्यावश्यकताओं सहित विभिन्न आधारों पर किसी भी स्थान पर स्थानांतरित कर सके। किसी कर्मचारी के स्थानांतरण से संबंधित मामले में भारत के

संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय द्वारा न्यायिक जांच का दायरा बहुत सीमित है। जब तक अदालत यह नहीं पाती कि स्थानांतरण आदेश द्वेष या दुर्भावना के कारण किया गया है या यह मनमानेपन से प्रभावित है, तब तक अदालत आम तौर पर स्थानांतरण आदेश में हस्तक्षेप नहीं करेगी।

16. कानून का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि राज्य की कोई भी कार्रवाई मनमानी से मुक्त होनी चाहिए और इसे नियमों के अनुरूप होना चाहिए। प्रशासनिक कार्रवाई में निष्पक्षता या गैर-मनमानापन की अवधारणा अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त है। इस समय, हमारे द्वारा इस मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के सबसे प्रसिद्ध निर्णयों में से एक **ई.पी. रोयप्पा बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य, (1974) 4 एससीसी 3** का संदर्भ दिया जा सकता है, जहां माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा है कि अन्याय और अनौचित्य के साथ-साथ मनमानी भी भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का एक पहलू है। उक्त निर्णय में भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 की व्याख्या के संदर्भ में विकसित सबसे प्रसिद्ध कानूनी सिद्धांतों में से एक शामिल है, जो ***"वास्तव में समानता और मनमानी कट्टर शत्रु हैं; एक गणतंत्र में कानून के शासन से संबंधित है जबकि दूसरा, एक पूर्ण राजा की सनक और मनमर्जी से संबंधित है।"*** जहां कोई कार्य मनमाना है, वहां यह अंतर्निहित है कि यह राजनीतिक तर्क और संवैधानिक कानून दोनों के अनुसार असमान है और इसलिए अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है।

17. यदि हम ऐसी स्थिति में किसी कर्मचारी के स्थानांतरण के मामले में न्यायिक जांच के दायरे पर विचार करते हैं, जहां स्थानांतरण नीति दिशानिर्देशों में यह प्रावधान है कि **ईपी रोयप्पा (उपरोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के आलोक में, जो अधिकारी दो साल की अवधि के भीतर सेवानिवृत्त होने वाले हैं, उन्हें आम तौर पर उनकी वर्तमान पोस्टिंग से विस्थापित नहीं किया जाएगा, हम पाते हैं कि सामान्य से किसी भी व्यतिक्रम के मामले में, संबंधित प्राधिकारी को ऐसी प्रशासनिक कार्रवाई को उचित ठहराने की आवश्यकता होती है। ऐसे मामलों में न्यायिक जांच का दायरा केवल यह देखने तक ही सीमित होना चाहिए कि क्या संबंधित प्राधिकारी के लिए सामान्य से भटकने का कोई उचित कारण मौजूद है।

18. जहां तक इस मामले का सवाल है, याचिकाकर्ताओं ने इस बात से इनकार नहीं किया है कि प्रत्यर्थी संख्या 2-आवेदक को 31.12.2023 को सेवानिवृत्त होना है। उनका स्थानांतरण दिनांक 17.02.2022 के एक आदेश के माध्यम से किया गया था। माना गया है कि जिस समय उनका तबादला रायबरेली से हाजीपुर किया गया था, 31.12.2023 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर उनकी सेवानिवृत्ति से पहले दो वर्ष से कम की अवधि शेष थी। दिनांक 12.12.2018 के परिपत्र में निहित प्रावधान स्पष्ट रूप से नीतिगत निर्णय देते हैं कि जो अधिकारी दो साल की अवधि के भीतर सेवानिवृत्त होने वाले हैं, उन्हें सामान्य रूप से स्थानांतरित नहीं किया जाना चाहिए। इस मामले में दिनांक 12.12.2018 के परिपत्र में निहित उक्त सामान्य से विचलन का कोई कारण सामने नहीं आता है। हम इस समय यह भी देख सकते हैं कि यदि अधिकारियों को दो साल की अवधि के भीतर सेवानिवृत्त होना है तो उनके वर्तमान पोस्टिंग स्थान से गैर-विस्थापन से संबंधित दिशानिर्देश तैयार करने और जारी करने का एक उद्देश्य है। किसी संगठन यानी अपने नियोक्ता को लंबी सेवाएं प्रदान करने के बाद, यदि नियोक्ता/अधिकारी को एक या दो साल की अवधि के भीतर सेवानिवृत्त होना है, तो वह ऐसी मानसिक स्थिति में है जहां वह अपना शेष जीवन बिताने का इरादा रखता है और तदनुसार उसे सेवानिवृत्ति

अप्रमाणित

के बाद शांतिपूर्ण और सुचारू जीवन की योजना बनाने के लिए कुछ समय और ऊर्जा की आवश्यकता है।

19. ऐसे सराहनीय उद्देश्य से ही ऐसा प्रावधान दिनांक 12.12.2018 के परिपत्र में शामिल किया गया है। किसी व्यक्ति को उसके पूरे सेवा करियर के अंतिम छोर पर परेशान करना तब तक सार्वजनिक हित में नहीं होगा जब तक कि सार्वजनिक हित में कुछ और अधिक प्रेरक न हो जो ऐसी स्थिति में भी स्थानांतरण की आवश्यकता हो।

20. उपरोक्त कारण से, हम इस रिट याचिका में हस्तक्षेप करने के इच्छुक नहीं हैं जिसे एतद्द्वारा **खारिज** किया जाता है और मूल आवेदन संख्या 332/00084/2022 में केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, लखनऊ द्वारा दिनांक 04.11.2022 को पारित आदेश की पुष्टि की जाती है।

21. इस समय, प्रत्यर्थी संख्या 2-आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने बहुत ही निष्पक्षता से यह प्रस्तुत किया है कि यदि रेलवे अधिकारी उन्हें आरडीएसओ या उत्तर पूर्वी रेलवे के मुख्यालय, गोरखपुर या उत्तर मध्य रेलवे के मुख्यालय, इलाहाबाद में स्थानांतरित करने का आदेश पारित करते हैं तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं होगी।

22. इस प्रकार, हम मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों, विशेष रूप से उस तथ्य को ध्यान में रखते हुए यह प्रस्तुत करते हैं कि अब केवल एक वर्ष शेष है जब प्रत्यर्थी संख्या 2-आवेदक 31.12.2023 को अपनी सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त हो जाएगा, यदि याचिकाकर्ता प्रत्यर्थी संख्या 2-आवेदक को एमसीएफ रायबरेली में तैनात करने के इच्छुक नहीं हैं, तो वे उसे उपरोक्त तीन स्थानों यथा आरडीएसओ लखनऊ या पूर्वोत्तर रेलवे का मुख्यालय, गोरखपुर या उत्तर मध्य रेलवे, इलाहाबाद मुख्यालय में से किसी एक पर स्थान तैनात करने के लिए स्वतंत्र होंगे।

23. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 1 ILRA 1114

मूल क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 20.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

रिट-ए नंबर 8892/2022

ज्ञान प्रकाश सिंह ...याचिकाकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता:
श्री प्राणेश कुमार मिश्र, श्री अमित कुमार तिवारी

अधिवक्ता प्रतिवादी:
सी.एस.सी., श्री गगन मेहता

ए. शिक्षा कानून - अनंतिम उत्तर कुंजी पर चयन/आपत्ति - उत्तर प्रदेश शिक्षा सेवा आयोग अधिनियम, 1980 –उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग (शिक्षकों के चयन की प्रक्रिया) विनियम, 2014 - जहां तक उत्तर पुस्तिका या स्क्रिप्ट के पुनर्मूल्यांकन का संबंध है , जांच करने वाली संस्था को पुनर्मूल्यांकन करने का कोई अधिकार नहीं है, जब तक कि क़ानून इसके लिए प्रदान नहीं करता है। हालाँकि, यदि क़ानून किसी उत्तर पुस्तिका या स्क्रिप्ट के पुनर्मूल्यांकन या जांच की शक्ति के बारे में शांत है, **यदि मुख्य उत्तर स्पष्ट रूप से और उसके सामने गलत या बेतुका है, और वह भी , असाधारण मामलों में न्यायालय पुनर्मूल्यांकन या जांच की अनुमति दे सकता है। जहां तक मुख्य उत्तरों की शुद्धता का सवाल है, उनकी शुद्धता के बारे में एक धारणा है और मुख्य उत्तरों के संबंध में संदेह का लाभ उम्मीदवार के बजाय परीक्षा प्राधिकारी को जाता है। (पैरा 10)**

जहां सार्वजनिक जांच के मामलों में विशेषज्ञ की राय के आधार पर मुख्य उत्तरों की शुद्धता का प्रश्न हो, वहां न्यायालय को आम तौर पर अपने हाथ दूर रखना चाहिए। मुख्य उत्तरों को सही माना जाना चाहिए, विशेष रूप से एक बार विषय में निपुण चयन प्राधिकारी द्वारा नियुक्त विशेषज्ञों के एक पैनल द्वारा आपत्ति पर पुष्टि की गई, जिसे क़ानून द्वारा चयन की शक्ति प्रदान की गई है। उत्तर कुंजी, जिस पर सार्वजनिक परीक्षा के लिए मूल्यांकन किया जाना

है, उसके संबंध में विशेषज्ञ की राय से न्यायालय को अपील न्यायालय नहीं बनाया जा सकता है। प्रासंगिक विषय में तकनीकी तर्क की विस्तृत प्रक्रिया के बिना, केवल स्पष्ट असावधानी या स्पष्ट त्रुटि के मामलों में, न्यायालय बहुत ही दुर्लभ मामलों में, जहां आश्वस्त हो, एक गलत कुंजी को सुधारने के लिए स्वतंत्र विशेषज्ञ की राय ले सकता है। **अभी भी कुछ विषय या मामले ऐसे हो सकते हैं जहां मुख्य उत्तर इतना स्पष्ट रूप से गलत हो सकता है कि न्यायालय इसे अनदेखा नहीं कर सकता। यहाँ वो बात नहीं है।** इसमें शामिल विषय एक जटिल विज्ञान है, यानी भौतिक रसायन विज्ञान और विषय की बहुत सारी समझ उस त्रुटि को समझने में लगेगी जो याचिकाकर्ता के अनुसार तीन प्रमुख उत्तरों में मौजूद है। (पैरा 13)

बी. आपत्तियों का स्रोत याचिकाकर्ता द्वारा तीन प्रमुख उत्तरों पर आपत्तियों का कोई आधार या स्रोत का खुलासा नहीं किया गया है। यदि याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए आपत्तियों के बारे में कोई गंभीरता होती, तो उसने अपनी आपत्तियों का समर्थन करने के लिए रिट याचिका में उन प्रामाणिक स्रोतों को संलग्न किया होता, जो विषय पर प्रतिष्ठित ग्रंथों या उनके पूरे संदर्भ के साथ पाठ्यपुस्तकों से उद्धरण हो सकते हैं। (पैरा 14)

याचिकाकर्ता इस तथ्य को स्वीकार करता है कि आयोग को ऑनलाइन प्रस्तुत की गई आपत्तियों के समर्थन में सामग्री केवल प्रश्न संख्या 44 के उत्तर की तुलना में वेबसाइट पर उपलब्ध है। प्रश्न संख्या 37 और 38 के मुख्य उत्तरों पर अपनी आपत्तियों का समर्थन करने के लिए याचिकाकर्ता द्वारा दायर की गई सामग्री की आयोग की वेबसाइट से कोई पुनर्प्राप्ति नहीं है। न्यायालय को इस आधार पर आगे बढ़ना है कि आयोग के समक्ष प्रश्न संख्या 44 पर आपत्तियां अकेले ही सहायतार्थ आवश्यक सामग्री, चाहे जितनी भी मूल्य की हो, ले गए। इस न्यायालय ने पाया कि प्रश्न संख्या 37 पर आपत्ति को विशेषज्ञों के पैनल द्वारा स्वीकार कर लिया गया है और बुकलेट श्रृंखला 'ए' की अनंतिम उत्तर कुंजी में दिए गए उत्तर, 'डी' को सुधारकर 'ए' कर दिया गया है। बुकलेट सीरीज-ए के 38 और 44 के अलावा प्रश्न संख्या 37 पर आपत्तियों पर विचार करने के बाद सही उत्तर दिनांक 11.02.2022 को संशोधित और अंतिम उत्तर कुंजी में प्रकाशित किया गया है। उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन अंतिम उत्तर कुंजी के आधार पर किया गया है। (पैरा 15)

सी. यह सामान्य बात है कि आयोग को किसी बाहरी विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट से तब तक बाध्य नहीं रखा जा सकता जब तक कि आयोग स्वयं, यानी अपने स्वयं के विशेषज्ञ, न्यायालय द्वारा नियुक्त बाहरी विशेषज्ञ की राय के अनुरूप न हो। या फिर, न्यायालय, यदि यह न्यायालय की समझ में है, एक ऐसा कारक जो कई परिस्थितियों पर निर्भर करेगा, उसकी राय है कि बाहरी विशेषज्ञों की रिपोर्ट समिति द्वारा अनुमोदित प्रमुख उत्तरों को विस्तृत प्रक्रिया के बिना स्पष्ट रूप से गलत उत्तर कुंजी को गलत मानकर राहत प्रदान कर सकता है। (पैरा 23)

D. सार्वजनिक पदों पर उम्मीदवारों का चयन करने के लिए किसी परीक्षा की अनिवार्यताओं को अनिश्चित काल तक नहीं अनिश्चितता की छाया में रखा जा सकता है और न ही इसे अंतहीन रूप से बदला जा सकता है क्योंकि इससे सार्वजनिक पदों पर समय पर चयन में बाधा आएगी, जबकि प्रक्रिया अंतिम रूप से जुड़ी हुई है। इस न्यायालय के पास किसी अन्य वाद में आयोग की प्रतिक्रिया के परिणाम की प्रतीक्षा करने का कोई कारण नहीं है, यह हो सकता है कि इसमें एक प्रश्न के संबंध में वही मुद्दा शामिल हो। (पैरा 24)

आयोग द्वारा उनकी उत्तर कुंजी की ईमानदारी की जांच में पर्याप्त सुरक्षा उपाय किए गए हैं, जिसके आधार पर चयन किया गया है। इन्हें दीर्घकालीन अनिश्चितता के संपर्क में नहीं रखा जाना चाहिए। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि भले ही किसी बाहरी विशेषज्ञ की राय के आधार पर कुछ सामग्री के कारण, विवादित उत्तरों में से एक या दूसरे के मुख्य उत्तर के बारे में कुछ संदेह हो, संदेह का समाधान जांच करने वाली संस्था के पक्ष में किया जाना चाहिए। (पैरा 25)

रिट याचिका निरस्त। (ई 4)

<u>उद्धृत वाद:</u>

1. रण विजय सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2018) 2 एससीसी 357 (पैरा 10)
2. अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग एवं अन्य बनाम राहुल सिंह एवं अन्य, (2018) 7 एससीसी 254 (पैरा 11)
3. कुलपति, कानपुर विश्वविद्यालय एवं अन्य बनाम समीर गुप्ता एवं अन्य, (1983) 4 एससीसी 309 (पैरा 11)
4. त्रिपुरा उच्च न्यायालय बनाम तीर्थ सारथी मुखर्जी और अन्य, (2019) 2 स्केल 708 (पैरा 12)

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग, प्रयागराज (संक्षेप में "आयोग") द्वारा रसायन विज्ञान विषय में सहायक प्रोफेसर के रूप में उनका चयन

न किए जाने से व्यथित है। आयोग द्वारा विज्ञापन संख्या 50 दिनांक 15.02.2021 जारी कर सहायक प्रोफेसरों के चयन के लिए आवेदन आमंत्रित किए गए थे, जिन्हें उच्च शिक्षा प्रदान करने वाले सहायता प्राप्त गैर-सरकारी कॉलेजों में नियुक्त किया जाएगा। याचिकाकर्ता, जो स्पष्ट रूप से इस पद के लिए पात्र है, ने जवाब में आवेदन किया। चयन एक लिखित परीक्षा के माध्यम से किया जाना था, उसके बाद चयनित उम्मीदवारों का साक्षात्कार लिया गया। याचिकाकर्ता को आयोग द्वारा रोल नंबर 5007000283 आवंटित किया गया था और 30.10.2001 को लिखित परीक्षा देने के लिए बुलाया गया था। याचिकाकर्ता निर्धारित तिथि, समय और स्थान पर लिखित परीक्षा में उपस्थित हुआ और भाग लिया। यह उनका मामला है कि प्रश्न पुस्तिका श्रृंखला 'ए' उन्हें आवंटित की गई थी। याचिकाकर्ता का कहना है कि लिखित परीक्षा में शामिल होने के बाद आयोग द्वारा 10.12.2021 को अनंतिम (प्रोविजीनल) उत्तर कुंजी प्रकाशित की गई थी और 18.12.2021 को या उससे पहले उम्मीदवारों से उत्तरों पर आपत्तियां आमंत्रित की गई थीं। उत्तरों पर आपत्ति की तारीख बढ़ा दी गई। याचिकाकर्ता द्वारा अनंतिम उत्तर कुंजी को रिकॉर्ड पर रखा गया है।

2. याचिकाकर्ता को प्रश्न पुस्तिका श्रृंखला 'ए' के प्रश्न संख्या 37, 38 और 44 की अनंतिम उत्तर कुंजी में दिखाए गए उत्तरों के संबंध में आपत्ति थी। उन्होंने 13.12.2021 को यानी समय के भीतर आयोग को ऑनलाइन आपत्तियां प्रस्तुत कीं। याचिकाकर्ता ने अपनी आपत्तियों को भी रिट याचिका में अनुलग्नक संख्या 5 के रूप में संलग्न किया है। आयोग ने उम्मीदवारों की आपत्तियों पर विचार करने के बाद 11.02.2022 को संशोधित और अंतिम उत्तर कुंजी जारी की। दो प्रश्नों, यानी प्रश्न पुस्तिका श्रृंखला 'ए' के प्रश्न संख्या 9 और 58 पर आपत्तियां कायम रहीं और प्रश्नों को हटा दिया गया। परिणामस्वरूप, उपरोक्त प्रश्नों के संबंध में याचिकाकर्ता सहित सभी उम्मीदवारों को समान अंक आवंटित किए गए थे। लेकिन, याचिकाकर्ता की शिकायत यह है कि लिखित परीक्षा में उनके उत्तरों का मूल्यांकन प्रश्न पुस्तिका श्रृंखला 'ए' में दिए गए उत्तरों को हटाए बिना किया गया था, जिस पर उन्होंने आपत्ति जताई थी। लिखित परीक्षा का परिणाम 17.02.2022 को घोषित किया गया, जिसमें याचिकाकर्ता को सफल घोषित किया गया और साक्षात्कार के लिए बुलाया गया। यह दावा किया गया है कि आयोग द्वारा साक्षात्कार के लिए श्रेणीवार (जैसे सामान्य, अन्य पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जाति आदि) अलग-अलग कट-ऑफ अंक घोषित किए गए थे। याचिकाकर्ता ने 26.03.2022 को आयोग द्वारा आयोजित साक्षात्कार में भाग लिया। आयोग द्वारा रसायन विज्ञान में सहायक प्रोफेसर (विषय कोड 70) के पद के लिए अंतिम चयन सूची (सामान्य सूची) 13.05.2022 को घोषित की गई थी। अंतिम सूची आयोग द्वारा लिखित परीक्षा और आगामी साक्षात्कार में अर्जित अंकों के आधार पर घोषित की गई थी, लेकिन संपूर्ण चयन प्रक्रिया प्रश्न पुस्तिका श्रृंखला 'ए' के प्रश्न संख्या 37, 38 और 44 के लिए तीन गलत उत्तरों को सुधारे बिना की गई थी, जिस पर याचिकाकर्ता ने उत्तरों को लेकर आपत्ति जताई थी। ।

3. याचिकाकर्ता का मामला यह है कि वह अन्य पिछड़ा वर्ग (संक्षेप में ओबीसी) श्रेणी से संबंधित है और उसने संबंधित पद के लिए संबंधित श्रेणी में आवेदन किया था। याचिकाकर्ता का कहना है कि उसने ओबीसी श्रेणी में लिखित परीक्षा में 138.72 अंक हासिल किए थे और

ओबीसी श्रेणी के लिए कट-ऑफ अंक 134.64 था, जो एक उम्मीदवार को साक्षात्कार का हकदार बनाता था। यह आग्रह किया जाता है कि प्रत्येक प्रश्न के दो अंक थे। अन्य अभ्यर्थियों की आपत्ति पर जिन दो प्रश्नों को गलत माना गया, उससे याचिकाकर्ता के लिखित परीक्षा के अंक में 2.04 अंक बढ़ गए। यह याचिकाकर्ता का दावा है कि उसने संशोधित उत्तर कुंजी के अनुसार अपने स्कोर की गणना की, इसकी तुलना अपने ऑप्टिकल मार्क रिकॉग्निशन ('संक्षेप में ओएमआर') शीट से उन सभी के लिए की, जिनका उसने सही उत्तर दिया था। इससे पता चलता है कि उन्होंने 68 प्रश्नों का सही उत्तर दिया, जिसमें गलत प्रश्नों के लिए 2.04 अंक जोड़े गए, जिससे उन्हें लिखित परीक्षा में 138.72 अंक प्राप्त हुए। इस आशय की कुछ शिकायत की गई है कि दो उम्मीदवार, नवीन प्रकाश वर्मा (रोल नंबर 5007001169) और संजीव कुमार (रोल नंबर 5007000563), जिन्होंने ओबीसी श्रेणी के तहत भी आवेदन किया था, का चयन किया गया और उन्हें दिनांक 13.05.2020 की विवादित अंतिम चयन सूची क्रमांक 36 एवं 37 पर दिखाया गया। लेकिन, याचिकाकर्ता को मनमाने ढंग से बाहर कर दिया गया। याचिकाकर्ता का कहना है कि यदि उत्तर कुंजी में तीन विवादित उत्तर, जिन पर उसने अनंतिम कुंजी प्रकाशित होने पर आपत्ति जताई थी, को विशेषज्ञों द्वारा उचित निर्धारण के बाद, प्रसिद्ध पाठ्यपुस्तकों की सहायता से सुधार दिया गया था, तो यह उसे तीन अतिरिक्त अंकों का का हकदार बना देगा। यदि ऐसा किया जाता तो उसका चयन हो जाता।

4. आयोग की ओर से एक जवाबी हलफनामा दाखिल किया गया है, जिसमें आयोग द्वारा अपनाई गई चयन की पूरी प्रक्रिया बताई गई है। यह बताया गया है कि आयोग द्वारा दिनांक 15.02.2021 के विज्ञापन के माध्यम से राज्य भर के विभिन्न निजी सहायता प्राप्त कॉलेजों में सहायक प्रोफेसर के 2002 पद विज्ञापित किए गए हैं। आयोग ऐसे चयन करने के लिए एक विशेष निकाय है, जिसका गठन उत्तर प्रदेश शिक्षा सेवा आयोग अधिनियम, 1980 (संक्षेप में "1980 का अधिनियम") के तहत किया गया है। इस मामले में लागू आयोग द्वारा चयन की प्रक्रिया उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग (शिक्षकों के चयन की प्रक्रिया) विनियम, 2014 (संक्षेप में, "2014 के विनियम") और उत्तर प्रदेश उच्च शिक्षा (प्रक्रिया और कार्य संचालन) नियम, 2014 (संक्षेप में, "कार्य संचालन नियम, 2014") द्वारा शासित होती है। यह तर्क दिया जाता है कि साक्षात्कार में मूल्यांकन की निष्पक्षता बनाए रखने के लिए, लिखित परीक्षा का परिणाम अंतिम परीक्षा परिणाम तैयार करने के बाद घोषित किया जाता है। यह साक्षात्कार बोर्ड के लिए उपलब्ध नहीं है। याचिकाकर्ता को लिखित परीक्षा में 138.78 अंक और साक्षात्कार में 24 अंक प्राप्त हुए। इस तरह उन्हें कुल 162.78 अंक मिले। ओबीसी श्रेणी में अंतिम चयनित उम्मीदवार संदीप कुमार ने 165.78 अंक और ओबीसी श्रेणी में अंतिम प्रतीक्षा सूची के उम्मीदवार सुरजीत सिंह ने 162.98 अंक हासिल किए। इस बात पर जोर दिया गया है कि आयोग के पास उत्तर पुस्तिकाओं के पुनर्मूल्यांकन का कोई प्रावधान नहीं है। जवाबी हलफनामे में 2014 के विनियमों और व्यवसाय संचालन विनियम, 2014 के तहत विभिन्न प्रावधानों का उल्लेख किया गया है, जिनमें से सभी को यह दिखाने के लिए निर्देशित किया गया है कि आयोग उच्च योग्यता और प्रासंगिक विषय में पेशेवर अनुभव वाले व्यक्तियों में से उन लोगों का चयन करता है जो प्रश्न पत्र सेट करते हैं और इसे मॉडरेट करते हैं। परीक्षकों और विशेषज्ञों का पैनल, जिनकी सेवाएँ आयोग द्वारा सुरक्षित हैं, प्रासंगिक विषयों में उच्च पेशेवर कौशल वाला एक स्वतंत्र निकाय है। मामले पर आयोग के

अनुवादित

विशेषज्ञों की राय के बाद ही अस्थायी उत्तर कुंजी में बदलाव संभव है। आयोग के पास उत्तर कुंजी का पुनर्मूल्यांकन करने या उसमें परिवर्तन करने की शक्ति नहीं है। आयोग का यह भी मामला है कि गलत उत्तरों को विशेषज्ञों की राय के बाद हटाया जाता है और हटाए गए प्रश्न का लाभ सभी उम्मीदवारों को दिया जाता है। विशेषज्ञों की राय पर प्रश्न/प्रश्नों को हटाने के बाद सभी अभ्यर्थियों को अंक देने का सूत्र इस प्रकार है:

कुल अंक X कुल प्रयास किए गए सही प्रश्न

कुल प्रश्न - हटाए गए प्रश्न

5. उपरोक्त सूत्र का प्रतिवाद हलफनामे के पैराग्राफ संख्या 24 में किया गया है। पैराग्राफ संख्या 25 में गणना का एक उदाहरण भी दिया गया है, जिसे पुन: प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। आयोग का कहना है कि अस्थायी उत्तर कुंजी 10.12.2021 को जारी की गई थी, जिस पर अभ्यर्थियों से आपत्तियां आमंत्रित की गई थीं। जवाबी हलफनामे में आयोग का यह भी कहना है कि अनंतिम उत्तर कुंजी के प्रकाशन पर, उम्मीदवारों ने पुस्तिका में लगभग हर प्रश्न पर आपत्ति जताई। आयोग ने प्रश्न पुस्तिका श्रृंखला 'ए' से संबंधित अभ्यर्थियों से प्राप्त सभी आपत्तियों के निस्तारण को अनुलग्नक सीए-1 के रूप में संलग्न किया है। अनंतिम उत्तरों पर आपत्ति को स्वीकार करने या अस्वीकार करने की राय, विशेषज्ञों की रिपोर्ट के पांचवें कॉलम में इंगित की गई है, जिस पर उनमें से तीन के पैनल द्वारा हस्ताक्षर किए गए हैं। अनंतिम उत्तर कुंजी में दिए गए तीन विवादित उत्तरों पर याचिकाकर्ता की आपत्तियों को आयोग द्वारा नियुक्त विशेषज्ञों के पैनल ने अपनी रिपोर्ट दिनांक 31.01.2022 के माध्यम से निरस्त कर दिया है, जो रिकॉर्ड पर है। रिपोर्ट में कारणों को दर्शाया गया है और जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ संख्या 43 में भी प्रस्तुत किया गया है।

6. आयोग का यह भी मामला है कि याचिकाकर्ता ने कहीं भी उस स्रोत या सामग्री को प्रस्तुत नहीं किया है, जिसके आधार पर वह प्रश्न पुस्तिका श्रृंखला 'ए' के प्रश्न संख्या 37, 38 और 44 के उत्तरों पर आपत्ति जताता है। इस बात पर जोर दिया गया है कि पूरी चयन प्रक्रिया पूरी हो चुकी है और कॉलेजों के आवंटन के लिए मेरिट सूची निदेशक, उच्च शिक्षा, यूपी, प्रयागराज को भेज दी गई है।

7. प्रत्युत्तर हलफनामे के पैराग्राफ संख्या 18 में, याचिकाकर्ता ने दावा किया है कि उसने तीन प्रश्नों से संबंधित उत्तरों पर आपत्तियों के समर्थन में इस विषय पर प्रसिद्ध लेखकों द्वारा लिखी गई विश्वसनीय और प्रमाणित पुस्तकों का उद्धरण संलग्न किया है। जिन उत्तरों पर वह आपत्ति करता है, उन्हें अनुलग्नक आरए-1 के रूप में प्रस्तुत करता है। अनुलग्नक आरए-1 के अवलोकन से पता चलता है कि प्रश्न संख्या 37 से संबंधित मुख्य उत्तर पर आपत्तियां "**राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, 2022-23 द्वारा बारहवीं कक्षा के लिए रसायन शास्त्र भाग II पाठ्यपुस्तक**" नामक पुस्तक पर आधारित है। प्रश्न संख्या 38 से संबंधित उत्तर पर आपत्ति एक पुस्तक **"केमिस्ट्री बाय पीटर एटकिन्स जूलियो डि पाउला"** और इसके अलावा, एक अन्य पुस्तक **"फिजिकल केमिस्ट्री रिवाइज्ड एंड एनलार्ज्ड सेवेंथ एडिशन बाय पी.सी.रक्षित"** पर आधारित है। प्रश्न संख्या 44 से संबंधित मुख्य उत्तर पर आपत्ति **"के.एल. कपूर द्वारा लिखित फिजिकल केमिस्ट्री थर्मोडायनामिक्स एंड केमिकल इक्विलिब्रियम**

अनुवादित

(एस.आई. यूनिट्स) वॉल्यूम II" नामक पुस्तक पर आधारित है। अंतिम उल्लिखित प्रश्न पर आपत्ति को **डी.एन. बाजपेयी द्वारा लिखित** और एस. चंद कंपनी प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित **"एडवांस्ड फिजिकल केमिस्ट्री [बी.एससी. (भाग III और ऑनर्स) और भारतीय विश्वविद्यालयों के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों के लिए पाठ्यपुस्तक]"** पर बल देने की मांग की गई है। प्रत्युत्तर हलफनामे के पैराग्राफ संख्या 20 में, याचिकाकर्ता ने कहा है कि यद्यपि उसने प्रश्न संख्या 37, 38 और 44 के सभी तीन उत्तरों पर आपत्ति जताई है, समर्थन में सामग्री के साथ, यानी विश्वसनीय और प्रामाणिक पुस्तकें विषय पर ऑनलाइन प्रस्तुत किया गया है, लेकिन अकेले प्रश्न संख्या 44 के संबंध में उनकी आपत्तियों के समर्थित होने का प्रमाण है। पैराग्राफ संख्या 20 में कहा गया है कि प्रश्न संख्या 37 और 38 के मुख्य उत्तरों के साथ-साथ अपनी आपत्तियों के समर्थन में ऑनलाइन जमा की गई सामग्री की प्रतियों को सुरक्षित करने के सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद, याचिकाकर्ता इसे आयोग की वेबसाइट पर पुनः प्राप्त करने में सफल नहीं हो सका।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान श्री अमित कुमार तिवारी और प्रतिवादियों 2 और 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री गगन मेहता के साथ श्री प्राणेश कुमार मिश्रा को सुना गया।

9. आयोग द्वारा प्रकाशित तीन प्रश्नों से संबंधित अनंतिम उत्तरों, अभ्यर्थियों की आपत्ति और आयोग के विशेषज्ञों द्वारा उनके दिनांक 31.01.2022 की रिपोर्ट के माध्यम से निस्तारण का उल्लेख करना उचित होगा। इसे निकालना सुविधाजनक होगा, जैसा कि जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ संख्या 43 में सारणीबद्ध रूप में दिखाया गया है, जिसे रिकॉर्ड के लिए, प्रत्युत्तर हलफनामे के पैराग्राफ नंबर 23 में अस्वीकार नहीं किया गया है। जिन प्रश्नों के मुख्य उत्तर दिए गए हैं, उन पर आपत्तियाँ और विशेषज्ञ समिति द्वारा आपत्तियों का निस्तारण नीचे दिखाया गया है:

क्र.सं.	संख्या	प्रश्न	कुंजी के अनुसार उत्तर	उम्मीदवारों के उत्तर	विशेषज्ञ की राय
1.	37	फेहलिंग बिलीयन ए एवं बी से क्रिया कर एल्डिहाइड लाल रंग उत्पन्न करते हैं। लाल रंग की उत्पत्ति का कारण है? (ए)Cu^{+1} आयन	डी	ए एवं बी / प्रश्न गलत	इस प्रश्न का आयोग द्वारा दिया गया उत्तर (डी) गलत है।

अनुवादित

		(बी)Cu^{+2} आयन (सी)Cu (डी)Cu^{+1} एवं Cu^{+2} आयनों का असमानुपातन			जब कि उत्तर (ए) सही है। अभ्यर्थी की आपत्ति का संज्ञान लिया गया। स्रोत : वोगेल की व्यावहारिक कार्बनिक
					रसायन विज्ञान की पाठ्य पुस्तक।
2.	38	2. निम्नलिखित में से किस अभिक्रिया हेतु ΔG^{o} का मान धनात्मक है? (ए) प्रकाश संश्लेषण (बी) ऑक्सीजन को ओजोनीकरण (सी) अमोनिया का निर्माण (डी)	डी	ए, बी एवं सी / प्रश्न गलत	इस प्रश्न का दिया गया उत्तर (डी) सही है। अभ्यर्थी की आपत्ति का संज्ञान लि

		उपरोक्त सभी			या गया। सम्बंधित सभी आपत्ति निराधार एवं निरस्त किए जाने योग्य है। स्रोत : स्पष्टीकरण संलग्न।

3.	44	एक रासायनिक अभिक्रिया होने में एन्थैल्पी (ΔS) दोनों का मान कम होता है। यह क्रिया स्वेच्छया गति करेगी यदि- (ए) $\Delta H = T\Delta S$ (बी) $\Delta H > T\Delta S$ (सी) $\Delta H < T\Delta S$ (डी) उपरोक्त सभी	सी	ए एवं बी / प्रश्न गलत	इस प्रश्न का दिया गया उत्तर (सी) सही है। अभ्यर्थी की आपत्ति का संज्ञान लिया गया। सम्बंधित सभी आपत्ति निराधार एवं

अनुवादित

					निरस्त किए जाने योग्य है। स्रोत : स्रोत : डॉ. एस पी जौहर की पुस्तक

10. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि उत्तर पुस्तिका या स्क्रिप्ट के पुनर्मूल्यांकन और उत्तर कुंजी के चयन के संबंध में कानून अब तक काफी अच्छी तरह से तय हो चुका है। जहां तक किसी उत्तर पुस्तिका या स्क्रिप्ट के पुनर्मूल्यांकन का सवाल है, परीक्षण करने वाली संस्था को पुनर्मूल्यांकन करने का कोई अधिकार नहीं है, जब तक कि कानून में इसके लिए प्रावधान न हो। हालाँकि, यदि क़ानून किसी उत्तर पुस्तिका या स्क्रिप्ट के पुनर्मूल्यांकन या जांच की शक्ति के बारे में चुप है, तो न्यायालय पुनर्मूल्यांकन या जांच की अनुमति दे सकता है, यदि उत्तर स्पष्ट रूप से और देखने में गलत या बेतुका है, और वह भी , असाधारण मामलों में । जहां तक उत्तरों की शुद्धता का सवाल है, उनकी शुद्धता के बारे में एक धारणा है और उत्तरों के संबंध में संदेह का लाभ उम्मीदवार के बजाय परीक्षा प्राधिकारी को जाता है। इस संबंध में, **रण विजय सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य , (2018) 2 एससीसी 357** मामले में सुप्रीम न्यायलय की व्यवस्था का संदर्भ लिया जा सकता है , जहां यह देखा गया है:

*"**30.** इसलिए, इस विषय पर कानून बिल्कुल स्पष्ट है और हम केवल कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्षों पर प्रकाश डालने का प्रस्ताव करते हैं। वे इस प्रकार हैं:*

__30.1.__ यदि किसी परीक्षा को नियंत्रित करने वाला कोई क़ानून, नियम या विनियम उत्तर पुस्तिका के पुनर्मूल्यांकन या उत्तर पुस्तिका की जांच को अधिकार के रूप में अनुमति देता है, तो परीक्षा आयोजित करने वाला प्राधिकारी इसकी अनुमति दे सकता है;

__30.2.__ यदि किसी परीक्षा को नियंत्रित करने वाला कोई क़ानून, नियम या विनियम किसी उत्तर पुस्तिका के पुनर्मूल्यांकन या जांच की अनुमति नहीं देता है (जैसा कि इसे प्रतिबंधित करने से अलग है) तो न्यायलय पुनर्मूल्यांकन या जांच की अनुमति केवल तभी दे सकती है जब यह बहुत स्पष्ट रूप से प्रदर्शित हो, बिना किसी " तर्क की अनुमानात्मक प्रक्रिया या युक्तिकरण की प्रक्रिया द्वारा" और केवल दुर्लभ या असाधारण मामलों में, जब कोई बड़ी त्रुटि हुई हो;

__30.3.__ न्यायलय को किसी भी उम्मीदवार की उत्तर पुस्तिकाओं का पुनर्मूल्यांकन या जांच नहीं करनी चाहिए -

उसके पास इस मामले में कोई विशेषज्ञता नहीं है और शैक्षणिक मामलों को शिक्षाविदों पर छोड़ देना बेहतर है;

***30.4.** न्यायालय को उत्तरों की सत्यता का अनुमान लगाना चाहिए और उस अनुमान के आधार पर आगे बढ़ना चाहिए; और*

***30.5.** संदेह की स्थिति में, लाभ उम्मीदवार के बजाय परीक्षा प्राधिकारी को जाना चाहिए।"*

11. फिर, **उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग अपने अध्यक्ष के माध्यम व अन्य बनाम राहुल सिंह व अन्य, (2018) 7 एससीसी 254** में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रश्न उठा |

माननीय न्यायमूर्ति द्वारा पहले निर्धारित कानून का अनुसरण करते हुए **कानपुर विश्वविद्यालय कुलपति के माध्यम से व अन्य बनाम समीर गुप्ता व अन्य, (1983) 4 एससीसी 309**, **और रण विजय सिंह (सुप्रा), राहुल सिंह** (सुप्रा) में यह अभिनिर्धारित किया गया था:

*"**12**. कानून अच्छी तरह से तय है कि उम्मीदवार पर न केवल यह प्रदर्शित करने का दायित्व है कि मुख्य उत्तर गलत है, बल्कि यह भी है कि यह एक गंभीर गलती है जो पूरी तरह से स्पष्ट है और यह दिखाने के लिए किसी अनुमानात्मक प्रक्रिया या तर्क की आवश्यकता नहीं है कि कुंजी उत्तर गलत है। संवैधानिक न्यायालयों को ऐसे मामलों में बहुत संयम बरतना चाहिए और मुख्य उत्तरों की शुद्धता को चुनौती देने वाली याचिका पर विचार करने में अनिच्छुक होना चाहिए [कानपुर विश्वविद्यालय बनाम समीर गुप्ता, (1983) 4 एससीसी 309]। न्यायालय ने एक प्रणाली की सिफारिश की:*

(1) संयम;

(2) प्रश्नों में अस्पष्टता से बचना;

(3) संदिग्ध प्रश्नों को बाहर करने के लिए त्वरित निर्णय लिए जाएं और ऐसे प्रश्नों के लिए कोई अंक नहीं दिए जाएं।

***13**. जहां तक वर्तमान मामले का सवाल है, आयोग ने प्रमुख उत्तरों की पहली सूची प्रकाशित करने से पहले ही प्रमुख उत्तरों को दो विशेषज्ञ समितियों द्वारा संचालित करवा लिया था। इसके बाद आपत्तियां आमंत्रित की गईं और आपत्तियों के सत्यापन के लिए 26 सदस्यीय समिति का गठन किया गया और इस के बाद समिति ने सिफारिश की कि 5 प्रश्नों को हटा दिया जाए और 2 प्रश्नों में मुख्य उत्तर बदल दिए जाएं। यह माना जा सकता है कि इन समितियों में विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ शामिल थे जिनके लिए परीक्षार्थियों का परीक्षण किया गया था। न्यायाधीश शैक्षणिक मामलों में विशेषज्ञों की भूमिका नहीं निभा सकते। जब तक उम्मीदवार यह प्रदर्शित नहीं करता कि मुख्य उत्तर प्रत्यक्ष तौर पर गलत हैं, न्यायलय शैक्षणिक क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सकती हैं, दोनों पक्षों द्वारा दिए गए तर्कों के पक्ष और विपक्ष पर विचार नहीं कर सकती हैं और फिर इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकती हैं कि इनमें से कौन सा उत्तर बेहतर या अधिक सही हैं।"*

12. त्रिपुरा उच्च न्यायालय बनाम तीर्थ सारथी मुखर्जी और अन्य, (2019) 2 स्केल 708 में सर्वोच्च न्यायालय का मार्गदर्शन, फिर से, बहुत प्रासंगिक है , जहां यह माननीय न्यायमूर्ति द्वारा व्यक्त किया गया है:

*"**23.** इस मामले में हमने पहले ही नोट कर लिया है कि रिट याचिका परिणामों को चुनौती देते हुए और पुनर्मूल्यांकन की मांग करते हुए दायर की गई थी। रिट याचिका वर्ष 2012 में उच्च न्यायालय द्वारा निरस्त कर दी गई [तीर्थ सारथी मुखर्जी बनाम गौहाटी उच्च न्यायालय,*

2012 एससीसी ऑनलाइन गौ 899: (2014) 1 गौ एलआर 811]| विशेष अनुमति याचिका निरस्त कर दी गई थी [तीर्थ सारथी मुखर्जी बनाम गौहाटी उच्च न्यायालय, 2013 एससीसी ऑनलाइन एससी 1396]। याचिका लगभग 5 वर्षों के अंतराल में दायर की गई है। नए चयन के रूप में पर्यवेक्षणीय विकास हुआ, हालांकि यह सच हो सकता है कि पुनर्विलोकन याचिका दायर करने में हुई देरी को माफ कर दिया गया है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि न्यायालय अनुच्छेद 226 के तहत अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग बाद के विकास और समय बीतने के प्रभाव से बेखबर होकर करता है। यहां तक कि रण विजय सिंह बनाम राहुल सिंह [रण विजय सिंह बनाम यूपी राज्य, (2018) 2 एससीसी 357 : (2018) 1 एससीसी (एल एंड एस) 297] में इस न्यायालय के फैसले में भी जो पहले प्रतिवादी के अनुसार उच्च न्यायालय के हस्तक्षेप का आधार बनता है, हालांकि स्पष्ट रूप से ऐसा नहीं कहा गया है, न्यायालय ने जो निर्धारित किया है वह यह है कि न्यायालय अन्य बातों के अलावा केवल पुनर्मूल्यांकन की अनुमति दे सकता है यदि इसे तर्क की किसी अनुमानात्मक प्रक्रिया के बिना या युक्तिकरण की प्रक्रिया द्वारा बहुत स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया जाता है और केवल दुर्लभ या असाधारण मामलों में महत्वपूर्ण त्रुटि के करने पर प्रदर्शित किया जाता है। मामले को दुर्लभ या असाधारण मामले के रूप में चिह्नित करना सही नहीं हो सकता है जब पहला प्रतिवादी लगभग 5 साल की देरी से न्यायलय में पहुंचता है और बाद की घटनाओं को उस पर और न्यायलय पर हावी होने देता है। हमें लगता है कि उच्च न्यायलय ने इस पहलू की पूरी तरह से सराहना नहीं की|

24. *यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि पुनर्विलोकन मुख्य मामले की दोबारा सुनवाई नहीं है। किसी स्पष्ट त्रुटि पर अधिक बहस किए बिना केवल उसका पता लगाने पर ही पुनर्विलोकन की जाएगी। क्या ये कोई ऐसा मामला था? यहीं पर हमें परीक्षा के पेपर III में अकेले प्रश्न से संबंधित अपीलकर्ता के तर्क पर ध्यान देना चाहिए, जिसने न्यायलय का ध्यान इस कारण से आकर्षित किया कि पहले प्रतिवादी ने अकेले ही इस पहलू को उच्च न्यायालय के समक्ष रखा था। रिट याचिका में उच्च न्यायालय का निर्णय [तीर्थ सारथी मुखर्जी बनाम गौहाटी उच्च न्यायालय, 2012 एससीसी ऑनलाइन गौ 899: (2014) 1 गौ एलआर 811] अपीलकर्ता की इस दलील को दर्शाता हुआ प्रतीत होता है। निर्णय में पेपर III के मूल्यांकन में विसंगति से संबंधित मुद्दे पर विस्तार से चर्चा की गई है। इस न्यायालय द्वारा उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण को प्रभावित नहीं किया गया है। इसके बावजूद उच्च न्यायालय ने विवादित निर्णय में [तीर्थ सारथी मुखर्जी बनाम गौहाटी उच्च न्यायालय, 2018 एससीसी ऑनलाइन गौ 2060] भाग I और भाग II में प्रश्नों से संबंधित याचिका पर विचार किया और पुनर्विलोकन याचिका पर विचार किया और वो भी करीब 5 साल बीतने के बाद राहत दी| यह वर्तमान अपील की अनुमति देने के लिए पर्याप्त है।*

25. *इन सबके बावजूद हम मामले के गुण-दोष पर कुछ टिप्पणियाँ भी करेंगे।"*

13. उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित उपरोक्त सिद्धांत दर्शाते हैं कि जहां सार्वजनिक परीक्षण के मामलों में विशेषज्ञ की राय के आधार पर मुख्य उत्तरों की शुद्धता का प्रश्न हो, वहां न्यायालय को आम तौर पर अपने आपको रखना चाहिए। मुख्य उत्तरों को सही माना जाना चाहिए, विशेष रूप से विषय में निपुण विशेषज्ञों के एक पैनल द्वारा आपत्ति पर पुष्टि किए जाने के बाद, जिन्हें एक चयन प्राधिकारी द्वारा नियुक्त किया जाता है, जिसे क़ानून द्वारा चयन की शक्ति प्रदान की गई है। उत्तर कुंजी के

संबंध में विशेषज्ञ की राय से, जिस पर सार्वजनिक परीक्षा के लिए मूल्यांकन किया जाना है, न्यायालय को अपील न्यायालय नहीं बनाया जा सकता है। प्रासंगिक विषय में तकनीकी तर्क की विस्तृत प्रक्रिया के बिना, केवल स्पष्ट असावधानी या स्पष्ट त्रुटि के मामलों में, न्यायालय बहुत ही दुर्लभ मामलों में, जहां आश्वस्त हो, एक गलत कुंजी को सुधारने के लिए स्वतंत्र विशेषज्ञ की राय ले सकता है। अभी भी कुछ विषय या मामले ऐसे हो सकते हैं जहां मुख्य उत्तर इतना स्पष्ट रूप से गलत हो सकता है कि न्यायालय इसे अनदेखा नहीं कर सकता। यहाँ वो बात नहीं है| इसमें शामिल विषय एक जटिल विज्ञान है, यानी भौतिक रसायन विज्ञान और विषय की बहुत सारी समझ उस त्रुटि को समझने में लगेगी जो याचिकाकर्ता के अनुसार तीन प्रमुख उत्तरों में मौजूद है।

14. यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि रिट याचिका में, याचिकाकर्ता द्वारा तीन प्रमुख उत्तरों पर आपत्तियों का कोई आधार या स्रोत का खुलासा नहीं किया गया है। यदि याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए आपत्तियों के बारे में कोई गंभीरता होती, तो उसने अपनी आपत्तियों का समर्थन करने के लिए रिट याचिका में उन प्रामाणिक स्रोतों को संलग्न किया होता, जो विषय पर प्रतिष्ठित ग्रंथों या पाठ्यपुस्तकों से उद्धरण हो सकते हैं, उनके पूरे संदर्भ के साथ। यह जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ संख्या 35 के माध्यम से उठाए गए प्रतिवादियों की आपत्ति के जवाब में है कि याचिकाकर्ता ने विवादित मुख्य उत्तरों पर अपनी आपत्तियों के स्रोत का प्रदर्शित नहीं किया है, क्योंकि प्रत्युत्तर हलफनामे में, याचिकाकर्ता द्वारा अपनी आपत्तियों को प्रमाणित करने के लिए पाठ्यपुस्तकों की कुछ फोटो प्रतियां संलग्न की गई हैं।

15. मामला यहीं नहीं समाप्त होता है | याचिकाकर्ता इस तथ्य को स्वीकार करता है कि आयोग को ऑनलाइन प्रस्तुत की गई आपत्तियों के समर्थन में सामग्री केवल प्रश्न संख्या 44 के उत्तर की तुलना में वेबसाइट पर उपलब्ध है। प्रश्न संख्या 37 और 38 के मुख्य उत्तरों पर अपनी आपत्तियों का समर्थन करने के लिए याचिकाकर्ता द्वारा दायर की गई सामग्री की आयोग की वेबसाइट से कोई पुनर्प्राप्ति नहीं है। यह न्यायालय इस विवाद में नहीं जा सकता है कि क्या, वास्तव में, आयोग के समक्ष, उसके साथ तीन विवादित मुख्य उत्तरों पर आपत्तियों के लिए, याचिकाकर्ता ने आपत्तियों के लिए शैक्षणिक आधार प्रस्तुत करते हुए आवश्यक सामग्री संलग्न की थी। न्यायालय को इस आधार पर आगे बढ़ना होगा कि आयोग के समक्ष, अकेले प्रश्न संख्या 44 पर आपत्तियों के समर्थन में, चाहे जितनी भी हो, आवश्यक सामग्री थी। जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ संख्या 43 में दर्शाए गए विशेषज्ञों के पैनल द्वारा आपत्तियों के निपटारे से, इस न्यायालय ने पाया कि प्रश्न संख्या 37 पर आपत्ति को विशेषज्ञों के पैनल द्वारा स्वीकार कर लिया गया है और बुकलेट सीरीज "ए" के अनंतिम उत्तर कुंजी में उत्तर दिया गया है, "डी" को सुधार कर "ए" कर दिया गया है। बुकलेट सीरीज-ए के 38 और 44 के अलावा प्रश्न संख्या 37 पर आपत्तियों पर विचार करने के बाद सही उत्तर 11.02.2022 को संशोधित और अंतिम उत्तर कुंजी में प्रकाशित किया गया है। उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन अंतिम उत्तर कुंजी के आधार पर किया गया है।

16. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दलील है कि आयोग द्वारा नियुक्त विशेषज्ञ समिति की राय, जिसके आधार पर अंतिम उत्तर कुंजी तैयार की गई है, तीन विवादित मुख्य उत्तरों की सत्यता का मूल्यांकन किसी भी प्रतिष्ठित या प्रामाणिक पाठ्यपुस्तक, या संधियों द्वारा समर्थित नहीं है, जो तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता है। विशेषज्ञ

समिति की रिपोर्ट के अवलोकन से पता चलता है कि प्रकाशन पर अनंतिम उत्तर कुंजी की जांच याचिकाकर्ता सहित उम्मीदवारों की आपत्तियों के संदर्भ में की गई थी।

17. जहां तक बुकलेट सीरीज-ए के प्रश्न संख्या 37 के मुख्य उत्तर का सवाल है, विशेषज्ञ समिति ने अनंतिम उत्तर कुंजी में दिए गए उत्तर को गलत माना है और सही उत्तर को 'डी' के बजाय 'ए' चुना है, जैसा अनंतिम कुंजी में दिया गया है। राय का आधार एक निश्चित **वोगेल की कार्बनिक रसायन विज्ञान की पाठ्यपुस्तक** है। विशेषज्ञ समिति द्वारा अनंतिम उत्तर कुंजी में यह सुधार याचिकाकर्ता की आपत्ति को बरकरार नहीं रखता है। इस प्रकार, याचिकाकर्ता अभी भी गलत होगा।

18. जहां तक प्रश्न संख्या 38 और 44 का सवाल है, अनंतिम कुंजी ने बुकलेट सीरीज-ए के प्रश्न संख्या 38 के लिए सही विकल्प को 'डी' और संख्या 44 के लिए 'सी' के रूप में दर्शाया है। विशेषज्ञ समिति ने अनंतिम उत्तर कुंजी में दर्शाए गए उत्तरों पर आपत्तियों को निरस्त कर दिया है और इसकी पुष्टि की है। बुकलेट सीरीज-ए के प्रश्न संख्या 38 के मामले में दिए गए उत्तर विकल्प को विशेषज्ञों की समिति द्वारा संलग्न स्पष्टीकरण के आधार पर उचित ठहराया गया है। जवाबी हलफनामे के साथ संलग्न विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट दिनांक 31.01.2022 के अवलोकन से पता चलता है कि समिति में तीन प्रोफेसर शामिल थे, प्रोफेसर इंद्र प्रसाद त्रिपाठी, प्रोफेसर और प्रमुख रसायन विज्ञान विभाग, विज्ञान संकाय, महात्मा गांधी, चित्रकूट, सतना , मध्य प्रदेश; प्रोफेसर राणा कृष्णपाल सिंह, प्रोफेसर, रसायन विज्ञान विभाग और कुलपति, डॉ. शकुंतला मिश्रा, राष्ट्रीय पुनर्वास विश्व विद्यालय, लखनऊ और प्रोफेसर कृष्ण बिहारी पांडे, पूर्व प्रोफेसर, कुलपति। प्रोफेसर, कृष्ण बिहारी पांडे के विश्वविद्यालय का नाम, जहां वे पढ़ाते थे, या जहां के वे कुलपति थे, निस्संदेह रिपोर्ट में नहीं है। लेकिन, तीन विशेषज्ञों की प्रोफ़ाइल को देखते हुए, इस न्यायालय के पास यह संदेह करने का कोई कारण नहीं है कि वे अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ हैं और अनंतिम उत्तर कुंजी में त्रुटियों की ओर उनका ध्यान आकर्षित होने पर, गलत और साथ ही साथ अस्पष्ट उत्तर को हटाने करने के लिए आपत्तियों की सावधानीपूर्वक जांच की होगी।

19. जहां तक आखिरी जवाब का सवाल है, यानी बुकलेट सीरीज़-ए के प्रश्न संख्या 44 का जवाब है, उस पर आपत्ति को विशेषज्ञ समिति ने डॉ. एसबी जौहर की पाठ्यपुस्तक पर अपनी राय देते हुए निरस्त कर दिया है।

20. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने बहुत ही प्रेरक तर्क दिया है और इस न्यायालय को भौतिक रसायन विज्ञान को थोड़ा समझने के लिए प्रेरित करने का सराहनीय प्रयास किया है। उन्होंने बुकलेट सीरीज-ए के प्रश्न संख्या 37, 38 और 44 के अंतिम मुख्य उत्तरों को गलत साबित करने के लिए वैज्ञानिक तर्क का विस्तार से वर्णन किया है। दुर्भाग्य से, याचिकाकर्ता के लिए, उन्नत भौतिक रसायन विज्ञान की समझ में सीधे शामिल होना इस न्यायालय की समझ से परे है। बहुत बाध्यकारी मिसाल वाला कानून भी हमें वह जांच करने की अनुमति नहीं देता है। इसलिए इस संबंध में याचिकाकर्ता की दलील स्वीकार नहीं की जा सकती।

21. प्रयास के अंतिम प्रयास के रूप में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह बताया गया कि रिट-ए संख्या 3372/ 2022 में एक समान मामले में, इस न्यायालय के एक अन्य विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 05.05.2022 के आदेश के तहत ग्यारह याचिकाकर्ताओं की याचिका पे बुकलेट सीरीज-ए के प्रश्न संख्या 38, 41, 44, 45, 82 और 84 की तुलना में अंतिम उत्तर कुंजी की शुद्धता को दो विशेषज्ञों को राय के लिए भेजा है, जिन्हें बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के कुलपति द्वारा भौतिक रसायन विज्ञान विभाग के वरिष्ठ शिक्षकों में से नामांकित किया जा सकता है। न्यायलय ने इस मामले में 10.06.2022 को निर्णय सुरक्षित रख लिया था, लेकिन उपरोक्त विशेषता को देखते हुए, मामले को 01.12.2022 को आगे की सुनवाई के लिए लगाया गया था। 13.12.2022 को, यह न्यायालय के संज्ञान में लाया गया कि बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के विशेषज्ञों ने दिनांक 01.12.2022 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की है, जो आयोग की विशेषज्ञ समिति द्वारा अनुमोदित बुकलेट सीरीज-ए के प्रश्न संख्या 38 और 84 के प्रमुख उत्तरों से भिन्न है।

22. न्यायालय का ध्यान विद्वान न्यायाधीश द्वारा 18.11.2022 को रिट-ए संख्या में पारित आदेश की ओर आकर्षित किया गया है, जो उपरोक्त तथ्य को दर्ज करता है, जिससे आयोग को पूरक जवाबी हलफनामा दायर करने का समय दिया गया। 13.12.2022 को आगे की सुनवाई में, पक्षों के विद्वान अधिवक्ता ने रिट-ए संख्या 3372/2022 में पारित दिनांक 02.12.2022 का एक आदेश प्रस्तुत किया, जहां विद्वान एकल न्यायाधीश ने टिप्पणी की कि सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए कि बाहरी विशेषज्ञ की राय जांच निकाय के विशेषज्ञ की राय पर हावी नहीं हो सकती है, आयोग के अधिवक्ता दो सप्ताह के भीतर जवाब दाखिल कर सकते हैं। उपरोक्त रिट याचिका में शामिल छह प्रश्नों के मुख्य उत्तरों की शुद्धता के बारे में अंतिम रुख अपनाने से पहले, आयोग को बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की रिपोर्ट के साथ मामले को अपने विशेषज्ञों के पास भेजने की आवश्यकता है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि यहां उन सभी प्रश्नों में से, प्रश्न संख्या 38 और 44 प्रासंगिक हैं; वास्तव में, अकेले 38, क्योंकि बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के विशेषज्ञ आयोग की विशेषज्ञ समिति से असहमत हैं। रिट-ए नंबर 3372/2022 की सुनवाई 13.01.2023 तक के लिए स्थगित कर दी गई है| इन परिस्थितियों में, इस न्यायालय को मामले की सुनवाई स्थगित करना संभव नहीं लगा और निर्णय सुरक्षित रख लिया गया।

23. यह सामान्य बात है कि आयोग को किसी बाहरी विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट से तब तक बाध्य नहीं रखा जा सकता जब तक कि आयोग स्वयं, यानी अपने स्वयं के विशेषज्ञ, न्यायालय द्वारा नियुक्त बाहरी विशेषज्ञ की राय के अनुरूप न हो। या फिर, यदि यह न्यायालय की समझ में है, एक ऐसा कारक जो कई परिस्थितियों पर निर्भर करेगा, न्यायालय की राय है कि बाहरी विशेषज्ञों की रिपोर्ट समिति द्वारा अनुमोदित प्रमुख उत्तरों को तर्क की विस्तृत प्रक्रिया के बिना स्पष्ट रूप से गलत दिखाती है, उत्तर कुंजी को गलत मानकर राहत प्रदान कर सकता है।

24. इस याचिका में यह कार्यप्रणाली को नहीं अपनाया गया है और इस न्यायालय के पास किसी अन्य मामले में आयोग की प्रतिक्रिया के नतीजे की प्रतीक्षा करने का कोई कारण नहीं है, एक प्रश्न के संबंध में समान ही मुद्दा शामिल

हो सकता है। इस न्यायालय की राय है कि सार्वजनिक पदों पर उम्मीदवारों का चयन करने के लिए परीक्षा की अनिवार्यताओं को अनिश्चित काल तक अनिश्चितता की छाया में नहीं रखा जा सकता है और न ही इसे अंतहीन रूप से बदला जा सकता है क्योंकि इससे सार्वजनिक पदों पर समय पर चयन में बाधा आएगी, जबकि अंतिमता प्रक्रिया से जुड़ी हुई है।

25. इस न्यायालय की राय है कि समग्र परिस्थितियों में, आयोग द्वारा उनकी उत्तर कुंजी की जांच में पर्याप्त सुरक्षा उपाय किए गए हैं, जिसके आधार पर चयन किए गए हैं। इन्हें दीर्घकालीन अनिश्चितता में नहीं रखा जाना चाहिए। एक अंतिम टिप्पणी के रूप में, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि भले ही किसी बाहरी विशेषज्ञ की राय के आधार पर कुछ सामग्री के कारण विवादित उत्तरों में से एक या दूसरे के मुख्य उत्तर के बारे में कुछ संदेह हो, संदेह का समाधान परीक्षा निकाय के पक्ष में किया जाना चाहिए जैसा कि **रण विजय सिंह** में आयोजित किया गया था।

26. परिस्थितियों की समग्रता में, इस न्यायालय को वर्तमान रिट याचिका में कोई योग्यता नहीं मिलती है। यह याचिका **विफल** हो जाती है और **निरस्त** की जाती है।

(2023) 1 ILRA 1125

मूल न्यायाधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक:इलाहाबाद 19.12.2022
समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा,

रिट-ए संख्या 18291/2021

खुशबू सक्सैना ...याचिकाकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता:
श्रीउदय नारायण, वरिष्ठ अधिवक्ता

अधिवक्ता प्रतिवादी:
सी.एस.सी., श्री अभिषेक श्रीवास्तव, श्री अनुभव सिंह, श्री कृष्ण अग्रवाल, श्रीमती उषा किरण

A. सेवा कानून – अनुकंपा नियुक्ति - उ.प्र. राज्य विद्युत बोर्ड डाइंग इन हार्नेस रूल्स, 1975 - उ.प्र. राज्य विद्युत बोर्ड डाइंग इन हार्नेस नियमावली, 1975 (11वाँ संशोधन) नियमावली, 2014 - उ.प्र. विद्युत सुधार अंतरण योजना, 2000 खंड-6(1) अनुकंपा नियुक्ति सार्वजनिक सेवाओं में नियुक्ति के सामान्य नियम का अपवाद है और यह उस मृतक के आश्रितों के पक्ष में है जो काम के दौरान मृत हो जाता है और अपने परिवार को गरीबी में और आजीविका के संबंध में बिना किसी साधन के छोड़ देता है, और ऐसे मामलों में, शुद्ध मानवीय विचार से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि जब तक आजीविका का कोई स्रोत प्रदान नहीं किया जाता है, तब तक परिवार दोनों जरूरतों को पूरा करने में सक्षम नहीं होगा, मृतक के आश्रितों में से एक को लाभकारी रोजगार प्रदान करने के लिए नियमों में प्रावधान किया गया है, जो ऐसे रोजगार के लिए पात्र हो सकता है। **इस प्रकार, अनुकंपा रोजगार देने का पूरा उद्देश्य परिवार को अचानक आए संकट से निपटने में सक्षम बनाना है।** इसका उद्देश्य ऐसे परिवार को मृतक द्वारा धारित पद से कोई कम पद देना नहीं है। (पैरा 18)

याचिकाकर्ता ने दावा किया कि वह अपनी मां पर निर्भर थी जिनकी मृत्यु हो गई थी और इसलिए, उसे अनुकंपा नियुक्ति की आवश्यकता है। आवेदन पत्र में, जो कॉलम मृतक कर्मचारी पर आश्रित व्यक्तियों के विवरण से संबंधित था, उसमें याचिकाकर्ता ने अपने पिता का नाम राजीव सक्सेना उम्र लगभग 56 वर्ष और खुद का नाम भी बताया था। हालाँकि, "मासिक आय" और "अन्य स्रोतों से आय, यदि कोई हो" वाले कॉलम के तहत, याचिकाकर्ता ने कुछ भी नहीं लिखा है और ऐसे कॉलम को खाली छोड़ दिया है। याचिकाकर्ता का जन्म 1992 में हुआ था और उसने अप्रैल, 2021 में आवेदन दायर किया था। आवेदन के समय उसकी उम्र 28 वर्ष से अधिक थी। वह अच्छी तरह से शिक्षित थी क्योंकि वह (सूचना प्रौद्योगिकी) में बी.टेक थी। **याचिकाकर्ता द्वारा पिता की वार्षिक आय**

को जानबूझकर छुपाया गया था, जिसे माँ पर आश्रित के रूप में दिखाया गया था, (अर्थात, वह मृतक-कर्मचारी था)। (पैरा 12)

याचिकाकर्ता की नियुक्ति के बाद ही ऐसा हुआ; उसने एक सत्यापन फॉर्म जमा किया जहां उसने पहली बार खुलासा किया कि उसके पिता यूपी में काम कर रहे थे। पुलिस और रुपये 12,20,000/- की वार्षिक आय अर्जित कर रहे थे और याचिकाकर्ता और उसका परिवार रिजर्व पुलिस लाइन्स, लखनऊ में टाइप-III क्वार्टर में रह रहे थे और सत्यापन फॉर्म भरने के समय उनकी उम्र 26 वर्ष थी। उसके पिता ने केस्को द्वारा भेजे गए पत्र के जवाब में अपना शपथ पत्र प्रस्तुत करते हुए कहा कि वह यूपी में निरीक्षक (लेखा) पुलिस आयुक्तालय, लखनऊ के पद पर कार्यरत थे और उनकी पत्नी श्रीमती कुमकुम सक्सैना की मृत्यु का समय और पिछले 10 वर्षों से, उनकी बेटी खुशबू सक्सैना पारिवारिक परिस्थितियों के कारण कुछ कारणों से पूरी तरह से अपनी माँ पर निर्भर थी जिसने उसका पालन-पोषण किया था, और उसकी शिक्षा के लिए भी वह ज़िम्मेदार थी। याचिकाकर्ता के पिता द्वारा दायर शपथपत्र में किसी न्यायिक पृथक्करण या सक्षम न्यायालय के किसी आदेश का उल्लेख नहीं है जिसमें कहा गया हो कि श्रीमती कुमकुम सक्सैना अपने पिता राजीव सक्सैना से अलग याचिकाकर्ता के साथ रह रही थी। (पैरा 13)

बी. यू.पी. राज्य विद्युत बोर्ड हार्नेस नियम, 1975 - 2015 संशोधन – भले ही याचिकाकर्ता का यह तर्क कि 2015 के संशोधित नियम केस्को के कर्मचारियों के लिए अनुपयुक्त थे, सही माना जाता है, यह न्यायालय याचिकाकर्ता की आड़ में अपनी आँखें बंद नहीं कर सकता है। प्रतिवादियों से डाइंग इन हार्नेस रूल्स, 1975 के तहत अनुकंपा नियुक्ति की मांग करते समय इसका सहारा लिया गया। याचिकाकर्ता ने आवेदन पत्र में अपने पिता और खुद को अपनी मां पर निर्भर दिखाया था और जानबूझकर मासिक आय और अन्य स्रोतों से आय के कॉलम को नहीं भरा था। 1974 की नियमावली को उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत परिषद सेवाकाल में मृत सेवकों के आश्रितों की भर्ती नियमावली-1975 कहा जाता है। याचिकाकर्ता अपनी मृत मां पर आश्रित नहीं थी और इसलिए 1975 के असंशोधित नियम भी उस पर लागू नहीं थे। (पैरा 15)

रिट याचिका निरस्त। (ई 4)

<u>उद्धृत वाद:</u>

महाराष्ट्र एवं अन्य बनाम माधुरी मारुति विधाते 2002 एससीसी ऑनलाइन एससी 1327 (पैरा 17)

वर्तमान याचिका प्रबंध निदेशक, कानपुर विद्युत आपूर्ति कंपनी, कानपुर नगर द्वारा पारित आदेश दिनांक 06.09.2021 को चुनौती देती है और प्रतिवादियों को केस्को, कानपुर नगर में कार्यकर्ता सहायक (कार्यकारी सहायक) के रूप में याचिकाकर्ता के काम में हस्तक्षेप न करने के लिए एक परमादेश जारी करने की भी प्रार्थना की।

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा द्वारा प्रदत्त)

(मौखिक)

1. याचिकाकर्ती के विद्वान अधिवक्ता श्री उदयन नंदन और प्रतिवादी संख्या 3 से 5 की ओर से उपस्थित श्री अनुभव सिंह और उत्तर प्रदेश विद्युत निगम लिमिटेड की ओर से उपस्थित श्री कृष्णा अग्रवाल को सुना।

2. यह याचिका याचिकाकर्ती द्वारा प्रबंध निदेशक, कानपुर विद्युत आपूर्ति कंपनी, कानपुर नगर द्वारा पारित आदेश दिनांक 6.9.2021 को चुनौती देते हुए योजित की गई है और प्रतिवादियों को एक परमादेश जारी करने की भी प्रार्थना की गई है कि वे केस्को, कानपुर नगर में एक कार्यकारी सहायक (कार्यकारी सहायक) के रूप में याचिकाकर्ती के कामकाज में हस्तक्षेप न करें।

3. याचिकाकर्ती का कहना है कि उनकी मां की नियुक्ति 1986 में उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत परिषद में हुई थी। उनकी सेवाओं को 11.12.2008 के शासनादेश द्वारा स्थायी आधार पर केस्को को स्थानांतरित कर दिया गया था। उसने लगभग 10 वर्षों तक केस्को में काम किया। बाद में उन्हें 2019 में यूपी पावर ट्रांसमिशन कॉर्पोरेशन लिमिटेड में प्रतिनियुक्ति पर भेजा गया था और लेखा विभाग में वरिष्ठ अधिकारी सहायक के रूप में काम कर रही थीं। 18.05.2021 को सेवा काल में उनकी मृत्यु हो गई। अपनी मां की मृत्यु के बाद, याचिकाकर्ती ने यूपी राज्य विद्युत परिषद मृतक आश्रित सेवा नियमावली, 1975 के प्रावधान के अनुसार अनुकंपा नियुक्ति के लिए

आवेदन किया। अपने आवेदन के समय, उन्होंने 14.6.2021 को एक शपथपत्र भी प्रस्तुत किया। आवेदन और शपथ पत्र रिट याचिका के संलग्नक-3 और 4 के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। औपचारिकताएं पूरी होने के बाद, याचिकाकर्ती को दिनांक 15.6.2021 के एक पत्र द्वारा सूचित किया गया कि याचिकाकर्ती को 27,200-86,100/- रुपये के वेतनमान में कार्यकारी सहायक के रूप में नियुक्ति हेतु प्रस्ताव करने का निर्णय लिया गया है। याचिकाकर्ती को 24.6.2021 को नियुक्ति पत्र जारी किया गया था, इस शर्त के अधीन कि उसने नियुक्ति की तिथि से एक वर्ष के भीतर सीसीसी योग्यता प्राप्त करनी है।

4. याचिकाकर्ती ने भर्ती लिया और कार्यकारी सहायक के रूप में कार्यरत रहीं। उन्हें अपनी नियुक्ति पर सत्यापन प्रपत्र भी भरने के लिए कहा गया था। याचिकाकर्ती ने अपने सत्यापन प्रपत्र में स्पष्ट रूप से कहा कि उसके पिता उत्तर प्रदेश पुलिस विभाग में 12,20,200/- रुपये की वार्षिक आय के साथ कार्यरत थे। याचिकाकर्ती द्वारा 6.7.2021 को सत्यापन प्रपत्र जमा करने के बाद, उसे 22.7.2021 को एक सूचना प्राप्त हुआ कि उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत परिषद मृतक आश्रित सेवा नियमावली, 1975 के संशोधित प्रावधान के अनुसार, एक व्यक्ति अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का पात्र है, यदि मृतक कर्मचारी का कोई अन्य परिवार का सदस्य केंद्र या राज्य सरकार के विभाग या सरकार के किसी भी उपक्रम में काम नहीं कर रहा है। याचिकाकर्ती को कारण बताओ नोटिस जारी करने और तीन दिवस के भीतर शपथपत्र प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया। याचिकाकर्ती के पिता ने आवेदन दिनांक 28.7.2021 के साथ एक शपथपत्र प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ती को उसके अभिलेखों के सत्यापन के पश्चात नियुक्त किया गया था और वह लखनऊ में पुलिस आयुक्तालय में एक निरीक्षक (लेखा) के रूप में कार्यरत है। हालांकि, याचिकाकर्ती को अपना उत्तर प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था, जिसे उसने 12.8.2021 को शपथपत्र के साथ प्रस्तुत किया था।

5. दिनांक 17.8.2021 को उन्हें कारण बताओ नोटिस जारी किया गया जिसमें कहा गया था कि उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत परिषद मृतक आश्रित सेवा नियमावली, 1975 के नियम-5 में किए गए संशोधन के अनुसार, वर्ष 2015 में किसी व्यक्ति को अनुकंपा के आधार पर नियुक्त नहीं किया जा सकता है, यदि उसके परिवार का कोई सदस्य केंद्र या राज्य सरकार के विभाग या उसके किसी उपक्रम के अधीन सेवा में है। इसलिए, याचिकाकर्ती को कोई नियुक्ति नहीं दी जा सकती थी। याचिकाकर्ती ने संबंधित अभिलेख मांगे और उसके बाद केस्को के मुख्य अभियंता को एक पत्र भेजकर कारण बताओ नोटिस पर अपना उत्तर प्रस्तुत करने के लिए और समय मांगा। उसे कोई अभिलेख नहीं दिया गया। उन्होंने सूचना का अधिकार अधिनियम के अंतर्गत प्रथम अपील भी प्रस्तुत की। हालांकि, केस्को के प्रबंध निदेशक द्वारा कोई समय नहीं दिया गया था और 6.9.2021 को याचिकाकर्ती की सेवाओं को समाप्त करने का आक्षेपित आदेश इस आधार पर पारित किया गया था कि उसकी नियुक्ति उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत परिषद मृतक आश्रित सेवा नियमावली, 1975 के उल्लंघन में की गई थी, जैसा कि अधिसूचना दिनांक 25.06.2015 द्वारा संशोधित किया गया था।

6. याचिकाकर्ती के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ती की सेवाओं को समाप्त करने का मुख्य आधार यह है कि उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत परिषद मृतक आश्रित सेवा नियमावली, 1975 (11 वां संशोधन) नियम, 2014 के अनुसार, मृतक-

कर्मचारी का परिवार का कोई सदस्य अनुकंपा के आधार पर नियुक्त होने का पात्र था, यदि उसे केंद्र या राज्य सरकार के विभाग या उसके किसी भी उपक्रमों की सेवाओं में नियुक्त और काम नहीं किया गया है। तत्पश्चात् उ०प्र० विद्युत परिषद मृतक आश्रित सेवा नियमावली, 1975 में संशोधन किया गया, जिसे उ०प्र० विद्युत निगम लिमिटेड के परिषद की 116वीं बैठक में दिनांक 25.06.2015 से अनुमोदित किया गया। अब, मृत कर्मचारी के परिवार के सदस्य को केवल तभी नियुक्त किया जा सकता है, जब परिवार का कोई अन्य सदस्य पहले केंद्र या राज्य सरकार या सरकार के किसी अन्य उपक्रम में काम नहीं कर रहा हो। प्रतिवादीगण ने एक आधार लिया है कि चूंकि याचिकाकर्ती के पिता यूपी पुलिस में कार्यरत थे, इसलिए उन्हें 2015 के संशोधन के अंतर्गत नियुक्त नहीं किया जा सकता था। हालांकि, प्रतिवादीगण ने संशोधित नियमों की गलत व्याख्या की है। 2000 की यूपी विद्युत सुधार हस्तांतरण योजना लागू होने के बाद, याचिकाकर्ती की मां की सेवाएं 2008 में स्थायी रूप से केस्को को स्थानांतरित कर दी गईं। उ०प्र० विद्युत निगम लिमिटेड द्वारा अपनी परिषदीय बैठक में उ०प्र० राज्य विद्युत परिषद मृतक आश्रित सेवा नियमावली, 1975 के संबंध में किया गया कोई भी संशोधन केस्को, कानपुर के कर्मचारियों पर लागू नहीं होगा। स्वचालित रूप से, केस्को, कानपुर के कर्मचारी स्थानांतरण के समय अस्तित्व में नियमों द्वारा शासित होंगे। उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत परिषद मृतक आश्रित सेवा नियमावली, 1975 द्वारा किए गए कोई भी बाद के संशोधन ऐसे कर्मचारियों पर लागू नहीं होंगे। चूंकि वर्ष 2000 में स्थानांतरण योजना तैयार किए जाने के बाद केस्को, कानपुर द्वारा कोई अलग नियम या संशोधन नहीं किए गए हैं, इसलिए स्थानांतरण की तिथि पर लागू नियम ऐसे स्थानांतरित कर्मचारियों पर लागू होंगे। उ०प्र० पावर कारपोरेशन लिमिटेड द्वारा नियमों में किए गए बाद में किए गए कोई संशोधन उन पर लागू नहीं होंगे। उ०प्र० विद्युत सुधार अंतरण योजना, 2000 के खण्ड-6(1) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वर्तमान नियम अंतरित कर्मचारियों पर लागू होंगे। चूंकि केस्को, कानपुर द्वारा सेवा शर्तों से संबंधित कोई नए नियम नहीं बनाए गए थे, इसलिए ऐसे स्थानांतरण/आमेलन के समय मौजूदा नियम लागू होंगे।

7. याचिकाकर्ती के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि संशोधित नियम, 2015, जिन्हें यूपी पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड की 116 वीं बोर्ड बैठक में अपनाया गया था, बाद में याचिकाकर्ती की मां को केस्को, कानपुर में स्थानांतरित और स्थायी रूप से अवशोषित करने के बाद आया है, केस्को कानपुर ने इस तरह के संशोधित नियमों को नहीं अपनाया है, संशोधित नियमों में प्रावधान याचिकाकर्ती के मामले में लागू नहीं होगा।

8. श्री अनुभव सिंह ने प्रतिवादीगण द्वारा प्रस्तुत प्रति-शपथपत्र के आधार पर कहा कि याचिकाकर्ती द्वारा 1.6.2021 को प्रस्तुत किए गए आवेदन पत्र को ठीक से भरा नहीं गया था। उसने इस तथ्य को छिपाया था कि अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन करते समय उसके पिता प्रति वर्ष 12,20,200/- रुपये से अधिक कमा रहे थे, यह दर्शाता है कि वह और याचिकाकर्ती अपनी मां के वेतन पर निर्भर नहीं थे। नियम, 1975 के संशोधित नियम-5 के अनुसार, यदि परिवार का कोई सदस्य पहले से ही कार्यरत है, तो वह अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन करने के लिए भी पात्र नहीं था। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ती द्वारा प्रस्तुत शपथपत्र में, याचिकाकर्ती ने कहा था कि वह अपने परिवार की देखभाल उसी तरह करेगी जैसे उसकी मां अपनी मृत्यु से पूर्व अपने परिवार

की देखभाल कर रही थी, और उसने कुछ भी नहीं छिपाया था और पूरी सच्चाई बताई थी और यदि बाद में कोई दुरुपयोग या गलत पाया जाता है, प्रतिवादी उसकी सेवाओं को समाप्त करने सहित उचित कार्रवाई करने के लिए स्वतंत्र थे।

9. यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ती ने 14.6.2021 को एक झूठा शपथपत्र प्रस्तुत किया था, याचिकाकर्ती के पिता के पहले से ही उत्तर प्रदेश पुलिस में कार्यरत होने का मामला तब सामने आया जब याचिकाकर्ती ने सत्यापन प्रपत्र प्रस्तुत किया जिसमें उसके पिता को उत्तर प्रदेश पुलिस में एसआई/इंस्पेक्टर (लेखा) के रूप में कार्यरत दिखाया गया था, और निवास स्थान रिजर्व पुलिस लाइन्स, लखनऊ के रूप में था। याचिकाकर्ती द्वारा सत्यापन प्रपत्र भरने और जमा करने के बाद, याचिकाकर्ती को उसके आवेदन पत्र और उसके द्वारा प्रस्तुत शपथपत्र में छिपाने/गलत कथन के संबंध में कम से कम तीन बार नोटिस जारी किए गए। याचिकाकर्ती ने प्रत्युत्तर में कोई शपथपत्र प्रस्तुत नहीं किया। उसके पिता ने एक शपथपत्र प्रस्तुत किया और एक आवेदन भी भेजा कि वह यूपी पुलिस में कार्यरत है। याचिकाकर्ती ने समय के लिए प्रार्थना की और उसे दिए जाने वाले प्रासंगिक अभिलेखों के लिए एक आवेदन भी प्रस्तुत किया। याचिकाकर्ती को पर्याप्त समय दिया गया और अंततः उसे 17.8.2021 को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया और 25.8.2021 को एक अनुस्मारक भेजा गया। इसके बाद ही, प्रतिवादीगण ने दिनांक 6.9.2021 का आदेश पारित किया है।

10. यूपी विद्युत सुधार हस्तांतरण योजना 2000 और याचिकाकर्ती की मां की सेवा के हस्तांतरण और 2008 में केस्को, कानपुर में उसके आमेलन के बारे में विद्वान अधिवक्ता या याचिकाकर्ती द्वारा उठाए गए तर्कों के संबंध में, यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ती की मां पर लागू नियम उसके रोजगार के नियमों और शर्तों के विषय में, स्थानांतरण के समय यूपीएसईबी के नियम होंगे। हालांकि, याचिकाकर्ती द्वारा मांगी गई अनुकंपा नियुक्ति उसकी मां की मृत्यु के बाद थी, और इस तरह के आवेदन पत्र जमा करने के समय लागू नियमों को अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए ध्यान में रखा जाएगा। यह तर्क दिया गया है कि विचार करने वाली पहली और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि क्या याचिकाकर्ती अपने आवेदन पत्र और अपने शपथपत्र में गलत कथन और छिपाने की दोषी थी। चूंकि याचिकाकर्ती ने गलत जानकारी दी थी, इसलिए उसकी नियुक्ति इस विवाद में पड़े बिना निरस्त की जा सकती थी कि उसके लिए कौन से नियम लागू हैं।

11. याचिकाकर्ती द्वारा प्रस्तुत प्रत्युत्तर शपथपत्र में, यह फिर से दोहराया गया है कि वर्ष 2015 में यूपी राज्य विद्युत परिषद मृतक आश्रित सेवा नियमावली, 1975 में किया गया संशोधन केस्को द्वारा अपनाया नहीं गया था, और चूंकि याचिकाकर्ती की मां केस्को की कर्मचारी थीं, इसलिए संशोधित मृतक आश्रित सेवा नियमावली, 1975, याचिकाकर्ती पर लागू नहीं होगा। यह दोहराया गया है कि याचिकाकर्ती ने कोई झूठा शपथपत्र प्रस्तुत नहीं किया था। उसने कोई जानकारी नहीं छिपाई थी और इसलिए, प्रतिवादीगण द्वारा उसकी सेवा समाप्त करने की कार्रवाई को रद्द कर दिया जाना चाहिए।

12. इस न्यायालय ने याचिकाकर्ती के विद्वान अधिवक्ता और प्रतिवादीगण के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों पर विचार किया, साथ ही पत्रावली पर तर्कों और याचिकाकर्ती द्वारा अनुकंपा नियुक्ति के लिए प्रस्तुत आवेदन के माध्यम को भी ध्यान से देखा। तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता ने डाइंग इन हार्नेस रूल्स, 1975 के के अंतर्गत एक आवेदन प्रस्तुत किया था जिसे

“उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत परिषद सेवाकाल में मृत परिषदीय सेवकों के आश्रितों की भर्ती नियमावली, 1975” कहा जाता है

दिखाएगा कि याचिकाकर्ती ने दावा किया कि वह अपनी मां पर निर्भर थी जिनकी मृत्यु सेवाकाल में हो गई थी और इसलिए, उसे अनुकंपा नियुक्ति की आवश्यकता थी। आवेदन पत्र में, खण्ड में जो मृतक-कर्मचारी पर निर्भर व्यक्तियों के विवरण से संबंधित था, याचिकाकर्ती ने अपने पिता का नाम राजीव सक्सेना के रूप में उल्लेख किया था, जिनकी आयु लगभग 56 वर्ष थी, और स्वयं भी। हालांकि, 'मासिक आय' और 'अन्य स्रोतों से आय, यदि कोई हो' के खण्ड के अंतर्गत याचिकाकर्ती ने कुछ भी नहीं लिखा है और इस तरह के खण्ड को रिक्त छोड़ दिया है। याचिकाकर्ती का जन्म 1992 में हुआ था और उसने अप्रैल, 2021 में आवेदन प्रस्तुत किया था। आवेदन के समय उसकी आयु 28 वर्ष से अधिक थी। वह अच्छी तरह से शिक्षित थी क्योंकि वह (सूचना प्रौद्योगिकी) में बी.टेक थी। पिता की वार्षिक आय को जानबूझकर छिपाना, जिसे मां (यानी, मृतक-कर्मचारी) पर निर्भर दिखाया गया था, याचिकाकर्ती द्वारा सहारा लिया गया था। आवेदन पत्र में की गई घोषणा में, उसने कहा था कि 1975 के नियमों के अंतर्गत परिवार के किसी अन्य सदस्य को नियुक्ति नहीं दी गई थी और उसके द्वारा उसके आवेदन पत्र में दी गई सभी जानकारी सही थी और यदि यह सही नहीं पाया गया तो उसका चयन / नियुक्ति रद्द कर दी जा सकती है। याचिकाकर्ती द्वारा 14.6.2021 को प्रस्तुत शपथपत्र में, याचिकाकर्ती ने कहा कि वह मृतक कर्मचारी के परिवार के सदस्यों की देखभाल करना चाहती थी और इसलिए, अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन किया था, और वह मृतक-कर्मचारी के परिवार की देखभाल करेगी जैसा कि उसकी मां ने अपने जीवनकाल में किया था। उसने यह भी कहा था कि शपथपत्र की सभी सामग्री उसके द्वारा सही और सच्चाई से भरी गई थी और कुछ भी छुपाया नहीं गया था।

13. याचिकाकर्ती की नियुक्ति के बाद ही, उसने एक सत्यापन प्रपत्र जमा किया, जहां उसने पहली बार दर्शित किया कि उसके पिता उत्तर प्रदेश पुलिस में कार्यरत थे और उनकी वार्षिक आय 12,20,000/- रुपये थी और याचिकाकर्ती और उसका परिवार रिजर्व पुलिस लाइन्स, लखनऊ में टाइप- III क्वार्टर में रह रहे थे और सत्यापन प्रपत्र भरने के समय उसकी उम्र 26 वर्ष थी। केस्को द्वारा भेजे गए पत्र के उत्तर में अपना शपथपत्र प्रस्तुत करते हुए उनके पिता ने कहा कि वह उत्तर प्रदेश पुलिस आयुक्तालय, लखनऊ में इंस्पेक्टर (लेखा) के रूप में कार्यरत थे, और उनकी पत्नी श्रीमती कुमकुम सक्सेना की मृत्यु का समय और पिछले 10 वर्षों से, उनकी पुत्री खुशबू सक्सेना पारिवारिक परिस्थितियों से संबंधित कुछ कारणों से पूरी तरह से अपनी मां पर निर्भर थी, जिसने उसे पाला था। और उसकी शिक्षा के लिए भी जिम्मेदार थी। याचिकाकर्ती के पिता द्वारा प्रस्तुत शपथपत्र में, किसी भी न्यायिक पृथक्करण या सक्षम न्यायालय के किसी डिक्री का कोई उल्लेख नहीं है, जिसमें कहा गया है कि श्रीमती कुमकुम सक्सेना अपने पिता राजीव सक्सेना से अलग याचिकाकर्ती के साथ रह रही थीं।

14. इस न्यायालय ने कारण बताओ नोटिस के पिता के उत्तर का भी अवलोकन किया है। याचिकाकर्ती द्वारा उसे जारी किए गए कारण बताओ नोटिस के उत्तर में कहा गया है कि उसके पिता ने पहले ही 22.7.2021 को शपथपत्र के माध्यम से उत्तर दिया था और चूंकि उससे जो जानकारी मांगी जा रही थी वह वास्तव में उसके पिता से संबंधित थी और उसके पिता ने अपना शपथपत्र प्रस्तुत

किया था, इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा अलग से उत्तर प्रस्तुत करने का कोई कारण नहीं था।

15. यहां तक कि यदि याचिकाकर्ता का यह तर्क कि 2015 के संशोधित नियम केस्को के कर्मचारियों पर लागू नहीं होते हैं, को सही माना जाता है, तो यह न्यायालय उस छल के प्रति अपनी आँखें बंद नहीं कर सकता है जिसका सहारा याचिकाकर्ता ने प्रतिवादीगण से मृतक आश्रित सेवा नियमावली, 1975 के अंतर्गत अनुकंपा नियुक्ति की मांग करते समय सहारा लिया था। याचिकाकर्ता ने आवेदन पत्र भरा था जिसमें उसके पिता और स्वयं को अपनी मां पर निर्भर दर्शाया गया था और जानबूझकर मासिक आय और अन्य स्रोतों से आय के लिए खण्ड नहीं भरा गया था। 1974 के नियमों को उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत परिषद सेवाकाल में मृत सेवकों के आश्रितों की भर्ती नियम-1975 कहा जाता है। याचिकाकर्ता अपनी मृत मां पर निर्भर नहीं थी और इसलिए 1975 के असंशोधित नियम भी उस पर लागू नहीं थे।

16. इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता को 24.6.20221 को नियुक्ति दी गई थी और जैसे ही याचिकाकर्ता द्वारा सत्यापन प्रपत्र भरा गया था, प्रतिवादीगण द्वारा छिपाव/गलत कथन का पता चला और उसे कारण बताओ नोटिस और अपना प्रकरण प्रस्तुत करने का पर्याप्त अवसर दिया गया। वह एक पक्की कर्मचारी नहीं थी, अपितु मात्र एक परिवीक्षाधीन थी।

17. इस न्यायालय को ***महाराष्ट्र राज्य और अन्य बनाम माधुरी विधाते 2002 एससीसी ऑनलाइन एससी 1327*** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों के आलोक में आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कोई अच्छा आधार नहीं मिला। उक्त मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियां की हैं:-

"9. हाल के फैसले में, ***कर्नाटक में कोषागार निदेशक और अन्य बनाम वी सोम्यश्री, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 704*** *के मामले में इस न्यायालय को अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने के सिद्धांत पर विचार करने का अवसर मिला था।* ***एनसी संतोष बनाम कर्नाटक राज्य, (2020) 7 एससीसी 617*** *में इस न्यायालय के निर्णय का उल्लेख करने के बाद, इस न्यायालय ने अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के अनुदान को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत को संक्षेप में प्रस्तुत किया है: -*

(i) अनुकंपा नियुक्ति सामान्य नियम का अपवाद है;

(ii) कि किसी भी उम्मीदवार को अनुकंपा नियुक्ति का अधिकार नहीं है;

(iii) राज्य की सेवा में किसी भी सार्वजनिक पद पर नियुक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के अनुसार सिद्धांत के आधार पर की जानी है;

(iv) अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति केवल राज्य की नीति द्वारा निर्धारित मानदंडों को पूरा करने और/या नीति के अनुसार पात्रता मानदंडों की संतुष्टि पर की जा सकती है;

(v) आवेदन पर विचार की तिथि पर प्रचलित मानदंड अनुकंपा नियुक्ति के लिए दावे पर विचार करने का आधार होना चाहिए।

10. अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति पर निर्णय लेने के लिए इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुसार, सभी शासकीय रिक्तियों के लिए संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के अंतर्गत अनिवार्य सभी उम्मीदवारों को समान अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। तथापि, मृत कर्मचारी के आश्रित को अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति की प्रस्तुति उक्त मानदंडों का अपवाद है। अनुकंपा का आधार एक रियायत है न कि अधिकार।

11. **हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य बनाम शशि कुमार (2019) 3 एससीसी 653** में रिपोर्ट किए गए मामले में, इस न्यायालय के पास अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के उद्देश्य और उद्देश्य पर विचार करने का अवसर था और **गोविंद प्रकाश वर्मा बनाम एलआईसी (2005) 10 एससीसी 289** में रिपोर्ट किया गया के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर विचार किया, पैरा 21 और 26 में, यह देखा गया है और निम्नानुसार आयोजित किया गया है: -

"21. गोविंद प्रकाश वर्मा [गोविंद प्रकाश वर्मा बनाम एलआईसी, (2005) 10 एससीसी 289 में निर्णय पर बाद में कई निर्णयों में विचार किया गया है। लेकिन, इससे पहले कि हम उन निर्णयों का विज्ञापन करें, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इस न्यायालय द्वारा उमेश कुमार नागपाल बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में अनुकंपा नियुक्ति की प्रकृति पर विचार किया गया था। हरियाणा राज्य [उमेश कुमार नागपाल बनाम हरियाणा राज्य, (1994) 4 एससीसी 138]। उमेश कुमार नागपाल [उमेश कुमार नागपाल बनाम हरियाणा राज्य, (1994) 4 एससीसी 138] में निर्धारित सिद्धांतों का बाद में इस न्यायालय में उदाहरणों की एक सुसंगत पंक्ति में पालन किया गया है। इन सिद्धांतों को निम्नलिखित उद्धरण में समझाया गया है: (उमेश कुमार नागपाल मामला [उमेश कुमार नागपाल बनाम हरियाणा राज्य, (1994) 4 एससीसी 138], एससीसी पीपी 139-40, पैरा 2)

"2. ... नियमतः सार्वजनिक सेवाओं में नियुक्तियां कड़ाई से उपलब्ध आवेदन और योग्यता के आधार पर की जानी चाहिए। नियुक्ति का कोई अन्य तरीका और न ही कोई अन्य विचार स्वीकार्य है। न तो सरकारें और न ही सार्वजनिक प्राधिकरण किसी अन्य प्रक्रिया का पालन करने या पद के लिए नियमों द्वारा निर्धारित योग्यता को शिथिल करने के लिए स्वतंत्र हैं। हालांकि, इस सामान्य नियम के लिए जिसे हर मामले में कड़ाई से पालन किया जाना है, न्याय के हितों में और कुछ आकस्मिकताओं को पूरा करने के लिए कुछ अपवाद हैं। ऐसा एक अपवाद एक कर्मचारी के आश्रितों के पक्ष में है जो सेवाकाल में मर जाते हैं और अपने परिवार को गरीबी में छोड़ देते हैं और आजीविका के

किसी भी साधन के बिना होते हैं। ऐसे मामलों में, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि जब तक आजीविका का कोई स्त्रोत उपलब्ध नहीं कराया जाता है, परिवार दो वक्त की रोटी नहीं जुटा पाएगा, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए विशुद्ध मानवीय विचार से मृतकों के आश्रितों में से किसी एक को, जो ऐसे रोजगार का पात्र हो सकता है, लाभप्रद रोजगार प्रदान करने का प्रावधान किया गया है। इस प्रकार अनुकंपा के आधार पर रोजगार प्रदान करने का पूरा उद्देश्य परिवार को आकस्मिक संकट से निपटने में सक्षम बनाना है। उद्देश्य ऐसे परिवार के किसी सदस्य को मृतक द्वारा धारित पद के बदले एक पद देना नहीं है। इसके अतिरिक्त, केवल एक कर्मचारी की मृत्यु उसके परिवार को आजीविका के ऐसे स्रोत का पात्र नहीं बनाती है। संबंधित सरकार या सार्वजनिक प्राधिकरण को मृतक के परिवार की वित्तीय स्थिति की जांच करनी होती है, और यह केवल तभी होता है जब वह संतुष्ट हो, कि रोजगार के प्रावधान के लिए, परिवार इस संकट का सामना नहीं कर पाएगा कि परिवार के पात्र सदस्य को नौकरी दी जानी है। ऐसे पदों पर मृत कर्मचारी के ऐसे आश्रित को दिए गए अनुकूल व्यवहार का उद्देश्य प्राप्त करने के लिए मांगे गए उद्देश्य के साथ तर्कसंगत संबंध है, अर्थात निराश्रितता के प्रति राहत। इस संबंध में यह याद रखना चाहिए कि मृतक के निराश्रित परिवार के मुकाबले लाखों अन्य परिवार हैं जो समान रूप से अधिक निराश्रित नहीं हैं। मृत कर्मचारी के परिवार के पक्ष में बनाए गए नियम का अपवाद उसके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं और वैध अपेक्षाओं, और पूर्ववर्ती रोजगार से उत्पन्न परिवार की स्थिति और मामलों में बदलाव पर विचार करता है, जो अचानक बदल जाते हैं।

*26. **मुमताज यूनुस मुलानी बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2008) 11 एससीसी 384]** में दो न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय ने इस सिद्धांत को अपनाया है कि अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति भर्ती का स्रोत नहीं है, बल्कि मृतक के परिवार को आकस्मिक वित्तीय संकट से उबरने में सक्षम बनाने का एक साधन है। परिवार की वित्तीय स्थिति का मूल्यांकन योजना में निहित प्रावधानों के आधार पर किया जाना चाहिए। **गोविंद प्रकाश वर्मा [गोविंद प्रकाश वर्मा बनाम एलआईसी, (2005) 10 एससीसी 289: 2005 एससीसी (एल एंड एस) 590]** के निर्णय पर विधिवत विचार किया गया है, किन्तु न्यायालय ने कहा कि ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि इस मामले में इस न्यायालय के पहले के बाध्यकारी उदाहरणों पर ध्यान दिया गया है।*

12. इस प्रकार, पूर्वोक्त निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुसार, अनुकंपा नियुक्ति सार्वजनिक सेवाओं में नियुक्ति के सामान्य नियम का अपवाद है और मृतक के आश्रितों के पक्ष में है जो सेवाकाल में मर जाते हैं और अपने परिवार को गरीबी में छोड़ देते हैं और आजीविका के किसी भी साधन के बिना और ऐसे मामलों में, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि जब तक आजीविका का कोई स्त्रोत उपलब्ध नहीं

कराया जाता है, परिवार दो वक्त की रोटी नहीं जुटा पाएगा, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए नियमों में मृतक के आश्रितों में से किसी एक को लाभप्रद रोजगार प्रदान करने का प्रावधान किया गया है जो ऐसे रोजगार के लिए पात्र हो सकता है। इस प्रकार, अनुकंपा के आधार पर रोजगार प्रदान करने का संपूर्ण उद्देश्य परिवार को आकस्मिक संकट से निपटने में सक्षम बनाना है। उद्देश्य ऐसे परिवार को एक पद देना नहीं है, मृतक द्वारा आयोजित एक पद बहुत कम है।

13. पूर्वोक्त निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि को मामले के तथ्यों पर लागू करना, प्रतिवादी को अब अनुकंपा के आधार पर नियुक्त करना अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लक्ष्य और उद्देश्य के विपरीत होगा। प्रतिवादी को मृत कर्मचारी, यानी उसकी मां पर निर्भर नहीं कहा जा सकता है।

15. रिट याचिका **निरस्त** की जाती है। लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

(2023) 1 ILRA 1133

मूल न्यायाधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक:इलाहाबाद 19.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी,
माननीय न्यायमूर्ति मो. अज़हर हुसैन इदरीसी,

रिट-ए नंबर 20984/2022

विनय कुमार यादव ...याचिकाकर्ता
बनाम
भारत संघ एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता:
श्री दया शंकर यादव, श्री राकेश प्रसाद

अधिवक्ता प्रतिवादी:
ए.एस.जी.आई., विनय कुमार सिंह

ए. फार्मेसी संस्थान विनियम, 2014 में शिक्षकों के लिए न्यूनतम योग्यता निर्धारित करने की शिक्षा कानून की संवैधानिक वैधता; फार्मेसी अधिनियम, 1948: धारा 10, 18।

विनियमन 2014 का विवादित खंड मूल अधिनियम, 1948 का उल्लंघन नहीं है, क्योंकि अधिनियम, 1948 केंद्रीय परिषद को शिक्षा के न्यूनतम मानक निर्धारित करने के लिए नियम बनाने का अधिकार देता है, इसलिए, विनियमन 2014 अन्य के साथ-साथ प्रथम श्रेणी बी.फार्मा के रूप में न्यूनतम मानक निर्धारित करता है और अधिनियम, 1948 की धारा 10 सपठित धारा 18 के तहत प्रदत्त शक्तियों के अंतर्गत है। (पैरा 13)

बी. किसी पद पर नियुक्ति के लिए आवश्यक योग्यता निर्धारित करना अनिवार्य रूप से नियोक्ता या सक्षम प्राधिकारी के अधिकार क्षेत्र में है। नियोक्ता की जरूरतों और काम की प्रकृति के अनुसार उम्मीदवार के पास क्या योग्यता होनी चाहिए, यह तय करने के लिए नियोक्ता सबसे उपयुक्त है। **न्यायालय पात्रता की शर्तें नहीं रख सकता है और विनियम 2014 द्वारा सक्षम प्राधिकारी द्वारा निर्धारित न्यूनतम मानक के संबंध में मुद्दे पर ध्यान नहीं दे सकता है। (पैरा 14)**

सी. "प्रथम श्रेणी बी.फार्मा" लिखना भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 का उल्लंघन नहीं है - लोकतंत्र अपने अस्तित्व के लिए व्यावसायिक और व्यावसायिक शिक्षा के उच्च मानक पर निर्भर करता है। इसलिए, फार्मेसी के क्षेत्र में शिक्षा प्रदान करने वाले संस्थानों में शिक्षा के मानक को बनाए रखने और छात्रों के ज्ञान और कौशल को विकसित करने के लिए, उत्कृष्टता और शिक्षण के मानक को बनाए रखने के लिए अच्छी गुणवत्ता और सबसे उपयुक्त शिक्षकों की भर्ती करना संस्थान में एक बुनियादी आवश्यकता है। अधिनियम 1948 के इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, लागू नियम प्राचार्य, प्रोफेसर, एसोसिएट प्रोफेसर और व्याख्याता/सहायक प्रोफेसर के पद पर भर्ती के लिए एक निश्चित शैक्षणिक योग्यता प्रदान करते हैं। एसोसिएट प्रोफेसर और लेक्चरर/सहायक प्रोफेसर के लिए आवश्यक योग्यताओं में से एक "प्रथम श्रेणी बी.फार्मा" है जिसे संविधान के अनुच्छेद 14 या 21 के अप्रासंगिक या उल्लंघन के रूप में नहीं कहा जा सकता है। (पैरा 15,16)

याचिकाकर्ता ने यह नहीं दिखाया है कि कैसे समान रूप से स्थित व्यक्तियों के मध्य, आक्षेपित विनियम 2014 किसी भेदभाव का कारण बनता है, इसलिए इसे अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं कहा जा सकता है और यह प्रदर्शित करने के लिए कोई सामग्री नहीं रखी जा सकती है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करते हैं। (पैरा 20 से 22)

घ. यदि कोई व्यक्ति प्रश्नगत पद पर भर्ती हेतु विनियम 2014 के अंतर्गत निर्धारित आवश्यक शैक्षणिक योग्यता से संतुष्ट नहीं है तो वह पद हेतु आवेदन हेतु पात्र नहीं होगा। योग्यता निर्धारित करने का एकमात्र उद्देश्य यह है कि एसोसिएट प्रोफेसर या लेक्चरर/सहायक प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति के लिए उम्मीदवार के पास प्रथम श्रेणी की डिग्री के साथ लगातार अच्छा अकादमिक रिकॉर्ड होना चाहिए, उत्कृष्टता और प्रशासन के अलावा संस्थान में अध्यापन का मानक बनाए रखने के लिए उपयुक्त व्यक्ति का चयन करना है। (पैरा 17)

ई. छूट देने के लिए सक्षम प्रावधान के अभाव में, आवश्यक योग्यता में छूट देने के लिए कोई छूट नहीं दी जा सकती है। भले ही ऐसी शक्ति क़ानून के तहत प्रदान की गई हो, इसका प्रयोग मनमाने ढंग से नहीं किया जा सकता है। ऐसी शक्ति का प्रयोग वैधानिक प्रावधानों के निष्पादन के लिए एक निहित, आकस्मिक या आवश्यक शक्ति मानकर नहीं किया जा सकता है। तथ्यों के वर्तमान सेट में भी विनियमन "प्रथम श्रेणी बी फार्म" की उपरोक्त आवश्यक योग्यता में छूट देने की कोई शक्ति प्रदान नहीं करता है। (पैरा 18)

रिट याचिका निरस्त (ई 4)

<u>उद्धत वाद:</u>

1. महाराष्ट्र लोक सेवा आयोग बनाम संदीप श्रीराम वराडे और अन्य (2019) 6 एससीसी 362 (पैरा 14)
2. जहूर अहमद राथर और अन्य आदि बनाम शेख इम्तियाज अहमद और अन्य आदि, सिविल अपील संख्या 11853/ 2018, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णित दिनांक 05.12.2018 (पैरा 14)
3. प्रीत सिंह (डॉ.) बनाम एस.के. मैंगेल, 1993 सप्प (1) एससीसी 714 (पैरा 17)
4. भारत संघ बनाम धर्मपाल एवं अन्य (2009) 4 एससीसी170 (पैरा 18)
5. उड़ीसा राज्य बनाम ममता मोहंती, (2011) 3 एससीसी 436 (पैरा 19)

वर्तमान याचिका में रजिस्ट्रार-कम-सेक्रेटरी, फार्मेसी काउंसिल भारत, नई दिल्ली द्वारा जारी फार्मेसी संस्थानों में शिक्षकों के लिए न्यूनतम योग्यता 2014 वाली अधिसूचना दिनांक 11.11.2014 की तालिका II के क्लॉज (iv) में उत्प्रेषण की प्रकृति में रिट आदेश या निर्देश के लिए प्रार्थना की गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी, एवं माननीय न्यायमूर्ति मोहम्मद अज़हर हुसैन इदरीसी, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री डी.एस. यादव और प्रतिवादियों के विद्वान केंद्र सरकार के स्थायी अधिवक्ता श्री विनय कुमार सिंह को सुना गया।

2. यह रिट याचिका निम्नलिखित राहतों के लिए प्रार्थना करते हुए दायर की गई है:

"अ. प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा जारी अधिसूचना के फार्मेसी संस्थानों 2014 में शिक्षकों के लिए न्यूनतम योग्यता में शामिल दिनांक 11.11.2014 की अधिसूचना की तालिका II के खंड (iv) को रद्द करने के लिए (सर्टिओरारी) की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करें (रिट याचिका का अनुलग्नक संख्या 2)।

ब. परमादेश की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें प्रतिवादियों को भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 , 16 , 19 और 21 के प्रावधानों के विपरीत होने के कारण प्रतिबंध विनियमन को शून्य घोषित करने का निर्देश दिया जाए। "

3. वर्तमान मामले के संक्षेप में बताए गए तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता ने वर्ष 2005 में यूपी टेक्निकल यूनिवर्सिटी, लखनऊ से द्वीतीय श्रेणी में बी.फार्मा उत्तीर्ण किया है और वर्ष 2009 में डॉ. एमजीआर मेडिकल यूनिवर्सिटी, चेन्नई से एम.फार्मा उत्तीर्ण किया है।

4. **याचिकाकर्ता ने** "फार्मेसी इंस्टीट्यूशन रेगुलेशन, 2014 में शिक्षकों के लिए न्यूनतम योग्यता" (इसके बाद "शिक्षक रेगुलेशन, 2014" के रूप में संदर्भित) **द्वारा न्यूनतम योग्यता "प्रथम श्रेणी बी.फार्म" निर्धारित करने की वैधता को चुनौती दी है**।

<u>याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुतियाँ</u>

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता उपरोक्त विनियमन की संवैधानिक वैधता को इस कारण से चुनौती दे रहा है कि वह एक संभावित उम्मीदवार है और भविष्य में किसी रिक्ति के विज्ञापित होने की स्थिति में पद के लिए आवेदन करने का इरादा रखता है।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि बी.फार्मा में प्रथम श्रेणी के रूप में न्यूनतम योग्यता निर्धारित करना भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 का उल्लंघन है क्योंकि यहाँ तक की स्नातक पाठ्यक्रम में प्रथम श्रेणी की डिग्री पर प्रतिबंध भारतीय मेडिकल काउंसिल द्वारा मेडिकल शिक्षा में शिक्षकों के लिए न्यूनतम योग्यता प्रदान करने के लिए बनाए गए विनियमों में प्रदान नहीं किया गया है, जबकि फार्मेसी संस्थान में शिक्षकों के लिए प्रथम श्रेणी बी.फार्म डिग्री की न्यूनतम योग्यता को विनियम 2014 के तहत शामिल किया गया है।

7. विनियम 2014 के तहत न्यूनतम योग्यता "प्रथम श्रेणी बी.फार्मा" की संवैधानिक वैधता को चुनौती देने के लिए हमारे समक्ष कोई अन्य प्रस्तुतीकरण नहीं किया गया है।

<u>प्रतिवादियों की ओर से प्रस्तुतियाँ</u>

8. केंद्र सरकार के विद्वान स्थायी अधिवक्ता विनियमों का समर्थन करते हैं।

<u>चर्चा एवं निष्कर्ष</u>

9. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है।

10. फार्मेसी अधिनियम, 1948 की धारा 10 और 18 के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए केंद्र सरकार की मंजूरी के साथ फार्मेसी काउंसिल ऑफ इंडिया द्वारा विनियमन, 2014 तैयार किया गया है। फार्मेसी अधिनियम, 1948 की धारा 10 और 18 (इसके बाद इसे "अधिनियम 1948" के रूप में संदर्भित किया गया है), जिसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"धारा 10. शिक्षा विनियम.--*(1) इस धारा के प्रावधानों के अधीन, केंद्रीय परिषद, केंद्र सरकार के अनुमोदन के अधीन,* ***फार्मासिस्ट के रूप में योग्यता के लिए आवश्यक शिक्षा के न्यूनतम मानक निर्धारित करते हुए****, शिक्षा विनियम कहलाने वाले विनियम बना सकती है।*

(2) विशेष रूप से और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ***शिक्षा विनियम निर्धारित कर सकते हैं***--

(ए) किसी परीक्षा में प्रवेश से पहले किए जाने वाले अध्ययन और व्यावहारिक प्रशिक्षण की प्रकृति और अवधि;

(बी) अध्ययन के अनुमोदित पाठ्यक्रमों से गुजरने वाले छात्रों के लिए प्रदान किए जाने वाले उपकरण और सुविधाएं;

(सी) परीक्षा के विषय और उनमें प्राप्त किए जाने वाले मानक;

(डी) परीक्षाओं में प्रवेश की कोई अन्य शर्तें।

(3) शिक्षा विनियमों के मसौदे और उसके बाद के सभी संशोधनों की प्रतियां केंद्रीय परिषद द्वारा सभी राज्य सरकारों को प्रस्तुत की जाएंगी, और केंद्रीय परिषद, जैसा भी मामला हो, शिक्षा विनियम या उसके किसी भी संशोधन को प्रस्तुत करने से पहले, उप-धारा (1) के तहत अनुमोदन के लिए केंद्र सरकार को उपरोक्त प्रतियां प्रस्तुत करने के तीन महीने के भीतर प्राप्त किसी भी राज्य सरकार की टिप्पणियों पर विचार करें।

(4) शिक्षा विनियमों को आधिकारिक राजपत्र में और ऐसे अन्य तरीके से प्रकाशित किया जाएगा जैसा केंद्रीय परिषद निर्देश दे।

(5) कार्यकारी समिति समय-समय पर शिक्षा विनियमों की प्रभावकारिता पर केंद्रीय परिषद को रिपोर्ट करेगी और केंद्रीय परिषद को ऐसे संशोधनों की सिफारिश कर सकती है जो वह उचित समझे।

धारा 18 . विनियम बनाने की शक्ति.--(1) केंद्रीय परिषद, केंद्र सरकार के अनुमोदन से, [आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा], इस अध्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए इस अधिनियम से युक्त विनियम बना सकती है।

(2) विशेष रूप से और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे विनियम प्रदान कर सकते हैं—

[(ए) केंद्रीय परिषद की संपत्ति का प्रबंधन;]

(बी) इस अध्याय के तहत चुनाव किस तरीके से आयोजित किए जाएंगे;

(सी) केंद्रीय परिषद की बैठकों को बुलाना और आयोजित करना, वह समय और स्थान जहां ऐसी बैठकें आयोजित की जाएंगी, वहां कामकाज का संचालन और कोरम का गठन करने के लिए आवश्यक सदस्यों की संख्या;

(डी) कार्यकारी समिति के कार्य, उसकी बैठकें बुलाना और आयोजित करना, वह समय और स्थान जहां ऐसी बैठकें आयोजित की जाएंगी, और कोरम पूरा करने के लिए आवश्यक सदस्यों की संख्या;

(ई) राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति की शक्तियां और कर्तव्य;

(एफ) केंद्रीय परिषद के [रजिस्ट्रार, सचिव], निरीक्षकों और अन्य अधिकारियों और सेवकों की योग्यताएं, पद की अवधि और शक्तियां और कर्तव्य, जिसमें [रजिस्ट्रार या कोई अन्य अधिकारी या सेवक] द्वारा प्रदान की जाने वाली सुरक्षा की राशि और प्रकृति शामिल है।

(जी) वह रीति जिससे केंद्रीय रजिस्टर का रखरखाव किया जाएगा और प्रचार किया जाएगा;

(एच) कार्यकारी समिति के अलावा अन्य समितियों का गठन और कार्य, उनकी बैठकें बुलाना और आयोजित करना, वह समय और स्थान जहां ऐसी बैठकें आयोजित की जाएंगी, और कोरम पूरा करने के लिए आवश्यक सदस्यों की संख्या।

(3) जब तक इस धारा के तहत केंद्रीय परिषद द्वारा नियम नहीं बनाए जाते, राष्ट्रपति, केंद्र सरकार की पूर्व मंजूरी से, इस धारा के तहत ऐसे नियम बना सकते हैं, जिसमें केंद्रीय चुनाव परिषद के प्रथम चुनाव को करने के तरीके का प्रावधान भी शामिल है, इस अध्याय के प्रावधानों को प्रभावी करने के लिए जैसा आवश्यक हो, और इस धारा के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए केंद्रीय परिषद

द्वारा इस प्रकार बनाए गए किसी भी नियम को बदला या रद्द किया जा सकता है।

[(4) इस अधिनियम के तहत बनाए गए प्रत्येक विनियमन को, इसके बनने के बाद जितनी जल्दी हो सके, संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिनों की अवधि के लिए रखा जाएगा, जिसमें एक सत्र या दो या अधिक क्रमिक सत्रों में में शामिल किया जा सकता है, और यदि, सत्र के तुरंत बाद या उपरोक्त क्रमिक सत्रों की समाप्ति से पहले, दोनों सदन विनियमन में कोई संशोधन करने पर सहमत होते हैं या दोनों सदन इस बात पर सहमत होते हैं कि विनियमन नहीं किया जाना चाहिए, इसके बाद विनियमन केवल ऐसे संशोधित रूप में प्रभावी होगा या कोई प्रभावी नहीं होगा, जैसा भी मामला हो; हालाँकि, ऐसा कोई भी संशोधन या निरस्तीकरण उस विनियमन के तहत पहले की गई किसी भी चीज़ की वैधता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना होगा।]"

11. अधिनियम 1948 के उद्देश्य को पूरा करने के लिए नियम बनाने की शक्तियां अधिनियम, 1948 की धारा 18 के तहत केंद्रीय परिषद को प्रदान की गई हैं । धारा 10 की उपधारा (1) विशेष रूप से केंद्रीय परिषद को फार्मासिस्ट के रूप में योग्यता के लिए आवश्यक शिक्षा के **न्यूनतम मानक निर्धारित** करते हुए शिक्षा नियम बनाने के लिए केंद्र सरकार की मंजूरी के तहत शक्ति प्रदान करती है । धारा 10 की उपधारा (2) केंद्रीय परिषद को शिक्षा विनियमन तैयार करने का अधिकार देती है जिसमें (ए) किसी परीक्षा में प्रवेश से पहले किए जाने वाले अध्ययन और व्यावहारिक प्रशिक्षण की प्रकृति और अवधि निर्धारित करना; (बी) अध्ययन के अनुमोदित पाठ्यक्रमों को करने वाले छात्रों के लिए प्रदान किए जाने वाले उपकरण और सुविधाएं; (सी) परीक्षा के विषय और उनमें प्राप्त किए जाने वाले मानक; और (डी) परीक्षाओं में प्रवेश की कोई अन्य शर्तें। अतः शिक्षा के स्तर को बनाए रखने के लिए अच्छी गुणवत्ता वाले शिक्षकों का होना आवश्यक है।

12. विनियम 2014 द्वारा, शिक्षण के न्यूनतम मानक को बनाए रखने के लिए, स्नातक और स्नातकोत्तर शिक्षा में डिप्लोमा प्रदान करने वाले फार्मेसी कॉलेज या संस्थान के विभिन्न विभागों में शिक्षक के रूप में नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता और अनुभव निर्धारित किया गया है जैसा कि विनियम के साथ संलग्न अनुसूची में उल्लिखित है। अनुसूची का खंड (ii) वर्तमान मामले के प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक है जिसे नोट के साथ नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

"फार्मेसी में बी.फार्मा / फार्मा.डी/ पोस्ट ग्रेजुएट कोर्स -

निदेशक/प्रिंसिपल/संस्थान के प्रमुख	*फार्मेसी में विशेषज्ञता की उचित शाखा में फार्मेसी (एम फार्म) में मास्टर डिग्री के साथ **प्रथम श्रेणी***	*आवश्यक* *शिक्षण या अनुसंधान में 15 वर्ष का अनुभव, जिसमें से 5 वर्ष पीसीआई द्वारा अनुमोदित/मान्यता प्राप्त फार्मेसी कॉलेज में प्रोफेसर/एचओडी के रूप में होना चाहिए।*

	बी.फार्मा *या फार्मेसी के किसी भी विषय में पीएचडी की डिग्री के साथ फार्मा.डी (योग्यताएं पीसीआई द्वारा मान्यता प्राप्त होनी चाहिए) पीएचडी डिग्री किसी फार्मेसी विषयों में (पीएचडी योग्यताएं पीसीआई द्वारा मान्यता प्राप्त होना चाहिए)।*	*<u>वांछनीय</u>* *एक जिम्मेदार पद पर प्रशासनिक अनुभव।*
प्रोफेसर	*फार्मेसी*	*<u>आवश्यक</u>*

	या फार्मा.डी में विशेषज्ञता की उपयुक्त शाखा में फार्मेसी में मास्टर डिग्री (एम.फार्मा) (योग्यताएं पीसीआई द्वारा मान्यता प्राप्त होनी चाहिए) *फार्मेसी के किसी भी विषय में पीएचडी डिग्री के साथ (पीएचडी योग्यताएं पीसीआई द्वारा मान्यता*	*10 वर्ष पीसीआई फार्मेसी अनुमोदित/मान्यता प्राप्त फार्मेसी कॉलेज में पढ़ाने का अनुभव या अनुसंधान अनुभव जिसमें से 5 वर्ष पीसीआई अनुमोदित/मान्यता प्राप्त फार्मेसी कॉलेज में एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में होना चाहिए।*

अनुवाद

	प्राप्त होनी चाहिए)	

एसोसिएट प्रोफेसर	फार्मेसी में विशेषज्ञता की उपयुक्त शाखा में फार्मेसी में मास्टर डिग्री (एम. फार्मा) के साथ **प्रथम श्रेणी बी.फार्मा** (योग्यता पीसीआई से मान्यता प्राप्त होनी चाहिए) पीसीआई से मान्यता प्राप्त फार्मा.डी डिग्री धारक भी एसोसिएट प्रोफेसर के पदों के लिए पैथोफिजियोलॉजी, फार्मा कोलॉजी और फार्मेसी प्रैक्टिस के विषयों में पात्र होंगे।	पीसीआई द्वारा अनुमोदित/मान्यता प्राप्त फार्मेसी कॉलेज में सहायक प्रोफेसर या समकक्ष स्तर पर शिक्षण या अनुसंधान में 3 वर्ष का अनुभव।

लेक्चरर/सहायक प्रोफेसर	**प्रथम श्रेणी बी.फार्मा** के साथ फार्मेसी में विशेषज्ञता की उपयुक्त शाखा में फार्मेसी में मास्टर डिग्री (एम.फार्मा) (योग्यता	पीसीआई द्वारा अनुमोदित/मान्यता प्राप्त फार्मेसी कॉलेज में 2 साल के

	पीसीआई द्वारा मान्यता प्राप्त होनी चाहिए)। पीसीआई से मान्यता प्राप्त फार्मा.डी डिग्री धारक पैथोफिजियोलॉजी, फार्माकोलॉजी और फार्मेसी प्रैक्टिस विषयों में लेक्चरर/सहायक प्रोफेसर के पदों के लिए भी पात्र होगा।	शिक्षण अनुभव के बाद एक लेक्चरर को सहायक प्रोफेसर के रूप में फिर से नामित किया जाएगा।

टिप्पणी:

(i) शिक्षा विनियम, 1991, फार्म.डी विनियमों 2008 या पीसीआई द्वारा अनुमोदित किसी भी अन्य दस्तावेज में किसी भी बात के बावजूद, फार्मेसी में शिक्षण संकाय के लिए न्यूनतम योग्यता और अनुभव इन नियमों में उल्लिखित होगा, जो आधिकारिक राजपत्र में उनके प्रकाशन की तारीख से प्रभावी होगा।

(ii) नियमित आधार पर काम करने वाले मौजूदा शिक्षण संकाय प्रभावित नहीं होंगे। हालाँकि, ऐसे संकाय की पदोन्नति इन विनियमों द्वारा नियंत्रित की जाएगी।

(iii) यदि किसी वर्ग या डिवीजन को मास्टर स्तर पर नहीं दिया जाता है, तो कुल मिलाकर न्यूनतम 60% अंक या

अनुवादित

समकक्ष संचयी ग्रेड प्वाइंट औसत को प्रथम श्रेणी या डिवीजन के बराबर माना जाएगा, जैसा भी मामला हो।

(iv) नियमित आधार पर कार्यरत मौजूदा शिक्षण संकाय को किसी अन्य फार्मेसी कॉलेज/संस्थान में उसी पद पर नियुक्त किया जा सकता है, जहां से ऐसे संकाय सदस्य सेवानिवृत्त/कार्यमुक्त हुए हैं, हालांकि, ऐसे संकाय सदस्य की पदोन्नति इन नियमों द्वारा शासित होगी।

अर्चना मुद्गल. रजिस्ट्रार-सह-सचिव.

[विज्ञापन. III/4/एक्स्टी/101/14]"

13. चूंकि अधिनियम 1948, केंद्रीय परिषद को शिक्षा के न्यूनतम मानक निर्धारित करने वाले नियम बनाने का अधिकार देता है, इसलिए, अन्य बातों के अलावा, प्रथम श्रेणी बी.फार्मा के रूप में न्यूनतम मानक निर्धारित करने वाला विनियमन 2014, अधिनियम, 1948 के धारा 18 सपठित धारा 10 के तहत प्रदत्त शक्तियों के भीतर है। । **इस प्रकार, विनियमन 2014 का विवादित खंड मूल अधिनियम, 1948 का उल्लंघन नहीं है।**

14. किसी पद पर नियुक्ति के लिए आवश्यक योग्यता निर्धारित करना अनिवार्य रूप से नियोक्ता या सक्षम प्राधिकारी के अधिकार क्षेत्र में है। नियोक्ता की जरूरतों और काम की प्रकृति के अनुसार उम्मीदवार के पास क्या योग्यता होनी चाहिए, यह तय करने के लिए नियोक्ता सबसे उपयुक्त है। न्यायलय पात्रता की शर्तों को निर्धारित नहीं कर सकती है और विनियमन 2014 द्वारा सक्षम प्राधिकारी द्वारा निर्धारित न्यूनतम मानक के संबंध में मुद्दे पर ध्यान नहीं दे सकती है। कानून की यह स्थापित स्थिति माननीय सर्वोच्च द्वारा निर्धारित कानून द्वारा भी **महाराष्ट्र लोक सेवा आयोग बनाम संदीप श्रीराम वराडे और अन्य , (2019) 6 एससीसी 362 (पैरा 9)के मामले में न्यायालय और सिविल अपील संख्या 11853 – 11854/2018 जहूर अहमद राथर और अन्य आदि बनाम शेख इम्तियाज अहमद और अन्य, आदि** मामले में समर्थित है, इसका निर्णय माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 05.12.2018 के निर्णय द्वारा किया गया।

15. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की यह दलील कि "प्रथम श्रेणी बी. फार्म" निर्धारित करना भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है, सही नहीं है।

16. किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को समग्र रूप से विकसित करने के लिए शिक्षा आवश्यक है क्योंकि यह औपचारिक स्कूली शिक्षा द्वारा प्रशिक्षण और ज्ञान, कौशल प्राप्त करने, दिमाग और चरित्र विकसित करने की प्रक्रिया प्रदान करती है। इसलिए, शैक्षणिक कठोरता के साथ-साथ उच्च शैक्षणिक मानक और शैक्षणिक अनुशासन बनाए रखना आवश्यक है। लोकतंत्र अपने अस्तित्व के लिए पेशेवर और व्यावसायिक शिक्षा के उच्च मानक पर निर्भर करता है। इसलिए, फार्मेसी के क्षेत्र में शिक्षा प्रदान करने वाले संस्थानों में शिक्षा के मानक को बनाए रखने और छात्रों के ज्ञान और कौशल को विकसित करने के लिए, उत्कृष्टता और शिक्षण के मानक को बनाए रखने के लिए संस्थान में अच्छी गुणवत्ता और सबसे उपयुक्त शिक्षकों की भर्ती करना एक बुनियादी आवश्यकता है। अधिनियम 1948 के इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, विवादित विनियम प्राचार्य, प्रोफेसर, एसोसिएट प्रोफेसर और लेक्चरर/सहायक प्रोफेसर के पद पर भर्ती के लिए कुछ शैक्षणिक योग्यता प्रदान करते हैं। एसोसिएट प्रोफेसर और लेक्चरर/सहायक प्रोफेसर के लिए आवश्यक योग्यताओं में से एक "प्रथम श्रेणी बी.फार्मा" है जिसे संविधान के अनुच्छेद 14 या 21 के लिए अप्रासंगिक या उल्लंघनकारी नहीं कहा जा सकता है।

17. **प्रीत सिंह (डॉ.) बनाम एसके मंगल 1993 सप्लिमेंट (1) एससीसी 714 (पैरा 12 और 13)** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एक ऐसे व्यक्ति के मामले की जांच की, जिसके पास वैधानिक आवश्यकता के अनुसार **अंकों का अपेक्षित प्रतिशत नहीं था** और माना गया कि वह पद नहीं संभाल सकता। **योग्यता निर्धारित करने का एकमात्र उद्देश्य यह है कि एसोसिएट प्रोफेसर या लेक्चरर/सहायक प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति के लिए उम्मीदवार के पास प्रथम श्रेणी की डिग्री के साथ लगातार अच्छा अकादमिक रिकॉर्ड होना चाहिए, उत्कृष्टता और शिक्षण के मानक को बनाए रखने के लिए प्रशासन के अलावा संस्था में सबसे उपयुक्त व्यक्ति का चयन करना है**। इस प्रकार, यदि कोई व्यक्ति प्रश्नगत पद पर भर्ती के लिए विनियम 2014 के तहत निर्धारित आवश्यक शैक्षणिक योग्यता से संतुष्ट नहीं है, तो वह पद के लिए आवेदन करने के लिए पात्र नहीं होगा।

18. छूट प्रदान करने के लिए सक्षम प्रावधान के अभाव में, आवश्यक योग्यता में छूट देने के लिए कोई छूट नहीं दी जा सकती है। भले ही ऐसी शक्ति क़ानून के तहत प्रदान की गई हो, **भारत संघ बनाम धरम पाल और अन्य (2009) 4 एससीसी 170** के तहत इसका मनमाने ढंग से प्रयोग नहीं किया जा सकता है। ऐसी शक्ति का प्रयोग वैधानिक प्रावधानों के निष्पादन के लिए एक निहित, आकस्मिक या आवश्यक शक्ति मानकर नहीं किया जा सकता है। तथ्यों के वर्तमान सेट में भी विनियमन "प्रथम श्रेणी बी फार्मा" की उपरोक्त आवश्यक योग्यता में छूट देने की कोई शक्ति प्रदान नहीं करता है।

19. **उड़ीसा राज्य बनाम ममता मोहंती 2011 3 एससीसी 436** (पैरा 20, 21 और 68) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संबद्ध कॉलेजों में लेक्चरर की भर्ती में कुछ प्रतिशत अंकों की आवश्यक योग्यता की चुनौती पर विचार किया और इसे वैध माना। **उड़ीसा राज्य बनाम ममता मोहंती (सुप्रा) (पैरा 20, 21 और 68)** के मामले में निर्णय का प्रासंगिक भाग नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"20. उड़ीसा सरकार, शिक्षा और युवा सेवा विभाग के संकल्प दिनांक 5-9-1978 में उड़ीसा राज्य के संबद्ध कॉलेजों में लेक्चरर की भर्ती के लिए विषय, योग्यता से संबंधित है और संबंधित भाग इस प्रकार है:

"प्रासंगिक विषय में मास्टर डिग्री पर कम से कम प्रथम या उच्च द्वितीय श्रेणी (सात-बिंदु पैमाने में बी) के साथ लगातार अच्छा अकादमिक रिकॉर्ड। ***दूसरे शब्दों में, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का इरादा न्यूनतम के औसत के रूप में उच्च द्वितीय श्रेणी निर्धारित करना है जो द्वितीय श्रेणी और प्रथम श्रेणी के अंकों का प्रतिशत (48+60) 54%***

21. उड़ीसा राज्य राजपत्र, 19-8-1983 ने संबद्ध महाविद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्ति के लिए पात्रता निर्धारित करते हुए दिनांक 16-7-1983 को एक संकल्प प्रकाशित किया। प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

"(ए) उम्मीदवार के पास एमफिल डिग्री या मास्टर स्तर से परे मान्यता प्राप्त डिग्री के साथ कम से कम द्वितीय श्रेणी मास्टर डिग्री होनी चाहिए;

(बी) एमफिल डिग्री नहीं रखने वाले उम्मीदवार के पास ***उच्च द्वितीय श्रेणी मास्टर डिग्री यानी 54% अंक और बीए/बीएससी/बीकॉम परीक्षा में द्वितीय श्रेणी ऑनर्स/पास होना चाहिए****; या*

(सी) जिस उम्मीदवार के पास एमफिल की डिग्री नहीं है, लेकिन उसके पास द्वितीय श्रेणी की मास्टर डिग्री है, उसे ***बीए/बीएससी/बीकॉम परीक्षा में ऑनर्स/पास में प्रथम श्रेणी प्राप्त करनी चाहिए****।*

68. उपरोक्त चर्चा से निम्नलिखित चित्र उभरता है:

(i) प्रारंभिक चरण में प्रतिवादियों/शिक्षकों की नियुक्ति करते समय सभी मामलों में 1974 नियमों के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। कुछ व्यक्तियों को तो केवल कॉलेज के नोटिस बोर्ड पर कुछ नोट लगाकर नियुक्त कर दिया गया था। इनमें से कुछ शिक्षकों को चयन बोर्ड के समक्ष साक्षात्कार परीक्षा का सामना नहीं करना पड़ा। एक बार जब नियुक्ति का आदेश प्रारंभिक नियुक्ति के समय ही ख़राब हो गया हो, तो उसे बाद के चरण में मान्य नहीं किया जा सकता है।

(ii) ***प्रतिवादियों/शिक्षकों की नियुक्ति के प्रासंगिक समय में मास्टर पाठ्यक्रम में अच्छे द्वितीय श्रेणी यानी 54% अंक रखने की आवश्यकता थी और उक्त प्रतिवादियों में से किसी ने भी उक्त प्रतिशत हासिल नहीं किया था।***

(iii) उनकी नियुक्तियों को लंबे समय के बाद मंजूरी दी गई थी। कुछ मामलों में वैधानिक प्राधिकारी यानी उच्च शिक्षा निदेशक द्वारा उनकी प्रारंभिक नियुक्ति के 10-12 साल बाद।

(iv) ***कोई उम्मीदवार किसी पद के लिए आवेदन करने के लिए तभी पात्र होता है जब वह नियमों/विज्ञापन द्वारा निर्धारित आवश्यक न्यूनतम बेंचमार्क को पूरा करता है। इस प्रकार, नियुक्तियों की तो बात ही क्या, कोई भी प्रतिवादी आवेदन तक प्रस्तुत नहीं कर सका।***

(v) उत्कल विश्वविद्यालय द्वारा तथाकथित छूट बड़ी संख्या में कॉलेजों पर लागू एक नियमित आदेश पारित करके दी गई थी, वह भी लंबी अवधि यानी लगभग एक दशक के अंतराल के बाद।

(vi) ***पात्रता का निर्धारण कार्यपालिका के विशेष अधिकार क्षेत्र में आता है और एक बार इसे 1974 के नियमों के तहत राज्य के अधिकारियों द्वारा तय कर दिया गया है, तो उत्कल विश्वविद्यालय द्वारा छूट का सवाल ही नहीं उठता है और इसलिए, माफी का आदेश, आदि एक शून्यता है।***

(vii) छूट केवल उत्कल विश्वविद्यालय द्वारा दी गई है, हालांकि 1974 के नियमों के नियम 2(i) में "विश्वविद्यालय" का अर्थ उत्कल विश्वविद्यालय, बेरहामपुर विश्वविद्यालय, संबलपुर विश्वविद्यालय और श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्व विद्यालय है।

(viii) इस स्तर पर छूट देना विज्ञापन जारी होने के बाद मानदंडों में बदलाव के समान है, जो कानून में अस्वीकार्य है। इससे भी अधिक, यह समान स्थिति वाले व्यक्तियों के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के तहत निहित मौलिक अधिकारों का उल्लंघन है, जिन्होंने आवश्यक अंकों के अभाव में खुद को अयोग्य मानते हुए आवेदन नहीं किया था।

(ix) उत्कल विश्वविद्यालय के अलावा किसी अन्य विश्वविद्यालय द्वारा कमी को माफ करने की कवायद नहीं की गई थी।

(x) शिक्षकों यानी प्रतिवादियों का पद 1979 के नियमों के तहत किसी भी अन्य विश्वविद्यालय से संबद्ध किसी भी कॉलेज में स्थानांतरित किया जा सकता है।

(xi) पात्रता में छूट देने की शक्ति विश्वविद्यालय या राज्य किसी भी प्राधिकारी को नहीं दी गई है। इसके अभाव में, ऐसी शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता था।

(xii) इस न्यायालय ने दामोदर नायक [(1997) 4 एससीसी 560: 1997 एससीसी (एल एंड एस) 979: एआईआर 1997 एससी 2071] में स्पष्ट रूप से माना है कि किसी व्यक्ति को सहायता अनुदान का लाभ तब तक नहीं मिल सकता जब तक कि वह अपनी कमी पूरी नहीं कर लेता। शैक्षणिक योग्यता। इसके अलावा, इस न्यायालय ने भानु प्रसाद पांडा (डॉ.) [(2001) 8 एससीसी 532: 2002 एससीसी (एल एंड एस) 14] में मास्टर पाठ्यक्रम में 55% अंक न रखने के कारण अपीलकर्ता की सेवाओं की समाप्ति को बरकरार रखा।

(xiii) दामोदर नायक [(1997) 4 एससीसी 560: 1997 एससीसी (एल एंड एस) 979: एआईआर 1997 एससी 2071] और भानु प्रसाद पांडा (डॉ.) [(2001) 8 एससीसी 532: 2002 एससीसी (एल एंड एस) में उपरोक्त दो निर्णय) 14], इस मुद्दे से निपटते समय इसे उच्च न्यायालय या इस न्यायालय के ध्यान में नहीं लाया जा सका। कालिदास महापात्र में विशेष अनुमति याचिका [एसएलपी (सी) संख्या 14206-09, 2001 का निर्णय 11-3-2002 को हुआ] को कानून की आवश्यकता पर विचार किए बिना केवल परिपत्र दिनांक 6-11-1990 का संदर्भ देकर निपटा दिया गया है, जो पात्रता के संबंध में जारी किया गया यह पहला दस्तावेज़ नहीं था। इस प्रकार, उच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा पारित और प्रतिवादियों द्वारा उद्धृत और भरोसा किए गए सभी निर्णय और आदेश बाध्यकारी प्रकृति के नहीं हैं। (देखभाल की कमी के कारण(पर इन्क्यूरियम))

(xiv) यदि किसी व्यक्ति को शैक्षणिक योग्यता की कमी पूरी किए बिना सहायता अनुदान योजना का लाभ नहीं मिल सकता है, तो यूजीसी वेतनमान देने का प्रश्न ही नहीं उठता।

(xv) मामलों पर विचार किया गया था और उच्च न्यायालय द्वारा कमी और देरी के मुद्दे पर विचार किए बिना केवल उचित समय के भीतर न्यायालयों में आने वाले जागरूक व्यक्तियों द्वारा प्राप्त पहले के निर्णयों पर भरोसा करते हुए राहत दी गई थी।

(xvi) प्राधिकरण ने बिना किसी स्पष्टीकरण के मनमाने ढंग से संवैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए राज्य की

संपूर्ण शिक्षा प्रणाली को प्रदूषित करते हुए, सहायता अनुदान योजना के उद्देश्य की अनदेखी करते हुए अवैध आदेश पारित किए, जिसे शिक्षा मानक को बनाए रखने के लिए इसे प्रदान किया गया है।

(xvii) उच्च न्यायालय ने कुछ मामलों में राहत दी, जिनकी मांग भी नहीं की गई थी, क्योंकि कुछ मामलों में यूजीसी वेतनमान 1-6-1984 से यानी 1-1-1986 से पहले की तारीख से प्रदान किया गया था, हालांकि वही राहत नहीं दी जा सकती थी| इस प्रकार, यह स्पष्ट रूप से बिना किसी दिमाग के प्रयोग के मामले का निर्णय करने का मामला बनता है।

(xviii) कुछ मामलों में संबंधित शिक्षकों को अनुदान सहायता योजना का लाभ देने की तिथि से पहले उच्च न्यायालय द्वारा यूजीसी वेतनमान प्रदान किया गया है जो कि दामोदर नायक [(1997) 4 एससीसी 560: 1997 एससीसी (एल एंड एस) 979: एआईआर 1997 एससी 2071] में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर कानून में स्वीकार्य नहीं था।

(xix) प्रतिवादियों की शिकायत कि उच्च न्यायालय द्वारा उनके पक्ष में पारित आदेशों को बरकरार नहीं रखना शत्रुतापूर्ण भेदभाव होगा, इस कारण से स्वीकार करने योग्य नहीं है कि संविधान का अनुच्छेद 14 केवल सकारात्मक समानता की परिकल्पना करता है।

(xx) पद पर ग्रहणाधिकार के प्रतिकूल कब्जे या धारण की अवधारणा सेवा न्यायशास्त्र में अनुपयुक्त है।

(xxi) प्रतिवादियों की ओर से यह कहना कि सरकारी आदेशों/परिपत्रों/पत्रों का अनुपालन किया गया है, इसलिए किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है, यह साधारण कारण से बेतुका है कि ऐसे आदेश/परिपत्र/पत्र वैधानिक प्रावधानों और संवैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करते हैं। राम गणेश त्रिपाठी [(1997) 1 एससीसी 621: 1997 एससीसी (एल एंड एस) 186: एआईआर 1997 एससी 1446] मामले में इस न्यायालय के निर्णय के संदर्भ में जनादेश की अनदेखी की जानी चाहिए।"

20. इस प्रकार, एसोसिएट प्रोफेसर और लेक्चरर/सहायक प्रोफेसर के पद पर भर्ती के लिए विनियमन, 2014 के तहत प्रदान की गई अन्य आवश्यक योग्यताओं में से **"प्रथम श्रेणी बी.फार्मा"** की आवश्यक योग्यता पूरी तरह से वैध है और याचिकाकर्ताओं के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के तहत नहीं करती है।

21. याचिकाकर्ता ने यह नहीं दिखाया है कि समान रूप से स्थित व्यक्तियों के बीच, विवादित विनियम 2014 किसी भेदभाव का कारण बनता है। इसलिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि "प्रथम श्रेणी बी. फार्मा" निर्धारित करना भेदभाव के समान है और इस प्रकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है, पूरी तरह से निराधार है और इसे निरस्त कर दिया गया है।

22. हमारे समक्ष याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा कुछ भी इंगित नहीं किया जा सका और न ही कोई सामग्री प्रस्तुत की जा सकी, जिससे यह प्रदर्शित हो सके कि विनियमन 2014 के विवादित प्रावधान भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत प्रदत्त याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करते हैं।

23. उपरोक्त सभी कारणों से, हमें इस रिट याचिका में कोई योग्यता नहीं मिलती है। नतीजतन, रिट याचिका विफल हो जाती है और इसे **निरस्त** कर दिया जाता है।

अनुवादित

(2023) 1 ILRA 1143
मूल न्यायाधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक:इलाहाबाद 24.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजीव जोशी,

रिट- ए नंबर 39898 / 2015

उमा शंकर मिश्र ...याचिकाकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता:
श्री अशोक कुमार पांडे, श्री जे.एस. पांडे

अधिवक्ता प्रतिवादी:
सी.एस.सी.

A. सेवा कानून - पेंशन - उत्तर प्रदेश संग्रह अमीन सेवा नियमावली, 1974 – मूल नियम 56 –मौलिक नियुक्ति पेंशन लाभ की पात्रता के लिए पूर्व शर्त नहीं है। पेंशन अर्जित करने के लिए नियुक्ति सरकार के पेंशन योग्य प्रतिष्ठान पर नियमित नियुक्ति होनी चाहिए। (पैरा 12,15)

वर्तमान वाद में, याचिकाकर्ता को प्रारंभ में दिनांक 03.02.1978 को वेतनमान 200-320 में मौसमी संग्रह अमीन के रूप में नियुक्त किया गया था और उसके बाद, दिनांक 31.12.2012 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर उनकी सेवानिवृत्ति तक, 1982 से संग्रह अमीन का नियमित वेतनमान प्रदान किया गया था। याचिकाकर्ता को वेतन वृद्धि, बोनस, अवकाश नकदीकरण दिया गया और उसके वेतन से नियमित रूप से आयकर काटा गया। वेतनमान समय-समय पर संशोधित किया जाता रहा। याचिकाकर्ता वर्ष 1978 में नियुक्त हुआ और एक पद के विरुद्ध नियुक्त अस्थायी कर्मचारी के रूप में तीन दशकों तक सेवा प्रदान करते हुए वर्ष 2012 में सेवानिवृत्त हुआ। (पैरा 2,3)

इस न्यायालय का विचार है कि चूंकि वर्तमान मामले में शामिल विवाद का निर्णय इस न्यायालय द्वारा रिट-ए संख्या 10116/2018 में पारित आदेश दिनांक 18.09.2019 के माध्यम से पहले ही किया जा चुका है, वर्तमान रिट याचिका को उसी शर्तों के साथ अनुमति दी जाती है। याचिकाकर्ता पेंशन का हकदार है। (पैरा 16)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई 4)

<u>उद्धरण वाद:</u>
1. हरि शंकर असोपा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य. (पैरा 4)
2. शकुंतला @ ब्रह्मो देवी (श्रीमती) बनाम पेंशन निदेशक (पैरा 6)
3. राजस्व बोर्ड और अन्य बनाम प्रसिद्ध नारायण उपाध्याय (पैरा 8)
4. यशवन्ती हरि कटक्कर बनाम भारत संघ और अन्य. (पैरा 9)
5. ए.पी. श्रीवास्तव बनाम भारत संघ और अन्य (पैरा 10)
6. राम प्रताप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (पैरा 10)
7. बाबू सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (पैरा 10)
8. केदार राम-I बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (पैरा 10)
9. राम सजीवन मौर्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (पैरा 10)
10. कांति देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (पैरा 10)
11. किशन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (पैरा 10)
12. अवध बिहारी शुक्ल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (पैरा 10)
13. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम महेंद्र चौबे (पैरा 11)
14. प्रेम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (पैरा 13)
15. सुरेश चन्द्र पाण्डे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट-ए संख्या 10116 /2018 (पैरा 15)

वर्तमान याचिका में याचिकाकर्ता के नियमितीकरण के निरस्तीकरण आदेश दिनांक 04.04.2015 एवं जिला मजिस्ट्रेट, बलिया द्वारा पारित आदेश दिनांक 07.03.2018, सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों के साथ-साथ पेंशन देने से इनकार को चुनौती दी गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति राजीव जोशी, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के वकील श्री अशोक कुमार पांडे और प्रतिवादियों-राज्य के लिए स्थायी वकील श्री गोविंद नारायण श्रीवास्तव को सुना।

याचिकाकर्ता को शुरू में 03.02.1978 को वेतनमान 200-320 में मौसमी संग्रह अमीन के रूप में नियुक्त किया गया था और उसके बाद, 1982 से 31.12.2012 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर उनकी सेवानिवृत्ति तक संग्रह

अमीन का नियमित वेतनमान दिया गया था। याचिकाकर्ता को वेतन वृद्धि, बोनस, अवकाश नकदीकरण दिया गया था और उसके वेतन से नियमित रूप से आयकर काटा गया था। वेतनमान को समय-समय पर संशोधित किया गया। सेवा के दौरान, याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश संग्रह अमीन सेवा नियमावली, 1974 (संक्षेप में "नियम 1974") के तहत प्रदान किए गए 35% कोटा के तहत नियमितीकरण की मांग करते हुए कई याचिकाएं दायर कीं। रिट-ए संख्या 20531 वर्ष 2010 होने के कारण याचिका का निपटारा 24.11.2014 को किया गया, जिसमें कलेक्टर, बलिया को नियम, 1974 के तहत संग्रह अमीन के पद पर नियमितीकरण के लिए याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करने का निर्देश दिया गया। जिला मजिस्ट्रेट, बलिया ने दिनांक 04.04.2015 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता के दावे को इस आधार पर खारिज कर दिया कि उसे उपयुक्त नहीं पाया गया था, जिसे इस रिट याचिका में चुनौती दी गई है।

याचिकाकर्ता के वकील द्वारा यह आग्रह किया जाता है कि याचिकाकर्ता को वर्ष 1978 में नियुक्त किया गया था और वर्ष 2012 में सेवानिवृत्त किया गया था, जिसने एक पद के खिलाफ नियुक्त अस्थायी कर्मचारी के रूप में तीन दशकों तक सेवा प्रदान की थी, इसलिए, पेंशन का हकदार है।

इस न्यायालय की खंडपीठ हरि शंकर असोपा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्यन्यायालय इस बात पर विचार कर रहा था कि क्या मूल पद पर नियुक्त और व्याख्याता, रीडर और सर्जरी के प्रोफेसर के रूप में नियुक्त अस्थायी सरकारी कर्मचारी स्वेच्छा से सेवानिवृत्त होने पर सेवानिवृत्त होने की पेंशन का हकदार है। न्यायालय ने सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 465 और 465क को वित्तीय हैंडबुक खंड-॥ भाग 2 से 4 के साथ पढ़ने के बाद निम्नलिखित टिप्पणी की: –

> 16. अनुच्छेद 465 और 465-ए में परिकल्पित 'अर्हक सेवा' के तीन आधार घटकों में से एक रोजगार की आवश्यकता 7 जून, 1975 के बाद उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन सेवा द्वारा सेवानिवृत्त पेंशन प्राप्त करने के लिए अनिवार्य नहीं है, जिस तारीख से उत्तर प्रदेश मौलिक नियम 56 (संशोधन और विधिमान्यकरण) अधिनियम, 1975 का उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 24, नियमों के नियम 56 में संशोधन और विनियमों के अनुच्छेद 465 और 465-ए को रद्द करते हुए लागू किया गया है। अब नियम 56 में सेवानिवृत्त पेंशन का अधिकार प्राप्त करने का स्रोत ....
>
> नियम 56 का खंड (ई) प्रत्येक सरकारी कर्मचारी को स्पष्ट रूप से मान्यता देता है, घोषित करता है और गारंटी देता है जो सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त होता है या जो समय से पहले सेवानिवृत्त हो जाता है या जो स्वेच्छा से सेवानिवृत्त होता है। सटीक होने के लिए, प्रत्येक सरकारी कर्मचारी (चाहे स्थायी हो या अस्थायी) जो खण्ड (ए) या खण्ड (बी) के तहत सेवानिवृत्त होता है। या सेवानिवृत्त होने की आवश्यकता है, या जिसे अनुमति है। नियम 56 के खण्ड (सी) के तहत सेवानिवृत्त, सेवानिवृत्त पेंशन के लिए हकदार हो जाता है, बशर्ते, निश्चित रूप से, विनियमों के अनुच्छेद 361 में निर्धारित पहली और तीसरी शर्तों को पूरा किया जाता है।

तदनुसार न्यायालय ने कहा कि एक मौलिक रिक्ति के खिलाफ अस्थायी रूप से नियुक्त व्यक्ति मौलिक नियमों के नियम 56 के मद्देनजर सेवानिवृत्त पेंशन का हकदार है। शकुंतला @ ब्रह्मो देवी (श्रीमती) बनाम पेंशन निदेशक में इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश को इस बात पर विचार करने के लिए बुलाया गया था कि क्या अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त होने पर 34 साल की सेवा प्रदान करने वाला एक अस्थायी सरकारी कर्मचारी पेंशन लाभ का हकदार है। इस मुद्दे पर निर्णय लेते समय दिनांक 01.07.1989 के सरकारी आदेश में प्रावधान किया गया है कि दस वर्ष की नियमित सेवा प्रदान नहीं करने वाले सरकारी कर्मचारी पेंशन लाभों के हकदार नहीं हैं। सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 361, 424, 465 और मौलिक नियम 56 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए न्यायालय ने निम्नानुसार कहा:

> "10...........1.7.1989 के सरकारी आदेश द्वारा, यह प्रावधान किया गया था कि अस्थायी सरकारी कर्मचारी जिन्होंने दस साल की नियमित सेवा प्रदान की है, वे भी सेवानिवृत्ति लाभ के हकदार हैं। उपर्युक्त सरकारी आदेश अस्थायी सरकारी कर्मचारियों को पेंशन लाभ प्रदान करने के इरादे से जारी किया गया था, जो सरकारी आदेश के पहले पैराग्राफ से स्पष्ट है। सरकारी आदेश के पैरा 2 में यह भी प्रावधान है कि वे अस्थायी सरकारी कर्मचारी जिन्होंने सेवानिवृत्ति/अधिवर्षता की तारीख को न्यूनतम दस वर्ष की नियमित सेवा पूरी कर ली है या जिन्हें नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा अमान्य घोषित कर दिया गया है, वे स्थायी कर्मचारी के लिए स्वीकार्य अधिवर्षता/अमान्य पेंशन, उपदान, पारिवारिक पेंशन के हकदार होंगे। पैराग्राफ 3 में आगे प्रावधान है कि यह प्रावधान उन मामलों में भी लागू होगा जहां मौलिक नियम 56 के अनुसार स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए अनुमति दी गई है। सरकारी आदेश में विशेष रूप से यह प्रावधान नहीं है कि जो व्यक्ति अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त हुए हैं, उन्हें इसका लाभ नहीं दिया जाएगा...........
>
> 11...........इस प्रकार, नियम 56 (ई) का उद्देश्य प्रत्येक सरकारी कर्मचारी को सेवानिवृत्ति पेंशन प्रदान करना है जो नियम 56 के तहत सेवानिवृत्त होता है या सेवानिवृत्त होना आवश्यक है। इस प्रकार सांविधिक नियम 56 (ई) का उद्देश्य दोनों श्रेणी के व्यक्तियों अर्थात अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त व्यक्तियों या स्वेच्छा से सेवानिवृत्त व्यक्तियों को सेवानिवृत्त पेंशन का लाभ प्रदान करना है। नियम के उपर्युक्त इरादे से, यह स्पष्ट है कि स्वेच्छा से सेवानिवृत्त या अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त व्यक्तियों को सेवानिवृत्त पेंशन के भुगतान के संबंध में कोई अंतर या भेदभाव नहीं रखा गया है। इस प्रकार, दिनांक 1.7.1989 के सरकारी आदेश द्वारा अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त अस्थायी सरकारी कर्मचारी को सेवानिवृत्त पेंशन के लाभों से बाहर नहीं रखा जा सकता है। जब सांविधिक नियम अर्थात 56 (ई) अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त और स्वैच्छिक रूप से सेवानिवृत्त व्यक्तियों को सेवानिवृत्त पेंशन के भुगतान के संबंध में कोई भेद नहीं रखता है, तो सरकारी आदेश द्वारा ऐसा कोई वर्गीकरण नहीं किया जा सकता है, जो एक कार्यकारी आदेश है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, सरकारी

आदेश का उद्देश्य अस्थायी सरकारी कर्मचारियों को पेंशन लाभ प्रदान करना था जिन्होंने दस साल की नियमित सेवा प्रदान की है। इस प्रकार, अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त व्यक्तियों को पेंशन लाभों से बाहर नहीं रखा जा सकता है और यदि यह स्वीकार किया जाता है कि 1.7.1989 का सरकारी आदेश ऐसा वर्गीकरण बनाता है, तो उक्त वर्गीकरण मनमाना और अनुचित होगा। इस प्रकार यह माना जाता है कि दिनांक 1.7.1989 के सरकारी आदेश का लाभ उन अस्थायी सरकारी कर्मचारियों के लिए भी उपलब्ध है जो अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त हुए हैं। इस तरह के किसी भी वर्गीकरण के लिए कोई तर्कसंगत आधार नहीं है और न ही इस तरह के वर्गीकरण के लिए कोई वैध वस्तु हो सकती है।

न्यायालय ने दिनांक 01.07.1989 के सरकारी आदेश के अवलोकन पर यह राय व्यक्त की कि सरकारी आदेश "नियमित सेवा" को संदर्भित करता है न कि "मूल सेवा"। अदालत ने बताया कि नियमित सेवा का क्या मतलब है। आदेश का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

12. . शब्द "दस वर्ष की नियमित सेवा पूर्ण कर ली हो" दिनांक 1.7.1989 के सरकारी आदेश में उपयोग किए जाने का अर्थ है दस वर्ष की नियमित सेवा पूरी करना। सरकारी आदेश में "नियमित सेवा" शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है। सरकारी आदेश को पढ़ने से, यह स्पष्ट है कि "दस साल की नियमित सेवा" शब्द प्रदान की गई सेवा के लिए संदर्भित किया गया है, न कि कर्मचारी की स्थिति के लिए, एक कर्मचारी जो मूल रूप से नियुक्त और स्थायी है, वह स्वचालित रूप से पेंशन का हकदार है। दिनांक 1-7-1989 के सरकारी आदेश में दस वर्ष की वास्तविक सेवा पर विचार नहीं किया गया है। सरकारी आदेश में प्रयुक्त "नियमित सेवा" शब्द मूल सेवा के लिए अनाम नहीं है। बेशक, सरकारी आदेश द्वारा लाभ अस्थायी सरकारी कर्मचारियों को दिया जाना है। अस्थायी सरकारी कर्मचारी को मूल या नियमित सेवा नहीं कहा जा सकता है। इस प्रकार, दिनांक 1.7.1989 के सरकारी आदेश में प्रयुक्त "नियमित सेवा" शब्द का उपयोग इसके धारक की क्षमता या स्थिति को निर्दिष्ट करने के लिए नहीं किया गया है। "नियमित सेवा" शब्द का उपयोग प्रदान की गई सेवा की प्रकृति को निरूपित करने और निर्दिष्ट करने के लिए किया गया है। जोर इस बात पर है कि सेवा "नियमित" होनी चाहिए। 'नियमित' शब्द को परिभाषित करते हुए, श्रीमती राज कांत बनाम वित्तीय आयुक्त, पंजाब और एक अन्य, एआईआर 1980 एससी 1464 मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 10 में कहा है:

"शुरू करने के लिए, "नियमित" शब्द "रेगुला" शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ है 'नियम' और इसका पहला और वैध अर्थ, वेबस्टर के अनुसार, एक नियम के अनुरूप है, या एक निर्धारित मोड के लिए एक स्थापित नियम, कानून या सिद्धांत से सहमत है। शब्दों और वाक्यांशों (खंड 36 ए. पेज 241) में "नियमित" शब्द को "पाठ्यक्रम, अभ्यास या घटना, आदि में स्थिर या समान" के रूप में परिभाषित किया

गया है, और इसका अर्थ है एक नियम, मानक या पैटर्न की अनुरूपता। उक्त पुस्तक में आगे कहा गया है कि 'नियमित' का अर्थ पाठ्यक्रम, अभ्यास या घटना में स्थिर या समान है, जो अस्पष्टीकृत या तर्कहीन भिन्नता के अधीन नहीं है। 'नियमित' शब्द का अर्थ नियमित रूप से, विधिपूर्वक, उचित क्रम में है। इसी तरह, वेबस्टर की नई दुनिया "शब्दकोश 'नियमित' को 'कार्रवाई में सुसंगत या अभ्यस्त' के रूप में परिभाषित करता है, जो बदलता नहीं है, एक समान है, एक मानक या आम तौर पर स्वीकृत नियम या आचरण के तरीके के अनुरूप है।"

(XIII) उच्चतम न्यायालय के निर्णय के उपर्युक्त अंश से, यह स्पष्ट है कि एक अस्थायी कर्मचारी की सेवा नियमित रूप से, विधिपूर्वक, उचित क्रम में होनी चाहिए।

1. दिनांक 1.7.1989 के सरकारी आदेश का अर्थ था कि दस वर्ष के अस्थायी सरकारी कर्मचारी की प्रकृति नियमित होनी चाहिए, जिसका अर्थ है कि यदि अस्थायी सरकारी कर्मचारी ने अनियमित रूप से अपने कर्तव्यों का पालन किया है, अर्थात, वर्षों के अंतराल के साथ, उसकी सेवा को नियमित नहीं माना जा सकता है। ...."

निर्णय पर बाद के डिवीजन बेंच द्वारा विचार किया गया था राजस्व बोर्ड और अन्य बनाम प्रसिद्ध नारायण उपाध्याय में न्यायालय के समक्ष मुद्दा यह था कि क्या एक मौसमी संग्रह चपरासी जिसकी बाद में पुष्टि की गई है कि वह 36 साल की निरंतर सेवा प्रदान करने पर पेंशन का हकदार है। राज्य-प्रतिवादी की दलील कि चूंकि याचिकाकर्ता ने पुष्टि के बाद 10 साल की मूल सेवा पूरी नहीं की है, पेंशन का हकदार नहीं है, इसलिए खारिज कर दिया गया था।

यशवंत हरि कटक्कर **बनाम** भारत संघ और अन्य में यह माना गया कि एक कर्मचारी जिसने 20 साल से अधिक सेवा की है, वह पेंशन का हकदार है और किसी भी पद पर स्थायी नहीं होने के आधार पर याचिकाकर्ता को सेवानिवृत्त पेंशन से इनकार करना स्पष्ट रूप से मौलिक नियम, 56 के खंड (ई) का उल्लंघन है। विभाग किसी व्यक्ति को अनिश्चित काल तक अस्थायी या दैनिक मजदूरी पर नहीं रख सकता है।

ए.पी. श्रीवास्तव **बनाम** भारत संघ और अन्य में सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट रूप से यह माना है कि 20 साल की सेवा प्रदान करने वाले अस्थायी कर्मचारी के मामले में पेंशन का हकदार है। 'मूल क्षमता' शब्द में विशेषण 'मूल' द्वारा दिया गया जोर यह है कि कोई वस्तु मूल है यदि वह घटक का अनिवार्य हिस्सा है या जो आवश्यक है उससे संबंधित है। इसलिए, जब कोई पद रिक्त होता है, हालांकि, पदेन में नामित किया जाता है, तो उस पद को धारण करने की क्षमता का राज्य द्वारा पता लगाया जाना चाहिए। मूल क्षमता उस क्षमता को संदर्भित करती है जिसमें व्यक्ति पद धारण करता है और जरूरी नहीं कि पद की प्रकृति और चरित्र के लिए। इस प्रकार, एक व्यक्ति को एक मूल क्षमता में एक पद धारण करने के लिए कहा जाता है जब वह इसे अनिश्चित अवधि के लिए रखता है, विशेष रूप से लंबी अवधि के लिए, एक ऐसे व्यक्ति के विपरीत जो इसे एक निश्चित या अस्थायी अवधि के लिए धारण करता है या पुष्टि के अधीन परिवीक्षा पर रखता है। ((राम प्रताप बनाम उत्तर

प्रदेश राज्य-**6,** बाबू सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **7,** केदार राम-**1** बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **8,** राम सजीवन मौर्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **9,**
कांति देवी **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य **10,** किशन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश उत्तर प्रदेश राज्य **11,** अवध बिहारी शुक्ल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **12)**

इस न्यायालय की खंडपीठ ने उत्तर प्रदेश और अन्य बनाम महेंद्र चौबे में एक मौसमी संग्रह अमीन की पेंशन के दावे को अनुमति दी, जिसकी अस्थायी सेवा के बाद मूल नियुक्ति की गई थी, जबकि याचिकाकर्ता ने नियमितीकरण के बाद 10 साल की मूल सेवा प्रदान नहीं की थी।

निर्णयों के स्पेक्ट्रम से जो सिद्धांत उभरता है वह यह है कि सरकार की नियमित स्थापना पर नियुक्त एक अस्थायी कर्मचारी मौलिक नियम 56 के तहत पेंशन का हकदार है।

सुप्रीम कोर्ट की तीन जजों की बेंच प्रेम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में इस प्रश्न पर विचार कर रहा था कि क्या उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 के नियम 3 (8) और उत्तर प्रदेश के सिविल सेवा विनियमन के विनियम 370 को इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए निरस्त कर दिया जाना चाहिए कि उच्चतम न्यायालय ने पंजाब राज्य में समविषयक अधिनियमित प्रावधान जिसमें कार्य-प्रभारित सेवाओं की अवधि की गणना को पेंशन के लिए अर्हक सेवा से बाहर रखा गया है।

सुप्रीम कोर्ट के समक्ष अपीलकर्ता एक कार्य-प्रभारित कर्मचारी था, जिसने तीन दशकों से अधिक की सेवा की थी, पेंशन को अस्वीकार कर दिया गया था क्योंकि अपीलकर्ता ने नियमितीकरण के बाद 10 साल की नियमित सेवा नहीं की थी। सवाल यह था कि क्या नियमितीकरण के बाद कर्मचारी अपनी पिछली सेवा गिनने के हकदार हैं। न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियां कीं:

> "29. हम उपरोक्त प्रस्तुतियों से प्रभावित नहीं हैं। विचाराधीन कार्य-प्रभारित कर्मचारी की नियुक्ति मासिक वेतन पर की गई थी और उन्हें दक्षता सीमा को भी पार करना आवश्यक था। उनकी सेवाएं नियमित कर्मचारियों से गुणात्मक रूप से कैसे भिन्न हैं? गंजा बयान देने के अलावा गुणात्मक अंतर को दर्शाने वाली कोई सामग्री इंगित नहीं की गई है। नियुक्ति किसी विशेष परियोजना के लिए नहीं की गई थी जो कि कर्मचारियों द्वारा प्रभारित कार्य की मूल अवधारणा है। इसके बजाय, नियमित और बारहमासी प्रकृति के काम के लिए शोषक शर्तों पर रोजगार की पेशकश करके कार्य-प्रभारित रोजगार की अवधारणा का दुरुपयोग किया गया है। भुगतान मासिक किया जाता था लेकिन नियुक्ति 200-320 रुपये के वेतनमान में की गई थी। प्रारंभ में, उन्हें वर्ष 1978 में 205 रुपये प्रति माह के निश्चित मासिक वेतन पर नियुक्त किया गया था। उन्हें दक्षता बार को पार करने की भी अनुमति दी गई थी क्योंकि वेतनमान का लाभ उन्हें उस अवधि के दौरान दिया गया था जब उन्होंने कार्य-प्रभारित कर्मचारियों के रूप में कार्य किया था, उन्होंने तीन से चार दशकों तक सेवा की थी और बाद में सेवाओं को समय-समय पर विभिन्न आदेशों द्वारा नियमित किया गया है। हालांकि, कुछ याचिकाओं/अपीलों में कुछ अपीलकर्ताओं की सेवाओं को नियमित नहीं किया गया है, भले ही उन्होंने कई दशकों तक सेवा की थी और अंततः सेवानिवृत्ति की आयु तक पहुंच गए थे।

30. उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों में, राज्य सरकार और उसके अधिकारियों की ओर से कर्मचारियों से कार्य-प्रभार के आधार पर काम लेना अनुचित था। उन्हें नियमित आधार पर नियुक्ति का सहारा लेना चाहिए था। लंबे समय तक वर्कचार्ज के आधार पर काम करना शोषक

उपकरण को अपनाने के बराबर है। बाद में, हालांकि उनकी सेवाओं को नियमित कर दिया गया है। हालांकि, कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में उनके द्वारा बिताई गई अवधि को योग्यता सेवा में नहीं गिना गया है। इस प्रकार, उन्हें न केवल कार्य प्रभारित प्रतिष्ठान में कम वेतन पर सेवा देने की अवधि के दौरान उनके देय परिलब्धियों से वंचित किया गया है, बल्कि पेंशन लाभों के लिए अवधि की गणना से भी वंचित किया गया है जैसे कि उनके द्वारा कोई सेवा प्रदान नहीं की गई थी। राज्य को उनके द्वारा अपने जीवन के सुनहरे दिनों में कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठानों में कम वेतन पर प्रदान की गई सेवाओं से लाभ हुआ है।

31. 1961 के नियमों के नियम 3(8) में संलग्न नोट के मद्देनजर, यदि किसी व्यक्ति ने पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में दो अस्थायी नियुक्तियों की अवधि के बीच दी गई अवधि में ऐसी सेवा प्रदान की है या अस्थायी और स्थायी रोजगार की दो अवधियों में ऐसी सेवा प्रदान की है, तो कार्य प्रभार, आकस्मिकताओं या गैर-पेंशन योग्य सेवा पर खर्च की गई सेवा की गणना करने का प्रावधान है। कार्य-प्रभारित सेवा को उपर्युक्त आकस्मिकताओं में पेंशन के लिए अर्हक सेवा के रूप में गिना जा सकता है।

32. प्रश्न यह उठता है कि क्या इस शर्त को लागू करना कि ऐसी सेवा को अस्थायी या अस्थायी और स्थायी सेवा के दो चरणों के बीच में प्रदान किया जाना चाहिए, कानूनी और उचित है। हम पाते हैं कि एक बार रिक्त पदों पर नियमितीकरण किया गया था, हालांकि कर्मचारी ने नियुक्ति की प्रकृति को देखते हुए अस्थायी आधार पर उससे पहले सेवा नहीं की थी, हालांकि यह नियमित नियुक्ति नहीं थी, इसे मासिक वेतन पर किया गया था और उसके बाद कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान के वेतनमान में दक्षता सीमा को पार करने की अनुमति दी गई थी। 1961 के नियमों के नियम 3(8) के नोट में निहित शर्त के कारण यह अत्यधिक भेदभावपूर्ण और तर्कहीन होगा कि ऐसी सेवा को विशेष रूप से तब नहीं गिना जाए, जब इसे गिना जा सकता है, यदि ऐसी सेवा दो अस्थायी या अस्थायी और स्थायी सेवाओं के बीच में है। कार्य-प्रभारित अवधि की सेवा को न गिनने का कोई तुक या कारण नहीं है, यदि इसे नियमितीकरण से पहले प्रदान किया गया है। हमारी राय में, नियम 3 (8) के तहत एक अनुचित वर्गीकरण किया गया है। ऐसे कर्मचारियों को अर्हक सेवा के लाभ से वंचित करना अत्यधिक अन्यायपूर्ण, अनुचित और तर्कहीन होगा। कार्य-प्रभारित अवधि की सेवा सभी कर्मचारियों के लिए समान रहती है, एक बार जब इसे एक वर्ग के लिए गिना जाना है, तो भेदभाव को रोकने के लिए इसे सभी के लिए गिना जाना चाहिए। वर्गीकरण तर्कहीन आधार पर नहीं किया जा सकता है और जब उत्तरदाता स्वयं ऐसी सेवा में खर्च की गई अवधि की गणना कर रहे हैं, तो कमजोर वर्गीकरण के आधार पर सेवा की गणना नहीं करना अत्यधिक भेदभावपूर्ण होगा। उस कार्य-प्रभारित सेवा से पहले अस्थायी क्षमता के साथ लगाया गया राइडर भेदभावपूर्ण और तर्कहीन है और एक अनुचित वर्गीकरण बनाता है।

33. चूंकि नियम 3 (8) को वैध और गैर-भेदभावपूर्ण बनाने के लिए पूर्वोक्त वर्गीकरण करना अन्यायपूर्ण, अवैध और अनुचित होगा, इसलिए हमें नियम 3 (8) के प्रावधानों को पढ़ना होगा और यह मानना होगा कि कार्य-प्रभारित कर्मचारियों, आकस्मिक भुगतान किए गए फंड कर्मचारियों या गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान की क्षमता में नियमितीकरण से पहले भी प्रदान की गई सेवाओं को भी योग्यता सेवा में गिना जाएगा, भले ही ऐसी सेवा अस्थायी या नियमित नियुक्ति से पहले न हो एक पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में।

34. नियम 3(8) में संलग्न नोट को ध्यान में रखते हुए, जिसे हमने पढ़ा है, सिविल सेवा विनियमों के विनियम 370 में निहित प्रावधान के साथ-साथ वित्तीय पुस्तिका के पैरा 669 में निहित अनुदेशों को भी निरस्त किया जाना है।

35. कुछ कर्मचारी ऐसे हैं जिन्हें 30-40 या उससे अधिक वर्षों तक सेवाएं प्रदान करने के बावजूद नियमित नहीं किया गया है, जबकि वे सेवानिवृत्त हो चुके हैं। चूंकि उन्होंने किसी विशेष परियोजना के विरुद्ध नहीं, बल्कि कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में कार्य किया है, इसलिए उनकी सेवाओं को सरकारी अनुदेशों के तहत और यहां तक कि सचिव, कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम उमा देवी, 2006 (4) एससीसी 1 में इस न्यायालय के निर्णय के अनुसार नियमित किया जाना चाहिए था। इस न्यायालय ने उक्त निर्णय में यह निर्धारित किया है कि यदि न्यायालय के आदेश की आड़ के बिना दस वर्षों से अधिक समय से सेवाएं प्रदान की गई हैं, तो एक बार के उपाय के रूप में, ऐसे कर्मचारियों की सेवाओं को नियमित किया जाए। मामले के तथ्यों में, उन कर्मचारियों को नियमित किया जाना चाहिए था जिन्होंने दस साल या उससे अधिक समय तक काम किया है। उन्हें नियमित करने पर विचार करना उचित नहीं होगा क्योंकि अन्य को नियमित कर दिया गया है, हम निर्देश देते हैं कि उनकी सेवाओं को नियमित माना जाए। तथापि, यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि उन्हें अधिवषता की आयु प्राप्त करने से पहले नियमित रूप से सेवा में जारी रखा जाता है तो वे मजदूरी में अंतर के किसी भी देय राशि का दावा करने के हकदार नहीं होंगे। वे पेंशन प्राप्त करने के हकदार होंगे जैसे कि वे नियमित प्रतिष्ठान से सेवानिवृत्त हुए हैं और जिस दिन से वे कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में प्रवेश करते हैं, उसी दिन से उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं को पेंशन के उद्देश्य के लिए अर्हक सेवा के रूप में गिना जाएगा।

36. उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 के नियम 3(8) को पढ़ने के मद्देनजर, हम मानते हैं कि वर्कचार्ज प्रतिष्ठान में प्रदान की गई सेवाओं को पेंशन प्रदान करने के लिए उपरोक्त नियम के तहत अर्हक सेवा के रूप में माना जाएगा। पेंशन की बकाया राशि आदेश की तारीख से पहले केवल तीन साल तक सीमित होगी। स्वीकार्य लाभों का भुगतान तदनुसार तीन महीने के भीतर किया जाए। नतीजतन, कर्मचारियों द्वारा दायर अपीलों को अनुमति दी जाती है और राज्य द्वारा दायर को खारिज किया जाता है।

याचिकाकर्ता के वकील ने प्रस्तुत किया कि इसी तरह स्थित व्यक्तियों ने रिट-ए नंबर 31488 वर्ष 2015 में जिला मजिस्ट्रेट, बलिया द्वारा पारित 04.04.2015 के आदेश को चुनौती दी, जिसे 27.11.2017 के आदेश के तहत निपटाया गया और इस न्यायालय के निर्देशों के अनुसार, उन्होंने पेंशन के बकाया, सेवानिवृत्ति बकाया के लिए एक व्यापक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया और नियमितीकरण के लिए उनके दावे को खारिज करने के आदेश को खारिज कर दिया। जिला मजिस्ट्रेट बलिया ने दिनांक 07.03.2018 के आदेश द्वारा सेवानिवृत्ति के बाद के लाभ, साथ ही पेंशन देने से इस आधार पर इनकार कर दिया कि वे सेवा से सेवानिवृत्ति के बाद नियम, 1974 के तहत पेंशन लाभ के हकदार नहीं हैं, जिसे रिट-ए नंबर 10116 वर्ष 2018 में चुनौती दी गई थी। (सुरेश चंद्र पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और तीन अन्य) और इस न्यायालय ने दिनांक 18.09.2019 के आदेश के तहत इसकी अनुमति दी है। दिनांक 18.09.2019 के आदेश का ऑपरेटिव भाग निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: –

अनुवादित

"इस रिट याचिका में जो संक्षिप्त सवाल उठता है वह यह है कि क्या अस्थायी मौसमी संग्रह अमीन सेवानिवृत्ति के बाद लाभ का हकदार है। रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता को 1978 में मौसमी संग्रह अमीन नियुक्त किया गया था, उसके बाद, 1982 से संग्रह अमीन का नियमित वेतनमान दिया गया था, उनके वेतन से आयकर नियमित रूप से काटा गया था। याचिकाकर्ता के नियमित वेतनमान को समय-समय पर संशोधित किया जाना आया। सेवा पुस्तिका में, याचिकाकर्ता को एक अस्थायी कर्मचारी के रूप में संदर्भित किया गया है। इन परिस्थितियों में, प्रतिवादियों के लिए यह खुला नहीं है कि वे याचिकाकर्ता द्वारा राज्य सरकार की नियमित स्थापना में एक अस्थायी कर्मचारी के रूप में प्रदान की गई पिछली सेवाओं को त्यागकर पेंशन से इनकार करें। पेंशन लाभ की पात्रता के लिए मूल नियुक्ति एक शर्त मिसाल नहीं है। पेंशन अर्जित करने के लिए सरकार के पेंशन योग्य प्रतिष्ठान पर नियुक्ति एक नियमित नियुक्ति होनी चाहिए।

इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता ने स्वीकार किया कि पद के लिए स्वीकार्य नियमित वेतनमान में मौसमी संग्रह अमीन नियुक्त किया गया था। संशोधित वेतन का भुगतान समय-समय पर किया जाता था। याचिकाकर्ता के वेतन से आयकर काटा गया। इन परिस्थितियों में, प्रेम सिंह (सुप्रा) में घोषित किया गया कानून याचिकाकर्ता को पेंशन और सेवानिवृत्ति बकाया राशि का हकदार बनाता है।

इसे ध्यान में रखते हुए रिट याचिका को स्वीकार किया जाता है। तीसरे प्रतिवादी- जिला मजिस्ट्रेट, बलिया और चौथे प्रतिवादी- उपजिलाधिकारी, बलिया द्वारा पारित 7 मार्च 2018 और 25 मई 2012 के आक्षेपित आदेशों को अपास्त किया जाता है और रद्द किया जाता है। याचिकाकर्ता पेंशन का हकदार है। पेंशन की बकाया राशि आदेश की तारीख से तीन साल पहले तक सीमित होगी। प्रतिवादियों को आदेश की सूचना की तारीख से तीन महीने के भीतर स्वीकार्य सेवानिवृत्ति लाभ का भुगतान करना होगा।

इस न्यायालय का विचार है कि चूंकि वर्तमान मामले में शामिल विवाद को इस न्यायालय द्वारा रिट-ए नंबर 10116 वर्ष 2018 में पारित 18.09.2019 के आदेश के तहत पहले ही तय किया जा चुका है, इसलिए वर्तमान रिट याचिका को उन्हीं शर्तों में अनुमति दी जाती है। याचिकाकर्ता पेंशन का हकदार है। उत्तरदाताओं को आदेश की सूचना की तारीख से तीन महीने के भीतर स्वीकार्य सेवानिवृत्ति लाभ का भुगतान करना होगा।

कोई कीमत नहीं।

(2023) 1 ILRA 1151
अपीलीय क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक:इलाहाबाद 22.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,
माननीय न्यायमूर्ति सैयद वाइज मियां

आपराधिक अपील संख्या 5070/2013

गुड्डा @ राजमन @ राज कुमार @ झल्ला ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...विपक्षीगण

अधिवक्ता अपीलकर्ता:

श्री डी.पी. सिंह, श्री दया नंद पांडे, श्री आई.के. चतुर्वेदी, श्री मुकेश सिंह, श्री नीरज कुमार पांडे, श्री पी.के. सिंह, श्री राजेंद्र प्रसाद तिवारी, श्री राजर्षि गुप्ता, श्रीमती. उषा श्रीवास्तव, श्री सुशील कुमार द्विवेदी, श्री रिजवान अहमद, सुश्री. शांभवी शुक्ला

अधिवक्ता विपक्षीगण:
जी.ए.

आपराधिक कानून- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 27- प्रकट किए बिना बरामदगी - कोई अन्य साक्ष्य नहीं- भले ही अंकित मूल्य पर अपीलार्थी/अभियुक्त की निशानदेही पर कुल्हाड़ी एवं अन्य सामान की बरामदगी स्वीकार कर ली जाए, तब भी उस पर पर्याप्त साक्ष्य के अभाव में अपीलकर्ताओं/अभियुक्तों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। भले ही, यह स्वीकार कर लिया जाए कि गिरफ्तारी के बाद उन्होंने गिरफ्तार करने वाले पुलिस अधिकारी को खुलासा करने वाला बयान दिया था, फिर भी अदालत के समक्ष उनके इनकार की स्थिति में ऐसे प्रकटीकरण बयान पर भरोसा नहीं किया जा सकता और उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। केवल, राजू कोल की निशानदेही पर मृतक के हथियार स्केल्टन, हैंडल सहित कुल्हाड़ी, कपड़े और अन्य सामान की बरामदगी के आधार पर, यह सुझाव नहीं दिया जा सकता है कि उसने अपराध के हथियार और शरीर आदि को छुपाने का कोई कार्य किया था, और यह राजू कोल द्वारा छुपाने के लेखकत्व का अनुमान लगाने के लिए पर्याप्त नहीं है, जिसने मृतक के हथियार और शव की बरामदगी की थी।

यह स्थापित कानून है कि केवल मृतक की निशानदेही पर कथित आपत्तिजनक वस्तुओं की बरामदगी के आधार पर जहां कोई खुलासा नहीं किया गया है और कोई अन्य ठोस सबूत नहीं है, दोषसिद्धि सुरक्षित नहीं की जा सकती है।

अपराधिक अपील स्वीकृत।

<u>उद्धरण वाद:</u>

1. शाहजा @ शाहजन इस्माइल मोहम्मद शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य; 2022 लाइव लॉ (एससी) 596
2. हनुमंत बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 1975 एआईआर 1083
3. हरलाल दास बनाम उड़ीसा राज्य, 1991 एआईआर 1388

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद वाइज मियां, द्वारा प्रदत्त)

1. यह अपील सत्र परीक्षण संख्या 147 वर्ष 2007, राज्य बनाम गुड्डा @ राजमन @ राज कुमार @ झल्ला @ गुड्डू कोल और अन्य के संबंध में विशेष न्यायाधीश, डी.ए अधिनियम/अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कोर्ट नंबर 1 चित्रकूट द्वारा पारित दिनांक 18.10.2013 के आक्षेपित निर्णय और आदेश के खिलाफ निर्देशित की गई है, जिसके द्वारा, विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ताओं/अभियुक्तों को धारा -147, 148, 149, 364, 302, 201 भ०द०वि० और डी.ए अधिनियम की धारा 14, थाना-रायपुरा, जिला-चित्रकूट के तहत अपराधों के लिए, कई प्रकरण में दोषी ठहराया है।

2. यह भी निर्देश दिया गया है कि सभी सजाएं साथ-साथ चलेंगी।

3. श्री राजर्षि गुप्ता जो श्री रिजवान अहमद एडवोकेट द्वारा सहयता प्राप्त, सुश्री शांभवी शुक्ला, श्री डी.पी सिंह, अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील और श्री ओम प्रकाश मिश्रा, राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना, और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

4. अभियोजन पक्ष की कहानी के संक्षिप्त तथ्य निम्नानुसार सामने आते हैं:

5. सूचनाकर्ता रघुनंदन पाठक राम खिलावन के साथ गांव हनुमानगंज में गेहूं खरीदने आए थे। वे कोल बस्ती में कमला के द्वार पर आए। गांव हनुमानगंज में, दया शंकर कोल उनसे मिले; शंकर कोल भी मौजूद थे, जिन्होंने रघुनंदन के साथ कुछ बातचीत की। थोड़ी देर बाद सूचनाकर्ता का भाई रज्जन मिश्रा भी वहां पहुंच गया था और देखा कि रघुनंदन शंकर कोल की उससे कुछ बात हुई थी; गुड्डा कोल भी वहां पहुंच गया था और शंकर कोल, गुड्डा कोल और जिया लाल ने उसके भाई का हाथ पकड़ लिया और उसके भाई को जंगल की ओर ले गया; कुछ दूरी पर 15-20 लोगों को दो काले चार पहिया वाहनों में बैठे देखा गया; शंकर कोल, गुड्डा और जिया लाल अपने भाई को दो पहिया वाहनों में बैठे व्यक्तियों के पास ले गए और अपने वाहनों को मौके पर ही छोड़ दिया, वे सभी अपने भाई को जंगल की ओर ले गए और कुछ समय बाद, दोनों वाहन लालता रोड की ओर लौट आए।

6. लिखित प्रथम सूचना रिपोर्ट, प्रदर्श क- 3 में आगे आरोप लगाया गया है कि 22.05.2007 को लगभग 10 बजे शंकर कोल, गुड्डा कोल और जिया लाल ने उनके गांव का दौरा किया था और तेंदू के पत्ते तोड़ने से मना किया था।

7. लिखित प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह भी आरोप लगाया गया है कि 23.05.2007 को लगभग 4 बजे गोपी की पत्नी और रज्जन भी तेंदू के पत्ते तोड़ने के लिए जंगल के उत्तरी किनारे पर गए थे, जहां शंकर, गुड्डा कोल और जिया लाल भी मौजूद थे और उन सभी ने उपरोक्त महिलाओं को तेंदू के पत्ते तोड़ने से मना किया था। वे अपने गाँव लौट आए थे; तभी से उसका भाई रज्जन मिश्रा लापता था। शंकर कोल,

गुड्डा कोल, जिया लाल और उनके 15-20 सहयोगी, जिनसे उसका कोई परिचय नहीं था, ने उसके भाई को मारने के इरादे से गांव-हनुमानगंज से अपहरण कर लिया। उन्होंने और अन्य लोगों ने रज्जन मिश्रा की तलाश की, लेकिन कोई जानकारी नहीं मिल सकी। घटना के अगले दिन से रघुनंदन भी किसी अज्ञात स्थान पर चले गए थे।

8. लिखित प्रथम सूचना रिपोर्ट, प्रदर्श क-13 के आधार पर दिनांक 05.06.2007 को अपराह्न 13.30 बजे अभियुक्त शंकर कोल, गुड्डा कोल एवं जिया लाल तथा उनके 15-20 साथियों के विरूद्ध धारा-147, 148, 149, 364, 302, 201 एवं 14 के और डी.ए.ए अधिनियम के 14 अंतर्गत अपराध क्रमांक 46 वर्ष 2007 में आपराधिक मुकदमा दर्ज किया गया। प्रथम सूचना रिपोर्ट का सार दिनांक 05.06.2007 को दोपहर 1:30 बजे जी.डी नंबर 27 में दर्ज किया गया था और मामले की जांच की गई थी।

9. विवेचना के दौरान आरोपी राधे @ सूबेदार को गिरफ्तार किया गया। विवेचनाधिकारी ने उसे 48 घंटे के लिए पुलिस रिमांड पर लिया और पूछताछ पर उसने कहा कि वह रज्जन मिश्रा का मतदाता पहचान पत्र और राशन कार्ड बरामद करा सकता है और विवेचनाधिकारी ने पुलिस टीम के साथ 15.05.2008 को आरोपी राजू कोल, सुखनंदन, सरकारी गवाह धर्मेंद्र पांडे और रज्जन मिश्रा के साथ गिदुराहा (बंधक) जंगल, हनुमान चौक की ओर गए। आरोपी राधे @ सबडियर सिंह, उन्हें हनुमान मंदिर, मानिकपुर रेंज के पूर्व में, एक सुनसान कोठरी के पास ले गया और आरोपी राधे ने उन्हें सूचित किया कि उक्त कोठरी की छत के पास ईंटों के ढेर में उसने आई.डी कार्ड और राशन कार्ड छुपाया था। आरोपी राधे @ सूबेदार सुनसान कोठरी में घुस गया और छत के पास पड़ी ईंटों के ढेर से पॉलीथिन का एक पैकेट बरामद हुआ और उसे सौंप दिया गया। इस पैकेट को खोलने पर एक मतदाता पहचान पत्र जिस पर नं. सी.वाई.क्यू 1410752, भारतीय चुनाव आयोग द्वारा राजेंद्र पुत्र राम प्रताप, पुरुष आयु 37 (01.01.2001 को) के नाम पर जारी किया गया था और पहचान पत्र के पीछे हाउस नंबर 144, ग्राम-खानदेहा, थाना-मऊ, जिला-चित्रकूट, निर्वाचन क्षेत्र संख्या 315, मानिकपुर चिह्नित किया गया था। यह पहचान पत्र 14.10.2001 को जारी किया गया था, उस पर राजेंद्र का फोटो भी चिपकाया गया था। उक्त पॉलीथिन के पैकेट से राजेन्द्र प्रसाद मिश्र पुत्र राम प्रताप मिश्र ग्राम कण्डैला, पोस्ट सिंगवा, थाना मानिकपुर, जिला-चित्रकूट के नाम से एक राशन कार्ड क्रमांक 45585 भी प्राप्त हुआ है। राशन कार्ड में उनके परिवार के तीन सदस्यों के नाम नोट थे। दोनों कागजात रज्जन मिश्रा से जुड़े हुए थे, इसलिए, इन दोनों कागजात को विवेचनाधिकारी और उनकी टीम ने अपने कब्जे में ले लिया था और इन दोनों कागजात को एक पॉलिथीन पैकेट में रखा गया और उक्त पैकेट को कपड़े के एक टुकड़े में लपेटा गया था जिसे सभी गवाहों की उपस्थिति में बरामदगी के स्थान पर सील कर दिया गया था और उपरोक्त कागजात की बरामदगी का एक ज्ञापन लिखा गया था; गवाहों को इसे पढ़ने के बाद, उनके द्वारा इस पर हस्ताक्षर किए गए।

10. विवेचना के दौरान विवेचनाधिकारी ने राजू कोल को भी 14.05.2008 को 48 घंटे के लिए पुलिस हिरासत में लिया और उससे पूछताछ करने पर उसने बताया कि उन्होंने रंजन मिश्रा को कुल्हाड़ी से पीटकर मार डाला है। दिनांक 15-05-2008 को विवेचनाधिकारी पुलिस कर्मियों और अन्य सह-अभियुक्तों सुखनंदन और राधे @ सूबेदार के साथ मानिकपुर कस्बे में स्थित उनके कैम्प कार्यालय में आए। उपरोक्त आरोपी के साथ विवेचनाधिकारी पुलिस टीम के साथ कुल्हाड़ी (अपराध का हथियार) की बरामदगी की उम्मीद में अपने कार्यालय से चले; वे सह-आरोपियों के साथ-साथ सरकारी गवाह धर्मेंद्र पांडे और राजल मिश्रा के साथ जंगल में स्थित गढ़ित नाला (चैनल) के पास पहुंचे। राजू कोल ने बताया कि चैनल के पूर्व-पश्चिम की ओर उसने और सह-आरोपी जिया लाल ने मृतक रंजन मिश्रा की दो कुल्हाड़ियों से मारते हुए हत्या कर दी थी और उसकी हत्या करने के बाद उन्होंने खून से सनी कुल्हाड़ियों को चैनल के बहते पानी में धोया था। इसके बाद उन्होंने दोनों कुल्हाड़ियों को पत्थरों के नीचे झाड़ियों में छिपा दिया। आरोपी राजू कोल ने उक्त स्थान से एक कुल्हाड़ी बरामद की और पुलिस कर्मियों और सरकारी गवाहों की उपस्थिति में विवेचनाधिकारी को कुल्हाड़ी सौंप दी। बरामद हथियार 'कुल्हाड़ी' को कपड़े के एक टुकड़े में बंद कर दिया गया था। कुल्हाड़ी की बरामदगी का ज्ञापन, प्रदर्श क-3 विवेचनाधिकारी द्वारा गवाहों की उपस्थिति में तैयार किया गया था और उस पर उनके द्वारा हस्ताक्षर भी किए गए थे।

11. विवेचना के दौरान थाना रायपुर, जिला-चित्रकूट के प्रभारी अधिकारी ने घटना के संबंध में गवाहों प्रद्युम्न लाल कोल, चुन्नी लाल की उपस्थिति में मृतक रज्जन मिश्रा का सामान यानी (1) साफी (टेरिकोट कॉटन मिक्स) हरा चेक कलर, बॉर्डर ब्लैक (2) एक फटा हुआ लाल काला पीला चेक फुल स्लीव शर्ट (3) एक सफेद सैंडो बनियान, (अमूल गोल्ड, 85 सेमी) (4) टेरिकॉट की हरी रंग की फटी पैंट (5) एक भूरे रंग का कड़ा, भी बरामद किया गया।

12. मृतक के उपरोक्त सभी सामान खून से सने हुए थे। पुलिस ने एक जोड़ी सफेद रंग की फाइबर चप्पल भी अपने कब्जे में ले ली और मृतक का सारा सामान कपड़े के टुकड़े में डाल दिया। थाना प्रभारी सचिन्द्र प्रसाद शुक्ला के आदेश पर सब इंस्पेक्टर हरिवंश सिंह ने उक्त सामग्री की बरामदगी का मेमो तैयार किया था।

13. विवेचना के दौरान आरोपी राधे @ सूबेदार को फिर से 13.05.2008 को पुलिस हिरासत में लिया गया और अगली तारीख यानी 14.05.2008 को थानाध्यक्ष, ऋषिकेश यादव, पुलिस कर्मियों के साथ थाना मानिकपुर, जिला-चित्रकूट के

क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र के तहत रामपुरिया में आए। आरोपी राधे @ सूबेदार के कहने पर, वे शिव पूजन @ दिल्ली के घर पहुंचे, जो उनके घर पर नहीं मिला, हालांकि, सार्वजनिक गवाहों की उपस्थिति में और शिव पूजन @ दिल्ली के घर दया राम की तलाशी ली गई, लेकिन कोई प्रतिबंधित पदार्थ नहीं मिला। मेमो, प्रदर्श क-15 तदनुसार तैयार किया गया और उसी पर श्रीमती सुनीता पत्नी शिव पूजन @ दिल्ली और अन्य गवाहों द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे।

14. सूचनाकर्ता राम गोपाल मिश्रा भी दिनांक 16.07.2007 को थाने पहुंचे और आवेदन पत्र क्रमांक 18-क प्रस्तुत किया; सूचनाकर्ता ने आवेदन में कहा कि उनके भाई रज्जन मिश्र का कंकाल चैनल में उगी झाड़ियों में पड़ा है। सूचनाकर्ता की उपस्थिति में, आवेदन संख्या 18 क में उल्लेख?; पुलिस बल के साथ विवेचनाधिकारी सूचनाकर्ता और अन्य लोगों के साथ उक्त स्थान पर पहुंचे जहां कंकाल, मृतक के कपड़े और चप्पल पड़े थे। विवेचनाधिकारी सचिंद्र प्रसाद शुक्ला ने जगह का निरीक्षण किया और नक्शा नज़री, पेपर नंबर 20 का, प्रदर्श क-11; उक्त स्थान पर मौजूद लोगों ने उन्हें अवगत कराया था कि ये वस्तुएं रज्जन मिश्रा की संपत्ति थीं क्योंकि उस तारीख को मृतक ने उन्हें पहना हुआ था। कंकाल के सिर के सामने उसके बाल गायब हो गए थे।

15. विवेचनाधिकारी सचिन्द्र प्रसाद शुक्ला ने पंचान की उपस्थिति में कंकाल की जांच रिपोर्ट तैयार की और कंकाल, चप्पल, खून से सनी सफी, पूरी आस्तीन की चेक की गई शर्ट, एक सैंडो वेस्ट, एक फटा हुआ हरा रंग पैंट और एक भूरे रंग का ब्रीफ कब्जे में लिया गया और मेमो प्रदर्श क-12 और मौके पर अन्य आवश्यक कागजात विवेचनाधिकारी सचिंद्र प्रसाद शुक्ला द्वारा तैयार किए गए।

16. विवेचना के दौरान, गुड्डा @ राजमान को 22.07.2007 को गिरफ्तार किया गया था, जिसने विवेचनाधिकारी को बताया कि मृतक को घने जंगल में ले जाया गया था और गढ़ित नाला (चैनल) के पास, रंजन मिश्रा को कुल्हाड़ी के वार से मौत के घाट उतार दिया गया था।

17. विवेचना के दौरान, वर्तमान मामले को ए.टी.एस लखनऊ स्थानांतरित कर दिया गया था। विवेचनाधिकारी, अभय कांत सिंह ने दिनांक 29-07-2007 को शेष जांच शुरू की, उन्होंने अभियुक्तों और गवाहों के बयान दर्ज किए और विवेचना के दौरान अभियुक्त शंकर कोल, वीएम लाल, गोटार @ राजम @ हल्ला @ राज कुमार @ गुड्डा कोल के नाम प्रकाश में आए। संतोष कुमार विश्वकर्मा, सत्यनारायण, अभिलाष, उमेश द्विवेदी और अन्य गवाहों के बयान भी दर्ज किए गए। विवेचनाधिकारी ने धारा 147, 148, 149, 364, 302 और 201 भ०द०वि० के तहत अपराधों के लिए आपत्तिजनक साक्ष्य एकत्र किए।

18. विवेचना के दौरान, विवेचनाधिकारी, अभय कांत सिंह ने श्रीमती मीणा, जमींदार, और झाडी @ भोला @ कामरू के बयान भी दर्ज किए और साक्ष्य के आधार पर डी.ए अधिनियम की धारा 14 भी जोड़ी गई।

19. विवेचना के दौरान आदित्य नाथ तिवारी का बयान और संतोष सत्य नारायण और आरोपी का अतिरिक्त बयान भी दर्ज किया गया।

20. विवेचना के दौरान मृतक की मौत के वास्तविक कारण का पता लगाने के लिए पुलिस कांस्टेबल के माध्यम से जांच रिपोर्ट और अन्य आवश्यक कागजात जिला शवगृह को भेज दिए गए थे।

21. डॉ. आर. के. राव ने दिनांक 16.06.2007 को अपराह्न 3.30 बजे कंकाल का शव परीक्षण किया था और उन्होंने अपने लेखन में शव परीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श क-1 तैयार की थी।

22. कंकाल की मेडिकल जांच करने पर डॉ. आर.के राव मृतक की मौत के कारण का पता नहीं लगा सके। वह उस हथियार की प्रकृति का भी पता नहीं लगा सके जिससे मृतक मारा गया। वह मृतक की मृत्यु का अनुमानित समय भी नोट करने में विफल रहा।

23. उचित विचार-विमर्श और जांच के पूरा होने के बाद आपराधिक क्षेत्राधिकार के सक्षम न्यायालय के समक्ष आरोप पत्र दायर किया गया; चूंकि मामला सत्र न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में था, इसलिए इसके लिए सुपुर्द किया गया। जिला एवं सत्र न्यायालय में सत्र विचारण संख्या 148 वर्ष 2007 के रूप में आपराधिक मामला दर्ज किया गया।

24. अभियुक्त गुड्डा कोल और 14 अन्य के खिलाफ धारा 147, 148, 364, 302, 201 के सपठित धारा 14 डी.ए अधिनियम के तहत विशेष न्यायालय द्वारा दिनांक 27.11.2007 के आदेश के तहत आरोप तय किए गए।

25. विचारण न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 13.08.2008 के तहत सह-अभियुक्त सूबेदार @ राधे और जिया लाल के खिलाफ धारा 149, 201, 302, 364 भ०द०वि० सपठित धारा 14 डी.ए एक्ट के तहत आरोप तय किए हैं।

26. सभी आरोपियों/अभियुक्तों को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उन्होंने इन्कार किया और विचारण चाहा!

27. अभियुक्तों के विरूद्ध आरोपों को सिद्ध करने के लिए अभियोजन पक्ष ने अ०सा०-1 अनिल कुमार शुक्ला, अ०सा०-2 जगदीश प्रसाद, अ०सा०-3 सत्य नारायण, अ०सा०-4 संतोष कुमार विश्वकर्मा, अ०सा०-5 उमेश चंद्र द्विवेदी, अ०सा०-6 झारी लाल, अ०सा०-7 चुन्नी लाल, अ०सा०-8-डॉ. आर.के. राव, अ०सा०-9/सी.डब्ल्यू.9 राजुल, अ०सा०-10 सी.पी. अ०सा०-11 बब्बू राम, अ०सा०-12 श्रीमती निराशा देवी, अ०सा०-13 श्रीमती सुनीता, अ०सा०-14 शचीन्द्र प्रसाद शुक्ला, अ०सा०-15-राम गोपाल, अ०सा०-16 श्रीमती मीना देवी, अ०सा०-17-अभय कांत सिंह, अ०सा०-18-ऋषिकेश यादव, पुलिस निरीक्षक, 30.01.2008 को एस.टी.एफ में पदस्थ, अ०सा०-राम अभिलाष अ०सा०-20 आदित्य तिवारी, अ०सा०-21,

राम दयाल तिवारी, अ०सा०-22 धर्मेंद्र पांडेय, अ०सा०-23-राम सेवक, और अ०सा०-24-कांस्टेबल कमलेश कुमार को प्रस्तुत और परीक्षित किया।

28. धारा 313 द०प्र०स० के तहत आरोपियों के बयान दर्ज किए गए जिसमें उन्होंने अपने खिलाफ आरोपों और सबूतों से इनकार किया है और उन्होंने कहा है कि दुश्मनी के कारण उन्हें झूठा फंसाया गया है।

29. अभियुक्तों ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयानों में यह भी कहा है कि वे अपने पक्ष में सबूत पेश करेंगे। हालांकि, उन्होंने किसी भी गवाह का परीक्षण नहीं किया है।

30. विद्वान विचारण न्यायालय ने गवाहों के साक्ष्य और रिकॉर्ड पर उपलब्ध अन्य सामग्रियों का मूल्यांकन और विश्लेषण करने के बाद अपीलकर्ताओं को उपरोक्त अपराधों के लिए दोषी ठहराया है और आक्षेपित निर्णय और आदेश के पैरा नंबर 35 और 36 में उल्लिखित सजा भी दी है।

31. प्रस्तुत अपील के माध्यम से, अपीलकर्ताओं/अभियुक्तों ने अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर आक्षेपित निर्णय पर आक्षेप किया है कि निर्णय और आदेश अवैध, मनमाना और रिकॉर्ड पर साक्ष्य के खिलाफ है; अपीलकर्ताओं के खिलाफ कोई प्रत्यक्ष सबूत नहीं है; प्रस्तुत मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर टिका हुआ है लेकिन श्रृंखला गायब है; मृतक का शव बरामद नहीं हुआ; अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार कंकाल बरामद किया गया था जो किसी इंसान का नहीं था; डी.एन.ए परीक्षण रिपोर्ट नकारात्मक पाई गई; कुल्हाड़ी, मतदाता पहचान पत्र, राशन कार्ड आदि की बरामदगी झूठी थी और गवाह पक्षद्रोही गए हैं क्योंकि उन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है। प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में भी अत्यधिक विलंब होता है; अ०सा०-15 सूचनाकर्ता का बयान, स्पष्ट है कि उसने उच्च अधिकारी को कोई आवेदन नहीं दिया है; उन्होंने पुलिस को किसी भी आरोपी के नाम का खुलासा नहीं किया है; उन्होंने यह भी कहा है कि उन्हें किसी का कोई डर नहीं है; उसका भाई आपराधिक गतिविधियों का आदमी था और कई व्यक्तियों के प्रति शत्रुतापूर्ण भी था; वह एक गिरोह का सदस्य भी था और उस पर 3,000/- का पुरस्कार लगाया गया था; अपीलकर्ताओं/अभियुक्तों को सत्तारूढ़ दल के तत्कालीन मंत्री ददद्दू प्रसाद के इशारे पर झूठा फंसाया गया है क्योंकि अपीलकर्ता समाजवादी पार्टी के समर्थक थे। यह प्रार्थना की जाती है कि धारा -147, 148, 149, 364, 302, 201 भ०द०वि० और 14 डी.ए अधिनियम, थाना-रायपुरा, जिला-चित्रकूट के तहत 2007 के विचारण संख्या 148 के संबंध में विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 18.10.2013 को रद्द कर दिया जाए।

32. सूचनाकर्ता अ०सा०-15, राम गोपाल ने अपने बयान में कहा है कि मृतक रज्जन मिश्रा उसका भाई था। दिनांक 23-05-2007 को लगभग 9-9-15 को शंकर कोल और उनके दो सहयोगियों द्वारा हनुमानगंज में कमला के घर के सामने उस समय, जब वह हनुमानगंज में कमला के घर के सामने थे, उनका अपहरण कर लिया गया। आरोपियों में से एक रघुनंदन ने उसे और उसके भाई को हनुमानगंज से गेहूं खरीदने का सुझाव दिया था, जिसके अनुसरण में वह और रघुनंदन अपने घर से हनुमानगंज के लिए रवाना हुए; उसके भाई ने उसे बताया था कि भोजन करने के बाद वह वहां पहुंच जाएगा; मृतक के अपहरण के समय वह (अ०सा०-15), रघुनंदन पाठक हनुमानगंज में कमला पोखरिया के घर पहुंचा था; उन्होंने देखा कि तीन बदमाश शंकर और उसके दो साथी वहां बैठे थे; रघुनंदन ने तीनों बदमाशों से कुछ बातचीत की; इसी दौरान उसका भाई मृतक रंजन मिश्रा भी वहां पहुंच गया था और तीनों बदमाशों ने उसे अगवा कर जंगल की ओर ले गए। इसके बाद, उसका भाई वापस नहीं आया; थाने में उसकी रिपोर्ट दर्ज नहीं कराई गई। पुलिस ने उसे उसके घर से उठा लिया था और पांच दिन तक थाने की लॉकअप में भी रखा था।

33. अभियोजन के अनुरोध पर अ०सा०-15 रामगोपाल को पक्षद्रोही घोषित किया गया; उन्होंने धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान से इनकार किया है और इस बात से भी अनभिज्ञता जताई है कि विवेचनाधिकारी द्वारा इसे कैसे दर्ज किया गया। उन्होंने आगे कहा है कि उन्होंने विवेचनाधिकारी को आरोपी के नाम का खुलासा नहीं किया और यह भी नहीं पता कि इस तरह का बयान कैसे दर्ज किया गया।

34. जिरह में, अ०सा०-15 मृतक के भाई राम गोपाल ने प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोपों का समर्थन नहीं किया है और आरोपी शकर कोल के संबंध में, उन्होंने अपनी जिरह में खंडन किया है कि उन्होंने विवेचनाधिकारी को अपना नाम नहीं बताया था।

35. अ०सा०-16, मृतक रंजन मिश्रा की पत्नी श्रीमती मीणा ने अपनी जांच में बताया है कि जब उनके पति गेहूं खरीदने के लिए हनुमानगंज गए थे, तब उनके पास 100 रुपये, सुपारी, बटुआ और कुरौला थे। शाम को उसका जेठ और रघुनंदन पाठक उसके घर आए थे, लेकिन उसका पति वापस नहीं लौटा।

36. एक दिन पहले उसका पति हनुमानगंज गया था, रघुनंदन पाठक के साथ तीन बदमाश आए; उसे पता चल गया था कि उसके पति की मौत कर दी गई है। यह उसका विश्वास है कि उसके पति रज्जन मिश्रा को ददुआ गैंग के इशारे पर शंकर कोल, जिया लाल कोल और गुड्डा कोल द्वारा मार दिया गया था। डर के मारे बदमाशों के नाम बताने के लिए कोई सामने नहीं आ रहा था।

37. प्रतिपरीक्षण में अ०सा०-16 ने बताया है कि घटना के दिन रघुनंदन और उसका जेठ राम गोपाल चले गए थे और उसी दिन दोनों अपने घर लौट आए थे, हनुमानगंज जाते समय रास्ते में बदमाश मिले थे और उसके पति को पकड़कर अगवा कर लिया गया था। चार-छह दिन बाद गांव हनुमानगंज के दौरे पर पहुंची तो उसे जानकारी मिली कि तीन बदमाश उसके पति का अपहरण कर जंगल की ओर ले गए हैं।

38. अभियोजन पक्ष का यह मामला है कि मृतक अपने घर से अकेला चला गया था और अ०सा०-16 श्रीमती मीणा का बयान सुनी-सुनाई बातों पर आधारित है, जिसकी पुष्टि की आवश्यकता है, लेकिन उनके जेठ, अ०सा०-15, राम गोपाल ने प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोपों का समर्थन नहीं किया है, न ही धारा 161 द०प्र०स० के तहत उनका बयान का समर्थन किया है, इसलिए, उसके अप्रत्यक्ष साक्ष्य की पुष्टि उसके जेठ, अ०सा०-15-राम गोपाल द्वारा नहीं की गई है।

39. अ०सा०-16, श्रीमती मीना देवी ने भी अपनी जांच में बताया है कि घटना के दिन उनके भाई राम अभिलाष और भतीजे उमेश उनके घर आए थे और भोजन करने के बाद वे चले गए थे।

40. अ०सा०-19 राम अभिलाष ने अपनी जांच में कहा है कि दिनांक 23.05.2017 को वह ग्राम कोटा कडैला में अपने ब्रदर इन लॉ के घर नहीं गया था और वह जानता था कि उसके ब्रदर इन लॉ की हत्या कर दी गई है लेकिन उसने इस घटना को नहीं देखा है। अ०सा०-19 राम अभिलाष को भी पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है और उन्होंने अपनी जिरह में भी अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है।

41. अ०सा०-20, आदित्य तिवारी ने दिनांक 27.04.2013 को यह कहते हुए गवाही दी कि घटना 6-7 वर्ष पहले हुई थी। वह अपने चाचा राम लाल तिवारी, ग्राम कोटा कडैला से जिमिंदर और झरी कोल के साथ जंगल के रास्ते अपने गांव जा रहे थे; उन्होंने 1-2 फायर आर्म की आवाज सुनी थी, लेकिन उन्होंने घटना नहीं देखी है, न ही उन्होंने यह देखा है कि मृतक रंजन मिश्रा की हत्या किसने की थी।

42. अ०सा०-20, आदित्य तिवारी को भी पक्षद्रोही घोषित किया गया है क्योंकि उन्होंने अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन नहीं किया है, न ही धारा 161 द०प्र०स० के तहत बयान दिया है।

43. इस गवाह ने अपनी जिरह में यह भी स्वीकार किया है कि गांव कोटा कदैला से उसका घर 15 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है।

44. अ०सा०-21 राम दयाल तिवारी ने दिनांक 27.04.2013 को गवाही दी है कि यह घटना 6-7 वर्ष पूर्व प्रातः 10 से 10.30 बजे की है जब वह जिमींदार, झाड़ी कोल और आदिल के साथ ग्राम कोटा कदैला से मऊ गुरदारी स्थित अपने घर लौट रहे थे, उन्होंने गोली चलने की आवाज सुनी और डर के मारे छिप गए लेकिन उन्होंने घटना नहीं देखी।

45. अ०सा०-21 राम दयाल तिवारी को भी पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है और उन्होंने धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान का समर्थन नहीं किया है।

46. अ०सा०-22 धर्मेंद्र पांडे ने अपनी जांच में गवाही दी कि 13.05.2008 को पुलिस ने राजू कोल, राधे और जिया लाल को अपनी हिरासत में ले लिया था लेकिन वह पुलिस के साथ नहीं था।

47. अ०सा०-1 अनिल कुमार शुक्ला ने अपनी गवाही में कहा कि रघुनंदन पाठक और जगदीश उनके परिचित थे। वह और जगदीश सुबह अपने घर में बैठे एक दूसरे से बात कर रहे थे, इसी बीच रघुनंदन पाठक आए और उनसे कहा कि वह उनसे एकांत में बात करना चाहते हैं जिस पर उन्होंने कहा कि चूंकि जगदीश उनका मित्र है इसलिए वह उनकी उपस्थिति में बोल सकते हैं, जिस पर रघुनंदन पाठक ने उन्हें बताया था कि रज्जन मिश्रा की हत्या में पुलिस उसे फंसा रही थी; क्योंकि पुलिस उससे परिचित थी, इसलिए उसने उसे बचाने के लिए उससे अनुरोध किया; उन्होंने रघुनंदन पाठक से उस घटना के बारे में पूछा था जिसमें उन्होंने बताया था कि रज्जन मिश्रा की हत्या कर दी गई है।

48. अ०सा०-19 राम अभिलाष, अ०सा०-20 आदित्य तिवारी, अ०सा०-21 राम दयाल तिवारी, अ०सा०-22 धर्मेंद्र पांडे ने अपनी गवाही में अपीलकर्ताओं/अभियुक्तों के के विरुद्ध कुछ नहीं कहा, न ही उनके खिलाफ आरोपों का समर्थन किया है। इसके विपरीत, उन्होंने अभियोजन की कहानी और विवेचनाधिकारी द्वारा धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए अपने बयानों से भी इनकार किया है।

49. अ०सा०-1, अनिल कुमार शुक्ला ने अपने बयान में यह नहीं बताया है कि आरोपी रघुनंदन पाठक ने मृतक की हत्या करने या कथित घटना में भाग लेने की बात कबूल की थी।

50. अ०सा०-2 जगदीश प्रसाद ने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा है कि अपीलकर्ता/अभियुक्त अंकित कुमार, रमाशंकर सिंह और सूरजपाल उसके परिचित थे लेकिन बाकी आरोपी उसे नहीं जानते थे। वह अनिल कुमार शुक्ला को भी जानता था लेकिन वह आरोपी रघुनंदन को नहीं जानता और न ही उसने उसे कभी देखा है। उन्होंने आगे कहा कि वह मृतक रज्जन मिश्रा को भी नहीं जानते हैं। इस गवाह ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज बयान से भी इनकार किया है और इस बात से अनभिज्ञता व्यक्त की है कि विवेचनाधिकारी द्वारा उसका बयान कैसे दर्ज किया गया।

51. अ०सा०-3-सत्य नारायण ने कहा है कि वह उन सभी अभियुक्तों को नहीं जानता है जो उसकी गवाही के दौरान अदालत में मौजूद थे। उन्होंने यह भी कहा है कि फूलचंद्र को भी वह नहीं जानते थे। उन्होंने धारा 161 द०प्र०स० के

तहत दर्ज अपने बयान का खंडन किया और अपनी अनभिज्ञता व्यक्त की कि विवेचनाधिकारी द्वारा उनका बयान कैसे दर्ज किया गया।

52. अ०सा०-4 संतोष कुमार विश्वकर्मा ने अपनी परीक्षा में यह भी कहा है कि राजन मिश्रा, मृतक, बालकुमार, वीर सिंह, राधे @ सूबेदार, सोतू पटेल, मुन्ना सिंह, कुलदीप, रामशंकर पटेल, महेश कुमार नारायण, शरबन पटेल, रामलाल पटेल, सूरजभान पटेल, गिरजा शंकर, मुंशी और राजू कोल को वह नहीं जानते थे। 23.05.2007 को उसने रज्जन मिश्रा को घेरते हुए नहीं देखा था और उसका अपहरण किया जा रहा था। इसके विपरीत, उन्होंने कहा है कि उक्त तिथि पर वह अपने गांव में उपस्थित नहीं थे क्योंकि वह अहमदाबाद में मौजूद थे।

53. अ०सा०-5 उमेश चंद्र द्विवेदी ने भी अपनी जांच में कहा है कि वह रंजन मिश्रा को जानते थे और उन्होंने उनकी हत्या के बारे में सुना है लेकिन वह हत्यारों को नहीं जानते हैं। इस गवाह ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान का भी खंडन किया है।

54. अ०सा०-6 झाड़ी लाल ने अपनी परीक्षा में यह भी कहा है कि वह रज्जन मिश्र को जानता था जो उसके गाँव का मूल निवासी था, लेकिन वह नहीं जानता कि वह कैसे मारा गया।

55. अ०सा०-7 चुन्नी लाल ने अपनी परीक्षा में कहा है कि वह रज्जन मिश्रा को जानता था, जो उसके गांव का मूल निवासी था, लेकिन वह नहीं जानता कि वह कैसे मारा गया।

56. अ०सा०-7 चुन्नी लाल ने अपनी परीक्षा में मुख्य रूप से कहा है कि चूंकि मृतक रज्जन मिश्रा उनके गांव का मूल निवासी था, इसलिए वह उसे जानता था। अपने बयान के बाकी हिस्सों में उन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है।

57. अ०सा०-2 से 7 को पक्षद्रोही घोषित किया गया है और अभियोजन पक्ष की ओर से जिरह के लिए भी रखा गया था, लेकिन अभियोजन पक्ष की कहानी से इनकार करने का क्रम भी उनकी जिरह में जारी रहा है और इस प्रकार उन्होंने अभियोजन पक्ष की कहानी के समर्थन में अपने संबंधित बयानों में कोई सबूत नहीं दिया है।

58. अ०सा०-11 बब्बू राम ने अपनी जांच में कहा है कि मृतक रज्जन मिश्र उसका भाई था; 23.05.2007 को उनका अपहरण कर लिया गया था लेकिन उन्हें उनकी हत्या की तारीख नहीं पता है। इसके अलावा, उसने कहा है कि उसके भाई की हत्या डकैत ददुआ @ शिव कुमार ने की थी, जो उसे जानता था। ददुआ @ शिव कुमार पुलिस मुठभेड़ में मारा गया।

59. अ०सा०-12 निराशा देवी ने अपनी परीक्षा में बताया है कि 21.02.2009 को वह पान तोड़ने के लिए जंगल में गई थी; चूंकि शंकर कोल उसके गांव जाया करता था, इसलिए वह उसे जानता था, लेकिन वह उससे नहीं मिला था, न ही उसने उसे सुपारी के पत्ते तोड़ने से मना किया था।

60. अ०सा०-13 सुनीता ने न्यायालय में दिनांक 21.02.2009 को दर्ज अपनी मुख्य परीक्षा में कहा है कि लगभग 4-8 महीने पहले, जब वह जंगल में सुपारी तोड़ रही थी, शंकर कोल और उसके दो सहयोगियों ने उसे ऐसा करने से नहीं रोका था। उन्होंने मृतक रज्जन मिश्रा के किरदार को लेकर भी अनभिज्ञता जताई है।

61. अ०सा०-2 से अ०सा०-7 और अ०सा०-11 से 13 की गवाही से यह प्रकट होता है कि न तो उन्होंने अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन किया है और न ही धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज उनके बयान का, इसलिए, इन गवाहों अ०सा०-1 से अ०सा०-7 को पक्षद्रोही घोषित किया गया है, लेकिन उनकी जिरह में भी अपीलकर्ताओं/अभियुक्तों के खिलाफ कोई सबूत नहीं है।

62. अ०सा०-1 अनिल कुमार शुक्ला ने भी अपने शपथ पत्र, पेपर संख्या 83 का/17 से इनकार किया है, हालांकि, उन्होंने अपनी तस्वीर की पहचान की है, लेकिन उन्होंने अपनी गवाही में कहा है कि उन्होंने विवेचनाधिकारी को बताया था कि उन्हें नहीं पता कि रज्जन मिश्रा की हत्या किसने की थी।

63. अ०सा०-2 जगदीश ने भी पेपर नंबर 83-10 और 11-83 का 10-13 से इनकार किया है, हालांकि, उन्होंने कागज के इस टुकड़े पर हस्ताक्षर स्वीकार किए हैं, लेकिन उन्होंने कहा है कि वह अपना हलफनामा जमा करने के लिए पुलिस अधिकारियों के सामने उपस्थित नहीं हुए।

64. अ०सा०-4, संतोष कुमार विश्वकर्मा ने अपनी जिरह में यह भी कहा है कि एस.टी.एफ कर्मियों ने सादे कागजों पर उनके हस्ताक्षर लिए थे और उन्होंने घटना के संबंध में कुछ भी नहीं कहा था।

65. अ०सा०-6 झाड़ी लाल ने भी अपनी जिरह में कहा है कि अभिलेख पर शपथ पत्र 83/का/22 पर उनके द्वारा शपथ नहीं ली गई थी। एस.टी.एफ कर्मियों ने कोरे कागजों पर अपने हस्ताक्षर किए थे, इसलिए, घटना में अपीलकर्ताओं/अभियुक्तों की भागीदारी दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सबूत नहीं है।

66. अभियोजन पक्ष का यह भी मामला है कि सरकारी गवाहों धर्मेंद्र पांडेय, राजल मिश्रा की उपस्थिति में 13.05.2008 और 16.07.2008 को मतदाता पहचान पत्र, राशन कार्ड, एक जोड़ी चप्पल, मृतक के खून से सने कपड़े बरामद किए गए थे। उन्होंने मृतक के उपरोक्त सामान की कथित बरामदगी का समर्थन नहीं किया है।

67. अ०सा०-22 धर्मेंद्र पांडे ने अपनी जांच में कहा है कि 13.05.2008 को पुलिस ने उन्हें अपनी हिरासत में नहीं लिया था, न ही उन्हें जंगल में ले जाया गया था। उन्होंने यह नहीं देखा कि आरोपियों की निशानदेही पर मतदाता पहचान पत्र और राशन कार्ड बरामद हुए या नहीं। इसके

अलावा, उन्होंने कहा है कि उन्हें वोटर आई.डी कार्ड और राशन कार्ड नहीं दिखाया गया था।

68. राजू कोल @ रघुनंदन के कहने पर 15.05.2008 को प्रस्तुत मामले के संबंध में पुलिस पार्टी द्वारा अपराध का हथियार भी बरामद किया गया है। अभियोजन पक्ष का यह भी मामला है कि आरोपी राजू कोल @ रघुनंदन ने भी अपराध के हथियार के संबंध में खुलासा बयान दिया था और यह भी कहा था कि उसने खून से सनी कुल्हाड़ी से मृतक को मार डाला था।

69. अभियुक्त राजू कोल @ रघुनंदन ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में पुलिस के समक्ष अपने प्रवेश और प्रकटीकरण बयान से इनकार किया है। अ०सा०-22 धर्मेंद्र पांडेय ने आरोपी राजू कोल की निशानदेही पर खून से सनी कुल्हाड़ी मिलने से इनकार किया है। इसके अलावा, उन्होंने कहा है कि फ़र्द बरामदगी पेपर नंबर 34 क-3 (प्रदर्श क-3) पर उनके द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए थे। इसके विपरीत सादे कागज पर पुलिस द्वारा उसके हस्ताक्षर लिए गए।

70. इस बात से विशेष रूप से इनकार किया जाता है कि उक्त कागज पर उनकी उपस्थिति में कोई लेखन नहीं किया गया था, इसलिए, गवाह अ०सा०-22 ने भी अपराध के हथियार यानी खून से सनी कुल्हाड़ी की बरामदगी का समर्थन नहीं किया है और उनकी उपस्थिति में मृतक के अन्य सामानों की बरामदगी से भी इनकार किया है।

71. अ०सा०-9 राजुल ने अपनी जांच में बताया है कि वह अपने लापता वाहन के संबंध में 15.05.2008 को थाना-मानिकपुर गया था। थाने में सादे कागज पर उसके हस्ताक्षर लिए गए और पुलिस के डर से उसने कागज पर हस्ताक्षर कर दिए। इसके अलावा, उन्होंने गवाही दी है कि न तो कुल्हाड़ी, न ही वोटर आई.डी कार्ड या राशन कार्ड उनकी उपस्थिति में बरामद किया गया था, और न ही उन्हें इसकी बरामदगी का कोई ज्ञान है।

72. अ०सा०-9, राजुल, अ०सा०-22 धर्मेंद्र पांडे की तरह, पक्षद्रोही घोषित किया गया था, लेकिन इन दोनों गवाहों ने न केवल धारा 161 द०प्र०स० के तहत बयानों से इनकार किया है, बल्कि कागजात 134 क/2 और 134 क/3 के बारे में भी अपनी अज्ञानता व्यक्त की है कि वे कैसे लिखे गए।

73. उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि घटना लिखित प्रथम सूचना रिपोर्ट, पेपर नंबर 5क/प्रदर्श क-13 के आधार पर दर्ज की गई थी। इस संबंध में अ०सा०-15 राम गोपाल, जो मृतक का बड़ा भाई है, ने अपनी जांच में मुख्य रूप से कहा है कि थाना में मामला घटना के विवरण के अनुसार दर्ज नहीं किया गया था, लेकिन थाना में पुलिस ने उसे प्रथम सूचना रिपोर्ट का एक लिखित मसौदा दिया था और उसे उसी सूचना रिपोर्ट, पेपर नंबर 5 क पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा गया था और इस तरह उसने पहले लिखित हस्ताक्षर किए थे।

74. अ०सा०-15, राम गोपाल को भी पक्षद्रोही घोषित किया गया था और उसने पुलिस के खिलाफ अपनी जांच में कहा है, जिसके कहने पर उसने प्रथम सूचना रिपोर्ट के मसौदे पर हस्ताक्षर किए थे, उनके खिलाफ किसी भी उच्च पुलिस अधिकारी को कोई शिकायत नहीं की है। अ०सा०-15 राम गोपाल ने भी प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोपों का समर्थन नहीं किया है। यह भी स्पष्ट है कि विचारण न्यायालय के समक्ष जांच किए गए किसी भी सार्वजनिक गवाह ने अपीलकर्ताओं/अभियुक्तों के खिलाफ सबूत पेश नहीं किए हैं। इसके अलावा, मृतक के सामान और अपराध के हथियार की बरामदगी को भी सभी उपरोक्त गवाहों द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है और चूंकि उन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है, इसलिए, उन्हें अभियोजन पक्ष की ओर से पक्षद्रोही घोषित किया गया था, लेकिन उनकी जिरह में, उन्होंने धारा 161 द०प्र०स० के तहत विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज किए गए अपने बयानों से इनकार किया है।

75. अ०सा०-15 राम गोपाल/सूचनाकर्ता ने अपनी जांच में मुख्य रूप से कहा है कि कंकाल की जांच उनकी उपस्थिति में की गई थी। बिखरे कपड़ों को देखते हुए उसने मृतक के कंकाल की पहचान कर ली थी। उन्होंने आगे कहा है कि उनका भाई मृतक रज्जन मिश्रा एक अपराधी था और वह दस्यु गिरोह से जुड़ा था, लेकिन इसका सक्रिय सदस्य नहीं था। मृतक की इलाके के बदमाशों से रंजिश के चलते उसकी हत्या कर दी गई। इस प्रकार, मृतक के भाई, अ०सा०-15 राम गोपाल ने अपने भाई की हत्या को अपीलकर्ताओं/अभियुक्तों से क्षेत्र के बदमाशों को स्थानांतरित कर दिया है जो मृतक के विरोधी थे।

76. अ०सा०-16, श्रीमती मीणा पत्नी मृतक रज्जन मिश्रा ने अपनी जांच में मुख्य रूप से बताया है कि गरिहान पहाड़ी की बाय-लेन में घटना के दो महीने बाद, उनके पति का कंकाल पाया गया था और कंकाल के पास, शर्ट, बनियान, और चप्पल और मृतक के अन्य सामान बरामद किए गए थे और सामान को देखते हुए उसने कंकाल को अपने पति का बताया था।

77. अ०सा०-8 डॉ. आर.के.राव ने अपनी जांच में बताया है कि दिनांक 16.07.2007 को अपराह्न 3.30 बजे उन्होंने मृतक के कंकाल का शव परीक्षण किया था। खोपड़ी, यकृत, स्कैपुला, रीढ़ की हड्डी, ह्यूमरस, कलाई के आधार पर, वह मृतक की मृत्यु के कारण के बारे में किसी निष्कर्ष पर नहीं आ सका; उन्होंने फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला द्वारा कंकाल की फोरेंसिक विज्ञान परीक्षा के लिए सिफारिश की थी। उन्होंने यह भी कहा है कि खोपड़ी के आधार पर मृतक की पहचान संभव नहीं है।

78. अ०सा०-8 डॉ. आर. के. राव ने अपनी जिरह में कहा कि शव परीक्षण के दौरान शव परीक्षण के अध्ययन से, मृतक की उम्र निर्दिष्ट करना मुश्किल था और यह भी

निश्चित रूप से कहना संभव नहीं था कि कंकाल पुरुष या महिला का था; यह केवल डी.एन.ए परीक्षण द्वारा स्थापित किया जा सकता था, लेकिन डी.एन.ए रिपोर्ट नकारात्मक है। हालांकि, श्रीमती मीणा, अ०सा०-16 ने मृतक के सिर और उसके अन्य सामान के आधार पर कंकाल की पहचान अपने पति के रूप में की है। हमारे पास उस पर अविश्वास करने का कोई उचित आधार नहीं है।

79. अ०सा०-8 डॉ. आर.के राव ने भी अपनी जांच में कहा है कि वह यह बताने की स्थिति में नहीं थे कि मृतक की हत्या कैसे हुई। उन्होंने यह भी कहा कि वह यह कहने में असमर्थ हैं कि मृतक को किस हथियार से मारा गया था। इसके अलावा, उन्होंने गवाही दी है कि वह मृत्यु के समय के बारे में अपनी राय व्यक्त नहीं कर सकते।

80. इसलिए, अ०सा०-8, डॉ. आर.के. राव, मृतक की मृत्यु के कारण का पता नहीं लगा सका और न ही यह स्थापित किया जा सकता है, उसके बयान से मृतक को मारने में इस्तेमाल किया गया हथियार पता नहीं लगाया जा सका, और यह भी पता नहीं लगाया जा सका कि शव परीक्षण से कितने दिन पहले वह मारा गया था।

81. अ०सा०-10 सी.पी. नरेंद्र सिंह सेंगर ने प्रथम सूचना प्रतिवेदन चिक क्रमांक 4क/5, प्रदर्श क-4 सिद्ध किया है और जी.डी. क्रमांक 17 की प्रति को प्रदर्श क-5 सिद्ध किया है। प्रारंभ में अपराध संख्या 46 वर्ष 2007 में धारा 307 भ०द०वि० के तहत एक आपराधिक मामला दर्ज किया गया था, लेकिन पेपर नंबर 18-क के आधार पर, इसे धारा 147, 148, 149, 364, 302 और 201 भ०द०वि० में बदल दिया गया था और इस संबंध में अ०सा०-10 नरेंद्र सिंह सेंगर ने 23.07.2007 को सुबह 8.00 बजे जी.डी नंबर-11 में इस आशय की प्रविष्टि की है। उन्होंने उक्त जी.डी को प्रदर्श क-7 के रूप में भी सिद्ध किया है और आगे उन्होंने पेपर नंबर 135 क/2, जी.डी नंबर-20 दिनांक 15.05.2008 को 13.30 बजे अपने माध्यमिक साक्ष्य द्वारा साबित किया है क्योंकि उक्त जी.डी में प्रविष्टि कांस्टेबल 240 अमरनाथ द्वारा की गई थी।

82. अ०सा०-14, थानाध्यक्ष श्री सचिन्द्र प्रसाद शुक्ल ने अपनी जांच में बताया है कि शुरू में उन्होंने जांच की थी और सूचनाकर्ता के कहने पर उन्होंने मौके का नक्शा नज़री बनाया था, जो पेपर नंबर 15-क, प्रदर्श क-10 है। विवेचना के दौरान उसने गवाहों के बयान भी दर्ज किए थे और सरकारी गवाहों की मौजूदगी में मृतक का कंकाल और अन्य सामान बरामद किया था।

83. विवेचना के दौरान, अ०सा०-14, श्री सचिंद्र प्रसाद शुक्ला ने यह भी कहा है कि 16.07.2007 को, उन्होंने पंचान राम गोपाल, दुर्गा प्रसाद, कौशल किशोर, दिनेश चंद्र तिवारी, प्रधुम लाल कोल, जिसमें चुनी लाल और अन्य शामिल थे, को पंचान के रूप में नियुक्त किया था और उनके निर्देश पर एस.आई हरबंश सिंह ने मृतक के कंकाल की जांच रिपोर्ट तैयार की थी और मृतक से संबंधित भी बरामद लिया गया था; इन्हें सील करके थाने लाया गया और अभिलेख कक्ष में रखा गया, तत्पश्चात् जांच को सी.डी.एफ.डी को अंतरित कर दिया गया।

84. अ०सा०-18, इंस्पेक्टर ऋषिकेश यादव ने अपनी जांच में बताया है कि 30.01.2008 को वह एस.टी.एफ में इंस्पेक्टर के पद पर तैनात थे।

85. अ०सा०-23, राम सेवक ने अपनी जांच में बताया है कि दिनांक 16.07.2007 को वे थाना मऊ, चित्रकूट में होमगार्ड के पद पर तैनात थे। दिनांक 16-07-2007 को कांस्टेबल कमलेश यादव भी उनके साथ थे। एस.पी शुक्ला ने अन्य आवश्यक कागजात के साथ जांच रिपोर्ट और जांच रिपोर्ट तैयार की थी और कंकाल के साथ वह और कांस्टेबल कमलेश यादव मृतक के शव परीक्षण के लिए शवगृह ले गए थे।

86. अ०सा०-24, कांस्टेबल कमलेश ने अपने बयान में अ०सा०-3 राम सेवक होमगार्ड के बयान की पुष्टि की।

87. अ०सा०-18, ऋषिकेश यादव ने यह भी कहा है कि विवेचनाधिकारी अभय प्रताप के तबादले के बाद उन्होंने इस मामले की शेष जांच अपने हाथ में ले ली थी। विवेचना के दौरान आरोपी राधे और अन्य के नाम प्रकाश में आए थे, परिणामस्वरूप, राधे और राजू कोल को सतना पुलिस द्वारा 19.02.2008 को पकड़ा गया था। लॉकअप में उसने आरोपी जियालाल राधे, राजू, कोल और सूबेदार @ राधे का बयान दर्ज कराया था। आरोपी सूबेदार @ राधे ने स्वीकार किया था कि उसने रज्जन मिश्रा की हत्या की थी। उन्होंने जेल में कैद रहने के दौरान राजू कोल का बयान भी दर्ज कराया था।

88. अ०सा०-18 ऋषिकेश यादव, विवेचनाधिकारी ने अपनी जांच में स्वीकार किया है कि काले रंग की स्कॉर्पियो, जिसका उपयोग अपराध के कारित करने में किया गया था, को बरामद नहीं किया जा सका। तथापि, राजू कोल की निशानदेही पर हैंडल सहित अपराध के हथियार से कुल्हाड़ी बरामद की गई थी। उन्होंने आगे कहा है कि बंदूक बरामद नहीं की जा सकी, हालांकि, सार्वजनिक गवाहों धर्मेंद्र पांडे और राजुल की उपस्थिति में, आरोपी राधे और राजू कोल के कहने पर मृतक का मतदाता पहचान पत्र और राशन कार्ड 15.05.2008 को बरामद किया गया था। इन गवाहों ने मृतक के अन्य सामान की बरामदगी के बारे में भी गवाही दी है।

89. उपरोक्त चर्चाओं से यह स्पष्ट है कि सार्वजनिक गवाह धर्मेंद्र पांडे और राजुल ने आरोपी राधे और राजू कोल के कहने पर मृतक के सामान की बरामदगी का समर्थन नहीं किया है, हालांकि, मतदाता पहचान पत्र और राशन कार्ड, कपड़े की बरामदगी के बारे में; चप्पल आदि और मृतक के अन्य सामान, रिकॉर्ड पर अन्य सबूत हैं। इस बात से इनकार किया गया है कि उक्त बरामदगी आरोपी के इशारे पर की गई थी, इसलिए, मृतक के राशन कार्ड या

मतदाता पहचान पत्र और अन्य सामान को आरोपी से नहीं जोड़ा गया है।

90. अ०सा०-18, ऋषि केश यादव ने यह भी कहा है कि विवेचनाधिकारी, अभय प्रताप इंस्पेक्टर, एस.टी.एफ लखनऊ ने 22.10.2007 को आरोपी के खिलाफ आरोप पत्र भेजा है।

91. उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ताओं/अभियुक्त, अ०सा०-15 के खिलाफ आरोपों के समर्थन में, राम गोपाल, जो मृतक के बड़े भाई हैं, ने लिखित प्रथम सूचना रिपोर्ट का समर्थन नहीं किया है, और अपनी गवाही में यह भी स्वीकार किया है कि मृतक स्वयं एक अपराधी था और उसने यह भी संदेह व्यक्त किया है कि उसके भाई की हत्या उपद्रवियों द्वारा की जा सकती है जो मृतक के विरोधी थे।

92. अ०सा०-16, श्रीमती मीना देवी, मृतक की पत्नी, उसके भाई और भतीजे ने अपीलकर्ताओं/अभियुक्तों के विरुद्ध कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं दिया है। गवाहों की उपस्थिति में पुलिस अधिकारी/विवेचनाधिकारी के समक्ष किसी अभियुक्त द्वारा की गई कथित स्वीकारोक्ति को भी समर्थन नहीं मिलता है। इसके अलावा, अपराध के हथियार यानी खून से सनी कुल्हाड़ी के साथ हैंडल, मतदाता पहचान पत्र, राशन कार्ड, कपड़े और अन्य सामान की बरामदगी के गवाहों को भी गवाहों द्वारा समर्थित नहीं किया गया है।

93. अ०सा०-8, डॉ. आर.के राव, मृतक की मृत्यु का अनुमानित समय नहीं बता सके। अ०सा०-16 के अनुसार, मीना देवी, मृतक का कंकाल और अन्य सामान उसके अपहरण के दो महीने से अधिक समय के बाद बरामद किया गया था, लेकिन यह साबित करने के लिए कोई विश्वसनीय सबूत नहीं है कि मृतक का अपहरण अपीलकर्ताओं/अभियुक्तों द्वारा किया गया था, न ही यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सबूत है कि किसी भी गवाह ने अपीलकर्ताओं/अभियुक्तों को मृतक का अपहरण और हत्या करते देखा था।

94. होमगार्ड/पुलिस कांस्टेबल और जांच अधिकारियों ने उन औपचारिकताओं का समर्थन किया है जो उन्होंने पूरी की थीं लेकिन सरकारी गवाहों द्वारा इसकी पुष्टि नहीं की गई है।

95. भले ही, अपीलकर्ताओं/अभियुक्तों की निशानदेही पर कुल्हाड़ी और अन्य सामान की बरामदगी स्वीकार कर ली जाए, फिर भी उस आधार पर, अपीलकर्ताओं/अभियुक्तों को पर्याप्त साक्ष्य के अभाव में दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

96. शाहजा @ शाहजान इस्माइल मो. शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य; 2022 लाइव लॉ (SC) 596 ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 की प्रयोज्यता के लिए आवश्यक शर्तों को रेखांकित किया है:

"अपीलकर्ता ने पंच गवाहों के सामने कहा कि "मैं आपको पारले में जूते की दुकान के बगल में छुपा हुआ हथियार दिखाऊंगा"। यह कथन यह नहीं बताता है कि अपीलकर्ता ने हथियार को छिपाने में अपनी भागीदारी के बारे में कुछ भी संकेत दिया था। केवल खोज को हथियार की खोज करने वाले व्यक्ति द्वारा छिपाने का अनुमान लगाने के लिए पर्याप्त नहीं माना जा सकता है। वह किसी अन्य स्रोत के माध्यम से भी उस स्थान पर उस हथियार के अस्तित्व का ज्ञान प्राप्त कर सकता था। उसने किसी को हथियार छिपाते हुए भी देखा होगा, और, इसलिए, यह नहीं माना जा सकता है कि चूंकि किसी व्यक्ति ने हथियार की खोज की थी, इसलिए वह वह व्यक्ति था जिसने इसे छिपाया था, कम से कम यह माना जा सकता है कि उसने इसका इस्तेमाल किया था। इसलिए, भले ही अपीलकर्ता द्वारा खोज को स्वीकार कर लिया जाए, हथियार की खोज के संबंध में ठोस साक्ष्य से जो उभर कर आता है वह यह है कि अपीलकर्ता ने खुलासा किया कि वह अपराध करने में इस्तेमाल किए गए हथियार को दिखाएगा।

97. अपीलकर्ताओं ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयानों में विवेचनाधिकारी को खुलासा बयान देने से इनकार किया है। भले ही, यह स्वीकार किया जाता है, कि उनकी गिरफ्तारी के बाद उन्होंने गिरफ्तार करने वाले पुलिस अधिकारी को खुलासा बयान दिया था, फिर भी अदालत के समक्ष उनके इनकार की स्थिति में इस तरह के प्रकटीकरण बयान पर भरोसा नहीं किया जा सकता है और स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

98. उपर्युक्त न्यायिक निर्णय के मद्देनजर, शाहजा @ शाहजन इस्माइल मो. शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य; राजू कोल की ओर इशारा करते हुए मृतक के कंकाल, हैंडल, कपड़े और अन्य सामान के साथ अपराध कुल्हाड़ी के हथियार की खोज के बल पर, यह सुझाव नहीं दिया जा सकता है कि उसने अपराध के हथियार और शरीर आदि को छिपाने का कोई कार्य किया था, और राजू कोल, जिसने मृतक के हमले के हथियार और मृत शरीर की खोज की, द्वारा छिपाए जाने का अनुमान लगाना पर्याप्त नहीं है। यह मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्यों पर टिका हुआ है।

99. हनुमंत बनाम मध्य प्रदेश राज्य में सुप्रीम कोर्ट ने 1975 ए.आई.आर 1083 में रिपोर्ट किया है, जिसमें *कहा गया है कि;*

"परिस्थितिजन्य साक्ष्य से निपटने में, ऐसे सबूतों पर विशेष रूप से लागू नियमों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। ऐसे मामलों में हमेशा खतरा होता है कि अनुमान या संदेह कानूनी प्रमाण की जगह ले सकता है और इसलिए रेग बनाम हॉज (1) में जूरी को बैरन एल्डरसन द्वारा संबोधित चेतावनी को याद करना सही है। जहां उन्होंने कहा:-

"मन परिस्थितियों को एक-दूसरे के अनुकूल बनाने में आनंद लेने के लिए उपयुक्त था, और यहां तक कि उन्हें थोड़ा तनाव देने में, यदि आवश्यक हो, तो उन्हें एक जुड़े हुए पूरे के हिस्से बनाने के लिए मजबूर करने के

लिए; और व्यक्ति का दिमाग जितना अधिक सरल होता है, उतनी ही अधिक संभावना होती है, ऐसे मामलों पर विचार करते हुए, खुद को अतिरंजित करने और गुमराह करने के लिए, कुछ छोटे लिंक की आपूर्ति करने के लिए जो 'चाहता है, अपने पिछले सिद्धांतों के अनुरूप कुछ तथ्य लेने के लिए और उन्हें पूरा करने के लिए आवश्यक है।

यह याद रखना अच्छा है कि ऐसे मामलों में जहां सबूत एक परिस्थितिजन्य प्रकृति का है, जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पहले उदाहरण में पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए, और इस प्रकार स्थापित सभी तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए। फिर से, परिस्थितियां एक निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए और वे ऐसी होनी चाहिए कि हर परिकल्पना को बाहर रखा जाए लेकिन जिसे साबित करने का प्रस्ताव है।

100. 1991 ए.आई.आर 1388 में रिपोर्ट किए गए जहरलाल दास बनाम उड़ीसा राज्य में सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि;

"इस न्यायालय के अन्य निर्णयों का उल्लेख करना आवश्यक नहीं हो सकता है, सिवाय इस सावधानी को ध्यान में रखते हुए कि मामलों में परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर हमेशा एक खतरा होता है कि अनुमान या संदेह कानूनी सबूत की जगह ले सकता है और इस तरह के संदेह, हालांकि मजबूत हों, को सबूत की जगह लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। न्यायालय को सतर्क रहना होगा और यह सुनिश्चित करना होगा कि अनुमान और संदेह कानूनी प्रमाण की जगह न लें। न्यायालय को इस बात से संतुष्ट होना चाहिए कि साक्ष्य की श्रृंखला में विभिन्न परिस्थितियों को स्पष्ट रूप से स्थापित किया जाना चाहिए और यह कि पूरी श्रृंखला ऐसी होनी चाहिए जिससे अभियुक्त की बेगुनाही की उचित संभावना को खारिज किया जा सके। इन सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए अब हम इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए नीचे की अदालतों के तर्क पर विचार करेंगे कि आरोपी ने अपराध किया है।

101. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, और ऊपर बताए गए कारणों में, हम पाते हैं कि अपीलकर्ताओं के खिलाफ उन्हें दोषी ठहराने के लिए कोई ठोस सबूत नहीं है।

102. हमारी राय में डी.ए.ए अधिनियम की धारा- 147, 148, 149, 364, 302, 201 भ०द०वि० और 14 के तहत विशेष न्यायाधीश (डी.ए.ए अधिनियम)/अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कोर्ट नंबर-1, चित्रकूट द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 18.10.2013, राज्य बनाम गुड्डा @ रम्मन @ रम्मन @ राज कुमार @ झल्ला @ गुड्डू कोल और अन्य, डी.ए.ए अधिनियम की धारा- 147, 148, 149, 364, 302, 201 भ०द०वि० और 14 के तहत, थाना-रायपुरा, जिला-चित्रकूट को एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है, तदनुसार, सभी अभियुक्त/अपीलकर्ता अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों से बरी किए जाते हैं।

103. अपील की अनुमति है।

104. अपीलकर्ता/अभियुक्त नंबर 1 और 2, अर्थात् गुड्डा @ राजम @ राज कुमार @ झल्ला @ गुड्डू कोल और रघुनंदन पाठक, जो जमानत पर हैं, उन्हें आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता नहीं है। उनके जमानत बांड रद्द किए जाते हैं और जमानतदार को उन्मोचित किया जाता है।

105. अपीलकर्ता संख्या 3 और 4, अर्थात्, जिया लाल कोल और सूबेदार सिंह @ राधे, जो जेल में हैं, उनके खिलाफ आरोपों से बरी हो गए हैं और यदि किसी अन्य मामले में वांछित नहीं हैं, तो उन्हें तुरंत रिहा कर दिया जाए।

106. धारा 347-ए द०प्र०स० के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, अपीलकर्ता संख्या-3 और 4, अर्थात् जिया लाल कोल और सूबेदार सिंह @ राधे, को निर्देश दिया जाता है कि वे पच्चीस हजार रुपये की राशि में व्यक्तिगत बांड और विचारण न्यायालय के समक्ष (जो छह महीने की अवधि के लिए प्रभावी होगा) के समक्ष समान राशि में दो विश्वसनीय जमानतें प्रस्तुत करें (जो छह महीने की अवधि के लिए प्रभावी होगी) विशेष अनुमति याचिका दायर करने की स्थिति में तत्काल निर्णय के विरुद्ध अथवा अनुमति प्रदान करने के लिए अपीलकर्ता उसकी सूचना प्राप्त होने पर माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष उपस्थित होंगे।

106. निचली अदालत के रिकॉर्ड के साथ इस फैसले की एक प्रति तत्काल अनुपालन के लिए संबंधित अदालत को वापस भेजी जाए।

107. आदेश की अनुपालना सुनिश्चित करने के लिए कार्यालय संबंधित सी.जे.एम के माध्यम से संबंधित जेल अधीक्षक को सूचित करेगा।

(2023) 1 ILRA 1166
अपीलीय क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 22.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार
माननीय न्यायमूर्ति सैयद वाइज मियां

जेल अपील संख्या-5202 वर्ष 2012

राम सिंह ... अपीलार्थी
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य ... प्रतिपक्षी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
जेल से, श्री अजय कुमार श्रीवास्तव, श्री चंद्र भूषण तिवारी (ए.सी.)

प्रतिपक्षी के लिए अधिवक्ता:
अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता, 1861- धारा 84 - यह साबित करने की जिम्मेदारी अभियुक्त पर है कि कथित घटना के समय, उसके दिमाग की अस्वस्थता के कारण वह अपने कार्य की प्रकृति को जानने में असमर्थ था या वह जो कर रहा था वह या तो गलत था या कानून के विपरीत था- चिकित्सा रिपोर्टों से स्पष्ट है कि कथित घटना के बाद, आरोपी की मानसिक बीमारी का इलाज करीब साढ़े सात महीने बीत जाने के बाद किया गया। हालांकि, उन्हें 29.01.2000 को पेपर नंबर 111-ख, प्रदर्श ख-1 के तहत उनकी मानसिक स्थिति की सामान्य सीमा के भीतर रिपोर्ट किया गया था। घटना से पहले और तुरंत बाद, आरोपी मानसिक रूप से इस हद तक पीड़ित नहीं था कि उसे अपने कृत्य की प्रकृति और परिणामों के बारे में जानने में असमर्थ कहा जा सके।
जहां अभियुक्त द्वारा पागलपन की दलील अपनाई जाती है, तो उसे यह साबित करना होगा कि घटना से पहले, घटना के दौरान और उसके बाद, वह अपनी मानसिक पीड़ा के कारण अपने कृत्य की प्रकृति और परिणामों को समझने में असमर्थ था।
भारतीय दंड संहिता, 1861- धारा 8 - धारा 84 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- अभियुक्त के आचरण से ऐसा प्रतीत होता है कि घटना के ठीक बाद, वह यह जानते हुए कि उसने अपराध किया है, उसने कानूनी सजा से खुद को बचाने के लिए ऐसा किया; अगर ऐसा नहीं होता, तो वह अपराध के हथियार के साथ घटनास्थल से भागने की कोशिश नहीं करता। यह स्पष्ट है कि घटना से पहले या उसके तुरंत बाद अपीलकर्ता की मानसिक बीमारी का उपचार करने का कोई दस्तावेजी सबूत नहीं है।
तथ्य यह है कि अपराध करने के बाद आरोपी ने अपराध स्थल से भागने की कोशिश की, और यह दर्शाता है कि आरोपी उस समय और अपराध करने के बाद पागलपन से पीड़ित नहीं था।
भारतीय दंड संहिता, 1861- धारा 84 - यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कोई चिकित्सा साक्ष्य नहीं है कि घटना से पहले या तुरंत बाद, अभियुक्त मनोवैज्ञानिक विकार से पीड़ित था कि यह माना जा सकता है कि अभियुक्त अपने कृत्य की प्रकृति को समझने में असमर्थ था। इसके अलावा, यह साबित नहीं हुआ है कि यह कार्य स्वयं उसके मानसिक विकार का परिणाम था। अभियुक्त साक्ष्य के माध्यम से यह प्रदर्शित करने में सक्षम नहीं है कि घटना के समय वह मानसिक विकार से प्रभावित था। जहां अभियुक्त दस्तावेजी और अन्य सबूतों को प्रस्तु करके अपने पागलपन को साबित करने की जिम्मेदारी का निर्वहन करने में विफल रहा है, तो पागलपन की ऐसी दलील स्वीकार नहीं की जा सकती है। (अनुच्छेद 25, 81, 82)
आपराधिक अपील खारिज। (ई-3)

<u>केस लॉ/न्याय निर्णय जिन पर भरोसा किया गया:</u>
1. बापू गजराज बनाम राजस्थान राज्य 2007, खंड 8 एस.सी.सी. 66
2. सुधाकरन सिंह बनाम केरल राज्य 2010, खंड 10, एस.सी.सी. 582
3. शेरल वली मोहम्मद बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1972 सी.आर.एल. एलजे 1523 (एस.सी.)
4. सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह एवं अन्य, (2014) 7 एस.सी.सी. 323
5. शाम सुंदर बनाम पूरन, (1990) 4 एस.सी.सी. 731
6. मध्य प्रदेश राज्य बनाम सलीम, (2005) 5 एस.सी.सी. 554
7. रावजी बनाम राजस्थान राज्य, (1996) 2 एस.सी.सी. 175

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद वाएज़ मियां द्वारा प्रदत्त)

1. यह जेल अपील अपीलार्थी राम सिंह द्वारा अधीक्षक, जिला जेल, ललितपुर के माध्यम से धारा 383 द०प्र०स० के तहत सत्र परीक्षण संख्या-44 वर्ष 2007, राज्य बनाम राम सिंह, धारा 302 भ०द०वि० के तहत केस अपराध संख्या-1089 वर्ष 2007 से उद्भूत होने वाले अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश (पूर्व संवर्ग), ललितपुर द्वारा पारित सजा दिनांक 28.3.2011 के फैसले के खिलाफ दायर की गई है, जिसके तहत अपीलकर्ता को धारा 302 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया गया था, जिसमें 25,000 रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास और जुर्माना अदा न करने पर तीन साल का अतिरिक्त कारावास भुगतना पड़ता।
2. संक्षेप में मामले के संक्षिप्त तथ्य निम्नानुसार हैं:
3. सूचनाकर्ता - नोने राजा ने लिखित प्राथमिकी में कहा है कि उसका भाई राम सिंह पिछले दस वर्षों से मानसिक बीमारी से गुजर रहा है। दिनांक 22.03.2007 को अपराह्न लगभग 1 बजे उनकी पत्नी श्रीमती गुड्डी राजा, बड़ी राजा पत्नी अपीलकर्ता राम सिंह, उनकी पुत्री और पुत्र, जिनकी आयु क्रमशः लगभग 5 और 1 वर्ष थी, घर में उपस्थित थे। अचानक अपीलकर्ता-राम सिंह ने अपना मानसिक संतुलन खो दिया और उपरोक्त सभी व्यक्तियों पर कुल्हाड़ी से हमला किया जिससे चोटें आईं और सभी घायलों ने दम तोड़ दिया।
4. घर के आंगन में लाशें पड़ी थीं और इस घटना को कई ग्रामीणों ने देख लिया। अपीलकर्ता-राम सिंह को घर से

भागते समय ग्रामीणों नरेंद्र सिंह, मुलायम सिंह, मानसिंह और गोविंद दास ने पकड़ लिया।

5. प्रथम सूचना रिपोर्ट के आधार पर अपराध क्रमांक-1089 वर्ष 2007 धारा 302 भ०द०वि० के तहत दिनांक 22.03.2007 को पुलिस थाना कोतवाली, जिला- ललितपुर में प्रकरण दर्ज किया गया।

6. अ०सा०-4, सब इंस्पेक्टर, कल्लू प्रसाद यादव ने दोपहर 2.30 बजे चिक प्राथमिकी लिखी और उन्होंने जी.डी. नंबर-33 दिनांक 22.03.2007 में प्रथम सूचना रिपोर्ट का सार भी दर्ज किया। जांच अ०सा०-7, एन.एच फारूकी को सौंपी गई, जिन्होंने थानाध्यक्ष के निर्देश पर जांच की और घटनास्थल पर पहुंचे और देखा कि श्रीमती गुड्डी राजा पत्नी नौने राजा, श्रीमती बदी राजा पत्नी अपीलकर्ता-राम सिंह, कुमारी मंडावी और मंगल सिंह की बेटी और पुत्र राम सिंह के शव देखे गए। ये घर के आंगन में पड़े थे। इसके बाद थाना प्रभारी कोतवाली राज बहादुर साहू और एस.आई. श्री राम रतन वर्मा भी पुलिस कर्मियों के साथ मौके पर पहुंचे। पंचान की उपस्थिति में, थानाध्यक्ष राज बहादुर साहू के आदेश पर मृतक के शवों की पंचनामा रिपोर्ट, और मृतकों के शवों की जांच के संबंध में अन्य आवश्यक कागजात, सब इंस्पेक्टर एन.एच फारूकी द्वारा तैयार किए गए थे।

7. अ०सा०-9- राज बहादुर साहू, सब इंस्पेक्टर ने घटनास्थल का नक्शा नज़री पेपर नंबर 66-क तैयार किया है। उन्होंने महेश प्रसाद और वीरेंद्र सिंह की उपस्थिति में खून से सनी और सादी मिट्टी एकत्र की और उन्हें दो अलग-अलग छोटे कंटेनरों में रखा गया और दोनों कंटेनरों को सील कर दिया गया।

8. अ०सा०-9, राज बहादुर साहू ने भी गवाहों की उपस्थिति में खून से सनी कुल्हाड़ी एकत्र की थी और फ़र्द, पेपर नंबर-7-क तैयार किया गया और आरोपी राम सिंह,जिसे मौके पर पकड़ा गया था, द्वारा हस्ताक्षरित किया गया था। राम सिंह ने खून से सनी शर्ट पहन रखी थी और आरोपी को उसकी शर्ट उतारने के लिए कहा गया था। इसे भी कब्जे में ले लिया गया और वीरेंद्र सिंह और महेश प्रसाद की मौजूदगी में फ़र्द तैयार कर हस्ताक्षर किए गए।

9. मृतक के शवों की पंचान रिपोर्ट और अन्य आवश्यक कागजात शव परीक्षण करने के लिए जिला शवगृह को भेजे गए ताकि मृतक की मौत के वास्तविक कारणों का पता लगाया जा सके।

10. जिला अस्पताल ललितपुर में पदस्थ डॉ. एम.सी गुप्ता ने मृतक के शवों का शव परीक्षण किया और उन्होंने अपने लिखित और हस्ताक्षर में मृतक की शव परीक्षण रिपोर्ट तैयार की।

11. राम रतन वर्मा, जो थानाध्यक्ष के साथ घटनास्थल पर पहुंचे थे, एन.एच फारूकी, एस.आई. के साथ मिलकर मृतक के शवों की पंचनामा रिपोर्ट तैयार की थी। एकत्रित किए गए सबूतों के आधार पर, जांच के दौरान, विवेचनाधिकारी ने धारा 302 भ०द०वि० के तहत राम सिंह के खिलाफ आरोप पत्र, पेपर नंबर 3-क प्रस्तुत किया है।

12. विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने दिनांक 18.05.2007 के आदेश के तहत अभियुक्त के विचारण के लिए मामला जिला एवं सत्र न्यायाधीश को सौंप दिया। विचारण न्यायालय में सत्र विचारण संख्या-44 वर्ष 2007 के रूप में ये आपराधिक मामला दर्ज किया गया।

13. अभियुक्त के खिलाफ धारा 302 भ०द०वि० के तहत आरोप 24.03.2009 को तय किया गया था, लेकिन जब आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उसने इन्कार किया और विचारण चाहा।

14. अपीलकर्ता/अभियुक्त राम सिंह के खिलाफ धारा 302 भ०द०वि० के तहत आरोप साबित करने के लिए अभियोजन, अ०सा०-1 नौने राजा, अ०सा०-2-नरेंद्र सिंह, अ०सा०-3 गोविंद दास, अ०सा०-4 कल्लू प्रसाद यादव एस.आई., अ०सा०-5 डॉ. एम.सी गुप्ता, अ०सा०-6 रमेश, अ०सा०-7 एन.एच फारूकी, एस.आई. अ०सा०-8 राम रतन वर्मा, सब इंस्पेक्टर (सेवानिवृत्त) अ०सा०-9- राज बहादुर का परीक्षण किया गया।

15. विद्वान विचारण न्यायालय ने डॉ. अमरेंद्र कुमार सी.डब्ल्यू.-1 सलाहकार, मनोचिकित्सक का अदालत के गवाह के रूप में परीक्षण किया।

16. धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्त का बयान दर्ज किया गया। अभियुक्त राम सिंह ने अपने बयान में स्वीकार किया कि घटना से पहले और घटना के समय वह अपने दिमाग की अस्वस्थता की स्थिति में था और उस मानसिक स्थिति में, मृतक को चोटें आई थीं। मृतका गुड्डी राजा उनके भाई नौने राजा की पत्नी थीं, जबकि श्रीमती बदी राजा, कुमारी मंडावी और मनागल सिंह क्रमशः उनकी पत्नी, पुत्री और पुत्र थे।

17. ग्रामीणों नरेंद्र सिंह, मुलायम सिंह, मानसिंह और गोविंद दास द्वारा उसे मौके पर ही हथियार कुल्हाड़ी के साथ पकड़े जाने के साक्ष्य के संबंध में आरोपी ने अनभिज्ञता का बहाना करते हुए कहा है कि वह पागल हो गया था।

18. आरोपी ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में अंत में कहा है कि घटना से 10 साल पहले, वह अपनी मानसिक बीमारी के लिए डॉ. राजीव जैन के चिकित्सा उपचार में था। उसी के लिए, ग्वालियर, म.प्र. में उनका इलाज भी किया गया था और इसके बाद उनके भाई को दरोगा जी ने थाना बुलाया और उनके निर्देश पर उनके भाई ने प्रथम सूचना रिपोर्ट लिखवाई।

19. अपीलकर्ता-अभियुक्त ब०सा०-1 की ओर से डॉ. राजीव जैन से पूछताछ की गई।

20. विद्वान विचारण न्यायालय ने पक्षकारों के अधिवक्ता की प्रतिद्वंद्वी दलीलों को सुना और रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों के आधार पर अपीलकर्ता/अभियुक्त को धारा 302 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया और

उसे आजीवन कारावास की सजा सुनाई और 25,000 रुपये का जुर्माना भी लगाया और इस तरह के जुर्माने का भुगतान न करने पर उसे तीन साल का अतिरिक्त कारावास भुगतने का निर्देश दिया गया।

21. अपीलकर्ता के लिए श्री चंद्र भूषण तिवारी, न्याय मित्र को सुना और राज्य के लिए सुश्री मंजू ठाकुर, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता (आईएसटी) को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

22. धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपीलकर्ता/अभियुक्त ने अपने बयान में घटना से इनकार नहीं किया है। उन्होंने स्वीकार किया है कि कथित घटना में उनकी भाभी, उनकी पत्नी श्रीमती बड़ी राजा, उनकी बेटी कुमारी मंडावी और उनके बेटे मंगल सिंह की हत्या कर दी गई थी। आरोपी ने रिकॉर्ड में मौजूद सबूतों को लेकर भी अनभिज्ञता जाहिर की है। हालांकि, उन्होंने आगे कहा है कि उनका विचारण गलत तथ्यों पर आधारित था। आरोपी ने अपने बयान में यह भी स्वीकार किया है कि मानसिक संतुलन खोने के कारण, घटना के समय, मृतक को चोटें आई थीं। उन्होंने बचाव किया है कि घटना के समय वह मानसिक विकार से पीड़ित थे।

23. दिनांक 28.04.2011 को धारा 313 द०प्र०स० के तहत बयान के समय आरोपी ने स्वीकार किया है कि वाराणसी में इलाज के बाद वह सामान्य हो गया है।

24. इस मामले में आरोपी द्वारा कथित घटना के कमीशन से इनकार नहीं किया गया है और मृतक की मृत्यु के तरीके पर भी विवाद नहीं किया गया है। विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष अभियुक्त ने धारा 84 भ०द०वि० के लाभ का दावा किया था। धारा 84 में कहा गया है कि:
"कोई बात अपराध नहीं है जो किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा की जाती है, जो इसे करते समय, मन की अस्वस्थता के कारण, कार्य की प्रकृति को जानने में असमर्थ है, कि वह ऐसा कर रहा है जो या तो गलत है या कानून के विपरीत है।

25. भारतीय दंड संहिता में, धारा 76 से धारा 106 सामान्य अपवाद हैं। यह साबित करने की जिम्मेदारी अभियुक्त पर है कि कथित घटना के समय, अपने दिमाग की अस्वस्थता के कारण वह अपने कार्य की प्रकृति को जानने में असमर्थ था या वह जो कर रहा था वह या तो गलत था या कानून के विपरीत था। यदि अभियुक्त यह स्थापित करने में सफल हो जाता है कि घटना के समय, वह इतने परिमाण के मानसिक विकार से पीड़ित था कि वह अपने कृत्य को जानने में असमर्थ था और धारा 84 के तहत अपने मामले को लाने के लिए स्थापित करने में सफल होता है, तो वह संहिता की धारा 84 के लाभ का हकदार होगा।

26. इस न्यायालय को उन परिस्थितियों पर विचार करना है जो अपराध को आगे बढ़ाने, भाग लेने या उसके बाद हुईं, लेकिन यह भी उतना ही सच है कि ऐसी परिस्थितियों को विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा स्थापित किया जाना चाहिए।

27. बापू गजराज बनाम राजस्थान राज्य, 2007 में रिपोर्ट किए गए, वॉल्यूम 8 एस.सी.सी. 66 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया है:
"10. धारा 84 आपराधिक कानून के मौलिक अधिकतम का प्रतीक है, अर्थात, एक्टस नॉन रेम फेसिट निसी मेन्स सिट री" (एक कार्य अपराध का गठन नहीं करता है जब तक कि दोषी इरादे से नहीं किया जाता है)। अपराध का गठन करने के लिए, इरादा और कार्य सहमति में होना चाहिए; लेकिन पागल व्यक्तियों के मामले में, उन पर कोई दोष नहीं लगाया जाता है क्योंकि उनके पास कोई स्वतंत्र इच्छा नहीं है (फ्यूरियोस इज नाला वोलंटस एस्ट)।

11. धारा स्वयं यह प्रदान करती है कि लाभ केवल तभी उपलब्ध होता है जब यह साबित हो जाता है कि कार्य करने के समय, अभियुक्त मन की बीमारी से कारण के ऐसे दोष के तहत कर रहा था, जैसे कि वह उस कार्य की प्रकृति और गुणवत्ता को, जो वह कर रहा था, नहीं जानता था, या भले ही वह इसे नहीं जानता था, यह या तो गलत है या कानून के विपरीत है तो इस धारा को लागू किया जाना चाहिए। यह तय करने के लिए महत्वपूर्ण बिंदु कि इस धारा का लाभ दिया जाना चाहिए या नहीं, वह सुसंगत समय है जब अपराध होता है। उस निष्कर्ष पर आने में, प्रासंगिक परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए, केवल अपराध के चरित्र से प्राप्त तर्कों पर पागलपन की रक्षा को स्वीकार करना खतरनाक होगा। यह केवल मन की अस्वस्थता है जो स्वाभाविक रूप से मन के संज्ञानात्मक संकायों को बाधित करती है जो आपराधिक जिम्मेदारी से छूट का आधार बना सकती है। स्टीफन ने 'हिस्ट्री ऑफ द क्रिमिनल लॉ ऑफ इंग्लैंड, वीओ II, पृष्ठ 166' में देखा है कि यदि कोई व्यक्ति सोते हुए आदमी का सिर काट देता है क्योंकि उसे जागने पर उसकी तलाश करते हुए देखना बहुत मजेदार होगा, तो जाहिर है कि यह एक ऐसा मामला होगा जहां अधिनियम का अपराधी अपने कार्य के शारीरिक प्रभावों को जानने में असमर्थ होगा। कानून अधिनियम की प्रकृति को महसूस करने में असमर्थता के अलावा कुछ भी नहीं पहचानता है और मानता है कि जहां एक आदमी का दिमाग या उसके अनुपात के संकाय पर्याप्त रूप से मंद हैं कि वह क्या कर रहा है, उसे हमेशा उस कार्रवाई के परिणाम का इरादा माना जाना चाहिए जो वह करता है। किसी अपराध के मकसद की अनुपस्थिति, चाहे वह कितना ही नृशंस क्यों न हो, दलील और कानूनी पागलपन के सबूत के अभाव में, मामले को इस धारा के भीतर नहीं ला सकता है, इस न्यायालय ने शेरल वाली मोहम्मद बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1972 सी.आर.जे. 1523 (एस.सी.) में माना कि केवल यह तथ्य कि कोई मकसद साबित नहीं हुआ है कि आरोपी ने अपनी पत्नी और बच्चे की हत्या क्यों की या यह तथ्य कि जब दरवाजा खुला हुआ था, उसने भागने का कोई प्रयास नहीं किया, यह इंगित नहीं करेगा कि वह पागल था या

उसके पास अपराध के लिए आवश्यक 'मेन्स रीया' नहीं था। मन की असामान्यता या आंशिक भ्रम, एक मनोरोगी का अप्रतिरोध्य आवेग या बाध्यकारी व्यवहार धारा 84 के तहत कोई सुरक्षा नहीं देता है क्योंकि उस धारा में निहित कानून अभी भी 19 वीं शताब्दी के इंग्लैंड के पुराने नॉटन नियमों पर आधारित है। धारा 84 के प्रावधान सार रूप में वही हैं जो एम नॉटन के मामले में हाउस ऑफ लॉर्ड्स द्वारा न्यायाधीशों से पूछे गए प्रश्नों के उत्तरों में निर्धारित किए गए हैं। (1843) 4 राज्य ट्र (एनएस) 847. व्यवहार, पूर्ववर्ती, परिचर और घटना के बाद, घटना के समय अभियुक्त की मानसिक स्थिति का पता लगाने में प्रासंगिक हो सकता है, लेकिन समय में इतना दूरस्थ नहीं। अपराध के कमीशन के समय अपराधी के दिमाग की सटीक स्थिति को साबित करना मुश्किल है, लेकिन इसके कुछ संकेत अक्सर अपराधी के आचरण द्वारा इसे करते समय या अपराध के कमीशन के तुरंत बाद प्रस्तुत किए जाते हैं। एक पागल व्यक्ति का एक स्पष्ट अंतराल केवल विकार के हिंसक लक्षणों की समाप्ति नहीं है, बल्कि मन के संकायों की बहाली पर्याप्त रूप से व्यक्ति को कार्य का निर्णय करने में सक्षम बनाता है; लेकिन अभिव्यक्ति जरूरी उनकी मूल स्थिति के लिए मानसिक संकायों की पूर्ण या परफेक्ट बहाली मतलब नहीं है. इसलिए, यदि ऐसी कोई बहाली है, तो संबंधित व्यक्ति इस तरह के कारण, स्मृति और निर्णय के साथ कार्य कर सकता है ताकि इसे कानूनी कार्य बनाया जा सके; लेकिन केवल विकार के हिंसक लक्षणों की समाप्ति पर्याप्त नहीं है।

28. सुधाकरन सिंह बनाम केरल राज्य, 2010 में रिपोर्ट किया गया, वॉल्यूम 10, एस.सी.सी. 582, याचिका यह थी कि अपीलकर्ता "पैरानॉयड सिज़ोफ्रेनिया" से पीड़ित था। इस शब्द को मोदी के मेडिकल ज्यूरिसप्रूडेंस एंड टॉक्सिकोलॉजी में इस प्रकार परिभाषित किया गया है: "व्यामोह को अब पैरानॉयड सिज़ोफ्रेनिया का एक हल्का रूप माना जाता है। यह महिलाओं की तुलना में पुरुषों में अधिक होता है। इस बीमारी की मुख्य विशेषता एक व्यक्तित्व में एक अच्छी तरह से विस्तृत भ्रम प्रणाली है जो अन्यथा अच्छी तरह से संरक्षित है। भ्रम उत्पीड़क प्रकार के हैं। इस बीमारी की वास्तविक प्रकृति लंबे समय तक अपरिचित हो सकती है क्योंकि व्यक्तित्व अच्छी तरह से संरक्षित है, और इनमें से कुछ व्यामोह एक समाज सुधारक या समलैंगिक छद्म धार्मिक संप्रदायों के संस्थापक के रूप में पारित हो सकते हैं। शास्त्रीय तस्वीर दुर्लभ है और आम तौर पर एक पुराना क्रम लेता है।

पैरानॉयड सिज़ोफ्रेनिया, मामले के विशाल बहुमत में, चौथे दशक में शुरू होता है और कपटी रूप से विकसित होता है। संदेह प्रारंभिक अवस्था का विशिष्ट लक्षण है।

29. अ०सा०-1 नौने राजा ने अपने चश्मदीद बयान में कहा है कि उनके हुक्म पर, वीरेंद्र सिंह द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट लिखी गई थी और उसे पढ़ने के बाद, उन्होंने रिपोर्ट पर हस्ताक्षर किए थे। अ०सा०-1 ने लिखित प्रथम सूचना रिपोर्ट को पेपर नंबर-5क को प्रदर्श क-1 के रूप में मान्यता दी है और साबित किया है।

30. अ०सा०-1, नौने राजा ने अपनी जिरह में स्वीकार किया है कि कथित घटना के समय वह मौके पर मौजूद नहीं थे और जब वह घटनास्थल पर पहुंचे थे तो कथित घटना पहले ही हो चुकी थी। उन्होंने यह भी कहा है कि कथित घटना के संबंध में उन्हें राघवेंद्र सिंह द्वारा सूचित किया गया था, लेकिन उनसे (राघवेंद्र सिंह) की परीक्षण नहीं किया गया है, इसलिए, अ०सा०-1 नौने राजा के उपरोक्त बयान, कि उन्हें राघवेंद्र सिंह द्वारा सूचित किया गया था और इस तरह की जानकारी के आधार पर वह घटनास्थल पर पहुंचे थे, राघवेंद्र सिंह द्वारा पुष्टि नहीं की गई है।

31. प्रथम सूचना रिपोर्ट, प्रदर्श क-1 में, कथित घटना को कई ग्रामीणों द्वारा देखा गया है, लेकिन लिखित प्रथम सूचना रिपोर्ट में उनमें से किसी को भी इंगित नहीं किया गया है। प्राथमिकी में आरोप है कि जब वह मौके पर पहुंचा तो देखा कि आरोपी को ग्रामीणों नरेंद्र सिंह, मुलायम सिंह, मानसिंह और गोविंद दास ने पकड़ लिया है। यह भी आरोप है कि आरोपी को ग्रामीणों ने उस समय पकड़ लिया जब वह घर से भाग रहा था।

32. अ०सा०-2, नरेंद्र सिंह, एक चश्मदीद गवाह ने गवाही दी है कि उन्हें घटना की तारीख याद नहीं है। घटना के दिन कुल्हाड़ी के आरोपी राम सिंह ने अ०सा०-1 नौने राजा की पत्नी और दो बच्चों की पत्नी के साथ मारपीट की थी। घटना दोपहर करीब 1-1.30 बजे की है, जब वह घटनास्थल पर पहुंचे ही थे कि उनके गांव के कई ग्रामीण वहां पहुंच चुके थे। ग्रामीण राजपाल सिंह, मुलायम, तखत, गोविंदा जो मौके पर पहुंचे थे। अ०सा०-1 ने कहा है कि शव बिखरे पड़े थे; उसने देखा था कि राम सिंह ने अपने अन्न भंडार (बखरी) से भागने की कोशिश की थी; वह खून से सनी कुल्हाड़ी चला रहा था; उसने और अन्य लोगों ने उसे पकड़ लिया था। घटना के समय आरोपी राम सिंह के माता-पिता और भाई मौजूद नहीं थे। हालांकि, उसने राम सिंह को मृतकों की हत्या की घटना को अंजाम देते नहीं देखा।

33. अ०सा०-2 नरेंद्र सिंह को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है और अभियोजन पक्ष द्वारा उनसे जिरह भी की गई है। उसने अपनी जिरह में कहा है कि आरोपी राम सिंह बीच-बीच में मानसिक संतुलन से पीड़ित रहता था। पिता ने भी उसका इलाज कराया।

34. अ०सा०-2 नरेंद्र सिंह ने अभियुक्त की ओर से की गई जिरह में बताया है कि राम सिंह का इलाज ललितपुर और ग्वालियर में भी किया गया था।

35. हालांकि, अपनी शादी के समय वह ऐसी मानसिक स्थिति में नहीं था। शादी के बाद, अपने मानसिक क्षय के दौरान, वह अपने घर से दो से तीन बार भाग गया था; एक

बार वह लगभग एक साल के लिए लापता हो गया और वह एक मंदिर के पास जर्जर हालत में पाया गया; उसे उसके घर वापस लाया गया। राम सिंह को उसके मुख्य द्वार पर उसने और अन्य ग्रामीणों ने पकड़ लिया।

36. जिस समय उसने रामसिंह को देखा, वह गाली दे रहा था और उसकी आंखें लाल हो गई थीं। मृतक के शवों के हिस्से अन्न भंडार (बखरी) में बिखरे हुए थे; वीरेंद्र सिंह ने मृतकों के शवों के अंगों को एकत्र कर घर के गेट से बखरी में डाल दिया था; अन्न भंडार (बखरी) 4-5 सीढ़ियों की दूरी पर स्थित था।

37. उन्होंने अ०सा०-1 नौने राजा के साक्ष्य की भी पुष्टि की है कि राम सिंह का इलाज ग्वालियर और ललितपुर में किया गया था।

38. अ०सा०-2 नरेंद्र सिंह ने अपने बयान में यह भी कहा है कि राम सिंह बीच-बीच में अपने दिमाग पर नियंत्रण खो देता था। कथित घटना तक शादी के बाद से, वह कभी-कभी अपने मानसिक असंतुलन से पीड़ित था।

39. अ०सा०-3 गोविंद दास ने दिनांक 05.12.2009 को अपने चश्मदीद साक्ष्य में कहा है कि घटना से लगभग दो-साढ़े आठ महीने पहले दोपहर 1.00 बजे हुई थी; वह अपने घर पर वापस रह रहा था; उसने बच्चों की चीखें सुनीं और वह मौके पर पहुंचा और उसने देखा कि वीरेंद्र सिंह, राजपाल सिंह हवंश सिंह, मुलायम सिंह, मलखान सिंह और इंदल सिंह और अन्य 10-12 लोग पहले ही नौने राजा के घर पहुंच चुके थे; राम सिंह के हाथ में खून से सनी कुल्हाड़ी थी; उसने अपनी पत्नी, बच्चों और नौने राजा की पत्नी को मार डाला था; मृतकों के सभी शव आंगन में बिखरे पड़े थे। राम सिंह ने सभी मृतकों को कुल्हाड़ी से मार डाला था। उसे और अन्य व्यक्तियों द्वारा चुनौती दिए जाने पर, कुल्हाड़ी के साथ आरोपी का पीछा किया; उसने खुद को छिपा लिया; जब राम सिंह ने मौके से भागने के लिए अपनी कुल्हाड़ी फेंकी, तो उन्होंने उसे पकड़ लिया और पेड़ से बांध दिया।

40. अ०सा०-3, गोविंद दास ने अपनी जांच में मुख्य रूप से कहा है कि अभियुक्त को पेड़ से बांधे जाने के बाद, वे घर के आंगन में गए और देखा कि श्रीमती बदी राजा, श्रीमती गुड्डी राजा, कुमारी मंडावी और मंगल सिंह के शव वहां पड़े थे। मृतकों के शवों को कुल्हाड़ी से काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया। पुलिस को भी सूचना दे दी गई है।

41. अ०सा०-3, गोविंद दास ने अपनी परीक्षा में सूचनाकर्ता नौने राजा और उसके माता-पिता के घटनास्थल पर आने के बारे में गवाही नहीं दी है।

42. अ०सा०-3 ने अपनी जिरह में कहा है कि मृतकों की हत्या के संबंध में ग्रामीणों ने पुलिस को सूचित किया था; परिवार के किसी भी सदस्य ने पुलिस को सूचित नहीं किया था; उनके घर से राम सिंह का घर 500 मीटर की दूरी पर स्थित है। उसने और अन्य व्यक्तियों ने आरोपी को पकड़कर पेड़ से बांध दिया था। उसने अपने घर से भागने की कोशिश की थी। करीब 200 कदम पर राम सिंह पकड़ा गया। वह अपने घर के गेट पर नहीं पकड़ा गया था। अ०सा०-3 ने अपनी जिरह में आगे कहा है कि कोई भी घटना के संबंध में नौने राजा को सूचित करने नहीं गया था। शोर सुनकर नौने राजा मौके पर पहुंच गया था; उसे नहीं पता था कि राघवेंद्र सिंह नौने राजा को सूचित करने गया था या नहीं।

43. अ०सा०-3 गोविंद दास ने यह भी कहा है कि राम सिंह ने आंगन में शवों के पास कुल्हाड़ी फेंकी थी; उसके द्वारा पहने गए कपड़े खून से सने हुए थे; आरोपी के कपड़ों पर खून नहीं लगा था। राम सिंह अपने मानसिक संतुलन की स्थिति में नहीं था; उसे नहीं पता था कि राम सिंह का इलाज किया गया था या नहीं; उसने अपनी जिरह में यह भी स्वीकार किया है कि राम सिंह घटना से पहले अपने घर से फरार हो गया था और एक महीने बीत जाने के बाद अपने घर लौट आया था; चूंकि वह (अ०सा०-3) अपने घर पर नहीं रहता था, इसलिए उसे राम सिंह के इलाज के बारे में पता नहीं है; कथित घटना से पहले राम सिंह उसकी उपस्थिति में फरार नहीं हुआ था और न ही उसकी उपस्थिति के दौरान, राम सिंह अपने घर लौट आया था; वह मजदूर के रूप में काम करता था। वह स्थायी रूप से एक स्थान पर नहीं रहता था; यह कहना गलत होगा कि घटना की तारीख को वह गांव में मौजूद नहीं था; यह सुझाव देना भी गलत होगा कि किसी भी पुलिस के दबाव के कारण उसने गवाही दी है; वह स्वेच्छा से साक्ष्य देने आए हैं।

44. अ०सा०-1 नौने राजा, अ०सा०-2 नरेंद्र सिंह, अ०सा०-3 गोविंद दास के बयानों से, यह परिलक्षित होता है कि घटना के समय इनमें से कोई भी गवाह घटनास्थल पर मौजूद नहीं था। यह वारदात आरोपी ने की है। ये सभी गवाह मृतकों की हत्या के बाद मौके पर पहुंचे थे। हालांकि, धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में आरोपी द्वारा घटना की स्वीकारोक्ति के सामने अ०सा०-1 से अ०सा०-3 के साक्ष्य में मामूली विसंगतियां हैं।

45. अ०सा०-1 से अ०सा०-3 का भी अभियुक्त की ओर से इस आशय का सामना नहीं किया गया है कि राम सिंह ने मृतक को कुल्हाड़ी से नहीं मारा था। इस मामले में आरोपी द्वारा कुल्हाड़ी चलाकर मृतक की हत्या की बात स्वीकार की जाती है।

46. यह आरोपी का बचाव है कि घटना के कारित होने के समय वह मानसिक विकार की स्थिति में था। अभियुक्त की ओर से, अपराध के समय पागलपन की दलील निर्धारित की गई है, इसलिए अपराध के कमीशन के समय पागलपन साबित करने का दायित्व उस पर निहित है।

47. यह पता लगाने के लिए कि क्या अभियुक्त अपराध के समय पागलपन से पीड़ित था, उसके पिछले व्यवहार,

घटना के समय व्यवहार और उसके ठीक बाद मूल्यांकन/जांच की जानी चाहिए।

48. विद्वान विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला है कि अभियुक्त राम सिंह घटना के समय मानसिक विकार से पीड़ित नहीं था और इस प्रकार वह अपने कृत्य की प्रकृति को जानने में असमर्थ नहीं पाया गया था कि वह ऐसा कर रहा था जो या तो गलत था या कानून के विपरीत था। घटना के समय अभियुक्त की मानसिक स्थिति के संबंध में विद्वान विचारण न्यायालय के इस निष्कर्ष को प्रस्तुत अपील में चुनौती दी गई है।

49. अभियुक्त ब०सा०-1 की ओर से डॉ. राजीव जैन ने दिनांक 29.07.2011 को अपनी जिरह में कहा है कि दिनांक 29.01.2000 को लगभग 12 बजे उन्होंने ललितपुर स्थित महाबीर मनोचिकित्सक केंद्र में राम सिंह का ई.ई.जी. (इलेक्ट्रोएन्सेफलोग्राम) (मानसिक परीक्षण) किया था और उन्होंने उसे "सामान्य" के रूप में निदान किया था।

50. ब०सा०-1, राजीव जैन ने अपने साक्ष्य के अनुक्रम में कहा है कि राम सिंह के परिवार के सदस्यों ने उन्हें लक्षणों के बारे में सूचित किया था और लक्षणों के वर्णन के आधार पर आरोपी की राय थी कि वह मुख्य रूप से 'उन्माद' बीमारी से पीड़ित हो सकता है और उनके विचार में उक्त बीमारी पिछले दो वर्षों से बनी हुई हो सकती है। इस बीमारी में लक्षण अचानक दिखाई देते हैं और कुछ समय बाद गायब हो जाते हैं। हालांकि मरीज की ई.ई.जी. जांच में आरोपी के दिमाग में कोई सूजन आदि नहीं पाई गई। रोग उन्माद के अन्य लक्षण अत्यधिक क्रोध, दिन-रात जागते रहना, दौड़ना, समय पर भोजन न करना, स्वच्छता का रखरखाव न करना, बीच-बीच में दवा लेना जिससे इसकी पुनरावृत्ति होती है और असामान्य गतिविधियां भी होती हैं। ये सारे लक्षण आरोपी के परिजनों ने उन्हें (ब०सा०-1 डॉ. राजीव जैन को) भी बताए थे।

51. ब०सा०-1 डॉ. राजीव जैन ने अपने साक्ष्य में आगे कहा है कि रोगी की जांच के समय, रोगी के लक्षणों को देखते हुए उन्होंने कहा था कि आरोपी क्रॉनिकल रोग से पीड़ित था। इस बीमारी की पुनरावृत्ति होना तय है। भविष्य में बीमारी की पुनरावृत्ति का मुख्य कारण नियमित रूप से दवा न लेना हो सकता है। यदि दवाओं को समय पर नहीं लिया जाता है, तो इसके बढ़ने की संभावना होती है और उक्त बीमारी मनुष्यों में मनोविकृति में बदल सकती है।

52. ब०सा०-1, डॉ. राजीव जैन की गवाही में यह भी कहा गया है कि 'क्रोनिकल बीमारी' कुछ वर्षों के बाद फिर से प्रकट हो सकती है और रोगी के लक्षण भी बढ़ सकते हैं। यदि किसी रोगी को इतना प्रवृत्त किया जाता है, तो वह किसी व्यक्ति की पहचान करने में सक्षम नहीं हो सकता है और उत्तेजित होने पर, ऐसा व्यक्ति हमला भी कर सकता है।

53. डॉ. जैन ब०सा०-1, ने ई.ई.जी. रिपोर्ट, पेपर नंबर 111-ख, और ई.ई.जी. बुक 112-ख, को प्रदर्श ख-1 और प्रदर्श ख-2 के रूप में साबित किया है। उन्होंने आगे कहा है कि कागजात उनके द्वारा हस्ताक्षरित किए गए हैं। उन्होंने स्पष्ट किया है कि ई.ई.सी. रिपोर्ट प्रदर्श क-1, ई.ई.सी. पुस्तक प्रदर्श क-2 के आधार पर आधारित है।

54. ब०सा०-1, डॉ. राजीव जैन ने अपनी जिरह में कहा है कि उन्होंने वर्ष 1994 से जनवरी, 2010 तक ललितपुर में निजी तौर पर प्रैक्टिस की थी; अपने क्लिनिक में उन्होंने 2005 तक अपनी सेवाएं प्रदान की हैं; आरोपी राम सिंह को लाने वाले व्यक्तियों के नाम उसकी रिपोर्ट में नहीं बताए गए हैं। आरोपी के परिजनों ने मरीज के लक्षण बताए और उसकी जांच के आधार पर कुछ लक्षण पाए गए। उन्होंने मरीज के इलाज के सारे कागजात मरीज तक पहुंचा दिए थे और उसे याद नहीं है कि कितनी बार मरीज राम सिंह उसके इलाज के लिए उसके क्लिनिक आया था।

55. उन्होंने आगे कहा है कि रोगी की जांच के समय, वह सामान्य पाया गया था। ऐसे मरीजों को 2-3 साल तक लगातार इलाज कराने की सलाह दी जाती है। उन्होंने यह याद करने में भी असमर्थता व्यक्त की है कि राम सिंह उनके इलाज के लिए कितने समय से उनके क्लिनिक में आए थे। मरीज के परिवार के सदस्यों के कहने पर उसने तदनुसार नाम दर्ज किया था। सामान्यत वह अपने रोगियों की, यदि वे पुन उसके समक्ष उपस्थित होते हैं, तो पहचान नहीं करता है, इसलिए वह यह नहीं कह सकता कि अभियुक्त, जो न्यायालय में उपस्थित था, राम सिंह था या नहीं। यह कहना गलत होगा कि उसने राम सिंह का इलाज नहीं किया था और उसके कहने पर उसने आरोपी की झूठी मेडिकल रिपोर्ट तैयार की थी।

56. ब०सा०-1 डॉ. राजीव जैन के साक्ष्य से यह पता चलता है कि उन्होंने 29.11.2000 को दोपहर 12 बजे अपने क्लिनिक में राम सिंह की जांच की थी और ई.ई.जी. के आधार पर उनकी जांच करने पर वह सामान्य पाया गया था।

57. अपने शेष साक्ष्य के संबंध में, यह प्रकृति में अकादमिक है, क्योंकि उन्होंने लक्षणों के वर्णन पर बीमारी के बारे में अपनी राय व्यक्त की थी जैसा कि आरोपी के परिवार के सदस्यों द्वारा उन्हें बताया गया था। ब०सा०-1, डॉ. राजीव जैन ने दी गई परिस्थितियों में अपनी राय व्यक्त की है। हालांकि, आरोपी से पूछताछ करने पर उसने उसे मानसिक रूप से सामान्य पाया था। इस प्रकार, डा राजीव जैन की गवाही अभियुक्त को पागलपन के दावे में सहायक नहीं कहती। डॉ. जैन ने यह याद करने में भी असमर्थता व्यक्त की है कि आरोपी कितनी बार उनके इलाज के लिए उनके क्लिनिक में आए थे। इसके अतिरिक्त, दिनांक 29-21-2000? को डा जैन से परामर्श किया गया था, जबकि घटना 22-03-2007 को हुई बताई गई है।

58. रिपोर्ट 111-ख में, डॉ. राजीव जैन, न्यूरो मनोचिकित्सक ने भी निर्णायक रूप से कहा है कि राम सिंह का ई.ई.जी. सामान्य सीमा के भीतर था।

59. अभियुक्त ने ओ.पी.डी. संख्या-17704 दिनांक 16.11.2007 के माध्यम से, उसकी (राम सिंह) मानसिक स्थिति की जांच के लिए उसके (राम सिंह) संदर्भ पर, संबंधित डॉक्टर के पास उसकी बीमारी के बारे में कोई इतिहास उपलब्ध नहीं था, इसलिए, डॉक्टर ने अपनी रिपोर्ट के माध्यम से, पेपर नंबर-11ख में कहा है कि राम सिंह की मानसिक स्थिति के बारे में किसी भी निष्कर्ष पर पहुंचना उसके लिए संभव नहीं था।

60. डॉक्टर ने आरोपी राम सिंह को सलाह दी कि उसे कम से कम 14 दिनों के लिए उसकी मानसिक स्थिति का पता लगाने के लिए निगरानी में रखा जाएगा। उसने राम सिंह को आगे के इलाज के लिए वाराणसी के मानसिक अस्पताल रेफर कर दिया था।

61. बनारस के मानसिक अस्पताल में चिकित्सा अधिकारी/मनोचिकित्सक श्री अमरेन्द्र कुमार ने न्यायालय के आदेश दिनांक 11.12.2007 के अनुपालन में राम सिंह की जांच की; दिनांक 17-12-2007 और 02-01-2008 को अस्पताल में भर्ती किए जाने के दौरान चिकित्सा अधिकारी ने पाया कि वह अनिर्दिष्ट, नॉन ऑर्गेनिक साइकोटिक डिसऑर्डर (एफ-29) से पीड़ित है। राम सिंह की 17-11-2007 और 201-2000? को चिकित्सा जांच की गई जबकि घटना 20-03-2007 को हुई थी।

62. चिकित्सा अधिकारी ने दिनांक 02.01.2008 की रिपोर्ट, पेपर नंबर-16ख/2 एक कॉलम और बी-पागलपन के बारे में अन्य तथ्यों से संबंधित, अन्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा उसे सूचित कुछ भी "महत्वपूर्ण" नहीं पाया।

63. निदेशक एवं मुख्य अधीक्षण चिकित्सा चिकित्सालय वाराणसी ने जिला एवं सत्र न्यायाधीश, ललितपुर को सम्बोधित दिनांक 28.02.2008 के पत्र द्वारा अभियुक्त का चेक-अप किया था, जिसमें कहा गया है कि उनके (जिला एवं सत्र न्यायाधीश, ललितपुर) पत्र संख्या 6 दिनांक 22.01.2008 के अनुपालन में कैदी-अभियुक्त की मानसिक स्थिति की जांच श्री अमरेन्द्र कुमार, चिकित्सा अधिकारी/मनोचिकित्सक द्वारा मानसिक अस्पताल, बनारस में की गई थी, और कहा कि उनकी मानसिक स्थिति बेहतर थी; उसने अपना भोजन लिया और सो भी गया; वह अपनी स्वच्छता बनाए रख रहा था और उसने निर्देशों का पालन भी किया था; आरोपी उससे पूछे गए सवालों के ज्यादातर सही जवाब दे रहा था; वह अक्सर मुस्कुराता था; बिना वजह बुदबुदाया करता था। राम सिंह दिनांक 28-02-2008 के पत्र 19ख के तहत पूर्णत स्वस्थ नहीं पाए गए। पत्र में कहा गया है कि चिकित्सा अधिकारी/मनोचिकित्सक की सलाह पर उनका इलाज किया जा रहा है।

64. निदेशक एवं मुख्य अधीक्षक चिकित्सा चिकित्सालय वाराणसी के पत्र क्रमांक 2008/507/राम सिंह/दिनांक 15 मार्च 2008 के पत्र क्रमांक 21 खा/जेल अधीक्षक अधिकारी कारागार ललितपुर को भेजे गए पत्र क्रमांक 21ख/से राम सिंह के उपचार और बेहतर स्थिति के बारे में अवगत कराया गया। उनका उनकी बीमारी का इलाज चल रहा है और उनकी फिटनेस के बारे में बोर्ड की आगामी तिमाही बैठक में उनके मामले पर चर्चा की जाएगी।

65. निदेशक एवं मुख्य अधीक्षक मानसिक चिकित्सालय, वाराणसी ने कैदी राम सिंह की मानसिक स्थिति के संबंध में पत्र 2008/सितम्बर 24/08 द्वारा अधीक्षक जिला जेल, ललितपुर को सूचित किया कि दिनांक 12.09.2008 को विजिटर्स बोर्ड की बैठक में राम सिंह को मानसिक रूप से अस्वस्थ घोषित किया गया था और उसका (राम सिंह) उपचार जारी रखने की भी सलाह दी गई थी।

66. मुख्य चिकित्सा अधीक्षक, मानसिक अस्पताल, वाराणसी ने अपनी रिपोर्ट संख्या-2009 दिनांक 26.02.2009, पेपर नंबर 38ख द्वारा विचारण न्यायालय के न्यायाधीश, ललितपुर को राम सिंह की मानसिक स्थिति के संबंध में, इस मामले में उनके मुकदमे के संबंध में, यह बताया गया कि 17.02.2009 को आयोजित आगंतुक बोर्ड की अर्धवार्षिक बैठक में, राम सिंह को मानसिक रूप से स्वस्थ घोषित कर दिया गया और राम सिंह को भी अस्पताल से संबंधित जेल में स्थानांतरित करने की सिफारिश की गई।

67. डॉ. श्री अमरेन्द्र कुमार, चिकित्सा अधिकारी/मनोचिकित्सक द्वारा अभियुक्त का दिनांक 15.03.2009 का उपचार कार्ड भी है, जिसने राम सिंह के लिए दो गोलियां और एक अन्य कैप्सूल निर्धारित किया था, जिसे कम से कम तीन महीने तक जारी रखा जाना चाहिए और मनोचिकित्सक की सलाह पर इसे रोका जाना चाहिए।

68. कथित घटना 22.03.2007 को हुई थी, जबकि, अभियुक्त की चिकित्सा स्थिति के बारे में अन्य चिकित्सा रिपोर्ट, 16.11.2007 से 17.02.2009 की अवधि के बीच संबंधित हैं। उपर्युक्त संदर्भित चिकित्सा रिपोर्टों से यह भी स्पष्ट है कि दिनांक 22-03-2007 की कथित घटना के बाद, अभियुक्त की मानसिक बीमारी का लगभग साढ़े सात महीने बीत जाने के बाद उपचार किया गया। हालांकि, उन्हें 29.01.2000 को पेपर नंबर 111ख, प्रदर्श ख-1 के तहत उनकी मानसिक स्थिति की सामान्य सीमा के भीतर रिपोर्ट किया गया था।

69. अ०सा०-1, नौने राजा ने कथित घटना से पहले अभियुक्त की मानसिक स्थिति के संबंध में अपनी जिरह में कहा है कि घटना से एक दिन पहले, आरोपी मानसिक रूप से स्वस्थ था और उसे कभी कभी दौरे पड़ते थे और दौरे के दौरान, वह अलगाव में बैठता था और वह नियमित

रूप से अपना भोजन नहीं लेता था और अनुनय पर भी वह भोजन नहीं करेगा; वह अपनी मर्जी से खाता था लेकिन वह कुछ दिनों तक भूखा नहीं रहता था। बीमारी के दौरान उसकी आँखें लाल हो जातीं; वह घर से भाग जाता था, लेकिन 5-6 साल से वह घर से नहीं भागा था। वह करीब 10 साल पहले घर से भाग गया था और खुद ही लौटा था। हालांकि उसके पिता और परिवार के सदस्यों द्वारा उसका पता लगाने का प्रयास किया गया था, लेकिन उन्हें उसके ठिकाने के बारे में पता नहीं चला। राम सिंह घटना से पांच साल पहले अपने घर से भाग गया था। आरोपी की शादी बृजराज सिंह की बेटी से हुई थी। शादी के समय आरोपी मानसिक रूप से बीमार नहीं था लेकिन उस समय भी वह दौरे से पीड़ित रहता था।

70. अ०सा०-1, नौने राजा ने यह भी कहा है कि संपत्ति के संबंध में अभियुक्त के साथ उनका कोई विवाद नहीं है, हालांकि, आरोपी की बीमारी के कारण, वह उससे नहीं मिला; वह और आरोपी एक ही घर में रह रहे हैं और आम आंगन साझा करते हैं; उनके घर का एक ही मुख्य द्वार है; आरोपी के साथ उसके संबंध खराब नहीं थे। वह उसे या उसकी पत्नी को गाली नहीं देता था और न ही उसने (राम सिंह) कभी अपनी पत्नी को पीटा था।

71. अ०सा०-2, नरेंद्र सिंह मुकर गया है। उसने आरोपी की ओर से की गई जिरह में कहा है कि राम सिंह शादी के बाद 2-3 बार फरार हो गया था और वह एक साल तक लापता रहा; परिजनों ने तलाश की तो वह जर्जर हालत में एक मंदिर के पास मिला। उसे परेशान मानसिक स्थिति में घर वापस लाया गया था, वह नियमित रूप से अपना भोजन नहीं करता था।

72. अ०सा०-2 नरेंद्र सिंह, अभियुक्त के परिवार का सदस्य नहीं है। वह आरोपी के घर से आधा किलोमीटर की दूरी पर रहता है। अ०सा०-2 की गवाही कि राम सिंह अपनी शादी के बाद 2-3 बार फरार हो गया था और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा तलाशी लेने पर, वह मंदिर के पास पाया गया था, अ०सा०-1 नौने राजा द्वारा समर्थित नहीं है। इस संबंध में, नौने राजा ने कहा है कि अभियुक्त अदालत के समक्ष अपनी गवाही के दिन (यानी 28.07.2000) से 10 साल पहले फरार हो गया था और एक साल बीत जाने के बाद खुद वापस आ गया था; उसके पिता को भी उसका पता नहीं चला। इस प्रकार, अ०सा०-2 नरेंद्र सिंह का बयान, अ०सा०-1 नौने राजा के साक्ष्य के साथ असंगत है। अ०सा०-1 नौने राजा ने अपने बयान में स्पष्ट रूप से कहा है कि आरोपी राम सिंह अपनी शादी के बाद फिट हो गया था और इसलिए, डॉ राजीव जैन द्वारा अपने क्लिनिक, ललितपुर और ग्वालियर में डॉ मल्होत्रा द्वारा उसका इलाज किया गया था। आरोपी अपने पिता और चाचा के साथ वहां गया था; उसके इलाज का खर्च उसके पिता ने उठाया था।

73. अ०सा०-1 नौने राजा ने जेल में कैद रहने के दौरान बनारस में राम सिंह की मानसिक बीमारी के इलाज के बारे में अपनी अनभिज्ञता व्यक्त की है।

74. अ०सा०-2 नरेंद्र सिंह, जो मुकर गया, ने अपनी गवाही में यह भी कहा है कि आरोपी का इलाज ललितपुर और ग्वालियर में किया गया था।

75. अ०सा०-3, गोविंद दास ने कहा है कि राम सिंह का मानसिक बीमारी के लिए ग्वालियर में इलाज किया गया था या नहीं, उन्हें नहीं पता था। उन्हें यह भी नहीं पता कि राम सिंह को दौरे पड़ते हैं या नहीं। हालांकि घटना से पहले राम सिंह पागल नहीं हुआ था और घटना से पहले राम सिंह न तो फरार हुआ था और न ही उसकी मौजूदगी में इस घर में लौटा था।

76. अ०सा०-3, गोविंद दास ने स्पष्ट रूप से कहा है कि घटना के समय वह गांव में रह रहे थे लेकिन घटना से पहले वह मजदूरी करने झांसी गए थे। वह किसी भी स्थायी स्थान पर श्रमिक के रूप में काम नहीं करता है। अ०सा०-3-गोविंद दास, कथित घटना से पहले गांव में नहीं रहे थे और अपनी आजीविका कमाने के लिए गांव से बाहर रहे थे, इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें घटना से पहले आरोपी की मानसिक बीमारी के बारे में पता नहीं था। यह स्पष्ट है कि इस बात के सबूत हैं कि घटना से ठीक पहले आरोपी राम सिंह मानसिक रूप से स्वस्थ था।

77. अ०सा०-1 नौने राजा को यह स्वीकार है कि अभियुक्त का इलाज ललितपुर और ग्वालियर में डॉ. मल्होत्रा द्वारा किया गया था, लेकिन ग्वालियर में आरोपी के इलाज के बारे में रिकॉर्ड पर कोई दस्तावेजी साक्ष्य नहीं है। तथापि, ललितपुर, झांसी और वाराणसी में अभियुक्त के उपचार के संबंध में दस्तावेजी साक्ष्य रिकार्ड में हैं।

78. अभियुक्त राम सिंह का मानसिक बीमारी के लिए वाराणसी में इलाज किया गया था, 2007-2009 तक उसकी कैद के दौरान, ललितपुर में डॉ. राजीव जैन के क्लिनिक में उसकी मानसिक बीमारी का इलाज भी किया गया था।

79. झांसी, ललितपुर और वाराणसी में अभियुक्त की मानसिक बीमारी के इलाज के संबंध में दस्तावेजी साक्ष्य भी घटना के तुरंत बाद से संबंधित नहीं है, इस प्रकार, यह पाया जाता है कि घटना के तुरंत पहले और तुरंत बाद, अभियुक्त मानसिक रूप से इस हद तक पीड़ित नहीं था कि उसे अपने कृत्य की प्रकृति और परिणामों के बारे में जानने में असमर्थ कहा जा सके।

80. गवाहों के मौखिक साक्ष्य के मूल्यांकन से यह भी परिलक्षित होता है कि घटना के समय अभियुक्त राम सिंह अपने घर से सार्वजनिक रूप से सामने आया था और उसे खून से सनी कुल्हाड़ी पहने हुए देखा गया था और उसके कपड़े भी खून से सने हुए थे। उसने भागने की कोशिश की थी, लेकिन उसे गवाहों ने पकड़ लिया, यह सबूत में आया

है कि पकड़े जाने के समय उसकी आंखें लाल हो गई थीं और वह बेतहाशा व्यवहार कर रहा था।

81. अभियुक्त के आचरण से ऐसा प्रतीत होता है कि घटना के ठीक बाद, वह खुद को कानूनी सजा से बचाने के लिए, यह जानते हुए कि उसने अपराध किया है, ऐसा कर रहा था। अगर ऐसा नहीं होता, तो वह अपराध के हथियार के साथ घटनास्थल से भागने की कोशिश नहीं करता।

82. पूर्वगामी चर्चा से यह स्पष्ट है कि घटना से पहले या उसके तुरंत बाद, अपीलकर्ता की मानसिक बीमारी के उपचार को फिर से शुरू करने वाला कोई दस्तावेजी सबूत नहीं है। हालांकि, यह सबूत में आया था कि कभी-कभी उसका व्यवहार जंगली हो जाता है। अ०सा०-1 नौने राजा, जो आवेदक का बड़ा भाई है और स्थायी रूप से अपने घर के एक ही आंगन में रहता है, आरोपी के व्यवहार के बारे में और उसकी मानसिक बीमारी के बारे में भी, जानने के लिए सबसे अच्छा व्यक्ति है। उन्होंने गवाही दी है कि घटना के पिछले 5 वर्षों से, राम सिंह को दौरे नहीं पड़े थे। हालांकि, उन्होंने अपने साक्ष्य में यह भी स्वीकार किया है कि उक्त अवधि के दौरान, अभियुक्त को रुक-रुक कर दौरे पड़ते थे। लेकिन, दौरे की अवधि के संबंध में कोई सबूत नहीं है। अ०सा०-1 नौने राजा ने अपनी गवाही में स्पष्ट रूप से कहा है कि घटना से पहले आरोपी सामान्य था। उपरोक्त चर्चा से यह भी पता चलता है कि 2007 में उन्होंने ललितपुर में अपने क्लिनिक में डॉ राजीव जैन से संपर्क किया था, जिन्होंने उनका सामान्य निदान किया था। इसके बाद जेल में कैद रहने के दौरान और इलाज के दौरान वह अस्वस्थ पाया गया लेकिन इलाज के बाद वह सामान्य हो गया।

83. डॉ. राजीव जैन ने अपने साक्ष्य में यह भी कहा है कि वह पूरी तरह से निश्चित नहीं थे कि कथित घटना के समय अभियुक्त फिट था या नहीं।

84. हमारी राय में, राम सिंह को दौरे पड़े हैं, लेकिन यह नहीं माना जा सकता है कि वह घटना के समय ऐसी मानसिक बीमारी से पीड़ित था कि उसे घटना के समय अपने कृत्य की प्रकृति को जानने में असमर्थ माना जा सकता है।

85. यह भी घटना से पहले या घटना के समय या घटना के तुरंत बाद विश्वास करने के लिए इस तरह के कोई सबूत नहीं है कि वह अपने कार्य की प्रकृति को समझने के लिए अक्षम होने के लिए स्वीकार किया जा सकता है।

86. पागलपन पूरी तरह से एक कानूनी और समाजशास्त्रीय अवधारणा है, कानून या चिकित्सा में इसका कोई तकनीकी अर्थ नहीं है और यह किसी निश्चित चिकित्सा इकाई को नहीं दर्शाता है। पागलपन को एक सामाजिक अपर्याप्तता के रूप में देखा जाता है और चिकित्सकीय रूप से यह एक मानसिक बीमारी का रूप ले लेता है। दूसरे शब्दों में, पागलपन का अर्थ है मानसिक अशांति की एक डिग्री इतनी खतरनाक और इतनी अक्षम करने वाली कि व्यक्ति को कानूनी दृष्टिकोण से कुछ जिम्मेदारियों से प्रतिरक्षा में माना जा सकता है, उसे कुछ विशेषाधिकारों की अनुमति नहीं दे सकता है जिसके लिए उस क्षमता की डिग्री की आवश्यकता हो सकती है जैसे कि शादी करने, व्यावसायिक अनुबंध करने या संपत्ति का प्रबंधन करने का निर्णय लेकिन अनिवार्य अस्पताल में भर्ती होने के लिए पर्याप्त मानदंड हो सकते हैं। एक और शब्द, जिसका अक्सर उपयोग किया जाता है लेकिन परिभाषित नहीं किया जाता है, वह है मन की अस्थिरता और इसका उपयोग अन्य शब्दों जैसे पागलपन या मानसिक विक्षिप्तता या मन की अव्यवस्थित स्थिति के पर्याय के रूप में किया जाता है, जिसके कारण एक व्यक्ति अपने कार्यों को विनियमित करने की शक्ति खो देता है और समाज के नियमों के अनुसार आचरण करता है जिससे वह संबंधित है।

87. कारण कई प्रकार के हो सकते हैं। हमारे विचार में, आरोपी कभी-कभी अवसादग्रस्तता के चरण में हो सकता है। ऐसे चरण में एक रोगी थका हुआ और आत्म-चिंतित दिख सकता है। मनोदशा की उदासी मुद्रा, व्यथित मन, चेहरे के भावों में परिलक्षित होती है। सामान्य भावात्मक प्रतिक्रिया के लिए कम क्षमता है और अतीत, वर्तमान और भविष्य अंधेरे और उदास दिखते हैं। आत्महत्या या आत्महत्या का प्रयास अक्सर अवसादग्रस्तता बीमारी का पहला और आखिरी लक्षण होता है। आत्महत्या अच्छी तरह से योजनाबद्ध है और रोगी के लिए बहुत बड़ा खतरा है। इस मामले में, यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सबूत नहीं है कि आरोपी ने कभी आत्महत्या या आत्महत्या के प्रयास की कोशिश की है, इसलिए, सामान्य मामलों में, सुबह जल्दी उठना और नींद ताजा नहीं होना होती है। यह भूख और कामेच्छा के नुकसान के साथ जुड़ा हुआ है। एक प्रतिक्रियाशील अवसाद में पर्यावरण में कुछ बाहरी घटना होती है।

88. लेखक 'जयसिंह पी मोदी' ने अपने पाठ 'मेडिकल ज्यूरिसप्रूडेंस एंड टॉक्सिकोलॉजी' में 'एपिलेप्टिक साइकोसिस' को परिभाषित किया था: "मिर्गी आमतौर पर प्रारंभिक शैशवावस्था से होती है, हालांकि यह जीवन के किसी भी अवधि में हो सकती है। जिन व्यक्तियों को वर्षों से मिर्गी के दौरे पड़ते हैं, जरूरी नहीं कि उनमें कोई मानसिक विपथन दिखाई दे, लेकिन उनमें से कुछ मानसिक गिरावट से पीड़ित हैं। ऐसे रोगी चिड़चिड़े, आवेगी और संदिग्ध होते हैं और थोड़े से कारण पर आसानी से क्रोध करने के लिए उकसाए जाते हैं। रोग आम तौर पर बेकाबू उन्माद के छोटे क्षणभंगुर फिट बैठता है और उसके बाद पूरी तरह से विशेषता है। हालांकि, हमले अधिक बार होते हैं। हानि स्मृति और आत्म नियंत्रण के साथ मानसिक संकायों की एक सामान्य हानि है। मिर्गी वह मनोविकृति है जो मिर्गी के दौरे से जुड़ी होती है। यह फिट होने से पहले या बाद में हो सकता है, या उन्हें बदल

सकता है, और इसे प्रीपीलेप्टिक, पोस्ट एपिलेप्टिक या मानसिक चरणों के रूप में जाना जाता है। मानसिक बीमार स्वास्थ्य को भी निम्नानुसार परिभाषित किया गया है: मानसिक बीमार स्वास्थ्य का बहाना करने के लिए हमेशा कुछ मकसद होता है। उदाहरण के लिए, एक अपराधी मौत की सजा या हत्या जैसे बहुत गंभीर अपराध के लिए लंबे समय तक कारावास की सजा से बचने के लिए मानसिक बीमारी का नाटक करता है, खासकर जब उसे मुकदमे पर रखा जाता है।

89. मानसिक बीमार स्वास्थ्य का पता लगाना एक चिकित्सा अधिकारी के जिम्मेदार कर्तव्यों में से एक है। आमतौर पर, धोखाधड़ी का पता लगाना आसान होता है, लेकिन कई बार यह बहुत मुश्किल हो जाता है। एक निश्चित राय देने से पहले, एक व्यक्ति को निगरानी में हिरासत में लिया जाना चाहिए। यह याद रखना चाहिए कि ऐसे व्यक्ति को पहली बार में 10 दिनों से अधिक समय तक निगरानी में नहीं रखा जा सकता है, लेकिन न्यायालय की अनुमति से उसे 10 दिनों की अतिरिक्त अवधि के लिए अधिकतम 30 दिनों तक हिरासत में रखा जा सकता है। इस अवधि के दौरान, चिकित्सा अधिकारी को उसे देखना होगा और उसके द्वारा प्रदर्शित सभी लक्षणों पर सावधानीपूर्वक ध्यान देना होगा।

90. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, हमने देखा है कि यह माना जा सकता है कि घटना से पहले या तुरंत बाद, अभियुक्त मनोवैज्ञानिक विकार से पीड़ित था कि यह माना जा सकता है कि अभियुक्त अपने कृत्य की प्रकृति को समझने में असमर्थ था। इसके अलावा, यह साबित नहीं हुआ है कि यह कार्य स्वयं उसके मानसिक विकार का परिणाम था।

91. अभियुक्त सबूत के माध्यम से प्रदर्शित करने में सक्षम नहीं किया गया है, कि घटना के समय वह मानसिक विकार से प्रभावित था। यह सबूत में नहीं आया है कि घटना से पहले वह फिट था, आगे इस बात का कोई सबूत नहीं है कि घटना से पहले या उसके तुरंत बाद उसे दौरे पड़े थे।

92. शेरल वली मोहम्मद बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1972 सी.आर.जे. एलजे 1523 (एस.सी.) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि:

"कानून मानता है कि विवेक की उम्र का प्रत्येक व्यक्ति समझदार होगा जब तक कि इसके विपरीत साबित न हो। केवल अपराध के चरित्र से प्राप्त तर्कों पर पागलपन के बचाव को स्वीकार करना सबसे खतरनाक होगा, केवल यह तथ्य कि कोई मकसद साबित नहीं हुआ है कि आरोपी ने अपनी पत्नी और बच्चे की हत्या क्यों की या, यह तथ्य कि उसने भागने का कोई प्रयास नहीं किया जब दरवाजा खोला गया था, यह इंगित नहीं करेगा कि वह पागल था या कि उसके पास अपराध करने के लिए आवश्यक मेन्स रीया नहीं था।

93. आक्षेपित निर्णय और आदेश में विद्वान विचारण न्यायालय ने रिकॉर्ड पर पूरे साक्ष्य, प्रासंगिक केस कानूनों को अवगत कराया है और मामले के सभी पहलुओं पर चर्चा की है जिसमें पागलपन भी शामिल है, इसलिए हम यह नहीं पाते हैं कि आक्षेपित निर्णय और आदेश ठोस कारणों पर आधारित नहीं है, या कानून के सिद्धांत का पालन नहीं किया गया है इसलिए हमारे पास विचारण न्यायालय के निष्कर्षों से असहमत होने का कोई कारण नहीं है।

94. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, हम स्पष्ट रूप से विचार कर रहे हैं कि विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता को उन अपराधों का दोषी पाया है जिनके साथ अपीलकर्ता पर आरोप लगाया गया था और अभियोजन पक्ष ने अपीलकर्ता के खिलाफ संदेह से परे अपने मामले को सफलतापूर्वक साबित कर दिया है, इसलिए उसे सही तरीके से दोषी ठहराया गया है और सजा सुनाई गई है।

95. जहां तक अपीलकर्ता के संबंध में सजा का संबंध है, यह हमेशा एक कठिन कार्य होता है जिसमें विभिन्न विचारों के संतुलन की आवश्यकता होती है। सजा देने का प्रश्न व्यक्तिगत मामले में गंभीर और शमन करने वाली परिस्थितियों पर विचार करने के लिए विवेक का विषय है।

96. यह तय कानूनी स्थिति है कि प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति और जिस तरीके से इसे निष्पादित या कारित किया गया था, उस पर उचित विचार करने के बाद उचित सजा दी जानी चाहिए। यह न्यायालय का दायित्व है कि वह लगातार खुद को कि पीड़ित का अधिकार याद दिलाए और यह कहा जा सकता है, कुछ अवसरों पर पीड़ित व्यक्ति साथ ही, बड़े पैमाने पर समाज पीड़ित हो सकता है, कभी भी हाशिए पर नहीं रखा जा सकता है। दंड की माप अपराध की गंभीरता के अनुपात में होना चाहिए। सजा का उद्देश्य समाज की रक्षा करना और अपराधी को कानून के उपरोक्त उद्देश्य को प्राप्त करने से रोकना होना चाहिए। इसके अलावा, यह उम्मीद की जाती है कि न्यायालय सजा प्रणाली का उचित संचालन करेंगे ताकि ऐसी सजा दी जा सके जो समाज की अंतरात्मा को दर्शाती हो और सजा की प्रक्रिया सख्त होनी चाहिए। न्यायालय अपने कर्तव्य में विफल हो जाएगा यदि किसी ऐसे अपराध के लिए उचित सजा नहीं दी जाती है, जो न केवल व्यक्तिगत पीड़ित के खिलाफ बल्कि समाज के खिलाफ भी किया गया है जो अपराधी और पीड़ित है। किसी अपराध के लिए दी जाने वाली सजा अप्रासंगिक नहीं होनी चाहिए, बल्कि यह अपराध के साथ अत्याचार और क्रूरता के अनुरूप होनी चाहिए, अपराध की भयावहता सार्वजनिक घृणा की आवश्यकता है और इसे 'अपराधी के खिलाफ न्याय के लिए समाज की पुकार का जवाब देना चाहिए'। [वाइस सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह और अन्य, (2014) 7 एस.सी.सी. 323, शाम सुंदर बनाम पूरन, (1990) 4 एस.सी.सी. 731, एमपी बनाम

सलीम, (2005) 5 एस.सी.सी. 554, रावजी बनाम राजस्थान राज्य, (1996) 2 एस.सी.सी. 175]।

97. इसलिए, पूर्वोक्त निर्णयों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों को लागू करते हुए और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता, अपराध की प्रकृति और जिस तरीके से इसे निष्पादित या प्रतिबद्ध किया गया था, उसे ध्यान में रखते हुए, हम पाते हैं कि विचारण न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता पर लगाया गया दंड आक्षेपित निर्णय और आदेश अत्यधिक नहीं है और इस मामले में जिसमें आरोपी को सजा सुनाई गई है, हस्तक्षेप करने का कोई सवाल नहीं उठता है।

98. तथ्यों और परिस्थितियों के मद्देनजर, आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 28.03.2011, पुष्टि के योग्य है और अपील खारिज करने योग्य है।

99. परिणाम में, आपराधिक अपील खारिज की जाती है। आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 28.03.2011 की पुष्टि की जाती है। अपीलकर्ता, जो जेल में है, विचारण न्यायालय द्वारा उसे दी गई सजा को पूरा करेगा।

100. इस आदेश की प्रति निचली अदालत के रिकॉर्ड के साथ तुरंत संबंधित न्यायालय को भेजी जाए।

101. इस आदेश की एक प्रति संबंधित जेल अधीक्षक के माध्यम से अपीलकर्ता को भी भेजी जाए।

(2023) 1 ILRA 1182
अपीलीय क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: लखनऊ 02.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा,
माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी,

विशेष अपील दोषपूर्ण क्रमांक 2/2018

देवेश वर्मा ...अपीलकर्ता
बनाम
क्राइस्ट चर्च कॉलेज एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता:
श्री रमेश चन्द्र सक्सैना, श्री गौरव सक्सैना

अधिवक्ता प्रतिवादी:
सी.एस.सी., श्री जय प्रताप सिंह

ए. शिक्षा कानून –पद से निस्काषन – उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 – धारा 16जी(3)। पोषणीय– जब एक विभाग सार्वजनिक कार्य का निर्वहन एक सकता है और इस प्रकार इसके कार्य संवैधानिक न्यायालय द्वारा न्यायिक समीक्षा के लिए उत्तरदायी हो जाते हैं, इसके कर्मचारियों को सेवा से संबंधित वाद के संबंध में अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदत्त उच्च न्यायालय की शक्तियों को लागू करने का अधिकार नहीं होगा जहां वे शासित नहीं हैं या वैधानिक प्रावधानों द्वारा नियंत्रित नहीं होते है। एक शैक्षणिक संस्थान सार्वजनिक जीवन और सामाजिक क्षेत्र के विभिन्न पहलुओं को छूने वाले असंख्य कार्य कर सकता है। **जबकि ऐसे कार्य जो "सार्वजनिक कर्तव्य" के क्षेत्र में आते हैं, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत चुनौती और जांच के लिए निर्विवाद रूप से स्वतंत्र हैं, सेवा के एक सामान्य अनुबंध के दायरे में पूरी तरह से किए गए कार्य या निर्णय बिना किसी** वैधानिक बल या समर्थन के, इसे संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत चुनौती देने योग्य नहीं माना जा सकता। सेवा शर्तों को वैधानिक प्रावधानों द्वारा नियंत्रित या शासित किए जाने के अभाव में, मामला सेवा के सामान्य अनुबंध के दायरे में ही रहेगा। (पैरा 25)

बी. उ.प्र. इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 की धारा 16-जी(3)(ए) के तहत अनुमोदन - चूंकि अधिनियम की धारा 16-जी (3)(ए) के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए कोई उचित दिशानिर्देश प्रदान नहीं किए गए हैं, इसलिए यह माना जाना चाहिए कि इंस्पेक्टर या इंस्पेक्टर पर इस तरह की अनियंत्रित शक्ति का मतलब होगा अल्पसंख्यक संस्थान की प्रबंध समिति की उसके कर्मचारियों पर अनुशासनात्मक नियंत्रण की शक्ति में दखल देना और इस प्रकार उक्त प्रावधान अल्पसंख्यक संस्थान पर लागू नहीं होगा।

विधायिका का आशय कभी भी अल्पसंख्यक संस्थान के किसी कर्मचारी की बर्खास्तगी के आदेश को चयन बोर्ड की मंजूरी/अस्वीकृति के अधीन करने का नहीं था। वाद के इस दृष्टिकोण में, हमारे लिए यह मानना मुश्किल है कि अल्पसंख्यक संस्थान के किसी कर्मचारी की बर्खास्तगी का आदेश तब तक प्रभावी नहीं किया जा सकता, जब तक कि इंस्पेक्टर/इंस्पेक्टर द्वारा अनुमोदित न हो, जैसा कि धारा 16-जी (3) (ए) या चयन बोर्ड द्वारा 1982 का यू.पी. अधिनियम की धारा 5 में प्रदान किया गया है। **प्रावधानों के तहत, निष्कर्ष यह है कि किसी आदेश के मामले में सक्षम प्राधिकारी की पूर्व स्वीकृति का प्रश्न किसी अल्पसंख्यक संस्थान के किसी कर्मचारी की बर्खास्तगी का प्रश्न नहीं उठता। (पैरा 26)**

इसलिए, किसी निजी शैक्षणिक संस्थान के कर्मचारियों को सेवा से संबंधित मामलों के संबंध में अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदत्त उच्च न्यायालय की शक्तियों को लागू करने का

अधिकार नहीं होगा जहां वे वैधानिक प्रावधानों द्वारा शासित या नियंत्रित नहीं हैं एवं धारा 16 जी (3) के प्रावधान उ.प्र. इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम निजी अल्पसंख्यक संस्थानों में नियोजित शिक्षकों पर लागू नहीं होता है। कोई अन्य वैधानिक प्रावधान नहीं है, जिसका कथित मामले में उल्लंघन किया गया हो। इसलिए, एक पूर्व शिक्षक द्वारा उसकी बर्खास्तगी के आदेश को चुनौती देने और उसकी सेवा की बहाली की मांग करने वाली निजी गैर-सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक संस्थान के खिलाफ दायर याचिका सुनवाई योग्य नहीं है। (पैरा 27)

सी. तथ्य के कई विवादित प्रश्न - अपीलकर्ता का दावा है कि उसे विधिवत चयनित और नियुक्त किया गया था, लेकिन उसने नियुक्ति पत्र या नियुक्ति के अनुबंध की एक प्रति दाखिल नहीं की है जिससे उसकी सेवा शर्तों का पता लगाया जा सके। कॉलेज ने तर्क दिया है कि न तो कोई विज्ञापन जारी किया गया था और न ही कोई चयन हुआ था और अपीलकर्ता के व्यक्तिगत अनुरोध पर, उसे मौखिक रूप से काम पर लगाया गया था और लगभग 4 महीने तक काम करने के बाद, उसने कॉलेज के प्रिंसिपल के साथ दुर्व्यवहार किया और प्रिंसिपल ने उनके खिलाफ 31.03.1992 को एफआईआर दर्ज कराई थी। उसके बाद अपीलकर्ता ने अपने कर्तव्यों का पालन नहीं किया। क्या अपीलकर्ता का विधिवत चयन और नियुक्ति नहीं की गई थी और उसकी सेवा शर्तें क्या थीं, ये ऐसे तथ्य हैं जो विवाद में हैं और जिनके संबंध में कोई सामग्री रिकॉर्ड पर उपलब्ध नहीं है। इस कारण से भी, याचिका सुनवाई योग्य नहीं होगा। (पैरा 28)

विशेष अपील निरस्त। (ई 4)

<u>**उद्धत वाद:**</u>

1. प्रबंधन समिति, सेंट जॉन्स इंटर कॉलेज बनाम गिरधारी सिंह और अन्य (2001) 4 एससीसी 296 (पैरा 5)
2. प्रबंधन समिति, ला मार्टिनियर कॉलेज, लखनऊ बनाम वत्सल गुप्ता और अन्य सिविल अपील संख्या 7030/2016, दिनांक 26.07.2016 को निर्णय लिया गया (पैरा 5)
3. अबू ज़ैद और अन्य बनाम प्रिंसिपल, मदरसा-तुल-इस्लाह सरायमीर, आज़मगढ़ और अन्य एआईआर 1999 ऑल 64 (पैरा 7)
4. संदीप चौहान एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य. 2001 (2) एलबीईएसआर 644 (पैरा 7)
5. हेरोल्ड जेम्स बनाम भारत संघ, (2004) 22 एलसीडी 1649 (पैरा 7)
6. रमेश अहलूवालिया बनाम पंजाब राज्य., (2012) 12 एससीसी 331 (पैरा 7)
7. रॉयचन अब्राहम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2019) 2 यूपीएलबीईएस 1148 (एफबी) (पैरा 7)
8. मारवाड़ी बालिका विद्यालय बनाम आशा श्रीवास्तव, (2020) 14 एससीसी 449 (पैरा 7)
9. सेंट मैरी एजुकेशनल सोसायटी और अन्य बनाम राजंद्र प्रसाद भार्गव और अन्य 2022 एससीसी ऑनलाइन 1091 (पैरा 7)
10. प्रबंधन समिति, ला मार्टिनियर कॉलेज, लखनऊ बनाम वत्सल गुप्ता और अन्य, एस.एल.पी. (सिविल) क्रमांक 3182 / 2016, निर्णय 26.07.2016 (पैरा 8)
11. सतीम्बला शर्मा बनाम सेंट पॉल' सीनियर सेकेंडरी स्कूल, (2011) 13 एससीसी 760 (पैरा 8)
12. डॉ. एस.एन. त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ., 2010 एससीसी ऑनलाइन सभी 1965 (पैरा 8)
13. भावनगर विश्वविद्यालय बनाम पालिताना शुगर मिल (पी) लिमिटेड, (2003) 2 एससीसी 111 (पैरा 10)
14. एस्कॉर्ट्स लिमिटेड बनाम सीसीई, (2004) 8 एससीसी 335 (पैरा 10)
15. भारत पेट्रोलियम कार्पोरेशन लिमिटेड बनाम एनआर वैरामणि, (2004) 8 एससीसी 579 (पैरा 11)

<u>**विशिष्ट वाद:**</u>

अंडी मुक्ता सद्गुरु श्री मुक्ताजी वंदास सावमी सुवर्णा जयंती महोत्सव स्मारक ट्रस्ट और अन्य बनाम वी.आर. रुदानी एवं अन्य (1989) 2 एससीसी 691 (पैरा 7, 14, 15)

वर्तमान आंतरिक न्यायालय अपील माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा रिट याचिका संख्या 6630/1996 (एस/एस) में पारित आदेश दिनांक 12.09.2017 आदेश के विरुद्ध योजित किया गया, जिसमें अपीलकर्ता ने धारा 16 जी (3) उ.प्र. इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के उल्लंघन के आधार पर क्राइस्ट चर्च कॉलेज, लखनऊ में व्याख्याता के पद से अपने निष्कासन को चुनौती दी थी।

(माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा,
&
माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा प्रदत्त)

<u>**विशेष अपील पर आदेश**</u>

1- वर्तमान अंतर न्यायालय अपील के माध्यम से, अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता ने वर्ष1996 की रिट याचिका संख्या 6630 (एस/एस) को खारिज करते हुए माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 12.09.2017 को चुनौती दी है जो अपीलकर्ता द्वारा क्राइस्ट चर्च कॉलेज, लखनऊ (जिसे इसके बाद 'कॉलेज'

के रूप में संदर्भित किया जाएगा) में प्रवक्ता के पद से हटाने को चुनौती देते हुए इस आधार पर दायर किया गया था कि निष्कासन उ.प्र. इंटरमीडियेट शिक्षा अधिनियम, 1921 की धारा 16G(3) का उल्लंघन करते हुए किया गया था।

2- संक्षेप में वाद के तथ्य यह हैं कि अपीलकर्ता ने इन अभिकथनों के साथ रिट याचिका प्रस्तुत की थी कि उसका विधिवत चयन हो गया था और उसे कॉलेज में भौतिकी के प्रवक्ता के रूप में नियुक्त किया गया था और उसने 07.10.1991 को पदभार ग्रहण कर लिया था। 31.03.1992 को, कॉलेज के प्राचार्य ने अपीलकर्ता के विरुद्ध पुलिस स्टेशन हजरतगंज, लखनऊ में भारतीय दंड संहिता की धारा 504/506 के अंतर्गत केस अपराध संख्या 380/92 के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई थी, और अपीलकर्ता 16.07.1992 को गिरफ्तार किया गया। अपीलकर्ता को उसी दिन जमानत दे दी गई लेकिन कॉलेज के प्राचार्य ने उसे पुन: पदभार ग्रहण करने की अनुमति नहीं दी और कहा कि जब तक वह आरोपों से मुक्त नहीं हो जाता, वह अपीलकर्ता को पदभार ग्रहण करने की अनुमति नहीं देगा। अंततः अपीलकर्ता को दिनांक 24.05.1996 के निर्णय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया, किन्तु जब वह पदभार ग्रहण करने गया, तो कॉलेज के प्राचार्य ने उसे बताया कि अपीलकर्ता के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त कर लिया गया था और अपीलकर्ता की सेवाएं 17.07.1992 से स्वतः समाप्त हो गई थीं।

3- अपीलकर्ता ने अपनी सेवाओं की मौखिक समाप्ति को मुख्य रूप से इस आधार पर चुनौती दी कि उसकी सेवाओं को समाप्त करने के पूर्व, उ.प्र. इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम की धारा 16 जी (3) के अंतर्गत अपेक्षित अनुमोदन प्राप्त नहीं किया गया था।

4- कॉलेज ने प्रतिशपथ पत्र दायर कर तर्क प्रस्तुत किया कि वह भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद द्वारा मान्यता प्राप्त एक अल्पसंख्यक संस्थान है। यह एक निजी संस्थान है जो राज्य सरकार से कोई वित्तीय सहायता नहीं प्राप्त करता है और राज्य सरकार इसमें कोई भूमिका नहीं निभाता है। उ.प्र. इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम के प्रावधान कॉलेज पर लागू नहीं होते हैं। प्रतिशपथ पत्र में यह भी कहा गया कि प्रवक्ता पद पर नियुक्ति हेतु कोई चयन नहीं किया गया था और याचिकाकर्ता ने व्यक्तिगत रूप से अपनी नियुक्ति हेतु अनुरोध किया था और उनके व्यक्तिगत अनुरोध पर उन्हें अस्थायी रूप से कार्य करने की मौखिक अनुमति दी गई थी। याचिकाकर्ता ने लगभग चार माह ही कार्य किया और 31.03.1992 को प्राचार्य के साथ दुर्व्यवहार करने के बाद उसने एक दिन भी कार्य नहीं किया।

5- माननीय एकल न्यायाधीश ने प्रबंधन समिति, सेंट जॉन इंटर कॉलेज बनाम गिरधारी सिंह और अन्य, (2001) 4 एससीसी 296 के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि उ.प्र. इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 की धारा 16 जी (3) के प्रावधान अल्पसंख्यक संस्थानों पर लागू नहीं होते हैं। माननीय एकल न्यायाधीश ने प्रबंधन समिति, ला मार्टिनियर कॉलेज, लखनऊ बनाम वत्सल गुप्ता और अन्य, 2016 की सिविल अपील संख्या 7030 वाद में 26.07. 2016 को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एक पारित हो चुके निर्णय में हस्तक्षेप करना अस्वीकृत कर दिया एवं गैर सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक निजी संस्थान के विरुद्ध दायर रिट याचिका पर विचार करने से इनकार कर दिया।

6- माननीय एकल न्यायाधीश ने प्रतिशपथपत्र में प्रस्तुत इस तर्क को ध्यान में रखते हुए कि यह कॉलेज, भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद द्वारा मान्यता प्राप्त एक निजी अल्पसंख्यक संस्थान है और इसके विरुद्ध दायर रिट याचिका पोषणीय नहीं है, रिट याचिका खारिज कर दी।

7- अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आर. सी. सक्सेना ने अभिकथन प्रस्तुत किया है कि कॉलेज बच्चों को शिक्षा प्रदान करते है, जो एक सार्वजनिक कर्तव्य है और ऐसी संस्था के विरुद्ध दायर रिट याचिका पोषणीय होगी। अपने तर्क के समर्थन में, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया है: -

I - अंडी मुक्ता सद्गुरु श्री मुक्ताजी वंदास स्वामी सुवर्ण जयंती महोत्सव स्मारक ट्रस्ट और अन्य बनाम वी. वी. आर. रुदानी और अन्य, (1989) 2 एससीसी 691

II - अबू ज़ैद और अन्य बनाम प्राचार्य, मदरसा-तुल-इस्लाह सरायमीर, आज़मगढ़ और अन्य AIR 1999 All 64

III - संदीप चौहान और अन्य बनाम प्रतिवादी: उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2001 (2) एलबीईएसआर 644

IV - हेरोल्ड जेम्स बनाम भारत संघ, (2004) 22 एलसीडी 1649

V - रमेश अहलूवालिया बनाम पंजाब राज्य, (2012) 12 एससीसी 331

VI - रॉयचन अब्राहम बनाम उ.प्र. राज्य, (2019) 2 यूपीएलबीईएस 1148 (एफबी)

VII - मारवाड़ी बालिका विद्यालय बनाम आशा श्रीवास्तव, (2020) 14 एससीसी 449,

VIII - सेंट मैरी एजुकेशनल सोसाइटी और अन्य बनाम राजांद्र प्रसाद भार्गव और अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1091

8- इसके विपरीत, कॉलेज का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री जय प्रताप सिंह ने अभिकथन किया है कि विचाराधीन संस्थान एक निजी गैर-सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक संस्थान है, एवं माननीय एकल न्यायाधीश ने सही धरित किया था कि रिट याचिका पोषणीय नहीं है। उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया है: -

I - प्रबंधन समिति, ला मार्टिनियर कॉलेज, लखनऊ बनाम वत्सल गुप्ता और अन्य, एस.एल.पी. (सिविल) संख्या 3182/2016, निर्णय दिनांकित: 26.07.2016 ,

II - सतीम्बला शर्मा बनाम सेंट पॉल सीनियर सेकेंडरी विद्यालय, (2011) 13 एससीसी 760

III - डॉ. एस.एन.त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2010 एससीसी ऑनलाइन ALL 1965

IV - प्रबंधन समिति, सेंट जॉन इंटर कॉलेज बनाम गिरधारी सिंह, (2001) 4 एससीसी 296

9- हमने विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त अभिकथनों पर विचार किया है।

10- भावनगर विश्वविद्यालय बनाम पलिताना शुगर मिल (प्रा.) लिमिटेड, (2003) 2 एससीसी 111 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया कि: -

"एक निर्णय, जैसा कि सर्वविदित है, उस बिंदु हेतु प्राधिकार है जिसके प्रति निर्णय लिया जाता है, न कि उस निष्कर्ष हेतु जो उससे तार्किक रुप में निकाला जा सकता है। यह भी भली-

भाँति स्थापित है कि तथ्यों या अतिरिक्त तथ्यों में थोड़ा सा अंतर किसी निर्णय के पूर्वनिर्णय मूल्य में बहुत अंतर ला सकता है।"

11- एस्कॉर्ट्स लिमिटेड बनाम सीसीई, (2004) 8 एससीसी 335 और भारत पेट्रोलियम कॉरपोरेशन लिमिटेड बनाम एन.आर. वैरामनी, (2004) 8 एससीसी 579 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया कि: -

"8. न्यायालयों को इस विषय़ पर चर्चा किए बिना निर्णयों पर विश्वास व्यक्त नहीं करना चाहिए कि वर्तमान वाद की तथ्यात्मक स्थिति एवं उस वाद की तथ्यात्मक स्थिति में क्या साम्य है, जिसके निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया गया है। न्यायालयों की टिप्पणियों को न तो यूक्लिड के प्रमेयों के रूप में पढ़ा जाना चाहिए और न ही विधिक प्रावधानों के रूप में और वह भी उनके संदर्भ की परिधि से बाहर। इन टिप्पणियों को उसी संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए जिसमें वे कही गई प्रतीत होती हैं। न्यायालयों के निर्णयों को संविधि के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए। संविधियों के शब्दों, वाक्यांशों और प्रावधानों की व्याख्या करने हेतु, न्यायाधीशों द्वारा लंबी चर्चा करना आवश्यक हो सकता है किंतु चर्चा का उद्देश्य व्याख्या करना है न कि परिभाषित करना। न्यायाधीश विधि की विवेचना करते हैं, वे निर्णयों की विवेचना नहीं करते। वे संविधियों के शब्दों की विवेचना करते हैं; उनके शब्दों की व्याख्या विधि के रूप में नहीं की जानी चाहिए। लंदन ग्रेविंग डॉक कंपनी लिमिटेड बनाम हॉर्टन (1951) 2 All ER 1 (एचएल), लॉर्ड मैकडरमॉट ने टिप्पणी की: (All ER P. 14 C-D)

"निश्चित रुप से, इस वाद को मात्र विल्स, जे. के ठीक उन्हीं शब्दों को मान कर नहीं सुलझाया जा सकता है, जैसे कि वे संसद के एक अधिनियम का भाग थे और विवेचना के उचित नियमों को लागू कर रहे थे। इसका उद्देश्य सर्वाधिक प्रतिष्ठित न्यायाधीशों द्वारा वास्तविक रुप से उपयोग की जाने वाली भाषा को दिये जाने वाले अतिमहत्व से विचलन नहीं है।

9. होम ऑफिस बनाम डोरसेट यॉट कंपनी (1970) 2 All ER 294 में, लॉर्ड रीड ने कहा (All ER पृष्ठ. 297जी-एच): -

लॉर्ड एटकिन के भाषण... को ऐसे नहीं माना जाना चाहिए जैसे कि यह एक वैधानिक परिभाषा हो। नई परिस्थितियों में इसे अर्हता की आवश्यकता होगी।"

शेफर्ड होम्स लिमिटेड बनाम सैंडहैम (संख्या 2)4 में मेगरीं, जे. ने टिप्पणी की (ALL ER पृष्ठ 1274डी-ई): -

"किसी को, यहाँ तक कि रसेल, एल.जे. के एक आरक्षित निर्णय को भी इस प्रकार नहीं मानना चाहिए जैसे कि यह संसद का कोई अधिनियम हो।"

हेरिंगटन बनाम ब्रिटिश रेलवे बोर्ड 5 में लॉर्ड मॉरिस ने कहा: (ALL ER पृष्ठ 761सी)

"किसी भाषण या निर्णय के शब्दों को ऐसे मानने में सदैव आशंका होता है जैसे कि वे एक विधायी अधिनियम के शब्द हो, और यह याद रखें कि न्यायिक कथन किसी विशेष वाद के तथ्यों की पृष्ठभूमि में किए जाते हैं।

10. परिस्थितिजन्य नम्यता, एक अतिरिक्त या भिन्न तथ्य, दो मामलों में निष्कर्षों के मध्य जमीन-आसमान का अंतर ला सकता है। निर्णय पर आँख मूंदकर भरोसा कर वादों का निपटारा करना उचित नहीं है।"

12- उपरोक्त सिद्धांतों के आलोक में, हम उस तथ्यात्मक पृष्ठभूमि के आलोक में पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास किये गए निर्णयों की तर्कसंगतता का परीक्षण करेंगे जिनमें तर्कसंगतता प्रतिपादित की गई थी।

13- अंडी मुक्ता सद्गुरु श्री मुक्ताजी वंदस स्वामी सुवर्ण जयंती महोत्सव स्मारक ट्रस्ट बनाम वी.आर. रुदानी, (1989) 2 एससीसी 691, वाद में एक निजी संस्थान के शिक्षकों ने एक रिट याचिका दायर की थी जिसमें संस्थान बंद होने के परिणामस्वरूप उनकी सेवाओं की समाप्ति पर उनके बकाया भुगतान का दावा किया गया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह नोट करने के बाद इसमें सम्मिलित प्रश्नों पर निर्णय लिया: -

> *"5.* ***जैसा कि इन अनुतोषों से स्पष्ट है, छंटनी किये गये व्यक्ति सेवा में अपनी निरंतरता हेतु आंदोलन नहीं कर रहे थे।*** *ऐसा लगता है कि उन्होंने नियति पर भरोसा कर लिया है और कॉलेज बंद करना स्वीकार कर लिया है। उन्होंने मात्र अवशेष वेतन, भविष्य निधि, ग्रेच्युटी और समापन क्षतिपूर्ति की मांग की जो उन्हें वैध रूप से देय है।*

13. वैश डिग्री कॉलेज (1976) 2 एससीसी 58 में घोषित निर्णय का अनुसरण दीपक कुमार विश्वास (1987) 2 एससीसी 252 के वाद में किया गया। वहाँ पुनः एक निजी कॉलेज का बर्खास्त प्रवक्ता सेवा में बहाली की मांग कर रहा था। न्यायालय ने अनुतोष प्रदान करने से इनकार कर दिया। हालांकि यह पाया गया कि बर्खास्तगी गलत थी। इसके स्थान पर इस न्यायालय ने प्रवक्ता को पर्याप्त मौद्रिक लाभ प्रदान किया। ***यह सामान्य विधिक सिद्धांत के कारण प्रमुख न्यायिक मत प्रतीत होता है कि एक सेवा अनुबंध का विशेष रूप से प्रवर्तन नहीं किया जा सकता है।***

14. ***लेकिन यहाँ तथ्य पूर्णतः भिन्न हैं। संविदात्मक सेवा के विनिर्दिष्ट अनुपालन हेतु कोई अभिकथन नहीं है। उत्तरदाता यह घोषणा नहीं चाह रहे हैं कि उन्हें सेवा में जारी रखा जाए। वे उन्हें कॉलेज में वापस लाने हेतु परमादेश नहीं मांग रहे हैं। वे मात्र उन्हें देय सेवांत लाभ और अवशेष वेतन का दावा कर रहे हैं।*** *प्रश्न यह है कि क्या ट्रस्ट को परमादेश रिट द्वारा भुगतान करने हेतु बाध्य किया जा सकता है?*

15. यदि अधिकार पूर्णतः निजी हैं तो कोई परमादेश जारी नहीं किया जा सकता। यदि कॉलेज का प्रबंधन पूरी तरह से एक निजी संस्था है, जिसका कोई सार्वजनिक कर्तव्य नहीं है, तो परमादेश प्रयोज्य नहीं होगा। परमादेश के दो अपवाद हैं। लेकिन जब ये अनुपस्थित हो और जब पक्षकार के पास कोई अन्य समान

रूप से सुविधाजनक उपाय न हो, तो परमादेश से इनकार नहीं किया जा सकता है। ***यह तथ्य समझना होगा कि अपीलकर्ता ट्रस्ट उस संबद्ध कॉलेज का प्रबंधन कर रहा था जिसे सरकारी सहायता के रूप में सार्वजनिक धन का भुगतान किया जाता है। सरकारी सहायता के रूप में भुगतान किया गया सार्वजनिक धन शैक्षणिक संस्थानों के नियंत्रण, अनुरक्षण एवं कार्यव्यवहार में प्रमुख भूमिका निभाता है। सरकारी संस्थानों की भाँति सहायता प्राप्त संस्थान, छात्रों को शिक्षा प्रदान कर सार्वजनिक कार्य करते हैं। वे संबद्ध विश्वविद्यालय के नियमों और विनियमों के अधीन हैं। उनकी गतिविधियां विश्वविद्यालय प्राधिकारियों के अधीक्षण के अधीन होती है। इसलिए, ऐसे संस्थानों में नियोजन किसी भी सार्वजनिक चरित्र से हीन नहीं है। शैक्षणिक स्टाफ की सेवा शर्तें भी ऐसी ही हैं। जब विश्वविद्यालय उनके वेतनमान के संबंध में कोई निर्णय लेगा तो यह प्रबंधन हेतु बाध्यकारी होगा। इसलिए, शैक्षणिक कर्मचारियों की सेवा शर्तें पूर्ण रूपेण निजी चरित्र की नहीं हैं। इसमें विश्वविद्यालय के निर्णयों द्वारा कर्मचारियों और प्रबंधन के मध्य विधिक अधिकार-कर्तव्य संबंध बनाने हेतु अतिरिक्त सुरक्षा है। जब इस संबंध का अस्तित्व हो तो पीड़ित पक्ष को परमादेश देने से इनकार नहीं किया जा सकता।***

* * *

20. संदर्भ में, अनुच्छेद 226 में प्रयुक्त शब्द "प्राधिकरण" को अनुच्छेद 12 के निबंधन के विपरीत एक उदार अर्थ प्राप्त होना चाहिए। अनुच्छेद 12 मात्र अनुच्छेद 32 के अंतर्गत मौलिक अधिकारों की प्रवर्तनीयता के उद्देश्य से प्रासंगिक है। अनुच्छेद 226 उच्च न्यायालयों को मौलिक अधिकारों के साथ-साथ गैर-मौलिक अधिकारों को लागू करने हेतु रिट जारी करने की शक्ति प्रदान करता है। इसलिए, अनुच्छेद 226 में प्रयुक्त शब्द "कोई भी व्यक्ति या प्राधिकरण" मात्र राज्य के वैधानिक अधिकारियों और तंत्र तक ही सीमित नहीं है। वे सार्वजनिक कर्तव्य निभाने वाले किसी अन्य व्यक्ति या निकाय को सम्मिलित कर सकते हैं। संबंधित निकाय का स्वरूप बहुत अधिक प्रासंगिक नहीं है। जो प्रासंगिक है वह निकाय पर लगाए गए कर्तव्य की प्रकृति है। कर्तव्य का निर्णय प्रभावित पक्ष के प्रति व्यक्ति या प्राधिकारी के सकारात्मक दायित्व के आलोक में किया जाना चाहिए। यह अप्रासंगिक है कि कर्तव्य किस माध्यम से आरोपित किया गया है, यदि कोई सकारात्मक दायित्व उपस्थित है तो परमादेश से इनकार नहीं किया जा सकता है।"

(बल दिया गया)

14- इस बात को अनदेखा नहीं किया जा सकता कि उपरोक्त प्रस्थापना इस तथ्य के दृष्टिगत प्रतिपादित की गई थी कि छंटनीशुदा व्यक्ति सेवा में अपनी निरंतरता हेतु आंदोलन नहीं कर रहे थे और उन्होंने मात्र अवशेष वेतन, भविष्य निधि, ग्रेच्युटी और समापन प्रतिकर की मांग की थी जो उन्हें वैध रूप से देय था। संविदात्मक सेवा के विनिर्दिष्ट पालन हेतु कोई अभिकथन नहीं था। उत्तरदाता यह घोषणा नहीं चाह रहे थे कि उन्हें सेवा में जारी रखा जाए। वे उन्हें कॉलेज में वापस रखने हेतु परमादेश नहीं मांग रहे थे। वे मात्र सेवांत लाभ और उन्हें देय अवशेष

वेतन के बकाया का दावा कर रहे थे और प्रश्न यह था कि क्या न्यास को परमादेश की रिट द्वारा भुगतान करने हेतु बाध्य किया जा सकता है। न्यायालय ने कहा कि यदि कॉलेज का प्रबंधन पूरी तरह से एक निजी संस्था है और उसका कोई सार्वजनिक कर्तव्य नहीं है तो परमादेश प्रयोज्य न होगा। अपीलकर्ता न्यास एक संबद्ध कॉलेज का प्रबंधन कर रहा था, जिसमें सार्वजनिक धन को सरकारी सहायता के रूप में भुगतान किया गया था और सार्वजनिक धन को सरकारी सहायता के रूप में भुगतान किया गया था, जो शैक्षणिक संस्थानों के नियंत्रण, अनुरक्षण और कार्यव्यवहार में प्रमुख भूमिका निभाता है। सरकारी संस्थानों की तरह सहायता प्राप्त संस्थान छात्रों को शिक्षा प्रदान करके सार्वजनिक कार्य करते हैं। न्यायालय ने माना कि ऐसे संस्थानों में रोजगार किसी भी सार्वजनिक चरित्र से रहित नहीं है और शैक्षणिक कर्मचारियों की सेवा शर्तें भी ऐसी ही हैं। जब विश्वविद्यालय उनके वेतनमान के संबंध में कोई निर्णय लेगा तो यह प्रबंधन हेतु बाध्यकारी होगा। इसलिए, शैक्षणिक कर्मचारियों की सेवा शर्तें पूर्णत: निजी चरित्र की नहीं हैं।

15- वर्तमान वाद में, कॉलेज एक निजी अल्पसंख्यक संस्थान है जिसे सरकार से कोई वित्तीय सहायता नहीं मिलती है, और प्रस्तुत शिकायत एक शिक्षक की सेवाओं की समाप्ति के विरुद्ध है, और अपीलकर्ता की सेवा में बहाली हेतु प्रार्थना की गई है। इसलिए, विशेष रूप से इस तथ्य पर प्रकाश डालने के बाद कि उस वाद में याचिकाकर्ता अपनी सेवाओं की समाप्ति को चुनौती नहीं दे रहे थे और वे सेवा में बहाली की मांग नहीं कर रहे थे, अंडी मुक्ता में प्रतिपादित उपरोक्त सिद्धांत वर्तमान वाद पर लागू नहीं होंगे।

16- **अबू ज़ैद और अन्य बनाम प्राचार्य, मदरसा-तुल-इस्लाह सरायमीर, आज़मगढ़ और अन्य AIR 1999 ALL 64**, उन छात्रों द्वारा दायर एक याचिका थी जिन्हें एक आपराधिक वाद में सम्मिलित होने के कारण संस्थान में अध्ययन प्रारंभ रखने से रोक दिया गया था और यह ऐसा मामला भी नहीं था जिसमें एक अल्पसंख्यक संस्थान में सेवाओं की समाप्ति के आदेश की वैधता मुद्दा थी। न्यायालय के समक्ष यह अभिकथन प्रस्तुत किया गया कि *"उत्तरदाताओं ने अवैध रूप से और सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना या कारण बताए बिना, उन्हें अपनी कक्षाओं में भाग लेने से रोका, हालांकि कोई विशिष्ट आदेश पारित नहीं किया गया है। याचिकाकर्ताओं को, वर्तमान रिट याचिका दायर करना आवश्यक है क्योंकि उत्तरदाता, याचिकाकर्ताओं को प्रतिवादी-संस्थान में अपना अध्ययन प्रारंभ रखने के उनके विधिक अधिकार से वंचित करने पर तुले हुए हैं।"*

रिट याचिका पर निर्णय लेते समय, एकल पीठ ने कहा कि:-

> *"10. प्रतिवादी मदरसा-तुल-इस्लाह, सरायमीर, आज़मगढ़ स्वीकृत रुप से सोसायटी पंजीकरण अधिनियम के अंतर्गत विधिवत मान्यता प्राप्त संस्थान है और इसके मामलों को अनुमोदित उप-विधियों और प्रशासनिक योजना द्वारा विनियमित किया जाता है। अल्पसंख्यक होते हुए भी यह संस्था शिक्षा प्रदान करने के सार्वजनिक कर्तव्य का निर्वहन कर रही है, जिसे एक मौलिक अधिकार माना गया है। इसलिए, ऊपर चर्चा की गई विधि के दृष्टिगत, याचिकाकर्ता रिट की प्रकृति में उचित निर्देश और आदेश प्राप्त करने हेतु इस न्यायालय के समक्ष याचिका प्रस्तुत करने के अधिकारी हैं।"*

17- **संदीप चौहान एवं अन्य बनाम प्रतिवादी: उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2001 (2) एलबीईएसआर 644**, वाद में इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने धारित किया कि केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, शिक्षा केंद्र, प्रति विहार, नयी दिल्ली के विरुद्ध याचिका पोषणीय है।

18- **रमेश अहलूवालिया बनाम पंजाब राज्य, (2012) 12 एससीसी 331** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया कि:-

> *"12. हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत अभिकथनों पर विचार किया है। हमारी राय में, अंडी मुक्ता सदगुरू श्री मुक्ताजी वंदस स्वामी सुवर्ण जयंती महोत्सव स्मारक न्यास में इस न्यायालय द्वारा घोषित निर्णय के दृष्टिगत इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि एक पूर्णतः निजी निकाय भी, जिसके आंतरिक मामलों पर राज्य का कोई नियंत्रण नहीं है, परमादेश रिट जारी किये जाने हेतु संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के अधीन होगा। बशर्ते, निजी निकाय सार्वजनिक कार्य कर रहा हो, जो सामान्यतया राज्य प्रधिकारियों द्वारा किया जाना प्रत्याशित है।*
>
> * * *
>
> ***16. हमारी सुविचारित राय है कि चूंकि रिट याचिका में स्पष्ट रूप से तथ्य के विवादित प्रश्न सम्मिलित हैं, इसलिए यह उचित है कि वाद का निर्णय समुचित अधिकरण/न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए।"***
>
> (बल दिया गया)

19- **रॉयचन अब्राहम बनाम उ.प्र. राज्य, (2019) 2 यूपीएलबीईएस 1148 (एफबी)** में, इस न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने धारित किया कि: -

> *"छह वर्ष की आयु से छात्रों को शिक्षा, जिसमें उच्च शिक्षा, भी सम्मिलित है , प्रदान करने वाले निजी संस्थान, सार्वजनिक कर्तव्य का पालन करते हैं जो मुख्य रूप से राज्य का कार्य है, इसलिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय की न्यायिक समीक्षा हेतु अधीन है।*

20- **मारवाड़ी बालिका विद्यालय बनाम आशा श्रीवास्तव, (2020) 14 एससीसी 449** के वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया कि निजी गैर-सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्थानों के विरुद्ध भी रिट याचिका पोषणीय है।

21- **सतीम्बला शर्मा बनाम सेंट पॉल सीनियर सेकेंडरी विद्यालय, (2011) 13 एससीसी 760** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया कि: -

> *"गैर-सहायता प्राप्त निजी अल्पसंख्यक विद्यालय, जिन पर अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत उनकी स्वायत्तता के कारण सरकार का कोई प्रशासनिक नियंत्रण नहीं है, संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में राज्य नहीं हैं। चूँकि संविधान के अनुच्छेद 14 के अंतर्गत समानता का अधिकार राज्य के विरुद्ध उपलब्ध है, इसलिए गैर-सहायता प्राप्त निजी अल्पसंख्यक स्कूलों के विरुद्ध इसका दावा नहीं किया जा सकता है।"*

* * *

25. जहाँ कोई वैधानिक प्रावधान किसी निजी गैर-सहायता प्राप्त विद्यालय पर अपने शिक्षकों को वहीं वेतन और भत्ते देने का कर्तव्य आरोपित करता है जो सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों के शिक्षकों को भुगतान किया जा रहा है, तो इसे वैधानिक कर्तव्य को प्रवर्तन हेतु विद्यालय के विरुद्ध परमादेश की रिट जारी की जा सकती है। लेकिन वर्तमान वाद में, ऐसा कोई वैधानिक प्रावधान नहीं था जिसके अंतर्गत एक निजी गैर-सहायता प्राप्त विद्यालय को अपने शिक्षकों को वहीं वेतन और भत्ते देने की आवश्यकता हो जो सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों को देय थे और इसलिए निजी मान्यता प्राप्त विद्यालयों के शिक्षकों को भुगतान करने हेतु कोई परमादेश जारी नहीं किया जा सकता था।''

22- **डॉ. एस.एन.त्रिपाठी बनाम उ.प्र. राज्य 2010 एससीसी ऑनलाइन All 1965** में, इस न्यायालय ने कहा कि *"सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम के अंतर्गत गठित एक सरकारी सहायता प्राप्त निजी सोसायटी, भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ के अंतर्गत 'राज्य' नहीं होगी"। इसलिए रिट याचिका पोषणीय नहीं है।"* न्यायालय ने आगे कहा कि:-

"15. हालाँकि, इसका मतलब यह नहीं है कि याचिकाकर्ता या सरकार द्वारा सहायता प्राप्त कॉलेज के कर्मचारी उपचारहीन हैं। इंटरमीडिएट कॉलेज की स्थिति में, जिला विद्यालय निरीक्षक या क्षेत्रीय उप निदेशक या शिक्षा निदेशक को विधि में निहित प्रावधानों के अनुसार या वेतन भुगतान अधिनियम के अंतर्गत हस्तक्षेप करने की पर्याप्त शक्तियाँ प्राप्त हैं। यदि कोई डिग्री कॉलेज विश्वविद्यालय से संबद्ध है, तो उ.प्र. राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम और उसकी संविधियों के अनुसार, कर्मचारियों को अपनी शिकायत व्यक्त करने हेतु कुलपति/उच्च शिक्षा निदेशक जैसे समुचित प्राधिकारी से व्यथा निवारण करा सकने का अधिकार प्राप्त है।

16. तदनुसार, यह मानते हुए कि वर्तमान रिट याचिका पोषणीय नहीं है, हम याचिकाकर्ता को वेतन के भुगतान के संबंध में निदेशक उच्च शिक्षा या कुलपति, जैसा भी मामला हो, से संपर्क करने की स्वतंत्रता देते हैं। यदि याचिकाकर्ता अपने वाद का प्रतिवेदन देता है, तो प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से तीन माह की अवधि में इस पर विचार किया जाएगा और त्वरित निर्णय लिया जाएगा, और निर्णय की सूचना दी जाएगी।''

23- **ला मार्टिनियर कॉलेज, लखनऊ बनाम वत्सल गुप्ता और अन्य, 2016** की सिविल अपील संख्या 7030 में 26.07.2016 को निर्णय सुनाया गया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने गैर-सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक निजी संस्था के विरुद्ध दायर रिट याचिका पर विचार करने से इनकार करते हुए इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया और यह धारित किया कि: -

"अपीलकर्ता संख्या 1 एक गैर-सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक निजी संस्था है। हमें कोई कारण नहीं दिखता कि उस संस्था के विरुद्ध रिट

याचिका पर कैसे विचार किया जा सकता है। उच्च न्यायालय ने रिट याचिका पर विचार कर और तत्पश्चात के निर्देश पारित करने में स्पष्ट रूप से त्रुटि की।"

24- विगत कई निर्णयों पर विचार करने के बाद, **सेंट मैरी एजुकेशनल सोसाइटी और अन्य बनाम राजंद्र प्रसाद भार्गव और अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1091** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक नवीनतम निर्णय में, ने निम्नलिखित दो प्रश्न निर्णीत किये हैं: -

> *"(ए) क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट याचिका एक निजी गैर-सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक संस्थान के विरुद्ध पोषणीय है?*
>
> *(बी) क्या निजी शैक्षणिक संस्थान और उसके कर्मचारी से जुड़े निजी क्षेत्र के सेवा विवाद का निर्णय संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत दायर रिट याचिका में किया जा सकता है? दूसरे शब्दों में, भले ही सार्वजनिक कर्तव्य निभाने वाला कोई निकाय रिट क्षेत्राधिकार के अधीन है, क्या उसके सभी निर्णय न्यायिक समीक्षा के अधीन हैं या मात्र वे निर्णय जिनमें सार्वजनिक तत्व हैं, रिट क्षेत्राधिकार के अंतर्गत न्यायिक समीक्षा के अधीन है?"*

25- माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर निम्नवत प्रदान किया है:-

> "69. हम अपने अंतिम निष्कर्षों को इस प्रकार सारांशित कर सकते हैं:-
>
> *(ए) संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत कोई आवेदन, सार्वजनिक कर्तव्यों या सार्वजनिक कार्यों का निर्वहन करने वाले किसी व्यक्ति या निकाय के विरुद्ध पोषणीय है। सार्वजनिक कर्तव्य वैधानिक या अन्यथा हो सकता है और जहाँ यह अन्यथा है, निकाय या व्यक्ति को सार्वजनिक विधि तत्व को सम्मिलित करते हुए जनता के प्रति उस कर्तव्य या दायित्व को निभाना दिखाया जाना चाहिए। इसी प्रकार, सार्वजनिक कार्यों के निर्वहन के निर्धारण हेतु, यह स्थापित किया जाना चाहिए कि निकाय या व्यक्ति जनता या उसके एक वर्ग के सामूहिक लाभ हेतु दायित्व निर्वहन कर रहा था और ऐसा करने का प्राधिकार जनता द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिए।*
>
> *(बी) भले ही यह मान लिया जाए कि एक शैक्षणिक संस्थान सार्वजनिक कर्तव्य का निर्वहन कर रहा है, किन्तु जिस कृत्य की शिकायत की गई है, उसका सार्वजनिक कर्तव्य के निर्वहन से प्रत्यक्ष संबंध होना चाहिए। यह निर्विवाद रूप से एक सार्वजनिक विधिक कृत्य है जो पीड़ित व्यक्ति को विशेषाधिकार रिट हेतु अनुच्छेद 226 के अंतर्गत असाधारण रिट क्षेत्राधिकार का आह्वान करने का अधिकार प्रदान करती है। किसी सार्वजनिक तत्व को अभिन्न अंग बनाए बिना निजी*

अनुवादित

दोष या पारस्परिक अनुबंधों के उल्लंघन को अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट याचिका के माध्यम से उपचारित नहीं किया जा सकता है। जहाँ भी न्यायालयों ने अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपने अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में हस्तक्षेप किया है, या तो सेवा शर्तों को वैधानिक प्रावधानों द्वारा विनियमित किया गया था या नियोक्ता को अनुच्छेद 12 के अंतर्गत व्यापक परिभाषा के अनुसार "राज्य" का स्तर प्राप्त था या यह पाया गया कि जिस कार्रवाई की शिकायत की गई है उसमें सार्वजनिक विधि का तत्व है।

(सी) परिणामस्वरूप यह माना जाना चाहिए कि ***जब कोई निकाय किसी सार्वजनिक कार्य का निर्वहन कर रहा हो या सार्वजनिक कर्तव्य का पालन कर रहा हो और इस प्रकार उसके कार्य संवैधानिक न्यायालय द्वारा न्यायिक समीक्षा हेतु उत्तरदायी हो रहे हों, तो उसके कर्मचारियों को इस स्थिति में सेवा संबंधी मामले में अनुच्छेद 226 द्वारा उच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों के आह्वान का अधिकार नहीं होगा, जहाँ वे वैधानिक प्रावधानों द्वारा शासित या नियंत्रित नहीं हैं।*** *एक शैक्षणिक संस्थान सार्वजनिक जीवन और सामाजिक क्षेत्र के विभिन्न पक्षों को प्रभावित करने वाले असंख्य कार्य कर सकता है। ऐसे कार्य जो "सार्वजनिक कार्य" या "सार्वजनिक कर्तव्य" की परिधि में आते हैं, संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत चुनौती और जांच के अधीन हैं,* ***लेकिन जो कार्य या निर्णय पूर्णतः एक सामान्य अनुबंध की सीमा में आते हैं जिन्हें कोई वैधानिक बल या प्रष्ठभूमि प्राप्त नहीं है,उन्हें संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत चुनौती देने योग्य नहीं माना जा सकता है।*** *वैधानिक प्रावधानों द्वारा नियंत्रित या शासित होने वाली सेवा शर्तों के अभाव में, मामला सेवा के एक सामान्य अनुबंध के धरातल पर ही रहेगा।"*

(बल दिया गया)

26- **प्रबंधन समिति, सेंट जॉन इंटर कॉलेज बनाम गिरधारी सिंह, (2001) 4 एससीसी 296** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया कि: -

"चूंकि अधिनियम की धारा 16-जी(3)(ए) के अंतर्गत शक्ति के प्रयोग हेतु कोई समुचित दिशानिर्देश प्रदान नहीं किए गए हैं, अतः यह माना जाना चाहिए कि निरीक्षक या निरीक्षकों को प्रदान इस प्रकृति की अनियंत्रित शक्ति अल्पसंख्यक संस्थान की प्रबंध समिति की अपने कर्मचारियों पर अनुशासनात्मक नियंत्रण की शक्ति में घुसपैठ के समान होगी। अतः इस प्रकार उक्त प्रावधान अल्पसंख्यक संस्थान पर

लागू नहीं होगा, जैसा कि इस न्यायालय ने फ्रैंक एंथोनी वाद (1986) 4 एससीसी 707 में धारित किया था।

* * *

इस प्रकार विधायी मंशा स्पष्ट है कि विधायिका का विचार कभी भी अल्पसंख्यक संस्थान के किसी कर्मचारी की बर्खास्तगी के आदेश को चयन बोर्ड की स्वीकृति/अस्वीकृति के अधीन करने का नहीं था। वाद के इस दृष्टिकोण में, हमारे लिए यह मानना मुश्किल है कि अल्पसंख्यक संस्थान के किसी कर्मचारी की बर्खास्तगी का आदेश तब तक प्रभावी नहीं किया जा सकता, जब तक कि निरीक्षक/निरीक्षिका द्वारा अनुमोदित न हो, जैसा कि धारा 16-जी (3)(ए) या चयन बोर्ड द्वारा, जैसा कि उ.प्र. के वर्ष1982 के अधिनियम 5 के अंतर्गत उपबंधित है। प्रावधानों के अंतर्गत, यह निष्कर्ष सुस्वीकृत है कि अल्पसंख्यक संस्थान के किसी कर्मचारी की बर्खास्तगी के आदेश के वाद में सक्षम प्राधिकारी की पूर्व स्वीकृति का प्रश्न ही नहीं उठता है।

27- उपरोक्त निर्णयों के वाचन से, सेंट मैरी (उपरोक्त) में संक्षेप में बतायी गयी विधि यह है कि एक निजी शैक्षणिक संस्थान के कर्मचारियों को सेवा से संबंधित वाद में जहाँ वे वैधानिक प्रावधानों द्वारा शासित या नियंत्रित नहीं होते हैं, अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदत्त उच्च न्यायालय की शक्तियों को लागू करने के आह्वान का अधिकार नहीं होगा। सेंट जॉन इंटर कॉलेज (उपरोक्त) के आलोक में उ.प्र. इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम की धारा 16 जी(3) के प्रावधान निजी अल्पसंख्यक संस्थानों में कार्यरत शिक्षकों पर लागू नहीं होते हैं। कोई अन्य वैधानिक प्रावधान नहीं है, जिसका कथित वाद में उल्लंघन किया गया हो। इसलिए, हम स्वयं को माननीय एकल न्यायाधीश के इस विचार से सहमत पाते हैं कि एक पूर्व शिक्षक द्वारा निजी गैर सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक संस्थान के विरुद्ध उसकी बर्खास्तगी के आदेश को चुनौती देने और उसकी सेवा की बहाली की मांग करने वाली रिट याचिका पोषणीय नहीं है।

28- रिट याचिका एक अन्य कारण से पोषणीय नहीं होगी कि वाद में तथ्य के कई विवादित प्रश्न सम्मिलित हैं। अपीलकर्ता का दावा है कि उसे विधिवत चयनित और नियुक्त किया गया था, लेकिन उसने नियुक्ति पत्र या नियुक्ति अनुबंध की कोई प्रति दाखिल नहीं की है जिससे उसकी सेवा शर्तों का ज्ञान हो सके। कॉलेज ने तर्क दिया है कि न तो कोई विज्ञापन जारी किया गया था और न ही कोई चयन हुआ था, और अपीलकर्ता के व्यक्तिगत अनुरोध पर, उसे मौखिक रूप से कार्य पर नियोजित किया गया था एवं लगभग 4 माह तक कार्य करने के बाद, उसने कॉलेज के प्राचार्य के साथ दुर्व्यवहार किया। कॉलेज और प्राचार्य ने उनके विरुद्ध 31.03.1992 को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई थी। उसके बाद से अपीलकर्ता ने अपने कर्तव्यों का निर्वहन नहीं किया। अपीलकर्ता को विधिवत चयनित और नियुक्त किया गया था या नहीं, और उसकी सेवा शर्तें क्या थीं, ऐसे तथ्य हैं जो विवाद में हैं और जिनके संबंध में कोई भी सामग्री अभिलेख पर उपलब्ध नहीं है। इस कारण भी रिट याचिका पोषणीय नहीं होगी।

29- उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत, हम स्वयं को माननीय एकल न्यायाधीश के इस विचार से सहमत पाते हैं कि अपीलकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका पोषणीय नहीं थी,

और हमें माननीय एकल न्यायाधीश के निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं दिखता है।

30- विशेष अपील गुणविहीन है और तदनुसार, इसे खारिज किया जाता है।

31-यद्यपि, वादव्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 1 ILRA 1193
अपीलीय न्यायाधिकरण
सिविल पक्ष
दिनांक: लखनऊ 16.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा,
माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

विशेष अपील संख्या 16/2023

रफीक अहमद. ..अपीलकर्ता
बनाम
जलील अहमद एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता:
श्री ज्ञानेंद्र सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी:

ए. सिविल कानून - अवमानना क्षेत्राधिकार - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश VI नियम 17 - अदालत, अवमानना क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने की आड़ में, आदेश के दायरे में नहीं आने वाली कोई ठोस राहत नहीं दे सकती, जो कार्यवाही का विषय है और एक ठोस प्रारंभिक आदेश में शामिल नहीं की गई राहत पर अवमानना कार्यवाही में विचार नहीं किया जा सकता है। अवमानना न्यायाधीश द्वारा जारी किए गए निर्देश वास्तव में अधिकार क्षेत्र से परे मूल आदेश में निहित निर्देशों का पूरक हैं और इन्हें मान्य नहीं किया जा सकता है। (पैरा 6,7)

अपीलकर्ता का प्राथमिक तर्क यह है कि सीआरपीसी की धारा 482 के तहत अपीलकर्ता द्वारा दायर आवेदन को निरस्त करते समय रिट न्यायालय का निर्देश था कि वाद को तीव्रता से निस्तारित किया जाए और वादी या प्रतिवादी की ओर से स्थगन के अनुरोध को स्वीकार किए बिना एक वर्ष की अवधि के भीतर निर्णय लिया जाए, लेकिन अपीलकर्ता द्वारा दायर अवमानना आवेदन पर निर्णय सुनाते समय, अवमानना न्यायालय ने रिट न्यायालय के निर्देशों से परे जाकर यह देखने में गलती की है कि यदि कोई स्थगन बाध्यकारी परिस्थितियों में दिया जाता है, तो, उसे भारी लागत के बिना प्रदान नहीं किया जाएगा। इसलिए, वह निरस्त किये जाने योग्य है। (पैरा 5)

कानून के उपरोक्त प्रस्ताव और तत्काल मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार, अवमानना न्यायाधीश द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करते समय जारी किए गए निर्देश इस हद तक हैं कि 'यदि बाध्यकारी परिस्थितियों में कोई स्थगन दिया जाता है, तो वही होगा
भारी लागत के बिना प्रदान नहीं किया जाएगा।", वस्तुतः रिट न्यायालय द्वारा पारित मूल आदेश में निहित निर्देशों के पूरक के समान है, जो अवमानना न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से परे है। (पैरा 8)

पूर्वोक्त निर्देश को अपास्त किया गया। अपील निस्तारित। (ई 4)

<u>उद्धरण वाद:</u>
1. झरेश्वर प्रसाद पॉल एवं अन्य बनाम तारक नाथ गांगुली एवं अन्य, (2002) 5 एससीसी 352 (पैरा 6)
2. सुधीर वासुदेवा, अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक, तेल एवं प्राकृतिक गैस निगम एवं अन्य बनाम एम. जॉर्ज रविशेखरन और अन्य, (2014) 3 एससीसी 373 (पैरा 7)

वर्तमान विशेष अपील 2022 के अवमानना आवेदन (सिविल) संख्या 2857 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 13.12.2022 के विरुद्ध योजित है।

(माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा, द्वारा प्रदत्त)

(मौखिक)

(1) यह अन्तः न्यायालय अपील अपीलकर्ता रफीक अहमद द्वारा प्रस्तुत की गई है, जिसमें अवमानना प्रार्थनापत्र (सिविल) संख्या- 2857/ 2022 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 13.12.2022 की वैधता पर प्रश्न उठाया गया है, जिसके

अंतर्गत विद्वान एकल न्यायाधीश ने अंतिम प्रस्तर में निम्नानुसार निदेश दिया है:-

> "यदि बाध्यकारी परिस्थितियों में कोई स्थगन दिया जाता है तो उसे अत्यधिक वादव्यय के बिना नहीं दिया जाएगा।"

(2) उपरोक्त अवमानना प्रार्थनापत्र का स्रोत धारा 482 के अंतर्गत प्रार्थनापत्र संख्या 3369/2022 रफीक अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य में पारित एक निर्णय एवं आदेश दिनांक 13.07.2022 है। उक्त निर्णय एवं आदेश दिनांक 13.07.2022 के प्रभावी भाग पर ध्यान देना आवश्यक है एवं जो निम्नवत है:-

> "9. इस न्यायालय का मत है कि वर्तमान प्रार्थनापत्र में प्रश्नगत किए गए दो आदेश किसी भी अवैधता या विकृति से ग्रस्त नहीं हैं, जिसहेतु द.प्र.स. की धारा 482 के अंतर्गत असाधारण क्षेत्राधिकार में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता है। इसके दृष्टिगत, वर्तमान प्रार्थनापत्र खारिज किया जाता है। हालाँकि, विद्वान विचारण न्यायालय को विचारण में त्वरित कार्यवाही करनी चाहिए एवं वादी अथवा प्रतिवादी की ओर से किए गए स्थगन के अनुरोध को स्वीकार किए बिना, इस आदेश की प्रमाणित प्रति तामील/ प्रस्तुत करने की तिथि से एक वर्ष की अवधि में निर्णय लेना चाहिए क्योंकि वादी को अस्थायी व्यादेश प्राप्त है।"

(3) दिनांक 13.07.2022 के उक्त निर्णय एवं आदेश के प्रभावी भाग के परिशीलन से स्पष्ट होता है कि वाद में त्वरित कार्यवाही हेतु विद्वान विचारण न्यायालय (हमारे समक्ष प्रतिवादी संख्या-2) को एक अनिवार्य निदेश था एवं वादी या प्रतिवादी की ओर से किए गए स्थगन के अनुरोध को समायोजित किए बिना, आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त/प्रस्तुत करने के दिनांक से एक वर्ष की अवधि में निर्णय लें।

(4) ऐसा प्रतीत होता है कि उपरोक्त निर्णय एवं आदेश दिनांक 13.07.2022 को प्रतिवादी संख्या 2 के समक्ष दिनांक 19.07.2022 को प्रस्तुत किया गया था। तत्पश्चात दिनांक 27.07.2022 को प्रतिवादी संख्या-2 ने दो वादबिंदु, वादबिंदु संख्या 6 एवं 7, विरचित किये थे, एवं जो प्रतिवादी संख्या-2 द्वारा दिनांकित 19.09.2022Zz के आदेश विरचित प्राथमिक वादबिंदु थे। तत्पश्चात दिनांक 27.09.2022 को, प्रतिवादी संख्या-1 ने न्यायालय शुल्क के संबंध में कुछ नई सामग्री जोड़ने हेतु सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VI नियम 17 के अंतर्गत एक संशोधन प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया। जिसे प्रतिवादी संख्या-2 ने आदेश दिनांक 30.09.2022 के द्वारा अस्वीकृत कर दिया था। इससे व्यथित प्रतिवादी संख्या-1 ने जिला न्यायाधीश, प्रतापगढ़ के समक्ष एक पुनरीक्षण प्रस्तुत किया जिसे जिला न्यायाधीश, प्रतापगढ़ ने आदेश दिनांक 09.11.2022 द्वारा खारिज कर दिया था। विद्वान न्यायाधीश (अवमानना) ने इस तथ्य के अधिमूल्यन के पश्चात कि पुनरीक्षण के लंबित होने के कारण, प्रतिवादी संख्या-2 ने वाद में कोई अग्रिम कार्यवाही नहीं की एवं पुनरीक्षण के खारिज होने के पश्चात, वाद को दिनांक 11.11.2022, 17.11.2022 एवं 24.11.2022 को सूचीबद्ध किया गया। विवेक का प्रयोग करके, प्रतिवादी संख्या 2 प्रत्येक तारीख को पास कर दिया एवं वाद दिनांक 14.12.2022 हेतु सूचीबद्ध किया गया था। दिनांक 13.12.2022 के आदेश के माध्यम से अवमानना प्रार्थनापत्र को खारिज कर दिया एवं पुनः पाया कि सिविल जज,(सीनियर डिवीजन) प्रतापगढ़ से यह

अनुवादित

अपेक्षा की गई कि वे किसी भी पक्ष को अनावश्यक स्थगन दिए बिना, प्रश्नगत मुकदमे का त्वरित निर्णय करेंगे, एवं यदि बाध्यकारी परिस्थितियों में कोई स्थगन दिया जाता है तो उसे अत्यधिक वादव्यय के बिना नहीं दिया जाएगा।

(5) अपीलकर्ता हेतु विद्वान अधिवक्ता का प्राथमिक तर्क यह है कि द.प्र.स. की धारा 482 के अंतर्गत अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत प्रार्थनापत्र को अपास्त करते समय रिट न्यायालय का निदेश था कि विचारण में त्वरित कार्यवाही की जाए एवं बिना वादी या प्रतिवादी द्वारा स्थगन के अनुरोध को स्वीकार किए बिना एक वर्ष की अवधि में उस पर निर्णय लिया जाए। किंतु अवमानना न्यायालय, अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत अवमानना प्रार्थनापत्र पर न्यायनिर्णयन सुनाते समय, रिट न्यायालय के निदेशों से परे चला गया है एवं वाद में यह देखने में त्रुटि की है कि यदि बाध्यकारी परिस्थितियों में कोई स्थगन दिया जाता है तो उसे अत्यधिक वादव्यय के बिना स्वीकृति नहीं दी जाएगी। अतः, यह अपास्त किये जाने योग्य है।

(6) अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को सुनने एवं प्रश्नगत निर्णय के साथ अभिलेख पर सामग्री के परिशीलन के पश्चात यह ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि अवमानना क्षेत्राधिकार के प्रयोग को विनियमित करने वाले आधारभूत मापदंडों का परिक्षण **झरेश्वर प्रसाद पॉल एवं एक अन्य बनाम तारक नाथ गांगुली एवं अन्य: (2002) 5 एससीसी 352** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई थी एवं यह धारित किया गया कि न्यायालय, अवमानना क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने की आड़ में, उस आदेश में सम्मिलित नहीं होने वाला सारवान अनुतोष नहीं प्रदान कर सकती हैजो कार्यवाही की विषय-वस्तु है, एवं प्रारंभिक आदेश में सम्मिलित नहीं किये गए किसी सारवान अनुतोष पर अवमानना कार्यवाही में विचार नहीं किया जा सकता है। इस वाद में भी अवमानना न्यायालय ने इस आरोप के आधार पर कार्यवाही की थी कि प्रतिवादी अधिकारियों ने प्रारंभिक आदेश का "प्रभावी" एवं "उचित रुप से" अनुपालन नहीं किया था। उपरोक्त पृष्ठभूमि में निर्णय में की गई टिप्पणियां निम्नवत हैं:-

> "11. अवमानना क्षेत्राधिकार का उद्देश्य न्यायालयों के गौरव एवं प्रतिष्ठा को बनाए रखना है, क्योंकि न्यायालयों द्वारा दिया गया सम्मान एवं अधिकार एक सामान्य नागरिक हेतु सर्वाधिक महत्वपूर्ण गारंटी है एवं यदि न्यायपालिका के प्रति सम्मान क्षीण हुआ तो समाज का लोकतांत्रिक ताना-बाना प्रभावित होगा। देश में न्याय के वास्तविक एवं उचित प्रशासन हेतु सामान्य रूप से लोगों के विश्वास की भावना को सुरक्षित करने के उद्देश्य से न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 प्रस्तुत किया गया है। न्यायालय की अवमानना हेतु दंडित करने की शक्ति संविधान के अंतर्गत अभिलेख न्यायालयों और विधि में निहित एक विशेष शक्ति है। शक्ति विशेष है एवं इसका उपयोग सावधानी एवं सतर्कता से करने की आवश्यकता है। अवमाननापूर्ण आचरण के वास्तविक प्रभाव के संबंध में संतुष्ट होने पर ही न्यायालयों द्वारा इसका संयमपूर्वक उपयोग किया जाना चाहिए। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि अवमानना हेतु दंडित करने के क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाला न्यायालय पक्षों के मध्य विवादों के निर्धारण हेतु मूल या अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करता है। अवमानना क्षेत्राधिकार इस प्रश्न तक ही सीमित होना चाहिए कि क्या न्यायालय के आदेश की कोई सोद्देश्य अवमानना की गई है,

एवं जिस पक्ष पर ऐसी अवमानना का आरोप है, क्या उसका आचरण अपमानजनक है? अवमानना क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने पर न्यायालय उन प्रश्नों पर विचार करने का अधिकारी नहीं हो जाता है, जिनका उस निर्णय या आदेश में निस्तारण एवं निर्णय नहीं किया गया है, जिसके उल्लंघन का आवेदक द्वारा आरोप लगाया है। न्यायालय को निर्णय या आदेश में जारी निदेश पर विचार करना है, एवं इस प्रश्न पर विचार करना है कि निर्णय या आदेश में क्या होना चाहिए। यहाँ पुनः यह कहा जा सकता है कि अवमानना क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाली न्यायालय मुख्य रूप से उस पक्ष के अवमानना आचरण पर विचार करेगी जिस पर निर्णय अथवा आदेश में दिए गए निर्देशों का पालन करने में सोद्देश्य चूक करने का आरोप है। यदि निर्णय अथवा आदेश में किसी मामले के संबंध में कोई विशिष्ट निदेश नहीं है अथवा उसमें जारी निर्देशों में कोई अस्पष्टता है, तो बेहतर होगा कि आदेश के स्पष्टीकरण हेतु पक्षकारों को उस न्यायालय से संपर्क करने का निदेश दिया जाए, जिसने वाद का निस्तारण किया था, बजाय इसके कि अवमानना क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाली न्यायालय मूल कार्यवाही को, निर्णय अथवा आदेश पारित करने वाली न्यायालय से भिन्न रीति से निर्णीत करे। यदि इस सीमा को ध्यान में रखा जाये तो तो अवमानना क्षेत्राधिकार प्रयोग करने वाले न्यायालय के प्रति कभी-कभी की जाने वाली इस आलोचना, कि "सारवान अनुतोष प्रदान करने एवं संपूर्ण विवाद के उचित न्यायनिर्णयन के बिना उसके संबंध में निदेश जारी करने में न्यायालय अपनी शक्तियों के परे चली गई है.." से बचा जा सकता है, इससे कार्यवाही की बहुलता से भी बचा जा सकेगा क्योंकि जो पक्ष अवमानना कार्यवाही में पारित निर्णय अथवा आदेश से एवं अनुतोष प्रदान किये जाने एवं नए निदेश जारी किये जाने से प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है, वह उस आदेश को चुनौती दे सकता है, एवं उस कार्यवाही से उत्पन्न होने वाले मुकदमेबाजी के एक और दौर को जन्म दे सकता है जिसका उद्देश्य न्यायालयों की गरिमा और प्रतिष्ठा को बनाए रखना है।

12. वाद को उपरोक्त उल्लिखित सिद्धांतों के मापदंड पर परखने पर, हम पाते हैं कि खंड पीठ द्वारा प्रश्नगत निर्णय में जारी किए गए निदेशों ने वास्तव में मूल कार्यवाही में पारित निर्णय/आदेश में में अनुपलब्ध सारवान अनुतोष प्रदान किया है। निर्णय में उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा कोई निदेश जारी नहीं किया गया कि रिट याचिकाकर्ताओं को निदेशालय में उच्च श्रेणी लिपिक/सहायक के संवर्ग में भर्ती किया जाएगा। जैसा कि पूर्व में उल्लिखित है, वे सदैव लिपिक-कम-रोकड़ संग्राहक के पदों पर रहे हैं जो एक्स-कैडर पद हैं। ऐसे व्यक्तियों के उच्च श्रेणी लिपिक/सहायकों के संवर्ग में प्रवेश पर वाद के विभिन्न पक्षों को ध्यान में रखते हुए विचार किया जाना चाहिए। यह कहना एक बात है कि शासनादेश के अंतर्गत रिट याचिकाकर्ताओं को भी लाभ दिया जा सकता है, एवं शासनादेश का लाभ रिट याचिकाकर्ताओं को देना एवं कार्यालय

सहायकों के मौजूदा संवर्ग में उनके प्रवेश का निदेश देना एक भिन्न बात है। इस प्रकार के विवाद का निर्धारण मामले के सभी प्रासंगिक पक्षों पर विचार करने के पश्चात ही किया जा सकता है, एवं न्यायालय की अवमानना हेतु कार्रवाई करने हेतु संक्षिप्त कार्यवाही में आदेश नहीं दिया जा सकता है एवं दिया भी नहीं जाना चाहिए। यदि उच्च न्यायालय को प्रतीत हुआ कि उच्च श्रेणी लिपिकों/सहायकों के संवर्ग में उनके प्रवेश के प्रश्न से संबंधित रिट याचिकाकर्ताओं की व्यथा का न्यायालय द्वारा निस्तारण नहीं किया गया है एवं रिट याचिकाओं/ अपीलों का निस्तारण करते समय विशिष्ट निदेश जारी नहीं किए गए हैं, तब उचित कार्यवाही यह थी कि मामले को सक्षम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने का कार्य पक्षकारों (रिट याचिकाकर्ताओं) पर छोड़ दिया जाए। इसके अतिरिक्त, रिट याचिकाकर्ताओं का एक्स-कैडर पदधारकों के वर्तमान संवर्ग में प्रवेश का प्रश्न नीति का प्रश्न है, जिस पर सरकार को निर्णय लेना है। यह ध्यान देने योग्य है है कि वाद पर विचार करने पर उच्च न्यायालय ने धारित किया कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय अथवा आदेश की सोद्देश्य अवमानना हेतु रिट याचिका में प्रतिवादीगण के विरुद्ध न्यायालय की अवमानना की कोई कार्रवाई करने की आवश्यकता नहीं है। तत्पश्चात न्यायालय के पास इस तर्क पर आवेदकों (रिट याचिकाकर्ताओं) को सारवान अनुतोष देने हेतु कोई भी आदेश पारित करने का अधिकार नहीं था क्योंकि उठाया गया प्रश्न भी रिट याचिका में उनकी शिकायत का एक भाग था।

13. वाद के तथ्यों एवं परिस्थितियों में हम यह धारित करने हेतु बाध्य हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय/आदेश क्षेत्राधिकार के अभाव से ग्रस्त था। परिणामस्वरूप अपीलें स्वीकार की जाती हैं। चुनौती के अंतर्गत प्रश्नगत निर्णय/आदेश अपास्त किया जाता है। प्रतिवादीगण के विरुद्ध न्यायालय की अवमानना की कार्रवाई हेतु रिट याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर याचिका खारिज की जाती है।"

(7) यह प्रश्न कि क्या अवमानना क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाला न्यायालय रिट याचिका में पारित मुख्य आदेश हेतु पूरक आदेश पारित कर सकता है, **सुधीर वासुदेवा, अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक, तेल एवं प्राकृतिक गैस निगम एवं अन्य बनाम एम.जॉर्ज रविशेखरन एवं अन्य: (2014) 3 एससीसी 373** वाद में उच्चतम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत हुआ था। यह धारित किया गया कि अवमानना न्यायाधीश द्वारा जारी किए गए निदेश, जो वास्तव में मूल आदेश में निहित निदेशों के पूरक थे, क्षेत्राधिकार से परे थे एवं उन्हें मान्य नहीं किया जा सकता था। निर्णय में की गई टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:-

"19. अवमानना हेतु दंडित करने की उच्च न्यायालयों के साथ इस न्यायालय में निहित शक्ति एक विशेष एवं दुर्लभ शक्ति है जो संविधान एवं न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971, दोनों के अंतर्गत उपलब्ध है। यह एक कठोर शक्ति है जो दरुपयोग किये जाने परअवमानना के आरोप में आरोपित व्यक्ति की स्वतंत्रता पर भी अंकुश लगा सकती है। शक्ति की प्रकृति ही न्यायालयों को अत्यंत सावधानी

एवं दायित्व सहित इसका पालन करने का पवित्र कर्तव्य सौंपती है। यह आवश्यक भी है क्योंकि प्रायः ऐसा नहीं होता है कि अवमानना याचिका के निर्णय में उस आदेश के व्यापक, अर्थ एवं प्रभाव के आत्मनिर्णय की प्रक्रिया सम्मिलित हो जिसके संबंध में अवज्ञा का आरोप लगाया जाता है। अतः न्यायालयों को उस आदेश की परिधि में ही रहना चाहिये जिस पर आरोप लगाया गया है, जिसका कथित रूप से उल्लंघन किया गया है अथवा उन प्रश्नों पर विचार नहीं करना चाहिए, जिनका निर्णय में निस्तारण अथवा निर्णय नहीं किया गया है या जिस आदेश के उल्लंघन का आरोप लगाया गया है।

मात्र वे निदेश जो किसी निर्णय या आदेश में स्पष्ट हैं अथवा सामान्यतः स्व-स्पष्ट हैं, उन्हें इस बात पर विचार करने के उद्देश्य से ध्यान में रखा जाना चाहिए कि क्या इसकी कोई अवमानना या सोद्देश्य उल्लंघन किया गया है? निर्णीत मुद्दों को दोबारा नहीं खोला जा सकता; न ही साम्य के तर्क पर विचार किया जा सकता है। न्यायालयों को यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि अवमानना याचिका पर विचार करते समय समीक्षा या अपील जैसे अन्य सुधारात्मक क्षेत्राधिकार में न्यायालय को उपलब्ध शक्ति का हनन न हो। अवमानना न्यायिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय न्यायालय द्वारा पूर्वव्यक्त आदेशों एवं निदेशों से संबंधित कोई पूरक आदेश या निदेश जारी नहीं किया जाना चाहिए; **2-8-2006 (एमएडी)]** के आदेश में ऐसा निदेश निहित है, जो स्व-विफलकारी है। न ही ऐसा अभ्यास न्यायालय में निहित अन्य न्यायिक क्षेत्राधिकार में अधिक उपयुक्त है। उपरोक्त सिद्धांत में उद्धृत पूर्वनिर्णयों के संचयी परिणाम प्रतीत होते हैं, अर्थात् **झरेश्वर प्रसाद पॉल बनाम तारक नाथ गांगुली [(2002) 5 एससीसी 352]; वी.एम. मनोहर प्रसाद बनाम एन.रत्नम राजू [(2004) 13 एससीसी 610]; बिहार फाइनेंस सर्विस हाउस कंस्ट्रक्शन कॉप। सोसाइटी लिमिटेड बनाम गौतम गोस्वामी [(2008) 5 एससीसी 339]**; एवं **यूनियन ऑफ इंडिया बनाम सूबेदार देवासी पीवी [(2006) 1 एससीसी 613]**

20. वर्तमानवाद में उपरोक्त निर्धारित सिद्धांतों को लागू करने पर, यह स्पष्ट है कि मैरीन सहायक रेडियो ऑपरेटर के अतिरिक्त पदों के सृजन हेतु उच्च न्यायालय के निदेश को मान्य नहीं किया जा सकता है। अतिरिक्त पद सृजित करने हेतु कार्यपालिका को बाध्य करने से पूर्व न केवल न्यायालयों को अत्यधिक संयम सहित कार्य करना चाहिए अपितु प्रश्नगत निदेश वस्तुतः उच्च न्यायालय के आदेश दिनांक 2-8-2006 में निहित निदेशों के पूरक के समान है। अवमानना क्षेत्राधिकार के प्रयोग के चरण में अतिरिक्त पद सृजित करने के निदेश को रिट याचिका में पारित प्रारंभिक आदेश के साथ जोड़ा गया समझा जाना चाहिए। यह तर्क कि आदेश दिनांक 2-8-2006 **[एम. जॉर्ज रविशेखरन बनाम ओएनजीसी लिमिटेड, रिट याचिका संख्या 21518/2000, दिनांक** ऐसी कोई कार्रवाई साम्य को संतुलित करने हेतु खुली है और न ही याचिकाकर्ताओं के प्रचार के

रास्ते बंद करने हेतु, जैसा कि श्री राव ने प्रबल आग्रह किया था। मुद्दा क्षेत्राधिकार का है औचित्य का नहीं। क्या जारी किया गया निदेश समीक्षा के माध्यम से या किसी अन्य क्षेत्राधिकार के प्रयोग द्वारा उचित ठहराया जाएगा, यह एक ऐसा पक्ष है जिसका वर्तमान मामले में हमसे कोई संबंध नहीं है। प्रासंगिकता का तथ्य यह है कि उच्च न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 2-8-2006 **[एम जॉर्ज रविशेखरन बनाम ओएनजीसी लिमिटेड, रिट याचिका संख्या 21518/2000**] द्वारा एक वैकल्पिक निदेश जारी किया एवं अपीलकर्ताओं ने, निगम के अधिकारियों के रूप में, इसका अनुपालन किया है। अतः यह नहीं समझा जा सकता कि उन्होंने न्यायालय के उक्त आदेश की सोद्देश्य अवमानना की है। हमारा विचार है कि अपीलकर्ताओं द्वारा आदेश दिनांक 2-8-2006 **एम. जॉर्ज रविशेखरन बनाम ओएनजीसी लिमिटेड [एम. जॉर्ज रविशेखरन बनाम ओएनजीसी लिमिटेड, रिट याचिका संख्या 21518/2000 आदेश दिनांकित 2-8-2006 (एमएडी)]** के दूसरे निदेश के अनुपालन के संदर्भ में जो भी अपेक्षित था, विधिवत लागू किया गया है। परिणामस्वरुप अवमानना याचिका संख्या 161/2010 में पारित आदेश दिनांक19-1-2012 के साथ ही सुधीर वासुदेवा बनाम एम. जॉर्ज रवि शेखरन [अवमानना अपील संख्या 2/2012 में निर्णय दिनांक 11-7-2012 (एमएडी)] में पारित प्रश्नगत आदेश दिनांकित11-7-2012 को अपास्त किया जाता है एवं वर्तमान अपील स्वीकृत की जाती है।"

(8) विधि की उपरोक्त प्रस्थापना के दृष्टिगत एवं तत्काल वाद के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर भी विचार करते हुए, हमारा मत है कि अवमानना न्यायाधीश द्वारा प्रश्नगत आदेश पारित करते समय जारी किए गए निदेश इस विस्तार तक हैं कि "किसी भी वाद में स्थगन बाध्यकारी परिस्थितियों में दिया जाता है तो उसे अत्यधिक लागत के बिना नहीं दिया जाएगा", वास्तव में रिट न्यायालय द्वारा पारित मूल आदेश में निहित निदेशों के पूरक के समान है, जो अवमानना न्यायालय के क्षेत्राधिकार से परे है।

(9) अतः हम प्रश्नगत निर्णय एवं आदेश दिनांकित 13.12.2022 के अंतिम प्रस्तर में निहित निदेश को अपास्त करते हैं अर्थात "यदि, बाध्यकारी परिस्थितियों में कोई स्थगन दिया जाता है तो उसे अत्यधिक लागत के बिना नहीं दिया जाएगा।"

(10) उपरोक्त निदेश सहित, वर्तमान अंतः न्यायालय अपील निस्तारित की जाती है।

(2023) 1 ILRA 1199

अपीलीय क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक:इलाहाबाद 18.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा,
माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार,

विशेष अपील संख्या 101/2022

श्रीमती अर्चना पालीवाल ...अपीलकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता:
श्री जय प्रकाश प्रसाद

अधिवक्ता प्रतिवादी:
सी.एस.सी.

ए. सेवा कानून - स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति - उ.प्र. मौलिक नियम 56 - नियम 56 का खंड (डी) नोटिस अवधि को तीन महीने निर्धारित करता है, लेकिन, नियम 56 के खंड (डी) के परंतुक के खंड (ii) द्वारा, नियुक्ति प्राधिकारी को सरकारी कर्मचारी को बिना नोटिस के बदले में कोई जुर्माना देने की आवश्यकता के बिना किसी भी नोटिस या छोटे नोटिस द्वारा सेवानिवृत्त होने की अनुमति देने का अधिकार है। नियुक्ति प्राधिकारी किसी सरकारी कर्मचारी को स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की अनुमति दे सकता है, भले ही नोटिस की अवधि तीन महीने से कम हो, हालांकि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेने के अधिकार के प्रयोग को सक्षम करने वाली अन्य शर्तों को पूरा करने के अधीन है। (पैरा 9)

वर्तमान वाद में, आवेदन दिनांक 06.04.2008 को प्रस्तुत किया गया था और दिनांक 30.06.2018 से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति मांगी गई थी। स्वीकृत रूप से, नोटिस की अवधि तीन महीने से कम थी, इसलिए नियुक्ति प्राधिकारी को याचिकाकर्ता को सेवानिवृत्त होने की अनुमति देने के अनुरोध को स्वीकार करना आवश्यक था। विशेष रूप से, **नियम सेवानिवृत्ति नोटिस की स्वीकृति के लिए समय सीमा निर्धारित नहीं करता है। (पैरा 10)**

वर्तमान परिस्थितियों में, इस मुद्दे पर ध्यान देना होगा कि क्या 30.06.2018 से पहले स्वीकृति की आवश्यकता उन्हीं सिद्धांतों पर जो किसी प्रस्ताव की स्वीकृति को नियंत्रित करते हैं, यानी, क्या याचिकाकर्ता की ओर से कोई संकेत था कि सेवानिवृत्त होने का प्रस्ताव 30.06.2018 तक स्वीकार्य था और उसके बाद नहीं। स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति आवेदन/नोटिस के साथ अपीलकर्ता द्वारा दायर शपथपत्र दिनांक 06.04.2018 , एक अयोग्य प्रस्ताव/सेवानिवृत्त होने की इच्छा का वर्णन करता है, बिना उस तारीख को निर्दिष्ट किए जिसके द्वारा इसे स्वीकार किया जाना चाहिए। आवेदन या शपथ पत्र में ऐसा कोई संकेत नहीं है कि यदि प्रस्ताव एक निश्चित अवधि तक स्वीकार नहीं किया जाता है तो इसे वापस लिया हुआ माना जाएगा। इस प्रकार, स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की मांग करने वाले नोटिस ने 30.06.2018 से प्रभावी रूप से सेवानिवृत्त होने के लिए एक स्थायी प्रस्ताव बढ़ा दिया, जिसे नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा तब तक स्वीकार किया जा सकता था जब तक कि इसे दूसरे प्रावधान के मौलिक नियमों के नियम 56 (डी) का खंड (ii) के अनुसार नियुक्ति प्राधिकारी की अनुमति से वापस नहीं ले लिया गया। (पैरा 10)

बी. जैसा कि **मौलिक नियम के नियम 56 (डी) के खंड (ii) के दूसरे प्रावधान के अनुसार, स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति नोटिस को नियुक्ति प्राधिकारी की अनुमति के बिना वापस नहीं लिया जा सकता है, सेवा प्रदान करके नोटिस को दिनांक 30.06.2018 से आगे केवल इस कारण से वापस नहीं लिया जा सकता है कि नोटिस की अवधि तीन महीने से कम थी, इसलिए नियोक्ता-कर्मचारी संबंध को समाप्त करने के लिए प्रस्ताव की स्वीकृति आवश्यक थी।** जब तक वह रिश्ता बना रहा, तब तक पदधारी नियोक्ता की सेवा करने के लिए बाध्य था और इसलिए, ऐसी सेवा लेने से नियोक्ता के स्थायी प्रस्ताव को स्वीकार करने के अधिकार की छूट नहीं होगी। **उपरोक्त कारणों से, हमारा मानना है कि जिस तिथि से सेवानिवृत्ति मांगी गई थी, उसके बाद स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति नोटिस को स्वीकार करने में नियुक्ति प्राधिकारी के लिए कोई कानूनी बाधा मौजूद नहीं थी। (पैरा 10)**

विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपने आदेश में स्पष्ट किया है कि बाद की अवधि के लिए कोई भी वेतन, यदि याचिकाकर्ता को भुगतान किया जाता है, तो उससे वसूला/वापस नहीं लिया जाएगा और इसके अलावा, प्राधिकरण यह सुनिश्चित करेगा कि याचिकाकर्ता का को सेवानिवृत्ति लाभ उसे दिनांक 30.06.2018 से सेवानिवृत्त जारी किए जाएं। (पैरा 11)

विशेष अपील निरस्त। (ई 4)

वर्तमान आंतरिक न्यायालय अपील में रिट ए संख्या 20146 /2019 में पारित विद्वान एकल न्यायाधीश दिनांक 09.11.2021 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध योजित है, जिसके तहत अपीलकर्ता ने सेवा से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति दिनांक 30.06.2018 के लिए रिट याचिकाकर्ता की प्रार्थना को स्वीकार करते हुए आदेश को रद्द करने की मांग की और स्वीकृति आदेश (दिनांक 09.05.2019) को निरस्त करने के लिए याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर निर्णय लेने के लिए विपक्षी को एक निर्देश की मांग की गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा,
&
माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलार्थी की ओर से श्री जय प्रकाश प्रसाद और प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

2. यह अंतरा न्यायालय की अपील वर्ष 2019 की रिट ए संख्या 20146 में विद्वान एकल न्यायाधीश के द्वारा पारित दिनांक 09.11.2021 के निर्णय और आदेश के खिलाफ है, जिसमें अपीलार्थी की रिट याचिका जिसमें अपीलार्थी की रिट याचिका दिनाक 30.06.2018 से सेवा स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए रिट याचिकाकर्ता की प्रार्थना को स्वीकार करने वाले आदेश को रद्द करने की मांग की गई थी और स्वीकृति आदेश को रद्द करने के लिए याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर निर्णय लेने के लिए विरोधी पक्ष को दिये गये निर्देश को,खारिज कर दिया गया है।

3. आक्षेपित निर्णय के प्रस्तर-2 में मामले के तथ्यों को सारगर्भित रूप से वर्णित किया गया है, इसलिए हम उन तथ्यों को पुनः प्रस्तुत करने के बजाय उक्त प्रस्तर को पुनः प्रस्तुत करना उचित समझते हैं-

"2. तथ्य, जैसा कि रिट याचिका में कहा किया गया है कि क्या याचिकाकर्ता एक स्टाफ नर्स थी और जिला बिजनौर में तैनात थी। उत्तराखंड राज्य बनने के बाद उसे दिनांक 26.12.2008. के आदेश द्वारा उ. प्र. राज्य का चयन करने की अनुमति दी गयी थी। परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता ने दिनांक 18.2.2009 को सहारनपुर में पदभार ग्रहण किया। उसने स्वैच्छिक सेवानिवृति के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया था, जिसके साथ उसने स्पष्ट रूप से यह कहते हुए एक हलफनामा भी प्रस्तुत किया कि वह अब राज्य की सेवा करने की इच्छुक नहीं है और स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए उनके आवेदन को स्वीकार किया जाए। शपथ पत्र के साथ संलग्न आवेदन पत्र में याचिकाकर्ता ने स्वेच्छा से 30.6.2018 से सेवानिवृत्त होने का अनुरोध किया गया । स्पष्ट रूप से इस आवेदन पर कोई आदेश पारित नहीं किया गया था और याचिकाकर्ता ने अक्टूबर के महीने तक पद पर बने रहने की अनुमति दी गई थी। इस आक्षेपित आदेश द्वारा याचिकाकर्ता की 30.6.2018 से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति को स्वीकार कर लिया गया है। यह आक्षेपित आदेश पारित होने के बाद याचिकाकर्ता, जो उत्तराखंड राज्य में रह रही थी,ने इस आधार पर इस आदेश को वापस लेने का अनुरोध किया कि उसे नियोक्ता की सेवा करने की अनुमति दी जाए।"

4. विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष दो आधार प्रस्तुत किये गये थे, अर्थात्, (क) यह कि मौलिक नियम 56 (ग) के तहत स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए किसी आवेदन को, न्यूनतम तीन महीने के नोटिस की आवश्यकता होगी, जबकि 06.04.2008 को रिट याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत आवेदन में 30.06.2018 से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति मांग की गई थी जो तीन महीने से कम थी इसलिए यह दोषपूर्ण थी और उस पर कार्रवाई नहीं की जा सकती थी, और (ख) यह कि स्वीकृत आदेश दिनांक 09.05.2019 को 30.06.2018 से सेवानिवृत्ति का निर्देश नहीं दे सकता था।

5. राज्य-प्रत्यर्थीगण ने यह दावा करते हुए याचिका का विरोध किया कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के आवेदन को स्वीकार करने से पहले इसे वापस लेने के लिए कोई प्रार्थना नहीं की गई थी इसलिए, एक बार आवेदन पत्र स्वीकार कर लेने के बाद रिट याचिकाकर्ता (यहाँ अपीलार्थी) के लिए उसके संबंध में शिकायत का कोई अवसर नहीं था।

6. विद्वान एकल न्यायाधीश ने मौलिक नियम 56 (ग) और (घ) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए कहा कि मौलिक नियम 56 (ग) में प्रदान की गई नोटिस की अवधि नियुक्ति प्राधिकारी के लाभ के लिए है, जबकि मौलिक नियमों के निमय 56 के खण्ड (घ) के उपखण्डो (i) और (ii) के आधार पर नियुक्ति प्राधिकारी, सरकारी सेवक को अल्प

सूचना पर या तत्काल सेवानिवृत करने के लिए अधिकृत है और जिस अवधि के लिए ऐसी सूचना कम समय के लिए है, उसके लिए सरकारी कर्मचारी उसी दर पर वेतन और भत्तों का हकदार है जिसको वह अपनी सेवानिवृत्ति से ठीक पहले आहरित कर रहा था। इस प्रकार भले ही नोटिस की अवधि तीन महीने से कम थी, इसने इसे दोषपूर्ण नहीं बनाया। विद्वान एकल न्यायाधीश ने मौलिक नियमों के नियम 56 के खंड (घ) के उप-खंड (ii) के दूसरे परंतुक पर भी ध्यान दिया, जिसमें प्रावधान था कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति चाहने वाले, खंड (ग) के तहत सरकारी सेवक द्वारा एक बार दिया गया नोटिस नियुक्ति प्राधिकारी की अनुमति के बिना वापस नहीं लिया जा सकता है। इन प्रावधानों पर ध्यान देने के बाद, विद्वान एकल न्यायाधीश ने कहा कि चूंकि नियुक्ति प्राधिकारी की सेवानिवृत्ति नोटिस की सेवा के संबंध में कोई विवाद नहीं था और यह इंगित करने के लिए कोई सामग्री मौजूद नहीं थी कि नोटिस को स्वीकार करने से पहले इसे वापस लेने की प्रार्थना की गई थी, रिट याचिका में कोई योग्यता नहीं थी, विशेष रूप से, जब रिट याचिकाकर्ता को 30.06.2018 के बाद कार्य करने की अवधि के लिए प्राप्त वेतन वापस करने के लिए नहीं था।

7. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा उद्धृत मौलिक नियम 56 (ग) और (घ) की सामग्री पर सवाल नहीं उठाया है, हालांकि उन्होंने दावा किया कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस बात की उपेक्षा कि दिनांक 06.04.2018 के स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति आवेदन में 30.06.2018 से. सेवानिवृत्ति की मांग की गई थी और यदि इसे 30.06.2018 तक स्वीकार नहीं किया गया था, और रिट याचिकाकर्ता को काम करने और उसके बाद वेतन प्राप्त करने की अनुमति दी गई थी, तो उसके बाद उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। विकल्प में, यह तर्क दिया गया था कि चूंकि याचिकाकर्ता ने 30.06.2018 के बाद अपनी सेवाएं प्रदान की है, इसलिए अपने आचरण से, उसने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए अपना नोटिस / आवेदन वापस ले लिया और याचिकाकर्ता से काम स्वीकार करके और उसे वेतन का भुगतान करके नियुक्ति प्राधिकारी ने निहित रूप से नोटिस वापस लेने की अनुमति दी और नोटिस पर कार्रवाई करने के अपने अधिकार को माफ़ कर दिया।

8. उपरोक्त प्रस्तुतीकरण की उचित रूप से समझने करने के लिए. उ. प्र. मौलिक नियम 56 के प्रासंगिक प्रावधानों पर ध्यान देना उपयोगी होगा। नियम 56 का खंड (क) एक सरकारी कर्मचारी की अधिवर्षिता की आयु से संबंधित है: खंड (क-1) और (क-2) सेवा के विस्तार से संबंधित है; खंड (ब) का लोप कर दिया गया है; मामले के लिए प्रासंगिक नियम 56 के खंड (ग) और (घ) हैं, इसलिए उन्हें नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:

*56 (ग) खंड (क) या खंड (ख) में निष्ठित किसी बात के होते हुए भी, नियुक्ति प्राधिकारी किसी भी समय, किसी सरकारी सेवक (स्थायी या अस्थायी) को बिना कोई कारण बताए नोटिस द्वारा उसके पचास वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद सेवानिवृत्त होने के लिए कह सकता है या ऐसा सरकारी सेवक नियुक्ति प्राधिकारी को सूचना किया जा सकता है कि वह पैतालीस वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद या बीस वर्ष की अर्हक सेवा पूरी करने के बाद किसी भी समय स्वेच्छा से सेवानिवृत्त हो सकता है।

(च) ऐसे किसी नोटिस की अवधि तीन महीने होगी:

बशर्ते-

अनुवादित

(i) नियुक्ति प्राधिकारी के आदेश द्वारा ऐसा कोई सरकारी सेवक, ऐसी नोटिस के बिना या कम समय के नोटिस द्वारा पचास वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद किसी भी समय तत्काल सेवानिवृत्त ले सकता है, और ऐसा सेवानिवृत्ति सरकारी सेवक अपने वेतन भत्ते सहित के बराबर राशि का दावा करे, यदि कोई हो, तीन महीने से कम किसी अवधि के लिए या अल्प अवधि के लिए, जैसी भी स्थिति हो, उसी दर पर जिस दर पर सेवानिवृत्ति से पहले वह आहरण कर था, का दावा करने का हकदार होगा।

(ii) नियुक्ति प्राधिकारी को बिना किसी नोटिस के अथवा अल्प अवधि की नोटिस के एवज में कोई जुर्माना देने की आवश्यकता के बिना सेवानिवृत्त होने की अनुमति देने का अधिकार होगा।

बशर्ते आगे और कि ऐसे सरकारी कर्मचारी के द्वारा दिया गया नोटिस, जिसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही लंबित या विचाराधीन है, नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा स्वीकार किये जाने पर ही प्रभावी होगी जबकि यह उपबंधित हो कि एक विचाराधीन अनुशासनात्मक कार्यवाही के मामले में नोटिस की समयावधि की समाप्ति के पूर्व सरकारी कर्मचारी को यह सूचित करना होगा कि कि इसे स्वीकार नहीं किया गया;

आगे यह भी उपबंधित है कि उपखण्ड (ग) के अधीन स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति चाहने वाले सरकारी सेवक द्वारा एक बार दिया गया नोटिस उसके द्वारा नियुक्ति प्राधिकारी की अनुमति के बिना वापस नहीं लिया जाएगा।"

9. नियम 56 के खंड (ग) को पढ़ने से पता चलेगा कि इसके दो भाग हैं। इसके पहले भाग में, यह नियुक्ति प्राधिकारी को किसी सरकारी कर्मचारी को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने का अधिकार देता है, जबकि, इसके दूसरे भाग में, यह सरकारी कर्मचारी को कुछ शर्तों के अधीन स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेने का अधिकार प्रदान करता है। जैसा कि हम एक ऐसे मामले की बात कर रहे हैं जहां याचिकाकर्ता (अपीलार्थी) ने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति मांगी थी. हमारा सरोकार दूसरे भाग से है। उसके संबंध में, नियम में प्रावधान है कि एक सरकारी कर्मचारी नियुक्ति प्राधिकारी को नोटिस द्वारा किसी भी समय स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की इच्छा कर सकता है, जब उसने पैंतालीस वर्ष की आयु प्राप्त कर ली हो या बीस वर्ष की अर्हक सेवा पूरी कर ली हो। नियम 56 का खंड (घ) नोटिस की समयावधि तीन महीने निर्धारित करता है, परन्तु नियम 56 के उपखंड (घ) के परन्तुक उपखंड (ii) द्वारा, नोटिस के बदले में कोई जुर्माना दिये बिना, नियुक्ति प्राधिकारी को किसी सरकारी कर्मचारी को, बगैर किसी नोटिस या संक्षिप्त नोटिस पर सेवानिवृत्त देने के लिए अधिकृत करता है। इसका अर्थ यह है कि नियुक्ति प्राधिकारी किसी सरकारी कर्मचारी को, भले ही नोटिस की अवधि तीन महीने से कम हो, स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति चाहने के अधिकार के प्रयोग के योग्य बनाने वाली अन्य शर्तों के पूर्ण होने के अधीन, स्वच्छता सेवानिवृत्त होने की अनुमति दे सकता है। नियम 56 के उपखंड (घ) के परंतुक के उपखंड (ii) का परन्तुक इस ओर इशारा करता है कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की मांग करने वाला नोटिस उसी तिथि से प्रभावी होगा, जबकि उसके ऊपर अनुशासनात्मक कार्यवाही लंबित या विचाराधीन है, नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा स्वीकृत होने पर ही नोटिस प्रभावी होगा परन्तु विचाराधीन अनुशासनात्मक कार्यवाही के मामले में सरकारी कर्मचारी को उसकी नोटिस की समयावधि समाप्त होने से पूर्व, या सूचित करना होगा कि यह स्वीकृत नहीं की गई। इसका अर्थ यह है कि जहां अनुशासनाल्क कार्यवाही न तो लंबित और न तो विचाराधीन हैं, तो नोटिस,

नियम 56 (घ) में दी गई समयावधि की समाप्ति के बाद, जो तीन महीने हैं, प्रभावी होगी।

यदि नोटिस द्वारा दी गई समयावधि तीन महीने से कम है तो नियम 56 के उपखण्ड (घ) के प्रथम परन्तुक के उपखण्ड (ii) के कारण, नियुक्ति प्राधिकारी को, सरकारी कर्मचारी को संक्षित अवधि में सेवानिवृत्त होने की अनुमति का आदेश दे सकेगा।

10. वर्तमान मामले में, स्वीकार्य रूप से, नोटिस की अवधि तीन महीने से कम थी इसलिए नियुक्ति प्राधिकारी को याचिकाकर्ता को सेवानिवृत्त होने की अनुमति देने के अनुरोध को स्वीकार करना अपेक्षित था। लेकिन क्या स्वीकृति का आदेश उस अवधि के भीतर पारित किया जाना था और बाद नहीं, यह निर्धारित करने की आवश्यकता थी। विशेष रूप से, नियम सेवानिवृत्ति नोटिस की स्वीकृति के लिए समय सीमा निर्धारित नहीं करता है। हालांकि, जहां सेवानिवृत्ति चाहने वाले के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही लंबित है, नोटिस स्वीकार किए जाने पर ही प्रभावी होगा, बशर्ते कि अपेक्षित अनुशासनात्मक कार्यवाही के मामले में, नोटिस देने वाले को नोटिस की अवधि के भीतर सूचित करना होगा कि इसे स्वीकार नहीं किया गया है। इस मामले में, यह नहीं दिखाया गया है कि रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही या तो लंबित थी या विचाराधीन थी। परिणामस्वरूप, नियुक्ति प्राधिकारी उसमें प्रदान की गई अवधि के भीतर याचिकाकर्ता को नोटिस की अस्वीकृति के बारे में सूचित करने के लिए बाध्य नहीं था। इन परिस्थितियों में, 30.06.2018 से पहले स्वीकृति की आवश्यकता थी या नहीं, इस मुद्दे को उसी सिद्धांत पर संबोधित करना होगा जो एक प्रस्ताव की स्वीकृति को नियंत्रित करता है, यानी क्या याचिकाकर्ता से कोई संकेत मिलता था कि उसे 30.06.2018 तक सेवानिवृत्त होना स्वीकार्य था और उसके बाद नहीं। उक्त संदर्भ में अभिलेख के अवलोकन पर हम पाते हैं कि सेवानिवृत्ति आवेदन / नोटिस उस संबंध में मौन है। यह केवल 30.06.2018 से प्रभावी स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति चाहता है। अपीलकर्ता द्वारा दायर शपथ पत्र, दिनांक 06:04.2018, स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति आवेदन / नोटिस के साथ एक अयोग्य प्रस्ताव / सेवानिवृत्त होने की इच्छा को बिना किसी तिथि को निर्दिष्ट किए बताता है जिसके द्वारा इसे स्वीकार किया जाना चाहिए। आवेदन या हलफनामे में इस बात का कोई संकेत नहीं है कि यदि प्रस्ताव एक निश्चित अवधि तक स्वीकार नहीं किया जाता है तो इसे वापस ले लिया गया माना जाएगा। इस प्रकार, स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की मांग करने वाले नोटिस ने 30.06.2018 से सेवानिवृत्त होने के लिए एक स्थायी प्रस्ताव का विस्तार किया, जिसे नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा तय तक स्वीकार किया जा सकता था, जब तक कि इसे नियुक्ति प्राधिकारी की अनुमति से दूसरे प्रावधान के प्रावधानों के अनुसार वापस नहीं लिया गया था।

मौलिक नियमों के नियम 56 (डी) के खंड (ii) 1 मौलिक नियम के नियम 56 (घ) के खंड (ii) के दूसरे परंतुक के अनुसार स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति नोटिस को नियुक्ति प्राधिकारी की अनुमति के बिना वापस नहीं लिया जा सकता है, 30.06. 2018 से परे सेवा प्रदान करके नोटिस को निहित रूप से वापस नहीं लिया जा सकता है। केवल इस कारण से कि नोटिस की अवधि तीन महीने से कम थी, इसलिए नियोक्ता कर्मचारी संबंध को समाप्त करने के लिए प्रस्ताव की स्वीकृति आवश्यक थी। जब तक संबंध बना रहता है, तब तक पदधारी नियोक्ता की सेवा करने के लिए बाध्य था और इसलिए ऐसी सेवा लेने से स्थायी प्रस्ताव को स्वीकार करने के नियोक्ता के अधिकार का अधित्याग नहीं होगा। उपरोक्त कारणों से, हमारा यह सुविचारित मत

है कि जिस तारीख से सेवानिवृत्ति की मांग की गई थी, उसके बाद स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति नोटिस को स्वीकार करने के लिए नियुक्ति प्राधिकारी के लिए कोई कानूनी बाधा मौजूद नहीं थी।

11. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, हमें विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय और आदेश में कोई त्रुटि नहीं दिखाई देती है। इससे भी अधिक, क्योंकि विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपने आदेश में स्पष्ट किया है कि बाद की अवधि के लिए कोई भी वेतन, यदि याचिकाकर्ता को भुगतान किया जाता है, तो उससे वसूल / वापस नहीं लिया जाएगा और आगे, प्राधिकरण यह सुनिश्चित करेगा कि याचिकाकर्ता को 30.06.2018 से सेवानिवृत्त मान कर सेवानिवृत्त लाभ जारी किए जाए।

12. अलग होने से पहले, हम यह विचार कर सकते हैं कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने निर्णय के पैरा 14 में, जिसका खण्डन नहीं किया गया है, याचिकाकर्ता को अभियोजित नहीं करने का एक और कारण पाया है। उक्त अनुच्छेद नीचे पुनः प्रस्तुत किया जाता है: -

14. इस स्तर पर विद्वान स्थायी अधिकता बताते हैं कि याचिकाकर्ता ने 2019 की एक पश्च रिट याचिका संख्या 63782 भी दायर की है, जिसमें उसे प्रतिनिधित्व करने की अनुमति दी गई थी और उसे भी 26.10.2020 को खारिज कर दिया गया है। यह बाद का आदेश चुनौती के अधीन नहीं है। एक बार स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए याचिकाकर्ता का दावा वैध कारणों से स्वीकार कर लिया गया है, तो इसे वापस लेने का कोई भी प्रयास अन्यथा कानून में स्वीकार्य नहीं होगा।"

13. उपरोक्त विचार से हम सम्मानपूर्वक सहमत है और इस कारण से भी अपीलार्थी इस अपील में कोई भी राहत पाने का हकदार नहीं है।

14. यह विशेष अपील खारिज की जाती है।

(2023) 1 ILRA 1204

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी

रिट-ए संख्या 167/2014

भवानी प्रसाद साहू एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उ.प्र. राज्य एवं अन्य ...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री दुर्गा प्रसाद द्विवेदी, श्री आशुतोष शाही, श्री शरद द्विवेदी

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता:

सी.एस.सी.

क. सेवा कानून - वेतनमान में भेदभाव - यदि दो विभाग एक ही सरकार के नियंत्रण में हैं और कर्मचारियों की ड्यूटी समान है, तो उनके वेतन में कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता है और दोनों प्रकार के कर्मचारी 'समान कार्य के लिए समान वेतन' के सिद्धांत द्वारा शासित होंगे।

सिंचाई विभाग और पीडब्लूडी उ.प्र. राज्य के विभाग हैं, जिन्हें राज्य सरकार द्वारा नियुक्त प्रमुख सचिव के नेतृत्व में समान दर्जा प्राप्त है। याचिकाकर्ताओं के साथ-साथ सिंचाई विभाग के जनरेटर ऑपरेटर भी 50 केवीए से अधिक के जनरेटर चलाने की समान ड्यूटी कर रहे हैं। याचिकाकर्ताओं एवं सिंचाई विभाग के जेनरेटर संचालकों की नियुक्ति प्रक्रिया एवं कार्य की प्रकृति में भी कोई अंतर नहीं है। (पैरा 12)

ख. 'समान कार्य के लिए समान वेतन' के मामले पर विचार करते समय, भर्ती का तरीका, पद के लिए योग्यता, कार्य की प्रकृति, कार्य का मूल्य और इसमें शामिल जिम्मेदारियां और विभिन्न अन्य कारकों को ध्यान में रखना होगा और न्यायालय केवल वहीं

हस्तक्षेप कर सकता है जहां राज्य सरकार द्वारा नियुक्त कर्मचारियों के दो समूहों के बीच भेदभाव होता है। (पैरा 14)

यहां इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि दोनों विभागों को समान दर्जा प्राप्त है। एक बार जब नियोक्ता एक ही हो, भर्ती का तरीका, पद के लिए योग्यता, कार्य की प्रकृति और अन्य जिम्मेदारियां समान हों, तो न्यायालय के पास मामले में हस्तक्षेप करने का पूरा अधिकार है और ऐसे कर्मचारी 'समान कार्य के लिए समान वेतन' के सिद्धांत द्वारा शासित होंगे, और किसी भी आधार पर समान वेतनमान से इनकार नहीं किया जा सकता है। (पैरा 16)

रिट याचिकाओं को अनुमति दी गई। (ई 4)

<u>**नजीरें जिनका पालन किया गया:**</u>

1. रणधीर सिंह बनाम यू.ओ.आई. और अन्य, (1982) 1 एससीसी 618 (पैरा 7)
2. पंजाब राज्य और अन्य बनाम जगजीत सिंह और अन्य, (2017) 1 एससीसी 148 (पैरा 8)
3. एम.पी. राज्य बनाम सीमा शर्मा, सिविल अपील संख्या 3892/2022 (पैरा 9)
4. हरियाणा राज्य और अन्य बनाम हरियाणा सिविल सचिवालय पर्सनल स्टाफ एसोसिएशन, (2022) 6 एससीसी 72 (पैरा 10)

वर्तमान याचिका दिनांक 07.04.2011, 08.12.2010, 22.09.2009, 07.10.2010, 11.03.2011, 30.12.2011, 01.04.2012 के आदेशों के विरूद्ध है।

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी द्वारा सुनाया गया)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता और राज्य-प्रत्यर्थियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

2. वर्तमान याचिका निम्नलिखित प्रार्थनाओं के साथ दायर की गई है:-

"(i) विपक्षी पक्षकारों द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 7.4.2011, 8.12.2010, 22.9.2009, 7.10.2010, 11.3.2011, 30.12.2011, 1.4.2012 को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण लेख की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जो अनुलग्नक संख्या 1, 2, 3, 4, 5, 6 और 7 में निहित है।

(ii) दिनांक 1.1.1996 से याचिकाकर्ताओं के वेतनमान को सिंचाई विभाग के जनरेटर ऑपरेटर के वेतनमान यानी रू. 4000-100-6000 के बराबर तय करने के लिए विपक्षी पक्षकारों को आदेश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।"

3. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि वर्तमान विवाद उ.प्र. राज्य के दो विभागों, यानी लोक निर्माण विभाग (संक्षेप में पीडब्ल्यूडी) और सिंचाई विभाग में समान स्थिति वाले कर्मचारियों के वेतनमान में भेदभाव के कारण उत्पन्न हो रहा है।

4. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ताओं को शुरू में पीडब्ल्यूडी में दैनिक वेतनभोगी के रूप में नियुक्त किया गया था। याचिकाकर्ताओं की सेवाएं 2.7.2003 को नियमित कर दी गईं (गलती से 2.7.2013 टाइप कर दिया गया)। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता संख्या 1 से 6 तक को चयन समिति द्वारा हेल्पर से जनरेटर ऑपरेटर के पद पर चयनित और नियुक्त किया गया था, जबकि याचिकाकर्ता संख्या 7, 8 और 9 अपनी प्रारंभिक नियुक्ति के बाद से जनरेटर ऑपरेटर के पद पर कार्यरत थे। वर्तमान में सभी याचिकाकर्ता पीडब्ल्यूडी के विभिन्न प्रभागों में जेनरेटर ऑपरेटर के पद पर कार्यरत थे। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता संख्या 1, 3 और 5 100 केवीए के जनरेटर

अनुवादित

का संचालन कर रहे हैं जबकि याचिकाकर्ता संख्या 2 और 4 क्रमशः 320 केवीए और 140 केवीए के जनरेटर का संचालन कर रहे हैं। इसके अलावा, याचिकाकर्ता संख्या 8 और 9 180 केवीए और 100 केवीए का जनरेटर चला रहे हैं। याचिकाकर्ता संख्या 6 एवं 7 125 केवीए एवं 62.5 केवीए का जनरेटर चला रहे हैं।

5. उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ताओं की तरह, सिंचाई विभाग में भी दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी हैं, जिन्हें बाद में समान कार्य प्रकृति के साथ जेनरेटर ऑपरेटर के पद पर नियुक्ति दी गई है। उन्होंने आगे कहा कि सिंचाई विभाग ने जनरेटर की क्षमता के आधार पर अपने काम को दो भागों में विभाजित किया है, जिसे वे चला रहे हैं। जो ऑपरेटर 50 केवीए का जनरेटर चला रहे हैं, उन्हें रू. 3050-4590/- वेतनमान दिया गया है, जबकि अन्य ऑपरेटर, जो 50 केवीए से अधिक का जनरेटर चला रहे हैं, उन्हें 4000-6000/- वेतनमान दिया गया है। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ताओं के साथ-साथ सिंचाई विभाग के जनरेटर ऑपरेटर भी समान ड्यूटी कर रहे हैं, लेकिन याचिकाकर्ताओं को रू. 4000-6000/- के वेतनमान से वंचित कर दिया गया और उन्हें रू. 3050-4590/- के वेतनमान का भुगतान किया जा रहा है।

6. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि इस मामले पर मुख्य अभियंता, लोक निर्माण विभाग द्वारा विचार किया गया था और पत्र दिनांक 31.7.2012 द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 2 को सिंचाई विभाग के जनरेटर ऑपरेटर के समान वेतनमान देने की सिफारिश की गई थी, लेकिन इसे मंजूरी नहीं दी गई है। पुनः, मुख्य अभियंता, लोक निर्माण विभाग ने दिनांक 25.4.2013 और 1.5.2013 के पत्रों के माध्यम से लोक निर्माण विभाग से इसी तरह के अनुरोध के साथ सिफारिश की थी, लेकिन कोई कार्रवाई नहीं की गई। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि सिंचाई विभाग और लोक निर्माण विभाग, दोनों उत्तर प्रदेश राज्य के विभाग हैं और याचिकाकर्ताओं के साथ-साथ सिंचाई विभाग के जनरेटर ऑपरेटर भी समान कार्य और ड्यूटी कर रहे हैं, इसलिए याचिकाकर्ता भी उसी वेतनमान के हकदार हैं जो सिंचाई विभाग के 50 केवीए से अधिक के जनरेटर चलाने वाले जनरेटर ऑपरेटरों को दिया जाता है।

7. अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने **रणधीर सिंह बनाम भारत संघ और अन्य (1982) 1 एससीसी 618** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर अवलम्ब लिया है, जहां सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया है कि यदि दो विभाग एक ही सरकार के नियंत्रण में हैं और कर्मचारियों की ड्यूटी समान है, तो उनके वेतन में कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता है और दोनों प्रकार के कर्मचारी 'समान कार्य के लिए समान वेतन' के सिद्धांत द्वारा शासित होंगे और समान वेतन के हकदार होंगे।

8. उन्होंने आगे कहा कि **पंजाब राज्य और अन्य बनाम जगजीत सिंह और अन्य (2017) 1 एससीसी 148** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कानून के उसी अनुपात का फिर से पालन किया गया।

9. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने इस दलील का पुरजोर विरोध किया और कहा कि याचिकाकर्ता अधिकार के रूप में वेतनमान की समानता का दावा नहीं कर सकते। उन्होंने आगे कहा कि केवल पदनाम या काम की मात्रा की समानता वेतनमान की समानता का आधार नहीं हो सकती। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने **मध्य प्रदेश राज्य बनाम सीमा शर्मा** के मामले में **सिविल अपील संख्या 3892/2022** में पारित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया है।

10. उन्होंने आगे कहा कि वेतनमान का निर्धारण और ड्यूटी में समानता का निर्धारण कार्यपालिका का कार्य है और न्यायिक समीक्षा का दायरा बहुत सीमित है। इस तर्क के समर्थन में, उन्होंने **हरियाणा राज्य और अन्य बनाम हरियाणा सिविल सचिवालय पर्सनल स्टाफ**

एसोसिएशन 2022 6 एससीसी 72 मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी अवलम्ब लिया है।

11. न्यायालय द्वारा सामना किए जाने पर, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता इस तथ्य पर विवाद नहीं कर सके कि सिंचाई विभाग और पीडब्ल्यूडी उ.प्र. राज्य के विभाग हैं, जिनके प्रमुख सचिव समान दर्जा रखते हैं। वह पीडब्लूडी में याचिकाकर्ताओं और सिंचाई विभाग में अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति की प्रकृति के बारे में भी कोई अंतर नहीं बता सके। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई अन्य तथ्यात्मक दलीलों पर भी विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा विवाद नहीं किया जा सका।

12. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर विचार किया है और अभिलेखों का अवलोकन किया है। मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अवलम्ब लिए गए निर्णयों का भी अध्ययन किया है। मामले के तथ्य निर्विवाद हैं। सिंचाई विभाग और पीडब्लूडी उ.प्र. राज्य के विभाग हैं, जिन्हें राज्य सरकार द्वारा नियुक्त प्रमुख सचिव के नेतृत्व में समान दर्जा प्राप्त है। याचिकाकर्ताओं के साथ-साथ सिंचाई विभाग के जनरेटर ऑपरेटर भी 50 केवीए से अधिक के जनरेटर चलाने की समान ड्यूटी कर रहे हैं। याचिकाकर्ताओं एवं सिंचाई विभाग के जेनरेटर संचालकों की नियुक्ति प्रक्रिया एवं कार्य की प्रकृति में भी कोई अंतर नहीं है। इसी तरह का मामला **उ.प्र. राज्य बनाम रणधीर सिंह (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आया था और सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट राय दी थी कि यदि दो विभाग एक ही सरकार के नियंत्रण में हैं और कर्मचारियों की ड्यूटी समान है, तो उनके वेतन में कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता है और दोनों प्रकार के कर्मचारी 'समान कार्य के लिए समान वेतन' के सिद्धांत द्वारा शासित होंगे। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या 8 और 9 यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं: -

"8. यह सच है कि 'समान कार्य के लिए समान वेतन' के सिद्धांत को हमारे संविधान द्वारा स्पष्ट रूप से मौलिक अधिकार घोषित नहीं किया गया है। लेकिन यह निश्चित रूप से एक संवैधानिक लक्ष्य है। संविधान का अनुच्छेद 39(घ) राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत के रूप में 'पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन' की घोषणा करता है। 'पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन' का अर्थ है सभी के लिए और लिंगों के बीच समान कार्य के लिए समान वेतन। जैसा कि इस न्यायालय के कुछ निर्णयों में बताया गया है, निदेशक सिद्धांतों को व्याख्या के विषय के रूप में मौलिक अधिकारों में पढ़ा जाना चाहिए। संविधान का अनुच्छेद 14 राज्य को आदेश देता है कि वह किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता या कानूनों के समान संरक्षण से वंचित न करे और अनुच्छेद 16 घोषित करता है कि राज्य के तहत किसी भी कार्यालय में रोजगार या नियुक्ति से संबंधित मामलों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समानता होगी। संविधान की धाराओं का हर किसी के लिए कुछ न कुछ अर्थ अवश्य होना चाहिए। अधिकांश लोगों के लिए संविधान के समानता खंड का कोई मतलब नहीं होगा यदि वे अपने कार्य और उन्हें मिलने वाले वेतन से बेपरवाह हैं। यदि समान कार्य का मतलब समान वेतन है तो उनके लिए समानता खंड में कुछ अर्थ होगा। क्या कथित लुटेरों और तस्कर राजाओं पर मुकदमा चलाने या कर चोरों से निपटने के लिए किसी क़ानून द्वारा निर्धारित विशेष प्रक्रिया भेदभावपूर्ण है, क्या

अनुदित

लाइसेंस या परमिट देने के मामले में कोई विशेष सरकारी नीति कार्यपालिका को निरंकुश विवेक प्रदान करती है, क्या औद्योगिक टाइकून के साम्राज्य का अधिग्रहण मनमाना और असंवैधानिक है और इसी तरह के अन्य प्रश्न, इस देश के लाखों लोगों को अछूता छोड़ देते हैं। वेतन आदि से संबंधित प्रश्न, भले ही वे सांसारिक हों, फिर भी उनके लिए महत्वपूर्ण चिंता का विषय हैं और संविधान के समानता खंडों का उनके लिए कोई महत्व है। संविधान की प्रस्तावना भारत को एक संप्रभु समाजवादी लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने के भारत के लोगों के गंभीर संकल्प की घोषणा करती है। फिर 'समाजवादी' शब्द का कुछ अर्थ अवश्य होगा। भले ही इसका मतलब 'प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार' नहीं है, फिर भी इसका मतलब कम से कम 'समान कार्य के लिए समान वेतन' होना चाहिए। 'समान कार्य के लिए समान वेतन' के सिद्धांत को कानून की सभी समाजवादी प्रणालियों द्वारा स्पष्ट रूप से मान्यता प्राप्त है, उदाहरण के लिए, हंगेरियन लेबर की धारा 59। कोड, चेकोस्लोवाक संहिता की धारा 111 के पैरा 2, बल्गेरियाई संहिता की धारा 67, जर्मन लोकतांत्रिक गणराज्य की संहिता की धारा 40, रुमानियाई संहिता की धारा 33 के पैरा 2। दरअसल इस सिद्धांत को कई पश्चिमी लेबर संहिताओं में भी शामिल किया गया है। फ्रेंच कोड डू ट्रैवेल की पुस्तक । की धारा 31 (जी नंबर 2डी) के प्रावधानों के तहत और अर्जेंटीना के कानून के अनुसार, इस सिद्धांत को सभी सामूहिक सौदेबाजी समझौतों में महिला श्रमिकों पर लागू किया जाना चाहिए। जर्मन संघीय गणराज्य के ग्रंडगेसेट्ज़ की धारा 3 और मैक्सिकन संविधान की धारा 123 के खंड 7 के अनुसार, सिद्धांत को सार्वभौमिक महत्व दिया गया है (देखें: इस्तवान सज़ाज़ी द्वारा अंतर्राष्ट्रीय श्रम कानून पृष्ठ 265)। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के संविधान की प्रस्तावना 'समान मूल्य के काम के लिए समान पारिश्रमिक' के सिद्धांत को स्थितियों में सुधार प्राप्त करने के साधनों में से एक के रूप में मान्यता देती है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के संविधान की प्रस्तावना 'समान मूल्य के काम के लिए समान पारिश्रमिक' के सिद्धांत को स्थितियों में सुधार प्राप्त करने के साधनों में से एक के रूप में मान्यता देती है कि "इसमें बड़ी संख्या में लोगों के साथ ऐसा अन्याय, कठिनाई और अभाव शामिल है जिससे इतनी बड़ी अशांति पैदा हो जाए कि दुनिया की शांति और सद्भाव ख़तरे में पड़ जाए"। प्रस्तावना और अनुच्छेद 39(घ) के आलोक में अनुच्छेद 14 और 16 की व्याख्या करते हुए हमारा मानना है कि 'समान कार्य के लिए समान वेतन' का सिद्धांत उन अनुच्छेदों से घटाया जा सकता है और इसे बिना किसी वर्गीकरण या अतार्किक वर्गीकरण के आधार पर असमान वेतनमान के मामलों में उचित रूप से लागू किया जा सकता है, हालांकि ये वेतन के विभिन्न पैमाने प्राप्त करते हैं और एक ही नियोक्ता के तहत समान कार्य करते हैं।

9. इसमें तनिक भी संदेह नहीं हो सकता कि दिल्ली पुलिस बल के ड्राइवर दिल्ली प्रशासन और केंद्र सरकार की सेवा में अन्य ड्राइवरों के समान ही कार्य और कर्तव्य निभाते हैं। यदि कुछ भी हो, तो 'पुलिस अधिकारी की शक्तियों,

कार्यों और विशेषाधिकारों' से संपन्न होने के कारण, उनकी ड्यूटी और जिम्मेदारियाँ अधिक कठिन हैं। याचिका में इस आरोप के जवाब में कि दिल्ली पुलिस बल के ड्राइवर-कांस्टेबल अन्य विभागों के ड्राइवरों की तुलना में कम कठिन ड्यूटी नहीं करते हैं, प्रत्यर्थियों द्वारा अपने जवाब में यह स्वीकार किया गया कि दिल्ली पुलिस के ड्राइवर-कांस्टेबलों की ड्यूटी कठिन थी। फिर उन्हें दूसरों से कम वेतनमान देने का क्या कारण है? कोई जवाब नहीं है। प्रत्यर्थियों का एकमात्र उत्तर यह है कि दिल्ली पुलिस बल के ड्राइवर और अन्य ड्राइवर अलग-अलग विभागों से संबंधित हैं और समान काम के लिए समान वेतन का सिद्धांत ऐसा सिद्धांत नहीं है जिसे अदालतें पहचान सकें और उस पर कार्य कर सकें। हमने दिखाया है कि उत्तर निराधार है। स्पष्टीकरण तर्कहीन है। इसलिए, हम रिट याचिका को स्वीकार करते हैं और प्रत्यर्थियों को याचिकाकर्ता और दिल्ली पुलिस बल के ड्राइवरों-कांस्टेबलों का वेतनमान कम से कम रेलवे सुरक्षा बल के ड्राइवरों के बराबर तय करने का निर्देश देते हैं। वेतनमान 1 जनवरी, 1973 से प्रभावी होगा, जिस तारीख से वेतन आयोग की सिफारिशें लागू की गई थीं।"

13. **पंजाब राज्य और अन्य बनाम जगजीत सिंह (उपरोक्त)** के मामले में, कानून का यही तथ्य सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विस्तार से व्यक्त किया गया है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या 42.3 और 60 यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं: -

"समान कार्य के लिए समान वेतन" का सिद्धांत, बिना किसी वर्गीकरण या अतार्किक वर्गीकरण के, असमान वेतनमान के मामलों पर लागू होता है (देखें - रणधीर सिंह मामला1)। समान वेतन के लिए, जिन संबंधित कर्मचारियों के साथ समानता मांगा गया है, उन्हें कार्य करना चाहिए, जो कार्यात्मक रूप से समान होने के अलावा, समान गुणवत्ता और संवेदनशीलता का होना चाहिए (देखें - अखिल भारतीय सीमा शुल्क और केंद्रीय उत्पाद शुल्क आशुलिपिक (मान्यता प्राप्त) मामला 3, मेवा राम कनौजिया मामला 5, गृह कल्याण केंद्र वर्कर्स यूनियन मामला 6 और एस.सी. चंद्रा मामला। अस्थायी कर्मचारियों (दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी, तदर्थ नियुक्त कर्मचारी, आकस्मिक आधार पर नियुक्त कर्मचारी, संविदा कर्मचारी और इसी तरह नियुक्त कर्मचारी) के संबंध में "समान कार्य के लिए समान वेतन" के सिद्धांत के आवेदन के संदर्भ में कानूनी मापदंडों का पता लगाने के बाद, एकमात्र कारक यह है कि हमारे दृढ़ संकल्प की आवश्यकता है, कि क्या संबंधित कर्मचारी (इस न्यायालय के समक्ष), समान कर्तव्यों और जिम्मेदारियों का निर्वाह कर रहे थे, जैसा कि समान/संबंधित पदों पर रहने वाले नियमित कर्मचारियों द्वारा किया जा रहा था। इस कार्य के लिए ऊपर पैराग्राफ 42 में हमारे द्वारा संक्षेपित "समान कार्य के लिए समान वेतन" के सिद्धांत के मापदंडों को लागू करने की आवश्यकता होगी। हालाँकि, जहाँ तक मामले के तात्कालिक पहलू का सवाल है, हमारे लिए तथ्यात्मक स्थिति को दर्ज करना मुश्किल नहीं है। हम ऐसा इसलिए कहते हैं, क्योंकि पंजाब राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता ने इसे उचित रूप से स्वीकार

किया था कि अपीलों के वर्तमान समूह में सभी अस्थायी कर्मचारियों को उन पदों पर नियुक्त किया गया था जो नियमित कैडर/स्थापना में भी उपलब्ध थे।

यह भी स्वीकार किया गया कि उनके रोजगार के दौरान, संबंधित अस्थायी कर्मचारियों को ड्यूटी और जिम्मेदारियों का निर्वहन करने के लिए यादृच्छिक रूप से प्रतिनियुक्त किया जा रहा था, जो किसी समय नियमित कर्मचारियों को सौंपा गया था। इसी प्रकार, स्थायी पदों पर आसीन नियमित कर्मचारियों को भी वही कार्य करने के लिए तैनात किया गया, जो समय-समय पर अस्थायी कर्मचारियों को सौंपा जाता था। इसलिए, किसी भी संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है कि अपीलों के वर्तमान समूह में अस्थायी कर्मचारियों द्वारा निर्वहन की गई ड्यूटी और जिम्मेदारियां वही थीं जो नियमित कर्मचारियों द्वारा निभाई जा रही थीं। अपीलकर्ताओं का मामला यह नहीं है कि प्रत्यर्थी-कर्मचारियों के पास नियमित आधार पर नियुक्ति के लिए निर्धारित योग्यताएं नहीं थीं। इसके अलावा, यह राज्य का मामला नहीं है कि कोई भी अस्थायी कर्मचारी यहां ऊपर पैराग्राफ 42 में हमारे द्वारा संक्षेपित किसी भी सिद्धांत पर वेतन समानता का हकदार नहीं होगा। इसमें कोई संदेह नहीं है कि ''समान कार्य के लिए समान वेतन'' का सिद्धांत सभी संबंधित अस्थायी कर्मचारियों पर लागू होगा, ताकि उन्हें समान पद पर नियमित रूप से कार्यरत सरकारी कर्मचारियों के न्यूनतम वेतनमान के बराबर वेतन का दावा करने का अधिकार दिया जा सके।''

14. प्रत्यर्थियों ने **मध्य प्रदेश राज्य बनाम सुषमा शर्मा (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी अवलम्ब लिया है। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि 'समान कार्य के लिए समान वेतन' के मामले पर विचार करते समय भर्ती का तरीका, पद के लिए योग्यता, काम की प्रकृति, काम का मूल्य और इसमें शामिल जिम्मेदारियां और कई अन्य कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिए और न्यायालय केवल जहां राज्य सरकार द्वारा नियुक्त कर्मचारियों के दो समूहों के बीच भेदभाव हो वहां हस्तक्षेप करें। यहां इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि दोनों विभागों का दर्जा समान है, भर्ती का तरीका, पद के लिए योग्यता, कार्य की प्रकृति, कार्य का मूल्य और जिम्मेदारियां आदि भी समान हैं, इसलिए न्यायालय को इस मामले में हस्तक्षेप करने का पूरा अधिकार है। दरअसल, यह फैसला याचिकाकर्ता के पक्ष में है। उसी का प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या 18 और 23 यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

> *"18. रमेश चंद्र बाजपेयी (सुप्रा) मामले में, इस न्यायालय ने आगे कहा कि यह सुस्थापित था कि समान कार्य के लिए समान वेतन का सिद्धांत केवल तभी लागू किया जा सकता है जब कर्मचारियों की परिस्थितियाँ हर तरह से समान हों। केवल पदनाम की समानता या समानता या काम की मात्रा वेतनमान के मामले में समानता का निर्धारक नहीं थी। न्यायालय को सभी प्रासंगिक कारकों जैसे भर्ती का तरीका, पद के लिए योग्यता, कार्य की प्रकृति, कार्य का मूल्य, इसमें शामिल जिम्मेदारियां और कई अन्य कारकों पर विचार करना था।*
>
> *23. वेतनमान का निर्धारण एक नीतिगत मामला है, जिसमें अदालतें केवल असाधारण मामलों में ही हस्तक्षेप कर सकती हैं, जहां एक ही प्राधिकारी द्वारा नियुक्त कर्मचारियों के दो*

समूहों के बीच एक ही तरीके से भेदभाव होता है, जहां पात्रता मानदंड समान होते हैं और कर्तव्य हर पहलू में समान हैं।"

15. प्रत्यर्थियों ने **हरियाणा राज्य और एक अन्य बनाम हरियाणा सिविल सचिवालय पर्सनल स्टाफ एसोसिएशन (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय पर भी अवलम्ब लिया है और यह निर्णय भी याचिकाकर्ताओं के पक्ष में है। उक्त फैसले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया है कि आम तौर पर अदालतें नौकरी के मूल्यांकन के मामले में हस्तक्षेप नहीं करेंगी, जिसे आम तौर पर वेतन आयोग आदि जैसे विशेषज्ञ निकायों पर छोड़ दिया जाता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि न्यायालय के पास कोई क्षेत्राधिकार नहीं है और पीड़ित कर्मचारियों के पास कोई उपाय नहीं है, यदि राज्य की मनमानी कार्रवाई या निष्क्रियता द्वारा उनके साथ अन्याय किया जाता है। यहां यह तथ्य निर्विवाद है कि दोनों कर्मचारियों की स्थिति समान है, इसलिए न्यायालय को मामले में हस्तक्षेप करने का पूरा अधिकार है। प्रासंगिक पैराग्राफ नं. 9 और 10 यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं: -

"इस न्यायालय ने सेक्रेटरी, फाइनेंस डिपार्टमेंट बनाम वेस्ट बंगाल रजिस्ट्रेशन सर्विस एसोसिएशन और अन्य, [1993] सप्लिमेंट, एससीसी 153 के मामले में, पदों के समीकरण और सरकारी कर्मचारियों के वेतन की समानता के प्रश्न पर विचार करते हुए निम्नलिखित टिप्पणियाँ कीं:

हम उस मामले के कानून का अध्ययन करना आवश्यक नहीं समझते हैं जिस पर अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा अवलम्ब लिया गया है क्योंकि यह सुस्थापित है कि पदों का समीकरण और वेतनमान का निर्धारण कार्यपालिका का प्राथमिक कार्य है न कि न्यायपालिका का, और इसलिए, आम तौर पर अदालतें नौकरी के मूल्यांकन के मामले में हस्तक्षेप नहीं करेंगी, जो आम तौर पर वेतन आयोग आदि जैसे विशेषज्ञ निकायों पर छोड़ दिया जाता है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि न्यायालय के पास कोई क्षेत्राधिकार नहीं है और राज्य की मनमानी कार्रवाई या निष्क्रियता द्वारा पीड़ित कर्मचारियों के साथ अन्याय होने पर उनके पास कोई उपाय नहीं है। हालाँकि, अदालतों को यह महसूस करना चाहिए कि नौकरी का मूल्यांकन एक कठिन और समय लेने वाला कार्य है, यहां तक कि आवश्यक विशेषज्ञता वाले कर्मचारियों की सहायता वाले विशेषज्ञ निकायों को भी कर्मचारियों के विभिन्न समूहों के प्रदर्शन के मूल्यांकन के लिए प्रासंगिक डेटा और पैमानों की कमी के कारण कभी-कभी इसे करना मुश्किल लगता है। इसके लिए नौकरी की आवश्यकताओं की बदलती प्रकृति के कारण बाहरी तुलनाओं और आंतरिक सापेक्षताओं के निरंतर अध्ययन की आवश्यकता होगी। नौकरी के मूल्यांकन के लिए जिन कारकों को ध्यान में रखना होगा उनमें शामिल हो सकते हैं (i) उसके विभाग का कार्य कार्यक्रम (ii) उससे अपेक्षित योगदान की प्रकृति (iii) उसकी जिम्मेदारी की सीमा और उसके विविध कार्यों के निर्वहन की जवाबदेही कर्तव्य और कार्य (iv) अपने कर्तव्यों के निर्वहन में उपलब्ध या उस पर लगाई गई स्वतंत्रता/सीमाओं की सीमा और प्रकृति (v) उसमें निहित शक्तियों की सीमा (vi) अपने कर्तव्यों के पालन के लिए वरिष्ठों पर

अनुवाद

उसकी निर्भरता की सीमा शक्तियाँ (vii) अन्य विभागों के साथ समन्वय की आवश्यकता, आदि। हमने सेवा के इतिहास और वेतनमानों की कुल संख्या को उचित संख्या तक कम करने के विभिन्न निकायों के प्रयासों का भी उल्लेख किया है। वेतनमानों की संख्या में इस तरह की कमी को समान वेतनमान में तुलनीय जॉब चार्ट वाले विभिन्न पदों को रखकर पदों की ब्रॉडबैंडिंग का सहारा लेकर हासिल किया जाना है। वेतनमानों की संख्या में पर्याप्त कमी से अनिवार्य रूप से उन पदों और ग्रेडों को एक साथ जोड़ा जाना चाहिए जो पहले भिन्न और असमान थे। ऐसा करते समय यह सुनिश्चित करने का ध्यान रखा जाना चाहिए कि वेतन संरचना के इस तरह के युक्तिकरण से विसंगतियां पैदा न हों। आमतौर पर वेतन संरचना कई कारकों को ध्यान में रखते हुए विकसित की जाती है, जैसे, (i) भर्ती की विधि, (ii) जिस स्तर पर भर्ती की जाती है, (iii) किसी दिए गए कैडर में सेवा का पदानुक्रम, (iv) न्यूनतम शैक्षिक/तकनीकी आवश्यक योग्यताएं, (v) पदोन्नति के रास्ते, (vi) कर्तव्यों और जिम्मेदारियों की प्रकृति, (vii) समान नौकरियों के साथ क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर सापेक्षताएं, (viii) सार्वजनिक व्यवहार, (ix) संतुष्टि स्तर, (x) नियोक्ता की क्षमता भुगतान करना आदि। हमने इन मामलों को कुछ विस्तार से केवल इस बात पर जोर देने के लिए संदर्भित किया है कि वेतन संरचना विकसित करते समय कई कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिए और पदानुक्रमित व्यवस्था, पदोन्नति के रास्ते आदि को ध्यान में रखते हुए क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर सापेक्षता को सावधानीपूर्वक संतुलित किया जाना चाहिए, इस तरह की सावधानी से विकसित की गई वेतन संरचना को आमतौर पर खराब नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह संतुलन को बिगाड़ सकता है और अन्य संवर्गों में भी टाले जा सकने वाले उतार-चढ़ाव का कारण बन सकता है। संभवतः इसी कारण से न्यायिक सचिव, जिन्होंने दूसरे (राज्य) वेतन आयोग में उप-पंजीयकों के वेतन में पर्याप्त वृद्धि की जोरदार सिफारिश की थी, उन्हें तीसरे (राज्य) वेतन आयोग के अध्यक्ष के रूप में अपनी क्षमता में पंजीकरण सेवा द्वारा की गई मांग को स्वीकार करना मुश्किल हो गया था। इसलिए, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि पदों का समीकरण और वेतन का समीकरण एक जटिल मामला है, जिसे किसी विशेषज्ञ निकाय पर छोड़ देना बेहतर है, जब तक कि रिकॉर्ड पर ठोस सामग्री न हो जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि किसी दिए गए पद के लिए वेतनमान तय करते समय गंभीर त्रुटि हुई थी और न्यायालय अन्याय को ख़त्म करने के लिए हस्तक्षेप नितांत आवश्यक है।

यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि समान काम के लिए समान वेतन का दावा किसी भी कर्मचारी का मौलिक अधिकार नहीं है, हालांकि यह सरकार द्वारा हासिल किया जाने वाला एक संवैधानिक लक्ष्य है। वेतन का निर्धारण तथा ड्यूटी एवं उत्तरदायित्वों में समानता का निर्धारण एक जटिल मामला है जिसका निर्वहन कार्यपालिका को करना है। मामले में निर्णय लेते समय कई प्रासंगिक कारकों, इनमें से कुछ को इस न्यायालय द्वारा

निर्णयित मामले में नोट किया गया है, उन पर संशोधित वेतनमान की अतिरिक्त देनदारी वहन करने के लिए राज्य सरकार की मौजूदा वित्तीय स्थिति और क्षमता को ध्यान में रखते हुए विचार किया जाना चाहिए, यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि राज्य सरकार की प्रचलित नीतियों के तहत विभिन्न प्रकार के पदों को दी जाने वाली प्राथमिकता भी राज्य सरकार द्वारा विचार करने के लिए एक प्रासंगिक कारक है। इसमें शामिल मुद्दों की जटिल प्रकृति, मामले में किसी निर्णय के दूरगामी परिणाम और राज्य सरकार की अदालतों के प्रशासन पर इसके प्रभाव के आधार पर यह विचार किया गया है कि आम तौर पर अदालतों को वेतन निर्धारण और वेतन समानता से संबंधित प्रशासनिक निर्णयों में गहराई से जाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। इसका मतलब यह नहीं है कि मामला न्यायसंगत नहीं है या अदालतें सरकार द्वारा लिए गए ऐसे प्रशासनिक निर्णय के खिलाफ किसी भी कार्यवाही पर विचार नहीं कर सकती हैं। अदालतों को ऐसे मामलों को संयम से देखना चाहिए और तभी हस्तक्षेप करना चाहिए जब वे इससे संतुष्ट हों कि सरकार का निर्णय स्पष्ट रूप से अतार्किक, अन्यायपूर्ण और कर्मचारियों के एक वर्ग के लिए पूर्वाग्रहपूर्ण है और सरकार ने निर्णय लेते समय उन कारकों को नजरअंदाज कर दिया है जो इस मामले में निर्णय के लिए महत्वपूर्ण और प्रासंगिक हैं। यहां तक कि ऐसे मामले में जहां अदालत सरकार द्वारा पारित आदेश को अस्थिर मानती है तो सामान्य तौर पर राज्य सरकार या निर्णय लेने वाले प्राधिकारी को मामले पर पुनर्विचार करने और उचित आदेश पारित करने का निर्देश दिया जाना चाहिए। न्यायालय को एक विशेष वेतनमान देने की घोषणा करने और सरकार को उसे लागू करने के लिए बाध्य करने से बचना चाहिए। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, वर्तमान मामले में 'उच्च न्यायालय ने कर्मचारियों के दो वर्गों, एक राज्य सचिवालय और दूसरा केंद्रीय सचिवालय, के कर्तव्यों और जिम्मेदारियों की प्रकृति की तुलना करने का कोई प्रयास नहीं किया है। इसने मूल सिद्धांत को भी नजरअंदाज कर दिया है कि नियोक्ताओं द्वारा जारी किए गए कुछ नियम, विनियम और कार्यकारी निर्देश हैं जो कैडर के प्रशासन को नियंत्रित करते हैं।"

16. यहां ऊपर उल्लिखित तथ्यों के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के आलोक में, इस न्यायालय का मानना है कि एक बार जब नियोक्ता एक ही हो, और भर्ती का तरीका, पद के लिए योग्यता, कार्य की प्रकृति और अन्य जिम्मेदारियां समान होती हैं, तो ऐसे कर्मचारी 'समान कार्य के लिए समान वेतन' के सिद्धांत द्वारा शासित होंगे, और किसी भी आधार पर समान वेतनमान से इनकार नहीं किया जा सकता है।

17. वर्तमान मामले में, इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ताओं के साथ-साथ सिंचाई विभाग के कर्मचारियों यानी जनरेटर ऑपरेटरों की भर्ती का तरीका एक ही है। इसके अलावा, उनका काम एक ही प्रकृति का, यानी 50 केवीए से अधिक के जनरेटर चलाना है। उनका प्रमुख नियोक्ता भी एक ही, यानी राज्य सरकार है, जिसका दोनों विभागों, यानी पीडब्ल्यूडी और सिंचाई विभाग पर पूर्ण नियंत्रण होता है, जिसके प्रमुख सचिव होते हैं।

18. इसलिए, रिट याचिका को **अनुमति** दी जाती है और दिनांक 7.4.2011, 8.12.2010, 22.9.2009, 7.10.2010, 11.3.2011, 30.12.2011, 1.4.2012 के आक्षेपित आदेशों को रद्द किया जाता है। प्रत्यर्थियों को याचिकाकर्ताओं को भी उसी वेतनमान यानी रू. 4000-6000/- का भुगतान करने का परमादेश जारी किया जाए जो सिंचाई विभाग के जनरेटर ऑपरेटरों को दिया गया है।

19. वे नियत तिथि से वास्तविक भुगतान की तिथि तक बैंक दर पर ब्याज के भी हकदार होंगे।

20. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 1 ILRA 1212
अपीलीय क्षेत्राधिकार
नागरिक पक्ष
दिनांक:इलाहाबाद 24.11.2022

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,
माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

विशेष अपील संख्या 470 वर्ष 2021

संत लाल यादव ...अपीलकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
श्री राधा कांत ओझा (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री शशांक शर्मा

प्रतिवादीगण के लिए अधिवक्ता:
श्री गजेंद्र प्रताप सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री जीतेंद्र कुमार श्रीवास्तव, श्री रामानंद पांडे (अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता)

क. शिक्षा कानून - प्रबंधन समिति का चुनाव - न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने और कार्रवाई करने का अधिकार - रिट याचिकाकर्ता ने, रिट-सी संख्या 19219 वर्ष 2019 के तहत 22.01.2018 को अधिकृत नियंत्रक द्वारा आयोजित पांचवें प्रतिवादी के चुनाव के पहले सत्यापन को चुनौती देते समय, प्राधिकृत नियंत्रक द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.12.2017 जिसके आधार पर दिनांक 22.01.2018 को चुनाव हुए थे, जिसमें पांचवें प्रतिवादी को चुना गया था, को चुनौती नहीं दी। (पैरा 17)

रिट-सी संख्या 19219 वर्ष 2019 में पारित इस न्यायालय के आदेश दिनांक 30.07.2019 से पता चलेगा कि अकेले पांचवें प्रतिवादी के हस्ताक्षरों के सत्यापन के आदेश दिनांक 25.01.2018 (चुनाव दिनांक 22.01.2018 के आधार पर) को अकेले चुनौती दी गई थी| दिनांक 30.12.2017 का आदेश, जो दिनांक 22.01.2018 के चुनावों की नींव था या स्वयं उक्त चुनावों को रिट याचिकाकर्ता द्वारा कभी चुनौती नहीं दी गई थी। रिट याचिका में राहत के लिए क्षेत्रीय स्तर की समिति को स्थानांतरित करने की स्वतंत्रता नहीं दी गई थी। इस प्रकार, दिनांक 30.12.2017 के आदेश को पक्षकारों के बीच अंतिम रूप मिल गया है। यह रिट याचिकाकर्ता के आवेदन जो कि उसने क्षेत्रीय स्तर समिति को रिट सी संख्या 19291 वर्ष 2019 की वापसी के बाद किया था, पर क्षेत्रीय स्तर समिति द्वारा लिए गए निर्णय का परिणाम है, कि रिट याचिकाकर्ता ने क्षेत्रीय स्तरीय समिति द्वारा पारित आदेश दिनांक 03.02.2020 को चुनौती देने की आड़ में नए सिरे से और लगभग संपार्श्विक कार्यवाही शुरू की। (पैरा 17)

ख. संपार्श्विक कार्यवाही - रिट-सी संख्या 1285 वर्ष 2021 में, रिट याचिकाकर्ता ने क्षेत्रीय स्तरीय समिति द्वारा पारित 03.02.2020 के आदेश को चुनौती दी और प्राधिकृत नियंत्रक के दिनांक 30.12.2017 के आदेश पर सवाल उठाने का प्रयास किया जो पहले ही अंतिम रूप ले चुका था। यही कारण है कि विद्वान न्यायाधीश ने रिट याचिका दिनांक 08.02.2021 को अनुमति देते हुए दिनांक 30.12.2017 के आदेश के खिलाफ आपत्तियां दायर करने की अनुमति दी, लेकिन इसकी वैधता पर कोई राय व्यक्त नहीं की। वास्तव में, उक्त आदेश के विरुद्ध, इस न्यायालय के समक्ष या प्राधिकृत नियंत्रक के समक्ष, बहुत मौलिक या व्यापक आधार पर कुछ बातों को छोड़कर, बहुत कुछ नहीं कहा जा सकता है। प्राधिकृत नियंत्रक ने सही निष्कर्ष निकाला कि 30.12.2017 के आदेश के तहत प्राधिकृत नियंत्रक ने पहले जो कहा था, उसके खिलाफ उनके पास योग्यता के आधार पर कहने के लिए कुछ नहीं है। **30.12.2017 के आदेश में कहा गया था कि रिट याचिका में सोसायटी या कॉलेज के निर्वाचक मंडल के निर्धारण पर सवाल उठाने का कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि 03.03.2009 के आदेश के तहत, संस्थापक ट्रस्टियों ने सोसायटी के उपनियमों के खंड 10 (घ) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए सोसायटी की सदस्यता से रिट याचिकाकर्ता सहित 32 सदस्यों को हटा दिया था। 30.12.2017 के आदेश में इस तथ्य को भी दर्ज किया गया है कि दिनांक 03.03.2009 के**

आदेश को किसी भी मंच, न्यायालय या प्राधिकरण के समक्ष कभी चुनौती नहीं दी गई थी और इस प्रकार, यह अंतिम था। (पैरा 18)

प्राधिकृत नियंत्रक के समक्ष, जब मामला रिट-सी संख्या 1285 वर्ष 2021 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 08.02.2021 के संदर्भ में विद्वान एकल न्यायाधीश के पास से प्रेषित हुआ, तो रिट याचिकाकर्ता ऐसा कुछ भी नहीं दिखा सका जो प्राधिकृत नियंत्रक द्वारा दिनांक 30.12.2017 के आदेश के तहत पूर्व में दर्ज इस आशय के निष्कर्ष कि सोसायटी के उपनियमों के तहत संस्थापक ट्रस्टियों द्वारा पारित आदेश दिनांक 03.03.2009 के संदर्भ में रिट याचिकाकर्ता की सोसायटी की सदस्यता समाप्त कर दी गई थी, को हटा सके। (पैरा 19)

चूँकि संस्थापक ट्रस्टियों द्वारा 03.03.2009 को पारित निष्कासन के प्रस्ताव, जिसे कहीं भी चुनौती नहीं दी गई है, के संदर्भ में, रिट याचिकाकर्ता ने स्पष्ट रूप से सोसायटी के सामान्य निकाय के सदस्य के रूप में अपना पद खो दिया है, निर्वाचक मंडल के निर्धारण पर सवाल उठाने का उसका अधिकार निश्चित रूप से बिना किसी अधिकार के है; या जैसा कि विद्वान एकल न्यायाधीश कहते हैं, बिना लोकस स्टैन्डी के। यह सब रिट याचिकाकर्ता के मामले पर विचार करने के बारे में है और यह कहना गलत है कि एक बार जब रिट याचिकाकर्ता की सदस्यता और बल्कि संस्था की सामान्य सभा ही अस्तित्वहीन हो चुकी है, तो निर्वाचक मंडल की वैधता से संबंधित, रिट याचिकाकर्ता के कहने पर अधिकारियों द्वारा कुछ और भी विचार किया जाना था।(पैरा 19)

विशेष अपील खारिज। (ई 4)

वर्तमान विशेष अपील में माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन द्वारा रिट याचिका संख्या 25754 वर्ष 2021 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 16.11.2021 को चुनौती दी गई है।

(माननीय मुख्य न्यायाधीश राजेश बिंदल एवं
माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा सुनाया गया)

1. रिट याचिकाकर्ता की यह विशेष अपील 16 नवंबर, 2021 के विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश के खिलाफ निर्देशित है, जिससे रिट-सी संख्या 25754/2021 को खारिज कर दिया गया है। यह अपील संत लाल यादव द्वारा दायर की गई है, जो दावा करते हैं श्री यादवेश इंटर कॉलेज, नौपेड़वा, जनपद जौनपुर की प्रबंध समिति के निर्वाचित प्रबंधक है।

2. रिट याचिकाकर्ता ने प्राधिकृत नियंत्रक, श्री यादवेश इंटर कॉलेज के आदेश दिनांक 24 मार्च, 2021 को चुनौती देते हुए रिट-सी संख्या 25754/2021 दायर किया जिससे उक्त कॉलेज की प्रबंधन समिति के चुनाव कराने के लिए निर्वाचक मंडल का निर्धारण किया गया। उन्होंने जिला विद्यालय निरीक्षक, जौनपुर द्वारा पारित 22 जून, 2021 के परिणामी आदेश को भी चुनौती दी है, जिसमें प्राधिकृत नियंत्रक द्वारा पारित 24 मार्च, 2021 के आदेश के अनुसार हुए चुनावों के अनुसार संस्थान के निर्वाचित प्रबंधक के रूप में प्रतिवादी संख्या 5 के हस्ताक्षरों को प्रमाणित किया गया है। 14 जून, 2021 को प्राधिकृत नियंत्रक द्वारा घोषित चुनाव परिणाम पर भी सवाल उठाया गया है।

3. श्री यादवेश इंटर कॉलेज उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के प्रावधानों के तहत एक मान्यता प्राप्त इंटर कॉलेज है। यह सरकारी अनुदान सहायता प्राप्त करता है। उपरोक्त कॉलेज, जिसे इसके बाद 'कॉलेज' के रूप में जाना जाएगा, की स्थापना और प्रबंधन एक सोसायटी द्वारा किया गया है, जिसका नाम श्री यादवेश विद्या मंदिर सोसायटी, नौपेड़वा है, जो सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के तहत पंजीकृत एक सोसायटी है। ऐसा प्रतीत होता है कि पार्टियों के बीच आम सहमति है कि मुरली धर यादव ने 1974 से 2007 के बीच सोसायटी की प्रबंधन समिति के निर्वाचित प्रबंधक के साथ-साथ कॉलेज की प्रबंधन समिति के प्रबंधक के रूप में कार्य किया। रिट याचिकाकर्ता-अपीलकर्ता, संत लाल यादव, मुरली धर यादव के पुत्र हैं और सोसायटी के आजीवन सदस्य होने का दावा करते हैं, जिससे वह कॉलेज के प्रबंधन के चुनाव में मतदान करने के हकदार हैं और कॉलेज की प्रबंधन समिति में पद के लिए अपना दावा भी पेश करते हैं।

4. ऐसा प्रतीत होता है कि कॉलेज की प्रबंधन समिति के चुनाव, जो 6 सितंबर, 1998 को हुए थे, जिसमें फिर से मुरली धर यादव चुने गए, के कारण वर्ष 1999 में प्रतिद्वंद्वी दावे के साथ चुनावी विवाद छिड़ गया। इसके बाद, समय-समय पर होने वाले चुनावों की वैधता के संबंध में मुकदमेबाजी बारहमासी रही है। यह अधिकारियों और इस न्यायालय के बीच झूलता रहा है और इसे कभी स्थिर नही रहा। वर्ष 2007 के बाद निर्विवाद प्रबंधन का अधिकार स्थापित नहीं किया गया है। एक अधिकृत नियंत्रक वर्ष 2007 से आज तक कॉलेज के मामलों का प्रबंधन कर रहा है और सभी चुनाव जो अधिकृत नियंत्रक द्वारा आयोजित किए गए हैं, एक निर्वाचित प्रबंधन कार्यालय में आ गया है , जिसे या तो इस न्यायालय के समक्ष या शिक्षा प्राधिकारियों के समक्ष इसे चुनौती देने वाले प्रतिद्वंद्वियों द्वारा इसे अस्थिर कर दिया गया है।

सोसायटी के उपनियमों और कॉलेज के प्रशासन की योजना के अनुसार, निर्वाचक मंडल का निर्धारण करने के लिए प्राधिकृत नियंत्रक को बार-बार निर्देश देकर अधिकारियों के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा उन चुनावों को रद्द कर दिया गया है। प्राधिकृत नियंत्रक द्वारा निर्वाचक मंडल के प्रत्येक निर्धारण के कारण एक या दूसरे गुट द्वारा नई चुनौती उत्पन्न हो गई है, जिसमें फिर से पुनर्निर्धारण का निर्देश दिया गया है, और चुनाव शून्य हो गए हैं।

5. मुकदमेबाजी के लंबी प्रक्रिया का उल्लेख करना बहुत और इसके हर विविरण को इतिहास में अंकित करना ज्यादा लाभकारी नहीं होगा। प्रबंधकीय विवाद के हिस्से को इसके लंबे और उतार-चढ़ाव भरे इतिहास के बीच में उठाना उचित होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राधिकृत नियंत्रक ने 22 जून, 2013 के अपने आदेश द्वारा 35 सदस्यों की सूची को अंततः समाप्त किया और 29 जून, 2013 को चुनाव कराए। क्षेत्रीय स्तरीय समिति ने उक्त चुनावों को मान्यता दी, जिसमें प्रतिवादी नंबर 5, श्रीमती मालती देवी को प्रबंधन समिति के प्रबंधक के रूप में निर्वाचित घोषित किया गया। रिट याचिकाकर्ता-अपीलकर्ता द्वारा 2014 की रिट-सी संख्या 14099 के माध्यम से इस आधार पर सवाल उठाया गया था कि पहले 36 सदस्यों की एक सूची अनुमोदित थी और कोई विवाद नहीं था। हालांकि, सूची में आजीवन सदस्य और सामान्य सदस्य दोनों थे। प्राधिकृत नियंत्रक को यह पता लगाने का निदेश दिया गया था कि यदि कोई साधारण सदस्य सक्षम निर्वाचक नहीं रह गए हैं। यह प्रक्रिया इस न्यायालय के 29 जनवरी, 2013 के आदेशों के तहत पूरी की गई और 36 सदस्यों की सूची को अंतिम रूप दिया गया। जहां तक प्रतिद्वंद्वी गुट द्वारा प्रस्तुत 67 सदस्यों की सूची का संबंध था, इस न्यायालय ने कहा कि इसे सिविल न्यायालय के समक्ष एक मुकदमे के माध्यम से साबित किया जाना था।

6. रिट याचिकाकर्ता-अपीलकर्ता की ओर से इस तर्क पर मालती देवी की ओर से सवाल उठाया गया था कि 36 सदस्यों की सूची को कभी अंतिम रूप नहीं दिया गया था, लेकिन विशेष अपील में डिवीजन बेंच द्वारा निर्वाचक मंडल का निर्धारण करने के लिए मामला अधिकृत नियंत्रक को सौंपा गया था, जो अधिकृत नियंत्रक उसके समक्ष पेश किए गए साक्ष्य के आधार पर करेगा। इस न्यायालय ने कहा कि 36 सदस्यों को समाप्त नहीं किया जा सकता है और अधिकृत नियंत्रक द्वारा अन्य 35 द्वारा प्रतिस्थापित किया जा सकता है। उपरोक्त तर्क के आधार पर निर्वाचक मंडल के 35 सदस्यों की सूची को अंतिम रूप देने वाले प्राधिकृत नियंत्रक के 22 जून, 2013 के आदेश और उक्त निर्वाचक मंडल के आधार पर पांचवें प्रतिवादी के चुनाव को मान्यता देने वाले 28 जनवरी, 2014 के आदेश पर रोक लगा दी गई। प्राधिकृत नियंत्रक को संस्था के कार्यों का प्रबंधन जारी रखने का आदेश दिया गया था।

7. उपरोक्त रिट याचिका लंबित होने के कारण, 15 जून, 2016 को निजी तौर पर एक और चुनाव आयोजित किया गया था, जिसे जिला विद्यालय निरीक्षक ने 23 मई, 2017 के एक आदेश द्वारा मान्यता दी थी। 23 मई, 2017 के आदेश, निजी चुनावों में चुने गए प्रबंधन को मान्यता देते हुए, 2017 के रिट-सी संख्या 34865 में इस न्यायालय के समक्ष आक्षेपित किया गया था। इस न्यायालय ने 2017 की रिट-सी संख्या 34865 में पारित 8 अगस्त, 2017 के एक अंतरिम आदेश द्वारा, चुनावों को मान्यता देने वाले 23 मई, 2017 के जिला विद्यालय निरीक्षक के आदेश पर रोक लगा दी। प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा इस न्यायालय के 8 अगस्त, 2017 के अंतरिम आदेश के खिलाफ डिवीजन बेंच में विशेष अपील में मामला चलाया गया था। डिवीजन बेंच ने 2017 की विशेष अपील (डी) संख्या 491 के साथ-साथ 2017 की रिट-सी संख्या 34865 का निपटारा किया, जिसमें से अपील उत्पन्न हुई, कॉलेज का प्रबंधन करने वाले अधिकृत नियंत्रक को निर्देश दिया गया कि वह प्रशासन की योजना के अनुसार , एक तर्कसंगत आदेश द्वारा निर्वाचक मंडल के निर्धारण के बाद, प्रशासन की योजना के अनुसार, दो महीने की अवधि के भीतर प्रबंधन समिति के लिए नए सिरे से चुनाव सुनिश्चित करे ।

8. विशेष अपील (डी) संख्या 491/2017 में डिवीजन बेंच के निर्देशों के अनुपालन में, कॉलेज के अधिकृत नियंत्रक ने 30 दिसंबर, 2017 के आदेश के तहत नए सिरे से निर्वाचक मंडल का निर्धारण किया और 32 सदस्यों की एक आम सभा घोषित की और चुनाव के संचालन के लिए एक पर्यवेक्षक की विधिवत नियुक्ति की गई। वहीं, 22 जनवरी 2018 को पर्यवेक्षक की मौजूदगी में प्रबंध समिति का चुनाव कराया गया। उक्त चुनावों में, प्रतिवादी संख्या 5 को फिर से प्रबंधक के पद पर निर्वाचित किया गया। उनके चुनाव को जिला विद्यालय निरीक्षक, जौनपुर द्वारा 25 जनवरी, 2018 के आदेश और हस्ताक्षर द्वारा अनुमोदित किया गया था। 25 जनवरी, 2018 के आदेश को रिट याचिकाकर्ता द्वारा रिट-सी संख्या 19219/2019 के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष फिर से चुनौती दी गई, जिस पर जुलाई 30, 2019 को निर्णय लिया गया।

9. 30 जुलाई 2019 के आदेश को पढ़ने से पता चलता है कि अकेले जिला विद्यालय निरीक्षक के 25 जनवरी 2018 के आदेश को ही चुनौती दी गई थी। कम से कम, यह, यह नहीं दर्शाता है कि 30 दिसंबर, 2017 के आदेश के तहत प्राधिकृत नियंत्रक द्वारा निर्वाचक मंडल के निर्धारण की जांच विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा की गई थी, जिसके

समक्ष रिट-सी संख्या 19219/2019 सुनवाई के लिए आई थी। विद्वान एकल न्यायाधीश ने पांचवें प्रतिवादी के हस्ताक्षरों को सत्यापित करते हुए 25 जनवरी, 2018 के आदेश में हस्तक्षेप करने से वस्तुतः इनकार कर दिया। रिट याचिकाकर्ता ने रिट-सी संख्या 19219/2019 में मांगी गई राहत पर जोर नहीं दिया और इसके बजाय उपरोक्त रिट याचिका की सुनवाई कर रहे विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत किया कि उसे क्षेत्रीय स्तर समिति, वाराणसी डिवीजन, वाराणसी के समक्ष आवेदन करने की अनुमति दी जा सकती है, जिस पर एक निर्धारित अवधि के भीतर निर्णय लिया जा सकता है। विद्वान न्यायाधीश ने क्षेत्रीय स्तरीय समिति, वाराणसी डिवीजन, वाराणसी को उस आवेदन पर निर्णय करने का निर्देश दिया जिसे रिट याचिकाकर्ता एक निर्धारित समय के भीतर उसके समक्ष प्रस्तुत कर सकता है। रिट-सी संख्या 19219/2019 में पारित विद्वान न्यायाधीश के आदेश के प्रासंगिक भाग को पुन: प्रस्तुत करना महत्वपूर्ण है। इसमें लिखा है:

"याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 4-जिला विद्यालय निरीक्षक, जौनपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.01.2018 को चुनौती दी है, जिसमें प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा स्थापित चुनाव दावे को बरकरार रखा गया है। याचिकाकर्ता का कहना है कि चुनाव दावा स्थापित किया गया है। प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा, अमान्य कर दिया गया है, चुनाव हो चुके हैं, और नवनिर्वाचित प्रबंधक के हस्ताक्षर प्रमाणित हैं।

जो राहत मांगी गई है वह नहीं दी जा सकती।

इस स्तर पर, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने अपनी राहत दोहराई। वह इस स्तर पर रिट याचिका में मांगी गई राहत पर जोर नहीं देते हैं। उनका कहना है कि याचिकाकर्ता को प्रतिवादी नंबर 2- क्षेत्रीय स्तरीय समिति, वाराणसी मंडल, वाराणसी के समक्ष आवेदन करना होगा और उस पर निर्धारित समय अवधि में निर्णय लिया जा सकता है।

यदि याचिकाकर्ता, प्रतिवादी संख्या 2-क्षेत्रीय स्तरीय समिति, वाराणसी डिवीजन, वाराणसी के समक्ष एक आवेदन दायर करता है, तो उस पर निर्णय लिया जाएगा, अधिमानतः प्रमाणित प्रति की प्राप्ति की तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर। प्रतिवादी संख्या 4 सहित संबंधित पक्षों को अवसर देने के बाद, प्रतिनिधित्व के एक नए पुलिस अधिकारी के साथ यह आदेश दिया गया।

यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय ने रिट याचिका में किए गए दावों की सत्यता की जांच नहीं की है, न ही याचिकाकर्ता के दावे का गुण-दोष के आधार पर मूल्यांकन किया है। स्वतंत्र विवेक को लागू करते हुए ऐसा करना सक्षम प्राधिकारी का काम है।"

10. मामला क्षेत्रीय स्तर की समिति के समक्ष जाने पर, उन्होंने 3 दिसंबर, 2020 को एक आदेश पारित किया, जिसमें जिला विद्यालय निरीक्षक के 25 जनवरी, 2018 के आदेश को रद्द कर दिया गया और यह भी कहा गया कि चुनाव निर्वाचक मंडल/सामान्य निकाय की सदस्यता की वैधता की विधिवत जांच किए बिना 22 जनवरी, 2018 को संचालित किये गए थे । प्राधिकृत नियंत्रक को इस न्यायालय द्वारा पहले जारी किए गए विभिन्न निर्देशों और सामान्य निकाय की पूर्व सूची की जांच के अनुसार निर्वाचक मंडल का नए सिरे से निर्धारण करने का निर्देश दिया गया था। प्रशासन की संशोधित योजना के अनुसार चुनाव नए सिरे से कराने का निर्देश दिया गया था। उक्त आदेश पर प्रतिवादी संख्या 5, श्रीमती मालती देवी द्वारा इस न्यायालय के समक्ष रिट-सी संख्या 1285/2021 में सवाल उठाया गया था, जिन्हें 22 जनवरी, 2018 को हुए चुनावों के संदर्भ में प्रबंधक के रूप में निर्वाचित घोषित किया गया था, उनके हस्ताक्षर 25 जनवरी, 2018 को सत्यापित किए गए थे, ये सब क्षेत्रीय स्तर की समिति द्वारा 3 फरवरी 2020 के आदेश के माध्यम से निरस्त कर दिया गया ।

11. पक्षों की सुनवाई के बाद इस न्यायालय की राय थी कि क्षेत्रीय स्तर की समिति ने सिर्फ रिट-सी संख्या 14099/2014 में पारित अंतरिम आदेश के आधार पर चुनावों को निरस्त किया था। आगे यह कहा गया कि क्षेत्रीय स्तर की समिति विशेष अपील (डी) संख्या 491/2017 में खंडपीठ के आदेशों को ध्यान में रखने में विफल रही थी, एक अपील जो बाद की रिट याचिका से उत्पन्न हुई थी, जिसके लिए अधिकृत नियंत्रक को निर्वाचक मंडल को अंतिम रूप से तैयार करने की आवश्यकता थी। रिट-सी संख्या 1285/2021 का निर्णय करने वाले विद्वान न्यायाधीश द्वारा यह भी कहा गया था कि क्षेत्रीय स्तर की समिति निर्वाचक मंडल को अंतिम रूप से तैयार करने के लिए अधिकृत नियंत्रक द्वारा की गयी प्रक्रिया को ध्यान में रखने में विफल रही, जिसे उनके द्वारा 30 दिसंबर, 2017 के आदेश द्वारा निर्धारित किया गया था। विद्वान न्यायाधीश ने टिप्पणी की है कि 30 दिसंबर, 2017 के आदेश को लंबित रिट-सी संख्या 7779/2018 में चुनौती दी गई है, लेकिन वहां कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया गया है। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि रिट-सी संख्या 7779/2018 की लंबितता या पहले की रिट-सी संख्या 14099/2014 में पारित अंतरिम आदेश, अधिकृत नियंत्रक द्वारा निर्वाचक मंडल के निर्धारण को

तात्विक रूप से प्रभावित नहीं कर सकते थे। तदनुसार, विद्वान न्यायाधीश ने रिट-सी संख्या 1285/2021 की अनुमति दी और क्षेत्रीय स्तरीय समिति के 3 दिसंबर, 2020 के आदेश को रद्द कर दिया। अधिकृत नियंत्रक को निर्देश दिया गया था कि वह 30 दिसंबर, 2017 के अपने आदेश के अनुसार निर्वाचक मंडल के निर्धारण के लिए पार्टियों द्वारा आपत्तियों को सुनने के बाद निर्वाचक मंडल का निर्धारण करें। यह स्पष्ट किया गया था कि उपरोक्त मुद्दे का निर्णय प्राधिकृत नियंत्रक द्वारा किया जाएगा, जो रिट-सी संख्या 14099/2014 में पारित अंतरिम आदेश या रिट-सी संख्या 7779/2018 के लंबित रहने से प्रभावित नहीं होगा।

12. यह पूर्वोक्त आदेशों के अनुपालन में है कि अधिकृत नियंत्रक ने 24 मार्च, 2021 को 28 सदस्यों के निर्वाचक मंडल का निर्धारण करते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया है, जिसके आधार पर अब चुनाव हो चुके हैं और पांचवें प्रतिवादी को कॉलेज के प्रबंधक के रूप में निर्वाचित घोषित किया गया है और उसके हस्ताक्षर सत्यापित किए गए हैं। आदेश दिनांकित 24 मार्च, 2021, जो अब अधिकृत नियंत्रक द्वारा पारित किया गया है और पारिणामिक आदेश इस अपील को जन्म देने वाली रिट याचिका में चुनौती का विषय हैं।

13. अधिकृत नियंत्रक ने आक्षेपित आदेश पारित करते हुए कहा कि रिट याचिकाकर्ता के पास निर्वाचक मंडल या आयोजित चुनावों के निर्धारण पर सवाल उठाने का कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि अधिकृत नियंत्रक द्वारा पहले पारित 30 दिसंबर, 2017 के आदेश के अनुसार, उसे सोसाइटी या कॉलेज के सामान्य निकाय का सदस्य नहीं माना गया था, चूंकि 3 मार्च, 2009 के एक संकल्प के माध्यम से उप-नियमों के उप-नियम 10 (घा) के तहत सोसायटी के संस्थापक ट्रस्टियों द्वारा घोर कदाचार के लिए उनकी सदस्यता समाप्त कर दी गई थी। अधिकृत नियंत्रक द्वारा यह राय दी गयी कि इस न्यायालय ने क्षेत्रीय स्तर की समिति द्वारा पारित 3 दिसंबर, 2020 के आदेश को रद्द करने के बाद 8 फरवरी, 2021 के निर्णय और आदेश के तहत रिट याचिकाकर्ता को 30 दिसंबर, 2017 के आदेश पर आपत्तियां दर्ज करने की अनुमति दी थी। इसलिए, यह रिट याचिका के लिए बताने का अवसर था कि 30 दिसंबर, 2017 को अधिकृत नियंत्रक का आदेश कैसे गलत था, लेकिन रिट याचिकाकर्ता यह नहीं बता सका कि यह आदेश कैसे गलत था। अधिकृत नियंत्रक के अनुसार, इसका कारण यह था कि 30 दिसंबर, 2017 के आदेश में याचिकाकर्ता को सामान्य निकाय का सदस्य नहीं माना गया था, क्योंकि उसकी सदस्यता सोसायटी के संस्थापक ट्रस्टियों द्वारा 3 मार्च, 2009 के आदेश के माध्यम से घोर कदाचार के लिए समाप्त कर दी गई थी।

14. अधिकृत नियंत्रक ने एक निष्कर्ष दर्ज किया कि किसी भी चीज़ से यह स्पस्ट नहीं है कि 3 मार्च, 2009 के आदेश, संस्थापक ट्रस्टियों द्वारा सकल कदाचार के लिए रिट याचिकाकर्ता की सदस्यता को समाप्त करने के आदेश को किसी भी सक्षम न्यायालय या प्राधिकरण के समक्ष चुनौती दी गई थी। यह अंतिम रूप से हो गया है। वास्तव में, अधिकृत नियंत्रक ने 24 मार्च, 2021 के आदेश में दर्ज किया है कि संस्थापक ट्रस्टियों ने सोसायटी के अन्य 35 सदस्यों के अलावा रिट याचिकाकर्ता की सदस्यता समाप्त कर दी है। इसलिए, यह माना गया कि यह मानते हुए कि वर्ष 2007-08 में, रिट याचिकाकर्ता कॉलेज की सोसाइटी/सामान्य निकाय का सदस्य था, उसकी सदस्यता 3 मार्च, 2009 के समापन आदेश से नहीं सकी थी, जो अब अंतिम रूप से हो गई है। यह वही है जो अधिकृत नियंत्रक ने पहले 30 दिसंबर, 2017 के आदेश द्वारा अभिनिर्धारित किया था।

15. रिट याचिकाकर्ता रिट-सी संख्या 1285/2021 में पारित इस न्यायालय के 8 फरवरी, 2021 के आदेशों के संदर्भ में 30 दिसंबर, 2017 के आदेश के खिलाफ दायर की गई आपत्तियों पर, यह प्रदर्शित नहीं कर सका कि वह अपनी खोई हुई सदस्यता को कैसे वापस हासिल करेगा जो अधिकृत नियंत्रक ने 3 मार्च 2009 के बाद से रद्द की थी।

16. विद्वान एकल न्यायाधीश, जिनके समक्ष एक शिकायत की गई थी कि रिट-सी संख्या 1285/2021 में पारित इस न्यायालय के 8 फरवरी, 2021 के फैसले ने क्षेत्रीय स्तर की समिति द्वारा पारित 3 दिसंबर, 2020 के आदेश को रद्द कर दिया था और मामले को अधिकृत नियंत्रक को उन आपत्तियों पर विचार करने के लिए भेज दिया था जिन्हें पक्षकार दायर कर सकते हैं, का अनुपालन नहीं किया गया था, क्योंकि अधिकृत नियंत्रक ने रिट याचिकाकर्ता के दावे को उसके लोकस स्टैंडी के आधार पर खारिज कर दिया था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने कहा कि लोकस स्टैंडी भी रिट याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करने का एक हिस्सा है और यदि रिट याचिकाकर्ता यह स्थापित नहीं कर सका, तो अधिकृत नियंत्रक द्वारा 24 मार्च, 2021 को पारित आक्षेपित आदेश और रिट याचिका में चुनौती के तहत परिणामी आदेशों के साथ कोई गलती नहीं पाई जा सकती है।

17. हमारे समक्ष , श्री आरके ओझा, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता तर्क देते हैं कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस बात को समझने में विफल रहे कि विद्वान न्यायाधीश ने अधिकृत नियंत्रक को मामला भेजते समय कानून की गंभीर त्रुटि की है, उन्हें सामान्य निकाय की संरचना के विवादास्पद मुद्दे पर निर्णय लेने की आवश्यकता थी, लेकिन अधिकृत नियंत्रक ने रिट याचिकाकर्ता की आपत्तियों को पूरी तरह से लोकस स्टैंडी के आधार पर खारिज कर दिया। हम यहां ध्यान दे सकते हैं कि रिट याचिकाकर्ता ने 22 जनवरी, 2018 को अधिकृत नियंत्रक द्वारा आयोजित पांचवें प्रतिवादी के चुनाव के पहले सत्यापन को रिट-सी नंबर 19219/2019 के माध्यम से चुनौती देते हुए, अधिकृत नियंत्रक द्वारा पारित 30 दिसंबर, 2017 के आदेश को चुनौती नहीं दी, जिसके आधार पर 22 जनवरी 2018 के चुनाव आयोजित किए गए थे, जिसमें पांचवां प्रतिवादी चुना गया था। रिट-सी संख्या 19219/2019 में पारित इस न्यायालय के 30 जुलाई, 2019 के आदेश से पता चलता है कि 25 जनवरी, 2018 (22 जनवरी, 2018 के चुनावों के आधार पर) के अकेले पांचवें प्रतिवादी के हस्ताक्षरों के सत्यापन के आदेश को चुनौती दी गई थी। 30 दिसंबर, 2017 के आदेश, जो 22 जनवरी, 2018 के चुनावों या उक्त चुनावों की नींव थी, को रिट याचिकाकर्ता द्वारा कभी चुनौती नहीं दी गई थी। रिट याचिका में राहत के लिए क्षेत्रीय स्तर की समिति तक जाने की स्वतंत्रता नहीं दी गयी थी । इस प्रकार, 30 दिसंबर, 2017 के आदेश ने पार्टियों के बीच अंतिम रूप प्राप्त कर लिया है। यह क्षेत्रीय स्तर की समिति द्वारा क्षेत्रीय स्तर की समिति को रिट-सी संख्या 19291/2019 को वापस लेने के बाद किए गए रिट याचिकाकर्ता के आवेदन पर लिए गए निर्णय के परिणामस्वरूप है, कि रिट याचिकाकर्ता ने क्षेत्रीय स्तर की समिति द्वारा पारित 3 फरवरी, 2020 के आदेश को रद्द करने की आड़ में नए सिरे से और लगभग संपार्श्विक कार्यवाही शुरू की।

18. हम संपार्श्विक कार्यवाही की बात कहते हैं, क्योंकि रिट-सी संख्या 1285/2021 में, रिट

याचिकाकर्ता ने क्षेत्रीय स्तर की समिति द्वारा पारित 3 फरवरी, 2020 के आदेश को चुनौती

दी और अधिकृत नियंत्रक के 30 दिसंबर, 2017 के आदेश पर सवाल उठाने का प्रयास

किया, जो पहले ही अंतिम रूप प्राप्त कर चुका था। यह उक्त कारण से है कि विद्वान

न्यायाधीश ने 8 फरवरी, 2021 की रिट याचिका पर अनुमति प्रदान करते हुए, 30 दिसंबर,

2017 के आदेश के खिलाफ आपत्तियों को दायर करने की अनुमति दी, लेकिन इसकी वैधता

पर कोई राय व्यक्त नहीं किया। वास्तव में, उक्त आदेश के खिलाफ, या तो इस न्यायालय

के समक्ष या अधिकृत नियंत्रक के समक्ष कुछ अति मौलिक या व्यापक आधार के सिवाय

बहुत कुछ नहीं कहा जा सकता है। अधिकृत नियंत्रक ने रिट याचिकाकर्ता की आपत्तियों पर

सुनवायी करते हुए, हमारी सुविचारित राय में, सही निष्कर्ष निकाला कि 30 दिसंबर, 2017

के आदेश के माध्यम से अधिकृत नियंत्रक द्वारा पहले जो कहा गया था, उसके खिलाफ

गुणदोषों पर उसे कुछ नहीं कहना था। 30 दिसंबर, 2017 के आदेश में कहा गया था कि

रिट याचिका में सोसाइटी या कॉलेज के निर्वाचक मंडल के निर्धारण पर सवाल उठाने का

कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि 3 मार्च, 2009 के आदेश के माध्यम से, संस्थापक न्यासियों

ने रिट याचिकाकर्ता सहित 32 सदस्यों को सोसाइटी के उपनियमों के खंड 10 (घ) के तहत

प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग कर सोसाइटी की सदस्यता से हटा दिया था। 30 दिसंबर, 2017 के आदेश में आगे यह कहा गया है कि 3 मार्च, 2009 के आदेश को किसी भी मंच, अदालत या प्राधिकरण के समक्ष कभी चुनौती नहीं दी गई है और इसलिए यह अंतिम था।

19. अधिकृत नियंत्रक के समक्ष, जब मामला रिट-सी संख्या 1285/2021 में पारित 8 फरवरी, 2021 के निर्णय और आदेश के संदर्भ में विद्वान एकल न्यायाधीश से प्रेषण पर आया, तो रिट याचिकाकर्ता ऐसा कुछ भी नहीं दिखा सका जो अधिकृत नियंत्रक द्वारा 30 दिसंबर 2017 के आदेश के तहत पहले दर्ज किए गए निष्कर्ष को दूर किया जा सके, जिसमें सोसाइटी के उप-नियमों के तहत संस्थापक ट्रस्टियों द्वारा पारित 3 मार्च, 2009 के आदेश के संदर्भ में सोसाइटी की रिट याचिकाकर्ता की सदस्यता समाप्त हो गई। चूंकि रिट याचिकाकर्ता 3 मार्च, 2009 को संस्थापक ट्रस्टियों द्वारा पारित निष्कासन के प्रस्ताव के संदर्भ में स्पष्ट रूप से सोसाइटी के सामान्य निकाय के

सदस्य के रूप में अपना स्टेटस खो चुका है, जिसे कहीं भी चुनौती नहीं दी गई है, निर्वाचक मंडल के निर्धारण पर सवाल उठाने का उसका अधिकार निश्चित रूप से बिना किसी अधिकार के है; या जैसा कि विद्वान एकल न्यायाधीश कहते हैं, बिना किसी *सुनवाई के अधिकार के* है। यह सब रिट याचिकाकर्ता के मामले पर विचार करने के बारे में है और यह कहना भ्रामक है कि रिट याचिकाकर्ता के कहने पर अधिकारियों द्वारा निर्वाचक मंडल की वैधता, एक बार रिट याचिकाकर्ता की सोसाइटी की सदस्यता और संस्था की एक चौथाई सामान्य निकाय के गैर-मौजूदगी के सम्बन्ध में कुछ भी अन्य विचार किया जाना था।

20. इसलिए, हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं देखते हैं।

21. विशेष अपील विफल होती है और खारिज की जाती है।

(2023) 1 ILRA 1220
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: लखनऊ 09.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा,
माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह,

रिट-ए नंबर 3074/2021

अनूप कुमार सिंह ...याचिकाकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता:
श्री ऋषि राज, श्री विनय कुमार सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी:
सी.एस.सी.

ए. सेवा कानून निलंबन/दंड - उ.प्र. सरकारी सेवक आचरण नियम, 1956 - नियम 3 - कार्रवाई के संबंध में किसी कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारंभ की जा सकती है, भले ही वह न्यायिक या अर्ध-न्यायिक शक्तियों के प्रयोग से संबंधित हो। यदि कोई सेवक सेवा में अपने कर्तव्य के निष्ठापूर्वक निर्वहन के साथ असंगत आचरण करता है, तो यह कदाचार है जो तत्काल बर्खास्तगी को उचित ठहराता है। (पैरा 13,14)

यह आवश्यक नहीं है कि सेवा के किसी सदस्य ने कथित कृत्य किया हो या सरकार के सेवक के रूप में अपने कर्तव्य के निर्वहन के दौरान चूक करना ताकि यह अनुशासनात्मक कार्यवाही का विषय बन सके। दूसरे शब्दों में, यदि कार्य या चूक ऐसी है जो अधिकारी की सत्यनिष्ठा या सद्भावना या कर्तव्य के प्रति समर्पण की प्रतिष्ठा को प्रतिबिंबित करती है, तो कोई कारण नहीं है कि उस कार्य या चूक के लिए उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही न की जाए। (पैरा 12)

वर्तमान वाद में, यह विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ता द्वारा मूल्यांकन वर्ष 2014-15 के लिए दिनांक 20.09.2018 के आदेश के तहत किया गया मूल्यांकन, जिस पर उसकी जांच की गई थी, व्यापारी अर्थात् शशि सेल्स, द्वारा अतिरिक्त आयुक्त ग्रेड -2 (अपील), लखनऊ के समक्ष चुनौती दी गई थी और अपीलीय प्राधिकारी की अदालत ने दिनांक 05.10.2018 के आदेश के माध्यम से अपील की अनुमति दी और मूल्यांकन के आदेश दिनांक 20.09.2018 को निरस्त कर दिया और वाद को पुनर्मूल्यांकन के लिए कर मूल्यांकन अधिकारी को भेज दिया। इस प्रकार, ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार को कोई राजस्व हानि नहीं हुई है। (पैरा 17)

बी. सुनवाई का उचित और उचित अवसर - ट्रिब्यूनल द्वारा पारित आदेश से संकेत मिलता है कि यह मुद्दा उसके समक्ष उठाया गया था, लेकिन यह मानते हुए कि जांच अर्ध-न्यायिक आदेश के आधार पर की गई थी, यह एक विपरीत निष्कर्ष निकला। याचिकाकर्ता, इसलिए पूर्ण जांच कराने की कोई आवश्यकता नहीं थी। **जहां याचिकाकर्ता पर आरोप पत्र तामील हो चुका है और बड़ी सजा प्रस्तावित है, जो याचिकाकर्ता को दी गई है, ऐसी परिस्थिति में उचित जांच होनी चाहिए थी और इसे यह कहकर नहीं टाला जा सकता कि इसकी कोई जरूरत नहीं थी क्योंकि यह दस्तावेज़ों पर आधारित था। भले ही, कथित जांच दस्तावेजों** पर आधारित थी, कम से कम जो किया जा सकता था, वह उक्त दस्तावेजों को साबित करना था क्योंकि **यह देखा गया है कि यह उस आदेश की वैधता नहीं थी जो मुद्दा था, बल्कि यह जिस तरीके से आदेश पारित किया गया था, जिस पर आरोप पत्र जारी किया गया था और याचिकाकर्ता के खिलाफ जांच का विषय था।** वाद के इस पहलू को जांच अधिकारी के साथ-साथ अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने भी पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया है और ट्रिब्यूनल द्वारा उचित रूप से ध्यान नहीं दिया गया। (पैरा 18,19)

भारत संघ एवं अन्य बनाम के.के. धवन (इन्फ्रा) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के अनुसार और वाद के तथ्य और परिस्थितियां, जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष कदाचार के आरोपों का समर्थन करने के लिए किसी भी कानूनी रूप से स्वीकार्य या प्रासंगिक सबूत के अभाव में पूरी तरह से गलत हैं और किसी भी सबूत के अभाव में, जांच द्वारा निष्कर्ष निकाला गया है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पुष्टि किये गये अधिकारी भी दोषपूर्ण माने गये हैं। (पैरा 20)

रिट याचिका स्वीकार की गई। वाद जांच अधिकारी को भेज दिया गया है। (ई 4)

<u>उद्धृत वाद:</u>
1. एस. गोविंदा मेनन बनाम भारत संघ, एआईआर 1967 एससी 1274 (पैरा 12)
2. पीयर्स बनाम फोस्टर, (1966) 7 क्यूबीडी 536 (पैरा 14)
3. भारत संघ बनाम के.के. धवन, एआईआर 1993 एससी 1478 (पैरा 15)
4. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा, (2010) 2 एससीसी 772 (पैरा 9)

वर्तमान याचिका में याचिकाकर्ता द्वारा दायर किए गए दावा याचिका में राज्य लोक सेवा अधिकरण, इंदिरा भवन, लखनऊ द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 22.10.2020 को चुनौती दी गई है जो दिनांक 04.09.2019 के दंड आदेश के साथ-साथ दिनांक 02.03.2020 के आदेश के विरुद्ध योजित की गई थी, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता की उत्तर प्रदेश के महामहिम राज्यपाल को ज्ञापन 01.10.2019 को अस्वीकृत कर दिया गया।

(माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा,
एवं
माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह, द्वारा प्रदत्त)

(1) 2019 की दावा याचिका संख्या 1886, अनूप कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य में राज्य लोक सेवा अधिकरण, इन्दिरा भवन, लखनऊ (एतद्पश्चात "अधिकरण" के रूप में संदर्भित) द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 22.10.2020 , जिसके द्वारा दंड आदेश दिनांक 04.09.2019 के विरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उक्त दावा याचिका खारिज कर दी गई थी, से व्यथित और असंतुष्ट होकर याचिकाकर्ता द्वारा वर्तमान रिट याचिका प्रस्तुत की गई है।

(2) वर्तमान अपील के तथ्य, संक्षेप में इस प्रकार हैं:-

प्रारंभ में, याचिकाकर्ता को वर्ष 2002 में वाणिज्य कर अधिकारी के पद पर नियुक्त किया गया था। बाद में, उसका पद सहायक आयुक्त, वाणिज्य कर के रूप में नामित किया गया था व इस पद पर कार्य करते समय, याचिकाकर्ता को निर्धारण वर्ष 2014-15 हेतु मेसर्स शशि सेल्स, लखनऊ के संबंध में कर निर्धारण आदेश पारित करते समय उसके द्वारा की गई कथित अनियमितताओं के आधार पर दिनांक 22.10.2018 के आदेश के अंतर्गत निलंबित कर दिया गया था। याचिकाकर्ता को दिनांक 22.10.2018 को एक आरोप पत्र दिया गया, जिसमें उसके विरुद्ध सात आरोप लगाए गए। संयुक्त आयुक्त, वाणिज्य कर अधिकारी प्रशिक्षण संस्थान, लखनऊ को जाँच अधिकारी नियुक्त किया गया था, जिन्होंने जाँच पूर्ण होने के पश्चात अपनी रिपोर्ट दिनांक 22.01.2009 को प्रस्तुत की, जिसमें यह कहा गया है कि याची के विरुद्ध लगाए गए आरोप संख्या 5 व 6 सिद्ध नहीं हुए जबकि आरोप संख्या 1, 2, 4 और 7 सिद्ध हुए और आरोप संख्या 3 आंशिक रूप से सिद्ध हुआ। तत्पश्चात अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता को दिनांक 22.01.2019 की जाँच रिपोर्ट की प्रति के साथ दिनांक 12.02.2019 को कारण बताओ नोटिस जारी किया था, जिस पर याचिकाकर्ता ने अपना उत्तर प्रस्तुत किया था। तत्पश्चात अनुशासनिक प्राधिकारी ने दण्डादेश दिनांक 04.09.2019 पारित किया जिसके द्वारा संचयी प्रभाव से तीन वेतनवृद्धियाँ रोकी गई एवं एक निन्दा प्रविष्टि प्रदान की गई।

(3) उपरोक्त दंड आदेश दिनांक 04.09.2019 के विरुद्ध, याचिकाकर्ता ने अधिकरण के समक्ष दावा याचिका संख्या 1886/2019 प्रस्तुत की थी, जिसे अधिकरण ने दिनांक 22.10.2020 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिया था। व्यथित होकर याचिकाकर्ता द्वारा वर्तमान रिट याचिका प्रस्तुत की गई है।

(4) याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री ऋषि राज और राज्य/प्रतिवादीगण के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री अभियुद्य मिश्रा को सुना और अधिकरण द्वारा पारित किए गए प्रश्नगत निर्णय के साथ अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री का अवलोकन किया।

(5) अधिकरण द्वारा पारित प्रश्नगत निर्णय और आदेश दिनांक 22.10.2020 को चुनौती देते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि किसी भी कर निर्धारण आदेश के आधार पर संबंधित कर निर्धारण अधिकारी को दंडित नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसने अर्ध न्यायिक कार्य किया था। पुनः उन्होंने तर्क दिया कि यदि निर्धारण अधिकारी द्वारा पारित निर्धारण आदेश के विरुद्ध कोई आपत्ति है तो उक्त निर्धारण आदेश के विरुद्ध अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील प्रस्तुत की जा सकती है। पुनः उन्होंने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता द्वारा पारित निर्धारण आदेश दिनांक 20.09.2018 के विरुद्ध व्यापारी ने अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष प्रथम अपील दायर की थी जिसे अपीलीय प्राधिकारी द्वारा स्वीकृत किया गया, निर्धारण आदेश दिनांक 20.09.2018 को रद्द कर दिया गया और दिनांक 05.10.2018 के आदेश के अंतर्गत कर देनदारी के पुनर्निर्धारण हेतु मामले को निर्धारण अधिकारी को वापस प्रेषित किया गया, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के संलग्नक संख्या 12 के रूप में संलग्न की गई है।

(6) याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अपने कथन को विस्तार देते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया कि किसी भी कर निर्धारण आदेश को पारित करने के आधार पर संबंधित अधिकारी को दंडित नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसने निर्धारण आदेश पारित करते समय अर्धन्यायिक कार्य किया था और यदि कोई लापरवाही की जा रही है तो उसे उस प्रकार की बड़ी सज़ा नहीं दी जाएगी जैसी याचिकाकर्ता को दी गई है। उनका कथन है कि अधिकरण ने वाद के उपरोक्त पक्ष पर विचार किये बिना, याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत दावा याचिका को खारिज करने में त्रुटि की।

(7) पुनः याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए और उसके विरुद्ध साक्ष्य उपलब्ध कराए बिना ही संपन्न की गई है, क्योंकि जाँच अधिकारी ने उस व्यापारी को सम्मलित नहीं किया है जिसके विरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा निर्धारण आदेश पारित किया गया था । अपने समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करने के याचिकाकर्ता के अनुरोध पर जाँच अधिकारी द्वारा विचार नहीं किया गया। दंड आदेश पारित करने से पूर्व अनुशासनात्मक प्राधिकारी इस तथ्य पर विचार करने में विफल रहे कि याचिकाकर्ता ने अर्ध न्यायिक कार्य किया है जिस हेतु उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता व दंडित नहीं किया जा सकता। उनका कहना है कि अधिकरण ने प्रश्नगत आदेश पारित करते समय मामले के उपरोक्त पक्ष पर विचार नहीं किया है।

(8) अंततः याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि दिनांक 25.06.2020 को उप आयुक्त, वाणिज्य कर के पद पर पदोन्नति के उद्देश्य से विभागीय पदोन्नति समिति को आहूत किया गया और वर्ष 2002 बैच के

समस्थित वाणिज्य कर अधिकारियों को उप आयुक्त, वाणिज्य कर विभाग के पद पर पदोन्नत किया गया, परन्तु प्रतिवादीगण की प्रश्नगत कार्रवाई के कारण याचिकाकर्ता अभी भी सहायक आयुक्त के पद पर जड़ है।

(9) अपने तर्क को बल प्रदान करने हेतु, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा: (2010) 2 एससीसी 772 वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है, जिसके प्रस्तर-28 में सर्वोच्च न्यायालय ने टिप्पणी की कि अर्धन्यायिक प्राधिकरण में कार्यरत कोई जाँच अधिकारी एक स्वतंत्र न्यायनिर्णायक की स्थिति में होता है। उसे विभाग/अनुशासनात्मक प्राधिकारी/सरकार का प्रतिनिधि नहीं होना चाहिये। उसका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों की जाँच यह सुनिश्चित करने हेतु करना है कि क्या अखण्डित साक्ष्य यह धारित करने हेतु पर्याप्त हैं कि आरोप सिद्ध हो गए हैं, यहाँ तक कि दोषी अधिकारी की अनुपस्थिति में भी। वर्तमान वाद में उपरोक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। चूँकि किसी भी मौखिक साक्ष्य की जाँच नहीं की गई है, इसलिए दस्तावेज सिद्ध नहीं हुए हैं और यह निष्कर्ष निकालने हेतु इन पर विचार नहीं किया जा सकता है कि प्रतिवादीगण के विरुद्ध आरोप सिद्ध हो गए हैं।

(10) दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने कथन किया है कि जब याचिकाकर्ता सहायक आयुक्त, वाणिज्य कर, लखनऊ, के पद पर तैनात थे तब याचिकाकर्ता को शशि सेल्स लखनऊ नामक व्यवसायिक प्रतिष्ठान के वर्ष 2014-15 से सम्बंधित कर निर्धारण आदेश के निस्तारण में उनके द्वारा की गई अनियमितता हेतु दिनांक 22.10.2018 के आदेश द्वारा निलंबित कर दिया गया था, वर्ष 2014-15 में याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई और याचिकाकर्ता के विरुद्ध सात आरोप लगाते हुए आरोप पत्र जारी किया गया। आरोप-पत्र प्राप्त होने पर, याचिकाकर्ता ने दिनांक 10.12.2018 को आरोप-पत्र का उत्तर प्रस्तुत किया। जाँच अधिकारी ने दिनांक, समय एवं स्थान निर्धारित कर जाँच की तथा याचिकाकर्ता को जाँच कार्यवाही में सुनवाई का पूरा अवसर दिया गया। जाँच अधिकारी ने जाँच के समापन के बाद जाँच रिपोर्ट दिनांक 22.01.2019 को अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत की। उक्त जाँच रिपोर्ट दिनांक 22.1.2019 को उत्तर प्रदेश सरकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) नियमावली 1999 के नियम 9 के उप नियम 4 के दृष्टिगत याचिकाकर्ता को दिनांक 12.02.2019 को पत्र के माध्यम से प्रदान की गई थी व जाँच रिपोर्ट पर उसका उत्तर मांगा गया। इसके उत्तर में याचिकाकर्ता ने दिनांक 26.02.2019 को अपने पत्र के माध्यम से कारण बताओ नोटिस दिनांक 12.02.2019 का उत्तर प्रस्तुत किया। पत्र दिनांक 26.02.2019 के माध्यम से याचिकाकर्ता का उत्तर प्राप्त होने पर, उ.प्र. लोक सेवा आयोग से परामर्श किया गया और दिनांक 19.08.2019 उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के परामर्श के पश्चात दिनांक 04.09.2019 को याचिकाकर्ता के विरूद्ध दण्डादेश पारित कर उसकी तीन वेतनवृद्धि संचयी प्रभाव से रोक दी गई थी, साथ ही शासनादेशों का उल्लंघन करने तथा उ0प्र0 सरकारी कर्मचारी आचरण नियमावली, 1956 के नियम 3 का भी उल्लंघन करने पर तथा विभागीय प्रक्रियाओं का पालन न करने के तथ्य के दृष्टिगत निन्दा प्रविष्टि भी प्रदान की गई थी। दिनांक 04.09.2019 को उपरोक्त दण्डादेश के विरूद्ध याचिकाकर्ता ने अपना अभ्यावेदन महामहिम राज्यपाल, उत्तर प्रदेश के समक्ष प्रस्तुत किया जिसे दिनांक 01.10.2019 को आदेश दिनांक 02.03.2020 द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया। व्यथित हो कर याचिकाकर्ता ने अधिकरण के समक्ष दावा

याचिका प्रस्तुत की, जिसे प्रश्नगत आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। उनका कहना है कि प्रश्नगत आदेश में कोई अवैधता या विकृति नहीं है और रिट याचिका खारिज होने योग्य है।

(11) हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों का परीक्षण किया है एवं प्रश्नगत निर्णय और अभिलेख पर लाई गई सामग्री का अध्ययन किया है।

(12) आगे बढ़ने से पूर्व, यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि एस गोविंदा मेनन बनाम भारत संघ, एआईआर 1967 एससी 1274, वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नवत अवधारित किया है :-

> *"... यह आवश्यक नहीं है कि सेवा के किसी सदस्य ने सरकारी कर्मचारी के रूप में अपने कर्तव्य के निर्वहन के दौरान ऐसा कथित कृत्य या चूक की हो ताकि यह अनुशासनात्मक कार्यवाही की विषय-वस्तु का गठन करे। दूसरे शब्दो में, यदि कृत्य या चूक ऐसी है जो अधिकारी की प्रतिष्ठा, सत्यनिष्ठा या सद्भावना या कर्तव्य के प्रति समर्पण को प्रतिबिंबित करती है, तो कोई कारण नहीं है कि उस कार्य या चूक हेतु उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही न की जाए। ......परीक्षण इस तथ्य का है कि क्या कार्य या चूक का उसकी सेवा की प्रकृति और स्थिति के साथ कोई युक्तियुक्त मेल है या जहाँ कार्य या चूक से सेवा के सदस्य की सत्यनिष्ठा या कर्तव्य निष्ठा के कारण लोक सेवक की प्रतिष्ठा पर कोई प्रभाव पड़ा है। ......प्रस्तावित प्रतिपादना यह थी कि अर्ध-न्यायिक आदेश, जब तक कि अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत रद्द नहीं किया जाता, अंतिम और बाध्यकारी होते हैं और कार्यकारी सरकार द्वारा अनुशासनात्मक कार्यवाही के माध्यम से उन पर प्रश्न नहीं उठाए जा सकते। ..... अतः यह आरोप कदाचार और लापरवाही का है जो प्रासंगिक प्रावधानों की घोर उपेक्षा से प्रकट होता है। ....परन्तु वर्तमान कार्यवाही में जिस तथ्य को चुनौती दी गई है वह आयुक्त के निर्णय की शुद्धता या वैधता नहीं अपितु आयुक्त के रूप में अपने कर्तव्य के निर्वहन में अपीलकर्ता का आचरण है। अपीलकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही की गई क्योंकि उसने अपने कार्य के निर्वहन में अधिनियम और नियमों के प्रावधानों की घोर अवहेलना की। यह वह तरीका है जिससे वह अपने कार्य का निर्वहन करता है एवं जो इस कार्यवाही में सामने आया है। ....अतः यह स्पष्ट है कि, हालांकि अधिनियम के अंतर्गत अपील या पुनरीक्षण में पट्टों की मंजूरी की औचित्य और वैधता पर सवाल उठाया जा सकता है, परन्तु यदि इस तथ्य का साक्ष्य है कि उसने अपने कर्तव्यों के निर्वहन में घोर लापरवाही बरती है या ईमानदारी या सद्भावना से कार्य करने में विफल रहा या उसने विहित शर्तों का लोप किया जो वैधानिक शक्ति के प्रयोग के लिए आवश्यक हैं, तो सरकार को अनुशासनात्मक कार्यवाही करने से नहीं रोका जा सकता है।*

(13) इस प्रकार, उपरोक्त निर्णय एक प्राधिकार है कि किसी कर्मचारी के विरुद्ध कार्रवाई के संबंध में अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारंभ की जा सकती है, भले ही वह न्यायिक या अर्ध-न्यायिक शक्तियों के प्रयोग से संबंधित हो।

(14) एस गोविंदा मेनन (उपरोक्त) में, सर्वोच्च न्यायालय ने पीयर्स बनाम फोस्टर, (1966) 17 क्यूबीडी 536, वाद के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया था जिसमें निम्नवत धारित किया गया था:-

> *"यदि कोई कर्मचारी सेवा में अपने कर्तव्य के निष्ठापूर्वक निर्वहन से असंगत आचरण करता है तो यह कदाचार है जो तत्काल बर्खास्तगी को उचित ठहराता है।"*

(15) सर्वोच्च न्यायालय ने भारत संघ एवं अन्य बनाम के.के. धवन, एआईआर 1993 एससी 1478, में एस गोविंदा मेनन (उपरोक्त) में अपने पूर्व निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया और यह टिप्पणी की कि न्यायिक अथवा अर्ध-न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करने वाला अधिकारी यदि उपेक्षापूर्वक या लापरवाहीपूर्वक कार्य करता है या किसी व्यक्ति को अनुचित लाभ पहुंचाने हेतु कार्य करता है तो वह न्यायाधीश के रूप में कार्य नहीं कर रहा है । अनुशासनात्मक कार्यवाही में, आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में अधिकारी के आचरण की जाँच की जानी होती है न कि उसके निर्णयों की शुद्धता या वैधता की क्योंकि आदेशों की वैधता पर अपीलीय या पुनरीक्षण मंच पर प्रश्न उठाया जा सकता है। ऐसे में सरकार को आचरण नियमावली के उल्लंघन पर अनुशासनात्मक कार्रवाई करने से नहीं रोका जा सकता। सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ परिस्थितियों का विवरण दिया जिनमें अनुशासनात्मक कार्रवाई की जा सकती है, जो निम्नवत हैं:-

> "(i) जहां अधिकारी ने ऐसी रीति से कार्य किया है जो उसकी प्रतिष्ठा या सत्यनिष्ठा या सद्भावना या कर्तव्य पर प्रभाव डालता है;
>
> (ii) यदि प्रथम दृष्टया, उसके कर्तव्य के निर्वहन में लापरवाही या कदाचार प्रदर्शित करने हेतु सामग्री है;
>
> (iii) यदि उसने ऐसी रीति से कार्य किया है जो सरकारी कर्मचारी हेतु अनुचित है;
>
> (iv) यदि उसने लापरवाही से कार्य किया है या विहित शर्तों का लोप किया है जो वैधानिक शक्तियों के प्रयोग हेतु आवश्यक हैं;
>
> (v) यदि उसने किसी पक्ष को अनुचित लाभ पहुँचाने हेतु कार्य किया हो;
>
> (vi) यदि वह भ्रष्ट उद्देश्य से प्रेरित हुआ है, चाहे रिश्वत कितनी भी छोटी क्यों न हो, क्योंकि लॉर्ड कोक ने बहुत पहले कहा था, "हालांकि रिश्वत छोटी हो सकती है, फिर भी दोष बड़ा है।"

(16) सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि उक्त उदाहरण व्यापक नहीं थे। हालाँकि सर्वोच्च अदालत ने आगे टिप्पणी की कि प्रत्येक वाद उस वाद के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा, और कोई भी परम नियम प्रतिपादित नहीं किया जा सकता।

(17) वर्तमान वाद में, यह विवाद में नहीं है कि याचिकाकर्ता द्वारा निर्धारण वर्ष 2014-15 हेतु दिनांक 20.09.2018 के आदेश के अंतर्गत किया गया निर्धारण, जिस पर उसकी जाँच की गई थी, को अपील संख्या 410/2018 में न्यायालय अपर आयुक्त ग्रेड-2 (अपील) लखनऊ, में शशि सेल्स नामक व्यापारी द्वारा चुनौती दी गई थी और अपीलीय प्राधिकारी ने आदेश दिनांकित 05.10.2018 के माध्यम से अपील की अनुमति दी तथा निर्धारण आदेश दिनांकित 20.09.2018 को रद्द कर दिया और कर पुनर्निर्धारण हेतु वाद को निर्धारण अधिकारी को वापस कर दिया। अपीलीय आदेश दिनांकित 05.10.2018 की एक प्रति वर्तमान रिट याचिका के साथ संलग्न की गई है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार को कोई राजस्व हानि नहीं हुई है।

(18) यह देखा गया कि किसी अपचारी कर्मचारी के विरुद्ध सेवा में उसके कर्तव्य निर्वहन से संबंधित विभागीय जाँच हो सकती है और यह आदेश की शुद्धता तक ही सीमित नहीं है, इसलिए उपरोक्त परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का इस तर्क की जाँच की जानी हैकि उसे सुनवाई का उचित अवसर प्रदान नहीं किया गया। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा विशेष रूप से आग्रह किया गया है कि जाँच का कोई दिनांक, समय और स्थान तय नहीं किया गया था।

(19) अधिकरण द्वारा पारित प्रश्नगत आदेश के अवलोकन से यह भी संकेत मिलता है कि यह मुद्दा उसके समक्ष उठाया गया था, परन्तु अधिकरण यह मानते हुए एक विपरीत निष्कर्ष पर पहुँचा कि जाँच याचिकाकर्ता द्वारा पारित अर्ध-न्यायिक आदेश के आधार पर की गई थी, इसलिए सम्पूर्ण जाँच कराने की कोई आवश्यकता नहीं थी। इस पक्ष पर न तो विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा विवाद किया गया और न ही यह प्रदर्शित किया जा सका कि याचिकाकर्ता को उचित अवसर प्रदान किया गया था। जब याचिकाकर्ता को आरोप पत्र तामील हो चुका है और दीर्घ शास्ति प्रस्तावित है, जो याचिकाकर्ता को दी गई है, तब ऐसी परिस्थिति में उचित जाँच होनी चाहिए थी और इसे यह कहकर नहीं टाला जा सकता कि इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि यह दस्तावेजों पर आधारित थी। भले ही, कथित जाँच दस्तावेजों पर आधारित थी, न्यूनतम यह तो किया ही जा सकता था कि सभी उक्त जाँच दस्तावेजों के सबंध में यह सिद्ध किया जाता है कि यह आदेश की वैधता नहीं अपितु आदेश पारित करने की रीति थी जिस पर प्रश्न किया गया था, जिस पर आरोप पत्र जारी किया गया था और जो याचिकाकर्ता के विरुद्ध जाँच की विषय-वस्तु था। वाद के इस पक्ष को जाँच अधिकारी के साथ ही अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा भी पूर्णरूपेण अनदेखा कर दिया गया है, और अधिकरण द्वारा भी इस पर उचित ध्यान दिया गया है।

(20) भारत संघ एवं अन्य बनाम के.के. धवन (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के दृष्टिगत वाद के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, हम पाते हैं कि जाँच अधिकारी द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्ष कदाचार के आरोपों का समर्थन करने हेतु विधिक रूप से स्वीकार्य साक्ष्य या प्रासंगिक साक्ष्य के अभाव में पूर्ण रूप से दूषित है, और किसी भी साक्ष्य के अभाव में, अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा अभिपुष्ट जाँच अधिकारी का निष्कर्ष भी दूषित है।

(21) उपरोक्त के दृष्टिगत, वर्तमान रिट याचिका स्वीकार की जाती है। अधिकरण द्वारा पारित प्रश्नगत निर्णय और आदेश दिनांक 22.10.2020, दंड आदेश दिनांक 04.09.2019 और आदेश दिनांक 02.03.2020 को एतद्द्वारा रद्द किया जाता है। मामला जाँच अधिकारी को सौंप दिया जाएगा जो याचिकाकर्ता को सभी दस्तावेज उपलब्ध कराने और कानूनी रूप से स्वीकार्य साक्ष्य पर विचारोपरांत सुनवाई का उचित अवसर देते हुए जाँच करेगा, और यह प्रयास किया जाए कि इस आदेश की एक प्रति संबंधित प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करने की तारीख से छह माह की अवधि में जाँच को तार्किक निष्कर्ष प्रदान किया जाए। यह भी निदेश दिया जाता है कि याचिकाकर्ता किसी भी अनावश्यक स्थगन की मांग नहीं करेगा और यदि वह जाँच के शीघ्र समापन में सहयोग नहीं करता है तो जाँच अधिकारी को विधि के अनुसार मामले में कार्यवाही करने का अधिकार होगा।

(2023) 1 ILRA 1226
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल साइड
दिनांक: इलाहाबाद 17.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विक्रम डी चौहान,

रिट सी नंबर 39214/2017

मो. आरिफ खान ... याचिकाकर्ता
बनाम
भारत संघ और अन्य ... प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के वकील:
श्री परबेज आलम, श्री नमित श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के लिए वकील:
ए.एस.जी.आई, श्री अनिल कुमार पाण्डेय,
श्री अरविन्द कुमार गोस्वामी,

A. सेवा कानून - अनुशासनात्मक कार्यवाही - सजा - भारतीय दंड संहिता: धारा 302, 201; सीआरपीएफ अधिनियम: धारा 11(1) - ड्यूटी से अनधिकृत अनुपस्थिति - यदि अनुपस्थिति बाध्यकारी परिस्थितियों का परिणाम है जिसके तहत रिपोर्ट करना या ड्यूटी करना संभव नहीं था, तो ऐसी अनुपस्थिति को जानबूझकर नहीं माना जा सकता है। बिना किसी आवेदन या पूर्व अनुमति के कर्तव्य से अनुपस्थिति को अनधिकृत अनुपस्थिति माना जा सकता है, लेकिन इसका मतलब हमेशा जानबूझकर अनुपस्थिति नहीं है। अलग-अलग परिस्थितियाँ हो सकती हैं जिनके कारण कोई कर्मचारी ड्यूटी से विरत हो सकता है, जिसमें बीमारी, दुर्घटना, अस्पताल में भर्ती होने जैसी उसके नियंत्रण से परे मजबूर करने वाली परिस्थितियाँ भी शामिल हैं, लेकिन ऐसे मामले में कर्मचारी को कर्तव्य के प्रति समर्पण में विफलता या सरकारी कर्मचारी के लिए अशोभनीय व्यवहार का दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। **विभागीय कार्यवाही में, यदि ड्यूटी से अनधिकृत अनुपस्थिति का आरोप लगाया जाता है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी को यह साबित करना आवश्यक है कि अनुपस्थिति जानबूझकर की गई है, ऐसे निष्कर्ष के अभाव में अनुपस्थिति कदाचार की श्रेणी में नहीं आएगी। (पैरा 27)**

यह देखा जाना चाहिए कि याचिकाकर्ता मुख्य रूप से याचिकाकर्ता के खिलाफ आपराधिक मामला लंबित होने के कारण ड्यूटी से अनधिकृत अनुपस्थिति पर है। जब याचिकाकर्ता विधिवत स्वीकृत छुट्टी प्राप्त करने के बाद अपने मूल स्थान पर गया, तो 21.07.2015 को एक प्राथमिकी दर्ज की गई और उसके बाद, 25.07.2015 को यानी स्वीकृत छुट्टी की अवधि के दौरान याचिकाकर्ता के खिलाफ गिरफ्तारी वारंट जारी किया गया। वारंट जारी होने के बाद, याचिकाकर्ता कानूनी उपायों की तलाश कर रहा था और गिरफ्तारी से बच रहा था क्योंकि याचिकाकर्ता के अनुसार उसे आपराधिक मामले में झूठा फंसाया गया है। जब याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही चल रही थी तब वह जेल में था। (पैरा 28,29)

B. अनुशासनात्मक कार्यवाही के दौरान कर्मचारी/याचिकाकर्ता द्वारा बताए गए कारण पर सजा पर आदेश पारित करने से पहले नियोक्ता द्वारा विचार किया जाना आवश्यक है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने केवल जांच रिपोर्ट पर विचार किया है और उसके बाद बिना कोई निष्कर्ष दर्ज किए आक्षेपित आदेश पारित कर दिया है कि क्या याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति जानबूझकर थी या क्या याचिकाकर्ता को तथ्यों और परिस्थितियों के कारण ड्यूटी से अनुपस्थित रहने के लिए मजबूर किया गया था। अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा इस तरह का दृष्टिकोण कानून के तहत उचित नहीं है। (पैरा 30,33)

C. दंड की आनुपातिकता पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा विचार किया जाना चाहिए क्योंकि यह अनुशासनात्मक प्राधिकारी के क्षेत्र में है।अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने उन विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार नहीं किया है, जहां याचिकाकर्ता अपनी गिरफ्तारी से बच रहा था और अंततः उसके खिलाफ एक आपराधिक मामले के कारण उसे जेल भेज दिया गया था। एक व्यक्ति जो न्यायिक हिरासत में है, उससे तब तक अपनी ड्यूटी में शामिल होने की उम्मीद नहीं की जा सकती जब तक कि उसे अदालत द्वारा जमानत पर रिहा नहीं किया जाता है। नियोक्ता ने आपराधिक मामले में याचिकाकर्ता की संलिप्तता के संबंध में आरोप संख्या 2 के संबंध में सजा को स्थगित कर दिया है। इन परिस्थितियों ने याचिकाकर्ता के कदाचार को कम कर दिया होगा और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा कम सजा की मांग करते हुए एक अलग दृष्टिकोण अपनाया जा सकता था। (पैरा 32)

अनुशासनात्मक प्राधिकारी को कर्मचारी पर लगाए जाने वाले दंड पर विचार करते समय, भले ही कर्मचारी ने आरोप स्वीकार कर लिया हो, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर दंड की आनुपातिकता तय करना आवश्यक है और जो दंड

अनुपातहीन है, उससे कर्मचारी के साथ अन्याय हो सकता है। (पैरा 33)

रिट याचिका स्वीकार की गई। अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा दी जाने वाली सजा की मात्रा और प्रकृति पर नए सिरे से निर्णय के लिए मामला वापस भेज दिया गया। (ई 4)

मिसाल का पालन किया गया:

1. जय भगवान बनाम पुलिस आयुक्त एवं अन्य, 2012 (3) एससीसी 178 (पैरा 14)
2. कृष्णकांत बी. परमार बनाम भारत संघ एवं अन्य, 2012 (3) 178 (पैरा 14)
3. मिर्जा बरकत अली बनाम पुलिस महानिरीक्षक, इलाहाबाद एवं अन्य, 2002 (2) यूपीएलबीईसी 1871 (पैरा 14)

वर्तमान याचिका कमांडेंट, 101, बटालियन आर.ए.एफ./सी.आर.पी.एफ., जिला इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.09.2016, पुलिस उप महानिरीक्षक, आर.ए.एफ./सी.आर.पी.एफ., आर.के. पुरम, नई दिल्ली द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.01.2017 और आदेश दिनांक 25.04.2017, पुलिस महानिरीक्षक, आर.ए.एफ./सी.आर.पी.एफ., आर.के. पुरम, नई दिल्ली द्वारा पारित किया गये आदेशों को चुनौती देती है।

(माननीय न्यायमूर्ति विक्रम डी चौहान, द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील और उत्तरदाताओं के विद्वान वकील श्री अरविंद कुमार गोस्वामी को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता के वकील ने कहा कि याचिकाकर्ता आरएएफ/सीआरपीएफ, इलाहाबाद में कांस्टेबल के पद पर कार्यरत था। याचिकाकर्ता को अपने मूल स्थान पर परिवार के साथ ईद त्योहार में भाग लेने के लिए 20 जुलाई, 2015 से 29 जुलाई, 2015 तक प्रतिवादियों द्वारा छुट्टी दी गई थी और याचिकाकर्ता को 29 जुलाई, 2015 (ए/एन) को ड्यूटी के लिए रिपोर्ट करना आवश्यक था।

3. जब याचिकाकर्ता छुट्टी पर था, तो 21 जुलाई, 2015 को प्रथम सूचना रिपोर्ट, मुकदमा अपराध संख्या 453, 2015, अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 201 के तहत पुलिस स्टेशन नवाबगंज में दर्ज की गई थी। उपरोक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसरण में, पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच की गई और याचिकाकर्ता को आपराधिक मामले में शामिल पाया गया। याचिकाकर्ता के खिलाफ 25 जुलाई, 2015 को गिरफ्तारी वारंट जारी किया गया था। याचिकाकर्ता को एक आपराधिक मामले में शामिल होने और उसके खिलाफ वारंट जारी होने के कारण उत्तरदाताओं द्वारा निलंबित कर दिया गया था। गिरफ्तारी के डर से याचिकाकर्ता स्वीकृत अवकाश समाप्त होने के बाद अपने रोजगार के स्थान पर वापस नहीं आया। यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता आपराधिक अभियोजन में कानूनी उपायों की तलाश कर रहा था।

4. 10 सितंबर, 2015 को याचिकाकर्ता ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की अदालत में आत्मसमर्पण कर दिया और उसी दिन उसे नैनी सेंट्रल जेल, इलाहाबाद भेज दिया गया। याचिकाकर्ता को शुरुआत में 25 जुलाई, 2015 के आदेश द्वारा निलंबित कर दिया गया था। 18 अगस्त, 2015 को याचिकाकर्ता को तुरंत अपने कर्तव्यों में शामिल होने के लिए एक नोटिस जारी किया गया था। याचिकाकर्ता का निलंबन 20 अगस्त, 2015 को उत्तरदाताओं द्वारा रद्द कर दिया गया था। 21 अगस्त, 2015 को याचिकाकर्ता के वेतन और भत्ते के भुगतान को रोकने के लिए प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा एक आदेश पारित किया गया था।

5. 17 अक्टूबर 2015 और 4 जनवरी 2016 को याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी अधिकारियों को सूचित किया कि वह उपर्युक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट के संबंध में जेल में बंद है। इसके बाद, याचिकाकर्ता को 8 नवंबर, 2015 को फिर से निलंबित कर दिया गया। इसके बाद, याचिकाकर्ता जेल में रहा और 28 मार्च, 2017 को इस न्यायालय द्वारा उसे जमानत पर रिहा कर दिया गया।

6. उत्तरदाताओं द्वारा जांच अधिकारी नियुक्त किया गया था और याचिकाकर्ता को विभागीय कार्यवाही में उसके खिलाफ दो आरोप लगाने पर दिनांक 4 फरवरी, 2016 को एक आरोप पत्र दिया गया था। याचिकाकर्ता के खिलाफ पहला आरोप यह है कि याचिकाकर्ता को 20 जुलाई, 2015 से 29 जुलाई, 2015 तक छुट्टी दी गई थी और उसे 29 जुलाई, 2015 (ए/एन) को ड्यूटी पर वापस रिपोर्ट करना था, हालांकि, उसने अपनी स्वीकृत छुट्टी पूरी होने के बाद भी ड्यूटी पर रिपोर्ट नहीं की है। . इस बीच, याचिकाकर्ता को एक आपराधिक मामले में गिरफ्तार कर लिया गया और 10 सितंबर, 2015 से जेल में है। उपरोक्त सीआरपीएफ अधिनियम की धारा 11(1) के तहत एक कदाचार है। याचिकाकर्ता के खिलाफ दूसरा आरोप याचिकाकर्ता को एक आपराधिक मामले में गिरफ्तार किए जाने और भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और 201 के तहत अपराध के लिए जेल में होने से संबंधित है, जो सीआरपीएफ अधिनियम की धारा 11 (1) के तहत एक कदाचार है।

7. 23 मई 2016 व 27 मई 2016 को जांच अधिकारी ने नैनी जेल आकर याची का बयान दर्ज किया। 17 अगस्त, 2016 को जेल में जांच अधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता का बयान दर्ज किया गया। जांच अधिकारी ने

29 अगस्त, 2016 को प्रतिवादी अधिकारियों के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। याचिकाकर्ता ने आरोप संख्या 1 को स्वीकार कर लिया क्योंकि वह एक आपराधिक मामले में जेल में बंद होने के कारण अनधिकृत रूप से ड्यूटी से अनुपस्थित रहा, लेकिन आरोप संख्या 2 से इनकार किया। जांच अधिकारी ने 29 अगस्त, 2016 को अपनी रिपोर्ट में निष्कर्ष निकाला कि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप संख्या 1 साबित हुआ है और आरोप संख्या 2 के संबंध में, जांच अधिकारी ने माना कि आपराधिक मामला आपराधिक अदालत के समक्ष विचाराधीन है, जैसे कि कोई भी निर्णय आरोप संख्या 2 के संबंध में संबंधित न्यायालय के समक्ष आपराधिक मामला पूरा होने के बाद लिया जा सकता है।

8. इसके बाद, प्रतिवादी नंबर 4 ने याचिकाकर्ता के खिलाफ सेवा से हटाने का बड़ा जुर्माना लगाते हुए दिनांक 30 सितंबर, 2016 को आक्षेपित आदेश पारित किया। याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा पारित आदेश दिनांक 30 सितंबर, 2016 से व्यथित होकर, केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल नियमों के नियम 28 के तहत पुलिस उप महानिरीक्षक, आर.ए.एफ/सी.आर.पी.एफ, आर.के. पुरम, सेक्टर -1, ईस्ट ब्लॉक-02, नई दिल्ली के समक्ष जेल से अपील दायर की। याचिकाकर्ता की अपील को प्रतिवादी संख्या 3 ने 25 जनवरी, 2017 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया था। याचिकाकर्ता ने 30 सितंबर, 2016 और 25 जनवरी, 2017 के उपर्युक्त आदेश से व्यथित होकर प्रतिवादी संख्या 2 के समक्ष संशोधन को प्राथमिकता दी। प्रतिवादी क्रमांक 2 के आदेश दिनांक 25 अप्रैल 2017 द्वारा उक्त पुनरीक्षण को खारिज कर दिया गया।

9. वर्तमान रिट याचिका प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा पारित आदेश दिनांक 30 सितंबर, 2016, प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित आदेश दिनांक 25 जनवरी, 2017 और प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 25 अप्रैल, 2017 को चुनौती देते हुए दायर की गई है।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील का आग्रह है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही के दौरान याचिकाकर्ता जेल में था और याचिकाकर्ता ने जेल से ही अनुशासनात्मक कार्यवाही में भाग लिया। 4 फरवरी 2016 को याचिकाकर्ता के विरुद्ध दो आरोपों के साथ आरोप पत्र समर्पित किया गया. याचिकाकर्ता के खिलाफ पहला आरोप यह था कि याचिकाकर्ता 30 जुलाई, 2015 से अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू होने तक ड्यूटी पर अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा। याचिकाकर्ता के खिलाफ दूसरा आरोप इस आशय का था कि याचिकाकर्ता एक आपराधिक मामले में शामिल था और उसने कानून के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया है और जेल में है जो एक कदाचार है। याचिकाकर्ता का बयान जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किया गया था, जो रिट याचिका के पृष्ठ 66 पर है, जहां याचिकाकर्ता ने जांच अधिकारी को बताया है कि किन परिस्थितियों में याचिकाकर्ता पर आपराधिक मामले में शामिल होने का आरोप लगाया गया था, कैसे याचिकाकर्ता ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की अदालत के समक्ष आत्मसमर्पण किया है। जांच अधिकारी ने जांच कार्यवाही पूरी होने के बाद 29 अगस्त, 2016 को जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप संख्या 1 साबित पाया गया। हालाँकि, आरोप संख्या 2 के संबंध में, जांच अधिकारी ने सिफारिश की कि चूंकि मामला याचिकाकर्ता के खिलाफ आपराधिक मामले से संबंधित है, इसलिए उपरोक्त पर निर्णय संबंधित अदालत के निर्णय के बाद लिया जा सकता है।

11. 30 सितंबर, 2016 के आदेश द्वारा अनुशासनात्मक प्राधिकारी-प्रतिवादी संख्या 4 ने इसके बाद जांच रिपोर्ट पर विचार करना शुरू कर दिया और आरोप संख्या 1 पर याचिकाकर्ता को सेवा से हटाने का निर्देश दिया और इसके अलावा अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने निर्देश दिया है कि 10 सितंबर, 2015 से आदेश पारित होने तक की अवधि यानी 30 सितंबर, 2016 को निलंबन के तहत अवधि के रूप में माना जाएगा और याचिकाकर्ता को केवल जीवन निर्वाह भत्ता का भुगतान किया जाएगा। याचिकाकर्ता के पदक और अन्य सम्मान भी प्रतिवादियों द्वारा आक्षेपित आदेश के माध्यम से जब्त कर लिए गए हैं।

12. याचिकाकर्ता के वकील द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता को आरोप संख्या 1 पर सेवा से हटा दिया गया है, जो ड्यूटी से अनधिकृत अनुपस्थिति है। सेवा से हटाने की सज़ा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में असंगत है, विशेष रूप से जब याचिकाकर्ता, जो छुट्टी पर गया था, छुट्टी पर रहते हुए आपराधिक कार्यवाही के अधीन था और इस प्रकार याचिकाकर्ता एक आपराधिक मामले में शामिल होने के कारण अपने कर्तव्यों में वापस शामिल नहीं हो सका और न ही प्रतिवादी-अधिकारियों को सूचित कर सका, जिसे याचिकाकर्ता ने जांच कार्यवाही में स्वीकार किया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि आपराधिक कार्यवाही के संबंध में याचिकाकर्ता ने संबंधित अदालत के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया और उसे जेल भेज दिया गया। याचिकाकर्ता के खिलाफ सेवा से निष्कासन का आक्षेपित आदेश पारित किया गया है क्योंकि याचिकाकर्ता ने जांच कार्यवाही के दौरान आरोप संख्या 1 को स्वीकार कर लिया है।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने आगे कहा कि आरोप संख्या 1 के संबंध में याचिकाकर्ता द्वारा आरोप स्वीकार करना वास्तव में उत्तरदाताओं द्वारा लगाए गए दंड की मात्रा को स्वीकार करने के समान नहीं होगा। उनका कहना है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उत्तरदाताओं को उन विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करना चाहिए था, जो याचिकाकर्ता ने छुट्टी पर जाते

समय देखी थीं और उसके बाद, जांच कार्यवाही के दौरान याचिकाकर्ता के बयान पर विचार करते हुए याचिकाकर्ता के खिलाफ आदेश पारित करना चाहिए था।

14. अपनी दलीलों के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा जताया है: -

1. जय भगवान बनाम पुलिस आयुक्त एवं अन्य, एआईआर 2013 एससी 2908

2. कृष्णकांत बी. परमार बनाम भारत संघ और अन्य, 2012 (3) एससीसी 178

3. मिर्जा बरकत अली बनाम पुलिस महानिरीक्षक, इलाहाबाद एवं अन्य, 2002 (2) यूपीएलबीईसी 1871।

15. उपरोक्त निर्णयों के आधार पर, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील का कहना है कि सभी मामलों में ड्यूटी से अनधिकृत अनुपस्थिति सेवा से हटाने की गारंटी नहीं देगी, विशेष रूप से जब कर्मचारी तथ्यों और परिस्थितियों से यह दिखा सकता है कि अनधिकृत अनुपस्थिति जानबूझकर नहीं की गई थी। उनका कहना है कि जांच अधिकारी को दिए गए बयान में अनधिकृत अनुपस्थिति के बारे में विधिवत बताया गया है। दंडाधिकारी द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करते समय याचिकाकर्ता के उपरोक्त कथन पर विचार नहीं किया गया। आगे यह भी कहा गया है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ आपराधिक मुकदमा याचिकाकर्ता की सेवा से जुड़ी घटना के संबंध में नहीं है।

16. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि आरोप संख्या 1 पर याचिकाकर्ता के खिलाफ सजा पर विचार करते समय अनुशासनात्मक प्राधिकारी के लिए यह अनिवार्य था कि जांच कार्यवाही के दौरान दर्ज किए गए याचिकाकर्ता के बयान पर विचार किया जाए और याचिकाकर्ता का मामला कि वह एक आपराधिक मामले में शामिल था और इसके लिए कानूनी उपायों की तलाश कर रहा था, उसने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की अदालत के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करते समय ऐसे तथ्यों पर विचार नहीं किया गया है और इस प्रकार आक्षेपित आदेश कानून के तहत मान्य नहीं है।

17. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील का कहना है कि सजा की आनुपातिकता पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी को याचिकाकर्ता के रुख पर विचार करने के बाद विचार करना होगा, भले ही याचिकाकर्ता ने आरोप स्वीकार कर लिया हो। हालाँकि, सजा देते समय अनाधिकृत अनुपस्थिति के लिए याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण पर विचार किया जाना चाहिए था। उनका कहना है कि वर्तमान मामले में ऐसी प्रक्रिया नहीं अपनाई गई है और इसलिए विवादित आदेश रद्द किया जाना चाहिए।

18. उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री अरविंद कुमार गोस्वामी का कहना है कि याचिकाकर्ता अनधिकृत रूप से ड्यूटी से अनुपस्थित था। याचिकाकर्ता को अपने मूल स्थान पर जाने के लिए दस दिन की छुट्टी दी गई थी। हालाँकि, वह वापस नहीं लौटा और उसके बाद, याचिकाकर्ता को अपनी ड्यूटी में शामिल होने के लिए संचार भेजा गया। हालाँकि, उन्होंने उन संचारों का सम्मान नहीं किया और उसके बाद, उन्हें एक आपराधिक मामले में शामिल पाया गया और वह जेल में थे, इसलिए उन्हें निलंबित कर दिया गया और याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई।

19. उत्तरदाताओं के विद्वान वकील द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ दो आरोपों के लिए आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था और जांच अधिकारी ने जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की है जहां याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप संख्या 1 साबित हुआ है और जहां तक आरोप संख्या 2 का सवाल है, जांच अधिकारी ने सिफारिश की है कि कोई भी कार्रवाई संबंधित अदालत के फैसले के बाद की जा सकती है।

20. उत्तरदाताओं के विद्वान वकील ने आगे कहा कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने जांच अधिकारी की रिपोर्ट और याचिकाकर्ता की स्वीकारोक्ति पर विचार करते हुए कि वह अनधिकृत तरीके से ड्यूटी से अनुपस्थित था, सेवा से हटाने का आदेश पारित कर दिया है।

21. उत्तरदाताओं के विद्वान वकील ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता एक अनुशासित बल से संबंधित है और उसे छुट्टी की अवधि समाप्त होने के बाद अपनी ड्यूटी पर वापस आना आवश्यक था। एक बार छुट्टी पूरी होने के बाद अपने कर्तव्यों में शामिल नहीं होने पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई करना उचित था।

22. प्रतिवादियों के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल अधिनियम, 1949 की धारा 11 के तहत हटाने का आदेश पारित किया है और इस प्रकार आक्षेपित आदेश को पारित करने में कोई गलती नहीं हो सकती है।

23. ज्ञात हो कि याचिकाकर्ता आरएएफ/सीआरपीएफ, इलाहाबाद में कांस्टेबल के पद पर तैनात था। वह 20 जुलाई, 2015 से 29 जुलाई, 2015 तक अपने मूल स्थान के लिए छुट्टी पर चला गया। जब याचिकाकर्ता अपने मूल स्थान पर पहुंचा, तो 21 जुलाई, 2015 को धारा 302 और 201 आईपीसी के तहत पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई। प्रथम सूचना रिपोर्ट में याचिकाकर्ता का नाम नहीं था। हालाँकि, उसका नाम जांच के दौरान सामने

आया और 25 जुलाई, 2015 को याचिकाकर्ता के खिलाफ गिरफ्तारी वारंट जारी किया गया। याचिकाकर्ता के अनुसार, वह कानूनी उपायों की तलाश कर रहा था और गिरफ्तारी से बच रहा था और अंततः 10 सितंबर 2015 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की अदालत के सामने आत्मसमर्पण कर दिया।

24. यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि याचिकाकर्ता ने 17 अक्टूबर, 2015 को प्रतिवादियों को आपराधिक मामले और उसकी गिरफ्तारी के बारे में सूचित किया था। याचिकाकर्ता के खिलाफ आपराधिक मामला लंबित होने के कारण, याचिकाकर्ता को शुरू में 25 जुलाई, 2015 को निलंबित कर दिया गया था। और उसके बाद, उपरोक्त निलंबन आदेश 20 अगस्त, 2015 को रद्द कर दिया गया। हालांकि, जब याचिकाकर्ता ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की अदालत के सामने आत्मसमर्पण कर दिया और जेल भेज दिया गया, तो उसे 8 नवंबर, 2015 को फिर से निलंबित कर दिया गया।

25. यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि याचिकाकर्ता को 28 मार्च, 2017 को इस न्यायालय द्वारा जमानत दी गई थी। उत्तरदाताओं ने याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की और 4 फरवरी, 2016 को याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप पत्र जारी किया गया। याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही में दो आरोप तय किए गए थे . आरोप संख्या 1 30 जुलाई, 2015 से ड्यूटी से अनधिकृत अनुपस्थिति से संबंधित है और आरोप संख्या 2 एक आपराधिक मामले की लंबितता से संबंधित है और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा इसे कदाचार माना गया था। जब अनुशासनात्मक कार्यवाही चल रही थी तो याचिकाकर्ता जेल में था। हालाँकि, उनका बयान जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किया गया था, जो पेपर बुक के पृष्ठ 66 पर है। उपरोक्त कथन का प्रासंगिक अंश यहां दिया गया है:-

"प्रशन 4- आप सेन्ट्रल जेल नैनी इलाहाबाद में किस लिए एवं कब से कैद में है?

उत्तर – श्रीमान घर वालो ने कारण पूछा तो पुलिस ने थाना नवावगंज इलाहाबाद में हुई दो हत्या में आरोपी बताया। जिस समय पुलिस घर आई मै और मेरा भाई सुबह घर से बाहर टहलने गये थे। तथा प्रार्थी के घर पर खड़ी सफारी गाड़ी पुलिस उठा ले गयी और हत्या में शामिल दिखाया। जबकि प्रार्थी का इस हत्या से कोई लेना-देना नहीं है। प्रार्थी के बड़े भाई मो. नसीम खान जो केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल से हवलदार/जीडी पद से रिटायर्ड थे कि हत्या सुबह 06:00 बजे के करीब समूह केन्द्र सी.आर.पी.एफ. इलाहाबाद के नजदीक उदयचन्दुपुर गांव में बम एवं गोली से मार कर हत्या कर दी गयी। प्रार्थी ने अपने भाई के हत्या में शामिल दो लोगो को नाम जद आरोपी बनाया था पप्पु पुत्र आजाद व पप्पु उर्फ अनवर पुत्र लतीफ व तीन अज्ञात के खिलाफ थाना सोरांव में मुकदमा दर्ज कराया। मुकदमें की विवेचना में पुलिस ने रामकुमार उर्फ विमल को आरोपी बनाया था। जिन व्यक्तियों कि थाना नवाबगंज में हत्या हुई उनमें से एक रामकुमार उर्फ विमल यादव था। पुलिस ने मेरे भाई की हत्या से जोडकर मुझे एवं मेरे भाई को दो हत्याओ में आरोपा बनाया जबकि मेरा इस हत्या से कोई सम्बन्ध नही है। मै उपरोक्त कारणो से काफी भयभीत हो गया था और पुलिस की गिरफतारी से बचने के लिए छिप रहा था और अवकाश से ड्यूटी पर समय से उपस्थित नही हो सका। मै व मेरे भाई ने अपने को निर्दोश साबित करने के लिए दिनांक 10.09.2015 को सी. जी. एम. कोर्ट इलाहाबाद में सरेण्डर किया और सी.जे.एम. कोर्ट इलाहाबाद में ने मुझे दिनांक 10.09.2015 को सेन्ट्रल जेल नैनी इलाहाबाद में भेज दिया। और मैं दिनांक 10.09.2015 से अभी तक सेन्ट्रल जेल नैनी इलाहाबाद में कैद में चल रहा हूँ।

प्रश्न- 5 – सभी अभियोजन गवाहों का बयान आपकी उपस्थिति में लिया गया है और आप अभियोजन गवाहों के बयानो को पढ़ और समझ लिया है। क्या आप कमाण्डेंट कार्यालय के ज्ञापन संख्या- पी. आठ-01/2016 स्था-दो-101 दिनांक 04.02.2016 मे लाये गये आरोपों के मद एक और दो के लिए अपने आप को दोषी मानते हैं?

उत्तर- श्रीमान कमाण्डेंट कार्यालय के ज्ञापन ख्या- पी. आठ-01/2016 स्था-दो-101 दिनांक 04.02.2016 में लाये गये आरोपों के मद एक में लगाये गये आरोप के लिए अपने आप को दोषी मानता हूँ। श्रीमान मद दो में लगाये गये आरोप के प्रति मैं अपने आप को दोषी नहीं मानता हूँ क्योंकि पुलिस द्वारा मेरे विरूद्ध लगाये गये आरोप निराधार है। इस सम्बन्ध में मामला न्यायालय में विचार हेतु लम्बित है।"

26. जांच अधिकारी ने जांच करने के बाद 29 अगस्त, 2016 को जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की और निष्कर्ष निकाला कि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप संख्या 1 साबित हुआ है। जहां तक आरोप संख्या 2 का सवाल है, जांच अधिकारी ने सिफारिश की है कि जहां याचिकाकर्ता के खिलाफ आपराधिक मामला लंबित है, वहां संबंधित अदालत के फैसले के बाद कार्यवाही की जा सकती है। इसके बाद अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने 30 सितंबर, 2016 को आक्षेपित आदेश पारित किया और पाया कि जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप संख्या 1 को सही पाया है और उपरोक्त आरोप को याचिकाकर्ता द्वारा स्वीकार कर लिया गया है और इस प्रकार उसे सेवा से हटाने की सजा दी गई है।याचिकाकर्ता ने दिनांक 30 सितंबर, 2016 के उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील दायर की थी, जिसे 25 मार्च, 2017 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने पुनरीक्षण प्राधिकारी के समक्ष एक पुनरीक्षण को प्राथमिकता दी थी और उसे भी दिनांक 25 अप्रैल 2017के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था।

26. कृष्णकांत बी. परमार बनाम भारत संघ में, (2012) 3 एससीसी 178:-

"16. अनाधिकृत अनुपस्थिति के संदर्भ में अपीलकर्ता के मामले में अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने आरोप लगाया कि वह कर्तव्य के प्रति समर्पण बनाए रखने में विफल रहा और उसका व्यवहार एक सरकारी कर्मचारी के लिए अशोभनीय था। यह सवाल कि क्या "कर्तव्य से अनधिकृत अनुपस्थिति" कर्तव्य के प्रति समर्पण की विफलता है या सरकारी कर्मचारी का व्यवहार अशोभनीय है, इस सवाल का निर्णय किए बिना तय नहीं किया जा सकता है कि अनुपस्थिति जानबूझकर है या बाध्यकारी परिस्थितियों के कारण है।

17. यदि अनुपस्थिति बाध्यकारी परिस्थितियों का परिणाम है जिसके तहत रिपोर्ट करना या ड्यूटी करना संभव नहीं था, तो ऐसी अनुपस्थिति को जानबूझकर नहीं माना जा सकता है। बिना किसी आवेदन या पूर्व अनुमति के कर्तव्य से अनुपस्थिति को अनधिकृत अनुपस्थिति माना जा सकता है, लेकिन इसका मतलब हमेशा जानबूझकर अनुपस्थिति नहीं है। अलग-अलग परिस्थितियाँ हो सकती हैं जिनके कारण कोई कर्मचारी ड्यूटी से विरत हो सकता है, जिसमें बीमारी, दुर्घटना, अस्पताल में भर्ती होने जैसी उसके नियंत्रण से परे मजबूर करने वाली परिस्थितियाँ भी शामिल हैं, लेकिन ऐसे मामले में कर्मचारी को कर्तव्य के प्रति समर्पण में विफलता या सरकारी कर्मचारी के लिए अशोभनीय व्यवहार का दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

18. किसी विभागीय कार्यवाही में, यदि ड्यूटी से अनधिकृत अनुपस्थिति का आरोप लगाया जाता है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी को यह साबित करना आवश्यक है कि अनुपस्थिति जानबूझकर की गई है, ऐसे निष्कर्ष के अभाव में, अनुपस्थिति कदाचार की श्रेणी में नहीं आएगी।''

27. यह देखा जाना चाहिए कि याचिकाकर्ता मुख्य रूप से याचिकाकर्ता के खिलाफ आपराधिक मामला लंबित होने के कारण ड्यूटी से अनधिकृत अनुपस्थिति पर रहा है। जब याचिकाकर्ता विधिवत स्वीकृत छुट्टी प्राप्त करने के बाद अपने मूल स्थान पर गया, तो 21 जुलाई, 2015 को पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई और उसके बाद, स्वीकृत छुट्टी की अवधि के दौरान, 25 जुलाई, 2015 को याचिकाकर्ता के खिलाफ गिरफ्तारी वारंट जारी किया गया। गिरफ्तारी वारंट जारी होने के बाद, याचिकाकर्ता कानूनी उपायों की तलाश कर रहा था और गिरफ्तारी से बच रहा था क्योंकि वह एक निर्दोष व्यक्ति था, याचिकाकर्ता के अनुसार उसे आपराधिक मामले में झूठा फंसाया गया है।

28. याचिकाकर्ता ने 17 अक्टूबर, 2015 को अपने संचार द्वारा विभाग को आपराधिक मामले की लंबितता के संबंध में सूचित किया है और याचिकाकर्ता ने 10 सितंबर, 2015 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की अदालत के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया है। जब याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही चल रही थी तब वह जेल में था। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय सेवा से निष्कासन की सजा देने के आधार के रूप में जांच अधिकारी की रिपोर्ट और याचिकाकर्ता के आरोप संख्या 1 को स्वीकार करने पर विचार किया है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने सजा का आदेश पारित करते समय कर्तव्य से जानबूझकर अनुपस्थिति के संबंध में कोई स्वतंत्र निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है। अधिकृत छुट्टी के बिना ड्यूटी से अनुपस्थिति को अनधिकृत अनुपस्थिति माना जा सकता है, लेकिन इसका मतलब हमेशा ड्यूटी से जानबूझकर अनुपस्थिति नहीं है। ऐसी विभिन्न परिस्थितियाँ हो सकती हैं जिनके कारण कोई कर्मचारी ड्यूटी पर वापस नहीं आ सकता/ड्यूटी से विरत रह सकता है, जिसमें बीमारी, दुर्घटना, अस्पताल में भर्ती होना आदि जैसी उसके नियंत्रण से बाहर की परिस्थितियाँ शामिल हैं लेकिन ऐसे मामले में कर्मचारी को कर्तव्य के प्रति समर्पण में विफलता या सरकारी कर्मचारी के अशोभनीय व्यवहार का दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

29. अनुशासनात्मक कार्यवाही के दौरान कर्मचारी/याचिकाकर्ता द्वारा बताए गए कारण पर सजा पर आदेश पारित करने से पहले नियोक्ता द्वारा विचार किया जाना आवश्यक है। अनधिकृत अनुपस्थिति के लिए कर्मचारी द्वारा निर्दिष्ट कारण, भले ही कर्मचारी द्वारा अनधिकृत अनुपस्थिति को स्वीकार किया गया हो, अनधिकृत अनुपस्थिति के लिए संबंधित कर्मचारी को दी जाने वाली सजा की प्रकृति का निर्णय लेते समय नियोक्ता द्वारा विचार किए जाने वाले महत्वपूर्ण कारक हैं।

30. जहां परिस्थितियां कर्मचारी के नियंत्रण से परे हैं और कर्मचारी को उचित कारण से रोका गया है, तो यह नियोक्ता का कर्तव्य है कि वह परिस्थितियों का आकलन करे और ऐसी सजा दे, जो विशेष मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में लगाए गए कदाचार की प्रकृति के अनुरूप हो।

31. दंड की आनुपातिकता पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा विचार किया जाना चाहिए क्योंकि यह अनुशासनात्मक प्राधिकारी के क्षेत्र में है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने उन विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार नहीं किया है जिसके कारण याचिकाकर्ता पर आपराधिक मामला दर्ज किया गया, जहां याचिकाकर्ता अपनी गिरफ्तारी से बच रहा था और अंततः जेल भेज दिया गया। एक व्यक्ति जो न्यायिक हिरासत में है, उससे तब तक अपनी ड्यूटी में शामिल होने की उम्मीद नहीं की जा सकती जब तक कि उसे अदालत द्वारा जमानत पर रिहा नहीं किया जाता है। नियोक्ता ने आपराधिक मामले में याचिकाकर्ता की संलिप्तता के संबंध में आरोप संख्या 2 के संबंध में सजा को स्थगित कर दिया है। हो सकता है कि इन परिस्थितियों ने याचिकाकर्ता के कदाचार को कम

कर दिया हो और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा कम सजा देने के लिए एक अलग दृष्टिकोण अपनाया जा सकता था।

32. आक्षेपित आदेश पारित करते समय अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा इन सभी कारकों पर विचार किया जाना आवश्यक था। हालाँकि, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने केवल जांच रिपोर्ट पर विचार किया है और उसके बाद बिना कोई निष्कर्ष दर्ज किए आक्षेपित आदेश पारित कर दिया है कि क्या याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति जानबूझकर थी या क्या याचिकाकर्ता को तथ्यों और परिस्थितियों के कारण कर्तव्य से अनुपस्थित रहने के लिए मजबूर था। अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा इस तरह का दृष्टिकोण कानून के तहत उचित नहीं है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी को कर्मचारी पर लगाए जाने वाले दंड पर विचार करते समय, भले ही कर्मचारी ने आरोप स्वीकार कर लिया हो, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर दंड की आनुपातिकता तय करना आवश्यक है और जो दंड अनुपातहीन है, उससे कर्मचारी के साथ अन्याय हो सकता है।

33. संबंधित नियोक्ता द्वारा इस तरह के दृष्टिकोण पर विचार नहीं किया गया है, क्योंकि 30 सितंबर, 2016 का ऐसा विवादित आदेश कानून के तहत मान्य नहीं है और इसे रद्द किया जाता है। रिट याचिका की अनुमति दी जाती है और मामले को याचिकाकर्ता की परिस्थितियों, विशेष रूप से याचिकाकर्ता के बयान को ध्यान में रखते हुए नए सिरे से उचित आदेश पारित करने के लिए प्रतिवादी नंबर 4 के पास वापस भेज दिया जाता है जो याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर देने के बाद रिट याचिका के पृष्ठ 66 पर है। अपीलीय प्राधिकारी के साथ-साथ पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा पारित क्रमशः 25 जनवरी, 2017 और 25 अप्रैल, 2017 के परिणामी आदेशों को भी रद्द कर दिया गया है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी-प्रतिवादी संख्या 4 इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से चार महीने की अवधि के भीतर एक नया आदेश पारित करेगा।

34. दोनों पक्षों के विद्वान वकील इस बात पर सहमत हैं कि मामले को नई जांच के लिए नहीं भेजा जा सकता है, हालांकि, केवल अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा दी जाने वाली सजा की मात्रा और प्रकृति पर नए निर्णय के लिए भेजा जा सकता है। तदनुसार, प्रतिवादी नंबर 4 नए सिरे से निर्णय पारित करते समय उन तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए दी जाने वाली सजा की प्रकृति के सवाल पर विचार करेगा जिसके तहत याचिकाकर्ता ड्यूटी से अनुपस्थित था।

(2023) 1 ILRA 1235

अपीलीय क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक:इलाहाबाद 13.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी,
माननीय न्यायमूर्ति मो. अज़हर हुसैन इदरीसी,

विशेष अपील दोष क्रमांक 466 / 2022

ललित कुमार ...अपीलकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य. ..प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता:
श्री प्रभाकर अवस्थी

अधिवक्ता प्रतिवादी:
सी.एस.सी.

ए. सेवा कानून - भर्ती/चयन –उम्मीदवारी को रद्द करना - इस तथ्य के बावजूद कि विवाद तुच्छ प्रकृति का है या नहीं, किसी विशेष कर्मचारी की विश्वसनीयता/साख योग्यता सबसे अधिक मायने रखती है जब सार्वजनिक रोजगार की बात आती है। <u>सरकारी सेवा में नियुक्ति से इनकार करने के लिए नैतिक अधमता का कोई यांत्रिक या अलंकारिक प्रलोभन नहीं होना चाहिए, जो प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा</u>। न्यायाधीशों के मस्तिष्क में चलने वाला न्यायिक दर्शन यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को सुधार करने, अतीत से सीखने और आत्म-सुधार के लिए जीवन में आगे बढ़ने का अवसर मिलना चाहिए। सभी विचारों के बावजूद, पिछले आचरण को हमेशा न्याय नहीं माना जा सकता है। (पैरा 18,19)

बी. विद्वान एकल न्यायाधीश ने याचिकाकर्ता-अपीलकर्ता की रिट याचिका को केवल यह कहते हुए खारिज कर दिया कि **विवादित आदेश दिनांक 31.01.2019 को पारित किया गया था, जबकि दोषमुक्ति आदेश उसके एक दिन पश्चात दिनांक 01.02.2019 को पारित किया गया था और इस प्रकार, आक्षेपित आदेश दिनांक 31.01.2019 के दिन याचिकाकर्ता विचरण जारी था। दिनांक 31.01.2019 के आदेश को बरकरार रखने का यह दृष्टिकोण बरकरार नहीं रखा जा सकता है। (पैरा 21)**

सी. जब अभियोजन वाद पर पूरी तरह विचार करने के बाद आरोपी को दोषमुक्त कर दिया जाता है और अभियोजन पक्ष आरोपी के खिलाफ लगाए गए आरोपों को साबित करने में बुरी तरह विफल रहता है, तो संभवतः यह कहा जा सकता है कि आरोपी को सम्मानपूर्वक दोषमुक्त कर दिया गया है। (पैरा 18)

यदि स्क्रीनिंग कमेटी द्वारा यह पाया जाता है कि जिस व्यक्ति के खिलाफ नैतिक अधमता से जुड़ा कोई गंभीर मामला दर्ज है, उसे तकनीकी आधार पर दोषमुक्त कर दिया गया है या उसी आरोप से दोषमुक्त कर दिया गया है, लेकिन दोषमुक्त करना सम्मानजनक नहीं है, तो स्क्रीनिंग कमेटी उसकी उम्मीदवारी निरस्त करने की हकदार होगी। अनुशासनात्मक बल में व्यक्तियों की नियुक्ति करते समय कड़े मानदंड लागू करने की आवश्यकता है क्योंकि इसमें सार्वजनिक हित शामिल है। (पैरा 18)

विद्वान एकल न्यायाधीश ने दर्ज किया है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध अपनी पत्नी के साथ क्रूरता करने और दहेज की मांग करने का वैवाहिक विवाद के आरोप थे जो न केवल एक व्यक्ति के खिलाफ था बल्कि बड़े पैमाने पर जनता के खिलाफ था। लेकिन, यहां याचिकाकर्ता-अपीलकर्ता को उपरोक्त आपराधिक मामले में धारा 498ए आदि के तहत दोषमुक्त कर दिया गया था, समझौते के आधार पर नहीं या गवाहों के मुकर जाने के आधार पर नहीं, बल्कि तथ्यों पर उचित विचार करने और पक्षों, यानी अभियोजन पक्ष और अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में सबूतों की सराहना के बाद दोषमुक्त कर दिया गया था। (पैरा 21)

याचिकाकर्ता-अपीलकर्ता वर्ष 2002 से भारत सरकार की सेवा में कार्यरत है और सार्वजनिक रोजगार में उसकी विश्वसनीयता/साख कभी भी संदिग्ध नहीं पाई गई। वह अपने मूल विभाग से अनुमति लेने के बाद, सहायक अभियोजन अधिकारी परीक्षा, 2015 में उपस्थित हुए और आपराधिक मामले की लंबितता का पूरी तरह से खुलासा किया। उन्हें दोषमुक्त कर दिया गया क्योंकि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे आरोपों को साबित करने में विफल रहा। अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित कहानी में तार्किक श्रृंखला का अभाव था और याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप सामान्य प्रकृति के थे। (पैरा 12,20)

विशेष अपील और रिट याचिका की अनुमति है। (ई 4)

<u>उद्धृत वाद:</u>

1. अवतार सिंह बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2016) 8 एससीसी 471 (पैरा 5)
2.सतीश चन्द्र यादव बनाम भारत संघ एवं अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1300, निर्णय दिनांक 26.09.2022 (पैरा 18)

<u>विशेष बाद:</u>

1. राजस्थान राज्य बनाम चेतन जेफ, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 597 (पैरा 14)
2. भारत संघ और अन्य बनाम मेथु मेडा, (2022) 1 एससीसी 1 (पैरा 17)

वर्तमान विशेष अपील में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा रिट-ए संख्या 679/2020 में पारित आदेश दिनांक 22.07.2022 के को चुनौती दी गई है और सचिव गृह (पुलिस), सरकार उ.प्र., लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 31.01.2019 के विवादित आदेश के साथ ही संयुक्त सचिव, गृह (पुलिस), शासन उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 06.11.2019 को निरस्त करने के लिए दायर की गई रिट याचिका को अनुमति देने के लिए प्रस्तुत किया गया है।

(सुनाया गया: न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी)

1. याचिकाकर्ता-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रभाकर अवस्थी और राज्य-प्रतिवादियों के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री सतीश कुमार श्रीवास्तव को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता-अपीलकर्ता ने वर्तमान विशेष अपील दायर की है जिसमें विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित रिट-ए संख्या 679 वर्ष 2020 (ललित कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में निर्णय और आदेश दिनांक 22.07.2022 को अपास्त किये जाने और रिट याचिका की अनुमति दी जाने की प्रार्थना की गई है।

3. याचिकाकर्ता ने उपरोक्त रिट-ए संख्या 679 वर्ष 2020 दायर कर निम्नलिखित राहत की प्रार्थना की है:

> *"i) प्रत्यर्थी संख्या-2 (इस रिट याचिका के संलग्नक संख्या-6) द्वारा पारित दिनांक 31.01.2019 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने के साथ-साथ प्रत्यर्थी संख्या-3 (इस रिट*

याचिका के संलग्नक संख्या-12) द्वारा पारित आदेश दिनांक 06.11.2019 के उत्प्रेषण-लेख की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

ii) याचिकाकर्ता को सहायक अभियोजन अधिकारी के पद पर नियुक्ति देने के लिए प्रत्यर्थियों को आदेश/निर्देश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।"

<u>वर्तमान मामले के तथ्यः-</u>

4. संक्षेप में कहा गया है कि वर्तमान मामले के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता-अपीलकर्ता पहले से ही महानिदेशक (मौसम विज्ञान), पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली के कार्यालय में अपर डिवीजनल क्लर्क के रूप में कार्यरत था। सहायक अभियोजन अधिकारी के पद पर भर्ती के लिए आवेदन आमंत्रित करने वाला विज्ञापन जारी किया गया था। अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता ने उपरोक्त चयन प्रक्रिया में शामिल होने के लिए अपने उपरोक्त मूल विभाग से अनुमति प्राप्त करने के बाद उपरोक्त पद के लिए आवेदन किया था। उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग, इलाहाबाद ने सहायक अभियोजन अधिकारी परीक्षा, 2015 में शामिल होने के लिए याचिकाकर्ता को अनंतिम प्रवेश पत्र जारी किया। याचिकाकर्ता परीक्षा में शामिल हुआ और प्रारंभिक परीक्षा में सफल घोषित किया गया। इसके बाद, याचिकाकर्ता उपरोक्त भर्ती प्रक्रिया की मुख्य परीक्षा में शामिल हुआ और सफल घोषित किया गया। उन्हें आयोग द्वारा साक्षात्कार पत्र दिनांक 21.08.2017 के माध्यम से साक्षात्कार के लिए बुलाया गया था। आख़िरकार उन्हें सहायक अभियोजन अधिकारी के पद के लिए चुना गया। उन्हें दिनांक 15.12.2017 के पत्र द्वारा उत्तर प्रदेश मेडिकल बोर्ड के समक्ष चिकित्सा परीक्षण के लिए उपस्थित होने का निर्देश दिया गया था और याचिकाकर्ता दिनांक 26.12.2017 को चिकित्सा परीक्षण के लिए उपस्थित हुआ। याचिकाकर्ता-अपीलकर्ता ने अपने आवेदन पत्र में पहले ही घोषित कर दिया था कि आईपीसी की धारा 498क के तहत आपराधिक मामले संख्या 1459 वर्ष 2008 के रूप में वैवाहिक विवाद है, फिर भी, चयन के बाद भी याचिकाकर्ता की अभ्यर्थिता प्रत्यर्थी संख्या-2 के आदेश दिनांक 31.01.2019 द्वारा रद्द कर दी गई थी। याचिकाकर्ता को अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय संख्या-3, गाजियाबाद द्वारा पारित निर्णय दिनांक 01.02.2019 द्वारा उपरोक्त आपराधिक मामले संख्या 1459 वर्ष 2008 में दोषमुक्त कर दिया गया था। उपरोक्त आपराधिक मामले में, अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की अदालत ने विस्तृत चर्चा और साक्ष्यों के मूल्यांकन के बाद निम्नानुसार निष्कर्ष निकालाः

"उपरोक्त परिचर्चा से स्पष्ट है कि जहां एक ओर भियोजन द्वारा बताये गये घटनाक्रम में तार्किक तारतम्य का अभाव है वहीं दूसरी ओर अभियुक्तगण के विरूद्ध लगाये गये आरोप सामान्य प्रकृति के हैं तथा जिन घटनाओं को उल्लेख अभियोजन द्वारा किया जा रहा है, उनके तिथियों में सामन्जस्य का अभाव उपरोक्त पैराग्राफ की परिचर्चा से दृष्टिगोचर होता है। स्पष्ट रूप से अभियोजन अभियुक्तगण के विरूद्ध लगाये गये आरोपों को युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध करने में असफल रहा है। तदनुसार अभियुक्तगण दोषमुक्त किये जाने योग्य है।"

5. अपनी अभ्यर्थिता रद्द होने से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने रिट-ए संख्या 3794 वर्ष 2019 दायर की, जिसे आदेश दिनांक 11.03.2019 द्वारा निस्तारित किया गया जिसमें प्रत्यर्थी संख्या-2 को कानून के अनुसार नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता की उपयुक्तता पर **अवतार**

सिंह बनाम भारत संघ और अन्य (2016) 8 एससीसी 471 मामले में प्रतिपादित सिद्धांतों के आलोक में पुनर्विचार और पुनर्मूल्यांकन करने का निर्देश दिया गया। इसके बाद, प्रत्यर्थी संख्या-2 ने दिनांक 06.11.2019 को एक आदेश पारित किया जिसमें याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को निम्नानुसार खारिज कर दिया गया:

> *"8- रिट याचिका संख्या-ए-3794/2019 ललित कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य में माननीय न्यायालय द्वारा पारित उक्त आदेश दिनांक 11.03.2019 के क्रम में श्री ललित कुमार ने अपने प्रार्थना पत्र दिनांक 18.03.2019 द्वारा शासन के कार्यालय-ज्ञाप दिनांक 31.01.2019 द्वारा उनके सहायक अभियोजन अधिकारी के पद पर किये गये चयन से निरस्त किये गये अभ्यर्थन पर पुनर्विचार किये जाने का अनुरोध किया है।*
>
> *9- अवगत कराना है कि किसी अभ्यर्थी के अभ्यर्थन निरस्त होने के बाद में उसे माननीय न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किये जाने के प्रकरण में पुनः सेवा में लिये जाने की कोई व्यवस्था नहीं है। अतः मा. उच्चतम न्यायालय द्वारा अवतार सिंह बनाम यूनियन आफ इण्डिया एवं अन्य एस.एल.पी. (सी.) नं.- 20525/2011 में पारित निर्णय/मार्गदर्शक सिद्धांत दिनांक 21.07.2016 के आधार पर माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद में योजित रिट याचिका संख्या-ए-3794/2019 ललित कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य में माननीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय दिनांक 11.03.2019 के अनुपालन में याची श्री ललित कुमार के प्रत्यावेदन दिनांक 18.03.2019 पर उनकी उपयुक्तता पर समग्र रूप से पुनर्विचार एवं पुनर्मूल्यांकन किया गया, जिसमें उपरोक्त वर्णित तथ्यों के दृष्टिगत याची श्री ललित कुमार को सेवा में लिये जाने का कोई अवसर नहीं बनता है। 10- अतः सम्यक् विचारोपरान्त माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद में योजित रिट याचिका संख्या-ए-3794/2019 ललित कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य में माननीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय दिनांक 11.03.2019 के अनुपालन में याची श्री ललित कुमार के प्रत्यावेदन दिनांक 18.03.2019 को एतद्द्वारा निस्तारित करते हुए निरस्त किया जाता है।"*

6. उपरोक्त आदेश दिनांक 06.11.2019 से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने रिट-ए संख्या 679 वर्ष 2020 दायर की, जिसे आक्षेपित आदेश दिनांक 22.07.2022 द्वारा खारिज कर दिया गया। आक्षेपित आदेश से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने वर्तमान विशेष अपील दायर की है।

याचिकाकर्ता-अपीलकर्ता की ओर से प्रस्तुतियाँ:-

7. याचिकाकर्ता-अपीलकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता निम्नानुसार प्रस्तुत करते हैं:-

(i) आपराधिक मामले संख्या 1459 वर्ष 2008 (राज्य बनाम ब्रज सिंह केन और अन्य) में आईपीसी की धारा 498क, 323, 504 और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3/4, थाना सिहानीगेट, जनपद गाजियाबाद के तहत दोषमुक्त किए जाने के निर्णय दिनांक 01.02.2019 को गलत तरीके से पढ़ने पर आक्षेपित निर्णय पारित किया गया है।

(ii) विद्वान एकल न्यायाधीश का आक्षेपित निर्णय माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय अवतार सिंह बनाम भारत संघ

और अन्य [(2016) 8 एससीसी 471] मामले की गलत व्याख्या पर आधारित है।

(iii) याचिकाकर्ता सरकारी रोजगार में था और महानिदेशक (मौसम विज्ञान), पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली के कार्यालय में अपर डिवीजनल क्लर्क के रूप में कार्यरत था और उसने अपने मूल विभाग से अनुमति प्राप्त करने के बाद सहायक अभियोजन अधिकारी के लिए आवेदन किया था। वह सहायक अभियोजन अधिकारी परीक्षा-2015 में शामिल हुआ और सफल घोषित किया गया। वह दिनांक 21.08.2017 के साक्षात्कार पत्र के अनुसार उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के समक्ष साक्षात्कार में उपस्थित हुआ और अंततः सहायक अभियोजन अधिकारी के पद के लिए चुना गया। जब याचिकाकर्ता ने स्वयं उपरोक्त आपराधिक मामले के बारे में प्रकटीकरण किया है जिसमें उसे आपराधिक मामले संख्या 1459 वर्ष 2008 में अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय संख्या 3, गाजियाबाद द्वारा पारित निर्णय दिनांक 01.02.2019 द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया था। इस तथ्य के बावजूद, प्रत्यर्थी संख्या-1 ने दिनांक 06.11.2019 को आदेश पारित किया कि अवतार सिंह (उपरोक्त) मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के प्रकाश में, याचिकाकर्ता का अभ्यावेदन खारिज कर दिया गया है। इस प्रकार याचिकाकर्ता का अभ्यावेदन दिनांक 06.11.2019 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया, जिसके विरूद्ध याचिकाकर्ता ने रिट-ए संख्या 679 वर्ष 2020 दायर की, जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित तथ्यों, साक्ष्यों और कानून का उचित मूल्यांकन किए बिना आक्षेपित निर्णय द्वारा खारिज कर दिया गया है।

<u>राज्य-प्रत्यर्थियों की ओर से प्रस्तुतियाँ:-</u>

8. विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता आक्षेपित निर्णय का समर्थन करते हैं। उन्होंने आक्षेपित निर्णय के प्रस्तर 10 और 11 का संदर्भ लिया और कहा कि याचिकाकर्ता की अभ्यर्थिता आपराधिक मामला लंबित होने के आधार पर खारिज कर दिया गया था, हालांकि अगले दिन यानी दिनांक 01.02.2019 को विचारण न्यायालय ने उसे दोषमुक्त कर दिया। चूंकि याचिकाकर्ता को अनुग्रहपूर्वक दोषमुक्त नहीं किया गया था, इसलिए दिनांक 31.01.2019 और 06.11.2019 के आदेशों में कोई अवैधता नहीं है।

9. विद्वान एकल न्यायाधीश के आक्षेपित निर्णय के प्रस्तर 10-11, जिस पर विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने अपने पूर्वोक्त प्रस्तुतीकरण में अत्यधिक अवलम्ब लिया था, नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

> "10. उपरोक्त संदर्भित तथ्यों और विरोधी तर्कों के प्रस्तुतीकरण में, राजस्थान राज्य और अन्य बनाम चेतन जेफ, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 597 मामले के प्रस्तर 32 को उद्धृत करना समीचीन होगा:-
>
> *"32. एमपी राज्य बनाम अभिजीत सिंह पवार, (2018)18 एससीसी 733 मामले में, जब कर्मचारी ने चयन प्रक्रिया में भाग लिया, तो उसने अपने खिलाफ लंबित आपराधिक मामले का प्रकटीकरण करते हुए एक शपथपत्र पेश किया। शपथपत्र दिनांक 22.12.2012 को दाखिल किया गया था। खुलासे के मुताबिक, जिस तारीख को शपथपत्र दाखिल किया गया था, उस दिन वर्ष 2006 में दर्ज एक मामला लंबित था। हालाँकि, ऐसा शपथपत्र दाखिल करने के चार दिनों के भीतर ही, मूल शिकायतकर्ता और कर्मचारी के बीच एक समझौता हो गया और सी.आर.पी.सी. की धारा 320 के तहत अपराध को कम करने के लिए एक आवेदन दायर किया गया। समझौता पत्र*

के आलोक में कर्मचारी को सेवामुक्त कर दिया गया। इसके बाद कर्मचारी को परीक्षा में चुना गया और चिकित्सा परीक्षण के लिए बुलाया गया। हालांकि, लगभग उसी समय उसका चरित्र सत्यापन भी किया गया और चरित्र सत्यापन रिपोर्ट पर उचित विचार करने के बाद, उसकी अभ्यर्थिता खारिज कर दी गई। कर्मचारी ने अपनी अभ्यर्थिता की अस्वीकृति को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने उक्त रिट याचिका को स्वीकार कर लिया। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा राज्य को कर्मचारी को नियुक्त करने का निर्देश देने वाले निर्णय और आदेश की खण्ड पीठ द्वारा पुष्टि की गई जिसके कारण इस न्यायालय के समक्ष अपील की गई। अवतार सिंह बनाम भारत संघ, (2016) 8 एससीसी 471 में निर्णय सहित इस बिंदु पर निर्णयों की श्रृंखला पर विचार करने के बाद, इस न्यायालय ने कर्मचारी की अभ्यर्थिता को खारिज करने के राज्य के आदेश को यह कहते हुए बरकरार रखा कि जैसा कि अवतार सिंह (उपरोक्त) मामले में कहा गया था, यहां तक कि ऐसे मामलों में जहां किसी निष्कर्षित मामले के बारे में सही प्रकटीकरण किया गया था, नियोक्ता को अभी भी अभ्यर्थी के पूर्ववृत्त पर विचार करने का अधिकार होगा और उसे ऐसे अभ्यर्थी को नियुक्त करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता है।"

(प्रभाव वर्धित)

11. राजस्थान राज्य एवं अन्य बनाम चेतन जेफ (उपरोक्त) मामले के आलोक में वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, विरोधी प्रस्तुतियों के साथ-साथ रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करते हुए कहा कि इसमें कोई विवाद नहीं है कि सत्यापन/सत्यापन फॉर्म जमा करते समय याचिकाकर्ता ने इसका प्रकटीकरण किया था कि वह ऊपर बताए गए अपराध के लिए मुकदमे का सामना कर रहा था और आक्षेपित आदेश के अनुसार, याचिकाकर्ता की अभ्यर्थिता को उक्त आपराधिक मामला लंबित होने के आधार पर खारिज कर दिया गया था। हालाँकि अगली तारीख यानी दिनांक 1.2.2019 को निचली अदालत ने फैसला सुनाया और याचिकाकर्ता को दोषमुक्त कर दिया। यह भी विवाद में नहीं है कि दोषमुक्त करने की प्रकृति "साफ या सम्मानजनक" नहीं थी क्योंकि अभियोजन पक्ष याचिकाकर्ता के खिलाफ युक्तियुक्त संदेह से परे मामला साबित करने में विफल रहा था।"

<u>चर्चा एवं निष्कर्षः-</u>

10. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्तागणों की दलीलों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है और विशेष अपील के रिकॉर्ड का परिशीलन किया है।

11. निर्विवाद रूप से, याचिकाकर्ता महानिदेशक (मौसम विज्ञान), पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली के कार्यालय में अपर डिवीजनल क्लर्क के रूप में कार्यरत था, जब उसने सहायक अभियोजन अधिकारी के पद के लिए आवेदन किया और तदनुसार सहायक अभियोजन अधिकारी, परीक्षा, 2015 में शामिल हुआ। यह भी निर्विवाद है कि उसने आपराधिक मामले संख्या 1459 वर्ष 2008 की उपरोक्त लंबितता का सही और पूर्ण प्रकटीकरण किया। उपरोक्त आपराधिक मामला उसकी पत्नी द्वारा उसके, उसके पिता श्री ब्रज सिंह केन, उसकी

मां श्रीमती सीता देवी और उसके छोटे भाई प्रवीण कुमार के खिलाफ आईपीसी की धारा 498क, 323, 504 और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के तहत दर्ज कराए गए मुकदमा अपराध संख्या 93 वर्ष 2007 का परिणाम था।

12. हमने उपरोक्त आपराधिक मामले संख्या 1459 वर्ष 2008 में दिनांक 01.02.2019 के निर्णय का परिशीलन किया है और हमने पाया है कि सूचनादाता ने याचिकाकर्ता के खिलाफ केवल सामान्य आरोप लगाए हैं। यहां तक कि सूचनादाता सहित अभियोजन पक्ष के गवाह भी कोई विशेष आरोप नहीं लगा सके, न ही कोई घटना साबित कर सके और न ही याचिकाकर्ता द्वारा दहेज की मांग को साबित कर सके। इसलिए, विस्तृत चर्चा और मूल्यांकन के बाद, विचारण न्यायालय ने अवधारित किया कि अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित कथानक में तार्किक श्रृंखला का अभाव है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप सामान्य प्रकृति के हैं और स्पष्ट रूप से अभियोजन युक्तियुक्त संदेह से परे आरोपों को साबित करने में विफल रहा है। परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों को दोषमुक्त कर दिया गया।

13. विचारण न्यायालय ने आपराधिक मामले संख्या 1459 वर्ष 2008 में अपने पूर्वोक्त निर्णय में तीन निश्चित निष्कर्ष दर्ज किए हैं जिन्हें हमने ऊपर नोट किया है। याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप सामान्य प्रकृति के पाए गए। उन्हें संदेह का लाभ देकर दोषमुक्त नहीं किया गया, बल्कि अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित कथानक की तार्किक श्रृंखला के न होने के कारण और याचिकाकर्ता सहित अभियुक्तों के खिलाफ आरोप सामान्य प्रकृति के थे। इसके अलावा, याचिकाकर्ता पहले से ही महानिदेशक (मौसम विज्ञान), पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली के कार्यालय में सेवा में था और उसे उपरोक्त आपराधिक मामले के कारण भारत सरकार द्वारा सेवा से बाहर नहीं किया गया था। इसलिए, केवल एक आपराधिक मामला दर्ज करने के कारण जिसमें याचिकाकर्ता को अंततः दोषमुक्त कर दिया गया था; वर्तमान मामले के तथ्यों पर अवतार सिंह (उपरोक्त) (एससीसी) मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आधार पर, न तो यह कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता किसी अन्य सरकारी नौकरी यानी सहायक अभियोजन अधिकारी के पद पर नियुक्ति के लिए अनुपयुक्त हो गया है और न ही याचिकाकर्ता के प्रतिकूल दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है।

14. **राजस्थान राज्य बनाम चेतन जेफ, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एससी 597** मामले में निर्णय के प्रस्तर-32 पर विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा लिया गया अवलम्ब, वर्तमान मामले के तथ्यों पर पूरी तरह से गलत है। **चेतन जेफ** (उपरोक्त) मामले में, तथ्य यह थे कि समझौता विलेख के मद्देनजर कर्मचारी को बर्खास्त कर दिया गया था। तथ्यों के वर्तमान श्रृंखला में, याचिकाकर्ता को समझौते के आधार पर नहीं बल्कि मामले के गुण-दोष के आधार पर दोषमुक्त किया गया है।

15. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **अवतार सिंह (उपरोक्त) (प्रस्तर-29 से 38.11)** मामले में निम्नानुसार अवधारित किया:

> *"29. पदधारी की उपयुक्तता का पता लगाने के लिए पूर्ववृत्त का सत्यापन आवश्यक है, इस प्रक्रिया में यदि एक घोषणाकर्ता को पूर्ववृत्त के उचित सत्यापन पर अच्छे नैतिक चरित्र का पाया जाता है और केवल तुच्छ अपराध में संलिप्तता को छिपाया जाता है जो कि सत्यापन फॉर्म भरने की तारीख पर लंबित नहीं था, तो क्या उसे रोजगार से वंचित किया जा सकता है? नैतिक अधमता/गंभीर अपराध से जुड़ा मामला हो सकता है जिसमें कर्मचारी को बरी कर दिया*

गया है लेकिन तकनीकी कारणों से या संदेह का लाभ देकर। ऐसी स्थिति हो सकती है जब व्यक्ति को सत्यापन फॉर्म भरने से पहले किसी अपराध के लिए दोषी ठहराया गया हो या मामला लंबित हो और इसके बारे में जानकारी छिपा दी गई हो, क्या नियोक्ता को निर्णय लेने के लिए लंबित आपराधिक मामले के परिणाम आने तक इंतजार करना चाहिए या यदि कार्रवाई शुरू हो गई है तो आपराधिक मामले का निष्कर्ष पहले ही आ चुका है, जैसा भी मामला हो, जिसके परिणामस्वरूप दोषसिद्धि/दोषमुक्ति हो सकती है। ऐसे मामले में विभिन्न पहलुओं पर विचार करने की स्थिति उत्पन्न हो सकती है जहां आवश्यक जानकारी का प्रकटीकरण सच्चाई से किया गया है, तो नियुक्ति के लिए उपयुक्तता पर विचार करने और सत्यापित करने के लिए भी प्राधिकारी की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार, छिपाने के मामले में भी, यदि सूचना के सत्यापन की प्रक्रिया में, कुछ जानकारी सामने आती है, तो भी नियोक्ता को पदधारी को अयोग्य ठहराने से पहले विभिन्न पहलुओं पर विचार करके निर्णय लेना होता है। यदि पूर्ववृत्त के सत्यापन पर कोई व्यक्ति उसी समय उपयुक्त पाया जाता है, तो प्राधिकारी को इस तथ्य को छिपाने के प्रभाव पर विचार करना होगा कि उस पर मामूली अपराध के लिए मुकदमा चलाया गया था, जो उसे अयोग्य नहीं बनाता है, ऐसे गैर-प्रकटीकरण को क्या महत्व दिया जाना चाहिए। क्या सभी प्रकार के मामलों पर विचार करने का एक ही पैमाना हो सकता है?

30. नियोक्ता को समाप्त करने या अन्यथा चूक को माफ करने का 'विवेक' दिया गया है। अन्यथा भी, एक बार नियोक्ता के पास निर्णय लेने की शक्ति होती है जब सत्यापन फॉर्म भरने के समय घोषणाकर्ता को पहले ही दोषसिद्ध/दोषमुक्त कर दिया गया है, ऐसे मामले में, यह स्पष्ट हो जाता है कि संबंधित सेवाओं के लिए किसी पदधारी की उपयुक्तता का निर्णय करते समय सभी तथ्यों और परिस्थितियों, जिसमें छिपाने या गलत जानकारी का प्रभाव भी शामिल है, को ध्यान में रखा जाता है। यदि नियोक्ता इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि छिपाना सारहीन है और भले ही तथ्यों का प्रकटीकरण किया गया हो, लेकिन इससे पदधारी की उपयुक्तता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा होगा, दर्ज किए जाने वाले कारणों से, इसमें चूक को माफ करने की शक्ति है। हालाँकि, ऐसा करते समय नियोक्ता को पद की प्रकृति और दिए जाने वाले कर्तव्यों पर उचित विचार करते हुए विवेकपूर्ण ढंग से कार्य करना होगा। उच्च अधिकारियों/उच्च पदों के लिए, मानक बहुत ऊंचे होने चाहिए और थोड़ी सी भी गलत जानकारी या छिपाने से स्वयं ही किसी व्यक्ति को पद के लिए अनुपयुक्त बना सकता है। हालाँकि प्रत्येक पद पर एक ही मानक लागू नहीं किया जा सकता। निष्कर्ष निकाले गए आपराधिक मामलों में, यह देखा जाना चाहिए कि जो छिपाया गया है वह भौतिक तथ्य है और इससे पदधारी को नियुक्ति के लिए अयोग्य बना दिया जाएगा। किसी नियोक्ता के लिए विभिन्न पहलुओं पर उचित विचार करने के बाद ऐसे पदधारी की नियुक्ति न करना या यदि नियुक्त

किया गया हो तो उसकी सेवाओं को समाप्त करना उचित होगा। भले ही प्रकटीकरण सच्चाई से किया गया हो, नियोक्ता को उपयुक्तता पर विचार करने का अधिकार है और ऐसा करते समय दोषसिद्धि के प्रभाव और मामले के पृष्ठभूमि तथ्यों, अपराध की प्रकृति आदि पर विचार करना होगा। भले ही दोषमुक्त कर दिया गया हो, पर नियोक्ता अपराध की प्रकृति पर विचार कर सकता है, चाहे दोषमुक्त करना सम्मानजनक हो या तकनीकी कारणों से संदेह का लाभ दे रहा हो और अयोग्य या संदिग्ध चरित्र वाले व्यक्ति को नियुक्त करने से इनकार कर सकता है। यदि नियोक्ता इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आपराधिक मामले में दोषसिद्धि या दोषमुक्ति का आधार रोजगार के लिए उपयुक्तता को प्रभावित नहीं करेगा, तो पदधारी को नियुक्त किया जा सकता है या सेवा में जारी रखा जा सकता है।

31. इस प्रश्न पर आते हैं कि क्या परिवीक्षा अवधि पर चल रहे किसी कर्मचारी को आरोप/आरोपों से दोषमुक्त किए जाने के बावजूद सेवामुक्त किया जा सकता है/नियुक्ति से इनकार किया जा सकता है, यदि फॉर्म भरने के समय उसका मामला लंबित नहीं था, तो नियोक्ता दोषमुक्ति के आधार और विभिन्न अन्य पहलुओं, लगाए गए आरोपों सहित कर्मचारी के समग्र आचरण पर विचार करने के लिए बाध्य है। यदि सत्यापन पर, पूर्ववृत्त भी अच्छा नहीं पाया जाता है, और कई मामलों में पदधारी शामिल है तो किसी मामले/मामलों में दोषमुक्त होने के बावजूद, नियोक्ता के लिए यह विकल्प होगा कि रिकॉर्ड पर सामग्री के आधार पर उपयुक्तता के बारे में राय बना सके। यदि अपराध छोटी उम्र में किया गया अपराध है, जैसे कि रोटी चुराना, नारे लगाना या ऐसा अपराध जिसमें नैतिक अधमता, धोखाधड़ी, दुरुपयोग आदि शामिल नहीं है या अन्यथा कोई गंभीर या जघन्य अपराध नहीं है और आरोपी को दोषमुक्त कर दिया गया हो, ऐसे मामले में जब सत्यापन फॉर्म भरा जाता है, तो नियोक्ता विभिन्न पहलुओं पर उचित विचार करने के बाद उचित मामलों में छिपाने की चूक या गलत जानकारी प्रस्तुत करने को नजरअंदाज कर सकता है।

32. इसमें कोई संदेह नहीं है कि एक बार सत्यापन फॉर्म में कुछ जानकारी प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है, तो घोषणाकर्ता इसे सही ढंग से प्रस्तुत करने के लिए बाध्य है और किसी भी भौतिक तथ्य को छिपाने या गलत जानकारी प्रस्तुत करने से एक उचित मामले में उसकी सेवाओं को समाप्त किया जा सकता है या अभ्यर्थिता रद्द हो सकती है। हालाँकि, एक आपराधिक मामले में पदधारी को दोषमुक्त नहीं किया गया है और मामला विचाराधीन है, तो नियोक्ता को ऐसे पदधारी को नियुक्त न करने या उसकी सेवाएं समाप्त करने को उचित ठहराया जा सकता है क्योंकि दोषसिद्धि अंततः उसे नौकरी के लिए अनुपयुक्त बना सकती है और नियोक्ता को आपराधिक मामले के नतीजे तक इंतजार नहीं करना चाहिए। ऐसे मामले में प्रकटीकरण न करना या गलत जानकारी प्रस्तुत करना महत्वपूर्ण होगा और यह नियोक्ता के लिए अभ्यर्थिता रद्द करने या सेवाएं समाप्त करने का आधार हो सकता है।

अनौपचारिक

33. धोखाधड़ी और गलत बयानी किसी कार्य को दूषित करती है और यदि जाली दस्तावेजों के आधार पर रोजगार प्राप्त किया गया हो, जैसा कि एम. भास्करन (उपरोक्त) मामले में देखा गया है, तो आदेश के संदर्भ में यह भी देखा गया है कि यदि कोई नियुक्ति धोखाधड़ी से प्राप्त की गई थी, तो पदधारी को किसी भी जांच के बिना हटाया जा सकता है, हालांकि हम एक शर्त जोड़ते हैं कि यदि कर्मचारी की पुष्टि की जाती है, कि वह सिविल पद पर है और उसे अनुच्छेद 311(2) का संरक्षण प्राप्त है, तो सेवाओं को समाप्त करने से पहले उचित जांच की जानी चाहिए। जाली दस्तावेजों के आधार पर नियुक्ति प्राप्त करने के मामले में प्रनगत नौकरी के लिए पदधारी की पात्रता पर प्रभाव पड़ता है, हालांकि, प्रश्नगत पद के लिए उसकी उपयुक्तता के संबंध में पूर्ववृत्त का सत्यापन एक अलग पहलू है। धोखाधड़ी से प्राप्त नियुक्ति आदेश नियोक्ता के विकल्प पर शून्यकरणीय हैं, हालाँकि, इस आदेश में गलत जानकारी को छिपाने या प्रस्तुत करने के प्रभाव पर की गई चर्चा के आलोक में प्रश्न का निर्धारण किया जाना चाहिए।

34. इसमें कोई संदेह नहीं है कि उपयुक्तता का आकलन करने के लिए चरित्र और पूर्ववृत्त का सत्यापन महत्वपूर्ण मानदंडों में से एक है ***और यह नियोक्ता के लिए पदधारी के पूर्ववृत्त का निर्णय करने के लिए वैकल्पिक है, लेकिन अंतिम कार्रवाई सभी प्रासंगिक पहलुओं पर विचार करते हुए उद्देश्यपरक मानदंडों पर आधारित होनी चाहिए।***

35. 'भौतिक' जानकारी का छिपाया जाना यह व्यक्त करता है कि जो छिपाया गया है वह 'महत्वपूर्ण' है और प्रत्येक मामला तकनीकी या तुच्छ नहीं है। नियोक्ता को अभ्यर्थिता रद्द करने या कर्मचारी की सेवाओं को समाप्त करने के लिए शक्तियों का प्रयोग करते समय नियमों/निर्देशों, यदि कोई हो, पर उचित विचार करके कार्य करना होगा। यद्यपि कोई व्यक्ति जिसने महत्वपूर्ण जानकारी छिपाई है, वह नियुक्ति या सेवा में निरंतरता के लिए निर्बाध अधिकार का दावा नहीं कर सकता है, लेकिन उसके साथ मनमाने ढंग से व्यवहार न करने का अधिकार है और शक्ति का प्रयोग मामलों के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए निष्पक्षता के साथ उचित तरीके से किया जाना चाहिए।

36. क्या मापदंड लागू किया जाना है यह पद की प्रकृति पर निर्भर करता है, उच्च पद में केवल एक-रूप सेवा ही नहीं, बल्कि सभी सेवाओं के लिए अधिक कठोर मानदंड शामिल होंगे। निचले पदों के लिए जो संवेदनशील नहीं हैं, कर्तव्यों की प्रकृति, उपयुक्तता पर छिपाये जाने के प्रभाव पर संबंधित अधिकारियों को कर्तव्यों/सेवाओं के पद/प्रकृति पर विचार करना होगा और विभिन्न पहलुओं पर उचित विचार करते हुए शक्ति का प्रयोग करना होगा।

37. 'मैककार्थिज्म' संवैधानिक लक्ष्य का विरोधी है, उपयुक्त मामलों में युवा अपराधियों को सुधार का मौका दिया जाना चाहिए, सुधारवादी सिद्धांत की परस्पर क्रिया को पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता है और न ही आम तौर पर लागू किया जा सकता है, लेकिन अभ्यर्थिता रद्द करने या किसी कर्मचारी को

सेवा से बर्खास्त करने की शक्ति का प्रयोग करते समय ध्यान में रखे जाने वाले कारकों में से एक है।

38. हमने विभिन्न निर्णयों पर ध्यान दिया है और जहां तक संभव हो सके उन्हें समझाने और सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है। उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, हम अपने निष्कर्ष को इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत करते हैं:

38.1 किसी अभ्यर्थी द्वारा दोषसिद्धि, दोषमुक्ति या गिरफ्तारी या आपराधिक मामले के लंबित होने के संबंध में नियोक्ता को दी गई जानकारी, चाहे सेवा में प्रवेश करने से पहले या बाद में सही होनी चाहिए और किसी आवश्यक जानकारी का छिपाव या गलत उल्लेख नहीं होना चाहिए।

38.2 झूठी जानकारी देने पर सेवा समाप्ति या अभियर्थिता को रद्द करने का आदेश पारित करते समय, नियोक्ता ऐसी जानकारी देते समय मामले की विशेष परिस्थितियों, यदि कोई हो, का ध्यान रख सकता है।

38.3 नियोक्ता निर्णय लेते समय कर्मचारी पर लागू सरकारी आदेशों/निर्देशों/नियमों को ध्यान में रखेगा।

38.4 यदि किसी आपराधिक मामले में शामिल होने की जानकारी को छिपाया गया है या गलत बताया गया है, जहां आवेदन/सत्यापन फॉर्म भरने से पहले ही दोषसिद्धि या दोषमुक्ति दर्ज की जा चुकी है और ऐसा तथ्य बाद में नियोक्ता को पता चलता है, तो मामले के लिए निम्नलिखित में से कोई भी उपयुक्त सहायता अपनाई जा सकती है: -

38.4.1 ऐसे मामले में, जो मामूली प्रकृति का हो, जिसमें दोषसिद्धि दर्ज की गई हो, जैसे कि कम उम्र में नारे लगाना या किसी छोटे अपराध के लिए, जिसका प्रकटीकरण करने पर कोई पदधारी पद के लिए अयोग्य नहीं होता, तो नियोक्ता अपने विवेक से चूक को माफ करके तथ्य या गलत जानकारी के ऐसे छिपाये जाने को नजरअंदाज कर सकता है।

38.4.2 जहां ऐसे मामले में दोषसिद्धि दर्ज की गई है जो प्रकृति में मामूली नहीं है, तो नियोक्ता कर्मचारी की अभ्यर्थिता रद्द कर सकता है या सेवाएं समाप्त कर सकता है।

38.4.3 यदि तकनीकी आधार पर नैतिक अधमता या जघन्य/गंभीर प्रकृति के अपराध से जुड़े मामले में पहले ही दोषमुक्त हो चुकी है और यह साफ़ दोषमुक्त होने का मामला नहीं है, या युक्तियुक्त संदेह का लाभ दिया गया है, तो नियोक्ता पूर्ववृत्त के संबंध में उपलब्ध सभी प्रासंगिक तथ्यों पर विचार कर सकता है और कर्मचारी की निरंतरता के संबंध में उचित निर्णय ले सकता है।

38.5 ऐसे मामले में जहां कर्मचारी ने समाप्त हुए आपराधिक मामले की सच्चाई से प्रकटीकरण किया है, तो नियोक्ता को अभी भी पूर्ववृत्त पर विचार करने का अधिकार है, और उसे अभ्यर्थी को नियुक्त करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है।

38.6 ऐसे मामले में जब तुच्छ प्रकृति के आपराधिक मामले के लंबित होने के संबंध में चरित्र सत्यापन प्रपत्र में तथ्य सत्यतापूर्वक घोषित किया गया है, तो मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, नियोक्ता अपने विवेक से ऐसे

मामले के निर्णय के अधीन अभ्यर्थी को नियुक्त कर सकता है।

38.7 कई लंबित मामलों के संबंध में जानबूझकर तथ्यों को छिपाने के मामले में ऐसी गलत जानकारी अपने आप में महत्वपूर्ण हो जाएगी और एक नियोक्ता अभ्यर्थिता रद्द करने या सेवाएं समाप्त करने के लिए उचित आदेश पारित कर सकता है क्योंकि ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति जिसके खिलाफ कई आपराधिक मामले लंबित थे, उचित नहीं हो सकता है।

38.8 यदि आपराधिक मामला लंबित हो लेकिन फॉर्म भरते समय अभ्यर्थी को इसकी जानकारी न हो, तब भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है और नियुक्ति प्राधिकारी अपराध की गंभीरता पर विचार करने के बाद निर्णय लेगा।

38.9 यदि कर्मचारी की सेवा में पुष्टि हो जाती है, तो सत्यापन फॉर्म में गलत जानकारी जमा करने या छिपाने के आधार पर बर्खास्तगी/हटाने या बर्खास्त करने का आदेश पारित करने से पहले विभागीय जांच करना आवश्यक होगा।

38.10 छिपाने या गलत जानकारी का निर्धारण करने के लिए सत्यापन/सत्यापन फॉर्म विशिष्ट होना चाहिए, अस्पष्ट नहीं। केवल वही जानकारी प्रकट की जानी है जिसका विशेष रूप से उल्लेख किया जाना आवश्यक है। यदि जानकारी नहीं मांगी गई है, लेकिन प्रासंगिक है और नियोक्ता को पता चल जाती है, तो उपयुक्तता के प्रश्न पर विचार करते समय उस पर उद्देश्यपरक तरीके से विचार किया जा सकता है। हालाँकि, ऐसे मामलों में उस तथ्य को छिपाने या गलत जानकारी प्रस्तुत करने के आधार पर कार्रवाई नहीं की जा सकती, जिसके बारे में पूछा ही नहीं गया था।

38.11 इससे पहले कि किसी व्यक्ति को जानकारी छिपाने या झूठ बताने का दोषी ठहराया जाए, तथ्य का ज्ञान उसके लिए जिम्मेदार होना चाहिए।

(हमारे द्वारा प्रभाव वर्धित)

16. अवतार सिंह (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय किए गए कानून के अनुसार, प्रत्यर्थी के लिए यह वैकल्पिक था कि वह याचिकाकर्ता की उपयुक्तता का आकलन करने के लिए उसके पूर्ववृत्त का न्याय करे, लेकिन अंतिम कार्रवाई सभी प्रासंगिक पहलुओं पर समुचित विचार के उद्देश्यपरक मानदंडों पर आधारित होनी चाहिए। प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 31.01.2019 और 06.11.2019 के अवलोकन से पता चलता है कि हालांकि प्रत्यर्थी संख्या 2 ने कुछ तथ्यों पर ध्यान दिया है, जिसमें यह तथ्य भी शामिल है कि याचिकाकर्ता भारत सरकार के एक विभाग में वर्ष 2002 से अपर डिवीजनल क्लर्क के रूप में तैनात है, और उसका कोई आपराधिक इतिहास/पृष्ठभूमि नहीं है और उसे उपरोक्त आपराधिक मामले में दोषमुक्त कर दिया गया है और फिर भी उसके अभ्यावेदन को उद्देश्यपरक मानदंड के बिना और सभी प्रासंगिक पहलुओं पर उचित विचार किए बिना खारिज कर दिया गया है। यह उल्लेख करना और भी प्रासंगिक है कि रिट-ए संख्या 3794 वर्ष 2019 (ललित कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 2 अन्य) में निर्णय और आदेश दिनांक 11.03.2019 द्वारा, विद्वान एकल न्यायाधीश ने राज्य-प्रतिवादियों के तर्क को नोट किया कि *"न्याय का लक्ष्य यह होगा कि मामले को कानून के अनुसार नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता की उपयुक्तता पर पुनर्विचार और पुनर्मूल्यांकन के लिए प्रत्यर्थी संख्या 2 को भेजा जाए.......*।" जैसा कि ऊपर

बताया गया है, राज्य-प्रत्यर्थियों के बयान के आलोक में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा रिट याचिका का निस्तारण कर दिया गया। **लेकिन आक्षेपित आदेश दिनांक 06.11.2019 के अवलोकन से पता चलता है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 ने किसी उद्देश्यपरक मानदंड के आधार पर याचिकाकर्ता की उपयुक्तता पर न तो पुनर्विचार किया और न ही पुनर्मूल्यांकन किया, बल्कि मनमाने ढंग से याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को खारिज कर दिया।**

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय **भारत संघ और अन्य बनाम मेथु मेडा, (2022) 1 एससीसी 1** मामले में विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा लिया गया अवलम्ब वर्तमान मामले के तथ्यों पर भिन्न हैं। चूँकि उक्त मामले में, अपहरण का दोषारोपण था और दोषमुक्त कर दिया गया क्योंकि शिकायतकर्ता मुकर गया। तथ्यों के वर्तमान श्रृंखला में, याचिकाकर्ता की पत्नी ने उसके, उसके पिता, मां और भाई के खिलाफ आरोप लगाया था जो अभियोजन पक्ष द्वारा साबित नहीं किया जा सका। विचारण न्यायालय ने पाया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप सामान्य प्रकृति के थे। इस प्रकार, **मेथु मेडा** (उपरोक्त) मामले में निर्णय से प्रत्यर्थियों को कोई मदद नहीं मिली।

18. **सतीश चंद्र यादव बनाम भारत संघ और अन्य 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1300 (निर्णय दिनांक 26.09.2022) (प्रस्तर-75, 86, 88, 89 और 90)** मामले में हाल के फैसले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:-

> *"75. इस न्यायालय ने अवतार सिंह बनाम भारत संघ और अन्य, (2016) 8 एससीसी 471 मामले में मुद्दों पर विचार करने से पहले, पुलिस आयुक्त, नई दिल्ली और अन्य बनाम मेहर सिंह, (2013) 7 एससीसी 685 के मामले में उक्त सिद्धांतों पर व्यापक रूप से चर्चा की। इस मामले में, दिल्ली पुलिस में कांस्टेबल पद के एक अभ्यर्थी ने एक आपराधिक मामले में अपनी संलिप्तता का प्रकटीकरण किया था, जिसमें उसे तकनीकी आधार पर दोषमुक्त कर दिया गया था। इस पद के लिए अभ्यर्थी की अभ्यर्थिता को स्थायी समिति ने खारिज कर दिया था। अभ्यर्थी ने तर्क दिया कि चूँकि उसे दोषमुक्त कर दिया गया था, इसलिए स्थायी समिति ने उसकी अभ्यर्थिता को अस्वीकार करके सक्षम प्राधिकारी के निर्णय से आगे निकल गया था। इस न्यायालय ने इस मुद्दे पर और क्या प्रत्यर्थी को सम्मानपूर्वक दोषमुक्त कर दिया गया था, इस पर निर्णय लेते समय निम्नानुसार निर्णय लिया:*
>
> *"25. इस न्यायालय द्वारा एस समुथिराम 2013 (1) एससीसी 598 में अभिव्यक्ति "सम्मानजनक दोषमुक्त करने" पर विचार किया गया था। उस मामले में यह न्यायालय ऐसी स्थिति से चिंतित था जहां एक पुलिस अधिकारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी। उसके खिलाफ आईपीसी की धारा 509 और छेड़छाड़ अधिनियम की धारा 4 के तहत आपराधिक मामला लंबित था। मुख्य गवाहों से पूछताछ न हो पाने के कारण उन्हें उस मामले में दोषमुक्त कर दिया गया था। आपराधिक मामले के संचालन में गंभीर खामी थी। दो भौतिक गवाह मुकर गए। आरबीआई बनाम भोपाल सिंह पांचाल (1994) 1 एससीसी 541 में इस न्यायालय के निर्णय को संदर्भित करते हुए जहां*

कुछ हद तक समान तथ्य स्थिति थी, इस न्यायालय ने एक कर्मचारी को इस आधार पर सेवा में बहाल करने से इनकार करने की बैंक की कार्रवाई को बरकरार रखा कि आपराधिक मामले में उसे संदेह का लाभ देकर दोषमुक्त कर दिया गया था, और, इसलिए यह सम्मानजनक दोषमुक्ति नहीं है, इस न्यायालय ने माना कि विभागीय कार्यवाही में दी गई सजा को रद्द करना उच्च न्यायालय के लिए उचित नहीं था। इस न्यायालय ने पाया कि "सम्मानजनक दोषमुक्त", "दोषमुक्त" और "पूरी तरह दोषमुक्त" शब्द आपराधिक प्रक्रिया संहिता या दंड संहिता के लिए अज्ञात हैं। वे न्यायिक घोषणाओं द्वारा गढ़े गए हैं। यह परिभाषित करना कठिन है कि "सम्मानपूर्वक दोषमुक्त किये जाने" की अभिव्यक्ति का क्या अर्थ है। इस न्यायालय ने व्यक्त किया कि जब अभियोजन पक्ष के मामले पर पूरी तरह विचार करने के बाद आरोपी को दोषमुक्त कर दिया जाता है और अभियोजन पक्ष आरोपी के खिलाफ लगाए गए आरोपों को साबित करने में बुरी तरह विफल रहता है, तो संभवतः यह कहा जा सकता है कि आरोपी को सम्मानपूर्वक बरी कर दिया गया है।

26. उपरोक्त के आलोक में, हमारी राय है कि चूँकि विभागीय कार्यवाही का उद्देश्य ऐसे व्यक्तियों को विभाग से बाहर रखना है, जो गंभीर कदाचार या कर्तव्य के प्रति लापरवाही के दोषी हैं या जो नैतिक अधमता के गंभीर मामलों के दोषी हैं, यदि आवश्यक हो तो, क्योंकि वे विभाग को खराब करते हैं, निश्चित रूप से उपरोक्त सिद्धांत पुलिस विभाग में किसी व्यक्ति के प्रवेश के समय यानी भर्ती के समय अधिक सख्ती से लागू होंगे। यदि स्क्रीनिंग कमेटी द्वारा यह पाया जाता है कि जिस व्यक्ति के खिलाफ नैतिक अधमता से जुड़ा कोई गंभीर मामला दर्ज है, उसे तकनीकी आधार पर दोषमुक्त कर दिया गया है या उसी आरोप से दोषमुक्त कर दिया गया है, लेकिन दोषमुक्त करना सम्मानजनक नहीं है, तो स्क्रीनिंग कमेटी उसकी अभ्यर्थिता रद्द करने की हकदार होगी। अनुशासनात्मक बल में व्यक्तियों की नियुक्ति करते समय कड़े मानदंड लागू करने की आवश्यकता है क्योंकि इसमें सार्वजनिक हित शामिल है।

X X X X X X X X X X X

34. प्रत्यर्थी इस तथ्य से लाभ उठाने की कोशिश कर रहे हैं कि अपने आवेदन और/या सत्यापन फॉर्म में उन्होंने एक आपराधिक मामले में अपनी संलिप्तता का प्रकटीकरण किया है। हम नहीं देखते कि यह तथ्य उनके मामले में कैसे सुधार करता है। आवेदन/सत्यापन फॉर्म में इन तथ्यों का खुलासा एक अनिवार्य आवश्यकता है। एक अभ्यर्थी से अपेक्षा की जाती है कि वह इन तथ्यों को ईमानदारी से बताए। ईमानदारी और सत्यनिष्ठा पुलिस बल की अंतर्निहित आवश्यकताएं हैं। इसलिए, प्रत्यर्थियों को इस प्रकटीकरण के कारण कोई अतिरिक्त अंक प्राप्त होने की उम्मीद नहीं करनी चाहिए। इसके अलावा, मुद्दे के बिन्दु से इसकी कोई प्रासंगिकता नहीं है। यह दोहराना आवश्यक है कि यह तय करते समय कि क्या जिस व्यक्ति

के खिलाफ आपराधिक मामला दर्ज किया गया था और जिसे बाद में दोषमुक्त या आरोपमुक्त कर दिया गया, उसे पुलिस बल में किसी पद पर नियुक्त किया जाना चाहिए, जो प्रासंगिक है वह है अपराध की प्रकृति, उसकी संलिप्तता की सीमा, क्या दोषमुक्त करना साफ़ दोषमुक्ति थी या संदेह का लाभ देकर दोषमुक्त किया जाना था क्योंकि गवाह मुकर गए या अभियोजन में कोई गंभीर खामी, और ऐसे व्यक्ति की भविष्य में इसी तरह की गतिविधियों में शामिल होने की प्रवृत्ति थी। हमारी राय में, यह निर्णय केवल दिल्ली पुलिस द्वारा इस उद्देश्य के लिए बनाई गई स्क्रीनिंग कमेटी द्वारा ही लिया जा सकता है। ***यदि स्क्रीनिंग कमेटी का निर्णय दुर्भावनापूर्ण या बाहरी विचारों से प्रेरित नहीं है, तो उस पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है।***

35. पुलिस बल एक अनुशासित बल है। यह समाज में कानून व्यवस्था और लोक व्यवस्था बनाए रखने की बड़ी जिम्मेदारी निभाता है। लोग इस पर गहरी आस्था और विश्वास रखते हैं। यह उस विश्वास के योग्य होना चाहिए। पुलिस बल में शामिल होने के इच्छुक उम्मीदवार को अत्यंत ईमानदार व्यक्ति होना चाहिए। उसके पास बेदाग चरित्र और सत्यनिष्ठा होनी चाहिए। आपराधिक पृष्ठभूमि वाला व्यक्ति इस श्रेणी में उपयुक्त नहीं होगा। भले ही उसे आपराधिक मामले में दोषमुक्त या आरोपमुक्त कर दिया गया हो, उस दोषमुक्ति या आरोपमुक्त करने के आदेश की जांच यह देखने के लिए करनी होगी कि क्या उसे मामले में पूरी तरह से दोषमुक्त कर दिया गया है, क्योंकि उसके अपराधिक जीवन अपनाने की संभावना भी पुलिस बल के अनुशासन के लिए खतरा पैदा करती है। इसलिए, स्थायी आदेश ने इन मामलों में निर्णय लेने का काम स्क्रीनिंग कमेटी को सौंपा है।

स्क्रीनिंग कमेटी का निर्णय अंतिम माना जाना चाहिए जब तक कि वह दुर्भावनापूर्ण न हो। हाल के दिनों में पुलिस बल की छवि धूमिल हुई है। सत्ता का दुरुपयोग करके पुलिस कर्मियों के मनमाने तरीके से व्यवहार करने के उदाहरण सार्वजनिक हैं और चिंता का विषय हैं। पुलिस बल की प्रतिष्ठा को धक्का लगा है। ऐसी स्थिति में, हम यह सुनिश्चित करने के लिए दिल्ली पुलिस द्वारा बनाई गई स्क्रीनिंग कमेटी जैसे तंत्र के महत्व और प्रभावकारिता को कम नहीं करना चाहेंगे कि जिन लोगों से इसकी विश्वसनीयता कम होने की संभावना है, वे पुलिस बल में प्रवेश न करें। साथ ही, स्क्रीनिंग कमेटी को अपने ऊपर जताए गए भरोसे के महत्व के प्रति सचेत रहना चाहिए और सभी अभ्यर्थियों के साथ समान व्यवहार करना चाहिए।"

[प्रभाव वर्धित]

86. इस प्रकार, इस न्यायालय ने यह विचार किया कि इस तथ्य के बावजूद कि विवाद तुच्छ प्रकृति का है या नहीं, ***जब सार्वजनिक रोजगार की बात आती है तो किसी विशेष कर्मचारी की विश्वसनीयता/विश्वासपात्रता सबसे अधिक मायने रखती है।*** *इस न्यायालय ने यह विचार किया कि यदि कोई विशेष कर्मचारी सार्वजनिक रोजगार सुरक्षित करने की दृष्टि से किसी महत्वपूर्ण बात को छिपाता है या*

कोई झूठी घोषणा करता है तो यह कहा जा सकता है कि ऐसे कर्मचारी ने ऐसी प्रवृत्ति प्रदर्शित की है जिससे नियोक्ता के विश्वास को तोड़ने की संभावना है। ऐसी परिस्थितियों में, यह नियोक्ता के विवेक पर निर्भर करेगा कि वह ऐसे कर्मचारी को जारी रखे या नहीं, जिसने ऐसी प्रवृत्ति प्रदर्शित की है जो उसके समग्र चरित्र या विश्वसनीयता को दर्शाती है।

88. इस प्रकार, इस न्यायालय ने यह विचार किया कि यद्यपि वर्तमान समय में रोजगार का अवसर एक दुर्लभ वस्तु है, जिसे सीमित रिक्तियों के भीतर सीमित किया जा रहा है, फिर भी यह राहत देने के लिए सहानुभूति जगाने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है, ***जहां किसी अभ्यर्थी की साख उसकी योग्यता के संबंध में कोई भी प्रश्न उठा सकती है, भले ही उसकी योग्यता कुछ भी हो। हालाँकि, साथ ही, इस न्यायालय ने कहा कि सरकारी सेवा में नियुक्ति से इनकार करने के लिए नैतिक अधमता का कोई यांत्रिक या आलंकारिक उकसावा नहीं होना चाहिए, जो प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। न्यायाधीशों के विचार में चलने वाला न्यायिक दर्शन यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को सुधार करने, अतीत से सीखने और आत्म-सुधार के लिए जीवन में आगे बढ़ने का अवसर मिलना चाहिए। सभी विचारों के बावजूद, पिछले आचरण को हमेशा न्याय नहीं माना जा सकता है। यह सब दिए गए मामले की तथ्यात्मक स्थिति पर निर्भर करेगा।***

89. समय-समय पर इस न्यायालय द्वारा उपरोक्त दिए गए विभिन्न निर्णयों को संदर्भित करने और उन पर गौर करने का एकमात्र कारण यह है कि विषय को नियंत्रित करने वाले कानून के सिद्धांत थोड़े असंगत हैं। ***अवतार सिंह (उपरोक्त) मामले में वृहद पीठ के निर्णय के बाद भी, विभिन्न न्यायालयों ने अलग-अलग सिद्धांत प्रतिपादित किए हैं।***

90. ऐसी परिस्थितियों में, हमने कानून के व्यापक सिद्धांतों को सूचीबद्ध करने के लिए कुछ प्रयोग किये, जिन्हें वर्तमान प्रकृति के मुकदमों पर लागू किया जाना चाहिए। ***सिद्धांत इस प्रकार हैं:***

क) ***प्रत्येक मामले की संबंधित सार्वजनिक नियोक्ता द्वारा अपने नामित अधिकारियों के माध्यम से गहन जांच की जानी चाहिए****-विशेष रूप से, पुलिस बल के लिए भर्ती के मामले में, जो व्यवस्था बनाए रखने और अराजकता से निपटने के कर्तव्य के तहत हैं, क्योंकि उनकी क्षमता प्रेरित करने की है। जनता का विश्वास समाज की सुरक्षा के लिए एक कवच है। [देखें राज कुमार (उपरोक्त)]*

ख) ऐसे मामले में भी जहां कर्मचारी ने किसी आपराधिक मामले की सच्चाई और सही ढंग से घोषणा की है, नियोक्ता को अभी भी पूर्ववृत्त पर विचार करने का अधिकार है, और उसे अभ्यर्थी को नियुक्त करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है। किसी आपराधिक मामले में दोषमुक्त होने पर अभ्यर्थी स्वतः ही पद पर नियुक्ति का हकदार नहीं हो जाएगा। यह अभी भी नियोक्ता के लिए विकल्प होगा कि वह पूर्ववृत्त पर विचार करे और जांच करे कि क्या

संबंधित अभ्यर्थी पद पर नियुक्ति के लिए उपयुक्त और सही है।

ग) गिरफ्तारी, अभियोजन, दोषसिद्धि आदि से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारी को छुपाना और सत्यापन फॉर्म में गलत बयान देना, कर्मचारी के चरित्र, आचरण और पूर्ववृत्त पर स्पष्ट प्रभाव डालता है। यदि यह पाया जाता है कि कर्मचारी ने उसकी उपयुक्तता या पद के लिए उपयुक्तता पर असर डालने वाले मामलों के संबंध में जानकारी छिपाई है या गलत जानकारी दी है, तो उसे सेवा से बर्खास्त किया जा सकता है।

घ) अभ्यर्थियों की युवावस्था, करियर की संभावनाओं और उम्र के बारे में सामान्यीकरण, जिसके कारण अपराधियों के आचरण को माफ किया जाता है, को न्यायिक फैसले में शामिल नहीं किया जाना चाहिए और इससे बचा जाना चाहिए।

ङ) न्यायालय को यह जांच करनी चाहिए कि क्या संबंधित प्राधिकारी, जिसकी कार्रवाई को चुनौती दी जा रही है, ने दुर्भावनापूर्ण कार्य किया है।

च) क्या प्राधिकारी के निर्णय में पूर्वाग्रह का कोई तत्व है?

छ) क्या संबंधित प्राधिकारी द्वारा अपनाई गई जांच की प्रक्रिया निष्पक्ष और उचित थी?

(हमारे द्वारा प्रभाव वर्धित)

19. इस प्रकार, इस तथ्य के बावजूद कि विवाद तुच्छ प्रकृति का है या नहीं, यह किसी विशेष कर्मचारी की विश्वसनीयता/साख है जो सार्वजनिक रोजगार की बात आने पर सबसे अधिक मायने रखती है। सरकारी सेवा में नियुक्ति से इनकार करने के लिए नैतिक अधमता का कोई यांत्रिक या अलंकारिक प्रलोभन नहीं होना चाहिए, जो प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। न्यायाधीशों के विचार में चलने वाला न्यायिक दर्शन यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को सुधार करने, अतीत से सीखने और आत्म-सुधार के लिए जीवन में आगे बढ़ने का अवसर मिलना चाहिए। सभी विचारों के बावजूद, पिछले आचरण को हमेशा न्याय नहीं माना जा सकता है।

20. दोहराये जाने के मूल्य पर यह उल्लेख करना आवश्यक है कि याचिकाकर्ता अपीलकर्ता वर्ष 2002 से भारत सरकार की सेवा में है और सार्वजनिक रोजगार में उसकी विश्वसनीयता/साख कभी भी संदिग्ध नहीं पाई गई। उसने अपने मूल विभाग से अनुमति लेने के बाद, सहायक अभियोजन अधिकारी परीक्षा, 2015 में उपस्थित हुआ और आपराधिक मामले के लंबित होने का पूरी तरह से प्रकटीकरण किया। उसे उन कारणों से दोषमुक्त कर दिया गया जिनका हम पहले ही ऊपर उल्लेख कर चुके हैं।

21. विद्वान एकल न्यायाधीश ने याचिकाकर्ता अपीलकर्ता की रिट याचिका को केवल यह कहते हुए खारिज कर दिया कि आक्षेपित आदेश दिनांक 31.01.2019 को पारित किया गया था, जबकि दोषमुक्त करने का आदेश उसके एक दिन बाद दिनांक 01.02.2019 को पारित किया गया था और इस प्रकार, याचिकाकर्ता मुकदमे का सामना कर रहा था। दिनांक 31.01.2019 के आदेश को बरकरार रखने के लिए आक्षेपित निर्णय के प्रस्तर-13 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा लिया गया दृष्टिकोण इस निर्णय के पूर्ववर्ती प्रस्तर में चर्चा किए गए कानून के स्थापित सिद्धांतों के साथ विरोध में नहीं रखा जा सकता है। आक्षेपित निर्णय के प्रस्तर-16 में विद्वान एकल न्यायाधीश का निष्कर्ष था कि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप उसकी पत्नी के साथ क्रूरता करने और दहेज की मांग के वैवाहिक विवाद के थे, जो आरोप केवल एक व्यक्ति के खिलाफ नहीं थे, बल्कि

बड़े पैमाने पर जनता के खिलाफ थे। हम प्रस्तर-16 में दर्ज कारणों से सहमत होने में असमर्थ हैं क्योंकि याचिकाकर्ता अपीलकर्ता को उपरोक्त आपराधिक मामले में धारा 498क आदि के तहत दोषमुक्त कर दिया गया था, समझौते के आधार पर नहीं या गवाहों के मुकर जाने के आधार पर नहीं बल्कि तथ्यों पर उचित विचार करने और पक्षकारों यानी अभियोजन और बचाव पक्ष के नेतृत्व में सबूतों के मूल्यांकन के बाद। विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस तथ्य पर भी ध्यान नहीं दिया कि याचिकाकर्ता अपीलकर्ता वर्ष 2002 से भारत सरकार की सेवा में है और यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि उनके पूरे परिवार के सदस्यों के साथ उपरोक्त आपराधिक मामले में शामिल होने के कारण उनके खिलाफ कोई प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला गया या कार्रवाई की गई या उनकी विश्वसनीयता पर संदेह किया गया। आक्षेपित निर्णय के प्रस्तर-18 और 19 में निष्कर्ष यह है कि चूँकि आरोपों को दयनीय या तुच्छ नहीं माना जा सकता है और जो दोषमुक्त किया गया है वह साफ़ दोषमुक्त नहीं है, इसलिए विस्तृत चर्चा और पूर्ववर्ती प्रस्तरों में दर्ज कारणों को बरकरार नहीं रखा जा सकता है साथ ही वैवाहिक मामले में विचारण न्यायालय द्वारा पहुंचे निष्कर्ष का दोबारा उल्लेख नहीं किया जा रहा है ताकि पुनरावृत्ति से बचा जा सके।

22. उपरोक्त सभी कारणों से, हम रिट-ए संख्या 679 वर्ष 2020 में पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 22.07.2022 को अपास्त करते हैं और प्रत्यर्थी संख्या-2 और 3 द्वारा पारित रिट याचिका में आक्षेपित दोनों आदेशों को रद्द करते हैं। **विशेष अपील और रिट याचिका, दोनों को अनुमति प्रदान की जाती है।** हालाँकि, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 1 ILRA 1249

मूल न्यायाधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 12.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आशुतोष श्रीवास्तव

रिट-ए संख्या 9410/2022 व अन्य वाद

दिनेश सिंह ...याचिकाकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता:
श्री ओ.पी.एस.राठौर, श्री प्रभाकर अवस्थी

अधिवक्ता प्रतिवादी:
सी.एस.सी., अर्चना सिंह

ए. सेवा कानून - वरिष्ठता - स्थानांतरण - उ.प्र. बेसिक शिक्षा (शिक्षक) सेवा (20वां संशोधन) नियमावली – 2017 उ.प्र. बेसिक शिक्षा (शिक्षक) सेवा नियमावली, 1981 – नियम 21, 22 - एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरण आम तौर पर सेवा की एक शर्त है और कर्मचारी के पास इसमें कोई विकल्प नहीं है। जनहित और कार्यकुशलता बनाए रखने के लिए स्थानांतरण जरूरी है। किसी भी सरकारी सेवक या सार्वजनिक उपक्रम के कर्मचारी को किसी विशेष स्थान पर तैनात होने का कानूनी अधिकार नहीं है। नियम 4 के अनुसार प्रत्येक स्थानीय क्षेत्र के लिए सेवा के अलग-अलग कैडर होंगे जैसा कि नियम, 1981 के नियम 2(1)(i) में परिभाषित है, जिसका अर्थ है कि कैडर की ताकत जिलेवार है। (पैरा 26)

नियम 21 के तहत दिए गए प्रावधान के अलावा कोई अंतर जिला स्थानांतरण नहीं हो सकता है। नियम 21 दो शर्तें प्रदान करता है, अर्थात्, "अनुरोध को छोड़कर" या "स्वयं शिक्षक की सहमति से"। **नियम 22(1) में सहायक अध्यापक की वरिष्ठता की गणना उसके मूल पद पर नियुक्ति की तिथि से किये जाने का प्रावधान है।** नियम 22(2) में प्रावधान है कि स्थानांतरण पर सहायक अध्यापक की वरिष्ठता उस स्थानीय क्षेत्र से संबंधित संबंधित वर्ग के शिक्षकों की सूची या श्रेणी में नीचे वरीयता देगा जिसमें उसे स्थानांतरित किया गया है। (पैरा 28)
वर्तमान वाद में, किसी भी याचिकाकर्ता ने अपने स्थानांतरण की मांग नहीं की है, बल्कि उन्होंने बोर्ड की मनमानी कार्रवाई के खिलाफ अदालत का दरवाजा

खटखटाया है। इसलिए, न्यायालय की राय में **याचिकाकर्ताओं का मामला नियम 22 के उप-नियम (1) द्वारा शासित होगा, न** कि नियम, 1981 के नियम 22 के उप-नियम (2) द्वारा शासित होगा। (पैरा 29)

बी. नए जिला आवंटन में वरिष्ठता के दावे को त्यागना प्रतिवादी बोर्ड का तर्क है कि एक बार याचिकाकर्ताओं ने नए जिला आवंटन में अपनी वरिष्ठता को त्यागने का शपथ पत्र दिया था और सभी शर्तों को खुली आंखों से स्वीकार कर लिया था और ऐसे में अब याचिकाकर्ता बैक डेट से वरिष्ठता का दावा स्वीकार नहीं किया जा सकता। (पैरा 30)

यह तय है कि एक बार जब अपीलकर्ता अपनी पसंद के जिलों में स्थानांतरण का लाभ बरकरार रखना चाहते हैं, तो उन्हें लाभ लेने और इसके साथ जुड़े नुकसान से छुटकारा पाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। यदि अपीलकर्ता स्थानांतरण हासिल करने के बाद अपनी पसंद के जिले में बने रहना चाहते हैं, जिसके वे अन्यथा हकदार नहीं हैं, तो वे अपनी स्थिति की बहाली का दावा नहीं कर सकते हैं या उस कैडर में वेतन का दावा नहीं कर सकते हैं जिससे वे मूल रूप से संबंधित थे। यह वास्तव में दृढ़ता से स्थापित सिद्धांत का उल्लंघन होगा कि किसी पक्ष को अनुमोदन और पुनर्मूल्यांकन की अनुमति नहीं दी जा सकती है। (पैरा 32)

वर्तमान वाद में तथ्य भिन्न हैं। याचिकाकर्ताओं ने बोर्ड के अधिकारियों की मनमानी कार्रवाई के खिलाफ इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए और इन परिस्थितियों में याचिकाकर्ताओं द्वारा दिए गए शपथपत्र का बाध्यकारी प्रभाव नहीं होगा और अदालत ने पाया कि **<u>शपथपत्र सुरक्षित ज्वाइनिंग के लिए मजबूरी में दिया गया था</u>, न कि उनकी पसंद के जिलों में सुरक्षित स्थानांतरण की चिंता में दिया गया था। (पैरा 33)**
रिट याचिका स्वीकृत। (ई 4)

<u>उद्धृत वाद</u>

1. पंजाब राज्य बनाम धनजीत सिंह संधू, (2014)15 एससीसी 144 (पैरा 23)
2. शिखा सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट- ए नंबर 19737 / 2018 (पैरा 7)
3. अमित शेखर भारद्वाज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, विशेष अपील संख्या 274/2020 (पैरा 8)
4. बेसिक शिक्षा परिषद बनाम शिखा सिंह एवं अन्य, विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या 865/2020 (पैरा 11)

<u>विशेष वाद:</u>

विपीन कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2019 की विशेष अपील संख्या 296 (पैरा 30)

वर्तमान याचिका में सचिव, बेसिक शिक्षा परिषद, यूपी, इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.06.2022 को चुनौती दी गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता को एक शपथपत्र प्रस्तुत करने के लिए कहा गया है जिसमें यह घोषणा की गई है कि वह भविष्य में अपनी सेवा की वरिष्ठता के लिए दावा नहीं करेगा। परमादेश की प्रकृति में एक अन्य प्रार्थना प्रतिवादी को दिनांक 17.09.2018 से उसकी वरिष्ठता के साथ नए आवंटित जिले मेरठ में शामिल होने को सुनिश्चित करने का आदेश देती है।

(माननीय न्यायमूर्ति आशुतोष श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

1. रिट याचिकाओं के इन समूह में कानून और तथ्य के सामान्य प्रश्न सम्मिलित हैं और एक सामान्य आदेश द्वारा तय किए जा रहे हैं। रिट (ए) संख्या 9410/2022 (दिनेश सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) के तथ्यों पर शामिल विवाद को तय करने के लिए विचार किया जा रहा है।

2. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे सहायक श्री विद्वान अधिवक्ता श्री ओ.पी. एस. राठौर, , राज्य प्रतिवादियों की ओर विद्वान स्थायी वकील और प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्रीमती अर्चना सिंह को सुना गया।

3. इस रिट याचिका में सचिव, बेसिक शिक्षा बोर्ड, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.06.2022 को चुनौती दी गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता को एक शपथपत्र प्रस्तुत करने के लिए कहा गया है जिसमें यह घोषणा की गई है कि वह भविष्य में अपनी वरिष्ठता के लिए दावा नहीं करेगा। आगे यह प्रार्थना की गई है कि परमादेश प्रकृति की एक रिट पारित करके प्रतिवादी को निर्देशित करे कि याचिकाकर्ता को दिनांक 17.09.2018, यानी जिला अलीगढ़ में सहायक शिक्षक के रूप में शामिल होने की प्रथम तिथि से उसकी वरिष्ठता के साथ नए आवंटित जिले मेरठ में शामिल होना सुनिश्चित करे।

4. तत्काल रिट याचिका दायर करने के लिए संक्षेप में तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता को राज्य सरकार द्वारा शासनादेश दिनांक 09.01.2018 के माध्यम से प्रकाशित विज्ञापन के अनुसरण में 68500 रिक्त पदों के खिलाफ एक सहायक शिक्षक, प्राथमिक विद्यालय के रूप में चुना गया था। रिक्तियों को जिलानुसार विज्ञापित किया गया था। सहायक शिक्षक का चयन गुणवत्ता बिंदु के आधार पर किया जाना था, जिसमें सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा पर 60%, हाई स्कूल पर 10%, इंटरमीडिएट पर 10%, स्नातक पर 10% और प्रशिक्षण योग्यता पर 10% महत्व शामिल था। उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा (शिक्षक) सेवा (20वा संशोधन) नियम, 2017 के अनुसार शिक्षामित्रों

पर प्रति पूर्ण शिक्षण वर्ष 2.5 अंक से अधिकतम 25 अंकों तक, जो भी कम हो, उसका अतिरिक्त भारण लागू किया गया था। याचिकाकर्ता ने एटीआरई-2018 में 90 अंक प्राप्त किए और मौजूदा सिद्धांत के अनुसार 67.61 गुणवत्ता अंक हासिल किए।

5. सचिव, बेसिक शिक्षा बोर्ड ने एक विज्ञापन दिनांक 19.08.2018 द्वारा नियुक्ति के लिए चयनित उम्मीदवारों से ऑनलाइन आवेदन आमंत्रित किया गया और उम्मीदवारों से जिलों की प्राथमिकताएं भी मांगी गई। याचिकाकर्ता को उसके गुणवत्ता अंक के अनुसार जिला अलीगढ़ आवंटित किया गया था और वह अपने आवंटित जिले में चयन समिति के समक्ष उपस्थित हुआ था। याचिकाकर्ता को जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, अलीगढ़ द्वारा दिनांक 05.09.2018 को एक नियुक्ति पत्र जारी किया गया था और वह आवंटित संस्थान यानी प्राथमिक विद्यालय, नगला कुरावली, विकास खंड गणगिरी, जिला अलीगढ़ में सम्मिलित हो गया। हालांकि एआरटीई -2018 कुल 68,500 रिक्तियों के लिए आयोजित किया गया था, लेकिन बेसिक शिक्षा बोर्ड ने अधिसूचना दिनांक 19.8.2018 के माध्यम से रिक्तियों को 68500 से घटाकर 41556 कर दिया था। कम रिक्तियों के कारण, एआरटीई -2018 को मंजूरी देने वाले लगभग 6127 उम्मीदवारों को पहले स्थान पर चयन से वंचित कर दिया गया था। अचयनित उम्मीदवारों ने वाद को उत्तेजित किया और बोर्ड ने दूसरी सूची जारी कर 6127 उम्मीदवारों का चयन किया और उन्हें बिना उनकी संबंधित योग्यता को ध्यान में रखते हुए उनकी पसंद के जिले आवंटित किए गए।

6. रिट याचिकाकर्ता आरक्षित (ओबीसी) श्रेणी से संबंधित था, लेकिन उसकी उच्च योग्यता के कारण अनारक्षित रिक्ति में चुना गया था और इस तरह, एमआरसी (मेधावी आरक्षित श्रेणी) उम्मीदवार के रूप में माना है।

7. बेसिक शिक्षा बोर्ड की मनमानी कार्रवाई ने चयनित उम्मीदवारों को उनकी पसंद के अनुसार उनकी संबंधित योग्यता पर विचार किए बिना आवंटित करने की कार्यवाही को याचिकाकर्ता द्वारा रिट-ए नंबर 26132/2018 (नवीन कुमार और 52 अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य) में चुनौती दी, जिसका निर्णय इसी तरह के परिस्थितिजन्य उम्मीदवारों द्वारा दायर रिट याचिकाओं के साथ किया गया था, जिनमें से **रिट-ए नंबर 19737/2018 (शिखा सिंह और 48 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य)** है। **शिखा सिंह (सुप्रा)** की प्रमुख रिट याचिका का निस्तारण निर्णय और आदेश दिनांक 29.8.2019 द्वारा निम्नलिखित शब्दों में किया गया:

"58. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार, प्रतिवादियों द्वारा किए गए जिले का आवंटन अब तक कायम नहीं रखा जा सकता है क्योंकि यह एमआरसी उम्मीदवारों से संबंधित है और उस हद तक, इसे निरस्त कर दिया गया है।

59. प्रतिवादी संख्या 3 को निर्देश दिया जाता है कि वे केवल एमआरसी उम्मीदवारों को जिले के आवंटन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाएं, उन्हें केवल उनकी पसंद के जिले के आवंटन के प्रयोजनों के लिए आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवार मानते हैं। यह आगे निर्देशित किया जाता है कि एमआरसी उम्मीदवार जिन्होंने आरोप लगाया है कि एमआरसी उम्मीदवार होने के बावजूद उन्हें अपनी पसंद का जिला आवंटित नहीं किया गया है, वे आज से 3 महीने की अवधि के भीतर प्रतिवादी संख्या 3 के समक्ष अपने आवेदन दायर कर सकते हैं और प्रतिवादी संख्या 3 को निर्देशित किया जाता है कि वे अगले 3 माह के भीतर उपरोक्त विधिनुसार विचार करें और आवश्यक आदेश पारित करें।

60. प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित आदेश अगले शैक्षणिक सत्र यानी 2020-21 से प्रभावी होगा, ताकि छात्रों का शिक्षण प्रभावित न हो।

61. पूर्वोक्त निर्देशों के साथ रिट याचिका का निस्तारण किया जाता है।

8. दिनांक 29.08.2019 के निर्णय और आदेश पर इस न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष विशेष अपीलों में चुनौती दी गई, जिसमें **विशेष अपील संख्या 274/2020 (अमित शेखर भारद्वाज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य)** थी। खंडपीठ ने दिनांक 14.09.2021 को निम्नलिखित आदेश पारित करके विशेष अपीलों का निस्तारण किया:

"26. हमने दोनों पक्षों की ओर से दिए गए समझौते पर विचार किया है और तथ्यों को देखते हुए कि परीक्षा वर्ष 2018 में आयोजित की गई थी, और उक्त वर्ष में प्लेसमेंट / पोस्टिंग दी जा रही थी और उम्मीदवारों ने 2018 में ही अपने-अपने पोस्टिंग के स्थान पर कार्यभार ग्रहण किया था, दोनों पक्षों के वकीलों के बीच सहमति के साथ-साथ बोर्ड की सहमति के साथ, हम निम्नलिखित आदेश पारित करने का प्रस्ताव कर रहे हैं:

I. पहले से ही चयनित / तैनात और किसी भी श्रेणी के संबंधित जिले में काम करने वाले उम्मीदवारों को परेशान नहीं किया जाएगा।

II. मेधावी आरक्षित जाति के उम्मीदवारों के पक्ष में निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जाता है। आरक्षित जाति श्रेणी से संबंधित याचिकाकर्ता-अपीलकर्ता इस निर्णय के दो महीने की अवधि के भीतर विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय के अनुसरण में पोस्टिंग में बदलाव के लिए बोर्ड के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत करेंगे। बोर्ड इसके बाद मामले पर कार्रवाई करेगा और उन्हें दो माह के भीतर अपनी पसंद के अनुसार पोस्ट करेगा।

यह निर्देश सामान्य रूप से लागू नहीं होगा, लेकिन याचिकाकर्ताओं/ अपीलकर्ताओं तक सीमित होगा, जिनकी रिट याचिकाओं को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अनुमति दी गई थी।

III. ओपन जनरल श्रेणी से संबंधित अपीलकर्ता और हस्तक्षेपकर्ता अपनी पोस्टिंग के लिए तीन जिलों का विकल्प देंगे, जिन पर बोर्ड द्वारा दो महीने के भीतर विचार किया जाएगा। उन्हें संबंधित जिले में रिक्ति की उपलब्धता के अधीन उनकी पसंद के किसी भी जिले में तैनात किया जाएगा।

27. उपरोक्त निर्देश पक्षों की सहमति से हैं, इसलिए इसे प्राथमिकता नहीं माना जाएगा। यदि नवीन वाद प्रस्तुत होता है, तो यह इस निर्णय से प्रेरित नहीं होगा।

28. उपरोक्तनुसार, विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय दिनांक 29.08.2019 को संशोधित किया जाता है और विशेष अपीलों का निस्तारण किया जाता है।

9. विशेष अपील संख्या 274/2020 में दिए गए खंडपीठ के निर्णय दिनांक 14.09.2021 के अनुपालन में, बोर्ड ने ऑनलाइन आवेदन आमंत्रित करते हुए दिनांक 01.04.2022 को नोटिस जारी किया और याचिकाकर्ता ने दिनांक 03.04.2022 को अपना ऑनलाइन आवेदन पत्र जमा किया। इसके पश्चात बोर्ड ने दिनांक 10.05.2022 को 2908 उम्मीदवारों/सहायक शिक्षकों की जिला आवंटन सूची जारी की, जिसमें याचिकाकर्ता का नाम जिला मेरठ के क्रम संख्या 198 पर पाया गया है। तत्पश्चात, बोर्ड ने याचिकाकर्ता को शपथपत्र प्रस्तुत करने के लिए आक्षेपित आदेश पारित किया है।

10. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्देश के अनुसार जिले का आवंटन नियम के अंतर्गत स्थानांतरण का वाद नहीं माना जा सकता है ताकि शपथ पत्र दाखिल करने की आवश्यकता हो। नियमों के नियम 21 और नियम 22 के प्रावधानों को इस मामले में लागू नहीं कहा जा सकता है।

11. प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा प्रति शपथपत्र दायर करके रिट याचिका का विरोध किया गया है। प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्रीमती अर्चना सिंह का तर्क है कि **विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या 865/2020 (बेसिक शिक्षा बोर्ड बनाम शिखा सिंह और अन्य)** में पूर्व तिथि से उम्मीदवारों की वरिष्ठता को कम करने के लिए न्यायालय का कोई निर्देश नहीं है, बल्कि एक निर्देश है कि पूर्व में सम्मिलित होने वाले उम्मीदवार को परेशान न किया जाए, जिस आदेश को पक्षों की सहमति से पारित किया गया था। इसके अलावा, याचिकाकर्ता ने सहायक शिक्षक के पद पर शामिल होने से पूर्व स्वयं शपथपत्र दिया है कि वह पूर्व तिथि से वरिष्ठता के लिए कोई दावा नहीं करेगा। उपरोक्तानुसार, यह तर्क दिया गया कि रिट याचिका में कोई योग्यता नहीं है और यह निरस्त किए जाने योग्य है।

12. तर्कों के आधार पर रिट याचिकाओं के समूह में विचार के लिए प्रश्न यह है कि:

(1) क्या न्यायालय द्वारा जारी निदेशों के तहत जिला आवंटन उ0प्र0 बेसिक शिक्षा (शिक्षक) सेवा नियम, 1981 के नियम 21 के तहत स्थानांतरण के दायरे में आएगा और परिणामस्वरूप उनकी वरिष्ठता उपरोक्त नियमों के नियम 22 द्वारा शासित होगी?

(2) क्या इस न्यायालय द्वारा जारी किए गए निर्देश के अनुसार नए जिला आवंटन के मामले में वरिष्ठता के दावे को त्यागने वाले शपथपत्र के रूप में दिए गए "उपक्रम" का बाध्यकारी प्रभाव होगा?

13. संक्षेप में तथ्य यह है कि याचिकाकर्ताओं ने **विशेष अपील संख्या 274/2020 (अमित शेखर भारद्वाज बनाम यूपी राज्य और 2 अन्य)** में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा जारी निर्देशों के अनुसरण में सचिव, बेसिक शिक्षा परिषद, प्रयागराज द्वारा जारी आदेश/परिपत्र दिनांक 25.06.2022 को निरस्त करने के लिए न्यायालय में प्रस्तुत हुए।

14. याचिकाकर्ता सहायक अध्यापक भर्ती परीक्षा-2018 (इसके बाद "एटीआरई-2018" के रूप में संदर्भित) के चयनित उम्मीदवार हैं।

15. एटीआरई-2018 में चयनित होने के पश्चात याचिकाकर्ताओं को काउंसलिंग के माध्यम से विभिन्न जिले आवंटित किया गया। जिला आवंटन में भेदभाव से व्यथित होकर अभ्यर्थियों ने इस माननीय न्यायालय में **रिट-ए संख्या 19737/2018 (शिक्षा सिंह और 48 अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य)** के माध्यम से व अन्य संबंधित मामलों के साथ प्रस्तुत हुए। रिट याचिका (सुप्रा) का निर्णय इस न्यायालय द्वारा दिनांक 29.08.2019 के निर्णय और आदेश के तहत किया गया। प्रासंगिक भाग नीचे उद्‌धृत किया गया है:

57. शैक्षणिक वर्ष 2018-19 में जिला आवंटन और अपने-अपने जिलों में शिक्षकों की नियुक्ति और नियुक्ति पूर्ण कर ली गई थी। जिले की उक्त तैनाती और आवंटन कानून के विपरीत और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 (1) के उल्लंघन में होने के कारण कायम नहीं रह सकता है।

58. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार, प्रतिवादियों द्वारा किए गए जिले का आवंटन अब तक कायम नहीं रखा जा सकता है क्योंकि यह एमआरसी उम्मीदवारों से संबंधित है और उस हद तक, इसे निरस्त कर दिया गया है।

59. प्रतिवादी संख्या 3 को निर्देश दिया जाता है कि वे केवल एमआरसी उम्मीदवारों को जिले के आवंटन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाएं, उन्हें केवल उनकी पसंद के जिले के आवंटन के प्रयोजनों के लिए आरक्षित श्रेणी

के उम्मीदवार मानते हैं। यह आगे निर्देशित किया जाता है कि एमआरसी उम्मीदवार जिन्होंने आरोप लगाया है कि एमआरसी उम्मीदवार होने के बावजूद उन्हें अपनी पसंद का जिला आवंटित नहीं किया गया है, वे आज से 3 महीने की अवधि के भीतर प्रतिवादी संख्या 3 के समक्ष अपने आवेदन दायर कर सकते हैं और प्रतिवादी संख्या 3 को निर्देशित किया जाता है कि वे अगले 3 माह के भीतर उपरोक्त विधिनुसार विचार करें और आवश्यक आदेश पारित करें।

60. प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित आदेश अगले शैक्षणिक सत्र यानी 2020-21 से प्रभावी होगा, ताकि छात्रों का शिक्षण प्रभावित न हो।

16. रिट न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 29.08.2019 को **विशेष अपील संख्या 274/2020 (अमित शेखर भारद्वाज) (सुप्रा)** में चुनौती दी गई थी। रिट न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 29.08.2019 के निर्णय और आदेश को दिनांक 14.09.2021 के निर्णय और आदेश के तहत संशोधित किया गया था। प्रासंगिक भाग नीचे उद्धृत किया गया है।

26. हमने दोनों पक्षों की ओर से दिए गए समझौते पर विचार किया है और तथ्यों को देखते हुए *कि परीक्षा वर्ष 2018 में आयोजित की गई थी, और उक्त वर्ष में प्लेसमेंट / पोस्टिंग दी जा रही थी और उम्मीदवारों ने 2018 में ही अपने-अपने पोस्टिंग के स्थान पर कार्यभार ग्रहण किया था, दोनों पक्षों के वकीलों के बीच सहमति के साथ-साथ बोर्ड की सहमति के साथ, हम निम्नलिखित आदेश पारित करने का प्रस्ताव कर रहे हैं:*

I. पहले से ही चयनित / तैनात और किसी भी श्रेणी के संबंधित जिले में काम करने वाले उम्मीदवारों को परेशान नहीं किया जाएगा।

II. मेधावी आरक्षित जाति के उम्मीदवारों के पक्ष में निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जाता है। आरक्षित जाति श्रेणी से संबंधित याचिकाकर्ता-अपीलकर्ता इस निर्णय के दो महीने की अवधि के भीतर विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय के अनुसरण में पोस्टिंग में बदलाव के लिए बोर्ड के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत करेंगे। बोर्ड इसके बाद मामले पर कार्रवाई करेगा और उन्हें दो माह के भीतर अपनी पसंद के अनुसार पोस्ट करेगा। यह निर्देश सामान्य रूप से लागू नहीं होगा, लेकिन याचिकाकर्ताओं/ अपीलकर्ताओं तक सीमित होगा, जिनकी रिट याचिकाओं को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अनुमति दी गई थी।

III. ओपन जनरल श्रेणी से संबंधित अपीलकर्ता और हस्तक्षेपकर्ता अपनी पोस्टिंग के लिए तीन जिलों का विकल्प देंगे, जिन पर बोर्ड द्वारा दो महीने के भीतर विचार किया जाएगा। उन्हें संबंधित जिले में रिक्ति की उपलब्धता के अधीन उनकी पसंद के किसी भी जिले में तैनात किया जाएगा।

27. उपरोक्त निर्देश पक्षों की सहमति से हैं, इसलिए इसे प्राथमिकता नहीं माना जाएगा। यदि नवीन वाद प्रस्तुत होता है, तो यह इस निर्णय से प्रेरित नहीं होगा।

28. उपरोक्तनुसार, विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय दिनांक 29.08.2019 को संशोधित किया जाता है और विशेष अपीलों का निस्तारण किया जाता है।

17. **अमित शेखर भारद्वाज (सुप्रा)** में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 14.09.2021 में निहित निर्देशों के अनुसरण में, प्रतिवादियों ने जिलों के आवंटन के लिए ऑनलाइन आवेदन के लिए दिनांक 01.04.2022 को नोटिस जारी किया।

18. दिनांक 01.04.2022 के नोटिस/निर्देशों के उत्तर में, रिट याचिकाकर्ताओं ने जिला आवंटन के लिए अपने ऑनलाइन आवेदन पत्र जमा किए। इसके पश्चात, बोर्ड ने 2908 उम्मीदवारों के संबंध में जिला आवंटन सूची प्रकाशित करने के लिए दिनांक 10.05.2022 के प्रकाशन के माध्यम से कार्यवाही की। इसके अलावा दिनांक 25.06.2022 को सचिव, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा बोर्ड ने सभी जिला बेसिक शिक्षा अधिकारियों को परिपत्र जारी करने के लिए आगे बढ़े, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ आरोप लगाया गया कि नियम 21 के प्रावधानों के अनुसार एक स्थानीय क्षेत्र से दूसरे में स्थानांतरित किए गए शिक्षक की वरिष्ठता को उस स्थानीय क्षेत्र से संबंधित सह-वर्ग या श्रेणी के शिक्षकों की सूची में सबसे नीचे रखा जाएगा, जिसमें उनका स्थानांतरण किया गया है, ऐसा व्यक्ति किसी भी क्षतिपूर्ति का हकदार नहीं होगा और उन्हें संबंधित सहायक शिक्षक से एक शपथ पत्र प्राप्त करने के लिए बुलाया है, जो जिला आवंटन का लाभार्थी है और इस आशय के अपने पोस्टिंग के स्थान में सम्मिलित होने के लिए राहत देना चाहता है कि वह अपनी नई पोस्टिंग के स्थान पर वरिष्ठता का दावा नहीं करेगा।

19. सचिव, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद, प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा जारी परिपत्र दिनांक 25.06.2022 को रिट याचिकाओं के वर्तमान समूह में आपेक्षित किया गया है।

20. इस पृष्ठभूमि में, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अमित शेखर भारद्वाज (सुप्रा) के वाद में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 14.09.2021 में निहित निर्देशों के अनुसार प्रतिवादी बोर्ड द्वारा जिला आवंटन अभ्यास किया गया था, इस प्रकार बोर्ड तर्कहीन और मनमानी शर्तें नहीं लगा सकता है कि याचिकाकर्ता नवीन स्थान में सम्मिलित होने पर अपनी वरिष्ठता खो देंगे।

21. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि न्यायालय ने पाया एटीआरई-2018 में चयनित शिक्षकों को जिले का आवंटन नियम लागू होते हैं और जिलों के नए आवंटन के लिए निर्देशित होते हैं और फिर उन्होंने तर्क

दिया कि यह अंतर जिला स्थानांतरण का मामला नहीं है और उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा (शिक्षक) सेवा नियम, 1981 के नियम 21 और 22 में निहित प्रावधान वर्तमान मामले में लागू नहीं होते हैं। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि यह पोस्टिंग का मामला है न कि स्थानांतरण का और इस प्रकार याचिकाकर्ता अपने संबंधित जिलों में शामिल होने की प्रथम तिथि से नए जिले में वरिष्ठता के हकदार हैं। विद्वान वरिष्ठ वकील ने तर्क दिया कि दिनांक 25.06.2022 के आदेश में निहित संशोधन याचिकाकर्ताओं को पोस्टिंग के नए स्थान पर वरिष्ठता को त्यागने वाले शपथपत्र प्रस्तुत करने के लिए मजबूर करता है जो मनमाना है और इसे निरस्त करने की आवश्यकता है।

22. प्रतिवादी बोर्ड की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्रीमती अर्चना सिंह ने तर्क प्रस्तुत किया कि **विशेष अपील संख्या 865/2020 (बेसिक शिक्षा बोर्ड बनाम शिक्षा सिंह और अन्य)** में, बोर्ड ने यह आधार लिया कि रिट न्यायालय द्वारा पारित आदेश वरिष्ठता को प्रभावित करेगा, लेकिन इस न्यायालय की खंडपीठ ने सहमति पर विशेष अपील का निस्तारण करते हुए बोर्ड को निर्देश दिया कि जो उम्मीदवार पहले ही सम्मिलित हो चुके हैं, उन्हें परेशान न करें।

23. प्रतिवादी बोर्ड की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि याचिकाकर्ताओं ने स्वयं इस शर्त को स्वीकार कर लिया है और सहायक शिक्षक के पद पर शामिल होने से पहले एक "वचनबद्धता" दी है कि वे पूर्व तिथि से वरिष्ठता का दावा नहीं करेंगे और इस प्रकार याचिकाकर्ताओं को पूर्व तिथि से वरिष्ठता का दावा करने से रोक दिया गया है। अपनी तर्क की पुष्टि के लिए, विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय द्वारा **विशेष अपील संख्या 296/2019** में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 11.03.2022 **और पंजाब राज्य बनाम धनजीत सिंह संधू (2014) 15 एससीसी 144** पर निर्भरता व्यक्त किया है।

24. अधिवक्ता को सुनने और अभिलेख का अवलोकन करने के पश्चात, इस न्यायालय ने पाया कि बोर्ड को **विशेष अपील संख्या 274/2017 अमित शेखर भारद्वाज (सुप्रा)** और संबंधित वाद की रिट याचिकाओं के विषय वस्तु के संबंध में जिला आवंटन का नवीन प्रक्रिया करने के अधीन किया गया था और यह देखने के पश्चात

> *21. विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस निष्कर्ष पर पहुंचते हुए कि बोर्ड इस बात पर विचार करने में विफल रहा कि एमआरसी योग्यता में उच्च होने के कारण आरक्षित श्रेणी में विस्तारित लाभ में उनकी पसंद का जिला नहीं प्रदान किया गया था, लेकिन ओपन जनरल श्रेणी के उम्मीदवारों को लाभ देने की अनदेखी की गई, जो समान उपचार के हकदार थे। एक बार जब यह विवादित नहीं है कि परिणाम घोषित होने के पश्चात 68,500 की मूल अधिसूचित रिक्तियों को घटाकर 41,556 कर दिया गया है, तो काउंसलिंग के प्रथम चरण में उपलब्ध सीटों के अनुसार उच्च मेरिट वाले उम्मीदवारों को जिले आवंटित करने और फिर द्वितीय चरण की काउंसलिंग के उम्मीदवारों को लाभ उठाने और अपनी पसंद का जिला प्राप्त करने का विकल्प देते हुए शेष 26000 और विषम सीटें जारी करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।*
>
> *22. जहां एक भर्ती प्रक्रिया में राज्य इतने बड़े पैमाने पर शिक्षकों की नियुक्ति करने के लिए अग्रसित होता है, उत्तर प्रदेश बोर्ड ऑफ बेसिक एजुकेशन जैसे प्राधिकरण से यह उम्मीद की जाती है कि वे नियुक्तियां करते समय निष्पक्ष और पारदर्शी रहें। यह देखकर दुख होता है कि जिस तरह से बोर्ड के अधिकारियों ने भर्ती प्रक्रिया का संचालन किया था, जिन्हें पूरे उत्तर प्रदेश राज्य में सहायक शिक्षकों की नियुक्ति की जिम्मेदारी सौंपी गई थी, उन्होंने चयनित उम्मीदवारों को उनके वरीयता के स्थान पर यथासंभव प्रदान करके/नियुक्त किया था। हालांकि, अधिसूचित रिक्तियों के विरुद्ध केवल तीन चौथाई से कम उम्मीदवार ही योग्य थे, बोर्ड तब भी मेधावी उम्मीदवारों की वरीयता के स्थान को नियुक्त नहीं कर सकता था।*
>
> *23. श्री ओझा का यह तर्क कि जिलेवार रिक्तियों को बदलने और कुछ जिलों की रिक्तियों को असमान रूप से बढ़ाने का कोई अवसर नहीं था। एक बार जब रिक्तियों को अधिसूचित कर दिया गया और बाद में किसी सरकारी आदेश द्वारा इसमें परिवर्तन नहीं किया गया, तो उस व्यवस्था को भंग करने का कोई अवसर नहीं आया जिसके लिए भर्ती होने वाली थी।*
>
> *24. ओपन जनरल श्रेणी के उम्मीदवारों को उन लाभों से वंचित नहीं किया जा सकता है जो एमआरसी के साथ-साथ उन उम्मीदवारों को भी दिए गए हैं जिन्हें उनकी पसंद की प्रथम वरीयता आवंटित की गई थी, जो द्वितीय काउंसलिंग में इस आधार पर उपस्थित हुए थे कि उम्मीदवार पहले ही पोस्टिंग के स्थान पर शामिल हो चुके थे और नियम स्थानांतरण की अनुमति नहीं देते हैं।*
>
> *25. इस न्यायालय को न केवल एमआरसी के साथ समानता को संतुलित करना है, बल्कि ओपन जनरल श्रेणी के उच्च योग्यता वाले उम्मीदवारों के साथ भी संतुलन बनाना है क्योंकि उन्हें वंचित करने से उनके साथ अन्याय किया जाएगा जो बोर्ड के अधिकारियों की मनमानी कार्रवाई को वैध करेगा।*
>
> *26. हमने दोनों पक्षों की ओर से दिए गए समझौते पर विचार किया है और तथ्यों को देखते हुए कि परीक्षा वर्ष 2018 में आयोजित की गई थी, और उक्त वर्ष में प्लेसमेंट / पोस्टिंग दी जा रही थी और उम्मीदवारों ने*

2018 में ही अपने-अपने पोस्टिंग के स्थान पर कार्यभार ग्रहण किया था, दोनों पक्षों के वकीलों के बीच सहमति के साथ-साथ बोर्ड की सहमति के साथ, हम निम्नलिखित आदेश पारित करने का प्रस्ताव कर रहे हैं:

I. पहले से ही चयनित / तैनात और किसी भी श्रेणी के संबंधित जिले में काम करने वाले उम्मीदवारों को परेशान नहीं किया जाएगा।

II. मेधावी आरक्षित जाति के उम्मीदवारों के पक्ष में निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जाता है। आरक्षित जाति श्रेणी से संबंधित याचिकाकर्ता-अपीलकर्ता इस निर्णय के दो महीने की अवधि के भीतर विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय के अनुसरण में पोस्टिंग में बदलाव के लिए बोर्ड के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत करेंगे। बोर्ड इसके बाद मामले पर कार्रवाई करेगा और उन्हें दो माह के भीतर अपनी पसंद के अनुसार पोस्ट करेगा। यह निर्देश सामान्य रूप से लागू नहीं होगा, लेकिन याचिकाकर्ताओं/ अपीलकर्ताओं तक सीमित होगा, जिनकी रिट याचिकाओं को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अनुमति दी गई थी।

III. ओपन जनरल श्रेणी से संबंधित अपीलकर्ता और हस्तक्षेपकर्ता अपनी पोस्टिंग के लिए तीन जिलों का विकल्प देंगे, जिन पर बोर्ड द्वारा दो महीने के भीतर विचार किया जाएगा। उन्हें संबंधित जिले में रिक्ति की उपलब्धता के अधीन उनकी पसंद के किसी भी जिले में तैनात किया जाएगा।

27. उपरोक्त निर्देश पक्षों की सहमति से हैं, इसलिए इसे प्राथमिकता नहीं माना जाएगा। यदि नवीन वाद प्रस्तुत होता है, तो यह इस निर्णय से प्रेरित नहीं होगा।

25. यह न्यायालय पाता है कि इसे नियम 1981 के नियम 19 और 20 के तहत नियुक्ति के रूप में माना जाएगा और यह स्थानांतरण का मामला नहीं है जैसा कि प्रतिवादी बोर्ड की ओर से अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया है। नियम 1981 के नियम 21 को यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

[21. स्थानांतरण की प्रक्रिया - किसी शिक्षक का ग्रामीण स्थानीय क्षेत्र से शहरी स्थानीय क्षेत्र में या इसके विपरीत या एक शहरी स्थानीय क्षेत्र से उसी जिले के दूसरे क्षेत्र में या एक जिले के स्थानीय क्षेत्र से किसी अन्य जिले में किसी शिक्षक का स्वयं शिक्षक के अनुरोध पर या उसकी सहमति से स्थानांतरण नहीं होगा और दोनों ही स्थितियों में बोर्ड का अनुमोदन आवश्यक होगा।

26. एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरण आम तौर पर सेवा की एक शर्त है और कर्मचारी के पास इस वाद में कोई विकल्प नहीं है। जनहित में और दक्षता बनाए रखने के लिए स्थानांतरण आवश्यक है। किसी भी सरकारी कर्मचारी या सार्वजनिक उपक्रम के कर्मचारी को किसी विशेष स्थान पर तैनात होने का कानूनी अधिकार नहीं है। नियम 4 के अनुसार नियमावली, 1981 के नियम 2(1)(1) में यथा परिभाषित प्रत्येक स्थानीय क्षेत्र के लिए सेवा के अलग-अलग संवर्ग होंगे, जिसका अर्थ है कि संवर्ग की संख्या जिलानुसार है।

27. नियम 21 के अंतर्गत प्रदान किए गए शर्तों को छोड़कर कोई अंतर जिला स्थानांतरण नहीं हो सकता है। नियम 21 दो शर्तों को प्रदान करता है, अर्थात्, "अनुरोध को छोड़कर" या स्वयं शिक्षक *की सहमति से। नियम 22 वरिष्ठता प्रदान करता है और यहां नीचे उद्धृत किया गया है:*

*"**[22. ज्येष्ठता-** (1) किसी संवर्ग में किसी शिक्षक की ज्येष्ठता उसकी मूल क्षमता में नियुक्ति की तारीख से अवधारित की जाएगी:*

परन्तु यदि दो या दो से अधिक व्यक्तियों को एक ही तिथि पर नियुक्त किया जाता है तो उनकी ज्येष्ठता अवधारित की जाएगी जिसमें उनके नाम यथास्थिति, नियम 17 या 17-क या 18 में निर्दिष्ट सूची में दिखाई देते हैं।

नोट– सीधी भर्ती का चयन करने वाला उम्मीदवार अपनी वरिष्ठता खो सकता है, यदि वह बिना वैध कारणों के कार्यभार ग्रहण करने में विफल रहता है, जब उसे रिक्ति की पेशकश की जाती है, किसी विशेष परिस्थिति में कारण वैध हैं या नहीं यह नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा तय किया जाएगा।

(2) किसी शिक्षक की, जिसे नियम 21 के उपबन्धों के अनुसार एक स्थानीय क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में स्थानान्तरित किया गया है, उस स्थानान्तरित वर्ग या श्रेणी के अध्यापकों की सूची में सबसे नीचे रखा जाएगा जिसमें उसका स्थानान्तरण किया गया है, जिस तिथि को स्थानांतरण के आदेश पारित किए जाते हैं, ऐसा व्यक्ति किसी प्रतिकर का हकदार नहीं होगा।

28. नियम 22 के उप-नियम (1) में सहायक शिक्षक की वरिष्ठता की उसकी नियुक्ति की तिथि से उसकी मूल क्षमता में गणना करने का प्रावधान है। नियम 22 के उपनियम (2) में यह प्रावधान है कि स्थानांतरण पर सहायक अध्यापक की वरिष्ठता उसे उस स्थानीय क्षेत्र से संबंधित तदनुरूपी कक्षा या श्रेणी के शिक्षकों की सूची में सबसे नीचे रखेगी जिससे वह स्थानांतरित किया गया है।

29. वर्तमान वाद में, याचिकाकर्ताओं में से किसी ने भी अपने स्थानांतरण के लिए नहीं कहा है, बल्कि उन्होंने बोर्ड की मनमानी कार्रवाई के विरुद्ध न्यायालय में प्रस्तुत हुए है। इसलिए, न्यायालय की राय में याचिकाकर्ताओं का वाद नियम 22 के उप-नियम (1) द्वारा शासित होगा, न कि नियम, 1981 के नियम 22 के उप-

नियम (2) द्वारा। प्रथम प्रश्न का उत्तर तदनुसार दिया जाता है।

30. अब नए जिला आवंटन के मामले में वरिष्ठता के दावे को त्यागने वाले शपथ पत्र के रूप में वचन पत्र देने के संबंध में अगले प्रश्न पर वापस आते हैं। अभिलेख के अवलोकन पर यह न्यायालय प्रतिवादी बोर्ड की ओर से विद्वान अधिवक्ता के तर्कों से प्रभावित नहीं है कि एक बार याचिकाकर्ताओं ने नए जिला आवंटन में अपनी वरिष्ठता को त्यागने का शपथपत्र दिया है और सभी शर्तों को स्वयं से स्वीकार किया है और इस तरह अब याचिकाकर्ता पूर्व तिथि से वरिष्ठता का दावा नहीं कर सकता है। प्रतिवादी बोर्ड की ओर से अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत निर्णय इस कारण से उनके लिए सहायता नहीं है कि **विशेष अपील संख्या 296/2019 (विपिन कुमार और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य)** में शामिल तथ्य पूरी तरह से भिन्न हैं।

31. **विपिन कुमार (सुप्रा)** में, अपीलकर्ताओं ने राज्य सरकार द्वारा शुरू की गई स्थानांतरण नीति के लाभ की प्रतीक्षा की, जिससे शिक्षकों को उनकी पसंद के जिले में स्थानांतरित करने की अनुमति मिल सके। शासनादेश जिसके तहत अपीलकर्ताओं ने स्थानांतरण के लिए आवेदन किया, एक रियायत की प्रकृति में था, ताकि शिक्षकों को नियम, 1981 के नियम 21 के अनुसार अपनी पसंद के स्थानीय क्षेत्र या जिले में जाने में सक्षम बनाया जा सके। स्थानांतरण नीति की शर्तों में से एक में यह प्रावधान किया गया है कि शिक्षकों के अंतर जिला स्थानांतरण के मामले में, जो शिक्षक के अनुरोध पर किए गए नियम 1981 के नियम 21 के तहत अधिकार का मामला नहीं है, पसंद के जिले में रिक्तियों की उपलब्धता के आधार पर स्थानांतरण की अनुमति दी जाएगी, यदि उस ग्रेड का कोई पद उपलब्ध नहीं था तो स्थानांतरण की अनुमति नहीं दी जा सकती थी। मामले की सामान्य विशेषता यह थी कि अपीलकर्ताओं द्वारा किए गए स्थानांतरण के अनुरोध पर विचार नहीं किया जा सकता था, क्योंकि प्राथमिक पाठशाला के प्रधानाध्यापक या पसंद के जिले के वरिष्ठ बुनियादी स्कूल के सहायक शिक्षकों के पद पर कोई रिक्ति मौजूद नहीं थी, जिसके लिए अपीलकर्ताओं ने स्थानांतरण के लिए आवेदन किया था। अपनी पसंद के जिले में स्थानांतरण को सुरक्षित करने की उनकी चिंता में, अपीलकर्ताओं ने एक आवेदन किया, जिसमें सहायक शिक्षक, प्राथमिक पाठशाला के अपने मूल पद से अपने मूल कैडर में अपने पदोन्नति पदों से प्रत्यावर्तन की मांग की गई, जहां वे निर्दिष्ट स्थानीय कार्य-क्षेत्र में विभिन्न जिलों में कार्यरत थे।

32. इसके पश्चात, स्थानांतरित होने और स्थानांतरित स्थान पर सम्मिलित होने के पश्चात अपीलकर्ताओं ने उस उपक्रम को चुनौती दी जिस पर न्यायालय ने कहा कि अपीलकर्ता अनुमोदन और प्रतिशोध नहीं कर सकते हैं और अपीलकर्ता जिन्होंने स्थानांतरण नीति के तहत लाभ प्राप्त किया था, स्वेच्छा से अधिकारों को त्याग रहे हैं, वे पीछे नहीं हट सकते हैं और जो उन्होंने त्यागा है उसे पुनः प्राप्त नहीं कर सकते हैं। न्यायालय ने निम्नानुसार पाया:

16. इन परिस्थितियों में, एक बार अपीलकर्ता अपनी पसंद के जिलों को दिनांक 23.06.2016 के सरकारी आदेश के अनुसार प्राप्त हस्तांतरण के लाभ को बनाए रखना चाहते हैं, तो उन्हें लाभ लेने और इसके साथ जुड़े नुकसान से छुटकारा पाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। अपीलकर्ता केक नहीं ले सकते हैं और इसे खा भी सकते हैं। चूंकि अपीलकर्ताओं के अधिकार हैं, चूंकि वे 23.06.2016 के सरकारी आदेश में की गई स्थानांतरण नीति के तहत स्थानांतरण हासिल करने के बाद अपनी पसंद के जिले में बने रहना चाहते हैं, जिसके वे अन्यथा हकदार नहीं हैं, वे उस कैडर में अपनी स्थिति या वेतन की बहाली का दावा नहीं कर सकते हैं जिससे वे मूल रूप से संबंधित थे। अपीलकर्ताओं को ऐसा करने की अनुमति देना, वास्तव में दृढ़ता से स्थापित सिद्धांत का उल्लंघन करेगा कि किसी पक्ष को अनुमोदन और प्रतिशोध की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इस सिद्धांत को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा प्रमुख अपील में आक्षेपित निर्णय में लागू किया गया है, विशेष रूप से, पंजाब राज्य और अन्य बनाम धनजीत सिंह संधू, (2014) 15 एससीसी 144; और हमारी राय में उचित है।

33. वर्तमान वाद में, याचिकाकर्ताओं ने बोर्ड के अधिकारियों की मनमानी कार्रवाई के विरुद्ध इस न्यायालय में प्रस्तुत हुए और इन परिस्थितियों में याचिकाकर्ताओं द्वारा दिए गए वचन का बाध्यकारी प्रभाव नहीं होगा और न्यायालय ने पाया कि शपथ पत्र उनकी पसंद के जिलों में स्थानांतरण को सुरक्षित करने के लिए नहीं बल्कि सुरक्षित नियुक्ति के लिए मजबूरी में दिए गए थे। दूसरे प्रश्न का उत्तर तदनुसार दिया गया है।

34. रिट याचिका को **अनुमति** प्रदान की जाती है। प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 25.06.2022 के आदेश को निरस्त किया जाता है। प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ताओं के शामिल होने की तिथि से वरिष्ठता का निर्धारण करने वाले नियम, 1981 के नियम 22 के उप-नियम (1) के अनुसार वरिष्ठता सूची तैयार करें।

35. लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

(2023) 1 ILRA 1259
मूल न्यायाधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक:इलाहाबाद 22.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया,

रिट-ए नंबर 4533/2022

देवेन्द्र पाल सिंह एवं अन्य ...याचिकाकर्ता
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता:
श्री शिवेंदु ओझा, श्री अखिलेश कुमार सिंह, श्री स्नेह पांडे, वरिष्ठ अधिवक्ता

अधिवक्ता प्रतिवादी:
सी.एस.सी., श्री आशीष मिश्रा, श्री नमित श्रीवास्तव, श्रीमती पारुल श्रीवास्तव, श्री परवेज आलम

ए. सेवा कानून – पदोन्नति – नियम 8 की व्याख्या - इलाहाबाद उच्च न्यायालय अधिकारी और कर्मचारी (सेवा और आचरण की शर्तें) नियम, 1976: नियम 2(एम), 3(iv), 8; इलाहाबाद उच्च न्यायालय अधिकारी और कर्मचारी (सेवा की शर्तें और आचरण) (संशोधन) नियम, 2021; उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड नियम, 1998।

निर्धारण के लिए यह मुद्दा उठता है कि नियम 1976 के नियम 8 के अनुसार पदोन्नति के लिए विचार किए जाने के लिए पात्र उम्मीदवारों के पास क्या योग्यता होनी चाहिए और विचार के लिए निर्धारित कट-ऑफ तारीख क्या होगी। (पैरा 23)

नियम 8 की व्याख्या करने के लिए, जो पदोन्नति के लिए विचार किए जाने के लिए आवश्यक योग्यता प्रदान करता है, नियम 8 (ii) स्पष्ट रूप से निर्धारित करता है कि पदोन्नति के लिए पात्र व्यक्तियों को वर्ष की 1 जुलाई को पांच साल की लगातार संतोषजनक सेवा पूरी करनी चाहिए। भर्ती और भारत में कानून द्वारा स्थापित मान्यता प्राप्त संस्थान से कंप्यूटर साइंस में सीसीसी प्रमाणपत्र / डिप्लोमा / डिग्री के साथ इंटरमीडिएट की न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता भी होनी चाहिए। **जैसा कि 'और' शब्द का उपयोग किया गया है, उसकी स्पष्ट व्याख्या पर इसका स्पष्ट अर्थ होगा कि उम्मीदवार को लगातार पांच साल की संतोषजनक सेवा पूरी करनी चाहिए 'और' उसके पास न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता होनी चाहिए। (पैरा 26)**

नियम की स्पष्ट और व्याकरणिक व्याख्या के आधार पर व्याख्या की जानी चाहिए, जब तक कि इससे कोई निष्कर्ष न निकले। क़ानूनों की व्याख्या के बुनियादी सिद्धांतों में से एक उन्हें शब्दों के स्पष्ट, शाब्दिक और व्याकरणिक अर्थ के अनुसार समझना है। यदि वह क़ानून के किसी स्पष्ट आशय या घोषित उद्देश्य के विपरीत या असंगत है, या यदि इसमें कोई बेतुकापन, प्रतिकूलता या असंगतता शामिल होगी, तो व्याकरणिक अर्थ को संशोधित, विस्तारित या संक्षिप्त किया जाना चाहिए, जहां तक कि इससे बचा जा सके। एक असुविधा, लेकिन आगे नहीं. यह दिखाने का दायित्व कि शब्दों का वह अर्थ नहीं है जो वे कहते हैं, उस पक्ष पर भारी पड़ता है जो यह आरोप लगाता है। उसे कुछ ऐसा आगे बढ़ाना चाहिए जो स्पष्ट रूप से दर्शाता हो कि व्याकरणिक निर्माण अधिनियम की मंशा के प्रतिकूल होगा या कुछ स्पष्ट बेतुकेपन को जन्म देगा। (पैरा 21)

बी. निर्धारण **के लिए अगला प्रश्न यह है कि क्या नियम 8 (2) में निर्धारित न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता भर्ती के वर्ष की तारीख यानी 1 जुलाई को होनी चाहिए या वही तारीख हो सकती है जब विज्ञापन जारी किया जाता है।** (पैरा 15,28)

भर्ती के वर्ष की तारीख केवल योग्य उम्मीदवारों की पात्रता के संबंध में प्रासंगिक है और इसका सीसीसी प्रमाणपत्र प्राप्त करने से कोई लेना-देना नहीं है। प्रश्नगत नियम, नियम 8, की व्याख्या 'अंतिम पूर्ववृत्त के नियम' का सहारा लेकर की जानी चाहिए। (पैरा 17,18)
वर्तमान वाद में नियम 8 (iii) के संदर्भ में अतिरिक्त योग्यता रखने की आवश्यकता उच्च न्यायालय के विवेक के अंतर्गत थी और उच्च न्यायालय ने अपने विवेक से उन उम्मीदवारों को अनुमति दी थी जिन्होंने 1 जुलाई को लगातार पांच साल की संतोषजनक सेवा पूरी कर ली थी। भर्ती के वर्ष और विज्ञापन जारी होने की तिथि पर कंप्यूटर विज्ञान में सीसीसी प्रमाणपत्र/डिप्लोमा/डिग्री की न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता होनी चाहिए। (पैरा 35)

विज्ञापन की तिथि पर अपेक्षित योग्यता रखने वाले पात्र उम्मीदवारों को अनुमति देने में उच्च न्यायालय के साथ ऐसा होने पर कोई दोष नहीं पाया जा सकता हैं। याचिकाकर्ताओं और हस्तक्षेपकर्ताओं, जिन्होंने हस्तक्षेप आवेदन दायर किया है, उसे स्वीकार किया कि विज्ञापन की तिथि पर उनके पास अतिरिक्त शैक्षणिक योग्यता नहीं

थी, इस प्रकार उनके पास पदोन्नति के माध्यम से नियुक्ति के लिए विचार किए जाने का कोई दावा नहीं था। (पैरा 36)

सी. ब्लैक लॉ डिक्शनरी के अनुसार, अंतिम पूर्ववर्ती का नियम, एक व्याख्यात्मक सिद्धांत है जिसके द्वारा एक न्यायालय यह निर्धारित करती है कि योग्य शब्द या वाक्यांश उनके ठीक पहले वाले शब्दों या वाक्यांशों को संशोधित करते हैं, न कि अधिक दूर के शब्दों या वाक्यांशों को, जब तक कि विस्तार न हो संपूर्ण लेखन के सन्दर्भ या भावना से आवश्यक है। शब्दकोष कैनन का उदाहरण देता है: 'संघीय प्रणाली में टेक्सास अदालतें, न्यू मैक्सिको अदालतें और न्यूयॉर्क अदालतें' वाक्यांश में, 'संघीय प्रणाली में' शब्द केवल न्यूयॉर्क अदालतों को संशोधित करने के लिए रखे जा सकते हैं, न कि टेक्सास अदालतें या नई अदालतें मेक्सिको की अदालतें। इस सिद्धांत को भिन्न-भिन्न प्रकार से 'अंतिम पूर्ववर्ती का सिद्धांत' या 'अंतिम पूर्ववर्ती पूर्ववर्ती का सिद्धांत" कहा जाता है। (पैरा 18)

रिट याचिका निरस्त। (ई 4)

उद्धृत वाद:

1. हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य बनाम राज कुमार एवं अन्य, सिविल अपील संख्या 9746 / 2011, निर्णय 20.05.2022 (पैरा 17)
2.अनूप एम.एस. मानेलिल हाउस, वलयनचिरंगारा पो, पेरुंबवूर बनाम सचिव, कर विभाग, सचिवालय, केरला राज्य और अन्य, केरल उच्च न्यायालय द्वारा निर्णय दिनांक 12.01.2017 दिया गया, (पैरा 18)
3. राकेश कुमार शर्मा बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) एवं अन्य, (2013) 11 एससीसी 58 (पैरा 19)
4. आंध्र प्रदेश बनाम लिंडे इंडिया लिमिटेड (पूर्व में बीओसी इंडिया लिमिटेड), (2020) 16 एससीसी 335 (पैरा 21)

विशेष वाद:
श्रीमती साधना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2017 6 एडीजेए 418 (पैरा 16)

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राधाकांत ओझा को श्री शिवेंद् ओझा विद्वान अधिवक्ता की सहायता में व प्रतिवादी संख्या 2 और 3 के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री समीर शर्मा को श्रीमती बुसरा मरियम विद्वान अधिवक्ता की सहायता में सुना गया। श्री नमित श्रीवास्तव, जो चयनित उम्मीदवारों के लिए उपस्थित होते हैं और जिनके अभियोग चलाने के आवेदन को 05.12.2022 को अनुमति दी गई थी. श्री अखिलेश कुमार सिंह, जो हस्तक्षेपकर्ता के लिए उपस्थित होते हैं, जो लिखित परीक्षा में भी उपस्थित हुए थे और श्री परवेज़ आलम, जो उन अभ्यर्थियों की ओर से उपस्थित हुए जिनका चयन नहीं किया गया था, तथा पक्षकार बनाए जाने का एक आवेदन प्रस्तुत किया यदयपि केवल रिट याचिका के लंबित होने कारण उनके अंकों का खुलासा नहीं किया गया है।

2. विचारण के लिए जो मुद्दा उत्पन्न होता है वह वर्ष 2021 में 27.03.2021 को अधिसूचित इलाहाबाद उच्च न्यायालय अधिकारी और कर्मचारी (सेवा की शर्त और आचरण) नियम 1976 के नियम 8 की व्याख्या तक ही सीमित है।

3. संक्षेप में तथ्य यह है कि याचिकाकर्ताओं ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के रूप में काम करने का दावा किया है और दावा किया है कि उनकी सेवा शर्त 1976 के नियमों द्वारा शासित हैं। यह दावा किया गया है कि 1976 के नियमों के नियम 8 में किए गए संशोधन के अनुसार, याचिकाकर्ता पदोन्नति के लिए विचार किए जाने के हकदार थे और याचिकाकर्ताओं को उम्मीदवारी पर विचार करने से पहले और परिणामों को अंतिम रूप देने से पहले उनके पास सीसीसी प्रमाणपत्र होने का लाभ दिया जाना चाहिए था।

4. यह तर्क दिया गया है कि उच्च न्यायालय ने 21 दिसंबर, 2020 की एक अधिसूचना के माध्यम से एक विज्ञापन जारी किया था जिसमें चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के बीच पदोन्नति के माध्यम से कंप्यूटर सहायक के 17

पदों पर नियुक्ति के लिए आवेदन मांगे गए थे। उक्त विज्ञापन रिट याचिका के अनुलग्नक-3 के रूप में संलग्न है। उक्त विज्ञापन के अनुसार, विचार इच्छुक उम्मीदवार को 16.01.2021 को या उससे पहले आवेदन दाखिल करना अनिवार्य था। जारी किया गया विज्ञापन यहां नीचे उदधृत किया गया है:-

<u>इलाहाबाद उच्च न्यायालय</u>

<u>स्थापना अनुभाग</u>

<u>सूचना</u>

क्रमांक 6127/ स्थापना दिनांक इलाहाबाद 21 दिसम्बर 20020

यूपी द्वारा मान्यता प्राप्त हाई स्कूल या समकक्ष परीक्षा की न्यूनतम योग्यता रखने वाले उच्च न्यायालय इलाहाबाद और लखनऊ खंडपीठ के चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों से आवेदन आमंत्रित किए जाते हैं। कंप्यूटर सहायक के संवर्ग में 17 रिक्त पदों को भरने के लिए 01.07.2020 या उससे पहले सरकार और चतुर्थ श्रेणी में पांच साल की लगातार संतोषजनक सेवा।

पदोन्नति प्रतियोगी परीक्षा के माध्यम से योग्यता के आधार पर की जाएगी। परीक्षा का तरीका. तिथि और स्थान बाद में सूचित किया जाएगा।

इच्छुक उम्मीदवारों को संलग्न प्रारूप के अनुसार आवेदन पत्र भरना होगा और <u>16.01.2021</u> को या उससे पहले नजारत अनुभाग के माध्यम से रजिस्ट्रार (जे) (एस एंड ए / स्थापना) के समक्ष जमा करना होगा। अंतिम तिथि के बाद प्राप्त आवेदनों पर विचार नहीं किया जाएगा।

एसडी

रजिस्ट्रार जनरल

संल्गनक- उपरोक्तानुसार

5. यह तर्क दिया गया है कि विज्ञापन 2021 के संशोधन नियमों में निर्धारित शर्तों के अनुसार था। 2021 के संशोधित नियम विशेष रूप से नियम 8 का संबंध है. यहां नीचे उद्धृत किया गया है,

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अधिकारी और कर्मचारी (सेवा की शर्तें और आचरण) (संशोधन नियम, 2021)

1. संक्षिप्त शीर्षक और प्रारंभ :- (1) इन नियमों को इलाहाबाद उच्च न्यायालय अधिकारी और कर्मचारी (सेवा की शर्तें और आचरण) (संशोधन) नियम, 2021 कहा जा सकता है।

(2) ये नियम आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन की तारीख से लागू होंगे। 2. परिभाषा :- इन नियमों में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा आवश्यक न हो. "नियम" का अर्थ इलाहाबाद उच्च न्यायालय अधिकारी और कर्मचारी (सेवा की शर्तें और आचरण) नियम, 1976 है।

3. नियम 8 का संशोधन नियम 8 (ए) (आई) के खंड (i) को निम्नानुसार संशोधित किया जाएगा :-

मौजूदा प्रावधान	***संशोधन***
(ii) 40% चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों से पदोन्नति द्वारा जिन्होंने परीक्षा के माध्यम से योग्यता के आधार पर भर्ती के वर्ष की 1 जुलाई को पांच साल की लगातार संतोषजनक सेवा पूरी कर ली है।	*(11) चतुर्थ श्रेणी के उन कर्मचारियों में से प्रतियोगी परीक्षा के माध्यम से योग्यता के आधार पर पदोन्नति द्वारा 40% जिनके पास भर्ती के वर्ष की 1 जुलाई तक लगातार पांच वर्षों की*

	संतोषजनक सेवा है और ***जिनके पास भारत में कानून दवारा स्थापित मान्यता प्राप्त संस्थान से सीसीसी प्रमाणपत्र/ डिप्लोमा / कंप्यूटर विज्ञान में डिग्री के साथ इंटरमीडिएट की न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता है।***

6. यह कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं ने 27.09.2021 को रजिस्ट्रार जनरल उच्च न्यायालय के समक्ष एक अभ्यावेदन दिया, जिसमें कहा गया कि उन्होंने विज्ञापन में निर्दिष्ट तिथियों के बाद सीसीसी की योग्यता प्राप्त कर ली है और उन्हें विभागीय परीक्षा में शामिल होने की अनुमति दी जानी चाहिए। वरिष्ठता के आधार पर परीक्षा उक्त में अभ्यावेदन को समर्थन नहीं मिला और याचिकाकर्ताओं के नाम उन उम्मीदवारों की सूची में नहीं हैं, जो विभागीय परीक्षा के लिए पात्र हैं, जिसके कारण याचिकाकर्ता को रिट- ए संख्या 4533/2022 के रूप में वर्तमान रिट याचिका दायर करनी पड़ी।

7. जब रिट याचिका दायर की गई थी, तो याचिकाकर्ताओं द्वारा दिए गए दावों में से एक यह था कि वे उनकी वरिष्ठता के आधार पर विभागीय परिक्षा में उपस्थित होने के हकदार थे और उन्होंने उच्च न्यायालय की अनुमति से सीसीसी योग्यता हासिल की है और इस प्रकार उन्हें विभागीय परीक्षा में बैठने की अनुमति दी जानी चाहिए।

8. वर्तमान रिट याचिका में इस न्यायालय दवारा 08.04.2022 को एक अंतरिम आदेश पारित किया गया, जिसके तहत कुल याचिकाकर्ताओं में से 11 उम्मीदवारों को सीसीसी प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने पर लिखित परीक्षा में उपस्थित होने की अनुमति दी गई थी। रिट याचिका में याचिकाकर्ता संख्या 1, 2, 3, 7, 13 और 14 को इस न्यायालय ने खारिज कर दिया था और अंतरिम आदेश अन्य याचिकाकर्ताओं तक ही सीमित रखा था।

9. उक्त अंतरिम आदेश के खिलाफ व्यथित होकर एक विशेष अपील दायर की गई, जिसे सुना गया और निर्णय दिनांक 27.04.2022 द्वारा तय किया गया, जिससे विद्वान एकत्र न्यायाधीश दवारा पारित आदेश को एक और निर्देश के साथ संशोधित किया गया कि याचिकाकर्ताओं के संबंध में 08.04.2022 को विदवान एकल न्यायाधीश दवारा पारित आदेश के अनुसरण में जिन्हें 10.04.2022 को परीक्षा देने की अनुमति दी गई थी. परिणाम घोषित नहीं किया जाएगा और रिट याचिका के परिणाम का पालन किया जाएगा। घोषित किए जाने वाले अन्य परिणाम भी रिट याचिका के परिणाम के अधीन होंगे। रिट याचिका का निस्तारण गुण दोष के आधार पर करने का अनुरोध किया गया। अपील पर निर्णय लेते समय अपीलीय न्यायालय ने उक्त आदेश में उल्लिखित निर्णयाँ का संदर्भ दिया था।

10. यह रिकॉर्ड में है कि 27.04.2022 को विशेष अपील न्यायालय के फैसले के बाद उक्त आदेश की समीक्षा के लिए आवेदन दायर किए गए थे, जिस पर 24.05.2022 को निर्णय लिया गया था कि रिट याचिका में की गई टिप्पणियां प्रभावित नहीं होंगी विदवान एकत्र न्यायाधीश, जो विशेष अपील न्यायालय दवारा दिनांक 27.04.2022 के फैसले में की गई किसी भी टिप्पणी से प्रभावित हुए बिना रिट याचिका पर निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ेंगे।

11. उक्त के आलोक में, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राधा कांत ओझा का तर्क है कि विशेष अपील न्यायालय में की गई टिप्पणियों ने अपनी प्रासंगिकता खो दी है और इस न्यायालय को इस मुद्दे को विशेष अपील अदालत द्वारा की

गई किसी भी टिप्पणी से प्रभावित हुए बिना गुण दोष के आधार पर तय करना है।

12. विदवान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री समीर शर्मा ने बताया कि विज्ञापन के अनुसरण में चयन पहले ही हो चुका है और 17 व्यक्तियों को नियुक्ति पत्र जारी किए जा चुके हैं।

13. उक्त चयनित अभ्यर्थियों का प्रतिनिधित्व श्री नमित श्रीवास्तव अधिवक्ता दवारा किया जाता है, जो तर्क देते हैं कि चयन के संदर्भ में अभ्यर्थी भी दिनांक 25.05.2022 को शामिल हुए हैं।

14. श्री ए. के. सिंह, वकील जिन्होंने उन उम्मीदवारों की ओर से एक मध्यस्थ आवेदन दाखिल किया है, जो याचिका दायर करने वाले उम्मीदवारों के समान हैं तर्क देते हैं कि उन्हें भी उनके पक्ष में कोई आदेश दिए बिना उच्च न्यायालय दवारा विभागीय परीक्षा में उपस्थित होने की अनुमति दी गई थी। न्यायालय द्वारा और इस प्रकार रिट याचिका के परिणाम का उनकी उम्मीदवारी पर भी प्रभाव पड़ सकता है।

15. बार में की गई दलीलों पर विचार करते हुए, विचार के लिए मुख्य दलील यह है कि क्या जिन उम्मीदवारों के पास संशोधित नियमों में निर्धारित योग्यता थी, वे भर्ती के वर्ष यानी 01.07.2020 से होंगे या जब विज्ञापन जारी हुआ था उसकी तारीख से होंगे।

16. उक्त मुद्दा मूल रूप से श्री ओझा के इस कथन के कारण उठता है कि पदोन्नति द्वारा भर्ती के संबंध में तय किया गया कानून ठीक है कि पात्रता को भर्ती के वर्ष की तारीख पर स्पष्ट किया जाना चाहिए जब रिक्तियों का पता लगाया जाता है और नियुक्ति प्राधिकारी दवारा भर्ती के वर्ष से अलग दृष्टिकोण लेने के लिए कोई लाभ नहीं उठाया जा सकता है। उनका आगे तर्क है कि यदि उक्त लाभ उन व्यक्तियों को दिया जाता है जिन्होंने भर्ती की तारीख यानी 1 जुलाई 2020 के बाद योग्यता हासिल की है. तो वही लाभ याचिकाकर्ताओं को भी दिया जाना चाहिए, जिन्होंने लिखित परीक्षा की की तारीख से पहले हालांकि विज्ञापन की तारीख के बाद सीसीसी की योग्यता हासिल की है। ***श्री ओझा श्रीमती साधना बनाम. यूपी राज्य और अन्य 2017 6 एडीजे 418*** के पूर्ण पीठ के फैसले पर भरोसा करते हैं

17. श्री समीर शर्मा, वरिष्ठ अधिवक्ता, नियमों की व्याख्या के आधार पर तर्क देते हैं कि भर्ती के वर्ष की तारीख केवल योग्य उम्मीदवारों की पात्रता के संबंध में प्रासंगिक है और इसका सीसीसी प्रमाणपत्र के अधिग्रहण से कोई लेना देना नहीं है। उन्होंने ***हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य बनाम राज कुमार और अन्य सिविल अपील संख्या 9746/2011, 20 मई, 2022*** को निर्णित मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा जताया और विशेष रूप से पैराग्राफ संख्या 36 पर जोर दिया गया। जिसे यहां नीचे उद्धृत किया गया है :-

> *"36. उन पंद्रह मामलों की समीक्षा, जिन्होंने रंगीया को प्रतिष्ठित किया है, यह दर्शाता है कि यह न्यायालय रंगया में निरूपित किए गए गृहत सिद्धांतों के अपवादों को लगातार उत्कीर्ण करता रहा है इन निर्णयों के निष्कर्ष जिनका रंगया में निरूपित सिद्धांतों पर सीधा असर पड़ता है निम्नवत है:*
>
> *1. सार्वभौमिक अनुप्रयोग का कोई नियम नहीं है कि रिक्तियों को आवश्यक रूप से उस कानून के आधार पर भरा जाना चाहिए जो उनके उत्पन्न होने की तारीख पर मौजूद था. रंगैया के मामले को उसमें शामिल नियमों के संदर्भ में समझा जाना चाहिए।*

2. अब यह कानून का एक स्थापित सिद्धांत है कि अभ्यर्थी को मौजूदा कानून के आलोक में उस पर विचार किए जाने का अधिकार है, जो कि उस पर विचार किए जाने के समय व तिथि पर नियम लागू ' हो । पदोन्नति पर विचार किए जाने का अधिकार उस तिथि पर होता है, जिस तिथि को योग्य उम्मीदवारों पर विचार किया जाता है।

3. सरकार नियमों में संशोधन से पहले उत्पन्न होने वाली रिक्तियों को न भरने के लिए एक सचेत नीतिगत निर्णय लेने की हकदार है। सरकार द्वारा लिए गए नीतिगत निर्णय के मद्देनजर निरस्त किए गए नियमों के अनुसार पदोन्नति के लिए विचार किए जाने का कोई निहित अधिकार कर्मचारी को प्राप्त नहीं होता है। यूनिट के कुशल कामकाज के लिए कैडर के पुनर्गठन की स्थिति में सरकार पर पुराने नियमों अनुसार नियुक्तियां करने की कोई बाध्यता नहीं है। एकमात्र आवश्यकता यह है कि सरकार के नीतिगत निर्णय निष्पक्ष और उचित होने चाहिए और अनुच्छेद 10 की कसौटी पर उचित होने चाहिए।

4. रंगया में सिद्धांत को केवल इसलिए लागू करने की आवश्यकता नहीं है कि पद सृजित हो गए हैं, क्योंकि नियुक्ति प्राधिकारी के लिए पद को तुरंत भरना अनिवार्य नहीं है।

5. जब राज्य पर संशोधन से पहले मौजूद रिक्तियों पर नियुक्तियों पर विचार करने का कोई वैधानिक कर्तव्य नहीं है, तो राज्य को मामलों पर विचार करने के लिए निर्देशित नहीं किया जा सकता है।"

18. श्री समीर शर्मा आगे तर्क देते हैं कि प्रश्न में नियम 8 की व्याख्या 'अंतिम पूर्ववृत्त के नियम का सहारा लेकर की जानी चाहिए, जैसा कि केरल उच्च न्यायालय ने अनूप एम. एस. मानेलिल हाउस, वलयनचिरंगारा पो. पेरुम्बादूर बनाम केरल राज्य का प्रतिनिधित्व द्वारा प्रधान सचिव कर विभाग, सचिवालय और अन्य के मामले में 12.01.2017 के अपने फैसले में व्याख्या की थी। वह विशेष रूप से उक्त निर्णय के पैरा 50 पर भरोसा करते हैं, जिसे यहां नीचे उद्धृत किया गया है:-

"50. ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी के अनुसार, अंतिम पूर्ववर्ती का नियम एक व्याख्यात्मक सिद्धांत है जिसके द्वारा एक अदालत यह निर्धारित करती है कि योग्य शब्द या वाक्यांश उनके ठीक पहले याले शब्दों या वाक्यांशों को संशोधित करते हैं, न कि अधिक दूर के शब्दों या वाक्यांशों को जब तक कि विस्तार न हो संपूर्ण लेखन के संदर्भ या भावना से लेना आवश्यक है। शब्दकोश कैनन उदाहरण देता है : वाक्यांश "टेक्सास अदालतं. न्यू मैक्सिको अदालते. और संघीय प्रणाली में न्यूयॉर्क अदालत में, संघीय प्रणाली में शब्द हो सकते हैं केवल न्यूयॉर्क अदालतों को संशोधित करने के लिए आयोजित किया गया. न कि टेक्सास अदालतों या न्यू मैक्सिको अदालतों को इस सिद्धांत को भिन्न भिन्न प्रकार से अंतिम पूर्ववती सिद्धांत कहा जाता है अंतिम पूर्वपद पूर्ववर्ती का सिद्धांत.।

19. वह **राकेश कुमार शर्मा बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) और अन्यः (2013) 11 एससीसी 58** के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भी भरोसा करते हैं और मेरा ध्यान सर्वोच्च न्यायालय दवारा उक्त निर्णय में विचार किए गए निर्णय की ओर आकर्षित

करते , जिसमें तर्क दिया गया है कि आवश्यक योग्यता विज्ञापन में निर्दिष्ट तिथि पर हो सकती है।

20. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री ओझा ने प्रत्युत्तर में तर्क दिया कि श्री समीर शर्मा द्वारा उद्धृत निर्णय सीधी भर्ती से संबंधित है न कि पदोन्नति माध्यम से भर्ती से और इस प्रकार उक्त निर्णय की कोई प्रासंगिकता नहीं है। उन्होंने एक बार फिर श्रीमती साधना (पूर्व) के मामले में पूर्ण पीठ के फैसले पर जोर दिया।

21. श्री समीर शर्मा आगे तर्क देते हैं कि नियम की व्याख्या उसके स्पष्ट और व्याकरणिक पाठन पर की जानी चाहिए जब तक कि इससे कोई निष्कर्ष न निकले। उक्त प्रस्ताव के लिए, वह **आंध्र प्रदेश राज्य बनाम लिंडे इंडिया लिमिटेड (पूर्व में बीओसी इंडिया लिमिटेड) (2020) 16 एससीसी 335** और मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा करते हैं और उक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 18 से 21 पर जोर देते हैं जिसे यहां उदधृत किया गया

है:-

18. इसी तरह, क्रेज़ ऑन स्टैट्यूट लॉ कहता है।

"क़ानून की व्याख्या के बुनियादी सिद्धांतों में से एक उन्हें शब्दों के स्पष्ट शाब्दिक और व्याकरणिक अर्थ के अनुसार समझना है। यदि यह क़ानून के किसी स्पष्ट इरादे या घोषित उद्देश्य के विपरीत या असंगत है या यदि यह होगा यदि इसमें कोई बेतुकापन प्रतिकूलता या असंगतता शामिल हैं, तो ऐसी असुविधा से बचने के लिए व्याकरणिक अर्थ को संशोधित विस्तारित या संक्षिप्त किया जाना चाहिए, लेकिन इससे आगे नहीं। यह दिखाने की जिम्मेदारी कि शब्दों का यह अर्थ नहीं है जो ये कहते हैं. उस पर भारी पड़ता है जो पक्ष यह आरोप लगाता है। उसे कुछ ऐसा आगे बढ़ाना चाहिए जो स्पष्ट रूप से दर्शाता हो कि व्याकरणिक निर्माण अधिनियम की मंशा के प्रतिकूल होगा या कुछ स्पष्ट बेतुकेपन को जन्म देगा।"

19. किसी क़ानून के शब्दों को पहले उनके प्राकृतिक, सामान्य या लोकप्रिय अर्थ में समझा जाना चाहिए और वाक्यांशों और वाक्यों को उनके व्याकरणिक अर्थ के अनुसार समझा जाना चाहिए जब तक कि इससे कुछ बेतुकापन न हो या जब तक संदर्भ में कुछ न हो. या क़ानून का उद्देश्य इसके विपरीत सुझाव देना है। जहां किसी शब्द का द्वितीयक अर्थ होता है. यहां मूल्यांकन यह होता है कि क्या उस संदर्भ से प्राकृतिक सामान्य या लोकप्रिय अर्थ प्रवाहित होता है जिसमें शब्द का प्रयोग किया गया है। ऐसे मामलों में, भेद मिट जाता है और अदालतों को उस अर्थ को अपनाना चाहिए जो स्पष्ट व्याख्या और उस संदर्भ के रूप में सामने आता है जिसमें शब्द प्रकट होता है। 20. हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम पवन कुमार में यह तर्क दिया गया कि किसी भी व्यक्ति की तलाशी के संबंध में नारकोटिक्स ड्रग्स एंड साइकोट्रोपिक सब्सर्टस एक्ट 1985 की धारा 50 में प्रदान किए गए सुरक्षा उपाय किसी भी बैग ब्रीफकेस या किसी ऐसे लेख या कंटेनर पर भी लागू होंगे. जिसे व्यक्ति द्वारा ले जाया जा रहा है। अधिनियम में व्यक्ति" शब्द को परिभाषित नहीं किया गया था। इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की खंडपीठ ने

अधिनियम की योजना और उस संदर्भ को ध्यान में रखते हुए जिसमें व्यक्ति" शब्द का उपयोग किया गया है. इस तर्क को खारिज कर दिया और इस प्रकार कहा:

18. क़ानूनों की व्याख्या के बुनियादी सिद्धांतों में से एक उन्हें शब्दों के स्पष्ट, शाब्दिक और व्याकरणिक अर्थ के अनुसार समझना है। यदि यह कानून के किसी स्पष्ट इरादे या घोषित उद्देश्य के विपरीत या असंगत है या यदि इसमें कोई भी बेतुकापन प्रतिकूलता या असंगतता शामिल होगी तो व्याकरणिक अर्थ को संशोधित विस्तारित या संक्षिप्त किया जाना चाहिए जहां तक कि ऐसी असुविधा से बचा जा सके, लेकिन आगे नहीं। उस पक्ष पर जो यह आरोप लगाता है यह दिखाने का दायिता आरी है कि शब्दों का यह अर्थ नहीं है जो ये कहते हैं उसे कुछ ऐसा आगे बढ़ाना चाहिए जो स्पष्ट रूप से दर्शाता हो कि व्याकरणिक निर्माण उसके इरादे के प्रतिकूल होगा जो अधिनियम को कुछ स्पष्ट बेलुकेपल की ओर ले जाता है। वैधानिक व्याख्या के उपरोक्त सिद्धांत का इस न्यायालय द्वारा हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम पवन कुमार हरियाणा राज्य बनाम सुरेश राजस्थान राज्य बनाम बाबू राम और सीमा शुल्क आयुक्त (आयात). मुंबई बनाम दिलीप कुमार एंड कंपनी मामले में लगातार पालन किया गया है।

27. ''मेडिसिन''' शब्द को ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी में इस प्रकार परिभाषित किया गया है. "चिकित्सा विज्ञान और कला है जो बीमारियों की रोकथाम, इलाज और उन्मूलन से संबंधित है एक संकीर्ण अर्थ में स्वास्थ्य को बहाल करने और संरक्षित करने के विज्ञान और कला का यह हिस्सा जो सर्जन और प्रसूति विशेषज्ञ से अलग चिकित्सक का कार्यक्षेत्र है।"

उन्नत शिक्षार्थियों के लिए कोलिन्स डिक्शनरी चिकित्सा को इस प्रकार परिभाषित करती है. "डॉक्टरों और नर्सों द्वारा बीमारी और छोटों का इलाज करना दया है. यह एक ऐसा पदार्थ है जिसे आप किसी बीमारी को ठीक करने के लिए पीले या निगलते हैं.

कैम्ब्रिज डिक्शनरी चिकित्सा को इस प्रकार परिभाषित करती है.

एक औषधि जिसका उपयोग बीमारी या पोट के इलाज के लिए किया जाता है स्वास्थ्य के संरक्षण और बीमारी या पोट की रोकथाम और उपचार से संबंधित विज्ञाना चिकित्सा शब्द की सामान्य या लोकप्रिय समझ सामान्य रूप से इसके उपचारात्मक गुण और विशेष रूप से किसी बीमारी या विकार के निदान, उपचार, शमन या रोकथाम के लिए इसके उपयोग से होती है।

22. श्री ओझा ने इसका खंडन करते हुए कहा कि सेवा न्यायशास्त्र में नियमों की व्याख्या कराधान से संबंधित क़ानून की व्याख्या के समान नहीं हो सकती है, जहां व्याख्या सख्त होनी चाहिए, जबकि सेवा न्यायशास्त्र के मामले में न्यायालय को उद्देश्यपूर्ण व्याख्या अपनानी होगी।

23. बार में उठाए गए तर्क के आधार पर, जैसा कि ऊपर दर्ज किया गया है, इस न्यायालय को नियमों की व्याख्या करनी है और यह निर्धारित करने के लिए बिंदु हैं कि

पदोन्नति के लिए विचार किए जाने के योग्य उम्मीदवारों के पास क्या योग्यता होनी चाहिए। नियम 1976 के नियम 8 और विचारण के लिए निर्धारित कट ऑफ तिथि क्या होगी। 1976 के नियमों के नियम 2 (एम) को उद्धृत करना प्रासंगिक है, जो भर्ती के वर्ष को परिभाषित करता है।

जो इस प्रकार है:-

> "(एम) भर्ती का वर्ष का अर्थ एक कैलेंडर वर्ष के जुलाई के पहले दिन से शुरू होने वाली बारह महीने की अवधि नियम 3 जो स्थापना की ताकत प्रदान करता है, वर्तमान मामले के लिए भी प्रासंगिक है और यहां नीचे उदधृत किया गया है:-

24. नियम 3 जो स्थापना की ताकत प्रदान करता है, वर्तमान मामले के लिये भी प्रांसगिक है आ़ैर यहां नीचे उद्घृत किया गया है।

> ***3. स्थापना की ताकत*** *(I) सेवा की ताकत और उसमें प्रत्येक श्रेणी के पदों की संख्या ऐसी होगी जो उत्तर प्रदेश के राज्यपाल की मंजूरी के साथ मुख्य न्यायाधीश दद्वारा समय- समय पर निर्धारित की जा सकती है।*
>
> *(II) विभिन्न श्रेणियों में पदों की संख्या के बीच का अनुपात वैसा ही होगा जैसा उत्तर प्रदेश सिविल सचिवालय F अधिकारियों और अधीनस्थों की संबंधित श्रेणियों में प्रचलित है।*
>
> *(III) सेवा की ताकत और उसमें प्रत्येक श्रेणी के पदों की संख्या, जब तक कि उपनियम (I) के तहत अलग- अलग आदेश पारित नहीं हो जाते. नीचे दिए गए अनुसार होगी :-*

पद का नाम	**पोस्ट की संख्या**
कंप्यूटर सहायक	40
सहायक समीक्षा अधिकारी	338
समीक्षा अधिकारी	833
अनुभाग अधिकारी	225
सहायक रजिस्ट्रार	79
उप पंजीयक	42
संयुक्त रजिस्ट्रार	18
रजिस्ट्रार	07

> *(IV) बशर्ते कि :-*
>
> *1. नियुक्ति प्राधिकारी किसी रिक्त पद को अधूरा छोड़ सकता है या मुख्य न्यायाधीश किसी भी रिक्त पद को स्थगित रख सकता है, जिससे कोई भी व्यक्ति मुआवजे का हकदार नहीं होगा या*
>
> *II. मुख्य न्यायाधीश राज्यपाल की मंजूरी से ऐसे अतिरिक्त स्थायी या अस्थायी पद सृजित कर सकते हैं जिन्हें वह उचित समझें।"*

25. उक्त नियमों का नियम 8 यहां पहले से ही उद्धृत किया गया है।

26. नियम 8 की व्याख्या करने के लिए, जो पदोन्नति के लिए विचार किए जाने के लिए आवश्यक योग्यता प्रदान करता नियम 8 (ii) स्पष्ट रूप से निर्धारित करता है कि पदोन्नति के लिए पात्र व्यक्तियों को 1 जुलाई तक लगातार पांच साल की संतोषजनक सेवा पूरी करनी चाहिए। भर्ती का वर्ष और भारत में कानून द्वारा स्थापित मान्यता प्राप्त संस्थान से सीसीसी प्रमाणपत्र/ डिप्लोमा/कंप्यूटर विज्ञान में डिग्री के साथ इंटरमीडिएट की न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता भी होनी चाहिए। जैसा कि 'और' शब्द का उपयोग किया

गया है, उसकी स्पष्ट व्याख्या पर इसका स्पष्ट अर्थ होगा कि उम्मीदवार को लगातार पांच साल की संतोषजनक सेवा पूरी करनी चाहिए और उसके पास न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता होनी चाहिए।

27. श्री ओझा का यह कथन कि न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता भी भर्ती के वर्ष की 1 जुलाई को होनी चाहिए, नियम स्पष्ट अर्थ के अनुसार खारिज कर दिया गया है। ऐसा नहीं लगता कि भर्ती वर्ष की पहली जुलाई को न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता भी होनी चाहिए। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि किसी नियम की व्याख्या उसके स्पष्ट अर्थ के आधार पर की जानी चाहिए, जब तक कि उसका परिणाम बेतुका न हो। जैसा कि दर्ज किया गया है. उक्त नियमों को स्पष्ट रूप से पढ़ने पर मुझे यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि नियमों में निर्धारित आवश्यकता यह है कि व्यक्तियों को भर्ती के वर्ष की 1 जुलाई को पांच साल की लगातार संतोषजनक सेवा पूरी करनी चाहिए और साथ ही नियमों के तहत निर्दिष्ट न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता भी होनी चाहिए।

28. निर्धरण के लिए अगला प्रश्न यह है कि क्या नियम 8 (2) में निर्धारित न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता भर्ती के वर्ष की तारीख यानी 1 जुलाई को होनी चाहिए या वही तारीख हो सकती है जब विज्ञापन जारी किया जाता है।

29. श्री ओझा इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले **साधना (पूर्व)** के आधार पर तर्क देंगे कि नियम 8 (2) के संदर्भ में न्यूनतम योग्यता के निर्धारण का अर्थ यह निकाला जाना चाहिए कि भर्ती के वर्ष की 1 जुलाई को उम्मीदवार के पास अतिरिक्त न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता होनी चाहिए।

30. उक्त मामले में पूर्ण पीठ ने 41 के बहुमत निर्णय लिया कि योग्यता भर्ती के वर्ष के प्रथम दिन से होनी चाहिए। उ.प्र. माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड नियम 1998 के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए परिशिष्ट- ए में दिए गए प्रोफार्मा में रिक्ति को अधिसूचित करने 'लिए संस्थानों प्रबंधन को विशिष्ट आदेश दिए जाने के मददेनजर नियमों की व्याख्या की गई। पूर्ण पीठ ने पैराग्राफ संख्या 34 में निम्नलिखित दर्ज किया

> *"34. आयोग को रिक्तियों को अधिसूचित करने के लिए निरीक्षक से अपेक्षा करने की शक्तियां प्रदान की गई जहां प्रबंधन ऐसा करने में विफल रहा है।"*

31. पूर्ण न्यायालय ने रिक्ति को अधिसूचित करने के लिए प्रबंधन को दिए गए अधिदेश पर ध्यान दिया और नियमों की व्याख्या करते समय, न्यायालय इस तथ्य से प्रभावित हुआ कि किसी संस्थान का प्रबंधन अधिनियम के तहत और उन्हें नियुक्ति के लिए निरीक्षक के माध्यम से आयोग को सूचित करना धारा 15 (1) के संदर्भ में रिक्ति की संख्या निर्धारित करने के लिए बाध्य है। न्यायालय का विचार था कि प्रबंधन को दिए गए किसी भी लाभ से प्रबंधन द्वारा शक्ति का दुरुपयोग हो सकता है। पूर्ण न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या में दर्ज किया 44 और 48 इस प्रकार हैं--

> *44. अधिनियम 1982 तथा नियमों में समय-समय पर किये गये संशोधनों का निम्नलिखित प्रभाव पड़ा*
>
> *मूल अधिनियम की धारा 10 के तहत प्रबंधन को अनुसूची में निर्दिष्ट शिक्षकों की नियुक्ति के लिए रिक्तियों को आयोग को सूचित करना था जबकि अनुसूची में निर्दिष्ट शिक्षकों के अलावा अन्य शिक्षकों के संबंध में, प्रबंधन को रिक्तियों को चयन बोर्ड को सूचित करना था। मूल अधिनियम की धारा 15 से स्पष्ट है।*

उत्तर प्रदेश अधिनियम 1/1993 के तहत पहली बार संस्थान के प्रबंधन द्वारा रिक्तियों निर्धारण की अवधारणा प्रदान की गई थी. इस निर्देश के साथ कि भर्ती के वर्ष के दौरान रिक्त होने की संभावना वाली रिक्तियों को ऐसे निर्धारण में शामिल किया जाएगा।

48. सीधी भर्ती के संबंध में प्रबंधन द्वारा यह निर्धारण ऊपर उद्धृत 1998 के नियमों के नियम 17 के तहत किया जाता है। प्रबंधन द्वारा निर्धारित रिक्तियों का विवरण परिशिष्ट ट में दिए गए प्रोफार्मा में भर्ती के वर्ष के 15 जुलाई तक जिला विद्यालय निरीक्षक को भेजा जाता है, और निरीक्षक को अपने रिकॉर्ड से सत्यापित करने के बाद कार्यालय को प्रशिक्षित स्नातक रोड़ पदों के संबंध में जिले के सभी संस्थानों की विषय यार और समूह यार रिक्तियों का एक समेकित विवरण तैयार करना है। निरीक्षक द्वारा तैयार किया गया विवरण भर्ती के वर्ष की 31 जुलाई तक उसकी एक प्रति के साथ संयुक्त शिक्षा निदेशक को भेजा जाना चाहिए। हालांकि राज्य सरकार को भर्ती के किसी विशेष वर्ष के संबंध में अधिसूचना के लिए अन्य तारीखें तय करने की शक्ति दी गई है।"

32. कथित नियमों की व्याख्या करने के लिए न्यायालय ने जिन तर्कों को ध्यान में रखा है वे प्रस्तर 68 व 74 में इंगित हैं जो निम्नानुसार उदधृत हैं :-

68. हमारी यह भी राय है कि रईसुल हसन (पूर्व) के मामले में पूर्ण पीठ का विचार यह मानते हुए कि नियम 1998 के नियम 11 में नियम के साथ प्रोन्नति द्वारा शब्द को हटाने का उद्देश्य नियम, 1935 के 11 (2) में कहा गया है कि जिन रिक्तियों के लिए पदोन्नति की जाती है, उनकी सूचना के मामले में कोई समय सीमा तय नहीं की गई है. यह सही नहीं है। नियम 10 केवल नियुक्ति के दो खोलों का प्रावधान करता है यानी सीधी भर्ती द्वारा और केवल पदोन्नति एक भर्ती वर्ष में सीधी भर्ती के लिए रिक्तियों की संख्या का निर्धारण आवश्यक रूप से उन रिक्तियों का निर्धारण करना होगा जो उसी भर्ती वर्ष में पदोन्नति के लिए आएंगी। एक बार सीधी भर्ती के लिए रिक्तियां निर्धारित हो जाने के बाद, शेष रिक्तियां यदि पदोन्नति कोटा के अंतर्गत कोई हो, तो हटाई जाएंगी।

यह पूर्ण पीठ के ध्यान से बच गया है कि 1935 के नियम के अनुसार सीधी भर्ती/ पदोन्नति के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के मामले में नियम 1998 के नियम 12 के तहत पदोन्नति की प्रक्रिया के मामले में विचलन हुआ है। यह परिवर्तन धारा 10 में किए गए संशोधन और अध्याय !! को जोड़ने के कारण आवश्यक हो गया था जिसमें अधिनियम, 1998 द्वारा धारा 12 शामिल हैं। नियम, 1998 के नियम 11 (2) के तहत रिक्तियों की सूचना अंततः चयन बोर्ड को दी जानी है।

सीधी भर्ती के लिए विज्ञापन के लिए परिशिष्ट ऍ में दिए गए प्रोफार्मा में जबकि पदोन्नति के लिए पात्र शिक्षकों की सूची परिशिष्ट ए में दिए गए प्रोफार्मा में संयुक्त शिक्षा निदेशक को सूचित की जाती है। यही कारण है कि चयन बोर्ड को पदोन्नति कोटा के लिए रिक्तियों का निर्धारण और सूचना, जैसा कि नियम, 1995 के नियम

11 (2) के तहत प्रदान किया गया था. समाप्त दिया गया था। पदोन्नति के लिए प्राधिकारी की पहचान क्षेत्रीय चयन समिति के रूप में की गई है. जिसका अध्यक्ष चयन बोर्ड के स्थान पर संयुक्त शिक्षा निदेशक है, जैसा कि पहले दिया गया था। जहां तक बलबीर सिंह एवं अन्य बनाम यू. पी. माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड इलाहाबाद और अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले की बात है 2008 (3) ईएससी 409 (एससी) रईसुल हसन (पूर्व) के मामले में पूर्ण पीठ द्वारा भरोसा किया गया है. यह देखा जा सकता है कि उगा न्यायालय के फैसले में आनंद नारायण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा के मामले में. चयन बोर्ड ने 2003 (2) यूपीएलबीईसी 839 में रिपोर्ट दी. जिससे बलबीर सिंह (पूर्ण) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपील की गई। पैराग्राफ संख्या 60 और 12000 में निम्नलिखित प्रभाव का एक विशिष्ट कथन है.

"64 यहां पैराग्राफ 58 में तथ्य पहले बताए गए दो मामलों से भिन्न हैं ये मामले उद्धृत मामलों के विपरीत सीधी नियुक्ति के हैं। इस बिंदु पर याचिकाकर्ताओं द्वारा (पैराग्राफ 58) जो पदोन्नति के मामले संबंधित है। सीधी नियुक्तियों के मामले रिक्तियां एक विज्ञापन और विज्ञापन में उल्लिखित सभी रिक्तियां जो अधिसूचित की जाती है भरना होगा । इन्हें वर्ष-यार भरने की आवश्यकता नहीं है। कम से कम अधिनियम या नियमों में ऐसा कुछ भी नहीं है जो इसकी पुष्टि करता हो।

129, मेरे निष्कर्ष और निर्देश इस प्रकार है.

....

((.) वर्तमान मामले में नियुक्तियों सीधे की जा रही हैं पदोन्नति द्वारा नहीं;

किसी विशेष भर्ती वर्ष के लिए रिक्तियों को अलग से चिह्नित करने की आवश्यकता नहीं है. उन्हें एक साथ जोड़ा जा सकता है.

इन रिक्तियों को भरते समय रिक्ति होने पर लागू होने वाले कानून को लागू करने की आवश्यकता।

....

74. अन्यथा भी एक विशेष तिथि का निर्धारण अर्थात जब फीडिंग कैडर के एक उम्मीदवार को पात्र माना जाना है या नहीं, उसे निजी प्रबंधन की सनक और पसंद पर निर्भर रखने के बजाय तय किया जाना चाहिए।

33. वर्तमान मामले में, पूर्ण न्यायालय के फैसले की मौजूदा नियमों की व्याख्या में कोई प्रासंगिकता नहीं हो सकती है क्योंकि 1976 के नियमों में कोई पैरी मटेरिया (समविषयक) प्रावधान नहीं है और ऐसी आवश्यकता मुख्य न्यायाधीश या किसी को भी संख्या को सूचित करने के लिए बाध्य करती है। रिक्तियां, जो देय हैं, एक शरारत है जिसे साधना (पूर्व) के मामले में पूर्ण पीठ के फैसले में संस्थान के प्रबंधन दवारा खेले जाने की आशंका थी, मैं नियम 3 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए भी उक्त दृष्टिकोण रखता हूं। (iv) 1976 के नियम, जो पद को स्थगित रखने और अतिरिक्त स्थायी या अस्थायी पद बनाने के लिए मुख्य न्यायाधीश के विवेक पर छोड़ देते हैं, जैसा कि मुख्य न्यायाधीश राज्यपाल की मंजूरी के साथ उचित समझ सकते हैं।

34 ऐसी स्थिति में, श्री ओझा का निवेदन अस्वीकार किये जाने योग्य है।

35. वर्तमान मामले में नियम 8 (iii) के संदर्भ में अतिरिक्त योग्यता रखने की आवश्यकता उच्च न्यायालय के विवेक के अंतर्गत थी और उच्च न्यायालय ने अपने विवेक से उन उम्मीदवारों को अनुमति दी थी जिन्होंने भर्ती के वर्ष की 1 जुलाई और विज्ञापन जारी होने की तिथि पर पांच साल की निरंतर संतोषजनक सेवा पूरी कर ली थी और सीसीसी प्रमाणपत्र/ डिप्लोमा/ कंप्यूटर में डिग्री होने की न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता रखते हाँ।

36. ऐसा होने पर विज्ञापन की तिथि पर अपेक्षित योग्यता रखने वाले पात्र उम्मीदवारों को अनुमति देने में उच्च न्यायालय में कोई दोष नहीं पाया जा सकता है। याचिकाकर्ताओं और जिन मध्यस्थों ने हस्तक्षेप आवेदन दायर किया है, उन्होंने स्वीकार किया है कि विज्ञापन की तिथि पर उनके पास अतिरिक्त शैक्षणिक योग्यता नहीं थी. इस प्रकार उनके पास पदोन्नति के माध्यम नियुक्ति के लिए विचार किए जाने का कोई दावा नहीं था।

37. श्री ओझा का दूसरा तर्क कि याचिकाकर्ताओं के साथ-साथ हस्तक्षेपकर्ताओं को भी वही लाभ दिया जाना चाहिए जो पात्र पाए गए उम्मीदवारों को दिया गया था गलत है क्योंकि जो व्यक्ति पात्र पाए गए थे उनके पास विज्ञापन की तिथि पर योग्यता थी। जबकि याचिकाकर्ताओं और हस्तक्षेपकर्ताओं ने स्वीकार किया कि विज्ञापन की तिथि पर उनके पास योग्यता नहीं थी। इस प्रकार उन्हें स्पष्ट रूप से पदोन्नति के लिए विचार किए जाने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि उनके पास विज्ञापन की तिथि तक न्यूनतम योग्यता नहीं थी। इस प्रकार उस सीमा तक याचिकाकर्ताओं के साथ- साथ हस्तक्षेपकर्ताओं का दावा खारिज करने योग्य है और तदनुसार खारिज किया जाता है।

38. केवल तथ्य यह है कि याचिकाकर्ताओं और हस्तक्षेपकर्ताओं को 08.04.2022 को पारित विदवान एकत्र न्यायाधीश के आदेश के आधार परीक्षा में बैठने की अनुमति दी गई थी याचिकाकर्ताओं और हस्तक्षेपकर्ताओं को परीक्षा में बैठने की अनुमति दी गई थी। उनके पक्ष में कोई भी आदेश याचिकाकर्ताओं और हस्तक्षेपकर्ताओं को कोई अधिकार प्रदान नहीं करेगा। रिट याचिका ऊपर दर्ज सभी तर्कों के आधार पर खारिज की जाती है। हालाँकि, उत्तरदाताओं को उन सभी उम्मीदवारों के परिणाम घोषित करने का निर्देश दिया जाता है जो परीक्षा में उपस्थित हुए थे और जिनके पास विज्ञापन की तारीख पर अपेक्षित योग्यता थी। इसे और अधिक स्पष्ट करने के लिए याचिकाकर्ताओं और हस्तक्षेपकर्ताओं के अलावा अन्य सभी उम्मीदवारों के परिणाम घोषित किए जाएंगे।

(2023) 1 ILRA 1270
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांकः इलाहाबाद 05.12.2022

माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह

समक्ष

रिट ए संख्या - 5390/2022

कमल नयन सिंह एवं अन्य ...याचिकाकर्ता
बनाम
यूपी राज्य एवं अन्य. ...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ताओं के लिए अधिवक्ता:
श्री शांतनु खरे, सुश्री नेहा रॉय चौधरी, श्री कौन्तेय सिंह, श्री सिद्धार्थ खरे, श्री अशोक खरे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रत्यर्थी के लिए अधिवक्ता:

सी.एस.सी., श्री एम.एन. सिंह, श्री निशीथ यादव, श्री सिद्धार्थ सिंघल

ए. सेवा कानून - चयन/नियुक्ति - अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद वेतनमान, सेवा शर्तें और शिक्षकों और अन्य शैक्षणिक कर्मचारियों जैसे पुस्तकालय, शारीरिक शिक्षा और प्रशिक्षण और तकनीकी शिक्षा में कार्मिक की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता - (डिग्री) विनियमन , 2019; उत्तर प्रदेश प्राविधिक शिक्षा (शिक्षण) सेवा नियमावली, 2021: नियम 3(i)।

माननीय न्यायालय के समक्ष मुद्दा यह है **कि क्या राज्य सरकार द्वारा की गई मांग और दिनांक 26.11.2016 को विज्ञापन जारी करने पर यूपीएसएसएससी द्वारा की गई कार्रवाई में एक असाध्य दोष उत्पन्न हो गया है, जिसने यूपीएसएसएससी को प्रक्रिया जारी रखने या पूरा करने की अनुमति नहीं दी होगी। इसके द्वारा चयन, या तो दिनांक 01.03.2019 की अधिसूचना जारी होने पर (एआईसीटीई द्वारा) या 09.06.2021 को यूपी नियम लागू होने पर किया गया।** (पैरा 15)

रिक्ति घटित होने की तिथि का कानून वह कानून नहीं है जिसके आधार पर नया चयन किया जा सके। साथ ही, चल रही चयन प्रक्रिया के दौरान कानून में किया गया कोई भी बदलाव उस चयन प्रक्रिया को स्वचालित रूप से संलग्न या नियंत्रित नहीं करता है, जब तक कि कानून में परिवर्तन/संशोधन विशेष रूप से पूर्वव्यापी प्रभाव से नहीं किया जाता है। (पैरा 16)

इसमें कोई संदेह नहीं है - जारी किया गया विज्ञापन पूरी तरह से उस समय मौजूदा कानून के अनुरूप था। यद्यपि एआईसीटीई द्वारा तैयार और दिनांक 01.03.2019 की अधिसूचना के माध्यम से प्रकाशित विनियमन वैधानिक कानून है और इसलिए इसे लागू किया जा सकता है, फिर भी न तो एआईसीटीई और न ही राज्य सरकार उस कानून को पूर्वव्यापी रूप से लागू करना चाहती है। बल्कि, राज्य सरकार ने भी इस पर विचार किया और अपनी नियमावली यानी यूपी नियमावली बनाई। इन्हें 09.06.2021 को प्रकाशित किया गया और संभावित रूप से लागू किया गया। (पैरा 11,17)

बी.(i) अधिसूचना के खंड 1.4 (ई) और (एफ) के तहत, एआईसीटीई ने स्वयं उस कानून को पूर्वव्यापी रूप से लागू नहीं किया। बल्कि, खंड 1.4 (ई) के तहत, इसने पहले उन सभी लंबित चयनों को विशेष रूप से संरक्षित किया जो साक्षात्कार के चरण को पार कर चुके थे। उन चयनों को अधिसूचना द्वारा कानून में किए गए बदलाव के प्रभाव से पूरी तरह से अलग रखा गया था। (पैरा 18)

धारा 1.4 (एफ) के तहत, ऐसे मामलों में जहां साक्षात्कार चरण आयोजित नहीं किया गया था, एआईसीटीई ने सभी संस्थानों/नियोक्ताओं को पहले 'शुद्धिपत्र प्रकाशित' करने और संशोधित कानून के अनुसार लंबित आवेदनों (चयन के लिए) पर कार्रवाई करने का निर्देश दिया। इस प्रकार, एआईसीटीई द्वारा संशोधित/परिवर्तित कानून को सशर्त लागू करने पर विचार किया गया। केवल, राज्य सरकार द्वारा विज्ञापन के लिए 'शुद्धिपत्र' प्रकाशित करने के बाद, परिवर्तित कानून विज्ञापित पदों के लिए लंबित चयन प्रक्रिया पर लागू होगा, अन्यथा नहीं। (पैरा 20)

इसलिए, वर्तमान मामले में, हालांकि चयन प्रक्रिया साक्षात्कार के चरण से पहले लंबित थी, अधिसूचना के तहत निर्धारित परिवर्तित पात्रता को अपने आप लागू नहीं किया जा सका। इससे पहले कि इसे लागू किया जा सके और विवादित चयन प्रक्रिया (पहले से ही चल रही है) पर लागू किया जा सके, नियोक्ता यानी राज्य सरकार को इसे लंबित चयन प्रक्रिया में लागू करने का निर्णय लेना था और उस प्रभाव के लिए एक शुद्धिपत्र विज्ञापन के माध्यम से अपना निर्णय प्रकाशित करना था। ऐसा कभी नहीं किया गया। इसलिए, विनियम 1.4 (एफ) विवादित चयन प्रक्रिया के लिए लागू करने योग्य नहीं बन गया। (पैरा 21)

बी.(ii) केवल यूपी नियमों को लागू करने से भी विवादित चयन प्रक्रिया पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा। ये वैधानिक नियम हैं, इसलिए इन्हें पूर्वव्यापी रूप से लागू करने का कोई इरादा या इरादा नहीं है। स्पष्ट रूप से, वे पूरी तरह से संभावित हैं। (पैरा 22)

यद्यपि रिट न्यायालय वैधानिक कानून के स्पष्ट अक्षर के विरुद्ध समानता को लागू नहीं कर सकता है, फिर भी वह हमेशा उस वैधानिक कानून में समानता को मान्यता दे सकता है। अधिसूचना में किसी भी चल रही चयन प्रक्रिया (असंशोधित कानून के तहत) को स्वाभाविक या मौलिक रूप से या असाध्य रूप से दोषपूर्ण नहीं माना गया। बल्कि, इसने उन चयन प्रक्रियाओं की रक्षा करने की मांग की। वह **न्यायसंगत सिद्धांत, जिसे विधायी रूप से अधिसूचना में शामिल किया गया है, को पूर्ण प्रभाव दिया जाना चाहिए।** इसके परिणामों को टाला नहीं जा सकता या हल्के में नहीं लिया जा सकता। (पैरा 24)

<u>अधिसूचना और यूपी नियमों द्वारा किए गए संशोधनों के आधार पर</u>, (चयनित उम्मीदवारों) के बीच विचार के क्षेत्र को सीमित करने के लिए, यह अधिक कठोर शर्त नहीं लगाई जा रही है, <u>बल्कि पात्रता शर्तों में पूर्ण परिवर्तन किया गया है। (पैरा 26)</u>

सी. एक बार कानून में संशोधन हो गया, तो चल रहे चयन पर इसके प्रभाव और प्रभाव पर विचार करना राज्य के अधिकारियों पर निर्भर था। केवल इसलिए कि जिस कैडर के अंतर्गत पद विज्ञापित किया गया है वह निष्क्रिय कैडर बन जाएगा, यह स्वतः चयन प्रक्रिया को नाटकीय रूप से विफल करने के लिए (ऐसे अंतिम कैडर के लिए ऐसे पद पर) संभव नहीं है,

उस निर्णय के प्रभाव का मूल्यांकन करने के बाद, याचिकाकर्ताओं के दावे के संबंध में प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा एक सचेत निर्णय लेने की आवश्यकता थी। (पैरा 30)

यद्यपि पुराना कैडर (जिसके तहत पदों का विज्ञापन किया गया था), एक मृत कैडर था, फिर भी विज्ञापन के पूर्व जारी होने के कारण, एक बार चल रही चयन प्रक्रिया को उसके तार्किक अंत तक ले जाना था। पदों के उन्नयन आदि को उचित स्तर पर ऐसे पदों पर लागू किया जा सकता है। (पैरा 11)

डी. यू.पी.एस.एस.एस.सी एक स्वायत्त निकाय है। इसके अधिकार और कार्य की सीमाएँ हैं। यह राज्य एजेंसियों द्वारा मांगी गई सहभागिता पर कार्य करता है। यह स्वयं कार्य नहीं कर सकता था। राज्य के अधिकारियों ने मांग जारी की और इस प्रकार पद, ग्रेड, वेतन बैंड और पात्रता शर्तों जैसी सभी आनुवंशिक विशेषताओं के साथ चयन प्रक्रिया का आधारभूत खाका तैयार किया। (पैरा 33)

इसके बाद, उस आधारभूत खाका के विकास का चक्र यूपीएसएसएससी के साथ शुरू हुआ। यह उस स्तर पर है और इस प्रकार प्राप्त अधियाचना के संदर्भ में, यूपीएसएसएससी द्वारा विज्ञापन प्रकाशित किया गया था। परिणाम घोषित होने पर चयन प्रक्रिया ने अपना चक्र पूरा कर लिया। यह परिणाम है कि यूपीएसएसएससी ने अपेक्षित पदों पर नियुक्ति देने के उद्देश्य से राज्य को भेज दिया है। (पैरा 34)

जबकि चयन प्रक्रिया यूपीएसएसएससी के साथ शुरू हुई थी, अधिसूचना के खंड 1.4 (एफ) के तहत अनुमति को छोड़कर, राज्य अधिकारियों के पास यूपीएसएसएससी को इसे स्थगित करने या अन्यथा इसमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता का कोई वैधानिक अधिकार नहीं था। इसका कभी सहारा नहीं लिया गया. (पैरा 35)

यूपीएसएसएससी दिनांक 16.02.2018 आदि के संचार का अनुपालन करने या अधीनता दिखाने और चल रही चयन प्रक्रिया को स्थगित करने के लिए कभी भी बाध्य नहीं हुआ। एकमात्र अन्य घटना जिसके कारण चयन की प्रक्रिया (जो कि यूपीएसएसएससी के साथ शुरू हो रही थी) में व्यवधान उत्पन्न हो सकता था, वह यह हो सकती थी कि राज्य सरकार ने खुद ही की गई मांग को रद्द करके इनक्यूबेशन प्रक्रिया को रद्द कर दिया था। राज्य सरकार द्वारा उस शक्ति का प्रयोग नहीं किया गया है। (पैरा 36)

ई. यह सच है, केवल चयन से चयनित उम्मीदवार को नियुक्ति पाने का कोई अधिकार नहीं मिल जाता है और यह न्यायालय इस संबंध में तुरंत कोई सकारात्मक रिट जारी नहीं कर सकता है, फिर भी केवल प्रशासनिक अक्षमता या प्रशासनिक कार्रवाई की अपूर्णता के कारण चयन प्रक्रिया को अपने आप रोकने या बर्बाद करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।(पैरा 29)

राज्य प्राधिकारियों को अच्छे या अन्य कारणों से चयन प्रक्रियाओं को बीच में ही रोकने की अनुमति देने का कोई औचित्य नहीं है। यूपीएसएसएससी जैसी स्वायत्त विशेषज्ञ संस्था राज्य सरकार के आदेश पर चयन प्रक्रिया संचालित करने के लिए उसकी दया पर निर्भर नहीं थी। यूपीएसएसएससी को ऐसा करने की अनुमति देना चयन प्रक्रिया में एक और अनिश्चितता लाना होगा क्योंकि इससे अधिक अक्षमताएं, तदर्थवाद और इसलिए भ्रष्टाचार हो सकता है। (पैरा 38)

एफ. प्रशासनिक निर्णयों में हस्तक्षेप की गुंजाइश - प्रशासनिक निर्णय अधिकृत अधिकारियों द्वारा लिए जाने हैं। अक्सर, वे न्यायिक समीक्षा में हस्तक्षेप की सीमित गुंजाइश पेश करते हैं। वर्तमान मामले में, हालांकि राज्य सरकार के पास पूरे परिणाम को अभी भी घोषित करने का संवैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त अधिकार है, फिर भी उसे इस तथ्य के प्रति सचेत रहना चाहिए कि परिणाम उसके अपने आचरण के परिणाम के रूप में उत्पन्न हो सकता है। वह दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम न तो कानून के संचालन के माध्यम से और न ही चयन प्रक्रिया में कोई बुनियादी दोष के माध्यम से सामने आयेगा। (पैरा 42,43)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई 4)

उद्घृत वादों की सूची

1. हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य बनाम राज कुमार एवं अन्य, 2022/आईएनएससी/605; (2023) 3 एससीसी 773 (पैरा 11, 12, 16)
2. रामजीत सिंह कर्दम और अन्य बनाम संजीव कुमार एवं अन्य, (2020) 20 एससीसी 209 (पैरा 11)
3. वाई.वी. रंगैया बनाम जे. श्रीनिवास राव, (1983) 3 एससीसी 284 (पैरा 12)
4. बिहार राज्य बनाम मिथिलेश कुमार, (2010) 13 एससीसी 467 (पैरा 16)
5. असम लोक सेवा आयोग बनाम प्रांजल कुमार सरमा, (2020) 20 एससीसी 680 (पैरा 18)

विशिष्ट वादों की सूची

1. तेज प्रकाश पाठक एवं अन्य बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय एवं अन्य, सिविल अपील संख्या 2634 वर्ष 2013, दिनांक 20.03.2013 (पैरा 12)
2. ज्ञान प्रकाश चौबे बनाम सेंट ऑफ यू.पी. एवं अन्य, रिट -ए नंबर 4570वर्ष 2022, 25.07.2022 को निर्णीत (पैरा 12)

3. शंकरसन दाश बनाम यू.ओ.आई., (1991) 3 एससीसी 47 (पैरा 12)

वर्तमान रिट याचिका मुख्य रूप से प्रतिवादी संख्या 2 पर निर्देश देने की मांग करती है। - निदेशक, प्राविधिक शिक्षा, उत्तर प्रदेश विज्ञापन संख्या 22-परीक्षा/2016 के क्रम में यूपीएसएसएससी द्वारा प्रकाशित चयन सूची 10.12.2021 के क्रम में याचिकाकर्ताओं को नियुक्ति प्रदान करें। दूसरी प्रार्थना उसके तहत विज्ञापित लाइब्रेरियन, ग्रेड सी के 69 पदों के विज्ञापन के अनुसार प्रकाशित दिनांक 10.12.2021 की चयन सूची के तहत उनके अधिकारों की सुरक्षा के लिए है।

(माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह द्वारा सुनाया गया)

1. याचिकाकर्ताओं की वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता श्री अशोक खरे व उनकी सहयोगी सुश्री नेहा रॉय चौधरी; उत्तर प्रदेश अधीनस्थ सेवा चयन आयोग/प्रतिवादी सं. 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ सिंघल; उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग/प्रतिवादी सं. 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री निशीथ यादव और राज्य-प्रतिवादियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री गोपाल चंद्र सक्सेना को सुना।

2. वर्तमान रिट याचिका मुख्य रूप से प्रतिवादी सं. 2 - निदेशक, तकनीकी शिक्षा, उत्तर प्रदेश को निर्देश देने के लिए दायर की गई है कि विज्ञापन संख्या 22-परीक्षा/2016 (एतश्मिनपश्चात 'विज्ञापन' के रूप में संदर्भित) के अनुसरण में उत्तर प्रदेश अधीनस्थ सेवा चयन आयोग (एतश्मिनपश्चात 'यूपीएसएसएससी') द्वारा प्रकाशित चयन सूची दिनांकित 10.12.2021 के अनुसार याचिकाकर्ताओं (13) को नियुक्ति दें। विज्ञापन संख्या ए-7/ई-1/2021 दिनांकित 15.09.2021 के खिलाफ रिट याचिका में की गई दूसरी प्रार्थना काफी हद तक परिणामी है। याचिकाकर्ता विज्ञापन के अनुसार दिनांक 10.12.2021 को लाइब्रेरियन, ग्रेड सी के विज्ञापित 69 पद के सापेक्ष प्रकाशित चयन सूची के तहत अपने अधिकारों की सुरक्षा चाहते हैं।

3. इससे पहले, यूपीएसएसएससी ने विज्ञापन प्रकाशित किया था। अन्य बातों के अलावा, सरकारी पॉलिटेक्निक में ग्रेड पे 2800/- में लाइब्रेरियन, ग्रेड सी के 69 पद विज्ञापित किए गए थे (एतश्मिनपश्चात विज्ञापित पदों के रूप में संदर्भित)। उन पदों पर नियुक्ति के लिए निर्धारित योग्यता (उस समय) पुस्तकालय विज्ञान में डिप्लोमा के साथ स्नातक थी। उपरोक्त विज्ञापन के तहत निर्धारित अंतिम तिथि 19.12.2016 थी। याचिकाकर्ताओं ने इसके तहत आवेदन किया था।

4. जब वह चयन प्रक्रिया चल रही थी, अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (संक्षेप में 'एआईसीटीई'), "अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद वेतनमान, सेवा शर्तें और शिक्षकों और अन्य शैक्षणिक कर्मचारियों पुस्तकालय, शारीरिक शिक्षा और प्रशिक्षण और तकनीकी शिक्षा प्लेसमेंट कार्मिक की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यताएं" लेकर आई और तकनीकी संस्थानों में में मानकों के रखरखाव के लिए उपाय - (डिग्री) विनियमन, 2019", अधिसूचना दिनांकित 01.03.2019 द्वारा (एतश्मिनपश्चात 'अधिसूचना' के रूप में संदर्भित) के माध्यम से लेकर आई जिसमें याचिकाकर्ताओं द्वारा आवेदन किए गए लाइब्रेरियन पद से संबंधित पात्रता शर्तों, वेतन-बैंड और विज्ञापित पदों के नामकरण आदि में संशोधन प्रस्तावित था। मुख्य रूप से उस पद को ग्रुप सी से ग्रुप बी में ग्रेड पे 2800/- से रु. 56100/ रुपये में अपग्रेड करने का प्रस्ताव था। वहीं, अधिसूचना के खंड 1.4 के तहत, निम्नानुसार उपबंध किया गया था :

> "1.4 सेवा शर्तों को लागू करने की प्रभावी तिथि
>
> (क) योग्यता, अनुभव, भर्ती, पदोन्नति आदि सहित अन्य सभी सेवा शर्तें इस राजपत्र अधिसूचना की तारीख से लागू होंगी।
>
> (ख) इस राजपत्र अधिसूचना के जारी होने तक 01-01-2016 के दौरान योग्यता, अनुभव, भर्ती और पदोन्नति आदि अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद, तकनीकी संस्थान में शिक्षकों और अन्य शैक्षणिक कर्मचारियों के लिए वेतनमान, सेवा शर्तों और योग्यताएं (डिप्लोमा) विनियमन, 2010 दिनांकित 5 मार्च 2010 और उसके बाद समय-समय पर जारी अधिसूचनाओं द्वारा शासित होंगी।
>
> ग) जो लोग इस राजपत्र के प्रकाशन की तारीख के बाद पदोन्नति के लिए पात्र हैं, उन्हें अतिरिक्त योग्यता, औद्योगिक प्रशिक्षण, शैक्षणिक प्रशिक्षण, संकाय प्रेरण कार्यक्रम, शोध पत्र प्रकाशित करना आदि जैसी आवश्यक शर्तें पूरी करनी होंगी। हालांकि 31 जुलाई, 2022 तक पूरा करने की अनुमति दी जाए ताकि संकाय सदस्यों को पात्रता की तारीख से पूर्वव्यापी रूप से पदोन्नति का लाभ उठाने के लिए इस राजपत्र की अपेक्षित अनिवार्य आवश्यकताओं के लिए सक्षम किया जा सके।

घ) यह ध्यान दिया जा सकता है कि 31 जुलाई, 2022 से आगे कोई विस्तार नहीं दिया जाएगा और जो लोग उपरोक्त छूट अवधि के बावजूद आवश्यक मानदंडों को पूरा नहीं करते हैं, वे पूर्वव्यापी रूप से पदोन्नति पाने का अवसर खो देंगे। हालाँकि, वे उसके बाद इन मानदंडों को पूरा करने की तारीख से पदोन्नति के लिए पात्र होंगे।

ङ) ऐसे मामलों में, जहां सीधी भर्ती या पदोन्नति के लिए साक्षात्कार पहले ही आयोजित किए जा चुके हैं, लेकिन उम्मीदवार शामिल नहीं हुए, ऐसे उम्मीदवारों को शामिल होने की अनुमति दी जा सकती है। उनका आगे का उन्नयन इस अधिसूचना द्वारा नियंत्रित किया जाएगा।

च) ऐसे मामलों में, जहां विज्ञापन प्रकाशित किया गया था, आवेदन आमंत्रित किए गए थे लेकिन इस अधिसूचना के प्रकाशन तक साक्षात्कार आयोजित नहीं किए गए हैं, संस्थानों/नियोक्ताओं को शुद्धिपत्र प्रकाशित करना आवश्यक है और आवेदनों का प्रसंस्करण इस अधिसूचना में दिए गए प्रावधानों के अनुसार किया जाना चाहिए। "

5. इसके बाद, राज्य सरकार ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए "उत्तर प्रदेश तकनीकी शिक्षा (शिक्षण) सेवा नियमावली, 2021" (एतश्मिनपश्चात 'उ.प्र. नियमावली' के रूप में संदर्भित) तैयार की। वे नियम प्रकाशित हो गए और इस प्रकार दिनांक 09.06.2021 को लागू हो गए। उ.प्र. नियमावली के भाग III, नियम 5 (श्रेणी - VI) के तहत - सरकारी पॉलिटेक्निक आदि में लाइब्रेरियन के पद पर नियुक्ति के लिए, भर्ती का स्रोत निम्नानुसार है:

"आयोग द्वारा 100% सीधी भर्ती। एआईसीटीई द्वारा निर्धारित पात्रता और शैक्षणिक योग्यता की सभी शर्तें लाइब्रेरियन की सीधी भर्ती के लिए लागू होंगी।"

6. उ.प्र. नियमावली के नियम 8 के भाग-IV के तहत, भर्तियों के लिए योग्यता उ.प्र. नियमावली के परिशिष्ट-II में उल्लिखित अनुसार निर्दिष्ट की गई थी। इसके परिशिष्ट-II के खंड 6 के तहत, सरकारी पॉलिटेक्निक आदि में लाइब्रेरियन के पद पर नियुक्ति के लिए निम्नलिखित पात्रता शर्तें निर्धारित की गईं:

"1. कम से कम प्रथम श्रेणी या समकक्ष के साथ पुस्तकालय विज्ञान में मास्टर डिग्री और लगातार अच्छा अकादमिक रिकॉर्ड, कंप्यूटर का ज्ञान।

2. यूजीसी द्वारा इस उद्देश्य के लिए आयोजित राष्ट्रीय स्तर की परीक्षा या यूजीसी द्वारा अनुमोदित अन्य समकक्ष परीक्षा में अर्हता प्राप्त करना।

डिप्लोमा स्तर के संस्थानों के लिए:

लाइब्रेरियन जिनकी भर्ती डिप्लोमा स्तर के संस्थानों में 01-01-1996 और 15-03-2000 के बीच की गई है, मौजूदा भर्ती नियमों के तहत केवल वरिष्ठ स्केल के अगले उच्च ग्रेड में सीएएस के तहत उन्नयन पर विचार किया जाएगा। हालाँकि, सीएएस के तहत आगे बढ़ने के लिए, उन्हें एआईसीटीई अधिसूचना 2000 (डिग्री) और बाद के स्पष्टीकरण/अधिसूचनाओं में निर्धारित तरीके से न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता प्राप्त करने की आवश्यकता है।

(ख) डिग्री स्तर के संस्थानों के लिए: उपरोक्त के समान।"

7. इसी प्रकार, उ.प्र. नियमावली के नियम 3(i) के तहत, सेवा को तकनीकी शिक्षा निदेशालय, सरकारी पॉलिटेक्निक आदि में समूह "ए" और "बी" पदों के अंतर्गत आने वाली सेवा के रूप में परिभाषित किया गया था। फिर, परिशिष्ट- I श्रेणी - VI के तहत, सरकारी पॉलिटेक्निक आदि में लाइब्रेरियन के पद के लिए वेतनमान को प्रवेश वेतन के रूप में रु। 56,100 वर्णित किया गया था:

8. हालांकि एआईसीटीई द्वारा जारी अधिसूचना दिनांक 01.03.2019 को लागू हुई और उ.प्र. नियमावली भी प्रकाशित हो गई और इस प्रकार दिनांक 09.06.2021 से लागू हो गई। फिर भी, विज्ञापित पदों के लिए भर्ती प्रक्रिया, विज्ञापन और एआईसीटीई (वर्ष 2010 के) द्वारा निर्धारित पूर्व-मौजूदा मानदंडों के अनुसार, असंशोधित कानून के तहत जारी रही। इस प्रकार, यूपीएसएसएससी द्वारा दिनांक 28.07.2019 को लिखित परीक्षा आयोजित की गई थी; इसका परिणाम दिनांक 13.10.2020 को घोषित किया गया; दिसंबर 2020 में साक्षात्कार हुए और चयन सूची दिनांक 10.12.2021 को प्रकाशित हुई।

9. उ.प्र. राज्य द्वारा दायर जवाबी हलफनामे के माध्यम से, यह दावा किया गया है कि दिनांक 18.01.2018 को सचिव तकनीकी शिक्षा, उत्तर प्रदेश सरकार ने सचिव, यूपीपीएससी (यूपीएसएसएससी नहीं) को एआईसीटीई अधिसूचना दिनांक 01.03.2019 के मद्देनजर नए नियमावली के लागू होने तक (जो सरकार के लिए आवश्यक हो सकते हैं) आगे कोई परीक्षा आयोजित न करने के लिए लिखा था। साथ ही, ऐसा प्रतीत होता है कि निदेशक, तकनीकी शिक्षा ने दिनांक 16.02.2018 को

सचिव, यूपीएसएसएससी को चल रहे चयन को स्थगित करने के लिए लिखा था। हालाँकि, यह ध्यान दिया जा सकता है, उस स्तर पर, एआईसीटीई ने अभी तक दिनांक 01.03.2019 की अधिसूचना जारी नहीं की थी।

10. स्पष्ट रूप से, दिनांक 16.02.2018 का पत्र एआईसीटीई द्वारा किए जाने वाले संभावित कानून परिवर्तन की प्रत्याशा में जारी किया गया प्रतीत होता है। फिर भी, इस पर विवाद नहीं है,कि एआईसीटीई (2010 की) द्वारा बनाई गई पिछली शर्तों का न तो संचालन बंद हुआ था और न ही किसी भी पहले समय में उनमें संशोधन या परिवर्धन किया गया था। दिनांक 10.10.2021 को यूपीएसएसएससी द्वारा परिणाम (लिखित परीक्षा) की घोषणा के बाद, निदेशक, तकनीकी शिक्षा ने दिनांक 23.10.2021 को सचिव, यूपीएसएसएससी को सरकारी पॉलिटेक्निक आदि में लाइब्रेरियन के 69 ग्रुप-सी पदों पर नियुक्ति की मांग को रद्द करने के लिए लिखा। यह संचार हालांकि प्रति शपथपत्र के साथ संलग्न नहीं है, लेकिन सुनवाई के समय विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा इस पर भरोसा किया गया है। उस संचार के अस्तित्व को उस प्रत्यर्थी द्वारा दायर जवाबी हलफनामे में यूपीएसएसएससी द्वारा भी स्वीकार किया गया है।

11. ऐसे तथ्यों के आलोक में, याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा दृढ़तापूर्वक आग्रह किया गया है कि ऐसे पदों पर चयन के लिए उ.प्र. नियमावली की अधिसूचना जारी करने और/या लागू करने पर, जिसने संबंधित कानून को बदल दिया, चयन प्रक्रिया पटरी से नहीं उतरी या अधूरी नहीं रही। कहा जाता है कि यह सिद्धांत स्वयं सिद्ध है और न्यायालयों द्वारा लगातार लागू किया जाता रहा है। विज्ञापन जारी होने की तिथि पर जो कानून मौजूद था, वही चयन प्रक्रिया पर लागू होने वाला एकमात्र कानून था। इसमें कोई संदेह नहीं है - जारी किया गया विज्ञापन पूरी तरह से उस समय मौजूद कानून के अनुरूप था। उस हद तक, **हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य बनाम राज कुमार एवं अन्य (सिविल अपील संख्या 9746 सन् 2011)**, निर्णीत दिनांक 20.05.2022 (पैराग्राफ संख्या 13.1 और 13.2) के मामले का अवलंब लिया गया है। दूसरा, यह आग्रह किया गया है कि जवाबी हलफनामे में लाइब्रेरियन, ग्रुप सी, पदों के ख़त्म हो रहे कैडर का हवाला देते हुए जो तर्क दिया गया है, वह कानून में मौजूद नहीं है। **रामजीत सिंह कर्दम और अन्य बनाम संजीव कुमार एवं अन्य, (2020) 20 एससीसी 209,** के एक अन्य मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का अवलंब लेते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है, भले ही पुराना कैडर (जिसके तहत पदों का विज्ञापन किया गया था), एक मृत कैडर था, फिर भी, विज्ञापन के पूर्व में जारी होने के आधार पर, चयन प्रक्रिया जो चल रही है, उसे उसके तार्किक अंत तक ले जाना होगा। पदों के उन्नयन आदि को उचित स्तर पर ऐसे पदों पर लागू किया जा सकता है।

12. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता का कहना है कि, एआईसीटीई द्वारा अधिसूचना दिनांकित 01.03.2019 जारी हो जाने पर और विज्ञापित पद (लाइब्रेरियन) को ग्रुप - बी पद पर अपग्रेड किए जाने पर, साथ ही निर्धारित योग्यता और वेतन शर्तों में मात्रात्मक परिवर्तन हो जाने पर, अपग्रेड किए गए पदों आदि के कारण, राज्य के लिए विज्ञापित पदों के लिए चयन प्रक्रिया पूरी करना असंभव हो गया। इसलिए यूपीएसएसएससी को अपनी मांग वापस लेने और चयन को रद्द करने की आवश्यकता पड़ी। यह संचार बहुत पहले हो गया था, तो यूपीएसएसएससी को चयन प्रक्रिया रद्द कर देनी चाहिए थी। किसी भी मामले में, केवल चयन प्रक्रिया को आगे बढ़ाने और परिणाम की घोषणा करने से याचिकाकर्ताओं के पक्ष में कोई अधिकार नहीं बनता है, जिससे उन्हें नियुक्ति देने के लिए रिट जारी करने की अनुमति मिल सके। **ज्ञान प्रकाश चौबे बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य,** (रिट - ए नंबर 4570 सन् 2022, निर्णीत दिनांक 25.07.2022) के मामले में इस न्यायालय के एक समन्वय पीठ के फैसले का अवलंब लिया गया है। उस आदेश पर भरोसा करते हुए, विद्वान स्थायी अदिवक्ता ने उसी भर्ती प्रक्रिया और लाइब्रेरियन, ग्रुप सी के समान पदों के संबंध में तर्क दिया कि रिट याचिका खारिज कर दी गई थी, इस तथ्य के कारण - विज्ञापित पदों के लिए मांग वापस ली जानी चाहिए थी। उन्होंने **तेज प्रकाश पाठक और अन्य बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय एवं अन्य** (सिविल अपील क्रमांक 2634/2013), निर्णीत दिनांक 20.03.2013 के मामले में सुप्रीम कोर्ट की तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दिए गए एक संदर्भ आदेश का भी अवलंब लिया है। वह संदर्भ लंबित बताया गया है। आगे कहा गया है, इस पर जल्द ही निर्णय होने की संभावना है। इसलिए, अधिसूचना और उ.प्र. नियमावली द्वारा कानून में किए गए बदलाव पर, चयन प्रक्रिया में बदलाव की अनुमति थी। **हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य बनाम राज कुमार एवं अन्य** (उपरोक्त) में निर्णय का हवाला देते हुए, आगे यह प्रस्तुत किया गया कि **वाई.वी. रंगैया बनाम. जे. श्रीनिवास राव, (1983) 3 एससीसी 284**, में घोषित में अनुपात को - कानूना ठीक नहीं घोषित किया गया है। रिक्ति निकलने की तिथि पर मौजूद कानून नई भर्ती करने के उद्देश्य से लागू किया जाने वाला कानून नहीं है। वर्तमान मामले में, कानून दिनांक 01.03.2019 को ही बदल गया था। अधिसूचना का हवाला देते हुए यह कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं को पहले से मौजूद/असंशोधित कानून के तहत नियुक्ति पाने का कोई अधिकार नहीं है। किसी भी स्थिति में, उ.प्र. नियमावली लागू होने पर, भर्ती उन नियमों के अनुसार आयोजित और पूरी की जानी चाहिए। अंत में, विद्वान

स्थायी अधिवक्ता ने **शंकरसन दास बनाम भारत संघ, (1991) 3 एससीसी 47** में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर यह तर्क देने के लिए भरोसा किया है, कि सफल उम्मीदवारों को नियुक्ति का अपरिहार्य अधिकार प्राप्त नहीं है। मांग और/या चयन प्रक्रिया को रद्द करना सक्षम प्राधिकारी के अधिकार क्षेत्र में है जैसा कि वर्तमान मामले में किया गया है।

13. यूपीएसएसएससी के विद्वान अधिवक्ता का कहना था कि आयोग के पास मांग वापस लेने का कोई अधिकार क्षेत्र या अधिकार नहीं है। एक बार आयोग द्वारा मांग प्राप्त हो जाने के बाद, परीक्षा आयोजित करना और उसके परिणाम प्रकाशित करना एक वैधानिक कर्तव्य और दायित्व के तहत था। आयोग आगे कुछ भी करने के लिए बाध्य नहीं था।

14. यूपीपीएससी के विद्वान अधिवक्ता श्री निशीथ यादव का कहना है कि यूपीपीएससी अभी तक सामने नहीं आई है, क्योंकि उस विशेषज्ञ निकाय ने नये सिरे से/दूसरे विज्ञापन यानी विज्ञापन संख्या ए-7/ई-1/2021 के तहत कोई कदम नहीं उठाया है।

15. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद, एक मूलभूत पहलू जिसे सबसे पहले संबोधित किया जा सकता है वह है -क्या राज्य सरकार द्वारा की गई मांग और दिनांक 26.11.2016 को विज्ञापन जारी करने पर यूपीएसएसएससी द्वारा की गई कार्रवाई में एक असाध्य दोष उत्पन्न हो गया, जिसने यूपीएसएसएससी को उसके द्वारा की गई चयन प्रक्रिया को जारी रखने या पूरा करने की अनुमति नहीं दी होगी, या तो दिनांक 01.03.2019 की अधिसूचना जारी होने पर (एआईसीटीई द्वारा) या 09.06.2021 को यूपी नियमावली के लागू होने पर।

16. सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आधार पर विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा लागू किए गए सिद्धांत में कोई विवाद नहीं हो सकता है। **हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य बनाम राज कुमार और अन्य (उपरोक्त)** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के आधार पर विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा लागू किए गए सिद्धांत पर कोई विवाद नहीं हो सकता है - रिक्ति की घटना की तारीख पर कानून नहीं है वह कानून जिसके आधार पर नया चयन किया जा सकता है। साथ ही, चल रही चयन प्रक्रिया के दौरान कानून में किया गया कोई भी बदलाव उस चयन प्रक्रिया को स्वचालित रूप से संलग्न या नियंत्रित नहीं करता है, जब तक कि कानून में परिवर्तन/संशोधन विशेष रूप से पूर्वव्यापी प्रभाव से नहीं किया जाता है। यह सिद्धांत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **बिहार राज्य बनाम मिथिलेश कुमार (2010) 13 एससीसी 467** मामले में स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया है। वहां, विज्ञापित पद विभिन्न क्षमताओं वाले व्यक्तियों को प्रशिक्षित करने के लिए सहायक प्रशिक्षक का था। साक्षात्कार आयोजित होने के तुरंत बाद, सहायक प्रशिक्षकों को नियुक्त करने के बजाय, ऐसे प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए पेशेवर रूप से प्रशिक्षित गैर सरकारी संगठनों/संस्थानों को शामिल करने का एक प्रशासनिक निर्णय लिया गया। तदनुसार (वर्तमान मामले में), बिहार लोक सेवा आयोग को भेजे गए एक अनुरोध पत्र के बावजूद, आयोग ने मिथिलेश कुमार को शामिल करने की सिफारिश की। अपने दावे की अस्वीकृति पर, उन्होंने रिट क्षेत्राधिकार में उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। उस रिट याचिका को स्वीकार कर लिया गया। उच्च न्यायालय के फैसले की पुष्टि करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने तर्क दिया- चल रही चयन प्रक्रिया के दौरान, चयन मानदंडों में किया गया संशोधन उस पर लागू नहीं होगा, जब तक कि ऐसा संशोधन विशेष रूप से पूर्वव्यापी प्रभाव से नहीं किया जाता है। इस प्रकार, इस पर नीचे चर्चा और तर्क दिया गया:

> *"15. विद्वान अधिवक्ता द्वारा एन.टी. डेविन कट्टी बनाम कर्नाटक लोक सेवा आयोग [(1990) 3 एससीसी 157: 1990 एससीसी (एल एंड एस) 446: (1990) 14 एटीसी 688] में इस न्यायालय के फैसले का संदर्भ भी दिया गया था, जिसमें यह दोहराया गया था कि जहां आवेदन आमंत्रित करने के लिए विज्ञापन जारी करके चयन प्रक्रिया शुरू की गई थी, वहां सामान्य रूप से चयन होना चाहिए। तत्कालीन प्रचलित नियमों और आदेशों द्वारा विनियमित किया जाएगा। इस बात पर भी जोर दिया गया कि सेवा न्यायशास्त्र यह प्रदान करता है कि आम तौर पर चयन प्रक्रिया के लंबित रहने के दौरान किए गए संशोधन संभावित रूप से संचालित होते हैं, जब तक कि स्पष्ट भाषा या आवश्यक निहितार्थ द्वारा इसके विपरीत संकेत न दिया जाए।*
>
> *16. विद्वान अधिवक्ता ने अंततः एपी लोक सेवा आयोग बनाम बी स्वप्ना [(2005) 4 एससीसी 154: 2005 एससीसी (एल एंड एस) 452] में इस न्यायालय के फैसले का उल्लेख किया, जिसमें रिक्तियों को भरने के लिए भर्ती/चयन के मानदंडों पर विचार किया गया था। जिसे प्रारंभ में विज्ञापित किया गया था, इस न्यायालय का विचार था कि चयन के ऐसे मानदंडों को चयन प्रक्रिया शुरू होने के बाद बदला नहीं जा सकता है और योग्यता निर्धारित करने वाले नियम, जिन्हें चयन प्रक्रिया की निरंतरता के दौरान संशोधित किया गया था, तब तक संभावित संचालन में रहेंगे जब तक कि इसके*

> *विपरीत कुछ न हो स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा इंगित किया गया है।*
>
> *17. ...*
>
> *18.हमने पक्षों की ओर से दी गई दलीलों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है और हम याचिकाकर्ता बिहार राज्य के इस रुख से प्रभावित नहीं हैं कि बिहार लोक सेवा आयोग को सहायक निदेशक के बाद नियुक्ति के लिए प्रत्यर्थी के नाम की सिफारिश नहीं करनी चाहिए थी। समाज कल्याण ने आयोग से अनुरोध किया था कि राज्य द्वारा विकलांग व्यक्तियों को प्रशिक्षकों/सहायक प्रशिक्षकों के स्थान पर पेशेवर रूप से स्थापित गैर सरकारी संगठनों/संस्थाओं के माध्यम से प्रशिक्षित करने के निर्णय के मद्देनजर किसी और नाम की सिफारिश न की जाए, जिसके लिए आयोग द्वारा पहले ही विज्ञापन जारी किए जा चुके हैं।*
>
> *19. विद्वान एकल न्यायाधीश और डिवीजन बेंच दोनों ने सही माना कि भर्ती के मानदंडों में बदलाव को संभावित रूप से लागू किया जा सकता है और उन लोगों को प्रभावित नहीं किया जा सकता है जिन्हें चयन प्रक्रिया शुरू होने के समय मौजूद मानदंडों का पालन करने के बाद नियुक्ति के लिए अनुशंसित किया गया था। प्रत्यर्थी को मौजूदा मानदंडों के अनुसार सहायक प्रशिक्षक के रूप में नियुक्त करने की सिफारिश के लिए चुना गया था। इससे पहले कि उन्हें नियुक्त किया जा सके या नियुक्ति के लिए विचार किया जा सके, भर्ती के मानदंडों को प्रत्यर्थी के पूर्वाग्रह के कारण बदल दिया गया था। सवाल यह है कि क्या वे बदले हुए मानदंड प्रत्यर्थी पर लागू होंगे।*
>
> *20. प्रत्यर्थी की ओर से जिन निर्णयों का हवाला दिया गया है, उनमें चयन प्रक्रिया के दौरान संशोधित और/या बदले गए नियमों की प्रयोज्यता के संबंध में कानून को स्पष्ट रूप से समझाया गया है। वे सभी एक स्वर में कहते हैं कि चयन की प्रक्रिया शुरू होने की तारीख पर मौजूद मानदंड या नियम ऐसे चयन को नियंत्रित करेंगे और ऐसे मानदंडों में कोई भी बदलाव जारी प्रक्रिया को प्रभावित नहीं करेगा, जब तक कि विशेष रूप से उन्हें पूर्वव्यापी प्रभाव नहीं दिया जाता।*

17. हालांकि एआईसीटीई द्वारा बनाए गए और दिनांक 01.03.2019 की अधिसूचना के माध्यम से प्रकाशित विनियमन वैधानिक कानून है और इसलिए इसे लागू किया जा सकता है, फिर भी न तो एआईसीटीई और न ही राज्य सरकार उस कानून को पूर्वव्यापी रूप से लागू करना चाहती है। बल्कि, राज्य सरकार ने इस पर विचार किया और अपने स्वयं के नियम यानी यूपी नियम बनाए। इन्हें 09.06.2021 को प्रकाशित किया गया और संभावित रूप से लागू किया गया।

18. यदि उस प्रयास (राज्य सरकार द्वारा) को नजरअंदाज किया जाता है, तो इसे कभी भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है - अधिसूचना के खंड 1.4 (ई) और (एफ) के तहत, एआईसीटीई ने स्वयं उस कानून को पूर्वव्यापी रूप से लागू नहीं किया था। बल्कि, खंड 1.4 (ई) के तहत, इसने पहले उन सभी लंबित चयनों को विशेष रूप से संरक्षित किया जो साक्षात्कार के चरण को पार कर चुके थे। उन चयनों को अधिसूचना द्वारा कानून में किए गए बदलाव के प्रभाव से पूरी तरह से अलग रखा गया था। असम लोक सेवा आयोग बनाम प्रांजल कुमार सरमा, (2020) 20 एससीसी 680 में, एक समान खंड 12.2 (असम लोक सेवा आयोग (व्यवसाय का संचालन) प्रक्रिया, 2019 में, इस प्रकार कहा गया है:

> *"12.2. ... और इन प्रक्रियाओं के प्रारंभ होने की तिथि पर लंबित साक्षात्कार, चयन या प्रतियोगी परीक्षा के संबंध में कोई भी कार्यवाही ऐसे प्रारंभ से पहले लागू नियमों के प्रावधानों के अनुसार जारी और पूरी की जा सकती है।*

19. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसकी व्याख्या चल रहे चयन की रक्षा के रूप में की गई थी। यह तर्क दिया गया:

> *"17. किसी को 2019 प्रक्रिया में शामिल बचत खंड 12.2 के बारे में भी जागरूक होना चाहिए जो यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट करता है कि 2019 प्रक्रिया शुरू होने की तारीख पर लंबित साक्षात्कार/चयन या प्रतियोगी परीक्षाओं को 2010 के नियमों के अनुसार जारी रखा जाना चाहिए और पूरा किया जाना चाहिए। "*

20. दूसरा, खंड 1.4 (एफ) के तहत, ऐसे मामलों में जहां साक्षात्कार चरण आयोजित नहीं किया गया था, एआईसीटीई ने सभी संस्थानों/नियोक्ताओं को संशोधित कानून के अनुसार पहले 'शुद्धिपत्र प्रकाशित' करने और लंबित आवेदनों (चयन के लिए) को संसाधित करने का निर्देश दिया। इस प्रकार, एआईसीटीई द्वारा संशोधित/परिवर्तित कानून को सशर्त लागू करने पर विचार किया गया। केवल, राज्य सरकार द्वारा विज्ञापन के लिए 'शुद्धिपत्र' प्रकाशित करने के बाद, परिवर्तित कानून विज्ञापित पदों के लिए लंबित चयन प्रक्रिया पर लागू होगा, अन्यथा नहीं।

21. इसलिए, वर्तमान मामले में भी, हालाँकि चयन प्रक्रिया साक्षात्कार के चरण से पहले लंबित थी, अधिसूचना के तहत निर्धारित परिवर्तित पात्रता को अपने आप लागू नहीं किया जा सका। इससे पहले कि इसे लागू किया जा सके और विवादित चयन प्रक्रिया (पहले से ही चल रही है) पर लागू किया जा सके, नियोक्ता यानी राज्य सरकार को इसे लंबित चयन प्रक्रिया पर लागू करने और उस प्रभाव के लिए एक शुद्धिपत्र विज्ञापन के माध्यम से अपना निर्णय प्रकाशित करने का निर्णय लेना आवश्यक था। ऐसा कभी नहीं किया गया। राज्य सरकार द्वारा शुद्धिपत्र के प्रकाशन के अभाव में, लंबित/आक्षेपित चयन प्रक्रिया के लिए संशोधित कानून (अधिसूचना के तहत) को लागू करने के लिए निर्धारित पूर्व शर्त कभी भी पूरी नहीं की गई थी। इसलिए, विनियम 1.4 (एफ) आक्षेपित चयन प्रक्रिया के लिए लागू करने योग्य नहीं बन गया।

22. यूपी नियमों को लागू करने मात्र से भी आक्षेपित चयन प्रक्रिया पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा। ये वैधानिक नियम हैं, इसलिए इन्हें पूर्वव्यापी रूप से लागू करने का कोई इरादा या इरादा नहीं है। स्पष्ट रूप से, वे पूरी तरह से संभावित हैं।

23. यद्यपि रिट न्यायालय वैधानिक कानून के स्पष्ट अक्षर के विरुद्ध समानता को लागू नहीं कर सकता है, फिर भी वह हमेशा उस वैधानिक कानून में समानता को मान्यता दे सकता है। यहां, अधिसूचना के माध्यम से (अपने मानदंडों में) संशोधन लाते समय, एआईसीटीई ने समापन के विभिन्न चरणों में चल रही चयन प्रक्रियाओं को ध्यान में रखते हुए काम किया। इसके प्रति सचेत रहते हुए, इसने सबसे पहले ऐसी चयन प्रक्रिया को पूरी तरह से संरक्षित किया जहां साक्षात्कार के चरण को पार किया जा सकता था। दूसरा, इसने अन्य (कम पूर्ण) चयन प्रक्रिया को बदलने की अनुमति दी, बशर्ते कि इस तरह के बदलाव को पहले संबंधित ''संस्थानों/नियोक्ताओं'' द्वारा अपनाया जाए और शुद्धिपत्र के प्रकाशन के माध्यम से उस जानकारी को नष्ट कर दिया जाए।

24. इस प्रकार, अधिसूचना में किसी भी चल रही चयन प्रक्रिया (असंशोधित कानून के तहत) को स्वाभाविक या मौलिक रूप से या लाइलाज रूप से दोषपूर्ण नहीं माना गया। बल्कि, जैसा कि ऊपर बताया गया है, इसने उन चयन प्रक्रियाओं की रक्षा करने की मांग की। अधिसूचना में विधायी रूप से शामिल उस न्यायसंगत सिद्धांत को पूर्ण प्रभाव दिया जाना चाहिए। इसके परिणामों को टाला नहीं जा सकता या हल्के में नहीं लिया जा सकता। नतीजतन, चयन प्रक्रिया में मौजूद कानून (संशोधित कानून के अनुसार) में किसी भी अंतर्निहित दोष की अनुपस्थिति में, न्यायालय ऐसे दोष को रद्द करने के लिए मान्यता देने में जल्दबाजी नहीं कर सकता है, हालांकि, चयन प्रक्रिया, राज्य सरकार ने नहीं की है उस संशोधित कानून को विवादित चयन प्रक्रिया में लागू करने के लिए कोई कदम उठाया। उस सीमा तक, अधिसूचना के खंड 1.4(एफ) में निहित न्यायसंगत सिद्धांत को याचिकाकर्ताओं के पक्ष में मान्यता दी जा रही है।

25. तेज प्रकाश पाठक और अन्य बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय और अन्य (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के अन्य आदेश के आधार पर विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने जिस सिद्धांत पर अवलम्ब लिया, वह स्पष्ट रूप से वर्तमान मामले पर लागू नहीं है। एकमात्र प्रश्न जो सर्वोच्च न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ के आदेश द्वारा सर्वोच्च न्यायालय की एक बड़ी पीठ को भेजा गया प्रतीत होता है, वह यह है कि क्या चयन की प्रक्रिया निर्धारित करने वाले आयोग के सिद्धांत "नियमों को लंबित रहने तक नहीं बदला जा सकता है" चयन प्रक्रिया" ऐसे मामले पर लागू होगी "जहां परिवर्तन की मांग चयन के लिए अधिक कठोर जांच करने के लिए की गई है"। स्पष्ट है, मौजूदा मामले में यह सवाल ही नहीं उठता।

26. यहां, अधिसूचना और यूपी नियमों द्वारा किए गए संशोधनों के आधार पर, (चयनित उम्मीदवारों) के बीच विचार के क्षेत्र को सीमित करने के लिए अधिक कठोर शर्त नहीं लगाई जा रही है, बल्कि पात्रता शर्तों में आमूल-चूल परिवर्तन किया गया है। न केवल पद का नामकरण बल्कि उसके समूह वर्गीकरण, निर्धारित योग्यता के साथ-साथ पे-बैंड में भी बदलाव किया गया है। असंशोधित कानून के तहत, लाइब्रेरी साइंस में डिप्लोमा के साथ स्नातक निर्धारित योग्यता थी, जबकि संशोधित कानून के तहत, पुस्तकालय विज्ञान में स्नातकोत्तर डिग्री, कम से कम प्रथम श्रेणी या समकक्ष और कंप्यूटर के ज्ञान के साथ लगातार अच्छा अकादमिक रिकॉर्ड, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा आयोजित राष्ट्रीय स्तर की परीक्षा के साथ शैक्षिक योग्यता के रूप में निर्धारित किया गया है। किसी भी मामले में, इस मुद्दे को एक बड़ी पीठ को सौंपने का आदेश होने के कारण, यह वर्तमान में पहले से मौजूद मिसाल को कमजोर करने के लिए कोई कानूनी प्रभाव नहीं डालता है।

27. रामजीत सिंह कर्दम और अन्य बनाम संजीव कुमार और अन्य (उपरोक्त) में, चयन शारीरिक प्रशिक्षण प्रशिक्षक (संक्षेप में पीटीआई) के पद पर किया जाना था। उस चयन को हरियाणा कर्मचारी चयन आयोग द्वारा जारी विज्ञापन संख्या 6, 2006 दिनांक 20.07.2006 के माध्यम से विज्ञापित किया गया था। अन्य बातों के अलावा, उस मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित प्रश्न विचार के लिए तैयार किया गया था:

"क्या विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्देशानुसार कोई नया चयन नहीं किया जा सकता है

क्योंकि 2012 के नियमों के अनुसार, पीटीआई के पद को मृत कैडर के रूप में घोषित किया गया है और पद को टीजीटी शारीरिक शिक्षा के पद में विलय कर दिया गया है?"

28. वहां, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा असंशोधित कानून के तहत आयोजित मूल चयन को कानून के विपरीत पाया गया। मूल विज्ञापन के अनुरूप नये चयन से एक और चुनौती खड़ी हो गयी। सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि 2006 के मूल विज्ञापन संख्या 6 के तहत हुए नए चयन में कोई खामी नहीं थी। वास्तव में, यह विशेष रूप से देखा गया था, इसे इसके तार्किक अंत तक ले जाना चाहिए था।

29. यहां, यह ध्यान दिया जाना चाहिए, विद्वान स्थायी वकील यह स्थापित करने में सक्षम नहीं हैं - राज्य के अधिकारियों ने कार्यवाही के किसी भी चरण में मांग वापस ले ली। यह सच है, मात्र चयन से चयनित उम्मीदवार को नियुक्ति पाने का कोई अधिकार नहीं मिल जाता और यह न्यायालय अभी तक इस संबंध में कोई सकारात्मक रिट जारी नहीं कर सकता है, केवल प्रशासनिक अक्षमता या प्रशासनिक कार्रवाई की अपूर्णता के कारण चयन प्रक्रिया को रोकने या बर्बाद करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

30. एक बार जब कानून में संशोधन हो गया, तो चल रहे चयन पर इसके प्रभाव और प्रभाव पर विचार करना राज्य के अधिकारियों पर निर्भर था। चूँकि एक सिद्धांत मौजूद है, जिसे **रामजीत सिंह कर्दम और अन्य बनाम संजीव कुमार और अन्य (सुप्रा)** मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विधिवत मान्यता दी गई है, जिसके तहत केवल इसलिए कि जिस कैडर के तहत पद विज्ञापित किया गया है, वह मृत कैडर नहीं बन जाएगा। चयन प्रक्रिया को स्वचालित रूप से विफल करने के लिए (ऐसे अंतिम कैडर के लिए ऐसे पद पर), उस निर्णय के प्रभाव का मूल्यांकन करने के बाद, याचिकाकर्ताओं के दावे के संबंध में प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा एक सचेत निर्णय लेने की आवश्यकता थी।

31. स्पष्ट रूप से, न केवल राज्य अधिकारी उस निर्णय को लेने और शुद्धिपत्र प्रकाशित करने में विफल रहे, दुर्भाग्य से और अनजाने में, उन्होंने उस जिम्मेदारी और कार्य को यूपीएसएसएससी और या/यूपीपीएससी पर स्थानांतरित करने का असफल प्रयास किया। राज्य प्राधिकारियों अर्थात् सचिव द्वारा निदेशक तकनीकी शिक्षा को लिखे गए पत्र और निदेशक तकनीकी शिक्षा द्वारा सचिव यूपीएसएसएससी को लिखे गए पत्र का आशय यह है कि उक्त विशेषज्ञ परीक्षा निकाय स्वयं मांग वापस ले सकता है। वह कार्य क्षेत्राधिकार या अधिकार, उसके पास नहीं था। इसका प्रयोग राज्य सरकार द्वारा कभी नहीं किया गया - ऐसा अधिकार क्षेत्र उसके पास निहित है।

32. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, विनियमन 1.4(एफ) के शुद्धिपत्र को प्रकाशित करने के लिए राज्य सरकार पर डाले गए विशिष्ट कानूनी दायित्व का सामना करना पड़ता है और, यूपीएसएसएससी पर उस आवश्यक कार्य के किसी भी प्रतिनिधिमंडल या उप-प्रतिनिधिमंडल की अनुपस्थिति में, बाद वाले को मांग को रद्द करने या इसे संशोधित करने के लिए कभी भी अधिकृत या सक्षम नहीं किया गया था। इसलिए, चयन प्रक्रिया को जारी रखने और पूरा करने में यूपीएसएसएससी के आचरण में कोई अंतर्निहित या अन्य दोष नहीं है।

33. निर्विवाद रूप से, यूपीएसएसएससी एक स्वायत्त निकाय है। साथ ही, इसके अधिकार और कार्य की भी सीमाएँ हैं। यह राज्य एजेंसियों द्वारा मांगी गई सहभागिता पर कार्य करता है। यह किसी भी समय भरी जाने वाली विभिन्न सेवाओं में रिक्तियों की संख्या निर्धारित करने के लिए स्वयं कार्य नहीं कर सकता था, न ही यह ऐसे पद पर कोई चयन प्रक्रिया शुरू करने के लिए आगे बढ़ सकता है, न ही यह ऐसे चयन के लिए लागू होने वाली पात्रता शर्तों को निर्धारित या संशोधित कर सकता है। उस सीमित सीमा तक, यह हमेशा राज्य अधिकारियों पर निर्भर रहा। राज्य के अधिकारियों ने मांग जारी की और इस प्रकार पद, ग्रेड, वेतन बैंड और पात्रता शर्तों जैसी सभी आनुवंशिक विशेषताओं के साथ चयन प्रक्रिया की रूपरेखा तैयार की।

34. इसके बाद, उस रूपरेखा के विकास का चक्र यूपीएसएसएससी के साथ शुरू हुआ। यह उस स्तर पर है और इस प्रकार प्राप्त अधियाचना के संदर्भ में, यूपीएसएसएससी द्वारा विज्ञापन प्रकाशित किया गया था। यूपीएसएसएससी द्वारा शुरू की गई चयन प्रक्रिया ने परिणाम घोषित होने पर अपना चक्र पूरा कर लिया। यह परिणाम है कि यूपीएसएसएससी ने अपेक्षित पदों पर नियुक्ति देने के उद्देश्य से राज्य को भेज दिया है।

35. जबकि चयन प्रक्रिया यूपीएसएसएससी के साथ शुरू हुई थी, अधिसूचना के खंड 1.4 (एफ) के तहत अनुमति को छोड़कर, राज्य अधिकारियों के पास यूपीएसएसएससी को इसे स्थगित करने या अन्यथा इसमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता का कोई वैधानिक अधिकार नहीं था। इसका कभी सहारा नहीं लिया गया। इसके अलावा, यूपी नियमों को विवादित चयन प्रक्रिया में पूर्वव्यापी रूप से लागू नहीं किया गया था।

36. एकमात्र अन्य घटना जिसके कारण चयन की प्रक्रिया (जो कि यूपीएसएसएससी के साथ शुरू हो रही थी) में व्यवधान उत्पन्न हो सकता था, वह यह हो सकती थी कि

राज्य सरकार ने खुद ही की गई मांग को रद्द करके इनक्यूबेशन प्रक्रिया को रद्द कर दिया था। राज्य सरकार द्वारा उस शक्ति का प्रयोग नहीं किया गया है। नतीजतन, यूपीएसएसएससी दिनांक 16.02.2018 आदि के संचार का अनुपालन करने या अधीनता दिखाने और चल रही चयन प्रक्रिया को स्थगित करने के लिए कभी भी बाध्य नहीं हुआ। उस दस्तावेज़ में कोई कानूनी बल नहीं था।

37. यह महज एक तकनीकी निर्माण नहीं है जो न्यायालय द्वारा किया जा रहा है। एक विशेषज्ञ निकाय द्वारा चयन की प्रक्रिया में समय लगता है और ऊर्जा और संसाधनों की समर्पित तैनाती की आवश्यकता होती है। वे प्रचुर मात्रा में उपलब्ध नहीं हैं। इसके अलावा, अक्सर ऐसे विशेषज्ञ निकायों द्वारा कई समान चयन प्रक्रियाएं एक साथ की जाती हैं। इसलिए, एक समय-सारिणी बनाई जाती है, और यह विभिन्न भर्तियाँ करने के प्रयोजनों के लिए, विभिन्न परीक्षाओं के विभिन्न चरणों का संचालन करने के लिए ऐसे विशेषज्ञ निकायों के पास मौजूद होती है।

38. कानून के संदर्भ में जो स्पष्ट रूप से कहा गया है - चयन नियुक्ति का अधिकार नहीं देता है, राज्य अधिकारियों को अच्छे या अन्य कारणों से चयन प्रक्रियाओं को बीच में ही रोकने की अनुमति देने का कोई औचित्य नहीं है। संक्षेप में, यूपीएसएसएससी जैसी स्वायत्त विशेषज्ञ संस्था राज्य सरकार के आदेश पर चयन प्रक्रिया संचालित करने के लिए उसकी दया पर निर्भर नहीं थी। यूपीएसएसएससी को ऐसा करने की अनुमति देना चयन प्रक्रिया में एक और अनिश्चितता लाना होगा क्योंकि इससे अधिक अक्षमताएं, तदर्थवाद और इसलिए भ्रष्टाचार हो सकता है।

39. **ज्ञान प्रकाश चौबे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (उपरोक्त)** में इस न्यायालय की समन्वय पीठ का निर्णय स्पष्ट रूप से न्यायालय के समक्ष (उस मामले में) यूपीएसएसएससी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए बयान पर आधारित है - कि मांग वापस ले ली गई थी। यहां, अवसर दिए जाने पर, यूपीएसएसएससी के विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करेंगे, राज्य सरकार द्वारा मांग वापस लेने के लिए कोई संचार जारी नहीं किया गया था। विद्वान स्थायी अधिवक्ता भी उस कथन का खंडन करने में सक्षम नहीं हैं। स्पष्टतः, इसे स्वीकार किया जाना चाहिए, कानून के अनुसार मांग वापस नहीं ली गई है।

40. केवल इसलिए कि राज्य सरकार ने सचिव यूपीएसएसएससी को अधियाचना वापस लेने और/या चयन प्रक्रिया को स्थगित रखने के लिए लिखा था, इससे कानूनी प्रभाव नहीं पड़ा जैसा कि ज्ञान प्रकाश चौबे बनाम यूपी राज्य और अन्य (उपरोक्त) के मामले में न्यायालय में प्रस्तुत किया गया था। ध्यान देने योग्य बात यह है कि उस मामले में याचिकाकर्ता द्वारा तथ्यात्मक बयान का खंडन नहीं किया गया था। जाहिर तौर पर, यह निर्णय न्यायालय के समक्ष दिए गए तथ्य के गलत बयान पर आधारित है। जहाँ तक उस कथन को सही नहीं दिखाया गया है और ऐसा कोई कानूनी प्रभाव नहीं दिखाया गया है जिससे न्यायालय यह अनुमान लगा सके कि चयन प्रक्रिया राज्य सरकार द्वारा निरस्त कर दी गई थी, उक्त निर्णय उस मामले के अपने तथ्यों के आधार पर लिया गया निर्णय पाया जाता है। यह कोई कानून नहीं बनाता।

41. शंकरसन दास बनाम भारत संघ (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आधार पर विद्वान स्थायी अधिवक्ता की प्रस्तुति के संबंध में, उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यदि आवश्यक हो, तो यह राज्य सरकार का काम है कि वह कानून द्वारा अनुमत तरीके से कार्य करे और यह राज्य सरकार का काम नहीं है कि वह उस जिम्मेदारी को यूपीएसएसएससी पर स्थानांतरित कर दे या उस संबंध में न्यायालय की ओर देखे।

42. प्रशासनिक निर्णय अधिकृत प्राधिकारियों द्वारा लिए जाने हैं। अक्सर, वे न्यायिक समीक्षा में हस्तक्षेप की सीमित गुंजाइश पेश करते हैं। हालाँकि, यह निर्णय लेते समय, वर्तमान तथ्यों में, अन्य बातों के अलावा, राज्य सरकार को उस अभ्यास के उद्देश्य के प्रति सचेत रहना होगा; कानून में संदर्भ; कार्रवाई का समय और उसके परिणाम भी। उसे अपने फैसले के फायदे और नुकसान तथा इसमें शामिल नागरिकों पर इसके प्रभाव को भी तौलना होगा।

43. यहां यह भी ध्यान रखना होगा कि चयन प्रक्रिया में किसी प्रकार की गड़बड़ी का आरोप नहीं है, अन्यथा वह पूर्ण है। यद्यपि राज्य सरकार के पास संपूर्ण परिणाम घोषित करने का संवैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त अधिकार है, फिर भी उसे इस तथ्य का ध्यान रखना चाहिए कि वह परिणाम (वर्तमान मामले के तथ्यों में) उसके स्वयं के आचरण के परिणामस्वरूप उत्पन्न हो सकता है। वह दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम न तो कानून के संचालन के माध्यम से और न ही चयन प्रक्रिया में किसी बुनियादी दोष के कारण उत्पन्न होगा।

44. तदनुसार, प्रत्यर्थी एक महीने के भीतर यूपीएसएसएससी द्वारा दिनांक 10.12.2021 को घोषित परिणाम के अनुसार नियुक्तियां देने के लिए आगे बढ़ सकता है (क्योंकि इसमें कोई कानूनी बाधा नहीं है)। हालाँकि, यदि राज्य प्राधिकारियों की राय अलग है, तो ऊपर दी गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, ऐसा निर्णय उसी समय के भीतर किया जा सकता है। उस स्थिति में, पक्षकारों के अधिकार प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा किए जाने

वाले निर्णय का पालन करेंगे। ऊपर जारी निर्देश के अनुसार रिट याचिका को अनुमति दी जाती है। लागत के लिए कोई आदेश नहीं।

(2023) 1 ILRA 1284

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 05.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

रिट-ए संख्या 19409/2020 और अन्य संबद्ध मामलों के साथ

विजय गुप्ता ...याचिकाकर्ता

बनाम

उ.प्र. राज्य एवं अन्य ...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

सूर्य प्रकाश सिंह

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता:

सी.एस.सी.

क. शिक्षा कानून - भर्ती - घोषणा में असमानता - आवेदन पत्र में त्रुटि का सुधार - किसी भी उम्मीदवार को ऑनलाइन आवेदन पत्र भरते समय की गई किसी भी गलती को सुधारने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए ताकि चयन प्रक्रिया के सुचारू संचालन पर प्रभाव पड़े और उम्मीदवारों की पारस्परिक योग्यता में किसी भी परिवर्तन या बदलाव से बचा जा सके। अंततः अंतिम योग्यता/चयन सूची में बदलाव आएगा। (पैरा 7)

ख. जहां भी किसी उम्मीदवार ने खुद को असुविधाजनक स्थिति में रखा हो, उसकी उम्मीदवारी रद्द नहीं की जाएगी, लेकिन यदि उम्मीदवार को किसी लाभप्रद स्थिति में रखा गया है जो उसके दावे के अधिकार से परे है, तो उसकी उम्मीदवारी रद्द कर दी जाएगी। (पैरा 9)

यदि कोई उम्मीदवार अपने ऑनलाइन आवेदन पत्र में कुछ जानकारी प्रस्तुत करता है, जो वास्तविक जानकारी के अनुरूप नहीं है, लेकिन उसे किसी भी लाभप्रद स्थिति में नहीं रखता है, ऐसी गलत सूचना, छोड़ देने में, उम्मीदवारी को अस्वीकार करने का आधार नहीं माना जा सकता है। (पैरा 10)

जहां भी उम्मीदवार किसी लाभ का दावा नहीं कर रहा था और वास्तव में, उसने खुद को वंचित स्थिति में रखा था, उसकी उम्मीदवारी रद्द नहीं की जाएगी, लेकिन उम्मीदवार को आवेदन पत्र में जो उद्धृत या अनुमानित किया गया था उससे संतुष्ट रहना होगा। (पैरा 12)

ग. जहां कहीं भी उम्मीदवार को अनुचित लाभ हो सकता है यदि विसंगति पर ध्यान नहीं दिया जाता है, भले ही लाभ का प्रतिशत अधिक या कम हो, ऐसे उम्मीदवार की उम्मीदवारी रद्द कर दी जानी चाहिए। (पैरा 12)

इन वर्तमान रिट याचिकाओं में विवाद "शिक्षा मित्र" से संबंधित आवेदन पत्र में उल्लिखित कुछ विसंगतियों/त्रुटि को लेकर है, जिसमें कुछ याचिकाओं में शिक्षा मित्र के रूप में काम करने के लिए भारांक अंक उचित रूप से नहीं दिए गए थे, जबकि कुछ मामलों में याचिकाकर्ताओं ने को ग़लती से शिक्षा मित्र मान लिया गया था और हालाँकि शुरुआत में उन्हें नियुक्ति दे दी गई थी, हालाँकि, बाद में उनकी नियुक्ति रद्द कर दी गई और उनके खिलाफ परिणामी वसूली आदेश जारी किए गए। ये विसंगतियां/त्रुटि या तो उल्लेख न करने या गलत कुंजी/कोड पर क्लिक करने के कारण उत्पन्न हुई हैं, जिसके परिणामस्वरूप शिक्षा मित्र के रूप में काम करने के लिए गलत भारांक दिया गया है या गलती से नियमित

अनुवादित

चैनल के माध्यम से बीटीसी या पत्राचार के माध्यम से बीटीसी का विकल्प चुना गया है। (पैरा 11)

माननीय न्यायालय ने पाया है कि यह स्पष्ट है कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों के संदर्भ में सक्षम प्राधिकारी द्वारा इस मुद्दे की जांच नहीं की गई है। इसलिए,

- शिक्षा मित्रों के संबंध में उम्मीदवारों द्वारा की गई त्रुटि के कारण उनकी उम्मीदवारी को खारिज करने वाले सभी आक्षेपित आदेशों को अपास्त किया जाता है;

- यह स्पष्ट किया जाता है कि जिन अभ्यर्थियों के नाम दिनांक 12.5.2020 की चयन सूची में स्थान नहीं पाते हैं, उन्हें अंकों के परिवर्तन से कोई लाभ नहीं मिलेगा क्योंकि उनकी योग्यता स्थिति इस कारण से नहीं बदली जाएगी कि यदि इस स्तर पर ऐसा होने की अनुमति दी जाती है, तो इससे पूरी चयन प्रक्रिया खुल जाएगी जो इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश की भावना नहीं है;

- इन मामलों को पुनः जांच के लिए संबंधित जिले के प्राधिकारी को भेजा जाता है। (v) सक्षम प्राधिकारी द्वारा संबंधित रिट याचिका को संबंधित उम्मीदवार का अभ्यावेदन मानते हुए, इस आदेश की प्रति प्राप्त होने की तारीख से आठ सप्ताह की अवधि के भीतर पूरी प्रक्रिया पूरी की जाएगी;

- आगे यह निर्देशित किया जाता है कि यदि कोई अभ्यर्थी नियुक्ति के लिए पात्र पाया जाता है और उपरोक्त निर्देशों के अनुसार उसके मामले की समीक्षा करने पर उसे नियुक्ति का मौका दिया जाता है, तो उसे कार्यभार ग्रहण करने की तिथि से सभी लाभ प्राप्त होंगे।

- संबंधित प्राधिकारी द्वारा शुरू की गई कोई भी वसूली कार्यवाही स्थगित रखी जाएगी और संबंधित जिले के सक्षम प्राधिकारी के निर्णय/परिणाम के अधीन होगी। (पैरा 16)

यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय ने किसी व्यक्तिगत मामले के गुण-दोष पर अपना विचार व्यक्त नहीं किया है और संबंधित जिले का सक्षम प्राधिकारी स्वतंत्र निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र है। (पैरा 17)

रिट याचिकाओं का निस्तारण किया गया। (ई 4)

नजीरें जिनका पालन किया गया:

1. ज्योति यादव एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य, रिट याचिका संख्या 322/2021, 08.04.2021 को निर्णय लिया गया (पैरा 8)
2. राहुल कुमार बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य, रिट याचिका संख्या 378/2021, 29.06.2021 (पैरा 9)
3. अर्चना चौहान बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य, सिविल अपील संख्या 3068/2020 (पैरा 10)
4. आशुतोष कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य, विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 302/2020 (पैरा 14)

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला द्वारा सुनाया गया)

1. संबंधित याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्तागणों श्री अभिषेक खरे, सुश्री आहुति अग्रवाल, श्री वीरेंद्र कुमार दुबे, श्री दीपक सिंह, श्री पी.के. मिश्रा और उ.प्र. बेसिक शिक्षा बोर्ड के लिए अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता अधिवक्ता श्री रण विजय सिंह को सुना और रिकॉर्ड का परिशीलन किया।

2. इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित करने वाली रिट याचिकाओं का वर्तमान समूह याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर किया गया है, वर्ष 2019 में उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा जारी विज्ञापन के अनुसरण में प्राथमिक विद्यालय में सहायक अध्यापकों के पद के लिए जिनकी उम्मीदवारी या तो ऑनलाइन आवेदन और उक्त उम्मीदवार की वास्तविक स्थिति के बीच अशुद्धि और/या विसंगति के कारण उचित नहीं पाई गई थी, या भले ही इन याचिकाकर्ताओं की उम्मीदवारी पर विचार किया गया हो और इन

याचिकाकर्ताओं को अंतिम चयन सूची में जगह मिल गई हो, हालाँकि बाद में, विभाग ने ऑनलाइन आवेदन में की गई घोषणा और उक्त उम्मीदवार की वास्तविक स्थिति में असमानता पाते हुए, उनकी भर्ती रद्द कर दी और परिणामस्वरूप प्रतिवादी से वसूली का निर्देश दिया।

3. दोनों पक्षों ने अपनी बात को पुष्ट करने और अपने-अपने मामलों को आगे बढ़ाने के लिए इस अदालत के साथ-साथ माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों/आदेशों पर भरोसा किया है और उनमें से प्रत्येक ने यह बताने की कोशिश की है कि वर्तमान मामला एक कवर किया हुआ मामला है और इस प्रकार अंतिम रूप से इसका निर्णय किया जा सकता है।

4. इन रिट याचिकाओं में शामिल मुद्दों पर निर्णय लेने की सामान्य और सुसंगत पृष्ठभूमि एक संकीर्ण दायरे में निहित है।

5. उत्तर प्रदेश राज्य ने राज्य के विभिन्न जिलों में प्राथमिक विद्यालयों में सहायक शिक्षकों के 69000 पदों को भरने के लिए एक अधिसूचना जारी की, जिसके अनुसार परीक्षा नियामक प्राधिकारी, प्रयागराज द्वारा सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा, 2019 आयोजित की गई थी। भर्ती प्रक्रिया के अनुसार, उम्मीदवारों को ऑनलाइन आवेदन करना था, जिन्हें परीक्षा में उपस्थित होने के लिए पंजीकरण संख्या और रोल नंबर आवंटित किया गया था, जिसके परिणाम 12.05.2020 को घोषित किए गए थे। परिणाम घोषित होने के बाद, उ.प्र. बेसिक शिक्षा परिषद ने काउंसलिंग और नियुक्ति के लिए सफल उम्मीदवारों से ऑनलाइन आवेदन आमंत्रित किए।

6. प्रासंगिक रूप से, उत्तर प्रदेश राज्य की उपरोक्त महत्वाकांक्षी भर्ती योजना इस न्यायालय के साथ-साथ माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दायर मुकदमों से घिर गई थी, जिसके परिणामस्वरूप स्पष्टीकरण में शासनादेश दिनांक 4 दिसंबर, 2020 को जारी किया गया और अपर मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा सहायक शिक्षकों की नियुक्ति के संबंध में दिनांक 05.03.2021 को एक और पत्र जारी किया गया।

7. दोनों शासनादेशों को सामंजस्यपूर्ण रूप से पढ़ने से कोई भी इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि ये दोनों आदेश एक उद्देश्य के साथ जारी किए गए हैं, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ कहा गया है कि किसी भी उम्मीदवार को ऑनलाइन आवेदन पत्र भरते समय की गई किसी भी गलती को सुधारने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए ताकि चयन प्रक्रिया के सुचारू संचालन पर प्रभाव पड़े और उम्मीदवारों की पारस्परिक योग्यता में किसी भी परिवर्तन या बदलाव होने से बचा जा सके। जिससे अंततः अंतिम योग्यता/चयन सूची में बदलाव आएगा।

8. हालाँकि दोनों पक्षों द्वारा इस न्यायालय के विभिन्न आदेशों और निर्णयों का हवाला दिया गया है, तथापि इस न्यायालय ने पाया है कि स्पष्ट रूप से माननीय सर्वोच्च न्यायालय के दो निर्णय हैं, जो आज की तारीख में मान्य हैं। दिनांक 05.02.2021 का संचार ज्योति यादव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (रिट याचिका संख्या 322/2021) के मामले में 8 अन्य रिट याचिकाओं के साथ माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष व्याख्या का विषय था, जिसमें माननीय न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 8 अप्रैल, 2021 को इस प्रकार अवधारित किया:

> *"14. दिनांक 05.03.2021 के संचार के अनुसार, जहां भी उम्मीदवारों द्वारा की गई गलतियों ने कथित तौर पर उनके वास्तविक हकदार से अधिक अतिरिक्त अंक या वेटेज दिया, उनकी उम्मीदवारी खारिज कर दी जाएगी। हालाँकि, जहाँ भी उम्मीदवारों द्वारा की गई गलतियाँ वास्तव में उन्हें उनकी मूल पात्रता के विपरीत नुकसान में डालती हैं या भिन्नता विश्वविद्यालय या जारीकर्ता प्राधिकारी के लिए*

जिम्मेदार हो सकती है, उक्त संचार द्वारा एक अपवाद बनाया गया था। इसलिए इन दोनों श्रेणियों के उम्मीदवारों के साथ अलग-अलग व्यवहार करने का कारण अतार्किक नहीं कहा जा सकता।

पहले मामले में, आवेदन पत्र में दिए गए अंकों या जानकारी के आधार पर उम्मीदवार को अनुचित लाभ मिलेगा, जबकि बाद की श्रेणी के मामलों में उम्मीदवार वास्तव में नुकसान में होगा या जहां भिन्नता के लिए उन्हें जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। बाद की श्रेणी के उम्मीदवारों को घोषणा की कठोरता से राहत दी गई है। वर्गीकरण स्पष्ट एवं सटीक है। जो लोग संभवतः अनुचित लाभ लेकर चले जा सकते हैं, वे घोषणा की शर्तों से शासित होते रहेंगे, जबकि अन्य श्रेणी को कुछ राहत दी जाएगी।

15. सभी विरोधी तर्कों पर विचार करने के बाद, हमारे विचार में, दिनांक 05.03.2021 के संचार ने एक तर्कसंगत अंतर बनाया और पूरी प्रक्रिया की अखंडता को बनाए रखते हुए निष्पक्षता हासिल करने के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए डिज़ाइन किया गया था। यदि, हर मोड़ पर, उम्मीदवारों की किसी भी गलती को व्यक्तिगत स्तर पर संबोधित किया जाएगा और उस पर विचार किया जाएगा, तो चयन की पूरी प्रक्रिया में देरी हो सकती है और पूर्वाग्रह हो सकता है। मामले में निश्चितता के लिए कुछ मानदंड निर्धारित करने होंगे और ऐसी शर्तों के निर्धारण को मनमाना या तर्कहीन नहीं कहा जा सकता है। प्रत्येक उम्मीदवार को दिशानिर्देशों और विज्ञापन द्वारा दो बार सूचित किया गया था।

16. दिनांक 05.03.2021 के संचार को सही पाए जाने पर, याचिकाकर्ताओं के मामलों को पूरी तरह से उक्त संचार की कठोरता द्वारा शासित माना जाना चाहिए।

17. इसलिए, हमें इन याचिकाओं में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं दिखता है और याचिकाकर्ताओं को उनके द्वारा की गई गलतियों को सुधारने के लिए दिनांक 05.03.2021 के संचार के दायरे से परे कोई अवसर नहीं दिया जा सकता है। इसलिए, हम प्रस्तुतियाँ अस्वीकार करते हैं और इन सभी याचिकाओं को खारिज करते हैं।"

9. इस प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि जहां भी किसी उम्मीदवार ने खुद को नुकसानदेह स्थिति में रखा है, तो उसकी उम्मीदवारी रद्द नहीं की जाएगी, लेकिन यदि उम्मीदवार को किसी लाभकारी पद पर रखा गया है जो उसके दावे के अधिकार से परे है, तो उसकी उम्मीदवारी रद्द कर दी जाएगी। राहुल कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (रिट याचिका संख्या 378/2021) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 29 जून, 2021 को पारित निर्णय भी इसी आशय का है। उपरोक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या 7, 8 और 9 को उद्‌धृत करना लाभदायक होगा, जो इस प्रकार है:

"7. हमें व्यक्तिगत तथ्य स्थिति पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि ऊपर बताए गए शासनादेश और परिपत्र को पढ़ने से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि जहां भी किसी उम्मीदवार ने खुद को वंचित स्थिति में रखा है, जैसा कि ऊपर बताया गया है, उसकी उम्मीदवारी रद्द

नहीं की जाएगी बल्कि उसे अनुमानित नुकसान के साथ गिना जाएगा; लेकिन यदि उम्मीदवार ने एक लाभप्रद स्थिति का अनुमान लगाया है जो उसके उचित देय या अधिकार से परे है, तो उसकी उम्मीदवारी रद्द कर दी जाएगी। शासनादेश और परिपत्र की कठोरता स्पष्ट है कि जहां भी उम्मीदवार को अनुचित लाभ हो सकता है, यदि विसंगति पर ध्यान नहीं दिया जाता है, भले ही लाभ का प्रतिशत अधिक या कम हो, तो ऐसे उम्मीदवार की उम्मीदवारी रद्द कर दी जानी चाहिए। हालाँकि, जहाँ भी उम्मीदवार किसी लाभ का दावा नहीं कर रहा था और वास्तव में, उसने खुद को वंचित स्थिति में रखा था, उसकी उम्मीदवारी रद्द नहीं की जाएगी, लेकिन उम्मीदवार को आवेदन पत्र में उद्धृत या अनुमानित की गई बातों से संतुष्ट रहना होगा। इसलिए, ऊपर बताई गई बातों के आलोक में इन याचिकाओं का निस्तारण किया जाता है।

8. हालाँकि, यहाँ यह अवश्य कहा जाना चाहिए कि अधिकारी शासनादेश और परिपत्र के इरादे का सख्ती से पालन नहीं कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, बेसिक शिक्षक शिक्षा अधिकारी, जिला हरदोई द्वारा जारी कार्यालय आदेश दिनांक 28.03.2021 में क्रम संख्या 4 पर राघव शरण सिंह की उम्मीदवारी को रद्द करना दर्शाया गया है, हालांकि उक्त उम्मीदवार द्वारा गलती से अंकों का प्रक्षेपण उसके लिए नुकसानदेह था। तार्किक रूप से, उक्त उम्मीदवार अपनी उम्मीदवारी पर विचार करने और वंचित स्तर पर विचार करने का हकदार होगा। रिकॉर्ड से पता चलता है कि इस तरह के नुकसान के बावजूद भी उम्मीदवार चयनित होने का हकदार था।

9. ये दृष्टांत हमने सिर्फ उदाहरण के तौर पर दिया है। अधिकारियों को उनके द्वारा जारी किए गए ऐसे प्रत्येक आदेश पर विचार करना चाहिए और ऊपर बताए गए निष्कर्षों के आलोक में उचित सुधार या संशोधन करना चाहिए।"

10. हमारे सामने सूचीबद्ध कई मामलों के तथ्यों से और जैसा कि कुछ अधिवक्तागणों द्वारा बताया गया है, यह स्पष्ट है कि उपरोक्त दो निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों के संदर्भ में सक्षम प्राधिकारी द्वारा इस मुद्दे की जांच नहीं की गई है, जो विचाराधीन चयन प्रक्रिया से संबंधित है। वास्तव में, कुछ मामलों में, उम्मीदवारी की अस्वीकृति, उपरोक्त निर्णयों से पहले होती है।"

10. संक्षेप में, दोनों निर्णय दर्शाते हैं कि, यदि कोई उम्मीदवार अपने ऑनलाइन आवेदन पत्र में कुछ जानकारी प्रस्तुत करता है, जो हालांकि वास्तविक जानकारी के अनुरूप नहीं है, लेकिन उसे किसी भी लाभप्रद स्थिति में नहीं रखता है, ऐसी गलत सूचना, अलग रूप में उम्मीदवारी को अस्वीकार करने का आधार नहीं माना जा सकता है। वास्तव में, अर्चना चौहान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (सिविल अपील संख्या 3068/2020) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय भी इस बात को ध्यान में रखते हुए गलती के सुधार का निर्देश देता है कि उक्त उम्मीदवार का हिस्सा, किसी भी तरह से, उसके लाभ के लिए नहीं बल्कि उसके नुकसान के लिए था।

11. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय अभ्यर्थियों द्वारा भरे गए ऑनलाइन आवेदन में उल्लिखित

अनूदित

अंकों में विसंगति और उसे सुधारने के उनके आग्रह से संबंधित हैं, जिसकी व्याख्या शीर्ष न्यायालय ने उपरोक्त शब्दों में की है। हालाँकि, इन वर्तमान रिट याचिकाओं में विवाद "शिक्षा मित्र" से संबंधित आवेदन पत्र में उल्लिखित कुछ विसंगतियों/त्रुटि को लेकर है, जिसमें कुछ याचिकाओं में शिक्षा मित्र के रूप में काम करने के लिए भारांक अंक उचित रूप से नहीं दिए गए थे, जबकि कुछ मामलों में याचिकाकर्ताओं को ग़लती से शिक्षा मित्र मान लिया गया है और हालांकि शुरुआत में उन्हें नियुक्ति दे दी गई थी, लेकिन बाद में उनकी नियुक्ति रद्द कर दी गई और उनके खिलाफ परिणामी वसूली आदेश जारी किए गए। ये विसंगतियां/त्रुटि या तो उल्लेख न करने या गलत कुंजी/कोड पर क्लिक करने के कारण उत्पन्न हुई हैं, शिक्षा मित्र के रूप में काम करने या गलती से रेगुलर के माध्यम से बीटीसी या पत्राचार के माध्यम से बीटीसी का विकल्प चुनने पर गलत भारांक दिया गया।

12. यह न्यायालय पाता है कि सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा, 2019 के किसी भी उम्मीदवार द्वारा आवेदन पत्र में किसी भी प्रकार की त्रुटि के सुधार से संबंधित मुद्दा माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों द्वारा तय किया गया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने शासनादेशों की स्पष्ट व्याख्या की है और किसी भी प्रकार की त्रुटि पर विचार करने के लिए , यह मानते हुए एक लक्ष्मण रेखा खींची है कि शासनादेश की कठोरता और परिपत्र ने यह स्पष्ट कर दिया है कि;

> (क) जहां भी उम्मीदवार को अनुचित लाभ हो सकता है यदि विसंगति पर ध्यान नहीं दिया जाता है, भले ही लाभ का प्रतिशत अधिक या कम हो, ऐसे उम्मीदवार की उम्मीदवारी रद्द कर दी जानी चाहिए।
>
> (ख) हालाँकि, जहाँ भी उम्मीदवार किसी लाभ का दावा नहीं कर रहा था और वास्तव में, उसने खुद को वंचित स्थिति में रखा था, उसकी उम्मीदवारी रद्द नहीं की जाएगी, लेकिन उम्मीदवार को आवेदन पत्र में उद्धृत या अनुमानित की गई बातों से संतुष्ट रहना होगा।

13. रिट याचिकाओं के समूह के तथ्यों से, जैसा कि कुछ वकीलों ने सही ढंग से बताया है, यह स्पष्ट है कि उपरोक्त दो निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों के संदर्भ में सक्षम प्राधिकारी द्वारा इस मुद्दे की जांच नहीं की गई है, जो विचाराधीन चयन प्रक्रिया से संबंधित है। वास्तव में, कुछ मामलों में, रिट याचिका-ए संख्या 16122/2021 (शिप्रा यादव बनाम उ.प्र. राज्य) के अनुसार उम्मीदवारी की अस्वीकृति, उपरोक्त निर्णयों से पहले की है।

14. इस न्यायालय ने आगे पाया कि इसी तरह की परिस्थितियों में इस न्यायालय की एक खंडपीठ एक निर्णय पर पहुंची कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों को ध्यान में रखे बिना याचिकाकर्ताओं की उम्मीदवारी खारिज कर दी गई है, माननीय खण्डपीठ ने 24 मामलों के समूह में, मुख्य मामला आशुतोष कुमार श्रीवास्तव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 302/2020) का है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित निर्देश दिए हैं:

> *"11. जैसा कि हमने पाया है कि 04.12.2020 और 05.03.2021 के शासनादेशों की व्याख्या करने वाले उपरोक्त निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों के आलोक में सक्षम प्राधिकारी द्वारा मुद्दों की जांच नहीं की गई है, मामले की फिर से जांच किया जाना आवश्यक है।*
>
> *12. उम्मीदवारों द्वारा की गई त्रुटि के कारण उनकी उम्मीदवारी को खारिज करने वाले आक्षेपित आदेशों को रद्द करते हुए, हम सुप्रीम कोर्ट के पूर्वोक्त फैसले के आलोक में मामले*

की दोबारा जांच करने और उस पर अंतिम निर्णय लेने के लिए मामले को संबंधित जिले के प्राधिकारी के पास भेजते हैं।

13. यह स्पष्ट किया जाता है कि जिन अभ्यर्थियों के नाम दिनांक 12.5.2020 की चयन सूची में स्थान नहीं पाते हैं, उन्हें अंकों के परिवर्तन से कोई लाभ नहीं मिलेगा क्योंकि इस कारण से उनकी योग्यता स्थिति में कोई बदलाव नहीं किया जाएगा। इस स्तर पर ऐसा करने की अनुमति दी गई, इससे पूरी चयन प्रक्रिया खुल जाएगी जो इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश की भावना नहीं है।

14. संपूर्ण प्रक्रिया इस आदेश की प्रति प्राप्त होने की तिथि से एक माह की अवधि के भीतर सक्षम प्राधिकारी द्वारा पूरी की जाएगी।

15. यह भी निर्देशित किया जाता है कि यदि कोई अभ्यर्थी नियुक्ति के लिए पात्र पाया जाता है और उपरोक्त निर्देशों के अनुसार उसके मामले की समीक्षा करने पर उसे नियुक्ति की पेशकश की जाती है, तो उसे कार्यभार ग्रहण करने की तिथि से सभी लाभ प्राप्त होंगे।

16. अपील/रिट याचिकाओं के इस समूह में पारित आदेश को रेम में एक आदेश नहीं माना जा सकता है, बल्कि यह न्यायालय के समक्ष उन उम्मीदवारों तक सीमित व्यक्तिगत आदेश है जो न्यायालय के समक्ष अपनी शिकायत रखने के लिए पर्याप्त सतर्क थे।"

15. माननीय खण्डपीठ द्वारा पारित आधिकारिक निर्णय के मद्देनजर, इस न्यायालय को इस बात का कोई कारण नहीं मिला कि खण्डपीठ द्वारा उस मामले में याचिकाकर्ताओं को दिया गया लाभ वर्तमान मामलों के याचिकाकर्ताओं को क्यों नहीं दिया जाना चाहिए।

16. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान मामलों का निम्नलिखित निर्देशों के साथ **निस्तारण** किया जाता है:

(i) उपरोक्त निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों के आलोक में शिक्षा मित्रों से संबंधित मुद्दे की सक्षम प्राधिकारी द्वारा फिर से जांच की जानी चाहिए;

(ii) शिक्षा मित्रों के संबंध में उम्मीदवारों द्वारा की गई त्रुटि के कारण उनकी उम्मीदवारी को खारिज करने वाले सभी विवादित आदेशों को रद्द किया जाता है;

(iii) यह स्पष्ट किया जाता है कि जिन अभ्यर्थियों के नाम दिनांक 12.5.2020 की चयन सूची में स्थान नहीं पाते हैं, उन्हें अंकों के परिवर्तन से कोई लाभ नहीं मिलेगा क्योंकि उनकी योग्यता स्थिति इस कारण से नहीं बदली जाएगी कि यदि इसकी अनुमति दी जाती है इस स्तर पर ऐसा होने पर, यह पूरी चयन प्रक्रिया को खोल देगा जो इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश की भावना नहीं है;

(iv) ये मामले सुप्रीम कोर्ट के पूर्वोक्त फैसले पर विचार करने और उस पर अंतिम निर्णय लेने के लिए संबंधित जिले के प्राधिकारी को भेज दिए जाते हैं।

(v) सक्षम प्राधिकारी द्वारा संबंधित रिट याचिका को संबंधित उम्मीदवार का अभ्यावेदन मानते हुए, इस आदेश की प्रति प्राप्त होने की तारीख से आठ सप्ताह की अवधि के भीतर पूरी प्रक्रिया पूरी की जाएगी;

(vi) आगे यह निर्देशित किया जाता है कि यदि कोई उम्मीदवार नियुक्ति के लिए पात्र पाया जाता है और उपरोक्त निर्देशों के अनुसार उसके मामले की समीक्षा करने पर उसे

नियुक्ति का मौका दिया जाता है, तो उसे सेवा में शामिल होने की तारीख से सभी लाभ मिलेंगे।

(vii) संबंधित प्राधिकारी द्वारा शुरू की गई कोई भी वसूली कार्यवाही स्थगित रखी जाएगी और संबंधित जिले के सक्षम प्राधिकारी के निर्णय/परिणाम के अधीन होगी।

17. उपरोक्त निर्देशों के साथ रिट याचिकाओं का निस्तारण किया जाता है। यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय ने किसी भी व्यक्तिगत मामले के गुण-दोष पर अपना विचार व्यक्त नहीं किया है और संबंधित जिले का सक्षम प्राधिकारी माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के साथ-साथ इस न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा निर्धारित मापदंडों के भीतर एक स्वतंत्र निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र है।

18. वर्तमान मामले के विशिष्ट तथ्यों में, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 1 ILRA 1290
मूल न्यायाधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक:इलाहाबाद 22.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता,
माननीय न्यायमूर्ति जयंत बनर्जी,

रिट टैक्स संख्या 1511/2022

मेसर्स जय प्रकाश ठेकेदार ...याचिकाकर्ता
बनाम
आयुक्त, वाणिज्यिक कर एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता:
सुश्री पूजा तलवार

अधिवक्ता प्रतिवादी:
सी.एस.सी.

सिविल कानून - उत्तर प्रदेश वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम, 2017 - याचिकाकर्ता-फर्म का पंजीकरण निरस्त कर दिया गया, उपस्थिति की तिथि के बिना कारण बताओ नोटिस दिया गया - एक पक्षीय निर्णय को अवैध, शून्य और कानून की नजर में अमान्य ठहराया गया - याचिकाकर्ता को राजस्व आगे बढ़ने के लिए अनुमति दी गई। (ई-9)

उद्धृत वाद सूची:
पुष्पम रियलिटी और अन्य बनाम राज्य कर अधिकारी एवं अन्य

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता,
&
माननीय न्यायमूर्ति जयंत बनर्जी द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता की विद्वान अधिवक्ता सुश्री पूजा तलवार और राजस्व के विद्वान अधिवक्ता श्री अंकुर अग्रवाल को सुना।

2. याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम, 2017 के प्रावधानों के तहत याचिकाकर्ता-फर्म के पंजीकरण को रद्द करने और पंजीकरण रद्द करने के परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता के खिलाफ दंडात्मक कार्रवाई करने की मांग से व्यथित है।

3. याचिकाकर्ता को दिनांक 31.08.2019 को कारण बताओ नोटिस दिया गया था, जिसमें याचिकाकर्ता को नोटिस की सेवा की तिथि से सात कार्य दिवसों के भीतर जवाब प्रस्तुत करने को कहा था। नोटिस में आगे उल्लेख किया गया कि यदि याचिकाकर्ता निर्धारित तिथि के भीतर उत्तर प्रस्तुत करने में विफल रहता है या नियत तिथि और समय पर व्यक्तिगत सुनवाई के लिए उपस्थित होने में विफल रहता है, तो मामले को गुण-दोष के आधार पर, उपलब्ध अभिलेखों के आधार पर एकपक्षीय रूप से निस्तारित कर दिया जाएगा। इसके बाद दिनांक 21.09.2019 को दूसरा रद्दीकरण आदेश दिया गया, जो इस प्रकार हैः-

"यह दिनांक 31.08.2019 को कारण बताओ नोटिस के जवाब में आपके दिनांक 10.09.2019 के उत्तर के संदर्भ में है, जबकि कारण बताओ नोटिस का कोई जवाब नहीं प्रस्तुत किया गया है।

आपके पंजीकरण को रद्द करने की प्रभावी तिथि 21.09.2019 है।

रद्दीकरण के अनुसरण में देय राशि का निर्धारणः

तदनुसार, आपके द्वारा देय राशि और उसकी गणना और आधार इस प्रकार हैः-

उपरोक्त देय राशि किसी भी राशि पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना है जो आपके द्वारा प्रस्तुत अंतिम रिटर्न जमा करने पर आपको देय पाई जा सकती है।

आपको दिनांक 01.10.2019 को या उससे पहले निम्नलिखित राशि का भुगतान करना होगा, अन्यथा राशि अधिनियम के प्रावधानों और उसके तहत बनाए गए नियमों के तदनुसार वसूल की जाएगी

मद	केन्द्रीय कर	राज्य कर/यू.टी. कर	एकीकृत कर	सेस
कर	0	0	0	0
ब्याज	0	0	0	0
जुर्माना	0	0	0	0
अन्य	0	0	0	0
योग	0.0	0.0	0.0	0.0

स्थानः उत्तर प्रदेश — जय प्रकाश

दिनांकः 21.09.2019 — सहायक आयुक्त

महोबा, सी.टी.ओ.

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि याचिकाकर्ता पर कारण बताओ नोटिस की सेवा पर्याप्त नहीं थी, क्योंकि यह पंजीकृत डाक द्वारा नहीं भेजा गया था। यह आग्रह किया गया कि सामान्य पोर्टल पर उपरोक्त नोटिस को अपलोड करना तकनीकी गड़बड़ियों को देखते हुए पर्याप्त नहीं है। इस संबंध में, दिनांक 04.02.2022 को निर्णीत **पुष्पम रियलिटी व अन्य बनाम राज्य कर अधिकारी व अन्य** में मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया गया है। आगे कथन किया गया कि हालांकि कारण बताओ नोटिस में उल्लेख किया गया है कि यदि याचिकाकर्ता व्यक्तिगत सुनवाई के लिए निर्धारित तिथि और समय पर उपस्थित नहीं होता है, तो एकपक्षीय आदेश पारित कर दिया जाएगा, परन्तु नोटिस में कोई तिथि और समय निर्दिष्ट नहीं है और इस प्रकार याचिकाकर्ता को उस तिथि और समय के बारे में अंधेरे में रखा गया, जिस पर याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई के लिए उपस्थित होना था। यह उस व्यक्ति को सुनवाई का अधिकार देने की वैधानिक आवश्यकता का उल्लंघन है जिसके विरूद्ध पंजीकरण रद्द करने की कार्यवाही प्रस्तावित है और यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का भी उल्लंघन है।

5. राजस्व की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि सामान्य पोर्टल के माध्यम से नोटिस की सेवा अधिनियम की धारा-169 के तहत सेवा का मान्यता प्राप्त तरीका है, और इसलिए, सेवा के तरीके में कोई अपवाद नहीं लिया जा सकता है। हालाँकि, वह इस बात का खंडन करने की स्थिति में नहीं है कि कारण बताओ नोटिस में उस तिथि और समय का उल्लेख नहीं है जिस दिन याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई के लिए उपस्थित होना था।

6. अधिनियम की धारा 29 की उपधारा (2) के पहले प्रावधान के तहत संबंधित व्यक्ति को सुनवाई का अवसर दिया जाना है। उत्तर प्रदेश वस्तु एवं सेवा कर नियम, 2017 के नियम 22(1) में प्रावधान है कि जहां उचित अधिकारी के पास यह विश्वास करने का कारण है कि किसी व्यक्ति का पंजीकरण अधिनियम की धारा 29 के तहत रद्द किए जाने योग्य है, तो वह ऐसे व्यक्तियों को फॉर्म जी.एस.टी. आर.ई.जी.-17 में नोटिस जारी करेगा तथा उसे ऐसे नोटिस की सेवा की तिथि से सात कार्य दिवसों की अवधि के भीतर यह कारण बताने की आवश्यकता होगी कि ऐसा पंजीकरण क्यों न रदद किया जाए। फॉर्म जी.एस.टी. आर.ई.जी.-17 इस प्रकार हैः-

"फॉर्म जी.एस.टी. आर.ई.जी.-17

नियम 22 (1) देखें

संदर्भ संख्या- दिनांक

सेवा में,

पंजीकरण संख्या (जी.एस.टी.आई.एन./यू.आई.एन)

(नाम)

(पता)

पंजीकरण रद्द करने के लिए कारण बताओ नोटिस

जबकि जो जानकारी मेरे सामने आई है उसके आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि आपका पंजीकरण निम्नलिखित कारणों से रद्द किए जाने योग्य हैः

1.

2.

3.

आपको इस नोटिस की सेवा की तारीख से सात कार्य दिवसों के भीतर इस नोटिस का उत्तर देने का निर्देश दिया जाता है।

आपको एतदद्वारा दिनांक.............को समय........पर अधोहस्ताक्षरी के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया जाता है।

यदि आप निर्धारित समय सीमा के भीतर उत्तर प्रस्तुत करने में विफल रहते हैं या नियत तिथि और समय पर व्यक्तिगत सुनवाई के लिए उपस्थित होने में विफल रहते हैं, तो उपलब्ध अभिलेखों और गुण-दोष के आधार पर मामले का एकपक्षीय निस्तारण किया जाएगा।

हस्ताक्षर

अधिकारी का नाम

पदनाम

क्षेत्राधिकार

स्थानः

दिनांकः

7. याचिकाकर्ता को दिया गया कारण बताओ नोटिस इस प्रकार थाः

"फॉर्म जी.एस.टी. आर.ई.जी.-17

नियम 22 (1) देखें

संदर्भ संख्या-जेड.ए.090819157466एस.

दिनांकः 31.08.2019

सेवा में,

जय प्रकाश खेवरिया

कबरई, कबरई, कबरई, महोबा, उत्तर प्रदेश, 210424

पंजीकरण रद्द करने के लिए कारण बताओ नोटिस

जबकि जो जानकारी मेरे सामने आई है उसके आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि आपका पंजीकरण निम्नलिखित कारणों से रद्द किए जाने योग्य हैः

1. कम्पोजिशन करदाता के अलावा किसी भी करदाता ने 6 माह की लगातार अवधि का रिर्टन नहीं भरा है।

आपको इस नोटिस की सेवा की तारीख से सात कार्य दिवसों के भीतर इस नोटिस का उत्तर देने का निर्देश दिया जाता है।

यदि आप निर्धारित समय सीमा के भीतर उत्तर प्रस्तुत करने में विफल रहते हैं या नियत तिथि और समय पर व्यक्तिगत सुनवाई के लिए उपस्थित होने में विफल रहते हैं, तो उपलब्ध अभिलेखों और गुण-दोष के आधार पर मामले का एकपक्षीय निस्तारण किया जाएगा।

स्थानः उत्तर प्रदेश

दिनांकः 31.08.2019 जय प्रकाश

सहायक आयुक्त

8. याचिकाकर्ता को जो कारण बताओ नोटिस दिया गया है, वह निर्धारित प्रारूप में नहीं है क्योंकि इसमें उस तिथि व समय की कमी स्पष्ट है जिस दिन नोटिस प्राप्तकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई के लिए उपस्थित होना था। निर्धारित प्रारूप से यह भी स्पष्ट है कि नोटिस प्राप्तकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए और इस प्रयोजन के लिए उसे अग्रिम रूप से सूचित किया जाना चाहिए कि सुनवाई किस तिथि और समय पर होगी। चूंकि मौजूदा मामले में, कारण बताओ नोटिस में व्यक्तिगत सुनवाई के लिए नियुक्त तिथि और समय का उल्लेख नहीं है, इसलिए, हमारी राय में, इसके अनुसरण में की गई कार्यवाही विधिक दृष्टि से अवैध, शून्य और अमान्य है। परिणामस्वरूप, आक्षेपित आदेश रद्द किया जाता है।

9. याचिका सफल होती है और राजस्व को विधि अनुसार आगे बढ़ने की स्वतंत्रता के साथ उपरोक्त सीमा तक अनुमति दी जाती है।

(2023) 1 ILRA 1293
मूल क्षेत्राधिकार
सिविल वाद
दिनांक: इलाहाबाद 02.01.2023

माननीय मुख्य न्यायाधीश राजेश बिंदल
माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

समक्ष

रिट (टैक्स) संख्या - 167/2021

विनय राय ...याचिकाकर्ता

बनाम

यूपी राज्य एवं अन्य ...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
श्री निशांत मिश्रा, श्री तनमय साध, श्री यशोनिधी शुक्ल

प्रत्यर्थीयों के अधिवक्ता:
श्री निमाई दास, ए.सी.एस.सी.

टैक्स-याचिकाकर्ता एक आदेश को रद्द करने की मांग करता है- कर जमा करने के अनुरोध को अस्वीकार करते हुए - याचिकाकर्ता, जो कर मांगों के अधीन तीन कंपनियों में निदेशक या शेयरधारक नहीं है, ने अपील की सुनवाई के लिए पूर्व शर्त के रूप में ₹ एक करोड़ जमा किया - न्यायाधिकरण ने अपील की अनुमति दी और रिफंड दिया - आक्षेपित आदेश ने वर्तमान रिट याचिका को प्रेरित करते हुए रिफंड के दावे को खारिज कर दिया - 1766 दिनों की देरी के बावजूद, न्यायाधिकरण के आदेश के प्रति प्रत्यर्थी की चुनौती खारिज कर दी गई - न्यायालय ने देरी को ध्यान में रखते हुए ब्याज सहित रिफंड का निर्देश दिया। (ई-9)

(माननीय मुख्य न्यायाधीश राजेश बिंदल,

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

1. वर्तमान रिट याचिका प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा पारित 17 सितंबर, 2020 के आदेश को रद्द करने की प्रार्थना करते हुए दायर की गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता द्वारा सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 1260/2007 श्री अनिल राय बनाम यू.पी. राज्य में खण्ड पीठ द्वारा पारित 1 अक्टूबर, 2007 दिनांकित आदेश के तहत जमा किए गए कर की राशि की वापसी जारी करने के लिए याचिकाकर्ता की प्रार्थना की गई है, को अस्वीकार कर दिया गया। उपरोक्त आदेश के तहत,

याचिकाकर्ता को उसके अपील की सुनवाई के लिए पूर्व शर्त के रूप में वैधानिक उपाय का लाभ उठाने के लिए बाध्य किया गया और ₹ एक करोड़ की राशि जमा करने का निर्देश दिया गया।

2. जैसा कि रिट याचिका में कहा गया था, वर्ष 2003 में यू.पी. के तहत एक पक्षीय आदेश पारित किए गए थे। व्यापार कर अधिनियम, 1948 (संक्षेप में, '1948 का अधिनियम') मूल्यांकन वर्ष 1999-2000 और 2000-2001 के लिए तीन अलग-अलग कंपनियों अर्थात् मेसर्स सृष्टि एजेंसीज (प्राइवेट) लिमिटेड, मेसर्स रूडर स्टील्स (प्राइवेट) लिमिटेड और मेसर्स शिवालिक इस्पात एंड फैब्रिकेटर्स प्राइवेट लिमिटेड ने क्रमशः ₹ 20,80,00,000/-, ₹ 6,08,40,000/- और ₹ 6,44,00,000/- की मांग उठाई। याचिकाकर्ता उपरोक्त तीन कंपनियों में निदेशक या शेयरधारक नहीं था। यह वसूली मेसर्स उषा इंडिया लिमिटेड और मेसर्स मालविका स्टील प्राइवेट लिमिटेड से करने की मांग की गई थी जिसमें याचिका कर्ता एक ऋणी है। बाद की लिमिटेड कंपनियों में याचिकाकर्ता निदेशक और शेयरधारक थे।

3. याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत क्षमता में जारी किए गए वसूली नोटिस को उसके द्वारा सिविल प्रकीर्ण रिट कर संख्या 782/2007 के तहत एक रिट याचिका दायर करके चुनौती दी गई थी। उसी को सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 1260/2007 'श्री अनिल राय बनाम यूपी राज्य & अन्य'।' में पारित विस्तृत आदेश के अनुसार इसका निपटारा किया गया था। याचिकाकर्ता को अपील के अपने उपाय का लाभ उठाने के लिए वापस भेज दिया गया और योग्यता के आधार पर अपील की सुनवाई की शर्त के रूप में, 1 अक्टूबर, 2007 के आदेश के तहत ₹ एक करोड़ की राशि जमा करने का निर्देश दिया गया। याचिकाकर्ता और उसके भाई ने वाणिज्यिक कर न्यायाधिकरण, गाजियाबाद के समक्ष अपील की। 9 जून, 2016 के आदेश के तहत इसकी अनुमति दी गई। याचिकाकर्ता के खिलाफ उठाई गई मांग को खारिज कर दिया गया और मामले के व्यापार कर से सम्बन्धित वसूली के लिए 1948 के अधिनियम की धारा 8 (3) के तहत मेसर्स सृष्टि एजेंसीज (प्राइवेट) लिमिटेड, मेसर्स रडर स्टील्स (प्राइवेट) लिमिटेड और मेसर्स शिवालिक इस्पात एंड फैब्रिकेटर्स प्राइवेट लिमिटेड के खिलाफ मेसर्स उषा इंडिया लिमिटेड और एम से व्यापार कर बकाया /एस मालविका स्टील प्रा. लिमिटेडके विरूद्घ शुरू की गई कार्यवाही जारी रखने के लिए मूल्यांकन अधिकारी को मामला वापस भेज दिया गया।

4. न्यायाधिकरण द्वारा उपरोक्त आदेश पारित होने के बाद, याचिकाकर्ता ने 25 अगस्त, 2017 को राशि की वापसी के लिए एक आवेदन दायर किया, जिसके बाद 23 जुलाई, 2020 को एक अनुस्मारक दिया गया। यह उपरोक्त आवेदन पर था कि आक्षेपित आदेश जारी किया गया दिनांक 17 सितम्बर 2020 को प्रत्यर्थी क्रमांक 3 द्वारा पारित किया गया। जिसमें कहा गया है कि न्यायाधिकरण ने अपने आदेश में याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील की स्वीकृति के बाद जमा की गई राशि वापस करने का निर्देश नहीं दिया है, याचिकाकर्ता को आदेश के स्पष्टीकरण के लिए न्यायाधिकरण से संपर्क करना चाहिए। रिफंड का आवेदन खारिज कर दिया गया।

5. वर्तमान रिट याचिका दायर करने के बाद, 1766 दिनों की देरी के बाद प्रत्यर्थियों ने बिक्री/व्यापार कर पुनरीक्षण डिफेक्टिव संख्या 28/2021 दायर करके न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश को चुनौती दी। इस न्यायालय ने 2 सितंबर, 2021 के आदेश के जरिए खारिज कर दिया था, क्योंकि पुनरीक्षण दाखिल करने में 1766 दिनों की अत्यधिक देरी को माफ करने के लिए कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण उपलब्ध नहीं था। इस विकास के बावजूद, याचिकाकर्ता को न्यायाधिकरण द्वारा अपील की सुनवाई के लिए इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देश के संदर्भ में जमा की गई राशि वापस नहीं की गई है।

6. प्रार्थना प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई राशि वापस करने का निर्देश देने के लिए है। प्रार्थना 1948 के अधिनियम की धारा 29(2) के संदर्भ में ब्याज देने के लिए भी है।

7. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने उचित रूप से प्रस्तुत किया कि 9 जून, 2016 के आदेश के तहत न्यायाधिकरण द्वारा याचिकाकर्ता के खिलाफ मांग उठाने के आदेश को रद्द करने के बाद, याचिकाकर्ता निर्देश के अनुसार उसके द्वारा जमा की गई राशि वापस पाने का हकदार होगा। गुण-दोष के आधार पर अपील की सुनवाई के लिए इस न्यायालय द्वारा जारी किया गया।

8. हालांकि प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, हम प्रतिवादियों को इस निर्देश के अनुसार अपील की सुनवाई के लिए पूर्व शर्त के रूप में याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई राशि वापस करने का निर्देश देकर रिट याचिका का निपटारा कर सकते थे। न्यायालय, लेकिन, कुछ तथ्यों पर ध्यान देने की आवश्यकता है, जो स्पष्ट रूप से निर्धारितियों/व्यक्तियों से निपटने में व्यापार कर विभाग के अधिकारियों की मनमानी को स्थापित करते हैं, जिन्हें किसी विभाग की राशि के भुगतान के लिए डिफ़ॉल्ट माना जाता है।

9. जैसा कि ऊपर संक्षेप में देखा गया है, तीन कंपनियों अर्थात् मेसर्स सृष्टि एजेंसीज़ (प्राइवेट) लिमिटेड, मेसर्स रूडर स्टील्स (प्राइवेट) लिमिटेड और मेसर्स शिवालिक इस्पात से कर की कुछ राशि बकाया है। जिसे

फैब्रिकेटर्स प्राइवेट लिमिटेड को मेसर्स उषा इंडिया लिमिटेड और मेसर्स मालविका स्टील प्राइवेट लिमिटेड से वसूलने की मांग की गई थी। जिसमें याचिकाकर्ता अपने भाइयों अनिल राय के साथ शेयरधारक थे और मेसर्स उषा इंडिया लिमिटेड और मेसर्स मालविका स्टील प्राइवेट लिमिटेड के निदेशक थे एवं उन कंपनियों का देनदार कहा जाता है, जिनसे कर की राशि बकाया है। यह राशि उनसे उनकी व्यक्तिगत हैसियत से वसूलने की मांग की गई थी। इस आदेश को उनके द्वारा इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर करके चुनौती दी गई थी। उन्हें न्यायाधिकरण के समक्ष अपील के अपने उपाय का लाभ उठाने के लिए हटा दिया गया था, जिसे गुण-दोष के आधार पर सुना जाना था, दोनों भाइयों द्वारा ₹ एक करोड़ जमा करने की शर्त पर, निर्विवाद रूप से, याचिकाकर्ता ने ₹ एक करोड़ जमा किए। याचिकाकर्ता और उसके भाई द्वारा की गई दोनों अपीलों को न्यायाधिकरण ने 9 जून, 2016 के आदेश के तहत अनुमति दी थी और उनके खिलाफ मांग को खारिज कर दिया गया था और विभाग को कंपनियों से वसूली से निपटने की स्वतंत्रता दी गई थी। याचिकाकर्ता द्वारा 25 अगस्त, 2017 को रिफंड के लिए एक आवेदन दायर किया गया था, जो लंबित रहा। 23 जुलाई, 2020 को एक अनुस्मारक भेजा गया, जिस पर 17 सितंबर, 2020 को आदेश पारित किया गया, जिसमें रिफंड के दावे को इस मामूली आधार पर खारिज कर दिया गया कि न्यायाधिकरण ने अपील स्वीकार करते समय राशि की वापसी का निर्देश नहीं दिया था।

10. हमें उस आदेश को गुण-दोष के आधार पर निपटाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत किया है कि न्यायाधिकरण द्वारा मांग के आदेश को रद्द किए जाने के बाद, गुण-दोष के आधार पर अपील की सुनवाई की पूर्व शर्त के अनुसार याचिकाकर्ता जमा की गई राशि की वापसी का हकदार होगा। इसके अलावा, जिस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है वह यह है कि 17 सितंबर, 2020 के न्यायाधिकरण के आदेश को पारित होने पर विभाग द्वारा तुरंत चुनौती नहीं दी गई थी।

लेकिन, जब याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय में वर्तमान रिट याचिका दायर की, जिसमें रिफंड के लिए उसकी प्रार्थना को खारिज करने के आदेश को चुनौती दी गई, तो बिक्री/व्यापार कर संशोधन दोषपूर्ण संख्या 28/2021 1766 दिनों की देरी के बाद दायर की गई। इसे 2 सितंबर, 2021 को खारिज कर दिया गया क्योंकि देरी को संतोषजनक ढंग से समझाया नहीं जा सका।

11. इसके बाद एक वर्ष से अधिक समय बीत चुका है, लेकिन याचिकाकर्ता को अभी तक रिफंड नहीं दिया गया है। इसके अलावा, 19 सितंबर, 2021 को प्रत्यर्थी संख्या 3 और 4 द्वारा इस न्यायालय में एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया है, जो न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश को चुनौती देने के संबंध में तथ्य पर चुप है।

12. याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 19 में एक विशिष्ट कथन दिया गया है कि 9 जून, 2016 को न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश को प्रत्यर्थियों द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी और इसे अंतिम रूप दिया गया था। इस पर, दायर जवाबी हलफनामे में, एक स्पष्ट बयान के अलावा कोई प्रतिक्रिया नहीं है कि सामग्री को स्वीकार नहीं किया जाता है। यह उल्लेख नहीं किया गया है कि उपरोक्त आदेश को बिक्री/व्यापार कर संशोधन दोषपूर्ण संख्या 28/2021 दाखिल करके इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी, जिसे 19 सितंबर, 2021 को जवाबी शपथपत्र दाखिल करने से पहले ही 2 सितंबर, 2021 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया था। इस हद तक, उत्तरदाताओं द्वारा दायर जवाबी शपथपत्र में तथ्यों को छिपाया गया है। वर्तमान मामले के तथ्यों से यह स्थापित होता है कि याचिकाकर्ता द्वारा योग्यता के आधार पर अपील की सुनवाई के लिए पूर्व शर्त के रूप में जमा की गई राशि को अपने पास रखना भारत के संविधान के अनुच्छेद 265 का सीधा उल्लंघन होगा, क्योंकि राज्य के पास कोई अधिकार नहीं है। न्यायाधिकरण द्वारा उठाई गई मांग को खारिज करने के बाद राशि को बरकरार रखने के लिए और उसी के खिलाफ संशोधन को इस न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था।

13. याचिकाकर्ता को देय रिफंड की राशि अब 1948 के अधिनियम की धारा 29(2) के अनुसार ब्याज के साथ चार सप्ताह की अवधि के भीतर भुगतान की जाएगी। 1948 के अधिनियम की धारा 29(2) में निर्दिष्ट दरें के तहत ब्याज की गणना जनवरी, 2018 से की जाएगी।।

14. जैसा कि स्पष्ट रूप से मौजूदा मामले में है, प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा पारित आदेश के मद्देनजर याचिकाकर्ता को रिफंड देने में देरी स्पष्ट रूप से अवैध है राज्य संबंधित अधिकारी (अधिकारियों) से याचिकाकर्ता को भुगतान की जाने वाली ब्याज की राशि वसूलने के लिए स्वतंत्र होगा, क्योंकि विभाग के अधिकारी (अधिकारियों) द्वारा अवैध कार्रवाई के कारण सार्वजनिक खजाने पर बोझ नहीं पड़ना चाहिए।

15. रिट याचिका को रिफंड की राशि के साथ ₹ 10,000/- का भुगतान करने की अनुमति दी जाती है।

(2023) 1 ILRA 1296

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल

बिक्री/व्यापार कर पुनरीक्षण संख्या 486/2011

साथ में

बिक्री/व्यापार कर पुनरीक्षण संख्या 490/2011

मेसर्स श्री गोरखनाथ फूड (पी) लिमिटेड ... आवेदक

बनाम

आयुक्त, वाणिज्यिक कर, उ.प्र., लखनऊ ... प्रतिवादी

आवेदक के अधिवक्ता: श्री आदित्य पांडेय, श्री भरत जी अग्रवाल, श्री शुभम अग्रवाल

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: मुख्य स्थायी अधिवक्ता

नागरिक कानून - उत्तर प्रदेश मूल्य संवर्धित कर अधिनियम, 2008 - धारा 58 और 21- अत्यधिक बिजली खपत के आधार पर दूसरी अपील को खारिज करने और लेखा पुस्तकों को खारिज करने के आदेश को चुनौती - उत्पादन में वृद्धि के बिना बढ़ी हुई खपत पर मूल्यांकन प्राधिकारी का निष्कर्ष- उदाहरण यह स्थापित करते हैं कि बिजली का अत्यधिक उपयोग पुस्तक अस्वीकृति के लिए अपर्याप्त हैं।

पुनरीक्षण खारिज कर दिया गया। (ई-9)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. महाबीर प्रसाद जगदीश प्रसाद बनाम बिक्री कर आयुक्त, उ.प्र., 1971 यू.पी.टी.सी.

2. मेसर्स महाशक्ति ऑयल मिल्स, बिशेशरगनी, वाराणसी बनाम बिक्री कर आयुक्त, उ.प्र., लखनऊ, 1972 यू.पी.टी.सी. 361

3. मेसर्स सुनीता इस्पात प्राइवेट लिमिटेड बनाम आयुक्त, वाणिज्यिक कर, यूपी, वीएसटीआई 2016 (27) बी-1272

4. मेसर्स अभिनव स्टील्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम आयुक्त, वाणिज्यिक कर, उत्तर प्रदेश लखनऊ, 2017 यू.पी.टी.सी. 344

5. मेसर्स मेल्टन इंडिया, गौतमबुद्ध नगर बनाम आयुक्त, व्यापार कर, उत्तर प्रदेश लखनऊ 2005 एनटीएन (26) 507

(माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल द्वारा दिया गया)

1 - पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री शुभम अग्रवाल और राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री ऋषि कुमार को सुना ।

2- ये पुनरीक्षण उत्तर प्रदेश मूल्य वर्धित कर अधिनियम, 2008 (इसके बाद इसे "2008 का अधिनियम" कहा जाएगा) की धारा 58 के तहत अधिकरण द्वारा पारित आदेश दिनांक 12.05.2011 को चुनौती देते हुए दायर किए गया है, जिसमें निर्धारिती की दूसरी अपील को दूसरी अपील संख्या 104/2011 के रूप में खारिज कर दिया गया है । और राजस्व द्वारा दायर की गई दूसरी अपील 38/2011 और दूसरी अपील 47/2011 को अनुमति दी गई है ।

3 - पुनरीक्षण संख्या 486/2011 को 07.07.2011 को इस प्रश्न पर स्वीकार किया गया था, "क्या 01.01.2008 से 31.03.2008 की अवधि के दौरान बिजली की अधिक खपत के कारण, निर्धारिती- संशोधनकर्ता की लेखा पुस्तकें खारिज की जा सकती हैं?"

4 - पुनरीक्षण संख्या 490/2011 को इस प्रश्न पर स्वीकार किया गया था कि "क्या निर्धारण वर्ष 2008-09 के

दौरान बिजली की अधिक खपत के कारण, निर्धारिती-पुनरीक्षणकर्ता की लेखा पुस्तकों को अस्वीकार किया जा सकता है"

5 - इस न्यायालय के समक्ष निर्धारिती ने आटा, मैदा और सूजी के निर्माण के लिए एक कारखाना स्थापित किया था। यह मामला 01.01.2008 से 31.03.2008 की अवधि के लिए मूल्यांकन वर्ष 2007-08 और मूल्यांकन वर्ष 2008-09 से संबंधित है। निर्धारिती ने 01.01.2008 से 31.03.2008 की अवधि के लिए कुल रूपये 99,80,498/- की खरीद और रुपये 1,20,78,303/- की बिक्री का खुलासा किया था । 2007-08 की मूल्यांकन अवधि के दौरान, निर्धारिती को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था और इसका उत्तर 28.04.2010 को दिया गया था। मूल्यांकन प्राधिकारी ने दिनांक 15.06.2010 के आदेश के तहत खातों की पुस्तकों को खारिज कर दिया और बिजली की अत्यधिक खपत के आधार टर्नओवर बढ़ा दिया। आदेश से व्यथित होकर, अतिरिक्त आयुक्त, ग्रेड- II (अपील), वाणिज्यिक कर, गोरखपुर के समक्ष प्रथम अपील की गई। दिनांक 15.11.2010 के आदेश के तहत अपील की अनुमति दी गई और कर की मात्रा कम कर दी गई। दिनांक 15.11.2010 के आदेश के विरुद्ध, विभाग ने 2011 की दूसरी अपील संख्या 38 दायर की, अधिकरण ने विभाग की अपील की अनुमति दी, जबकि निर्धारिती की अपील को खारिज कर दिया। वर्ष 2008-09 के लिए मूल्यांकन कार्यवाही के दौरान, निर्धारण प्राधिकारी ने पाया कि निर्धारिती द्वारा 8.840 यूनिट बिजली की बताई गई खपत के मुकाबले एक क्विंटल आटे के उत्पादन के लिए 26.351 यूनिट बिजली की खपत हुई थी। प्रथम अपीलीय प्राधिकारी ने प्रथम अपील में कर निर्धारण प्राधिकारी द्वारा पिछले वर्ष 2007-08 के लिए बिजली की खपत 20.887 यूनिट प्रति क्विंटल के आधार पर निर्भर करते हुए लगाए गए कर दायित्व को कम कर दिया । प्रथम अपीलीय प्राधिकारी के आदेश के खिलाफ एक अपील निर्धारिती द्वारा दूसरी अपील संख्या 104/2011 के रूप में दायर की गई थी। और राजस्व द्वारा दायर की गई इसलिए दूसरी वर्तमान पुनरीक्षण अपील 47/2011 के रूप में दायर की गई थी ।

6 - दोनों पुनरीक्षणों को पक्षकारों के वकील की सहमति से एक साथ सुना जा रहा है और सामान्य आदेश द्वारा निर्णय लिया जा रहा है ।

7 - पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान वकील श्री शुभम अग्रवाल ने कहा कि मूल्यांकन प्राधिकारी के साथ- साथ न्यायाधिकरण केवल बिजली की अत्यधिक खपत के आधार पर खातों की पुस्तकों को खारिज नहीं कर सकता था। उन्होंने कहा कि मासिक रिटर्न दाखिल करने के संबंध में मूल्यांकन प्राधिकारी द्वारा कोई प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला गया था। विद्वान वकील के अनुसार, बिजली की अत्यधिक खपत के आधार पर खातों की पुस्तकों को सरलता से खारिज नहीं किया जा सकता है। निर्धारिती ने एक स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया था जिसके तथ्य यह है कि संयंत्र और मशीनरी पर्याप्त पुरानी थीं और संयंत्रों और मशीनरी का रखरखाव और मरम्मत नहीं की गई थी, और कंपनी के अधिकारियों के आवासीय क्वार्टर की बिजली भी फैक्ट्री परिसर के माध्यम से आपूर्ति की गई थी, जहां एयर कंडीशनर स्थापित किए गए थे , और जिसके कारण, बिजली की खपत अधिक हुयी थी । मेसर्स महाशक्ति ऑयल मिल्स, बिशेषर्गनी, वाराणसी बनाम बिक्री कर आयुक्त, उत्तर प्रदेश, लखनऊ **1972** यू.पी.टी.सी. **361,**महाबीर प्रसाद जगदीश प्रसाद बनाम बिक्री कर आयुक्त उत्तर प्रदेश **1971** यू.पी.टी.सी. **43** और मेसर्स अभिनव स्टील्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम आयुक्त, वाणिज्यिक कर, उ.प्र. लखनऊ, **2017** यू.पी.टी.सी. **344** एवं मेसर्स सुनीता इस्पात प्रा. लिमिटेड बनाम आयुक्त, वाणिज्यिक फैक्स, उ.प्र., वीएसटीआई **2016 (27)** बी-

1272 के वाद में इस न्यायालय की समन्वय पीठ के निर्णय पर भरोसा किया गया है।

8 - इसके विपरीत, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने पुनरीक्षण का विरोध करते हुए कहा कि मूल्यांकन प्राधिकारी ने एक निष्कर्ष दर्ज किया था कि 01.4.2007 से 31.12.2007 की अवधि के लिए पुनरीक्षणकर्ता की इकाई की बिजली खपत 8,55,375 यूनिट थी, इसके अलावा, इस अवधि के दौरान, निर्धारिती ने 96728.21 क्विंटल गेहूं खरीदा था और कुल गेहूं 96760.05 क्विंटल पीसा गया था। इस प्रकार, प्रति क्विंटल गेहूं पर 8.840 यूनिट बिजली की खपत हुई। वहीं, 01.01.2008 से 31.03.2008 की अवधि के लिए, कुल 183625 यूनिट बिजली की खपत हुई तथा कुल गेहूँ की पिसाई 8791.14 कुन्तल हुई। इस प्रकार, प्रत्येक क्विंटल गेहूं के लिए बिजली की खपत 20.887 यूनिट थी। उन्होंने आगे तर्क दिया कि अधिकरण ने आकलन वर्ष 2008-09 के लिए निर्धारिती की अपील को सही ढंग से खारिज कर दिया था और अधिकरण की अपील की अनुमति दी थी क्योंकि इस अवधि के दौरान निर्धारिती ने बिजली की अधिक खपत के बावजूद पट्टेदार के टर्नओवर का खुलासा किया था।

9 - विद्वान स्थायी अधिवक्ता के अनुसार, मूल्यांकन प्राधिकारी और न्यायाधिकरण ने निष्कर्ष दर्ज करने के बाद कहा कि 01.04.2007 से 31.12.2007 की अवधि के लिए, गेहूं पीसने के लिए प्रति क्विंटल खपत 8.840 यूनिट थी, जबकि 01.01.2008 से 31.03.2008 की अवधि के में 20.887 यूनिट थी जो दोगुनी से भी अधिक है और यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि इतनी अधिक बिजली की खपत अधिकारियों के आवासीय क्वार्टरों में काम कर रहे एयर कंडीशनरों के कारण थी, इस बात पर जोर दिया गया था कि सर्दियों के मौसम के दौरान विशेष रूप से गोरखपुर शहर में जहां अत्यधिक ठंडी जलवायु है, एयर कंडीशनर का उपयोग नहीं किया जाता है। मेसर्स मेल्टन इंडिया, गौतमबुद्ध नगर बनाम आयुक्त, व्यापार कर, उत्तर प्रदेश लखनऊ **2005** एनटीएन **(26) 507,** मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया गया है। जिसकी सिविल अपील संख्या **373/2007** (मेल्टन इंडिया बनाम कमिश्नर व्यापार कर, यूपी) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई थी, जो कि **2007** एन.टी.एन **(33)169** में सूचित है ।

10 - पक्षों की संबंधित सलाह को सुनने और रिकॉर्ड के अवलोकन से यह पता चलता है कि एकमात्र प्रश्न, जिस पर विचार करने की आवश्यकता है, वह यह है कि ," क्या बिजली की अत्यधिक खपत के आधार पर मूल्यांकन अधिकारी द्वारा खातों की पुस्तकों को अस्वीकार किया जा सकता है ?"

11 - यह प्रश्न प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से इस न्यायालय के साथ- साथ माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष भी लंबे समय से विचाराधीन रहा है। महाबीर प्रसाद जगदीश प्रसाद (पूर्व) के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ का विचार था कि बिजली की अधिक खपत यूपी बिक्री कर अधिनियम, 1948 (इसके बाद इसे "1948 का अधिनियम" कहा जाएगा) की धारा 21 के तहत कार्रवाई को उचित ठहराने वाली एक आकस्मिक स्थिति हो सकती है । लेकिन, न्यायालय का विचार था कि बिजली की उच्च खपत का भुगतान अपने आप में निर्धारिती के खातों की पुस्तकों को अस्वीकार करने के लिए कोई सामग्री नहीं है। मेसर्स महाशक्ति ऑयल मिल्स, बिशेशरगनी, वाराणसी (पूर्व) में महाबीर प्रसाद जगदीश प्रसाद (पूर्व) के फैसले का एक अन्य डिवीजन बेंच द्वारा पालन किया गया। जहां कार्यवाही 1948 के अधिनियम की धारा 21 के तहत थी और न्यायालय का विचार था कि यदि कर अधिकारियों द्वारा रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं लाई गई थी, तो खातों की पुस्तकों को खारिज करने का कोई औचित्य नहीं था।

12 - उक्त निर्णय का बाद में मेसर्स सुनीता इस्पात प्राइवेट लिमिटेड (पूर्व) में पालन किया गया। और न्यायालय ने पाया कि अत्यधिक बिजली की खपत खातों की पुस्तकों को अस्वीकार करने का आधार नहीं हो सकती है।

13 - मेसर्स अभिनव स्टील्स प्राइवेट लिमिटेड (पूर्व) में भी इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने पहले के निर्णयों का पालन करते हुए पाया था कि केवल बिजली के अत्यधिक उपयोग के आधार पर खातों की पुस्तकों को खारिज नहीं किया जा सकता है। न्यायालय ने आगे कहा कि बिजली की अधिक खपत अधिक से अधिक संदेह को जन्म दे सकती है , जिससे अन्य सामग्रियों की जांच की आवश्यकता हो सकती है ।

14 - मेसर्स सुनीता इस्पात प्राइवेट लिमिटेड (पूर्व) और मेसर्स अभिनव स्टील्स प्राइवेट लिमिटेड (पूर्व) के दोनों निर्णयों में न्यायालय के न्यायाधिकरण के समक्ष कोई सामग्री नहीं लाई गई जिससे यह प्रदर्शित किया जा सके कि उत्पादन बिजली के उपयोग के अनुरूप नहीं था और न्यायालय ने आमतौर पर यह माना कि बिजली का अत्यधिक उपयोग खातों की पुस्तकों को अस्वीकार करने का आधार नहीं हो सकता है ।

15 - इस न्यायालय की खंडपीठ का यह भी मानना था कि केवल तभी जब खातों की पुस्तकों की अस्वीकृति को उचित ठहराने के लिए सामग्री को रिकॉर्ड पर लाया गया हो तभी बिजली की उच्च खपत पर विचार किया जा सकता है।

16 - प्रस्तुत प्रकरण में इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि दिनांक 01.04.2007 से 31.12.2007 तक नौ माह में कुल बिजली की खपत 8,55,375 थी तथा गेहूं की कुल पिसाई 96760.05 क्विंटल थी। जबकि शेष अवधि अर्थात 01.01.2008 से 31.03.2008 तक 1,83,625 यूनिट बिजली की खपत करके केवल 8791.14 क्विंटल गेहूं पिसाया गया, जो कि पिछली अवधि की तुलना में प्रति क्विंटल 20.887 यूनिट बिजली बनती है, जहां खपत 8.840 यूनिट प्रति क्विंटल थी। 01.4.2007 से 31.12.2007 और 01.01.2008 से 31.03.2008 की अवधि के लिए बिजली की खपत के बीच का अंतर लगभग 2.5 गुना अधिक है, जिसके लिए निर्धारिती द्वारा अधिकारियों द्वारा उनके आवास पर बिजली की खपत की सीमा को उचित ठहराया गया है। एयर कंडीशनर, पंखे और लाइट चलाने के लिए परिसर को स्वीकार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि जिस अवधि के लिए स्पष्टीकरण दिया गया है वह सर्दियों का समय है जब एयर कंडीशनर का कोई उपयोग नहीं होता है और घरेलू खपत इतनी अधिक होने पर विश्वास नहीं किया जा सकता ।

17 - मेल्टन इंडिया (पूर्व) में, सर्वोच्च न्यायालय ने उत्पादन की तुलना में बिजली की अत्यधिक खपत के मामले पर विचार करते हुए पाया कि जब बिजली की खपत बढ़ जाती है, तो एक उचित निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उत्पादन बढ़ गया है । यदि बिजली की खपत बढ़ रही है, लेकिन उत्पादन कम होता दिख रहा है तो प्रथम दृष्टया एक उचित निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बिक्री कर से बचने के लिए उत्पादन का दमन किया गया और परिणामस्वरूप बिक्री का दमन किया गया । निर्णय के प्रासंगिक पैरा 9, 10 और 12 यहां नीचे दिये गये हैं :-

> "7. इस संबंध में हम अपीलकर्ता के कारखाने में तीन मूल्यांकन वर्षों के लिए बिजली की खपत और उत्पादन का उल्लेख कर सकते हैं, जो इस प्रकार हैं :-

निर्धारण वर्ष	उत्पादन	बिजली की खपत
2001-01	402 मीट्रिक टन	5,13,596
2001-02	268 मीट्रिक टन	6,38,164
2002-03	314 मीट्रिक टन	6,68,736

> 10. उपरोक्त आंकड़ों के अवलोकन से पता चलता है कि जहां बिजली की खपत स्पष्ट रूप से बढ़ रही है, वहीं उत्पादन 402 मीट्रिक टन से घटकर 314 मीट्रिक टन हो गया है। आमतौर पर, जब बिजली की खपत बढ़ती है, तो एक उचित अनुमान लगाया जा सकता है कि उत्पादन भी बढ़ गया होगा। यदि बिजली की खपत बढ़ रही है लेकिन उत्पादन कम होता दिख रहा है, तो प्रथम दृष्टया एक उचित निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बिक्री कर से बचने के लिए उत्पादन का दमन किया गया और परिणामस्वरूप बिक्री का दमन किया गया।
>
> 11......
>
> 12. उपरोक्त के मद्देनजर, हम उच्च न्यायालय से सहमत हैं कि अत्यधिक बिजली की खपत, प्रथम दृष्टया, उत्पादन और टर्नओवर को दबाने के लिए निर्धारिती के इरादे को स्थापित करती है।

18 - प्रथम अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष मेसर्स फ्लोर मिल इंजीनियर्स एंड कंसल्टेंट्स की दिनांक 20.06.2010 की रिपोर्ट पर निर्धारिती वकील द्वारा भरोसा रखा गया, जिसमें यह कहा गया था कि कारखाने का निरीक्षण 10.06.2010 को किया गया था और यह पाया गया था कि मशीनरी पुरानी थी और फैक्ट्री को सप्लाई की जा रही बिजली में खराबी थी। यह रिपोर्ट वर्ष 2010 की है जो प्रथम अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष दायर की गई थी और वह भी एक निजी व्यक्ति द्वारा। रिपोर्ट को ध्यान में नहीं रखा जा सकता क्योंकि प्रासंगिक अवधि 01.01.2008 से 31.03.2008 है, ढाई साल के बाद की रिपोर्ट को ध्यान में नहीं रखा जा सकता है और प्रथम अपीलीय प्राधिकारी द्वारा उक्त रिपोर्ट पर भरोसा करते हुए दर्ज किए गए निष्कर्षों को अधिकरण द्वारा उचित रूप से अस्वीकार कर दिया गया था।

19 - इस प्रकार, इस न्यायालय और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निरंतर दृष्टिकोण के प्रकाश में, यह स्पष्ट है कि मूल्यांकन प्राधिकारी ने मामले के प्रत्येक पहलू से निपटने और प्रश्न में मूल्यांकन वर्ष की प्रासंगिक अवधि के दौरान गेहूं से बने आटे के उत्पादन के बारे में एक स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज करने के बाद बिजली की उच्च खपत के आधार पर खातों की पुस्तकों को खारिज कर दिया था। इस न्यायालय की पिछली डिवीजन बेंच और समन्वय बेंच ने केवल यह माना था कि जब रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं थी तो उच्च खपत के आधार पर खातों की पुस्तकों को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। हालाँकि, वर्तमान मामले में, निर्धारण प्राधिकारी ने प्रदर्शित किया है कि 01.04.2007 से 31.12.2007 और 01.01.2008 से 31.03.2008 की अवधि के दौरान निर्धारिती द्वारा बिजली की खपत कैसे की गई, जब उत्पादन में वृद्धि नहीं हुई बल्कि केवल खपत अधिक थी ।

20 - मेसर्स मेल्टन इंडिया, गौतमबुद्ध नगर (पूर्व) के मामले में, शीर्ष न्यायालय ने माना था कि जहां बिजली की अधिक खपत के साथ उत्पादन नहीं बढ़ता है, तो खुलासा न करके निर्धारिती द्वारा बिक्री कर की चोरी के रूप में निष्कर्ष निकाला जाता है।

21- मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, मुझे लगता है कि अधिकरण के आदेश में हस्तक्षेप का कोई आधार नहीं बनता है। दोनों पुनरीक्षणों में गुण-दोष की कमी है और इसलिए इन्हें खारिज किया जाता है।

22 - कानून के प्रश्न का उत्तर राजस्व के पक्ष में और निर्धारिती के विरुद्ध दिया गया है।

(2023) 1 ILRA 1301

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक वाद

दिनांक: लखनऊ 10.01.2023

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद

समक्ष

धारा 482 के तहत आवेदन संख्या -103/2023

मुसीबत @ राहत अली ...आवेदक

बनाम

यूपी राज्य एवं अन्य. ...विपरीत पक्षकार

आवेदक के लिए अधिवक्ता:

गोपेश त्रिपाठी

विपक्षी पक्षकारों के अधिवक्ता:

जी.ए.

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 111 - सीआरपीसी की धारा 110 (जी) के तहत जारी नोटिस को रद्द करने के लिए प्रार्थना (शांति भंग होने की संभावना का हवाला देते हुए) - नोटिस में आवेदक को 2 लाख रुपये और समान राशि की दो जमानतें का निजी बांड प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है - नोटिस की वैधता को चुनौती देता है क्योंकि इसमें सीआरपीसी की धारा 111 की आवश्यकताओं का अभाव है - आक्षेपित नोटिस को सारहीन और न्यायिक विवेक की कमी वाला मानता है।

नोटिस रद्द कर दिया गया है (ई-9)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

बालेश्वर पुत्र रामसरन एवं अन्य।बनाम यूपी राज्य, 2008 (63) एसीसी 374

(माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री गोपेश त्रिपाठी और राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. श्री दिवाकर सिंह को सुना और रिकार्ड का अवलोकन किया।

2. यह आवेदन सीआरपीसी की धारा 482 के तहत नोटिस को रद्द करने के लिए दायर किया गया है जो सीआरपीसी की धारा 110 (जी) के तहत दिनांक 20.12.2022, पुलिस थाना शिवगढ़, रायबरेली, अनुविभागीय मजिस्ट्रेट, महराजगंज, रायबरेली द्वारा जारी एवं तत्संबंधी कार्यवाही से उत्पन्न हुआ है।

3. रिकॉर्ड से पता चलता है कि थाना शिवगढ़ की पुलिस ने आवेदक मुसीबत उर्फ राहत अली के खिलाफ दिनांक 30.11.2022 को चालान रिपोर्ट पेश की, जिसके तहत उसे धारा 110 (जी) सीआरपीसी के तहत चालान किया गया है। उक्त रिपोर्ट में आरोप लगाया गया है कि इससे शांति भंग होने की आशंका है. इसे रोकने के लिए, उपरोक्त व्यक्ति को सीआरपीसी की धारा 110 (जी) के तहत तलब किया गया है। न्याय के हित में, उपरोक्त नामित व्यक्तियों से व्यक्तिगत बांड और ज़मानत बांड की अपेक्षित राशि प्राप्त की जाए।

4. उपरोक्त रिपोर्ट के बाद एस.एच.ओ. द्वारा अग्रेषित किया गया। पी.एस. शिवगढ़, उपजिलाधिकारी, महराजगंज, रायबरेली ने धारा 110 (जी) सीआरपीसी के तहत दिनांक 20.12.2022 को नोटिस जारी कर कहा आवेदक को 2 लाख रुपये का निजी बांड और इतनी ही राशि की दो जमानतें प्रस्तुत करना होगा।

5. उपरोक्त नोटिस दिनांक 20.12.2022 से व्यथित महसूस करते हुए, आवेदक अर्थात् मुसीबत @ राहत अली ने अब सीआरपीसी की धारा 482 के तहत वर्तमान आवेदन के माध्यम से इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

6. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि सब डिविजनल मजिस्ट्रेट, महराजगंज, रायबरेली द्वारा जारी दिनांक 20.12.2022 का नोटिस स्पष्ट रूप से अवैध है। इसमें न तो पूर्ण विवरण शामिल है और न ही पुलिस रिपोर्ट का पूरा सार, जिसके आधार पर उपरोक्त नोटिस जारी किया गया है। इस प्रकार यह आग्रह किया जाता है कि विवादित नोटिस सीआरपीसी की धारा 111 की आवश्यकता को पूरा नहीं करता है। उपरोक्त के समर्थन में, बालेश्वर पुत्र राम सरन और अन्य बनाम यूपी राज्य,2008 (63) एसीसी 374 पर भरोसा किया गया है। जिसमें एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने पैराग्राफ 6, 7 और 8 में निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"6. पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर गहन विचार करने और आक्षेपित नोटिस पर विचार करने के बाद, मुझे आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता के उपरोक्त तर्क में बल मिलता है कि आक्षेपित नोटिस पूरी तरह से अवैध और शून्य है। अनुलग्नक 1 है आक्षेपित नोटिस की प्रति, जो आवेदकों को एसडीएम मवाना (मेरठ) द्वारा जारी की गई थी, जिसके तहत उन्हें 10.12.2004 को उपस्थित होने और कारण बताने के लिए कहा गया था कि उन्हें 30,000 रुपये का निजी बांड निष्पादित करने का आदेश क्यों न दिया जाए /- और एक

वर्ष की अवधि के लिए शांति बनाए रखने के लिए समान राशि की दो जमानतें प्रस्तुत करें। इस नोटिस में संबंधित एसडीएम द्वारा केवल यह उल्लेख किया गया है कि वह पी.एस. मवाना की रिपोर्ट से संतुष्ट हैं। पक्षों के बीच शत्रुता है, जिसके कारण शांति भंग होने की संभावना है। इस नोटिस में यह उल्लेख नहीं किया गया है कि पक्षों के बीच किस प्रकार का मुकदमा चल रहा है और उक्त मुकदमा किस न्यायालय में लंबित है मामले और उक्त मुकदमे के अन्य विवरणों का भी आक्षेपित नोटिस में उल्लेख नहीं किया गया है। इस प्रकार विद्वान एसडीएम मवाना द्वारा जारी किया गया नोटिस अस्पष्ट है और यह सीआरपीसी की धारा 111 की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता है। रणजीत कुमार बनाम यूपी राज्य (उपरोक्त) के मामले में इस प्रकार के नोटिस को इस न्यायालय द्वारा अवैध माना गया है।

7. संहिता की धारा 111 के तहत आदेश देना कोई बेकार औपचारिकता नहीं है। धारा 111, सीआर.पी.सी. के तहत आदेश के प्रथम भाग पर यह स्पष्ट होना चाहिए कि यह आदेश न्यायिक विवेक के प्रयोग के बिना पारित किया गया है। यदि धारा 111 के तहत आदेश में कोई सारगर्भित जानकारी नहीं दी गई है तो जिस व्यक्ति के खिलाफ मामला दर्ज किया गया है या आदेश हो गया है असमंजस में रहेगा। संहिता की धारा 114 में यह प्रावधान है कि समन या वारंट के साथ धारा 111 के तहत दिए गए आदेश की एक प्रति होगी।यह लाभकारी प्रावधान उस व्यक्ति को तथ्यों और आरोपों की सूचना देने के लिए संहिता में निहित किया गया है, जिसके खिलाफ सीआरपीसी की धारा 107 के तहत कार्यवाही को लागू किया गया है।

8. यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि संहिता की धारा 107/116 के तहत कार्यवाही से कभी-कभी जनता को अपूरणीय क्षति और अनावश्यक उत्पीड़न होता है, जो अपने जीवन के व्यवसाय की कीमत पर अदालत में भागते हैं। जब तक अत्यंत आवश्यक न हो, धारा 107/116 सीआर.पी.सी. के तहत कार्यवाही का सहारा नहीं लेना चाहिए. अनुभव बताता है कि संहिता की धारा 107/116 के तहत कार्यवाही विद्वान कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा बेहद सुस्त और उदासीन तरीके से की जाती है, जिससे जनता को हद से ज्यादा परेशान किया जाता है।''

7. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने *2004 (5) एसीसी 734 औरंगजेब और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य, 2002 (45) एसीसी 627 रणजीत कुमार और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य और 2008 (61) एसीसी 540 हर चरण बनाम यूपी राज्य और अन्य* के मामलो को उसके तर्क के समर्थन में इस न्यायालय के निर्णयों पर अधिक भरोसा किया है।

8. उपरोक्त के मद्देनजर, इस न्यायालय ने धारा 110 (जी) सीआरपीसी के तहत सब डिविजनल मजिस्ट्रेट, महराजगंज, रायबरेली द्वारा जारी दिनांक 20.12.2022 के आक्षेपित नोटिस की जांच की है। न्यायालय ने पाया कि आक्षेपित नोटिस में केवल यह कहा गया है कि संज्ञेय अपराध घटित होने की आशंका है। आक्षेपित नोटिस में संबंधित पुलिस अधिकारी द्वारा दी गई जानकारी का पूरा सार नहीं है। परिणामस्वरूप, संबंधित मजिस्ट्रेट ने धारा 110जी सीआरपीसी के तहत नोटिस दिनांक 20.12.2022 को आक्षेपित नोटिस जारी करते समय विवेकपूर्ण ढंग से कार्य नहीं किया है। केवल एक मामले के आधार पर जारी किया गया है, आक्षेपित नोटिस में उस आरोप का सार नहीं है जो आवेदक के खिलाफ लगाया गया है और एक मुद्रित प्रारूप पर नियमित तरीके से जारी किया गया है।

9. उपरोक्त के मद्देनजर, सब डिविजनल मजिस्ट्रेट, महराजगंज, रायबरेली द्वारा जारी दिनांक 20.12.2022 का आक्षेपित नोटिस बरकरार नहीं रखा जा सकता है। तदनुसार, यह रद्द किये जाने योग्य है।

10. परिणामस्वरूप, वर्तमान आवेदन सफल होता है और अनुमति दिये जाने योग्य है। तदनुसार इसकी अनुमति दी जाती है। विवादित नोटिस दिनांक 20.12.2022 को रद्द किया जाता है। सब डिविजनल मजिस्ट्रेट, महराजगंज, रायबरेली, ऊपर दी गई टिप्पणियों के आलोक में और कानून के अनुसार, यदि मामले की परिस्थितियों में उचित समझे जाते हैं, तो अपेक्षित कार्रवाई करने के बाद एक नया नोटिस जारी करेंगे।

(2023) 1 ILRA 1303
मूल न्यायाधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: लखनऊ 16.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 216 /2023

बृजेश सौरभ मिश्रा @ बृजेश मिश्रा ...आवेदक
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक:

मनोज कुमार मिश्रा

अधिवक्ता विपक्षीगण:
जी.ए.

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता - धारा 273- आक्षेपित आदेश ने धारा 2/3 यू.पी. के तहत एक वाद में आवेदक के लिए पीडब्लू-11, उमा शंकर त्रिपाठी से जिरह करने का अवसर बंद कर दिया – गैंगस्टर एक्ट धारा 273 सीआरपीसी का उल्लंघन – विचारणीय न्यायालय का अभ्यास अनुचित।

आवेदन स्वीकृत। (ई-9)

(माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान, द्वारा प्रदत्त)

आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री मनोज कुमार मिश्रा और राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री राजेश कुमार सिंह को सुना।

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत दायर इस आवेदन के माध्यम से, आवेदक ने निम्नलिखित मुख्य अनुतोष की प्रार्थना की है: -

"संलग्न शपथ-पत्र में कथित तथ्यों, कारण और परिस्थितियों के दृष्टिगत, इस माननीय न्यायालय के समक्ष अत्यंत सम्मानपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि वह सत्र विचारण संख्या 70/2015 राज्य बनाम बृजेश सौरभ मिश्रा व अन्य में पारित दिनांक 17.11.2022 के आदेश को रद्द करने की कृपा करें, जो अपराध संख्या 237/2013 धारा 2/3 उ0प्र0 गैगेस्टर अधिनियम के अन्तर्गत थाना अंतू जिला प्रतापगढ़ से सम्बंधित है एवं अपर सत्र न्यायाधीश न्यायालय संख्या 05, प्रतापगढ़ के न्यायालय में विचाराधीन है, जिसके द्वारा उन्होंने आवेदक हेतु प्रतिपरीक्षा का अवसर समाप्त कर दिया और उपरोक्त वाद में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या- 05, प्रतापगढ़ द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.11.2022 को भी रद्द करें एवं न्यायहित में अधोवर्णित विद्वान न्यायालय को साक्षी को पुनः बुलाने और आवेदक को उससे प्रतिपरीक्षा करने की अनुमति देने का निर्देश दें।

माननीय न्यायालय से यह भी प्रार्थना की जाती है कि वह न्यायहित में इस वाद के लंबित रहने के दौरान उपरोक्त वाद में आगे की कार्यवाही पर रोक लगाने की कृपा करें।"

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने दिनांक 17.11.2022 के आदेश द्वारा पीडब्लू-11, उमा शंकर त्रिपाठी का मुख्य बयान दर्ज किया। उस दिन, विशेष रूप से उस समय, आवेदक के अधिवक्ता अन्य न्यायालय में व्यस्त थे, अतः वाद को स्थगित करने हेतु उनकी ओर से एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था क्योंकि उनके अधिवक्ता पीडब्लू -11 उमा शंकर त्रिपाठी की प्रतिपरीक्षा करने में सक्षम नहीं थे। विद्वान विचारण न्यायालय ने उक्त आवेदन को इस कारण से खारिज कर दिया कि वर्तमान आवेदक के अधिवक्ता ने उस न्यायालय का उल्लेख नहीं किया था जहां वह व्यस्त थे।

चूँकि पीडब्लू-11 की प्रतिपरीक्षा करने हेतु पहले किसी भी प्रकार का स्थगन नहीं मांगा गया था, अपितु उक्त साक्षी की मुख्य-परीक्षा 17.11.2022 को दर्ज की गई थी, इसलिए कम से कम, धारा 273 द.प्र.सं. के संदर्भ में आवेदक के अधिवक्ता को थोड़ा समय दिया जाना चाहिए, जिसमें स्पष्ट रूप से प्रावधान किया गया है कि अन्यथा अभिव्यक्त रूप से जैसा उपबंधित है उसके सिवाय, विचारण या अन्य कार्यवाही के अनुक्रम में लिया गया सब साक्ष्य अभियुक्त की उपस्थिति में या जब उसे वैयक्तिक हाजिरी से अभिमुक्त कर दिया गया है तब उसके प्लीडर की उपस्थिति में लिया जाएगा। उपरोक्त विधिक प्रतिपादना के आधार पर, आवेदक ने धारा 311 द.प्र.सं. के अन्तर्गत दिनांक 25.11.2022 (संलग्नक संख्या 5) को दिनांक 17.11.2022 के आदेश को वापस लेने और पीडब्लू-11 से प्रतिपरीक्षा करने का एक अवसर प्रदान करने हेतु आवेदन प्रस्तुत किया है। आदेश दिनांक 25.11.2022 (संलग्नक संख्या 6) के द्वारा, विद्वान विचारण न्यायालय ने उक्त आवेदन को यह कहते हुए अस्वीकृत कर दिया कि संसद/विधानसभा सदस्यों से संबंधित वादों का माननीय उच्च न्यायालय द्वारा जारी किए जा रहे निर्देशों के अनुसार त्वरित निपटान किया जाना चाहिए। उक्त मामला पुराना है, इसलिए स्थगन संभव नहीं है। विद्वान विचारण न्यायालय ने यह भी संकेत दिया है कि अधिवक्ता ने अपने आवेदन में उस न्यायालय का उल्लेख नहीं किया जहाँ वह व्यस्त थे। अतः किसी विशेष तिथि पर किसी अधिवक्ता की व्यस्तता का आधार वाद को स्थगित करने का उचित आधार नहीं हो सकता है।

श्री मिश्रा ने कहा है कि यदि यह मामला इस प्रकृति का होता कि वर्तमान आवेदक की ओर से बार-बार स्थगन की मांग की गई होती, तो विद्वान विचारण न्यायालय का अवलोकन उचित होता, किन्तु वर्तमान वाद में, स्पष्टतः,जिस तारीख को पीडब्लू-11 की मुख्य परीक्षा दर्ज की गई थी, उसी तिथि को साक्षी की प्रतिपरीक्षा का अवसर विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा समाप्त कर दिया गया है। उपरोक्त कार्यवाही दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 273 का उल्लंघन है। इसलिए, उन्होंने अनुरोध किया है कि दिनांक 17.11.2022 और 25.11.2022 के आदेशों को रद्द करते हुए, आवेदक को पीडब्लू-11 से प्रतिपरीक्षा करने का एक अवसर प्रदान किया जाए।

विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने उपरोक्त अनुरोध का विरोध किया है और कहा है कि पीडब्लू-11 ने केवल चिक एफआईआर को साबित किया है और यदि आवेदक

द्वारा उससे प्रतिपरीक्षा नहीं की गई है, तो आवेदक को कोई अपूरणीय क्षति नहीं होगी और इसे आवेदक के प्रति न्याय की विफलता नहीं माना जा सकता है। अतः विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.11.2022 और 25.11.2022 में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

उभयपक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

यह पुराना कानून है और साथ ही इसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 273 के अन्तर्गत वैधानिक स्तर भी प्राप्त है कि न्यायालय या अन्य कार्यवाही में लिए गए सभी साक्ष्य अभियुक्त की उपस्थिति में या यदि उसकी व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट दी गई है, तो उसके अधिवक्ता की उपस्थिति में लिए जाएंगे। उस वैधानिक आदेश को अनदेखा नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त, यह ऐसा मामला नहीं है जहाँ आवेदक की ओर से बार-बार स्थगन की मांग की गई है, बल्कि यह 17.11.2022 को प्रस्तुत स्थगन हेतु प्रथम प्रार्थना-पत्र था जब पीडब्लू-11 की मुख्य परीक्षा दर्ज की गई है और उसी तिथि पर बिना कोई लघु स्थगन दिए ऐसे अवसर को समाप्त कर दिया गया। अतः इसे विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा द्वारा की गयी उचित कार्यवाही नहीं माना जा सकता है। विद्वान अधिवक्ता किसी विशेष समय पर किसी अन्य न्यायालय में व्यस्त हो सकता है और यदि ऐसा आवेदन विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था तो उस आवेदन पर दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 273 के वैधानिक आदेश के आलोक में एवं इस तथ्य के आलोक में कि किसी साक्षी से प्रतिपरीक्षा करना दूसरे पक्ष का अधिकार है, समुचित रूप से विचार किया जाना चाहिए था । इस तरह के अधिकार को मात्र असाधारण परिस्थितियों में या ऐसी परिस्थितियों में अस्वीकृत किया जा सकता है जहां आदेश पत्रक से पता चलता है कि दूसरा पक्षकार किसी न किसी कारण से स्थगन मांगने का अभ्यस्त है।

अतः उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के दृष्टिगत, मेरी सुविचारित राय है कि दिनांक 17.11.2022 और 25.11.2022 के प्रश्नगत आदेश उचित रूप से पारित नहीं किए गए हैं, इसलिए दोनों आदेशों को रद्द किया जाता है। विद्वान विचारण न्यायालय को निर्देशित किया जाता है कि वह आवेदक/उसके अधिवक्ता को एक तिथि निश्चित कर पीडब्लू-11 से प्रतिपरीक्षा करने का एक अवसर प्रदान करे, जो कि एक सन्निकट तिथि हो सकती है और यदि उस तिथि पर अभियोजन पक्ष के साक्षी से आवेदक की किसी भी त्रुटि के कारण परिक्षण नहीं किया जा सका है तो कारण बताते हुए कोई भी उचित आदेश पारित किया जा सकता है। चूंकि प्रश्नगत विचारण वर्ष 2015 का है, इसलिए विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा बरती गई सावधानी की सराहना की जाती है, किन्तु ऐसी सावधानी के आलोक में, पीडब्लू-11 से प्रतिपरीक्षा करने के एक मात्र अवसर को मना नहीं किया जा सकता है।

तदनुसार, आवेदन स्वीकृत किया जाता है।

(2023) 1 ILRA 1305
मूल क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 30.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डा. गौतम चौधरी

धारा 482 के तहत आवेदन संख्या- 27577 वर्ष 2022

सुमित अग्रवाल और अन्य ... आवेदकों
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ... प्रतिपक्ष

आवेदकों के लिए वकील:
श्री शेषाद्री त्रिवेदी, श्री आशीष दत्त दुबे, श्री सतीश त्रिवेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री गोपाल एस. चतुर्वेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिपक्ष के लिए वकील:
शासकीय अधिवक्ता, श्री दीपक दुबे, श्री राजेश पचौरी, श्री शिव बहादुर सिंह

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 498A, 304-B, 323, 506 & 313 - दहेज निषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3/4 - SC ने CBI को जांच करने का निर्देश दिया और उसकी जमानत को रद्द कर दिया - सीबीआई ने आरोपों को निराधार बताते हुए एक क्लोजर रिपोर्ट प्रस्तुत की - मजिस्ट्रेट ने पहले ही संज्ञान ले लिया था - आवेदक सीआरपीसी की धारा 482 के तहत अदालत में चला गया - सीबीआई के निष्कर्षों के अनुसार आवेदक के वकील द्वारा अंतरिम जमानत मांगी गई - विरोध, जैसा कि घटना और रिपोर्ट 17 महीने बाद की है - अदालत ने स्वीकार किया कि दोनों रिपोर्टों को यह निर्धारित करने के लिए संचयी रूप से विचार किया जाना चाहिए कि क्या अपराध मानने के लिए आधार मौजूद हैं - अदालत ने सम्मन आदेश को रद्द करने से इनकार कर दिया- आवेदकों को अपनी चिंताओं को उठाने का विकल्प दिया गया - आवेदन निपटाया गया - अंतरिम आदेश का निर्वहन किया गया। (ई-9)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. विनय त्यागी बनाम इरशाद अली @ दीपक ने 2012 एससीसी 903 में रिपोर्ट किया

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. गौतम चौधरी द्वारा प्रदत्त)

1. तत्काल आवेदन को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि दिनांक 03.08.2020 की घटना के संबंध में एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 03.08.2020 को मामला अपराध संख्या 623 वर्ष 2020 में धारा 498ए, 304-बी, 323, 506, 313 अंतर्गत आईपीसी और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3/4, पुलिस स्टेशन ताजगंज, जिला आगरा के साथ दर्ज की गई थी, जिसमें कहा गया था कि विपरीत पक्ष नंबर 2 की बेटी की शादी अर्थात्, दीप्ति की प्रार्थी क्रमांक 1 से सम्मति हुई जिसमें 1.5 करोड़ रुपए से अधिक खर्च हुए, इसके बावजूद आवेदक विवाह से खुश नहीं थे और उन्होंने दहेज की मांग करना शुरू कर दिया और उसी के पूरा न होने के कारण उसे यातनाएं दी गयी। यह भी कहा गया है कि वर्ष 2017 में, आवेदकों ने उसके साथ मारपीट की, जिसके कारण उसे चोटें आईं और उसकी मेडिकल जांच सरकारी अस्पताल, वृंदावन में की गई। पुनः दिनांक 03.08.2020 को आवेदक संख्या 2, जो मृतका के ससुर हैं, ने टेलीफोन पर दहेज की मांग की और उनके साथ बर्बरता से मारपीट की गई और उनकी त्वचा बचाने के लिए मृतका को सर्वोदय अस्पताल, फरीदाबाद में भर्ती कराया गया, जहां 06.08.2020 को उसकी मृत्यु हो गई। इसके बाद 06.08.2020 को जांच रिपोर्ट और पोस्टमार्टम किया गया और डॉक्टर ने कहा कि मौत का कारण सदमा और सेप्टीसीमिया था और मामले को जांच के लिए सौंपा गया था। प्रथम सूचनाकर्ता/विपरीत पक्ष नंबर 2 के साथ-साथ आवेदक नंबर 1 और मृतक की बेटी की नौकरानी और देखभाल करने वाले के बयान सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दर्ज किए गए थे। इस बीच, आवेदक नंबर 2 ने 2020 का एक आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 5457 वर्ष 2020 (श्रीमती अनीता अग्रवाल और दो अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) दायर किया, जबकि आवेदक संख्या 3, 4 और 5 ने 20220 (?) में एक अलग अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 5460 (एससी अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) दायर किया और दोनों अग्रिम जमानत आवेदनों पर 29.09.2020 के एक सामान्य आदेश द्वारा निर्णय लिया गया, जिसके तहत आवेदक संख्या 2, 3, 4, 5 को मुकदमे के समापन तक अग्रिम जमानत दी गई थी। इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा पारित दिनांक 29.09.2020 के आदेश के खिलाफ, विपरीत पक्ष नंबर 2 ने एसएलपी (सीआरआई) संख्या 4935-4936 (डॉ. नरेश कुमार मंगला बनाम श्रीमती अनीता अग्रवाल और अन्य) से उत्पन्न 2020 की आपराधिक अपील संख्या 872-873 के माध्यम से माननीय सर्वोच्च न्यायालय से संपर्क किया, जिसे निर्णय और आदेश दिनांक 17.12.2020 के माध्यम से अनुमति दी गई थी, दिनांक 29.09.2020 के आदेश को रद्द करते हुए सीबीआई को थाना ताजगंज, जिला आगरा में दर्ज केस क्राइम नंबर 0623 ऑफ 2020 से उत्पन्न मामले की आगे की जांच करने का निर्देश दिया गया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में, सीबीआई एफआईआर नं RCO5320215001 पुलिस स्टेशन एससीबी, लखनऊ में पंजीकृत किया। आवेदक नंबर 1, जो मृतक का पति है, ने इस न्यायालय के समक्ष 2022 का आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 39500 (सुमित अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) दायर किया, जो 07.04.2021 को इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया और इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 07.04.2021 के आदेश के तहत आवेदक संख्या 1 की जमानत याचिका को खारिज कर दिया था, हालांकि, आवेदक नंबर 1 ने 2021 की अपील संख्या 3975 (सुमित अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) और माननीय सर्वोच्च न्यायालय को विशेष अनुमति दाखिल करने के माध्यम से माननीय सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि आवेदक नंबर 1 की तीन वर्षीय बेटी तीव्र बेसिलरी पेचिश से पीड़ित है, को छह सप्ताह की अवधि के लिए अंतरिम जमानत दी थी। बाद में, आवेदक की अंतरिम जमानत की पुष्टि दिनांक 18.07.2022 के आदेश के माध्यम से की गई, जिसकी प्रति इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई है और रिकॉर्ड में ली गई है। इस बीच, जांच अधिकारी ने जांच की और जांच के बाद, आवेदकों के खिलाफ आरोप पत्र 2020 की चार्जशीट संख्या 705 दिनांक 24.10.2020 के तहत धारा 498ए, 304बी, 323, 506 आईपीसी और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3/4, पुलिस स्टेशन ताजगंज, जिला आगरा के तहत प्रस्तुत किया गया, जिस पर विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट आगरा द्वारा दिनांक 05.11.2020 के आदेश के तहत संज्ञान/सम्मन आदेश पारित किया गया था, और मामला 2020 के आपराधिक मामला संख्या 37339 (राज्य बनाम सुमित अग्रवाल और अन्य) के रूप में दर्ज किया गया था। यह सम्मन आदेश के साथ-साथ आपराधिक मामले की कार्यवाही है जिसे इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है।

2. श्री सतीश त्रिवेदी विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री गोपाल एस. चतुर्वेदी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के साथ, आवेदकों के विद्वान वकील श्री शेषाद्री त्रिवेदी द्वारा सहायता प्राप्त ने तर्क दिया कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 17.12.2020 के आदेश के अनुसरण में, सीबीआई द्वारा जांच की गई, जिसकी परिणति 28.06.2022 की क्लोजर रिपोर्ट में इस टिप्पणी के साथ हुई कि आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोपों की पुष्टि नहीं हुई है,

जिसकी प्रति तत्काल 482 सीआरपीसी आवेदन के साथ शपथ पत्र के अनुलग्नक-27 के रूप में संलग्न है। उन्होंने आगे कहा कि यहां तक कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आवेदक नंबर 1 की अंतरिम जमानत की पुष्टि करते हुए कहा था कि सीबीआई, जांच के बाद, सीआरपीसी की धारा 173 (8) के तहत अंतिम क्लोजर रिपोर्ट प्रस्तुत किया। विद्वान वकील ने आगे प्रस्तुत किया कि दिनांक 17.12.2020 के आदेश को पारित करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मामले की जांच को सीबीआई को सौंपने के लिए कहा था क्योंकि घटना स्थल पर पहुंचने से लेकर आरोप पत्र दाखिल करने तक जांच अधिकारियों के आचरण ने मृतक के सुसाइड नोट की सत्यता, चोटों की चिकित्सा जांच और गर्भपात के बाद प्रक्रिया की मजबूती में विश्वास को प्रेरित नहीं किया था, इसलिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सीबीआई द्वारा आगे की जांच के लिए निर्देश दिया था। जांच के बाद सीबीआई द्वारा क्लोजर रिपोर्ट प्रस्तुत की गई और जब एक बार सीबीआई द्वारा क्लोजर रिपोर्ट प्रस्तुत की गई, सीआरपीसी की धारा 173 (2) के तहत आरोप पत्र ने अपना महत्व और प्रभाव खो दिया, इस प्रकार विद्वान मजिस्ट्रेट ने मामले को आगे बढ़ाने से पहले क्लोजर रिपोर्ट का अध्ययन किया होगा, जबकि वर्तमान मामले में, विद्वान मजिस्ट्रेट ने नियमित तरीके से संज्ञान लिया और क्लोजर रिपोर्ट के साथ-साथ रिकॉर्ड पर उपलब्ध अन्य सामग्री पर विचार किए बिना मामले को आगे बढ़ाया और मजिस्ट्रेट ने रिपोर्ट का अध्ययन किया, आवेदकों के खिलाफ कार्यवाही के बजाय, आवेदकों के खिलाफ कार्यवाही को छोड़ दिया होता, लेकिन ऐसा नहीं करने से, विद्वान मजिस्ट्रेट ने एक अवैधता की है, इस प्रकार, आक्षेपित संज्ञान/सम्मन आदेश के साथ-साथ कार्यवाही इस न्यायालय द्वारा रद्द की जा सकती है।

3. दूसरी ओर, श्री एस.बी सिंह और श्री राजेश पचौरी, विपरीत पक्ष नंबर 2 के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि वर्तमान मामले में, 05.11.2020 को संज्ञान लिया गया था, जबकि सीबीआई ने 28.06.2022 को क्लोजर रिपोर्ट प्रस्तुत की, यानी 19 महीने से अधिक समय के अंतराल के बाद और इसलिए सम्मन आदेश में कोई अवैधता या विकृति नहीं है। इसके बाद वह प्रस्तुत करता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सीबीआई द्वारा की जाने वाली आगे की जांच के आदेश को पारित करते हुए, यूपी पुलिस द्वारा की गई पहले की जांच को रद्द नहीं किया है। वह आगे प्रस्तुत करता है कि संज्ञान के बाद, आवेदकों ने अग्रिम जमानत के लिए आवेदन किया था जिसे न्यायालय की इस समन्वय पीठ द्वारा अनुमति दी गई थी, लेकिन उस आदेश को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सीबीआई द्वारा आगे की जांच करने का निर्देश देते हुए रद्द कर दिया है और इस प्रकार माननीय सर्वोच्च न्यायालय पूरी तरह से सचेत था और पहले की जांच को रद्द करने के बजाय, सीबीआई द्वारा आगे की जांच करने का आदेश दिया गया और यह कि सीबीआई को केवल मामले की आगे की जांच करने और अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने तक ही सीमित रखा गया था और सीबीआई को एफआईआर दर्ज करने का काम नहीं सौंपा गया था। वह आगे प्रस्तुत करता है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने आक्षेपित आदेश पारित करने में कोई अवैधता नहीं की है और इसलिए आक्षेपित आदेश 482 सीआरपीसी क्षेत्राधिकार के तहत प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में इस न्यायालय द्वारा कोई हस्तक्षेप नहीं करता है।

4. इसके विपरीत, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने भी आवेदन का विरोध किया है और तर्क दिया है कि आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता या अनौचित्य नहीं है और इस प्रकार इस न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि की जा सकती है और तत्काल 482 सीआरपीसी खारिज किए जाने योग्य है।

5. पक्षकारों के विद्वान वकील को सुना और रिकॉर्ड पर सामग्री का अवलोकन किया।

6. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विनय त्यागी बनाम इरशाद अली @ दीपक 2012 एससीसी 903 के एक फैसले में में पैराग्राफ संख्या 32 में निम्नानुसार टिप्पणी की है: -

"32 इन दोनों रिपोर्टों को एक साथ पढ़ा जाना चाहिए और यह रिपोर्टों और दस्तावेजों का संचयी प्रभाव है, जिसके लिए अदालत से यह निर्धारित करने के लिए अपने दिमाग का उपयोग करने की उम्मीद की जाएगी कि क्या यह मानने के लिए आधार मौजूद हैं कि अभियुक्त ने अपराध किया है। यदि उत्तर नकारात्मक है, तो इन रिपोर्टों के आधार पर, न्यायालय संहिता की धारा 227 के प्रावधानों के अनुपालन में एक अभियुक्त को बरी कर देगा।

7. इस मामले में, 05.11.2020 को संज्ञान लिया गया था, जबकि क्लोजर रिपोर्ट 28.06.2022 को दायर की गई थी, जो पूरी तरह से स्पष्ट करता है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने बहुत पहले संज्ञान लिया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सीबीआई द्वारा आगे की जांच के लिए आदेश पारित करते समय पुलिस द्वारा पहले से की गई जांच को रद्द नहीं किया है। आगे की जांच की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें जांच एजेंसी द्वारा की गई प्रारंभिक जांच को सीधे या निहित रूप से मिटा देने का प्रभाव नहीं है, यह पिछली जांच की निरंतरता का एक प्रकार है। मजिस्ट्रेट के लिए दोनों रिपोर्टों का उचित सम्मान होना आवश्यक है- प्रारंभिक रिपोर्ट जो धारा 173 (2) के तहत प्रस्तुत की गई थी और साथ ही धारा 173 (8) सीआरपीसी के तहत रिपोर्ट लेकिन जहां विरोधाभासी रिपोर्ट है, तो मजिस्ट्रेट को दोनों रिपोर्टों को एक साथ पढ़ना होगा और यदि यह निष्कर्ष निकलता है कि अभियुक्त ने अपराध नहीं किया है, न्यायालय

संहिता की धारा 227 के प्रावधानों के मद्देनजर आवेदकों को मुक्त करेगा।

8. पक्षकारों के लिए विद्वान वकीलों द्वारा उठाए गए तर्कों पर विचार करने के बाद, साथ ही मामले के पूरे तथ्यों और परिस्थितियों और इस न्यायालय के समक्ष रखी गई सामग्री पर विचार करने के बाद, यह न्यायालय धारा 482 सीआरपीसी के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने के लिए एक उपयुक्त मामला नहीं पाता है।

9. तदनुसार, आवेदकों द्वारा मांगी गई राहत से इनकार कर दिया जाता है।

10. हालांकि, आवेदकों के लिए यह खुला है कि वे उचित स्तर पर संहिता की धारा 227 के तहत प्रावधानों के मद्देनजर अपनी शिकायत उठा सकते हैं।

11. तदनुसार आवेदन का निपटान किया जाता है।

12. अंतरिम आदेश, यदि कोई हो, का निर्वहन किया जाता है।

(2023) 1 ILRA 1309
मूल क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: लखनऊ 17.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ विधार्थी

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 24/2023

सन्नी @ नीतीश @ नीतीश अग्रहरि और अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक:
राघवेंद्र सिंह, अनिल कुमार तिवारी

अधिवक्ता विपक्षीगण:
जी.ए.

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता धारा 323 और 307 - शस्त्र अधिनियम, 1959 धारा 30 - आरोप पत्र को निरस्त करने के लिए आवेदन - आईपीसी की धारा 323 और 307 और शस्त्र अधिनियम की धारा 30 के तहत आरोप लगाया गया - अपराध में दिन के उजाले में बंदूक से दो व्यक्तियों पर गोली चलाना सम्मिलित है – अपराध को समाज के खिलाफ अपराध माना गया और यह जघन्य और गंभीर अपराध था, कार्यवाही को समझौते से निरस्त नहीं किया जा सकता। **आवेदन निरस्त.** (ई-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. जियान सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2012) 10 एससीसी 303
2. नरिंदर सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, (2014) 6 एससीसी 466,
3. गोल्ड क्रेस्ट इंटरनेशनल (पी) लिमिटेड बनाम तमिलनाडु राज्य, (2014) 15 एससीसी 235,
4. मध्य प्रदेश राज्य बनाम लक्ष्मी नारायण एवं अन्य। (2019) 5 एससीसी 688
5. अरुण सिंह बनाम सचिव, उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2020) 3 एससीसी 736
6. डैक्साबेन बनाम गुजरात राज्य और अन्य 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 936

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री राघवेंद्र सिंह, राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता-1 श्री तिलक राज सिंह एवं विरोधी पक्षकार संख्या 2 से 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री रामेंद्र कुमार को सुना।

2. वर्तमान आवेदन के माध्यम से आवेदकगण मुकदमा अपराध संख्या 511/2014, धारा 307, 323 भा.द.स., थाना कोतवाली अकबरपुर, जिला अंबेडकर नगर के संबंध में दायर आरोप पत्र दिनांक 26.03.2015 एवं उपरोक्त आरोप पत्र से उद्भूत सत्र परीक्षण संख्या 111/2015 'राज्य बनाम सुन्नी उर्फ नितीश व अन्य' की कार्यवाही को रद्द करने की मांग कर रहे हैं जो अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश III, अम्बेडकर नगर की न्यायालय में इस आधार पर लंबित है कि 09.12.2022 को पक्षकारों के मध्य समझौता हो गया है एवं विवाद का निपटारा हो गया है। अब विपक्षी संख्या 2 से 4 वाद में आगे कार्यवाही नहीं चाहते।

3. उपरोक्त वाद याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध विपक्षी संख्या 2 राम प्रसाद द्वारा 19.12.2014 को अभिलिखित वाद अपराध संख्या 511/2014 की प्रथम सूचना रिपोर्ट के आधार पर प्रारंभ किया गया था, जिसमें कहा गया था कि याचिकाकर्ता संख्या 2 नरेंद्र कुमार विवादित भूमि पर दीवार का निर्माण कर रहा था। वादी ने उससे न्यायालय का निर्णय घोषित होने तक कोई भी निर्माण न करने को कहा, जिसके बाद याचिकाकर्ता संख्या 1, जो याचिकाकर्ता संख्या 2 का पुत्र है, ने वादी को पीटना शुरू कर दिया। जब वादी के पुत्र हस्तक्षेप करने आए तो याचिकाकर्ता सं. 2 नरेंद्र ने वादी के पुत्र संजीव को

गोली मार दी एवं दूसरे आरोपी ने वादी के दूसरे पुत्र उमेश को गोली मार दी। याचिकाकर्ता संख्या-1 सन्नी ने वादी पर रॉड से हमला कर दिया, जिससे उसके सिर में चोट आयी। वादी के सबसे छोटे पुत्र संतोष पर भी गोली चलाई गई किंतु उसे कोई चोट नहीं आई।

4. जाँच के पश्चात पुलिस ने याचिकाकर्ता संख्या-1 सुन्नी के विरुध भा.दं.सं की धारा 323 एवं 307 के अतंर्गत व याचिकाकर्ता संख्या- 2 नरेंद्र पर आयुध अधिनियम की धारा 30 के अतंर्गत अपराध हेतु आरोप पत्र प्रस्तुत किया व दिनांक 08.11.2015 को विद्वान न्यायालय ने याचिकाकर्ता संख्या 1 व 2 को उपरोक्त अपराधों के विचारण हेतु तलब करने का आदेश पारित किया।

5. संजीव कुमार की इंजरी रिपोर्ट में उनकी छाती के दाहिनी ओर आग्नेयास्त्र प्रवेश घाव एवं कंधे पर निकास घाव का उल्लेख है, यद्यपि, उनकी एक्स-रे जांच में किसी हड्डी की चोट का पता नहीं चला।

6. उमेश कुमार की इंजरी रिपोर्ट में उनकी छाती के दाहिनी ओर आग्नेयास्त्र की एक चोट का भी उल्लेख है एवं उनकी एक्स-रे जांच में भी किसी हड्डी की चोट का पता नहीं चला है।

7. द.प्र. सं. की धारा 161 के अतंर्गत अभिलिखित किये गए अपने बयान में वादी ने कहा था कि याचिकाकर्ता सं. 2 ने उसके पुत्र सुन्नी एवं याचिकाकर्ता सं.3 सुशील ने उसके दूसरे पुत्र उमेश पर गोली चलाई थी। सुन्नी ने वादी पर लोहे की छड़ से हमला किया था जिससे उसके सिर पर चोट लगी थी एवं उसके सबसे छोटे पुत्र संतोष पर भी गोली चलाई गई थी। उसे कोई चोट नहीं आई थी।

8. घायल संजीव ने यह भी बताया कि याचिकाकर्ता सं. 2 नरेंद्र ने उस पर गोली चलायी थी। दूसरे घायल उमेश कुमार ने बताया कि याचिकाकर्ता सं. 2 ने संजीव एवं याचिकाकर्ता सं. 3 जमुना के पुत्र सुशील ने गोली चलाई थी जो उसे लग गई।

9. आवेदन के समर्थन में प्रस्तुत कथनों के अनुसार पक्षकारों ने समझौता कर लिया है। समझौते की एक प्रति शपथपत्र के साथ संलग्न की गई है जिसमें कोई दिनांक नहीं है। समझौते में यह उल्लेख किया गया है कि अभियुक्तगण एवं घायल व्यक्तियों ने समझौता कर लिया है एवं घायल व्यक्तियों ने अभियुक्तगण को क्षमा कर दिया है एवं वे नहीं चाहते कि अभियुक्तगण के विरुद्ध कोई कार्यवाही जारी रहे।

10. ज्ञान सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2012) 10 एससीसी 303 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने समझौते के आधार पर आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने हेतु उच्च न्यायालय की शक्ति के संबंध में विधिक स्थिति को निम्नलिखित शब्दों में सारगर्भित किया: -

> *61. उपरोक्त चर्चा से जो स्थिति प्रकट होती है उसे इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है: अपने अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए किसी आपराधिक कार्यवाही या प्र.सू.रि. या परिवाद को रद्द करने की उच्च न्यायालय की शक्ति, संहिता की धारा 320 के अतंर्गत अपराधों के शमन हेतु आपराधिक न्यायालय को दी गई शक्ति से स्पष्ट व भिन्न है। अंतर्निहित शक्ति बिना किसी वैधानिक सीमा के व्यापक है किंतु इसका प्रयोग ऐसी शक्ति में निहित दिशानिर्देशों के अनुसार (i) न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने हेतु, या (ii) किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने हेतु किया जाना चाहिए।* ***ऐसे किन वादों में आपराधिक कार्यवाही या शिकायत या प्र..सू.रि. को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है जहाँ अपराधी एवं पीड़ित ने अपना विवाद सुलझा लिया है, यह प्रत्येक वाद के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर निर्भर करेगा एवं कोई श्रेणी निर्धारित नहीं की जा सकती है। हालाँकि, ऐसी शक्ति के प्रयोग से पूर्व, उच्च न्यायालय को अपराध की प्रकृति एवं गंभीरता पर उचित ध्यान देना चाहिए।*** *मानसिक विकृति से संबंधित जघन्य एवं गंभीर अपराधों या हत्या, बलात्कार, डकैती आदि जैसे अपराधों को उचित रूप से रद्द नहीं किया जा सकता है, भले ही पीड़ित या पीड़ित के परिवार एवं अपराधी ने विवाद सुलझा लिया हो। ऐसे अपराध निजी प्रकृति के नहीं होते एवं समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं। इसी प्रकार, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम जैसे विशेष संविधियों के अतंर्गत अपराधों या लोक सेवक की क्षमता में कार्य करते समय लोक सेवकों द्वारा किये गए अपराधों आदि के संबंध में पीड़ित एवं अपराधी के मध्य कोई समझौता ऐसे अपराधों से जुड़ी आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने हेतु कोई आधार प्रदान नहीं कर सकते। किन्तु मुख्यतः सिविल प्रकृति वाले आपराधिक वादों को रद्द करने हेतु मापदंड भिन्न होते हैं, विशेष रूप से वाणिज्यिक, वित्तीय, व्यापारिक, सिविल, साझेदारी या इसी प्रकार के संव्यवहारों से*

अनुवाद

उत्पन्न अपराध या दहेज आदि से संबंधित विवाह से उत्पन्न अपराध या पारिवारिक विवाद जहाँ दोष मूलतः निजी या व्यक्तिगत प्रकृति का है एवं पक्षकारों ने अपने सम्पूर्ण विवाद को सुलझा लिया है। इस श्रेणी के मामलों में उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर सकता है यदि उसके विचार में अपराधी एवं पीड़ित के मध्य समझौते के कारण दोषसिद्धि की संभावना अत्यंत क्षीण व धूमिल है एवं आपराधिक वाद को जारी रखने से अभियुक्त को अत्यधिक उत्पीड़न का सामना करना पड़ेगा, एवं पीड़ित के साथ पूर्ण परिनिर्धारण एवं समझौते के बावजूद आपराधिक वाद को रद्द न करने से उसके प्रति पूर्वाग्रह एवं अत्यधिक अन्याय होगा। दूसरे शब्दों में, उच्च न्यायालय को इस बात पर विचार करना चाहिए कि क्या आपराधिक कार्यवाही जारी रखना अनुचित होगा या न्यायहित के विपरीत होगा या पीड़ित एवं अपचारी के मध्य समझौते एवं परिनिर्धारण के बावजूद आपराधिक कार्यवाही जारी रखना विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने के समान होगा या क्या ऐसा करना न्याय के उद्देशों हेतु सुरक्षित होगा। यह उचित है कि आपराधिक वाद को समाप्त कर दिया जाए एवं यदि उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर सकारात्मक है, तो आपराधिक कार्यवाही को रद्द करना भली-भांति उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में होगा।

(बल दिया गया)

11. नरिंदर सिंह व अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, (2014) 6 एससीसी 466 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उन सिद्धांतों को उल्लिखित एवं प्रतिपादित किया है जिनके द्वारा उच्च न्यायालय को पक्षकारों के मध्य समझौते को पर्याप्त उपचार देने एवं धारा 482 द.प्र.स. के अतंर्गत समझौते को स्वीकार करने एवं कार्यवाही को रद्द करने या समझौते को स्वीकार करने से इनकार करने की शक्ति के प्रयोग हेतु मार्गदर्शन प्रदान किया गया है:-

"29.1 संहिता की धारा 482 के अतंर्गत प्रदत्त शक्ति को उस शक्ति से पृथक किया जाना चाहिए जो संहिता की धारा 320 के अतंर्गत अपराधों के शमन हेतु न्यायालय में निहित है। निःसंदेह संहिता की धारा 482 के अतंर्गत उच्च न्यायालय के पास यह अंतर्निहित शक्ति है कि वह उन मामलों में भी आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर दें जो शमनीय नहीं हैं, जहाँ पक्षकारों ने परस्पर मामला सुलझा लिया है। यद्यपि, इस शक्ति का प्रयोग संयम एवं सावधानी पूर्वक से किया जाना चाहिए।

29.2 जब पक्षकार समझौता कर लें एवं उस आधार पर आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की याचिका दायर की गई है, ऐसे मामलों में निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति मार्गदर्शक कारक होगा:

(i) न्याय का उद्देश्य, या

(ii) किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकना।

शक्ति का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय को उपरोक्त दो उद्देश्यों में से किसी एक पर दृष्टिकोण का निर्माण करना होगा।

29.3 ऐसी शक्ति का प्रयोग उन अभियोजनों में नहीं किया जाता है जिनमें मानसिक विकृति के जघन्य एवं गंभीर अपराध या हत्या, बलात्कार, डकैती आदि जैसे अपराध सम्मिलित हैं। ऐसे अपराध निजी प्रकृति के नहीं होते हैं एवं समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं। इसी प्रकार, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम जैसे विशेष कानून के अतंर्गत किये गए कथित अपराधों या लोक सेवकों द्वारा उस क्षमता में कार्य करते हुए किये गए अपराधों को मात्र पीड़ित एवं अपराधी के मध्य समझौते के आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता।

29.4 दूसरी ओर, अत्यधिक एवं प्रमुख रूप से सिविल प्रकृति आपराधिक वाद, विशेष रूप से वाणिज्यिक लेनदेन से उत्पन्न होने वाले या वैवाहिक संबंध या पारिवारिक विवादों से उत्पन्न होने वाले मामलों को तब रद्द कर दिया जाना चाहिए जब पक्षकारों ने अपने समस्त विवादों को परस्पर सुलझा लिया हो।

29.5 अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय, उच्च न्यायालय को इस तथ्य की जाँच करनी है कि क्या दोषसिद्धि की संभावना अत्यधिक कम या धूमिल है एवं आपराधिक मामलों को जारी रखने से अभियुक्त को भारी उत्पीड़न व क्षति का सामना करना पड़ेगा एवं आपराधिक मामलों को रद्द न करने से उसके साथ घोर अन्याय होगा।

29.6 ***भा.द.स. की धारा 307 के अतंर्गत अपराध जघन्य एवं गंभीर अपराधों की श्रेणी में आएंगे एवं अतः इसे सामान्यतया समाज के विरुद्ध अपराध माना जाएगा, न कि***

किसी अकेले व्यक्ति के विरुद्ध। हालाँकि, उच्च न्यायालय मात्र इसलिये अपना निर्णय नहीं रोकेगा कि प्र.सू.रि. में भा.द.स. की धारा 307 का उल्लेख है या इस प्रावधान के अतंर्गत आरोप निर्धारित किया गया है। उच्च न्यायालय इस तथ्य की जाँच करने हेतु स्वतंत्र होगा कि क्या भा.द.स. की धारा 307 का समावेश नाममात्र है या अभियोजन पक्ष ने पर्याप्त साक्ष्य एकत्रित किये हैं, जो सिद्ध होने पर भा.द.स. की धारा 307 के अतंर्गत आरोप सिद्ध करने में सहायक होंगे। इस प्रयोजन हेतु, उच्च न्यायालय, लगी हुई चोट की प्रकृति, चाहे वह चोट शरीर के महत्वपूर्ण /नाज़ुक भागों पर लगी हो, प्रयुक्त हथियारों की प्रकृति आदि पर विचार हेतु स्वतंत्र होगा। पीड़ित को लगी चोटों के संबंध में मेडिकल रिपोर्ट सामान्यतः मार्गदर्शक कारक हो सकती है। *इस प्रथमदृष्टया विश्लेषण के आधार पर उच्च न्यायालय यह परीक्षण कर सकता है कि क्या दोषसिद्धि की प्रबल संभावना है या दोषसिद्धि की संभावना अत्यंत कम एवं धूमिल है। पहले वाद में यह समझौते को स्वीकार करने से इंकार कर सकता है एवं आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर सकता है जबकि बाद के वाद में उच्च न्यायालय को पक्षकारों के मध्य पूर्ण समझौते के आधार पर अपराध का शमन करने वाली याचिका स्वीकार कर सकेगा। इस स्तर पर, न्यायालय इस तथ्य से भी प्रभावित हो सकता है कि पक्षों के मध्य समझौते से उनके मध्य सामंजस्य बनेगा जिससे उनके भविष्य के रिश्ते में सुधार हो सकता है।*

29.7 यह निर्धारित करते समय कि संहिता की धारा 482 के अतंर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग करना है या नहीं, समझौते का समय महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ऐसे वाद जहाँ कथित अपराध के तत्काल बाद समझौता हो जाता है एवं मामला अभी भी जाँच के अधीन है, उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही /जाँच को रद्द करने हेतु समझौते को स्वीकार करने में उदार दृष्टिकोण अपना सकता है। यही कारण है कि इस स्तर पर अभी भी जाँच जारी है तथा आरोप-पत्र भी प्रस्तुत नहीं किया गया है। इसी प्रकार ऐसे वाद जहाँ आरोप निर्धारित हो गया है किंतु साक्ष्य अभी प्रारंभ नहीं हुआ है या साक्ष्य अभी भी प्रारंभिक चरण में है, वहाँ उपरोक्त परिस्थितियों/सामग्री के प्रथमदृष्टया मूल्यांकन के उपरांत, उच्च न्यायालय अपनी शक्तियों का अनुकूल रूप से प्रयोग करने में उदारता दिखा सकता है। वहीं दूसरी ओर, जहाँ अभियोजन पक्ष के साक्ष्य लगभग पूर्ण हो चुके हैं या साक्ष्य के निष्कर्ष के उपरान्त मामला बहस के चरण में है, सामान्यतः उच्च न्यायालय को संहिता की धारा 482 के अतंर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिये, क्योंकि ऐसे मामलों में विचारण न्यायालय वाद को अंतिम रूप से गुण-दोष के आधार पर निर्धारित करने एवं इस निष्कर्ष पर पहुँचने की स्थिति में होगा कि भा.द.स. की धारा 307 के अतंर्गत अपराध हुआ है या नहीं। इसी प्रकार, उन मामलों में जहाँ दोषसिद्धि विचारण न्यायालय द्वारा पहले ही अभिलिखित की जा चुकी है एवं वाद उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलीय चरण में है, मात्र पक्षों के मध्य समझौता इसे स्वीकार करने का आधार नहीं होगा, जिसके परिणामस्वरूप अपराधी को दोषमुक्त कर दिया जाएगा जो पहले ही विचारण न्यायालय द्वारा दोषी ठहराया जा चुका है। यहाँ भा.द.सं. की धारा 307 के अतंर्गत आरोप सिद्ध हो गया है एवं जघन्य अपराध हेतु दोषसिद्ध पहले ही अभिलिखित हो चुकी है, एवं इसलिये ऐसे अपराध में दोषी पाए गए व्यक्ति को मुक्त करने का कोई प्रश्न ही नहीं है।

(बल दिया गया)

12. **गोल्ड क्रेस्ट इंटरनेशनल (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम तमिलनाडु राज्य, (2014) 15 एससीसी 235** वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया कि: -

"8. उपरोक्त वादों में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत के दृष्टिगत हमारा विचार है कि ***ऐसे विवादों में जो मूल रुप से वैवाहिक प्रकृति के हैं या आपराधिक पक्षों के साथ सिविल संपत्ति विवादों में, यदि पक्षकारों ने समझौता कर लिया है , एवं यह स्पष्ट हो गया है कि दोषसिद्धि की कोई संभावना नहीं है, तब दंड प्रक्रिया संहिता -धारा 482 सहपठित भारतीय संविधान -अनुच्छेद 226 के अतंर्गत कार्यवाही को रद्द करने में कोई अवैधता नहीं है। हालाँकि, यह वहाँ लागू नहीं होगा जहाँ अपराध की प्रकृति अत्यंत गंभीर है*** *जैसे बलात्कार, हत्या, लूट, डकैती, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अतंर्गत वाद, स्वापक औषधि एवं मनः प्रभावी पदार्थ*

अधिनियम के अतंर्गत वाद एवं इसी प्रकार के अन्य अपराध जिनमें आजीवन कारावास या मृत्युदंड प्रदान किया जा सकता है।"

(बल दिया गया)

13. नरिंदर सिंह (उपरोक्त) *के* उपरोक्त निर्णय का माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मध्य प्रदेश राज्य बनाम लक्ष्मी नारायण व अन्य (2019) 5 एससीसी 688 में अनुसरण किया है एवं उस वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया है कि :-

"15.1 कि संहिता की धारा 482 के अतंर्गत अशमनीय अपराधों हेतु संहिता की धारा 320 के अतंर्गत आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने हेतु प्रदत्त शक्ति का प्रयोग ऐसे वादों हेतु किया जा सकता है जो प्रमुखतः सिविल प्रकृति के हों, विशेष रूप से वाणिज्यिक संव्यवहारों या वैवाहिक संबंध या पारिवारिक विवादों से उद्भूत हो एवं जब पक्षकारों ने पूर्ण विवाद को परस्पर सुलझा लिया हो;

15.2 ऐसी शक्ति का प्रयोग उन अभियोजनों में नहीं किया जाना चाहिए जिनमें मानसिक विकृति के जघन्य एवं गंभीर अपराध या हत्या, बलात्कार, डकैती आदि जैसे अपराध सम्मिलित हैं। ऐसे अपराध प्रकृति में निजी नहीं हैं एवं समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं;

15.3 इसी प्रकार, ऐसी शक्ति का प्रयोग भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम जैसी विशेष विधियों के अतंर्गत अपराधों हेतु नहीं किया जाना चाहिए या लोक सेवकों द्वारा उस क्षमता में कार्य करते समय किये गए अपराधों को मात्र पीड़ित एवं अपराधी के मध्य समझौते के आधार पर रद्द नहीं किया जाना चाहिए।

15.4 ***भा.द.स. की धारा 307 एवं आयुध अधिनियम आदि के अतंर्गत अपराध जघन्य एवं गंभीर अपराधों की श्रेणी में आएंगे एवं अतः इन्हें अकेले व्यक्ति के विरुद्ध नहीं अपितु समाज के विरुद्ध अपराध माना जाएगा अतः भा.द.स. की धारा 307 एवं /या आयुध अधिनियम आदि के अंतर्गत अपराध, जिनका समाज पर गंभीर प्रभाव पड़ता है, हेतु आपराधिक कार्यवाही की जाएगी, एवं इसे संहिता की धारा 482 के अतंर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है कि पक्षकारों ने अपने पूर्ण विवाद को परस्पर सुलझा लिया है। हालाँकि उच्च न्यायालय मात्र इसलिये अपना निर्णय नहीं रोकेगा कि प्र.सू.रि. में भा.द.स. की धारा 307 का उल्लेख है या इस प्रावधान के अतंर्गत आरोप निर्धारित किया गया है। उच्च न्यायालय इस तथ्य की जाँच करने हेतु स्वतंत्र होगा कि क्या भा.द.सं. धारा 307 का समावेश नाममात्र है या अभियोजन पक्ष ने पर्याप्त साक्ष्य एकत्र किये हैं, जो सिद्ध होने पर भा.द.स. की धारा 307 के अतंर्गत आरोप निर्धारित किया जाएगा। इस प्रयोजन हेतु, उच्च न्यायालय लगी हुई चोट की प्रकृति, चाहे ऐसी चोट शरीर के महत्वपूर्ण/नाज़ुक अंगों पर लगी हो, प्रयोग किये गए हथियारों की प्रकृति आदि*** *पर विचार करने हेतु स्वतंत्र होगा। हालाँकि, उच्च न्यायालय द्वारा ऐसी कार्यवाही की अनुमति जाँच के पश्चात् साक्ष्य एकत्रित को चुकने के उपरांत एवं आरोप पत्र प्रस्तुत होने / आरोप निर्धारित होने /या विचारण के दौरान ही जब वाद की जाँच चल ही रही हो तो ऐसी कार्यवाही की अनुमति नहीं है। अतः नरेंद्र सिंह (उपरोक्त) के वाद में इस न्यायालय के निर्णय के प्रस्तर 29.6 एवं 29.7 में अंतिम निष्कर्ष को यहां ऊपर बताई गई परिस्थितियों के संदर्भ में समग्र रूप से व सामंजस्यपूर्ण रीति से पढ़ा जाना चाहिए;"*

(बल दिया गया)

14. **अरुण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा सचिव एवं अन्य** (2020) 3 एससीसी 736 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया है कि :--

*"14. नरिंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य (2014) 6 एससीसी 466 के एक अन्य निर्णय में यह टिप्पणी की गयी है कि समाज के विरुद्ध अपराध के संबंध में अपराधी को दंडित करना कर्तव्य है। अतः, व****हाँ भी जहाँ अपराधी एवं पीड़ित के मध्य समझौता हो गया है, यह विद्यमान नहीं रहेगा क्योंकि यह समाज के हित में है कि अपराधी को दंडित किया जाना चाहिए ताकि दूसरों को समान अपराध करने से रोका जा सके।*** *दूसरी ओर, उस श्रेणी में आने वाले अपराध भी हो सकते हैं जहाँ आपराधिक विधि के सुधारात्मक उद्देश्य को निवारक दंड के सिद्धांत से अधिक महत्व देना होगा। ऐसे मामलों में न्यायालय का मत हो*

सकता है कि पक्षों के मध्य समझौते से उनके मध्य बेहतर संबंध बनेंगे, एक निजी विवाद सुलझ जाएगा एवं इस प्रकार कार्यवाही या शिकायत या प्र.सू.रि. को रद्द करने हेतु द.प्र.स. धारा 482 के अतंर्गत शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है।

15. उपरोक्त प्रतिपादित सिद्धांतों के दृष्टिगत ***हमारा विचार है कि जिन अपराधों हेतु अपीलकर्ताओं पर आरोप लगाए गए हैं वे वास्तव में समाज के विरुद्ध अपराध हैं एवं प्रकृति में निजी नहीं हैं। ऐसे अपराधों का समाज पर गंभीर प्रभाव पड़ता है एवं ऐसे मामलों की सुनवाई जारी रखना ऐसे गंभीर अपराधों हेतु व्यक्तियों को दंडित करने में सार्वजनिक हितों के अध्यारोही प्रभाव पर आधारित है। यह न तो वाणिज्यिक, वित्तीय, व्यापारिक, साझेदारी या इसी प्रकार के समान संव्यवहार से उत्पन्न होने वाला अपराध है , न ही इसमें नागरिक विवाद का कोई तत्व है, अतः यह एक भिन्न स्तर पर है। ऐसे मामलों में, भले ही वादी एवं आरोपी के मध्य समझौता हो जाए, किंतु यह प्र.सू.रि. या आरोप-पत्र को रद्द करने का वैध आधार नहीं बन सकता है।***

16. अतः पक्षकारों के मध्य समझौते के आधार पर उच्च न्यायालय द्वारा आरोप-पत्र को रद्द करने से इनकार करना अनुचित नहीं कहा जा सकता है।"

(बल दिया गया)

15. **दक्साबेन बनाम गुजरात राज्य व अन्य,** 2022 एससीसी ऑनलाइन SC 936 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार धारित किया है: -

"50. हमारी सुविचारित राय में, आपराधिक कार्यवाही को द.प्र.स. की धारा 482 के अतंर्गत क्षेत्राधिकार के प्रयोग से प्रारंभ में ही समाप्त नहीं किया जा सकता है क्योंकि इस वाद में मृतक की अभागी विधवा को छोड़कर, अभियुक्त, वादी एवं मृतक के अन्य रिश्तेदारों के मध्य एक मौद्रिक समझौता है। जैसा कि इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने लक्ष्मी नारायण (उपरोक्त) में कहा था कि भा.द.स. की धारा 307 जघन्य एवं गंभीर अपराधों की श्रेणी में आती है एवं इसे समाज के विरुद्ध अपराध माना जाना चाहिए, न कि अकेले व्यक्ति के विरुद्ध। तर्क की समानता पर भा.द.स. की धारा 306 के अतंर्गत अपराध उसी श्रेणी में आएगा। भा.द.स. की धारा 306 के अतंर्गत प्र.सू.रि. को वादी, जीवित पति /पत्नी, माता-पिता, बच्चों, अभिभावकों, देखभाल करने वालों या किसी अन्य के साथ किसी भी वित्तीय समझौते के आधार पर भी रद्द नहीं किया जा सकता है। यह स्पष्ट किया गया है कि इस न्यायालय हेतु इस प्रश्न की जांच करना आवश्यक नहीं था कि क्या इस वाद में प्र.सू.रि. भा.द.स. की धारा 306 के अतंर्गत किसी अपराध को प्रकट करती है, क्योंकि उच्च न्यायालय ने द.प्र.स. की धारा 482 के अतंर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए कार्यवाही को रद्द कर दिया था जिसका एकमात्र आधार यह था कि अभियुक्त एवं वादी के मध्य विवादों के संबंध में समझौता हो गया था।"

16. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों के परिशीलन से समझौते के आधार पर आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के सिद्धांत यह हैं कि इस संबंध में कोई स्पष्ट नियम नहीं है एवं प्रत्येक वाद का निर्णय उसके तथ्यों एवं परिस्थितियों के आधार पर किया जाना चाहिए। ऐसी शक्ति का प्रयोग करने से पूर्व, उच्च न्यायालय को अपराध की प्रकृति एवं गंभीरता पर उचित ध्यान देना चाहिए एवं रद्द करने की शक्ति का प्रयोग संयम एवं सावधानी पूर्वक करना चाहिए। ऐसी शक्ति का प्रयोग जघन्य एवं गंभीर अपराधों से जुड़े मामलों में नहीं किया जाना चाहिए, जिसमें भा.द.स. की धारा 307 के अतंर्गत अपराध भी सम्मिलित है।

17. वर्तमान वाद में, प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह आरोप उल्लिखित है कि पक्षों के मध्य एक भूमि विवाद है जिसके संबंध में एक वाद लंबित था। सिविल विवाद के लंबित होने के उपरांत भी अभियुक्तगण ने सुबह लगभग 10 बजे एक दीवार बनानी प्रारंभ कर दी एवं वादी एवं उसके पुत्रों द्वारा आपत्ति जताए जाने पर, याचिकाकर्ता सं. 2 ने गोली चलाई जो वादी के पुत्र संजीव के सीने पर लगी एवं याचिकाकर्ता सं. 3 ने एक एवं गोली चलाई जो वादी के द्वितीय पुत्र उमेश के सीने में लगी। संजीव एवं उमेश की चिकित्सा-विधिक जाँच-रिपोर्ट अभिलेख पर उपलब्ध है, जो प्र.सू.रि. के आरोपों का समर्थन करती है। वादी एवं उसके घायल पुत्र संजीव एवं उमेश के बयान भी प्रथम सूचना रिपोर्ट के आरोपों का समर्थन करते हैं। पुलिस ने याचिकाकर्ता संख्या 1 एवं 2 के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया था एवं तत्पश्चात द.प्र.स. की धारा 319 के अतंर्गत प्रस्तुत एक आवेदन पर याचिकाकर्ता संख्या 3 का नाम दिनांक 25.10.2021 को जोड़ा गया है।

18. चूँकि पक्षकारों के मध्य पुराना संपत्ति विवाद था, अतः अभियुक्तगण वादी एवं उसके पुत्रों को जानते थे। घटना दिनदहाड़े हुई एवं घटना कारित करने वाले व्यक्तियों की पहचान पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है।

19. अभियुक्तगण ने आरोप-पत्र एवं कार्यवाही को मात्र इस आधार पर रद्द करने की मांग की है कि 09.12.2022 को पक्षकारों ने यह कहते हुए समझौता किया था कि वादी एवं घायल व्यक्तियों ने अभियुक्तगण को क्षमा कर दिया है एवं वाद में वे कोई भी अग्रिम कार्यवाही नहीं चाहते हैं एवं अभियुक्त समझौते की शर्तों के अतंर्गत कार्यवाही समाप्त करवा सकते हैं। याचिकाकर्ताओं द्वारा कथित तौर पर किये गए कृत्य में दिन-दहाड़े दो व्यक्तियों के सीने पर गोलियां चलाना सम्मिलित है एवं ऐसा अपराध एक अत्यंत ही गंभीर अपराध है। अभिलेख पर उपस्थित सामग्री, अर्थात् घायल व्यक्तियों की चिकित्सा-विधिक जाँच के दौरान अभिलिखित किये गये बयान पूर्णतः प्र.सू.रि. के आरोपों का समर्थन करते हैं। कथित अपराध को समाज के विरुद्ध अपराध माना जाना चाहिए न कि मात्र वादी के घायल पुत्रों के विरुद्ध। अतः, इस न्यायालय का मत है कि वादी एवं उसके पुत्रों को अभियुक्तगण को क्षमा करने का कोई अधिकार नहीं है।

20. उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत, इस न्यायालय का विचार है कि याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध वाद की कार्यवाही को पक्षों के मध्य हुए समझौते के आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है। द.प्र.सं की धारा 482 के अतंर्गत आवेदन, जिसमें आरोप-पत्र एवं उसके आधार पर प्रारंभ की गई पूर्ण कार्यवाही को इस आधार पर रद्द करने की प्रार्थना की गई है कि पक्षकारों ने समझौता कर लिया है, गुणहीन है एवं तदनुसार, इसे खारिज किया जाता है।

(2023) 1 ILRA 1316

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांकः इलाहाबाद 03.12.2022

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चन्द्र शर्मा

के समक्ष

सिविल पुनरीक्षण संख्या - 467/2012

केशेरी नंदन अग्रवाल ...पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

श्रीमति इंदू बाजपेई ...विपक्षी पक्षकार

पुनरीक्षणकर्ता के लिए अधिवक्ता:

श्री अरविंद श्रीवास्तव, श्री पुस्कर श्रीवास्तव

विपक्षी दलों के अधिवक्ता:

श्री एस.के. चतुर्वेदी

प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887-धारा 25- सिविल पुनरीक्षण आदेश को चुनौती देता है - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 10 के तहत पुनरीक्षणकर्ता के आवेदन को खारिज करना -एसएससी वाद संख्या - 9/2011 में कार्यवाही पर रोक - प्रतिवादी एक डिफॉल्टर किरायेदार है - प्रतिवादी का तर्क है कि बिक्री के लिए एक कथित मौखिक समझौते के कारण संबंध विक्रेता और खरीदार का है - वादी के खिलाफ निषेधाज्ञा दायर की गई - पुनरीक्षणकर्ता ने अदालत के समक्ष मामले के लम्बित होने का हवाला देते हुए रोक लगाने का अनुरोध किय - कोर्ट का मानना है कि धारा 10 सीपीसी लागू नहीं होगी।

खारिज किया जाता है (ई-9)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. कन्हैया लाल बनाम द्रौपदी, एआईआर 1992 एमपी 88

2. लछमन बनाम बदन कयालू, एआईआर 1989 उड़ीसा 154

3. करीं सत्या नारायन बनाम पिछका, 1996 एआईएचसी 2642 (AP)

4. ए एस पी आई जेल एवं अन्य बनाम खुशरू रूस्तम दैदीबुर्जर, (2013) 4 SCC 333

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा प्रदत्त)

1. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अरविन्द श्रीवास्तव को सुना और रिकार्ड का अवलोकन किया। विपरीत पक्ष की ओर से कोई उपस्थित नहीं होता। चूँकि 26.11.2012 को विपरीत पक्ष को नोटिस की तामील पर्याप्त मानी गई है, इसलिए यह न्यायालय मामले का निर्णय करने के लिए आगे बढ़ रहा है।

2. प्रतिवादी-पुनरीक्षणकर्ता ने श्री ए.के. द्वारा पारित दिनांक 28.07.2012 के आदेश को रद्द करने के लिए प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 (संक्षेप

में 'अधिनियम, 1887') की धारा 25 के तहत इस सिविल पुनरीक्षण की स्थापना की है जिसके तहत ए.के. पुंडीर, एडीजे, कोर्ट नंबर 1, झाँसी ने एसएससी वाद संख्या 9/2011 में उन्होंने कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में 'सीपीसी') की धारा 10 के तहत दायर आवेदन 32 (सी) को खारिज कर दिया

3. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि वादी श्रीमती इंदु बाजपेयी ने पुनरीक्षणकर्ता-प्रतिवादी के खिलाफ एससीसी वाद संख्या- 9/2011 इस आधार पर दायर किया कि वह मोहल्ला इतवारी गंज, झाँसी में स्थित मकान नंबर 251 (वर्तमान नंबर 388) में 1,500/- मासिक किराया की दर से डिफॉल्टर किरायेदार है। उनसे 12.11.2006 से बार-बार किराया मांगने के बावजूद उसने किराया नहीं दिया है। श्री ठाकुर प्रसाद के पुत्र नर नारायण दास श्रीवास्तव उर्फ ठाकुर दास उस घर के मालिक थे, जहां से उन्होंने 40,000/- रुपये में जमीन खरीदी थी और उस पर कब्ज़ा प्राप्त कर लिया था और हाउस टैक्स आदि का भुगतान शुरू कर दिया था। राशन कार्ड संबंधित घर के पते पर भी जारी किया गया। वादी के ससुर की भी इसी घर में मृत्यु हो गयी थी तथा वादी ने ऋण लेकर चुकाया भी था। बाद में वादी ने जार पहाड़ के इलाके में अपना आवासीय घर बनाया और प्रतिवादी को 1,500/- रुपये की मासिक किराये की दर पर घर दिया था। कभी-कभी प्रतिवादी ने किराया चुकाया लेकिन 12.11.2006 से उसने किराया देना बंद कर दिया। इसलिए, पैसे की मांग और किरायेदारी की समाप्ति के लिए 11.12.2009 को एक नोटिस दिया गया था और प्रतिवादी को भेजा गया था, जिसका उत्तर गलत तथ्यों का उल्लेख करते हुए दिया गया था। नोटिस जारी होने के समय प्रतिवादी पर चार महीने का किराया बकाया था और उसने नोटिस प्राप्त होने की तारीख से एक महीने के भीतर वादी को कोई किराया नहीं दिया। इसके अलावा प्रतिवादी ने वादी को मुकदमे में मकान का मालिक मानने से इंकार कर दिया। इस प्रकार, प्रतिवादी ने यूपी अधिनियम संख्या 13, 1972 की धारा 20 (ए) और (एफ) के तहत अपराध किया है। चूंकि प्रतिवादी ने किराया नहीं दिया है और वह डिफॉल्टर है और उसने वादी को मकान मालिक बनने से भी मना कर दिया है। अत: प्रतिवादी बेदखल किये जाने योग्य है।

4. वादी के अनुसार 12.11.2006 से 11.12.2009 तक तीन वर्ष से अधिक का किराया कालातीत हो गया है तथा प्रतिवादी पर 51 माह का किराया 76,500/- रूपये बकाया है। वादी के अनुसार 12.01.2011 से प्रति माह 2,000/- रुपये की क्षति की वसूली भी प्रतिवादी से की जानी है। वाद के मूल्य के आधार पर और अदालती फीस देने के बाद, वादी ने नोटिस की अवधि समाप्त होने के बाद बेदखली और अवैतनिक किराए की राशि की वसूली और घर के अवैध उपयोग और कब्जे के लिए मुकदमा दायर किया है।

5. प्रतिवादी ने लिखित बयान दाखिल किया और वादपत्र में दिए गए कथनों को लगभग नकार दिया और इसके अलावा यह भी कहा कि वादी न तो मुकदमे में घर का मालिक है और न ही प्रतिवादी विवादित घर का 1,500/- रुपये प्रति माह की दर से किरायेदार है। पार्टियों के बीच मकान मालिक और किरायेदार का कोई संबंध नहीं है। प्रतिवादी 2003 से मालिक और कब्जे में है। पहले यह जर्जर हालत में घर था जिस पर वादी ने ऋण लिया था और घर को गिरवी रखा था। वाद में वादी एवं उसके पति ने प्रतिवादी से मकान बेचने की बात कही। इसके अलावा पार्टियों ने मुकदमे में घर को 2,35,000/- रुपये में बेचने का समझौता किया, जिसमें से प्रतिवादी ने 06.04.2003 को 1,35,000/- रुपये नकद प्रदान किए और इसके लिए कथित मौखिक समझौते के तहत बिक्री के बाद उसे मुकदमे में घर का कब्ज़ा मिल गया।

6. दोनों पक्षों के बीच यह तय हुआ कि वादी बैंक का ऋण चुकायेगी तथा मकान वापस लेने तथा शेष धनराशि अर्थात् 1,00,000/- रूपये प्राप्त करने के बाद प्रतिवादी के पक्ष में विक्रय पत्र निष्पादित करेगी। चूंकि प्रतिवादी को निवास की आवश्यकता थी, इसलिए, वादी की अनुमति से, प्रतिवादी ने 2,00,000/- रुपये ख़र्च कर वाद के अनुसार घर का नवीनीकरण किया और शौचालय, स्नानघर और रसोई का निर्माण किया और अपने परिवार के साथ उसमें मालिक के रूप में रहना शुरू कर दिया। प्रतिवादी विक्रय के मौखिक अनुबंध के अनुसार विक्रय पत्र निष्पादित कराने के लिए हमेशा तैयार रहा है। चूंकि पक्षों के बीच मकान मालिक और किरायेदार का कोई संबंध नहीं है, बल्कि विक्रेता और खरीदार का संबंध है, इसलिए अदालत को मामले की सुनवाई करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। वादी का पति बृजेन्द्र आवश्यक पक्षकार है तथा आवश्यक पक्षकार के शामिल न होने से मामला बाधित है। जब वादी और उसके पति ने 24.02.2011 को प्रतिवादी को बलपूर्वक बेदखल करने की धमकी दी, तो उसने सिविल जज (जूनियर डिवीजन) झाँसी की अदालत में मूल मुकदमा संख्या 150/ 2011 (केशेरी नंदन अग्रवाल बनाम श्रीमती इंदु बाजपेयी और अन्य) दायर किया। इसलिए, यह मामला प्रतिवादी के मामले के बाद होने के कारण वर्जित है और धारा 10 और 151 सीपीसी के तहत रोक लगाने योग्य है। मामला विबंधन और स्वीकृति द्वारा भी वर्जित है और खारिज किए जाने योग्य है।

7. सुनवाई के दौरान प्रतिवादी ने लिखित बयान में उल्लिखित आधार पर सीपीसी की धारा 10 के तहत इस मामले की कार्यवाही को रोकने के लिए एक आवेदन 32 (सी) दायर किया। दोनों पक्षों को सुनने के बाद निचली अदालत ने निष्कर्ष निकाला कि प्रतिवादी का मामला यानी मूल वाद संख्या 150/2011 स्थायी निषेधाज्ञा के लिए है। दोनों मामलों में मामला एक जैसा नहीं है दोनों मामले अलग-अलग क्षेत्राधिकार वाली अदालतों से संबंधित हैं। यह मामला सीपीसी की धारा 10 के तहत रोके जाने योग्य नहीं है और तदनुसार आवेदन खारिज कर दिया गया है।

8. व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने इस पुनरीक्षण को प्राथमिकता दी है।

9. विपक्षी मकान मालिक ने दिनांक 16.12.2012 को जवाबी शपथपत्र दायर किया और पुनरीक्षण में उल्लिखित आरोपों से इनकार किया। इसके अलावा, वादी के कथनों को दोहराया गया है और इस बात से इनकार किया गया है कि घर की बिक्री के लिए मौखिक अनुबंध हुआ है। यह बिल्कुल झूठ और ग़लत है. उत्तर देने वाले प्रतिवादी ने प्रश्नगत घर की बिक्री के लिए पुनरीक्षणकर्ता से एक पैसा भी अग्रिम रूप से नहीं लिया तो उसके किसी भाग का मानने का कोई सवाल ही नहीं उठता।

10. आगे कहा गया है कि एक बुरे इरादे से पुनरीक्षणकर्ता ने मकान मालिक को परेशान करने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा यानी का मुकदमा संख्या 150/2011 दायर किया। उस मामले का बेदखली और किराया और गृह कर के भुगतान के वर्तमान मुकदमे से कोई संबंध नहीं है। पुनरीक्षणकर्ता ने इस न्यायालय को गुमराह करने का प्रयास किया था। सीपीसी की धारा 10 के तहत पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दायर आवेदन कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग था। दोनों मामले अलग-अलग प्रकृति के हैं और इनका एक-दूसरे से कोई संबंध नहीं है। दोनों मुकदमे अलग-अलग हैं और अलग-अलग अदालतों में विचारणीय हैं और दोनों मामलों में प्रार्थना एक ही नहीं है। ट्रायल कोर्ट ने सीपीसी की धारा 10 के तहत आवेदन को सही ढंग से खारिज कर दिया था। आक्षेपित आदेश में कोई त्रुटि नहीं है। इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम एकपक्षीय आदेश दिनांक 20.09.2011 को निरस्त किया जाए। प्रतिवादी का मुख्य परीक्षण नीचे की अदालत में दर्ज किया गया है। शपथ पत्र के रूप में प्रस्तुत साक्ष्य की प्रति संलग्नक-सीए-1 के रूप में संलग्न की गई है। प्रतिवादी ने पुनरीक्षण को खारिज करने का अनुरोध किया है।

11. इसके विपरीत, पुनरीक्षणकर्ता ने दिनांक 24.12.2013 को प्रत्युत्तर शपथपत्र दायर किया है और अपने मुकदमे की सामग्री और पुनरीक्षण को दोहराया है और कहा है कि पहले के मुकदमे में पारित डिक्री न्यायिक के रूप में काम करेगी। इसलिए, आगामी मुकदमे पर रोक लगाई जानी चाहिए। समझौते के बाद विरोधी पक्ष अब मकान मालिक नहीं रह गया है। विवादित आदेश सीपीसी की धारा 10 के प्रावधानों के अनुरूप नहीं है। इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश को रद्द करने का कोई आधार नहीं बनता है। अत: पुनरीक्षण की अनुमति दी जाये।

12. यह स्वीकार किया जाता है कि मुकदमे में संपत्ति एक अचल संपत्ति है जिसे केवल पंजीकृत विलेख के माध्यम से स्थानांतरित किया जा सकता है जैसा कि संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 54 और भारतीय पंजीकरण अधिनियम की धारा 17 में परिकल्पित है। अचल संपत्ति के बारे में कोई मौखिक समझौता या बिक्री की अनुमति नहीं है। प्रथम दृष्टया दोनों पक्षों के बीच मालिकाना हक का कोई मामला शामिल नहीं दिखता है। प्रतिवादी पुनरीक्षणकर्ता ने न तो अनुबंध के विशिष्ट निष्पादन के लिए कोई मुकदमा दायर किया और न ही अचल संपत्ति के संबंध में बिक्री के लिए कोई मौखिक लेनदेन या समझौता स्वीकार्य है। मूल मुकदमा संख्या 150/ 2011 प्रतिवादी द्वारा विशिष्ट राहत अधिनियम के तहत दायर किया गया है जबकि यह मुकदमा अधिनियम, 1887 के तहत दायर किया गया है। इसलिए, दोनों अदालतों का क्षेत्राधिकार काफी अलग है। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि यदि एक मुकदमा स्थायी निषेधाज्ञा के लिए है और दूसरा मुकदमा एससीसी मुकदमा है तो क्या उस स्थिति में धारा 10 सीपीसी के तहत अगले मुकदमे पर रोक लगाई जा सकती है। सीपीसी की धारा 10 इस प्रकार है:-

"10. मुक़दमे पर रोक.- कोई भी अदालत किसी ऐसे मुक़दमे की सुनवाई के साथ आगे नहीं बढ़ेगी जिसमें विवादग्रस्त मामला भी उन्हीं पक्षों के बीच, या उन पक्षों के बीच, जिनके अधीन वे या कोई हैं, पहले से संस्थित मुक़दमे में सीधे और पर्याप्त रूप से विवादग्रस्त हो उनमें से एक ही स्वत्व के तहत मुकदमेबाजी का दावा करते हैं जहां ऐसा मुकदमा उसी या भारत के किसी अन्य न्यायालय में लंबित है या केंद्र सरकार द्वारा स्थापित या जारी और समान क्षेत्राधिकार वाले भारत की सीमाओं से परे किसी भी न्यायालय में या सुप्रीम कोर्ट के समक्ष दावा की गई राहत देने का अधिकार क्षेत्र है।

स्पष्टीकरण.--किसी विदेशी न्यायालय में किसी मुकदमे के लंबित रहने से भारत की अदालतों को

उसी कारण पर आधारित मुकदमे की सुनवाई करने से नहीं रोका जा सकता है।"

13. *कन्हैया लाल बनाम द्रौपदी, एआईआर 1992 एमपी 88* में यह माना जाता है कि पहले के मुकदमे में निर्णय होने तक बाद के मुकदमे पर रोक लगाना महज प्रक्रिया का नियम है।

14. *लछमन बनाम बदन कयालु, एआईआर 1989 उड़ीसा 154* में यह माना जाता है कि किरायेदार की बेदखली के मुकदमे को किरायेदार और मकान मालिक के पूर्ववर्तियों के बीच अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के मुकदमे के निपटान तक नहीं रोका जा सकता है।

15. *कर्री सत्य नारायण बनाम पिचिका, 1996 एआईएचसी 2642 (एपी)*में यह माना जाता है कि एक अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए और दूसरा प्रतिद्वंद्वी द्वारा निष्कासन और क्षति के लिए मामलों मे सीपीसी की धारा 10 को दो मुकदमों में लागू नहीं किया जा सकता है।

16. *अस्पी जल और अन्य बनाम खुशरू रुस्तम डैडीबुर्जोर, (2013) 4 एससीसी 333* में यह माना जाता है कि संहिता की धारा 10 के प्रावधानों को लागू करने के लिए, यह आवश्यक है कि जिस न्यायालय में पिछला मुकदमा लंबित है वह दावा की गई राहत देने में सक्षम है।

17. इस मामले में ऐसा नहीं है यह स्थापित करने के लिए कोई सबूत नहीं है कि जिस अदालत में मूल मुकदमा संख्या 150/2011 लंबित है, वह लघु वाद अदालतों के मामलों की सुनवाई करने के लिए भी सक्षम है। लघु वाद न्यायालयों की कार्यवाही सारांश प्रकृति की होती है। इसलिए, यह न्यायालय निचली अदालत द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष के अनुरूप है कि मूल वाद संख्या 150/2011 की लंबितता के आधार पर एससीसी मुकदमा धारा 10 सीपीसी के तहत रोके जाने योग्य नहीं है।

18. पुनरीक्षणकर्ता के लिए अधिनियम, 1887 की धारा 23 के तहत एक आवेदन दायर करने का विकल्प खुला था कि चूंकि स्वामित्व का प्रश्न शामिल है, इसलिए, स्वत्व के प्रश्न पर निर्णय लेने से पहले इस एससीसी मुकदमे पर और मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है। वह सबूत भी पेश कर सकता है और यह स्थापित कर सकता है कि पार्टियों के बीच मकान मालिक और किरायेदार का कोई संबंध नहीं था या समझौते में प्रवेश करने के बाद इसे तोड़ दिया गया था और यदि एससीसी कोर्ट को पता चलता है कि शीर्षक का गंभीर प्रश्न शामिल है, तो यह रद्द हो सकता है कार्यवाही लेकिन जहां तक धारा 10 सीपीसी की प्रयोज्यता का सवाल है, इस न्यायालय का सुविचारित विचार है कि प्रतिवादी द्वारा पहले से स्थापित मूल मुकदमे के लंबित होने के कारण इस एससीसी संशोधन पर रोक नहीं लगाई जा सकती है।

19. उपरोक्त के आधार पर, इस न्यायालय का विचार है कि इस संशोधन में योग्यता का अभाव है और यह खारिज किये जाने योग्य है।

20. तदनुसार, यह संशोधन लागत सहित खारिज किया जाता है।

21. इस आदेश की एक प्रति एडीजे-I, झाँसी के न्यायालय को भेजी जाएगी, जो कानून के अनुसार एससीसी मुकदमे पर कार्यवाही करेगा।

(2023) 1 ILRA 1320
पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 20.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

सिविल पुनरीक्षण संख्या-444 वर्ष 2012

श्रीमती शकुंतला सोनी ...पुनरीक्षणकर्ता
बनाम
देवेंद्र कुमार रावत ... प्रतिपक्षी

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता:
श्री गुलरेज खान, श्री जे. एच खान

प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता:
श्रीमती आभा गुप्ता, श्री एस. आर. गुप्ता

दीवानी कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - O.XV नियम 5-बचाव को बंद करना-नागरिक पुनरीक्षण - किराया भुगतान - आदेश XV नियम 5 CPCS स्वीकार किए गए किराए को जमा करने में विफलता के लिए बचाव करना- यूपी अधिनियम संख्या-13 की धारा-30, वर्ष 1972- वादी यह साबित करने में विफल रहा कि उसने किराए का भुगतान किया - पुनरीक्षण में योग्यता का अभाव है।
खारिज कर दिया गया। (ई-9)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:
1. आशिक अली बनाम 8 वीं ए.डी.जे., 2001 (444) ए.एल.आर. 524।

2. प्रद्‌युम्न जी बनाम विशेष/ए.डी.जे., बलिया व अन्य, 2008 (2) ए.आर.सी. 19
3. कैलाश शुक्ला बनाम ए.डी.जे., देवरिया व अन्य, 2004 (1) ए.आर.सी. 615

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा दिया गया)

1. यह सिविल पुनरीक्षण किरायेदार द्वारा ए.डी.जे., कोर्ट नंबर-1, बांदा द्वारा पारित आदेश दिनांक 29.05.2012 के खिलाफ दायर किया गया है, जिसके द्वारा वादी के मुकदमे को प्रतिपक्षी के लिखित बयान को रद्द करने के बाद योग्यता के आधार पर डिक्री की गई थी।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि पुनरीक्षणकर्ता याची श्रीमती शकुंतला सोनी वादी ने 04.11.2009 को न्यायाधीश की अदालत, एस.सी.सी. कोर्ट, बांदा में एक एस.सी.सी. मुकदमा दायर किया ताकि मुकदमे में प्रश्नगत दुकान से प्रतिवादी किरायेदार को बेदखल किया जा सके, और 18-12-2006 से 03-11-2009 तक वाद में दुकान के उपयोग और कब्जे के लिए 22990/- रुपये की दर से नुकसान के लिए और 04-11-2006 से 03-11-2009 तक प्रत्येक माह 84/- रुपये प्रति माह की दर से जल कर और गृह कर के भुगतान के लिए भी और नोटिस के लिए खर्च के रूप में 500/- उन्हे दिलवाया जाए।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्यों में यह है कि वादी श्री राम मार्केट, चौक बाजा,र सिटी बांदा में पहली मंजिल पर एक दुकान का मालिक और जमींदार है, जिसमें प्रतिपक्षी दिसंबर, 2004 से किरायेदार र 550/- रुपये की मासिक दर से 2005 से किराए की दर 650/- रुपये प्रति माह से, और जिसे हर 5 साल के बाद 100/- रुपये प्रति माह बढ़ाना था।

4. प्रतिवादी पर जुलाई, 2004 से दिसंबर, 2004 तक छह महीने के लिए 500/- रुपये की मासिक दर से किराए का बकाया था, जिसकी राशि 3,00/- (?)रुपये थी और जनवरी, 2005 से अक्तूबर, 2006 तक 650/- रुपये प्रति माह की दर से 14,300/- रुपये और साथ ही वर्ष 2004 से 2006 तक 1012/- रुपये प्रति वर्ष की दर से 3036/- रुपये की राशि पर जल कर और वर्ष 2004 से 2006 तक 675/- रुपये प्रति वर्ष की दर से हाउस टैक्स बकाया था। किरायेदारी महीने दर महीने थी और यू.पी. अधिनियम संख्या-13 वर्ष 1972 के प्रावधान लागू नहीं थे, प्रतिवादी ने बार-बार अनुरोध और मांग के बावजूद किराए का भुगतान नहीं किया। अतः अधिवक्ता आशुतोष निगम के माध्यम से प्रतिवादी को सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा-106 के अन्तर्गत दिनांक 07.11.2006 को पंजीकृत नोटिस भेजकर उक्त नोटिस द्वारा किराया एवं गृह कर व जल कर चुकाने की मांग की गई। 30 दिनों के बाद किरायेदारी भी समाप्त कर दी गई। पंजीकृत नोटिस प्रतिवादी को 16-11-2006 को दिया गया था। नोटिस तामील होने के बावजूद प्रतिवादी ने न तो किराया, जल कर और गृह कर का भुगतान किया और न ही खाली कर वादी को कब्जा दिया। 17.12.2006 के बाद से प्रतिवादी ने किरायेदार होने का चरित्र भी खो दिया। वादी उपरोक्त किराया, नुकसान और कर राशि और बेदखली की डिक्री प्राप्त करने के हकदार हैं।

5. प्रतिपक्षी किरायेदार ने हलफनामे के साथ वादी के आरोपों से इनकार करते हुए लिखित बयान दायर किया है। दिनांक 12.08.2010 के आदेश की एक प्रति रिकॉर्ड पर है जो दर्शाती है कि वादी द्वारा प्रस्तुत आवेदन 21 (सी) को अनुमति दी गई थी और प्रतिपक्षी के बचाव को अदालत में स्वीकार किए गए किराए के अदम अदायगी के कारण बंद कर दिया गया था। यू.पी अधिनियम संख्या-13 वर्ष 1972 की धारा-30 के तहत की गई जमा राशि को अदालत द्वारा स्वीकार नहीं किया गया था क्योंकि प्रतिपक्षी अदालत में उपस्थित हुआ और 03.04.2010 को लिखित बयान दायर किया लेकिन उसने स्वीकार किराया जमा नहीं किया था, इसलिए, आदेश XV नियम 5 सी.पी.सी. ने भूमिका निभाई जो इस प्रकार है: -

"5. स्वीकृत किराया जमा करने में विफलता के कारण बचाव को समाप्त करना- (1) अपने पट्टे के अवधारण के पश्चात् पट्टेदार की बेदखली के लिए किसी पट्टेदार द्वारा किसी वाद में और उससे उपयोग और कब्जे के लिए किराए या प्रतिकर की वसूली के लिए, प्रतिपक्षी, वाद की पहली सुनवाई पर या उससे पहले, उसके द्वारा स्वीकार की गई संपूर्ण राशि को ब्याज सहित नौ प्रति माह की दर से जमा करेगा, और यदि वह स्वीकार करता है तो वह वाद की निरंतरता के दौरान नियमित रूप से देय मासिक राशि उसके प्रोद्भवन की तारीख से एक सप्ताह के भीतर जमा करेगा और उसके द्वारा स्वीकार की गई संपूर्ण राशि को पूर्वोक्त देय या मासिक देय राशि जमा करने में किसी चूक की स्थिति में, न्यायालय, उप-नियम (2) के प्रावधानों के अधीन रहते हुए, उसके बचाव को समाप्त कर सकता है।

स्पष्टीकरण 1.- अभिव्यक्ति "पहली सुनवाई" का अर्थ है लिखित बयान दाखिल करने की तारीख या समन में उल्लिखित सुनवाई के लिए या जहां ऐसी तारीखों में से एक से अधिक का उल्लेख किया गया है, उल्लिखित तारीखों में से अंतिम।

स्पष्टीकरण 2. अभिव्यक्ति "उसके द्वारा देय होने के लिए स्वीकार की गई पूरी राशि" का अर्थ है संपूर्ण सकल राशि, चाहे वह किराए के रूप में हो या उपयोग और व्यवसाय के लिए मुआवजे के रूप में, करों को छोड़कर कोई अन्य कटौती करने के बाद बकाया की भर्ती अवधि के लिए, यदि कोई हो, किराए की स्वीकृत दर पर गणना की जाती है, यथा पट्टेदार के खाते पर भवन के संबंध में स्थानीय प्राधिकारी को भुगतान किया गया और राशि, यदि कोई हो, तो किसी भी न्यायालय में जमा किया जाए।

स्पष्टीकरण 3. (1) अभिव्यक्ति "मासिक देय राशि" का अर्थ है हर महीने देय राशि, चाहे किराए के रूप में या उपयोग के लिए मुआवजे के रूप में और किराए की स्वीकृत दर पर कब्जे के रूप में, स्थानीय प्राधिकारी को भुगतान किए गए करों को छोड़कर, यदि कोई हो, पट्टेदार के खाते पर भवन के संबंध में।

(2) बचाव को समाप्त करने का आदेश देने से पहले, वह न्यायालय प्रतिपक्षी द्वारा उस निमित्त किए गए किसी भी अभ्यावेदन पर विचार कर सकेगा, बशर्ते कि ऐसा प्रतिनिधित्व पहली सुनवाई के 10 दिनों के भीतर किया गया हो या, उप-धारा (1) में निर्दिष्ट सप्ताह की समाप्ति के रूप में मामला हो।

(3) इस नियम के अधीन जमा की गई राशि किसी भी समय वादी द्वारा निकाली जा सकेगी:

बशर्ते कि इस तरह की वापसी का वादी द्वारा जमा की गई राशि की शुद्धता पर विवाद करने वाले किसी भी दावे को पूर्वाग्रहित करने का प्रभाव नहीं होगा:

और यह उपबंध कि यदि जमा की गई राशि में जमाकर्ता द्वारा कटौती योग्य होने का दावा की गई कोई रकम या कोई खाता शामिल है तो न्यायालय वादी से ऐसी राशि के लिए प्रतिभूति प्रस्तुत करने की अपेक्षा कर सकता है इससे पहले कि उसे उसे निकालने की अनुमति दी जाए।

6. पुनरीक्षणकर्ता ने यह आधार लिया है कि चूंकि उसका आवासीय घर वर्ष 2005 में सील/कुर्क किया गया था, इसलिए वह किराए के भुगतान की रसीद पेश नहीं कर सकी। वर्ष 2004 से किराए का कोई बकाया नहीं था लेकिन जुलाई, 2006 तक किराए का भुगतान किया गया था और भूस्वामी ने अगस्त, 2006 से किराया लेने से मना कर दिया था। मना करने पर किराए का भुगतान मनी ऑर्डर के माध्यम से भेजा गया था, लेकिन इसे "स्टेशन से बाहर, नहीं मिला" पृष्ठांकन के साथ वापस कर दिया गया था। यह इनकार करने के बराबर है। धारा-30 के तहत पुनरीक्षक के आवेदन को अवैध रूप से खारिज कर दिया गया था, यहां तक कि धारा-30 के तहत कार्यवाही लंबित होने के बाद भी वादी ने जानबूझकर इसका विरोध नहीं किया। निचली अदालत ने दिनांक 01.12.2009 को सुनवाई की पहली तारीख मानने में, जब भविष्य में लिखित बयान दाखिल करने के लिए स्थगन आवेदन दायर किया गया था, कानून में गलती की। उक्त तारीख को सुनवाई की पहली तारीख के रूप में नहीं माना जा सकता है और निचली अदालत ने बचाव पक्ष को खारिज करने में कानून में गलती की। पुनरीक्षणकर्ता ने किराए के भुगतान में कभी चूक नहीं की। दिनांक 07-11-2006 का नोटिस माफ किया जा सकता है क्योंकि अगस्त, 2006 में किराए का भुगतान मनीआर्डर के माध्यम से भेजा गया था। यदि धारा-30 के तहत आवेदन को अदालत में किराया जमा करने की अनुमति दी गई होती, तो पुनरीक्षणकर्ता प्रतिपक्षी पर किराए का बकाया नहीं होता। मुकदमा सीमा द्वारा वर्जित है और निचली अदालत द्वारा कोई डिक्री नहीं दी जा सकती थी। पानी का कोई कनेक्शन नहीं था, इसलिए निचली अदालत ने जल कर के बकाया की डिक्री करने में गलती की, इसलिए पुनरीक्षण की अनुमति दी जाए और आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया जाए।

7. इस मामले में सुनवाई की पहली तारीख 01.12.2009 थी, उस तारीख को प्रतिपक्षी उपस्थित हुआ और लिखित बयान दर्ज करने के लिए समय के लिए आवेदन किया। दिनांक 23-12-2009, 19-01-2010, 08-02-2010, 04-03-2010 और 27-03-2010 को मामले को स्थगित कर दिया गया और दिनांक 03-04-2010 को आदेश XV नियम 5 सी.पी.सी. के तहत आवेदन दाखिल करने के बाद भी लिखित बयान दर्ज किया गया।

8. न्यायालय ने नोट किया कि 15.04.2010 को प्रतिपक्षी ने स्वीकार किया गया किराया जमा नहीं किया था, लेकिन प्रतिपक्षी ने अपनी आपत्ति 30(सी) में कहा है कि वादी किराया प्राप्त करने में रुचि नहीं रखते थे क्योंकि उन्होंने किराया प्राप्त करने से इनकार कर दिया था। परिणामस्वरूप उसने 12.11.2006 को मनीआर्डर भेजा जिसे झूठी रिपोर्ट के साथ वापस कर दिया गया। उसके अनुसार उसने सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के समक्ष किराया जमा करने के लिए एक आवेदन भी दिया था जिसे खारिज कर दिया गया था और पुनरीक्षण को भी 27.08.2009 को ए.डी.जे.-II द्वारा खारिज कर दिया गया था। उसके बाद यह एस.सी.सी. मुकदमा दायर किया गया। अदालत ने देखा कि प्रतिपक्षी लगातार अदालत में उपस्थित हो रही थी, लेकिन उसने आदेश XV नियम 5 सी.पी.सी. के प्रावधानों का पालन नहीं किया।

9. न्यायिक उदाहरणों को स्वीकार करने के अलावा आशिक अली बनाम 8 वीं ए.डी.जे., 2001 (444) ए.एल.आर. 524। विचारण न्यायालय ने प्रद्युम्न जी बनाम स्पेशल/ए.डी.जे., बलिया और अन्य, 2008 (2) ए.आर.सी. 19 की मिसाल पर भरोसा किया जिसमें यह माना गया था कि सुनवाई की पहली तारीख को यदि किरायेदार ने उसके द्वारा स्वीकार की गई पूरी राशि जमा नहीं की है, तो उसके बचाव को आदेश XV नियम 5 सी.पी.सी. के तहत समाप्त कर दिया जाना चाहिए और धारा-30(1) के तहत जमा राशि को जमा करने के उद्देश्य से विचार में नहीं लिया जा सकता है; आदेश XV नियम 5 CPC का दूसरा भाग। विचारण न्यायालय ने कैलाश शुक्ला बनाम ए.डी.जे., देवरिया और अन्य, 2004 (1) ए.आर.सी. 615 पर भी न्यायिक मिसाल पर भरोसा किया है जिसमें समान सिद्धांत निर्धारित किए गए हैं।

10. चूंकि यह आदेश बरकरार है, इसलिए प्रतिपक्षी द्वारा दायर लिखित बयान पर विचार नहीं किया गया था और प्रतिपक्षी को सबूत पेश करने की अनुमति नहीं दी गई थी, हालांकि उसे वादी के गवाह से जिरह करने और तर्क को आगे बढ़ाने की अनुमति दी गई थी। चूंकि कानून की नजर

अप्रमाणित

में कोई लिखित बयान उपलब्ध नहीं था, इसलिए विचारण न्यायालय ने निर्धारण के लिए बिंदु तैयार नहीं किए हैं, हालांकि उसने मामले के आवश्यक पहलू पर चर्चा की है।

11. इस मामले में किरायेदारी को स्वीकार किया जाता है। वादी ने नोटिस, रजिस्ट्री रसीद और पावती साबित की है। चूंकि प्रतिपक्षी के बचाव को समाप्त किया गया है, इसलिए, लिखित बयान के कथनों पर विचार नहीं किया जाएगा और इसे ध्यान में नहीं रखा जाएगा।

12. दिनांक 12.08.2010 के आदेश से यह स्थापित किया गया है कि प्रतिपक्षी ने अदालत में स्वीकार किया गया किराया जमा नहीं किया था और यह स्थापित कानून है कि धारा-30(1) के तहत जमा राशि पर इस मुकदमे के प्रयोजनों के लिए विचार नहीं किया जाएगा। इसके अलावा, धारा-30 के तहत प्रतिपक्षी किरायेदार के आवेदन को खारिज कर दिया गया है और इसके पुनरीक्षण को भी खारिज कर दिया गया है।

13. अ०सा०-1, देवेंद्र कुमार रावत ने मामले को साबित कर दिया है और उनकी गवाही का खंडन नहीं किया गया है। प्रतिपक्षी यह साबित नहीं कर सका कि उसने कोई किराया या अन्य शुल्क का भुगतान किया है। जिरह में अ०सा०-1 ने गवाही दी है कि घर में कुल 7 दुकानें हैं जिनमें सभी दुकानों में अलग-अलग बिजली के कनेक्शन हैं। सुझाव देने के अलावा, जिसे गवाह द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है, प्रतिपक्षी की ओर से कोई उचित प्रतिपरीक्षा भी नहीं की गई है और जो भी प्रतिपरीक्षा की गई है, उससे प्रतिपक्षी को कोई लाभ नहीं मिल रहा है। प्रतिपक्षी अपने बचाव को स्थापित करने और वादी जमींदार के मामले और साक्ष्य में कोई संदेह पैदा करने में बुरी तरह विफल रहा। विचारण न्यायालय ने पुनरीक्षण के मेमो में प्रार्थना के अनुसार मुकदमे की पूरी तरह से डिक्री की है; प्रतिपक्षी ने दलील दी है कि चूंकि प्रतिपक्षी के आवासीय घर को 2005 से सील कर दिया गया था, इसलिए वह किराए के भुगतान की रसीद पेश नहीं कर सकी। इसके लिए न तो अदालत जिम्मेदार है और न ही वादी। यह सच नहीं लगता कि दुकान में भुगतान के रिकॉर्ड को सूट में रखने के बजाय, इसे आवासीय घर में रखा जाएगा। यदि ऐसा था, तो प्रतिपक्षी वादी को रसीद की काउंटर फाइल पेश करने का निर्देश देने के लिए एक आवेदन दायर कर सकता था। केवल मनीऑर्डर के माध्यम से किराए का पैसा भेजना, जो वादी द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सका क्योंकि वह स्टेशन से बाहर था, यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रतिपक्षी ने सदाशयी तरीके से भुगतान करने की कोशिश की। प्रतिपक्षी को किराए की राशि फिर से भेजनी चाहिए थी या वह व्यक्तिगत रूप से भुगतान कर सकती थी। यू.पी अधिनियम संख्या-13 वर्ष 1972 की धारा-30 के तहत प्रतिपक्षी के आवेदन को खारिज करने के संबंध में कोई दोष नहीं है। यह स्थापित कानून है कि धारा-30 के तहत जमा को एस.सी.सी. सूट के प्रयोजनों के लिए ध्यान में नहीं रखा जाएगा और जहां अधिनियम संख्या 13 वर्ष 1972 में कोई प्रयोज्यता नहीं है, इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती है।

14. इस प्रकार इस न्यायालय का विचार है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश किसी भी दुर्बलता से ग्रस्त नहीं है। पुनरीक्षण में योग्यता का अभाव है और इसे खारिज किया जा सकता है

आदेश

15. इस पुनरीक्षण को लागत के साथ खारिज किया जाता है।

(2023) 1 ILRA 1324

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांकः इलाहाबाद 03.01.2023

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

सिविल पुनरीक्षण संख्या - 57/2022

नौमान अली. ..पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

मजहर हसन एवं अन्य ...विपरीत पक्षकार

पुनरीक्षणकर्ता के लिए अधिवक्ता:

श्री महबूब अहमद, श्री इरफ़ान अलीम सिद्दीकी, श्री उमेश वत्स

विपक्षी दलों के अधिवक्ता:

श्री अनुराग यादव, श्री गुलरेज़ खान, श्री जावेद हुसैन खान, श्री पुनीत कुमार गुप्ता

यूपी वक्फ न्यायाधिकरण नियम -नियम 3(4) - पुनरीक्षण में वक्फ न्यायाधिकरण के आदेश को चुनौती - दो सदस्यों वाली न्यायाधिकरण बेंच का मुद्दा उठाया - यूपी वक्फ न्यायाधिकरण नियमों का नियम 3(4) - वैधानिक आदेश के खिलाफ - वक्फ अधिनियम धारा 83(4) - तीन सदस्यीय रचना-निर्णय वैधानिक ढांचे पर जोर देता है -

धारा 83 में परिभाषित न्यायाधिकरण के संविधान को नियमों के माध्यम से नहीं बदला जा सकता है। (ई-9)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. नौशाद रज़ा और अन्य बनाम वक्फ प्रबंधक, वक्फ कब्रिस्तान समिति और अन्य।

2. फैज़ आफताब बनाम जफर अली खान और अन्य।

3. अबरार हुसैन बनाम उ.प्र. वक्फ न्यायाधिकरण, लखनऊ एवं अन्य, 2017 एससीसी ऑनलाइन सभी 4081

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 89 की उपधारा (9) के प्रावधान के तहत यह पुनरीक्षण वक्फ न्यायाधिकरण के 28.02.2022 के आदेश के खिलाफ निर्देशित है, जो केस नंबर 286/2017 में पारित किया गया था, जिसमें सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश VII नियम 11 के तहत पुनरीक्षणकर्ता का आवेदन को खारिज कर दिया गया था।

2. आक्षेपित आदेश को चुनौती देने के लिए उठाए गए अन्य आधारों में, मौलिक महत्व की एक आपत्ति है। उस आपत्ति के आधार पर, इस न्यायालय ने 14.10.2022 को आदेश सुरक्षित रखते हुए निम्नलिखित प्रश्न विचारार्थ तय किया:

क्या वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 83(1) के तहत गठित वक्फ न्यायाधिकरण को वैध कोरम में कहा जा सकता है, जिसमें अध्यक्ष सहित दो की सदस्यता, या अध्यक्ष सहित तीन सदस्यों की सदस्यता, अधिनियम की धारा 83 की उप-धारा (4) का, के तहत परिकल्पित है आवश्यक है ?

3. एक और प्रश्न जो उठेगा वह है:

क्या वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 83 की उपधारा (4) के तहत न्यायाधिकरण की अनिवार्य संरचना को देखते हुए, जिसमें अलग-अलग योग्यताओं और निर्दिष्ट पद वाले तीन सदस्य शामिल हैं, क्या न्यायाधिकरण दो सदस्यों की बेंच के माध्यम से बैठ सकता है, भले ही उनकी योग्यता उत्तर प्रदेश वक्फ अधिकरण नियमावली, 2017 के नियम 3 का उप नियम (4) के कार्यालय कुछ भी हो ?

4. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री महबूब अहमद, प्रतिवादी संख्या 1की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री जावेद हुसैन खान और प्रतिवादी संख्या 2 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री पुनित कुमार गुप्ता को सुना।

5. आक्षेपित आदेश उत्तर प्रदेश वक्फ न्यायाधिकरण, लखनऊ द्वारा पारित किया गया है, जिसमें अध्यक्ष न्यायाधिकरण और एक सदस्य भी शामिल हैं। पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि वक्फ अधिनियम, 19951 की धारा 83 की उप-धारा (4) के आधार पर न्यायाधिकरण में अध्यक्ष और दो अन्य सदस्य शामिल होने चाहिए, जो निर्दिष्ट कार्यालय के योग्य व्यक्ति हों।

6. दूसरी ओर, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य को इस न्यायालय के ध्यान में लाया है कि राज्य सरकार ने अधिनियम की धारा 109 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उत्तर प्रदेश वक्फ न्यायाधिकरण नियम, 2017 नामक नियम बनाए हैं। ये नियम 14 दिसंबर, 2017 के आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना द्वारा बनाए गए हैं। अधिसूचना संख्या 1468/LII-2-2017- 2(279)-2013 टी.सी. , उत्तर प्रदेश वक्फ अधिकरण नियमावली, 20172 का नियम 3 नीचे उद्धृत किया गया है:

3(1) कोई भी मुतवल्ली, वक्फ संपत्ति में रुचि रखने वाला व्यक्ति या इस अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत दिए गए आदेश से व्यथित कोई अन्य व्यक्ति, किसी भी वक्फ से संबंधित प्रश्न या अन्य मामला विवाद के समाधान के लिए अधिनियम या नियमों में निर्दिष्ट समय के भीतर आवेदन कर सकता है।

(2) जहां उप-नियम (1) के तहत किया गया कोई भी आवेदन किसी वक्फ संपत्ति से संबंधित है जो न्यायाधिकरण के अधिकार क्षेत्र की क्षेत्रीय सीमा के भीतर आता है, ऐसा आवेदन न्यायाधिकरण को किया जा सकता है जिसके अधिकार क्षेत्र की स्थानीय सीमा के भीतर मुतवल्ली या वक्फ के मुतवल्लियों में से कोई भी वास्तव में और स्वेच्छा से निवास करता है, व्यवसाय करता है या लाभ के लिए व्यक्तिगत रूप से काम करता है, और, जहां उपरोक्तानुसार न्यायाधिकरण में ऐसा कोई आवेदन किया जाता है, अन्य न्यायाधिकरण ऐसे प्रश्न या अन्य विवाद के निर्धारण के लिए किसी भी आवेदन पर विचार नहीं करेंगे।

(3) प्रत्येक आवेदन, वादपत्र या अपील का ज्ञापन या निष्पादन या कब्जे की वसूली के लिए एक आवेदन के साथ न्यायालय शुल्क अधिनियम, 1870 (1870 का अधिनियम संख्या VII) की अनुसूची I और II में निर्धारित समय - समय संसाोधन के अनुसार न्यायालय शुल्क संलग्न किया जाएगा।

(4) न्यायाधिकरण के अध्यक्ष तीन पीठों का गठन करेंगे जिनमें प्रत्येक में दो सदस्य होंगे। पीठ किसी मामले का निर्णय करने में सक्षम होगी। किसी पीठ के दो सदस्यों के बीच असहमति के मामले में, मामले का निर्णय

बहुमत के निर्णय के साथ तीन सदस्यों वाले पूर्ण न्यायाधिकरण द्वारा किया जाएगा।

(5) न्यायाधिकरण का निर्णय अंतिम होगा और आवेदन के पक्षकारों पर बाध्यकारी होगा और इसमें सिविल कोर्ट द्वारा की गई डिक्री का बल होगा।

(6) अधिकरण सामान्यतः लखनऊ में बैठेगा, हालाँकि, जनहित में, अध्यक्ष पहले से ही त्रैमासिक कैलेंडर जारी करके मंडल स्तर पर एक बेंच की बैठकें तय कर सकते हैं।

7. प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि नियमावली के नियम 3 के उप नियम (4) के मद्देनजर, उत्तर प्रदेश राज्य में, वक्फ न्यायाधिकरण वैध कोरम में है, जो अध्यक्ष द्वारा गठित दो सदस्यों की पीठ में बैठता है। न्यायाधिकरण का यह तर्क दिया गया है कि उत्तर प्रदेश राज्य में कार्य की अत्यावश्यकताओं और इसकी मात्रा के कारण न्यायाधिकरण को अध्यक्ष और दो सदस्यों वाली एकल पीठ के बजाय अलग-अलग पीठों के माध्यम से बैठने की आवश्यकता होती है, जिसकी परिकल्पना अधिनियम की धारा 83 की उप-धारा (4) के तहत की गई है जिसमें यह प्रस्तुत किया गया है कि राज्य सरकार अधिनियम की धारा 109(1) के आधार पर, अधिनियम के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए राजपत्र में प्रकाशित एक अधिसूचना द्वारा नियम बनाने में सक्षम है, जो कि अध्याय III का हिस्सा हैं। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि धारा 109 की उप-धारा (2) के तहत, विशिष्ट मामले हैं अधिनियम की विशेष धाराओं के संदर्भ में गणना की गई है, अधिनियम की धारा 109 की उप-धारा (2) का खंड (xxv) राज्य सरकार को किसी अन्य मामले के संबंध में नियम बनाने में सक्षम बनाता है जिसके संबंध में राज्य सरकार अधिनियम के उद्देश्य को पूरा करने के लिए नियम बना सकती है, जो निर्धारित किया जाना आवश्यक है या किया जा सकता है। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, अधिनियम की धारा 3 के 'निर्धारित' खंड (एल) की परिभाषा के अनुसार, 'निर्धारित' का अर्थ अधिनियम के अध्याय III के संबंध को छोड़कर, नियमों के तहत निर्धारित है।

8. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता की दलील यह है कि राज्य सरकार के पास अधिनियम के उद्देश्यों और उद्देश्यों को प्रभावित करने के लिए नियम बनाने की व्यापक शक्तियाँ हैं। यहां के नियम, जिसमें न्यायाधिकरण के लिए दो सदस्यीय पीठों के माध्यम से बैठने का प्रावधान शामिल है, अधिनियम के तहत गठित न्यायाधिकरण द्वारा विवादों के निर्णय को प्रभावी बनाना भी है। संक्षेप में, यह कहा जाता है कि नियमों के नियम 3 के उप-नियम (4) का उद्देश्य यह है कि न्यायाधिकरण उन सभी विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए एक व्यवहार्य मंच बन जाए, जिनका निर्णय अधिनियम के धारा 83 के तहत गठित वक्फ न्यायाधिकरण द्वारा किया जाना आवश्यक है।

9. इस न्यायालय ने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है।

10. अधिनियम की धारा 83 की उपधारा (1) को लाभ के साथ उद्धृत किया जा सकता है:

83. न्यायाधिकरणों आदि का गठन- 3[(1) राज्य सरकार, किसी भी विवाद, प्रश्न या अन्य मामले के निर्धारण के लिए, आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, उतने अधिक न्यायाधिकरणों का गठन करेगी, जितने वह उचित समझे। इस अधिनियम के तहत एक वक्फ या वक्फ संपत्ति, एक किरायेदार की बेदखली या पट्टादाता और ऐसी संपत्ति के पट्टेदार के अधिकारों और दायित्वों का निर्धारण और ऐसे न्यायाधिकरणों की स्थानीय सीमाओं और अधिकार क्षेत्र को परिभाषित करेगी।]

11. धारा 83 की उप-धारा (1) को पढ़ने से पता चलता है कि अधिनियम में परिकल्पना की गई है कि यह राज्य सरकार के प्रांत के भीतर है, आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा उतनी संख्या में न्यायाधिकरणों का गठन किया जा सकता है जितनी वह वक्फ या वक्फ संपत्ति से संबंधित विवादों, प्रश्नों और अन्य मामलों के बारे में निर्णय के लिए उपयुक्त समझती है। किरायेदार की बेदखली को भी इन न्यायाधिकरणों के अधिकार क्षेत्र में लाया गया है। राज्य सरकार के पास अपने द्वारा गठित न्यायाधिकरणों की स्थानीय सीमाओं और अधिकार क्षेत्र को परिभाषित करने की शक्ति है। इसकी परिकल्पना तीन सदस्यीय निकाय के रूप में की गई है, जिसमें एक अध्यक्ष और दो सदस्य शामिल हैं। अध्यक्ष को राज्य न्यायिक सेवाओं का सदस्य होना अनिवार्य है, जिसका पद जिला एवं सत्र न्यायाधीश या सिविल न्यायाधीश वर्ग से कम न हो; एक व्यक्ति जो अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट के समकक्ष रैंक का राज्य सिविल सेवा का अधिकारी है; और, मुस्लिम कानून और न्यायशास्त्र का ज्ञान रखने वाला व्यक्ति होना चाहिये।

12. धारा 83 की उप-धारा (1) और उप-धारा (2) को पढ़ने से प्रथम दृष्टया यह प्रतीत होता है कि वक्फ या वक्फ संपत्ति से संबंधित विवादों की सुनवाई और निर्णय में, ऐसी संपत्ति में किरायेदारों की बेदखली भी शामिल है। राज्य सरकार को अधिनियम द्वारा उतनी संख्या में न्यायाधिकरण गठित करने का अधिकार दिया गया है जितनी वह उचित समझे। राज्य सरकार जितने न्यायाधिकरणों को उपयुक्त समझती है, उनकी संख्या प्रकृति पर निर्भर करेगी, और उससे भी अधिक,

न्यायाधिकरण के समक्ष व्यवसाय की मात्रा पर निर्भर करेगी। राज्य सरकार के रास्ते में कोई बाधा नहीं है कि अपने क्षेत्राधिकार को परिभाषित करने वाले, क्षेत्र के संदर्भ में, या प्रत्येक गठित न्यायाधिकरण द्वारा निपटाए जाने वाले कारणों की प्रकृति के आधार पर एक से अधिक न्यायाधिकरणों का गठन करेगी। प्रत्येक मुख्यालय पर या एक राजस्व जिले में एक से अधिक न्यायाधिकरण गठित करने की राज्य सरकार की राह में कोई बाधा नहीं है। यह सब राज्य सरकार के विवेक पर निर्भर करेगा, किसी विशेष क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले कारणों की संख्या, उन कारणों की प्रकृति, वादियों को न्यायाधिकरण की सीट तक यात्रा करने की दूरी और अन्य प्रासंगिक कारकों पर विचार करना होगा।

13. हालाँकि, अधिनियम की धारा 83 की उप-धारा (4) को उप-धारा (1) के साथ पढ़ने से राज्य सरकार को धारा 109 के तहत बनाए गए नियमों द्वारा निर्धारित करने की शक्ति प्रदान नहीं होती है। अधिनियम, उन सदस्यों की संख्या जो एक न्यायाधिकरण के लिए वैध कोरम का गठन करेंगे। न्यायाधिकरण की संरचना अधिनियम की धारा 83 की उप-धारा (4) द्वारा वर्णित है, और, प्रथम दृष्टया, राज्य सरकार द्वारा धारा 109 के तहत नियम बनाने की शक्ति का प्रयोग करते हुए, इसे संशोधित या छेड़छाड़ नहीं किया जा सकता है। धारा 83 की उप-धारा (4) द्वारा वैधानिक रूप से निर्धारित न्यायाधिकरण की संरचना को सक्षम कोरम निर्धारित करते हुए राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियम के माध्यम से परेशान नहीं किया जा सकता है। वास्तव में, उप-धारा (4) को पढ़ने से प्रथम दृष्टया इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता है कि प्रत्येक न्यायाधिकरण की संरचना जानबूझकर बताई गई है। यह न केवल संख्यात्मक सदस्यता के बारे में है, बल्कि इसे बनाने वाले सदस्यों की शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण और पृष्ठभूमि के बारे में भी है। अध्यक्ष को राज्य न्यायिक सेवा का सदस्य होना अनिवार्य है, जबकि परिकल्पित दो सदस्य भी अपनी योग्यता और पेशेवर प्रशिक्षण के आधार पर विशिष्ट और भिन्न होना होगा राज्य सिविल सेवा का प्रशासनिक अधिकारी एक निर्दिष्ट रैंक का होता है, अर्थात अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट का, जबकि, अन्य सदस्य को मुस्लिम कानून और न्यायशास्त्र का जानकार होना चाहिए। इसलिए, न्यायाधिकरण का प्रत्येक सदस्य अपनी शिक्षा, पेशेवर प्रशिक्षण और पृष्ठभूमि से विशिष्ट है; और न्यायाधिकरण, एक बार गठित होने के बाद प्रथम दृष्टया सभी तीन सदस्यों को शामिल करता है, जैसा कि धारा 83 की उप-धारा (4) के तहत परिकल्पित है। क़ानून द्वारा परिकल्पित न्यायाधिकरण में प्रथम दृष्टया एक पीठासीन सदस्य और उसके सहयोगी भिन्न प्रशिक्षण और पृष्ठभूमि के साथ शामिल होते हैं। इसलिए, यह न्यायाधिकरण की संरचना के लिए वैधानिक योजना का हिस्सा नहीं लगता है कि यह तीन से अधिक सदस्यों का एक बहु-सदस्यीय निकाय होना चाहिए, जिसमें एक अध्यक्ष हो जो न्यायालय की तरह दो सदस्यों की पीठों को काम आवंटित कर सके। पीठासीन सदस्य या मुख्य सदस्य या मुख्य न्यायाधीश, समान प्रशिक्षण और पृष्ठभूमि के सदस्यों या न्यायाधीशों के बीच, उनके द्वारा गठित विभिन्न पीठों को कार्य आवंटित करने के लिए अधिकृत किया जा सकता है। क़ानून की योजना के तहत, प्रथम दृष्टया ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि राज्य सरकार के पास ऐसी कोई शक्ति है जिसका प्रयोग नियम 109 के तहत, किसी भी तंत्र के माध्यम से,अधिनियम की धारा 83 की उपधारा (4) द्वारा परिकल्पित की तुलना में एक अलग संरचना के साथ एक न्यायाधिकरण प्रदान करने के लिए किया जा सकता है।

14. नौशाद रजा और अन्य बनाम वक्फ प्रबंधक, वक्फ कब्रिस्तान समिति और अन्य4 और फैज़ आफताब बनाम जफर अली खान और अन्य5 में इस न्यायालय के निर्णयों को इस न्यायालय के ध्यान में लाया गया है, जहां यह माना गया है कि न्यायाधिकरण दो सदस्यों के साथ नहीं बैठ सकते इसी तरह का एक और निर्णय जो न्यायालय के संज्ञान में लाया गया है वह है अबरार हुसैन बनाम यू.पी. वक्फ न्यायाधिकरण, लखनऊ और अन्य 6, जो स्पष्ट रूप से संख्या निर्धारित नहीं कर रहे हैं, ऐसा लगता है कि उन्होंने इस विचार का पालन किया है कि न्यायाधिकरण दो सदस्यों के माध्यम से वैध कोरम में नहीं हो सकता है लेकिन, ये सभी निर्णय नियमों के अधिसूचित होने से पहले ही लिए गए हैं। इसलिए, उन मामलों में न्यायालय को नियमों का सामना नहीं करना पड़ा; या जो विषम स्थिति ये मौजूद है। यह एक हितकारी सिद्धांत है कि यदि अधीनस्थ कानून और क़ानून के बीच टकराव होता है, तो न्यायालय अधीनस्थ कानून को अधिनियम के दायरे से बाहर मानकर उसकी अनदेखी कर सकता है। भारतीदासन विश्वविद्यालय और अन्य बनाम अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद और अन्य7 में के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत जैसा कि ऊपर कहा गया है विश्वविद्यालयों और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अनुमोदन के बाद एक नया तकनीकी पाठ्यक्रम और एक नया कार्यक्रम प्रारम्भ होगा।

15. भारतीदासन विश्वविद्यालय (उपरोक्त) में माननीय न्यायमूर्ति ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

14. तथ्य यह है कि विनियमों में कानून का बल हो सकता है या जब बनाया जाता है तो उन्हें संबंधित विधायिका के समक्ष रखा जाना चाहिए, इससे कोई अधिक पवित्रता या प्रतिरक्षा प्रदान नहीं होती है जैसे कि वे स्वयं वैधानिक प्रावधान हैं। नतीजतन, जब नियम बनाने की शक्ति कुछ सीमाओं तक सीमित होती है और उसे

निर्धारित सीमा के अन्दर ही निर्धारण किया जाना है, जो वास्तव में बनाई गई या दिखाई जाती है और पाई जाती है कि वे इसकी सीमाओं के भीतर नहीं बल्कि उनके बाहर बनाई गई हैं, तो अदालतें बाध्य हैं। जब उनके प्रवर्तन का प्रश्न उठता है और केवल तथ्य यह है कि उन्हें रद्द करने या अधिकारातीत घोषित करने के लिए कोई विशेष राहत नहीं मांगी गई है, तो उन्हें अनदेखा करें, खासकर जब पीड़ित पक्ष लिस या कार्यवाही का प्रतिवादी है कोई और अधिक पवित्रता या अधिकार और वैधता प्रदान नहीं कर सकता है जिसकी स्पष्ट रूप से और स्पष्ट रूप से कमी दिखाई और पाई जाती है। इसलिए, यह कहना एक मिथक होगा कि अधिनियम की धारा 23 के तहत बनाए गए विनियमों को "संवैधानिक" और कानूनी दर्जा प्राप्त है, इस तथ्य को ध्यान में रखे बिना कि उनमें से कोई भी या अधिक स्वयं विशिष्ट अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप नहीं पाया जाता है। इस प्रकार, विचाराधीन विनियम, जिसे एआईसीटीई विश्वविद्यालयों/यूजीसी को उसे प्रदत्त शक्तियों के दायरे में बांधने के लिए नहीं बना सकता था, को किसी विश्वविद्यालय के खिलाफ लागू नहीं किया जा सकता है किसी विश्वविद्यालय या उसके किसी विभाग और घटक संस्थान में तकनीकी शिक्षा में एक नया विभाग या पाठ्यक्रम और कार्यक्रम या किसी भी आवश्यकता के मामले में उसे शुरू करने के लिए पूर्व अनुमोदन लेने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है।

16. चूंकि इस मामले में, मुद्दा राज्य सरकार द्वारा अधिनियम की धारा 109 की शक्ति का प्रयोग करते हुए बनाए गए नियमों के उप-नियम (4) और नियम 3 के अधिकार के बारे में है, इसलिए इस न्यायालय की राय है कि मामले की सुनवाई और निर्णय डिविजन बेंच द्वारा किया जाना चाहिए।

17. माननीय मुख्य न्यायाधीश से नामांकन मांगने के बाद इस मामले को उचित पीठ के समक्ष सूचीबद्ध करें।

(2023) 1 ILRA 1329

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: इलाहाबाद 02.01.2023

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

के समक्ष

सिविल पुनरीक्षण संख्या - 49/2022

ईश्वर शरण @ ईश्वर शरण दास ...पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

भरत कुमार एवं अन्य ...विपरीत पक्षकार

पुनरीक्षणकर्ता के लिए अधिवक्ता:

श्री भोला नाथ यादव, श्री प्रेम सिंह

विपक्षी पक्षकार के लिए अधिवक्ता:

श्री राहुल सहाय, श्री अमन शर्मा

सि**विल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 105 और 115** - तीन आदेशों को चुनौती देने वाला पुनरीक्षण - एक पंजीकृत वसीयत को रिकॉर्ड पर लाने के लिए एक आवेदन की अस्वीकृति पर पुनरीक्षणकर्ता ने आपत्ति जताई - प्रशासन की एक प्रस्तावित योजना की गैर-स्वीकृति - पूर्ण संतुष्टि में निष्पादन को रद्द करना - रखरखाव पर प्रारंभिक आपत्ति उठाई गई थी - कि तीन अलग-अलग पुनरीक्षण दायर किए जाने चाहिए- पुनरीक्षणकर्ता ने तर्क दिया कि अंतिम आदेश के साथ अंतर्वर्ती आदेशों को चुनौती देना स्वीकार्य है - अदालत ने आपत्ति को सही माना।

पुनरीक्षण पोषणीय है. (ई-9)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. राजेन्द्र प्रसाद गुप्ता बनाम प्रकाश चन्द्र मिश्रा एवं अन्य (2011) 2 SCC 705

2. अचल मिश्रा बनाम रमा शंकर सिंह एवं अन्य (2005) 5 SCC 531

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा दिया प्रदत्त)

यह पुनरीक्षण निष्पादन मामले संख्या 1/2012 में अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 9, बदायूँ द्वारा पारित तीन अलग-अलग आदेशों के विरुद्ध निर्देशित है, जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 19081 की धारा 92 के तहत मूल मुकदमा संख्या 2/2001, भरत कुमार और अन्य बनाम ईश्वर शरण विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 8, बदायूँ द्वारा पारित डिक्री से उत्पन्न हुआ था। पहला आक्षेपित आदेश दिनांक 24.01.2022 का है, जिसमें संहिता की धारा 92 के तहत मुकदमे में पारित डिक्री के विषय का मामला गौरव दास द्वारा अपने पक्ष में मंदिर के पूर्व सरवरकर स्वर्गीय ईश्वर शरण द्वारा निष्पादित दिनांक 21.12.2016 की एक पंजीकृत वसीयत को रिकॉर्ड में लाने का दावा करते हुए पेपर संख्या 54जी के आवेदन को दायर किया जिसे खारिज कर दिया गया है, दूसरा आदेश दिनांक 03.03.2022 है, जिसके द्वारा मृतक निर्णय-ऋणी ईश्वर शरण दास के कानूनी प्रतिनिधि होने का दावा करने वाले

पुनरीक्षणकर्ता द्वारा प्रस्तुत प्रशासन की योजना को स्वीकार नहीं किया गया है, जबकि डिक्री धारक द्वारा प्रस्तुत किया गया था , पेपर नंबर 9जी स्वीकार कर लिया गया है। अंतिम आदेश दिनांक 05.03.1992 है, जिसके द्वारा निष्पादन कार्यवाही को पूर्ण संतुष्टि के साथ समाप्त करने का आदेश दिया गया है।

2. प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल सहाय,ने इस पुनरीक्षण की रखरखाव के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति उठाई है। उनका कहना है कि लगाए गए तीन आदेश तीन अलग-अलग आवेदनों पर पारित किए गए हैं, और, हो सकता है, संहिता की धारा 115 के अर्थ के तहत एक मामला तय किया गया हो। लेकिन, प्रत्येक पुनरीक्षणकर्ता को इस न्यायालय में पुनरीक्षण को प्राथमिकता देने के लिए एक विशिष्ट और अलग अधिकार को जन्म देगा। श्री सहाय का कहना है कि पुनरीक्षणकर्ता लागू किये गये तीन आदेशों के विरूद्ध एक भी पुनरीक्षण को प्राथमिकता नहीं दे सकता।

3. उपरोक्त आपत्ति का उत्तर देने में, पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री भोला नाथ यादव ने *राजेंद्र प्रसाद गुप्ता बनाम प्रकाश चंद्र मिश्रा और अन्य2* में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा जताया है। उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान *राजेंद्र प्रसाद गुप्ता (उपरोक्त)* की रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 5, 6 और 7 की ओर आकर्षित किया है जहां यह कहा गया है:

5. *नरसिंह दास बनाम मंगल दुबे [आईएलआर (1883) 5 सभी 163]* में, इलाहाबाद उच्च न्यायालय के प्रसिद्ध न्यायाधीश महमूद, जे. ने कहा:

"अदालतों को इस सिद्धांत पर कार्य नहीं करना चाहिए कि प्रत्येक प्रक्रिया को तब तक निषिद्ध माना जाए जब तक कि यह संहिता द्वारा स्पष्ट रूप से प्रदान न किया गया हो, बल्कि इसके विपरीत सिद्धांत पर कार्य करना चाहिए कि प्रत्येक प्रक्रिया को तब तक अनुमेय समझा जाना चाहिए जब तक कि इसे कानून के तहत निषिद्ध न दिखाया जाए। सामान्य सिद्धांत के तौर पर निषेध नहीं माना जा सकता।"

6. उपरोक्त दृष्टिकोण का पालन *राज नारायण सक्सेना बनाम भीम सेन [एआईआर 1966 सभी 84]* में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा किया गया था और हम इस दृष्टिकोण से सहमत हैं। तदनुसार, हमारी राय है कि वापसी आवेदन को वापस लेने की प्रार्थना करने वाला आवेदन विचारणीय था। हम तदनुसार ऑर्डर करते हैं।

7. परिणामस्वरूप, उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय को रद्द कर दिया जाता है और अपील की अनुमति दी जाती है। कोई लागत नहीं. मुकदमा गुण-दोष के आधार पर आगे बढ़ेगा और शीघ्रता से निर्णय लिया जाएगा।

4. उनका कहना है कि उठाई गई आपत्ति किसी तकनीकी या नियमों या प्रक्रिया से संबंधित कुछ और नहीं है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि प्रक्रिया के नियम न्याय के हाथ से बने होते हैं और जब तक कोई काफी गलत आदेश रिकॉर्ड पर है, इस न्यायालय के पास पुनरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग करते हुए उन गलत आदेशों को सही करने का पर्याप्त अधिकार क्षेत्र है, भले ही एक से अधिक आदेश हों। एक ही पुनरीक्षण में चुनौती दी गई है। श्री यादव ने *अचल मिश्रा बनाम रमा शंकर सिंह और अन्य3* में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर अधिक भरोसा जताया है। न्यायालय का ध्यान रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 12 और 13 की ओर आकर्षित किया गया है, जिसमें लिखा है:

13. इस सिद्धांत को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 105(1) द्वारा मान्यता प्राप्त है और संहिता के आदेश 43 नियम 1-ए द्वारा इसकी पुष्टि की गई है। इस नियम के दो अपवाद सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 97 में पाए जाते हैं, जो प्रावधान करता है कि किसी मुकदमे में पारित प्रारंभिक डिक्री को उस प्रारंभिक डिक्री के आधार पर अंतिम डिक्री के खिलाफ अपील में चुनौती नहीं दी जा सकती है और धारा 105(2) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 जो रिमांड के आदेश के बाद पारित डिक्री के खिलाफ अपील दायर करते समय रिमांड के आदेश को बाद के चरण में चुनौती देने से रोकती है। सत्यध्यान घोषाल बनाम देवराजिन देबी [(1960) 3 एससीआर 590: एआईआर 1960 एससी 941. एड. मामले में इस न्यायालय द्वारा इन सभी पहलुओं पर विचार किया गया। : यह भी देखें (1981) 2 एससीसी 103, (2004) 12 एससीसी 754 और (2005) 3 एससीसी 422] के मामले में न्यायालय के समक्ष सभी पहलू विचार के आये जिसमें, प्रिवी काउंसिल के निर्णयों का उल्लेख करने के बाद, यह माना गया कि एक अंतरिम आदेश जिसके खिलाफ अपील नहीं की गई थी क्योंकि कोई अपील नहीं हुई या भले ही अपील हुई, अपील नहीं की गई, अंतिम डिक्री या आदेश से अपील में चुनौती दी जा सकती है। आगे यह माना गया कि रिमांड के आदेशों के संबंध में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 105(2) में एक विशेष प्रावधान किया गया था, जहां रिमांड के आदेश को ही अपील योग्य बना दिया गया था। चूंकि धारा 105(2) प्रिवी काउंसिल पर लागू नहीं होती है और सुप्रीम कोर्ट में अपील के लिए इसका कोई आवेदन नहीं हो सकता है, प्रिवी काउंसिल

और सुप्रीम कोर्ट डिक्री की शुद्धता पर विचार करते समय रिमांड के मूल आदेश की शुद्धता की भी जांच कर सकते हैं एवं रिमांड के आदेश के बाद पारित किया जा सकता है। अमर चंद बुटेल बनाम भारत संघ [एआईआर 1964 एससी 1658] और अन्य बाद के निर्णयों में भी यही सिद्धांत दोहराया गया था।

14. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि किसी रिक्ति को अधिसूचित करने वाला आदेश, जो आवंटन के अंतिम आदेश की ओर ले जाता है, को अंतिम आदेश को चुनौती देने के लिए की गई कार्यवाही में चुनौती दी जा सकती है, क्योंकि एक आदेश जो पारित होने में निर्णय लेने की प्रक्रिया में एक प्रारंभिक चरण है अंतिम आदेश. इसलिए, अधिनियम द्वारा प्रदान किए गए आवंटन के अंतिम आदेश के खिलाफ एक पुनरीक्षण में, रिक्ति को सूचित करने वाले आदेश को चुनौती दी जा सकती है। गणपत रॉय मामले में निर्णय [(1985) 2 एससीसी 307] जिसने तिरलोक सिंह एंड कंपनी[(1976) 3 एससीसी 726] में निर्णय के अनुपात को अस्वीकार कर दिया है को यह निर्धारित करने के रूप में नहीं समझा जा सकता है कि अधिसूचना आदेश को चुनौती देने में विफलता रिक्ति के परिणामस्वरूप, आवंटन के अंतिम आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण में, रिक्ति की अधिसूचना को चुनौती देने का पीड़ित व्यक्ति का अधिकार खो जाएगा। इसने केवल यह स्पष्ट किया है कि रिक्ति को अधिसूचित करने वाले आदेश को भी तुरंत और स्वतंत्र रूप से चुनौती दी जा सकती है। हमारे विचार में, उच्च न्यायालय ने गणपत रॉय मामले [(1985) 2 एससीसी 307] में इस न्यायालय के निर्णय के प्रभाव को गलत समझा है और प्रिवी द्वारा प्रतिपादित ऐसे प्रश्न को नियंत्रित करने वाले कानून के सामान्य सिद्धांतों को परिषद और इस न्यायालय द्वारा ध्यान में नहीं रखा गया है। यह किसी का मामला नहीं है कि अधिनियम में धारा 97 या नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 105(2) के अनुरूप कुछ भी है जो किसी आदेश के संबंध में चुनौती को रोकता है जो अंततः अंतिम आदेश की ओर ले जाता है। हम वर्तमान मामले में और कुंज लता बनाम दसवीं एडीजे [(1991) 2 आरसीजे 658] में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को खारिज करते हैं कि अंतिम आदेश के खिलाफ एक पुनरीक्षण में, रिक्ति को सूचित करने वाले आदेश को चुनौती नहीं दी जा सकती है और वह रिक्ति को अधिसूचित करने वाले आदेश को स्वतंत्र रूप से चुनौती देने में विफलता आवंटन आदेश को सफल चुनौती देने से रोक देगी। वास्तव में, रिक्ति अधिसूचित करने वाले आदेश से व्यथित व्यक्ति के पास दो विकलप उपलब्ध होने की बात कही जा सकती है या तो रिक्ति को अधिसूचित करने वाले आदेश को रिट याचिका के माध्यम से चुनौती देने के लिए या आवंटन के अंतिम आदेश के बाद वैधानिक चुनौती देने के लिए और यदि वह उसके बाद भी असंतुष्ट है, तो उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाए। यह वास्तव में उपचारों के चुनाव का मामला होगा।

5. यह प्रस्तुत किया गया है कि किसी भी कार्यवाही में अंतिम आदेश से दायर पुनरीक्षण में, अंतर्वर्ती आदेशों या परिणामी आदेशों पर सवाल उठाना खुला है, जिनमें से सभी को संहिता की धारा 105 के अनुरूप एक ही पुनरीक्षण में चुनौती दी जा सकती है। इस बात पर भी जोर दिया गया है कि केवल यह आवश्यक है कि मुख्य आदेश को परिणामी आदेशों के साथ चुनौती दी जाए। इस सिद्धांत के समर्थन में, पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने बुसा ओवरसीज एंड प्रॉपर्टीज प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य4 पर भरोसा जताया है। न्यायालय का ध्यान बुसा ओवरसीज एंड प्रॉपर्टीज प्राइवेट लिमिटेड (सुप्रा) की रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 6 और 26 की ओर आकर्षित किया गया है:

30. ...यदि मूल निर्णय पर आपत्ति नहीं की गई है और चुनौती केवल समीक्षा में पारित आदेश को है, तो यह न्यायालय ऐसी विशेष अनुमति याचिका पर विचार नहीं करने के लिए बाध्य है। उक्त सिद्धांत ने आधिकारिक दर्जा प्राप्त कर लिया है और दो दशकों से अधिक समय से इसे एक मिसाल सिद्धांत के रूप में माना जाता है और हम यह सोचने के लिए तैयार हैं कि उक्त मिसाल से निर्देशित न होने की शायद ही कोई आवश्यकता है। ......

6. भगवानजी और कल्याणजी बनाम पंजाबभाई हाजाभाई राठौड़5 के फैसले पर भी भरोसा किया गया है। यहां, पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अदालत का ध्यान रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 7 और 8 की ओर आकर्षित किया है, जिसमें निम्नानुसार लिखा है:

7. जहां तक पहले प्रश्न का सवाल है, मुझे तुरंत अपीलकर्ता के पक्ष में इसका उत्तर देना चाहिए। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 105 में प्रावधान है कि जब तक अन्यथा स्पष्ट रूप से प्रदान नहीं किया जाता है, किसी न्यायालय द्वारा अपने मूल या अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग में दिए गए किसी भी आदेश के खिलाफ कोई अपील नहीं की जाएगी; लेकिन, जहां किसी डिक्री के खिलाफ अपील की जाती है, मामले के निर्णय को प्रभावित करने वाली किसी भी आदेश में कोई त्रुटि, दोष या अनियमितता अपील के ज्ञापन में आपत्ति के आधार के रूप में निर्धारित की जा सकती है। चूँकि उप-धारा (2) हमारे उद्देश्य के लिए प्रासंगिक नहीं है, मैं उसका उल्लेख नहीं कर रहा हूँ। धारा 105 अपने स्पष्ट शब्दों में प्रावधान करती है कि किसी विशेष आदेश के विरुद्ध यदि अपील प्रदान नहीं की जाती है, तो ऐसे आदेश को अपील में चुनौती दी जा सकती है जो अंतिम निर्णय और डिक्री के

विरुद्ध दायर की जाती है। धारा 105 के पीछे कारण यह है कि एक पक्ष को हर बार पुनरीक्षण न्यायालय में जाने की आवश्यकता नहीं होती है और साथ ही वह पक्ष को यह कहने की अनुमति नहीं देता है कि हालांकि आक्षेपित आदेश के खिलाफ अपील प्रदान की गई थी लेकिन उसने अपील दायर नहीं की।

8. निर्विवाद रूप से किसी दस्तावेज़ को स्वीकार या अस्वीकार करने वाला आदेश अपील योग्य आदेश नहीं होगा, इसलिए आदेश की शुद्धता, वैधता और औचित्य को नागरिक प्रक्रिया संहिता की धारा 15 की सहायता और सहायता से अपीलीय न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जा सकती है। विद्वान प्रथम अपीलीय न्यायालय का यह मानना बिल्कुल अनुचित था कि ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित आदेश की शुद्धता को चुनौती देने वाले पुनरीक्षण के अभाव में, अपीलीय न्यायालय आदेश की वैधता/शुद्धता की जांच करने के लिए खुला नहीं होगा।

7. उक्त निर्णय पर भरोसा करते हुए, श्री भोला नाथ यादव ने प्रस्तुत किया कि किसी दस्तावेज़ को स्वीकार या अस्वीकार करने के आदेश को अंतिम आदेश के विरुद्ध किए गए पुनरीक्षण में चुनौती दी जा सकती है। यह तर्क दिया जाता है कि यहां, अंतिम आदेश वसीयत के आधार पर नियुक्त मृतक सरवरकर के चेले के रूप में पुनरीक्षणकर्ता को सुने बिना, पूर्ण संतुष्टि में निष्पादन को रद्द करने वाला है। पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि श्री सहाय की आपत्ति *खुर्जावाला बकल्स मैन्युफैक्चरिंग कंपनी, टाटानपारा बनाम कमिश्नर, सेल्स टैक्स, यूपी, लखनऊ और अन्य6* में इस न्यायालय के फैसले पर आधारित है, जिसे खारिज कर दिया गया है। मल्ल सिंह और अन्य बनाम लक्ष्य कुमार खेतान एवं अन्य7 श्रीमती के मामले में इस न्यायालय की एक पूर्ण पीठ मल्ल सिंह में निम्नलिखित होल्डिंग को इस न्यायालय के संज्ञान में लाया गया है:

69. *खुरियावाला बकल्स मैन्युफैक्चरिंग कंपनी बनाम कमिश्नर सेल्स टैक्स, यूपी [वायु। 1965 एल्ड. 517.]* में हालाँकि, इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा यह माना गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाही को नियंत्रित नहीं करते हैं। उसमें बताया गया है कि धारा में क्या निर्धारित है। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 141 यह है कि मुकदमों के संबंध में संहिता में निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया जाना चाहिए, जहां तक संभव हो, किसी भी सिविल क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय की सभी कार्यवाहियों में एक उच्च न्यायालय, जब अनुच्छेद 226 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है, तो उस पीठ द्वारा व्यक्त विचार के अनुसार, उसे नागरिक क्षेत्राधिकार वाला न्यायालय नहीं माना जा सकता है। वह क्षेत्राधिकार सामान्य क्षेत्राधिकार नहीं है, बल्कि वह असाधारण क्षेत्राधिकार है जिसका अर्थ है कि वह न तो दीवानी है और न ही आपराधिक।

70. यह दृष्टिकोण, सम्मान के साथ, ऊपर उल्लिखित दो सुप्रीम कोर्ट के फैसलों के मद्देनजर अब अच्छा नहीं रहेगा। क्षेत्राधिकार असाधारण क्षेत्राधिकार हो सकता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि यह दीवानी नहीं है, जैसे उच्च न्यायालय का सामान्य क्षेत्राधिकार या तो दीवानी या आपराधिक हो सकता है, सामान्य क्षेत्राधिकार के विपरीत असाधारण क्षेत्राधिकार भी या तो दीवानी या आपराधिक हो सकता है। "साधारण" और "असाधारण" क्षेत्राधिकार में वर्गीकरण "सिविल और आपराधिक" क्षेत्राधिकार के बीच वर्गीकरण से भिन्न है, नागरिक और आपराधिक दोनों क्षेत्राधिकार सामान्य या असाधारण हो सकते हैं। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत किसी याचिका के संबंध में क्षेत्राधिकार असाधारण क्षेत्राधिकार हो सकता है, लेकिन यदि निर्णय का प्रभाव किसी पक्ष के नागरिक अधिकारों पर पड़ता है, तो इसका प्रयोग उसके नागरिक क्षेत्राधिकार के तहत किया जाएगा, यदि इसका प्रभाव आपराधिक अधिकारों पर पड़ता है। इसका प्रयोग उसके आपराधिक क्षेत्राधिकार के तहत किया जाता है।

8. दूसरी ओर, श्री सहाय का मानना है कि विद्वान अधिवक्ता द्वारा जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया, उनसे उन्हें लागू किए गए तीन अलग-अलग आदेशों के खिलाफ एक भी पुनरीक्षण बनाए रखने में मदद नहीं मिलेगी। उनका कहना है कि खुर्जावाला बकल्स मैन्युफैक्चरिंग कंपनी (उपरोक्त) अभी भी अच्छा कानून है और कोर्ट का ध्यान डिवीजन बेंच की होल्डिंग की ओर आकर्षित किया गया है, जिसमें लिखा है:

7. ऐसे कई निर्णय हैं जो बताते हैं कि कई आदेशों को चुनौती देने वाली एक याचिका सुनवाई योग्य नहीं है; एआईआर 1980 ऑल 366 (उपरोक्त), राजस्व पटवारी संघ बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1982 पुंज 55, इंदर सिंह बनाम राजस्थान राज्य, एआईआर 1954 राज 185 और एआईआर 1953 मद 626 (उपरोक्त) कलकत्ता डिस्काउंट कंपनी लिमिटेड में वाई. आयकर अधिकारी, एआईआर 1961 एससी 372, तीन साल के मूल्यांकन आदेशों के संबंध में आयकर अधिनियम की धारा 31 के तहत जारी किए गए तीन नोटिसों को चुनौती देने के लिए एक याचिका दायर की गई थी और उस पर विचार किया गया था। इसे एकल न्यायाधीश ने मंजूरी दे दी थी लेकिन पीठ ने इसे खारिज कर दिया। अपील पर सर्वोच्च न्यायालय ने एकल न्यायाधीश के निषेधाज्ञा जारी करने के आदेश को बहाल कर दिया, लेकिन यह तय किए बिना कि एक भी याचिका सुनवाई योग्य थी। उसके

समक्ष यह तर्क नहीं दिया गया कि एक याचिका सुनवाई योग्य नहीं थी और इसलिए उसने इस मामले पर निर्णय नहीं दिया। उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने याचिका खारिज कर दी थी लेकिन इस आधार पर नहीं कि यह सुनवाई योग्य नहीं थी। इसके पहले भी यह तर्क नहीं दिया गया कि ऐसा नहीं था. इसलिए सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले से याचिकाकर्ता को कोई मदद नहीं मिलती. चंद्रभान बनाम उड़ीसा राज्य में, सिविल सिविल प्रकीर्ण रिट संख्या 1398/1962 पर सुप्रीम कोर्ट द्वारा 5-4-1963 (एससी) को निर्णय दिया गया, सुप्रीम कोर्ट ने यह तय नहीं किया कि दो या कम मूल्यांकन आदेशों को चुनौती देने वाली एक याचिका वैधता दायर की जा सकती है या नहीं; इसका निर्णय केवल इतना था कि जब एक याचिका दायर की गई थी तो आदेश से एक अपील उत्पन्न हुई थी, न कि दो या दो से अधिक अपीलें।

8. ......अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका में विपरीत पक्ष आम तौर पर राज्य सरकार है और यदि याचिकाकर्ता या याचिकाकर्ताओं को आदेश ॥ नियम 3 का लाभ देने की अनुमति दी गई थी, तो विभिन्न अधिनियमों के तहत सभी प्रकार के विभिन्न आदेश, जिनका एक-दूसरे से कोई संबंध नहीं है, एक याचिका में शामिल होने के लिए उत्तरदायी होंगे, जिससे भ्रम और शर्मिंदगी पैदा होगा और इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती। फिर यह सिद्धांत कि एक कार्यवाही कई मामलों को मिलाकर शुरू की जा सकती है जिसमें कानून या तथ्य के सामान्य प्रश्न उठते हैं, सार्वभौमिक अनुप्रयोग का नहीं है। किसी ने अभी तक कई आदेशों के खिलाफ एक अपील दायर करने या कई अपीलीय आदेशों के खिलाफ एक पुनरीक्षण आवेदन दायर करने के बारे में नहीं सोचा है, इस आधार पर कि तथ्य या कानून के सामान्य प्रश्न उठते हैं। यदि दो कार्यवाही हैं और, इसलिए, दो आदेश हैं तो न्यायालयों ने हमेशा दो अपीलों और दो पुनरीक्षण आवेदनों पर जोर दिया है, भले ही वे एक ही अपीलकर्ता या आवेदक द्वारा हों या एक ही प्रतिवादी या विपरीत पक्ष के खिलाफ हों या नहीं। ऐसा कोई कारण नहीं है कि एक रिट याचिका पर केवल इस आधार पर विचार किया जाए कि कानून या तथ्य के सामान्य प्रश्न उठते हैं या वे एक ही व्यक्ति द्वारा या उसके विरुद्ध हैं।

9. यह बताया गया है कि इस फैसले को मल्ल सिंह (उपरोक्त) में पूर्ण पीठ ने एक अन्य बिंदु पर खारिज कर दिया था, लेकिन ऐसा नहीं है कि कई आदेशों के खिलाफ एक एकल याचिका या एक ही पुनरीक्षण को बरकरार रखा जा सकता है। इस संबंध में, उन्होंने न्यायालय का ध्यान उन प्रश्नों की ओर आकर्षित किया है जो मल्ल सिंह मामले में पूर्ण पीठ को भेजे गए थे, जो एक ही याचिका में याचिकाकर्ताओं के रूप में एक से अधिक दलों के शामिल होने और आदेश की प्रयोज्यता से संबंधित प्रतीत होते हैं। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका के लिए संहिता का नियम 1 मल्ल सिंह मामले में पूर्ण पीठ को जो प्रश्न भेजे गए थे, वे हैं:

1. क्या संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कोई आवेदन नागरिक क्षेत्राधिकार की अदालत में कार्यवाही है और इस प्रकार का प्रावधान है। सिविल प्रक्रिया संहिता का 1, आर. 1 ऐसी कार्यवाही पर लागू होगा?

2. यदि पहले प्रश्न का उत्तर सकारात्मक है, तो क्या संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका में एक से अधिक व्यक्ति एक साथ शामिल हो सकते हैं, उन परिस्थितियों में जिनमें सिविल प्रक्रिया संहिता का 1, आर. 1 के प्रावधानों के अनुसार एक से अधिक व्यक्ति एक मुकदमे में वादी के रूप में एक साथ शामिल हो सकते हैं?

10. इनका उत्तर माननीय न्यायमूर्ति द्वारा पूर्ण पीठ में इस प्रकार दिया गया:

प्रश्न संख्या 1--सिविल अधिकारों से जुड़े संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक आवेदन नागरिक क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय में एक कार्यवाही है। तो,इस प्रकार की कार्यवाही में सीपीसी के प्रावधान लागू है।

प्रश्न संख्या 2-- भले ही हम मान लें कि एक रिट याचिका सिविल क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय में कार्यवाही नहीं है, और आे.आर 1, आर. 1, सी.पी.सी. शर्तें ऐसी कार्यवाही पर लागू नहीं होती हैं, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका में एक से अधिक व्यक्ति उन परिस्थितियों में शामिल हो सकते हैं जिनमें एक से अधिक व्यक्ति या सी.पी.सी. आेआर1, आर. 1 के प्रावधानों के अनुसार एक मुकदमे में वादी के रूप में शामिल हो सकते हैं।

11. श्री सहाय अपने कथन में सही प्रतीत होते हैं कि खुर्जावाला बकल्स मैन्युफैक्चरिंग कंपनी में कई आदेशों को चुनौती देने की अस्वीकार्यता के मुद्दे पर निर्णय मॉल सिंह में विचार का विषय नहीं था या वहां खारिज कर दिया गया था। साथ ही, जिस बात पर विवाद नहीं किया जा सकता वह यह है कि खुर्जावाला बकल्स मैन्युफैक्चरिंग कंपनी का सिद्धांत यह प्रतीत होता है कि अलग-अलग कार्यवाहियों में अलग-अलग आदेश, एक ही पक्ष के खिलाफ हो सकते हैं, उन्हें एक ही अपील या पुनरीक्षण में चुनौती नहीं दी जा सकती है। दरअसल, खुर्जावाला बकल्स मैन्युफैक्चरिंग कंपनी में याचिकाकर्ता के खिलाफ उत्तर प्रदेश बिक्री कर अधिनियम, 1948 के तहत पारित दो अलग-अलग मूल्यांकन आदेशों एक

निर्धारण वर्ष 1960-61 के लिए और दूसरा वर्ष 1961-62 के लिए के संदर्भ में यह मुद्दा उठ, दोनों को एक ही रिट याचिका में चुनौती दी गई थी। इसे अस्वीकार्य माना गया।

12. यहां, मुद्दा एक ही निष्पादन में पारित तीन लगातार आदेशों से संहिता की धारा 115 के तहत एकल पुनरीक्षण की स्थिरता के बारे में है। अंतिम आदेश, यानी दिनांक 05.03.2022 का आदेश पूर्ण संतुष्टि के साथ निष्पादन को रद्द कर देता है। आदेश दिनांक 24.01.2022 एक आदेश है जो पुनरीक्षणकर्ता द्वारा इस प्रार्थना के साथ दायर एक आवेदन पर पारित किया गया था कि पूर्व सरवराकार ईश्वर शरण की मृत्यु हो गई है और पुनरीक्षणकर्ता, उनके चेला होने के नाते, ईश्वर शरण द्वारा सरवराकार के रूप में नामित किया गया है। नामांकन दिनांक 11.12.2016 की पंजीकृत वसीयत के माध्यम से किया गया है। आवेदन में प्रार्थना थी कि वसीयत को रिकार्ड में स्वीकार कर लिया जाए। यह आवेदन दिनांक 24.01.2022 के आदेश द्वारा निरस्त कर दिया गया। जाहिरा तौर पर, फैसले के देनदार, पूर्व सर्वाकर द्वारा छोड़ी गई वसीयत को रिकॉर्ड पर लाने के लिए आवेदन, पुनरीक्षणकर्ता द्वारा सरवरकर का प्रतिनिधित्व करने के लिए किया गया था, जो उनके चेला होने का दावा करता था। यदि वसीयत को रिकॉर्ड पर स्वीकार कर लिया जाता है, तो पुनरीक्षणकर्ता यह दावा करेगा कि वह निष्पादन के लिए आगे की कार्यवाही में मंदिर की ओर से मृतक सरवरकर के हितों का प्रतिनिधित्व करने का हकदार है। इस आवेदन को अस्वीकार किये जाने से पुनरीक्षणकर्ता के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

13. दूसरा आवेदन 45-जीए भी पुनरीक्षणकर्ता भरत कुमार की ओर से किया गया था, जिसमें कहा गया था कि डिक्री धारक की ओर से दायर प्रशासन की योजना को न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया जा सकता है, और इसके बजाय, प्रशासन की योजना प्रस्तावित की गई है निर्णय देनदार, मृतक सरवरकर की ओर से, जिसका प्रतिनिधित्व अब उनके चेला भरत कुमार कर रहे हैं, स्वीकार किया जाए। इस आवेदन को आक्षेपित आदेश दिनांक 03.03.2022 के माध्यम से खारिज कर दिया गया है और डिक्री धारक की ओर से दायर प्रशासन की प्रस्तावित योजना को स्वीकार कर लिया गया है। यह सब किया जा चुका है, दिनांक 05.03.2022 के आदेश द्वारा, जिसे पुनरीक्षण में भी शामिल किया गया है, निष्पादन को पूर्ण संतुष्टि में रद्द कर दिया गया है।

14. सवाल यह है कि क्या यह संहिता की धारा 105 के आदेश के अनुरूप नहीं है, जो डिक्री के निष्पादन के लिए यथोचित परिवर्तनों के साथ लागू होता है कि कार्यवाही के दौरान पारित किए गए किसी पक्ष पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले गलत या दोषपूर्ण आदेशों को अंतिम आदेश के विरुद्ध चुनौती देने की अनुमती दी गई। संहिता की धारा 141 के आधार पर, मुकदमों के संबंध में प्रदान की गई प्रक्रिया का नागरिक क्षेत्राधिकार के किसी भी न्यायालय में सभी कार्यवाहियों में यथोचित परिवर्तनों के साथ पालन किया जाना अनिवार्य है। डिक्री के निष्पादन की कार्यवाही अपवादित नहीं है। इसलिए, संहिता की धारा 105(1) के प्रावधान लागू होंगे, और, किसी भी मामले में, सैद्धांतिक रूप से लागू होंगे, भले ही सख्ती से लागू न हों।

15. संहिता की धारा 105(1) के पीछे का सिद्धांत एक पक्ष को अंतिम आदेश या डिक्री के खिलाफ मुकदमे या अन्य कार्यवाही के दौरान पारित अंतरिम आदेशों को चुनौती देने में सक्षम बनाना है, जिस पक्ष के खिलाफ ये आदेश दिए गए हैं। सोचता है कि गलत, दोषपूर्ण या अनियमित है और उसके हित को और अधिक पूर्वाग्रहित करता है। किसी पक्ष को अंतिम डिक्री या आदेश को चुनौती देते समय ऐसे अंतरिम आदेशों को चुनौती देने में सक्षम बनाने से, कार्यवाही के दौरान पारित होने वाले सभी प्रकार के पूर्वाग्रही आदेशों को चुनौती देने में होने वाली अपरिहार्य देरी को समाप्त किया जा सकता है। इन सबका उद्देश्य देरी से बचना और मुकदमे या अन्य कार्यवाही के समापन में तेजी लाना है। लेकिन, साथ ही, कार्यवाही के दौरान पारित आदेश, जो किसी पार्टी के लिए प्रतिकूल हैं, को अभी भी अंतिम आदेश से अपील या पुनरीक्षण में चुनौती देने के लिए खुला छोड़ दिया गया है, अगर वह भी वार्ताकार उलटफेर से पीड़ित पार्टी के खिलाफ जाता है। यह प्रावधान एक ओर कार्यवाही के शीघ्र समापन के प्रतिस्पर्धी हित को संतुलित करता है, वहीं दूसरी ओर इसके दौरान हुई त्रुटियों के सुधार को भी संतुलित करता है।

16. इसलिए, हमारी राय में, आक्षेपित आदेश 24.01.2022, 03.03.2022 और 05.03.2022 की प्रकृति को देखते हुए, पुनरीक्षणकर्ता द्वारा एकल पुनरीक्षण बनाए रखा जा सकता है।

17. प्रतिवादी की आपत्ति के महत्व को देखने का एक और व्यावहारिक दृष्टिकोण है। आदेश दिनांक 05.03.2022 द्वारा निष्पादन को पूर्ण संतुष्टि के साथ निरस्त कर दिया गया है। यदि पुनरीक्षणकर्ता को तीनों आदेशों से अलग-अलग पुनरीक्षण दायर करने के लिए कहा गया था, तो इनमें से किसी को भी व्यक्तिगत रूप से नहीं सुना जा सकता है या यहां तक कि तब तक बनाए रखा जा सकता है जब तक कि सभी तीन आदेशों को अलग-अलग पुनरीक्षणों के माध्यम से चुनौती नहीं दी जाती है और सभी पुनरीक्षणों को एक साथ नहीं सुना जाता है। लागू किए गए सभी आदेश पुनरीक्षणकर्ता द्वारा

एक चुनौती का हिस्सा हैं, जो एक ही निष्पादन से उत्पन्न हुए हैं।

18. इसलिए, इस न्यायालय की सुविचारित राय में, श्री सहाय द्वारा उठाई गई स्थिरता के संबंध में आपत्ति को बरकरार नहीं रखा जा सकता है। तदनुसार, पुनरीक्षण को बनाए रखने के योग्य माना जाता है।

19. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पुनरीक्षण की सुनवाई गुण-दोष के आधार पर नहीं की गई है, इसे 06.01.2023 को दोपहर 2:00 बजे प्रवेश के लिए सूचीबद्ध किया जाए। उल्लेख करने की स्वतंत्रता पुनरीक्षणकर्ता को दी गई है।

(2023) 1 ILRA 1336

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांकः इलाहाबाद 03.01.2022

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

के समक्ष

सिविल पुनरीक्षण आवेदन संख्या - 48/2022

एवं

सिविल पुनरीक्षण आवेदन संख्या - 66/2022

राधे श्याम ...पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

नगीना देवी एवं अन्य ...विपरीत पक्षकार

पुनरीक्षणकर्ता के लिए अधिवक्ता :

श्री प्रखर सरन श्रीवास्तव

विपक्षी दलों के अधिवक्ता :

श्री अंकुर मेहरोत्रा

मोटर दुर्घटना दावा-मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरणों के आदेश - अपील योग्य अधिनिर्णयों के रूप में वर्गीकृत नहीं - पुनरीक्षण इन आदेशों के खिलाफ सी.पी.सी. की धारा 115 को लागू करने की स्थिरता पर सवाल उठाता है - सिविल पुनरीक्षण संख्या 66 एक पक्षीय अधिनिर्णय को अपास्त करने से इनकार को चुनौती देता है - नागरिक पुनरीक्षण नंबर 48 खारिज किए गए दावे को बहाल करने में देरी की माफी का विरोध करता है - अदालत इस बात पर परस्पर विरोधी राय की जांच करती है कि क्या मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय है, और निष्कर्ष निकालता है कि कमला यादव में पूर्ण पीठ का निर्णय बाध्यकारी मिसाल है, जो प्रतिपादित करता है- पुनरीक्षण विचारणीय हैं - न्यायालय ने अपने सैद्धांतिक तर्क पर जोर देते हुए कमला यादव पर पुनर्विचार करने से इनकार कर दिया - सिविल पुनरीक्षणों को विचारणीय माना गया है, और आगे की कार्यवाही निर्धारित है।

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. उड़ीसा सहकारी बीमा कंपनी (अब) न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम सुबाशिनी प्रधान और अन्य

2. बीरन बनाम राजप्पन

3. बरकत सिंह और अन्य बनाम हंस राज पंडित और अन्य

4. सतीश चंद्रा एवं अन्य बनाम यू.पी.राज्य के कलेक्टर फर्रुखाबाद के माध्यम से

5. श्रीमती. अफसरी बेगम बनाम ओरिएंटल फायर एंड जनरल इंश्योरेंस कंपनी एवं अन्य

6. कमला यादव बनाम श्रीमती सुषमा देवी एवं अन्य

7. ओम प्रकाश एवं अन्य। बनाम रुक्मणि देवी एवं अन्य

8. मुसामंत अफसरी बेगम बनाम ओरिएंटल फायर एंड जनरल इंश्योरेंस कंपनी

9. यू.ओ.आई., इसका प्रतिनिधित्व इसके सचिव, रेलवे बोर्ड, नई दिल्ली और अन्य बनाम मैसूर पेपर मिल्स लिमिटेड, भद्रावती, कर्नाटक स्ट्रीट और अन्य द्वारा किया जाता है।

10. ओरिएंटल इंश्योरेंस कॉम्प. लिमिटेड मंडल प्रबंधक, मेरठ बनाम श्रीमती मंजू एवं अन्य के माध्यम से

11. न्यू इंडिया एश्योरेंस कॉम्प. लिमिटेड बनाम राकेश कुमार एवं अन्य

12. उ.प्र. राज्य रोड ट्रांसपोर्ट कार्पोरेशन बनाम लाजवत

13. संध्या वैश्य एवं अन्य बनाम न्यू इंडिया इंश्योरेंस कम्पनी लिमिटेड एवं अन्य

14. आईसीआईसीआई लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी बनाम श्रीमती रामावत

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

ये सिविल पुनरीक्षण बलिया और चंदौली में मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरणों के पीठासीन अधिकारियों द्वारा पारित आदेशों से उत्पन्न हुए हैं, जो मोटर वाहन अधिनियम, 1988[1] की धारा 173 के तहत अपील करने योग्य अधिनिर्णय नहीं हैं। पुनरीक्षण औपचारिक रूप से जुड़े नहीं थे, लेकिन चूंकि दोनों रखरखाव के बारे में एक समान प्रश्न शामिल है, इस मुद्दे को एक सामान्य आदेश द्वारा निपटाया जा रहा है।

2. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908[2] की धारा 115 के तहत सिविल रिवीजन संख्या 66/2022 पीठासीन अधिकारी, मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, बलिया द्वारा प्रकीर्ण वाद संख्या 22/2019 में पारित एक आदेश को चुनौती देता है। मोटर दुर्घटना दावा याचिका क्रमांक 44/2022 में पारित एकपक्षीय निर्णय दिनांक 22.12.2018 को अपास्त करने से इंकार कर दिया गया।

3. सिविल पुनरीक्षण संख्या 48/2022 में लागू आदेश द्वारा, पुनरीक्षणकर्ता ने पीठासीन अधिकारी, मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, चंदौली द्वारा पारित दिनांक 18.10.2021 के आदेश को रद्द करने के लिए संहिता की धारा 115 के तहत इस न्यायालय के क्षेत्राधिकार का इस्तेमाल किया है। प्रकीर्ण वाद संख्या 93/2018, जिसके तहत ट्रिब्यूनल ने मोटर दुर्घटना दावा याचिका संख्या 104/2010 को बहाल करने के लिए आवेदन करने में दावेदारों द्वारा चार साल और नौ महीने की देरी को माफ कर दिया है, जिसे 10.12.2013 को डिफ़ॉल्ट रूप से खारिज कर दिया गया था। इस न्यायालय ने, अधिनियम के तहत गठित मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण द्वारा पारित एक आदेश के खिलाफ संहिता की धारा 115 के तहत एक नागरिक पुनरीक्षण की स्थिरता के बारे में कुछ विरोधाभासों को ध्यान में रखते हुए, दोनों मामलों को पोषणीयता के मामले में पुनरीक्षणवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता से हमें संबोधित करने के लिए कहा।

4. श्री विक्रांत पांडे, विद्वान अधिवक्ता को सिविल पुनरीक्षण संख्या 66/2022 में सुना गया है और श्री प्रखर सरन श्रीवास्तव, विद्वान अधिवक्ता को सिविल पुनरीक्षण संख्या 48/2022 में सुना गया है। केवल रख-रखाव के प्रश्न पर ही सुनवाई हुई।

5. पिछले वर्षों में और विभिन्न न्यायालयों में, इस बात पर मतभेद रहा है कि क्या अधिनियम के तहत गठित मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण या मोटर वाहन अधिनियम, 1939 के तहत कार्य करने वाला न्यायाधिकरण संहिता की धारा 115(1) के अर्थ के तहत उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय है। ताकि ट्रिब्यूनल द्वारा पारित आदेश को नागरिक पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के लिए उत्तरदायी बनाया जा सके। उन निर्णयों में अधिकांश तर्क न्यायालय और न्यायाधिकरण के बीच अंतर पर केंद्रित है। उन निर्णयों में इस बात पर भी विचार किया गया है कि संहिता की धारा 115 के सन्दर्भ में न्यायालय की अधीनता का क्या अर्थ है। विशेष रूप से, संहिता की धारा 3 पर ध्यान दिया गया है, जो न्यायालयों की अधीनता को परिभाषित करती है।

6. पुराने फैसलों में यह माना गया है कि अधिनियम के तहत गठित ट्रिब्यूनल संहिता की धारा 115 के प्रयोजन के लिए उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय नहीं है, उड़ीसा सहकारी बीमा कंपनी (अब) में उड़ीसा उच्च न्यायालय की एक डिवीजन बेंच के फैसले न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम सुबाशिनी प्रधान और अन्य[3]; बीरन बनाम राजप्पन[4] में केरल उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ और बरकत सिंह और अन्य बनाम हंस राज पंडित और अन्य[5] में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ हमारे न्यायालय में भी, एक विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा एक निर्णय दिया गया है, जिसमें कहा गया है कि मोटर वाहन अधिनियम, 1939[6] के तहत, मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण संहिता की धारा 115 के अर्थ के तहत, उच्च न्यायालय के अधीनस्थ एक सिविल न्यायालय नहीं है। उक्त निर्णय सतीश चंद्र एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, कलेक्टर, फर्रुखाबाद[7] के माध्यम से है। श्रीमती अफसरी बेगम बनाम ओरिएंटल फायर एंड जनरल इंश्योरेंस कंपनी और अन्य[8] इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने राय दी कि दावा न्यायाधिकरण एक सिविल कोर्ट होने के नाते संहिता की धारा 115 के तहत पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के लिए उत्तरदायी था। कमला यादव बनाम श्रीमती सुषमा देवी और अन्य[9] में इस न्यायालय की विद्वान एकल न्यायाधीश ने राय दी कि अफसरी बेगम (उपरोक्त) मामले में डिवीजन बेंच ने संहिता की धारा 3 और 1939 के अधिनियम की धारा 110-सी (2) के प्रावधान पर ध्यान नहीं दिया था। 1939 के अधिनियम के तहत ट्रिब्यूनल उच्च न्यायालय के अधीनस्थ एक न्यायालय है। तदनुसार, विद्वान एकल न्यायाधीश ने मामले को पूर्ण पीठ के पास भेज दिया। उचित समय पर, मामला विचार के लिए एक डिवीजन बेंच के समक्ष आया। डिवीजन बेंच ने देखा कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने ओम प्रकाश और अन्य बनाम रुक्मणी देवी और अन्य[10] में इस न्यायालय के बाद के बेंच के फैसले पर विचार नहीं किया था। ओम प्रकाश (उपरोक्त) में डिवीजन बेंच ने कहा कि ट्रिब्यूनल एक अदालत नहीं है और एक विशेष क़ानून का प्राणी है। इसे सिविल कोर्ट का दर्जा प्राप्त नहीं है और इसलिए, इसके आदेश संहिता के आदेश XLIII के तहत अपील करने योग्य नहीं हैं। डिवीजन बेंच, जिसके समक्ष कमला यादव (उपरोक्त) में विद्वान एकल न्यायाधीश का संदर्भ आया था,

अफसरी बेगम में डिवीजन बेंच के बीच राय के टकराव को हल करने के लिए ओम प्रकाश के मामले को पूर्ण बेंच के समक्ष रखने का निर्देश दिया। निम्नलिखित प्रश्नों को पूर्ण पीठ की राय के लिए भेजा गया था, जैसा कि कमला यादव के फैसले की रिपोर्ट से पता चलता है:

क्या मोटर वाहन अधिनियम के तहत गठित दावा न्यायाधिकरण सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अर्थ के तहत एक अधीनस्थ सिविल न्यायालय है?

क्या सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 3 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रयोजनों के लिए केवल धारा 3 में संदर्भित न्यायालय, जैसा भी मामला हो, उच्च न्यायालय और जिला न्यायालय के अधीनस्थ सिविल न्यायालय हैं और कोई अन्य यानी प्राधिकरण और मोटर वाहन अधिनियम के तहत गठित न्यायाधिकरण संहिता की धारा 115 के प्रयोजन के लिए "उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय" अभिव्यक्ति के ढांचे के भीतर नहीं आते हैं?

क्या मुसामंत अफसरी बेगम बनाम ओरिएंटल फायर एंड जनरल इंश्योरेंस कंपनी में डिवीजन बेंच द्वारा व्यक्त विचार (1979 एएलजे पृष्ठ 1168) इस आशय का है कि मोटर वाहन अधिनियम के तहत गठित दावा न्यायाधिकरण उच्च न्यायालय और उसके आदेशों के अधीनस्थ न्यायालय है संहिता की धारा 115 के तहत उच्च न्यायालय के पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के लिए उत्तरदायी हैं, जो सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 3 के साथ-साथ मोटर वाहन अधिनियम और विशेष रूप से धारा के प्रावधानों के साथ पढ़ी गई धारा 115 के प्रावधानों के अक्षरशः और भावना के अनुरूप है और विशेष रूप से मोटर वाहन अधिनियम की 110-सी(2) , यदि नहीं, तो क्या वर्तमान पुनरीक्षण इस न्यायालय में विचारणीय है? यदि नहीं, तो क्या यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उस पर विचार करने, सुनवाई करने और उसका निपटान करने के लिए स्वतंत्र है?

7. पूर्ण पीठ के न्यायमूर्ति ने रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 32 में उल्लिखित प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार दिया:

प्रश्न संख्या 1 पर हमारा उत्तर सकारात्मक है, कि पुनरीक्षण मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण के आदेश के विरुद्ध है। प्रश्न संख्या 2 पर हमारा उत्तर यह है कि धारा 3 सीपीसी में उल्लिखित न्यायालय एकमात्र सिविल न्यायालय नहीं हैं, धारा 115 सीपीसी के प्रयोजनों के लिए अन्य न्यायालय और न्यायाधिकरण भी उच्च न्यायालय के अधीनस्थ सिविल न्यायालय हो सकते हैं। प्रश्न संख्या 3 पर हमारा उत्तर मुसमात अफसरी बेगम बनाम ओरिएंटल फायर एंड जनरल एश्योरेंस कंपनी के मामले में दिया गया निर्णय है। 1979 एएलजे 1168, सही निर्णय लिया गया है और अनुमोदित किया गया है। इसलिए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 को लागू करने का सवाल ही नहीं उठता।

8. इस मुद्दे को वर्ष 1997 में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा सुलझाया गया था और विवाद शांत हो जाना चाहिए था। भारत संघ में कर्नाटक उच्च न्यायालय की एक पूर्ण पीठ, जिसका प्रतिनिधित्व इसके सचिव, रेलवे बोर्ड, नई दिल्ली और अन्य बनाम मैसूर पेपर मिल्स लिमिटेड, भद्रावती, कर्नाटक राज्य और अन्य द्वारा किया गया था, को इस सवाल का सामना करना पड़ा कि क्या अधिनियम के तहत एक न्यायाधिकरण का गठन किया गया है। संहिता की धारा 115 के अर्थ के अंतर्गत उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय था। मैसूर पेपर मिल्स (उपरोक्त) में कर्नाटक उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के उनके आधिपत्य ने माना कि अधिनियम के तहत स्थापित मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण संहिता की धारा 115 के प्रयोजन के लिए उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय नहीं है। उक्त निर्णय पर ध्यान देते हुए, इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड में मंडल प्रबंधक, मेरठ बनाम श्रीमती मंजू और अन्य12, निश्चित रूप से, अतिरिक्त कारणों से, लेकिन कमला यादव (उपरोक्त) में हमारे न्यायालय के पूर्ण पीठ के फैसले पर ध्यान दिए बिना, कर्नाटक उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के विचार को मंजूरी के साथ नोट किया गया कि ट्रिब्यूनल अधीनस्थ न्यायालय नहीं था संहिता की धारा 115 के प्रयोजन के लिए उच्च न्यायालय श्रीमती मंजू (उपरोक्त) में डिविजन बेंच का फैसला किसी नागरिक पुनरीक्षण की स्थिरता के बारे में नहीं था, बल्कि ट्रिब्यूनल के एक आदेश से प्रथम अपील की स्थिरता के बारे में थी, जो एक अधिनिर्णय नहीं था और अधिनियम की धारा 173 के तहत अपील योग्य थी। फिर भी, इस बिंदु पर चर्चा की गई और कर्नाटक उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय को अनुमोदन के साथ संदर्भित किया गया।

9. मैसूर पेपर मिल्स में श्रीमती मंजू और कर्नाटक उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले से प्रेरणा लेते हुए, इस न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने वीरेंद्र यादव बनाम रमेश और अन्य13 में निम्नानुसार फैसला सुनाया:

19. *हाल के शीर्ष अदालत के फैसले (उपरोक्त) के प्रकाश में, और पांच-न्यायाधीशों के फैसले पर भरोसा करने वाले शीर्ष अदालत के फैसलों को ध्यान में रखते हुए, डिवीजन बेंच का फैसला वार्ताकार के खिलाफ सीपीसी की धारा 115 के तहत पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार को लागू करने की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ता है। ट्रिब्यूनल द्वारा पारित आदेश जब तक कि विशेष*

अधिनियम के तहत निर्धारित न हों। लिया गया दृष्टिकोण एक से अधिक कारणों से एक अच्छा कानून प्रतीत होता है। सबसे पहले, अधिनियम की धारा 173 के तहत अपील करने के लिए मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णयों के खिलाफ उपाय को प्रतिबंधित करने का अर्थ है कि अन्य उपचार वर्जित हैं, खासकर जब धारा 169 को उसके तहत बनाए गए नियम 221 के साथ पढ़ा जाए तो सीपीसी के प्रावधानों के आवेदन को सीमित कर दिया जाता है। दूसरे, यदि इस अदालत के समक्ष उपचार के पहलू पर कानून का इरादा ट्रिब्यूनल को "अदालत" मानने के मानदंड पर समझा जाता है, तो उस स्थिति में, अधिनियम की धारा 173 के तहत अपील के उपाय को निर्दिष्ट करने की आवश्यकता होती है। समाप्त हो जाएगा और धारा 96 सीपीसी के प्रावधान स्वतः लागू हो जाएंगे।

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्धित)

10. प्रभाकर तिवारी बनाम शिव राम और अन्य14 में एक विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा भी यही विचार अपनाया गया था, जिसमें मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण के एक अंतरिम आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण रखा गया था, जो संहिता की धारा 115 के तहत बनाए रखने योग्य नहीं है। साथ ही, अन्य फैसले भी थे जहां कमला यादव मामले में पूर्ण पीठ का पालन किया गया था और मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण के आदेश जो अपील योग्य नहीं थे, उन्हें संहिता की धारा 115 के तहत इस न्यायालय के पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के लिए उत्तरदायी माना गया था। ये न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम राकेश कुमार और अन्य15, यू.पी राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम लाजवती16; और संध्या वैश्य और अन्य बनाम न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य17 में इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीशों के निर्णय हैं; ऐसा प्रतीत होता है कि कमला यादव मामले में पूर्ण पीठ के फैसले के बाद श्रीमती में डिवीजन बेंच के फैसले के बाद कुछ मतभेद उभरे हैं। मैसूर पेपर मिल्स में कर्नाटक उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के बाद मंजू, और इस मुद्दे के बारे में विद्वान एकल न्यायाधीशों की कुछ विरोधाभासी राय कि क्या अधिनियम के तहत गठित मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण का एक अंतरिम आदेश इस न्यायालय के पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के लिए उत्तरदायी है, या यूं कहें कि क्या अधिनियम के तहत स्थापित और गठित ट्रिब्यूनल संहिता की धारा 115 के प्रयोजन के लिए उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय है। आईसीआईसीआई लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी बनाम श्रीमती रमावती18 के मामले में इस न्यायालय की लखनऊ पीठ के एक विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दो प्रश्नों के रूप में इस मुद्दे पर एक बड़ी पीठ को एक संदर्भ दिया गया था।. आईसीआईसीआई लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी (उपरोक्त) में बड़ी बेंच को संदर्भित प्रश्न पढ़ें:

31. ऊपर बताई गई पृष्ठभूमि में और स्थिति को व्यवस्थित करने के लिए, बड़ी बेंच/पूर्ण बेंच के संदर्भ में निम्नलिखित प्रश्न तैयार किए गए हैं:

"(i) क्या सक्षम प्रावधान के अभाव में, कमला यादव बनाम शुशमा देवी और अन्य, 2004 (22) एलसीडी 40 के मामले में पूर्ण पीठ का निर्णय, शीर्ष न्यायालय के निर्णयों के विपरीत होगा, जिन पर भरोसा किया गया था ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मंजू और अन्य, 2007 (2) एडब्ल्यूसी 1927 के मामले में दिए गए डिवीजन बेंच के फैसले में; और क्या वीरेंद्र यादव बनाम रमेश और अन्य (सिविल रिवीजन नंबर 102/2016) के मामले में इस न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण और प्रभाकर तिवारी बनाम शिव राम में व्यक्त समान दृष्टिकोण को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा सही ढंग से खारिज कर दिया गया था यूपी राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम लाजवती के मामला में यह मानते हुए कि कमला यादव बनाम सुषमा देवी के मामले में लिया गया पूर्ण पीठ का दृष्टिकोण अकेले लागू होगा और उसका पालन किया जाएगा।

(ii) क्या मोटर वाहन अधिनियम, 1988 के तहत एक सक्षम प्रावधान की अनुपस्थिति में इस न्यायालय द्वारा नागरिक प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग सी पी सी की धारा 3 के अर्थ के भीतर ट्रिब्यूनल को एक अधीनस्थ न्यायालय के रूप में मानने की अनुमति है।

11. इससे पहले कि उक्त प्रश्नों को एक बड़ी पीठ के समक्ष रखा जा सके, पुनरीक्षण, जिसमें आदेश दिया गया था, न्यायालय द्वारा तय किया गया। सवाल कभी भी बड़ी बेंच के सामने नहीं रखे गए। ये तथ्य सिविल रिवीजन संख्या 49/2015 मे सी.एम. आवेदन संख्या 95241/2017 में पारित आदेश दिनांक 14.07.2017 से प्रकट होते हैं। जो एक बड़ी बेंच के संदर्भ में निर्णय और आदेश दिनांक 06.04.2017 के पुनरीक्षण/स्पष्टीकरण के लिए एक आवेदन था।

12. परिणाम यह हुआ कि आईसीआईसीआई लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी में किए गए संदर्भ का उत्तर नहीं दिया गया। इस न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह है कि क्या कमला यादव मामले में पूर्ण पीठ के विचार कि अधिनियम के तहत गठित मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण संहिता की धारा 115 के अर्थ के तहत उच्च न्यायालय के अधीनस्थ एक न्यायालय है, पर पुनर्विचार की आवश्यकता है? इस न्यायालय को नहीं लगता कि यदि कमला यादव मामले में पूर्ण पीठ द्वारा

सुलझाए गए मुद्दों को फिर से संदर्भित किया जाता है, तो पुनर्विचार के लिए एक बड़ी पीठ को संदर्भ देने के बारे में बाध्यकारी मिसाल के पालन के संबंध में तय सिद्धांतों को ध्यान में रखना होगा। कमला यादव मामले में निर्णय की शुद्धता के बारे में बहुत संदेह पैदा किया जा सकता है और मैसूर पेपर मिल्स में कर्नाटक उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ऐसा करने के लिए एक मजबूत प्रेरणा हो सकती है। लेकिन, यह एक प्रेरणा से ज्यादा कुछ नहीं हो सकता। क़ानून को पढ़ना, विशेष रूप से संहिता की धारा 3 के प्रावधानों और अधिनियम के तहत बनाए गए नियमों के नियम 221, जो ट्रिब्यूनल के समक्ष कार्यवाही के लिए संहिता के केवल कुछ प्रावधानों को लागू करता है, यह सोचने के लिए एक आकर्षक प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकता है कि कमला यादव मामले में पूर्ण पीठ के फैसले पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए। लेकिन, सिद्धांत रूप में, इस न्यायालय को पूर्ण पीठ के तर्क के बारे में इतना मौलिक रूप से गलत प्रतीत नहीं होता है कि इस न्यायालय को एक बड़ी पीठ को संदर्भ देने के लिए राजी किया जाए, जैसा कि आईसीआईसीआई लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा किया गया था। इस न्यायालय की राय में, कमला यादव मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ का निर्णय बाध्यकारी उदाहरण है। इस न्यायालय के लिए ऐसा कुछ भी नहीं है जिसके अनुसार इसको आगे बढाये।।

13. तदनुसार, सिविल पुनरीक्षणों को पोषणीय माना जाता है।

14. चूंकि इन पुनरीक्षणों में पोषणीयता के बिंदु पर आदेश सुरक्षित रखे गए थे, जब ये नए कारणों के रूप में न्यायालय के सामने आए, तो इन दोनों मामलों को 13.01.2023 को नए सिरे से रखा जाएगा।

15. दोनों पुनरीक्षणों में पारित अंतरिम आदेश लिस्टिंग की अगली तारीख तक लागू रहेंगे।

(2023) 1 ILRA 1342
पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक:इलाहाबाद 20.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चन्द्र शर्मा,

सिविल संशोधन क्रमांक 36/2017

श्रीमती रत्नी देवी एवं अन्य ...संशोधनवादी

बनाम

श्रीमती आशा हंस ...उत्तरदाता

अधिवक्ता संशोधनवादी: श्री राकेश कुमार गुप्ता

अधिवक्ता उत्तरदाता:

सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - घोषणात्मक मुकदमे को चुनौती देने वाला संशोधन - एक विक्रय विलेख को निरस्त करना - अनुचित मूल्यांकन और अपर्याप्त अदालत शुल्क के मुद्दे, भूमि राजस्व के आधार पर मूल्यांकन पर प्रभाव - संशोधन आवेदन की अस्वीकृति की आलोचना, निचली अदालत को आवेदन पर पुनर्विचार करने के लिए निर्देशित किया गया।

पुनरीक्षण स्वीकृत। (ई-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. रण विजय और अन्य बनाम राजस्व बोर्ड एवं अन्य। 2017 (1) सी.ए.आर. 815 एल्ड
2. इंदल कुमार कुशवाहा और अन्य बनाम राजेश कुमार गुप्ता और अन्य 2008 ए.सी.जे. 838
3. मैसर्स लक्ष्मी शुगर एंड ऑयल मिल्स लिमिटेड, हरदोई एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य. 2010 (111) आरडी 617
4. अनुरुद्ध कुमार एवं अन्य बनाम मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकारी एवं अन्य 2000 ए.सी.जे 1397
5. गंगा बनाम विजय ए.आई.आर 1974 एस.सी. 1126
6. पिरगोंडा बनाम कलगोंडा ए.आई.आर. 1957 एस.सी. 363
7. राम चन्द्र सखाराम बनाम दामोदर (2007) 6 S.C.C 737
8. राजेश बनाम के.के. मोदी, ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 1647

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा प्रदत्त)

1. यह सिविल पुनरीक्षण 2014 के मूल वाद संख्या 846 (श्रीमती रत्नी देवी बनाम श्रीमती आशा हंस) में अतिरिक्त सिविल जज (सीनियर डिवीजन), कोर्ट नंबर 6, मेरठ द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 23.11.2016 के खिलाफ दाखिल किया गया है।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि पुनरीक्षणकर्ता, श्रीमती रत्नी देवी ने उप-पंजीयक, मवाना, जिला मेरठ के कार्यालय में पंजीकृत विक्रय पत्र दिनांक 07.05.2014 को शून्य और अमान्य घोषित करने तथा इसकी सूचना

संबंधित उप-पंजीयक को भेजने हेतु घोषणात्मक डिक्री के लिए वाद दाखिल किया।

3. वादपत्र एवं पुनरीक्षण के अनुसार श्रीमती. रत्नी देवी (अब दिवंगत) ग्राम हिमायूंपुर, परगना हस्तिनापुर, तहसील मवाना, जिला मेरठ में स्थित खसरा नंबर 460 क्षेत्रफल 0.5060 हेक्टेयर और खसरा नंबर 462 क्षेत्रफल 0.4430 हेक्टेयर की हस्तांतरीय अधिकार के साथ मालिक और भूमिधर थीं। वह एक बूढ़ी और बीमार महिला थी. उनका हृदय संबंधी कार्डियाक इलाज चल रहा था. रिस्पांडेंट प्रतिवादी संशोधनवादी-वादी की बेटी है। वादी को अपने पति जो एमसीडी, दिल्ली में कार्यरत थे, की मृत्यु के बाद पेंशन मिल रही थी। जब उसने 19.07.2014 को खाद खरीदने के लिए खतौनी की नकल ली, तो उसे पता चला कि प्रतिवादी ने उसकी जमीन का अपने पक्ष में विक्रय पत्र निष्पादित कर लिया है। वादी ने दिनांक 07.05.2014 को अधिवक्ता के माध्यम से प्रमाणित प्रति प्राप्त की तब उसे ज्ञात हुआ कि उसने प्रतिवादी को 7,50,000/- रूपये के एवज में 0.1145 हेक्टेयर एवं 0.6707 हेक्टेयर भूमि बेची है जिसमें प्रतिवादी का पति और एक अनिल कुमार शर्मा, वकील, तहसील मवाना को सीमांत गवाह दिखाया गया है।

4. याचिकाकर्ता ने न तो प्रतिवादी को अपनी जमीन बेचने का प्रस्ताव दिया था और न ही कभी उसके पक्ष में कोई विक्रय पत्र निष्पादित किया था। 07.05.2014 को पेंशन बढ़ाने की आड़ में प्रतिवादी उसे साथ ले गयी और अच्छे विश्वास में प्रतिवादी ने कुछ कागजात पर यह कहकर हस्ताक्षर करा लिए कि यह पेंशन के कागजात हैं जिन्हें उसने पढ़ा नहीं है। प्रतिवादी ने धोखाधड़ी कर विक्रय पत्र का निष्पादन दिखाया है। मुकदमे की संपत्ति की बिक्री की कोई आवश्यकता नहीं थी। वादी ने न तो जमीन बेची और न ही कोई प्रतिफल प्राप्त किया।

5. मामले की सुनवाई के दौरान वादी की मृत्यु हो गई। उनके तीन बेटे दिनेश कुमार, देव कुमार और आनंद कुमार उनके उत्तराधिकारी थे और उसने उनके पक्ष में पूरी चल और अचल संपत्ति 20.08.2014 को बिक्री विलेख निष्पादित किया था। देव कुमार की मृत्यु 18.03.2015 को हो गई, इसलिए, उनके उत्तराधिकारियों को वादी के रूप में रखा गया है। जब मामले की जानकारी प्रतिवादी को दी गई तो उसने अपनी गलती स्वीकार की और विक्रय पत्र रद्द करने का आश्वासन दिया, लेकिन बाद में ऐसा करने से साफ इनकार कर दिया। इसलिए, कार्रवाई का कारण उत्पन्न हुआ और मुकदमा दाखिल किया गया।

6. 19.04.2016 को सुनवाई के दौरान, मुद्दा संख्या 2 वाद के अनुचित मूल्यांकन और अपर्याप्त अदालत शुल्क के भुगतान के संबंध में मुद्दा संख्या 3 पर निर्णय दिया गया। जहां तक मुद्दे नंबर 2 का सवाल है, अदालत ने माना कि वादी ने मुकदमे का उचित मूल्यांकन किया है, लेकिन अदालती शुल्क के भुगतान के बारे में निचली अदालत ने माना कि चूंकि संपत्ति का मूल्य 7,50,000/- रुपये है, और वादी बिक्री विलेख में पार्टी थी, इसलिए, कोर्ट फीस अधिनियम, 1870 की धारा 7(IV)-ए के तहत वादी मामले की संपत्ति के बाजार मूल्य पर मूल्यानुसार अदालत शुल्क का भुगतान करेगा।

7. मुद्दा संख्या 3 के संबंध में आदेश का पालन करने के बजाय, वादी ने 41-केए संशोधन आवेदन दाखिल किया, जिसमें वादी ने राहत 'ए' के लिए मुकदमे का मूल्य 600/- रुपये (वार्षिक किराए रुपये 20/- का तीस गुना) निर्धारित करने का प्रस्ताव रखा और न्यायालय शुल्क रु. 87.50/- का भुगतान करने का प्रस्ताव रखा। और प्रस्तावित राहत 'बी' स्थायी निषेधाज्ञा के संबंध में बढ़ती फसलों का मूल्यांकन रु. 6 लाख के अनुसार अधिकतम न्यायालय शुल्क रुपये 500/- देने का प्रस्ताव रखा।

8. प्रतिवादी द्वारा आपत्ति दायर की गई और सुनवाई के बाद यह माना गया कि संशोधन आवेदन के माध्यम से वादपत्र के पैराग्राफ -13 में शामिल किए जाने वाले प्रस्तावित तथ्य दिनांक 19.04.2016 के आदेश को रद्द कर देंगे। अत: संशोधन आवेदन पोषणीय नहीं था। यद्यपि वादी को संशोधन के माध्यम से सम्मिलित किये जाने वाले अन्य प्रस्तावित तथ्यों के संबंध में अलग से संशोधन आवेदन प्रस्तुत करने का विकल्प दिया गया था। तदनुसार, संशोधन आवेदन खारिज कर दिया गया और वादी को आदेश दिनांक 19.04.2016 के अनुसार अतिरिक्त अदालत शुल्क का भुगतान करने का निर्देश दिया गया।

9. व्यथित होकर पुनरीक्षणवादी-वादी ने यह पुनरीक्षण दाखिल किया है।

10. किसी भी पक्ष की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ. चूँकि पुनरीक्षण का निर्णय योग्यता के आधार पर किया जाना चाहिए, इसलिए यह पुनरीक्षण कानून के अनुसार योग्यता के आधार पर तय किया जाता है।

11. स्वीकृत है कि मुकदमा पंजीकृत विक्रय-पत्र को रद्द करने के लिए दाखिल किया गया है, जिसमें संशोधनकर्ता विलेख का पक्षकार है। यह भी स्वीकार किया गया है कि वाद में संपत्ति भू-राजस्व देय कृषि भूमि है और भूमि खरीदने का उद्देश्य खेती करना बताया गया है। हालाँकि, मुकदमे में संपत्ति का बाजार मूल्य रु। 17,17,000/- जिस पर स्टांप शुल्क रु. 76,000/- का भुगतान किया गया है

लेकिन 7,50,000/- रुपये प्रतिफल राशि के रूप में दिखाया गया है। यह भी उल्लेखनीय है कि वादी एवं प्रतिवादी सगी मां-बेटी हैं। वाद-पत्र में वादी ने मुकदमे का मूल्यांकन रु. 7,50,000/- किया है लेकिन राहत (ए) के लिए अधिकतम अदालत शुल्क 200/- रुपये का भुगतान किया था, जिसमें कहा गया था कि वादी ने बिक्री-विलेख दिनांक को शून्य और अमान्य घोषित करने के लिए एक घोषणात्मक डिक्री के लिए प्रार्थना की थी।

12. सबसे पहले वाद वाली भूमि की प्रकृति देखनी होगी। स्वीकृत है कि यह भू-राजस्व देने वाली कृषि भूमि है और इसके स्वरूप में परिवर्तन की कोई घोषणा नहीं की गई है। इस पुनरीक्षण के प्रयोजन के लिए इस संबंध में कुछ प्रासंगिक उद्धरण देना उचित होगा जो नीचे दिए गए हैं।

13. **रण विजय एवं अन्य बनाम राजस्व परिषद एवं अन्य. 2017 (1) सी.ए.आर. 815 एल्ड,** में याचिकाकर्ता कृषि भूमि का उपयोग आबादी के रूप में कर रहा था। याचिकाकर्ता की दलील थी कि चूंकि विवादित भूमि का उपयोग आबादी के रूप में किया गया है, इसलिए राजस्व न्यायालय को यू.पी.जेड.ए और एल.आर. की धारा 209 के तहत मुकदमे पर विचार करने का अधिकार क्षेत्र समाप्त हो गया है। अदालत ने माना कि याचिकाकर्ता की दलील तर्कसंगत नहीं है क्योंकि जब तक भूमि के उपयोग में परिवर्तन के लिए धारा 143 के तहत घोषणा एस.डी.ओ. द्वारा प्राप्त नहीं की जाती है, तब तक यह कृषि भूमि बनी रहेगी और राजस्व अदालत के पास मुकदमे पर विचार करने का अधिकार क्षेत्र होगा। अदालत ने आगे स्पष्ट किया कि सिविल कोर्ट या हाई कोर्ट भी धारा 143 के तहत ऐसी अनुमति देने के लिए सक्षम प्राधिकारी के रूप में कार्य नहीं कर सकता है।

14. इस मामले में मुकदमे की संपत्ति अभी भी कृषि भूमि है और धारा 143 के तहत कोई घोषणा नहीं की गई है। इसलिए, मुकदमे में भूमि को भू-राजस्व देने वाली कृषि भूमि माना जाएगा।

15. **इंदल कुमार कुशवाह एवं एक अन्य बनाम राजेश कुमार गुप्ता एवं अन्य 2008 ए.सी.जे. 838**, में यह फिर से माना जाता है कि जब तक कृषि भूमि को धारा 143 के तहत अधिसूचित नहीं किया जाता है, तब तक इसे आवासीय भूमि के रूप में नहीं माना जा सकता है।

16. **मेसर्स लक्ष्मी शुगर एंड ऑयल मिल्स लिमिटेड, हरदोई एवं अन्य बनाम यूपी राज्य और एक अन्य, 2010 (111) आरडी 617**, में यह माना जाता है कि यदि भूमि कृषि उद्देश्यों के लिए कब्जा कर ली गई है या ऐसे उद्देश्यों से जुड़ी हुई है, तो यह कृषि भूमि बनी रहेगी, भले ही भूमिधर कृषि जोत या फॉर्म पर घर बनाता हो जब तक कि धारा 143 के तहत घोषणा प्राप्त की जाती है।

17. **अनुरुद्ध कुमार एवं एक अन्य बनाम मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकारी और एक अन्य 2000 ए.सी.जे. 1397** में यह माना गया है कि चूंकि भूमि की प्रकृति को आवासीय भूखंड में बदलने की धारा 143 के तहत कोई घोषणा नहीं की गई थी, इसलिए यह केवल कृषि भूमि होगी, आवासीय भूखंड नहीं। भविष्य में इसकी संभावनाओं के आधार पर यह मान लेना कि बेचा गया प्लॉट आवासीय प्लॉट था, उचित नहीं है।

इस प्रकार, उपरोक्त निर्णयों के आधार पर और रिकॉर्ड पर उपलब्ध दस्तावेजों के आधार पर, यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि मुकदमे में संपत्ति एक कृषि भूमि है और यदि कृषि भूमि के संबंध में कोई हस्तांतरण विलेख निष्पादित और पंजीकृत किया गया है और ऐसे दस्तावेज़ को रद्द करने के लिए मुकदमा दाखिल किया गया है, इसका मूल्य भू-राजस्व के आधार पर किया जाएगा, न कि प्रतिफल धन या बाजार मूल्य के आधार पर।

18. **न्यायालय शुल्क अधिनियम की धारा 7 (IV-A)** इस प्रकार है:-

(iv-ए) शून्य लिखत और डिक्री को रद्द करने या निर्णय लेने के लिए।–

(iv-ए) पैसे या बाजार मूल्य वाली अन्य संपत्ति, या ऐसे मूल्य वाली एक या अन्य संपत्ति को सुरक्षित करने वाले लिखत के लिए डिक्री को रद्द करने या शून्य या अमान्य करने योग्य निर्णय से जुड़े मुकदमों में:

(1) जहां वादी या उसका पूर्ववर्ती शीर्षक डिक्री या लिखत का पक्षकार नहीं था, विषय-वस्तु के मूल्य के पांचवें हिस्से के अनुसार,

(2) जहां वह या उसका पूर्ववर्ती शीर्षक डिक्री या लिखत का पक्षकार नहीं था, विषय-वस्तु के मूल्य के एक-पचासवें के अनुसार, और ऐसा मूल्य माना जाएगा--

यदि संपूर्ण डिक्री या लिखत मुकदमे में शामिल है, तो वह राशि या संपत्ति का मूल्य जिसके संबंध में डिक्री पारित की गई थी या लिखत निष्पादित की गई थी, और यदि डिक्री या लिखत का केवल एक पक्ष मुकदमे में शामिल है, संपत्ति की वह राशि या मूल्य जिससे ऐसा भाग संबंधित है।

स्पष्टीकरण.- इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए संपत्ति का मूल्य बाजार मूल्य होगा, जो अचल संपत्ति के मामले में

उपधारा (v), (v-ए) या (v-बी), के अनुसार गणना किया गया मूल्य माना जाएगा, जैसा भी मामला हो।

(iv-बी) सुखाधिकार के लिए। - वाद में -

(ए) भूमि से उत्पन्न होने वाले कुछ लाभ (यहां अन्यथा प्रदान नहीं किया गया) के अधिकार के लिए;

(बी) निषेधाज्ञा के लिए. - निषेधाज्ञा प्राप्त करने के लिए;

(सी) दत्तक ग्रहण स्थापित करने के लिए - दत्तक ग्रहण स्थापित करने के लिए या एक घोषणा प्राप्त करने के लिए कि कथित दत्तक ग्रहण वैध है;

(डी) दत्तक ग्रहण को रद्द करने के लिए - दत्तक ग्रहण अपास्त करने या यह घोषणा प्राप्त करने के लिए कि कथित दत्तक ग्रहण अवैध है या वास्तव में कभी हुआ ही नहीं;

(ई) धारा 8 में उल्लिखित अधिनिर्णय के अलावा किसी अन्य अधिनिर्णय को अपास्त करना - ऐसे अधिनिर्णय को अपास्त करना जो धारा 8 में उल्लिखित अधिनिर्णय नहीं है; उस राशि के अनुसार जिस पर मांगी गई राहत का मूल्यांकन वादपत्र में किया गया है:

बशर्ते कि ऐसी राशि मांगी गई राहत में शामिल या प्रभावित संपत्ति के बाजार मूल्य के पांचवें हिस्से या रुपये 200 से कम नहीं होगी, जो भी अधिक हो:

बशर्ते कि खंड (ए) और (बी) के तहत आने वाले मुकदमों के मामले में, लगाए जाने वाले अदालत शुल्क की राशि किसी भी मामले में रुपये 500 से अधिक नहीं होगी।

स्पष्टीकरण 1.- जब मांगी गई राहत किसी अचल संपत्ति के संदर्भ में है तो ऐसी संपत्ति का बाजार मूल्य इस धारा की उपधारा (v), (v-ए) या (v-बी), के अनुसार गणना किया गया मूल्य माना जाएगा। , जैसा भी मामला हो।

(v) भूमि, भवन या उद्यान के कब्जे के लिए - भूमि, भवन या उद्यान के कब्जे के लिए मुकदमों में-

विषय-वस्तु के मूल्य के अनुसार; और ऐसा मूल्य समझा जाएगा-

(XIV) जहां विषय-वस्तु भूमि है, और-

(ए) जहां भूमि सरकार को वार्षिक राजस्व देने वाली एक पूरी संपत्ति या संपत्ति का निश्चित हिस्सा बनाती है, या ऐसी संपत्ति का हिस्सा बनती है, और कलेक्टर के रजिस्टर में यही अभिलिखित है की उस पर ऐसे राजस्व पृथक्त: निर्धारित है और ऐसा राजस्व स्थायी रूप से तय किया जा चुका है-

देय राजस्व का तीस गुना;

(बी) जहां भूमि एक संपूर्ण संपत्ति या सरकार को वार्षिक राजस्व का भुगतान करने वाली संपत्ति का एक निश्चित हिस्सा बनाती है, या ऐसी संपत्ति का हिस्सा बनती है और पूर्वोक्त के रूप में दर्ज की जाती है और ऐसे राजस्व परनिर्धारित है, लेकिन स्थायी रूप से नहीं-

इस प्रकार देय राजस्व का दस गुना;

19. इस मामले में, वादी विलेख का पक्षकार है, और मुकदमे में भूमि भू-राजस्व देय भूमि है, इसलिए, मुकदमे का मूल्य बाजार मूल्य पर होगा और बाजार मूल्य भू-राजस्व का 30 गुना होगा और यदि भू-राजस्व स्थायी रूप से तय हो गया है, तो न्यायालय शुल्क देय राजस्व का 30 गुना भुगतान किया जाएगा और यदि भू-राजस्व स्थायी रूप से तय नहीं किया गया है, तो न्यायालय शुल्क देय भू-राजस्व का 10 गुना होगा। इस मामले में यह निष्कर्ष निकाला गया है और पार्टियों द्वारा भी स्वीकार किया गया है कि मुकदमे में संपत्ति भू-राजस्व देय कृषि भूमि है, इसलिए, मुकदमे का मूल्य देय भू-राजस्व का 30 गुना होगा क्योंकि वादी विवादित विक्रय-पत्र में आक्षेपित पक्षकार है और न्यायालय शुल्क का भुगतान इस तथ्य को ध्यान में रखकर किया जाएगा कि राजस्व स्थायी रूप से तय हो गया है या नहीं।

20. आमतौर पर यू.पी. में भू-राजस्व स्थायी रूप से तय नहीं किया जाता है, इसलिए, भले ही विलेख का कोई पक्षकार दस्तावेज को शून्य और अमान्य घोषित करने के लिए मुकदमा दायर करता है, वह मुकदमे का मूल्य देय राजस्व के 30 गुना पर होगा, लेकिन न्यायालय शुल्क का भुगतान देय राजस्व का 10 गुना शुल्क करना होगा ।

21. इस मामले में, प्रतिवादी को इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि मुकदमे में संपत्ति का वार्षिक राजस्व 20/- रुपये नहीं है।

22. प्रस्तावित संशोधन में वादी ने वार्षिक भू-राजस्व रुपये 20/- को x (गुणा) कर दिया था 30 गुना जो रु.600/- हो जाता है, जिस पर, उसने रु. 87.50/- का भुगतान कोर्ट फीस के रूप में करने का प्रस्ताव रखा है। यहां यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि यदि मुकदमे में संपत्ति का भू-राजस्व स्थायी रूप से तय नहीं किया गया है, तो वादी को देय भू-राजस्व का दस गुना न्यायालय शुल्क देना होगा, जबकि उसने न्यायालय शुल्क का भुगतान इससे अधिक करने का प्रस्ताव किया है, यह मानते हुए कि भू-राजस्व स्थायी रूप से तय किया गया है, इस प्रकार राहत "ए" के संबंध में प्रस्तावित संशोधन सत्य और सही पाया गया है और कानून के अनुसार भी है।

23. वादी ने संशोधन आवेदन में कुछ तथ्यात्मक संशोधन भी प्रस्तावित किए हैं, जिसमें कहा गया है कि 06.08.2016 से प्रतिवादी ने मुकदमे में संपत्ति पर वादी के उपयोग और कब्जे में बाधा डालना शुरू कर दिया है और मुकदमे में संपत्ति के ऊपर खड़ी फसलों को काटने और नुकसान पहुंचाने की कोशिश कर रहा है जिसके लिए उसने मुकदमे का मूल्यांकन रु. 6 लाख रुपये दिया है और स्थायी निषेधाज्ञा की प्रस्तावित राहत के लिए अधिकतम कोर्ट फीस रुपये 500/- देने का प्रस्ताव रखा है.

24. **राजेंद्र प्रसाद यादव बनाम रवीन्द्र नाथ सिंह और अन्य** में इस न्यायालय ने 20.12.2013 को निर्णय दिया, इस न्यायालय ने मामलों का उल्लेख किया- *1949 एडब्ल्यूआर 67 (डीबी) (सभी) (पैरा 10), (2010)5 एससीसी 622 (पैरा 13), 2006 (100) आरडी 568 (उत्तर) (पैरा 18), (2013) 1 एससीसी 579 (पैरा 7), 1972 एडब्ल्यूआर 808 (सभी) (पैरा 11)* ने माना है कि ऐसे मामले में जब बिक्री-विलेख को शून्य और अमान्य घोषित करने और जानकारी संबंधित उप-रजिस्ट्रार को भेजने के लिए प्रार्थना की गई है और यदि मुकदमे में संपत्ति कृषि भूमि है, जिस पर भू-राजस्व देय है, तो मुकदमे का मूल्य बाजार मूल्य पर तय किया जाएगा और बाजार मूल्य धारा 7 (वी), (वी-ए) या (वी-बी) के मद्देनजर तय किया जाएगा।

इसलिए, उपरोक्त निर्णय में व्यक्त विचार इस न्यायालय द्वारा व्यक्त विचार के समर्थन में है।

25. प्रस्तावित संशोधन दिनांक 16.08.2016 को सिविल जज (सीनियर डिवीजन) VI, मेरठ द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि यदि प्रस्तावित संशोधन की अनुमति दी जाती है, तो आदेश दिनांक 19.04.2016 मुद्दा क्रमांक 2 और 3 पर पारित किया गया निरर्थक हो जाएगा ।

26. रिकॉर्ड के अवलोकन से, यह पता चलता है कि जब मुकदमे में संपत्ति कृषि भूमि थी, तो इसका मूल्य भू-राजस्व के आधार पर किया जाना था, जहां तक बिक्री-पत्र को शून्य और अमान्य घोषित करने की राहत का संबंध है। . यह वकील की गलती थी कि उसने मुकदमे का मूल्यांकन सरकार को देय भू-राजस्व के 30 गुना के आधार पर करने के बजाय प्रतिफल राशि के आधार पर किया। ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में गलती मानते हुए उसे सुधारने के लिए प्रस्तावित संशोधन आवेदन पेश किया गया, जिसे 23.11.2016 को खारिज कर दिया गया। चूँकि न्यायालय यह भी जानता था कि मुकदमे में संपत्ति एक कृषि भूमि है जिसका भू-राजस्व सरकार को देय है, इसलिए न्यायालय का यह भी कर्तव्य था कि वह दोषों को इंगित करे और वादी को उचित संशोधन के माध्यम से इसे हटाने का निर्देश दे। मुद्दा क्रमांक ३ तय करना वादी के विरुद्ध न्यायालय शुल्क के संबंध में और उसे प्रतिफल धन के अनुसार यथामूल्य न्यायालय शुल्क का भुगतान करने का निर्देश देना। ऐसा प्रतीत होता है कि निचली अदालत को आशंका थी कि यदि संशोधन की अनुमति दी जाती है, तो 19.04.2016 को जारी आदेश मुद्दा क्रमांक 2 एवं 3 के संबंध में निरर्थक हो जाएंगे। वस्तुतः निचली अदालत को संशोधन आवेदन पर निर्णय करते समय ऐसी आशंका, मानसिकता और भय को त्याग देना चाहिए था। इस न्यायालय के अनुसार, संशोधन का निर्णय आदेश 6 नियम 17 सी.पी.सी. के तहत बताए गए कानून के अनुसार किया जाना चाहिए। यदि संशोधन की अनुमति दी गई होती तो वादी के वकील और न्यायालय द्वारा की गई गलती भी सुधार ली गई होती। मुद्दा क्रमांक 2 और 3 में संशोधन स्वीकार करने और संशोधन करने के बाद भी मूल्यांकन और अदालत शुल्क से संबंधित प्रश्न पर फिर से निर्णय लिया जा सकता है।

27. आदेश 6 नियम 17 सी.पी.सी. निम्नानुसार है:

आदेश VI नियम 17 सिविल प्रक्रिया संहिता :
17. अभिवचनों में संशोधन- *न्यायालय कार्यवाही के किसी भी चरण में किसी भी पक्ष को अपनी अभिवचनों में ऐसे तरीके से और ऐसी शर्तों पर परिवर्तन या संशोधन करने की अनुमति दे सकता है जो उचित हों, और ऐसे सभी संशोधन किए जाएंगे जो पार्टियों के बीच विवाद में वास्तविक प्रश्नों का निर्धारण करने के उद्देश्य के लिए आवश्यक हो सकते हैं ।*
बशर्ते कि सुनवाई शुरू होने के बाद संशोधन के लिए किसी भी आवेदन की अनुमति नहीं दी जाएगी, जब तक कि अदालत इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचती कि उचित परिश्रम के बावजूद, पार्टी सुनवाई शुरू होने से पहले मामला नहीं उठा सकती थी।

28. इस मामले में अब तक सुनवाई शुरू नहीं हुई है, इसलिए नियम 17 का प्रावधान लागू नहीं होता है और संशोधन आवेदन की अनुमति देने में कोई बाधा नहीं है। प्रस्तावित संशोधन द्वारा मुकदमे की प्रकृति, मुकदमे की कार्रवाई का कारण या मुकदमे का आधार नहीं बदल जाएगा और प्रतिवादियों को कोई अपूरणीय चोट/क्षति नहीं पहुंचेगी। ऐसी किसी भी स्वीकारोक्ति को वापस लेने का प्रस्ताव नहीं किया गया था जिसके आधार पर प्रतिवादी के पक्ष में कोई अधिकार अर्जित किया गया था।

29. **गंगा बनाम विजय ए.आई.आर. 1974 एस.सी. 1126** में, यह माना गया है कि संशोधन की अनुमति देने की शक्ति निस्संदेह व्यापक है और किसी भी स्तर पर

न्याय के हित में उचित रूप से प्रयोग किया जा सकता है, समय सीमा के कानून के बावजूद "पार्टियों के बीच वास्तविक विवाद के निर्धारण के लिए संशोधन स्वीकृत है"।

30. **पीरगोंडा बनाम कलगोंडा ए.आई.आर. 1957 एस.सी. 363**, यह माना गया है कि आम तौर पर संशोधन की अनुमति दी जानी चाहिए यदि इससे विपरीत पक्ष के साथ अन्याय नहीं होता है और वास्तविक मुद्दों के निर्धारण के लिए यह आवश्यक है।

31. संभवतः निचली अदालत ने सोचा होगा कि प्रस्तावित संशोधन दुर्भावनापूर्ण है, लेकिन चारों तरफ से तथ्यों पर विचार करते हुए इस न्यायालय का मानना है कि प्रस्तावित संशोधन दुर्भावनापूर्ण नहीं था और यदि बाद में इसकी अनुमति दी जाती तो अदालती शुल्क और मूल्यांकन की अपर्याप्तता के संबंध में मुद्दों को अतिरिक्त लिखित बयान के माध्यम से भी संशोधित और पुनः तैयार किया जा सकता था, प्रतिवादी के पास यह दलील देने का अवसर था कि संशोधन के बाद भी मुकदमे का मूल्य कम है और अदालती शुल्क का भुगतान अपर्याप्त किया गया है. इस प्रकार प्रतिवादी के साथ कोई अन्याय नहीं हुआ होगा।

32. **राम चंद्र सखाराम बनाम दामोदर (2007) 6 एस.सी.सी. 737** में, यह माना गया है कि कोई भी संशोधन याचिका केवल इस आधार पर खारिज नहीं की जाएगी कि संशोधन के लिए आवेदन करने में देरी हुई है। क्योंकि देरी की भरपाई प्रतिवादी को लागत देकर की जा सकती है। दावे को और अधिक सटीक बनाने के लिए संशोधन की अनुमति दी जानी चाहिए ताकि अदालत इस पर अधिक संतोषजनक ढंग से निर्णय दे सके।

33. **राजेश बनाम के.के. मोदी, ए.आई.आर. 2006 एससी 1647,** में यह माना गया है कि एक संशोधन याचिका पर विचार करते समय न्यायालय को संशोधन में मामले की शुद्धता या झूठ पर ध्यान नहीं देना चाहिए, न ही उसे संशोधन के माध्यम से शामिल किए जाने वाले संशोधन के गुणों पर कोई निष्कर्ष दर्ज करना चाहिए।

.

34. उपरोक्त चर्चाओं के आधार पर, इस न्यायालय का विचार है कि प्रस्तावित संशोधन की अनुमति दी जानी चाहिए। हालांकि, इससे पूर्व में निचली अदालत द्वारा मुद्दा क्रमांक 2 और 3 को पारित आदेश पर असर पड़ रहा था।, लेकिन इसके बावजूद अतिरिक्त लिखित बयान दाखिल करने के बाद मूल्यांकन और अदालत शुल्क के भुगतान से संबंधित मुद्दों में संशोधन किया जाता और मूल्यांकन और अदालत शुल्क से संबंधित मुद्दे फिर से निर्णय लेने के लिए खुले होते।

35. वादीगण के पास मुद्दा संख्या 2 और 3 के संबंध में पारित आदेश दिनांक 19.04.2016 को चुनौती देने का भी उपाय था।. यह भी उल्लेखनीय है कि मूल्यांकन और न्यायालय शुल्क के भुगतान का मुद्दा वादी और न्यायालय के बीच है, इसलिए यह विचार करना न्यायालय का कर्तव्य था कि जब मुकदमे में संपत्ति भू-राजस्व देय कृषि भूमि है, तो यह क्यों धारा 7(IV-A) के अनुसार मूल्यांकित नहीं किया गया था और मौजूदा कानून के अनुसार अदालत शुल्क का भुगतान क्यों नहीं किया गया था। अदालत अपनी गलती का फायदा नहीं उठा सकती और यदि वादी ने बाद में मूल्यांकन खंड को सही करने का प्रयास किया, तो अदालत को इसमें बाधा उत्पन्न नहीं करनी चाहिए थी।

36. उपरोक्त चर्चाओं के आधार पर, इस न्यायालय की राय है कि पुनरीक्षण की अनुमति दी जानी चाहिए और आदेश दिनांक 23.11.2016 निरस्त किये जाने योग्य है।

37. पुनरीक्षण को अनुमति दी जाती है. 2014 के मूल वाद संख्या 846 (श्रीमती रत्नी देवी बनाम श्रीमती आशा हंस) में पारित आदेश दिनांक 23.11.2016 को रद्द किया जाता है।

38. विद्वान निचली अदालत को ऊपर उल्लिखित टिप्पणियों के आलोक में दोनों पक्षों को अवसर प्रदान करने के बाद संशोधन आवेदन पर नए सिरे से निर्णय लेने का निर्देश दिया जाता है। इस निर्णय की एक प्रति तत्काल अनुपालन के लिए जिला न्यायाधीश, मेरठ के माध्यम से अतिरिक्त सिविल जज (सीनियर डिवीजन) -6 मेरठ को भेजी जाए।

39. 2014 के मूल वाद संख्या 846 में पारित स्थगन आदेश दिनांक 08 फरवरी 2017 आगे की कार्यवाही पर रोक के संबंध में निष्प्रभावी किया जाता है।

(2023) 1 ILRA 1349
पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार
सिविल साइड
दिनांक: इलाहाबाद 02.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे.मुनीर

नागरिक पुनरीक्षण संख्या 18 वर्ष 2008

स्टार पेपर मिल्स लिमिटेड, सहारनपुर
...पुनरीक्षणकर्ता
बनाम
श्रीमती अनीसा बेगम और अन्य
... प्रतिपक्ष

पुनरीक्षणकर्ता के वकील:
श्री क्षितिज शैलेंद्र, श्री रवि किरण जैन

प्रतिपक्ष के वकील:
श्री पंकज अग्रवाल

नागरिक कानून - भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899- धारा 2 (14-ए) - "यद्दाश्त हिबा" को लागू करने के लिए प्रतिवादी के आवेदन की अस्वीकृति को चुनौती दी - दस्तावेज़ रिकॉर्डिंग मौखिक उपहार - संशोधन मौखिक उपहार या एचआईबीए के स्पष्ट ज्ञापन - अब स्टाम्प ड्यूटी के लिए कर योग्य- कोई लागत नहीं दी गई।
पुनरीक्षण सफल रहा। (ई-9)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>
1. मोहम्मद शमीम अख्तर बनाम सेंट ऑफ़ उत्तर प्रदेश और अन्य, 2012 (11) एडीजे 698
2. हफीजा बीबी और अन्य बनाम शेख फरीद (मृत) एलआर और अन्य, 2011 (2) एआरसी 218
3. पंजीकरण और स्टाम्प महानिरीक्षक, हैदराबाद सरकार बनाम श्रीमती तैय्यबा बेगम, एआईआर 1962 एपी 199
4. नसीब अली बनाम वाजिद अली, एआईआर 1927 कैल 197
5. सुखदेव प्रसाद, एआईआर 1934 सभी 1052
6. हनुमान प्रसाद बनाम सेंट ऑफ़ राजस्थान, एआईआर 1958 राज 291

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे.मुनीर द्वारा प्रदत्त)

1. यह संशोधन अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, कोर्ट नंबर 2, सहारनपुर के आदेश के खिलाफ निर्देशित किया गया है, जिसमें सामान्य नियम (सिविल), 1957 के नियम 60 के साथ पठित आदेश XIII नियम 8 सीपीसी के तहत प्रतिवादियों के आवेदन को खारिज कर दिया गया है और भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 31, 32, 33, 38 और 40 (संक्षेप में, '1899 का अधिनियम) अदालत से फरीद अहमद द्वारा दायर पेपर नंबर 354-का वाले दस्तावेज को जब्त करने के लिए कहा गया है, एक तीसरा पक्ष, अपने अभियोग आवेदन के समर्थन में, अभियोग की मांग कर रहा है।
2. संक्षेप में इस संशोधन के लिए अग्रणी तथ्य यह है कि कोरी टिल्ला, सहारनपुर निवासी श्रीमती अनीसा बेगम ने सिविल जज, सहारनपुर , स्थापित ओएस 1991 की संख्या 317 [अब सिविल जज (सीनियर डिवीजन)] के पूर्व न्यायालय में दो प्रतिवादियों के खिलाफ, जो काफी हद तक एक ही पक्ष हैं, स्टार पेपर मिल्स प्राइवेट लिमिटेड के प्रबंध निदेशक और उक्त कंपनी के महाप्रबंधक के माध्यम से एक अनिवार्य निषेधाज्ञा का दावा करना।
3. वादी का मामला यह है कि वाद संपत्ति, 7940 वर्ग गज, खसरा नंबर 538, खेवट नंबर 13, महल घेर, दैयन मोहम्मद हसन खान, गांव पठानपुरा, वादी की संपत्ति है, जिसके कब्जे में वह मालिक है। वह राजस्व रिकॉर्ड में इस तरह दर्ज है। पूर्वोक्त संपत्ति को इसके बाद 'वाद संपत्ति' कहा जाएगा। यह वादी का मामला है कि सूट संपत्ति आबादी है और सहारनपुर शहर के भीतर स्थित है। इस प्रकार, उक्त भूमि से संबंधित जमींदारी को समाप्त नहीं किया गया है और वादी संपत्ति से जुड़े सभी अधिकारों के साथ इसका जमींदार बना हुआ है। वादी के पिता निसार अहमद द्वारा बिक्री विलेखों के माध्यम से अपने शीर्षक की श्रृंखला और वाद संपत्ति के अधिग्रहण के तरीके की वकालत करने के बाद, यह दावा किया जाता है कि वादी को अपने पिता से उक्त संपत्ति विरासत में मिली है। उसके पिता के पास जमींदार के रूप में सूट की संपत्ति के साथ-साथ अन्य संपत्तियां थीं जो उन्होंने खरीदी थीं। राजस्व रिकॉर्ड में उनका नाम उत्परिवर्तित किया गया था।
4. इस संशोधन में उत्पन्न होने वाले सीमित मुद्दे के उद्देश्य के लिए प्रासंगिक नहीं होने वाले विवरणों से दूर, वाद में वादी का मामला यह प्रतीत होता है कि यद्यपि वह वाद संपत्ति की जमींदार बनी हुई है, जिसमें प्रतिवादियों ने क्रमिक हस्तांतरणों की एक श्रृंखला के माध्यम से, एक उपवन आदि के उपयोग का सीमित अधिकार प्राप्त कर लिया है, प्रतिवादी, यानी स्टार पेपर मिल्स प्राइवेट लिमिटेड जमींदार के अधिकारों की अनदेखी कर रहे हैं और पेड़ गिराने की धमकी दे रहे हैं, जिनमें से कुछ पहले ही काट दिए गए हैं। प्रतिवादियों को रोकने के प्रयास विफल रहे हैं। प्रतिवादी भी जमींदार के अधिकारों का हनन करते हुए वहां विभिन्न पेड़ों की कटाई के बाद सूट संपत्ति पर निर्माण करने की धमकी दे रहे हैं। तदनुसार, श्रीमती अनीसा बेगम द्वारा मुकदमा शुरू किया गया था, जिसमें प्रार्थना की गई थी कि एक अनिवार्य निषेधाज्ञा जारी की जाए, जिसमें प्रतिवादियों को निर्देश दिया गया था कि वे अपने सभी प्रभावों, जैसे माल, निर्माण सामग्री आदि, जो भी हो, को अनुसूची में दिखाए गए वाद से अभियोग को हटाने के लिए, न्यायालय द्वारा निर्धारित समय के भीतर, ऐसा न करने पर न्यायालय इन सामग्रियों और प्रभावों को न्यायालय की प्रक्रिया के माध्यम से हटा सकता है।
5. यह मुकदमा श्रीमती अनीसा बेगम की ओर से उनके जनरल पावर ऑफ अटॉर्नी के धारक जलील अहमद के माध्यम से शुरू किया गया था। उन्हें सरणी में वादी नंबर 1/1 के रूप में अजीबोगरीब रूप से वर्णित किया गया है। वह अनीसा बेगम का एलआर नहीं है, उसकी जगह प्रतिस्थापित किया गया है। जलील अहमद ने वाद पर हस्ताक्षर किए हैं और खुद को श्रीमती अनीसा बेगम से जनरल पावर ऑफ अटॉर्नी के धारक के रूप में वर्णित किया है, जिसे वादी के रूप में दिखाया गया है, सत्यापन खंड में अपने वकील के माध्यम से कार्य कर रहा है। वाद

के कारण शीर्षक में, अनीसा बेगम और उसके वकील, जलील अहमद को जलील अहमद के साथ अजीब तरह से वर्णित किया गया है, जैसा कि पहले ही कहा गया है, वादी की ओर से अनीसा बेगम के नाम के नीचे वादी नंबर 1/1 के रूप में दिखाया गया है।

6. मुकदमा लंबित है, फरीद अहमद, एक तीसरे पक्षकार ने आदेश XXII नियम 10 सीपीसी के तहत 23.08.2007 को अभियोग की मांग करते हुए एक आवेदन किया। फरीद अहमद, जो पार्टी नंबर 2 के विपरीत हैं और वास्तव में, विरोधी पक्ष के विपरीत हैं, द्वारा यह आरोप लगाया गया था कि वादी, जलील अहमद ने 16.05.2006 को मौखिक उपहार द्वारा, उन्हें सूट संपत्ति, यानी जमींदार की संपत्ति उपहार में दी थी, जिसे श्रीमती अनीसा बेगम ने आयोजित किया था। फरीद अहमद ने मौखिक उपहार (हिबा) स्वीकार किया और मौखिक उपहार पर कार्य करते हुए, सूट संपत्ति पर कब्जा कर लिया। बाद में, 23.07.2006 को, जलील अहमद ने मौखिक उपहार का एक ज्ञापन लिखा, जिसका अर्थ पूर्ववर्ती हिबा के रिकॉर्ड के रूप में काम करना था। यह भी दावा किया गया कि जलील अहमद बीमार होने के कारण मुकदमे पर ठीक से पैरवी करने में असमर्थ थे। उक्त दावे पर, फरीद अहमद ने प्रार्थना की कि उन्हें जलील अहमद के साथ वादी के रूप में पेश किया जाए और मुकदमे पर अभियोग चलाने की अनुमति दी जाए। फरीद अहमद के इस आवेदन पर पेपर नंबर 347-सी है।

7. स्पष्टतः फरीद अहमद ने दिनांक 23.07.2006 को मौखिक उपहार का ज्ञापन, दस्तावेज दाखिल नहीं किया, जिसके आधार पर उन्होंने अभियोग की मांग की। बाद में, उन्होंने दिनांक 23.07.2006 के दस्तावेज को रिकॉर्ड में लाया, जिसे स्थानीय भाषा में "यद्दाश्त हिबा" के रूप में वर्णित किया गया है। उक्त दस्तावेज की एक प्रति स्थगन आवेदन के समर्थन में शपथ पत्र के अनुलग्नक संख्या 2 के रूप में रिकॉर्ड पर है।

8. जलील अहमद ने फरीद अहमद द्वारा किए गए आवेदन पर आपत्ति दर्ज की, जिसमें उन्होंने कहा कि मौखिक उपहार देने के बाद, उन्हें सूट संपत्ति में कोई दिलचस्पी नहीं है। यह उल्लेख किया गया था कि उक्त तथ्य को नोट किया जाए। प्रतिवादी-संशोधनवादी ने फरीद अहमद द्वारा इस मामले में मुकदमा चलाने की मांग करने वाले आवेदन पर आपत्तियां दायर कीं कि बाद वाले के पास आवेदन को स्थानांतरित करने या मुकदमा चलाने का कोई अधिकार नहीं था। आपत्ति का आधार यह था कि मौखिक उपहार के साक्ष्य के रूप में जिस दस्तावेज पर भरोसा किया गया था, वह एक बेकार कागज था और फरीद अहमद को कोई अधिकार, शीर्षक या हित प्रदान नहीं करता था। यह आग्रह किया गया था कि फरीद अहमद ने मौखिक उपहार के ज्ञापन के आधार पर मुकदमा चलाने की मांग की, जिसमें कागज संख्या 354-खा एक मौखिक उपहार के रूप में सूट संपत्ति पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिए था।

9. प्रतिवादी द्वारा पसंद की गई आपत्ति के माध्यम से यह आग्रह किया गया था कि दस्तावेज़ अपंजीकृत था और अपर्याप्त रूप से मुहर लगी थी। इसलिए, इसे 1899 के अधिनियम की धारा 33 के तहत जब्त किया जाना आवश्यक था। प्रतिवादी-पुनरीक्षणकर्ता ने 1899 के अधिनियम की धारा 30, 32, 33, 38 और 40 के प्रावधानों और 1899 के अधिनियम में पेश की गई धारा 2 की उप-धारा (14-ए) के तहत उपहार के एक साधन की संशोधित परिभाषा का उल्लेख किया, उत्तर प्रदेश राज्य को 2001 के यूपी अधिनियम संख्या 38 के तहत अपने आवेदन में। ट्रायल जज पर यह प्रभाव डाला गया था कि मौखिक उपहार के निर्माण या स्वीकृति के बारे में घोषणा करने वाला मौखिक उपहार का एक ज्ञापन भी स्टांप ड्यूटी के लिए कर योग्य होगा। ट्रायल जज ने आक्षेपित आदेश द्वारा आदेश XIII नियम 8 सीपीसी के तहत संशोधनवादी के आवेदन, धारित कागज संख्या 354-जीए, को खारिज कर दिया।

10. इससे व्यथित होकर यह पुनरीक्षण किया गया है।

11. श्री क्षितिज शैलेंद्र, संशोधनवादी के विद्वान वकील और श्री पंकज अग्रवाल को विपरीत पार्टी नंबर 2 की ओर से पेश करते हुए सुना। वादी पक्ष संख्या 1/1/1, 1/1/2, 1/1/3 और 1/1/4 के उत्तराधिकारियों और एलआर की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं होता है।

12. श्री क्षितिज शैलेंद्र, पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान वकील और श्री पंकज अग्रवाल, पार्टी नंबर 2 के विपरीत चुनाव लड़ने के लिए उपस्थित होने वाले विद्वान वकील इस प्रस्ताव के बारे में स्पष्ट मतभेद में हैं कि मौखिक उपहार का एक ज्ञापन (हिबा), जो स्वयं अचल संपत्ति का हस्तांतरण नहीं करता है या अधिकारों का निर्माण, खत्म या बढ़ाता है, लेकिन केवल एक पूर्ववर्ती मौखिक लेनदेन दर्ज करता है, कब्जे की स्वीकृति और वितरण के साथ, न तो अनिवार्य रूप से पंजीकरण योग्य है और न ही स्टाम्प ड्यूटी के लिए कर योग्य है। जबकि श्री क्षितिज शैलेंद्र प्रस्तुत करते हैं कि यह अनिवार्य रूप से पंजीकरण योग्य और स्टांप शुल्क के लिए कर योग्य है, श्री अग्रवाल का कहना है कि इसकी आवश्यकता नहीं है। श्री अग्रवाल ने विद्वान ट्रायल जज द्वारा पारित आदेश का समर्थन किया है, जिसमें उपकरण को जब्त करने से इनकार कर दिया गया है।

13. चूंकि यह संशोधन 1899 के अधिनियम की धारा 31, 32, 33, 38 और 40 के साथ पढ़े गए आदेश XIII नियम 8 सीपीसी के तहत प्रतिवादी के आवेदन से उत्पन्न होता है, जिसमें दस्तावेज़, पेपर नंबर 354-का को जब्त करने की मांग की गई है, यह मुद्दा कि दस्तावेज़ अनिवार्य रूप से पंजीकरण योग्य है या नहीं, इस मामले में उत्पन्न नहीं होता है। केवल इस बात की जांच की जानी है कि क्या दस्तावेज

पर स्टाम्प ड्यूटी पर कर लगाने की आवश्यकता है या इसे साक्ष्य के रूप में प्राप्त किया जा सकता है, बिना किसी स्टांप शुल्क का भुगतान किए या यहां तक कि अगर अपर्याप्त रूप से मुहर लगाई गई हो? यह दिलचस्प है कि दोनों पक्षों के लिए उपस्थित विद्वान वकील ने मोहम्मद शमीम अख्तर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2012 (11) एडीजे 698 मामले में उनके बिल्कुल विपरीत प्रस्तुतियों को प्रचारित करने के लिए इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है। मोहम्मद शमीम अख्तर (सुप्रा) में, यह अवधारित किया गया था:

"8. अधिनियम की धारा 2 (14) के तहत साधन की परिभाषा बहुत व्यापक है और इसमें हर दस्तावेज या रिकॉर्ड शामिल है जो किसी भी संपत्ति के संबंध में किसी पार्टी के अधिकार या दायित्व को बनाने, स्थानांतरित करने, सीमित करने, विस्तारित, बुझाने या रिकॉर्ड करने का इरादा रखता है।

9. हाल ही में, हफीजा बीबी और अन्य बनाम शेख फरीद (मृत) द्वारा एलआरएस और अन्य, 2011 (2) एआरसी 218 में सर्वोच्च न्यायालय ने मुस्लिम कानून के तहत उपहार से निपटा है और निम्नानुसार फैसला सुनाया है:

"हमारी राय में, केवल इसलिए कि उपहार मौखिक रूप से किए जाने के बजाय एक मुसलमान द्वारा लेखन में किया गया है, ऐसा लेखन औपचारिक दस्तावेज या उपहार का साधन नहीं बन जाता है। जब मुसलमान मौखिक रूप से उपहार दे सकते हैं, तो इसकी प्रकृति और चरित्र एक लिखित दस्तावेज द्वारा किए जाने के कारण नहीं बदल जाता है।

10. पंजीकरण और स्टाम्प महानिरीक्षक, हैदराबाद सरकार बनाम श्रीमती तैय्यबा बेगम, एआईआर 1962 एपी 199 के मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय को अलग करने वाले उपरोक्त निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने नसीब अली बनाम वाजिद अली, एआईआर 1927 कैल 197, के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण को मंजूरी दी, यह मानते हुए कि मोहम्मडन द्वारा उपहार का एक विलेख उपहार को प्रभावित करने, बनाने का एक साधन नहीं है, बल्कि सबूत का एक मात्र टुकड़ा है। ऐसा लेखन शीर्षक का दस्तावेज नहीं है, बल्कि केवल सबूत का एक खंड है।

11. सुप्रीम कोर्ट के उपरोक्त फैसले के मद्देनजर, हालांकि उसमें न्यायालय ने अधिनियम में निहित साधन की परिभाषा के प्रभाव पर विचार नहीं किया है, स्पष्ट रूप से फैसला सुनाया है कि मुसलमान द्वारा किए गए उपहार की प्रकृति और चरित्र केवल इस कारण से नहीं बदलता है कि इसे लिखा गया है और मुसलमान द्वारा उपहार लिखित रूप में उपहार को प्रभावित करने, बनाने का एक साधन नहीं है, बल्कि केवल सबूत का एक खंड है।

12. उपरोक्त के अलावा, अधिनियम की धारा 2 (14) के तहत 'साधन'की परिभाषा में अधिकारों और देनदारियों को बनाने या समाप्त करने वाले एक दस्तावेज या रिकॉर्ड पर विचार किया गया है जिसका अर्थ है किसी न किसी रूप में दस्तावेज का अस्तित्व। इसलिए, जहां एक मौखिक उपहार की अनुमति है और बनाया गया है, वहां अधिकारों और देनदारियों का कोई दस्तावेज या रिकॉर्ड नहीं होता है जिसे स्टाम्प ड्यूटी के अधीन किया जा सकता है। स्टांप शुल्क के भुगतान की देयता केवल एक उपकरण के निष्पादन पर उत्पन्न होती है। (संदर्भः एआईआर 1934 ऑल 1052 सुखदेव प्रसाद)। बाद में इसे एक कागज पर लिखने से यह एक उपहार विलेख नहीं होगा क्योंकि उपहार अतीत में एक मौखिक घोषणा, इसकी स्वीकृति और कब्जे की डिलीवरी करके पूरा हो गया था। हनुमान प्रसाद बनाम राजस्थान राज्य , एआईआर 1958 राज 291, के मामले में राजस्थान हाई कोर्ट के न्यायमूर्ति ने व्यवस्था दी कि कोई दस्तावेज जो उपहार का साधन नहीं है बल्कि केवल पिछले लेन-देन का रिकार्ड है, उस पर अधिनियम के अंतर्गत मुहर लगाने की आवश्यकता नहीं है।

13. उपरोक्त स्थिति में न तो किसी मुसलमान द्वारा मौखिक रूप से दिया गया उपहार और न ही बाद में लिखित रूप में इसकी कमी एक उपकरण के निष्पादन के बराबर होगी जिसे स्टांप शुल्क के भुगतान के अधीन किया जा सकता है। इस प्रकार, मेरी राय है कि नीचे के अधिकारियों ने 8.5.2002 के उपहार के उपरोक्त ज्ञापन को स्टांप ड्यूटी के अधीन करके कानून में घोर गलती की है।

14. इसमें कोई संदेह नहीं है, विशेष रूप से, हफीजा बीबी और अन्य बनाम शेख फरीद (मृत) एलआरएस और अन्य, 2011 (2) एआरसी 218 में सुप्रीम कोर्ट के फैसले को देखते हुए, कि एक मुसलमान द्वारा किया गया मौखिक उपहार, जिसे बाद में लिखने के लिए कम कर दिया जाता है, 'औपचारिक दस्तावेज या उपहार का साधन नहीं बनता है', जैसा कि सुप्रीम कोर्ट के न्यायमूर्तियों द्वारा देखा गया है।

15. **मोहम्मद शमीम अख्तर** में **हफीजा बीबी (सुप्रा)** के आधार पर इस न्यायालय की टिप्पणी कि एक मुसलमान द्वारा उपहार का एक विलेख एक उपहार को प्रभावित करने, बनाने एक साधन नहीं है, बल्कि सबूत का एक मात्र खंड है और इस तरह का लेखन शीर्षक का दस्तावेज नहीं है, बल्कि इसका एक मात्र सबूत है, कानून का ट्राइट एक्सपोज़ेशन है, जहां तक यह पद केन्द्रीय संविधि के अंतर्गत आता है। यह न्यायालय केवल यह जोड़ सकता है कि केंद्रीय क़ानून के तहत भी, यदि उपहार का एक विलेख लिखित रूप में किया गया था, जिससे किसी अचल संपत्ति में प्राप्तकर्ता को दाता का हित व्यक्त होता है, तो यह उपहार के किसी अन्य साधन की तरह स्टांप ड्यूटी के

लिए कर योग्य होगा। यह केवल उन मामलों में है जहां मुस्लिम कानून के तहत मौखिक उपहार बनाया जाता है और कब्जे के वितरण के साथ स्वीकृति द्वारा निष्कर्ष निकाला जाता है, और इसका एक रिकॉर्ड, बाद में तैयार किया जाता है, जिसे अक्सर मौखिक उपहार का ज्ञापन कहा जाता है, या हिबा के पूर्ववर्ती और संपन्न लेनदेन से बना रिकॉर्ड है कि यह स्टांप शुल्क के लिए प्रभार्य नहीं है। लेकिन, यह पद केंद्रीय क़ानून के तहत प्राप्त होता है। मोहम्मद शमीम अख्तर में, 2001 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 38 के तहत लाया गया उत्तर प्रदेश राज्य संशोधन, 1899 के अधिनियम की धारा 2 में उप-धारा (14-ए) को जोड़ा गया था, जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य में लागू है, लेकिन न्यायालय ने इस पर विचार या फैसला नहीं किया, क्योंकि उस मामले में मौखिक उपहार 17.12.2001 को किया गया था, जिसका एक ज्ञापन 08.05.2002 को तैयार किया गया था, जबकि 2001 का उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 38 20.05.2002 से लागू हुआ।

16. यहां, गवाहों की उपस्थिति में 16-05-2006 को मौखिक उपहार स्वीकार किया गया था, जहां प्राप्तकर्ता ने मौखिक उपहार स्वीकार किया और वाद संपत्ति का स्वामित्व ले लिया। मौखिक उपहार का ज्ञापन 23-07-2006 को तैयार किया गया था जिसमें 16-05-2006 को मौखिक रूप से किए गए पूर्ववर्ती लेन-देन को दर्ज किया गया था। मौखिक उपहार के ज्ञापन, जिसे 'यद्दाश्त हिबा' के रूप में वर्णित किया गया है, किसी भी स्टांप शुल्क पर कर नहीं लगाया जाता है। यहाँ मौखिक उपहार का ज्ञापन वह है जो 2001 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 38 के माध्यम से 1899 के अधिनियम में उत्तर प्रदेश राज्य संशोधन के लागू होने के बाद तैयार किया गया था। इसके अलावा, मौखिक उपहार, कि ज्ञापन रिकॉर्ड, संदर्भ के तहत यूपी राज्य संशोधन के प्रवर्तन के बाद बनाया गया था। 2001 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 38 द्वारा पेश की गई धारा 2 (14- ए) 1899 के अधिनियम की धारा 2 की उपधारा 14 में निम्नानुसार संशोधन करती है:

> "2. भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 2 में, इसके बाद मूल अधिनियम के रूप में संदर्भित, -
>
> (a) उप-धारा (14) के लिए, निम्नलिखित उप-धारा को प्रतिस्थापित किया जाएगा, अर्थात्: -
>
> "(14) 'इंस्ट्रूमेंट' - 'इंस्ट्रूमेंट' में इलेक्ट्रॉनिक स्टोरेज और रिट्रीवल डिवाइस या मीडिया द्वारा बनाए गए प्रत्येक दस्तावेज और रिकॉर्ड शामिल हैं, जिसके द्वारा कोई अधिकार या दायित्व बनाया गया है, स्थानांतरित किया गया है, सीमित, विस्तारित, खत्म या दर्ज किया गया है।
>
> (b) उप-धारा (14) के बाद, निम्नलिखित उप-धारा जोड़ी जाएगी, अर्थात्: -
>
> "(14-A) 'उपहार का साधन' - 'उपहार का साधन' में मौखिक उपहार बनाने या स्वीकार करने के लिए घोषणा के माध्यम से या अन्यथा शामिल हैं, "(न्यायालय द्वारा जोर)

17. उपहार का एक साधन संपत्ति के मूल्य पर स्टांप ड्यूटी के लिए कर योग्य है, जैसा कि उपकरण में निर्धारित किया गया है, यह कहना है, 1899 के अधिनियम की अनुसूची । के आइटम नंबर 33 के तहत एक वाहन के रूप में एक ही दर पर। यह स्टांप शुल्क की दर नहीं है जिस पर उपहार का एक साधन कर योग्य है, लेकिन तथ्य यह है कि यह स्टांप ड्यूटी के लिए कर योग्य है जो यहां जारी है। अब, यह देखा जाना चाहिए कि क्या 1899 के अधिनियम की धारा 2 की उप-धारा (14-A) के आधार पर, जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य के लिए इसके आवेदन में संशोधित किया गया है, मौखिक उपहार का एक ज्ञापन, जो एक संपन्न मौखिक उपहार या एक मुसलमान द्वारा हिबा को रिकॉर्ड करता है, स्टाम्प ड्यूटी के लिए कर योग्य है। लेकिन, धारा 2 की उप-धारा (14-ए) के प्रावधान के लिए, मौखिक उपहार का एक ज्ञापन, जिसने स्वयं कोई अधिकार नहीं बनाया और केवल उपहार या हिबा के पूर्ववर्ती, मौखिक लेनदेन को दर्ज किया, हमेशा स्टांप शुल्क के लिए कर योग्य नहीं माना गया है। इसी सिद्धांत पर इस अदालत ने हफीजा बीबी मामले में सुप्रीम कोर्ट फैसले के अनुचरण के बाद मोहम्मद शमीम अख्तर के मामले में कार्रवाई की।

18. यहां, वैधानिक संदर्भ बदल गया है क्योंकि उत्तर प्रदेश राज्य संशोधन की धारा 2 की उप-धारा (14-ए) ने उपहार के एक दस्तावेज को परिभाषित किया है, जो केंद्रीय क़ानून नहीं करता है। धारा 2 की उपधारा (14-ए) में उपहार के एक दस्तावेज की परिभाषा एक समावेशी परिभाषा है और स्पष्ट रूप से कहती है कि इसमें मौखिक उपहार बनाने या स्वीकार करने के लिए घोषणा के माध्यम से या अन्यथा उपहार का एक साधन शामिल है। संशोधन द्वारा नियोजित व्यक्त शब्द अधिनियम के प्रभावक्षेत्र का विस्तार करते हैं ताकि न केवल उपहार के उन उपकरणों को कवर किया जा सके जो स्वयं दान की गई संपत्ति को व्यक्त करते हैं, बल्कि मौखिक रूप से किए गए या स्वीकार किए गए उपहारों की घोषणाएं भी शामिल करते हैं। अचल संपत्ति के मौखिक उपहार द्वारा एक हस्तांतरण भारत में कॉर्पस जूरिस को मुस्लिम कानून को अन्यथा कुछ ज्ञात नहीं है, जिसके लिए संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम भत्ता बनाता है। अन्य सभी मामलों में, संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम धारा 123 के तहत निम्नानुसार अनिवार्य है:

> "123**. स्थानांतरण कैसे प्रभावित हुआ**.-- अचल संपत्ति का उपहार देने के उद्देश्य से, हस्तांतरण दाता द्वारा या उसकी ओर से हस्ताक्षरित एक पंजीकृत उपकरण द्वारा किया जाना चाहिए, और कम से कम दो

गवाहों द्वारा सत्यापित किया जाना चाहिए। चल संपत्ति का उपहार देने के उद्देश्य से, हस्तांतरण या तो पूर्वोक्त के रूप में हस्ताक्षरित पंजीकृत लिखत द्वारा या वितरण द्वारा प्रभावित किया जा सकता है।"

19. संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 129 मुस्लिम कानून के तहत मौखिक उपहार के लिए भत्ता और अन्य नागरिकों के लिए अकेले चल संपत्ति के मृत्यु शय्या उपहार बनाती है। धारा 129 में लिखा है:

129. **सेविंग ऑफ डोनेशन मॉर्टिस कौस एण्ड मुहम्मदन लॉ**- यह अध्याय मृत्यु के चिंतन में किए गए चल संपत्ति के उपहारों से संबंधित नहीं है, या मुहम्मदन कानून के किसी भी नियम को प्रभावित करने वाला नहीं माना जाएगा।

20. यह उपहार द्वारा निपटान से संबंधित मूल कानून है और 1899 के अधिनियम की धारा 2 की उपधारा (14-ए) के तहत राज्य संशोधन की शर्तों को देखते हुए, इसमें कोई संदेह नहीं है कि राज्य संशोधन के प्रवर्तन के बाद, मौखिक उपहार का एक ज्ञापन हिबा के पूर्ववर्ती लेनदेन को रिकॉर्ड करता है, चाहे वह कितना भी वर्णित हो और जिस भी तरह के शब्दों में लिखा गया हो, उपहार के साधन के रूप में स्टांप ड्यूटी के लिए कर योग्य है। विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा पारित इसके विपरीत आदेश को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

21. यह पुनरीक्षण सफल होता है और इसकी अनुमति है। दिनांक 07.12.2007 के आक्षेपित आदेश को एतद्द्वारा रद्द किया जाता है और आवेदन वाले पेपर नंबर 357-जीए -2 को विचारण न्यायालय की फाइल में बहाल किया जाता है, जिसे इस फैसले में मार्गदर्शन के अनुसार, पक्षों को सुनने के बाद नए सिरे से तय किया जाना है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उक्त आवेदन पर आदेश विचारण न्यायालय द्वारा इस आदेश की प्राप्ति के एक महीने के भीतर पारित किए जाएंगे।

22. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

23. रजिस्ट्रार जनरल (महानिबंधक) को निर्देश दिया जाता है कि वह इस आदेश की एक प्रति सभी विद्वान जिला न्यायाधीशों और मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकरण, उत्तर प्रदेश को परिचालित करे।

(2023) 1 ILRA 1355
पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक:इलाहाबाद 20.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चन्द्र शर्मा,

सिविल संशोधन संख्या 465/2012
साथ
सिविल संशोधन संख्या 486/2012

रमेश कुमार सिंह ...संशोधनवादी
बनाम
वीरेंद्र सिंह और अन्य ...उत्तरदाता

अधिवक्ता संशोधनवादी:
श्री सुमित डागा, श्री विक्रांत पांडे

अधिवक्ता उत्तरदाता:
श्री अभिजीत बनर्जी

किराया और बेदखली - अवैतनिक किराया और निष्कासन पर विवाद - कानूनी विवाद प्रारंभ हुआ, जिसमें नोटिस की वैधता, मासिक किराया राशि और डिफ़ॉल्ट शामिल थे - विचारणीय न्यायालय ने मकान मालिकों के पक्ष में निर्णय सुनाया – निष्कासन राहत से इनकार कर दिया - उच्च न्यायालय ने नोटिस के निष्कर्ष को अपास्त कर दिया - संशोधित धारा 106 का अनुपालन - नोटिस को घटाकर 15 दिन कर दिया गया - किराया राशि और डिफ़ॉल्ट की पुष्टि की गई - किरायेदार के विरुद्ध निष्कासन का आदेश दिया गया।

पुनरीक्षण निरस्त (ई-9)

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चन्द्र शर्मा द्वारा प्रदत्त)

1. चूँकि दोनों पुनरीक्षणों को न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय/अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 1, हाथरस द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 22.8.2012 के विरुद्ध क्रमशः प्रत्यर्थी-किरायेदार और वादी-मकान मालिकों द्वारा दायर किया गया है। इसलिए, दोनों पुनरीक्षणों का निर्णय इस सामान्य निर्णय द्वारा किया जा रहा है।

2. संक्षेप में, मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि वीरेंद्र सिंह और अन्य उस मकान के मालिक और मकान मालिक हैं, जिसमें विपक्षी-प्रत्यर्थी वर्ष 1994 से 10% जल एवं गृह कर के अलावा 1,000/- प्रतिमाह किराए पर किरायेदार है।

3. चूंकि वादी अपनी नौकरी के सिलसिले में लंबे समय तक हाथरस से बाहर रहता हैं इसलिए उसकी मां श्रीमती शांति देवी नाबालिग पोते राजू उर्फ अरविंद कुमार के साथ रहती थी। श्रीमती शांति देवी की वर्ष 2001 में मृत्यु हो गई, उसके बाद वादी प्रश्नगत मकान के मालिक और मकान मालिक हैं और किराया प्राप्त करने के हकदार हैं। प्रत्यर्थी किराए के भुगतान में बड़ा चूककर्ता है और उसने दिनांक 1.10.1999 से उक्त मकान का किराया नहीं

चुकाया है। जब वादीगण ने किराये की मांग की, तो उसने वादी पक्षकार को अनावश्यक रूप से परेशान करने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा के लिए वादी पक्षकार के खिलाफ झूठा मामला दर्ज कर दिया।

4. वादी ने अपने अधिवक्ता के माध्यम से दिनांक 11.8.2022 को कानूनी नोटिस भेजा और नोटिस प्राप्त होने के 30 दिनों के भीतर किराया और कर का भुगतान करने को कहा। नोटिस की तामील होने के बावजूद, प्रत्यर्थी ने किराया और करों की राशि का भुगतान नहीं किया, बल्कि झूठा और मनगढ़ंत जवाब दिया कि वह स्वयं 200/- रुपये प्रतिमाह के हिसाब से किरायेदार है और यह भी स्वीकार नहीं किया कि यह राशि उसके खिलाफ देय थी। प्रत्यर्थी की किरायेदारी समाप्त कर दी गई है। दिनांक 1.10.1999 से 31.18.2002 तक 25,000/- रुपये किराया, 3,500/- रुपये गृह कर और जल कर के साथ-साथ 300/- रुपये नोटिस का खर्च बकाया है। कुल 42,300/- रूपये बकाया है जो नोटिस के बावजूद प्रत्यर्थी द्वारा भुगतान नहीं किया गया है। इसलिए प्रत्यर्थी हटाये जाने योग्य है और और किराये की बकाया राशि वसूल किये जाने योग्य है और प्रत्यर्थी-किरायेदार भी वादग्रस्त दुकान का उपयोग और कब्जे के लिए प्रति माह 2,500/- रुपये का भुगतान करने का दायी है। मुकदमे को महत्व देते हुए और उचित न्यायालय शुल्क का भुगतान करने के बाद, वादी ने मुकदमा दायर किया था।

5. लिखित बयान 11-सी में प्रत्यर्थी ने वादीगण को वादग्रस्त दुकान का मालिक और मकान मालिक होना स्वीकार किया और कहा है कि वादीगणों के लिए हेतुक उत्पन्न नहीं होता है; वे किसी भी राहत के हकदार नहीं हैं; प्रत्यर्थी किरायेदार ने दुकान को दिनांक 10.2.1992 से 200/- रूपये प्रतिमाह की दर से गृह एवं जल कर सहित किराये पर श्रीमती शांति देवी से लिया है; वह श्रीमती शांति देवी को नियमित रूप से किराया चुकाता रहा है, लेकिन उन्होंने कभी कोई रसीद नहीं दी, हालाँकि, वह लेन-देन को एक डायरी में नोट करती थीं; वर्ष 2001 में शांति देवी की मृत्यु हो गई, उसके बाद किरायेदार ने नवंबर 2001 तक धर्मेंद्र कुमार को किराया दिया; दिनांक 20.11.2001 को धर्मेंद्र कुमार का भी निधन हो गया, इसके बाद वादी ने उनसे अलग से किराए की मांग की और फरवरी, 2002 के महीने में अपने अधिवक्ता के माध्यम से नोटिस दिया और उसके बाद आपसी सहमति से किराए की रसीद दिए बिना प्रत्यर्थी से किराया प्राप्त कर लिया लेकिन भुगतान को डायरी में नोट कर लिया और प्रत्यर्थी के हस्ताक्षर भी ले लिए; उक्त डायरी वादी के कब्जे में है।

6. दिनांक 11.8.2002 को नोटिस प्राप्त होने पर प्रत्यर्थी को वादी के दुराशय के बारे में पता चला और उसने दिनांक 4.9.2002 को उत्तर तैयार किया और दिनांक 5.9.2002 को अपने अधिवक्ता के माध्यम से भेजा। प्रत्यर्थी-किरायेदार ने दिनांक 11.6.2002 से 10.9.2002 तक का उचित किराया भी भेजा जो वादी को प्राप्त नहीं हुआ। नोटिस पूर्णतया अवैध एवं विधिविरूद्ध है जिसके आधार पर किरायेदारी कभी समाप्त नहीं होती। नोटिस दिनांक 11.8.2002 को केवल दो माह का किराया बकाया था जिसे जानबूझकर वादी द्वारा प्राप्त नहीं किया गया। नोटिस में, वादी पक्ष ने गलत तरीके से पुष्टि की है कि किराया दिनांक 1.10.1999 से बकाया है। किरायेदारी महीने की पहली तारीख से नहीं, बल्कि 11 तारीख से शुरू होती थी। वादी ने कोई दस्तावेज़ दाखिल नहीं किया है, इसलिए मुकदमा सीपीसी के आदेश 7 नियम 14, संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 106 और उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 वर्ष 1972 की धारा 20 (2) (ए) द्वारा बाधित है। राजू पुत्र धर्मेन्द्र कुमार बालिग व्यक्ति है, नाबालिग नहीं, वाद पत्र में उसे गलती से नाबालिग दर्शाया गया है।

7. प्रत्यर्थी ने स्थायी निषेधाज्ञा के लिए सिविल न्यायाधीश (जे.डी.) हाथरस की न्यायालय में मूल वाद संख्या 492 वर्ष 2002 (रमेश कुमार बनाम राजू) संस्थित की, जिसमें प्रत्यर्थी के पक्ष में अंतरिम निषेधाज्ञा जारी की गई है। वादग्रस्त मकान हाथरस के बाहरी इलाके मधुगिरी में स्थित है, जहां कोई बाजार नहीं है और दुकान का किराया 200/- रुपये मासिक से अधिक नहीं है। अत: वाद जुर्माने सहित खारिज किये जाने योग्य है।

8. वादी ने 12सी1 की नकल दायर की और लिखित बयान की सामग्री से इनकार किया और वादपत्र के कथानक को दोहराया।

9. वादी पक्ष की ओर से पी.डब्ल्यू.-1, वीरेन्द्र सिंह एवं पी.डब्ल्यू.-2, ओम प्रकाश का परीक्षण किया गया। दस्तावेज़ी साक्ष्य में सूची 18 सी1 नोटिस, डाक रसीद, पावती और कथित डायरी के कागजात दाखिल किए गए थे।

10. प्रत्यर्थी-किरायेदार की ओर से, उसने स्वयं को डी.डब्ल्यू.-1 और कोमल सिंह को डी.डब्ल्यू.-2 के रूप में परीक्षित किया। प्रत्यर्थी-किरायेदार ने दस्तावेजी साक्ष्य में चालानी फॉर्म, निविदा रसीदें; नोटिस दिनांक 20.2.2002, रजिस्ट्री रसीद, उत्तर की प्रति दिनांक 4.9.2022 और अन्य निविदाएं दाखिल की थीं।

11. सुनवाई के बाद, विद्वान विचारण न्यायालय ने निर्धारण के लिए निम्नलिखित बिंदु तय किए:

> *(1) क्या वादी द्वारा दिया गया दिनांक 11.8.2002 का नोटिस कानून के विरुद्ध है और यह नोटिस प्रत्यर्थी-किरायेदार की किरायेदारी को समाप्त नहीं करता है?*
>
> *(2) जैसा कि प्रतिवादी-किरायेदार द्वारा आरोप लगाया गया था कि क्या दुकान की दर गृह और जल कर के अलावा 1000/- रुपये प्रति माह थी या जैसा कि वादी द्वारा आरोप लगाया*

गया था कि क्या दुकान की दर गृह और जल कर सहित प्रति माह 200/- थी?

(3) क्या प्रत्यर्थी-किरायेदार ने प्रश्नगत दुकान का किराया चुकाने में कोई चूक की है, यदि हां, तो इसका प्रभाव क्या होगा?

(4) क्या वादी किसी राहत का हकदार है? यदि हाँ, तो कैसे?

12. इस मामले में विचारण न्यायालय ने बिंदु संख्या 2 और 3 पर मकान मालिक के पक्ष में फैसला सुनाया है लेकिन बिंदु संख्या 1 का फैसला वादी/मकान मालिकों के खिलाफ किया है और तदनुसार बिंदु संख्या 4 का निर्णय आंशिक रूप से प्रत्यर्थी-किरायेदार के पक्ष में किया है और बेदखली की राहत से इनकार कर दिया है।

13. मुद्दा संख्या 1 के संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों के खिलाफ और तदनुसार बिंदु संख्या 4 के माध्यम से आंशिक रूप से राहत की अनुमति देने के संबंध में, वादी ने रिवीजन संख्या 486 वर्ष 2012 दायर किया है। बिन्दु क्रमांक 2 एवं 3 में 1000/- रूपये प्रति माह की दर तथा गृह एवं जल कर स्वीकार करने के संबंध में की गई टिप्पणियों और प्रत्यर्थी-किरायेदार के कथानक को स्वीकार न करने और प्रत्यर्थी-किरायेदार को चूककर्ता मानने और उसे वादी के कथानक के अनुसार बकाया किराया और करों का भुगतान करने का निर्देश देने से व्यथित होकर प्रत्यर्थी ने रिवीजन संख्या 465 वर्ष 2012 दायर किया है।

14. यह न्यायालय साक्ष्य और संबंधित कानून के आधार पर विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्षों की सत्यता का निर्णय कर रहा है। अत: दोनों पुनरीक्षणों का निर्णय निम्नानुसार किया जा रहा है।

15. ***निर्धारण के लिए बिंदु संख्या - 1;***

यह बिंदु वादी के खिलाफ तय किया गया है और विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि नोटिस का परिशीलन करने पर, उन्होंने पाया कि 30 दिनों की समाप्ति के बाद, किरायेदारी समाप्त नहीं की गई है, हालांकि इसमें 30 दिनों के भीतर कब्जा प्रदान करने का उल्लेख किया गया है, इसलिए प्रश्नगत नोटिस संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 106 में प्रतिपादित सिद्धांतों के विपरीत पाया गया है। विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि नोटिस दोषपूर्ण है, इसलिए, प्रत्यर्थी - किरायेदार की किरायेदारी को कानून के अनुसार समाप्त नहीं किया जा सकता है और उसे बेदखल नहीं किया जा सकता है।

इस मामले में, नोटिस दिनांक 11.8.2002 को दिया गया, प्रत्यर्थी ने स्वीकार किया कि दिनांक 4.9.2002 को उसने नोटिस का उत्तर तैयार कर लिया था और दिनांक 5.9.2002 को वादीगण को भेज दिया था। विचारण न्यायालय का रिकॉर्ड इस न्यायालय के पास उपलब्ध नहीं है। हालाँकि, कुछ प्रासंगिक कागजात किरायेदार द्वारा रिवीजन के संलग्नक के रूप में संलग्न किए गए हैं। वादपत्र के अवलोकन से पता चलता है कि वादपत्र दिनांक 29.10.2009 को दाखिल किया गया था, जबकि विचारण न्यायालय ने निर्णय में इसे दिनांक 21.10.2002 को पेश करने के लिए लिखा है जो कि टाइपिंग की गलती हो सकती है।

इस बिंदु पर उचित निर्णय के लिए संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम 1882 की धारा 106 का उल्लेख करना उचित होगा।

संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 106;

1[106. लिखित संविदा या स्थानीय प्रथा के अभाव में कुल पट्टों की कालावधि- (1) तत्प्रतिकूल संविदा या स्थानीय विधि या प्था न हो तो कृषि या विनिर्माण के प्रयोजनों के लिए स्थावर संपत्ति का पट्टा ऐसा वर्षानुवर्षी पट्टा समझा जाएगा जो या तो पट्टाकर्ता या पट्टेदार द्वारा छह मास की सूचना द्वारा पर्यवसेय है; और किसी अन्य प्रयोजन के लिए स्थावर संपत्ति का पट्टा मासानुमासी पट्टा समझा जाएगा जो या तो पट्टाकर्ता या पट्टेदार द्वारा पंद्रह दिन की सूचना द्वारा पर्यवसेय है।

(2) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, उपधारा (1) में वर्णित कालावधि सूचना की प्राप्ति की तारीख से प्रारंभ होगी।

(3) जहां कोई वाद या कार्यवाही उपधारा (1) में वर्णित कालावधि के अवसान के पश्चात् फाइल की गई है, वहां उस उपधारा के अधीन कोई सूचना केवल इस कारण अविधिमान्य नहीं समझी जाएगी कि उसमें वर्णित कालावधि उक्त उपधारा में विनिर्दिष्ट कालावधि से कम है।

(4) उपधारा (1) के अधीन प्रत्येक सूचना लेखबद्ध और उसे देने वाले व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से हस्ताक्षरित होगी और उस पक्षकार को जिसे उसके द्वारा आबद्ध करना आशयित है या तो डाक द्वारा भेजी जाएगी या स्वयं उस पक्षकार को या उसके कुटुम्बियों या नौकरों में से किसी एक को, उसके निवास पर निविदत्त या परिदत्त की जाएगी, या (यदि ऐसी निविदा या परिदान साध्य नहीं है तो) संपत्ति के किसी सहजदृश्य भाग पर लगा दी जाएगी।]

संशोधन अधिनियम 3 वर्ष 2002 द्वारा, धारा 106 को दिनांक 31.12.2002 से संशोधित किया गया है जिसके द्वारा अब धारा 106 में चार उप-धाराएं शामिल हैं और नोटिस की अवधि अब 15 दिन है जहां पट्टा कृषि और विनिर्माण के अलावा किसी अन्य उद्देश्य के लिए है,

यदि किरायेदारी महीने दर महीने है लेकिन जहां किरायेदारी साल दर साल है, तो नोटिस की अवधि 6 महीने होगी क्योंकि यह संशोधन से पहले की थी। चूंकि इस मामले में संशोधन से पहले दिनांक 11.8.2002 को नोटिस दिया गया था, इसलिए इस मामले में नोटिस 30 दिन पहले दिया जाना चाहिए था। उपरोक्त धारा की संशोधित उपधारा 3 महत्वपूर्ण है। जिसके अनुसार नोटिस केवल इसलिए अमान्य नहीं माना जाएगा क्योंकि उसमें उल्लिखित अवधि उस उपधारा के तहत निर्दिष्ट अवधि से कम हो जाती है, जहां उस उपधारा में उल्लिखित अवधि की समाप्ति के बाद कोई मुकदमा या कार्यवाही दायर की जाती है। इस मामले में नोटिस दिनांक 11.8.2002 को दिया गया था, नोटिस शहर के भीतर पंजीकृत डाक के माध्यम से भेजा गया था इसलिए यह प्रत्यर्थी-किरायेदार को तीन या चार दिनों के भीतर प्राप्त हो गया होगा। हालाँकि रसीद/पावती यह निष्कर्ष निकालने के लिए रिकॉर्ड पर नहीं है कि प्रत्यर्थी-किरायेदार को कब और किस तारीख को नोटिस मिला था, लेकिन वह स्वीकार करता है कि कि उसने दिनांक 4.9.2002 को नोटिस का उत्तर तैयार कर लिया था और उसे 5.9.2002 को अपने अधिवक्ता के माध्यम से वादी को भेज दिया था। अगर दिनों की गणना की जाए तो पता चलता है कि 4.9.2002 से भी मुकदमा 30 दिन बाद यानि 29.10.2002 को संस्थित किया गया था। इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्यर्थी -किरायेदार को नोटिस का अनुपालन करने के लिए 30 दिन की अवधि प्रदान नहीं की गई थी।

नोटिस रिकॉर्ड पर नहीं है, नोटिस की प्रति किसी भी पक्ष द्वारा दायर नहीं की गई है लेकिन विचारण न्यायालय ने 'नोटिस के दूसरे प्रस्तर' पर ध्यान दिया है जिसमें लिखा है कि नोटिस प्राप्त होने पर 30 दिन के अन्दर प्रत्यर्थी को बकाया किराया अदा करना होगा तथा वाद में दुकान का कब्जा खाली करना होगा तथा वादी को वास्तविक कब्जा प्रदान करना होगा।

विद्वान विचारण न्यायालय ने न्यायिक दृष्टांत को ***प्रभाकर अधिकारी देवस्थान विभाग जोधपुर और अन्य बनाम जमशेद अली और अन्य, 1999 ए.आई.एच.सी. 225 (राजस्थान उच्च न्यायालय)*** का सन्दर्भ देते हुए निष्कर्ष निकाला कि यदि नोटिस में यह नहीं लिखा है कि 30 दिन की समाप्ति के बाद किरायेदारी समाप्त कर दी जाएगी, तो उक्त नोटिस अवैध है और ऐसे नोटिस द्वारा किरायेदारी समाप्त नहीं की जा सकती है। नोटिस दिनांक 11.8.2002 को दी गयी थी, जबकि मुकदमा दो महीने और 18 दिनों की समाप्ति के बाद दिनांक 29.10.2002 को संस्थित किया गया था, इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वादी-मकान मालिकों द्वारा दिया गया नोटिस कानूनी है, इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा दिया गया निष्कर्ष प्रत्यर्थी-किरायेदार की बेदखली के संबंध में नोटिस को कानूनी नहीं मानने वाले बिंदु संख्या 1 को बदल दिया गया है और यह निष्कर्ष निकाला गया है कि संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 106 के तहत नोटिस, मुकदमे के प्रयोजनों के लिए कानूनी है। इस निष्कर्ष को संशोधन अधिनियम 2002 के खंड 3 से समर्थन मिलता है जो इस प्रकार है:

> *"जैसा कि धारा 2 द्वारा संशोधित किया गया है, मूल अधिनियम की धारा 106 के प्रावधान (ए) सभी नोटिस जिनके अनुसरण में कोई मुकदमा या कार्यवाही इस अधिनियम के प्रारंभ पर लंबित हैं, पर लागू होंगे।"*
>
> *इस प्रकार केवल 15 दिन का नोटिस ही पर्याप्त है।*

16. ***निर्धारण के लिए बिंदु संख्या - 2;***

वादपत्र के कथनों एवं लिखित कथन के आधार पर जैसा कि प्रत्यर्थी-किरायेदार ने आरोप लगाया है कि निर्धारण हेतु यह बिन्दु निर्धारित किया गया था कि वाद में दुकान का मासिक किराया 1,000/- रूपये प्रतिमाह जल एवं गृह कर सहित है अथवा जल एवं गृह कर सहित मात्र 200/- रूपये प्रतिमाह है।

इस मामले का फैसला विचारण न्यायालय ने सबूतों के आधार पर मकान मालिक के पक्ष में सुनाया है। विचारण न्यायालय ने माना है कि वादी के गवाहों के साक्ष्य में कोई कमी या स्वीकारोक्ति नहीं है जिसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि किराया दर 1,000/- प्रति माह से कम नहीं है और इसके अलावा गृह और जल कर भी है। पी.डब्ल्यू.-1 और पी.डब्ल्यू.-2 ने डायरी को साबित कर दिया है और इसे विचारण न्यायालय ने स्वीकार कर लिया है। प्रत्यर्थी किरायेदार कोई ठोस और विश्वसनीय सबूत पेश नहीं कर सका कि किराए की दर केवल 200/- रुपये प्रति माह थी और इसमें गृह एवं जल कर भी शामिल है। यद्यपि प्रत्यर्थी-किरायेदार ने संपत्ति को शहर के बाहरी इलाके में स्थित होने का उल्लेख किया था, लेकिन जांच में उसने स्वीकार किया था कि दुकान प्रधान डाकघर से 10-15 कदम की दूरी पर स्थित है। उसने यह भी स्वीकार किया है कि वादग्रस्त दुकान के पीछे गोवर अस्पताल है और कुछ ही दूरी पर हाथरस कोतवाली भी स्थित है। प्रत्यर्थी ने यह भी स्वीकार किया कि कोतवाली एवं मुख्यालय दोनों शहर के मध्य में स्थित हैं। उक्त साक्ष्यों के आधार पर विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि इतने पॉश इलाके में वादग्रस्त दुकान की दर 1,000/- रूपये प्रति माह से कम नहीं हो सकती जिसमें गृह एवं जल कर शामिल हों।

विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थी-किरायेदार पर इस तथ्य को साबित करने की जिम्मेदारी भी डाली और पाया कि प्रत्यर्थी-किरायेदार अपने कर्तव्य का निर्वहन नहीं कर सका।

यह स्थापित कानून है कि किराए के भुगतान को साबित करने का बोझ किरायेदार पर है। इस संबंध में विद्वान विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णयों का उदाहरण दिया है-

1) सुरेश चंद्र और अन्य बनाम विशेष न्यायाधीश (ई.सी. एक्ट)/अपर जिला न्यायाधीश, जालौन-उरई, 2005 ए.एल.जे. (एन.ओ.सी.) 1062 (इलाहाबाद)।

2) मोहम्मद सिद्दीकी बनाम द्वितीय अपर जिला जज उन्नाव एवं अन्य, 1997 (15) एल सी डी-751।

3) श्रीमती सुलोचरानी जैन और अन्य बनाम आठवें अपर जिला जज, सहारनपुर और अन्य, 2002 (20) एलसीडी 785 (इलाहाबाद उच्च न्यायालय)।

4) बलराम बनाम बैकुंठी देवी, 1988 एडब्ल्यूसी 1528।

5) लक्ष्मी नारायण गुप्ता बनाम श्रीमती शांति निगम, 2003 (21) एल.सी.डी. 1301।

6) श्रीमती शांति देवी मिश्रा बनाम श्री गोपाल नारायण मिश्रा और अन्य, 1983, एएलजे, 839।

उपरोक्त न्यायिक उदाहरणों में प्रतिपादित सिद्धांतों के आधार पर, विद्वान विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि किराए के भुगतान को साबित करने का बोझ किरायेदार पर है। यह न्यायालय भी इस निष्कर्ष के बारे में विचारण न्यायालय के अनुरूप है।

बलराम (उपरोक्त) मामले में यह भी अवधारित किया गया है कि उ.प्र. अधिनियम 13, 1972 की धारा 7 के अनुसार, इसके विपरीत कोई समझौता न होने पर जल एवं गृहकर का भुगतान करने का भार किरायेदार पर पड़ता है। इस मामले में प्रत्यर्थी यह साबित नहीं कर सका कि मकान मालिक और किरायेदार के बीच कोई समझौता था कि जल और गृह कर का भुगतान वादी-मकान मालिकों द्वारा किया जाएगा या फिर इसे किराए में भी शामिल किया गया है।

श्रीमती शांति देवी (उपरोक्त) मामले में यह अवधारित किया गया है कि यदि यू.पी. अधिनियम संख्या 13, 1972 की धारा 20 (4) के तहत किराया जमा नहीं करने पर किरायेदार को बेदखल किया जा सकता है।
यह भी प्रतिपादित किया गया है कि जलकर का बकाया किरायेदार को जमा करना होगा। इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला है कि चूंकि घर का निर्माण यू.पी. अधिनियम, 13, 1972 के लागू होने की तारीख यानी 26 अप्रैल, 1985 से पहले किया गया था इसलिए यू.पी. अधिनियम, 13, 1972 लागू नहीं होता। इस संबंध में धारा 2 का प्रासंगिक भाग यहां पुन: प्रस्तुत किया गया है:

[परन्तु यह कि जहां किसी भवन का निर्माण राज्य सरकार या भारतीय जीवन बीमा निगम या किसी बैंक या सहकारी समिति या उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद से ऋण या अग्रिम के रूप में प्राप्त धनराशि से किया गया हो, और ऐसे ऋण या अग्रिम की चुकौती की अवधि उपरोक्त दस वर्ष की अवधि से अधिक है तो इस उप-धारा में दस वर्ष की अवधि का संदर्भ पंद्रह वर्ष की अवधि या ऐसे ऋण या अग्रिम (ब्याज सहित) की वास्तविक चुकौती की तारीख के साथ समाप्त होने वाली अवधि, जो भी कम हो, का संदर्भ माना जाएगा।]:

[परन्तु यह कि जहां किसी भवन का निर्माण 26 अप्रैल 1985 को या उसके बाद पूरा हुआ हो तो इस उपधारा में दस वर्ष की अवधि का संदर्भ उस तारीख से 6 [चालीस वर्ष] की अवधि का संदर्भ माना जाएगा जिस दिन इसका निर्माण पूरा हुआ है।]

स्पष्टीकरण I. [इस धारा के प्रयोजनों के लिए],-

(क) किसी भवन का निर्माण उस तारीख को पूरा हुआ माना जाएगा जिस दिन उसके पूरा होने की सूचना क्षेत्राधिकार वाले स्थानीय प्राधिकारी को दी जाएगी या अन्यथा दर्ज की जाएगी, और मूल्यांकन के अधीन भवन के मामले में, वह तारीख जिस दिन उसका पहला मूल्यांकन प्रभावी होता है, और जहां उक्त तारीखें अलग-अलग हैं, वहां उक्त तारीखों में से सबसे पहले, और ऐसी किसी रिपोर्ट, रिकॉर्ड या मूल्यांकन के अभाव में, वह तारीख जिस पर वास्तव में पहली बार कब्जा किया गया है (केवल निर्माण की देखरेख या निर्माणाधीन भवन की सुरक्षा के प्रयोजनों के लिए कब्जे को शामिल नहीं किया गया है):

परन्तु यह कि किसी भवन के अलग-अलग हिस्सों के संबंध में निर्माण पूरा होने की अलग-अलग तारीखें हो सकती हैं, जिन्हें या तो अलग-अलग इकाइयों के रूप में डिजाइन किया गया है या मकान मालिक और एक या अधिक किरायेदारों या अलग-अलग किरायेदारों द्वारा अलग-अलग कब्जा कर लिया गया है;

(ख) निर्माण में मौजूदा भवन के स्थान पर कोई भी नया निर्माण शामिल है जिसे पूरी

तरह या काफी हद तक ध्वस्त कर दिया गया है;

(ग) जहां किसी मौजूदा भवन में ऐसा परिवर्तन किया जाता है कि मौजूदा भवन उसका केवल एक छोटा सा हिस्सा बन जाती है, तो मौजूदा भवन सहित पूरे भवन को उक्त परिवर्तन के पूरा होने की तारीख पर निर्मित माना जाएगा।

इस न्यायालय का सुविचारित मत है कि किराये की दर 1,000/- रूपया प्रति माह साथ में गृह एवं जल कर भी था जिसे पी.डब्लू.-1 और पी.डब्लू.-2 के साक्ष्यों से भी साबित किया गया है, जिन्होंने उस डायरी को भी साबित किया है जिसमें प्रत्यर्थी-किरायेदार द्वारा किए गए किराए का भुगतान दर्ज किया गया है।

इस प्रकार मौखिक और दस्तावेजी सबूतों के आधार पर और मुकदमे में दुकान के स्थान पर विचार करते हुए, यह न्यायालय निष्कर्ष निकालता है कि इस बिंदु पर विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष सही हैं।

17. ***निर्धारण के लिए बिंदु संख्या - 3*** में यह विरचित किया गया है कि क्या प्रतिवादी-किरायेदार ने किराए के भुगतान में चूक की है। यह बिंदु भी प्रत्यर्थी-किरायेदार के विरुद्ध और मकान मालिक के पक्ष में तय किया गया है। पी.डब्ल्यू.-1 और पी.डब्ल्यू.-2 के साक्ष्यों से और डायरी के आधार पर भी यह साबित होता है कि प्रत्यर्थी-किरायेदार ने किराया नहीं दिया है और उसने गलत बचाव किया है कि उसने आज तक का किराया चुका दिया है और जब वादी द्वारा किराये को स्वीकार नहीं किया गया तो उसने किराये की रकम मनीआर्डर द्वारा भेज दी।

यह भी साबित हो चुका है कि किराया 1,000/- रूपया प्रति माह था और किरायेदार को गृह और जल कर का 10% भी देना पड़ता था। दस्तावेजी साक्ष्य के रूप में, प्रत्यर्थी-किरायेदार ने कुछ निविदाएं दायर की थीं, जिनका विचारण न्यायालय ने परिशीलन किया और विचारण न्यायालय ने पाया कि पांच निविदाओं के माध्यम से कुछ राशि किरायेदार द्वारा जमा की गई है, लेकिन उसने किराए के अलावा गृह और जल कर जमा नहीं किया है और और उसने नोटिस तामील होने के बाद प्रति माह 1,000/- रूपया किराया जमा नहीं किया है। प्रत्यर्थी-किरायेदार ने स्वीकृत किराया न्यायालय में जमा नहीं किया है, इसलिए यह निष्कर्ष निकाला गया है कि प्रत्यर्थी-किरायेदार ने किराए का भुगतान करने में चूक की है। इस प्रकार, निर्धारण का बिंदु संख्या 3 प्रत्यर्थी -किरायेदार के खिलाफ जाता है और इस संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष की पुष्टि की जाती है।

18. ***निर्धारण के लिए बिंदु संख्या - 4;***

उपरोक्त विवेचना के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि प्रत्यर्थी-किरायेदार चूककर्ता है, उसने किराया एवं कर का भुगतान नहीं किया है, नोटिस में कोई त्रुटि नहीं है, इसलिए, विचारण न्यायालय ने बेदखली की राहत के संबंध में मुकदमे को गलत तरीके से खारिज कर दिया है।

चूंकि यह पाया गया है कि संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 106 के तहत मुकदमा खराब नहीं था, इसलिए, वादी-जमींदारों द्वारा दावा की गई राहत के लिए मुकदमे को पूरी तरह से डिक्री किया जाना था।

19. तदनुसार दोनों पुनरीक्षणों को निर्णीत किया जाता है।

<u>आदेश</u>

(i). सिविल रिवीजन संख्या 465 वर्ष 2012 को लागत के साथ खारिज किया जाता है।

(ii). सिविल रिवीजन संख्या 486 वर्ष 2012 की अनुमति दी जाती है और विचारण न्यायालय द्वारा पहले ही दी गई अन्य राहतों के अलावा प्रत्यर्थी-किरायेदार (रमेश कुमार सिंह) के खिलाफ वादग्रस्त दुकान से बेदखली का आदेश भी पारित किया जाता है।

(iii). इस आदेश की एक प्रति सिविल रिवीजन संख्या 486 वर्ष 2012 (वीरेंद्र सिंह एवं अन्य बनाम रमेश कुमार सिंह) के रिकार्ड पर रखी जाए।

(iv). इस निर्णय की एक प्रति संबंधित फाइल में रखने के लिए न्यायाधीश लघुवाद न्यायालय/अपर जिला न्यायाधीश न्यायालय संख्या-1, हाथरस की अदालत को भेजी जाए।

(2023) 1 ILRA 1362
अपीलीय क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 14.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेन्द्र ठाकेर
माननीय न्यायमूर्ति अजय त्यागी

आपराधिक अपील संख्या-5737 वर्ष 2013

अजयराज @ राजा ... अपीलकर्ता (जेल में)
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य ... प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
श्री ए. सी श्रीवास्तव, श्री उत्तर कुमार गोस्वामी (ए.सी.)

प्रतिवादी के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता, श्री एस.के.दुबे

आपराधिक कानून- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 3- इसमें कोई संदेह नहीं है कि जब घर के अंदर कोई घटना होती है, तो केवल परिवार के सदस्य और रिश्तेदार चश्मदीद गवाह होते हैं, लेकिन प्रस्तुत मामले में कथित चश्मदीद गवाहों की गवाही विश्वास प्रेरित नहीं करती है - सूचनकर्ता ने स्वीकार किया है कि उसने घटना नहीं देखी थी। अ०सा०-4 और अ०सा०-5 अन्य कथित चश्मदीद गवाह हैं लेकिन उनके साक्ष्य में कई अहम और प्रासंगिक विरोधाभास हैं जो मामले की जड़ तक जाते हैं।

यद्यपि मृतक के परिवार के सदस्यों की गवाही पर केवल इस आधार पर संदेह नहीं किया जा सकता है कि वे मृतक के परिवार के सदस्य हैं, लेकिन जहां कथित चश्मदीद गवाहों की गवाही में अहम और प्रासंगिक विरोधाभास हों जो अभियोजन पक्ष के मामले की जड़ तक जाते हैं, तो ऐसी गवाही संदिग्ध और अविश्वसनीय हो जाती है।

आपराधिक कानून- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा-3 - इसमें कोई संदेह नहीं है कि शव परीक्षण रिपोर्ट में दिखाई गई मृत्यु पूर्व चोट आग्नेयास्त्रों द्वारा दी जा सकती है, लेकिन अभियोजन पक्ष को उचित संदेह से परे साबित करना होगा कि आग्नेयास्त्र का इस्तेमाल अभियुक्त - अपीलकर्ता द्वारा किया गया था। अ०सा०-6 की गवाही पूरी तरह से विश्वसनीय नहीं है और किसी अन्य सबूत से इसकी पुष्टि नहीं होती है। आरोपी को चश्मदीद गवाह की एकमात्र गवाही के आधार पर दोषी ठहराया जा सकता है लेकिन उसकी गवाही पूरी तरह विश्वसनीय होनी चाहिए। हमारे मामले में, किसी भी कथित चश्मदीद गवाह की कोई गवाही विश्वसनीय नहीं पाई जाती है।

जहां चश्मदीद गवाहों की गवाही पूरी तरह से अविश्वसनीय है, तो आरोपी को केवल इसलिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि शव परीक्षण रिपोर्ट में मृत्यु पूर्व चोट चक्षुक वर्णन संबंधी आरोप की पुष्टि करती है। (पैरा 16, 19, 21)

आपराधिक अपील की अनुमति दी। (ई-3)

(माननीय न्यायमूर्ति अजय त्यागी द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री उत्तर कुमार गोस्वामी, जो न्यायमित्र हैं, और राज्य के लिए शासकीय अधिवक्ता श्री पतंजलि मिश्रा को सुना।

2. यह अपील अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-12, जिला मेरठ द्वारा सत्र परीक्षण संख्या-664 वर्ष 2010 (प्रकरण अपराध संख्या 665 वर्ष 2009 में) (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अजयराज @ राजा और अन्य) में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 16.11.2013 को चुनौती देती है, जिसमें भारतीय दंड संहिता, 1860 (इसके बाद 'भ०द०वि०' के रूप में संदर्भित) की धारा 302 के तहत अभियुक्त-अपीलकर्ता को दोषी ठहराया गया था और अभियुक्त-अपीलकर्ता को 50 रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी। जुर्माने की अदायगी न करने पर एक वर्ष की अवधि के लिए कारावास की सजा भुगतनी होगी।

3. रिकॉर्ड से लिए गए संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि अ०सा०-1, विनोद कलंजारी ने पुलिस अधिकारियों को पहली सूचना दी जिसमें कहा गया था कि 1.12.2009 की सुबह लगभग 6:15 बजे, तीन अज्ञात युवक कलंजारी गांव में उनके घर में घुस गए और अपने छोटे भाई सुबोध कुमार की मौत का कारण बनने के इरादे से अंधाधुंध गोलीबारी की जिससे उसका भाई गंभीर रूप से घायल हो गया और आरोपी व्यक्ति हवाई फायरिंग करते हुए भाग गए। वह अपने घायल भाई को परिजनों व ग्रामीणों की मदद से इलाज के लिए के.एम.सी. अस्पताल ले गया और उसे भर्ती करवाया जहां उसका इलाज चल रहा है और उसकी हालत गंभीर बनी हुई है।

4. थाना-जानी में तत्कालीन कांस्टेबल क्लर्क अ०सा०-3 ने उपरोक्त लिखित शिकायत के आधार पर धारा 307 के तहत अपराध के लिए सुबह 8:05 बजे ही 1-12-09 को चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रदर्श क-4 तैयार की थी। उक्त की प्रविष्टि उसी दिन सुबह 8.05 बजे प्रदर्श क-13 के रूप में थाना जानी में तैनात कांस्टेबल क्लर्क अ०सा०-12 द्वारा की गई थी। इलाज के दौरान घायल की मौत के बाद धारा 302 भ०द०वि० के तहत केस दर्ज किया गया, शव परीक्षण किया गया।

5. सम्मन किए जाने पर, आरोपी व्यक्ति को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उन्होंने इन्कार किया और विचारण चाहा। जिस अपराध के लिए अभियुक्त पर आरोप लगाया गया था, वह सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था, इसलिए अभियुक्त-अपीलकर्ता सत्र न्यायालय के लिए प्रतिबद्ध किया गया। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने धारा 302 भ०द०वि० के तहत आरोप तय किए।

6. मुकदमा शुरू हुआ और अभियोजन पक्ष ने 12 गवाहों की जांच की जो इस प्रकार हैं:

1	विनोद कुमार	अ०सा०-1
2	डा संजय शर्मा	अ०सा०-2
3	प्रदीप कुमार	अ०सा०-3
4	राधा	अ०सा०-4
5	अभिमन्यु	अ०सा०-5
6	सीमा	अ०सा०-6
7	सत्यपाल सिंह	अ०सा०-7
8	प्रताप सिंह	अ०सा०-8
9	डा संजीव ललवानी	अ०सा०-9
10	राजीव शर्मा	अ०सा०-10
11	चंद्र प्रकाश चतुर्वेदी	अ०सा०-11
12	ज्ञान दास	अ०सा०-12

7. चक्षुक संस्करण के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज दायर किए गए थे:

1	प्राथमिकी	प्रदर्श क-4
2	तहरीरी रिपोर्ट	प्रदर्श क-1
3	ऐप्लकैशन	प्रदर्श क-10
4	शव का सुप्रदगी नाम	प्रदर्श क-9
5	फर्द बरमदगी	प्रदर्श क-10
6	कारतूस और खाली कारतूस का फर्द बरमदगी	प्रदर्श क-6
7	सी एम ओ को चिट्ठी	प्रदर्श क-6A
8	मेडिकल रिपोर्ट	प्रदर्श क-3
9	बयान	प्रदर्श क-8
10	शव परीक्षण चिकित्सक को चिट्ठी	प्रदर्श क-7
11	शव परीक्षण रिपोर्ट	प्रदर्श क-11
12	पंचायतनामा	प्रदर्श क-16B
13	आरोप पत्र	प्रदर्श क-12

8. मुकदमे के अंत में धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्त का बयान दर्ज करने और अभियोजन और बचाव पक्ष की ओर से दलीलें सुनने के बाद, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अपीलकर्ता को दोषी ठहराया।

9. अपीलकर्ता के लिए न्याय मित्र ने सबसे पहले प्रस्तुत किया कि इस मामले में कोई चश्मदीद गवाह नहीं है। तथ्य के सभी गवाह 'प्लांटेड' (प्रायोजित) हैं। अ०सा०-1 (विनोद कुमार) सूचनाकर्ता ने अपनी गवाही में स्वीकार किया है कि जब कथित घटना हुई थी तो वह घटनास्थल पर मौजूद नहीं था। अ०सा०-4 (राधा) मृतक की पत्नी है, उसने अपने मुख्य परीक्षण में घटना का वर्णन किया है। अपने मुख्य परीक्षण में उसने गवाही दी है कि वह और उसका पति एक साथ गेट से बाहर आए थे। यदि ऐसा था तो वह आगे कैसे गवाही दे सकती थी कि घटना की तारीख पर, उसने अपने जेठ और उसके बेटे काब्या को नहीं देखा क्योंकि उसने अपने मुख्य परीक्षण में विशेष रूप से कहा है कि उसका बेटा काब्या भी घटनास्थल पर पहुंच गया था। अपनी जिरह में, उसने यह विरोधाभासी बयान दिया है कि घटना के दो या तीन महीने बाद, उसने काब्या और विनोद को देखा था और घटना की तारीख पर, उसने काब्या और विनोद को नहीं देखा था। उसने कहा कि उपरोक्त दोनों कथन सही हैं लेकिन ऐसा नहीं हो सकता। इसलिए, अ०सा०-4 (राधा) की गवाही से पता चलता है कि उसने घटना नहीं देखी थी और उसकी गवाही 'कहा-सुना' सा साक्ष्य है।

10. अ०सा०-1 (विनोद कुमार) सूचनकर्ता ने अपनी गवाही में स्वीकार किया है कि जब घटना हुई थी तब वह घटनास्थल पर मौजूद नहीं था। अ०सा०-5 (अभिमन्यु) मृतक के भाई का पुत्र है। उसने अपनी जिरह में कहा है कि आग लगने के बाद वह मृतक के पास नहीं गया और खुद को खंभे के पीछे छिपा लिया। यह अ०सा०-5 का बहुत ही अप्राकृतिक आचरण है। अपनी जिरह में उसने कहा है कि उसने अपने पिता को यह नहीं बताया कि आरोपी ने उसके चाचा की हत्या कर दी है। यह भी बहुत अप्राकृतिक है और इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। उसकी गवाही भी विश्वास को प्रेरित नहीं करती है। उन्होंने यह भी कहा है कि आरोपी व्यक्ति के जाने के बाद, उसके पिता और चचेरे भाई (मृतक का बेटा) भी गोली चलने की आवाज सुनकर मौके पर आए थे। यह कथन अ०सा०-4 द्वारा दिए गए कथन के बिल्कुल विपरीत है।

11. इन पूर्वोक्त विरोधाभासों के संबंध में न्याय मित्र द्वारा तर्क दिया गया है और उसके बाद अ०सा०- 6 प्रस्तुत किया गया है जो मृतक के भाई की बेटी है और वह अभियोजन पक्ष की स्टार गवाह है। उसकी गवाही से यह भी पता चलता है कि उसने कोई घटना नहीं देखी है। यहां तक कि विवेचनाधिकारी ने भी जांच के दौरान उसका बयान दर्ज नहीं किया है।

12. अपीलकर्ता के लिए न्याय मित्र द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि केवल अपीलकर्ता-अभियुक्त को विवेचनाधिकारी द्वारा आरोपित किया गया है और उसके पास से कोई हथियार बरामद नहीं किया जाता है। विचारण न्यायालय ने आरोपी को गलत तरीके से दोषी ठहराया है और आक्षेपित निर्णय को रद्द किया जा सकता है। विवेचनाधिकारी ने घटनास्थल से अलग-अलग बोर का खाली कारतूस बरामद किया है, लेकिन आरोपी के पास से कोई हथियार बरामद नहीं हुआ। इसलिए, अभियोजन पक्ष यह भी जोड़ने में विफल रहा कि गोली अभियुक्त - अपीलकर्ता द्वारा चलाई गई है। इसलिए इस मामले में कनेक्टिंग सबूत भी गायब हैं।

13. राज्य की ओर से पेश अधिवक्ता ने अपीलकर्ता के लिए न्याय मित्र द्वारा किए गए उपरोक्त सबमिशन का विरोध किया और तर्क दिया कि अ०सा०-6 मृतक के परिवार का सदस्य है और उसने अपने बयान में आरोपी का नाम बताया है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि विवेचनाधिकारी ने मृतक के घर के आंगन से गोली के साथ 32 बोर के दो खाली कारतूस और 315 बोर का एक खाली कारतूस बरामद किया है।

14. शव परीक्षण रिपोर्ट में मृत्यु पूर्व चोटें आग्नेयास्त्र की चोट हैं जो उपरोक्त बोर के हथियार से हो सकती हैं। यह जोरदार रूप से प्रस्तुत किया गया है कि अ०सा०-6 ने अपनी गवाही के दौरान अदालत में अभियुक्त-अपीलकर्ता

की पहचान की है। इसलिए, आक्षेपित आदेश/निर्णय में कोई दुर्बलता और अवैधता नहीं है जो इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की मांग करता हो।

15. हमने अपीलकर्ता के लिए न्याय मित्र और राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा किए गए सबमिशन पर विचार किया और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

16. विद्वान विचारण न्यायालय ने कहा है कि इस मामले की घटना मृतक के घर के अंदर हुई थी। इसलिए, ऐसी स्थिति में केवल परिवार का सदस्य ही चश्मदीद गवाह हो सकता है। इसमें कोई शक नहीं है कि जब घर के अंदर कोई घटना होती है तो परिवार के सदस्य और रिश्तेदार ही चश्मदीद गवाह होते हैं लेकिन प्रस्तुत मामले में कथित चश्मदीद गवाहों की गवाही विश्वास को प्रेरित नहीं करती है।

17. सूचनकर्ता ने स्वीकार किया है कि उसने घटना नहीं देखी थी। अ०सा०-4 और अ०सा०-5 अन्य कथित चश्मदीद गवाह हैं लेकिन उनके साक्ष्य में कई अहम और प्रासंगिक विरोधाभास हैं जो मामले की जड़ तक जाते हैं। अ०सा०-6 भी परिवार का सदस्य है और अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि उसने अपनी गवाही के समय अपीलकर्ता की पहचान की थी, लेकिन उसकी राय में इस गवाह का आचरण अत्यधिक अप्राकृतिक है। उसने अपनी जिरह में कहा है कि घटना के समय, उसके पिता घर में मौजूद नहीं थे और लौटने के बाद भी उसके पिता ने उससे या परिवार के अन्य सदस्यों से घटना के बारे में नहीं पूछा। उसने आगे कहा है कि परिवार में किसी ने भी पुलिस अधिकारियों को यह नहीं बताया कि गोली किसने चलाई थी। यह भी ध्यान रखना उचित है कि विवेचनाधिकारी ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत जांच के दौरान इस गवाह का बयान दर्ज नहीं किया, जैसा कि अपीलकर्ता के लिए न्याय मित्र द्वारा कहा गया था।

18. इसके अलावा, उसके अनुसार, घटना के समय परिवार के अन्य सभी सदस्य भी घर में थे, लेकिन उनकी गवाही ऊपर चर्चा के अनुसार जिम्मेदारी पूर्ण नहीं पाई जाती है।

19. इसमें कोई संदेह नहीं है कि शव परीक्षण रिपोर्ट में दिखाई गई मृत्यु पूर्व चोट आग्नेयास्त्रों द्वारा हो सकती है, लेकिन अभियोजन पक्ष को उचित संदेह से परे साबित करना होगा कि अभियुक्त - अपीलकर्ता द्वारा ही आग्नेयास्त्र का इस्तेमाल किया गया था। अ०सा०-6 की गवाही पूरी तरह से विश्वसनीय नहीं है और किसी अन्य सबूत से इसकी पुष्टि नहीं होती है। विद्वान विचारण न्यायालय ने कथित चश्मदीद गवाहों की गवाही पर भरोसा करके अपीलकर्ता को दोषी ठहराया है जो मृतक के परिवार के सदस्य हैं लेकिन उनके सबूत विश्वसनीय नहीं पाए गए हैं।

20. हमारे सुविचारित दृष्टिकोण में, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, उनकी गवाही विश्वसनीय नहीं पाई गई है और अभियोजन पक्ष यह साबित करने में विफल रहा है कि अपराध अभियुक्त - अपीलकर्ता द्वारा किया गया है। यह उल्लेख करना भी उचित है कि इस घटना की प्राथमिकी जैसा कि आरोप लगाया गया है, अतिरंजित है क्योंकि प्राथमिकी में यह उल्लेख किया गया है कि तीन व्यक्ति थे जिन्होंने मृतक पर अंधाधुंध गोली चलाई थी। जबकि जांच के दौरान विवेचनाधिकारी के अनुसार केवल अपीलकर्ता के खिलाफ सबूत पाए गए और केवल अपीलकर्ता को चार्जशीट किया गया। इस तथ्य से पता चलता है कि प्राथमिकी में घटना का अतिरंजित संस्करण है और सूचनाकर्ता ने घटना को नहीं देखा है क्योंकि अ०सा०-1 के रूप में अपनी गवाही में, उसने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि उसने घटना नहीं देखी थी और वह घटना के समय घर पर मौजूद नहीं था। प्राथमिकी में उल्लेख किया गया है कि तीन अज्ञात व्यक्ति थे जिन्होंने अपराध किया था, पर सूचनकर्ता उनके नाम नहीं जानता था। कोई शिनाख्त परेड नहीं की गई।

21. अभियुक्त को चश्मदीद गवाह की एकमात्र गवाही के आधार पर दोषी ठहराया जा सकता है लेकिन उसकी गवाही पूरी तरह से विश्वसनीय होनी चाहिए। प्रस्तुत मामले में, किसी भी कथित चश्मदीद गवाह की कोई गवाही हमारे द्वारा विश्वसनीय नहीं पाई जाती है और हमारी सुविचारित राय है कि अभियुक्त - अपीलकर्ता को गलत तरीके से दोषी ठहराया गया है और निचली अदालत द्वारा ग़लत सजा सुनाई गई है क्योंकि वह अभियोजन पक्ष के साक्ष्य द्वारा बनाए गए संदेह के आधार पर बरी होने का हकदार था, इसलिए, हम आक्षेपित निर्णय को उलट देते हैं, और अभियुक्त-अपीलकर्ता संदेह का लाभ दिए जाने का हकदार है, क्योंकि अभियोजन पक्ष विफल रहा है कि उसके खिलाफ मामला उचित संदेह से परे साबित करें।

22. अपील की अनुमति दी जा सकती है और तदनुसार, अनुमति दी जाती है। अभियुक्त-अपीलकर्ता की दोषसिद्धि और सजा को रद्द किया जाता है। उन्हें उनके खिलाफ लगाए गए आरोप से बरी किया जाता है। जुर्माने की राशि अपीलकर्ता को, यदि वह पहले ही जमा कर चुका हो, वापस कर दी जाए। अपीलकर्ता को, यदि वह किसी अन्य

मामले में वांछित नहीं है, तत्काल रिहा कर दिया जाए।

23. अभिलेख और कार्यवाही को तुरंत विचारण न्यायालय को वापस भेजा जाए।

24. हम उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति को निर्देश देते हैं कि वह श्री उत्तर कुमार गोस्वामी, न्याय मित्र को उनकी अच्छी सहायता के लिए 15,000/- रुपये की राशि वितरित करे।

(2023) 1 ILRA 1366

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी

माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV

अवमानना अपील (दोषपूर्ण) संख्या 2/2022

संजय कुमार ... अपीलार्थी

बनाम

संतोष कुमार श्रीवास्तव ... प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री सुनील कुमार मिश्रा

प्रतिवादी के अधिवक्ता:

श्री अजय कुमार श्रीवास्तव, श्री समीर शर्मा (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अवमानना अपील- अपील की अनुरक्षणीयता को चुनौती देना-अवमानना न्यायालय ने निम्नलिखित में निर्देश जारी किया- अपने आदेश पर फिर से विचार करने और निर्णय लेने के लिए- यदि संबंधित अधिकारियों के विरुद्ध कार्यवाही के लिए बोर्ड-न्यायालय द्वारा कोई निर्णय नहीं लिया जाता है- अवमानना न्यायालय ने अधिकारियों को पूरी तरह से अवमानना की कार्रवाई माना है। इसलिए, अपील सुनवाई योग्य होगी - लेकिन आक्षेपित आदेश में फिर से विचार करने और एक नया आदेश पारित करने के निर्देश शामिल हैं - जो जारी नहीं किया जा सकता था। **अपील की अनुमति दी।** (ई-9)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. मिदनापुर पीपुल्स कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड बनाम चुन्नीलाल नंदा (2006) 5 एससीसी 399

2. एसएमए आब्दी और एक और बनाम निजी सचिव ब्रदरहुड और अन्य, 2009 (4) यूपीएलबीईसी 3106

3. तरुण कुमार अग्रवाल बनाम अधिशासी अभियंता उ.प्र.प. - 2022:एएचसी:195807-डीबी 2 ईवाम विकास परिषद मेरठ 2013 (101 एएलआर 46)

4. सुभावती देवी बनाम आरके सिंह एवं अन्य (विशेष अपील सं. 553/2003, 19.03.2004 को निर्णय दिया गया)

5. मोदी टेलीफाइबर्स लिमिटेड और अन्य बनाम सुजीत कुमार चौधरी और अन्य (2005) 7 एससीसी 40

6. पुरुषोत्तम दास गोयल बनाम जस्टिस बीएस ढिल्लों, 1978 (2) एससीसी 370

7. महाराष्ट्र राज्य बनाम महबूब एस अल्लीभोय, (1996) 4 एससीसी 411

8. तमिलनाडु मर्केंटाइल बैंक शेयरहोल्डर्स वेलफेयर एसोसिएशन (2) बनाम एससी सेकर एवं अन्य, (2009) 2 एससीसी 784

9. ईसीएल फाइनेंस लिमिटेड बनाम हरिकिशन शंकरजी गुडीपति और अन्य, (2018) 13 एससीसी 142

(माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी और माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV द्वारा दिया गया)

1. अपीलकर्ता के लिए विद्वान वकील श्री एस.के. मिश्रा और श्री समीर शर्मा, प्रतिवादी के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता को श्री अजय कुमार श्रीवास्तव की सहायता से सुना गया।

<u>प्रविष्ट्या :-</u>

2. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा वर्तमान अपील की सुनवाई योग्यता पर प्रारंभिक आपत्ति उठाई गई है। यह आपत्ति इस आधार पर उठाई गई है कि जिस आदेश को चुनौती दी जा रही है वह अवमानना के लिए दंडित करने वाला आदेश नहीं है। अतः माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मिदनापुर पीपुल्स कोऑप बैंक लि. बनाम चुन्नीलाल नंदा (2006) 5 एससीसी 399 (पैरा 11) के निर्णय के मद्देनजर

अनुवादित

अवमानना न्यायालय अधिनियम, 1971 की धारा 19 के तहत दायर की गई अपील कानून के अनुसार सुनवाई योग्य नहीं है। उन्होंने न्यायालय की दो डिवीजन बेंच **एस.एम.ए. आब्दी एवं अन्य बनाम निजी सचिव ब्रदरहुड एवं अन्य, 2009 (4) यूपीएलबीईसी 3106** एवं **तरूण कुमार अग्रवाल बनाम अधिशाषी अभियंता उ.प्र. आवास एवं विकास परिषद मेरठ 2013 (101 एएलआर 46।** के फैसले पर भी भरोसा किया। वह योग्यता के आधार पर विवादित आदेश का भी समर्थन करते हैं।

3. विद्वान अधिवक्ता श्री एस.के. मिश्रा ने तर्क दिया कि अपील सुनवाई योग्य है और उन्होंने उच्च न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय का हवाला दिया, जो **सुभावती देवी बनाम आर.के. सिंह और अन्य (विशेष अपील संख्या 553 / 2003 दिनांक 19.03.2004 को निर्णीत)** के मामले में दिया गया था। साथ ही उन्होंने **मोदी टेलीफाइबर्स लि. और अन्य बनाम सुजीत कुमार चौधरी और अन्य (2005) 7 एस.सी.सी. 40 (पैरा 4 और 5)** में निर्धारित कानून का भी हवाला दिया। उन्होंने तर्क दिया कि विवादित आदेश में निष्कर्षों का उल्लेख नहीं है। उनका कहना है कि एक बार जब रिट न्यायालय के आदेश के अनुपालन में आदेश पारित कर दिया जाता है, तो सक्षम न्यायालय के लिए अपीलकर्ता को आदेश को फिर से जांचने का निर्देश देना उचित नहीं था। अतः, गुण-दोष के आधार पर विवादित आदेश रद्द करने योग्य है।

4. **वर्तमान मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि** सिविल विविध रिट याचिका संख्या 30057 /2016 (संतोष कुमार श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) प्रतिवादी द्वारा दायर की गई थी, जिसे दिनांक 04.12.2017 के निर्णय को रिट न्यायालय द्वारा स्वीकार कर लिया गया था। आदेशानुसार :-

*"उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, हम उत्तरदाताओं को निर्देश देते हैं **कि वे सहायक क्षेत्रीय प्रबंधक (तकनीकी) के पद पर पदोन्नति देने के लिए याचिकाकर्ता पर विचार करें। 09.06.2016 वह तिथि जिस पर उनसे कनिष्ठ व्यक्तियों को तीन महीने की अवधि के भीतर कानून के अनुसार दिनांक 30.03.2012** की प्रविष्टि को अनदेखा करते हुए उक्त पद पर पदोन्नत किया गया है और याचिकाकर्ता को स्वीकार्य सभी 3 मौद्रिक लाभ प्रदान करने के लिए कहा गया है। "*

5. **तत्पश्चात्, उत्तर प्रदेश परिवहन निगम के प्रबंध निदेशक ने दिनांक 06.11.2018 का आदेश पारित किया, जिसका निष्कर्ष निम्न प्रकार है :-**

"मा० उच्च न्यायालय के निर्णय दिनांक 04.12.2017 के अनुपालन में इनके प्रकरण पर चयन समिति की होने वाली आगामी बैठक में विचार किया जाना था, किन्तु भ्रष्टाचार निरोधक दल द्वारा दिनांक 01.12.2017 को पुलिस अभिरक्षा में भ्रष्टाचार के आरोप में निरूद्ध किये जाने संबंधी गम्भीर आरोपों के संबंध में अनुशासनिक कार्यवाही वर्तमान में लम्बित है।

*विगत में प्रोन्नति हेतु विभागीय चयन समिति की **बैठक दिनांक 13.04.2018** में इनका प्रकरण प्रोन्नति पर विचार हेतु प्रस्तुत किया गया था जिसमें इनके विरूद्ध दिनांक **04.08.2014** के पूर्व की अनुशासनिक कार्यवाहियों के प्रकरणों में दिये गये दण्ड को चयन समिति द्वारा विचार में नहीं लिया गया। किन्तु इनके विरूद्ध अनुशासनिक कार्यवाही गतिशील होने के दृष्टिगत चयन समिति द्वारा सम्यक् विचारोपरान्त इनकी प्रोन्नति की संस्तुति बन्द लिफाफे में रखे जाने का निर्णय लिया गया। आगामी विभागीय चयन समिति की बैठक में इनके द्वारा पारित प्रतिकूल प्रविष्टि दिनांक **30.03.2012** को **Washed-off** मानकर अन्य विवरणों सहित पुनः प्रोन्नति के संबंध में विचार हेतु रखा जायेगा, जिस पर चयन समिति द्वारा नियमानुसार निर्णय लिया जायेगा।*

तद्नुसार मा० उच्च न्यायालय, इलाहाबाद के निर्णय दिनांक 04.12.2017 के अनुपालन में याची श्री संतोष कुमार श्रीवास्तव, सीनियर फोरमैन ग्रेड-1 द्वारा प्रस्तुत पत्यावेदन दिनांक 07.02.2018 एवं 08.10.2018 का अन्तिम रूप से निस्तारण किया जाता है।"

6. इसके बाद, प्रतिवादी ने उपरोक्त अवमानना आवेदन (सिविल) संख्या 5916 / 2018 दायर किया, जिसमें विवादित आदेश दिनांक 14.09.2022, निम्न प्रकार से पारित किया गया है *:-*

> *"**दिनांक 07.09.2022** को विपक्षी पक्ष का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता को मामले को देखने के लिए समय दिया गया था। **आज,** जब मामला उठाया गया, तो विपक्षी पक्ष के अधिवक्ता द्वारा और समय मांगा गया।*
>
> ***यह न्यायालय पाता है कि अधिकारी रिट न्यायालय द्वारा दिनांक 04.12.2017 को पारित आदेश की पूर्णतः अवमानना कर रहे हैं, क्योंकि न्यायालय ने याचिकाकर्ता को दिनांक 09.06.2016** से पदोन्नति देने पर विचार करने की आवश्यकता व्यक्त की थी, जिस तिथि को उससे जूनियर व्यक्तियों को पदोन्नत किया गया था।*
>
> *विपक्षी पक्ष के उपस्थित वकील के अनुसार, आवेदक द्वारा वर्ष 2017 में कुछ अनियमितताएं की गई थीं और **सरकारी आदेश के मद्देनजर, यद्यपि विभागीय पदोन्नति समिति (D.P.C.) ने आवेदक के पदोन्नति की सिफारिश की थी, परंतु लाभ नहीं दिया जा सका।***
>
> *यह न्यायालय पाता है **कि यह निर्णय दिनांक 04.12.2017 को रिट न्यायालय द्वारा पारित आदेश के सर्वथा विपरीत है।"***
>
> *"अंतिम अवसर के रूप में, विपक्षी पक्ष को अपने **आदेश पर पुनर्विचार करने और दिनांक 04.12.2017 के आदेश का अनुपालन करते हुए निर्णय लेने के लिए** तीन सप्ताह का और समय दिया जाता है।*
>
> *इस मामले को 12 अक्टूबर, 2022 को सूचीबद्ध करें।*
>
> *यदि उस तिथि तक बोर्ड द्वारा कोई निर्णय नहीं लिया जाता है, **तो न्यायालय संबंधित अधिकारियों के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए बाध्य होगा।"***

7. उपरोक्त दिनांक 14.09.2022 के उद्धृत आदेश से व्यथित होकर, विपक्षी पक्ष/अपीलकर्ता ने अदालतों की अवमानना अधिनियम, 1971 (अनुसूचित रूप में "अधिनियम, 1971" के रूप में संदर्भित) की धारा 19 के तहत वर्तमान अपील दायर की है।

<u>चर्चा एवं खोज:-</u>

8. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा उपरोक्त अपील में दिए गए वाद पत्र निम्नलिखित प्रश्न उठाते हैं:

(क) क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत, 1971 अधिनियम की धारा 19 के तहत वर्तमान अपील सुनवाई योग्य है?

(ख) क्या तथ्यों और परिस्थितियों के तहत, विवादित आदेश वैध है?

<u>प्रश्न (क)</u>

9. 1971 अधिनियम की धारा 19(1) में यह प्रावधान है कि अवमानना की सजा देने के लिए अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग में उच्च न्यायालय के किसी आदेश या निर्णय से अपील का अधिकार होगा—

(क) जहां आदेश या निर्णय किसी एकल न्यायाधीश का है, तो न्यायालय के दो से कम न्यायाधीशों के पीठ के समक्ष;

(ख) जहां आदेश या निर्णय किसी पीठ का है, तो उच्चतम न्यायालय के समक्ष; बशर्ते कि जहां आदेश या निर्णय किसी केंद्र शासित प्रदेश में न्यायिक आयुक्त के न्यायालय का हो, तो ऐसी अपील उच्चतम न्यायालय में होगी।

10. पुरुषोत्तम दास गोयल बनाम जस्टिस बी.एस. ढिल्लों, 1978 (2) एस.सी.सी. 370 (पैरा 3) में,

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया :-

*"अवमानना की कार्यवाही धारा 17 के तहत नोटिस जारी करने के द्वारा शुरू की जाती है।" तत्पश्चात् उच्च न्यायालय द्वारा उक्त कार्यवाही में कई अंतरिम आदेश पारित किए जा सकते हैं। विधायिका का यह इरादा नहीं हो सकता था कि न्यायालय द्वारा किए गए ऐसे प्रत्येक आदेश के खिलाफ इस न्यायालय में अपील का अधिकार दिया जाए। **आदेश या निर्णय ऐसा होना चाहिए जो उच्च न्यायालय के समक्ष उठाए गए विवाद के किसी महत्वपूर्ण बिंदु का निर्णय करता हो और जो पीड़ित पक्ष के अधिकारों को प्रभावित करता हो................"***

11. महाराष्ट्र राज्य बनाम महबूब एस. अल्लीभॉय, (1996) 4 एस.सी.सी. 411 (पैरा 4) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया:

*"जहां धारा 19 की उप-धारा (1) यह प्रावधान करती है कि किसी आदेश से अपील का अधिकार होगा, वहीं ऐसा आभास बनता है कि अवमानना की कार्यवाही के क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय द्वारा पारित किसी भी आदेश के विरुद्ध उक्त उप-धारा के तहत अपील का प्रावधान किया गया है। **'किसी भी आदेश' शब्दों को** उक्त उप-धारा में प्रयुक्त 'निर्णय' शब्द के साथ पढ़ा जाना चाहिए, जो उच्च न्यायालय अवमानना की सजा देने के लिए अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय पारित करता है। **'किसी भी आदेश' शब्द 'निर्णय' शब्द से स्वतंत्र नहीं है। उन्हें वैकल्पिक रूप में 'आदेश' या 'निर्णय' कहकर रखा गया है। किसी भी स्थिति में, यह अवमानना के लिए दंड की प्रकृति का होना चाहिए।** यदि 'किसी भी आदेश' शब्द को 'निर्णय' से स्वतंत्र रूप से पढ़ा जाता है, तो धारा 19 की उप-धारा (1) के तहत उच्च न्यायालय द्वारा अवमानना की कार्यवाही में पारित किसी भी अंतरिम आदेश के विरुद्ध भी अपील होगी, जिससे हास्यास्पद परिणाम सामने आएंगे।"*

12. **मिदनापुर पीपुल्स को-ऑप. बैंक लि. बनाम चुन्नीलाल नंदा (2006) 5 एस.सी.सी. 399 (पैरा 11) के मामले में, कानूनी स्थिति को निम्नानुसार संक्षेपित किया गया है:**

__(i)__ धारा 19 के तहत अपील केवल उच्च न्यायालय के उस आदेश या निर्णय के विरुद्ध ही सुनवाई योग्य है जो अवमानना की सजा देने के लिए उसके क्षेत्राधिकार के प्रयोग में पारित किया गया हो, अर्थात अवमानना के लिए दंड लगाने वाला आदेश।

__(ii)__ न तो अवमानना की कार्यवाही शुरू करने से इंकार करने वाला आदेश, न ही अवमानना की कार्यवाही शुरू करने का आदेश, न ही अवमानना की कार्यवाही को रद्द करने का आदेश और न ही अवमानना करने वाले को बरी या निर्दोष घोषित करने वाला आदेश, अवमानना न्यायालय अधिनियम की धारा 19 के तहत अपील योग्य है। विशेष परिस्थितियों में, उन्हें संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत चुनौती दी जा सकती है।

*__(iii)__ अवमानना की कार्यवाही में, उच्च न्यायालय यह निर्णय ले सकता है कि क्या कोई अवमानना हुई है, और यदि हुई है, तो दंड क्या होना चाहिए और उससे संबंधित मामले। **ऐसी कार्यवाही में, पक्षकारों के बीच विवाद के गुण-दोष से संबंधित किसी मुद्दे का निर्णय करना या उस पर निर्णय लेना उपयुक्त नहीं है।***

*__(iv) पक्षकारों के बीच विवाद के गुण-दोष के आधार पर उच्च न्यायालय द्वारा जारी किया गया कोई निर्देश या लिया गया कोई निर्णय,__ 'अवमानना की सजा देने के लिए क्षेत्राधिकार' के प्रयोग में नहीं होगा और इसलिए, अवमानना न्यायालय अधिनियम की धारा 19 के तहत अपील योग्य नहीं होगी। **केवल अपवाद तब होता है जहां ऐसा निर्देश या निर्णय अवमानना की सजा देने वाले आदेश से आनुषंगिक या अविभाज्य रूप से जुड़ा होता है, जिस स्थिति में अधिनियम की धारा 19 के तहत अपील आनुषंगिक या अविभाज्य रूप से जुड़े निर्देशों को भी शामिल कर सकती है।***

(v) यदि उच्च न्यायालय, किसी भी कारण से, अवमानना की कार्यवाही में पक्षकारों के बीच विवाद के गुण-दोष से संबंधित किसी मुद्दे का निर्णय करता है या कोई निर्देश देता है, तो व्यथित पक्ष बिना उपचार के नहीं रहता। ऐसा आदेश एक अंतर-न्यायालय अपील में चुनौती के लिए खुला है (यदि आदेश एक विद्वान एकल न्यायाधीश का था और एक अंतर-न्यायालय में अपील का प्रावधान है), या भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपील करने के लिए विशेष अनुमति प्राप्त करके (अन्य मामलों में)।

13. तमिलनाड मर्केंटाइल बैंक शेयरहोल्डर्स वेलफेयर एसोसिएशन (2) बनाम एस.सी. सेकर और अन्य, (2009) 2 एस.सी.सी. 784 (पैरा 39 से 40) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया :-

*"39. **यह भिन्न मामला हो सकता है, यदि न्यायालय आदेश पारित करते समय, अवमानना करने वाले द्वारा उसके समक्ष उठाए गए कुछ विवादों का निर्णय करता है और उसे कार्यवाही को किसी न किसी आधार पर रद्द करने के लिए कहता है। इस प्रकार, किसी स्थिति में, कारण बताओ नोटिस के विरुद्ध भी अपील सुनवाई योग्य होगी।** यहां तक कि ऐसा कोई नोटिस भी जारी नहीं किया गया है और इस प्रकार अदालत को यह दिखाकर संतुष्ट करने का प्रश्न ही नहीं उठा कि अवमानना करने वालों / प्रतिवादियों ने कोई अवमानना नहीं की थी। बैठक के अध्यक्ष के खिलाफ कोई आरोप नहीं लगाए गए थे। अवमानना की कार्यवाही केवल बैंक के प्रबंध निदेशक के खिलाफ शुरू की गई थी।*

40. यद्यपि हमें धर्म सिंह बनाम गुलजारी लाल और अन्य (एस.एल.पी. (सिविल) संख्या 18852 का 2005) मामले में तीन न्यायाधीशों की पीठ को भेजे जाने के तथ्य के मद्देनजर अपील की सुनवाई योग्यता के बड़े प्रश्न पर जाने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन प्रथम दृष्टया, इस न्यायालय के पुरुषोत्तम दास (उपरोक्त) के निर्णय के मद्देनजर, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि ऐसी स्थिति में जहां आदेश कथित अवमानना करने वाले के हितों के प्रतिकूल पारित किया गया है, वहां अपील सुनवाई योग्य होगी, खासकर जहां उस न्यायालय द्वारा निर्णय पारित किया गया है जो उसके क्षेत्राधिकार से बाहर है।"

14. ईसीएल फाइनेंस लिमिटेड बनाम हरिकिशन शंकरजी गुदिपती और अन्य, (2018) 13 एस.सी.सी. 142 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अधिनियम, 1971 की धारा 19 के तहत अपील की सुनवाई योग्यता के प्रश्न पर पूर्व के निर्णयों में तमिलनाड मर्केंटाइल बैंक शेयरहोल्डर्स वेलफेयर एसोसिएशन (2) (उपरोक्त) और मिदनापुर पीपुल्स कोऑप. बैंक लि. (उपरोक्त) मामलों में निर्धारित कानून के उपरोक्त सिद्धांतों को दोहराया है।

15. **इस प्रकार, अधिनियम, 1971 की धारा 19 के तहत अपील की सुनवाई योग्यता के बिंदु पर कानूनी स्थिति,** जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित है; **संक्षेप में निम्नानुसार किया जा सकता है :-**

(i) धारा 19 के तहत अपील केवल उच्च न्यायालय के उस आदेश या निर्णय के विरुद्ध ही सुनवाई योग्य है जो अवमानना की सजा देने के लिए उसके क्षेत्राधिकार के प्रयोग में पारित किया गया हो, अर्थात अवमानना के लिए दंड लगाने वाला आदेश।

(ii) न तो अवमानना की कार्यवाही शुरू करने से इंकार करने वाला आदेश, न ही अवमानना की कार्यवाही शुरू करने का आदेश, न ही अवमानना की कार्यवाही को रद्द करने का आदेश और न ही अवमानना करने वाले को बरी या निर्दोष घोषित करने वाला आदेश, अवमानना न्यायालय अधिनियम, 1971 की धारा 19 के तहत अपील योग्य है। विशेष परिस्थितियों में, उन्हें संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत चुनौती दी जा सकती है।

(iii). अवमानना की कार्यवाही में, उच्च न्यायालय यह निर्णय ले सकता है कि क्या कोई अवमानना हुई है, और यदि हुई है, तो दंड क्या होना चाहिए और उससे संबंधित मामले। ऐसी कार्यवाही में, पक्षकारों के बीच विवाद के गुण-दोष से संबंधित किसी मुद्दे का निर्णय करना या उस पर निर्णय लेना उपयुक्त नहीं है।

(iv). पक्षकारों के बीच विवाद के गुण-दोष के आधार पर उच्च न्यायालय द्वारा जारी किया गया कोई निर्देश या लिया गया कोई निर्णय, 'अवमानना की सजा देने के लिए क्षेत्राधिकार' के प्रयोग में नहीं होगा और इसलिए, अवमानना न्यायालय अधिनियम, 1971 की धारा 19 के तहत अपील योग्य नहीं होगा। ***केवल अपवाद तब होता है जहां ऐसा निर्देश या निर्णय अवमानना की सजा देने वाले आदेश से आनुषंगिक या अविभाज्य रूप से जुड़ा होता है, जिस स्थिति में अधिनियम की धारा 19 के तहत अपील आनुषंगिक या अविभाज्य रूप से जुड़े निर्देशों को भी शामिल कर सकती है। आदेश या निर्णय ऐसा होना चाहिए कि वह उच्च न्यायालय के समक्ष उठाए गए किसी विवाद के महत्वपूर्ण बिंदु का निर्णय करता है और जो पीड़ित पक्ष के अधिकारों को प्रभावित करता है।***

(v) यदि उच्च न्यायालय, किसी भी कारण से, अवमानना की कार्यवाही में पक्षकारों के बीच विवाद के गुण-दोष से संबंधित किसी मुद्दे का निर्णय करता है या कोई निर्देश देता है, तो व्यथित पक्ष उपचार के बिना नहीं रहता है। आदेश या निर्णय ऐसा होना चाहिए कि वह उच्च न्यायालय के समक्ष उठाए गए किसी विवाद के महत्वपूर्ण बिंदु का निर्णय करता हो और जो प्रभावित पक्ष के अधिकारों को प्रभावित करता हो। ऐसा आदेश एक अंतर-न्यायालय अपील में चुनौती के लिए खुला है (यदि आदेश एक विद्वान एकल न्यायाधीश का था और एक अंतर-न्यायालय में अपील का प्रावधान है), या भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपील करने के लिए विशेष अनुमति प्राप्त करके (अन्य मामलों में)।

(vi) यदि न्यायालय आदेश पारित करते समय, अवमानना करने वाले द्वारा उसके समक्ष उठाए गए कुछ विवादों का निर्णय करता है और उसे कार्यवाही को किसी न किसी आधार पर रद्द करने के लिए कहता है, तो ऐसी स्थिति में कारण बताओ नोटिस के विरुद्ध भी अपील सुनवाई योग्य होगी।

(vii) इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि ऐसी स्थिति में जहां आदेश कथित अवमानना करने वाले के हितों के प्रतिकूल पारित किया गया है, वहां अपील सुनवाई योग्य होगी, खासकर ***जहां उस न्यायालय द्वारा निर्णय पारित किया गया है जो उसके क्षेत्राधिकार से बाहर है।***

(viii) अवमानना की सजा देने के लिए क्षेत्राधिकार का प्रयोग अवमानना की कार्यवाही शुरू करने के साथ शुरू होता है और यदि अवमानना की कार्यवाही में जारी किए गए नियम को रद्द करने का आदेश पारित नहीं किया जाता है, तो यह अवमानना की सजा देने के लिए उसके क्षेत्राधिकार के प्रयोग में आदेश या निर्णय होगा। ऐसे आदेश के विरुद्ध अपील सुनवाई योग्य होगी।"

16. अधिनियम, 1971 की धारा 19 के तहत अपील की सुनवाई योग्यता के प्रश्न पर सुस्थापित कानूनी स्थिति का सारांश देने के बाद, अब हम 14.09.2022 के विवादित आदेश की जांच करने के लिए आगे बढ़ते हैं।

17. हमने विवादित आदेश का अवलोकन किया है और पाया है कि न्यायालय ने आदेश के दूसरे अनुच्छेद में यह दर्ज किया है कि अधिकारी दिनांक 04.12.2017 को पारित रिट न्यायालय के आदेश की अवमानना का पूर्ण रूप से दोषी है। विवादित आदेश के चौथे पेराग्राफ में, अवमानना न्यायालय ने पुनः यह दर्ज किया है कि प्रतिवादी के अभ्यावेदन को प्रबंध निदेशक द्वारा दिनांक 06.11.2018 के आदेश द्वारा निपटारा किये जाने के निर्णय पर टिप्पणी किए बिना, अवमानना न्यायालय ने माना कि ऐसा निर्णय दिनांक 04.12.2017 को रिट न्यायालय द्वारा पारित आदेश की अवमानना है। तत्पश्चात्, अवमानना न्यायालय ने विवादित आदेश के पाँचवें पेराग्राफ में यह निर्देश जारी किया है कि विपक्षी पक्ष को अपने आदेश की पुनः समीक्षा करने और निर्णय लेने का अंतिम अवसर प्रदान किया जाता है। तत्पश्चात्, अंतिम पेराग्राफ में, अवमानना न्यायालय ने अवलोकन किया कि यदि उस तिथि तक बोर्ड द्वारा कोई निर्णय नहीं लिया जाता है, तो न्यायालय सम्बन्धित अधिकारियों के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए बाध्य होगा।

18. उपरोक्त वर्णित दिनांक 14.09.2022 के आदेश में दर्ज की गईं टिप्पणियां, जारी किए गए निर्देश और दिया गया अवलोकन, इसमें कोई संदेह नहीं छोड़ता है कि अवमानना न्यायालय ने अधिकारियों को पूर्ण रूप से अवमानना का दोषी माना है। इसलिए,

उपरोक्त पैरा 15 (i) और (iii) में संक्षेपित कानून के मद्देनजर अपील सुनवाई योग्य होगी।

19. इसके अलावा, प्रबंध निदेशक ने दिनांक 06.11.2018 का निर्णय लिया था, जिसे प्रतिवादी / अवमानना आवेदक द्वारा उपयुक्त फोरम के समक्ष चुनौती दी जा सकती थी। हमने विशेष रूप से प्रतिवादी के लिए विद्वान अधिवक्ता से पूछा है कि क्या प्रबंध निदेशक द्वारा पारित दिनांक 06.11.2018 के आदेश को प्रतिवादी द्वारा चुनौती दी गई है? और उन्होंने जवाब दिया कि इसे अभी तक चुनौती नहीं दी गई है और प्रतिवादी इसे रिट याचिका दायर करके या उपयुक्त फोरम के समक्ष चुनौती देने का प्रस्ताव करता है।

20. इन परिस्थितियों में, अवमानना न्यायालय सम्बन्धित अधिकारियों को उनके आदेश की पुनः समीक्षा करने और निर्णय लेने का निर्देश जारी करने की अपनी शक्ति से बाहर चला गया है। अतः उपरोक्त सारांशित सुस्थापित कानूनी स्थिति के मद्देनजर अपील सुनवाई योग्य है।

21. उपरोक्त की गई चर्चा के मद्देनजर, हम प्रतिवादी के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए प्रारंभिक आपत्ति को खारिज करते हैं और हम यह मानते हैं कि अधिनियम, 1971 की धारा 19 के तहत वर्तमान अपील सुनवाई योग्य है।

22. इस स्तर पर, प्रतिवादी के लिए उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का कहना है कि प्रतिवादी रिट याचिका दायर करके दिनांक 06.11.2018 के आदेश को चुनौती देने का प्रस्ताव करता है और इसलिए, उसे रिट याचिका दायर करने की स्वतंत्रता दी जा सकती है।

23. हमारे विचार में, यदि प्रतिवादी प्रबंध निदेशक द्वारा पारित दिनांक 06.11.2018 के आदेश से व्यथित है, तो वह रिट याचिका दायर करके या उपयुक्त फोरम के समक्ष चुनौती देकर उस आदेश को चुनौती देने के अपने अधिकारों के भीतर है।

24. जहां तक विवादित आदेश का सवाल है, तो यह अवलोकन करना पर्याप्त होगा कि विवादित अंतरिम आदेश में यह टिप्पणी दर्ज की गई है कि अधिकारी पूर्ण रूप से अवमानना के दोषी हैं। अतः विवादित आदेश अस्वीकार्य है।

25. इसके अलावा, विवादित आदेश में पुनः समीक्षा करने और नया आदेश पारित करने का निर्देश है, जो हमारे विनम्र विचार में, जारी नहीं किया जा सकता था। अतः दिनांक 14.09.2022 का विवादित आदेश अस्वीकार्य है।

26. उपरोक्त सभी कारणों से, दिनांक 14.09.2022 के विवादित आदेश को रद्द किया जाता है।

27. अवमानना न्यायालय विधि के अनुसार कार्यवाही कर सकता है। अवमानना आवेदन (सिविल) संख्या 5916 /2018 को अवमानना न्यायालय के समक्ष जनवरी, 2023 के **दूसरे सप्ताह में सूचीबद्ध किया जाएगा।**

28. अपील उपरोक्त वर्णित सीमा तक **स्वीकृत** की जाती है।

(2023) 1 ILRA 1373
पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार
नागरिक पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 03.12.2022
समक्ष
माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

नागरिक पुनरीक्षण संख्या 341/2016

श्रीमती मीना देवी ... पुनरीक्षणवादी

बनाम

बाबू राम व अन्य ... प्रतिवादीगण

पुनरीक्षणवादी के अधिवक्ता:

श्री मुरली धर मिश्र

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री रघुवंश मिश्रा, श्री सचिदा नंद तिवारी

नागरिक कानून - अभियोग- भारतीय न्यास अधिनियम - धारा 74- आक्षेपित आदेश- अभियोग की अनुमति- आवेदक को प्रतिवादी के रूप में फंसाया गया- अधिनियम की धारा 74 के तहत दायर मुकदमा- अभियोग की अनुमति के बाद ही कुछ प्रश्नों पर विचार किया जाना चाहिए।

पुनरीक्षण खारिज कर दिया गया। (ई-9)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. बालासाहेब बनाम वेंकट, (2006) एससीसी 530
2. अमित कुमार बनाम फरीदा, एआईआर 2005, एससी 2209
3. अनिल कुमार बनाम शिवनाथ (1995), 3 एससीसी 147
4. एस.टी.सी. बनाम चित्तूर को-ऑपरेटिव, एआईआर 1990 डेल, 142
5. रतन मुनि कॉलेज बनाम अतिरिक्त नागरिक जज, एआईआर 1995 इलाहाबाद 7
6. उदित बनाम अतिरिक्त सदस्य बोर्ड ऑफ रेवेन एआईआर 1963, एससी, 786
7. कस्तूरी बनाम इय्यमपेरुमल, एआईआर (2005) 6 एसएससी 733
8. बसनलिगप्पा बनाम नागम्मा, एआईआर 1969 एमवाईएस 313

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा दिया गया)

यह सिविल पुनरीक्षण वर्ष मूल वाद संख्या 01/2014 (श्रीमती मीना देवी बनाम बाबू राम) में अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक न्यायालय, न्यायालय संख्या-2, कन्नौज द्वारा पारित आदेश दिनांक 15.9.2016 के विरुद्ध स्थापित किया गया है।

आक्षेपित आदेश के अनुसार, अवर न्यायालय ने आवेदन 25 सी2 की अनुमति दी और वादी को आवेदकों को प्रतिवादी के रूप में सम्मिलित करने का निर्देश दिया।

संक्षेप में, प्रकरण के तथ्य यह हैं कि मीना देवी ने जिला एवं सत्र न्यायाधीश कन्नौज की न्यायालय में भारतीय ट्रस्ट अधिनियम की धारा 74 के अन्तर्गत एक मूल मुकदमा संख्या 1/2014 दायर किया था, जिसमें कहा गया था कि एक राम प्रसाद, जो सर्वराकार और कब्जेदार था। वादपत्र के निचले भाग में उल्लिखित संपत्ति ए, बी और सी ने सूची 'ए' की भूमि पर ग्राम बलारपुर, जिला कन्नौज में एक शिव मंदिर का निर्माण किया, जिसे महादेव मंदिर के नाम से जाना जाता था, उन्होंने सूची बी की भूमि पर ठाकुर जी मंदिर और कुछ अन्य मंदिरों का भी निर्माण किया और सूची 'ए' और 'बी' की भूमि पर बने मंदिरों के रखरखाव के लिए सूची 'सी' की भूमि को निहित कर दिया, उन्होंने प्लॉट ए और बी में एक कमरा भी बनवाया, इस संबंध में उन्होंने 2.12.1959 को एक विलेख निष्पादित किया और स्वामी राम चरण शिष्य भगवानदास को सर्वराकार (पुजारी) के रूप में नियुक्त किया। उपरोक्त राम चरण की मृत्यु राम प्रसाद के जीवनकाल के दौरान ही हो गई थी, इसलिए, उन्होंने 29.4.1982 को जागेश्वर प्रसाद (वादी के पति) को मंदिर के सर्वराकार के रूप में नियुक्त करते हुए एक और विलेख निष्पादित किया और उन्हें अपनी पसंद के सर्वराकार को नियुक्त करने के लिए भी अधिकृत किया, जागेश्वर प्रसाद द्वारा नियुक्त होने के अलावा वादी उनकी पत्नी होने के नाते उनकी विधिक प्रतिनिधि भी हैं। इस प्रकार वह विवादित ट्रस्ट की सर्वराकार बन गई हैं। जागेश्वर प्रसाद ने दिनांक 8.2.2014 को एक वसीयत विलेख निष्पादित किया, जिसमें वादी को सर्वराकार नियुक्त किया गया और उनकी मृत्यु के बाद प्राचीन समय के लिए विरासत के रूप में उनके उत्तराधिकारियों को नियुक्त किया गया।

5.4.2015 को जागेश्वर प्रसाद की मृत्यु के बाद उनके द्वारा निष्पादित विलेख के आधार पर वादी सर्वराकार बन गया, उन्हें जागेश्वर प्रसाद का विधिक प्रतिनिधि होने के नाते सर्वराकार को नियुक्त करने का अधिकार भी दिया गया, जागेश्वर प्रसाद ने सूची 'सी' की संपत्ति की आय और अपनी आय से सूची ए और बी की भूमि पर धर्मशाला का निर्माण भी कराया था। सूची ए, बी व सी की संपत्ति से प्रतिवादी को कोई सरोकार नहीं है, प्रतिवादी स्वयं को जागेश्वर प्रसाद का भाई बता कर वादी का नामांतरण कराने को तैयार नहीं है, प्रतिवादी बाबू राम वादी का नाम राजस्व अभिलेख में दर्ज कराने को तैयार नहीं है, इसलिए न्यायालय के माध्यम से वादी को मंदिर का सर्वराकार नियुक्त करने की प्रार्थना की गई, इस न्यायालय को मुकदमे की सुनवाई का क्षेत्राधिकार है, इसलिए वादी को वादपत्र की संपत्ति ए, बी और सी का सर्वराकार नियुक्त करने की प्रार्थना की गई।

प्रकरण के लंबित रहने के दौरान, अनिल श्रीवास्तव और शिव नाथ द्वारा आदेश 1 नियम 10 सीपीसी के अन्तर्गत एक आवेदन दायर किया गया था जिसमें कहा गया था कि मुकदमा झूठे और मनगढ़ंत तथ्यों पर आधारित है, प्रतिवादी वादी का सगा जीजा (देवर) है, मंदिर का निर्माण मूल सर्वराकार राम प्रसाद द्वारा किया गया था और उन्होंने पंजीकृत विलेख दिनांक 2.12.1959 के माध्यम से ग्राम सहजपुर और बलारपुर में स्थित अपनी भूमिधरी संपत्ति उपहार में दी थी, उन्होंने 29.4.1982 को एक पुनरीक्षण समझौता भी निष्पादित किया था और जागेश्वर प्रसाद कटियार को ट्रस्ट का प्रबंधक और सर्वराकार नियुक्त किया था और उन्हें अपने जीवनकाल के दौरान प्रबंधक और सर्वराकार नियुक्त करने के लिए अधिकृत भी किया था।

जागेश्वर प्रसाद ने अपने जीवनकाल में न तो कोई मैनेजर नियुक्त किया और न ही वादी के पक्ष में दिनांक 8.2.2014 को कथित विलेख निष्पादित किया, कथित अपंजीकृत बैनामा जाली एवं काल्पनिक है, जिस पर जागेश्वर प्रसाद का कोई हस्ताक्षर नहीं है, वादी

विवादित ट्रस्ट की सर्वराकार नहीं है और न ही हो सकती है।

जागेश्वर प्रसाद ने संयुक्त रूप से दिनांक 8.9.2012 को एक शपथ पत्र निष्पादित किया था जिसमें उनके मूल हस्ताक्षर मौजूद हैं। इसके अलावा उन्होंने जमानतकर्ता के रूप में घोषणा पत्र पर भी हस्ताक्षर किये थे, मूल हस्ताक्षर उस हस्ताक्षर से बिल्कुल अलग है जो दिनांक 8.2.2014 के कथित बैनामे पर किया गया है। वादी का ट्रस्ट से कोई सरोकार नहीं है। ट्रस्ट की संपत्ति पर उसका कब्जा नहीं है, वास्तव में ट्रस्ट एक सार्वजनिक ट्रस्ट है और प्रतिवादी/आवेदक जो बलारपुर गांव के निवासी हैं, मंदिर में पूजा करते हैं और इसकी संपत्ति की देखभाल करते हैं और वे लाभार्थी और मुकदमे के आवश्यक पक्ष हैं, इसलिए वादी को पक्षकार बनाने का निर्देश दिया जाए, आवेदकों को प्रतिवादी के रूप में प्रस्तुत किया जाए ताकि लिखित कथन/आपत्तियों के माध्यम से सही तथ्य प्रस्तुत किए जा सकें, वादी और प्रतिवादी ने मिलीभगत कर तथ्य छिपाये हैं, वे ट्रस्ट की संपत्ति हड़पने के लिए न्यायालय से निर्णय चाहते हैं।

दोनों पक्षों को सुनने के बाद विद्वान अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश ने आवेदन स्वीकार कर लिया और वादी को निर्देश दिया कि वह आवेदकों को इस आधार पर प्रतिवादी बनाये कि यह सत्य है कि वादी और प्रतिवादी ही वास्तविकता में देवर और भाभी हैं, मुकदमे के तथ्य थे प्रतिवादीगण द्वारा स्वीकार किया गया और वे चाहते थे कि प्रकरण का निर्णय इस प्रकार किया जाए, ट्रस्ट की संपत्ति को हड़पने की आशंका है और इसलिए अवर न्यायालय ने पाया कि न्यायालय के सामने सही तथ्य लाने के लिए आवेदकों को प्रतिवादी के रूप में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, पुनरीक्षणकर्ता-वादी द्वारा वर्तमान पुनरीक्षण को इस आधार पर प्राथमिकता दी गई है कि अवर न्यायालय ने अवैध रूप से अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया है और इस निष्कर्ष को दर्ज करने के बाद आदेश 1 नियम 10 सीपीसी के अन्तर्गत आवेदन की अनुमति दी है कि कागजात पर विश्वास किया गया है वादी द्वारा अपनी वास्तविकता साबित करने का अवसर दिए बिना जाली और काल्पनिक है, जिससे न्याय की विफलता होगी और पुनरीक्षणवादी को अपूरणीय क्षति होगी, अवर न्यायालय यह मानने में विफल रही है कि ट्रस्ट एक निजी ट्रस्ट है न कि सार्वजनिक ट्रस्ट। न्यायालय इस बात पर भी विचार करने में असफल रहा कि आवेदकों का ट्रस्ट के निर्माता राम प्रसाद या राम प्रसाद द्वारा नियुक्त सर्वराकार जागेश्वर से कोई संबंध नहीं है, अवर न्यायालय इस बात पर भी विचार करने में विफल रही है कि दिनांक 8.2.2014 का दस्तावेज़ एक वसीयत विलेख है और इसे पंजीकृत करने की आवश्यकता नहीं है और यह एक वैध दस्तावेज़ है जब तक कि इसका निष्पादन संदिग्ध परिस्थितियों में न हो। अवर न्यायालय यह भी विचार करने में विफल रही है कि आदेश 1 नियम 10 सीपीसी के अन्तर्गत शर्तें संतुष्ट नहीं हैं।

पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता, विपरीत पक्ष के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया और अभिलेख का अवलोकन किया।

पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि विवादित ट्रस्ट एक निजी ट्रस्ट है और पुनरीक्षणवादी के पति जागेश्वर प्रसाद की मृत्यु के बाद, उन्होंने नियुक्ति के लिए अपने बहनोई (देवर) को प्रतिवादी बनाते हुए भारतीय दंड संहिता की धारा 74 के अन्तर्गत एक आवेदन दायर किया। 8.2.2014 को उनके पति जागेश्वर प्रसाद द्वारा निष्पादित कथित वसीयतनामा के आधार पर और मृतक जागेश्वर प्रसाद के विधिक प्रतिनिधि होने के आधार पर उन्हें सर्वराकार के रूप में दर्शाया गया।

प्रकरण के तथ्यों का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है, राम प्रसाद द्वारा निष्पादित विलेख अनुलग्नक संख्या 1 में पुनरीक्षण के साथ संलग्न है, जिसमें उन्होंने स्वीकार किया है कि उनके गांव में थतिया रोड पर श्री शिव जी का मंदिर बना हुआ है, जिसमें पूजा-पाठ, योग आदि की व्यवस्था के लिए जमीन नहीं है।

उपरोक्त दस्तावेजों के अवलोकन से यह पता चलता है कि संबंधित गांव में ठठिया रोड पर स्थित शिव जी मंदिर का निर्माण राम प्रसाद द्वारा नहीं कराया गया था। बाद में उन्होंने निःसंतान होने पर अपनी संपत्ति, जिसका विवरण बैनामे में अंकित है, को उक्त मंदिर के सभी प्रकार के खर्चों, मरम्मत, रंग-रोगन, योग आदि के लिए समर्पित करना चाहा। इस प्रकार उन्होंने अपनी संपत्ति उक्त मंदिर को समर्पित कर दी थी और यह शर्त भी लगाई थी कि वह उक्त मंदिर के प्रबंधक होंगे और उनकी संपत्ति को इसमें संलग्न कर दिया जाएगा और उनकी मृत्यु के बाद श्री स्वामी रामचरण चेला भगवानदास शिवजी मंदिर के पुजारी होंगे। यह भी उल्लेख किया गया है कि राम प्रसाद के जीवनकाल के दौरान, स्वामी रामचरण चेला भगवानदास की मृत्यु हो गई और बाद में 29.4.1982 को राम प्रसाद द्वारा एक और विलेख निष्पादित किया गया, जिसमें उन्होंने पूर्व विलेख के कथनों के विपरीत कहा कि शिव जी मंदिर था। उन्होंने थाटिया रोड पर मंदिर बनवाया था और उन्होंने अपनी संपत्ति पूजा, आरती, योग, उत्सव और मरम्मत आदि के लिए दान कर दी थी, उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि वह बहुत बूढ़े हो गए हैं और अब वह मंदिर का काम करने में असमर्थ हैं। राम दास कटियार के पुत्र जागेश्वर प्रसाद कटियार उनके काम में सहायता करते हैं और उनके भोजन और आवास आदि की उचित व्यवस्था भी करते हैं। इस प्रकार उन्होंने प्रारंभिक वक्फनामा दिनांक

2.12.1959 में पुनरीक्षण किया और जागेश्वर प्रसाद को प्रबंधक और सर्वराकार नियुक्त किया और उन्हें इसका अधिकार भी दिया। किसी भी व्यक्ति को उसके जीवनकाल में प्रबंधक एवं सर्वराकार नियुक्त करें।

पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्क के अनुसार, जागेश्वर प्रसाद की मृत्यु अप्रैल, 2014 के महीने में हुई थी और उनकी मृत्यु से पहले उन्होंने 8.2.2014 को वसीयत विलेख निष्पादित किया था जिसमें उन्होंने राम प्रसाद द्वारा निष्पादित विलेख का उल्लेख किया था, उन्होंने यह भी उल्लेख किया कि राम प्रसाद ने दिनांक 29.4.1982 के प्राधिकार पत्र के माध्यम से उन्हें सर्वराकार नियुक्त किया था और उन्हें सर्वराकार नियुक्त करने का अधिकार भी दिया गया था क्योंकि राम प्रसाद के परिवार में कोई नहीं है, इसलिए, अधिकार के अन्तर्गत उन्होंने अपनी पत्नी को सर्वराकार नियुक्त किया, उनकी मृत्यु के बाद और यह भी कि उनकी पत्नी की मृत्यु के बाद उनके पुत्र सर्वराकार होंगे और उनके बाद उनके पुत्र सर्वराकार होंगे और यह पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहेगा।

इस प्रकरण में भारतीय ट्रस्ट अधिनियम की धारा 73 के अन्तर्गत कोई कार्यवाही नहीं की गई है, लेकिन पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 74 के अन्तर्गत आवेदक-पुनरीक्षणकर्ता को सर्वराकार के रूप में नियुक्त करने के लिए एक आवेदन दायर किया गया है, जिसमें जीजा को प्रतिवादी बनाया गया है। लिखित बयान में आवेदन के कथनों का खंडन किया गया है लेकिन यह बहुत सटीक है जिसमें किसी भी पूर्ण तथ्य का उल्लेख नहीं किया गया है। यह भी देखा गया है कि जब 1959 में प्रारंभ में राम प्रसाद द्वारा ट्रस्ट बनाया गया था, तब थतिया रोड पर शिवजी मंदिर पहले से ही अस्तित्व में था। ऐसा प्रतीत होता है कि मंदिर बड़े पैमाने पर जनता के लाभ के लिए बनाया गया था और धर्मशालाएं बड़े पैमाने पर जनता के लाभ के लिए बनाई गई थीं और उचित रखरखाव के लिए, सूची सी की संपत्तियां मंदिर को दान कर दी गई थीं। माना कि राम प्रसाद के पास कोई मुद्दा नहीं था, इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि उनका आशय सामान्य रूप से जनता के लाभ के लिए ट्रस्ट बनाना था और जागेश्वर प्रसाद को केवल रखरखाव का अधिकार प्रदान किया गया था। यह भी उल्लेखनीय है कि 1959 और 1982 के दोनों विलेख पंजीकृत विलेख थे। प्रश्न यह उठता है कि क्या सर्वराकारी अधिकार एक अपंजीकृत वसीयत के माध्यम से बनाया जा सकता है या किसी पंजीकृत साधन की आवश्यकता है।

निश्चित रूप से आवेदिका श्रीमती मीना देवी एवं विपक्षी बाबू राम परिवार के सदस्य हैं। ट्रस्ट उनके परिवार के लाभ के लिए नहीं बनाया गया था, इसलिए, एक ज्वलंत प्रश्न उठता है कि क्या उक्त ट्रस्ट निजी या सार्वजनिक है, यदि मुकदमे में संपत्ति सार्वजनिक दान के लिए सार्वजनिक संपत्ति है तो धारा 92 सीपीसी लागू होगी और भारतीय ट्रस्ट अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होंगे।

विरोधी पक्ष ने कथित वसीयतनामा के निष्पादन एवं जागेश्वर प्रसाद के हस्ताक्षर से भी अस्वीकार किया है, पुनरीक्षणकर्ता के अनुसार कथित वसीयतनामा जागेश्वर प्रसाद द्वारा फरवरी 2014 में निष्पादित किया गया था और उसके ठीक बाद अप्रैल 2014 में जागेश्वर प्रसाद की मृत्यु हो गई थी। प्रश्न यह उठता है कि क्या कथित वसीयतनामा के निष्पादन के समय जागेश्वर प्रसाद स्वस्थ दिमाग और स्वस्थ्य व्यक्ति थे या नहीं, ज्वलंत प्रश्न यह भी उठता है कि क्या कथित विलेख प्रारंभिक सर्वराकार श्री राम प्रसाद द्वारा निष्पादित विलेख के अनुरूप है या नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि राम प्रसाद का यह आशय नहीं था कि संपत्ति किसी विशेष जाति या परिवार को मिले, राम प्रसाद द्वारा उक्त मंदिरों में हिंदू समुदाय के किसी भी व्यक्ति के प्रवेश के संबंध में कोई प्रतिबंध नहीं लगाया गया था। विपक्षीगण यह प्रकरण लेकर आए हैं कि कथित वसीयतनामा दिनांक 8.2.2014 फर्जी एवं काल्पनिक है, जिस पर जागेश्वर प्रसाद का कोई हस्ताक्षर नहीं है, यह भी प्रश्न है कि यह एक अपंजीकृत विलेख है जिसके आधार पर वादी को सर्वराकार नियुक्त किया जा सकता है, प्रथम दृष्टया विवादित ट्रस्ट एक सार्वजनिक ट्रस्ट प्रतीत होता है और आवेदक ग्राम बलारपुर के मूल निवासी हैं, वे मंदिर में पूजा करते हैं और उनके अनुसार, वे इसकी संपत्ति की देखभाल भी करते हैं, इसलिए, वे लाभार्थी हैं, आवेदकों के अनुसार दोनों पक्ष आपस में मिले हुए हैं, इसलिए वे ट्रस्ट की संपत्ति को हड़प सकते हैं, इसलिए न्यायालय के समक्ष सही तथ्य लाने के लिए आवेदकों को एक पक्ष बनाया जाए।

अवर न्यायालय ने आवेदकों को आवश्यक पक्ष मानते हुए आवेदन स्वीकार कर लिया। इससे व्यथित होकर पुनरीक्षणवादी ने इस पुनरीक्षण को प्राथमिकता दी है।

आदेश **1** नियम **10** सीपीसी इस प्रकार है**:**

10. <u>वाद गलत वादी के नाम पर</u>

(1) जहां कोई वाद वादी के रूप में गलत व्यक्ति के नाम पर संस्थित किया गया है या जहां यह संदेह है कि यह सही वादी के नाम पर संस्थित किया गया है, वहां न्यायालय, यदि संतुष्ट हो कि, मुकदमा एक वास्तविक गलती मानकर प्रारम्भ किया गया है, और विवाद में वास्तविक प्रकरण के निर्धारण के लिए यह आवश्यक है कि किसी अन्य व्यक्ति को वादी के रूप में प्रतिस्थापित करने या जोड़ने का आदेश ऐसी शर्तों पर दिया जाए, जैसा न्यायालय उचित समझता है।

(2) न्यायालय पक्षकारों को हटा सकता है या जोड़ सकता है **-** न्यायालय कार्यवाही के किसी भी चरण में, किसी भी पक्ष के आवेदन पर या

उसके बिना, और ऐसी शर्तों पर जो न्यायालय को उचित लगें, आदेश दे सकता है कि का नाम अनुचित तरीके से सम्मिलित होने वाले किसी भी पक्ष को, चाहे वादी या प्रतिवादी के रूप में, हटा दिया जाए, और किसी भी व्यक्ति का नाम, जिसे सम्मिलित होना चाहिए था, चाहे वादी या प्रतिवादी के रूप में, या जिसकी न्यायालय के समक्ष उपस्थिति सक्षम करने के लिए आवश्यक हो सकती है न्यायालय को प्रभावी ढंग से और पूरी तरह से निर्णय लेने और मुकदमे में सम्मिलित सभी प्रश्नों का निपटारा करने के लिए जोड़ा जाना चाहिए।

(3) किसी भी व्यक्ति को अगले मित्र के बिना मुकदमा करने वाले वादी के रूप में या उसकी सहमति के बिना किसी विकलांगता के अन्तर्गत वादी के न्याय मित्र के रूप में नहीं जोड़ा जाएगा।

(4) जहां प्रतिवादी जोड़ा गया है, वहां वादपत्र में पुनरीक्षण किया जाएगा - जहां प्रतिवादी जोड़ा गया है, वादपत्र में, जब तक कि न्यायालय अन्यथा निर्देश न दे, ऐसे तरीके से पुनरीक्षण किया जाएगा, जो आवश्यक हो, और समन और वादपत्र के प्रावधानों में पुनरीक्षण किया जाएगा, नए प्रतिवादी पर और, यदि न्यायालय उचित समझे तो मूल प्रतिवादी पर भी कार्यवाही की गई।

(5) भारतीय परिसीमा अधिनियम, *1877 (1877* का *15),* धारा *22* के प्रावधानों के अधीन, प्रतिवादी के रूप में जोड़े गए किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही केवल समन की सेवा पर शुरू हुई मानी जाएगी।

आदेश **1** नियम **10** सीपीसी न्यायालय को कार्यवाही के किसी भी चरण में किसी भी व्यक्ति को पक्षकार के रूप में जोड़ने में सक्षम बनाता है, यदि वह व्यक्ति जिसकी न्यायालय के समक्ष उपस्थिति न्यायालय को प्रभावी ढंग से और पूरी तरह से निर्णय लेने और सभी प्रश्नों को निपटाने में सक्षम बनाने के लिए आवश्यक है।

बालासाहेब बनाम वेंकट***, (2006)*** एससीसी ***530*** में, यह माना जाता है कि-

"आदेश *1* नियम *10* सीपीसी के अन्तर्गत अभियोग के लिए आवेदन में, एकमात्र प्रश्न जो निर्धारित किया जाना है वह यह है कि क्या न्यायालय के समक्ष आवेदक की उपस्थिति आवश्यक हो सकती है ताकि न्यायालय प्रभावी ढंग से और पूरी तरह से निर्णय ले सके और कार्यवाही में सम्मिलित सभी विवादों को सुलझा सके।"

अमित कुमार बनाम फरीदा***,*** एआईआर ***2005,*** एससी ***2209*** में, यह माना जाता है कि-

"एक व्यक्ति को दो मामलों में एक पक्ष के रूप में जोड़ा जा सकता है, अर्थात *(ए)* यदि उसे मुकदमे में एक पक्ष के रूप में सम्मिलित होना चाहिए था और वह इसमें सम्मिलित नहीं हुआ है*; (बी)* यदि उसकी उपस्थिति के बिना मुकदमे का निर्णय नहीं किया जा सकता है।"

अनिल कुमार बनाम शिव नाथ ***(1995), 3*** एससीसी ***147*** में, यह माना गया है कि-

"इस प्रश्न का निर्णय करने के लिए कई परीक्षणों में से कि क्या किसी तीसरे व्यक्ति को मुकदमे में एक पक्ष के रूप में सम्मिलित करने की अनुमति दी जानी चाहिए, महत्वपूर्ण परीक्षण हैं*; (1)* क्या मुकदमे का परिणाम तीसरे पक्ष के आवेदक को प्रभावित करेगा*; (2)* क्या न्यायालय को मुकदमे के पक्षकारों की तर्कों से उत्पन्न होने वाले या मुकदमे से उत्पन्न होने वाले मुद्दों के अलावा किसी अन्य मुद्दे का उत्तर देने की आवश्यकता होगी*;* और *(3)* क्या पक्षकार की उपस्थिति मुकदमे में सम्मिलित सभी प्रश्नों के प्रभावी और पूर्ण निर्णय की सुविधा प्रदान करेगी। एक पक्ष जोड़ा जा सकता है, हालांकि उसके विरुद्ध किसी उपचार का दावा नहीं किया गया है। पूर्ण एवं अंतिम निर्णय के लिए उनकी उपस्थिति आवश्यक है। इस प्रकार वह एक उचित पक्षकार है।"

एसटीसी बनाम चित्तूर सहकारी***,*** एआईआर ***1990*** डेल***, 142*** में, यह माना जाता है कि-

ऐसे प्रकरण हो सकते हैं जब विवाद के उचित निर्णय के लिए किसी व्यक्ति को पक्षकार प्रतिवादी के रूप में सम्मिलित करना पड़ता है, हालांकि उसके विरुद्ध कोई उपचार का दावा नहीं किया जा सकता है।

रतन मुनि कॉलेज बनाम अपर सिविल जज***,*** एआईआर ***1995*** इलाहाबाद ***7*** में, यह माना गया है कि-

"डोमिनस लिटिज़ के सिद्धांत को ज़्यादा नहीं बढ़ाया जाना चाहिए, न्यायालय आदेश दे सकता है कि विवाद को पूरी तरह और प्रभावी ढंग से निपटाने के लिए कार्यवाही के किसी भी चरण में एक पक्ष को सम्मिलित किया जाए, भले ही मुकदमे का कोई पक्ष पक्षकार न बने। "

उदित बनाम अपर सदस्य राजस्व बोर्ड एआईआर ***1963,*** एससी***, 786*** में यह माना गया है कि

"न्यायालय स्वत*:* संज्ञान ले सकता है या किसी पक्ष के आवेदन पर विवाद को पूरी तरह से निपटाने के लिए एक उचित पक्ष को जोड़ या

सम्मिलित कर सकता है"।

कस्तूरी बनाम अय्यमपेरुमल, एआईआर ***(2005) 6*** एसएससी ***733*** में, यह माना जाता है कि-

"यह निर्धारित करने के लिए कि कोई पक्षकार एक आवश्यक पक्षकार है या नहीं, निम्नलिखित दो तथ्यों को संतुष्ट किया जाना चाहिए;

(1) कार्यवाही और पक्षकार में सम्मिलित शर्तों के संबंध में ऐसे पक्ष के विरुद्ध कुछ राहत का अधिकार होना चाहिए।"

(2) इसके अभाव में कोई प्रभावी आज्ञप्ति पारित नहीं की जा सकती

बसलिंगप्पा बनाम नागम्मा, ***AIR 1969*** एमवाईएस ***313*** में, यह माना जाता है कि-

"इस नियम के प्रावधान तब तक लागू होंगे जब तक वे किसी विशेष विधि के प्रावधानों से असंगत न हों।"

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारतीय ट्रस्ट अधिनियम की कार्यवाही में भी आदेश 1 नियम 10 सीपीसी लागू है।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर, इस न्यायालय की राय है कि अवर न्यायालय ने आवेदकों के आवेदन को सही ढंग से स्वीकार किया है और पुनरीक्षणकर्ता को उन्हें प्रतिवादी के रूप में सम्मिलित करने का निर्देश दिया है। यह भी उल्लेखनीय है कि उपरोक्त चर्चाओं से कई प्रश्न उठे हैं जिनका निर्णय भारतीय ट्रस्ट अधिनियम की धारा 74 के अन्तर्गत पुनरीक्षणवादी द्वारा प्रस्तुत आवेदन में आवेदकों/विपक्षी पक्षों को सम्मिलित करके ही किया जा सकता है। इस प्रकार, आक्षेपित आदेश में कोई त्रुटि या अवैधता नहीं है और पुनरीक्षण खारिज किये जाने योग्य है।

इस प्रकार, पुनरीक्षण लागत सहित खारिज किया जाता है। स्थगन आदेश दिनांक 5.10.2016 को खारिज किया जाता है। इस आदेश की एक प्रति आगे की कार्यवाही हेतु अवर न्यायालय को भेजी जाये।